भावप्रकाश

(हिन्दी टीका सहित)

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई-४

श्रीमल्लटकनतनयश्रीभावमिश्रविरचितः

भावप्रकाश

श्री लालाशालिग्राम वैश्य कृत हिन्दी टीका सहित

एवं

पं० कान्तिनारायण मिश्र आयुर्वेदविशारद

ए० एल० आइ० एम० (मद्रास)

द्वारा संशोधित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

संस्करण : सितंबर २०१९, सम्वत् २०७६

मूल्य: १२०० रुपये मात्र

मुद्रक एवं प्रकाशक
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्षः श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृणदास मार्ग,
मुंबई-४०० ००४

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop : Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg.
7 th Khetwadi, Mumbai. 400 004
Tel / Fax : 91 22 23857456

Web Site : http://www.khe_shri.com
E-Mail khemraj@bharatmail.co.in

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadas
Prop.: Shri Venkateshwar Press, Mumbai 400004
at their Shri Venkateshwar Press,
22, Chintamani Industrial Estate,Ramtekadi,Pune 411013

श्रीमल्लटकनतनयश्रीभावमिश्रविरचितः

भावप्रकाश

श्री लालाशालिग्राम वैश्य कृत हिन्दी टीका सहित
एवं
पं० कान्तिनारायण मिश्र आयुर्वेदविशारद
ए० एल० आइ० एम० (मद्रास)
द्वारा संशोधित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

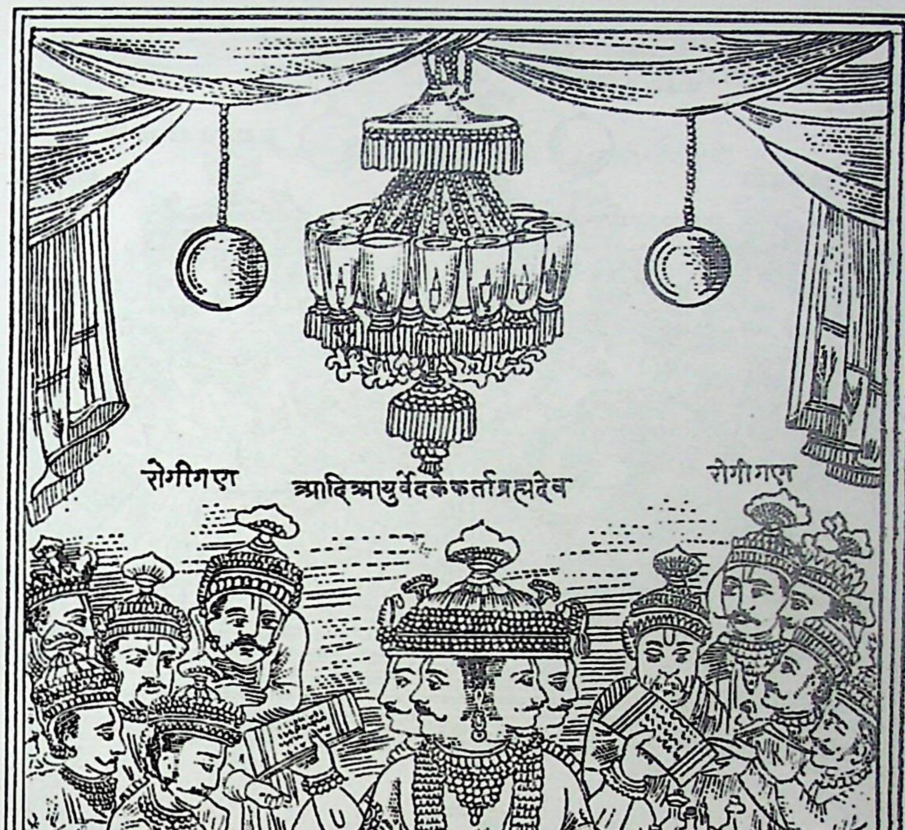
Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.



स्व० वा० कविवर-लालाशालिग्रामवैश्य.


रोगीगण
आदिआयुर्वेदकेकर्ताब्रह्मदेव
रोगीगण


देवमडळी
दक्षप्रजापतिपढतेहैं
ब्रह्मदेव अध्यापक
देवगण
अश्विनीकुमारपढतेहैं
दक्षप्रजापतिपढातेहैं


अश्विनीकुमार भैरवने काटेहुए ब्रह्मदेवके मस्तकको जोडते हैं
देवगण
देवगण
देवगण
अश्विनीकुमार पढाते हैं.
इंद्र पढते हैं
देवगण


आत्रेयादि महर्षि पढंते हैं
इंद्र पढाते हैं
देवगण
देवराज पढाते हैं
ऋषिमंडली
भारद्वाज ऋषि पढते हैं


भारद्वाजऋषि
अत्रि अंगिरा
पुलस्त्य
जमदग्नि
पराशर
शंख
हिमालयपर्वत
चरकऋषिपढतेहैं
मत्स्यभगवान्पढातेहैं
ऋषिसमूह


देवराजइंद्र
धन्वंतरिभगवान्
दिवोदासराजर्षिको काशीपुरीमें ब्रह्मदेवका राज्याभिषेक तिलक करना.
धन्वंतरी
ब्रह्मदेव
ऋषिगण


सुश्रुतादि विश्वामित्रके १०० पुत्र
विश्वामित्रऋषि उपदेशकरतेहैं
काशीनरेशदिवोदास
सुश्रुतादिऋषिबालक


राजसमूह
भावमिश्रवैद्य
ब्रह्ममंडली.

प्रस्तावना ।

★

इस बातको सभी मनुष्य एक साथ मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं कि, यह हमारी भारतभूमि साहित्य, गणित, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि सभी विषयोंसे सम्पन्न होनेके कारण सब देशोंमें शिरमौर समझी जाती थी। इस हमारे ही भारत क्षेत्रके ऐश्वर्यका अन्यान्य देशवासी कुछ कुछ अंश संग्रह करके अपने आप ऐश्वर्य और सम्पत्तिका मूलस्वरूप बनकर पृथ्वीमें भूषणके समान दीखते हैं। हिन्दू राजाओंके समय भारतवर्षमें प्रायः सभी शास्त्रोंकी चर्चा थी, विद्याकी निर्मल कान्ति समस्त देशमें व्याप्त थी। उस समय इस पवित्र "आयुर्वेदीय चिकित्सा" का अधिक प्रचार होनेसे रोगसंकट अधिकतर उपस्थित नहीं होता था, एकबार रोगसे निवृत्त होनेपर फिर बहुत दिनोंयक भारतसंतानको रोगकी भीषण मूर्ति नहीं देखनी पडती थी, उस समय यह पृथिवी स्वर्गके समान दिखाई देती थी, प्रत्येक देशमें "आयुर्वेदीय पाठशाला" स्थापित होनेके कारण प्रायः सभी देशी चिकित्साके पूर्ण विद्वान् और क्रियाओंमें कुशल होते थे, इस कारण भारतवर्षके मनुष्य कभी विदेशी चिकित्साका आश्रय नहीं लेते थे। सदैव आयुर्वेदके ही योगक्रियाओंसे सहजमें सब रोग छूट जाते थे। इस आयुर्वेदीय चिकित्साकी कहांतक प्रशंसा की जाय ? हमारे पूर्वज इसी आयुर्वेदीय नियमानुसार चलनेसे धीर, वीर, साहसी, पराक्रमी और सर्वगुण सम्पन्न होते थे, इस आयुर्वेदीय चिकित्साके प्रभावसे ही भारतवर्षके वैद्योंकी संसारमें बडी प्रशंसा थी। प्रायः यूरोप, फारिस, अरब, रूम आदि अनेक अन्य देशवासी यहां आकर इनसे वैद्यकशिक्षा पाते थे, वे ही विदेशो चिकित्सक समयके फेरसे आज हमे मूर्ख बतला रहे हैं। और इसी भारत भूमिमें समस्त दिव्य औषधियाँ भी उत्पन्न होती थीं। वहींसे फारिस, अरबस्तान, रूम, रूस, काबुल, कन्धार, जर्मन, इँग्लैंड, एशिया, आफ्रिका, इटाली, पोर्टुगाल, स्वेडन और फ्रान्स आदि सब देशोंमें औषधियाँ जाती थीं और आजतक बराबर जाती हैं। इस देशकी प्रजाके ऊपर इस देशकी औषधियाँ ही अच्छी प्रकार गुण करती हैं। फिर हमको और देशकी औषधियोंसे क्या प्रयोजन ? आयुर्वेदकी प्राचीन और उत्कृष्टताके विषयमें हमारे पास बहुतसे यूरोपियन वैद्योंके प्रमाण हैं।

किंतु बडे खेदकी बात है कि, हिंदुओंका राज्य जातेही समस्त दर्शन, न्याय, ज्योतिष, गणित आदि सब शास्त्रोंकी अवनति हो गयी और साथमें ही हमारी परमप्रिय प्रयोजनीय आयुर्वेदीय चिकित्साकी भी एकसाथ चर्चा उठ गयी, उस समयसे भारतके ऐसे अशुभ दिन आये कि, उसको लिखते हुए लेखनी काँपती है। सबके रंग ढंग बिगड गये। मुसलमान लोग यहांतक तंग करने लगे कि, जो वस्तु पाते, वह ले जाते। जिन ग्रन्थोंको विद्वानोंने बडे परिश्रमसे बनाया, यवनोंने उनको आगमें जला जलाकर यमुनाके जलमें बहा

दिया। तब सहस्रों कष्ट सह सहकर दिन पूरे करते थे और जो कुछ औषधियाँ कंठाग्र थीं, उन्हींके बलसे रोगियोंकी चिकित्सा करते थे। दैवयोगसे जब वे वैद्य वैकुंठवासी होगये तो उनकी सन्तान ठेठ मूर्ख हुई। क्योंकि, ग्रन्थ तो प्रथम ही जलादिये गये, लिखना पढना किस प्रकार हो सके? इस कारण संस्कृत वैद्यक-ग्रंथोंका नाम संसारसे उठ गया, केवल वैद्यमनोत्सव, वैद्यजीवन, वैद्यरत्न, दिल्लगन और अमृतसागरको ही लोग बडाग्रन्थ समझने लगे। जिसको एक चूर्ण भी स्मरण था, वह अपने आपको पूर्ण वैद्य समझता था और ऐसे ऐसे छोटे मोटे ग्रन्थोंका ही वैद्योंको बडा अभिमान था। यहांतक प्रमादने घेरा कि, लिखना पढ़ना सब भूल गये, केवल २०-२५ ओषधियोंके ही नाम याद रह गये। जैसे कि, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, अजवायन, हींग, धनिया इत्यादि। और चरक, सुश्रुत, वाग्भटका तो केवल नामही नाम रह गया। वैद्योंको यह भी ध्यान न रहा कि, इनमें क्या क्या विषय हैं? और कितने श्लोक हैं? पठन पाठनका तो कहना ही क्या है। और औषधियोंको पसारी लोग ऐसे भूल गये, मानों कभी जानते ही नहीं थे। कैसे जाने, जब कि औषधियाँ बर्त्तमानोंमें धरी धरी सड गल जाँय और कोई इनका ग्राहक न हो? जो कुछ पढे लिखे थे, वे भी सब भूल गये। इस प्रकार समस्त भारतवर्ष वैद्यकविद्यासे शून्य होगया, डाक्टर और यूनानी हकीमोंका सन्मान होने लगा। जगह जगह सफाखाने और दवाखाने खुल गये। कोनेन और सोडावाटरका नाम सबके मुखसे निकलने लगा, गुलेबनफ़श:, गावजवाँ, नीलोफर, अञ्जवार आदिकी ही सब सराहना करने लगे।

धन्य है, उसकी गतिको; कभी तो वह चर्चा और कभी यह बेसुधी! क्या था और क्या हो गया? वैद्योंकी यह बात न रही। आयुर्वेदीय चिकित्साकी ओरसे मनुष्योंकी दृष्टि फिर गयी। उसका किसीको किञ्चित् मात्र भी विश्वास नहीं रहा। केवल डाक्टरोंका ही धन्वन्तरिके समान स्थान स्थानपर आदर सत्कार होने लगा। सबको अच्छी प्रकारसे विश्वास होगया कि, यूरोपीय चिकित्साकी अपेक्षा आयुर्वेदीय चिकित्सा फलदायक नहीं है। इससे वैद्य लोग जो कुछ औषधि बनाना जानते भी थे, उनका बनाना भी उन्होंने छोड दिया। क्योंकि, कोई उनको बूझनेवाला तो रहा ही नहीं। उस समय आयुर्वेदीय चिकित्साकी जो दुर्दशा हुई, वह लिखनेमें नहीं आसकती। परन्तु सदैव एकसे दिन नहीं रहते। जब भारतवासियोंके दिन फिरे और ईश्वरने अपनी दया की तो हमारी परमप्रिय प्रजापालक गवर्नमेन्टकी पूर्ण अनुकंपासे धीरे धीरे आयुर्वेदीय ग्रन्थोंका प्रचार होने लगा। जिधर तिधर औषधालय खुलने लगे। अनेक प्रकारके संस्कृतमूल और टीकायुक्त वैद्यक ग्रन्थ प्रकाशित होने लगे। प्रियवर! अब कुछ हमारा और भी विशेष भाग्य चेता। क्योंकि, प्रजामनोरंजन भारतहितैषी श्रीमान् सर एंटोनी मेंकडाल साहबने हमपर प्रसन्न होकर संयुक्त प्रांतोंमें हिन्दी दफ्तर करदिया। विद्याकी ऐसी चर्चा फैली कि, आयुर्वेदके बहुतसे ग्रंथ छपवा दिये। जब बहुत ग्रन्थ छपने लगे तो मेरे परममित्र, वैश्यवंशावतंस, सर्वगुणालंकृत,

गोब्राह्मणहितकारी, सत्यव्रतधारी, पूर्णसुखराशी, बंबईनिवासी श्रेष्ठिवर्य खेमराज श्रीकृष्णदासजीने ग्रन्थ अत्यन्त उत्साहके साथ संसारके उपकारके लिये हजारों रुपये खर्च करके अनेक आयुर्वेदीयग्रन्थ मँगाकर भावानुवाद कराकर अपने "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयमें छपवाकर प्रकाशित किये।

मेरे ऊपर भी परम अनुग्रह करके उक्त श्रीमान्ने "आयुर्वेदीय" ग्रंथोंके लिखनेकी मुझको आज्ञा दी। उसी समय मैंने आज्ञाको शिरोधार्य्य करके "निघण्टुभूषण, औषधिकोष, रसरत्नाकर, भैषज्यभास्कर" आदि कई ग्रन्थ लिखकर श्रीमान्को समर्पित किये। उन्होंने अपने "श्रीवेंकटेश्वर" यन्त्रालयमें छापकर जगत्में प्रसिद्ध किये। अब श्रीमान्ने "भावप्रकाश" की टीका लिखनेकी आज्ञा दी, सो वह भावप्रकाश वैद्यसंजीवनीटीकासमेत आज आपके सम्मुख है। अनेक इतिहास, कोष, निघण्टु तथा विलसन साहब आदि विद्वानोंके मतसे मालूम होता है कि, भावमिश्रको अनुमान तीनसौ वर्षसे अधिक हुए। यह लटकनमिश्रके पुत्र मद्रदेशमें उत्पन्न हुए और काशीमें आयुर्वेदका अध्ययन करके अद्वितीय "भावप्रकाश" संग्रह लिखा; जो कि, सम्पूर्ण भारतवर्षमें सूर्यके समान प्रकाशित है। इसमें उन्होंने चोपचीनी. फिरंगरोग आदि कई नवीन विषय लिखे हैं. आयुर्वेदीय अर्वाचीन ग्रन्थोंमें यह सर्वोत्तम हुआ है।

इसमें प्रमादके वश अथवा मेरी अल्पज्ञताके कारण जो कुछ अशुद्धि रह गयी हो, उसको पाठक महाशय सुधार लें और मेरे अपराधको क्षमा करें।

संवत् १९६३
वैशाखकृष्ण-अष्टमी.

आपका कृपाकांक्षी-
शालिग्राम वैश्य,
दीनदारपुरा-मुरादाबाद.

धन्यवादः ।

★

भवन्तु वरःसहस्रान्ता धन्यवादास्तस्मै चराचरजगदुत्पत्तिस्थितिलयकारिणेऽनन्तकोटिब्रह्माण्डनायकाय परमेश्वराय; येनेदं जगन्निजेच्छया समुत्पाद्य नानाविधनिजानुशासनसम्भारसंभूतश्रुतिशास्त्राणि तदुज्जीवनाय समनुशिष्टानि, येषु श्रुति तेनैव स्वात्मवल्लप्तानन्तवस्तुजातविषयकं ज्ञानं परिप्लुतयौतप्रोतं प्रदर्शितमाचार्यत्वपुरःसरं ब्रह्मादिशिष्योपदेशपरंपरया ।

वेदेभ्य एव तेभ्यश्चतुर्भ्य उपवेदाश्चत्वारः प्रादुरभूवन् । तत्र—ऋग्वेदादायुर्वेदः, यजुर्वेदाद्धनुर्वेदः, सामवेदाद्गान्धर्वः, अथर्ववेदादर्थशास्त्रमित्येत उपवेदाः । एते चोपवेदाः स्वास्वाविषयैनाभेदविभेदसंस्करणैरुपबृंहमाणा उन्नतेः परां काष्ठां प्रापद्यन्त भूयसा समतीतेन समयेन ।

तत्रैव चावेदनीयोऽयं विषयो महता समुत्साहेनावेद्यते । आयुर्वेदशास्त्रं हि शरीरसंरक्षणायोपायप्रतिपादकम् । अस्मिञ्छास्त्रेऽद्यावधि विविधैर्ब्रह्मेन्द्रादिभिरनेके स्वानुभूतविषयैरुपनिबद्धाः संहिताग्रन्थाः प्रख्याताः सन्ति । ताश्च संहिताः प्रायो बह्वाचायप्रणीतत्वेन परस्परविसंवादिन्य इति मनसि कुर्वद्भिरनैकैः पण्डितैर्महता प्रतिभाप्रभावेण ताः सङ्कलय्याविसंवादिस्वरूपेण संगृह्य सुस्पष्टप्रतिपत्तये नवीनान् वैद्यकशास्त्रग्रन्थान्विरचय्य बहूपकृतं भूतलम् ॥

तत्रैवायं सांप्रतं प्रस्तूयमानस्तावत्प्रशंसासमयः अस्मिन्वैद्यकशास्त्रे नानाविधसंहिताग्रन्थानां सारंसारं संगृह्य श्रीमल्लटकनमिश्रतनयश्रीमद्भावमिश्रमहापण्डितैर्भावप्रकाशो नाम वैद्यकशास्त्रीयग्रन्थो विरचितोऽस्ति । अस्मिंश्चग्रन्थे सकलौषधीगुणदोषवर्णन पुरःसर समस्तरोगनिदानलक्षणचिकित्साप्रकारः समीचीनतया संवर्णितोऽस्ति । यदीयज्ञानमात्रेण सर्वेऽपि वैद्याः सर्वतो निराकुलं रोगकुलं व्याकुलयन्तो निर्मलयशोभागिनः समुल्लासयन्ति सर्वतो भूमण्डलम् । अतः सन्तु महामहिमशालिभ्यः श्रीभावमिश्रपण्डितेभ्योऽनन्तकालसुरलोकसुखसम्पादकविमलकीर्तिकरग्रन्थविरचनपरिश्रमाभिनन्दनपुरःसरं परशतं धन्यवादाः ॥

अथ च सांप्रतं प्रबलकलिकालविकरालचरितमलीमसमतिवैभवतया प्रायशः संस्कृतभाषापठनपाठनादिव्यवहारो मन्थरं प्रवृत्तः । तेन च संस्कृतभाषोपमिबद्धानेकशास्त्रीयग्रन्थज्ञानपरिपाटी प्रायोऽपचारधाटी समाटीकत इवेति महानयमनर्थो भवितेति निपुणं मनसिकृत्य केवलपरापकारार्थैकावतारैः श्रीमन्महापण्डितमण्डलीसम्मान्यसत्परिश्रमैः श्रीमदायुर्वेदोद्धारकैः श्रीमन्मुरादाबादनगरनिवासिभिः श्रीमन्माथुरवैश्यवंशावतंसैः श्रीलालाशालिग्राममहाशयैरस्मदभ्यर्थानां सकृत्य श्रीमद्भागवतमहापुराणादिनानाविधसंस्कृतग्रन्थभाषानुवादेन कृतार्थीकृतमिदं

---

१ अत्राथ विवदन्ते सूरयः केचन आयुर्वेदो हि—अथर्ववेदस्योपवेद इति । यथाऽत्रैव—विधाताऽथर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन् । स्वनाम्ना सहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम् ॥ इति । परमेतत्कल्पान्तरीयमिति सूरयः समादधते । भवति हि प्रतिकल्पं भूयान्पर्यावर्तः, ततः संभवतीदमपीति समनुसन्धेयं सुधीभिः ॥

भारतभूमितलम् । अतीव स्तुत्यः खल्वेषां संस्कृतग्रन्थानां शुद्धसरलसुबोधभाषानुवादेन सकलसाधारण भारतीयजनानुजिघृक्षयाऽविश्रान्तः परिश्रमः ।

अहो ! किमु वर्ण्यतामेषां धन्यता । यैः केवलमाषष्टिवर्षं वयोऽव्यवहारेण गार्हस्थ्योन्नत्यै व्ययीकृत्य तदन्वकस्मात्सञ्जातनिर्वेदैः केवलं परोपकृतये संस्कृतग्रन्थोद्धारार्थं प्रचुर प्रयत्नमारचय्य केवलमद्ययावद्दशवर्षाभ्यन्तरेऽतीवोपकारकान् १–शुकसागर (श्रीमद्भागवतभाषानुवाद), २–मार्कण्डेयपुराणभाषाटीका, ३–शालिग्राम निघंटुभूषण, ४–शालिग्रामौषधिशब्दसागर, ५–राजवल्लभनिघंटुभाषाटीका, ६–रावणकृतार्कप्रकाशभाषाटीका, ७–राजनिघण्टुभाषाटीका, ८–धन्वन्तरिनिघण्टुभाषाटीका, ९–बोपदेवशतकभाषानुवाद, १०–द्रव्यगुणशतकभाषानुवाद, ११–भारतभैषज्यभास्करभाषाटीका, १२–वंगसेन भाषाटीका, १३–वैद्यकौस्तुभ भाषाटीका, १४–कल्पलता भाषाटीका, १५ सुदामाचरित्र १६–मयूरध्वजनाटक, १८–लावण्यवतीसुदर्शननाटक, १९–अभिमन्युवधनाटक, २०इश्कचमनप्रभृतिग्रन्थान्निर्माय सकलसाधारणजनानां संस्कृतग्रन्थज्ञानसौलभ्यरूपो व्यवहारज्ञानरूपश्च महानेवोपकारोऽकारि । तादृशतीव्रतरप्रयत्न एव तैरयं भावप्रकाशनामा ग्रन्थोऽपि सरलसुबोधभाषाटीकया विभूष्यास्माकं सविधे प्राहीयत । सोयं ग्रन्थोऽस्माभिः 'मुम्बय्यां' स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रसिद्धिमानीयत ॥

आवेदनीयं चैतत् । एभिर्महाशयैर्यावानयं स्वल्पीयसि समये भूयांसं प्रयत्नमारचय्य संस्कृतभाषोपनिबद्धग्रन्थोद्धारेण समस्तभारतभूमण्डलोपरि महानेवोपकारः कृतोऽस्ति, अत एषां धन्यतां वक्तु मादृशस्यैकरसनावतः कथमपि शक्तिर्नास्ति । यैः केमलं व्यासचरितमेवाचरितं चतुर्लक्षाधिकभाषाग्रन्थविरचनप्रयासेनातिस्वल्पीयसा समयेनेति सम्भावयेऽगाधचरिता इमे महामहिमशालिनः श्रीलालाशालिग्राममहाशयाः पूर्णप्रशंसाभाजनमिति प्रब्रवीम्येषामनन्तान् धन्यवादानिति ॥

प्रार्थये च समस्तसज्जनान्प्राञ्जलित्वेन–श्रीमन्तः समस्तधरणिमण्डलमण्डनायमानभारतभूमण्डलनिवासिनः सज्जनाः ! एतेषां महाशयानां तीव्रतरप्रयत्नसञ्जायमानभाषानुवादविभूषितग्रन्थसंग्रहणेन सफलयन्त्वविश्रान्तपरिश्रमानिति शम् ॥

सकलसज्जनसद्गुणप्रेमाभिलाषी–

खेमराज–श्रीकृष्णदासः,

" श्री वेङ्कटेश्वर " (स्टीम्) मुद्राणालयाध्यक्षो–

मुम्बयीस्थः ।

॥ श्रीः ॥

भावप्रकाशस्थ-विषयानुक्रमणिका ।

पूर्वखण्ड ।

बाल प्रकरण ३.

दिनर्तुचर्या प्रकरण ४.

इति भावप्रकाशपूर्वखण्डका प्रथमभाग समाप्त ।

अथ भावप्रकाश पूर्वखंड द्वितीय भाग ।

मांसवर्ग ।

इति पूर्वखण्ड समाप्त ॥

मध्यखण्ड २.

ज्वराधिकार ।

सन्निपातज्वराधिकार ।

सन्निपातज्वर रस ।

ज्वरातिसाराधिकार।

ग्रहणीरोगाधिकार।

मध्यखंड द्वितीयभाग२

अर्शोऽधिकार।

अपस्माराधिकार।

वातव्याध्यधिकार।

विषय. पृष्ठ.

मेदोऽधिकार ।

कार्श्याधिकार ।

उदररोगाधिकार ।

शोथाधिकार ।

वृद्धि--ब्रध्नाधिकार ।

गलगण्ड-गण्डमाला-ग्रंथ्यर्बुदाधिकार ।

सप्तधातुगत कुष्ठके लक्षण।

कच्छूकी चिकित्सा।

शीत पित्त उदर्द कोठ तथा उत्कोठ आदिका अधिकार।

विसर्पाधिकार।

स्नायुरोगाधिकार।

विस्फोटकाधिकार।

फिरंगरोगाधिकार ।

मसूरिकाधिकार ।

शीतलाधिकार ।

क्षुद्ररोगाधिकार ।

शिरोरोगाधिकार।

नेत्ररोगाधिकार।

कर्णरोगाधिकार।

नासारोगाधिकार।

मुखरोगाधिकार।

इति विषयानुक्रमणिकासमाप्त ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ भावप्रकाशः ।

भाषाटीकासमेतः ।

★

पूर्वखण्डे-प्रथमो भागः ।

आयुर्वेदप्रकरणम् ।

मङ्गलाचरणम् ।

गजमुखममरप्रवरं सिद्धिकरं विघ्नहर्त्तारम् । गुरुमवगमनयनप्रदमिष्टकरीमिष्टदेवतां वन्दे ॥ १ ॥

ध्यात्वादेवमजादिसेवितपदं श्रीरामचन्द्रं मुदा सीतालक्ष्मणसंयुतं हरिवरेणासेवितं सर्वदा । वैद्यानां सुखकारणाय ललितं श्रीवैद्यसंजीवनं शालिग्रामभिषक्करोति तिलकं भावप्रकाशस्यच ॥

सम्पूर्ण देवगणोंमें श्रेष्ठ अणिमादिक अष्टसिद्धियोंके दायक और अनेक विघ्नोंके नष्ट करनेवाले गजानन (गणेश) जीको और विज्ञानरूपनेत्रोंके प्रदान करनेवाले श्रीगुरुको और इच्छित फलोंके दाता अपने इष्टदेवताको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

कवेरुक्तिः ।

आयुर्वेदागमनं क्रमेण येनाभवद्भूमौ । प्रथमं लिखामि तमहं नानातन्त्राणि संदृश्य ॥ २ ॥

जिस प्रकार संसारमें आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र) का आगमन जिस क्रमसे हुआ, अनेक शास्त्रोंको अवलोकन करके प्रथम मैं उसी वृत्तान्तको लिखता हूं ॥ २ ॥

अथायुर्वेदस्य लक्षणमाह ।

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा । विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥ ३ ॥

जिसमें आयु (अवस्था) के हित अहित पदार्थ, रोगोंका निदान और व्याधियोंका विनाश (चिकित्सा) कहा हो, उसको विद्वान पुरुष आयुर्वेद कहते हैं ॥ ३ ॥

अथायुर्वेदस्य निरुक्तिमाह ।

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च । तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः ॥ ४ ॥

शरीरजीवयोर्योगो जीवनं तेनावच्छिन्नः कालः आयुः । आयुर्वेदद्वारा आयुष्याणि अनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि ज्ञात्वा तेषां सेवनत्यागाभ्यामारोग्येण आयुर्विन्दति तेनैव हेतुना परस्याप्यायुर्वेत्ति च ॥

इस आयुर्वेदके द्वारा प्राणी आयुको प्राप्त करता है और जानता है, इसीसे मुनिवरोंने इसको आयुर्वेद कहा है । देह तथा जीव इन दोनोंका संबन्ध होनेसे प्राणीका जीवन है, और उस जीवनयुक्त समयका नाम आयु है । आयुर्वेदके द्वारा आयुकी वृद्धी और आयुके विनाश करनेवाले द्रव्य गुण और कर्मोको जाना जाता है, जिसको आयुकी वृद्धि करनी

हो, वह हित (पथ्य) वस्तुके सेवन और अहित (अपथ्य) वस्तुके त्याग करनेसे आरोग्यसहित परमायुको प्राप्त करता है और उन्हीं कारणोंसे दूसरे प्राणियोंकी आयुको भी जान सकता है ॥ ४ ॥

क्रममाह। तत्रादौ ब्रह्मणः प्रादुर्भावः।

विधाताऽथर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन्। स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम् ॥ ॥ ५ ॥ ततः प्रजापतिं दक्षं दक्षं सकलकर्मसु। विधिर्धीनीरधिः साङ्गमायुर्वेदमुपादिशत् ॥ ६ ॥

ब्रह्माजीने अथर्ववेदका सर्वस्व (सारांश) लेकर आयुर्वेदका प्रकाश किया और अपने नामसे एकलाख श्लोकोंका सरल रीतिसे एक ग्रन्थ (ब्रह्मसंहितानामक) निर्माण किया। तदनन्तर बुद्धिवारिधिब्रह्माजीने सम्पूर्णकार्योंमें दक्ष (चतुर) दक्षप्रजापतिको सांगोपांग आयुर्वेदका उपदेश किया ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ दक्षप्रादुर्भावः।

अथ दक्षः क्रियादक्षःस्ववैद्यौ वेदमायुषः। वेदयामास विद्वांसौ सूर्यांशौ सुरसत्तमौ॥७॥

ब्रह्माजीसे पढनेके उपरान्त सर्व क्रियाओंमें कुशल दक्षप्रजापतिने, सूर्यके अंशरूप पूर्ण विद्वान् और देवताओंमें श्रेष्ठ ऐसे स्वर्ग वैद्य- अश्विनीकुमारोंको इस आयुर्वेदको पढाया ॥७॥

अथाश्विनीसुतप्रादुर्भावः।

दक्षादधीत्य दस्रौ वितनुतः संहितां स्वीयाम्। सकलचिकित्सकलोकप्रतिपत्तिविवृद्धये धन्याम्॥८॥ स्वयम्भुवःशिरच्छिन्नं भैरवेण रुषाऽथ तत्। अश्विभ्यां सहितं तस्मात्तौ जातौ यज्ञभागिनौ ॥९॥ देवासुररणे देवा दैत्यैर्ये सक्षताः कृताः। अक्षतास्ते कृताः सद्यो दस्राभ्यामद्भुतं महत् ॥१०॥ वज्रिणोऽभूद्भुजस्तम्भः स दस्राभ्यां चिकित्सितः। सोमाग्निपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव सुखीकृतः ॥ ११ ॥ विशीर्णा दशनाः पूष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च। शशिनो राजयक्ष्माऽभूदश्विभ्यां ते चिकित्सिताः ॥ १२ ॥ भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन् विकृतिं गतः।वीर्यवर्णस्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्यां पुनर्युवा ॥१३॥ एतैश्चान्यैश्च बहुभिः कर्म्मभिर्भिषजां वरौ। बभूवतुर्भृशं पूज्याविन्द्रादीनां दिवौकसाम् ॥ १४ ॥

अश्विनीकुमारोंने दक्षप्रजापतिसे वैद्यकविद्या पढकर सम्पूर्ण चिकित्सकोंकी ज्ञानवृद्धिके लिये अपनी अश्विनीकुमारनामक (श्लोक) संहिता निर्मित की। क्रोधातुर भैरवने जब ब्रह्माजींका शिरच्छेद किया, तब इन्ही दोनों अश्विनीकुमारोंने अनेक उपचारोंसे उनका मस्तक जोडा था. उसी दिनसे इन (जातिपतित) अश्विनीकुमारोंको देवयज्ञमें फिर भाग मिलने लगा। जब देवासुरसंग्राममें देवता दैत्योंसे अंगभंग (घायल) हुए तब उन देवताओंको इन्ही अश्विनीकुमारोंने शीघ्र अक्षत (व्रणरहित) किया, इनका यह अत्यन्त आश्चर्य य अद्भुत कार्य हुआ, इन्द्रकी स्तम्भित भुजाको इन्ही अश्विनीकुमारोंने आरोग्य किया था और अमृतरहित चन्द्रमाको भी अमृतयुक्त सुखी करना इन्हीका काम था, पूषा देवताके दांत टूट गये थे, भगदेवताके नेत्र फूट गये थे चन्द्रमा

१ शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारतन्त्र, अगदतन्त्र, रसायनतन्त्र और वाजीकरण तंत्र ये इस आयुर्वेदके आठ अङ्ग हैं। येही आयुर्वेदके सांगोपांग है। अतएव इसे अष्टाङ्ग आयुर्वेद करते हैं।

१ पूषादेवता और भगदेवताकी कथाश्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें लिखी है। पूषा और भग यह सूर्यके भेद है। ब्रह्मपुराणमें इसका प्रसङ्ग आया है।

राजयक्ष्मारोगसे ग्रसित होगया था, इन सबकी औषधि अश्विनीकुमारोंने ही की थी। भृगुमुनिके गोत्रमें उत्पन्न महावृद्ध कामी च्यवन ऋषि वृद्धताको प्राप्त होनेसे मलिनीकृत (कुरूप) हो गये थे उनको भी अश्विनीकुमारोंने ही वीर्य, वर्ण और स्वर युक्त कर फिर युवावस्था युक्त कर दीथी. इस प्रकार अनेक चमत्कृतकार्य करनेसे वैद्योंमें श्रेष्ठता पाकर ये दोनों अश्विनीकुमार इन्द्रादिक देवताओंमें अत्यन्त पूज्य हुए ॥ ८-१४ ॥

अथेन्द्रप्रादुर्भावः ।

संदृश्य दस्रयोरिन्द्रः कर्माण्येतानि यत्नवान्। आयुर्वेदं निरुद्वेगं तौ ययाचे शचीपतिः ॥१५॥ नासत्यौ सत्यसन्धेन शक्रेण किल याचितौ। आयुर्वेदं यथाऽधीतं ददतुः शतमन्यवे ॥ १६ ॥ नासत्याभ्यामधीत्यैव आयुर्वेदं शतक्रतुः। अध्यापयामास बहूनात्रेयप्रमुखान्मुनीन् ॥ १७ ॥

पूर्वोक्त अश्विनीकुमारोंके अत्यन्त आश्चर्यमय इन कार्योंको देखकर यत्नवान् शचीपति (इन्द्र) ने निरुद्वेग हो उनसे इस परम अद्भुत आयुर्वेदकी याचना की। तब सत्यसन्ध इन्द्रके मांगनेपर उन अश्विनीकुमारोंने जिस प्रकार आप आयुर्वेद पढा था उसी प्रकार इन्द्रको पढाया। तत्पश्चात् इंद्रने अश्विनीकुमारोंसे आयुर्वेदको अध्ययन कर वही चिकित्सा शास्त्र आत्रेय आदि बहुतसे मुनियोंको अध्ययन कराया ॥ १५-१७ ॥

अथात्रेयप्रादुर्भावः ।

एकदा जगदालोक्य गदाकुल मितस्ततः। चिन्तयामास भगवानात्रेयो मुनिपुंगवः ॥ १८ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं लोका निरामयाः। भवन्ति सामयानेतान्न शक्नोमि निरीक्षितुम् ॥ १९ ॥ दयालुरहमत्यर्थं स्वभावो दुरतिक्रमः। एतेषां दुःखतो दुःखं ममापि हृदयेऽधिकम् ॥ २० ॥ आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्याय शरीरिणाम्। इति निश्चित्य गतवानात्रेयस्त्रिदशालयम् ॥ २१ ॥ तत्र मन्दिरमिन्द्रस्य गत्वा शक्रं ददर्श सः। सिंहासने समासीनं स्तूयमानं सुरर्षिभिः ॥ २२ ॥ भासयन्तं दिशो भासा भास्करप्रतिमं त्विषा। आयुर्वेदमहाचार्य्यं शिरोधार्य्यं दिवौकसाम् ॥ २३ ॥ शक्रस्तु तं निरीक्ष्यैव त्यक्तसिंहासनः स्थितः। तमग्रे पूजयामास भृशं भूरितपः कृशम् ॥ २४ ॥ कुशलं परिपप्रच्छ तथाऽऽगमनकारणम्। स मुनिर्वक्तुमारेभे निजागमनकारणम् ॥ २५ ॥ देवराज न जानासि दिव एव यतो भवान्। विधात्रा विहितो यत्नात् त्रिलोकी लोकपालकः ॥ २६ ॥ व्याधिभिर्व्यथिता लोकाः शोकाकुलितचेतसः। भूतले सन्ति सन्तापं तेषां हन्तुं कृपां कुरु ॥ २७ ॥ आयुर्वेदोपदेशं मे कुरु कारुण्यतो नृणाम्। तथेत्युक्त्वा सहस्राक्षोऽध्यापयामास तं मुनिम् ॥ २८ ॥ मुनींद्र इन्द्रतः सांगमायुर्वेदमधीत्य सः। अभिनन्द्य तमाशीर्भिराजगामपुनर्महीम् ॥२९॥ अथात्रेयो मुनिश्रेष्ठो भगवान्करुणाकरः। स्वनाम्ना संहितां चक्रे नरवर्गानुकम्पया ॥ ३० ॥ ततोऽग्निवेशं भेडञ्च जातूकर्णं पराशरम्। क्षीरपाणिं च हारीतमायुर्वेदमपाठयत् ॥ ३१ ॥ तन्त्रस्य कर्त्ताप्रथममग्निवेशोऽभवत्पुरा। ततो भेडादयश्चक्रुः स्वं स्वं तन्त्रं कृतानि

च ॥ ३२ ॥ श्रावयामासुरात्रेयं मुनिवृन्देन वन्दितम् । श्रुत्वा च तानि तंत्राणि हृष्टोऽभूदत्रिनंदनः ॥ ३३ ॥ यथावत्सूत्रितं दृष्ट्वा प्रहृष्टा मुनयोऽभवन् । दिवि देवर्षयो देवाः श्रुत्वा साध्विति चाब्रुवन् ॥ ३४ ॥

एक समय मुनिसत्तम भगवान् आत्रेयजी सब संसारको रोगसे व्याकुल देखकर अपने मनमें कहने लगे कि, मैं क्या करुं ! कहां जाऊँ ? यह लोक किस प्रकार रोगसे मुक्त हो ? इन रोगी लोगोंको मैं किसी प्रकार नहीं देख सकता, क्योंकि मैं अवि कृपालु हूँ, मेरा यह स्वभाव ही दुरतिक्रम है अर्थात् किसी प्रकार बदलता नहीं,इस कारण इन रोगियोंके दुःखसे मेरा हृदय अत्यन्त दुःखी है, मैं इन रोगियोंके रोगोंको दूर करनेके लिय आयुर्वेद पढूंगा, ऐसा विचार करके आत्रेयमुनि स्वर्गको चले गये । वहाँ इन्द्रके स्थानपर जाकर इन्द्रको देखा कि, सुरेन्द्र सुरर्षियोंसे पूजित दिव्य सिंहासन पर विराजमान हैं । मार्तण्ड (सूर्य) के समान अपनी कांतिसे दशों दिशाओंको प्रकाशमान करता हुआ, आयुर्वेदका महान् आचार्य और देवताओंके शिरोमणि सुरेशको सिंहासन पर बैठा देखा । तप करनेसे जिनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो रहा था, ऐसे आत्रेय ऋषिको देखते ही इन्द्र सिंहासनसे उतरकर मुनिका पूजन करने लगे, तत्पश्चात् कुशल सहित आनेका कारण पूछा मुनिने भी अपने आनेका कारण कहना प्रारम्भ किया । हे सुरराज ! आप केवल सुरपुरके ही राजा नहीं हो, किन्तु आपको विधाताने त्रिभुवनका प्रतिपालक बनाया है । इसलिये आपसे यह निवेदन है कि भूतल (पृथ्वी) में रोगोंकी पीडासे व्याकुल चित्त वाले व्याधिसे व्यथित प्राणियोंको अत्यन्त सन्ताप है, उनका ताप दूर करनेके लिये दया कीजिये । संसारी जीवोंकी करुणा विचार कर मुझे आयुर्वेदकी शिक्षा दीजिये । मुनिके मधुर वचन सुनकर इन्द्रने कहा कि, आपके वचन सत्य हैं, यह कह आत्रेय ऋषिको आयुर्वेद अध्ययन कराना आरम्भ किया । इस प्रकार इन्द्रसे मुनींद्र (आत्रेय) ने सांगोपांग आयुर्वेद पढ़ बारम्बार आशिर्वाद दे फिर पृथ्वीमें गमन किया।फिर मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् करुणानिधि आत्रेय मुनिने मनुष्योंपर अनुग्रह कर अपने नामकी एक “ आत्रेयसंहिता” रची । फिर वही आत्रेयसंहिता अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण, पराशर,क्षीरपाणि और हारीत इन छः शिष्यों- को पढाई । इन छः शिष्योंमें प्रथम तन्त्र(ग्रन्थ) के कर्ता अग्निवेश हुए । तत्पश्चात् भेडादिक महात्माओंने भी अपने अपने नामके तन्त्र निर्माण किये और मुनिगणोंसे वंदित महामुनि आत्रेयजीको अपने अपने बनाये हुए तन्त्र सुनाये । उन तन्त्रोंको सुनकर अत्रिनन्दन अत्यन्त हर्षित हुए, और कहने लगे कि, तुमने बहुत उत्तम तन्त्र बनाया । यह सुन सम्पूर्ण ऋषिलोग प्रसन्न हुए, और आकाशमें देव ऋषि समेत सुरपुरके देवतागण भी प्रसन्न होकर साधु साधु अर्थात् धन्य हो धन्य हो ऐसा कहने लगे ॥ १८–३४ ॥

अथ भरद्वाजप्रादुर्भाव ।

एकदा हिमवत्पार्श्वे दैवादागत्य संगताः । मुनयो बहवस्तेषां नामानि कथयाम्यहम् ॥ ३५ ॥ भरद्वाजो मुनिवरः प्रथमं समुपागतः । ततोऽङ्गिरास्ततो गर्गो मरीचिर्भृगुभार्गवौ ॥ ३६ ॥ पुलस्त्योगऽस्तिरसितो वसिष्ठः सपराशरः । हारीतो गौतमः सांख्या मैत्रेयश्च्यवनोऽपि च ॥ ३७ ॥ जमदग्निश्च गार्ग्यश्च कश्यपः काश्यपोऽपि च । नारदो वामदेवश्च मार्कण्डेयः कपिञ्जलः ॥३८॥ शाण्डिल्यः सहकौण्डिन्यः शाकुनेयश्च शौनकः । आश्वलायनसांकृत्यौ विश्वामित्रः परीक्षकः ॥ ३९ ॥ देवलो गालवो धौम्यः काम्यकात्यायनावुभौ । कांका-

यनो वैजपेयः कुशिको बादरायणः ॥४०॥ हिरण्याक्षश्च लौगाक्षिः शरलोमा च गोभिलः ॥ वैखानसा वालखिल्यास्तथैवान्ये महर्षयः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मज्ञानस्य निधयो यमस्य नियमस्य च । तपसस्तेजसा दीप्ता हूयमाना इवाग्नयः ॥ ४२ ॥ सुखोपविष्टास्ते तत्र सर्वे चक्रुः कथामिमाम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम् ॥४३॥ तपः स्वाध्यायधर्माणां ब्रह्मचर्यव्रतायुषाम् । हर्त्तारः प्रसृता रोगा यत्र तत्र च सर्वतः ॥ ४४ ॥ रोगाः कार्श्यकरा बलक्षयकरा देहस्य चेष्टाहरा दृष्टा इन्द्रियशक्तिसंक्षयकराः सर्वाङ्गपीडाकराः । धर्मार्थाखिलकाममुक्तिषु महाविघ्नस्वरूपा बलात्प्राणानाशु हरन्ति सन्ति यदि ते क्षेमं कुतः प्राणिनाम् ॥ ४५ ॥ तत्तेषां प्रशमाय कश्चन विधिश्चिन्त्यो भवद्भिर्बुधैर्योग्यैरित्यभिधाय संसदि भरद्वाजं मुनिं तेऽब्रुवन् । त्वं योग्यो भगवन् सहस्रनयनं याचस्व लब्धुं क्रमादायुर्वेदमधीत्य यं गदभयान्मुक्ता भवामो वयम् ॥४६॥ इत्थं स मुनिभिर्योग्यैः प्रार्थितो विनयान्वितैः । भरद्वाजो मुनिश्रेष्ठो जगाम त्रिदशालयम् ॥४७॥ तथेन्द्रभवनं गत्वा सुरर्षिगणमध्यगम् । दृष्टवान् वृत्रहन्तारं दीप्यमानमिवानलम् ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वैव स मुनिं प्राह भगवान् मघवा मुदा । धर्मज्ञ स्वागतं तेऽथ मुनिं तं समपूजयत् ॥ ४९ ॥ सोऽभिगम्य जयाशीर्भिरभिनन्द्य सुरेश्वरम् । ऋषीणां वचनं सम्यक् श्रावयामास तत्त्वतः ॥ ५० ॥ व्याधयो हि समुत्पन्नाः सर्वप्राणिभयंकराः । तेषां प्रशमनोपायं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ५१ ॥ अपाठयन्मुनिं साङ्गमायुर्वेदं शतक्रतुः । जीवेद्वर्षसहस्राणि देही निरुङ् निशम्य यम् ॥ ५२ ॥ सोऽनन्तपारं त्रिस्कन्धमायुर्वेदं महामुनिः । यथावदचिरात्सर्वं बुबुधे तन्मना मुनिः ॥ ५३ ॥ तेनायुः सुचिरं लेभे भरद्वाजो निरामयम् । अन्यानपि मुनींश्चक्रे नीरुजः सुचिरायुषः ॥ ५४ ॥ तत्तन्त्रजनितज्ञानचक्षुषा ऋषयोऽखिलाः । गुणान् द्रव्याणि कर्माणि दृष्ट्वा तद्विधिमाश्रिता ॥ ५५ ॥ आरोग्यं लेभिरे दीर्घमायुश्च सुखसंयुतम् । आयुर्वेदोक्तविधिनाऽन्येऽपि स्युर्मुनयो यथा ॥ ५६ ॥

एक समय दैवेच्छासे (अकस्मात्) हिमालय पर्वतके ऊपर अनेक महर्षि आकर एकत्र हुए. मैं भिन्न २ उनके नाम वर्णन करता हूँ। प्रथम मुनियोंमें श्रेष्ठ भरद्वाज आये. तदनन्तर अंगिरा. गर्ग, मरीचि, भृगु, भार्गव, पुलस्त्य अगस्त्य असित, वसिष्ठ, पराशर, हारीत, गौतम, सांख्य, मैत्रेय, च्यवन, जमदग्नि, गार्ग्य, कश्यप, काश्यप, नारद, वामदेव, मार्कण्डेय, कपिंजल, शांडिल्य, कौण्डिन्य, शाकुनेय, शौनक, आश्वलायन. सांकृत्य, विश्वामित्र, परीक्षक, देवल, गालव, धौम्य, काम्य, कात्यायन, कांकयन, वैजपेय, कुशिक, बादरायण, हिरण्याक्ष, लौगाक्षि, शरलोमा, गोभिल, वैखानस और वालखिल्य तथा और अन्य (अनेक) महर्षिलोग ब्रह्मज्ञान और यम नियमके समूह तपतेजसे होमी हुई प्रदीप्त अग्निके समान प्रकाशमान इसप्रकार आनन्दपूर्वक उस पर्वतपर बैठकर सबमुनि यह कथन करने लगे कि, धर्म अर्थ, काम, मोक्षका, मुख्य कारण शरीर ही है, परन्तु तप वेदाध्ययन. धर्म, ब्रह्मचर्यादिव्रत और आयुके हरणकर्त्ता रोग जहां तहां सब स्थानोंमें फैले हुए हैं। ये रोग प्राणियोंके देहोंको

दुर्बल करनेवाले, बलका क्षय और शरीरकी चेष्टाको हरनेवाले, इन्द्रियोंकी शक्तिके नाशक, सर्वाङ्गमें पीडा कारक, धर्म, अर्थ, अखिलकामना, मुक्ति इन उत्तम कार्योंमें महा विघ्नरूप होकर बलपूर्वक तत्क्षण प्राणोंको हरनेवाले रोग यदि इस प्रकार दिखाई देते हैं, तब बिचारे जीवोंको सुख किस प्रकार हो सकता है? इस कारण उन पापात्मा रोगोंकी शान्तिका आप योग्य विद्वानोंको कोई उपाय विचारना चाहिये. तब सब ऋषिलोग यह वचन कहकर भरद्वाज मुनिसे बोले हे भगवन्! आप इस कार्य करनेके योग्य हैं, इसलिये आपही इन्द्रके पास जाकर आयुर्वेदको लाओ अर्थात् उनसे पढो फिर जिसको हम सब परस्पर पढकर रोगोंके भयसे मुक्त हो जावें। इस प्रकार योग्य योग्य मुनियोंने जब विनयपूर्वक प्रार्थना की, तब मुनियोंमें श्रेष्ठ भरद्वाजजी स्वर्गलोकको गये। वहाँ इन्द्रपुरीमें जाकर प्रज्वलित अनलके सदृश प्रकाशित देवर्षियोंके मध्यमें वृत्रासुरको मारनेवाले देवराज (इन्द्र) को बैठे देखा। मुनिवर भरद्वाजजीको देखकर भगवान इन्द्रने प्रसन्न होकर कहा कि हे धर्मज्ञ! आपका शुभागमन परमानन्ददायक हुआ. यह कहकर विधिपूर्वक उनका पूजन किया। फिर भरद्वाजमुनि भी इन्द्रके पास जाकर आशीर्वाद आदि जयशब्दोंसे उनको प्रसन्न कर ऋषियोंके कहे हुए वाक्योंको कहने लगे कि, हे देवेश! भूतल (पृथ्वीतल) में सब प्राणियोंको भय देनेवाले महाभयंकर अनेक रोग उत्पन्न हुए हैं, उनके शमन करनेका कोई यथोचित प्रयत्न कहिये, अर्थात् मुझको आयुर्वेदका उपदेश कीजिये। जब सुरेन्द्रने भरद्वाजके यह वचन सुने तब सांगोपांग आयुर्वेदको पढाने लगे, जिसको सुनकर प्राणी व्याधिहीन होकर सहस्र वर्ष तक जिये। महामुनि भरद्वाजजीने अनन्त अपार[1] ऐसे त्रिस्कन्ध[2] (तीनकाण्ड) वाले सम्पूर्ण आयुर्वेदको थोडेही दिनोंमें यथावत् रीतिसे विचार लिया। जिस आयुर्वेदके पढनेसे भरद्वाजजी व्याधिरहित होकर दीर्घायु हुए और अन्य अन्य मुनियोंको भी रोगोंसे छुटाकर चिरायु किया। फिर भरद्वाज मुनिने अपने नामसे महातन्त्र ' भरद्वाजसंहिता निर्माण की, जिससे उत्पन्न ज्ञानरूप नेत्रोंके द्वारा सब मुनिवरभी गुण द्रव्य और कर्मोका विचार तथा उस तंत्रमें कहीहुई विधियोंका आश्रय ले आरोग्य और सुख संयुक्त दीर्घायुको प्राप्त हुए. जैसे कि, आयुर्वेदोक्त विधिसे पूर्वोक्त अन्य मुनि लोग आरोग्यसहित सुखसंयुक्त दीर्घायु हुए ॥ ३५-५६ ॥

अथ चरकप्रादुर्भावः।

यदा मत्स्यावतारेण हरिणा वेद उद्धृतः। तदा शेषश्च तत्रैव वेदं साङ्गमवाप्तवान् ॥ ॥ ५७ ॥ अथर्वान्तर्गतं सम्यगायुर्वेदं च लब्धवान्। एकदा स महीवृत्तं द्रष्टुं चर इवागतः ॥ ५८ ॥ तत्र लोकान् गदैर्ग्रस्तान् व्यथया परिपीडितान्। स्थलेषु बहुषु व्यग्रान् म्रियमाणांश्च दृष्टवान् ॥ ५९ ॥ तान्दृष्ट्वाऽतिदयायुक्तस्तेषां दुःखेन दुःखितः। अनन्तश्चिन्तयामास रोगोपशमकारणम् ॥६०॥ सञ्चिन्त्य स स्वयं तत्र मुनेः पुत्रोबभूव ह। प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य वेदवेदाङ्गवेदिनः ॥ ॥ ६१ ॥ यतश्चर इवायातो न ज्ञातः केनचिद्यतः। तस्माच्चरकनाम्नाऽसौ ख्यातश्च क्षितिमण्डले ॥६२॥ स भाति चरकाचार्यो देवाचार्यो यथा दिवि। सहस्रवदनस्यांशो येन ध्वंसो रुजां कृतः ॥ ॥६३॥ आत्रेयस्य मुनेः शिष्या अग्निवेशादयोऽभवन्। मुनयो बहवस्तैश्च कृतं तन्त्रं स्वकं स्वकम् ॥ ६४ ॥ तेषां

१ इस आयुर्वेदका पार नहीं है अर्थात् अगम्य है। २ हेतु, लिंग औषधात्मक ये तीन इस आयुर्वेदके स्कन्ध कहे हैं। इसकी विशेषव्याख्या चरकमें देखनी चाहिये (च. सू.)

तन्त्राणि संस्कृत्य समाहृत्य विपश्चिता।
चरकेणात्मनो नाम्ना ग्रन्थोऽयं चरकः
कृतः॥ ६५॥

जब मत्स्यावतार धारणकर विष्णुभगवान्ने वेदोंका उद्धार किया, तब शेष भगवान्ने उसी स्थानपर मत्स्य भगवान्से सांगोपाङ्ग वेदोंको पढा। उन वेदोंमें अथर्व वेदके अंतर्गत जो आयुर्वेद मिला हुआ था। उसको भी पढा. एकसमय पृथ्वीका वृत्तान्त जाननेके लिये शेषजी चर अर्थात् दूतका वेष धारण कर मृत्युलोकमें आये। इस लोकमें आकर प्राणियोंको दुःखसे पीडित रोगग्रस्त अथवा अनेक स्थानोंपर रोगोंसे मृत्युको प्राप्त होते हुए देखा। उन जीवोंको देख परमदयालु अनन्त (शेषजी) उनके दुःखसे अत्यन्त दुःखित होकर लोगोंके रोगोंकी शान्तिका उपाय विचारने लगे। इस प्रकार विचार कर आप वेदांगके पारगामी शुद्ध प्रसिद्ध कुलमें किसी ऋषिके पुत्र हुए। जो शेषजी चर (दूत) सदृश होकर इस भूतलमें आये, और किसीने उनको नहीं जाना, इसलिये चरकनामसे वे संसारमें प्रसिद्ध हुए। जैसे देवलोकमें सुरगुरु (बृहस्पति) प्रसिद्ध हैं वैसे ही संसारमें चरकाचार्य प्रसिद्ध हैं, साक्षात् शेषजीका अंश भगवान् चरकाचार्य हैं, जिन्होंनें अनेक व्याधियोंका नाश कर दिया। पूर्वोक्त आत्रेयमुनिके शिष्य अग्निवेशादिक अनेक ऋषि हुए और उन्होने तो अपने नामोंकी पृथक संहिताएँ निर्माण की थीं. उन संहिताओंका प्रतिसंस्कार करके चरकने अपने नामसे चरकसंहिता बनाई॥ ५७।६५॥

अथ धन्वन्तरिप्रादुर्भावः।

एकदा देवराजस्य दृष्टिर्निपतिता भुवि।
तत्र तेन नरा दृष्टा व्याधिभिर्भृशपीडिताः
॥६६॥ तान्दृष्ट्वा हृदयं तस्य दयया परिपीडितम्। दयाऽऽर्द्रहृदयः शक्रो धन्वन्तरिमुवाच ह॥ ६७॥ धन्वन्तरे सुरश्रेष्ठ भगवन् किञ्चिदुच्यते। योग्यो भवसि भूतानामुपकारपरो भव॥ ६८॥ उपकाराय लोकानां केन किं न कृतं पुरा। त्रैलोक्याधिपतिर्विष्णुरभून्मत्स्यादिरूपवान्॥ ६९॥ तस्मात्त्वं पृथिवीं याहि काशीमध्ये नृपो भव। प्रतीकाराय रोगाणामायुर्वेदं प्रकाशय॥७०॥
इत्युक्त्वा सुरशार्दूलः सर्वभूतहितेप्सया।
समस्तमायुषो वेदं धन्वन्तरिमुपादिशत्॥
॥ ७१॥ अधीत्य चायुषो वेदमिन्द्राद्धन्वन्तरिः पुरा। आगत्य पृथिवीं काश्यां जातो बाहुजवेश्मनि॥ ७२॥ नाम्ना तु सोऽभवत् ख्यातो दिवोदास इति क्षितौ। बाल एव विरक्तोऽभूच्चचार सुमहत् तपः॥७३॥ यत्नेन महता ब्रह्मा तं काश्या मकरोन्नृपम्। ततो धन्वन्तरिर्लोकैः काशीराजोऽभिधीयते॥ ७४॥ हिताय देहिनां स्वीया संहिता विहिताऽमुना। अथ विद्यार्थिनो लोकान् संहितां तामपाठयत्॥ ७५॥

एक समय देवराज (इन्द्र) की दृष्टि मृत्यु लोकपर पडी, वहां देखा कि, अनेक मनुष्य व्याधियोंसे परिपीडित हो रहे हैं। उनको देख इन्द्रका हृदय करुणासे विदीर्ण होगया। तब दयार्द्रहृदय इन्द्रने धन्वन्तरिसे कहा कि, हे धन्वन्तरे! हे सुरोत्तम! हे भगवन्! मैं आपसे कुछ प्रार्थना करता हूं, आप योग्य हैं, इसलिये आप प्राणियोंके उपकारपर तत्पर होइये। प्राणियोंके उपकारके लिये पूर्वकालमें मुनियोंने क्या नहीं किया? केवल परोपकारवश त्रिभुवनपति विष्णुभगवान्ने मत्स्यादि रूप धारण किये हैं। इसलिये तुम भूतलमें जाओ और

१ किस ऋषिके पुत्र हुए यह इसमें नहीं कहना न अन्यत्र कहीं लिखा देखा।

काशीपुरीके नरेश होकर लोगोंके रोगोंको नष्ट करनेके लिये आयुर्वेदको प्रकाश करो । यह कहकर सुरशार्दूल (इन्द्र) ने सर्वप्राणियोंके कल्याण (हित) की इच्छासे धन्वन्तरिको सम्पूर्ण आयुर्वेद पढाया । इस प्रकार पूर्वकालमें इन्द्रसे धन्वन्तरिने आयुर्वेद पढ पृथ्वीमें आकर काशीनरेश बाहुज (क्षत्रिय) के घरमें जन्म लिया और संसारमें 'दिवोदास' इस नामसे विख्यात होकर बालकपनसे ही विरक्त होगये और महाघोर तप करने लगे । तब बडे यत्नोंसे ब्रह्माने उनको काशीका राजा किया, उस दिनसे धन्वन्तरिको लोग काशीराज कहने लगे । सम्पूर्णजीवोंके हितके लिये वही काशीराज धन्वन्तरि अपने नामकी संहिता (धन्वन्तरिसंहिता निर्माण करके विद्यार्थियोंको उस संहिताको पढाने लगे ॥ ६६–७५ ॥

अथ सुश्रुतप्रादुर्भावः ।

अथ ज्ञानदृशा विश्वामित्रप्रभृतयोऽविदन् । अयं धन्वन्तरिः काश्यां काशीराजोऽयमुच्यते ॥७६॥ विश्वामित्रो मुनिस्तेषु पुत्रं सुश्रुतमुक्तवान् । वत्स वाराणसीं गच्छ त्वं विश्वेश्वरवल्लभाम् ॥७७॥ तत्र नाम्ना दिवोदासः काशीराजोऽस्ति बाहुजः । स हि धन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेदविदांवरः ॥ ७८ ॥ सर्वप्राणिदयातीर्थादुपकारमहामखात् । आयुर्वेदं पठस्व त्वं लोकोपकृतिहेतवे ॥७९॥ पितुर्वचनमाकर्ण्य सुश्रुतः काशिकां गतः । तेन सार्धं समध्येतुं मुनिसूनुशतं ययौ ॥८०॥ अथ धन्वन्तरिं सर्वे वानप्रस्थाश्रमे स्थितम् । भगवन्तं सुरश्रेष्ठं मुनिभिर्बहुभिः स्तुतम् ॥८१॥ काशीराजं दिवोदासं तेऽपश्यन्विनयान्विताः । स्वागतं च तदा प्राप्त दिवोदासो यशोधनः ॥ कुशलं परिपप्रच्छ तथाऽऽगमनकारणम् ॥८२॥ ततस्ते सुश्रुत द्वारा कथयामासुरुत्तरम् । भगवन्मानवान्दृष्ट्वा व्याधिभिः परिपीडितान् ॥ ८३ ॥ क्रन्दतो म्रियमाणांश्च जाताऽस्माकं हृदि व्यथा । आमयानां शमोपायं विज्ञातुं वयमागताः ॥८४॥ आयुर्वेदं भवानस्मानध्यापयतु यत्नतः । अंगीकृत्य वचस्तेषां नृपतिस्तानुपादिशत् ॥८५॥ व्याख्यातं तेन ते यत्नाज्जगृहुर्मुनयो मुदा । काशीराजं जयाशीर्भिरभिनन्द्य मुदाऽन्विताः ॥८६॥ सुश्रुताद्याः सुसिद्धार्था जग्मुर्गेहं स्वकं स्वकम् । प्रथमं सुश्रुतस्तेषु स्वतंत्रं कृतवान्स्फुटम् ॥ ८७ ॥ सुश्रुतस्य सखायोऽपि पृथक्तंत्राणि तेनिरे । सुश्रुतेन कृतं तंत्रं सुश्रुतं बहुभिर्यतः ॥ ८८ ॥ तस्मात्तत् सुश्रुतं नाम्ना विख्यातं क्षितिमण्डले ॥ ८९ ॥

पश्चात् विश्वामित्र आदि मुनियोंने ज्ञानदृष्टिसे देखा और मनमें विचारा कि, यह वही धन्वन्तरि हैं जो काशीपुरमें काशीराज नामसे प्रसिद्ध हैं । उन मुनियोंमेंसे विश्वामित्रजी अपने पुत्र सुश्रुतसे बोले कि हेवत्स ! तूँ श्रीविश्वनाथजीकी परमप्रिय वाराणसी (काशी) को जा और वहां जो बाहुसुत दिवोदास काशीराज नामसे विख्यात हैं, वे आयुर्वेदके ज्ञाताओंमें परमोत्तम साक्षात् धन्वन्तरि ही हैं । इस कारण संसारके उपकारके लिये उनके पास जाकर आयुर्वेद पढो, क्योंकि सब जीवोंपर दया करना ही तीर्थयात्रा है और उपकार करनाही महायज्ञ समझा जाता है । इस प्रकार विश्वामित्र पिताकी आज्ञा मान, सुश्रुत काशीपुरीको चले गये, और उनके संग पढनेके लिये मुनियोंके सौ (१००) पुत्र और भी गये । वहां जाकर देवश्रेणीमें श्रेष्ठ वानप्रस्थाश्रममें स्थित अनेक मुनियोंसे पूज्य, काशीराज दिवोदास (धन्व-

न्तरि) को उन मुनिपुत्रोंने विषययुक्त देखा. मुनिपुत्रोंको देख यशोधन दिवोदासने उनका यथोचित स्वागत किया और उनसे कुशल क्षेम सहित शुभागमनका वृत्तान्त पूछने लगे । तब सब मुनिपुत्रोंने सुश्रुत द्वारा उनको यह उत्तर दिया कि, हे भगवन् ! अनेक व्याधियोंसे परिपीडित प्राणी भयंकर शब्दसे हाहाकार कर मृत्युको प्राप्त हो रहे हैं उन प्राणियोंकी कुगति देखकर हमारे हृदयमें अत्यन्त व्यथा उत्पन्न होती है। इसलिये उन रोगोंकी शान्तिका उपाय सीखनेके कारण हम सब आपके पास आये हैं आप यत्नपूर्वक हम सबको आयुर्वेद पढाइये। तब उन, मुनि पुत्रोंके वाक्योंको स्वीकार करके श्रीदिवोदास राजा उन ऋषिपुत्रोंको आयुर्वेदका उपदेश करने लगे, और वे सब भी उनके अध्ययन कियेहुए पाठका प्रसन्नता पूर्वक आनंदित होकर ग्रहण करने लगे, फिर कुछ दिन उपरान्त श्रीकाशीराजकी जय हो; जय हो इस प्रकार वारंवार आशीर्वादोंसे काशीपतिको प्रसन्न कर आनन्द सहित सुश्रुतादि ऋषि अपने कार्योंको सिद्ध करके निज निज स्थानोंमें चल दिये। उन मुनिपुत्रोंमें प्रथम सुश्रुतने अपना तन्त्र "सुश्रुतसंहिता" को निर्माण किया। फिर पीछे उनके मित्रोंने भी अपनी अपनी संहिताएँ बनाई उन सब तन्त्रोंमेंसे सुश्रुतके बनाये हुए तन्त्रोंको बहुत लोगोंने सुना, इसलिये इनकी संहिता संसारमें सुश्रुतसंहिता नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ७६-८९ ॥

इति आयुर्वेदप्रकरणे नृणां प्रादुर्भावः।

अथ सृष्टिप्रकरणम् १.

आयुर्वेदाब्धिमध्यादतिमतिमुनयो योगरत्नानि यत्नालब्ध्वा स्वे स्वे निबन्धे दधुरखिलजनव्याधिविध्वंसनाय। तत्तद्ग्रंथादृगृहीतैः सुवचनमणिभिर्भावमिश्रश्चिकित्साशास्त्रे जाड्यान्धकारं प्रशमयितुमिमं संविधत्ते प्रकाशम् ॥ ९० ॥

श्रीपतिपदप्रसादादाशीभिर्भूमिदेवानाम्। भावप्रकाशनाम्ना ग्रन्थोऽयं पठ्यतां सर्वैः ॥ ९१ ॥

बडे बडे विलक्षण बुद्धिवाले मुनिवरोंने औषधियोंके योगरूप रत्नोंको आयुर्वेद समुद्रसे निकालकर मनुष्योंके रोग दूर करनेके लिये अपने अपने ग्रन्थोंमें यत्नपूर्वक स्थापित किया। उन्हीं उन्हीं ग्रन्थोंको भली प्रकार विचार विचार कर उनमेंसे वाक्यरूप मणियोंको एकत्र करके वैद्यक शास्त्रके जाड्य (महाघोर) अन्धकारको विनाश करनेके लिये श्रीमान् भावमिश्रने मार्त्तण्डरूप 'भावप्रकाश' नाम ग्रन्थ निर्माण किया। लक्ष्मीनाथ विष्णुके चरणारविंदोंके प्रसादसे और ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे यह भावप्रकाश नामक ग्रन्थ सर्वजनोंके पठनयोग्य होवे ॥ ९० ॥ ९१ ॥

एतस्य निबन्धस्य फलं चिकित्सा पुरुषस्य। पुरुषस्तु चतुर्विंशतितत्त्वजीवात्मसमवायस्तस्माचतुर्विंशतितत्त्वानां जीवात्मनश्च स्वरूपनिरूपणाय सृष्टिक्रममाह।

इस ग्रन्थके रचनेका मुख्य अभिप्राय पुरुषकी चिकित्सा सिद्ध करना है और वह पुरुष चौवीस तत्त्व और जीवात्माके संयोगसे रचा गया है, इस कारण उन चौवीस तत्त्वोंका तथा जीवात्माका स्वरूप निर्णय करनेके लिये प्रथम सृष्टिका क्रम वर्णन करते हैं।

आत्मा ज्योतिश्चिदानन्दरूपो नित्यश्च निःस्पृहः। निर्गुणःप्रकृतेर्योगात्सगुणः कुरुते जगत् ॥ ९२ ॥

सगुणः-इच्छादियुक्तः ॥

सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणास्ते प्रकृतेः समाः। सा जडापि जगत्कर्त्री परमात्मचिदन्वयात् ॥ ९३ ॥

सतः साधोर्भावः सत्त्वं प्रकाशकं ज्ञानं सुखहेतुः रजो रागात्मकं दुःखहेतुः ताम्यति

ग्लानिं प्राप्नोति अनेनेति तमः आवरकं मोहहेतुः। ते गुणाः समा प्रकृतिरित्यर्थः। तथा सति न्यूनाधिकगुणा विकृतिः॥

आत्माज्योतिःस्वरूप, चिदानन्दरूप, नित्य, निःस्पृह और निर्गुण है। परन्तु वही प्रकृतिके संयुक्त होनेसे सगुण यर्थात् सप्रयोजन होकर संसारको उत्पन्न करता है॥ सत्त्व रज और तम ये तीन प्रकृतिके समान गुण हैं और यह प्रकृति स्वयं जड है परन्तु चैतन्यरूप परमात्माके आश्रयसे जगतको निर्माण करती है। सत्का जो प्रकाश है, वह सत्त्वगुण कहलाता है और सत्त्व ही ज्ञानरूप सुखका कारणरूप है। रज जो है वह रागात्मक है और दुःखका कारण है तथा मनुष्यको जो अन्धकार ग्लानिको देनेवाला है वह तमोगुण बुद्धिका आच्छादन करता है और मोहका मुख्यकारण है तीनों गुण समान प्रकृतिरूप हैं और न्यूनाधिक गुण विकृति कहलाते हैं॥ ९२॥ ९३॥

अथ सुश्रुतमुपदिशन धन्वन्तरिः
प्रकृतेः स्वरूपविशेषमाह।

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नामेति॥

अस्यायमर्थः—अव्यक्तम्, व्यज्यते स्मेति-अव्यक्तं मूलप्रकृत्यपरपर्य्यायम्, ततः सर्वभूतानां कारणं समवायिकारणम्, अकारणम् न विद्यते कारणं यस्य तत् सत्त्वरजस्तमोलक्षणं समसत्त्वरजस्तमस्वरूपम् अष्टरूपम् अव्यक्तं महान् अहंकारः पञ्चतन्मात्राणि इति अष्टौ रूपाणि यस्य तत्। यत इन्द्रियाणां महाभूतानां च कारणतया महदादयोऽपि सप्त प्रकृतयः एवमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तमित्युपसंहारः॥

वह प्रकृति सम्पूर्ण प्राणियोंका कारण, अकारण, सत्वरज और तमरूप, आठरूपवाली, सकल जगत्की उत्पत्तिका कारण और अव्यक्त नामवाली है अव्वक्त शब्दका अर्थ जो स्पष्टरूपसे नहीं दीखता उसे अव्यक्त कहते हैं, मूल, प्रकृति यह उसका दूसरा नाम है। सम्पूर्ण प्राणियोंका कारण, अर्थात् समवायिकारण जानना। अकारण अर्थात् जिसका कारण विद्यमान नहीं ऐसा, सत्त्व रज और तमोलक्षण, अर्थात् सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुणके समान स्वरूपवाली "अष्टरूपी" अर्थात् अव्यक्त महान अहंकार और पंचतन्मात्रा ऐसे आठरूपवाली महदादिक सात प्रकृतियाँ जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिका कारणरूप अव्यक्त हैं इस प्रकार यहां उपसंहार जानना।

प्रकृतिपुरुषयोः साधर्म्यमाह।

उभावप्यनादी उभावप्यनन्तौ उभावप्यलिङ्गौ उभावपि नित्यौ उभावप्यपरौ उभावपिसर्वगतौ इति॥

उभावपि नित्यौ लयं क्वचिदपि न यातः। उभावप्यपरौ न विद्यते परोऽपरो याभ्यां तावपरौ॥

प्रकृति पुरुष दोनों अनादि, दोनों अनन्त, दोनों अलिंग अर्थात् चिह्नरहित, दोनों नित्य अर्थात् जिसका कभी नाश न हो, दोनों अपर अर्थात् जिससे परे और दूसरा न हो, और दोनों सर्वव्यापक अर्थात् सबमें विद्यमान हैं।

अथातस्तयोर्वैधर्म्यमाह।

एका तु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणा बीजधर्मिणी प्रसवधर्मिण्यमध्यस्थधर्मिणी चेति॥

अचेतना जडा त्रिगुणा तुल्यगुणत्रयात्मिका। बीजधर्मिणी सर्वेषां महदादीनां विकाराणां बीजत्वेनावस्थिता, प्रसवधर्मिणी पुरुषेणाक्रान्ता क्षयं प्राप्य सम्यगतिक्रम्य महादहंकार दिक्रमेण जगत प्रसवित्री, अमध्यस्थधर्मिणी सुखदुःखभोगभोगिनी न तु सुखदुःखभोगादुदासीनाम्॥

पुरुषस्तु चेतनावान् निर्गुणोऽप्रसवधर्मा अबीजधर्मा मध्यस्थधर्मा चेति ॥ ९४ ॥

निर्गुणः अविद्यमानसत्त्वादिगुणः, अबीजधर्मा महाप्रलये महदादीनां विकाराणां प्रकृताविव तस्मिन्ननवस्थानात्, मध्यस्थधर्मा सुखदुःखेच्छाद्वेषादिभ्य, उदासीनः ॥

प्रकृति तो एक, अचेतन, तीन, गुणवाली (जिसमें तीनों गुण सदैव समान जान पडते हैं) बीजधर्मवाली (सम्पूर्ण महतत्वादिक विकारोंके बीजरूपसे स्थित) प्रसवधर्मवाली (पुरुषसे क्षोभको प्राप्त होकर समताको त्याग, महत्तत्व और अहंकारादिकको सब प्रकारसे उल्लंघन करके क्रमसे संसारको उत्पन्न करनेवाली) अमध्यस्थधर्मवाली (सुख दुःखके भोगोंको भोगनेवाली परन्तु सुख दुःखके भोगसे उदासीन नहीं) है ॥ पुरुष तो चेतनायुक्त, निर्गुण, अप्रसवधर्मी अर्थात् उत्पन्न कर्त्ता नहीं है, अबीजधर्मी और मध्यस्थधर्मवाला है। निर्गुण अर्थात् जिसमें सत्वादिगुण विद्यमान न हों। अबीजधर्मी अर्थात प्रलयकालमें जिस प्रकार महत्तत्वादिक विकार मायाके भीतर रहते हैं, उस प्रकार पुरुषमें नहीं रहते, मध्यस्थधर्मी अर्थात् सुख दुःखकी इच्छा और द्वेषादिकसे उदासीन हैं ॥ ९४ ॥

प्रकृतेर्नामान्याह।

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा। एतानि तस्या नामानि पुरुषया समाश्रिता ॥ ९५ ॥

प्रधान, प्रकृति, शक्ति नित्या और अविकृति पुरुषकी आश्रित रहनेसे उस प्रकृतिके ये नाम हैं ॥ ९५ ॥

गुणानाह।

सत्त्वं रजस्तमस्त्रीणि विज्ञेयाः प्रकृतेर्गुणाः। तैश्च युक्तस्य चित्तस्य कथयाम्यखिलान् गुणान् ॥ ९६ ॥

सत्व, रज, तम ये तीन प्रकृतिके गुण समझने चाहिये, इन गुणोंसे संयुक्त चित्तके सम्पूर्ण गुणोंको वर्णन करता हूँ ॥ ९६ ॥

सत्त्वयुक्तस्यमानसो गुणानाह।

आस्तिक्यं प्रविभज्य भोजनमनुत्तापश्च तथ्यं वचो मेधाबुद्धिधृतिक्षमाश्च करुणा ज्ञानं च निर्दम्भता।कर्मानिन्दितमस्पृहंच विनयो धर्मः सदैवादरादेते सत्त्वगुणान्वितस्य मनसो गीता गुणा ज्ञानिभिः ॥९७॥

अस्ति धर्ममोक्षपरलोकादिकमिति बुद्ध्या चरतीत्यास्तिकस्तस्य भाव अस्तिक्यम्। अनुतापः अक्रोधः धृतिः भूतप्रेतस्मरक्रोधलोभाद्यावेशराहित्यम्, ज्ञानमात्मज्ञानम्, निर्दम्भता कपटाभावः, कर्म अनिन्दितम्, अस्पृहं निष्कामं च ॥

आस्तिकपन (धर्म, मुक्ति, लोक, परलोकका विश्वाश इस बुद्धिसे जो कर्म करते हैं, वे आस्तिक हैं उनके धर्मको अस्तिक्य कहते हैं. भली प्रकार परिवारमें विभाग करके भोजन करना, अनुत्ताप (क्रोध रहित) सत्य बोलना मेधा (धारण शक्तिवाली बुद्धि) बुद्धि, धृति, (भूत, प्रेत, काम, क्रोध, लोभादिकोंके आवेशसे वचना) क्षमा, करुणा (दया), ज्ञान (आत्मज्ञान) निर्दम्भता (कपटरहितता), अनिन्दित, अस्पृह (निष्काम) कर्म, विनय, और नित्यप्रति धर्ममें प्रीति ये सब लक्षण सत्व गुणयुक्त मनके धीमान् पुरुषोंने कहे हैं ॥९७॥

रजोगुणयुक्तस्य मनसो लक्षणमाह।

क्रोधस्ताडनशीलता च बहुलं दुःखं सुखेच्छाऽधिका दम्भः कामुकताऽप्यलीकवचनं चाधीरताऽहङ्कृतिः। ऐश्वर्य्यादभिमानिताऽतिशयिताऽऽनन्दोऽधिकश्चाटनं प्रख्याता हिरजोगुणेन सहितस्यैते गुणा श्चेतसः ॥ ९८ ॥

अलीकवचनं मिथ्याकथनम् अटनं पृथ्वीपरिभ्रमणम् ॥

महाक्रोधी, मार पीट करनेवाला, दुःख सुखकी अधिक इच्छा, दम्भी, कामी, अस-

त्यवादी, अधीर, अहंकारी, ऐश्वर्य पाकर अभिमान करना, अधिक आनन्द मानना और पृथ्वीमें घूमना ये सब रजोगुणी मनके लक्षण विख्यात हैं ॥ ९८ ॥

तमोयुक्तस्य मनसो लक्षणमाह ।

नास्तिक्यं सुविषण्णताऽतिशयिताऽऽलस्यं च दुष्टा मतिः प्रीतिर्निन्दितकर्मशर्मणि सदा निद्रालुताऽहर्निशम् । अज्ञानं किल सर्वतोऽपि सततं क्रोधान्धता मूढता प्रख्याता हि तमोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥ ९९ ॥ तत्र प्रभूतसत्त्वस्तु सात्त्विकः पुरुषः स्मृतः । राजसस्तामसश्चैव त्रिविधस्तेन मानवः ॥ ॥ १०० ॥ ततोऽभवन्महत्तत्त्वं बुद्धितत्त्वापराभिधम् ॥ १०१ ॥

नास्तिकपन, चित्तमें अत्यन्त खेद, महाआलस्य नीचबुद्धि, निन्दित काम और निन्दित, सुखोंमें निरन्तर प्रीति, दिनरात सोनेकी इच्छा, सब कामोंमें अज्ञानपन सदैव क्रोधका अंधकार चित्तमें छाये रहना, सर्व कार्योंमें मूढता ये सब लक्षण तमोगुणवाले मनके हैं। इनमें अधिक सत्त्वगुणवाला पुरुष सातिवक कहलाता है, अधिक सत्त्वगुणवाला राजसी और अधिक तमोगुणवाला तामसी कहलाता है, इस रीतिसे तीन प्रकारके पुरुष संसारमें होते हैं। पीछे "बुद्धितत्त्व" इस नामवाला महत्तत्त्व हुआ ॥ ९९-१०१ ॥

त्रिगुणं सत्त्वबहुलं निर्मलं स्फटिकोपमम् । चिच्छायाप्राप्तचैतन्यं तदिच्छामयमीरितम् ॥ १०२ ॥

ततः प्रकृतेस्त्रिगुणं त्रयो गुणा यत्र तत् तच्च सत्त्व बहुलम् । अत्रायमभिप्रायः-यथा निश्चले ह्रदादौ अह्रुद्रव्यपातात् तदीथं जलं वर्द्धते तथा चिद्रूपपुरुषेणाक्रमणात् तुल्यगुणत्रयात्मिकायाः प्रकृतेर्ज्ञानहेतुः प्रकाशः सत्त्वगुणी वृद्धः प्रवृद्धः सत्वतः प्रकृतेः सत्त्वबहुलं बुद्धितत्त्वमभवत् ॥

महतस्त्रिगुणाज्जातोऽहंकारस्त्रिगुणान्वितः। सात्त्विको राजसश्चापि तामसश्चेति स त्रिधा ॥ १०३ ॥

महतः बुद्धितत्त्वात्, त्रिगुणात् त्रयो गुणः यत्र ततः । ननु महत्तत्त्वं त्रिगुणमुक्तमेव, किमर्थं महतस्त्रिगुणादिति विशेषणम्? सत्यम् । त्रिगुणादिति पुनर्विशेषणादुक्तं सत्त्वबहुलमिति विशेषणमत्र नानुवर्त्तते । तेनाहंकारोत्पादकं महत्तत्त्वं त्रिगुणमपि रजोबहुलं बोद्धव्यम् । अहंकारस्य रजोगुणान्वितस्य मनोधर्मत्वात् । अहंकारोऽभिमानव्यापारः । अहंकारस्त्रिविधस्तमाह सात्त्विक इत्यादि ।

वह महत्तत्त्व त्रिगुणविशिष्ट अधिक सत्त्ववाला स्फटिकमणिके सदृश निर्मल है और चिच्छाया अर्थात् चिद्घनानन्दके आवरणसे चेतनाको प्राप्त होकर उसी जगदाधारकी इच्छामय कहा है, यद्यपि उस महत्तत्त्वमें प्रकृतिके तीनों गुण हैं, परन्तु सत्त्व, रज और तामस गुण अधिक हैं, इसका प्रयोजन यह है कि जैसे अचल सरोवरादिकोंमें अनेक द्रव्य डालनेसे उस तालावका जल अधिकताको प्राप्त होता है, इसी रीतिसे चैतन्य रूप पुरुषके आक्रमण करनेसे समगुणत्रयात्मिका प्रकृतिके-ज्ञानका कारणरूप प्रकाश ऐसा सत्त्वगुण वृद्धिको प्राप्त होता है, फिर उस वृद्धिवाले सत्त्वगुणसे प्रकृतिका अधिक सत्त्वगुणवाला बुद्धितत्त्व प्रकट हुआ । त्रिगुणात्मक महत्तत्त्वसे तीनों गुणवाला अहंकारतत्त्व प्रगट हुआ। वह सात्विक, राजस और तामस ऐसे तीन प्रकारका है। बुद्धितत्वसे कोई यह शंका करे कि, महत्त्वता तीनों गुणवाला कहा ही

गया, फिर 'त्रिगुण' यह विशेषण क्यों दिया! इसका समाधान यह है कि, फिर विशेषणके देनेसे यहां यह दिखाया कि सत्वका बाहुल्यवाला विशेषण ऐसे स्थान पर नहीं लिया जाता, इससे यह समझना चाहिये कि अहंकार उत्पन्नकर्त्ता महत्तत्व त्रिगुणवाला अधिक है रजोगुणसे मिला हुआ अहंकार मनका धर्म होनेसे अहंकार अभिमानरूपी व्यापारका लक्षणवाला है, अहंकार तीन प्रकारका है, सात्विक इत्यादि वाक्योंसे उसके तीन प्रकारके भेद कहे हैं ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

तस्य त्रिविधस्य कार्यमाह।

जातानि सात्त्विकात्तस्मादिन्द्रियाणि सराजसात्। तानि श्रोत्रं त्वचो नेत्रं रसना नासिका तथा ॥ १०४ ॥ वाग्घस्तचरणोपस्थगुदान्येकादशं मनः ।पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च ॥१०५॥ कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथयन्ति विपश्चितः ॥

बुद्धीन्द्रियाणि बुद्धेराश्रयत्वात्। कर्मेन्द्रियाणि कर्माश्रयत्वात्। सात्विकाहंकाराज्जातत्वादिन्द्रियाणि प्रकाशलक्षणानि सत्त्वस्य प्रकाशकत्वात् ॥

मनो बुद्धीन्द्रियं विज्ञैः कर्मेन्द्रियमपि स्मृतम्
मनोऽधिष्ठितमेवेदमिन्द्रियं यत्प्रवर्त्तते १०६

राजसयुक्त सात्विक अहंकारसे ग्यारह इन्द्रियां उत्पन्न हुईं, उनके नाम ये हैं-श्रवण, त्वचा (चिमडी), नेत्र, जिह्वा नासिका, वाणी, हाथ, पाँव, लिंग, गुदा और ग्यारहवां मन, इनमें पहिली पांच इन्द्रियोंको बुद्धिके आश्रित होनेसे बुद्धि इन्द्रिय कहते हैं और अन्तकी वाणी आदि पांच इंद्रियोंको कर्मके आश्रित होनेसे कर्म्मेन्द्रिय कहते हैं, सात्विक अहंकारसे प्रगट हुई इन्द्रियां प्रकाशलक्षणवाली हैं, क्योंकि सत्वगुण प्रकाशक है। विद्वान् लोग मनहीको बुद्धीन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय कहते हैं क्योंकि मनहीके आधीन होनेसे इन्द्रिय अपने अपने कर्मोंको करती हैं ॥ १०४-१०६ ॥

तत इन्द्रियाणां विषयानाह।

शब्दःस्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धो ह्यनुक्रमात्। बुद्धीन्द्रियाणां विषयाः समाख्याता महर्षिभिः ॥ १०७ ॥ वाच्यं ग्राह्यश्च गन्तव्यमानन्दं त्याज्यमेव च। कर्मेन्द्रियाणां विषया ज्ञातव्यो विषयो हृदः ॥ १०८ ॥

हृदः-मनसः।

तामसादप्यहंकारस्तन्मात्राणि सराजसात्। पश्चाल्पसत्त्वसम्बन्धात्तल्लिङ्गानि भवन्ति हि ॥ १०९ ॥ शब्दतन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम्। रसतन्मात्रकं गन्धतन्मात्रमिति तानि तु ॥ ११० ॥

तल्लिङ्गानि मोहादिलिङ्गानि तानि अद्भुतस्वभावानि बाह्येन्द्रियाणि। शब्दादीन्येव तन्मात्राणि तानि च योनिभिरेव ग्राह्याणि। सा सा मात्रा यस्मिन् तत् तन्मात्रम् ॥

तन्मात्रेभ्यो वियद्वायुर्वह्निर्वारि वसुन्धरा। एतानि पंच जायन्ते महाभूतानि तत्क्रमात् ॥ १११ ॥

एकोत्तरपरिवृद्ध्या वियदादयो जायन्त इत्यर्थः। तथा शब्दजतन्मात्राच्छब्दगुणं वियज्जायते। शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्राच्छब्दस्पर्शगुणो वायुर्जायते। शब्दतन्मात्रस्पर्शतन्मात्रसहितात् रूपतन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपगुणो वह्निर्जायते। शब्जतन्मात्रस्पर्शतत्मात्ररूपतन्मात्रसहितादसतन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपरसगुणं वारि जायते। शब्दतन्मात्रस्पर्शतन्मात्ररूपत-

न्मात्ररसतन्मात्रसहिताद्गन्धतन्मात्राच्छब्दस्पर्श-रूपरसगन्धगुणा वसुन्धरा जायते ॥

कानोंका विषय शब्द, त्वचाका विषय स्पर्श, नेत्रोंका विषय रूप, जिह्वाका विषय रस और नासिकाका विषय गन्ध इस प्रकार क्रमसे बुद्धिइन्द्रियोंके विषय महर्षि लोगोंने वर्णन किये हैं। वाणीका विषय बोलना, हाथोंका विषय देना लेना, पाँवोंका विषय चलना फिरना, लिङ्ग (इंद्रिय) का विषय आनन्द और गुदाका विषय मलका त्यागना ये कर्मेन्द्रियोंके विषय जानने और मनका विषय जानना है। राजसगुणयुक्त तामस अहंकारके संयोगसेभी पाँच तन्मात्रा उत्पन्न हुईं। इनमें सत्वगुणका अल्प सम्बन्ध होनेसे राजस और तामसके मोहादिक चिह्न पाये जाते हैं, वे अद्भुत स्वभाववाले बाह्येन्द्रियों करके ग्राह्य हैं। शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, और गन्धतन्मात्रा ये पाँच तन्मात्रा जाननी। शब्दादितन्मात्रा योगीजनोंको ही दृष्टि आती हैं और दूसरे लोगोंको नहीं दीखतीं वह २ मात्रा जिसमें होय वह तन्मात्रा कहता है। तन्मात्राओंसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पंचमहाभूत क्रमसे उत्पन्न होते हैं, एक एककी उत्तरोत्तर वृद्धिसे आकाशादि उत्पन्न होते हैं, जैसे-शब्द तन्मात्रासे शब्दगुणवाला आकाश प्रगट होता है, शब्दतन्मात्रासहित स्पर्शतन्मात्रासे शब्दस्पर्शगुणवाली वायु प्रगट होती है, शब्दतन्मात्रा स्पर्शतन्मात्रासहित रूपतन्मात्रासे शब्दस्पर्श रूपगुणवाली अग्नि प्रगट होती है, शब्दतन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रारूपतन्मात्रा युक्त रसतन्मात्रासे शब्द स्पर्श रूप रसगुणवाला जल उत्पन्न होता है, एवं शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा रूपतन्मात्रा रसतन्मात्राके सम्बन्धसे गन्धतन्मात्रासे शब्द, स्पर्श; रूप, रस गन्धगुणवाली पृथ्वी प्रगट होती है ॥ १०७-१११ ॥

अथ महाभूतानां गुणानाह।

शब्दः श्रोतेन्द्रियं वाऽपि च्छिद्राणि च विविक्तता। वियताः कथिता एते गुणा गुण विचारिभि ॥ ११२ ॥

विविक्तता शरीराणां भावानां शिरास्नाय्वस्थि-पेशीप्रभृतीनां जातिव्यक्तिभ्यां मिथःपृथक्त्वम् ॥

स्पर्शस्त्वगिन्द्रियश्चापि लघुता स्पन्दनं तनोः। चेष्टा सर्वशरीरस्य वायोरेते गुणाः स्मृताः ॥ ११३ ॥ रूपं नेत्रेन्द्रियं पाकः सन्तापस्तीक्ष्णता तथा। वर्णो भ्राजिष्णुताऽमर्षः शौर्य्यं वह्नेर्गुणा अमी ॥ ११४ ॥

रूपं लावण्यम्। पाकः उदराग्निना आहारपाकः। सन्तापः औष्ण्यम्। तीक्ष्णता आशुकारिता। वर्णो गौरादिः। भ्राजिष्णुता दीप्तिः। अमर्षः क्रोधः ॥

रसो रसेन्द्रियं शैत्यं स्नेहश्च गुरुता तथा। सर्वद्रवसमूहश्च शुक्रं वारिगुणाः स्मृताः ॥ ॥ ११५ ॥ गन्धो घ्राणेन्द्रियं चापि काठिन्यं गौरवं तथा। वसुन्धरागुणा एते गदिता गुणवेदिभिः॥ ११६॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपश्च रसो गन्धश्च तत्क्रमात्। तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावनुपागताः ॥ ११७ ॥

तत्क्रमाच्छब्दतन्मात्रादिक्रमात्। विशेषा अनुभवयोग्यैःख सुखदुःखमोहरूपैधर्मैर्विशेष्यन्त इति विशेषाः। अत्र कर्मणि घञ प्रत्ययः। तन्मात्राणि तु अविशेषाणि यतस्तानि अनुभवयोग्यौ सुखादिभिर्विशेष्टुंन शक्यन्ते सूक्ष्मत्वात्॥

शब्द, श्रोत्रेन्द्रिय (कर्णेन्द्रिय) छिद्र और विविक्तता ये आकाशके गुण, गुणसंबन्धी विचार करनेवाले गुणी पुरुषोंने कहे हैं। विविक्तता अर्थात् शिरा (छोटी नसे), स्नायु (मोटी नसे), अस्थि और पेशी प्रभृति

भावोंको जाति और व्यक्तिसे परस्पर भिन्न भिन्न करना, ये सब गुण गुणियोंने आकाशके वर्णन किये हैं। स्पर्श (छूना) त्वक्, इन्द्रिय, लघुता, देहका स्पन्दन (हिलना) और सब शरीरकी चेष्टा ये सब वायुके गुण कहे हैं। रूप (लावण्य) नेत्रेन्द्रिय, पाक (उदरकी अग्निसे आहारका पाक), सन्ताप (गर्मी) तीक्ष्णता (शीघ्र कारीपना) वर्ण (गोररंगादि-भ्राजिष्णुता (दीप्तपना) अमर्ष (क्रोध) और शूरता ये सब अग्निके गुण हैं। रस, रसेन्द्रिय (जिह्वा) शीतलता (नर्मी) स्नेह (चिकनापन) गुरुता (भारीपन) संपूर्ण बहनेवाले द्रव्योंका एकत्र होना और शुक्र (वीर्य) ये सब जलके गुण हैं। गन्ध, घ्राणेन्द्रिय (नाक), कठिनता और भारीपन ये सब विद्वान् लोगोंने पृथ्वीके गुण कहे हैं. स्थूलभावको प्राप्त होकर, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँचों शब्दतन्मात्रादिकोंके क्रमसे तन्मात्राओंके विशेष हैं अर्थात अनुभवयोग्य सुख दुःख और मोहरूपी धर्म विशेष हैं। किन्तु अतिसूक्ष्मतासे तन्मात्रा अविशेष हैं क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्मताके हेतु अनुभवके योग्य सुखादिकोंसे विशिष्ट नहीं कर सकती ॥ ११२-११७ ॥

प्रकृते कारणायोगान्मता प्रकृतिरेव सा।
महत्तत्त्वादयः सप्त शक्तेर्विकृतयः स्मृता ॥ ११८ ॥

प्रकृतिरेव कारणं न तु कस्यचित् कार्यमित्यर्थः। कार्याणि इन्द्रियाणां सर्वभूतानां कारणत्वान्महर्षिभिर्महत्तत्त्वादयः सप्त महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणीति शक्तेः प्रकृतेर्विकृतयः कार्याणि ॥

प्रकृतिही सबका कारण रूप है अर्थात् कार्य रूप नहीं है, इसलिये कार्य न होनेसे विद्वान् लोगोंने प्रकृतिहीको प्रकृति मानी है और महत्तत्त्वादिक जो सात हैं वेही उस प्रकृतिकी विकृति हैं; प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पंचतन्मात्रा ये आठ प्रकृति हैं ॥ ११८ ॥

इन्द्रियाणां च भूतानां कारणत्वान्महर्षिभिः। महत्तत्त्वादयःसप्त प्रोक्ताः प्रकृतयोऽपि च ॥ ११९ ॥

इन्द्रियोंके कार्य और भूतोंके कारण होनेसे महर्षियोंने सात महत्तत्त्वादिकोंको भी प्रकृति कहा है ॥ ११९ ॥

दशेन्द्रियाणि चित्तश्च महाभूतानि पञ्च च। एतानि सृष्टिं जानद्भिर्विकाराः षोडश स्मृताः ॥ १२० ॥

विकाराः-कार्याणि ॥

दश इन्द्रिय मन और पंच महाभूत, सृष्टिके जाननेवाले पुरुषोंने ये सोलह विकार कहे हैं, उन विकारोंहीका नाम कार्य है ॥ १२० ॥

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वै सिद्धे वपुर्गृहे ॥
जीवात्मा नियतेर्निघ्नो वसति स्वान्तदूतवान् ॥ १२१ ॥

अत्र शब्दादीनां वियदादिमहाभूतगुणानां धर्मिभ्यो भिन्नतया पृथक्त्वं निरस्यनुक्तानां तत्व नामुपसंहारमाह—चतुर्विंशतिभिरिति। तानि च "प्रकृतयोऽष्टौ विकाराः षोडश" इति महत्तत्त्वानि प्रकृत्यादीनि भावाः, नियतेः शुभाशुभकर्मणःनिघ्नः आयत्तः स्वान्तदूतवान मनोदूतयुक्तः ॥

स देही कथ्यते पापपुण्यदुःखसुखादिभिः। व्याप्तो बद्धश्च मनसा कृत्रिमै कर्मबन्धनैः ॥ १२२ ॥

सः जीवात्मा, तस्य देहिनः, शरीर जीवात्मनोः संयोगकारकेण मनसा ॥

संयोगे ये ये गुणा उत्पद्यन्ते तानाह।

इच्छाद्वेषसुखानि दुःखविषयज्ञानं प्रयत्नो मनः संकल्पश्च विचारणा स्मृतिरथो बुद्धिः कलाविज्ञता। प्राणस्योपरियापनं

गुदवशाद्वायोरधः प्रेरणं नेत्रोन्मेषनिमेषकृत्यकरणोत्साहाश्च जीवे गुणाः ॥ १२३ ॥

इच्छा सुखहेतुरभिलाषः, द्वेषो दुःखहेतुर्मनप्रवृत्तिः, सुखंप्रीतिः, दुःखमप्रीतिः, विषयज्ञानं शब्दादिज्ञानम्, प्रयत्नः कार्ये तात्पर्यम्, मनः संशयात्मकम्, तस्य कर्म संकल्पः, विचारणा-ऊहापोहाभ्यां वस्तुविमर्शः, स्मृतिः पूर्वानुभूतस्यार्थस्य स्मरणम्, बुद्धिः निश्चयात्मिका, कलाविज्ञता शिल्पशास्त्रादिबोधः, प्राणस्य हृदयस्थितस्य वायोः उपरि यापनं मुखादि प्रति नयनन्, गुदवशाद्वायोरधः प्रेरणन् अपानस्याधःप्रेरणम् नेत्रोन्मेषनिमेषौ नेत्रयोरुन्मीलननिमीलने, कृत्यकरणोत्साहः कार्यारम्भे सामर्थ्येन उत्साहः, जीवे मनोयुक्तस्य जीवात्मनोऽमी इच्छादयो गुणाः ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनय--श्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे सृष्टिप्रकरणं प्रथमम् ॥१॥

आठ प्रकृति और सोलह विकार इस प्रकार चौवीस तत्त्वोंसे वने हुए देहरूप घरमें शुभाशुभ कर्म्मोंके अधीन हो जीवात्मा मनरूप दूतको संग ले निवास करता है, इस कारण वह देही कहाता है। पाप, पुण्य सुख, दुःखादिकोंसे व्याप्त और मनके द्वारा कृत्रिम कर्मके बंधनोंसे बंधा हुआ वह जीवात्मा है, उस शरीरीके शरीर और जीवात्माके संयोग करनेवाले मनके संयोग होनेपर जो जो गुण उत्पन्न होते, हैं उनको कहते हैं- इच्छा, द्वेष. सुख, दुःख, विषयज्ञान, प्रयत्न, मन, संकल्प, विचारणा. स्मृति, बुद्धि, कलाविज्ञान. प्राणस्योपरियापन, गुदवशाद्वायोरधःप्रेरण, नेत्रोन्मेषनिमेष और कार्यकारणोत्साह ये सब जीवके गुण हैं इच्छा (सुखका कारणरूप अभिलाषा), द्वेष (दुःख कारणरूप मनकी प्रवृत्ति). सुख (प्रीति), दुःख (अप्रीति), विषयज्ञान (शब्दादिक विषयोंका जानना), प्रयत्न (कार्यमें तत्पर होना), मन (संशयात्मक-यह क्या वस्तु है, इस प्रकारके सन्देह करनेवाला) संकल्प (मानस कर्म), विचारणा (तर्कवितर्कसे वस्तुका विचार), स्मृति (पूर्वमें किये हुए अर्थका स्मरण), बुद्धि (निश्चयात्मिका), कलाविज्ञान (शिल्पादि शास्त्रोंका बोध), प्राणस्योपरियापन (हृदयमें रहनेवाली वायुको मुखादिके प्रति ऊपर चढाना), गुदवशाद्वायोरधःप्रेरण (अपानवायुको नीचे लेजाना) नेत्रोन्मेषनिमेष (दोनों नेत्रोंको खोलना और मींचना), कृत्यकरणोत्साह (कार्य आरम्भ करनेमें सामर्थ्यसे उत्साह) मनयुक्त जीवात्माके ये इच्छादिक गुण हैं ॥ १२१-१२३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीवनीभाषाटीकायां सृष्टिप्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ गर्भप्रकरणम् २.

चिकित्सायां शरीरी ह्यधिकृतः, स शरीरी यथा उत्पद्यते तद्बोधयितुं गर्भोत्पत्तिक्रममाह ।

गर्भोत्पत्तिभूमिस्तु रजस्वला स्त्री ।

ततो रजस्वलास्वरूपमाह ।

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापञ्चाशत्समाः स्त्रियः ।
मासिमासि भगद्वारा प्रकृत्यैवार्तवं, स्रवेत् ॥ १ ॥
आर्तवस्त्रावदिवसादृतुः षोडश रात्रयः ।
गर्भग्रहणयोग्यस्तु स एव समयः-स्मृतः ॥ २ ॥

सर्वासामेव चतुर्वर्णस्त्रीणां सर्ववादिसम्मतः पूर्वोक्तः समयः । ग्रन्थान्तरे तु विशेषः । तद्यथास्नानदिवसात् ऊर्ध्वं द्वादशरात्रावधि ब्राह्मण्याः, दशरात्रावधि क्षत्रियायाः, अष्टरात्रावधि वैश्यायाः, षड्रात्रावधिशूद्रायाः, गर्भधारण शक्तिः ।

चिकित्साशास्त्रमें शरीर मुख्य है, इस कारण जिस प्रकार वह शरीर उत्पन्न होता है, उसके जाननेके लिये गर्भकी उत्पत्तिका क्रम वर्णन करते हैं—गर्भोत्पन्न होनेकी भूमि रजस्वला स्त्री है, इस कारण रजस्वलाका स्वरूप कहते हैं—

द्वादशवर्षकी आयुसे ऊपर पचास वर्षकी आयुपर्यन्त प्रत्येक महीनेमें स्वभावसे स्त्रीकी योनिसे आर्तव (रक्त) गिरता है। स्त्री आर्तव गिरनेके दिनसे सोलह रात्रिपर्यन्त ऋतुमती होती है और गर्भग्रहण करनेका योग्य भी वही समय कहा है। सर्वजातिकी सम्पूर्ण स्त्रियोंके लिये पूर्वोक्त समय सर्वसम्मत है, परन्तु अन्य ग्रन्थोंमें कुछ विशेष कहा है, जैसे कि, स्नान दिनसे ऊपर द्वादश रात्रिपर्यन्त ब्राह्मणी, दश रात्रिपर्यन्त क्षत्रियाणी, अष्टरात्रिपर्यन्त वैश्या और षट् रात्रिपर्यन्त शूद्राणि गर्भग्रहणके योग्य शक्तिवाली रहती है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ रजस्वलायाः नियमानाह।

आर्तवस्रावदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी। शयीत दर्भशय्यायां पश्येदपि पतिं न च ॥ ३ ॥ करे शरावे पर्णे वा हविष्यं त्र्यहमाहरेत्। अश्रुपातं नखच्छेदमभ्यंगमनुलेपनम् ॥ ४ ॥ नेत्रयोरञ्जनं स्नानं दिवास्वापं प्रधावनम्। अत्युच्चशब्दश्रवणं हसनं बहु भाषणम् ॥ आयासं भूमिखननं प्रवातञ्च विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

स्त्रीको जिस दिनसे आर्तव गिरे अर्थात् ऋतुमती हो तबसे हिंसा रहित, ब्रह्मचर्य्यसहित कुशोंकी शय्या पर शयन करे और पतिको देखे भी नहीं, हाथमें मिट्टीके सकोरेमें अथवा पत्तलमें हविष्यान्न तीन दिवस, पर्यन्त भोजन करे। रोना, नखोंका काटना, तेल लगाना, चन्दनादि लेपन, नेत्रोंमें अंजन, स्नान, दिनका सोना, दौडना, आना-जाना, अत्यन्त ऊँचे शब्दका सुनना, हँसना, अत्यन्त बोलना, परिश्रम, भूमिको नाखून आदिसे खोदना और बहुत हवामें बैठना इत्यादि कार्य छोड देवे ॥ ३-५ ॥

एतस्या नियमाकरणे दोषानाह।

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लोभाद्वा दैवतश्च वा। सा चेत्कुर्यान्निषिद्धानि गर्भो दोषांस्तदाऽऽप्नुयात् ॥ ६ ॥ एतस्या रोदनाद्गर्भो भवेद्विकृतलोचनः। नखच्छेदेन कुनखीकुष्ठी त्वभ्यंगतो भवेत् ॥ ७ ॥ अनुलेपात्तथा स्नानाद् दुःखशीलोऽञ्जनाद्दृक्। स्वापशीलो दिवास्वापाच्चञ्चलः स्यात्प्रधावनात् ॥ ८ ॥ अत्युच्चशब्दश्रवणाद्बधिरः खलु जायते। तालुदन्तौष्ठजिह्वासु श्यावो हसनतो भवेत् ॥ ९ ॥ प्रलापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात्। स्खलते भूमिखननादुन्मत्तो वातसेवनात् ॥ १० ॥

जो स्त्री मूर्खतासे, प्रमादसे, लोभसे अथवा प्रारब्धवश होकर निषिद्ध आचरण करे तो गर्भ दोषको प्राप्त होता है। जैसे रजस्वला स्त्रीके रोनेसे बालक विकृत (विकारयुक्त) नेत्रोंवाला होता है, नखोंके काटनेसे बुरे नखोंवाला और तेल लगानेसे कुष्ठताको प्राप्त होता है चन्दनादिका लेप और स्नान करनेसे दुःखित अंजन लगानेसे अन्धा, दिनमें सोनेसे अत्यन्त निद्रा युक्त, दौडनेसे चंचल, अत्यन्त ऊँचे शब्द सुननेसे बधिर होता है, हँसनेसे तालु, दांत, ओंठ, जीभ ये उसके श्याव होते हैं, अति बोलनेसे बहुत बोलनेवाला, परिश्रम करनेसे उन्मत्त (पागल) भूमि खोदनेसे चलते चलते गिरनेवाला और वायु सेवनसे उन्मत्त होता है ॥ ६-१० ॥

अथ ऋतुस्नाताकृत्यम ।

पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमंगना । तादृशं जनयेत्पुत्रं ततःपश्येत्पतिं प्रियम् ॥ ११ ॥

प्रियमिति–भर्तरि अनासन्ने पुत्रादिकमपि पश्येत् ॥

चतुर्थादिदिवसेऽपि रजोनिवृत्तौ स्त्री पत्या संगच्छेत, न तु रजोऽनिवृत्तौ ॥

प्रवहत्सलिले क्षिप्तं द्रव्यं गच्छत्यधो यथा । तथा वहति रक्ते तु क्षिप्तं वीर्य्यमधो व्रजेत् ॥ १२ ॥

ऋतुमती स्त्री स्नान करनेके अनन्तर जैसे मनुष्यको प्रथम देखे उसके उसीकेही सदृश पुत्र होगा, इस कारण पतिको अथवा प्रिय पुत्रादिको देखे । यहां प्रिय शब्दका यह अभिप्राय है कि, पति समीप न होय तो पुत्रादिकको देखे । यदि चौथे दिनसे पहिलेही रुधिर स्रावकी निवृत्ति होजाय तो स्त्री पतिके पास जाय परन्तु रुधिरस्राव होनेपर पतिके पास कभी नहीं जाय क्योंकि, जिस प्रकार बहते हुए पानीमें कोई पदार्थ डाला जाय तो वह नीचे बैठजाता है वैसे ही बहते हुए रजमें जो वीर्य पडे तो वह झट नीचे चला जाता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ भर्तृकृत्यम् । तत्र गर्भाधाने निषिद्धं विहितं च कालं तयोः फलं चाह ।

आयुःक्षयभयाद्भर्त्ता प्रथमे दिवसे स्त्रियम् । द्वितीयेऽपि दिने रत्यै त्यजेदृतुमती तथा ॥ १३ ॥ तत्र यश्चाहितो गर्भो जायमानो न जीवति । आहितो यस्तृतीयेऽह्नि स्वल्पायुर्विकलाङ्गकः ॥ १४ ॥ आर्तश्चतुर्थी षष्ठी स्यादष्टमी दशमी तथा । द्वादशी वाऽपि या रात्रिस्तस्यां तां विधिना भजेत् ॥ १५ ॥

विधिना–गर्भाधानोक्तविधिना ॥

अत्रोत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च ॥ तन्त्रान्तरे--प्रजा सौभाग्यमैश्वर्य्यं बलश्चाभिगमात्फलम् ॥ १६ ॥

यहां प्रथम गर्भाधानमें जो कालका निषेध करना और कालका विधान करना, उन दोनों कालोंके निषेध और विधानका फल कहते हैं–ऋतुस्नानके पीछे पहिले दिन अथवा दूसरे दिन भर्ता गमन न करे. क्योंकि, ऋतुमती स्त्रीसे प्रथम दिन गमन करे तो आयुका क्षय होता है और दूसरे दिनके रहे हुए गर्भका बालक नहीं जीता है, तीसरे दिनका गमन करना भी त्याग दे, क्योंकि, तीसरे दिनका उत्पन्न हुआ बालक विकल अंगयुक्त और अल्पायु होता है इस कारण चौथी, छठी, आठवीं, दशवीं और बारहवीं रात्रिमें विधिपूर्वक गर्भाधानोक्त विधिसे भोग करे। इस प्रकार गमन करनेसे आयु, आरोग्यकी अधिकता होती है । और भी कहा है कि, उत्तरोत्तर रात्रियोंमें सम्भोग करनेसे सन्तान आरोग्य, ऐश्वर्य और बल वृद्धि होती है ॥ १३–१६ ॥

मनोभवागारमुखेऽबलानां तिस्रो भवन्ति प्रमदाजनानाम् । समीरणा चान्द्रमसी च गौरी विशेषमासामुपवर्णयामि ॥ प्रधानभूता मदनातपत्रे समीरणा नाम विशेषनाडी । तस्या मुखे यत्पतितं तु वीर्यं तन्निष्फलं स्यादिति चन्द्रमौलिः ॥ १७ ॥ या चापरा चान्द्रमसी च नाडी कन्दर्पगेहे भवति प्रधाना । सा सुन्दरी योषितमेव सूते साध्या भवेदल्परतोत्सवेषु ॥ गौरीति नाडी यदुपस्थगर्भे प्रधानभूता भवति स्वभावात् । पुत्रं प्रसूते बहुधाऽङ्गना सा कष्टोपभोग्या सुरतोपविष्टा ॥ १८ ॥

स्त्रियोंके कामभवनके मुखमें तीन नाडी हैं. १ समीरणा, २ चान्द्रमसी और ३ गौरी। अब इनकी विशेषता कहता हूँ—योनिमें समीरणा नामक प्रधान जो नाडी है, उसके मुखमें जब वीर्य गिरता है, तब वृथा जाता है, इस प्रकार चन्द्रमौलि (श्रीशिवजी) कहते हैं। दूसरी कामभवनमें जो चान्द्रमसी नाडी है, उसमें वीर्य गिरनेसे स्त्री कन्या उत्पन्न करती है और वह थोडे रतोत्सवमें ही साध्य है। प्रधानभूत जो उपस्थगर्भमें गौरी नाडी है वह स्वभावसे ही पुत्रको उत्पन्न करती है। वह बहुधा सम्भोगमें कष्टोपभोग्या है ॥१७॥१८॥

युग्मायुग्मरात्रीणां फलमाह।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥ १९ ॥

युग्म (सम) रात्रियोंमें स्त्रीगमन करनेसे पुत्र और अयुग्म (विषम) रात्रियोंमें गमन करनेसे कन्याएँ उत्पन्न होती हैं ॥ १९ ॥

तत्र दम्पत्योः सम्भोगे यादृक्
पुमान् युक्तस्तादृगुच्यते।

स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोऽर्चितः।
भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेषः समलंकृतः ॥ २० ॥

ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः।
पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे ॥ २१ ॥

स्नान करके शरीरमें चन्दन लगाये हुए, सुगन्धित अतर आदि द्रव्योंको धारण किये हुए, सुगन्ध पुष्पोंसे सहित, वृष्य (वीर्यको पुष्ट करनेवाले) पदार्थ भक्षण किये हुए सुन्दर वस्त्र धारणकर उत्तम वेष बनाये हुए, मुखमें ताम्बूल खाये अधिक कामी, स्त्रीमें आसक्ततायुक्त, पुत्रकी इच्छा करनेवाला ऐसा पुरुष शुभशय्यापर स्त्रीके पास जाय ॥ २० ॥ २१ ॥

तत्र अयोग्यं पुरुषमाह।

हत्याशितोऽधृतिः क्षुद्वान् सव्यथाऽङ्गः पिपासितः। बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥ २२ ॥

अत्यन्त भोजन किया हुआ, धैर्यरहित, बुभुक्षित, देहमें पीडायुक्त, प्यासा, बालक, वृद्ध, मलमूत्रादिकोंके वेगयुक्त और रोगी ऐसा पुरुष मैथुन नहीं करे ॥ २२ ॥

अत्र स्त्री यादृशी योग्या तादृशी उच्यते।

पुरुषस्य गुणैर्युक्ता विहितन्यूनभोजना। नारी ऋतुमती पुंसां सङ्गच्छेत सुतार्थिनी ॥ २३ ॥

पुरुषके पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त अल्प भोजन किये हुई, पुत्रकी इच्छा करनेवाली ऐसी ऋतुमती स्त्री पुरुषके पास जाय ॥ २३ ॥

तत्र अयोग्यां स्त्रियमाह।

रजस्वला व्याधिमती विशेषाद्योनिरोगिणी। वयोऽधिका च निष्कामा मलिना गर्भिणी तथा ॥ २४ ॥ एतासां सङ्गमात्पुंसां वैगुण्यानि भवन्ति हि॥२५॥

रजस्वला, व्याधियुक्त, विशेषकर योनिरोगवाली, पुरुषकी अपेक्षा अधिक आयुवाली, कामरहित, मलिन और गर्भिणी ऐसी स्त्रियोंके साथ संगम करनेसे पुरुष रोगी होजाते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

तत्र रजस्वला दिनत्रयं यावद्वर्ज्या
निषिद्धा। यत उक्तम्।

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी पुंसां यथा वर्ज्या तथाऽङ्गना ॥ २६ ॥ व्याधिमती च वर्ज्या। तत्र स्त्रीणां व्याधयः प्रदराद यस्तद्युक्ता निषिद्धा, तत्रापि विशेषात् योनिरोगिणी ॥

रजस्वला तीन दिनतक अथवा जबतक रज स्रवता हो तबतक त्याज्य कही है। उसको यहां कहते हैं, प्रथम दिन रजस्वला स्त्री चांडाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन धोबिनके सदृश कही है। रोगयुक्त स्त्री त्याज्य कही है सो जिन स्त्रियोंके प्रदरादिक विशेषकर रोग होयँ वे त्यागने योग्य हैं और उनमें विशेषकर योनिरोगवाली स्त्रीके साथ तो कभी प्रसङ्ग नहीं करना चाहिये ॥ २६ ॥

गर्भावतरणक्रममाह ।

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः। गर्भः सञ्जायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ॥ २७ ॥

गर्भः शुद्धः अशुद्धस्तु गर्भोऽशुद्धशुक्रशोणितयोरपि दम्पत्योः भवति । यत आह—

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः । यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ २८ ॥ इति

कुष्ठं सञ्जातं यस्य तत् कुष्ठितम्, अत्र तारकादित्वादितच्प्रत्ययः ॥

यत्तु 'वातादिदुष्टरेतसः प्रजोत्पादने न समर्थाः' इति सुश्रुतः, तत्र शुद्धप्रजोत्पादने न समर्था इति बोद्धव्यम् । रोगादिना अशुद्धास्तु प्रजा वातादिदुष्टशुक्रा अपि जनयन्ति जन्मान्धबधिरपंग्वादिसम्भवात् ॥

ऋतौ स्त्रीपुंसयोर्योगे मकरध्वजवेगतः । मेढ्रयोन्यभिसंघर्षाच्छरीरोष्माऽनिलाहतः ॥२९॥ पुंसः सर्वशरीरस्थं रेतो द्रावयतेऽथ तत् । वायु र्मेहनमार्गेण पाययत्यङ्गनाभगे ॥ ३० ॥ तत्संस्रुत्य व्यात्तमुखं याति गर्भाशयं प्रति । तत्र शुक्रवदायातेनार्त्तवेन युतं भवेत् ॥ ३१ ॥

कामके वेगसे परस्पर स्त्री पुरुष दोनोंका संयोग होनेसे शुद्ध रुधिर और शुद्ध वीर्यसे स्त्रीको गर्भ रहता है, उससे जो उत्पन्न होता है, वह बालक कहाता है, पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रुधिर जो शुद्ध हो तो गर्भ शुद्ध होता है और अशुद्ध हो तो गर्भ अशुद्ध होता है. क्योंकि " जिस स्त्रीपुरुषका कुष्ठनामक महारोग होनेसे रुधिर तथा वीर्य विगड गया हो और उससे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह कुष्ठरोगयुक्त होती है" (कुष्ठित ऐसा जो मूलमें पद है उसका अर्थ इस प्रकार है कि, कुष्ठ जिसको भलीभाँति उत्पन्न हुआ हो, वह कुष्ठित कहाता है।) " वायु आदिसे जिसका वीर्य दूषित होगया हो उस पुरुषको सन्तान उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं होती " ऐसा जो श्रुसुतमें कहा है उसका ऐसा अर्थ जानना कि "वह शुद्ध सन्तान उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होता।" रोगादिकसे अशुद्ध और वात आदिसे दूषित वीर्यवाला होनेपर भी सन्तान उत्पन्न कर सकता है क्योंकि संसारमें जन्मसे अन्धे बहिरे और पंगु आदिककी उत्पत्ति देखनेमें आती है. क्योंकि, ऐसा न होता तो उनकी उत्पत्ति ही न होनी चाहिये। काम देवके वेगसे ऋतुकालमें स्त्री और पुरुष दोनोंका संयोग होनेपर लिंग और योनिके आपसमें घिसनेसे शरीरकी उष्णता वायुसे ताडित होकर पुरुषोंके सम्पूर्ण शरीरमें स्थित वीर्य द्रवता है, उसको लिंगके मार्गसे वायु स्त्रीकी योनिमें डाल देती है और खुले हुए मुखवाले गर्भाशयमें वह वीर्य बहकर जाता है और वहां वीर्य्यके समान बहकर आये हुए रजके साथ मिल जाता है ॥ २७-३१ ॥

(गर्भाशयस्य स्वरूपमाह ।)

शंखनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्तिता । तस्यास्तृतीये त्वावर्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ३२ ॥ यथा रोहितमत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः । तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥ ३३ ॥

अयमर्थः-गर्भशय्याया मुखं रोहितमत्स्यस्येव भवति यथा च रोहितमत्स्यस्य स्थितिर्जले भवति तथा पित्ताशयपक्वाशयमध्ये गर्भशय्यायाः स्थितिर्भवति, रूपमपि तस्येव भवति, यथा रोहितस्य मुखं स्वल्पमाशयस्तु महानित्यर्थः।

स्त्रीकी योनि शंखकी नाभिके सदृश तीन आवर्त (चक्र) वाली कही है, उसके तीसरे आवर्तमें गर्भाशय स्थित है। जैसा रोहू मछलीका मुख तथा रूप है, पंडितोंने उसके रूपके सदृश ही गर्भाशयका स्वरूप कहा है। अर्थात् जैसा रोहू मछलीका मुख ऊपरसे छोटा और भीतरसे फैला हुआ होता है तथा जिस प्रकार रोहू मछलीका रहना जलमें होता है उसी प्रकार गर्भाशयकी स्थिति भी पित्ताशय और पक्वाशयके बीचमें है॥ ३२॥ ३३॥

शुक्रार्त्तवसमाश्लेषो यदैव खलु जायते। जीवस्तदैव विशति युक्तः शुक्रार्तवन्तरः॥३४॥ सूर्यांशोः सूर्यमणित उभयस्माद्युताद्यथा। वह्निः सञ्जायते जीवस्तथा शुक्रार्त्तवाद्युतात्॥ ३५॥ आत्माऽनादिरनन्तश्चाऽव्यक्तो वक्तुं न शक्यते। चिदानन्दैकरूपोऽयं मनसाऽपि न गम्यते॥३६॥ एवंभूतोऽपि जगतो भाविनी बलवत्तया। अविद्यास्वीकृते कर्मवशो गर्भे विशत्यसौ॥ ३७॥

गर्भे-चतुर्विंशतितत्त्वमये॥

स एव वेत्ता रसतो द्रष्टा घ्राता स्पृशत्यसौ। श्रोता वक्ता च कर्ता च गन्ता रन्तोत्सृजत्यपि॥ ३८॥

बीर्य और रजका जिस समय शंयोग होता है, तभी रज और वीर्यके साथ जीव प्रवेश करता है। जैसे सूर्यकी किरण और सूर्यकान्तमणिके संयोगसे अग्नि उत्पन्न होती है, वैसेही वीर्य और आर्तवके संयोगसे जीव उत्पन्न होता है, वह जीव अनादि, अनन्त, अव्यक्त, कहनेमें अशक्य, चिदानन्दका एक स्वरूप और मन करके भी नहीं जाना जाता है। ऐसा होनेपर भी जगत्‌में भवितव्यताकी प्रबलतासे कर्मवश होकर जीव अज्ञानको स्वीकार कर उस गर्भरूप चौवीस तत्वमय देहमें प्रवेश करता है। यह जीव स्वादको जानता है, देखता है, स्पर्श करता है, सुनता है, कहता है, करता है, चलता है, रमता है और त्याग करता है॥३४॥३८॥

दिने व्यतीते नियतं संकुचत्यम्बुजं यथा। ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिः संव्रियते तथा॥ ३९॥

ऋतो रजोदर्शनात् षोडशनिशात्मके काले योनिरत्र भगद्वारम्॥

दिनके व्यतीत होजानेपर जिस प्रकार निश्चय कमल बन्द होजाता है उसीप्रकार ऋतुके व्यतीत होजानेपर स्त्रीकी योनि (भगद्वार) बन्द होजाती है, प्रथम जिस दिनसे आर्तवका दर्शन हो उस दिनसे लेकर सोलह रात्रितकको ऋतुकाल कहते हैं॥ ३९॥

बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ। यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ॥ ४०॥ आधिक्ये रेतसः पुत्रः कन्या स्यादार्त्तवेऽधिके। नपुंसकं तयोः साम्ये यथेच्छा पारमेश्वरी॥ ४१॥ नन्वेवं सति कथं पुत्रोत्पत्तिः? सदैवार्त्तवस्यैव बाहुल्यात्। यत उक्तम्-आर्त्तवं चतुरञ्जलि प्रमाणं शुक्रं प्रसृतिमात्रमिति।वाग्भटेऽप्युक्तमात्रेयादिभिः-मज्जामेदोवसामूत्रपित्तश्लेष्मशकृन्त्यसृक्। रसो जलं च देहेऽस्मिन्नेकैकाञ्जलिव-

१ सुश्रुतने "इह खलु शारीरव्याकरणं व्याख्यास्यामः" जहां कहा है वहां यह विषय स्पष्ट है।

र्धितम् ॥ ४२ ॥ पृथक् स्वप्रसृतं प्रोक्त-मोजोमस्तिष्करेतसाम् । द्वावञ्जली तु दुग्धस्य चत्वारो रजसः स्त्रियाः ॥४३॥ समधातोरिदं मानं विद्याद् वृद्धिक्षयावतः ॥ ४४ ॥ इति ॥

नैवम् यतो गर्भाशयस्थमेव शुक्रमार्त्तवं च गर्भोत्पत्तिहेतुः । शुक्रं कदाचिद-त्यन्तहर्ष वशाद् दुग्धादिशुक्रसत्त्वद्रव्य-सेवनात् शुक्रबाहुल्यात् गर्भाशये बहु स्रवति कदाचिद्वै मनस्यादिना शुक्राल्प-त्वादल्पमिति, एवमार्त्तवमपीति न दोषः॥

अंतरकी बायुसे गर्भमें वीर्यके दो टुकडे होनेसे दो जीव अर्थात् दो बालक कोखमें आते हैं। यह धर्म और अधर्मसे उत्पन्न हुए यम जोडला कहलाते हैं। वीर्यकी अधिकता होनेसे पुत्र और आर्तव अधिक होनेपर कन्या और वीर्य रजके-समान होनेसे नपुंसक होता है, आगे परमेश्वरकी इच्छा। यहाँ शंका होती है कि, स्त्रियोंका आर्तव सदैव अधिक होता है और वीर्य कम होता है तो पुत्रकी उत्पत्ति किस प्रकार होसकती हैं? जैसे कहा है कि-"आर्त्तवं चतुरांजलिप्रमाणं शुक्रं प्रसृतिमात्रमिति" अर्थात् आर्तव स्त्रीकी देहमें चार अंजलि प्रमाण है और वीर्य पुरुषकी देहमें एक अंजलि ही है। क्योंकि, वाग्भटमें आत्रेय आदिने भी कहा है-मज्जा, मेद, वसा (चरबी), मूत्र, पित्त, कफ, मल, रुधिर, रस और जल ये सब इस देहमें एकसे एक अधिक अंजलि है और ओज, मस्तिष्क तथा वीर्य, थे, एक एक अंजलि हैं, स्त्रीके दुग्ध दो अंजलि और रज चार अंजलि है, यह जिस प्राणीके देहमें समधातु है उसका ही मान जानना। देहकी वृद्धि और क्षय होनेसे धातुका क्षय और वृद्धि भी हो जाती हे। इस कारण वीर्यके अल्प होनेसे पुत्रोत्पत्ति किस प्रकार होसकती है? इसका समाधान कहते हैं कि, जिस समय गर्भ रहता है उसी समय गर्भोत्पत्तिका कारण गर्भाशयमें वीर्य और आर्तव है, परन्तु अत्यन्त हर्ष होनेसे अथवा दुग्धादि शुक्रवर्द्धक पदार्थोंके सेवनसे किसी २ समय वीर्य बढकर गर्भाशयमें अधिक गिरता है और कभी दुःखादिसे मन बिगडकर वीर्यकी न्यूनता होनेसे कम गिरता है, इसी प्रकार रज भी न्यूनाधिक होता है इससे ही पुत्र कन्या होती हैं ॥ ४० ॥ ४४ ॥

सुश्रुत पुनराह ।

वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायितत्वात्तथैव च। दोषधातुमलानां तु परिमाणं न विद्यते ॥ ४५ ॥

वैलक्षण्यात् दीर्घह्रस्वकृशादिभेदेन सादृश्य-भावात्। अस्थायित्वात् वयोऽहर्निशर्तुभुक्तेषु एकमात्रानवस्थानात् ॥

फिर सुश्रुत कहते हैं कि, शरीर धारियोंकी पृथक् पृथक् विलक्षणतासे तथा उनके अस्था-यित्वसे दोष, धातु और मलका परिमाण नहीं हो सकता । विलक्षणतासे अर्थात् लम्बा, ठिगना, कृश आदिके भेदसे सदृशता नहीं, इस कारण अस्थायित्वसे अर्थात् आयु, दिन रात्रि और ऋतु भोगमें एक मात्राकी स्थिति न होनेसे दोषादिका परिमाण ठीक नहीं हो सकता ॥ ४५ ॥

एवं तामभिसंगम्य पुनर्मासाद्व्रजेदसौ।४६ ॥ मासादूर्ध्वमिति शेषः । अर्वाग्गमनेन गर्भ द्वारविघट्टनात् गर्भच्युतिप्रसंगः स्यात्। केचित्तु, पुनः पुष्पदर्शनेन गर्भा-लाभनिश्चये मासादूर्ध्वं गच्छेदिति वदन्ति॥

१-किन्तु कहीं २ देखा जाता है कि गर्भ रहनेके बाद भी पुष्प (रज) आता रहता है, और ९ वें मासमें बालक अविकारी ही उत्पन्न होता है। यह विपर्यय है ॥

इस प्रकार एकवार स्त्रीसमागम करनेके पश्चात् फिर एक मास उपरान्त उसका सेवन करे क्योंकि, मास व्यतीत होनेसे पहलेही स्त्रीमें गमन करे तो गर्भद्वारका मथन होनेसे गर्भपात होनेकी शंका है। कितनोंका कहना है कि, फिर आर्तवका दर्शन हो तो गर्भ नहीं रहा, ऐसा जानकर स्त्रीके पास जावे और यदि गर्भ रहगया होय तो फिर मास बीतजानेपर भी सम्भोग नहीं करे ॥ ४६ ॥

तत्रपरिहार्य्यपरिहारार्थं सद्योगृहीत-गर्भायाः लक्षणमाह।

शुक्रशोणितयोर्योनेरस्रवोऽथ श्रमोद्भवः। सक्थिसादः पिपासा च ग्लानिः स्फूर्त्ति-भगे भवेत् ॥ ४७ ॥

गर्भ रहनेसे पश्चात् त्यागने योग्य बातोंका त्याग करनेके हेतुसे जिसको तुरन्त गर्भ रहा होय ऐसी स्त्रीके लक्षण कहते हैं—योनिसे वीर्य और रुधिरका नहीं बहना, परिश्रमका होना, जंघाओंमें पीडा, प्यास, ग्लानि और भगका फडकना इन लक्षणोंसे जाने कि, गर्भ रहा है ॥ ४७ ॥

अथ तस्या एव उत्तरकालीनं लक्षणमाह।

स्तनयोर्मुखकार्ष्ण्यं स्याद्रोमराज्युद्गम-स्तथा। अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः संमी-ल्यन्ते विशेषतः ॥ ४८ ॥ छर्दयेत्पथ्य-भुक्चापि गन्धादुद्विजते शुभात्। प्रसेकः सदनं चैव गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते ॥४९॥

स्तनोंके अग्रभागोंका श्याम हो जाना, रोमांचोंका खडे होना, विशेषकरके नेत्रोंका मिंचना, पथ्य भोजनको भी वमन करदेना उत्तम सुगंधिसे भी भयभीत होना, मुखसे लारका गिरना और शरीरमें जडता ये लक्षण गर्भवती स्त्रीके कहे हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

तत्र पुत्रगर्भवत्या लक्षणमाह।

पुत्रगर्भयुतायास्तु नार्य्या मासि द्विती-यके गर्भो गर्भाशये लक्ष्यः पिण्डाका रोऽपरं शृणु ॥ ५० ॥

पिण्डाकारो वर्तुलाकृतिः। मासि द्वितीयक इत्यस्य गर्भ- पिंडाकारो लक्ष्यः इत्यनेनैवान्वयो न तु अग्रिमश्लोकेऽपि ॥

दक्षिणाक्षिमहत्वं स्यात्प्राक्क्षीरं दक्षिणे स्तने। दक्षिणोरुः सुपुष्टः स्यात्प्रसन्न-मुखवर्णता ॥ ५१ ॥ पुन्नामधेयद्रव्येषु स्वप्नेष्वपि मनोरथः। आम्रादि फलमा प्नोति स्वप्नेषु कमलादि च ॥ ५२ ॥

पुत्रगर्भवती स्त्रीके दूसरे मासमें गर्भ पिंडाकार (गोल) मालूम होता है और उसका दक्षिण नेत्र किंचित् बडासा प्रतीत हो, प्रथम दक्षिण स्तनमें दूध आवे, दक्षिण जांघ पुष्ट भारी हो, मुखका रंग श्रेष्ठ और प्रसन्न हो, पुरुषसंज्ञक द्रव्योंकी इच्छासे स्वप्नमें भी इन द्रव्योंका हो मनोरथ हो तथा आम्रादि फलोंकी और कमलादि पुष्पोंकी स्वप्नमें प्राप्ति होती है ॥ ५०–५२ ॥

कन्यागर्भवत्या लक्षणम।

कन्यागर्भवतीगर्भे पेशी मासि द्वितीयके। पुत्रगर्भस्य लिङ्गानि विपरीतानि चेक्षते ॥५३॥

पेशी—दीर्घाकृतिः ॥

कन्यागर्भवती स्त्रीके गर्भमें दूसरे महीने पेशी (लम्बी दीर्घाकार मांसकी बोटीसी) मालूम हो और पुत्रगर्भवती स्त्रीसे विपरीत लक्षण मालूम होते हों तो इसको कन्यागर्भवती समझना चाहिये ॥ ५३ ॥

अथ नपुंसकगर्भलक्षणम्।

नपुंसकं यदा गर्भे भवेद्गर्भोऽर्बुदाकृतिः। उन्नते भवतः पार्श्वे पुरस्तादुदरं महत् ॥५४॥

अर्बुदं वर्तुलं फलार्द्धतुल्यम् ॥

जिस स्त्रीके गर्भमें नपुंसक बालक होता है, उस गर्भमें अर्बुदाकार पिण्ड ज्ञात हो, दोनों कोखोंमें गर्भ ऊँचा प्रतीत हो, और आगेसे पेट बडा मालूम होता है ॥ ५४ ॥

नपुंसकविशेषानाह ।

आसेक्यश्च सुगन्धी च कुम्भीकश्चेर्ष्यक स्तथा। अमी सशुक्रा बोद्धव्या अशुक्रः षण्ढसंज्ञकः ॥ ५५ ॥

आसेक्य, सुगन्धी, कुम्भीक और ईर्ष्यक ये नपुंसक वीर्यसहित होते हैं और षंढनामक नपुंसक वीर्यरहित होता है ॥ ५५ ॥

एतेषां लक्षणमाह ।

पित्रोस्तु स्वल्पवीर्य्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत्। स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोन्नतिमसंशयम् ॥ ५६ ॥

पित्रोर्मातापित्रोः स्वल्पवीर्य्यत्वात् स्वल्पशुक्रार्त्तवत्वात् आसेक्यनामा मुखयोनीतिनामान्तरः । स शुक्रं प्राश्येति । स पुरुषोऽन्यपुरुषेण स्वमुखे मैथुनं कारयित्वा तस्य शुक्रं प्राश्य मेहनोत्थानं लभते इत्यर्थः ॥

यःपूतियोनौ जायेत स हि सौगन्धिको भवेत्। स योनिशेफसोर्गन्धमाघ्राय लभते बलम् ॥ ५७ ॥

सौगन्धिकः सौगन्धिकनामा नासायोनीतिमामान्तरः बलं मैथुने शक्तिम् ॥

स्वे गुदेऽब्रह्मचर्य्याद्यः स्त्रीषु पुंवत्प्रवर्तते । स कुम्भीक इति ज्ञेयो गुदयोनिस्तु स स्मृतः ॥ ५८ ॥

अब्रह्मचर्यात् ब्रह्मचर्यम् अमैथुनम् अब्रह्मचर्यं मैथुनम् किन्तु स्त्रीवदधोभूतः स्वे गुदे पुरुषान्तरेण मैथुनं तस्मात् ॥

दृष्ट्वा व्यवायन्येषां व्यवाये यः प्रवर्तते । ईर्ष्यकः स तुः विज्ञेयो दृष्टियोनिस्तु स स्मृतः ॥ ५९ ॥ यो भार्य्यायामृतौ मोहादङ्गमेव प्रवर्तते । तत्रस्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्ढसंज्ञकः ॥ ६० ॥

स्त्रीचेष्टिताकारः स्त्रीचेष्टितः समेहनोऽपि पुरुषशक्तिरहितः । स्त्र्याकारः श्मश्रुरहितः ॥

ऋतावृतौ पुरुषवत्प्रवर्त्तेतांगना यदि । तात्र कन्या यदि भवेत्सा भवेन्नरचेष्टिता ॥६१॥

पुरुषवत्स्त्रियमारुह्य सा तस्या योनौ स्वयोनिघर्षणं करोति ॥

माता पिताके शुक्र और आर्तवके अल्प होनेसे आसेक्य नपुंसक होता है, जब वह अन्यपुरुषका वीर्य खाता है तब मदोन्मत्त होकर मैथुनकी शक्तिको प्राप्त होता है। इसका दूसरा नाम मुखयोनि है । जो दुर्गन्धित योनिसे उत्पन्न होता है, उसको सौगन्धिक नपुंसक कहते हैं वह जब लिंग और भगकी गन्ध सूंघता है तब पुरुषताको प्राप्त होता है, इसका द्वितीय नाम नासायोनि है। जो नपुंसक प्रथम स्वयं गुदामें भोग कराकर स्त्रीमें पुरुषके समान आचरण करता है, वह कुम्भीक नपुंसक कहलाता है इसका दूसरा नाम गुदयोनि है। जो मनुष्य अन्यको मैथुन करता देखकर फिर मैथुन करनेमें प्रवृत्त होता है उसको ईर्ष्यक नपुंसक कहते हैं। इसका द्वितीय नाम दृष्टियोनि है और जो पुरुष अज्ञानतासे मोहके वशीभूत हो स्त्रीके तुल्य आपनीचे सोकर और स्त्रीको ऊपर चढाकर उससे मैथुन करे तब

उसके जो लडका उत्पन्न हो वह स्त्रीके समान लक्षणोंवाला होता है अर्थात् जनखा दाढी मूछ रहित और लिंगसहित होनेपर भी कुछ पुरुषार्थ नहीं करसकता, उसको षंढ कहते हैं। तथा स्त्री यदि ऋतुकालमें आप ऊपर हो और पुरुषको नीचे लिटाकर संभोग करे तब उसको जो कन्या जन्मे, वह पुरुषके लक्षणोंवाली होती है और वह सदैव पुरुषके सदृश स्त्रीके ऊपर आरूढ हो उसके भगसे अपने भगको घिसती रहती है तथा उसके दाढी मूँछके कुछ कुछ चिह्न प्रतीत होते हैं ॥ ५६–६१ ॥

अपरा अपि गर्भप्रकृतीराह । *

यदा नार्य्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथंचन। मुंचन्त्यौ शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र जायेत ॥ ६२ ॥

अनस्थिः अत्रेषदर्थे नञ् । तनाल्पकोमलास्थिरित्यर्थः ।

ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमाचरेत् । आर्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि ॥६३॥ मासिमासि प्रवर्द्धेत स गर्भो गर्भलक्षणः । कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः ॥ ६४ ॥

गर्भलक्षणः प्राकृतगर्भलक्षणः । पैतृकैर्गुणैः केशश्मश्रुलोमनखदन्तशिरास्नायुधमनीरेतः प्रभृतिभिः ॥

सर्पवृश्चिककूष्माण्डाकृतयो विकृताश्च ये । गर्भास्ते योषितस्ताश्च ज्ञेयाः पापकृतो भृशम् ॥६५॥ गर्भो वातप्रकोपेण दोहदे चावमानिते । भवेत्कुब्जः कुणिः पंगुर्मूको मिन्मिन एव च ॥ ६६ ॥

कामके वशीभूत होकर स्त्रीसे स्त्री जिस समय परस्पर मैथुन करे, तब अन्योन्य वीर्यका त्याग करती है उससे अनस्थि (हड्डीरहित अथवा सूक्ष्म हड्डियोंवाला) बालक उत्पन्न होता है। ऋतुकालके स्नानकेबाद स्त्री यदि स्वप्नमें पुरुषके साथ मैथुन करे तो आर्तवकोही लेकर वायु कोखमें गर्भको उत्पन्न करता है वह गर्भ मास मासमें गर्भके लक्षणयुक्त बढता है और जब प्रकट होता है तब पिताके गुणोंसे वर्जित कलल (कीचड) सा, केश, दाढी, मूँछ, रोम, नख, दन्त, नाडी आदिसे हीन होता है। जो गर्भ सांप, बीछू कूष्माण्डका आकृतिवाले अथवा विकृत होते हैं, वे स्त्रीके पापकर्म करनेसे होते हैं। वायुके प्रकोपसे दोहद (गर्भचिह्न) में कुपथ्य करनेसे गर्भ कुबडा, टूटा, पंगु, गूंगा और मिनमिना उत्पन्न होता है ॥ ६२–६६ ॥

पुत्राणामाहाराचारचेष्टाभेदस्य हेतुमाह ।

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ । स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ॥ ६७ ॥

समुपेयाताम्-संयोग गच्छताम् ॥

जैसे आहार और चेष्टा तथा आचरणसे स्त्री पुरुष मैथुन करते हैं, उसी प्रकारकी चेष्टावाले उनके पुत्र भी होते हैं ॥ ६७ ॥

अथ गर्भलक्षणमाह ।

गर्भाशयगतं शुक्रमार्त्तवं जीवसंज्ञकः । प्रकृतिः सविकारा च तत्सर्वं गर्भसंज्ञकम् ॥६८॥ कालेन वर्द्धितो गर्भो यद्यङ्गोपाङ्गसंयुतः । भवेत्तदा स मुनिभिः शरीरीति निगद्यते ॥ ६९ ॥

अङ्गोपाङ्गसंयुतः व्यक्ताङ्गोपाङ्गः ॥

गर्भाशयमें प्राप्त हुए वीर्य, आर्तव, जीव, आठ प्रकृति और सोलह विकार इन सबकी गर्भसंज्ञा है। कालसे बढाहुआ वही गर्भ अंग और उपांगसहित होजाता है, तब मुनीश्वर उसको शरीर कहते हैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

* यह जितनेभी प्रकारके नपुंसक एवं विकृत संतानोत्पत्ति है यह मातृपितृकृत पापका प्रायश्चित है। (म. पु.)

तस्य त्वङ्गान्युपाङ्गानि ज्ञात्वा सुश्रुतशास्त्रतः। मस्तकादभिधीयन्ते शिष्याः शृणुत यत्नतः ॥७०॥ आद्यमङ्गं शिरः प्रोक्तं तदुपाङ्गानि कुन्तलाः। तस्यान्तर्मस्तुलुङ्गं च ललाटं भ्रूयुगं तथा ॥ ७१ ॥ नेत्रद्वयं तयोरन्तर्वर्त्तेते द्वे कनीनिके। दृष्टिद्वयं कृष्णगोलौ श्वेतभागौ च वर्त्मनी ॥७२॥ पक्ष्माण्यपाङ्गौ शंखौ च कर्णौ तच्छष्कुलीद्वयम्। पालिद्वयं कपोलौ च नासिका च प्रकीर्तिता ॥७३॥ ओष्ठाधरौ च सृक्किण्यौ मुखं तालु हनुद्वयम्। दन्ताश्च दन्तवेष्टश्च रसना चिबुकं गलः ॥७४॥ द्वितीयमङ्गं ग्रीवा तु यया मूर्द्धा विधार्य्यते। तृतीयं बाहुयुगलं तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे ॥७५॥ तत्रोपरि मतौ स्कन्धौ प्रगण्डौ भवतस्त्वधः। कफोणियुग्मं तदधः प्रकोष्ठयुगलं तथा ॥ ७६ ॥ मणिबन्धौ तले हस्तौ तयोश्चांगुलयो दश। नखाश्च दश ते स्थाप्या दश च्छेद्याः प्रकीर्तिताः ॥७७॥ चतुर्थमङ्गं वक्षस्तु तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे। स्तनौ पुंसस्तथा नार्य्या विशेष उभयोरयम् ॥ ७८ ॥ यौवनागमने नार्य्याः पीवरौ भवतः स्तनौ। गर्भवत्याः प्रसूतायास्तावेव क्षीरपूरितौ ॥७९॥ हृदयं पुण्डरीकेण सदृशं स्यादधोमुखम्। जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतस्तु निमीलति ॥ ८० ॥ आशयस्तत्तु जीवस्य चेतनास्थानमुत्तमम्। अतस्तस्मिं स्तमोव्याप्ते प्राणिनः प्रस्वपन्ति हि ॥ ८१ ॥

चेतनास्थानमुत्तममिति। अयमभिप्रायः—

चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः।
केशलोमनखाग्रंच मलं द्रव्यगुणैर्विना ॥८२

इत्युक्तवता चरकेण सकलं शरीरं चेतनास्थानमुक्तम्, तदपेक्षया हृदयं विशेषतश्चेतनास्थानमिति ॥

कक्षयोर्वक्षसः सन्धी जत्रुणी समुदाहृते। कक्षे उभे समाख्याते तयोः स्यातां च वंक्षणौ ॥ ८३ ॥ उदरं पञ्चमं चाङ्गं षष्ठं पार्श्वद्वयं मतम्। सपृष्ठवंशं पृष्ठं तु समस्तं सप्तमं स्मृतम् ॥ ८४ ॥ उपाङ्गानि च कथ्यन्ते तानि जानीहि यत्नतः। शोणिताज्जायते प्लीहा वामतो हृदयादधः ॥८५॥ रक्तवाहिशिराणां स मूलं ख्यातो महर्षिभिः। हृदयाद्वामतोऽधश्च फुप्फुसो रक्तफेनजः ॥ ८६ ॥ अधोदक्षिणतश्चापि हृदयाद्यकृतः स्थितिः तत्तु रञ्जकपित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम् ॥ ८७ ॥ अधस्तु दक्षिणे भागे हृदयात्क्लोम तिष्ठति ॥ ८८ ॥ जलवाहिशिरामूलं कृष्णच्छादनकृन्मतम् ॥८९॥

क्लोम तिलकम्। एतत्तुवातरक्तजम्। अत्र वृद्धवाग्भटः-'रक्तादनिलसंयुक्तात्कालीटकसमुद्भवः' इति।

मेदःशोणितयोः साराद्वृक्कयोर्युगलं भवेत्। तौ तु पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ॥ ९० ॥ उक्ताः सार्द्धास्त्रयो व्यामाः पुंसामन्त्राणि सूरिभिः। अर्द्धव्यामेन हीनानि योषितोऽन्त्राणि निर्दिशेत् ॥ ९१ ॥ उन्दुकश्च कटी

चापि त्रिकं वस्तिश्च वंक्षणौ । कण्डराणां प्ररोहः स्यात्स्थानं तद्वीर्य्यमूत्रयोः ॥ ९२ ॥ स एव गर्भस्याधानं कुर्याद् गर्भाशये स्त्रियाः । शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्तिता॥९३॥ तस्या स्तृतीये त्वावर्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता । वृषणौ भवतः सारात्कफासृग्भ्यां च मेदसाम् ॥ ९४ ॥ वीर्यवाहिशिराधारौ तौ मतौ पौरुषावहौ । गुदस्य मानं सर्वस्य सार्धं स्याच्चतुरङ्गुलम् ॥९५॥ तत्र स्युर्वलयस्तिस्रः शंखावर्तनिभास्तु ताः । प्रवाहिणी भवेत्पूर्वा सार्द्धाङ्गुलसमा मता॥९६॥ उत्सर्जनी तु तदधः सा सार्द्धाङ्गुलसंमिता । तस्या अधः संवरणी स्यादेकाङ्गुलसंमिता ॥ ९७ ॥ अर्द्धाङ्गुलप्रमाणं तु बुधैर्गुदमुखं मतम् । मलोत्सर्गस्य मार्गोऽयं पायुर्देहे विनिर्मितः ॥ ९८ ॥ पुंसः प्रोथौ स्मृतौयौ तु तौ नितम्बौ च योषितः । तयोः कुकुन्दरे स्यातां सक्थिनी त्वङ्गमष्टमम् ॥ ९९ ॥ तदुपाङ्गानि च ब्रूमो जानुनी पिण्डिकाद्वयम् । जङ्घे द्वे घुटिके पार्ष्णी तलेच प्रपदे तथा । पादावङ्गुलयस्तत्र दश तासां नखा दश ॥ १०० ॥

मैं उसके अंग उपांगोंको सुश्रुतसंहितासे जानकर मस्तकसे लेकर सम्पूर्ण अंगोंको कहता हूँ। हे शिष्यो ! तुम यत्नपूर्वक सुनो । प्रथम अंग शिर है, उसके उपांग केश, उसके भीतर मगज (मस्तकमें जो चिकनी वस्तु होती है वह), ललाट, दोनों भौंह, दोनों नेत्र, उनके भीतर दो पुतली, दो दृष्टि (निगाह), दो काले गोलक, दो सफेद गोलक, दो कोए, दो पलक और नेत्रोंके मध्यवाले अपांग भाग, दो शंख (अर्थात् मस्तककी हड्डी), कनपटी (दो कान, दोनों कानोंके छिद्र, पाली, कपोल (गाल), नाक, ऊपर नीचेकी ओष्ठ, ओष्ठोंके किनारे, मुँह, तालु, दो जावडे, दांत, मसूडे, रसना (जीभ), चिबुक (ठोडी) और गला हैं। द्वितीय अंग गरदन है, जो मस्तकको धारणकर रही है । तृतीय अंग दोनों भुजा हैं, उनके उपांगोंको कहते हैं-इनके ऊपर दो कन्धे हैं. उनके नीचे प्रगंड (बाजू) हैं, उसके नीचे कौनी, उसके नीचे प्रकोष्ठ, उसके नीचे पहुंचे, उसके नीचे हाथ, उसके नीचे हथेली, उसके नीचे दश अंगुली और उसमें दश लाल नख और दश काटने योग्य नख (नाखून) कहे हैं। चतुर्थ अंग वक्षःस्थल (हृदय) है, उसके उपांगोंको कहते हैं-वक्षःस्थलमें स्त्री और पुरुष दोनोंके दो स्तन हैं, इनमें जब स्त्री यौवनावस्थामें आती है तब दोनों स्तन बडे हो जाते हैं और जब स्त्री गर्भवती होकर प्रसूता होती है तब वे स्तन दूधसे परिपूर्ण होजाते हैं। हृदय कमलके सदृश अधोमुखवाला होता है, जाग्रत् अवस्थामें तो खुला रहता है और सोनेपर बन्द होजाता है। यही जीवका स्थान है और यही चेतनाके रहनेका उत्तम स्थान है इसी कारण इसमें तमोगुण प्राप्त होनेपर प्राणी सोजाते हैं। उत्तम चेतनाका स्थान है, इसके कहनेका यह प्रयोजन है कि केश, रोम, नखोंके अग्रभाग, मल और द्रव्य गुण इनसे रहित शेष इन्द्रियों सहित देह और मन यह चेतनाका स्थान है। (इस प्रकार कहकर चरक मुनिने सम्पूर्ण शरीर चेतनाका स्थान है, ऐसा कहा है, परन्तु इतना कहनेपर भी विशेष करके हृदय चेतनाका स्थान है ऐसा कहनेका प्रयोजन है) हृदयके समीप दोनों कोखकी और हृदयके सन्धि जत्रु (हसली) है, उसके नीचे दो कोख हैं और उसके दो वंक्षण (कन्धेके जोड) हैं। पंचम अंग उदर (पेट) है, षष्ठ अंग दोनों पार्श्व (पसली) हैं। सप्तम अंग पीठके दोनों बांसों सहित समस्त पीठ है। अब उसके उपां-

गोंको कहते हैं-उनको तूँ यत्नपूर्वक जान। वाम हृदयके नीचे रक्तसे उत्पन्न हुई प्लीहा होती है। महर्षियोंने रक्तवाहिनी नाडियोंका मूल इसको कहा है। हृदयसे नीचे वाम ओर रुधिरके झागोंसे उत्पन्न हुआ फुप्फुस (फेफडा। है। हृदयसे दक्षिण ओर नीचे यकृत् है वह रुधिरसे उत्पन्न हुआ, रंजक पित्तका स्थान है हृदयसे दक्षिणकी ओर नीचे क्लोम) पिपासा स्थान (है, यह जलके बहनेवाला नाडियोंका मूल है और तृष्णाको आच्छादन किये है। मेद और रक्तके सारसे दो वृक्क उत्पन्न हुए हैं, ये दोनों उदरमें रहनेवाले मेदाको पुष्ट करते हैं, पंडितोंने साढे तीन व्यामकी पुरुषोंकी आँतें कहीं हैं) दोनों भुजाओंकी लम्बाईको व्याम कहते हैं (और स्त्रियोंकी आँते तीन व्याम प्रमाण हैं। उदुक, कटि, त्रिक) पीठके बांसके नीचेकी तीन हड्डी), बस्ति (मूत्राशय), वंक्षण, कण्डराओंका प्ररोह ये वीर्य और मूत्रके स्थान हैं। येही स्त्रियोंके गर्भाधान करते हैं। शंखकी नाभिके सदृश तीन आवर्त्तवाली तीन चक्रवाली योनि कही है, उसके तीसरे आवर्त्त (चक्र) में गर्भशय्या है कफ, रक्त और मेदोंके सारांशसे दोनों अंडकोश उत्पन्न हुए हैं. ये दोनों वीर्यको बहनवाली नाडियोंके आधार और पुरुषार्थ देनेवाले कहे हैं। साढे चार अंगुल समस्त गुदाका प्रमाण है, शंखके आवर्त्तोंके सदृश उसमें तीन वली (गोल) हैं। उसमें प्रथम वलीका नाम प्रवाहिणी है, यह डेढ अंगुल प्रमाण है, इसके नीचे द्वितीय उत्सर्जनी है। इसका प्रमाण भी डेढ अंगुलका है, संवरणी नामवाली तृतीय वली है। इसका प्रमाण एक अंगुलका है, गुदाके मुखका प्रमाण पंडितोंने आधे अंगुलका कहा है, यह गुदा विधाताने मल त्यागनेका मार्ग देहमें निर्माण किया है। उसके नीचे पुरुषोंके दो प्रोथ (कूले) कहे हैं। वे ही स्त्रियोंके नितम्ब हैं और उसके नीचे दो कुकुन्दर (नितम्बोंके ऊपर दो गढे) हैं। अष्टम अंग जांघ है, उनके उपांगोंको कहते हैं-उनके नीचे दो घुटने उनके नीचे दो पिंडली, उनके नीचे टकने, उनके नीचे एँडी, तलुए, दो चरण और उनके अग्रभागमें दश अंगुली और उनमें दश नख हैं ॥ ७० ॥ १०० ॥

अथेदं शरीरमपरेणापि येनयेन समवायिकारणेन उत्पद्यते तानि सर्वाण्याह।

अथ दोषाः प्रवक्ष्यन्ते धातवस्तदनन्तरम्। आहारादेर्गतिस्तस्य परिणामश्च वक्ष्यते ॥१०१॥ आर्त्तवं चाथ धातूनां मलास्तदुपधातवः। आशयाश्च कलाश्चापि मर्माण्यथ च सन्धयः ॥१०२॥ शिराश्च स्नायवश्चापि धमन्यः कण्डरास्तथा। रन्ध्राणि भूरिस्रोतांसि जालैः कूर्चाश्च रज्जवः ॥ १०३ ॥ सेवन्यश्चाथ संघाताः सीमन्ताश्च तथा त्वचः। लोमानि लोमकूपाश्च देह एतन्मयो मतः ॥ १०४ ॥

अब आगे दोषोंको कहेंगे तदनन्तर धातु, आहार आदिकी गति और उसका परिणाम, आर्त्तव धातुओंके मल उपधातु, आशय, कला, मर्म, संधि, शिरा, स्नायु, धमनी, कण्डरा, रन्ध्र, बहुतसे श्रोत, जाल, कूर्च, रज्जु, सेवनी, संघात, सीमन्त, त्वचा, रोम, और रोमकूप ये सब कहेंगे, क्योंकि, देह इन सब समवायिकारणोंसे ही बनी है ॥ १०१ ॥ १०४ ॥

तत्र दोषस्वरूपमाह वाग्भटः।

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषा समासतः। विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति संवर्द्धयन्ति च ॥ १०५ ॥ ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः। वयोऽहोरात्रिभुक्तानांतेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात् ॥ १०६ ॥

वात पित्त और कफ ये तीन दोष संक्षेपतासे कहे हैं। ये विकृत (दूषित) होनेसे देहका नाश करते हैं। और अविकृत (शुद्ध) होनेसे देहका पालन करते हैं. ये दोष हृदय और नाभिके नीचे बीचमें और ऊपर व्याप्त हैं। अवस्था, दीन रात्रि, और भोजन इनके अन्त, मध्य और आदिमें क्रमसे गमन करते हैं॥ १०५॥ १०६॥

दोषशब्दस्य निरुक्तिमाह।

धातवश्च मलाश्चापि दुष्यन्त्येभिर्यतस्ततः। वातपित्तकफा एते त्रयो दोषा इति स्मृताः॥ १०७॥

दोषा इत्यत्र 'दुषवैकृत्ये' इति दुषूधातोः दुष्यन्ति एभिरिति वाक्येन 'अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्' इत्यनेन सूत्रेण करणेऽर्थे घञ् प्रत्ययः॥

ते धातवोऽपि विद्वद्भिर्गदिता देहधारणात् ॥१०८॥ यत आह सुश्रुतः-विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्य्यानिला यथा। धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा॥ ॥ १०९॥ इति॥

अत्र यथासंख्येनान्वयो बोद्धव्यः। विसर्गादान वातस्यैव। विक्षेपः शीतोष्णादीनां विविधप्रकारेण प्रेरणम्॥

मलाश्च ते रसादीनां मलिनीकरणान्मताः॥ ११०॥

धातु और मल इनसे दूषित होतेहैं, इसी कारण वात पित्त और कफ ये तीनों दोष कहाते हैं, विद्वानोंने देह धारण करनेसे इनको धातु भी कहा हैं। क्योंकि सुश्रुत कहता है कि, विसर्ग (त्याग करना) आदान (ग्रहण करना) और विक्षेप (डालना) इन तीन क्रियाओंसे जिस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य और वायु जगतको धारण किये हैं उसी प्रकार कफ, पित्त और वायु भी अनुक्रमसे इस तीन क्रियाओंके द्वारा देहको धारण करते हैं।

यहां अन्वय अनुक्रमसे जानना अर्थात् चन्द्रविसर्ग क्रियासे, सूर्य आदान क्रियासे और वायु विक्षेप क्रियासे जगत्को धारण करते हैं। फिर सोम, सूर्य, और वायु तथा कफ, पित्त और वात इनकी क्रिया अनुक्रमसे जगत्में तथा देहमें समान हैं यह कहना भी ग्रन्थकर्ताका ही आशय जानना। फिर उनकी मलसंज्ञा भी है क्योंकि वे रसादिकको मलिन करते हैं॥ ११०॥

तत्र वायोः स्वरूपमाह।

दोषधातुमलादीनां नेता शीघ्रः समीरणः। रजोगुणमयः सूक्ष्मो रूक्षः शीतो लघुश्चलः॥ १११॥

नेता—स्थानान्तरं प्रापयिता। शीघ्रःआशुकारी॥

अन्यच्च।

उत्साहोच्छ्वासनिःश्वासचेष्टावेगप्रवर्त्तनैः। सम्यग्गत्या च धातूनामिन्द्रियाणाञ्च पाटवैः। अनुगृह्णात्यधिकृतो हृदयेन्द्रियचित्तधृक्॥ ११२॥ रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः। खरो मृदुर्योगवाही संयोगादुभयार्थकृत् ॥ ११३॥ दाहकृत्तेजसा युक्तः शीतकृत्सोमसंश्रयात् विभागकरणाद्वायुः प्रधानं दोषसंग्रहे॥ ११४॥ पक्काशयकटीसक्थित्रस्थिस्पर्शनेन्द्रियम्। स्थानं वातस्य तत्रापि पक्काधानं विशेषत॥ ११५॥

वायु-दोष (कफ पित्त) धातु, (रस रक्तादि) और मल उनको एक स्थानसे अन्य स्थानपर पहुँचानेवाली, शीघ्र गमन करनेवाली, रजोगुणयुक्त, सूक्ष्म, रूक्ष, शीतल, हलकी और चंचल है। और भी कहा है कि वात अविकृत होनेसे उत्साह, श्वासका लेना और छोडना. इन

चेष्टाओंके वेगका प्रवर्त्तन तथा उत्तम गतिसे धातु और इन्द्रियोंकी चतुरतासे रक्षा करती है और हृदय, इन्द्रिय तथा चित्तको धारण करती है। रजोगुणमय सूक्ष्म, शीतल, रूक्ष, चंचल, तीक्ष्ण, नरम, योगवाही (जिसके साथ मिले उसीकेसे गुण करने लगे) संयोग होनेसे दोनों अर्थको करनेवाली, जैसे तेज (सूर्य) के साथ मिलनेसे दाह और चन्द्रमाके साथ मिलनेसे शीतलताको करती है। विभाग करनेसे दोषसमूहमें वात प्रधान है। पक्काशय, कमर, जंघा, श्रोत्र (कान), अस्थि और त्वचा ये सब वातके स्थान हैं, इनमें पक्काशय मुख्य स्थान है ॥ १११–११५ ॥

एको वायुः पित्तवत् नामस्थानकर्मभेदैः पञ्च विधः। तेषां वायूनां नामानि आह ।

उदानस्तदनुः प्राणः समानोऽपान एव च । व्यानश्चैतानि नामानि वायोः स्थानप्रभेदतः ॥ ११६ ॥

एक वायु पित्तके सदृश नाम स्थान और कर्म भेदोंसे पांच प्रकारकी है–उदान, प्राण, समान. अपान और व्यान ये पांच नाम वायुके स्थान भेदोंसे हैं ॥ ११६ ॥

अथ उदानादीनां स्थानानि आह ।

कण्ठे हृदि तथाऽधस्तात्कोष्ठवह्नेर्मलाशये । सकलेऽपि शरीरेऽसौक्रमेण पवनो वसेत् ॥ ११७ ॥

कण्ठ, हृदय, कोठेकी अग्नि, मलाशय और सम्पूर्ण शरीरमे क्रमसे वायुका निवासस्थान है अर्थात् कंठमें उदान, हृदयमें प्राण, कोठेकी अग्निके नीचे (नाभिमें) समान, मलाशय (गुदा) में अपामन और सम्पूर्णशरीरमें व्यान नामक पवन निवास करती है ॥ ११७ ॥

अथ तेषां कर्माणि आह ।

उदानो नाम यस्तूर्ध्वमुपैति पवनोत्तमः । तेन भाषितगीतादिप्रवृत्तिः कुपितस्तुसः ॥ ११८ ॥ ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगान्विदधाति विशेषतः । यो वायुः प्राणनामाऽसौ मुखं गच्छति देहधृक् ॥ ११९ ॥ सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते । प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान् ॥ १२० ॥ आमपक्काशयचरः समानो वह्निसंगतः । सोऽन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान्विविनक्तिहि ॥ १२१ ॥

तज्जान् इत्यादि । अन्नगतान् रसमलमूत्रादीन् विधिनक्ति पृथक् करोतीत्यर्थः ॥

स दुष्टो वह्नि मान्द्यातिसारगुल्मान्करोति हि । पक्काशयालयोऽपानः कालः कर्षति चाप्ययम् ॥ २२ ॥ समीरणः शकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्तवान्यधः ॥ क्रुद्धस्तु कुरुते रोगान् घोरान् वस्तिगुदाश्रयान् । शुक्रदोषप्रमेहांश्च व्यानापानप्रकोपजान् ॥ १२३ ॥ कृत्स्नदेहचरोव्यानो रससंवाहनोद्यतः । स्वेदाऽसृक्स्रवणश्चापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि ॥ १२४ ॥ गत्यपक्षेपणोत्क्षेपनिमेषोन्मेषणादिकाः प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धः शरीरिणाम् ॥ १२५ ॥ प्रस्पन्दनं चोद्वहनं पूरणं च विरेचनम् । धारणं चेति पंचैताश्चेष्टाः प्रोक्ता नभस्वतः ॥ १२६ ॥ क्रुद्धः स कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान् । युगपत्कुपिता एते देहं भिन्द्युरसंशयम् ॥ १२७ ॥

देहं भिन्नं कुर्युर्मारयेयुरित्यर्थः ॥

उदान नामक उत्तम वायु जब गलेमें घूमती है, तब उसकी शक्तिसे यह प्राणी भाषण करता

है और गीतादिकोंके गानेमें प्रवृत्ति होती है और वही वायु कुपित होकर ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंको अर्थात् नाडके ऊपरके रोगोंको विशेष करके करती है। दूसरी जो मुखमें सदैव चलनेवाली और प्राणोंको धारण करनेवाली प्राणनामक वायु है, सो भोजनके अन्नको भीतर प्रवेश कराती है और प्राणोंकी रक्षा करती है। यह कुपित होकर हिचकी श्वासआदि रोगोंको करती है। तीसरी समान नामक वायु आमाशय और पक्काशयमें विचरनेवाली जठराग्निसे मिलकर अन्नको पचाती है और अन्नसे उत्पन्नहुए मलमूत्र आदिको पृथक् पृथक् करती है, यह दूषित होकर मन्दाग्नि, अतीसार, गुल्म (वायुगोला) आदि रोगोंको उत्पन्न करती है। चौथी पक्काशयमें रहनेवाली अपानवायु है सो मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ और आर्त्तव इनको छोडनेके समय निकालकर बाहर डाल देती है। यह वायु कुपित होकर घोर मूत्राशय और गुदाके आश्रित रोगोंको करती है तथा शुक्रदोष. प्रमेह और अन्य ध्यान तथा अपान वायुके कोपसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको उत्पन्न करती है। सम्पूर्ण शरीरमें विचरनेवाली पाँचवी व्यान नामक वायु रसोंके बहानेमें उद्यत स्वेद (पसीना) और रक्तको बहानेवाली तथा पाँच प्रकारकी चेष्टा करानेवाली है। गमन अपक्षेपण (नीचेको डालना), उत्क्षेपण (ऊपरको फेंकना) निमेष (नेत्रोंका मीचना) और उन्मेषण (नेत्रोंका खोलना) इत्यादि शरीरियोंकी सर्व क्रिया प्रायः इस वायुके ही अधीन हैं। प्रस्पंदन (धीरे धीरे चलना), उद्वहन (कुछ लेकर चलना), पूरण (भरना). विरेचन (निकालना) और धारण ये वायुकी पांच चेष्टाएँ हैं। यह व्यानवायु कुपित होकर प्रायः सर्व शरीरके रोगोंको प्रगट करती है। और यदि पाँचों वायु एक साथ ही कुपित हों तो निःसन्देह देहका नाश कर देती है अर्थात् उसको मारही डालती हैं ॥ ११८-१२७ ॥

अथ पित्तस्य स्वरूपमाह।

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरम्। रसं कटु लघु स्निग्धं तीक्ष्णमम्लं तु पाकतः ॥ १२८ ॥

पीतं निरामम्। नीलं सामम् ॥

पित्त एक प्रकारका पतला पदार्थ है, उष्ण (गरम), पीत (आमसे अलग पित्तका रंग पीला होता है), नील (आमसे मिले हुए पित्तका रंग नीला होता है), सत्त्व गुणयुक्त, सारक दस्त लानेवाला), चरपरा, हलका, स्निग्ध, तीक्ष्ण और पाकके समय इसका स्वाद अम्ल अर्थात् खट्टा हो जाता है ॥ १२८ ॥

एक पित्तं वातवत् नामस्थानकर्मभेदैः पञ्चविधम्। तेषां पित्तानां नामानि आह।

पाचकं रञ्जकश्चापि साधकालोचके तथा। भ्राजकश्चेति पित्तस्य नामानि स्थानभेदतः ॥ १२९ ॥

एक पित्त—वातके समान नाम, स्थान और क्रियाओंके भेदसे पाँच प्रकारका है; पाचक रंजक, साधक. आलोचक और भ्राजक ये स्थानभेदसे पित्तके पाँच नाम हैं ॥ १२९ ॥

अथ पाचकादीनां स्थानानि आह।

अग्न्याशये यकृत्प्लीहाहृदये लोचनद्वये। त्वचि सर्वशरीरेषु पित्तं निवसति क्रमात् ॥ १३० ॥

अग्न्याशय, यकृत्, प्लीहा, हृदय, दोनों नेत्र, सम्पूर्ण देह और त्वचा इनमें क्रमसे उक्त पाँचों प्रकारका पित्त निवास करता है अर्थात् अग्न्याशयमें पाचक, यकृत् प्लीहामें रंजक हृदयमें साधक, दोनों नेत्रोंमें आलोचक, सम्पूर्ण शरीर और त्वचामें भ्राजक पित्त रहता है ॥ १३० ॥

अथ तेषां कर्माणि आह।

पाचकं प्रचते भुक्तं शेषाग्निबलवर्द्धनम्। रसमूत्रपुरीषाणि विरेचयति नित्यशः १३१

पाचकं पित्तमामपक्वाशयमध्यस्थं षड्विधमाहारं भोज्यं भक्ष्यं चर्व्यं लेह्यं चोष्यं पेयम् पचति दोषरसमूत्रपूरीषाणि पृथक्करोति च। तदग्न्याशयस्थमेव स्वशक्त्या रसरञ्जनहृदयस्थकफतमोऽपनोदनरूपग्रहणप्रभाप्रकाशनाभ्यङ्गलेपादिपाचनाद्यग्निकर्मणां विशेषाणां पित्तस्थानानामनुग्रहं करोति, शेषाणि अपि पित्तस्थानानि यकृत्प्लीहादीनि भागेन गत्वा तत्रतत्र रसरञ्जनादिकर्मभिरुपकरोति इत्यर्थः कथं भूतं पाचकं पित्तं ? शेषाग्निबलवर्धनम्–शेषा अग्नय पृथिव्यादिभूतगणाः ॥

यत उक्तं चरकेण–भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः १३२ इति ॥

ऊष्माणः–अग्नयः ॥

यत उक्तं वाग्भटे–दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनम् ॥१३३॥ ॥इति॥

दोषधातुमलादीनामूष्मैवाग्निरित्यर्थः ॥

रसादिधातुगताः सप्त तेषां बलवर्द्धनम्। यथा गृहस्थापितानि रत्नानि खद्योतवद्दूरभास्वराणि तान्मपि दीपज्योतिषा दूरप्रकाशकानि भवन्ति, तथा अग्न्याशयस्थपाचकाग्नितेजसा सर्वेऽग्नयो बलवन्तो भवन्ति। तथा च वाग्भटः–अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तृणामधिको मतः। तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः॥ ॥ १३४ ॥ इति ॥

ननु पित्तादन्योऽग्निः आहोस्वित्पित्तमेवाग्निरिति सन्देहः ? उच्यते–पित्तस्योष्णादिगुणद्वारा आहारपाचनरञ्जनदर्शनादिकर्मणश्च न खलु पित्तव्यतिरेकेण अन्योऽग्निः। तस्मादग्निरूपस्यैव पित्तस्य स्थानभेदात् पाचकरञ्जकसाधकालोचकभ्राजकसंज्ञाः ॥

तथा च वाग्भटः–पाचकं तिलमानं स्यात् काठिन्यान्नास्य दोषता। अनुगृह्णत्यविकृतं पित्तं पाकोष्मदर्शनैः॥१३५॥ क्षुतृड् रुचिप्रभामेधाधीशौर्यतनुमार्दवैः। पित्तं पञ्चात्मकं तच्च पक्कामाशयमध्यगम् ॥ १३६ ॥ पञ्चभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयः। त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मणाऽनलशब्दितम् पचत्यन्नं विभजते साराकिट्टौ पृथक् तथा ॥ १३७ ॥ तत्रस्थमेव पित्तानांशेषाणामप्यनुग्रहणम्। करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम् ॥ १३८ ॥ ननु यदि पित्ताग्न्योरभेदस्तदा कथं घृतं पित्तस्य शमकमग्नेर्दीपकमिति। तथा मत्स्याः पित्तं कुर्वन्ति न च तेऽग्निदीप्तिकरा इति। तथा पित्ताधिक्यात्तीक्ष्णोऽग्निरित्यपि कथं स्यात्। तथा समदोषः समाग्निश्चेत्यपि वक्तुं न युज्यते। तथा द्रवं स्निग्धमधोगञ्च पित्तं वह्निरतोऽन्यथेति ॥

अत्रोच्यते–पित्तमग्नेः सन्तताधिष्ठानम्। तथा चोक्तं तन्त्रान्तरे–अग्निर्भिन्नगुणैर्युक्तः पित्तं भिन्नगुणैस्तथा। द्रवं स्निग्ध मधोगञ्च पित्तं वह्निरतोऽन्यथा ॥१३९॥ तस्मात्तेजोमयं पित्तं पित्तोष्मा यः स शक्तिमान्। स सञ्चरति कुक्षिस्थः सर्वतो धमनीमुखैः॥ १४० ॥ स कायाग्निः स कायोष्मा स पक्ता स च जीवनम्। अनन्यगतिरित्येव देहे कायाग्निरुच्यते॥ ॥१४१॥ अन्यच्च–वामपार्श्वाश्रितं नाभेः

किञ्चित्सोमस्य मण्डलम् । तन्मध्ये मण्डलं सौर्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः । जरायुमात्रप्रच्छन्नः काचकोशस्थदीपवत् ॥ १४२ ॥

तथा च मधुकोषे-द्रवंतेजःसमुदायात्मकस्यापि पित्तस्य तेजोभागोऽग्निरिति । तेन पित्तमप्यग्निवत् मन्यते अतितापितायोगोलकवत् । परमार्थतस्तु अग्निः पित्ताद्भिन्न एवेति सिद्धान्तः॥ अत एवाह रसप्रदीपे-जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः । सौक्ष्म्याद्रसानाददानो विवेक्तुं नैव शक्यते ॥ १४३ ॥ नाभौ मध्ये शरीरस्थ विशेषात्सोममण्डलम् । सोममण्डलमध्यस्थं विद्यात्सूर्यस्य मण्डलम् ॥१४४॥ प्रदीपवत्तत्र नृणां स्थितो मध्ये हुताशनः । सूर्यो दिवि यथा तिष्ठंस्तेजोयुक्तैर्गभस्तिभिः । विशोषयति सर्वाणि पल्वलानि सरांसि च ॥१४५॥ तद्वच्छरीरिणां भुक्तं ज्वलनो नाभिमाश्रितः । मयूखैः पचते क्षिप्रं नानाव्यञ्जनसंस्कृतम् ॥ १४६ ॥ स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रःप्रमाणतः । हस्वकायेषु सत्त्वेषु तिलमात्रः प्रमाणत । कृमिकीटपतंगेषु वालमात्रोऽवतिष्ठते ॥ १४७ ॥ इति । अलमप्रकृतचिन्तनेन ॥

आमाशय और पक्वाशयमें स्थित पाचक पित्त छः प्रकारके आहारोंको पचाता है और शेषाग्निके बलको बढाता है तथा रस, मूत्र,मल आदिको नित्य पृथक् २ करता है । यह पाचक पित्त आमाशय और पक्वाशयमें स्थित भक्ष्य, भोज्य, चर्व्य, लेह्य, चोष्य और पेय इन भोजनोंको पकाता है और रस, मल, मूत्र तथा दोषोंको अलग अलग करता है । यह पित्त अग्न्याशयमें स्थित होकर अपनी शक्तिसे रसको रंगना (लाल करना) हृदयमें स्थित कफ और अन्धकारको हटाना, रूपका ग्रहण करना, प्रभाका प्रकाश करना, अभ्यंग और लेपादिका पाक करना इत्यादि अग्नि कर्मके द्वारा विशेष पित्तके स्थानोंपर अनुग्रह करता है अर्थात् यकृत् प्लीहादिक शेष पित्तके स्थानोंमें जाकर रसका रंगना आदिकर्मोंसे उपकार करता है और शेषाग्नि (महाभूताग्नि और धात्वाग्नि) की शक्तिको बढाता है । क्योंकि चरकमुनिने भी कहा है कि "पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच प्रकारकी ऊष्मा (अग्नि) हैं" । वाग्भटमें भी लिखा है कि "दोष, धातु और मलादिककी ऊष्माही अग्नि है, यह आत्रेयकी आज्ञा है ।" जैसे घरमें रक्खे हुए रत्न खद्योत (पटवीजने) के सदृश समीपमें ही प्रकाश करते हैं और उनपर दीपककी ज्योति पडनेसे दूरतक प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार अग्न्याशयमें स्थित पाचक अग्निके तेजसे सर्व अग्नि बलवान् होजाती हैं । जैसे वाग्भटमें कहा है कि "सब अग्नियोंमें अन्नको पकानेवाली अग्नि मुख्य है वही सब अग्नियोंका कारण है और उसीकी वृद्धि तथा क्षयसे सम्पूर्ण अग्नि घटती बढती हैं"। अब यहां शंका उत्पन्न होती है कि अग्नि पित्तसे अलग है या पित्तकोही अग्नि कहते हैं ? वहां कहते हैं कि, पित्तके उष्णादि गुणोंसेही आहारका पकना रसका रंगना और दर्शनादिकर्म होते हैं इसलिये अग्नि पित्तसे अलग नहीं है इसी कारण अग्निरूप पित्तके ही स्थान भेदसे पाचक, रंजक, साधक, आलोचक और भ्राजक नाम हैं। ऐसे ही वाग्भटमें कहा है कि, "पाचक पित्त तिलके प्रमाण है, कठिन होनेसे दोष संज्ञक नहीं है। विकाररहित पाचक पित्त पाक, ऊष्म, दर्शन, क्षुधा, तृषा, रुचि, कांति, मेधा, बुद्धि, शूरता और शरीरकी कोमलताके द्वारा उपकार करता है" । पंचभूतात्मक होनेपर भी इसमें अग्निका गुण प्रगट है, इसकारण इसमें द्रवता नहीं है । यह पाचक पित्त पाक आदि कार्योंके करनेसे अग्नि कहलाता है । यह अग्नि अन्नको पचाती है और सारभूत पदार्थ (रस) तथा मलमूत्रादिको भिन्न-भिन्न करती है । तथा

अपने स्थानोंमें स्थित विशेष पित्तोंको बल देकर उपकार करती है, इस कारण इसका नाम पाचक कहा है। यहां शंका उत्पन्न होती है कि, पित्त और अग्निमें यदि भेद नहीं है तो अग्निको दीपन करनेवाला और पित्तको शमन करनेवाला घी किस प्रकार हो सकता ? तथा मछली पित्त करती है और अग्निको प्रदीप्त करनेवाली नहीं है और पित्तकी अधिकतासेंही तीक्ष्णाग्नि होती है वह भी कैसे होसकता है ? अथवा दोषोंके सम होनेसे समाग्नि होती है यह भी नहीं हो सकता तथा पित्त द्रवनेवाला. स्निग्ध और नीचेको जानेवाला है; तथा अग्नि इससे अन्यथा अर्थात् कठोर, रूक्ष और ऊपर जानेवाली है। वहां कहते हैं कि, पित्त अग्निके सदा रहनेका स्थान है, क्योंकि अन्य ग्रन्थोंमें कहा है " अग्नि पृथक् गुणोंसे युक्त है और पित्त अलग गुणोंसे युक्त है। पित्त द्रवता (पतलापन) युक्त, स्निग्ध और नीचेको जानेवाला है तथा अग्निसे पृथक् है इसी कारण पित्त तेजयुक्त है और पित्तकी ऊष्मा गरमी शक्तिमान् है वह कोखमें स्थित धमनीके मुखद्वारा सब शरीरमें विचरती है वही कायाग्नि है, वही कायोष्मा है, वही पाक करनेवाली है, वही जीवनरूप है, इसकी अनन्य गति है इस कारण देहमें कायाग्नि कही है। और भी कहा है। कि, नाभिके वामपार्श्वमें चन्द्रमण्डल है, उसके मध्यमें सूर्यका मण्डल है और उसके मध्यमें अग्नि स्थित है, वह केवल जरायु (झिल्ली) से ढकी हुई कांचके पात्रमें स्थित दीपकके सदृश है" । सोही मधुकोषमें कहा है कि- द्रवरूप तेजके सदृश है। समुदायरूप पित्त है और उसका तेजभाग अग्नि है, इसी कारण पित्त भी अग्निके सदृश मानाजाता है जैसे अत्यन्त तप्त किये हुए लोहेके गोलेको अग्नि ही मानते हैं, इसी प्रकार यहां जानना अर्थात् वास्तवमें अग्नि पित्तसे भिन्न है यह सिद्धांत है । ऐसा रसप्रदीपग्रन्थमें कहा है कि भगवान् जठराग्नि ईश्वर अन्नको पचानेवाली और रसको ग्रहण करनेवाली है. परन्तु अति सूक्ष्म होनेसे उसका विवेक नहीं हो सकता, शरीरके मध्य नाभिमें विशेषतासे सोममण्डल है, उस सोममण्डलके मध्यमें स्थित सूर्यका मण्डल है, उसमें दीपकके सदृश मनुष्योंके मध्य अग्नि स्थित है । जैसे सूर्य आकाशमें स्थित अपनी तेजयुक्त किरणोंसे समस्त ताल और सरोवरोंको सुखादेता है उसी प्रकार नाभिमें स्थित अपनी किरणोंके द्वारा यह जठराग्नि मनुष्योंके अनेक प्रकारके व्यञ्जनोंसे खाये हुए भोजनको पचाता है, स्थूल (बडे शरीरी हाथी गैंडा) जीवोंमें अग्नि यव (जौ) प्रमाण, ह्रस्व शरीरी (मनुष्यादि) जीवोंमें तिलके प्रमाण और कृमी (गिनार) कीट (कीडे) पतंगों (उड़नेवाले जीवों) में बालकी बरावर अग्नि रहती है ॥१३१-१४७॥

पुनः प्रकृतमनुसरामः--रञ्जकं नाम यत्पित्तं तद्रसं शोणितं नयेत् । यत्तु साधकसंज्ञं स्यात् कुर्याद्बुद्धिं धृतिं स्मृतिम् ॥ १४८ ॥

धृतिं—मेधाम् ॥

यदालोचकसंज्ञं तद्रूपग्रहणकारणम् । भ्राजकं कान्तिकारि स्यात्लेपाभ्यङ्गादिपाचकम् ॥ १४९ ॥

रंजक नाम जो पित्त है वह रसका रुधिर बनता है। साधकसंज्ञक जो पित्त है वह बुद्धि, धृति, मेधा (धारणशक्ति) और स्मृतिको करता है । आलोचक नामक जो पित्त है वह रूपका ग्रहण अर्थात् देखनेमें कारण है और भ्राजक पित्त कान्ति करना और लेप अभ्यंग (मालिश) आदिको पचाता है ॥१४८॥१४९॥

अथ श्लेष्मस्वरूपमाह ।

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतलस्तथा । तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥ ५० ॥

कफ-श्वेत, भारी. स्निग्ध, पिच्छिल, शीतल, तमो गुणयुक्त और स्वादु (मधुर) है तथा विदग्ध होनेसे खार होजाता है ॥१५०॥

एकःश्लेष्मा वातपित्तवच्च नामस्थानकर्मभेदैः पञ्चविधः । तेषां श्लेष्मणा नामानि आह ।

कफस्यैतानि नामानि क्लेदनश्चावलम्बनः।
रसनः स्नेहनश्चापि श्लेष्मा स्थानभेदतः ॥ १५१ ॥

एक कफ, वात पित्तके तरह नाम स्थान और कर्म भेदोंसे पांच प्रकारका है। क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन और श्लेष्मण ये कफके पांच नाम स्थानभेदसे हैं ॥ १५१ ॥

अथ क्लेदनादीनां स्थानानि आह ।

आमाशयेऽथ हृदयेकण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणां श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥ १५२ ॥

दोषाणां सकलशरीरव्यापिनामपि पञ्चपञ्च स्थानानीति बाहुल्याभिप्रायेण उक्तानि ॥ तथा च वाग्भटः–इतिप्रायेण दोषाणां स्थानान्यविकृतात्मनाम्। व्यापिनामपि जानीयात् कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥ १५३ ॥ इति ॥ चरकश्च--ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः ॥ १५४ ॥ इति ॥

आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और संधि इन स्थानोंमें क्रमसे मनुष्योंके कफ निवास करता है अर्थात् आमाशयमें क्लेदन, हृदयमें अवलम्बन, कंठमें रसन, शिरमें स्नेहन और संधियोंमें श्लेष्मण कफ रहता है । यद्यपि दोष सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं तथापि पांच पांच स्थान हैं तथापि बाहुल्यके अभिप्रायसे कहे हैं। ऐसे ही वाग्भटमेंकहा है कि--एकरूप अर्थात् सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक हो रहे हैं, वह दोष कर्म विशेष करके भिन्न भिन्न जानने चाहिये। चरकमें भी कहा है कि, दोष संपूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं परन्तु हृदय और नाभिके नीचे मध्य और ऊर्ध्वमें रहते हैं अर्थात् वायु नाभिके नीचे, पित्त नाभि और हृदयके बीचमें और कफ ऊपर (प्रधानतासे) रहते हैं ॥ १५२-- १५४ ॥

अथ तत्तत्स्थानगतस्य श्लेष्मणः कर्माण्याह ।

क्लेदनः क्लेदयत्यन्नमात्मशक्त्याऽपराण्यपि। अनुगृह्णाति च श्लेष्मस्थानान्युदककर्मणा। ॥ १५५ ॥

अयमर्थः--क्लेदनोऽन्नं क्लेदयति तेन संहतमन्नं भेदं प्राप्नोति । अहराण्यपि श्लेष्मस्थानानि हृदयादीनि मार्गेण गत्वा तत्रतत्र हृदयावलम्बनत्रिकसन्धारणरसग्रहणसमस्तेंद्रियतर्पणसंधिसंश्लेषणाद्युदककर्म्मभिरनुगृह्णाति उपकरोति तदेव उत्तरत्र उच्यते ॥

क्लेदन कफ--अन्नको क्लेदयुक्त (गीला) करता है और अपनी शक्तिसे कफसे दूसरे स्थानोंको भी जलकर्मके द्वारा सहायता करता है। तात्पर्य यह है कि, क्लेदनकफ अन्नको भिगोता है इस कारण इकट्ठा हुआ अन्न पृथक् पृथक् होजाता है । कफ हृदयादि अन्य स्थानोंमें जाकर उन उन स्थानोंमें हृदयका अवलंबन करना, त्रिकसंधारण, रसग्रहण करना, सम्पूर्ण इंद्रियोंको तृप्त करना, संधियोंको जोडना इत्यादि जलकर्मोंसे सहायता करता है ॥ १५५ ॥

अवलम्बनकफलक्षणम् ।

तथा च–रसयुक्तात्मवीर्य्येण हृदयस्यावलंबनम् । त्रिकसन्धारणं चापि विदधात्यवलंबनः ॥ १५६ ॥

त्रिकं शिरोबाहुद्वयसन्धिः ॥

अवलंबनकफ–रसयुक्त वीर्यसे हृदयके भागका अवलंबन और त्रिक हड्डीका संधारण करता है (मस्तक) और दोनों भुजाओंकी संधिको त्रिक कहते हैं ॥ १५६ ॥

रसनकफलक्षणम् ।

उभावपि ततः सौम्यौ तिष्ठतश्चान्तिके यतः । यतो रसान्विजानीतो रसनारसनौ समौ ॥ १५७ ॥

रसना रसनेन्द्रियम्। रसनः कण्ठस्थकफः॥

रसना और रसनकफ ये दोनों सौम्यगुणयुक्त हैं, दोनों समीप रहते हैं, इस कारण रसना और रसनकफ ये दोनों रसको जानते हैं (रसना अर्थात् जीभ, रसना अर्थात् कण्ठमें रहनेवाला कफ)॥ १५७॥

स्नेहनश्लेष्मणकफयोर्लक्षणम्।

स्नेहनः स्नेहदानेन समस्तेन्द्रियतर्पणः। श्लेष्मणः सर्वसन्धीनां संश्लेषं विदधात्यसौ॥ १५८॥

स्नेहनकफ स्नेह देकर समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करता है, वैसे ही श्लेष्मण कफ सर्व संधियोंको संश्लेष करता है अर्थात् भलीभांति जोडता है॥ १५८॥

अथ धातुशब्दस्य निरुक्तिमाह।

एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यन्नृणाम्। रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणिधातवः॥ १५९॥

धातव इति धाधातोस्तुप्रत्ययः॥

रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि (हड्डी), मज्जा और शुक्र ये सातों धातुएं मनुष्योंमें स्थित होकर देहको धारण करती हैं इस कारण इनको धातु करते हैं॥ १५९॥

अथ धातूनां कर्माणि आह।

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणपूरणे। गर्भोत्पादश्च कर्माणि धातूनांकथितानि हि॥ १६०॥

प्रीणन, जीवन, लेपन, स्नेहन, धारण, पूरण, और गर्भोत्पादन ये क्रमसे उपरोक्त सातों धातुओंके कार्य हैं, अर्थात् रसका कार्य प्रीणन (तृप्त करना), रक्तका कार्य जीवन, मांसका कार्य लेपन, मेदाका कार्य स्नेहन, अस्थिका कार्य धारण, मज्जाका कार्य पूरण और शुक्रका कार्य गर्भोत्पादन (गर्भ प्रगट करना) है॥ १६०॥

तत्र रसशब्दस्य निरुक्तिः।

यत्पाथो रसधातोर्यस्ततोऽभवदपःरसः। सद्रवं सकलं देहं रसतीति रसः स्मृतः॥ १६१॥

रसधातु जलरूप है, इस कारण जलमेंसे रस उत्पन्न होता है तथा वह द्रवयुक्त होकर सम्पूर्ण शरीरमें गमन करता है इस कारण रस कहा है॥ १६१॥

अथ रसस्य स्वरूपमाह।

सम्यक्पक्कस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः। स तु द्रवः सितः शीतः स्वादुः स्निग्धश्चलो भवेत्॥॥ १६२॥

सारो यथा--गुडमधूकपुष्पबुब्बुलुत्वग्बदरीमूलादिभवः सारो मदिरा॥

भली प्रकारसे पचे हुए भोजनका जो सार है वही रस है। रस-द्रवतायुक्त, श्वेत, शीतल, स्वादु, स्निग्ध और चंचल है। जैसे गुड, महुएके फूल, बबूरकी छाल, बेरकी जड आदिमेंसे उत्पन्न हुआ जो सार (मद्य) है उसको सार कहते हैं॥ १६२॥

अथ रसस्य स्थानमाह।

सर्वदेहचरस्यापि रसस्य हृदयं स्थलम्। समानमरुता पूर्वं यदयं हृदये धृतः १६३

रस यद्यपि सम्पूर्ण शरीरमें विचरनेवाला है तथापि उसका मुख्य स्थान हृदय है. क्योंकि, पूर्वमें समान वायुने उसको लाकर हृदयमें स्थापन किया है॥ १६३॥

रसस्य कर्माणि।

आरुह्य धमनीर्गत्वा धातून् सर्वानयं रसः। पुष्णाति तदनु स्वीयैर्व्याप्नोति चतनुं गुणैः॥ १६४॥

गुणैः शीतस्निग्धपोषकत्वगुणैः॥

यह रस-धमनीनाडियोंमें जाकर संपूर्ण धातुओंको पुष्ट करता है, तदनन्तर अपने गुणोंसे शरीरमें व्याप्त होता है (गुण अर्थात् शीत, स्निग्ध, पोषकत्व आदि गुणोंसे व्याप्त है ऐसा जानना)॥ १६४॥

विदग्धरसः।

मन्दवह्निविदग्धस्तु कटुर्वाऽम्लो भवेद्रसः। स कुर्याद्बहुलान् रोगान्विषकृत्यं करोत्यपि ॥ १६५ ॥

रस मन्दाग्निसे विदग्ध (अधकच्चा होकर) कटु (चरपरा) अथवा अम्ल होजाता है, तब अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है तथा विषके सदृश मारणादिक कार्यको भी करता है ॥ १६५ ॥

अथ रक्तस्य स्वरूपमाह।

यदा रसो यकृद्याति तत्र रञ्जकपित्ततः।
रागं पाकं च संप्राप्य स भवेद्रक्तसंज्ञकः॥
रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम्।
स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवेत्॥

रस जब यकृत्स्थान (कलेजे) में जाता है तब रंजक पित्तकी उष्णतासे रंग और पक्वताको प्राप्त होकर रुधिर बनता है, वह रुधिर सम्पूर्ण शरीरमें रहता है, जीवका सर्वोत्तम आधार है, स्निग्ध, भारी, चंचल और स्वादु है तथा विदग्ध होकर पित्त सदृश हो जाता है॥१६६॥१६७॥

जीवस्याधारमुत्तममित्यत आह।

जीवो वसति सर्वस्मिन् देहे तत्र विशेषतः। वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणे याति क्षयं क्षणात् ॥ १६८ ॥ इति ॥

वीर्ये रक्ते मले च शरीरारम्भके वाग्भटोक्तपरिमाणमिते शुद्धे जीवो वसति। न तु दुष्टे प्रवृद्धो रक्तस्रवणोपदेशस्य वैयर्थ्यप्रसंगात्। पित्तवद्भवेत् अम्ल भवेदित्यर्थः ॥

जीव सम्पूर्ण शरीरमें रहता है, किंतु विशेषतासे वीर्य, रक्त और मलमें रहता है. क्योंकि. जिस समय इनका क्षय होता है उसी समय जीवका क्षय होजाता है (वीर्य, रुधिर और मलमें जीव रहता है, ऐसा जो ऊपर कह आये हैं उसमें ऐसा समझना कि, वाग्भटके कथनानुसार परिमित शरीरारंभक शुद्ध वीर्य, रक्त और मलमें जीव रहता है, परन्तु दोषयुक्त और बढे हुए रुधिरमें जीव नहीं रहता क्योंकि, बढे हुए और बिगडे हुए रुधिरको निकलनेकी आज्ञा है) ॥ १६८ ॥

अथ रक्तस्य स्थानमाह।

यकृत्प्लीहा च रक्तस्य मुख्यस्थानं तयोः स्थितम्। अन्यत्र संस्थितवतां रक्तानां पोषकं भवेत् ॥ १६९ ॥

रुधिरके यकृत् (कलेजा) और प्लीहा (तिल्ली) ये दो मुख्य स्थान हैं। इनमें रहनेवाला रुधिर अन्य स्थानोंमें रहनेवाले रक्तको भी पुष्ट करता है ॥ १६९ ॥

अथ मांसस्य स्वरूपमाह।

शोणितं स्वाग्निना पक्वं वायुना च घनीकृतम्। तदेव मांसं जानीयात्तस्य भेदानपि ब्रुवे ॥ १७० ॥

शोणितमिति। शोणितस्थानगतत्वात् रस एव शोणितसंज्ञां लभते। एवमग्रे रसस्यैव मांसादिव्यपदेशः ॥

रुधिरमें रहनेवाली अग्निसे पक हुए तथा वायुसे घनरूप (गाढे) किये हुए रुधिरको ही मांस जानना अब मांसके भेद कहते हैं–पूर्वमें कहा है कि, जिस प्रकार रुधिरके स्थानमें गया हुआ रस रुधिरसंज्ञाको पाता है, उसी प्रकार यहाँ मांसके स्थानमें गया हुआ रुधिर मांस हो जाता है ॥ १७० ॥

अथ मांसस्य पेशीमाह।

यथार्थमूष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत्। अनुप्रविश्य पिशितं पेशीर्विभजेत तथा। १७१ ॥

यथार्थम्--यथाप्रयोजनम् ॥

जिस प्रकार यथार्थ उष्णतायुक्त वायु स्रोतों (शिराओं) को विदीर्ण करती है, उसी प्रकार वह मांसमें प्रवेश करके मांसकी पेशियोंको भी विभक्त करती है (पेशी अर्थात् मांसके छोटे छोटे टुकडे) ॥ १७१ ॥

मांसपेशीनां संख्यामाह।

मांसपेश्यः समाख्याता नृणां पंच शतानि हि। तासां शतानि चत्वारि शाखासु कथितान्यथ॥१७२॥ कोष्ठे षड्डुत्तरा षष्टिः कथिता मुनिपुङ्गवैः। ग्रीवाया ऊर्ध्वगास्तास्तु चतुस्त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ॥१७३॥

मांसकी पेशी मनुष्योंमें पांचसौ (५००) कही हैं उनमेंसे चारसौ (४००) पेशी शाखा अर्थात् हाथ पावोंमें हैं छयासठ (६६) कोठेमें और चौतीस (३४) गरदनसे ऊपरके भागमें विद्वानोंने कही हैं॥ १७२॥ १७३॥

ताः शाखागताः प्राह।

एकैकस्यां तु पादांगुल्यां तिस्रस्तिस्रस्ताः पंचदश १५। पादाग्रे दश १०। पादोपरि कूर्चसन्निविष्टा दश १०। गुल्फतलयोर्दश १०। गुल्फजानुनोरन्तरे विंशतिः २०। जानुनि पंच ५। ऊरौ विंशतिः २०। वंक्षणे दश १०। एवमेकस्मिन् सक्थनि शतं भवन्ति। एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ। एतासां समष्टिः चतुःशतम्॥ ४००॥

एक एक पांवकी अंगुलीमें तीन तीन(३-३) हैं इस प्रकार पांचों अंगुलियोंमें पंद्रह (१५), पांवके अग्रभागमें दश (१०) पांवके ऊपर कूर्चस्थानमें दश (१०), गुल्फ और तलुओंमें दश (१०), गुल्फ और जानुके बीचमें बीस (२०), जानु (घुटुने) में पांच (५), ऊरू (जंघा) में बीस (२०) वंक्षण (ऊरूकी संधि) में दश (१०), इस प्रकार सब मिलकर एक सक्थिमें (पंजेसे लेकर जांघ तक अंगमें) सौ (१००) पेशी हैं,इसी प्रकार दूसरे पांवमें तथा दोनों भुजाओंमें भी सौ सौ पेशी हैं ऐसे इन चारों शाखाओंमें चारसौ (४००) पेशी हुई॥

अथ कोष्ठगताः प्राह।

गुदे तिस्रः ३। शेफसि एका १। सेवन्यामेका १। वृषणयोर्द्वे २। स्फिचोः पञ्च पञ्च ५-५। वस्तिमूर्द्धनि द्वे २। उदरे पञ्च ५। नाभ्यामेका १। पृष्ठोर्ध्वे सन्निविष्टा उभयतः पंच पंच ५-५ दीर्घाः। पार्श्वयोः षट् ६। वक्षसि दश १०। अक्षकांसौ प्रति समन्तात् सप्त ७। अक्षक अधुआ इति लोको, अंसौ स्कन्धौ। हृदि द्वे २। यकृति द्वे २। प्लीह्नि द्वे २। तुण्डके द्वे २। एतासां समष्टिः ६६ षट्षष्टिः॥

गुदामें तीन (३), लिंगमें एक (१), सेवनी (सिमन) में एक (१), अंडकोषोंमें दो (२), दोनों कूलोंमें पांच पांच (५-५), वस्तिके नीचे दो (२) पेटमें पांच (५), नाभिमें एक (१), पीठके ऊपर दोनों ओर पांच पांच (५-५), दोनों पँसलियोंमें छः (६), छातीमें दश (१०), हंसली और स्कन्धोंके इधर उधर सात (हृदयमें दो) २), यकृतमें दो (२), प्लीहामें दो (२), और तुण्डक कन्धेके निकटकी गली (में दो) २।, इस प्रकार कोठेमें छयासठ(६६) मांसकी पेशी हैं।।

अथ ग्रीवोर्ध्वगाः प्राह।

ग्रीवायांचतस्रः ४ हन्वोरष्टौ ८। एका काकलके कण्ठकणौ घण्टिकायामिति यावत्। गले एका १। तालुनि द्वे २। जिह्वायामेका १। ओष्ठयोर्द्वे २। नासायां द्वे २। नेत्रयोर्द्वे २। गण्डयोश्चतस्रः ४। कर्णयोर्द्वे २। ललाटेचतस्रः ४। शिरसि एका १। आसां समष्टिश्चतुस्त्रिंशत् ३४। एवं सर्वसमष्ट्या मांसपेश्यः पंचतानि भवन्ति।

गरदनमें चार (४),(ठोडी) में आठ(८), टेटुएमें एक (१), गलेमें एक (१), तालुमें

दो (२) जीभमें एक (१) होठोंमें दो (२) नाकमें दो (२), दोनों नेत्रोंमें दो (२), ललाट (मस्तक) में चार (४), और शिरमें एक (१) इस प्रकार गरदनके ऊपरके भागमें चौतीस मांसपेशी हैं, ये सम्पूर्ण शरीरमें कुल पांचसौ (५००) पेशी हुईं॥

स्त्रीणामपि भवन्त्येताः किन्तु विंशतिरुत्तराः। गर्भाशये गर्भमार्गे योनौ च स्तनयोरपि॥ १७४॥

एताः पञ्चशतानि मांसपेश्यः। स्त्रीणाम् अधिका विंशतिः। यथा--

गर्भाशये तिस्रः ३। गर्भच्छिद्रसंस्थिताः शुक्रार्तवप्रवेशिन्यस्तिस्रः ३। योनावभ्यन्तरतो मुखाश्रिते प्रसृते द्वे २। योनावेव बहिर्निर्गतस्त्रोतः पार्श्वद्वयस्थिते वर्तुले (योनिकर्णिकेति यावत्) द्वे २। स्तनयोः पंच पंच ५-५। यौवने तासां वृद्धिर्भवति॥

जैसे मांसपेशी पुरुषोंके हैं वैसेही स्त्रियोंके भी हैं, किन्तु स्त्रियोंके बीस अधिक हैं, ये बीसगर्भाशय, गर्भमार्ग, योनि और स्तन इनमें होती हैं। अधिक जो बीस हैं सो इस प्रकार हैं सो इस प्रकार हैं कि, गर्भाशयमें तीन (३), गर्भके छिद्रमें स्थित वीर्य और आर्तवको गर्भाशयमें प्रवेश करानेवाली तीन (३), योनिमें भीतर मुखकी ओर फैली हुई दो (२), तथा योनिमें ही कुछ बाहर छेदोंके दोनों पाश्वोंमें जिसे कर्णिका कहते हैं वहां दो (२), और स्तनोंमें पांच पांच (५-५) हैं, यौवनावस्थामें ये वृद्धिको प्राप्त होजाती हैं, इस प्रकार बीस मांसकी पेशी स्त्रियोंके अधिक होती हैं॥१७४॥

पुंसा पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्त मेहनमुष्कजाः। स्त्रीणामावृत्य तिष्ठन्ति फलमन्तर्गता हि ताः॥१७५॥

अस्यायमर्थः--पुंसां मेहनमुष्कयोश्च यास्तिस्रो मांसपेश्यः पूर्वमुक्ता ताः स्त्रीणां मेहनमुष्काभावात् फलं गर्भाशयम् आवृत्यतिष्ठन्ति॥

लिंग और अंडकोषोंमें जो तीन पेशी पुरुषोंके कही हैं वे पेशी स्त्रियोंके भी होती हैं गर्भाशयके लिपटी हुई रहती हैं। (तात्पर्य यह है कि एकमांसपेशी लिंगमें और दो अंडकोषोंमें जो पुरुषोंके पहिले कही हैं यह स्त्रियोंके) लिंग और अंडकोष न होनेके कारण (फल) अर्थात् गर्भाशयमें अच्छादित रहतीहैं।

गयदासस्त्वाह--स्त्रीणां मांसपेश्यस्त्रिभिर्हीनानि पंच शतानि॥

तथा च भोजः--पञ्च पेशीशतान्येव स्त्री वर्ज्जं विद्धि भूमिप। अतश्च तिस्रो हीयन्ते स्त्रीणां शेफसि मुष्कयोः॥१७६॥

परन्तु गयदासका मत है कि--स्त्रियोंके मांसपेशी तीन हीन पांचसौ (४९७) होती हैं। ऐसाही भोज भी कहते हैं कि, हे राजन्! पेशी पांचसौ हैं परन्तु स्त्रियोंके नहीं इसलिये लिंग और अंडकोष न होनेसे स्त्रियोंके तीन कम हैं॥ १७६॥

मांसपेशीनां कर्माण्याह।

शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि सन्धयश्च शरीरिणाम्। पेशीभिःसंवृतान्येव बलवन्ति भवन्तिहि॥ १७७॥

प्राणियोंकी शिरा (नस), स्नायु (वायुवाहिनी नाडी) अस्थि (हड्डी), पर्व पौरुवे और संधि ये सब मांसकी पेशियोंसे लिपटी होनेसे बलवान् होती हैं।

अथ मेदसः स्वरूपमाह।

यन्मांसं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते। तदतीव गुरु स्निग्धं बलकार्यतिबृंहणम्॥ १७८॥

जो मांस अपनी अग्निसे परिपक हुआ है उसको मेदा (चर्बी) कहते हैं, वह अत्यन्त

भारी, स्निग्ध, बलकारी और अति बृंहण (पुष्टिकारक है) ॥ १७८ ॥

अथ मेदसः स्थानमाह ।

मेदो हि सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिसंस्थितम् । अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ १७९ ॥

सम्पूर्ण जीवोंके मेदाके उदर (पेट) में हड्डियोंसे मिली हुई रहती है, इस कारण मेदवाले पुरुषका पेट विशेष करके बढजाता है अर्थात् इसी कारण मेदस्वी पुरुषका पेट बडा होजाता है ॥ १७९ ॥

अथ अस्थ्नः स्वरूपमाह ।

मेदा यत्स्वाग्निना पक्वं वायुना चातिशोषितम् । तदस्थिसंज्ञां लभते स सारः सर्वविग्रहे ॥ १८० ॥ अभ्यन्तरगतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः । अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम् ॥ ॥ १८१ ॥ तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मासेषु शरीरिणाम् ॥ अस्थीनि न विनश्यन्ति सारा एतानि सर्वथा ॥ १८२ ॥

जब मेदा अपनी अग्निसे पकजाती है और वायु उसको शुष्क कर देती है तब वह अस्थिसंज्ञक अर्थात् हड्डी होजाती है हड्डी होजाती है, हड्डी सम्पूर्ण शरीरमें सार है । जिस प्रकार वृक्षके भीतर सार होनेसे वृक्ष पृथ्वीमें स्थित रहते हैं उसी प्रकार मनुष्य अस्थियोंके सारसे देहको धारण कर रहे हैं । बहुत कालसे मनुष्योंकी त्वचा और मांस नष्ट होनेपर भी अस्थि नष्ट नहीं होती, अत एव सर्व शरीरका सार हड्डियाँ हैं ॥ १८०–१८२ ॥

अथ अस्थ्नां संख्यामाह ।

शल्यतन्त्रेऽस्थिखण्डानां शतत्रयमुदाहृतम् । तान्येवात्र निगन्द्यते तेषांस्थानानि यानि च ॥१८३॥ सविंशतिशतं त्वस्थ्नां शाखासु कथितं बुधैः । पार्श्वयो श्रोणिफलके वक्षः-पृष्ठोदरेषु च ॥ १८४ ॥ जानीयाद्भिषगेतेषु शतं सप्तदशोत्तरम् । ग्रीवायामूर्ध्वगां विद्यादस्थ्नां षष्टिं त्रिसंयुताम् ॥ १८५ ॥

हड्डियोंकी संख्या शल्यतन्त्रमें तीन सौ कही हैं, उनको और उनके जो जो स्थान हैं उन सबका वर्णन यहाँ करते हैं । शाखा अर्थात् दोनों हाथों और दोनों पैरोंमें विद्वानोंने एकसौ बीस (१२०) हड्डी कही हैं । दोनों पसली, कमर, नितम्ब, वक्षःस्थल, पीठ और पेट इनमें एकसौ सत्रह (११७) अस्थि हैं और गरदन तथा गरदनके ऊपर तिरसठ (६३) अस्थि हैं ॥ १८३–१८५ ॥

तानि शाखा गतान्याह ।

एकैकस्यां पादांगुल्यां त्रीणित्रीणि, तानि पञ्चदश १५ । पादतले पञ्चास्थिशलाकास्तदाधारभूतमेकमस्थि १ । एवं षट् ६ । कूर्चे द्वे २ । गुल्फे द्वे २ । पार्ष्णावेकम् १ । जंघयोर्द्वे २ । जनुन्येकम् १ । ऊरावेकम् १ । एवं त्रिंशदेकस्मिन् सक्थनि भवन्ति । एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ ॥

एक एक अंगुलीमें तीन तीन, इस प्रकार पाँचों अंगुलियोंमें पंद्रह(१५), पाँवके तलुएमें पांच (५) अस्थि शलाका (सलाई) हैं और उसके आधारभूत एक (१) अस्थि है, इस प्रकार छः हुई (कूर्च घाई), में दो (२), गुल्फ (गट्टों) में दो (२),एँडीमें एक (१), जंघामें दो (२), जानुमें एक (१), ऊरु (घुटने) में एक (१), सक्थिमें एक (१), इस प्रकार एक पांवमें तीस तथा दूसरे पाँवमें तीस ये सब साठ (६०) हुई और साठ (६०) दोनों हाथोंमें, इस भांति कुल अस्थि शाखाओंमें एकसौ बीस (१२०) हैं =

अथ पार्श्वादिगतान्याह।

पार्श्वयोः षट्त्रिंशत्—षट्त्रिंशत् ३६-३६ (७२)। गुदे एकम् १। शिश्ने भगे वा एकम् १। नितम्बयोरेकैकम् २। त्रिके एकम् १। वक्षसि अष्टौ ८। पृष्ठे त्रिंशत् ३०। अक्षकसंज्ञे द्वे २।

(दोनों) पँसलियोंमें छत्तीस छत्तीस (३६-३६), गुदामें एक (१), लिंग या भगमें एक (१), नितम्बोंमें एक एक (१-१), त्रिकमें एक (१) वक्षःस्थल (हृदय) में आठ (८), पीठमें तीस (३०) और अक्षक (हंसली) में दो (२)॥

अथ ग्रीवोर्ध्वगतान्याह।

ग्रीवायां नव ९। कण्ठनाड्यां चत्वारि ४। हन्वोरेकैकम् २। दन्ताः द्वात्रिंशत् ३२। नासायां त्रीणि ३। तालुनि एकम् १। गण्डयोरेकैकम् २। कर्णयोरेकैकम् २। भ्रुवोरेकैकम् २। शिरसिषट् ६।

गरदनमें नौ (९), कंठमें चार (४), हनु (जावडोंमें) एक एक इस प्रकार दो (२) दांतोंमें बत्तीस (३२), नाकमें तीन (३), तालुमें एक (१), गालोंमें एक एक इस प्रकार (२), दोनों कानोंमें दो (२), दोनों भौओंमें दो (२), शिरमें छः (६), इस भांति कुछ तिरसठ (६३), हड्डी गरदनके ऊपरके भागमें हैं॥

एतानि अस्थीनि पञ्चविधानि भवन्ति। तानि यथा-

तरुणानि कपालानि रुचकानि भवन्ति हि। वलयानीति तानि स्युर्नलकानि च कानिचित्॥ १८६॥ अक्षिकोशश्रुतिघ्राणग्रीवासु तरुणानि च। शिरःशंखकपोलेषु तात्वंसंप्रोथजानुषु १८७॥ कपालानि भवन्त्येषु दन्तेषु रुचकानि च। पाण्योः पार्श्वयुगे पृष्ठे वक्षोजठरपायुषु॥ १८८॥ पादयोर्वलयानि स्युर्नलकानि ब्रुवेऽधुना। हस्तपादाङ्गुलितले कूर्चे च मणिबन्धके। बाहुजंघाद्वये चापि जानीयान्नलकानि तु॥१८९॥

जानुनितम्बांसगंडतालुशंखशिरःसु कपालानि। दशनास्तु रुचकाः॥

यह अस्थि (हड्डी) पांच प्रकारकी है। इनमें कोई तरुण, कोई कपाल, कोई रुचक, कोई वलय और कोई नलक हैं। अक्षिकोश (गोलक) कान, नाक और गरदनमें जो अस्थि हैं वे तरुण संज्ञक हैं। शिर, शंख (मस्तककी हड्डी), कपोल, तालु, कंधे, कूले और जानु (घुटने) में जो अस्थि हैं वे कपाल संज्ञक हैं। दांतोंमें जो अस्थि हैं वे रुचक संज्ञक हैं। दोनों-हाथ, दोनों पसली, पीठ, वक्षःस्थल, पेट, गुदा और दोनों पांव इनमें जो हड्डी हैं वे वलय संज्ञक हैं। हाथ पांवकी अंगुलियोंके नीचे कूर्च, मणिबन्ध (पहुँचों), में, भुजा और दोनों जांघोंमें जो अस्थि हैं वे नलक संज्ञक हैं॥ १८६॥ १८९॥

अथ अस्थ्नां प्रयोजनमाह।

मांसान्यन्त्राणि बद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा। अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न दीर्यन्ते पतन्ति च॥ १९०॥

शिरा (नस) और स्नायु (बडी नस) से देहका मांस और आँतें बँधी हुई हैं, वे अस्थियोंका अवलंबन करके न फटती हैं और न गिरती हैं॥ १९०॥

अथ मज्जास्वरूपमाह।

अस्थि यत्स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो भवेद् घनः। यः स्वेदवत्पृथग्भूतः स मज्जेत्यभिधीयते॥१९१॥

अपनी अग्निसे जब अस्थि पक जाती है तब उसका कठोर रूप सार होता है, वह स्वेदवत्

अर्थात् पसीनेके सदृश अलग होजाता है, उसका नाम मज्जा है ॥ १९१ ॥

अथ मज्जास्थानमाह।

स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यन्तरे स्थितः ॥१९२॥

विशेष करके मज्जा मोटी मोटी हड्डियोंके भीतर रहती है ॥ १९२ ॥

अथ शुक्रस्योत्पत्तिमाह।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते। मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रस्य सम्भवः ॥ १०३ ॥

शुक्रस्येति वचनेन शुक्रसम्भव उक्तः ॥

रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, मांससे मेदा, मेदासे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे वीर्य उत्पन्न होता है ॥ १९३ ॥

आहारादिगतिः।

ननु, मांसेन रसः शुक्रं भवति, स्त्रीणां आर्त्तवं भवतीति सुश्रुतस्यैव वचनेन रसादेव शुक्रस्य उत्पत्तिरुच्यते। तदेतत् कथं सङ्गच्छते? इममेव सन्देहं दूरीकर्तुम् आहारादेर्गतिं परिणामं चाह।

कोई शंका करे कि, एक महीनेमें रससे पुरुषका तो वीर्य बनता है और स्त्रीका उस रससे आर्तव बनता है इस प्रकार सुश्रुतके वचनानुसार रससे वीर्य होना कहा है, फिर मज्जासे वीर्य उत्पन्न होना कैसे सम्भव हो सकता है? यह शंका दूर करनेके लिये आहारादिककी गति और परिणाम कहते हैं ॥

यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः माधुर्यं फेनभावं च षड्रसोऽपि लभेतसः ॥ १९४ ॥

आहार इत्यत्र आह्रियते इति आहारः। "अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्" इति सूत्रेण कर्मणि घञ। स च षड्विधः ॥

प्रथम प्राणवायुसे प्रेरित होकर आहार आमाशयमें जाता है, वह आहार छः रसयुक्त होनेपर भी वहां जाकर मधुर और झागोंवाला होजाता है ॥ १९४ ॥

तथा च–आहार्यं षड्विधं भोज्यं भक्ष्यं चर्व्यं तथैव च। लेह्यं चोष्यं तथा पेयं तदुदाहरणानि तु ॥१९५॥ भोज्यमोदनसूपादि भक्ष्यं मोदकमण्डकम्। चर्व्यं चिपिटधान्यादि रसालादि तु लिह्यते। चोष्यमाम्रफलेक्ष्वादि पीयते पानकं पयः ॥ १९६ ॥

आहार छः प्रकारका है–भोज्य, भक्ष्य, चर्व्य, लेह्य, चोष्य और पेय। इनका उदाहरण इस प्रकार है, जैसे–भात दाल आदि भोज्य, लड्डू मण्डक आदि भक्ष्य, चने परवल आदि चर्व्य, रसाल (रसयुक्त पदार्थ खीर, रसालाआदि जो चाटकर खाये जायँ) आदि लेह्य, आम, ईख (गन्ना) आदि चोष्य और पानी दधि आदि पेय हैं ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

आमाशयमाह चरकः।

नाभिस्तनान्तरे जन्तोराहुरामाशयं बुधाः इति ॥

नाभि और स्तन इन दोनोंके बीचमें मनुष्योंके आमाशय है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं॥

अथ विशेषमाह।

नाभेर्वितस्तिमात्रं च कण्ठदेशात्षडंगुलम्। उरसस्तद्विजानीयाच्छेषं तु हृदयं मतम् ॥ १९७ ॥ उरो रक्ताशयस्तस्मादधः श्लेष्माशयः स्मृतः। आमाशयस्तु तदधस्तदधो दहनाशयः ॥१९८॥ इति ॥

प्राणानिलेरित इति। हृदयाधिष्ठानेन प्राणनाम्ना वायुना मुखं गतेन अन्तः प्रवेशितः ॥

तथा च सुश्रुतः–योवायुः प्राणनामाऽसौ मुखं गच्छति देहधृक्। सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥१९९॥

क्लेदननामा कफः क्लेदयति । क्लेदनात्सं हतं भिनत्ति च ॥

उक्तं च सुश्रुतेः-क्लेदनः क्लेदयत्यन्नं संहतं च भिनत्त्यतः ॥ २०० ॥ इति ॥ स आहारः षड्रसोऽप्यामाशये माधुर्य्यं लभते आमाशयस्थस्य मधुरस्य कफस्य योगात् ॥

नाभिसे एक बालिस्त ऊपर और कण्ठदेशसे छः अंगुल नीचे, इतना भाग उरस्थान (छाती) है और शेष स्थान हृदय कहलाता है । उसके नीचे रक्तस्थान है अर्थात् रक्ताशय है । उसके नीचे श्लेष्माशय है कफका स्थान) है । उसके नीचे आमाशय है । और उसके नीचे दहनाशय (अग्निका स्थान) है । 'प्राणवायुसे प्रेरणा पाकर 'इस प्रकार पूर्वमें लिखा है इसका अर्थ ऐसा है कि,हृदयमें रहनेवाली प्राणवायु मुखमें जाकर आहारको प्रवेश कराती है, ऐसा सुश्रुतका वाक्य है कि-जो प्राणनामक वायु है वह मनुष्यके मुखमें जाकर अन्नको प्रवेश कराती है और प्राणोंको भी अवलंबन कराती है । क्लेदन नामक कफ आहारको भी भिगोता है । और भीगे हुए एकत्र अन्नको पृथक् २ करता है । ऐसाही सुश्रुत कहते हैं कि, क्लेदन नामक कफ अन्नको भिगोता है तथा वह इकट्ठे हुए आहारको अलग अलग करता है । यह आहार छः रस युक्त होकर भी आमाशयमें जाकर मधुरताको प्राप्त होता है क्योंकि आमाशयमें रहनेवाले मधुर कफका संयोग होता है ॥ १९९-२०० ॥

श्लेष्मस्वरूपम् ।

उक्तं च-श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतलस्तथा । तमोगुणाधिक स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् । फेनभावञ्च लभते जठरानल तेजसा ॥२०१॥ यत आह वाग्भटः-सन्धुक्षितः समानेन पचत्यामाशयस्थितम् । औदर्य्योऽग्नि-र्यथा बाह्यः स्थालीस्थं तोयतण्डुलम् ॥ ॥२०२॥ इति ॥ अथ स एवाहारः प्राणवायुना प्रेरितस्ततः किञ्चित् स्खलितः पाचकाख्यपित्तोष्मणा यत्पक्वोऽम्लरसो भवति । उक्तञ्च-अथ पाचकपित्तेन विदग्धं चाम्लतां व्रजेत् ॥२०३॥

पाचकपित्तेन पाचकपित्तस्योष्मणा । ततः स एवाहारो नाभिमण्डलाधिष्ठानेन समाननाम्ना वायुना प्रेरितो ग्रहणीमभिनीयते ॥

कफ श्वेत, भारी, स्निग्ध, पिच्छिल, शीतल, तमोगुण युक्त, स्वादु और विदग्ध होनेसे खार है तथा जठराग्निकी उष्णतासे फेनभाव (झागोंकी सदृशता) को प्राप्त होजाता है । जैसे वाग्भटमें कहा है कि-जिस प्रकार हाँडीमें रक्खे हुए पानी और चावलोंको बाहरकी अग्नि पका देती है, वैसेही समानवायुसे प्रज्वलित हुई जठराग्नि आमाशयमें स्थित आहारको पकादेती है, फिर वह आहार प्राण वायुसे प्रेरित हुआ तथा किञ्चित् स्खलित हो (गिरकर) पाचक पित्तकी उष्णतासे पककर अम्लरसयुक्त होजाता है । जैसे कहा है, कि-पाचक नामक पित्तकी अग्निसे विदग्ध होकर वह आहार अम्लता (खट्टापन) को प्राप्त होजाता है । पश्चात् वह आहार नाभिमण्डलमें रहनेवाली समान नामक वायुसे प्रेरित हुआ ग्रहणीकी ओर जाता है ॥ २०१-२०३ ॥

ग्रहणलक्षणमाह ।

षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता । आमपक्वाशयान्तःस्था ग्रहणी साऽभिधीयते ॥ २०४ ॥

पित्तधरा पाचकाख्यं पित्तं यदग्न्यधिष्ठानं तद्धारयति तत्र ग्रहण्यामामाशय-पक्वाशयमध्यवर्तिपाचकाख्यपित्ताधिष्ठानेन अग्निना आहारः पच्यते । स कदूष्मा भवति इति आह । तथा च-

ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठे वह्निना जायते कटुः ॥ २०५ ॥

अयमर्थः-आहारो ग्रहण्या कोष्ठवह्निना ग्रहणीस्थितपाचकपित्तेन वह्निना पच्यते, पच्यमानः स ग्रहणीस्थितस्य कटुरसस्य योगात् कटुर्भवति॥

आमाशय और पक्काशयके मध्यमें रहनेवाली पित्तधरा नामक जो छठी कला है उसको ग्रहणी कहते हैं, पाचक नामक पित्त जो अग्निका अधिष्ठान है उसको धारण करती है इस कारण वह पित्तधरा कहलाती है। वहां ग्रहणीमें आमाशय तथा पक्काशयके मध्यमें रहनेवाले पाचक नामक पित्तकी अग्निसे आहार पचता है। वह कटु तथा गरम होता है। वहाँ कहते हैं कि-आहार ग्रहणीमें पचता है और कोठेमें रहनेवाली अग्निसे कटु (चरपरा) होता है। इसका यह अर्थ है कि-ग्रहणीमें कोठेकी अग्निसे अर्थात् पाचक पित्तरूप अग्निसे आहार पचता है। और पचते समय उस ग्रहणीमें रहनेवालेके तीक्ष्ण रसके योगसे कटु हो जाता है ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

आहारस्य पाचनम् ।

एतदाहारपाके विशेषमाह-शरीरं पांचभौतिकम् । तत्र पञ्चसुभूतेषु पंचाग्नयस्तिष्ठन्ति इत्याह चरकः-

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पंचोष्माणः सनाभसाः। पंचाहारगुणान्स्वान्स्वान्पार्थिवादीन् पचन्त्यनु ॥ २०६ ॥

अत्रोष्मपदेन अग्निरुच्यते । आहारोऽपि पांचभौतिकः । तत्रपाचकपित्तस्थेन अग्निना उत्तेजितेन शरीरवर्तिना भूभागाग्निना आहारवर्तिभूभागः पच्यन्ते । पक्वो भूभागः स्वकीयान् गुणान् अभिवर्धयति । एवं जलादिभागा अपि पच्यन्ते । तथा च सुश्रुतेपञ्चभूतात्मके देहे आहारः पांचभौतिकः । विपक्वः पंचधा सम्यग्गुणान्स्वानभिवर्धयेत् ॥ २०७ ॥ इति ॥

गुणशब्देन क्षत्र गुणिनः पृथिव्यादय उच्यन्ते । तेन गुणान् शरीरवर्त्तिनः पार्थिवादीन् भागान् अभिवर्द्धयेदित्यर्थः ॥

एवम् अहोरात्रेण पक्व आहारो मिष्टः पटुश्च मधुरो भवति । अम्लस्त्वम्लो भवति। कटुस्तिक्तः कषायश्च कटुर्भवति। उक्तं च-मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः । कटुतिक्तकषायाणां विपाको जायते कटुः ॥२०८॥ इति ॥

शरीर पंचभूतात्मक है, उन पांच भूतोंमें पांच अग्नि रहती हैं। चरक कहते हैं कि-भौम (भूमिसंबन्धी) आप्य (जलसंबन्धी) आग्नेय (अग्निसम्बन्धी) वायव्य (वायुसंबन्धी) और नाभस (आकाशसंबन्धी) पांच ऊष्मा पृथ्वीसंबन्धी) आदि अपने अपने आहारके गुणोंको पाचन करती हैं (यहाँ ऊष्मापदसे अग्नि कही है) आहार भी पांचभौतिक है, उसमें पाचक पित्तस्थ अग्निसे उत्तेजित होकर शरीरकी भौमाग्निसे आहारका भूमिभाग पचता है, पक्क हुआ पृथ्वी भाग अपने गुणोंको बढाता है इसी प्रकार जलादिक भाग भी पचता है। वैसेही सुश्रुतमें कहा है कि-पञ्चभूतात्मक शरीरमें आहारभी पांचभौतिक है, वह पांच प्रकारसे पचकर अपने अपने गुणोंकी वृद्धि करता है। (यहां गुणशब्दसे गुण युक्त पृथ्वी आदिक कहनेका प्रयोजन है) उसमें ऐसा समझना कि-गुणोंकी अर्थात् शरीरमें रहनेवाले पृथ्वी आदिक भागोंकी वृद्धि करता है; इस प्रकार एक दिन रातमें मिष्ट (मीठा) और नमकीन आहार पचकर मधुर रसवाला होता है। खट्टे आहारका परिपाक खट्टा ही होता है, कटु, तिक्त और कसैले स्वादवाले

आहारका परिपाक कटु ही होता है ॥ २०६-२०८ ॥

आहारस्य रसः।

एवं विपक्वस्य आहारस्य सारो निगदितो रसः। शेषो ग्रहणीस्थो मलद्रवः मलद्रवस्य जलभागः शिराभिर्वस्तिं नीतो मूत्रं भवति। उक्तं च–

आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः। शिराभिस्तज्जलं नीतं वस्तिं मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥ २०९ ॥ शेषं किट्टं च यत्तस्य तत्पुरीषं निगद्यते। समानवायुना नीतं तत्तिष्ठति मलाशये २१०

इस प्रकार पके हुए आहारके सारको रस कहते हैं और उसका शेष ग्रहणीमें स्थित भाग मलद्रव है। इस मलद्रवमेंसे जलका भाग शिराओंके द्वारा वस्ति (मूत्राशय) में जाता है तथा वही मूत्र बनता है। जैसा कहा है कि-आहारका सार रस है सारहीन भाग मलद्रव कहलाता है, उस मलद्रवका जल शिराओंके द्वारा वस्तिमें जाता है, वहां वस्तिमें मूत्रताको प्राप्त होता है। शेष जो किट (मल) रहा उसको विष्ठा कहते हैं। वह विष्ठा समान वायुद्वारा मलाशयमें जाकर ठहरती है ॥ २०९-२१० ॥

मूत्रपुरीषनिर्गमः।

तत्र मलाशयस्थेन अपानवायुना प्रेरितं मूत्रं मेढ्रभगमार्गेण, पुरीषं गुदमार्गेण-शरीराद्बहिर्याति। उक्तं च–

मूत्रं चोपस्थमार्गेण, पुरीषं गुदमार्गतः। अपान वायुना क्षिप्तं बहिर्याति शरीरतः ॥ २११ ॥

उपस्थः-शिश्नो भगश्च ॥

वह मूत्र मलाशयमें रहनेवाली अपानवायुसे प्रेरित होकर लिंग तथा योनिमार्ग द्वारा बाहर निकलता है। और विष्ठा गुदाके मार्ग द्वारा शरीरसे बाहर होता है, कहा भी है कि, अपानवायुसे प्रेरित होकर मूत्र उपस्थ इन्द्रियके मार्ग द्वारा और विष्ठा गुदाके द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है। (उपस्थशब्दसे लिंग और योनि जानना) ॥ २११ ॥

रसस्य गमनं परिणामश्च।

रसस्तु समानवायुना प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकस्य रसस्य स्थानं हृदयं गत्वा तेन सह मिश्रितोभवति-इत्याह।

रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः। स तु व्यानेन विक्षिप्तः सर्वान् धातून् विवर्धयेत् ॥ २१२ ॥ केदारेषु यथा कुल्याः पुष्णन्ति विविधौषधीः। तथा कलेवरे धातून् सर्वान् वर्धयते रसः ॥२१३॥

समान वायुसे प्रेरित होकर रस धमनीके मार्ग द्वारा शरीरका आरंभ करनेवाला रसका स्थान जो हृदय है उसमें जाकर उसके साथ मिल जाता है। कहा भी है कि, समान वायुसे प्रेरित हुआ रस हृदयमें जाता है तथा वहां व्यानवायुसे फैलाया हुआ सर्व धातुओंको बढाता है, जिस प्रकार खेतकी क्यारियोंमें कुल्या (छोटी तलैया) छोटी नालियों(नहरों) का पानी नाना प्रकारकी औषधियोंको पुष्ट करता है उसी प्रकार रस शरीरमें सर्व धातुओंकी वृद्धि करता है ॥ २१२-२१३ ॥

रसस्तु तत्रतत्र त्रिधा विभज्यते। उक्तश्च चरकेण–

स्थूलः सूक्ष्मस्तन्मलश्च तत्रतत्र त्रिधा रसः। स्वं स्थूलोऽशः परं सूक्ष्मस्तन्मलो याति तन्मलम् ॥ २१४ ॥

अयमर्थः–स्थूलोंऽशः स्व यातियथास्थितस्तिष्ठति। सूक्ष्मस्त्वंशः परं द्वितीयं धातुं याति। तन्मलः रसादिमलः। तन्मलं शरीरारम्भकं तत्तद्धातुमलं यातीत्यर्थः ॥

यथा लौकिकाग्निना इक्षुरसः पच्यते तथा शरीरारम्भकस्य रसस्य अग्निना आहाररसः पच्यते । स पच्यमानः पंचाहोरात्रात् सार्द्धदण्डमेकं च यावत् प्राक्तनरसधातावेव तिष्ठति । उक्तं च सुश्रुते—स खलु रसः त्रीणित्रीणि कलासहस्राणि पंचदश कला एकैकस्मिन् धातौ उपतिष्ठते । तत्र कालानां विंशति मुहूर्त्तः स दण्डद्वयात्मकः इत्यभिप्रेत्य आह । तथा च भोजः—

धातौ रसादौ मज्जान्ते प्रत्येकं क्रमतो रसः । अहोरात्रात्स्वयं पंच सार्धं दण्ड च तिष्ठति ॥२१५॥

प्रत्येकम्—एकैकस्मिन्नित्यर्थः ॥

उस स्थानमें जाकर रसके तीन भाग होते हैं । चरकमें भी कहा है कि—"उस स्थलमें वह रस तीन प्रकारका होता है । स्थूल सूक्ष्म और रसका मल । स्थूल भाग अपने स्थानमें रहता है, सूक्ष्म भाग धातुमें जाता है और रसका मल धातुओंके मलमें जाता है " इसका अर्थ यह है कि, रसका स्थूलभाग तो अपने आपको प्राप्त होता है अर्थात् जहां हो वहीं रहता है, रसका सूक्ष्म भाग धातुमें जाता है और रसादिकका मल शरीरका आरम्भ करनेवाली धातुओंके मलमें जाता है ऐसा अर्थ है जिस प्रकार लौकिक अग्नि ईखका रस पकाती है उसी प्रकार शरीरको आरम्भ करनेवाली रसकी अग्निसे आहारका रस पकता है, पकते समय वह पांच अहोरात्र (दिनरात) और डेढ घडीतक रस धातुमें ही रहता है । सुश्रुतमें भी कहा है-वह रस तीन हजार और पंद्रह कलापर्यन्त एक एक धातुमें ही रहता है; (बीस कलाका एक मुहूर्त जानना और एक मुहूर्त दो घडीका जानना) । सोही भोज कहते हैं कि—रस जिसका आदि है और मज्जा जिसका अन्त है ऐसी प्रत्येक धातुमें क्रमसे रस अपने आप मिलकर पांच अहोरात्र (दिन रात) और डेढ घडीतक रहता है॥२१४२१५॥

कफस्योत्पत्तिः ।

ततो यथा पच्यमानात् इक्षुरसात् मलो निर्गच्छति, तथा पच्यमानात् आहाररसात् मलोनिर्गच्छति स कफः । उक्तं च सुश्रुते—कफः पित्तं मलः खेषु प्रस्वेदो नखरोम च । नेत्र—विट्त्वक्षु च स्नेहो धातूनां क्रमशो मलाः ॥२१६॥

खेषु मलः—कर्णादिस्रोतोमलः । स च कफप्राणानिलेप्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकं क्लेदनाख्यं कफं गत्वा पुष्णाति । ततः सारभूतस्य आहाररसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च । तत्र सूक्ष्मो भागः शरीरारम्भकं रसं पोषयति । सकलशरीराधिष्ठानेन व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः संचरन्पोषणस्नेहनजठरानलोष्मकृतसंतापनिवाराणादिभिर्गुणैः सकल शरीरं पुष्णाति ॥

जिस प्रकार पके हुए ईखके रसमेंसे मल निकलता है उसी प्रकार पाचन हुए आहारके रसमें मल निकलता है वह कफ जानना । सुश्रुतमें भी कहा है कि--"कफ, पित्त, देहका मल, पसीना, नख-रोम, नेत्रका मल और नेत्रका स्नेह (चिकनापन) ये धातुओंके क्रमसे मल जानने अर्थात् रसका मल कफ, रक्तका मल पित्त, मांसका मल कान आदिका मल, मेदाका मल पसीना, हड्डीका मल नख और रोम, मज्जाका मल नेत्रके कीचड तथा त्वचाका स्नेह जानना " ॥

फिर वह कफ प्राणवायुकी प्रेरणासे धमनीके मार्गद्वारा शरीरारम्भक क्लेदन नामक कफमें जाकर उसको पुष्ट करता है; पश्चात् सारभूत आहारके दो भाग होते हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, उसमें सूक्ष्मभाग शरीरारम्भक

रसको पुष्ट करता है तथा सम्पूर्ण शरीरमें व्यापकर व्यानवायुसे प्रेरित धमनियोंके मार्गमें संचार करता है, वह रस पोषण, स्नेहन, जठराग्निकी गरमीसे उत्पन्न हुए संतापके निवारण आदि गुणसे सम्पूर्ण शरीरको पुष्ट करता है ॥ २१६ ॥

पित्तस्योत्पत्तिः ।

ततः स्थूला भागः प्राणवायुना प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकस्य रक्तस्य स्थानं गत्वा यकृत्प्लीहरूपं गत्वा तेन सह मिलितो भवति । ततः प्राक्तनस्य रक्तस्य अग्निना पुनः पच्यमानः पंचाहोरात्रात सार्द्धदण्डं च यावत् प्राक्तनरक्तधातावेव तिष्ठति । ततो यथाऽग्निना पुनः पुनः पच्यमानात् इक्षुविकारात् वारंवारं मलं निर्गच्छति, तथा पुनः पुनः पच्यमानात् आहाररसात् प्रतिवारं मलं निर्गच्छति । तत्र रक्ताग्निना पच्यमानात् मलं पित्तं निर्गच्छति, तच्चः पित्तं समानवायुना प्रेरितं धमनीमार्गेण शरीरारम्भकं पाचकाख्यं गत्वा पुष्णाति । ततः सारभूतस्य आहाररसस्य द्वौ भागौ भवतः,स्थूलः सूक्ष्मश्च। सूक्ष्मो भागो रञ्जकाग्निना पित्तेन रक्तीकृतः शरीरारम्भकं रक्त, व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः संचरन् सकलशरीरगतानि रुधिराणि पुष्णाति ॥

पश्चात् रसका स्थूलभाग प्राणवायुकी प्रेरणासे धमनीके मार्गमें होकर शरीरारम्भक रुधिरके स्थानमें जाकर यकृत् प्लीहारूप होकर उनके साथ मिलजाता है,जैसे-वारंवार पकाये हुए ईखके रसमें वारंवार मल निकलता है । उसी प्रकार पहिली शेष रही हुई रक्तकी अग्निसे वारम्वार पककर आहाररससे वारंवार मल निकलता है वहां रक्तकीः अग्निसे पके हुए रसमेंसे पित्त निकलता है, वह पित्त समानवायुसे प्रेरित धमनियोंके मार्गद्वारा शरीरारम्भक पाचकपित्तमें जाकर उसको पुष्ट करता है, पीछे सारभूत आहारके रसके दो भाग होते हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, इनमेंसे सूक्ष्मभाग रंजक अग्निरूप पित्तसे रक्तरूप होता हैं, तथा वह शरीरारम्भक रक्तका पोषण करता है। वह व्यानवायुसे प्रेरित हो धमनीके मार्गद्वारा जाकर सम्पूर्ण शरीरके रुधिरका पोषण करता है ॥

कर्णमलस्योत्पत्तिः ।

ततः स्थूलो भागः व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च शरीरारम्भकाणि मांसानि याति । ततो मांसाग्निना पुनः पच्यमानः पंचाहोरात्रात् सार्धदण्डश्च यावत् मांसेष्वेव तिष्ठति । ततः पच्यमानात् तस्मात् मलं निर्गच्छति । तद्व्यानवायुना क्षिप्तं कर्णौ आगत्य कर्णविड् भवति । ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः, स्थूलः सूक्ष्मश्च । ततः सूक्ष्मो भागः मांसानि पुष्णाति ॥

पश्चात् रसका स्थूलभाग व्यानवायुकी प्रेरणासे धमनियोंके मार्ग तथा शिराओंके मार्गद्वारा शरीरारम्भक मांसमें जाता है, फिर मांसाग्निसे पचकर पांच अहोरात्र (दिन रात्र) तथा डेढ घडीपर्यंत मांसमें रहता है, पीछे पाचन हो होकर उसमेंसे मल निकलता है, वह मल शीघ्रतासे दोनों कानोंमें जाकर उसका मल होता है पश्चात् सारभूत रसके दो भाग होते हैं—एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म, सूक्ष्म भाग मांसका पोषण करता है ॥

प्रस्वेदस्योत्पतिः ।

ततः स्थूलो भागो व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शरीरारम्भकस्य मेदसः स्थानमुदरं याति । ततो मेदसोऽग्निना

पुनः पच्यमानः पंचाहोरात्रात् सार्ध-दण्डं च यावत् मेदासि एव तिष्ठति। ततः पच्यमानात् तस्मात् मलो निर्गच्छति प्रस्वेदरूपः। स च शीतः स्रोतासि एव तिष्ठति। शरीरोष्मणा तप्तश्चेत् तदा व्यानवायुना प्रेरितः शिरामार्गैं लोमकूपेभ्यो बहिर्याति। जिह्वादन्तकक्षामेढ्रादिमलंच मेदोमलमित्येके। ततसारभूतरसस्य द्वौ भागौ भवत, स्थूलः सूक्ष्मश्च। तत्र सूक्ष्मश्च। तत्र सूक्ष्मो भागः मेदः पुष्णातिउदरे तिष्ठन्॥

पश्चात् स्थूलभाग व्यानवायुसे प्रेरित होकर धमनियोंके मार्गद्वारा शरीरारम्भक मेदके स्थान उदरमें जाता है, तदनन्तर मेदेकी अग्निसे फिर पचने लगता है तथा पांच अहोरात्र और डेढ घडीपर्यंत मेदामें ही रहता है, पीछे पकजानेपर उसमेंसे प्रस्वेद (पसीना) रूप मल निकलता है, वह शीतल होनेसे स्रोतोंमें ही रहता है, जब वह शरीरकी गरमीसे तपता है,तब व्यानवायुसे प्रेरित शिराओंके मार्गद्वारा रोमोंके छिद्रोंमें होकर बाहर निकलता हैं। जीभ, दांत, कांख, (बगल) लिंग आदिका जो मल है वह मेदका मल है ऐसा किसी किसीका मत है। तत्पश्चात्सारभूत रसके दो भाग होते हैं एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, उनमेंसे सूक्ष्मभाग उदरमें रहकर मेदका पोषण करता है॥

नखस्योत्पत्तिः।

स्थूलो भागः व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च शरीरारम्भकाणि अस्थीनि याति। ततः अस्थ्यग्निना पुनः पच्यमानः पंचाहोरात्रात् सार्द्धदण्डश्च यावत् अस्थिष्वेव तिष्ठति। ततः पच्यमानात् तस्मात् मलो निर्गच्छति. स च व्यानवायुना प्रेरितः शिरामार्गेण आगत्यागत्य अंगुलीषु नखाः तनौ लोमानि च भवन्ति। ततः सारभूतस्यरसस्य द्वौ भागौ भवतः, स्थूल सूक्ष्मश्च। सूक्ष्मभागोऽस्थीनि पुष्णाति॥

तदनन्तर उसका स्थूलभाग व्यानवायुसे प्रेरित होकर धमनी और शिराओंके मार्गद्वारा शरीरारम्भक अस्थियों (हड्डियों) में जाता है पीछे अस्थियोंमें रहनेवाली अग्निसे पचकर पांच अहोरात्र और डेढघडीपर्यंत अस्थियोंमेंही रहता है पश्चात् पाचन होते समय उसमेंसे मल निकलता है, वह व्यानवायुकी प्रेरणासे शिराओंके मार्गद्वारा अँगुलियोंमें आकर नख हो जाते हैं तथा रोम होते हैं; पश्चात् सारभूत रस के दो भाग होते हैं-एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म; उनमेंसे सूक्ष्म भाग अस्थियोंका पोषण करता है॥

नेत्रमलस्योत्पत्तिः।

ततः स्थूलभागो व्यानवायुना प्रेरितः स्रोतोमार्गैः मज्जास्थानानि स्थूलास्थ्यभ्यन्तराणि याति। ततो मज्जाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्धदण्डश्च यावत् मज्जनि एव तिष्ठति। ततः पच्यमानात् तस्मात् मलं निर्गच्छति। तच्च व्यानवायुना प्रेरितं शिरामार्गैर्नयनयोरागत्य नेत्रविट् त्वक्षुस्नेहश्च भवति। ततः सारभूतस्य द्वौ भागौ भवतः, स्थूल सूक्ष्मश्च। सूक्ष्मभागो मज्जानं पुष्णाति॥

पश्चात् स्थूलभाग व्यानवायुकी प्रेरणासे शिराओंके मार्गद्वारा मज्जा, नाभि और अस्थियोंके भीतरके भागमें जाता है, तदनन्तर मज्जा में रहनेवाली अग्निसे पचकर पांच अहोरात्र और डेढ घडीपर्यन्त मज्जामें ही रहता है पीछे पाचन होते समय उसमेंसे मल निकलता है,वह मल व्यानवायुकी प्रेरणासे शिराओंके मार्गद्वारा दोनों नेत्रोंमें आकर नेत्रमल 'कीचड़' और चक्षुःस्नेह "नेत्रोंकी चिकनाई" होजाता

है, तत्पश्चात् सारभूत पदार्थके दो भाग होते हैं–एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म; सूक्ष्मभाग मज्जाका पोषण करता है।

शुक्रस्योत्पत्तिः।

ततः स्थूलो भागो व्यानवायुना प्रेरितः धमनीभिः शिराभिश्च शुक्रस्य स्थानं सकलं शरीरं गत्वा शरीरारम्भकेण शुक्रेण सह मिश्रितो भवति। ततः शुक्रस्य अग्निना पुनः पच्यते। पच्यमाने तस्मिन् मलं नास्ति॥ स हि सहस्रया ध्यातसुवर्णवत् इति उत्तरत्र उपदिश्यते। उक्तं च–

स्वाग्निभिः पच्यमानेषु मलः षट्सु रसादिषु। षट्सु धातुषु जायन्ते मलानि मुनयो जगुः॥ २१७॥ यथा सहस्रधा ध्माते न मलं किल काञ्चने। तथा रसे मुहुः पक्के न मलं शुक्रतां गते॥२१८॥

तदनन्तर उसका स्थूलभाग व्यानवायुकी प्रेरणासे धमनी (नाडी) के और शिरा(नसों) को मार्गद्वारा वीर्यका स्थान जो सम्पूर्ण शरीर है उसमें जाकर शरीरारम्भकवीर्यके साथ मिश्रित होता है, पीछे वीर्यमें रहनेवाली अग्निसे फिर उसका पाचन होता है पाचन होते समय उसमें मैल नहीं होता. क्योंकि, वीर्य तो हजार वार तपाये हुए सुवर्णके सदृश है कहा है कि-" रसादिक छओं धातुओंमें रहनेवाली अग्निसे पके हुए रसको आदि लेकर छओं धातुओंमें मल निकलता है ऐसा मुनिजन कहते हैं परन्तु जिसप्रकार हजारवार तपाये हुए सुवर्णमेंसे मल नहीं निकलता उसी प्रकार वारंवार पके हुए तथा वीर्यरूप हुए रसमें मल नहीं निकलता॥ २१०॥ २१८॥

ओजसउत्पत्तिः।

ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः। स्थूलः सूक्ष्मश्च। तत्र सूक्ष्मः स्नेहभाग ओजः।

तस्य लक्षणमाह–

ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम्। सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम्॥ २१९॥

बलम् चेष्टापाटवम्।

तथा च–

चेष्टासु पाटवं यत्तु बलं तदभिधीयते ॥२२०॥ यत्तु सुश्रुते–रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खलु ओजस्तदेव बलमिति। तेजस्तेजोद्भवः (?)। अत्रायभिप्रायः–यस्मात् रसादोजो भवति स रसः सर्वधातुस्थानगतत्वात् तत्तद्धातुवत् मन्यत इति सर्वधातूनां स्नेहमोजः क्षीरे घृतमिव तदेव बलमिति तत्कार्यकारणयोरभेदोपचारात्। अभेदकथनञ्च चिकित्सैक्यार्थम्।

पश्चात् सारभूत रसके दो भाग होते हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म; उनमेंसे सूक्ष्मभाग–स्नेह भागको ओज कहते हैं। उसका लक्षण कहते हैं कि–" ओज सम्पूर्ण शरीरमें रहता है, स्निग्ध, शीतल, स्थिर, श्वेत, सोमात्मक रहता है और शरीरमें बल तथा पुष्टि करनेवाला है।" 'बल अर्थात् चेष्टाकी समर्थता' सोही कहा है कि, चेष्टामें जो चतुरता 'समर्थता' फुर्त्ती है उसकोही बल कहते हैं।

सुश्रुतमें जो ऐसे कहा है कि–" रसको आदि लेकर वीर्यपर्यन्त धातुओंमें जो परम तज है वह धातुओंमें उत्पन्न हुआ ओज है उसीको बल कहा है।" इसका यह अभिप्राय है कि–जो रसमेंसे ओज होता' है वह रस सम्पूर्ण धातुओंके स्थानमें जाता है इस कारण वह धातुके सदृश माना जाता है. इस प्रकार सर्वधातुओंका स्नेह ओज है. जिस प्रकार दूधमें घी होता है उसी प्रकार उसमें बल है क्योंकि उसके कार्य कारणका

उपचार अभेदरूप है इसी कारण 'अभेदरूप' कहा है। यहां तेज और बलकी एकता चिकित्साकी एकताके लिये कही है ॥ २१९-२२० ॥

ओजसो गुणाः ।

अन्यच्च-गुरु शीतं मृदु स्निग्धं सान्द्रं स्वादु स्थिरं तथा। प्रसन्नं पिच्छिलं सूक्ष्ममोजो दशगुणं स्मृतम् ॥२२१॥ चरके तु-अष्टबिन्दुप्रमाणं तदीषद्रक्तं सपीतकम्। अग्निसोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितं तु तत् ॥ २२२ ॥ वाग्भटश्च-ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थिति-निबन्धनम् ॥ २२३ ॥ यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयाः । यन्नाशे नियतो नाशो यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम् ॥ ॥२२४॥ निष्पद्यन्ते ततो भावा विविधा देहसंश्रयाः । उत्साहप्रतिभाधैर्यलावण्यसुकुमारताः ॥ २२५ ॥

भारी, शीतल, मृदु, स्निग्ध, सान्द्र (गीला), स्वादु, स्थिर, निर्मल, पिच्छिल और सूक्ष्म इन दश गुणोंसे युक्त ओज कहाता है. चरकमें तो आठ बिंदु प्रमाण कुछ लाल और पीले रंगका कहा है और अग्नि सोमात्मक होनेके कारण दो रूपवाला कहा गया है। वाग्भटभी कहते हैं कि-रससे लेकर शुक्रतक सब धातुओंका परमोत्तम जो तेज है वही ओज है। वह हृदयमें रहता है, तथापि सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त है तथा देहकी स्थितिको धारण करता है। जब वह ओज बढता है तबही तुष्टि, पुष्टि और बलका उदय होता है और ओजके नाश होनेसे देहका भी नाश होता है और ओजके रहनेसे प्राणीका जीवन रहता है, इसी ओजमें देहके आश्रित रहनेवाले उत्साह, प्रतिभा: धैर्य, लावण्य और सुकुमारता आदि अनेक प्रकारके भाव प्रगट होते हैं ॥ २२१-२२५ ॥

ततः स्थूलो भागो रसो मासेन पुंसां शुक्रं स्त्रीणां त्वार्तवं शुक्रश्च भवति। उक्तश्च सुश्रुते-एवं मासेन रसः शुक्रो भवति। स्त्रीणाञ्चेति। चकारात् स्त्रीणामपि शुक्रं भवति। अत एवोक्तं सुश्रुते-योषितोपिस्रवत्येव शुक्रं पुंसः समागमे। तत्र गर्भस्य किञ्चित्तु करोतीति न चिन्त्यते ॥ २२६ ॥ गर्भस्य शुद्धस्य। विकृतस्य तु गर्भस्य कारणं तदपि भवति। यत उक्तम्-

यदा नार्य्यावुपेयातां वृषस्यन्तौ कथञ्चन। मुञ्चन्त्यौ शुक्रमन्यौन्यमनस्थिस्तत्र जायते ॥ २२७ ॥ इति ॥

एतेन स्त्रीणां सप्तमो धातुरार्त्तवं शुक्रमष्टममिति बोधितम्। आशयाधिक्यवत् ॥ स्त्रीणां गर्भोपयोगि स्यादार्तवं सर्वसम्मतम्। तासामपि बलं वर्णं शुक्रं पुष्टिं करोति हि ॥ २२८ ॥

पश्चात् उस रसका स्थूलभाग एक महीनेमें पुरुषोंका वीर्य और स्त्रियोंका आर्तव तथा वीर्य होजाता है। सुश्रुतमें भी कहा है कि-" इस प्रकार रस एक महीनेमें पुरुषोंके वीर्य होता है तथा स्त्रियोंके भी " (भी शब्द कहनेसे स्त्रियोंके भी वीर्य होता है ऐसा जानना) सोही सुश्रुतमें भी कहा है कि-" पुरुषका समागम होनेसे स्त्रीके भी वीर्यपात होता है परंतु वह वीर्य गर्भोपयोगी नहीं होता, इस कारण वह नहीं माना जाता " स्त्रियोंका वीर्य यद्यपि शुद्ध गर्भको धारण नहीं करता तथापि विकृतगर्भका कारण तो होता ही है। जैसे कहा है कि-"जब किसी प्रकार दो स्त्री परस्पर मैथुन करें और अन्योन्य वीर्य त्यागे तब उससे अस्थिरहित गर्भ उत्पन्न होता है " (इसलिये) स्त्रियोंके सप्तम धातु आर्तव और अष्टम धातु वीर्य भी

जानना जैसे कि उन्हें एक आशय अधिक है। स्त्रियोंका आर्तव गर्भधारण करनेमें उपयोगी है, ऐसा सबने माना है तथा वीर्य उसको भी बल, वर्ण और पुष्टि देता है ॥ २२६-२२८ ॥

एवं च-रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते । मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रस्य सम्भवः ॥ २२९ ॥

एवं रस एव केदारकुल्यान्यायेन सर्वान् धातून् पूरयन् मासेन नवदंडोत्तरेण शुक्रमार्तवं भवतीति सिद्धांतः ॥ एवं सति रसाद्रक्तमिति सङ्गतमेव । ततो मांसं ततो रक्तोत्पत्तेरनंतरं मांसं जायते रसा देवेत्यर्थः । मांसान्मेदः प्रजापते इति । मांसादनन्तरं मेदः प्रजायते रसादेवेत्यर्थः । मेदसोऽस्थि जायते रसादेवेत्यर्थः । एवं ततो मज्जा अग्रे शुद्धं शुक्रं सम्भवतीत्यर्थः ॥

इस प्रकारक केदारकुल्यान्यायसे रसही सम्पूर्ण कर एक मास नौ घडीमें वीर्य और आर्तव होता है, रक्त उत्पन्न होनेसे उसी रससे रुधिरका मांस होती है, मांससे मेदा होती है (मांस होनेपर रससे मेदा होती है) मेदा होनेपर रससे अस्थि होती है, उशी प्रकार रससे मज्जा होती है तदनन्तर रससे शुद्ध वीर्य होता है ॥ २२९ ॥

रसः शरीरे त्रिधा संचरति इत्याह ।

तथा चोक्तम्-रसः शरीरे शब्दार्चिर्जलसन्तानवत्त्रिधा । सञ्चरत्यनुरूपोऽयं नित्यमेव हि देहिनाम् ॥ २३० ॥

अस्यायमभिप्रायः पुरुषास्तीक्ष्णाग्नयो मध्यमाग्नयो मन्दात्रयश्च भवंति । तत्र तीक्ष्णाग्नीनां स रसः शब्द सन्तानवत शीघ्रं सञ्चरति । मध्याग्नीनामार्चिःसन्ता नवत् मध्यवेगेन चरति । मंदाग्नीनां जलसन्तानवत् मन्दंचरति । तेन मासेन रसात् शुक्रं भवतीति यदुक्तम् तन्मध्यमाग्नीनधिकृत्य उक्तम् । दीप्ताग्नीनां तु रसः रसः किञ्चिन्न्यूनेन मासेन शुक्रं भवति । मन्दाग्नेः किंचिदधिकेन मासेन इति सिद्धांतः ॥

प्राणियोंके शरीरमें रस तीन प्रकारसे विचरता (फिरता) है । सो कहाभी है कि-"शब्द-अर्चि(अग्नि)और जलके प्रहावके सदृश प्राणियोंके शरीरमें अनुरूप यह रस तीन प्रकारसे सदा संचार करता है इसका यह अभिप्राय है कि--पुरुष तीक्ष्णाग्नि, मध्यमाग्नि और मंदाग्नि इन तीन प्रकारके होते हैं । उनमेंसे तीक्ष्णाग्निवाले जो पुरुष हैं इनका रस शब्दके विस्तारवत् शीघ्रतासे संचार करता है. मध्यमाग्निवाले पुरुषोंका रस अग्निके विस्तारवत् मध्यमचालसे संचार करता है और मंदाग्निवाले पुरुषोंका रस जलके विस्तारवत मन्द चालसे संचार करता है । इस लिये यह जो कहा है कि; एक महीनेमें रससे वीर्य होता है वह मध्यम अग्निवालोंके जानना । दीप्ताग्निवालोंका रस तो कुछ कम एक महीनेमें वीर्य होजाता है और मन्दाग्निवालोंका रस एक महीनेसे कुछ अधिक दिनोंमें वीर्य होता है यह सिद्धांत है ॥ २३० ॥

तर्हि वाजीकरिणीनामौषधीनांकिं प्रयोजनमित्याह ।

वाजीकरिण्य औषध्यः स्वप्रभावगुणोच्छ्रयात् ॥ विरेचयन्ति ताः शुक्रं विरेकिद्रव्यवन्नृणाम् ॥ २३१ ॥

वाजीकरिण्यः याभिः औषधीभिःपुरुषः शुक्राधिक्यात् स्त्रीषु वाजिवत् सामर्थ्यं प्राप्नोति ताः वाजीकरिण्यः । स्वभावगुणोच्छ्रयात्, तत्र काश्चिदौषध्यः स्वप्रभावाधिक्यात्, काश्चित् स्वगुणाधिक्यात् काश्चित्स्वप्रभावगुणाधिक्यात्; तत्र संकल्पपादलेपविशिष्टकांतास्पर्शादयः स्वप्रभावाधिक्यात् स्निग्धत्वाधिक्यात् । माषादयः स्वप्रभावस्निग्धत्वादिगुणाधिक्यात् । वाजीकरिण्य इति बहुवचनमाद्यर्थानुवर्त्तनम् । बल्य-

बृंहणजीवनीयगणादयः तद्वत् बोद्धव्याः। विरेचयंति स्वप्रभावगुणाधिक्यात् शीघ्रमेव रसाद्युत्पादनपूर्वकं शुक्रं जनयित्वा प्रवर्तयंति॥ यत आह उत्तरत्र-

दुग्धं माषाश्च भल्लातः फलमज्जाऽऽमलानि च। जनकानि निगद्यन्ते रेचनानि च रेतसः॥ २३२॥

कोई शंका करे कि--जब रससे नियमित समयपर वीर्य उत्पन्न होता है तो वाजीकरण औषधियोंका क्या प्रयोजन है? उसका उत्तर कहते हैं कि—"वाजीकरण औषधियां अपने अपने प्रभाव और गुणकी विशेषतासे विरेचन (जुलाब) द्रव्यके सदृश मनुष्योंके वीर्यका विरेचन करती हैं" (वाजीकरण औषधि अर्थात् जिन औषधियोंसे वीर्य अधिक होनेपर पुरुष स्त्रियोंमें घोड़ेके सदृश सामर्थ्यको प्राप्त होता है उनको वाजीकरण औषधि कहते हैं) अपने प्रभाव गुणकी विशेषतासे इस कहनेका यह प्रयोजन है कि—"उनमें कितनी एक औषधियां अपने प्रभावकी अधिकतासे और कितनी गुणकी अधिकतासे कितनी एक प्रभाव और गुण इन दोनोंकी अधिकतासे वीर्यका विरेचन करती हैं उनमें स्त्रीका चिंतवनरूप संकल्प, पादलेप, विशेष सुन्दरता आदिक गुणवाली स्त्रियोंका स्पर्श इत्यादि अपने प्रभावकी अधिकतासे वीर्यका विरेचन करती हैं। घी, दूध आदि अपने गुणकी अधिकतासे वीर्यका विरेचन करते हैं; उडद आदि स्निग्धत्वादि अपने गुणकी अधिकतासे तथा अपने वीर्यजनकप्रभाव की अधिकतासे वीर्यका विरेचन करते हैं। "वाजीकरण औषधियां" इसमें बहुवचन कहनेका मतलब यह है कि—इनके सिवाय दूसरी भी औषधियां जो वाजीकरण हो तो उनको भी समझना अर्थात् बलदायक पुष्टिकर्त्ता, जीवनीय आदि भी औषधियां जाननी। विरेचन करती हैं" इसका यह अर्थ है कि--अपने प्रभाव और गुणकी अधिकतासे शीघ्रही रसादिकको उत्पन्न करके वीर्यको पैदा करती और निकालती हैं। कहा है कि—दूध, उडद, भिलावे, फलकी मींग और आमले यह सब औषधियां वीर्यको उत्पन्न करनेवाली तथा प्रवर्तनेवाली हैं"॥ २३१॥ २३२॥

ननु बालानां कथं शुक्रं न दृश्यते इत्याह

बालानां शुक्रमस्त्येव किन्तु सौक्ष्म्यान्न दृश्यते। पुष्पाणां मुकुले गन्धो यथा सन्नपि नाप्यते॥ २३३॥ तेषां तदेव तारुण्ये पुष्टत्वाद्व्यक्तिमेति हि। कुसुमानां प्रफुल्लानां गन्धः प्रादुर्भवेद्यथा॥२३४॥ रोमराज्यादयः पुंसां नारीणामपि यौवने। जायन्तेऽत्र च यो भेदो ज्ञेयो व्याख्यानतः स च॥ २३५॥

व्याख्यानं यथा--पुंसां रोमराजीश्मश्रुप्रभृतयः। नारीणां तु रोमराजीस्तनस्तन्यार्त्तवप्रभृतयः॥

कोई कहे कि—बालकोंका वीर्य क्यों नहीं दीखता? उसका कारण कहते हैं कि--बालकोंको वीर्य तो होता है; परन्तु सूक्ष्म होनेसे दीखता नहीं है, जिस प्रकार पुष्पोंकी कच्ची कलियोंमें गन्ध तो होती है; परन्तु मालूम नहीं होती, तथा जब फूल खिलता है; तब उसकी गन्ध प्रगट होती है उसी प्रकार बालकोंको भी वीर्य युवावस्थामें पुष्ट होनेके कारण प्रकट होता है; इसी प्रकार पुरुष और स्त्रियोंकी रोमावली आदिभी युवावस्थामें प्रगट होती है; इसका भेदभी इसीप्रकार व्याख्यानसे जानना। (व्याख्यान--अर्थात् जैसे पुरुषोंके रोमावली, दाढ़ी, मूंछ आदि और स्त्रियोंके रोमावली स्तन, स्तनोंमें दूध आर्तव आदि) २६--॥२३६॥

ननु अन्नरसो वृद्धस्य धातुवृद्धिं कथं न करोतीत्यत आह।

वार्द्धके वर्द्धमानेन वायुना रसशोषणात्। न तथा धातुवृद्धिः स्यात्ततस्तत्रानिलं जयेत्॥ २३६॥

अन्नका रस वृद्धकी धातुको क्यों नहीं बढ़ाता ? ऐसी शंका होनेपर समाधान करते हैं कि--वृद्धावस्थामें बढी हुई वायुद्वारा रस सूखनेसे युवाओंके सदृश धातुकी वृद्धि नहीं हो सकती; इस कारण वृद्धकी धातु बढानी हो तो उसकी वायुको जीते अर्थात् दूर करे २३६॥

अथ शुक्रस्य स्वरूपमाह।

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम्। गर्भबीजं वपुःसारो जीवस्याश्रय उत्तमः॥ २३७॥

जीवस्याश्रय उत्तम इत्यत आह।

जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेषतः। वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणे याति क्षयं क्षणात्॥ २३८॥

वीर्य—सोमात्मक, श्वेत, स्निग्ध, बल और पुष्टिकारक, गर्भका बीज, देहका साररूप और जीवका उत्तम आश्रयरूप कहा है। जीवका उत्तम आश्रय क्या है ? सो कहते हैं कि—जीव सम्पूर्ण देहमे रहता है परन्तु विशेष करके वीर्यमें, रुधिरमें और मलमें रहता हैं इसीलिये वीर्य रुधिर और मलका क्षय होनेसे एक क्षण में शरीरका भी क्षय हो जाता है॥२३७॥२३८

अथ गर्भसञ्जननशुक्रस्य लक्षणमाह।

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभञ्च तत्॥ २३९॥

गर्भोत्पत्ति करनेवाला वीर्य--स्फटिक मणिके सदृश निर्मल, प्रवाही, स्निग्ध, मधुर और मधु (सहत) के सदृश गन्धवाला है। कोई कहते हैं कि, तेल और मधुके समान वर्णवाला वीर्य उत्तम होता है॥ २३९॥

अथ शुक्रस्य स्थानमाह।

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा। एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम्॥ २४०॥

अत्र सर्पिर्दृष्टान्तो बहुशुक्रे, अल्पमथनेन सर्पिःशुक्रयोर्लाभात्। इक्षुरसदृष्टान्तस्तु स्वल्पशुक्रे पुंसि अतिपीडनेन इक्षुरसशुक्रयोर्लाभात्॥

जिस प्रकार दूधमें घी तथा ईखमें रस गुप्ततासे रहता है उसी प्रकार देहधारियोंके सम्पूर्ण शरीरमें वीर्य रहता है। यहां जो घीका दृष्टान्त कहा है उसमें ऐसा समझना कि—जिस प्रकार दूधको थोड़ा मथनेसे घी निकल आता है, वैसे ही बहुवीर्यवालेकी देहको भी थोडा मथनेसे वीर्य निकल आता है। ईखका दृष्टांत इस प्रकार जानना कि--जिस प्रकार ईखको अत्यन्त पेरनेसे रस निकलता है उसी प्रकार अल्पवीर्यवाले पुरुषके शरीरमेंसे भी अत्यन्त मथन करनेसे वीर्य प्राप्त होता है॥ २४०॥

अथ शुक्रस्य क्षरणमार्गमाह।

द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः। मूत्रस्रोतःपथे शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते॥ २४१॥

वृद्धवाग्भटोऽप्याह—सप्तमी शुक्रधरा द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधो मूत्रमार्गमाश्रिता सकलशरीरव्यापिनी शुक्रं प्रवर्त्तयतीतिसप्तमी कला॥

वस्तिद्वारके नीचे और दक्षिण (दाहिने) पार्श्वके दो अंगुलके ऊपर मूत्रवाही शिराओंके मार्गसे पुरुषका वीर्य प्रवृत होता है। वृद्धवाग्भट भी कहते हैं कि—वस्तिद्वारके नीचे दाहिने पार्श्वमें दो अंगुल ऊपर सातवीं शुक्रधरा नामक कला जो मूत्रमार्गके आश्रयसे रहती है वह सकल शरीरमें व्याप्त होकर वीर्यको प्रवर्तित करती है॥ २४१॥

अथ शुक्रक्षरणकारणमाह।

कृत्स्नदेहस्थितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा। स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्त्तते॥ २४२॥

स्त्रीषु व्यायच्छतः स्त्रीसुरतरूपं व्यायामं कुर्वतः॥

अन्यच्च-शुक्रं कामेन कामिन्या दर्शनात् स्पर्शनादपि । शब्दसंश्रवणाद्ध्यानात्संयोगाच्च प्रवर्तते ॥ २४३ ॥

सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाला वीर्य जब मनुष्यका मन प्रसन्न होता है तथा जब स्त्रीके साथ संभोग करते समय हर्ष होता है तब प्रवृत्त होता है, (मूलमें 'स्त्रीषु व्यायच्छतः' यह पद है उसका यह अर्थ है कि, स्त्रियोंके साथ रतिरूप व्यायाम करते समय । और भी कहा है कि—'स्त्रीको कामभावसे दर्शन, स्पर्श, शब्दश्रवण और ध्यान संयोग होनेसे भी वीर्य प्रवृत्त होता है ॥ २४२ ॥ २४३ ॥

अथार्तवस्य स्वरूपमाह ।

स्त्रीणां रस एव मासेन आर्तवं भवति इत्युक्त्वा पुनराह शुक्रत एव ।

रसादेव रजः स्त्रीणां मासिमासि त्र्यहं स्रवेत् । तद्वर्षाद्द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥ २४४ ॥

मासेनोपचितं काले धमनीभ्यस्तदार्तवम् । ईषद्विवर्णं कृष्णञ्च वायुर्योनिर्मुखं नयेत् ॥ २४५ ॥

स्त्रियोंके रसही एक महीनेमें आर्तव होता है, इस प्रकार कहकर फिर कहते हैं कि—वीर्यसे ही आर्तव होता है, रससेही स्त्रियोंके महीने२तीन दिन तक आर्तव होकर बहता है,वह रज बारह वर्षकी आयुके ऊपर स्रवता है और पचास वर्षके पीछे बन्द होजाता है। एक महीनेका इकट्ठा हुआ आर्तव समय आनेपर धमनी (नाडियोंके) मार्गमें कुछ विवर्ण और काले रंगका होजाता है तथा वायु उसको योनिके मुखपर ले आता है । २४४ ॥ २४५ ॥

गर्भग्रहणयोग्यस्य आर्त्तवस्य लक्षणमाह ।

शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् । तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत्२४६

आर्तवस्य वर्णद्वयाभिधानं वातादिप्रकृतिभेदेन वर्णभेदात् । यद्वासो न विरञ्जयेत् यद्वासोलग्नं प्रक्षालितं तद्वासस्त्यजति न तु विकृतरक्तं कुर्य्यात् । ऋतुः स्त्रीणां रजोदर्शनात् षोडश निशाः तत्र भवमार्त्तवम् । गृहीतगर्भाणां स्त्रीणामार्त्तववहानां स्रोतसां गर्भेण अवरोधादार्तवं न स्रवति । किन्तु तदेवाध प्रतिहतमूर्ध्वमागतमुपचीयमानमपरा भवति । अपरा तु श्रीवर इति लोके । शेषं चोर्ध्वतरमागतं पयोधरौ याति तस्माद्गर्भिण्य पीवरपयोधरा भवन्ति॥

जो आर्तव खरगोशके रुधिरके सदृश अथवा लाखके रसके सदृश हो, तथा जिसका दाग वस्त्र धोनेपर न रहे वह आर्तव शुद्ध कहाता है अर्थात् गर्भधारण करनेके योग्य होता है, यहां आर्तवके दो रंग इस कारण कहे हैं कि--वातादिक प्रकृतिसे वर्णोंका भी भेद हो जाता है । इसी कारण कहा है कि, वस्त्रके ऊपर दाग नहीं रहे, इस कहनेका अर्थ यह है कि--जिसका दाग वस्त्रके ऊपर लगा हो और उसको धोया जाय तो वह दाग वस्त्रके ऊपरसे जाता रहे अर्थात् विकृत रंगका दाग नहीं दीखे । स्त्रियोंके जिस दिनसे रजोदर्शन हो उससे सोलहरात्रिपर्यंत ऋतुकाल कहाता है. इस ऋतुकालमें उत्पन्न हुआ वह आर्तव कहाता है जिन स्त्रियोंके गर्भ रहा हो उन स्त्रियोंके आर्त्तवके बहनेवाली शिरा (नाडियों) के मार्गको गर्भ रोक देता है तब आर्तव नहीं निकलता, परन्तु वह आर्तव नीचे आनेसे रुककर ऊपरको जाकर इकट्ठा हो जाता है उसकी अपरा (नाल) हो जाती है। इसको श्रीवरभी कहते हैं और शेष रहा आर्तव ऊपर जाकर दोनों स्तनोंमें जाता है, इसीसे गर्भवती स्त्रियोंके स्तन पुष्ट हो जाते हैं ॥२४६॥

अथ धातुषु अतिरिक्तान् गुणानाह ।

अतिरिक्ता गुणा रक्ते वह्नेर्मांसे तु पार्थिवाः भेदस्यपां रसे चास्थ्नि पृथिव्यनिलतेज-

साम् ॥२४७॥ मज्ज्ञि शुक्रे च सोमस्य मूत्रे च शिखिनो गुणाः । भुवस्तथाऽऽर्तवे त्वग्ने रसे क्षीरं तथाऽम्भसः ॥२४८॥

रक्तमें अग्निका गुण अधिक है, मांसमें पृथ्वीका गुण अधिक है मेदमें जलका गुण अधिक है, रसमें भी जलका गुण अधिक है अस्थि (हड्डी) में पृथ्वी, वायु और तेजका गुण अधिक है, मज्जा और वीर्यमें चन्द्रका गुण अधिक है, मूत्रमें अग्निका गुण अधिक आर्तवमें पृथ्वी तथा अग्निका गुण अधिक है और रस तथा दूधमें जलका गुण अधिक है ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

अथ धातूनां मलाः ।

कफः पित्तं मलः खेषुः प्रस्वेदो नखलोम च। नेत्रविट्त्वक्षु च स्नेहो धातूनां क्रमशो मलाः ॥२४९॥ नेत्रजिह्वाकपोलानां जलं च रसजं मलम् ॥२५०॥ इत्येके । खेषु कर्णादिस्रोतःसु मलः । रसनादन्तकक्षा-मेढ्रादिमलमपि मेदोमलमित्येके । नेत्र-विट् त्वचां स्नेहश्च मज्जमलः । शुक्रस्य मलमेव नास्ति,सहस्रधा ध्मातसुवर्णस्येव

कफ, पित्त, कर्णादिक स्रोतस्थानका मल, पसीना, नख--रोम, नेत्रका मल और त्वचाके ऊपरके स्नेह (चिकनापन) ये धातुओंके क्रमसे मल हैं। कोई कहते हैं कि--नेत्र, जीभ और कपोलोंका जल ये रसके मल हैं। मूलमें (मलः खेषु जो पद है) उसका यह अर्थ है कि--कर्णादिक स्रोतःस्थानके मैलमें कितनोंका मत ऐसा है कि -जीभ, दांत,बगल और लिंग आदिका मल, यह मेदाका मल है । नेत्रका मैल, त्वचाके ऊपरकी चिकनाई यह मज्जाका मैला है। हजारवार तपाये हुए सुवर्णमें जैसे मैल नहीं होता उसी प्रकार वीर्यमें भी मैल नहीं होता ॥ २४९ ॥ २५० ॥

अथ उपधातवः ।

वनितानां प्रसूतानां धमनीभ्यां स्तनौ गतात् । रसादेव हि जायेत स्तन्यं स्तनयुगाशयम्॥२५१॥शुद्धमांसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता । मेदसः स्रवमानस्य स्नेहो वा कथिता वसा ॥२५२॥शार्ङ्गधरे तुस्तन्यं रजो स्वेदो दन्ताः केशास्तथैव च । ओजश्च सप्तधातूनां क्रमात्सप्तोपधातवः ॥ २५३ ॥

प्रसूत हुई स्त्रियोंके दोनों स्तनोंमें दोनों धमनियोंके मार्गसे गये हुए रससेही दूध हो जाता है और वह दोनों स्तनोंमेंही रहता है। शुद्ध मांसके स्नेहको वसा कहते हैं अथवा मेदकेवहनेसे जो स्नेह उत्पन्न होता है उसको वसा कहते हैं। शार्ङ्गधरमें तो ऐसा कहा है कि--दूध, रज, वसा, प्रस्वेद, दांत, केश और ओज ये सातधातुओंकी क्रमसे सात उपधातु हैं ॥ २५१--२५३ ॥

अथाशयाः ।

उरो रक्ताशयस्तस्मादधः श्लेष्माशयः स्मृतः। आमाशयस्तु तदधस्तल्लिंगं चरकोऽवदत् २५४ ऊर्ध्वं यथा-नाभिस्तनान्तरं जन्तोराहुरामाशयं बुधाः ॥२५५॥ इति ॥ आमाशयादधः पक्वाशयादूर्ध्वं तु या कला । ग्रहणीनामिका सैव कथितः पाचकाशयः ॥२५६॥ऊर्ध्वमग्न्याशयो नाभेर्मध्यभागे व्यवस्थितः । तस्योपरि तिलं ज्ञेयं तदधः पवनाशयः २५७ पक्वाशयस्तु तदधः स एव तु मलाशयः । तदधः वस्तिः स हि मूत्राशयो मतः ॥ २५८ ॥ आशयानुक्रमस्तु वाग्भटेनोक्तः । स यथा-कफाऽऽमपित्तवातानामाशया मलमूत्रयोः पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणा-

माशयास्त्रयः ॥२५९॥ धरा गर्भाशयः प्रोक्तः पित्तपक्वाशयान्तरे ।स्तनौ प्रवृद्धौ तावेव बुधैः स्तन्याशयौ मतौ ॥२६०॥

उरःस्थान (छाती) ही रक्ताशय है, उसके नीचे श्लेष्माशय अर्थात् कफाशय है, उसके नीचे आमाशय है। उसका स्थान चरकमें कहा है कि--"प्राणियोंकी नाभिसे स्तनपर्यन्तके अन्तरको विद्वान् लोग आमाशय कहते हैं।" आमाशयके नीचे और पक्वाशयके ऊपर जो ग्रहणी नामक कला है उसको पाचकाशय कहते हैं। नाभिसे ऊपर मध्यभागमें अग्न्याशय रहता है; उसके ऊपर तिल है उस तिलके नीचे पवनाशय है, उसके नीचे पक्वाशय है, वही मलाशय है, उसके नीचे वस्ति है, उसको ही मूत्राशय कहते हैं! आशयोंका क्रम वाग्भटमें इस प्रकार कहा है कि 'कफाशय, आमाशय, पित्ताशय, वाताशय, मलाशय और मूत्राशय ये आशय हैं'। पुरुषोंसे स्त्रियोंके तीन आशय अधिक हैं. पित्ताशय और पक्वाशयके बीचमें गर्भाशय कहा है और दोनों स्तन जब बढते हैं तब उनकोही विद्वान् स्तन्याशय मानते हैं॥ २५४--२६०॥

अथ कलास्वरूपमाह।

स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नान्सन्ततांश्च जरायुणा। श्लेष्मणा वेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान् विदुः २६१ धात्वाशयान्तरे धातोर्यः क्लेदस्त्वधितिष्ठति। देहोष्मणाभिपक्वश्च सा कलेत्यभिधीयते २६२ तासप्त-आद्या मांसधरा प्रोक्ता द्वितीया रक्तधारिणी। मेदोधरा तृतीया तु चतुर्थी श्लेष्मधारिणी ॥२६३॥ पञ्चमी तु मलं धत्ते षष्ठी पित्तधरा मता। रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः ॥२६४॥

स्नायुओं करके ढका हुआ, जरायुसे विस्तृत और कफसे वेष्टित जो होती हैं उनको कलाभाग कहते हैं, धात्वाशय (धातुका स्थान) के मध्यमें धातुओंका जो गीला भाग है तथा जो शरीरकी गर्मीसे पकाहुआ होता है उसको कला कहते हैं। वे कला सात हैं पहिली कला मांसधरा, दूसरी रक्तधारिणी, तीसरी मेदोधरा चौथी श्लेष्मधरा, पांचवीं मलधरा, छठीं पित्तधरा और सातवीं वीर्यधरा है. ये सात कला कही हैं॥ २६१--२६४॥

अथ मर्माणि।

सन्निपातः शिरास्नायुसन्धिमांसास्थिसंभवः। मर्माणि तेषु तिष्ठन्ति प्राणाः खलु विशेषतः॥२६५॥सप्तोत्तरशतं सन्ति देहे मर्माणि देहिनाम्। तान्येकादश मांसे स्युरष्टावस्थिषु सन्ति हि ॥ २६६ ॥ सन्धीनां विंशतिस्तानि स्नायूनां सप्तविंशतिः। चत्वारिंशत्तथैकं च शिरमर्माणि तत्र तु ॥ २६७ ॥ द्वाविंशतिः सक्थियुगे तावन्त्येवे भुजद्वये । द्वादशोरसि कुक्षौ च पृष्ठदेशे चतुर्दश ॥ २६८ ॥ ग्रीवायामूर्ध्वभागे तु सप्तत्रिंशन्मतानि हि। मर्माणि यानि सन्तीह पञ्चधा च भवन्ति हि ॥ २६९ ॥

शिरा, स्नायु, संधि, मांस और अस्थि (हड्डी) ये जब एकत्र होकर मिलती हैं वे मर्मस्थल कहलाते हैं, उन मर्मस्थानमें विशेष करके प्राण रहते हैं। देहधारियोंके शरीरमें सब सौ सात १०७ मर्म हैं। उनमेंसे ग्यारह ११ मांसमें होते हैं, आठ ८ अस्थियोंमें, बीस २० संधियोंमें, सत्ताईस २७ स्नायुओंमें और इकतालीस ४१ मर्म शिराओंमें होते हैं। उनमें बाईस २२ मर्म दोनों पांवोंमें, बाईस २२ दोनों हाथोंमें, छाती और कोखमें मिलकर १२, पीठमें चौदह १४, गरदन और उसके ऊपरके भागमें सैंतीस ३७ मर्म हैं॥ २६५--२६९॥

तान्याह—सद्यः प्राणहराणि स्युर्मर्माण्येकोनविंशतिः। मर्मदेशास्त्रयस्त्रिंशत्स्युः कालान्तरमारकाः ॥ २७० ॥ चत्वारिंशच्च चत्वारि वैकल्यं जनयन्ति हि। मर्माष्टकं रुजाकारि विशल्यघ्नं त्रिकं मतम् ॥ २७१ ॥ शृङ्गाटकान्यधिपतिः शंखौ कण्ठशिरा गुदम्। हृदयं वस्तिनाभी च सद्यो घ्नन्ति हतानि चेत् ॥ २७२ ॥

शृङ्गाटकानि—घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वासन्तर्पकाणां शिरामुखानां शिरसो मध्ये संयोगस्थानम्, तानि चत्वारि शिराममर्माणि चतुरंगुलप्रमाणानि हतानि घ्नन्ति सद्योमारकाणि भवन्ति। अधिपतिः—मस्तकस्याभ्यन्तरे सन्धिशिरसोः सन्निपातः उपरिष्टात् रोमावर्तः स एकः, सन्धिमर्मेदमर्धांगुलप्रमाणं सद्योमारकम्। शंखौ—भ्रुवोरन्तोपरि कर्णललाटयोर्मध्ये तौ द्वौ अस्थिमर्मणी सार्द्धांगुले सद्योमारके। कण्ठशिराः—मातृकाः ग्रीवायामुभपार्श्वयोश्चतस्रः शिरास्ता अष्टौ शिराममर्माणि चतुरंगुलानि सद्योमारकाणि। गुदं—प्रसिद्धम्। एकं मांसमर्म चतुरंगुलं सद्यो मारकम्। स्तनयोर्मध्याधिष्ठानयोरस्यामाशयद्वारं सत्त्वरजस्तमसामधिष्ठानं हृदयं नाम एकं शिराममर्मेदं चतुरंगुलं सद्योमारकम् ॥

ये मर्म पाँच प्रकारके हैं, उनमेंसे उन्नीस १९ मर्म तत्काल प्राण हरनेवाले हैं कालांतरमें मृत्यु करनेवाले तैंतीस ३३ मर्मस्थान हैं, चौवालीस ४४ मर्मस्थान विकलता उत्पन्न करनेवाले हैं, आठ ८ मर्म पीडा उत्पन्न करते हैं और तीन ३ मर्मस्थान शल्य निकलनेपर प्राणनाशक हैं। शृंगाटक, अधिपति, शंख, कंठकी शिरा, गुदा, हृदय, वस्ति और नाभि इनमें कदाचित् चोट लगजाय तो ये तत्काल प्राणीको मारडालते हैं।

शृंगाटके—नासिका, कर्ण, नेत्र और जीभ इन इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाली शिराओंके मुखके मस्तकमें जो संयोगस्थान है उसमें चार शिराओंके मर्म चार चार अंगुल प्रमाणके हैं. उनके ऊपर प्रहार करनेसे तत्काल मृत्यु होती है। अधिपति—मस्तकके अभ्यन्तर नाडियोंकी संधि और मस्तक जहाँ मिला है उसके ऊपर रोमोंका आवर्त्त है यहां एक मर्म है, यह संधि मर्म आधे अंगुल प्रमाणका है और तत्काल मारक है। शंख-दोनों भौंओंके अन्तभागके ऊपर कान और ललाटके बीचमें अर्थात् कनपटियोंमें दो अस्थिमर्म हैं, उनका डेढ डेढ अंगुलका प्रमाण है और शीघ्र मारक हैं, कंठशिरा—इसका दूसरा नाम मातृका है, गरदनके ऊपर दोनों बाजुओंमें चार चार शिरायें हैं, वे आठ शिरायें मर्मस्थान हैं। उनका प्रमाण चार अंगुलका है। इनमें भी चोट लगनेसे शीघ्र मृत्यु होती है। गुदावायु और विष्ठाको त्याग नेवाली स्थूल आंतोंके बन्धनोंसे बन्धी हुई यह प्रसिद्ध है तथा यह मांसमर्म है। इसका प्रमाण चार अंगुलका है और इसमें भी चोट लगनेसे यह शीघ्र प्राण हरती है। स्तनोंके मध्य अधिष्ठित उरःस्थानमें आमाशयद्वार है, वह सत्त्व, रज, तम इनका अधिष्ठान है, वहांपर हृदय नामक शिरामर्म है यह चार अंगुलप्रमाणका है और उसमें चोट लगनेसे तत्काल मारक है ॥ २७०-२७२ ॥

बस्तिर्नाभिः पृष्ठकटीगुदवंक्षणशेफसाम्। मध्येवस्तिस्तनुत्वक् च एकद्वारो ह्यधोमुखः ॥ ७३ ॥

स्नायुमर्मेदं चतुरंगुलं सद्योसमारकम्। नाभिः प्रसिद्धा। शिराममर्मेदं च चतुरंगुलं सद्यो मारकम् ॥

वस्ति तथा नाभि भी मर्मस्थान है। पीठ, कटि, गुदा, वंक्षण (पेडू) और लिंग इनके बीचमें वस्ति (थैलीसी) है । उसकी त्वचा पतली तथा उसका एक द्वार है और मुख नीचे है ॥

वस्तिमें स्नायुमर्म चार अंगुलका है, तथा यह तत्काल प्राण हरनेवाला है। नाभि प्रसिद्ध स्थान है. पक्वाशय और आमाशयके बीच शिराओंके द्वारा बँधी हुई है. उसमें चार अंगुलका शिरामर्म है और वह तत्काल प्राणोंको हरनेवाला है ॥ २७३ ॥

वक्षोमर्माणि सीमन्तास्तलाः क्षिप्रेन्द्रवस्तयः। बृहत्यौ पार्श्वयौः सन्धी कटीकतरुणे च ये। नितम्बाविति चैतानि कालान्तरहराणि तु ॥ २७४ ॥

वक्षोमर्माणि--स्तनयोरधस्तात् द्व्यंगुलं यावत्। स्तनमूले द्वे शिरामर्मणी तत्र कफपूर्णकोष्ठतया कालान्तरमारके। [**स्तनरोहिते**--स्तनयोरुपरि द्व्यंगुलं यावत् द्वे मांसमर्मणी रक्तपूरितकोष्ठतया कालान्तरमारके। **अपलाप्यौ**--अंसकूटयोरधस्तात् पार्श्वयोरुपरि द्वे शिरामर्मणी अर्द्धांगुले रक्तेन पूर्णतां गतेन कालान्तरमारके। **अपस्तम्भौ**-उरस उभयोः नाडयोः वातवहे शिरामर्मणी अर्द्धांगुले वातपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च कालान्तरमारके।] **सीमन्ताः**-शिरसि पञ्च सन्धयः सन्धिमर्माणि चतुरंगुलानि उन्मादभयचित्तविनाशैः कालान्तरमारकाः। **तलानि**--मध्याङ्गुलिमनुक्रम्य हस्तस्य चत्वारि मध्यं तलमेवमपरस्य हस्तस्य पादयोश्चैवं चत्वारि तलानि मांसमर्माणि द्व्यंगुलानि रुजाभिः कालान्तरमारकाणि। **क्षिप्राणि**--अंगुष्ठांगुल्योर्मध्ये क्षिप्रम्। तानि च हस्तयोर्द्वयोः पादयोर्द्वे चैवं चत्वारि स्नायुमर्माणि अर्द्धांगुलानि आक्षेपकेण कालान्तरमारकाणि। **इन्द्रवस्तयः**--प्रकोष्ठयोर्मध्ये द्वौ जङ्घयोर्मध्ये द्वौ एवं चत्वारि मांसमर्माणि द्व्यंगुलानि शोणितक्षयेण कालान्तरमारकाणि। **बृहत्यौ**--स्तनमूलादुभयतः पृष्ठवंशं यावत्। शिरामर्मणी अर्द्धांगुलावृते शोणितातिप्रवृत्तिनिमित्तैः उपद्रवैः कालान्तरमारके। **पार्श्वयो सन्धी**--जघनपार्श्वयोः सन्धी प्रति शिरामर्मणी अर्द्धांगुले शोणित पूर्णकोष्ठतया कालान्तरमारके। **कटीतरुणे**--त्रिकसन्निधाने उभयतः श्रोणिलक्षीकृत्यस्थिनी स्थिते अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुले शोणितक्षयात् पाण्डु विवर्णरूपं कृत्वा कालान्तरमारके। **नितम्बौ** प्रसिद्धौ। द्वे अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुलौ अधः कायशोषेण दौर्बल्येन च कालान्तरमारकौ ॥

वक्षस्थलोंके मर्म, सीमन्त, तल, क्षिप्र, इन्द्रवस्ति, बृहती, पसलियोंकी सन्धि, कटीकतरुण और नितम्ब इन स्थानोंके मर्म कालांतरमें प्राण हरण करनेवाले हैं।

वक्षःस्थलके मर्म--स्तनोंके नीचेसे लेकर दो अंगुल तक और स्तनोंकी जडमें दो शिरा मर्म हैं वहां कफ परिपूर्ण होनेसे कालांतरमें मारक हैं। [स्तनरोहित स्तनोंसे ऊपर दो अंगुलके स्तनरोहित नाम दो मांस मर्म हैं, उनमें रुधिर भरा हुआ है, इस कारण वे कालान्तरमें प्राण हरण करनेवाले हैं। कन्धेमें नीचे और पसलि-

योंके ऊपर दो शिरामर्म हैं। उनको अपलापी कहते हैं वे आधे आधे अंगुल प्रमाण हैं,वे रक्तसे भरे हैं इसकारण कालान्तरमें प्राणनाशक हैं। छातीके दोनों ओर वातवाही शिराओंमें दो मर्म हैं। उनको अपस्तंब कहते हैं. वे वायुसे भरे हैं इस कारण कास और श्वासको उत्पन्न करके कालान्तरमें प्राणहारक हैं।] सीमन्त--शिरमें जो पांच संधिमर्म हैं उनको सीमन्त कहते हैं, ये चार अंगुल प्रमाणके हैं ये उन्माद और भयके द्वारा चित्तका विनाश कर कालान्तरमें मारते हैं। तल विचली अंगुलीसे लेकर हाथकी हथेलीके मध्य भागमें, वैसेही दूसरे हाथकी हथेलीके मध्यमें, वैसेही दोनों पाँवोंके तलुओंमें इस प्रकार चार मांस मर्म हैं उनको तलमर्म कहते हैं. वे दो अंगुल प्रमाणके हैं। उनमें पीडा होनेसे कालान्तरमें प्राण निकलते हैं क्षिप्र--अंगूठा और अंगुलियोंमें क्षिप्र मर्म हैं, वे दोनों हाथोंके तथा दोनों पाँवोंके मिलकर चार स्नायु मर्म आधे अंगुल प्रमाण हैं। वे आक्षेपक नाम वायु रोगको उत्पन्न कर कालान्तरमें मृत्यु करते हैं। इन्द्रवस्ति--दोनों वाजुओंके मध्य तथा दोनों जंघाओंके मध्यमें इंद्रवस्ति नामक चार मांस मर्म है। इनका प्रमाण- दो अंगुलका है, वे रुधिर क्षय होनेसे कालान्तरमें मारक हैं। बृहती--स्तनोंके मूलके दोनों ओरसे लेकर, पीठके वाँसे पर्यन्त बृहतीनामक दो शिरामर्म हैं, उनका प्रमाण आधा अंगुल है। वे रुधिरके अत्यन्त निकलनेसे तथा उपद्रव होनेसे कालान्तरमें प्राणोंको हरते हैं। पार्श्वसंधि--जाँघोंकी दोनों ओरकी संधियां पार्श्वसंधि कहाती हैं। इन प्रत्येकमें शिरामर्म हैं वे आधे अंगुलके प्रमाणके हैं. ये रक्तसे परिपूर्ण हैं, इस कारण कालान्तरमें मृत्यु करते हैं.। कटीकतरुण-त्रिक (पीठके तलेकी तीन हड्डी) के पास दोनों श्रोणिकांडोंमें अस्थियोंके मध्यमें कटीकतरुणानामक अस्थिमर्म हैं, उनका प्रमाण आधा अंगुल है, वे रुधिरके क्षय होनेसे पाण्डु तथा विवर्णरूप करके कालान्तरमें प्राणको हरते हैं। नितम्ब--ये दोनों प्रसिद्ध अस्थिमर्म हैं। वे आधे अंगुल प्रमाणके हैं। ये शरीरके नीचेका भाग शोषण होनेसे तथा दुर्बलता होनेसे कालान्तरमें प्राणको हरते हैं॥ २७४॥

लोहिताक्षाणि जानूर्वोः कूर्चाविटकूर्पराः। कुकुन्दरे कक्षधरे विधुरे सकृकाटिके॥२७५॥ अंसांसफलकापाङ्गा नीले मन्ये फणे तथा। वैकल्यकरणान्याहुरावर्तौ तथैव च॥२७६॥ लोहिताक्षाणि-ऊर्वोरूर्ध्वे-मधो वंक्षणसन्धेर्लोहिताक्षम्। ते च द्वे बाह्वोर्द्वे ऊर्वोरेवं तानि चत्वारि शिराममर्माणि अर्द्धांगुलानि वैकल्यकराणि। तत्र शोणितक्षयेण पक्षाघातः सक्थिसादो वा। जानुनि ऊर्ध्वम् उभयोः पार्श्वयोस्त्र्यङ्गुला एकस्मिन् जानुनि द्वे अपरस्मिन् द्वे एवं चतस्रः स्नायुमर्माणि अर्द्धांगुलानि वैकल्यकराणि। तत्र शोथाभिवृद्धिः सक्थिस्तम्भश्च। जानुनी-जंघयोः सन्धी सन्धिमर्मणी द्व्यंगुले वैकल्यकरे। तत्र खञ्जता। ऊर्वो-द्वे ऊर्वोर्मध्ये द्वे, प्रगण्डयोः मध्येएवं चतस्रः शिराममर्माणि एकांगुलयोः वैकल्यकर्य्यस्तत्र शोणितक्षयात् सक्थिशोषः। कूर्चाः-पादयोरंगुष्ठांगुलयोर्मध्ये तयोरूर्ध्वं हस्तयोरधश्च एवं चत्वारि स्नायुमर्माणि वैकल्यकराणि। तत्र पादयोर्भ्रमणवेपने भवतः। विटपे द्वे-वंक्षणवृषणयोर्मध्ये स्नायुमर्मणि एकाङ्गुले वैकल्यकरे च। तत्र षाण्ढ्यमल्पशुक्रता वा। कूर्परौ-कफोणिजौ द्वौ संधिमर्मणी द्व्यंगुलौ वैकल्यकरौ। तत्र बाहुमध्ये सङ्कोचः कुकुन्दरे-नितम्बकू-

पकौ द्वौ सन्धिमर्मणी अर्धांगुले वैकल्यकरे । तत्र स्पर्शाज्ञानमधः कायस्य चेष्टोपघातश्च । कक्षधरे-वक्षःकक्षयोर्मध्ये द्वे स्नायुमर्मणी एकांगुले वैकल्यकरे । तत्र पक्षाघातः। विधुरे-कर्णपृष्ठाऽधःसंश्रिते किंचिन्निम्नाकारे द्वे स्नायुमर्म्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे। तत्र बाधिर्यम् । कृकाटिके-शिरोग्रीवयोरुभयतः सन्धी मर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे। तत्र शिरःकम्पः । अंसौ-स्कन्धौ स्नायुमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे । तत्र बाहुस्तम्भः। अंसफलके-पृष्ठोपरि पृष्ठवंशमुभयतस्त्रिसकम्बद्धे । ग्रीवायाः अंसद्वयस्य च च संयोगो यत्र तत्त्रिकम् । अस्थिमर्मणी-अर्द्धांगुले वैकल्यकरे।तत्र बाह्वोः शून्यता शोषश्च । अपाङ्गौ-नेत्रयोरन्तौ शिरामर्म्मणी अर्द्धांगुलौ वैकल्यकरो । तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातो वा। नीले मन्ये च-कण्ठनाडीमुभयतश्चतस्रो धमन्यः द्वे नीले द्वे मन्ये । तत्र एका मन्या, एका नीला चैकस्मिन् पार्श्वे एका मन्या एका नीला च अपरस्मिन् पार्श्वे । द्वे द्वे शिरामर्मणी द्व्यंगुले द्व्यंगुले वैकल्यकरे । तत्र मूकता विकृतस्वरता अरसग्राहिता च। फणे--घ्राणमार्गमुभयतःमांसमर्म्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे। तत्र गन्धाज्ञानम् ।आवर्त्तौ-भ्रुवोरुपरि निम्नयोःसन्धिमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे। तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातो वा॥

लोहिताक्ष, दोनों जानु, दोनों ऊरु, कूर्चा, विटप, कूर्पर, कुकुन्दर, कक्षधर, विधुर, कृकाटिका, अंस, अंसफलक, अपांग, नीला, मन्या, फण और आवर्त ये मर्म अंगमें विफलता उत्पन्न करनेवाले हैं ॥

लोहिताक्ष--दोनों ऊरुओंके ऊपर और वंक्षण (पेडू) संधिके नीचेको लोहिताक्ष मर्म कहते हैं तथा दोनों ऊरुओंकी दो संधिको देह (व) संधिको कहते हैं, इस प्रकार यह चार शिरामर्म आध अंगुल प्रमाणहैं, इनमें चोट लगनेसे ये अंगमें विकलता उत्पन्न करते हैं, इनमें रुधिरका क्षय होनेसे सक्थिसाद अथवा पक्ष घात नामक वायुरोग उत्पन्न होता है । जानुके ऊपर दोनों पार्श्वोंमें तीन अंगुल प्रमाण एक जानुके ऊपर दो और दूसरे जानुके ऊपर दो, इस प्रकार चार, आधा अंगुल प्रमाण स्नायुमर्म हैं, ये विकलता उत्पन्न करते हैं। इनमें सूजन, वृद्धि और सक्थिस्तंभ नामक रोग होते हैं। जानुनी--दोनों जाँघोकी संधिमें दो मर्म हैं, वे दो अंगुल प्रमाणके अत्यंत विकलता करनेवाले हैं, इन मर्मोंमें चोट लगनेसे मनुष्य लंगडा होता है। ऊर्वौ:--ऊरुके मध्यमें दो तथा प्रगंड (बाजू) में दो इस प्रकार चार शिरामर्म हैं, वे एक अंगुलके होकर विकलता संपादन करनेवाले हैं। उनमें रुधिरका क्षय होनेसे पाँव सूख जाता है, कूर्चा--दोनों पाँवके अंगूठेके और अंगूठेके पासकी अंगुलीके बीचमें दोनोंके ऊपर और दोनोंके नीचे इसप्रकार चार स्नायुमर्म हैं। वे विकलता करनेवाले हैं उनमें चोट लगनेसे दोनों पाँवोंमें भ्रमण और कम्प होता है। विटपे-वंक्षण (पेडू) और दोनों अंडकोषोंके बीचमें स्नायुमर्म हैं, वे एक अंगुल प्रमाणके दो मर्म विकलताके करनेवाले हैं. उन दोनोंमें चोट लगनेसे नपुंसकता और वीर्याल्पता होजाती है, कूर्परौ--कौनियोंके ऊपर दो संधिमर्म हैं उनका प्रमाण दो अंगुलका है और वे विकलता करनेवाले हैं, उनसे बाहुओंमें संकोच उत्पन्न होता है। कुकुन्दरे-दोनों नितम्बोंके गड्ढोंके ऊपर दो संधिमर्म हैं, वे

आध अंगुलप्रमाणके और महा विकलता करनेवाले हैं, उनमें चोट लगनेसे स्पर्शका ज्ञान नहीं होता तथा शरीरके नीचेके भागमें चेष्टाका नाश होता है। कक्षधरे-छाती और कोखके वीचमें दो स्नायुमर्म हैं, वे एक अंगुल प्रमाणवाले और विकलता उत्पन्न करनेवाले हैं, उनमें विकार होनेसे पक्षाघातरोग होता है. विधुरे-कानके पीछे कुछ झुके हुए दो स्नायुमर्म हैं, वे आध अंगुल प्रमाण तथा विकलता करनेवाले हैं। उनमें विकार होनेसे बहरापन होजाता है! कृकाटिका--शिर और गरदन इन दोनोंकी संधियोंमें दो संधिमर्म हैं उनका प्रमाण आध अंगुलका है और वे विकलता करनेवाले हैं. उनमें विकार होनेसे शिरः-कम्परोग होता है। असौ-कन्धोंमें दो स्नायुमर्म हैं, वे आध अंगुल प्रमाणके हैं तथा विकलता करनेवाले हैं, उनमें बाहुस्तम्भरोग होता है। असफलके--गरदनके ऊपर दोनों कन्धोंका जहाँ संयोग होता है उसको त्रिक कहते हैं। इस त्रिकसे संवध रखनेवाने पीठके ऊपर और पीठके बाँसोंके दोनों ओर दो अस्थिमर्म आध अंगुल प्रमाणके हैं। वे अंगकी विकलता संपादन करते हैं इन स्थानोंमें विकार होनेसे दोनोंभुजाओंमें शून्यता उत्पन्न करते हैं और सुखा भी देते हैं। अपांगी-दोनों नेत्रोंके अंतभागमें दो शिरामर्म हैं, वे आध अंगुल प्रमाण तथा विकलता करनेवाले हैं उनमें विकार होनेसे अंध वा मंददृष्टिवाला होजाता है। नीले मन्ये-कंठकी नाडियोंके दोनों बाजुओंमें चार धमनी (नाडी) हैं। उनमें दो नीला कहाती हैं और दो मन्या कहाती हैं। उनमें एक पसुलीके ऊपर एक नीला और एक मन्या नाडी है,तथा दूसरी पसुलीके ऊपर एक नीला और एक मन्या है, इस प्रकार प्रत्येकके निकट दो दो शिरामर्म हैं! वे प्रत्येक दो दो अंगुलके प्रमाण हैं औरविकलता उत्पन्न करनेवाले हैं, उनमें विकार होनेसे मूकता (गूंगापन), स्वरभंग (बुरी आवाज) और रसका ग्रहण नहीं होना इत्यादि विकार होते हैं। फणे-नाकके दोनों बाजुओंमें आध आध अंगुलके मासमर्म हैं, उनमें चोट लगनेसे विकलता होती है और गन्धग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। आवर्त्तौ-दोनों भौओंके ऊपर और नीचे आध आध अंगुल प्रमाणके संधिमर्म हैं,वे विकलताको करते हैं और चोट लगनेसे अन्धत्व और मन्ददृष्टि होजाती है ॥ २७५-२७६ ॥

गुल्फौ द्वौ मणिबन्धौ द्वौ तथा कूर्चशिरांसि च । रुजकराणि जानीयाद् दृष्ट्वा चैतानि बुद्धिमान् ॥ २७७ ॥

गुल्फौ-घंटिके संधिमर्मणी द्व्यंगुलौ रुजाकरौ। तत्र रुजा पादस्तम्भः खञ्जता च। द्वौ मणिबन्धौ--हस्तप्रकोष्ठसंधी संधिमर्मणी द्व्यंगुलौ रुजाकरौ । तत्र हस्तयो क्रियाराहित्यम् ।कूर्चशिरांसि-पादसन्धेरधः उभयतः एकस्मिन् पादे एकमेकं च द्वितीये हस्तयोर्द्वे च एवं चत्वारि स्नायुमर्माणि एकांगुलानि रुजाकराणि। तत्र रुजा शोफश्च ॥

दोनों टकने दोनों मणिबन्ध (पहुँचे) और कूर्चोंके शिरमें विद्वानोंने मर्मस्थान रोगोंको उत्पन्न करनेवाले कहे हैं ॥

गुल्फौ-दोनों घुटुनोंमें दो दो अंगुलके संधिमर्म हैं और रोगोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, इनमें रोग; होनेसे पुरुष पादस्तम्भ (पाँव जकडना) और खंज (लंगडा) होजाता है। मणिबन्धौ-हाथके कोठेकी संधियोंमें दो दो अंगुलके दो संधिमर्म पीडा करनेवाले हैं तथा हाथको क्रियारहित (जड) करते हैं। कूर्चशिरांसि पाँवोंकी संधिके नीचे दोनों बाजुओंमें एक एक और दोनों बाजुओंकी संधियोंमें एक एक इस प्रकार चार स्नायुमर्म एक अंगुल प्रमाणके हैं तथा वे पीडा करनेवाले हैं और रोग होनेसे सूजन करते हैं ॥ २७७ ॥

उत्क्षेपौ स्थपनी चैव विशल्यघ्नं त्रिकं मतम् २७८उत्क्षेपौ-जंघयोरुपरि केशा

यावत् स्नायुमर्म्मणी अर्द्धाङ्गुले तयोर्विद्धयोः सशल्यो जीवेत्, पाकात् पतितशल्यो वा। उद्धृतशल्यस्तु म्रियेत। अत एव विशल्यमुद्धृतशल्यं हन्तीति। विशल्यघ्नं—मर्म। स्थपनी-एका भ्रुवोर्मध्ये शिरामर्मैदमर्द्धाङ्गुलं विशल्यघ्नम् ॥

दो उत्क्षेप और एक स्थपनी ये तीन विशल्यघ्न मर्म हैं ॥

उत्क्षेपौ-दोनों कनकपटियोंके ऊपर बालों पर्यन्त दो आध आध अंगुलके मर्म हैं। उनके बींधनेसे और शल्य जबतक उनमें रहे तबतक मनुष्य जीवित रहता है परन्तु जब वह पककर निकल जाता है तब उसकी मृत्यु होजाती है- इसी कारण इनको विल्यघ्न कहा है। स्थपनी, दोनों भौंओंके बीचमें एक शिरामर्म आध अंगुलका है और वह भी शल्य निकाल लेनेसे प्राणोंको हरता है ॥ २७८ ॥

सप्तरात्रान्तरे हन्युः सद्यः प्राणहराणि हि। कालान्तरप्राणहरं पक्षे मासे च मारकम् ॥२७९॥ सद्यःप्राणहरं चान्ते विद्धं कालेन मारयेत्। कालान्तरप्राणहरमन्ते विद्धं तु दुःखदम् ॥ २८० ॥

अन्ते--मर्मसमीपे ॥

मर्मण्यधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्छन्ति काये विविधा नराणाम्।प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवन्ति वैद्येन यत्नैरपि साध्यमानाः ॥२८१॥

जो जो मर्म तत्काल प्राण हरनेवाले हैं वे सात रात्रियोंमें प्राणोंको हरते हैं। जो कालांतरमे प्राण हरनेवाले हैं वे एक पक्षमें तथा महीनेमें मृत्यु करते हैं। जो मर्म तत्काल प्राण रहनेवाले हैं उन मर्मोका अन्त भाग (मम समी०) छिदनेस कालांतरमें प्राणोंको हरते हैं और कालांतरमें प्राण रहनेवाले मर्मोंका अन्त छिदनेसे दुःख देते हैं। पुरुषोंके शरीरमें जो नानाप्रकारके विकार मर्मस्थलमें उत्पन्न होते हैं वे प्रायःअच्छे अच्छे वैद्योंके द्वारा यत्नकरनेपर भी कष्ट साध्य होते हैं ॥ २७९-२८१ ॥

अथ सन्धयः।

ते द्विविधाश्चेष्टावन्तः स्थिराश्च। शाखासु हन्वोः कट्यां च चेष्टावन्तो भवन्ति हि। शेषास्तु सन्धयः सर्वे स्थिरास्तज्ज्ञैरुदाहृतः॥२८२॥कथिता देहिनां देहे सन्धयो द्वे शते दश। शाखासु तेऽष्टषष्टिश्च कोष्ठे त्वेकोनषष्टिकाः॥२८३॥ ग्रीवाया ऊर्ध्वदेशे तु त्र्यशीतिस्ते प्रकीर्तिताः। प्रथमं परिगण्यन्ते तेषु शाखागता इह २८४॥

संधियाँ दो प्रकारकी हैं चेष्टावन्त और स्थिर। वह हाथ पाँव आदि शाखाओंमें तथा ठोडी और कमरमें जो संधि हैं वे चेष्टावाली हैं, शेष सर्व सन्धियाँ स्थिर हैं। देहधारियोंके शरीरमे दोसौ दश २१० सन्धि (जोड) हैं, उनमें अडसठ ६८ हाथ पाँवमें, उनसठ ५९ कोठेमें और गरदनके ऊपरके भागमें ८३ संधि कही गयी हैं। अब उनमेंसे प्रथम शाखागत संधियोंकी गणना करते हैं ॥ २८२-२८४ ॥

एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्रयस्त्रयो द्वावङ्गुष्ठे ते चतुर्दश। गुल्फजानुवंक्षणेष्वेकैकमेवं सप्तदश एकस्मिन् सक्थनि भवन्तिः ॥२८५॥ एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ। एवमष्टषष्टिः शाखासु। अथ कोष्ठगतानाह--यत्रः कटी कपोलेषु। चतुर्विंशतिः पृष्ठवंशे। तावन्त एव पार्श्वयोः। अष्टावुरसि। एवमेकोनषष्टिः कोष्ठे। अथ ग्रीवोर्ध्वगतानाह— अष्टौ ग्रीवायाम्, त्रयः कण्ठे, नाडीहृदयक्लोमफुप्फुसे निबद्धास्त्वष्टादश, द्वात्रिं-

शदन्तमूलेषु, एकः कण्ठमणौ, नासायां च एकः द्वौ द्वौ वर्त्ममण्डलगण्डकर्णशंखेषु, द्वौ हनुसन्धौ, द्वावुपरिष्टात् भ्रुवो, द्वौ शंखयोश्चोपरिष्टात्, पंच शीर्षकपालेष्वेको मूर्ध्नीति। कण्ठमणौ, घण्टिकेति प्रसिद्धा। एते सन्धयोऽष्टविधा भवन्ति ॥

एक एक पाँवकी अंगुलीमें तीन तीन और अंगुष्ठमें दो, इस प्रकार पाँचों अंगुलियोंमें चौदह १४ संधि हैं। तथा टकने, घुटुएँ और वंक्षण इनमें एक एक इस भाँतिकुल सत्रह १७ संधियाँ एक पाँवमें होती हैं। इसी प्रकार दूसरे पाँव तथा दोनों हाथोंमें भी जाननी चाहिये। इस प्रकार कुल अडसठ (६८) संधि शाखाओं (हाथ पाँव आदि) में जाननी चाहिये। अब कोठेकी संधियोंको कहते हैं कि–कमर और कपालमें तीन ३ पीठके बाँसमें चौवीस २४, चौवीस २४ ही दोनों पसलियोंमें, उरस्थानमें आठ ८, इस भांति उनसठ ५९ संधि कोठेमें जाननी। अब गरदनके ऊपरकी संधियोंको कहते हैं कि–आठ ८ गरदनमें, तीन ३ कंठमें, नाडी-हृदय-क्लोम और फेफडेमें बँधी हुई अठारह, दाँतोंकी जडमें बत्तीस ३२; कंठमणिमें एक १, नाकमें एक १. वर्त्म-मंडल (पलक मण्डल) कपोल कान और कनपटियोंमें दो दो, इस प्रकार मिलकर आठ ८, ठोडीकी संधियोंमें दो २, भौंओंके ऊपर दो और शंखो कनपटीके ऊपर दो २ शिर और कपालमें पांस ५, मूर्धामें एक १, इस भाँति कुल तिरासी ८३ संधि गरदनके ऊपरके भागमें है, कंठमणि यह लोकमें घंटिकानामसे प्रसिद्ध है। ये संधियाँ आठ प्रकारकी हैं ॥ २८५ ॥

ते यथा-कोरोदूखलसामुद्राः प्रतरस्तूनसेविनी। काकतुण्डं मण्डलं च शङ्खावर्तोऽष्ट सन्धयः ॥ १८६ ॥

कोरो गर्त्तः, नलिकेत्यन्ये। उदूखलः प्रसिद्धः। समुद्गः सम्पुटः। समुद्ग एव सामुद्गः अत्र स्वार्थे अण्। प्रतरन्त्यनेनेति प्रतरो वेलकः। तूनस्येब तूनीरस्येव सेविनी तूनसेविनी। काकतुण्डं काकमुखम्। मण्डलं प्रसिद्धम्। शंखस्यावर्त्तः शंखावर्तः। एते यथानामप्रकृतयः सन्धयो भवन्तीत्यर्थः। एषामंगुलि मणिबन्धगुल्फजानुकूर्परेषु कोराः सन्धयः। कक्षावंक्षणदन्तेषूदूखलाः। अंसपीठगुदभगनितम्बेषु सामुद्गाः। ग्रीवापृष्ठवंशयोस्तु प्रतराः। शिरःकटीकपालेषु तूनसेविन्यः। हन्वोरुभयंतः काकतुण्डाख्यः कण्ठहृदयक्लोमनाडीषु मण्डलाख्याः। शिरःशृङ्गाठकेषु शंखावर्ताः ॥

अस्थ्नां तु सन्धयो ह्येते केवलाः समुदाहृताः। पेशीस्नायुशिराणां तु सन्धिसंख्या न विद्यते। ॥ २८७ ॥

१ कोर (गड्ढे) के सदृश और कोई नलीके सदृश कहते हैं, २ उदूखल (ओखली), ३ सामुद्र (संपुट), ४ प्रतर जो तरता है उसको प्रतर कहते हैं प्रतर अर्थात् (वेल), ५ तूनसेविनी (तूनीर-तरकस) ६ काकतुण्डा (कौएकी चोंच), ७ मण्डल (गोल), ८ शंखावर्त (शंखकी नाभिका चक्र) ये आठों सन्धि अपने अपने नामके अनुसार होती हैं, उनमेंसे अंगुली, पहुँचा टकना, घुटुआ, और कोहनी इन स्थानोंमें कोर संज्ञक सन्धि है। कोख, पेडू और आंतोंमें उदूखल नामक सन्धि है। कन्धा, पीठ, गुदा, भग और नितम्ब इनमें सामुद्र नामक सन्धि है। गरदन और पीठके बांस इनमें प्रतर नामक संधि है। शिर, कमर और कपाल इनमें तूनसेविनी संधि है। ठोडीके दोनों ओर काकतुंडा संधि है। कण्ठ, हृदय, क्लोम (पिपासाख्या) इनमें मण्डलनामक संधि है। शिर और शृङ्गाटक इनमें शंखावर्त संज्ञक संधि है। यह केवल

अस्थियोंकी संधियां हैं। मांसकी पेशी स्नायु और शिर (नस) के संधियोंकी संख्या नहीं है ॥ २८६ ॥

अथ शिरामाह।

सन्धिबन्धनकारिण्यो दोषधातुवहाः शिराः। नाभ्यां सर्वा निबद्धास्ताः प्रतन्वन्ति समन्ततः ॥ २८८ ॥ शरीरं सकलं चैतच्छिराभिः पोष्यते सदा। प्रणालीभिरिवारामाः कुल्याभिः क्षेत्रधान्यवत् ॥२८९॥

अत्र प्रणालीभिः कुल्याभिरिति दृष्टान्तद्वयं स्थूलसूक्ष्मशिराभेदात् ॥

प्रसारणाकुञ्चनादिक्रियाभिः सततं तनौ शिरा एवोपकुर्वन्ति ताः स्युः सप्तशतानि तु ॥ २९० ॥ यथा द्रुमदले साक्षाद्दृश्यन्ते प्रतताः शिराः। तथैव देहिनो देहे वर्त्तन्ते सकलाः शिराः ॥ २९१ ॥ नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिरुपाश्रिता। शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ॥ २९२ ॥ तद्यथा—तासां खलु मूलशिराः चत्वारिंशत्४०। तासां दश वातवहाः, दश पित्तवहाः, दश श्लेष्मवहाः, दश रक्तवहाः। तासां खलु वातवहानां वातस्थानगतानां सपंचसप्ततिशतं भवन्ति। तावन्त्य एव पित्तवहाः पित्तस्थानगताः। श्लेष्मवहाः तावन्त्य श्लेष्मस्थानगताः। रक्तवहाः यकृत्प्लीहगताः। एवं शिराः सप्तशतं भवन्ति। तत्र वातवहाः एकस्मिन् सक्थ्नि पंचविंशतिः २५। एतेन इतरासक्थि बाहु च व्याख्यातौ। विशेषतः कोष्ठे चतुस्त्रिंशत् ३४। तासां श्रोण्यां गुदमद्राद्दिश्रिता अष्टौ ८। द्वे द्वे पार्श्वयोः ४। षट् पृष्ठे ६। तावन्त्य एव उदरे ६। दश वक्षसि १०। एकचत्वारिंशत् ४१। जत्रुणः ऊर्ध्वम्। तासां चतुर्दश १४ ग्रीवायाम्। चतस्रः ४ कर्णयोः। नव ९ जिह्वायाम्। षट्६ नासिकायाम्। अष्टौ ८ नेत्रयोः। एवं वातवहानां सपंचसप्ततिशतं १७५ भवति। एवं विभागः पित्तवहानामपि। विशेषस्तु पित्तवहाः नेत्रयोर्दश १०। कर्णयोर्द्वे २। एवं रक्तवहाः। श्लेष्मवहास्तु षोडश १६ ग्रीवायाम्। कर्णयोर्द्वे २। एवं शिराणां सप्तशतानि व्याख्यातानि ॥

संधियोंका बन्धन करनेवाली और दोष (वातादि) तथा धातु (रसरक्तादि) को बहानेवाली शिरायें हैं वे सब नाभिमें बँधी हैं और चारों ओरको फैल रही हैं। जिस प्रकार प्रणालियों (नहरों) से बाग और कुल्याओं (छोटी छोटी नदियों) से धानोंके खेत पुष्ट होते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर सदा शिराओंसे पुष्ट होता है ॥

यहां प्रणाली और कुल्या ये जो दो दृष्टान्त लिखे हैं, वे स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकारकी शिराओंके भेदसे हैं। शरीरके फैलने और सुकड़ने आदि क्रियाओंसे निरन्तर इस शरीर में शिरा ही उपकार करती हैं इन शिराओंकी संख्या सातसौ (७००) हैं। जिस प्रकार वृक्षके पत्तोंमें शिराओंका जाल प्रत्यक्ष दीखता है, उसी प्रकार प्राणियोंके सर्व देहमें शिरायें रहती हैं। प्राणियोंके प्राण नाभिमें रहते हैं और नाभि प्राणोंके आश्रित रहती है। जैसे पहियेकी नाह सलाईके द्वारा चारों ओरसे घिरी हुई है वैसेही शिराओंसे नाभि लिपटी

हुई है। उनमें मूल चालीस (४०) शिरा हैं। तिनमेंसे दश (१०) वातको बहानेवाली और दश (१०) पित्तको बहानेवाली, दश (१०) कफको बहानेवाली और दश (१०) रुधिरको बहानेवाली हैं। उनमें वात बहानेवाली वातस्थानमें जाकर एकसौ पछत्तर (१७५) हो गई हैं। एकसौ पछत्तर (१७५) ही पित्त बहानेवाली पित्तस्थानमें जाकर हो गई है, इतनी ही (१७५) कफ बहानेवाली कफस्थानमें जाकर और एकसौ पछत्तर (१७५) ही रुधिरको बहानेवाली यकृत् प्लीहा में जाकर होगई हैं, इस प्रकार कुल संख्या सातसौ (७००) हैं। वात बहानेवाली शिरा एकसौ पछत्तर (१७५) कही हैं उनमेंसे पच्चीस (२५) एक पांवमें, पच्चीस (२५) दूसरे पांवमें. पच्चीस (२५) एक हाथमें, पच्चीस (२५) दूसरे हाथमें, चौंतीस (३४) कोठेमें; उनमेंसे कमर, गुदा. लिंग आदिके आश्रित आठ (८) हैं, दोनों पसलियोंमें दो दो (२-२) इस प्रकार चार (४), पीठमें छः (६), छः (६) ही उदरमें, वक्षःस्थलमें दश (१०)। जत्रु (हँसुलीके ऊपर) इकतालीस (४१) कही हैं। उनमेंसे चौदह (१४) गरदनमें, चार (४) कानोंमें, नौ (९) जीभमें, छः (६) नासिकामें और आठ (८) आंखोंमें इस भांति एकसौ पछत्तर (१७५) वात बहानेवाली हैं। पित्तको बहानेवाली जो एकसौ पछत्तर शिरा कही हैं, वे भी उपरोक्त कहे प्रमाणसे विभाजित हैं उनमें इतना विशेष है कि-दोनों नेत्रोंमें दश (१०) और कानोंमें दो (२) हैं। इसी प्रकार रुधिरको बहानेवाली शिरा हैं। कफको बहानेवालियोंमें तो सोलह (१६) गरदनमें और दो कानोंमें हैं, शेष उपरोक्त प्रकार है। इस भांति सातसौ (७००) शिरा कही हैं ॥२८८-२९२॥

क्रियाणामप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्मणाम्। करोत्यन्यान् गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन् ॥ २९३ ॥

क्रियाणां प्रसारणाकुञ्चनादीनाम्। अमोह बुद्धिकर्म्मणाम, बुद्धीन्द्रियाणां मनसो। बुद्धेश्च स्वे स्वे विशये अज्ञानं न करोतीत्यर्थः अन्यान् गुणान् रसादिव्यापनद्वारा शरीरपोषणादीन् ॥

यदा तु कुपितो वायुः स्वाः शिराः प्रतिपद्यते। तदाऽस्य विविधा रोगा जायन्ते वातसम्भवाः ॥ २९४ ॥ भ्राजिष्णुतामन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम्। करोत्यन्यान् गुणांश्चापि पित्तमात्मशिराश्चरत् ॥ २९५ ॥

अरोगतां पैत्तिकरोगानुत्पत्तिं करोति। अन्यान् गुणान् मेधाबुद्धिदर्शनशक्त्यादीन् ॥

यदा तु कुपितं पित्तं सेवते स्ववहाः शिराः। तदाऽस्य विविधा रोगा जायन्ते पित्तसम्भवाः ॥ २९६ ॥ स्नेहमङ्गेषु सन्धीनां स्थैर्य्यं बलमरोगताम्। करोत्यन्यान् गुणांश्चापि बलसः स्वाः शिराश्चरन् ॥ २९७ ॥

अरोगतां श्लैष्मिकरोगानुत्पत्तिम्। अन्यान् गुणान् बलपुष्ट्यादीन् ॥

यदा तु कुपितः श्लेष्मा स्वाः शिराः प्रतिपद्यते। तदाऽस्य विविधा रोगा जायन्तै श्लेष्म सम्भवाः ॥ २९८ ॥ धातूनां पूरणं वर्णं स्पर्शज्ञानमसंशयम्। स्वाशिरासु चरद्रक्तं कुर्य्याच्चान्यान् गुणानपि ॥ २९९ ॥

अन्यान् गुणान्--बलपुष्ट्यादीन् ॥

यदा तु कुपितं रक्तं सेवते स्ववहाः शिराः। तदाऽस्य विविधा रोगा जायन्ते रक्तसम्भवाः ॥ ३०० ॥ तत्रारुणा

वातवहाः पूर्य्यन्ते वायुना शिराः ॥ ३०१ ॥ पित्तदुष्टाश्च नीलाश्च शीता गौर्यः स्थिराः कफात्। असृग्धरास्तु ता रक्ता स्युश्च नात्युष्णशीतलाः ॥३०२॥

अपनी शिराओंमें फिरनेवाली वायु अंगोंका विस्तार संकोच आदि क्रियाओंमें कोई विकार नहीं आने देती। ज्ञानेन्द्रियका, मनका तथा बुद्धिका ज्ञान और अन्य अन्य गुणोंको भी करती है। यह वायु जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरती है, तब शरीरमें वातसे उत्पन्न हुए अनेक रोगोंको किरती है। जब अपनी शिराओंयें पित्त विचरता है, तब पित्त कांतिको करता है. अन्नमें रुचि उपजाता है. अग्निको दीपन करता है. पित्तसंबंधी रोगोंको उत्पन्न नहीं होनेदेता और धारणाशक्ति बुद्धि तथा देखनेकी शक्ति आदि अन्यगुणोंको करता है। यह पित्त जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरता है, तब शरीरमें पित्तसे होनेवाले (गरमी) के रोग उत्पन्न होते हैं। जब कफ अपनी शिराओंमें विचरता है, तब अंगोंमें स्निग्धता संधियोंकी स्थिरता करता है और बल देता है और कफसंबंधी रोगोंको उत्पन्न नहीं होते देता और पुष्टिआदि अन्य गुणोंको भी करता है। यह कफ जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरता है तब शरीरमें कफसे होनेवाले हृल्लासादिक रोग उत्पन्न होते हैं। जब रक्त अपनी शिराओंमें विचरता है तब धातुओंको पूरता है। निःसंशय रीतिसे स्पर्शका ज्ञान कराता है और बल पुष्टि आदि अन्य गुणोंको भी करता है। यह रक्त जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरता है तब शरीरमें रक्तसे उत्पन्न होनेवाले फोडा फुंसी आदि रोगोंको प्रगट करता है। वात वहानेवाली शिरायें लाल हैं और वायुसे पूरित हैं। पित्त वहानेवाली शिरायें काली हैं तथा पित्तसे पूरित हैं। कफको बहानेवाली शिरायें सफेद, शीतल स्थिर और कफसे परिपूर्ण हैं और रुधिरकी वहानेवाली शिरायें लाल, किंचित् गरम तथा रक्तसे परिपूर्ण हैं ॥ २९३–३०२ ॥

अथ स्नायुः। तत्र स्नायोः स्वरूपमाह।

मेदसः स्नेहमादाय शिरा स्नायुत्वमाप्नुयात्। शिराणां हि मृदुः पाकः स्नायूनां तु ततः खरः ॥ ३०३ ॥ स्नायवो बन्धनानि स्युर्देहमांसास्थिमेदसाम्। सन्धीनामपि यत्तास्तु शिराभ्यः सुदृढाः स्मृताः ॥ ३०४ ॥ नौर्यथा फलकास्तीर्णा बन्धनैर्बहुभिर्युता। नियुक्ताऽगाधसलिले भवेद्भारसहा भृशम् ॥ ३०५ ॥ एवमेव शरीरेऽस्मिन्यावन्तःसन्धयः स्मृताः। स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहानराः ३०६

फलकैः काष्ठपट्टैः आस्तीर्णा व्याप्ता ॥

शतानि नव जायन्ते शरीरे स्नायवो नृणाम्। तासां विवरणं-ब्रूमः शिष्याः शृणुत यत्नतः ॥ ३०७ ॥ शाखासु षट्शतानि स्युः कोष्ठे त्रिंशच्छतद्वयम्। ग्रीवायामूर्ध्वदेशे तु स्नायूनां सप्ततिः स्मृता ॥ ३०८ ॥

उपरोक्त शिरानामक नाडियोंमें जो मेदसे स्नेह आता है, तब वही स्नायु होजाती है। शिराओंका पाक कोमल होता है और स्नायुका पाक कठिन होता है, देहमें जो मांस, हड्डी तथा संधियाँ हैं, उनका बंधनरूप स्नायु ही है, क्योंकि स्नायु शिराओंकी अपेक्षा दृढ है. जिस प्रकार अगाध पानीमें कष्टसे बनी हुई नाव अनेक बंधनोंसे बंधी हुई बहुत बोझको सह सकती है इसी प्रकार इस शरीरमें जितनी संधियाँ हैं वे अनेक स्नायुसे बँधी हुई हैं। इससे ही मनुष्य बोझको सहन कर सकता है। मनुष्योंके शरीरमें नौसौ (९००) स्नायु हैं उनका विभाग कहता हूँ। हे शिष्यो ! यत्नपूर्वक सुनो। ये स्नायु--हाथ पाँवोंमें छः सौ (६००) हैं, कोठेमें भी दोसौ तीस (२३०) हैं; और गरदनमें तथा गरदनसे ऊपरके भागमें सत्तर (७०) हैं ॥

तत्र शाखागताः प्राह ।

एकैकस्यां पादांगुल्यां षट्षट् तास्त्रिंशत् । तावंत्य एव तलकूर्चगुल्फेषु। तावंत्य एव जंघायाम् । दश जानुनि । चत्वारिंशदूरौ । दश वंक्षणे । एवं सार्द्धशतमेकस्मिन् सक्थिन भवन्ति। एतेन इतरसक्थि बाहू चव्याख्यातौ॥

हाथ पांवोंमें जो छः सौ स्नायु कही हैं वे इस प्रकार हैं कि, पांवोंकी एक एक अंगुलिमें छः हैं इस प्रकार पांचो अंगुलियोंमें (३०) हुई। पांवोंके तलुओंमें, कूर्चमें और टकनोंमें तीस (३०) हैं, तीस (३०) ही जांघोंमें; दश (१०) जानु (घुटुओं) में, चालीस (४०) उरस्थानमें, दश (१०) वंक्षण (पेडू) में इस प्रकार एक पांवमें डेढसौ (१५०) हैं। इसी प्रकार दूसरे पांवमें और दोनों हाथोंमें भी हैं अर्थात् कुल हाथ पांवोंमें छः सौ (६००) हैं ॥

अथ कोष्ठगताः प्राह ।

षष्टिः कट्याम् । तावंत्य एव पार्श्वयोः । अशीतिः पृष्ठे । त्रिंशदुरसि ॥

कोठेमें जो दो सौ तीस (२३०) कही हैं वे इस प्रकार हैं कि साठ (६०) कमरमें साठ (६०) ही दोनों पसलियोंमें, अस्सी (८०) पीठमें और तीस(३०)उरस्थानमें हैं॥

अथ ग्रीवोर्ध्वगताः प्राह ।

षट्त्रिंशद्ग्रीवायाम् । चतुस्त्रिंशन्मूर्ध्नि । एवं स्नायूनां नवशतानि भवन्ति ॥

अब गरदन और गरदनसे ऊपरके भागकी कहते हैं कि-छत्तीस (३६) गदरनमें और चौतीस (३४) मस्तकमें इस प्रकार सत्तर (७०) हुई। सब मिलकर नौ सौ (९००) हुईं ॥ ३०३--३०८ ॥

अथ धमन्यः ।

धमन्यो नाभितो जाताश्चतुर्विंशतिसंख्यया । दशोर्ध्वगा दशाऽधोगाः शेषास्तिर्य्यग्गताः स्मृताः ॥ ३०९ ॥

तत्रोर्ध्वगाः--शब्दस्पर्शरूपरसगन्धप्रश्वासोच्छ्वासजृम्भितक्षुतहसितकथितरुदितगीतादिविशेषानभिवहन्त्यः शरीरं धारयन्ति ॥

प्रश्वासः अन्तःप्रविष्टो वायुः । उच्छ्वासः ऊर्ध्वं गच्छन् वायुः ॥

तास्तु हृदयं गतास्त्रिधा जायन्ते । तास्त्रिंशत् । तासां मध्ये द्वे द्वे वातपित्तकफशोणितरसान् वहतः । ता दशः । अष्टाभिः शब्दरसरूपगन्धान् गृह्णाति पुरुषः । द्वाभ्यां भाषते । द्वाभ्यां घोषते । द्वाभ्यां स्वपिति । द्वाभ्यां जागर्ति । द्वे अश्रुवाहिन्यौ । द्वे स्तन्यं स्त्रिया वहतः, ते एव शुक्रं नरस्य स्तनाभ्यामभिवहतः । एतास्त्रिंशत्। एताभिरुदरपार्श्वपृष्ठोरः स्कन्धग्रीवाशिरोबाहवो धार्यन्ते चाल्यन्ते च। अधोगतास्तु--वातमूत्रपुरीषशुक्रार्त्तवादीन् अधो वहन्ति। तास्तु पित्ताशयं गतास्त्रिधा जायन्ते । तास्त्रिंशत् । तासां मध्ये द्वे द्वे वातपित्तकफशोणितरसान् वहतः ता दश । द्वे अन्नवहे । द्वे अन्त्राश्रिते । द्वे तोयवहे। द्वे वस्तिगते मूत्र वहे। द्वे शुक्रस्य प्रादुर्भावाय । द्वे तद्विसर्गाय, ते एव नारीणामार्त्तवप्रादुर्भावाय ते अधिसृजतः । द्वे स्थूलांत्रप्रतिबद्धे पुरीष विसृजतः । अष्टावन्यास्तिर्यग्गताः स्वेदमर्पयन्ति । एतास्त्रिंशत् । एताभिरधो नाभेः पक्वाशयकटीमूत्रपुरीषवस्तिगुदमेढ्रसक्थीनि धार्यन्ते चाल्यन्ते च। तिर्यग्गतानां तु चतसृणामेकैका शतधा सहस्रधा च उत्तरोत्तरं विभज्यन्ते । तास्तु, असंख्येतास्ताभिरिदं शरीरं गवक्षितं, निबद्धमायतम् । गवाक्षवत् निबद्धमायतम् गवाक्षो वातायनम्, यथा गवाक्षे बहूनि

छिद्राणि भवन्ति तथा अस्मिन् देहे जालवत् शिराः व्याप्य तिष्ठंतीति भावः। निबद्धमायतं गवाक्षितम् । गवाक्षारान्त्रनिकरयुक्तं कृतमित्यर्थः। तासां मुखानि रोमलग्नानि यैः मुखैः स्वेदः स्रवति । रसश्चाभिसंत पर्यन्ति अन्तर्बहिश्च। तैरेवाभ्यङ्गपरिषेकावगावहालेपनवीर्य्याणि त्वचि पक्वानि अन्तः प्रवेशयन्ति। तैरेव स्पर्शं शुभमशुभं वा गृह्णन्ति। यथा स्वभावतः खानि मृणालेषु बिसेषु च । धमनीनां तथा खानि रसो यैरभितश्चरेत् ॥३१०॥ पञ्चाभिभूतास्त्वथ पञ्चकृत्वः पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयन्ति । पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयित्वा पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले ३११

अस्यायमर्थः--धमन्यः कथंभूताः पंचाभिभूताः, पञ्चभ्यः आकाशादिमहाभूतेभ्यःअभिसमन्तान् भूताः, पञ्च इंद्रियाणि उभयात्मकं मनश्च यस्य तं पंचेन्द्रियं जीवात्मानं पंचसु इन्द्रियाधिष्ठानेषु श्रोत्रादिषु पञ्चकृत्वा पञ्चवारान्। पर्यायेण तु एकदैव भावयन्ति प्रापयन्ति । पंचेन्द्रियं पञ्चानामिन्द्रियाणां समाहारः पंचेद्रियम् श्रोत्रादि तदुपलक्षितं कर्मेन्द्रियं मनश्च। पञ्चसु पृथिव्यादिषु बुद्धींद्रियविषयेषु तदुपलक्षितेषु हस्तादिषु कर्मेन्द्रियविषयेषु मन्तव्ये मनोविषये च भावयित्वा प्राप्य संयोज्येति यावत् विनाशकाले पञ्चत्वमाकाशादिभावमायांति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥

धमनियाँ (नाडियां) नाभिसे उत्पन्न हुई हैं उनकी संख्या चौबीस है, उनमें दश (१०) ऊपरको जाती हैं, दश (१०) नीचेको जाती हैं और बाकी टेढी जाती हैं । उनमें ऊपर जानेवाली दश (१०) धमनियां शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध, निःश्वास (भीतर जानेवाली वायु), उच्छ्वास (ऊपर आनेवाली वायु), जम्भाई, छींक, हास्य, कंप, रोना और गीत आदि विशेष कर्म्मोंसे बहकर शरीरको धारण करती हैं । वे ऊपर जानेवाली दश धमनियां हृदयमें जाकर एक एकमेंसे तीन तीन अर्थात् सब तीस होती हैं । उनमें दोसे वायुका, दोसे पित्तका, दोसे कफका, दोसे रुधिरका और दोसे रसका वहन होता है । आठसे शब्द, रस, रूप तथा गन्धका वहन होता है, दोसे बोलता है । दोसे शब्द होता है, दोसे सोता है, दोसे जागता है, दो आंसू बहाती हैं और दो स्त्रीके दूधको बहाती हैं और जो स्त्रीके दूधको बहानेवाली हैं वे पुरुषके स्तनोंमें शुक्रको बहानेवाली जाननी । ये सब तीस (३०) हुईं । ये धमनियां पेट (पसली), पीठ, उरःस्थान, कन्धे, ग्रीवा, शिर और भुजाओंको धारण करती हैं और हलावें चलावें हैं । नीचे जानेवाली दश (१०) शिरायें वात, मूत्र, विष्ठा, वीर्य और आर्तव इत्यादि पदार्थोंको नीचे लेजाती हैं, ये दश (१०) धमनियां पित्ताशयमें जाकर एक एकमेंसे तीन तीन अर्थात् सब तीस होती हैं । उनमेंसे दो (२) से वायुका, दो (२) से पित्तका, दो (२) से कफका, दो (२) से रुधिरका और दो (२) से रसका वहन होता है, वे सब दश (१०) हैं । दो धमनियां आंतोंके आश्रयसे अन्नको बहानेवाली हैं, दो पानीको बहानेवाली हैं, दो मूत्राशमें रहकर मूत्रको वहन करती हैं, दोसे वीर्य उत्पन्न होता है, दोसे वीर्य बाहर निकलता है । पुरुषोंके वीर्यको उत्पन्न करनेवाली और बाहर निकलनेवाली इन चार धमनियोंके बदले स्त्रियोंके शरीरमें जो चार धमनियां हैं उनमेंसे दो स्त्रियोंके रज उत्पन्न करती हैं और दो बाहर निकालती हैं, दो धमनियां मोटी आंतोंसे बंधी हुई विष्ठाको बाहर निकालती हैं और दूसरी आठ टेढी रहकर पसीना उत्पन्न करती हैं, ये सब तीस हुईं, ये धमनियां नाभिके नीचे पक्वाशय, कमर, मूत्र- पुरीष, मूत्राशय, गुदा, लिंग और पांवको धारण करती हैं और उनको हलावें चलावें हैं।

टेढी रहनेवाली चार धमनियोंमें एक एकमेंसे उत्तरोत्तर सैकडों और हजारों होगई हैं, वे असंख्यात हैं कि, जिनमें यह शरीर जालीकी तरह पूर रहा है। जिस प्रकार जालीमें अनेक छिद्र होते हैं, उसी प्रकार इस देहमें जालीके सदृश ये धमनियां पूर रही हैं. इनके मुखोंमें रुएँ लग रहे हैं कि, जिन मुखोंसे पसीना निकलता है और भीतर बाहर रससे सींचा करता है और बाहरसे अभ्यंग, परिषेक, स्नान, आलेपन इनके वीर्यको त्वचामें पकाकर भीतर प्रवेश करती हैं और येही स्पर्शके शुभ अशुभ को ग्रहण करती हैं। जिस प्रकार कमलका दंडा और कमलकन्दमें स्वाभाविक अनेक छिद्र होते हैं, उसी प्रकार धमनियों (नाडियों) में भी स्वाभाविक छिद्र हैं कि, जिनसे रस चारों ओर फिरता है। आकाश आदि पंचभूतोंसे चारों ओर उत्पन्न हुई ये धमनियां, जीवको जिसके कि, ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय और ज्ञान कर्मरूप दोनों स्वभाववाला मन है उसको ज्ञानेंद्रियोंके, कर्मेन्द्रियोंके और मनके विषयोंमें अनुक्रमसे पांच वारमें और विना अनुक्रमसे एकही समयमें जोड देती हैं, और इस प्रकार जोडकर सब विनाशका समय आता हैं तबपीछे पंचमहाभूतरूप होजाती हैं॥ ३०९-३११॥

अथ कण्डराः।

महत्यः स्नायवः प्रोक्ताः कण्डरास्तास्तु षोडश। प्रसारणाकुञ्चनयोर्दृष्टं तासां प्रयोजनम् ३१२ चतस्रो हस्तयोस्तासां तावन्त्यः पादयोः स्मृताः। ग्रीवायामपि तावन्त्यस्तावन्त्यः पृष्ठसङ्गताः॥३१३॥ तत्र पादहस्तगतानां कण्डराणां नखाः प्ररोहाः। ग्रीवानिबन्धनानामधोभागगतानां प्ररोहो मेढ्रः। पृष्ठनिबन्धनानां प्ररोहा निम्बमूर्धोरुवक्षोऽक्षिस्तनपिण्डाः॥

बडी स्नायुयोंको कंडरा कहते हैं और उनकी संख्या सोलह (१६) हैं। ये कंडराये अंगका संकोच विस्तार करनेमें काम आती हैं। ये कंडरायें दोनों हाथोंमें चार (४) पांवोंमें चार (४) गरदनमें चार (४) और पीठमें भी चार हैं, इस प्रकार कुल सोलह (१६) हैं उनमेंसे हाथ तथा पांवोंमें रहनेवाली कंडराओं मेंसे नखरूपी अंकुर फूटते हैं। गरदनकी चार कंडरायें कि जो गरदनमें बँधकर नीचे भागमें गई हैं उनमें लिंगरूप अंकुर निकलता है और पीठमें रहनेवाली चार कण्डराओंमेंसे नितम्ब मस्तक, ऊरुस्थान, वक्षस्थल, नेत्र तथा स्तनरूपी अंकुर निकलते हैं॥ ३१२॥ ३१३॥

अथ रन्ध्राणि।

नेत्रश्रवणनासानां द्वे द्वे रन्ध्रे प्रकीर्तिते। मुखमेहनपायूनामेकैकं रन्ध्रमुच्यते ३१४ दशमं मस्तके प्रोक्तं रन्ध्राणीति नृणां विदुः स्त्रीणामन्यानि च त्रीणि स्तनयोर्गर्भवर्त्मनि॥ ३१५॥

नेत्रोंमें दो (२), कानोंमें दो (२), नाकमें दो (२) मुखमें एक (१), लिंगमें एक (१) और गुदामें एक (१) इस प्रकार नौ (९) और दश (१०) वां मस्तकमें इसी प्रकार पुरुषोंके शरीरमें मुख्य छिद्र दश हैं। स्त्रियोंके शरीरमें उपरोक्त संख्यासे अलग स्तनोंमें दो (२) और गर्भाशयमें एक (१) इस प्रकार तीन छिद्र अधिक हैं॥ ३१४॥ ३१५॥

अथ स्रोतांसि।

मनः प्राणान्नपानीयदोषधातूपधातवः। धातूनां च मला मत्रं मलमित्यादयस्तनौ ३१६ सञ्चरन्ति हि यैर्मार्गैस्तानि स्रोतांसि सञ्जगुः। बहूनि तानि संख्याय शक्यन्ते नैव भाषितुम्॥ ३१७॥

मन, प्राण, अन्न, पानी, दोष, धातु, उपधातु, धातुओंके मल, मूत्र और विष्ठा इत्यादि पदार्थ शरीरमें जिन मार्गोंसे विचरण करते हैं उन मार्गोंको स्रोत (छिद्र) कहते हैं। ये स्रोत

बहुत होनेसे इनकी संख्या नहीं कही जा सकती ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥

अथ जालानि ।

जालानि तु शिरास्नायुमांसास्थनाभुद्भवन्ति हि । तानि चत्वारि चत्वारि सर्वाण्येव च षोडश ॥ ३१८ ॥

निरन्तररन्ध्राणि करकलितानि समूहितानि च जालानीव जालानि । तानि मणिबन्धगुल्फ सस्रृतानि परस्परनिबद्धानि परस्परसंश्लिष्टानि परस्परगवाक्षितानि चेति. यैर्गवाक्षितमिदं शरीरम् ॥

अयमर्थः—एकस्मिन् मणिबन्धे एकं जालं शिरायाः, अपर स्नायोः, तृतीयं मांसस्य, चतुर्थमस्थ्नः, एवं चत्वारि जालानि । एतेन इतरमणिबन्धो गुल्फौ व व्याख्यातौ । गवाक्षितं विरचितं निरन्तरजालाकाररन्ध्रनिकरपरिकलितमित्यर्थः ॥

ये जाल शिरा (स्नायु) मांस और अस्थियोंसे बाने हैं, ये एक एक स्थानमें चार चार हैं, इस प्रकार सब मिलकर सोलह (१६) हुये । निरन्तर अनेक छिद्रोंसे युक्त और परस्पर मिले हुए जालके सदृश शरीरके भीतर भी जाल हैं । वे पहुँचे और टकनेमें स्थित परस्पर बँधे हुए, मिले हुए और छिद्रयुक्त होते हैं, जिनसे कि यह शरीर जालोंके समान छिद्रयुक्त है । इसका तात्पर्य यह है कि, एक हाथके पहुँचेमें एक शिराका, दूसरा स्नायुका, तीसरा मांसका और चौथा अस्थिका इस प्रकार ४ जाल हैं. दूसरे हाथके पहुँचेमें और दोनों पांवोंके टकनोंमें भी इसी प्रकार चार चार जाल हैं जिस प्रकार जालीके छिद्र मिले हुए होते हैं उसी प्रकार इसके भी छिद्र भीतर बाहरसे मिले हुए होते हैं ॥ ३१८ ॥

अथ कूर्चाः ।

कूर्चाः स्युर्हस्तयोर्द्वौ तु तावन्तौ पादयोरपि । ग्रीवायामेक एकस्तु मेढ्रे सर्वेऽपि षट् स्मृताः ॥ कूर्चा अपि शिरास्नायुमांसास्थिप्रभवाः स्मृताः ॥

दोनों हाथोंमें दो (२), दोनों पावोंमें दो (२) गरदनमें एक (१) और लिंगमें एक (१) इस प्रकार सब मिलकर छः (६) कूर्चा हैं (कुशापुंजके सदृश पदार्थको कूर्चा कहते हैं वे लाल तेजस्वी होते हैं ।) ये कूर्च शिरा, स्नायु, मांस और अस्थियोंसे बने हैं ॥ ३१९ ॥

अथ रज्जवः ।

पृष्ठवंशस्योभयत्र महत्यो मांसरज्जवः । चतस्रो मांसपेशीनां बन्धनं तत्प्रयोजनम् ॥ ३२० ॥

पीठके बांसोंकी दोनों ओर मांसकी मोटी २ चार (४) रज्जु (डोरी) हैं, मांसकी पेशियोंको बांधकर रखना यह इनका काम है॥३२०॥

अथ सेवन्यः ।

सेवन्यः सप्त तासां तु भवेयुः पञ्च मस्तके । एका शेफसि जिह्वायामेका विध्येन्न ताः क्वचित् ॥ ३२१ ॥

शरीरमें सेवनी सात हैं. उनमेंसे माथेमें पांच (५) हैं, लिंगमें एक (१) और जीभमें एक (१) हैं इनको कभी भी न वेधे, सुईसे मिली हुई जगहके सदृशको सेवनी कहते हैं ॥ ३२१ ॥

संघाताः ।

चतुर्दशास्थ्नां संघातास्तेषां त्रयो गुल्फजानुवंक्षणेषु । एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ । त्रिकशिरसोरेकैकम् । अत्र तु त्रिकपदेन बाहुग्रीवास्थिसंघात उच्यते ॥

हड्डियोंके संघात (समुदाय) चौदह (१४) हैं, उनमेंसे पांवोंके दोनों टकनोंमें दो (२), दोनों घुटनोंमें दो (२), दोनों वक्षणोंमें दो (२), दोनों भुजाओंमें छः (६), त्रिक (गरदन) में एक (१) और मस्तकमें एक (१) इस प्रकार सब चौदह (१४) हुए।

अथ सीमन्ताः।

चतुर्दशैव सीमन्ताः कथिता मुनिपुङ्गवैः। संघाता सीविता यैस्तु सीमन्तास्ते प्रकीर्तिताः ॥ ३२२ ॥

यैः--अस्थिभिः ॥

उत्तम मुनियोंने चौदह (१४) ही सीमन्त कहे हैं जिनसे संघात जोडे गये हैं उन्हीं हड्डियोंको सीमन्त जान लेना ॥ ३२२ ॥

अथ त्वचः।

क्षीरस्य पच्यमानस्य यथा सन्तानिका भवेत्। पच्यमानस्य शुक्रस्य रजसश्च तथा त्वचः। पूर्वाऽवभासिनी तासां सिध्यस्थानं च सा स्मृता ॥ ३२३ ॥

अवभासिनी भ्राजकेन पित्तेन अवभासनात्। परिणाहेन विस्तरितस्य व्रीहेरष्टादशो भागः प्रमाणं यस्याः। व्रीहिरत्र यवः। सा सिध्यपद्मकण्टकयोरधिष्ठानम्।

द्वितीया लोहिता ज्ञेया तिलकालकजन्मभूः ॥ ३२४ ॥

द्वितीया यवषोडशभागप्रमाणा तिलकालकन्यच्छव्यङ्गानामधिष्ठानम् ॥

तृतीया तु भवेच्छ्वेता स्थानं चर्मदलस्य सा ॥ ३२५ ॥

सा यवद्वादशभागप्रमाणा चर्मदलाजगल्लिकामशकानामधिष्ठानम् ॥

ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्रभूमिका ॥ ३२६ ॥

चतुर्थी यवाष्टभागप्रमाणा ॥

पञ्चमी वेदिनी नाम्ना पञ्चभागप्रमाणिका। विसर्पकुष्ठाधिष्ठानं ज्ञेया षष्ठी तु रोहिणी। विख्याता रोहिणी षष्ठी ग्रन्थिगण्डापचीस्थितिः ॥ ३२७ ॥

व्रीहिमात्रप्रमाणा सा रोहिणी ग्रन्थ्यपचीगलगण्डगण्डमालार्बुदश्लीपदानामधिष्ठानम् ॥

स्थूला त्वक्सप्तमी ख्याता विद्रध्यर्यादेः थितस्थि सा ॥ ३२८ ॥

सा सप्तमी व्रीहिद्वयप्रमाणा ॥

तत एवोक्तं शार्ङ्गधरेण--"स्थूला व्रीहिद्विमात्रया" इति। सप्तापि त्वचः समुदिता विंशतितमभागोनषड्यवप्रमाणाः। षडयवप्रमाणं तु अंगुष्ठोदरतुल्यम्। यत उक्तम्---उदरेष्वङ्गुष्ठप्रमाणगाढमाविध्येदिति। एतत् प्रमाणं मांसलेषु स्थूलेषु बोद्धव्यम्, न तु ललाटसूक्ष्मांगुल्यादिषु ॥

जिस प्रकार अग्निसे औटे हुए दूधमेंसे मलाई होती है, उसी प्रकार पित्तसे पके हुए वीर्य और रजसे त्वचा होती है। ये त्वचा सात हैं, इनमें पहिली त्वचाका नाम अवभासिनी है और वह सिध्मनामक एक प्रकारके कोढका स्थान है, वह त्वचा भ्राजक नाम पित्तके प्रकाश युक्त होती है; इससे ही अवभासिनी कहाती है। विस्तारमें जौके बीस भाग करके उसमें अठरहवां भाग जितना होत है उतना इसका प्रमाण है। यह त्वचा जिस प्रकार सिध्मनामक कोढका स्थान है, उसी प्रकार पद्मकंटक नामक कोढका भी स्थान है। दूसरी त्वचाका नाम लोहिता है और उसका प्रमाण जौके सोलहवें भागके सदृश है, यह त्वचा तिलकालक, न्यच्छ और व्यंग (झांई) रोगका स्थान है। तीसरी त्वचाका नाम श्वेता

है, इसका प्रमाण जौके बारहवें भागके सदृश है। यह त्वचा चर्मदलनामक कोढ, अजगल्लिका और मस्से होनेका स्थान है। चौथीका नाम ताम्रा है, उसका प्रमाण जौके आठवें भागके सदृश है; यह त्वचा किलास और श्वित्र नामक कोढका स्थान है। पांचवीं त्वचा का नाम वेदिनी है और उसका प्रमाण जौके पांचवें भागके सदृश है, यह त्वचा विसर्प नामक कोढका स्थान है। छठी त्वचाका नाम रोहिणी है, इसका प्रमाण एक जौ के बराबर है यह त्वचा गांठ, अपची. गलगण्ड, गण्डमाला, अर्बुद और श्लीपदादि रोगोंके उत्पन्न होनेका स्थान है। सातवीं त्वचाका नाम मांसधरा है, यह स्थूल है, इसका प्रमाण दो जौके बराबर है, यह त्वचा विद्रधि आदिकका स्थान है, इसके विषयमें शार्ङ्गधरमें भी कहा है कि-स्थूल त्वचा दो जौके बराबर है सातों त्वचाका प्रमाण इकट्ठा करनेसे बीसवें भागसे न्यून छः जौके बराबर है। छः जौओंका प्रमाण अंगूठेके उदरके बराबर है। अर्थात् इसी कारणसे दूसरे ग्रन्थमें कहा है कि-पेटको शस्त्रसे छेदना होय तो अंगूठेके बराबर छेदे, यह प्रमाण मांससे भरे हुए स्थूल भागोंमें जानना, परन्तु ललाट और अंगुली आदिक पतले भागोंमें नहीं जानना ॥३२३-३२८॥

अथ लोमानि लोमकूपाश्च।

अस्थ्नी मलानि लोमानि चासंख्यानि भवन्ति हि। सन्ति यावन्ति लोमानि तावन्तो लोमपकूकाः ॥ ३२९ ॥

रोम हड्डियोंका मैल है और वे असंख्यात हैं, जितने शरीरमें रोम हैं उतनेही बाल निकलनेके रोमकूप (छिद्र) हैं ॥ ३२९ ॥

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते। सन्निवेशश्च गात्राणां नात्रास्ते कारणान्तरम् ॥ ३३० ॥

निवृत्तिः सिद्धिः। स्वभावात् ईश्वरात्। सन्निवेशो रचनाविशेषः ॥

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तौ ये भवन्ति गुणागुणाः। ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजाः ॥३३१॥ दन्तानां पतनं जन्म पुनः पाते त्वसम्भवः। तलेष्वनुद्भवो लोम्नामेतत्सर्वं स्वभावतः ॥३३२॥

अङ्ग और उपांगोंका बनना तथा शरीरकी रचना स्वभावसे ही होती है, इनमें अन्य कोई कारण नहीं है, गर्भके अंग तथा उपांग बननेमें जो कोई गुण दोष होता है वह गर्भमें आये हुए जीवके धर्म और अधर्मके निमित्तसे होता है, ऐसा जानना। पहिली वारके दांत गिर जाने पर दूसरी वार जमते हैं, और दूसरी वार गिरनेपर पीछे नहीं जमते। हाथ पांवके तलुए में स्वभावसे ही रोम उत्पन्न नहीं होते, इनका अन्य कारण नहीं है ॥३३०-३३२॥

गर्भे मासिमासि यद्भवति तदाह।

गर्भाशये निपतितं यादृक् शुक्रं तथाऽऽर्तवम्। तादृगेव द्रवीभूतं प्रथमे मासि तिष्ठति ॥३३३॥ मरुत्पित्तकफैस्तत्स्थैः पच्यमानं द्वितीयके। कललस्थं महाभूतं समुदायं घनीभवेत् ॥३३४॥ अत्र मरुत्कफयोरपि पाकेहेतुत्वं तयोरप्यूष्मणोऽविकरणत्वात्। यत उक्तं चरकेभौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः। तृतीये मासि शिरसो हस्तयोः पादयोस्तथा ॥ ३३५ ॥ पिण्डकाः पंच सिध्यन्ति सूक्ष्माङ्गावयवास्तनोः। सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि चतुर्थे स्युः स्फुटानि हि ॥३३६॥ हृदयव्यक्तभावेन व्यज्यते चेतनापि च। तस्माच्चतुर्थे गर्भस्तु नानावस्तूनि वाञ्छति ॥३३७॥ ततो द्विहृदया यत्स्यान्नारी दौहदिनी मता। दौहदावज्ञया कुब्जं कुणिं षण्ढं च वामनम्। विकृताक्ष-

मनक्षं वा पुत्रं नारी प्रसूयते ॥ ३३८॥ यतः स्त्री दौहृदं प्राप्य वीर्यवन्तं चिरायुषम्। पुत्रं प्रसूयते तस्मात्तस्यै वाञ्छितमर्पयेत् ॥ ३३९ ॥ इन्द्रियार्थांस्तु यान्यान् सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी। गर्भबाधाभयात्तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत् ॥३४०॥

भोक्तुम्--उपभोक्तुमित्यर्थः॥

सा प्राप्तदौहृदा पुत्रं जनयेत्तु गुणान्वितम्। अलब्धदौहृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् ॥३४१॥ येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदे साऽवमानिता। प्रसूयते सुतं सार्ति तस्मिँस्तस्मिँ स्तदिन्द्रिये ॥ ३४२ ॥

सार्तिम्--सव्यथम्॥

दौहृदविशेषफलमाह।

राजसन्दर्शने यस्या दौहृदं जायते स्त्रियाः। अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते॥ ३४३ ॥ दुकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दौहृदात्। अलङ्कारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ ३४४ ॥ आश्रमे संयतात्मानं धर्मशीलं प्रसूयते। देवताप्रतिमायां तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥३४५॥

आश्रमे तपस्विनामाश्रमे दौहृदात्। पार्षदोपमं प्रमथोपमम्॥

दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते। रक्ताक्षं लोमशं शूरं महिषामिषदौहृदात् ॥३४६॥ वाराहमांसे स्वप्नालुं शूरं सञ्जनयेत्सुतम्। मृगमांसे तु तच्छायं विक्रान्तं वनचारिणम् ॥३४७॥अतोऽनुक्तेषु या नारी दौहृदं विदधाति हि। शरीराचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति। पञ्चमे मानसं षष्ठे बुद्धिश्चातिप्रबुद्ध्यते ॥ ॥ ३४८ ॥ सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि भृशं व्यक्तानि सप्तमे। ओजोऽष्टमे सञ्चरति मातापुत्रौ मुहुः क्रमात् ॥३४९॥ तेन तौ म्लानमुदितौ स्याता जातो न जीवति। न जीवत्यष्टमे जातस्तत्रौजो न स्थिरं यतः। तथा नैर्ऋत्यभागत्वाद्दापयेत्तद्बलिं ततः ॥३५०॥ नैर्ऋत्याय भागश्च बालेषु रुद्रेण दत्तः। यत उक्तं कुमारतन्त्रे--"अष्टमे मासि नैर्ऋत्याय मांसौदनं बलिं दापयेत्" इति ॥

नवमे दशमे मासि नारी बालं प्रसूयते। एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः॥३५१॥

वीर्य और रज जब गर्भाशयमें जैसा गिरता है तब वह वैसाही द्रवरूप (पतला) पहिले मासमें रहता है,यह गर्भाशयमें रहनेवाले बात, पित्त और कफसे पककर वीर्य और रजमें रहनेवाला पंचमहाभूतका समुदाय दूसरे महीनेमें घन (गाढा होजाता है, वायु और कफसे भी गर्भपाक होता है, क्योंकि उसमें भी गर्मीरहती है। चरकमें कहा है कि-'पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और आकाश इस प्रकार पांच प्रकारकी गर्मी है'' तीसरे महीनेमें दोनों हाथोंके, दोनों पांवोंके और एक मस्तकका इस प्रकार पांच पिंड और शरीरके सूक्ष्म अवयव निकलते हैं। चौथे महीनेमें सम्पूर्ण अंग और उपांग स्पष्ट होते हैं, हृदयकी स्पष्टता होनेसे चेतना भी स्पष्ट होजाती है। इस कारण गर्भको चौथे महीनेमें अनेक वस्तुओंकी इच्छा होने लगती है। एक अपना और दूसरा गर्भका इस प्रकार उस समयमें स्त्रीके दो हृदय होते हैं इस कारण गर्भिणी स्त्री दौहृदिनी कहाती है। गर्भवाली स्त्रीके इच्छा पूर्ण न होनेमे अर्थात जिस वस्तुपर इच्छा हो वह न देनेसे वह स्त्री कुबडा, टोंटा, नपुसक,बौना,

बुरे, नेत्रवाला अथवा अंधा बालक उत्पन्न करती है । गर्भवाली स्त्रीको खाने पीने आदिकी जो इच्छा हो और वह पूर्ण हो जाय तो वह स्त्री पराक्रमी और बडी आयुवाला बालक जनती है, इसलिये उसको जिस वस्तुकी अभिलाषा हो वही वस्तु देनी चाहिये। गर्भिणी स्त्री जो जो वस्तुएँ भोगनेकी इच्छा करे, वह वह वस्तु गर्भबाधाके भयसे वैद्य उसको देवे । जब इच्छा पूरी होजाय तब स्त्री गुणवान् पुत्र जनती है और जिनकी इच्छा पूरी नहीं होती उन स्त्रियोंके गर्भमें अथवा अपने शरीरमें अनेक बाधा उत्पन्न होती है। गर्भिणी स्त्रियोंकी इच्छित वस्तुएँ जिस इन्द्रियके विषय संबंधी हों उनकी इच्छा पूर्ण न होनेसे उन उन इंद्रियोंमें ही व्यथावाला पुत्र होता है । जिस स्त्रीके राजाके दर्शन करनेकी इच्छा हो तो स्त्री धनवान और अत्यंत पूज्य पुत्र जनती है । जिस स्त्रीको उत्तम वस्त्र रेशमी वस्त्र और आभरण आदिकी इच्छा हो तो स्त्री अलंकारोंकी इच्छा करनेवाला ललित पुत्र जनती है । जो स्त्री तपस्वियोंके आश्रममें जानेकी इच्छावाली हो वह जितेंद्रिय और धर्मात्मा संतान जनती है, जो स्त्री देवताकी मूर्तिका दर्शन करनेकी इच्छा करे वह स्त्री सदा पार्षदके सदृश पुत्र जनती है । स्त्रीको सर्पादिककी जाती देखनेकी इच्छा हो तो स्त्री हिंसाके (हत्यारे) स्वभाववाला पुत्र जनती है । भैंसका मांस खानेकी इच्छा हो तो वीर, लाल नेत्रवाले और अधिक रोमवाले पुत्रको जनती है । सूकरका मांस खानेकी इच्छा होय तो शूरवीर और विशेष निद्रालु पुत्र जनती है । हिरनका मांस खानेकी इच्छा हो तो हिरनकी कांतिवाला पराक्रमी और वनमें फिरनेवाला बालक जनती है और जिस स्त्रीको इनमें कहीहुई वस्तुओंके अतिरिक्त किसी वस्तुकी इच्छा हो तो स्त्री उसकी सदृश शरीर आचार और स्वभाववान् पुत्रको जनती है। पांचवें महीनेमें मन प्रगट होता है, छठे महीनेमें विशेषकर बुद्धि विकसित होती है । सातवें महीनेमें समस्त अंग और उपांगोंकरके स्पष्ट हो जाता है । आठवें महीनेमें ओज माता और पुत्रमें क्रमसे संचार करता है उससे स्त्री और गर्भ बारंबार मलिन (कुम्हलाए) मुदित रहते हैं । इस कारण जो बालक आठवें महीनेमें उत्पन्न होता है वह जीवित नहीं रहता, उसका कारण यह है कि, उस महीनेमें ओज स्थिर नहीं रहता, तथा आठवें महीनेमें बालकके शरीरपर नैर्ऋत्य नामक देवताका भाग लगता है, इस कारण आठवें महीनेमें उस देवताका दान देवे, बालकके शरीरमें नैर्ऋत्यदेवताका भाग रहने दिया है. यही कुमारतंत्रमें भी कहा है कि, " आठवें महीनेमें नैर्ऋत्य देवताको मांसयुक्त भातका बलिदान देवे । " स्त्री नववें वा दशवें महीनेमें बालक जनती हैं, कोई कोई ग्यारहवें और बारहवें महीनेमें भी जनती हैं, कोई विकार होय तो इससे उपरांतमें भी जनती है ॥ ३३-३५१ ॥

गर्भे यदङ्गं प्रथमं भवति, तदाह ।

शिरो भवति चाङ्गस्य पूर्वमित्याह शौनकः । शिरस्थेवोपजायन्ते प्रधानानीन्द्रियाणि यत् ॥ ३५२ ॥ हृदयं जायते पूर्वं कृतवीर्योऽवदन्मुनिः । बुद्धेश्च मनसश्चापि यतस्तत्स्थानमीरितम् ॥ ३५३ ॥ पाराशर्य इति प्राह पूर्वं नाभिसमुद्भवः । प्राणो यत्र स्थितो देहं वर्द्धयत्यूष्मसंयुतः ॥ ३५४ ॥ पाणिपादं भवेत् पूर्वं मार्कण्डेयमुनेर्मतम् । देहिनःसकलाश्चेष्टाः पाणिपादाश्रया यतः ॥ ३५५ ॥ प्रथमं जायते कोष्ठं ततः सर्वांगसम्भवः । एतत्तु कथयामास गौतमो मुनिपुंगवः ॥ ३५६ ॥ सर्वाण्यंगापांगानि युगपत् सम्भवन्ति हि । सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यंते मतं धन्वन्तरेरिदम् ॥ ३५७ ॥ आम्रस्यानुफले भवन्ति युगपन्मांसास्थिमज्जादयो लक्ष्यन्ते न पृथक्पृथक्तनुतया

पुष्टान्त एव स्फुटाः एवं गर्भसमुद्भवे त्ववयवाःसर्वे भवन्त्येकदा लक्ष्याःसूक्ष्मतया न ते प्रकटतामायान्ति वृद्धिं गताः ॥ ३५८ ॥

मज्जादयः इति आदिशब्देन त्वक्केशरमज्ञात्वगंकु वृन्तानि गृह्यन्ते ॥

शौनक ऋषि कहते हैं कि-"सम्पूर्ण अंगोंमें प्रथम मस्तक उत्पन्न होता है, क्योंकि मुख्य इन्द्रियाँ मस्तकमेंही होती हैं" कृतवीर्यमुनि कहते हैं कि-- "प्रथम हृदय उत्पन्न होता है, क्योंकि, मनका और इन्द्रियोंका स्थान हृदयही कहा है" पाराशर्यमुनि कहते हैं कि-- "प्रथम नाभि उत्पन्न होती है, कारण--जिसमें रहकर प्राण गरमीकी सहायतासे देहको बढाते हैं, ।" मार्कण्डेय मुनिका मत यह है कि-"संपूर्ण प्राणियोंमें हाथ पाँवहीसे चेष्टा होती है. इस कारण हाथ और पाँवही प्रथम उत्पन्न होना सम्भव है"। मुनियोंमें उत्तम गौतम मुनि कहते हैं कि--"प्रथम कोठा (धड) उत्पन्न होता है" और पीछे सम्पूर्ण अंग उत्पन्न होते हैं, परन्तु भगवान् धन्वन्तरिका मत यह है कि-"इस प्राणीके सम्पूर्ण अंग और उपांग एकही साथ होते हैं, परन्तु सूक्ष्म होनेसे देखनेमें नहीं आते जैसे बहुत छोटे छोटे आमके फलमें मांस (गूदा), हड्डी (गुठली), मज्जा (मींग), छाल, केशर, मज्जाकी छाल और अंकुर आदिके पदार्थ एकही समयमें उत्पन्न होते हैं परन्तु सूक्ष्म होनेसे अलग अलग नहीं दीखते और जब पुष्ट होते हैं तब स्पष्ट दीखने लगते हैं। उसी प्रकार गर्भमें सम्पूर्ण अवयव एकही समय उत्पन्न होते हैं, परन्तु सूक्ष्म होनेसे दीखते नहीं हैं। जब बढ़ जाते हैं तब स्पष्ट दीखने लगते हैं" ॥ ३५२-३५८ ॥

अथ शरीरे पितृज--मातृज--रसजात्मजा भागा उच्यन्ते।

तत्र -केशाः श्मश्रु च लोमानि नखा दन्ताः शिरास्तथा। धमन्यः स्नायवः शुक्रमेतानि पितृजानि हि ॥ ३५९ ॥ मांसासृङ्मज्जमेदांसि यकृत्प्लीहान्त्रनाभयः। हृदयं च गुदं चापि भवन्त्येतानि मातृतः ॥ ३६० ॥ शरीरोपचयो वर्णो बलं देहस्थितिस्तथा। रसादेतानि जायन्ते भिषजो मुनयो जगुः ॥ ॥ ३६१ ॥ ज्ञानं विज्ञानमायुश्च सुखदुःखादिकं तथा। इन्द्रियाणि च सर्वाणि भवन्त्येतानि चात्मनः ॥ ३६२

दुःखादिकामित्यादिशब्देन नानायोनिजन्मादिकमुच्यते। आत्मनःआत्मसन्निकर्षात् न तु अत्मनो जायन्ते, आत्मनो निर्विकारात् प्रकृति भावानुपपत्तेः ॥

केश, दाढी, मूँछ, रोम, नख, दांत, शिरायें, धमनी, स्नायु और वीर्य इतने भाग पितासे उत्पन्न होते हैं। मांस, रक्त, मज्जा, मेदा, कलेजा प्लीहा आँतें, नाभि, हृदय और गुदा, इतने भाग मातासे उत्पन्न होते हैं। शरीरका उपचय (बढ़ना) वर्ण बल और देहकी स्थिति ये सब रससे प्रगट होते हैं, ऐसा वैद्य और मुनियोंने कहा है। ज्ञान, विज्ञान, आयु, सुख.दुःख सम्पूर्ण इन्द्रियाँ और अनेक योनियोंमें जन्म होना आदि आत्मासे होता है। ऊपर यह जो कहा कि ज्ञान आदि और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ आत्मासे होती हैं' इस कहनेका प्रयोजन यह है कि आत्माके सन्निकट होनेसे उत्पन्न होते हैं। निर्विकार आत्माके तो कोईभी वस्तु उत्पन्न नहीं होतीहै॥३५९ ३६२॥

गर्भस्य किंकिं विशिष्टोपकारकं तत्तदाह।

अग्नीषोमौ मही वायुर्नभः सत्त्वं रजस्तमः। पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मा गर्भं सञ्जीवयन्ति हि ॥ ३६३ ॥

अग्निरत्र पाचकालोचकरञ्जकभ्राजकसाधकानाम्, तथा पांचभौतिकानां, तथा सप्तधातुगतानामग्नीनां शक्तिरूपतया अवस्थितो वाचोऽधिदेवत्वं प्राप्तो बोद्धव्यः, स पाचकादिकर्मणा जीवयति । सोमश्च पंचात्मकश्लेष्मरसशुक्रादीनां सोमात्मकानां भावानां रसेन्द्रियस्य च शक्तिरूपतया अवस्थितो मनसश्चाधिदेवत्वं प्राप्तो बोद्धव्यः, स च सौम्यधातोरोजः प्रभृतेः पोषणेन पवनपावकसंशुष्कभागस्य आर्द्रताविधानेन जीवयतीति शेषः । मही च जलेन क्लिन्नस्यापि कठिनविधानेन। वायुर्दोषधातुमलाङ्गोपाङ्गदीनां संचारणेन उच्छ्वासनिः श्वासाभ्याम्। नभो मनोरूपतया परिणतं जीवात्मनः शरीरान्तरे जीवनग्रहणमोक्षणे हेतुरिति तदपि जीवयति। पञ्चेन्द्रियाणि–श्रोत्रत्वङ्नेत्रजिह्वाघ्राणानि शब्दादिग्रहणकर्मणा । भूतात्मा–कर्मपुरुषः स च अशेषस्यैव राशेश्चैतन्यहेतुर्जीवयतीति ॥

अग्नि, सोम, पृथ्वी, वायु, आकाश, सत्त्व. रज, तम, पांच इन्द्रियाँ और प्रारब्ध कर्म ये ही गर्भको जिलाते हैं । यहां अग्निशब्दसे पाचक, भ्राजक, आलोचक, रंजक और साधक इन पांच प्रकारके पित्तोंमें तथा पंचभूतोंमें रहनेवाली गर्मियोंकी तथा सात धातुवोंमें रहनेवाली अग्नियोंकी शक्तिरूपसे स्थित अग्नि जो कि, वाणीके अधिदेवत्यको प्राप्त हुई है, वह पाचक आदि कार्योंसे जिलाती है। पांच प्रकारका कफ, रस और वीर्य आदि चन्द्ररूपसे स्थित चन्द्ररूप पदार्थोंकी और रसना इन्द्रियकी शक्तिरूपसे स्थित चन्द्रभी जो कि, मनके अधिदेवत्वको प्राप्त हुआ है वह ओज आदि सौम्य धातुओंके पोषणसे और वायु तथा अग्निसे सूखे हुए भागको आर्द्र करके गर्भको जिलाता है । पृथ्वी जलसे भीजी होनेपर भी कठिन गुणसे गर्भको जिलाती है। वायु दोष, धातु, मल, अंग और उपांगादिके चलानेसे गर्भकी रक्षा करती है । आकाश अवकाशरूप होनेसे उच्छवास और निःश्वासके मार्ग होकर गर्भका पालन करता है । सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण मनरूपसे बदलकर जीवात्माके शरीरान्तरमें जीवके ग्रहण और त्याग और मुक्तिप्रदान करनेके हेतु होनेके कारण गर्भको जिलाते हैं। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और घ्राण ये पांचों इन्द्रियाँ अनुक्रमसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इनके ग्रहण करनेसे पालती हैं, प्रारब्धकर्म सम्पूर्ण देहमें चैतन्य रहनेका कारणरूप है इस कारण यह भी गर्भको जिलाता है ॥ ६३ ॥

अपर गर्भस्य जीवनोपायमाह ।

गर्भस्य नाभिनाड्या तु नाडी रसवहा स्त्रियाः । संलग्ना तेन गर्भस्य वृद्धिर्भवति नित्यशः ॥ ३६४ ॥ निश्वासोच्छ्वासंक्षोभस्वप्नांशान् सोऽधिगच्छति । मातुर्निःश्वसितोच्छ्वासंक्षोभस्वप्नसंभवान् ॥ ३६५ ॥

संक्षोभः-सञ्चलनम्, माता निःश्वासादिकाः याश्चेष्टाः करोति तास्ता गर्भोऽपि करोतीत्यर्थः ॥

स्त्रीके रसकी वहनेवाली नाडी गर्भकी नाभिकी नाडीके साथ लगी हुई है, इससे जो कुछ गर्भवती भोजन करती है, उसका रस गर्भके शरीरमें प्रवेश करता है, उससे नित्य गर्भकी वृद्धि होती है। गर्भको माताका निःश्वास होनेसे निःश्वास, उच्छवास होनेसे उच्छ्वास, सचैलन होनेसे संचलन और स्वप्न होनेसे स्वप्न प्राप्त होता है अर्थात् माता निःश्वास आदि जो जो चेष्टायें करती है वे २ चेष्टायें गर्भ भी करता है ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥

अथ गर्भवृद्धिहेतूपायावाह।

गर्भस्य नाभिमध्ये तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम्। तदा धमति वातश्च देहस्तेनास्य वर्धते ॥ ३६६ ॥ ऊष्मणा सहितश्चापि दारयत्यस्य मारुतः। ऊर्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च स्रोतांसि तु यदा तथा ॥ ३६७ ॥

यथा यथा दारयति विस्तारयति तथा तथा देहो वर्धत इति पूर्वेणान्वयः॥

गर्भकी नाभिके मध्यमें एक अविचल तेजका ज्योतिःस्थान है. उस स्थानमें सदा पवन चलती रहती है, उससे गर्भका शरीर वृद्धि पाता है। गर्मीकी सहायतासे वायु गर्भके ऊँचे नीचे और आडे स्रोतोंमें (मलमूत्र आदि चलनेके मार्गोंमें) जितना जितना विस्तारित होता है उतना उतना ही गर्भका शरीर बढता जाता है॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥

दृष्टिरोमकूपानामवृद्धिमाह।

दृष्टिश्च रोमकूपाश्च न वर्धन्ते कदाचन। ध्रुवाण्येतानि मर्त्यानामिति धन्वतरेर्मतम् ॥ ३६८ ॥

मनुष्योंके रोमकूप (रोओंके छिद्र) और दृष्टि (नेत्रकी पुतली) यह जितने २ प्रथम होते हैं उतने उतनेही रहते हैं बढते नहीं हैं. ऐसा धन्वन्तरिका मत है॥ ३६८ ॥

नखकेशानां सदा वृद्धिमाह।

शरीरे क्षीयमाणेऽपि वर्धेते द्वाविमौ सदा। स्वभावं प्रकृतिं कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥ ३६९ ॥

प्रकृति कृत्वा कारणं कृत्वा। स्थितिः मर्यादा

शरीर क्षीण होजानेपर भी अर्थात् वृद्धावस्थामें भी नख और केश दोनों स्वभावसे ही सदा बढते रहते हैं॥ ३६९ ॥

अचेतनानि अङ्गानि आह।

चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः। केशलोमनखाग्रांतर्मलद्रव्यगुणैर्विना ३७०

मन और इन्द्रियोंके सहित शरीर चेतनका स्थानरूप है, परंतु केश, रोम, नखोंके अग्रभाग, भीतरके मलरूप पदार्थोंमें और भीतरके गुणोंमें चेतना नहीं है॥ ३७० ॥

गर्भस्य वातविण्मूत्रोत्सर्गाकरणे कारणमाह।

वातात्पत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाशयस्य च। वातमूत्रपुरीषाणि गर्भस्था न विमुंचति ३७१

अयोगात्-ईषद्योगात्।

वायु-अल्प होनेसे और वायुका तथा पक्वाशयका थोडा योग होनेसे गर्भमें रहनेवाला जीव नीचेको वायु और मूत्र तथा विष्ठाको नहीं छोडता॥ ३७१ ॥

गर्भारोदने कारणमाह।

जरायुणा मुखे छन्ने कण्ठे च कफवेष्टिते। वायोर्मार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थःप्ररोदिति ३७२

जरायु (झिल्ली) के द्वारा मुख ढका रहनेसे कंठ कफसे घिरा रहनेसे और वायुसे मार्ग रुकनेसे गर्भमें रहनेवाला जीव नहीं रोता है॥ ३७२ ॥

अथ गर्भवतीकृत्याकृत्यानि।

गर्भिणी प्रथमादह्नःप्रहृष्टा भूषिता शुचिः। भवच्छुक्लाम्बरधरा गुरुविप्रार्चने रता ॥ ३७३ ॥ भोज्यं तु मधुरप्रायं स्निग्धं हृद्यं द्रवं लघु। संस्कृतं दीपनीयं तु नित्यमेवोपयोजयेत् ॥ ३७४ ॥ गर्भिणी न तु कुर्वीत व्यायाममपतर्पणम्। व्यवायं च न सेवेत न कुर्यादतितर्पणम् ॥ ३७५ ॥ रात्रौ जागरणं शोकं यानस्यारोहणं तथा। रक्तमोक्षं वेगरोधं न कुर्यादुत्कटासनम् ॥३७६॥ दोषाभि-

घातैर्गर्भिण्या यो यो भागः प्रपीड्यते। स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥३७७॥ मलिनां विकृताकारां हीनाङ्गीं न स्पृशेत्स्त्रियम्। न जिघ्रेदपि दुर्गन्धं न पश्येन्नयनाप्रियम् ॥ ३७८ ॥ वचांसि नापि शृणुयात्कर्णयोरप्रियाणि च। नान्नं पर्युषितं शुष्कं भुञ्जीत क्वथितं न च ॥ ३७९ ॥ चैत्यश्मशानवृक्षांश्च भावांश्चाप्ययशस्करान्। बहिर्निष्क्रमणं क्रोधं शून्यागारं च वर्जयेत् ॥ ३८० ॥ नोच्चैर्ब्रूयान्न तत्कुर्याद्येन गर्भो विनश्यति। तैलाभ्यङ्गोद्वर्तनं च नात्यर्थं कारयेदपि ॥ ३८१ ॥ नामृद्वास्तरणं कुर्यान्नात्युच्चं शयनासनम्। एतांस्तु नियमान् सर्वान् यत्नात्कुर्वीत गर्भिणी ॥ ३८२ ॥

गर्भिणी स्त्री प्रथम दिनसे ही आनन्दमें मग्न, भूषणोंसे युक्त तथा पवित्र रहे; श्वेत वस्त्रोंको धारण करे गुरु और ब्राह्मणोंके पूजनमें तत्पर रहे, अधिकतर मधुर, स्निग्ध, हृदयको प्रिय, पतले और हलके, शुद्ध, भले प्रकार बने हुए और अग्निको दीपन करनेवाले पदार्थ सेवन करे. गर्भिणी स्त्री परिश्रम, अपतर्पण (लंघन) मैथुन तथा अतितर्पण (बहुत भोजन) इत्यादि कभी न करे। रात्रिमें जागरण, शोक,सवारी, रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना), मल, मूत्र आदिके वेगोंको रोकना और घुटुओंसे बैठना इत्यादि कार्य न करे। शरीरमें दोषोंके आघातसे गर्भिणीके जो जो भाग पीडित होते हैं, गर्भमें रहनेवाले बालकके भी उन उनही भागोंमें पीडा होती है गर्भवती स्त्री मलिन, कुरूप, ओछे अंगवाली ऐसी स्त्रियोंका स्पर्श नहीं करे। दुर्गन्धित पदार्थको नहीं सूंघे। जो नेत्रोंको बुरा लगे उसको न देखे। जो कानोंको अप्रिय लगे ऐसे वचन नहीं सुने। बासी,सूखा और क्वाथके सदृश अन्न नहीं खाय। चैत्यवृक्ष (अश्वत्थादि देवतानिवास), श्मशानके वृक्ष और जो प्रतिष्ठानाशक कार्य हैं, उनके पास नहीं जाय। घरसे बाहर नहीं निकले, क्रोध नहीं करे, सूने घरमें नहीं जाय, ऊंचेसे नहीं बोले और जिससे गर्भ नष्ट होजाय ऐसे कार्य न करे। शरीरमें तैल नहीं लगावे उबटन नहीं मले, कठोर बिछौना नहीं करे और सोनेकी शय्या बहुत ऊँची न करे। ये सम्पूर्ण नियम गर्भवती स्त्री प्रयत्नसे पालन करे ॥ ३७३-३८२ ॥

अथ प्रसवमासानामाह।

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते। एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः॥३८३॥

नौवें, दशवें, ग्यारहवें अथवा बारहवें महीनेमें भी स्त्री गर्भको जनती है और कुछ विकार हो तो इससे उपरान्त समयमें भी जनती है ॥ ३८३ ॥

अथ सूतिकागृहकृतिः।

अष्टहस्तायतं चारु चतुर्हस्तविशालकम्। प्राचीद्वारमुदग्द्वारं विदध्यात्सूतिकागृहम् ॥ ३८४ ॥

आठ हाथ लम्बा, चार हाथ चौडा, सुन्दर, पूर्वद्वारका अथवा उत्तरद्वारका ऐसा प्रसूतिभवन होना चाहिये ॥ ३८४ ॥

आसन्नप्रसवाया लक्षणमाह।

जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबन्धने। सशूले जघने नारी विज्ञेया प्रसवोत्सुका ॥ ३८५ ॥ आसन्नप्रसवायास्तु कटीपृष्ठं तु सव्यथम्। भवेन्मुहुः प्रवृत्तिश्च मूत्रस्य च मलस्य च ॥३८६॥

कोख शिथिल (ढीली) होजाय. हृदयके बन्धन छूट जाँय और पेडू(जांघों)में शूल होने लगे, उस स्त्रीको तुरन्त जननेवाली जाननी। जो स्त्री तत्काल प्रसूत होनेवाली हो उस स्त्रीकी

कमर और पीठमें पीडा होने लगती है तथा बारंबार मल और मूत्रकी प्रवृत्ति होती है ॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥

अथ आसन्नप्रसवाया उपचारः ।

तैलेनाभ्यक्तगात्रां तां संस्नातामुष्णवारिणा । यवागूं पाययेत्कोष्णां मात्रया धृतसंयुताम् ॥ ३८७ ॥ कृतोपधाने मृदुभिर्विस्तीर्णे शयने शनैः आभुग्नसक्थीचोत्तानानारी तिष्ठेद्व्यथाऽन्विता ३८८

आभुग्नसक्थी—असङ्कोचितोरुः ॥

जब स्त्री प्रसूत होनेको हो तब उसके शरीरमें तेल लगाकर गरम जलसे स्नान करावे, यथायोग्य जिसमें घी पडा हो और किंचित् गरम ऐसी यवागू पिलावे । जब पीडा हो तब स्त्रीको नरम नरम बिछौने युक्त शय्यापर धीरे धीरेसे घुटुओंको मोडकर बिठावे॥३८७॥३८८

अथ जनयित्र्यः ।

चतस्रोऽशङ्कनीयाश्च स्रावणे कुशला हिताः । वृद्धाः परिचरेयुस्तां सम्यक्छिन्ननखाः स्त्रियः ॥ ३८९ ॥

जिनके ऊपर किसी प्रकारका संदेह न हो अर्थात् पूर्ण विश्वासयुक्त, प्रसूति कर्ममें चतुर, परम हितकारिणी, वृद्धा,और नख जिसके कटे हुए हों ऐसी चार दाइयोंसे उस गर्भिणीका उपचार करावे ॥ ३८९ ॥

अथ जनयित्रीकृत्यम् ।

अपत्यमार्गं तैलेन समभ्यज्य समन्ततः। एका तु तासु सुभगे प्रवाहस्वेति तां वदेत् ॥३९०॥ अव्यथा मा प्रवाहिष्ठाः प्रवाहेथा व्यथा यदि । प्रवाहेथाः शनैः पूर्वं प्रगाढं च ततः परम् ॥३९१॥ ततो गाढतरं गर्भे योनिद्वारमुपागते । अपरासहितो गर्भो यावत्पतति भूतले ॥३९२॥

संतान होनेके मार्गको चारों ओर तेल लगा कर उन चार स्त्रियोंमेंसे एक स्त्री उससे कहे कि–हे शुभानने ! प्रवाहण कर, अगर तुझे गर्भकी व्यथा नहीं है तो मत प्रवाहण कर,और यदि गर्भकी तकलीफ है तो प्रवाहण कर परंच पहिले धीरे धीरे पश्चात् जोरसे प्रवाहण कर (गर्भको बाहर ढकेल) तेरा गर्भ योनिके द्वार पर आवे तब जोरसे बाहरको ढकेलना कि,जब तक अपरा (जेर आदि) सहित गर्भ पृथ्वीमें न आजाय, तबतक ॥ ३९०–३९२ ॥

व्यथारहितायाः प्रवाहणाद्वैगुण्यमाह।

मूकं वा बधिरं कुब्जं श्वासकासक्षयान्वितम् । सूते स्रस्ततनुं बालमकाले तु प्रवाहणात् ॥ ३९३ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनय–श्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे गर्भप्रकरणं द्वितीयम् ॥ २ ॥

विना समयके जोर करनेसे गूँगा, बहरा, कुब्ज, श्वास, खांसी और क्षयरोग करके युक्त और शिथिल शरीरवाला बालक उत्पन्न होता है, इसीसे विना समय गर्भको निकाले नहीं ॥ ३९३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीवनी-भाषाटीकायां द्वितीय गर्भप्रकरणम् ॥ २ ॥

अथ बालप्रकरणम् ३.

अथ बालस्य जन्मोत्तरविधिः ।

अथ बाले समुत्पन्ने विदधीत विधिं ततः यथैव कुलवृद्धस्त्रीव्यवहारपरंपरा ॥१॥

बालक उत्पन्न होनेके पश्चात् अपने कुलमें वृद्ध स्त्रियोंके व्यवहारानुकूल जो परंपरा चली आती हो उसी प्रकार बालककी विधि करनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ प्रसूताया नियमानाह ।

प्रसूता हितमाहारं विहारं च समाचरेत्। व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां विवर्ज-

येत् ॥ २ ॥ मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते।स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत् तत्पथ्यमाचरेत् ॥ ३ ॥

प्रसूता स्त्री हितकारक आहार और विहारों को सेवन करे। परिश्रम, मैथुन, क्रोध और शीतल वस्तुका सेवन इत्यादि छोड देवे, क्योंकि मिथ्या आचार (आहार विहारमें भूल होने) से जो सूतिकाको व्याधि उत्पन्न होती हैं, वे व्याधि कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य होती हैं, इसलिये प्रसूतिका स्त्री पथ्य आचरण करे ॥ २ ॥ ३ ॥

प्रसूताया नियमसमयावधिमाह।

सर्वतः परिशुद्धा स्यात्स्निग्धपथ्याऽल्पभोजना। स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता ॥ ४ ॥

सर्वतः परिशुद्धा तु अनवसृष्टदुष्टरुधिरा। अतन्द्रिता-सावधाना ॥

प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्तवे। सूतिकानामहीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ५ ॥

व्युपद्रवां विशुद्धां च विज्ञया वरवर्णिनीम्। ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यो नियमं परिहारयेत् ६

सर्वतः शुद्ध होनेके अनन्तर प्रसूता स्त्री नित्य एक मासपर्यन्त सावधानीसे पथ्य, अल्प और स्निग्ध, (घृतादिक मिले चिकने पदार्थ) भोजन करे। स्वेदन (पसीना निकलना) और अभ्यंग (तेलकी मालिश) करे। 'सर्वतः परिशुद्धा' इस कहनेसे दुष्ट रुधिर आदि निकलकर शुद्ध हुई प्रसूता स्त्री डेढ महीनेके अनन्तर अथवा फिर रजोदर्शन होनेपर 'प्रसूता' नामसे रहित होती है, ऐसा धन्वन्तरिजीका मत है। योग्य तो यह है कि स्त्री उपद्रवरहित शुद्ध शरीरवाली जानकर भी चार मास व्यतीत होजानेपर नियमोंको छोडे ॥ ४-६ ॥

अथ स्तन्यस्वरूपमाह।

रसप्रसादो मधुरः पक्वाहारनिमित्तजः। कृत्स्नाद्देहात्स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ ७ ॥

रसप्रसादः-रसस्य सारः।

परिपक्व आहारसे उत्पन्न हुए रसका मधुरसार सम्पूर्ण देहसे स्तनोंमें आकर स्तन्य दूध) हो जाता है ॥ ७ ॥

अथ स्तन्यस्य प्रवृत्त्यवधिमाह।

स्तन्यं त्रिरात्रात्स्त्रीणां वा चतूरात्रादनन्तरम्। प्रवर्तयन्ति विवृता धमन्योहृदये स्थिताः ॥ ८ ॥

स्त्रीके प्रसूत होनेसे तीन रात अथवा चार रातके अनन्तर हृदयमें रहनेवाली धमनियोंके मुख खुलकर दूधकी प्रवृत्ति होती है अर्थात् दूध को निकालती है ॥ ८ ॥

अथ स्तन्यप्रवृत्तिमाह।

पयः पुत्रस्य संस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि। ग्रहणादप्युरोजस्य शुक्रवत्संप्रवर्तते। स्नेहो निरन्तरस्तस्य प्रवाहे हेतुरुच्यते ॥९॥

पुत्रके स्पर्शसे, दर्शनसे, स्मरणसे और उसके स्तन पकडनेसे भी वीर्यके सदृश दूध प्रवृत्त होता है अर्थात् उतरता है। इसलिये पुत्रके ऊपर निरन्तर प्यार होना ही दूधके उतरनेका मुख्य कारण है ॥ ९ ॥

अथ स्तन्यस्य अल्पताहेतुमाह।

अवात्सल्याद्भयाच्छोकात्क्रोधादत्यपतर्पणात्। स्त्रीणां स्तन्यं भवेत्स्वल्पं गर्भान्तरविधारणात् ॥ १० ॥

पुत्रके ऊपर स्नेह न होनेसे, भयसे, शोकसे क्रोधसे· भूखे रहनेसे अथवा दूसरा गर्भ रहने से स्त्रियोंका दूध थोडा होजाता है ॥ १० ॥

अथ स्तन्यस्य वृद्धिहेतुमाह।

शालिषष्टिकगोधूमान्मांसक्षुद्रझषानपि। कालशाकमलाबूं च नारिकेलं कसेरुकम्॥ ११॥ शृङ्गाटकं वरीं चापि विदारीकन्दमेव च। लशुनं दुग्धवृद्ध्यं स्त्री सेवेत सुमना भवेत्॥ १२॥ कलमस्य तण्डुलानां कल्कं याक्षीरपेषितं पिबति। सा भवति भृशं तरुणी क्षीरभरेणैव तुङ्गकुचयुगला॥ १३॥

स्त्री दूधकी वृद्धिके लिये शालिचावल, साठीचावल, गेहूँ, मांस, छोटी छोटी मछलियां, चौलाईका साग. रामतोरई, नारियल, कसेरू, सिंगाडे, शतावरी, विदारीकन्द और लहसुन इन पदार्थोंका सेवन करे तथा प्रसन्न रहे। जो स्त्री कलमी चावलोंके कल्कको दूधमें पीसकर पीती है उसके दोनों स्तन दूधके भार से ऊँचे होजाते हैं अर्थात् अधिक दूधयुक्त हो जाते हैं॥ ११-१३॥

कलमो धान्यविशेषः तस्य लक्षणमाह।

कलमः कलिविख्यातो जायते स वृहद्वने। काश्मीरदेश एवोक्तो महातण्डुलसंज्ञकः॥ १४॥ रसं विदारीकन्दस्य पिबेत्स्तन्यस्य वृद्धये। तच्चूर्णं तस्य वृद्ध्यर्थं पिबेद्वा क्षीरसंयुतम् १५

कलम एक प्रकारका धान्य होता है। उसके लक्षण ये हैं कि—कलमी धान्य कलि नामसे प्रसिद्ध है, बडे बडे वनोंमें उत्पन्न होता है। और काश्मीर देशमें इसको महातण्डुल कहते हैं। विदारीकन्दका रस पीनेसे अथवा विदारीकन्दका चूर्ण दूधके साथ फांकनेसे स्त्रियोंका दूध बढ जाता है॥ १४॥ १५॥

अथ स्तन्यस्य दुष्टिहेतुमाह।

धात्र्या गुरुभिराहारै र्विहारैर्दोषलैस्तथा। देहे दोषाः प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति॥ १६॥ मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः। दूषयन्ति पयस्तेन शरीरं व्याधयः शिशोः॥ १७॥

भारी आहार और अयोग्य विहारके करने से माता (धाय) के शरीरमें दोषोंका कोप होता है और उससे दूध दूषित हो जाता है। मिथ्या आहार और विहारोंके करनेवाली स्त्रीके दूषित हुए वात, पित्त और कफ दूधको दूषित करते हैं और उस दूषित दूधको पीने से बालकके शरीरमें अनेक रोग उत्पन्न होते हैं॥ १६॥ १७॥

अथ दुष्टस्तन्यस्य लक्षणमाह।

कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम्। पित्तादम्लं च कटुकं राज्योऽम्भसि तु पीति काः॥१८कफदुष्टं तु यत्तोये निमज्जाति च पिच्छिलम्। द्वन्द्वजं तु द्विलिङ्गं स्यात् त्रिलिंगं सान्निपातिकम् १९

जो दूध पानीमें डालनेसे ऊपरको तैरने लगे तथा स्वादमें कसैला हो उसे वातसे दूषित जानना। पानीमें डालनेसे जिसकी पीली २ धारासी होजायँ और स्वादमें खट्टा और चरपरा हो उसको पित्तसे दूषित हुआ जानना। जो दूध पानीमें डालनेसे डूब जाय और लिबलिबासा हो उस दूधको कफसे दूषित हुआ जानना। और जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको दो दोषोंसे दूषित और जिसमें तीनों दोष मिलते हों, उसको सन्निपात से दूषित जानना॥ १८॥ १९॥

अथ दुष्टस्तन्यस्य शोधनविधिमाह।

धात्री क्षीरविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशिनी भार्ङ्गीदारुवचाः पिष्ट्वा पिबेत्सातिविषास्तथा॥२०॥ पाठामूर्वाब्दभूनिम्बदारुशुण्ठीकलिङ्गकैः सारिवामत्स्यपित्ताख्यैः क्वाथः स्तन्यविशोधनः॥ २१॥

मत्स्यपिता-कटुकी ॥

पटोललिम्बासनदारुपाठा मूर्वा गुडूची कटु रोहिणी च ।सनागरं च क्वथितं च तोये धात्री पिबेत् स्तन्यविशुद्धिहेतोः २२

दूधको शुद्ध करनेके लिये माता मूंगका यूष खाय और भारंगी, देवदारू, वच तथा अतीस इनको पीसकर पिये । अथवा पाठा, मूर्वा, नागरमोथा, चिरायता, देवदारु, सोंठ, इन्द्रजौ, सारिवा और कुटकी इनका क्वाथ पीनेसे भी दूध शुद्ध होजाता है । परवल, नीम पीतशाल, देवदारू, पाढ मूर्वा, गिलोय, कुटकी और सोंठ इनका क्वाथ करके पीनेसे भी दूध शुद्ध होजाता है ॥ २०-२२ ॥

अथ शुद्धस्य लक्षणमाह !

नीरे स्तन्यं यदेकीस्यादविवर्णमतन्तुमत् । पांडुरं तनु शीतं च तद्दुग्धं शुद्धमादिशेत् ॥ २३ ॥

जो दूध पानीमें डालनेसे मिल जाय, अन्य रंगका न हो, तार न छूटे, सफेद, पतला तथा किंचित पीत और शीतल हो वह दूध शुद्ध होता है ॥ २३ ॥

धात्रीलक्षणमाह ।

पीताया यदि बालस्य विदध्यादुपमातरम् । सुविचार्य गुणान्दोषान्कुर्य्याद्धात्री तदेदृशीम् ॥ २४ ॥ सवर्णां मध्यवयसं सच्छीलां मुदितां सदा । शुद्धदुग्धां बहुक्षीरः सवत्सामतिवत्सलाम् ॥ २५ ॥ स्वाधीनामल्पसन्तुष्टां कुलीनां सज्जनात्मजाम् । कैतवेन परित्यक्तां निजपुत्रदशं शिशौ ॥ २६ ॥

बालकको दूध पिलानेके लिये जो धाय, रक्खी जाय तो उसके गुण दोषोंको विचारकर रक्खें, अपनी जातिकी, मध्य अवस्थाकी, सरल स्वभाववाली, सदा प्रसन्न रहती हो, अधिक और शुद्ध दूधवाली, पुत्रयुक्त, बहुत प्रेम करनेवाली, अपने अधीन; थोडेसें सन्तुष्ट होनेवाली, कुलीन, सज्जनकी पुत्री, कपटरहित और बालकको अपने पुत्रके सदृश रखनेवाली धाय रखनी चाहिये ॥ २४-२६ ॥

अथ निषिद्धां धात्रीमाह ।

शोकाकुला क्षुधार्ता च श्रान्ता व्याधिमती सदा । अत्युच्चा नितरां नीचा स्थूलाऽजीव भृशं कृशा ॥२७॥ गर्भिणी ज्वरिणी चापि लम्बोन्नतपयोधरा । अजीर्णभोजिनी चापि तथा पथ्यविवर्जिता ॥ २८ ॥ आसक्ता क्षुद्र कार्येषु दुःखार्ता चञ्चलाऽपि च। एतासां स्तन्यपाने न शिशुर्भवति सामयः ॥२९॥

जो स्त्री शोकसे व्याकुल, भूखसे पीडित थकी हुई, सर्वदा रोगवाली, बहुत ऊँची बहुत नीची, बहुत मोटी, बहुत पतली, गर्भिणी ज्वरयुक्त, लम्बे तथा ऊँचे स्तनवाली, अजीर्ण में भोजन करनेवाली, अपथ्य सेवन करनेवाली, छोटे कार्यों में आसक्त, दुःखसे पीडित और चंचल हो, ऐसी धायका दूध पीनेसे बालक रोगी हो जाता है ॥ २७-२९ ॥

अथ बालस्य स्तन्यपानविधिः ।

तत्र माता प्रशस्ताङ्गी चारुवस्त्र पुरोमुखी । उपविश्यासने सम्यग्दक्षिणं स्तनमम्बुना ॥ ३० ॥ प्रक्षाल्येषत्परिस्राव्य मन्त्राभ्यामभिमन्त्रितम् । उदङ्मुखं शिशुं क्रोडे शनैःसन्धाय पाययेत्

माता इत्युपलक्षणम् । धात्री च । ईषत्परिस्राव्य ॥

अन्यथा वैगुण्यमाह सुश्रुतः-

अस्राविते स्तनं बालःपिबन्स्तन्येन भूयसा । पूर्णस्रोता वमीकासश्वासैर्भवति पीडितः ३२

माता अथवा धाय अपना अङ्ग स्वच्छ कर निर्मल वस्त्रोंको धारणकर सम्मुख आसनपर बैठे और अपने दाहिने स्तनको पानीसे धोकर थोडासा दूध निकाल देवे, फिर आगे लिखे दो मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कर उत्तरकी ओर मुख करके और बालकको धीरेसे गोदमें लिटा कर दूध पिलावे, स्तनोंमेंसे किंचित् दूध निकाले विना पिलावे तो उसकी बुराईमें सुश्रुत कहते हैं कि–जिनसे प्रथम थोडा दूध न निकाला हो ऐसे स्तनोंके दूधको बालक पिये तो शरीरके स्रोत पूर्ण होनेसे वमन, खांसी और श्वाससे पीडित होजाता है ॥ ३०-३२ ॥

स्तन्याभिमन्त्रणमाह।

क्षीरनीरनिधिस्तेऽस्तु स्तनयोःक्षीरपूरकः। सदैव सुभगो बालो भवत्वेष महाबलः ॥ ३३ ॥ पयोमृतसमं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने। दीर्घमायुरवाप्नोतु देवाः प्राप्यामृतं यथा ॥३४॥

इमौ मन्त्रौ पित्रा अन्येन वा ब्राह्मणेन पठनीयौ। यावत् मन्त्रपाठस्तावत् मात्रा धात्र्या वा दक्षिणहस्तेन स्तनस्पर्शःकार्यः

"हे शुभानने! तेरे दोनों स्तन दुग्धसे क्षीर-समुद्रके सदृश परिपूर्ण रहें। यह बालक सर्वदा कल्याण पाने वाला और महाबलशाली हो। जिस प्रकार देवता अमृत पीकर बड़े आयुष्मान् हुए इसी प्रकार तेरा पुत्र अमृत-सदृश दूध पीकर चिरंजीव हो।' ये दोनों मन्त्र पितासे अथवा दूसरे ब्राह्मणसे पढवावे और जब तक मन्त्र पढे तबतक माता अथवा धाय अपने दाहिने हाथसे स्तनको स्पर्श किये रहे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ जनन्याः क्षीराभावे धात्र्याश्चा-लाभे प्रकारमाह।

क्षीरसात्म्यतया क्षीरमजां गव्यमथापि वा। दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्बालेभ्यो वीक्ष्य मात्रया॥

क्षीरसात्म्यतयेति। यतः शिशोः क्षीरमेव सात्म्य भवति न तु अन्नादिकम्। आस्तन्य-पर्य्याप्तेरिति। यावत् स्त्रियाः स्तन्यस्य सन्तत-भावेन प्राप्तिर्भवति अथवा यावत् स्तन्यपानस्य योग्यता तावदित्यर्थः ॥

बालकोंकी प्रकृतिके अनुसार दूध ही होता है, अन्नादिक नहीं इसलिये बालककी माताको जबतक दूध होता हो तबतक या बालक जब तक दूध पीनेके योग्य हो तबतक उसको बकरी का अथवा गायका दूध उसकी योग्यतानुसार देवे ॥ ३५ ॥

अथ बालस्य अन्नप्राशनसमयः।

यथोक्तविधिना बालं मासि षष्ठेऽष्टमेपि च। अन्नं संप्राशयेत्किञ्चित्ततस्तद्वर्धयेत् क्रमात् ॥ ३६ ॥

छठे अथवा आठवें मासमें शास्त्रोक्त विधि के अनुसार बालकको किंचित् अन्न प्राशन करावे पश्चात् क्रम क्रमसे उसको बढाता जाय ॥ ३६ ॥

अथ बालस्य परिचर्याविधिः।

बालमङ्के सुखं दध्यान्न चैनं तर्जयेत्क्वचित्। सहसा बोधयेन्नैव नायोग्यमुपवेशयेत् ॥३७॥

अयोग्यम् उपवेशनासमर्थम् ॥

नाकृष्य स्थापयेत्क्रोडे न क्षिप्रं शयने क्षिपेत्। रोदयेन्न क्वचित्कार्ये विधिमाव-श्यकं विना ॥ ३८ ॥

आवश्यको विधिः--भेषजदानतैलाभ्यङ्गो-द्वर्तनादिः ॥

तच्चित्तमनुवर्तेत तं सदैवानुमोदयेत्। विम्नोच्चस्थानेभ्यश्रक्षेत्त प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥

बालकको आनन्दपूर्वक गोदमें लेकर प्रसन्न करे, कभी दुःखी न करे और जो वह सो रहा हो तो सहसा (अचानक) जगावे नहीं और जबतक बैठनेमें असमर्थ हो तबतक

बिठावे भी नहीं, बालकको खींचकर गोदमें न लेवे, शीघ्रतासे शय्यापर भी न डाले, औषधि देना, तेलकी मालिश, उबटन आदि आवश्यक कामके विना किसी काममें रुलावे नहीं, बालकके चित्तानुसार वर्ताव करे और सदैव उसको प्रसन्न रक्खे तथा उसकी नीचे ऊँचे स्थानसेभी यत्नपूर्वक रक्षा करे॥३७-३९॥

बालस्य स्वभावतो हितान्याह ।

अभ्यङ्गोद्वर्त्तनं स्नानं नेत्रयोरञ्जनं तथा।
वसनं मृदु तत्तच्च तथा मृद्वनुलेपनम् ।
जन्मप्रभृति पथ्यानि बालस्यैतानि सर्वथा४०

तेल लगाना, उबटन करना, स्नान, नेत्रोंमें अञ्जन, (सुरमा स्याही) लगाना, कोमल और नवीन वस्त्र पहराना और मृदु पदार्थों का लेप करना ये बालकको जन्मसे ही पथ्य हैं ॥ ४० ॥

बालस्य कवलादेः समयमाह ।

कवलः पञ्चमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्म्म च ।
विरेकः षोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैव मैथुनम् ४१

बालकको औषधि आदिकी कवलविधि करनी हो तो पांचवें वर्षके उपरान्त करे, नस्य कर्म (नाकमें किसी औषधिको डालना) करना हो तो आठवें वर्षके उपरांत करे, विरेचन (जुलाब) करना हो तो सोलह वर्षमें देवे और मैथुनकर्म बीस वर्षसे पहिले करना उचित नहीं अर्थात् इन औषधियोंके पहले करनेसे शरीरमें बहुत विकार होते हैं ॥४१॥

बाल्यादेरवधिमाह ।

सुश्रुतः--वयस्तु त्रिविधं बाल्यं मध्यमं वार्धकं तथा । ऊनषोडशवर्षस्तु नरो बालो निगद्यते ॥४२॥ त्रिविधः सोऽपि दुग्धाशी दुग्धान्नाशी तथाऽन्नभुक् । दुग्धाशी वर्षपर्यन्तं दुग्धान्नाशी शरद्-द्वयम् ॥ ४३ ॥ तदुत्तरं स्यादन्नाशी एवं बालस्त्रिधा मतः । मध्ये षोडशसप्तत्यो-र्मध्यमः कथितो बुधैः ॥ ४४ ॥

चतुर्धा मध्यमं प्राह युवा द्वात्रिंशतो मतः । चत्वारिंशत्समा यावत्तिष्ठेद्वीर्या-दिपूरितः ॥ ततःक्रमेण क्षीणः स्याद्या-वद्भवति सप्ततिः ॥ ४५ ॥

वीर्यादि इति । आदिशब्देन रसादिसर्वधा-त्विन्द्रियबलोत्साहा उच्यन्ते । क्षीणः सर्वधा-त्विन्द्रियबलोत्साहैर्हीनः ॥

ततस्तु सप्ततेरूर्ध्वं क्षीणधातुरसादिकः । क्षीयमाणेन्द्रियबलः क्षीणरेता दिनेदिने ॥ ४६ ॥ वलीपलितखालित्ययुक्तः कर्मसु चाक्षमः । कासश्वासादिभिः क्लिष्टो वृद्धो भवति मानवः ॥ ४७ ॥ बाल्ये विवर्द्धते श्लेष्मा पित्तं स्यान्मध्य-मेऽधिकम् । वार्धके वर्द्धते वायुर्विचार्यै-तदुपक्रमेत् ॥ ४८ ॥

उपक्रमेत्—चिकित्सेत् ।

तन्त्रान्तरे तु—

बाल्याद्वृद्धिश्छविर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्र-विक्रमौ । बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो जीवितं क्रमतो ह्सेत् ॥ ४९ ॥

सुश्रुत कहते हैं-बाल्यावस्था, मध्यमावस्था और वृद्धावस्था इसप्रकार तीन अवस्थायें हैं । उनमें पुरुष जबतक सोलह वर्षसे न्यून अवस्थाका हो.तबतक बालक कहाता है। बालकोंमें भी दूध पीनेवाला, दूध तथा अन्न खानेवाला और केवल अन्नखानेवाला इस प्रकार तीन भेद हैं। एक वर्षपर्यन्त दूध पीनेवाला, तदनन्तर दो वर्षपर्यन्त दूध तथा अन्न खानेवाला और उसके पश्चात् केवल अन्न खानेवाला जानना । सोलह और सत्तर वर्षके मध्यमें मध्यम अवस्था कहाती है, मध्यमके नीचे लिखे चार भेद हैं— उनमेंसे बत्तीस वर्ष पर्यंत युवा रहता है, चालीस वर्षपर्यन्त वीर्य रसआदि सम्पूर्ण धातुएँ तथा

इन्द्रियोंका बल और उत्साहसे परिपूर्ण रहता है, पश्चात् सत्तर वर्ष पर्यन्त अनुक्रमसे सम्पूर्ण धातुएँ, इंद्रियोंका बल और उत्साहसे हीन होता जाता है। सत्तर वर्षसे पश्चात् धातु तथा रस आदि क्षीण होजाते;हैं। दिनोंदिन इन्द्रियोंका बल क्षीण होता है और वीर्य भी क्षीण होता है। वृद्ध मनुष्य वली (गुलझट), पलित (सफेदबाल), खालित्य युक्त हो जाता है, कार्य करनेमें असमर्थता होती है और काश श्वास आदि रोगोंसे दुःखित होता है। बाल्यावस्था में कफ बढता है, मध्यम अवस्थामें पित्त बढता है और वृद्धअवस्थामें वात बढता है, इस प्रकार विचारकर चिकित्सा करनी चाहिये। दूसरे ग्रन्थोंमें लिखा है कि–"दश वर्षतक बालकपन और बीस वर्षतक शरीरकी वृद्धि होती है, फिर तीस वर्षके उपरांत कांति, चालीस वर्षके पीछे स्मरणशक्ति, पचास वर्षके पीछे त्वचा, साठ वर्षके नेत्रकी शक्ति, सत्तर वर्षके पीछे वीर्य, अस्सी वर्षके उपरांत , क्रम, नव्वे वर्षके पश्चात् बुद्धि, सौ वर्षके उपरांत कर्मेन्द्रिय, एकसौ दशवर्षके पीछे चेतना और एकसौ बीस वर्षके पश्चात् जीवन न्यून होजाता है ॥ ४२-४९ ॥

अथ प्रकृतयः।

सप्त प्रकृतयो नृणां वातात्पित्तात्कफात्तथा। संसर्गात्सन्निपाताच्च भवन्ति भिषजां मते ॥ ५० ॥ शुक्रशोणितसंयोगे यो दोषस्तूत्कटो भवेत्। प्रकृतिर्जायते तेन तस्या लक्षणमुच्यते ॥५१॥

वाग्भटे तु आत्रेयादयः–

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टगर्भाशयान्तरे। यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृति सर्वथोदिता ॥ ५२ ॥ सोऽपि दोषः स्वभावावस्थितो न तु दुष्टः। दुष्टेन तु शुक्रशोणितयोर्दुष्टौ शुद्धगर्भासम्भवात् ॥

वात पित्त कफ तीन, द्वन्द्वज तीन और सन्निपातसे एक इस प्रकार वैद्योंको मतानुसार मनुष्योंको सात प्रकृति होती हैं। वीर्य और आर्त्तवके संयोग होनेपर जो अधिक होता है, उसीके अनुसार गर्भमें आने वाले बालककी प्रकृति बनतीहै वाग्भटमें आत्रेय आदि मुनियोंका वचन है कि–"वीर्य, रुधिर और गर्भिणीका किया हुआ भोजन, उसकी चेष्टा और गर्भाशयके भीतर जो दोष अधिक होता है उस दोषके अनुसार मनुष्योंकी प्रकृति बनती है।" (यहां ऐसा समझना कि, उपरोक्त दोषोंसे वीर्य आदि दुष्ट न हुएहों, क्योंकि अपने स्वभावसे रहनेवाले वात पित्तादिक दोषोंके अनुसार मनुष्योंकी प्रकृति होती है। कारण यह है कि, दोष दुष्ट हुए हों तो उससे वीर्य और रुधिरके दुष्ट होनेसे शुद्ध गर्भ रहना असम्भव है) ॥ ५०-५२ ॥

वातादिप्रकृतयः।

जागरूकोऽल्पकेशश्च स्फुटिताङ्घ्रिकरः कृशः। शीघ्रगो बहुवाग्रूक्षः स्वप्ने वियति गच्छति ॥ ५३ ॥ एवंविधः स विज्ञेयो वातप्रकृतिको नरः। पित्तप्रकृतिको लोको यादृशोऽथ निगद्यते ॥ ॥ ५४ ॥ अकालपलितो गौरः क्रोधी स्वेदी च बुद्धिमान्। बहुभोक्ताऽस्त्रनेत्रश्च स्वप्ने ज्योतीषि पश्यति ॥ ५५ ॥ एवंविधो भवे द्यस्तु पित्तप्रकृतिको नरः। श्यामकेशः क्षमी स्थूलो बहुवीर्यो महाबलः ॥ ५६ ॥ स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः। दृश्यते प्रकृतौ यत्र रूपं दोषद्वयस्य तु। द्विसंसर्गेण जानीयात्सर्वलिङ्गैस्त्रिदोषजम् ॥ ५७ ॥

वातप्रकृतिवाला मनुष्य–जागनेवाला (कम सोनेवाला), अल्पकेशयुक्त, फटे हुए हाथ पाँववाला, कृश (दुर्बल), शीघ्र चलनेवाला,

अधिक बोलनेवाला, रूखे शरीरवाला और स्वप्नमें आकाशमार्गसे गमन करनेवाला,इन ल: क्षणोंवाले मनुष्यकी वातप्रकृति होती है । पित्तप्रकृतिवाले मनुष्य-इनके बाल अकालमें ही सफेद होजाते हैं, गौरवर्णवाला, क्रोधी, अधिक प्रस्वेद (पसीना) आनेवाला परम चतुर, बहुत भोजन करनेवाला, रक्तनेत्रोंवाला और स्वप्नमें अग्नि बिजली सूर्यादि ज्योतियुक्त पदार्थोंको देखनेवाला इन लक्षणोंसे युक्त मनुष्य पित्तप्रकृतिवाला होता है । कफप्रकृतिवाला मनुष्य-क्षमावान्, काले केशोंवाला, मोटा, वीर्यवान् महाबली और स्वप्नमें जलाशय (नदी तालाब आदि) देखे, इन लक्षणोंवाला मनुष्य कफप्रकृतिवाला होता है । जिसको प्रकृतिमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हों, उसकी प्रकृति दो दोषवाली होती है और जिसकी प्रकृतिनें उपरोक्त वातादि तीनों दोषोंके लक्षण हों, उसकी तीनों दोषोंवाली प्रकृति होती है; ऐसा जानना ॥ ५३-५७ ॥

वाग्भटे—प्रायस्त एव पवनाध्युषिता मनुष्या दोषात्मकाः स्फुटितधूसरकेशगात्राः । शीतद्विषश्चलधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टाः सौहार्ददृष्टिगतयोऽतिबहुप्रलापाः ॥ ॥ ५८ ॥ अल्पपित्तबलजीवितनिद्राः सन्नसक्तबहुजर्जरवाचः । नास्तिका बहुभुजः सविलासा गीतहास्यमृगयाकलिलोलाः ॥ ५९ ॥ मधुराम्लकटूष्णसात्म्यकांक्षा कृशदीर्घाकृतयः सशब्दपानाः । न दृढा न जितेन्द्रिया न चार्या न च कान्तादयिता बहुप्रजा वा ॥ ६० ॥ अक्षीणि चैषां खरधूसराणि वृत्तान्यचारूणि मृतोपमानि । उन्मीलितानीव भवन्ति सुप्ते शैलद्रुमान्ते गगने प्रयान्ति ॥ ६१ ॥ अधन्या मत्सराध्माताः स्तेनाः प्रोद्बद्धपिण्डिकाः । श्वशृगालोष्ट्रगृध्राखुकाकोलूकाश्च वातिकाः ॥ ६२ ॥

वाग्भटमें कहा है कि, विशेष करके वात प्रकृतिवाले पुरुष दुष्टस्वभाववाले होते हैं उनके केश और शरीर फटे हुए और धूसर वर्णवाले होते हैं. शीतके द्वेषी होते हैं, उनकी धृति, स्मृति बुद्धि, और चेष्टा चंचल होनी है, मैत्री दृष्टि और चालमें भी चंचलता दीखती है; बहुत बोलनेवाले होते हैं; पित्त, बल, जीवन और निद्रा ये अल्प होते हैं, टूटे फूटे वचन हकलाकर बोलें,नास्तिक, अधिक भोजन करनेवाले, विलासी, गायन, हास्य, शिकार और कलह (लडाई) करनेमें अत्यन्त रुचिवाले, हों, मधुर, खट्टे, चरपरे और गरम ऐसे पदार्थ अनुकूल आवें; शरीर कृश और लंबा हो; पानी आदि पदार्थ पीनेमें शब्द होय तथा दृढ, जितेन्द्रिय उत्तम स्त्रियोंको प्रिय और अधिक संतान वाले नहीं होते और उनके नेत्र रूक्ष, किंचित् धूम्रवर्ण, गोल, सुन्दरतारहित, मृतकके सदृश और सोनेपर भी खुले हुए रहते हैं। ये स्वप्नमें पर्वतके ऊपर,वृक्षके ऊपर और आकाशमें गमन करते हैं । भाग्यहीन, मत्सरतायुक्त(दूसरेको देखकर जलनेवाले) और चोर होते हैं । तथा उनकी पाँवकी पिंडली गांठदार होती है।कुत्ता, गीदड, ऊँट, गिद्ध, चूहा, कौआ और उल्लूके सदृश वातप्रकृतिवाले होते हैं अर्थात् इनकासा स्वर और रूपादिक वातप्रकृतिवाले मनुष्यके होते हैं ॥ ५८-६२ ॥

पित्तप्रकृतिलक्षणानि ।

पित्तं वह्निर्वह्निजं चैतदस्मात्पित्तोद्रिक्तस्तीव्रतृष्णो बुभुक्षुः । गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्तांघ्रियुग्मः शूरो मानी पिङ्गकेशोऽल्परोमा ॥ ६३ ॥ दयितमाल्यविलेपनमण्डनः सुचरितः शुचिराश्रितवत्सलः । विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो भवति भीषु गतिर्द्विषतामपि ॥ ६४ ॥

मेधावी प्रशिथिलसन्धि बन्धमांसो नारीणामनभिमतोऽल्पशुक्रकामः। आवासश्चलिततरङ्गनीरकेषु भुक्तेऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ ६५ ॥ धर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगन्धिर्भूर्युच्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः। सुप्तः पश्येत्कर्णिकारान्पलाशान्दिग्दाहोल्काविद्युदर्कानलांश्च ॥६६॥ तनूनि पिङ्गानि चलानि चैषां तन्वल्पपक्ष्माणि हिमप्रियाणि। क्रोधेन मद्येन रवेश्च भासा रागं व्रजन्त्याशु विलोचनानि ॥ ६७ ॥ मध्यायुषो मध्यबलाः पण्डिताः क्लेशभीरवः। व्याघ्रर्क्षकपिमार्जारवृकानूकाश्च पैत्तिकाः ॥ ६८ ॥

पित्त अग्निरूप है अथवा अग्निसे उत्पन्न हुआ है इसलिये पित्तप्रकृतिवाले मनुष्यको तृषा और भूँख बहुत लगती है, अंग गोरा तथा गरम होता है; हाथ पाँव तथा मुख रक्तवर्णके होते हैं, केश पीले होते हैं, रोम थोडे होते हैं, शूर और अत्यन्त मानी होता है, पुष्प चन्दनादि लेपनेसे प्रीति करनेवाला, सदाचारी पवित्र, आश्रितोंपर दया करनेवाला, वैभव साहस तथा बुद्धिबल युक्त होता है, भयभीत शत्रूकी भी रक्षा करनेवाला, स्मरणशक्तिवाला, सम्पूर्ण सन्धिबन्धन और मांस शिथिल होता है, स्त्रियोंमें अधिक प्रीति नहीं रखनेवाला, वीर्य तथा कामदेव अल्प होता है, पत्नीकी चलती हुई तरंगके सदृश कांतियुक्त, मधुर, कसैला, कडुवा और शीतल अन्नमें अधिक रुचि होती है, धर्मका द्वेषी, बहुत पसीनेवाला और शरीर दुर्गन्ध युक्त होता है। विष्ठा, क्रोध, जलपान, भोजन और ईर्ष्या अधिक होती है। और स्वप्नमें कनेर, ढाक आदिक पुष्प, दिग्दाह (जलती हुई दिशा), उल्कापात, बिजली, सूर्य तथा अग्नि दिखाई देती है उनकी नेत्रोंकी पुतली पीतवर्ण तथा थोडे पलकोंवाले और शीतलतासे प्रीति करनेवाले होते हैं और क्रोध, मद्य तथा सूर्यकी चमकसे तत्काल रक्तनेत्रवाले होते हैं ये लोग पंडित, क्लेशसे डरनेवाले, मध्यम आयु और बलयुक्त होते हैं; तथा वाघ, रीछ, बन्दर, बिलाव, भेडिया इनकीसी प्रकृतिवाले होते हैं ६२–६८

कफप्रकृतिलक्षणानि।

श्लेष्मा सोमः श्लेष्मलस्तेन सौम्यो गूढस्निग्धश्लिष्टसन्ध्यस्थिमांसः। क्षुत्तृड्दुःखक्लेशधर्मैरतप्तो बुद्ध्या युक्तः सात्त्विकः सत्यसन्धः ॥ ६९ ॥ प्रियंगुदूर्वाशरकाण्डदर्भगोरोचनापद्मसुवर्णवर्णः। प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षा महाललाटो घननीलकेशः ॥ ७० ॥ मृद्वङ्गः समसुविभक्तचारुदेहो बह्वोजा रतिरसयुक्तसपुत्रभृत्यः। धर्मात्मा वदति न निष्ठुरं तु जातु प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरं च वैरम् ॥ ७१ ॥ समदद्विरदेन्द्रतुल्ययानो जलदाम्भोधिमृदङ्गशङ्खघोषाः। स्मृतिमानभियोगवान्विनीतो न च बाल्येऽप्यतिरोदनो न लोलः ॥ ७२ ॥ तिक्तं कषायं कटुकोष्णरूक्षमल्पं च भुक्ते बलवांस्तथापि। रक्तान्तसुस्निग्धविशालदीर्घसुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्षः ॥ ७३ ॥ अल्पाहारक्रोधपानाशनेहः प्रज्ञावित्तो दीर्घसूत्रो वादान्यः। हृद्गम्भीरः स्थूलवक्षाः क्षमावान्निद्रालुश्चालुब्धवृत्तः कृतज्ञः ॥ ७४ ॥ ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सलज्जो भक्तो गुरूणां स्थिरसौहृदश्च। स्वप्ने सपद्मान्सविहङ्गमालांस्तोयाशयान्पश्यति तोयदांश्च ॥ ॥ ७५ ॥ विष्णुरुद्रेन्द्रवरुणतार्क्ष्यहंसगजाधिपैः। श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथा सिंहाश्वगोवृषैः ॥ ७६ ॥

कफका स्वरूप चन्द्रमाके सदृश है, इसलिये कफप्रकृतिवाला मनुष्य सौम्य होता है, इसकी संधि हड्डी और मांस परस्पर मिले हुए स्निग्ध और गूढ होते हैं। भूख, प्यास दुःख और क्लेश इनके धर्मसे संतापित नहीं होता, बुद्धिमान् सत्त्वगुणयुक्त और अपने वचनोंका पालनेवाला होता है। शरीरका रंग प्रियंगु, दूब, मूंज, दर्भ (कुशा) गोलोचन, कमल और सुवर्णके समान होता है। लंबी बाहुओंवाला, वक्षःस्थल पुष्ट तथा चौडा होता है. कपाल बडा होता है, केश बहुत और श्याम होते अंग कोमल होता है, शरीर सम और सुन्दर होता है, अधिक ओज (सामर्थ्य) युक्त शृङ्गाररसमें मग्न, पुत्र और भृत्य अधिक होते हैं। धर्मात्मा, कठोरवचन नहीं बोलने वाला, गुप्तरीतिसे शत्रुके साथ अधिक कालपर्यन्त दृढ वैर रखनेवाला होता है। मदोन्मत्त हाथीके सदृश गतिवाला, शब्द-मेघ, समुद्र, मृदंग और शंखके सदृश होता है स्मृतिशक्तियुक्त, उद्योगी, नम्र, बाल्यावस्थामें बहुत नहीं रोनेवाला तथा चपलताहीन होता है। कडवे, कैसेले, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष और अल्प भोजन करनेवाला होता है तथापि बलवान् होता है। नेत्र कोनकी ओर रक्त, स्निग्ध, बडे, लम्बे, स्पष्ट, सफेद और काले २ अधिक पलकोंवाले होते हैं, आहार जलपान क्रोध और क्षुधा अल्प होती है प्रज्ञावान दीघसूत्री (कार्य करनेमें अधिक देर करनेवाला), मनोहर बोलनेवाला, गम्भीरहृदययुक्त चौडीछाती वाला क्षमावान्, निद्रालु लोभरहित और कृतज्ञ होता है। सरलस्वभावी विद्वान् लज्जावान् तथा गुरुओंका भक्त प्रेमको स्थिर रखनेवाला होता है। और स्वप्नमें कमल तथा चकवा चकवी आदि पक्षियोंकी पंक्ति युक्तसे जलाशयोंको देखता है। कफप्रकृतिवाला मनुष्य--विष्णु, इन्द्र, रुद्र, वरुण, गरुड, अग्नि हंस, हाथी सिंह, घोडा, गौ और बैलके सदृश प्रकृतिवाला होता है ॥ ६९-८६ ॥

ननुप्रकृतिहेतूनां मध्ये योऽधिकः स स्वव्याधीन् कथं न करोति इत्याशंकायामाह।

विषजातो यथा कीटो न विषेण प्रबाध्यते। तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न बाधितुम् ॥ ७७ ॥

एतौ द्वौ नञौ अपि ईषदर्थे तेन विषेण विषजदाहिना ईषत् प्रबाध्यते, न तु भृशम्। तथा च प्रकृतयः प्रकृतिहेतवो दोषाः बाधितुं न शक्नुवन्ति। करचरणस्फुटितस्वस्वेदननिद्राधिक्यादिना ईषद् बाधितुं शक्नुवन्त्येव, न तु ज्वरादिभिः ॥

प्रकोपे वाऽन्यभावो वा शमो वा नोपजायते। प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुषः ॥ ७८ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे बालप्रकरणं तृतीयम् ॥ ३ ॥

प्रकृति होनेका कारणरूप वात, पित्त और कफ इनमें जो दोष प्रकृतिरूपसे अधिक होयँ वे दोष अपने होनेवाले रोगोंको उत्पन्न क्यों न करें? ऐसी यहां शंका होनेपर कहते हैं कि, जिस प्रकार विषसे उत्पन्न हुआ कीडा विषसे बाधित नहीं होता, उसी प्रकार उस उस प्रकृतिवाले मनुष्यको वह, वह प्रकृति बाधित करनेको समर्थ नहीं है। प्रकृतिरूप हुए दोषसे बाधित नहीं हो सकता, यह जो ऊपर कहा उसमें ऐसा समझना कि, जिस प्रकार विषके कीडेको विषसे मृत्यु आदिककी बाधा नहीं होती, उसी प्रकार उन उन प्रकृति वाले मनुष्योंको उन प्रकृतिके कारण रूप दोषोंसे ज्वर आदिकके आनेकी अत्यन्त बाधा नहीं होती, परन्तु हाथ पाँवका फूटना, पसीनेका आना और निद्राकी अधिकता आदि थोडी थोडी बाधा होती है। परन्तु जो दोष प्रकृतिरूप हो. उसको प्रकोप अथवा अन्यभाव वा उपशम नहीं होता, परन्तु वह मनुष्य मृत्युपर्यन्त प्रकृतिके स्वभावके अनुसारही रहता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीवनी भाषाटीकायां तृतीयं बालप्रकरणम् ॥ ३ ॥

अथ दिनर्तुचर्याप्रकरणम् ४.

अथ देशाः ।

भूमिर्देशस्त्रिधाऽनूपो जाङ्गलो मिश्रलक्षणः १

पृथ्वीमें देश--तीन प्रकारके वर्णन किये हैं । अनूप, जांगल और मिश्र (साधारण) ॥१॥

तत्रानूपलक्षणानि ।

नदीपल्वलशैलाढ्यः फुल्लोत्पलकुलैर्युतः ।
हंससारसकारण्डचक्रवाकादिसेवितः॥२॥
शशवाराहमहिषरुरुरोहिकुलाकुलः।प्रभूत-
द्रुमपुष्पाढ्यो नीलसस्यफलान्वितः ॥३॥
अनेकशालिकेदारकदलीक्षुविभूषितः ।
अनूपदेशो ज्ञातव्यो वातश्लेष्ममयार्ति-
मान् ॥ ४ ॥

जहां नदियां, छोटे २ सरोवर और पहाड अधिक हों, तालाबोंमें उत्पन्न कमल खिल रहे हों। हंस, सारस, कारंडव (एक प्रकारका श्याम हंस),बतक और चक्रवाक (चकवा) आदि अनेक पक्षी कलोले कर रहे हों; शश (खरगोश),वराह (सुअर) महिषी (भैंस) रुरु मृग (रोहिनामक मृगादि) अधिक हो और जहां अनेक द्रुम, बेलि फूलोंसे सुशोभित हों, नीले नीले खेती और फलोंसे पृथ्वी पूर्ण हो, नानाप्रकारके शालिधानोंकी खेतोंसे संपूर्ण भूमि शोभित हो केलेके वृक्ष और ईखसे संपूर्ण धरणी शोभायमान हो, ऐसे देशको अनूपदेश कहते हैं । अनूपदेशमें वात और कफ संबन्धी रोग अधिक होते हैं ॥ २-४ ॥

अथ जाङ्गललक्षणम् ।

आकाशशुभ्र उच्चश्च स्वल्पपानीयपादपः ।
शमीकरीरबिल्वार्कपीलुकर्कन्धूसंकुलः ॥
॥५॥ हरणैणर्क्षपृषतगोकर्णखरसंकुलः ।
सुस्वादुफलवान्देशो वातलो जाङ्गलः
स्मृतः ॥ ६ ॥

तन्त्रान्तरे तु-

बहूदकनगोऽनूपः कफमारुतरोगवान् ।
जांगलोऽल्पाम्बुशाखी च पित्तासृङ्मारु-
तोत्तरः ॥ ७ ॥

जो देश आकाशके सदृश स्वच्छ हो, ऊंचा हो, जिसमें वृक्ष और पानी (जलाशय) थोडे हों, शमी (छीकुर) करील, बेल, आक, पीलु (मंदार) और बेरीके वृक्ष अधिक हों, हिरण, एण (कृष्णमृग) रीछ, पृषतमृग (चीता), गोकर्ण मृग (रोज) तथा खर (गधे) आदिक अधिक हों और स्वादिष्ठ फलोंसे वृक्ष आच्छादित हों; उस देशको जांगल देश जानना । जांगलदेशमें वायुसम्बन्धी रोग अधिकतासे होते हैं । अन्य ग्रन्थोंमें तो ऐसा लिखा है कि, जिस देशमें पानी और पर्वत अधिक हों, कफ तथा वायुसम्बन्धी रोग विशेष हों, उसको अनूपदेश जानना और जहां जलाशय और वृक्ष कम हों उसे जांगल जानो, इसमें पित्त रुधिर और वायुसम्बन्धी रोग विशेष होते हैं ॥ ५-७ ॥

अथ साधारणलक्षणम् ।

संसृष्टलक्षणो यस्तु देशः साधारणो
मतः । समाः साधारणे यस्माच्छीत-
वर्षोष्णमारुताः । समता तेन दोषाणां
तस्मात्साधारणो वरः ॥ ८ ॥

जिस देशमें अनूप और जांगल इन दोनों देशोंके लक्षण मिलते हों, उसको मिश्र (साधारण) देश जानना । साधारण देशमें शीत, वर्षा, गर्मी और वायु ये समान होती हैं, इस कारण वात पित्त और कफकी भी समता रहती है, इसलिये साधारण देश सबमें उत्तम कहाता है ॥ ८ ॥

सुश्रुतः-उचिते वर्त्तमानस्य नास्ति दुर्दे-
शजं भयम् । आहारस्वप्नचेष्टादौ तद्दे-
शस्य कृते सति ॥ ९ ॥

वृद्धवाग्भटः-

यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्। देशादन्यत्र वसतस्तत्तुल्यगुणमौषधम् ॥१०॥ स्वे देशे निचिता दोषा अन्यस्मिन् कोपमागताः। बलवन्तस्तथा न स्युर्जलजाः स्थलजास्तथा ॥ ११ ॥

सुश्रुत कहते हैं कि-यदि उचित रीतिसे आहार और निद्रादि विहारोंका सेवन किया जाय तो फिर दुर्देशमें रहनेका भी कुछ भय नहीं रहता है इस कारण जिस देशमें रहे,उसीके अनुसार आहार विहारादि चेष्टा करनी चाहिये । वृद्ध वाग्भट कहते हैं कि-" जो प्राणी जिस देशका हो, उसको उस देशमें उत्पन्न हुई औषधियां हितकारी होती हैं, अपने देशको छोडकर जो दूसरे देशमें रहता हो, उसको अपने देशमें उत्पन्न हुई औषधिके सदृश गुणवाली औषधि हितकारी है । अपने देशमें शरीरके भीतर संचित हुए दोष दूसरे देशमें जानेपर कुपित हों तो जैसे अपने देशमें बलवान् होते हैं तैसे दूसरे देशमें बलवान् नहीं होते" उसी प्रकार अनूप देशमें रहनेवालेके शरीरके भीतर संचित हुए दोष उस मनुष्यको जांगलदेशमें जानेपर कुपित हों तो वैसेबलवान् नहीं होते, उसी प्रकार जांगल देशके संचित दोष अनूपदेशमें बली नहीं होते ॥ ९-११ ॥

अथ दिनादिचर्याः ।

मानवो येन विधिना स्वस्थस्तिष्ठति सर्वदा। तमेव कारयेद्वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम् ॥ १२ ॥ दिनचार्यां निशाचर्यामृतुचर्यां यथोदिताम् । आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा ॥ १३ ॥

मनुष्य जिस विधिके (आहार विहारादि) करनेसे सर्वदा स्वस्थ (प्रसन्न) रहे,उसी प्रकार वैद्य उसको करे, क्योंकि-स्वास्थ्य सदा सबको प्रिय है । जो मनुष्य सर्वदा शास्त्रानुसार दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या करते हैं, वे मनुष्य सर्वदा स्वस्थ (निरोगी) रहते हैं । इन क्रियाओंको विना किये कोई भी सदा स्वस्थ नहीं रह सकते ॥ १२ ॥ १३ ॥

तत्र स्वस्थस्य लक्षणमाह ।

सुश्रुतः-समदोषःसमाग्निश्च समधातुमलक्रियः प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाःस्वस्थ इत्यभिधीयते१४।

क्रिया अन्नकर्म,तेन समक्रियाःशरीरानुरूपकर्मा॥

सुश्रुत भी कहते हैं-"जिस मनुष्यके वात, पित्त आदि दोष अग्नि, धातु और मल समान स्थित हों जो मनुष्य अपने शरीरके अनुसार समान रूपसे क्रियायें करता हो और जिसकी देह, इंद्रियां और मन प्रसन्न हों, वह मनुष्य स्वस्थ (निरोगी) कहाता है ॥ १४ ॥

अथ दिनचर्यामाह ।

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः । तत्र दुःखस्य शान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम् ॥१५॥ दध्याज्यादर्शसिद्धार्थबिल्वगोरोचनस्रजाम्। दर्शनं स्पर्शनं कार्यं प्रबुद्धेन शुभावहम् ॥१६॥ स्वमाननं घृते पश्येद्यदीच्छेच्चिरजीवितम्। आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम्। तदन्त्रकूजनाध्मानोदरगौरववारणम् ॥१७॥

आदिशब्देन वातमूत्रादीनां ग्रहणम् ॥

आटोपशूलौ परिकर्तिका च संगः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः । पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ १८ ॥

परिकर्तिका-गुदे परिकर्तनवत्पीडा।पुरीषस्य सङ्गोऽवरोधः। ऊर्ध्ववातः उद्गारबाहुल्यम् ॥

वातमूत्रपुरीषाणां संगो ध्मानं क्लमो रुजा। जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ १९ ॥ वस्तिमेहनयोः शूलं मूत्र-

कृच्छ्रं शिरोरुजा। विनामो वंक्षणानाहः स्याल्लिंग मूत्रनिग्रहे ॥ २० ॥

विनामः शरीरस्य नम्रता। वंक्षणानाहःवंक्षणस्याकर्षणवत्पीडा ॥

न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्न वेगानीरयेद्बलात्। कामशोकभयक्रोधान्मनोवेगान्विधारयेत् ॥२१॥ गुदादिमलमार्गाणां शौचं कान्तिबलप्रदम्। पवित्रकरमाख्यातमलक्ष्मीकलिपापहृत् ॥ २२ ॥ प्रक्षालनं मतं पाण्योःपादयोः शुद्धिकारणम्। मलश्रमहरं वृष्यं चक्षुष्यं राजसापहम् ॥ २३ ॥

स्वस्थ मनुष्य आयुष्यकी रक्षाके लिये चार घडीके तडके अर्थात ब्राह्ममुहूर्तमें उठे और उस समय दुःखकी शांतिके लिय ईश्वरका स्मरण करे,फिर जागकर दही,घी,दर्पण,सफेद सरसों, बेल.गोरोचन और फूलमाला इनका दर्शन करे तथा स्पर्श करे ये शुभकारक हैं।जो अधिक जीवनकी अभिलाषा हो तो घीमेंअपने मुखको नित्य देखे।प्रातःकाल मल,मूत्र आदिका विसर्जन करनेसे दीर्घायु होती है,क्योंकि इससे पेटका गुडगुडाहट, अफरा और भारीपन आदि सब दूर होजाते हैं. मलको रोकनेसे पेटका फूलना, शूल, गुदामें कतरनेके सदृश पीडा होती है तथा मलका अवरोध होता है तथा डकार बहुत आने लगती हैं अथवा मुखमेंसे मल निकलने लगाता है। वात, मूत्र और मल रोकनेसे पेट फूल जाता है, ग्लानि होती है और पीडा भी होती है। अधोवायुको रोकनेसे पेटमें वायु सम्बन्धी अन्य रोग भी उत्पन्न होजाते हैं। मूत्र रोकनेसे मूत्राशयमें तथा लिंगमें शूल होता है, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकमें दर्द, शरीरकी नम्रता और वंक्षणकी सम्पूर्ण सन्धियोंमें खींचनेके सदृश पीडा होती है। मल मूत्र आदिका वेग हो तो तुरन्त मल मूत्रका त्याग करना चाहिये, इससे पहिले अन्य कार्य न करे, बलात्कारसे (खीचकर) मलको नहीं निकाले। काम, क्रोध, भय और शोक इत्यादि मनके वेगोंको जहांतक हो सके रोकता ही रहे, परन्तु मल मूत्र आदि शरीरके वेगोंको कदापि नहीं रोके। गुदादि जो मल मूत्रके मार्ग हैं, उनको स्वच्छ रखनेसे कांति तथा बल बढता है. पवित्रता होती है अलक्ष्मी, क्लेश तथा पापोंका नाश होता है। हाथ तथा पांवोंके धोनेसे शुद्धता होती है, मल और परिश्रम दूर होता है, तथा हाथ पांवोंका धोना पुष्टिकर्ता, नेत्रोंको हितकारी और रजोगुणको दूर करताहै॥१५-२३॥

अथ दन्तकाष्ठविधिः।

भक्षयेद्दन्तपवनं द्वादशाङ्गुलमायतम्। कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलमृज्वग्रन्थि तथाऽव्रणम् ॥२४॥ एकैकं घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकेन तु। दन्तशोधनचूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् ॥२५॥क्षौद्रतिकटुकाक्तेन तैलसिन्धुभवेन वा। चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यं विशोधयेत् ॥२६॥

तेजोवती-तेजवल्कल इति लोके प्रसिद्धा ॥

मधूको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके तथा। निम्बस्यात्तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा ॥२७॥ समयं तु समालोक्य दोषं च प्रकृतिं तथा। यथोचितैः रसैर्वीर्यैर्युक्तं द्रव्यं प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥ तेनास्य मुखवैरस्यदन्तजिह्वास्यजा गदाः। रुचिवैशद्यलघुता न भवन्ति भवन्ति च २९ अर्के वीर्यं वदे दीप्तिः करञ्जे विजयो भवेत्। प्लक्षे चैवार्थसम्पत्तिर्बदर्यां मधुराशनम्॥३०॥ खदिरे मुखसौगन्ध्यं विल्वे तु विपुलं धनम्। उदुम्बरे तु वासिद्धिराम्रे त्वारोग्यमेव च ३१ कदम्बे तु धृतिर्मेधा चम्पके दृढवाक्श्रुतिः। शिरीषे कीर्तिसौभाग्यमायुरारोग्यमेव च

॥३२॥ अपामार्गे धृतिर्मेधा प्रज्ञाशक्तिस्तथाऽसने। दाडिम्यां सुन्दराकारः ककुभे कुटजे तथा ॥३३॥ जातीतगरमन्दारैर्दुःस्वप्नं च विनश्यति ॥ ३४ ॥ गुवाकतालहिन्तालं केतकश्च बृहद्वरः। खर्जूरं नारिकेलं च सप्तैते तृणराजकाः ॥३५॥ तृणराजसमुत्पन्नं यः कुर्याद्दन्तधावनम्। नरश्चाण्डालयोनिः स्याद्यावद्गङ्गां न पश्यति ॥ ३६ ॥ न खादेद्गलताल्वोष्ठजिह्वादन्तगदेषु तत्। मुखस्य पाके शोथे च श्वासकासवमीषु च ३७ दुर्बलोऽजीर्णभुक्तश्च हिक्कामूर्च्छामदान्वितः। शिरोरुजार्तस्तृषितः श्रान्तः पानक्लमान्वितः ॥ ३८ ॥ अर्दितः कर्णशूली च नेत्ररोगीनवज्वरी। वर्जयेद्दन्तकाष्ठं तु हृदामयुतोऽपि च ॥ ३९ ॥

अजीर्णभुक्तः न जीर्णं भुक्तं यस्य सः

जिह्वानिर्लेखनं हेमं राजतं ताम्रजं तथा पाटितं मृदु तत्काष्ठं मृदुपत्रमयं तथा४०

तत्काष्ठम्-दन्तशोधनयोग्यं काष्ठम् ॥

दशाङ्गुलं मृदु स्निग्धं तेन जिह्वां लिखेत्सुखम्। तज्जिह्वामलवैरस्यदुर्गन्धजडताहरम् ॥४१॥ गण्डूषमपि कुर्वीत शीतेन पयसा मुहुः कफतृष्णामलहरं मुखान्तःशुद्धिकारकम् ॥ ४२ ॥ सुखोष्णोदकगण्डूषःकफारुचिमलापहः। दन्तजाड्यहरश्चापि मुखलाघवकारकः ॥४३॥ विषमूर्च्छामदार्तानां शोषिणां रक्तपित्तिनाम्। कुपिताक्षिमलक्षीणरूक्षाणां स न शस्यते ॥ ४४ ॥

सः-सुखोष्णोदकगण्डूषः ॥

मुखप्रक्षालनं शीतपयसा रक्तपित्तजित्। मुखस्य पिडिकाशोषनीलिकाव्यङ्गनाशनम् ॥ ४५ ॥ कुर्याद्वाऽपि कटूष्णेन पयसाऽऽस्यविशोधनम्। कफवातहरं स्निग्धं मुखशोषः विनाशनम् ॥ ४६ ॥

बारह अंगुल लंबी, कनिष्ठिका अंगुलीके अग्रभागके सदृश मोटी, सीधी, गांठ और छिद्र रहित ऐसी दतौन करे। दतौनकी नरम कूँचीसे एक एक दाँतको घिसे तथा दन्त मल नेके चूर्णादिसे मसूडोंको छोडकर मले। शहद सोंठ, मिरच और पीपल इनके मिले हुए चूर्णसे अथवा तेलको भावना दिये हुए सैंधेनोनके चूर्णसे वा तेलवल्कल नामक लकडीके चूर्णसे दांतोंको नित्य शुद्ध करे। मीठी दतौनोंमें महुआ, तीक्ष्णोंमें करंज, कडवियोंमें नीम और कषैलियोंमें खैर श्रेष्ठ है। समय, दोष और प्रकृतिको विचार करके योग्य रस और योग्य शक्तिवाले वृक्षकी लकडीकी दतौन करे और दांत स्वच्छ करनेका चूर्णभी योग्य ही लेवे। इस प्रकार दतौन करनेसे मुखकी विरसता (बेजायकापना), दांत, जीभ तथा मुखके रोग नहीं होते तथा रुचि, स्वच्छता और शरीरमें हलकापन होता है। आककी दतौन करनेसे शक्ति, बडकी दतौन करनेसे दीप्ति, करंजकी दतौन करनेसे जय, पाखरकी दतौन करनेसे धनसंपत्ति, बेरकी दत्तौनसे मिष्ठभोजन, खैरकी दतौन करनेसे मुखमें सुगंध, बेलकी दतौन करनेसे अत्यन्त धन, गूलरकी दतौन करनेसे वचनकी सिद्धि, आम्रकी दतौन करनेसे आरोग्य, कदंबकी दतौन करनेसे धैर्य तथा स्मरण शक्ति, चंपेकी दतौन करनेसे वाणि तथा शब्दकी दृढता, सिरसकी दतौन करनेसे कीर्ति, सौभाग्य, आयुकी वृद्धि और आरोग्य, चिरचिटेकी दतौन करनेसे धैर्य तथा धारणशक्ति, विजयसारकी दतौन करनेसे बुद्धिकी शक्ति, दाडिमकी दतौन करनेसे सुन्दरता ककुभ (अर्जुन)

और कुडे (कुरैया) की दतौन करनेसे सुन्दर स्वरूपका लाभ, चमेली, तगर और मन्दारकी दतौन करनेसे खोटे स्वप्न नहीं दीखते हैं। सुपारी, ताल, हिंताल, केतकी, बृहद्वर (बडा- ताड), खजूर और नारियल इन सातोंको तृणराज कहते हैं, जो मनुष्य इनकी दतौन करता है, वह मनुष्य जबतक गंगाका दर्शन न करे, तबतक चांडाल रहता है। गला, तालु, होठ, जीभ और दांतमें जिनके रोग हो उनको, जिनका मुख पका हो तथा सूजन हो उनको, श्वाँस, खाँसी, वमनरोगवाला, दुबला और जिनका भोजन न पचा हो तथा सूजन युक्त उनको, हिचकी, मूर्च्छा, मदात्ययी, शिरके दर्दवाला, तृषित, थका हुआ, किसी वस्तुके पीनेसे जिनको ग्लानि हुई हो, अर्दित (वात- व्याधी), कानके शूलवाला, नेत्ररोगी, नवीन ज्वरयुक्त और हृदयरोगी इन सबको दतौन नहीं करनी चाहिये ॥ जीभी-सोनेकी, चाँदीकी, तथा तांबेकी वनवावे और जो यह न मिले तो कोमल चिरी हुई लकडीकी दतौ- नकी अथवा नरम पीतल आदिकी बनावे, दश अंगुल लंबी, कोमल और स्निग्ध ऐसी जीभीसे जीभके मैलको दूर करनेके लिये घिसे। जीभी करनेसे-जीभका मैल, विसरता, दुर्गन्धता और जडता दूर होती है। शीतल जलके वारंवार कुल्ले करे. इससे कफ, तृषा और मल दूर होजाता है तथा भीतरसे मुख स्वच्छ होता है। किंचित् उष्ण जलके कुल्ले करनेसे कफ, अरुचि, मैल तथा दांतोंकी जडता दूर होती है और मुख हलका होजाता है। विष मूर्च्छा और मदसे पीडित, शोष- रोगी, रक्तपित्त युक्त, जिसके नेत्र दुखते हों और मन क्षीण होगया हो, रूखे शरीरवाले ऐसे मनुष्योंको गरम पानीसे कुल्ले नहीं करने चाहिये। शीतल जलसे मुख धोनेसे रक्तपित्त और मुखकी पिडिकायें (मुहासे), शोष, नीलिका और व्यंग (झांई) नष्ट होती हैं, अथवा किंचित् उष्ण जलके द्वारा मुख धोनेसे कफ तथा वात दूर होते हैं, स्निग्धता होती है और मुखका शोष नष्ट होता है ॥ २४--४६ ॥

अथ नस्यविधिः ।

कटुतैलादि नस्यार्थे नित्याभ्यासेन योजयेत्।
प्रातःश्लेष्मणि मध्याह्ने पित्ते सायं समीरणे ॥ ४७ ॥
सुगन्धवदनाः स्निग्धनिःस्वना विमलेन्द्रियाः। निर्वलीपलितव्यंगा भवेयु-र्नस्यशीलिनः ॥ ४८ ॥

नित्यप्रति नाकमें सरसों आदिका तेल डाल- नेका अभ्यास करे। कफ बढा हो तो प्रातः काल, पित्त बढा हो तो मध्याह्नकाल और वायु बढी हो तो सायंकाल नाकमें तेल डाले। नाकमें तेल डालनेसे मुखमें सुगन्ध होती है, शब्दमें स्निग्धता होती है; इन्द्रियां विमल रहती हैं और वली (शरीरमें सिकुडन पडना), पलित (विना समय केश सफेद होजाना) और व्यंग (झांई) ये उस मनुष्यके कभी नहीं होते ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ अञ्जनविधि ।

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत्।
लोचने भवतस्तेन मनोज्ञे सूक्ष्मदर्शने ॥ ४९ ॥
स्रोतोऽञ्जनं मतं श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धुसम्भवम्।
दृष्टेः कण्डूमलहरं दाहक्लेदरुजापहम् ॥ ५० ॥

स्रोतोऽञ्जनं कृष्णसुरमा इति लोके। विशुद्धं शोधनं विनापि। सिन्धुसम्भवं सिन्धुनामा पर्वतः तत्र सम्भवम् ॥

अक्ष्णो रूपावहं चैव सहेते मारुतातपौ ।
नेत्ररोगा न जायन्ते तस्मादञ्जनमाचरेत् ५१।
रात्रौ जागरितःश्रान्तश्छर्दितोभुक्तवांस्तथा।
ज्वरातुरःशिरःस्नातोनाक्ष्णोरंजनमाचरेत् ५२

सफेद[1] सुरमा नेत्रोंको सदा हितकारी है, इस कारण इसको नेत्रोंमें नित्य लगाना चाहिये. उसको लगानेसे नेत्र मनोहर और सूक्ष्मवस्तुके देखनेवाले होते हैं, सिन्धु नामक पर्वतमें उत्पन्न हुआ काला[2] सुरमा (शुद्ध किया हुआ न होने-

१ सौवीर सुफेद सुरमाको कहते हैं।
२ काला सुरमा स्रोतोंजन होता है।

पर भी) उत्तम होता है इसके लगानेसे नेत्रोंकी खुजली, मैल तथा दाह नष्ट होता है और क्लेद (नेत्रोंसे पानीका बहना) तथा पीडाको दूर करता है। नेत्र स्वरूपवान् होते हैं तथा वायु और धूपका सहन करनेमें समर्थ होते हैं काला सुरमा लगानेसे नेत्रोंमें रोग नहीं होते इस कारण सबको नित्य प्रति अंजन लगाना चाहिये। रातमें जागा हुआ, थका हुआ, वमन करनेवाला, जो भोजन कर चुका हो, ज्वर रोगी और जिसने शिरसे स्नान किया हो इनको सुरमा अंजन नहीं लगाना चाहिये ॥ ४९-५२ ॥

अथ क्षौरकर्म।

पञ्चरात्रान्नखश्मश्रुकेशरोमाणि कर्तयेत्। केशश्मश्रुनखादीन कर्तनं सम्प्रसाधनम् ॥ पौष्टिकं धन्यमायुष्यं शौचकान्तिकरंपरम्॥५३

सम्प्रसाधनम्-शोभाजनकम्।

उत्पाट्येत्तु लोमानि नासाया न कदाचन। तदुत्पाटनतौ दृष्टेर्दौर्बल्यं त्वरया भवेत्॥५४॥केशपाशे प्रकुर्वीत प्रसाधन्या प्रसाधनम्। केशप्रसाधनं केश्यं रजोजन्तुमलापहम् ॥ ५५ ॥ आदर्शलोकनं प्रोक्तं मांगल्यं कान्तिकारकम्। पौष्टिकं बल्यमायुष्यं पापलक्ष्मीविनाशनम् ॥ ५६ ॥

पांच पांच दिनमें नख, डाढी, केश और रोम कतरवावे अर्थात् हजामत बनवावे, ऐसा करनेसे शरीरकी शोभा होती है, पुष्टता बढती है, धनकी प्राप्ति होती है, आयु बढती है पवित्रता होती है और शरीरमें उत्तम कांति उत्पन्न होती है।नाकके रोम कभी नहीं उखाडे,क्योंकि उनको उखाडनेसे तुरन्त नेत्र निर्बल होजाते हैं। कंघेसे बालोंको काढकर पुष्ट करे इस प्रकार काढनेसे-केश स्वच्छ होते हैं और केशोंकी धूल, कृमि तथा मैल दूर होता है। शीशेमें मुख देखना मंगलरूप है, कांतिकारक, पुष्टिकर्ता, बल तथा आयुको बढानेवाला और प तथा अलक्ष्मीका नाश करता है।॥५३-५६॥

अथ व्यायामगुणाः।

लाघवं कर्मसामर्थ्यं विभक्तघनगात्रता। दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते॥ व्यायामदृढगात्रस्य व्याधिर्नास्ति कदाचन ॥५७॥ विरुद्धं वा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते। भवन्ति शीघ्रं नैतस्य देहे शिथिलतादयः॥५८॥न चैनं सहसाऽऽक्रम्य जरा समधिरोहते। न चास्ति सदृशं तेन किंचित् स्थौल्यापकर्षकम् ॥ ५९ ॥ स सदा गुणमाधत्ते बलिनां स्निग्धभोजिनाम्। वसन्ते शीतसमये सुतरां स हितो मतः ॥ अन्यदाऽपि च कर्तव्यो बलार्धेन यथाबलम् ॥६०॥ हृदयस्थो यदा वायुर्वक्त्रं शीघ्रं प्रपद्यते। मुखं च शोषं लभते तद्बलार्धस्य लक्षणम् ॥ ६१ ॥ किं वा ललाटे नासायां गात्रसन्धिषु कक्षयोः ॥६२॥ यदा सञ्जायते स्वेदो बलार्धं तु तदाऽऽदिशेत्। भुक्तवान् कृतसम्भोगः कासी श्वासी कृशः क्षयी ॥ ६३ ॥ रक्तपित्ती क्षती शोषी न तं कुर्यात्कदाचन। अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिः श्रमः क्लमः ॥ तृष्णा क्षयः प्रतमको रक्तपित्तं च जायते ॥ ६४ ॥

व्यायाम (कसरत) करनेसे-शरीरमें हलकापन और काम करनेकी सामर्थ्य होती है, शरीर सुन्दर तथा पुष्ट होता है, कफादिक दोषोंका क्षय होता है और अग्निकी वृद्धि होती है। जिसका शरीर व्यायाम करनेसे दृढ होगया है, उसको कभी कोई रोग नहीं होता। विरुद्ध अन्न पेटमें भलीभांति नहीं पका भी शीघ्र पच जाता है और उसके शरीरमें शिथिलता आदि शीघ्रही प्राप्त नहीं होती, अकस्मात् वृद्धपन भी आकर नहीं सताता, शरीरकी स्थूलता(मुटापा) नष्ट करनेका इससे उत्तम और कोई उपाय नहीं

है। यह व्यायाम बलवान् मनुष्योंको और स्निग्ध (चिकने) पदार्थ खानेवालोंको सर्वदा लाभकारी है। वसंत ऋतुमें तथा शीतकालमें यह अत्यन्त हितकारी हैं और दूसरी ऋतुओंमें भी अपने बलानुसार बलार्द्धपर्यन्त करे। (जब हृदयमें रहनेवाली वायु शीघ्र मुखमें आने लगे और मुख सूखनेलगे, तब बलार्द्ध समझना) अर्थात् बलार्द्ध होनेपर व्यायाम करना छोड दे। अथवा जब कपालमें, नाकमें, शरीरकी संधियोंमें और कांखमें पसीना आजावे तब बलार्द्ध समझना। अर्थात् बलार्द्धमें व्यायाम न करे। खांसी, श्वास,क्षय, रक्त तथा पित्तरोगी, दुर्बल, क्षती, शोषी, भोजन करनेके पश्चात् और संभोग करनेके पश्चात् कभी कसरत नहीं करे। बहुत कसरत करनेमें खांसी, श्वास, ज्वर, वमन, श्रम, इन्द्रियोंमें ग्लानि, तृषा, क्षय, प्रतमक, श्वास और रक्तपित्तादि उत्पन्न होते है,इसलिये मध्यम रीतिसे व्यायाम करे ॥ ५७-६४ ॥

अथाभ्यङ्गगुणाः।

अभ्यंगं कारयेन्नित्यं सर्वेष्वंगेषु पुष्टिदम्। शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ॥ ६५ ॥ सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम्। अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥ ६६ ॥

गन्धतैलम्-गन्धद्रव्याणाम् अगुर्वादीनाम् अग्नियोगेन निष्कासितः स्नेहः ॥

अभ्यंगो वातकफहृच्छ्रमशान्तिं बलं सुखम्। निद्रावर्णमृदुत्वायुः कुरुते देहपुष्टिकृत् ॥६७॥ अभ्यंगःशीलितो मूर्ध्नि सकलेन्द्रियतर्पकः। दृष्टिपुष्टिकरो हन्ति शिरोभूमिगतान् गदान् ॥६८॥ केशानां बहुतां दार्ढ्यं मृदुतां दीर्घतां तथा। कृष्णतां कुरुते कुर्याच्छिरसः पूर्णतामपि ॥६९॥ न कर्णरोगा न मलं न च मन्याहनुग्रहः। नोच्चैःश्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णपूरणात् ॥ ७० ॥ रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते। तैलाद्यैः पूरणं कर्णेभास्करेऽस्तमुपागते ॥ ७१ ॥ पादाभ्यंगश्च तत्स्थैर्यनिद्रादृष्टिप्रसादकृत्। पादसुप्तिश्रमस्तम्भसङ्कोचस्फुटनप्रणुत् ७२ व्यायामक्षुण्णवपुषं पद्भ्यां संमर्दितं तथा। व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगाः ७३ लोमकूपं शिराजालं धमनीभिः कलेवरे। तर्पयेद्बलमाधत्ते स्नेहयुक्तोऽवगाहने॥७४॥ अद्भिः संसिक्तमूलानां तरूणां पल्लवादयः वर्द्धन्ते हि तथा नृणां स्नेहसंसिक्तधावतः ॥७५॥नवज्वरी अजीर्णी च नाभ्यक्तव्यः कथञ्चन। तथा विरक्तो वान्तश्च निरूढो यश्च मानवः ॥ ७६ ॥

निरूढः—दत्तो निरूढवस्तिः यस्मै सः ॥

पूर्वयोः कृच्छ्रता व्याधेरसाध्यत्वमथापि वा। शेषाणां च त्विह प्रोक्ता वह्निसादादयो गदाः ॥ ७७ ॥

पूर्वयोः--तरुणज्वरिणोऽजीर्णिनश्च ॥

सम्पूर्ण अंगोंमें नित्य (तैल) तेलका लगाना पुष्टिकारक है। किन्तु विशेष करके शिरमें कानोंमें और पांवोंमें तेलकी मालिश करे। सरसोंका, तेल, अग्निके संयोगसे अगरु आदि सुगन्धित पदार्थोंका निकाला हुआ तेल, चम्पा, चँवेली; वेला, जुही, मोतिया आदि पुष्पोंसे सुवासित किया तेल और अन्य द्रव्योंसे मिलाकर बनाया हुआ सुगंधित तेल सर्वदा हितकारी है। अभ्यंग करनेसे वात तथा कफ और थकावट दूर होती है, तथा सुख और बलकी प्राप्ति होती है, निद्रा भली प्रकार आती है, शरीरका वर्ण सुन्दर हो जाता है शिरमें मला हुआ तेल सम्पूर्ण इन्द्रियोंको तृप्त करता है, दृष्टिको बल देता है और शिरकी त्वचाके

रोगोंको दूर करता है, तथा शिरमें कोमलता आती है, आयुकी वृद्धि तथा देहकी पुष्टि होती है। केशोंमें तेल लगानेसे केश बढते हैं, लम्बे नरम, दृढ और काले होते हैं तथा शिरमें भरे रहते हैं। नित्य कानमें तेल डालनेसे कानमें रोग और मैल नहीं होता, तथा गरदन और अनुग्रहरोग ऊँचा सुनना और बहरापन भी नहीं होता। कानमें रस आदि पदार्थ डालने हों तो भोजनके पहिले डाले और तेल आदि सूर्यका अस्त होनेपर डाले पांवोंमें तेल मलना पांवोंकी स्थिरता करता है, निद्रा और दृष्टि को प्रसन्न रखता है। पांवोंका सोना (सून्य हो जाना), परिश्रम, स्तम्भ, संकोच और फटना ये सब रोग नहीं होते। कसरतका अभ्यास करनेवाले श्रमयुक्त और पांवोंमें तेल की मालिस करनेवाले मनुष्योंके पास रोग नहीं आते, जैसे गरुडके समीद सर्प नहीं आते। स्नानके समय तेलका उपयोग किया हुआ रोमकूप, शिराओंके समूह और धमनियोंके द्वारा सम्पूर्ण शरीरको तृप्त करता है और अत्यन्त बलदायक है। जिस प्रकार वृक्ष की जडको जलसे सींचनेसे पत्रादिककी वृद्धि होती है, उसी प्रकार मनुष्योंके शरीरको तेल के द्वारा सींचनेसे (मलनेसे) धातुओंकी वृद्धि होती है। नवीन ज्वरवाला, अजीर्ण युक्त, जिसने जुलाब लिया हो, वमन करनेवाला और जिसने निरूहवस्ति की हो, उसको कदापि तेल मलना नहीं चाहिये। नवीन ज्वरवालेको तथा अजीर्णरोगीको तेल मलनेसे रोग कृच्छसाध्य अथवा असाध्य हो जाता है और वमन विरेचनादिवालेको तेल मलनेसे मन्दाग्नि आदि रोग हो जाते हैं ६५-७७

अथोद्वर्तनगुणाः।

उद्वर्तनं कफहरं मेदोघ्नं शुक्रदं परम्। बल्यं शोणितकृच्चापि त्वक्प्रसादमृदुत्वकृत् ॥७८॥ मुखलेपाद्दृढं चक्षुः पीनो गण्डस्तथाऽऽननम्। कान्तमव्यङ्गपिडकं भवेत्कमलसन्निभम् ॥ ७९ ॥

मैलके दूर करनेके लिये शरीरमें उबटन मलनेसे कफ और मेदा नष्ट होती है, वीर्यकी वृद्धि तथा बलकी प्राप्ति होती है, रुधिर यथावत् होता है और त्वचा स्वच्छ तथा कोमल होती है। मुखपर उबटन मलनेसे नेत्र दृढ होते हैं, कपोल पुष्ट होते हैं, मोहासे और झाईं नहीं होती, हुई हों तो नष्ट हो जाती हैं और मुख कमलके समान शोभायमान होता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ स्नानविधिः।

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमोजोबलप्रदम्। कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मनुत् ८० बाह्यैश्च सेकैःशीताद्यैरूष्माऽन्तर्याति पीडितः। नरस्य स्नातमात्रस्य दीप्यते तेन पावकः॥८१॥शीतेन पयसा स्नानं रक्तपित्तप्रशान्तिकृत्। तदेवोष्णेन तोयेन बल्यं वातकफापहम् ८२ शिरस्स्नानमचक्षुष्यमत्युष्णेनाम्बुना सदा। वातश्लेस्मप्रकोपे तु हितं तत्प्रकीर्तितम् ॥ ८३ ॥ अशी तेनाम्भसा स्नानं पयःपानं नवाः स्त्रियः। एतद्वो मानवाः पथ्यं स्निग्धमल्पं च भोजनम् ॥ ८४ ॥ (हरिश्चन्द्रस्यैतत्)

यः सदाऽऽमलकैः स्नानं करोति स विनिश्चितम्। वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं नरः॥८५॥ स्नानं ज्वरेऽतिसारे च नेत्रकर्णानिलार्तिषु। आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥ ८६ ॥ स्नानस्यानन्तरं सम्यक् वस्त्रेणाङ्गस्य मार्जनम्। कान्तिप्रदं शरीरस्य कण्डूत्वग्दोषनाशनम् ॥८७॥

स्नान करना-अग्निको दीपन करनेवाला, शक्ति आयु और ओजको बढानेवाला, उत्साह, तथा बलको देनेवाला है और खुजली मैल,

परिश्रम, पसीना, आलस्य, तृषा, दाह तथा पाप इनको दूर करता है। शीतल जलादिकोंके सींचनेसे शरीरकी बाहरकी गर्मी पीडित होकर भीतर जाती है, तब मनुष्यकी जठराग्नि प्रबल होजाती है। इससे ही स्नान करते ही भूख लगती है। शीतलजलसे स्नान करनेसे रक्तपित्त दूर होता है। उष्ण जलके द्वारा स्नान करनेसे बल बढता है; वात तथा कफका नाश होता है। शिरसे अत्यन्त उष्ण जलसे स्नान करना सदा नेत्रोंको अहितकारी है परन्तु वात और कफका प्रकोप हो तो हितकारी है। हरिश्चन्द्र कहते हैं, उष्णजलसे स्नान दुग्ध पीना, युवा स्त्रीसे संभोग और स्निग्ध (घृतादि युक्त) अल्प भोजन ये सर्वदा लोगोंके हितकारी हैं। जो मनुष्य सर्वदा देहमें आमलोंको मलकर स्नान करते हैं, वे वलीपलित न होकर सौ वर्ष पर्यन्त जीते हैं। ज्वर, अतीसार, नेत्र-कानके दर्दवाला, वातरोगी, जिसके पेटमें अफरा होय, पीनसरोग युक्त, और अजीर्णरोगवाला इन सबको स्नान करना नहीं चाहिये। भोजनके पश्चात् भी स्नान ठीक नहीं है। स्नान करनेके अनन्तर वस्त्रसे अङ्गको खूब पोंछ डालना चाहिये, इससे कांति बढती है, खुजली और त्वचाके रोग दूर होते हैं॥ ८०-८७॥

अथ वस्त्रधारणगुणाः।

कौशेयौर्णिकवस्त्रं च रक्तवस्त्रं तथैव च
वातश्लेष्महरं तत्तु शीतकाले विधारयेत् ८८

कौशेयम्—पट्टाम्वरं तसरवस्त्रं च॥

मेध्यं सुशीतं पित्तघ्नं कषायं वस्त्रमुच्यते
तद्धारयेदुष्णकाले तत्रापि लघु शस्यते८९

कषायम्—कौङ्कमी इति लोके, कषायरागरक्तं वा॥

शुक्लं तु शुभदं वस्त्रं शीतातपनिवारणम्।
न चोष्णं न च वा शीतं तत्तु वर्षासु धारयेत्॥९०॥ यशस्यं काम्यमायुष्यं श्रीमदानन्दवर्धनम्। त्वच्यं वशीकरं रुच्यं नवं निर्मलमम्बरम्॥ ९१॥

काम्यम्--कामोद्दीपकम्॥

कदापि न जनैः सद्भिर्धार्यं मलिनमम्बरम्।
तत्तु कण्डूकृमिकरं ग्लान्यलक्ष्मीकरं परम् ९२

अलक्ष्मीः--अशोभा दारिद्र्यं च॥

रेशमीवस्त्र (पीतांवर, टसर) ऊनी वस्त्र और रक्त वस्त्र वात तथा कफको हरनेवाले हैं, इस कारण शीत कालमें ऐसे वस्त्र धारण करे। जोगिया रंगसे रँगे हुए वस्त्र पवित्र, शीतल और पित्तको हरनेवाले हैं इस लिये उनको गर्मियोंमें धारण करे इनमें भी महीन और हलके वस्त्र श्रेष्ठ हैं। सुफेद वस्त्र शुभदायक, शीत और धूपनिवारक है। जो न गरम है न शीतल है ऐसे वस्त्र वर्षाकालमें धारण करे। निर्मल और नवीन वस्त्र कीर्तिको देनेवाले हैं, कामको प्रदीप्त करते हैं आयुको बढाते हैं, शोभायुक्त करते हैं; आनन्दकारक, त्वचाको हितकारी, वशीकरण तथा रुचिको उत्पन्न करनेवाले हैं। श्रेष्ठ मनुष्य कभी मैला वस्त्र नहीं पहने, क्योंकि मैले वस्त्रोंसे शरीरमें खुजली होती है, जूयें इत्यादि जीव उत्पन्न होते हैं और ग्लानि, अशोभा और दरिद्रता प्राप्त होती है॥ ८८-९२॥

अथ प्रलेपगुणः।

कुंकुमं चन्दनं चापि कृष्णागुरु च मिश्रितम् उष्णं वातकफध्वंसि शीतकाले तदिष्यते॥ ९३॥ चन्दनं घनसारेण बालकेन च मिश्रितम्। सुगन्धि परमं शीतमुष्णकाले प्रशस्यते॥ ९४॥

वनसारः कर्पूरः। बालकम्-ह्रीबेरम्॥

चन्दनं घुसृणोपेतं मृगनाभिसमायुतम्।
न चोष्णं न च वा शीतं वर्षाकाले तदिष्यते॥ ९५॥

धुसृणम्--कुंकुमम् । मृगानाभिः-कस्तूरी ॥

अनुलेपस्तृषामूर्च्छादुर्गन्धस्वेददाहजित् । सौभाग्यतेजस्त्वग्वर्णप्रीत्योजोबलवर्धनः॥ न स्नानानर्हलोकानामनुलेपो हितावहः९६

शीतकालमें केशर, चन्दन और कालीअगर इन तीनोंको मिलाकर लेप करे, क्योंकि ये गर्म हैं तथा वात और कफको मेटनेवाली हैं । गर्मियोंमें चन्दन, कपूर और सुगंधवाला इनको मिलाकर लेप करे क्योंकि ये सुगंधित हैं और अत्यन्त शीतल हैं । वर्षाकालमें चन्दन, केशर और कस्तूरीको मिलाकर लेप करे; क्योंकि, यह लेप गर्म नहीं और शीतल भी नहीं । लेपन करनेसे तृषा, मूर्च्छा, दुर्गन्ध, पसीना और दाह दूर होता है और भाग्यशालीपना तेजस्वीपना, त्वचाका वर्ण, प्रीति, उत्साह तथा वल बढता है । जिन मनष्योंको स्नान अहितकारी है, उनके लिये लेप भी हितकारी नहीं है ॥ ९३--९६ ॥

पुष्पाभरणादिधारणगुणाः ।

सुगन्धिपुष्पपत्राणां धारणं कान्तिकारकम् । पापरक्षोग्रहहरं कामदं श्रीविवर्द्धनम् ॥९७॥ भूषणैर्भूषयेदङ्गं यथायोग्यं विधानतः। शुचिःसौभाग्यसन्तोषदायकं काञ्चनं स्मृतम्॥९८॥ग्रहदृष्टिहरं पुष्टिकरं दुःस्वप्ननाशनम् । पापदौर्भाग्यशमनं रत्नाभरणधारणम् ॥ ९९ ॥ माणिक्यं तरणेः सुजातममलं मुक्ताफलं शीतगोर्माहेयस्य च विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम् । देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शनेर्नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेदवैदूर्यके ॥१००॥ वासःशृङ्गाररत्नानां धारणं प्रीतिवर्धनम् । रक्षोघ्नमर्थ्यमोजस्यं सौभाग्यकरमुत्तमम् । १०१ सततं सिद्धमन्त्रस्य महोषध्यास्तथैव च रोचनासर्षपादीनां माङ्गल्यानां च धारणम् ॥ १०२ ॥ आयुर्लक्ष्मीकरं रक्षोहरं मङ्गलदं शुभम् । हिंस्रादिभयविध्वंसि वशीकरणकारणम् ॥ १०३ ॥

सुगंधित पुष्प और पत्तोंको धारण करनेसे कांति बढती है, पाप दूर होता है, राक्षस और ग्रह आदिकी पीडा दूर होती है, काम प्रदीप्त होता है और लक्ष्मी बढती है । यथायोग्य विधिसे शरीरको भूषणों (गहनों) से विभूषित करे । स्वर्णके अलंकार परम पवित्र हैं, सौभाग्य और संतोषदायक हैं । रत्नजडित आभूषणोंको धारण करना ग्रहोंकी पीडा तथा दुष्टदृष्टि और दुःस्वप्नोंके नाश करनेवाला है । पाप तथा दुर्भाग्यको शमन करता है, उत्तम जातिका और निर्मल माणिक्य धारण करनेसे सूर्यकी पीडा, मोती धारण करनेसे चन्द्रमाकी पीडा, मूँगाके धारण करनेसे मंगलकी पीडा, पन्नेके धारण करनेसे बुधकी पीडा, पुखराजके धारण करनेसे बृहस्पतिकी पीडा, हीरा धारण करनेसे शुक्रकी पीडा, नीलम धारण करनेसे शनिकी पीडा, गोमेदके धारण करनेसे राहुकी पीडा, और लहसुनियोंके धारण करनेसे केतुकी पीडा दूर होती है । वस्त्र, सुगन्ध, माला और रत्नोंके धारण करनेसे प्रीति बढती है राक्षसबाधा दूर होती है । धन, ओज (सामर्थ्य) और सौभाग्य इनकी वृद्धि होती है । सिद्ध मंत्र, ब्राह्मी आदि महा औषधियां और गोरोचन तथा सफेद सरसों आदि तथा मांगलिक पदार्थोंके धारण करनेसे आयु बढती है, लक्ष्मी मिलती है, राक्षसादिकोंका भय दूर होता है, मंगल तथा शुभकारक है; सिंहादि हिंसक जीवोंके भयको दूर करता है और वशीकरण कर्त्ता है ॥ ९७--१०३ ॥

अथ भोजनविधिः ।

ततो भोजनवेलायां कुर्यान्माङ्गल्यदर्शनम् । तस्य प्रदर्शनं नित्यमायुर्धर्मविवर्धनम् ॥१०४॥ लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ

ब्राह्मणो गौर्हुताशनः। पुष्पस्रक् सर्पिरादित्य आपो राजा तथाऽष्टमः १०५
पादुकाधारणं कुर्यात्पूर्वं भोजनतः परम्।
पादरोगहरं वृष्यं चक्षुष्यं चायुषे हितम् १०६

पश्चात् भोजनका समय हो तब मांगलिक पदार्थोंका दर्शन करे। संसारमें ब्राह्मण, गौ, अग्नि, पुष्पोंकी माला, घृत, सूर्य जल और राजा ये आठ मांगलिक हैं, इनका दर्शन करनेसे नित्य आयु और धर्मकी वृद्धि होती हैं, भोजनसे प्रथम अथवा भोजनसे पीछे पादुका (खडाऊँ) धारण करे. क्योंकि, इनसे पावोंके रोग दूर होते हैं, शक्ति प्राप्त होती है, नेत्रोंके हितकारी हैं और आयुके बढानेवाली हैं॥ १०४--१०६॥

क्षुत्तृडाद्यवरोधे हानिः।

शरीरे जायते नित्यं वांछा नृणां चतुर्विधा। बुभुक्षा ज पिपासा च सुषुप्सा च रतिस्पृहा ॥१०७॥ भोजनेच्छाविघातात् स्यादङ्गमर्दोऽरुचिः श्रमः। तन्द्रा लोचनदौर्बल्य धातुदाहो बलक्षयः १०८ विघातेन पिपासायाः शोषः कण्ठास्ययोर्भवेत्। श्रवणस्यावरोधश्च रक्तशोषो हृदि व्यथा ॥ १०९ ॥ निद्राविघाततो जृम्भा शिरोलोचनगौरवम्। अंगमर्दस्तथा तन्द्रा स्यादन्नापाक एव च ॥११०॥ बुभुक्षितो न योऽश्नाति तस्याहरेन्धनक्षयात्। मन्दीभवति कायाग्निर्यथा चाग्निर्निरिन्धनः॥ ॥ १११ ॥ आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जितः। पचेत् दोषक्षये धातून्प्राणान्धातुक्षयेऽपि च ॥ ११२ ॥ आहारः प्रीणनःसद्यो बलकृद्देहधारणः। स्मृत्यायुः शक्तिवर्णौजःसत्त्वशोभाविवर्धनः॥११३॥ यथोक्तगुणसम्पन्नं नरः सेवेत भोजनम्। विचार्य दोषकालादीन् कालयोरुभयोरपि ॥ ११४ ॥

उभयोः कालयोः--प्रातः सायं च॥

तथा च--सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम्। नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ ११५ ॥

प्रातः--प्रथमयामादुपरि द्वितीययामादर्वाक्॥

तथा च--याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत्। याममध्येऽरसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः ॥ ११६ ॥

अन्यच्च--क्षुत्सम्भवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च। काले वा यदि वाऽकाले सोऽत्र काल उदाहृतः ॥ ११७ ॥

मनुष्योंके शरीरमें भोजन करनेकी, पानी पीनेकी, सोनेकी और स्त्रीसे संभोग करनेकी इच्छा नित्य उत्पन्न होती है। उनमें भोजनकी इच्छा रोकनेसे शरीर टूटने लगता है, अरुचि उत्पन्न होती है, श्रम होता है, तन्द्रा होती है, नेत्र निर्बल होते हैं, धातुओंमें दाह और बलका क्षय होता है) तृषा लगनेपर पानी नहीं पीनेसे कण्ठ और मुख सूख जाता है, कान बन्द होजाते हैं, रक्त सूखने लगता है, हृदयमें पीडा होती है। निद्राको रोकनेसे जम्भाई आने लगती है, शिर तथा नेत्र भारी होजाते हैं शरीर टूटने लगता है, आलस्य उत्पन्न होता है और खाया हुआ अन्न पचता नहीं है। जो मनुष्य भूख लगनेपर नहीं खाते उनके शरीरकी जठराग्नि मन्द होजाती है जैसे लौकिक आग विना ईंधनके बुझजाती है। शरीरकी अग्नि खाये हुए आहारको पकाती है, आहार नहीं मिलानेसे वात, पित्त तथा कफको पकाती है, दोषोंके क्षय होनेपर धातुओंको पचाती है और धातुओंका क्षय होनेपर प्राणोंको पचाती है अर्थात् प्राणोंका नाश करती है। आहारसे तत्काल देहका

पोषण होता है, बलकी वृद्धि होती है तथा स्मृति, आयु, शक्ति, शरीरका वर्ण, उत्साह, धैर्य तथा शोभा इनकी वृद्धि होती है। मनुष्योंको दोष और काल आदिका विचार कर प्रातःकाल और सन्ध्या समय वैद्यकशास्त्रके कथनानुसार जिसमें गुण हो, ऐसा अन्न खाना उचित है। संध्या और सबेरे इन दोनों समय भोजन करनेकी शास्त्रकी आज्ञा है इस कारण इन दोनों समयके मध्यमें नहीं खाना चाहिये, क्योंकि यह क्रम अग्निहोत्रके समान है। प्रातःकाल भोजन करना अर्थात् पहिले प्रहरके पश्चात् और दूसरे प्रहरके भीतर भोजन करे क्योंकि यह कहा है कि--प्रथम प्रहरके भीतर भोजन नहीं करे और दो प्रहरके बादभी न करे किन्तु दोपहरके भीतरही खा लेवे, प्रथम प्रहरमें भोजन करनेसे रसकी उत्पत्ति नहीं होती है और दूसरे प्रहर बाद भोजन करनेसे बलका क्षय होता है। परन्तु ऐसा भी कहा है कि—रस दोष और मलके पक जानेपर भूख लगती है इस लिये समय हुआ हो अथवा न हुआ हो जब भूख लगे तबही भोजनका समय है ऐसा जानना॥१०७ ११७॥

अथ रसादीनां पाकज्ञानमाह।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः।
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम ॥ ११८ ॥

शुद्ध डकारका आना, उत्साह होना, वायु, आदिके वेगका यथार्थ रीतिसे परित्याग, शरीरमें हलकापन.भूख और तृषा लगे तब जानना चाहिये कि, आहार पचगया ॥ ११८ ॥

अथ स्थानमाह।

आहारं तु रहः कुर्यान्निर्हारमपि सर्वदा।
उभाभ्यां लक्ष्म्युपेतः स्यात्प्रकाशे हीयते श्रिया ॥ ११९ ॥

निहारः—मलमूत्रोत्सर्गः ॥

अन्यच्च—आहारनिर्हारविहारयोगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः ॥

मनुष्योंको आहार और मलमूत्रका त्याग सदा ऐसे स्थानमें करना चाहिये, जहां कोई अन्य मनुष्य न देखे इस प्रकार करनेसे लक्ष्मी प्राप्त होती है और प्रकाश अर्थात् सबके सामने करनेसे लक्ष्मीका नाश होता है। दूसरे ग्रन्थोंमें भी कहा है कि—"श्रेष्ठ मनुष्य आहार विहार और मलमूत्रादिका त्याग सर्वदा निर्जन स्थानमें करे ॥ ११९ ॥

भोजनपात्रमाह।

दोषहृद्दृष्टिदं पथ्यं हैमं भोजनभाजनम्।
रौप्यं भवति चक्षुष्यं पित्तकृत्कफवातकृत् ॥ १२० ॥ कांस्यं बुद्धिप्रदं रुच्यं रक्तपित्तप्रसादनम्। पैत्तलं वातकृद्रूक्षमुष्णं क्रमिकफप्रणुत् ॥१२१॥ आयसे काचपात्रे च भोजनं सिद्धिकारकम्। शोथपाण्डुहरं बल्यं कामलापहमुत्तमम् ॥ ॥ १२२ ॥ शैलेये मृन्मये पात्रे भोजनं श्रीनिवारणम् दारुजे विशेषेण रुचिदं श्लेष्मकारि च ॥ १२३ ॥ पात्रं पत्रमयं रुच्यं दीपनं विषपापनुत्। जलपात्रं तु ताम्रस्य तदभावे मृदो हितम् ॥ १२४ ॥ पवित्रं शीतलं पात्रं रचितं स्फटिकेन यत्। काचेन रचितं तद्वत्तथा वैदूर्यसम्भवम्१२५

भोजन करनेके लिये सुवर्णका पात्र पथ्य है, दोषोंको हरनेवाला है और नेत्रोंको बलदायक है। चांदीका पात्र नेत्रोंको हितकारी, पित्तनाशक और कफ तथा वातको करनेवाला है। कांसीका पात्र बुद्धिदायक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला और रक्त पित्तको शुद्ध करनेवाला है। पीतलका पात्र वातकारक, रूक्ष, उष्ण और कृमि तथा कफको दूर करनेवाला है। लोह अथवा कांचका पात्र सिद्धिदायक शोथ तथा पाण्डुको हरनेवाला, बलवर्धक, कामलारोगको दूर करनेवाला और उत्तम है। पत्थर अथवा मिट्टीके पात्रमें भोजन करना लक्ष्मीको नष्ट

करनेवाला है। काष्ठका पात्र विशेष करके रुचि उत्पन्न करनेवाला और कफकारक है। पत्तोंपर भोजन करना रुचिको उत्पन्न करता है, अग्निको दीपन करता है और विष तथा पापोंको दूर करनेवाला है। जल पीनेके लिये तांबेका पात्र उत्तम है और वह न मिले तो मिट्टीका हितकारी है। स्फटिक कांच अथवा लहसुनियें (वैदूर्य) का बना हुआ पात्र पवित्र तथा शीतल है॥ १२०-१२५॥

अथ भोजने प्रथमभोज्यम्।

भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम्। अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम्॥ १२६॥

ननु लवणस्य पित्तजनकत्वात् आर्द्रकस्य कटुकत्वेन पित्तलत्वात् बुभुक्षितस्य वृद्धपित्तस्य कथं प्रथमं लवणार्द्रकभक्षणमुचितम्?

उच्यते—"लवणं सैन्धवं ज्ञेयं चन्दनं रक्तचन्दनम्" इति वचनाल्लवणमत्र सैन्धवम्, तत् त्रिदोषघ्नम्॥ अत आह गुणग्रन्थे—

सैन्धवं लवणं स्वादु दीपनं पाचनं लघु। स्निग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत्॥ १२७॥

आर्द्रकं तु कटुकमपि न पित्तविरोधि, मधुर पाकित्वात्। अत आह तत्रैव-- आर्द्रिका भेदिनी गुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी च सा। कटुका मधुरा पाके सूक्ष्मा वातकफापह॥ १२८॥

अथ चान्यदपि लवणमार्द्रकं च नात्र पित्तविरोधि संयोगस्वभावात्। संयोगस्वभावे च एतादृशं भोजनस्य पूर्वं लवणार्द्रकभक्षणबोधकवचनमेव प्रमाणयति॥

भोजन करनेसे प्रथम लवण और अदरख भक्षण करना सदा हितकारी है। यह अग्निको दीप्त करता है, रुचिकारक और जीभ कण्ठको शुद्ध करनेवाला है, "लवण पित्तको उत्पन्न करता है और अदरख भी तीक्ष्ण होनेसे पित्तवर्द्धक है, इस लिये भूखे मनुष्यका जब पित्त बढा हो, तब प्रथम लवण और अदरख भक्षण करना किस प्रकार उचित है?" ऐसी शंका होनेपर समाधान करते हैं कि—"लवण कहनेसे सैंधानोन और चन्दन कहनेसे लाल चन्दन जानना" ऐसा शास्त्रका वचन है। इस कारण यहां भी लवण शब्दसे सैंधानोन तीनों दोषोंको हरनेवाला है। गुणग्रन्थमें यह लिखा है—"सैंधानोन—स्वादिष्ट, अग्निको दीपन करनेवाला, अन्नको पचानेवाला, हलका, स्निग्ध रुचिकारक शीतल, वीर्यवर्धक, सूक्ष्म, नेत्रोंको हितकारी और त्रिदोषनाशक है॥

अदरख तीक्ष्ण है परन्तु उसका मधुर होनेसे विरोधी नहीं है, इस विषयमें भी गुणग्रन्थोंमें लिखा है कि—"अदरख-भेदक, भारी, तीक्ष्ण, उष्ण, दीपन करनेवाला, पाकमें मधुर, सूक्ष्म और वात तथा कफको हरनेवाला है." इस विषयमें दूसरा भी एक कारण है कि लवण और अदरखके संयोग होनेसे पित्तका विरोधी नहीं है, इससे भोजनके आरम्भमें लक्षण तथा अदरख भक्षण करनेकी आज्ञा सप्रमाण है॥ २६-२८॥

दृष्टिदोषविनाशाय ब्रह्मादीनां स्मरणम्।

तद्यथा—अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः। इति सञ्चिन्त्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न बाधते॥ १२९॥ अंजनीगर्भसम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम्। दृष्टिदोषविनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम्॥ १३०॥

"अन्न ब्रह्मारूप है, रस विष्णुरूप है और जो भोजन करनेवाला है वह महेशरूप है" इस प्रकार विचारकर जो भोजन करे तो दृष्टि

दोष नहीं होता और दृष्टिबाधाकी शांतिके लिये इस प्रकार कहे–

'अंजनीके गर्भसे उत्पन्न हुए और बालपनसे ब्रह्मचारी रहे हुए श्रीहनुमान्‌जीको दृष्टि दोषका नाश करनेके लिये स्मरण करता हूं ॥ १२९ ॥ १३० ॥

अथ भोजनक्रमः।

अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम्। मध्येऽम्ललवणौ पश्चात्कटुतिक्तकषायकान्॥ १३१ ॥ फलान्यादौ समश्नीयाद्दाडिमादीनि बुद्धिमान्। विना मोचफलं तद्वद्वर्जनीया च कर्कटी ॥ ॥१३२॥ मृणालबिसशालूककन्देक्षुप्रभृतीनपि। पूर्वमेव हि भोज्यानि न तु भुक्त्वा कदाचन ॥ १३३ ॥

मृणालम्-पद्मनालम्। बिसम्-बिससंज्ञकम् शालूककन्दः प्रसिद्धः ॥

गुरु पिष्टमयं द्रव्यं तण्डुलान् पृथुकानपि। न जातु भुक्तवान् खादेन्मात्रां खादेद्बुभुक्षितः ॥ १३४ ॥ घृतपूर्वं समश्नीयात्कठिनं प्राक् ततो मृदु। अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलाद्रोगेण मुच्यते ॥ १३५ ॥

अयमर्थः-प्राक् घृतपूर्वं कठिनं समश्नीयात् यथा काश्यादिवासिनः प्रथमं सव्यंजनांघृत पूर्वां रोटिकां भुञ्जते, ततो मृदु ससूपादि ओदनं भुञ्जते; अन्ते पुनर्द्रवाशिनः भोजनान्ते दधितक्रदुग्धादि भुञ्जते ॥

यद्यत् स्वादूत्तरं तत्तद्विदध्यादुत्तरोत्तरम्। भुक्त्वा यत्प्रार्थ्यते भूयस्तदुक्तं स्वादु भोजनम् ॥ १३६ ॥

स्वाद्वन्नस्य गुणमाह।

सौमनस्य बलं पुष्टिमुत्साहं वृद्धिमायुषः। स्वादु संजनयत्यन्नमस्वादुःच विपर्ययम् ॥ १३७ ॥ अत्युष्णान्नं बलं हन्ति शीतं शुष्कं च दुर्जरन्। अतिक्लिन्नं ग्लानिकरं युक्तियुक्तं हि भोजनम् ॥ १३८ ॥ अतिद्रुताशिताहारे गुणान् दोषान्न विन्दते। भोज्यं शीतमहद्यं च स्याद्विलम्बितमश्नतः ॥ १३९ ॥

एकाग्रचित्त होकर प्रथम मधुरस, बीचमें खट्टा तथा खारी रस और अन्तमें तीक्ष्ण कडुवा तथा कसैला रस खाना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य, प्रथम दाडिम आदि फल खाय, परन्तु उनमें केला और ककडीका त्याग करे। कमलकी नाल, भसींडा शालूककंद और ईख आदिकोभी प्रथमही भक्षण करे, भोजनके पश्चात् कभी न खाय, भोजन करनेके पीछे भारी पदार्थ पिष्टमय पदार्थ (कचौरी वडी आदि) चावल और चौले (चिरवा) आदि पदार्थ नहीं खाय, भूख लगी हो तो थोडा खाय, अधिक नहीं खाय। प्रथम घीसे पूर्ण कठिन पदार्थ खाय, पश्चात् कोमल पदार्थ खाय और अंतमें द्रवरूप (पतले पदार्थ खाय। इस प्रकार नियमका परिपालन करनेसे रोग नहीं होते और हुए हों तो नष्ट हो जाते हैं। काशी आदिके रहनेवाले इस विषयमें चतुर हैं। वे लोग प्रथम शाक आदिके साथ घृतयुक्त रोटी खाते हैं, पश्चात् दालके साथ कोमल भात खाते हैं और अंतमें दही मट्ठा (छाँछ) और दूध आदि द्रव पदार्थ पीते हैं। जो जो पदार्थ बहुत स्वादिष्ठ हों, उनको अनुक्रमसे उत्तरोत्तर खाय, जो पदार्थ खाकर फिर दूसरी बार मांगे, वह पदार्थ स्वादिष्ठ कहाजाता है। स्वादिष्ठ अन्न खानेसे मन प्रसन्न होता है, बल बढाता है, पुष्टताकी प्राप्ति होती है, उत्साह तथा आयुकी वृद्धि होती है और स्वादरहित अन्न खानेसे उपरोक्त सर्वगुण विपरीत (उलटे) होते हैं। अन्न बहुत उष्ण होतो बलका नाश करता है, शीतल होगया हो अथवा सूख गया हो तो

कठिनतासे पचता है और जलादिकसे बहुत गीला हो तो ग्लानि उत्पन्न करता है इसलिये हमेशा भोजन युक्तिके साथ करे। बहुत शीघ्र खानेसे भोजनके गुण दोष नहीं जाने जाते और बहुत देरसे भोजन किया जाय तो भोजन शीतल और अहृद्य (हृदयको अप्रिय होजाता है॥ १३१-१३९॥

गुर्वन्नं त्रिविधं तन्निवारयन्नाह।

मन्दानलो नरो द्रव्यं मात्रागुरु विवर्जयेत्। स्वभावतश्च गुरु यत्तथा संस्कारतो गुरु॥ १४०॥ मात्रागुरुस्तु मुद्गादिर्माषादिः प्रकृतेर्गुरुः। संस्कारगुरु पिष्टान्नं प्रोक्तमित्युपलक्षणम्॥ १४१॥ आहारं षड्विधं चूष्यं पेयं लेह्यं तथैव च। भोज्यं भक्ष्यं तथा चर्व्यं गुरु विद्याद्यथोत्तरम्॥ १४२॥

चूष्यम्-इक्षुदाडिमादि, पेयं पानकशर्करोदकादि, लेह्यं रसालाकथितादि, क्वथिता 'कढी' इति लोके। भोज्यं भक्तसूपादि, भक्ष्यं लड्डुकमोदकादि, चर्व्यं चिपिटचणकादि॥

स्वभावगुरुसंस्कारगुरुणोः स्वभावलघुनश्च भक्ष्यस्य भोजनपरिमाणमाह।

गुरूणामर्धसौहित्यं लघूनां तृप्तिरिष्यते।

अयमर्थः-माषपिष्टान्नादि निरर्धसौहित्य कर्तव्यं, मुद्गादिभिः स्वभावादेव लघु भर्मात्रया तृप्तिः कर्तव्येत्यर्थः॥

द्रवो द्रवोत्तरश्चापि न मात्रागुरुरिष्यते १४३

द्रवः-पेयादिः द्रवोत्तरः, तक्राद्यधिक ओदनादिः। मात्रातोऽधिकोऽपि मात्रागुरुर्न मन्तव्यः, पेयस्य सर्वतो लघुत्वात्। उक्तं च सुश्रुतेन-

पेयलेह्यादिभक्ष्याणांगुरुविद्याद्यथोत्तरम् १४४

पेयं पेयादि। लेह्यं रसालादि। आदिशब्दाद्भोज्यमोदनसूपादि। भक्ष्यं मोदकादि॥

द्रवाढ्यमपि शुष्कं तु सम्यगेवोपपच्यते॥

अयमर्थः-शुष्कमपि स्रोतोरोधकमपि द्रव्याढ्यम् सम्यक्पाकं याति॥

केवलस्य शुष्कान्नस्य दोषमाह-

विशुष्कमन्नमभ्यस्तं न पाकं साधुगच्छति १४५

मन्द अग्निवाला मनुष्य मात्रासे भारी, स्वभावसे भारी और संस्कारसे भारी ऐसे तीनों प्रकारके भारी पदार्थोंको नहीं खाय। मूंग आदि पदार्थ मात्रासे अधिक खानेसे भारी होते हैं; उडद आदि पदार्थ स्वभावसे भारी होते हैं। पिसा हुआ अन्न (पिट्ठी आदि) संस्कारसे भारी होता है। ये उपलक्षण मात्र कहे हैं। चूष्य (चूसने योग्य, पेय (पीने योग्य), लेह्य (चाटने योग्य) भोज्य (भोजन योग्य) भक्ष्य (खाने योग्य) और चर्व्य (चबाने योग्य) इस प्रकार छः प्रकारके आहार हैं, ये क्रमानुसार एकसे एक भारी हैं। ईख और दाडिम (अनार) आदि पदार्थ चूसने योग्य; पानी दूध और शरबत आदि पीने योग्य; खीर और कढी आदि चाटने योग्य; दाल भात आदि भोजनके योग्य, लड्डू और मंड आदि खाने योग्य, और परवल चने आदि चबाने योग्य जानने। उडद और पिसे हुए अन्न आदिसे आधी तृप्ति करनी चाहिये और मूंग आदि पदार्थोंसे अथवा जो स्वभावसे ही हलके हैं, उनसे पूरी तृप्ति करनी चाहिये। पीनेके शरबत आदि द्रवरूप और जिसमें छाँछ आदिरूप पदार्थ अधिक पडे हों, ऐसे भात आदि पदार्थ मात्रासे अधिक खानेपर भी भारी नहीं होते; क्योंकि पीनेके पदार्थ सर्व प्रकारसे हलके हैं, सुश्रुत भी कहते हैं कि-" पीनेके, चाटनेके, जीमनेके और भक्षण करनेके पदार्थोंमें उत्तरोत्तर अर्थात् पहिलेसे दूसरेमें, दूसरेसे तीसरेमें तीसरेसे चौथेमें अधिक गुरुता (भारीपन)

है। दूध आदि पीनेके पदार्थ हैं, खीर आदि चाटनेके पदार्थ है,दाल तथा भात आदि जीमनेके पदार्थ हैं और लड्डू आदि खानेके पदार्थ हैं, ऐसा जानना, कोई अन्न शुष्क होनेपर भी अर्थात् शरीरमें रस फिरनेके मार्गोंको रोकनेवाला होनेपर भी उसमें द्रवरूप (पतले) पदार्थ मिल जानेसे वह भली प्रकार पक जाता है और केवल सूखा खाया हुवा अन्न भली प्रकार नहीं पचता है ॥ १४०-१४५ ॥

अपक्वं तत्किम्भवतीत्यपेक्षायामाह।

पिण्डीकृतमसंक्लिन्नं विदाहमुपगच्छति १४६

पिण्डीकृतमष्ठीलावद्भूतम्। असं क्लिन्नं न सम्यगार्द्रम्। विदाहमुपगच्छति विदग्धं भवतीत्यर्थः ॥

शुष्कादीनां वैगुण्यमाह।

शुष्कं विरुद्धं विष्टम्भि वह्निव्यापदमावहेत् ४७

शुष्कं चिपिटकादि, विरुद्धम् क्षीरमत्स्यादि विष्टम्भि चणकमसूरादि, वह्निमाद्यम् कुर्यात् ॥

द्रवरूप पदार्थोंसे भली प्रकार नहीं भीजा हुआ शुष्क अन्न भली प्रकार नहीं पचकर पिंडके सदृश अधपका रहजाता है, चौले आदि शुष्क, दूध मछली आदि विरुद्ध और चने तथा मसूर आदि विष्टम्भि भोजन खानेसे अग्नि मन्द होजाती है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

सक्तुभक्षणविधिः।

न भुक्त्वा न रदैश्छित्त्वा न निशायां न वा बहून्। जलान्तरितान्न द्विः सक्तूनद्यान्न केवलान् ॥ १४८ ॥ पुनर्दानं पृथक्पानं सामिषं पयसा निशि। दन्तच्छेदनमुष्णं च सप्त सक्तुषु वर्जयेत् ॥ १४९ ॥ सुश्रुतः—सक्तूनामाशु जीर्य्येत मृदुत्वादवलेहिका ॥

भोजन करनेके पश्चात् सत्तू नहीं खाय, दांतोंसे चवाकर. रातमें, अधिक, पानीमें घोलकर, दोवार और विना भोजन केवल इकले सत्तूको न खाय। जिसने सत्तू एवार खाया हो, उसको दूसरी बार नहीं देवे; केवल सत्तू अलग न पिये, मांसके साथ न खाय, दूधके साथ भी न खाय, रात्रिमें भी नहीं खाय, दांतसे चबाकर और नरम नहीं खाय। सुश्रुत कहते हैं कि "सत्तुओंका अवलेहसा बनाकर खाय, क्योंकि अवलेह नरम होनेसे शीघ्र पचजाता है" ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

विषमाशनस्य लक्षणमाह।

आलस्यगौरवाटोपशब्दांश्च कुरुतेऽधिकम्। हीनमात्रं तनोः कार्श्यं करोति च बलक्षयम ॥ १५० ॥

अधिकम्--अन्नम् इति यावत् ॥

अन्नमात्रासे अधिक खाय तो आलस्य, भारीपना, पेटका फूलना तथा शब्द (गुड गुड) होना इत्यादि विकार होते हैं और थोडे भोजन करनेसे शरीर दुर्बल हो जाता है और बलका क्षय होता है ॥ १५० ॥

अकाले भुक्तस्य दोषमाह।

अप्राप्तकाले भुञ्जानो ह्यसमर्थतनुर्नरः। तांस्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणं चाधिगच्छति ॥ १५१ ॥

अप्राप्तकाले कालादतिप्राक् भुञ्जानः असमर्थशरीरो भवति तथा सति तांस्तान् व्याधीन् शिरोव्यथाविषूचिकाऽलसकविलम्बिकादीन् प्राप्नोति। तेषामाधिक्ये मरणमपि प्राप्नोतीत्यर्थः ॥

कालेऽतीतेऽश्नतो जन्तोर्वायुनोपहतेऽनले। कृच्छ्राद्विपच्यते भुक्तं न स्याद्भोक्तुं पुनः स्पृहा ॥ १५२ ॥

बिना समय भोजन करनेवाला मनुष्यका शरीर असमर्थ हो जाता है और उसके असमर्थ होनेसें शिरमें दर्द, विषूचिका, अलसक

और विलम्बिका आदि रोग उत्पन्न होते हैं, रोगोंकी वृद्धि होनेपर मृत्यु भी हो जाती है। जो मनुष्य भोजनके समयको टालकर पीछे भोजन करते हैं, उनकी अग्नि वायुसे नष्ट हो जाती है, खाया हुआ भोजन कठिनतासे पचता है और फिर दूसरी बार भोजन करनेकी इच्छा भी नहीं होती ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

अथ भोजनप्रमाणम्।

कुक्षेर्भागद्वयं भोज्यैस्तृतीये वारि पूरयेत्। वायोः सञ्चारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥ १५३ ॥ रसेनान्नस्य रसना प्रथमेनोपतर्पिता। न तथाऽऽस्वादमाप्नोति ततःशोध्याऽम्बुनाऽन्तरा ॥१५४॥ अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नमनम्बुपानाच्च स एव दोषः। तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥ १५५ ॥ भुक्तस्यादौ जलं पीतं कार्श्यमन्दाग्निदोषकृत्। मध्येऽग्निदीपनं श्रेष्ठमन्ते स्थौल्यकफप्रदम् ॥ १५६ ॥

अन्यच्च--समस्थूलकृशा भुक्तमध्यान्तप्रथमाम्बुपाः ॥ १५७ ॥ इति वाग्भटः।

भुक्तम्--भोजनम् ॥

तृषितस्तु न चाश्नीयात्क्षुधितो न पिबेज्जलम्। तृषितस्तु भवेद्गुल्मी क्षुधितस्तु जलोदरी ॥ १५८ ॥

पेटके दो भागोंको अन्नसे भरे, तीसरा भाग जलसे भरे और चौथा भाग वायुके चलने फिरनेके लिये खाली रहने देवे। अन्नके रससे प्रथम जीभ तृप्त होनेपर दूसरे पदार्थके स्वाद को नहीं जानती है इसलिये बीच बीचमें थोडा २ पानी पीकर जीभको साफ कर लेना चाहिये। अधिक जल पीनेसे अन्न ठीक नहीं पचता है और बिलकुल जलके न पीनेसे भी यही दोष होता है (अन्न नहीं पचता) इसलिये पुरुषको अग्नि बढानेके लिये बारम्बार थोडा २ पानी पीना चाहिये। भोजन करनेसे प्रथम जल पिये तो अग्नि मन्द होजाती है और शरीर दुर्बल होजाता है। भोजनके मध्यमें पानी पीनेसे अग्नि दीप्त होती है, भोजनके अन्तमें पानी पीनेसे शरीर मोटा होता है और कफकी वृद्धि होती है इस कारण बार बार बीच बीचमें पानी पीना श्रेष्ठ है। वाग्भट भी कहते हैं कि-"भोजनके बीच बीचमें पानी पीनेसे शरीर समान स्थितिमें रहता है, भोजनके पीछे पानी पीनेसे शरीर स्थूल (मोटा) हो जाता है और भोजनके पहले पानी पीनेसे शरीर दुर्बल होता है। तृषित (प्यासा) भोजन नहीं करे और भूखा पानी नहीं पीवे। जिसको तृषा लगी हो, वह तृषाको शांत किये बिना भोजन करे तो गुल्म (वायुगोलेका) रोग होता है और जिसको भूख लगी हो, वह भूखको शांत किये बिना पानी पीवे तो जलोदर रोग हो जाता है ॥ १५३-१५८ ॥

ननु शिष्टा भोजनान्ते दुग्ध पिबंति तत्कथमुचितम्? यतस्त्रिधा विभक्तस्य भोजनकालस्य प्रथमो भागो वातस्य, द्वितीयः पित्तस्य तृतीयः कफस्य ॥ अत एवाह--

अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम्। मध्येऽम्ललवणौ पश्चात्कटुतिक्तकषायकान् ॥ १५९ ॥

अस्यायमभिप्रायः- भोजने पूर्वं भुक्तो मधुरो रसो बुभुक्षितस्य वातपित्तयोः शमको भवति। भोजनमध्ये भुक्तौ अम्ललवणौ पित्ताशये च वह्निवृद्धि कुरुतः भोजनान्तसमये भुक्ताः कटुतिक्तकषायरसाः कफं शमयन्तीति।

अथ भोजनावसानसमयस्य कफकालत्वात् तत्र कथं श्लेष्मजनकं दुग्धं पातुमुचितं भवति। अत उक्तम्—

दुग्धं स्वादुरसं स्निग्धमोजस्यं धातुवर्धनम्। वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरु शीतलम् ॥ १६० ॥ इति ॥

उच्यते--विदाहीन्यन्नपानानि यानि भुङ्क्ते हि मानवः तद्विदाहप्रशांत्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत् ॥ १६१ ॥

तथा च ब्रह्मपुराणे--

कुर्य्यात्क्षीरान्तमाहारं न दध्यन्तं कदाचन ॥१६२॥ लवणाम्लकटूष्णानि विदाहीन्यत्ति यानि तु। तद्दोषं हर्तुमाहारं मधुरेण समापयेत् ॥ १६३ ॥

भोजनावसानसमये दुग्धादिमधुरभोजनेनैव वर्धितः कफो लवणाम्लकटुभोजनजनित पित्तवृद्धिं विनाशयति। पित्तवृद्धिविनाशनेन कफस्यापि वृद्धिः क्षीणा भवति। क्षीणा कफवृद्धिरग्निमान्द्यादीन् व्याधीनुत्पादयितुं न शक्नोति। ननु शत्रोर्नाशनेन शत्रुहन्तुर्वृद्धिर्दृश्यते न क्षीणता तत् कथं कफक्षीणता, तत् कथं कफः क्षीण, इति ?

उच्यते--बलवच्छत्रुविनाशनेन शत्रुहन्तुः क्षीणता च दृश्यते। तथा च--

नाशनात्प्रत्यनीकस्य स्वयं च क्षीयते यथा। वह्निसन्तप्तलोहस्य तप्ततां नाशयज्जलम् ॥ १६४ ॥

ननु भोजनावसानसमयेभुक्ताः कटुतिक्तकषायाःरसाः कफं शमयिष्यन्ति वातस्य वृद्धिं विधास्यन्ति इति चेत्, तन्न; कट्वादीनां क्षीणशक्तिकत्वात् ॥ तथा च--

यदेक नाशयेद्दोषं तदन्यं वर्धयेत्कुतः। नाशने ह्येकदोषस्य यतस्तत्क्षीणशक्तिकम् ॥ १६५ ॥

वस्तुतो य एव रसः प्राचुर्येण भुक्तस्तस्यैव सर्वे रसा वशा भवन्ति ॥

अत आह सुश्रुतः--

दुग्धाः सर्वेऽपि गच्छन्ति बलिनो वश्यतां रसाः। यथा प्रकुपिता दोषा वशं यान्ति बलीयसः ॥ १६६ ॥

बलिनः रसस्य बलीयसः दोषस्य ॥

शंका--शिष्टपुरुष जो भोजनके अन्तमें दूध पीते हैं, वे क्यों पीते हैं ? क्योंकि भोजन समयके तीन भाग करते हैं, उनमें पहला भाग वायुका है, दूसरा पित्तका है और तीसरा भाग कफका है, इसलिये कहा है कि, एकाग्रचित्त होकर प्रथम मधुर रस, बीचमें खट्टा तथा खार रस और अन्तमें कटु (तीखा), कडवा और कसैला रस भक्षण करे" इस कहनेका यह अभिप्राय है कि, "भोजनमें प्रथम मधुर रस भक्षण करे तो भूखे मनुष्यकी वायु और पित्तकी शांति होती है बीचमें खट्टा और खार रस खानेसे पित्ताशयमें अग्निकी वृद्धि होती है और भोजनके अन्तमें कटु कडवा अथवा कसैला रस खाय तो कफकी शांति होती है।" इस प्रकार भोजनके अन्तका काल कफका है तो उसमें कफको उत्पन्न करनेवाला दूध पीना कैसे योग्य हो सकता है ? शास्त्रोंमें दूधके गुण ऐसे लिखे हैं कि--"दूध स्वादुरसान्वित, स्निग्ध, सामर्थ्यवान्, धातुवर्धक, वायु तथा पित्तहारी, वीर्यवर्धक, कफकारी, भारी और शीतल है।" समाधान--मनुष्य नित्यप्रति दाहकारक जो जो अन्न और पान भक्षण करता है उन उन अन्न पानोंसे होनेवाली दाह की शांति करनेके लिये मनुष्यको भोजनके अन्तमें दूध पीना चाहिये। ऐसाही ब्रह्मपुराण में भी कहा है कि--"जिसके अन्तमें दूध पीने को मिले ऐसा भोजन करे और जिसके अन्त में दही खाया जाय ऐसा भोजन कभी नहीं करे। खार, खट्टा, चरपरा, गरम और अत्यन्त दाहकारक पदार्थोंके दोषोंको दूर करनेके

लिये मधुर पदार्थ खाकर भोजन पूर्ण करे। भोजनके अन्तमें दूध आदि मधुर भोजनसे बढ़ा हुआ कफ खट्टे खारी और चरपरे भोजनसे उत्पन्न हुये पित्तकी वृद्धिको दूर करता है। पित्तकी वृद्धि दूर होनेसे कफकी वृद्धि भी क्षीण हो जाती है और क्षीणहुई कफ की वृद्धि मन्दाग्नि आदि रोगोंको उत्पन्न नहीं कर सकती। शंका-शत्रुके नाश करनेसे उस शत्रुनाशककी वृद्धि देखनेमें आती है परन्तु क्षीणता देखनेमें नहीं आती तो उपरोक्त प्रमाणसे अर्थात् पित्तका नाश करनेसे उसके शत्रु कफकी वृद्धि होनी चाहिये; बल्कि क्षीणता नहीं होनी चाहिये। ऐसा होनेपर फिर कफकी क्षीणता होना ऊपर कैसे कही है? समाधान—बलवान् शत्रुका नाश करनेसे नाश करनेवाले की भी क्षीणता हुई देखनेमें आती है। जैसे जल जब अग्निसे तपे हुए लोहेकी तप्तता नष्ट करता है तब वह भी क्षीण होजाता है, ऐसेही जो अधिक बलवान् शत्रुको नष्ट करता है तो वह आप भी अधिक क्षीण होजाता है भोजनके अन्तमें खाया हुआ चरपरा, कडुआ और कसैला रस कफको शमन करता है, परन्तु वातकी वृद्धि करेगा. यह शंका होनेपर कहते हैं कि, तीक्ष्णादि रसकी शक्ति कफको शान्त करके आप ही नष्ट हो जाती है अर्थात् वायुको नहीं बढा सकती। जो पदार्थ एक दोषको नाश करता है वह दूसरे दोषोंको किस प्रकार बढा सकता है? अर्थात् नहीं बढा सकता; क्योंकि, उसकी शक्ति एक दोषके नाश करनेमें ही क्षीण हो जाती है। वास्तवमें तो यह है कि, जो रस अधिक खाया हो, उसीके अधीन सब रस रहते हैं; क्योंकि "जिस प्रकार कुपित हुए दोषके सब दोष अधीन होजाते हैं, उसी प्रकार खाये हुए सम्पूर्ण रस बलवान् रसके अधीन हो जाते हैं" ऐसा सुश्रुतमें कहा है ॥ १५९-१६६ ॥

एवं भुक्त्वा समाचामेच्चूषग्रहणपूर्वकम्।
भोजने दन्तलग्नानि निर्हृत्याचमनं चरेत् ॥ १६७ ॥ दन्तान्तरगतं चान्नं शोधने-नाहरेच्छनैः। कुर्यादनिर्हृतं तद्धि मुख-स्यानिष्टगन्धताम् ॥१६८॥ दन्तलग्नम-निर्हार्यं लेपं मन्येत दन्तवत्। न तत्र बहुशः कुर्याद्यत्नं निर्हरणं प्रति ॥१६९॥ आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषी स्पृशेत्। भुक्त्वा च संस्मरेन्नित्यमगस्त्या-दीन् सुखावहान् ॥१७०॥ विष्णुरात्मा तथैवान्नं परिणामश्च वै यथा। सत्येन तेन मद्भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा॥१७१॥ अगस्तिरग्निर्वडवानलश्च भुक्तं ममान्नं जरयन्त्वशेषम्। सुखं च मे तत्परिणाम-सम्भवं यच्छन्त्वरोगं मम चास्तु देहम् ॥ १७२ ॥ अङ्गारकमगस्तिं च पावकं सूर्यमश्विनौ। पञ्चैतान् संस्मरेन्नित्यं भुक्तं तस्याशु जीर्यति ॥ १७३ ॥ इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमार्ज्य तथोदरम्। अना-यासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः१७४

अतन्द्रितः-निरन्तरे जाग्रत् तिष्ठेत् न तु स्वप्यात्।

"भुक्तमात्रस्य तु स्वप्नाद्धन्त्यग्निं पित्तजः कफः" ॥ इति वचनात् ॥

जीर्णेऽन्ने वर्धते वायुर्विदग्धे पित्तमेधते।
भुक्तमात्रे कफश्चापिक्रमोऽयं भोजनो परि ॥ १७५ ॥

विदग्धे-किञ्चित्पक्वे चिञ्चिदपक्वे ॥

भुक्तमात्रे सञ्जातस्य कफस्य प्रतीकारमाह।

धूमेनापोह्य हृद्यैर्वा कषायकटुतिक्तकैः।
पूगैः कर्पूरकस्तूरीलवंगसुमनः फलैः ॥
॥ १७६ ॥ फलैः कटुकषायैर्वा मुखवै-शद्यकारिभिः। ताम्बूलपत्रसहितैः सुग-न्धैर्वा विचक्षणः ॥ १७७ ॥

धूमेन—अगुर्वादिधूमेन । अपोह्य कफं दूरीकृत्य । कषायकटुतिक्तकैः फलै कर्पूरकस्तूरीलवंगादिभिः । पूगैः क्रमुकैः । सुमनःफलैः जातीफलैः। फलैः एलाहरीतक्यादिफलैः ॥

भोजनके पश्चात् रूक्ष (नमकीन) पदार्थादिकोंसे मुख शुद्ध करके आचमन करे। भोजनके समय दांतोंमें जो कुछ अन्न लगा रह गया हो तो उसको निकालनेके पश्चात् फिर आचमन करे और दांतोंके अन्तर्गत जो अन्न प्रविष्ट हो, उसको सुवर्ण वा चांदी पीतलकी शलाका अथवा तिनका आदिसे धीरे धीरे निकाले। जो निकाला न जावे तो उसमेंसे मुखमें दुर्गन्ध आनेलगती है, जो कुछ मैल दांतोंमें लगा रह जाय बाहर निकलनेके योग्य न हो, तो इसको दांतही समझे अर्थात् उसको निकालनेमें अत्यन्त प्रयत्न न करे । आचमन करनेके पश्चात् दोनो भीजे हाथोंसे आंखोंका स्पर्श करे। यह स्पर्श करना नेत्रके अन्धकारको बहुत शीघ्र दूर करता है। भोजनके पश्चात् नित्य सुख प्राप्त होनेके लिये अगस्त्य आदिका स्मरण इस प्रकारसे करे कि—"आत्मा अन्न और अन्नका परिणाम विष्णुही है तो इस सत्यके प्रभावसे मैंने जो अन्न खाया है वह पच जाओ। अगस्त्य, अग्नि और वडवानल ये मेरे खाये हुए अन्नको पचाओ और अन्नके परिणामसे हुआ सुख मुझे दो तथा मेरा शरीर रोगरहित रक्खो। मंगल ग्रह, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य और अश्विनीकुमार इन पांचोंका जो मनुष्य नित्य स्मरण करता है, उस मनुष्यका खाया हुआ अन्न शीघ्र पच जाता है" इस प्रकार कहता हुआ अपने हाथको पेट पर फेरे पश्चात् जिसमें परिश्रम नहीं हो, ऐसे कार्य करे, परन्तु सोवे नहीं। "भोजन करते ही सो रहनेसे कफ कुपित होकर अग्निका नाश करता है" ऐसा शास्त्रका वचन है, इसलिये भोजन करनेके पश्चात् जागते रहना चाहिये। अन्नके पचनेपर वायु बढती है, अधपका (कुछ पका कुछ न पका) होनेपर पित्त बढता है। और भोजन करनेपर कफ बढता है, ऐसा क्रम है। अगरु आदिका धुआं पीनेके द्वारा कफको दूर करके अथवा हृदयको प्रिय, कटु तिक्त कषाय रसयुक्त सुपारी, कपूर, कस्तूरी, लौंग तथा जायफल आदि जो कसैले, चरपरे और कडवे द्रव्य हैं, उनसे अथवा मुखको स्वच्छ करनेवाली इलायची तथा हरडे आदि जो चरपरी और कसैली हैं, उनसे या पान सहित सुगंधित पदार्थोंसे बुद्धिमान् कफको दूर करे ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

अथ ताम्बूलगुणाः ।

रतौ सुप्तोत्थिते स्नाते भुक्ते वान्ते च संगरे। सभायां विदुषां राज्ञां कुर्यात् तांबूलचर्वणम् ॥ १७८ ॥

सम्भोगके समयमें, सोकर उठनेपर, स्नान करनेके पश्चात्, वमन होनेपर, युद्धमें विद्वानोंकी सभामें और राजाओंकी सभामें पान चबाना चाहिये ॥ १७८ ॥

अथ तांबूलभक्षणम् ।

ताम्बूलमुक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं तुवरं सरम् । तिक्तं क्षारोषणं कामरक्तपित्तकरं लघु ॥१७९॥ वश्यं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यमलवातश्रमापहम् । मुखवैशद्यसौगन्ध्यकान्तिसौष्ठवकारकम् ॥१८०॥ हनुदन्तमलध्वंसि जिह्वेन्द्रियविशोधनम् ॥१८१॥ नवं तदेव मधुरं कषायानुरसं गुरु। बलासजननं प्रायः पत्रशाकगुणं स्मृतम् ॥ १८२ ॥ वंगदेशोद्भवं पर्णं परं कटुरसं सरम् । पाचनं पित्तजनकमुष्णं कफहरं स्मृतम् ॥ १८३ ॥ पर्णं पुराणमकटु क्षुल्लकं तनु पाण्डुरम् । विशेषाद्गुणवद्धेयमन्यद्धीनगुणं स्मृतम् ॥ १८४ ॥

पान-तीक्ष्ण, गरम रुचिकारक, तुवर (कषैला) सारक (दस्तावर), कडुआ, क्षारोष्ण (उष्ण और खारा), कामोद्दीपक, रक्तपित्तको करने

वाला, हलका, लोगोंको वशमें करनेवाला, कफ, मुखकी दुर्गन्ध, मैल, वायु तथा परिश्रम इनको दूर करनेवाला है। मुखमें स्वच्छता, सुगंध कांति और सुन्दरतावर्धक ओठ तथा दांतोंके मलको दूर करता है। जीभको साफ करता है मुखसे लारके गिरनेको हरता है और गलेके रोगोंको दूर करता है। नवीन पान-मधुर, किंचित् कसैला, भारी, कफकारक और विशेष करके शाकके सदृश गुणकारी है। बंगाल देशका पानकेवल तीक्ष्ण रसवाला है. दस्त साफ लानेवाला, पाचक, पित्तकारक, गरम, तथा कफको हरनेवाला है! जो पक्का (पुराना), तीक्ष्णतारहित छोटा. पतला, मृदु और किंचित् रंगका पीला होता हैं, उस पानको उत्तम गुण वाला जानना। और अन्य पानोंको हीन गुणवाला जानना ॥१७९-१८४॥

अथ पूगीफलगुणाः।

पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफपित्तनुत्। मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् ॥ १८५ ॥ पूगं स्याद् दृढमध्यं यत्स्विन्नं वाऽपि त्रिदोषनुत्। सरसं गुर्वभिष्यन्दि तद्वभृशं वह्निनाशनम् ॥ १८६ ॥

सुपारी-भारी, शीतल, रूखी, कसेली, कफपित्त नाशक, मोहजनक, अग्निप्रदीपक, रुचिकारी और मुखकी विरसता नाशक है। जिसका मध्य भाग कठोर हो और उसीजके बनी हुई (चिकनी) ऐसी सुपारी त्रिदोष-नाशक है, रसभरी हुई नवीन सुपारी भारी, कफकारक और अग्निका अत्यंत नाश करने-वाली है ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

अथ खदिरसुधाताम्बूलगुणाः।

खदिरःकफपित्तघ्नश्चूर्णं वातबलासनुत्। संयोगतस्त्रिदोषघ्नं सौमनस्यं करोति च ॥ १८७ ॥ मुखवैशद्यसौगन्ध्यकान्ति-सौष्ठवकारकम्। प्रभाते पूगमधिकं मध्याह्ने खदिरं तथा। निशासु चूर्णम-धिकं तांबूलं भक्षयेत्सदा ॥ १८८ ॥ आयुरग्रे यशो मूले लक्ष्मीर्मध्ये व्यव-स्थिता। तस्मादग्रं तथा मूलं मध्यं पर्णस्य वर्जयेत् ॥ १८९ ॥ पर्णमूलं भवे-द्व्याधिः पर्णाग्रे पापसम्भवः। पर्णमध्यं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥१९०॥ आद्यं विषोपमं पीतं द्वितीयं भेदि दुर्ज-रम्। तृतीयादनुपातव्यं सुधातुल्यं रसा-यनाम्। ताम्बूलं नातिसेवेत न विरिक्तो बुभुक्षितः ॥ १९१ ॥ देहदृक्केशदन्ता-ग्निश्रोत्रवर्णबलक्षयः। शोषः पित्तानि-लास्रं स्यादतिताम्बूलचर्वणात् ॥१९२॥ ताम्बूलं न हितं दन्तबर्दुलेक्षणरागि-णाम्। विषमूर्च्छामदार्तानां क्षयिणां रक्तपित्तिनाम् ॥ १९३ ॥

कत्था--कफ तथा पित्तनाशक है और चूना वात तथा कफनाशक है। पान, कत्था और चूना तीनोंको मिलाकर खानेसे तीनों दोष दूर होते हैं और मन प्रफुल्लित होता है। मुखको हलका, सुगन्धित, कान्ति और सुन्दरतायुक्त करता है। प्रातःकालमें पान खाय तो उसमें सुपारी किंचित् अधिक रक्खे, मध्याह्नमें खाय तो कत्था किंचित् अधिक लगावे और रात्रिमें खाय तो चूना कुछ अधिक लगावे इस प्रकार सर्वदा पान खाय। पानके अग्रभागमें आयु, मूल (जड) में यश और मध्यभागमें लक्ष्मी निवास करती है, इस कारण अग्र, मूल और मध्य भागका त्याग करे। पानका मूल (जड) भाग खानेसे व्याधि होती है, अग्र भाग खाने से पाप लगता है, मध्यभाग खानेसे आयुका नाश होता है और पानके ऊपरकी नसें खाने से बुद्धिका नाश होता है। पानकी पहली पीक विषके सदृश है, इस कारण उसको कभी नहीं पीवे, दूसरी पीक दस्तावर तथा दुर्जर है इस कारण इसको भी नहीं पीवे अर्थात्

थूक देवे । तीसरी बारीक पीक पीनी चाहिए वह रसायनके समान और अमृततुल्य गुणकारी है, इसलिए दूसरी पीकसे पीछेकी सब पीक पीनी चाहिये । जिसने रेचक (दस्तावर) औषधि खाई हो उसको, और भूखेको बहुत पानका सेवन नहीं करना चाहिये और जो बहुत सेवन करे तो शरीर, दृष्टि, केश, दांत, अग्नि, कान, वर्ण और बल इनका क्षय होता है. बहुत पान चबानेसे शोषरोग होता है, पित्त, वात और रुधिरकी वृद्धि होती है । निर्बल दांतवाले, नेत्ररोगी, विषसे पीडित, मूर्च्छायुक्त, मद, राजयक्ष्मासे पीडित और रक्तपित्त रोगवाले मनुष्यको पान हितकारी नहीं है ॥ १८७–१९३ ॥

अथ भोजनोत्तरं चंक्रमणगुणाः ।

भुक्त्वा शतपदं गच्छेच्छनैस्तेन तु जायते । अन्नसंघातशैथिल्यं ग्रीवाजानुकटीषु च ॥ १९४ ॥ भुक्त्वोपविशतस्तन्द्रा शयानस्य तु पुष्टता । आयुश्चंक्रममाणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥१९५॥

चंक्रममाणस्य-पदशत शनैर्गच्छतः ॥

श्वासानष्टौ समुत्तानस्तान् द्विः पार्श्वे तु दक्षिणे ततस्तद्द्विगुणान्वामे पश्चात्स्वप्याद्यथासुखम् ॥ १९६ ॥ वामदिशायामनलो नाभेरूर्ध्वेऽस्ति जन्तूनाम् । तस्मात्तु वामपार्श्वे शयीत भुक्तप्रपाकार्थम् ॥१९७॥ त्रिदोषशमनी खट्वा तूली वातकफापह । भूशय्या बृंहणी वृष्या काष्ठपट्टी तु वातला ॥ १९८ ॥

अन्य पुनराह–भूशय्या वातलाऽतीव रूक्षा पितास्रनाशिनी । सुशय्याशयनं हृद्यं पुष्टिनिद्राधृतिप्रदम् ॥१९९॥ श्रमानिलहरं वृष्यं विपरीतमतोऽन्यथा । संवाहनं मांसरक्तत्वक्प्रसादकरं वृष्यं कफवातश्रमापहम् ॥ २०० ॥

भोजन करनेके पश्चात् धीरे धीरे सौ कदम चलना चाहिये, इससे भोजन किया हुआ अन्नका समूह उदरमें शिथिल होता है और गरदन, घुटने तथा कमरको सुख होता है । भोजन करके बैठ जानेसे शरीरमें आलस्य और तन्द्रा उत्पन्न होती है, सो रहनेसे शरीर पुष्ट होता है, दौडनेसे मृत्यु पीछे दौडती है और धीरे धीरे चलनेसे आयु बढती है । प्रथम सीधा सोकर आठ श्वास लेवे, फिर दाहिनी करवटसे सोकर सोलह श्वास लेवे, पीछे बांई करवटसे सोकर बत्तीस श्वास लेकर फिर जैसी इच्छा हो वैसा करे । प्राणियोंके नाभिसे ऊपर वामभागमें अग्नि रहती है, इस कारण भोजन पचानेके लिये वाम करवटसे सोवे । खाट त्रिदोष नाशक है, पलंग वात तथा कफको शमन करता है, पृथ्वीका सोना पुष्टिकारक, तथा वीर्यवर्द्धक है और लकडीकी पट्टी (तखत कांच) पर सोना वातकारक है । दूसरे ग्रन्थकार कहते हैं कि, "पृथ्वीपर सोनेसे वातकी उत्पत्ति होती है, अत्यन्त रूक्ष है और पित्त तथा रक्तका नाश होता है, सुन्दर शय्यापर सोनेसे मन प्रसन्न होता है, पुष्टि, निद्रा, तथा धैर्यकी प्राप्ति होती है, परिश्रम तथा वायु दूर होती है और वीर्य उत्पन्न होता है । दुष्ट शय्यापर सोनेसे उपरोक्त सब गुण उलटे होते हैं । अंगो (हाथ पांवों) को दबवानेसे मांस, रुधिर और त्वचामें अत्यन्त आनन्द होता है । प्रीति, निद्रा और वीर्यकी वृद्धि होती है कफ वात और परिश्रम दूर होता है ॥ १९४–२०० ॥

अथ प्रवाताटनम् ।

प्रवातं रौक्ष्यवैवर्ण्यस्तम्भकृद्दाहपित्तनुत् । ॥ २०१ ॥ स्वेदमूर्च्छापिपासाघ्नमप्रवातमतोऽन्यथा । सुखं प्रवातं सेवेत ग्रीष्मे शरदि चान्तरा ॥ २०२ ॥ निर्वातमायुषे सेव्यमारोग्याय च सर्वदा । पूर्वोऽनिलो गुरुः सोष्णः स्निग्धः पित्तास्र-

दूषकः। विदाही वातलो भ्रान्तिकफशोषवतां हितः॥ २०३॥ स्वादुःपटुरभिष्यन्दी त्वग्दोषार्शोविषक्रिमीन्। सन्निपातं ज्वरं श्वासमामवातं च कोपयेत्२०४

स्वादुः--भक्ष्यद्रव्येषु बाहुल्येन मधुररस--जनकः॥

दक्षिणःपवनः स्वादुःपित्तरक्तहरो लघुः। वीर्येण शीतलो बल्यश्चक्षुष्यो न तु वातलः॥२०५॥ पश्चिमः पवनस्तीक्ष्ण शोषणो बलहृल्लघुः। मेदःपित्तकफध्वंसी प्रभञ्जनविवर्धनः॥२०६॥ उत्तरो मारुतः शीतः स्निग्धो दोषप्रकोपकृत्। क्लेदनः प्रकृतिस्थानां बलदो मधुरो मृदुः २०७॥

दोषप्रकोपकृत्--आतुराणाम्॥

आग्नेयो दाहकृद्रूक्षो नैर्ऋतो न विदाहकृत्। धायव्यस्तु भवेत्तिक्त ऐशानःकटुक स्मृतः॥ २०८॥ विष्वग्वायुरनायुष्यः प्राणिनां बहुरोगकृत्। अतस्तं नैव सेवेत सेवितः स्यान्न शर्मणे॥ २०९॥ व्यजनस्यानिलो दाहस्वेदमूर्च्छाश्रमापहः। तालवृन्तभवो वातस्त्रिदोषशमको मतः॥ २१०॥ वंशव्यजनजस्तूष्णो रक्तपित्तप्रकोपनः। चामरो वस्त्रसम्भूतो मायूरो वेत्रजस्तथा। एते दोषजितो वाताः स्निग्धा हृद्यः सुपूजिताः॥ २११॥

प्रवात (हवामें फिरना) शरीरमें रूक्षता करता है, वर्णको हरता है, स्तम्भको करता है, तथा दाह (जलन), पित्त, पसीना, मूर्च्छा और तृषाको शान्त करता है। जहां अधिक वायु न हो, ऐसी जगह फिरनेसे उपरोक्त सब गुण विपरीत होते हैं। ग्रीष्म और शरद ऋतुमें अपनी इच्छाके अनुसार वातका सेवन करे और अन्य ऋतुओंमें आयुकी वृद्धिके निमित्त और रोगरहित रहनेके लिये सर्वदा वायुरहित स्थानमें विचरण करे। पूर्व दिशाकी पवन-भारी, गरम, स्निग्ध, रक्तपित्तको दूषित करनेवाली और दाहकारी है, तथा वातको उत्पन्न करनेवाली है। परिश्रम, कफ तथा शोषरोगवालोंको परमहितकारी है। भक्षण करनेवाले पदार्थोंको स्वादिष्ट करनेवाली, नमकीन अभिष्यंदी; त्वचाके दोष (कुष्ठादि), बवासीर, विषरोग, कृमिरोग, सन्निपात ज्वर, श्वास और आमवातादि रोगोंको कुपित करती है। दक्षिण दिशाकी वायु--मधुररसान्वित, पित्तरक्तनाशक, हलकी, शीतवीर्य, बलकारक, नेत्रोंको हितकारी है और वातको उत्पन्न करनेवाली नहीं है। पश्चिम दिशाकी पवन तीक्ष्ण, शोषकारक, बलहारक, हलकी, मेद, पित्त तथा कफ विनाशक और वातको बढानेवाली है। उत्तर दिशाकी पवन--शीतल, स्निग्ध, दोषोंको कुपित करनेवाली ग्लानिकारक, प्रकृतिस्थित प्राणियोंको बलदायक, मधुर और कोमल है अग्निकोणकी वायु-दाहकारक और रूक्ष है। नैर्ऋत्यकोणकी वायु-दाहकारक नहीं है। वायव्यकोणकी वायु कडवी है और ईशानकोणकी वायु तीक्ष्ण है। चारों दिशाओंकी मिली हुई वायु--आयु नाशक और मनुष्योंके अनेक रोगोंको उत्पन्न करनेवाली है। इस लिय उस पवनका सेवन करना महादुःखदायी है और सेवन करनेवालेका कल्याण नहीं होता। पंखेकी पवन--दाह, पसीना, मूर्च्छा और, परिश्रमको दूर करनेवाली है। ताडके पंखेकी पवन-तीनों दोषोंको शान्त करती है. बाँसके पंखेकी पवन-गरम और रक्तपित्तको कुपित करती है. चमर, वस्त्र, मोरके परोंकी और वेतके पंखेकी पवन--दोषोंको हरनेवाली, स्निग्ध, हृदयको आनन्दकारी और माननीय है॥ २०१-२११॥

अथ दिवास्वापप्रतिषेधः।

दिवा स्वापं न कुर्वीत यतोऽसौ स्यात्कफावहः॥२१२॥ ग्रीष्मवर्ज्येषु कालेषु

दिवा स्वप्नो निषिध्यते। उचितो हि दिवा स्वप्नो नित्यं येषां शरीरिणाम्। वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा ॥२१३॥ व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतान् क्लान्तानतीसारिणः शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान्। क्षीणात् क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान्। वृद्धान् रसाजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्निरान्निरशनान् कामं दिवा स्वापयेत् ॥२१४॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रा स्वात्मीकृता तु यैः। न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां चोपजायते ॥ २१ ॥

स्वपतां दिवा इति यावत्। जाग्रतां रात्रौ इति शेषः ॥

भोजनान्तरं निद्रा वातं हरति पित्तहृत्। कफं करोति वपुषः पुष्टिसौख्यं तनोति हि ॥ २१६ ॥ शयनं पित्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम्। वमनं कफनाशाय ज्वरनाशाय लङ्घनम्। आसीनं घूर्णितं तत्तु नाभिस्यन्दि न रूक्षणम् ॥२१७॥

दिनमें शयन नहीं करना चाहिये, क्योंकि, दिनमें सोनेसे कफकी वृद्धि होती है। ग्रीष्मऋतुको छोडकर शेष सब ऋतुओंमें सोना निषिद्ध है; परन्तु जो मनुष्य नित्यही दिनमें शयन करते हैं, वे जो दिनमें नहीं सोवे तो वातादि दोषोंका कोप होता है, इस लिये उनको दिनमें सोना वर्जित नहीं है। व्यायाम (कसरत) में तत्पर हो, स्त्रीप्रसंग करचुका हो, मार्ग चलनेसे थकित, घोडे आदि वाहपर चढनेवाला, ग्लानियुक्त, अतिसार, शूल, श्वास, तृषा, हिचकी और पवनसे पीडित, क्षीण, जिसका कफक्षीण होगया हो, बालक, मदात्यय (नशेबाज), वृद्ध, रसक अजीर्ण वाल, रात्रिमें जागा हुआ और जिसने उपवास (लंघन) किया हो, ऐसे मनुष्योंको आन्दसे दिनमें सुलावे। दिनमें अथवा रातमें जिन्होंने निद्रा स्वाधीन करली है, उनको दिनमें सोने और रात्रिमें जागनेसे कुछ दोष नहीं होता है। भोजनके उपरान्त नींद लेनेसे वात तथा पित्त नष्ट होता है, कफका वृद्धि, देहमें पुष्टाई और सुखकी प्राप्ति होती है, निद्रा लेनेसे पित्तका नाश होता है; तेल मर्दनसे वात नष्ट होती है, वमन करनेसे कफका विनाश होता है। लंघन करनेसे ज्वर नष्ट होता है और बैठे बैठे औंघानेसे न कफकीवृद्धि और न रूक्षता होती है ॥ २१२–२१७ ॥

अपरानप्युदरेऽन्नस्य संस्थापनेतूनाह।

शब्दान् स्पर्शांश्च रूपाणि रसान्गन्धात्मनःप्रियान्। भुक्तवानीप सेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥ २१८ ॥ उदरे इति शेषः ॥

अन्नस्य उदरे अस्थितिहेतूनाह।

शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धो जुगुप्सितः। भुक्तमप्रयतं चान्नमतिहास्यं च वामयेत् ॥ २१९ ॥

अप्रतम्--अपवित्रम् ॥

अन्यदपि बर्जनीयमाह।

शयनं चाशनं चाति न भजेन्न द्रवाधिकम्। नग्न्यातपौ न प्लवन न यानं नापि वाहनम् ॥ २२० ॥

प्लवनं बाहुभ्यां जलप्रतरणम्। यानं मार्गे चलनम्। वाहनमश्वादि ॥

व्यायामं च व्यवायं च धावनं यानमेव च। युद्धं गीतं च पाठं च मुहूर्तं भुक्तवास्त्यजेत् ॥ २२१ ॥

---

१ विषमाशन (विषमभोजन) इस कोई मासन पाठ मानकर विषम आसनसे बैठे रहना भी अर्थ करते हैं। (म० व०) ॥

भोजनके पश्चात् भी मनको प्रिय लगें ऐसे शब्द (गाना बजाना), स्पर्श (सुन्दर वस्तुका छूना), रूप, रस और गंधका सेवन करे। क्योंकि इनको सेवन करनेसे उदरमें अन्न भली भांति ठहर जाताहै । मनको अप्रिय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, अपवित्र अन्न और अत्यन्त हँसनेसे अन्नका वमन होजाता है। भोजनके पश्चात् अत्यन्त सोना, बैठना, बहुत प्रवाही (पतले) पदार्थोंका सेवन करना, अग्निसे तपना हाथसे पानीमें तैरना, बहुत चलना, घोड़े आदि वाहनपर बैठना इन सबको छोडदे और व्यायाम, मैथुन, दौडना, मार्ग चलना, युद्ध करना, गाना और पढना इत्यादि कार्य एक मुहूर्त्त अर्थात् दो घडीपर्यंत त्याग देवे ॥ २१८--२२१ ॥

अजीर्णस्य हेतूनाह ।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च । कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥२२२॥ ईर्ष्याभयक्रोधसमन्वितेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन । विद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्परिपाकमेति२२३।

सन्धारणात् अधोवात मलमूत्रादीनाम् ॥

बहुत जल पीनेसे, विषमाशन (थोडा-बहुत-अबेर सबेर खानेसे), मलमूत्रादिक वेगोंको रोकनेसे, निद्राकी विषमता (कभी दिनमें सोना, कभी रात्रिमें जागना) इत्यादि कारणोंसे हितकारक और हलका भोजन उपयुक्त समय सेवन किया हुआ भी मनुष्योंको नहीं पचता है। ईर्ष्या भय, क्रोध लोभ, रोग, दीनता, दुःख और द्वेषयुक्त मनुष्यका भोजन किया हुआ अन्न शुद्ध रीतिसे परिपक्व नहीं होता ॥ २ २॥ २२३॥

अध्यशनलक्षणमाह ।

अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते२२४

तन्निवारयन्नाह ।

प्राग्भुक्ते चानले मन्दे द्विरह्नि न समाहरेत् ॥ २२५ ॥

अस्यायमर्थः—प्रातर्भुक्ते अजीर्णे सति अहन्येव पुनर्न भुंजीत इत्यर्थः रात्रौपुनस्तथापि सति भुंजीतेव अत आह सुश्रुत एव—

प्रातराशे त्वजीर्णे तु सायमाशो न दुष्यति ॥ २२६ ॥ इति । पूर्वे भुक्ते विदग्धेऽन्ने भुञ्जानो हन्ति पावकम् ॥ २२७ ॥

अस्य तु अयमर्थः--पूर्वं भुक्ते रात्रिभुक्ते अन्ने विदग्धे किंचित् पक्व किंचितपक्वे प्रातर्भुञ्जानः पावकं हन्तीत्यर्थः ॥

अत आह--सायमाशे त्वजीर्णे तु प्रातर्भुक्ते विषोपमम् ॥ २२८ ॥ इति ॥

सायमाशाजीर्णे भोजनोपायमाह ।

भवेद्यदि प्रातरजीर्णशङ्का तदाऽभयां नागरसैन्धवाभ्याम् । विचूर्णितां शीतजलेन भुक्त्वा भुञ्जीत चान्नं मितमन्नकाले ॥ २२९ ॥

पेटमें अजीर्ण होने पर जो कुछ समय खानेमें आता है, वह अध्यशन अर्थात् अधिक भोजन समझा जाता है। इस कारण पहिला किया हुआ भोजन तबतक न पचजाय और अग्निमन्द हो, तबतक दिनमें दूसरी वार भोजन नहीं करे। अजीर्ण हुएपर रात्रिमें भोजन करनेमें भी दोष नहीं होता, क्योंकि-"प्रातःकालके भोजन किये हुएसे अजीर्ण उत्पन्न हुआ हो तो सन्ध्या समय भोजन करनेमें कुछ दोष नहीं है, परन्तु सन्ध्याके भोजनसे उत्पन्न हुए अजीर्णमें प्रातः-काल भोजन करे तो अग्नि मन्द होजाती है और सन्ध्याके भोजनसे अजीर्ण होनेपर प्रातःकालमें भोजन किये हुए अन्नका विषके

सदृश परिणाम होता है ।" सुश्रुत कहते हैं--सन्ध्यासमयका भोजन किया हुआ नहीं पचा हो, ऐसी शंका उत्पन्न हो तो प्रातः काल सोंठ, सेंधानोन और हरडका चूर्णकर शीतलजलके साथ खाकर पश्चात् भोजनका समय होनेपर थोडासा भोजन करे॥२३४-२९

दिवा स्त्रीसङ्गनिषेधः ।

आयुः क्षयभयाद्विद्वान्नाह्नि सेवेत कामिनीम् । अवशो यदि सेवेत तदा ग्रीष्मवसन्तयोः ॥ २३० ॥

अवशः-अजितेन्द्रियः ।

बुद्धिमान् मनुष्य दिनमें आयुके क्षीण होने के भयसे स्त्रीका सेवन नहीं करे परन्तु बहुत कामातुर होनेसे पराधीन होजाय तो ग्रीष्मऋतुमें और वसन्तऋतुके दिनोंमें स्त्रीके साथ सम्भोग करे ॥ २३० ॥

उपवेशनाटनादिगुणाः ।

आस्या वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यसुखप्रदा । अध्वा वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यविनाशनः ॥ २३१ ॥ यत्तु चंक्रमणं नातिदेहपीडाकरं भवेत् । तदायुर्बलमेधाऽग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम् ॥ २३२ ॥

बैठे रहनेसे शरीरका वर्ण, कफ, स्थूलता, सुकुमारता और सुखकी प्राप्ति होती है। चलनेसे शरीरका वर्ण कफ, स्थूलता और सौकुमार्य दूर होता है। देहको अधिक पीडा न हो, इस प्रकार धीरे धीरे फिरनेसे आयु, बल और बुद्धि बढती है, अग्नि दीप्त होती है और इन्द्रियां सचेत होती हैं ॥२३१ ॥ २३२॥

उष्णीषोपानद्गुणाः ।

उष्णीषं कान्तिकृत्केश्यं रजोवातकफापहम् । लघु तच्छस्यते यस्माद् गुरु पित्ताक्षिरोगकृत् ॥२३३॥ उपानद्धारणं नेत्र्यमायुष्यं पादरोगहृत् । सुखप्रचारमोजस्यं वृष्यं च परिकीर्तितम् ॥२३४॥ पादाभ्यामनुपानद्भ्यां सदा चंक्रमणं नृणाम् । अनारोग्यमनायुष्यमिन्द्रियघ्नमदृष्टिदम् ॥ २३५ ॥

पगडी धारण करनेसे कांति बढती है, केशोंको हितकारी और धूल, वात तथा कफ को दूर करनेवाली है। पगडी हलकी रखनी उत्तम है, क्योंकि भारी पगडी धारण करना पित्त और नेत्ररोगोंको उत्पन्न करती है। पांवमें जूतियोंका पहरना नेत्रोंका सुखकारक आयु बढानेवाला, पांवोंके रोगोंका नाशक, मनुष्योंको सुखपूर्वक चलानेवाला, उत्साह और शक्तिको बढानेवाला कहा है। सर्वदा पांवोंमें जूती न पहरकर फिरनेसे मनुष्योंके आरोग्य तथा आयुका हानि होती है, इंद्रियों और नेत्रोंकी दृष्टि कम होती है॥२३३-२३५॥

अथ छत्रदण्डधारणगुणाः ।

छत्रस्य धारणं वर्षातपवातरजोऽपहम् । हिमघ्नं हितमक्ष्णोश्च माङ्गल्यमपि कीर्तितम् ॥ २३६ ॥ सत्त्वोत्साहबलस्थैर्यधैर्यतेजोविवर्धनम् । अवष्टम्भकरं चापि भयघ्नं दण्डधारणम् ॥ २३७ ॥

छत्र (छत्री) धारण करनेसे वर्षा, धूप, पवन और धूलसे बचाव होता है, शीतनाशक, नेत्रोंका हितकारी और संसारमें मंगलरूप कहा है। लकडी (लाठी) धारण करनेसे शक्ति, उत्साह, बल, स्थिरता, धीरज तथा तेजकी वृद्धि होती है, सहारा देती है और भय को नष्ट करती है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

अथ शिबिकाद्यारोहणगुणाः ।

ऊर्ध्वाच्छादनसंयुक्ता शिबिका सर्ववल्लभा । तस्यामारोहणं नृणां त्रिदोषशमकं मतम् ॥२३८॥ वातश्लेष्मगदार्तानामहिता श्रमकृत्तरिः । पित्तानिलकरो

हस्तो लक्ष्म्यायुःपुष्टिवर्द्धनः ॥ २३९ ॥ घोटकारोहणं वातपित्ताग्निश्रमकृन्मतम्। मेदोवर्णकफघ्नं च हितं तद्बलिनां परम् ॥ २४० ॥

ऊपरसे ढकी हुई पालकी सबको प्रिय है और उसमें बैठकर चलनेसे मनुष्योंके वातादि तीनों दोष शान्त होते हैं। नौका-वात तथा कफरोगवालोंके लिये हितकारी नहीं है और भ्रम (चक्र) रोगको करनेवाली है। हाथीपर बैठनेसे पित्त तथा वात उत्पन्न होता है और लक्ष्मी आयु तथा पुष्टि बढती है। घोडेपर चढनेसे वात, पित्त तथा अग्निकी वृद्धि होती है। परिश्रमकारक, मेद, वर्ण और कफनाशक है। बलवान् मनुष्यको घोडेकी सवारी बहुत हितकारी है ॥ २३८-२४० ॥

अथातपादीनां गुणाः।

आतपःस्वेदमूर्च्छास्रपित्ततृष्णाक्लमश्रमान्। दाहं विवर्णतां कुर्यादेतांश्छाया व्यपोहति ॥२४१॥ वृष्टिर्वृष्या हिमा बल्या निद्राऽऽलस्यविधायिनी। भयावहा मोहकरी कुहेलिः कफवातला ॥ २४२ ॥

कुहेलिः—कुहासा ति लोके ॥

अग्निर्वातकफस्तम्भशीतवेपथुनाशनः। आमाभिष्यन्दशमनो रक्तपित्तप्रकोपनः ॥२४३॥ सद्यः श्लेष्मकरो धूमो नेत्रयोरहितो भृशम्। शिरोगौरवकृच्चापि वातपित्तं च कोपयेत् ॥ २४४ ॥

धूपको सेवन करनेसे स्वेद (पसीना) मूर्छा, रक्तपित्त, तृषा, ग्लानि, परिश्रम तथा दाह और विवर्णताकी उत्पत्ति होती है। छायासे स्वेद (पसीना), मूर्छा, रक्तपित्त, तृषा, ग्लानि, परिश्रम तथा दाहका नाश होता है और वर्ण सुन्दर होता है। वर्षा—वीर्यवर्द्धक, शीतल, बलकारक, निद्रा तथा आलस्यको उत्पन्न करती है। लहर (कौल) भयकारक, मोहको उत्पन्न करनेवाला और कफ तथा वात बढानेवाला है। अग्निवातकफ, स्तम्भ, शीत और कम्पको नष्ट करती है तथा आमाभिष्यन्दको शमन करनेवाली और रक्तपित्तको कुपित करनेवाली है। धुआं तत्काल कफको करनेवाला, नेत्रोंको अहितकारी है, शिरको भारी और वात तथा पित्तको कुपित करनेवाला है ॥ २४१-२४४ ॥

अथ सदाचरणम्।

मैत्रीं सद्भिःसमं कुर्यात्स्नेहं सत्सु तु सर्वथा। संसर्गं साधुभिः कुर्य्यादसत्संगं परित्यजेत् ॥ २४५ ॥

सत्सु-सज्जनेषु। सर्वथा मनोवाक्कर्मभिः ॥

सेवेत देवभूदेववृद्धवैद्यनृपातिथीन्। विमुखान् नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत कानपि ॥ २४६ ॥ गुरूणां सन्निधौ तिष्ठेत्सदैव विनयान्वितः। पादप्रसारणादीनि तत्र नैव समाचरेत् ॥२४७॥ अपकारपरेऽपि स्यादुपकारपरःपुमान्। आत्मवत्सकलान् पश्येद्वैरिणो दूरतो वसेत् ॥ २४८ ॥ न कश्चिदात्मनः शत्रुर्नात्मानं कस्यचिद्रिपुम्। प्रकाशयेन्नापमानं न च निःस्नेहतां प्रभोः ॥ २४९ ॥ नात्मानमुदके पश्येन्न नग्नः प्रविशेज्जलम्। तथा नज्ञातगाम्भीर्य्यं न हिंस्रप्राणिसेवितम् ॥२५०॥ काले हितं मितं सत्यं संवादि मधुरं वदेत्। भुञ्जीत मधुरप्रायं स्निग्धं कालहितं मितम् ॥ २५१ ॥ न रात्रौ दधि भुञ्जीत न च निर्लवणं तथा। नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं न चाप्यघृतशर्करम् ॥ २५२ ॥ जनस्याशय मालक्ष्य यो यथा परितुष्यति। तं तथैवानुवर्तेत पराराधन-

पण्डितः ॥२९३॥ नैकः सुखी न सर्वत्र विश्वस्तो न च शङ्कितः । नोद्यमे विरमेत्कापि हेतावीर्ष्येत्फले न तु ॥ २९४ ॥

हेतौ-फलेहेतौ उद्यमे । फले धनादौ ॥

वेगान्न धारयेज्जातु मनोवेगान् विधारयेत् । न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतानतिलालयेत् ॥ २९५ ॥ वर्षातपादिषु छत्री दण्डी रात्रौ भयेषु च । सोपानत्कस्तनुं रक्षेद्विचरेद्युगमात्रदृक् ॥ २९६ ॥

युगमात्रदृक् अग्रतो हस्तचतुष्टयमितां भूमिं पश्य ॥

नदीं तरेन्न बाहुभ्यां नाग्निस्कन्धमभिव्रजेत् । सन्दिग्धनावं वृक्षं च नारोहेद दुष्टयानकम् ॥ २९७ ॥

दुष्टयानकम्--दुष्टगजघोटकादि ॥

नासवृतमुखं कुर्यात्सभायां च विचक्षणः । कासं श्वासं तथोद्गारं जृम्भणं क्षवथुं तथा ॥२९८॥ नासिकां न विकुष्णीयान्नासीतोत्कटकः क्वचित् । नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेन्न नखेन लिखेद् भुवम् ॥२९९॥ सम्मार्जनीरजो नैव देहे दद्यात्कदाचन । न नखेन तृणं छिन्द्यान्नोच्छिष्टो ब्राह्मणं स्पृशेत् ॥२६०॥ नोपरक्तं न चोद्यन्तं नास्तं यांतं दिवाकरम् । सर्वथा न समीक्षेत न जले प्रतिबिंबितम् ॥२६१॥ नेक्षेत सततं सूक्ष्मं दीप्तामेध्याप्रियाणि च । पौरन्दरं धनुर्वेद दर्शयेत्कमपि क्वचित् ॥२६२॥ नेच्छेद् बलवता युद्धं न भारं शिरसा वहेत् । गात्रं न नादयेत्केशान् हस्तेन धुनुयान्न च ॥ २६३ ॥ न गच्छेत्पूज्ययोर्मध्ये दम्पत्योरन्तरेण च ! रिपोरन्नं न भुञ्जीत गणिकाऽन्नमपि क्वचित् । प्रतिभूर्न भवेत्कापि न साक्षी वृथा भवेत ॥ २६४ ॥

प्रतिभूः—जामिन् ॥

छागीं न धारयेज्जातु द्यूतं दूरात्परित्यजेत् ॥ २६५ ॥ विश्वासं नाचरेत्स्त्रीणां ताः स्वतन्त्रा न चारयेत् । रक्षणीया सदा यत्नाद्यौवने तु विशेषतः ॥२६६॥ न भिन्ने शयने स्वप्यान्नानेकविवरेऽपि च नैको देवालये नैव रात्रौ तरुतलेऽपि च २६७ एवं दिनानि गमयेत्सदाचारपरः सदा । ततो रात्रिप्रयुक्तावि कार्यत्कर्माणि मानवः ॥ २६८ ॥ इत्याचारं समासेन भाषितं यः समाचरेत् । स विन्दत्यायुरारोग्यं प्रीतिं धर्मं धनं यशः॥२६९

श्रेष्ठ मनुष्योंके साथ मित्रता करे, उनके ऊपर सब प्रकारसे स्नेह रक्खे और मन वचन तथा कर्मसे संसर्ग भी उनसे ही करे। नीच मनुष्योंका संग सब प्रकारसे छोड देवे, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा तथा अतिथि लोगोंकी सेवा करे । याचक (मांगनेवाले) निराश कर खाली न जाने दे और किसीकी भी अवज्ञा न करे। गुरु (बडे) लोकोंके पास सदा नम्रतापूर्वक बैठे, उनके पास पांव पसारकर बैठना आदि अयोग्य कार्य कभी नहीं करे। अपकार करनेवाले मनुष्योंको भी उपकार करनेमें तत्पर रहे। सबको अपने सदृश जाने और शत्रुसे दूर रहे कोई मनुष्य हमारा शत्रु है, अथवा अमुक मनुष्यका मैं शत्रु हूँ ऐसा किसी प्रकार प्रकाशित न करे। किसी स्थानमें अपना अपमान हुआ हो, उसको और अपने ऊपर स्वामीका स्नेह न हो, उसको भी प्रकाशित न करे । पानीमें अपना प्रतिबिम्ब नहीं देखे, नग्न होकर जलमें नहीं घुसना चाहिये, जिसकी गहराई मालूम न हो तथा जिसमें मगर मत्स्य आदि हिंसक जीव रहते हों,

ऐसे जलमे प्रवेश नहीं करे। बोलनेके समयपर थोडा, हितकारी सत्य, प्रसंगके अनुसार और मिष्ट वचन बोले । भोजनके समय अधिक मधुर रसवाले, घीसहित और हितकारी पदार्थोंका प्रमाणानुसार भोजन करे। रात्रिमें दही नहीं खाय और विनानमकके दही कभी नहीं खाय, तथा और मूंगकी दाल, शहद, घी और शर्करा (बूरा) के बिना भी दही नहीं खाय। मनुष्योंके अभिप्रायको जानकर जो मनुष्य जिस प्रकारसे प्रसन्न हो, उससे उसी प्रकार बरते क्योंकि अन्य मनुष्योंको प्रसन्न रखना ही चतुरता है । जिस प्रकार सहाय विना मनुष्य सुखी नहीं होता, उसी प्रकार सबके ऊपर विश्वास करनेवाला अथवा सबके ऊपर सन्देह रखनेवाला भी मनुष्य नहीं होता। कभी उद्यम करनेसे खाली नहीं बैठना चाहिये। किसीके सफलीभूत उद्यमको देखकर उसपर ईर्ष्या करना नहीं चाहिये। जो पुरुष ऐश्वर्यवान्के ऐश्वर्यको देखकर दुःख मानते हैं, वे सदैव दुःखी रहने हैं। विद्वानोंको यह विचरना चाहिये कि अमुक पुरुषको किस प्रकार और किस चतुरतासे यह ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है, उसी विद्या और उसी उपायसे हमभी धन उपार्जन करके संसारमें अपना यश प्रकाश करें। परन्तु चतुर जन किसीके सञ्चित किये हुए धनकी इच्छा नहीं करे। मल, मूत्र अथवा अपान वायु आदिके वेगोंको कदापि नहीं रोके, किन्तु काम क्रोधादि मनके वेगोंको रोकना चाहिये। इन्द्रियोंयो पीडित नहीं करे और उनका बहुत लाड भी नही करे। वर्षा अथवा धूप आदिमें छत्र (छत्री) धारण कर चले,रात तथा भयके समय हाथमें लकड़ी लेकर चले, जूते पहने रहे और देहकी रक्षा करे; आगेको चार हाथ पृथ्वी देखकर चले । हाथोंसे नदीको नहीं तैरे. जहां अग्निका समूह हो, वहां नहीं जाय। संदेहयुक्त वाहनपर नहीं बैठे, वृक्षपर नहीं चढे और उन्मत्त हाथीके पास नहीं जाय ।श्रेष्ठ मनुष्योंकी सभामें सन्मुख मुख करके खांसी, श्वास, डकार, जम्भाई और छीक नहीं लेवे। सभामें बैठकर कभी नाकको नहीं कुरेदे, ऊकरू कभी नहीं बैठे, अधिक देरतक घुटुएँ ऊंचे करके नहीं बैठे और नखोंसे पृथ्वी कभी न खोदे। शरीरपर कभी बुहारीकी धूल न पड़ने देवे। नखसे तृणको नहीं तोडे, जूँठे मुख ब्राह्मणको स्पर्श न करे। राहुसे ग्रसित (ग्रहणके समय) उदय होते और अस्त होते समय सूर्यको न देखे। पानीमें सूर्यका प्रतिबिम्ब पड़ा हो, उसको न देखे। सूक्ष्म प्रकाशयुक्त, अपवित्र और अप्रिय वस्तुको निरन्तर न देखे, आकाशमें इंद्रका धनुष्य तना हो उसको किसी समय भी किसीको नहीं दिखावे बल वान्के साथ लड़ाई करनेकी इच्छा नहीं करे, बोझ मस्तकपर नहीं उठावे, हाथ इत्यादि ठोककर शरीरका शब्द नहीं करे। हाथसे केशोंको नहीं हलावे, दो पूज्य मनुष्य अथवा स्त्री पुरुष खडे हों, तो उनके बीचमें होकर नहीं जाय, शत्रु अथवा वेश्याका अन्न कदापि नहीं खाय। किसी समयभी किसीका प्रतिभू (जामिन्) नहीं बने, किसीका वृथा साक्षी न हो, किसीकी धरोहर न रक्खे और जहां जुआ होता हो, उसको दूरसे ही त्याग देवे। स्त्रियोंका विश्वास कदापि नहीं करे, स्त्रियोंको स्वतन्त्रतासे नहीं रक्खे, अधिक प्रयत्नसे स्त्रियोंकी रक्षा करे. उसमें भी युवावस्थामें विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये। स्त्रीको अलग शय्यापर न सुलावे, पुरुषके स्थानोंमें स्त्रीको न रक्खे और छिद्रोंवाली फटी टूटी शय्यापर शयन न करे, रात्रिको देवमंदिरमें अथवा वृक्षके नीचे अकेला न सोवे। इस प्रकार सदाचारमें तत्पर रहकर दिन व्यतीत करे और रात्रिको समयानुकूल कार्य करे। संक्षेपसे यह जो सदाचार कहा, उसके अनुसार जो मनुष्य आचार करता है, उसको आयु, आरोग्य प्रीति धर्म और यशकी प्राप्ति होती है॥ २४५--२६९ ॥

अथ सन्ध्यायां निषिद्धकर्माणि।

एतानि पञ्च कर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेद् बुधः। आहरं मैथुनं निद्रां सम्पाठं गतिमध्वनि ॥२७०॥ भोजनाज्जायते व्याधिर्मैथुनाद्गर्भवैकृतिः निद्राया निःस्वता पाठादायुर्हानिर्गतेर्भयम् ॥ २६१ ॥

विद्वान् लोगोंको संध्याकालमें आहार, मैथुन, निद्रा, अध्ययन (पढना) और मार्ग चलना ये पांच कार्य नहीं करने चाहिये। सायंकालमें भोजन करनेसे व्याधि उत्पन्न होती है, मैथुन करनेसे गर्भमें विकार आता है, निद्रासे निर्धनता प्राप्त होती हैं, पढ़नेसे आयुका नाश होता है और मार्गमें चलनेसे भय उत्पन्न होता है ॥ २०७-२७१ ॥

अथ रात्रिचर्यामाह।

ज्योत्स्ना शीता स्मरानन्दप्रदा तृट्पित्तदाहहृत्। ततो हीनगुणाः कुर्यादवश्यायोऽनिलं कफम् ॥ २७२ ॥ तमो भयावहं मोहदिङ्मोहजनकं भवेत्। पित्तहृत्कफहत्कामवर्धनं क्लमकृच्च तत्॥२७३॥ रात्रौ च भोजनं कुर्यात् प्रथमप्रहरान्तरे किञ्चिदूनं समश्नीयाद् दुर्जरं तत्र वर्जयेत् ॥ २७४ ॥

चंद्रमाकी चांदनी--शीतल, कामदेवसम्बन्धी आनंददायक और तृषा, पित्त तथा दाहको हरनेवाली है। ओस--चादनीसे हीन गुणोंवाली है और वातकफ को करनेवाली है। अंधकार-भयदायक, मोहकर्त्ता, दिशाओंमें भ्रम करनेवाला पित्त तथा कफको हरनेवाला, कामदेवको बढानेवाला है और शरीरमें ग्लानि करता है। रात्रिके प्रथम प्रहरमें दिनकी अपेक्षा कुछ कम भोजन करे और उनमें जो बहुत देरसे पचे ऐसे भोजन नहीं करे ॥ २७२--२७४ ॥

अथ मैथुनम्।

शरीरे जायते नित्यं देहिनःसुरतस्पृहा। अव्यवायात्मेहमेदोवृद्धिःशिथिलता तनोः २७५ बालेति गीयते नारी यावद्वर्षाणि षोडश। ततस्तु तरुणी ज्ञेया द्वात्रिंशद्वत्सरावधि ॥ २७६ ॥ तदूर्ध्वमधिरूढा स्यात्पञ्चाशद्वत्सरावधि। वृद्धा तत्परतो ज्ञेया सुरतोत्सववर्जिता ॥ २७७ ॥

अधिरूढा--प्रौढा

निदाघशरदो बाला हिता विषयिणो मता। तरुणी शीतसमये प्रौढा वर्षा वसन्तयोः ॥२७८॥ नित्यं बाला सेव्यमाना नित्यं वर्धयते बलम्। तरुणी ह्रासयेच्छक्तिं प्रौढोद्भावयते जराम् ५७९सद्योमांसं नवं चान्नं बाला स्त्री क्षीरभोजनम्। घृतमुष्णोदके स्नानं सद्यः प्राणकराणि षट् २८० पूति मांसंस्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ॥ २८१ ॥

प्राणशब्दोऽत्र बलवाचकः। बालार्कः-कन्यार्कः।

वृद्धोऽपि तरुणीं गत्वा तरुणत्वमवाप्नुयात्। वयोऽधिकां स्त्रियं गत्वा तरुणः स्थविरायते ॥२८२॥ आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विताः। स्थिरोपचितमांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः २८३ सेवेत कामतः कामं बलाद्वाजीकृतो हिमे। प्रकामं तु निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे। त्र्यहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वृष्टिनिदाघयोः ॥२८४॥ सुश्रुतस्तु—त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समेयात्प्रमदां नरः। सर्वेष्वृतुषुघर्मे तु पक्षात्पक्षाद् व्रजेद्बुधः २८५

समयात्-संगच्छेत् । घर्मे ग्रीष्मे ॥

शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे वसन्ते तु दिवा निशि । वर्षासु वारिदध्वाने शरत्सु सरसि स्मरः ॥ २८६ ॥ उपेयात्पुरुषो नारीं सन्ध्ययोर्न च पर्वसु । गोसर्गे चार्द्धरात्रे च तथा मध्यंदिनेऽपि च ॥२८७॥विहारं भार्यया कुर्यांद्देशेऽतिशयसंवृते । रम्ये श्राव्याङ्गनागानेसुगन्धे सुखमारुते २८८ देशे गुरुजनासन्ने विवृतेऽतित्रपाकरे । श्रूयमाणे व्यथाहेतुवचने न रमेत ना। ॥२८९॥ स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्ध सुमतोन्वितः । भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेषः समलंकृतः ॥२९०॥ताम्बूलवदनः पत्न्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः । पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे २९१ अत्याशितोऽघृतिः क्षुद्वान् सव्यथाऽङ्गः विपासितः । बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥ २९२ ॥

रोगी-मैथुनसंवर्जनीयरोगयुक्तः ॥

भार्यां रूपगुणोपेतां तुल्यशीलां कुलोद्भवाम् । अतिकामोऽभिकामां तु हृष्टामलंकृताम् ॥१९३॥ सेवेत प्रमदां युक्त्या वाजीकरणबृंहितः । रजस्वलामकामां च मलिनामप्रियां तथा ॥ २८४ ॥ वर्णवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम्। हीनाङ्गीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनिरोगसमन्विताम् ॥२९५॥ सगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्रजितामपि । नाधि गच्छेत्पुमान्नारीं भूरिवैगुण्यशङ्कया ॥२९६॥ रजस्वलां गतवतो नरस्यासंयतात्मनः। दृष्ट्यायुस्तेजसां हानिरधर्मश्च ततो भवेत् ॥२९७॥लिङ्गिनीं गुरुपत्नीं च सगोत्रमथ पर्वसु । वृद्धां च सन्ध्ययोश्चापि गच्छतो जीवनक्षयः ॥ २९८ ॥

लिंगिनीम्--प्रव्रजिताम् ॥

गर्भिण्यां गर्भपीडा स्याद्व्याधितायांबलक्षयः । हीनाङ्गीं मलिनां द्वेष्यां क्षमां वन्ध्यामसंवृते ॥२९९॥ देशेऽभिगच्छतो रेतः क्षीणं म्लानं मनो भवेत् ॥ गर्भिणी गर्भवासादिवसात् द्वितीयेमासि गर्भस्थितेरनिश्चये यथोक्तनक्षत्रादिलाभाभावे वा तृतीये मासि पुंसवने कृते नाभिगच्छेत्। यतः पुंसवनानन्तरमाह व्यासः--तत स्त्यजेन्नदीतीरं देवखातोदकं तथा। भर्तुः शय्यमृतापत्यां तथैवामिषभोजनम् ॥ ३०० अन्यच्च--आमिषस्याशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेत् । देवारामनदीयानं प्रयोगं पुरुषस्य च ॥ ३०१ ॥ इति । क्षुधितः क्षुब्धचित्तश्च मध्याह्ने तृषितोऽबलः । स्थितस्य हानिं शुक्रस्य वायोः कोपं च विन्दति ॥ ३०२ ॥ व्याधितस्य रुजा प्लीहा मूर्च्छा मृत्युश्च जायते । प्रत्यूषे चार्धरात्रे च वातपित्ते प्रकुप्यतः ॥३०३ तिर्यग्योनावयोनौ वा दुष्टयोनो तथैव च। उपदंशास्तथा वायोः कोपः शुक्रसुखक्षयः ॥३०४॥ उच्चारिते मूत्रिते च रेतसश्च विधारणे । उत्ताने च भवेच्छीघ्रं शुक्राश्मर्यास्तु सम्भवः ॥ ॥३०५॥ सर्वमेतत्त्यजेत्तस्माद्यतो लोकद्वयाहितम् । शुक्रं तूपस्थितं मोहान्न सन्धार्यं कदाचन ॥३०६॥ स्नानं सश-

र्करं क्षीरे भक्ष्यमैक्षवसंस्कृतम् । वातो मांसरसः स्वप्नः सुरतान्ते हिता अमी
३०७ शूलकासज्वरश्वासकार्श्यपाण्ड्वामयक्षयाः । अपि व्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः ॥ ३०८ ॥

प्राणियोंको शरीरमें नित्य मैथुन करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, इच्छा होनेपर मैथुन नहीं करनेसे प्रमेह, मेदकी वृद्धि और शरीरमें शिथिलता होती है स्त्री सोलह वर्ष पर्यन्त बाला कही जाती है; बत्तीस वर्ष पर्यन्त तरुणी कहाती है, पचास वर्ष पर्यन्त प्रौढा रहती है और इसके आगे वृद्धा कहाती है, स्त्रीको वृद्धावस्थामें कामदेवसम्बन्धी उत्सव नहीं रहता। इस कारण वृद्धा स्त्री मैथुनमें त्याज्य है। ग्रीष्मऋतुमें और शरदृऋतुमें विषयी पुरुषोंको बाला स्त्री अत्यन्त हितकारी है. शीतकालमें तरुणी और वर्षा तथा वसन्त ऋतुमें प्रौढा स्त्री अत्यन्त हितकारी है। नित्य बाल स्त्रीके सेवन करनेसे बल बढता है, युवा (तरुणी) स्त्रीके सेवन करनेसे शक्ति हीन होती है और प्रौढा स्त्रीके सेवन करनेसे वृद्धता प्राप्त होती है, ताजा मांस, नवीन अन्न, बाला स्त्री, दूधका भोजन, घीका सेवन और उष्ण जलसे स्नान, ये छः वस्तु तत्काल बलको देनेवाली हैं। पूति (सडा हुआ) मांस, वृद्ध स्त्री, बाल (प्रातःकाल उदय हुआ सूर्य, तत्कालका जमाया हुआ दही, प्रभातकालमें मैथुन और निद्रा ये छः वस्तु तत्काल बलको हरनेवाली हैं। वृद्ध पुरुष भी तरुणीके संग संभोग करे तो युवाके सदृश होजाता है और युवा पुरुष वृद्धास्त्रीके संग संभोग करनेसे वृद्धके सदृश होजाता है। नियमानुसार स्त्रियोंके संग प्रसंग करनेवाले पुरुषकी आयु अधिक होती है, मन्दता और जरा अवस्था शीघ्र नहीं आती, शरीरके वर्णकी उत्तमता, बलकी वृद्धि और मांस स्थिर तथा वृद्धिको प्राप्त होता है। हेमन्तऋतुमें वाजीकरणकी औषधि खाकर बलवान् होकर इच्छानुसार मैथुन करे। शिशिरऋतुमें भी इच्छानुसार ही संभोग करना चाहिये। वसन्त और शरदृऋतुमें तीन तीन दिनके उपरान्त स्त्रीसंग करना उचित है और वर्षाऋतु तथा ग्रीष्मऋतुमें एक एक पक्ष (पखवाडे) में मैथुन करना चाहिये। सुश्रुत कहते हैं कि–"बुद्धिमान् पुरुष सम्पूर्ण ऋतुओंमें तीन तीन दिनमें स्त्रीसे संभोग करे परन्तु ग्रीष्मऋतुमें पक्षपक्षमें मैथुन करना उचित है।" शीतकालमें रात्रिके समय मैथुन करे, ग्रीष्म ऋतुमें दिनके समय मैथुन करे, वसंतऋतुमें रात्रि तथा दिन दोनोंमें मैथुन करे, वर्षाऋतुमें जब घन गर्जना हो और चपला (बिजली) चमकती हो, उस समय मैथुन करे और शरदृऋतुमें (इच्छानुसार) सरोवरादिके तटस्थ स्थानोंमें मैथुन करे, प्रभात, सायंकाल, पर्व, अर्द्धरात्रि. गौओंको छोडनेका समय और मध्याह्न कालमें मैथुन नहीं करना चाहिये। अत्यन्त गुप्त, रमणीय, सुगंधित सुखदायी पवनवाले और जहां स्त्रियोंका गान सुननेमें आता हो, ऐसे स्थानोंमें स्त्रीके साथ विहार करे। जो स्थान बडे पुरुषोंके समीपका हो खुला हुआ हो, अथवा बहुत लज्जादायक स्थान हो, वा जहां मनको ग्लानि देनेवाले वचन सुननेमें आते हों, उस स्थानमें पुरुष स्त्रीके साथ रमण नहीं करे। पुत्रकी इच्छा करनेवाला पुरुष–स्नान कर, अंगोंमें चन्दनका लेप कर, सुगंधित पदार्थोंको धारण कर, पुष्पोंकी माला पहर, वीर्यवर्धक पदार्थोंको खाकर, स्वच्छ वस्त्र पहर, भूषणोंसे विभूषित हो, उत्तम वेष धर, पान चबाकर, पत्नीमें अनुरक्त हो. कामदेवकी वृद्धि हो तब सुन्दर शय्यापर स्त्रीसे प्रसंग करे। बहुत भोजन खाया हुआ, धैर्यरहित, भूखा, दुःखित अंगवाला, तृषायुक्त, बालक, वृद्ध, मलमूत्रादिकके वेगसे पीडित, मैथुनसे होनेवाले रोगोंसे युक्त, ऐसे मनुष्यको मैथुन नहीं करना

१ बालार्कया अर्थ कन्याराशि सूर्य (भाद्रपद आश्विनकी धूप) ऐसा भी कहते हैं (सु. घ.)

चाहिये। वाजीकरणके उपायसे हृष्ट पुष्ट होकर रूपवती सर्वगुणसंपन्न अपने सदृश स्वभाववाली, श्रेष्ठ कुलोत्पन्न; कामदेवके वेगसे अत्यन्त पीडित, कामयुक्त पुरुषसे प्रसन्न और भूषण तथा वस्त्रोंसे भूषित ऐसी स्त्रीके साथ परमानन्दसे युक्तिपूर्वक संभोग करे पुरुष अनेक दोषोंकी शंका होनेसे रजस्वला. कामके वेगसे रहित, मलिन, अप्रिय, अपनेसे ऊँचे वर्णवाली, अपनी अवस्थासे अधिक अवस्थावाली रोगोंसे पीडित, हीन अंगवाली, गर्भिणी द्वेषयुक्त योनिके सोमादि रोगोंसे युक्त. अपने गोत्रकी, गुरुकी स्त्री और सन्यासयुक्त, इन स्त्रियोंसे प्रसंग नहीं करे। जो पुरुष अपने मनको वशमें न रखकर रजस्वलाके संग प्रसंग करे, उसकी दृष्टि, आयु और तेजकी हीनता होती है तथा अधर्म होता है। संन्यासिनी, गुरुकी पत्नी, अपने गोत्रमें उत्पन्न हुई; अथवा वृद्ध अवस्थावाली स्त्रीके संग प्रसंग करनेसे तथा प्रातःकाल संध्याकाल और पर्वमें स्त्री प्रसंग करनेसे भी जीवनका क्षय होता है, गर्भिणी संग प्रसंग करनेसे गर्भको पीडा होती है, रोगिणीके संग प्रसंग करनेसे बलका क्षय होता है, हीन अंगवाली, मलिन, द्वेषयुक्त, दुर्बल, अथवा बांझ स्त्रीके संग प्रसंग करनेसे तथा खुले स्थानमें प्रसंग करनेसे वीर्य क्षीण होता है और मन मलिन होता है। 'गर्भिणीका संग नहीं करे' इसके कहनेका प्रयोजन यह समझना कि, गर्भ रहनेके दिनसे दूसरे महीनेमें गर्भ रहनेका निश्चय न हुआ हो तो अथवा ज्योतिष शास्त्रमें कहे हुए नक्षत्र न मिलनेपर, वा तीसरे महीने पुन्सवन कर्म करनेपर गर्भिणीसे प्रसंग नहीं करे, क्योंकि 'पुंसवन कर्मके पश्चात् स्त्री नदीका तीर, देवखात (अकृत्रिम जलाशय) का जल, पतिकी शय्या, जिसकी सन्तान न जीती हो ऐसी स्त्री और मांस भक्षण इनको त्याग दे" ऐसा व्यासजी कहते हैं। अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि-"मांसका भक्षण देवताके बागमें जाना, नदीपर जाना और पुरुषका संभोग इनको गर्भिणी स्त्री त्याग देवे। भूखा, व्याकुल चित्तवाला, तृषित (प्यासा) तथा बलरहित पुरुष यदि स्त्रीके साथ संयोग करे तो अथवा मध्याह्नके समय प्रसंग करे तो भीतर रहनेवाले वीर्यकी हानि होती है और वायुका कोप होता है। रोगी पुरुष स्त्रीसे प्रसंग करे तो उसे पीडा, प्लीहारोग, मूर्च्छा और मृत्युतक होती है। प्रातःकाल अथवा अर्द्धरात्रिके समय स्त्रीका संग करनेसे वायु और पित्तका कोप होता है। पशुके संग अथवा सृष्टिक्रमसे विरुद्ध मैथुन करनेसे तथा दुष्टयोनिमें मैथुन करनेसे उपदंश (गर्मी), वातका कोप और वीर्य तथा सुखका क्षय होता है। मलका वेग रोकनेसे, मूत्रका वेग रोकनेसे, चलित वीर्यको रोकनेसे और विपरीत रति करनेसे तत्काल वीर्यकी पथरी होना सम्भव है और यह समझकर यह लोक तथा परलोकका दोनोंका अहितरूप है, इसलिये इन सबको छोड देवे। चलित हुए वीर्यको कदापि भूलकर भी नहीं रोके। मैथुन करनेके पश्चात् स्नानकर शर्करा (मिश्री, बूरा) सहित दूध पिये और खांड निर्मित पदार्थ अर्थात् लड्डू आदि खाय, शुद्ध वायुका सेवन करे, मांसका रस पिये और निद्रा ले, यह सब मैथुनान्तमें हितकारी है। बहुत मैथुन करनेसे शूल, खांसी, ज्वर, श्वास, कृशता, पाण्डुरोग, क्षयरोग और आक्षेपकादिरोग उत्पन्न होते हैं ॥२७८-३०८॥

अथ निद्रागुणाः।

रात्रौ जागरणं रूक्षं कफदोषविषार्तिजित्। निद्रा तु सेविता काले धातुसाम्यमतन्द्रताम्। पुष्टिं वर्णं बलोत्साहं वह्निदीप्तिं करोति हि॥ ३०९ ॥ यो लेढि शयनसमये मधुमिश्रं बीजपूरदलचूर्णम्। स तु लज्जाकरवातप्रसरनिरोधात्सुखं स्वपिति॥ ३१०॥

रात्रिमें जागना रूक्षता और कफ तथा विषकी पीडाको हरनेवाला है रात्रिमें समयपर

सोनेसे धातुओंमें समता होती है। आलस्य दूर होता है और पुष्टिकी प्राप्ति होती है, वर्ण सुन्दर होता है, उत्साह बढता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है! जो मनुष्य शयनके समय बिजौरेके पत्तोंका चूर्ण शहद मिलाकर चाटे तो यह लज्जा उत्पन्न करनेवाली वायुके प्रसर (वेग) के निरोधसे सुखपूर्वक शयन कर सकता है ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥

अथोषःकाले जलपानगुणाः।

सवितुःसमुदयकाले प्रसृतीःसलिलस्यथः पिबेदष्टौ। रोगजरापरिमुक्तो जीवेद्वत्सरशतं साग्रम् ॥ ३११ ॥

अस्य जलपानस्योषक्रमवाले रात्रेश्चतुर्थप्रहरे प्रवेशः। तथा च भोजः—पिबति पर्युषितं जलमन्वहं तिमिरिणीचरमे प्रहरे यदि ॥ ३१२ ॥

एतज्जलपानकालमर्यादा सूर्योदयातिसन्निहितप्रातःकालः। [तथा च तन्त्रान्तरे—

अम्भसः प्रसृतीरष्टौ रवानुदिते पिबेत्। वातपित्तकफाञ्जित्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ ३१३ ॥ इति सलिलस्यात्र पर्युषितस्य ग्रहणं भोजवचनानुरोधात् ॥

अर्शःशोथग्रहण्यो ज्वरजठरजराकुष्ठमेदोविकारा मूत्राघातास्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिशूलाक्षिरोगाः। ये चान्ये वातपित्तक्षतजकफकृता व्याधयः सन्ति जन्तोस्तांस्तानभ्यासयोगादपहरति पथः पीतमन्ते निशायाः ॥ ३१४ ॥ विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं पियति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि। स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ ३१५ ॥

निशीथोऽत्र निशाऽन्धकारः ॥

पातव्यं नासया नीरं प्रसृतित्रयमात्रया ॥ व्यङ्गवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासशोथहरम्। रजनीक्षयेऽम्बु नस्यं रसायनं दृष्टिसञ्जननम् ॥ ३१६ ॥ स्नेहे पीते क्षते शुद्धावाध्माने स्तिमितोदरे। हिक्कायां कफवातोत्थे व्याधौ तद्वारि वारयेत् ३१७।

तद्वारि—नसा पेयम् ॥

जो मनुष्य सूर्योदयके समय आठ अंजली परिमाण (बासी) पानी पीनेका नियम करता है, वह मनुष्य रोग और जरासे छूटकर सौ वर्ष पर्यन्त जीता है। जब रात्रिका चौथा प्रहर प्रारम्भ हो, तबसे इस जलके पीनेका समय जानना। भोजका मत भी 'रातके चौथे प्रहरमें उठकर नित्य जल पीता है ऐसा है और इस पानी पीनेका समय सूर्योदय होनेसे कुछ पहिले है। ऐसा ही अन्य ग्रन्थोंमें भी लिखा है कि "जो मनुष्य सूर्योदयसे पहिले पानीकी आठ अंजली पीता है, वह मनुष्य वात, पित्त और कफको जीतकर सौ वर्ष पर्यन्त जीता है" यहां ऊपर लिखा हुआ भोज का वचन बासी पानी पीनेके विषयमें जानना। रात्रिके अन्तमें पानी पीनेका अभ्यास करनेसे बवासीर, सूजन, संग्रहणी, ज्वर, जठर, जरा, कोढ, मेदके विकार, मूत्राघात, रक्तपित्त, कर्णरोग, गलरोग, शिरोरोग, कटिशूल (कमरका दर्द), नेत्ररोग और जो अन्य वातपित्त क्षत और कफसे हुए रोग हैं, वे सब नष्ट होवे हैं। रात्रिका अन्धकार दूर होनेपर जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर नित्य नाकसे पानी पीता है, उसकी बुद्धि पूर्ण होती है, नेत्रों की दृष्टि गरुडके सदृश होती है, वली पलित रहित होता है तथा सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं। तीन अञ्जली प्रमाण पानी नाकके द्वारा पीनेसे व्यंग (झांई) वली-पलित (विना समय शरीरमें मली पड जाना और केशोंका सफेद हो जाना), पीनस, स्वरभंग, खांसी और

सूजन नष्ट होती है। रात्रिके नाश होनेपर नाकसे पानी पीनेसे दृष्टि बढती है तथा यह रसायन है। जिसने स्नेह पान किया हो (तेल या घी पिया हो), क्षत (घाव) रोगवाला, विरेचन लिया हो, पेट अफरा रहा हो, मन्दाग्नि हो गई हो, हिचकी आती हो, कफ और वात व्याधि रोगोंमें नासिकासे पानी नहीं पीना चाहिये ॥ ३११-३१७ ॥

अथ ऋतुचर्या।

चयकोपशमा यस्मिन्दोषाणां संभवन्ति हि। ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवेः राशिषु संक्रमात् ॥ ३१८ ॥ ग्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्तः प्रावृड् मिथुनकर्कटौ। सिंहकन्ये स्मृता वर्षास्तुलावृश्चिकयोः शरत्। धनुर्ग्राहा च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः ॥ ३१९ ॥

मेषवृषौ रविणा संक्रान्तौ। एवं मिथुनकर्कटावित्यादि ॥ अन्ये तु

शिशिरःपुष्पसमयोःग्रीष्मो वर्षाशरद्धिमाः। माघादिमासयुग्मैःस्युर्ऋतवःषट् क्रमादमी ॥३२०॥ गङ्गाया दक्षिणे देशे वृष्टेर्बहुलभावतः। उभौ मुनिभिराख्यातौ प्रावृड्वर्षाऽभिधावृतू ॥ ३२१ ॥ उत्तरायणमाद्यैस्तैः परैःस्याद्दक्षिणायनम्। आद्यमुष्णं बलहरं ततोऽन्यद्बलदं हिमम् ३२२

मेषादि राशियोंमें सूर्यके फिनेरसे छः ऋतु होती हैं कि जिनमें वात, पित्त और कफकी वृद्धि, कोप और शमन होता है। मेष और वृषकी संक्रांतिको ग्रीष्म, मिथुन और कर्ककी संक्रांतिको प्रावृट्, सिंह और कन्याकी संक्रान्तिको वर्षा, तुला और वृश्चिककी संक्रांतिको शरद, धनु और मकरकी संक्रांतिको हेमन्त, और कुम्भ और मीनकी संक्रांतिकी वसन्त ऋतु कहते हैं। और कोई कहते हैं कि—

'शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हेमन्त ये छः ऋतुएँ क्रमसे माघ आदि दो दो महीनोंके क्रमसे होती हैं अर्थात् माघ और फाल्गुन ये दो महीने शिशिरऋतु, चैत्र और वैशाख वसन्त ऋतु, ज्येष्ठ और आषाढ ग्रीष्म श्रावण और भादों वर्षाऋतु आश्विन और कार्तिक शरद ऋतु तथा मार्गशिर और पौष हेमन्त ऋतु हैं।" गंगासे दक्षिण देशमें वृष्टि अधिक होती है, इस कारण मुनियोंने प्रावृट और वर्षा ये दोनों ऋतु अलग अलग कही हैं और गंगाके उत्तर देशमें शीत अधिक होनेसे हेमन्त और शिशिर दो ऋतु अलग अलग गिनी है। पहिली तीन ऋतुएँ उत्तरायण और दूसरी तीन ऋतुएं दक्षिणायन हैं। उत्तरायण-ऋतु-गरम तथा बलको हरनेवाली है और दक्षिणायन ऋतु-शीतल तथा बलको बढानेवाली है ॥ ३१८-३२२ ॥

अथ ऋतूनां गुणदोषाः।

हेमन्तः शीतलः स्निग्धः स्वादुर्जठरवह्निकृत्। शिशिरः शीतलोऽतीव रूक्षो वाताग्निवर्धनः ॥ ३२३ ॥

हेमन्तः स्वादुः प्रायेण द्रव्येषु स्वादुरसजनकः। एवंमन्यत्रापि बोद्धव्यम् ॥

वसन्तो मधुरः स्निग्धः श्लेष्मवृद्धिकरश्च सः। ग्रीष्मो रूक्षोऽतिकटुकः पित्तकृत कफनाशनः ॥३२४॥ वर्षाः शीता विदाहिन्यो वह्निमान्द्यानिलप्रदाः। शरदुष्णा पित्तकर्त्री नृणां मध्यबलावहा ॥ ३२५॥ चयप्रकोपोपशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु-वर्षादिषु च पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥ ३२६ ॥ चीयते लघुरूक्षाभिरोषधीभिः समीरणः। तद्विधस्तद्विधे देहे कालस्यौष्ण्यान्न कुप्यति ॥४२७॥

तद्विधः रूक्षो लघुश्च तद्विधे-रूक्षेलघौ च ॥
अद्भिरम्लविपाकाभिरोषधीभिश्च तादृशम्
पित्तं याति चयं कोपं न तु कालस्य
शैत्यतः ॥ ३२८ ॥

तादृशम्--अम्लविपाकम् ॥

चीयते स्निग्धशीताभिरुदकौषधिभिः
कफः। तुल्ये च काले देहे च स्कन्नत्वान्न
प्रकुप्यति ॥ ३२९ ॥

तुल्येऽपि काले स्निग्धे शीतले च स्कन्न त्वाद्देहे शुष्कत्वात् ॥

हिमे याति शमं पित्तं वायुः श्लेष्मा च
चीयते। स वायुः क्षिशिरे कोपं यात्य-
वोपहतः कफः ॥ ३३० ॥ हेमन्ते सञ्चितः
श्लेष्मा शिशिरे त्वतिचीयते। शीत-
स्निग्धगुणद्रव्यैः शैत्यस्कन्नो न
कुप्यति ॥ ३३१ ॥

स्कन्नः कठिनीभूतः ॥

इति कालस्वभावोऽयमाहारादिवशात्पुनः।
चयादीन् यान्ति सद्योऽपि दोषाः काले
विशेषतः ॥ ३३२ ॥

चयकोपशमाः पूर्वाह्णे वसन्तस्य लिङ्गम्, मध्याह्ने ग्रीष्मस्य, अपराह्णे प्रावृषः, प्रदोषे वार्षिकम्, शरदमर्धरात्रे, प्रत्यूषसि, हेमन्तमुपलक्षयेत्। एवमहोरात्रमपि वर्षमिव शीतोष्णवर्षा दोषोपचयप्रकोपोपशमा जानीयादिति सुश्रुतः ॥

हेमन्त ऋतु–शीतल, स्निग्ध और अधिक करके प्रत्येक पदार्थोंमें स्वादुता उत्पन्न करनेवाली और जठराग्निको दीपन करनेवाली है। शिशिर ऋतु–शीतल, अत्यन्त रूक्ष, वायु और अग्निको बढानेवाली है। वसन्त ऋतु–पदार्थोंमें मधुरताजनक, स्निग्ध और कफकी वृद्धि करनेवाली है। ग्रीष्मऋतु-रूक्ष, पदार्थोंमें तीक्ष्णता करनेवाली, पित्तकारक और कफनाशक है। वर्षाऋतु-शीतल, दाहकारक, अग्निको मन्द करनेवाली और वातको बढानेवाली है। शरदृऋतु--गरम, पित्तकारक और मनुष्योंमें मध्यम बलको देनेवाली है। ग्रीष्मऋतुमें वायु संचित होती है, वर्षाऋतुमें वायु कुपित होती है और शरदृऋतुमे शान्त होती है। वर्षाऋतुमें पित्त-संचय होता है, शरदृऋतुमें पित्तका कोप होता है और हेमन्तऋतुमें पित्तका शमन होता है। शिशिर ऋतुमें कफका सञ्चय होता है, वसन्तऋतुमें कफका कोप होता है और ग्रीष्मऋतुमें कफ-शमन होता है, ग्रीष्मऋतुमें हलकी रूक्ष औषधियोंसे वायुका संचय होता है; परन्तु संचित हुई हलकी और रूक्ष पवन, हलके और रूक्ष हुए शरीरमें उस कालकी गरमीसे कुपित नहीं हो सकती। वर्षाऋतुसे खट्टे पाकवाले जलमे और वैसे ही औषधियोंसे अम्लपाकी पित्त संचित होता है, परन्तु यह संचित हुआ पित्त उस कालकी शीतलतासे कुपित नहीं हो सकता। शिक्षिरऋतुमें स्निग्ध और शीतल औषधियोंसे तथा वैसे ही जलसे कफ-संचय होता है; परन्तु वह संचित हुआ कफ रूक्ष और शीतलताके लिये सूखा रहनेसे कुपित नहीं हो सकता। हेमन्तऋतुमें पित्त शान्त होता है और वायु तथा कफ संचित होते हैं। इस हेमन्तऋतुमें संचित हुई वायु शिशिरऋतुमें कुपित होती है; परन्तु कफ तो बंधा ही रहता है। हेमन्तऋतुमें शीतल स्निग्ध और भारी पदार्थोंसे संचित हुआ कफ शिशिरऋतुमें शीतल, अत्यन्त वृद्धि पाता है; परन्तु शीतलताके लिये कठिन होनेसे कुपित नहीं हो सकता है, यह कालका स्वभाव है। इसके सिवाय आहारादिके योगसे वातादिदोषोंका चयादि तत्काल होता है अर्थात् आहार और विहारोंसे दोषोंका चय, प्रकोप और शमन तत्काल होता है और अपने अपने समयमें दोषोंकी विशेष करके वृद्धि, प्रकोप और शमनता होती है। सुश्रुतमें लिखा है कि—'दिनके पहले भागमें वसन्तके, मध्या-

ह्नमें ग्रीष्मके, अपराह्नमें प्रावृट्के, प्रदोषमें वर्षाऋतुके, अर्धरात्रिमें शरदृऋतुके और पिछली रात्रिमें हेमन्वऋतुके लक्षण शीत है। इस प्रकार एक दिनरात्रिमें भी वर्षाके सदृश शीत; गर्मी और वर्षाके भाव होते हैं और दोषोंकी वृद्धि कोप और शमता होती है, ऐसा जानना" ॥ ३२३--३३२ ॥

अथ अकाले दोषवृद्धिः ।

चयकोपशमान् दोषा विहाराहारसेवनैः । समानैर्यान्त्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ॥ ३३३ ॥

समानैः तुल्यैः चयादियोग्यैरिति यावत् । विपर्ययम्--कालेऽपि वैपरीत्यं बोध्यम् ॥

विना समय भी जिनसे दोषोंकी वृद्धि हो, ऐसे आहार और विहारके सेवन करनेसे दोषोंकी वृद्धि होती है, जिनसे प्रकोप हो, ऐसे अहार और विहार करनेसे प्रकोप होता है और जिनसे शमन हो, ऐसे विहार और आहारके सेवन करनेसे शमन होते हैं। इस प्रकार समय होनेसे भी जिनसे वृद्धि न हो, तो विहार और आहार करनेसे वृद्धि नहीं होती है. जिनसे प्रकोप न हो, ऐसे आहार और विहारके सेवन करनेसे प्रकोप नहीं होता है और जिनसे शमन न हो, ऐसे विहार और आहार सेवन करनेसे शमन नहीं होते हैं ॥ ३३३ ॥

अथ दोषचयलक्षणमाह ।

सुश्रुतः--स्वस्थानस्थस्य दोषस्य वृद्धिः स्याच्छ्वासकोष्ठता । पीतावभासता वह्निमन्दता चाङ्गगौरवम् ॥ ३३४ ॥ आलस्यं चयहेतौ तु द्वेषश्च चयलक्षणम् । सञ्चयोपहता दोषा लभन्ते नोत्तरां गतिम् । ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः ॥ ३३५ ॥

सुश्रुत कहते हैं कि--' जब अपने स्थानमें स्थित दोषोंकी वृद्धि हो, तब श्वाससे कोष्ठ परिपूर्ण हो जाता है। अंगमें पीलापन दिखाई देता है, अग्नि मन्द हो जाती है, शरीरमें भारीपन तथा आलस्य हो जाता है और जिन पदार्थोंमें अरुचि होती है, ये लक्षण दोष संचयके जानने. यदि दोषोंकी वृद्धिमें ही दोषोंकी चिकित्सा की जाय तो दोष उत्तरगति अर्थात् वृद्धिको प्राप्त नहीं होते और जो उस समय चिकित्सा न कीजाय तो दोष वृद्धि पाकर बहुत बलवान हो जाते हैं ॥ ३३४ ॥ ३३५ ॥

अथ वर्षर्तौ नियमाः ।

वर्षासु प्रबलो वायुस्तस्मान्मिष्टादयस्त्रयः । रसाःसेव्याविशेषेण पवनस्योपशान्तये ३३६

मिष्टादयस्त्रयः--मधुराम्ललवणाः ॥

भवेद्वर्षासु वपुषः क्लिन्नत्वं यद्विशेषतः । तत्क्लेशशान्तये सेव्या अपि कट्वादयस्त्रयः ॥ ३३७ ॥

कट्वादयस्त्रयः--कटुतिक्तकषायाः ॥

स्वेदनं मर्दनं सेव्यं दध्युष्णं जाङ्गलामिषम् । गोधूमाः शालयो माषा जलं कौपं जलं च्युतम् ॥ ३३८ ॥ न भजेत्पूर्वपवनं वृष्टिं घर्मं हिमं श्रमम् । नदीतीरं दिवास्वप्नं रूक्षं नित्यं च मैथुनम् ॥ ३३९ ॥

वर्षाऋतुमें वायु प्रबल होती है, इस कारण उसकी शांति करनेके लिये विशेष कर, मधुर, खट्टे और खारे (नमकीन) रसोंका सेवन करना चाहिये। विशेषकर वर्षाऋतुमें शरीर आर्द्र (भीगा) होजाता है, इस लिये उसी क्लेशकी शांतिके लिये तीक्ष्ण, कडवे और कसैले रसको भी सेवन करना चाहिये। वर्षाऋतुमें-पसीना लेना, शरीरका मलवाना, दही, गरम पदार्थ, जंगली जीवोंका मांस, गेहूँ, शालिधान, उडद, इनका भक्षण और कुएँका तथा झरनेका पानी पिये। पूर्वकी पवनका सेवन, वर्षामें भीगना, धूपमें रहना, हिम (ओस) का सेवन, परिश्रम करना, नदीके

तीरपर रहना, दिनमें शयन, रूक्ष पदार्थोंका खाना और नित्य मैथुन करना इत्यादि कार्य वर्षाऋतुमें वर्जित हैं ॥ ३३६–३३९ ॥

अथ शरदृतौ नियमाः।

सर्पिः स्वादुकषायतिक्तकरसा यच्छीतलं यल्लघु क्षीरं स्वच्छसितेछवःपटुरसःस्वल्पं पलं जाङ्गलम्। गोधूमा यवमुद्गशालिसहिता नादेयमंशूदकं चन्द्रश्चन्दनमिन्दुराजिरजनी माल्यं पटो निर्मलः ॥३४०॥ विश्रामःसुहृदां गणेषु मधुरा वाचःसरःक्रीडनं पित्तानां च विरेचनं बलवतो युक्तं शिरामोक्षणम्। एतान्यत्र घनावसानसमयेऽपथ्यानि भुञ्जेद्दधि व्यायामाम्लकटूष्णतीक्ष्णदिवसस्वप्नं हिमं चातपम् ॥ ३४१ ॥

अंशूदकलक्षणमाह।

दिवसेऽर्ककरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः। ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् ३४२

अत्र समग्रप्राप्त्यर्थं दिवसे दिवापादद्वये निशापादं च। चन्द्रः--कर्पूरः ॥

इक्षवः शालयो मुद्गाः सरोऽम्भः क्वथितं पयः। शरद्येतानि पथ्यानि प्रदोषे चेन्दुरश्मयः ॥ ३४३ ॥

घीका सेवन करना, मधुर कसैले तथा कडवे रसका खाना, दूधका पीना. शीतल और हलके पदार्थोंका सेवन, स्वच्छ मिश्री ईख, नमकीन रसवाले पदार्थ और अल्प जंगली जीवोंका मांस, गेहूँ, जौ, मूँग और शालि चावलोंका खाना, नदीका अथवा अंशूदक जल पीना, कपूर, चन्दन, चांदनीयुक्त रात्रि, पुष्प और निर्मल वस्त्र इनका सेवन करना, मित्रोंकी मंडलीमें बैठना, मधुर वचन बोलना, सरोवरोंमें क्रीडा करना, पित्त प्रकृतिवलोंका रेचन (जुलाब) लेना, बलवान् पुरुषोंका फस्त खुलवाना इत्यादि कार्य करने शरदऋतुमें हितकारी हैं। दहीका खाना व्यायाम करना, खट्टा, तीक्ष्ण, गरम और कडवे पदार्थोंका सेवन, दिनमें शयन, बरफका सेवन और धूपका सेवन इत्यादि कार्य अपथ्य (अहितकारी) हैं! ऊपर जो 'अंशूदक' कहा है, उसका लक्षण यह है कि- "जिस पानीके उपर दिनमें सूर्यकी और रात्रिमें चंद्रमाकी किरणें पडती हों, उसको 'अंशूदक' जानना। यह पानी स्निग्ध है और वातादि तीन दोषोंको नष्ट करनेवाला है"। [जिस जलके ऊपर दिनको सूर्यकी और रात्रिको चंद्रमाकी किरणें पडती हों, वह जल ठीक अंशूदक है ऐसा जानना] शरदऋतुमें ईख, शालिधान, मूँग सरोवर (तालाब) का जल, उष्ण दूध और प्रदोषकालमें चंद्रमाकी किरणें ये पथ्य हैं ॥ ३४०–३४३ ॥

अथ हेमन्तर्तौ नियमाः।

प्रातर्भोजनमम्लमिष्टलवणानभ्यङ्गघर्मश्रमान् गोधूमैश्चवशालिमाषपिशितं पिष्टं नवान्नं तिलान्। कस्तूरीं वरकुंकुमागुरुयुतामुष्णाम्बुशौचं तथा स्निग्धं स्त्रीषु सुखं गुरूष्णवसनं सेवेत हेमन्तके ॥३४४॥

प्रातःकालमें भोजन. खट्टे, मीठे तथा खारे (नमकीन) रसवाले पदार्थ खाने चाहिये। शरीरमें तेल मर्दन, पसीना निकलना, परिश्रम, गेहूँ, चावल, उडद और मांस खाना, मिष्टान्न और पक्वान्न, नया अन्न और तेल खाना, केशर, अगर कस्तूरी इन पदार्थोंका सेवन करना, शरीरका उष्णजलसे स्वच्छ करना, स्त्रियोंमें स्नेहयुक्त सुख करना और भारी तथा गरम (रुई ऊनके) कपडे पहरना ये हेमन्त ऋतुमें सेवन करना चाहिये ॥ ३४४ ॥

अथ शिशिरर्तौ नियमाः।

शिशिरे शीतमधिकं रौक्ष्यं चादानकालजम्। विशेषतस्ततस्तत्र हेमन्तस्य मतो विधिः ॥ ३४५ ॥

शिशिरऋतुमें शीत अधिक होता है और वायु रसोंको खींचती है, इसीसे रूक्षता भी अधिक होजाती है, इसीसे रूक्षता भी अधिक होजाती है, इसलिये विशेष करके इस ऋतुमें उपरोक्त हेमन्त चर्यानुसार वर्ताव करना चाहिये ॥ ३४५ ॥

अथ वसन्ततौं नियमाः ।

वान्ति नस्यमथाभयां च मधुना व्यायाममुद्वर्तनं संसेवेत मधौ कफघ्नकवलं शूल्यं पलं जाङ्गलम् । गोधूमान्बहुशालिभेदसहितान् मुद्गान् यवान्षाष्टिकाँल्लेपं चन्दनकुंकुमागुरुकृतं रूक्षं कटूष्णं लघु॥३४६॥ मिष्टमम्लं दधि स्निग्धं दिवास्वप्नं च दुर्जरम् । अवश्यायमपि प्राज्ञो वसन्ते परिवर्जयेत् ॥ ३४७ ॥

वसन्तऋतुमें वमनकी औषधियोंका सेवन, नाकमें औषधियोंको डालना, मधुके साथ हरडोंका खाना, व्यायाम करना, चूर्णसे शरीरको मर्दन करना, कफनाशक ओषधियोंके द्वारा कुल्ले करना, लोहेसे सेका हुआ जंगली जीवोंका मांस खाना, गेहूँ, अनेक प्रकारके चावल, मूंग, जौ और सांठी चावलोंका खाना, चन्दन, केशर और अगरका लेप करना तथा जो पदार्थ रूक्ष, तीक्ष्ग, गरम और हलके हों उनका सेवन करना अत्यन्त हितकारी है । मीठी, खट्टी और चिकनी वस्तु, दही, दिनमें सोना और जो कठिनतासे पचे, ऐसे पदार्थोंका खाना तथा ओसका सेवनये सब वसन्तऋतुमें अवश्य त्याग देने चाहिये ॥ ३४६ ॥ ३४७ ॥

अथ ग्रीष्मर्तुनियमाः ।

स्वादु स्निग्धहिमं लघु द्रवमथ द्रव्यं रसालां सितां सक्तुक्षीरमजांगलानि सितया शालिंरसं मांसजम् ॥ ३४८ ॥ शीतांशु शयनं दिवा मलयजं शीतं पयः पानकं सेवेतोष्णदिने त्यजेत्तु कटुकक्षराम्लघर्मश्रमान् ॥ ३४९ ॥

ग्रीष्म ऋतुमें जो पदार्थ स्वादु (मीठे) स्निग्ध, शीतल, हलके और द्रवरूप (पतले) हों, उनको खाय । रसाला (शिखरनी), खांड, सत्तू, दूध, अनूप देशके जीवोंका मांस, खांडके साथ शालिचावलोंका भात और मांसरसका खाना, चन्द्रमाकी किरणोंका सेवन, दिनमें सोना, चन्दनका लगाना, शीतल जल और शरबत या इमली आदिके द्वारा बनाये पानकोंको पीना ग्रीष्म ऋतुमें हितकारी है । चरपरे, खारे और खट्टे पदार्थोंका त्याग करे तथा धूपमें रहना और परिश्रम करना त्याग देवे ॥ ३४८ ॥ ३४९ ॥

ऋतुष्वेषु य एतैस्तु विधिभिर्वर्त्तते नरः । दोषानृतुकृतान्नैव लभते स कदाचन३५०

इति श्री लटकनतनय-श्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे दिनर्तुचर्याप्रकरणं चतुर्थम् ॥ ४ ॥

जो मनुष्य इन ऋतुओंमें कही हुई विधिके अनुसार चलाता है, वह मनुष्य ऋतुकृत दोषोंको कदापि प्राप्त नहीं होता है ॥ ३५० ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्राम--वैश्यकृत वैद्यसंजीवनीभाषाटीकायां दिनर्तुचर्यानामकं चतुर्थ प्रकरणम् ॥ ४ ॥

अथ मिश्रवर्गप्रकरणम् ५.

अथ व्याधेर्लक्षणम् ।

तत्र वाग्भटः--रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता । रोगा दुःखस्य दातारो ज्वरप्रभृतयो हि ते ॥ १ ॥ ते च स्वाभाविकाः केचित् केचिदागन्तवःस्मृताः । मानसाः केचिदाख्याताःकथिताः केऽपि कायिकाः ॥ २ ॥ तत्र स्वाभाविकाः--शरीरस्वभावादेव जाताः क्षुत्पिपासासुषुप्तिजरा-

मृत्युप्रभृतः, अथवा स्वस्वभावादुत्पत्तेर्जाताःस्वाभाविकाः सहजा इति यावत्। ते च जन्मान्धत्वादयः। आगन्तवः--अभिघातादिजनिताः, अथवा जन्मोत्तरभाविनः। मानसाः--कामक्रोधलोभमोहभयाऽभिमानदैन्यपैशुन्यशोकविषादेर्ष्याऽसूयामात्सर्यप्रभृतयः, अथवा उन्मादापस्मारमूर्च्छाभ्रममोहतमः संन्यासप्रभृतयः। कायिकाः--पाण्डुरोगप्रभृतयः॥

वाग्भटकका वचन है कि-' दोषोंकी विषमताका नाम रोग है और दोषोंकी समताका नाम आरोग्य है। इनमें रोग प्राणियोंको दुःखके देनेवाले हैं और वे ज्वरादिक जानने। उनमें कोई स्वाभाविक, कोई आगन्तुक, कोई मानसिक और कोई कायिक इस भांति रोग चार प्रकारके कहे है" भूख, प्यास, शयनकी इच्छा, वृद्धावस्था और मृत्यु आदि स्वाभाविक रोग हैं, या जो स्वभावसे जन्मसेही शरीरके साथ उत्पन्न रहते हैं, उनको स्वाभाविक रोग जाने। ऐसे ही जन्मान्धता आदि स्वाभाविक रोग समझने चाहिये। लकडी पत्थर आदिकी चोटके लगनेसे जो रोग उत्पन्न होते हैं, उनको आंगंतुक रोग (आकस्मिक--रोग) समझना, अथवा जन्म होनेके पश्चात् जो रोग उत्पन्न हों, उनको आगंतुक रोग जानना। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अभिमान, दीनता. चुगली, शोक, खेद, ईर्ष्या, पराये गुणोंमें दोषोंका ढूँढना और मत्सर्य आदि, अथवा उन्माद, अपस्मार (मृगी), मूर्छा भ्रम मोह, अन्धकार और संन्यास आदि जो रोग उत्पन्न होते है उनको मानसिक अर्थात् मनसे उत्पन्न हुए रोग जानने और पांडुरोग आदि जो रोग होते हैं, उनको कायिक रोग जानने॥ १॥२॥

अथ व्याधिभेदाः।

कर्मजाः कथिताः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे। कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः॥ ३॥

कोई व्याधि कर्मसे होती हैं, कोई व्याधि वात, पित्त तथा कफरूप दोषोंसे होती हैं और कोई व्याधि कर्म तथा दोष इन दोनोंसे होती हैं, अर्थात् कर्मज, दोषज और कर्मदोषज इस प्रकार व्याधि तीन प्रकारकी कही हैं॥ ३॥

तत्र कर्मजा व्याधयः।

यत् प्राक्तनं दुष्कर्म प्रबलं केवलभोगनाश्यम्, प्रायश्चित्तनाश्यं वा, ततो जाताः न तु दुष्टवातादिदोषेण जनितास्तथा॥ यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाव्याधि चिकित्सितः। न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः॥ ४॥

जो पूर्वजन्मके प्रबल दुष्ट कर्म हैं, उनको भोगनेसे अथवा प्रायश्चित्त करनेसे कर्मज व्याधियाँ दूर होती हैं। यह कर्मज रोग पूर्वोपार्जित कर्मसे उत्पन्न होते हैं। वातादिक दोषोंकी दुष्टतासे उत्पन्न नहीं होते हैं। जिनका शास्त्रानुसार निर्णय करके योग्य चिकित्सा करनेसे भी जो शांत नहीं होते, उन रोगोंको विद्वान् लोग कर्मज रोग कहते हैं॥ ४॥

दोषजा व्याधयः।

दोषजाः-मिथ्याहारविहारप्रकुपितावातपित्तकफजाः। ननु मिथ्याहारविहारिणामपि प्राक्तनसुकृतेन नैरुज्यं दृश्यत एव, ततो दोषजेष्वपि प्राक्तनं दुष्कर्मैव कारणम् तत्कथं दोषजा इत्युच्यन्ते। दोषजेष्वपि वस्तुतः आदिकारणं दुष्कर्म वर्तत एव, किन्तु तत्र मिथ्याहारविहारदूषिता दोषा हेतवो दृश्यन्त इति दोषजा इत्युच्यन्त इति समाधिः॥

मिथ्या आहार और विहार करनेपर कुपित हुए वात पित्त और कफसे जो रोग उत्पन्न हों, उनको दोषज रोग जानना। यहाँ शंका होती है कि-मिथ्याआहार और विहार करनेवाले मनुष्य भी पूर्व जन्मके पुण्यसे रोग-

रहित देखनेमें आते हैं, इसलिये दोषज रोगोंमें भी पूर्वजन्मके पापकर्म ही कारण हैं-फिर उनको दोषज रोग कैसे कहा? उसका उत्तर कहते हैं कि-वास्तवमें दोषज रोगोंमें भी पापकर्म ही आदिकारण है, परन्तु तो भी उन उन रोगोंमें मिथ्या आहार और विहारसे दूषित हुए वातादिक दोष भी कारण रूप देखनेमें आते हैं, इससे 'दोषज' कहे जाते हैं॥

कर्मदोषोद्भवा व्याधयः।

स्वल्पदोषा गरीयांसस्ते ज्ञेयाः कर्मदोषजाः ॥५॥ अत्र कारणं दुष्कर्म प्रबलं यतो दोषाल्पत्वेऽपि व्याधेर्गरीयस्त्वं तत्कर्मक्षयादेव क्षीणं भवति। दोषाः स्वल्पा अपि निदानत्वेनोक्ता दृष्यन्त एवेति दोषाणां कारणतां मन्यन्त इति॥

जो रोग वात पित्त आदि दोषोंके अल्प होनेपर भी अधिक भयंकर होजायँ, उनको कर्मदोषज जानना दोष अल्प होनेपर भी रोग अधिक होनेमें पूर्वजन्मका पापकर्म ही कारण है और वे पापकर्मके भोगनेसे ही क्षीण होते हैं. स्वल्पदोष भी रोगोंके निदानरूप हुए देखनेमें आते हैं, इसलिये उन रोगोंमें दोषोंका भी कारणत्व माना है॥५॥

अथ रोगक्षयहेतवः।

कर्मक्षयात्कर्मकृता दोषजाःस्वस्वभेषजैः।
कर्मदोषोद्भवा यान्ति कर्मदोषक्षयात् क्षयम्६

दोषजाः स्वस्वभेषजैरिति। दोषजेषु आदिकारणं दुष्कर्म तद्भेषजार्थं द्रव्यपक्षपादिजनितदुःखभोगेन कटुतिक्तकषायाद्यहृद्यभक्षणादिजनित दुःखभोगेन च क्षयं यान्ति। शेषा दुष्टा हेतवो दोषास्ते स्वस्वभेषजैः क्षयं यान्ति इत्यर्थः॥

कर्मज रोग कर्मके क्षय होनेसे क्षीण होते हैं. दोषज रोग अपनी अपनी औषधियोंसे क्षीण होते हैं और कर्म तथा दोष इन दोनोंसे उत्पन्न हुए रोग कर्म तथा दोष इन दोनोंके नष्ट होनेसे क्षय होते हैं। दोषज रोगोंका अपनी अपनी औषधियोंसे क्षय होना कहा, इसका ऐसा अर्थ समझना कि-दोषजरोगोंके मूलकारण दुष्कर्म हैं, वे औषधि आदिके लिये क्षय हुए धनके दुःख भोगनेसे और तीक्ष्ण, कडवे तथा कषाय आदि अहृद्य पदार्थोंके भक्षणके द्वारा उत्पन्न हुए दुःख भोगनेसे क्षयको प्राप्त होते हैं और शेष जो दुष्ट हेतु हैं, वे अपने अपने दोषोंकी औषधियोंसे क्षय होते हैं॥६॥

अथ त्रिविधा रोगाः।

साध्या याप्या आसाध्याश्च व्याधयस्त्रिविधाःस्मृताः। सुखसाध्यः कष्टसाध्यो द्विविध साध्य उच्यते॥७॥

साध्य, याप्य और असाध्य इस प्रकार रोग तीन प्रकार कहे हैं, वहाँ साध्यके और कष्टसाध्य इस प्रकार दो भेद हैं॥७॥

अथ याप्यलक्षणमाह।

यापनीयं तु तं विद्यात्क्रिया धारयते हि यम्। क्रियायां तु निवृत्तायां सद्यो यश्च विनश्यति॥८॥ प्राप्ता क्रिया धारयति सुखिनं याप्यमातुरम्। प्रपतिष्यदिवागारं स्तम्भो यत्नेन योजितः॥९॥

जो रोग क्रिया (चिकित्सा) का धारण करले, अर्थात् जो रोग चिकित्सा करनेतक शांत रहे, वह रोग यापनीय जानना और क्रिया (चिकित्सा) के निवृत्त होजानेपर रोगीको तुरन्त नष्ट कर देता है। जिस प्रकार गिरनेवाले घरको यत्नसे लगाया हुआ खम्भ रोक लेता है, इसी प्रकार याप्यरोग आतुर हुए रोगीकी की हुई चिकित्सासे ही सुखपूर्वक शरीर धारण करता है॥८॥९॥

साध्ययाप्ययोश्चिकित्साऽऽवश्यकत्वम्।

साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यतां तथा। घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावताम्॥१०॥

अक्रियावताम्--चिकित्सारहितानाम् ॥

जो रोग साध्य हैं, उनकी चिकित्सा न की जाय तो याप्य हो जाते हैं और जो याप्य हैं, उनकी चिकित्सा न की जाय तो असाध्य होजाते हैं, तब प्राणोंका नाश करते हैं ॥१०॥

अथ उपद्रवस्य लक्षणम्।

रोगारम्भकदोषस्य प्रकोपादुपजायते। योऽन्यो विकारःस बुधैरुपद्रव इहोदितः११

रोगोंको आरम्भ करनेवाले दोषोंका प्रकोप होनेसे जो उनके साथ अन्य विकार उत्पन्न होते हैं उनको विद्वान लोग उपद्रव कहते हैं ॥ ११ ॥

अथ अरिष्टस्य लक्षणम्।

रोगिणो मरणं यस्मादवश्यम्भावि लक्ष्यते। तल्लक्षणमरिष्टं स्याद्रिष्टं चापि तदुच्यते ॥ १२ ॥

जिन लक्षणोंके होनेसे रोगीकी अवश्य मृत्यु होना माना जाय, उन लक्षणोंको अरिष्ट कहते हैं और रिष्ट भी कहते हैं ॥ १२ ॥

अथ चिकित्साया लक्षणम्।

या क्रिया व्याधिहरणी सा चिकित्सा निगद्यते। दोषधातुमलानां या साम्यकृत् सैव रोगहृत् ॥ १३ ॥

क्रियाऽत्र कर्म, व्याधिर्ह्रियतेऽनयेति व्याधिहरणी। "करणाधिकरणयोश्च" इति सूत्रेण करणार्थे ल्युट् ॥

तथा च–याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवःसमाः। सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम् ॥१४॥ या ह्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च। सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥ १५ ॥ क्रिया अत्र चिकित्सा। तथा च अमरसिंहः--आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं सम्प्रधारणम्। उपायः कर्म चेष्टा च चिकित्सा च नव क्रियाः ॥ १६ ॥ इति।

जो क्रिया (चिकित्सा) रोगोंको हरण करती है, उस क्रियाको उपाय कहते हैं और जो क्रिया दोष, धातु और मलको समान करे, वही क्रिया रोगोंको हरनेवाली है। और भी लिखा है कि–जिन क्रियाओंसे शरीरमें धातुये समान स्थितिमें हों, उसको चिकित्सा कहते हैं और वही वैद्योंका कर्म है। जो क्रिया उत्पन्न हुए रोगोंको शमन करे और अन्य रोगोंको उत्पन्न नहीं करे, उसको चिकित्सा समझना चाहिये, परन्तु जो एक रोगको शमन करें और अन्य रोगोंको उत्पन्न करे, वह क्रिया चिकित्सा नहीं कहाती है, इस विषयमें ('क्रिया शब्द' चिकित्सावाचक है उसमें) अमरकोशका प्रमाण है कि "क्रियाशब्दके–आरम्भ, निष्कृति (प्रायश्चित) शिक्षा, पूजन, सम्प्रधारण (विचार) उपाय, कर्म, चेष्टा और चिकित्सा ये नौ अर्थ हैं" ॥ १३-१६ ॥

अथ चिकित्साविध्युपदेशः।

जातमात्रश्चिकित्स्यः स्यान्नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः। वह्निशत्रुविषैस्तुल्यःस्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ १७ ॥ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्। ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥१८॥

अयमर्थः भिषक् आदौ रोगं परीक्षेत विचारयेत्। ततः पश्चाद्रोगौषधविचारानन्तरं ज्ञानपूर्वं सावधानो न त्वविज्ञाय कर्म चिकित्सामौषधदानादिरूपां समाचरेत् इत्यर्थः ॥

रोगकी उत्पत्ति होते ही तुरन्त चिकित्सा करनी चाहिये; परन्तु रोगोंको अल्प (थोडा) जानकर उसकी उपेक्षा (बेखबरी) न करे अर्थात् भूल न जाय. क्योंकि, रोग-अग्नि, शत्रु और विषके सदृश अल्प हो तो भी अधिक विकारको करता है। वैद्यको प्रथम रोगकी परीक्षा करनी चाहिये, पश्चात् औषधि

का विचार करे और तत्पश्चात् ज्ञानपूर्वक भिषक्कर्म अर्थात् चिकित्सा करे ॥ १७ ॥ १८ ॥

रोगाज्ञानेन चिकित्साकरणे दोषः ।

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् । अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥ १९ ॥

स्वैरितया सिद्धिर्भवति नापि भवतीत्यर्थः ॥

अन्यच्च–भेषजं केवलं कर्तुं यो जानाति न चामयम् । वैद्यकर्म स चेत्कुर्याद्वधमर्हति राजतः ॥ २० ॥

जो वैद्य औषधियोंके विधानको जानते हैं और रोगोंको विना जाने चिकित्सा करते हैं उनकी सिद्धि कदाचित् हो भी जाती है और कभी नहीं भी होती है। अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा कि–जो मनुष्य केवल औषधि करना जानता है, परन्तु रोगोंको नहीं पहिचानता, वह यदि वैद्यकर्म (चिकित्सा) करे तो राजा के वध करनेके योग्य होता है ॥ १९ ॥ २० ॥

रोगज्ञाने भेषजाज्ञाने दोषः ।

यस्तु केवलरोगज्ञो भेषजेष्वविचक्षणः । तं वैद्यं प्राप्य रोगीस्याद्यथा नौर्नाविकं विना ॥ २१ ॥

नाविकं कर्णधारं विना यथा नौः संकटे पतति तथा रोगीत्यर्थः ॥

अन्यच्च–यस्तु केवलशास्त्रज्ञः क्रियास्वकुशलो भिषक् । स मुह्यत्यातुरं प्राप्य यथा भीरुरिवाहवम् ॥ २२ ॥

जो वैद्य केवल रोग जानता हो, परन्तु औषधि करनेमें विलक्षण न हो रोगी उस वैद्यको प्राप्त होकर जिस प्रकार मल्लाहोंके बिना नाव संकटमें पडती है, उसी प्रकार रोगी संकटमें पडता है। अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि, जो वैद्य केवल वैद्यक शास्त्रको जानता है, परन्तु चिकित्सा करनेमें कुशल नहीं है, वह वैद्य जिस प्रकार कायर पुरुष लडाईको देखकर भयभीत होता है, उसी प्रकार रोगीके पास जाकर मोह अर्थात् भयको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

रोगौषधयोर्ज्ञाने गुणः ।

यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः । देशकालविभागज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ २३ ॥ आदावन्ते रुजां ज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः । भेषजानां विधानेन ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ २४ ॥

चिकित्सितमित्यत्र भावे क्तः ।

विकारनामाकुशलो न जिहीयात्कदाचन । न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥ २५ ॥

न जिहीयात्-न लज्जेत । ध्रुवा-नियता ।

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः । अनुक्तमपि दोषाणां लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥ २६ ॥ ये न कुर्वन्त्यसाध्यानां चिकित्सां ते भिषग्वराः । अतो वैद्यैः श्रमः कार्यः साध्यासाध्यपरीक्षणे ॥ २७ ॥ रोगज्ञानोपाया अग्रे वक्ष्यन्ते ॥

जो वैद्य रोगोंके भेदोंको जानता हो, सम्पूर्ण औषधियोंमें विचक्षण हो और देशकालके विभागको भी जानता हो, उस वैद्यकी निःसन्देह सिद्धि होती है। वैद्य आदिमें और अन्तमें रोग जाननेका प्रयत्न करे, पश्चात् औषधियोंकी विधिके अनुसार चिकित्सा करे कोई विकार (रोग) का नाम समझमें नहीं आवे तो वैद्य उसमें कभी लज्जा नहीं करे, क्योंकि सम्पूर्ण रोगोंकी स्थिति नामसे ही नियत नहीं है, दोषोंके विना रोग नहीं होते, इसलिये वैद्य किसी रोगका नाम शास्त्रमें न कहा हो तो भी दोषोंका चिह्न देखकर उन्हीं दोषोंके अनुसार चिकित्सा करे। जो असाध्य रोगोंकी चिकि-

त्सा नहीं करते, वे उत्तम वैद्य हैं, इस कारण वैद्यको साध्य असाध्यकी परीक्षामें यत्न करना चाहिये । रोग जाननेके उपाय आगे कहेंगे ॥ २३-२७ ॥

अथ चिकित्सापद्धतिः ।

शीते शीतप्रतीकारमुष्णे तूष्णनिवारणम् । कृत्वा कुर्यात्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥ २८ ॥ अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न क्रिया कृता । क्रिया हीनाऽतिरिक्ता च साध्येष्वपि न सिध्यति ॥ २९ ॥

अयमर्थः--काले चिकित्साऽवसरे अप्राप्ते अनागते । या क्रिया चिकित्सा । यथा ज्वरे जीर्णतामप्राप्ते तरुण एव कषायदानक्रिया न सिद्ध्यति या च क्रिया चिकित्साऽवसरे प्राप्ते न कृता अर्थात्पश्चात्कृता । यथा दाहे कथचिंच्छान्ते पश्चाच्छीतानुलेपनादिक्रिया तथा हीनाऽतिरिक्ता च क्रिया साध्येष्वपि न सिध्यति ॥

अतिरिक्तां हीनां च क्रियां वर्जयन्नाह ।

विकारेऽल्पे महत्कर्म क्रिया लघ्वी गरीयसि । द्वयमेतदकौशल्यं कौशल्यं युक्तकर्मता ॥ ३० ॥ क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् । पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासङ्करो हितः ॥ ३१ ॥ भिन्नरूपाभिस्तु क्रियाभिः सांकर्यमपि न दोषाय । यत आह--

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिर्न क्रियासङ्करो हितः। ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः सांकर्यनैव दुष्यति ॥३२॥ अत एवोक्तम्-लं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा । अवलेहोऽञ्जनं चापि प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ३३ ॥

ज्वर इति शेषः ॥

न चैकान्तेन निर्दिष्टे शास्त्रे निर्विशते बुधः । स्वयमप्यत्र भिषजा तर्कणीयं चिकित्सता ॥ ३४ ॥ यत आह--उत्पद्यते च साऽवस्था दोषकालबलं प्रति । यस्यां कार्यमकार्यं स्यात् कर्म कार्यं विवर्जितम् ॥ ३५ ॥

विवर्जितं कर्म कर्तव्यं भवति इत्यर्थः ॥

शीतसे रोग हुआ हो तो शीतका और गर्मीसे रोग हुआ हो तो गरमीका निवारण करनेके पश्चात् योग्य चिकित्सा करे, परन्तु चिकित्साका समय जाने न देवे । चिकित्साका समय प्राप्त न होनेपर जो चिकित्साकी जाय अथवा समय प्राप्त होनेपर नहीं की जाय और पीछेसे कीजाय अथवा जो चिकित्सा कम रोगमें अधिक और अधिक रोगमें कम की जाय, वह चिकित्सा रोग साध्य होनेपर भी कार्य सिद्ध नहीं कर सकती । जिस प्रकार ज्वर जीर्ण नहीं होनेपर नवीन ज्वरमें ही जो काथ आदिक देनेकी चिकित्सा कीजाय, वह उपयोगी नहीं होती तथा जिस प्रकार दाह शान्त होनेके पश्चात् शीतानुलेपादिक चिकित्सा करे तो वह भी उपयोगी नहीं होती और वैसेही हीन वा अधिक चिकित्सा करे तो भी किसी कामकी नहीं होती । अल्प विकार होनेपर भारी चिकित्सा करे अथवा भारी रोगमें अल्प चिकित्सा करे तो ये दोनों अयोग्य हैं । एक क्रियासे गुण न हो तो उस क्रिया का वेग शांत होनेके पश्चात् अन्य क्रिया करे परन्तु साथ साथ दोनों क्रिया नहीं करे। क्योंकि मिश्रित क्रिया हितकारी नहीं होती। इसमें भी ऐसा समझना कि--समान प्रकारकी क्रिया इकट्ठी करनेमें दूषित हैं परन्तु अलग अलग प्रकारकी क्रियायें एकत्र कीजायँ तो दूषित नहीं होती । कहा है कि--त्रिदोषसे हुए ज्वरमें प्रथम ही से लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह और अंजनका उपयोग करे । इससे उपरोक्त बात सिद्ध होती है ।

विद्वान् वैद्योंको एक शास्त्रके ऊपर ही आग्रह रखकर नहीं बैठना चाहिये परन्तु चिकित्सा करते समय अपनी बुद्धिसे तर्क वितर्क भी करना चाहिये. क्योंकि, दोष और कालके बलसे कभी कभी रोगकी ऐसी भी स्थिति होती है कि, जिसमें शास्त्रकी रीतिसे करने योग्य हो, वह नहीं करना चाहिये और नहीं करने योग्य हो, करना चाहिये २८–३५

अथ चिकित्सायाः फलम् ।

कचिदर्थः कचिन्मैत्री कचिद्धर्मः कचिद्यशः । कर्माभ्यासः कचिच्चोत चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ ३६ ॥ आयुर्वेदोदितां युक्तिं कुर्वाणा विहितां च ये । पुण्यायुर्वृद्धिसंयुक्ता नीरोगाश्च भवन्ति ते ॥ ३७ ॥

चिकित्सा करनेसे कहीं धन मिलता है, कहीं मित्रता होती है, कहीं धर्म होता है, कहीं यश मिलता है, और कहीं क्रिया करनेसे अभ्यास बढता है, इस लिये चिकित्सा किसी समय भी निष्फल नहीं होती । जो आयुर्वेदोक्त और धर्मशास्त्रोक्त युक्तियोंसे चलता है वह रोगरहित होता है और पुण्य तथा आयुकी वृद्धि होती है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथ वैद्योपजीविका ।

नैव कुर्वीत लोभेन चिकित्सापुण्यविक्रयम् । ईश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थं तु वृत्तये ॥ ३८ ॥ चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः । स यत्करोति सुकृतं सर्वं तद्भिषगश्नुते ॥ ३९ ॥ न देशो मनुजैर्हीनो न मनुष्या निरामयाः । ततः सर्वत्र वैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः ॥ ४० ॥

वैद्य लोभके वश हो असमर्थ लोगोंसे धन लेकर चिकित्साका पुण्य विक्रय नहीं करे. परन्तु जो लोग समर्थ और धनवान् होवें उनसे आजीविकाके लिये धन लेनेकी इच्छा करे । जो दुर्बुद्धि मनुष्य अपने शरीरकी चिकित्सा कराकर उसके बदले वैद्यको कुछ नहीं देता है, वह मनुष्य जो कुछ पुण्य करता है वह सम्पूर्ण वैद्यको प्राप्त होता है । मनुष्योंके विना देश नहीं है और रोगके विना मनुष्य नहीं है, इसलिये सर्व स्थानोंमें वैद्यकी आजीविकाकी सिद्धि होती है ॥३८–४० ॥

अथ चिकित्साया अङ्गानि ।

रोगी दूतो भिषग्दीर्घमायुर्द्रव्यं सुसेवकः । सदौषधं चिकित्साया इत्यङ्गानि बुधा जगुः ॥ ४१ ॥

रोगी १, दूत २, वैद्य ३, दीर्घायु ४, द्रव्य ५, श्रेष्ठ सेवक ६, और सप्तम औषध ७ ये सात चिकित्साके अंग हैं, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ४१ ॥

तत्र रोगिणो लक्षणमाह ।

रोगो यस्यास्ति रोगी स स चिकित्स्यस्तु यादृशः । यादृशश्चाचिकित्स्योऽपि वक्ष्यमाणो निशम्यताम् ॥ ४२ ॥

तत्र चिकित्स्यः ।

निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेन चक्षुषा । चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यभक्तो जितेन्द्रियः ॥ ४३ ॥

सत्त्वं व्यसनाभ्युदयक्रियादिषु अविह्वलताकरं तेन युक्तः । चक्षुषा चक्षुरुपलक्षितेन ततोऽन्येनापि इन्द्रियेण । चिकित्स्यः रोगात् मोचयितव्यः ॥

अन्यच्च-आयुष्मान् सत्त्ववान् साध्यो द्रव्यवान्मित्रवानपि । चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ४४ ॥

आयुर्वेदोऽस्तीति मतिर्यस्य स आस्तिकः ॥

जिसको रोग हो उस मनुष्यको रोगी कहते हैं, अब उसमें किस रोगीकी चिकित्सा करे

और किसकी न करे, इस विषयमें कहता हूँ सुन–जिसकी स्वाभाविक प्रकृति और शरीरका वर्ण बदला न हो, सत्त्व युक्त (धैर्ययुक्त आकुलता रहित) हो, जिसकी चक्षु आदि इन्द्रियां योग्य स्थितिमें हों, जो जितेन्द्रिय हो और जिसकी वैद्यके ऊपर भक्ति हो ऐसा रोगी वैद्यकी चिकित्सा करने योग्य है। ग्रंथान्तरमें भी कहा है कि–जो रोगी आयुष्मान, धैर्यवान्, मित्रवान्, साध्य, वैद्यका कहना माननेवाला और वैद्यकशास्त्रको माननेवाला हो उस रोगीकी वैद्य चिकित्सा करे।।४२-४५।।

अथ अचिकित्स्यः ।

चण्डः साहसिको भीरुः कृतघ्नो व्यग्र एव च। शोकाकुलो मुमूर्षुश्च विहीनः करणैश्चयः ॥ ४५ ॥ वैरी वैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनश्च शंकितः । भिषजामविधेयाः स्युर्नोपक्रम्या भिषग्विधाः । एतानुपाचरन्वैद्यो बहून् दोषानवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

चण्डोऽत्यन्तक्रोधशीलः । साहसिकः अविचार्य कारी। भीरुर्भयशीलः । कृतघ्नः वैद्यकृतोपकारलोपकः । व्यग्रः व्याकुलः । विहीनः करणैश्च यः निजेन्द्रियशक्तिरहितः । वैरी न चिकित्स्यः कदाचिद्रोगोद्रेक अपवादभयात् । वैद्यविदग्धो वैद्यधूर्तः ॥ तथा च सुश्रुतः–"स नसिध्यति वैद्यस्तु गृहे यस्य न पूज्यते" ॥ शंकितो वैद्यविश्वासरहितः भिषजामविधेयः वैद्यवचनाविधायिनः । भिषग्विधाः वैद्य तुल्या एते न उपक्रम्याः न चिकित्साः ॥

अत्यन्त क्रोधी विना विचारे कार्य करनेवाला भयभीत, कृतघ्न, व्याकुल, शोकसे व्याप्त मृत्युकी इच्छा करनेवाला, इंद्रियोंकी शक्तिरहित, श्रद्धारहित, वैद्यके ऊपर शंका करनेवाला अथवा वैद्यका वचन नहीं माननेवाला ऐसे रोगीकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । वैरीको चिकित्सा भी नहीं करनी चाहिये. क्योंकि, कदाचित् रोग बढ जाय तो वैद्यके ऊपर अपवाद आता है । जो रोगी वैद्यके सदृश हो और जो रोगी वैद्यको ठगनेवाला हो, उसकी भी चिकित्सा नहीं करे । सुश्रुत कहते हैं कि—जिस घरमें वैद्यकी पूजा नहीं होती,उसकी कदापि सिद्धि नहीं होती४५-४६

अथ दूतस्य लक्षणम् ।

यश्चिकित्सकमानेतुं याति दूतः स कथ्यते । स च यादृक् समुचितस्तादृगत्र निगद्यते ॥ ४७ ॥ दूताः सुजातयोऽव्यङ्गाः पटवो निर्मलाम्बराः । सुखिनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः ॥ ४८ ॥ सजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि सङ्गताः। भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे ॥ ४९ ॥

सजातयः-रोगिसमानजातयः ॥

यस्यां प्राणमरुद्याति सा नाडी जीवसंज्ञिता ॥ ५० ॥

जो मनुष्य वैद्यके बुलानेको जाय, उसको दूत कहते हैं। वह दूत कैसा होना चाहिये, सो कहते हैं । दूत उत्तम कुलका, सम्पूर्ण अंगयुक्त, चतुर, निर्मलवस्त्रोंसे युक्त, घोडे बैलकी सवारी सहित, श्वेत फल फूल धारण किये, रोगीकी जातिवाला, सुन्दर चेष्टा युक्त और सजीव दिशामें स्थिति होनेवाला तथा वैद्यके समयसे आया हुआ ऐसा दूत रोगीके सुखका कारण जानना । दूतकी जिस दिशामें नासिकाकी वायु चलती हो, उसे सजीवदिशा कहते हैं, उसी दिशामें वैद्यको मिले तो उससे रोगीको सुख होता है ॥ ४७–५० ॥

अथ दूतस्य यात्रायां शकुनविचारः ।

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते । न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं तु सुखावहम् ॥ ५१ ॥

प्रदीप्तम्-अग्न्यादि ॥

दूतो रोगी च रिक्तहस्तो वैद्यं न पश्येत्। तथाहि-रिक्तहस्तो न पश्येत्तु राजानं भिषजं गुरुम्। दैवज्ञं देवतां मित्रं फलेन फल मादिशेत् ॥ ५२ ॥

दूत रोगीके लिये वैद्यको बुलाने जाता हो, तब सौम्य (शांत) शकुन हो तो रोगीको शुभ नहीं है, परन्तु बलती हुई अग्नि आदि प्रदीप्त शकुन हो तो सुखदायक है। दूत अथवा रोगी रीते हाथ वैद्यको नहीं देखे; क्योंकि कहा है कि, राजा, वैद्य, गुरु ज्योतिषि, देवता और मित्र इनके समीप रीते हाथों न जाय, फलको लेकर जाय। क्योंकि, फलसे ही श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति होती है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ सुवैद्यस्य लक्षणम्।

चिकित्सां कुरुते यस्तु स चिकित्सक उच्यते। स च यादृक्समीचीनस्तादृशोऽपि निगद्यते ॥ ५३ ॥ तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयं कृती। लघुहस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः ॥ ५४ ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान् व्यवसायी प्रियंवदः। सत्यधर्मपरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते ॥ ५५ ॥

दृष्टकर्मा-दृष्टा परेण कृता चिकित्सा येन सः। स्वयं कृती स्वयं चिकित्साकुशलः। लघुहस्तः सिद्धिमद्धस्तः ॥

जो चिकित्सा करे, उसको चिकित्सक अर्थात् वैद्य कहते हैं। वह वैद्य जैसा उत्तम होना चाहिये, सो कहते हैं। यथार्थ शास्त्रके अर्थको जाननेवाला जिसने अन्यकी की हुई चिकित्सा देखी हो, आप भी चिकित्सामें कुशल हलके हाथवाला अर्थात् सिद्ध हाथवाला, पवित्र, शूर (उत्साहयुक्त), जिसके पास औषधि आदि तैयार हो जो समयपर योग्य उपचार जानता हो; बुद्धिमान्, उद्योगी, प्रिय बोलनेवाला और सत्य तथा धर्ममें तत्पर रहनेवाला ऐसा वैद्य प्रशंसाके योग्य होता है ॥ ५३-५५ ॥

अथ निषिद्धो वैद्यः।

कुचैलः कर्कशः स्तब्धो ग्रामीणः स्वयमागतः। पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा यदि ॥ ५६ ॥

कर्कशः-अप्रियवादी। स्तब्धः-साभिमानः। ग्रामीणः व्यवहाराचतुरः ॥

मलिन वस्त्र युक्त, अप्रिय बोलनेवाला, अभिमानी कुग्रामी (व्यवहारमें मूर्ख) और विना बुलाया अपने आप आनेवाला ऐसा वैद्य धन्वन्तरिके सदृश भी हो तो भी पूज्य नहीं होता है ॥ ५६ ॥

अथ वैद्यस्य कर्म।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः। एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ५७ ॥

अस्यायमर्थः व्याधेः सम्यक् परिचयो व्यथाशान्तिकरणं च वैद्यस्य कर्म, न तु वैद्यः आयुषः प्रभुरित्यर्थः। अपरे तु एवं व्याचक्षते। व्याधेस्तत्त्वतः परिचयो वेदनायाः शान्तिकरणं च। एतदेव न वैद्यस्य वैद्यत्वम्। किन्तु वैद्य आयुषः प्रभुः आगन्तुमृत्युशतहरणात् ॥ तथा च सुश्रुते धन्वन्तरिः-

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते। तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः ॥ ५८ ॥

अयमर्थः--अथर्वाणः अथर्वतत्त्वज्ञत्वेन अथर्वतुल्याः मृत्युमेकोत्तरशत प्रचक्षते तत्रैको मृत्युः कालसंयुक्तः कालः आयुषोऽन्ते शरीरिणामवश्यंसंहर्ता। सर्वैरुपायैर्निवारयितुमशक्यः स ब्रह्मादीनायुषोऽन्ते सहरति ॥ अतआह

लिंगपुराणे कार्तिकेय प्रति महादेवः-"ममायुर्ग्रसते कालः कुतः पुत्र रसायनम् ॥" इति। तेन कालेन संयुक्तः संहाराय नियुक्तः सः अवश्यम्भावी। शेषाः शतं मृत्यवः आगन्तवः आगन्तुरूपहेतुजन्मानः कार्यकारणयोः अभेदोपचरात् ॥

आगन्तवो हेतवो यथा—

विषभक्षणमजीर्णमत्यन्तभोजन च दुर्देशजलपानम्, तथाऽतिबलवैरिव्याघ्रवनमहिषमत्तमातङ्गादिभिर्युद्धम्, दन्दशूकेन क्रीडनम्, अत्युच्चवृक्षाग्रारोहणम्, बाहुभ्यां महातरङ्गिणीतरणम्, एकाकिनो रात्रौ दुर्गे मार्गे गमनम् इत्यादि। आंगन्तुहेतुजा मृत्युवो दुर्निमित्ता भाविभावनाबलवत्त्वात् आयुषि सत्यपि मारयन्ति। यथा मल्लिकातैलवर्तिवह्निषु विद्यमानेषु वात्या दीपं नाशयति ॥ तथा च—यथा सत्यपि तैलादौ दीपं निर्वापयेन्मरुत्। एवमयुष्यहीनेऽपि हिंसन्त्यगन्तुमृत्यवः ॥ ५९ ॥

आयुषि अहीने इति पदच्छेदः ॥

किन्तु आगन्तुनिमित्तानि निवारयितुं च शक्यते ॥ यत आह सुश्रुते धन्वन्तरिः—दोषागन्तुनिमित्तेभ्यो रसमन्त्रविशारदौ। रक्षेतां नृपतिं नित्यं यत्नाद्वैद्यपुरोहितौ ॥ ६० ॥ वैद्यमंन्त्रिणौ नृपतिं नित्यं यत्नाद्रक्षेताम्। कुतः? दोषागन्तुनिमित्तेभ्यः। दोषाः निषिद्धाहारविहारदूषिता वातपित्तकफाः रोगोत्पादकाः। आगन्तवः—निषिद्धा विहारा अतिवैरिविग्रहादयः। ते निमित्तानि येषां तेभ्यः शतमृत्युभ्यः। वैद्यपुरोहितौ कथं शतं मृत्युन् निवारयितुं शक्तौ? तत्राह। यतस्तौ रसमन्त्रविशारदौ। प्रथमं वैद्यो दिनचर्यारात्रिचर्यर्तुचर्योक्ताहारविहाराभ्यां वातपित्तकफधातुमलान्समानेव रक्षति। ततो रसज्ञत्वाद्रसैर्मृत्युंजयादिभिः निषिद्धाहारविहारदूषितदोषजनितान्विकारान्मृत्युहेतूनपहरति। मन्त्री च सद्बुद्धिदानेन मृत्युहेतुभ्यो निषिद्धविहारेभ्यो नृपतिं निवारयति। तत आगन्तुमृत्यवो निवारयितुं शक्याः न तु अवश्यम्भाविनः ॥

रोगका यथार्थ रीतिसे जानना और रोगी की पीडाको दूर करना यही वैद्यका वैद्यत्व है, वैद्य कुछ आयुका स्वामी रक्षक नहीं है, परन्तु कोई ऐसा कहते ह कि--रोगोंको यथार्थ रीतिसे जानना और रोगीकी पीडा दूर करना यही वैद्यका काम नहीं है, किन्तु वैद्य आयुका मालिक भी है. क्योंकि, सौ प्रकारकी आगन्तुक मृत्युओंके नष्ट करनेको वैद्य समर्थ है। सुश्रुतमें कहा है कि--अथर्ववेदके तत्त्वको जानने वाले 'एक सौ एक मृत्यु हैं' ऐसा कहते हैं. उनमेंसे एक मृत्यु तो आयुकी अन्तमें सर्व प्राणियोंका अवश्य संहार करनेवाली हैं और सर्व उपायोंसे इसका निवारण नहीं हो सकता तथा और शेष सौ आगन्तुक मृत्यु कही हैं, उसका निवारण हो सकता है। सर्व प्राणियों का अवश्य संहार करनेवाला काल तो आयुके अन्तमें ब्रह्मादिकका भी संहार करता है. यह लिंगपुराणमें महादेवने कार्तिकेय स्वामीके प्रति कहा है कि--"हे पुत्र! काल तो मेरी आयु का भी ग्रास करता है. फिर रसायन क्या है?" इस कारण कालसंयुक्त मृत्यु प्राणियोंके संहारके लिये अवश्य होगी और शेष एक सौ मृत्यु आगन्तुक अर्थात् नये उत्पन्न हुए कारणों से आनेवाली हैं; उनका तो उन उन कारणोंके

निवारण करनेसे निवारण हो सकता है। आगन्तुक हेतु जैसे- विषका भक्षण, अजीर्ण हुएपर अत्यन्त भोजन, खोटे देशका जल पीना, तथा अत्यन्त बलवान् वैरी. व्याघ्र, जंगली भैंसा अथवा मदोन्मत्त हाथी आदिके साथ युद्ध, सर्पके साथ क्रीडा करना, बहुत ऊँचे वृक्षपर चढना, बाहुओंसे महानदीमें तैरना और रात्रिके समय विषम मार्गमें चलना इत्यादि कारण आगन्तुक कहाते हैं। जिस प्रकार दीपकमें बत्ती, तेल और अग्निके होते हुए भी वायुके द्वारा दीपक नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार आगन्तुक हेतु बलवान् होनेसे होनहारकी प्रबलताके द्वारा आयुके शेष रहनेपर भी मार डालते हैं। कहा है कि--"जिस प्रकार तेल आदि होनेपर भी पवन दीपकको बुझा देती है, उसी प्रकार आयु विद्यमान होनेपर भी आगन्तुक मृत्यु प्राणियोंको मार डालती है" ॥ आगन्तुक कारणोंका निवारण हो सकता है. क्योंकि आगन्तुक मृत्युके निवारण होनेमें सुश्रुतमें लिखा हुआ धन्वन्तरीका वचन प्रमाणरूप है। धन्वन्तरि कहते हैं कि--रस और मन्त्रमें कुशल वैद्य और पुरोहित (मन्त्री) यत्नसे दोष और आगन्तुक कारणोंसे राजाओंकी सर्वदा रक्षा करे। दोष अर्थात् निषिद्ध आहार और विहारसे दूषित हुए अथवा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले जो वात पित्त और कफ उनसे होनेवाली मृत्युओंसे अथवा आगन्तुक अर्थात् अत्यन्त बलवान् शत्रुसे युद्ध आदि निषिद्ध विहारसे उत्पन्न हुई मृत्युओंसे रक्षा करे। यहां शंका होती है कि वैद्य और पुरोहित सौ आगन्तुक मृत्यु किस प्रकार निवारण कर सकते हैं? वहां कहते हैं कि--प्रथम वैद्य दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्यामें कहे हुए आहार और विहारोंसे वात, पित्त कफ तथा धातु और मलकी समानतासे रक्षा करता है। तथा रसज्ञ होनेके कारण मृत्युंजयादि रसोंके द्वारा निषिद्ध आहार और विहारसे कुपित हुए जो दोष उनसे उत्पन्न हुई मृत्युके कारणरूप निषिद्ध विहारोंसे राजाको निवारण करता है। ऐसे ही मन्त्री भी श्रेष्ठ बुद्धिसे मृत्युके कारण निषिद्ध बिहारोंसे राजाको बचा सकता है अर्थात् आगन्तुक मृत्युओंका नाश करता है, इससे सिद्ध हुआ कि-अवश्य होनेवाली एक मृत्युका ही निवारण नहीं हो सकता, परन्तु सौ आगन्तुक मृत्युओंका निवारण हो सकता है ॥५७-६०॥

अथ आयुर्विचारः।

भिषगादौ परीक्षेत रुग्णास्यायुः प्रयत्ननः। तत आयुषि विस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत् ॥ ६१ ॥

वैद्य प्रथम यत्नपूर्वक रोगीकी आयुकी परीक्षा करे। क्योंकि, आयु दीर्घ होनेसे ही चिकित्सा सफल होती है ॥ ६१ ॥

अथ दीर्घायुषो लक्षणानि।

साम्यै दृष्टिर्भवेद्यस्य श्रोत्रं वक्त्रं तथैव च। स्वादु गन्धं विजानाति स साध्यो नात्र संशयः॥ ६२॥ पाणिपादौ च यस्योष्णौ दाहः स्वल्पतरो भवेत्। जिह्वा तु कोमला यस्य स रोगी न विनश्यति ॥ ६३॥ स्वेदहीनो ज्वरो यस्य श्वासो नासिकया चरेत्। कण्ठश्च कफहीनः स्यात्स रोगी जीवति ध्रुवम् ॥ ६४ ॥ यस्य निद्रा सुखेन स्याच्छरीरं द्युतिमद्भवेत्। इन्द्रियाणि प्रसन्नानि स रोगी नैव नश्यति ॥ ६५ ॥

जिस रोगीके नेत्र, कान और मुख सौम्य (श्रेष्ठ) हों और रस तथा गन्धको जानता हो, उस रोगीका रोग निःसन्देह साध्य होता है जिसके हाथ पांव उष्ण हों, दाह अल्प हो और जीभ कोमल हो, वह रोगी नष्ट नहीं होता। जिसको स्वेद (पसीने) रहित ज्वर हो, श्वास नाकमेंसे चलता हो और कण्ठ कफ रहित हो, वह रोगी अवश्य जीता है. जिसको निद्रा सुखसे आती हो, शरीर कांतियुक्त हो और इन्द्रियां प्रसन्न हों वह रोगी कभी भी नष्ट नहीं होगा ॥ ६२--६५ ॥

अथ स्वल्पायुषो लक्षणानि।

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत्। तदरिष्टं समासेन व्यासतश्च निबोध मे ॥ ६६ ॥ श्रृणोति विविधाञ्छब्दान्विपरीताञ्छृणोति च। श्रृणोति यो न चाकस्मात्तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ६७ ॥ यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत्। उष्णगात्रोऽतिमात्रं यो भृशं शीतेन कम्पते ॥ ६८ ॥

तमपि गतायुषं वदन्तीत्यन्वयः ॥

प्रहारं नैव जानाति यो गच्छेदन्यथाऽपि वा। पांसुनेवावकीर्णानि यश्च गात्राणि मन्यते ॥६९॥ वर्णान्यता वा राज्यों वा यस्य गात्रे भवन्ति हि। स्नातानुलिप्तं यं चापि भजन्ते नीलमक्षिकाः ॥ ७० ॥ विपरीतेन गृह्णाति रसान्यश्चोपयोजितान्। यो वा रसान्न सेवेत तं गतासुं प्रचक्षते ॥ ७१ ॥ सुगन्धं वेत्ति दुर्गन्धं दुर्गन्धं च सुगन्धवत्। गृह्णाति योऽन्यथा गन्धं शान्ते दीपे निरामयः ॥ ७२ ॥ रात्रौ सूर्यं ज्वलन्तं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम्। दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति ॥ ७३ ॥

दिवा वा चन्द्रवर्चसं सूर्यमित्यन्वयः ज्योतींषि नक्षत्राणि।

विद्युत्वतोऽसितान्मेघान् गगने निर्घने घनान्। विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलमम्बरम् ॥ ७४ ॥ यश्चानिलं मूर्तिमन्तमन्तरिक्षेऽवलोकते। धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥ ७५ ॥ प्रदीप्तमिव यो लोकं यो वाऽऽप्लुतमिवाम्भसा। भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ ७६ ॥ यो न पश्यन्ति ऋक्षाणि यश्च देवीमरुन्धतीम्। ध्रुवमाकाशगङ्गां च तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ७७ ॥ आदर्शेऽम्बुनि घर्मे वा छायां यश्चन पश्यति। पश्यत्येकाङ्गहीनां वा विकृतां वाऽन्यसत्त्वजाम् ॥ ७८ ॥ श्वकाककङ्कगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम्। आतुरो लभते मृत्युं स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥ ७९ ॥ ह्रीश्रियो नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा। अकस्माच्च भजन्ते यं स गतासुरसंशयम् ॥ ८० ॥

प्रभा-प्रतिभा ॥

यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं तथोत्तरः। उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ ८१ ॥ आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतन्ति वा। खञ्जनप्रतिभा वाऽपि तं गतायुषमादिशेत् ॥ ८२ ॥ कृष्णा तथाऽनुलिप्ता च जिह्वा शून्या च यस्य वै। कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥ ८३ ॥ कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका। अवस्फूर्जति भग्ना वा न जीवति मानवः ॥ ८४ ॥

स्फूर्जति श्वासवेगेनोच्चैः शब्दं करोतीत्यर्थः॥

संक्षिप्ते विषमे स्तब्धे रूक्षे सास्रे च लोचने स्यातां परिप्लुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥ ८५ ॥ केशाः सीमन्तिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ। लुठन्ति चाक्षिपक्ष्माणि सोऽचिराद्याति मृत्यवे ॥ ८६ ॥

लुठन्ति-पतन्ति ॥

नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः। एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान् विमुञ्चति ॥ ८७ ॥ उत्थाप्यमानो बहुशः संमोहं योऽधिगच्छति। बलवान् दुर्बलो वाऽपि तं पक्कं भिषगादिशेत् ॥ ८८ ॥ निद्रा निरन्तरं यस्य यो जागर्ति च सर्वदा। मुह्येद्वा वक्तुकामश्च प्रत्याख्येयः स जानता ॥ ८९ ॥ उत्तरौष्ठं च यो लिह्यादुत्करांश्च करोति यः। प्रेतैर्वा भाषते सार्यं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥ ९० ॥

उत्करान्-हस्तपादादिविक्षेपान् ॥

खेभ्यश्च रोगकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते पुरुषस्याविषार्तस्य स सद्यो जीवितं त्यजेत् ॥ ९१ ॥ सम्यक् चिकित्स्यमानस्य विकारो योऽभिवर्धते। प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद्गतायुषः ॥ ९२ ॥ भूताः प्रेताः पिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च। मरणाभिमुखं जन्तुमुपसृत्य च नित्यशः ॥ ९३ ॥ तानि भेषजवीर्याणि प्रतीच्छंति जिघांसया। तस्मान्मोघाः क्रियाः सर्वा भवन्त्येव गतायुषः ॥ ९४ ॥

ननु आयुषि सति चिकित्सायाः साफल्यमुक्तम्, आयुरस्ति चेत्तदा तदेव जीवनहेतुः, किं चिकित्साविधानेन? तत्र उच्यते। आयुषि सति चिकित्सायाः फलं वेदनानिग्रहः। उक्तञ्च-

आयुष्मान्पुरुषो जीवेत्सव्यथो भेषजं विना। भेषजेन पुनर्जीवेत्स एव हि निरामयः ॥ ९५ ॥ किञ्च आयुषि सत्यपि रोगी चिकित्स्यां विना उत्थातुं न शक्नोति। यत आह चरकः-

सति चायुषि नोपायं विनोत्थातुं क्षमो रुजी। दर्शितश्चात्र दृष्टान्तः पंकमग्नो यथा गजः ॥ ९६ ॥

किञ्च चिकित्सां विना आयुष्मानपि अवसीदति। यत आह स एव-

सति चायुषि नष्टः स्यादामयैश्चाचिकित्सितः। यथा सत्यपि तैलादौ दीपो निर्वाति वात्यया ॥ ९७ ॥

अत एवोक्तम्-साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्या गच्छन्त्यसाध्यताम्। घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावताम् ॥ ९८ ॥ इति ॥ चिकित्सा तु अनिश्चितायुषोऽपि कर्तव्या। यत आह-तावत्प्रतिक्रिया कार्या यावच्छ्वसिति मानवः। कदाचिद्दैवयोगेन दृष्टारिष्टोऽपि जीवति ॥९९॥ इति तु यस्यासाध्यत्वं संदिग्धं तं प्रत्युक्तम्। येषु तु असाध्यता शास्त्रेण अनुभवेन विनिश्चिता ते पुनर्न चिकित्स्याः। यत उक्तम्-सद्वैद्यास्ते न येऽसाध्यानारभन्ते चिकित्सितुम् ॥ १०० ॥ इति ॥

शरीरकी प्रकृति बिगडगई हो और स्वभाव बदल गया हो, ये संक्षेपसे अरिष्टके लक्षण है। अब विस्तारसे कहता हूँ. सुनो-जो रोगी अनेक प्रकारके शब्द सुने, विपरीत (उलटे) शब्द सुने और अकस्मात् सुने ही नहीं, उसको गतायु कहते हैं। जो रोगी शीतल वस्तुको उष्ण जाने और उष्णवस्तुको शीतल जाने, जिसका शरीर अत्यन्त उष्ण हो और शीतसे कांपता हो, उसको भी गतायुजानना। जिसके शरीरमें प्रहार (चोट) लगनेसे खबर न मालूम होती हो, अथवा कुछका कुछ जाने, जो अपने सब देहको धूलसे आच्छादित

जाने, जिसके शरीररंगसे विपरीत प्रकारकी काली पीली रेखायें देहमें हो जायँ, स्नानकर चन्दन आदिका लेप करनेपर भी जिसके शरीरपर नीली मक्खी बैठे, खाये हुए रसका स्वाद विपरीत जाने और जो किंचिन्मात्र भी रसके स्वादको न जाने उसको भी गतायु जानना, जो सुगन्धको दुर्गन्ध और दुर्गन्धको सुगन्ध इस प्रकार विपरीत जाने, दीपक शांत होनेपर रोगकी शांति मालूम हो, जो रात्रिमें सूर्यको और दिनमें चन्द्रमाको प्रकाशित देखे, अनेक नक्षत्रोंको दिनमें प्रकाशित तथा बादलोंके विना आकाशमें बिजलीयुक्त काले मेघ देखे, जो आकाशको विमान, वाहन तथा महलोंसे युक्त देखे, जो अन्तरिक्षमें पवनको मूर्तिमान् देखे जो पृथ्वीको धुआँ कोहर और वस्त्रोंसे आच्छादित देखे, जो सम्पूर्ण जगतको जलता हुआ अथवा जलमें डूबता हुआ देखे, जो पृथ्वीको खेलनेकी चौपडके समान रेखावाली देखे, ध्रुव और आकाशगंगा (शिशुमार चक्र) नहीं दीखे, उसको भी गतायु जानना। जिसको दर्पण जल और धूपमें अपनी परछाई न दीखे, दीखे भी तो एक अंगरहित दीखे और विकृत (बुरे रूपकी) दीखे वा अन्य प्राणियोंकी दीखे अथवा कुत्ता, कौवा, कंकपक्षी, गिद्ध, प्रेत, वक्ष और राक्षसकी छाया दीखे वह रोगी हो तो उसकी मृत्यु हो जाती है और स्वस्थ (निरोगी) हो तो रोगी हो जाता है। जिस रोगीकी लज्जा, शोभा, तेज, ओज, स्मृति और कांति ये नष्ट हो जायँ, अथवा लज्जा, शोभा आदि अकस्मात् प्राप्त हो जायँ, उसको निश्चय गतायु समझना। जिसके नीचेका होंठ नीचेको लटक जाय और ऊपरका होंठ ऊपरको चढगया हो अथवा जिसके होंठ जामुनके सदृश काले होजायँ, उस मनुष्यका जीना दुर्लभ है। जिसके दांत लाल या काले होजायँ. गिर पडें अथवा खञ्जन पक्षीकी भांति वर्णवाले होजायँ, उसको तत्काल मृत्युवाला जानना। जीभ काली, चिकनी, शून्य और कठोर, होजाय, वह प्राणी शीघ्र मृत्युको प्राप्त होगा। जिसकी नाक कुटिल, (टेढी) फटीसी सूखीसी झुकीसी होजाय अथवा श्वासके वेगसे शब्द करे, वह मनुष्य नहीं जियेगा। जिसके नेत्र छोटे, विषम (टेढे) पथराये हुए, रूखे और आंसुओंसे भरे हुए हों वा जिसके नेत्रोंसे आंसू गिरें वह मनुष्य शीघ्र मरेगा। जिसके केश गुथेसे, भौयें झुकी हुई संकुचित होजायँ और जिसके पलकोंके बाल गिरजांय, यह मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होगा। जो रोगी मुखमें अन्न देनेपर भी नहीं निगल सके: मस्तकको स्थिर न रख सकता हो, दृष्टि एकाग्र होजाय अथवा जिसका मन मूढ होगया हो, वह–मनुष्य तत्काल मरेगा। जो वारंवार उठानेपर भी मोहवश होजाय, वह मनुष्य चाहे बलवान् हो अथवा दुर्बल हो परन्तु मृत्युके किनारेपर है अर्थात् उसे गतायु जानना। जो सदा सोया ही करे अथवा निरंतर जागा ही करे वा जो बोलनेकी इच्छा होनेपर भी मोहको प्राप्त होजाय, उस रोगीको विद्वान् वैद्य त्याग दे। जो ऊपरके होंठको चाटे और हाथ पावोंको इधर उधर पटके और सायंकालसे प्रेतोंके साथ भाषण करता हो, उस मनुष्यको तुरन्त मृत्यु प्राप्त जानना। विषसे पीडित न होनेपर भी जिस मनुष्यके रोमकूपोंमेंसे रुधिर निकलने लगे वह मनुष्य प्राणोंको शीघ्र त्याग देता है। भली भांति चिकित्सा करनेपर भी जिस मनुष्यका बल और मांस क्षीण होजाय और विकार बढता जाय, वह मनुष्य शीघ्र मृत्युवाला जानना। जिसकी मृत्यु निकट आगई हो, उस मनुष्यके पास नित्य भूत, प्रेत, पिशाच और अनेक प्रकारके राक्षस जाते हैं, वे इस मनुष्यको मारनेकी इच्छासे औषधियोंकी शक्तिको नष्ट कर देते हैं। इस लिये जिसकी मृत्यु आगई हो, उस मनुष्यकी जो जो चिकित्सा की जाती है, वह सब निष्फलही हो जाती है॥

यहाँ शंका होती है कि, आयु हो तबही चिकित्सा सफल होती है, ऐसा कहा. तब तो जिसकी आयु हो, वही जीने योग्य है, इस

कारण चिकित्सा करनेसे क्या प्रयोजन है? वहां उत्तर कहते हैं कि–आयु होनेपर चिकित्साका फल पीडाका रोकना है। जैसे कहा है कि–" आयु होनेपर चिकित्सा न करे तो वेदना सहित जीता है " आयुके रहनेपर भी रोगी विना चिकित्सासे नहीं उठ सकता। इसमें चरक कहते हैं कि-- " आयुके होनेपर भी रोगी विना उपाय किये नहीं उठ सकता जिस प्रकार कीचमें फँसा हुआ हाथी विना निकाले नहीं निकल सकता. " आयु होनेपर भी चिकित्सा न कीजाय तो रोगी मरजाता है. यह भी चरकके वचनसे सिद्ध होता है; क्योंकि, चरक कहते हैं--कि, जिस प्रकार तैलादि होनेपर भी पवनसे दीपक बुझा जाता है उसी प्रकार आयु होनेपर भी जो चिकित्सा न कीजाय तो रोगी रोगोंसे मरजाता है। यह ऊपर प्रथम ही कहनेमें आया है कि--जो चिकित्सा न कीजाय तो मनुष्योंके साध्य रोग याप्य होजाते हैं और याप्यरोग असाध्य होजाते हैं तथा असाध्य हों तो प्राण लिये विना नहीं रहते। जिनकी आयुका निश्चय नहीं हुआ हो, उन मनुष्योंकी भी चिकित्सा करनी चाहिये। इस विषयमें कहा है कि, जबतक मनुष्य श्वास लेता हो, तबतक चिकित्सा करें. क्योंकि, जिसकी मृत्युके चिह्न दीखते हों वह मनुष्य भी कदाचित् दैवयोगसे जी जाता है, इस प्रकार जो वचन है--उसका अभिप्राय यह है कि, जिसके असाध्यपनेमें सन्देह हो, उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। क्योंकि, शास्त्रसे तथा अनुभवसे जिसके असाध्यपनेका पक्का निश्चय हो, उसकी चिकीत्सा नहीं करनी चाहिये, इसमें कहा है कि--जो असाध्यकी चिकित्सा करना आरंभ नहीं करते, वे ही वैद्य श्रेष्ठ हैं ॥ ९९--१०० ॥

अथ द्रव्यावश्यकता ।

सर्वे द्रव्यमपेक्षन्ते रोगिप्रसृतयो यतः ।
विना वित्तं न भैषज्यं चिकित्साऽङ्गं ततो धनम् ॥ १०१ ॥

रोगी आदि सब लोगोंको धनकी अपेक्षा होती है और धनके विना औषधि नहीं होससकी, इसकारण धन भी, चिकित्साका अंग है ॥ १०१ ॥

अथ परिचारकस्य लक्षणम् ।

स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान्युक्तो व्याधितरक्षणे। वैद्यवाक्यकृतश्रान्तो युज्यते परिचारकः ॥ १०२ ॥

स्निग्धः प्रीतः । अजुगुप्सुः अनिन्दकः ॥

रोगीका परिचारक अर्थात् रोगीका टहल करनेवाला मनुष्य स्नेही, निंदा न करनेवाला, बलवान्, रोगीकी रक्षा करनेमें तत्पर, वैद्यके कहे अनुसार करनेवाला और नहीं थकनेवाला ऐसा होना चाहिये ॥ १०२ ॥

अथ भेषजस्य लक्षणम् ।

वैद्यो व्याधिं हरेद्येन तद्द्रव्यं प्रोक्तमौषधम्। तद्यादृशमवश्यं स्याद्रोगघ्नं तादृशं ब्रुवे ॥ १०३ ॥

वैद्य जिस पदार्थसे रोगको नष्ट करता है, वह पदार्थ औषध कहाता है, वह औषध कैसी हो, जो रोगोंको अवश्य नष्ट करे--उसको कहते हैं १०३

प्रशस्तदेशे सञ्जातं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् । अल्पमात्रं बहुगुणं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ १०४ ॥ दोषघ्नमग्लानिकरमधिकं न विकारि यत् । समीक्ष्य काले दत्तं च भेषजं स्याद् गुणावहम् ॥१०५॥ आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिः स्मृतः । अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ॥ १०६ ॥

आग्नेयाः अधिकाग्न्यंशाः, सौम्यः अधिकसोमांशः ॥ ओषधय एवौषधानि । अत्र स्वार्थे अण् । अनुरूपाणि सदृशानि ॥

अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूपवनेषु च । गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे ॥ १०७ ॥ आदित्यसम्मुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि । साधारणधराद्द्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥१०८॥

साधारणधराद्द्रव्यम्-सर्वभूमिभवं द्रव्यम् । उत्तराश्रितं स्वस्मात् उत्तरदिग्भवम् ॥

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः। जन्तुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः ॥ १०९ ॥ शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् । विरेकवमनार्थं तु वसन्तान्ते समाहरेत् ॥ ११० ॥

वसन्तान्ते वसन्तमध्ये । समाहरेत् संगृह्णीयात् ॥

अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो ध्रुवम् । गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥ १११ ॥

अन्यच्च--महान्ति येषां मूलानि काष्ठगर्भाणि सर्वतः । तेषां तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि सर्वशः ॥ ११२ ॥ न्यग्रोधादेवस्त्वचो ग्राह्याः सारः स्याद्बीजकादितः । तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात्त्रिफलादितः ॥ ११३ ॥ क्वचिन्मूलं क्वचित्कन्दः क्वचित् पत्रं क्वचित् फलम् । क्वचित्पुष्पं क्वचित्सर्वं क्वचित्सारः क्वचित्त्वचः ॥ ११४ ॥ चित्रकं सूरणं निम्बो वासा च त्रिफला क्रमात् । धातकी कण्टकारी चः खदिरः क्षीरपादपः ॥ ११५ ॥क्वचिन्निम्बस्य गृह्णीयात्पत्राभावे त्वचामपि । बालं फलं तु बिल्वस्य पक्कमारग्वधस्य च ॥ ११६ ॥ अङ्गेऽनुक्ते जटा ग्राह्या भागेऽनुक्तेऽखिलं समम् । पात्रेऽनुक्ते मृदः पात्रं कालेऽनुक्ते त्वहर्मुखम् ॥ ११७ ॥ नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु । विना विडङ्गकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥ ११८ ॥

धान्यम्-अन्नम् ॥

पुराणं तु प्रशस्तं स्यात्ताम्बूलं काञ्जिकं तथा । शुष्कं नवीनद्रव्यं तु योज्यं सकलकर्मसु ॥ ११९ ॥ आर्द्रं तु द्विगुणं युञ्ज्यादेवं सर्वत्र निश्चयः । गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी ॥ १२० ॥ अश्वगन्धा सहचरः शतपुष्पा प्रसारिणी । प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणं नैव कारयेत् ॥ १२१ ॥

सहचरः--कुरण्ठकः, कटसरैया इति लोके ॥

वासानिम्बपटोलकेतकबलाकूष्माण्डकेन्दीवरीवर्षाभूकुटजाश्व कन्दसहिता सा पूतिगन्धाऽमृता ऐन्द्रीनागबलाकुरण्टकपुरच्छत्रामृताः सर्वदा सार्द्रा एव तु न क्वचिद् द्विगुणिताः कार्येषु योज्या बुद्धैः ॥ १२२ ॥

वरी शतावरी । पूतिगन्धा गन्धप्रसारिणी ऐन्द्री इन्द्रवारुणी । नागबला (गुलशकरी)। कुरण्टकः पीतपुष्पं (कटसरैया) पुरो गुगुलुः ॥

घृतं तैलं च पानीयं कषायं व्यञ्जनादिकम् । पक्त्वा शीतीकृतं चोष्णं तत्सर्वं स्याद् विषोपमम् ॥ १२३ ॥

जो औषधि श्रेष्ठ देशमें उत्पन्न हुई, श्रेष्ठ दिनमें उखाडी हुई, अल्पमात्रासे बहुत गुण करनेवाली,उत्तम वर्ण, रस इन करके युक्त;

दोषोंको नष्ट करनेवाली; ग्लानि नहीं करनेवाली और अधिक देनेसे भी विकार न करे ऐसी औषधि जो विचारपूर्वक समयपर दी जाय तो गुणकारक होती है। विन्ध्याचल आदि पर्वतोंमें अग्निका भाग अधिक है और हिमालयमें चन्द्रमाका भाग अधिक है, इस कारण विन्ध्याचल आदिमें उत्पन्न हुई औषधियोंमें उष्णता अधिक है और हिमालयमें उत्पन्न हुई औषधियोंमें शीतलता अधिक होती है, कार्यमें कारणके सदृश ही गुण होता है। अन्य वनों और उपवनोंमें भी औषधि उत्पन्न होती हैं उनको प्रसन्नचित्त हो, पवित्रतापूर्वक स्वच्छ हो, सूर्यके सम्मुख खडे होकर, महादेवको हृदयमें नमस्कार कर, प्रातःकालके समय मौनी हो, शुभदिनमें ग्रहण करे। साधारण पृथ्वीमेंसे अपनेसे उत्तर दिशामें उत्पन्न हुई जो औषधि हों, उनको लेवे। जो औषधि सर्पकी बमईमें, अशुद्ध स्थानमें, अनूपदेश (बहुत जलवालें स्थानमें), श्मशानमें ऊपर (कल्लडधरती) में तथा मार्गमें उत्पन्न हुई हों अथवा जो औषधि जीवोंसे गर्मीसे तथा शीतलतासे व्याप्त हों, वे औषधि कार्य सिद्ध करनेवाली नहीं हैं। शरदृऋतुमें औषधियाँ रस युक्त होती हैं, इस कारण सब कामोंके लिये शरदृऋतुमें ही लेनी चाहिये, परन्तु विरेचन और वमन करानेके लिये जो औषधियें लेनी हों, वे वसन्त ऋतुके मध्यमें लेवे। बुद्धिमान् वैद्य जिन वृक्षोंकी जड बहुत मोटी हो, उनकी छाल ही लेवे और जिनकी जड सूक्ष्म हो, उनका सम्पूर्ण भाग लेवे। अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि--जिन वृक्षोंकी जड मोटी और भीतरसे लकडी युक्त हो, उनकी छाल ही लेना, सूक्ष्ममूलवाले वृक्षका सम्पूर्ण भाग लेना चाहिये। वड आदिकी छाल लेवे; विजयसार आदिका सार लेवे, तालीसपत्र आदिकोंके पत्ते और त्रिफला आदिके फल लेवे। किसीकी जड, किसीका कन्द, किसीके पत्ते, किसीके फल, किसीके फूल, किसीका सम्पूर्ण भाग, किसीका सार और किसीकी छाल लेनी चाहिये। जैसे कि; चीतेकी जड, सूरणका कन्द, नींबू तथा अडूसेके पत्ते, त्रिफलेके फल, धवईके फूल, कटेरी सर्वांग, खैरका सारांश और दूधवाले वृक्षोंकी छाल ही लेनी चाहिये। किसी समयमें नींबके पत्ते न मिलें तो छाल ही लेवे। बेलका कच्चा फल और अमलतासका पक्का फल लेवे। जहां औषधिका अंग न कहा हो, वहां उसकी जड लेवे, जहां औषधियोंकी तोल न लिखी हो, वहां सम्पूर्ण औषधि समान भाग लेवे। जहां केवल पात्र नहीं कहा हो, वहां मृत्तिकाका पात्र लेना चाहिये। और जहां औषधि लेनेका समय न कहा हो, वहां प्रातःकालमें लेवे। सम्पूर्ण कामोंमें नये पदार्थोंका उपयोग करे. परन्तु वायविडंग, पीपल, गुड, धान्य (चावल), घी और मधु ये सब वस्तु पुरानी ही लेवे। पान और कांजी भी पुरानी ही श्रेष्ठ होती हैं। सम्पूर्ण औषधियोंमें सूखे और नये पदार्थोंका उपयोग करे। जो गीली लेवे तो दो भाग लेवे, यह सम्पूर्ण स्थानोंमें निश्चय है। गिलोय, कुडा, अडूसा, पेठा, सतावर, असगन्ध कटसरैया, सोंफ और परसन ये औषधि सदैव गीली लेवे और दो भाग न लेवे. अडूसा, नींब परवल, केतकी (केवडा), खिरैंटी, पेठा, सतावर, सोंठ, कुडाकन्द, गन्धप्रसारिणी, तुलसी, इन्द्रवारुणी (इंद्रायनी), नागबला, कटसरैया, गूगुल, सोंफ और गिलोय ये पदार्थ स्वरसयुक्त लेवे और दूने कदापि नहीं लेवे। घी, तेल, जल, क्काथ और व्यंजन (भोजनके शाकादि पदार्थ) आदि अग्निसे एकबार सिद्ध करके शीतल होनेपर पश्चात् फिर गरम करे तो विषके सदृश दोषकारक होजाते हैं, इसलिये फिर उनको गरम न करे॥ १०४–१२३ ॥

अथ द्रव्याणां परीक्षा ।

सूक्ष्मास्थिमांसला पथ्या सर्वकर्मणि पूजिताक्षिप्ताऽम्भसि निमज्जेद्या भल्लातक्यस्तथोत्तमाः ॥ १२४ ॥ वराहमूर्द्धवत्कन्दो

वाराहीकन्दसंज्ञकः । सौवर्चलं तु काचाभं सैन्धवं स्फटिकप्रभम् ॥ १२५॥ सुवर्णच्छविकं ज्ञेयं स्वर्णमाक्षिकमुत्तमम्। इन्द्रपुष्पप्रतीकाशा मनोह्वा चोत्तमा मता ॥ १२६ ॥ श्रेष्ठं शिलाजतु ज्ञेयं प्रक्षिप्तं न विशीर्यते । तोयपूर्णे कांस्यपात्रे प्रतानेन विवर्धते ॥ १२७ ॥ कर्पूरस्तुवरः स्निग्ध एला सूक्ष्मफला वरा । श्वेतचन्दनमत्यन्तं सुगन्धि गुरु पूजितम् ॥ १२८ ॥ रक्तचन्दनमत्यन्तं लोहितं प्रवरं मतम्। काकतुण्डनिभः स्निग्धो गुरुः श्रेष्ठोऽगुरुर्मतः ॥ १२९ ॥ सुगन्धि लघु रूक्षं च सुरदारु वरं मतम् । सरलं स्निग्धमत्यर्थं सुगन्धिं च गुणावहम् ॥ १३० ॥ अतिपीता प्रशस्ता तु ज्ञेया दारुनिशा बुधः । जातीफलं गुरु स्निग्धं समं शुभ्रान्तरं वरम् ॥ १३२ ॥ मृद्वीका सोत्तमा ज्ञेया या स्याद् गोस्तनसन्निभा । करमर्दफलाकारा मध्यमासा प्रकीर्तिता ॥ १३२ ॥

गोस्तनसन्निभा-मुनक्का इति लोके ॥

करमर्दफलाकारा-करम्बा इति लोके ॥

खण्डं तु विमलं श्रेष्ठं चन्द्रकान्तसमप्रभम् । गव्याज्यसदृशं रुच्यं गन्धं मधु वरं मतम् ॥ १३३ ॥

जो हरड--छोटी गुठलीवाली और अधिक गूदेवाली हो, वह सब कार्योंमें उत्तम है । भिलावा-जो पानीमें डालनेसे डूब जाय वह उत्तम जानना । वाराहीकंद-जो सुअरके मस्तकके सदृश हो, वह उत्तम कहा है। संचर नोन-जो कांचके सदृश हो, वह उत्तम कहा है । सेंधानोन-स्फटिक मणिके सदृश कांतिवाला हो, वह उत्तम है, सोनामक्खी सोनेके सदृश कांतिवाली, मनशिल-इन्द्रपुष्पके सदृश हो, वह उत्तम है और जो शिलाजीत गिरनेपर फैले नहीं तथा जलसे भरे कांसीके पात्रमें डालनेसे सूतके सदृश बढे, वह उत्तम जानना । कपूर कसैला और स्निग्ध हो, इलायची-सूक्ष्मफलोंवाली हो, सफेद चन्दन-भारी और सुगंधित हों, वह श्रेष्ठ होता है । लालचन्दन-अधिक लाल हो । अगर-काककी चोंचके सदृश स्निग्ध तथा भारी हो, वह उत्तम है। देवदारु-सुगंधित, हलका तथा रूक्ष हो. वह उत्तम कहा है । सरल-बहुत स्निग्ध तथा सुगंधित हो । दारुहलदी-अत्यन्त पीली हो वह उत्तम है । जायफल-भारी, स्निग्ध, गोल और भीतरसे श्वेत हो । वह उत्तम है । जो दाख (मुनक्का) गायके स्तनोंके सदृश हो, वह उत्तम है और करौंदेके फलके आकारवाली हो वह मध्यम है। खांड-निर्मल और चन्द्रकांत मणिके समान सफेद हो, वह उत्तम है और जो मधु (शहद) गायके घीके सदृश रुचिकारक और सुगंधित हो, वह श्रेष्ठ कहा है ॥ १२४ ॥ १३३ ॥

अथ स्वभावतो हितानि ।

शालीनां लोहितः शालिः षष्टिकेषु च षष्टिकः । शूकधान्येष्वपि यवो गोधूमः प्रवरो मतः ॥ १३४ ॥ शिम्बीधान्ये वरो मुद्गो मसूरश्चाढकी तथा । रसेषु मधुरःश्रेष्ठो लवणेषु च सैन्धवः ॥१३५॥ दाडिमामलकं द्राक्षा खर्जूरं च परूषकम्। राजादनं मातुलुंगं फलवर्गेषु शस्यते१३६

परूषकं फालसा इति लोके। राजादनं खिरणी इति लोके । मातुलुंगं बिजउरा इति लोके ॥

पत्रशाकेषु वास्तूकं जीवन्ती पोतिका वरा । पटोलं फलशाकेषु कन्दशाकेषु सूरणम् ॥ १३७ ॥ एणः कुरङ्गो हरिणो

जाङ्गलेषु प्रशस्यते । पक्षिणां तित्तिरि-
र्लावो वरो मत्स्येषु रोहितः ॥ १३८ ॥
हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णतया
मतः । कुरंगस्ताम्र उद्दिष्टो हरिणः
कृत्तिको महान् ॥ १३९ ॥ जलेषु दिव्यं
दुग्धेषु गव्यमाज्येषु गोभवम् । तैलेषु
तिलजं तैलमैक्षवेषु सिता हिता ॥१४०॥

शाली चावलोंमें लाल चावल, षष्टिकधानोंमें साांठी चावल शूक (भूसीवाले) धान्योंमें जौ तथा गेहूँ श्रेष्ठ है। शिंवी (फलीवाले) धानोंमें मूंग, मसूर तथा अरहर, रसोंमें मधुररस और नमकोंमें सेंधा नमक श्रेष्ठ है । फलोंमें अनार आमला, दाख (अंगूर), खजूर (छुहारा) फालसा और खिरनी और विजौरा नींबू श्रेष्ठ है। पत्रशाकोंमें बथुआ, जीवन्ती तथा पोई फल शाकोंमें परवल और कन्दशाकोंमें सूरणकन्द (जिमीकन्द) उत्तम है। जंगली जीवोंमें काला लाल तथा चित्रित हरिण, पक्षियोंमें तीतर और लवा उत्तम है मछलियोंमें रोहू-और जलोंमें दिव्य जल उत्तम है । दुग्धोंमें गायका दूध और घृतोंमें गायका घी श्रेष्ठ है । तेलोंमें तिलका तेल और ईखसे बने पदार्थोंमें मिश्री ही उत्तम है। तांबेके सदृश वर्णवाला हरिण, काले वर्णवाला एण और काले तथा ताम्रमिश्रित वर्णका बडा जो हरिण है, उसे कुरंग कहते हैं ॥ १३४ ॥ १४० ॥

अथ स्वाभावादहितानि ।

शिम्बीषु माषान् ग्रीष्मर्तौ लवणेष्वौषरं
त्यजेत् । फलेषु लकुचं शाके सार्षपं न
हितं मतम् ॥ १४१ ॥ गोमांसं ग्राम्य-
मांसेषु न हितं महिषीवसा । मेषीपयः
कुसुम्भस्य तैलं त्याज्यं च फाणि-
तम् ॥ १४२ ॥

इक्षुरसः परिपक्वो योऽर्धघनः फाणितम् । तद्धिछोयाराव इति लोके ॥

शिंबी धान्योंमें उडद, ऋतुओंमे ग्रीष्मऋतु लवणमें खारा, (पृथ्वीका उत्पन्न हुआ) लवण त्यागने योग्य है । फलोंमें लकुच (बढहर) शाकोंमें सरसोंका शाक हितकारी नहीं है, ग्राम्य जीवोंके मांसोंमें गायका मांस और वसाओंमें भैंसकी वसा (चर्बी) अहितकारी है। दूधोंमें भेडका दूध, तेलोंमें कुसुमका तेल और मिठाइयोंमें राब त्याज्य है ॥१४१॥१४२

अथ संयोगविरुद्धानि ।

मत्स्यमानूपमांसं च दुग्धयुक्तं विवर्जयेत् ।
कपोतं सर्षपस्नेहभर्जितं परिवर्जयेत्
॥ १४३ ॥ मत्स्यानिक्षोर्विकारेण तथा
क्षौद्रेण वर्जयेत् । सक्तून्मांसपयोयुक्तानु-
ष्णैर्दधि विवर्जयेत् ॥१४४॥ उष्णैर्नभोऽ-
म्बुना क्षौद्रं पायसं कृसरान्वितम् ।
रम्भाफलं त्यजेत्तक्रदधिबिल्वफलान्वि-
तम् ॥ १४५ ॥ दशाहमुषितं सर्पिः
कांस्ये मधुघृतं समम् । कृतान्नं च
कषायं च पुनरुष्णीकृतं त्यजेत् ॥१४६॥
एकत्र बहुमांसानि विरुध्यन्ते परस्परम् ।
मधु सर्पिर्वसा तैलं पानीयं वा पय-
स्तथा ॥ १४७ ॥

मछली और अनूपदेशका मांस दूधके साथ भक्षण करना त्याज्य है । कबूतरका मांस सरसोंके तेलमें भूना हुआ परित्याग करने योग्य है। मच्छीको इक्षुविकार (गुड आदि) के साथ अथवा शहदके साथ खाना वर्जित है. मांस और दूधके साथ सत्तू, गरम पदार्थोंके साथ दहीको नहीं खाना चाहिये। गरम वस्तुओंके साथ तथा वर्षाके जलके साथ शहद और खीरके साथ खिचडी त्याज्य है। तक्र (छांछ) दही और बेलफलके साथ केलेकी फली न खाय । जो घी कांसीके पात्रमें दश दिन रक्खा रहा हो, वह घी तथा मधु और घी बराबर भाग मिले हुए, भोजन और क्वाथ फिर गरम किया हुआ त्याज्य है। बहुतसे मांस मिलानेसे

परस्परमें विरुद्ध हो जाते हैं, इसी प्रकार शहद घी, वसा (चर्बी), तेल, पानी तथा दूध भी मिलानेसे परस्परमें विरुद्ध होजाते हैं १४३-१४७

अथ भेषजग्रहणसंकेतः।

लवणं सैन्धवं प्रोक्तं चन्दनं रक्तचन्दनम्। चूर्णलेहासवस्नेहाःसाध्या धवलचन्दनैः॥ कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥ १४८ ॥ अन्तः सम्मार्जने ज्ञेया ह्यजमोदा यवानिका। बहिः सम्मार्जने सैव विज्ञातव्याऽजमोदिका ॥ १४९ ॥ पयः सर्पिः प्रयोगेषु गव्यमेव हि गृह्यते। शकृद्रसो गोमयको मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥ १५० ॥

जहां लवण कहा हो, वहां सैंधानोन और जहां चन्दन कहा हो. वहां लालचन्दन लेना चाहिये। चूर्ण, अवलेह, आसव तथा तेल बनानेमें सफेद चन्दन। लेवे और क्वाथ अथवा लेपमें अधिकतासे लाल चन्दन लेवे। शरीरके भीतरका भाग शुद्ध करनेमें जहां अजमोदा लेना कहा हो, वहां अजवायन लेवे और बाहरका भाग शुद्ध करनेमें जहां अजमोदा आवे वहां अजमोदा ही डाले। दूध और घीके प्रयोगमें गायका दूध तथा गायका घी लेवे। वैसेही विष्ठा मूत्र आदिका रस लेना लिखा हो. वहां गायका मूत्र और गायके गोबरका रस लेना चाहिये ॥ १४८ ॥ १५० ॥

अथ प्रतिनिधिः।

चित्रकाऽभावतो दन्ती क्षारःशिखरिजोऽथवा। अभावे धन्वयासस्य पक्षेप्या तु दुरालभा ॥ १५१ ॥

शिखरी-अपामार्गः ॥

तगरस्याप्यभावे तु कुष्ठं दद्याद्भिषग्वरः। मूर्वाभावे त्वचो ग्राह्या जिङ्गिणीप्रभवा बुधैः ॥ १५२ ॥ अहिंस्राया अभावे तु मानकन्दः प्रकीर्तितः। लक्ष्मणाया अभावे तु नीलकण्ठशिखा मता ॥१५३॥

नीलकण्ठशिखा-मयूरशिखा ॥

वकुलाऽभावतो देयं कह्लारोत्पलपङ्कजम्। नीलोत्पलस्याभावे तु कुमुदं देयमिष्यते। ॥१५४॥ जातीपुष्पं न यत्रास्ति लवङ्गं तत्र दीयते। अर्कपर्णादिपयसो ह्यभावे तद्रसो मतः ॥ १५५ ॥ पौष्कराभावतः कुष्ठं तथा लांगल्यभावतः। स्थौणेयकस्याभावे तु भिषग्भिर्दीयते गदः ॥१५६॥ चविकागजपिप्पल्यौ पिप्पलीमूलवत्स्मृतौ। अभावे सोमराज्यास्तु प्रपुन्नाटफलं मतम्। यदि न स्याद्दारुनिशा तदा देया निशा बुधैः ॥ १५७ ॥

सोमराजी-बाकुची। प्रपुन्नाटफलं चक्रमर्दफलम्। दारुनिशा दारुहरिद्रा। निशा हरिद्रा ॥

रसाञ्जनस्याभावे तु सम्यग्दार्वी प्रयुज्यते। सौराष्ट्र्यभावतो देया स्फटिका तद्गुणा जनैः ॥ १५८ ॥

सौराष्ट्री-सोरटीमाटी इति लोके। स्फटिका फिटकिरी इति लोके ॥

तालीसपत्रकाभावे स्वर्णताली प्रशस्यते भार्ङ्ग्यभावे तु तालीसं कण्टकारीजटाऽथवा ॥ १५९ ॥ रुचकाऽभावतो दद्याल्लवणं पांशुपूर्वकम्। अभावे मधुयष्ट्यास्तु धातकीं च प्रयोजयेत् ॥ १६० ॥

रुचकम्-चौहर इति लोके। पांशुलवणं खारी अथवा रेह इति लोके ॥

अम्लवेतसकाभावे शुक्रं दातव्यमिष्यते। द्राक्षा यदि न लभ्येत प्रदेयं काश्मरी-

फलम् ॥१६१॥ तयोरभावे कुसुमं बन्धूकस्य मतं बुधैः। लवङ्गकुसुमं देयं नखस्याभावतः पुनः ॥ १६२ ॥ कस्तूर्यभावे कङ्कोलं क्षेपणीयं विदुर्बुधाः। कंकोलस्याप्यभावे तु जातीपुष्पं प्रदीयते ॥१६३॥ सुसंधिमुस्तकं देयं कर्पूराभावतो बुधैः। कर्पूराभावतो देयं ग्रन्थिपर्णं विशेषतः ॥ १६४ ॥ कुंकुमाभावतो दद्यात्कसुम्भकुसुमं नवम्। श्रीखण्डचन्दनाभावे कर्पूरं देयमिष्यते ॥१६५॥ अभावे त्वेतयोर्वैद्यः प्रक्षिपेद्रक्तचन्दनम्। रक्तचन्दनकाभावे नवोशीरं विदुर्बुधाः॥१६६॥मुस्ता चातिविषाभावे शिवाभावे शिवा मता। अभावे नागपुष्पस्य पद्मकेशरमिष्यते ॥१६७॥ मेदाजीवककाकोलिऋद्धिद्वन्द्वेऽपि वाऽसति। वरीविदार्यश्वगन्धावाराहीश्च क्रमात् क्षिपेत् ॥ १६८ ॥

वरी-शतावरी ॥

वाराह्याश्च तथाऽभावे चर्मकाराल्लुको मतः। वाराहीकन्दसंज्ञस्तु पश्चिमे गृष्टिसंज्ञकः॥१६९॥ वाराहीकन्द एवान्यश्चर्मकाराल्लुको मतः। अनूपसम्भवे देशे वराह इव लोमवान् ॥१७०॥ भल्लातलासहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते। भल्लाताभावतश्चित्रं नलश्चेक्षोरभावतः॥१७१॥ सुवर्णाभावतः स्वर्णमाक्षिकं प्रक्षिपेद्बुधः। श्वेतं तु माक्षिकं ज्ञेयं बुधै रजतवद्ध्रुवम्॥१७२॥ माक्षिकस्याप्यभावे तु प्रदद्यात्स्वर्णगैरिकम्। सुवर्णमथवा रौप्यं मृतं यत्र न लभ्यते ॥ १७३ ॥ तत्र कान्तेन कर्माणि भिषक्कुर्याद्विचक्षणः। कान्ताभावे तीक्ष्णलोहं योजयेद्वैद्यसत्तमः ॥ १७४ ॥ अभावे मौक्तिकस्यापि मुक्ताशुक्तिं प्रयोजयेत्। मधु यत्र न लभ्येत तत्र जीर्णगुडो मतः ॥ १७५ ॥ मत्स्यण्डचभावतो दद्युर्भिषजःसितशर्कराम्। असम्भवे सितायास्तु बुधैः खण्डं प्रयुज्यते ॥१७६॥ क्षीराभावे रसो मौद्गो मासूरो वा प्रदीयते। अत्र प्रोक्तानि वस्तूनि यानि तेषु च तेषु च ॥१७७॥ योज्यमेकतराभावे परं वैद्येन जानता। रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च ॥ ॥ १७८ ॥ युंज्याद्विविधमन्यच्च द्रव्याणां तु रसादिवित्। योगे यदप्रधानं स्यात्तस्य प्रतिनिधिर्मतः ॥ १७९ ॥ यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते। व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपि यत्त्यजेत्। अनुक्तमपि युक्तं यद्योजयेत्तद्रसादिवित्॥१८०॥

चीतेके अभाव (न मिलने) में दन्ती अथवा चिरचिटेका खार लेवे। धमासेके अभावमें जवासा लेवे। तगर न मिले तो कूट का प्रयोग करे। मूर्वा न मिले तो वैद्य जिंगिनी (मजीठ) की छाल लेवे। अहिंस्राके अभावमें मानकन्द और लक्ष्मणाके अभाममें मोरशिखा लेवे। मौलसिरीके अभावमें लालकमल और नीले कमलको लेवे। नीलोत्पल (नीले कमल) के अभावमें कुमोदिनी (नीलोफर) लेनी चाहिये। चमेलीके फूलके अभावमें लौंग लेनी चाहिये। आकके पत्ते आदिका दूध न मिले तो उसका रस ही लेवे। पोहकर मूल और कलिहारीके अभावमें कूट लेना चाहिये, थूनेर के अभावमें भी वैद्य कूट देवे। चव और गजपी लके अभावमें पीपलामूल डाले बाबचींके अभावमें पँवार (चकवड) के बीज लेवे. यदि दारुहलदी न मिले तो हलदी ही लेवे। रसौंतके अभावमें दारुहलदीका प्रयोग करे। सोरठकी मिट्टीके अभावमें फिटकिरी

लेनी चाहिये। तालीसपत्र न मिले तो स्वर्ण तालीस लेवे, भारंगीके अभावमें तालीस अथवा कटेरीकी जड लेवे। काले नमकके अभावमें पांशु (रेहगमा) लवण लेना। मुलहटीके अभावमें धायके फूल देवे। अमलवेत नींबूके अभावमें चूका लेना चाहिये। यदि दाख न मिले तो कुम्भेरका फल देना चाहिये। दाख और कुम्भेरके फलके अभावमें वन्धूकका फूल देवे। नखके अभावमें लौंगका फूल देवे। कस्तूरीके अभावमें वैद्य कंकोल डाले। कंकोल के अभावमें चमेलीका फूल देवे। कपूरके अभावमें सुगन्धमोथा देवे। विशेष करके कपूरके अभावमें गठौना देवे। केशरके अभावमें कसूम के नये फूल लेवे. सफेद चन्दनके अभावमें कपूर देवे। सफेद चन्दन और कपूर इन दोनों के अभावमें लालचन्दन डाले। लाल चन्दनके अभावमें नई खस लेवे। अतीसके अभावमें मोथा और हरडके अभावमें आंवला लेना चाहिये। नागकेशरके अभावमें कमलकी केशर देनी चाहिये। मेदा महामेदाके अभावमें शतावरी जीवक ऋषभकके अभावमें विदारीकन्द, काकोली क्षीरकाकोलीके अभावमें असगन्ध और ऋद्धि वृद्धिके अभावमें वाराहीकन्द लेना चाहिये। वाराहीकन्दके अभावमें चर्मकारालु देवे। वाराहीकन्दको पश्चिममें गृष्टि (गेंठी) कहते हैं। वाराहीकन्दका भेदही चर्मकारालु कहा है। यह अनूपदेशमें उत्पन्न होता है और उसके ऊपर सुअरके सदृश रोम होते हैं। जिस औषधिमें भिलावेका प्रयोग हो, उसके बदले लालचन्दन डाले। भिलावा न मिले तो चीता और ईखके अभावमे नरसल देनी चाहिये सुवर्णके अभाव में सोनामक्खी डाले और चांदीके अभावमे रूपामाखी डाले। सोनामाखी और रूपामाखी के अभावमें पीला गेरू डाले सुवर्णकी भस्म और चांदीकी भस्म जहां प्राप्त न हो, वहां कान्तलोहकी भस्म ही डाले। कान्तलोहके अभावमें उत्तम वैद्य तीक्ष्ण लोह डाले. मोतीके अभावमें मोतीकी सीप लेवे। जहां शहद न मिले वहां पुराना गुड लेना चाहिये। मिश्रीके अभावमें सफेद खांड लेवे। सफेद चीनी(बूरा) के अभावमें खांडका उपयोग करे। और दूधके अभावमें मूँगका यूष (रस) अथवा मसूरका रस लेवे। जहां जो प्रतिनिधिरूप औषध कही हैं उनको उन २ पदार्थोंकी जो प्रतिनिधि हैं विद्वान वैद्य उन्हें डाले। जैसे चित्रकके अभावमें दन्ती और दन्तीके अभावमें चित्रक छोडे। पदार्थोंके रस आदिको जाननेवाला वैद्य रस, वीर्य और विपाक आदिसे समानद्रव्य विचारकर इस प्रकरणमें कहे सिवाय भी अन्य अनेक पदार्थोंका प्रयोग करे। औषधिके योगमे जो औषधि गौण (अप्रधान) हो, उसके अभावमें प्रतिनिधि डाले और जो मुख्य (प्रधान) औषधि हो, उसकी प्रतिनिधि औषधि नहीं ग्रहण करे। जो द्रव्य रोगके अयोग्य हो, वही पदार्थ यदि उसी रोग सम्बन्धी औषधियोंकी गिनतीमें कहा हो तो भी उसको त्याग देवे और जो पदार्थ उसकी गिनतीमें न भी कहा हो और वह यदि रोगके योग्य हो तो उस पदार्थका रसादिको जाननेवाला वैद्य प्रयोग करे ॥१५१॥१८०॥

अथ द्रव्यगतपञ्चपदार्थकर्माणि।

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च। पदार्थाः पञ्च तिष्ठन्ति स्वंस्वं कुर्वन्ति कर्म च ॥ १८१ ॥ तत्र वाग्भटः—रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोष्णकषायकाः। षड्द्रव्यमाश्रितास्ते च यथापूर्वं बलावहाः ॥ १८२ ॥

उष्णकः--कटुः ॥

तत्राद्या मारुतं घ्नन्ति त्रयस्तिक्तादयः कफम्। कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते ॥ १८३ ॥ ये रसा वातशमना भवन्ति यदि तेषु वै। रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम् ॥ १८४ ॥ ये रसाः पित्तशमना भवन्ति यदि तेषु वै। तीक्ष्णोष्णलघुता चैव नैते तत्क-

र्मकारिणः ॥ १८५ ॥ ये रसाः श्लेष्म शमना भवन्ति यदि तेषु वै। स्नेहगौरवशैत्यानि न ते हन्युः कफं तदा ॥ १८६ ॥

प्रत्येक पदार्थमें रस, गुण, वीर्य विपाक, और शक्ति ये पांच पदार्थ रहते हैं और वे अपने अपने काम करते हैं। वाग्भटका वचन है कि–मधुर, अम्ल, खारा, कडुआ, चरपरा और कसैला ये छः रस पदार्थोंमें रहते हैं और उनमें यथाक्रम पूर्व पूर्व रस पीछे पीछेके रससे अधिक बलवाले हैं। मधुर, खट्टा और खारा ये पहिले तीन रस वातनाशक हैं और इनके सिवाय दूसरे तीन रस वात करनेवाले हैं! कडुवा, चरपरा और कसैला ये तीन रस कफ करनेवाले हैं। और इनके सिवाय दूसरे तीन रस कफ करनेवाले हैं। कसैला, कडुवा और मधुर ये तीन रस पित्तको हरनेवाले हैं। और इनसे अन्य तीन रस पित्तको करनेवाले हैं। जो रस वातको हरनेवाले हैं, उन रसवाले पदार्थोंमें रूक्षता, शीतलता और हलकापन यदि हो तो वह वायुको नष्ट नहीं कर सकते। जो रस पित्तको शमन करनेवाले हैं, उन रसवाले पदार्थोंमें जो तीक्ष्णता, उष्णता और हलकापन हो तो वह पित्तको नहीं शमन कर सकते। जो रस कफको शमन करनेवाले हैं उन रसवाले पदार्थोंमें जो स्निग्धता, भारीपन और शीतलता हो तो वे कफको नष्ट नहीं करसकते ॥ १८६ ॥

अथ मधुररसस्य गुणाः।

मधुरो हि रसः शीतो धातुस्तन्यबलप्रदः। चक्षुष्यो वातपितघ्नः कुर्यात् स्थौल्यमलक्रिमीन्। रसेषु प्रवरश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषौ हितः ॥ १८७ ॥ बालवृद्धक्षतक्षीणवर्णकेशेन्द्रियौजसाम्। प्रशस्तो बृंहणः कण्ठचो गुरुः सन्धानकृन्मतः। विषघ्नः पिच्छिलश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषोहितः ॥ १८८ ॥

मधुररस शीतल है, धातु और स्तनोंमें दूध तथा बलका उत्पन्न करनेवाला है, नेत्रोंके हितकारी वात तथा पित्तको नष्ट करनेताला है। शरीरमें स्थूलता, मल और कृमियोंको उत्पन्न करनेवाला है, सम्पूर्ण रसोंमें उत्तम है। स्निग्ध है, प्रीति करनेवाला, आयुवर्द्धक तथा बालक, वृद्ध, क्षतसे क्षीण हुए मनुष्योंके तथा वर्ण, केश (बाल), इन्द्रिय और ओजके लिये हितकारी है। बृंहण पुष्टि कर्ता, कण्ठको शुद्ध करनेवाला, भारी, सन्धानकारक (टूटेको जोडनेवाला), विषविनाशक, पिच्छिल स्निग्ध, प्रीति और आयुको हित करनेवाला है ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

अथातियुक्तस्य मधुररसस्य गुणाः।

सोऽतियुक्तो ज्वरश्वासगलगण्डार्बुदक्रिमीन्। स्थौल्याग्निमान्द्यमेहांश्च कुर्यान्मेदःकफामयान् ॥ १८९ ॥

मधुररसका अत्यन्त उपयोग करनेसे ज्वर, श्वास, गलगण्ड, अर्बुद, कृमि, स्थूलता, अग्निकी मन्दता, प्रमेह, मेद और कफजन्य रोग होते हैं ॥ १८९ ॥

अथाम्लस्य गुणाः।

रसोऽम्लः पाचनो रुच्यः पित्तश्लेष्मास्रदो लघुः। लेखितोष्णो बहिः शीतः क्लेदनः पवनापहः ॥ १९० ॥ स्निग्धस्तीक्ष्णः सरः शुक्रविबन्धानाहदृष्टिहा। हर्षणो रोमदन्तानामक्षिभ्रूविनिकोचनः ॥ १९१ ॥

लेखितः लेखनः। बहिः शीतः स्पर्शशीतः विनिकोचनः -संकोचकर्ता ॥

अम्ल (खट्टा) रस–पाचक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, पित्त, कफ तथा रुधिरको बढानेवाला, हलका, लेखन, उष्ण, स्पर्श करनेमें शीतल, क्लेदकारक, वात नाशक, स्निग्ध, तीक्ष्ण और दस्तावर है। वीर्य विबन्ध, आनाह और दृष्टिको नष्ट करनेवाला है। रोमांच करने

वाला, दांतोंको हर्ष (खट्टा) करनेवाला और नेत्र भौंहोंको संकोच करनेवाला है१९०॥१९१

अथातियुक्तस्य अम्लस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तो भ्रमं कुर्य्यात्तृड्दाहतिमिरज्वरान् । कण्डूपाण्डुत्ववीसर्पशोथविस्फोटकुष्ठकृत् ॥ १९२ ॥

अम्लरसका-अत्यन्त उपयोग करना भ्रम तृषा, दाह, तिमिर, ज्वर, खुजली, पाण्डुता विसर्प, सूजन, विस्फोटक और कुष्टको उत्पन्न करता है ॥ १९२ ॥

अथ लवणरसस्य गुणाः ।

लवणः शोधनो रुच्यः पाचनः कफपित्तदः । पुंस्त्ववातहरः कायशैथिल्यमृदुताकरः । चक्षुर्नासाऽऽस्यजलदः कपोलगलदाहकृत् ॥ १९३ ॥

लवणरस-शुद्ध करनेवाला, रुचिकारक, पाचक कफ तथा पित्तको करनेवाला, पुरुषता तथा वातको नष्ट करनेवाला है, शरीरमें शिथिलता तथा मुखमें मृदुता करनेवला है । नेत्र, नाक तथा मुखमें पानीका लानेवाला और गाल तथा गलेमें दाह करनेवाला है ॥ १९३ ॥

अतियुक्तस्य लवणस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तोऽक्षिपाकास्रपित्तकोठक्षतादिकृत् । वलीपलितखालित्यकुष्ठवीसर्पतृट्प्रदः ॥ १९४ ॥

कोठो वरटीकृतदंशशोथवत् । पलितकेशशुक्लता खालित्यं शिरसि केशनाशः ॥

लवणरस-अत्यन्त खानेसे नेत्रपाक, रक्तपित्त (चकत्ते) और क्षतादि रोगोंको करनेवाला है, वली (शरीरमें सलवट), पलित (सफेदवाला) खालित्य (बालोंका उडजाना) कुष्ठ, वीसर्प और तृषाको करनेवाला है॥ १९४ ॥

अथ कटुगुणाः ।

कटुरुष्णश्च तीक्ष्णश्च विशदो वातपित्तकृत् । श्लेष्महल्लघुराग्नेयः कृमिकण्डूविषापहः ॥ १९५ ॥ रूक्षःस्तन्यहरश्चापि मेदः स्थौल्यापकर्षणः । अश्रुदो नाशिकास्याक्षिजिह्वाग्रोद्वेजको मतः । दीपनः पाचनो रुच्यो नासिकाशोषणो भृशम् ॥ १९६ ॥ क्लेदमेदोवसामज्जशकृन्मूत्रोपशोषणः । स्रोतःप्रकाशको रूक्षो मेध्यो वर्चोविबन्धकृत् ॥ १९७ ॥

आग्नेयः अधिकाग्न्यंशः । मेध्यो मेधायै हितः । वर्चोविबन्धकृत् मलबन्धं करोति ॥

कटु (चरपरा) रस--गरम, तीक्ष्ण,विशद वातपित्तको करनेवाला, कफको हरनेवाला हलका. अग्निका अधिक भागवाला, कृमि, खुजली तथा विषको हरनेवाला है। रूक्ष स्तनोंमें दूध नष्ट करनेवाला मेदसे हुई स्थूलताको हरनेवाला, आंखोंमें आंसू देनेवाला, नाक मुख, नेत्र और जीभको उद्वेगकारक, अग्निको दीप्त करनेवाला, पाचक रुचिकारका नाकको सुखानेवाला, क्लेद, मेद, वस (चरबी) मज्जा विष्ठा और मूत्रको सुखानेवाला है। स्रोतोंको स्वच्छ करनेवाला, रूक्ष बुद्धिवर्द्धक और मलरोधक है ॥ १९५-१९७ ॥

अतियुक्तस्य कटुरसस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तो भ्रान्तिदाहमुखताल्वोष्ठशोषकृत् । कण्ठादिपीडामूर्च्छान्तर्दाहदो बलकान्तिहृत् ॥ १९८ ॥

कटुरस--का अत्यन्त प्रयोग करना भ्रम तथा दाहको करनेवाला, मुख, तालु, होंठ इनको सुखानेवाला कण्ठादिमें पीडा करनेवाला, मूर्च्छा तथा अन्तर्दाहकारक और बल कांतिनाशक है ॥ १९८॥

अथ तिक्तरसस्य गुणाः।

तिक्तःशीतस्तृषामूर्च्छाज्वरपित्तकफाञ्जयेत्। कृमिकुष्ठविषोत्क्लेददाहरक्तगदापहः ॥ ॥ १९९ ॥ रुच्यः स्वयमरोचिष्णुः कण्ठस्तन्यविशोधनः। वातलोऽग्निकरो नासाशोषणो रूक्षणोलघुः॥ २०० ॥

रुच्यः अन्येषु वस्तुषु रुचिमुत्पादयति। स्वयमरोचिष्णुः। यथा निम्बः स्वयं न रोचते अन्येषु वस्तुषु रुचिं करोति॥

तिक्त (कडुवा) रस—शीतल, तृषा, मूर्च्छा, ज्वर, पित्त तथा कफको जीतनेवाला है, कृमि, कुष्ठ, विष, उत्क्लेद (जी मिचलना), दाह और रुधिरसम्बन्धी रोगोंका हरनेवाला है। आप अरुचिकारक होनेपर भी अन्य पदार्थोंमें रूचि करता है। कण्ठको तथा दूधको शुद्ध करनेवाला है। वातकारक, अग्निको बढानेवाला, नाकको सुखानेवाला, रूक्ष और हलका है॥ १९९॥ २००॥

अतियुक्ततिक्तगुणाः।

सोऽतियुक्तः शिरः शूलमन्यास्तम्भश्रमार्तिकृत्। कम्पमूर्च्छातृषाकारी बलशुक्रक्षयप्रदः॥ २०१॥

तिक्तरस--का अत्यन्त उपयोग करना शिरमें दर्द गर्दनमें स्तम्भ, परिश्रम, पीडा, कम्प, मूर्च्छा और तृषाको उत्पन्न करनेवाला तथा बल और वीर्यका क्षय करनेवाला है॥ २०१॥

अथ कषायरसस्य गुणाः।

कषायो रोपणो ग्राही स्तम्भनः शोधनस्तथा। लेखनः पीडनः सौम्यः शोषणो वातकोपनः॥ २०२ ॥ कफशोणितपित्तघ्नौ रूक्षः शीतो लघुर्मतः। त्यक्प्रसाधन आमस्य स्तम्भनो विशदो मतः। जिह्वाया जाड्यकृत् कण्ठस्रोतसां च विबन्धकृत्॥ २०३॥

रोपणः व्रणस्य। स्तम्भनो गात्राणाम्। शोधनो व्रणस्य। लेखनो व्रणाद्युत्सन्नमांसस्य। पीडनो हृदयस्य, वातकारित्वात्। सौम्यः सोमादुत्पन्नः। शोषणो व्रणमज्जादीनाम्॥

कसैलारस--घावको भरनेवाला, मलबन्ध करनेवाला, शरीरका स्तम्भनकर्ता, व्रणशोधक, व्रणादिकोंमें उठे हुए मांसको छीलनेवाला, लेखन, हृदयमें पीडाकारक, सोम (चन्द्रमा) से उत्पन्न हुआ, व्रण तथा मज्जा आदिको सुखानेवाला, वायुको कुपित करनेवाला, कफ, रुधिर तथा पित्तकोहरनेवाला, रूक्ष, शीतल, हलका त्वचाको शुद्ध तथा ठीक करनेवाला आमको रोकनेवाला, विशद, जीभको जड करनेवाला और कण्ठ तथा स्रोतों (छिद्रों) को रोकनेवाला है॥ २०२॥

अतियुक्तस्य कषायस्य गुणाः।

सोऽतियुक्तो ग्रहाध्मानहृत्पीडाक्षेपणादिकृत्॥ २०४॥

कषायरसका अत्यन्त उपयोग करना ग्राही, अफरा, हृदयकी पीडा और आक्षेप आदि रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है॥ २०४॥

अथ मधुरादीनां रसानामपरे विशेषाः।

मधुरं श्लेष्मलं प्रायो जीर्णशालियवादृते। मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात्सितायाः जाङ्गलामिषात्॥ २०५॥ अम्लं पित्तकरं प्रायो विना धात्रीं च दाडिमीम्। लवणं प्रायशो द्वेषि नेत्रयोःसैन्धवं विना॥२०६॥ प्रायः कटुः तथा तिक्तमवृष्यं वातकोपनम्। शुण्ठीकृष्णारसोनानि पटोलममृतां विना॥२०७॥ चरकेऽपि—पिप्पली नागरं वृष्यं कटु चावृष्यमुच्यते। प्रायशःस्तम्भनं प्रोक्तं कषायमभयां विना॥ २०८॥ सामान्येनात्र निर्दिष्टा गुणाः षड्रससम्भवाः। रसानां योगतस्तु स्यादन्य एक गुणोदयः॥२०९॥ संयो-

गाद्विषतां याति सममाज्येन माक्षिकम् । अमृतत्वं विषं याति सर्पदष्टस्य वै यथा ॥ २१० ॥

पुराने चावल, जौ, मूंग, गेहूँ, शहद, मिश्री और जंगली जीवोंका मांस, इसको छोडकर शेष सम्पूर्ण मधुर रसवाले पदार्थ प्रायः कफको करनेवाले हैं। आमला और दाडिम (अनार) को छोडकर शेष सम्पूर्ण अम्लरसवाले पदार्थ प्रायः पित्तको उत्पन्न करनेवाले हैं। सैंधेनोनको छोडकर शेष सम्पूर्ण लवण (नमक) नेत्रोंको अहितकारी हैं। सोंठ, पीपल, लहसुन, परवल और गिलोयको छोडकर शेष सम्पूर्ण चरपरे और कडुवे पदार्थ वातको कुपित करनेवाले तथा वीर्यके अहितकारी हैं। चरकमें भी कहा है कि-- सोंठ और पीपल ये वीर्यको बढानेवाली हैं और अन्य चरपरे पदार्थ वीर्यके हानिकारक हैं" हरडके विना शेष समस्त कसैले रसवाले पदार्थ प्रायः शरीरको स्तंभन करनेवाले हैं। इस प्रकरणमें छओं रसोंके गुण सामान्य रीतिसे कहे हैं, परन्तु उनमें विशेष बात यह है कि, अन्य रसोंका संयोग होनेसे दूसरे प्रकारके गुण प्रगट होते हैं। जैसे कि मधु घीके साथ मिलनेसे विषरूप होता है और जिस प्रकार सर्पके डसेपर विष अमृतकेसमान कार्य करता है ॥ २०५--२१० ॥

अथ द्रव्यगुणाः ।

लघुर्गुरुस्तथा स्निग्धो रूक्षस्तीक्ष्ण इति क्रमात्। नभोभूवारिवातानां वह्नेरेते गुणाः स्मृताः ॥ २११ ॥

हलकापन आकाशका गुण है. भारीपन पृथ्वीका गुण है, चिकनापन जलका गुण है, रूक्षता वायुका गुण है और तीक्ष्णता अग्निका गुण है ॥ २११ ॥

अथ लघ्वादिगुणवतां गुणाः ।

लघु पथ्यं परं प्रोक्तं कफघ्नं शीघ्रपाकि च ॥ २१२ ॥

लघु द्रव्यम् । एवं गुर्वादि ॥

तथा चोक्तम्--गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये । रसेषु व्यपदिश्यन्ते साहचर्योपचारतः ॥ २१३ ॥ गुरुः वातहरं पुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाकि च । स्निग्धं वातहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहम् । रूक्षं समीरणकरं परं कफहरं मतम् ॥ ॥ २१४ ॥ तीक्ष्णं पित्तकरं प्रायो लेखनं कफवातहृत् । सुश्रुते तु गुणा एते विंशतिस्तान्ब्रुवे शृणु ॥२१५॥ गुरुर्लघुः स्निग्धरूक्षौ तीक्ष्णःश्लक्ष्णः स्थिरः सरः । पिच्छिलो विशदः शीत उष्णश्च मृदुकर्कशौ । स्थूलः सूक्ष्मोः द्रवः शुष्क आशुर्मन्दः स्मृता गुणाः ॥ २१६ ॥ तत्र गुरुलघुस्निग्धरूक्षतीक्ष्णा गुणा उक्ता एव। श्लक्ष्णःस्नेहं विनापि स्यात्कठिनोऽपि हि चिक्कणः ॥२१७॥ स्थिरो वातमलस्तम्भी रसस्तेषां प्रवर्तकः । पिच्छिलस्तन्तुलो बल्यःसन्धानःश्लेष्मलो गुरुः ॥ २१८ ॥

सन्धानो भग्नस्य ॥

क्लेदच्छेदकरःख्यातो विशदो व्रणरोपणः । शीतस्तु ह्लादनः स्तम्भी मूर्च्छातृट्स्वेददाहनुत् । उष्णो भवति शीतस्य विपरीतश्च पाचनः ॥ २१९ ॥

ह्लादनः सुखजनकः । स्तम्भी रक्तातिप्रवृत्त्यादीनाम् । उष्णः शीतस्य विपरीतस्तेन असुखजनकः । रक्तातिप्रवृत्त्यादीनामस्तम्भनः मूर्च्छातृट्स्वेददाहस्त्व् पाचनो व्रणादीनाम् । मृदुकर्कशौ प्रसिद्धौ ॥

स्थूल स्थौल्यकरो देहे स्रोतसामवरोधकृत्। देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्म-

मुच्यते ॥ २२० ॥ द्रवःक्लेदकरो व्यापी शुष्कस्तद्विपरीतकः। आशुराशुकरो देहे धावत्यम्भसि तैलवत्। मन्दः सकलकार्येषु शिथिलोऽल्पोऽपि कथ्यते ॥२२१॥

हलके पदार्थ--अत्यन्त पथ्य, कफनाशक और शीघ्र पचनेवाले हैं। भारी पदार्थ--वातनाशक, पुष्टिकारक, कफको करनेवाले और देरसे पचनेवाले हैं। स्निग्ध (चिकने) पदार्थ--वातनाशक, कफकारक, व [illegible]र्द्धक और बलको देनेवाले हैं। रूक्ष पदार्थ--अत्यंत वायुवर्धक और कफको हरनेवाले हैं। तीक्ष्ण लीखे) पदार्थ--अधिक पित्तको करनेवाले, लेखन (छीलनेवाले) और कफ तथा वातको हरनेवाले हैं। सुश्रुतमें वीस गुण कहे हैं सो कहता हूँ, सुनो-भारी १, हलका २, स्निग्ध ३. रूक्ष ४, तीक्ष्ण ५, श्लक्ष्ण ६, स्थिर, ७, सर ८, पिच्छिल ९ विशद १०, शीत ११, उष्ण १२, मृदु १३, कर्कश १४, स्थूल १५, सूक्ष्म १६ द्रव, १७, शुष्क १८, आशु १९ और मन्द २०, ये वीस गुण हैं इनमें भारी, हलका, स्निग्ध, रूक्ष और तीक्ष्ण ये गुण कह चुके हैं। अब शेष गुण कहते हैं कि, श्लक्ष्णगुण-स्नेहयुक्त पदार्थोंके विना भी होता है और वह कठिन होनेपर भी चिकना है। स्थिरगुण-वायु और मलको रोकनेवाला है। सरगुण-वायुको तथा मलको प्रवृत्त करनेवाला है। पिच्छिल, गुण-तंतु (रेसे) वाला, बलकारक, संधान कारक, कफकारी और भारी है। विशदगुण--आर्द्रताको मिटानेवाला और व्रणको भरनेवाला है। शीतगुण--सुख देनेवाला, रक्तकी अतिप्रवृत्तिको रोकनेवाला और मूर्च्छा, तृषा, दाह तथा स्वेद (पसीने) को रोकनेवाला है। उष्णगुण--शीतगुणसे विपरीत गुणोंवाला है। मृदुगुण और कर्कशगुण ये दोनों प्रसिद्ध हैं। स्थूलगुण—शरीरमें स्थूलताको करनेवाला और स्रोतोंको रोकनेवाला शरीरके सूक्ष्म छिद्रोंमें तेलआदि पदार्थ जो प्रवेश करता है वह सूक्ष्मगुण है। द्रवगुणक्लेद (आर्द्रता) कारक और व्यापक है। शुष्कगुण द्रवगुणसे विपरीत है। आशुगुण--जिस प्रकार पानीमें तैल फैलजाता है, वैसेही शरीरमें यह आशुगुण फैल जाता है मन्दरगुण--सम्पूर्ण कार्योंमें शिथिल और अल्प कहाता है ॥ २१९--२२१ ॥

अथ गुणप्रस्तावाद्दीपनादयो गुणाः सलक्षणाः

पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिसिः।

वह्निकृत--वह्निदीप्तिकृत इत्यर्थः ॥

ननु यद्वह्निं प्रदीपयति तदामं कथं न पचेदित्याशंकायामुच्यते,---दीपनद्रव्यं तावन्तं वह्निं प्रदीपयति, यथा अन्नं भोक्तुमिच्छामुत्पादयति, न तु आमं पक्तुं क्षमम्। यथा सूक्ष्मदीपाग्नि उद्द्योतं करोति नतु बृहत्स्थालीस्थान् तण्डुलान् ओदनं कर्तुं क्षमः। पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम्। नागकेशरवद्विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः॥२२२॥

ननु यद्वह्निं न दीपयति तदामं कथं पचतीत्याशंकायामाह--पाचनं वह्निदीप्तिमकुर्वाणमप्यामं पचति। यथाऽग्न्याधानीस्थोऽङ्गारसमूहोऽन्नं पचति, न तु दीपवत्सर्वतः प्रदीपयति ॥

न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि। समीकरोति विषमाञ्छमनं तद्यथाऽमृता ॥ २२३ ॥

यद्द्रव्यं दोषत्रयं न शोधयति, नोर्ध्वाधोमार्गाभ्यामानयति, समान्दोषान् नोदीरयति न वर्धयति शमनं तत् ॥

कृत्वा पाकं मलानां च भित्त्वा बन्धमधो नयेत्। तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ २२४ ॥

मलानामपक्वानां वातपित्तश्लेष्मणांबन्धंवायुबन्धं भित्त्वा अधो नयेव । मलानधः पातयति ॥

पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् । नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात्कृतमालकम् ॥ २२५ ॥

मलादिकम्—आदिशब्दात् कफपित्ते । कृतमालः धनबहेरा सोदालवा इति लोके ॥

मलादिकमबद्धं यद्बद्धं वा पिण्डितं मलैः । भित्त्वाऽध पातयति यद्भेदनं कटुकी यथा ॥ २२६ ॥

अबद्धं शिथिलम् । बद्धं गाढम् । मलैः दोषैः । तत्रापि वातैः, बहुत्वमाधिक्यबोधनार्थम्, तैः पिण्डितं गुटिकीकृतम् ॥

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत् । रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥ २२७ ॥

रेचयत्यपि अधः पातयति च ॥ त्रिवृता-तेओडि इति लोके ॥

अपक्वं पित्तश्लेष्माणं नयत्यूर्ध्वं नयेत्तु यत् । वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥ २२८ ॥

ऊर्ध्वं नयेन्मुखमार्गेण बहिष्कुर्यात् । मदनस्य फलं मैनफल इति लोके ॥

स्थानाद्बहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसञ्चयम् । देहसंशोधनं तत्स्याद्देवदाली फलं यथा ॥ २२९ ॥

देवदाली--सोनैया इति लोके ॥

दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम् । ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली ॥ २३० ॥ रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत् । वातकृत्स्तम्भनं तत्स्याद्यथा वत्सकटुण्टुकौ ॥ २३१ ॥

वातकृत् प्रतिलोमवातकृत् । स्तम्भनमधोगामिमलादीनाम् । वत्सकः (कुरैआ) टुण्टुकः (सोनापाठा) ॥

श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद् बलात् । छेदनं तद्यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु ॥२३२ ॥

क्षारा--यवक्षारादयः ॥

धातून्मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयच्च यत् । लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचायवाः ॥ २३३ ॥

उल्लेखयेत्कृषीकुर्यात् लेखनं कृषीकारकम् । क्षौद्रं मधु । यवा इन्द्रयवाः ॥

यस्माद्द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषु हर्षोवाजीकरं हि तत् यथाऽश्वगन्धा मुसली शर्करा च शतावरी ॥ २३४ ॥

हर्षः--रन्तुं समुत्साहः ॥

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं हि तदुच्यते । यथा नागबलाद्याः स्युर्बीजं च कपिकच्छुजम् ॥ २३५ ॥

नागबला—गोरक्षचाकुलिया इति लोके ॥

दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जाऽमलानि च । एतानि जनकानि स्यू रेचकानि च रेतसः ॥ २३६ ॥

जनकानि प्रभावाच्छीघ्रमेव रसाद्युत्पादनपूर्वकं शुक्र जनयन्ति । रेचकानि आधिक्यात्प्रवर्तयन्ति च ॥

प्रवर्तिनी स्त्री शुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम् । जातीफलं स्तम्भकं स्यात्कालिङ्गं क्षयकारि च ॥ २३७ ॥

स्त्री स्मरणकीर्तनदर्शनसम्भाषणस्पर्शनचुम्बनालिङ्गननिधुवनैः समस्तैः व्यस्तैश्च शुक्रस्य प्रवर्तिनी प्रवृत्तिकारिणी । रेचनं बृहतीफलम् । बृहत्कण्टकारीफलमपि शुक्रय रेचकं प्रवर्तकम् । कालिङ्गंराजकर्कटी ॥

रसायनन्तु तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् । यथा हरीतकी दन्ती गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ २३८ ॥ पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकञ्च गच्छति । व्यवायि तद्यथा भङ्गा फेनश्चाहिसमुद्भवम् ॥ २३९ ॥

अन्यद्द्रव्यं पक्वं तद्गुणं करोति। व्यवायि तु अपक्वमेव स्वगुणैः सकलशरीरं व्याप्य पाकं याति । अहिसमुद्भवं फेनम् (अफीम) ॥

सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान्यत्करोति विकाशितत् । विशोष्योजश्च धातुभ्यो यथा क्रमककोद्रवौ ॥ २४० ॥

धातुभ्यः सकलशरीरस्थेभ्यो वीर्येभ्य ओज उप धातुविशेष विशोष्य । क्रमुकं पूगफलम् ॥

बुद्धिं लुम्पति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते । तमोगुणप्रधानञ्च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २४१ ॥

मदककारि--मादकम् ॥

व्यवायि च विकाशि स्यात्सूक्ष्मच्छेदि मदावहम् । आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २४२ ॥

व्यवायि--सकलकायगुणव्यापनपूर्वकपाकगमनशीलम् । विकाशि--ओजःशोषणपूर्वकसन्धिबन्धशिथिलीकरणशीलम् । मदावहम्--तमोगुणाधिक्येनबुद्धिविध्वंसकम् । आग्नेयम्--अधिकाग्निगुणम् । योगवाहि संसर्गिगुणग्राहकम् । विषं लक्ष्यं दृष्टान्तो वत्सनाभशक्तुकादिभिः ॥

निजवीर्य्येण यद्द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसञ्चयम् । निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २४३ ॥

दोषाः--वातादयः ॥

पैच्छिल्याद्गौरवाद्द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः । धत्ते यद्गौरवं यत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि ॥ २४४ ॥

गौरवम्--शरीरे ॥

विदाहि द्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात्तथा तृषाम् । हृदि दाहञ्च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥ २४५ ॥ गृह्णाति योगवाहि द्रव्यं संसर्गिवस्तुगुणान् । पच्यमानं यथैतन्मधुजलतैलाज्यसूतलोहादि ॥ २४६ ॥

जो पदार्थ कच्चेको पकावे नहीं, परन्तु अग्निको प्रदीप्त करे, वह दीपन कहाता है; जैसे कि, सौंफ । यहां शंका होती है कि, जो पदार्थ अग्निको दीपन करे, वह कच्चेको न पकावे-यह कैसे हो सकता है ? वहां कहते हैं कि, दीपनपदार्थ अग्निको इतना ही दीपन करता है कि, जिससे अन्न खानेकी इच्छा उत्पन्न होती है. परन्तु वह पदार्थ कच्चेके पकानेको समर्थ नहीं है । जैसे कि, सूक्ष्म दीपककी लोय प्रकाश ही कर सकती है, परन्तु मोटी तलीवाले बरतनमें चावलोंको नहीं पका सकती है । जो पदार्थ कच्चेको पकाता है, वह पाचन कहाता है, परन्तु वह अग्निको दीपन नहीं करता है । जैसे कि, नागकेशर । जो अग्निको दीपन करता है और कच्चेको पकाता भी है, उसको दीपन पाचन कहते हैं. जैसे कि-चीता । यहां पुनः शंका होती है कि, जो पदार्थ अग्निको दीपन नहीं करता है, वह कच्चेको कैसे पका सकता है ? वहां कहते हैं कि, जिस प्रकार चूल्हेमें रहनेवाले अंगारोंका समूह अन्नको पकाता है, परन्तु दीपकके सदृश

सर्वत्र प्रकाश नहीं कर सकता, उसी प्रकार पाचनद्रव्य कच्चेको पकाता है, परन्तु अग्निको दीपन नहीं करता। जो पदार्थ तीनों दोषोंको शुद्ध नहीं करता है अर्थात् ऊँचे तथा नीचे मार्गमें नहीं ले जा सकता, समान दोषोंको बढाता नहीं और विषम (न्यूनाधिक) हुए दोषोंको सम करता है. वह पदार्थ शमन कहाता है. जैसे कि--गिलोय। जो पदार्थ कच्चे वात, पित्त और कफको पकाकर वायुके बन्धको भेदन करके नीचे ले जाता है अर्थात् मलको गिरा देता है, वह पदार्थ अनुलोमन कहाता है; जैसे कि-हरड। जो पदार्थ कोठमें चिपटे हुए पकाने योग्य मल कफ और पित्त हैं, उनको विना पकाये ही नीचे ले जाय, वह स्रंसन कहाता है, जैसे कि--अमलतास। जो पदार्थ शिथिल (ढीले) अथवा दृढ (बँधे हुए) मलको तथा वायुकी अधिकतासे गोलीके समान हुए मल आदिको तोडकर नीचे डालता है, वह पदार्थ भेदन कहाता है, जैसे कि--कुटकी। जो पदार्थ अधपके अथवा कच्चे मलको द्रव्यरूप (पतला) करके नीचेको गेरता है वह पदार्थ रेचन कहता है, जैसे कि—निशोथ, जो पदार्थ कच्चे पित्त, कफ तथा अन्नके समूहके मुखके मार्गसे बाहर निकालता है वह पदार्थ वमन कहाता है. जैसे कि—मैनफल। जो पदार्थ मलके समूहको स्थानसे बाहर नीचे गुदाके मार्गसे अथवा ऊपर मुखके द्वारा बाहर निकालता है वह पदार्थ देहसंशोधन कहाता है, जैसे कि—देवदाली (वंदाल, सौनेया)। जो पदार्थ अग्निको दीपन करनेवाला, कच्चेको पकानेवाला और गरम होनेसे द्रवतारूप (गीलेपन) को सुखानेवाला है, वह द्रव्य ग्राहि कहाता है, जैसे कि—सोंठ, जीरा और गजपीपल। जो पदार्थ रूक्ष, शीतल, कसैला और लघुपाकी होनेसे वायुका प्रतिलोम करता है, वह पदार्थ स्तम्भन कहाता है, जैसे कि—कुडा और सोनापाठा। यह नीचे जानेवाले मलादिको रोककर रखता है, इसलिये स्तम्भन कहाता है। जो पदार्थ शरीरमें चिपटेहुए कफादिक दोषोंको बलात्कारसे उखाड डाले, वह पदार्थ छेदन कहाता है, जैसे कि—जवाखार आदि खार, कालीमिरच और शिलाजीत। जो पदार्थ देहकी धातुओंको अथवा मलको सुखाकर दुर्बल करे, वह पदार्थ लेखन है, जैसे कि--मधु, उष्णजल, वच और हलुद्रजौ जिस द्रव्यके प्रयोग करनेसे स्त्रीके साथ रमण करनेका उत्साह हो, वह द्रव्य वाजीकरण कहाता है, जैसे कि असगन्ध, मुसली, मिश्री और शतावर। जिस द्रव्यसे वीर्यकी वृद्धि हो, वह द्रव्य शुक्रल कहाता है, जैसे कि—नागबला आदि और कौंछके बीज। दूध, उडद, भिलावेकी मींगी और आमले ये अपने प्रभावसे शीघ्रही रसादिकको उत्पन्न करके वीर्यको प्रगट करते हैं और वीर्यकी अधिकता होनेपर उसकी प्रवृत्ति करते हैं। स्त्री वीर्यकी प्रवर्तन करनेवाली, कटेरीका फल वीर्यका रेचक, जायफल वीर्यका स्तम्भन करनेवाला और तरबूज वीर्यका क्षय करनेवाला है। स्त्री स्मरण, कीर्तन, दर्शन, संभाषण, स्पर्श, चुम्बन, आलिंगन और मैथुन इन सम्पूर्ण क्रियाओंसे अथवा इनमें कुछ थोडी क्रियाओंसे वा एक ही क्रियासे वीर्यको प्रवर्तन करने (निकालने) वाली है। जो पदार्थ जरा और व्याधिका नाश करनेवाला हो, वह पदार्थ रसायन कहाता है, जैसे कि—हरड, दन्ती, गूगल और शिलाजीत। जो पदार्थ प्रथम सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर पश्चात् पाकअवस्थाको प्राप्त हो, वह पदार्थ व्यवायि कहाता है; जैसे कि—भांग और अफीम अन्य द्रव्य परिपाकको प्राप्त होकर अपना गुण कहते हैं और व्यवायिद्रव्य तो कच्चे ही अपने गुणोंसे सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पकते हैं। जो द्रव्य सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाले वीर्यमेंसे ओजको सुखाकर शरीरकी संधियोंके बन्धनको शिथिल (ढीला) करते हैं, उनको विकाशी जानना। जैसे-सुपारी और कोदों। जो द्रव्य अधिक तमोगुणवाले होनेके कारण बुद्धिका नाश करते हैं, वे मदकारी अर्थात् मादक द्रव्य कहाते हैं जैसे कि

मदिरा आदिक । जो पदार्थ व्यवायि, विकाशी कफ नष्ट करनेवाला, मद करनेवाला, आग्नेय-गुणविशिष्ट, प्राणनाशक और योगवाही हो, वह पदार्थ विष कहाता है। जैसे कि—वत्सनाभ और सक्तुक आदि । वत्सनाभ आदि द्रव्य सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होनेपर पकते हैं, इसलिये व्यवायि हैं और ओजको सुखाकर संधियोंके बन्धनको शिथिल करते हैं, इसलिये विकाशी हैं। तमोगुणका भाग अधिक होनेसे बुद्धिका नाश करके मद करते हैं, अग्निके अधिक अंशयुक्त होनेसे आग्नेय हैं। जिस पदार्थके साथ मिलें, उस पदार्थके समान गुणोंको करनेवाले होनेसे योगवाही भी हैं। जो द्रव्य अपनी शक्तिद्वारा स्रोतोंसे दोषोंके समूहको निकाले, वह द्रव्य प्रमाथी कहाता है, जैसे कि—मिरच और वच। जो पदार्थ रसको वहानेवाली शिराओंको पिच्छिल और भारीपनसे रोककर शरीरमें भारीपन करता है. वह अभिष्यन्दी कहाता है, जैसे कि–दही। जिस द्रव्यके खानेसे खट्टी डकार आवे, प्यास लगे, हृदयमें दाह हो, वह पदार्थ विदाही कहाता है । विदाही द्रव्यका पाक बहुत देरसे होता है। जो द्रव्य पकते समय अपने साथ मिली हुई वस्तुओंके गुणको ग्रहण करे, वह पदार्थ योगवाही कहाता है, जैसे कि-शहद, तेल, घी, पारा और लोहा आदि ॥ २२२ ॥ २४६ ॥

अथ वीर्यम् ।

तत्र वाग्भटः—उष्णशीतगुणोत्कर्षाद्बुधैर्वीर्यं द्विधा स्मृतम् । यत्सर्वमग्नीषोमीयं दृश्यते भुवनत्रयम् ॥२४७॥ उष्णं वातकफौ हन्याच्छीतं तु तनुते जराम् । शीतं वातकफातंकान् कुरुते पित्तहृत्परम् ॥२४८॥ अन्यच्चतत्रोष्णं भ्रमतृड्ग्लानिस्वेददाहाशुपाकताम् । शमश्च वातकफयोः करोति शिशिरं पुनः । ह्लादनं जीवनं स्तम्भं प्रसारं रक्तपित्तयोः ॥ २४९ ॥

सम्पूर्ण संसार अग्नि और चंद्रसे सम्बन्ध रखनेवाला देखनेमें आता है, इस कारण किसी द्रव्यमें गरमी और किसी पदार्थमें शीतलता अधिक देखी जाती है, इसीसे विद्वानोंने पदार्थोंमें उष्ण और शीत ऐसे दो प्रकारका वीर्य माना है । उष्णवीर्यसे वात तथा कफ नष्ट होता है और पित्त बढता है। शीतवीर्यसे पित्त नष्ट होता है और वात तथा कफकी पीडा होती है। अन्य ग्रन्थमें भी कहा है कि, उष्णवीर्यसे भ्रम, तृषा, ग्लानि स्वेद तथा दाह होता है, वायु तथा कफ शांत होता वैसेही शीतवीर्यसे आनन्द, जीवन मलादिकका स्तम्भन और रक्त भी स्वच्छ होता है ॥ २४७ ॥ २४९ ॥

अथ विपाकः ।

जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम् । रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः ॥ २५० ॥ मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः । कटुतिक्तकषायाणां पाकःस्यात्प्रायशः कटुः ॥२५१॥ तथा च वाग्भटःत्रिधा रसानां पाकः स्यात्स्वाद्वम्लकटुकात्मकः । प्रायःपदेन व्रीहिःस्यात्स्वादुरम्लो विपाकतः॥२५२॥

शिवा कषाया मधुरा पाके । शुण्ठी कटुका मधुरपाकेत्यादि ॥

जठराग्निके संयोगसे रसका परिणाम (मीठा, खट्टा आदि) होनेपर जो अन्य रस उत्पन्न होता है, उसको विपाक कहते हैं। मधुर और खारे रसके अधिकतासे मधुर विपाक होता है। खट्टे रशका प्रायः खट्टा पाक होता है और तीक्ष्ण (चरपरे) कडवे तथा कसैले रसका प्रायः कटुपाक होता है। वाग्भटमें भी कहा है कि-रसोंका मधुर, खट्टा और तीक्ष्ण ऐसे तीन प्रकारके पाक होते हैं, यहां प्रायः शब्दका यह अभिप्राय है कि, किसी स्थानमें यह नियम बदल भी जाता है, जैसे कि-चावल मधुर होनेपर भी उसका पाक खट्टा होता है, हरड कसैली होनेपर भी उसका

पाक मधुर होता है, सोंठ चरपरी होनेपर भी उसका विपाक मधुर होता है इत्यादि ॥ २५०--२५२ ॥

अथ विपकानां गुणाः ।

श्लेष्मकृन्मधुरःपाको वातपित्तहरो मतः । अम्लस्तु कुरुते पित्तं वातश्लेष्मगदापहः ॥२५३॥ कटुः करोति पवनं कफं पित्तश्च नाशयेत् । विशेष एवं रसतो विपाकानां निदर्शितः ॥ २५४ ॥

मधुरपाक--कफको उत्पन्न करनेवाला, वात तथा पित्तको हरनेवाला है। खट्टापाक--पित्तको उत्पन्न करता है; वात तथा कफसंबन्धी रोगोंको नष्ट करता है । कटु (तीक्ष्ण) पाक-वातजनक और पित्त तथा कफनाशक है । इस प्रकार विपाक रससे विशेष होता है वह दिखाया है ॥ २५३ ॥ २५४ ॥

अथ प्रभावः ।

रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम् । दन्ती रसाद्यैस्तुल्याऽपि चित्रकस्य विरेचनी ॥२५५॥ मधूकस्य च मृद्वीका घृतं,क्षीरस्य दीपनम् । प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः ॥ २५६ ॥ समाऽपि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् । क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्प्रभावतः । ज्वरं हन्ति शिरोबद्धा सहदेवीजटा यथा ॥ २५७ ॥ तथा नानौषधियोगेषु फलं प्रति स्वभाव एव आश्रयणीयो न तु तत्र रसादिरूपहेतुविचारः कर्त्तव्यः ॥ अत आह सुश्रुतः--

अमी सामान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः । आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥२५८॥ प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः । नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान्परीक्षेत कदाचन ॥ २५९ ॥ विरुद्धगुणसंयोगे भूयसाऽल्पं हि जीर्यते । रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान् व्यपोहति ॥ २६० ॥

॥ इति मिश्रवर्गः ॥

रस आदि समान होनेपर भी कोई पदार्थ किसी पदार्थसे जो अधिक काम करता है, वह काम उसके प्रभावसे होताहै, ऐसा जानना। जिस प्रकार कि; दन्तीके रस आदिसे चीता समानही है तो भी दन्तीमें रेचकता अधिक प्रभावसे है, किन्तु चीतेमें नहीं है। दाखके रस आदिसे महुआ समान भी है, तो भी दाखमें विरेचनशक्ति अधिक है, घीके रस आदिसे दुग्ध समान भी है, तो भी घीमें अग्निको दीपन करनेका गुण अधिक है। वैसेही आँवलेके रस आदिसे लकुच (बडहर) समानही है, तो भी आँवला तीनों दोषोंका नाशक है। कहीं कहीं एक ही द्रव्य अपने प्रभावसे काम करता है, जैसे कि--सहदेईकी जड शिरमें बांधनेसे ज्वर नष्ट होताहै। वैसे ही अनेक प्रकारकी औषधियोंका संयोग करनेसे जो गुण उत्पन्न होता है, सो उनमें स्वभावकोही कारणरूप, जानता। परन्तु उनमें रस आदि कारणोंका विचार नहीं करना, क्योंकि; सुश्रुत कहते हैं कि--"जो औषधि प्रसिद्ध स्वभाववाली है, उनमें रस आदि कारणोंका विचार तथा तर्क नहीं करना चाहिये। विद्वान् वैद्य, शास्त्रके ऊपर आधार रखकर उनको कार्यमें लावे। जिन औषधियोंका फल प्रत्यक्ष देखनेमें आता है और स्वभावसेही प्रसिद्ध है, उन औषधियोंके उन रस आदि कारणोंसे विद्वान् परीक्षा नहीं करे। परस्पर विरुद्ध गुणवाली औषधियोंका संयोग होनेसे उसमें रस आदिकी न्यूनाधिकता होजाती है अर्थात् अल्पको बलवान् जीतलेता है । क्योंकि रसको विपाक जीत लेता है। रस तथा विपाकको वीर्य जीत लेता है और रस, विपाक वीर्य इन तीनोंको प्रभाव जीत लेता है ॥ २५५--२६० ॥

इतिश्रीभावप्रकाशेपंचमप्रकरणे साधारण मिश्रवर्गः॥

अथ हरीतक्यादिवर्गः।

रसगुणवीर्यविपाकप्रभावाणां स्वरूपाणि अभिधाय कुत्र द्रव्ये के रसगुणवीर्यविपाकप्रभावाः सन्तीति बोधयितुं द्रव्यगतान् रसगुणवीर्यविपाकप्रभावान् आह। तत्र प्रथमं हरीतक्या उत्पत्तिनामलक्षणगुणानाह--

दक्षं प्रजापतिं स्वस्थमश्विनौ वाक्यमूचतुः। कुतो हरीतकी जाता तस्यास्तु कति जातयः ॥ १ ॥ रसाः कति समाख्याताः कति चोपरसाः स्मृताः। नामानि कति चोक्तानि किं वा तासां च लक्षणम् ॥ २ ॥ के च वर्णा गुणाः के च का कुत्र प्रयुज्यते। केन द्रव्येण संयुक्ता कांश्च रोगान्व्यपोहति ॥ ३ ॥ प्रश्नमेतद्यथापृष्टं भगवन्वक्तुमर्हसि। अश्विनोर्वचनं श्रुत्वा दक्षो वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥ पपात बिन्दुर्मेदिन्यां शक्रस्य पिबतोऽमृतम्। ततो दिव्यात्समुत्पन्ना सप्तजातिर्हरीतकी ॥ ५ ॥

इस प्रकार रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभावका स्वरूप कहकर अब किस किस पदार्थमें कैसे कैसे रस गुण वीर्य; विपाक और प्रभाव हैं यह जाननेके लिये प्रत्येक पदार्थका रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव कहते हैं। वहाँ प्रथम हरडकी उत्पत्ति, नाम, लक्षण और गुण कहते हैं—

स्वस्थतापूर्वक बैठे हुए दक्षप्रजापतिसे अश्विनीकुमारोंने पूछा कि--"हरड कहाँसे उत्पन्न हुई और कितनी जातिकी है? इसमें कितने रस और कितने उपरस हैं? इनके नाम और लक्षण क्या हैं? इसका वर्ण और गुण क्या है? किस किस हरडका किस किस कार्यमें प्रयोग होता है? यह हरड किन किन पदार्थोंके साथ मिलनेसे किन किन रोगोंको नष्ट करती है? हे भगवन्! हमारे इन प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर दीजिये" इस प्रकार अश्विनीकुमारोंका वचन सुनकर दक्षप्रजापति बोले कि--जब देवराज इन्द्रने अमृत पिया तब उसमेंसे एक बूँद पृथ्वीपर गिरपडी, उससे सात प्रकारकी हरडें उत्पन्न हुईं हैं ॥ १-५ ॥

हरीतकीनामानि।

हरीतक्यभया पथ्या कायस्था पूतनाऽमृता। हैमवत्यव्यथा चापि चेतकी श्रेयसी शिवा ॥ ६ ॥ वयस्था विजया चापि जीवन्ती रोहिणीति च ॥

हरीतकी, अभया, पथ्या, कायस्था, पूतना, अमृता, हैमवती, अव्यथा, चेतकी, श्रेयसी, शिवा, अवस्था, विजया, जीवन्ती और रोहिणी ये हरडके संस्कृत नाम हैं। हिन्दीमें--हरढ, हर्ड, हर्र। ब०--हरीतकी। म०--हिरडा, हिरडे। क०--अणीले। गु०--हरडा। ता०--कडुकाई। फा०--हलैले जर्द, अस्कर। अ०--एलही लज, काबली, अहलीज अस्कर। इं०--ब्लाकमरोबोलम चेबुलिक Black Myrobo lem Cheb ulic। लै० टरमिनेलिया चेबुला Terminalia Cheblu ॥ ६ ॥

सप्त[1]हरीतकीभेदाः।

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताऽभया। ॥ ७ ॥ जीवन्ती चेतकी चेति विज्ञेयाः सप्तजातयः ॥

---

१ विन्ध्याद्रौ विजया हिमाचलभवा स्याच्चेतकी पूतना सिन्धौ स्यादथ रोहिणी निगदिता जाता प्रतिष्ठानके ॥ चम्पायाममृताऽभया च जनिता देशे सुराष्ट्राह्वये जीवन्तीति हरीतकी निगदिता सप्तप्रभेदा बुधैः ॥

अर्थ—विजया हरड विन्ध्याचल पर्वतपर उत्पन्न होती है. चेतकी हरड हिमालय पर्वतपर होती है,—

विजया १, रोहिणी २, पूतना ३, अमृता ४. अभया ५, जीवन्ती ६ और चेतकी ७ हरडकी ये सात जातियाँ हैं ॥ ७ ॥

तेषां पृथग् लक्षणानि।

अलाबुवृत्ता विजया वृत्ता सा रोहिणी स्मृता ॥ ८ ॥ पूतनाऽस्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसलाऽमृता। पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी। त्रिरेखा चेतकी ज्ञेया सप्तानामियमाकृतिः ॥ ९ ॥

जो हरड-तोंबीके सदृश गोल हो, वह विजया हरड कहाती है। जो साधारण गोल हो, वह रोहिणी हरड कहाती है। जो बडी गुठलीवाली तथा सूक्ष्म हो वह पूतना हरड कहाती है। अधिक गूदेवाली अमृता हरड होती है। पांच रेखायुक्त हो, सो अभया कहाती है। जो सुवर्णके सदृश वर्णवाली हो, वह जीवन्ती जाननी चाहिये और तीन रेखावाली जो हो, वह चेतकी हरड कहाती है इस प्रकारकी हरडोंकी ये सात आकृति हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

हरीतकीप्रयोगाः।

विजया सर्वरोगेषु रोहिणी व्रणरोहिणी। ॥ १० ॥ प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता। अक्षिरोगेऽभया शस्ता जीवन्ती सर्वरोगहृत् ॥ ११ ॥ चूर्णार्थे चेतकी शस्ता यथा युक्तं प्रयोजयेत्। चेतकी द्विविधा प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः ॥ १२ ॥ षडंगुलायता शुक्ला कृष्णा त्वेकांगुला स्मृता। काचिदास्वादमात्रेण काचिद्गन्धेन भेदयेत् ॥ १३ ॥ काचित्स्पर्शेन दृष्ट्याऽन्या चतुर्द्धा भेदयेच्छिवा ॥ १४ ॥ चेतकीपादहच्छायामुपसर्पन्ति ये नराः। भिद्यन्ते तत्क्षणादेव पशुपक्षिमृगादयः ॥ १५ ॥ चेतकी तु धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः। तावद्भिद्येत वेगैस्तु प्रभावान्नात्र संशयः ॥ १६ ॥ नृपाणां सुकुमाराणां कृशानां भेषजद्विषाम्। चेतकी परमा शस्ता हिता सुखविरेचनी ॥ १७ ॥ सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजया स्मृता। सुखप्रयोगा सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते ॥ १८ ॥

विजया हरड सम्पूर्ण रोगोंमें उत्तम है। व्रण (घाव) के भरनेमें रोहिणी हरड उत्तम है। पूतना हरड लेपके कार्यमें उत्तम है। अमृता हरड रेचनकार्य (जुलाब) में उत्तम है। अभया हरड नेत्ररोगोंपर उत्तम है। जीवन्ती सम्पूर्ण रोगोंको हरनेवाली है और चेतकी हरड चूर्णके लिये उत्तम है। इनकी योग्यता विचारकर यथास्थानोंमें प्रयोग करे। सफेद रंगवाली और काले रंगवाली इस प्रकार चेतकी हरड दो प्रकारकी है। सफेद छः अंगुलकी विस्तारमें होती है और काली एक अंगुलकी विस्तारमें होती है। कोई हरड खाने मात्रसे, कोई गन्धमात्रसे, कोई स्पर्शमात्रसे, और कोई देखनेमात्रसे इस भांति, चार प्रकार के हरड दस्त लाती हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी

पूतना हरड सिन्धु नदीके किनारेपर होती है और रोहिणी हरड प्रतिष्ठानमें होती है। अमृता और अभया हरड चम्पारण्यदेशमें उत्पन्न होती है। जीवन्ती हरड सौराष्ट्रदेशमें उत्पन्न होती है। इस प्रकार सातों जातिकी हरडोंके स्थान वैद्यलोगोंने वर्णन किये हैं ॥

१ हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी। कदाचित्कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी ॥

अर्थ–हरड मनुष्योंको माताके समान हित करनेवाली है। माता तो कभी कुपित भी हो जाती है; परन्तु उदरमें स्थित अर्थात् खाई हुई हरड कभी भी हानिकारक नहीं होती, सदैव रक्षा ही करती है ॥

तथा मृग आदि कोई भी प्राणी चेतकी हरडके वृक्षकी छायामें जाय तो उसको उसी समय दस्त होने लगते हैं। मनुष्य चेतकी हरडको जब तक हाथमें धारण किये रहेगा तबतक निःसन्देह उसके प्रभावसे दस्त होते रहेंगे। राजा, सुकुमार (नाजुक) मनुष्य, दुर्बलशरीर वाला और जिनकी औषधि पर अरुचि हो, उनके लिये चेतकी हरड बहुत उत्तम है। क्योंकि, उससे सुखपूर्वक रेचन होता है और हितकारी है। हरडोंकी सातों जातियोंमें विजया हरड मुख्य है, क्योंकि–सहज ही में सर्वत्र प्राप्त हो सकती है। उसका प्रयोग सहजमें हो सकता है और सर्व रोगोंमें उत्तम है ॥ १०–१८ ॥

हरीतकीगुणाः ।

हरीतकी पञ्चरसाऽलवणा तुवरा परम्। रूक्षोष्णा दीपनी मेध्या स्वादुपाका रसायनी ॥ १९ ॥ चक्षुष्या लघुरायुष्या बृंहणी चानुलोमिनी। श्वासकासप्रमेहार्शःकुष्ठशोथोदरक्रिमीन् ॥२०॥ वैस्वर्यग्रहणीरोगविबन्धविषमज्वरान्। गुल्माध्मानतृषाछर्दिहिक्काकण्डूहृदामयान् २१॥ कामलां शूलमानाहं प्लीहानञ्च यकृत्तथा। अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातञ्च नाशयेत् ॥ २२ ॥ स्वादुतिक्तकषायत्वात्पित्तहृत्कफहृत्तु सा। कटुतिक्तकषात्वादम्लत्वाद्वातहृच्छि वा ॥ २३ ॥ पित्तकृत्कटुकाऽम्लत्वाद्वातकृन्न कथं शिवा। प्रभावाद्दोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत्प्रकाश्यते। हेतुभिः शिष्यबोधार्थं नापूर्वं क्रियतेऽधुना ॥ २४ ॥ कर्मान्यत्वं गुणैः साम्यं दृष्टमाश्रयभेदतः। यतस्ततो नेति चिन्त्यं धात्रीलकुचयोर्यथा ॥ २५ ॥ पथ्याया मज्जनि स्वादुः स्नाय्वामम्लो व्यवस्थितः। वृन्ते तिक्तस्त्वचि कटुरस्थि स्यात्तुवरो रसः ॥ २६ ॥ नवा स्निग्धा घना वृत्ता गुर्वी क्षिप्ता च याऽम्भसि। निमज्जेत्सा प्रशस्ता च कथिताऽतिगुणप्रदा ॥ २७ ॥ नवादिगुणयुक्तत्वं तथैकत्र द्विकर्षता। हरीतक्याः फले यत्र द्वयं तच्छ्रेष्ठमुच्यते ॥ २८ ॥ चर्विता वर्द्धयत्यग्निं पेषिता मलशोधिनी। स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा प्रोक्ता त्रिदोषनुत् ॥ २९ ॥ उन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां निर्मूलिनी पित्तकफानिलानाम्। विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां हरीतकी स्यात्सह भोजनेन ॥ ३० ॥ अन्नपानकृतान्दोषान्वातपित्तकफोद्भवान्। हरीतकी हरत्याशु भुक्तस्योपरि योजिता ॥ ३१ ॥ लवणेन कफं हंति पित्तं हन्ति सशर्करा। घृतेन वातजान् रोगान्सर्वरोगान्गुडान्विता ॥ ३२ ॥ सिंधूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुणैः क्रमात्। वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥ ३३ ॥ अध्वातिखिन्नो बलवर्जितश्च रूक्षः कृशो लंघनकर्षितश्च। पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्तरक्तस्त्वभयां न खादेत् ॥ ३४ ॥

हरड लवण (खारी) रसके अतिरिक्त और सब (पांचों) रसवाली है और विशेष कर कसैली है तथा रूखी, गरम, अग्निको दीपन करनेवाली, बुद्धिको हितकारी, मधुरपाकवाली, रसायन, नेत्रोंके लिये उत्तम, हलकी, आयुवर्द्धक, शरीरको पुष्ट करनेवाली और वायुको अनुलोम करनेवाली है। हरड– श्वास, खांसी, प्रमेह, कोढ, शोथ, उदर, कृमि, स्वरभंग, संग्रहणी, मलबद्धता, विषम-

ज्वर, गुल्म, अफारा, प्यास वमन, हिचकी खुजली, हृदयरोग, कामला. शूल, आनाह, प्लीहा, यकृत्, पथरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्रघात इन सब रोगोंको हरनेवाली है। हरडमें-मधुर तीक्ष्ण और कसैला रस होनेसे पित्तको नष्ट करती है। तीक्ष्ण (चरपरा), कडवा और कसैला रस होनेसे कफको हरती है और खट्टारस होनेसे वातको दूर करती है। "हरड तीक्ष्ण और खट्टी होनेके कारण वायुको और पित्तको क्यों उत्पन्न नहीं करती ?" ऐसी शंका इस स्थानमें नहीं करनी चाहिये क्योंकि "हरडमें स्वाभाविक प्रभावके कारण दोषोंका निवारण करना जो सिद्ध है, उसका यहां हम शिष्योंको समझानेके लिये सम्पूर्ण कारण दिखाकर प्रकाश करते हैं; परन्तु वह कुछ हम नवीन रचकर नहीं दिखाते हैं। जैसे आमले और बडहल ये दोनों गुणोंमें समान होनेपर भी पृथक् पृथक् कार्य करते हैं, यह कितना अन्तर है। इस लिये गुण समान होने पर भी उन गुणोंके आश्रयके भेदसे उनका कार्य भिन्न भिन्न है, वैसे ही हरड भी तीक्ष्ण और अम्लरसके आश्रय भेदसे पित्त तथा वायु को उत्पन्न नहीं कर सकती, ऐसा विचारकर किंचिन्मात्र भी सन्देह करना नहीं चाहिये"। हरडकी मींग (मज्जा) में मधुर रस, नसोंमे खट्टारस, डंडीमें कडवा रस, छालमें चरपरा रस और गुठलीमें कसैला रस रहता है। जो हरड नई, चिकनी, घन, गोल तथा भारी हो और जलमें डालनेसे डूब जाय वह हरड उत्तम और अतिगुणकारक है। जिस हरडके फलमें नवीनता आदि ऊपर कहे हुए गुण हों तथा दो तोलेकी तोलमें भारी हो ऐसी हरड श्रेष्ठ होती है। चाबी हुई हरड अग्निको बढाती है। पीसकर खाई हुई हरड मलको शुद्ध करती है अर्थात् रेचन करनेवाली है। जलमें पकाई हुई हरड दस्तोंको बन्द करती है। और भुनी हुइ हरड तीनों दोषोंको नष्ट करती है। भोजनके साथ हरड खाई हुई बुद्धि बल तथा इन्द्रियोंको प्रकाशित करनेवाली है, वात पित्त तथा कफनाशक है और मूत्र तथा मलको निकालनेवाली है। भोजन करनेके पश्चात् खाई हुई हरड अन्न पानसे प्रगट हुए तथा वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुए दोषोंको तुरन्त हरनेवाली है। नमक के साथ हरडको खाय तो कफको, चीनी (बूरा) के साथ खाय तो पित्तको, घृतके साथ खाय तो वायुसे उत्पन्न हुए सब रोगोंको शान्त करती है और गुडके साथ हरड खानेसे सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करती है। छओं ऋतुओं में जिनको रसायनके गुणोंकी इच्छा हो, उनको वर्षाऋतुमें सेंधानोनके साथ, शरदृऋतुमें बूरा (चीनी) के साथ, हेमन्तऋतुमें सोंठके साथ शिशिरऋतुमें पीपलके साथ, वसन्तऋतुमें मधुके साथ और ग्रीष्म ऋतुमें गुडके साथ, हरड खानी चाहिये। मार्ग चलनेसे थका हुआ, निर्बल, रूक्षप्रकृतिवाला दुर्बलशरीरवाला, लंघन किये हुए, अधिक पित्तवाला इनको और गर्भवती स्त्रियोंको तथा जिनका रक्त निकल गया हो, उनको हरड नहीं खानी चाहिये ॥ १९-३४ ॥

हरडका विवरण।

हरडके पेड बडे बडे होते हैं और इसकी गणना शाखी वृक्षोंमें है, इसकी लकडी बहुत पक्की होती है, इमारत वगैरहके कामके लिये बहुत उत्तम है, इसके पत्ते बडे बडे अडूसेके पत्तोंके समान दो दो पत्ते एक एक शाखाओंमें इधर उधर लगते हैं और कुछ कुछ ललाई लिये हरे और रूखे होते हैं। फूल बहुत छोटे छोटे पीले रंगके होते हैं इसके हरे फल विहारी नींबूके समान दोनों ओरसे लम्बे नोकदार और बीचमें गोल होते हैं, जब सूख जाती है तो ऊपरसे खरदरीसी दीखने लगती है और पांच रेखासी विदित होती है। बहुत लोग अधसूखियोंको फोड फोडकर धूपमें डाल देते हैं. उसको हर्रा कहते हैं। प्रायः उसको छीपी लोग रंगत काममें लाते हैं। साधारण रूपसे व्यवहारमें आनेसे सम्पूर्ण संसारमें हरडाका नाम प्रसिद्ध है त्रिफलेमें हरड मुख्य औषधि

समझी जाती है । आध इंचसे लेकर पांच इंच-तक लम्बी, तोलमें छः मासेसे लेकर पांच तोलेकी होती है । परन्तु पांच तोलेकी हरड सर्वत्र नहीं होती हैं, कहीं कहीं पाई जाती हैं । मात्रा इसकी १ मासेसे लेकर छः मासे तककी है ॥

अथ विभीतकस्य नामानि गुणाश्च ।

विभीतकस्त्रिलिङ्गःस्यान्नाऽक्षः कर्षफलस्तु सः । कलिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः ॥ ३५ ॥ विभीतकं स्वादुपाकं कषायं कफपित्तनुत् । उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम् ॥३६॥ रूक्षं नेत्रहितं केश्यं कृमिवैस्वर्यनाशनम् । विभीतमज्जा तृट्छर्दिकफवातहरो लघुः । कषायो मदकृच्चाथ धात्री मज्जाऽपि तद्गुणः ॥३७॥

विभीतक, विभीतकी, अक्ष, कर्षफल, कलिद्रुम, भूत (ता) वास, कलियुगालय, (कल्पबृक्ष, संवर्त्त, संवर्त्तक, विभीत, तुष, कलि, कुशिक, बहुवीर्य, तैलफल, वासन्त, वहेडुक, हार्य, विषघ्न, कलिन्द, अनिलघ्नक, कासघ्न और तिलपुष्प) ये बहेडेके संस्कृत नाम हैं । हिन्दीमें -बहेडा । बं०-बेहरो--बेहेडा । ग० बहेडा । ता०तानिक्काइ । क०--तेरे । फा०बलेले । अ०--बलेलज । इं०बेलेरिक मेराबोलम Bellerie Myrobolam लै०टर्मिनोलिया बेलैरिका Tarminalia Bellerica (प्रथमका विभीतक शब्द तीनों लिंगोंमें प्रवर्तित होता है और शेष सम्पूर्ण शब्द पुंल्लिंगमें आते हैं) ॥ बडेडा--मधुर पाकवाला, कसैला कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाला, वीर्यमें उष्ण, स्पर्शमें शीतल, दस्तको भेदन करनेवाला, खांसीको नष्ट करनेवाला, रुक्ष, नेत्रोंको हितकारी, केशोंको उत्तम और कृमि तथा स्वरहीनताको नष्ट करता है । बहेडेकी मींग, तृषा, वमन, कफ तथा वायुको नष्ट करनेवाली है, शीतल कसैली और मदकारक है । आमलेकी मींग भी इन्ही गुणोंवाली है ॥ ३५--३७ ॥

बहेडेका विवरण ।

बहेडेके वृक्ष शाखी जातिके बहुत ऊँचे और ऊँची धरतीपर होते हैं । पत्ते इसके महुएके समान होते हैं फूल बहुत छोटे छोटे होते हैं । गुच्छसे लटकते हैं । फल छोटे कागजी नीबूके समान गोलगोल होते हैं । वसन्तऋतुमें फलता हैं । विशेष करके इसके वृक्ष पर्वतोंपर बहुत होते हैं । बहेडा औषधि प्रयोगके सिवाय तन्त्रशास्त्रवालोंको प्रयोगमें भी अधिक आता है । मथुरा और काशीके मार्गमें भी इसके पेड बहुतायतसे देखे जाते हैं, तोलमें इसका फल एक तोलेका होता है । त्रिफलेकी बहेडा दूसरी औषधि है । मात्रा एक मासेसे तीन मासे तककी है ॥

अथ आमलक्या नामानि गुणाश्च ।

त्रिष्वामलकमाख्यातं धात्री तिष्यफलाऽमृता । हरीतकीसमं धात्रीफलं किन्तु विशेषतः ॥ ३८ ॥ रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम् । हन्ति वातं तदम्लत्वात्पित्तं माधुर्य्यशैत्यतः ॥ ३९ ॥ कफं रूक्षकषायत्वात्फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित् । यस्य यस्य फलस्येह वीर्यं भवति यादृशम् । तस्य तस्यैव वीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥ ४० ॥

आमलक, धात्री, तिष्यफला, अमृता, (आमलकी, पंचरसा, श्रीफली, धात्रिका, शिवा, अकरा, व्यवस्था, वृष्या, कायस्था, बहुफल, शान्ता, अमृतफला, वृत्तफला, रोचनी, कर्षफला, तिप्या, धात्रीफल, श्रीफल, अमृतफल, शिव. जातीफल) ये आमलोंके संस्कृत नाम हैं । हिं०-आंवला । बं०-आमलकी । म—आंवला, आंवली । गु०—आमली । तै०लउसरकाय । ता०—नल्लिक्काइ । फा०- आमलज । अ०-अमलज । क० नेल्लि । इं०—एम्ब्लिक माइरोबेलन् Emblica, Myrobalan लै०—फेलेन्थस एम्लिका Phylanthus Amblica. (प्रथमका आमलक शब्द तीनों लिंगोंमें प्रव-

तिंत होता है और शेषके सम्पूर्ण शब्द स्त्रीलिंगमें आते हैं) आमलेका फल प्रायः गुणोंमें हरडके सदृशही है, परन्तु उसमें विशेषता यह है कि–आमला रक्तपित्त तथा प्रमेहको नष्ट करनेवाला है, वीर्यको अत्यन्त बढानेवाला और रसायन है, आमला अम्ल होनेसे वायुको नष्ट करता है, मधुर तथा शीतल होनेसे पित्तका नाश करता है और रूक्ष तथा कसैला होनेसे कफको नष्ट करता है। इस भांति आमला तीनों दोषोंका नाश करनेवाला है। यहां ऐसा समझना कि–जिस जिस फलका जैसा जैसा वीर्य होता है, उसकी मज्जा भी वैसे ही वीर्यवाली होती है ॥ ३८ ॥ ४० ॥

आमलाका विवरण ।

आमला शाखीजातिका बडा वृक्ष होता है, जंगलमें और बागोंमें उत्पन्न होता है, परंतु जंगली आमला छोटा और देशी आमला बहुत बडा और गुणदायक होता है, यह शरद्‌ऋतुमे अधिक फलता है, इसके पत्ते छोटे छोटे इमलीकेसे होते हैं. इसकी डालियोंपर छोटे २ सरसोंके दानेके समान पीले पीले फूल होते हैं, माघ और फाल्गुनके महीनेमें आमला पक जाता है। देखनेमें गोल गोल कुछ हरे पीलेसे होते हैं। काशी और रामनगरके आमले सब देशोंमें प्रसिद्ध हैं। काशीके बराबर बडा आमला और कहीं नहीं होता है। इसके ऊपर छः रेखा होती है और उसके भीतर छः कोनेवाली महा कठोर गुठली होती है । प्रायः अत्तार लोग इसका आचार और मुरब्बा बहुत बनाते हैं, आमला त्रिफलेकी प्रधान औषधि है। आमला तोलेमें तीन तोलेका होता है। मात्रा इसकी चार माससे लेकर छः मासे तक की है ॥

अथ त्रिफलाया लक्षणनामगुणाः।

पथ्याविभीतधात्रीणां फलैःस्यात् त्रिफला समैः । फलत्रिकञ्च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्तिता ॥४१॥ त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठहरा सरा। चक्षुष्या दीपनी रुच्या विषमज्वरनाशिनी ॥ ४२ ॥

हरड, बहेडा और आंवला इन तीनों फलोंको समान भाग लेकर एकत्र करें उसको त्रिफला, फलत्रिक अथवा वरा कहते हैं । यह त्रिफला कफ, पित्त, प्रमेह तथा कुष्टको नष्ट करती है, दस्तावर, नेत्रोंको हितकारी, अग्निको दीपन करनेवाली, रुचि उत्पन्न करनेवाली और विषमज्वरको नष्ट करती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ शुण्ठ्या नामानि गुणाश्च ।

शुण्ठी विश्वा च विश्वञ्च नागरं विश्वभेषजम्। ऊषणं कटुभद्रञ्च शृङ्गवेरं महौषधम् ॥ ४३ ॥ शुण्ठी रुच्याऽऽमवातघ्नी पाचनी कटुका लघु । स्निग्धोष्णा मधुरा पाके कफवातविबन्धनुत् ॥ ४४ ॥ वृष्या स्वर्या वमिश्वासशूलकासहृदामयान् । हन्ति श्लीपदशोथार्श आनाहोदरमारुतान् ॥४५॥आग्नेयगुणभूयिष्ठं तोयांशपरिशोषि यत्। संगृह्णाति मलं तत्तु ग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा ॥ ४६ ॥ विबन्धभेदनी या तु सा कथं ग्राहिणी भवेत्। शक्तिर्विबन्धभेदे स्याद्यतो न मलपातने ॥ ४७ ॥

शुंठी, विश्वा, विश्व, नागर, विश्वभेषज, ऊषण, कटुभद्र, शृङ्गवेर, महौषध (शुष्कार्द्र, भेषज, कफारि, नागर, इन्द्रभेषज, विश्वौषध, कटुग्रंथि, शुंठि, कटूत्कट, कटूषण, सौवण, आर्द्रक, सोषण, नागरह्व)ये सोंठके संस्कृत नाम हैं। हिं०–सोंठ। बं०-सूंठ। म०-सुंठ। गुं०-शुण्ठ्य। क०-शुंठि । तै०शौंठी। ता०-शुक्कुफा–जंजबील। इं--ड्रायूजिंजररूट Dry Gingerroot, लें०--जिंजिबर औफिसिनल Zingiber Officnale.सोंठ-रुचिकारक, आमवातनाशक, पाचक, चरपरी, हलकी. स्निग्ध, गरम, पाकमें मधुर, कफ, वात तथा मलके बंधको तोडनेवाली है। वीर्यवर्द्धक, स्वरको

उत्तम करनेवाली और वमन, श्वास, शूल, खांसी, हृदयके रोग श्लीपद, शोथ, बवासीर आनाह, उदर और वातके रोगोंको नष्ट करनेवाली है। जिसमें अग्निका गुण अधिक होय तथा जो पदार्थ जलको सुखानेवाला हो और मलको रोकनेवाला हो, वह पदार्थ ग्राही कहाता है। सोंठ आदि पदार्थोंमें ये सम्पूर्ण गुण होनेके कारण ग्राहि कहे जाते हैं। यहां ऐसी शंका नहीं करनी कि "सोंठ मलबन्धको भेदनेवाली है। इसलिये यह ग्राही कैसे हो सकती है?" इसका उत्तर यह कि, सोंठमें मलबन्धको भेदनकी शक्ति है परन्तु मल निकालनेकी शक्ति नहीं है ॥ ४२--४७ ॥

अथ आर्द्रकस्य नामानि गुणाश्च।

आर्द्रकं शृङ्गबेरं स्यात्कटुभद्रं तथाऽऽर्द्रिका। आर्द्रिका भेदिनी गुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी मता ॥ ४८ ॥ कटुका मधुरा पाके रूक्षा वातकफापहा। ये गुणाः कथिताः शुण्ठयास्तेऽपि सन्त्यार्द्रकेऽखिलाः ॥ ४९ ॥ भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम्। अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥५०॥ कुष्ठपाण्डूवामये कृच्छ्रे रक्तपित्ते व्रणे ज्वरे। दाहे निदाघशरदोर्नैव पूजितमार्द्रकम् ॥ ५१ ॥

आर्द्रक, शृंगवेर, कटुभद्र, आर्दिका (कटूत्कटगुल्ममूल, मूलज, कन्दर, वर, महीज, अपाकृष्णक, चन्द्राख्य, राहुच्छन्न, सुशाकक, शार्ङ्ग, आर्द्रशाक) ये अदरकके संस्कृत नाम है। हिंदी--अदरक (ख)। बं०--आदा। म० आले। गु० आदु। क० अल्ल। तै०--अल्लं। ता०--इंजी। फा० जिंजवीलतर। अ०- जिंजिबिल रतब इं--जिंजरूट Gingerroot लै०--जिंजिबर औफिसिनेली Gingiber Ofticnale. अदरक, मलभेदक, भारी, तीक्ष्ण, गरम, अग्निको दीपन करनेवाला, चरापरा पाकमें मधुर, रूखा और वात तथा कफको नष्ट करनेवाला है। जो गुण सोंठमें हैं, वे सम्पूर्ण गुण अदरखमें भी हैं। भोजनसे प्रथम लवण और अदरख खाना सर्वदा पथ्य है। अग्निको दीप्तकर नेवाला, रुचिकारक और जीभ तथा कंठशोधक है। कोढ, पाण्डु, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, व्रण, ज्वर और दाहारोगवालेको तथा ग्रीष्म और शरदऋतुमें अदरक खाना वर्जित है ॥ ४८--५१ ॥

विवरण।

सोंठ और अदरक दोनों सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। गीले कंद अदरक है, वही सुखा लेनेसे सोंठ कही जाती है। अदरख गुल्म जातिकी औषधिका कंद है। इसके पत्ते बांसके समान होते हैं। नीचे वृक्षकी जडमें कंदकी गाठें होती हैं, उसकी अदरख कहते हैं। अदरखको दूधमें पकाकर सुखानेसे सोंठ हो जाती है। सोंठकी अनेक जाति हैं, परन्तु घाडकी सोंठ सबमें उत्तम होती है। इसमें तंतु (रेसे) अधिक होते हैं. वह अच्छी नहीं समझी जाती, मात्र--सोंठकी तथा अदरखी १ मासेसे ३ मासेतककी है ॥

अथ पिप्पल्या नामानि गुणाश्च।

पिप्पली मागधी कृष्णा वैदेही चपला कणा। उपकुल्योषणा शौण्डी कोला स्यात्तीक्ष्णतण्डुला ॥५२॥ पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादुपाका रसायनी। अनुष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्महरी लघुः ॥ ॥५३॥ पिप्पली रेचनी हन्ति श्वासकासोदरज्वरान्। कुष्ठप्रमेहगुल्मार्शःप्लीहशूलाममारुतान् ॥ ५४ ॥ आर्द्रा कफप्रदा स्निग्धा शीतला मधुरा गुरुः। पित्तप्रशमनी सा तु शुष्का पित्तप्रकोपिनी ॥५५॥ पिप्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी। श्वासकासज्वरहरा वृष्या मेध्याऽग्निवर्द्धिनी ॥५६॥ जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली। कासाजीर्णारुचि-

श्वासहृत्पाण्डुकृमिरोगनुत् । द्विगुणः पिप्पलीचूर्णाद्गुडोऽत्र भिषजांमतः॥५७॥

पिप्पली, मागधी, कृष्णा, वैदेही, चपला, कणा, उपकुल्या. ऊषणा, शौंडी, काला, तीक्ष्णतण्डुला, (चंचला तिक्ततण्डुला, कोरंगी, कोल्या, मगधा, कटी, एरंडा, कृकला, कटुबीजा, श्यामा, दन्तकफा) ये पीपलके संस्कृत नाम हैं । हिं०-पीपल म०-पिंपळी । बं०-विपुल । गु०-लेंडीपीपर । क०-हिप्पली । तै०-पिप्पुलु । ता०-तिप्पिलि । फा०-पिल पिल दराज । अ०-डारफिल फिल । इं-लाँगपीपर Long Pepper लै०-पिपरलोंगम PiperLodgum

पीपल-अग्निको दीप्त करनेवाली वीर्यको बढानेवाली पाकमें मधुर, रसायन, गरम नहीं, चरपरी, चिकनी, वात तथा कफको नष्ट करनेवाली, हलकी, रेचक और श्वास, खाँसी, उदर, ज्वर, कोढ, प्रमेह, गुल्म, बवासीर, प्लीहा, शूल तथा आमवातको नष्ट करनेवाली है। पीपल गीली हो तो स्निग्ध, कफकारक, शीतल, भारी, मधुर और पित्तको शांत करनेवाली है और जो सूखी हो तो पित्तको कुपित करती है। शहदके साथ पीपल खानेसे मेदा तथा कफको घटानेवाली और वीर्यको बढानेवाली है, बुद्धि और अग्निको करती है और श्वास, खाँसी और ज्वरको हरनेवाली है। जीर्णज्वर तथा मन्दाग्नि हो तो गुडके साथ पीपल खानेसे खाँसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृदयके रोग, पांडुरोग और कृमिरोग नष्ट होते हैं ! गुडके साथ पीपल खाय तो पीपलके चूर्ण दुगुना गुड लेवे, यह वैद्योंका सिद्धांत है ॥ ५२-५७ ॥

विवरण ।

यह एक प्रकारकी गुल्मजातिका तीक्ष्ण फल है। इसकी बेल चलती है, पत्ते पानके समान कोमल होते हैं, इसकी जडको पीपलामूल कहते हैं । मालवे आदि देशोंमें यह बहुत होती है वहांसे देश देशान्तरोंको जाती है, पीपल दोप्रकारकी होती है । एक छोटी जातिकी और दूसरी बडी जातिकी, इनमें छोटी अधिक गुणदायक है । पुरानी पीपल प्रयोगमें लानी चाहिये । मात्रा चार रत्तीकी लेनी उचित है ॥

अथ मरिचस्य नामानि गुणाश्च ।

मरिचं वेल्लजं कृष्णभूषणं धर्मपत्तनम् । मरिचं कटुकं तीक्ष्णं दीपनं कफवातजित् ॥ ५८ ॥ उष्णं पित्तकरं रूक्षं श्वासशूलकृमीन् हरेत् । तदार्द्रं मधुरं पाके नात्युष्णं कटुकं गुरु । किञ्चित्तीक्ष्णगुणं श्लेष्मप्रसेकि स्यादपित्तलम् ॥ ५९ ॥

मरिच, वेल्लज, कृष्ण, ऊषण, धर्मपत्तन, (पवित, श्याम, वेणुज, यवनप्रिय, वल्लीज, शुद्धकोलक, कोलवरिष्ठ, यवनेष्ट, वृत्तफल, शाकांग, वेणुक, कटुक, शिरोवृत्त, वार, कफविरोधि, मृष्ट, कृष्ण) ये काली मिरचके संस्कृत नाम हैं । हिन्दी-काली मिरच, गोलमिरच । बं०-मरिच । म०-मिऱ्यें । क०-मेणसु । गु०-गरि । तै०-मरियालु । फा०-फिलफिल अस्मद । अ०-फिलफिले अवयिद । ता०-मिळगु । इं०-ब्लेंकपेप्पर Black Pep pr. लै०=पाइपरनिगरम Prper Nigrum. काली मिरच-चरपरी, तीक्ष्ण, अग्निको दीपन करनेवाली है । कफ तथा वातको नष्ट करनेवाली, गरम, पित्तकारक, रूखी और श्वास, शूल तथा कृमीको हरनेवाली है । हरी काली मिरच-पाकमें मधुर, बहुत गरम नहीं, चरपरी, भारी, कुछ तीक्ष्णता युक्त, कफनिःसारक और पित्तकारी नहीं हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

विवरण ।

मिरचकी बेल होती है, पत्ते नागरबेल अर्थात् पानोंके समान नोकदार होते हैं । फल गोल छोटे छोटे झुमकेमें पोईके फलोंके समान आते हैं । कच्ची अवस्थामें इसके फल हरे रंगके और बहुत चरपरे नहीं होते और पकनेपर अत्यन्त तीक्ष्ण होजाते हैं । यह मिरच दो प्रकारकी होती है, एक पूर्वी दूसरी दक्षिणी । इनमें

दक्षिणी अत्यन्तगुणदायक है। बहुत लोग सफेद मिरचोंको दक्षिणी नहीं है, वह तो पूर्वी मिरचें धोनेसे सफेद हो जाती हैं और दक्षिणी मिरचें तो ऊपरसे भूरी और भीतरसे हरियाई लिये हुए होती हैं और जिनमें तीक्ष्णता अधिक होती है उनको दक्षिणी जानना। मिरचकी बेल विना वृक्षके आश्रय नहीं चल सकती। इनकी मात्रा दो रत्तीसे लेकर एक मासे तक लेना ॥

अथ त्रिकटुकनामलक्षणगुणाः।

विश्वोपकुल्या मरिचं त्रयं त्रिकटु कथ्यते। कटुत्रिकं तु त्रिकटु त्र्यूषणं व्योष उच्यते ॥६०॥ त्र्यूषणं दीपनं हन्ति श्वासकासत्वगामयान्। गुल्ममेहकफस्थौल्यमेदःश्लीपदपीनसान् ॥ ६१ ॥

सोंठ पीपल और मिरच इन तीनोंको एकत्र मिलानेसे त्रिकुटा कहा जाता है। कटुत्रिक, त्रिकुट, त्र्यूषण और व्योष ये त्रिकुटके संस्कृत नाम हैं, त्रिकुटा अग्निको दीपन करनेवाला और श्वास, खांसी, त्वचाके रोग, गुल्म, प्रमेह कफ, स्थूलता, मेद, श्लीपद और पीनस रोग इनको नष्ट करता है॥ ६० ॥ ६१ ॥

अथ पिप्पलीमूलस्य नामानि गुणाश्च।

ग्रन्थिकं पिप्पलीमूलमूषणं चटकाशिरः। दीपनं पिप्पलीमूलं कटूष्णं पाचनं लघु ॥ ६२ ॥ रूक्षं पित्तकरं भेदि कफवातोदरापहम्। आनाहप्लीहगुल्मघ्नं कृमिश्वासक्षयापहम् ॥ ६३ ॥

ग्रन्थिक, पिप्पलीमूल, ऊषण, चटकाशिर, (मूल, कणामूल चटिका, सर्वग्रंथिक, ग्रंथीक, षड्ग्रन्थि, शिर, कटुग्रंथि, कटुमूल, कटूषण, सर्वग्रंथि, पत्राढय, विरूप, शोषसम्भव, सुगंधि, ग्रंथिल, मागध, मागधीजटा) ये पीपलामूलके संस्कृत नाम हैं हिंदी–पीपलामूल। बं०–पिपलमूल। म०–पिंपलमूल। गु०–पीपरीमूल। क०–हिप्पीलयवेरू। फा०–फिल्रू फिल्रू मोय। अ०–असलुल फिल्रू फिल। तै०–पिपलीवेरू। इं०–पेपररूट Piperroot लै०–पैपर औफिसिनरम Piper Officinarum पीपलामूल–दीपन चरपरा, गरम, पाचन, हलका, रूक्ष, पित्तकारक, मलभेदक और कफ, वात, उदररोग, आनाह, प्लीहा, गुल्म, कृमि, श्वास तथा क्षयको नष्ट करने वाला है॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ चतुरूषणस्य लक्षणगुणाः।

त्र्यूषणं सकणामूलं कथितं चतुरूषणम्। व्योषस्यैव गुणाः प्रोक्ता अधिकाश्चतुरूषणे ॥ ६४ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल और पीपलामूल इन चारोंको चतुरूषण कहते हैं। चतुरूषणमें उपरोक्त त्रिकुटे हीके गुण अधिक रहते हैं॥६४॥

अथ चव्यनामगुणाः।

भवेच्चव्यं तु चविका कथिता सा तथोषणा। कणामूलगुणं चव्यं विशेषाद्गुदजापहम् ॥ ६५ ॥

चव्य, चविका, ऊषण (चव्रण, उच्छिष्ट, कोल, वल्लिका, चव्या, चविक, चवी, चवि, पुरन्दर, तेजोवती, कोला, नाकुली, चव्यक, वशिर, गन्धनाकुली, वल्ली, कोलवल्ली, कोल, कुक्कुटमस्तक, कणावल्ली, कृकर, कुटिलसप्तक, कटुका और कटुपाकिनी) ये चव्यके संस्कृत नाम हैं। हिन्दी–चव्य। बं०–चईगाछ। म० गु०–चवक। क०–चव्य। तै०–सेवासु, चकार्ण। लै०–चविकारक्सबर्घी पाइपर चव Ch-vica Rax Burghi Piper Chaua. चव्यमें भी पिपलामूलके सदृश गुण हैं और विशेष करके यह गुदाके रोगोंको नष्ट करती है॥ ६५ ॥

विवरण।

चव्यका पेड–क्षुप जातिका होता है। पत्ते केलेकेसे बडे २ होते हैं, परन्तु कोमल और पतले होते हैं और इसके फलको गजपीपल कहते हैं। यह सर्वत्र भारत वर्षमें प्रसिद्ध है। मात्रा चार मासेकी लेनी चाहिये॥

अथ गजपिप्पल्या नामानि गुणाश्च ।

चविकायाः फलं प्राज्ञैः कथिता गजपिप्पली । कपिवल्ली कोलवल्ली श्रेयसी वशिरश्च सा ॥ ६६ ॥ गजकृष्णा कटुर्वातश्लेष्महृद्वह्निवर्धिनी । उष्णा निहन्त्यतीसारं श्वासकण्ठामयक्रिमीन् ॥ ६७ ॥

विद्वान् लोग चव्यके फलकोही गजपीपल कहते हैं । कपिवल्ली, कोलवल्ली, श्रेयसी, वशिर, (गजकृष्णा, करिपिप्पली, इभकणा, कपिल्लिका, कपिवल्लिका, गजाह्वा, इभीषणा, कञ्जपिप्पली, गजोषणा, चव्यफल, चव्यजा, छिद्रवैदेही; दीर्घग्रंथि, तेजसी, वर्तुली और स्थूलवैदेही) ये गजपीपलके संस्कृत नाम हैं । हिन्दी–गजपीपल । बं०–गजपिपुल । गु०–मीरबेलीला, म०–गजपिंपली । क०–गजहिप्पली । तै०–पेद्दपिप्पलु लै०–स्केंडापसस आफिसीनेलिस Scendapsus Officinalis. गजपीपल–चरपरी, वातकफनाशक, अग्निको दीपन करनेवाली और गरम है तथा अतीसार, श्वास, कंठके रोग और कृमिरोगको नष्ट करने वाली है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

अथ चित्रकस्य नामानि गुणाश्च ।

चित्रकोऽनलनामा च पीठो व्यालस्तथोषणः । चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत्पाचनो लघुः ॥ ६८ ॥ रूक्षोष्णो ग्रहणीकुष्ठशोथार्शःकृमिकासनुत् । वातश्लेष्महरो ग्राही वातार्शःश्लेष्मपित्तहृत् ॥ ६९ ॥

चित्रक, अमलनामा, (अग्निसंज्ञक सम्पूर्ण नाम चीतेके हैं) पीठ, व्याल, ऊषण, (पाठी, कृष्णवर्त्मा, जातवेदा, बर्हि, विभाकर, विभावसु, बृहद्भानु, वैश्वानर, शिखावान्, शुचि, शुष्मा, सप्तार्चि, हिमाराति, हिरण्यरेता, अग्निशार्दूल, चित्र, पाठी, कुट, शिखी, कृशानु, दहन, व्याल, ज्योतिष्क, पालक, अनल, दारुण, वह्नि, पावक, शम्बर, द्वीपी, चित्राङ्ग, दाहक, शूर, पाठीन, दारुण, अग्निक, वल्लरी, पाली, लोहिताङ्ग, हुतभुक् माली, वह्निनामा) ये चीतेके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी–चीता, चित्रक । बं०–चिता । म०–चित्रक । गु०–चित्रो । ता० क०–चित्रमूलं । फा०–बेखबरंदा । अ०–शितरङ्ग । तै०–चित्रमूलमु । लै०–प्लंबेगोरोजिआ प्लंबेगोझिलेनिका Plumbagorosia, Plumbago Zeylanica. चीता–पाकमें चरपरा, अग्निवर्धक, पाचन, हलका, रूक्ष, गरम और ग्राही है तथा संग्रहणी, कोढ, सूजन, बवासीर, कृमि, खांसी वात, कफ और पित्तको नष्ट करनेवाला है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

विवरण ।

चीतेका छोटा पेड होता है, पत्ते गोल होते हैं । सफेद, काले और लाल तीन प्रकारके फूल आते हैं । सफेद फूलवाला बहुत गरम होता है । उसको पानीमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे चकत्ते पड जाते हैं, इसी कारण इसका नाम वैद्य लोगोंने अग्नि रक्खा है, इसकी मात्रा एक मासेसे अधिक कभी देनी नहीं चाहिये ॥

अथ पञ्चकोलस्य लक्षणगुणाः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । पञ्चभिः कोलमात्रं यत्पञ्चकोलं तदुच्यते ॥ ७० ॥ पञ्चकोलं रसे पाके कटुकं रुचिकृन्मतम् । तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं दीपनं कफवातनुत् ॥ गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥ ७१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इन पांचोंको एक एक कोल (आठ आठ मासे) ले, इसको पंचकोल कहते हैं । पञ्चकोल रसमें तथा पाकमें चरपरा, रुचिकारी, तीक्ष्ण, गरम, पाचक, अग्निको दीपन करनेवाला और कफ तथा वातनाशक, श्रेष्ठ, पित्तको कुपित करनेवाला है तथा गुल्म, प्लीहा, उदर, आनाह

और शूल इन रोगोंको नष्ट करनेवाला है तथा पित्तको प्रकुपित करता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथ षड्रूषणस्य लक्षणगुणाः ।

पञ्चकोलं समरिचं षड्रूषणमुदाहृतम् । पञ्चकोलगुणं तत्तु रूक्षमुष्णं विषापहम् ॥७२॥

पंचकोलमें मिरच मिला देनेसे षड्रूषण कहा जाता है षड्रूषण-पंचकोलके सदृश गुणोंवाला, रूक्ष, गरम और विषको हरनेवाला है ॥ ७२ ॥

अथ यवान्याः नामानि गुणाश्च ।

यवानिकोग्ररान्धा च ब्रह्मदर्भाऽजमोदिका । सैवोक्तादीप्यका दीप्या तथा स्याद्यवसाह्वया ॥ ७३ ॥ यवानी पाचनी रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुक लघुः । दीपनी च तथा तिक्ता पित्तला शुक्रशूलहृत् । वातश्लेष्मोदरानाहगुल्मप्लीहकृमिप्रणुत् ॥ ७४ ॥

यवानिका, उग्रगन्धा, ब्रह्मदर्भा, अजमोदिका, दीप्यका, दीप्या, यवाह्वा, (यवानी, भूतिक, यवाग्रज, भूकदम्बक, क्षेत्रयवानिका, यवसाह्व, दीपनी, वातारि, यवंज, दीपनीय, शूलहन्त्री, यमानिका. उग्रा, तीव्रगन्धा, तीक्ष्णगन्धा, हृद्या, अग्निवर्धिनी) ये अजवाइनके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०-अजवाइन, अजमायन । ब०-यमानी, योयाम् म०-ओंधा । गु -यवन, जवाइन, अजमो । क०-ओडू । तै० वामु । ता०-ओमम् । फा०-नानरख्वा । अ०-बुरानीकतिया । इं०-विशप्स बिडसीड्ड Bishops weedseed. लै०-टेकोटिस अजवान Ptychotis ajwan अजवायन-पाचक, रुचिकारी, तीक्ष्ण, गरम, चरपरी, हलकी, अग्निको दीपन करनेवाले, कडवी, पित्तकारक और वीर्यशूल, वात, कफ, उदर, आनाह, गुल्म, प्लीहा तथा कृमि इनको नष्ट करनेवाली है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

विवरण ।

अजवायनके क्षुप चार चार फुट ऊँचे होते हैं । किसान लोग बहुत खेतोंमें बोते हैं । पत्ते छोटे छोटे हालोंकेसे कटीले होते हैं, डालियों पर छत्तेसे आते हैं, उसपर सफेद सफेद फूल लगते हैं, जब वह छत्ते पक जाते हैं, तब उनमें अजवायन उत्पन्न होती है । उनको कूटनेसे छोटे छोटे दानेसे निकलते हैं, उनको अजवायन कहते हैं ॥

अथ अजमोदाया नामानि गुणाश्च ।

अजमोदा खराश्वा च मयूरो दीप्यकस्तथा । तथा ब्रह्मकुशा मोक्ता कारवी च समस्तका ॥ ७५ ॥ अजमोदा कटुस्तीक्ष्णा दीपनी कफवातनुत् । उष्णा विदाहिनी हृद्या वृष्या बलकरी लघुः । नेत्रामयकफच्छर्दिहिक्का वस्तिरुजो हरेत् ॥ ७६ ॥

अजमोदा, खराश्वा, मयूर, दीप्यक, ब्रह्मकुशा, कारवी, समस्तका, (लोचमस्तका, खराह्वा, बस्तमोदा, उग्रगन्धा, मर्कटी, मोदा, गन्धदला, हस्तिकाबरी, गन्धपत्रिका, मायूरी, शिखिमोदा, मोदाढ्या, वह्नि, दीपिका, ब्रह्मकोशी, विशाली, हयगंगा, फलमुख्या और विशल्या) ये अजमोदाके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०-अजमोद । बं०-वनयमानी । म०-अजमोदा । गु०-वोडी अजमोद । क०-अजमोद । तै०-आजामौदा । फा०-करपत । अ०-हबुलककुकेरफस । इं०-सेलरीसीड Celery-seed लै०-एप्यम ग्रेवियोलेन्स Apium Gravoc lens । अजमोद चरपरा, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, कफ तथा वायुको नष्ट करनेवाला, गरम, दाह, कारक, हृदयको प्रिय, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, हलका और नेत्ररोग, कफ, वमन, हिचकी, तथा वस्तिगत (मसानेके) रोगोंको हरनेवाला है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

विवरण ।

अजमोदके क्षुप भी छोटे छोटे अजवायनके समान होते हैं । माली लोग खेतमें बोते हैं। इसकी शाखाओंपर बडे बडे छत्तेस लगते हैं, उनपर सफेद सफेद फूल लगते हैं छत्तोंके पकनेपर उनमें जो दाने उत्पन्न होते हैं उन छत्तोंको कूटनेसे उनके दाने अलग अलग हो जाते हैं उसको अजमोद कहते हैं, परन्तु वे दाने अजवायनके दानोंसे बडे होते हैं ॥

अथ पारसीकयवानीगुणाः ।

पारसीकयवानी तु यवानीसदृशी गुणैः। विशेषात्पाचनी रुच्या ग्राहिणी मादिनी गुरुः ॥ ७७ ॥

पारसीकयवानी, यावनी, तीव्रा, तुरुष्का, मदकारिणी, दीप्य, श्याम, कुबेराख्य, मादक और मदकारक ये खुरासानी अजवायनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दीमें- खुरासानी अजवायन । बं०— खुरासानी योयान् । गु०-करमाणी छुहारी अजमोद । म०-किरमाणी ओवा । तै०-खुरसाण वायू । ता०-खोरसनी ओमम, शित्तामुट्टि । क०-तुख्म वजे । अ०-बजरूल बंज अबीद शीकरान् । इं०-हेनबन Henbane. लै०-अर्टिमीसिया मारिटिमा Artemisia Maritma खुरासानी अजवायनके गुण अजवायनके सदृश ही है । यह विशेषकरके पाचन रुचिकारी, ग्राही, मादक और भारी है॥७७॥

विवरण ।

'खुरासानी अजवायन खुरासानके जंगलमें उत्पन्न होती है, इसके क्षुप और पत्ते अजवायनसे बडे होते हैं. इसकी शाखाओंमें भी छत्ते आते हैं और उन्हीं छत्तोंपर सफेद सफेद फल लगते हैं । जब वे छत्ते पक पकके सूख जाते हैं, तब पठान लोग उन छत्तोंको तोड तोडकर लाठियोंसे कूटते हैं; उससे अजवायनसे दूने बडे दाने निकलते हैं, उनका नाम खुरासानी अजवायन है, परन्तु उसके खानेसे थोडा थोडा नशा भी होता है ॥

१ वह अजवायनसे भी ज्यादा उष्ण हैं ।

अथ शुक्लजीरकृष्णजीरककालिकानां नामानि गुणाश्च ।

जीरको जरणोऽजाजी कणास्याद्दीर्घजीरकः।कृष्णजीरः सुगन्धश्च तथैवोद्गारशोधनः ॥७८॥ कालाजाजी तु सुषवी कालिका चोपकालिका । पृथ्वीका कारवी पृथ्वी पृथु कृष्णोपकुञ्चिका ॥ उपकुञ्ची च कुञ्ची च बृहज्जीरक इत्यपि ॥ ७९ ॥

जीरक, जरण, अजाजी; कणा, दीर्घजीरक, (जीर, दीप्यक, जरणा, जीर्ण, दीप्य, जीरण, अजाजिका, वह्निसख, मागध और दीपक) ये जीरेके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०--जीरा, सफेद जीरा । बं०-शुक्ल जीरा, सादाजीरा । म०--जिरें, पांढरे, जीरें । गु०--धोलुजीरूँ, सादुजीरूँ । क०--विलीय जीरगे, जीरिगे । तै०--जीलकारा, जिलकरा । ता०--शीरगम्, शीराम् । इं०--क्युम्मिनन सीड Cumminon seed. लै० क्युमेनन सेमिनम् Cumminum Cyminum.

कृष्णजीर, सुगन्ध, उद्गारशोधन, (कृष्णजाजी, जरणा, सुगन्धा, कालजीरक, वर्षाभाली, हृद्या, उद्गारशोधिनी, कृष्णा, जरणा, बहुगंधा, मेदिनी, पटु, भेदनिका, रुच्या, नीला नीलकणा, काश्मीरजीरका, वान्तिशोधिनी, कालमेषी, सुगंधा, सुगंध; कृष्णजीरक और उद्गारशोधक) ये काले जीरेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--कालाजीरा, कृष्णजीरा, । बं--कालजीरें । म०--शहाजिरें । गु०--शाजीरूं। तै०--नल्लजीर । क०--करिजीरके । ईं०--ब्लाकूकारवे सीड Black Caraveyseed लै०--केरनेग्रम् Carum Nigrum फा०--जिरेश्याह । अ०--कमुन् किरमानी ॥

कालाजाजी, सुषवी, कालिका, उपकालिका पृथ्वीका, कारवी, पृथ्वी, पृथुकृष्णा, उपकुंचिका, उपकुन्ची, कुन्ची, बृहज्जीरक, (पृथिवी, पृथुका, पृथुः कुंचिका, स्थूलजीरक, दिव्या, काला, स्थूलकणा, मनोज्ञा, जारिणी, जीर्णा, तरुणी, पतिव्रता, उपकुंचि, भेषज कृष्णा, जरणा, शाली, बहुगंधा, कोलिका, उपकोलिका, ये कलौंजीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--कलौंजी । बं०--मोटा केले जीरे । म०-कालें जिरें । गु०-कलौंजीजीरु । क०-करि दोड्डु जीरिगे । तै०-नल्लजीरा कारा । फा०-शोनिझ्झु श्यादाने । अ०-हेबतुस्सोदा । इं०-स्मॉल फेनल फ्लॉवर Small Fennel Flower लै०-निगेल्ला सेटिवा Nigella Sativa ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

विवरण ।

कलौंजीकी खेती पूर्वके देशोंमें अधिकतासे होती है। इसका क्षुप छोटा होता है, पत्ते लम्बे लम्बे मूलीकेसे होते हैं, बीचमें एक लम्बी सांठ निकलती है, उसपर सफेद फूल आते हैं, फूलोंमेंसे दो दो तीन तीन अंगुल लम्बी फलियां निकलती हैं, उन फलियोंमेंसे काले काले रंगके छोटे छोटे दाने निकलते हैं, उसीको कलौंजी कहते हैं ॥

जीरकत्रितय रूक्षं कटूष्णं दीपनं लघु ॥ ८० ॥ संग्राहि पित्तलं मेध्यं गर्भाशय विशुद्धिकृत्। ज्वरघ्नं पाचनं वृष्यं बल्यं रुच्यं कफापहम्। चक्षुष्यं पवनाध्मान-गुल्मच्छर्यतिसारहृत् ॥ ८१ ॥

तीनों प्रकारके जीरे—रूक्ष चरपरे, गरम, अग्निप्रदीपक, हलके, ग्राही, पित्तकारक, मेधाको हितकारी, गर्भाशयको शुद्ध करनेवाले ज्वरनाशक, पाचक, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, रुचिकारी, कफनाशक, नेत्रोंको हितकारी और आयु, आध्मान, गुल्म, वमन तथा अतीसारको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ८० ॥ ८१ ॥

विवरण ।

जीरा क्षुप जातिकी वनस्पति है और सब स्थानोंमें प्रसिद्ध है। जीरा दो प्रकारका होता है; एक काला और दूसरा सफेद। काला जीरा काबुल देशमें होता है। इसके क्षुप छोटे छोटे होते हैं और खेतोंमें बोये जाते हैं। पत्ते, छोटे छोटे, सोयेके समान छत्ते आते हैं, उन्हींमें जीरा उत्पन्न होता है। काळाजीरा रंगका श्याम और छोटा होता है ॥

अथ धान्यकस्य नामानि गुणाश्च ।

धान्यकं धानकं धान्यं धाना धानेयकं तथा। कुनटी धेनुका छत्रा कुस्तुम्बुरु वितुन्नकम् ॥ ८२ ॥ धान्यकं तुवरं स्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु। तिक्तं कटूष्णवीर्यश्च दीपनं पाचनं स्मृतम् ॥ ८३ ॥ ज्वरघ्नं रोचकं ग्राहि स्वादुपाकि त्रिदोषनुत्। तृष्णादाहवमिश्वासकासकार्श्य-क्रिमिप्रणुत्। आर्द्रन्तु तद्गुणं स्वादु विशेषात्पित्तनाशितत् ॥ ८४ ॥

धान्यक, धानक, धान्य धाना, धानेयक, कुनटी, धेनुका, छत्रा, कुस्तुंबुरु, वितुन्नक, (धनिक, धन्याक, धन्य, धनीयक, धन्या, तुम्बुरु, धान्याक, धनेयक, धानेक, धनिका, सुगन्धि, शाकयोग्य, सूक्ष्मपत्र, जनप्रिय, धान्यबीज, बीजधान्य वेधक, धेन्निका, धना, अल्लका, हृद्यगंधा, वशण, धानी और निःसार) ये धनियेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-धनियाँ । बं०-धने । गु०-धणा । म०-धणे । क०-कोथुबरी । तै०-कोथुमिलु । ता०-कोत्तमल्लि विरै । फा०-तुख्मेकस्नीज । अ०-कुजवर । इं०-कोयांडिर सीड Coriander seed. लै०-कोयांड्रमसेटाइवम् Coriandrum sativum. गुणधनियाँ कसैला, स्निग्ध, वीर्यके लिये उत्तम नहीं, मूत्र, कारक, हलका, कडवा, चरपरा, उष्णवीर्य, दीपन, पाचक, ज्वरनाशक, रुचिकारी, ग्राही, पाकमें मधुर,

त्रिदोषनाशक और तृष्णा, दाह, वमन, श्वास, खाँसी, कृशता तथा कृमिको नष्ट करनेवाला है । गीले धनियेके गुण भी सूखेके सदृशही हैं, परन्तु विशेष करके गीला धनियाँ मीठा और पित्तनाशक है ॥ ८२--८४ ॥

विवरण ।

धनियेये क्षुप खेतोंमें बोयेजाते हैं, इसके पत्ते कटीले और कोमल होते हैं, इसकी डालियोंपर छत्तेसे लगते हैं, पकनेपर उनमेंसे धनियेके गोल गोल दाने मूँगके समान निकलते हैं, सब देश देशान्तरोंमें धनियेका अधिकतासे व्यवहार कियाजाता है । इसकी मात्रा दो मासेसे लेकर छः मासे पर्यन्त है ॥

शतपुष्पामिश्रययोर्नामानि गुणाश्च ।

शतपुष्पा शताह्वा च मधुरा कारवी मिसिः । अतिलम्बी सितच्छत्रा सहिता छत्रिकाऽपि च ॥ ८५ ॥ छत्रा शालेयशालीनौ मिश्रेया मधुरा मिसिः । शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृद्दीपनी कटुः ॥ ८६ ॥ उष्णा ज्वरानिलश्लेष्मव्रणशूलाक्षिरोगहृत् । मिश्रेया तद्गुणा प्रोक्ता विशेषाद्योनिशूलनुत् ॥ ८७ ॥ अग्निमान्द्यहरी हृद्या बद्धविट्कृमिशुक्रहृत् । रूक्षोष्णा पाचनी कासवमिश्लेष्मानिलान् हरेत् ॥ ८८ ॥

शतपुष्पा, शताह्वा, मधुरा, कारवी, मिसी, अति लम्बी, सितच्छत्रा, संहिता, छत्रिका, छत्रा, शालेय और शालीनीये सौंफके संस्कृत नाम हैं । मिश्रेया, मधुरा और मिसी ये सोयाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सौंफ, सोया । बं० -मौरी, शुल्फा । म०--बडी शोफ, बाळंत शोफ । गु०--वीरयाली, सवा । क०--कासव्यासेगे, सज्जसिगे । त०--पेद्दजिलकुरह सौंफ, पेद सदापचेटुसदापा । फा०--वादियान तुख्मेशूत । अ०--एजियानज, शीतव्वतवजरूल । इं०-फेनल: सीड Feuelseed डिल-सीड Dillseed लै०--फेनिक्युलमवल्गरे Fanicum vulgare एनिथं ग्रेवियोलेन्स Anetham Graveyolencगुण-सौंफ हलकी, तीक्ष्ण, पित्तकारक, दीपन, चरपरी, गरम और ज्वर, मात, कफ, व्रण, शूल तथा नेत्रके रोगोंको नष्ट करती है । सोयेके भी ऐसे ही गुण हैं, परंतु सोया विशेष करके योनिका दर्द, अग्निकी मन्दता कृमि तथा वीर्यको हरनेवाला है । हृदयको प्रिय, मलकी बाँधनेवाला, रूखा, गरम, पाचक और खाँसी, वमन, कफ, तथा वायुको नष्ट करनेवाला है ८५-८८॥

विवरण ।

सौंफ सोयेके समान खेतोंमें अधिकतासे बोई जाती है और सोयेहीके समान क्षुप और पत्ते होते हैं, परंतु नई सौंफका रंग हरा होता है । इसकी मात्रा एक मासेसे लेकर छः मासे तक देनी चाहिये ॥

सोयेके भी छोटे छोटे क्षुप खेतोंमें बोये जाते हैं, पत्ते माजूफलके समान कटीले और छोटे छोटे होते हैं, उन पत्तोंका शाक बहुत अच्छा बनता है डालियों पर फूलोंके छत्तेसे लगते हैं, पक जानेपर उन्हीं छत्तोंमेंसे सोयेके बीच कलझवांपन लिये सौंकेके समान निकलते हैं ॥

अथ मेथीबनमेथीनामगुणाः।

मेथिका मेथिनी मेथी दीपनी बहुपत्रिका। बोधिनी बहुबीजा च जातिर्गन्धफला तथा ॥ ८९ ॥ वल्लरी चक्रिका मन्था मिश्रपुष्पा च कैरवी। कुञ्चिका वहुपर्णी च पित्तजिद्वायुनुद्द्विधा॥९० ॥ मेथिका वातशमनी श्लेष्मघ्नी ज्वरनाशिनी । ततः स्वल्पगुणा बल्या वाजिनां सा तु पूजिता ॥ ९१ ॥

मेथिका, मेथिनी, मेथी, दीपनी, बहुपत्रिका, बोधिनी बहुवोजा, जाति, गंधफला, वल्लरी, चक्रिका, मंथा, मिश्रपुष्पा, कैरवी,

कुंचिका और बहुपर्णी ये मेथी और वनमेथीके संस्कृत नाम है ॥

हिं--बं०--गु०--इन सब भाषाओंमें मेथी ही कहते हैं । क०--मेथय । ते०--मेतुल । ता०--वेन्द यम् । इं०-- फेनुग्रीक Fenugreek लै०--फ्रीगोनलाफकनम अर्थक्स Frigonella Facnum Arthe गुण--मेथी वात कफ और ज्वरनाशक है । वनमेथी इसकी अपेक्षा गुणोमें अल्प हैं, परन्तु घोडोंके लिये परमोत्तम है ॥ ८९--९१ ॥

विवरण ।

मेथी सम्पूर्ण पृथ्वीमें विख्यात है, इसका क्षुप छोटासा होता है, यह खेतोंमें अधिकतासे बोई जाती है, पत्ते गोल और छोटे होते हैं, एक हरे रंगकी बाल निकलती है और उसपर पीले पीले फूल आते हैं, उसमें फलियाँ लगती हैं, उन फलियोंमेंसे जो दाने निकलते हैं, उसीको मेथी कहते हैं मेथीके पत्तोंकी भाजी बहुत अच्छी बनती है ॥

अथ चन्द्रिकानाम गुणाः ।

चन्द्रिका चर्महन्त्री च पशुमेहनकारिका । नन्दिनी कारवी भद्रा वासपुष्पा सुवासरा ॥ ९२ ॥ चन्द्रशूरं हितं हिक्कावातश्लेष्मातिसारिणाम् । असृग्वातगदद्वेषि बलपुष्टिविवर्द्धनम् ॥ ९३ ॥

चन्द्रिका, चर्म्महन्त्री, पशुमेहनकारिका, नन्दिनी, कारवी, भद्रा, वासपुष्पा, सुवासरा, (अशालिक, कालमेषा, दरकृष्ण, दीर्घबीज, रक्तराजी और प्रयोजना) ये चन्द्रशूर (हालों) के संस्कृत नाम हैं ॥

हि०--हालों । बं०--हालिम । म०--अहालीम। गु०--अशेलियो । फा०--हालमतुख्म । अ०--हबरशाद बजरुल जिर जिर । इं०--कॉमन क्रेस Common Cress लै० -लेपीडियम सेटीवम् Lepidium Sativum. गुण--चन्द्रशूर (हालों) हिचकी· वात, कफ, अतिसार, रुधिर तथा वायुके रोगोंमें हितकारी हैं, बलवर्धक और पुष्टिकारक है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

विवरण ।

हालोंके क्षुप खेतोंमें बोये जाते हैं, देखनेमें धनियेके समान पत्ते और पेड होते हैं, फूल आसमानी रंगके होते हैं, बीज काले और छोटे होते हैं, शाक बहुत अच्छा बनता है ।

अथ चतुर्बीजगुणाः ।

मेथिका चन्द्रशूरश्च कालाऽजाजी यवानिका । एतच्चतुष्टयं युक्तं चतुर्बीजमिति स्मृतम् ॥ ९४ ॥ तच्चूर्णं भक्षितं नित्यं निहन्ति पवनामयम् । अजीर्णं शूलमाध्मानं पार्श्वशूलं कटिव्यथाम् ॥ ९५ ॥

मेथी, हालों, कालजीरा और अजवाइन इन चारों मिलेहुए द्रव्योंको चतुर्बीज अर्थात् चारदाना कहते हैं । चतुर्बीजेका चूर्ण सदैव खानेसे वायुके रोग, अजीर्ण, शूल, अफरा, पसलीका शूल और कमरकी पीडा, नष्ट होती है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

अथ हिंगुनामगुणाः ।

सहस्रवेधि जतुकं बाह्लीकं हिंगु रामठम्। हिङ्गूष्णं पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वातबलासहृत् । शूलगुल्मोदरानाहकृमिघ्नं पित्तवर्द्धनम् ॥ ९६ ॥

सहस्रवेधि, जतुक, बाह्लीक. हिंगु, रामठ, (शूलद्विट्, जतु, सूदाङ्ग, सूपधूपन, हिंगुक, पिण्याक, वाह्नी, गृहीणी, मधुरा, केसर, जातुक, रमठ, ध्वनि, शूलहृत्. उग्रगन्ध, भूतारि, जन्तुनाशन, रक्षोघ्न, उग्रवीर्य, अगूढगन्ध, जरण, भेदन और दीप्त) ये हींगके संस्कृत नाम है ॥

हिं०--हींग । बं०--हिंगू । म०--हिंग । गु०--हिंग । क०--लेंमु । तै०--इंगुवा फा०--अंगुझ, देखते अंगुझ खालीस । अ०--हिलसीत । ता०--पेरुङ्गायम । इं०- आस्साफोयटीडा Assafoetida लै०-- फेरुलानर्थिक्स Ferula Narthex नार्थेक्स आस्साफिटिडा Narthex Assafoetida हिंग--गरम, पाचन, रुचि-

कारी, तीक्ष्ण और वायु, कफ, शूल, गुल्म, उदर, आनाह तथा कृमि इनको नष्ट करनेवाली और पित्तवर्धक है ॥ ९६ ॥

विवरण।

हींगके वृक्ष ईरान और खन्धार आदि देशोंमें होते हैं। इसके पत्ते और छालमें चीरा देनेसे दूध निकलता है, वह रखनेसे गोंदके समान जम जाता है उसको पत्तोंमें अथवा बकरेकी खालमें रखकर सुखा लेते हैं। इसीको हींग कहते हैं। ये हींग कई प्रकारकी होती हैं; परन्तु सबमें उत्तम हीरा हींग होतीहै, उसीको वैद्य लोग काममें लाते हैं। हींगको-प्रायःपठान लोग काबुल, हिरात और खुरसानसे बेचनेको लाते हैं। कोई कोई धूर्त्त लहसुन और चनेका चूर्ण मिलाकर उसमें हींगका जल डालकर नकली हींग बनाते हैं, उसको लसुनिया हींग कहते हैं। शाकादिक पदार्थोंमें उस हींगको डालनेसे कुछ भी स्वाद नहीं आता। और भी कई प्रकारसे नकली हींग बनाई जाती है ॥

अथ वचानामानि गुणाश्च।

वचोग्रगन्धा षड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका। क्षुद्रपत्री च मङ्गल्या जटिलोग्रा च लोमशा ॥ ९७ ॥ वचोग्रगन्धा कटुका तिक्तोष्णा वान्तिवह्निकृत्। विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोधिनी। अपस्मारकफोन्मादभूतजन्त्वनिलान् हरेत् ॥ ९८ ॥

वचा, उग्रगन्धा, षडग्रन्धा, गोलोमी, शतपर्विका, क्षुद्रपत्री, मंगल्या, जटिला, उग्रा, लोमशा,(विजया, उग्र,रक्षोघ्नी,वच्या, काङ्गा, भद्रा, इक्षुपर्णी, बोधनीया, भूतनाशिनी,श्लेष्मघ्नी, तीक्ष्णपत्र और इक्षुपत्रिका) ये वचके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-वच। बं०-बच। म०-वेखंड। गु०-घोडा वच। क०--वच। तै०--वासा। ता०--वशंम्बु। फा०,सोसनजर्द। अ०--उदलबुज। इं०स्वीट फ्लागरूट Sweet flagroot. लै०--एकोरस केलेमस Achorus Calamus-गुण--वच उग्रगन्धयुक्त है। चरपरी और कडवी है। गरमी, वमन तथा अग्निको अधिक करनेवाली है, मलमूत्रको शुद्ध करनेवाली और मलादिका बन्ध, अफारा (पेटका फूलना), शूल, अपस्मार (मृगी), कफ, उन्माद, भूत, जन्तु, (क्रिमि) और वातको हरनेवाली है।।९७।।९८

विवरण।

वचके गुल्म अनूपदेश और रेतीली भूमिमें अधिकतासे होते हैं, पत्ते ईखके समान लम्बे लम्बे होते हैं और इसपर फूल नहीं आता जडकी लकडीको वच कहते हैं। रंग इसका भूरा होता है, इसकी गन्धसे चित्तमें ग्लानि उत्पन्न होती है। उत्तम जातिकी वच कलकत्तेसे आती है। ये वचकी अनेक जातियाँ हैं परंतु सफेद वच विशेष करके औषधिके प्रयोगमें डाली जाती है, घुडवच, खुरासानी बच, सफेद वच, महा-भरीवच, कुलिंजन और अकरकरा ये सब वचहीकी जातिमें हैं ॥

अथ पारसीकवचा।

पारसीकवचा शुक्ला प्रोक्ता हैमवतीति सा। हैमवत्युदिता तद्वद्वातं हन्ति विशेषतः ॥ ९९ ॥

पारसीकवचा, शुक्ला, हैमवती (शतपर्वा-मेध्या. शुक्ला, भोगवती, दीर्घपत्रा और कर्षिणी) ये खुरासानीवचके संस्कृत नाम हैं। हिन्दी--खुरासानीवच सफेदवच। बं०खोरासानीवच श्वेतवच। म०--पांढरे वेखण्ड। गु०. खुरासानीवच। क०विलीधवच। तै०-तेल्लवस॥

खुरासानी वचके गुण भी वचके ही सदृश हैं। विशेष करके यह वातविनाशक है ॥९९॥

अथ कुलिञ्जना।

सुगन्धाऽप्युग्रगन्धा च विशेषात् कफकासनुत्। सुस्वरत्वकरी रुच्या हृत्कण्ठमुखशोधिनी ॥ १०० ॥

सुगन्धा, उग्रगन्धा, (गन्धमूल, तीक्ष्णमूल और कुलिंजना) ये कुलिंजन संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी--कुलिंजन । बं०--कुलिंजन । म०-कोलिंजन । गु० -कुलिंजन । फार्सि -खिरदारू । अ०--इर्कखोलिंझान । इं०--ग्रेटर गैलंगाल Greater Galangal लै०- अल्पीनिया ऑफिसिनेरम Apinia Officintrum. कुलिंजन--विशेष करके कफ तथा खाँसीको हरनेवाला, स्वरको उत्तम करनेवाला, रुचिकारक और हृदया कण्ठ तथा मुखको शुद्ध करता है ॥ १०० ॥

विवरण ।

कुलिंजनकी वनोंमें (इंटीयों) वेल होती है, उसका आकार दाखली बेलके समान होता है, इसके पत्ते पानके समान होते हैं, उसकी जडको कुलिजन कहते हैं और बहुतसे वैद्यलोग पानहीकी जडकोकुलिंजन कहते हैं ॥

अपरा सुगन्धा स्थूलंग्रंथिः यस्याः लोके महाभरी इति नाम ।
स्थूलग्रन्थिः सुगन्धा स्यात्ततो हीनगुणा स्मृता ॥ १०१ ॥

दूसरी वच सुगन्धयुक्त मोटी गांठकी,लोकमें महाभरी वचके नामसे प्रसिद्ध है । यह वच सुगन्धयुक्त और कुलिंजनसे हीन गुणवाली है ॥ १०१ ॥

अथ चोवचीनीति लोके या प्रसिद्धा, तस्या गुणाः ।

द्वीपान्तरवचा किञ्चित्तिक्तोष्णा वह्निदीप्तिकृत् । विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोधिनी ॥ १०२ ॥ वातव्याधीनपस्मारमुन्मादं तनुवेदनाम् । व्यपोहति विशेषेण फिरंगामयनाशिनी ॥ १०३ ॥

द्वीपांतरकी वचको चोपचीनी कहते हैं हिंदी चोपचीनी, चोबचीनी । बं०--म०--गु०-ज्चोबचीनी । तै०--फिरंगीचक्का । फा०--रवन । अ० रायन । इं०चाईनारूट China Root लै०—स्माईलाक्ल चाइना Smilx China चोबचीनी-किंचित् कडवी, गरम, अग्निको दीपन करनेवाली, मलमूत्रशोधक और मलवन्ध, अफरा, शूल, वायुके रोग, अपस्मार, उन्माद और शरीरकी–पीडाको नष्ट करनेवाली हैं विशेष करके फिरंग-गरमी रोगको दूर करनेवाली है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

विवरण ।

चोबचीनी युरोपदेशमें उत्पन्न होती है और चीनदेशसे आती है, यह वचके समान सफेद होती है, पत्ते असगन्धके समान होते हैं,इसकी गांठें होती हैं, तोडनेमें दृढ और लालरंगकी होती है । भारी गांठ अच्छी होती है, भूमी हुई गुणदायक नहीं होती ॥

अथ हबुषाद्वयम् ।

तन्मध्ये प्रथमं फलं मत्स्यसदृशं, विस्रगन्धम्, द्वितीयमश्वत्थफलसदृशं मत्स्यगन्धम्, तयोर्नामानि गुणाश्च ॥

हबुषा वपुषा विस्रा पराऽश्वत्थफला मता । मत्स्यगन्धा प्लीहहन्त्री विषघ्नी ध्वाक्षं नाशिनी ॥ १०४ ॥ हबुषा दीपनी तिक्ता मृदूष्णा तुवरा गुरुः ॥ पित्तोदरसमीरार्शोग्रहणीगुल्मशूलहृत् ॥ १०५ ॥ पराऽप्यतद्गुणा प्रोक्ता रूपभेदो द्वयोरपि ॥

हाऊबर दो प्रकारके हैं; उनमें एक तो मच्छीके सदृश दुर्गन्धवाला और दूसरा पीपलके फलके सदृश मच्छीकी गन्धवाला होता है । हबुषा, वपुषा, विस्रा (विस्रगन्धा, विगंधिका) ये पहिले हाऊबरके संस्कृत नाम हैं ॥ अश्वत्थफला, मत्स्यगन्धा, प्लीहहन्त्री,विषघ्नी, ध्वांक्षनाशिनी, (स्वल्पफला, कच्छुघ्नी, प्लीहशत्रु, कफघ्नी, अपराजिता) ये दूसरे हाऊबेरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी०-हाऊबेर । बं०हबुषा । म०-होश । गु०-मलाशी । क०-परडुहव्वे । लै०-थेवेटियानेरिफोलिया Thevetia Narifoiia(हाऊबेर) अग्निदीपक, कडवा, कोमल, गरम,

कसैला, भारी और पित्त, उदर, वायु, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म तथा शूलरोगनाशक हैं। दूसरा भी इसीके समान गुणोंवाला है, परंतु दोनोंके रूपमें भेद है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

विवरण ।

हाऊबेर छोटे पत्ते और बडे पत्तोंका इन भेदोंसे दो प्रकारका है। बडे हाऊबेरको बडे पत्तोंका हाऊबेर कहते हैं, इसका वृक्ष कोंकण देशमें नदीके किनारे अथवा सरोवरके किनारे सजल भूमिमें उत्पन्न होता है। इसके पत्ते झुमकेदार होते हैं । इसके वृक्षकी ऊँचाई तीन हाथसे अधिक नहीं होती। पत्ते नागचम्पेके पत्तोंके समान छः अंगुलपर्यन्त लम्बे होते हैं इसके वृक्षका रंग लाल होता है। छोटे पत्तोंवाले वृक्ष कोंकणादि देशोंमें अधिक नहीं होते, छोटे पत्तोंके हाऊबेर चीन और जापानमें अधिकतासे पाये जाते हैं, इसके पत्ते शरूके पत्तोंके समान बहुत छोटे होते हैं । इसके वृक्ष भी ललाई लिये हुए होते हैं। देखनेमें जालदार घनेघने घटाटोपसे अत्यन्त सुन्दर मालूम होते हैं। लिखनेके लिये इसकी लकडीकी कलमें बनाते हैं ।

अथ विडंगनामगुणाः ।

पुंसि क्लीबे विडङ्गः स्यात्कृमिघ्नो जन्तुनाशनः। तण्डुलश्च तथा वेलममोघा चित्रतण्डुला ॥ १०६ ॥ विडङ्गं कटु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं वह्निकरं लघु। शूलाध्मानोदरश्लेष्मकृमिवातविबन्धनुत् ॥१०७॥

विडंग, कृमिघ्न, जन्तुनाशन, तंडुल, वेल्ल, अमोघा, चित्रतंडुला, (भस्मक, मोघा, कृमिकंटक, कैराल-केवल, -विडंगा, तंडुला, जन्तुनाशक, कृमिकंटक, रसायन, पावक, कृमिरिपु, जन्तुघ्न, चित्रतंडुल, कृमिशत्रु, गर्दभ, कृमिहा, चित्रा, तंडुलीयका, वातारि, जन्तुघ्नी मृगगामिनी, कैराली, गहरा, कापाली, वरा, वृषणाशन, जन्तुहंत्री, कृष्णतंडुला; रुद्रतंडुला; चित्रबीजा और घोषा) ये वायविडंगके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०-वायविडंग। वं०-विडंग । म०-गु०-वावडिंग । क०=वायुविडंग । तै०-वायविडंघभु । ता०-वायविडंगमं । फा०-बरंवकावली । अ०-बरंजकावली। इं०-बेब्रेंग Babreng. लै०-एंबोलियारिबीस Embelelia Ribis. वायविडंग-चरपरी, तीक्ष्ण, गरम, रूखी, अग्निकारक और हलकी है तथा शूल, अफारा, उदररोग, कफ, कृमि, वात और मलबन्धको नष्ट करनेवाली है ॥१०६॥१०७॥

विवरण ।

पहाडकी तलहटी भाबरमें मायविडंगके वृक्ष बहुत होते हैं, फूलोंके गुच्छेसे होते हैं, उन पर लाल लाल वीरबहूटीके समान गोल गोल फूल लगते हैं। पत्ते कडे और चिकने, ललाई लिये गोंदनीकी समान होते हैं, कबीला इसीकी फलोंकी रज है और इसके दाने वायविडंग हैं ॥

अथ तुम्बुरुफलम् ।

तुम्बुरुः सौरभः सौरो वनजः सानुजोऽन्धकः। तुम्बुरु प्रथितं तिक्तं कटु पाकेऽपि तत्कटु ॥ रूक्षोष्णं दीपनं तीक्ष्णं रुच्यं लघु विदाहि च ॥ १०८ ॥ वातश्लेष्माक्षिकर्णोष्ठशिरोरुग्गुरुताकृमीन्। कुष्ठशूलारुचिश्वासप्लीहकृच्छ्राणिनाशयेत् ॥ १०९ ॥

तुम्बुरु, सौरभ, सौर, वनज, सानुज, अन्धक, (द्विज, तीक्ष्णवल्कल, तीक्ष्णफल, तीक्ष्णपत्र, महामुनि, फुटल, सुगन्धि, शूलघ्न, सोरज, गन्धालु और स्फुटितफल) ये तुम्बरके संस्कृत नाम हैं।

हि०-बं०-तुम्बरू । गु०-तुम्बरुफल ॥ तुम्बरू-कडवा, पचनेमें चरपरा, रूक्ष, गरम, अग्निको दीपन करनेवाला, तीक्ष्ण, रुचिकारक हलका, दाहकारक और वात, कफ नेत्ररोग, कर्णरोग, ओष्ठरोग, शिरके रोग, भारीपन, कृमि, कोढ, शूल, अरुचि, श्वास, प्लीहा और मूत्रकृच्छ्रनाशक है ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

विवरण ।

तुंबरूके बडे बडे वृक्ष होते हैं, उनमें कांटे बहुत होते हैं । दक्षिणकी ओर और कोकणदेश में अधिकतासे पाये जाते हैं । इसके फल मालकांगुनीके झुमकेके समान जान पडते हैं. जिस प्रकार मालकांगुनीके झुमकेसे लाल बीज निकलते हैं, उसी प्रकार तुंबरुके फलका मुख खोलनेसे मिरचके समान काले रंगके बीज निकलते हैं, उन बीजोंको तोडनेसे पीले रङ्गकी मींग (पराग) निकलती है और उस मींगके भीतर तेलके समान चिकनाई होती है, इसके बीजोंमें अत्यन्त झलझलाहट होती है ।

अथ वंशलोचननामगुणाः ।

स्याद्वंशलोचना वांशी तुगाक्षीरी तुगा शुभा । त्वक्क्षीरी वंशजा शुभ्रा वंशक्षीरी च वैणवी ॥ ११० ॥ वंशजा बृंहणी वृष्या बल्या स्वादी च शीतला । तृष्णाकासज्वरश्वासक्षयापित्तास्रकामलाः । हरेत् कुष्ठंव्रणं पाण्डुं कषाया वातकृच्छ्रजित् ॥ १११ ॥

वंशलोचना, वांशी, तुगाक्षीरी, तुगा, शुभा, त्वक्क्षीरी, वंशजा, शुभ्रा, वंशक्षीरी, वैणवी, (वंशलोचना, क्षीरिका, त्वक्सारा, कर्मारी, श्वेता, कर्पूरलोचना, तुंगा, रोचनिका, पिंगा, वंशशर्करा और वंशकर्पूर (ये वंशलोचनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी बं०-म०-वंशलोचन । क०-वंशरोचना । तै०-ता०-वंशलोचना । फा०-तबाशीर । अ०-तवाशीर । इं० दी सिलिस्युस् कंक्सीन The Silisiliccous Concretion वमबुसाअरण्डिनेसिया Bambvsa Arundienacia वंशलोचन-शरीरकी धातुओंको बढानेवाला, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, स्वादिष्ट, शीतल और तृष्णा, खांसी, ज्वर, श्वास, क्षय, पित्त, रुधिरविकार, कामला, कोढ, व्रण, पाण्डुरोग तथा वायुके रोगोंको दूर करनेवाला और कसैला है ॥११०॥१११॥

विवरण ।

वंशलोचन बडे और मोटे पोलीजातिके पहाडी बांसोंके भीतर रसके समान गांठमें होता है । जब बांस पक जाते हैं, तब वह नारियलके दूधके तुल्य जम जाता है, उन बांसोंको काट काटकर सुखा देते हैं, तब वह रसभी सूख जाता है । जब उन बांसोंको फोडते हैं, तब गांठ गांठमेंसे सफेद सफेद वह सूखा हुआ रस निकलता है, वही वंशलोचन कहलाता है ॥

अथ समुद्रफेनः ।

समुद्रफेनः फेनश्च डिण्डीरोऽब्धिकफस्तथा । समुद्रफनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलश्च सः । कषायो विषपित्तघ्नः कर्णरुक्कफहृत्सरः ॥ ११२ ॥

समुद्रफेन, फेन, डिण्डीर, अब्धिकफ, (अर्णवजमल, अर्णवज, सिन्धुकफ, समुद्रकफ, जलहास, फेनक, उदधिमल, श्वेतधामा, लवणोदधिसम्भव, वार्धिफेन, पयोधिज, सुफेन, अब्धिडिंडीर, सामुद्र, शुष्काशुष्क, विंध्याह्व, उदधिफेन और सारमल) ये समुद्रझागके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-समुद्रफेन, समुद्रझाग । ब०-समुद्रफेन । तै०-समुद्रफेन । गु०-समुद्रफीणा । क०-कडलनागले । ता०-कटल्नुरै । फा०-कफेदरिया । अ०-जुवदुलबेदेर । इं०कटैलफीशबोन Catilefishbone लै० सोपिया औफिसिनेलीस Sepia Officinalis समुद्रफेन-नेत्रोंको हितकारी, लेखन, शीतल, चंचल, कषायरसयुक्त और विष, पित्त कर्ण तथा कफ रोगनाशक है तथा सारक है॥११२॥

विवरण ।

समुद्रके झागोंका खार जो मछली खा जाती है और फिर उसको उगल देती है, वह जो एकत्र हो जाता है, उसको समुद्रफेन कहते हैं ॥

१—किसी २ आचार्य्योंका मत है कि सदा फूत्कार करनेवाला समुद्र अपने जलसेंही मथित होकर समुद्र फेनकी उत्पत्ति करता है ।

अथाष्टवर्गस्य लक्षणगुणाः।

जीवकर्षभकौ मेदे ककोल्यावृद्धिवृद्धिके। अष्टवर्गोऽष्टभिर्द्रव्यैः कथितश्चरकादिभिः॥ ११३ ॥ अष्टवर्गो हिमः स्वादुर्बृंहणः शुक्रलो गुरुः। भग्नसन्धानकृत्कामबलासबलवर्द्धनः। वातपित्तास्रतृड्दाहज्वरमेहक्षयप्रणुत्॥ ११२ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि इन आठ औषधियोंके मिलनेसे अष्टवर्ग होता है, ऐसा चरक आदि मुनियोंने कहा है। यह अष्टवर्ग-शीतल, मधुर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्धक, भारी, टूटे हुएको जोडनेवाला और काम, कफ तथा बलको बढानेवाला तथा वात, पित्त, रक्त, तृषा, दाह, ज्वर, प्रमेह तथा क्षय इन रोगोंको नष्ट करनेवाला है॥ ११३ ॥ ११४ ॥

तत्र जीवकर्षभकयोरुत्पत्तिलक्षणनामगुणाः।

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ। रसोनकन्दवत्कन्दौ निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ ॥ ११५ ॥ जीवकः कूर्चकाकार ऋषभो वृषशृङ्गवत्॥

जीवक और ऋषभक ये दोनों हिमालय पर्वतके शिखरमें उत्पन्न होते हैं। ये दोनों कन्द लहसुनकन्दके सदृश भीतरसे खाली होते हैं और उनके पत्ते सूक्ष्म होते हैं। जीवकका आकार कूचीके सदृश और ऋषभकका आकार बैलके सींगके सदृश होता है ॥११५॥

जीवको मधुरः शृङ्गो ह्रस्वाङ्गः कूर्चशीर्षकः॥ ११६ ॥ ऋषभो वृषभो धीरो विषाणी द्राक्ष इत्यपि। जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ। मधुरौ पित्तदाहास्रकार्श्यवातक्षयापहौ ॥ ११७ ॥

जीवक; मधुर, शृंग, ह्रस्वांग, कूर्चशीर्षक (क्ष्वेड, दीर्घायु, शृंगक, प्रिय, शृंगकूर्च, शीर्ष मधुरक चिरजीवक, जीवन, प्राणद, जीव्य, भृंगाह्व, चिरञ्जीव, मंगल्य, वृद्धिद, आयुष्मान्, जीवद और बलद) ये जीवकके संस्कृत नाम हैं॥

ऋषभ, वृषभ, धीर, विषाणी द्राक्ष, (दुर्द्धर मातृक, बल्लुर, नृप, ऋषभक, वृष, वीर, पृथिवीपति, गोपति, ककुद्मान्, पुंग, बोढी, शृंगी, धुर्य, भूपति, कामी, रूक्षप्रिय, उक्षा, लांगली; गोबन्धुर, बन्धूर, गोरक्ष, वनवासी, ऋषिप्रिय, मधुर, शीतल और कामद) ये ऋषभके संस्कृत नाम हैं। ये दोनों कंद बलदायक, शीतल, वीर्यको तथा कफको बढानेवाले और मधुर हैं। तथा पित्त, दाह, रक्त, दुर्बलता, वायु और क्षय इनको नष्ट करनेवाले हैं॥ ११५ ॥ ११७ ॥

अथ मेदामहामेदयोरुत्पत्तिलक्षणनामगुणाः।

महामेदाभिधः कन्दो मोरङ्गादौ प्रजायते महामेदा खनीमेदा स्यादित्युक्तं मुनीश्वरैः ॥११८॥ शुष्कार्द्रकनिभःकन्दो लताजातः सुपाण्डुरः। महामेदाभिधो ज्ञेयो मेदालक्षणमुच्यते ॥११९॥ शुक्लकन्दो नखच्छेद्यो मेदोधातुमिव स्रवेत्। यःस मेदेति विज्ञेयो जिज्ञासातत्परैर्जनैः॥ १२० ॥

महामेदा नामक कंद मोरंग आदि स्थानोंमें होती है और इस महामेदाकी खानिमें ही मेदा होती है, यह मुनीश्वरोंने कहा है। महामेदा नामक कंद सूखे हुए अदरखके सदृश सफेद रंगका होता है। पीले रंगकी लतासे उत्पन्न होता है। यह महामेदाके लक्षण जानने। अब मेदाके लक्षण कहते हैं—मेदाका भी कंद श्वेत होता है और जिसमें नखके छेदनेसे मेदाधातुके सदृश रस निकले, उसको मेदा जानना॥ ११८ ॥ १२० ॥

शल्यपर्णी मणिच्छिद्रा मेदा मेदोद्भवाऽध्वरा। महामेदा वसुच्छिद्रा त्रिदन्ती देवतामणिः॥ १२१ ॥ मेदायुगं गुरु

स्वादु वृष्यं स्तन्यकफावहम् । बृंहणं शीतलं पित्तरक्तवातज्वरप्रणुत् ॥ १२२ ॥

शल्यपर्णी, मणिच्छिद्रा, मेदा, मेदोद्भवा, अध्वरा, (धीरा, मधुरा, जीवनी, रसा श्रेष्ठा, विभावरी, वसा, शल्यपर्णिका, मेदसारा, स्नेहवती, मेदिनी, स्निग्धा, द्रवा, साध्वी, शल्यदा, बहुरन्ध्रिका, मेदोवती, पुरुषदन्तिका, छिद्रबहुला, भन्या, जीवनीका और स्वल्पपर्णी) ये मेदाके संस्कृत नाम हैं ॥ और महामेदा, वसुच्छिद्रा, त्रिदन्ती, देवतामणि, (देवमणि, विपांडुरा, जीवनी, पांशुरोगिणी, महामेदा, पुरोद्भवा, देवेष्टा, सुरमेदा, दिव्या, देवगन्धा, वृक्षार्हा, सोमा, सुरामेदा और मेदोद्भवा) ये महामेदाके संस्कृत नाम हैं ॥ मेदा और महामेदा—भारी, स्वादिष्ट, वीर्यवर्द्धक दुग्ध तथा कफको बढानेवाली, पुष्टिकारक, शीतल, रक्तपित्त तथा वातज्वरको दूर करनेवाली है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

अथ काकोलीक्षीरकाकोल्योरुत्पत्तिलक्षणनामगुणाः ।

जायते क्षीरकाकोली महामेदोद्भवस्थले । यत्र स्यात्क्षीरकाकोली काकोली तत्र जायते ॥ १२३ ॥ पीवरीसदृशः कन्दः क्षीरं स्रवति गन्धवान् । स प्रोक्तः क्षीरकाकोली काकोलीलिङ्गमुच्यते ॥१२४॥ यथा स्यात् क्षीरकाकोली ककोल्यपि तथा भवेत् । एषा किञ्चिद्भवेत्कृष्णा भेदोऽयमुभयोरपि ॥ १२५ ॥

जहां महामेदा उत्पन्न होती है, वहीं क्षीरकाकोली होती है और जहां क्षीरकाकोली होती है, वहीं काकोली भी होती है । क्षीरकाकोलीका कन्द असगंन्धके सदृश होता है और उसमेंसे गन्धयुक्त दूध स्रवता है ॥ अब काकोलीके लक्षण कहते हैं—जैसी क्षीरकाकोली होती है, वैसे ही काकोली भी होती है परन्तु काकोली कुछ काली होती है, इनमें केवल इतना ही भेद है ॥ १२३ ॥ १२५ ॥

ककोली वायसोली च वीरा कायस्थिका तथा । सा शुक्ला क्षीरकाकोली वयस्थाक्षीरवल्लिका ॥१२६॥ कथिता क्षीरिणीधारा क्षीरशुक्ला पयस्विनी । काकोलीयुगलं शीतं शुक्रलं मधुरं गुरु । बृंहणं वातदाहास्रपित्तशोषज्वरापहम् ॥१२७॥

काकोली, वायसोली, वीरा, कायस्थिका, (शीतपाकी, वयस्या, वायसोलिका, क्षीरा, धीरा, शुक्ला, मेदुरा, ध्वांक्षिका, स्वादुमांसी, वयस्था, जीवन्ती, मधुरा, शुक्लक्षीरा, पयस्विनी और जीवनीया) ये काकोलीके संस्कृत नाम हैं ॥

जो काकोली सफेद हो, वह क्षीरकाकोली कहाती है । क्षीरकाकोली, वयस्था, क्षीरवल्लिका, कथिता, क्षीरिणीधारा, क्षीरशुक्ला, पयस्विनी, (पयस्या, महावीरा, क्षीरकाकोलिका, सुकोली, अष्टमी, क्षीरविषाणिका, जीववल्ली, जीवशुक्ला, क्षीरा, क्षीरवल्ली, वयस्था, क्षीरमधुरा, और दुग्धाढ्या) ये क्षीरकाकोलीके संस्कृत नाम हैं ॥ दोनों काकोली शीतल, वीर्यवर्द्धक, मधुर, भारी, शरीरके धातुओंके बढानेवाली और वात, दाह, रुधिरके रोग, पित्त, शोष तथा ज्वर इनको नष्ट करती है ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

अथ ऋद्धिवृद्ध्योरुत्पत्तिलक्षणनामगुणाः ।

ऋद्धिर्वृद्धिश्च कन्दौ द्वौ भवतः कोशयामले । श्वेतलोमान्वितः कन्दो लताजातः सरन्ध्रकः ॥१२८॥ ए एव ऋद्धिर्वृद्धिश्च भेदमप्येतयोर्ब्रुवे । तूलग्रन्थिसमा ऋद्धिर्वामावर्त्तफला च सा ॥१२९॥ वृद्धिस्तु दक्षिणावर्त्तफला प्रोक्ता महर्षिभिः ॥

ऋद्धि और वृद्धि ये दोनों कंद कोशयामल नामक देशमें होते हैं । ये कन्द लता (बेलों) में छिद्रोंयुक्त और श्वेत रोमवाले होते हैं । अब इनमें जो भेद हैं सो कहते हैं । ऋद्धि कपासकी गांठके सदृश बांई ओर घूमे हुए

फलवाली होती है और वृद्धिका फल दांई और घूसा हुआ होता है, ऐसा मुनियोंने कहा है ॥

ऋद्धियुग्मं सिद्धिलक्ष्म्यौ वृद्धेरप्याह्वया इमे ॥ १३० ॥ ऋद्धिर्बल्या त्रिदोषघ्नी शुक्रला मधुरा गुरुः। प्राणैश्वर्यकरी मूर्च्छारक्तपित्तविनाशिनी ॥१३१॥ वृद्धिर्गर्भप्रदा शीता बृंहणी मधुरा स्मृता। वृष्या पित्तास्रशमनी क्षतकासक्षयापहा ॥ १३२ ॥

ऋद्धि सिद्धि लक्ष्मी, (प्राणप्रिया, वृष्या, प्राणदा, सम्पदाह्वया, योग्या, प्राणप्रदा, सिद्धा, जीवरात्री, चेतनीया, रथांगी, मंगल्या, लोककान्ता, जीवश्रेष्ठा और यशस्या) ऋद्धिके संस्कृत नाम हैं ॥ वृद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, (बोधनिका, प्रिया, सुरोत्तमा, योग्या, ऋद्धि पुष्टिदा, वृद्धिदात्री, मंगल्या, श्री, सम्पत्, आशी, जनेष्टा, भूति, मुत्, सुख और जीवभद्रा) ये वृद्धिके संस्कृत नाम हैं। ऋद्धि— बलदायक, त्रिदोषनाशक, वीर्यवर्द्धक, स्वादिष्ट भारी, आयु तथा ऐश्वर्यको बढानेवाली है और मूर्च्छा तथा रक्तपित्तको नष्ट करती है। वृद्धि-- स्त्रियोंको सुखदायक, गर्भ धारण करनेवाली है तथा शीतल, पुष्टिकारक. मधुर, वीर्यवर्द्धक, पित्त तथा रुधिरको शांत करती है और क्षत, खांसी तथा क्षयको क्षय करनेवाली है ॥ १३० ॥ १३३ ॥

विवरण।

अष्टवर्ग--जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, ये आठों औषध कंद हैं और पर्वतोंमें होते हैं इनके लक्षण और आकृति तथा उत्पत्ति अनेक ग्रन्थकारोंने लिखी है, परन्तु वह ठीक ठीक नहीं मिलती, हमने शालिग्रामनिघण्टु भूषणमें प्रत्येक औषधिके अनेक भाषाओंमें बहुतसे नाम लिखे हैं, परन्तु हमको इस अष्टवर्गकी औषधियोंके संस्कृत नामोंके सिवाय और किसी भाषाका कोई भी नाम नहीं मिला। इसलिये हमने इसका कुछ विवरण नहीं लिखा। जान पडता है कि बहुत समय व्यतीत होनेसे सब वैद्यलोग इनको भूल गये और किसीने परिश्रम करके भली प्रकार इनका खोज भी नहीं किया आजकलके कितने एक यूनानी वैद्य अष्टवर्गकी औषधियोंको वह मनसुफेद. वहमनसुर्ख, सावलमिश्री, सकाकूल मिश्री आदि नामोंसे जाहिर करते हैं सो हमारी समझमें यह उनका कहना किसी प्रकार भी ठीक नहीं सूझता. क्योंकि, प्राचीन ऋषियोंने जो उनके लक्षण और आकृति लिखे हैं, वे उनके कदापि नहीं मिलते। दूसरे यह कलियुगमें राजाओंको भी मिलनी कठिन है, ऐसा लिखा है; इसलिये इनके अभावमें इनकी प्रतिनिधि ही लेनी चाहिये ॥

राज्ञामप्यष्टवर्गस्तु यतोऽयमतिदुर्लभः। तस्मादस्य प्रतिनिधिं गृह्णीयात्तद्गुणं भिषक् ॥ १३३ ॥

प्रतिनिधिम्—मुख्यसदृशम्।

अष्टवर्गस्य प्रतिनिधिमाह।

मेदाजीवककाकोलीऋद्धिद्वन्द्वेऽपि चासति। वरीविदार्यश्वगन्धावाराहीश्च क्रमात् क्षिपेत् ॥ १३४ ॥

मेदामहामेदास्थाने शतावरीमूलम्। जीवकर्षभकस्थाने विदारीमूलम्। काकोली क्षीरकाकोलीस्थाने अश्वगन्धामूलम्। ऋद्धिवृद्धिस्थाने वाराहीकन्दं गुणैस्तत्तुल्यं क्षिपेत्।

यह अष्टवर्ग राजाओंको भी बहुत दुर्लभ है अर्थात् नहीं प्राप्त होता इसलिये वैद्य इसके स्थानमें सदृश गुणवाली प्रतिनिधिका उपयोग करे। मेदा और महामेदाके अभावमें शतावर, जीवक और ऋषभके अभावमें विदारीकन्द, काकोली और क्षीरकाकोलीके अभावमें असगन्ध और ऋद्धि तथा वृद्धिके अभावमें वाराहीकन्द डाले ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

अथ मधुयष्टीनामगुणाः।

यष्टीमधु तथा यष्टीमधुकं क्लीतकं तथा। अन्यत्क्लीतनकं तत्तु भवेत्तोये मधूलिका ॥१३५॥ यष्टी हिमा गुरुः स्वाद्वी चक्षुष्या बलवर्णकृत्। सुस्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्या पित्तानिलास्रजित्। व्रणशोथविषच्छर्दितृष्णाग्लानिक्षयापहा॥१३६

यष्टीमधु, यष्टीमधुक, क्लीतक, क्लीतनक, (यष्टी, मधुयष्टी, यष्ट्याह्वा, यष्ट्याह्विका, मधुक, यष्टिक, मधुयष्टिका, यष्टिमधु, यष्टिमधुका, यष्टीक, यष्ट्याह्व, यष्ट्याह्वक, यष्टि, मधुस्रवा और मधुयष्टिक) ये मुलैठीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-मुलहठी। बं०--यष्टीमधु। य०--ज्येष्ठमधु। गु०--जेठीमधु। फा०--बेखमहक। अ०--असलुसू सूस। तै०--यष्टीमधुकमु। इं०--लिकरिसूरूट Liqudorice root लै०--रलाइ रलाइ करहीज ग्लैबसा Glyecyrroiza Glabsa मुलहठी--शीतल, भारी, मधुर, नेत्रोंको हितकारी, बल तथा वर्णकें लिये उत्तम, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, केशोंको और स्वरको हितकारी है। पित्त, वात, रुधिरविकार, व्रण, शोथ, विष, वमन, तृषा, ग्लानि तथा क्षय इनको नष्ट करती है। दूसरी एक जलमें मुलैठी उत्पन्न होती है, उसको क्लीतनक और मधूलिका कहते हैं॥ १३५॥१३६॥

विवरण।

मुलैठीका क्षुप होता है, पत्ते छोटे और गोल होते हैं। फली छोटी और पतली होती है। फूल लाल होता है; इसकी लकडी तिक्त और मीठी होती है। दूसरी बेलवाली मुलैठी अधिक मीठी होती है; वह जलमें उत्पन्न होती है।

अथ काम्पिल्लगुणाः।

काम्पिल्लः कर्कशश्चन्द्रो रक्तांगो रोचनोऽपि च। काम्पिल्लः कफपित्तास्रकृमिगुल्मोदरव्रणान्। हन्ति रेचि कटूष्णश्च मेहानाहविषाश्मनुत् ॥ १३७॥

काम्पिल्ल, कर्कश, चन्द्र रक्तांग, रोचन, (कम्पिल्लक, काम्पील, कम्पिल्य, काम्पिल्य-रेचनी, कांपिल्लका, रेचना, पिकाक्ष, रोचनी लघुपत्रक, कम्पील्लक, रेची, रेचन, रंजक, लोहितांग, रक्तचूर्णक, रक्तफल, नदीवास, बहुपुष्प और बहुफल) ये कबीलेके संस्कृत नाम हैं॥

हिं०--कबीला। बं०--कमलागुंडी। म०--कपिला। गु०--कपीलो। क०--कम्पिल्लक। फा०--कन्बिलाय। अ०--किन्बील। इं०--केमिला Kamila रोटलीर Rootlera लै०--मलोबस फिलिपाइनसिस Mellotus Philippiuesis कबीला--रेचक, चरपरा, गरम और कफ, पीत्त, रुधिरविकार, कृमि, गुल्म, उदररोग, व्रण, प्रमेह, अनाह, विष तथा पथरी इन सबको नष्ट करती है॥ १३७॥

विवरण।

कबिका वायविडंगकरी रजका नाम है; वायविडंगके ऊपर जो लाल रजसी होती है, उसके फलोंको तोड तोडकर बांसकी झरहरी (टोकरियों) में डालकर और नीचे कपडा बिछाकर पांवोंसे मलते हैं उसकी जो रज छूट छूटकर कपडेपर गिरती है उसीको कबीला कहते हैं। और कोई कोई उसका नाम रोहिणी भी कहते हैं। मैंने पहाडपर देखा है, कि इसको हजारों शिरबोझी गठरियाँ बांध बांधकर लाते थे और सैकडों काबुली खानलोग ऊँटोंमें भर भरकर लेजाते थे॥

अथ आरग्वधः (धनबहेरा- अमलतास)।

आरग्वधो राजवृक्षः शम्याकश्चतुरंगुलः। आरेवतो व्याधिघातः कृतमालः सुवर्णकः॥ १३८॥ कर्णिकारो दीर्घफलः स्वर्णाङ्गः स्वर्णभूषणः। आरग्वधो गुरुः स्वादुःशीतलः स्रंसनो गुरुः ॥१३९॥ ज्वरहृद्रोगपित्तास्रवातोदावर्त्तशूलनुत्। तत्फलं स्रंसनं रुच्यं कुष्ठपित्तकफापहम्। ज्वरे तु सततं पथ्यं कोष्ठशुद्धिकरं परम्॥ १४०॥

आरग्वध, राजावृक्ष, शम्याक, चतुरंगुल, आरेवत व्याधिघात, कृतमाल, सुवर्णक, कर्णिकार, दीर्घफल, स्वर्णांग, स्वर्णभूषण, (जठरनुत्, चक्रपरिव्याध, सम्यक्, मन्थान, रोचन- नृपद्रुम, हिमपुष्प, राजतरु, कण्डुघ्न, महाकर्णिकार, ज्वरान्तक, अरुज, स्वर्णपुष्प, स्वर्णद्रुम, कुष्ठसूदन, कर्णाभरक, महाराजद्रुम, आरोग्यशिम्बी, व्यथान्तक, आमहा, स्वर्णस्थाली, रेचन, कुण्डली, हेमपुष्प, शेफलिका, नक्तमाल, स्वर्णवृक्ष, सारफल, कुष्ठघ्न और द्रुमोत्पल) ये अमलतासके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी--अमलतास,धनबहेडा, बं०-सोनालु, सोंदाल एखालनडी । म०--बाहवा । गु०--गरमालो । क०हेग्गके । तै०--रेल्लकाया । फा०--ख्यारेशम्बर । इं०--पुडिंग पाइपट्री Pubbing Pipetrec लै० कसिया फीस्टुला Cassia Fistula

अमलतास-भारी, मधुर, शीतल, स्रंसन (मलादिकको ढीला करनेवाला) और ज्वर हृद्रोग, पित्तरक्तविकार, वात, उदावर्त तथा शूलको नष्ट करनेवाली है । इसकी फली मलको शिथिल करनेवाली, रुचिकारी, कोढ, पित्त तथा कफको नष्ट करनेवाली है। यह ज्वरमें सर्वदा पथ्य और कठिको अत्यन्त शुद्ध करनेवाली है ॥ २३८–१४० ॥

विवरण।

अमलतासके वृक्ष बडे बडे होते हैं, पत्ते बडी जामुनके समान होते हैं और शाखाओंमें दोनों ओर लगे रहते हैं, फूल इसके पाँच पाँच पँखुरीके पीले २ प्रत्येक डालीमें जटिक होते हैं, उनकी ऐसी शोभा दिखाई देती है मानो पीताम्बर धारण कर रहे हैं । इसकी फलकी दो बालिस्तसे लेकर चार बालिस्ततक लम्बी होती है । उसके भीतर काला काला गूदा और शिरसाके बीजोंके समान बीज निकलते हैं; इसका गूदा वैद्यलोग प्रयोगमें लाते हैं, इसकी मात्रा दो तोलेसे लेकर चार तोले तककी है ॥

अथ कटुका (कुटकी)।

कट्वी च कटुका तिक्ता कृष्णभेदा कटुम्भरा । अशोकामत्स्यशकला चक्राङ्गी शकुलादनी ॥ १४१ ॥ मत्स्यपिता काण्डरुहा रोहिणी कटुरोहिणी । कट्वी तु कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमा लघुः ॥ १४२ ॥ भेदिनी दीपनी हृद्या कफपित्तज्वरापहा । प्रमेहश्वासका- सास्रदाहकुष्ठक्रिमिप्रणुत् ॥ १४३ ॥

कट्वी, कटुका, तिक्ता, कृष्णभेदा, कटुम्भरा, अशोका, मत्स्यशकला, चक्रांगी, शकुलादनी, मत्स्यपित्ता, कांडरुहा, रोहिणी, कधृरोहिणी, (काण्डेरुहा, अरिष्टा, तिक्तरोहणिका, शतपर्वा, द्विजांगी,मलभेदिनी, अशोकरोहिणी, कृष्णा, कृष्णभेदी, महौषधि, अंजनी, कटु, केदारकटुका, वातघ्नी, वान्तिका, कटुंभरा और अतितिक्तिका) ये कुटकीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कुटकी । बं०–कटूकी । म०–कुटकी । गु०–कडुक । क०--केदार कटुकी । तै-- ता०-कटुकरोहिणी । फा०--खर्वकेसियाह् । अ०--खर्वकअस्वद । इं०--ब्लाक हेल्लेबोर Blck Hellebore लै०--पिकरारेहिजा क्रोआ Picrorrihiza kurroa

कुटकी--रसमें कडवी, पाकमें चरपरी,रुखी, शीतल; हलकी, मलभेदक, अग्निदीपक, हृदयको, हितकारी और कफ, पित्त, ज्वर, प्रमेह, श्वास, खाँसी, रुधिरविकार, दाह, कोढ तथा क्रमिरोगनाशक है ॥ १४१--१४३ ॥

अथ किरातक: (चिरायता)।

किराततिक्तः कैरातः कटुतिक्तः किरातकः। काण्डतिक्तोऽनार्यतिक्तो भूनिम्बो रामसेनकः ॥ १४४ ॥ किरातकोऽन्यो नैपालः सोऽर्द्धतिक्तो ज्वरान्तकः । किरातः सारको रूक्षः शीतलस्तिक्तको लघुः ॥ १४५ ॥

सन्निपातज्वरश्वासकफपित्तास्रदाहनुत् ।
कासशोथतृषा　कुष्ठज्वरव्रणकृमिप्र-
णुत् ॥ १४६ ॥

किराततिक्त, कैरात, कटुतिक्त, किरातक, कांडतिक्त, अर्नायतिक्त, भूनिंब और रामसेनक ये चिरायतेके संस्कृत नाम हैं । इसी तरह का एक चिरायता नेपालदेशमें होता है; उसको अर्धतिक्त और ज्वरान्तक कहते हैं ॥

हिन्दी-चिरायता बं०-चिरता, चिराता, नेपालेनिम्ब । म०-किराइत । गु०-करीयातु क०-नेलर्वेउचु । तै०-नेलावेमु । ता०-निलवेंबु । फा०-नेनिहाद । अ०-कसबुज जारिरा । इं०-चिरेता Chireta. लै०-स्विर्टिया चिरेता Swertia Chireta. चिरायता-दस्तावर, रूखा, शीतल, कडवा, हलका और सन्निपातज्वर, श्वास, कफ, पित्त, रुधिरविकार, दाह, खांसी, सूजन, तृषा, कुष्ठ, ज्वर, व्रण और कृमिरोग नाशक है ॥ १४४-१४६ ॥

विवरण ।

चिरायतेके वृक्ष अनेक स्थानोंमें होते हैं, ये दो तीन बालिस्त ऊँचे होते हैं । पत्ते लम्बे लम्बे और छोटे छोटे और फूल डालियोंमें सफेद रंगके अधिकतासे आते हैं । इसके दो भेद हैं एक कडुवा और एक मीठा. इसका सर्वाङ्ग प्रयोगमें लिया जाता है; मात्रा तीन मासेसे लेकर छः मासे पर्यन्त लेनी चाहिये ॥

अथेन्द्रयवः ।

उक्तं कुटजबीजं तु यवमिन्द्रयवं तथा ।
कलिङ्गं चापि कालिङ्गं तथा भद्रयवा
अपि ॥ १४७ ॥ इति धन्वन्तरिः प्राह ।
अमरोऽप्याहक्वचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्त-
दभिधायकम् ।　फलानीन्द्रयवास्तस्य
तथा भद्रयवा अपि ॥ १४८ ॥ इन्द्रयवं
त्रिदोषघ्नं संग्राहि कटु शीतलम् । ज्वरा-
तीसाररक्तार्शोवमिवीसर्पकुष्ठनुत् । दीपनं
गुदकीलास्रवातास्रश्लेष्मशूलजित् १४९

कुटजबीज, यव, इंद्रयव, कलिंग, कालिंग, भद्रयव, (कलिंगक, शक्राह्व शक्रबीज, वत्सक, वत्सकबीज, कर्लिगबीज, कुटज और भद्रज) ये इन्द्रजौके संस्कृत नाम हैं ॥ इन्द्रके जितने संस्कृत नाम हैं, उनके पीछे यवशब्द जोड देने से इन्द्रजौके:अनेक नाम बन जाते हैं, जैसे इंद्रयव भद्रयव इत्यादि ।

हिन्दी०-इन्द्रजौ । बं०-इन्द्रयव । गु०-इन्द्रजव । म०-कुढयाचें बीज, इन्द्रयव । फा०-जवान कुँचिस्क । अ०-लेसानुत् असाफीर । लै०-होलर्र हेना अन्टिडिसेंट्रिस Holarrhena Antidysentris. इन्द्रजौ-त्रिदोषनाशक, ग्राही, चरपरे, शीतल और ज्वर अतीसार, रुधिरविकार, अर्श (बवासीर), वमन, विसर्प तथा कुष्ठ इन सबको नष्ट करते हैं । अग्नि प्रदीपक और गुदाके रोग, वात रुधिरके दोष, कफ, तथा शूलको जीतनेवाले हैं ॥ १४७ १४९ ॥

विवरण ।

इन्द्रजौ कुडेके बीज हैं, इन्द्रयव कडवे और मीठे दो प्रकारके होते हैं और पसारी लोगोंकी दुकानोंपर बहुत बिकते हैं ॥

अथ मदनः (मयनाफल) ।

मदनश्छदर्नः पिण्डो नटः पिण्डीतक-
स्तथा । करहाटो मरुबकः शल्यको
विषपुष्पकः ॥१५०॥ मदनो मधुरस्तिक्तो
वीर्योष्णो लेखनो लघुः । वान्तिकृद्विद्र-
धिहरः प्रतिश्यायव्रणान्तकः । रूक्षः कुष्ठ
कफानाहशोथगुल्मव्रणापहः ॥ १५१ ॥

मदन, छर्दन, पिंड, नट, पिंडीतक, करहाट, मरुबक. शल्यक, विषपुष्पक, (पिचुक, मुचुकुन्द, कंटकी, करहाटक, शल्य. कंठ, रामच्छर्दनक, रामाच्छर्दनक, कैटर्य्य, धाराफल, नगर, राठ, गाल्ह, ग्रंथिफल, घंटाल और वस्तिशोधन) ये मैनफलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०-मैनफल । बं०-मयनाफल । म०-गल । गु०-मींढोल । क०-बोनगरे । तै०-

वसन्तकीडीमचेटु । ता०--मडुककरय । औत्क०--पातर । नैपाली०--मैदल । पश्चि०--सिण्डकोल्ल । दक्षि०--मेठहाल । अ०--जौजुक्ली । इं०--बुशीगार्डिनिया Bushy Cardenta. लै०--रैंडिया डयुमेटोरम Randiaduorumetm. मैनफल--मधुर, कडुवा, उष्णवीर्य, लेखन, हलका, वमनकारक, विद्रधिनाशक, रूक्ष, और प्रतिश्याय (जुखाम), व्रण, कोढ, कफ, अफारा (पेट फूलना) सूजन और गुल्मको नष्ट करनेवाला है ॥ १५० ॥ १५१ ॥

विवरण ।

मैनफलका वृक्ष बड़ा होता है, पत्ते लम्बे लम्बे और गोल गोल खरदरेसे आमने सामने दोनों ओर होते हैं, सूरत चिरचिटेकीसी होती है; फूल गोल पांच पँखुरीका, रंग सफेद और कुछ कुछ पीलासा होता है, फल अखरोटके सदृश गोल और उसमें रेखा पडी होती हैं, यह वृक्ष कांटेदार होता है ॥

अथ रास्ना ।

रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहा रसना रसा एलापर्णी च सुरसा सुगन्धा श्रेयसी तथा ॥ १५२ ॥ रास्नाऽऽमपाचिनी तिक्ता गुरूष्णा कफवातजित् शोथश्वाससमीरास्रवातशूलोदरापह । कासज्वरविषाशीतिवातिकामयसिध्महृत् ॥ १५३ ॥

रास्ना, युक्तरसा, रस्या, सुवहा, रसना, रसा, एलापर्णी, सुरसा, सुगन्धा, श्रेयशी, (नाकुली, सर्प, गन्धा, पलंकषा, द्रोणगंधिका. गन्धनाकुली, नकुलेष्टा, भुजंगाक्षी, छत्राकी, सुगंधिमूला, रसाढ्या, अतिरसा, मुक्तरसा और युक्तरसा) ये रायसनके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी-रायसन, रासना, रास्ना । बं०-रास्ना । म०-नावलीच्या मुल्या । गु०-रासना । क०-रसना केदारे । फा०-रासुन । अ०-जजबीलशामी । लै०-वेंडारोक्स बुर्घी Vandarox Burghi. रायसन-पाचक, कडवी, भारी, गरम, कफ तथा वातको जीतनेवाली, और सूजन, श्वास, वातरक्त, वातशूल, उदररोग, खांसी, ज्वर, विष, अस्सी प्रकारके वातरोग तथा सिध्मकुष्ठ नाशक है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

विवरण ।

रास्नाके वृक्ष नदीके किनारे और पर्वतोंकी तलहटीमें विशेष करके होते हैं । इसकी जडमें कुछ कुछ सुगन्ध आती है । इसके पत्ते सनायसे दूने लम्बे चौडे होते हैं, परन्तु आकृति सनाय हीकेसी होतीहै । प्रयोगमें इसका सर्वाङ्ग ग्रहण किया जाता है । यह बदरीनारायण केदारनाथमें बहुत होती है ॥

अथ नाकुली (नाई) ।

नाकुली सुरसा नागसुगन्धा गन्धनाकुली । नकुलेष्टा भुजङ्गाक्षी सर्पाङ्गी विषनाशिनी ॥ १५४ ॥ नाकुली तुवरा तिक्ता कटुकोष्णा विनाशयेत् । भोगिलूतावृश्चिकाखुविषज्वरकृमिव्रणान् १५५

नाकुली, सुरसा, नागसुगन्धा, गन्धनाकुली, नकुलेष्टा, भुजंगाक्षी, सर्पांगी विषनाशिनी, (महासुगंधा, सुवहा, फणिहन्त्री, नकुलाढ्या, अहिभुक्, विषमर्दनिका, अहिमर्दिनी, महाहिगन्धा और अहिलता) ये नाईके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-नाई, नाकुलीकन्द, नकुलकन्द । बं०-नाकुली, सुगन्धनाकुली । म०-मुँगुसवेल, सापसन्द । गु०-नोरवेल । ते०-पम्रपुचेट्टु ! फा०-विषमुंगरी छोटा चांदा । लै०-रोबोलफिया सर्पेटैना Rauwolfa Serpentina. नाकुली--कसैली, कडवी, चरपरी गरम और सर्प लूता, बिच्छू तथा चूहोंका विष, ज्वर, कृमि और व्रणविनाशक है ॥१५४॥१५५॥

विवरण ।

नाकुली जंगलमें होती है पत्ते नागरबेलके समान होते हैं और इसके नीचे कन्द निकलता है, उसीको वैद्यलोग प्रयोगमें लाते हैं ॥

अथ माचिका (पश्चिमदेशे मोइआ इति लोके प्रसिद्धो वृक्षविशेषः)।

माचिका प्रस्थिकाऽम्बष्ठा तथा चाम्बालिकाऽम्बिका। मयूरविदला केशी सहस्रा बालमूलिका ॥१५६॥ माचिकाऽम्ला रसे पाके कषाया शीतला लघुः। पक्वाऽतीसारपित्तास्रकफ कण्ठामयापहा ॥ १५७ ॥

माचिका, प्रस्थिका, अम्बष्ठा, अंबालिका, अंबिका, मयूरविदला, केशी, सहस्रा, बालमूलिका, (बालिका, बाला, शठाम्बा, अंबा, दृढवल्का, मयूरिका, गन्धपत्री, चित्रपुष्पी, श्रेयसी, मुखवाचिका, छिन्नपत्री और भूरिमल्ली) ये मोइयेके संस्कृत नाम हैं।

हिंदी–मोइया। गु०–हानी पीलुडी। बं०–माचिका। म०–लघुकावली। क०–कावईकाके। फा०–रोवातरीख। अ०–एनवुससालव। इं०–सोलनुम निगरम Solenum Nigrum मोइया–रसमें खट्टा, पाकमें कसैला, शीतल, हलका और पक्वातीसार, पित्त, रुधिरविकार कफ तथा कंठके रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

अथ तेजवती।

(तेजवल्कल तेजपात इति च लोके)

तेजस्विनी तेजवती तेजोह्वा तेजनी तथा। तेजस्विनी कफश्वासकासस्यामयवातहृत्। पाचन्युष्णा कटुस्तिक्ता रुचिवह्निप्रदीपनी ॥ १५८ ॥

तेजस्विनी, तेजवती, तेजोह्वा, तेजनी, (लघुवल्कला, महौजसी, पारिजाता, शीता, तिक्ता, अतितेजनी, वल्कली, सुवर्णनाकुली, विडालघ्नी और सुतक्षसी) ये तेजबलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–बं०–म०–गु०–तेजबल। दक्षि०लै–खलधरी। इ०–टुथकट्री Toothache tree, झेन्थाक्सिलोन होस्टिली Zanthoxylon Hostile तेजबल–पाचन, गरम, चरपरा, कडवा, रुचिकारक, अग्निको उत्पन्न करनेवाली और कफ, श्वास, खांसी, मुखरोग तथा वायुरोगको नष्ट करती हैं ॥ १५ ॥

विवरण।

तेजबलकी बेल वनमें होती है, उसको छाल छाल होती हैं, उसको तेजवल्कल और तेजवती कहते हैं। और इसके फल कालीमिरचके समान होते हैं। यह सुगंधित पदार्थ है। इसकी मात्रा एक मासेकी है ॥

अथ ज्योतिष्मती (मालकांगनी)।

ज्योतिस्मती स्यात्कटभी ज्योतिष्का कङ्गनीति च। पारावतपदी पण्या लता प्रोक्ता ककुन्दनी ॥१५९॥ ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफसमीरजित्। अत्युष्णा वामनी तीक्ष्णा वह्निबुद्धिस्मृतिपदा ॥ १६० ॥

ज्योतिष्मती, कटभी, ज्योतिष्का, कङ्गनी, पारावतपदी, पण्या, लता, ककुंदनी, (तीक्ष्णा, कंगुनी, बृहत्कंगुनी, तेजोवती, बहुरसा, कनकप्रभा, सुवर्णनकुली, लवणा, अग्निदीप्ता, तेजस्विनी, सुरलता, अग्निफला, अग्निगर्भा, शैलसुता, सुतैला, सुवेगा, वायसी, तीव्राकाकण्डी, वायसादनी, गीर्लता, श्रीलता, सौम्याककाण्डी त्रिपर्णी और पीड्या) ये मालकांगनीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–मालकानी। बं०–लताफठकी। म०–मालकांगणी। गु०–मालकांकणी। क०–कउगुएरडु। तै०–बावजी। फा०–काल। इं०–स्टॉफट्री Stafftree. लै०–सिलेस्ट्रस पेनिक्युलेटा Celastrus paniculata मालकांगनी–चरपरी, कडवी, दस्तावर, कफ तथा वायुको जीतनेवाली, अत्यन्त उष्ण, बमनकारक तीक्ष्ण, अग्निप्रदीक और बुद्धि तथा स्मृतिको तीव्र करनेवाली है ॥ १५९ ॥ १६० ॥

विवरण।

मालकांगनीकी बेल जंगल और वनोंमें वृक्षोंके आश्रयसे चलती है, पत्ते गोल कुछ कुछ

अनीदार और थोडे थोडे कँगूरेवार दंडीमें बराबर भरे हुए होते हैं, फूल छोटे पांच पँखुडीके और झुमकेदार लगते हैं फल भी झुमकेदार चने अथवा मटरके समान बडा होता है, यह फल कच्ची अवस्थामें हरा और पकजानेपर पीला हो जाता है । इसके भीतर लाल रंगके छः बीज निकलते है बहुत लोग उन बीजोंको कोल्हूमें पिसवाकर तेल निकाल लेते हैं, इसके फलोंका शाक भी बनता है ॥

अथ कुष्ठम् (कूठ) ।

कुष्ठरोगाह्वयं वाप्यं पारिभव्यं तथोत्पलम् । कुष्ठमुष्णं कटु स्वादु शुक्रलं तिक्तकं लघु । हंति वातास्रवीसर्पकासकुष्ठमरुत्कफान् ॥ १६१ ॥

वाप्य, पारिभव्य, उत्पल और जितने कुष्ठरोगके नाम हैं, वे सब, (कुष्ठ, व्याधि, पाकल, कदाख्य, दुष्टयाप्य, गदाख्य, आप्य, जरण, कौबेर, बासुर, गदाह्व, गदाह्वय, कुठिक, काकल, नीरुज, आमय, रुजा, गद, वाणीराज, पारिभद्रक, कुत्सिग, पद्मक, पावन, रोग, रोगाह्वय, किंजल्क और हरिभद्रक) ये कूठके संस्कृत नाम नाम हैं ॥

हिंदी--कूठ।बं०--कुड।म०--कोष्ठ।गु०--कुठ। क०--कोठ । तै०--चंगल, कुष्ठ, । फ०--कोतह । अ०--कुस्तवेहरी । इं०कोस्तसूरूट Costnsroot लै०--एप्लोटेक्सिस ओरिक्युटा Aplotaxisi Curiculata कूठ--गरम, चरपरा, मधुर, वीर्यवर्द्धक, कडवा, हलका और वात, रक्त, विसर्प, खांसी, कुष्ठ, वात तथा कफको नष्ट करनेवाला है ॥ १६१ ॥

विवरण

कूठके वृक्ष पर्वतोंपर होते हैं । पत्ते अदरकके के समान छोटे होते हैं, हरंतु इस देशमें नहीं होते, अन्य देशमें अधिक होते हैं । विशेष करके सिंधु नदीके किनारेका कूठ उत्तम होता है । वृक्षकी जड सुगंधित होती है, उसीका नाम कूठ है । कूठ दो प्रकारका होता । एक कडवा और दूसरा मीठा । खानेकी औषधोमें मीठा कूठ लेना, कडवा कभी नहीं लेना, यह वांतिकारक है ॥

अथ कुष्ठभेदः--पुष्करमूलम

उक्तं पुष्करमूलं तु पौष्करं पुष्करञ्च तत् । पद्मपत्रश्च काश्मीरं कुष्ठभेदमिमं जगुः ॥१६२॥ पौष्करं कटुकं तिक्तमुक्तं वातकफज्वरान् । हन्ति शोथारुचिश्वासान् विशेषात्पार्श्वशूलनुत् ॥ १६३ ॥

पुष्करमूल, पौष्कर, पद्मपत्र, काश्मीर, (पद्मपर्णक, पद्मकर्ण, पुष्करिणी, वीरपुष्कराह्वया, ब्रह्मतीर्थ, श्वासारि, मूलपुष्कर, पुष्करजटा, पुष्करशिफा, वीर, पद्मपत्रक, पद्मपुण्य, सागर, शूर, वृक्षरुह, समूलघ्न और कुष्ठभेद) ये पोहकरमूलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--पोहकरमूल । बं०--कुष्ठविशेष, पुष्करमूलके म०--पुष्करमूल । गु०--पोकरमूल । क०--पुष्करमूल । पोहकरमूल--चरपरा, कडवा और वात तथा कफसे उत्पन्न हुए ज्वर, शोथ, अरुचि तथा श्वासरोगको दूर करता है । विशेषकरके पसलीके शूलको निर्मूल करता है ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

विवरण ।

पुष्करमूल भी कूटहीका भेद है; क्योंकि इनके और कूटके पत्तोंमें तथाशाखाओंमें किसी प्रकारका भेद नहीं जान पडता, गुणभी एकही से हैं। इसीलिये कूठके अभावमें पुष्करमूल और पुष्करमूलके अभावमें कूठ लिया जाता है ॥

अथ कटुपर्णी (चोक) ।

कटुपर्णी हैमवती हेमक्षीरी हिमावती । हेमाह्वा पीतदुग्धा च तन्मूलं चोकमुच्यते ॥१६४॥ हेमाह्वा रेचनी तिक्ता भेदिन्युत्क्लेशकारिणी । कृमिकण्डूविषानाहकफपित्तास्रकुष्ठनुत् ॥ १६५ ॥

कटुपर्णी, हैमवती, हेमक्षीरी, हिमावती, हेमाह्वा, पीतदुग्धा, (स्वर्णक्षीरी, हेमशिखा, पटुवर्णी, पीतपुष्पा, स्वर्णदुग्धा, स्वर्णाह्वा, रुक्मिणी, सुवर्णा, कांचनी, क्षीरिणी, कांचन-

क्षीरी, कर्विणी, तिक्तदुग्धा, हिमाद्रिजा, यवचिञ्चा, हिमोद्भवा, हैमी और हिमजा) ये चोकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-चोक, सत्यानाशी कटेरी । बं०-चोक । म०-कांटेधोत्रा । गु०-दारुणी । क०-चिक्कणिके । इं०-गेंबोज, थिसल Cambo gTeцistle लै०-आर्गिमोन, मेक्सीकन Argemone Maxica चोक-रेचक (दस्तावर), कडवा, भेदक, ग्लानिकारक और कृमि, खुजली, विष, अफरा, कफ, पित्त, रुधिर और कोढको शमन करनेवाली है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

विवरण ।

सत्यानाशी कटेरीका क्षुप होता है, विशेष वह खँडहर, खाई और सूखे हुए ताल तलैयोंमें अधिक उत्पन्न हो जाती है, इसके पत्ते फल शाखा आदि सब अंगोंमें कांटे होते हैं और फूल पीले रंगके होते हैं। फलका डोर होता है, उसमेंसे काले रंगके बीज निकलते हैं, उनका तेल निकालते हैं, इनके पत्ते तोडनेसे पीला दूध निकलता है । इसकी जडको चोक कहते हैं। इस देशके लोग इसको ऊँटकटीला भूलसे कहते हैं । सो ऊँटकटीला यह नहीं है॥

शृङ्गी कर्कटशृङ्गी च स्यात्कुलीरविषाणिका । अजशृङ्गी च वक्रा च कर्कटाख्या च कीर्तिता ॥ १६६ ॥ शृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफवातक्षयज्वरान् । श्वासोर्ध्ववाततृट्कासहिक्काऽरुचिवमीन् हरेत् ॥ १६७ ॥

अथ कर्कटशृङ्गी (कांकडासिना) ।

शृंगी, कर्कटशृगी, कुलीरविषाणिका, अजशृंगी, वक्रा, कर्कट, (कर्कटशृंगिका, कासविनाशिनी, कलिंगी, महाघोषा, चक्रांगी, कर्कटी, वनमूर्द्धजा, कुलीरशृंगी, घोषा, चक्रा, शिखरी, कर्कटाख्या, कौलिरा, विषाणिका, चन्द्रास्पन्दा, नवांगा, नतांगी, और वक्रा) ये काकडासिंगीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-काकडासिंगी । बं०काकडाशृंगी । म०-काकडासिंगी । गु०-काकडासीं । क०--कर्कटीशृगी । तै०--कर्कटाशृंगी । लै०--पिष्टेशिया इनटीग्रेरिवा Pistacia Intagrirriwa काकडासिंगी--कसैली, कडवी, गरम और कफ, वात, क्षय, ज्वर, श्वास, ऊर्ध्ववात, तृषा, खांसी, हिचकी अरुचि, तथा वमनको नष्ट करनेवाली है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

विवरण ।

काकडासिंगीका बडा वृक्ष होता है, इसका आकार जियापोतेके पेड़के सदृश होता है, इसकी फली भीतरसे खुक्खल होती है, उसी फलीहीका नाम काकडासिंगी है ॥

अथ कट्फलस्य (कायफलके) नामगुणाः ।

कट्फल सोमवल्कश्च कैटर्य्यःकुम्भिकाऽपि च । श्रीपर्णिका कुमुदिका भद्रा भद्रवतीति च ॥१६८॥ कट्फलस्तुवरस्तिक्तः कटुर्वातकफज्वरान् हन्ति श्वासप्रमेहार्शःकासकण्ठामयारुचीः॥१६९॥

कट्फल सोमवल्के, कैटर्य, कुम्भिका, श्रीपर्णिका, कुमुदिका, भद्रा, भद्रवती (त्वक्फल, कुम्भी, कैटर्य, कायफल, कुंभीपाकी, पुरुष, कुमुदी, सोमवृक्ष, रोहिणी, अरण्य, कृष्णगर्भ, प्रचेतसी, भद्रावती, महाकुम्भी, रामसेनक, कुमुदा उग्रगन्धा, भद्रारंजन, लघुकाश्मर्य और श्रीपर्णी) ये कायफलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--कायफल । बं०--कट्फल । गु०--कायफल । कुम्भयाची साल । क०--किरुसिवन्नि । तै०--पापरवुडम । फा०--उदुलवर्क । अ०--दारशीशवान । लै०--मिरिकासापिडा MAricasapida कायफल--कसैला, कडवा, चरपरा और वात, कफ, ज्वर, श्वास, प्रमेह, बवासीर, खांसी, कंठके रोग तथा अरुचि इन सबको दूर करनेवाला है ॥१६८॥१६९॥

विवरण ।

कायफलका बडा वृक्ष होता है, पत्ते पानके समान और फूल लाल लाल होते हैं। फल

जायफलके समान गोल होते हैं। उस फलके ऊपरकी छाल जो जावित्रीके समान होती है, उसको रामपत्री कहते हैं, इस वृक्षकी छाल मोटी और भारी वजनदार होती है, इसके फूल और छाल दोनों प्रयोगमें आते हैं ॥

अथ भार्गी (भारंगी)

भार्गी भृगुभवा पद्मा फञ्जी ब्राह्मणयष्टिका । भार्गी रूक्षा कटुस्तिक्ता रुच्योष्णा पाचनी लघुः॥१७०॥ दीपनी तुवरा गुल्मरक्तनुन्नाशयेद्ध्रुवम्। शोथकासकफश्वासपीनसज्वरमारुतान्॥१७१॥

भार्गी, भृगुभवा, पद्मा, फञ्जी, ब्राह्मणयष्टिका, (भारंगी, ब्राह्मणी, भृंगजा, अंगारवल्लरी, मुखधौता, दूर्वा, गर्दभशाका, फंजिका, बर्बर, बालेयशाक, वर्द्धक, ब्रह्मयष्टि, यष्टि, ब्रह्मयष्टिका, शाकवालेय, अंगारवल्ली बालेय ब्रह्मिका, गर्दभशाखी, ब्राह्मी, ब्राह्मणयष्टी, वान्तारि, वातारि, कासजित्, भ्रमरेष्टा, शक्रमाता, भृगुभवा, खरशाका, कासघ्नी, भृगुजा, भार्गवी और कगलिंगबल्ली) ये भारंगीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--भारंगी । वं०--वामुनहाटी । म०--भारंग । गु०--भारंगी । क०--किर्रुदेगु । तै०--भंटभारंगी नैपाचूया । लै०--क्लेरोडेनड्रन्सीरेटम Clerodendrou Seretum भारंगी--रूखी, चरपरी, कडवी, रुचिकारी, गरम, पाचक, हल्की, अग्निको दीपन करनेवाली, कसैली और गुल्म, रुधिरविकार, सूजन, खांसी, कफ, श्वास, पीनस, ज्वर तथा वातविनाशक है ॥ १७० ॥ १७१ ॥

विवरण ।

भारंगीके बडे बडे वृक्ष वनमें होते हैं, पत्ते लम्बे २ और फूल गोल गोल सफेद रंगके ललाई लिये होते हैं, पत्ते जडमें विशेष करके होते हैं। पत्तोंका शाक बहुत अच्छा बनता है॥

अथ पाषाणभेदः ।

पाषाणभेदकोऽश्मघ्नो गिरिभिद्भिन्नयाजनी अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो वस्तिशोधनः॥ १७२ ॥ भेदनो हन्ति दोषार्शोगुल्मकृच्छ्राश्महृद्रुजः। योनिरोगान्प्रमेहांश्च प्लीहशूलव्रणानि च ॥१७३॥

पाषाणभेद, अश्मघ्न, गिरिभित्, भिन्नयाजनी, (शिलाभेद, उपलभेद, नगभिद्, शैलगर्भज, अश्मभित्, पाषाणभेदक, पाषाणभेदी, श्वेता, उपलभेदी, उपलभित् और शिलागर्भज) ये पाषाणभेदके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--पाषानभेद । बं०--पाथरचुरी । म०--गु०--पाषाणभेद । क०--अलिलगया । तै०--तेल्लामुरूपिण्डी । फा०--गोशाद । अ०--जितियाना । इ०--आइरिसूप । Irissp लै०--कोसियस् एरोमिटकम् Docius Aromaticum पाषानभेद--शीतल, कडवा, कसैला, वस्तिकशोधक, मलभेदक (दस्तकरता), और बवासीर, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, हृदयके रोग, योनिरोग, प्रमेह, प्लीहा, शूल और व्रण इन सब रोगोंको दूर करताहै॥१७२॥१७३

विवरण ।

पाषाणभेदके वृक्ष पार्वतीय भूमिमें अधिकतासे होते हैं। पाषाणभेद दो प्रकारका होता है; एक वनस्पतिकी जड होती है उसको पाषाणभेदकी लकडी कहते हैं और दूसरा खनिज होताहै, वह पाषाणभेद पत्थरके नामसे प्रसिद्ध है यह अन्य द्वीपोंसे आता है। इसलिये इसका विशेष वर्णन नहीं किया ॥

अथ धातकी (लाई)।

धातकी धातुपुष्पी च ताम्रपुष्पी च कुञ्जरा। सा सुभिक्षा बहुपुष्पी च वह्निज्वाला च सा स्मृता ॥१७४॥ धातकी कटुका शीता मृदुकृत्तुवरा लघुः। तृष्णातीसारपित्तास्रविषक्रिमिविसर्पजित् ॥ १७५ ॥

धातकी, धातुपुष्पी, ताम्रपुष्पी, कुञ्जरा, सुभिक्षा, बहुपुष्पी, वह्निज्वाला, (धातुपुष्पिका वह्निपुष्पी, धावनी, अग्निज्वाला, पार्वती, बहुपुष्पिका, कुमुदा, सीधुपुष्पी, मधवासिनी

गुच्छ, संवपुष्पी, रोध्रपुष्पिणी, तीव्रज्वाला, वह्निशिखा और पद्मपुष्पा) ये धायके फूलोंके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी धायके फूल, धबईफूल । बं०-धायफुल । म०-धायटीफूल । गु०-धावडीना फूल । क०-धायिफूल । तै०-उडफोर्डिया, फ्लोरिबंड, Wooddfordia Floribunda धायके फूल चरपरे, शीतल, मृदुता करनेवाले, कसैला, हलके और तृषा, अतीसार, पित्त' रुधिरदोष- विष, कृमि तथा विसर्पनाशक हैं ॥१७४॥१७५

विवरण ।

धायके वृक्ष वनमें बहुत होते हैं, पत्ते अनारके पत्तोंके समान होते हैं, परन्तु अनारके पत्ते हरे होते हैं और धायके पत्ते कुछ कुछ पीलापन लिये हुए होते हैं फूल अत्यन्त लाल कलीके समान होते हैं, इसके फूसमें पँखुरी नहीं होती हैं। इसके पुष्पही प्रयोगमें लिये जाते हैं ॥

अथ मजिष्ठा (मँजीठ)

मञ्जिष्ठा विकसा जिङ्गी समंगा कालमेषिका । मण्डूकपर्णी भण्डीरी भण्डी योजनवल्ल्यपि ॥१७६॥ रसायन्यरुणा काला रक्तांगी रक्तयष्टिका । भण्डीतकी च गण्डीरी मंजूषा वस्त्ररञ्जिनी ॥१७७॥ मंजिष्ठा मधुरा तिक्ता कषाया स्वरवर्णकृत्। गुरुरुष्णा विषश्लेष्मशोथयोन्यक्षिकर्णरुक्। रक्तातीसारकुष्ठास्त्रवीसर्पव्रणमेहनुन् ॥ १७८ ॥

मंजिष्ठा, विकसा, जिंगी, समंगा, कालमेषिका, मण्डूकपर्णी. भंडीरी, भंडी, योजनवल्ली, (योजनवल्लिका, मण्डूका. कण्डीरा, वस्त्ररंजनी· रक्तांगी, रक्तयष्टि, रक्ता, योजनपर्णिका, लतायष्टि, हेमपुष्पी, भिण्डीरी, काण्डिरी; भण्डिल, भंडिरी मंडिका, मंडी, भंडितकी रसायनी, गंडीरी. हरिणी, गौरी, वप्रा, रोहिणी, चित्राला, चित्रा, चित्रांगी, जननी, विजया, मंजूषा, रक्तयष्टिका, क्षत्रिणी, रागाढ्या, कालभण्डिका, अरुणा, ज्वरहन्त्री, छत्रा, नागकुमारिका, भण्डीर, लतिका, रगांगी वस्त्रभूषण, क्षेत्रिणी, ताम्रमूली, ताम्रिका, लोहितलता और ताम्रवल्ली) ये मंजीठके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी-मंजीठ । बं०-क०-मंजिष्ठा । म०-मंजिष्ठ । गु०-मजीठ । तै०-मंजिष्ठतीष्ठी । ता०-मंजिट्टी । फा०-रुनास । अ०-कुबहतुसिवग । इं०-मेडररूट् Mndder Root लै०-रूबिया कॉर्डिफोलिया Rubia Cordifylia मंजीठ--मधुर, कडवा, कसैला, स्वर तथा वर्णको उत्तम करनेवाली, भारी, गरम और विष, कफ, शोथ, योनिरोग, नेत्ररोग, कर्णरोग, रक्तातिसार, कुष्ठ, रुधिरविकार, विसर्प, व्रण, तथा प्रमेहको नष्ट करती है ॥ ७६-७८ ॥

विवरण ।

मंजीठ खेतोंमें बोया जाता है, इसका क्षुप लताके समाग होता है, जड लालरंगकी होती है, औषधिके सिवाय रङ्गतके काममें बहुत आती है ॥

अथ कुसुम्भम् ।

स्यात्कुसुम्भं वह्निशिखं वस्त्ररञ्जकमित्यपि । कुसुम्भं वातलं कृच्छ्ररक्तपित्तकफापहन् ॥ १७९ ॥

कुसुम्भ, वह्निशिख, वस्त्ररंजक, (लोहित, ग्राम्यकुंकुम, महारंजन, कुक्कुटशिख, पावक, पति, पद्मोत्तर, रक्त, वस्त्ररंजन और अग्निशिख) ये कसूमके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी- कसूम (कर्क) । बं०- कुसुमफूल । म०--कड्डूर्याचें फूल । गु०--कुसुबो । क०--कुजुम्भ । फा०-गुलेमारकर । अ०-अखरीज अबूलअस्फर । इं०-आफिसिनल कार्थेमसू Officanl Carthamus लै०-कार्थेमस टिंक्टोरियस Carthamus Tinctious कसूम नष्ट करनेवाला है ॥ १७९ ॥

विवरण ।

कसूम खेतोमें बहुत बोया जाता है, इसके क्षुप दो दो हाथ ऊँचे कटेरीके समान कांटेदार होते हैं और पत्तोंके भी छोटे २ कांटे होते हैं, इसके ऊपर गेंदेके फूलके समान फूल आता है, उसमें केशरके समान महीन महीन तारसे होते हैं, उनका नाम कसूम है । कसूम बहुधा रंगतके काममें बहुत आता है. इसके बीजोंको कर्र कहते हैं, उनका तेल निकाला जाता है ॥

अथ लाक्षा (लाही)

लक्षा पलंकषाऽलक्तो यावो वृक्षामयो जतुः । लक्षा वर्ण्या हिमा बल्या स्निग्धा च तुवरा लघुः । ब्राह्मण्यङ्गारवल्ली च खरशाखा च हञ्जिका ॥ १८० ॥ अनुष्णा कफपित्तास्रहिक्काकासज्वरप्रणुत् ॥ १८१ ॥ व्रणोरःक्षतवीसर्पकृमिकुष्ठगदापहा । अलक्तको गुणैस्तद्वद्विशेषाद्व्यङ्गनाशनः ॥ १८२ ॥

लाक्षा, पलंकषा, अलक्त, याव, वृक्षामय, जतु, ब्राह्मणी, अंगारवल्ली, खरशाखा, हंजिका. (कीटजा, राक्षा, शतघ्नी, रक्तमातृका, द्रुमामय, गराषिका, खदिरका, रक्ता रंगमाता, कृमिहा, द्रुमव्याधि, अलक्तक, पलाशा, मुद्रिणी, दीप्ति, जन्तुका, गन्धमादिनी, नीला, द्रवरसा, पित्तारि, कृमिजा, क्रिमिजाजतुका, और गर्णधका) ये लाखके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-लाख, लाही । बं०-लाहा । म०-गु०-लाख क०-अरगु । तै०-लाका । ता०-अरक्कु । फा०-लाक अ०-लुक लूकमकसुल । इं०-शेललाक Shel Lac लै०--कोकसे लाका Docus Lacca लाख--वर्णको सुन्दर करनेवाली, शीतल, बलदायक, स्निग्ध, कसैली, उष्णतारहित और कफ, पित्त, रुधिर विकार, हिचकी, खांसी, ज्वर, व्रण, उरःक्षत. विसर्प कृमि. और कुष्ठरोगको नष्ट करती है, आलके गुण भी लाखके समान हैं, विशेषकर व्यंगनाशक है ॥ १८०--१८२ ॥

विवरण ।

पीपल, पिलखन, बेर, शीशम आदि वृक्षोंकी शाखाओंके ऊपर जो लाल पदार्थ होता है. उनको लाख कहते हैं. इनमें पीपलकी लाख उत्तम होती है और अनेक औषधियोंके प्रयोगमें आती है । इसी लाखको गरम पानीमें पकाकर महावर बनाते हैं इसी लाखके रंगकी रोशनाई बहुत पक्की बनती है, उसके लिखे हुए ग्रन्थ हजारों वर्षतक नहीं मिटते ॥

अथ हरिद्रा ।

हरिद्रा काञ्चनी पीता निशाख्या वरवर्णिनी । कृमिघ्ना हलदी योषित्प्रिया हट्टविलासिनी ॥ १८३ ॥ हरिद्रा कटुका तिक्ता रूक्षोष्णा कफपित्तनुत् । वर्ण्या त्वग्दोषमेहास्रशोथपाण्डुव्रणापहा ॥ १८४ ॥

हरिद्रा, कांचनी, पीता, निशाख्या, वरवर्णिनी, कृमिघ्ना, हलदी, योषित्प्रिया, हट्टविलासिनी और जितने रात्रिके नाम हैं-वे सब. (निशाह्वा, युवती, हेमरागिणी, कांचनी, क्षणदा गौरी, मेहघ्नी, यामिनी, क्षपा, तमसिनी, गन्धपलाशिका. सुवर्णवर्णा, मंगलप्रदा, कावेरी, उमा, वर्णवती, पिंजा, पीतवालुका, हेमरागी, रमंगवासी, घर्षणी पीनिका, रंजनी, निशाबहुला, वर्णिनी, रात्रिनामिका, हरित्, सुवर्णा, शिवा, दीर्घरागा, वरांगी, अनेष्टा, वरा, वर्णदात्री, पवित्रा, हरिता, विषघ्नी पिंगा, मंगल्या, मंगला, लक्ष्मी, भद्रा, शिफा, शोभा, शोभना, सुभगाह्वया, श्यामा, ज्रांतिका, कृमिघ्नी, जयन्ती, हलदी और वर्णविलासिनीये हलदीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी--हलदी । बं०-हलुद । म०--हलद । गु०--हलदर । क०--उरुफुरसुफुर । इं-टर्मेरिक Turmeric लै०त्करक्युमालोंगा Curcum alonga हलदी-चरपरी, कडवी, रूखी, गरम, कफ, पित्त त्वचाके दोष, प्रमेह, रुधिरविकार, सूजन, पांडुरोग और व्रणविनाशक है ॥ १८३--१८४ ॥

विवरण ।

पहाडकी और जंगलोंमें हलदीके खेत बोये जाते हैं । उसके क्षुप छोटे २ और अदरकके समान चौडे पत्तेवाले होते हैं, उसके नीचे घुइयांके समान गांठें होती हैं, उसको खोद खोदकर धूपमें डाल देते हैं । जब वे सूख जाती हैं तो उनको हलदी कहते हैं । हरी हलदीकी भाजी भी अच्छी बनती है ॥

कर्पूरहरिद्रा ।

दार्वी मेदाऽऽम्रगन्धा च सुरभी दारुदारु च। कर्पूरा पद्मपत्रा स्यात्सुरीमत्सुरतारका ॥ १८५ ॥ आम्रगन्धिर्हरिद्रा या सा शीता वातला मता । पित्तहृन्मधुरा तिक्ता सर्वकण्डूविनाशिनी ॥ १८६ ॥

दार्वी, मेहा, आम्रगन्धा, सुरभी, दारुदारु, कर्पूरा, पद्मपत्रा, सुरीमत्, सुरतारका (और सुरनायिका) ये कपूरहलदीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी--कपूरहलदी, अंबिया हलदी, । बं०-आमआदा । म०--आंवहळद । गु०-आंबा हलदर । क०-कहुली अरसिना । तै०पालुपसुपु। ता०-पशुमंजळ । ई-मँगो जिंजिर Mango linger लै०-कारक्यूमायरोमेटिका Curcuma Aromatca अंबियाहलदी-शीतन, वातकारक, पित्तनाशक, मधुर, कडवी, और सर्वप्रकारकी खुजलीको दूरकरती है। १८५ । १८६ ॥

विवरण ।

अंबियाहलदी विशेष करके उत्तरकी ओरके जंगलोंमें उत्पन्न होती है, इसकी गांठ हलदीसे बडी होती है, उसके टुकडे करके सुखा देते हैं, उसीको अंबियाहलदी कहते हैं और उसीको कपूरहलदी कहते हैं ॥

अथ वनहरिद्रा ।

अरण्यहलदीकन्दःकुष्ठवातास्रनाशनः ।

संस्कृत-वनहरिद्रा । हिन्दी-वनहलदी, जंगलीहलदी । म०-रानहळद। गु०-वनहलदर । तै०—अडवीपसुपु । ता०कस्तूरिमंजल, काट्टुमंजळ । इं०वाइल्ड टर्मेरिक Wild Turmeric वनहलदीकुष्ठ वात और रुधिरविकारको नष्ट करती है ॥

दारुहरिद्रा ।

दार्वी दारुहरिद्रा च पर्जन्या पर्जनोति च । कटंकटेरी पीता च भवेत्सैव पचम्पचा । सैव कालीयकः प्रोक्तस्तथा कालेयकोऽपि च ॥ १८७ ॥ पीतद्रुश्च हरिद्रुश्च पीतदारु कपीतकम् । दार्वी निशागुणा किंतु नेत्रकर्णास्यरोगनुत् ॥ १८८ ॥

दार्वी, दारुहरिद्रा, पर्जन्या, पर्जनी, कटंकटेरी, पीता. पचंपचा, कालीयक, पीतद्रु, हरिद्रु, पीनादारु, कपीतक (द्वितीयाभा, हरिद्रा, काष्ठा, मर्मरी, पीतिका, स्थिररागा, कामिनी, दारुनिशा, कामवती, दारुपीता, कर्कटिनी, हेमकान्ति, पीतत्वक्, पीतचन्दन, निर्दिष्टा, कारजनी, हेमवती और हेमकान्ता) ये दारुहलदीके संस्कृत नाम हैं । दारुहलदी-हलदीके सदृश गुणवाली है और विशेष करके नेत्रके रोग, कानके रोग तथा मुखके रोगोंको शमन करती है ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

विवरण ।

दारुहलदीके वृक्ष वनमें बडेबडे ऊँचे होते हैं । कुडेकें वृक्षके समान होते हैं विशेष करके ये पर्वतोंमें अधिक उत्पन्न होते हैं । इसकी लकडी पीली होती है, यही दारुहलदी है ॥

अथ रसाञ्जनम् ।

दार्वीक्वाथसमं क्षीरं पादं पक्त्वा यदा घनम् । तदा रसाञ्जनाख्यं तन्नेत्रयोः परमं हितम् ॥ १८९ ॥ रसाञ्जनं तार्क्ष्यं शैल रसगर्भश्च तार्क्ष्यजम् । रसाञ्जनं कटु श्लेष्मविषनेत्रविकारनुत् । उष्णं रसायनं तिक्तं छेदनं व्रणदोषहृत्॥१९०॥

दारुहलदीका काढा करके उसमें उतना ही दूध डाले जब क्वाथका और दूधका चौथा भाग शेष रहकर गाढा हो जाय तब उतार

ले, उसको रसौन कहते ह। रसौत नेत्रोंको परम हितकारी है ॥

रसांजन, तीक्ष्यशैल, रसगर्भ, तार्क्ष्यज, (दार्वी, क्वाथोद्भव, बालभैषज्य, तार्क्ष्य, रसोद्भूत, रसाग्रजकृतक, वीर्यांजन, रसनागर्भ और अग्निसार) ये रसौतके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–रसौत। बं०–रसवत । गु०–रसवती। म०–रसांजन। तै०–रसांजनमु। क० ता०–रसांजन अ०–हुजूज । इं०–एक्स्ट्राक्ट आफ इंडियन बरबरीस Fxtract of India Berberies. लै०–एक्स्टाक्टम् बर्बेरिस Extratum Berberies. रसौत–चरपरी, गरम, रसायन, कडवी, छेदन और कफ, विष, नेत्रविकार तथा व्रणदोषको हरनेवाली है ॥ १८९ ॥ १९० ॥

विवरण।

दारुहलदीकी कच्ची और गीली लकडियों को लेकर चौगुने जलमें पकावे, जब चौथा भाग शेष रह जाय तब उसको छान लेवे, फिर उस क्वाथको चौगुने दूधमें औटावे जब औटाते औटाते दूध जल जाय और क्वाथ गाढा होजाय तब उतार लेवे, पत्तोंमें लपेटकर रखदेवे; उसीको रसौत कहते हैं ॥

अथ वाकुची।

अवल्गुजो वाकुची स्यात्सोमराजी सुपर्णिका। शशिलेखा कृष्णफला सोमा पूतिफलीति च ॥ १९१ ॥ सोमवल्ली कालमेषी कुष्ठघ्नी च प्रकीर्तिता। वाकुची मधुरा तिक्ता कटुपाका रसायनी ॥ १९२ ॥ विष्टम्भहृद्या रुच्या सरा श्लेष्मास्रपित्तनुत्। रूक्षा हृद्या श्वासकुष्ठमेहज्वरकृमिप्रणुत् ॥ १९३ ॥ तत्फलं पित्तलं कुष्ठकफानिलहरं कटु। केश्यं त्वच्यं वमिश्वासकासशोथामपाण्डुनुत् ॥ १९४ ॥

अवल्गुज, वाकुची, सोमराजी, सुपर्णिका, शशिलेखा, कृष्णफला, सोमा, पूतिफली, सोमवल्ली, कालमेषी, कुष्ठघ्नी, (वेजानी, सुवल्ली सोमवल्लिका, चन्द्रलेखा, कृष्णा, पूतिफला, वागुजी, वाकुजी, सोमराज्ञिका, ऐन्दवी, शूलोत्खा, कृमिघ्नी, सुवल्लिका, सिता, सितावरी, चन्द्री, सुप्रभा, कुष्ठहन्त्री, काम्बोजी, पूतिगन्धा, वल्गुजा, चन्द्रराजी, त्वग्दोषापहा, कान्तिदा, अवल्गुजा, चन्द्रप्रभा, पूतिगंधिका, कंडूघ्नी और असितत्वचा) ये बावचीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–बावची, वाकुची, बायची। बं०–हाकुच, सोमराज । म०–बावची । गु०–बावची । क०–बाउचिगे । तै०–तिप्पतीये नेलंवयलिये । ता०–वोगिविट्टलु । इं०–एस्क्यूलंट फ्लाकुर्शिया Esculent Faclourtia. लै०–सोरेलिया कोरिलीफोलिया Psorlia Corylifolia बावची–मधुर, कढवी पाकमें चरपरी, रसायन, विष्टंभनाशक, शीतल रुचिकारी, दस्तावर, रूखी, हृदयको हितकारी, और कफ, रक्त-पित्त, श्वास, कोढ, प्रमेह, ज्वर तथा कृमिको नष्ट करनेवाली है। बावचीका फल पित्तकारक, केश तथा त्वचाको हितकारी, चरपरी, और कुष्ठ, कफ, वात वमन, श्वास, खांसी, शोथ, आम और पाण्डुरोगविनाशक है ॥ १९१-१९४ ॥

विवरण।

बावचीका क्षुप होता है, पत्ते छोटे २ अरनी के समान होते हैं, फूल काला होता है, फल गुच्छेमें लगते हैं, बीज काले होते हैं और उसमें दुर्गन्ध आती है। इसके बीज ही व्यवहारमें विशेष आते हैं ॥

अथ चक्रमर्दः (चकवड)।

चक्रमर्दः प्रपुन्नाटो दद्रुघ्नो मेषलोचनः। पद्माटः स्यादेडगजश्चक्री पुन्नाट इत्यपि ॥ १९५ ॥ चक्रमर्दो लघुः स्वादू रूक्षः पित्तानिलापहः। हृद्यो हिमः कफश्वासकुष्ठदद्रुकृमीन् हरेत् ॥ १९६ ॥

हन्त्युष्णं तत्फलं कुष्ठकण्डुदद्रुविषानिलान्। गुल्मकासक्रिमिश्वासनाशनंकटुकं स्मृतम्॥ १९७॥

चक्रमर्द, प्रपुन्नाट, दद्रुघ्न, मेषलोचन, पद्माट, एडगज, चक्री, पुन्नाट, (तर्किण, तर्किल, प्रपुन्नड, मेषाक्षि, कुसुम, प्रपुन्नाल, अडगज, गजाख्य, मेषाह्वय, एडहस्ती, व्यावर्त्तक, चक्रगज, पुन्नाड, विमर्द्दक, खर्वट, चक्राह्व, शुक्रनाशन, दृढबीज, प्रपुन्नाड, खर्ज्जूघ्न, चक्रमर्दक उरणाख्य, उरणाख्यक. उरणाक्ष, उरणाक्षक, और चक्रषद्माड) ये चक्रमर्दके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-चकवड, पवाड, पमाड (ड) बं०-चाकुन्दा, एडांचि। म०-टायफडा, तरोटा। गु०-कुवाडियो। क०-चगचे। तै०-तांडयमु। फा०-संजिसवोया। इं० ओवलली वड्केशिया Ovalleaved Cassja. लै०-केशियाटोरा Cassiatora. चकवड हलकी, मधुर, रूक्ष, हृदयको हितकारी, शीतल और पित्त, वात, कफ, श्वास, कोढ, दाद, तथा कृमिको नष्ट करनेवाली है। चकवडका फल गरम तथा चरपरा है और कोढ, खुजली, दाद, मिष, वात गुल्म, खांसी कृमि तथा श्वास इन सब रोगोंको नष्ट करनेवाला है॥ १९५—१९७॥

विवरण।

पमार (चकवड) वर्षाऋतुमें अधिकतर उत्पन्न होता है. इसके क्षुप होते हैं, विशेष करके यह जंगलमें और पहाडकी तलहटीमें अधिक होते हैं, पत्ते गोल और एक दंडीमें पांच पांच पत्ते होते हैं, फूल पीले आते हैं, फलियां पतली पतली मूंगकी फलीसे तिगुनी लम्बी होती हैं, उनमें छोटे छोटे मोठकेसे दाने होते हैं, इसके पत्तोंका शाक भी अच्छा बनता हैं॥

अथ अतिविषा (अतीस)

विषा त्वतिविषा विश्वा शृङ्गी प्रतिविषाऽरुणा शुक्लकन्दा चोपविषा भङ्गुरा घुणवल्लभा॥ १९८॥ विषा सोष्णा कटुस्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत्। कफपित्तातिसारामविषकासवमिक्रिमीन्॥ १९९॥

विषा. अतिविषा, विश्वा, शृंगी, प्रतिविषा, अरुणा, शुक्लकन्दा, उपविषा, भंगुरा, घुणवल्लभा, (काश्मीरा, श्वेता, प्रविषा शृंगीका, शृङ्गी, महौषध, श्वेतकन्दा. शृंगी, विरूपा, श्यामकन्दा, विषरूपा, वीरा, माद्री, अमृता, श्वेतवचा (मृद्वी), शिशुभैषज्य और अतिसारघ्नी) ये अतीसके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-अतीस। बं०-आतइच। म०-अतिविषा। गु०-अतवखनी कली। क०-अतिविषा। तै०-अतिबासा। लै०-एको नाइटम हिटरोफाइलम् Aconitum Hetarophyllum. अतीस-गरम चरपरा, कडवा, पाचन, अग्निको दीपन करनेवाला और कफ, पित्त, अतीसार, आम, विष, खाँसी, वमन, और, कृमिरोग नाशक है॥ १९८॥ १९९॥

विवरण।

अतीसका क्षुप करेलेकेसा पत्तोंवाला होता है, उसके नीचे कन्द होता है। अतीस-काला, सफेद और लाल इन भेदोंसे तीन जातिका होता है परन्तु गुण तीनोंका समान है। इसकी जडको अतीस कहते हैं॥

अथ शावरलोध्र (पटिआलोध इति लोके)

लोध्रस्तिरीटकश्चैव शावरो मालवस्तथा। द्वितीयः पट्टिकालोध्रः क्रमुकः स्थूलवल्कलः॥ २००॥ जीर्णपत्रो बृहत्पत्रः पट्टी लाक्षाप्रसाधनः। लोध्रो ग्राही लघुः शीतश्चक्षुष्यः कफपित्तनुत्। कषायो रक्तपित्तासृग्ज्वरातीसारशोथहृत्॥ २०१॥

लोध्र, तिरटिक, शावर, मालव (लोधक लोध्रवृक्ष, मार्जन, तिन्दुक, अलक्तकर्मा, शुक्ल शबरलोध्र, महालोध्र, बलिप्रिय, वानराघात,

बलभद्र, रोध्र, भिल्लतरु, तिल्लक, काण्डकलिक, शम्बर, हस्ति, रोध्रक तिलक काण्डनील, हेमपुष्पक, भिल्ली, शावरक और तिरीट) ये लोधके संस्कृत नाम हैं ॥

दूसरे प्रकारका जो पट्टिकालोध्र (पठानी लोध) होता है, उसके पट्टिकालोध्र, क्रमुक, स्थूल्वल्कल, जीर्णपत्र; बृहत्पत्र पट्टि लाक्षाप्रसाधन, (पट्टिकाख्य, पट्टिका, पट्टिलोध्र पट्टिलोध्रक, बृहद्दल, जीर्णबुध्न, बृहद्वल्क, शीर्णपत्र, अक्षिभेषज शावर, श्वेतलोध्र गालव, बहुलत्वच और वल्क) ये संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–लोध, पठानीलोध । बं०–लोध्रकाष्ठ पाटियालोध । म०–लोध । गु०–लोदर । पठानी लोदर । क०–लोध । तै०–तेल्ल लोड्डुगचेट्टु । अ०–मुगाम । लै०–सिंप्लोकोस रेसिमोसा (वृक्ष) Sy plocos racmoso लोध–ग्राही हलका, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, कसैला और कफ, पित्त, रक्तपित्त, रुधिरविकार, ज्वर, अतीसार तथा शोथको हरनेवाला है ॥ २०० ॥ २०१ ॥

विवरण ।

लोधके बडे बडे ऊँचे वृक्ष हिमालय आदि पर्वतोंमें उत्पन्न होते हैं, पत्ते बडे और लम्बे होते हैं फूल सफेद पीले और लाल रंगके मिश्रित होते हैं, इसकी छाल (लोध) औषधि और रंगतके काममें बहुत आती है ॥

अथ लशुननामगुणाः ।

लशुनस्तु रसोनःस्यादुग्रगन्धो महौषधम् । अरिष्टो म्लेच्छकन्दश्च यवनेष्टो रसोनकः ॥२०२॥ यदाऽमृतं वैनतेयो जहार सुरसत्तमात् । तदा ततोऽपतद्विन्दुःस रसोनोऽभवद्भुवि । पञ्चभिश्च रसैर्युक्तो रसेनाम्लेन वर्जितः ॥ २०३ ॥ तस्माद्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः । कटुकश्चापि मूलेषु तिक्तः पत्रेषु संस्थितः ॥ ॥ २०४ ॥ नाले कषाय उद्दिष्टो नालाग्रे लवणः स्मृतः । बीजे तु मधुरः प्रोक्तो रसस्तद्गुणवेदिभिः ॥ २०५ ॥ रसोनो बृंहणो वृष्यःस्निग्धोष्णः पाचनः सरः । रसे पाके च कटुकस्तीक्ष्णो मधुरको मतः ॥ २०६ ॥ भग्नसन्धानकृत् कण्ठ्यो गुरुःपित्तास्रवृद्धिदः । बलवर्णकरो मेधाहितो नेत्र्यो रसायनः ॥२०७॥ हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूलविबन्धगुल्मारुचिकासशोफान् । दुर्नामकुष्ठानलसादजन्तुसमीरणश्वासकफांश्च हन्ति ॥२०८॥ मद्यं मांसं तथाऽम्लश्च हितं लशुनसेविनाम् । व्यायाममातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम् । रसोनमश्नन् पुरुषस्त्यजेदेतान्निरन्तरम् ॥ २०९ ॥

लशुन, रसोन, उग्रगन्ध, महौषध अरिष्ट, म्लेच्छकन्द, यवनेष्ट, रसोनक (शुक्लकन्द, महाकन्द, वातारि, दीर्घपत्रक, रसुन, गृंजन, रसोनक, कटुकन्द राहूच्छिष्ट, राहूत्सृष्ट और भूतघ्न) ये लहसुनके संस्कृत हैं ॥

हिन्दी–लहसुन । बं०–लसुन । म०–लसूण । गु०–लसण । क०–वेळ्ळुळ्ळि । तै०–तेल्लउल्ली । त०–वेल्लैपूडु । फा०–सी । अ०–सुमइस्कुदीर्युन । इं०–गारलिकरूट् Garlic Root लै०–एलियम् सेठिवम् Alitum Sativam. उत्पत्ति किसी समय देवराज इन्द्रसे गरुडजीने अमृत हरण कर लिया था, उस समय झटकेसे अमृतका एक विन्दु पृथ्वीपर गिर पडा, उसी विन्दुसे यह रसोन उत्पन्न हुआ है पृथ्वीपर छः रस हैं, उनमेंसे एक अम्लरसको छोडकर अमृतमें पांचों रस विद्यमान है, इसलिये गुणके जाननेवालोंने उस अमृतसे प्रगट हुए पदार्थका नाम रसोन रक्खा है । लहसुनकी जडमें चरपरा रस, पत्तोंमें कडवा रस, नालमें कसैला रस, नालके अग्रभागमें खारारस और बीजोंमें मधुर रस रहता है । लहसुन पुष्टिकारक, वीर्य, वर्द्धक, स्निग्ध, गरम, पाचन, दस्तावर, पाकमें

तथा रसमें तीक्ष्ण और मधुर है और भग्नस्थानको जोडनेवाला, कंठको उत्तम करनेवाला; भारी; पित्त तथा रुधिरको बढानेवाला और बल वर्णके लिये उत्तम है। मेधाको हितकारी, नेत्रोंको सुखदायक, रसायन और हृदयरोग, जीर्णज्वर, कोखका दर्द, मलबन्ध, गुल्म, अरुचि, खांसी, सूजन, बवासीर, कुष्ठ, मन्दाग्नि, कृमि, वात, श्वास तथा कफको नष्ट करनेवाला है। लहसुन खानेवालोंको मद्य मांस और खटाई परम हितकारी है। व्यायाम (कसरत) धूप, क्रोध, बहुत जल, दूध और गुड इन पदार्थोंको निरन्तर छोड दे। ये अहितकारी हैं ॥ २०२ ॥ २०९ ॥

विवरण।

लहसुन सर्वत्र अधिकतासे होता है. इसके पत्ते प्याजके समान लम्बे होते हैं और नीचे गुलाबी रंगका कन्द होता है, उसीको लहसुन कहते हैं. लहसुनमें महादुर्गंध आती है। परन्तु इतनेपर भी कई जातिके लोग उसको बहुत खाते हैं ॥

अथ पलाण्डुः (पियाज)

पलाण्डुर्यवनेष्टश्च दुर्गन्धो मुखदूषकः। पलाण्डुस्तु गणैर्ज्ञेयो रसोनसदृशो गुणैः ॥२१०॥ स्वादुः पाके रसेऽनुष्णः कफकृन्नातिपित्तलः हरते केवलं वातं बलवीर्यकरो गुरुः ॥ २११ ॥

पलाण्डु, यवनेष्ट, दुर्गन्ध, मुखदूषक, (सुकन्दक, निकेतन, नीचभोज्य, लाहितकन्द, तीक्ष्णकन्द, उष्ण, मुखदूषण, शूद्रप्रिय, दीपन, कृमिघ्न मुखगन्धक. बहुपत्र, विश्वगन्ध रोचन और सुकन्द) ये पियाजके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-पियाज प्याज। बं०--पेयाज। म०--कांदा। गु०--डुंगरी। क०--(नि) ईरुळ्ळी। तै०--नीरउली। फा०--प्याज। ता०--ईरवेंगायम् अ०--बसल। इं०--बल्बअनियन Bulb Onion लै०--एलियम् सेहा Allium Seea पियाज

१—ईषदुष्ण इत्यर्थः।

लहसुनके सदृश ही गुण वाला है. पाक तथा रसमें मधुर, गरम नहीं, कफकारक, अत्यन्त पित्तकारक नहीं बल तथा वीर्यकी वृद्धि करनेवाला, भारी और केवल वायुको नष्ट करनेवाला है ॥ २१० ॥ २११ ॥

विवरण।

प्याजका क्षुप दो बालिस्त ऊँचा होता है, बागवान् लोग खेतोंमें बोते हैं। पत्ते नालके तुल्य भीतरसे खुक्खल और कोमल होते हैं. नीचे धरतीमें उसका कन्द होता है, वह कन्द गुलाबी रंगका होता है, उस कन्दपर छिलके बहुत होते हैं दुर्गन्ध अधिक आती है, परन्तु खानेवाले उसकी प्रशंसा करते हैं ॥

अथ भल्लातकम् (भिलावा)।

भल्लातकं त्रिषु प्रोक्तमरुष्कोऽरुष्करोऽग्निकः। तथैवाग्निमुखी भल्ली वीरवृक्षश्च शोफकृत् ॥ २१२ ॥ भल्लातकफलं पक्वं स्वादुपाकरस लघु। कषायं पाचनं स्निग्धं तीक्ष्णोष्णं छेदि भेदनम् ॥२१३॥ मेध्यं वह्निकरं हन्ति कफवातव्रणोदरम्। कुष्ठार्शोग्रहणीगुल्मशोफानाहज्वरक्रिमीन् ॥ ॥२१४॥ तन्मज्जा मधुरो वृष्यो बृंहणो वातपित्तहा। वृन्तमारुष्करं स्वादु पित्तघ्नं केश्यमग्निकृत् ॥२१५॥ भल्लातकः कषायोष्णः शुक्रलो मधुरो लघुः। वातश्लेष्मोदरानाहकुष्ठार्शोग्रहणीगदान्। हन्ति गुल्मज्वरश्वित्रवह्निमान्द्यकृमिव्रणान् ॥ २१६ ॥

भल्लातक, अरुक, अरुष्कर, अग्निक, अग्निमुख, भल्ल, वीरवृक्ष, शोफकृत्, (व्रणकृत्, भूतनाशन, भल्लातकी, अग्निमुखी, अह्लला, अन्तःसत्वा, भल्लिका, मल्ली, निर्दहन, तपन, अनल, कृमिघ्न, शैलबीज, वातारि, स्फोटबीजक, पृथग्बीज, धनुर्वृक्ष, बीजपादप, वह्नी, महातीक्ष्ण, आग्निक स्फोटहेतु, शोफकृ (तु)

त, स्नेहबीज और रक्तहर) ये भिलावेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी- भिलावा । बं०-भेला । म०-ब्बिबवा. भिलावा । गु० भिलामां । क०-केरबीज । तै०-नल्लजीडी । ता०-शेनांकोट्टै । फा०--बिलादुर । अ०--हबुल कल्ब । इं०--मार्किंगनट् Markingnut लै०--सेमीकार्पस एनेकार्डियम् Semicarpus Anacrdium भिलावेका पक्का फल पाकमे और रसमें मधुर, हलका कसैला, पाचक. स्निग्ध. तीक्ष्ण, गरम मलको छेदन करनेवाला भेदन (फोडनेवाला), मेधाको हितकारी, अग्निकार और कफ, वात. व्रण, उदररोग, कोढ, बवासीर. संग्रहणी, गुल्म सूजन, अफारा, ज्वर और कृमि इन सबको नष्ट करनेवाला है । भिलावेकी (मज्जा) मींग-मधुर. वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक और वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाली है । भिलावेकी डंडी--मधुर. पित्तनाशक, केशोंको हितकारी और अग्निको दीपन करनेवाली है । भिलावा-कसैला गरम. वीर्यवर्द्धक, मधुर, हलका और बात, कफ, उदररोग, अफारा, कोढ, बवासीर संग्रहणी, गुल्म, ज्वर, श्वेतकुष्ठ; अग्निकी मन्दता, कृमि और व्रणको हरनेवाला है ॥ २१२ ॥ २१६ ॥

विवरण ।

भिलावेका वृक्ष वहुत बडा होता है पत्ते उसके बडके पत्तेके समान होते हैं, फल लाल रंगके बडे बडे होते हैं फल किंचित् लम्बाई लिये गोल गोल करौंदेके सदृश होते हैं सूख कर काले पड जाते हैं, परन्तु उनका रस नहीं सूखता, रस उनमें वना ही रहता है ॥

अथ भंगा (भांग)

भङ्गा गञ्जा मातुलानी मादिनी विजया जया । भङ्गा कफहरी तिक्ता ग्राहिणी पाचनी लघुः । तीक्ष्णोष्णा पित्तला मोहमन्दवाग्वह्निवर्द्दिनी ॥ २१७ ॥

भंगा, गन्जा, मातुलानी, मादिनी, विजया, जया. (शक्रासन त्रैलोक्यविजया, मत्कुणारि, इंद्राशन, वीर पत्रा, चपला, अजया, आनन्दा हर्षिणी, मोहिनी, भृंगी, धूर्तवधू, मातुलानी. मातुली, नीली मनोहरा, हरा. उन्मत्तिनी, योगिनी धूर्तपत्नी, काम ग्नि तन्द्रारुचिवर्द्धिनी, वीरपत्री, शिवा माया. शिवप्रिया, मत्ता; और ज्ञानवङ्किका) ये भंगके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-भांग, भंग, गांजा । बं०-सिद्धि. भांग, गांझा । म०-गु०-भांग । ब्रह्मी०-विना । तै०-जनपरतुलु, गाजाई फा०-कनक जुजव आजम । अ०-किन्नवकनबुवाररु, रुहुलवंज । इं०-इंडियन हेंप Indian emp लै०-कनाबिस इंडिका Dannadis Indica भांग-कफनाशक, कडवी. ग्राही, पाचक, हलकी, तीक्ष्ण गरम, पित्तकारक और मोह, मद, वचन तथा अग्निवर्द्धक है ॥ २१७ ॥

विवरण

भांगके बडे क्षुप होते हैं परंतु आठ फुटसे अधिक ऊंचे नहीं होते; फूल हरे २ गुच्छेदार होते हैं, नींबके पत्तोंके समान लम्बे और कँगूरेदार होते हैं परंतु लम्बाई चौडाईमे नींबके पत्तोंसे छोटे होते हैं । प्रत्येक दण्डीपर तीन पांच अथवा सात पत्ते होते हैं । भांग दो प्रकारकी होती है. एक पुरुषके नामसे दूसरी स्त्रीके नामसे पुरुष जातिके क्षुपसे भांगके पत्ते लिये जाते हैं जिनको घोटकर पीते हैं और स्त्री जातिके क्षुपसे गांजेकी उत्पत्ति होती है, जिसके पत्तोंसे चरस बनता है, रातमें जब ओस पडनेसे गांजेके पत्ते तर होजाते हैं, तब प्रातःकाल उसमें मनुष्योंके शरीरोंको लगजाता है तब वे मनुष्य अपने शरीरको मल मलकर मैल उतार लेते हैं, जब वह मैल एकत्र होजाता है तब उसको चरस कहते हैं, वह काबुल और बलबुखारेसे बहुत आता है, दोनों जातिके क्षुप एकस्थानपर होनेसे जटा नहीं बांधी जासकती हिंदू लोगोंको भांग अत्यन्त प्यारी है, पूर्व और दक्षिणके देशमें भंगका अधिक प्रचार है, वैद्यकशास्त्रमे भंग और भंगके बीजोंके सिवाय

इसपे और किसी अंशका व्यवहार नहीं होता ॥ और गांजा तो किसी २ प्रयोगमें लिया जाता है।

अथ खांखसः (पोस्ता)।

तिलभेदः खसतिलः कासश्वासहरः स्मृतः। स्याद्वा खसफलोद्भूतं वल्कलं शीतलं लघु ॥ २१८॥ ग्राहि तिक्तं कषायश्च वातकृत् तत्कफास्त्रहृत्। धातूनां शोषकं रूक्षं मदकृद्वाग्विवर्धनम्। मुहुर्मोहकरं रुच्यं सेवनात्पुंस्त्व नाशनम् ॥ २१९ ॥

तिलभेद, खसतिल, (और खाखस ये पोस्तके डोडेके संस्कृत नाम हैं। हिंदी-पोस्तके डोडे, खसखस। म -पोस्त । बं०-टेरीवृक्ष, पोस्तदानार गाछ। गु०-अफीगणना डीडवा। फा०-कोकनार। अ०-अनुनास । इं०-पोपिकाप्स्युल्सू Poppycapsules लै०-पापावरिस्काप्सूली Papaverisassulae. खसखसका छुकला-खांसी तथा श्वासको हरनेवाला है, शीतल, हलका, ग्राही, कडवा, कसैला, वातकारक, कफ, तथा रक्तनाशक, धातुओंको सुखानेवाला, रूक्ष, मदकारक, वचनवर्द्धक, वारंवार मोहजनक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला और उसके सेवन करनेसे पुरुषार्थ हीन होजाता है।

विवरण।

पोस्तके खेत पूर्व दक्षिण और रुहेलखण्डमें अधिक होते हैं इसके क्षुप चार फुटसे अधिक ऊँचे नहीं होते, उनपर लाल और सफेद रंगके बहुत सुन्दर गुल्लालेके समान फूल आते हैं, इसपर डोरे लगते हैं, उन डोरोंको छुरीकी नोकसे गोद देते हैं, उनमेसे जो दूध निकलता है, उसको पकाकर अफीम बनाते हैं उन डोडोंके भीतरसे जो दाने निकलते हैं, उनको खसखस कहते हैं ॥

अथ अहिफेनकम् (अफीम)।

उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकम्। आफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम्। तथा खसफलोद्भूतवल्कलग्राथमित्यपि ॥ २२० ॥

खसफलक्षीर, आफूक, अहिफेनक, (अफेनु, खसखस, रस, निफेन, नागफेन, पोस्तरस और भुजगफेन) ये अफीमके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०-अफीम। बं०-आफिं, अहिफेन। म०-अफू। गु०-अफीण। क०-अफेन। तै०-नल्लमन्दु। ता०-अभिनी। फा०-अफयून, तिर्याक। अ०-लवनुल खसखास। इं०-ओपियम Opium लै०-ओप्यम Opium. अफीम-शोषक, ग्राही कफनाशक, वायु तथा पित्तकारक और जो पोस्तके छालके गुण हैं, वेही गुण अफीमके हैं ॥ २२० ॥

विवरण।

अफीमका वृत्तान्त पोस्तमें देखो, सम्पूर्ण विदित हो जायगा ॥

अथ खाखसतिलाः।

उच्यन्ते खसबीजानि ते खाखसतिला अपि। खसबीजानि बल्यानि वृष्याणि सुगुरूणि च ॥ २२१ ॥ जनयन्ति कफं तानि शमयन्ति समीरणम्।

खसबीज, खाखसतिल, (सूक्ष्मतण्डुल, सूक्ष्मबीज, सुबीज, तिलभेद और खसतिल) ये खसखसके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-खसखस, पोस्तके दाने। बं०-पोस्तदाना। म०-खसखस। गु०-पोस्तबीज। ता०-गसगसा। फा०-तुख्मेकोकनार। अ०-हबुलकोकनार। इं०-पॉपी सीड्स् Poppy Seeds लै०-पापावर सोम्निफेरम Papaver Somi ferum खसखसके दाने-बलदायक वीर्यवर्द्धक भारी कफको उत्पन्न करनेवाले और वातको शांत करनेवाले हैं ॥ २२१ ॥

अथ सैन्धवम्।

सैन्धवोऽस्त्री शीतशिवं माणिमन्थश्च सिन्धुजम् ॥ २२२ ॥ सैन्धवं लवणं

स्वादु दीपनं पाचनं लघु। स्निग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत् २२३

सैंधव, शीतशिव माणिमन्थ, सिन्धुज, (सिन्धूद्भव, नादेय, लवणोत्तम, सितशिव सितसिव शितशिव, सिंधूपल, वशिर सिन्धुदेशज, माणिबन्ध सिन्धुमन्थज, सिंधुलवण, सिंधुभव सिन्धुसम्भव, शिवसिद्ध, शिवात्मज और पथ्य) ये सैंधेनोंनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सैंधानोंन । बं०-सैंधलवण । म०-शेंदेलोण । गु०-सिन्धालुण । क०-सैन्धव । ता०-तै०-सिन्धुउप्पु । फा०-नमकागसं अ०-मिलहे हिन्दी । इं० क्लोराइड ऑफ सोडियम Chloride of Sodium लै०-सोडिया क्लोरैडम Sodia Chloridum सैंधानोंन-स्वादिष्ठ, अग्निको प्रदीप्त करनेवाला, पाचन, हलका, स्निग्ध, रुचिकारक शीतल, वृष्य सूक्ष्म नेत्रोंको हितकारी और तीनों दोषोको हरनेवाला है ॥

विवरण ।

सैंधेनोंनकी सिन्धुकी और अनेक खाने हैं, उन खानोंमें पत्थरके तुल्य निकलता है यह सम्पूर्ण नमकोंमें शुद्ध और उत्तम होता है लाल और सफेद इन भेदोंसे सेंधानोंन दो प्रकारका होता है परन्तु सफेद की बहुत प्रशंसा है ॥

अथ शाकम्भरीयम् ।

शाकम्भरीयं कथितं गुडाख्यं रोमकं तथा । गुडाख्यं लघु वातघ्नमत्युष्णं भेदि पित्तलम् । तीक्ष्णोष्णं चापि सूक्ष्मं, श्चाभिष्यन्दि कटुपाकि च ॥ २२४ ॥

शाकंभरीय रोमक और गुडके जितने नाम हैं, वे सब (वसुक, रोमक, गुडलवण शुभ्र, पृथ्वीज गुडदेशज गुडोत्थ, महारम्भ, सांभर और समरोद्भव) ये सांभरके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-सांभरनोन । बं०-साभरलुण । म०-सांभरलोण सांभरमीठ । गु०-सामरलूण क०-गाढलवण सम्भरदेशज । फा०-मिलहे अवकीर । सांभर-हलकी वातविनाशक अत्यन्त गरम, भेदक, पित्तकारक, तीक्ष्ण, सूक्ष्म अभिष्यन्दी और पाकमें चरपरी है ॥ २२४ ॥

विवरण ।

सांभरनोंन मरुदेशके खारी सरोवरमें उत्पन्न होता है ॥

अथ सामुद्र लवणम (पांगा) ।

सामुद्रं यत्तु लवणमक्षीवं वशिरश्च तत् । समुद्रजं सागरजं लवणोदधिसम्भवम् २२५ सामुद्रं मधुरं पाके सतिक्तं मधुरं गुरु । नात्युष्णं दीपनं भेदि सक्षारमविदाहि च । श्लेष्मलं वातनुत्तिक्तमरूक्षं नातिशीतलम् ॥ २२६ ॥

सामुद्र, अक्षीव, वशिर, समुद्रज, सागरज, लवणोदधिसम्भव, (सामुद्रिक, त्रिकूट, लवाणाब्धिज, वासर, कडक, शिव और अक्षीर) ये समुद्र नोंनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-समुद्रनोंन, पांगा । बं०-करकचनुन । म०-मीठ । गु०-दरियाईलूण, बडागरलवण । तै०-ता०-उप्पु । फा०-नमक । अ०-मिलहशोरी इं०-साल्ट, Sult लै०-सोडिया मुरास Sodia Muras. समुद्रनोन-पाकमें मधुर चरपरा, और मधुर, भारी, बहुत गरम नहीं, अग्निप्रदीपक, मलभेदक, खारा, रसयुक्त, दाहहीन, कफकारक, वातनाशक, कडक, निरूक्ष और अत्यन्त शीतल भी नहीं है ॥ २२५ ॥ २२६ ॥

विवरण

समुद्रनोंन-समुद्रके जलको जमाकर बनाया जाता है ॥

अथ विडलवणम् । (विरिआ सञ्चर) ।

विडं पाक्यश्च कृतकं तथा द्राविडमासुरम् । विडं साक्षारमूर्ध्वाधःकफवातानुलोमनम् ॥ २२७ ॥

ऊर्ध्वं कफम,अधो वातं च सञ्चारयेदित्यर्थः।

दीपनं लघु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं रुच्यं व्यवायि च । विबन्धानाहविष्टम्भहृद्गुरुगौरवशूलनुत् ॥ २२८ ॥

विड, पाक्य, कृतक, द्राविड, आसुर, (विडलवण, धूर्त, विड्गन्ध, काललवण, द्राविडक, खंड, क्षार, सुपाक्य, खण्डलवण, कृत्रिमक और विड) ये विरियासंचरनोंनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-विरियासंचरनोंन, कबीलानोंन । बं०-विट्नून । म०-बीडलोण । गु०-बीडलूण । विरियासंचरनोंन-खारा रसयुक्त, कफको ऊपर और वातको नीचे खींचनेवाला, दीपन, हलका, तीक्ष्ण, गरम, रूक्ष, रुचिकारी, व्यवायि और विबन्ध, आनाह, विष्टंभ, हृदयके रोग, भारीपन तथा शूलको नष्ट करता है ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

विवरण ।

विडनोंन-प्रसारिणीके कल्कका क्षार बनाते हैं उसका नाम विडनोंन है ॥

अथ सौवर्चलं लवणम् ।

सौवर्चलं स्याद्रुचकं मन्थपाकश्च तन्मतम् । रुचकं रोचनं भेदि दीपनं पाचनं परम् ॥ २२९ ॥ सुस्नेहं वातनुन्नातिपित्तलं विशदं लघु । उद्गारशुद्धिदं सूक्ष्मं विबन्धानाह शूलजित् ॥ २३० ॥

सौवर्चल, रुचक मन्थपाक, (अक्ष, रुच्य, दुर्गन्ध, शूलनाशन, कृष्णलवण, तिलक, हृद्यगन्ध, कोद्रविक पाक्य और मेचक) ये कालेनोंनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कालानोंन, सोंचरनोंन । बं०-संचरलवण । गु०-संचललूण । क०-सौवर्चल । तै०-नलुप्पु । ता०-करुप्पु उप्पु । फा०-नमकसियाह । अ०-मलावस्वद । इं०-ब्लाक साल्ट Black Salt. लैं० अनक्का सोडिआइ क्लोरैडम Unaqua Sodii hloridum. कालानोंन-रुचिकारक, मलभेदक, दीपन, अत्यन्त पाचन, स्निग्ध, वातनाशक, अत्यन्त पित्तकारी नहीं, विशद, हलका, डकारको शुद्ध करनेवाला सूक्ष्म और विबन्ध, आनाह पेटफूलना तथा शूलको जीतनेवाला है ॥ २२९ २३० ॥

विवरण ।

कालानोंन-सज्जी और मीठे नोंन अर्थात् सक्षार जलसे बनाया जाता है ॥

अथ खानिजं लवणम् ।

औद्भिदं पांशुलवणं यज्जातं भूमितः स्वयम् । क्षारं गुरु कटु स्निग्धं शीतलं वातनाशनम् ॥ २३१ ॥

यह निमक भूमिसे स्वयं उत्पन्न होता है । इसलिये इसे औद्भिद कहते हैं । औद्भिद और पांशुलवण ये इसके संस्कृत नाम हैं ॥ हिन्दी-खारानोंन, रेह, गवांनोंन । गु०-खारानुं लूण॥

यह नोंन-खारा, भारी, चरपरा, स्निग्ध, शीतल और वातनाशक है । (इसकी पोटली गरम करके वातपीडावालेका सेक करे तो वातकी पीडाके सब रोग दूर होते हैं) इसीका कचलोन बनता है ॥ २३१ ॥

विवरण ।

औद्भिदनोंन-रेतीली खारी, जंगलदेशकी भूमिमे उत्पन्न होता है और इसको रेह भी कहते हैं ॥

अथ चणकाम्लकम् ।

चणकाम्लकमत्युष्णं दीपनं दन्तहर्षणम्। लवणानुरसंरुच्य शूलाजीर्णविबन्धनुत् ॥ २३२ ।

सं०-चणकाम्लक । हिन्दी-चनेका खार, चनकलानी । म०-हरभऱ्याची आंब । गु०-चणानो खार ।

चनेका खार-बहुत गरम, अग्निको दीपन करनेवाला और दांतोंको हर्ष करता है । खारा

रसवाला, रुचिकारक और शूल, अजीर्ण तथा मलबन्धको दूर करता है ॥ २३२ ॥

विवरण।

चनेका खार-एक सफेद चादर लेकर प्रातःकाल चनेके छोटे छोठे क्षुपोंके ऊपर जो ओसके कण मोवीके सदृश झलकते हैं उस ओससे उस चादरको भिगोकर सुखा ले इसी प्रकार इक्कीस बार भिगोवे और सुखावे, पश्चात् सब चादरमें जो अम्लपदार्थ लग जाता है उसको जलमें धो लेवे, उसके ऊपरका पानी नितार देवे नीचे जो जम जाय उसीका नाम चनाखार है ॥

अथ यवक्षारः स्वर्जिका च।

पाक्यक्षारो यवक्षारो यावशूको यवाग्रजः। स्वर्जिकाऽपि स्मृतः क्षारःकापोतः सुखवर्चकः ॥ २२३ ॥ कथितः स्वार्जिकाभेदो विशेषज्ञैः सुवर्चिकः। यवक्षारो लघुः स्निग्धः सुसूक्ष्मो वह्निदीपनः॥२३४॥ निहन्ति शूलवातामश्लेष्मश्वासगलामयान्। पाण्डुवर्शोग्रहणीगुल्मानाहप्लीहहृदामयान् ॥ २३५ ॥ स्वर्जिकाऽल्पगुणा तस्माद्विशेषाद्गुल्मशूलहृत्। सुवर्चिका स्वर्जिकावद्बोद्धव्या गुणतो जनैः ॥ २३६ ॥

पाक्यक्षार, यवक्षार, यावशूक, यवाग्रज (यवलास, यवशूक, सारक, रेचक, यवनालक, तिर्य्य, तीक्ष्णरस, यवनालज, यवज, यमशूकज, यवाह्व और यवापत्य) ये जवाखारके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-जवाखार। बं०-क०-यवक्षार। म०-गु०-जवाखार। तै०-ता०-यवक्षार। अ० नुतरुन्। इं०-कार्बोनेट ऑफ पोटाश (arbonate of Potash लै०-पोटासियम कार्बोनस् Potassinm Carbonass.

क्षार, कापोत, सुखवर्चक, स्वर्जिका (स्वर्जि शूलघ्नी. सौवर्चल, रुचक सृजिकाक्षार, सर्जिका, झवर्जिक, स्रुघ्नी, योगवाही, स्वर्जका, सुवर्चक, स्रुघ्निका, सर्जि, सर्जिक्षार, स्वर्जिक, स्वर्जी,सुखोर्जिक, सवर्जिक, स्वर्जिक्षार, सुवर्चि, सुवर्ची, और स्वर्जिकाक्षार) ये सज्जीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सज्जीखार। बं०-साजिखार. साजिमाटि। म०-सज्जीखार। गु०-साजीखार। क०-साजीखार फा०-संजार कलिया। अ०-कलीव शप्टुल अफारा। इं०-कार्बोनेट आफ सोडा Carbonate of Soda. लै०-केरोक्सीलन् फोएठीडम् Coroxylon Foetidum जवाखार-हलका, स्निग्ध, बहुत सूक्ष्म अग्निदीपक और शूल, वात, आम, कफ, श्वास तथा गलेके रोगोंको नष्ट करनेवाला है। पाण्डुरोग; बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, मलबंध, प्लीहा और हृदय रोगको नष्ट करता है ॥

सज्जी-जवाखारसे हीन गुणवाली है, विशेष करके गुल्म तथा शूलको नष्ट करती है। सुवर्चिकामें भी सज्जीके सदृश ही गुण जानना ॥ २३३-२३६ ॥

विवरण।

कच्चे जौओंके पंचांगको अग्निमें जलाकर राख कर लेवे, फिर उस राखकी कुसुमकी भांति रैनि टपका लेवे. फिर उसको अग्निपर कढाइमें चढाकर उसका पानी जला देवे. जब वह जम जाय तो उसको खुचकर एक कांच कांचके पात्रमें रख देवे, उसीका नाम जवाखार है ॥

अथ टंकणक्षारः (सुहागाखार)

सौभाग्यं टङ्कणक्षारो धातुद्रावकमुच्यते। टंकणं वह्निकृद्रूक्षं कफहृद्वातपित्तकृत् १३७

सौभाग्य, टंकणक्षार,धातुद्रावक,(लोहद्रावी सुभग, धातुवल्लभ, पाचनक, मालतीतीरज, लोहश्लेषण, रसशोधन, रसाधिक, रसघ्न, वर्तुल, कनकक्षार, मलिन, मालतीतीरसम्भव, द्रावक, लोहशुद्धिकारक, रंगद, स्वर्णपाचक) टंक, धातुसन्धिकर, सौभाग्य और श्वेतटंकण, ये सुहागेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सुहागा। बं०-सोहागा। म०-रवागीखार। टांणखार। गु०-टंकणखार। क०-त्रिनीयटंकण। तै०-एलिगारम्। ता०-वंगारम फा०-तीगार। अ०-बुरग। इं०-बोराक्स Borax वायबोरेट आफ सोडा Biborate of Soda लै०-सोडास बायवोरास Sodas biboras सुहागा-अग्निको उत्पन्न करनेवाला रूक्ष, कफनाशक और वायु तथा पित्तकारक है ॥ २३७ ॥

विवरण।

सुहागा-उत्तर दिशाकी ओर भोटानदेशमें इसकी खानि है, भोटिये लोग वहांसे खोद खोदकर बकरोंमें भर लाते हैं, उसकी चार चार छः छः रत्तीकी सफेद सफेद चौकियां होती हैं, उसको कच्चा सुहागा कहते हैं। कुछ तो वैसा ही देशदेशान्तरोंको चला जाता है और कुछ रामनगरकी मंडीमें पकाया जाता है, उसके नौसादरके समान बडे बडे टुकडे होते हैं ॥

अथ क्षारद्वयं क्षारत्रयं च।

स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारद्वयमुदाहृतम्।
टंकणेन युतं तत्तु क्षारत्रयमुदीरितम्।
मिलितं तूक्तगुणकृद्विशेषाद्गुल्महृत्परम् ॥ २३८ ॥

सज्जी और जवाखार इन दोनों मिले हुएको क्षारद्वय कहते हैं और इनमें सुहागा मिलानेसे यह क्षारत्रय हो जाता है, ये उपरोक्त सम्पूर्ण गुण करते हैं और विशेष करके गुल्मको तो अवश्य ही विध्वंस करते हैं ॥ २३८ ॥

अथ क्षाराष्टकम्।

पलाशवज्रिशिखरिचिञ्चार्कतिलनालजाः।
यवजःस्वर्जिका चेति क्षाराष्टकमुदाहृतम् ॥
क्षारा एतेऽग्निना तुल्या गुल्मशूलहरा भृशम् ॥ २३९ ॥

पलाश (ढाक), थूहर, औंगा (चिरचिटा) इमली, आक, तिलनाशक (तिलखंडे) इनका खार और जवाखार तथा सज्जीखार इन आठ खारोंको क्षाराष्टक कहते हैं। यह क्षाराष्टक--अग्निके सदृश है गुल्म और शूलको निर्मूल करता है ॥ २३९ ॥

अथ चुक्रम् (चूक)।

चुक्रं सहस्रवेधि स्याद्रसाम्लं शुक्तमित्यपि।
शुक्तमत्यम्लमुष्णञ्च दीपनं पाचनं परम् ॥२४०॥ शूलगुल्मविबन्धामवातश्लेष्महरं सरम्। वमितृष्णाऽऽस्यवैरस्यहृत्पीडावह्निमान्द्यहृत् ॥ २४१ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे हरीतक्यादिवर्गः ॥

चुक्र, सहस्रवेधि, रसाम्ल और शुक्ल ये चूकके संस्कृत नाम हैं ॥ हिन्दीमें चूक। गु०--चुका ॥

चूक--अत्यन्त खट्टा, गरम, अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन, दस्ताव, और शूल, वाया गोला, मलबन्ध, आमवात, कफ, वमन, तृषा, मुखकी विसरता, हृदयकी पीडा तथा अग्निकी मन्दताको नष्ट करता है ॥

विवरण।

चूक-दाडिमी, अनार, आमले, नींबू और इमलीका रस निकालकर पका लेते हैं, उसीको चूक कहते हैं। दाडिमीका चूक उत्तम होता है। अथवा पालकके शाककी भांति एक खट्टा शाक चूका नामसे प्रसिद्ध है उसको चूक कहते हैं ॥

इति भावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे हरीतक्यादिवर्गः।

अथ कर्पूरादिवर्गः।

तत्रादौ कर्पूरस्य नामानि गुणाश्च।

पुंसि क्लीबे च कर्पूरः शीताभ्रो हिमवालुकः। घनसारश्चन्द्रसंज्ञो हिमनामापि स स्मृतः ॥ १ ॥ कर्पूरः शीतलो वृष्यश्चक्षुष्यो लेखनो लघुः। सुरभिर्मधुरस्तिक्तः कफपित्तविषापहः ॥ २ ॥ दाहतृष्णाऽऽस्यवैरस्यमेदोदौर्गन्ध्यनाशनः। कर्पूरो द्विविधः प्रोक्तः पक्वापक्वप्रभेदतः। पक्वात्कर्पूरतःप्राहुरपक्वं गुणवत्तरम् ॥३॥

कर्पूर, सिताभ्र, हिमवालुक, घनसार और जितने चन्द्रमाके तथा हिम (बरफ) के जितने नाम हैं वे सब (औषधीश, सोमसंज्ञ, सिताभ्रक, शिला, हिमांशु, शीतांशु, चन्द्रभस्म निशापति, तरुसार, भस्माह्वया, रेणुसार, हिमाह्वया, वेधक, रेणुसारक, शीतमरीचि, भस्मवेधक, विधु. शीतमयूख, जैवातृक ग्लौ, कुमुदबान्धव, हिमवालुका, इन्दु. द्विजराज, नक्षत्रेश, निशीथिनीनाथ, यामिनीपति शशधर, सोम, क्षपाकर; हिमाह्व, क्षपापति सिताभ, शीत, गनसारक, शीतकर, शशांक, हिमकर, शीतप्रभु, शाम्भव, शुभ्रांशु, स्फटिकाभ्र, कारमिहिका, चन्द्रार्दक, चन्द्र, नाकतुषार. गौर, कुमुद, शीतलरज. सिताह्व. स्फटिक शशि और हिमोपल) ये कर्पूरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कपूर। बं०-क०-कर्पूर। म०-कापूर। गु०-कपूर। तै०-ता०-कर्पूरमु। फा०. कापूर। अ०-कापूर। इं०-कॅम्फरCamphor लै०-केम्फोर Camphor कपूर-शीतल, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, लेखन, हलका, सुगन्धित मधुर, कडवा और कफ,पित्त, दाह तृषा, मुखकी विरसता, मेद तथा दुर्गन्धता इनको नष्ट करता है. पक्का और कच्चा इस भांति कपूर दो प्रकारका है. पक्के कपूरसे कच्चा कपूर अधिक गुणकारी है ॥ १ ॥ ३ ॥

अथ चीनाकर्पूरः (चीनिया)

चीनाकसंज्ञःकर्पूरःकफक्षयकरः स्मृतः। कुष्ठकण्डूवमिहरस्तथा तिक्तरसश्च सः॥४॥

चीनाकसंज्ञ, (चीनक, चीनकपूर, कृत्रिम धवल, कटु, मेघसार; तुषार और द्वीपकर्पूरज) ये चीनिया कपूरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--चीनिया कपूर। गु० -चिनाई कपूर चीनियां कपूर-ःकडवा और कफ, कोढ, खुजली तथा वमन इन सबको नष्ट करता है४॥

विवरण।

कपूरके वृक्ष चीन और जापानमें बहुत होते हैं. ये वृक्ष तजकी जाति हीमें गिने जाते हैं, इसकी शाखाओंकी छाल ऊपरसे खरदरी और भीतरसे चिकनी होती है, पत्ते लम्बे लम्बे कुछ गोलाई लिये होते हैं, डालियोंपर मौर आता है' फल मटरके समान गोल गोल गुच्छोंमें लगते हैं. फलके बीजोंमें कपूरकीसी सुगन्धि आती है और उस वृक्षकी छाल गोदनेसे दूध निकलता है. उस दूधका कपूर बनता है, कपूरकी अनेक जाति हैं जैसे भीमसेनी, पिञ्ज, पोतास, हिम, सितपांशु, शंकरावाससंज्ञ, अब्दसार, जूतिका, तुषार, पत्रिका, रूप, शीतल और पर्णकपूर इत्यादि। दूसरे चीनिया कपूर और कृत्रिम कपूर भी होते हैं॥

मृगनाभिर्मृगमदः कथितस्तु सहस्रभित्। कस्तूरिका च कस्तूरी वेधमुख्या च सा स्मृता ॥ ५ ॥ काश्मरी कपिलच्छाया कस्तूरी त्रिविधा स्मृता। कामरूपोद्भवा श्रेष्ठा नैपाली मध्यमा भवेत् ॥६॥ कामरूपोद्भवा कृष्णा नैपाली नीलवर्णयुक्। काश्मीरदेशसम्भूता कस्तूरी ह्यधमा मता ॥ ७ ॥ कस्तूरिका कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुः। कफवातविषच्छर्दिशीतदौर्गन्ध्यशोषहृत् ॥ ८ ॥

मृगनाभि, मृगमद, सहस्रभित्, कस्तूरिका कस्तूरी, वेधमुख्या, (गन्धधूलि, मदाह्वा. मृगनाभिजा, अण्डजा, नाभी, मिश्रा, योजनगन्धिका, गन्धशेखर, मृग--मृगी—नाभि, मदलता, योजनगन्धा, मार्गगन्धवोधिका, कालांगी, धूपसंचारी, गन्धपिशाचिका, वातामोद, मदनी, गन्धकेलिका, मार्जारी, सुभगा, बहुगन्धदा, सहस्रवेधी, श्यामा, कामान्धा, मृगाण्डजा, कुरङ्गनाभि, ललिता, श्यामला और मोदिनी) ये कस्तूरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--कस्तूरी । बं०-मृगनाभि । म०- गु० क०--तै०--ता०--कस्तूरी । फा०--मुष्क । अ०--मिस्क । इं०--मस्क Musk लै०--मोस्कम् Moscus. कस्तूरीके लक्षण--कामरूपदेशकी कस्तूरी काली. नेपालकी नीली और काश्मीरदेशकी कस्तूरी भूरे रंगकी होती है । इनमें कामरूपदेशकी कस्तूरी उत्तम, नेपालकी मध्यम और काश्मीरदेशकी अधम होती है ॥

कस्तूरी तीक्ष्ण,कडवी,खारी,गरम,वीर्यवर्द्धक भारी और कफ, वात, विष, वमन, शीत, दुर्गन्धता तथा शोषको हरनेवाली है ॥ ५-८ ॥

विवरण ।

कस्तूरी हिरनकी नाभिमें उत्पन्न होती है, उस हिरनको मारकर उनकी नाभिको काट लेते हैं वह नाभी तोलमें तीन तथा चार तोलेकी होती है और उसको कस्तूरीकी नाभी कहते हैं । उसका आकार गोल होता है, उसके ऊपर छोटे छोटे बाल होते हैं, रंग भूरा होता है. एक ओरसे कटे हुएका चिह्न होता है । देखनेमें आडूके बराबर होता है, उस नाभिको चीरकर कस्तूरी निकाल लेते हैं । किसीमें मक्कोके चूनके समान निकलती है, किसीमें सिलमिलीके दानोंके समान, किसीमें कुल्थीके बीजके समान, किसीमें कलौंजीके दानेके समान और किसी नाभिमेंसे इलायचीके दानेके समान निकलती है । जिन हिरनोंकी नाभिसे कस्तूरी निकलती है, वे हिरन काश्मीर, नेपाल और कामरूप देशमें होते हैं, उनको कस्तूरीमृग कहते हैं ।

अथ मुष्कबीजम् ।

लताकस्तूरिका तिक्ता स्वादी वृष्या हिमा लघुः । चक्षुष्या छेदिनी श्लेष्मतृष्णावस्त्यास्यरोगहृत् ॥ ९ ॥

मुष्क दानोंको संस्कृतमें लताकस्तूरी कहते हैं । मुष्कदाना कडवा मधुर, वीर्यवर्द्धक, शीतल, लघु, नेत्रोंको हितकारी, मलभेदक और कफ, तृषा, वस्तिगतरोग तथा मुखके रोगोंको नष्ट करता है ॥ ९ ॥

जवादिकस्तूरी ।

गन्धमार्जारवीर्य्यन्तु वीर्य्यकृत्कफवातहृत् । कण्डूकुष्ठहरं नेत्र्यं सुगन्धं स्वेदगन्धनुत् ॥ १० ॥

जवादि कस्तूरीको संस्कृतमें-गंधमार्जारवीर्य और गुजरातीमें जवादियां कस्तूरी कहते हैं । यह कस्तूरी वीर्यवर्द्धक और कफ, वात, खुजली, कोढ तथा पसीनेकी दुर्गन्धको दूर करती है ॥ १० ॥

अथ चन्दनम् ।

श्रीखण्डं चन्दनं न स्त्री भद्रश्रीस्तैलपर्णिकः । गन्धसारो मलयजस्तथा चन्द्रद्युतिश्च सः ॥ ११ ॥ स्वादे तिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौ सितम् । ग्रन्थिकोटरसंयुक्तं चन्दनं श्रेष्ठमुच्यते ॥ १२ ॥ चन्दनं शीतलं रूक्षं तिक्तमाह्लादनं लघु । श्रमशोषविषश्लेष्मतृष्णापित्तास्रदाहनुत् ॥ १३ ॥

श्रीखंड, चंदन. भद्रश्री, तैलपर्णिक, गन्धसार, मलयज. चन्द्रद्युति, (चन्द्रकान्त, गोशीर्ष, भोगिवल्लभ, भद्रसार, एकांग, पटीर वर्णक, भद्राश्रय. सेव्य, रौहिण, ग्राम्य, सर्पेष्ट, पीतसार, महाई, श्वेतचन्दन, तिलपर्ण, मंगल्य, मलयोद्भव, गन्धराज. सुगन्ध, सर्पावास, शीत-

लगन्धाढ्य, पावन, शीतगन्ध, भद्रश्रिय, सितहिम, सर्वप्रिय और राजयोग्य) ये चन्दनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सफेद चंदन, चन्दन। बं०-म०-तै०-ता०-चन्दन। गु०-सुखड। क०-वेट्टपंचे गन्ध। फा०-सन्दल सुफेद। अ०-सन्दले अबीअद। इं०-सँडलवुड Sandal wood लै०-सेटलम आल्बम् Santalum Aldum जो चन्दन स्वादमें कडवा घिसनेमें पीला, काटनेमे लाल, देखनेमें सुफेद और गांठदार तथा कोवरयुक्त हो, वह चन्दन श्रेष्ठ कहा है। चन्दन शीतल, रूखा, कडवा, आल्हादजनक, हलका और परिश्रम विष शोष, कफ, तृषा, पित्त, रुधिरविकार तथा दाहको नष्ट करता है ॥ ११-१३ ॥

विवरण।

सफेद चन्दनके वृक्ष बडे बडे ऊँचे और सघन होते हैं, पत्ते तुनके समान कुछ नोक मुडी हुईसी बिछुवेकेसे खमदार लम्बे चौडे होते हैं, पुष्प होतेही नहीं, किसी कविका वचन है कि-'नाकारि पुष्पं खलु चन्दनेषु, बीज गोल मटरसे कुछ मोटा होता है, कर्णाटकादि देशोंमें और मलयागिरिपर चन्दनके वृक्ष बहुत होते हैं, मलयागिरिचन्दन सम्पूर्ण हिंदुस्थानमें प्रसिद्ध है। इसकी लकडीमें अत्यन्त सुगंधि आती है, इसकी सुगंधिसे ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिक देवता भी प्रसन्न होते हैं और मृत्युलोकके मनुष्योंको तो कहनाही क्या है? यह सब सुगंधित पदार्थोंका सार है, इसीका सारांश लेकर सम्पूर्ण सुगंधित पदार्थोंका सार निकाला जाता है ॥

अथ पीत चन्दनम्।

(कलम्बका इति लोके)

कालीयकं तु कालीयं पीताभं हरिचन्दनम्। हरिप्रियं कालसारं तथा कालानुसार्य्यकम्। कालीयकं रक्तगुणं विशेषाद् व्यङ्गनाशनम् ॥ १४ ॥

कालीयक, कालीय, पीताभ, हरिचन्दन, हरिप्रिय, लालसार कालानुसार्य ये पीले चन्दनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-पीलाचन्दन, कलंबका। बं०-गु०-पीत चन्दन। म०-पिंवळा चन्दन। फा०-संदल। अ०-यज। लै०-संटलम् फ्लोनम् Santalum Flonum पीले चन्दनमें लाल चन्दनकेही सदृश गुण हैं, विशेष करके व्यंग (झांई) को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

विवरण।

पीले चन्दनके वृक्ष उत्तराखण्डमें गन्धमादनपर होते हैं और सब आकृति मलयागिरिहीके समान होती है, वही सुगंधि, वही गुण परन्तु पीला हरदीकी लकडीके सदृश होता है ॥

अथ रक्तचन्दनम्।

रक्तचन्दनमाख्यातं रक्ताङ्गं क्षुद्रचन्दनम्। तिलपर्णं रक्तसारं तत्प्रवालफलं स्मृतम् ॥ १५ ॥ रक्तं शीतं गुरु स्वादु च्छर्दितृष्णास्रपित्तहृत्। तिक्तं नेत्रहितं वृष्यं ज्वरव्रणविषापहम् ॥ १६ ॥

रक्तचन्दन, रक्तांग, क्षुद्रचन्दन, तिलपर्ण, रक्तसार, प्रवालफल, (ताम्राभ्र, ताम्रसार, रञ्जन, रक्तबीज, कुचंदन, तिलपर्णी, पत्राङ्ग, कुमोद, रक्ताक्त, ताम्रवृक्ष, लोहितचन्दन, ताम्रसारक, अर्कचन्दन, तिलकर्णिका, पतङ्ग, पत्रांग और भास्करप्रिय) ये लालचन्दनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-लालचन्दन। बं०-क०-प्र०-रक्तचन्दन। गु०-रतांजली। तै०-रक्तचंदनमु। ता०-शेञ्चन्दनम्। फा०-संदलेसुर्ख। अ०-संदेलअह्मर। इंरेड्ड संडल वुड Red Sandal wood लै०-पटेरो कारपसू सेन्टेलम Pateto Carpus Santalum रक्तचन्दनशीतल, भारी मधुर कडवा, नेत्रोंको हितकारी, वीर्यवर्द्धक और वमन, तृषा, रुधिरके रोग, पित्त ज्वर तथा विष इन सबको नष्ट करता १५ १६॥

विवरण।

लाल चन्दनके वृक्ष सिरसके समान बडे बडे ऊँचे होते हैं। पत्ते कुछ लम्बे और कोने गोल गोल होते हैं दो दो तीन तीन इंच लंबी फलियाँ लगती हैं. उन फलियोंमें लाल लाल चोटलिकेसे दाने निकलते हैं, इसकी लकडी लाल रंगकी होती है, उसीको लाल चन्दन कहते हैं॥

अथ पतङ्गम्।

पतङ्गं रक्तसारश्च सुरङ्गं रञ्जनं तथा। पट्टरञ्जकमाख्यातं पत्तूरं च कुचन्दनम् ॥ १७ ॥ पतङ्गं मधुरं शीतं पित्तश्लेष्मव्रणास्रनुत्। हरिचन्दनवद्वेद्यं विशेषाद्दाहनाशनम् ॥१८॥ चन्दनानि तु सर्वाणि सदृशानि रसादिभिः। गन्धेन तु विशेषोऽस्ति पूर्वः श्रेष्ठतमो गुणैः ॥ १९ ॥

पतंग, रक्तसार सुरंग, रञ्जन, पट्टरंजक, पत्तूर कुचंदन, (पत्रांग, रक्तकाष्ठ, सुरंगद, पत्राण्य, पट्टरंग. मार्याावृक्ष, रक्तक, लोहितरंगकाष्ठ और पट्टरंजनक) ये पतंगके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी०-म०-क-पतंग, पतंगवृक्ष । बं०-बकम् काष्ठ। तै०-घट्टंगी फा०-अ०-वकम्। इं०-सेप्पल वुड् Sappan wool लै०-सेसालपिनिया सेप्पन Caisalpinia sappan पतंगमधुर, शीतल और पित्त तथा कफनाशक है। इसमें पीले चन्दनके सदृश गुण हैं और विशेष करके दाहनाशक हैं, सब प्रकारके चन्दन रसादिकमें इकसारही हैं. केवल गंध कीही विशेषता है। सपूर्ण चन्दनोंके गुणोंमें सफेद चन्दन सर्वोत्तम है ॥ १७ १९ ॥

विवरण।

पतंगके बडे २ वृक्ष होते हैं परन्तु वे किसी देशान्तरमें होते हैं इसकी लकडी लालरंगकी गँठीली होती है। पत्ते बडे बडे और फूल भी लालरंगके होते हैं. उसकी लकडीको पतंग कहते हैं, उसका रंग छीपी आदि रंगतवालोंके काममें बहुत आता है॥

अथागुरुः (अगर)।

अगुरु प्रवरं लोहं राजार्हं योगजं तथा। वंशिकं कृमिजं वाऽपि कृमिजग्धमनार्यकम् ॥ २० ॥ अगुरूष्णं कटु त्वच्यं तिक्तं तीक्ष्णं च पित्तलम्। लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीतवातकफप्रणुत् ॥ २१ ॥ कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लोहवद्वारि मज्जति। अगुरुप्रभवः स्नेहः कृष्णागुरुसमः स्मृतः॥ २२ ॥

अगुरु, प्रवर, लोह, राजार्ह, योगज, वंशिक, कृमिज, कृमिजग्ध, अनार्यक, (अगरु, लघु, लोहाख्य, (लोहेके सम्पूर्ण नाम) जोंगक, कृष्ण, वर्णप्रसादन, वंशक, पिच्छिल, भृंगज, पातक, अनार्यज असार, अग्निकाष्ठ और काष्ठक) ये अगरके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-क०-ता०-कगर, काली अगर। म०-कृष्णागर। बं०-गु०-अगरु। तै०-ह्रगुहचेट्टु। फा०-कशवेववा। अ०-उजगरकी। ई०-ईगलवुड Eglec wood लै०-एक्वीलेरिया एगेलोका Aquileria, Agallocha. अगर-गरम, चरपरी, त्वचाको हितकारी, कडवी, तीक्ष्ण, पित्तकारक, हलकी, और कर्णरोग, शीत वात तथा कफनाशक है। जो अगर काले रंगकी होती है उसमें अधिक गुण है और वह अगर लोहके सदृश पानीमें डूब जाती है। अगरसे उत्पन्न हुए तेलमें भी काली अगरके सदृश ही गुण हैं॥ २०-२२ ॥

विवरण।

मलय पर्वत, आसाम प्रदेश और प्रशान्त सागरके टापुओंमें अगरके वृक्ष उत्पन्न होते हैं। इसकी शाखा कदापि सीधी नहीं होती अगर अनेक प्रकारकी होती है। उन सबमें काली अगर उत्तम और गुणदायक वैद्यकमें कही है और वही सब औषधियोंके प्रयोगमें ली जाती है। इसकी यही उत्तमता है कि, भारी हो और जलमें डूब जाय और नरम ऐसी होती है कि दांतोंके दबानेसे दांतोंमें चुपट

जाती है, इसको जलमें पीसनेसे सुगंधि निकलती है, काली अगरके समान और अगरोंमें ऐसी सुगंधि नहीं आती ॥

अथ देवदारु ।

देवदारु स्मृतं दारुभद्रं दार्वीन्द्रदारु च । मस्तदारु द्रुकिलिमं कृत्रिमं सुरभूरुहः ॥ २३ ॥ देवदारु लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटुपाकि च । विबन्धाध्मानशोथामतन्द्राहिक्काज्वरास्रजित् । प्रमेहपीनसश्लेष्मकासकण्डूसमीरनुत् ॥ २४ ॥

देवदारु, दारुभद्र, इन्द्रदारु, मस्तदारु, द्रुकिलिम, कृत्रिम, सुरभूरुह (सुराह्वय भद्रदारु, देवकाष्ठ, पीतद्रु भद्रवन्, शतपादप, पारिभद्रक पीतदारु, पूतिकाष्ठ, कल्पपादप, किलिम, दारुक, स्निग्धदारु, अमरदारु, शिवदारु, शाम्भव, भूतहारी, भवदारु, शक्रद्रुम, इन्द्रवृक्ष, सुराह्व, स्नेह वृक्ष, सुरद्रुम, सुरदारु और सुरकाष्ठ) ये देवदारुके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बं०-देवदारु । म०-तेल्या देवदार । गु०-फा०-देवदारु । तै०-देवदार चेका । अ०-शजर तुलजीत । लै०-सिड्रस देवदार । Cedrus Deodara. देवदारु-हलका, स्निग्ध कडवा, गरम, पाकमें चरपरा और विबन्ध, अफरा, सूजन, आम, तन्द्रा, हिचकी, ज्वर, रुधिरविकार, प्रमेह, पीनेस, कफ, खांसी खुजली तथा वातविनाशक है ॥ २३॥२४ ॥

विवरण ।

देवदारुके बडे बडे ऊँचे झादेदार वृक्ष होते हैं। पत्ते लंबे कुछ गोलाई लिये हुए होते हैं और फूल अरंडके फूलोंके समान गुच्छेके गुच्छे लगत हैं। इसके तख्ते, कडी चौखट किंवाड और लट्ठे बडे बडे स्थानोंमें लगाये जाते हैं और उस लकडीसे सुगन्धि भी ऐसी आती है कि, सम्पूर्ण स्थान सुगंधिसे सदैव परिपूर्ण रहता है। इसकी दो जाति हैं, एकमें तेलके समान चिकनाई होती है और दूसरीमें रूखापन होता है ॥

अथ धूपसरलः ।

सरलः पीतवृक्षः स्यात्तथासु रभिदारुकः । सरलो मधुरस्तिक्तः कटुपाकरसो लघुः ॥ २५ ॥ स्निग्धोष्णः कर्णकण्ठाक्षिरोगरक्षोहरः स्मृतः । कफानिलस्वेददाहकासमूर्च्छाव्रणापहः ॥ २६ ॥

सरल, पीतवृक्ष, सुरभिदारुक, (पूतिकाष्ठ, मनोज्ञ, धूपवृक्षक, पीतद्रु, पीतदारु, भद्रदारु, धूपवृक्ष, पीत स्निग्धदारुसंज्ञक, स्निग्ध, मरिचपत्रक और सुरभिदारु,) ये धूपसरलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-धूपसरल । बं०-सरलगाछ, सरलकाष्ठ । गु०-पीलो बेरजा । म०-सरल देवदार । क०-सरली देवदारु विशेष । इं०-लाँग लीव्हड्पाइन Long Leeaved Pine. लै०-पाइनस लाँगिफालिया Pinus Longifolia. धूपसरल-मधुर, कडवी, पाकमें चरपरी, हलकी, स्निग्ध, गरम, और कानके रोग, गलेके रोग, नेत्ररोग, भूतादिककी पीडा, कफ, वात, पसीना, दाह, खांसी, मूर्च्छा और व्रणादिकको दूर करती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

विवरण ।

धूपसरलके वृक्ष हिमालय आदि पर्वतोंमें उत्पन्न होते हैं, इनके पत्ते ढाकके समान होते हैं, फूल निर्गन्ध और सफेद रंगके होते हैं, इसकी लकडीमेंसे गोंदके सदृश रस निकलता है ॥

अथ तगरः ।

कालानुसार्यं तगरं कुटिलं नहुषं नतम् । अपरं पिण्डतगरं दण्डहस्ती च बर्हिणम् ॥ २७ ॥ तगरद्वयमुष्णं स्यात् स्वादु स्निग्धं लघु स्मृतम् । विषापस्मारशूलाक्षिरोगदोषत्रयापहम् ॥ २८ ॥

कलानुसार्य, तगर, कुटिल, नहुष, नत, (जिह्म, दीपन, कालानुसारि, वक्र कुञ्चिन चक्र, शठ, महोरग, दीपन, पादिका, विनम्र,

नहुषाख्य और दीन) ये तगरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-गु०--क०--तगर बं०=तगरपादुका। म०--गोडेतगर । तै०--गन्धितगर पुचेट्टु । नेपाली--चम्मा । अ०--सारुन । इं०--वेलेरी आना हार्डवीक Veleriana Hardwick. दोनों प्रकारकी तगर--गरम, मधुर, स्निग्ध, हलकी और विष, मृगी, शूल, नेत्रके रोग तथा वातादि तीनों दोषोंको हरनेवाली हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

विवरण।

तगर--सुगंधजातिका वृक्ष होता है, पिण्डीतगर इसकी दूसरी जाति है, उसको नन्दीगर कहते हैं. नन्दीतगर और पिण्डीतगर दोनोंके गुण समान हैं. इसके वृक्ष उत्तराखण्डके पहाडोंपर बहुत उत्पन्न होते हैं, वृक्ष बडा होता है, पत्ते कनेरकेसे लंबे लम्बे होते हैं फूल छोटे छोटे पीले रंगके पांच पंखुडीवाले होते हैं ॥

अथ पद्मकम् ।

पद्मकं पद्मगन्धि स्यात्तथा पद्माह्वयं स्मृतम् । पद्मकं तुवरं तिक्तं शीतलं वातलं लघु ॥ २९ ॥ वीसर्पदाहविस्फोट-कुष्ठश्लेष्मास्रपित्तनुत । गर्भसंस्थापनं रुच्यं वमिव्रण तृषाप्रणुत् ॥ ३० ॥

पद्मक, पद्मगंधि और पद्मवाचक, संपूर्ण शब्द, (मलयचारु, पीतरक्त, सुप्रभ पीत, पीतक, मालेय शीतल, हिम, शुभ, केदारज, रक्त पाटलापुत्रसन्निभ, पद्मवृक्ष, पद्मकाष्ठ केदार, शीतवीर्य और पाटलापुष्पवर्णक) ये पद्माकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--पद्माख (क) । म०-पद्मकाष्ठ । गु०-क०-पद्मक । तै० पद्मपुचेक्का । लै०--नसूपडम् Pranus Padam पद्माख-कसैली, कडवी, शीतल, वातकारक. हलकी. गर्भस्थापन करनेवाली, रुचिकारक और विसर्प, दाह, विस्फोटक, कोढ, कफ, रक्तपित्त, वमन, तृषा तथा व्रणको नष्ट करनेवाला है ॥२९-३०॥

विवरण ।

पद्माखके बडे बडे वृक्ष केदाराश्रम और बद्रिकाश्रमके निकट हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होते हैं; पत्ते छोटे छोटे छिन्न भिन्न होते हैं, फूल ही आकर गिर जाते हैं; फल नहीं आते, इसकी लकडी औषधिके प्रयोगमें अधिक ली जाती है ॥

अथ गुग्गुलुः ।

गुग्गुलुर्देवधूपश्च जटायुः कौशिकः पुरः। कुस्तालु खलकं क्लीबे महिषाक्षः पलंकषः ॥ ३१ ॥

गुग्गुलु, देवधूप, जटायु, कौशिक, पुर, कुस्तान्, खलक, महिषाक्ष, पलंकष, (कालनिर्यास, धूर्त्त, शिव, कुंभ, उलूखलक, कुम्भोलूखलक, गुग्गुलु, सर्वसह, उष, कुम्भी, कुन्ती, उद्दीप, पवनद्विट, भवाभीष्ट, निशाढक, चटाल, कुट, भूतहर, शाम्भदुर्ग, वायुघ्न, महिषाक्षक, देवेष्ट, मरुदिष्ट, रक्षोहा, पलंकषा रूक्षगन्धक और दिव्य) ये गूगलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-गूगल । बं०-गुग्गुल । म०-गुग्गुळ। गु०-गुग्गल क०-इडवोल । फा०वोएजहुदान । अ०मुख्कीलेअर्जक । इं०इडियन डेलियम Indi anDellium लै०--बालसमोडे-ड्रोन राक्स बर्घिआई Balasmodendron Roxburg hi ॥ ३१ ॥

अथ गुग्गुलभेदाः । लक्षणानि गुणाश्च ।

महिषाक्षो महानीलः कुमुदः पद्म इत्यपि । हिरण्यः पञ्चमो ज्ञेयो गुग्गुलोः पञ्च जातयः ॥ ३२ ॥

महिषाक्ष, महानील, कुमुद, पद्म और हिरण्य इस प्रकार गूगल पांच जातिका है ॥३२॥

भृङ्गाञ्जनसवर्णवस्तु महिषाक्षं इति स्मृतः । महानीलस्तु विज्ञेयः स्वनामसमलक्षणः ॥ ३३ ॥ कुमुदः कुमुदाह्वः स्यात्पद्मो माणिक्यसन्निभः । हिरण्याक्षस्तु हेमाभः पञ्चानां लिङ्गमीरितम् ३४

जो गूगल-भौंरेके और अंजनके सदृश वर्णवाला हो उसको महिषाक्ष कहते हैं। जो गूगल बहुत नीला हो, उसका नाम महानील है। जिस गूगलका रंग कुमुदके समान कांतिवाला हो, वह कुमुदगूगल जानना। जो गूगल मणिके सदृश चमकता हो, वह पद्म कहाता है और जो गूगल सोनेके सदृश हो, वह हिरण्य अथवा हिरण्याक्ष होता है॥ ३३॥ ३४॥

महिषाक्षो महानीलो गजेन्द्राणां हिताबुभौ। हयानां कुमुदः पद्मः स्वस्त्यारोग्यकरौ परौ ॥ ३५ ॥ विशेषेण मनुष्यणां कनकः परिकीर्तितः। कदाचिन्महिषाक्षश्च मतः कैश्चिन्नृणामपि॥३६॥ गुग्गुलुर्विशदस्तिक्तो वीर्योष्णः पित्तलः सरः। कषायः कटुकः पाके कटू रूक्षो लघुः परः ॥ ३७ ॥ भग्नसन्धानकृद् वृष्यः सूक्ष्मः स्वर्यो रसायनः। दीपनः पिच्छिलो बल्यः कफवातव्रणापचीः ॥३८॥ मेदोमेहाश्मवातांश्च क्लेदकुष्ठाममारुतान्। पिडिकाग्रन्थिशोफार्शोगण्डमालाकृमीञ्जयेत्। माधुर्याच्छमयेद्वातं कषायत्वाच्च पित्तहा ॥ ३९ ॥ तिक्तत्वात्कफजित्तेन गुग्गुलुः सर्वदोषहा। स नवो बृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वतिलेखनः ॥४०॥ स्निग्धः काञ्चनसंकाशः पक्वजम्बूफलोपमः। नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः ॥ ४१ ॥ शुष्को दुर्गन्धकश्चैव त्यक्तप्रकृतिवर्णकः। पुराणः स तु विज्ञेयो गुग्गुलुर्वीर्य वर्जितः ॥४२॥ अम्लं तीक्ष्णमजीर्णं च व्यवायं श्रममातपम्। मद्यं त्यजेत्सम्यग् गुणार्थी पुरसेवकः ॥ ४३ ॥

महिषाक्ष और महानील ये दोनों गूगल हाथियोंको हितकारक हैं। कुमुद और पद्म ये दोनों गूगल घोडोंके लिये सुखदायक हैं और हिरण्याक्ष गूगल विशेष करके मनुष्योंके लिये कल्याणकारी है। कभी कभी महिषाक्ष गूगल भी मनुष्योंके काममें आता है, ऐसा किसी किसीका मत है। गूगल-स्वच्छ, कडुवा, उष्ण वीर्य, पित्तकारक. दस्तावर, कसैला, चरपरा, पाकमें कटु. रूक्ष' अत्यन्त, हलका; टूटी हड्डी आदिको जोडनेवाला, वीर्यकारक, सूक्ष्म, स्वरको हितकारी, रसायन, अग्निको दीपन करनेवाला, चिकना, बलवर्द्धक और कफ, वात, व्रण, अपची, मेद, प्रमेह, पथरी, वात क्लेद, (ग्लानि) कुष्ठ, आमवात, पिडका, ग्रन्थि (गांठके रोग); सूजन. बवासीर, गण्डमाला तथा कृमिरोगको नष्ट करता है। गूगल मधुर होनेसे वातको, कसैला होनेसे पित्तको और कडवा होनेसे कफको जीतता है, इस कारण गूगल त्रिदोष नाशक है। जो गूगल नवीन हो वह पुष्टि देता है और मैथुनकी शक्ति बढाता है, पुराना हो तो अत्यन्त लेखन है। जो गूगल स्निग्ध, सुवर्णके सदृश, पकी जामुनके सदृश, सुगंधित और पिच्छिल हो वह नया जानना। जो गूगल सूखा, दुर्गन्धित और स्वाभाविक गुण तथा वर्णसे रहित हो; उसको पुराना गूगल जानना पुराना गूगल शक्तिहीन होता है। गूगल सेवन करनेवाले जो पूर्ण लाभके इच्छुक हैं, उनको खट्टे मिरच आदि तीक्ष्ण और अजीर्ण करनेवाले कच्चे पदार्थ मैथुन, परिश्रम, धूप. मदिरा और रोष (क्रोध) त्याग देना चाहिये३५-४३

विवरण।

गूगलके वृक्ष रेतीली और पर्वतोंकी भूमिमें उत्पन्न होते हैं, पत्ते अनी रहित छोटे छोटे नीबके पत्तोंके समान होते हैं, फूल लाल रंगका छोटा पांच पंखुलीवाला मंजरीके मध्यमें निकलता है. फल छोटे बेरके समान तीन धारवाला होता है, इसके फलोंको गूगलिया कहते हैं, इस वृक्षके गोंदका नाम गूगल है॥

अथ सरलनिर्यासगुग्गुलुः ।

श्रीवासः सरलस्रावः श्रीवेष्टो वृक्षधूपकः। श्रीवासो मधुरस्तिक्तः स्निग्धोष्णस्तुवरः सरः ॥ ४४ ॥ पित्तलो वातमूर्द्धाक्षिस्वररोगकफापहः । रक्षोघ्नः स्वेददौर्गन्ध्ययूकाकण्डूव्रणप्रणुत् ॥ ४५ ॥

श्रीवास, सरलस्राव, श्रीवेष्ट, वृक्षधूपक, (वेष्टसार रसावेष्ट, श्रीपिष्ट, पद्मदर्शन, पायस, घृकधूप, सरलद्रव, रक्तशीर्षक, रसाह्वय, यवास, घृताह्वय, दध्याह्वय, क्षीराह्वय, क्षीरश्री, वायस, वृक्षधूप, चितागन्ध, रसायक श्रीरस, वेष्ट, लक्ष्मीवेष्ट, वेष्टक, क्षीरशीर्ष, सुधूपक, धूपाङ्ग, तिलपर्ण, सरलांग और तैलपर्णी) ये सरलके गोंदके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--सरलका गोंद, सरलका रस-गन्धविरोजा । बं०--टर्पिन तेल, गन्धविरजा । म०खरलाडीक, चन्दुस । गु०--चन्द्रस, गन्धवेरिजो । क०--श्रीवेष्टक । ता०--पिनै मारु । फा० संदरुस, काइरुवा । अ०--संदरुसू । इं०--गम् कोपल, संडरेक Gom Copol,Sandarack लै०--ट्रेक्लिोबिअम् होर्निमेनिएनम Trachilobium Hornimannianum.

सरलका गोंद-मधुर, कडवा, स्निग्ध, गरम, कसैला, दस्तावर, पित्तकारक और वात, शिरके रोग, नेत्रके रोग, स्वररोग, कफ, राक्षसकी पीडा, स्वेद दुर्गन्धता, यूका (जूँ, लीख) खुजली तथा व्रणको दूर करता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अथ रालः ।

रालस्तु शालनिर्यासस्तथा सर्ज्जरसः स्मृतः । देवधूपो यक्षधूपस्तथा सर्वरसश्च सः ॥ ४६ ॥ रालो हिमो गुरुस्तिक्तः कषायो ग्राहको हरेत् । दोषास्रस्वेदवीसर्पज्वरव्रणविपादिकाः । ग्रहभग्नाग्निदग्धाश्रीशूलतीसारनाशनः ॥४७॥

राल, शालनिर्यास, सर्जरस, देवधूप, सर्वरस, विरूप, वह्निवल्लभ, कलकल, काल, कलयज, बहुरूप, धूपन, सालज, सालनिर्याससर्ज्यधूनक, शालसार, शाल, शालवेष्टा सालवेष्ट, अग्नि, वल्लभ, सर्जमणि, साल, कलकलोद्भव, ललत, देवेष्ट, शीतल, सालरस, सुरभि, सर्जनिर्यासक, सुरधूप, कलकलज, महारूप, क्षण और शालरस) ये रालके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-राल । बं०--धूना, धूनो । म०पिंवळी राल । गु०--राल । क० सर्जरस । तै० सर्जरसमु, सर्ज्ज । फा०--राल मगरेवी । अ०किकहर । इं०--यलो रेझिन Yellow Resin लै०--रेजीना फ्लेवाResinafleva.

राल--शीतल, भारी, कडवी, कसैली, ग्राही और दोष, रुधिरविकार, पसीना, विसर्प, ज्वर व्रण, विपादिकानामक कोढ, ग्रह, भग्नरोग अग्निदाह, अलक्ष्मी, शूल तथा अतीसार नाशक है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

विवरण ।

शालका वृक्ष बहुत ऊँचा होता है, उसके गोंदको वैद्य लोग राल कहते हैं,यह वृक्ष उत्तराखण्डमें बहुत हैं ॥

अथ कुन्दुरुः (गन्धविरोजा)

कुन्दुरुस्तु सुकुन्दः स्यात्सुगन्धः कुन्द इत्यापि । कुन्दुरुर्मधुरस्तिक्तस्तीक्ष्णस्त्वच्यः कटुर्हरेत् ज्वरस्वेदग्रहालक्ष्मीमुखरोगकफानिलान् ॥ ४८ ॥

कुन्दुरु, मुकुन्द, सुगन्ध, कुन्द, (पालंक्या, सौराष्ट्री, शिखरीबली, पालंकी,मुकुन्द, कुन्दु, कुन्दुर, तीक्ष्णगन्ध' कुन्दुरुक, कुन्दुक' तीक्ष्णगोपुरक, बहुगन्ध, पालिन्द, भीषण, कुन्दारु, विडालाक्ष, पालंक, खपुर, स्वाक्ष, नागवधूप्रिय और शल्लकीनिर्यास) ये गन्धफिरोजेके संस्कृव नाम हैं ।

हिंदी गन्धफिरोजा, कुन्दुरु । बं०--कुन्दारुखोटी । म० अवल,कुन्दर,सालईचाडीक । गु०

किन्दूरु,शेषगुंदर। क०-इडवोल। तै०-कुन्दुरुमु, गुगुलमु। फ०-कुन्दुररूमी,खोटीमस्तकी। अ०-कुन्दुरेजकर। इं०-ओलिबेनम Olibanum. लै०-बोस्वेलिया थेरिफरा Boswelia Therifera.

कुन्दुरु-मधुर, कडवा, तीक्ष्ण, त्वचाको हितकारी, चरपरा और ज्वर, पसीना, ग्रह, अलक्ष्मी, मुखके रोग, कफ तथा वातको दूर करता है ॥ ४८॥

विवरण।

कुन्दुरु-शल्लकी वृक्षके गोंदको कहते हैं; इसका रंग सफेद होता है, इसमें कुछ कुछ सुगंधि भी आती है ॥

अथ शिलारसः।

सिह्लकस्तु तुरुष्कःस्याद्यतो यवनदेशजः। कपितैलं च संख्यातस्तथा च कपिनामकः ॥४९॥सिह्लकःकटुकःस्वादुःस्निग्धोष्णः शुक्रकान्तिकृत्। वृष्यःकण्ठ्यःस्वेदकुष्ठ-ज्वरदाहग्रहापहः ॥ ५० ॥

सिह्लक, तुरुष्क, यवनदेशज, कपितैल और जितने कपि (वन्दर) नामके शब्द हैं, वे सब (कृत्रिम, कपिश, चला, मुक्तिमुक्तपिंडित, सैंहिकारस, कपि, कपिल, चपला, पिण्डात, वर, सिह्लपिण्डक, सिद्ध, पावन, पवन, धूम्र, धूम्रवर्ण सुगंधिक, सिह्लसार,पीत, सार, पिण्याक, कपिज, कल्क, पिण्डितैलक, करवर, कृत्रिमक, लेपन, शल्लकीद्रव, पिष्टक, तैलपर्णी,वृकधूप, कपिचंचल,यावल, तैलाख्य, पिण्डकयाव, यावन, यवनदेशज, अश्मपुष्प और चञ्चलतैलक) ये शिलारसके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बं०-शिलारस। गु०-शैलारस। क०-पिण्डतैल। फा०-सरारस। आसारेकमिया मिथाससाइला। इं०लिक्विडएम्बर Liqnid Amber, लै०-लिक्विडम्बर ओरीएनटेलिस Liquidamb.r Orientalis.

शिलारस-चरपरा, मधुर, स्निग्ध, गरम, वीर्यवर्द्धक, कान्तिकारक, वलदायक, कंठको हितकारी और पसीना, कोढ, ज्वर, दाह तथा ग्रहदोष इन सब रोगोंको नष्ट करता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

विवरण।

शिलारस-शिल्लवृक्षका गोंद होता है। यह अन्य देशदेशान्तरोंसे आता है, यह पक्व लसोढेके रसके समान चिकना और सुगंधित होता है। इसका धूम्र वर्ण होता है ॥

अथ जातीफलम्।

जातीफलं जातिकोशं मालतीफलमित्यपि। जातीफलं रसे तिक्तं तीष्णोष्णं रोचनं लघु। कटुकं दीपनं ग्राहि स्वर्यं श्लेष्मानिलापहम् ॥ ५१ ॥ निहन्ति मुखवैरस्यं मलदौर्गन्ध्यकृष्णताः। कृमिकासवमिश्वासशोषपीनसहृद्रुजः ॥ ५२ ॥

जातीफल, जातिकोश, मालतीफल, (फलजाती, कोषक, सुमनफल, जातीकोष, कोश, राजभोग्य, जातीकोश जातीफल, जातिशस्य, शाल्क, मज्जसार, जातिसार, पुट, मदशौंड) ये जायफलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-जायफल। बं०-म०-गु-जायफल। क०-जाईफल। तै०-जाजिकाया। ता०-जातिक्काय। फा०-जीभावुवा। अ०-जोज उतलीव इं०-नट्मेग Nutmeg लै०-मिरिष्टिका औफिसिनेलिस Myristica Officinalis

जायफल-रसमें कडवा, तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, हलका, चरपरा, अग्निप्रदीपक, ग्राही, स्वरको हितकारी, कफ तथा वातको विनष्ट करनेवाला, मुखकी विरसतानाशक, मल, दुर्गन्धता, कृष्णता, कृमि खांसी, वमन, श्वास, शोथ, पीनस और हृदयरोगको दूर करता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

विवरण।

पूर्व और दक्षिण दिशाकी ओर जायफलके वृक्ष बहुत होते हैं। फल जामुनके समान कुछ लंबाई लिये गोल गोल होते हैं. इसकी छालके भीतर बालकेसा गुच्छा होता है उसको जावित्री कहते हैं। कुछ कालोपरान्त उसका

रंग पीला पड जाता है, उसके भीतर कठिन बकलका बीज होता है, उसको तोडनेसे जायफल निकलता है ॥

अथ जातीपत्री।

जातीफलस्य त्वक् प्रोक्ता जातीपत्री भिषग्वरैः। जातीपत्री लघुः स्वादुः कटूष्णा रुचिवर्णवत्। कफकासक्रमिश्वासतृष्णाकृमिविषापहा ॥ ५३ ॥

वैद्यलोग जायफलकी छालकोही जावित्री कहते हैं। जातिपत्री, जातीपत्री, (जातीकोषा, सुमनपत्रिका, जातीकोषी, समनपत्री, मालती, पत्रिका, सौमनसायिनी और जातीफलत्वक्) ये जावित्रीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-जावित्री। बं०-जैत्री, जयित्री। म०-जायपत्री। गु०-जावंत्री। क०-जायपत्री। तै०-जाजिपत्री। फा०-जवत्री। अ०-बीसवासा। इं०-मेस Mace. लै०-मिरिस्टिकाफ्रेग्रन्स Maristica Fragrans

जावित्री-हलकी, मधुर, कडवी, गरम, रुचिकारक, वर्णको उत्तम करनेवाली और कफ, खांसी, वमन, श्वास, तृषा, कृमि तथा विष इनको नष्ट करती है ॥

विवरण।

जावित्री और जायफल एक ही वृक्षसे उत्पन्न होते हैं, सुमात्रा, सिंहल, पिनांग आदि देश और हिन्दुस्थानीय महासमुद्रके टापुओंमें जायफल अधिकतासे होते हैं, देखनेमें सुन्दर हरे रंगके होते हैं, आजकल दक्षिण देशमें भी इनकी अधिकता होने लगी है, जायफलके ऊपरकी छाल फटकर जो कुछ लाल केशरसी निकलती है, उसीको जावित्री कहते हैं, इस फलके बीजको जायफल कहते हैं, सुगन्धित होनेके कारण जावित्री पानमें रखकर खाई जाती है, मात्रा चार रत्तीसे लेकर एक मासे की है ॥

अथ लवंगम्।

लवङ्गं देवकुसुमं श्रीसंज्ञं श्रीप्रसूनकम्। लवङ्गं कटुकं तिक्तं लघु नेत्रहितं हिमम् ॥ ५४ ॥ दीपनं पाचनं रुच्यं कफपित्तास्रनाशकृत्। तृष्णां छर्दिं तथाऽऽध्मानं शूलमाशु विनाशयेत्। कासं श्वासं च हिक्कां च क्षयं क्षपयति ध्रुवम् ॥ ५५ ॥

लवङ्ग, देवकुसुम, श्रीसंज्ञ, श्रीप्रसूनक, (कलिकोत्तम, शृंगार, सुषिर, तीक्ष्ण, वारिज, शेखर, लवप्रसून, लवंगक, लवंगकलिका, दिव्य, श्रीपुष्प, रुचिर ग्रहणीहर, तोयधिप्रिय, वारिपुष्प, तीक्ष्णपुष्प, गीर्वाणकुसुम, चन्दनपुष्प, दिव्यगन्ध और प्रसूनक) ये लौंगके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०-लौंग। म०-बं०-लवंग। गु०-लवींग। क०-लवंगकलिका। तै०-लवंगमु। ता०-किरांबु। फा०-मेहक। अ०-मीखककर्नफूल। इं०-क्लोविस Cloves लै०-करियोफाइलस एरोमेटिकस Caryophyllus Aromaticus

लौंग-चरपरी, कडवी, हलकी, नेत्रोंको हितकारी, शीतल, अग्निको दीपन करनेवाली, पाचक, रुचिकारी, और कफ, पित्त, रुधिरविकार, तृषा, वमन, अफारा, शूल, खांसी श्वास, हिचकी, तथा क्षयको अवश्य क्षय करती है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

विवरण।

लौंगके वृक्ष जंगवारमें अधिकतासे उत्पन्न होते हैं देखनेमें अत्यन्त मनोहर होते हैं, हरे हरे रंगके पत्तोंमें महासुगन्ध आती है, इसके फूलोंकी कलियोंको लौंग कहते हैं, जब लौंग के गुच्छेके गुच्छे वृक्षोंपर लगते हैं, तब महा सुगन्धवाली पवन कोसौंतक भूमि और धोरे-नेरेके वृक्षोंको सुगंधिसे परिपूर्ण कर देती है धन्य है वह मलबारादिक देश कि, जहां ऐसे ऐसे शोभायमान वृक्ष उत्पन्न होतेहैं ॥

अथ स्थूलैला (बडी इलायची)।

एला स्थूला च बहुला पृथ्वीका त्रिपुटाऽपि च। भद्रैला बृहदेला च चन्द्रबाला च निष्कुटिः ॥ ५६ ॥ स्थूलैला कटुका

पाके रसे चानलकृल्लघुः । रूक्षोष्णा श्लेष्मपित्तास्रकण्डूश्वासतृषापह। हृल्लास-विषवस्त्यास्यशिरोरुग्वमिकासनुत्॥५७॥

एला, स्थूला, बहुला पृथ्वीका, त्रिपुटा, भद्रैला, बृहदेला, चंद्रबाला, निष्कुटि, (मलेया, ताडकीफल, स्थूला, त्रिदिवोद्भवा, सुरभि वक्र महिला, कन्या, कुमारी, कुमारिका, पृथ्वी, गोपुटा, कायस्था, कांता, वृताचीगर्भसम्भवा, इन्द्राणी, ऐन्द्री, दिव्यगन्धा, निष्कुटी, चर्मसम्भवा, बाला, बलवती एलीका, सागरगामिनी, गन्धालीगर्भ और महैला) ये बडी इलायचीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-बडी इलायची लाल इलायची। बं-बड एलायच। म०-थोरेवेला, वेलदोडे। गु०-मोटी एलची जाडी एलर्च', जाडी एलची। क०-दोड्डुयालक्की । तै० पेद्द एकाकुलु एल्लु-कचेट्टु ता०-एलम्। फा०-हैलकलक । अ०-काकलेकिवार । इं०-लार्जकरडामोम् Large Catdamom लै एमोमम् सुब्युलेटम् Amo mvm Suvlatum

बडी इलायची-पाकमें और रसमें चरपरी, अग्निदीपक, हलकी, रूक्ष, गरम, और कफ, पित्त, रुधिरविकार, खुजली, श्वास, तृषा' हृल्लास (उबकाई), विष, मूत्राशयके रोग शिरोरोग वमन और खांसीको नष्ट करती है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

विवरण।

बडी इलायचीके क्षुप अदरकके समान छोटे छोटे होते हैं, पत्र भी अदरकके समान होते हैं परन्तु अदरकसे अधिक चौडे होते हैं, बडी इलायचीके बीजोंमें भी छोटी इलायचीके समान सुगंधि आती हैं इसका रंग लाल होता है, ऊपर जटायें होती है, जटाओंके उखाडनेसे भीतरसे तिकोनी निकलती है, उसके भीतर सुगंधित दाने निकलते हैं ॥

अथ एला (गुजराती इलायची)।

सूक्ष्मोपकुञ्चिका तुत्था कोरङ्गी द्राविडी त्रुटिः। एला सूक्ष्मा कफश्वासकासार्शो-मूत्रकृच्छ्रहृत्। रसे तु कटुका शीता लध्वी वातहरी मता ॥ ५८ ॥

सूक्ष्मैला उपकुंचिका, तुत्था, कोरंगी, द्राविडी त्रुटि, (वयस्था, तीक्ष्णगन्धा, भृंगपर्णिका, त्रिपुटा, क्षुद्रैला, त्रिपुटी, छर्दिक रिपु, त्वचिसुगन्धा पुटिका, चन्द्रसंभवा, पोतपर्णी, दिवोद्भवा, चन्द्रवाला, बहुला, निष्कुटि, कनटी, गौरांगी गर्भारा, गन्धफलिका, सुगंधि, चंद्रिका और श्वेतैला) ये छोटा इलायचीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-छोटी इलायची, सफेद इलायची। बं०-छोट इलायच, गुजराती इलाइच। म०-लघुवेला । गु०-झीणी एलाची, एलाची कागदी। तै०-एलाकु फा० -हैल हिल। अ०-काकले सगीर या काफले सिगार। इं०-दिलेसर कार्डामोम् ।The lessor Cardamum लै०-इलैटिरिया काडार्मोमम Eleseria Cardamomum.

छोटी इलायची-रसमें चरपरी, शीतल, हलकी और वात, कफ श्वास, खाँसी बवासीर और मूत्रकृच्छ्र नाशक है ॥ ५८ ॥

विवरण।

छोटी इलायचीके क्षुप गुजरात और मलबार देशमें बहुत होते हैं, इसका क्षुप भी लाल इलायचीके समान होता है, फूल सफेद इलायचीके और लाल इलायचीके दोनों सुगंधित होते हैं, इसके बीज काले और सरस होते हैं ॥

त्वक्पत्रम्।

त्वक्पत्रञ्च वराङ्ग स्याद् भृङ्गं चोचं तथोत्कटम्। त्वचं घूष्णं कटुकं स्वादु-तिक्तञ्च रूक्षकम् ५९ पित्तलं कफवातघ्नं कण्डवामारुचिनाशनम्। हृद्वस्तिरोगवा-तार्शःकृमिपीनसशुक्रहृत् ॥ ६० ॥

त्वक्पत्र, वरांग, भृंग, चोच, उत्कट (रामेष्ट, विज्जुल, त्वच, गुडत्वच, पत्रचोच, सुरभिवल्कल, सूतकट, त्वचा हृद्य, त्वक् वल्कल, मुखशोधन, शकल, सिंहल, बल्य,

सुरस, कामवल्लभ, बहुगन्ध, धनप्रिय, लटपर्ण, गन्धवल्कल, वर, शीत, सैंहल और तनुत्वक्) ये तजके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं-तज। गु०-जाडीतज। क०-तज।

तज-हलकी, गरम, चरपरी, मधुर, कडवी, रूखी, पित्तकारक और कफ, वात, खुजली, आम तथा अरुचिको नष्ट करती हैं और हृदयके रोग, मूत्राशयके रोग, बवासीर, कृमि पीनस तथा वीर्यविनाशक है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

त्वक् (दालचीनी)।

त्वक् स्वाद्वी तु ननुत्वक् स्यात्तथा दारुसिता मता। उक्ता दारुसिता स्वाद्वी तिक्ता चानिलपित्तहृत्। सुरभिः शुक्रला वर्ण्या मुखशोतृषापह ॥ ६१ ॥

त्वक्, स्वादी, तनुत्वक्, और दारुसिता ये दारुचीनीके संस्कृत नाम हैं ॥ हिन्दी-दालचीनी। बं०-दारुचिनी। म०-डालचिनी। गु०-पातलीतज। तै०-दालचीनी। फा०-दारुचीनी। अ०-सालीख। इं०-सिन्नामन् बार्क Cimnnamon Bark लै०सिन्नामन झिलानिकम् Cinnamon Zeyianicum.

दालचीनी-मधुर, कडवी, चरपरी, सुगंधित, वीर्यवर्द्धक, वर्णको उत्तम, करनेवाली और वात, पित्त, मुखके शोष तथा तृषाको शमन करती है ॥ ६१ ॥

विवरण।

दालचीनीके वृक्ष सिंहल, मलवार कोचीन, चीन, सुमात्रा और जावा देशोंमें अधिकतासे होते हैं, इसके पत्ते तमालपत्रके समान होते हैं, पत्तोंको सुखानेपर उनमेंसे लौंगकीसी सुगंधि आती है, वृक्षकी डंडीके ऊपर सफेद फूल आता है, फूलमें गुलाबके समान सुगंधि आती है, फल करौंदेके समान कुछ सफेद कुछ लाल होते हैं, इनमेंसे तेल निकलता है, इसके फूलका अर्क और सारांश बनाते हैं, सिंहल द्वीपकी दालचीनी बहुत उत्तम होती है। वृक्षकी पतली छालकोही दालचीनी कहते हैं और दूसरी जातिके मोटे वृक्षकी छालको तज कहते हैं ॥

अथ तमालपत्रकम्।

पत्रं तमालपत्रं च तथा स्यात्पत्रनामकम् पत्रकं मधुरं किञ्चित्तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं लघु। निहन्ति कफवातार्शोहृल्लासारुचिपीनसान् ॥ ६२ ॥

पत्र, तमालपत्र और पत्रवाचक सम्पूर्ण शब्द, (तेजपत्र, गन्धजाति, पत्रक, पाकरञ्जन, दलाह्वय, गोमेद, वसनाह्वय, गोमेदक, छदन, दल, पलाश, अंकुश, बास, सुकुमारक, वस्त्र तमालक, गोपन, वसन, तमाल, सुरनिर्गन्ध, इष्टगन्ध, शीतरस, सुरस और रोमश) ये तेजपातके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-तेजापात। बं०-तेजपत्र, तेजपाता। म०-तमालपत्र, सम्भारपान। गु०-तमालपत्र। क०-पत्रक। तै०-आकुपत्री। फा०-सादरसु। अ०-साजिज। इं०-फोलिया मालाबथी Folin Maladathy लै०-सिन्नामोमम टमाला Cinnamomum Tamala

तेजपात-मधुर, किंचित् तीक्ष्ण, गरम, पिच्छिल, हलका और कफ, वात, बवासीर, हृदयरोग, अरुचि, तथा पीनस इन सब रोगोंको दूर करनेवाला है ॥ ६२ ॥

विवरण।

तेजके वृक्ष उत्तराखण्डके बनमें बहुत हैं, पत्ते लंबे तजके पत्तोंके समान होते हैं और कोई कोई वैद्य तजके पत्तोंकोही तेजपात कहते हैं यह सुगंधित पदार्थ है ॥

अथ नागकेशरः।

नागपुष्पः स्मृतो नागः केशरो नागकेशरः। चाम्पेयो नागकिञ्जल्कः कथितः काञ्चनाह्वयः ॥ ६३ ॥

अयं पुष्पे तु क्लीबः ॥

नागपुष्पं कषायोष्णं रूक्षं लघ्वामपाचनम्।
ज्वरकण्डूतृषास्वेदच्छर्दिहृल्लसनाशनम्।
दौर्गन्ध्यकुष्ठवीसर्पकफपित्तविषापहम् ॥ ६४ ॥

नागपुष्प, नागकेशर, चाम्पेय, नागकिंजल्क और जितने सुवर्णके नाम हैं, वे सब, (महौ-

षध, राजपुष्प, फलक, स्वरघातन, कांचनाह्वय, भुजंगाख्या, षट्पदप्रिय, इभाख्य, पुष्परेचन, नागाख्य, केसरी, किंजल्क, नागीय, कांचन, सुवर्ण, हेमकिंजल्क, रुक्म, हेम, पिंजर, फणिकेशर, पुन्नाकेशर, नागपुष्प और नाग) ये नागकेशरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-म०-गु०-क०-नागकेशर । बं०-नागेश्वर । तै०-नागकेशरालु । ता०-नागलं। अ -नारमुष्क लै०-मेस्यूआफरिया Mesuoferrea,

नागकेशर-कसैली, गरम, रूखी, हलकी, आमको पचानेवाली और ज्वर, खुजली, तृषा, स्वेद, वमन, हृल्लास, दुर्गन्धता, कुष्ठ, विसर्प, कफ, पित्त और विषको दूर करती है ६३॥६४॥

विवरण।

पुन्नागवृक्षकी केशर अर्थात् नागचम्पेकी कलीको नागकेशर कहते हैं। इसकी दो जाती हैं, ये गोवा और कोंकण देशसे आती हैं, पुन्नागके बडे बडे वृक्ष होते हैं, इसकी लकडी इमारत आदिके काममें आती है, पत्ते चिंचोडके समान लम्बे होते हैं, इसपर लाल फूल बहुत बडी जातिका आता है, उस फूलमें जो छोटे छोटे दानेसे होते हैं उन्हींको वैद्य लोग नागकेशर कहते हैं ॥

अथ त्रिजातं चतुर्जातकं च।

त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम्। नागकेशरसंयुक्तं चतुर्जातकमुच्यते ॥ ६५ ॥ तद्द्वयं रेचनं रूक्षं तीक्ष्णोष्णं मुखगन्धहृत्। लघु पित्ताग्निकृद्वर्ण्यं कफवातविषापहम् ॥ ६६ ॥

दालचीनी, इलायची और तेजपास इन तीनोंको त्रिसुगन्धि और त्रिजातक कहते हैं। इनमें नागकेशर और मिलानेसे उसको चतुर्जातक कहते हैं ॥

ये त्रिजातक और चतुर्जातक दोनों रेचक रूक्ष, तीक्ष्ण, गरम, मुखकी दुर्गन्धतानाशक और कफ, वात तथा विषको नष्ट करते हैं। हलके, पित्तकारक, अग्निवर्द्धक और वर्णको सुन्दर करनेवाले हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अथ कुकुमम् (केशर)।

कुंकुमं घुसृणं रक्तं काश्मीरं पीतकं वरम्। संकोचं पिशुनं धीरं बाह्लीकं शोणिताभिधम् ॥ ६७ ॥ काश्मीरदेशजे क्षेत्रे कुंकुमं यद्भवेद्धि तत्। सूक्ष्मकेशरमारक्तं पद्मगन्धि तदुत्तमम् ॥ ६८ ॥ बाह्लीकदेशसञ्जातं कुकुमं पाण्डुरं मतम्। केतकीगन्धयुक्तं तन्मध्यमं सूक्ष्मकेशरम् ॥ ६९ ॥ कुकुमं पारसीके यन्मधुगन्धि तदीरितम्। ईषत् पाण्डुरवर्णं तदधमं स्थूलकेशरम् ॥ ७० ॥ कुंकुमं कटुकं स्निग्धं शिरोरुग्व्रणजन्तुजित्। तिक्तं वमिहरं वर्ण्यं व्यङ्गदोषत्रयापहम् ७१

कुंकुम, घुसृण, रक्त, काश्मीर, पीतक, वर, संकोच, पिशुन, धीर, बाह्लीक और जितने रुधिर (खून) के नाम हैं वे सब (काश्मीरज कुसुमात्मक, पीतन, रक्तचन्दन घस्र, हरिचन्दन, खल, रज, दीपक, लोहित, सौरभ चन्दन, काश्मीरजन्म, अग्निशिख, वर, वीरचारु (काश्मीरजन्म) वरबाह्लिक, अग्निशेखर, असृक्, रुधिर, शठ, शोणित, वरेण्य, अरुर, कालेयक, जागुड, कांत वह्निशिख, केशर, गौरकेशर और अस्र) ये केसरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-केसर, केशर । म० केशर। गु०-केशर। बं०-क०-कुंकम। ता०-तै०-कुंकमपूवु फा०--करकीमास। अ०--जाफरान्। इं०-सेफ्रन् Saffron लै०-क्रोकिस्टिग्माटा Crocistigmata.

जो केशर काश्मीरदेशमें होती है, वह सूक्ष्म लाल कमलके सदृश गन्धयुक्त और उत्तम होती है, बाह्लीकदेशकी उत्पन्न हुई केशर सूक्ष्म केतकीके सदृश गन्धवाली और पाण्डु (भूरे) रंगवाली होती है, यह मध्यम है, पारिसदेशमें जो केशर होती है, वह मोटी, मधुके सदृश गन्धवाली और किंचित् पाण्डुवर्ण होती है. यह अधम है ॥

केशर--चरपरी, चिकनी, कडवी, वर्णको उत्तम करनेवाली और शिरोरोग, व्रण, कृमि (कीडा) वमन. व्यंग, (झांई) तथा तीनों दोषोंको नष्ट करती है ॥ ६७ ॥ ७१ ॥

विवरण।

केशरके क्षुप काश्मीर, बलखबुखार, ईरान आदि देशोंमें अधिकतासे होते हैं, उसका क्षुप न बहुत बडा न छोटा मध्यस जातिका होता है, क्षुपके नीचे मूलमें गठीके समान एक गांठ सी होती है, ऊपर एक छत्तेदार फूल लगता है उसके ऊपर महीन २ तन्तु निकलते हैं, वे कुछ कुछ पीलापन लिये हुए लालरंगके होते हैं, जैसे कुसूमके पुष्पमें लाल तन्तु निकलते हैं, वैसे ही केशरके पुष्पमें होते हैं, उनको बीन बीनकर डिब्बोंमें भर रखते हैं; सब केशरोंमें काश्मीर देशकी केशर उत्तम समझी जाती है सूखी हुई सुगन्धियुक्त केसर देशी वैद्यक गर्भ चिकित्साकी अपेक्षा ईरानी चिकित्सावालोंके काममें बहुत आती है, ईरान देशमें इसका व्यवहार अनेक प्रकारसे होता है, प्रसव करनेके लिये ईरान देशकी स्त्रियां केशरकी गोलियां आनन्दपूर्वक सदैव अंचलमें बांधे रहती हैं और प्रसव होनेके उपरांत जरायकी पीडा दूर करनेके लिये नित्यप्रति नियमानुसार सब भक्षण करती रहती हैं. होमियोपैथिकके मतसे रजःसम्बन्धी रोगोंमें इसका प्रयोग किया जाता है ॥

अथ गोरोचना।

गोरोचना तु मङ्गल्या वन्द्या गौरी च रोचनः। गोरोचना हिमा तिक्ता वश्या मङ्गलकान्तिदा। विषालक्ष्मीग्रहोन्माद-गर्भस्रावक्षतास्रहृत् ॥ ७२ ॥

गोरोचना, मंगल्या, वंद्या, गौरी. रोचना (गोपित्त, वन्दनीया, मनोरमा, रोचना, रुचिशोभा, रुचिरा, शोभना, शुभा. रोचनी, पिंगा मंगला, शिवा, पीता, गौतमी, गव्या, कांचनी मेध्या, श्यामा, रामा, भूतविद्राविणी, गोपित्तसम्भवा, पिंगला, नन्दिनी, पाविनी और गोरुचि) ये गोरोचनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-गोरोचना। गोलोचन। गु०-म०-क०-गोरोचना। बं०-गोरोचना। तै०-गोरोचनमु। फा०-तायरोहन। अ०-जहरूलबक्लर। इं०-गोलस्टोनबिजोर Goleston Bijour. लै०-बोस्टोरूस Bostarous.

गोरोचन--शीतल, कडवा, वश्यकारक, मंगल, कांतिदायक और विष, अलक्ष्मी ग्रह, उन्माद, गर्भस्राव, क्षत तथा रुधिर विकार नाशक है ॥ ७२ ॥

विवरण।

गोरोचन--गायके मस्तकमें गोल कंकरके समान निकलता है, उसका रंग पीला होता है, यह औषधिके प्रयोगमें बहुत आता है। तांत्रिक लोग वशीकरण आदिक कर्मोंमें इससे यन्त्र मंत्र बहुत लिखते हैं कई लोग इसे गौके पित्ताशयसे उत्पन्न होता है; ऐसा मानते हैं ॥

अथ नख-नखी (गंधद्रव्यम्)।

नखं व्याघ्रनखं व्याघ्रायुधं तच्चक्रकारकम्। नखं स्वल्पं नखी मोक्ता हनुर्हट्टविलासिनी ॥ ७३ ॥ नखद्रव्यं ग्रहश्लेष्मवातास्रज्वरकुष्ठहृत्। लघूष्णं शुक्रलं वर्ण्यं स्वादु व्रणविषापहम्। अलक्ष्मीमुखदौर्गन्ध्यहृत्पाकरसयोः कटु ७४

नख, व्याघ्रनख, व्याघ्रायुध, चक्रकारक, (व्याघ्रनखी, व्याडायुध, करज, कूटस्थ, नखांक, नख्य, चक्रनायक, चक्री, चक्रनख, ब्यस्त्रफल, द्वीपिनख, खपुर, व्यालपाणिज, व्यालायुध, व्यालबल और व्यालखड्ग) ये नखके संस्कृत नाम हैं (और छोटे छोटे नखोंको नखी, हनु और हट्टविलासिनी कहते हैं) ॥

हिंदी--नख, नखी। बं०-नखी, गंधद्रव्य, छोटनखी। गु० नखला, नखली। म०-नखला वाघनख। क०-नख, वाघनख। फा०--नाखूनपर्या। अ०--अजफारुत्तीव। इं०--शेलShel लै०--हलीक्स आशरा Helix Ashera.

दोनों नख--हलके, वीर्यवर्द्धक, गरम, वर्णको उत्तम करनेवाले, मधुर और ग्रह, कफ, वात, रुधिरविकार, ज्वर, कोढ, व्रण, विष, अलक्ष्मी तथा मुखकी दुर्गंधताको नष्ट करते हैं, और पाक तथा रसमें चरपरे हैं ॥

विवरण ।

नखद्रव्य--नदीके जीवोंकी नख होते हैं, ये सुगंधित पदार्थ हैं, धूप और तैलादिकमें सुगंधिके लिये डाले जाते हैं और घोडे हाथियोंके नख भी अनेक औषधियोंमें डाले जाते हैं । गन्ध अर्थवाली और गंधयुक्त, नखी पांच प्रकारकी होती है । कोई बेरीके पत्तोंके समान कोई कमलके पत्तोंके समान, कोई घोडेके खुरकी आकारवाली, कोई हाथीके कानके सदृश और पांचवीं सुअरसे कानके तुल्य होती है, यह चरकमुनिका वचन है ॥

अथ बालम् ।

बालं ह्रीवेरबर्हिष्ठोदीच्यं केशाम्बुनाम च बालकं शीतलं रूक्षं लघु दीपनपाचनम् । हृल्लासारुचिवीसर्पहृद्रोगामातिसारजित् ॥ ७५ ॥

बाल ह्रीबेर, बर्हिष्ठ, उदीच्य, बाल और जलके जो नाम हैं वे सब (बालक, वारिद, केशनामक, कचा, मोद, बरपिंग, कुन्तल, केशनामा, अम्बुकनामक, केश, केश्य, वज्र, ललनाप्रिय, कुन्तलोशीर, ह्रीवेरक, वारि, तोय और जल) ये सुगन्धवालाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी--सुगंधवाला । बं० बाल्य, गंधवाला । म०--बाला । गु०--वानो । क०--बालदवेरू । ते०--वाटिवेल्ल । फा०--असारूं । लै०--पावोनिया आडोरेटा Pavonia Adorate

सुगंधवाला--शीतल, रूक्ष, हलका, अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन और हल्लास, अरुचि, विसर्प, हृदयरोग और कामातिसार नाशक है ॥ ७५ ॥

विवरण ।

सुगंधवाला-बालोंके समान बहुत बारीक और लम्बा बडकी जाढीके समान होता है, विशेष करके यह जलके समीपकी भूमिमें बहुत होता है । इसकी जड अधिक प्रभावशाली होती है । कञ्जर लोग कुदालोंसे खोद खोद कर लाते हैं, खसमें और इसमें थोडा ही अन्तर होता है । खस सरकंडेकी जड होती है, और सुगन्धोंवाला टांटलकी जड होती है । मूर्ख वैद्य नाडीके पत्तोंकोही सुगंधवाला मानते हैं, धन्य है आजकलके कलियुगी वैद्य, जो घरहीमें बैठे बैठे डींग मारते हैं बाहर निकलकर एक रूख भी नहीं देखा ॥

अथ वीरणमुशीरं च ।

स्याद्वीरणं वीरतरु वीरं च बहुमूलकम् । वीरणं पाचनं शीतं वान्तिहृल्लघु तिक्तकम् ॥७६॥ स्तम्भनं ज्वरनुद्वान्तिमदजित्कफपित्तहृत् । तृष्णाऽस्रविषवीसर्पकृच्छ्रदाहव्रणापहम् ॥७७॥ वीरणस्य तु मूलं स्यादुशीरं नलदं च तत् । अमृणालश्च सेव्यश्च समगन्धिकमित्यपि ॥ ७८ ॥ उशीरं पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम् । मधुरं ज्वरहृद्वान्तिमदनुत्कफपित्तहृत् । तृष्णाऽस्रविषवीसर्पदाहकृच्छ्रव्रणापहम् ॥ ७९ ॥

वीरण, वीरतरु, वीर, बहुमूलक, उशीर नलद, अमृणाल, सेव्य, समगन्धिक, (अभय, अवदाह; लामज्जक, लघुभय, इष्टकापथ, मृणाल, लघुलय, अवदात, अवदाहेष्टकापत्र, इन्द्रगुप्त, उशीरक, जलवास, हरिप्रिय, रणप्रिय, शिशिर, शीतमूलक, वितानमूलक, दाहहरण, जलामोद, गन्धाढ्य, सुगंधिक, सुगंधिमूलक, सुगंधिमूल, कम्बु, कटायन वीरतर, वीरभद्र और बहुमूलक) ये खसके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--खस, वीरन, गांडरा । बं०-वेणारमूल, वीरणमूल । गु०-कालावालाना झाडनुं मूल । म० कालावाला । क०-बालदवेरु । तै०-अवरुगट्टि वट्टिवेल्लुनल्ल । ता०-वेट्टिवेर । लै०-अन्ड्रोपेगन, म्युरिकेटस Andropagan Muricatus.

खस पाचक, शीतल, वीर्यस्तम्भक, हलकी, कडवी, मधुर, और, ज्वर, वमन, मद, कफ, पित्त, तृषा, रुधिर-विकार, विष, विसर्प, दाह, मूत्रकृच्छ्र और व्रण-विनाशक हैं ॥ ७६--७९ ॥

विवरण।

खस, वीरणमूल घासकी जड होती है। यह जलाशयके समीपकी भूमिमें वहुत उत्पन्न होती है। इसकी जड दो दो फुट नीचे पृथ्वी में चली जाती हे। कञ्जर लोग उसको कुदालोंसे खोद खोदकर एकत्र कर लेते हैं, फिर उसको पानीसे धोकर स्वच्छ कर लेते हैं, उसीको वीरणमूल (खस) कहते हैं । ग्रीष्मऋतुमें धनाढ्य लोग इसकी टट्टी बनाकर अपने स्थानोंमें लगाते हैं, फिर उन टट्टियोंपर जल छिडकवाते हैं, तब उनमेंसे मन्द मन्द पवनके आश्रयसे सुगंधि निकलती है ॥

अथ जटामांसी।

जटामांसी भूतजटा जटिला च तपस्विनी। मांसी तिक्ता कषाया च मेध्या कान्तिबलप्रदा ॥ स्वाद्वी हिमा त्रिदोषास्रदाहवीसर्पकुष्ठनुत् ॥ ८० ॥

जटामांसी, भूतजटा, जटिला, तपस्विनी, (जठी, पेसी, लोमशा, निशि, मांसी, हिंस्रा, मिषिका, चक्रवर्तिनी, नलद, वहिनी, कृष्णजटा, किरातिनी, क्रव्यादी, पिशिता, पिशी, पेशी, पेशिनी, जटामासिनी, जटाला, नलदा, मेषी, तामसी, माता, अमृत, जटा, जननी, जटावती, मृगभक्षा, मिसी, मिसीका और मिषि) ये जटामांसीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-गु०-जटामांसी, बालछड। म०-बं०-तै०-जटामांसी। क०-बहुलगन्ध। फा०-सुम्बुल। अ०-सुबुलतीख। इं०-स्पइकनार्ड Spikenard. लै०-नारडोस्टेकीस Nardostachys.

जटामांसी-कडवी, कसैली, मेधाको हितकारी, कांति तथा बलदायक, मधुर, शीतल है और त्रिदोष, रुधिर-विकार, दाह, विसर्प तथा कुष्ठनाशक है ॥ ८० ॥

विवरण।

जटामांसी-बालछड गुल्म जातिकी वनस्पति है। इसके पत्ते संजीवनके समान होते हैं, यह हिमालयके जंगलमें उत्पन्न होती है। इसकी जडपर धूसर रंगके रुएँ जमे रहते हैं, फूल गुच्छोंमें लगते हैं, इसकी मूल अत्यन्त सुगन्धित होती है ॥

अथ शैलेयम् (भूरिछरीला)।

शैलेयन्तु शिलापुष्पं वृद्धं कालानुसार्य्यकम् । शैलेयं शीतलं हृद्यं कफपित्तहरं लघु ॥ कण्डूकुष्ठाश्मरीदाहविषहृद्गुदरक्तहृत् ॥ ८१ ॥

शैलेय, शिलापुष्प, वृद्ध, कालानुसार्यक, (शैलाख्य, सुभग, गिरिपुष्पक, शिलासन, शीतशिव, शैलज, शीतल, शैल, कालानुसार्य, शिलेय, शैलक, काला, नुसारिवा, अश्मपुष्प, शिलापुष्प, गृह, शिलाभव, शिलोद्भव, स्थविर, पलित, जीर्ण, शिलोत्थ, शिलाददु और शिलाप्रसून) ये भूरिछरीलेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-भूरिछरीला, पत्थरका फूल। बं०-शैलज। म०-दगडफूल। गु०-छडीलो, पत्थरफूल। क०-कलहू। तै०-शैलेय मनेद्रव्यमु। फा०--दहाल । अ०-आशीना। लै०-पारमेलिया परलेटा Parmelia Parleta

भूरिछरीला--शीतल, हृदयको हितकारी, हलका और कफ, पित्त, खुजली, कोढ, पथरी, दाह, बिष और खूनी बवासीरको दूर करता है ॥ ८१ ॥

विवरण ।

भूरिछरीला--नदी आदि जलाशयोंके समीप जो पर्वत और वृक्ष होते हैं, उन पर्वतोंके पत्थरोंपर और वृक्षोंपर बर्फ पडनेके समय सिवार और काईसी जम जाती है, उसमें छोटी छोटी पत्ती भी निकलती है, वह ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी किरणोंके तेजसे सूखकर छाल सी उतर पडती है, उसीको छारछबीला और सूरिछरीला कहते हैं, इसमें अधिक सुगन्ध आती है ॥

अथ मुस्तकः (नागरमोथा) ।

मुस्तकं न स्त्रियां मुस्तं त्रिषु वारिदनामकम् । कुरुविन्दश्च संख्यातोऽपरः क्रोडकसेरुकः ॥८२॥ भद्रमुस्तश्च गुन्द्रा च तथा नागरमुस्तकः । मुस्तं कटु हिमं ग्राहि तिक्तं दीपनपाचनम् ॥८३॥ कषायं कफपित्तास्रतृड्ज्वरा । रुचिजन्तुहृत् । अनूपदेशे यज्जातं मुस्तकं तत्प्रस्यते । तत्रापि मुनिभिः प्रोक्तं वरं नागर मुस्तकम् ॥ ८४ ॥

मुस्तक, मुस्त और जितने मेघके नाम हैं--वे सब, (बालेय, परिपेलव, कुरुविन्द, अम्बुवाह, अम्बुभृत्, तडित्वान्, वारिवाह, वलाहक, स्तनयित्नु, तोयद, तोयधर, अभ्रनामक, गांगेय और कसेरुक) ये नागरमोथेके संस्कृत नाम हैं ॥

कुरुविंद, क्रोड, कसेरुक, भद्रमुस्त, गूंदा और नागरमुस्तक, ये सब मोथेकी जाति हैं ॥

हिन्दी -मोथ, नागरमोथा । बं०--मुता, नागरमृता । म०--मोथा, नागरमोथा । गु०--मोथ, नागरमोथा । क०--मुस्ता नागरमुस्ता। तै०--तुङ्गमुस्त, सकहतुंग । ता०--कोरैं किलंगु। फा०--मुश्कजमीन् । अ०--शादकोफी । लै०--साईपेरस रोटंडोस Cyperus Rotondous.

मोथा--चरपरा, शीतल, ग्राही, कडवा, दीपन, पाचक, कसैला और कफ, पित्त, रुधिरविकार, तृषा, ज्वर, अरुचि तथा कृमि का नाश करनेवाला है । जो मोथा--अनूपदेशमें उत्पन्न होता है वह उत्तम है और उसमें भी मुनियोंने नागरमोथा श्रेष्ठ कहा है ॥८२-८४॥

विवरण ।

नागरमोथा जलभूमिमें अथवा जलाशयके संनिकट भूमिमें उत्पन्न होता है यह तृणजाति का क्षुप है, इसके पत्ते घासके समान लम्बे लम्बे होते हैं, इसके बीचमें एक डंडी निकलती है, वह बहुत लम्बी और तिकोनी होती है, उसके ऊपर हरे रंगके छोटे छोटे फूल आते हैं, उन फूलोंसे इधर उधर तीन पत्ते भी लम्बे लम्बे होते हैं, उसके नीचे जडमें कसेरू के सदृश काले रङ्गका कन्द होता है, उसीको नागरमोथा या मोथा कहते हैं ॥

अथ कचूरः ।

कचूरो वेधमुख्यश्च द्राविडः कल्पकः शटी । कर्चूरोदीपनो रुच्यः कटुकस्तिक्त एव च ॥ ८५ ॥ सुगन्धिः कटुकपाकः स्यात् कुष्ठार्शोव्रणकासनुत् । उष्णो लघुहरेच्छ्वासगुल्मवातकफक्रिमीन् ॥८६॥

कर्चूर, वेधमुख्य, द्राविड, कल्पक, शटी। (कार्श्य, दुर्लभ, गन्धकमूल, गन्धसार और जटाल) ये कचूरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कचूर, काली हलदी । बं०-कर्चूर । म०-क०-कचोरा । गु०-कचूरा । तै०-कचोरालु । फा०-जरंवाद । अ०-एरकुलकाफर । इं०-लांग जेडोरी Long Zcdoory लै०-करक्युमा जेवरमवेट Car cuma Zeruder.

कचूर-कफ्मिदीपक, रुचिकारक, कडवा, चरपरा, सुगंधित, पाकमें चरपरा, गरम, हलका और कोढ, बवासीर, व्रण, खाँसी, गुल्म, वात, कफ तथा कृमिको नष्ट करता है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

विवरण।

कचूरके क्षुप जंगलमें विशेष करके होते हैं, इसके पत्ते हलदीके समान होते हैं. इसके नीचे अमियां हलदीके सदृश गाँठें होती हैं; उस गांठके टुकडे टुकडे करके सुखालेते हैं, उसीको कचूर कहते हैं, यह प्रायः वर्षाऋतुमें बहुत उत्पन्न होता है ॥

अथ मुरा (मुरहरी, एकांगी)।

मुरा गन्धकुटी दैत्या सुरभिःशालपर्णिका। मुरा तिक्ता हिमा स्वाद्वी लध्वी पित्तानिलापहा। ज्वरासृग्भूतरक्षोघ्नी कुष्ठाकासविनाशिनी ॥ ८७ ॥

मुरा, गन्धकुटी, दैत्या, सुरभि, शालपर्णिका, (गंधिनी, तालपर्णी, गन्धाढ्या, पुरागन्धवती, दिव्यागन्धमादिनी, भूरिगन्धा, कुटी, भूतगन्धा, ताल, पर्णिका और मुरामांसी) ये मुराके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-मुरा, एकांगी, । गु०-मुरामांसी। म०-मोरमांसी। क०-मुरे। ता०-मुरनामगंध।

मुरा-कडवी, शीतल, मधुर, हलकी, और पित्त, वात ज्वर, रुधिरविकार, भूत, राक्षस, कोढ तथा खाँसीको शमन करती है ॥ ८७ ॥

विवरण।

मुरा (मरोडफली) के चार पांच फुट उंचे क्षुप वनमें बहुत होते हैं, फूल, पीले रंगके होते हैं फलियाँ इमठी हुई रस्सीकी भांतिकी होती हैं। मरोडीखाये जो होती हैं, इसलिये इनका नाम मरोडफली है, कई मुराको पृथक् ही मानते हैं ॥

अथ गन्धपलाशी (कपूर कचरी)।

शठी पलाशी षड्ग्रन्था सुव्रता गन्धमूलिका। गन्धारिका गन्धवधूर्वधूः पृथुपलाशिका ॥ ८८ ॥ भवेद्गन्धपलाशी तु कषाया ग्राहिणी लघुः। तिक्ता तीक्ष्ण च कटुकाऽनुष्णाऽऽस्यमलनाशिनी। शोथकासव्रणश्वासशूलहिध्मग्रहापहा ८९

शठी, पलाशी, षड्ग्रंथा, सुव्रता, गंधमूलिका, गंधारिका, गन्धवधू, वधू, पृथुपलाशिका, (गन्धमूली, ग्रंथिका, कर्पूर, पलाश, सटी, षटी, गन्धशटी, कर्चुर, कर्चुर, गंधसटी, गन्धमूला, गन्धोलि, गंधमूलक, सुगन्धा, गंधसटी, गन्धमूल, गन्धपलाशी, जीतमूतमूल, कच्छौरा, हिमजा, हैमी, षड्ग्रन्थि, पलाशी, हिमग्रन्था, अम्लनिशा, सुगन्धमूला, गंधोरी, शठिका, पलाशिका, समुद्रा, तूणी, दूर्वागन्धा, सठी, अम्लहरिद्रा, सौम्या और हिमोद्भवा) ये गन्धपलाशीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-गन्धपलाशी, कपूरकचरी। बं०-शटी, गन्धशटी। म० छपूरकचरी। गु० कठ, गन्धपलाशी। क०-गन्धशटी। तै०-किचलिरागट्टलु। अ०-जरंवाद लै०=करक्यूमा आरोमाटिका Caremn Aromatcica

गन्धपलाशी-कसैली, ग्राही, हलकी, कडवी तीक्ष्ण, चरपरी, उष्णतारहित और मुखका मैल सूजन, खांसी, व्रण, श्वास, शूल, हिचकी तथा ग्रहबाधाको दूर करनेवाली है ॥८८॥८९॥

विवरण।

कपूरकचरीकी बहुत विस्तारपूर्वक बेल चलती है। उसकी मूल सुगन्धीयुक्त कन्दके समान होती है, उसी कन्दके टुकडे करके सुखा लेते हैं उसीको कपूरकचरी कहते हैं ॥

अथ प्रियंगुः (गन्धप्रियंगु)।

प्रियंगुः फलिनी कान्ता लता च महिलाह्वया। गुन्द्रा गुन्द्रफला श्यामा विष्वक्सेनाऽङ्गना प्रिया। प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता तुवराऽनिलपित्तहृत् ॥ ९० ॥ रक्तातियोगदोर्गन्ध्यस्वेददाहज्वरापहा। गुल्मतृड्विषमोहघ्नी तद्वद्गन्धप्रियङ्गुका ॥ ९१ ॥ तत्फलं मधुरं रूक्षं कषायं शीतलं गुरु। विबन्धाध्मानबलकृत्संग्राहि कफपित्तजित् ॥ ९२ ॥

प्रियंगु, फलिनी, कान्ता, लता, महिलाह्वया, गुन्द्रा, गुन्द्रफला, श्यामा, विष्वक्सेना, अंगना, प्रिया और जितने स्त्रीके नाम हैं वे सब, (गंधफला, गोवन्दनी, कृष्णपुष्पी, कृशांगी,कारंभा, प्रियक, कटु, गोवर्णा, मेदिनी, मिथवल्ली फलप्रिया, गौरी, वृत्ता, कंगु, कङ्गनी, मंगुरा, गौर, गौरवल्ली, सुभंगा, पर्णमेदिनी, शुभा, पीता, मंगल्या, प्रेयसी, अंगनाप्रिया, वनिता और नारिवल्लभा) ये संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-प्रियंगु फूलप्रियंगु, ककूँदनि। बं०-प्रियंगु, गन्धप्रियंगु, । गु०-कांग, घऊँला। गह्वला। क०-नैर्पिलगु । तै०-प्रेंकणपुचेट्टु। ता०-प्रियंगु। लै०-प्रून्स महालिब Prunu Maheled.

प्रियंगु-शीतल, कडवा, कसैला,और वात, पित्त, रुधिरकी अधिकता, दुर्गंध, पसीना, दाह ज्वर, गुल्म, तृषा, विष तथा मोहनाशक है। जो गुण इसमें हैं, वेही फूलप्रियंगुमें हैं इसका फल मधुर, रूखा, कसैला, शीतल भारी और मलबन्ध अफारा तथा बलकारक है ग्राही, कफ तथा पित्तको जीतनेवाला है ॥ ९०-९२ ॥

विवरण।

फूलप्रियंगुका क्षुप पर्वतोंपर लताके समान होता है, पत्ते मौलश्रीके सदृश होते हैं, इसमें बहुत पतली बाले निकलती है, फल बादामके सदृश, बहुत छोटे गेहूँकेसे दाने होते हैं, उसके भीतरकी गिरी बहुत सुगन्धित होती है, अरगजे इत्यादिमें पडती है ॥

अथ रेणुका-मरिचसदृशा (सम्हालू)।

रेणुका राचपुत्री च नन्दिनी कपिला द्विजा। भस्मगन्धा पाण्डुपुत्री स्मृता कौन्ती हरेणुका॥९३॥ रेणुका कटुका पाके तिक्ताऽनुष्णा कटुर्लघुः। पित्तला दीपनी मेध्यापाचिनी गर्भपातिनी। बलासवातकृच्चैव तृट्कण्डूविषदाहनुत्९४

रेणुका, राजपुत्री, नंदिनी, कपिला, द्विजा, भस्मगन्धा, पांडुपुत्री, कौंती, हरेणुका,(हरेणु, भस्मगन्धिका, कृतान्ता, खरनादिनी, अभीष्टा वरत्करी, वरमुखी, वरा, कान्ता, महिला, हिमा, रेणु, सुपर्णिका, शिशिरा, शांता, वृत्ता, हिमगंधिनी, धर्मिणी, कपिलोमा, हैमावती और पांडुपत्नी) ये रेणुकाके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-रेणुका, सम्हालूके बीज । बं०-रेणुक। म०-रेणुकबीज । गु०-क०-रेणुका। ता०-येट्टी। लै०-विटेक्स स्पेइयोजा Vitex Speeiasa,

रेणुका-पाकमें चरपरी, कडवी,गरम नहीं, हलकी, चरपरी, पित्तकारक, अग्निको दीपन करनेवाली, बुद्धिको हितकारी,पाचक, मर्मको गिरानेवाली और कफ, वात, विह्वलता तृषा खुजली,विष तथा दाहनाशक है ॥ ९३ ॥९४॥

विवरण।

रेणुकाका बहुत बडा वृक्ष होता है, पत्ते गोल और फूल भी गोल होते हैं, उनमेंसे मूंग वा कालीमिरचके समान जो बीज निकलते हैं उनको रेणुका कहते हैं। कोई वैद्य मेंहदीके बीजोंको और कोई वैद्य सम्हालूके बीजोंको रेणुका कहते हैं॥

अथ ग्रंथिपर्णम् (गठिवन)।

ग्रन्थिपर्णं ग्रन्थिकञ्च काकपुच्छञ्च गुच्छकम्। नीलपुष्पं सुगन्धञ्च कथितं तैलपर्णकम् ॥९५॥ ग्रन्थिपर्णं तिक्ततीक्ष्णं कटूष्णं दीपनं लघु। कफवातविश्वासकण्डूदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ ९६ ॥

ग्रंथिपर्ण, ग्रंथिक, काकपुच्छ, गुच्छक, नीलपुष्प, सुगंध, तैलषर्णक, बर्हिपुष्प,स्थौणेय, ग्रंथिपर्णक, शुक कुकुर, बर्ह, शुकबर्ह, विशीर्णाख्य, स्वारामगुच्छक, बर्हिपुच्छ, शुकच्छदगुत्थक, बर्हिकुसुम और काकपुष्प) ये गठीनेके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-गठोना, गठिवन । बं०-गेठेना म०-गठोन्याचें झाड। गु० -तरगनी गांठ ॥

गठिवन-कडवा, तीक्ष्ण, चरपरा, गरम, अग्निप्रदीपक, हलका और कफ, वात,

विष, श्वास, खुजली और दुर्गन्धघातनाशक है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

विवरण।

गठिवन विशेष करके कामरूपदेशमें बहुत उत्पन्न है, यह तृणजातिकी औषधि है, इसके पत्ते अंगुलीके समान लम्बे २ होते हैं और फूल नीले आते ॥

उन फूलोंके गुच्छे लगते हैं, इसमें बहुतसी गांठे होती हैं, इसीसे इसको गठिवन कहते हैं, इसमें सुगन्धि आती है ॥

अथ स्थौणेयकम् (थुनेर)।

स्थौणेयकं बर्हिबर्हं शुकबर्हश्च कुक्कुरम्। शीर्णरोम शुकश्चापि शुकपुष्पं शुकच्छदम् ॥९७॥ स्थौणेयकं कटु स्वादु तिक्तं स्निग्धं त्रिदोषनुत्। मेधाशुक्रकरं रुच्यं रक्षोघ्नं ज्वरजन्तुजित्। हन्ति कुष्ठास्रतृड्दाहदौर्गन्ध्यतिलकालकान् ॥ ९८ ॥

स्थौणेयक, बर्हिबर्ह, कुक्कुर, शीर्णरोम शुकपुष्प, शुकच्छद, (विकीर्णसंज्ञ, स्थौणेय' हरित, शुकपुच्छ, बर्हिशिख, मयूरचूड, विकीर्णरोम, करिवर्णक, बर्हिचूड, शुकपिच्छ, विकच और शीर्णरोमक) ये थुनेरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-थुनेर। गु०-भरुंठ। क०-स्थौणजे ॥

विवरण।

थुनेर-'चरपरी, मधुर, चिकनी, त्रिदोषनाशक, बुद्धिदायक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारी भूतप्रेतनाशक और ज्वर, जीव, कोढ, रुधिरविकार, तृषा, दाह, दुर्गन्ध तथा तिलकालक इन सब रोगोंको दूर करती है ॥ ९७ ॥९८॥

अथ ग्रंथिपर्णस्यैव भेदः (भटेउर)।

निशाचरो धनहरः कितवो गणहासकः। रोचको मधुरस्तिक्तः कटुः पाके कटुर्लघुः ॥९९॥ तीक्ष्णो हृद्यो हिमो हन्ति कुष्ठकण्डूकफानिलान्। रक्षोऽश्रीस्वेदमेदोऽस्रज्वरगन्धविषव्रणान् ॥ १०० ॥

निशाचर, धनहर, कितव और गणहासक ये भटेउरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-गु०-भटेउर। भटेउर-रुचिकर्त्ता, मधुर, कडवा, चरपरा, पाकमें भी चरपरा, हलका, तीक्ष्ण हृदयको हितकारी, शीतल और कोढ, खुजली, कफ वात, भूतादिक अलक्ष्मी, पसीना, मेद, रुधिरविकार, ज्वर, दुर्गन्ध, विष तथा व्रणविनाशक है॥९९॥ १००

विवरण।

थुनेर और भटेउरके भी दोनों गठिवनके ही भेद हैं।

अथ तालीसपत्रम्।

तालीसमुक्तं पत्राढ्यं धात्रीपत्रञ्च तत् स्मृतम्। तालीसं लघु तीक्ष्णोष्णं श्वासकासकफानिलान्। निहन्त्यरुचिगुल्मामवह्निमान्द्यक्षयामयान् ॥ १०१ ॥

तालीस, पत्राढ्य, धात्रीपत्र, (तालीसपत्र, शुकोदर, ग्रंथिकापत्र, तुलसीच्छद, मत्राख्य, अर्कबन्ध, करिपत्र, करिच्छद, नीला नीकाम्बर ताल, तालीपत्र, तमाह्वय, तालीसपत्रक, तामलकीदल, मुखरोगहर, हृद्य, सुपत्र, अर्कवाह, करीपत्र, आमलकीपत्र, और घनच्छद) ये तालीसपत्रके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी क०-ता०-गु०-तालीसपत्र। बं०-तालीशपत्र। म०-लघुतालीसपत्र। तै०-तालीशपत्र। इं०-जरनव। अ०-तालीसफर। लै०-टेक्सस बेकेटा Taxus baccata.

तालीसपत्र-हलका, तीक्ष्ण, गरम और श्वास, खांसी, कफ, वात, अरुचि, गुल्म, आम अग्निकी मन्दता तथा क्षयको क्षय करता है ॥ १०१ ॥

विवरण

तालीसपत्रका वृक्ष अत्यन्त बडा होता है, पत्ते लम्बे लम्बे चिकने होते हैं, आमलेके समान फलोंके गुच्छे आते हैं, इसकी लकडी बहुत पक्की होती है, व्यवहारमें इसके पत्ते

अथ कङ्कोलं सुगन्धद्रव्यम्।
(शीतलचीनी)।

कंकोलं कोलकं प्रोक्तं तथा कोषफलं स्मृतम्। कंकोलं लघु तीक्ष्णोष्णं तिक्तं हृद्यं रुचिप्रदम्। आस्यदौर्गन्ध्यहृद्रोगकफवातामयान्ध्यहृत् ॥ १०२ ॥

कंकोल, कोलक, कोषफल, (कंकोलक, तैलसाधन, कोशफल, फल, कोरक, काकोल, गन्धव्याकुल, कृतफल, कटुकफल, द्वेष्य, स्थूलमारिच, माधवोचित, कटूफल, कालमारिच, कटुक, कोलमरिच, मागधोषित, कृतफल, द्वीपसम्भव और सुगन्धिफल) ये शीतलचीनी के संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी—शीतलचीनी, कवाबचीनी, कंकोल। बं०-कांकला,। म०-कंकोल, कापुरचीनी। गु०-चणकवाब, कंकोल। तै०-कबाबचीनी। फा०-कवावह। अ०-कवाब, हब्बउलरुस। इं०-क्यूबेबापेप्पर Cubapepper. लै०- कोक्थूलस आफिसिनेलिस CcculusOfficinalisbe

शीतलचीनी-हलकी, तीक्ष्ण, गरम, कडवी, हृदयको हितकारी, रुचिकारक और मुखकी दुर्गंधता, हृदयरोग, कफ, वात तथा अन्धताको हरनेवाली है ॥ १०२ ॥

विवरण।

कंकोल मिरच दो जातिकी होती है, बडी और छोटी, इन दो भेदोंसे दो प्रकारकी समझनी चाहिये, बडी तो पाचक और क्षुधावर्द्धक है और छोटी मुखमें डालनेसे शीतलताको उत्पन्न करती है इसमें इलायची और पिपरमेण्टके सदृश सुगंधि आती है, इसमें मोटे बक्कलवालीका नाम कंकोल और पतले वक्कलवालीका नाम शीतलचीनी है और दोनोंके स्वादमें बहुत अन्तर है ॥

अथ गन्धकोकिला गन्धमालती च।

स्निग्धोष्णा कफकृत्तिका सुगन्धा गन्धकोकिला। गन्धकोकिलया तुल्या विज्ञेया गन्धमालती ॥ १०३ ॥

गंधकोकिला- स्निग्ध, गरम, कफको हरनेवाली और सुगंधित है। गन्धमालती भी गन्धकोकिलाके सदृश जानना ॥ १०३ ॥

अथ लामज्जकम्।
(उशीरवत् पीतच्छवितृणविशेषः।)

लामज्जकं सुनालं स्यादमृणालं लयं लघु। इष्टकापथकं सेव्यं नलदं चावदातकम् ॥१०४॥ लामज्जकं हिमं तिक्तं लघु दोषत्रयास्रजित्। त्वगामयस्वेदकृच्छ्रदाहपित्तास्ररोगनुत् ॥ १०५ ॥

लामज्जक, सुनाल, अमृणाल, लय, लघु, इष्टकापथ, सेव्य, नलद. अवदातक, (सुनील, शीघ्र, दीर्घमूल, जलाशय और अवदाहक) ये लामज्जके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी—लामज्जक। बं०-गन्धवेणा। म०-लावज, पिंवळावाळा। गु०-सुगंधिपीलु। तै०-तेल्लवट्टिवेरु।

लामज्जक—शीतल, कडवा, हलका और तीनों दोष, रक्तविकार, त्वचाके रोग, पसीना, मूत्रकृच्छ्र, दाह तथा रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

विवरण।

लामज्जक- तृणजातिका सुगंधित पदार्थ है, इसका रंग पीला होता है, इसकी जड लम्बी होती है और यह विशेष करके जलाशयके निकट उत्पन्न होता है ॥

अथ एलवालुकम् (कंकोलसदृशं कुष्ठगंधि)।

एलावालुकमैलेयं सुगन्धि हरिवालुकम्। एलवालुकमेलालु कपित्थं पत्रमीरितम् ॥ १०६ ॥ एलालु कटुकं पाके कषायं शीतलं लघु। हन्ति कण्डूव्रणच्छर्दितृट्कासारुचिहृद्रुजः। बलासविषपित्तास्रकुष्ठमूत्रगदक्रिमीन् ॥ १०७ ॥

एलावालुक, ऐलेय, सुगंधि, हरिवालुक, एलवालुका, एलालु, कपित्थ, पत्र, (वालु, वालुक, एलावालुक, एलवालु, आलुका, कपित्थत्वक्, गन्धत्वक्, कुष्ठगन्धी, कपित्थ,

गन्धात्वक्, एलालु और एल्वालु) ये एलुएके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी—एलुआ। बं०-एलवालुका। म०-वेलची। तै०-कुतुखकगु। गु०-एलवा ॥

एलुवा—चरपरा, पाकमें कसैला, शीतल, हलका और खुजली, व्रण, वमन, तृषा, खांसी, अरुचि, हृदयरोग, कफ, विष, पित्त, रक्तविकार, कोढ, मूत्रकृच्छ्र तथा कृमिको शमन करता है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

विवरण।

एलुवा सुगंधित पदार्थ है, इसका रंग काला होता है, इसमें कूठके समान गंध आती है। एलुवा गुवारपाठेके रससे बनाया जाता है, जिसे मुसब्बर एलुवा भी कहते हैं। पर बहुत वैद्य एलावालुक एलुवेसे पृथक् मानते हैं (म० ध०) ॥

कैवर्तीमुस्तकम्।

कुटन्नटं दाशपुरं वालेयं परिपेलवम्। प्लवगोपुरगोनर्दकैवर्तीमुस्तकानि च ॥१०८॥ मुस्तावेत्पलवपुटं शुकाभं स्याद्वितुन्नकम् वितुन्नकं हिमं तिक्तं कषायं कटु कान्तिदम्। कफपित्तास्त्रवीसर्पकुष्ठकण्डूविषप्रणुत् ॥ १०९ ॥

कुटन्नट, दाशपुर, वालेय, परिपेलव, प्लव, गोपुर, गोनर्द, कैवर्ती, मुस्तक, (कुटन्नट, सितपुष्प, दासपुर; कैवर्तमुस्त, दशपूर, कैवर्ती, परिपेल, पारिपेल, कैवर्त्तिमस्तक, कैवर्त्तमुस्तक वनसम्भव, धान्य, शीतपुष्प और जीर्णबुध्नक) ये केवटी मोथेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी केवटी मोथा। बं-केवट मुथा। गु०-केवडी मोथ। क० -कोमठी मोथा ॥ केवडी मोथा--मोथेके सदृश कोमल पत्रवाला और तोतेकीसी कांतिके सदृश होता है. इसके वृक्षों को वितुन्नक कहते हैं ॥

केवटीमोथा--शीतल, कडवा, कसैला, चरपरा, कांतिदायक और कफ, पित्त, रुधिर विकार, विसर्प, कुष्ठ, कण्डू तथा विषनाशक है ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

विवरण।

केवडी मोथेकी तृण जाति है, इसकी जडमें सुगन्ध आती है और इसपर सफेद फूल लगते हैं ॥

अथ स्पृक्का सुगंधिद्रव्यम् (शाकविशेष)।

स्पृक्काऽसृग्ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता लघुः। समुद्रांता वधूः कोटीवर्षाऽलङ्कोपिकेत्यपि ॥११०॥ स्पृक्का स्वाद्वी हिमा वृष्या तिक्ता निखिलदोषनुत्। कुष्ठकण्डूविषस्वेददाहास्रज्वररक्तहृत् ॥१११॥

स्पृक्का, असृक, ब्राह्मणी, देवी, मरुन्माला, लता, लघु, समुद्रान्ता, वधू: कोटिवर्षा, अलंकोपिका, (लतामरुत्, लंकारिका, कुटिला, देवपुत्रिका, देवपुत्री, पृक्का, पिशुना, लंकायिका, लंकापिका, मनुमालालिका, मालानी, लध्वी, पञ्चगुम्निरसा, समुद्रकान्ता, मरुत्, मालाकोटी, वर्षा, लंकोपिका, तस्कर, बोरक और चण्ड) ये असबरगके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-असबरग, अस्परक। बं०-पिड्डशाक। म०-कर्पूरवल्ली। गु०-कपूरी, मधुरी। ता०-कारीतुंबै। तै०-पृक्कुथनेड्डुद्रव्यमु। क०-हिक्के ॥

असबरग-स्वादु शीतल, शुक्रवर्द्धक, चरपरा और सम्पूर्ण दोष, कोढ, खुजली, विष, पसीना, दाह, रुधिर विकार और रक्तगत ज्वरको दूर करता है ॥ ११० ॥ १११ ॥

विवरण।

असबरग सुगंधित पदार्थ है उत्तराखण्डमें बहुत प्रसिद्ध है ॥

अथ पर्पटी (पनडी) सुगंधिद्रव्यम्।

पर्पटी रञ्जना कृष्णा जतुका जननी जनी। जतुकृष्णाऽग्निसंस्पर्शा जतुकृच्चक्रवर्तिनी ॥११२॥ पर्पटी तुवरा तिक्ता शिशिरा वर्णकृल्लघुः। विषव्रणहरी कण्डूकफपित्तास्रकुष्ठनुत् ॥ ११३ ॥

पर्पटी, रंजना, कृष्णा, अतुका, जननी, जनी, जतुकृष्णा, अग्निसंस्पर्शा, जतुकृत्, चक्रवर्तिनी, (कृष्णा, जनेष्टा, जतुकारी, तिर्यकफला, निशान्धा, सुपत्रिका, बहुपुत्री, राजवृक्षा, कपिकच्छुफलोपमा, सूक्ष्मवल्ली, भ्रमरी, कृष्णवल्लिका, विज्जुल्लिका, कृष्णरुहा, ग्रंथिपर्णा, सुवर्चिका, तरुवल्ली, दीर्घफला, रजनी, जतुका और जनिजंतुका) ये पपडीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-पपडी, पपरी, पनरी । गु०-पर्पटी । म०--पापडी ॥

पपडी- कसैली, कडवी, शीतल, वर्णको उत्तम करनेवाली, हलकी और विष, व्रण, खुजली, कफ, पित्त रुधिर विकार तथा कोढ को नष्ट करती है ॥११२॥११३॥

विवरण ।

पर्पटी--पपडी-पनडी-सुगंधित द्रव्य मालवे देशमें अधिक विख्यात है. इस देशमें इसको पनडी नामसे प्रसिद्ध कर रखा है ॥

अथ नलिका ।

(उत्तरापथे प्रसिद्धा सुगन्धा बलाकृतिः पवारी इति च क्वचित्प्रसिद्धा ।

नलिका विद्रुमलता कपोतचरणा नटी । धमन्यञ्जनकेशी च निर्मध्या सुषिरा नली ॥ ११४ ॥ नलिका शीतला लघ्वी चक्षुष्या कफपित्तहृत् । कृच्छ्राश्मवाततृष्णाऽस्रकुष्ठकण्डूज्वरापहा ॥ ११५ ॥

नलिका, विद्रुमलता, कपोतचरणा. नटी, धमनी, अंजनकेशी निर्मध्या, सुषिरा, नली, (कपोतांघ्रि, विद्रुमलतिका, कपोतवारणा, नलिनी, अध्मानी स्तुत्या, रक्तदला और नर्तकी) ये नलीके संस्कृत नाम हैं ।

हिंदी--नली । गु० नलीका ।

नली-शीतल, हलकी, नेत्रोंको हितकारी और कफ, पित्त, मूत्रकृच्छ, पथरी, वात, तृषा, रुधिर विकार, कोढ, खुजली तथा ज्वरको शमन करती है ॥

विवरण ।

नलिका एक सुगंधित औषधी है उत्तराखण्डमें नली नामसे विख्यात है, इसका स्वरूप मूँगेके समान होता है, पत्ते लाल और फल कुछ लम्बे कुछ गोलाई लिये हुए बिंबाफलके समान लगते हैं, कहीं कहीं यह पवारी और पवाली नामसे प्रसिद्ध है ॥

अथ प्रपौण्डरीक सुगन्धाद्रव्यम् (पुण्डेरी)

प्रपौण्डरीकं पौण्डर्यं चक्षुष्यं पाण्डरीयकम् । पौण्डर्यं मधुरं तिक्तं कषायं शुक्रलं हिमम् चक्षुष्यं मधुरं पाके वर्ण्यं पित्तकफप्रणुत् ॥ ११६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे कपूरादिवर्गः ।

प्रपौण्डरीक, पौण्डर्य, चक्षुष्य पौण्डरीयक, (श्रीपुष्प, पुण्डरी, शीतपुण्डरीयक, पुण्डर्य, पुण्डरीक, पौण्डरी, तालपुष्पक, सालपुष्प, दृष्टिकृत, स्थल पद्म, सुपुष्प, सानुज और अनुज) ये पुंडरीकके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी-पुंडरिया, पुंडरी । गु०-पुण्डरिया ॥

पुंडरी-मधुर, कडवी, कसैली, वीर्यवर्द्धक, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, पाकमें, मधुर, वर्णको उत्तम करनेवाली और पित्त तथा कफका नाश करती है ॥ ११६ ॥

विवरण ।

प्रपौण्डरीक एक सुगंधित वृक्ष होता है, इसको कोई कोई यूनानी वैद्य ममीरा कहते हैं । पत्ते हरे, फूल बैंगनी और लकडी पीली होती है ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्राम-वैश्यकृत वैद्यसंजीवनी भाषाटीकायां कपूरादिवर्गः ॥

अथ गुडूच्यादिवर्गः।

गुडूच्या उत्पत्तिर्नामानि गुणाश्च।

अथ लङ्केश्वरो मानी रावणो राक्षसाधिपः। रामपत्नीं बलात्सीतां जहार मदनातुरः॥ १॥ ततस्तं बलवान्रामो रिपुं जायापहारिणम्। वृतो वानरसैन्येन जघान रणमूर्धनि॥ २॥ हतेतस्मिन्सुरारातौ रावणे बलगर्विते। देवराजः सहस्राक्षः परितुष्टश्च राघवे॥३॥ तत्र ये वानराः केचिद्राक्षसैर्निहता रणे। तानिन्द्री जीवयामास संसिच्यामृतवृष्टिभिः॥ ४॥ ततो येषु प्रदेशेषु कपिगात्रात्परिच्युताः। पीयूषबिन्दवः पेतुस्तेभ्यो जाता गुडूचिका॥ ५॥

एक समय अभिमानी राक्षसोंका अधिपति लंकेश्वर रावण कामातुर हो बलात्कारसे रामपत्नी सीताको हर कर ले गया, तब रामचन्द्रने वानरसेनाकी सहायता लेकर स्त्रीहरण करनेवाले शत्रु रावणको रणभूमिमें मारा. जब देवताओंका शत्रु और बलसे गर्व करनेवाला रावण मर गया, तब देवताओंके राजा इन्द्रने रामचन्द्रपर अत्यन्त प्रसन्न होकर युद्धमें राक्षसोंके हाथसे मरे हुए वानरोंको अमृतकी वर्षा करके जीवित किया. इस प्रकार अमृतसे भीजे वानरके शरीर परसे जहां जहां अमृत की बूँदे गिरीं, वहीं वहीं गिलोय उत्पन्न हुई है॥ १-५॥

गुडूची मधुपर्णी स्यादमृताऽमृतवल्लरी। छिन्ना छिन्नरुहा छिन्नोद्भवा वत्सादनीति च॥६॥ जीवन्ती तन्द्रिका सोमा सोमवल्ली च कुंडली। चक्रलक्षणिका धीरा विशल्या च रसायनी॥ ७॥ चन्द्रहासी वयस्था च पण्डली देवनिर्मिता। गुडूची कटुका तिक्ता स्वादुपाका रसायनी॥८॥ संग्राहिणी कषायोष्णा लघ्वी बल्याऽग्निदीपनी। दोषत्रयामतृड्दाहमेहकासांश्च पाण्डुताम्॥९॥ कामलाकुष्ठवातास्रज्वरक्रिमिवमीन् हरेत्। प्रमेहश्वासकासार्शः कृच्छ्रहृद्रोगवातनुत्॥ १०॥

गुडूची, मधुपर्णी, अमृता, अमृतवल्लरी, छिन्ना, छिन्नरुहा, छिन्नोद्भवा, वत्सादनी, जीवन्ती, तंत्रिका, सोमा, सोमवल्ली, कुण्डली, चक्रलक्षणिका, धीरा, विशल्या, रसायनी, चन्द्रहासी, वयस्था, मंडली, देवनिर्मिता, (अमृतवल्ली, तन्त्री, निर्जरा, जीवंतिका, वातरक्तारि, पामरोद्धारा, पित्तघ्नी, उद्धारा, गुडूची, वरा, ज्वरारि, श्यामा, सुरकृता, मधुपर्णिका अमृतलता, सोमलतिका, भिषक्प्रिया, कुण्डलिनी, नागकुमारीका छिन्निका, चन्द्रहासा, अमृतसम्भवा, चक्रांगी और नागकन्या) ये गिलोयके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी--गिलोय। बं०--गुलंच। म०--गुळवेल। गु०--गलो। क०--अमरदवल्ली। तै०--तिप्पतिगे, तियातिज। ता०--शीन्दलकोडि। फा०-गि-लोय। अ०--गिलोइ। लै०--कोक्यूलस कोर्डीफोलियस Coculus Cordifolious.

गिलोय--चरपरी, कडवी, पाकमें स्वादिष्ठ, रसायनरूप, ग्राही, कसैली, गरम, हलकी, बलदायक, अग्निप्रदीपनी और वातादि तीनों दोष, आम तृषा, दाह, प्रमेह, खांसी, पाण्डुरोग, कामला, कोढ, वायु, रुधिरबिकार, ज्वर, कृमि, वमन, श्वास, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, हृदयरोग तथा वातविनाशक है॥६-१०॥

विवरण।

गिलोयकी बेल वृक्षोंपर फैल जाती है. पत्ते पानके समान शोभायमान होते हैं वैशाख जेठमें मौर आता है, उसीमें छोटे छोटे फूल भी आते हैं. परन्तु उस समय पुराना पत्ता एक भी नहीं रहता. पीले पड पडकर सब गिर जाते हैं; कोमल कोमल नवीन पत्ते निकलते

हैं. और गिलोय दो जातिकी होती है, एक गिलोयपर फल नहीं आते, दूसरी जातिपर फल मकोईके समान नीले रंगके गुच्छोंमें लगते हैं, पकनेपर लाल लाल दो जाते हैं; इसी गिलोयका सत्त्व निकलता, है, जिसकी वैद्य लोग अत्यन्त प्रशंसा करते हैं ॥

अथ नागबल्ली (पान)।

ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागिनी नागवल्लरी। ताबूलं विशदं रुच्यं तीक्ष्णोष्णं तुवरं सरम् ॥ ११ ॥ वश्यं तिक्तं कटु क्षारं रक्तपित्तकरं लघु। बल्यं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यमलवातश्रमापहम् ॥ १२ ॥

ताम्बूलवल्ली, तांवूली, नागिनी, नागवल्लरी, (नागवल्ली, नागवल्लिका, दिवाभीष्टा, पर्णलता, तांवूली, सप्तशिरा, सप्तलता, फणीवल्ली, भुजंगलता, भक्ष्यपत्र, तांबूलवल्लिका, पर्णगृहाशया, मुखभूषण और तांबूल) वे पानके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-पान, नागरवेल। बं०-पान। म०-नागबेल, पानबेल । गु०-नागरवेलनां पान। क०-नागरवल्ली। तै०-तमलपाकु। ता०-वत्तिलै। फा०- वर्गतम्बोल। अ०- कान । इं०--बिटलीफ Betel-leaf, लै० -पाइपर बेटल Piper Betel.

पान--विशद, रुचिकारी, तीक्ष्ण, गरम, कसैला, दस्तावर, वश्यकारक, चरपरा,खारा, रक्तपित्त करनेवाला, हलका, बलदायक और कफ, मुखकी दुर्गन्धता, मल, वात तथा परिश्रमनाशक है ॥ ११ ॥ १२ ॥

विवरण।

पानकी बेल--अत्यन्त शोभायमान और मनोहर होती है, इसकी कई जाति हैं, बंगला, मोहोबा, महाराजपुर, बिलौआ, कपूरी, फुलवा इन प्रदेशोंमें पान बहुत होते हैं परन्तु इनमें मोहोबेके पानकी अधिक प्रशंसा है, इसकी बेल विशेष करके जहां तहां टट्टियोंपर अधिक फैली रहती है. कहीं कहीं अगस्तियोंके वृक्षपर भी इसकी बेल फैली हुई देखनेमें आती है ॥

अथ बिल्वः (बेल)।

बिल्वः शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि। श्रीफलस्तुवरस्तिक्तो ग्राही रूक्षोऽग्निपित्तकृत्। वातश्लेष्महरो बल्यो लघुरुष्णश्च पाचनः ॥ १३ ॥

बिल्व, शांडिल्य, शैलूष, मालूर, श्रीफल, (महाकपित्थाख्य, गोहरीतकी, पतिवात, मंगल्य, त्रिशिखकपीतन, महाकपित्थ, अतिमांगल्य, महाफल, शल्य, हृद्यगन्ध, कर्कटाह्व, शैलपत्र, शिवेष्ट, पत्रश्रेष्ठ, त्रिपत्र, गन्धपत्र, लक्ष्मीफल, गन्धक, दुरारुह, त्रिशाखपत्र, शिवद्रुम, सदाफल, सत्यफल, सुनीतिक, समीरसार, सत्यधर्म, अधरारुह, कण्टकाढ्य, सितानन, नीलमलिक और पीतफल) ये बेलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--बेल। बं०--बिल्व, बेल। म०--बेलवृक्ष, बेलफल। गु०--बिली। क०--बेललु। तै०,-मरीचेट्टु। इं०--बेगालकिन्स Benglkius लै०-ईगलमारमेलोज EagleMarmelos

बेल--कसैला, कडवा, ग्राही, रूखा, अग्नि तथा पित्तको करनेवाला, वात तथा कफको हरनेवाला, बलदायक, हलका गरम और पाचक है ॥ १३ ॥

विवरण।

बेलका वृक्ष बडा होता है, शाखाओंमें कांटे होते हैं, पत्ते डालियोंमें बहुत होते हैं, एक डंटलमें तीन तीन पत्ते त्रिशूलाकार होते हैं. फूल सफेद और सुगंधित छोटे छोटे होते हैं. फल गोल गोल कडे छिलकेके तोलमें आधआधपावसे लेकर ढाईसेर तकका होता है. खानेमें स्वादिष्ठ और बीज बहुत होते हैं और गोंदके समान एक पदार्थ चुपकता हुवा उसके गूदेमें मिला होता हैं। ग्रीष्मऋतुके आरम्भमें इसके पुराने पत्ते गिरकर नवीन पत्ते लाल रंगके निकलते हैं परंतु फिर हरे होजाते हैं, इसकी लकडी बहुत पवित्र गिनी जाती है. बहुत लोग चन्दनके समान मानते हैं, इसके मूलकी छाल दशमूलके काथमें एक प्रधान

औषधि मानीजाती है। बेलके वृक्ष हिन्दुस्थानके प्रत्येक स्थानोंमें होते हैं और वनमें तो बेलका वन ही है इसका कच्चा फल औषधिके प्रयोगमें आता है ॥

अथ गम्भारी (खम्बारी)

गम्भारी भद्रपर्णी च श्रीपर्णी मधुपर्णिका। काश्मीरी काश्मरी हीरा काश्मर्यः पीतरोहिणी॥२४॥कृष्णवृन्ता मधुरसा महाकुसुमिकाऽपि च। काश्मरी तुवरा तिक्ता वीर्योष्णा मधुरा गुरुः ॥ १५ ॥ दीपनी पाचनी मेध्या भेदिनी भ्रमशोषजित्। दोषतृष्णाऽऽमशूलार्शोविषदाहज्वरापहा ॥१६॥ तत्फलं बृंहणं वृष्यं गुरु केश्यं रसायनम्। वातपित्ततृषारक्तक्षयमूत्रविबन्धनुत् ॥ १७ ॥ स्वादु पाके हिमं स्निग्धं तुवराम्लं विशुद्धिकृत्। हन्याद्दाहतृषावातरक्तपित्तक्षतक्षयान् ॥ १८ ॥

गंभारी, भद्रपर्णी, श्रीपर्णी, मधुपर्णिका, काश्मीरी, काश्मरी, हीरा, काश्मर्य, पीतरोहिणी, कृष्णवृंता, मधुरसा, महाकुसुमिका, (सर्वतोभद्रा, गोपभद्रिका, कंभारिका, कुमुदा, सद्भद्रा, कृष्णफला, कट्फला, कृष्णवृंतिका, सर्वतो भद्रिका, स्निग्धपर्णी, सुभद्रा, कंभारी, गोपभद्रा, क्षारिणी, विदारिणी, महाभद्रा, मधुभद्रा, स्वरुभद्रा, कृष्णा, अश्वेता, रोहिणी, गृष्टि, स्थूलत्वचा मधुमती, सुफला, मोदिनी, महाकुमुदा, सुदृढत्वचा, महाकुमुदिका और पीतफला) ये कुंम्भेरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी कुंभेर खंभारी। बं०-गंभारी, गाभार। म०-गु०-शिवण। तै०-साल्लागुंवुटी चेट्टद्दु। क०-सीवनी। लै०-मीलाइना आर्बोरिया Gmelina Ardoria.

कुम्भेर-कसैली, कडवी, उष्णवीर्य, मधुर, दीपन, पाचक, बुद्धिको हितकारी, भेदक, और भ्रम, शोष, तृषा, आम, शूल, बवासीर, विष, दाह, तथाज्वरको नष्ट करती है। कुंभेर फल-वीर्यवर्द्धक, बलदायक, भारी, केशोंको हितकारी, रसायन, पाकमें मधुरशीतल, स्निग्ध, कसैला, खट्टा, कोठेको शुद्ध करनेवाला और वात, पित्त, तृष्णा, रक्तपित्त तथा क्षतक्षयको शमन करती है ॥ १४-१८ ॥

विवरण।

कुंभेका वृक्ष बहुत बडा होता है, पत्ते समुद्रशोष और पीपलके पत्तोंसे कुछेक बडे होते हैं, फूल पीले रंगके लगते हैं, फलभी पीले होते हैं, इसकी छाल सफेद रंगकी होती है और इसमें दूध निकलता है ॥

अथ पाटला (पाढल) घण्टापाटलिः (घण्टापाढल)

पाटलिःपाटलाऽमोघा मधुदूती फलेरुहा। कृष्णवृन्ता कुबेराक्षी कालास्थाल्यलिवल्लभा ॥१९॥ ताम्रपुष्पी च कथिताऽऽपरा स्यात् पाटला सिता। मुष्कको मोक्षको घण्टापाटलिःकाष्ठपाटला ॥२०॥ (कालस्थालीत्यत्र काचस्थालीत्येके)॥ पाटला तुवरी तिक्ताऽनुष्णा दोषत्रयापहा। अरुचिश्वासशोथास्रच्छर्दिहिक्कातृषाहरी ॥२१॥ पुष्पं कषायं मधुरं हिमं हृद्यं कफास्रनुत्। पित्तातिसारहृत्कण्ठ्यं फलं हिक्काऽस्रपित्तहृत् ॥ २२ ॥

पाटलि, पाटला, अमोघा, मधुदूती, फलेरुहा, कृष्णवृंता, कुबेराक्षी, कालस्थाली, अलिवल्लभा, ताम्रपुष्पी, (कर्बूरा, अम्बुवासिनी, कालवृन्ता, कुम्भी, तोयाधिवासिनी, तोयपुष्पी कुम्भिका, सुपुष्पिका, वसन्तदूती, स्थालिस्थिरगंधा, अम्बुवासी, कालवृन्ती, कामदूती, अलिप्रिया और कोकिला) ये पाढलके संस्कृत नाम हैं ॥ और (मुष्कक, मोक्षक, घण्टापाटलि, काष्ठपाटला, श्वेतपाटला, श्वेतकुम्भी, श्वेतकुबेराक्षी, श्वेतफलेरुहा, काष्ठकुबेराक्षी और काष्ठपाटलि) ये घंटापाढलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी—पाढल, पाडर । बं०-पारुल। म०-रक्तपाडल। गु०-काकच । क०-हादरी। तै०-कल्गोरु। ता०-पादरि । इं०-बनड्कनट Banducnut लै०-कोयसलपीनिया बानडूकेल्ला Coesalpinia. Bonducella

हिंदी—सफेदपाढल, घण्टापाढल। बं०-घण्टापारुल। म०-श्वेतपाढल । गु०-धोली-काकच । क०-विलीयहादरी । ता०-वेळ्ळ पादरी। फा०-खायइबली ॥

पाढल—कसैली, कडवी, उष्णतारहित, तीनों दोषनाशक और अरुचि, श्वास, सूजन, रुधिरविकार, वमन, हिचकी तथा तृषाको नष्ट करती है पाढलका, फूल—कसैला, मधुर शीतल, हृदयको सुख देनेवाला, कफ तथा रुधिरविकारको नष्ट करता है और फल-कंठको हितकारी और पित्तातीसार, हिचकी तथा रक्तपित्तको दूर करता है ॥ १९ ॥ २२ ॥

विवरण।

पाढलके वृक्ष वनमें होते हैं, फूल गुलाबी और तांबेके रंगका होता है, पत्ते वेलके समान होते हैं. यह पाढल दो प्रकारका होता है, दूसरा सफेद रंगका पाढल होता है, उसको श्वेतपाढल कहते हैं ॥

अथ अग्निमन्थः (अगेथू अरनी)।

अग्निमन्थो जयःस स्याच्छ्रीपर्णी गणिकारिका। जया जयन्ती तर्कारी नादेयी वैजयन्तिका॥२३॥ अग्निमन्थःश्वयथुनुद् वीर्योष्णःकफवातहृत्। पाण्डुनुत्कटुकस्तिक्तस्तुवरो मधुरोऽग्निदः ॥ २४ ॥

अग्निमन्थ, जय, श्रीपर्णी, गणिकारिका, जया, जयन्ती, तर्कारी, नादेयी, वैजयन्तिका. (हविमन्थ, वर्णिका, गिरिकर्णिका, श्रीपर्ण, तेजोमन्थ, ज्योतिष्क, पावक, अरणि, वह्निमन्थ मथन, पावकारणी, अग्निमथन, अरणीकेतु, विजया, अनन्ता, नदीजा, तनुत्वक्, वह्निमूल और अग्निबीजक) ये अरणीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-अरनी, गनियारी अगेथू। बं०-गणिर, आगगन्त। म०-थोर एरेण । गु०-ता०-अरणी। क०-नरुवल। तै०-नैलीचेट्टु। उत्क०-अगीवथ। लै०-क्लोरोडेन्ड्रन फ्लोमोइडिस Chlorodenndron Phlomides

अरनी—उष्णवीर्य, चरपरी, कडवी, कसैली, मधुर, अग्निवर्द्धक और सूजन, कफ, वात तथा पाण्डुरोगको हरती है ॥ २३ ॥२४॥

विवरण।

अरणीके बडे बडे वृक्ष सब स्थानोंमें होते हैं, पत्ते गोल किंचित् नोकीके और अत्यन्त कोमल होते हैं, फूल सफेद रंगके गुच्छेदार होते हैं, फल छोटे करौंदेके समान होते हैं, और इसके पत्तोंमें गन्ध आती है, डालियां नीचेकी झुकी होती हैं, इसकी डालियोंकी अन्दरसे पोली होती है ॥

अथ श्योनाकः (सोनापाठा-अरलु)।

श्योनाकः शोषणश्च स्यान्नटकनाट्वंगटुण्टुकाः। मण्डूकपर्णपत्रोर्णशुकनासकुटन्नटाः ॥२५॥ दीर्घवृन्तोऽरलुश्चापि पृथुशिम्बःकटम्भरः। श्योनाको दीपनःपाके कटुकस्तुवरो हिमः॥२६॥ ग्राही तिक्तोऽनिलश्लेष्मपित्तकासप्रणाशनः । टुण्टुकस्य फलं बालं रूक्षं वातकफापहम् ॥ २७ ॥ हृद्यं कषायं मधुरं रोचनं लघु दीपनम् । गुल्मार्शःकृमिहृत्प्रौढं गुरु वातप्रकोपनम् ॥ २८ ॥

श्योनाक, शोषण, नट, कट्वंग, टुण्टुक, मण्डूकपर्ण, पत्रोर्ण, शुकनास, कुटन्नट, दीर्घवृंत, अरलु, पृथुशिम्ब, कटम्भर, (टिण्टुक, कट्निाशन, पूतिवृक्ष, पूतिनाग. भूतिपुष्प, मुनिद्रुम, भल्लूक, टेण्टुक, पीतवृक्ष, भूतसार, निःसार, फलवृन्ताक, पूतिपत्र, वसंतक, पीतांत, जम्बूक, पीतपादप, वातारि, पीतक, शोण, कुनट, विरोचन, भ्रमरेष्ट और जंघनेत्र) ये अरलूके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी—सोनापाठा, अरलू, टेंटू । बं०—शोनापाता, सोनालु। म०—दिंडा, टेंटु। गु–अरलू। क०=शोणा। तै०—पेद्दमानु। ता०--पनै लै०—आरोसिलम् इन्डीकम् Orocylum Indicum.

अरलू-अग्निको दीपन करनेवाला, पाकमें चरपरा, कसैला. शीतल, ग्राही- कडवा और वात, कफ, पित्त तथा खांसीको नष्ट करता है। अरलूका बाल (कोमल) फलरूखा, हृदयको हितकारी, कसैला, मधुर, रुचिकारक हलका, अग्निदीपक और वात तथा कफनाशक है। गुल्म, बवासीर तथा कृमिको नष्ट करता है अरलूका प्रौढ (कच्चा) फल भारी तथा वायुको कुपित करता है॥ २५॥ २८॥

विवरण।

अरलूका वृक्ष बहुत ऊँचा होता है, फली लम्बी २ तलवारके समान दो दो फुटकी होती है। फलीके भीतर रुई और दाने निकलते हैं, दूसरे प्रकारका श्योनाकभी बहुत बडा होता है, उसका फूल लाली लिये समुद्रशोषके समान होता है और उसपर भी फली बहुत बडी बडी लगती है, बहुत वैद्य अरडू नामक बडे वृक्षको जिसके पत्ते नींबके समान बडे होते हैं और फल भी निंबफलके आकारका जरा बडा लगता है, पत्तोंमें कुछ दुर्गंधसी आती है, उसे अरलू मानते हैं॥

अथ बृहत्पञ्चमूलस्य लक्षणं गुणाश्च।

श्रीफलःसर्वतोभद्रा पाटला गणिकारिका। श्योनाकःपञ्चभिश्चैतैः पञ्चमूलं महन्मतम् ॥२९॥ पञ्चमूलं महत्तिक्तं कषायं कफवातनुत्। मधुरं श्वासकासघ्नमुष्णं लघ्वग्निदीपनम्॥ ३०॥

बेल, कुम्भेर, पाढल; अरनी और अरलू इन पांचोंको बृहत्पंचमूल कहते हैं। यह बृहत्पंचमूलकडवा; कसैला, मधुर, गरम, हलका अग्निको दीपन करनेवाला और कफ; वात, खांसीको दूर करता है॥ २९॥ ३०॥

अथ शालिपर्णी (सरिवन)।

शालिपर्णी स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी पीवरी गुहा। विदारिगन्धा दीर्घांगी दीर्घपत्रांशुमत्यपि॥ ३१॥ शालिपर्णी गुरुच्छर्दिज्वरश्वासातिसारजित्। शोषदोषत्रयहरी बृंहण्युक्ता रसायनी। तिक्ता विषहरी स्वादुः क्षतकासक्रिमिप्रणुत्॥ ३२॥

शालिपर्णी स्थिरा, सौम्या,त्रिपर्णी, पीवरी, गुहा, विदारिगन्धा, दीर्घाङ्गी, दीर्घपत्रा, अंशुमती (सुदला, सुपुत्री, कुमुदा, सुपर्णिका दीर्घमूला, दीर्घपत्रिका, वातघ्नी, पीतिनी, तन्वी, सुधा, सर्वानुकारिणी, शोफघ्नी, सुभगा देवी, शोथघ्नी, निश्चला, व्रीहिपर्णिका, सुमूला शुभपत्रिका, सुपर्णी, शालिपत्री, शालिदला, विदारी, सालपर्णी, एकमूला, अस्तमतीशालानी, शालिका और कीटविनाशिनी) ये सरिवनके संस्कृत नाम हैं॥

हिं० -सरिवन। बं०—शालपानि। म०—सालवण। गु०—समेरवो। क०—मुरुलुवोने। तै०—सियाकुपाना। लै०—डेस्मोडियम गनजटिकं Desmodium Ganjeticum.

सरिवन -भारी, पुष्टिकारक, रसायन, कडवी, मधुर और वमन, ज्वर, श्वास, अतीसार, शोष, तीनों दोष, विष, क्षत (घाव), खांसी तथा कृमिको दूर करती है॥३१॥३२॥

विवरण।

शालिपर्णीका छोटासा क्षुप होता है, पत्ते गोल होते हैं, उसकी एक एक डंडीमें तीन तीन पत्ते होते हैं, उसमें छोटी २ कलियां लगती हैं॥

अथ पृष्ठिपर्णी (पिठवन)।

पृश्निपर्णी पृथक्पर्णी चित्रपर्ण्यहिपर्ण्यपि। क्रोष्टुविन्ना सिंहपुच्छी कलशी धावनीगुहा ॥३३॥ पृश्निपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्णा मधुरा सरा। हन्ति दाहज्वरश्वासरक्तातीसारतृड्वमीः॥ ३४॥

पृश्निपर्णी, पृथक्पर्णी, चित्रपर्णी, अहिपर्णी, क्रोष्टुविन्ना, सिंहपुच्छी, कलशी, धावनी, गुहा, (पृष्टिपर्णी- तन्वी, क्रोष्टुकपुच्छिका, त्रिपर्णी, पूर्णपर्णी, कलसी, सिंहलांगली, अंघ्रिवल्लिका पिष्टपर्णी, लांगली, क्रोष्टुकमेखला, दीर्घा, शृगालवृन्ता दीर्घपत्रा, अतिगुहा, घष्टिला, चित्रपर्णिका, क्रोष्टुकपुच्छी, कदला, कंकशत्रु, चक्रतुल्या, चक्रपर्णी, शीर्णमाला, महागुहा, शृगालविन्ना, धमनी, मेखला, लांगुलिका, ब्रह्मपर्णी दीर्घपर्णी, सिंहपुष्पी, अंघ्रिपर्णी और विष्णुपर्णी) ये पिठवनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पिठवन, पिठौनी, पृश्निपर्णी, पिथिवना। बं०–चाकुले, चाकुलिया। म०–पिठवन। गु०–नाहानोसमेरवा। क०–तोरेमोड तै०–कोलाकुपन्ना। लै०–उरेरिया लेगोपोइडिस: उरेरियापिक्ट Uraria Lagopoider Urariapicta

पिठवन–त्रिदोषनाशक, पुष्टिकारक, गरम, मधुर, दस्तावर और दाह, ज्वर, श्वास, रक्तातिसार, तृषा तथा वमन नाशक है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

विवरण।

पृष्टिपर्णीका क्षुप गेहुँओंके खेतमें होता है, ग्रामवासी लोग इसको कबरा भी कहते हैं, पत्ते इसके लम्बे लम्बे चार चार इंचके होते हैं, बहुत चौड़ाई नहीं होती और नसें चमकती हैं, फूल सफेद कुछ कुछ नीलापन और जटायुक्त होते हैं, फलियोंकी पूँछसी निकलती हैं, परन्तु अल्पमूल होनेके कारण देशान्तरमें इसका पञ्चांग व्यवहारमें लिया जाता है ॥

अथ वार्ताकी (बडी कटेरी)।

वार्ताकी क्षुद्रभण्टाकी महती बृहती कुली। हिङ्गुली राष्ट्रिका सिंही महोष्ट्रीदुप्रधर्षिणी ॥ बृहती ग्राहिणी हृद्या पाचनी कफवातहृत् ॥३५॥ कटुतिक्तास्यवैरस्यमलारोचकनाशिनी। उष्णा कुष्ठज्वरश्वासशूलकासाग्निमान्द्यजित् ॥३६॥

वार्ताकी, क्षुद्रभण्डाकी, महती, बृहती, कुली, हिंगुली, राष्ट्रिका, सिंही, महोष्ट्री दुष्प्रधर्षिणी, (प्रसहा, अक्रान्ता, क्षुद्रवार्ताकी, रक्तपाकी, लता बृहतिका, क्रान्ता, सिंहिका, स्थूलकंटा, क्षुद्रभंटा, भण्टाकी, महोटिका, बहुपत्री, कण्टतनु, कण्टालु, कट्फला, डोवडी, वनवृन्ताकी और पारावेदी) ये बडी कटेरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–बडी कटेरी, बडी भटकटैया, बडी कटाई। बं० भाण्टा, तितवेगुन। म०–मोठी डोरली। गु०–उभीभोरींगणी। क०–हेग्गुलु। तै०–पेद्दमुलंगा। ता०–मुळ्ळु कत्तारी। फा०–वादंजान। अ०–वालुहिंनु जंगली। लै०–सोलेनम् इंडीकम Solanum Indicum

बडीकटेरी–ग्राही, हृदयको हितकारी पाचक, गरम, चरपरी, कडवी और कफ वात, मुखकी विरसता, मल, अरुचि, कोढ, ज्वर, श्वास, शूल, खांसी तथा अग्निकी मंदता को नष्ट करती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

विवरण।

बृहती अर्थात् कटेहरीका छोटासा क्षुप जंगलमें होता है, इसमें कांटे बहुत कम होते हैं. इसके पत्ते बैंगनकेसे होते हैं, फल गोल २ बडे आमलेके समान चितले और पीले होते हैं, इसका नाम बडी कठेरी है, इसको बेंगना कठहरी भी कहते हैं ॥

अथ कण्टकारी (कटेरी)।

कण्टकारी तु दुःस्पर्शा क्षुद्रा व्याघ्री निदिग्धिका। कण्टालिका कण्टकिनी धावनी बृहती तथा ॥ ३७ ॥

उभे च बृहत्यौ अत आह सुश्रुतः–

क्षुद्रा या क्षुद्रभद्राख्या बृहतीति निगद्यते। श्वेता क्षुद्रा चन्द्रहासा लक्ष्मणा क्षेत्रदूतिका ॥ ३८ ॥ गर्भदा चन्द्रभा चन्द्री चन्द्रपुष्पा प्रियंकरी। कण्टकारी सरा तिक्ता कटुका दीपनी लघुः ॥ ३९ ॥ रूक्षोष्णा पाचनी कासश्वासज्वरकफा-

निलान्। निहन्ति पीनसश्वासपार्श्वपीडाहृदामयान् ॥ ४० ॥ तयोः फलं कटु रसे पाके च कटुकं भवेत्। शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु ॥४१॥ हन्यात्कफमरुत्कडूकासमेदकृमिज्वरान्। तद्वत् प्रोक्ता सिता क्षुद्रा विशेषाद्गर्भकारिणी ॥ ४२ ॥

कंटकारी, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा, व्याघ्री, निदिग्धिका, कंटालिका, कंटकिनी, धावनी, बृहती, (कुली, कासघ्नी, कंटकारिका, स्पृही, धावनिका, दुष्प्रधर्षिणी, कंठश्रेणी, प्रचोदनी, राष्ट्रिका, अनाक्रांता, भंटाकी, सिंही, कुलि, निदिग्धा, क्षुद्रकटिका, बहुकण्टा, क्षुद्रफला, कंटालिका और चित्रफला) ये कटेरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कटेरी, लघुकटाई, भटकटैया। बं०-कण्टकारी। म०–लघुरींगणी। गु०–बेटीभोरींगणी। क०–नेल्लगुल्ल! तै०--खेटीमुलंगा। ता०--करिमुळ्ळि। लै०--सोलेनमग्सान्थोकार्षम् Solanum Xanthocarpum

कटेरी--और बडी कटेरी--इन दोनोंको बृहती कहते हैं। यह सुश्रुतमें कहा है कि, कटेरी और बडी कटेरी इन दोनोंको बृहती कहते हैं ॥

श्वेता; क्षुद्रा, चन्द्रहासा, लक्ष्मणा, क्षेत्रदूतिका, गर्भदा, चन्द्रभा, चन्द्री, चन्द्रपुष्पा और प्रियंकरी ये सफेद फूलवाली कटेरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी०--सफेदकटेरी। म०·श्वेतरिंगणी। बं०·श्वेतकंटकारी ॥

सफेद कटेरी--दस्तावर, कडवी, चरपरी, अग्निको दीपन करनेवाली, हलकी, रूखी, गरम, पाचन और पीनस, श्वास, पसलीकी पीडा तथा हृदयरोगको नष्ट करती है। इन दोनोंके फल--चरपरे, पाकमें भी चरपरे, वीर्यरेचक, भेदक, कडवे, पित्त तथा अग्निको करनेवाले, हलके और कफ, वात खुजली, खांसी, मेदा, कृमि और ज्वरको दूर करते हैं। सफेद फूलकी कटेरीके गुण भी कटेरी के सदृश ही हैं, परन्तु विशेष करके ये गर्भकारक हैं ॥ ३७-४२ ॥

विवरण।

कटेहरीके क्षुप छत्तेसे पृथ्वीपर फैले हुए होते हैं; पत्ते कटीले और शाखाओंमें भी बहुत कांटे होते हैं, फूल बैंजनी रंगके आते हैं, फल कच्ची अवस्थामें छोठे गूलरके समान हरे और सफेद चितले होते हैं। पकनेपर पीले पड जाते हैं, दूसरी कटेहरी इसी प्रकारकी होती है, परन्तु उसके फूल सफेद होते हैं; वह बहुत कम होती है, ढूँढनेसे कहीं मिल जाती है ॥

अथ गोक्षुरः।

गोक्षुरः क्षुरकोऽपि स्यात्त्रिकण्टः स्वादुकण्टकः। गोकण्टको गोक्षुरको वनशृंगाट इत्यपि ॥ ४३ ॥ पलंकषा श्वदंष्ट्रा च तथा स्यादिक्षुगन्धिका। गोक्षुरः शीतलः स्वादुर्बलकृद्बस्तिशोधनः ॥४४॥ मधुरो दीपनो वृष्यःपुष्टिदश्चाश्मरीहरः। प्रमेहश्वासकासार्शःकृच्छ्रहृद्रोगवातनुत्४५

गोक्षुर; क्षुरक, त्रिकंट, स्वादुकंटक, गोकण्टक, गोक्षुरक, वनशृङ्गाट (वनके सिंघाडे) पलंकषा, श्वदंष्ट्रा, इक्षुगंधिका, (कंठी, षडंग स्थलशृङ्गाटक बहुकंटकक्षुर, कंटफल, क्षुद्रक्षुर, भक्षटक, चणद्रुम, वनशृङ्गाटक, इक्षुगन्ध और स्वादृकंट) ये गोखुरूके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी·गोखुरू, छोटेगोखुरू। बं० गोखरि। म०--सराटे, लहान गोखरू। गु० -गोखरू। क०- बीडी तीसराठी। तै०·पालेरु। ता०-नेरिंजि। फा०·तुख्मेखार। अ०वजरूलीखस्क। लै०·पेडेल्यं मुरेक्स (बडा) Pedlum Murexट्रिब्यूलस टेरेस्ट्रीस (छोटा) T.ibulus Terrestris

गोखरू--शीतल,, मधुर, बलदायक, मूत्राशयको शुद्ध करनेवाला, स्वादिष्ट, अग्निप्रदीपक, वीर्य वर्द्धक, पुष्टिदायक और पथरी,

प्रमेह, श्वास, खांसी, बबासीर मूत्रकृच्छ, हृदयरोग तथा वातरोगनाशक है ॥

विवरण ।

गोखरू दो जातिके होते हैं, एक पहाडी गोखरू और दूसरे देशी गोखरू । पहाडीसे देशी छोटे होते हैं, पहाडी गोखरूओंके छोटे२ छोटे क्षुप होते हैं; उनमें पीले और सफेद रंग के फूल आते हैं और फलके चार कोने होते हैं, उनपर एक एक कांटा होता है, देशी गोखुरुओंका पृथ्वीपर छत्तासा होता है, पत्ते चनेके पत्तोंके समान होते हैं, फूल पीले आते हैं, फलके ऊपर छः कांटे अलग अलग होते हैं ॥

अथ लघुपञ्चमूलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी वार्ताकी कण्टकारिका । गोक्षुरः पञ्चभिश्चैतैः कनिष्ठ पञ्चमूलकम् ॥४६॥ पञ्चमूलं लघु स्वादु बल्यं पित्तानिलापहम् । नात्युष्णं बृंहणं ग्राहि ज्वरश्वासाश्मरीप्रणुत् ॥ ४७ ॥

सरिवन, पिठवन, बडीकटेरी, छोटी कटेरी और गोखरू इन पांचोंको लघुपंचमूल कहते हैं । लघुपंचमूल-हलका, मधुर, बहुत गरम नहीं, पुष्टिदायक, ग्राही, बलकारक और पित्त, वात, ज्वर, श्वास तथा पथरीको नष्ट करनेवाला है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ दशमूलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

उभाभ्यां पञ्चमूलाभ्यां दशमूलमुदाहृतम्। दशमूलं त्रिदोषघ्नं श्वासकासशिरोरुजः । तन्द्राशोथज्वरानाहपार्श्वपीडारुचीर्हरेत्४८

लघुपंचमूल और बृहत्पञ्चमूल ये दोनों मिलकर दशमूल कहाता है ॥ दशमूल-त्रिदोषनाशक और श्वास, खांसी, शिरोरोग, तन्द्रा, सूजन, ज्वर, अफारा, पसलीकी पीडा और अरुचिको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥

अथ जीवन्ती (शाकविशेषः) ।
(शर्करावन्मधुरपुष्पा व्रततिः)

जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुस्रवा । मंगल्यनामधेया च शाकश्रेष्ठा पयस्विनी ॥ ४९ ॥ जीवन्ती शीतला स्वादुः स्निग्धा दोषत्रयापहा । रसायनी बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघुः॥५०॥

जीवन्ती, जीवनी जीवा, जीवनीया, मधुस्रवा, मङ्गल्यनामधेया. शाकश्रेष्ठा, पयस्विनी, (जीवदा सुखंकरी, रक्तांगी, प्राणदा, भद्रा, मंगल्या, मृगराटिका, स्रवा, मधुस्रवा ,जीव्या, जीवदात्री, जीवभद्रा, क्षुद्रजीवा, यशस्या शृंगाटी, जीवपृष्ठा, कांजिका, शशशिंबिका, सुपिंगला, पुत्रभद्रा, मधुश्वासा, जीववृषा, जीवपत्री, जीवपुष्पी और जीववर्द्धिनी) ये जीवन्तीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-जीवन्ती । बं०-जीवई, जीन्ती । म०-हरणवेल । क०-होणहाले । गु०-मोठी खरखोडी । लै०-ड्रेगिया वैल्यूबलिस Dreia valudilis.

जीवन्ती शीतल मधुर, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, बलकारक, नेत्रोंको हितकारी, ग्राही और हलकी है ॥ ४९ ॥

विवरण ।

जीवन्ती अनेक जातिकी होती है । जीवन्तीकी बेल चलती है । इसके फलोंके डोडे होते हैं । उनमेंसे आकके समान दूध निकलता है । इसके पत्ते गोल बेरके समान होते हैं । उनका शाकबनाते हैं, इसलिये इसका नाम शाकश्रेष्ठा है । एक जीवन्तीकी बेल होती है । उसके फूलोंका शाक बनता है । दूसरी स्वर्णजीवती होती है । उसके डाडेमेंसे पीला दूध निकलता है, तीसरी छोटी जीवन्ती होती है । चौथी कडवी जीवन्ती होती है, उसके फल कडवे होते हैं । पांचवी अर्कपुष्पी होती है; उसके फूल आकके फूलोंके समान होते हैं, छठी जीवन्तीकी बडी बेल होती है, उसका बहुत बडा विस्तार होता है; उसके पत्तोंको

तोडनेसे पीला दूध निकलता है, उसके फलोंके डोडे तीन धारवाले होते हैं, उसकी जडको इंग्रेजीमें सारसापरेला कहते हैं ॥

अथ मुद्गपर्णी ।

मुद्गपर्णी काकपर्णी सूर्यपर्ण्यल्पिका सहा। काकमुद्गा च सा प्रोक्ता तथा मार्जारगन्धिका । मुद्गपर्णी हिमा रूक्षा तिक्ता स्वादुश्च शुक्रला ॥५१॥ चक्षुष्या क्षतशोथघ्नी ग्राहिणी ज्वरदाहनुत् । दोषत्रयहरी लघ्वी ग्रहण्यर्शोऽतिसारजित् ॥५२॥

मुद्गपर्णी काकपर्णी, सूर्यपर्णी, अल्पिका, सहा, काकमुद्गा, मार्जारगंधिका, (शिंबिपर्णिका, शिम्बीपर्णी, क्षुद्रसहा, शिम्बी, वनजा रिंगिणी ह्रस्वा, शूर्पपर्णी, कुरंगिका, कोशिला, वनोद्भवा, वनमुद्गा, आरण्यमुद्गा, आरण्यमुद्गा, बन्या और करंजिका) ये मुगवनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मुगवन । बं०-मुगानि । म०-रानमुग । ता०-काट्टु मयरु । गु०-जंगलीमग । क०-कोहसरु । तै०-कारुपेसरा । लै०-फेसियोलस ट्रायलोबेटस Phasiolus Trailodetus.

मुगवन-शीतल, रूखी, कडवी,मधुर, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, ग्राही, तीनों दोषोंको हरनेवाली, हलकी और क्षत, सूजन, ज्वर, दाह, संग्रहणी, बवासीर और अतीसार नाशक है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

विवरण ।

मुद्गपर्णीकी मूँगके समान बेल होती है, उसके पत्ते मूँगके समान हरे हरे होते हैं, फूल पीले रंगके आते हैं और फली भी मूंगके सदृश आती है, यह एक प्रकारकी वनकी मूंग है ॥

अथ माषपर्णी ।

माषपर्णी सूर्यपर्णी काम्बोजी हयपुच्छिका। पाण्डुलोमशपर्णी च कृष्णवृन्ता महासहा ॥५३॥ माषपर्णी हिमा तिक्ता रूक्षा शुक्रबलास्रकृत् । मधुरा ग्राहिणी शोथवातपित्तज्वरास्रजित् ॥ ५४ ॥

माषपर्णी,सूर्यपर्णी, काम्बोजी,हयपुच्छिका, पांडुलोमशपर्णी, कृष्णवृन्ता महासहा,(पर्णिनी पाण्डुलोमशा, ऋषिप्रोक्ता, हयपुच्छी, सिंहपुच्छिका, सिंहपुच्छी, लोमशपर्णिनी, पाण्डुलोमा, आर्द्रमाषा, मांसमाषा, मंगल्या, हंसमासा, अश्वपुच्छी, माषपर्णिका, कल्याणी, व्रजमूली,शालिपर्णी विसारिणी, आत्मोद्भवा, बहुफला, स्वयंभू, सुलभा, घना, सिंहविन्ना, विशांविका और पांडुरा) ये मषवनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मषवन, वनउर्दी, वनउडद । बं०-माषानी । म०-रानउडीद । गु०-जंगली अडद । क०-रानोडिड्रूडिकाउद्धृ । तै०-कारुमीनुरु । लै०-ग्रेंजिआमेंड्रास पटना Catngeamadras Patana

मषवन -शीतल, कडवी, रूखी, वीर्य, बल तथा रुधिरवर्धक, मधुर ग्राही और सूजन वात, पित्त,ज्वर तथा रक्तविनाशक है५३-५४॥

विवरण ।

माषपर्णीकी बेल विशेष करके वन उपवन और पर्वतोंमें उत्पन्न होती है. पत्ते उडदके समान और उनपर बहुत बारीक २ रूये होते हैं और घोडेकी पूँछके बालके आकार उसके बाल होते हैं ॥

अथ जीवनीयगणस्य लक्षणं गुणाश्च ।

अष्टवर्गःसयष्टीको जीवन्ती मुद्गपर्णिका । माषपर्णी गणोऽयं तु जीवनीयगणः स्मृतः ॥५५॥ जीवनो मधुरश्चापि नाम्ना स परिकीर्तितः । जीवनीयगणः प्रोक्तः शुक्रकृद् बृंहणो हिमः ॥५६॥ गुरुर्गर्भप्रदः स्तन्यकफकृत्पित्तरक्तहृत् । तृष्णां शोषं ज्वरं दाहं रक्तपित्तं व्यपोहति॥५७॥

अष्टवर्ग (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि), मुलहटी, जीवनीय गण कहते हैं जीवन और मधुर ये भी इसीके नाम हैं ॥

जीवनीयगण वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, शीतल भारी, गर्भदायक, दूध तथा कफको उत्पन्न करनेवाला और पित्त तथा रक्त, तृषा, शोष, ज्वर, दाह तथा रक्तपित्त रोगका नाशक है ॥ ५५--५७ ॥

अथ शुक्लरक्तैरण्डो।

शुक्ल एरण्ड आमण्डश्चित्रो गन्धर्वहस्तकः। पञ्चाङ्गुलो वर्द्धमानो दीर्घदण्डोऽप्यदण्डकः ॥५८॥ वातारिस्तरुणश्चापि रुबूकश्च निगद्यते। रक्तोऽपरो रुबूकःस्यादुरुबूको रुबूस्तथा। व्याघ्रपुच्छश्च वातारिश्चञ्चुरुत्तानपत्रकः ॥५९॥ एरण्डयुग्मं मधुरमुष्णं गुरु विनाशयेत्। शूलशोथकटीबस्तिशिरःपीडो दरज्वरान् ॥६०॥ ब्रध्नश्वासकफानाहकासकुष्ठाममारुतान्। एरण्डपत्रं वातघ्नं कफक्रिमिविनाशनम् ॥६१॥ मूत्रकृच्छ्रहरं चापि पित्तरक्तप्रकोपणम्। वातार्यग्रदलं गुल्मबस्तिशूलहरं परम् ॥ ६२ ॥ कफवातक्रिमीन् हन्ति वृद्धिं सप्तविधामपि। एरंण्डफलमत्युष्णं गुल्मशूलानिलापहम् ॥६३॥ यकृत्प्लीहोदरार्शोघ्नं कटुकं दीपनं परम्। तद्वन्मजा च विड्भेदी वातश्लेष्मोदरापहः ६४

शुक्लैरंड, आमंड, चित्र, गन्धर्वहस्तक, पंचांगुल वर्द्धमान, दीर्घदण्ड, अदंडक, वातारि, तरुण, रुबूक, (व्याघ्रपुच्छ, चित्रक, एरंड, त्रिपुटीफल, शूलशत्रु, दीर्घदन्तक, गंधर्वहास्तक, उरुबुक, रुबुक, चेंचुक, मण्ड, व्यालत्वक्, एरण्डक, इष्ट, अमंगल, तुच्छदु, व्रणहा; त्रिपुटी, व्याघ्रदल, उरुवूक, रुबक, वुक, अमंड, व्यडम्बन कान्त, दीर्घपत्रक और स्नेहप्रद) ये सफेद अरंडके सस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-अरंड, सफेद अरंड। बं०-भेराण्डा, शादारेडी। म०--एरंड। गु०--एरडो। क०--एरडु आंडकले। तै०--आमिदमु। फा०--वेंह्जीर। अ०- शिखा। इं०--कास्टर आँइल प्लान्ट Castor Oil plant लै०--रिसिनस् कोम्युनिस Recinus Cemmunis.

रक्तैरण्ड, रुबूक, उरुबूक, रुबू, व्याघ्रपुच्छ, वातारि, चंचू, उत्तानपत्र, (हस्तिकर्ण, व्याघ्र, व्याघ्रकर, रुवु, त्रिबीज, नागकर्ण, करपर्ण, व्याघ्रबल, रक्तक, चिरवीर्य ह्स्वैरण्ड) ये लाल अरंडके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी--लाल अरंड। बं०--लाल भेडा, बडा भेराण्डा। म० -पारसमोट्या। गु०--रातएरडो। तै०--आमिदमुचेट्टु। ता०--आमणकैं। फा०--तुख्मेवदजीर। अ०--पवुलिखरुआ॥

दोनों प्रकारके एरंड--मधुर, गरम, भारी और शूल, सूजन, कमरका दर्द, वस्तिकी पीडा, शिरका दर्द, उदरपीडा, ज्वर, ब्रध्न, श्वास, कफ, अफरा, खांसी, कोढ और आमवातनाशक है। एरंडके पत्ते वात, कफ, कृमि और मूत्रकृच्छ्रनाशक हैं तथा पित्त और रुधिरको कुपित करते हैं। एरंडके आगेके कोमल पत्ते--गुल्म, वस्तिशूल, कफ, वात, कृमि और सात प्रकारकी वृद्धिको नष्ट करते हैं। एरंडका--फल अत्यन्त गरम चरपरा, दीपन और गुल्म, शूल, वात, यकृत्, प्लीहा उदररोग और अर्शरोग नाशक है, इसकी मींग—भेदक, वायु कफ और उदररोगनाशक है ॥ ५८ ॥ ६४ ॥

सफेद अरंड और लाल अरंडके वृक्ष प्रायः खेतोंकी बाडपर लगाये जाते हैं; कहीं कहीं खेतके खेत बो देते हैं, पत्ते वहुत बडे बडे पांच कँगूरेवाले होते हैं, आकार कपासके पत्तोंकासा होता है, परन्तु लम्बाई चौडाईमें उनसे दशगुने बडे होते हैं, इसके फलोंकी गहलें होती हैं अर्थात् बहुत लम्बे लम्बे गुच्छे और उनके ऊपर कोमल कोमल कांटे होते हैं, जिसके

लाल फल होते हैं, उसको जोगिया अरण्ड कहते हैं और जिसके सफेद फल होते हैं उसको सफेद अरंड कहते हैं और सब आकार एकही प्रकारका होता है. एक एक फलमेंसे तीन तीन बीज निकलते हैं उसको अरंडी कहते हैं. वह ऊपरसे चित्रित होती है, अरण्डीका रंग कत्थई और सफेद रेखा होती है, बीजकी मींग सफेद निकलती है, मींगके भीतर तेल होता है ॥

अथ शुक्लरक्तार्कौ (सफेद आक, लाल आक)।

अलर्को गुणरूपःस्यान्मन्दारो वसुकोऽपि च । श्वेतपुष्पःसदापुष्पःसबालार्कःप्रतीयसः ॥६५॥ रक्तोऽपरोऽर्कनामा स्यादर्कपर्णो विकीरणः। रक्तपुष्पः शुक्लफलस्तथा स्फोटःप्रकीर्तितः ॥६६॥ अर्कद्वयं सरं वातकुष्ठकण्डूविषव्रणान् । निहंति प्लीहगुल्मार्शःश्लेष्मोदरशकृत्कृमीन् ॥ ॥६७॥ अलर्ककुसुमं वृष्यं लघु दीपनपाचनम् । अरोचकप्रसेकार्शःकासश्वासनिवारणम् ॥ ६८ ॥ रक्तार्कपुष्पं मधुरं सतिक्तं कुष्ठक्रिमिघ्नं कफनाशनञ्च । अर्शो विषं हन्ति च रक्तपित्तं संग्राहि गुल्मे श्वयथौ हितं तत् ॥६९॥ क्षीरमर्कस्य तिक्तोष्णं स्निग्धं सलवणं लघु । कुष्ठगुल्मोदरहरं श्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥७०॥

अलर्क, गुणरूप, मन्दार, वसुक,श्वेतपुष्प, सदापुष्प, सबालार्क, प्रतीयस, श्वेतार्क,राजार्क गणरूपक, तपन, श्वेत, दीर्घपुष्प, शिवाह्वय, प्रताप, शीतार्कक, शर्करापुष्प, काष्टील, वृत्तमल्लिका, वेधा, शम्भु और गणरूपी) ये सफेद आकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी--सफेद आक, मन्दार । बं०--श्वेत आकंद । म०--पांढरी रुई । गु०- धोलो आकडो । फ०- दुध। अ०--उषर । ता०--बेल्लेरुक्ले ॥

अर्कपर्ण, विकीरण, रक्तपुष्प, शुक्लफल, स्फोट और जितने सूर्यके नाम हैं। वे सब (क्षीरदल, शुकफल, तुलफल अर्क, सदाकुसुम, प्रताप, क्षीरकाण्डक, विक्षीरभास्कर,हरिदश्व, विवस्वान्, अहर्मणि, अहर्बान्धव, अर्यमा, अहर्पति, उष्णरश्मि, भानु, विकर्त्तन, गणरूप, मन्दार, प्रभाकर, विभाकर, दिवाकर, विभावसु, सप्ताश्व, सविता, सूनु, अस्फोत, वसुक, हिमाराति, पुच्छी, प्रतापक्षीरी, अर्ज्जून, शीतपुष्पक, जम्मल, क्षीरपर्णी, विकोरण, सदापुष्प, सूर्याह्व, आस्फोतक, आस्फोटक, रवि, और करितनुफल) ये लाल आकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-लाल आक। बं०-आकन्द । म०-तांबडीरुई । क०-यक्के । गु०-रातो आकडो । फा०-रबुर्क । तै०-नीलाजल्लीडे । ता०-शिवप्पु एरुक्के । इं०-जाईजेंटिक स्वालोवर्ट Gigantic Swallow wort लै०-केलोटोपिस जाइजेंटिया Calotropis Gigantea

दोनों प्रकारके आक-दस्तावर और वात, कोढ, खुजली, विष, व्रण, प्लीहा, गुल्म, बवासीर, कफ, उदररोग और मलके कृमिको नष्ट करते हैं । सफेद आकका फूल-वीर्यवर्द्धक हलका, अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन और अरुचि, मुखसे पानी गिरना, बवासीर, तथा श्वासविनाशक है। लाल आकका फूल-मधुर, कडवा, ग्राही और कृमि, कोढ, कफ, बवासीर, विष, रक्तपित्त, गुल्म तथा सूजनको नष्ट करता है । आकका दूध-कडवा, गरम, चिकना, खारी, हलका, और कोढ, गुल्म तथा उदररोगनाशक है और विरेचन करानेमें यह परमोत्तम है ॥ ६५-७० ॥

विवरण ।

आकके पेड जंगल और भूडोंपर बहुत होते हैं, पांच छः फुट ऊँचे होजाते हैं तथा फूल और फलोंके भारसे डालियाँ नीचेको झुक जाती हैं पत्ते वडके सदृश बडे बडे होते हैं, परन्तु दूध पत्ते और डालियां सबमें होती हैं, फल तोतेकीसी आकृतिवाले हरे हरे शाखाओं

में लगते हैं, फलोंके सूखनेपर उनमेंसे काले काले दाने और कोमल कोमल रुई बहुत निकलती है ॥

अथ सीहुण्डः (सेहुण्ड, थूहर)।

सीहुण्डः सिंहतुण्डः स्याद्वज्री वज्रद्रुमोऽपि च। सुधा समन्तदुग्धा च स्नुक् स्त्रियां स्यात्स्नुही गुडा ॥७१॥ सीहुण्डो रेचनतीक्ष्णो दीपनः कटुको गुरुः। शूलमष्ठीलिकाध्मानकफगुल्मोदरानिलान् ॥७२॥ उन्मादमोहकुष्ठार्शः शोथमेदोऽश्मपाण्डुताः। व्रणशोथज्वरप्लीहविषदूषीविषं हरेत् ॥७३॥ उष्णवीर्यं स्नुहीक्षीरं स्निग्धश्च कटुकं लघु। गुल्मिनां कुष्ठिनाञ्चापि तथैवोदररोगिणाम्। हितमेतद्विरेकार्थे ये चान्ये दीर्घरोगिणः ॥ ७४ ॥

सीहुंड, सिंहतुण्ड, वज्री, वज्रदुम, सुधा, समन्तदुग्धा, स्नुक्, स्नुही, गुडा, (नागदु, बहुदुग्धिका, महावृक्ष, वज्रा, सीहुंडा, दंडवृक्षक, सेहुण्ड, सिहुण्ड, स्नुषा, स्नुहा, वज्र, वज्रदु, वज्रकण्टक, गुड, गुडिगुल, बहुशाल, कृष्णसार, निस्त्रिंशपत्रिका, नेत्रारि, शाखाकण्ठ, काण्डशाख, कुलिशद्रुम और काण्डरोहक) ये थूहरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-थूहर, सेहुण्ड। बं०-मनसागाछा सिजवृक्ष। म०-निवडुंग। गु०-खुरासानी थारे। क०-निवडुंग। तै०-चेमुण्ड। फा०-लादनां। अ०-जकुम फर्य्युन। इं०-मिल्क्स हेज Milks Hedge प्रिक्लीप्रियर Piekiyear लै०--युफोर्बिया ट्रायगोना Euphlorbia-trigona ता० -चित्र कल्ली।

थूहर--रेचक, (दस्तावर), तीक्ष्ण अग्निप्रदीपक, चरपरा, भारी, और शूल, अष्ठीलिका, अफरा, कफ, गुल्म, उदररोग, वात, उन्माद, मोह, कोढ, बवासीर, सूजन, मेद, पथरी, पाण्डुता, व्रण सूजन ज्वर, प्लीहा विष और दूषित विषको नष्ट करता है। थूहर का दूध-उष्णवीर्य, स्निग्ध, चरपरा, हलका, और गुल्म, कोढ, उदर इन रोगवालोंको और दीर्घरोगवालोंको विरेचन (दस्त) करानेमें हितकारी है ॥ ७१--७४ ॥

विवरण।

थूहर और सेहुंड दोनों एक ही जातिके वृक्ष हैं, सेहुंडकी दण्डी मोटी और काटेदार होती है और पत्ते कोमल कोमल पथरचटेके समान होते हैं, परन्तु दूध इसकी शाखा शाखा और पत्ते पत्तेमें होता है। थूहरकी शाखा पतली और पत्ते भी छोटे छोटे हरी मिर्चकेसे लम्बे लम्बे होते हैं। इसके सब अंगोंमेंसे दूध निकलता है, इसकी बहुत जाति हैं, तिधारा, चौधारा, पँचधारा, षट्धारा, सप्तधारा, आंगुलिया, खुरासानी और कांटेवाले ये पहाडोंमें सब प्रकारके होते हैं।

अथ सीहुण्डभेदः (शातला)।
(शातला अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा)

शातला सप्तला सारा विमला विदुला च सा। तथा निगदिता भूरिफेना चर्मकषेत्यपि ॥ ७५ ॥ शातला कटुका पाके वातला शीतला लघुः। तिक्ता शोथकफानाहपित्तो दावर्त्तरक्तजित् ॥ ७६ ॥

शातला, सप्तला, सारा, विमला, विदुला, भूरिफेना, चर्मकषा, (अमला, बहुफेना, फेना, दीप्ता, विपाणिका, स्वर्णपुष्पी पुत्रघना) ये सातलाके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी--सातला। बं०-सिजविशेष। म०-शिकेकाई। गु०-साथेर। क०-बडीळसोनुली। ता०-शीकाई। फा०-एशन। अ०-सातर। लै०-ओरिगेनम वलगेरीस Priganum Valgaris.

शातला-पाकमें चरपरी, वातकारक, शीतल, हलकी, कडवी और सूजन, कफ, अफरा, पित्त, उदावर्त्त तथा रुधिरविकार नाशक है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

विवरण।

सातलेकी बेल जंगल और वनोंमें होती है। पत्ते खैरके पत्तोंके समान छोटे छोटे होते हैं, फूल पीला होता है, उसमें पतली तथा चपटी फली लगती है उसमें काले बीज निकलते हैं इसमें पीले रंगका दूध निकलता है॥

अथ कलिहारी।

कलिहारी तु हलिनी लाङ्गली शक्रपुष्प्यपि। विशल्याऽग्निशिखाऽनन्ता वह्निवक्रा च गर्भनुत्। कलिहारी सरा कुष्ठशोफार्शोव्रणशूलजित्॥ ७७॥ सक्षारा श्लेष्मजित्तिक्ता कटुका तुवराऽपि च। तीक्ष्णोष्णा कृमिहल्लघ्वी पित्तला गर्भपातिनी॥ ७८॥

कलिहारी, हलिनी, लांगली, शक्रपुष्पी, विशल्या, अग्निशिखा, अनन्ता, वह्निवक्रा, गर्भनुत् (कलिकारी, लांगलिकी, दीप्ता, गर्भघातिनी, अग्निजिह्वा वह्निशिखा, लांगुली, गर्भपातिनी, अग्निमुखी, हली,नक्ता, इन्द्रपुष्पिका, विद्युज्ज्वाळा, व्रणहृत्, पुष्पसौरभा, स्वर्णपुष्पा और इंद्रपुष्पिका) ये कलिहारीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-कलिहारी, कलियारी, बं०-ईशलांगला। म०--कललावी। गु०--कलगारी। क०--राडागारी। इं०-वुल्फसूबेन Wolfsbane लै०- ग्लोरीओझासुपरबा Gloriosa Superba. एकोनाइटम नेपिलस Aconitum Napellus.

कलिहारी=दस्तावर, खारी, कडवी, चरपरी, कसैली, तीक्ष्ण, गरम, हलकी, पित्तकारक, गर्भको गिरानेवाली और कोढ, सूजन, बवासीर, कृमि, व्रण, शूल तथा कफ को नष्ट करनेवाली है॥ ७७॥ ७८॥

विवरण!

कलिहारीके क्षुप नागबेलके समान तथा बडके आकारके होते हैं, पत्ते अन्धाहुलीकेसे होते हैं इसके फूल लाल और पीले व सफेद मिश्रित रंगके अत्यन्त शोभायमान और मनोहर होते हैं, फल—तीन रेखावाले लालमिर्चके समान होते हैं, उसकी लाल छालके भीतर इलायचीके बीजोंके समान बीज होते हैं, इसके नीचे एक गांठ होती है, उसको वत्सनाभ और तेलिया मीठा कहते हैं॥

श्वेतरक्तकरवीरः।

करवीरःश्वेतपुष्पः शतकुम्भोऽश्वमारकः। द्वितीयो रक्तपुष्पश्च चण्डातो लगुडस्तथा॥७९॥ करवीरद्वयं तिक्तं कषायं कटुकञ्च तत्। व्रणलाघवकृन्नेत्रकोपकुष्ठव्रणापहम्। वीर्योष्णं कृमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम्॥ ८०॥

करवीर, श्वेतपुष्प, शतकुम्भ, अश्वमारक, (प्रतिहास, शतप्रास, चण्डात, हयमारक, अश्वमार, अश्वघ्न, हयारि, शीतकुम्भ,तुरंगारि रम्भारि, शातकुम्भ, प्रचण्ड, अश्वहा, वीर, हयमार, हयघ्न, शतकुंद, अश्वरोधक, वीरक, कुंद, शंकुन्द्र, श्वेतपुष्पक, अश्वांतक,नखराह्व, अश्वनाशक, स्थलकुमुद, दिव्यपुष्पक, हरिप्रिय गौरीपुष्प और सिद्धपुष्प) ये सफेद कनेरके संस्कृत नाम हैं॥

रक्तपुष्प, चण्डात, लगुड, (रक्तप्रसव, गणेशकुसुम, चण्डीकुसुम, क्रूर, भूतद्रावी और रविप्रिय) ये लाल कनेरके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी--सफेद कनेर लाल कनेर। बं०--श्वेतकरवी लालकरवी। म०- पांढरी कण्हेर, तांबडी कण्हेर। गु०--धोली कणेर, राती कणेर। क०--वाकणलिंगे, केगणलिंगे। तै०--कनेर चेट्टु। ता०-कस्तूरीपट्टै। फा०- खरजेहरा। अ०--सुमुल, हिमारकदली। इं०--ओलियंडर Oleander लै०-नीरीयम ओलियंडर Nirium Oleander.

दोनों प्रकारकी कनेर--कडवी, कसैली, चरपरी, उष्णवीर्य, खानेसे विषके सदृश,

व्रणकारक, लघुता करनेवाली और नेत्रकी पीडा, कोढ, व्रण, कृमि तथा खुजलीको नष्ट करती हैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥

विवरण।

कनेरके वृक्ष--वन, उपवन, पुष्पवाटिकाओं में बहुत होते हैं, इसके कई भेद हैं, किसीपर लाल फूल, किसी पर गुलाबी फूल, किसीपर सफेद फूल और किसीपर पीले फूल आते हैं, पत्ते लम्बे लम्बे और फल फलीके आकारका होता है, इसमें विष बहुत होता है ॥

अथ धत्तूरः।

धत्तूरधूर्त्तधुत्तूरा उन्मत्तः कनकाह्वयः। देवता कितवस्तूरी महामोही शिवप्रियः ॥८१॥ मातुलो मदनश्चास्य फले:मातुलपुत्रकः। धत्तूरो मदवर्णाग्निवातकृज्ज्वरकुष्ठनुत् ॥ ८२ ॥ कषायो मधुरस्तिक्तो यूकालिक्षाविनाशकः। उष्णो गुरुव्रणश्लेष्मकण्डूकृमिविषापहः ॥ ८३ ॥

धत्तूर, धूर्त, धुत्तूर, उन्मत्त, कनकाह्वय और जितने सुवर्णके नाम हैं वे सब, देवता, कितव, तूरी, महामोही, शिवप्रिय, मातुल, मदन और इसके फलको मातुलपुत्रक कहते हैं। (मदनदेविका, खरदूषण, पुरीमोह, धूर्तकृत्, घण्टिक, शठ, मातुलक, श्याम, शिवशेखर, खर्जूघ्न, काहलापुष्प, खल, कण्टफल, मोहन, कलम, मत्त, शैव, धुस्तुर, धतुर, देवता, उन्मत्तक, मदनक, हरवल्लभ, कनक, सविष, मोहन, गदकर, घण्टापुष्प और महाशठ) ये धत्तूरेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी -धत्तूरा। बं०-धुत्तूरा। म०-धोत्रा, धोतरा। गु०-धंतुरो। क०-मदकुणीके। तै०-नल्लाउम्मीते। ता०-ऊमत्तै। अ०-जोजमासील। इं०-थाँर्न आँपल Thorn Appie. लै०-डाटुरा स्ट्रामोनियम Datura Stramocunin

धत्तूरा--मदकारक, वर्णको उत्तम करनेवाला, अग्नि तथा वायुको करनेवाला, गरम, भारी, कसैला, मधुर, कडवा, जूँ, लीखको नष्ट करनेवाला, और ज्वर, कोढ, व्रण, कफ खुजली, कृमि तथा विषविनाशक है॥८१-८३॥

विवरण।

धत्तूरेके वृक्ष-वनमें, बागोंमें, जंगलोंमें बहुत होते हैं, परन्तु इसके कई भेद हैं, काला, नीला, सफेद, लाल, पीला (चार प्रकारका तो नेत्रोंसे देखा) काले और सुनहरी फूलका धतूरा पुष्पवाटिकाओंमें होता है, पत्ते पानके आकार जरा कडुवे कोमल होते हैं। फूल घण्टाकार बीचमें सफेद रङ्ग और ऊपर सफेद रङ्ग बीचमें नीला, काला और पीला रङ्ग भी होता है, जिसके पांच भाग होते हैं। फूलके बाहिरी भागकी पांच पँखुडिया नीले रङ्गकी होती हैं। फल गोल कांटेदार और भीतर बहुत बीजवाला होता है। जिस धतूरेका रंग अत्यन्त काला और डंडी, पत्ते, फूल तथा सर्वाङ्ग काला हो उस धतूरेमें विष अधिक होता है, फल सूखकर फूलके समान खिल जाते हैं, बीजोंको वैद्य लोग व्यवहारमें बहुत लाते हैं ॥

अथ आटरूषः (अडूसा)।

वासको वशिका वासा भिषङ्माता च सिंहिका। सिंहास्यो वाजिदन्ता स्यादाटरूषोऽटरूषकः॥८४॥आटरूषो वृषस्ताम्रः सिंहपर्णश्च स स्मृतः। वासको वातकृत् स्वर्यःकफपित्तास्रनाशनः ॥८५॥ तिक्तस्तुवरको हृद्यो लघुः शीतस्तृडर्त्तिहृत्। श्वासकासज्वरच्छर्दिमेहकुष्ठक्षयापहः ८६॥

वासक, वाशिका, वासा, भिषङ्माता, सिंहिका, सिंहास्य, वाजिदन्ता, आटरूष, अटरूषक, वृक्ष, ताम्र, सिंहपर्ण, (रामरूपक, मातृसिंही, वैद्यमाता, वृष, कसनोत्पाटन, सिंही, वाजिदन्तक, आमलक, वाशा, अट-

रूष, वास, बाजी. वैद्यसिंही सिंदपर्णी, रसादनी, सिंहमुखी, कण्ठीरवी, सि तर्णी वाजिदन्ती, नासा, पंचमुखी, सिंहपत्री, मृगेन्द्राणी और सिंहासन) ये अडूसेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-वासा, अडूसा, विसोंटा । बं०-वासक । म०-अडुलसा । गु०-अडूरसो । क०-शोणा शौडीलमर । तै०-पेद्दमानु । ता०-आडातोडे । लै०-ओरोकीलम इंडीकम् Orocylum Indicum.

अडूसा-वातकारक, स्वरके लिये उत्तम, कडवा, कसैला, हृदयको हितकारी, हलका, शीतल और कफ, पित्त, रक्तविकार, तृषाकी पीडा, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, प्रमेह, कोढ तथा क्षयको क्षय करता है ॥८४०८६॥

विवरण ।

अडूसा अर्थात् विसौंटेके वृक्ष जंगल और वनोंमें होते हैं और ऊँचाईमें चार पांच फुट ऊँचा होता है. एकमें सफेद रंगका फूल आता है । और दूसरेमें लाल रंगका फूल लगता है. पत्ते लम्बे लम्बे गोदनीकेसे होते हैं. इनमें लाल फूलवाला अधिक गुणदायक है और इन्हीं पुष्पोंमें शहद निकलता है ॥

अथ पर्पटः (पित्तपापडा) ।

पर्पटो वरतिक्तश्च स्मृतः पर्पटकश्चसः । कथितः पांशुपर्यायस्तथा कवचनामकः ॥ ८७ ॥ पर्पटो हन्ति पित्तास्रभ्रमतृष्णा-कफज्वरान् । संग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः ॥ ८८ ॥

पर्पट. वरतिक्त, पर्पटक, और पांशुके तथा कवचके जितने पर्याय शब्द हैं वे सब, (त्रियष्टि, तिक्त, चरक, वरक, रेणु, तृष्यारि, शीत, क्षीतप्रिय, पांशु, कल्पांग, बर्मकण्टक, कृष्णशाख. प्रगंध, सुतिक्त, रक्तपुष्पक, रित्तारि, कटुपत्र, नक्र और शीतवल्लभ) ये पित्तपापडाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-ता०-पित्तपापडा । बं०-श्वेतपापडा । म०-पित्तपापडा । गु०-खडसलियो । क०-पर्पाटक । फा०-स्यातरह । अ०-बकललतल । तै०-पर्पाटकम् । इं०-रंगियारेपिन्सी Rangiarepinse. लै०-फ्युमेरिया पारवीफ्लोरा Fumeria parviflors.

पित्तपापडा-ग्राही, शीतल, कडवा, वातकारक, हलका और पित्त, रक्तविकार, भ्रम, तृषा, कफ, ज्वर, तथा दाहनाशक है ॥८७॥८८

विवरण ।

पित्तपापडेके क्षुप खेतोंमें बहुत होते हैं, इसके ऊपर बाल निकलता है । यह दो जाति का होता है, एकमें नीले फूल और दूसरेमें लाल फूल आते हैं, पत्ते बहुतही छोटे छोटे होते हैं, लाल फूलका अधिक फलदायक है ॥

अथ निम्बः ।

निम्बः स्यात्पिचुमर्दश्च पिचुमन्दश्च तिक्तकः । अरिष्टःपारिभद्रश्च हिङ्गुनिर्यास इत्यपि ॥८९॥ निम्बः शीतो लघुर्ग्राही कटुपाकोऽग्निवातनुत् । अहृद्यः श्रमतृट्कासज्वरारुचिक्रिमिप्रणुत् ॥९०॥ व्रणपित्तकफच्छर्दिकुष्ठहृल्लासमेहनुत् । निम्बपत्रं स्मृतं नेत्र्यं कृमिपित्तविषप्रणुत् ॥ ९१ ॥ वातलं कटुपाकं च सर्वारोचककुष्ठनुत् । निम्बफलं रसे तिक्तं पाके तु कटु भेदनम् । स्निग्धं लघूष्णं कुष्ठघ्नं गुल्मार्शःकृमिमेहनुत् ॥९२॥

निम्ब, पिचुमर्द, पिचुमन्द, तिक्तक, अरिष्ट, पारिभद्र, हिंगुनिर्यास, (नियमन, नेता, सतिक्तक, सर्वतोभद्र, सुभद्र, पारिभद्रक, शुकप्रिय, शीर्षपर्णी वरत्वच, छर्दन, पीतसार, रविप्रिय, मालक, पक्वकृत्, अर्कपादप, पूकमालक, कीटक, विबन्ध, निम्बक, कैटर्य, छर्दिघ्न, प्रभद्र, काकफल, कीरष्ट, सुगना, विशीर्णपर्ण,

पीतसारक, शीत और राजभद्रक) ये नीमके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-नीम। बं०-निम्ब। म०-कडुलिम्ब। गु०-लींबडो। क०-बेड। तै०-वेपा। ता०-वेप्पे। फा०-दरख्तहक। इं०-निम्बट्री Nimbtree. लै०-एक्सीडे रक्टा इंडिका Exadi-recta Idinca.

नीम-शीतल, हलका, ग्राही, पाकमें चरपरा, हृदयको अप्रिय और, अग्नि, वात, परिश्रम, तृषा, ज्वर, अरुचि, कृमि, व्रण, पित्त, कफ, वमन, कोढ, हृल्लास और प्रमेहको नष्ट करता है। नीमके पत्ते-नेत्रोंको हितकारी, वातकारक, पाकमें चरपरे और सर्व प्रकारकी अरुचि, कोढ, कृमि, पित्त तथा विषको नष्ट करते हैं, नीमके फल-कडवे, पाकमें चरपरे, मलभेदक, स्निग्ध, हलके, गरम और कोढ, गुल्म, बवासीर, कृमि तथा प्रमेहको विनष्ट करते हैं ॥ ८९-९२ ॥

विवरण।

नीमके वृक्ष -बहुत ऊँचे और घनाकार होते हैं, पत्ते कँगनीदार, अनीदार, नोक कुछ फिरी हुई होती है. वसन्त ऋतुके आदिमें कोमल २ लाल रंगके नवीन पत्ते निकलते हैं और वसन्तऋतुके अन्तमें बारीक और सफेद रंगके फूल आते हैं, सुगन्ध कुछ कुछ चमेलीके फूलों कीसी आती है। फल लम्बे और गोल खिरनी के फलोंके सदृश आते हैं, उनको लिबौली कहते हैं, वे कोमल बहुत होती हैं, छूते छुते टूट जाती हैं, खानेमें मीठी और हीकदार होती है, कच्ची अवस्थामें हरी और पकनेपर पीली पड जाती है, उनके भीतर हरी मींग भी निकलती है, उसमें तेल होता है, इसके वृक्ष नगर और ग्रामोंमें अधिक होते हैं, और इसकी वैद्य बहुत प्रशंसा करते हैं ॥

अथ महानिम्बः (बकायन)।

महानिम्बः स्मृतो द्रेका रम्यको विषमुष्टिकः। केशमुष्टिर्निम्बकश्च कार्मुको जीव इत्यपि ॥ ९३ ॥ महानिम्बो हिमो रूक्षस्तिक्तो ग्राही कषायकः। कफपित्तभ्रमच्छर्दिकुष्ठहृल्लासरक्तजित्। प्रमेहश्वासगुल्मार्शोमूषिकाविषनाशनः॥९४॥

महानिम्ब, द्रेका, रम्यक, विषमुष्टिक, केशमुष्टि, निम्बक, कार्मुक, जीव, (केशमुष्टिक, क्षीरकाकाण्ड, वृहन्निम्ब, महातिक्त, महाद्रेष्क, हिमद्रुम, पार्वत, गैरिक, शुक्लसारक, सकालेयक, गिरिपत्र, यवनेष्ट और कैटर्य) ये बकायनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बकाइन, बकायन। बं०-घोडा निम। म०-बकाणी निंब। क०-महाबेड। गु०-बकाम। तै०-पेद्दवेपा। फा०-तुजा कुनार्य। अ०-बान। लै०-मेलिया एजेडेरक Melia Azaidarak.

बकायन-शीतल, रूखी, कडवी, ग्राही, कसैली और कफ, पित्त, श्रम, वमन, कोढ, हृल्लास (जीमिचलना), रुधिरविकार, प्रमेह, श्वास, गुल्म, बवासीर तथा मूसों (चूहों) के विषको दूर करता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

विवरण।

बकायनके बडे लम्बे २ झाडेदार वृक्ष होते हैं, पत्ते नीमके पत्तोंसे कुछ बडे होते हैं, बकायनके फूल भी नीमके समान होते हैं, परन्तु कुछ २ नीलापन होता है, फल गोल गोल होते हैं और गुच्छेके गुच्छे लटकते रहते हैं ॥

अथ पारिभद्रः (फरहद)

पारिभद्रो निम्बतरुर्मन्दारःपारिजातकः। पारिभद्रोऽनिलश्लेष्मशोथमेदःकृमिप्रणुत्। तत्पत्रं पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधिविनाशनम् ॥ ९५ ॥

पारिभद्र, निंबतरु, मन्दार, पारिजातक, (पालाश, रक्तपुष्प, प्रभद्रक, कण्टकी, कण्टकिंशुक, रक्तपुष्पक, कृमिशत्र, रक्तकुसुम,

कृमिघ्न, बहुपुष्प और रक्तकेशर ये फरहद्के संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-फरहद । बं०-पालतेमान्दार । म०-पागेरा । का० पारिंगा । गु०-फरहद । क०-हरिवाल । तै०-मुलमोति चेट्टु । ता -मुरुक्कै लै०-एरिथिना इण्डिकाErythrina Indica.

फरहद-वात, कफ, सूजन, मेदा, तथा कृमि को नष्ट करता है, इसके पत्ते पित्तरोग तथा कर्णरोगको नष्ट करते हैं ॥ ९५ ॥

विवरण ।

फरहद--(पारिभद्र) के वृक्ष जंगल और वनमें बहुत होते हैं, पत्ते ढाकके समान एक एक डालीमें तीन तीन होते हैं, फूल लालरंग के अत्यन्त शोभायमान होते हैं. इसपर फलियाँ लगती हैं और शाखाओं पर सूक्ष्म कांटे होते हैं ॥

अथ काञ्चनारः रक्तकाञ्चनारश्च (कचनार) ।

काञ्चनारः काञ्चनको गण्डारिः शोणपुष्पकः ॥ ९६ ॥ कोविदारश्चमरिकः कुद्दालो युगपत्रकः । कुण्डली ताम्रपुष्पश्चाश्मन्तकः स्वल्पकेशरी ॥ ९७ ॥ काञ्चनारो हिमो ग्राही तुवरःश्लेष्मपित्तनुत् । कृमिकुष्ठगुदभ्रंशगण्डमालाव्रणापहः॥९८॥ कोविदारोऽपितद्वत् स्यात्तयोः पुष्पं लघु स्मृतम् । रूक्षं संग्राहि पित्तास्त्रप्रदरक्षयकासनुत् ॥ ९९ ॥

कांचनार, कांचनक, गंडारि, शोणपुष्पक, कोविदार, चमरिक, कुद्दाल, युगपत्रक कुण्डली, ताम्रपुष्प, अश्मन्तक, स्वल्पकेशरी, (कुली, आस्फोतक, कुद्दार, उद्दालक, स्वल्पकेशर और चमरी) ये कचनारके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कचनार । बं०-कांचन ।म०-कोरल कांचनवृक्ष । गु०-कचनार । क०-कोचाले, कचनार । तै०-देवकांचन । लै०-बोगोहिनिया वेरिएगेटा Bohe nia Varagata.

कचनार-शीतल, ग्राही, कसैला और कफ, पित्त, कृमि, कोढ, गुदभ्रंश, गंडमाला और व्रणको नष्ट करता है, कोविदारके भी यही गुण हैं । इन दोनोंके फूल हलके, रूखे, ग्राही और पित्त, रुधिरविकार. प्रदर क्षय तथा खांसीको नष्ट करते हैं ॥ ९६-९९ ॥

विवरण ।

लाल और सफेद कचनार दो प्रकारका होता है. इसके वृक्ष जंगल और पहाडोंमें अधिक होते हैं, पत्ते एक एक शाखामें बराबर बराबर दो दो होते हैं, सफेद फूल आते हैं और फलियां लगती हैं । दूसरी जातिका भी कचनार इसी प्रकारका होता है, परन्तु फूल लाल रंगके होते हैं और कोई बात विशेष नहीं होती, इसकी कलियोंका शाक और रायता अच्छा बनता है ॥

अथ शोभांजनः-श्यामः श्वेतो रक्तश्च ।
(सहिंजना) ।

शोभाञ्जनः शिग्रुतीक्ष्णगन्धकाक्षीवमोचकाः । तद्बीजं श्वेतमरिचं मधुशिग्रुः सलोहितः । शिग्रुः कटुः कटुः पाके तीक्ष्णोष्णो मधुरो लघुः॥१००॥ दीपनो रोचनो रूक्षः क्षारस्तिक्तो विदाहकृत् । संग्राही शुक्रलो हृद्यः पित्तरक्तप्रकोपणः ॥१०१॥ चक्षुष्यः कफवातघ्नो विद्रधिश्वयथुक्रिमीन् । मेदोऽपची विषप्लीहगुल्मगण्डव्रणान् हरेत् ॥१०२॥ श्वेतः प्रोक्तगुणो ज्ञेयो विशेषाद्दाहकृद्भवेत् प्लीहानं विद्रधिं हन्ति व्रणघ्नःपित्तरक्तहृत् ॥१०३॥ मधुशिग्रुः प्रोक्तगुणो विशेषाद्दीपनःसरः। शिग्रुवल्कलपत्राणां स्वरस परमार्तिहृत् ॥ १०४ ॥ चक्षुष्यं शिग्रुजं बीजं तीक्ष्णोष्णं विषनाशनम् । अवृष्यं कफवातघ्नं तन्नस्येन शिरोऽर्त्तिनुत्१०५॥

शोभांजन, शिग्रु, तीक्ष्णगन्धक, अक्षीव मोचक, (शुभाञ्जन, सोभांजन, विद्रधिनाशन, मधुगुंजन, हरीतशाक, शाकपत्र, शिग्रुक, सुपत्रक,क्षमादंश कोमलपत्रक,बहुमूल,दंशमूल, तीक्ष्णमूल, उग्र, कामिनीश, शोभनक,सुतीक्ष्ण, वनपल्लव, श्वेतमरिच, कटुकन्द, गन्ध गन्धक, कालविक, मेचक, आक्षीम, स्त्रीचित्तहारी, द्रविणनाशन, कृष्णगन्धा, मूलकपर्णी, मोच, तिलशिग्रु, जलप्रिय, मुखमोद, कृष्णशिग्रु, चलुषा, और रुचिरांजन) ये सहिंजनेके संस्कृत नाम हैं ॥

इसके बीजको श्वेतमरिच कहते हैं, मधुशिग्रु, (रक्तशिग्रु, सुरंगी, शुभांजना, कृष्णबाज, गर्भपातक, रक्तक, मधुर, वहुलद, सुगंध, केसरी, सिंह और मृगारि) ये लाल सहिंजनेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सहिंजना, लाल, सहिंजना । बं०-सजिन, लाल सजिना । म०-शेंगा, शेंगट । गु०-सरगवो, रातो सरगवो । क०-वीलियनुगी, केम्पुनुग्गि । तै०-मुलंगा ता०-मुरुगै । इं-हार्सरेडीशट्री । Horsereddish tree लै० मौरिं गापटेरीगास्पेरुमा Moringapterygo sperma

सहिंजना-चरपरा, पाकमें चरपरा, तीक्ष्ण, गरम मधुर, हलका, अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारक, रूक्ष, खारा, कडवा, दाहकारक, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, हृदयको, हितकारी पित्त तथा रक्तको कुपित करनेवाला, नेत्रोंको हितकारी और कफ,बात,विद्रधि.सूजन कृमि, मेद, अपची, विष, प्लीहा, गुल्म, गंडमाला, तथा व्रणको नष्ट करता है। सफेद सहिंजना भी उपरोक्त गुणोंवालाही है, विशेष करके दाहकारक, प्लीहा, विद्रधि, व्रण, पित्त, तथा रक्तविकारको नष्ट करता है। लाल सहिंजनामें भी ये ही गुण हैं, विशेष करके अग्निको दीपन करनेवाला तथा दस्तावर है। सहिंजनेकी छाल और पत्तोंका स्वरस अत्यंत पीडाको नष्ट करता है । सहिंजनेके बीजनेत्रोंको हितकारी, तीक्ष्ण, गरम, वीर्यवर्द्धक नहीं है और विष, कफ, तथा वायुको शमन करता है। इसके बीजों का नस्य (नास) लेनेसे शिरका दर्द निःसंदेह दूर हो जाता है ॥ १०० ॥ १०५ ॥

विवरण ।

सहिंजनेके वृक्ष-वन और बागोंमें अधिक होते हैं, इसके फूलोंका रंग देखकर तीन चार प्रकारका भेद जाता है । फूल-नीले सफेद और लाल आते हैं, इनमें सफेद फूलका गुण उत्तम होता है, फूलोंकी बडी.लम्बी २ डालियां गुच्छेके समान लटकती हैं, पते सिरसके सदृश डालीके दोनों ओर बराबर होते हैं, देखनेमें शिरसके समान, परन्तु कुछ बड़े होते होते हैं, फली दो दो फुट लम्बी होती हैं ॥

अथ श्वेतपुष्पा नीलपुष्पा चापराजिता ।

(कोयल)

आस्फोटा गिरिकर्णी स्याद्विष्णुक्रान्ताऽपराजिता । अपराजिते कटू मेध्ये शीते कण्ठ्ये सुदृष्टिदे ॥१०६॥ कुष्ठमूत्रत्रिदोषामशोथव्रणविषापहे । कषाये कटुके पाके तिक्ते च स्मृतिबुद्धिदे ॥ १०७ ॥

आस्फोटा, गिरिकर्णी, बिष्णुक्रांता, अपराजिता, (भूमिलग्ना, नगपर्यायकर्णी, गवाक्षी, गिरिशालिनी, अश्वक्षुरादिकर्णी, कटभी, दधिपुष्पिका, गर्दभी, सितपुष्पा, श्वेतस्पदा, किणिही, श्वेता, भद्रा, सुपुष्पी, विषहंत्री, सुपुत्री, सिंहपुष्पी, श्वेतवराटा और गवादीनी) ये कोयलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कोयल, अपराजिता । बं०-अपराजिता । म०-कोकर्णी काळी, पांढरी सुपली । गु०-धोळी गरणी, काली गरणी । क० बीलीय । तै०-नीलगटुना । ता०-विष्णुक्रांता । इं० मेजरीअन Megerian लै०-क्लोटोरिया Clitoria Ternatia.

दोनों प्रकारकी कोयल-चरपरी, मेधाको हितकारी, शीतल, कंठको शुद्ध करनेवाली, दृष्टिको उत्तम करनेवाली, पाकमें चरपरी,

कसैली, स्मृति तथा बुद्धिको देनेवाली और कोढ, मूत्रका दर्द तीनों दोष. आम, सूजन, व्रण तथा विषको दूर करती हैं ॥१०६॥१०७॥

विवरण ।

अपराजिता (कोयल) की लता वन, बाग और प्रायः खेतोंकी बाडोंपर होती है, परन्तु इसकी दो जाति होती हैं, एक सफेद फूलकी और दूसरी नीले फूलकी । पत्ते छोटे छोटे महीन जातिके होते हैं ॥

अथ सिन्दुरवारः (सम्हालू) ।

सिन्दुवारः श्वेतपुष्पः सिन्दुकः सिन्धुवारकः । नीलपुष्पी तु निर्गुण्डी शेफाली सुवहा च सा ॥१०८॥ सिन्दुकः स्मृतिदस्तिक्तः कषायः कटुको लघुः । केश्यो नेत्रहितो हन्ति शूलशोथाममारुतान् ॥ ॥ १०९ ॥ कृमिकुष्ठारुचिश्लेष्मज्वरान्नीलाऽपि तद्विधा । सिन्दुरवारदलं जन्तुवातश्लेष्महरं लघु ॥ ११० ॥

सिन्दुरवार, श्वेतपुष्प, सिन्दुक, सिन्दुवारक, (इंद्राणिका, इन्द्रसुरस, निर्गुण्डी, सिन्धुवारक, सिन्धुक, इन्द्रसुरिष, सिन्दुवारित, इन्द्राणी, शक्राणी, कासनाशिनी, सुरसा, सिन्धु, शुक्लपृष्ठक, विषुगन्धक, सुरस, स्थिरसाधनक, अनन्त, सिद्धक, अर्थसिद्धक और सिन्दुवारिका) ये सफेद फूलवाले सम्हालूके संस्कृत नाम हैं ॥ नीलपुष्पी, निर्गुण्डी, शेफाली सुवहा. (नीलिका, नील निर्गुण्डी, सिन्दुक, नीलसिन्दुक, नील सिन्दुवार, पीतसहा, भूतकेशी, इन्द्राणी, नीलिका, कपिका, शोफालिका, शीतभीरु नीलमंजरी, और कर्करीपत्रा) ये नील फूलवाले सम्हालके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सम्हालू, निर्गुण्डी, मेउडी, नीलसम्हालू । बं०-निशिन्दा, नीलनिशिन्दा । म०-निर्गुण्डी, हांढरी निर्गुण्डी,कालीनिर्गुण्डी। गु०-धोलाफूलवाली नगोड. कालाफूलवाली नगोड। क०-करीयल्लो । तै०-तेल्लवाविलो । ता०-नोचिली । इं०-फैवलीव्ड चेस्टट्री Five leaved Chstetree लै०-वाइटेक्स निगुण्डो Vitex Nigundo

दोनों प्रकारके सम्हालू-स्मृतिदायक, कडवे. कसैले, चरपरे, हलके केशोको उत्तमकरनेवाले,नेत्रोंकका हितकारी और शूल, शोथ, आमवात, कृमि कोढ, अरुचि, कफ तथा ज्वरको नष्ट करते हैं । सम्हालूके पत्ते-जन्तु, वात तथा कफको हरते हैं और हलके हैं ॥ १०८-११० ॥

विवरण ।

निर्गुण्डीके वृक्ष वन और बागोंमें बहुत होते हैं, पत्ते अरहरके समान लम्बे होते हैं, एक एक डण्डीपर पांच पांच लगते हैं, पत्ते बहुत हरे और नीचेसे सफेद होते हैं, निर्गुंडी कई जातिकी होती हैं, किसीपर काले और किसीपर लाल फूल होते हैं फल आमके मौरके समान गुच्छेदार और केशरके रंगके समान होते हैं ॥

अथ कुटजः (कुडा) ।

कुटजः कूटजः कीटो वत्सको गिरिमल्लिका । कालिङ्गःशक्रशाखी च मल्लिकापुष्प इत्यपि । इन्द्रो यवफलः प्रोक्तो वृक्षकः पाण्डुरद्रुमः ॥ १११ ॥ कुटजः कटुको रूक्षो दीपनस्तुवरो हिमः । अर्शोऽतिसारपित्तास्रकफतृष्णामकुष्ठनुत् ॥ ११२ ॥

कुटज, कूटज, कीट, वत्सक, गिरिमल्लिका, कालिंग, शक्रशाखी, मल्लिकापुष्प, इन्द्र, यवफल, वृक्षक पाण्डुरद्रुम, (वरतिक्त,शक्राशन, शका, पाण्डुर. कटुक, कुटक, कौटज, तिक्तक, रक्तनाशक, चक्राह्वय, काही, प्रावृष्य, शक्र, पादप, संग्राही, पाण्डुद्रुम, प्रावृषेण्य, महागन्ध इन्द्रद्रु, और शक्रशाखी) ये कुडेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०कुडा, कौरैया । बं०कुडची, करचि । म०कुडा । गु०-कडो । क०-कोडसिगयेमहतु ।

तै०-अंकेलु चंगळकुष्ठ । अ०-तिवाज । इं०-ओवललिन्ड रोजबे Ovalleaved Rose bay. लै०-राइटिया एंटिडिसन्टरिका Wrightia antidicenterica.

कुडा-चरपरा, रूखा, अग्निको दीपन करनेवाला, कसैला, शीतल, और बवासीर, अतिसार, पित्त, रक्तविकार, कफ, तृषा, आम तथा कुष्ठको नष्ट करता है ॥ १११ ॥ ११२ ॥

विवरण ।

कुडेका बृक्ष, बहुत बडा होता है, पत्ते लम्बे होते हैं, फूल सफेद आते हैं । फलियोंमें जो बीज होते हैं उन्हीको इन्द्रजौ कहते हैं । इन्द्रजौ दो प्रकारके होते हैं एक मीठे और दूसरे कडुवे ॥

अथ करञ्जः (करंज) ।

करञ्जो नक्तमालश्च करजश्चिरबिल्वकः । घृतपूर्णकरञ्जोऽन्यः प्रकीर्यः पूतिकोऽपि च ॥११३॥ स चोक्त पूजिकरजःसोमवल्कश्च स स्मृतः। करञ्जःकटुकस्तीष्णो वीर्योष्णो योनिदोषहृत् ॥११४॥ कुष्ठोदावर्त्तगुल्मार्शोव्रणक्रिमिकफापहःतत्पत्रं कफवातार्शःकृमिशोथहरं परम् ॥११५॥ भेदनं कटुकं पाके वीर्योष्णं पित्तलं लघु । तत्फलं कफवातघ्नं मेहार्शःकृमिकुष्ठजित्।घृतपूर्णकरञ्जोऽपि करञ्जसदृशो गुणैः ॥ ११६ ॥

करंज, नक्तमाल, करज, चिरबिल्डक, (पूतिक, पूतिपत्रक, पूतिकरंजक, कैडर्य, कलिमार, पूतिपर्ण, बद्धफल, रोचन, करंजक और उदकीर्य) ये करंजके संस्कृत नाम हैं ॥

घृतपूर्णकरंज, प्रकीर्य, पूतिक, पूतिकरज और सोमवल्क ये घियाकरंजके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-करंज, कंज, घियाकरंज बं०-डहरकरंज, नाटाकरंज, । म०-चोपडाकरंज । क०-तपसीयमरनू, बारुबहुलिगिलु । गु०-करंज । तै०-कानुगचेट्टू । ता०-पुंगेमरम् । इं०-स्मूथ लिव्ड पोंगेमिया Smooth Leaved Pongmia' लै०-पोंगेमिया ग्लेबरा Pongamis Glabra.

करंच-चरपरी, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, योनिदोषोंको हरनेवाली, और कोढ, उदावर्त्त, गुल्म, बवासीर, कृमि, व्रण तथा कफनाशक है। करंजके पत्ते मलभेदक, पाकमें चरपरे, उष्णवीर्य, पित्तकारक, हलके और कफ, वात, बवासीर, कृमि तथा शोथको हरनेवाले हैं। करंजके फल-कफ, बात, प्रमेह, बवासीर, कृमि तथा क्रोढको नष्ट करते हैं । घियाकरंजके गुण भी करंजके सदृश हैं ॥ ११३ ११६ ॥

विवरण ।

कंटककरंज अर्थात् करंजुवेके वृक्ष-मालीलोग पुष्पवाटिकाओंकी बाडोंपर रक्षाके लिये लगादेते हैं और जंगलमें भी होजाते है, परन्तु वे पेड़ लताके सदृश होते हैं और परस्पर गठजाते हैं, उन झाड झंकाडोंमें अधिक कांटे होते हैं, पत्ते सिरसके समाने डालीमें आमने सामने लगे होते हैं, फल कचौरीके समान लगते हैं, परन्तु काँटोंसे परिपूर्ण ऐसे होते है कि, तिल रखनेको ठौर नहीं रहती, उसमेंसे चार पांच बडी कोडीके बराबर दाने निकलते हैं, उनको करंजुवा कहते हैं, ऊपरसे उनकी छाल राखके रंगके समान होती है, भीतरसे सफेद गिरि निकलती है ॥

अथ अरारी (करंजिया) ।

उदकीर्यस्तृतीयोऽन्यः षड्ग्रन्था हस्तिवारुणी । मर्कटी वायसी चापि करञ्जी करभञ्जिका ॥११७॥ करञ्जी स्तम्भनी तिक्ता तुवरा कटुपाकिनी । वीर्योष्णा वमिपित्तार्शःकृमिकुष्ठप्रमेहजित ॥११८॥

उदकीर्य, षड्ग्रन्था, हस्तिवारुणी, मर्कटी, वायसी, करंजी और करभंजिका ये उदकीर्य नामक तीसरे करंजीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-अरारी, करंजिया। म०-थोरकरंज। यह करंज-वीर्यस्तम्भक, कडवी, कसैली, पाकमें चरपरी, उष्णवीर्य और वमन. पित्त, बवासीर, कृमि, कोड तथा प्रमेहको नष्ट करती है॥ ११७॥ ११८॥

विवरण।

उदकीर्य करंजके वहुत बडे वडे वृक्ष वनमें होते हैं, पत्ते पाखरके पत्तोंके समान गोल और ऊपरके भागमें चमकदार होते हैं, इसमें फूल आसमानी रंगके आते हैं और फल नीले नीले झुमकेदार लगवे हैं, पत्तोंमें दुर्गन्ध आती है॥

अथ श्वेतरक्तगुजा।

श्वेता रक्तोच्चटा प्रोक्ता कृष्णला चापि सा स्मृता। रक्ता सा काकचिञ्ची स्यात्काकानन्ती च रक्तिका॥ ११९॥ काका दनी काकपीलुः ता स्मृता काकवल्लरी। गुञ्जाद्वयन्तु केश्यं स्याद्वातपित्तज्वरापहम्॥ १२०॥ मुखशोषभ्रमश्वासतृष्णामदविनाशनम्। नेत्रामयहरं वृष्यं बल्यं कण्डूं व्रणं हरेत्। कृमीन्द्रलुप्तकुष्ठानि रक्ता च धवलाऽपि च॥१२१॥

सफेद और लाल, इसभांति दो प्रकारकी घुंघुची होती हैं। उच्चटा[1], कृष्णला (श्वेतकाम्बोजी, श्वेतगुंजा, भिरिण्डिका, श्वेतोच्चटा, श्वेतबीजा, श्वेतरक्तिका और श्वेतगुंजिका) ये सफेद चोंटलीके संस्कृत नाम हैं॥

काकचिंची, काकनन्ती, रक्तिका, काकादनी, काकपीलु, काकवल्लरी, (गुंजिका, गुंज काकजंघा, शिखंडिनी, कृष्णला, काकिनी, कक्षा, कनीची, काकणन्तिका, शांगुष्ठा, काकतिक्ता, काकतुंडिका, काका, काकिणी, काञ्ची, चूडामणी, सौम्या, शिखंडी, अरुण, ताम्रिका, शीतपाका, कृष्णचूडिका, रक्ता, काम्बोजी, भीलभूषणा, वन्या, श्यामलचूडा, काकचिंचिका, काकणन्ती, काक शिम्बी, रक्तला, वक्रशल्या, ध्वांक्षनखा, दुर्मोधा, चटकी, तुलाबीजा और अंगारवल्लरी) ये लाल चोंटलीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-घुँघुची, चोंटली, चिरमिटी। बं०-श्वेतकुच, लालकुच,। म०-गुंजा। गु०-धोलीचणोठी, रातीचणोठी। क०-गुलगुंज। त०-गुल्लुविंदे। ता०-कुन्दमणि। फा०-चश्मेखरूस। अ०-हबसुर्ख, हब, सुफेद। इं०-वीडट्री Bead Tree. लै०-एब्रस प्रिकेटोरियस Abrns Precatorius.

दोनों प्रकारकी घुँघुची-केशोंको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, बलदायक और वात, पित्त, ज्वर, मुखशोष, भ्रम, श्वास, तृषा, मद, नेत्रके, रोग, खुजली, व्रण, कृमि, इन्द्रलुप्त तथा कोढको नष्ट करती हैं॥ ११९-१२१॥

विवरण।

लाल गुञ्चे और सफेद गुञ्जे अर्थात् चोंटलीकी वेल जंगलोंमें अधिकतासे होती है, पत्ते इमलीके समान होते हैं और फली सेमकी फलीके समान गुछोंमें लगती हैं और उन फलियोंके भीतर चोंटली निकलती है, वह लालरंगकी होती है और मुखपर किञ्जित् काली होती है और सफेद रंगकी चोंटली सम्पूर्ण सफेद होती है, इस प्रकार चोंटलीके दो भेद कहे हैं॥

अथ कपिकच्छू (कौंच)

कपिकच्छूरात्मगुप्ता वृष्या प्रोक्ता च मर्कटी। अजरा कण्डुरा व्यङ्गा दुःस्पर्शा प्रावृषायणी॥ १२२॥ लाङ्गली शूकशिम्बी च सैव प्रोक्ता महर्षभी। कपिकच्छूर्भृशं वृष्या मधुरा बृंहणी गुरुः॥ १२३॥ तिक्ता वातहरी बल्या कफ-

[1] किसी २ पुस्तकमें उच्चटाके स्थानमें घटा ऐसा पाठ दिया है अर्थात् उच्चटा नाम सफेद घुंघुचीका नहीं है। उच्चटा एक दूसरी औषधी है कि जिसको उटंगण कहते हैं॥

पित्तास्रनाशिनी । तद्बीजं वातशमनं स्मृतं वाजीकरं परम् ॥ १२४ ॥

कपिकच्छू, आत्मगुप्ता, वृष्या, मर्कटी, अजरा, कण्डुरा, व्यंगा, दुःस्पर्शा, प्रावृषायणी, लांगली, शूकशिंबी, महर्षभी, (शुकशिम्बा, कपिप्रभा, शुकपिण्डी, शुकशिम्बी, स्वयंगुजा, कण्डुरा, शूकशिम्बिका, जडा, शुकशिम्बि, अध्यण्डा, ऋष्यप्रोक्ता सद्यशोथा शूका, शूकवर्ती, गात्रभंगा, कच्छुमती, कच्छुरा ऋषभी, कपिकच्छुरा, ऋषभ, जटा, स्वगुप्ता अजाह्वा, प्रावृषा, शूकशिम्बा, अजहा, वानरी, कपिकच्छू, शूकपिण्डी, व्याघ्रा सुतप्ता, कुण्डली चण्डा दुरभिग्रहा, कपिरोमकला, गुप्ता, अजडा, प्रावृषेण्या, बदरी, गुरु, आर्षभी, शिम्बी, वराहिका, तीक्ष्णा, रोमालु, वनशूकरी कार्शीरोमा रोमवल्ली, व्यंगा और वृष्या) ये कौंचके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कौंच, किवाँच । बं०-आलकुशी । गु०-कौंचा । म०-कुइलीचें बीज । क०-नसुकुगरी । तै०-पिल्लीअदुगु ता०-पूनेकाइ इं०-कौहेज Cowedhge लै०-म्युक्युना प्रुसियेन्स Mucuna Pruciens

कौंच-अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, मधुर, पुष्टिकारक भारी, कडवी, वातनाशक, बलदायक और कफ, पित्त तथा रुधिरविकारनाशक है। इसके बीज वातनाशक और अत्यन्त बाजीकरण करनेवाले हैं ॥ १२२ ॥ १२४ ॥

विवरण ।

वन और कैरोंमें कौंचकी वेल होती है, फूल निष्पावीके समान होते हैं और फलियां भी निष्पावीहीके समान होती हैं और फलियोंके ऊपर बहुत बारीक रुएँ अधिकतासे होते हैं, इसके रुएँ शरीरमें लगनेसे अत्यन्त खुजली और पीडा होती है. फलियोंके भीतरसे सेमके बीजोंके समान बीज निकलते हैं, कौंचकी वेल चलती है ॥

अथ मांसरोहिणी ।

मांसोरोहिण्यतिरुहा वृन्ता चर्मकरी कृशा । प्रहारवल्ली विकशा वीरवल्ल्यपि कथ्यते । स्यान्मांसरोहिणी वृष्या सारा दोषत्रयापहा ॥ १२५ ॥

मांसरोहिणी अतिरुहा, वृन्ता, चर्मकरी, कृशा, प्रहारवल्ली, विकशा, वीरवल्ली, (चर्मकशा, वसा, अग्निरुहा, मांसरोही, कशामांशी, कांसरोहा, रसायनी, सुलोमा, लोमकरणी, रोहिणी और चन्द्रवल्लभा) ये मांसरोहिणीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मांसरोहिणी, रोहिणी । बं०-चमार कशा । गु०-रोहिणी । य०-क०-मांसरोहिणी। इं०-रेडवुडट्री Redwood Tree लै०-सोयमीडा फेब्रीफिगा Soymida Febrifiga

मांसरोहिणी-वीर्यवर्द्धक, दस्तावर और त्रिदोषनाशक है ॥ १२५ ॥

विवरण ।

रोहिणी और मांसरोहिणीके वृक्ष जंगलोंमें बहुत होते हैं, पत्ते खिरनीके पत्तोंके समान होते हैं परन्तु नीमके पत्तोंके समान एक डण्डीमें आमने सामने बरोबर सात सात पत्ते हैं. फल छोटे २ लाल रंगके होते हैं. रोहिणीकी छाल त्वचाको कालाकर देती है ॥

अथ चिल्लकः ।

चिल्लको वातनिर्हारी श्लेष्मघ्नो धातुपुष्टिकृत् । आग्नेयो विषवद्यस्य फलं मत्स्यनिषूदनम् ॥ १२६ ॥

चिल्लक-वातनाशक कफ हरनेवाली, धातुको पुष्ट करनेवाली और गरम है। चिल्लकका फल-विषके सदृश मच्छियोंको मार डालता है ॥ १२६ ॥

विवरण ।

चिल्लकके वृक्ष छोटे २ होते हैं; विषेशकरके पर्वत अथवा पथरीली भूमिमें बहुत उत्पन्न होती हे, पत्ते हरे और फूल नीले रंगके होते हैं, इसके फल रीठेके समान गोल गोल होते हैं।

अथ टङ्कारी।

टंकारी वातजित्तिक्ता श्लेष्मघ्नी दीपनी लघुः। शोथोदरव्यथाहन्त्री हिता पीठविसर्पिणाम् ॥ १२७ ॥

टङ्कारी–वातको जीतनेवाली, कडवी, कफनाशक, अग्निको दीपन करनेवाली, हलकी पीठ और विसर्प रोगवालोंको हितकारी है तथा सूजन और उदरकी पीडाको विनष्ट करती है ॥ १२७ ॥

विवरण।

टङ्कारीके क्षुप वन और जंगलमें अधिक होते हैं, पत्ते लम्बे और गोल आते हैं फूल लाल गुलाबी कई प्रकार आते हैं, फल छोटे २ झुमकेदार लगते हैं ॥

अथ वेतसः (वेंत)

वेतसो नम्रकः प्रोक्तो वानीरो वञ्जुलस्तथा। अभ्रपुष्पश्च विदुलो रथशीतश्च कीर्तितः ॥ १२८ ॥ वेतसः शीतलो दाहशोथार्शोयोनिरुक्प्रणुत्। हन्ति वीसर्पकृच्छ्रास्रपित्ताश्मरिकफानिलान्॥१२९

वेतस, नम्रक, वानीर, वंजुल, अभ्रपुष्प, विदुल, रथशीत (निचुल, दीर्घपत्रक, कलन, मंजरीनम्र, बंजुलप्रिय, गन्धपुष्प, रथाभ्र, वेतसी, सुषेण और गन्धपुष्पक) ये वेतोंके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–वेंत। बं०–वेंत। गु०–नेतरा। म०–थोरबेत। क०–वेडिसु। तै०–पीपारुवा। ता०–पिरम्बु। इं०–केन Cane लै०–केलेमस Calmus

वेंत–शीतल और दाह, शोथ, बवासीर योनिरोग, विसर्प, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त पथरी कफ तथा वातविनाशक है ॥ १३८॥ १२९ ॥

विवरण।

वेंत और जलवेंत इसकी दो जाति हैं, ये वेंत जल निकटकी भूमिमें उत्पन्न होते हैं, इसके पेडभी लताके आकारके होते हैं, पत्ते वांसके समान होते हैं। फल फूल आते ही नहीं वेंतकी जड बहुत लम्बी २ होती हैं, वेंतके ऊपरका वक्कल बहुत पक्का होता है, कुरसी आदि उसीसे बुनी जाती है। वेंत जलमें भी उत्पन्न होता है उसके गुण वेंतहीके समान होते हैं ॥

अथ जलवेतसः।

निकुञ्चकः परिव्याधो नादेयो जलवेतसः। जलजो वेतसः शीतः कुष्ठहृद्वातकोपनः ॥ १३० ॥

निकुञ्चक, परिव्याध, नादेय, जलवेतस, (शाखालु, मेघपुष्प, तोयकाम, अभ्रपुष्पक, नदीकूलप्रिय, नीरप्रिय, सुशीतल और व्याधिघात) ये जलवेंतके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–जलवेंत। बं०–जलवेंत। म०–वेत, जलवेत। गु०–जलजाबवो। क०–वेतसु। लै०–इलेटीन्वेर्टिआ वेरटीकेल्आट Elatine vertiaverticeliata

जलवेंत–शीतल, कुष्ठनाशक, और वायुको कुपित करनेवाला है ॥ १३० ॥

अथ इज्जलः (समुद्रशोष)।

इज्जलो हिज्जलश्चापि निचुलश्चाम्बुजस्तथा। जलवेतसवद्वेद्यो हिज्जलोऽयं विषापहः ॥ १३१ ॥

इज्जल, हिज्जल, निचुल और अंबुज ये हिज्जलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–हिज्जल। गु०–समुद्रशोष।

हिज्जल–जलवेंतके सदृश ही गुणवाला है, विशेषकरके विषविनाशक है ॥ १३१ ॥

विवरण।

हिज्जलके वृक्ष प्रायः जलाशयके निकट अधिक उत्पन्न होते हैं, पत्ते छोटे २ रामशरके समान होते हैं, फल तीनरेखायुक्त इलायचीके समान होते हैं, जूडी दूर करनेमें कुनैनके समान है ॥

अथ अंकोटाः (अंकोल)।

अङ्कोटो दीर्घकीलः स्यादंकोलश्च निकोचकः। अंकोटकः कटुस्तीक्ष्णोः स्नि-

ग्धोष्णस्तुवरो लघुः ॥ १२२ ॥ रेचनः कृमिशूलामशोफग्रहविषापहः । विसर्पकफपित्तास्रमूषकाहिविषापहः ॥ १२३ ॥ तत्फलं शीतलं स्वादु श्लेष्मघ्नं बृंहणं गुरु । बल्यं विरेचनं वातपित्तदाहक्षयास्रजित् ॥ १२४ ॥

अंकोट. दीर्घकील, अंकोल, निकोचक, (धलाआँकड, रेची, विषघ्न, दीर्घकीलक, पीतसार, ताम्रफल, गन्धपुष्प, अंकोटक, अंकोठ. निकोठक, अंकोलक, बोध, नेदिष्ट, रामठ, कंकरोल, घलन्त, दृढकण्टक, कोठर, गूढपत्र, मदन, गुप्तस्नेह, गूढवल्लिका, पीत, गुणाढ्यक, लम्बकर्ण. रोचन, बिशाल, तैलगर्भ, वामक, और लम्बपर्णक) ये अंकोलके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०-अंकोल, ढेरा । बं०-आँकोड, धलाआँकड । म०-अंकोली वृक्ष । क० अंकले । गु०-अंकोली । तै०-उडीके । इं०-ट्रिलीविड एल्युरेटीस Trileaved Aluretis. लै०-एलैन्जिया लेमार्कीआई Alangialmarchi.

अङ्कोल-चरपरा. तीक्ष्ण, चिकना, गरम, कसैला, हलका, रेचक और कृमि, शूल, आम, सूजन, ग्रह, विष, विसर्प, कफ, पित्त, रुधिरविकार तथा सांप और मूषक (चूहों) का विष नष्ट करता है । इसका फल-शीतल; स्वादिष्ट, कफनाशक, पुष्टिकारक, भारी, बलदायक, रेचक और वात, पित्त, दाह, क्षय तथा रुधिरविकारनाशक है ॥ १२२-१२४ ॥

विवरण ।

अङ्कोल अर्थात् ढेरेके वृक्ष बड़े बड़े होते हैं, विशेष करके जंगल वन और पर्वतोंपर अधिक पाये जाते हैं, पत्ते एक अंगुल चौड़े और पाँच छः अंगुल लम्बे होते हैं, फूल सफेद होते हैं, फल कच्ची अवस्थामें नीले और पकनेपर लाल पडजाते हैं, उनके ऊपर कालापन झलकता रहता है, इस वृक्षपर कांटे बहुत होते हैं ॥

अथ बलाचतुष्टयम् (खिरैंटी) ।

बला वाट्यालिका वाट्या सैव वाट्यालकाऽपि च । महाबला पीतपुष्पा सहदेवी च सा स्मृता ॥ १२५ ॥

बला, वाट्यालिका, वाट्या, वाट्यालका, (वाट्यपुष्पी, समाशा, विलला, बलिनी, बला, ओदनी, समंगा, ओदनिका, भद्रा, भद्रौदनी, खरककाष्ठिका, कल्याणिनी, बद्रबला, मोटापाटी, बाढ्या, शीतपाकी, वाटी, निलया, वाठ्याली, वाठिका, खरयष्टिका, ओदनाह्वा, बातघ्नी, कनका, रक्ततन्दुला, कुरा, प्रहासा, वारिगा, फणिजिह्विका, जयन्ती और कठोरयष्टिका) ये खिरैंटीके संस्कृत नाम है ॥

हिं०-खिरैंटी, बरियारी, (ली) । बं०-श्वेतबेडेला । म०-लघुचिकणा, खिरहंटी । गु०-खपाठ, बलदाणा । तै०-मुर्पिंडी । इं०-हार्नबीमलीव्ड सिडा Hornbeamleaved Sida. लै०-सिडा कार्पिनीफोलिया Sida Carpiniolia.

महाबला, पीतपुष्पा, सहदेवी, (ज्येष्ठबला, करभरा, केशरुहा, केसरिका, मृगादनी, वर्षपुष्पा, केशवर्द्धिनी, प्रसादनी, देवबला, सारिणी, देवाही, गन्धवल्लरी, मृगा, मृगरसा, वर्षपुष्पीं वाट्या, वाट्यायिनी, सहदेवा, देवसहा, बृहद्बला, गन्धवल्ली, महागन्धा और मंगलार्थप्रसादनी) ये दूसरी पीले फूलवाली बला (सहदेई) के संस्कृत नाम हैं ।

हिं०-सहदेई । बं०-पीतपुष्प, वैंडेला । म०-भांभुर्डी । क०-व्रेणे गरगभेद । लै०-सिडारोंबिफोलिया Sidarombiolia.

ततोऽन्याऽतिबला ऋष्यप्रोक्ताकङ्कतिका च सा ॥

अतिबला, ऋष्यप्रोक्ता, कंकतिका, (बलिका, बल्या, विकंकता, वाट्यापुष्पिका, घंटा, शीत, शीतपुष्पा, भूरिबला और वृष्यगन्धिका) ये तीसरी बला, (कंघा, ककई) के संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी–कंघी, कंगही, ककहिया । म०--विकंकती । गु०--खपाटय । क०--मुल्लुर्दुरुवे । इं०--इंडियन मेलो Indian Mellow. लै०--एब्युटिलन इण्डीकम् Aburilon Indicum.

गाङ्गेरुकी नागबला झषा ह्रस्वगवेधुका१३६

गांगेरुकी, नागवला, झषा, ह्रस्वगवेधुका (खरगन्धिनी, गोरक्षतंडुला, भद्रौदनी, खरगन्धा, चतुःपला, महोदया, महापत्रा, महाशाखा, महाफला, विश्वदेवा. अनिष्टा, देवदंडा. महागन्धा और खरवल्लरिका) ये चौथी बला (गंगेरन गुलसकरी) के संस्कृत नाम हैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

हिं०--गंगेरन, गुलसकरी । बं०--गोरख. चाकुले । म०-,गांगेटी, गांडेधामण । क०--बट्टगर्रुके । लै०--सिडस्पिनोजा Sidaspinosa.

बलाचतुष्टयं शीतं मधुरं बलकान्तिकृत् । स्निग्धं ग्राहि समीरास्रपित्तास्रक्षतनाशनम् ॥१३७॥ बलामूलत्वचश्चूर्णं पीतं सक्षीरशर्करम् । मूत्रातिसारं हरति दृष्टमेतन्न संशयः ॥ १३८ ॥ हरेन्महाबला कृच्छ्रं भवेद्वातानुलोमनी । हन्यादतिबला मेहं पयसा सितया समम् ॥ १३९ ॥

चारों प्रकारकी बला--शीतल, मधुर, बल तथा कांतिदायक, स्निग्ध. ग्राही और वात, रक्तपित्त, रुधिर विकार तथा क्षयनाशक हैं, इनकी जड़की छालका चूर्ण जो दूध बूराके साथ खावे तो मूत्रादि रोग नष्ट होता है, इसमें किंचित् भी संशय नहीं है यह दृष्टिसे देखा हुआ है । महाबला—मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करती है और वातको अनुलोमन करती है अर्थात् वादीको गुदाद्वारा निकालती है । अतिबला जो दूध और मिश्रीके साथ पीये तो प्रमेहको विनष्ट करती है ॥ १३७-१३९ ॥

विवरण

खिरैंटीके क्षुप छत्तेदार पृथ्वीहीमें फैलते हैं, ऊँचे कम होते हैं, पत्ते गोल और फूल पीले रंगके होते हैं, मूँगके समान बहुत छोटे छोटे फल होते हैं, उसमें राईके समान काले बीज निकलते हैं, उनको वैद्यलोग बीजबन्द कहते हैं । इसकी चार जाति हैं ॥

अथ लक्ष्मणा ।

पुत्रकाकाररक्ताल्पबिन्दुभिर्लाञ्छिता सदा । लक्ष्मणा पुत्रजननी बस्तगन्धाकृतिर्भवेत् । कथिता पुत्रदाऽवश्यं लक्ष्मणा मुनिपुङ्गवैः ॥ १४० ॥

लक्ष्मणा, पुत्रजननी, (नागपत्री, पुत्रदा, पुत्रकन्दा, पुच्छदा, नागिनी, नागाह्वा, नागपुत्री, तूलिनी और मंजिका) ये लक्ष्मणाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०- लक्ष्मणा, । गु०--हनुमानवेलो ॥

इसकी बेल पुत्रकके सदृश और पत्तोंपर रक्तके सदृश लाल छोटी २ बूंदें होती हैं । लक्ष्मणा अवश्य पुत्रको देनेवाली है ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ १४० ॥

विवरण ।

लक्ष्मणा औषधि बहुत कम मिलती है, यह कहीं कहीं पर्वत इत्यादिमें उत्पन्न होती है. इसके पत्ते चौडे होते हैं. उनपर लालचन्दनके समान बूंदेंसी पडी होती हैं, उनके नीचे सफेद रंगका कन्द होता है ॥

स्वर्णवल्ली (सोनवेल) ।

स्वर्णवल्ली रक्तफला काकायुः काकवल्लरी । स्वर्णवल्ली शिरःपीडां त्रिदोषान् हन्ति दुग्धदा ॥ १४१ ॥

स्वर्णवल्ली, रक्तफला, काकायुः और काकवल्लरी, ये स्वर्णवल्लीके संस्कृत नाम हैं ॥ हिं०--स्वर्णवल्ली । म०--सोनेवेल, सोनुली । गु०--स्वर्णवल्ली ॥

स्वर्णवल्ली--मस्तककी पीडा और तीनों दोषोंको हरनेवाली है तथा स्त्रियोंका दूध बढानेवाली है ॥ १४१ ॥

विवरण ।

स्वर्णवल्ली--अर्थात् सोनवेल प्रायः पर्वत, बाग और वनोंमें अधिक होती है, पत्ते गोल अनीदार होते हैं फल लाल लगते हैं । इस

लताका रंग सम्पूर्ण पीला होता है, इसी कारण इसका नाम स्वर्णलता है ॥

अथ कार्पासी (कपास)

कार्पासी तुण्डकेरी च समुद्रान्ता च कथ्यते। कार्पासकी लघुःकोष्णा मधुरा वातनाशिनी ॥१४२॥ तत्पलाशं समीरघ्नं रक्तकृन्मूत्रवर्द्धनम्। तत्कर्णपीडाकानाद-पूयास्रामविनाशनम्। तद्बीजं स्तन्यदं वृष्यं स्निग्धं कफकरं गुरु ॥ १४३ ॥

कार्पासी, तुण्डकेरी, समुद्रान्ता, (बदरा, पटदा, बादरा, सूत्रपुष्पा, बदरी. कर्पासिका, कर्पासी, कर्पाससारिणी, चव्या, .तुला, तुण्डकेरिका, मरुद्भवा, पिचुबादर, कार्पास, पटलुन और छादन) ये कपासके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-कपास, नरमावाडी। बं०-कर्पास। म०-कापशी। गु०-वण। क०-हत्ति। तै०-पत्तिचट्टु। ता०-परुत्ति। फा०-कुतन। अ०-हब्बुपकुतन। इं०-काटनप्लेन्ट Cottonplant, लै०-गाँसिपीयं हरवेसयम् Gossypium Herb ceum.

कपास-हलकी, किंचित् गरम, मधुर और वातनाशक है। कपासके पत्ते-वातनाशक, रुधिर करनेवाले और मूत्र बढानेवाले और कानकी पीडा, कर्णनाद और पीव (राद) बहना इन सबको नष्ट करते हैं। कपासका फल दूधवर्द्धक, वीर्यको बढानेवाला, चिकना, कफकारी और भारी है ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

विवरण।

कपासके पेड सब हिंदुस्थानमें बहुत होते हैं। इसकी बडी खेती होती है। इसका बहुत बडा व्यापार होता है। उत्तम २ वस्त्रादिक सब कपासहीके बनते हैं। कपासके फूल पीले और बीचमें लाल होते हैं, उसमें गूलर तिकोने आते हैं, उनके भीतर कपास निकलती है, वह कपास चर्खीमें औटी जाती है, उसमें जो बीज निकलते हैं, उनको विनौले कहते हैं। इसके पत्तेमें पाँच अनी होती हैं, जैसे अरंडके पत्तोंमें; परन्तु उनसे बहुत छोटे होते हैं। एक काली कपास होती है, जिसके फूल काले और विनौले भी काले होते हैं। एक नरमावाडी होती है, जिसके पेड बडे बडे ही होते हैं। फल फूल बारहों महीने आते हैं। रुई नरम होती है। विनौले हरे होते हैं। ये सब कपासहीके भेद हैं ॥

अथ वंशः (वांस)।

वंशस्त्वक्सारकर्मारत्वचिसारतृणध्वजाः। शतपर्वा शतफली वेणुमस्करतेजनाः ॥ १४४ ॥ वंशः सरो हिमः स्वादुः कषायो वस्तिशोधनः। छेदनः कफपित्तघ्नः कुष्ठास्रव्रणशोथजित् ॥ १४५ ॥ तत्करीरः कटुः पाके रसे रूक्षो गुरुः सरः। कषायः कफकृत् स्वादुर्विदाही वातपित्तलः ॥ १४६ ॥ तद्यवास्तु सरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः। वातःपित्तकरा उष्णा बद्धमूत्राः कफापहाः ॥ १४७ ॥

वंश, त्वक्सार, कर्मार, त्वचिसार, तृणध्वज, शतपर्वा, शतफली, वेणु, मस्कर, तेजन, (किलाटी, पुष्पघातक, बृहत्तृण, किष्कुपर्वा, वन्य, सुपर्वा, तृणकेतुक, कण्टालु, कण्टकी, महावल, दृढग्रन्थि, दृढपत्र, धनुर्द्रुम, धानुष्य, दृढकाण्ड, कञ्चिक, कुक्षिरन्ध्र, षट्पदालय, मृत्युबीज, वादनीय, फलान्तक, तृणकेतु, पर्वयोनि, सुपर्वा, तृणराजक, बहुपर्वा और दुरारोह) ये वांसके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बाँस। बं०-वेश। म०-वेलु। गु०-वांस। क०-यरडुविदीरु, विदीरु। तै०-कीचकई। ता०-मुळिगल्। फा०-कसब। इं०-बेम्बूकेन Bamboo cane लै०-बेम्बुसा, वलगेरिस Bambusa Vulgaris

बाँस-दस्तावर, शीतल, स्वादिष्ठ, कसैला, वस्तिशोधक, मलच्छेदक और कफ, पित्त, कोढ, रुधिरविकार, व्रण, तथा सूजनको नष्ट करता है। बाँसके अंकुर-पाकमें तथा रसमें चरपरे, रूक्ष, भारी, दस्तावर कसैले, कफ-

कारक, स्वादिष्ठ, दाहकारक, वात तथा पित्तको बढानेवाले हैं । बाँसके चावल-दस्तावर, रूक्ष, कसैले, पाकमें चरपरे, वात तथा पित्तकारक, गरम, मूत्ररोधक और कफनाशक हैं १४४-१४७ ॥

विवरण ।

बाँस दो प्रकारके होते हैं, एक खुक्कल अर्थात् पोला, दूसरा ठोस अर्थात् कडा । ये वन, जंगल और पर्वतोंपर बहुत उत्पन्न होते हैं, पत्ते तीन चार अंगुल लम्बे और एक अंगुल चौडे होते हैं, कभी कभी दैव योगसे दश पाँच वर्षमें बाँस फलता भी है । फूल सफेद छोटे छोटे आते हैं, उनमें चावल निकलते हैं । दीन लोगोंके खाने पीनेमें आते हैं । पीले बाँसको फाडनेसे उसके भीतर वंशलोचन निकलता है, वही असली वंशलोचन है ॥

अथ नडः (नरसल) ।

नलः पोटगलः शून्यमध्यश्च धमनस्तथा । नलस्तु मधुरस्तिक्तः कषायः कफरक्तजित् । उष्णो हृद्वस्तियोन्यर्तिदाहपित्तविसर्पहृत् ॥ १४८ ॥

नल, पोटगल, शून्यमध्य, धमन, (नाल, कलंक, कुक्षिरन्ध्र, कीचिक, दीर्घवंश विभीषण, छिद्रान्त, मृदुपत्र, वंशपत्र, मृदुच्छद, लालवंश, नट, नटी नर्तक और मृदुपुष्प ये नलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-नल, नरसल । बं०-नळ । म०-नल, देवनल । गु०-नरसल । क०-देवनाल । तै०-भुंगुयेडुरु । ता०-कोरुके । इं०-इंडियन टोबैको Indian Tobacco लै०-लोबेलिया निकोटिया नैफोलिया Lobelia Nicotia Naeiolia

नरसल-मधुर, कडवी, कसैली, गरम और कफ, रुधिरविकार, हृदयकी पीडा, मूत्राशयकी पीडा, योनिकी पीडा, दाह, पित्त तथा विसर्पको नष्ट करती है ॥

विवरण ।

नरसल अर्थात् नल बाँसके समान जलाशयके निकट जंगलोंमें उत्पन्न होती है । पत्ते ईखके पत्तोंके समान होते हैं इसकी आकृति भी ईखहीके सदृश होती है । जिस प्रकार गन्नेके ऊपर अगोल होता है, उसी प्रकार इसके ऊपर भी होता है परन्तु उँचाईमें ईखसे तिगुना ऊँचा होता है यह भीतरसे पोला होता है ।

अथ भद्रमुञ्जः (रामशर) ।

भद्रमुञ्जः शरो बाणस्तेजनश्चक्षुवेष्टनः १४९

भद्रमुंज, शर, बाण, तेजन और चक्षुवेष्टन ये रामशरके संस्कृत नाम हैं ॥ १४९ ॥

हिन्दी-रामसर, सरपत, भद्रमूंज । बं०-रामशर । गु०-पान बाजरिया । म०-मोळ ॥

अथ मुञ्जः (मुञ्ज)

मुञ्जो मुञ्जातको बाणः स्थूलदर्भः सुमेखलः । मुञ्जद्वयं तु मधुरं तुवरं शिशिरं तथा ॥ १५० ॥ दाहतृष्णाविसर्पाममूत्रकृच्छ्राक्षिरोगजित् । दोषत्रयहरं वृष्यं मेखलासूपयुज्यते ॥ १५१ ॥

मुञ्ज, मुंजातक, बाण, स्थूलदर्भ, सुमेखल, (इक्षुकाण्ड, मौञ्जी, तृणाख्य, ब्रह्मण्य, तेजनाह्वय, दुर्मूल, दृढतृण, दृढमूल, बहुप्रज, रञ्जन और शरूभंग) ये मूंजके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मूंज । बं०-मुंज तै०-मुञ्जगड्डि । ता०-मुंञ्जि । गु०-मुंज । म०-मोळ ॥

दोनों प्रकारकी मूंज-मधुर, कसैली, शीतल, वीर्यवर्द्धक और दाह, तृषा, विसर्प, आम, मूत्रकृच्छ्र नेत्ररोग तथा तीनों दोषोंको नष्ट करती है । मूंज मेखलामें उपयोग की जाती है ॥ १५० ॥ १५१ ॥

विवरण ।

मूंज और भद्रमुंजके झुंड भी नलके समान जलाशयके समीप या तेरमें बहुत होते हैं इसको वीण भी कहते हैं । यह वास्तवमें वीरणशब्द था, अब बिगडकर वीण हो गया । इसके

बक्कलको मूँज कहते हैं। फूल, फल, हरे डार लम्बे लम्बे सफेद रंगके होते हैं ॥

अथ काशः।

काशः काशक्षुरुद्दिष्टः स स्यादिक्षुरस्सतथा। इक्ष्वालिकेक्षुगन्धा च तथा पोटगलः स्मृतः ॥ १९२ ॥ काशः स्यान्मधुरस्तिक्तः स्वादुपाको हिमः सरः। मूत्रकृच्छ्राश्मदाहास्त्रक्षयपित्तरोगजित् ॥ १९३ ॥

काश, काशेक्षु, इक्षुरस, इक्ष्वालिका, इक्षुगंधा, पोटगल, ,(सुकांड, नादेय, नीरज, काकेक्षु, वायसोशीर, कर्म्ममूक, इक्षुरम्लिका, इषीका, अश्ववाला, चामरपुष्पक, चामरपुष्पक, नाशक, इनहासक, इक्षारि, इक्षुर, इक्षुकांड, शारद, सितपुष्पक, लेखन, कांडे, कांडक, कच्छलकारक और दर्भपत्र) ये कासके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—कास। बं०-केशेघास। म०-कसई। गु०-काँसडो। क०-किरयिकागच्छ। तै०-रेलु। ता०-नाणल्लू लै०-कोएक्स बारबटा Coex Barbata

कास-मधुर, कडवा, पाकमें मधुर, शीतल, दस्तावर और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, दाह रुधिरविकार, क्षय तथा पित्तसम्बन्धी रोगोंको नष्ट करता है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

विवरण।

कास--नदियोंके किनारे कीचडमें उत्पन्न होता है। पत्ते बाभरके समान, वरन् एक प्रकारकी देशी बाभर होती है। फूल सफेद अधिक शोभायमान मञ्जरीके समान आते हैं॥

अथ गुन्द्रः (पटेरा)।

गुन्द्रः पटेरको रच्छः शृङ्गवेराभमूलकः। गुन्द्रः कषायो मधुरः शिशिरः पित्तरक्तजित्। स्तन्यशुक्ररजोमूत्रशोधनो मूत्रकृच्छ्रहृत् ॥ १९४ ॥

गुन्द्र, पटेरक, रच्छ, और शृंगवेराभमूलक ये पटेरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-,पटेर, गोंदपटेर। म०--पाणिगवत। गु०--पुन्द्रखड। क०--आपु। ता०--जंबू इं०--एलिफेंटग्रास Elehant grass लै०-टाफा एलिफण्टाइना Typha Eldphantina.

पटेर-कसैला, मधुर शीतल और पित्त, रुधिरविकार तथा मूत्रकृच्छनाशक है और दुग्ध, वीर्य, रज तथा मूत्रको शुद्ध करता है ॥ १५४ ॥

विवरण

गुन्द्रपटेर अर्थात् गोंदपटेर पानीमें होती है पत्ते वहुत लम्बे चार पांच फुटतकके और एक इंच चौडे होते हैं। पत्ते निकलते हैं। पत्ते मोटे वहुत होते हैं, वरन् बीचमेंसे चिर जाते हैं। उनके ऊपर एक बाल बाजरेके समान होती है, बालपर एक पतलीसी लकडी ऊपर और होती है। इनकी चटाई इत्यादि अनेक पदार्थ बनते हैं ॥

एरका (मोथीतृणविशेष)।

एरका गुन्द्रमूला च शिविर्गुन्द्रा शरीति च। एरका शिशिरा वृष्या चक्षुष्या वातकोपिनी। मूत्रकृच्छ्राश्मरीदाहपित्तशोणितनाशिनी ॥ १९५ ॥

हिन्दी-मोथीतृण। बं०-होगला। म०-एरकापाणलालव्हाला। गु०-एरका। ता०-शष्पट्टै कोरै।

मोथीतृण-शीतल, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, वातको कुपित करनेवाली और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, दाह, पित्त तथा रुधिरनाशक है ॥ १५५ ॥

विबरण।

मोथीतृण जलमें उत्पन्न होते हैं। पत्ते बडे २ लम्बे होते हैं ॥

अथ कुशः (कुशा) क्षुरपत्रम् (डाभ)।

कुशो दर्भस्तथा बर्हिःसूच्यग्रो यज्ञभूषणः ॥१९६॥ ततोऽन्यो दीर्घपत्रःस्यात्क्षुरपत्रस्तथैव च। दर्भद्वयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं

हिमम्। मूत्रकृच्छ्राश्मरीतृष्णावस्तिरुक्प्रदरास्रजित् ॥ १५७ ॥

कुश, दर्भ, बर्हि, सूच्यग्र और यज्ञभूषण ये कुशाके संस्कृत नाम हैं। जिसके लम्बे लम्बे पत्ते होते हैं, वह डाभ कहाती है। इसीको क्षुरपत्र कहते हैं ॥

हिन्दी-कुशा, दाभ, डाभ। म०-बारीक दर्भ, मोटे दर्भ। गु०-कुश दाभडो। क०-पीळीय बुट्टशशी। तै०-कुश दर्भालु। ता०-दर्भम्। लै०-एण्डोपोगेन नारडेइडिस् Andropogon Nardaides.

कुशा और दर्भ-त्रिदोषनाशक, मधुर, कसैले शीतल और मूत्रकृच्छ, पथरी, तृषा, वस्तिरोग, प्रदर तथा रुधिरविकार नाशक हैं १५६॥१५७

विवरण।

कुशा और दर्भ दोनों एक ही जातिके तृण हैं। ये रेतेली भूमिमें भूडों और जंगलोंमें उत्पन्न होते हैं। पत्ते इसके कांसहीके समान होते हैं। तृणोंको ही पत्ते समझना। वे सुईके समान नोकदार होते हैं ॥

कतृणम् (रौहिस. सौधिया)।

कतृणं रोहिषं देवजग्धं सौगन्धिकं तथा। भूतिकं ध्याम पौरं च श्यामकं धूमगन्धिकम् ॥ १५८ ॥ रोहिषं तुवरं तिक्तं कटुपाकं व्यपोहति। हृत्कण्ठव्याधिपित्तास्रशूलकासकफज्वरान् ॥ १९ ॥

कत्तृण, रोहिष, देवजग्ध, सौगन्धिक, भूतीक, ध्याम, पौर, श्यामक, धूमगंधिक, (सुगन्ध, तृणशीत, सुशीतल, रोहिषतृण, कात्तृण, भूति, ध्यामक और पूतिमुद्गल) ये रोहिषतृणके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-रोहिस, सौधिया, गन्धेजघास। बं०-रामकर्पूर। म०-सुगन्धरोहिषतृण। क०-किरुगंजणी। फा०-खवालमागून। अ०-अजखर। तै०-कामंचि गड्डि। गु०-रौसा ॥

रोहिषतृण-कसैले, कडवे, पाकमें चरपरे और हृदयरोग, कंठरोग, पित्त, रुधिरविकार, शूल, खांसी, कफ तथा ज्वरको नष्ट करते हैं ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

विवरण।

रोहिषतृण लम्बे और सुगन्धित मालवे राजपूतानेके जंगलमें बहुत होते हैं। पत्ते छोटे छोटे और हरे हरे अत्यन्त शोभायमान होते हैं। इसके सर्वाङ्गमें बहुत सुगंधि आती है। दूसरे रोहिषतृणके कुछ बडे क्षुप होते हैं। इसका तेल निकलता है, उसमें बहुत सुगन्ध होती है ॥

अथ भूतृणम (शर बाण)।

गुह्यबीजं तु भूतीकं सुगन्धं शम्बुकप्रियम्। भूतृणं तु भवेच्छत्रा मालातृणकमित्यपि ॥१६०॥ भूतृणं कटुकं तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रेचनं लघु। विदाहि दीपनं रूक्षमनेत्र्यं मुखशोधनम्। अवृष्यं बहुविट्कश्च पित्तरक्तप्रदूषणम् ॥ १६१ ॥

गुह्यबीज, भूतीक, सुगन्ध, जम्बुकप्रिय, भूतृण, छत्रा और मालातृणक ये भूतृणके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-शरबाण। म०-पाण्यातील वाला। गु०-भूतृण। क०-परिमलदगर्जाण ॥

भूतृण-चरपरे, कडवे, तीक्ष्ण, गरम, रेचक हलके, दाहकारक, अग्निप्रदीपक, रूक्ष और नेत्रोंके लिये अहितकारी, मुखशोधक, वीर्यको अहितकारी, भेदक और पित्त तथा रुधिरको कुपित करनेवाले हैं ॥

विवरण ॥

भूतृण जंगल और बागादिक स्थानोंमें अधिक उत्पन्न होता है। इसमें गुच्छेसे लगते हैं और बीज बहुत छोटे होते हैं ॥

अथ नीलदूर्वा (हरीदूब)।

नीलदूर्वा रुहाऽनन्ता भार्गवी शतपर्विका। शष्पं सहस्रवीर्या च शतवल्ली च कीर्तिता ॥ १६२ ॥ नीलदूर्वा हिमा तिक्ता मधुरा तुवरा हरेत्। कफपित्तास्रवीसर्पतृष्णादाहत्वगामयान् ॥ १६३ ॥

नीलदूर्वा, रुहा, अनन्ता, भार्गवी, शतपर्विका, शष्प, सहस्रवीर्या, शतवल्ली, (शाद्वल, हरित,शतपर्वा, शीत, कुम्भी, शीतला, वामिनी, हरिता, शम्भवी, श्याम, शीता, अमृता, धूर्ता, शतग्रन्थि, अनुवल्लिका, शिवा, शिवेष्टा,मङ्गला जया, भूतहन्त्री, शतमूला, महौषधी, विजया, गौरी, शान्ता, गुणा, नन्दा, महावरा, हरसालिका, तिक्तपर्वा, दुर्मरा, बहुवीर्या हरिताली, कच्छरुहा, अमरी, सौम्या, शीतली और अखिताळता) ये नीली दूबके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-हरीदूब, नीलीदूब । बं०-नीलदूर्वा, दूर्वा। म०-नीलीदूर्वा, हरली, कालीदूर्वा । गु०-नीलोध्रो । क०-हसुगरुके । तै०-दूर्वालु, गरिकेगड्डि । ता०-अरुगम् पिल्लु । इं०-क्रीपिंग साइनोडन Creeping Cynodon. लै०-साइनोडन डेकटिलन Cynodon Dactylon.

नीलीदूब-शीतल, कडवी, मधुर, कसैली और कफ, पित्त, रुधिरविकार, विसर्प, तृषा, दाह तथा त्वचाके रोगोंको नष्ट करती है ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

विवरण ।

नीलीदूब-जंगलमें बहुत होती है। भूमिमें दूबकी बेलसी चलती हैं और गाठ गांठपर जड भी पकडती जाती है, उसको दूबके नाल कहते हैं, ऊपरको नहीं उठती और पृथ्वीपर ही छत्तेसे फैल जाती हैं, पत्ते नालोंपर छोटे छोटे और लम्बे लगे होते हैं और इसके नाल बडे लम्बे लम्बे फैलते चले जाते हैं, विशेष करके दूब पशुओंके भक्षणके लिये हैं, इस कारण यह सम्पूर्ण भारतवर्षमें प्रसिद्ध है ॥

अथ श्वेतदूर्वा ।

श्वेतदूर्वा तु गोलोमी शीतवीर्या च कथ्यते शुक्ला दूर्वा कषाया स्यात् स्वादी व्रण्या च जीवनी । तिक्ता हिमा विसर्पास्रतृट्पित्तकफदाहहृत् ॥ १६४ ॥

श्वेतदूर्वा, गोलोमी, शतवीर्या, (गण्डाली, शकुलाक्षक, सितदूर्वा, शतपर्वा, सितालता, सिता, श्वेता, सिताख्या, चंडा, भद्रा, भार्गवी, दुर्मरा, गौरी विघ्नेशानकान्ता, अनन्ता, विद्या, श्वेतकाण्डा, प्रचण्डा, सहस्रवीर्या, सहस्रकाण्डा, सहस्रपर्वा, सुरवल्लभा, शुभा, सुपर्वा, सितच्छन्दा, स्वच्छा और कच्छान्तारुहा) ये सफेद दूबके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सफेद दूब। बं०-सादा दूर्वा। म० श्वेत दूर्वा, पांढरी हरियाली । गु०-धोलीध्रो। क०-विलियकरुके तै०-परिकेगड्डि ॥

सफेददूब-कसैली, मधुर, व्रणमें हितकारी, जीवनरूप, कडवी, शीतल और विसर्प रक्तविकार, तृषा, पित्त, कफ, तथा दाहको नष्ट करती है ॥ १६४ ॥

विवरण ।

सफेद दूबका भी नीली दूब अर्थात् हरी दूबका सा जगह २ कहीं कहीं कोई छत्ता हो जाता है। वह बहुत सफेद होती है, परन्तु सब आकृति हरीही दूब कीसी होती है । गणेशादिक देवताओंकी पूजाके लिये तन्त्रोंमें बहुत जगह लिखी है, परन्तु यह बहुत थोडी मिलती है ॥

अथ गण्डदूर्वा (गांडरदूब)

गण्डदूर्वा तु गण्डाली मत्स्याक्षी शकुलाक्षकः । गण्डदूर्वा हिमा लोहद्राविणी ग्राहिणी लघुः ॥१६५॥ तिक्ता कषाया मधुरा वातकृत्कटुपाकिनी । दाहतृष्णाबलासास्रकुष्ठपित्तज्वरापहा ॥ १६६ ॥

गंडदूर्वा, गंडाली, मत्स्याक्षी, शकुलाक्षक, (तीव्रा, मत्स्याक्षिका, जलस्था, ग्रन्थिपर्णी, बाह्री. शकुलादनी; अतितीव्रा, मत्स्याली, ग्रन्थिला, वारुणी, मतिनेत्रा, श्यामग्रन्थि, सूचीपत्रा, श्यामकाण्डा कलाया, शकुलाक्षी, चित्रा और शकुलाक्षक) ये गांडरदूर्वाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-गांडरदूब । बं०-गेंटेदूर्वा । म०-गंडूर दूर्वा, गांठीहरळी । गु०-गांठवालीध्रो मंडूरध्रो । क०-मीनमत्ते । तै०-पोन्नगण्डी । ता०-काटटुं पिल्लु ॥

गांडरदूब-शीतल लोहद्रावक, ग्राही, हलकी, कडवी, कसैली, मधुर, वातकारक, पाकमें चरपरी और दाह, तृषा, कफ रुधिरविकार, कोढ, पित्त तथा ज्वरको नष्ट करती है ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

विवरण ।

गांडर एक प्रकारकी घास होती है, इसके क्षुप दो दो तीन तीन फुट ऊँचे हो जाते हैं, जलाशयके स्थानमें कोसोंतक लगातार इसके खेत होते हैं, इसके तृण कांसके समान लम्बे २ होते हैं, घरोंके छप्पर आदि इसीके तृणोंसे छाये जाते हैं, इसीकी जडका खस होता है ॥

अथ विदारीकन्दः ।

वाराहीकन्द एवान्यैश्चर्मकारालुको मतः । अनूपसम्भवे देशे वाराह इव लोमवान् ॥ १६७ ॥ विदारी स्वादुकन्दा च सा तु क्रोष्ट्री सिता स्मृता । इक्षुगन्धा क्षीरवल्ली क्षीरशुक्ला पयस्विनी ॥ १६८ ॥ वाराहवदना गृष्टिर्वदरेत्यपि कथ्यते । विदारी मधुरा स्निग्धा बृंहणी स्तन्यशुक्रदा ॥ १६९ ॥ शीता स्वर्या मूत्रला च जीवनी बलवर्णदा । गुरुः पित्तास्रपवनदाहान् हन्ति रसायनी १७०

जहां अधिक पानी होता है अर्थात् अनूपदेशमें, सुअरके सदृश रोमवाली बाराहीकन्द होता है । कोई कोई उसको चर्मकारालुक भी कहते हैं ॥

वाराहीकन्द, चर्मकारालुक, विदारी, स्वादुकन्दा, क्रोष्ट्री, सिता, गरईक्षुन्धा,क्षीरवल्ली, क्षीरशुक्ला, पयस्विनी, वाराहवदना, गृष्टि, वदरा, (वृष्यकन्दा, त्रिपर्णा, शुक्ला, गजवाजिप्रिया, वदरा, विदारिका, शृगालिका, वृष्यवर्द्धिनी, विडाली, वृष्यवल्लिका, भूकूष्माण्डी, स्वादुलता, गजेष्टा, वाजिवल्लभा, गन्धफला, वृक्षवल्ली और भूमिकूष्मांड), ये विदारीकन्दके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-विदारीकन्द, वाराहीकन्द । बं०-भुंईकुम्हडा । म०-भुइकुहळा । क०-नेलकुंवला । गु०-विदारीकन्द । तै०-नलगुबुंड । लै०-प्युरेरियाटयुबरोजा Puraia Tuberosa.

विदारीकन्द-मधुर, चिकना, पुष्टिकारक, दुग्धवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, शीतल, स्वरको हितकारी, मूत्रको वढानेवाला, जीवनरूप, बल तथा वर्णको देनेवाला, भारी, रसायन और पित्त, रुधिरविकार, वात तथा दाहनाशक है ॥ १६७ ॥ १७० ॥

विवरण ।

विदारीकन्दकी बेल अनूपदेशके जंगलोंमें होती है, कोई कोई उसको चर्मकारालुक भी कहते हैं, यह कंद वराहके समान रोमयुक्त उत्पन्न होता है पत्ते बडे बडे घुइयांके समान होते हैं, इसके नीचे जडमें बहुत बडा कन्द निकलता है, उसका रंग लाली लिये होता है, दूसरे क्षीरविदारीकन्दकीभी बेलही चलती है, शाखामें सात सात आठ आठ होते हैं, कन्दका रंग लाल और सफेद होता है ॥

अथ मुशलीकन्दः ।

तालमूली तु विद्वद्भिर्मुशली परिकीर्तिता । मुशली मधुरा वृष्या वीर्योष्णा बृंहणी गुरुः । तिक्ता रसायनी हन्ति गुदजान्यनिलं तथा ॥ १७१ ॥

तालमूली, मूशली, (खलनी, तालमूलिका, तालिका, अर्शोघ्नी, ताली, सुवहा, तालपत्रिका गोधापदी, हेमपुष्पी, भूताली, दीर्घकान्दिका, तालपत्री, कांचनपुष्पिका, महावृष्या, वृष्यकन्दा और खर्जूरी) ये मूसलीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मूसली श्याम, मूसली सफेद । बं०-तालमूली । म०-काळी मुसळी, पांढरी मुसळी । क०-नेलताडी । गु०-मुसली तै०-

निलयतलि। लै०-होईपोक्सिजअर्चिओईडिस Hypoxis Orchiodes

मुसली-मधुर, वीर्यवर्द्धक, उष्णवीर्यवाली पुष्टिकारक, भारी, कडवी, रसायनरूप और गुदजरोग (बवासीर) तथा वातनाशकहै॥ १७१

विवरण।

काली मुसली और सफेद मुसली इन भेदों से दो प्रकारकी है। इसमें सफेद मुसलीकी अपेक्षा काली मुसली उत्तम है। काली मुसलीके क्षुपका स्वरूप इस प्रकारका होवा है—जैसे कि, चार पांच पत्तोंवाला खजूरका नवीन विरुवा होता है, इसमें छोटे २ पीले फूल आते हैं, उसकी जडके नीचे अँगुलीके समान मूली होती है, उसके ऊपरकी छाल भूर रंगकी होती है, भीतरका गर्भ सफेद रंगका निकलता है, उनको मुसली कहते हैं॥

अथ शतावरी महाशतावरी च।

शतावरी बहुसुता भीरुरिन्दी वरी वरी। नारायणी शतपदी शतवीर्या च पीवरी ॥ १७२ ॥ महाशतावरी चान्या शतमूल्यर्द्धकण्टिका। सहस्रवीर्या हेतुश्च ऋष्यप्रोक्ता महोदरी। शतावरी गुरुः शीता तिक्ता स्वाद्वी रसायनी ॥१७३॥ मेघाऽग्निपुष्टिदा स्निग्धा नेत्र्या गुल्मातिसारजित्। शुक्रस्तन्यकरी बल्या वातपित्तास्रशोथजित् ॥ १७४ ॥ महाशतावरी मेध्या हृद्या वृष्या रसायनी शीतवीर्या निहन्त्यर्शोग्रहणीनयनामयान् ॥ १७५ ॥

शतावरी, बहुसुता, भीरु, इंदीवरी, बरी, नारायणी, शतपदी, शतवीर्या, पीवरी, (शतमूली, महाशीता, भीरुपत्री, अहेरु, अभीरु, अभीरुपत्री, महापुरुषदन्ता, रंगिणी, द्वीपिशत्रु, ऋष्यगता, कांचनकारिणी, मदभंजिनी, पीवरा, वृष्या, दिव्या, द्वीपिका, दरकण्टिका, सूक्ष्मपत्रा, सूक्ष्मपत्रिका, सुपत्रा, बहुमूला, शताह्वया, द्वीपशत्रु- स्वादुरसा, शताह्वा. लघुपर्णिका, जटा- आत्मगुप्ता, मूला, महौषधी, मधुरा, केशिका, शतपत्रिका, विश्वस्था, वैष्णवी, कार्ष्णी, वासुदेवप्रियंकरी, दुर्मना, तैलवल्ली, अर्धकण्डिका और सुपत्रिका) ये शतावरीके संस्कृत नाम हैं॥

महाशतावरी, शतमूली, अर्द्धकण्डिका, सहस्रवीर्या हेतु, ऋष्यप्रोक्ता, महोदरी, (सुरसा, महापुरुषदंतिका, वीरा, तुरंगिणी, बहुपत्रिका, उर्ध्वकण्ठी, महावीर्या, फणिजिह्वा महती, सुवीर्य और स्वादुरस्या) ये बडी शतावरीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी०—शतावर, बडी शतावर। बं०—शतमूली। म०—शतावरी, शतमूली। सहस्रमूली। गु०-सेमुखा, महाशतावरी। क०—किरियआसडी। तै० एदट्टुमट्टी, टडा। फा०—गुर्जदम्ती,। अ०—शकाकुलमिश्री। इं०—ए. रेसीमोमस A. Racemosus लै०—एड्सकेन्डेन्स Adskendens

शतावर—भारी, शीतल, कडवा, मधुर, रसायनरूप, बुद्धिके लिये उत्तम, अग्निवर्द्धक, स्निग्ध, नेत्रोंको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, दुग्धको बढानेवाला, बलदायक और गुल्म, अतिसार, वात, पित्त, रक्तविकार तथा शोथनाशक है॥

बडा शतावर—बुद्धिके लिये उत्तम, हृदयको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, रसायनरूप, शीतवीर्य और बवासीर, संग्रहणी तथा नेत्ररोगनाशक है॥ २७२ ॥ १७५ ॥

विवरण।

शतावरीकी बेल जंगलोंमें होती है, बेलका रंग सफेद लिये होता है, पत्ते अत्यन्त छोटे २ सोयेके पत्तोंके समान होते हैं। इसकी बेलको कोई २ वैद्य लोग एकलकण्ठी कहते हैं। इसमें कांटे बहुत होते हैं। फूल सफेद छोटे होते हैं। बडी शतावरी भी इसी प्रकारकी होती है, इससे कुछ अधिक बडी होती है और इसकी जड अनन्त होती है और कुछ भेद नहीं होता शतावरी वर्षाके आरम्भमें हरी होती है और फूल आते हैं। एक वृक्षके नीचे सैकडों जड होती है,उसेही शतावरी कहते हैं॥

अथाश्वगन्धा ।

गन्धान्ता वाजिनामादिरश्वगन्धा हयाह्वया । वराहकर्णी वरदा बलदा कुष्ठगन्धिनी ॥ १७६ ॥ अश्वगन्धाऽनिलश्लेष्मश्वित्रशोथक्षयापहा । बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णाऽतिशुक्रला१७७

वाजिगन्धा, अश्वगन्धा हयाह्वया, वराह कर्णी, वरदा, बलदा कुष्ठगन्धिनी और जितने अश्ववाचक शब्द हैं वे सब. (वाजिगन्धा, कटुका, वश्वावरोहक, वाराहकर्णी, तुरगी, बल्या, वाजिधरी, हया, अश्वकन्दिका. कांबुका, अश्वात्ररोहिका, बलजा, वाजिनी, अवरोहिका, पुष्ठिदा, पुष्टिपीवरापलाशपर्णी, वातघ्नी, श्यामला, कामरूपिणी, काला, प्रियंकरी, गन्धपत्री, हयाप्रिया, वाराहपत्री, वरगात्र. करी, और कुष्ठगन्धा) ये असगन्धके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्ही-असगन्ध । बं०-अश्वगन्धा । म०-आसगन्ध । गु०-असोंद ! तै०-तिह्लिआंद्रा । क०-अंगरबरू । फा० मेहेमन् वररी इं०-विंटरचेरी Winter Cherry लै०-फाइसेलिस सोम्निफेरा PhisalisSomnffera,

असगन्ध-बलदायक, रसायनरूप, कडवी, गरम, वीर्यको अत्यन्त बढानेवाली और वायु, कफ, श्वेत, कोढ, सूजन तथा क्षयको क्षय करती है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

विवरण ।

असगगंधके क्षुप छोटे छोटे जंगलमें और पहाडमें होते हैं इसके पत्ते लंबे लम्बे होते हैं, फल पनसोंखेके समान गोल होते हैं, उसके नीचे छोटी मूलीके समान कन्द होता है; उस कन्दको निकालकर सुखा लेते हैं, उसीका नाम असगन्ध है ॥

अथ पाठा (पाढ)।

पाठाऽम्बष्ठाऽम्बष्ठकी च प्राचीना पापचेलिका । एकाष्ठीला रसा प्रोक्ता पाठिका वरतिक्तिका ॥१७८॥ पाठोष्णा कटुका तीक्ष्णा वातश्लेष्महरी लघुः। हन्ति शूलज्वरच्छर्दिकुष्ठातीसारहृद्रुजः । दाहकण्डूविषश्वासक्रिमिगुल्मगरव्रणान् ॥ १७९ ॥

पाठा, अम्बष्ठा, अम्बष्ठकी, प्राचीना, पापचेलिका, एकाष्ठिला, रसा, पाठिका, वरतिक्तिका, (पापचेली, कुचेली, कुचेला, छिन्नवेधिका, अंबष्ठिका, यूथिका, स्थापनी, श्रेयसी, विद्धकर्णिका, तिक्तपुष्पा, बृहत्तिका, शिशिरा, वृकी, मालती, वरा, देवी, घृतपर्णी, तिक्ता, विद्धकर्णी, अविद्धकणा, सुस्थिरा, प्रतानिनि, वत्सादिनी, मालवी, त्रिशिरा, विवृत्त, वृत्तपर्णी, रक्तघ्नी, विषहन्त्री, महौजसी. रुचिष्या, दीपनी और वह्निका) ये पाढके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-पाढ । बं०-आकनादि । म०-पहाडमूळ । क०-पाठा । तै०-पाढचेट्टु । गु०-कालीपाट । इं०-परारुट् prroroot लै०-सिसाम्पिलोसपरिरा Cissampelosparera

पाढ-गरम, चरपरी, तीक्ष्ण, हलकी और वात, कफ, शूल, ज्वर, वमन, कोढ, अतिसार, हृदरोग, दाह, खुजली, विष, श्वास, क्रमि, गुल्म और विषैला व्रण इन सबको नष्ट करती है ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

विवरण ।

पाढकी बेल वनोंमें होती है, पत्ते कुछ गोल गोल होते हैं, जहांसे पत्ते निकलते हैं उनकी जडहीमेंसे श्वेत और सूक्ष्म मोरके समान फूल निकलते हैं. फल मकोयके समान लाल रंगके होते हैं और वांगकी जडको लघु पाठा कहते हैं तथा वांगकी भी बेलही होती है, पत्ते कंजीके समान होते हैं, कंजीके पत्ते ऊपर हरे और नीचे सफेद होते हैं, परंतु वांगके पत्ते ऐसे नहीं होते, आकार गोल और सब कंजीके समान कुछेक पीलापन लिये होते हैं, फूल-सूक्ष्म और सफेद होते हैं, फूल पीलूके सदृश होते हैं ॥

अथ श्वेता त्रिवृत (निसोत, तिधार)।

श्वेता त्रिवृत्ता भण्डी स्यात्रिवृता त्रिपुटाऽपि च। सर्वानुभूतिः सरला निशोत्रा रेचनीति च ॥१८०॥ श्वेता त्रिवृद्रेचनी स्यात् स्वादुरुष्णा समीरहृत्। रूक्षा पित्तज्वरश्लेष्मपित्तशोथोदरापहा ॥१८१॥

श्वेता, त्रिवृत्ता, भंडी, त्रिवृत्ता, त्रिपुटा, सर्वानुभूति, सरला, निशोत्रा, रेचनी, (सरा, सुबहा, त्रिभंडी,सरसा,सरणा, सहा, रोचनी, मालविका, श्यामा,मसूरी, अर्द्धचन्द्रा,विदला, सुषेली, कालिंगिका, कालमेषी, काली,त्रिबेला, त्रिवृत्तिका और सारा) ये निसोथके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सफेद निसोत । बं०-श्वेततेउडी। म०-निशोत्तर। गु०-धोलनिसोत्तर । फा०-तुरबुद । ता०-शिवदाई। क०-विळेतिगडे। इं०-टरबीथरूट Turbithroot लै०-आइपोमिया टरपीथम् Ipmea Turpethum

सफेद निशोत-रेचक (दस्तावर) मधुर, गरम रूखा और वात, पित्त, ज्वर, कफ, सूजन तथा उदररोगनाशक है ॥१८०॥१८१॥

विवरण।

सफेद निसोतकी बेल जंगलमें होती है, घटाकार सफेद फूल आते हैं, गोल गोल फल आते हैं, उनमें चार चार बीज होते हैं, पत्ते नोकदार गोल होते हैं, इसकी बेलकी लकडीमें तीन धारें होती हैं, निसोत तीन प्रकारका होता है, परन्तु सफेद सबसे उत्तम है ॥

अथ श्यामा त्रिवृत्त (कालानिसोथ)

त्रिवृच्छयामाऽर्द्धचन्द्रा च पालिन्दी च सुषेणिका। मसूरविदला कोलकैषिका कालमेषिका ॥ १८२ ॥ श्यामा त्रिवृत्ततो हीनगुणा तीव्रविरेचिनी। मूर्च्छादाहमदभ्रान्तिकण्ठोत्कर्षणकारिणी।१८३।

श्यामा, त्रिवृत्, अर्द्धचन्द्रा, पालिन्दी, सुषेणिका, मसूरविदला, कोलकैषिका और कालमेषिका ये काले निसोतके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कालानिसोत, श्यामनिलर। बं०-श्या तेउडी। गु०-कालीनसोतर। क०-केप्पनयतिगडे ॥

कालानिसौत-सफेद निसोतसे हीन गुणोंवाला, अत्यन्त दस्तावर और मूर्च्छा, दाह, मद, भ्रम, तथा कण्ठको घिसना इन सबको करनेवाला है ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

विवरण।

कालेनिसोतकी भी लता ही होती है, फूल कालापन लिये बैंजनीसे होते हैं, पत्ते गोल गोल नोकदार उसी प्रकारके होते हैं, परन्तु सफेदसे कुछ छोटे और फलभी कुछ छोटे होते हैं और सब आकार इकसा होता है, एक निसोत लाल फूलका भी होता है, परन्तु वैद्योंने सफेदकी अधिक प्रसंसा की है ॥

अथ लघुदन्ती वृहद्दन्ती च।

लघुदन्ती विशल्या च स्यादुदुम्बरपर्ण्यपि। तथैरण्डफला शीघ्रा श्येनघण्टा घुणप्रिया। वाराहाङ्गी च कथिता निकुम्भश्च मकूलकः ॥ १८४ ॥ द्रवन्ती साम्बरी चित्रा प्रत्यक्पर्ण्यर्कपर्ण्यपि। चित्रोपचित्रा न्यग्रोधी प्रत्यक्छ्रेण्यरवुकपर्ण्यपि ॥ १८५ ॥ दन्तीद्वयं सरं पाके रसे च कटु दीपनम्। गुदांकुराश्मशूलार्शःकण्डूकुष्ठविदाहनुत्। तीक्ष्णोष्णं हन्ति पित्तास्त्रकफशोथोदरक्रिमीन्॥१८६।

लघुदन्ती, विशल्या, उदुंबरपर्णी,एरंडफला, शीघ्रा, श्येनघंटा, घुणप्रिया, वाराहांगी, निकुम्भ, मकूलक, (दन्ती, प्रत्यक्पर्णी, दंतिका, श्वेतघंटा, निकुम्भी,निःशल्या, निकुंभ, निष्कुम्ब, नागस्फोता, दंतिनी, उपचित्रा, भद्रा, रूक्षा, रेचनी, अनुकूला, चक्रदन्ती, मधुपुष्पा, तरुणी,एरंडपत्री,एरंडत्रिका,विशोधिनी,कुम्भी और उदुंबरदला) ये छोटी दन्तीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-दंती, छोटी दंती बं०-दन्तीगाछ। म०-लघुदन्ती। गु०-ताढानो नेपालो। क०-दंते। तै०-दंतीचिट्टूटु। फा०-दंद। अ०-हबुलं मुलुक। इं०-क्रोटनसीड्स Crotten Seeds लै०-क्रोटन टिग्लियम् Crottentiglium.

द्रवन्ती, सांबरी, चित्रा, प्रत्यकपर्णी, अर्कपर्णी, चित्रोपचित्रा, न्यग्रोधी, प्रत्यक्च्छ्रेणी और जाखुकर्णी ये बडी दन्तीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बडी दन्ती, मुंगलाइ अण्ड। म०-बृहदन्ती। गु०-मोटोनेपालो। क०-दोड्डदन्ती। इं०-दिफिजिक नट्र The Phss icnut लै०-करकसमुल्टीफीडस Curcus Multfibus.

दोनों प्रकारकी दंती-दस्तावर, पाकमें तथा रसमें चरपरी, अग्निपदीपक, तीक्ष्ण, गरम और गुदाके रोग, पथरी, शूल, ववासीर, खुजली, कोढ, दाह, पित्त, रुधिरविकार, कफ, सूजन, उदररोग तथा कृमिरोगको नष्ट करती है ॥ १८४-१८६ ॥

अथ लघुदन्तीफलम् ।

क्षुद्रदन्तीफलं तु स्यान्मधुरं रसपाकयोः । शीतलं सृष्टविण्मूत्रं गरशोथकफापहम् १८७

छोटी दन्तीका फल-रस तथा पाकमे मधुर, शीतल, मलमूत्रको निकालनेवाला, विषजन्य सूजन और कफ नाशक ह ॥

विवरण ।

छोटी दन्ती और बडी दन्तीके क्षुप वनमें और उपवनमें उत्पन्न होते हैं, पत्ते छोटे छोटे और मोटे दलके होते हैं, सम्पूर्ण आकृति गूलरकीसी होती है, फूल महुवेके समान होते हैं, तीन तीन फल एकत्र लगते हैं, बडी दन्तीका बडा वृक्ष होता है, फल एरण्डके समान होते हैं, उनमेंसे अण्डीके समान बीज निकलते हैं, इसमें दूध होता है ॥

अथ जयपालः (जमालगोटा)

जयपालो दन्तिबीजं विख्यातं तिन्तिलीफलम । जयपालो गुरुः स्निग्धो रेची पित्तकफापहः ॥ १८८ ॥

जयपाल, दन्तिबीज, तिन्तिलीफल, (जैपाल, तिन्तिडीफल, मलद्रावि, निकुम्भाख्य, बीजरेचक, बीजरेचन, कुम्भीबीज, कुम्भिनीबीज, घण्टानीबीच, घांटनीबीज, शोधिनीबीज और चक्रदन्तीबीज) ये जमालगोटेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-जमालगोटा बं०-जयपाल। म०-जयपाळ। गु०-नेपालनां बीज। क०-नेपाल। फा०-तुख्मे पेदुअंजीरखताई। अ०-हवुस सलातीन। इं०-पार्जिग कोटन Parjig Croton Olium Crotonis. जमालगोटा-भारी, चिकना, रेचक, दस्तावर, पित्त तथा कफनाशक है ॥ १८८ ॥

विवरण ।

जमालगोटे दन्तीके बीज होते हैं, इसकी मीगमें तेल होता है, वैद्यलोग उसको शुद्धकरके उसकी चिकनाई दूर करदेते हैं तब वह खानेके योग्य होता है, इसका वृक्ष छोटा दो तीन फुटके अनुमानका होता है यह दो प्रकारका होता है, एकको दन्ती, दूसरेको द्रवन्ती (बडी दन्ती), कहते हैं, लघुदन्तीके पत्ते अडूसेके पत्तोंसे कुछ समतावाले होते हैं और बडी दन्तीके बडे और कटवां होते हैं ॥

अथ इन्द्रवारुणी (फरफेंदुआ) ।

ऐन्द्रीन्द्रवारुणी चित्रा गवाक्षी च गवादिनी । वारुणी च पराप्युक्ता सा विशाला महाफला ॥ १८९ ॥ श्वेतपुष्पा मृगाक्षी च मृगैर्वारु मृगादनी । गवादिनीद्वयं तिक्तं पाके कटु सरं लघु ॥ १९० ॥ वीर्योष्णं कामलापित्तकफप्लीहोदरापहम् । श्वासकासापहं कुष्ठगुल्मग्रन्थिव्रणप्रणुत् । प्रमेहमूढगर्भामगण्डामयविषापहम् ॥ १९१ ॥

ऐन्द्री, इंद्रवारुणी, चित्रा, गवाक्षी, गवादिनी, (इंद्रवारुणिका, विशाला, गजचिर्मिटा, मृगैर्वारु, क्षुद्रसहा, चित्रपला भरा, पिटक्कोटी-मृगादिनी, इन्द्रा, अरुणा, इन्द्रचिर्मिटा, सूर्या,

विषघ्नी, गणकर्णिका, माता, सुककर्णिका, सुफला, तारका, वृषभाक्षी, पीतपुष्पा, इन्द्रवल्लरी, हेमपुष्पी, क्षुद्रफसा, वाकलप्रिया, रक्तैर्वारु, विपलता, शक्रवल्ली, बिषभाक्षी, अमृता, विषवल्ली, चित्रवल्ली, बहुफला, कपिलाक्षी, मृगेक्षणा, और मृगेक्ष्णा) ये इन्द्रायनके संस्कृत नाम हैं ।

वारुणी, विशाला, महाफला, श्वेतपुष्पा, मृगाक्षी, भृगैर्वारु, मृगादिनी, (महेन्द्रवारुणी. काया, आत्मरक्षा, चित्रफला, तुंबसी, त्रपुसी, रम्या, महेन्द्री, त्रपुसा, चित्रवल्ली, दीर्घवल्ली, बृहत्फला, बृहद्वारुणी, सौम्या, श्वेतपुष्पा, हस्तिदन्ती, कटुरता, कपिलाक्षी, कुम्भसी, उरुप्रिया, चित्रला, देवी और राजचिर्भिरा) ये बडी इन्द्रायणके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-इन्द्रायन, फरफेंदृ, बडी इन्द्रायणी । बं०-राखाल शशा, । क०-हामेके हिरियामाहामेके । म०-लघुइन्द्रावण, कवंडळ, थार काँडवल, गु०-इन्द्रायणां, मोटो इन्द्रायणां । तै०-एतिपुच्छा, । फा०-खुर्यजातलख । अ०-हंजाल । इं०-कोलोसिन्थ Colocynth. लै०-सिट्रलस कोलोसिन्थिस Citrullus. Colocynthis.

दोनों प्रकारके, इंद्रायण-कडवे, पाकमें चरपरे, दस्तावर, हलके, उष्णवीर्य और कामला, पित्त, कफ, प्लीहा, उदररोग, श्वास, खाँसी, कोढ, गुल्म, गांठ, व्रण, प्रमेह, मूढगर्भ, आम, गण्डमाला और विषरोगनाशक हैं ॥ १८९-१९१ ॥

विवरण ।

छोटी इंद्रायण और बडी इंद्रायणकी बेल अधिकतर केरोंमें और खारी भूमिमें उत्पन्न होती हैं, पत्ते लम्बे २ बीचमें कटेसे होते हैं फूल सूक्ष्म कांटेयुक्त लाल रंगका छोटी नारंगीके समान अत्यन्त शोभायमान होता है-दूसरी इन्द्रायण रेतीली भूमिमें उत्पन्न होती है, उसका फल पीले रंगका होता है ॥

अथ नीली (लील) ।

नीली तु नीलिनी तूली कालदोला च नीलिका । रञ्जनी श्रीफला तुत्था ग्रामीणा मधुपर्णिका ॥ १९२ ॥ क्लीतका कालकेशी च नीलपुष्पा च सा स्मृता । नीलिनी रेचनी तिक्ता केश्या मोहभ्रमापहा ॥ १९३ ॥ उष्णा हन्त्युदरप्लीहवातरक्तकफानिलान् । आमवातमुदावर्तं मदं च विषमुद्धतम् ॥१९४॥

नीली, नीलिनी, तूली, कालदोला, नीलिका, रंजनी, श्रीफली, तुत्था, ग्रामीणा, मधुपर्णिका, क्लीतका, कालकेशी, नीलपुष्पा, (नीला, मेघवर्णा, कुतसला, दूली, क्लीतकिका, काला, नीलपुष्पका, तूणी, दोला, दोलिका, द्रोणिका, अक्लीका, ग्रामणी, ग्रामिणी, द्रोणी, भेला, तुच्छा, नीलपत्री, राज्ञी, नीलपुष्पी, काली, श्यामा, शोधिनी, श्रीफसा, ग्राम्या, भद्रा, भारवाहा, माची, कृष्णा, व्यंजनकेशी, महाफला, असिता, क्लीतनी, केशी, चारटिका, गन्धपुष्पा, श्यामलिका, रंगपत्री, महाबला, स्थिररंगा, रंगपुष्पी, वृत्तिका, अनञ्जकेशिका, चारटी, विजया, गन्धपुष्पी और स्थिररागा) वे नीलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-नील, लील । बं०-नीलगच्छी । म०-लघु नीली, थोरली, नीली । गु०-गली । तै०-नीलीचेट्टु । क०-हिरीयनीली । इं-इंडिगो Indigo. लै०-इंडिगोफेरा कोर्डिफोलिया Iudigofera Cordifolia. ता०-अविरि ।

नीली-रेचके, कडवा, केशोंको हितकारी, गरम और मोह, भ्रम, उदररोग, प्लीहा, वात, रुधिरविकार, कफ, आमवात, उदावर्त्त, मद तथा बडे भारी विषको भी नष्ट करता है ॥ १९२-१९४ ॥

विवरण ।

नीलके क्षुप छोटे २ किसानलोग खेतोंमें बोते हैं । पत्ते तरफुंखके समान नीले और

कुछेक कालापन लिये होते हैं। उसकी फली टेढी और गोल होती है, इसकी डाली और पत्तोंकी कुट्टीकर कुण्डोंमें पानी भर उनमें गलाते हैं, तब उसका नील बनाते हैं, वह नील रंगके काममें बहुत आता है ॥

अथ शरपुंखः (सरफोंका)।

शरपुंखा प्लीहशत्रुर्नीलीवृक्षाकृतिश्च सः। शरपुङ्खो यकृत्प्लीहगुल्मव्रणविषापहः। तिक्तः कषायः कासास्रश्वासज्वरहरो लघुः ॥ १९५ ॥

शरपुंख, प्लीहशत्रु, नीलीवृक्षाकृति, (कालशाक, प्लीहारि, कालीका, कांडपुंखा, वाणपुंखा, इषुपुंखिका, सायंकपुंखा और इषुपुंखा) ये सरफोंकाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-सरफोंका, सफेद सरफोंका। बं०-वननील। म०-उन्हाळी। गु०-शरपंखो। क०-वेरळकोगिग। तै०-पाँपाराचेट्टु। ता०-वळलू। इं०-पर्पल्टेप्रोजिहा Purpete phrosla. लै०-टेफ्रोजिया परपूरिया Teqhrosia Purpurea. सरफोंवा-कडवा, कसेला, हलका और यकृत्, प्लीहा, गुल्म, व्रण, विष, खाँसी, रुधिर, बिकार, श्वास तथा रवर नाशक है ॥ १९५ ॥

विवरण।

सरफोंकेके क्षुप जंगलमें छोटे २ उत्पन्न होजाते हैं, पत्ते नीलके पत्तोंके समान नीले २ होते हैं, फूल साल होता है, फलियाँ छोटी २ लगती हैं, उन फलियोंमें बहुत नन्हें २ रुयें होते हैं और दूसरी जातिकी फलीमें रुयें नहीं होते, सफेद सरफोंकेका क्षुप पृथ्वीपर फैला हुआ होता है, उसके पत्ते कुछेक छोटे होते हैं, फूल सफेद रंगके आते हैं ॥

अथ यवासः (जवासा) दुरालभा च।

यासो यवासो दुस्पर्शो धन्वयासः कुनाशकः। दुरालम्भा दुरालम्भा समुद्रान्ता च रोदिनी ॥ १९६ ॥ गन्धारी कच्छुराऽनन्ता कषाया हरिविग्रहा। यासः स्वादुः सरस्तिक्तस्तुवरः शीतलो लघुः ॥ १९७ ॥ कफमेदोमदभ्रान्तिपित्तास्रक्कुष्ठकासजित्। तृष्णाविसर्पवातास्रवमिज्वरहरः स्मृतः। यवासस्य गुणैस्तुल्या बुधैरुक्ता दुरालभा ॥ १९८ ॥

यास, यवास, दुःस्पर्श, धन्वयास, कुनाशक, (यवासक, अनन्ता, बालपत्र, अधिकंटक, दूरमूल, समुद्रान्त; दीर्घमूला, मरुद्भव, कंटको बहुकण्टक, क्षुद्रेंगुदी, रोदनिका, विषघ्न, कण्टकालुक, त्रिपर्णिका, गन्धारी, वासन्त, वनदर्भ, विवर्णक, तीक्ष्णकंटक, और सूक्ष्मपत्र) ये जवासेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-जवासा। बं०-यवासा। कांटेचुबुक, तांवडा तमासा,। गु०-जवासो। क०-तोरेइंगलु। फा०-फारक्युशन। अ०-अलगुलहाज। लै०-अल्हेजाईमौरोहम Alhagimaurohum

दुरलभा, दुरालम्भा, समुद्रान्ता, रोदिनी गान्धारी, कच्छुरा, अनन्ता, कषाया, हरिविग्रहा, (दुरभिग्रहा, दुःस्पर्शा कुनाशक, धनुर्यास, युवस, धन्यवास, विकटक, आत्ममूली, पद्ममुखी, ताम्रमूला, धन्वी, धन्वयवासक, प्रबोधिनी; सूक्ष्मदला, विरूपा, दुर्लभा दुष्प्रधर्षा, ताम्रमूली, मरुजन्मा, उष्ट्रभक्ष्या, मृदुपर्णा, कषायका, प्राह्लादनी, फणिहारी, विशारदा, विग्रहा, अजाभक्ष्या और ग्राहिणी) ये धमासेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-धमासा। बं०-दुरालभा। म०-धमासा। गु०-धमासो। क०-बल्लीदुरुवे। तै०-पिलरेगट्टि। फा०-वादावर्द। अ०-शुकाई लै०-फगोनिया अरेबिका Fagonia arabica.

जवासा-स्वादिष्ट, दस्तावर, कडवा, कसेला-शीतल, हलका और कफ, मेद, मद, भ्रम, पित्त; रुधिरविकार, कोढ, खाँसी, तृषा, विसर्प, वातरक्त, वमन तथा ज्वरको नष्ट करता है। जो गुण जवासेमें हैं वे ही गुण पंडितोंने धमासेमें भी कहे हैं ॥ १९५॥१९८॥

विवरण ।

धमासा-भी जवासेहीकी आकृतिका होता है और यह भी जलाशयके समीपकी भूमिमें अधिक उत्पन्न होता है, परन्तु जवासेके काटें कुछेक धमासेसे बड़े होते हैं, पत्तोंमें भी कुछ अधिकता पाई जाती है, वर्षाऋतुके आदि अन्तमें यह फलता फूलता है और वर्षा ऋतुमें तो आपसे आपही जल जाता है ॥ धमासा रेतीली और जलाशयके निकट, खादरकी भूमिमें अधिकतासे होता है, पत्ते बहुत छोटे और उनपर बहुत छोटेही छोटे फल लगते हैं और छोटे छोटे काँटोंसे परिपूर्ण है। पृथ्वीसे हाथ हाथपर ऊँचे क्षुप होते हैं ॥

अथ मुण्डी ।

मुण्डी भिक्षुरपि प्रोक्ता श्रावणी च तपोधना । श्रावणाह्वा मुण्डतिका तथा श्रवणशीर्षका ॥ १९९ ॥ महाश्रावणिकाऽन्या तु सा स्मृता भूकदम्बिका । कदम्बपुष्पिका च स्यादव्यथाऽतितपस्विनी ॥ २०० ॥ मुण्डी तिक्ता कटुः पाके वीर्योष्णा मधुरा लघुः । मेध्या गण्डापचीकृच्छ्रकृमियोन्यर्तिपाण्डुनुत् ॥ ॥ २०१ ॥ श्लीपदारुच्यपस्मारप्लीहमेदो गुदार्तिहृत् । महामुण्डी च तत्तुल्या गुणैरुक्ता महर्षिभिः ॥ २०२ ॥

मुण्डी, भिक्षु, श्रावणी, तपोधना, श्रवणाह्वा, मुंडतिका, श्रवणशीर्षका, (श्रवणा, भूतघ्नी, कलंकषा, कदम्बपुष्पा, अरुणा, मुंडीरिका, कुम्भला, प्रव्रजिता और परिव्राजिका) ये मुण्डीके संस्कृत नाम हैं ॥

महाश्रविका, भूकदम्बिका, अव्यथा, अतितपस्विनी, (महामुंडी, लोचनी, कदम्बपुष्पी, विकचा, क्रोडचूडा, पलंकषा, नदीकदम्ब मुंडाख्या. महामुण्डनिका, गाता, स्थविरा, लोतनी, भूकन्द, अलम्बुषा, वृद्धा, छिन्नग्रंथिका नीलकदम्बिका और वोडा) ये बडी मुण्डीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मुण्डी, छोटीमुण्डी, गोरखमुण्डी, बडीमुण्डी । बं०-मुंडिरी, मुण्डी, थुलकुली, बडीथुलकडी । म०-वरसवोंडी, वोडथरा । गु०-गोरखमुण्डी, मोटी गोरखमुण्डी । क०-कीयोबोडतर, हिरीबोडतर । तै-बोंडसरपुचेट्टु । ता०-काटक । अ०-कमादरयुस । इं०-स्फोरियंथस इंडिकस Sphorieanthus Indicus.

गोरखमुण्डो-पाकमें चरपरी, उष्णवीर्य, मधुर, हलकी, मेधाको हितकारी और गलगण्ड, अपची, मूत्रकृच्छ्र, कृमि, योनिकी पीडा, पाण्डुरोग. श्लीपद, अरुचि, अपस्मार, प्लीहा, मेद तथा गुदाकी पीडाको नष्ट करती है । बडी गोरखमुण्डीमें भी येही गुण हैं ॥ १९९-२०२ ॥

विवरण ।

मुण्डी और महामुण्डी तृणके समान प्रसर जातिकी वनस्पति है, पत्ते अंगुलीके समान लम्बे लम्बे होते हैं, फल कदम्बके समान अथवा मुरेठीके तुल्य किंवा घुटीके सदृश होते हैं ॥

अथ अपामार्गः (चिरचिटा) ।

अपामार्गस्तु शिखरी ह्यधःशल्यो मयूरकः । मर्कटी दुर्ग्रहा चापि किणिही खरमञ्जरी ॥ २०३ ॥ अपामार्गः सरस्तीक्ष्णो दीपनस्तिक्तकः कटुः । पाचनो रोचनश्छर्दिकफमेदोऽनिलापहः । निहन्ति हृद्रुजाध्मानकण्डूशूलोदरापचीः ॥ २०४ ॥

अपामार्ग, शिखरी, अधःशल्य, मयूरक, मर्कटी, दुर्ग्रहा, किणिही, खरमंजरी (शैखरिक, धामार्गव, प्रत्यक्पर्णी, कीसपर्णी, अपांगक, किणी, कीशपर्णी, शमत्कार, शैखरेय, अपामार्गव, केशपर्णी, स्थलमंजरी, प्रत्यक्पुष्पी, क्षारमध्यम, अधोघंटा, कान्तरिक, दुरविग्रह, वासिर, पराक्पुष्पी, कण्टी, कर्कटपिल्ली, कटुमञ्जरिका, अघाट, क्षुरक, पांडु-

कण्टक, नाल कण्ठ, कुब्ज और मालाकण्ठ) ये औंगाके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी-चिरचिटा, लटजीरा, औंगा । बं०-अपांग । म०--अघाडा, आघेडा । गु० आघेडो । क० -उत्तरणे । तै०--दुच्चीणिके । ता०--नायुरुवी । फा०--खारवासगोता । अ०--आत्मक । इं०-रफ्चेफट्री Rouphceafftree. लै०-एचिरेंथिसूएस्पिरा Achyranthis Aspera.

चिरचिटा--दस्तावर, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, कडवा, चरपरा. पाचक, रुचिकारक और वमन. कफ, मेद, वात, हृदयरोग, अफारा, बवासीर, खुजली, शूल, उदुररोगको नष्ट करता है ॥ २०३ ॥ २०४ ॥

विवरण ।

अपामार्ग अर्थात् चिरचिटेके क्षुप जङ्गलमें विना बोये जोतेही बहुत उत्पन्न होजाते हैं, पृथ्वीसे एकाएक हाथ दो दो हाथ ऊंचे हो जाते हैं, पत्ते गोल होते हैं, बीचमें एक सफेद रंगकी बाल निकलती है, उस बालपर छोटे छोटे काँटोंवाले बीज निकलते हैं ॥

अथ रक्तापमार्गः (लाल औंगा) ।

रक्तोऽन्यो वसिरो वृत्तफलो धामार्गवोऽपि च प्रत्यक्पर्णी केशपर्णी कथिता कपिपिप्पली ॥ २०५॥ अपामार्गोऽरुणो वातविष्टम्भी कफकृद्धिमः । रूक्षः पूर्वगुणैर्न्यूनः कथितो गुणवेदिभिः ॥२०६॥ अपामार्गफलं स्वादु रसे पाके च दुर्जरम् । विष्टम्भि वातलं रूक्षं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ २०७ ॥

रक्तापामार्ग, वसिर, वृत्तफल, धामार्गव, प्रत्यक्पर्णी, केशपर्णी, कपिपिप्पली, (क्षुद्रापामार्ग, अघट्टक, दुग्धनिका, रक्तविट, कल्पपत्रिका, क्षव, अधामार्गव, प्रत्यक्श्रेणी, स्वरच्छद, कूट, मर्कटपिप्पली, कुब्ज और दुरभिग्रह) ये लाल चिरचिटेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी- लाल चिरचिटा, लाल औंगा रक्तापाङ्ग । म०--तांबडा आघाडा, अघेडा । गु०--रातोअघेडो । क०--केंपीगुत्तरण ॥

लाल चिरचिटा वायुको रोकनेवाला, कफकारक, शीतल, रूक्ष और पूर्वोक्त चिरचिटेसे यह चिरचिटाको गुणज्ञपुरुषोंने हीन गुणवाला कहा है । चिरचिटेके बीजरसमें स्वादिष्ठ, पाकमें दुर्जर, विष्टम्भी, बातकारक, रूखे और रक्तपित्तको दूर करते हैं ॥२०५- २०७॥

विवरण ।

लाल चिरचिटा भी उसी प्रकारका होता है, इसके पत्ते कुछ कुछ गोल और लाल होते हैं, फूल पीले और फल लाल लाल बालपर लगे होते हैं, परन्तु उनके ऊपर काँटे भी होते हैं, इसप्रकार लाल और सफेद दो जातिका चिरचिटा होता है ॥

अथ कोकिलाक्षः (तालमखाना) ।

कोकिलाक्षस्तु काकेक्षुरिक्षुरः क्षुरकः क्षुरः । भिक्षुःकाण्डेक्षुरप्युक्त इक्षुगन्धेक्षुबालिका ॥ २०८ ॥ क्षुरकः शीतलो वृष्यः स्वाद्वम्लः पित्तलस्तथा । तिक्तो वातामशोथाश्मतृष्णादृष्टयनिलास्रजित् ॥ २०९ ॥

कोकिलाक्ष, काकेक्षु, इक्षुर, क्षुरक, क्षुर, भिक्षु. कांडेक्षु, इक्षुगन्धा, इक्षुबालिका, (कोकिलाक्षक, कोकिलनयन, शृङ्गाली, शृखली, शूकर, शृगालघण्टी, वज्रास्थि, शृंखला, वज्रकंटक, वज्र, शृंखलिका, पिकेक्षणा, पिच्छिला वीरतरु, त्रिक्षुर, गुक्रपुष्प और कुलाहक) ये तालमखानेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-तालमखाना । बं०- कुलियाखाडा । म०--विखारा । तै०--गोलिमिचद्दु । गु०--एखरो । क०--कुलुगोलिके । ता०--नीरमुळ्ळी । इं०-लांगलीव्ड् वालेरिया Longleaved Balaria. लै०- एष्टकेंथा लोंगिफोलिया Astercantha Longifolia

तालमखाना -शीतल, वीर्यवर्द्धक, मधुर, खट्टा, पित्तकारक, कडवा, और वातसंबन्धी आम, सूजन, पथरी, तुषा, नेत्ररोग तथा रुधिर विकारको नष्ट करता है ॥२०८॥२०९॥

विवरण ।

(कोलैया) तालमखानेके क्षुप प्रायः जलके निकट तथा चौमासेकी ताल तलैया और सूखे हुए सरोवरोंमें बहुत उत्पन्न होते हैं, पत्ते लम्बे लम्बे होते हैं, क्षुपोंपर कांटे बहुत होते हैं, गूमे के समान ठौर ठौर गांठें होती हैं उन गांठोंमें से जो बीज निकलते हैं, उन्हींको तालमखाना कहते हैं ॥

अथ अस्थिसंहारकः (हडसंघारी)

ग्रन्थिमानस्थिसंहारी वज्राङ्गी चास्थिशृंखला । अस्थिसंहारकः प्रोक्तो वातश्लेष्महरोऽस्थियुक् ॥ २१० ॥ उष्णः सरः कृमिघ्नश्च दुर्नामघ्नोऽक्षिरोगजित् । रूक्षः स्वादुर्लघुर्वृष्यः पाचनः पित्तलः स्मृतः ॥ २११ ॥ काण्डं त्वग्विरहितमस्थिशृंखलायामाषार्द्रं द्विदलमकञ्चुकं तदर्द्धम् । सम्पिष्टं तदनु ततस्तिलस्य तैले संपक्वं वटगमतीव वातहारि॥२१२॥

ग्रंथिमान्, अस्थिसंहारी, वज्रांगी, अस्थिशृंखला, (वज्रवल्ली, कुलिश, शिरालक, अमर, अस्थिसंहारक और क्रोष्टुघण्टिका) ये हडसंघारीके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी-हडजोडा, हडसंघारी । बं०--हाड भांगा । क०--कांढवेल । तै०-नाल्लरु । ता०--परंडै । गु०--हाडसांकल । लै०- विटिसक्वेडन ग्युलरिस Vitisquadron Gularis

हडसंघारी -हड्डियोंको जोडनेवाली, गरम, दस्तावर, रूखी, मधुर, हलकी, वीर्यको बढाने वाली, पाचक, पित्तकारक और वात, कफ, कृमि, बवासीर तथा नेत्ररोग नाशक है। इसकी लकडीकी छाल छीलकर शेष लकडी एक भाग और छिलके रहित गीली उडदकी दाल आधा भाग दोनोंको पीसकर बडी बनाकर तिलके तैलमें पकावे, यह पकी हुई बडी अत्यंत वात नाशक है ॥२१०-२१२॥

विवरण ।

हडसंहारीकी बेल- थूहरकी जातिसे सम्बंध रखती है, बेलमें चार छः अंगुल पर गांठ होती हैं, ये दुधारी, तिधारी, चौधारी और पंचधारी होती हैं, इनसे एक प्रकारकी हडसंहारीकी जाति होती है, कण्डवेलके भिन्न भिन्न भाग कण्डवेल होते हैं इसको संस्कृतमें काण्डवल्ली कहते हैं, शंकलके समान होती हैं इसलिये इसको हडसंहारी कहते हैं ॥

अथ कुमारी (घीकुँवार) ।

कुमारी गृहकन्या च कन्या घृतकुमारिका । कुमारी भेदिनी शीता तिक्ता नेत्र्या रसायनी ॥२१३॥ मधुरा बृंहणी बल्या वृष्या वातविषप्रणुत । गुल्मप्लीहयकृद्वृद्धिकफज्वरहरी हरेत् । ग्रन्थ्यग्निदग्धविस्फोटपित्तरक्तत्वगामयान्॥२१४॥

कुमारी, गृहकन्या, कन्या, घृतकुमारिका, (सहा, घृतकुमारी, दीर्घपत्रिका, अफला, सुरसा, स्थलेरुहा, तरणी, सुवहा, बहुपुत्री, अमरा, अजरा, कण्टकप्रावृता, विपुलस्रवा, ब्रह्मघ्नी, वीरा, भृंगेष्टा, तरुणी रामा, कपिला, अंबुधिस्रवा, सुकण्टका, स्थूलदला, अदला, मण्डला, माता, अतिपिच्छिला और कण्टकिनी) ये घीकुँवारके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--घीकुँवार, घीगुआर, कुआरपाठ । बं०- घृतकुमारी । म०-कोरफड, कोरकांडा । गु०-कुंवार । क०-लोयिसर । तै०-पिन्नगोरिण्टकलवन्द । ता०-कत्तालै । फा०-दरखते सिन्त । अ -मुसव्वर । इं०-बार्बेडोलजालोझ Barbadolsaloes लै०-आलाईबार्बडेन्सAlo ebarbadense

घीकुँवार-दस्तावर, शीतल, कडवा, नेत्रोंको हितकारी, रसायनरूप, मधुर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, और वात, विष, गुल्म, प्लीहा, यकृत् अंडवृद्धि, कफ, ज्वर, ग्रंथि अग्निदाह,

विस्फोटक, पित्त, रुधिरविकार तथा त्वचारोग नाशक है ॥ २१३ ॥ २१४ ॥

विवरण।

घीकुँवारके क्षुप रेतीली भूमिमें वा खतीली पृथ्वीमें अथवा नदीके तटके निकट अधिकता से उत्पन्न होते हैं, पत्ते लम्बे और अधिक मोटे होते हैं, पत्तोंके दोनों ओर कांटे होते हैं, उन पत्तोंके भीतर घीके समान गूदा रसभरा होता है पत्तोंकी नोक अनीदार होती है, घीकुँवार के क्षुपके मध्यसे एक डंडा निकलता है. उसमें लाल फूल आते हैं, इसी घीकुँवारके रससे एलुआ बनता है ॥

अथ श्वेतपुनर्नवा।

पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नी दीर्घपत्रिका। कटुः कषायानुरसा पाण्डुघ्नी दीपनी परा। शोफानिलगरश्लेष्महरी व्रण्योदर-प्रणुत् ॥ २१५ ॥

पुनर्नवा, श्वेतमूला, शोथघ्नी, दीर्घपत्रिका, (कठिल्ल, चिराटिका, वृश्चीरा, श्वेतपुनर्नवा, सितवर्षाभू, वर्षांगी, वर्षाही, विशाख, शशिवाटिका, पृथ्वी, घनपत्र और कठिल्लक) ये श्वेतपुनर्नवाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी–सफेद पुनर्नवा, विषखपरा। बं०–श्वेतगांदावन्ने, श्वेतपुण्या। म०–पांढरी घेटुली, रक्तपण्या। गु० धोली साटोडी। क०–विलीयदुवेलड्किलु! तै०–माल्जेरु। ता०–मूकरत्तैकीरै। अ०–हन्दकूकी। इं०–स्प्रेडिंग हागवीड Spreabing Hogweed लै०-बोयरहेबियाडिफ्यूजा Boerhaaviadifrusa

सफेद पुनर्नवा -चरपरी, कसैली, अत्यन्त अग्निप्रदीपक और पांडुरोग, सूजन, वायु, विष, कफ, व्रण तथा उदररोग नाशक है ॥ २१५ ॥

विवरण।

पुनर्नवा--तीन चार प्रकारकी होती है, पत्ते गोल होते हैं, फूल लाल सफेद भिन्न भिन्न रङ्गके होते हैं, इसमें सफेद रंगके फूलका विषखपरा होता है और लालरंगकी सांठका गदहसट्ट और थुनेरा कहलाता है, विषखपरे का क्षुप पृथ्वीपर फैला हुवा होता है, पत्ते गोल और लाल किनारीदार होते हैं, फूल सफेद होते हैं, सांठ भूडकी रेतीली भूमिमें अधिकतासे होती है, पत्ते चौलाईके समान ललाई लिये हुए होते हैं, फूल लालरंगके होते हैं, एक नीले रंगकी पुनर्नवा होती है, उसके फूल भी नीले रंगके होते हैं ॥

अथ रक्तपुष्पा पुनर्नवा।

पुनर्नवाऽपरा रक्ता रक्तपुष्पा शिलाटिका। शोथघ्नः क्षुद्रवर्षाभूर्वृषकेतुः कपिल्लकः ॥ ॥ २१६ ॥ पुनर्नवाऽरुणा तिक्ता कटुपाका हिमा लघुः। वातला ग्राहिणी श्लेष्मपित्तरक्तविनाशिनी ॥ २१७ ॥

रक्तपुनर्नवा, रक्तपुष्पा, शिलाटिका, शोथघ्न, क्षुद्र, वर्षाभू, वृषकेतु, कपिल्लक, (रक्तपत्रिका, रक्तकांडा, वर्षकेतु, वर्षाभू, प्रावृषायणी, कठिल्लक, क्रूरा, मण्डलपत्रिका, लोहिता, वैशाखी, रक्तवर्षाभू, शोफघ्नी, रक्तपुष्पिका, विकस्मरा, विषघ्नी, प्रावृषेण्या, सारिणी, वर्षाभव, शोणपत्र, भौम, पुनर्भव और नव्य) ये लाल पुनर्नवाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–लालपुनर्नवा, लाल विषखपरा, लाल सांठ। बं०--रक्तगांदावन्ने। म०–तांबडी घेंदुली, रक्तवसु। गु०--रातां फूलवाली साटोडी। क०--केंप वेल्लडकिलु। लै०--ट्रियोंथेमा ऑबकार्डाटा Tronthema Obcarbata,

लालसांठ--कडवी, पाकमें चरपरी, शीतल-हलकी, वातकारक. ग्राही और कफ-पित्त तथा रुधिरविकार, नाशक है ॥२१६॥२१७॥

अथ गन्धप्रसारणी (पसरन)

प्रसारणी राजबला भद्रपर्णी प्रतापनी। सरणी सारणी भद्रा बला चापि कटम्भरा ॥ २१८ ॥ प्रसारिणी गुरुर्वृष्या बलसन्धानकृत्सरा। वीर्योष्णा वातहृत्तिक्ता वातरक्तकफापह ॥ २१९ ॥

प्रसारणी, राजबला, भद्रपर्णी, प्रतापनी, सरणी, सारणी, भद्रा, बला, कटंभरा, (गन्धाली, गन्धाढ्या, गन्धभद्रा, शरणा, शरणी, गन्धोली, भद्रबला, सरणि, सुप्रसरा, प्रसरा, सरा, चारुपर्णी, प्रतानिका, प्रबला, राजपर्णी, चन्द्रपर्णी, चन्द्रपल्ली, प्रभद्रा और प्रसारिणी) ये पसरनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--पसरन, गन्धप्रसारिणी। बं०--गंधभादली। म० चांदवेल। गु०--गन्धप्रसारणी, नारी। क०--हेसरणे। तै०--गोन्तेमगोरुचट्टु। लै०--पियडेरिया फिटीडा Peaperia Foetida

पसरन--भारी, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, सन्धानकारक, दस्तावर, उष्णवीर्य, कडवी और वात, रुधिरविकार तथा कफको नष्ट करती है ॥ २१८ ॥ २१९ ॥

विवरण।

गन्धप्रसारणीकी बहुत लम्बी और फैलनेवाली बेल होती है, इसकी शाखा बडी बडी लम्बी फैलती है, पत्ते रताल्लूकी आकृतिके होते हैं, परन्तु छोटे होते हैं, फल गोल गोल होते हैं, परन्तु हमको पूर्ण निश्चय नहीं होता कि, प्रसारिणी क्या है ? संस्कृतमें इसको राजबला, मराठीमें चांदवेल और गुजरातीमें नरी कहते हैं, परन्तु चांदवेल और प्रसारिणीकी आकृति और नाम गुण अलग अलग लिखे हैं और वे नाम गुण आकृति इससे मिलती भी नहीं. क्योंकि, चांदवेल मलरोधक है और प्रसारिणी मलनिःसारक है ॥

अथ श्वेतकृष्णसारिवा (करियाँसाऊ)।

इन्द्रजम्बूकवत्पत्रा सुगन्धा कलघण्टिका। कृष्णा तु सारिवा श्यामा गोपी गोपवधूश्च सा ॥ २२० ॥

इयमपि जम्बूवत्पत्रा दुग्धगर्भा व्रततिर्भवति ॥

धवला शारिवा गोपी गोपा कन्या कृशोदरी। स्फोटा श्यामा गोपवल्ली लतास्फोटा च चन्दना ॥ २२१ ॥

गोपी गोपस्य स्त्री पुंयोगात् ङीप्। गां पातीति गोपा गोपकन्या। श्यामापदेन कृष्णा श्वेतापि शारिवा कथ्यते, शाश्वतेन सारिवापदस्य प्रयुक्तत्वात्। तद्यथा--

"सारिवायां निशि श्यामा श्यामौ च हरितासितौ ॥"

सारिवायुगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरु ॥२२२॥ अग्निमान्द्यारुचिश्वासकासामविषनाशनम्। दोषत्रयास्रप्रदरज्वरातीसारनाशनम् ॥ २२३ ॥

सारिवा, श्यामा, गोपी, गोपवधू, गलघंटिका, (श्यामलता, पालिन्दी, गोदिनी, कृष्णशारिवा. चिह्नधारिणी, दृढबन्धिनी, गोपवल्ली, गोपा, सारिवा, उत्पलसारिवा, अनन्ता, कालमेषी, महाश्यामा, सुभद्रा, दीर्घमूला, मसूर विदला, कृष्णमूली, कृष्णा, चन्दनसारिवा, भद्रा, चन्दनगोपा, चन्दना और कृष्णवल्ली) ये कालीसारिवाके संस्कृत नाम हैं ! इसके पत्ते इन्द्रजामुनके सदृश सुगन्धित होते हैं।

हिं०--कालीसर, करियाँसाउ सालसाकालीसाँबा। बं०--कृष्ण अनन्तमूल, श्यामा, लता। म०--कालीउपलसरी। गु०--कालां फूलवाली उपलसरी। क०--सारिवा। तै०--नीलतिग। इं०-इंडियन सारसापरेला Indiau Sarsaparella. लै०--हेमिडेसनेस इंडीकस् Hemidesnus Indicus. ता०--नन्नारिवेर।

धवला, शारिवा, गोपी, गोपा, कन्या, कृशोदरी, स्फोटा, श्यामा, गोपवल्ली, लता, आस्फोता, चन्दना, (सारिवा, अनन्ता, उत्पलसारिवा, भद्रवल्ली, भद्रवल्ली, नागजिह्वा, कराला, भद्रवल्लिका, सुगन्धा, भद्रा, शारदा, प्रतानिका, काष्ठसारिवा, गोपवधू और धवलसारिवा) ये सफेद फूलवाली सारिवाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-गौरीसर, गौरियाँसाउ, गौरीसाँव। बं०-अनन्तमूल। म०-श्वेत उपलसरी। गु०-सफेद फूलवाली उपलसरी॥

इसके भी पत्ते जामुनके सदृश और दुग्धयुक्त होते हैं. 'श्यामा' यह शब्द दोनों सारिवाओंमें लगसकता है, क्योंकि शाश्वत कोपमें सारिवा और रात्रि ये दोनों श्यामा कही गई हैं और हरित तथा कृष्ण ये दोनों वर्ण श्यामके कहे हैं॥

दोनों प्रकारकी सारिवा-मधुर, चिकनी, वीर्यकर्त्ता, भारी और अग्निकी मन्दता, अरुचि श्वास, खाँसी आम, तीनों दोष, रक्तविकार, प्रदर, ज्वर, तथा अतिसारको नष्ट करती हैं॥ २२०-२२३॥

विवरण।

काली सारिवा और सफेद सारिवाकी बेल होती हैं, पत्ते दोनों सारिवाओंके जामुनके समान होते हैं और उन पत्तोंमें सफेद सफेद छींटेसे होते हैं, इसकी बेलकी जडमें कपूरकचरीके समान सुगन्ध आती है और इसमें दो दो फलीं लगती हैं, इसको कोई कोई मनुष्य सारसापरेला कहते हैं॥

अथ भृङ्गराजः (भाँगरा)

भृङ्गराजो भृङ्गरजो मार्कवो भृङ्ग एव च। अङ्गारकः केशराजो भृङ्गरः केशरञ्जनः ॥२२४॥ भृङ्गारःकटुकस्तीक्ष्णो रूक्षोष्णः कफवातनुत्। केश्यस्त्वच्यः कृमिश्वासकासशोथामपाण्डुनुत्। दन्त्यो रसायनो बल्यः कुष्ठनेत्रशिरोर्तिनुत्॥ २२५॥

भृङ्गराज, भृङ्गरज, मार्कवः भृङ्ग, अंगारक, केशराज, भृङ्गार, केशरंजन, (पितृप्रिय, रंगक, केश्य, कुन्तलवर्द्धन, पतंग, मार्कर, मार्क नागमार, परुरु, भृङ्गसोदर, एकरज, रंजक, अजागर और पंकजात) ये भांगरेके संस्कृत नाम हैं॥

हिं०-भांगरा, भङ्गरा, घमिरा। बं०-भीमराज। म०-माका। गु०-भांगरो। क०-गरुग / तै०-गुण्टकलगरुचेट्टु। फा०-जमर्दर। अ०-हजीज। इं०-ट्रेलिंग इक्लिप्टा Traling Eclipta. लै०-इक्लिप्टाप्रोस्ट्रेटा Eclipta Prostrata.

भांगरा-चरपरा, तीक्ष्ण, रूक्ष, गरम, केशोंको उत्तम करनेवाला, त्वचाके लिये हितकारी दांतोंको उत्तम करनेवाला, रसायनरूप, वलदायक और कफ, वात, कृमि, श्वास, खांसी, सूजन, आम, पाण्डुरोग, कोढ, नेत्रोंकी पीडाको दूर करता है॥ २२४॥ २२५॥

विवरण।

भांगरेके गुल्म—प्रायः जलके निकटकी भूमिमें बहुत उत्पन्न होते हैं, इसकी शाखाओंमें कालापन होता है, पत्ते लम्बे लम्बे लाहीकेसे होते हैं, पत्तेके नीचे दानेदार फलसे होते हैं, इसके पत्तोंका रस कालासा होता है। यह सफेद, काले और पीले इन फूलोंके भेदसे तीन प्रकारका होता है॥

अथ शणपुष्पी (पटसन)

शणपुष्पी स्मृता घण्टा शणपुष्पसमाकृतिः। शणपुष्पी कटुस्तिक्ता वामिनी कफपित्तजित्॥ २२६॥

शणपुष्पी, घँटा, (शण, माल्यपुष्प, वामक, कटुतिक्त, निशादन, दीर्घशाख और दीर्घपल्लव) ये शणपुष्पीके संस्कृत नाम हैं॥

हिं०-शन, पटशन, शणहुली। बं०-वनशणई। म०-रानताग। गु०-शणपुष्पी। क०-गिलुगिच्चि, श्वेत कुळखुला। तै--शणमतुवेल्ल। फा०=लादना। इं०-फ्लाक्सहेंद Flox Hemp लै०-क्रोटेलेरिया जुनसिया Crotalaria juncia.

शणपुष्पी-चरपरी, कडवी, वमनकारक और कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाली है॥ २२६॥

विवरण।

शणपुष्पी भारतवर्षमें सर्वत्र होती है, वृक्ष झाडहडके समान होता है, पत्ते छोटे २ होते

हैं, फूल पीले पीले होते हैं, फल लम्बे और खुक्खल, उसके भीतर काले काले दाने बजते हैं ॥

अथ त्रायमाणा।

बलभद्रा त्रायमाणा त्रायन्ती गिरिसानुजा। त्रायन्ती तुवरा तिक्ता सरा पित्तकफापहा। ज्वरहृद्रोगगुल्मार्शोभ्रमशूलविषप्रणुत् ॥ २२७ ॥

बलभद्रा, त्रायमाणा, त्रायन्ती, गिरिसानुजा, (सुभद्राणी, बलभद्रिका, वार्षिक, बलदेवा, भद्रनामिका, कुलत्रा, त्रायमाणिका, सुकामा, वार्षिका गिरिजा, अनुजा, मंगल्याहीं देवबला, पालिनी, भयनाशिनी, अवनी, रक्षणी, और त्राणा) ये त्रायमाणाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०--त्रायमाण । बं०--बलाडुमुर । म०--त्रायमाण । गु०--त्राहिमान । क०--त्रायमाणा फा०--अस्फ्रका । लै०--थेलिकूट्रम् फोलिओलोजम् Thalictrum Foliolosnm.

त्रायमाण- कसैली, कडवी, दस्तावर और पित्त, कफ, ज्वर, हृदयरोग, गुल्म, बवासीर, भ्रम, शूल, तथा विषनाशक है ॥ २२७ ॥

विवरण ।

त्रायमाणके पत्ते गोजियाके समान पृथ्वी पर फैले हुए हैं और बीचमें दो दण्डीसी निकलती हैं, उसके बीजोंको त्रायमाण कहते हैं ॥

अथ मूर्वा (चुरनहार)।

मूर्वा मधुरसा देवी मोरटा तेजनी स्रुवा। मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि ॥२२८॥ मूर्वा सरा गुरुः स्वादुस्तिक्ता पित्तास्रमेहनुत् । त्रिदोषतृष्णाहृद्रोगकण्डू कुष्ठज्वरापहा ॥ २२९ ॥

मूर्वा-मधुरसा, देवी, मोरटा, तेजनी, स्रुवा, मधूलिका, मधुश्रेणी, गोकर्णी, पीलुपर्णी, (धनुर्माला, धनुर्गुणा, कर्म्मकरी, धनुःशाखा, श्रुवा, सुरंगिका, देवश्रेणी, पृथक्त्वचा मधुस्रवा, अतिरसा, पीलुपर्णिका, दिव्यलता, ज्वलिनी और गोपवल्ली) ये मूर्वाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मूर्वा, चुरनहार, मुरहरी, । बं०-मूर्वा, मुरहर । म०-मोरवेल । गु०-मोरवेल । क०-मुहुरसि । तै०-सांगा । ता०-मरूल । लै०-क्लिमेटिसूट्रइलोबा । Gimurdma

मूर्वा-दस्तावर, भारी, स्वादिष्ट, कडवा और पित्त रुधिरविकार, प्रमेह, तीनों दोष, हृदयरोग, खुजली, कोढ तथा ज्वरको नष्ट करती है ॥ २२८ ॥ २२९ ॥

विवरण ।

मूर्वाकी बेल वनमें होती है, इसमें छोटे २ और मधुर २ फल लगते हैं, पत्ते घीकुंवारके समान चिकने और कुछ मोटे २ होते हैं ॥

अथ काकमाची (मकोय)

काकमाची ध्वांक्षमाची काकाह्वा चैव वायसी । काकमाची त्रिदोषघ्नी स्निग्धोष्णा स्वरशुक्रदा ॥२३०॥ तिक्ता रसायनी शोथकुष्ठार्शोज्वरमेहजित् । कटुर्नेत्रहिता हिक्काच्छर्दिहृद्रोगनाशिनी ॥ ३१

काकमाची, ध्वांक्षमाची, काकाह्वा, वायसी (घनाघना, काकमाचिका, काका, वायसाह्वा सर्वतिक्ता, बहुफला, कटुफला, रसायनी, गुच्छफला, काकमाता, स्वादुपाका, सुन्दरी, तिक्तका, बहुतिक्त, जघनेफला, और काकिनी) ये मकोयके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-मकोय, कवैयानी, केवैया । बं०-काकमाची, गुडकामाई । म०-कांगोणी। गु०-पीलुडीनीजात । क०-कावईकाके । ता०-मणतकाली । फ०-रोवातरीख । अ०-एलबुसूशालव । ई०-नाइट सीड Nite Seed लै०-सोलेनम् नाइग्रम Solanum Nigrum

मकोय-स्निग्ध, गरम, स्वरको उत्तम, करनेवाली, वीर्यको बढानेवाली, कडवी, रसायनरूप, चरपरी, नेत्रोंको हितकारी, और तीनों दोष, सूजन, कोढ, बवासीर, ज्वर, प्रमेह, हिचकी, वमन तथा हृदयरोग विनाशक है ॥ २३० ॥ २३१ ॥

विवरण।

मकोयके छोटे छोटे क्षुप बागोंमें बिना ही बोये बहुत हो जाते हैं, इसके पत्ते लाल मिरचके समान होते हैं, फूल सफेद और बहुत छोटे २ होते हैं, फल काले रंगके मकोईके समान होते हैं और गुच्छोंमें लगते हैं ॥

काकनासा (कौआठोढी)।

काकनासा तु काकाङ्गी काकतुण्डफला च सा। काकनासा कषायोष्णा कटुका रसपाकयोः। कफघ्नी वामनी तिक्ता शोथार्शःश्वित्रकुष्ठहृत् ॥ २३२ ॥

काकनासा, काकांगी,काकतुण्डफला,(ध्वांक्षनासा, काकतुण्डी, वायसी, सुरंगी, ध्वांक्षतुण्डा, सुनासिका, वायसाह्वा, ध्वांक्षनखी काकाक्षी, ध्वांक्षनासिका, काकपाणा, काकश्मश्रु, चोरस्नायु, और शिरोबाला) ये कौआठोढीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-कौआठोढी। बं०-केउयाठूंटी, काकठुटी। म०-थोर कावळी, श्वेत कावळी। क०-हिरियकागे दाठ। तै०-वेलुमसन्दिरचेट्टु। गु०-काकनासा। लै०-जिर्मुदमा सिल्वष्ट्रि Clematistriloba Sylvestri

कौआठोढी-कसैली, गरम, रस तथा पाकमें चरपरी, वमनकारक, कढवी और कफ तथा श्वेतकोढको नष्ट करती है ॥२३२॥

अथ काकजंघा (मसी)।

काकजङ्घा नदीकान्ता काकतिक्ता सुलोमशा। पारावतपदी दासी काका चापि प्रकीर्तिता॥२३३॥काकजंघा हिमा तिक्ता कषाया कफपित्तजित्। निहन्ति ज्वरपित्तास्रज्वरकण्डूविषक्रिमीन् ॥२३४॥

काकजंघा, नदीकान्ता. काकतिक्ता, सुलोमशा: पारावतपदी, दासी, काका, (काकाव्ही काकांगी, काकनासिका, काकफला, कृषीवल, काकांगा, ध्वांक्षजंघा, काकाह्वा और सुरंगी) ये काकजंघाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-काकजंघा, मसी, चकशोनी। बं०-काकजंघा, कडआ, ठोडा। म०-कागांचें झाड। गु०-अघेडी। क०-जिरीजिलेच। तै०-नालादुब्बीणीक। लै०-हेंपलेथिस हेंटेक्युलेरीस Hamp Lathis Hanteculeris

काकजंघा-शीतल, कडवी, कसैली और कफ, पित्त, ज्वर, रुधिरविकार, खुजली, विष तथा कृमिको नष्ट करती है ॥२३३॥२३४

विवरण।

काकजंघाके क्षुप जङ्गलमें और वनोंमें बहुत होते हैं, पत्ते लम्बे २ होते हैं, परन्तु वे हरे और काले रंगके होते हैं, फूल छोटे २ और काले रंगके होते हैं, पत्तोंपर खरपरापन और बारीक २ रुयेंसे होते हैं, शाखाएँ गांठदार होती हैं और उनमें थोडी २ दूरपर ऐंडा बैंडापन होता है ॥

अथ नागपुष्पी।

नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागिनी रामदूतिका। नागिनी रेचनी तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कफपित्तनुत्। विनिहन्ति विषं शूलं योनिदोषवमिक्रिमीन् ॥ २३५ ॥

नागपुष्पी, श्वेतपुष्पा, नागिनी और रामदूतिका ये नागपुष्पीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-नागपुष्पी। म०-नागाली।

नागपुष्पी-रेचक, कडवी, तीक्ष्ण, गरम और कफ, पित्त, विष, शूल, योनिरोग, वमन तथा कृमिको नष्ट करती है ॥२३५॥

विवरण।

नागपुष्पीकी बेल चलती है, वनके वृक्षोंपर फैल जाती है, फूल सफेद और काले होते हैं, एक एक शाखामें एक एक पत्ता होता है,इसके नीचे कन्द होता है ॥

अथ मेषशृंगी (मेढ़ासिंगा)।

मेषशृंगी विषाणी स्यान्मेषवल्ल्यजशृंगिका। मेषशृंगी रसे तिक्ता वातला श्वासकासहृत् ॥ २३६ ॥ रूक्षा पाके कटुस्तिक्ता व्रणश्लेष्माक्षिशूलनुत्।

मेषशृंगीफलं तिक्तं कुष्ठमेहकफप्रणुत्। दीपनं स्रंसनं कासकृमिव्रणविषापहम् ॥ २३७ ॥

मेषशृंगी, विषाणी, मेषवल्ली, अजशृंगिका, (नंदीवृक्ष, चक्षुर्बहल, मेढ्रशिंगी, गृहदुमा, बहलचक्षु, मेषविषाणिका. अजशृंगी, चक्रश्रेणी, अजगन्धिघ्नी, मौर्वी, नेत्रौषधि, आवर्तिनी, वर्तिका, सर्पदंष्ट्रिका, तिक्तदुग्धा, पुत्रशृंगी, कर्णिका और अक्षिभेषज) ये मेढाशिंगीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-मेढाशिंगी। बं०-मडाशिंगे, गाडलशिंगी। म०-मेढशिंगी । गु०-मरडाशिंगी। क०-उरियमारा। फ०-किस्त। अ -वर्किस्ता। इं०-स्कूट्री Screwtree लै०-हेलीक्टेरिस इसोरा Helicteris Isora

मेढाशिंगी-रसमें कडवी, वातकारक, रूखी पाकमें चरपरी और श्वास, खांसी. व्रण, कफ, तथा नेत्रके शूलको नष्ट करती है । मेढाशिंगीका फल कडवा, अग्निप्रदीपक. स्रंसन और कोढ, प्रमेह, कफ, खांसी, कृमि, व्रण तथा विषविनाशक है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

विवरण।

मेडासिंगीका बडा वृक्ष होता है, पत्ते फालसेके समान और फूल लाल होते हैं, इसकी फली गोल व लम्बी होती है· इसके वृक्ष प्रायः पर्वतोंपर बहुत होते हैं ॥

अथ हंसपदी (हंसराज)।

हंसपादी हंसपदी कीटमाता त्रिपादिका। हंसपादी गुरुः सीता हन्ति रक्तविषव्रणान्। विसर्पदाहतीसारलूताभूताग्निरोहिणीः ॥ २३८ ॥

हंसपादी, हंसपदी, कौटमाता, त्रिपादिका, (त्रिपादी; मधुस्रवा, सुवहा, हंसवती, गोधांघ्रि, गोधापादिका, त्रिदला, चित्रपदा, हंसपादिका, हंसाघ्रि, रक्तपादी, त्रिपदा घृतमण्डलिका, विश्वग्रंथि, त्रिपदिका, त्रिपदी, कीटमारी, कर्णादि, ताम्रवादी, विक्रान्ता, ब्रह्मादनी, पदांगी, शीतांगी, सुतपादिका, सञ्चारिणी, पादिका, प्रह्लादी, कीरपादिका, धार्तराष्ट्रपदी, गोदापदी और त्रिपादिका) ये हँसपदीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-हंसपदी, हंसपगी, हंसराज। बं०-गोयाले, लता । गु०-हंसराज । म०-लाल लाजाळू। क०-नपिलडि । तै०-हंसपादमु। फा०-परस्पाशान। अ०-शारुलजीन। इं०-Mafben Hair लै०-एडियण्टमल्युन्युलेटम् Adiantamlunuiatum.

हंसपदी-भारी, शीतल और रुधिरविकार, विष, व्रण, विसर्प दाह, अतिसार, लूता, भूतबाधा और अग्निरोहिणीको नष्ट करती है ॥ २३८ ॥

विवरण।

हंसपदीके क्षुप अलाशयके समीप, अत्यन्त शीतल स्थानमें होते हैं, विशेष करके यह कुएँ, बावडो इत्यादि स्थानोंमें बहुत होते हैं, इसको इस देशमें हंसराज कहते हैं, इमकी जड लाल और कोमल होती है, पत्ते हरे रंगके बहुत छोटे २ होते हैं ॥

अथ सोमलता।

सोमवल्ली सोमलता सोमक्षीरी द्विजप्रिया। सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसायनी ॥ २३९ ॥

सोमावल्ली, सोमलता, सोमक्षीरी, द्विजप्रिया, (चन्द्रवल्लरी. इन्दुलेखा, सोमवल्लिका, महागुल्मा, यज्ञश्रेष्ठा, धनुर्लता, सीमाह्वा, गुल्मवल्ली सोमक्षीरा, सोमा और यज्ञांगा) ये सोमलताके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सोमवल्ली, सोमलता, । बं०-सोमलता। म०-थोर सोमवल्ली । क०-क०-गु०-सोभलता। तै०=पल्लीटीजी । लै०=सार्कोस्टेमा ब्रविस्टिगमा Sarcostemma Brevstigma ता०--आवलांकौधि.

सोमलता-त्रिदोषनाशक, चरपरी, कडवी और रसायन है ॥ २३९ ॥

विवरण।

सोमलता--थूहरकी जो कई प्रकारकी जाति हैं उनमेंसें सोमलता भी एक भांतिकी वेल हैं,इसमें शुक्लपक्षके दिनमें क्रमवार प्रतिपदासे लेकर पूर्णमासीतक एक एक पत्ता प्रतिवासर निकलता है, पन्द्रह तिथियोंमें पन्द्रह पत्ते होजाते हैं फिर कृष्णपक्षकी परीवासे लेकर अमावस्यातक एक एक पत्ता प्रतिदिन गिरजाता है. पन्द्रह दिनमें एक पत्ता भी नहीं रहता, इस लताका चन्द्रमासे अधिक स्नेह है इसी कारण इस अद्भुत लताका नाम सोमलता है॥

अथ आकाशवल्ली (अमरवेल)।

आकाशवल्ली तु बुधैःकथिताऽमरवल्लरी। खवल्ली ग्राहिणी तिक्ता पिच्छिलाऽक्ष्यामयापहा। तुवराऽग्निकरी हृद्या पित्तश्लेष्मामनाशिनी॥ २४०॥

आकाशवल्ली, अमरवल्लरी,खवल्ली,(दुःस्पर्शा और व्योमवल्लिका) ये आकाशवेलके संस्कृत नाम है॥

हिन्दी--आकाशवेल, अमरवेल। बं०--आलोकलता,आकाशवेल। म०--आकाशवेल, अन्तर वेल। गु०--अमरवेल। तै०--इन्द्रजाल। अ०--अफतिमून। लै०--कस्कुटारेफ्लेक्सा Cuscuta reflexa.

आकाशवेल--ग्राही, कडवी, पिच्छिल, नेत्ररोगनाशक, कसैली अग्निकारक, हृदयको हितकारी और पित्त, कफ तथा आमको नष्ट करता है॥ २४०॥

विवरण।

आकाशवेल डोरेके समान कीकर, बेर, अडूसे इत्यादि वृक्षोंपर फैली हुई होती है, रंग पीला और फूल सफेद २ आते हैं; इसकी जड कहीं नहीं होती, इसी कारण इसका नाम आकाशवेल है॥

अथ पातालगरुडी।

छिलिहिण्टो महामूलःपातालगरुडाह्वयः। छिलिहिण्टः परं वृष्यः कफघ्नः पवनापहः॥ २४१॥

छिलिहिण्ट, महामूल, पातालगरुड,(वत्सादनी, तिक्तांगा, मोचिकाभिधा, तार्क्ष्यी, सौपर्णी, गारुडी, दीर्घकाण्डा, दृढकाण्डा, महावला, दीर्घवल्ली और दृढलता) ये पातालगरुडीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी--पातालगरुडी, छिरेटा, सेलहट। बं०--शिलिन्दा। म०--गरुडवेल, भूयपाडळ। गु०--पातालगरुडी, बेवडीओलप। फा०--फरीदबुटी। तै०--दूसरतोगे। लै०--कोक्युलस् विलोलस् Coeuis Viisus.

पातालगरुडी--वीर्यको अधिक बढानेवाली और कफ तथा वायुको नष्ट करनेवाली है॥ २४१॥

विवरण।

पाताल गरुडी अर्थात् छिरेटीकी बेल होती हैं, ये बहुत मोटी और दृढ होती हैं, इसके तन्तु भी बहुत पक्के होते हैं, इसके फल छोटे २ और गुच्छोंमें लगते हैं, तरुण अवस्थामें हरे और पकनेपर काले पडजाते हैं॥

अथ वन्दा।

वन्दा वृक्षादनी वृक्षभक्ष्या वृक्षरुहाऽपि च। वन्दाकः स्याद्धिमस्तिक्तः कषायो मधुरो रसे। मांगल्यः कफवातास्त्ररक्षोव्रणविषापहः॥ २४२॥

वन्दा, वृक्षादनी, वृक्षभक्ष्या, वृक्षरुहा, (सव्या, परपुष्टा, पाश्रया, जीवंतिका, काकुरुहा, वन्दाका, शेखरी, वन्दक, नीलवल्ली, वन्दाकी,परवासिका,वशिनी,पुत्रिणी, वन्ध्या, पादपरुहा, शिखरी, तरुरोहिणी, वृक्षादनी, कामवृक्ष, शेखरी,केशरूपा, तरुरुहा, तरुस्था, गन्धमादनी, कामिनी, तरुभुक्,स्मामा, उपदी, नीलवर्णा, वन्दाकी, गन्धमादिनी, और रोहिणी) ये बाँदाके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी--बन्दा, बन्दाल, बांदा, बंदेल। बं०--परगाछा, बन्दणीके। म०--बादांगुल। गु०--गुन्दी। क०--दणिके। तै०--वाजिनीके। लै०--लोरेन्थस लांगिफोलियस् Loranthus Longifalious.

बांदा-शीतल, कडवा, कसैला, मधुर, मंगलकारक और कफ, वात, रुधिरविकार, व्रण तथा विषनाशक है ॥ २४२ ॥

विवरण।

वन्दा विविधप्रकारके वृक्षोंपर वृक्षसरीखा होजाता है, उनकी जड अलग नहीं होती वृक्षहीमें उत्पन्न होजाती है, कोई ऐसा कहते हैं कि, काकादिक कोई पक्षी किसी वृक्षकी शाखा लाकर वृक्षपर रख देता है; उसीमें पत्ते निकल आते हैं और वही फल फूल कर वन्दा होता है, किसीमें लाल किसीमें पीला, किसीमें सफेद और किसीमें नीला फूल होता है और पत्तेभी भिन्न भिन्न जातिके होते हैं ॥

अथ वटपत्री।

वटपत्री तु कथिता मोहिनी रेचनी बुधैः। वटपत्री कषायोष्णा योनिमूत्र-गदापहा ॥ २४३ ॥

वटपत्री, (ऐरावती, इरावती, इनानी, गोधावती, श्यामा और खट्वांगनासिका) ये वटपत्रीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-वडपत्री, वटपत्री, बं०-वड, पातारकुचा। तै०-पिण्डि। लै०-लेकोपेडियम aicopebium.

वटपत्री-मोहकारक, रेचन, कसैली, गरम और योनिरोग तथा मूत्ररोगनाशक है ॥२४३॥

विवरण।

वटपत्री पाषाणभेदहीका भेद है, इसके पत्ते वडके समान होतेहैं, इसीसे इसका नाम वटपत्री हैं ॥

अथ हिंगुपत्री।

हिंगुपत्री तु कवरी पृथ्वीका पृथुका पृथुः। हिंगुपत्री भवेद्रुच्या तीक्ष्णोष्णा पाचनी कटुः ॥ हृद्वस्तिरुग्विवन्धार्शः-श्लेष्मगुल्मानिलापहा ॥ २४४ ॥

हिंगुपत्री, कबरी, पृथ्वीका, पृथुका, पृथु, (त्वक्पत्रा, बाष्पिका, बाष्पी, दीर्घिका, दारूपत्रिका, कारवी, करवी, पृथ्वी, बाष्पका, बाष्पा, पत्री, तन्वी, दारुपत्री और बिल्वा) ये हिंगुषत्रीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-हिंगुपत्री। बं०-रांदुनी। म०-वाफळी। गु०-बहुफली ॥

हिंगपत्री-रुचिकारक, तीक्ष्ण, गरम, पाचन और हृदयरोग, वस्तिरोग, मलविबन्ध, बवासीर, कफ, गुल्म तथा वातविनाशक है २४४॥

विवरण।

हिंगुपत्रीके पत्तोंके गुण और नाम हींगके पत्तोंसे मिलत हैं, जैसे कि हींगके पत्तोंको संस्कृतमें कबरी और कर्बरी कहते हैं सो इसको भी कबरी और कर्बरी कहते हैं, गुण भी हींगसे मिलते हैं ॥

अथ वंशपत्री।

वंशपत्री वेणुपत्री पिण्डा हिंगुशिवाटिका। हिंगुपत्रीगुणा विज्ञैर्वंशपत्री च कीर्तिता ॥ २४५ ॥

वंशपत्री, वेणुपत्री, पिण्डा, हिंगुशिबाटिका, (वंशदला और जीर्णपत्रिका) ये वंशपत्रोंके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-वंशपत्री, डीकामाली। म०-डीकेमाली। गु०-डीकामारी। क०-कलहत्ती। तै०-चीमहींगवा। अ०-कनखाभ। इं०-डीकेमालीगम गार्डिनिया Dckamallegam Garplnia. लै०-गार्डिन्याल्यु सिडा Garqinia-lucida.

वंशपत्रीकागुण—हिंगुपत्रीके सदृश ही जानने ॥ २४५ ॥

विवरण।

वंशपत्रीका वृक्ष मध्यम जातिका होवा है, गुजरात देशमें इसके वृक्ष बहुत होते हैं, वहाँ इसको मालडी कहते हैं, पत्ते मोगरेके समान होते हैं, फूल सफेद होते हैं, फल पोस्तके डोरेके सदृश होते हैं इस वृक्षके गोंदको डिकामारी कहते हैं ॥

अथ मत्स्याक्षी (मछेछी)।

मत्स्याक्षी बाह्लिका मत्स्यगन्धा मत्स्याद नीति च। मत्स्याक्षी ग्राहिणी शीता कुष्ठपित्तकफास्रजित्। लघुस्तिक्ता कषायी च स्वाद्वी कटुविपाकिनी ॥२४६॥

मत्स्याक्षी, बाह्लिका, मत्स्यगन्धा और मत्स्यादनी ये मछेछीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--मत्सी। गु०--म०--बं० मत्स्याक्षी ॥

मछेछी—ग्राही, शीतल, हलकी, कडवी, कसैली, मधुर, पाकमें चरपरी, और कोढ, पित्त, कफ, तथा रुधिर विकार नाशक है ॥ २४६ ॥

विवरण।

मत्स्याक्षी अर्थात् मछेछीके क्षुप छोटे २ होते हैं, पत्ते उडदके पत्तोंके समान होते हैं, फूल सफेद और पीले रंगके होते हैं, इसमें मछलीके समान गन्ध आती है ॥

अथ सर्पाक्षी (सरहटी)।

सर्पाक्षी स्यात्तु गण्डाली तथा नाडीकपालकः। सर्पाक्षी कटुका तिक्ता सोष्णा कृमिनिकृन्तनी। वृश्चिकोन्दुरुसर्पाणां विषघ्नी व्रणरोपिणि ॥ २४७ ॥

सर्पाक्षी, गण्डाली और नाडीकपाल ये सर्पाक्षीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०--सरहटी, गंडनी। म०--सर्पाक्षी ॥

सर्पाक्षी--चरपरी, कडवी, गरम, व्रणरोपक और कृमिरोग, बीछु, मूसा तथा सर्प विषको नष्ट करती है ॥ २४७ ॥

विवरण।

सर्पाक्षी एक सरफोंकेका भेद है, सरफोंकेमें और इसमें किसीप्रकारका भेद नहीं पाया जाता ॥

अथ शङ्खपुष्पी।

शङ्खपुष्पी तु शङ्खाह्वा माङ्गल्यकुसुमाऽपि च। शंखपुष्पीसरा मेध्या वृष्या मानसरोगहृत् ॥ २४८ ॥ रसायनी कषायोष्णा स्मृतिकान्तिबलाग्निदा। दोषापस्मारभूताश्रीकुष्ठक्रिमिविषप्रणुत् ॥ २४९ ॥

शंखपुष्पी, शंखाह्वा, मांगल्यकुसुमा, (चण्डा, सुपुष्पा, कम्बुमालिनी, पीतपुष्पी, कम्बुपुष्पी, मलविनाशिनी, किरीटी, शंखकुसुमा, भूलग्ना, शंखमालिनी, कम्बुपुष्पी, वनमालिनी, इतरा, सूक्ष्मपत्रा, रक्तपुष्पी, रक्तपुष्पिका) ये शंखपुष्पीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी—शंखाहुली, शंखपुष्पी, कोडिल्ला। बं०—शंखाहुली। म०— शंखोली। गु० शंखावली। क०—शंखपुष्पी। लै०—इवोल्व्युलसइरेक्टा Evolvuluserecta.

शंखाहुली—दस्तावर, मेधाको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, मानसिक रोगोंको नष्टकरनेवाली, रसायन, कसैली, गरम, स्मृति, कांति, बल तथा अग्निको देनेवाली और दोष, अपस्मार, भूत अलक्ष्मी, कोढ, कृमि तथा विषको नष्ट करती है ॥ २४८ ॥ २४९ ॥

विवरण।

शंखपुष्पी अर्थात् शंखाहुलीका छत्ता प्रायः ऊषर भूमिमें होता है, पत्ते छोटे २ धूसररंगके घासके समान होते हैं, फूल बहुत छोटे सफेद रंगके शंखके सदृश होते हैं, सफेद फूलवालीको सफेद शंखाहुली कहते हैं, लाल फूलवालीको लाल शंखाहुली कहते हैं और नीले फूलवाली शंखाहुलीको विष्णुक्रांता कहते हैं ॥

अथ अर्कपुष्पी।

अर्कपुष्पी क्रूरकर्मा पयस्या जलकामुका। अर्कपुष्पी कृमिश्लेष्ममेहपित्तविकारजित् ॥ २५० ॥

अर्कपुष्पी, क्रूरकर्मा, पयस्या, जलकामुका (सूर्यवल्ली, कुटुम्बिनी, क्षीरिणी, वक्रशल्या, दुरावर्षा, सिरिण्टिका, शीना, प्रहरकुटकी, शीतला, जलेरुहा, सितपर्णी, और अर्कपुष्पिका,) ये अर्कपुष्पीके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी-अर्कपुष्पी, अन्धाहुली। बं०-बडक्षीरुई। म०-सूर्यफूलवल्ली। गु०-सुरजमुखी। लै०—होलेस्टेमा हिडिआई Holestema Heedii.

अर्कपुष्पी-कृमि, कफ, प्रमेह तथा पित्त, विकारको नष्ट करती है ॥ २५० ॥

विवरण।

अर्कपुष्पी जीवन्तीहीका भेद है, इसकी बेल नागरबेलके समान होती है, पत्ते गिलोयके तुल्य छोटे २ होते हैं, फूल सूर्यमुखीके समान गोल आता है और इसमें दूध निकलता है ॥

अथ लज्जालुः।

लज्जालुः स्याच्छमीपत्रा समंगा जलकारिका। रक्तपादी नमस्कारी नाम्ना खदिरकेत्यपि ॥२५१॥ लज्जालुःशीतला तिक्ता कषाया कफपित्तजित्। रक्तपित्तमतीसारं योनिरोगान् विनाशयेत् ॥ २५२ ॥

लज्जालु, शमीपत्रा, समंगा, जलकारिका, रक्तपादी, नमस्कारी, खदिरका, (कन्दिरी, खदिरपत्रिका, संकोचिनी, प्रसारिणी, सप्तपर्णी, खदिरी, गण्डमालिका, लज्जा, लज्जिका, स्पर्शलज्जा, अस्ररोधिनी, रक्तमूला, ताम्रमूला, स्वगुप्ता, महाभीता और वशिनी) ये छुईमुईके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-लज्जावंती, शर्मानी, छुईमुई, लजारू। बं०-लज्जावती। म०-लजाळु, लाजरो। गु०-रिसामणी। क०-मुदीदरे, मुरूटव। लै०-माईमोसा सेनसिटाइवा Mimosa Sensitiva. ता०-तोट्टाशिणुंगी.

लज्जावंती-शीतल, चरपरी, कसैली, और कफ, पित्त,रक्तपित्त अतिसार तथा योनिरोगनाशक है ॥ २५१ ॥ २५२ ॥

विवरण।

लज्जावंती अर्थात् छुईमुईके क्षुप वेलके समान होते हैं, पत्ते छौंकर अथवा खैरके समान होते हैं, फूल गुलाबी नीले मिश्रित रंगके होते हैं इसकी जड लाल होती है, इसको स्पर्श करनेसे ये लज्जाके मारे शर्माकर सुकड जाती है, पश्चात् विस्तृत हो जाती है, यह दो प्रकारकी होती है, एक कांटेवाली और दूसरी बिना कांटेकी। हाथके लगते ही सुकड सुकडकर नीचेको झुक जाती है, इसीलिये इसका नाम छुईमुई लज्जावंती रक्खा है ॥

अलम्बुषा (लज्जालुभेदः)।

अलम्बुषा खरत्वक् च तथा मेदोगला स्मृता। अलम्बुषा लघुः स्वादुः कृमिपित्तकफापहा ॥ २५३ ॥

अलम्बुषा, खरत्वक् और मेदोगला ये अलम्बुके संस्कृत नाम हैं ॥

अलम्बुषा (लज्जालुका भेद) हलकी मधुर और कृमि, पित्त तथा कफको नष्ट करती है ॥ २५३ ॥

अथ दुग्धिका (दुद्धी)।

दुग्धिका स्वादुपर्णी स्यात् क्षीरा विक्षीरिणी तथा। दुग्धिकोष्णा गुरू रूक्षा वातला गर्भकारिणी ॥ २५४ ॥ स्वादुक्षीरा कटुस्तिक्ता सृष्टमत्रा मलापहा। स्वादुर्विष्टम्भिनी वृष्या कफकुष्ठकृमिप्रणुत् ॥ २५५ ॥

दुग्धिका, स्वादुपर्णी, क्षीरा, विक्षीरिणी (दुग्धी, क्षीरात्मिका, क्षीरी, क्षीरावी, मरुद्भवा, क्षीरिणी, क्षीराविका, ग्राहिणी, कच्छुरा और ताम्रमूला ये दुद्धीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-दुद्धी, दूधिया। बं०-दुधि, दुध्या, क्षीरुई। म०-लघुदुधे। थोरदुधी। गु०-नागार्जुनी, दुधेली) क०-मरिजवणीगे। तै०-पिलमालचेट्टु। फा०-निशाशत। लै०-युफोर्बिया. हिर्टा Euphorbia Hirta युपार्विफ्लोरा Euparviflora. युथाईमिफोलिया Euthimefolia. ता०-शुरे.

दुद्धी-गरम, भारी, रूक्ष, वातकारक गर्भदायक, स्वादिष्ट दूधवाली,चरपरी,कडवी,

मूत्र लानेवाली मलको निकालनेवाली, मधुर विष्टंभजनक, वीर्यवर्द्धक और कफ, कोढ तथा कृमिको नष्ट करती है ॥२५४-२५५॥

विवरण ।

दुद्धीका क्षुप छत्तासा होता है, ऊपरको कम उठता है, खेतोंहीमें फैलता है, दुद्धी तीन प्रकार की होती है-एक नोकदार लाल पत्तोंकी, एक गोल पत्तोंकी और एक मूँगके दानोंके समान छोटे छोटे पत्तोंकी होती है तीनों प्रकारकी दुद्धीमें दूध निकलता है ॥

अथ भूम्यामलकः (भूआमला)

भूम्यामलकिका प्रोक्ता शिवा तामलकीति च । बहुपत्रा बहुफला बहुवीर्या जटाऽपि च ॥ २५६ ॥ भूधात्री वातकृत्तिक्ता कषाया मधुरा हिमा । पिपासाकासपित्तास्रकफकण्डूक्षतापहा ॥२५७॥

भूम्वामलकिका, शिवा, तामलकी, बहुपत्रा, बहुफला, बहुवीर्या, जटा, (भूम्यामलकी, भूम्यामली, ताली, क्षेत्रामली, झारिका, बहुपुष्पी, अध्यण्डा, ताली, अजटा, सूक्ष्मफला, शेत्रामलकी, वितुन्नका, अफला, अमला, अजुटा, झटामला, अमलजुटा, तमाली तमालिका, उच्चट, दृढपादी, वितुन्ना, वितुन्निका, भूधात्रीचारटी,, बहुपत्रिका, अहिमपदा, वीरा, विश्वपर्णी, हिमालया, अरुहा, सूपर्वा, दल स्पर्शिनी, बहुपत्रा, सूक्ष्मदला, दृढपादा, अमली, तमालिनी, पुत्रश्रेणिका और हिलोलिका) ये भूआमलेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मुँई आमला, भूमिआंवरा । बं०-मुँई आमला । म०-भुईआंवली । क०-आरुंनेलिल । तै०-नेल उसीरीके । गु०-भोंआमली। ता०-कीलानेलिल । लै०-फाइलेन्थस निरुरि Phyllauthns niruri

मुँईआमला--वातकारक, कडमा, कसैला, मधुर, शीतल और तृषा, खांसी, पित्त, रुधिरविकार, कफ, खुजली तथा क्षतनाशक है ॥ ५६ ॥ २५७ ॥

विवरण ।

मुईआमलेके छोटे छोटे क्षुप होते हैं, पत्ते छोटे छोटे होते हैं, पत्तोंके नीचे राईके दानेके समान फलोंकी शाखा होती हैं ॥

अथ ब्राह्मी ब्रह्ममण्डूकी च ।

ब्राह्मी कपोतवङ्का च सोमवल्ली सरस्वती ॥ २५८ ॥ मण्डूकपर्णी माण्डूकी त्वाष्ट्री दिव्या महौषधी । ब्राह्मी हिमा सरा तिक्ता लघुर्मेध्या च शीतला ॥ २५९ ॥ कषाया मधुरा स्वादुपाकाऽऽयुष्या रसायनी । स्वर्या स्मृतिप्रदा कुष्ठपाण्डुमेहास्रकासजित् । विषशोथज्वरहरी तद्वन्मण्डूकपर्णिनी ॥ २६० ॥

ब्राह्मी, कपोतबंका, सोमवल्ली, सरस्वती, (वयःस्था, मत्स्याक्षी, सुरसा, ब्रह्मचारिणी, सोमवल्ली सोम्या, सुरश्रेष्ठा, सुवर्चला, कपोतवेगा, वैधात्री, दिव्यतेजा, महौषधि, स्वायम्भुवी, सौम्यलता, सुरेष्टा, ब्रह्मकन्यका, मण्डूकमाता, मण्डूकी, वीरा, भारती, वरा, परमेष्ठिनी, दिव्या और शारदा) ये ब्राह्मीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--ब्राह्मी, वरमी । बं०--ब्रह्मीशाक । म०--ब्राह्मी । क०--ओंदेगल । गु०- ब्राह्मी । ता० -वीमी । तै०--शाम्ब्रनीचेट्टु । फा०--जरनव । इं०- इण्डियन पेनीवर्टIndian pennywo t लै --हाईड्रोकोटाइल एश्याटिका Hydrocotyle Assiatica

मण्डूकपर्णी, मांडूकी, त्वाष्ट्री, दिव्या, महौषधी, (मण्डूकी, भेकी, मण्डूकपर्णिका, ब्रह्ममंडूकी सुप्रिया और दर्दुरच्छदा) ये ब्रह्ममंडूकीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--ब्रह्ममांडूकी । बं०--अधविर्णी, थालकुनी । गु०--खडंभरामी । तै०--मंडूकब्रह्मी । ता०--वल्लरी केरी ॥

ब्राह्मी--शीतल दस्तावर; कडवी, हलकी, मेधाको हितकारी, कसैली, मधुर, पाकमें

मधुर, आयुको बढानेवाली, रसायन, स्वरको हितकारी, स्मरणशक्तिदायक, और कोढ, पांडु, प्रमेह, रुधिरविकार. खांसी, विष, सूजन तथा ज्वरको नष्ट करती है, मंडूकपर्णीके भी ये ही गुण हैं ॥२५८-२६० ॥

विवरण ।

ब्राह्मीके क्षुपका छत्तासा प्रायः सजलभूमि अथवा जलाशयके समीपकी भूमिमें होते हैं, पत्ते छोटे छोटे गोल एक ओरसे खुले हुए होते हैं, दूसरी ब्रह्ममंडूकी होती है,उसके छोटे पत्ते होते हैं ॥

अथ द्रोणा (गूमा) ।

द्रोणा च द्रोणपुष्पी च फलेपुष्पा च कीर्तिता । द्रोणपुष्पी गुरुः स्वादू-रूक्षोष्णा वातपित्तकृत ॥२६१॥ सतीष्ण-लवणा स्वादुपाका कट्वी च भेदिनी । कफामकामलाशोथतमकश्वासजन्तु-जित् ॥ २६२ ॥

द्रोणा, द्रोणपुष्पी, फलेपुष्पा, (क्षवपत्री कुंभयोनि, कुरुम्बिका, चित्राक्षुप, कुरुम्बा. सुपुष्पी, चित्रपत्रिका, श्वसनक, पालिन्दी, कुम्भयोनिका, क्षत्राणी, छत्रका, कौडिन्य और वृक्षसारक) ये गूमाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--गूमा, गोमा । बं०--द्रोणपुष्पी म०--कुंभा, तुंबा । गु--कुबो । क०--कुंभीवुक्ष । तै०--गयस्चेट्टु । ता० -तुम्बै । लै०--ल्युकास् सिप्पेलोटस् Leueas Ceppalotus

गूमा -भारी, मधुर, रूखी गरम, तीक्ष्ण, खारी पाकमें मधुर, चरपरी, दस्तावर और वात, पित्त, कफ. आम, कामला, सूजन, तमकश्वास, और कृमिको नष्ट करती है ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

विवरण ।

गूमेके क्षुप जंगलमें बहुत होते हैं, गुच्छे गांठ गांठमें होते हैं, उन गुच्छोंमें सफेद फूल आते हैं. इसके भीतर बीज होते हैं और फल के ऊपर दो पत्ते होते हैं ॥

अथ सुवर्चला (हुलहुल) ।

सुवर्चला सूर्यभक्ता वरदा बदराऽपि च । सूर्यावर्त्ता रविप्रीताऽपरा ब्रह्मसुदुर्लभा ॥ ॥ २६३ ॥ सुवर्चला हिमा रूक्षा स्वादु-पाका सरा गुरुः । अपित्तला कटुःक्षारा विष्टम्भकफवातजित् ॥ २६४ ॥ अन्या तिक्ता कषायोष्णा सरा रूक्षा लघुः कटुः । निहन्ति कफपित्तास्रश्वासकासा-रुचिज्वरान् । विस्फोटकुष्ठमेहास्रयोनि-रुक्कृमिपाडुताः ॥ २६५ ॥

सुवर्चला सूर्यभक्ता, वरदा, बदरा सूर्यावर्ता, रविप्रीता, (आदित्यभक्ता, अर्कभक्ता, सूर्यलता, अर्ककान्ता, सुरसम्भवा, सौरि, सुलेजा, अर्कहिता, रवीष्टा. सत्यनाम्नी, मार्तण्डवल्लभा, विक्रान्ता और भास्करेष्टा) ये हुरहुरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--हुरहुर, हुलहुल । बं०--हुडहुडे, वनशलते । म०--सूर्यफुलवल्ली । गु०--तलवणी । क०--नीलवणा । तै०-ता०-सूर्यकान्तिपु । फा० गुले आफताव परस्त । अ०--अदरमून । इं०-सन्पलवर Sunflower लै०--जिनेन्ड्रोपसीस पेंटाफिल्ला Gynadropsis Pentaphylla

हुलहुल-शीतल, रूखी, पाकमें मधुर, दस्तावर भारी, पित्तकारक नहीं चरपरी, खारी और मलबन्ध, कफ तथा वातविनाशक है ॥

ब्रह्मसोंचली--कडवी कसैली, गरम, दस्तावर, रूखी, हलकी, चरपरी और कफ, पित्त, रुधिरविकार, श्वास, खांसी. अरुचि, ज्वर, विस्फोट, कुष्ठ, प्रमेह, योनिरोग, कृमि तथा पाण्डुताको नष्ट करती है ॥२६३-२६५॥

विवरण ।

ब्रह्मसुवर्चला अर्थात् हुरहुरकी बेल तथा क्षुप होते हैं, ये विशेष करके बागोंमें बोये जाते हैं. प्रायः इस पर सूर्योदय होनेपर फूल प्रफुल्लित हो जाते हैं और सूर्यके अस्त होने पर संकुचित हो जाते हैं, बेलवाले हुरहुरमें जो

फूल आते हैं, वे नीले रंगके होते हैं और क्षुप वाले हुरहुरके फूल सफेद होते हैं, बहुत सुन्दर और सूर्याकार होते हैं परन्तु बहुत छोटे छोटे होते हैं। हुलहुल दूसरी जातिकीभी होती है, उसको संस्कृतमें ब्रह्मसुदुर्लभा, हिन्दीमें ब्रह्म सोंचली कहते हैं॥

अथ वन्ध्यककोटकी (वनककोडा)

वन्ध्याकर्कोटकी देवी कन्या योगीश्वरीति च। नागारिर्नक्रदमनी विषकण्टकिनी तथा॥ २६६॥ वन्ध्याकर्कोटकी लघ्वी कफनुद्व्रणशोधिनी। सर्पदर्पहरी तीक्ष्णा विसर्पविषहारिणी॥ २६७॥

वन्ध्याककोंटकी, देवी, कन्या, योगीश्वरी, नागारि, नक्रदमनी, विषकण्टकिनी, (नागाराति, वन्ध्या, नागयन्त्री, मनोज्ञा, पथ्या, दिवा, पुत्रदा, सकन्दा, कन्दवल्ली, ईश्वरी, श्रीकन्दा, सुगन्धा, सर्पदमनी, विषकन्दकिनी, वरा, कन्दशालिनी, भूतापहा, सर्वौषधी, विषमोहप्रशमनी और महायोगीश्वरी) ये बांझककोडेके संस्कृत नाम हैं॥

हिं०-बांझककोडा, वनककोडा, बांझखखसा बं०-तिक्तकांकरोल, तित्काँकडी। म०-बांझकंटोली। गु०-बांझकंटोलो। क०-बंजेमडवागलु। लैं०-मोमोर्डिका डायोइकामेल Mom ordca Diaicamale.

बांझककोडा-हलका, कफनाशक, व्रणको शुद्ध करनेवाला, तीक्ष्ण, सर्पका मद हरनेवाला और विसर्प तथा विषविनाशक है॥२६६-२६७

विवरण।

वन्ध्याकर्कोटकी अर्थात् बांझककोडेकी वेल ककोडेके समान जंगलके वृक्षोंपर फैल जाती है, परन्तु इसमें फल नहीं आते इसलिये इसको बांझककोडा कहते हैं; फलके स्थानमें खाली एक कोष होता है और इसके जडके नीच खोदनेसे एक कन्द निकलता है॥

अथ मार्कण्डिका (×भुईंखखसा)

मार्कण्डिका भूमिवल्ली मार्कण्डी मृदुरेचनी। मार्कण्डिका कुष्ठहरी ऊर्ध्वाधःकायशोधिनी। विषदुर्गन्धकासघ्नी गुल्मोदरविनाशिनी॥ २६८॥

मार्कण्डिका, भूमिवल्ली, मार्कण्डी, मृदुरेचनी, (पीतपुष्पी, पीतपुष्पा, महौषधी और जालतिका ये भुईंखखसेके संस्कृत नाम हैं॥

हिं०-भुईंखखसा। बं०-कांकरोलभेद। म०-भुईतरवड। गु०-धोलीमीढीआवर। क०-तलाडवल्ली। तै०-नेलतांघेडी। फा०-अ०-सना। इं०-अलेक्झाण्ड्रियन् सेना Alexand san Seua लैं०-सेन्नफोलिया Sennafoliv.

भुईंखखसा-ऊपर नीचेसे शरीरको शुद्ध करनेवाला और कोढ, विष, दुर्गंध, खांसी, गुल्म तथा उदररोग विनाशक है॥ २६८॥

विवरण।

भुईंखखसाकी एक लता होती है, पत्ते परवलके समान होते हैं और फूल पीले रंगके होते हैं॥

अथ देवदाली (घघरवेल)।

देवदाली तु वेणी स्यात्कर्कटी च गरागरी। देवताण्डी वृत्तकोशस्तथा जीमूत इत्यपि। पीता परा खरस्पर्शा विषघ्नी गरनाशिनी॥ २६९॥ देवदाली रसे तिक्ता कफार्शःशोफपाण्डुताः। नाशयेद्वामनी तिक्ता क्षयहिक्काकृमिज्वरान्॥ ॥ २७०॥ देवदालीफलं तिक्तं कृमिश्लेष्मविनाशनम्। स्रंसनं गुल्मशूलघ्नमर्शोघ्नं वातजित् परम्॥ २७१॥

देवदाली, वेणी, कर्कटी, गरागरी, देवतांडी, वृत्तकोश, जीमूत, (जीमूतक, कण्टफला, सहा, कोषफला, कटूफला, घोरा,

×धातुमारण तथा विषनाशक योगोंमें इसका विशेष योग है।

कदम्बा, विषहा, सारभूषिका, वृत्तकोषा, विषघ्नी, दाली, लोमशपत्रिका, तुरंगिका, तर्कारी; देवताड, गरनाशिनी, घोषा, आखु विषहा, चतुरंगका, देवदालका, पीता और खरस्पर्शा) ये देवदालीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-सोनैया, विदाली, घघरबेल। म०-देवदाली। बं०-घोषकलताविशेष, दयाताडा गु०-कुकडवेल। क०-देवडंगर। तै०-डानरगड्डि। इं०-ब्रिस्टिल्युफीआ Bristyluffia लै० ल्युफा एकिनेटा Luffa Echinta

देवदाली—रसमें कडवी; वमनकारक, और कफ, बवासीर, सूजन, पाण्डुता, क्षय, हिचकी, कृमि तथा ज्वरको नष्ट करती है। देवदालीका फल-कडवा, स्रंसन, अत्यन्त वातनाशक और कृमि, कफ गुल्म, शूल तथा बवासीर नाशक है ॥ २६९ ॥ २७१ ॥

विवरण।

देवदाली, वन्दाल, घघरबेल, सुनया और खखसाके फलवाली बडी बेल होती है. खेतीकी बाडोंपर किसान लोग बहुत लगा देते हैं. फूल सफेद पीले और लाल तीन रंगके होते हैं फलोंके ऊपर बहुत छोटे छोटे कांटे होते हैं, इसका फल छोटी तरोईकासा होता है ॥

अथ जलपिप्पली (पनिसिगा)।

जलपिप्पल्यभिहिता शारदी शकुलादिनी। मत्स्यादनी मत्स्यगन्धा लाङ्गलीत्यपि कीर्तिता ॥२७२॥ जलपिप्पलिका हृद्या चक्षुष्या शुक्रला लघुः। संग्राहिणी हिमा रूक्षा रक्तदाहव्रणापहा। कटुपाकरसा रुच्या कषाया वह्निवर्द्धिनी॥२७३॥

जलपिप्पली, शारदी, शकुलादनी, मत्स्यादनी, मत्स्यगन्धा, लांगली, (तोतवल्लरी, अग्निज्वाला, चित्रपत्री, प्राणदा, तृणशीता और बहुशिखा) ये जलपीपलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-जलपीपल, पनिसिगा, गंगतिरिया। बं०-कांचडाघास। म०-जलपिंपळी। गु०-रतवेलियो। क०-होमुगुलु। फ०-पीपलआबी अ०-फिलफिलमाय। इं-पर्पल लिप्पा Purple Lippa लै०-लिपिया नोडिफ्लोरा Lipyia Nodiflora

जलपीपल-हृदयको प्रिय; नेत्रोंको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, हलकी, ग्राही, शीतल, रूखी, कसैली, पाकमें चरपरी· रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, और रक्तविकार, दाह तथा व्रणको नष्ट करती है ॥ २७२ ॥ २७३ ॥

विवरण।

जलपीपलके क्षुप प्रायः सजलभूमिमें उत्पन्न होते हैं, पत्ते बडी नोनियाके समान और नोकदार होते हैं इसमें पीपलके समान एक बाल निकलती हैं ॥

अथ गोजिह्वा (गोभी)।

गोजिह्वा गोजिका गोभी दार्विका खरपर्णिनी। गोजिह्वा वातला शीता ग्राहिणी कफपित्तनुत् ॥ २७४ ॥ हृद्या प्रमेहकासास्त्रव्रणज्वरहरी लघुः। कोमला तुवरा तिक्ता स्वादुपाकरसा स्मृता२७५॥

गोजिह्वा, गोजिका गोभी, दार्विका, खरपर्णिनी (कुरसा दार्विपत्रिका, अनडुजिह्वा, दर्विका दर्वी, दार्वी, गोजिह्विका, खरपत्री, वातोना अधोमुखा, और अधःपुष्पी) ये गोभीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-गोजिया, गोमी। बं०-दाडिशाक। म०-पाथरी। गु०-गलजीभी, मोपाथरी। तै०-यदुनालुकचेदडु। फ०-कलमरूमी। लै०-एलिफेण्टोपस्र स्केवर Elephantopus Scrtmibar.

गोभी-वातकारक, शीतल, ग्राही, हृदयको हितकारी, हलकी, कोमल, कसैली, कडवी, पाकमें मधुर और कफ, पित्त, प्रमेह, खांसी, रुधिरविकार, व्रण तथा ज्वरको नष्ट करती है ॥ २७४ ॥ २७५ ॥

विवरण।

गोभीके क्षुप छोटे तीन तीन फुट ऊँचे होते हैं, किसान लोग खेतोंमें बोते हैं, पत्ते लम्बे

लम्बे और चिकने होते हैं, सब पत्तोंके बीचमें एक फूल वहुत बडा चक्रकार अत्यन्त शोभायमान कोई हरे रंगका और कोई पीले रंगका उत्पन्न होता है, उस फूलके बीचमें एक डंडीसी निकलती है, उसपर पीले पीले फूल आते हैं; फिर कुछ दिन उपरान्त उसमें छोटी २ फलियां लगती हैं, उन फलियोंमेंसे छोटे २ भूरे रंगके बीज निकलते हैं, कई गोजिह्वा गावजुवांको कहते हैं, जिसके पत्ते अत्यन्त खरदरे होते हैं, सुश्रुतमें गोजीपत्रसे लेखन (खुरचना या रगडना) लिखा है, इससे गोजीके पत्र खरदरे होते हैं ॥

अथनागदमनी (नागदौन)।

विज्ञेया नागदमनी बलामोटा विषापहा। नागपुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरीति च ॥ २७६ ॥ बलामोटा कटुतिक्ता लघुः पित्तकफापहा। मूत्रकृच्छ्रव्रणान् रक्षो नाशयेज्जालगर्दभम् ॥ २७७ ॥ सर्वग्रहप्रशमनी निःशेषविष नाशिनी । जयं सर्वत्र कुरुते धनदा सुमतिप्रदा ॥२७८॥

नागदमनी, बलामोटा, विषापहा, नागपुष्पी, महायोगेश्वरी, (जम्बु, जाम्बवती, वृक्षा, रक्तपुष्पी, जाम्बवी, मलघ्नी, दुर्द्धर्षा, दुःसहा, वृत्ता, वृत्तपुष्पा, मदघ्नी, विषमर्दिनी, विफला, वनकुमारी, विषारी, श्रीकन्दा और कन्दशालिनी) ये नागदौनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-नागदौन, वरियारा। बं०-नागदमना म०-नागदवण। गु०-झीपटो । क०-नागदमनी। तै०-ईश्वरिचेट्टुदरणमु। ता०-माचिपत्री। लै०-आर्टिमिसिया बुलगोरिस साइन Asia Vulgorisa Syn इं०-ए. इन्डियन A. Indian

नागदौल-चरपरी, कडवी, हलकी, सर्वस्थानोंमें जय करनेवाली, धनदायक, सुमति, देनेवाली और पित्त, कफ, मूत्रकृच्छ्र, व्रण राक्षसभय, जालगर्दभ, सर्वग्रहोंकी पीडा और सब प्रकारके विष नाशक है ॥ २७८॥

विवरण।

नागदमनको कितने वैद्य तो दौना कहते हैं और कितने एक भिषग्वर [१]सुदर्शना कहते हैं, सो हमको ठीक ठीक निश्चय नहीं होता कि, नागदमन क्या वस्तु है ॥

अथ वीरतरुः (वरवेल)

वेल्लन्तरो जगति वीरतरुः प्रसिद्धः। श्वेतासितारुणविलोहितनीलपुष्पः। स्याज्जातितुल्यकुसुमः शमिसूक्ष्मपत्रः स्यात्कण्टकी विजलदेशज एष वृक्षः२७९॥ वेल्लन्तरो रसे पाके तिक्तस्तृष्णाकफापहः। मूत्राघाताश्मजिद्ग्राही योनिमूत्रानिलार्तिजित् ॥ २८० ॥

वेल्लंतर और वीरतरु ये बरबेलके संस्कृत नाम हैं। हिं०-बरबेल। गु०-गलतोरो वेलतूर॥

वरबेल--रसमें तथा पाकमें कडवा, ग्राही, और तृष्णा, कफ, मूत्राघात, पथरी, योनिकी पीडा, मूत्रकी, पीडा तथा वातरोग नाशक है ॥ २७९॥ २८०॥

विवरण।

यह वृक्ष चार प्रकारके फूलोंका होता है। एक सफेद, दूसरा काला, तीसरा लाल और चौथा बहुत लाल रंगका होता है, इन सबमें कांटे होते हैं, और पत्ते शमीके सदृश छोटे २ होते हैं तथा ये वृक्ष जांगल देशमें होते हैं।

अथ छिक्कनी (नकछिकनी)

छिक्कनी क्षवकृतीक्ष्णा छिक्किका घ्राणदुःखदा। छिक्कनी कटुका रुच्या तीक्ष्णोष्णा वह्निपित्तकृत्। वातरक्तहरी कुष्ठक्रिमिवातकफापहा ॥ २८१ ॥

---

१ बाजारमें जो सुदर्शन नामसे उसीको जडी मिलती है-बङ्गालप्रांतके वैद्य इस नामसे खरीदते हैं, एवं यथा नाम तथा गुणकोभी दिखलाती है अर्थात् सर्पविषको नष्ट करनेमें सचमुचही मंत्रसा गुण दिखलाती है।

छिक्कनी, क्षवकृत्, तीक्ष्णा, छिक्किका, घ्राणदुःखदा, (उग्रा, उग्रगन्धा, क्षवक, क्रूर और नासासंवेदनापटु) ये नकछिकनीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-नकछिकनी। बं०-हाँचुटी छिकनी, हेंचेंतागाछ। म०--नाकशिकणी। गु० -नाकछीकणा। फा०-वेखगाडजवां। अ०-उफरककुदुश। लै०-सेंटिपेडा आर्बिक्युलेरिस Centipeda Orbicularis.

नकछिकनी-चरपरी, रुचिकारक, तीक्ष्ण, गरम, अग्नि तथा पित्तकारक और वातरक्त, कोढ, कृमि तथा कफको नष्ट करती है॥२८१॥

विवरण।

नकछिकनीके क्षुप जलाशयके समीप आपसे आप उत्पन्न होजाते हैं, पत्ते छोटे २ होते हैं, फूल पीले २ होते हैं, उसके नीचे एक कन्द होता है, उसमें अत्यन्त तीक्ष्णगन्ध आती है और सूँघनेसे छीके आने लगती हैं ॥

अथ कुकुन्दर (कुकुरबन्दा)।

कुकुन्दरस्ताम्रचूडः सूक्ष्मपत्रो मृदुच्छदः। कुकुन्दरःकटुस्तिक्तो ज्वररक्तकफापहः। तन्मूलमार्द्रं निक्षिप्तं वदने मुखशोषहृत्॥ २८२ ॥

कुकुन्दर, ताम्रचूड, सूक्ष्मपत्र,और मृदुच्छद ये कुकुरोंदके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-कुकरोंदा। बं०-कुकुरमुता, कुकुरशोंका। म०-कुकुरबन्द्रा। गु०-वोडियाकेलार। फा०-कमाकिसुस। अ०-सनौवरूल अर्द। लै०--ब्ल्युमिया ओडो रेटा Blumea Odoreta.

कुकुरोंदा--चरपरा, कडवा, और ज्वर, रुधिरविकार तथा कफको नष्ट करता है। इसकी गीली जड काटकर मुखमें रक्खे तो मुखशोष नष्ट होता है ॥ २८२ ॥

विवरण।

कुकरोंदा अर्थात् भकुरमरके पेड सजल भूमिके निकट शीतल स्थानोंमें आपसे आपही उत्पन्न होजाते हैं, पत्ते छोटे और तमाखूकी आकृतिके होते हैं, फूल पीला होता है, इनके ऊपर रंगीत चोटीसी होती है ॥

अथ सुदर्शना।

सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधुपर्णिका। सुदर्शना स्वादुरुष्णा कफशोफास्रवातजित् ॥ २८३ ॥

सुदर्शन, सोमवल्ली, चक्राह्वा, मधुपर्णिका, (चक्रांगी, दध्यानी और वृषकर्णी) ये सुदर्शनाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--सुदर्शना। बं०--सुदर्शन गुलश्च। गु०--सुदर्शना।

सुदर्शना--मधुर, गरम, और कफ, सूजन, रक्तविकार तथा वातको नष्ट करती है ।॥२८३॥

विवरण।

सुदर्शनाका चक्रके समान गोल क्षुप बागोंमें होता है, मक्काके समान नरम होता है ॥

अथ आखुकर्णी (मूसाकानी)।

आखुकर्णी त्वाखुकर्णपर्णिका भूदरीभवा। आखुकर्णी कटुस्तिक्ता कषाया शीतला लघुः। विपाके कटुका मूत्रकफामयकृमिप्रणुत् ॥ २८४ ॥

आखुकर्णी, आखुकर्णपर्णिका, भूदरीभवा, (मूषाकर्णी, आखुपर्णी, वृषपर्णी, आखुपर्णिका, भूमिचरी, द्रवन्ती, शम्बरी, भूधराश्रया, कृशिका, उन्दुकर्णी, न्यग्रोधी, मूषिकपर्णी, वृश्चिकपर्णी, बहुकर्णिका, माता, भूचरी,चण्डा, बहुपादिका, प्रत्यक्श्रेणी, वृषा, पुत्रश्रेणी, आदिभू, चित्रा, सुपर्णी, शङ्मूलिका, आखुपर्णिका, प्रतिपर्णशिफा, सहस्रमुखी विक्रान्तपत्रश्रेणी, डपचित्रा, मूषिकाह्वया, रण्डा, मूषिकार्फंजिपत्रिका, मूषिपर्णिका, सचित्रा, मूषीकर्णी, सुकर्णिका और न्यग्रोधी) ये मूषाकर्णीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मूसाकानी। बं०-इन्दुरकाणी। म०-उन्दिरकानी। गु०-उदरकर्नी। क०-वल्लिहरुहे। तै०-एलुकचेविचेट्टु। फा०-गोरोमुष, सतर। अ०-आजानुसफार। लै०-आईपोमिया रेनिफार्मिस Ipomea Reniformis.

मूसाकानी-चरपरी, कडवी, कसैली, शीतल, हलकी, पाकमें चरपरी और मूत्ररोग, कफसम्बन्धी रोग तथा कृमिको नष्ट करती है ॥ २८४ ॥

विवरण ।

मूषाकर्णी अर्थात् मूसाकानीके क्षुप पृथ्वीपर फैले हुए होते हैं, हरेक पत्तेके नीचे जड होती है, डाली पतली और लाली लिये होती है, मिर्चके समान पत्ते पत्तेपर फल होते हैं ॥

अथ मयूरशिखा (मोरशिखा) ।

मयूराह्वशिखा प्रोक्ता सहस्राहिर्मधुच्छदा । नीलकण्ठशिखा लघ्वी पित्तश्लेष्मातिसारजित् ॥ २८५ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे गुडूच्यादिवर्गः ॥

मयूरशिखा, सहस्राहि, मधुच्छदा, नीलकंठशिखा, (बर्हिचूडा, शिखिनी, शिखालु, सुशिखा, शिखा, शिखिबला, केकिशिखा और मयूरचूडा) ये मोरशिखके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मोरशिखा । बं०-मयूरशिखा । म०-मण्यारशिखा । गु०-मोरशिखा । क०-होरेयसुवुव । फा०-असनाने, असलान । लै०-सिलोसिया क्रिस्टाटा CilosiaCristata.

मोरशिखा-हलकी तथा पित्त, कफ और अतिसारको नष्ट करती हे ॥ २८५ ॥

विवरण ।

मोरशिखाके क्षुप होते हैं, इसपर मोरकी चोटीके समान चोटी होती है, इसीलिये इसका नाम मोरशिखा है ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीवनीभाषाटीकायां गुडूच्यादिवर्गः ।

अथ पुष्प वर्गः ।

तत्र कमलस्य नामानि गुणाश्च ।

वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलम् । सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम् ॥ ॥ १ ॥ पंकेरुहं तामरसं सारसं सरसीरुहम् । बिसप्रसूनराजीवपुष्कराम्भोरुहाणि च ॥ २ ॥ कमलं शीतलं वर्ण्यं मधुरं कफपित्तजित् । तृष्णादाहास्रविस्फोटविषवीसर्पनाशनम् ॥ ३ ॥ विशेषतः सितं पद्मंपुण्डरीकमिति स्मृतम् । रक्तं कोकनदं ज्ञेयं नीलमिन्दीवरं स्मृतम् ॥ ॥ ४ ॥ धवलं कमलं शीतं मधुरं कफपित्तजित् । तस्मादल्पगुणं किञ्चिदन्यद्रक्तोत्पलादिकम् ॥ ५ ॥

पद्म, " यह शब्द पुल्लिग और नपुंसकलिंग दोनोंमें होता है" नलिन, अरविन्द, महोत्पल, सहस्रपत्र, कमल, शतपत्र, कुशेशय, पंकेरुह, तामरस, सारस, सरसीरुह, बिसप्रसून, राजीव, पुष्कर, अंभोरुह, (पंकज, अब्ज, अम्बुज, सरोरुह, पाथोज, नल, अंभोज, अम्बुजन्म, अंबुरुह, अंबुपद्म, सुजल, आस्यपत्र, पाथोरुह, पुष्कर, वार्ज, तामरस, कञ्ज, कज, शतदत्र, बिसकुसुम, बारिरुह, सरसिज, सलिलज, वारिज, कवार, वनशोभन, जलजन्म, जलरुट्, पंकज, श्रीवास, श्रीपर्ण, इंदिरालय, जलजात, नालीक, वनज, अम्लान, पुटक, अब्ज, सारज, और कुटप) ये कमलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी--कमल, सफेद कमल । बं०-पद्म, श्वेतपद्म । म०-कमळ, पांढरे कमळ । गु०--कमल, धोले कमल । क०--विलियाताबरे । तै०--कालावा । ता०--तामरै । फा०--नीलुफर । अ०-करंबुलमा । इं० लोटसू Lotus लै०--नीलम्बियम् स्पेसीयोजम् Nelumbium Speciosum

विशेष करके सफेद कमलको पुण्डरीक, लाल कमलको कोकनद और नीलकमलको इंदीवर कहते हैं ॥

कमल--शीतल, वर्णको उत्तम करनेवाला, मधुर, और कफ, पित्त, तृषा, दाह, रुधिरविकार, विस्फोटक, फोडा, विष तथा विसर्पविनाशक है। सफेद कमल, शीतल, मधुर और कफ तथा पित्तको नष्ट करता है। अन्य लाल कमल आदि इससे कुछ न्यून गुणवाले हैं १-५ ॥

विवरण ।

कमल--लाल, नीले और सफेद इन फूलोंके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं, कमल विशेष करके गभीर और निर्मल नीरवाले स्वच्छ सरोवर और तालोंमें उत्पन्न होते हैं, पत्ते बडे बडे गोल और चिकने जिनपर जलका बिंदु न ठहरे इस प्रकारके अद्भुत और शोभायमान होते हैं, उन पत्तोंको पुरैनके पात भी कहते हैं. उनके नीचे जो डण्डी होती है उसको मृणाल अर्थात् कमलकी नाल कहते हैं, कमलके फूलोंमें जो पीला पीला जीरा होता है उसको कमलकेशर कहते हैं, कमलके फूलोंमें जो सरस रस लगा होता है,उसको कमलका रस और मकरन्द कहते हैं, कमलमें जो फल लगते हैं, उसको पद्मकोष कहते हैं, उनमें जो बीज निकलते हैं उनका नाम कमलगट्टे हैं, कमलकी जडको भसीडे कहते हैं ॥

अथ पद्मिनी ।

मूलनालदलोत्फुल्लफलैः समुदिता पुनः। पद्मिनी प्रोच्यते प्राज्ञैर्बिसिन्यादिश्च सा स्मृता ॥ ६ ॥

आदिशब्दान्नलिनी कमलिनीत्यादि ॥

पद्मिनी शीतला गुर्वी मधुरा लवणा च सा। पित्तासृक्कफनुद्रूक्षा वातविष्टम्भकारिणी ॥ ७ ॥

मूल, नाल, पत्र और बीजादि संयुक्त प्रफुल्लित कमलको विद्वान् लोग पद्मिनी कहते हैं, पद्मिनी. बिसिनी, नलिनी, कुंदिनी,मृणालिनी, कमलिनी, पुटकिनी, कंजिनी, सरोजिनी, अरविंदिनी, अब्जिनी, नालिकिनी, अम्भोजिनी, पुष्करिणी और जम्बालिनी) ये पद्मिनीके संस्कृत नाम हैं ॥

पद्मिनी- शीतल, भारी, मधुर,खारी,रूखी, वात तथा मलबंधको करनेवाली है, और पित्त. रुधिरविकार तथा कफको नष्ट करती है६॥७॥

अथ नवपत्रादि ।

संवर्तिका नवदलं बीजकोशस्तु कर्णिका। किञ्जल्कः केशरः प्रोक्तो मकरन्दो रसः स्मृतः। पद्मनालं मृणालं स्यात्तथा बिसमिति स्मृतम् ॥ ८ ॥

पद्मिनीके नवीन पत्तोंको संवर्त्तिका, बीजकोशको कर्णिका, केशरको किंजल्क और रसको मकरन्द कहते हैं, पद्मिनीकी नालको मृणाल अथवा बिस (भसीडा) कहते हैं॥८॥

संवर्तिका हिमा तिक्ता कषाया दाहतृट्प्रणुत् । मूत्रकृच्छ्रगुदव्याधिरक्तपित्तविनाशिनी ॥ ९ ॥

संवर्त्तिका (नवीन पत्ती), शीतल, कडवी, कसैली और दाह, तृषा, मूत्रकृच्छ्र गुदाके रोग तथा रक्तपित्तको नष्ट करती है ॥ ९ ॥

कर्णिका ।

पद्मस्य कर्णिका तिक्ता कषाया मधुरा हिमा। मुखवैशद्यकृल्लध्वी तृष्णास्रकफपित्तनुत् ॥ १० ॥

कमलकी कर्णिका (बीजकोष)–कडवी, कसैली मधुर, शीतल, मुखको स्वच्छ करनेवाली, हलकी और तृषा, रक्तविकार, कफ तथा पित्तको नष्ट करती है ॥ १० ॥

किंजल्कः (केशर)।

किञ्जल्कः शीतलो वृष्यः कषायो ग्राहकोऽपि सः। कफपित्ततृषादाहरक्तार्शो विषशोथजित्॥ ११॥

कमलकी केशर-शीतल, वृष्य, कसैली, ग्राही और कफ, पित्त, तृषा, दाह, रक्तविकार, बवासीर विष तथा सूजनको नष्ट करती है॥ ११॥

मृणालम्।

मृणालं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्रजिद्गुरु॥१२॥ दुर्जरं स्वादुपाकञ्च स्तन्यानिलकफप्रदम्। संग्राहि मधुरं रूक्षं शालूकमपि तद्गुणम्॥ १३॥

मृणाल (कमलकी नाल)-शीतल, वृष्य, भारी, दुर्जर, पाकमें मधुर, दुग्धवर्द्धक, वात, कफको करनेवाली, ग्राही, मधुर, रूक्ष और पित्त, दाह तथा रक्तविकारको नष्ट करती है। कमलके कन्दमें भी नालके सदृश गुण हैं॥ १२॥ १३॥

अथ स्थलकमलम्।

पद्मचारिण्यतिचराऽव्यथा पद्मा च शारदा। पद्माऽनुष्णा कटुस्तिक्ता कषाया कफवातजित्। मूत्रकृच्छ्राश्मशूलघ्नी श्वासकासविषापहा॥ १४॥

पद्मचारिणी, अतिचरा, अव्यथा, पद्मा, शारदा, (चारिटी, पद्माह्वा, सुगन्धमूला, अम्बुरुहा, लक्ष्मी, श्रेष्ठा, सुपुष्करा, रम्या, पद्मावती, स्थलरुहा, पुष्करिणी, पुष्करपर्णिका और पुष्करनाडी) ये स्थलकमलके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी स्थलकमल। बं०-स्थलपद्म। म०-स्थलकमल। लै०-आयोनीडियम् सुफ्रुटिकोसम lonidium suffrutiecosum. ता०-निलत्तामरै

स्थलकमल-गरम नहीं, चरपरा, कडवा, कसैला और कफ, वात, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, शूल, श्वास, खांसी तथा विषविनाशक है॥१४॥

विवरण।

स्थलकमल भी कमलके समान ही होता है, परन्तु यह बात अधिक है कि, पृथ्वीमें उत्पन्न होता है, आकृति तो सब कमलहीकी होती है, परन्तु पत्ते और फूल फल सब कमलसे छोटे होते हैं॥

अथ कुमुदम्।

श्वेतं कुवलयं प्रोक्तं कुमुदं कैरवं तथा। कुमुदं पिच्छिलं स्निग्धं मधुरं ह्लादि शीतलम्॥ १५॥

कुवलय, कुमुद, कैरव, (चन्द्रकान्त, गर्दभ, कुमुद, सौगंधिक, कन्दोत, कच्छ, कुव, गन्धसोम, सितोत्पल, धवलोत्पल, श्वेतोत्पल, कह्लार, शीतलक, शशिकान्त, चन्द्रिकांबुज और इन्दुकमल) ये कुमुदके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-बबूला, कुमुद। गु०-पोयणां। म०-पांढरे कमळ। क०-बिलियनेइदिलु। ता०-अल्लि।

कुमुद-पिच्छिल, चिकना, मधुर, सुखदायक और शीतल है॥ १५॥

अथ कुमुदिनी।

कुमुद्वती कैरविका तथा कुमुदिनीति च। सा तु मूलादिसर्वाङ्गैरुक्ता समुदिता बुधैः। पद्मिन्या ये गुणाः प्रोक्ताः कुमुदिन्याश्च ते स्मृताः॥ १६॥

कुमुदिनी, कुमुद्वती, कैरविका, (उत्पलिनी, कैरविणी, चन्द्रेष्टा, कुवलयिनी इन्द्रवरिणी और नीलोत्पलिनी) ये कुमोदिनीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-कमोदिनी, कमलिनी, तालाबका आनार। बं०-सुन्दीपुष्प। म०-कुमुदिनी॥

जो कुमुद सम्पूर्ण जड आदि सर्वांगसे सहित हो, उसको विद्वान् कुमुदिनी कहते हैं॥

जो गुण ऊपर पद्मिनीमें कहे हैं, वे ही गुण कमोदनीके जानने॥ १६॥

विवरण।

कुमुद भी कमलके तुल्य तीन प्रकारके होते हैं, लाल, नीले और, सफेद फूलोंके

भेदसे जाने जाते हैं, कुमुदके फूल कमलके फूलोंसे छोटे होते हैं और रात्रिको चन्द्रमाके उदय होनेपर खिलते हैं और सूर्यका प्रकाश होते ही बन्द होजाते हैं, इसके पत्ते फूलके ऊपर ही लगे होते हैं, इसमें जावित्रीके समान कोष होता है, उस कोषका फल हो जाता है, कच्ची अवस्थामें तो उसके भीतर लाल दाने होते हैं और पक जानेपर वे दाने काले पड जाते हैं. उस फलको घँघोल कहते हैं, इनकी जडको चाच अथवा सालक कहते हैं ॥

अथ वारिपर्णी (काई)

वारिपर्णी कुम्भिका स्याद्वारिमूली खमूलिका । वारिपर्णी हिमा तिक्ता लघ्वी स्वाद्वी सरा कटुः । दोषत्रयहरी रूक्षा शोणितज्वरशोषहृत् ॥ १७ ॥

वारिपर्णी; कुम्भिका, वारिमूली, खमूलिका, (आकाशमूली, कुतृण, कुमुदा, जलवल्कल, श्वेतपर्णी, अशकुम्भी, पानीयपुष्पज कुम्भी, खमूलि, पर्णी, पृश्नी, वारिकर्णिका और वारिकर्णी) ये कुम्भीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--कुम्भी, शलकुम्भी, काई । बं०--पानी टोका, पाना । म०--जलमण्डवी । गु०--जलऊपरना वेला । क०- हांबलं । ता०--पाशी ॥

जलकुम्भी- शीतल, कडवी, हलकी, स्वादिष्ट, दस्तावर, चरपरी, त्रिदोषजनक, रूक्ष और रक्त विकार ज्वर तथा शोषको नष्ट करती है ॥ १७ ॥

अथ शैवालम् (सिवार) ।

शैवालं जलनीली स्याच्छैवलं जलजं च तत् । शैवालं तुवरं तिक्तं मधुरं शीतलं लघु । स्निग्धं दाहतृषापित्तरक्तज्वरहरं परम् ॥ १८ ॥

शैवाल, जलनीली, शैवल, जलज, (शेपान, शेवाल, शिवल, शेपाल, जलनीलिका, जलनील, अम्बुचामर, हटपर्णी, अम्बुताल, जलशूक, जलाश्वन, जलकेश, वांवार और जलपृष्ठजा) ये सिवारके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--सिवार । बं०--शेओयाला । म०--गु०--शोवाळ । तै०--नासु । फा०--पसमेंदरा । अ०--तुहलब । लैं०--सेरेटोफैलियं सब्मेर्सम् Serratophyll eum Submersum ता०-वेलंपाशी ।

सिवार--कसैली, कडवी, मधुर, शीतल, हलकी, चिकनी और दाह, तृषा, पित्त, रुधिरविकार तथा ज्वरको अत्यन्त नष्ट करनेवाली है ॥ १८ ॥

अथ शतपत्री (सेवतीगुलाब) ।

शतपत्री तरुण्युक्ता कर्णिका चारुकेशरा । महाकुमारी गन्धाढ्या लाक्षा कृष्णाऽतिमंजुला ॥१९॥ शतपत्री हिमा हृद्या ग्राहिणी शुक्रला लघुः । दोषत्रयास्रजिद्वर्ण्या कट्वी तिक्ता च पाचनी॥२०॥

शतपत्री, तरुणी, कर्णिका, चारुकेशरा, महाकुमारी, गन्धाढ्या लाक्षा, कृष्णा, अतिमंजुला, (सौम्यगन्धा, सुवृत्ता, शतपत्रिका, लाक्षापुष्पा, सुमना, सुशीता और शतदला (ये गुलाबके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी--गुलाब । बं०,-गोलाप । म०--गुलाबाचें फूल, । गु०--मोशमी गुलाब । क०--धेवडे । तै०- गुलाबीपुवु । फा०--गुलेसुर्ख । अ०--जरंजबीन । ता० पन्नीर, इं०--केबजरोस Cabbagerose. कनफेक्शन् आफ रोज Confecicn of rose. लैं०--रोसो डेमेसेना Roso Damascena.

गुलाब--शीतल, हृदयको प्रिय, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, हलका वर्णको उत्तम करनेवाला, कडवा, चरपरा, पाचन और तीनों दोषोंको तथा रुधिरविकारको नष्ट करता है ॥१९॥२०॥

विवरण ।

सेवती और गुलाब ये दोनों एकही जातिके हैं । परन्तु सेवतीका वृक्ष और गुलाबका क्षुप होता है, विशेष करके ये दोनों वन, उपवन और पुष्पवाटिकाओंमें बहुत होते हैं, सेवतीके सफेद फूल होते हैं और प्राचीन हैं और गुलाब दो प्रकारका होता है, एक देशी जिसमें महा-

सुगन्ध आती है और फूल गुलावी होते हैं, फूल चैत्र, वैशाखमें आते हैं, दूसरा सादा गुलाब चीनी वह कई प्रकारका होता है, लाल, गुलावी, सफेद और पीले भाँति भाँतिके फूल बारहों महीनें आते हैं, वह नवीन जातिका है, अर्थात् पहिले हिन्दुस्थानमें नहीं होता था, अब ऐसा फैला है कि उसके नामसे गुलाब बाटी और पुष्पोद्यान प्रसिद्ध हो गये हैं ॥

अथ वासन्ती (नेवारी)।

नेपाली कथिता तज्ज्ञैः सप्तला नवमालिका। वासन्ती शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयास्रजित्॥ २१ ॥

नेपाली, सप्तला, नवमालिका, वासन्ती, (प्रहसन्ती, सुवसन्ता, वसन्तजा, सुकुमारा, शिखरिणी, मधुगन्धा, गुच्छपुष्पा, ग्रैष्मिका, राजादनदला, वनजा, सूक्ष्मपुष्पिका, नवमालिका, भद्रवर्म, देवलता, गन्धनिलया, मल्लिका, ग्रीष्मभवा, अतिमोदा, ग्रैष्मी, ग्रीष्मोद्भवा, सुकुमारी, सुरभि, शुचिमल्लिका, सुगन्धा, नेवाली, ग्रीष्मी, बनवासिनी, समलाकान्ता और अतिसुलभा) ये नेवारीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-नेवारी, वासन्ती। बं०-नेपाली, नेओयार। म०-नेवाळी। गु०-वटमोगरा। क०-विखन्तिगे। लै०-इक्सोरा पार्विफ्लोरा Ixosa Parviflora.

नेवारी-शीतल, हलकी, कडवी और तीनों दोष तथा रक्तविकार नाशक है ॥ २१ ॥

विवरण।

नेपारीके क्षुप उपवन और पुष्पवाटिकाओंमें होते हैं, पत्ते खिरनीके समान होते हैं, पांच पांच पँखुरीके फूलोंके गुच्छे होते हैं और ये फूल प्रायः ग्रीष्मऋतुमें खिलते हैं. उनमें अत्यन्त सुगन्धि आती है, चनेके बराबर फलोंके झुमके लगते हैं, प्रथम अवस्थामें हरे और पकनेपर काले होजाते हैं ॥

अथ वार्षिकी (वेला)

श्रीपदीषट्पदानन्दा वार्षिकी मुक्तबन्धना। वार्षिकी शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयापहा। कर्णाक्षिमुखरोगघ्नी तत्तैलं तद्गुणं स्मृतम् ॥ २२ ॥

श्रीपदी, षट्पदानन्दा, वार्षिकी और मुक्तबन्धना ये रायबेलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-वेलवार्षिकी, बेला । म०-साठईमोगरी । गु०-लवारो। क०-काडमलिगे। ता०-इस्लवाक्षी।

रायवेल-शीतल, हलकी, कडवी और तीनों दोष, कर्णरोग, नेत्ररोग तथा मुखरोगोंको नष्ट करती है इसके तेलमें भी यही गुण है ॥२२॥

विवरण।

वार्षिकी अर्थात् बेलके क्षुप बेलके समान होते हैं, पत्ते मोतियोंके समान होते हैं, ग्रीष्मऋतुमें फूल आते हैं, फूलका रङ्ग सफेद होता हैं, एक फूलमें छःसे लेकर बत्तीसतक पँखुरी होती हैं, उन फूलोंमें ऐसी उत्तम सुगन्धि आती है कि हृदयकमलकी कली २ खिला देती है. उन फूलोंका तेल भी बहुत सुगन्धित बनता है।

अथ मालती। स्वर्णजाती (चमेली)।

जातिर्जाती च सुमना मालती राजपुत्रिका। चेतिका हृद्यगन्धा च सा पीता स्वर्णजातिका ॥ २३ ॥ जातीयुगं तिक्तमुष्णं तुवरं लघु दोषजित्। शिरोऽक्षिमुखदन्तार्त्तिविषकुष्ठानिलास्रजित् ॥२४

जाति, जाती, सुमना, मालती, राजपुत्रिका, चेतिका, हृद्यगन्धा, (सुरप्रिया, चेतकी, सुरभिगन्धा' सुकुमारी, सन्ध्यापुष्पी, मनोहरा, राजपुत्री, मनोज्ञा, तैलमालिनी, जनेष्टा, जातिका, प्रियंवदा, मालिनी, वासन्ती, प्रहसन्ती सुवसन्ता, वसन्तजा और वार्षिका) ये चमेलीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-चमेली, चबेली । बं०-चामिली । म०-मोगऱ्याचा, भेद । गु०-चमेली । फा०-यासमम । इं०-स्पेनिश जास्मिन Spanish Jesmine. लै०-जेस्मीनम् ग्राण्डिफ्लोरम् Jasminum Grandi.

चमेली और पीलीचमेली-कडवी, गरम, कसैली, हलकी, दोषोंको जीतनेवाली और मस्तकरोग, नेत्ररोग, मुखरोग, दन्तरोग, विष, कोढ, वात तथा रक्तविकारको नष्ट करती है ॥ २३ ॥ २४ ॥

विवरण ।

चमेलीकी वेल वन, बाग और पुष्पवाटिकाओंमें बहुत लगाई जाती है, फूल बहुत छोटे छोटे और कोमल पँखुरी होते हैं, फूलोंका रङ्ग सफेद और पँखुरीके नीचे नोकपर कुछ कुछ लालीसी होती है । इसकी बन्द कलियाँ जब खिलती हैं तब परमानन्द देनेवाली मन्द मन्द सुगन्ध आती है, ये प्रायः चौमासेमें बहुत खिलती है, इसके फूलोंका तेल परमोत्तम बनता है, पीली चमेलीका फूल पीले रंगका होता है. पत्ते कुछ बडे होते हैं ॥

अथ यूथिका (जूही, सुवर्णजूही) ।

यूथिका गणिकाऽम्बष्ठा सा पिता हेमपुष्पिका । यूथीयुगं हिमं तिक्तं कटुपाकरसं लघु ॥ २५ ॥ मधुरं तुवरं हृद्यं पित्तघ्नं कफवातलम् । व्रणास्रमुखदन्ताक्षिशिरारोगविषापहम् ॥ २६ ॥

यूथिका, गणिका, अम्बष्ठा, (यूथी, वासन्ती- बालपुष्पी, शिखण्डिनी, मागधी, प्रहसन्ती, बालपुष्पिका. भृङ्गानन्दा, पुष्पगन्धा, गुणोज्वला चारुमोदा, शिखण्डी, हरिणी, शंखयूथिका, सुगन्धिका, यूथितरुणी, सुगन्धा, मोदनी, बहुगन्धा और गजाह्वया) ये जूहीके संस्कृत नाम हैं ॥

हेमपुष्पिका, (स्वर्णयूथी, हेमपुष्पी, मनोहरा, सुवर्णयूथी, हेमपुष्पा, सुगन्धा, हेमयूथिका, युवतीष्टा. रक्तगन्धा. शिखण्डी, नागपुष्पिका, पीतयूथी, पीतिका, कनकप्रभा, हैमा गन्धाढ्या, सुवर्णाह्वा, और व्यक्तगन्धा) ये पीली जूहीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी जुही, पीली जुही । बं०-जुई, स्वर्ण जुई । म०-पांढरी, पिवली जुई । क०-यरडुमोल्ले । तै०-जुइपुप्पालु । ता०-रट्टैमुल्लै । लै०-जसमीनम् ओरिक्युलेटम् Jasminum aurculatum.

दोनों प्रकारकी जूही-शीतल, कडवी, पाकमें तथा रसमें चरपरी, हलकी, मधुर, कसैली, हृदयको प्रिय, कफ तथा वातकारक और पित्त, व्रण, रक्तविकार, मुखरोग, दन्तरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग तथा विष नाशक है ॥ २५ ॥ २६ ॥

विवरण ।

जूही दो प्रकारकी होती है, एक सफेद फूलकी और दूसरी पीले फूलकी । प्रायः इसकी बेल सुन्दर सुन्दर उपवन और पुष्पोद्यानोंमें अधिक बोई जाती हैं, पत्ते चमेलीसे मिलते हुए होते हैं, परन्तु कुछ छोटे होते हैं, फूलकी पँखुरियां सफेद रंगकी और महा सुगंधियुक्त होती हैं । दूसरी पीले रंगकी जुही होती है, उसपर पीले फूल लगते हैं । इसकी सुगन्धके आगे गन्धराज भी मलिन जान पडता है ॥

अथ चम्पकः (चम्पा) ।

चाम्पेयश्चम्पकः प्रोक्तो हेमपुष्पश्च स स्मृतः । एतस्य कलिका गन्धफलीति कथिता बुधैः ॥ २७ ॥ चम्पकः कटुकस्तिक्तः कषायो मधुरो हिमः । विषक्रिमिहरःकृच्छ्रकफवातास्रपित्तजित् ॥२८॥

चाम्पेय, चंपक, हेमपुष्प, (सुकुमार, सुरभि शीतल, कांचन, षट्पदातिथि, कुसुमाधिराट्, हेमाह्व, सुभग, शीतलच्छद, कुसुमाधिप, वरलब्ध, उग्रगन्ध, कटु, हेमपुष्पक, पुण्यगन्ध, नागपुष्प, स्वर्णपुष्प, भृङ्गमोही, भ्रमरातिथि, दीपपुष्प, वनदीप, स्थिरगन्ध, अतिगन्धक, पीतपुष्प और स्थिरपुष्प) ये चंपाके संस्कृत नाम हैं ॥

गन्धफली, (बहुगन्धा, गन्धमोदिनी, और चम्पककोरक) चम्पेकी कलीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-चम्पा। बं०-चांपा। म०-सोनचांपा। गु०-चंपो. क०-संपगे। ते०-चंपागी पुवुल। ता०-शेण्बकम्। लै०-मिचेलिया चम्पेका Michelia Champaca.

चम्पा-चरपरी, कडवी, कसेली, मधुर, शीतल और विष, कृमि, मूत्रकृच्छ्र, कफ, वात, रक्तविकार तथा पित्तको नष्ट करती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

विवरण।

चम्पक वृक्ष बडे बडे बागोंमें और उपवनोंमें लगाये जाते हैं, पत्ते लम्बे अमरूदके सदृश होते हैं, फूल पीले और मनोहर अत्यन्त मन्द सुगंधिवाले होते हैं, प्रायः हमारे देशमें इसके वृक्ष बहुत कम होते हैं, पर मालवेमें बहुत होते हैं ॥

अथ बकुलः (मौलसिरी)।

बकुलो मधुगन्धश्च सिंहकेसरकस्तथा।
बकुलस्तुवरोऽनुष्णःकटुपाकरसो गुरुः।
कफपित्तविषश्वित्रकृमिदन्तगदापहः ॥२९॥

बकुल, मधुगन्ध, सिंहकेसरक, (केशर-कंठतैलाङ्गः मधुपञ्जर, मुकुल, वकुल, मकुल, वरलब्ध, सीधुगन्ध, स्त्रीमुखमधु, दोहल, मधुपुष्प, सुरभि, भ्रमरानन्द, स्थिरकुसुम, शारदिक, करक, सीधुगन्ध, विशारद, गूढपुष्पक धन्वी, मदन, मद्यमेदा और चिरुपुष्प) ये मौलसिरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-मौलसिरी। बं०-बकुलगाछ। म०-बकुळ, बकुली। गु०-बोलसिरी। क०-बकुल। ते०-पामडा। ता०-मोगळमरम्। इं०-सुरीनम मेडलर Surinammedlar लै०-माईमुसोप्सएलंजी Mimusops Flengi

मौलसिरी-कसैली, गरम नहीं, पाकमें चरपरी, भारी और कफ, पित्त, विष, श्वेतकोढ, कृमि तथा दन्तरोग नाशक है ॥ २९ ॥

अथ बृहद्बकुलः (बडी मौलसिरी)।

शिवमल्ली पाशुपत एकाष्ठीलो बुको वसुः।
बुकोऽनुष्णः कटुस्तिक्तः कफपित्तविषापहः। योनिशूलतृषादाहकुष्ठशोथास्रनाशनः ॥ ३० ॥

शिवमल्ली, पाशुपत एकाष्ठील, बुक, वसु, (शैव, शिवपिण्ड, सुव्रत, वसुक, शिवांग, शिवेष्ट, कृमिपूरक, शिवाह्लाद और शाम्भव) ये बडी मौलसिरीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-वनहुला, बडी मौलसिरी। म०-थोरवकुल। गु०-मोटीवोलसरी ॥

बडीमौलसिरी-गरम नहीं। चरपरी, कडवी और कफ, पित्त, विष योनिशूल, तृषा, दाह, कुष्ठ, सूजन तथा रुधिरविकारको नष्ट करती है ॥ ३०

विवरण।

मौलसिरीके वृक्ष वन और उपवनमें बहुत होते हैं, पत्ते राजजामुनके समान होते हैं फूल सफेद और सूक्ष्म तथा चक्राकार होते हैं, उनमें महासुगंधि आती है, इसकी सुगंधि सूखनेपर भी न्यून नहीं होती, मौलसिरीकी नर नारी दो जाति है, एकमें फल आते हैं और दूसरीमें नहीं आते, जिसमें फल नहीं आते, उस मौलसिरीके फूल कुछ बड़ा होता है और रंग सफेद होता है और जिसपर सिंदूरी रंगका फूल आता है, उसका फल कुछ लालीलिये छोटा है और जिस मौलसिरीमें फल नहीं आता, उसको मौलश्री कहते हैं और जिसपर फल आता है, उसको मौलसरा कहते हैं दूसरी बडी मौलश्रीका फूल बडा होता है ॥

अथ कदम्बः।

कदम्बः प्रियको नीपो वृत्तपुष्पो हलिप्रियः। कदम्बो मधुरः शीतः कषायो लवणो गुरुः। सरो विष्टम्भकृद्रूक्षः कफस्तन्यानिलप्रदः ॥ ३१ ॥

कदम्ब, प्रियक, नीप, वृत्तपुष्प, हलिप्रिय, (सुरभि, प्रावृषेण्य, हरिप्रिय, ललनाप्रिय, प्रियक, हरिद्र, अशोकारि, नीप, कादम्ब षट्पदेष्ट, जाल, कादम्बर्यः जीर्णपर्ण महाढय और कर्णपूरक) ये कदम्बके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-कदम, कदम्ब। बं०-कदमगाछ। म०-राजकदम। गु०-कदम्ब। क०-कडउ। तै०-कडिमिचेट्टु। अ०-कदम्ब। लै०-एथोसिफालस केडंबा Anthocephalus Cadumba. नौक्लियापार्विफ्लोरा Nauclea Parviflora ता०-कडप्पमरम्।

कदम्ब-मधुर, शीतल, कसैला, खट्टा, हलका, दस्तावर. विष्टम्भकारक, रूक्ष और कफ, दुग्ध और वातको बढानेवाला है ॥३१॥

विवरण।

कदम्बके वृक्ष बडे बड़े होते हैं, ये हमारे देशमें कम हैं, परन्तु मथुरा वृन्दावनमें बहुत हैं पत्ते गोल गोल महुवेकेसे होते हैं, फल गोल छोटे नींबूके समान होते हैं, इसमें फूल भी गोल ही होता है, उसके नीचे फल उत्पन्न होता है, फूल छोटा और सुगन्धयुक्त होता है॥

अथ कुब्जकः (कूजा)।

कुब्जको भद्रतरणिर्बृहत्पुष्पोऽतिकेसरः। महासहा कण्टकाढ्या नीलाऽलिकुलसंकुला ॥ ३२ ॥ कुब्जकःसुरभिःस्वादुः कषायानुरसःसरः। त्रिदोषशमनो वृष्यः शीतहर्त्ता च स स्मृतः ॥ ३३ ॥

कुब्जक, भद्रतरणि, वृहत्पुष्प, अतिकेसर, महासहा, कंटकाढया, नीला, अलिकुलसंकुला (खर्व, देवतरुणी, और वारिकंटक) ये कूजाके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-कूजा। गु०-कुजडो॥

कूजा-सुगंधि,स्वादिष्ट,कसैला,दस्तावर तीनों दोषोंको शमन करनेवाला, वीर्यवर्द्धक और शीतलतानाशक है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

विवरण।

कूजेका वृक्ष बहुत बडा होता है, वन और उपवनोंमें बहुत देखनेमें आता है, पत्ते गुलाबके पत्तोंसे कुछ बड़े होते हैं, फूल सेवतीके समान सफेद होते हैं॥

अथ मल्लिका।

मल्लिका मदयन्ती च शीतभीरुश्च भूपदी। मल्लिकोष्णा लघुर्वृष्या तिक्ता च कटुका हरेत्। वातपित्तास्यदृग्व्याधि कुष्ठारुचिविषव्रणान् ॥ ३४ ॥

मल्लिका, मदयन्ती, शीतभीरु, भूपदी (भद्रवल्ली, प्रिया, सौम्या, वनचन्द्रिका, तृणशून्य, तृणशून्या वनचन्द्रिका, नारीष्टा, सिता और मल्ली) ये मोतियेके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-मोतिया। बं०-मल्लिकाफुलरेगाछ। तै०-मल्लिपुष्पालु। लै०-जेस्मिनम् सेविबक Jasminum Savibac. ता०-मल्ली।

मोतिया-गरम, हलका, वीर्यवर्द्धक, कडवा, चरपरा और वात, पित्त, मुखरोग, कोढ, नेत्ररोग, अरुचि तथा विष व्रणको नष्ट करता है ॥ ३४ ॥

विवरण।

मल्लिका अर्थात् मोतियेके क्षुप बेलेके समान पुष्पवाटिकाओंमें अधिक होते हैं, पत्ते बेलेके सदृश होते हैं, फूलकी कली गोल गोल मोतियोंकेसे गुच्छे लताकी चोटियोंपर लटकते रहते हैं, जब वह खिलती है तब उसकी महासुगन्धिको सूँघ मदनबाण भी अपने बाणोंको छिपा कायर बन वनमें छिपनेकी इच्छा करता है। उसमें छः पखुरी होती हैं। फूल सफेद होता है॥

अथ माधवी (वसन्ती)।

माधवी स्यात्तु वासन्ती पुण्ड्रको मण्डकोऽपि च। अतिमुक्तो विमुक्तश्च कामुको भ्रमरोत्सवः। माधवी मधुरा शीता लघ्वी दोषत्रयापहा ॥ ३५ ॥

१-विशेषप्रयोग--कुष्ठरोगनाशक योगमें इसका विशेष प्रयोग होता है।

माधवी, वासन्ती, पुण्ड्रक, मण्डक, अतिमुक्त, विमुक्त, कामुक, भ्रमरोत्सव (चन्द्रवल्ली, सुगन्धा, भृंगप्रिया, भद्रलता, भूमिमण्डपभूषणा, पुण्ड्रकलता, अतिमुक्तक, माधविका, विमुक्तक, माधवीलता, वसन्तदूती और लतामाधवी) ये माधवीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-माधवी, वसन्ती । बं०-माधवीलता । म० पीतवेल । गु०-मधुमाधवी । क०-इन्द्रगोच्चे । विखन्तिगे । तै०-माधवतोगे । इं०-क्लस्टर्ड हिप्टेज Clustered Hiptage लै०-हिप्टेज मेडेब्लोटा । Hiptage Madablota ता०-मुल्लैप्पू ॥

माधवी-मधुर, शीतल, हलकी और त्रिदोषनाशक है ॥ ३५ ॥

विवरण ।

माधवीकी लता बहुत लम्बी और फैलनेवाली होती है, प्रायः माली लोग बागमें लगा देते हैं, बेलके ऊपरकी छाल भूरी होती है और कुछ कुछ लाली लिये भी होती है, पत्ते चमेली के समान होते हैं और सुगंधिको तो कहना ही क्या है सम्पूर्ण उपवनको सुगंधिका भाण्डागार बना देती है ॥

अथ केतकः सुवर्णकेतकी (केवडा) ।

केतकः सूचिकापुष्पो जम्बुकः क्रकचच्छदः । सुवर्णकेतकी त्वन्या लघुपुष्पाः सुगन्धिनी ॥ ३६ ॥ केतकः कटुकः स्वादुर्लघुस्तिक्तः कफापहः । उष्णा तिक्तरसा ज्ञेया चक्षुष्या हेमकेतकी ॥३७॥

केतक, सूचिकापुष्प, जम्बुक, क्रकचच्छद, (सूचिपुष्प, हलीन, जम्बुल, चामरपुष्प, केतकी, तीक्ष्णपुष्पा, विफला, धूलिपुष्पिका, मेध्या, कण्टदला, शिवद्विष्टा, नृपप्रिया,क्रकचा दीर्घपत्रा, स्थिरगन्धा, गन्धपुष्पा, इन्दुकलिका दलपुष्पा और पांशुला) ये केतकीके संस्कृत नाम हैं ॥

सुवर्णकेतकी लघुपुष्पा, सुगंधिनी. (स्वर्णकेतकी, हेमकेतकी, कनकप्रसवा, पुष्पी, हैमी, छिन्नरुहा, विष्ठारुहा और स्वर्णपुष्पी) ये सुवर्णकेतकीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-केवडा, पीलाकेवडा । बं०-केयागाच्छ, सोणाकेया । म०-पांढरा केवडा, केतकी । गु०-केवडो । क०-केदगे । तै०-मृगलीपुबु, मोगिलीचेट्टु । ता०-तालँपू । फा०-करज । अ०-कादी । लै०-पेन्डनस ओजारिटिसिम्स Pandanui Osoratissims.

केवडा-चरपरा, मधुर, हलका, कडवा, और कफनाशक है । पीला केवडा-गरम, कडवा और नेत्रोंको हितकारी है ॥३६॥३७॥

विवरण ।

केवडेके वृक्ष बहुत बडे नहीं होते । विशेष करके जलके निकट वाले बागोंमें बहुत होते हैं इसकी शाखाओंमें छोटे छोटे कांटे होते हैं, पत्ते लम्बे लम्बे दो दो फुटके किनारोंपर कांटे और नोक अनीदार होते हैं, उसके मध्यभागों में एक मोटी बालसी निकल आती है, वह पत्तोंसे वेष्टित होती है, उसमें अत्यन्त मनोहारिणी और क्लेशनिवारिणी महातीव्र सुगंधि आती है, उसीको केवडेका फूल कहते हैं, उन फूलोंपर परागसा लगा होता है, दूसरी पीली केतकी होती है. उसका छोटा क्षुप होता है, उसका रंग पीला होता है उसपर पीले रंगके महासुगंधित पुष्प आते हैं, सुगंधिके विषयमें इसका नाम सब संसारमें प्रसिद्ध है ॥

अथ किंकिरातः (गौडादौ प्रसिद्धः)

किंकिरातो हेमगौरःपीतकःपीतभद्रकः । किंकिरातो हिमस्तिक्तः कषायश्च हरेदसौ । कफपित्तपिपासाऽस्त्रदाहशोषवमीः कृमीन् ॥ ३८ ॥

किंकिरात, हेमगौर, पीतक, पीतभद्रक, (किंकिराट, विप्रलम्बी, षट्पदानंदवर्द्धन, विप्रलोभी और पीताम्लान) ये किंकिरातके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-किंकिरात । गु०-रामबावल । म०-देवबाभूल । फा०-मधिलान ॥

किंकिरात-शीतल, कडवा, कसैला और कफ पित्त, तृषा, रक्तविकार, दाह, शोष, वमन तथा कृमिनाशक है ॥

विवरण।

किंकिरातका वृक्ष बडा होता है, पत्ते छोटे छोटे बबूरके समान होते हैं, फूल पीले होते हैं, इसको कोई कोई वैद्यवर रामबबूर कहते हैं, परंतु उसमें और इसमें बडा अंतर है ॥

अथ कर्णिकारः।

(पांगारा इति महाराष्ट्रे प्रसिद्धः)

कर्णिकारःपरिव्याधःपादपोत्पल इत्यपि। कर्णिकारः कटुस्तिक्तस्तुवरः शोधनो लघुः। रञ्जनःसुखदःशोथश्लेष्मास्रव्रण-कुष्ठजित् ॥ ३९ ॥

कर्णिकार, परिव्याध, पादपोत्पल ये कर्णिकारके संस्कृत नाम हैं ॥

कर्णिकार-चरपरी, कडवी, कसैली, कोठेको शुद्ध करनेवाली, हलकी, रंगदायक, सुखदायक और सूजन, कफ, रक्तविकार, व्रण तथा कोढ को नष्ट करती है ॥ ३९ ॥

विवरण।

कर्णिकारके वृक्ष प्रायः पर्वतोंपर विशेष करके होते हैं, पत्ते ढाकके पत्तोंके समान लम्बे चौडे होते है, फूल लाल होते हैं, इसपर फली लगती हैं ॥

अथ अशोकः।

अशोको हेमपुपश्च वञ्जुलस्ताम्रपल्लवः। कङ्केलिःपिण्डपुष्पश्च गन्धपुष्पो नटस्तथा ॥ ४० ॥ अशोकःशीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्यःकषायकः। दोषापचीतृषादाहकृमि-शोषविषास्रजित् ॥ ४१ ॥

अशोक. हेमपुष्प, बंजुल, ताम्रपल्लव, कंकेलि, पिण्डपुष्प, गन्धपुष्प, नट, (शोकनाश, विचित्र, कर्णपूरक, अंगनाप्रिय, वीतशोक, विशोक, वंजुलद्रुम, मधुपुष्प, अपशोक, केलिक, रक्तपल्लव, चित्र. कर्णपूर, सुभग, दोहली, रागितरु, वामांकयातन, पिंडीपुष्प, रामा, पल्लवद्रु, कान्तांघ्रिदोहद, कांताचरणदोहद, चक्रगुच्छ, स्त्रीनिरीक्षणदोहद, शोकहर्ता, स्मराधिवास, दोषहारी, प्रपल्लव और वामांघ्रिघातक ये अशोकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-अशोक, अशोगि। बं०-अस्पाल। म०-ता०-अशोक। गु०-आसोपालव। लैं०-ग्वेटेरियालोंगिफोलिया Guattaria Longifolia इं०-जानेशिया अशोका Jonesia Asoka.

अशोक-शीतल, कडवा, ग्राही, वर्णको उत्तम करनेवाला, कसैला, और वातादिदोष, अपची, तृषा, दाह, कृमि, शोष, विष तथा रुधिरविकारको नष्ट करता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

विवरण।

अशोक वृक्षकी दो जाति हैं एकके पत्ते रामफलके समान और फूल नारंगीके रंगके तुल्य होते हैं और माघ फाल्गुनमें खिलते हैं, दूसरे अशोकके पत्ते आमके पत्तोंके समान होते हैं, फूल सफेद कुछेक साधारण पीले रंगके होते हैं, इसपर चौमासेके आरंभमें फल आते हैं। इसके कच्चे फल हरे और पकनेपर लाल होजाते हैं, इसके फल खानेके योग्य नहीं होते और इन फलोंमेंसे बीज निकलते हैं, वे बीज किसी औषधिके प्रयोगमें नहीं लिये जाते, प्रदरादिरोगोंमें केवल छालही काममें आती है[1] ॥

अथ बाणपुष्पः (गौडादौ प्रसिद्धः)।

अम्लातोऽम्लाटनः प्रोक्तस्तथाऽम्लातक इत्यपि। कुरण्टको वर्णपुष्पः स एवोक्तो महासहः। अम्लाटनःकषायोष्णःस्निग्धः स्वादुश्च तिक्तकः ॥ ४२ ॥

अम्लात, अम्लाटन, अम्लातक, कुरंटक, वर्णपुष्प, महासह ये बाणपुष्पके संस्कृत नाम हैं ॥

बाणपुष्प-कसैला, गरम, स्निग्ध, मधुर और कडवा है ॥ ४२ ॥

१-विशेषप्रयोग-यह दोनों प्रदरको समूलतः नष्ट करनेमें काम आता है।

अथ सैरेयकः (कटसरैया)।

सैरेयकः श्वेतपुष्पः सैरेयः कटसारिका। सहाचरःसहचरः स च भिन्द्यपि कथ्यते ॥४३॥ कुरण्टकोऽत्र पीते स्याद्रक्ते कुरवकःस्मृतः। नीले बाणा द्वयोरुक्तो दासी चार्त्तगलश्च सः ॥४४॥ सैरेयः कुष्ठवातास्रकफकण्डूविषापहः। तिक्तोष्णो मधुरोऽनम्लः सुस्निग्धः केशरञ्जनः ॥ ४५ ॥

सैरेयक, श्वेतपुष्प, सैरेय, कटसारिका सहाचर, सहचर, भिन्दी, (मृदुकण्ट, महा; सह, बाण, उद्यान, पाकी, सौरीयक, कण्टकुरण्ट, झिण्टिका और झिण्टी) ये सफेद फूलकी कटसरैयाके संस्कृत नाम हैं ॥

पीले फूलकी कटसरैयाको कुरण्टक, लाल फूलकी कटसरैयाको कुरवक और नीले फूलकी कटसरैयाको बाणा दासी तथा आर्तपल कहते हैं। इनमें बाण शब्द स्त्रीलिंग और पुंल्लिंग दोनोंमें है ॥

हिन्दी-कटसरैया, पियावांसा। बं०-वाँटि, कुलझांटि। म०-कोरांटा। क०-गोरटें। तै०-गोरेंडू। लै०-वार्लेरिया प्रयोनिटस् Barleria Ptionitis.

कटसरैया-कडवी. गरम, मधुर, अम्ल नहीं चिकनी, केशरञ्जन (वालोंको रंगनेवाली) और कोढ, वात, रक्तविकार, कफ, खुजली तथा विषविनाशक है ॥ ४३-४५ ॥

विवरण ॥

पियावांसा अर्थात् कटसरैयाके क्षुप वन और बागोंमें बहुत होते हैं; इसकी चार प्रकारकी जाति हैं इसके फूलोंका रंगभी चार प्रकारका होता है-सफेद, पीले, लाल और नीले इन चारों प्रकारके पियाबांमोंमें कांटे होते हैं, पत्ते भी सबके छोटे २ एकसेही होते है, किसीमें विशेष अन्तर नहीं होता ॥

---

१ विशेषगुण-यह विषनाशकताके साथ २ कृमिरोगनाशक है ॥

अथ कुन्दः।

कुन्दं तु कथितं माध्यं सदापुष्पश्च तत्स्मृतम्। कुन्दं शीतं लघु श्लेष्मशिरोरुग्विषपित्तहृत् ॥ ४६ ॥

कुन्द, माध्य, सदापुष्प (शुक्लपुष्प, दलकोष, बरट, घोरट, मकरन्द, महामोद, मनोहर, मुक्तापुष्प, तारपुष्प, अट्टपुष्पक, दमन वनहास, मनोज्ञ, भृङ्गबन्धु, मनोरम, अट्टहास और भृङ्गसुहृत्) ये कुन्दके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कुन्द, कुन्देका वृक्ष। बं०-कुन्द। ता०-म०-कुन्द। क०-सुरागि। तै०-मोल्ल। गु०-डोलर ॥

कुन्द-शीतल,हलका और कफ. मस्तकरोग, विष तथा पित्तको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥

विवरण।

कुन्दके क्षुप वन और पुष्पवाटिकाओंमें बहुत होते हैं और फूल सफेद मोतीके तुल्य होते हैं, सदैव खिलते रहते हैं, सुगन्ध अधिक होती है ॥

अथ मुचुकुन्दः।

मुचुकुन्दःक्षत्रवृक्षश्चित्रकःप्रतिविष्णकः। मुचुकुन्दः शिरः पीडापित्तास्रविषनाशनः ॥ ४७ ॥

मुचुकुन्द, क्षत्रवृक्ष, चित्रक, प्रतिविष्णुक, (दीर्घपुष्प, वहुपत्र, सुदल, मुण्डी, वृक्षानुकारक, हरिवल्लभ सुपुष्प, अर्ध्यार्हलक्षणक और रक्तप्रसव (ये मुचुकुन्दके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मुचुकुन्द, मचकन। बं०-गु०-म०-क०-मुचुकुन्द। तै०-लोलगु। ता०-तडे। लै० प्टेरोस्परमम् सबेरीफोलिअम् Pterosperu, mum Suberifolidm.

मुचुकुन्द-शिरका दर्द, पित्त, रक्तविकार और विषनाशक है ॥ ४७ ॥

विवरण।

मुचुकुन्दके वृक्ष वनोंमें बहुत होते हैं, पत्ते बडे बडे अखरोटके समान होते हैं, फूल छोटे २ लाल रंगके सुगन्धित होते हैं, फल लम्बे और गोल लकडीके समान विचित्र होते हैं, दूसरा

और एक प्रकारका मुचुकुन्दका क्षुप होता है, वह जंगल और वनोंमें बहुत होता है, उसके पत्ते और फूल वेलके समान होते हैं,फल करौंदेके तुल्य लगते हैं, फूलोंमें सुगन्धि आती है ॥

अथ तिलकः।

तिलकः क्षुरकः श्रीमान् पुरुषश्छिन्नपुष्पकः। तिलकःकटुकःपाके रसे चोष्णो रसायनः। कफकुष्ठकृमीन्वस्तिमुखदन्तगदान् हरेत् ॥ ४८ ॥

तिलक, क्षुरक, श्रीमान्, पुरुष, छिन्नपुष्पक, (मुखमण्डनक, विशेषक, पुण्ड्र, पुण्ड्रक, स्थिरपुष्पी, छिन्नरुह, दग्धरुह, मृतजीव, तरुणीकटाक्षकाम, वासन्त, सुन्दर दुग्धरुह, भालविभूषणसंज्ञ, पुन्नाग, रेचक और शतपत्रक) ये तिलकपुष्पके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--तिलकपुष्प। गु०--तिलक। म०-तिलकवृक्ष। क०--तिलकपुष्प ॥

तिलकपुष्प--रसमें तथा पाकमें चरपरा-गरम, रसायन, और कफ, कोढ, कृमि, वस्ति, रोग, मुखरोग, तथा दन्तरोगनाशक है ॥४८॥

विवरण

तिलकके वृक्ष पर्वतोंपर अधिक होते हैं, पत्ते पीपलके समान और फूल तिलके तुल्य होते हैं, इसके फूलोंमें मन्द सुगन्धि आती है ॥

अथ बन्धुजीवः (गोजुनिया)।

बन्धूको बन्धुजीवश्च रक्तो माध्याह्निकोऽपि च। बन्धूकः कफकृद् ग्राही वातपित्तहरो लघुः ॥ ४९ ॥

बन्धूक, बन्धुजीव, रक्त, माध्याह्निक, (रक्तक, बन्धुजीवक, बन्धुक, बन्धु, बन्धुल, बन्धूजीव, बन्धूली बन्धुर, सूर्यभक्तक, ओष्ठपुष्प, अर्कवल्लभ, मध्यन्दिन, रक्तपुष्प, रागपुष्प, हरिप्रिय, शरत्पुष्प, और सुपुष्प) ये दुपहरियाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--दुपहरिया, गोजुनिया।बं०--बान्धुलि फुलेरगाछ। म०--दुपारीचें फूल। गु०--बपोरियो। क०--बन्दुरे। तै०--नितिमल्ली। लै०-पेनटापिटर फोयनिश्या Pentapeter Phoenicea.

दुपहरिया--कफकारक, ग्राही, हलका और वाततथा पित्तनाशक है ॥ ४९ ॥

विवरण।

दुपहरियाके क्षुप माली लोग बागोमें बहुत लगा देते हैं, इसके पत्ते डेढ अंगुल चौडे और एक बालिस्त लम्बे नोकदार नीमके सदृश चारों ओर आरेकेसे चिरे होते हैं, फल गोल गोल कुछ नोकदारसे होते हैं, उनमें कालीमिर्चके सदृश काले बीज होते हैं यह दुपहर के समय खिलती है, इसलिये इसको दुपहरिया कहते हैं ॥

अथ जपापुष्पम् (गुडहर)

ओण्ड्रपुष्पं जपा चाथ त्रिसन्ध्या साऽरुणा सिता। जपा संग्राहिणी केश्या त्रिसन्ध्या कफवातजित् ॥ ५० ॥

ओड्रपुष्प, जपा, (प्रातिका, हरिवल्लभा, जवा, ओड्राख्य रक्तपुष्पी, अर्कप्रिया, रागपुष्पी और ओड्रपुष्पी) ये जपाके संस्कृत नाम हैं ॥

लाल तथा सफेद फूलवाले ओड्रफूलको त्रिसन्ध्या कहते हैं ॥

हिन्दी-ओड्रहुल, जवा, गुडहर। बं०-जवाफुलेरगाछ। म०-जासवन्द। गु०-जासुद। तै०-मन्दारपु। इं०-शुफ्लवर Shooflower, लै०-हिबिस्कस रोजसाईनेन्सिस Hibscns Rosasinsis,

सफेद ओड्रहुल-ग्राही और केशोंको उत्तम है, लाल फूलवाला ओड्रहुल कफ तथा वातनाशक है ॥ ५० ॥

विवरण।

जपापुष्प अर्थात् गुडहलके क्षुप बागोंमें प्रायःमालीलोग शोभाके लिये लगा देते हैं, पत्ते लम्बे लम्बे और फूल अत्यन्त लाल होते है और कुछ कुछ चिकने तथा पतले होते हैं ॥

अथ सिंदूरी (सिंदूरिया)।

सिन्दूरी रक्तबीजा च रक्तपुष्पा सुकोमला। सिन्दूरी विषपित्तास्रतृष्णावान्तिहरी हिमा ॥ ९१ ॥

सिंदूरी, रक्तबीजा, सुकोमला, (रक्तपुष्पी, वीरपुष्पा, करच्छदा और शोणपुष्पी) ये सिंदूरियाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सिंदूरिया, जाकर। म०-शेन्द्री। गु०-रातां फूलवाली जासुद। क०-सिन्दूरी। इं०-और नाटो Arnatto लै०-बिक्सा ओरिमाना Bixa Orriman.

सिन्दूरिया-शीतल और विष, पित्त, रक्तविकार, तृषा तथा वमनको नष्ट करती है ५१॥

विवरण।

सिंदूरियाके क्षुप उपवनोंमें होते हैं, पत्ते वेलके समान होते हैं, फूल लाल सिंदूरके तुल्य होते हैं, उसके बीज भी लाल रंगके होते हैं इनको जलमें डालनेसे जल लाल हो जाता है॥

अथ मुनिवृक्षः (अगस्तिया)

अथागस्त्यो वङ्गसेनो मुनिपुष्पो मुनिद्रुमः। अगस्तिः पित्तकफजिच्चतुर्थिकहरो हिमः। रूक्षो वातकरस्तिक्तः प्रतिश्यायनिवारणः ॥ ९२ ॥

अगस्त्य, वंगसेन, मुनिपुष्प, मुनिद्रुम, (अगस्ति, शीघ्रपुष्प, व्रणारि, दीर्घफलक, रक्तपुष्प, सुरप्रिय, शुक्लपुष्प, व्रणापह, खरध्वंसी, पवित्र, मुनितरु, वंगसेनक, कनली और वक्रपुष्प) ये अगस्तिके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-अगथिया, अगस्तिया, हथिया। बं०-बक। क०-अगसेयमर। म०-अगस्ता, हदगा। गु०-अनीसे, अविशि। ता०-आत्ति। इं०-लार्जफ्लावर्ड एगेटी Large Flowered Agat लै०-एगाटी ग्लांडीफ्लोरा Agafi Clanakliflora.

अगथिया-शीथल, रूक्ष, वातकारक, कडवा और पित्त, कक, चातुर्थिक ज्वर (चौथिया) तथा प्रतिश्याय नाशक है ॥५२॥

विवरण।

अगथिथाके वृक्ष पुष्पोद्यानोंमें अधिक होते हैं पत्ते सहजिनेकेसे होते हैं, विशेष करके इसपर नागवेल अर्थात् पानोंकी वेलें चढा करती हैं, इसलिये इसके पत्ते उत्तम होते हैं, इसके फूल लाल और सफेद बांके (टेटे) होते हैं, सकी फली अत्यन्त कोमल होती है, यह, इसकी ठीक पहिचान है कि, जब अगस्त्यमुनिका उदय होता है, तबही अगस्तियाके फूल खिलते हैं ॥

अथ तुलसी शुक्ला कृष्णा च।

तुलसी सुरसा ग्राम्या बहुमञ्जरी। अपेतराक्षसी गौरी शूलघ्नी देवदुन्दुभिः ॥९३॥ तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत्। दीपनी कुष्ठकृच्छ्रास्रपार्श्वरुक्कफवातजित्। शुक्ला कृष्णा च तुलसी गुणैस्तुल्या प्रकीर्तिता ॥ ९४ ॥

तुलसी, सुरसा, ग्राम्या, सुलभा, बहुमंजरी, अपेतराक्षसी, गोरी, शूलघ्नी, देवदुंदुभि, वैष्णवी, वृन्दा, सुगंधा, गंधहारिणी, अमृता, पत्रपुष्पा, पवित्रा, सुरवल्लरी, सुभगा, तीव्रा, पावनी, विष्णुवल्लभा, सुरेज्या, कायस्था, सुरदुन्दुभि, सुरभि, बहुपत्री, मंजरी, हरिप्रिया, श्यामा, त्रिदशमंजरी, भूतघ्नी, भूतपत्री, वर्णास कठिञ्जर, कुठेरक, पुण्या, माधवी, सुरवल्ली, प्रेतराक्षसी सुवहा, विष्णुपत्नी, माला, श्रेष्ठा, पापघ्नी, लक्ष्मी और कृष्णवल्लभा) ये तुलसीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बं०-तै०-ता०-तुलसी। गु०-काली तथा धोली तुलसी। म०-तुळस, तुलसी। क०-एरेडतुलसी। फा०-रेहान्। अ०-उलसी बदरूत। इं०-व्हाइटबेझिल White Basil परपल स्टाक्ड् बेझिल Purple Stalked Baril लै०-ओसिमम आल्बम् Ocimum

१ विशेष- प्रयोग-नूतन प्रतिश्याय रोगमें इसका चाय लेनेसे शीघ्र ही शांति होती है।

Album ओसिसम् सेन्क्टम् Ocimumsa nctu n

तुलसी-चरपरी, कडवी, अग्निप्रदीपक, हृदयको हितकारी, गरम, दाह तथा पित्तको करनेवाली और कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार, पसलीकी पीडा, कफ तथा वातको नष्ट करती है । सफेद और काली तुलसी, दोनों गुणोंमें समान कही हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

विवरण ।

तुलसीके क्षुप जंगलमें और बागोंमें बहुत होते हैं और बहुतेरे गृहस्थ लोग पूजाके लिये अपने अपने घरोंमें लगा लेते हैं, इसके पत्ते गोल गोल कुछ लम्बाई लिये अत्यन्त कोमल होते हैं और उनमें सुगंधि भी आती है। उसकी डाल डालमें बाल निकलती है, उसको मंजरी कहते हैं, दूसरी श्याम पत्तोंकी श्याम तुलसी होती है, परन्तु आकृति दोनोंकी एकही प्रकारकी है ॥

अथ मरुवकः (मरुवा) ।

मारुतोऽसौ मरुवको मरुन्मरुरपि स्मृतः । फणी फणिज्जकश्चापि प्रस्थपुष्पः समीरणः॥५५॥मरुदग्निप्रदो हृद्यस्तीक्ष्णोष्णः पित्तलो लघुःबृश्चिकाादिविषश्लेष्मवातकुष्ठकृमिप्रणुत् । कटुपाकरसो रुच्यस्तिक्तो रूक्षः सुगन्धिकाः ॥ ५६ ॥

मारुत, मरुवक, मरुत्, मरु, फणी, फणिज्जक, प्रस्थपुष्प, समीरण, (खरपत्र, गंधपत्र बहुवीर्य, शीतलक, सुराह्व, जंबीर, प्रस्थकुसुम, आजन्मसुरभिपत्र और कुलसौरभ) ये मरुवेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मरुआ, मरुवा, । बं०-मरुया । म०-सब्जा मर्वा । गु०८मरगो । तै०-रुद्रजडे । फा०-मर्जगुस । अ०-मर्जजुस । इंग्लीट मार्ज ओरन Sweet Mari लै०-ओरिगेनममार्जओराना Origanum Mariorana ता०-मरु ।

मरुआ-अग्निकारक, हृदयको हितकारी, तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, कडवा, रूक्ष और सुगंधि है तथा बीछू आदिका विष, कफ, वात, कोढ और कृमिनाशक है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

विवरण ।

मरुवेके क्षुप बागोंमें अधिक होते हैं, पत्ते लम्बे २ अंगुलीके समान अत्यंत सुगंधित होते हैं, इसमें तुलसीके समान बहुतसी बाले निकलती हैं मरुवेके सब अंगोंमें सुगंधि आती है ॥

अथ दमनकः (* दवना) ।

उक्तो दमनको दान्तो मुनिपुत्रस्तपोधनः । गन्धोत्कटो ब्रह्मजटो विनीतः कलपत्रकः ॥५७॥ दमनस्तुवरस्तिक्तो हृद्यो वृष्यःसुगन्धिकः । ग्रहणाद्विषकुष्ठास्त्रक्लेदकण्डूत्रिदोषजित् ॥ ५८ ॥

दमनक, दान्त, मुनिपुत्र, तपोधन, गन्धोत्कट, ब्रह्मजट, विनीत, कलपत्रक, (पुष्पचामर, मदनक, दमन, मुनि, जटिला, दंडी, पांडुरोग, ब्रह्मजटा, पुंडरीक, तापसपत्री, पत्री, पवित्रक, देवशेखर, कुलपत्र और तपस्विपत्र) ये दौनाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-दौना, दवना । बं०-दोना, दना । म०-दवणा, रानदवणा । कं०-चित्त रटे । तै०-साबित्रचेट्टु । ता०-दवनम् । इं०-आर्टिमिसिया इंडिका Artimesia Indica लै०-आर्टिमिसिया सिवर्सियाना Artimetia Sieversla.

दौना-कसैला, कडवा, हृदयको प्रिय, वीर्यवर्द्धक, सुगंधित और भूत, प्रेत, विष, कोढ, रक्तविकार, ग्लानि, खुजली तथा त्रिदोषनाशक है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

विवरण

दौनेके छोटे छोटे क्षुप होते हैं, पत्ते अत्यंत सुगंधयुक्त होते हैं, पत्तोंके ऊपर बहुत रुवासा होता है फूलोंके छत्तेसे होते हैं ॥

अथ बर्बर (बनतुलसी) ।

बर्बरी तुवरी तुङ्गी खरपुष्पाऽजगन्धिका । पर्णाशस्तत्र कृष्णे तु कठिल्लककुठेरकौ

* यह दमनकपुष्पवर्ग कुछ औरही है ॥

॥ ५९ ॥ शुक्लेऽर्जकः प्रोक्तो वटपत्रस्ततोऽपरः। बर्बरीत्रितयं रूक्षं शीतं कटु विदाहि च ॥ ६० ॥ तीक्ष्णं रुचिकरं हृद्यं दीपनं लघुपाकि च। पित्तलं कफवातास्रकण्डूकृमिविषपित्तपहम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पुष्पवर्गः।

बर्बरी, तुवरी, तुङ्गी, खरपुष्पा, अजगंधिका पर्णाश, (कबरी, खरपुष्पिका, असुरसा, बर्वा, अजगन्धा, कबरा, सुरभि, तुलसीद्वेषा और, सुरसा) ये बर्बरीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-बर्बरी, वनतुलसी, बबई। बं०-बाबुइ तुलसी, वनबाबुइ तुलसी। म०-रानतुळस। गु०-रानतुलसी भेद। क०-कगोरले, करीयकगोरले। तै०-कारूतुलसी। फा०-पलंगमुष्क। अ०-करंजमुष्क। लै०-औसिमम ग्रेठिसिसम् Ocimum Gratissimum. ता०-कट्टुतुलसी, कंजाकोरे॥

काली बर्बरीको-कठिल्लक और कुठेरक, सफेद बर्बरीको अर्जक और तीसरी जातिकी बर्बटीको वटपत्र कहते हैं॥

तीनों प्रकारकी बर्बरी-रूखी, शीतल, चरपरी, दाहकारक, तीक्ष्ण, रुचिको उत्पन्न करनेवाली, हृदयको हितकारी, अग्निप्रदीपक, पाकमें हलकी, पितकारक और कफ, वात, रुधिरविकार, खुजली, कृमि तथा विषविनाशक है॥ ५९-६१॥

विवरण।

बर्बरी अर्थात् वनतुलसी तीन प्रकारकी होती है। बनतुलसी मरुवेका भेद है। वनतुलसी जङ्गल और वनोंमें अधिक होती हैं। पत्ते पियाबाँसके समान छोटे होते हैं, उनमें नीमके पत्तोंकेसे कुँगुरे होते हैं, फूल पीलापन लिये होते हैं, सुगंधि भी बहुत आती है॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीवनीभाषाटीकायां पुष्पवर्गः।

अथ वटादिवर्गः।

तत्रादौ वटस्य नामानि गुणाश्च।

वटो रक्तफलः शृङ्गी न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः। क्षीरी वैश्रवणो वासो बहुपादो वनस्पतिः॥ १ ॥ वटः शीतो गुरुर्ग्राही कफपित्तव्रणापहः। वर्ण्यो विसर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोषहृत्॥ २ ॥

वट, रक्तफल, शृङ्गी, न्यग्रोध, स्कन्धज, ध्रुव, क्षीरी, वैश्रवण, वास, बहुपाद, वनस्पति, (नन्दी शुङ्गः वहत्पाद, वैश्रवणालय, वैश्रवणोदय, वृक्षनाथ, यमप्रिय, कर्मज, भाण्डीर, जटाल, रोहिण, अवरोहि, विटपी, स्कन्धरुह, मण्डली, महच्छाय, भृङ्गी, यक्षावास, यक्षतरु, पादरोहण, नील, शिफारुह, बहुपाद, जटिल और जटी) ये बडके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी-वड। बं०-वट। म०-गु०-वड। क०-आल। तै०-मरिचेट्टु। ता०-आले। फा०-दरखतरेशा। अ०-आव। इं०-बनियनट्री Banyantree. लै०--फाईकस इंडिकम Ficus Indius.

बड-शीतल भारी, ग्राही, वर्णको उत्तम करनेवाला, कसैला और कफ, पित्त, व्रण, विसर्प, दाह तथा योनिदोषको नष्ट करता है॥ १-२॥

विवरण।

वडका वृक्ष-महाविशाल होता है, इसके पत्ते भी लम्बे चौडे होते हैं, फल छोटे २ झडबेरके बराबर आते हैं, इसकी शाखाओंमेंसे लाल लाल अंकुर निकलते हैं. जब वे बढजाते हैं तो उनको दाढी कहते हैं, वह इतनी बढती हैं कि-लटकती लटकती पृथ्वीमें आकर जमजाती है जहां जहां यह दाढी जमजाती है वहां वहां बडके वृक्ष हो जाते हैं इस प्रकार एक बडकी अनेक जडें होजाती हैं, परन्तु वे सब वास्तवमें

१-विशेष प्रयोग-यह योनिरोग नाशक, योनि एवं स्तनका संकोचकारक तथा कृमि नाशक है।

एक ही हैं और परस्पर मिली हुई हैं, ऐसे ही बढते बढते उस वडका वीघोंमें विस्तार होजाता है ॥

अथ पिप्पलः (पीपल)।

बोधिद्रुः पिप्पलोऽश्वत्थश्चलपत्रो गजाशनः । पिप्पलो दुर्जरःशीतःपित्तश्लेश्मव्रणास्रजित् । गुरुस्तुवरको रूक्षो वर्ण्यो योनिविशोधनः ॥ ३ ॥

बोधिद्रु, पिप्पल, अश्वत्थ, चलपत्र, गजाशन, (केशवालय, चैत्यद्रु, बोधितरु, कृष्णवास, चैत्यवृक्ष, नागवन्धु, देवात्मा, महाद्रुम कपीतन बोधिद्रुम, चलदल, कुंजराशन' अच्युतावास, पवित्रक, शुभद, बोधिवृक्ष' याज्ञिक, गजभक्षक, क्षीरद्रुम, विप्र, मंगल्य' श्यामल, गुह्यपुष्प, सत्य, शुचिद्रुम, और धनुर्वृक्ष) ये पीपल वृक्षके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पीपलवृक्ष । बं०–अश्वत्थ, अशोथगाछ । म०- पिंपळ । क०–अरली । गु०–पीपलो । तै०–राईचेट्टु, कुलुजुव्विचेट्टु । ता०–अरशमरम । फा०=दरख्तलरजां । इं०–पोप्लरलीव्ड फिग्ट्री Poplarleaved Figtree. लै०–फाइकस रिलिजियोजा Ficus Religioza.

पीपल–दुर्जर, शीतल, भारी, कसैला, रूखा, वर्णको उत्तम करनेवाला, योनिको शुद्ध करनेवाला, और पित्त, कफ, व्रण तथा रक्त विकारोंको नष्ट करता है ॥ ३ ॥

विवरण ।

पीपलका वृक्ष बहुत बडा होता है, वे वृक्ष ग्राम और नगरोंहीमें देखे जाते हैं, वनोंमें बहुत कम होते हैं, इसके पत्ते गोल और अनीदार, डालियोंपर लगते हैं, ये पत्ते सदैव हिलते रहतेहैं, इसपर भी छोटे अंकुर होते हैं, फल भी पत्तोंके मूलमें छोटे झडबेरके तुल्य लगते हैं, उनको पिपलौति कहते हैं, इसकी शाखाओंपर लाख भी आती है परन्तु सदैव नहीं, कोई समय पाकर । यह वृक्ष बहुत श्रेष्ठ और पवित्र है और ऋषि मुनियोंने इसको पूजनके योग्य समझ रक्खा है और ऐसा भी कहीं लिखा है ॥

'मूलता ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ।
अग्रतः शिवरूपाय अश्वत्थाय नमोनमः ॥"
"मूलं ब्रह्मा त्वचो विष्णुः शाखाः शाखा महेश्वरः । पत्राणि देवता सर्वा वृक्षराज नमोऽस्तु ते''

अथ पिप्पलभेदः (गजदण्डसहोरा)।

पारीषोऽन्यः पलाशश्च कपिरू (रु) तः कमण्डलुः । गर्दभाण्डःकन्दरालः कपीतनसुपार्श्वकौ ॥ ४ ॥ पारीषो दुर्जरः स्निग्धशुक्रकफप्रदः । फलेऽम्लो मधुरो मूले कषायस्वादुमज्जकः ॥ ५ ॥

पारीश, पलाश, कपिरूत, कमण्डलु, गर्दभाण्ड, कन्दराल, कपीतन और सुपार्श्वक, ये पारिसपीपलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पारिसपल, गजदण्ड, गजहुण्ड । बं०–गजशुण्डी । म० पिंपरीवृक्ष । गु०–पारशपीपलो । क०–बंगरली । तै०- घेलमाखी । ता०–पोरिश, पूवरशु, । फा०–येलासवेल्प । इं०–हिबिक्ससू Hibixus. लै०–थेस्पिसिया पोपलनिया Thaspesia Lnea.

पारिशपीपल–दुर्जर, चिकना, फलमें खट्टा, जरमें मीठा, कसैला, और स्वादिष्ट मीगवाला और कृमि, वीर्य तथा कफको बढानेवाला है ॥ ४ ॥ ५ ॥

विवरण ।

पारसपीपलका वृक्ष पीपलके समान होता है, परन्तु पीपलमें फूल नहीं होते और पारस पीपलमें भिंडीके समान पीले फूल भी आवे हैं और इसके फलके डोरे भिंडीके आकारके होते हैं ॥

अथ नन्दीवृक्षः (बेलिया पीपल)

नन्दीवृक्षोऽश्वत्थभेदःप्ररोही गजपादपः । स्थालीवृक्षःक्षयतरुःक्षीरी च स्याद्वनस्पतिः ॥६॥ नन्दीवृक्षो लघुः स्वादुस्तिक्तस्तुवर

उष्णकः। कटुपाकरसो ग्राही विषपित्तकफास्रजित् ॥ ७ ॥

नन्दीवृक्ष, अश्वभेद, प्ररोही, गजपादप, स्थालीवृक्ष, क्षयतरु, क्षीरी और वनस्पति ये नन्दीवृक्षके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-वेलियापीपल । गु०-वेलियो पीपलो। तै०वट्टिचेट्टु ॥

वेलियापीपल-हलका, मधुर, कडवा, कसैला गरम, पाकमें तथा रसमें चरपरा, ग्राही और विष, पित्त, कफ तथा रुधिरविकारनाशक है ॥ ६ ॥ ७ ॥

विवरण ।

बेलियापीपलभी पीपलका भेद है, इसके पत्ते बडे बडे होते हैं, इसकी शाखाओंमें भी अंकुर होते हैं, इसकी जड बहुत मोटी होती है।

अथ उदुम्बरः (गूलर)

उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः। उदुम्बरो हिमो रूक्षो गुरुः पित्तकफास्रजित्। मधुरस्तुवरो वर्ण्यो व्रणशोधनरोपणः ॥ ८ ॥

उदुम्बर, जन्तुफल, यज्ञांग, हेमदुग्धक, (क्षीरवृक्ष, हेमदुग्ध, सदाफल, अपुष्पफल सम्बन्ध, शीतवल्कल, कृमिकण्टक, पाणिक्षुख, पुष्पहीन, यज्ञफल, यज्ञोदुम्बर ब्रह्मवृक्ष हेमदुग्धी, सुचक्षु, श्वेतवल्कल, कालस्कन्ध, यज्ञयोग्य, यज्ञीय, सुप्रतिष्ठित, शीतवल्क, यज्ञसार, पुष्पशून्य, पवित्रक, सौम्य, शीतफल और जघनेफल) ये गूलरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-गूलर, गूलड । बं०-यज्ञउडुमुर । म०-उंबर । गु०-उंबरो । क०-अत्ति । तै०-अत्तिचेट्टु । ता०-अत्तिमरम् । फा०-अंजीर आदम। अ०-जमीज । इं०-फिगट्री Figtree लै०-फाइकस ग्लोमिरेट Ficus glomirata

गूलर-शीतल, रूखा, भारी, मधुर, कसैला, वर्णको उत्तम करनेवाला, व्रणको शुद्ध करने वाला, रोपण और पित्त, कफ तथा रक्तविकार नाशक है ॥ ८ ॥

विवरण ।

उदुम्बर गूलर अर्थात् कठूमरका बडा वृक्ष होता है, इसपर फूल नहीं आते, इसकी शाखाओंमें फल उत्पन्न होते हैं, फल गोल २ अंजीरके समान होते हैं, और इसमेंसे दूध निकलता है, इसके पत्ते लभेडेकेस होते हैं, नई उदुम्बरके पत्ते गूलरके पत्तोंसे छोटे और फल भी छोटे होते हैं कठूमरके पत्ते गूलरके पत्तोंसे बडे होते हैं, वरन् गंगेरनके पत्तोंके समान होते हैं, इसके पत्तोंको छूनेसे हाथोंमें खुजली होने लगती है और पत्तोंमेसे दूध निकलता है ॥

अथ जघनेफला (कठूमर)।

काकोदुम्बरिका फल्गुर्मलयूर्जघनेफला। मलयूः स्तम्भकृत्तिक्ता शीतला तुवरा जयेत्। कफपित्तव्रणश्वित्रकुष्ठपाण्ड्वर्शकामला ॥ ९ ॥

काकोदुम्बरिका, फल्गु, मलयू, जघनेफला, (उदुंबरफला, कर्कशच्छजना, असुमा, क्षीरी, खरपत्रिका, कृष्णोदुंबरिका, खरपत्री, राजिका क्षुद्रोदुम्बरिका, कुष्ठघ्नी, फल्गुवाटिका, अजाजी फल्गुनी, चित्रभेषजा, ध्वांक्षनाम्नी, फल्गुफला, बहुफला, खरदला, काकोदुम्बर, काकोदुम्बरिका, अजाक्षी और भद्रोदुम्बरिका) ये कठूमरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-कठूमर, कठगूलरि । बं०-काकडुमुरा। म०-काळाउम्बर । गु०-कालो उम्बरो । क०-काडअत्ति । तै०-ब्रह्ममेडिचेट्टू । फा०-अंजीरेदस्ती । अ०-तनवरि । इं०-फिगट्री Figtree, लै०-फाइकस ओपोजिटि फोलियाFicus Opposeti Folia

कठूमर-मलबंध करनेवाला, कडुवा, शीतल कसैला और कफ, पित्त, व्रण, श्वेतकोढ, पाण्डुरोग, अर्श तथा कामला नाशक है ॥९॥

१-विशेष प्रयोग-बाबके भरनेमें विशेषया काम आता है।

अथ प्लक्षः (पाखर)।

प्लक्षो जटी पर्करी च पर्कटी च स्त्रियामपि। प्लक्षःकषायः शिशिरो व्रणयोनिगदापहः। दाहपित्तकफास्रघ्नः शोथहा रक्तपित्तहृत्॥ १०॥

प्लक्ष, जटी, पकरी, पर्कटी (चारुदर्शिनी शृंगी, प्ररोहशाखी, अश्वथी, पिंपरी, कमण्डलुतरु, सुपीतन, क्षीरी, सुपार्श्व, कमण्डलु, गर्दभाण्ड, पीतन, दृढप्ररोह प्लवक, प्लवंग महाबल, कन्दराल, पर्कटी, प्लक्षा और प्लीक्षा) ये पाखरके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–पाखर, पिलखन, पाकर। बं०–पाकुडगाछ। म०–पिंपरीवृक्ष। गु०–पीपर्य। क०–हसुरी। लै०–फाईकस विरन्स Ficus Viranc

पाखर–कसैला और शीतल है व्रण, योनिरोग, दाह, पित्त, कफ, रक्तविकार, सूजन तथा रक्त पित्तको नष्ट करता है॥१०॥

विवरण।

पाखरके वृक्ष वडपीपलकी भांति जंगल और ग्रामोंमें बहुत होते हैं, पत्ते लम्बे २ आमके से होते हैं, जब नया वृक्ष लगाना होता है तो इसके गुद्देको काटकर वो देते हैं, उसीमेंसे हरे हरे पत्ते निकलने लगते हैं। पांच छः वर्षमें वैसा ही वृक्ष छायादार हो जाता है। इसके सघनपनकी प्रशंसा है, कि ऐसी उत्तम छाया और किसी वृक्षकी नहीं होती॥

अथ शिरीषः (सिरस)।

शिरीषी भण्डिलो भण्डि भण्डीरश्च कपीतनः। शुकपुष्पःशुकतरुर्मृदुपुष्पः शुकप्रियः॥ ११॥ शिरीषो मधुरोऽनुष्णस्तिक्तश्च तुवरो लघुः। दोषशोथविसर्पघ्नः कासव्रणविषापहः॥ १२॥

सिरीष, भण्डिल, भण्डी, भण्डीर, कपीतन, शुकपुष्प, शुकतरू, मृदुपुष्प, शुकप्रिय, (कर्णपूर, शुकद्रुम, मण्डीर, भण्डीर, मूर्द्धपुष्प विषघाती, विषनाशक, शीतपुष्प, भण्डिक, स्वर्णपुष्पक, शुकेष्ट, बर्हपुष्प, विषहन्ता, सुपुष्पक, उद्दानक, शुकतरु लोमशपुष्पक, कपीतक, कलिंग, श्यामल, शंखिनीफल, मधुपुष्प, वृत्तपुष्प, शिखिनीफल, प्लवग और श्यामवर्ण) ये सिरसके संस्कृत नाम हैं॥

हिं०–सिरस, सेरसा। बं०–शिरीषगाछा। म०–शिरसी। गु०–सरसनियो। क०–शिरसु। तै०–दिरसन, शिरीषसानु। ता०–कादृवाले। फा०–दरख्तेजकरिया। अ०–मुलतानुल् असजार। लै०आल्बी जियालेबेक् Albizziale bbek. आल्बीएमरा Albiamara.

सिरस–मधुर, गरम नहीं, कडवा, कसैला, और हलका है दोष, सूजन, विसर्प, खांसी, व्रण तथा विषविनाशक है॥११॥१२॥

विवरण।

सिरसके वृक्ष बडे ऊंचे ऊंचे और सघन जंगलोंमें होते हैं, पत्ते आमलेके समान छोटे २ और डालियोंमें बराबर होते हैं, फूल छोटे तन्तुओंसे सुसज्जित अत्यन्त कोमल हरे हरे कुछ पीले पीले सुगंधियुक्त बहुत सुन्दर होते हैं, फली पतली चपटी तीन चार आठ अंगुल तक लम्बी पौन अंगुलसे ज्यादा चौडी होती है, भीतर उसके भूरे रंगके बीज होते हैं, एक फलीमें दश बीजका प्रमाण है॥

अथ क्षीरवृक्षपञ्चवल्कलयोर्लक्षणं गुणाश्च।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपारीषप्लक्षपादपाः। पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षास्तेषां त्वक् पञ्चवल्कलम्॥ १३॥

केचितु पारीषस्थाने निरीषं वेतसं वा वदन्तीति शेषः॥

क्षीरिवृक्षा हिमा वर्ण्या योनिरोगव्रणापहाः। रूक्षाः कषाया मेदोघ्ना विसर्पामयनाशनाः॥ १४॥ शोथपित्तकफास्रघ्नाःस्तन्या भग्नास्थियोजकाः। त्वक्पञ्चकं हिमं ग्राहि व्रणशोथविसर्पजित्॥ ॥१५॥ तेषां पत्रं हिमं ग्राहि कफवाता-

स्वनुलघु। विष्टम्भाध्मानजित्तिक्तं कषायं लघु लेखनम् ॥ १६ ॥

बड, गूलर, पीपल, पारसपीपल और पाखर ये पांच क्षीरी वृक्ष (दूधवाले वृक्ष) कहाते हैं और इन पांच वृक्षोंकी छालको पञ्चवल्कल कहते हैं। कोई कहते हैं कि पारसपीपलके स्थानमें सिरस अथवा जामुनको क्षीरी वृक्षोंमें गिना है॥ क्षीरीवृक्ष--शीतल, वर्णको उत्तम करनेवाले रूक्ष, कसैले, दुग्धवर्द्धक, टूटी अस्थिको जोडनेवाले और मेद, विसर्प, योनिरोग, व्रण, सूजन, पित्त, कफ तथा रक्तविकार नाशक है। इन पांचोंकी छाल- शीतल ग्राही और व्रण, सूजन तथा विसर्पनाशक है। इन पांचोंके पत्ते- शीतल, ग्राही, हलके कडवे, कसैले किञ्चित् लेखन और कफ, वात, रक्तविकार, मलबन्ध तथा आध्मान नाशक है॥ १३॥ १६॥

अथ शालः (साँखू)।

शालस्तु सर्जकार्श्याश्वकर्णकः सस्यसंवरः। अश्वकर्णः कषायः स्याद्व्रणस्वेदकफक्रिमीन् । ब्रध्नविद्रधिबाधिर्ययोनिकर्णगदान् हरेत्॥ १७॥

शाल, सर्ज, कार्श्य, अश्वकर्णक, सस्यसंवर (अश्वकर्णिका, उपमेत, दीर्घशाख, जलदासन, लतातरु, लताशंख, शंकुतरु, शंकुवृक्ष, सर्जरसकल, कललजोद्भव, वल्लीवृक्ष, चीरपर्ण, रालकार्य, अजकर्णक, बस्तकर्ण, कषायी, ललनगन्धवृक्षक, वंश, रालनिर्यास, दिव्यसार, सुरेष्टक, शूर, अग्निवल्लभ, यक्षधूप, सिद्धक जरणद्रुम ताक्ष्र्यप्रसव, धन्य, दीर्घपर्ण कुशिक और कौशिक) ये शालके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी- शाल। बं० -शालगाछ लताशाल। म०--लघुराळेचा वृक्ष । गु०--सजरदामर। तै०- एपचेट्टु। ता०--कुंगलियम्। इं०--सालट्री Saltree. लै०--शोरिया रोबस्टा Shoria Robusta

शाल--कसैला है व्रण, पसीना, कफ, कृमि ब्रध्न, विद्रधि, बहिरापन, योनिरोग तथा कर्णरोग नष्ट करता है॥ १७॥

अथ शालभेदः (सर्जक)।

सर्जकोऽन्योऽजकर्णः स्याच्छालो मरिचपत्रकः। अजकर्णः कटुस्तिक्तः कषायोष्णो व्यपोहति। कफपाण्डुश्रुतिगदान् मेहकुष्ठविषव्रणान् ॥ १८॥

सर्जक, अजकर्ण, शाल और मरिचपत्रक ये सर्जकके संस्कृत नाम हैं॥

सर्जक (शालक भेद)-चरपरा, कडवा, कसैला, गरम और कफ, पांडुरोग, कर्णरोग प्रमेह, कोढ, विष तथा व्रणविनाशक है॥१८॥

अथ शल्लकी (सालई)।

शल्लकी गजभक्ष्या च सुवहा सुरभी रसा। महेरुणा कुन्दुरुकी वल्लकी च बहुस्रवा ॥ १९॥ शल्लकी तुवरा शीता पित्तश्लेष्मातिसारजित्। रक्तपित्तव्रणहरी पुष्टिकृत्समुदीरिता ॥ २०॥

सल्लकी, गजभक्ष्या, सुवहा, सुरभी, रसा, महेरुणा, कुन्दुरुकी, वल्लकी, बहुस्रवा, (गजभक्षा, गजप्रिया, ह्लादिनी, महारुहा, वसा, मोचा, सुरभी, सुरभीरसा, शिल्लकी, सिल्लकी, सल्लकी, सिह्लकी, सिह्लभूमिका, गजाशना, महेरणा, महारणा, ह्लादिनी, अश्वमूत्री, कुम्भी, अस्रफला, कारक, सुखमोदा, सुगन्धा, सुरभिस्रवा, गजवल्लभा, ह्रस्वदा, गन्धवीरा, सुस्रवा, वनकर्णिका नागवधू, सुश्रीका, गन्धमूला, रसाला और जलतिक्तिका) ये सालईके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-सालई, सलई। बं०-शलई, शालविशेष। म०-शालई वृक्ष। गु०-शालेडुं। क०-तदीकु। ता०-आनैवणक्कि। लै०-बोझवेलिया थेरीफेरा Boswelia Therifera,

सालई-कसैली, शीतल, पुष्टिकारक और पित्त, कफ, अतिसार, रक्तपित्त तथा व्रणविविनाशक है॥ १९ २०॥

विवरण।

शल्लकी अर्थात् सालईका वृक्ष बहुत बडा होता है पत्ते नीमके समान होते हैं, फलमें तीन

रेखा होती हैं, इसी वृक्षका गोंद कुन्दुरू होता है ॥

अथ शिंशिपा (सीसम)।

शिंशिपा पिच्छिला श्यामा कृष्णसारा च सा गुरुः। कपिला सैव मुनिभिर्भस्मगर्भेति कीर्तिता ॥२१॥ शिंशिपा कटुका तिक्ता कषाया शोषहारिणी। उष्णवीर्या हरेन्मेदःकुष्ठश्वित्रवमिक्रिमीन्। वस्तिरुग्व्रणदाहास्त्रबलासान् गर्भपातिनी ॥२२॥

शिंशिपा, पिच्छिला, श्यामा, कृष्णसारा (पिपला, युगपत्रिका, धूमिका, वीरा,कपिला, अगरुशिंशिपा, अगरुयुग्मपत्रिका कालानुसार्य, धीरा, मंडलपत्री, और तीव्रधूनका) ये संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–सीसम, कपिलवर्ण सीसम । बं०–शिशुगाछ, शादा शिशुगाच्छ । म०--काळाशिसवा। गु० शिशम । क०-करीषइविड्ड । तै०-जिट्टरेगुचेटटु। ता-नूकेमरम् । अ०-आसम। इं०-ब्लाकवुड Black wood. लै०-डालबरजिया लेटिफोलिया Dalbergin Latifolia.

सीसम--चरपरा, कडवा, कसेला ,उष्णवीर्य, और शोशरोगनाशक है मेद, कोढ चित्रतकुष्ट, वमन, कृमि, वस्तिरोग व्रण,दाह, रक्तविकार, कफ तथा गर्भकोनष्ट करता है ॥ २१ २२ ॥

विवरण।

शीशमके वृक्ष बहुत बडे बडे जंगलमें होते हैं, पत्ते गोल गोल नोकदार बेरीके बराबर होते हैं, फूल बहुत छोटे छोटे गुन्छोंमें लगते हैं. फली बहुत पतली और चपटी होती है, उसमें छोटे छोटे चपटे बीज निकलते हैं,शीशमकी लकडी कुछ कुछ श्यामता और ललाई लिये भूरे रंगकी होती है. दूसरा काले रंगका शीशम भी इसी प्रकारका होता है ॥

अथ अर्जुनाख्यः (कोह)।

ककुभोऽर्जुननामाख्यो नदीसर्जश्च कीर्तितः। इन्द्रद्रुर्वीरवृक्षश्च वीरश्च धवलः स्मृतः ॥ २३ ॥ ककुभः शीतलो हृद्यः क्षतक्षयविषास्रजित् । मेदोमेहव्रणान् हन्ति तुवरः कफपित्तहृत् ॥ २४ ॥

ककुभ, नदीसर्ज, इन्द्रद्रु, वीरवृक्ष, वीर, धवल और जितने अर्जुनके नाम हैं वे सब, फाल्गुन, प्रार्थ, चित्रयोधी, धनंजय, वैरान्तक, किरिटी, पांडव, वीरतरु, इन्द्रद्रुम, शम्बर, गांडीवी, कर्णारि, करवीरक, कौन्तेय,इंद्रसूनु, गंडीरी, शिवमल्लक, सव्यसाची, वीरद्रु, कृष्णसारथि और पृथाज) ये कोहके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--कोह, काह कडुवा, अर्जुनवृक्ष बं --अर्जुनगाछ। म०--सारढोल, अर्जुनवृक्ष। गु०-आसोंदरो।क०--अश्मर। तै०-मद्दिचेट्टु। लै०--बौहेनिया टोमेन्टोजा Bauhenia tomentosa.

कोह- शीतलल, हृदयको हितकारी, कसेला और क्षत, क्षय, विष, रुधिरविकार, मेद, प्रमेह, व्रण तथा पित्तको नष्ट करता है२३-२४॥

विवरण।

अर्जुनके वृक्ष बडे २ लंबे और ऊँचे २वनोंमें होते हैं, इसके पत्ते लंबे और गोल अनीदार होते हैं, इसकी छाल सफेद रंगकी होती है और उसमें दूध निकलता है ॥

अथ बीजकः (बिजयसार)।

बीजकःपीतसारश्च पीतशालक इत्यपि। बन्धूकपुष्पः प्रियकःसर्जकश्चासनःस्मृतः ॥ २५ ॥ बीजकः कुष्ठवीसर्पश्वित्रमेहगुदक्रिमीन्। हन्ति श्लेष्मास्रपित्तं च त्वच्यः केश्यो रसायनः ॥ २६ ॥

बीजक, पीतसार, पीतशालक, बंधूकपुष्प, प्रियक, सर्जक, असन, (पीतशाल पीतसालक, पीतसाल, परगायुध, महासर्ज, सौरि, बीचवृक्ष, नीलक, प्रियसालक और असन) ये विजयसारके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-विजयसार। म०-बिवला। गु०-वीयो। बं०-पियाशाल। क०-कपिन्नहाने । तै०-मद्दिचेट्टु। फा०-कमरकस। इं०-इंडियन किनाट्री

Indian Kinotere लै०-टेरोकार्पस मार्सुपियम् Tarocarpns Marsupium.

विजयसार-त्वचाको हितकारी, केशोंको उत्तम करनेवाला, रसायन और कोढ, विसर्प, चितकावर कोढ, प्रमेह, गुदाके रोग, कृमि, कफ, रक्तविकार तथा पित्तको नष्ट करता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

विवरण ।

असन अर्थात् विजयसारके वृक्ष वनोंमें बहुत बडे बडे होते हैं। पत्ते पीपलके पत्तोंसे कुछ २ छोटे होते हैं । फूल पीले आमलेके समान होते हैं, इसकी लकडी कालापन लिये होती है ॥

अथ खदिरः ।

खदिरो रक्तसारश्च गायत्री दन्तधावनः । कण्टकी बालपत्रश्च बहुशल्यश्च यज्ञियः ॥ २७ ॥ खदिरः शीतलो दन्त्यः कण्डूकासारुचिप्रणुत् । तिक्तःकषायो मेदोघ्नः कृमिमेहज्वरव्रणान् । श्वित्रशोथामपित्तास्रपाण्डुकुष्ठकफान् हरेत् ॥ २८ ॥

खदिर, रक्तसार, गायत्री, दंतधावन, कण्टकी, बालपत्र, बहुशल्य, यज्ञिय, (बालतनय, पथिदुम. तिक्तसार. कंटकीद्रुम, प्रसख, यूपद्रु, बालपुत्र, कर्कटी, जिह्मशल्य, कुष्ठहृत्, बालपत्रक, यूपद्रुम, खद्यपत्री, क्षितिक्षय, सुशल्य, वक्रकंटक, यज्ञांग. जिह्वाशल्य, सारद्रुम, कुष्ठारि, बहुसार और मेध्य) ये खैरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-खैर । बं०-खयेरगाछ । म०-खैर । गु०-खेर । क०-केपिन खैर । तै०-चण्डचेट्टु । लै०-एकेश्या केटच्यू Acacia atehu

खैर-शीतल, दांतोंको दृढ करनेवाली और कडवी कसैली, है, खुजली, खांसी, अरुचि, मेद, कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, चित्रकबराकोढ, सूजन, आम पित्त, रुधिरविकार, पांडुरोग, कोढ तथा कफको नष्ट करती है ॥२७॥ २८॥

विवरण ।

खैरके वृक्ष वनमें बडे २ होते हैं, इसकी छाल खरदरी और चटकी हुई होती है, इसके पत्ते आमलेकेसे छोटे २ होते हैं, इसपर महीन महीन और टेढे टेढे कांटे होते हैं, खैरसार और कत्था ये भी खैरकी लकडीका बनाया जाता है, दूसरे सफेद खैर और दुर्गंधित खैरके वृक्ष वनमें बहुत होते हैं ॥

अथ श्वेतखदिर (पपरियाकत्था) ।

खदिरः श्वेतसारोऽन्यः कदरः सोमवल्कलः । कदरो विशदो वर्ण्यो मुखरोगकफास्रजित् ॥ २९ ॥

खदिर, श्वेतसार, कदर, सोमवल्कल (सोमवल्क, ब्रह्मशल्य, खदिरोपम, कार्मुक, कुजकण्टक, सोमसार, सोमवृक्ष, पथिद्रुम, श्यामसार, नेमिवृक्ष, कण्टाढ्य, महावृक्ष और द्विजप्रिय) ये सफेद खैरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सफेद खैर । बं०-पापरी खयरेगाछ । म०-पांढरा खैर । गु०-खेर धोलासारवालो । क०-विलीयर्ति । तै०-रवासुतेल्लचण्ड ॥

सफेदखैर-स्वच्छ, वर्णको उत्तम करनेवाला और मुखरोग, कफ तथा रक्तविकार नाशक है २९ ॥

अथ इरिमेदः (दुर्गन्धखैर) ।

इरिमेदो विट्खदिरः कालस्कन्धोऽरिमेदकः । इरिमेदःकषायोष्णो मुखदन्तगदास्रजित् । हन्ति कण्डूविषश्लेष्मकृमिकुष्ठविषव्रणान् ॥ ३० ॥

इरिमेद, विट्खदिर, कालस्कन्ध, अरिमेदक (विद्, असिमेद, क्रिमिशात्रव, गिरिमेद, मरुद्द्रुम, गोधास्कन्ध, अहिमार, पूतिमेद और अहिमेदक) ये दुर्गन्ध खैरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-दुर्गन्धखैर । बं०-गुये वाब्ला, विट्खेर । म०-शेण्या खैर, गन्धियाहिंवर । गु०-गधिलोखेर इं०-स्पंजट्री Spongetree लै०-एकेशिया फारनेशीयना Acacia Farneisiana

दुर्गन्धखैर–कसैली, गरम, और मुखरोग, दन्तरोग, रुधिरविकार, खुजली, विष, कफ, कृमि, कोढ तथा विषजन्य व्रणको नष्ट करती है ॥ ३० ॥

अथ रोहीतकः (रोहेडा)।

रोहितको रोहितको रोही दाडिमपुष्पकः। रोहीतकः प्लीहघाती रुच्यो रक्तप्रसाधनः ॥ ३१ ॥

रोहीतक, रोहितक, रोही, दाडिमपुष्पक, (रोहित, कुशाल्मली, सदाप्रसून, कूटशाल्मलि, विरोचन, शाल्मलिक, रक्तपुष्प, सदापुष्प, रक्तघ्न प्लीहनाश, प्लीहघाती, रुच्य, रक्तप्रसाद, प्लीहशत्रु. प्लीहघ्न, मांसदलन, यकृद्वैरी, चलच्छद, प्लीहारि, रोहितेय और रोहिण) ये रोहेडेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी–रोहेडा। बं०- रोढा, रयना। म०--रक्तरोहिडा। गु०--रगतरोहीडो। क०--यरइमलु। तै०--मुलुमोदुगचेट्टु। लै०--टेकमा कण्डयुलेटा Tecama Uudulata

रोहेडा--रुचिकारक रुधिरको शुद्ध करनेवाला और प्लीहाको नष्ट करनेवाला है ॥३१॥

विवरण।

रोहेडेके वृक्ष सघन वनमें अधिक होते हैं, फूल अनारके समान लाल रंगके होते हैं, लाल और सफेद रङ्गके फूलोंके भेदसे रोहेडेकी दो जाति हैं, राजनिघण्टुमें कूटशालमली और लाल रोहेडेको एक ही लिखा है ॥

अथ बब्बूलः (बबूर)।

बब्बूलः किंकिरातः स्यात्किंकिराटः सपीतकः। स एव कथितस्तज्ज्ञैराभाषट्पदमोदिनी। बब्बूलः कफनुद् ग्राही कुष्ठक्रिमिविषापहः॥ ३२ ॥

बब्बूल, किंकिरात; किंकिराट, सपीतक, आभाषट्पदमोदिनी (मालाफल, युग्मकण्ट, दृढारुह, कंटकी, सूक्ष्मपत्र, पीतपुष्प, कषायक, युगलाक्ष, कंटालु, तीक्ष्णकंटक, गोश्रृंग, पंक्तिबीज, दीर्घकंटक, कफान्तक, दृढबीज, अजभक्ष, कंटक, बब्बोल) ये बबूरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-बबूर, बबूल, कीकर। बं०--बाबूलागाछ। म०--बाभूल, बाभळ। गु०--बावल। क०- पुलई। तै०--बलवंतङ्गु। ता०--वेलवरम्। इं०--एकेश्याट्री Acaciatree लै०--आकेशिया अरेबीका Acacia Arabica

कीकर--ग्राही कफ, कोढ, कृमि तथा विषनाशक है ॥ ३२ ॥

विवरण।

बबूरके बहुतसे वृक्ष जलाशयके समीप जंगलादिकमें एकत्र उपज खडे होते हैं, इसमें सुईके समान महातीक्ष्ण कांटे होते हैं और वे कांटे दो दो एकत्र लगे होते हैं पत्ते बहुत छोटे छोटे आमलेकेसे होते हैं फूल पीले रंगके गोल गोल लगते हैं, उसमें मिरचके सदृश टेढी टेढी फली होती हैं ॥

अथ अरिष्टः (रीठा)।

अरिष्टकस्तु माङ्गल्यः कृष्णवर्णोऽर्थसाधनः। रक्तबीजः पीतफेनः फेनिलो गर्भपातनः। अरिष्टस्तु त्रिदोषघ्नःग्रहभिद्गर्भपातनः॥ ३३ ॥

अरिष्टक, मांगल्य, कृष्णवर्ण, अर्थसाधन, रक्तबीज, पीतफेन, फेनिल, गर्भपातन, (गुच्छफल, अरिष्ट,मांगल्य, कुंभबीजक, प्रकीर्य और सोमवल्कल) ये रीठेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी- रीठा। बं--रीठेगाछ। म०--रीडा। गु०--अरीठा। तै०--कुकडि। फा०--फिंदकहिन्दी। अ०--युदक। इं०--सोपबेरी सोपनट Soapberry Soapnut लै०--सेपिन्टस इमार्जिनटस Sapintus Emarginatus सेपिंटस ट्रिफोलियेटस Sapintlus Trifollatus ता०--पोन्नालंकाइ।

रीठा--त्रिदोषनाशक, ग्रहोंको दूर करनेवाला और गर्भ गिरानेवाला है ॥ ३३ ॥

विवरण।

रीठेके वृक्ष वन और बागोंमें बहुत होते हैं. पत्ते एक डंडीमें छः सात नीमके तुल्य लगे

होते हैं, परन्तु उनमें आरेकेसे खार नहीं होते, फलोंके गुच्छे होते हैं, उनको रीठा कहते हैं, उनके भीतर काली गुठली निकलती है, उसके भीतर पीली मीग होती है ॥

अथ गर्भकरः (पितौंजिया)।

पुत्रजीवो गर्भकरो यष्टीपुष्पोऽर्थसाधकः। पुत्रजीवो गुरुर्वृष्यो गर्भदः श्लेष्मवातहृत्। सृष्टमूत्रमलो रूक्षो हिमः स्वादुः पटुः कटुः ॥ ३४ ॥

पुत्रजीव, गर्भकर, यष्टीपुष्प, अर्थसाधक, (पवित्रगर्भद, सुतजीवक, अपत्यजीव, सिद्धिद अपायजीवक, जीवपुत्रक श्लीपदापह कुमारजीव, यष्टीपुष्प और अर्थसाधन) ये पितौंजियेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी--जियापोता पितौंजिया, पतिजिया पतजू। बं --जियापुन्ता, पुतजिया। म०--पुत्रजीवक वृक्ष। गु० -पुत्रजीवक। क०- पुत्रजीव। तै० -शीश कुँवरजुवि। लै०--पुत्रजीवा राक्सवुर्घिआई Putrajiva Roxburghii

पितौंजिया--भारी वीर्यवर्द्धक, गर्भदायक मलमूत्रकी प्रवृत्ति करानेवाला, रूखा, शीतल, मधुर, खारा, चरपरा, नमकीन और कफ तथा वात विनाशक है ॥ ३४ ॥

विवरण।

पुत्रजीवक अर्थात् पतिजियाके वृक्ष संपूर्ण इंगुदीके वृक्षके समान होते हैं, पत्ते भी उसी आकारके, फूल भी उसी प्रकारके होते हैं और इसके बीजोंकी माला रुद्राक्षके तुल्य बनती है, प्रायः साधुलोग बहुत बना लेते हैं ॥

अथ इंगुदी × (हिंगोट)।

इङ्गुदोऽङ्गारवृक्षश्च तिक्तकस्तापसद्रुमः। इङ्गुदः कुष्ठभूतादिग्रहव्रणविषक्रिमीन्। हन्त्युष्णः श्वित्रशूलघ्नस्तिक्तकः कटुपाकवान् ॥ ३५ ॥

× वि. प्र, शूल नाशक तथा कफ एवं प्रतिश्याय रोग नाशक है।

इंगुद, अंगारवृक्ष, तिक्तक, तापसद्रुम, (भल्लकीवृक्ष, इंगुदी, कण्टक, पुत्रिपत्रा, तापसतरु, कण्टक, इंगुल, हिंगुपुत्र, विषकण्ट' अनिलान्तक, गौरत्वक्, तनुपुत्र, शूलारि' विषकण्टक, तीक्ष्णकण्ट, तैलफल, पूतिगन्ध, विगन्धक, क्रोष्टुफल, तिक्तमज्ज, कृशरक जलजन्तुविनाशक, दीर्घघण्टा, तैलबीजा, दारुपमफला और अंगुलिदला) ये हिंगोटके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी--हिंगोट, गोंदी। बं०--इंगोट। म०--हिंगणबेट। गु०--इंगोरियो। तै०--गरा। अ०--हिललेजे। इं०-डेलील Delil लै०-बेनेनाइटीस राक्सवुर्घीआई Balanites Roxburghii ता०-मणिपुङ्गै ॥

हिंगोट-गरम कडवा, पाकमें चरपरा और कोढ, भूतादिग्रह, व्रण, विष, कृमि, चित्रित कोढ तथा शूलको नष्ट करता है ॥ ३५ ॥

विवरण।

इंगुदीके बडे बडे वृक्ष जंगल और वनोंमें उत्पन्न होते हैं, उस वृक्षमें कांटे भी होते हैं, फल नींबूके समान कुछेक लम्बे और गोल होते हैं, फलके ऊपर गुठलीके सदृश रस लगा रहता है, मानो फल रसमें तर रहता है ॥

अथ जिंगिनी।

जिङ्गिनी झिंगिनी झिंगी सुनिर्यासा प्रमोदिनी। जिंगिनी मधुरा सोष्णा कषाया व्रणशोधिनी। कटुका व्रणहृद्रोगवातातीसारहृत्पटुः ॥ ३६ ॥

जिंगिनी, झिंगिनी, झिंगी, सुनिर्यासा, प्रमोदिनी (और कुलकमंजरी) ये जिंगिनीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-जिंगिनी। म०-मोई, मोक। गु०-जिंगिनी, मवेडी। क०-ओरीथ। लै०-ओडिना वोडियर Odina Wodier.

जिंगिनी-मधुर, गरम, कसैली, व्रणको शुद्ध करनेवाली, चरपरी, नमकीन और व्रण, वात, अतिसार तथा हृदयरोग नाशक है ॥ ३६ ॥

विवरण।

जिंगिनीके बडे बडे ऊँचे वृक्ष जङ्गलमें और पहाडोंमें होते हैं, पत्ते मरुवेके समान शाखाओंमें बराबर दोनों ओर लगे होते हैं, फूल सफेद और फल बरेके समान आते हैं ॥

अथ तमालः।

तमाल उक्तस्तापित्थःकालस्कन्धोऽमितद्रुमः। लोकस्कन्धो नीलध्वजो नीलतालश्च स स्मृतः। तमालः शालवद्वेद्यो दाहविस्फोटहृत्पुनः ॥ ३७ ॥

तमाल, तापित्थ, कालस्कन्ध, अमितद्रुम, लोकस्कन्ध, नीलध्वज, नीलताल, (तापिंज, तापिच्छ,कृष्णस्कन्ध, तम तमा, कालताल और महाबल) ये तमालके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-तमाल, श्यामतमाल। बं०-तामालगाच्छ। म०-तमालवृश। गु०-ता०-तमाल। ते०-तमालु ॥

गुण-तमालके गुण शालके सदृश जानने विशेष करके दाह तथा विस्फोटको नष्ट करता है ॥ ३७ ॥

विवरण।

तमालके वृक्ष प्रायः यमुना और तापीनदीके निकट बहुत होते हैं, वृक्षके मूल और शाखा श्याम रंगकी होती हैं, पत्ते गोलके शीशमके सदृश और फूल लाल लाल होते हैं और फल छोटे २ करोंदेके समान होते हैं ॥

अथ तूणी।

तूणी तुन्नक आपीनस्तुणिकः कच्छकस्तथा। कुठेरकःकान्तलको नन्दिवृक्षश्च नन्दकः ॥३८॥ तूणी रक्तः कटुः पाके कषायो मधुरो लघुः। तिक्तो ग्राही हिमो वृष्यो व्रणकुष्ठास्रपित्तजित् ॥३९॥

तूणी, तुन्नक, आपीन, तुणिक, कच्छक, कुठेरक, कांतल, नन्दिवृक्ष और नन्दक ये तुनके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी-तुन। बं०-तुंदगाछ। म०-तूनी, नादुरखी, नांदरूख। गु०-तूणी। ता०-तुणुक्मरम् ॥

गुण--तुन लाल, चरपरी, कसैली, मधुर, हलकी, कडवी, ग्राही, शीतल, वीर्यवर्द्धक और व्रण, कोढ तथा रक्तपित्तनाशक है ॥३८॥३९॥

विवरण।

तुनके बडे बडे सघन वृक्ष जङ्गल और वनोंमें होते हैं पत्ते नीमके पत्तोंसे कुछेक बडे होते हैं, फूल बहुत छोटे २ सफेद रंगके आते हैं, लकडी इसकी बहुत उत्तम होती है ॥

अथ भूर्जपत्र (भोजपत्र)

भूर्जपत्र स्मृतो भूर्जचर्मी बहुलवल्कलः। भूर्जो भूतग्रहश्लेष्मकर्णरुक्पित्तरक्तजित्। कषायो राक्षसघ्नश्च मेदोविषहरः परः ॥ ४० ॥

भूर्जपत्र, भूर्जचर्म्मी, बहुलवल्कल, सुचर्मा, वल्कलद्रुम, भूर्जपत्रक, चित्रत्वक्, बिन्दुपत्र, रक्षापत्र, विचित्रक, भूतघ्न, मृदुपत्र, मृदुचर्मी, शैलेन्द्रस्थ, चर्म्मद्रुम, छत्रपत्र, शिबि, स्थिरच्छद मृदुत्वक्, दलनिर्मोक, पत्रकी, विद्यादल, पत्रपुष्पक; भुज, बहुपट, बहुत्वक और मृदुच्छद) ये भोजपत्रके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी-भोजपत्र। बं०-भूजिपत्र। म०-भूर्जपत्र। गु०-भोजपत्र। क०-भूर्जपत्र। इं०-जेक्वेमोटी Jacquemoni. लै०--बेटयुला भोजपत्र Betula Bhojapatra. ता०-मरैयुरि ॥

भोजपत्र--कसैला और भूत, ग्रह, कफ, कर्णरोग, पित्त, रक्तविकार, राक्षसबाधा, मेद तथा विषविनाशक है ॥ ४० ॥

विवरण।

भोजपत्रके वृक्ष हिमालय आदि पर्वतोंपर अधिकतासे उत्पन्न होते हैं, इस वृक्षकी छालहीको भोजपत्र कहते हैं, छाल कागज तथा सूखे केलेके पत्तोंके समान होती है ॥

अथ पलाशः (ढाक)

पलाशः किंशुकः पर्णो यज्ञियो रक्तपुष्पकः। क्षारश्रेष्ठो वातहरो ब्रह्मवृक्षः

समिद्वरः ॥ ४१ ॥ पलाशो दीपनो वृष्यः सरोष्णो व्रणगुल्मजित् । कषायः कटुकस्तिक्तः स्निग्धो गुदजरोगजित् ॥४२॥ भग्नसन्धानकृद्दोषग्रहण्यर्शःकृमीन् हरेत् । तत्पुष्पं स्वादु पाके तु कटु तिक्तं कषायकम् ॥ ४३ ॥ वातलं कफपित्तास्रकृच्छ्रजिद्ग्राहि शीतलम् । तृड्दाहशमकं वातरक्तकुष्ठहरं परम् ॥ ४४ ॥ फलं लघूष्णं मेहार्शः कृमिवातकफापहम् । विपाके कटुकं रूक्षं कुष्ठगुल्मोदरप्रणुत् ॥ ४५ ॥

पलाश, किंशुक, पर्ण, यज्ञिय, रक्तपुष्पक, क्षारश्रेष्ठ, वातहर, ब्रह्मवृक्ष, समिद्वर, (करक, त्रिपत्रक, ब्रह्मपादप, पलाशक, त्रिपर्ण, रक्तपुष्प पूतद्रु, ब्रह्मवृक्षक, ब्रह्मोपनेता, काष्ठद्रु, बीजस्नेह, कृमिघ्न, वक्रपुष्पक और सुपर्णी) ये ढाकके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी-ढाक, केसू , पलाश, टेसू, छिउल । बं०-पलाशगाछ । म०-पळस । गु०-खाखरो । क०-मत्तलु । तै०-मोदुगचेट्टु । ता०-पलाश । इं०-डाउनी ब्राञ्च ब्युटिया Downy Branch Butea. लै०-ब्युटिया पार्विफ्लोरा (श्वेत) Butea Parviflora ब्युटिया फण्डोझा ButeaFrondoza.

पलाश-अग्निको दीपन करनेवाला, वीर्यवर्द्धक. दस्तावर, गरम, कसैला, चरपरा, कडवा स्निग्ध, टूटे हुएको जोडना और व्रण, गुल्म, गुदाके रोग, दोष, संग्रहणी ववासीर, तथा कृमिको नष्ट करता है ॥

ढाकके फूल-स्वादिष्ठ, पाकमें चरपरे, कडवे कसैले, वातकारक, ग्राही शीतल, और कफ, पित्त, रुधिरविकार, मूत्रकृच्छ्र, तृषा, दाह, वातकारक तथा कुष्ठको नष्ट करते हैं ॥

ढाकके फल-हलके, गरम, पाकमें चरपरे रूक्ष और मेह, बवासीर, कृमि, वात, कफ, कोढ, गुल्म तथा उदरपीडानाशक है ॥४१-४२

विवरण ।

ढाकके वृक्ष जङ्गल और वनोंमें बहुत होते हैं, एक एक डण्डीमें तीन तीन पत्ते होते हैं. प्रथम लालरंगके निकलते हैं फिर हरे हो जाते हैं. फूल काले और लाल कुछेक पीलापन लिये अत्यन्त सुन्दर डालियोंमें लगते हैं, उसमें बडी बडी फलियां लगती हैं, उनमेंसे चपटे और गोल बीज निकलते हैं; उनको सब लोग ढकपन्ना कहते हैं ॥

अथ शाल्मलिः (सेमल) ।

शाल्मलिस्तु भवेन्मोचा पिच्छिला पूरणीति च । रक्तपुष्पा स्थिरायुश्च कण्टकाढ्या च तूलिनी ॥ ४६ ॥ शाल्मली शीतला स्वाद्वी रसे पाके रसायनी । श्लेष्मला पित्तवातास्रहारिणी रक्तपित्तजित् ॥ ४७ ॥

शालमलि, मोचा. पिच्छिला, पूरणी; रक्तपुष्पा, स्थिरायु, कण्टकाढ्या. तूलिनी, (शाल्मलि, शाल्मली, शल्मली, तूलिफला, दुरारोहा, शाल्मलिनी, शाल्मल, अपूरणी, निर्गन्धपुष्पी, तुलिनी, कुक्कुटी, कण्ठकाष्ठ, मोचनी, शीमूलु. कदला, चिरजीवी, पिच्छल, रक्तपुष्पक, तलवृक्ष, मोचाख्य, कण्टद्रुम, ककुटी, रक्तोत्मल, रम्यपुष्प, बहुवीर्य, वनद्रुम, दीर्घद्रुम स्थूलफल, और दीर्घपादप) ये सेमलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सेमल सेमर । बं०-शिमुल । म०-सांवरी शेवरी । गु०-शेमलो । क०-यवलवदमर । तै०-रुगचेट्टु । ता०-इलवंमरम् । इं०-सिल्क काटन ट्री Silk Cotton tree. लै०-बोम्बेक्स मेलबेरीकम् Bomhax Malabaricum. सालमेलिया मेलबेरी Salmalia Malabarica.

सेमल-शीतल, मधुर, पाकमें मधुर, रसायन कफकारक और पित्त, वात, रुधिरविकार तथा रक्तपित्तको नष्ट करता है४६-४७

विवरण।

सेमलके वृक्ष अत्यन्त बडे और सघन वनोंमें और जङ्गलोंमें अधिकतासे होते हैं, उसकी एक एक डण्डीमें पांच २ सात २ पत्ते होते हैं, वृक्षमें कांटे होते हैं, वे काँटे जडमें पीले और ऊपरसे महीन होते हैं फूल लाल कमलके समान बडे होते हैं, उनमें आकके सदृश फल लगते हैं, उनको सेमलगद्दे कहते हैं, सूखनेपर उनके भीतरसे रुई निकलती है ॥

अथ मोचरसः।

निर्यासः शाल्मलेः पिच्छा शाल्मलीवेष्टकोऽपि च। मोचास्रावो मोचरसो मोचनिर्यास इत्यपि ॥४८॥ मोचास्रावो हिमो ग्राही स्निग्धो वृष्यः कषायकः। प्रवाहिकातिसारामकफपित्तास्रदाहनुत्॥४९॥

शाल्मली, निर्यास, पिच्छा, शाल्मलीवेष्टक, मोचा स्राव, मोचरस, मोचनिर्यास, (मोचसार, मोचश्रुत, मोचश्रुत, पिच्छिलखार, सुरस, मोचाक, मोचाह्व, वेश्मरस और शाल्मरस) ये मोचरसके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--मोचरस, सेमरका गोंद। बं०-शिमुलेरआठा। म०-सांबरीचा डीक। गु०-शेमालानो गुंद।

मोचरस--शीतल, ग्राही, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, कसैला और प्रवाहिका, अतिसार, आम, कफ, पित्त, रुधिरविकार तथा दाहको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

विवरण।

मोचरस-सेमलके गोंदहीको मोचरस कहते हैं ॥

अथ कूटशाल्मलिः।

कुत्सितः शाल्मलिः प्रोक्तो रोचनःकूटशाल्मलिः। कूटशाल्मलिकस्तिक्तः कटुकः कफवातनुत् ॥ ५० ॥ भेद्युष्णः प्लीहजठरयकृद्गुल्मविषापहः। भूतानाहविबन्धास्रमेदःशूलकफापहः ॥५१॥

कुत्सित. शाल्मलि, रोचन और कूटशाल्मलि ये कूटशाल्मलिके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--कालासेमर। म०-काळी सांवर।

कूटशाल्मलि--कडवा, चरपरा, दस्तावर, गरम और कफ, वात, प्लीहा, उदररोग, यकृत, गुल्म, विष, भूत, अफरा, मलबन्ध रुधिरविकार, मेद, शूल तथा कफको नष्ट करता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

विवरण।

कूटशाल्मालिके वृक्ष जंगलमें बहुत होते हैं, इसके फूल अनारके समान लाल रंगके होते हैं, दूसरी जातिके सेमलपर सफेद रंगके फूल आते हैं, इस वृक्षके दो भेद होते हैं ॥

अथ धवः (धौं)।

धवो धटो नन्दितरुः स्थिरो गौरो धुरन्धरः। धवः शीतः प्रमेहार्शःपाण्डुपित्तकफापहः। मधुरस्तुवरस्तस्य फलश्च मधुरं मनाक् ॥ ५२ ॥

धव, धट, नंदितरु, स्थिर, गौर, धुरंधर, (शाकठाख्य, दृढतरु, गौर, कषाय, मधुरत्वक्, शुष्कवृक्ष, शुष्कांग, पांडुतरु, धवल, पांडुर, पीतफल और मधुरत्वक्) ये धौंके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी–धाय, धौं, धव धवा। बं०–धाउयागाछ। म०–धावडा। गु०–धावडो। क०–सिरिवरु। तै०–नारिच्छ चेट्टु। लै०–एनोजिसस लाटिफोलिया Anoigsu Latlfolia

धौं–शीतल, मधुर, कसैली और प्रमेह, बवासीर, पांडु, पित्त तथा कफको नष्ट करती है. धौंके फल किंचित् मधुर होते हैं ॥ ५२ ॥

विवरण।

धौंके वृक्ष वनोंमें बहुत बडे २ होते हैं, इसके पत्ते अमरूदके समान और छाल सफेद रंगकी होती है, फल बहुत छोटे छोटे होते हैं, इसकी लकडीके हल और मूसल बनाते हैं ॥

१–विशेषकरके जीर्ण प्रवाहिकामें, इसका प्रयोग वृद्ध वैद्य करते हैं।

धन्वंगः (धामिन) ।

धन्वङ्गस्तु धनुर्वृक्षो गोत्रवृक्षः सुतेजनः । धन्वङ्गः कफपित्तास्रकासहृत्तुवरो लघुः । बृंहणो बलकृद्रूक्षः सन्धिकृद्व्रण-रोपणः ॥ ५३ ॥

धन्वंग, धनुर्वृक्ष, गोत्रवृक्ष और सुतेजन ये धामिनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-धामिन धवई । म०-धामणीचा वृक्ष । गु०-धामण ॥

धामिन-कसैली, हलकी पुष्टिकारक, बलदायक, रूक्ष, सन्धानकारक, व्रणरोपक और कफ, पित्त, रुधिरविकार, खांसी तथा हृदयरोगनाशक है ॥ ५३ ॥

विवरण ।

धामिनके बडे बडे ऊंचे वृक्ष वनोंमें होते हैं, पत्ते बेरीके समान परंतु कुछ बडे होते हैं, इसकी लकडी बहुत दृढ होती है, प्रायःइसकी कडियाँ बहुत बनाई जाती हैं ॥

अथ करीरः ।

करीरःक्रकरोऽपत्रो ग्रन्थिलो मरुभूरुहः । करीरः कटुकस्तिक्तः स्वेद्युष्णो भेदनः स्मृतः । दुर्नामकफवातामगरशोथव्रण-प्रणुत् ॥ ५४ ॥

करीर, क्रकर. अपत्र, ग्रंथिल, मरुभूरुह, (गूढपत्र, शाकपुष्प, कटुफल, तीक्ष्णसार, कण्टकी, क्रकच, निष्पत्रिका, करीर, करक, तीक्ष्णकंटक, मृदुफल, निष्पत्र, शाणपुष्प, विदाहिक, शतकुंत, सुफल, उष्णसुन्दर, विष्वक्पत्र और कृशशाख) ये करीरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-करीर, करील । बं०-करील । म०-नेवती । गु० केरडो । क०-तिप्पतिगे । तै-कवरकुराक । फा०-कवार । अं०-केपर Caper लै०-केपरिस स्पाइनोझा Cappuris Spinosa

करील-चरपरा, कडवा, स्वेदजनक, गरम, मलभेदक, (दस्तावर) और बवासीर, कफ, वात, आम, विष, सूजन तथा व्रण विनाशक है ॥ ५४ ॥

विवरण ।

करीलके वृक्ष छोटे छोटे होते हैं, प्रायः ये वृक्ष जंगल और मारवाडकी भूमिमें और (व्रज) में बहुत होते हैं, इनकी डंडी नीले रंगकी और फूल गुलाबी रंगके होते हैं, फाल्गुन और चैतके महीनेमें इनपर फल फूल आते हैं, पत्ते न होनेके कारण केवल फूलही फूल दीखते हैं और कांटे महातीव्र होते हैं। इनके फलोंका अचार होता है ॥

अथ शाखोटः (सिहोडा)

शाखोटः पीतफलको भूतावासः खरच्छदः । शाखोटो रक्तपित्तार्शोवातश्लेष्मातिसारजित् ॥ ५५ ॥

शाखोट, पीतफलक, भूतावास, खरच्छद, (पिशाचद्रु, पीतफल, कर्कशच्छद, शंखिनीवास. भूतवृक्ष, सकट. अक्षधर. करच्छद गवाक्षी, रूक्षपत्र, पीत, कौशिक्योज और क्षीरनाश) ये सिहोडेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-सिहोडा (रा) । बं०-शेओडा, शांढा । म०-सहोड । गु०-साहोडा । तै०-आरणीकेचेट्टु । ता०-कुट्टिपला । लै०-स्ट्रेपल्यूसासपर Streplusasper.

शाखोट-रक्तपित्त, बवासीर, वात, कफ तथा अतिसारनाशक है ॥ ५५ ॥

विवरण ।

सिहोडेके वृक्ष महा गँठीले और झाड झंकाडसे होते हैं, परन्तु बहुत बडे नहीं होते. पत्ते छोटे २ और चिकने चिकने होते हैं, फूल सफेद सफेद और लकडीमें कांटेसे जान पडते हैं परंतु कांटे होते नहीं, हरियानमें इसे हीस कहते है ॥

१-वि. प्र.-रुधिर जिन्हें वमनमें आता है, उनके लिये अतीवोपयोगी है ।

१ विशेषप्रयोग-जिह्वास्वाद जिन्हें नष्ट हो गया है, उनके लिये हितकारी है ।

अथ वरुणः (वरना)।

वरुणो वरणः सेतुस्तिक्तशाकः कुमारकः। वरुणः पित्तलो भेदी श्लेष्मकृच्छ्राश्ममारुतान् ॥ ५६ ॥ निहन्ति गुल्मवातास्त्रकृमींश्चोष्णोऽग्निदीपकः। कषायो मधुरस्तिक्तःकटुको रूक्षको लघुः॥५७॥

वरुण, वरण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक, (उरुमाण, सेतुवृक्ष, श्वेतद्रु, मारुतापह, कुमार, अश्मरीघ्न, सेतुक, वराण, शिखिपण्डल. श्वेतवृक्ष और साधुवृक्ष) ये वरनाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-वरना, वरुण। बं०-वरुणगाछ। म०-भाटवरणा। गु०-वायवणो। क०-मदवसले। तै०-उरुमट्टी, जाजिचेट्टु। ता०-मरलिंगम्। लै०-क्रेटिवा रिलिजिओसा Crateava Religiosa.

वरना-पित्तकारक, मलभेदक, कसैला, मधुर, कडवा, चरपरा, रूखा, हलका, गरम, अग्निको, दीपनकरनेवाला और कफ, मूत्रकृच्छ्र पथरी, वात, गुल्म, रक्तविकार और कृमिको नष्ट करता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

विवरण।

वरनेके बडे २ ऊँचे और सघन वृक्ष जंगलोंमें होते हैं, पत्ते वेलके समान एक एक दंडीमें तीन तीन लगे होते हैं, फल गोल २ हरे रंगकेनीम्बूकी, आकृतिके होते हैं, फूल सफेद रंगके छोटे २ होते हैं ॥

अथ कटभी।

कटभी स्वादुपुष्पश्च मधुरेणुःकटम्भरः। कटभी तु प्रमेहार्शोनाडीव्रणविषक्रिमीन् ॥ ॥५८॥ हन्त्युष्णा कफकुष्ठघ्नी कटू रूक्षा च कीर्तिता। तत्फलं तुवरं ज्ञेयं विशेषात् कफशुक्रहृत् ॥ ५९ ॥

कटभी; स्वादुपुष्प, मधुरेणु, कटम्भर, (नाभिका, शौंडी, पाटली, किणिही, क्षुद्रश्यामा, कैडर्य, श्यामला और भद्रेन्द्राणी) ये कटभीके संस्कृत नाम हैं a

हिं०-कटभी, करही। म०- वाकुम्बा। गु०--टीबरु। क०--बेझाल इं०--केरिश्ची (arcystree. लै०--केरिया आर्वोरिया Careya Arborea

कटभी--गरम, चरपरी, रूक्ष और प्रमेह, बवासीर, नाडीव्रण (नासूर), विष, कृमि, कफ तथा कोढको नष्ट करता है। इसका फल कसैला है। विशेष करके कफ तथा वीर्यका नाशक है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

विवरण।

कटभीके वृक्ष मध्यम आकारके होते हैं, पत्ते गोल और कुछ २ लम्बाई लिये होते हैं, फल अरण्डके खरबूजेके समान और छोटे होते हैं ॥

अथ × मोक्षः (मोखावृक्ष)।

मोक्षस्तु मोक्षकोपि स्याद्गोलीढो गोलिहस्तथा। क्षारश्रेष्ठः क्षारवृक्षो द्विविधःश्वेतकृष्णकः ॥६०॥ मोक्षकः कटुकस्तिक्तो ग्राह्युष्णः कफवातहृत्। विषमेदोगुल्मकण्डूवस्तिरुक्कृमिशुक्रनुत् ॥ ६१ ॥

मोक्ष, मोक्षक, गोलीढ, गोलिह, क्षारश्रेष्ठ क्षारवृक्ष, (गौलिक, मेहन, पाटली, विषापह, जटाल, वनवासी, सुतीक्ष्णक. क्षारोष्ण, शिखरी, घण्टापाटलि, क्षुद्रपाटलि, मुचक, जटालु, झाटफ, क्षारल, कालमुष्कक, घण्टाक, तीक्ष्ण, घण्टक, और) कालस्थाली) ये मोखाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं-मोखा, फरवाह। बं०--घण्टापारूल। म०--मोखाडा। गु०--मरखो। क०--मोखदलाई। तै०--मोक्कपुचेट्टु। लै०--स्क्रीबीरा स्विस्टेनो आइडिस Schribera Swistemo Oides.

मोखा-सफेद और काला, इस भांति दो प्रकारका होता है ॥

१-विशेषप्रयोग-व्रणशोधक तथा रोपक है।

× विशेष प्रयोग-अश्मरी रोगनाशक है।

मोखा--चरपरा, कडवा, ग्राही, गरम और कफ, वात, विष, मेद, गुल्म, खुजली, वस्तिरोग कृमि तथा वीर्यको नष्ट करता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

विवरण।

मोखेके वृक्ष दो जातिके होते हैं, एक काला और दूसरा सफेद, पत्ते बडे २ होते हैं, उनमेंसे आकके समान दूध निकलता है, फल घंटाकार होते हैं ॥

जलशिरषिका (ढाढोन)।

शिरीषिका टिण्टिणिका दुर्बलाऽम्बुशिरीषिका। त्रिदोषविषकुष्ठार्शोहरी वारिशिरीषिका ॥ ६२ ॥

शिरीषिका, टिण्टिणिका, दुर्बला, अम्बुशिरीषिका और वारिशिरीषिका, ये ढाढोनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०--ढाढोन । म०--जलशिरसी । गु०- जलसरसडियो ॥

ढाढोन--त्रिदोष, विष, कोढ तथा बवासीर को नष्ट करती है ॥ ६२ ॥

विवरण।

ढाढोन जलमें उत्पन्न होती है और इसके पत्ते शिरीषके पत्तोंके सदृश होते हैं ॥

अथ शमी[1] (छोकर)।

शमी सक्तुफला तुङ्गा केशहन्त्री फला शिवा। मङ्गल्या च तथा लक्ष्मीःशमीरः साऽल्पिका स्मृता ॥ ६३ ॥ शमी तिक्ता कटु शीता कषाया रेचनी लघुः। कफकासभ्रमश्वासकुष्ठार्शःकृमिजित् स्मृता। तत्फलं पित्तलं रूक्षं मेध्यं केशविनाशनम् ॥ ६४ ॥

शमी, सक्तुफला तुंगा, केशहंत्री, फला, शिवा, मंगल्या, लक्ष्मी, शमीर, (शान्ता) शुभदा, पवित्रा, पापनाशिनी, सक्तुफली, काननारि, कचरिपुफला, केशमथनी, ईशानी, तपनतनया, इष्टा, शुभकरी, हविर्गन्धा, दुरितदमनी, शक्तुफलिका, समुद्रा, वह्निगर्भा, समीर, ईशान, सुरभि, पापशमनी, भद्रा, शंकरी, सुपुत्रा, सुखदा, ईशाना, शंकुफलिका, और सुभद्रा) ये संस्कृतके नाम हैं ॥

हिं०--छोंकर, शमी, सफेद कीकर। बं०--शाँई। म०--शमी। गु०-,खीजडी। क०--बन्निा ता० -बन्निमरम्। तै० -शमीचेट्टु। इं०--स्पंजट्री Spongetree. लै०--प्रोसोपिसस्पाइसिजेरा prosopis Spicigera

छोंकर--कडवा, चरपरा, शीतल, कसैला, रेचक (दस्तावर), हलका और कफ, खांसी, भ्रम, श्वास, कोढ, बवासीर तथा कृमिनाशक है ॥ इसका फल--पित्तजनक, रूखा, मेधाकारक और केशनाशक है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

विवरण।

शमीके वृक्ष वनोंमें बडे २ ऊँचे होते हैं, पत्ते खैरके समान होते हैं, फली सेंगरीके सदृश होती है परन्तु यह भी एक कीकर बब्बुलका भेद है, इसको छोंकर कहते हैं ॥

अथ सप्तपर्णः (सतौना)।

सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः। सप्तपर्णो व्रणश्लेष्मवातकुष्ठास्रजन्तुजित् दीपनःश्वासगुल्मघ्नः स्निग्धोष्णस्तुवरःसरः ॥ ६५ ॥

सप्तपर्ण, विशालत्वक्, शारद, विषमच्छद, (विद्ध, विनद, विन्याक, सारद, देववृक्ष, दलेगंधि, शिरोरुजा, ग्रहनाश, सूतिपत्र,

[1] विशेष प्रयोग—कफनाशक है तथा रक्तविकार नाशक है।

प्रहाशी, ग्रहनाशन, गुच्छपुष्प, शुक्तिपर्ण, सुपर्णक, अयुक्छद, अयुग्मच्छद, गुच्छपुष्प, युग्मवर्ण मुनिच्छद, बृहत्वक्, बहुपर्ण, शाल्मलिपत्र, मदगन्ध गन्धिपर्ण, सप्तच्छद, छत्रपर्ण और शरदिपुष्प) ये सतवनके संस्कृत नाम हैं

हिं०--सतौना सतवन, छेतिवन । बं०--छातिमगाछ छेतेन । म०--सात्विण । गु०--सात्विक । क०--एलेलेग । तै० एडाकुल । लै०--आल्स्टोनियास्कोलेरिस । Alstonias cholaris. ता०--वेण्पालै ।

सतौना—अग्निका दीपन करनेवाला, स्निग्ध गरम, कसैला, दस्तावर और व्रण (घाव) कफ, वात, कोढ, रुधिरविकार तथा जन्तु नाशक हैं ॥ ६५ ॥

विवरण ।

सतवनके बडे ऊँचे २ वृक्ष होते हैं, पत्ते सेमलके समान और एक एक डालीमें सात २ पत्ते होते हैं ॥

अथ तिनिशः (तिरिच्छ) ।

तिनिशः स्यन्दनो नेमी रथद्रुर्वञ्जुलस्तथा । तिनिशःश्लेष्मपित्तास्रमेदः कुष्ठप्रमेहजित् ॥ तुवरःश्वित्रदाहघ्नो व्रणपांडुकृमिप्रणुत् ॥ ६६ ॥

तिनिश, स्यन्दन, नेमि, रथद्रु, वञ्जुल, (सर्वसार, अश्मगर्भक, तिनाशक, अक्षकचित्रकर्मा, अतिमुक्तक, चित्रकृत, चक्री, शताङ्ग, शटक, रथ, रथिक, भस्मगर्भ, मेषी, जलधर और स्यंदन) ये तिनिशके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०—तिनिश, तिरिच्छ । बं०—तिनाश । म०—तिवस । गु०—हम्मों । लै०—औजिनियाडाल बर्जिया ओईडिस् Ougeniadul Bergia Oides

तिनिश—कसैला और कफ, पित्त, रुधिरविकार, मेद, कोढ, प्रमेह, चितकावरकोढ, दाह, व्रण, पाण्डु तथा कृमिको नष्ट करता है ॥ ६६ ॥

विवरण ।

तिनिशके बडे लम्बे और सघन वृक्ष होवे है, पत्ते छोंकरके समान नन्हे नन्हे होतेहैं, उनकी आकृति खैर अथवा कीकरकीसी होती है ॥

अथ भूमीसहः (सागोन) ।

भूमीसहो द्वारदारुर्नीरदारुः खरच्छदः । भूमीसहस्तु शिशिरो रक्तपित्तप्रसादनः६७।

॥ इति श्रीभावप्रकाशे वटादिवर्गः ॥

भूमीसह, द्वारदारु, नीरदारु, खरच्छद (क्रकचपत्र, खरपत्र, अतिपत्रक, महीरुह, श्रेष्ठकाष्ठ, स्थिरसार, गृहद्रुम, अनिल, अर्ण, महापत्र, शाखतरु, शाकवृक्ष, शाखाख्य, अर्जुनोपम, शरपत्र, अतिपत्र, भूमिरुह, दीर्घच्छद, कोलफल, योगी, हलीमक, गन्धसार, स्थिरसार, स्थिरक और ध्रुवसाधन) ये सागोनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०—सागोन, सागवन । बं०—शेंगुतगाछ । म०—गु०—साग । क०—नैगु । तै०—टेकुचेट्टु । ता०—तेक्कु । फा०—फिलगोस । अ०—फिलजोश, उजनुलफिल । इं०—इंडियन टीकट्री Indian Teyktree. लै०--टेकटोना ग्रांडीस Tectonn Grandis.

सागोन--शीतल और रक्तपित्तको शुद्ध करनेवाला है ॥ ६७ ॥

विवरण ।

सागोनके बडे २ लम्बे वृक्ष जंगलमें होते हैं, पत्ते बडे २ और खरखरे होते हैं फल सफेद और बहुत छोटे २ होते हैं ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंर्जाविनीभाषाटीकायां वटादिवर्गः ॥

अथ आम्रादिफलवर्गः।

तत्रादौ आम्रस्य नामानि गुणाश्च।

आम्रः प्रोक्तो रसालश्च सहकारोऽतिसौरभः। कामाङ्गो मधुदूतश्च माकन्दः पिकवल्लभः॥ १॥ आम्रपुष्पमतीसारकफपित्तप्रमेहनुत्। असृग्दुष्टिहरं शीतं रुचिकृद् ग्राहि वातलम्॥ २॥

आम्र, रसाल, सहकार, अतिसौरभ, कामांग, मधुदूत. माकन्द, पिकवल्लभ, (चूतक, फलश्रेष्ठ, फलोत्पत्ति, मृषालक, चूत, षट्पदातिथि, वसन्तद्रु, पिकप्रिय, स्त्रीप्रिय, गन्धबन्धु, लिप्रिय, शरेष्ट, मदिरासख, पिकबन्धु, केशवायुध, कोषी, परपुष्टमहोत्सव, कापशर, कामवल्लभ, कीरेष्ट, माधवद्रुम, भृङ्गाभीष्ट, सीधुरस, माधूली, कोकिलोत्सव, वसन्तदूत, मोदाख्य, मन्मथालय, मध्वावास, मदन, पिकराग, नृपप्रिय, प्रियाम्बु, कोकिलावास, वसन्तपादप, भ्रमरप्रिय, मनोज्ञ, मन्मथावास शुकप्रिय, वनोत्सव, मदाढ्यय और मंजरी) ये आमके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-बं०-आम। म०-आंबा। गु०-आंबो। का०-माविन फल। तै०-मामिडि। फा०-आंबा। अ०-अम्बज। इं०-मांगोट्री Mango tree. लै०--मेंगीफरा इंडिका Mangifera Indica. ता०--मामरम्॥

आमका फूल, (मौर) दुष्टरुधिरनाशक, शीतल, रुचिकारी, ग्राही, वातकारक है अतिसार, कफ पित्त और प्रमेह नाशक है॥१॥२॥

अथ आमाम्रफलम् (अमियां)

आम्रं बालं कषायाम्लं रुच्यं मारुतपित्तकृत्। तरुणं तु तदत्यम्लं रूक्षं दोषत्रयास्रकृत्॥ ३॥

कच्ची अमियां-कसैली, खट्टी, रुचिकारक, वात तथा पित्तको करनेवाली है। बडा और विना पका आम--खट्टा, रूखा और त्रिदोष तथा रक्तविकारको करनेवाला है॥ ३॥

शुष्कमाम्रफलम् (अमचूर)।

आम्रमामं स्वचा हीनमातपातिविशोषितम्। अम्लं स्वादु कषायं स्याद्भेदनं कफवातजित्॥ ४॥

कच्चे आमके ऊपरका छिलका छील टुकडे करके धूपमें सुखा लेवे उसको आम्रपेषी (अमचूर) कहते हैं। यह अमचूर-खट्टा, स्वादिष्ट, कसैला, दस्तावर, कफ तथा वातको जीतनेवाला है॥ ४॥

पक्वमाम्रफलम् (पका आम)

पक्वं तु मधुरं वृष्यं स्निग्धं बलसुखप्रदम्। गुरु वातहरं हृद्यं वर्ण्यं शीतमपित्तलम्॥ ५॥ कषायानुरसं वह्निश्लेष्मशुक्रविवर्द्धनम्। तदेव वृक्षसम्पक्वं गुरु वातहरं परम्॥ ६॥ मधुराम्लरसं किञ्चिद्भवेत्पित्तप्रकोपनम्। आम्रं कृत्रिमपक्वं च तद्भवेत् पित्तनाशनम्॥ ७॥ रसस्याम्लस्य हानेस्तु माधुर्याच्च विशेषतः। चोषितं तत्परं रुच्यं बल्यं वीर्यकरं लघु॥ ८॥ शीतलं शीघ्रपाकि स्याद्वातपित्तहरं सरम्। तद्रसो गालितो बल्यो गुरुर्वातहरः सरः॥९॥ अहृद्यस्तर्पणोऽतीव बृंहणः कफवर्द्धनः। तस्य खण्डं गुरु परं रोचनं चिरपाकि च॥ १०॥ मधुरं बृंहणं बल्यं शीतलं वातनाशनम्। वातपित्तहरं रुच्यं बृंहणं बलवर्द्धनम्। वृष्यं वर्णकरं स्वादु दुग्धाम्रं गुरु शीतलम्॥ ११॥

पका आम--मधुर, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध, बल तथा सुखदायक है भारी, वातनाशक, हृदयको प्रिय, वर्णको उत्तम करनेवाला तथा शीतल है और पित्तकारक, नहीं है कसैला रसयुक्त, अग्नि कफ और वीर्यको बढानेवाला है॥

१--अत्यन्त वृष्य बृंहण तथा रसायन है॥

जो आम वृक्षपर ही पका हो वह--भारी, वातनाशक, मधुराम्ल (खटमिट्ठा) और किंचित् पित्तको कुपित करनेवाला है। कृत्रिमपक (पालसे पकाया हुआ) आम--पित्तनाशक, अम्लरसहीन और विशेष करके मधुर होता है। चूंसा हुआ आम--अत्यन्त रुचिकारी, बलदायक, वीर्यवर्द्धक, हलका, शीतल, शीघ्रपाचक, वात, पित्तको हरनेवाला और दस्तावर है॥ आमका निकाला हुआ रस--बलदायाक, भारी, वातनायशक, दस्तावर, हृदयको अप्रिय, तृप्तिदायक, अत्यन्त पुष्टिकारक और कफवर्द्धक है॥ आमका खण्ड--भारी, अत्यन्त रुचिकारी, देरसे पचनेवाला है॥ मधुर, पुष्टिकारक, बलकारक, शीतल और वायुका नाश करनेवाला है॥ दूधके साथमें खाया हुआ आम--वातपित्तनाशक, रुचिकारी, पुष्टिदायक, बलदायक, वीर्यवर्द्धक, वर्णको उत्तम करनेवाला, स्वादिष्ट, भारी, मधुर और शीतल है॥ ५--११॥

आम्रातियोगः (आम बहुत खाना)।

मन्दानलत्वं विषमज्वरं च रक्तामयं बद्धगुदोदरं च। आम्रातियोगो नयनामयं वा करोति तस्मादति तानि नाद्यात्॥ ॥ १२॥ एतदम्लाम्रविषयं मधुराम्लपरं न तु। मधुरस्य परं नेत्रहितत्वाद्या गुणा यतः॥१३॥ शुण्ठ्यम्भसोऽनुपानं स्यादाम्राणामतिभक्षणे। जीरकं वा प्रयोक्तव्यं सह सौवर्चलेन च॥ १४॥

अत्यन्त आमका खाना--मन्दाग्नि, विषम ज्वर, रुधिरदोष, अत्यन्त मलका रोध और नेत्ररोग करता है, इस कारण आम अत्यन्त नहीं खाना चाहिये। ये दोष केवल खट्टे आममें हैं, मधुर आममें नहीं है, क्योंकि मधुर आममें तो नेत्रोंको हितकारी इत्यादि गुण रहते हैं। आम अधिक खाने हों तो सोंठके पानीके साथ खावे, वा जीरा कालेनोनके साथ खावे॥

अथ आम्राबर्त्तस्य लक्षणं गुणाश्च।

पक्कस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः। धर्मशुष्को मुहुर्दत्त आम्रावर्त इति स्मृतः ॥ १५॥ आवर्तस्तृषाच्छर्दिवातपित्तहरः सरः। रुच्यः सूर्यांशुभिः पाकाल्लघुश्च स हि कीर्त्तितः॥ १६॥

पके आमके रसको वस्त्रपर डालकर धूपमें सुखावे, सूखनेपर फिर और रस डाले, इस प्रकार वारंवार करनेसे आम्रावर्त (अमावट) बन जाती है॥

हिन्दी--अमावट, आम्रावर्त॥

आम्रवर्त--दस्तावर, रुचिकारक, सूर्यकी किरणोंसे सूखनेके कारण हलका होजाता हैं। तृषा, वमन, वात तथा पित्तनाशक है १५॥१६

विवरण।

आम जगत्में प्रसिद्ध फल है, इसके समान और कोई दूसरा फल नहीं है, आमके वनके वन देखनेमें आते हैं और बागोंमें भी एकसे एक उत्तम वृक्ष छांट छांटकर लगाये जाते हैं, इसके वृक्ष बहुत बडे बडे होते हैं, कोई कोई बाग ऐसे सघन हैं कि वन भी उनको देखकर मनमें संकुचित होता है, वह बाग अन्धेरिया बागके नामसे प्रसिद्ध है, इस देशमें ऐसा कोई ग्राम और नगर नहीं, जहां दश बीस आमके बाग न हों, धन्य है उस परब्रह्म परमात्माको ! जिसने हमारा ऐसा शोभायमान देश बनाया। उसके पत्ते जामुनकेसे होते हैं, एक बालिस्त लम्बे दो अंगुल चौडे, वसन्तऋतुमें और वर्षाऋतुमें लाल लाल कोवल पत्ते निकलते और फिर हरे होजाते हैं, फूलके स्थानमें मौर डाली डालीपर छाजाता है, फल गोल और कुछ लम्बे कच्ची अवस्थामें हरे और पकनेपर पीले और हरे ही रहते हैं, उनका रस ऐसा मीठा होता है कि, खाते ही चित्त प्रसन्न होजाय, फलके भीतर एक गुठली होवी है, वही बोई जाती है उसीसे वृक्ष उत्पन्न होता है।

अथ आम्रबीजम् (कोइली)।

आम्रबीजं कषायं स्याच्छर्द्यतीसारनाशनम्। ईषदम्लश्च मधुरं तथा हृदयदाहनुत्॥ १७॥

आमकी गुठली-कसैली है वमन और अतीसारको नाश करती है कुछ खट्टी, मधुर और हृदयके दाहको नष्ट करती है॥ १७॥

अथ नवपल्लवः।

आम्रतस्य पल्लवो रुच्यः कफपित्तविनाशनः॥ १८॥

आमके नवीन पत्ते-रुचिकारक हैं कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाले हैं॥ १८॥

आम्रातकः (अम्बाडा)।

आम्राकःपीतनश्च मर्कटाम्रः कपीतनः। आम्रातमम्लं वातघ्नं गुरूष्णं रुचिकृत्सरम्॥ १९॥ पक्वन्तु तुवरं स्वादु रसे पाके हिमं स्मृतम्। तर्पणं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं विष्टम्भि बृंहणम्। गुरु बल्यं मरुत्पित्तक्षतदाहक्षयास्रजित्॥ २०॥

आम्रातक, पीतन, मर्कटाम्र, कपीतन, (पीतनक, कपिचूत, अम्लवाटक, वर्षपाकी, कपिचूड, तनुक्षीरि, कपिप्रिय, मधुराम्लक, अम्रवाटिक, भृंगीफल, रसाढ्य, तनुक्षीर, अंबरातक, कपिचूड, अंबरीष, आम्रात, अध्वगभोग्य, मर्कटाम्र और तुंगी) ये अंबाडेके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-अम्बाडा। बं०-आमाडा। म०-अम्बाडा। गु०-अंबेडा। क०-आंबोड़ेकापि। तै०-आमाटं। इं०-स्पोंडिआस मिनट Spondias Minute लै०=स्पोन्डिआस् मेंगिफरा Spondias Mingifera

आम्बाडा-खट्टा, वातनाशक, भारी गरम, रुचिकारी और दस्तावर है। पका अम्बाडा-कसैला, स्वादिष्ट, रसमें तथा पाकमें शीतल, तृप्तिकारक है, कफकारी स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, ग्राही, पुष्टिकारक, भारी, बलकारक, पित्त, वात, क्षत, दाह, क्षय तथा रुधिरविकारनाशक है॥ १९॥ २०॥

विवरण।

आम्रातक अर्थात् अम्बाडेके वृक्ष प्रायः पर्वत और वनोंमें बहुत होते हैं पत्ते जिंगनीके पत्तोंके समान एक शाखामें बराबर दोनों ओर होते हैं, इसपर आमके तुल्य मौर आता है, फल कन्दूरीके समान छोटे होते हैं, उनको अंबाडा कहते हैं। इनका अचार डालते हैं, ये स्वादमें खट्टे होते हैं॥

अथ राजाम्रः (कलमीआम)।

राजाम्रष्टंक आम्रातः कामाह्वो राजपुत्रकः। राजाम्रं तुवरं स्वादु विशदं शीतलं गुरु। ग्राही रूक्षं विबन्धाध्मवातकृत्कफपित्तनुत्॥ २१॥

राजाम्र, टङ्क, आम्रात, कामाह्व, राजपुत्रक, (राजफल; स्मराम्र, कोकिलोत्सव, मधुर, कामेष्ट और नृपवल्लभ) ये राजाम्र (कलमी आम) के संस्कृत नाम हैं॥

हिंदी-कलमी आम, मालदह आम। गु०=हाफुस आंबो॥

राजाम्र--कसैला, स्वादिष्ट, स्तच्छ, शीतल, भारी, ग्राही और रूखा मलबंध, अफरा तथा वातको करनेवाला है और कफ तथा पित्त नष्ट करनेवाला है॥ २१॥

अथ कोशाम्रः (कोशम्भआम)।

कोशाम्र उक्तःक्षुद्राम्रः कृमिवृक्षः सुकोशकः। कोशाम्रः कुष्ठशोथास्रपित्तव्रणकफापहः॥ २२॥ तत्फलं ग्राहि वातघ्नमम्लोष्णं पित्तलम्। पक्वस्तु दीपनं रुच्यं लघूष्णं कफवातनुत्॥ २३॥

कोशाम्र, क्षुद्राम्र, कृमिवृक्ष, सुकोशक, (घनस्कन्ध, वनाम्र, जंतुपादप, रक्ताम्र, लाक्षावृक्ष और सुरक्तक) ये कोशम्भके संस्कृत नाम हैं॥

हिंदी-कोशंभ, छोटा आम। बं-केओडा, जलपाइ। क०-जूरिमाचु। म०-कोशिंब। गु०-हलकी जातनों आंबो॥

कोशाम्र-कोढ, सूजन, रक्तपित्त, व्रण और कफ नाशक है। इसका फल-ग्राही, वातनाशक अम्ल, नरम, भारी और पित्तकारी है। इसका पका फल-अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारक, हलका, गरम और कफ तथा वायुको नष्ट करता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

विवरण।

कोशाम्र जंगली आमको कहते हैं, इसके वृक्ष भी आमके समान होते हैं और पत्ते फल छोटे २ देखनेमें आते हैं ॥

अथ पनसः (कटहर)।

पनसः कंटकिफलःपनसोऽतिबृहत्फलः। पनसं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानिलापहम् ॥ २४ ॥ तर्पणं बृंहणं स्वादु मांसलं श्लेष्मकं भृशम्। बल्यं शुक्रप्रदं हन्ति रक्तपित्तक्षतव्रणान् ॥ २५ ॥ आमं तदेव विष्टम्भि वातलं तुवरं गुरु। दाहकृन्मधुरं बल्यं कफमेदोविवर्द्धनम् ॥२६॥ पनसोद्भूतबीजाति वृष्याणि मधुराणि च। गुरूणि बद्धविट्कानि सृष्टमूत्राणि संवदेत् ॥२७॥ मज्जा पनसजो वृष्यो वातपित्तकफापहः। विशेषात्पनसो वर्ज्यो गुल्मिभिर्मन्दवह्निभिः ॥ २८ ॥

पनस, कण्टकिफल, पनस, अतिबृहत्फल, (अपुष्प, फलद, स्थूलकण्टफल, कण्टाकाल, आशय, मुरजफल, पनस, फलस, चम्पकालु, चम्पाकोष, चम्पालु, मृदंगफल, पानस, महासर्ज्ज, फलिन, फलवृक्षक, कण्टाफल, मूलफलद, अपुष्पफलद और पूतफल) ये कटहलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-कटहर, कटहल, कठैल। बं०-कांटाल। म०-फणस। गु०-फनस। क०-हलसिनहण्णु। तै०-पनसकायि। ता०-पलाकायि। लै०-आटोकार्पस इन्टेग्रिफोलिया Artocarpns Integrifolia

कटहलका पका फल-शीतल, स्निग्ध. पित्त तथा वातनाशक, तृप्तिदायक, पुष्टिकारक, स्वादिष्ट, मांसको बढानेवाला, अत्यन्त कफकारक, बलदायक, वीर्यवर्द्धक और रक्तपित्त, क्षत तथा व्रणविनाशक है। कटहरका कच्चा फल-ग्राही, वातकारक, कसैला, भारी, दाहकारक, मधुर, बलदायक, कफ तथा मेदको बढानेवाला है ॥ कटहलके बीज-वीर्यवर्द्धक, मधुर, भारी, ग्राही और मूत्रको बढानेवाले हैं ॥ कटहलकी मींग-वीर्यवर्द्धक, वात, पित्त तथा कफनाशक है ॥ विशेष करके गुल्मरोगी तथा मन्दाग्निवालोंको इसका खाना वर्जित है ॥ २४-२८ ॥

विवरण।

कटहरके वृक्ष बहुत बडे बडे होते हैं, प्रायः बागोंमें माली लोग बहुत लगाते हैं, पत्ते गोल गोल मेंडेकेसे होते हैं, फूल आते ही नहीं, कटहर बहुत बड़ा फल होता है और वह गूलरके समान लकडीको फोडकर निकलता है, फल हरे रंगका होता है, ऊपर नरम नरम कांटे होते हैं, कटहरपर हेमन्तऋतुके पश्चात् फल लगते हैं, वे फल गजभर लम्बे और बहुत मोटे होते हैं तौलमें बीस सेर तकके होते हैं ॥

अथ लकुचः (बडहल)।

लकुचः क्षुद्रपनसो लिकुचो डहुरित्यपि। आमं लकुचमुष्णञ्च गुरु विष्टम्भकृत्तथा ॥२९॥ मधुरश्च तथाऽम्लश्च दोषत्रितयरक्तकृत्। शुक्राग्निनाशनं वाऽपि नेत्रयोरहितं स्मृतम् ॥३०॥ सुपक्वं तत्तु मधुरमम्लं चानिलपित्तहृत्। कफवह्निकरं रुच्यं वृष्यं विष्टम्भकञ्च तत् ॥ ३१ ॥

लकुच, क्षुद्रपनस, लिकुच, डहु, (ऐरावत, अम्लक, निकुच, कषायी, दृढवल्कल, कार्श्य, शाल, शूर, स्थूलस्कन्ध और ग्रंथिमत्फल) ये बडहरके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी-बडहर। बं०-डेओ, मदार। म०-वठार फल। गु०-नानुफणस। लै०-आर्टोकार्पस लकुचा Artocorpus Lakoocha

बडहलका कच्चा फल-गरम, भारी, काविज, मधुर, खट्टा, तीनों दोष तथा रुधिरको करनेवाला है वीर्य तथा अग्निको नष्ट करनेवाला और नेत्रोंको अहितकारी है। बडहलका पका फल-मधुर, अम्ल, वात तथा पित्तनाशक है, कफ, जठराग्निको बढानेवाला, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक और विष्टम्भकारक है ॥२९-३१॥

विवरण।

बडहलके वृक्ष बहुत ऊँचे ऊँचे और झाडेदार होते हैं, प्रायः बागोंमें बहुत देखनेमें आते हैं, पत्ते पाखरके समान, फल गांठदार गोल गोल कैथके बराबर होते हैं, कच्ची अवस्थामें हरे हरे होते हैं, उनको पेडपरसे तोडकर पालमें रखकर पका लेते हैं, उसके भीतर दसवीस सफेद रंगके बीज निकलते हैं, यह भी कटहरहीका भेद है, इसके फलको लकुच कहते हैं, ये पीले रंगके होते हैं॥

अथ कदली (केला)।

कदली वारणा मोचाऽम्बुसारांशुमतीफला। मोचाफलं स्वादु शीतं विष्टम्भि कफनुद् गुरु ॥३२॥ स्निग्धं पित्तास्रतृड्दाहक्षतक्षयसमीरजित्। पक्वं स्वादु हिमं पाके स्वादु वृष्यञ्च बृंहणम्। क्षुत्तृष्णानेत्रगदहन्मेहघ्नं रुचिमांसकृत् ॥ ३३ ॥ माणिक्यमर्त्यामृतचम्पकाद्या भेदाः कदल्या बहवोऽपि सन्ति। उक्ता गुणास्तेष्वधिका भवन्ति निर्दोषता स्याल्लघुता च तेषाम् ॥ ३४ ॥

कदली, वारणा, मोचा, अम्बुसारा, अंशुमती, फला, (सुफला, वारणवल्लभा, सुकुमारा, चर्मण्वती, सत्पत्री, नगरौषधी, वारणबुसा, अशुमत्फला, काष्ठीला, कदलबारबुसा, बारणबुषा, सकृत्फला, गुच्छफला, हस्तिविषाणी, गुच्छदंतिका, निःसारा, राजेष्टा, बालकप्रिया, ऊरुस्तम्भा, भानुफला, वनलक्ष्मी, कदलक, मोचक, रोचक, लोचक वारबुषा, आयतच्छदा और तंतुविग्रह) ये केलेके संस्कृत नाम हैं॥

हिंदी-केला, कदली। बं०-कौला। म०-केळ गु०-केळुं। क०-कदली। तै०-अरटिफला। ता०-वाळे। फा०-मावज, मोज। अ०-तना। इं०-प्लेंटेन Plantain लै०-मुसासेपियेन्टम् Musapientum

केलेका कच्चा फल-मीठा, शीतल, ग्राही और भारी, स्निग्ध, है। कफ, पित्त, रक्तविकार, दाह, क्षत क्षय तथा वातको नष्ट करता है, पका केला-स्वादिष्ट शीतल, पाकमें मधुर, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, रुचिको करनेवाला, मांसको बढानेवाला और क्षुधा, तृषा, नेत्ररोग तथा प्रमेहको नष्ट करता है॥

माणिक्यकदली, मर्त्यकदली, अमृतकदली और चम्पककदली इत्यादिक केलेकी अनेक जाति हैं। ये सब प्रकारके केले उपरोक्त गुणवाले हैं, तथा निर्दोषता और हलकापन ये गुण अधिक हैं॥ ३२-३४॥

विवरण।

केला सम्पूर्ण भारतवर्षमें और उत्तरखण्डके वन और पहाडोंमें अधिकतासे होता है, केलेकी अनेक जाति हैं, जैसे पहाडीकेला, चम्पककेला, जंगलीकेला, बडाकेला, काठकेला इत्यादि-परन्तु गुणमें सब समान हैं, केलेका बहुत ऊँचा वृक्ष होता है, पत्ते दो चार गजतक लंबे और आधे २ अज चौडे होते हैं, ये वृक्ष खम्भके समान होते हैं और पत्तोंमें पत्ते निकलते चले जाते हैं, सिवाय पत्तोंके कोई शाखा इसमें नहीं होती, केवल पत्तोंहीसे वेष्टित होता है, उसमें वक्कलके भीतर बक्कल ही बक्कल निकलता है, कुछ सार नहीं होता, उसके बीचमें एक डण्डा निकलता है, उस डण्डेपर एक हजार फली आती हैं, बीचमें सबसे ऊपर कमलकलीसे भी बडा लालरंगका एक फूल नोकदार बुरजीके तुल्य आता है, फलियाँ कच्ची अवस्थामें हरी होती हैं, उनको तोडकर रखनेसे वे पीले रंगकी होजाती हैं, पहाडमें मुनियोंके भोजनके लिये यह एक अत्यन्त उत्तम पदार्थ है॥

अथ चिर्भिटम् (कचरिया फूट)।

चिर्भिटं धेनुदुग्धं च तथा गोरक्षकर्कटी। चिर्भिटं मधुरं रूक्षं गुरु पित्तकफापहम्। अनुष्णं ग्राहि विष्टम्भि पक्कमुष्णञ्च पित्तलम्॥ ३५॥

चिर्भिट, धेनुदुग्ध, गोरक्षकर्कटी, (सुचित्रा, चित्रफला, क्षेत्रचिर्भिटा, पांडुफला, पथ्या, रोचनफला, चिर्भिटिका और कर्कचिर्भिटिका) ये चिर्भिटके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-कचरिया, । बं०-काकुड, गोमुक। म०-चिबूड, शेंदाड। गु०-चिभडूं। तै०-बुरडरंगपंडु, फा०-खयार। इं०-पुंबिसेंटक्युकँबर Pupescentcucumber लैं०-क्यूक्युमिसप्युबीसेन्स Cucumis Pubescus ता०-वेल्लेरि॥

कचरिया-मधुर, रूक्ष, भारी पित्त कफनाशक गरम नहीं ग्राही और कब्जकारक है। पक्की कचरिया गरम और पित्तकारक है॥ ३५॥

विवरण।

कचरियाकी बेल चलतीहै, यह बेल खेत और बागोंमें बोई जाती है फूल चित्रित कण्डूके समान और फल पीले पीले होते हैं। उन फलोंमें खर्बूजेके सदृश। बीज निकलते हैं॥

अथ नारिकेलः (नारियल)।

नारिकेलो दृढफलो लाङ्गली कूर्चशीर्षकः। तुङ्गःस्कन्धफलश्चैव तृणराजः सदाफलः॥३६॥ नारिकेलफलं शीतं दुर्जरं वस्तिशोधनम्। विष्टम्भि बृंहणं बल्यं वातपित्तास्रदाहनुत्॥३७॥ विशेषतःकोमलनारिकेलं निहन्ति पित्तज्वरपित्तदोषान्। तदेव जीर्णं गुरु पित्तकारि विदाहि विष्टम्भि मतं भिषग्भिः॥३८॥ तस्याम्भः शीतलं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु। पितासापित्तजित्स्वादु वस्ति शुद्धिकरं परम्॥ ३९॥ नारिकेलस्य तालस्य खर्जूरस्य शिरांसि तु। कषायस्निग्धमधुरबृंहणानि गुरूणि च॥ ४०॥

नारिकेल, दृढफल, लांगली, कूर्चशीर्षक, तुंग, स्कंधफल, तृणराज, सदाफल (नारिकेली नारिकारी, नारिकेरि, नारिकेली, सदापुष्प, शिरःफल, मृदुफल, पुटोदक, नारिकेर, रसफल, सुतुंग, कूर्चशेखर, दृढनीर,नीलतरु, मंगल्य, उच्चतरु स्कन्धतरु, दाक्षिणात्य दुरारुह, त्र्यंबकफल, शिराफल, करकाम्भा, पयोधर, झुल्कुण, कौशिकफल, फलमुण्ड, जटाफल, मुण्डफल, विश्वामित्रप्रिय, नारकेर, सुभंग, फलकेशर, वरफल, महाफल, श्रीफल, सदाफल, तोयगर्भ और त्र्यक्षफल) ये नारियलके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-नारियल, खोपरा। बं०-नारिकेल, नारकोल। म०-नारळी,नारळ, । गु०-नाळीएर। तै०-टेंकाया, नारिकदम। ता०-तेंगाई। फा०-जोज,हिन्दीनारीयल। अ०-नारजिल्। इं०-कोकोनटपाम् Coconut Palm लैं०-कोकोसन्यूसिफेरा Cocosnucifera.

नारियलका फल, शीतल, दुर्जर, मूत्राशयशोधक, (गोला) ग्राही पुष्टिकारक, बलदायक, वात, पित्त, रक्तविकार तथा दाहनाशक है॥नारियलका कोमल फल विशेष करके पित्तज्वर तथा पित्तके दोषोंको नष्ट करता है॥नारियल पुराना-भारी, पित्तकारक, विदाही तथा विष्टम्भकारक वैद्योंने कहा है॥ नारियलका पानी-शीतल, हृदयको प्रिय, अग्निका दीपन, करनेवाला, वीर्यवर्द्धक, हलका, तृषा पित्तको नष्ट करनेवाला, मधुर और मूत्राशयको शुद्ध करता है॥ नारियल, ताड और खजूर इनकी शिरा (रेसा) कसैली स्निग्ध, मधुर, पुष्टिकारक और भारी है॥

विवरण।

नारियलका वृक्ष बहुत बडा होता है आकार खजूर और ताडके समान होता है। यह वृक्ष पूर्वकी और कलकत्ते जगन्नाथमें और बम्बईमें

बहुत हैं, । विशेष करके नदी अथवा समुद्रके निकट अधिक उत्पन्न होते हैं । इसमें शाखा नहीं होती । इसके ऊपरके भागमें खजूरकेसे पत्ते होते हैं । उन्हीं पत्तोंके बीचमें नारियल लगते हैं । इस नारियलको फोडकर निचोडनेसे जो रस निकलता है, उसको नारियलका दूध या पानी कहते हैं । जब वे नारियल सूख जाते हैं तो उनके भीतरके भागको गोला अथवा खोपटा कहते हैं ये फल मंगलादि कार्योंमें बहुत लिये जाते हैं ॥

अथ कालिन्दम् (तरबूज) ॥

कालिन्दं कृष्णबीजं स्यात्कलिंगश्च सुवर्तुलम् । कालिन्दं ग्राहि दृक्पित्तशुक्रहृच्छीतलं गुरु । पक्वं तु सोष्णं सक्षारं पित्तलं कफवातजित् ॥ ४१ ॥

कालिन्द, कृष्णबीज, कालिंग, सुवर्त्तुल, (मांसफल, चित्रफल, चित्रवल्लिका, चित्र, मधुरफल, वृत्तफल, घृणाफल, मांसल, अल्पप्रमाणक, सुखाश, राजतिनिष, लतापनस, नाटाम्र, म्रेट, शीर्णवृन्त, बृहद्‌द्रोल, मुखवास, सेट, गोडुम्ब, रक्तबीज, चेलान और मूत्रक) ये तरबूजके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-तरबूज । बं०-तरमुज । म०-कलिंगड । गु०-तरबूज क०-कौडें । तै०-तरबूज, पुच्चकाया । फा०-हिन्दवाना । अ०-बत्तिख हिंदी । इं०-वाटरमेलन Water Mclon लै०-साइट्रूलस वलगेरीस Citrullus Vulgaris.

तरबूज-ग्राही, शीतल और भारी है । दृष्टिकी शक्ति पित्त तथा वीर्यको हरनेवाला है॥

पका तरबूज-गरम, खारा, पित्तकारक और कफ तथा वातविनाशक है ॥ ४१ ॥

विवरण ।

तरबूज रेतीली भूमिमें नदीके निकट बोये जाते हैं । इनकी बेल चलती है । पत्ते गोल, कँटीले और कँगूरेदार होते हैं । फूल हरे काले विचित्र और सफेदरंगके होते हैं । कच्चे फलका गूदा सफेद पकनेपर गूदा लाल और बीजभी लाल होते हैं । चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ इन तीनों महीनोंमें असंख्यात तरबूज आते हैं । दूसरे खरदे तरबूज होते हैं । उनका सब आकार तो इसी प्रकारका होता है परन्तु गूदा पीला और बीज काले रंगके होते हैं । इनकी बहार कार्तिक अगहनमें होती है । इनका रंग हरा और सफेद चित्रित होता है । और असली तरबूज चैत्र वैशाखवाले कोई काले कोई सफेद और कोई कोई चीतल भी होते हैं ॥

अथ खर्बूजम् * (खरबूजा)

दशाङ्गुलं तु खर्बूजं कथ्यते तद्गुणा अथ । खर्बूजं मूत्रलं बल्यं कोष्ठशुद्धिकरं गुरु ॥४२॥ स्निग्धं स्वादुतरं शीतं वृष्यं पित्तानिलापहम् । तेषु यच्चाम्लमधुरं सक्षारञ्च रसाद्भवेत् । रक्तपित्तकरं तत्तु मूत्रकृच्छ्रकरं परम् ॥ ४३ ॥

दशांगुल, खर्बूज, (फलराज, अमृताह्व, षड्भुजा, मधुफला, षड्रेखा, वृत्तकर्कटी, तिक्ता तिक्तफला, मधुपाका, वृत्तेर्वारु और षण्मुखा) ये खरबूजके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-खरबूजा, । बं०-खरमुज,खरबुजा । म०-खर्बुज । गु०-खरबुज. तालीया शकरटेटी । क०-षड्ज सौते । तै०-खरबूँज । फा०-खरपुजा । अ०-बित्तिख । इं०-मेलन Melon लै०-कुक्युमिसमेलन Cucumismel n. ता०-मुलाम्पळम् ॥

खरबूजा-मूत्रकारक, बलदायक, कोठेको शुद्ध करनेवाला, माटी, स्निग्ध, अत्यन्त स्वादिष्ट, शीतल, और वीर्यवर्द्धक है । पित्त तथा वातनाशक है । जो खरबूजा खट्टा, मीठा और खारे रसका होता हैं, वह रक्तपित्त तथा अत्यन्त मूत्रकृच्छ्रको करता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

विवरण ।

खरबूजेकी वेल-नदीके निकट रेतीमें उत्पन्न होती है । पत्ते गोल गोल और फूल पीले रंगके

* बलकारक, बृंहण, पुष्टिद एवं वृष्य है ॥

होते हैं। चैत और बैशाखमें फल लगते हैं। फल देखनेमें अत्यन्त शोभायमान और दश रेखायुक्त होते हैं। रंग पीला और रेखाओंका रंग नीला होता है। उसके भीतर गूदे समेत बीज निकलते हैं। उस गूदेको धोकर बीज निकाल लेते हैं। बीजोंको छीलकर मींग निकाल लेते हैं, और विविध योगोंमें उपयोग करते हैं।

अथ त्रपुसम् (खीरा, वालमसीरा)।

त्रपुसं कण्टकिफलं सुधावासः सुशीतलम्। त्रपुसं लघु नीलश्च नवं तृट्क्लमदाहजित्॥ ४४ ॥ स्वादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरं परम्। तत्पक्वमम्लमुष्णं स्यात्पित्तलं कफवातनुत्। तद्बीजं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्तास्त्रकृच्छ्रजित्॥ ४५ ॥

त्रपुस, कंटकिफल, सुधावास, सुशीतल, (पीतपुष्पा. काण्डालु, कण्डालु, त्रपुष; कर्कटी फहुफला, कंटकिलता, कोषफला, तुन्दिलफला और सुधावासा) ये खीरेके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-खीरा। बं०-शँशा। म०-तार्से खिरा,। गु०-ताँस्लि। क०-कसेंयकायि। तै०-दोजकइआ। ता०=महेबेरिकोङ्कणे। फा०-शियार खुर्द। इं-ककंबर Cucumber. लै०-कुक्युमिसू सेलिविसू Cucumis. Salivus.

छोटा, नीला और नवीन खीरा मधुर, शीतल, तृषा, ग्लानि, और दाहको जीतनेवाला है। पित्त तथा अत्यन्त रक्तपित्त रोगनाशक है॥ पका खीरा-खट्टा, गरम, पित्तकारक कफ तथा वातनाशक है। खीरेका बीज-मूत्रकारक, शीतल, रूखा, पित्त, रक्तविकार और मूत्रकृच्छ्रका नाशक है॥ ४४ ॥ ४५ ॥

विवरण।

खीरे मालीलोग खेतोंमें बहुत बोते हैं और इसकी बेल चलती है, इसकी दो जाति होती हैं। एक तो खेतोंमें बोये जाते हैं, भूमिहीमें बेल फैलकर फल फूल आते हैं. इनके फूल पीले फल एक एक वालिस्त लम्बे होते हैं। दूसरे बालमखीरे कहलाते हैं, उनकी भी बेल चलती है। खीरे लम्बे २ होते हैं और रंगके पीले। बीच बीचमें कांटोंकेसे चिह्न होते हैं और सब आकार ऊपर लिखे हुएके समान होते हैं परन्तु पकजानेपर दोनों जातिके खीरोंमें बीज निकलते हैं। बालम खीरे (बालमकाकडी) माळवेमें बहुत होते हैं॥

अथ पूगीफलम् (छोटी सुपारी)।

पूगी पूगश्च घोरण्टो गुवाकः क्रमुकोऽस्य तु। फलं पूगीफलं प्रोक्तमुद्वेगं च तदीरितम्॥४६॥ पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफपित्तजित्। मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवरस्यनाशनम्॥ ४७ ॥ आर्द्रं तद्गुर्वभिष्यन्दि वह्निदृष्टिहरं स्मृतम्। स्विन्नं दोषत्रयच्छेदि दृढमध्यं तदुत्तमम्॥४८॥

पूगी, पूग, घोरंट, गुवाक, क्रमुक,(घोण्टा) गूवाक, क्रमु, क्रमुकी, पूगवृक्ष, दीर्घपादप, दृढवल्कल, वल्कतरु, चिक्कण, अकोट, तन्तुसार, सुरंजन, गोपदल, राजताल, छटाफल और करमट्ट) ये सुपारीके संस्कृत नाम हैं॥ इसका फल पूगीफल और उद्वेग नामसे कहा है।

हिन्दी-सुपारी। बं०-शुपारी। म०-सुपारी। गु०=सोपारी। क०-अडिके-मइ। तै०-पोकाकाया। फा०-पोपिल। अ०-फोफिल। इं०-बिटलनटपाम् Betelnut Plam. लै०-एरिका केटेचु Arecacatechu. ता०-पाक्कुमरम्।

सुपारी-भारी, शीलल, रूक्ष, कसैली, मोहजनक, अग्निप्रदीपक, रुचिकारी, कफ और पित्तको जीतनेवाली है। तथा मुखकी विरसता दूर करती है। कच्ची-सुपारी भारी और अभिष्यन्दि है। जठराग्नि तथा नेत्रोंकी दृष्टिको हरती है। चिकनी-त्रिदोषनाशक है जिस सुपारीका मध्यभाग दृढ हो, वह उत्तम है॥ ४६-४८॥

विवरण।

सुपारीके वृक्ष ताड और नारियलकी जातिके तथा सब बागोंमें बहुत होते हैं। इसका वृक्ष खम्भके समान सीधा चला जाता है। इसके पत्ते बडे बडे नारियल जैसे होते हैं। इसके ऊपर बडे बेरके शिरके सदृश कुछ लम्बाई लिये गोल गोल फल आते हैं, उनके छीलनेसे भीतरसे सुपारी निकलती है, सुपारीकी अनेक जाति हैं-जिहाजी, श्रीवर्धनी, मानिकचन्दी, चिकनी इत्यादि।

अथ तालः (ताड)।

तालस्तु लेखपत्रः स्यातृणराजो महोन्नतः। पक्वं तालफलं पित्तरक्तश्लेष्मविवर्द्धनम् ॥४९॥ दुर्जरं बहुमूत्रं च तन्द्राऽभिष्यन्दशुक्रदम्। तालमज्जा तु तरुणः किञ्चिन्मदकरो लघुः। श्लेष्मलो वातपित्तघ्नः सस्नेहो मधुरः सरः ॥ ५० ॥

ताल, लेखपत्र, तृणराज, महोन्नत, (तल, भूमिपिशाच, दीर्घतरु, द्रुमश्रेष्ठ, द्रुमेश्वर, तालद्रुम, पत्री, दीर्घस्कन्ध, ध्वजद्रुम, मधुरस, मदाढ्य. दीर्घपादप, चिरायु, तरुराज, दीर्घपत्र, गुच्छापत्र, आसवद्रु, करपत्रवान्, दीर्घद्रु, तन्तुनिर्यास, तन्तुगर्भ और शतपर्वा) ये ताडके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी=ताड। बं०-ताल। म०-गु०-ताड। ता०-पनम। फा०-ताल। अ०-तार। इं०-पालमाइरापाम Palmyra Palm लै०-बेरसस, फ्लबेलिफोर्मिस Baralsus Flabelliformis.

ताडका पक्का फल-पित्त, रक्त तथा कफवर्द्धक है, सहजमें नहीं पचनेवाला, बार २ मूत्र लानेवाला, अभिष्यन्दि, तन्द्रा और वीर्यवर्द्धक है। नवीन ताडकी मींग-किंचित् मदकारी, हलकी, कफकारक, वात पित्तनाश स्निग्ध, मधुर और दस्तावर है ॥४९॥५०॥

विवरण।

ताडके वृक्ष बडे २ ऊँचे होते हैं, इनकी दो जाति हैं एक नर और नारी, उनकी यह परीक्षा है कि, नरमें फल नहीं आते और नारी में फल आते हैं। नरमें डाली नहीं होती और खम्भके समान एकसा और बहुत ऊँचा होता है नारी जातिके ताडमें बडे २ नारियलके सदृश फल लगते हैं। उस वृक्षको ऊपरसे गोद देते हैं, उसमें जो रस निकलता है, उसको किसी पात्रमें ले लेते हैं, उस रसको ताडी कहते हैं ताडके पत्ते लम्बे चौडे चार चार फुटके होते हैं, इनके पंखे बडे २ बनते हैं। उनके फलोंको ताडवे कहते हैं॥

अथ तालरसः (ताडी)

तालजं तरुणं तोयमतीव मदकृन्मतम्। अम्लीभूतं तदा तु स्यात्पित्तकृद्वातदोषहृत् ॥ ५१ ॥

ताडीका नवीन रस-अत्यन्त नशालानेवाला है। यदि यह खट्टा होगया हो तो पित्तकारक और वातनाशक है॥ ५१॥

अथ बालबिल्वगुणाः।

बालं बिल्वफलं बिल्वकर्कटी बिल्वपेशिका। ग्राहिणी कफवातामशूलघ्नी बिल्वपेशिका ॥ ५२ ॥ अन्यच्च-बालं बिल्वफलं ग्राहि दीपनं पाचनं कटु। कषायोष्णं लघु स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम् ॥ ५३ ॥ पक्वं गुरु त्रिदोषं स्याद्दुर्जरं पूतिमारुतम्। विदाहि विष्टम्भकरं मधुरं वह्निमान्द्यकृत् ॥ ५४ ॥ फलेषु परिपक्वं यद् गुणवत्तदुदाहृतम्। बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणाधिकम्। द्राक्षाबिल्वशिवादीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम् ॥ ५५ ॥

कच्चा बेल--ग्राही है- कफ, वात, आम तथा शूलनाशक है। अन्य ग्रंथोंमें भी कहा है कि--कच्चा बेल--ग्राही, अग्निदीपक, पाचक, चरपरा, कसैला, गरम हलका, स्निग्ध, चिक्कन कडवा और वात तथा कफनाशक है। पका बेलफल--भारी, त्रिदोषकारक, दुर्जर, दुर्ग-

न्धित, विष्टम्भी और दाह करनेवाला है। ग्राही, मधुर और अग्निको मंद करनेवाला है। बेलके अतिरिक्त शेष सब फल पके हुए गुणदायक हैं परन्तु बेल तो कच्चाही अधिक गुणवाला है ॥ दाख, बेल, आंवला और हरड आदि फल सूखे हुए हों तो अधिक गुणवाले हैं ॥ ५२ ॥ ५५ ॥

बेलका विवरण गुडूच्यादिवर्ग १९८ पृष्ठमें लिख दिया है ॥

अथ कपित्थः (कैथ)।

कपित्थस्तु दधित्थः स्यात्तथा पुष्पफलः स्मृतः । कपिप्रियो दधिफलस्तथा दन्तशठोऽपि च ॥५६॥ कपित्थमामं संग्राहि कषायं लघु लेखनम् । पक्कं गुरु तृषाहिक्काशमनं वातपित्तजित् । स्यादल्पं तुवरं कण्ठशोधनं ग्राहि दुर्जरम् ॥ ५७ ॥

कपित्थ दधित्थ, पुष्पफल, कपिप्रिय, दधिफल, दन्तशठ, (मन्मथ, कवित्थ, देवपादाढ्य, माल्लूर, मंगल्य, नील, मल्लिका, ग्राहिफल, चिरपाकी, ग्रंथिफल, कुचफल, कपीष्ट, गन्धफल, दन्तफल, करिवल्लभ, काठिन्यफल, करंजफलक और अक्षसस्य) ये कैथके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-कैथ । बं०-कयेथ गाछ, कत्वेल । म० कवंठ । गु०-कोठ क०-बेललु । तै०-एलांग काया । इं०-वुडएपल Wood Apple एलिफंट एपल Elephant Apple. लै०-फेरोनिया एलिफेंटिनम् Eeronia Elephantinum. ता०-विळांकाई ॥

कैथका कच्चा फल-ग्राही, कसैला, हलका और लेखन है। कैथका पका फल-भारी, तृषा हिचकी, वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाला है बहुत ही छोटा फल-कसैला, कण्ठको शुद्ध करनेवाला, ग्राही तथा दुर्जर है ॥५६॥५७॥

विवरण ।

कैथके वृक्ष सम्पूर्ण हिन्दुस्थानमें पाये जाते हैं, लंबाईमें अत्यन्त ऊँचे और झाडेदार होते हैं। पत्ते छोटे और चिकने मेंहदीके पत्तोंके समान होतें हैं, फूल छोटे २ सफेद रंगके होते हैं, वर्षाऋतुमें इसकी कलियां निकलती हैं, फल बेलके समान गोल गोल आते हैं। उन फलोंमें एक बडा आश्चर्यजनक गुण है कि, उस फलको कोई हाथी खाजाय तो उसके पेटमें उसका सार भाग अर्थात् गूदा निकल जायगा और गूदे रहित और देखनेमें जेसाका तैसा कहीं से टूटा फूटा नहीं साबित, मलके साथ निकल जाता है ॥

अथ नारङ्गः ।

नारङ्गो नागरङ्गः स्यात्त्वक्सुगन्धो मुखप्रियः । नारंगो मधुराम्लः स्यादीपनो वातनाशनः । अपरं त्वम्लमत्युष्णं तुर्जरं वातहृत् सरम् ॥ ५८ ॥

नारंग, नागरंग. त्वक्सुगन्ध, मुखप्रिय, (नार्यग, नागर, ऐरावत, नागरुक, चक्राधिवासी, किर्मिर, किर्भिरत्वक्, सुरंग, त्वगन्ध, इरावत, चक्रवास, योगरंग, गंधाढ्य, गंधपत्र, और वरिष्ठ) ये नारंगीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-नारंगी । बं०-नारंगालेबु। म०-नारिंग गु०-नारिंगी । क०-माधवला । तै०-दयाकाया ता०-किच्चिलि । फा०-अ०-नारंज । इं०-आरेंज Orange. लै०-साइट्रस ओरेंटियम् Citrus Aurrantinum.

नारंगी-मधुर, खट्टी, अग्निको दीपन करनेवाली और वातनाशक है । दूसरी जातिकी नारंगी खट्टी बहुत गरम, दुर्जर, वातनाशक और दस्तावर है ॥ ५८ ॥

विवरण ।

नारंगीके वृक्ष मध्यम जातिके बागोंमें बहुत होते हैं, पत्ते नीम्बूके समान होते हैं फूल अत्यन्त सुगंधित और सफेद रंगके आते हैं फल गोल गोल होते हैं, कच्ची अवस्थामें हरे और पकनेपर लाल सिन्दूरिया रंगके हो जाते हैं, वागेश्वरकी नारंगी सर्वत्र स्थानोंमें प्रसिद्ध है ॥

अथ तिन्दुकः (तेन्दु आवनूस)।

तिन्दुकः स्फूर्जकः कालस्कन्धश्चासितकारकः । स्यादामं तिन्दुकं ग्राहि वातलं

शीतलं लघु । पक्वं पित्तप्रमेहास्रश्लेष्मघ्नं मधुरं गुरु ॥ ५९ ॥

तिन्दुक, स्फूर्जक, कालस्कन्ध, असितकारक, (अनिलसार, अतिमुक्तक, स्फूर्जन, सृष्ट स्यन्दन, रावणरव, कृष्णत्वक्, कृष्णसार, सुसार, विरूपक, शितिसारक, स्फूर्तिक, तिन्दु, केन्दु, तिन्दुल, तिन्दुकि, तिन्दुको, नीलसार, स्वर्य्यक, रावण और स्यन्दनाह्वय) ये तेन्दुके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-तेंदू । बं०-गाव, तेंदू । म०--टेंभुर्णी आयन । गु०--टिम्बरवो । क०--टुंबरु । तै०--तमिक । ता०--तुम्बिक । फा०--अवनुसुझाड । इं०--एबनी Ebony लै०--डायोस्पाईरोस् एम्ब्रिओप्टेरिस Diospyros Embryoptris

तेंदूका कच्चा फल-ग्राही, वातकारक, शीतल और हलका है, तेंदूका पका फल--मधुर भारी, पित्त प्रमेह, रक्तविकार तथा कफको नष्ट करता है ॥ ५९ ॥

विवरण ।

तेंदूके वृक्ष अत्यन्त ऊँचे ऊँचे होते हैं, पत्ते गोल गोल नोकदार शीशमके समान होते हैं, छाल काली काली होती है, उसमें खार होता है, इसकी लकडी स्थानादिकोंके बनानेके काममें आती है, इसके भीतरका सार काला और वजनदार होता है, हिन्दुस्तानी लोग इसको आवनूस कहते हैं, तेंदूके फल गोल और शोभायमान निम्बूके समान हरे हरे होते हैं, पकनेपर पीले पड जाते हैं ॥

अथ कुपीलुः (कुचला मकरतेंदुआ) ।

तिन्दुको यस्तु कथितो जलदो दीर्घपत्रकः । कुपीलुःकुलकः कालस्तिन्दुक कालपीलुकः ॥६०॥ काकेन्दुर्विषतिन्दुश्च तथा मर्कटतिन्दुकः ॥ ६१ ॥ कुपीलुः शीतलस्तिक्तो वातलो मदकृल्लघुः । पादव्यथाहरो ग्राही कफपित्तास्रनाशनः ॥ ६२ ॥

तिन्दुक, जलद, दीर्घपत्रक, कुपीलु, कुलक, कालतिन्दुक, कालपीलुक, काकेन्दु, विषतिन्दु मर्कट, तिंदुक, (कारस्कर, किम्पाक, विषद्रुम, गरद्रुम, रम्यफल, कुषाक, कालकूटक, कच्चीर, वर्तुल और चिपिट) ये कुचलेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कुचला । बं०-कुंचिले । म०-काजरा कारस्कर । गु०-झेरकोचलुं । क०-कांजिबार । तै०-मुष्टिगिंजा । ता०-एट्टि । फा०--इफराकी । अ०--कातिलुल्कल्क फजूलमाही । इं०--प्वाइजन नट् Poison Nut लै०--स्ट्रिक्नस नक्सवामिका Strychnos Nuxsvomica

कुचिला--शीतल, कडवा, वातकारक, मदकर्त्ता (नसा करनेवाला), हलका और पांवकी पीडाको दूर करनेवाला, ग्राही, कफ, पित्त तथा रुधिरविकार नाशक है ॥६०॥६२॥

विवरण ।

कुचलेके वृक्ष मध्यम आकारके होते हैं, प्रायः वनोंमें बहुत देखनेमें आते हैं, पत्ते पानके समान और फल नारंगी जैसे सुन्दर हैं, इसके बीजोंको कुचिला कहते हैं ॥

अथ राजजम्बूः (बड़ी जामुन) ।

फलेन्द्रा कथिता नन्दी राजजम्बूर्महाफला । तथा सुरभिपत्रा च महाजम्बूरपि स्मृता । राजजम्बूफलं स्वादु विष्टम्भि गुरु रोचनम् ॥ ६३ ॥

फलेन्द्रा, नन्दा, राजजंबू, महाफला, सुरभिपत्रा, महाजंबू, (स्वर्णमाता, शुकप्रिया, कोकिलेष्टा, महानीला, बृहत्फला, महापत्रा, फलेंद्र और नन्द) ये बड़ी जामुनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिं०-बडी जामुन, फरेंद्र । बं०-बडजाम । म०--रायजांमूल । गु०--जांबुन । क०--दोड्डनिरलु । तै०-पेद्दनेराडे । इं०-जांबुल ट्री Jambul Trec लै०-युजिनिया जाम्बोलेना Eugenia Jambola ता०-पेरिय नावल् ॥

विशेषता खाली पेटमें यदि यह अतिमात्रामें खाया जाता है तो अतीसारकारक होता है ।

बडी जामुन-स्वादिष्ट, विष्टम्भि, भारी और रुचिकारी है ॥ ६३ ॥

अथ जलजम्बुका (छोटी जामुन नदीजामुन)

क्षुद्रा जम्बूः सूक्ष्मपत्रा नादेयी जलजम्बुका । जम्बूः संग्राहिणी रूक्षा कफपित्तास्रदाहजित् ॥ ६४ ॥

क्षुद्रजम्बू, सूक्ष्मपत्रा, नादेयी, जलजंबूका, (दीर्घपत्रा और सूक्ष्मकृष्णफला) ये छोटी जामुनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-छोटी जामुन । बं०-क्षुद्रेजाम । गु०-क्षुद्रजंबु । ता०-कुलिनावल ॥

छोटी जामुन-ग्राही, रूक्ष, कफ, पित्त, रुधिरविकार तथा दाहनाशक है ॥ ६४ ॥

विवरण ।

जामुनके वृक्ष तीन चार प्रकारके होते हैं, एक नदीके निकट होते हैं, जिनके पत्ते कनेरके समान होते हैं, उनको नदीजामुन कहते हैं, दूसरी बडी जामुन होती है, उसके पत्ते पीपल केसे होते हैं, उसको जामुना कहते हैं । तीसरे साधारण जामुन होती है, उसके पत्ते आमकेसे होते हैं, फल मध्यम जातिका होता है । यह कच्ची अवस्थामें हरी हरी होती है और पकने पर उसका रंग बैंगनी हो जाता है, फूलके स्थानमें जामुनपर मौरही आता है ॥

अथ बदरी (बेर) ।

पुंसि स्त्रियाश्च कर्कन्धूर्बदरी कोलमित्यपि । फेनिलं कुवलं घोण्टा सौवीरं बदरं महत् । अजप्रिया कुहा कोली विषमोभयकण्टका ॥ ६५ ॥

तत्र बदरविशेषाणां लक्षणानि गुणाश्च ।

पच्यमानं सुमधुरं सौवीरं बदरं महत् । सौवीरं बदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम् ॥ ६६ ॥ बृंहणं पित्तदाहास्रक्षयतृष्णानिवारणम् । सौवीरं लघु सम्पक्कं मधुरं कोलमुच्यते ॥६७॥ कोलन्तु बदरं ग्राहि रुच्यमुष्णञ्च वातलम् । कफपित्तकरं चापि गुरु सारकमीरितम् ॥ ६८ ॥ कर्कन्धूः क्षुद्रबदरं कथितं पूर्वसूरिभिः । अम्लं स्यात्क्षुद्रबदरं कषायं मधुरं मनाक् ॥ ६९ ॥ स्निग्धं गुरु च तिक्तश्च वातपित्तापहं स्मृतम् । शुष्कं भेद्याग्निकृत्सर्वं लघु तृष्णाक्लमास्रजित् ॥ ७० ॥

कर्कन्धू (स्त्रीलिंग-पुलिंग), बदरी अजप्रिया, कुहा, कोली, विषमा और उभयकंटका ये छोटे बेरके संस्कृत नाम हैं । कोल, फेनिल, कुवल, घोंटा, सौवरि और बदर ये बडे बेरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बेर, छोटाबेर । बं०-कुलफल, बडकुलगाछ । म०-बोर, रायबोर । क०-येरनु । तै०-रेगुचेटटु । गु०-बोरडी । फा०-कुनार । अ०-सीदरनबक । इं०-जुजब लै०-जिजिफस् जुजुबा Zizyphus Jujuba ता०-इलन्देमरम ॥

पका हुआ और बहुत मीठा जो बड़ा बेर होता है, उसे सौवीर कहते हैं । बडा बेर सौवीर-शीतल, दस्तावर, भारी वीर्यवर्द्धक और पुष्टिकारक है । पित्त, दाह, रुधिरविकार, क्षय तथा तृषाको नष्ट करनेवाला है । जो पका हुआ और छोटा बेर हो वह कोल कहाता है । कोलबेर-ग्राही, रुचिकारक, गरम, वात, कफ, पित्तकारक, भारी और दस्तावर है । बहुत छोटे अर्थात् झडिय बेरको कर्कन्धु कहते हैं । कर्कन्धु बेर खट्टा, कसैला, किंचित् मीठा, स्निग्ध, भारी, कडवा, वात तथा पित्तनाशक है । सूखा हुआ बेर-दस्तावर अग्निवर्द्धक, हलका, तृषा, ग्लानि तथा रक्तविकार नाशक है ॥ ६५-७० ॥

विवरण ।

बेरके वृक्ष अनेक जातिके होते हैं और ये सब स्थानोंमें देखे जाते हैं । इसके वृक्ष कांटेदार मध्यम ऊंचाईके होते हैं । पत्ते छोटे छोटे और गोल कुछेक लंबाई लिये होते हैं । फूल छोटे छोटे सफेद रंगके होते हैं । फल अपनी२ जातिके आते हैं, छोटे, बडे, लम्बे, गोल,

पैबन्दी, कठा, पौंडा और रामपुरी इत्यादि। एक और झडबेरके नामसे कहलाते हैं। उनके क्षुप छोटे छोटे पृथ्वीपर फैले हुए होते हैं, उनका एक वन ही है। जिसका नाम श्रीबद्रिकाश्रम है और दिल्लीसे आगे बढकर जो देखा तो कोसोंतक बेरहीके वृक्ष देखनेमें आते हैं उन्हीं क्षुपोंको काट काटकर और उनके पत्ते झाड झाड कर बडे २ ऊँचे ढेर लगा देते हैं। उसको पाला कहते हैं। उसीसे गाय भैंसोंकी उदरपूरणा होती है। उन क्षुपोंमें छोटे छोटे बेर भी लगते हैं। प्रथम हरे होते हैं, मध्य अवस्थामें पीले और अन्तसमय लाल पककर सुकडेसे हो जाते हैं ॥

अथ प्राचीनामलकम्।

प्राचीनामलकं लोके पानीयामलकं स्मृतम्। प्राचीनामलकं दोषत्रयजिज्ज्वरघाति च ॥ ७१ ॥

प्राचीनामलक, पानीयामलक ये पानीआमलेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पानीआमला। बं०–पानिअंबरा। म०–पानआंवले। गु०–पाणिआंवला। इं०–फ्लाकुर्स्या काटाफ्राक्टा Flacourtta Cataphracta लै०–फ्लारो मोचिआई Flaro Moutchii ता०–अरिनेल्लि ॥

प्राचीन आमलेको लोकमें पानी आमलक कहते हैं ॥ पानी आमला तीनों दोष तथा ज्वर नाशक हैं ॥ ७१ ॥

विवरण।

पानीआमलेके वृक्ष जलाशयके समीप होते हैं। इसमें कांटे भी होते हैं। पत्ते लंबे और फल लाल लाल बेरके समान कठिया होते हैं ॥

अथ लवली (हरफारेवड़ी)।

सुगन्धमूला लवली पाण्डुः कोमलवल्कला। लवलीफलमश्मार्शःकफपित्तहरं गुरु। विशदं रोचनं रूक्षं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे ॥ ७२ ॥

सुगन्धमूला, लवली, पाण्डु और कोमलवल्कला ये लवलीफलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–लवलीफल, हरफारेवडी। बं०–नोयाड, नोयाल। म०–रायआंवला। गु०–हरफारेवडी। लै०–साईकाडिस्टिका Sicco-disticha

लवलीफल–भारी, विशद, रुचिकारक, रूक्ष, स्वादु, अम्ल और रसमें कसैला हैं पथरी, बवासीर, कफ तथा पित्तनाशक है ७२

विवरण।

हरफारेवडीके बहुत सुन्दर २ वृक्ष पुष्पोद्यानोंमें होते हैं। पत्ते कसौंदीके समान होते हैं, फल गूलरके सदृश शाखाओंमेंसे निकलते हैं॥

अथ करमर्दः (करौंदा, करौंदी)।

करमर्दः सुषेणः स्यात्कृष्णपाकफलस्तथा। तस्माल्लघुफला या तु सा ज्ञेया करमर्दिका ॥ ७३ ॥ करमर्दद्वयं त्वाममम्लं गुरु तृषाहरम्। उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्तकफप्रदम्। तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्तसमीरजित् ॥ ७४ ॥

करमर्द, सुषेण, कृष्णपाकफल, (वनेक्षुद्रा, कराम्ल, करमर्दक, अविग्न, करामर्द, कृष्णफल, पाककृष्णफल, कृष्णफलपाक, पाककृष्ण फलकृष्ण, वनालय, वनालक, कराम्बुक, कणचूक, बोल, वश, करमर्दी, कराम्लक, पाणिमर्द, कण्टकी, अविघ्न, सुपुष्प, दृढकण्टक, जातिपुष्प, क्षीरफल, डिण्डिम, गुच्छी, क्षीरी और बहुदल) ये करौंदेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–करौंदा, करौंदी, बं०–करमचा। म०–करवन्द। गु०–करमदा। क०–करिजिगे। तै०–बाका। इं०–जस्मिन्फ्लावर्ड केरिसा Jasmi nefloweredcarissa लै०–केरिसा कोरंदास Carissa Corndas

जिसमें छोटा थल आता है, उसको करौंदी कहते हैं। दोनों करौंदोंके कच्चे फल–खट्टे, भारी, तृषानाशक, गरम, रुचिकारी, रक्तपित्त तथा कफनाशक है ॥ पका करौंदा–मीठा, रुचिकारी, हलका और पित्त तथा वातविनाशक है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

विवरण।

करौंदेके क्षुप बागोंमें बहुत होते हैं, फूल सफेद और सुगन्धित जुहीके समान आते हैं, फलोंके गुच्छे बेरोंके समान लगते हैं, परन्तु वे दो जातिके होते हैं, एक सफेद नोकोंपर लाली लिये अत्यन्त मनोहर होते हैं, दूसरे कच्चे आधे २ लाल और पकनेपर काले काले हो जाते हैं॥

अथ प्रियालः (चिरौंजी)।

प्रियालस्तु खरस्कन्धश्चारो बहुलवल्कलः। राजादनस्तापसेष्टः सन्नकद्रुर्धनुष्पटः॥ ७५॥ चारः पित्तकफास्त्रघ्नस्तत्फलं मधुरं गुरु। स्निग्धं सरं मरुत्पित्तदाहज्वरतृषापहम्॥ ७६॥ प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः। हृद्योऽतिदुर्जरः स्निग्धो विष्टम्भी चामवर्द्धनः॥ ७७॥

प्रियाल, खरस्कन्ध, चार, बाहुलवल्कल, राजादन, तापसेष्ट, सन्नकदु, धनुष्पट, अखट्टीललन, चारक, महुवल्क, सन्नदु, तापसप्रिय, स्नेहबीज, उपवट, मोक्षवीर्य, दुसल्लक, राजातन, पियाल, हसन्नक और प्रियालक) ये चिरौंजीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-चिरौंजी। बं०-चिरौंजी-पियाला। म०-चारोळी। गु०-चारोली। क०-चारनीज। तै०-सारूपप्पु। ता०-काट्टुमांगोट्टै। फा०-तुकले खाजा। अ०-हबुस्समाना। लै०-बुछनानिया लेट्रिफोलिया Buchanio Latrfolia.

चिरौंजी-पित्त, कफ, तथा रक्तविकार नाशक है। चिरौंजीका फल-मधुर, भारी, स्निग्ध दस्तावर, वात, पित्त, दाह, ज्वर तथा तृषाको नष्ट करता है। चिरौंजीकी मींग-मधुर, वीर्यवर्द्धक, पित्त तथा वातनाशक, हृदयको प्रिय, अति दुर्जर, स्निग्ध, विष्टम्भी और आमवर्द्धक होती है॥ ७५-७७॥

विवरण।

चिरौंजीके वृक्ष कोंकण आदि देशोंमें अधिक होते हैं। पत्ते छोटे नोकदार खरदरे खरदरे बेरके समान नीलरंगके होते हैं, उसमें जो मींग निकलती है, उसीको चिरौंजी कहते हैं।

अथ राजादनः (खिरनी)

राजादनः फलाध्यक्षो राजन्या क्षीरिकाऽपि च। क्षीरिकायाः फलं वृष्यं बल्यं स्निग्धं हिमं गुरु। तृष्णामूर्च्छामदभ्रान्तिक्षयदोषत्रयास्त्रजित्॥ ७८॥

राजादन, फलाध्यक्ष, राजन्या, क्षीरिका, (राजफल, कपीष्ट, क्षीरवृक्ष, नृपद्रुम, निम्बबीज, मधुफल, माधवोद्भव, क्षीरी, गुच्छफल, भूपेष्ट राजवल्लभ, श्रीफल, दृढस्कन्ध और क्षीरशुक्ल) ये खिरनीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-खिन्नी, खिरनी। बं०-क्षीरणी, राजणी। म०-खिरणी। गु०-रायण। क०-रनैगे, मारिले। ता०-पालै। इं०-ओबटयुस लीव्ड माइमुसोप्स Obtuse Leaved Mimusops. लै०-माइमुसोप्स हेग्जन्ड्रा Mimusops Hexandra.

खिरणीका फल-वीर्यवर्द्धक, बलदायक स्निग्ध शीतल, भारी तृषा, मूर्छा, मद भ्रान्ति, क्षय, तीनों दोष तथा रक्तविकारनाशक है॥७८

विवरण।

खिरनीके वृक्ष बडे बडे ऊँचे होते हैं। पत्ते नेवाडीके समान होते हैं, इसको शीत ऋतुमें मौर आता है, और वसन्तऋतुमें फल आते हैं, फल निबौलीके समान लगते हैं। वे कच्ची अवस्थामें हरे और पकनेपर पीले होजाते हैं और कोई पकनेपर भी हरे ही रहते हैं। उनको हरियल कहते हैं, उन फलोंमेंसे दूध भी निकलता है॥

अथ विकंकतः (कण्टाई)

विकंकतः स्रुवावृक्षो ग्रन्थिलः स्वादुकण्टकः। स एव यज्ञवृक्षश्च कण्टकी

व्याघ्रपादपि ॥ विकंकतफलं पक्कं मधुरं सर्वदोषजित् ॥ ७९ ॥

विकंकत, स्रुवावृक्ष, ग्रन्थि, स्वादुकण्टक, यज्ञवृक्ष, कण्टकी, व्याघ्रपात्, (वैकंकत, वृत्तिकर, कण्टकारी. किंकिरी, सृग्दारु, कण्टपत्र, स्रुग्दारु, मधुपर्णी, कण्टपाद, बहुफल, गोपघोण्टा, स्रुवद्रुम, किंकिणी, पृथुबीज, सुधावृक्ष, पादरोहिणी और रावण) ये कण्टाईके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कण्टाई, किंकिणी । बं०-बईचिगाछ । म०-वेहण्डाचें फल । गु०-विकलो क०-हलुमाणिका मालेगु। तै०-कानवेगुचेट्टु। लै०-सिलस्ट्रस मोंटेना Selastrns Montana. ता०-मावलिंगे ॥

कण्टाईका पका फल-मधुर और सम्पूर्ण दोष नाशक है ॥ ७९ ॥

विवरण ।

विकंकतके वृक्ष जंगल और वनोंमें बहुत बडे २ होते हैं, उनके पत्ते छोटे और डालियोंमें कांटे होते हैं, इसमें बहुत अच्छे २ बेरके समान गोल गोल फल लगते हैं ॥

अथ पद्माक्षम् (कमलगट्टा)

पद्मबीजं तु पद्माक्षं गालोड्यं पद्मकर्कटी। पद्मबीजं हिमं स्वादु कषायं तिक्तकं गुरु ॥८०॥ विष्टम्भि वृष्यं रूक्षश्च गर्भसंस्थापकं परम्। कफवातकरं बल्यं ग्राहि पित्तास्रदाहनुत् ॥ ८१ ॥

पद्मबीज, पद्माक्ष, गालोड्य, पद्मकर्कटी, (कन्दली, भेण्डा, क्रौंचादनी, क्रौंचा और श्यामा) ये कमलगट्टेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कमलगट्टा। बं०-पद्मवीचि । म०-कमळाक्ष । गु०-कमलकाकडी । क०-पद्माक्ष । ता०-तै०-तामरकाडा । अ०-वालके, कुवति ।

कमलगट्टा-शीतल, स्वादिष्ट, कसैला,कडवा, भारी, विष्टम्भि, वीर्यवर्द्धक, रूक्ष, गर्भ स्थापित करनेवाला, बलदायक, ग्राही, कफ और वात करनेवाला पित्त, रक्तविकार तथा दाहको नष्ट करता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

विवरण ।

कमलगट्टे कमलके बीजोंको कहते हैं, ये कमलकोषके भीतर रीठेकी गुठलीके समान होते हैं, इनके भीतर सफेद रंगकी गिरी निकलती है ॥

अथ मखान्नम (मखाना)

मखान्नं पद्मबीजाभं पानीयफलमित्यपि। मखान्नं पद्मबीजस्य गुणैस्तुल्यं विनिर्दिशेत् ॥ ८२ ॥

मखान्न, पद्मबीजाभ और पानीयफल ये मखानेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मखाना । बं०-मखाना । गु०-मखाना। म०-मखाणे । लै०-युर्युलोफेरोक्स Euryeloforox मखानेमें कमलगट्टेके सदृश गुण जानने ॥ ८२ ॥

विवरण ।

कमलगट्टोंको भाडमें भूननेसे मखाने बन जाते हैं,उनकी बतासेकीसी आकृति होजातीहै.

शृङ्गाटकम् (सिंघाडा)।

शृंगाटकं जलफलं त्रिकोणफलमित्यपि। शृङ्गाटकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं कषायकम्। ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मप्रदं पित्तास्रदाहनुत् ॥ ८३ ॥

शृङ्गाटक, जलफल, त्रिकोणफल, (जलसूचि, संघाटिका, वारिकण्टक, शुक्लदुग्ध, शृङ्गाट, वारिकुब्जक, क्षीरशुक्ल, जलकंटक, सेगरुह, जलवल्ली, जलाशय, शृङ्गकन्द, शृङ्गमूल, विषाणी, जलकन्द, त्रिकोट, त्रिकट और त्रिक) ये सिंघाडेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सिंघाडे, सिंगाडे । बं०-पाणिफल, सिंगाडे । म०-सिंगाडे । गु०-सिंगोडां । क०-सिंघाडे । तै०-कोगद्दडू । फा०-सुरजान् । फा०-सुरजान् । इं०-वाटरकेलट्राप Water Caltrop. लै०-ट्रापो बाईस्पाइनोजा Trapo Bispinosa.

सिंघाडा-शीतल, स्वादिष्ट, भारी, वीर्यवर्धक, कसैला, ग्राही, वीर्य, वात तथा कफको

करनेवाला है पित्त, रक्तविकार तथा दाहको नष्ट करता है ॥ ८३ ॥

सिंघाडेकी बेल बडे बडे तालोंमें और झीलों में होती है, पत्ते गोल २ हरे रंगके और लाल रंगके होते हैं, वेलमें तीन धारवाले फल लगते हैं। उन फलोंके ऊपर दो कांटे और एक अनी बनी होती है और कहींसे ऊँचा कहींसे नीचा परमेश्वरने उसका अद्भुतही प्रकारका रंग ढंग रचा है। कोई हरे रंगका, कोई लाल रंग का और कोई धूसर रंगका, अच्छे रंग विरंगे बनाये, उनको छीलनेसे भीतरसे एक ऐसी सफेद गिरी निकलती है, मानो कपूरकी तिकोनी डली। उसको सिंघाडेकी मींग कहते हैं और उसको बहुत शुद्ध समझकर व्रतमें खाते हैं ॥

अथ कैरविणीफलम् (वेरी)।

उक्तं कुमुदबीजन्तु बुधैःकैरविणीफलम्। भवेत्कुमुद्वतीबीजं स्वादु रूक्षं हिमं गुरु ॥ ८४ ॥

कुमुदबीज, कैरविणीफल, कुमुद्वतीबीज, (कुमुदिनी, चन्द्रेष्टा, कुवलयिनी, इन्दीवरिणी और नीलोत्पलिनी) ये कैरविणीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कैरविणीफल, बेरी। गु०-पोयणानां बीज।

कमोदिनीके बीज-स्वादिष्ट रूक्ष, शीतल और भारी हैं ॥ ८४ ॥

अथ मधूकः (महुआ, वनमहुआ)।

मधूको गुडपुष्पः स्यान्मधुपुष्पो मधुस्रवः। बानप्रस्थो मधुष्ठीलो जलजेऽत्र मधूलकः ॥ ८५ ॥ मधूकपुष्पं मधुरं शीतलं गुरु बृंहणम्। बलशुक्रकरं प्रोक्तं वातपित्तविनाशनम् ॥ ८६ ॥ फलं शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वातपित्तनुत्। अहृद्यं हन्ति तृष्णास्रदाहश्वासक्षतक्षयान् ॥८७॥

मधूक, गुडपुष्प, मधुपुष्प, मधुस्रव, बानप्रस्थ, मधुष्ठील, मधूलक, (मधुवृक्ष, रोध्रपुष्प, माधव, मध्वग, तीक्ष्णसार, डोलाफल, महाद्रुम, मधुक, मधुवार और मध्वल) ये महुएके संस्कृत नाम हैं ॥

हि०--महुआ, जलमहुआ । बं०- मौल, मउल, मौया। म०-मोहवृक्ष । गु०--मुहुडो। क०--महुइप्पे। तै०--इपा, पिन्ना। ता०--इलुपा फा-चकां। इं०--इलूपाट्री Elloopatrec. लै०--बेसियालाटिफोलिया Bassialatifolia

जलमें होनेवाले महुएको मधूलक कहते हैं, महुएका फूल मधुर, शीतल, भारी, पुष्टिकारक बल तथा बीर्यवर्द्धक और वात तथा पित्त नाशक है ॥

महुएका फल- मधुर, शीतल, भारी और शक्तिवर्द्धक है बल और वीर्य पैदा करनेवाला कहा जाता है। वायु और पित्तका नाशक है। ये फल शीतल, भारीस्वादिष्ट, शुक्रवर्द्धक हैं, वायु और पित्तको नष्ट करता है। हृदयको अहित कारी, तृषा, रक्तविकार, दाह, श्वास क्षत और क्षय नाशक है ॥

विवरण।

महुएके वृक्ष वनमें और पर्वतोंमें बडे २ ऊँचे होते हैं, पत्ते बादाम अथवा वडके पत्तोंके समान होते हैं, फूलमें शहदके समान गन्ध आती है और उसमेंसे सरसोंके फलके समान बीज निकलते हैं, उसके फलोंमेंसे तेल निकलता है ॥

अथ परूषकम् (फालसा)।

परूषकं तु परुषमल्पास्थि च परापरम्। परूषकं कषायाम्लमामं पित्तकरं लघु ॥८८॥ तत्पक्वं मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि बृंहणम्। हृद्यं तु पित्तदाहास्रज्वरक्षयसमीरहृत् ॥ ८९ ॥

परूषक, परुष, अल्पास्थि, परापर, गिरिपीलु, नागदलोपम, परावत, नीलचर्म, नीलमण्डल और मृदुफल) ये फालसेके संस्कृत नाम हैं ॥

हि० -फालसा, परुषा। बं०--फलसा । म० गु०--फालसा । क०--वेट्टहा, दागलि । तै०-

पुटिकी। फा०--पालसा। अ०--फालसा। इं०--एश्यटिफ ग्रेविया Assiatic Grewia. लै०--ग्रेविया एश्याटिका Grewia Assiatica.

कच्चा फालसा–कसैला, खट्टा, पित्तकारक, और हलका है। पका फालसा–पाकमें मधुर, शीतल, विष्टम्भि, पुष्टिकारक और हृदयको प्रिय, पित्त, दाह, रक्तविकार, ज्वर, क्षय तथा वातको नष्ट करता है ॥

विवरण।

फालसेके वृक्ष मध्यम आकारके होते हैं। माली लोग अपने बागोंमें बहुत लगा लेते हैं। पत्ते बेलके समान तीन तीन मिले हुए होते हैं। फल दो तीन एकत्र होते हैं, पहले कच्ची अवस्थामें हरे और पकनेपर ऊदे रंगके हो जाते हैं॥

अथ तूतः (सहतूत)।

तूतः स्थूलश्च पूगश्च क्रमुको ब्रह्मदारु च। तूतं पक्वं गुरु स्वादु हिमं पित्तानिलापहम्। तदेवामं गुरु सरमम्लोष्णं रक्तपित्तकृत् ॥ ९० ॥

तूत, स्थूल, पूग, क्रमुक, ब्रह्मदारु, (तूद, ब्रह्मकाष्ठ, ब्रह्मण्य, मृदुसा, सुपुष्प, नीलरंगक, तूल, ब्राह्मगेष्ट, नीलवृन्तक, कमुक, विप्रकाष्ठ-मदसार, पूर्ण, ब्रह्म नष्ट, नूढ, पूष और पलाशिक) सहतूतके संस्कृत नाम हैं॥

हिं०–सहतूत। बं०–तूँद। म०–तूते। गु०–शेतूत। तै०–कम्बलिचेट्टू। ता०–मुसुकट्टइ-चेडि। फा०–शाहतूत, तूततुर्श। अ०तूत, तूत हामीज। इं०–मलबरिझ Mulberis. लै०–मोरस इंडिका Morus Indica. मारस निग्रा Morus Nigra.

पका सहतूत–भारी, स्वादिष्ट, शीतल, पित्त तथा वातनाशक है। कच्चा सहतूत–भारी, दस्तावर, खट्टा, गरम और रक्तपित्तको करनेवाला है॥

विवरण।

सहतूतके वृक्ष बागोंमें बहुत होते हैं, पत्ते अंजीरके समान तीन तीन कँगूरेवाले और नीमके पत्तोंके सदृश चारों ओर आरेकेसे चिह्न होते हैं, ये वृक्ष दो प्रकारके होते हैं–एक पर काले सहतूत आते हैं और दूसरेपर सफेद सहतूत आते हैं, इसके फल फलीके समान होते हैं, और उनमें बाजरेकेसे दाने सर्वत्र लगे रहते हैं, वह फली अत्यन्त कोमल और रसीली होती है॥

अथ दाडिमः (अनार)।

दाडिमःकरको दन्तबीजो लोहितपुष्पकः। तत्फलं त्रिविधं स्वादु स्वाद्वम्लं केवलाम्लकम् ॥ ९१ ॥ तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं तृड्दाहज्वरनाशनम्। हृत्कण्ठमुखगन्धघ्नं तर्पणं शुक्रलं लघु ॥ ९२ ॥ कषायानुरसं ग्राहि स्निग्धं मेधाबलावहम्। स्वाद्वम्लं दीपनं रुच्यं किञ्चित्पित्तकरं लघु। अम्लन्तु पित्तजनकमम्लं वातकफापहम् ॥ ९३ ॥

दाडिम, करक, दन्तबीज, लोहितपुष्पक, (दाडिमी सार, कुट्टिम, फलषाडव, रक्तबीज, सुफल, दन्त बीजक, मधुबीज, कुचफल, शुकवल्लभ, मणिबीज, वल्कफल, पिण्डपुष्प, दाडिम्ब, पर्वरुह, स्वाद्वम्ल, पिंडीर, फलशाडव, मुखवल्लभ, रक्तपुष्प, डालिम, शुकादन, फलसाडव, सुनील, नीलपत्र और नीलपत्रक) ये दाडिमके संस्कृत नाम हैं॥

हिं०–दडिम, अनार। बं०–दाडिम, डालिम म०–डाळिम्ब, दालिम्ब। गु०–दालिम। क०–दालिम्ब। तै०–डानिमचेट्टु, दालिम्बकाया। ता०–मादलै। फा०–अनार, तुरस। अ०–रुमान हामीज। इं०–पोमग्रानेट Pomegranate. लै०–प्युनिका ग्रानेटम् Punica Granatum.

अनारका फल–मीठा, खटमीठा और केवल खट्टा इस भांति तीन प्रकारका होता है। इनमें मीठा अनार–त्रिदोषनाशक, तृप्तिदायक, वीर्य वर्द्धक, हलका, कसैला, रसवाला, ग्राही, स्निग्ध, बुद्धि तथा बलदायक है तृषा, दाह,

ज्वर, हृदयरोग, कण्ठरोग तथा मुखकी दुर्गन्धको नष्ट करता है । खट्टा मीठा अनार-अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारी, किंचित् पित्तकारक और हलका है । केवल खट्टा अनार-पित्तको उत्पन्न करनेवाला और वात तथा कफको नष्ट करता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

विवरण ।

अनारका वृक्ष मध्यम आकारका होता है ये वृक्ष सब स्थानोंमें मिलते हैं, उत्तरखण्डके पहाडोंमें, काबुलमें, खन्धारमें इसके सिवाय और देशोंमें भी अधिक होते हैं, पत्ते हरे और लम्बे लम्बे होते हैं, फूल अत्यन्त शोभायमान सिन्दूरिया रंगका होता है, अनारकी दो जाति हैं, एक नर, दूसरा नारी, नरमें फूल बहुल बडा आता है, और फल नहीं लगते, नारी जातिके अनारमें फूल छोटे, फल गोल और बडे लगते हैं, फलके भीतर दाने मणियोंके समान और लाल कांतिवाले होतेहैं, वे मधुर खटमधुरे और संपूर्ण खट्टे, ऐसे तीन प्रकारके होते हैं, रंगमें कोई लाल और कोई धूसर होता है ॥

अथ बहुवारः (लिसोडा)

बहुवारस्तु शीतःस्यादुद्दालो भूतवृक्षकः । शेलुः श्लेष्मातकश्चापि पिच्छिलो भूतवृक्षकः ॥९४॥ बहुवारो विषस्फोटव्रणवीसर्पकुष्ठनुत् । मधुरस्तुवरस्तिक्तः केश्यश्च कफपित्तहृत् ॥९५॥ फलमामन्तु विष्टम्भि रूक्षं पित्तकफास्रजित् । तत्पक्कं मधुरं स्निग्धं श्लेष्मलं शीतलं गुरु ॥ ९६ ॥

बहुवार, शीत, उद्दाल, बहुबारक, शेलु, श्लेष्मातक, पिच्छिल, भूतवृक्षक, (कर्बुदार, लेखशाटक, शेलु, गन्धपुष्प, शापित द्विजकुत्सित शीतफल, शाटक, कर्बुदारक, भुतद्रुम और श्लेष्मात) ये लिसोडे संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-लिसोडा, निसोरा । बं०-बहुयार, चालता गाछ । म०-भोंकर, शेलवट । गु०-गुन्दीरी । क०-चेळ्ळु, गोदिणी । तै०-नाकेरु नुककेरु । ता०-विडि । फा०-सर्पिस्ताँ । अ०-सेफिस्ताँ दवक इं०-नेरो लिव्ड सेपिस्टन् Narrowleaved Sepistun. लै०-कोर्धिया माइजा Cordia Myza.

लिसोडा विष, विस्फोट, व्रण, विसर्प, और कोढको नष्ट करता है, मधुर, कसैला, कडवा केशोंको हितकारी है, कफ और पित्त नाशक है ॥

लिसोडेका कच्चा फल-विष्टम्भी, रूखा पित्त, कफ तथा रक्त विकारको नष्ट करता है, लिसोडेका पका फल-मधुर, स्निग्ध, कफकारक, शीतल और भारी है ॥ ९४ ॥ ९६ ॥

विवरण ।

लिसोडेके वृक्ष जंगल और वनमें अधिक होते हैं । पत्ते गोल कुछ लम्बाई लिये हुए होते हैं । फल अलूचेके समान गोल रसीले गुच्छोंमें लगते हैं । भीतरसे चुपकते हैं । इसी प्रकारके लभेडेके वृक्ष भी होते हैं, पत्ते भी इसी भांतिके होते हैं, परन्तु फल इससे छोटे छोटे होते हैं । कच्चे रंगमें हरे और पकनेपर कुछ गुलाबीसे होजाते हैं । फलके भीतर बीज और कुछ गोंदसा निकलता है ॥

अथ कतकः (निर्मली) ।

पयःप्रसादी कतकः कतकं तत्फलं च तत् । कतकस्य फलं नेत्र्यं जलनिर्मलताकरम् । वातश्लेष्महरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥ ९७ ॥

पयःप्रसादी, कतक, (छेदनीय, श्लक्ष्ण, तोयप्रसादन, कात्थ, कतारेणु, शोधनात्मक, अम्बुप्रसादनकल, रुचिप्य, लेखनात्मक, अम्बुप्रसाद, कत, तिक्तफल, गुच्छफल, तिक्तमरिच और तोयप्रसादफल) ये निर्मल फलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-पायपसारी, निर्मलीफल । बं०-फल । म०-निवळी, निर्मळी, चिल्हार । गु०-निर्मली । क०-चिल्लिकायि । इं० ए नट विचक्लिअर्स वाटर Anut which clear water लै०-स्ट्रिकिनोस पोटेटेम् Strychinor Potetarum.

निर्मलीका फल-नेत्रोंको हितकारी, और जलको निर्मल करनेवाला है, वात कफनाशक, शीतल, मधुर कसैला और भारी है ॥ ९७ ॥

विवरण।

कतक अर्थात् निर्मलीफल गोल होते हैं और उसके ऊपरकी छाल कुचिलेकी छालके समान होती हैं विशेष करके इसकी सब आकृति कुचिलेसे मिलती है ॥

अथ द्राक्षा (दाख)।

द्राक्षा स्वादुफला प्रोक्ता तथा मधुरसाऽपि च। मृद्वीका हारहूरा च गोस्तनी चापि कीर्तिता ॥९८॥ द्राक्षा पक्का सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरुः। स्वादुपाकरसा स्वर्या तुवरासृष्टमूत्रविट् ॥९९॥ कोष्ठमारुतकृद्वृष्या कफपुष्टिरुचिप्रदा। हन्तितृष्णाज्वरश्वासवातवातास्रकामलाः कृच्छ्रास्रपित्तसम्मोहदाहशोषमदात्ययान् ॥ १०० ॥ आमा स्वल्पगुणा गुर्वी सैवाम्ला रक्तपित्तकृत्। वृष्या स्याद्गोस्तनी द्राक्षा गुर्वी च कफपित्तनुत् ॥१०१॥

गोस्तनी 'मुनक्का' इति लोके।

अबीजाऽन्या स्वल्पतरा गोस्तनीसदृशी गणैः। द्राक्षा पर्वतजा लघ्वी साम्ला श्लेष्माम्लपित्तकृत्। द्राक्षा पर्वतजा यादृक् तादृ[illegible] [illegible]रमर्दिका ॥ १०२ ॥

अबीजा ईषद्बीजा। 'किस्मिस' इति लोके। पर्वतजा 'पहाडी' इति लोके। करमर्दिका 'करौंदी' इति लोके।

द्राक्षा, स्वादुफला मधुरसा, मृद्वीका, हारहुरा, गोस्तनी, (स्वादी, चारुफला, रसा यक्ष्मघ्नी तापस, प्रिया, प्रियाला, गुच्छफला, रसाला, अमृतफलास्वादुफला, फलोत्तमा और सुफला) ये दाखके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-दाख, अंगूर। बं०-मनेका, आंगूर। म०-काळी द्राक्षें। गु०-द्राक्ष। क०-बेडगणद्राक्षे, चिकुद्राक्ष। तै०-द्राक्षा। ता०-कोडिमण्डिटिप फा०-अंगूर, मुनक्का। अ०-एनबचबीच, हबुसजबीब। इं०-ग्रेपझिन्स Crape Raisins लै०-वाइटिन्सवेनिफेरा Witins Venifera

पका अंगूर-दस्तावर, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारक, और भारी, पाकमें रसमें, मधुर, स्वरको उत्तम करनेवाला, कसैला, मल मूत्रकी प्रवृत्ति करनेवाला, कोठेमें वातकारक, वीर्यको बढानेवाला, कफ तथा रुचिको उत्पन्नकर्त्ता तृषा-ज्वर, श्वास, वात, वातरक्त, कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, मोह, दाह, शोष तथा मदात्ययनामक रोगको नष्ट करता है। कच्चा अंगूर-हीनगुणवाला तथा भारी है। खट्टा अंगूर-रक्त-पित्तको करनेवाला है। गायके स्तनके सदृश) दाखवीर्यवर्द्धक, भारी, कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाली है। किसमिस जिसमें बीज नहीं होते अथवा छोटे बीजोंवाली होती है वह) गोस्तनी दाखके सदृश गुणोंवाली है। पर्वतमें उत्पन्न हुई दाख-हलकी तथा अम्ल होती है और कफ तथा अम्लपित्तको करनेवाली है। पर्वतोत्पन्न दाखके सदृश करमर्दिका (करौंदी) के गुण हैं ॥

विवरण।

दाख-काली, लाल और किसमिस-हरी, लाल इत्यादि अनेक जातिकी होती है, उत्पत्ति इसकी काबुल खन्धहार तथा उन्हीं देशांतरोंमें होती है, काठकी टट्टियोंपर इसकी बेल चलती है, पत्ते हाथकी आकृतिके होते हैं, मानों हथेलीमें पांचों उँगलियां लगादी हैं, फल गुच्छोंमें लगते हैं, उनको अंगूर कहते हैं, वे अंगूर सूखकर दाखें बनजाती हैं, काले अंगूरोंकी काली दाखें और भूरे अंगूरोंकी भूरी दाखें होती हैं ॥

अथ क्षुद्रखजूरी, पिण्डखर्जूरी (खर्जूर)।

भूमिखर्जूरिका स्वाद्वी दुरारोहा मृदुच्छदा। तथा स्कन्धफला काककर्कटी स्वादुमस्तका ॥१०३॥ पिण्डखर्जूरिका त्वन्या सा देशे पश्चिमे भवेत्। खर्जूरी गोस्तनाकारा परद्वीपादिहागता ॥१०४॥

जायते पश्चिमे देशे सा च्छोहारेति कीर्त्यते। खर्जूरीत्रितयं शीतं मधुरं रसपाकयोः ॥ १०५ ॥ स्निग्धं रुचिकरं हृद्यं क्षतक्षयहरं गुरु। तर्पणं रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्टम्भशुक्रदम् ॥ १०६ ॥ कोष्ठमारुतहृद्बल्यं वान्तिवातकफापहम्। ज्वरातिसारक्षुत्तृष्णाकासश्वासनिवारकम् ॥ ॥१०७॥ मदमूर्च्छामरुत्पित्तमद्योद्भूतगदान्तकृत्। महतीभ्यां गुणैरल्पा स्वल्पखर्जूरिका स्मृता ॥१०८॥ खर्जूरीतरुतोयं तु मदपित्तकरं भवेत्। वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत् ॥१०९॥

भूमिखर्जूरिका, स्वाद्वी, दुरारोहा, मृदुच्छदा, स्वन्धफला, काकर्कटी, स्वादुमस्तका, (खर्जु, खर्जू, खर्जूरी, खरस्कन्धा, दुष्प्रधर्षा, दुरारुहा, कषायी, निःश्रेणी, यवनेष्टा और हरिप्रिया) ये खजूरके संस्कृत नाम हैं ॥ और जो एक जातिकी पिंडखजूर है, वह पश्चिमदेश (काबुलआदि)में होती है । दूसरी एक जातिकी खजूर गायके स्तनके सदृश अन्य द्वीपसे आई हुई पश्चिमदेशमें उत्पन्न होती है उसको छुहारा कहते हैं ॥

हिन्दी-खजूर, पिंडखजूर, छुहारा। बं०-खजूर, पिंडखजूर, छोहारा । म०-सिंदी, खजूरी, । गु०-खजूरी, छुवारी, खारेक। क०-ईचिलु, सिंहईचिलु,, करीईचिलु । तै०-ईटाचेट्टु, खजुरपंडु। फा०-तमररुतव । अ०-खुर्मातर, खुर्माखुश्क। इं०-डेटपास Date palm लै०-फोयमिक्स मोंटेना Phoenix Montana.

तीनों प्रकारकी खजूर-शीतल रसमें तथा पाकमें मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक हृदयको प्रिय भारी तृप्तिदायक पुष्टिकारक, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, बलदायक हैं और कोठेकी वायु क्षतक्षयका नाशक है ज्वर, अतीसार, भूख, तृषा, खांसी और श्वास, मद, मूर्च्छा, वातपित्त तथा मद्यसे उत्पन्न हुए रोगोंको नष्ट करती ॥ बडी खजूरसे छोटी खजूरमें अल्प गुण हैं। खजूरके वृक्षोंका पानी-मद तथा पित्तको करनेवाला, है। वात, कफको करनेवाला. रुचिकारी, अग्निको दीपन करनेवाला, है। बल तथा वीर्य वर्द्धक है ॥ १०३-१०९ ॥

अथ पिण्डखर्जूरीभेदः (सुलेमानीखजूर)।

सुलेमानी तु मृदुला दलहीनफला च सा। सुलेमानी श्रमभ्रान्तिदाहमूर्च्छाऽस्रपित्तहृत् ॥ ११० ॥

सुलेमानी, मृदुला और दलहीनफला ये सुलेमानी खजूरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सुलेमानीखजूर । गु०-सुलेमानी, मुसी, खारेक। म०-खारीक ॥

सुलेमानी खजूर-परिश्रम, भ्रांति, दाह, मूर्छा, रुधिरविकार तथा पित्तनाशक है ११०॥

विवरण।

खजूर, पिण्डखजूर और छुहारेके वृक्ष सीधे लंबे लंबे चले जाते ह, उनमें पत्ते लम्बे और शाखा भी लंबी लंबी होती हैं, वृक्षपर खपरैल वक्कल जमा रहता है, ऊपर शाखाओंमें फल लगते हैं, वे खानेमें उत्तम नहीं होते, वखसे २ होते हैं, इसलिये धनाढ्य लोग नहीं खाते, दीन लोग खाते हैं, दूसरी पिण्डखजूर होती है, उसके फल तोड तोडकर बोरियोंमें भर देते हैं तीसरा छुहारा होता है, ये दोनों खजूरके समान आकारवाले होते हैं ॥

अथ वातादः (बादाम)।

वातादो वातवैरी स्यान्नेत्रोपमफलस्तथा। वाताद उष्णः सुस्निग्धो वातघ्नः शुक्रकृद् गुरुः ॥१११॥ वातादमज्जा मधुरो वृष्यःपित्तानिलापहः। स्निग्धोष्णः कफकृन्नेष्टो रक्तपित्तविकारिणाम् ॥ ११२ ॥

वाताद, वातवैरी, नेत्रोपमफल, (सुफल, वाताद और वातबैरि) ये बादामके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--बादाम। बं०--बादाम। म०--गोडें बदाम, कडवे बदाम। गु०--बदाम। तै०--वेदमा। ता०--नाट्टु वादुमे। फा०--बदाम-शीरी, बादाम तल्खा। अ०--लोजलहलु लोजलमुर। इं०--अलमण्ड Almond लै०--एमिग्डेलस कम्युनीस Amygdalus Communis

बादाम--गरम स्निग्ध, वीर्यकारक, भारी और वातनाशक है। बादामकी मज्जा मीठी, वीर्यवर्द्धक, पित्त तथा वातनाशक; स्निग्ध; गरम कफकारक और रक्तपित्तवाले रोगियोंको अहितकारक है॥ १११॥ ११२॥

विवरण।

बादामके वृक्ष बडे बडे होते हैं, पत्ते महुवेके पत्तोंके समान लंबे चौडे होते हैं, उसके फलके बीज बदाम कहलाते हैं॥

अथ सेवम्।

मुष्टिप्रमाणं बदरं सेवं सिवितिकाफलम्। सेवं समीरपित्तघ्नं बृंहणं कफकृद् गुरु। रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचिशुक्रकृत्॥ ११३॥

मुष्टिप्रमाण, बदर, सेव और सिवितिकाफल ये सेवके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-सेव। बं०-सेउ। म०-मोंठेबोर। गु०-सेवफल। क०-सेव। फा०-सेव। अ०-तुफाह। इं०-अपल Apple लै०-पाइरस मेलस Pyrur Malus.

सेव-वात पित्तविनाशक, पुष्टिकारक, कफ कारक और भारी पाकमें रसमें मधुर, शीतल रुचिकारक, और वीर्यको बढानेवाला है॥११३

अथ अमृतफलम्।

(यत्काण्डाहार--काविप्रभृतिषु देशेषु नाशपातीति नाम्ना प्रसिद्धम्।)

अमृतफलं लघु वृष्यं सुस्वादु त्रीन् हरेद् दोषान्। देशेषु मुद्गलानां बहुलं तल्लभ्यते लोकैः॥ ११४॥

अमृतफलको खुरासान और काबुल आदि देशोंमें नासपती कहते हैं। नासपाती-हलकी, वीर्यवर्द्धक, बहुत मीठी, वातादि तीनों दोषों को नष्ट करनेवाली और मुगलोंके देशोंमें अधिक मिलती है॥ ११४॥

विवरण।

सेव वीह और नासपाती इन तीनोंकी एक ही जाति है, इनमें अन्तर थोडा ही है, जैसे छुहारे पिंड खजूर खजूरकी एक ही जाति है, सेवके वृक्ष काश्मीर और काबुलमें बहुत होते हैं, पर नासपाती हिन्दुस्तानमें भी बहुत होती हैं, इनके वृक्ष अमरूदके वृक्षके बराबर लम्बे होते हैं, पत्ते भी अमरूदके पत्तोंके बराबर कुछ चौडे होते हैं काश्मीरका सेव बहुत मधुर होता है और काबुलका तुरंस, काश्मीरकी नासपाती भी बहुत ही मधुर होती है, जिसे नाख कहते हैं। वीहका मुरब्बा दस्तोंकी व्याधिमें काम आता है और बलदायक होता है॥

अथ पीलुः।

पीलुर्गुलफलः स्रंसी तथा शीतफलोऽपि च। पीलु श्लेष्मसमीरघ्नं पित्तलं भेदि गुल्मनुत्। स्वादु तिक्तश्च यत्पीलु तन्नात्युष्णं त्रिदोषहृत्॥ ११५॥

पीलु, गुलफल, स्रंसी, शीतल, (शीतसह, धानी, गुडफल विरेचनफल, शाखी, श्याम, करवल्लभ, कलवल्लभ और पीलुक) ये पीलु के संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-पीलु। बं०-पीलुगाछ। म०-लघु-पीलु। गु०-पीलु। क०-मिरीये ऊगनि। तै०-गोलगु चेट्टु। ता० काकु। फा०-दरखते मिस्वाक्। अ०-ईराक। इं०-मस्टर्डट्री आफ स्क्रीपचर Mustardtree or Scripture लै०-सालवेडारा पार्सिका Salvadora Parsico सालवडारा ओलिआइड्स Salvadora Oleasd

पीलु-पित्तकारक; मलभेदक, (दस्तावर) और कफ वात नाशक गुल्मनाशक है। जो

पीलु मीठा और कडवा होता है, वह-अत्यन्त गरम नहीं होता और त्रिदोषनाशक है॥११५॥

विवरण ।

पीलुके वृक्ष दो जातिके होते हैं, एक छोटा और दूसरा बडा । छोटे पीलुपर बहुत छोटे २ फल आते हैं और पकनेपर लाल पड जाते हैं। दूसरा बडा पीलू होता है, उसके फूल पीले और फल लाल और काले होते हैं ॥

अथ अक्षोटः (अखरोट)।

पीलुःशैलभवोऽक्षोटःकर्परालश्च कीर्तितः। अक्षोटकोऽपि वातादसदृशः कफपित्तकृत् ॥ ११६ ॥

पर्वतके पीलूको अक्षोट कहते हैं और कर्पराल भी कहते हैं। अखरोट, पार्वतीय, फलस्नेह, गुडाशय, कीरेष्ट, स्वादुमज्ज, पृथक्छद, रेखाफल, वृत्तफल, मदनाभफल, अक्षोटक, अखोट, आखोट, आक्षोड, आक्षोट, कन्दराल और आस्फोटक) ये अखरोटके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-अखरोट । बं० आक्रोट । म०-अक्रोड । गु०-आखोड । क०-अखोट । फा०-चार्तगज । अ०-जोझ अक्रपम् मगज । इं०-वालनट Walnut बेलगाम वालनट Belgaum Walnut लै०-एल्युरायटीस ट्रायलोबा Alurites Triloba

अखरोटके गुण बदामके समान हैं और कफ तथा पित्तको करता है ॥ ११६ ॥

विवरण ।

अखरोटके वृक्ष बडे बडे ऊंचे होते हैं, फूल सफेद रंगके छोटे छोटे और गुच्छोंमें कई कई आते हैं । पत्ते गोल और कुछ कुछ लम्बाई लिये हुए मोटे होते हैं । फल गोल गोल मैनफलके समान होते हैं । उन फलोंके ऊपर हरी हरी छाल होती है, उसको छील डालते हैं, उनके छीलनेसे चार रेखावाली खरदरी खरदरी गुठलियां निकलती हैं, उनको अखरोट कहते हैं, उनके फोडनेसे एक स्निग्ध जातिकी गिरी निकलती है, वह अखरोटकी गिरी कहलाती है ॥

अथ बीजपूरः (बिजौरा)।

बीजपूरो मातुलुंगो रुचकः फलपूरकः। बीजपूरफलं स्वादु रसेऽम्लं दीपनं लघु ॥ ११७ ॥ रक्तपित्तहरं कण्ठजिह्वाहृदयशोधनम् । श्वासकासारुचिहरं हृद्यं तृष्णाहरं स्मृतम् ॥ ११८ ॥

बीजपूर, मातुलुंग, रुचक, फलपूरक, (अम्लकेशर, बीजपूर्ण, पूर्णबीज, सुकेशर, बीजक, सुपूर, बीजफलक, जन्तुघ्न, दन्तुरच्छद. पूरक और रोचनफल) ये बिजौरेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बिजौरा नींबू । बं०-टावालेबु। म०-महाळुंग । गु०-बीजोरु लेम्बु । क०-माधवला । तै०-दबाकाया । फा०-तुरञ्ज। अ०-उतरंज । इं०-साइट्रस Citrus लै०-साईट्रस एसीडा Citrus Acida

बिजौरेका फल-मधुर, रसमें खट्टा, अग्निको दीपन करनेवाला, हलका, कण्ठ, जीभ तथा हृदयको शुद्ध करनेवाला, हृदयको प्रिय श्वास, खांसी, अरुचि तथा तृषानाशक है ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

विवरण ।

बिजौरे नींबूके वृक्ष मध्यम आकारके बागों में बहुत होते हैं, वृक्षके पत्ते नींबूकी आकृतिके होते हैं, परन्तु लंबाई चौडाईमें उनसे आठ दस गुणे अधिक होते हैं, फल गोल और नोकदार अमरूदकी आकृतिवाला नीचेसे भारी ऊपरसे पतला होता है, इसमें बीज अधिक होते हैं, फूल सफेद रंगके होते हैं, वे नींबू खट्टे बहुत होते हैं, किसी २ देशमें बिजौरा नींबू मीठा भी होता है ॥

अथ मधुकर्कटी (बिजौराभेद, चकोतरा)

बीजपूरोऽपरःप्रोक्तो मधुरो मधुकर्कटी। मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः । रक्तपित्तक्षयश्वासकासाहिक्काभ्रमापहा ॥ ११९ ॥

एक दूसरी जातिका बिजौरा होता है, उसको मधुर और मधुकर्कटी कहते हैं।

हिन्दी-चकोतरा। बं-वातविलेघु॥

चकोतरा-स्वादिष्ट, रुचिकारक, शीतल, भारी रक्तपित्त, क्षय, श्वास, खांसी, हिचकी तथा भ्रमनाशक है॥ ११९॥

विवरण।

चकोतरेके पेड नींबूसे कुछ ही बडे होते हैं। पत्ते बिजौरे नींबूके समान होते हैं। परन्तु फल बहुत बडे बडे खरबूजेकी आकृतिके होते हैं। खरबूजेके ऊपर दश रेखा होती हैं और चकोतरेके भीतर दशरेखा होती हैं। रंगमें दोनों पीले होते हैं। फूल सफेद रंगके होते हैं। इसके बीज नींबूसे बडे होते हैं॥

अथ जम्बीरद्वयम्।

स्याज्जम्बीरो दन्तशठो जम्भजम्भीरजम्भलाः। जम्बीरमुष्णं गुर्वम्लं वातश्लेष्मविबन्धनुत्॥१२०॥ शूलकासकफोत्क्लेशच्छर्दितृष्णाऽऽमदोषजित्। आस्यवैरस्यहृत्पीडावह्निमान्द्यक्रिमीह्वरेत्। स्वल्पजम्बीरिका तद्वत्तृष्णाच्छर्दिनिवारिणी१२१

जंबीर, दन्तशठ, जंभ, जंभीर जंभल, (रोचनक, मुखशोधी, जाडयारि, जन्तुजित्, जंभक, जंभर, दन्तहर्षण, दन्तकर्षण, गंभीर, जंभिर, रेवत, वक्त्रशोधी, दन्तहर्षक, और जंभी) ये जबीरो नींबूके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-जम्भीरी नींबू। बं०-जामीर लेबू। म०-ईडलिंबू। गु०-कागदी लींबु। क०-कनीले। ते०-जांभिर। फा०-लिमुनेशिरि॥

जंभीर नींबू-गरम, भारी, खट्टा वात, कफ, और मलबन्ध नाशक है शूल, खाँसी, कफोत्क्लेश, वमन, तृषा, आमसंबंधी दोष, मुखकी विरसता, हृदयकी पीडा, अग्निकी मन्दता तथा कृमिनाशक है। एक जंभीरी दूसरी भाँतिका छोटा होता है। वह तृषा तथा वमनको नष्ट करता है॥ १२०॥ १२१॥

विवरण।

जंभीरी नींबूके वृक्ष बागोंमें अधिक देखे जाते हैं। फूल सफेद रंगके होतेहैं। पत्ते कागजी नींबूके समान परन्तु लम्बाई चौडाईमें दोने तिगुने होते हैं, फल कागजी नींबूसे चौगुने बडे होते हैं, कच्ची अवस्थामें हरे रंगके और पकजानेपर पीले पड जाते हैं, ये जभीरी नींबू गोल गोल पीले रंगके अत्यन्त शोभा देते हैं॥

अथ निम्बूकम् (कागजी नींबू।

निम्बूः स्त्री निम्बुकं क्लीबे निम्बूकमपि कीर्तितम्। निम्बूकमम्लं वातघ्नं दीपनं पाचनं लघु॥१२२॥ अन्यच्च-निम्बुकं कृमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमम्लमुदरग्रहापहम्। वातपित्तकफशूलिने हितं कष्टनष्टरुचिरोचनं परम्॥ १२३॥ त्रिदोषवह्निक्षयवातरोगनिपीडितानां विषविह्वलानाम्। मन्दानले बद्धगुदे प्रदेयं विषूचिकायां मुनयो वदन्ति॥ १२४॥

निंबू-स्त्रीलिंग, निंबुक, निंबूक, ये दो नपुंसकलिंग (अम्लजंबीर, वह्निदीप्य, वह्निबीज, अम्लसार, दंताघात, शोधन, जन्तुमारी और रोचन) ये कागजी नींबूके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-कागजी नींबू। बं०-कागजी लेंबु। म०-कागदी सिंबु। गु०-कागदीलिंबु। क०-कचिले। ते०-निम्मपंडु। फा०-लिमुनें तुश। ता०एलुमिचै॥ अ०-लिमुनेहा जिमाइं० लेमन्स Lemons लै०-लैमोनं एसिडम Lemonum Acidum.

कागजी नींबू-खट्टा, वातनाशक, दीपन, पाचक और हलका है। अन्यत्र भी कहा है कि-यह नींबू कृमिसमूहको नष्ट करनेवाला, तीक्ष्ण, खट्टा. उदरपीडानाशक और ग्रहबाधाको दूर करनेवाला है। वात, पित्त, कफ, तथा शूलवालोंको अत्यन्व हितकारी है। तीनों दोष, अग्नि, क्षय वातसम्बन्धी पीडावालोंको,

विषसे विह्वल हुएको, अग्निकी मन्दता मलबन्ध तथा विषूचिका रोगवालोंको यह नींबू देना चाहिये ऐसा मुनि कहते हैं ॥१२२-१२४

विवरण।

कागजी नींबूके पेड उत्तम उत्तम वाटिकाओंमें माली लोग लगाते हैं। वे वृक्ष न बहुत बडे न छोटे मध्यम आकारके होते हैं, पत्ते जामुनके समान चिकने चिकने होते हैं, फूल सफेद रंगके छोटे छोटे और फल गोल गोल हरे रंगके होतें हैं पकनेपर पीले पड जातें हैं। पतले वल्कलके कारण कागजी नींबू कहते हैं॥

अथ मिष्ठनिम्बूफलम् (मीठानींबू)।

मिष्ठनिम्बूश्च संप्रोक्तस्तथैव मधुजम्भलः। शङ्खद्रावी तथा पित्तद्रावी शर्करकः स्मृतः। मिष्ठनिम्बूफलं स्वादु गुरु मारुतपित्तनुत्। गररोगविषध्वंसि कफोत्क्लेशि रक्तहृत्। शोषारुचितृषाच्छर्दिहरं बल्यञ्च बृंहणम् ॥ १२५ ॥

मिठानिम्बू, मधुजंभल,, शंखद्रावी, पित्तद्रावी, शर्करक, (मधुजंबीर मधुजंब, मधुजंबीरफल) ये मीठे नींबूके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–सर्वतीनिंबू, मीठा नींबू। बं०–कमलालेवु। गु०–मीठा लींबू। म०—गोडनिम्बु॥

मीठा निंबु–मधुर, भारी, वात और पित्त शामक है। गररोग नाशक, विषविनाशक, कफ उत्कलेश और रुधिरविकार को जीतनेवाला है। शोष, अरुचि, तृषा और दमनको दूर करता है। बलवर्धक और पुष्टिकारक है। मीठानींबू सबसे शोभायमान होता है और अनुमानतः यह भी जान पडता है कि, यह पूर्ण रसकी, खान है। माली लोग शोभाहीके लिये इनको लगा लेते हैं, इसके फूल भी सफेद सफेद और पत्ते हरे हरे अधिक सुन्दरताको प्राप्त होते हैं, उसके उपरान्त हरे और पीले फल गोल गोल नारंगीके सदृश होते हैं, चित्तपर मोहिनी डालकर जालमें फँसालेते हैं। धन्य है उस विधाताको–जिसने ऐसे ऐसे अद्भुत फल संसारमें बनाये हैं॥

अथ कर्मरंगः (कमरख)।

कारुकः कर्मरंगः स्याच्छिरालस्तु शुकप्रियः। कर्मरंग हिमं ग्राहि स्वाद्वम्लं कफवातहृत् ॥ १२६ ॥

कारुक, कर्मरंग, शिराल, शुकप्रिय, (बृहद्दल, रुजाकर, कर्मार कर्मरक, पीतफल, कर्मर, धाय्फल और कर्मारक) ये कमरखके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–कमरख। बं०–कामराङ्गा। म०–कमरे। गु०–कर्मरंग। इं०–करंबोला Carambola. लै०–एवरहोया करंबोला Averhoa Carambola.

कमरख–शीतल, ग्राही, स्वादिष्ट खट्टी, कफ, तथा वातविनाशक है॥ १२६॥

विवरण।

कमरखके वृक्ष बहुत बडे नहीं होते। बागोंमें लगाये जाते हैं। पत्ते गुलाबके वृक्षके समान होते हैं। फूल लालरंगके रंगीले होते हैं। फल गुच्छके सदृश एक एक डालीमें दश दश पन्द्रह पन्द्रह लगते हैं, उन फलोंपर तीन तीन चार चार पांच पांच धारेंशी खडी होती है।

अथ अम्लिका (इमली)।

अम्लिका चुक्रिकाऽम्ली च चुक्रा दन्तशठाऽपि च। अम्ला च चिञ्चिका चिञ्चा तिन्तिडीका च तिन्तिडी ॥ १२७ ॥ अम्लिकाऽम्ला गुरुर्वातहरा पित्तकफास्रकृत्। पक्वा तु दीपनी रूक्षा सरोष्णा कफवातनुत् ॥ १२८ ॥

अम्लिका, चुक्रिका, अम्ली, चुक्रा, दन्तशठा, अम्ला, चिंचिका, चिंचा, तिन्तिडीका, तिन्तिडी (तिन्तिडीका, तिन्तिलिका, वृक्षाम्ल, अम्लीका, आम्लिका, तिन्तिड, तिंतिला, तिन्तिका, आब्दिका, चुक्र, अत्यम्ला, भुक्ता, भुक्तिका, चरित्रा, गुरुपत्रा, पिच्छिला, यमदूतिका, शाकचुक्रिका, सुचुक्रिका, सुतितिंडी, पंक्तिपत्रा और सर्वाम्ला) ये इमलीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–इमली। बं०–तेंतुल। म०–चिञ्च। गु०–आंवली। क०–हुणिचे। तेल०–चिञ्चचेट्टु। ता०–पुळि अ०–तमरी हदी। इं०–टेमेरिंडट्री Tamarind Treeलै०–टेमेरिडस इंडिकस Tamarindus Indicus

कच्ची इमली खट्टी, खारी और वातविनाशक है पित्त, कफ और रुधिरविकार करनेवाली है; पकी इमली–अग्निप्रदीपक रूखी, दस्तावर, गरम, कफ, तथा वातनाशक है ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

विवरण।

इमलीके वृक्ष बहुत बडे बडे ऊँचे सघन जंगल तथा नगरके निकट घर बाहर सर्वत्र स्थानोंमें होते हैं, पत्ते चौंटलीके समान डालियोंमें दोनों ओर बराबर लगे होते हैं, स्वादमें खट्टे होते हैं, फूल गुच्छोंमें लगे होते हैं, रंग पीला २ उनमें कुछ लाल लाल बिन्दुसी पडी होती हैं, फलियां तिरछी और लम्बी होती हैं, उनको गटारा कहते हैं, उन गटारोंपर सूखे हुए छिलके होते हैं, छिलकोंके छीलनेसे गूदा निकलता है, पर बीज उस गूदेके भीतरसे निकलते हैं, उनको चोइये कहते हैं, इमली दो प्रकारकी होती है एक लाल गूदेकी, दूसरी सफेद गूदेकी ॥

अथ अम्लवेतलः (अम्लवेत)

स्यादम्लवेतसश्चुक्रं शतवेधि सहस्रनुत्। अम्लवेतसमत्यम्लं भेदनं लघु दीपनम्। ॥ १२९ ॥ हृद्रोगशूलगुल्मघ्नं पित्तलं लोमहर्षणम्। रूक्षं विण्मूत्रदोषघ्नं प्लीहोदावर्त्तनाशनम् ॥ १३० ॥ हिक्कानाहरुचिश्वासकासाजीर्णवमिप्रणुत्। कफवातामयध्वंसि छागमांसद्रवत्वकृत्। चणकाम्लगुणं ज्ञेयं लोहसूचीद्रवत्वकृत् ॥ १३१ ॥

अम्लवेतस, चुक्र, शतवेधि, सहस्रनुत, (अम्ल, रसाम्ल, अम्लवेतस, वेतसाम्ल, अम्लसार, वेधक, भीम, भेदन, भेदी, बोधि, राजाम्ल, अम्लभेदक, अम्लांकुश, रक्तसार, फलाम्ल, अम्लनायक, सहस्रवेधि, वीराम्ल, गुल्मकेतु, वरासिध, शंखद्रावी, मांसद्रावी, वरांगी और महाक्षार) ये अमलवेंतके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-अमलवेंत। बं०-थैकड, अम्लवेतस। मा० चुका। गु०-अम्लवेद। फा०-तुर्षक। इं०-कामन सोरेल Common Soral लै०-असीडोजेफोलिया Aoido Zeyfolia

अमलवेंत–अत्यन्त खट्टा, मलभेदक, हलका और अग्निप्रदीपक है, हृदयरोग, शूल और गुल्मरोगको नाश करनेवाला है, पित्तकारक और रोमहर्षकरनेवाला है, रूक्ष, मल मूत्रके दोष, प्लीहा और उदार्वतका नाशक है, हिचकी, अफारा, अरुचि, श्वास, अजीर्ण और वमनको हरता है, कफ और वातरोग को हरनेवाला है, बकरेके मांसका गलानेवाला है जैसे चनेके खारसे लोहेकी सुई गल जाती है, उसी प्रकार इसके रससे सुई गल जाती है, चनेके क्षार सदृश गुण जानना ॥

विवरण।

अमलवेंतका वृक्ष मध्यम आकारका है, यह दो प्रकारके होते हैं एक अमलवेत, दूसरी वेती है, ये दोनों प्रकारके वृक्ष छोटे होते हैं, ये पेड बागोंमें बहुत होते हैं, फूल सफेद रंगके और फल गोल खरबूजेके समान, कच्चा फल हरा, पकनेपर पीला पड जाता है और चिकना होता है ॥

अथ वृक्षाम्लम् (कोकम)

वृक्षाम्लं तिन्तिडीकञ्च चुक्रं स्यादलम्लवृक्षकम्। वृक्षाम्लमाममम्लोष्णं वातघ्नं कफपित्तलम् ॥ १३२ ॥ पक्वन्तु गुरु संग्राहि कटुकं तुवरं लघु। अम्लोष्णं

रोचनं रूक्षं दीपनं कफवातकृत्। तृष्णाऽर्शोग्रहणीगुल्मशूलहृद्रोगजन्तुजित्॥१३३॥

वृक्षाम्ल, तिन्तिडीक, चुक्र, अम्लवृक्षक, (अम्लशाक, चुक्राल, तितिडीफल, शाकाम्ल, अम्लपूरक, पूराम्ल, रक्तपूरक, चूडाम्ल, बीजाम्ल, फलाम्लक, अम्लवृक्ष, अम्लफल, रसाम्ल, श्रेष्ठाम्ल; अत्यम्ल, अम्लबीज और चुक्रफल) ये वृक्षाम्लके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--विषांविल, कोकम। बं०--महादा। म०--आमसोल। गु०--कोकम। क०--तित्तीडीक। इं०--कोकमबटरट्री Kokam Butter tree लै०--गरसीनिया परप्यूरिया Garcinia Purpurea

कच्चा विषांविल खट्टा, गरम, वातनाशक कफ तथा पित्तकारक है। पका विषांविल-भारी, ग्राही, चरपरा, कसैला हलका, खट्टा, रुचिकारक, रूक्ष अग्निप्रदीपक, कफ तथा वात हरनेवाला है। तृषा, बवासीर, ग्रहणी, गुल्म, शूल, हृदयरोग तथा जन्तुनाशक है॥ १३२॥ १३३॥

विवरण।

विषांविलके वृक्ष गोवाकी और अधिक होते हैं। देखनेमें अत्यन्त सुन्दर और झा दार होते हैं। पत्ते लम्बे और चिकने होते हैं। शीत ऋतुमें मौर आता है और वसन्तऋतुमें फल लगते हैं। फल, नारंगीके समान होते हैं. इसके सब अंग खट्टे होते हैं॥

अथ चतुरम्लपञ्चाम्लयोर्लक्षणम्।

अम्लवेतसवृक्षाम्लबृहजम्बीरनिम्बुकैः। चतुरम्लं हि पञ्चाम्लं बीजपूरयुतैर्भवेत्॥ १३४॥

अमलवेंत, विषांविल, बडाजंभीरी, और कागजी नींबू इन चारोंको चतुरम्ल कहते हैं। और बिजौरा नींबूके मिलनेसे पञ्चाम्ल कहते हैं॥ १३४॥

अथ परिभाषा।

फलेषु परिपक्कं यद् गुणवत्तदुदाहृतम्। बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणाधिकम्। फलेषु सरसं यत्स्याद् गुणवत्तदुदाहृतम्॥ १३५॥ द्राक्षाबिल्वशिवादीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम्। फलतुल्य गुणं सर्वं मज्जानमपि निर्दिशेत्॥१३६॥ फलं हिमाग्निदुर्वातव्यालकीटादिदूषितम्। अकालजं कुभूमीजं पाकातीतं न भक्षयेत्॥ १३७॥

पाकातीतम्--पाकमतिक्रम्य स्थितम्॥

इति श्रीभावप्रकाशे फलवर्गः॥

बेलके अतिरिक्त शेष सब फल पकेही गुणकारक जानने और बेल तो कच्चा ही अधिक गुणवाला होता है। दाख बेल और हरड आदि सूखी हुई हों तो अधिक गुणदायक हैं। शेष सब फल सरसही अधिक गुणकारक हैं। जो गुण फलमें कहे हैं, वे ही गुण उसकी मीगमें जानना। जो फल (बरफ) से, अग्निसे, दूषित पवनसे, सर्पसे अथवा कीडे आदिसे दूषित हुआ हो, विना समय हुआ हो, खराब भूमिमें उत्पन्न हुआ हो, अथवा पककर बिगड़ गया हो, वह फल कदापि नहीं खाना चाहिये॥ १३५॥ १३७॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीवनीभाषाटीकायाम् आम्रादिफलवर्गः

अथ धातूपधातु-रसोपरस-रत्नोपरत्न-विषोपविषवर्गः ।

तत्र धातूनां लक्षणानि गुणाश्च ।

स्वर्णं रूप्यञ्च ताम्रञ्च रङ्गं जशदमेव च । सीसं लोहश्च सप्तैते धातवो गिरिसम्भवाः ॥ १ ॥ वलीपलितखालित्यकार्श्याबल्यजरामयान् । निवार्य देहं दधति नृणां तद् धातवो मताः ॥ २ ॥

सोनो, चाँदी, तांबा, रांगा जस्ते, सीसा और लोहा, ये सात धातु पर्वतोंमें होती हैं ॥

वली त्वचाको सुकडना कशोंका श्वेत हो जाना, बालोंका शिरसे उडजाना, पतलापन निर्बलता और बुढापाको नष्ट करके मनुष्योंके शरीरको धारण करती हैं, इस लिये ये धातु कहलाती हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ सुवर्णस्य उत्पत्तिर्नामानि लक्षणं गुणाश्च ।

मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । वसिष्ठश्चेति सप्तैते कीर्तिताःपरमर्षयः ॥ ३ ॥ पुरा निजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जितात्मनाम् । पत्नीर्विलोक्य लावण्यलक्ष्मीसंपन्नयौवनाः ॥४॥ कन्दर्पदर्पविध्वस्तचेतसो जातवेदसः । पतितं यद्धरापृष्ठे रेतस्तद्धेमतामगात् ॥ ५ ॥ कृत्रिमञ्चापि भवति तद्रसेन्द्रस्य वेधतः । स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम् ॥ ६ ॥ तपनीयं च गांगेयं कलधौतं च काञ्चनम् । चामीकरं शातकुम्भं तथा कार्त्तस्वरं च तत् ॥ ७ ॥ जाम्बूनदं जातरूपं महारजतमित्यपि । दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुंकुमप्रभम् ॥८॥ तारशुल्बोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत् ॥

सत्–उत्तमम् ॥

तच्छ्वेतं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम् दाहे छेदे सितं श्वेतं कषे त्याज्यं लघु स्फुटम् ॥ ९ ॥

दलं जोर इति लोके । स्फुट वद्घनाहतं स्फुटति ॥

सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम् । स्वादु तिक्तं च तुवरं पाके च स्वादु पिच्छिलम् ॥ १० ॥ पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृतिमतिप्रदम् । हृद्यमायुः करं कान्तिवाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत् । विषद्वयक्षयोन्मादत्रिदोषज्वरशोषजित् ॥ ११ ॥ बलं सवीर्यं हरते नराणां रोगव्रजान् पोषयतीह काये । असौख्यकृच्चापि सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणञ्च कुर्यात् ॥१२॥ असम्यङ्मारितं स्वर्णं बलं वीर्यञ्च नाशयेत् । करोति रोगान्मृत्युं च तद्धन्यद् यत्नतस्ततः ॥ १३ ॥

सोने की उत्पत्ति–मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य पुलह, क्रतु और वशिष्ठ, ये सातों मुनि परमर्षि कहाते हैं । ये जितात्मा महर्षि अपने आश्रममें रहते थे । वहां रूप लावण्य, लक्ष्मी और यौवनसपन्न इनकी स्त्रियोंको देखकर कामके बाणोंसे पीडितचित्तवाले अग्निदेवका जो वीर्य पृथ्वीपर गिरा, वह सुवर्ण होगया । पारेके वेधसे नवीन कृत्रिम सोना भी बनाते हैं ॥

स्वर्णके नाम–स्वर्ण सुवर्ण, कनक, हिरण्य, हेम हाटक तपनीय, गांगेय, कलधौत, कांचन चामीकर, शातकुम्भ, कार्त्तस्वर, जांबूनद, जातरूप, महारजत, (द्राविण, भूरिपिञ्जर, भर्म. कर्बूर, रुक्म. अष्टापद करहाटक, ऋकथ, सानसि, अकुप्य, लहात्तम, भूत्तम, पुरट, रेकन, कर्बूर, भद्र, गौरिक, चाम्पेय, भरु,

चन्द्र, कल्याण, अभ्रक, अग्निबीज, लोहबर, ऊर्ध्व, सारुक, स्पर्शमणिप्रभव, मुख्यधातु, शतखण्ड, उज्वल, मनोहर, अग्निवीर्य. अग्नि, भास्कर, पिंजान, आपिंजर, तेज, दीप्त-अग्निभ, दीप्तक, मङ्गल्य, सौमे रुक, भृंगार, जांबव, आग्नेय, निष्क, तपनीयक, अग्निशिख, चन्ड, अय, पेश, कृशन, लोह, अमृत, मरुत्तदत्त, चारुरत्न, पीतक, श्रीनिकेत, भूषणार्ह और जितने सूर्यके नाम हैं वे सब) ये सुवर्णके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी सुवर्ण, सोना। बं०--सोना । म०-सोने। गु०--सोनुं। क०--स्वर्ण। तै०--अंगार, ता० -पोन्नु। फा०--तिला अ० -जहब। इं०-गोल्ड Gold लै०--ओरम Auram

परीक्षा--जो सुवर्ण तपानेमें लाल, काटनेमें सफेद, कसौटीपर कसनेमें केशरके सदृश चांदी, तांबा, रहित, चिकना, कोमल और भारी होवे, वह सोना उत्तम, होता है ॥

जो सोना सफेद, कठोर; रूखा, खराब वर्णवाला, मलसहित, गांठके सदृश तापनेमें काटनेमें सफेद, कसनेमेंभी सफेद हलका और चोट मारनेसे फूटजाय ऐसा सुवर्ण त्यागने योग्य है। औषधमें इसे न लेना॥

गुण--सुवर्ण--शीतल, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, बलदायक, भारी और रसायन, स्वादिष्ट, कडवा. कसैला, पाकमें मीठा और पिच्छिल है। पवित्र, पुष्टिकारक, नेत्रोंको हितकारी बुद्धि, स्मरणशक्ति तथा विचारशक्तिदायक है। हृदयको प्रिय, आयुको बढ़ानेवाला कांति। तथा वाणीको स्वच्छ करनेवाला, और स्थिरदायक है। दो प्रकारके स्थावर-जंगम विष, क्षय, उन्माद, तीनों दोष, ज्वर, तथा शोषनाशक है ॥

अशुद्ध सोना--मनुष्योंके बल तथा वीर्यको हरता है। अनेक रोग उत्पन्न करके शरीरको सुखा देता है। सर्वदा दुःख करनेवाला है और मृत्यु भी कर देता है ॥

कुविधि भली भांति नहीं मारा हुआ सोना बल तथा वीर्यको नष्ट करता है। रोगोंको उत्पन्न करनेवाला और मृत्युदायक है इस कारण विधिपूर्वक मारना चाहिये ॥ ३-१३ ॥

अथरूप्यस्योत्पत्तिर्नामानिलक्षणं गुणाश्च।

त्रिपुरस्य वधार्थाय निर्निमेषैर्विलोचनैः। निरीक्षयामास शिवः क्रोधेन परिपूरितः ॥ १४॥ अग्निस्तत्कालमपतत्तस्यैकस्माद्विलोचनात्। ततो रुद्रः समभवद्वैश्वानर इव ज्वलन् ॥१५॥ द्वितीयादपतन्नेत्राद-श्रुबिन्दुस्तु वामकात्। तस्माद्रजतमुत्पन्नमुक्तकर्मसु योजयेत् ॥ १६ ॥ कृत्रिमं च भवेत्ताद्धि वंगादिरसयोगतः रूप्यं तु रजतं तारं चन्द्रकान्ति सितप्रभम् ॥ ॥ १७ ॥ गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहे छेदे घनक्षमम्। वर्णाढ्यं चन्द्रवत्स्वच्छं रूप्यं नवगुणं शुभम् ॥ १८ ॥ कठिनं कृत्रिमं रूक्षं रक्तं पीतदलं लघु। दाह-च्छेदघनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ ॥ १९ ॥ रूप्यं शीतं कषायाम्लं स्वादुपाकरसं सरम्। वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित् प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यचिराद्ध्रुवम् ॥ २० ॥ तारं शरीरस्य करोति तापं विद्धं घनं यच्छति शुष्कनाशनम्। वीर्यं बलं हन्ति तनोश्च पुष्टिं महागदान् पोषयति ह्यशुद्धम् ॥२१॥

चांदी की उत्पत्ति--त्रिपुरासुरके वध करनेको क्रोधसे परिपूर्ण श्रीमहादेवजी निर्निमेष (पलक न मारकर नेत्रोंसे उस दैत्यको देखते हुए, एक नेत्रसे तत्काल अग्नि निकली और श्रीमहादेव अग्निकी भांति प्रज्वलित हुए और दूसरे वामनेत्रसे आंसूकी बूंद गिरी, उससे चांदी उत्पन्न हुई है। चांदीको शास्त्रोक्त विधिसे उपयोग करना चाहिये। रांग आदिमें पारदके उपयोगसे कृत्रिम चांदी भी बनती है ॥

चांदीके नाम--रूप्य, रजत, तार, चन्द्रकांति, सितप्रभ, (दुर्वर्णक, श्वेत, खजूर, लोहराजक, अकुप्य, सौध, वित्रल, चन्द्रलोहराजक, शुभ्र, वसुश्रेष्ठ, रुधिर, श्वेत, शुभ्र, महातप्ररूप, चन्द्रभूति, सित, कलंधूत, इन्दु, लोहक, रौप्य, धूत, चन्द्रहास, गजरंग दुर्धर्ण रंग, बीज, कलधौत, कुप्य, रुचिर, चन्दवपु, महावसु, बाष्कल, महाधन और शुभ) ये चांदीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी चांदी, रूपा। बं०-रूप। म०-रूपें, चांदी। गु०- रूपु। क०-बेळ्ळि। तै०- एण्डी। ता०--वेळ्ळि। फा०-नुकारा। अ०--फिद्दा। इं० सिल्वर Silver लै०-आर्जेंटम् Argentum

परीक्षा-भारी, स्निग्ध, नरम, तपाने तोडने में सफेद धन की चोट को सहन करके टुकडे २ न हों, वर्णमें सुन्दर और चन्द्रमा के समान निर्मल हो यह नवगुण युक्त रूपा उत्तम होता है। इन नौ प्रकारसे चांदीकी परीक्षा करे। जोचांदी--कठोर, बनाई हुई, रूखी, लाल पीले दलवाली, हलकी तपानेमें तथा काटने कूटनेमें टुकडे २ होजाय ऐसी चांदी निषिद्ध जाननी॥

गुण--चांदी--शीतल, कसैली, खट्टी, पाकमें, रसमें मधुर, है। दस्तावर, आयुस्थापक, स्निग्ध, लेखन, वात तथा पित्तको जीतनेवाली है, प्रमेहादि रोगोंको शीघ्र नष्ट करती है। अशुद्ध चांदी--शरीरमें ताप उत्पन्न करती है और वीर्य बल तथा पुष्टताको नष्ट करती हे महान् रोगोंकी वृद्धि करके शरीरको शोषण करती है॥ १४-२१॥

अथ ताम्रस्योत्पत्तिर्नामलक्षणगुणाः।

शुक्रं यत्कार्तिकेयस्य पतितं धरणीतले। तस्मात्ताम्रं समुत्पन्नमिदमाहुः पुराविदः॥ २२॥ ताम्रमौदुम्बरं शुल्बमुदुम्बरमपि स्मृतम्। रविप्रियं म्लेच्छमुखं सूर्यपर्यायनामकम्॥२३॥ जपाकुसुमसंकाशं स्निग्धं मृदु घनक्षमम्। लौहनागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते॥२४॥ कृष्णं रूक्षमतिस्तब्धं श्वेतञ्चापि घनासहम्। लौहनागयुतञ्चेति शुल्वं दुष्टं प्रकीर्तितम्॥ २५॥ ताम्रं कषायं मधुरं च तिक्तमम्लं च पाके कटु सारकं च। पित्तापहं श्लेष्महरं च शीतंतद्रोपणं स्याल्लघु लेखनञ्च॥ २६॥ पाण्डूदरार्शोज्वरकुष्ठकासश्वासक्षयान्पीनसमम्लपित्तम्। शोथं कृमिं शूलमपाकरोति प्राहुः परे बृंहणमल्पमेतत्॥२७॥ एको दोषो विषे ताम्रे त्यसम्यङ्मारितेऽष्ट ते। दाहः स्वेदोऽरुचिर्मूर्च्छा क्लेदो रेको वमिर्भ्रमः॥ २८॥

रेकः-विरेकः।

उत्पत्ति--कार्तिकेयका शुक्र पृथ्वीपर गिरने से तांबा उत्पन्न हुआ है, यह विद्वान् कहते हैं।

नाम--ताम्र, औदुम्बर, शुल्व, उदुम्बर, रविप्रिय, म्लेच्छमुख और जितने सूर्यके नाम हैं वे सब तांबेके जानने (द्विष्ट, वरिष्ठ, कनीयस; ताम्रक, द्वयष्ट, उडुम्बर, शुल्व, औदुम्बर, मुनिपित्तल, अर्क, सूर्य, लोहितायस, लोहिताय, तपनेष्ट, अम्बक, अरविन्द, रवि, लोह, रक्त, नैपालिक, रक्तधातु, सर्वलौहपवित्र, ब्रह्मवर्चस और भासुर) ये तांबेके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी--तांबा। बं०--तामा। म०-तांबे। गु०-त्रांबा। क०--ताम्र। तै०--रागी। ता०--शेंबु। फा०--मिस। अ०- नुहास। इं०--कौपर Copper. लै०--क्युप्रम् Cuprum.

परीक्षा--जो तांबा जवाके फूलके सदृश लालवर्ण, स्निग्ध कोमल, घनचोटको सहन कर सके और लोहा तथा सीसारहित हो, वह मारनेमें उत्तम कहा है। जो तांबा काला, रूक्ष-अत्यन्त कठोर, सफेद, घनकी चोटसे टूट जाय और लोहा तथा सीसा, मिला हुआ हो, वह तांबा दुष्ट कहा है अर्थात् मारणकर्ममें त्याज्य है॥

गुण–तांबा कसैला, मधुर, कडवा, खट्टा, पाकमें चरपरा और दस्तावर है, पित्त, कफको नष्ट करनेवाला, शीतल है, (घावको भरनेवाला), हलका और लेखन है, पाण्डुरोग उदररोग- बवासीर, ज्वर, कोढ, खांसी, श्वास क्षय, पीनस अम्लपित्त, सूजन, कृमि तथा शूलको नष्ट करता है । किसी २ आचार्यके मतसे इसको बृंहण करनेवाला कहते हैं ॥

बिषमें तो केवल एकही दोष है । परन्तु उत्तम विधिसे ताम्र न मारा जायतो–दाह, पसीना, अरुचि मूर्च्छा, ग्लानि, विरेचन, वमन और भ्रम ये आठ दोष होता है॥२२–२८

अथ रंगस्य (रांगेके) नामलक्षणगुणाः

रंग वंग त्रपु प्रोक्तं तथा पिच्चटमित्यपि । खुरकं मिश्रकं चापि द्विविधं वंगमुच्यते ॥ २९ ॥ उत्तमं खुरकं तत्र मिश्रकं त्ववरं मतम् । रंग लघु सरं रूक्षमुष्णं मेहकफक्रिमीन् । निहन्ति पाण्डुं सश्वासं चक्षुष्यं पित्तलं मनाक् ॥ ३० ॥ सिंहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वंगोऽखिलमेहवर्गम् । देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥३१॥

नाम–रंग, वंग, त्रपु, पिच्चट, स्वर्णज, (नागजीवन, मृदंग, गुरुपत्र. तमर, नागज, कस्तूरी, आलमिक, सिंहल, चवेत, नाग, त्रपुष आक, पूतिगन्ध और चिप्पट) ये रांगेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--रांगा, वंग । बं०--रांग, वँग । म०–कथील । गु०-कथीर । क०--तवर । तै०–तग, रमु । ता०--तगरम् । फा० -अरवीज । अ०-रुसास । इं०--टिन् Tin. लै०–ष्टन्नम् Stannum.

लक्षण--रांगा, खुरक, और मिश्र इस भांति दो प्रकारका है । इनमें खुरक रांगा उत्तम होता है और मिश्रक अधम होता है ॥

गुण- रांगा -हलका, दस्तावर, रूखा; गरम प्रमेह, कफ नेत्रोंको हितकारी, किंचित् पित्तकारक, कृमि, पाण्डु तथा श्वासको नष्ट करता है । जिस प्रकार सिंह हाथियोंको मार डालता है, उसी प्रकार शुद्ध रांगा सम्पूर्ण प्रमेहोंको नष्ट करता है । देहमें सुख करता है। इन्द्रियोंको बलवान करता है और अवश्य शरीरमें पुष्टि देता है ॥ २९–३१ ॥

अथ जसदम् (जस्ता)

जसदं रंगसदृशं रीतिहेतुश्च तन्मतम् । जसदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत् । चक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डुं श्वासं च नाशयेत् ॥ ३२ ॥

जसद रङ्गसदृश और रीतिहेतु ये जस्तेके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी--जस्ता । गु०--जसत । बं०--दस्ता । म०- जस्त । खर्परं । ता०–तुत्तिनागम् । फा०-रुएतुतिया । अ०--शबहा । इं०--जिंक Zinc. लै०--जिंकम् Zincum,

जस्ता--कसैला, कडवा, और शीतल है। कफ और पित्तको हरता है । नेत्रोंको परम हितकारी है । प्रमेह पाण्डु और श्वासको नष्ट करता है ।

अथ सीसस्य (शीशेकी) उत्पत्तिर्नामानि गुणाश्च

दृष्ट्वा भोगिसुतां रम्यां वासुकिस्तु मुमोच यत् । वीर्यं जातस्ततो नागः सर्वरोगापहो नृणाम् । सीसं ब्रध्नं च वप्रं च योगेष्टं नागनामकम् ॥ ३३ ॥

नागनामकम्–नागां भुजङ्ग इत्यादि ॥

सीसं रंगगुणं ज्ञेयं विशेषान्मेहनाशनम् ॥३४॥ नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति । वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति मृत्युं च नाशयति सन्ततसेवितः सः ॥ ३५ ॥ पाकेन हीनौ किल वंगनागौ कुष्ठानि गुल्मांश्च तथाऽतिकष्टान् । कण्डूं प्रमे-

हानिलसादशोथभगन्दरादीन् कुरुतः प्रयुक्तौ ॥ ३६ ॥

उत्पत्ति-भोगिसर्पकी रमणीय कन्याको देखकर वासुकिनागका जो वीर्य गिरा है, उससे सीसा उत्पन्न हुआ है और वह सीसा मनुष्योंके सर्वरोगोंको दूर करता है ॥

नाम-सीसा, व्रध्न, वप्र, योगेष्ट और नागके जितने नाम हैं वे सब, (सुवर्णक, नीच, पिष्ट, सिन्दूर, वारण; सीसक, सीसपत्रक, नाग, गण्डूपदभव, वर्द्ध स्वर्णारि, यवनष्ट, चीर, व्रन्न, पिच्चट, सुवर्णारि, त्रपु, वध्रक, महाबल यमुनेष्टक, बहुमल, श्वेतरंजन, जड, भुजङ्गम, उरग, कुरंग, परिपिष्टक, मृदुकृष्णायस, पद्म, तारशुद्धिकर, शिरावृल, वयोरंग, चीनपिष्ट-चीतरंग, धातुमल और पार्वत) ये सीसेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सीसा । बं०-सीसे, सीसा । म०-शिसें । गु०-शीसुं । क०-सीसा । तै०-शिशू । ता०-ईयम् । फा०-सुर्ब । अ०-रुसासुल । इं०, लेड Lead. प्लंबम् Plumbum.

गुण-सीसेमें रांगेके सदृश गुण हैं, विशेष करके प्रमेहनाशक है । रोगोंको नष्ट करता है, जीवनको बढाता हैं । अग्नि प्रदीप्त होती है, कामदेवका बल बढाता है और मृत्यु दूर होती है । यदि निरन्तर सेवन किया जावे ॥

यदि सीसा और रांगा कच्चा खानेमें आवे तो कोढ, अत्यन्त दुःखदायी गुल्म, खुजली, प्रमेह, वातकी पीडा, सूजन और भगन्दर आदि रोगोंको करता है ॥ ३३-३६ ॥

अथ लोहस्योत्पत्तिर्नाम लक्षणं गुणाश्च ।

पुरा लोमिनदैत्यानां निहतानां सुरैर्युधि । उत्पन्नानि शरीरेभ्यो लोहानि विविधानि च ॥ ३७ ॥ लोहोऽस्त्रि शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्ड कालायसायसी । गुरुता दृढतोत्क्लेदः कश्मलं दाहकारिता ॥ ३८ ॥ अश्मदोषः सुदुर्गन्धो दोषाः सप्तायसस्य तु । लोहं तिक्तं सरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥ ३९ ॥ रूक्षं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् । कफं पित्तं गरं शूलं शोथार्शः प्लीहपाण्डुताः । मेदोमेहक्रिमीन्कुष्ठं तत्किट्टं तद्वदेव हि ॥४०॥ पाण्डुत्वकुष्ठामयमृत्युदं भवेद् हृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीश्च । नानारुजानाश्च तथा प्रकोपं करोति हृल्लासमशुद्धलोहम् ॥४१॥ जीवहारि मदकारि चायसं देहशुद्धिनुदसंस्कृतं ध्रुवम् । पाटवं न तनुते शरीरके दारुणां हृदि रुजाश्च यच्छति ॥ ४२ ॥ कूष्माण्डं तिलतैलश्च माषान्नं राजिकां तथा । मद्यमम्लरसं चापि त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥ ४३ ॥

उत्पत्ति-पहिले देवताओंके युद्धमें मरे हुए लोमिन नामक दैत्योंके शरीरमेंसे अनेक प्रकारके लोह उत्पन्न हुए हैं ॥

नाम-लोह(पुँल्लिंग और नपुंसकलिंग)शस्त्रक, तीक्ष्ण,पिंड,कालायस, आयस,(तीव्र लोहकांतक कान्त, लोह, शस्त्रालय, शस्त्र, शम्बक, पित्त, पित्ताशय, शच, मुण्डज, निशीत, खङ्ग, अयस्, कान्त, चित्रायस और चालज) ये लोहेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-लोहा । बं०-लौह । म०-लोखण्ड । गु०-लोढुं । क०-अयस्कान्त । तै०-इनुमु । ता०-इरुंबु । फा०- आहन् । अ०-हदीद । इं०-आइरन स्टील Iron Steel लै०-फेरम् Ferrum

लक्षण-लोहेमें भारीपन, दृढता, ग्लानिकारकता, मूर्च्छा दाहकारकता, पथरदोष और बहुत दुर्गन्धता ये सात दोष हैं ॥

गुण-लोहा-कडवा, और दस्तावर, शीतल, मधुर, कसैला, भारी है । रूक्ष आयुदाता, नेत्रोंको हितकारी, लेखन, वातकारक, है । कफ, पित्त, विष, शूल, सूजन, बवासीर, प्लीहा, पाण्डु, मेदरोग, प्रमेह, कृमि तथा कोढको नष्ट करता है ॥ लोहेकी कीट (मैल)में भी येही गुण हैं ॥

जो अशुद्ध लोहा खानेमें आवे, तो पाण्डुरोग कोढ, मृत्यु हृदयके रोग शूल, पथरी, हृल्लास और अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करताहै॥

भली भांति न शुद्ध किया हुआ लोहा-- जीवनको हरनेवाला मदकारक, देहकी स्वच्छताको नष्ट करनेवाला, सामर्थ्य हरनेवाला और हृदयमें दारुण पीडा उत्पन्न करता है ॥

लोहा-सेवन करनेवालोंको--पेठा, तिलका तेल, उडद, राई, मद्य (दारु) और खटाई ये त्यागने चाहिये ॥ ३७--४३ ॥

अथ सारलोहस्य लक्षणं गुणाश्च।

क्षमाभृच्छिखराकाराण्यङ्गान्यम्लेन लेपयेत्। लोहे स्युर्यत्र सूक्ष्माणि तत्सारमभिधीयते ॥ ४४ ॥ लोहं साराह्वयं हन्याद्ग्रहणीमतिसारकम्। अर्द्धं सर्वाङ्गजं वातं शूलं च परिणामजम्। छर्दिं च पीनसं पित्तं श्वासं कासं व्यपोहति॥४५॥

लक्षण -जो लोहेके कठोर बडे बड़े टुकडोंको (खट्टे) रससे लेप करनेपर टुकडोंपर पर्वताकार जोहर सूक्ष्म २ हो जाय वह लोहा सारलोह कहाता है ॥

गुण--सारलोह--संग्रहणी, अतिसार,अर्द्धांगवात, सर्वांगवात, परिणामज शूल, वमन, पीनस, पित्त, श्वास तथा खांसीको अवश्य नष्ट करता है ॥४४॥४५॥

अथ कान्तलोहस्य लक्षणं गुणाश्च।

यत्पात्रे न प्रसरति जले तैलबिन्दुः प्रतप्ते हिङ्गुर्गन्धं त्यजति च निजं तिक्ततां निम्बवल्कः। तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमिं कृष्णाङ्गः स्यात्सजलचणकः कान्तलोहं तदुक्तम् ॥४६॥ गुल्मोदरार्शःशूलाममामवातं भगन्दरम्। कामलाशोथकुष्ठानि क्षयं कान्तमयो हरेत् ॥ ४७ ॥ प्लीहानमम्लपित्तञ्च यकृच्चापि शिरोरुजम्। सर्वांन्रोगान्विजयते कान्तलोहं न संशयः। बलं वीर्यं वपुःपुष्टिं कुरुतेऽग्निं विवर्द्धयेत् ॥ ४८ ॥

लक्षण--जिस लोहेके पात्रमें उष्ण जल भरकर तेलकी बूँद डालनेसें नहीं फैलती, तथा जिसमें तपानेसे हींग अपनी गन्ध त्याग दे। वैसे ही नीमका छिलका रखनेसे कडवेपनको त्याग दे और दूध गरम करनेसे शिखराकार उफान ऊपरको खडा हो जाय तथा भूमिमें न गिरे और जिस पात्रमें चने भिगोनेसे काले हो जांय उसको कांतलोह कहते हैं ॥

गुण--कांतलोहा -गुल्म और उदररोग, बवासीर, आम, आमवात, भगंदर, कामला, शोथ, कुष्ठ, क्षयको हरता है। प्लीहा, अम्लपित्त, यकृत् और शिरके रोग इत्यादि सब रोगोंको निःसन्देह नष्ट करता है। बल वीर्य और शरीरमें पुष्टता करता है जठराग्निकी वृद्धि करता है ॥ ४६॥४८॥

अथ किट्टी।

ध्मायमानस्य लोहस्य मलं मण्डूरमुच्यते। लोहसिंहानिका किट्टी सिंहानश्च निगद्यते। यल्लोहं यद्गुणं प्रोक्तं तत्किट्टमपि तद्गुणम् ॥ ४९ ॥

लोहेको अग्निमें धमानेसे जो मैल निकलता है उसको मण्डूर, लोहसिंहानिका, किट्टी और सिंहान कहते हैं। गुण--जिस लोहमें जो गुण हैं, वेही उसकी कीटमें भी हैं ॥ ४९ ॥

अथोपधातूनां लक्षणं गुणाश्च।

सप्तोपधातवः स्वर्णमाक्षिकं तारमाक्षिकम्। तुत्थं कांस्यं च रीतिश्च सिन्दूरश्च शिलाजतु ॥ ५० ॥

उपधावतः-गौणा धातवः ॥

उपधातुषु सर्वेषु तत्तद्धातुगुणा अपि। सन्ति किं तेषु तेऽत्रोनास्तत्तदंशाल्पभावतः ॥ ५१ ॥

सोनामाखी, रूपामाखी, तूतिया, कांसी, पीतल, सिन्दूर और शिलाजीत ये सात उपधातु हैं ॥

गुण-सम्पूर्ण उपधातुओंमें उसी उसी धातु के गुण हैं। परन्तु उसमें धातुओंका अंश अल्प होनेसे हीन गुणवाली होती हैं॥५०॥५१

तत्र सुवर्णमाक्षिकस्य नामानि गुणाश्च ।

स्वर्णमाक्षिकमाख्यातं तापीजं मधुमाक्षिकम् ॥ ५२ ॥ ताप्यं माक्षिकधातुश्च मधुधातुश्च स स्मृतः । किञ्चित्सुवर्णसाहित्यात् स्वर्णमाक्षिकमीरितम् ॥ ५३ ॥ उपाधातुः सुवर्णस्य किञ्चित्स्वर्णगुणान्वितम् । तथा च काञ्चनाभावे दीयते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ ५४ ॥ किन्तु तस्यानुकल्पत्वात्किञ्चिदूनगुणास्ततः । न केवलं स्वर्णगुणा वर्त्तन्ते स्वर्णमाक्षिके ॥ ५५ ॥ द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणा यतः। सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम् ॥ ५६ ॥ चक्षुष्यं वस्तिरुक्कुष्ठपाण्डुमेहविषोदरान् । अर्शः शोथं विषं कण्डूं त्रिद्रोषमपि नाशयेत् ॥ ५७ ॥ मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान् सकुष्ठान् । तथैव मालांव्रणपूर्विकां च करोति तापीजमशुद्धमेतत् ॥ ५८ ॥

स्वर्णमाक्षिक, तापीज, मधुमाक्षिक, ताप्य, माक्षिक, धातु, मधुधातु, (धातुमाक्षिक, ताप्यक, स्वर्णाह्वय, स्वर्णमाक्षिक, तापिच्छ, आपीत पीतमाक्षिक, आवर्त्त, क्षौद्रधातु, माक्षिकधातु, कदम्ब, चक्रनाभ, तापिञ्ज, स्वर्णवर्ण, हेमद्युति) ये सोनामाखीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सोनामाखी । बं०-स्वर्णमाक्षिक । म०-दगडी सोनामुखी । गु०-सोनामखी। क०-धातु माक्षिक । तै०-ता०-स्वर्णमाखी। अ०-मुर्कशीशाजहबी । इं०-आयर्न पाईराइटेटीस Iron Pyrites लै० फेरीसल्फ्यूरटं Ferr]sulfuretum

इसमें किंचित् सुवर्ण मिला होता है। इस कारण इसको स्वर्णमाक्षिक कहते हैं। सोनामाखी सोनेकी उपधातु है, इससे इसमें किंचित् सुवर्णके भी गुण रहते हैं, इसलिये सोनेके अभावमें देते हैं, इससे इनमें सोनेसे कुछ हीन गुण हैं। सोनामाखीमें केवल सोनेके गुण रहते हैं, यह नहीं किन्तु उसमें अन्यपदार्थोंका संसर्ग होनेसे अन्य गुणभी रहते हैं।

गुण-सोनामाखी-स्वादु, कडवी वीर्यवर्द्धक, रसायन, नेत्रोंको हितकारी और वस्तिरोग, नाशक है। कुष्ठ पाण्डु, प्रमेह, विष, उदररोग बवासीर, सूजन, खुजली और त्रिदोषनाशक हैं। अशुद्ध सोनामाखी अग्निकी मंदता, बल की, विष्टम्भिता, नेत्ररोग, कोढ और अनेक व्रण (घाव) उत्पन्न करती है ॥५२-५८॥

अथ तारमाक्षिकस्य नामगुणाः ।

तारमाक्षिकमन्यत्तु तद्भवेद्रजतोपमम् । किञ्चिद्रजतसाहित्यात्तारमाक्षिकमीरितम् ॥ ५९ ॥ अनुकल्पतया तस्य ततो हीनगुणाः स्मृताः । न केवल रूप्यगुणायतः स्यात्तारमाक्षिकम् ॥ ६० ॥ स्वादु पाके रसे किञ्चित्तिक्तं वृष्यं रसायनम् । चक्षुष्यं वस्तिरुक्कुष्ठपाण्डुमेहविषोदरम् । अर्शः शोथं क्षयं कण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥ ६१ ॥ मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान् । तथैव मालां व्रणपूर्विकाञ्च करोति तापीजमिदञ्च तद्वत् ॥ ६२ ॥

रूपामाखी चांदीके सदृश होती है और उसमें किंचित् चांदी रहती है, इससे रूपामाखी कहलाती है।

नाम- तारमाक्षिक, (विमल) माक्षिकश्रेष्ठ, श्वेताक्ष, रूपमाक्षिक और रौप्यमाक्षिक) ये रूपमाखीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-रूपामाखी। बं०-रौप्यमाक्षी। म०ता०-रौप्यमाक्षिक। गु०-रूपामाखी। क०-यरडुमाक्षिक। तै०-रूपामाखी। अ०-मुर्केशाशाफिद्दा॥

चांदीके अभावमें रूपामाखी देते हैं। इस कारण यह चांदीके अभावमें हीनगुण है। रूपमाखीमें केवल चांदीकेही गुण हैं, ऐसा नहीं किन्तु अन्य गुण भी रहते हैं॥

गुण-रूपामाखी-पाकमें मीठी, रसमें किंचित् कड़वी, वीर्यवर्धक, रसायन, नेत्रोंको हितकारी वास्तिरोग, कोढ, पाण्डु, प्रमेह, विष, उदररोग, बवासीर, सूजन, क्षय, खुजली तथा त्रिदोषनाशक है॥

अशुद्ध रूपामाखी-मंदाग्नि बलकी हानि, विष्टंभिता, मूत्ररोग, कोढ, गंडमाला और अनेक व्रणोंको उत्पन्न करती है॥ ५९-६२॥

अथ तुत्थम् (तूतिया)।

तुत्थं वितुन्नकं चापि शिखिग्रीवं मयूरकम्। तुत्थं ताम्रोपधातुर्हि किञ्चित्ताम्रेण तद्भवेत्॥ ६३॥ किञ्चित्ताम्रगुणं तस्माद्वक्ष्यमाणगुणं च तत्। तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु॥ ६४॥ लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत्। विषाश्मकुष्ठकण्डूघ्नं खर्परं चापि तद्गुणम्॥ ६५॥

तुत्थ, वितुन्नक, शिखिग्रीव मयूरक, मूषातुत्थ, कांस्यनील, तुत्थक, शिखिकंटक, हरिताश्म, नीलांगज मयूरग्रीवक, ताम्रगर्भ, अमृतोद्भव, मयूरतुत्थ, भृतकशिखिकण्ठ, नील, तुत्थांजन, हेमसार, मृताभिद, और ताम्रोप धातु) ये तूतियाके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-तूतिया, नीलाथोथा। बं०-तूँतिया। म०मोरचूत। गु०- मोरथुथु। क०-मयूरतुत्थ, तै०-मेलतुतु। ता०-मथिल्लु तुत्तम्। फा०-दूदिया। अ०-तूतियाअकजर। इं०-सल्फेट आफ कॉपर Sulphate of Coppr. लै०-क्युप्रेसल्फास Cupresulphas.

नीलाथोथा-तांबेकी उ धातु है। उसमें कुछ तांबेका योग होता है, इसमें कुछ तांबेके गुण रहते हैं और अन्य भी गुण रहते हैं॥

गुण-नीलाथोथा चरपरा, खारा, कसैला, वमनकारक, हलका, लेखन, दस्तावर, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, कफ, पित्त, विष पथरी, कोढ तथा खुजलीको दूर करता है। जो इसमें गुण हैं, वेही खपरियामें भी हैं॥ ६३-६५॥

अथ कांस्यम् कांसी)।

ताम्रत्रपुजमाख्यातं कांस्यं घोषं च कंसुकम्। उपधातुर्भवेत्कांस्यं द्वयोस्तरणिरङ्गयोः॥ ६६॥ कांस्यस्य तु गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशा जनैः। संयोगजप्रभावेण तस्यान्येऽपि गुणाः स्मृताः॥ ६७॥ कांस्यं कषायं तिक्तोष्णं लेखनं विशदं सरम्। गुरु नेत्रहितं रूक्षं कफपित्तहरं परम्॥ ६८॥

ताम्रत्रपुज, कांस्य, घोष, कंसुक, विद्युत्प्रिय, कंस ताम्रार्द्ध, वंगशुल्बज, कंसास्थि, प्रकाश, घण्टाशब्दअसुराह्वय, सौराष्ट्रक, कांसीय, घोरपुष्प, वह्निलोहक, दीप्तलोहक, घोरपुष्प, दीप्तलोह, कांसक, कांस और दीप्ति) ये कांसेके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-कांसी। बं०-कासा। म०-कासे। गु०-कांसु। क०-कंचु। तै०-कंचु। वेंगलम्। फा०-रोईन। अ०-तालिकून। इं०-वेलमेटल Bellmetal लै०-ब्रौंज Bronze.

कांसी-तांबा और रांगा दोनोंके मिलनेसे बनती है और इनकी ही उपधातु है। जो तांबेमें और रांगेमें गुण रहते हैं, वेही गुण कांसेमें हैं। संयोगके प्रभावसे इसमें अन्य गुण भी हैं॥

गुण-कांसी-कसैली, कडवी, गरम लेखन, विशद दस्तावर, भारी, नेत्रोंको हितकारी, रूखी, और कफपित्तको अत्यन्त नष्ट करती हैं॥ ६६-६८॥

अथाऽऽरकूटम् (पीतल)।

पित्तलं त्वारकूटं स्यादरो रीतिश्च कथ्यते। राजरीतिर्ब्रह्मरीतिः कपिला पिङ्गलाऽपि च॥ ६९॥ रीतिरप्युपधातुः स्यात्ताम्रस्य जसदस्य च। पित्तलस्य गुणाः ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशा जनैः॥७०॥ संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः। रीतिकायुगलं रूक्षं तिक्तञ्च लवणं रसे। शोधनं पाण्डुरोगघ्नं कृमिघ्नं नातिलेखनम्॥ ७१॥

पित्तल, आरकूट, आर, रीति, राजरीति, ब्रह्मरीति, कपिला, पिंगला (कपिलोह, सुवर्णकरिरी पीतलोह, सुलोक, ब्राह्मी राजा, महेश्वरी, पथिकाबेर, द्रव्यदारु, रीति, मिश्र, क्षुद्रसुवर्ण, सिंहल, पीतनक, लोहितक, पिंगललोह, पीतक, पाकतुण्डी, राजपुत्री, ब्रह्माणी, हरिलोह और पिंग) ये पीतलके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–पीतल बं०–पितल। म०–पितल। गु०–पीतल। क०–पित्ताले। तै०- इत्तडी। ता० पित्तैळ। फा० विरंज। इं०ब्रास Brsss.

जिसे तपाकर कांजीमें डालनेसे ललाई झलके, वह पीतल राजरीति कहलाती है और जिसमें पीलापन झलके, वह पीतल ब्रह्मरीति कहाती है॥

गुण–पीतल–तांबा और जस्ताके मिलनेसे बनता है, यह तांबा और जस्तकी उपधातु है, इस कारण इसमें तांबे और जस्तके सदृश गुण हैं, संयोगके प्रभावसे उसमें अन्य गुण भी हैं. दोनों जातिका पीतल--रूखा, कडवा, रसमें खारा, शोधक, अत्यन्त लेखन नहीं और पांडु रोग तथा कृमिरोगको नष्ट करता है॥६–९७१

अथ सिन्दूरम्।

सिन्दूरं रक्तरेणुश्च नागगर्भश्च सीसजम्। सीसोपधातुः सिन्दूरो गुणैस्तत्सीसवन्मतम्॥ ७२॥ संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृता। सिन्दूरमुष्णं वीसर्पकुष्ठकण्डूविषापहम्। भग्नसन्धानजननं व्रण शोधनरोपणम्॥ ७३॥

सिन्दूर, रक्तरेणु, नागगर्भ, सीसज, सीसो, पधातु, (नागजंबीर, रक्तसन्ध्यग, शिव, रक्तवालुका, रंगज, वगज, शृंगारभूषण, नागरक्त-नागसम्भव, रक्तचूर्ण, रक्तवालुक, रक्तशासन, आलदर्शन, नागरेणु, सीमन्तक, शोण, वारि, राज, गणेशभूषण, संध्याराग, शृंगारकसौभाग्य, अरुण, मंगल्य) ये सिन्दूरके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दीदूसिन्दूर। बं०--सिन्दूर। म०--शेंदुर। तै०- क०--ता०- सिन्दूरम्। फा०- सिरिन्ज। इं०--ओरिनोटो Orinotto. लै०- प्लम्बस् ओकसाइ Plumbum Ouxaidim.

सिन्दूर--सीसेकी उपधातु हैं, इसकारण इसमें सीसेके सदृश गुण हैं, संयोगके प्रभावसे अन्य गुण भी हैं। सिंदूर--गरम, टूटे हुएको जोडनेवाला व्रणशोधक, घावको भरनेवाला विसर्प, कोढ, खुजली तथा विषको नष्ट करता है॥ ७२॥ ७३॥

अथ शिलाजतु।

तदुत्पत्तिर्नामलक्षणगुणाः।

निदाघे घर्मसन्तप्ता धातुसारं धराधराः। निर्यासवत्प्रमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु कीर्तितम्॥ ७४॥ सौवर्ण राजतं ताम्रमायसं तच्चतुर्विधम्। शिलाजत्वद्रिजतु च शैलनिर्यास इत्यपि॥ ७५॥ गैरेयमस्मजं चापि गिरिजं शैलधातुजम्। शिलाजं कटु तिक्तोष्णं कटु पाकं रसायनम्॥ ७६॥ छेदि योगवहं हन्ति कफमेदोऽश्मशर्कराः। मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं वातार्शांसि च पाण्डुताम्॥ ७७॥ अपस्मारं तथोन्मादं शोथकुष्ठोदरक्रिमीन्। सौवर्णं तु जपापुष्पवर्णं भवति तद्रसात्॥ ७८॥ मधुरं कटु तिक्तं च शीतलं

कटुपाकि च। राजतं पाण्डुरं शीतं कटुकं स्वादुपाकि च ॥ ७९ ॥ ताम्रं मयूरकण्ठाभं तीक्ष्णमुष्णं च जायते। लोहं जटायुपक्षाभं तत्तिक्तं लवणं भवेत्। विपाके कटुकं शीतंसर्वश्रेष्ठमुदाहृतम्॥८०॥

उत्पत्ति-गरमियोंमें पर्वत धूपसे सन्तापित होकर धातुओंके सारको गोंदके सदृश छोडते हैं, शिलाजीत कहते हैं। सोनेका, चांदीका, तांबेका और लोहेका इस भांति चार प्रकारका शिलाजीत होता है ॥

नाम-शिलाजतु, अद्रिजतु, शैलनिर्यास, गैरेय, अश्मज, गिरिज, शैलधातुज, (अर्थ्य, शिलाज, अगज शैल, शैलेय, शीतपुष्पक, शिलाव्याधि, अश्मोत्थ, अश्मलाक्षा, अश्मजतुक और जत्वश्मक) ये शिला जीतके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी-म--ता० शिलाजीत। क०-कलुवेचरु। इं०-आस्फोल्ट Aspholt. लै०-आस्फल्टम् पंजाबिनम् Alphaltmu Punjabinum.

शिलाजीत-चरपरा, कडवा, गरम, पाकमें चरपरा, रसायन, मलको छेदन करनेवाला, योगवाही और कफ मेद, पथरी, शर्करा· मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, वादी, बवासीर, पाण्डु, अपस्मार, (मृगी), ऊन्माद, सूजन, उदररोग तथा कृमिनाशक हैं ॥

सोनेका शिलाजीत-जपाके फूलके सदृश लाल वर्ण वाला होता है और वह रसमें मीठा, चरपरा, कडवा, शीतल तथा पाकमें चरपरा होता है।

चांदीका शिलाजीत-सफेद होता है, वह शीतल चरपरा और पाकमें मधुर है।

तांबेका शिलाजीत-मोरके गलेके सदृशवर्णवाला होता है, वह तीक्ष्ण और गरम होता है।

लोहेका शिलाजीत-गिद्धके पंखोंके सदृश वर्णवाला होता है और वह कडवा, खारा पाकमें चरपरा, शीतल तथा सबमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ७४-८० ॥

अथ रसशब्दस्य निरुक्तिः।

रसायनार्थिभिर्लोकैः पारदो रस्यते यतः। ततो रस इति प्रोक्तः स च धातुरपि स्मृतः ॥ ८१ ॥

रसायनकी इच्छा करनेवाले लोग इस पारेका भक्षण करते हैं इससे पारा रस कहाता है और इसे धातु भी कहते हैं ॥ ८१ ॥

अथ पारदस्योत्पत्तिर्लक्षणं नामानि गुणाश्च।

शिवाङ्गात् प्रच्युतं रेतः पतितं धरणीतले। तद्देहसारजातत्वाच्छुक्लमच्छमभूच्च तत् ॥ ८२ ॥

उत्पत्ति-शिवके अंगसे स्खलित हुआ वीर्य पृथ्वीपर गिरा, उनकी देहका सार होनेसे सफेद और स्वच्छ हुआ है, वह पारा कहाता है ॥ ८२ ॥

क्षेत्रभेदेन विज्ञेयं शिववीर्यं चतुर्विधम्। श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं तत्तु भवेत्क्रमात् ॥ ८३ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च खलु जातितः। श्वेतं शस्तं रुजां नाशे रक्तं किल रसायनम्। धातुवादे तु तत्पीतं खे गतौ कृष्णमेव च ॥ ८४ ॥

लक्षण-क्षेत्रके भेदसे यह पारा सफेद, लाल पीला और काला ऐसे चार प्रकारका जानना। सफेद पारा ब्राह्मणजातिका, लाल क्षत्रियजातिका, पीला वैश्य जातिका और काला शूद्रजातिका है ॥

सफेद पारा रोगोंको नष्ट करनेमें उत्तम है। लाल पारा रसायन है, पीला पारा धातुवाद (सोना चाँदी आदि बनाने) में उत्तम है और काला पारा आकाशमें चलनेकी गति देनेमें उत्तम है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

पारदो रसधातुश्च रसेन्द्रश्च महारसः। चपलः शिववीर्यं च रसः सूतः शिवाह्वयः ॥ ८५ ॥ पारदः षड्रसः स्निग्धस्त्रिदोषघ्नो रसायनः ॥ ८६ ॥ योगवाही

महावृष्यः सदा दृष्टिबलप्रदः । सर्वामयहरः प्रोक्तो विशेषात् सर्वकुष्ठनुत् ॥८७॥

नाम-पारद, रसधातु, रसेन्द्र, महारस, चपल, शिववीर्य, रस, सूत और जितने महादेवके नाम हैं वे सब, (रसराज, रसनाथ, महातेज, रसलेह, रसोत्तम, सूतराट्, जैत्र, शिवबीज, शिव, अमृत, लोकेश, दुर्द्धर, प्रभु, रुद्रज, हरतेज, अचिन्तज, अवित्तज, खेचर, अमर, देहद, मृत्युनाशक, स्कन्द, स्कन्दांशक, देव, दिव्यरस, रसायन श्रेष्ठ यशोद, सूतक, सिद्धधातु, पारद, रजस्वल, मूर्ति, पार लोहेश, दुर्धर, मृत्युनाशन, हेमनिधि, त्रिनेत्र, स्वामी और रोषण) ये पारेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-प्र०-पारा । बं०-पारद । गु०-पारो । क०ता-पादरसम । तै०-पादरसमु । फा०-सिमाव । अ०-जीवक । इं०मर्क्युरी Mercury लै०-हैड्राजिरम् Hydrogyum.

गुण-पारा-छः रसयुक्त, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, योगवाही, अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, सर्वदा नेत्रोंको बलदायक, सम्पूर्ण रोगनाशक और विशेष करके सर्व प्रकारके कोढोंको नष्ट करता है ॥ ८५-८७ ॥

स्वस्थो रसो भवेद्ब्रह्मा बद्धो ज्ञेयो जनार्दनः । रञ्जितः कामितश्चापि साक्षाद्देवो महेश्वरः ॥ ८८ ॥ मूर्च्छितो हरति रुजं बन्धनमनुभूय खे गतिं कुरुते । अजरीकरोति हि मृतः कोन्यः करुणाकरः सूतात् ॥ ८९ ॥ असाध्यो यो भवेद्रोगो यस्य नास्ति चिकित्सितम् । रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जरवाजिनाम् ॥ ९० ॥ मलं विषं वह्निगिरित्वचापलं नैसर्गिकं दोषमुशन्ति पारदे । उपाधिजौ द्वौ त्रपुनागयोगजौ दोषौ रसेन्द्रे कथितौ मुनीश्वरैः ॥ ९१ ॥ मलेन मूर्च्छा मरणं विषेण दाहोऽग्निना कष्टतरः शरीरे । देहस्य जाड्यं गिरिणा सदा स्याच्चाञ्चल्यतो वीर्यहृतिश्च पुंसाम् ॥ ९२ ॥ वङ्गेन कुष्ठं भुजगेन षण्ढो भवेदतोऽसौ परिशोधनीयः ॥ ९३ ॥ वह्निर्विषं मलं चेति मुख्या दोषास्त्रयो रसे । एते कुर्वन्ति सन्तापं मृतिं मूर्च्छां नृणां क्रमात् ॥ ९४ ॥ अन्येऽपि कथिता दोषा भिषग्भिः पारदे यदि । तथाऽप्येते त्रयो दोषा हरणीया विशेषतः ॥ ९५ ॥ संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम् । देहस्य नाशं विदधाति नूनं कष्टांश्च रोगान् जनयेन्नराणाम् ॥ ९६ ॥

स्वस्थ पारा-ब्रह्मारूप, बँधाहुआ पारा विष्णुरूप, रंजित और कामित पारा साक्षात् महेश्वररूप है ॥ मूर्च्छित पारा रोगोंको नष्ट करता है, बद्ध पारा आकाशमें चलनेकी शक्ति देता है और मारा हुआ पारा प्राणीको अजर अमर करता है।इस कारण पारेसे अन्य कारुणाकारक कौन है ? मनुष्य, हाथी और घोडोंके जो रोग असाध्य हैं अथवा जिन रोगोंकी चिकित्सा नहीं होसकती, उन रोगोंको पारा नष्ट करता है । मल, विष, अग्नि, गिरिदोष और चपलता ये दोष पारेमें स्वाभाविक हैं । राँगेके तथा शीशेके योगसे अन्य दो आगन्तु दोष भी हैं, ऐसे सात दोष मुनियोंने कहे हैं । मलसे मूर्च्छा, विषसे मृत्यु, अग्निसे शरीरमें महाभयंकर दाहा, गिरिदोषसे सर्वदा देहमें जढता, चपलतासे पुरुषोंका वीर्य नष्ट करता है, राँगेके योगसे कोढ होता है और शीशेके योगसे नपुंसकता भी होती है, इस कारण पारेको शुद्ध करना चाहिये । अग्नि, विष और मल ये तीन दोष पारेमें मुख्य हैं और ये दोष क्रमसे मनुष्योंके सन्ताप, मरण तथा मूर्च्छा करते हैं । यद्यपि वैद्योंने पारेमें और भी दोष कहे हैं तो भी विशेष करकेये तीन दोष अवश्य नष्ट

करने चाहिये। जो संस्काररहित पारेका सेवन करता है, उसे वह इतनी बाधा करता है कि, देहका नाश और महाभयंकर रोग अवश्य उत्पन्न होते हैं ॥ ८८-९६ ॥

अथ उपरसानां लक्षणम्।

गन्धो हिङ्गुलमभ्रतालकशिलाः स्रोतोऽञ्जनं टङ्कणं राजावर्तकचुम्बकौ स्फटिकया शङ्खः खटी गैरिकम्। काशीशं रसकं कपर्दसिकताबोलाश्च कंकुष्ठकं सौराष्ट्री च मता अमी उपरसाः सूतस्य किञ्चिद्गुणैः ॥ ९७ ॥

उपरसाः-गौणा रसाः

गन्धक, हिंगुल, अभ्रक, हरताल मैनशिल, सुरमा, सुहागा, राजावर्त्त, चुम्बक, फटकरी, शंख, खरिया, गेरू, कसीस, खपरिया, कौडी, वालू, बोल, मुरदासंग और सोरठकी मिट्टीये उपरस हैं, क्योंकि इनमें पारेके कुछ गुण रहते हैं। उपरस अर्थात् गौणरस ॥ ९७ ॥

अथ हिंगुलस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

हिङ्गुलं दरदं म्लेच्छमिङ्गुलं चूर्णपारदम्। दरदस्त्रिविधः प्रोक्ताश्चर्मारः शुकतुण्डकः ॥ ९८ ॥ हंसपादस्तृतीयः स्याद्गुणवानुत्तरोत्तरम्। चर्मारः शुक्लवर्णः स्यात्स पीतः शुकतुण्डकः। जवाकुसुमसंकाशो हंसपादो महोतमः ॥ ९९ ॥ तिक्तं कषायं कटु हिङ्गुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्तहारि। हृल्लासकुष्ठज्वरकामलाश्च प्लीहामवातौ च गरं निहन्ति ॥ १०० ॥ उर्ध्वपातनयुक्त्या तु डमरूयन्त्रपाचितम्। हिङ्गुल तस्य सूतं तु शुद्धमेव न शोधयेत् ॥ १०१ ॥

नाम-हिंगुल, जरद, म्लेच्छ, इंगुल, चूर्ण पारद, (हंसपाद, रसस्थान, रक्तपारद, हिंगुलि, हिंगुलु, रक्त, मर्कटशीर्ष, रस, उरु, उन्द, कपिशीर्षक, बर्बर, सुरङ्ग, सुनर, मनोहर, चित्रांग, चर्म्मारक, रसोद्भव, रंजक, रसगर्भ, चर्मार और नानाशृंगारवर्द्धन) ये सिंगरफके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-हिंगुल, सिंगरफ। बं०-हिंगुल। म०-हिंगूळ। गु०-हिंगलो। क०-इंगुलियक। तै०-हंगिलाकामु। ता०-कुंगिलयम्। फा०-सिंग्रफ अ०-जंजकर। इं०-सल्फरेट आफ मर्क्युरी Sulphurate of Mercury सिनबोर नेटिवा Cinnabar Nativa लै०-सल्फ्युरेट हैड्राजिरी Sulphuretum Hydragyri

लक्षण-चर्मार, शुकतुण्डक और हंसपाद इस भांति सिंगरफ तीन प्रकारका है। सफेद वर्णवाला सिंगरफ चर्मार कहाता है, पीतरंगका सगरफ शुकतुण्डक कहाता है और जवाके फूलके सदृश लाल सिगरफ हंसपाद कहाता है, इनमें पहिलेसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा हिंगुल उत्तम है ॥

गुण-सिंगरफ--कडवा, कसैला, चरपरा और नेत्ररोग, कफ, पित्त, हृल्लास, कोढ, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात तथा विषनाशक है। हिंगुलको ऊर्ध्वपातनयुक्तिसे डमरूयंत्रमें पकावे, इस हिंगुलका पारा शुद्ध है, इसको शुद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ९८-१०१ ॥

गन्धकस्योत्पत्तिर्नामानि भेदाः गुणाश्च।

श्वेतद्वीपे पुरा देव्याःक्रीडन्त्या रजसाऽऽप्लुतम्। दुकूलं तेन वस्त्रेण स्नातायाः क्षीरनीरधौ ॥ १०२ ॥ प्रसृतं यद्रदस्तस्माद्गन्धकःसमभूत्ततः। गन्धको गन्धिकश्चापि गन्धपाषाण इत्यपि ॥ १०३ ॥ सौगन्धिकश्च कथितो बलिर्बलरसोऽपि च। चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः ॥ ०४ ॥ रक्तो हेमक्रियासूक्तः पीतश्वेतौ रसायने। व्रणादिलेपने श्वेतः कृष्णः श्रेष्ठः सुदुर्लभः ॥ १०५ ॥

श्रेष्ठः-क्रियादिषु सर्वत्र प्रशस्ततरः॥

गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्तुवरः सरः। पित्तलः कटुकः पाकेः जन्तुकण्डूविसर्पजित्। हन्ति कुष्ठक्षयप्लीहकफवातान्रसायनः॥ १०६॥ अशोधितो गन्धक एष कुष्ठं करोति तापं विषमं शरीरे। शोषं च रूपं च बलं तथौजः शुक्रं निहन्त्येव करोति चास्रम्॥१०७॥

उत्पत्ति--पहले श्वेतद्वीपमें पार्वती क्रीडा करती थी। वहां उसके जब रजोदर्शनसे वस्त्र भीगगये, तब उन कपडोंयुक्त पार्वतीने क्षीरसागरमें स्नान किया। उस समय उन वस्त्रों मेंसे जो रज फैला, उससे गंधक उत्पन्न हुआ है॥

नाम-गन्धक, गंधिक, गन्धपाषाण, सौगंधिक, वलि, बलरस, (गौरीबीज, गंधाश्म पामाघ्न, सुगंधिक, पामारि, शुल्वारि, गन्धी, गन्धमोदन वरपूतिगन्ध, गन्ध, दिव्यगन्ध, सुगन्ध, रसगन्धक, कुष्ठारि कीटघ्न क्रूरगन्ध और शरभूमिज) ये गन्धकके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी--बं०--म०- गु०--क०- ता०--गन्धक। तै०--गन्धकमु फा०- गोगिर्द। अ०-किब्रित। लै०-सल्फर Sulphur.

भेद--लाल पीला, सफेद और काला इस भांति गन्धक चार प्रकारके हैं। इसमें सोना बनानेवालोंको लाल, रसायनके काममें पीला तथा सफेद, गन्धक काममें आती है। व्रण आदि पर लगानेके काममें सफेद उपयोग होता है काला गंधक, सोना बनाना आदि सब क्रियाओंमें उत्तम है, परन्तु यह दुर्लभ है॥

गुण--गन्धक, चरपरा, कडवा, उष्णवीर्य, कसैला, दस्तावर, पित्तकारक, पाकमें चरपरा, और खुजली, विसर्प, कृमि, नाशक है कोढ, क्षय, प्लीहा, कफ तथा वातको नष्ट करता है रसायन है॥

अशुद्ध गंधक-कोढ, विषमज्वर, शोषरोग तथा रक्तविकार उत्पन्न करता है और रूप, बल ओज तथा वीर्यको नाशकरता है॥ १०२--१०७॥

अथ अभ्रकस्य उत्पत्तिर्नामानि लक्षणं गुणाश्च।

पुरा वधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतम्। विस्फुलिङ्गास्ततस्तस्य गगने परिसर्पिताः॥ १०८॥ ते निपेतुर्घनध्वानाच्छिखरेषु महीभृताम्। तेभ्य एव समुत्पन्नं तत्तद्गिरिषु चाभ्रकम्॥१०९॥ तद्वज्रं वज्रजातत्वाद् भ्रमभ्रमरवोद्भवात्। गगनात्स्खलितं यस्माद्गगनं च ततो मतम्॥ ११०॥ विप्रक्षत्रियविट्शूद्रभेदात्तत्स्याच्चतुर्विधम्। क्रमेणैव सितं रक्तं पीतं कृष्णं च वर्णतः॥ १११॥ प्रशस्यते सितं तारे रक्तं तत्तु रसायने। पीतं हेमनि कृष्णं तु गदेषु द्रुतयेऽपि च॥ ११२॥ पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रं चेति चतुर्विधम्। मुञ्चत्यग्नौ विनिक्षिप्तं पिनाकं दलसञ्चयम्॥ ११३॥ अज्ञानाद्भक्षणं तस्य महाकुष्ठप्रदायकम्। दर्दुरं त्वग्निनिक्षिप्तं कुरुते दर्दुरध्वनिम्॥११४॥ गोलकान् बहुशः कृत्वा स स्यान्मृत्युप्रदायकः। नागं तु नागवद्वह्नौ फूत्कारं परिमुञ्चति॥ ११५॥ तद्भक्षितमवश्यं तु विदधाति भगन्दरम्। वज्रं तु वज्रवत्तिष्ठेत्तन्नाग्नौ विकृतिं व्रजेत्॥ ११६॥ सर्वाभ्रेषु वरं वज्रं व्याधिवार्द्धक्यमृत्युहृत्। अभ्रमुत्तरशैलोत्थं बहुसत्त्वं गुणाधिकम् दक्षिणाद्रिभवं स्वल्पसत्त्वमल्पगुणप्रदम्॥ ११७॥ अभ्रं कषायं मधुरं

सुशीतमायुष्करं धातुविवर्द्धनं च। हन्यात्रिदोषव्रणमेहकुष्ठप्लीहोदरग्रन्थिविषक्रिमींश्च ॥ ११८ ॥ रोगान्हन्ति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते तारुण्याढचं रमयति शतं योषितां नित्यमेव। दीर्घायुष्काञ्जनयति सुतान्विक्रमैः सिंहतुल्याम् मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥ ११९ ॥ पीडां विधत्ते विविध नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदं च शोथम्। हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यशुद्धमभ्रं त्वसिद्धं गुरुतापदं स्यात् ॥ १२० ॥

उत्पत्ति-पहिले वृत्रासुरके मारनेको इंद्रने वज्र उठाया। उस समय उसमेंसे निकलकर जो चिनगारी आकाशमें फैलगई और पश्चात् मेघका शब्द होनेपर पर्वतोंके शिखरोंमें गिरगई, उससेही यह अभ्रक उत्पन्न हुआ है। यह अभ्रक वज्रसे उत्पन्न हुआ है, इससे वज्र कहाता है और मेघके शब्दसे हुआ है इससे अभ्रक कहाता है। आकाशसे गिरा है, इससे गगन कहाता है॥

लक्षण--ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन भेदोंसे अभ्रक चार प्रकारका है। सफेद अभ्रक ब्राह्मण है, लाल क्षत्रिय है, पीला वैश्य है और काला शूद्र है। चांदी बनाने आदिमें सफेद, रसायनकार्यमें लाल, सुवर्ण बनाने आदिमें पीला और रोग नष्ट करनेमें काला अभ्रक उत्तम है। पिनाक, दुर्दर, नाग और वज्र इस भांति अभ्रककी चार जाति हैं। जिस अभ्रकको अग्निमें डालनेसे उसके परत छूटजाँय, वह पिनाक जानना॥ अज्ञानतासे जो इसको भक्षण कर ले तो यह महाकुष्ठ उत्पन्न करता है। जो अभ्रक अग्निमें डालनेसे मेंढककी भांति शब्द करे, वह दर्दुर अभ्रक जानना। यह अभ्रक शरीरमें अनेक गांठोंको उत्पन्न करके मृत्यु कर देता है। जो अभ्रक अग्निमें डालनेसे सर्पके सदृश फुँकार मारे, वह अभ्रक नाग जानना, इस नाग अभ्रकको भक्षण करनेसे अवश्यमेव भगंदररोग उत्पन्न होता है। जो अभ्रक वज्र (हीरे) के सदृश किसी प्रकारका विकार नहीं पाकर अग्निमें स्थिर रहे उसको वज्र जानना। सम्पूर्ण जातिके अभ्रकोंमें वज्र अभ्रक उत्तम है यह-रोग, वृद्धता तथा मृत्युनाशक है। उत्तर दिशके पर्वतोंमें उत्पन्न हुआ अभ्रक अत्यंत सामर्थ्यवान् और अत्यन्त गुणकारी है। दक्षिणदिशाके पर्वतोंमें उत्पन्न हुआ अभ्रक हीन गुणवाला और अल्पसामर्थ्ययुक्त है॥

नाम--अभ्रक, गगन और आकाशवाचक सम्पूर्ण शब्द, (गिरिजाबीज, निर्मल, गिरिजामल, अब्द, व्योम, घन, शुभ्र, बहुपत्र, घनाह्वक, गिरिज, अमल, गौरीमल, गरजध्वज, अभ्र, भृंग, अम्बर, अन्तरिक्ष, आकाश, ख, अनन्त, गौरीज और गैरिजेय) ये अभ्रकके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-अभ्रक, अबरख। बं०-अभ्र। म०-गु०-अभ्रक। तै०-ता०-अभ्रकम्। फा०-फा०-सितारेजमीन्। अ०-तल्क। इं०-टाल्क, ग्लिमर Talc Glimmer. लै०-माइका Mica.

गुण-अभ्रक, कसैला, मधुर, शीतल, आयु तथा धातुवर्द्धक है। त्रिदोष व्रण, प्रमेह, कोढ, प्लीहा, उदररोग, गांठ, विष तथा कृमि इनको नष्ट करता है। जो विधिपूर्वक भस्म बनाया हुआ अभ्रक निरन्तर सेवन करे तो रोग नष्ट होते हैं, शरीर दृढ होता है वीर्यकी वृद्धि होती है नित्य सौ तरुण स्त्रियोंसे सहवास कर सकता है, दीर्घायुवाले तथा सिंहके सदृश पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करता है तथा मृत्युके भयको दूर करता है॥

अशुद्ध अभ्रक मनुष्योंको अनेक प्रकारकी पीडा, कोढ, क्षयरोग, पाण्डु, सूजन, हृदय तथा पार्श्व पीडाको करता है। असिद्ध अभ्रक अत्यन्त ताप करता है॥ १०८-१२०॥

अथ हरितालस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

हरितालं तु तालं स्यादालं तालकमित्यपि। हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं

पिण्डसंज्ञकम् ॥ १२१ ॥ तयोराद्यं गुणैः श्रेष्ठं ततो हीनगुणं परम् । स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चाभ्रपत्रवत् ॥ १२२ ॥ पत्राख्यं तालकं विद्याद् गुणाढ्यं तद्रसायनम् । निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथा गुरु ॥१२३॥ स्त्रीपुष्पहारकं स्वल्पगुणं तत्पिण्डतालकम् । हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् । कण्डूकुष्ठास्यरोगास्रकफपित्तकचव्रणान् ॥१२४॥ हरति च हरितालं चारुतां देहजातां सृजति च बहुतापं चाङ्गसंकोचपीडाम् । वितरति कफवातौ कुष्ठरोगं विदध्यादिदमसितमशुद्धं मारितं चाप्यसम्यक् ॥ १२५ ॥

नाम–हरिताल, ताल, आल, तालक,(पिंजर, पित्तल, मनोज्ञ. हरितालक, छत्रांग, कांचनरस, गोदन्त, नटमण्डन, विस्रगन्धि, पीतक, कर्बूर, पीतन, हरिबीज, सिद्धधातु, पिंजल लोमहृत्, वंशपत्रक, वर्णक, नटभूषण, अल, पीतगोरोचन, चित्रांग, पिञ्जरक. वेदल, कनकरस, कांचनक, विडालक, चित्रगन्ध, पिंग, पिंगसार और गौरी ललित) ये हरतालके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बं०-म०--गु -हरताल । क०–हरिदाल । तै०–हरितालमु । इं०–ओर्हिमेंट Orpiment. लै०–यलो आर्सेनिकं सल्फाइडम् Yellow ArsenicumSulphidu ता०--हरिदलम् । अ०--जरनिख अस्फर ।

लक्षण--हरताल दो प्रकारका है । जिसमेंसे पत्र निकलें वह पत्राख्य (तबकिया) और जो पिंडके सदृश हो वह पिंड कहाता है । इन दोनोंमें पहिला हरताल श्रेष्ठ है और दूसरा हरताल हीन गुणवाला है । सुवर्णके सदृश वर्णवाला, भारी, स्निग्ध और अभ्रकके सदृश पत्रोंवाला पत्राख्य हरताल गुणोंसे युक्त तथा रसायन है और जो पत्ररहित पिंडके सदृश हरताल होता है, वह अल्पसत्त्ववाला, भारी, स्त्रीके पुष्पको नष्ट करनेवाला और अल्पगुणवाला है ॥

गुण--हरताल--चरपरा, स्निग्ध, कसैला, गरम और विष, खुजली, कोढ, मुखके रोग, रुधिरविकार, कफ, पित्त, केश तथा व्रण इनको नष्ट करता है ॥

अशुद्ध और भली प्रकार नहीं मारा हुआ हरताल देहकी शोभाको नष्ट करता है, अत्यन्त सन्ताप अङ्गोंमें सङ्कोचकी पीडाको करता है, वात तथा कुष्ठको उत्पन्न करता है ॥ १२१--१२५ ॥

अथ मनःशिलायाः (मैनशिलके) नामानि गुणाश्च ।

मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका । नैपाली कुनटी गोला शिला दिव्यौषधिः स्मृता ॥१२६॥ मनःशिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः । तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकासभूतकफास्रनुत् ॥ १२७ ॥ मनःशिला मन्दबलं करोति जन्तुं द्रवं शोधनमन्तरेण । मलानुबन्धं किल मूत्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदं च कुर्यात् ॥ १२८ ॥

मनःशिला, मनोगुप्ता, मनोह्वा, नागजिह्विका, नैपाली, कुनटी, गोला, शिला, दिव्यौषधि (मनोज्ञा, रोगशिला, कुलटी, नेपालिका, कल्याणिका, नागमाता और रसनेत्रिका) ये मैनशिलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--मनशिल, मैनशिल । बं०--मनगाछ । म०--मनशीक । गु०--मणशील । ता०--क०--मणिशिले । तै०--मानुशीला । इं०–रील-Realgar. लै०-आर्सेनीकम सल्फाइडम् Arsenicum Sulphidum. फा०--जरनिखअहेमा ।

गुण--मैनशिल--भारी, वर्णको उत्तम करनेवाली दस्तावर, गरम, लेखन, चरपरी, कडवी, स्निग्ध और विषविकार श्वास, खांसी, भूतबाधा कफ तथा रक्त विकार नाशक है ॥

अशुद्ध मैनशिल -बलको मन्द करती है, तथा दस्तको रोकती है मूत्ररोग और शर्करायुक्त मूत्रकृच्छ्र रोगको करती है ॥१२६-१२८॥

अथ स्रोतोऽञ्जनं सौवीरं च।

(काला-सफेद सुरमा)।

अञ्जनं यामुनं चापि कापोताञ्जनमित्यपि। तत्तु स्रोतोऽञ्जनं कृष्णं सौवीरं श्वेतमीरितम् ॥ १२९ ॥ वल्मीकशिखराकारं भिन्नमञ्जनसन्निभम् । घृष्टं तु गैरिकालारमेतत्स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम् ॥ ॥ १३० ॥ स्रोतोऽञ्जनसमं ज्ञेयं सौवीरं तत्तु पाण्डुरम् । स्रोतोऽञ्जनं स्मृतं स्वादु चक्षुष्यं कफपित्तनुत् ॥ १३१ ॥ कषायं लेखनं स्निग्धं ग्राहि च्छर्दिविषापहम् । सिध्मक्षयास्रहृच्छीतं सेवनीयं सदा बुधैः ॥ १३२ ॥ स्रोतोऽञ्जनगुणाः सर्वे सौवीरेऽपि मता बुधैः। किन्तु द्वयोरञ्जनयोः श्रेष्ठं स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम् ॥ १३३ ॥

नाम--अञ्जन, यामुन और कापोतांजन ये सुरमेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--सुरमा, अंजन। बं०- श्वेतसुरमा, नीलसुरमा। म० -काळा-पांढरा सुरमा। गु०- सुरमो, कालो सुरमो। क०--स्रोतोञ्जन। तै०- सौवीरांजन। फा०--सूर्मे स्फहानी। अ० -कुंहंलइसवद। इं०--सल्फरेट आफ ऑंटिमनी Sulphurate of Antimony. लै०--आंटिमोनीआईसल्फुरेटम् Antimoniisulphuretum.

लक्षण--काला सुरमा स्रोतोञ्जन कहाता है और सफेद सुरमा सौवीर कहाता है, बांबीके शिखरके सदृश और तोडनमें अञ्जनके टुकडेके समान तथा घिसनेसे गेरूके सदृस हो हो वह स्रोतोञ्जन कहाता है। सफेद सुरमा भी स्रोतोञ्जनके सदृश होता है, परन्तु कुछ पीले रंगका होता है ॥

गुण—स्रोतोञ्जन--मधुर, नेत्रोंको हितकारी कसैला, लेखन, स्निग्ध, ग्राही, शीतल, और कफ पित्त वमन, विष, सफेद कोढ, क्षय तथा रक्त विकार इनको नष्ट करता है. यह सदा बुद्धिमानोंको सेवनीय है। जो स्रोतोञ्जनमें गुण हैं, वे सौवीरमें भी है, ऐसा विद्वानोंने कहा है, किन्तु दोनों अञ्जनोंमें स्रोतोञ्जन ही श्रेष्ठ कहा है ॥ १२९-१३३ ॥

अथ टङ्कणः (सोहागा)

टंकणोऽग्निकरो रूक्षः कफघ्नो वातपित्तकृत् ॥१३४॥ अयमुपरसत्वात्पुनरुक्तः ॥

सुहागा--अग्निकारक, रूखा, कफनाशक, वात तथा पित्तकारक है, (यह उपरस होनेसे यहां द्वितीय वार लिखा है, इसके नामादिक हरीतक्यादि वर्गमें कहे हैं) ॥ १३४ ॥

अथ स्फटिका (फिटकिरी)

स्फटी च स्फटिका प्रोक्ता श्वेता शुभ्रा च रंगदा। दृढरंगा सुरंगा च दृढा रंगाऽपि कथ्यते ॥ १३५ ॥ स्फटिका तु कषायोष्णा वातपित्तकफव्रणान् । निहन्ति श्वित्रवीसर्पान् योनिसंकोचकारिणी ॥ १३६ ॥

स्फटी, स्फटिका, श्वेता, शुभ्रा, रंगदा, दृढरंगा, सुरंगा, दृढा, रंगा, (स्फटिकारी, स्फटिकारिका, रंगांगा और गतरंगा) ये फिटकिरी के संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी--बं--फिटकिरी। म०--तुरटी। गु०--फटकडी। क०--स्फटीकी। तै०--फाटीके। ता०--पटिकारम्। फा०- जाकसफेद्। अ०--शबेयमानी। इं०--एलम Alum. लै०--एल्यूमिनम सल्फस् Aluminnm Slphas.

गुण—फिटकिरी—कसैली, गरम, योनिको संकुचित करनेवाली और वात, पित्त, कफ, व्रण, कोढ तथा विसर्प नाशक है ॥१३५॥१३६

अथ राजावर्तः (रेवटी)।

राजावर्तो नृपावर्तो राजन्यो वर्तकस्तथा। आवर्तमणिसंज्ञश्च ह्यावर्तोऽपि तथैव च। राजवर्तः कटुस्तिक्तः शिशिरः पित्त-नाशनः। राजावर्तः प्रमेहघ्नश्छर्दिहिक्का-निवारणः॥ १३७॥

राजावर्त, नृपावर्त, राजन्य, वर्तक और आवर्तमणि संज्ञक ये रेवटीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-रेवटी। म०-गु०-राजावर्तमणि॥

गुण-रेवटी-चरपरी, कडवी, शीतल पित्त, प्रमेह, वमन तथा हिचकीको नष्ट करती है॥ १३७॥

अथ चुम्बकः।

चुम्बकः कान्तपाषाणोऽयस्कान्तो लोह-कर्षकः। चुम्बको लेखनः शीतो मेदो-विषगरापहः॥ १३८॥

चुम्बक, कान्तपाषाण, अयस्कान्त और लोहकर्षक ये चुम्बक (लोहेके खींचनेवाले) लोहेके संस्कृत नाम हैं॥ (यह लोह कांतलोह कीही एक जाति है)

हिन्दी०-चुम्बक। म०-ता०-लोहचुंबक। गु०-चमक।

गुण-चुंबक-लेखन- शीतल, मेद, विष तथा गररोग विनाशक है॥ १३८॥

अथ गैरिकं (गेरू) सुवर्णगैरिकं च।

गैरिकं रक्तधातुश्च गैरेयं गिरिजं तथा। सुवर्णगैरिकं त्वन्यत्ततो रक्ततरं हि तत्॥ १३९॥ गैरिकंद्वितयं स्निग्धं मधुरं तुवरं हिमम्। चक्षुष्यं दाहपित्तास्रकफ-हिक्काविषापहम्॥ १४०॥

गैरिक, रक्तधातु गैरेय, गिरिज, (गिरि-मृत, लोहितमृत्तिका, गिरिधातु, गवेधुकधातु, सुगन्धधातु, गिरिमृद्भव, वनालक्त, गवेरुक, प्रत्यश्म और ताम्रधातु) ये गेरुके संस्कृत नाम हैं॥

दूसरा सुवर्णगेरू होता है यह अत्यन्त लाल होता है।

हिन्दी-गेरू, पीलागेरू। बं०-गिरिमाटी। म०-सोनगेरू, तांबेगेरू। गु०-गेरू, सोना-गेरू। क०-जाजु, होजाजु। ता०-काविकल्लु। फा०-गिलेसुर्ख। अ०-तीनेमेगेरवी। इं०-आकर रेडलंबरस्टोन Redlumberstone लै०-बोले रुब्रा Bolerubra

गुण-दोनों प्रकारका गेरू-स्निग्ध, मधुर कसैला, शीतल नेत्रोंको हितकारी और दाह, पित्त, रक्तविकार, कफ हिचकी तथा विषको नष्ट करता है॥ १३९॥ १४०॥

अथ खटिकर (खडिया, गौर खरिया)

खटिका कठिनी चापि लेखनी च निग-द्यते। खटिका दाहजिच्छीता मधुरा विषशोथजित्॥ १४१॥ लेपादेतद्गुणा प्रोक्ता भक्षिता मृत्तिकासमा। खटी गौरखटी द्वे च गुणैस्तुल्ये प्रकी-र्तिते॥ १४२॥

खटिका, कठिनी, लेखनी, (पाकशुक्ला शिलाधातु, खटि, खडी, खटी, खटिनी, धवलमृत्तिका, श्वेतधातु, पाण्डुमृत्तिका, सित-धातु, पाण्डुमृत्, कक्खटी. वर्णरेखा, मृत्तिका-नखा, अनीलातु, वर्णलेखिका शुक्लधातु, धातुफल, कठिनिका और मकल्ल) ये खडिया के संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-खरिया, खडियामिट्टी। बं०-खडि-माटी। म०-खडू। गु०-खडी। क०-वेणबहु। ता०-शुण्णा बुकल्लु। फा०-गिले सफेद। अ०-तिनेअबीयद। इं०-पाइपक्ले Pipeclay लै० कार्बोनेट आफ कल्शियम् Carbonate of Calcium

गुण-खडिया-दाहनाशक, शीतल, मधुर, विष और शोथनाशक है खडियामें लेप करने से ये गुण हैं खानेसे तो मिट्टीके सदृश ही है। खरिया और गौर खरिया ये दोनों गुणोंमें समान हैं॥ १४१॥ १४२॥

अथ वालुका (वालू)।

वालुका सिकता प्रोक्ता शर्करा रेतजाऽपि च। वालुका लेखनी शीता व्रणोरःक्षतनाशिनी ॥ १४३ ॥

वालुका, सिकता, शर्करा, रेतजा (सिक्ता. शीतला, सूक्ष्मशर्करा, प्रवाहोत्था, महाश्लक्ष्णा, सूक्ष्मा, पानीयचूर्णका, वालिका, प्रवाही, महासूक्ष्मा और पानीयवर्णिका) ये वालूके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-वालू, रेत। बं०-वाली। म०-वालू। गु०-रेती वेलु। क०-हालुलू। तै०-विशिका। फा०-रेग। ता०-मणलू। अ०-रमल। इं०-सेन्ड Sand लै०-सिलीका Silica

गुण-रेत-लेखन, शीतल, व्रण, तथा छातीके घावको नष्ट करता है ॥ १४३ ॥

अथ तुत्थभेदः (खपरिया)

खर्परी तुत्थकं तुत्थादन्यत्तद्रसकं स्मृतम्। येगुणास्तुत्थके प्रोक्तास्ते गुणा रसके स्मृताः ॥ १४४ ॥

खर्परी, तुत्थक, रसक, चक्षुष्य, अमृतोत्पन्न, दार्विका, खर्पर, खपरिका, तुत्थ, खर्परीतुत्थ, खर्परीतुत्थक और जशदोपधातु) ये खपरियाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-खर्परिया, खपरिया। बं०-खापर। म०--कलखापरी। गु०--खापरियुं। क०--खर्परी। तै०-ता०-खर्परं। फा०-संगबसरी। अ०-तूतिया किरमानी। इं०-ब्लैक जैक Black Jack लै०-जिंकिसल्फाइडम् Zincisulphidum

गुण खपरिया एक जातिका तूतिया ही है, परन्तु तूतियेसे पृथक् है और रसके खपरिया नामसे प्रसिद्ध है। पहिले तूतियेमें जो गुण कहे हैं, वे ही गुण खपरियामें हैं ॥ १४४ ॥

अथ काशीसम् (कसीस)।

काशीसं धातुकाशीसं पांशुकाशीसमित्यपि। तदेव किञ्चित् पीतं तु पुष्पकाशीसमुच्यते ॥ १४५ ॥ काशीसमम्लमुष्णं च तिक्तश्च तुवरं तथा। वातश्लेष्महरं केश्यं नेत्रकण्डूविषप्रणुत्। मूत्रकृच्छ्राश्मरीश्वित्रनाशनं परिकीर्तितम् ॥ १४६ ॥

काशीस, धातुकाशीस, पांशुकाशीस, खाचर, धातुशेखर, शोधन, हंसलोमश, शुभ्र, कासीस और नेत्रौषधि) ये कसीसके संस्कृत नाम हैं, जो किंचित् पीले वर्णका होता है, उसको पुष्पकाशीस कहते हैं ॥

हिन्दी--कसीस, पुष्पकसीस। बं०-धातुकासीस पुष्पकासीस। म०-हिराकस श्वेतनीली। गु०-हीराकसी। क०-कासींस। फा०-जाकेखज। अ०-जाजे अखदर। इं०-सल्फेट आफ आयर्न Snlphatee IronF लै०-फेरिसल्फास oerrfy sulphas

गुण-कसीस-खट्टा, गरम, कडवा, कसैला, केशोंको हितकारी और वात, कफ, नेत्रोंकी खुजली, बिप, मूत्रकृच्छ पथरी तथा फुलबहरी कोढको नष्ट करता है ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

अथ सौराष्ट्री मृत्तिका (गोपीचन्दन)।

सौराष्ट्री तुवरी कांक्षी मृत्तालकसुराष्ट्रजे। आढकी चापि सा ख्याता मृत्स्ना च सुरमृत्तिका। स्फटिकाया गुणाः सर्वे सौराचाष्ट्र अपि कीर्त्तिताः१४७

सौराष्ट्री, तुवरी, कांक्षी, मृत्तालका, सुराष्ट्रजा, आढकी, मृत्स्ना, सुरमृत्तिका, (पर्पटी, कालिका, सती, सुजाता, पार्वती, मसी, मृदाह्वया, मृत्त, आसङ्ग, कालीमृत्तिका कंसोद्भवा, और सौराष्टा) ये गोपीचन्दनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-गोपीचन्दन. सोरठकी मिट्टी। म०-ता०-तै०-गोपीचन्दन। गु०-सोरठी माटी। लैः-सिलिकेट आफ एल्युमीना Silicate of Alumina

गुण-जो गुण फिटकरीमें हैं, वे ही गुण सोरठकी मिट्टीमें हैं ॥ १४७ ॥

अथ कृष्ण मृत्तिका (कालीमिट्टी)।

मृन्मृदा मृत्तिका मृत्स्ना क्षेत्रजा कृष्णमृत्तिका। कृष्णमृत्क्षतदास्रप्रदरश्लेष्मपित्तनुत् ॥ १४८ ॥

मृत्, मृदा, मृत्तिका, मृत्स्ना, क्षेत्रजा और कृष्णमृत्तिका (कृष्णमृत्) ये काली मिट्टीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-काली मिट्टी, मिट्टी। बं०-माटी, काला माटी। म०-काली माती। गु०-काली माटी। तै०-नोबुलु ॥ इं०-मडब्लैक क्ले Mud Biak Clay लै०-हाईड्रेसिस सिलिकेट आफ एल्युमीनियम् Hydrasis Silicate of Alumium

गुण-काली मिट्टी-क्षत दाह, रक्तविकार, प्रदर रोग कफ तथा पित्तनाशक है ॥ १४८ ॥

अथ कर्दमः (कीचड)।

पङ्कस्तु जलकल्कश्च चुलुकः कर्दमो मलः। चिकिलः पलितो द्रापः पललश्च निषद्वरः। कर्दमो दाहपित्तार्त्तिशोथघ्नः शीतलः सरः ॥ १४९ ॥

पंक, जलकल्क, चुलुक, कर्दम, मल, चिकिल, पलित, द्राप, पलल, निषद्वर, जंबाल साद और दम) ये कीचडके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-कीचड। बं०-कादा। म०-चिखल ता०-शेरु। गु०-कादब।

कीचड-दाह, पित्तकी पीडा और शोथनाशक है। शीतल और दस्तावर है ॥

अथ वोलम्।

बोलगन्धरसप्राणपिण्डगोपरसाः समा। बोलं रक्तहरं शीतं मेध्यं दीपनपाचनम् ॥ १५० ॥ मधुरं कटु तिक्तश्च दाहस्वेदत्रिदोषजित्। ज्वरापस्मारकुष्ठघ्नं गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥ १५१ ॥

बोल, गन्धरस, प्राण, पिंड, गोपरस, (निलोह, बर्बररस, सुगन्ध, नालक, पार, रसगन्ध, सिठु रक्तापह, मुण्ड, सुरस, पिंडक, विष, बर्बर, सौरभ, रसगन्धक, महागन्ध, विश्व, शुभगन्धक, विश्वगन्धक, व्रणारि, गोप, गोरस, पिण्ड, गोस, शश, गोपशश, गान्धार, मसिवर्द्धन, बोलज, गोपक और गोल) ये बोलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बोल, हीराबोल। बं०-गन्धरस, बोल। गु०-हिराबोल। म०-बाळंतबोळ। क० बोल। तै०-वालिम, त्रोपोलम। ता०-वेल्ल, इपपोलम्। फा०-मुर। अ०-मुरसाफ, मुरमकी। इं०-मरह Myrrha लै०-बालसामोंडेड्रनमिर्हा Balsa Mondendron Myrrha

बोल-रुधिरनाशक, शीतल, मेधाको हितकारी, अग्निप्रदीपक, पाचक, मधुर, चरपरा, गर्भाशयशोधक और दाह, पसीना, त्रिदोष, ज्वर, मृगी तथा कुष्ठरोगनाशक है॥१५०॥१५१

अथ कंकुष्ठस्य (मुरदासंगकी)

उत्पत्तिः लक्षणं नामानि गुणाश्च।

हिमवत्पादशिखरे कंकुष्ठमुपजायते। तत्रैकं रक्तकालं स्यात्तदन्यदण्डकं स्मृतम् ॥ १५२ ॥ पीतप्रभं गुरु स्निग्धं श्रेष्ठं कंकुष्ठमादिशेत्। श्यामं पीतं लघु त्यक्तसत्त्वं नेष्टं तथाऽण्डकम् ॥ १५३ ॥ कंकुष्ठं काककुष्ठं च वराङ्गं कोलकाकुलम्। कंकुष्ठं रेचनं तिक्तं कटूष्णं वर्णकारकम्। कृमिशोथोदराध्मानगुल्मानाहकफापहम् ॥ १५४ ॥

उत्पत्ति-कंकुष्ठ हिमालय पर्वतके शिखरोंमें उत्पन्न होता है ॥

लक्षण-कंकुष्ठ रक्तकाल और अण्डक इस भांति दो प्रकारका है, जो भारी, स्निग्ध और पीतकांतिवाला हो, वह पहिला कंकुष्ठ श्रेष्ठ है, जो श्याम, पीला और हलका तथा त्यक्तसत्त्व (सारहीन) हो वह अण्डक है यह श्रेष्ठ नहीं है ॥

नाम-कंकुष्ठ, काककुष्ठ वरांग, कोलकाकुल, (विरंग, रंगदायक, पुलक, शोधक और कालपालक) ये कंकोठके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कंकोठ, मुरदासंग। बं०–पार्वतीय मृत्तिकाविशेष। म०–ता०–कंकुष्ठ, मुरदाडसिंग गु०–पीलियो। फा०–मुरदारसंग॥

गुण–कंकोठ, रेचक, कडवा, चरपरा, गरम, व्रणकारक और कृमि, शोथ, उदररोग, अफरा, गुल्म, आनाह तथा कफ नाशक है॥ १५२॥ १५४॥

अथ रत्नस्य निरुक्तिः।

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्तेऽस्मिन्नतीव यत्। ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशारदैः॥ १५५॥

अथ रत्ननामानि स्वरूपनिरूपणं च।

रत्नं क्लीबे मणिः पुंसि स्त्रियामपि निगद्यते। तत्तु पाषाणभेदोऽस्ति मुक्तादि च तदुच्यते॥ १५६॥ तथा चामरसिंहः– रत्नं मणिर्द्वयोरश्मजातौ मुक्तादिकेऽपि च॥ १५७॥

धनकी इच्छा करनेवाले मनुष्य जिसमें अत्यन्त रमते हैं, इस कारण शब्दशास्त्र जाननेवालोंने इनको रत्न कहा है। रत्नशब्द नपुंसकलिंगमें है और उसका पर्याय मणि पुंलिंग तथा स्त्रीलिंगमें भी होता है, रत्न पत्थरकी जाति है और मोती आदि भी रत्नमें ही कहे हैं। अमरकोशमें भी कहा है। कि–रत्न और मणि दोनों पत्थरकी जाति हैं और मोती आदि भी पत्थरकी जाति है॥ १५५॥१५७॥

अथ रत्नानां निरूपणम्।

रत्नं गारुत्मतं पुष्परागो माणिक्यमेव च। इन्द्रनीलश्च गोमेदस्तथा वैडूर्यमित्यपि। मौक्तिकं विद्रुमश्चेति रत्नान्युक्तानि वै नव॥ १५८॥

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि नवरत्ननिरूपणम्।

मुक्ताफलं हीरकं च वैडूर्यं पद्मरागकम्॥ १५९॥ पुष्परागं च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा। प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव॥ १६०॥

हीरा, पन्ना, पुखराज, माणिक्य, नीलम गोमेद, लहसुनिया, मोती, मूँगा, ये नव रत्न विष्णुधर्मोत्तरमें भी कहा है कि "मोती, हीरा, लहसुनिया, पद्मराग, पुखराज, गोमेद, नीलम, पन्ना और मूँगा ये नव महारत्न हैं"॥ १५८॥ १६०॥

अथ हीरकस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

हीरकः पुंसि वज्रोऽस्त्रि चन्द्रो मणिवरश्च सः। सतु श्वेतः स्मृतो विप्रो लोहितः क्षत्रियः स्मृतः॥ १६१॥ पीतो वैश्योऽसितः शूद्रश्चतुर्वर्णात्मकश्च सः। रसायने मतो विप्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः॥ १६२॥ क्षत्रियो व्याधि विध्वंसी जन्ममृत्युहरः स्मृतः। वैश्यो धनप्रदः प्रोक्तस्तथा देहस्य दार्ढ्यकृत्॥ १६३॥ शूद्रो नाशयति व्याधीन् वयस्तम्भं करोति च। पुंस्त्रीनपुंसकानीह लक्षणीयानि लक्षणैः॥ १६४॥ सुवृत्ताः फलसम्पूर्णास्तेजोयुक्ता बृहत्तराः पुरुषास्ते समाख्याता रेखाबिन्दुविवर्जिताः। रेखाबिन्दुसमायुक्ताः षडस्रास्ते स्त्रियः स्मृताः॥१६५॥

षडस्राः षट्कोणाः

त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः। तेषु स्युः पुरुषाः श्रेष्ठा रसबन्धनकारिणः॥ १६६॥ स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीणां सुखप्रदाः। नपुंसकास्त्ववीर्याः स्युरकामाः सत्त्ववर्जिताः॥ १६७॥ स्त्रियः स्त्रीभ्यः प्रदातव्याः क्लीबं क्लीबे प्रयोजयेत्। सर्वेभ्यः सर्वदा देयाः पुरुषा वीर्यवर्धनाः॥ १६८॥ अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा। पाण्डुतां पङ्गुलत्वं च तस्मात् संशोध्य मारयेत्॥ १६९॥

हीरक (पुंलिंग), वज्र, (पुं. नपुंसकलिंग) चन्द्र, मणिवर, (अशिर, षट्कोण, दृढगर्भक, हीर, दधीच्यस्थि, वज्रक, सूचीमुख वरारक, रत्नमुख्य, अभेद्य, दृढाङ्ग और वज्रपर्यायनामक) ये हीरेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–हीरा। बं०–हिरे। म०-हिरा। गु० हिरो। क०–वज्र। तै०=ता०–वज्र। फा०-इलमाश। इं०–डायमण्ड Diamoud लै०–प्यूर्कार्बन् एडमस् Pureearbon Adamas

लक्षण–हीरेकी चार जाति है, उसमें सफेद वर्णका ब्राह्मण, लाल वर्णवाला क्षत्रिय, पीले वर्णका वैश्य और काले रंगका शूद्र जानना। ब्राह्मणहीरा रसायनके काममें तथा सर्वसिद्धिदायक है। क्षत्रिय हीरा रोगनाशक है तथा जरा मरण हरनेवाला है। वैश्यहीरा धन देनेवाला तथा देहको दृढ करनेवाला है और शूद्र हीरा व्याधियोंको नष्ट करता है तथा आयुस्थापक है। हीरेके लक्षणोंसे पुरुष स्त्री और नपुंसक भेद भी जानना, जो हीरा उत्तम गोलाकार फलयुक्त, कांतियुक्त बहुत रेखा बिंदुसे रहित हो वह पुरुषसंज्ञक है। जो हीरा रेखा बिंदुसे युक्त हो तथा छः कोनेवाला हो, वह स्त्री संज्ञक है। जो हीरा तीन कोनोंवाला तथा बहुत लम्बा हो, वह नपुंसक है। इनमें पुरुष हीरा सर्वोत्तम है और इससे रसका बन्धन होता है। स्त्री जातिका हीरा शरीरको सुन्दर करनेवाला और स्त्रियोंको सुखदायक है और नपुंसक जातिका हीरा वीर्यरहित सुखदायक नहीं और शक्तिरहित है। स्त्री जातिका हीरा स्त्रियोंको देवे और नपुंसक जातिका हीरा नपुंसकोंको देवे तथा पुरुष जातिका हीरा सर्वदा सबको देना चाहिये और यह वीर्यवर्द्धक है ॥

अशुद्ध हीरा--कोढ, पसलीकी पीडा, पाण्डुरोग तथा लँगडापन करता है इसकारण हीरेको शुद्ध करके मारना चाहिये ॥ १६१ ॥ १६९ ॥

अथ मारितस्य वज्रस्य गुणाः।

आयुःपुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च। सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न संशयः ॥ १७० ॥

मारा हुआ हीरा--आयुको बढानेवाला, बलदायक वीर्यकी वृद्धि करनेवाला, वर्णको उत्तम कर्त्ता, सुखदायक तथा सर्वरोगनाशक है॥१७०

अथ गारुत्मत --(पन्ना) नामानि।

गारुत्मतं मरकतमश्मगर्भो हरिन्मणिः ॥ १७१ ॥

गारुत्मत, मरकत, अश्मगर्भ, हरिन्मणि (गारुत्मक, गरुडाश्म, मरक्त, राजनील, गरुडांकित, रौहिणेय, सौपर्ण, गरुडोद्गीर्ण, बुध, रत्न, अश्मगर्भज, गरलारि, बापबोल, गारुड गरुडोत्तीर्ण और वाप्रबोल) ये पन्नेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--पन्ना। बं०--पान्ना। म०--पाचूरत्न। गु०--लीलु पानुं। क०--पाचिपचै। तै०—नीलम्। का०--जुमुर ईद। ता०-:पचै। अ०--जुमुईद। इं०इमराल्ड Emerald लैं०–स्मेर गोलम् Smargolous. ॥ १७१ ॥

अथ माणिक्य (चुन्नी) नामानि।

माणिक्यं पद्मरागः स्याच्छोणरत्नञ्च लोहितम् ॥ १७२ ॥

माणिक्य, पद्मराग, शोणरत्न, लोहित, लोहितक, शोणरत्नक, रत्नराट्, रविरत्नक, तरणिरत्न, शृंगारी रंगमाणिक्य, तरुण, रत्ननामक, रागयुक्, रत्न, शोणोपल, सौगंधिक, करुविन्द, कुरुविल्व, कुरुविन्दक, लक्ष्मीपुष्प और अरुणोपल) ये चुन्नीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी--चुन्नी, मानिक, लाल। बं०--मणिक। म०--माणिक। गु०- माण्यक, चुनी। क०माणक। तै०--ता -माणिक्यं। फा०-लालवद‌्प्रशानि। अ०--लाल। इं०--रुबी Ruby. लै०–रुबिनस् Rubinus

अथ पुष्पराग–(पुखराज) नामानि।

पुष्परागो मञ्जुमणिः स्याद्वाचस्पतिवल्लभः ॥ १७३ ॥

पुष्पराग, मंजुमणि, वाचस्पतिवल्लभ, (जीवरत्न, पीतस्फटिक, पुखराज, पीत, पीतरक्त, पीताश्मा गुरुरत्न और पीतमणि) ये पुखराजके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–पुखराज । बं०पुष्पराग । म०-पुष्कराज । गु०–पुखराज, पीलुरत्न । क०–पुष्पराग । ता०–तै०–पुष्पराग । इं०–टोपाज Topag. लै०–टोपाजिया Topazia. ॥ १७३ ॥

अथ इन्द्रनीलगोमेदयोः (नीलम और गोमेदमणिके) नामानि ।

नीलं तथेन्द्रनीलं च गोमेदः पीतरत्नकम् ॥ १७४ ॥

नील, इंद्रनील, (शौरिरत्न, नीलाश्मा, नीलरत्नक तालोपल, तृणग्राही, महानील और सुनीलक) ये नीलमणिके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–नीलम, नीलमणि । बं०-म०–नीलमणि । गु०–निलम । क०नील । तै०-ता०-नीलं । इं०–सेफायर Saffire. लै०–सेफायर्स Saffires.

गोमेद, पीतरत्नक (पिंगस्फटिक, अगस्तिसत्त्व, तमोमणि, गोमेदक, बाहुरत्न और स्वर्भानव) ये गोमेदके। संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–म०–क०–गु०–बं०–गोमेदमणि । तै०–ता० गोमेदकं । इं०–ओनिक्स Onyx. लै०–ओनिक्स Onyx. ॥ १७४ ॥

अथ वैदूर्यम् (लहसुनिया) ।

वैदूर्यं दूरजं रत्नं स्यात्केतुग्रहवल्लभम् १७५

वैदूर्य, दूरज, रत्न, केतुग्रहवल्लभ, (राष्ट्रक, वैडूर्य, केतुरत्न, मेघखरांकुर, बालवायज, बालसूर्य, बालसूर्यक, कैतव, प्रावृष्य, अभ्ररोह, शराब्दांकुर, विदूररत्न और बिदूरज) ये लहसुनियेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–वैडूर्यमणि, लहसुनिया । बं०–वैदूर्य। म०–वैडूर्यरत्न । गु०--लसणीयो । ता०--क०--वैडूर्य । इं०--कट्सआइ Catseye.

अथ मौक्तिकस्य नामानि गुणाश्च ।

मौक्तिकं शौक्तिकं मुक्ता तथा मुक्ताफलं च तत् । शुक्तिः शंखो गजः क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः ॥१७६॥ वेणुरेते समाख्यतास्तज्ज्ञैर्मौक्तिकयोनयः । मौक्तिकं शीतलं वृष्यं चक्षुष्यं बलपुष्टिदम् ॥ १७७ ॥

मौक्तिक, शौक्तक, मुक्ता, मुक्ताफल, शुक्तिज, शौक्तिकेय, शशिप्रभ, अम्भस्सार, बिन्दुफल, मुक्तिका, शौक्तेयक, इंदुरत्न, लक्ष्मी, हिम, शुक्तिबीज, हारी, कुवल, सौम्य, तार तारा, मौतिक, शीतल, नीरज, नक्षत्र, शुक्तिमणि, स्वच्छ, हिमबल, सुधांशुम, सुधांशुरत्न, लक्ष, शशिप्रिय, हैमवत और भूरुह) ये मोतीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी- मोती । बं०--मुक्ता । म० -मोती। गु०- मोती । क०--मौक्तित । तै०--मोत्यालु । ता०--मुत्त । फा० -मरबारीद । अ०--लोलू । इं०--पर्ल Pearl. लै०--मार्गारिटा Margarita.

उत्पत्ति--मोती--शीप, शंख, हाथी, सुअर, सर्प, मछली, मेढक, और बांस इन आठोंमेसे उत्पन्न होता है । परन्तु, आजकल प्रायः सीपका ही मोती मिलता है ॥

गुण- मोती-शीतल, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, बल तथा पुष्टिदायकहै ॥१७६१७७॥

अथ प्रवालस्य (मूङ्गाके) नामानि ।

पुंसि क्लीबे प्रवालः स्यात्पुमानेव तु विद्रुमः ॥ १७८ ॥

प्रवाल (पुल्लिंग तथा नपुंसकलिंग), विद्रुम (पुल्लिंग), (अंगारकमणि, अम्भोधिपल्लव, भौमरत्न, रत्नांग, रक्तांग, लताभणि, रक्तकन्द, रक्तकन्दल और रक्ताकार) ये मूँगेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–मूँगा । बं०=पला, मुँगा। म०–पोवळें। गु०सपरवालौं । क०–अवलेहवत । तै०–प्रवालक, पगडालु । ता०–पवळम्। फा०–मिरजान् । अ०–वसद । इं०–रेडकोरल् Redcoral. लै०–कोरे लियंरुब्रम Coruelum Rubrum. १७८

अथ रत्नानां गुणाः।

रत्नानि भक्षितानि स्युर्मधुराणि सराणि च। चक्षुष्याणि च शीतानि विषघ्नानि धृतानि च। मंगल्यानि मनोज्ञानि ग्रहदोषहराणि च ॥ १७९ ॥

किं रत्नं कस्य ग्रहस्य प्रीतिकारित्वेन दोषहरं भवतीति प्रश्ने तदुत्तरमाह रत्नमालायाम् माणिक्यं तरणेःसुजातममलं मुक्ताफलं शीतगोर्माहेयस्य तु विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम्। देवेज्यस्प च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शनेर्नीलं निर्मलमन्ययोर्निगदिते गोमेदवैदूर्यके ॥ १८० ॥

रत्न भक्षण करनेमें मधुर, दस्तावर, नेत्रोंको हितकारी और शीतल है। धारण करनेसे विषनाशक, मंगल. कारक, मनोज्ञ और ग्रहदोष दूर करनेवाले हैं ॥

कौन कौनसा रत्न किस किस ग्रहका दोष हरनेवाला है? ऐसा प्रश्न होनेपर रत्नमालाग्रन्थसे उत्तर लिखते हैं कि-"सूर्यके लिये माणिक, चन्द्रमाके लिये निर्मल मोती, मंगलके लिये मूँगा, बुधके लिये पन्ना, बृहस्पतिके लिये पुखराज, शुक्रके लिये हीरा, शनिके लिये नीलम, राहुके लिये गोमेद और केतुके लिये लहसुनिया धारण करना चाहिये"१७९-१८०॥

अथ उपरत्नानां निरूपणम्।

उपरत्नानि काचश्च कर्पूराश्मा तथैव च। मुक्ताशुक्तिस्तथा शंख इत्यादीनि बहून्यपि ॥ १८१ ॥

उपरत्नानि--गौणरत्नानि। कर्पुराश्मा-कपनीया कर्पुरनिया। मुक्ताशुक्तिः 'सीप' इति लोके प्रसिद्धा ॥

गुणा यथैव रत्नानामुपरत्नेषु ते तथा। किन्तु किञ्चित्ततो हीना विशेषोऽयमुदाहृतः ॥ १८२ ॥

काच, कर्पूराश्मा[1] (कपूर्निया), मोतीकी सीप तथा शंख इत्यादि उपरत्न बहुत हैं ॥

जो गुण रत्नोंमें कहे हैं, वेही गुण उपरत्नोंमें हैं, परन्तु कुछ कुछ न्यून गुण हैं, इतना ही अन्तर है ॥

अथ विषस्य नामलक्षणगुणाः।

विषं तु गरलः क्ष्वेडस्तस्य भेदानुदाहरे। वत्सनाभः सहारिद्रः सक्तुकश्च प्रदीपनः ॥१८३॥ सौराष्ट्रिकः शृङ्गिकश्च कालकूटस्तथैव च। हालाहलो ब्रह्मपुत्रो विषभेदा अमी नव ॥ १८४ ॥

नाम-विष, गरल, क्ष्वेड, (काकोल, दारद, सौराष्ट्रिक, शौक्लिकेय, ब्रह्मपुत्र, प्रदीपन, आहेय, अमृतगरद, कालकूट, कसाकुल, हरिद्र, रक्तश्रृंगिक, नील, गर, घोर, हलाहल, हालाहल, श्रृंगी, सुगर, जांगल, तीक्ष्णरस रसायन, जांगुल, वत्सनाभ, जीवनाघात, किषल और प्राणहर) ये विषके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-बचनाग, विष। बं०-काट विष। म०-बचनाग। गु०-विष। क०-वशनवी। तै०--नाभी। ता०-वर्चनाभि। फा०-जहर। अ०-विष। इं०-पॉइझन Poison.

भेद--वत्सनाभ, हारिद्र, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, श्रृंगिक, कालकूट, हालाहल और ब्रह्मपुत्र ये नौ विषयके भेद हैं ॥ १८३॥१८४॥

तत्र वत्सनाभस्य स्वरूपनिरूपणम् ॥

सिन्दुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा। यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः ॥ १८५ ॥

वत्सनाभविषका स्वरूप-जिसके पत्ते सम्हालूके सदृश हों, आकृति बछडेकी नाभिके सदृश हो, जिसके समीप दूसरे वृक्षकी वृद्धि न हो, वह वत्सनाभविष जानना ॥ १८५ ॥

अथ हारिद्रस्य स्वरूपनिरूपणम्।

हरिद्रातुल्यमूलो यो हारिद्रः स उदाहृतः ॥ १८६ ॥

१--कोई कर्पूराश्मविल्लोरको कहते हैं।

हारिद्र विषका स्वरूपजिसकी जड हलदीके वृक्षके सदृश हो, वह हारिद्र विष कहा है ॥ १८६ ॥

अथ सक्तुकस्य स्वरूपम्।

यद्ग्रन्थिः सक्तुकेनेव पूर्णमध्यः स सक्तुकः ॥ १८७ ॥

सक्तुकविषका स्वरूप-जिसके गांठमें सत्तूके सदृश चूर्ण भरा हुआ हो, वह सक्तुक विष जानना ॥ १८७ ॥

अथ प्रदीपनस्य स्मरूपम्।

वर्णतो लोहितो यः स्याद्दीप्तिमान् दहनप्रभः। महादाहकरः पूर्वैः कथितः सः प्रदीपनः ॥ १८८ ॥

प्रदीपनविषका स्वरूप-जो लालवर्णवाला, दीप्त. अग्निके सदृश कांतिवाला और अत्यन्त दाहकारक हो। वह प्रदीपन विष कहा है ॥ १८८ ॥

अथ सौराष्ट्रिकस्य स्वरूपम्।

सुराष्ट्रविषये यः स्यात् स सौराष्ट्रिक उच्यते ॥ १८९ ॥

सौराष्टिक विषका स्वरूप-जो सोरठ देशमे उत्पन्न होता है, वह सौराष्ट्रिक विष कहा है ॥ १८९ ॥

अथ शृंगिकस्य स्वरूपम्।

यस्मिन् गोशृङ्गके बद्धे दुग्धं भवति लोहितम्। स शृङ्गिक इति प्रोक्तो द्रव्यतत्त्वविशारदैः ॥ १९० ॥

शृंगिकविषका स्वरूप-जिसको गायके सींगमें बांधनेसे दूध लाल होजाय, उसको द्रव्यतत्त्व जाननेवालोंने सींगिया विष कहा है ॥ १९० ॥

अथ कालकूटस्य स्वरूपम्।

देवासुररणे देवैर्हतस्य पृथुमालिनः। दैत्यस्य रुधिराज्जातस्तरुरश्वत्थसन्निभः ॥ १९१ ॥ निर्यासः कालकूटोऽस्य मुनिभिःपरिकीर्तितः। सोऽहिक्षेत्रे शृङ्गवेरे कोङ्कणे मलये भवेत् ॥ १९२ ॥

कालकूट विषका स्वरूप-देवता और असुरोंके संग्राम देवताओंने पृथुमाली नामक एक दैत्यको मारा, उस दैत्यके रुधिरसे पीपलके सदृश एक वृक्ष उत्पन्न हुआ, उस वृक्षके गोंदको मुनियोंने कालकूट विष कहा है। यह कालकूट अहिक्षेत्रमें, शृंगबेरमें, कोंकणदेशमें और मलयाचलमें होता है ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

अथ हालाहलस्य स्वरूपम्।

गोस्तनाभफलो गुच्छस्तालपत्रच्छदस्तथा। तेजसा यस्य दह्यन्ते समीपस्था द्रुमादयः ॥ १९३ ॥ असौ हालाहलो ज्ञेयः किष्किन्धायां हिमालये। दक्षिणाब्धितटे देशे कोङ्कणेऽपि च जायते ॥ १९४ ॥

हालाहलविषका स्वरूप-जिसके फल दाखोंके गुच्छेके सदृश हों तथा पत्ते तालवृक्षके सदृश हों और जिसके तेजसे समीपके वृक्षादिक भस्म होजायँ, वह हालाहल विष जानना। यह हालाहल विष हिमालयमें, किष्किन्धामें, दक्षिण समुद्रके तटपर और कोंकणदेशमें होता है ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

अथ ब्रह्मपुत्रस्य स्वरूपम्।

वर्णतः कपिलो यः स्यात्तथा भवति सारतः। ब्रह्मपुत्रः स विज्ञेयो जायते मलयाचले ॥ १९५ ॥ ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेपु क्षत्रियो लोहितप्रभः। वैश्यः पीतोऽसितः शूद्रो विष उक्तश्चतुर्विधः १९६

ब्रह्मपुत्रविषका स्वरूप—जिसका वर्ण पीला हो, वह ब्रह्मपुत्र विष जानना। यह मलयाचलमें होता है ॥

लक्षण—जो विष श्वेत वर्णवाला हो वह ब्राह्मण जातिका, जो विष लाल कांतिवाला हो वह क्षत्रिय जातिका, जो विष पीलेरंगवाला हो वह वैश्य जातिका और जो श्याम वर्णवाला हो वह शूद्र जातिका जानना, इस भांति विष चार प्रकारका कहा है ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

रसायने विषं विप्रं क्षत्रियं देहपुष्टये। वैश्यं कुष्ठविनाशाय शूद्रं दद्याद्वधाय हि। ॥ १९७ ॥ विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च। आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदावहम् ॥ १९८ ॥

व्यवायि--सकलकायगुणव्यापनपूर्वकं पाकगमनशीलम्। विकाशि ओजःशोषणपूर्वकं संधिबंधनशिथिलीकरणशीलम्। आग्नेयम्-अधिकाग्न्यंशम्। योगवाहि-संगिगुणग्राहकम्। मदावहं-तमोगुणाधिक्येन बुद्धिविध्वंसकम् ॥

तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदायि रसायनम्। योगवाहि त्रिदोषघ्नं बृंहणं वीर्यवर्धनम् ॥ १९९ ॥ ये दुर्गुणा विषेऽशुद्धे ते स्युर्हीना विशोधनात्। तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ २०० ॥

प्रयोग-रसायनके काममें ब्राह्मण जातिके विषका, देहकी पुष्टिके कार्यमें क्षत्रिय जातिके विषका, कुष्ठरोग नष्ट करनेमें वैश्य जातिके विषका और वध करनेके कार्यमें शूद्र जातिके विषका प्रयोग करना चाहिये ॥

गुण-विष-प्राणनाशक, व्यवायि (सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर पचनेवाला), विकाशि (ओजको सुखाकर संधिबन्धनोंको शिथिल करनेवाला) आग्नेय (अग्निके अधिक अंशयुक्त), योगवाहि (साथीके गुणोंको ग्रहण करनेवाला), वात तथा कफनाशक और मदकारक है। जो इस विषको युक्तिके साथ उपयोग करे तो प्राणदायक, रसायन योगवाही, त्रिदोषनाशक, पुष्टिकारक और वीर्यवर्द्धक है॥

अशुद्ध विषमें जो दुर्गुण रहते हैं वे शुद्ध करनेसे हीन होजाते हैं, इस कारण औषधियोंके प्रयोगमें विषको शुद्ध करके प्रयोग करे ॥१९७-२०० ॥

अथ उपविषाणां निरूपणम्।

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकः। गुञ्जाऽहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयः ॥ २०१ ॥

उपविषाणि--गौणविषाणि, एषां गुणास्तत्र-तत्र द्रष्टव्याः ॥

इति श्रीभावप्रकाशे धातूपधातु-रसोपरस-रत्नोपरत्न-विषोपविषवर्गः।

आकका, दूध, थूहरका दूध, लांगली (कलिहारी), कनेर, घुंघुची, अफीम और धतूरा ये सात उपविष अर्थात् गौणविषकी जातियाँ हैं (इनके गुण वहां वहां देखने चाहिये) ॥ २०१ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीविनीभाषाटीकायां धातूपधातुरसोपरसरत्नोपरत्नविषोपविषवर्गः ॥

अथ धान्यवर्गः।

तत्र धान्यानां भेदाः।

शालिधान्यं व्रीहिधान्यं शूकधान्यं तृतीयकम्। शिम्बीधान्यं क्षुद्रधान्यमित्युक्तं धान्यपञ्चकम् ॥ १ ॥ शालयो रक्तशाल्याद्या व्रीहयः षष्टिकादयः। यवादिकं शूकधान्यं मुद्गाद्यं शिम्बिधान्यकम्। कंग्वादिकं क्षुद्रधान्यं तृणधान्यं च तत् स्मृतम् ॥ २ ॥

शालिधान्य, व्रीहिधान्य, शूकधान्य, शिंबीधान्य और क्षुद्रधान्य इस भाँति धान्योंके पांच भेद हैं ॥

वहां लाल चावल आदि शालिधान्य, सांठी आदि व्रीहिधान्य, यव आदि शूकधान्य, मूँग आदि शिंबी धान्य और कंगुनी आदि क्षुद्र-

धान्य कहे हैं । क्षुद्रधान्यको तृणधान्य भी कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ शालिधान्यस्य लक्षणम् ।

कण्डनेन विना शुक्ला हैमन्ताः शालयः स्मृताः ॥ ३ ॥

जो चावल हेमन्तऋतुमें होते हैं और भूसारहित सफेद होते हैं वे शालिधान्य जानने॥३॥

अथ शालीनां (चावलोंके नामानि ।

रक्तशालिः सकलमः पाण्डुकः शकुनाहृतः । सुगन्धकः कर्दमको महाशालिश्च दूषकः ॥ ४ ॥ पुष्पाण्डकः पुण्डरीकस्तथा महिषमस्तकः । दीर्घशूकः काञ्चनको हायनो लोध्रपुष्पकः ॥५॥ इत्याद्याः शालयः सन्ति बहवो बहुदेशजाः । ग्रन्थविस्तरभीतेस्ताः समस्ता नात्र भाषिताः ॥ ६ ॥

रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कर्दमक, महाशालि, दूषक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, महिषमस्तक, दीर्घशूक कांचनक, हायन और लोधपुष्पक इत्यादि अनेक प्रकारके बहुत देशोंमें उत्पन्न होनेवाले शालिधान्य होते हैं, यहां ग्रंथ बढ जानेके भयसे सम्पूर्ण नहीं कहे हैं ॥

हिंदी-धान, शालिधान, चावल । बं०-शालिधान्य, चाउल । म०-साळी, भात, तांदूळ । गु०-शालि चोखा । ता०-क०-नेल्लु तै०-धान्यमु । फा०-विरंज । अ०-उरज । इं०-राइत Rice लै०-ओरिजिया साढिवा Orzia Sativa ॥ ४ ॥ ६ ॥

अथ शालीनां गुणाः

शालयो मधुराः स्निग्धा बल्या बद्धाल्पवर्चसः । कषाया लघवो रुच्याः स्वर्या वृष्याश्च बृंहणाः ॥७॥ अल्पानिलकफाः शीताः पित्तघ्ना मूत्रलास्तथा । शालयो दग्धमृज्जाताः कषाया लघुपाकिनः ॥८॥ सृष्टमूत्रपुरीषाश्च रूक्षाःश्लेष्मापकर्षणाः । कैदारा वातपित्तघ्ना गुरव कफशुक्रलाः । कषायाश्चाल्पवर्चस्का मेध्याश्चैव बलावहाः ॥ ९ ॥

कैदाराः--कृष्टक्षेत्रजा उप्ताः ॥

शालिधान्य-मधुर, स्निग्ध, बलदायक, अल्पपरिमाण, बद्धमलको निकालनेवाले, कसैले, हलके रुचिकारक, स्वरको उत्तम करनेवाले, वीर्यवर्द्धक, शरीरको पुष्ट करनेवाले, किंचित् वात तथा कफकारक, शीतल, पित्तकारक तथा मूत्रवर्द्धक हैं, जो चावल जलीहुई मिट्टीसे उत्पन्न हुए हैं, वे कसैले, पाकमें हलके, मल मूत्रको निकालनेवाले, रूक्ष और कफशोधक हैं । जो चावल खेतमें बोनेसे उत्पन्न हों वे वातपित्तनाशक, भारी, कफ तथा वीर्यको बढानेवाले कसैले, मेधाको हितकारी, बलदायक और अल्पमल लानेवाले हैं॥७-९॥

स्थलजाः स्वादवः पित्तकफघ्ना वातपित्तदाः । किञ्चित्तिक्ताः कषायाश्च विपाके कटुका अपि ॥ १० ॥

स्थलजाः--अकृष्टभूमिजाताः स्वयं जाताः ॥

जो चावल-विना जोती बोई पृथ्वीसे स्वयं उत्पन्न हुए हैं, वे मधुर, पित्त, कफनाशक, वात, पित्तदायक, किंचित् चरपरे कसैले और पाकमें चरपरे हैं ॥ १० ॥

वापिता मधुरा वृष्या बल्याः पित्तप्रणाशनाः । श्लेष्मलाश्चाल्पवर्चस्काः कषाया गुरवो हिमाः ॥ ११ ॥

वापिताः-कृष्टक्षेत्रे अकृष्टक्षेत्र च ॥

कृष्टभूमिमें अथवा अकृष्ट भूमिमें बोनेसे उत्पन्न हुए चावल-मधुर, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, पित्तनाशक, कफवर्द्धक, अल्पमल निकालनेवाले, कसैले, भारी और शीतल हैं॥११॥

वापितेभ्यो गुणैः किञ्चिद्धीना प्रोक्ता अवापिताः ॥ १२ ॥

कृष्टक्षेत्र अकृष्टक्षेत्र वा ॥

रोपितास्तुनवा वृष्याः पुराणा लघवः स्मृताः। तेभ्यस्तु रोपिता भूयः शीघ्रपाका गुणाधिकाः ॥ १३ ॥ छिन्नरूढा हिमा रूक्षा बल्याः पित्त कफापहाः । बद्धविट्काः कषायाश्च लघवश्चाल्पतिक्तकाः ॥ १४ ॥

बोनेसे उत्पन्न हुए चावलोंकी अपेक्षा विना बोये हुए चावलोंमें अल्प गुण कहे हैं । बोये हुए चावल नवीन हों तो वीर्यवर्द्धक और जीर्ण हों तो हलके हैं। उनसे फिर बोये हुए शालिचावल शीघ्र पकनेवाले और गुणोंमें अधिक हैं। जो चावल काटनेके पश्चात् उगे हुए हों वे शीतल, रूखे, बलकारक, पित्त, कफनाशक, मलरोधक, कसैले, हलके और किंचित् मात्र कडवे हैं ॥ १२ ॥ १४ ॥

अथ रक्तशालेर्गुणाः ।

रक्तशालिर्वरस्तेषु बल्यो वर्ण्यस्त्रिदोषजित् । चक्षुष्यो मूत्रलः स्वर्यः शुक्रलस्तृड्ज्वरापहः ॥१५॥ विषव्रणश्वासकासदाहनुद्वह्निपुष्टिदः । तस्मादल्पान्तरगुणाः शालयो महदादयः ॥ १६ ॥

रक्तशालिः 'दादखानी' इनि लोके मगधदेशे प्रसिद्धाः ॥

सम्पूर्ण धान्योंमें रक्तशाली-श्रेष्ठ, बलदायक व्रणको उत्तम करनेवाले, त्रिदोषनाशक, नेत्रोंको हितकारी, मूत्रकारक, स्वरको उत्तम करनेवाले, वीर्यको बढानेवाले, अग्निप्रदीपक और पुष्टिकारक ज्वर नाशक, तृषा, विष, व्रण, श्वास, खांसी तथा दाहको नष्ट करनेवाले हैं। दूसरे महाशालि आदि चावल इन रक्तशालियोंकी अपेक्षा अल्प गुण वाले हैं । (दादखानी चावल मगधदेशमें प्रसिद्धहैं॥१५॥१६॥

अथ व्रीहिधान्यस्य लक्षणं गुणाश्च ।

वार्षिकाः कण्डिकाःशुक्ला व्रीहयश्चिरपाकिनः । कृष्णव्रीहिः पाटलश्च कुक्कुटाण्डक इत्यपि ॥ १७ ॥ शालामुखो जतुमुख इत्याद्या व्रीहयः स्मृताः । कृष्णव्रीहिः स विज्ञेयो यत्कृष्णतुषतण्डुलः ॥१८॥ पाटलः पाटलापुष्पवर्णको व्रीहिरुच्यते । कुक्कुटाण्डाकृतिर्व्रीहिःकुक्कुटाण्डक उच्यते ॥ १९ ॥ शालामुखः कृष्णशूकः कृष्णत्तण्डुल उच्यते । लाक्षावर्णं मुखं यस्य ज्ञेयो जतुमुखस्तु सः ॥ २० ॥ व्रीहयः कथिताः पाके मधुरा वीर्यतो हिमाः । अल्पाभिष्यन्दिनो बद्धवर्चस्काः षष्टिकैः समाः । कृष्णव्रीहिर्वरस्तेषां तस्मादल्पगुणाः परे ॥ २१ ॥

जो चावल वर्षाऋतुमें पकते हैं और छडनेसे सफेद होते हैं तथा देरमें पकते हैं, वे व्रीहिधान्य कहाते हैं । कृष्णव्रीहि, पाटल, कुक्कुटांडक, शालामुख और जतुमुख इत्यादि व्रीहिधान्यके भेद हैं ॥

जिसकी भूसी और चावल कृष्णवर्ण हों, वह कृष्णव्रीहि जानना, जिसका वर्ण पाटलपुष्पके सदृश हों, उसको पाटल जानना जिसकी आकृति मुरगेके अण्डेके सदृश हो उसको कुक्कुटांडक जानना, जिसका शूक (कांटा) और चावल काला हो उसको शाला मुख जानना, जिसका मुख लाखके सदृश वर्णवाला हो, उसको जतुमुख जानना ॥

गुण-सम्पूर्ण व्रीहिधान्य, पाकमें मधुर, वीर्यवाले, शीतल, अल्प अभिष्यन्दी, मलरोधक, और साठीके समान हैं। इनमें कृष्णव्रीहि उत्तम है और सब इससे अल्प गुणवाले हैं ॥ १७ ॥ २१ ॥

अथ षष्टिकानां (साठीके)
लक्षणं गुणाश्च ।

गर्भस्था एव ये पाकं यान्ति ते षष्टिका मताः ॥ २२ ॥

जो गर्भमें ही अर्थात् बालमें ही पकजाते हैं, उनको सांठी धान्य कहते हैं ॥ २१ ॥

षष्टिकानां नामानि ।

षष्टिकः शतपुष्पश्च प्रमोदकमुकुन्दकौ । महाषष्टिक इत्याद्याः षष्टिका समुदाहृताः। एतेऽपि व्रीहयःप्रोक्ता व्रीहिलक्षणदर्शनात् ॥ २३ ॥

षष्टिक, शतपुष्प, प्रमोदक, मुकुन्दक और महाषष्टिक इत्यादि सांठी धान्यके भेद हैं, इनमें व्रीहिके लक्षण दीखते हैं इससे ये भी व्रीहि कहे हैं ॥ २३ ॥

अथ षष्टिकानां गुणाः ।

षष्टिका मधुराः शीता लघवो बद्धवर्चसः । वातपित्तप्रशमनाः शालिभिः सदृशा गुणैः ॥ २४ ॥ षष्टिका प्रवरा तेषां लघ्वी स्निग्धा त्रिदोषजित् । स्वाद्वी मृद्वी ग्राहिणी च बलदा ज्वरहारिणी । रक्तशालिगुणैस्तुल्या ततः स्वल्पगुणाऽपरा ॥ २५ ॥

सांठी चावल-शीतल, हलके, मलको बांधनेवाले, वात तथा पित्तको शान्त करनेवाले, और शालिधान्यके सदृश गुणदायक हैं, इन सबमें सांठी चावल उत्तम, हलके स्निग्ध, त्रिदोषनाशक मधुर, कोमल, ग्राही, बलदायक, स्वरको नष्ट करनेवाले और रक्तशालिके सदृश गुणवाले हैं, इससे औरोंमें अल्प गुण हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ शूकधान्यानि ।

तत्र यवभेदः ।

यवस्तु सितशूकः स्यान्निःशूकोऽतियवः स्मृतः । तोक्मस्तद्वत्स हरितस्ततः स्वल्पश्च कीर्तितः ॥२६॥ यवः कषायो मधुरः शीतलो लेखनो मृदुः । व्रणेषु तिलवत्पथ्यो रूक्षो मेधाऽग्निवर्द्धनः॥२७॥ कटुपाकोऽनभिष्यन्दि स्वर्यो बलकरो गुरुः । बहुवातमलो वर्णस्थैर्यकारी च पिच्छिलः ॥ २८ ॥ कण्ठत्वगामयश्लेष्मपित्तमेदःप्रणाशनः । पीनसश्वासकासोरुस्तम्भलोहिततृट्प्रणुत् । अस्मादतियवो न्यूनस्तोक्मो न्यूनतरस्ततः ॥२९॥

जौ और गेहूं ये शूकधान्योंमें गिने जाते हैं, यव, अतियव और तोक्म ये तीन जौकी जातियां हैं ॥

सफेद सुईवालेको जौ कहते हैं, जो जौ शूक (सुई) रहित हों वे अतियव कहाते हैं और जो हरे वर्णवाले तथा शूकरहित छोटे हों वे तोक्म कहाते हैं ॥

गुण--जौ-कसैले, मधुर, शीतल, लेखन, कोमल, व्रणरोगमें तिलके सदृश, पथ्य, रूक्ष, बुद्धि तथा अग्निको बढानेवाले, पाकमें चरपरे, अनभिष्यन्दी, स्वरको उत्तम करनेवाले, बलदायक, भारी वात तथा मलको बहुत करनेवाले, वर्णको स्थिर करनेवाले, पिच्छिल और और कण्ठरोग, त्वचाके रोग, कफ, पित्त, मेद पीनस, श्वास खांसी, ऊरुस्तम्भ, रुधिरविकार तथा तृषाको नष्ट करते हैं । जौसे अतियवमें अल्पगुण हैं और अतियवसे तोक्ममें अल्प गुण हैं ॥ २६-२९ ॥

अथ गोधूमस्य (गेहूंके)नामानि ।
लक्षणं गुणाश्च ।

गोधूमःसुमनोऽपि स्याद्द्विविधः स च कीर्तितः । महागोधूम इत्याख्यः पश्चा-

देशात्समागतः ॥ ३० ॥ मधूली तु ततः किञ्चिदल्पा सा मध्यदेशजा । निश्शूको दीर्घगोधूमः क्वचिन्नन्दिमुखाभिधः॥३१॥ गोधूमो मधुरःशीतो वातपित्तहरो गुरुः । कफशुक्रप्रदो बल्यः स्निग्धः सन्धानकृत्सरः । जीवनो बृंहणो वर्ण्यो व्रण्यो रुच्यः स्थिरत्वकृत् ॥ ३२ ॥

गोधूम, सुमन, (बहुदुग्ध, अरूप, म्लेच्छभोजन, निस्तुष, क्षीरी, रसाल, गोधूम और और सुमना) ये गेहूँके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी-गेहूं । बं०-गम । म०-गहूं । गु०-घेऊँ । क०-गोदी । तै०-गोदुमु । फा०-गंदुम । अ०-हिंता । ता०-कौदुमै । इं०-व्हीट Wheat. लै०-ट्रिटिकं वलगेरी Triticum Valgari.

लक्षण-गेहूंके तीन भेद हैं जो गेहूं पश्चिम मारवाड आदि देशोंसे आते हैं वे महागोधूम बडे गेहूं कहाते हैं । जो इन गेहूं से कुछ छोटे छोटे होते हैं वे मधूली कहाते हैं और वे मध्यमदेश मथुरा, दिल्ली, आगरा आदिमें होते हैं । जो गेहूं भूसीरहित होते हैं वे दीर्घ गोधूम कहाते हैं और कहीं कहीं इनको नन्दीमुख भी कहते हैं ॥

गुण=गेहूं-मधुर, शीतल, वात तथा पित्तनाशक, भारी, कफ तथा वीर्यवर्द्धक, बलदायक, स्निग्ध, सन्धानकारक, दस्तावर, जीवनरूप, पुष्टिकारक, वर्णको उत्तम करनेवाले, व्रणको हितकारी, रुचिकारक और स्थिरता करनेवाले हैं ॥ ३०-३२ ॥

कफप्रदो नवीनः, न पुराणः ।

पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूल्यभुक् ३३।

इति वाग्भटेन वसन्ते गृहीतत्वात् ।

नये गेहूं-कफकारक हैं, परन्तु पुराने गेहूं कफकारक नहीं हैं, क्योंकि वाग्भट कहते हैं कि, वसन्तमें "पुराने जौ, पुराने गेहूं, मधु, जङ्गली जीवोंका मांस और शूलसे (लोहसे) पकाया हुआ मांस खाना चाहिये" ॥ ३३ ॥

मधूली शीतला स्निग्धा पित्तघ्नी मधुरा लघुः । शुक्रला बृंहणी पथ्या तद्वन्नन्दीमुखः स्मृतः ॥ ३४ ॥

मधूली गेहूं-शीतल, स्निग्ध, पित्तनाशक, मधुर, हलके, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिदायक और पथ्य हैं । नन्दी मुखगेहुँओंमें भी ये ही गुण हैं ॥ ३४ ॥

तत्रादौ तन्नामानि ।

शमीजाःशिम्बिजाः शिम्बीभवाः सूर्याश्च वैदलाः ॥ ३५ ॥

शमीज, शिंबीज, शिम्बीभव, सूर्य और वैदल ये शिम्बीधान्यके संस्कृत नाम ह ॥३५॥

शिम्बीधान्यस्य गुणाः ।

वैदला मधुरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः । वातलाः कफपित्तघ्ना बद्धमूत्रमला हिमाः ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्येत्वाध्मानकारिणः ॥ ३६ ॥ मुद्गमसूरयोरनाध्मानकारित्वमन्यवैदलापेक्षया । न तु सर्वथा,एतयोरपिकिञ्चिदाध्मानकारित्वात्।

शिम्बीधान्य-मधुर, रूक्ष, कसैले, पाकमें चरपरे, वातकारक; कफ, पित्तनाशक, मूत्र, मलको बांधनेवाले, शीतल, मूँग तथा मसूरको छोडकर सब आध्मानकारक हैं । मूँग और मसूर ये अन्य शिम्बी धान्योंकी अपेक्षा अफारा नहीं करते, यह भी नहीं है । किंचित् अफारा तो करतेही हैं ॥ ३६ ॥

अथ मुद्गस्य (मूंगके) गुणाः ।

मुद्गो रूक्षो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः । स्वादुरल्पानिलो नेत्र्यो ज्वरघ्नो वनजस्तथा ॥ ३७ ॥ मुद्गो बहुविधः श्यामो हरितःपीतकस्तथा । श्वेतो रक्तश्च तेषान्तु पूर्वपूर्वो लघुः स्मृतः ॥ ३८ ॥ सुश्रुतेन पुनः प्रोक्तो हरितः प्रवरो गुणैः । चरकादिभिरप्युक्त एष एव गुणाधिकः॥३९॥

सं०-मुद्ग । हिन्दी=मूँग । बं०-मुग । म०-हिरवे, काळे मूग । गु०-मग । क०=हेसरु । तै०-पेसलु । ता०-पयरु । फा०-बुनुमास । अ०-मज । इं०-ग्रीनग्रेन Green Grain. लै०-फेसीओलस् मुंगो Phaseofs Mungo.

गुण-मूंग-रूखी, ग्राही, कफ तथा पित्तनाशक, शीतल, स्वादु, अल्प वातकारक, नेत्रोंको हितकारी तथा ज्वरनाशक है ॥

मूंग-काली, हरी; पीली, सफेद, लाल इस भांति अनेक प्रकारकी हैं । इनमें पीछेकी अपेक्षा पहिली दोमें अधिक हलकापन है। सुश्रुत तो हरी मूंगमें ही सर्वोत्तम गुण कहते हैं और चरकादिक भी हरी मूंगमें ही अधिक गुण कहते हैं ॥ ३७-३९ ॥

अथ माषः (उडद)।

माषो गुरुः स्वादुपाकः स्निग्धो रुच्योऽनिलापहः । स्रंसनस्तर्पणो बल्यःशुक्रलो बृंहणः परः ॥४०॥ भिन्नमूत्रमलःस्तन्यो मेदःपित्तकफप्रदः । गुदकीलार्दितश्वासपक्तिशूलानि नाशयेत् ॥४१॥ कफपित्तकरा माषा कफपित्तकरं दधि । कफपित्तकरा मत्स्या वृन्ताकं कफपित्तकृत्४२

सं०-माष । हिन्दी-उडद, उरद । बं०-माष, कलाय । म०-उडद । गु०-अडद । क०-उड्डु । तै०-भिनुउलु । ता०-उलुन्द । फा०-माष । अ०-माषा । इं०-किडनीबीन Kidney bean. लै०-फेसी ओलस् रेडीयेटस् Phaseolus Rediatus.

गुण-उडद-भारी, पाकमें मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक, वातनाशक, स्रंसन, तृप्तिकारक, बलदायक, वीर्यवर्द्धक, अत्यन्त पुष्टिकारक, मल, मूत्रकी अधिक प्रवृत्ति करनेवाले, दुग्धवर्द्धक, मेद, कफ, पित्तकारक, गुदकील (बवासीर), अर्दित वात, श्वास और पक्तिशूलनाशक है ॥ उडद, दही, मछली और बैंगन ये चारों कफ पित्तको बढाने वाले हैं ॥ ४०-४२ ॥

अथ राजमाषाः ।

(बेरातरा लोविया आदिभेद)

राजमाषो महामाषश्चपलश्चवलः स्मृतः । राजमाषो गुरुः स्वादुस्तुवरस्तर्पणः सरः ॥ ४३ ॥ रूक्षो वातकरो रुच्यः स्तन्यो भूरिबलप्रदः । श्वेतो रक्तस्तथा कृष्णस्त्रिविधः स प्रकीर्तितः । यो महांस्तेषु भवति स एवोक्तो गुणाधिकः ॥ ४४ ॥

राजमाष, महामाष, चपल, चवर, (वर्वट, मरुस्कार, द्विजसम्न, नलिप्राष, नृपमाष, नृपोचित, सितमाष, दीर्घबीज, निष्पाव, राजमाष सुकुमारदीर्घ शिम्बी और क्षुधाभिजनक) ये लोवियेके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी-लोविया । बं०-वरवटी कलाय । म०-चवळया । गु०-चोला । क०-वरवटा । ता०-कारा मणि । फा०-लोंविया । अ०-फरीका इं०-चाइनिज डोलिकोस Chinese Dolicos. लै०-डोलिकोस सिनेन्सी Dolichos Sinensis.

गुण-लोविया-भारी, मधुर, कसैला, तृप्तिदायक, दस्तावर, रूक्ष, वातकारक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, दुग्धवर्द्धक और अत्यन्त बलदायक है ॥

लोविया-श्वेत, लाल तथा काला इस भांति तीन प्रकारका है, इनमें जो बडा होता है उसमें अधिक गुण होते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अथ निष्पावः (भटवाँसु)

निष्पावो राजशिम्बिः स्याद्वल्लकः श्वेतशिम्बिकः । निष्पावो मधुरो रूक्षो विपाकेऽम्लो गुरुः सरः ॥ ४५ ॥ कषायः स्तन्यपित्तास्रमूत्रवातविबन्धकृत् । विदाह्युष्णो विषश्लेष्मशोथहृच्छुक्रनाशनः॥४६॥

निष्पाव राजशिंवि, वल्लक और श्वेतशिंबिक ये निष्पावके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-निष्पाव भटवाँसु, राजशिम्बीके बीज। बं०-राजशिम्बीबीज, भेटरासु। म०-पावटे। गु०-ओलिय वाल। क०-आवरे। तै०-अनपचेट्टु। ता०-अवरै। लै०-लेबलेब वलगेरिस् Lablab valgaris.

गुण-निष्पाव-मधुर, रूक्ष. पाकमें अम्ल, भारी, दस्तावर, कसैला. दुग्धवर्द्धक और पित्त, रुधिर, मूत्र, वात तथा अफारा कारक है विदाही, गरम, विष, कफ, शोथ और वीर्य-नाशक है॥ ४५॥ ४६॥

अथ वनमुद्गः (मोठ)।

मुकुष्ठो वनमुद्गः स्यान्मंकुष्ठकमुकुष्ठकौ। मकुष्ठो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः। वह्निजिन्मधुरः पाके कृमिकृज्ज्वरनाशनः॥ ४७॥

मुकुष्ठ, वनमुद्ग, मंकुष्ठक, (कृमीलक, अमृत, अरण्य मुद्ग, वल्लीमुद्ग, मुकुष्ठ, मयष्ठ, राजमुद्ग, वरक, निगूढक, कुलीनक, खण्डी, मुद्गष्टक, मुद्गष्ट, मयुष्टक, मयूष्ठ, मद्यक, मयुष्टक और मयुष्ट) ये मोठके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-मोठ। बं०-वनमूंग। म०-मटक्या। गु०-मठ। क०-मुगहेसरुभेद। तै०-कंकपेसलु। ता०-पनिष्पयरु। फा०-माष हिन्दी। इं०-एकोनीटलिव्ड किडनीबीन Aconite Leaved Kidney bean. लै०-फ्रेसीओलस Phreseolus.

गुण-मोठ, वातकारक, ग्राही, कफ तथा पित्तनाशक, हलकी, अग्निको जीतनेवाली, पाकमें मधुर, कृमिकारक और ज्वरको नष्ट करती है॥ ४८॥

अथ मसूरः।

मङ्गल्यको मसूरः स्यान्मङ्गल्या च मसूरिका। मसूरो मधुरः पाके संग्राही शीतलो लघुः। कफपित्तास्रजिद्रुक्षो वातलो ज्वरनाशनः॥ ४८॥

मंगल्यक, मसूर, मंगल्या, मसूरिका (रागदालि, मंगल्य, पृथुबीजक, सूर कल्याणबीज, गुरुबीज, मसूरक, व्रीहिकांचन, गमोलिक, तांबूलराग, हालासक्त, मसुरा, नसूरा और मांगल्या) ये मसूरके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-मसूर। बं०-मुसूरि कलाय। म०-मसूरा। गु०-मसुर। क०-चन्नंगी। तै०-मसुरपप्पु। ता०-मिसुर। फा०-बुनोपुर्ख। अ०-अदम्। इं-लेंटिल Lentil. लै०-ईरवेलेन्स Eravylans.

गुण-मसूर-पाकमें मधुर, ग्राही, शीतल, हलकी, रूक्ष, वातकारक, पित्त, रक्तविकार तथा ज्वरनाशक है॥ ४८॥

अथ आढकी (अरहर)।

आढकी तुवरी चापि सा प्रोक्ता शणपुष्पिका। आढकी तुवरा रूक्षा मधुरा शीतला लघुः। ग्राहिणी वातजननी वर्ण्या पित्तकफास्रजित्॥

तुवरी-तोरी (तोडिस)।

तुवरी ग्राहिणी प्रोक्ता लघ्वी कफविषास्रजित्। तीक्ष्णोष्णा वह्निदा कण्डूकुष्ठकोष्ठक्रिमिप्रणुत्॥ ४९॥

आढकी, तुवरी, शणपुष्पिका, (वार्या, मृत्ताल, मृत्तालक, काक्षी, करवीभुजा, वृत्तबीजा, सुराष्ट्रजा, पीतपुष्पा, मृत्स्ना, तुवरिका) ये अरहरके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-अरहर, अडहर। बं०-अडहर, आइरि। म०-तुरी। क०-तोगरी। तै०-कादुलु। गु०-तुवर। ता०-तुवरंपेरुप्पु। फा०-शाखुल। इं०-पिजीअन्पी Pigeon Pca. लै०-केजनस् इंडिकस् Cajanus. Indieus.

गुण-अरहर-कसैली, रूखी, मधुर, शीतल, ग्राही, वातको उत्पन्न करनेवाली, वर्णको उत्तम करनेवाली और पित्त तथा रक्तविकार नाशक है॥

तुवरी-ग्राही, हलकी, तीक्ष्ण, गरम, अग्निकारक और कफ, विष, रुधिरविकार को जीतनवाली है, खुजली, कोढ तथा कोठेकी कृमिको नष्ट करनेवाली है॥ ४९॥

अथ चणकः (चना)।

चणको हरिमन्थः स्यात् सकलप्रिय इत्यपि । चणकः शीतलो रूक्षः पित्तरक्तकफापहः ॥ ५० ॥ लघुः कषायो विष्टम्भी वातलो ज्वरनाशनः। स चाङ्गारेण संभृष्टस्तैलभृष्टश्च तद्गुणः ॥ ५१ ॥ आर्द्रभृष्टो बलकरो रोचनश्च प्रकीर्तितः । शुष्कभृष्टोऽतिरूक्षश्च वातकुष्ठप्रकोपनः ॥ ५२ ॥ स्विन्नः पित्तकफौ हन्यात् सूपः क्षोभकरो मतः । आर्द्रोऽतिकोमलो रुच्यः पित्तशुक्रहरो हिमः । कषायो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः ॥ ५३ ॥

चणक, हरिमन्थ, सकलप्रिय, (वाजिमन्थ, जीवन। हरिमन्थज. चण, सुगन्ध, कृष्णचञ्चुक, वालभोज्य, वाजिभक्ष्य, कंचुकी और वालभैषज्य) ये चनेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–चने, चना, । बं०–छोलारगाछ। म०–हरभरे, चणे । गु०–चणा । क०–कडुले । तै०–चनिकलु । ता०–कडले फा०–नरबूद । अ०–हुमस् । इं०–ग्रॉम Gram. लै०–सीसर एरिएटिनम् Cicer. Arietuum.

गुण–चने-शीतल, रूखे, पित्त, रुधिर, कफ नाशक, हलके, कसैले, विष्टम्भी, वात कारक और ज्वरनाशक हैं ॥

अग्निसे अथवा तेलमें भुने हुए चने भी येही गुणकारक हैं। गीले भुने हुए चने–बलदायक और रुचिकारक हैं । सूखे भुने हुए चने अत्यन्त रूक्ष और वात तथा कुष्टको कुपित करनेवाले हैं। उसीजे हुए चने पित्त तथा कफको नष्ट करते हैं। चनेकी राँधी हुई दाल क्षोभकारक है। गीले चने–कोमल,रुचिकारक, पित्त तथा वीर्यनाशक, शीतल, कसैले, वातकारक। ग्राही, हलके और कफपिपित्तविनाशक हैं ॥ ५०–५३ ॥

अथ कलायः (मटर)।

कलायो वर्तुलः प्रोक्तः सतीनश्च हरेणुकः । कलायो मधुरः स्वादुः पाके रूक्षश्च शीतलः ॥ ५४ ॥

कलाय, वर्चल, सतीन, हरेणुक, (मुण्डचणक, हरेणुक, रेणुक, खण्डिक, त्रिपुट, अतिवर्तुल, शुमन, नीलक, कंठी, सतीन, सतील और सतीनक) ये मटरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–मटर, केराव । बं०–वाँटुला मटर। म०--वाटाणे । गु०- वटाणा । क०--वट्टकडले। तै०- पेद्दइव । ता०- पट्टाणी । इं०--फील्डपी Fieldpea. लै०--पाइसम् सेटाइवम् Pisum Sativum.

गुण- मटर- मधुर, पाकसें भी मधुर रूखा और शीतल है ॥ ५४ ॥

अथ त्रिपुटः (खेसारी)

त्रिपुटः खण्डिकोऽपि स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। त्रिपुटो मधुरस्तिक्तस्तुवरो रूक्षणो भृशम् ॥ ५५ ॥ कफपित्तहरो रुच्यो ग्राहकः शीतलस्तथा। किन्तु खञ्जत्वपङ्गुत्वकारी वातातिकोपनः॥५६॥

त्रिपुट और खंडिक ये खेसारी संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी- खेसारी, कस्सा । बं०--खेसारि कलाय। म०--लांक। गु०--मकाई। तै०--लांक। ता०--चोलम्। फा०--मासंग । अ०--हबुलबकर । इं०- चिकिलिंगवेच Chickiling Vetch लै०--लैथिरस सेटिवस Lathyrus Sativus.

गुण- खेसारी- मधुर, कडवी, कसैली, कफ, रूक्ष, पित्तनाशक, रुचिकारी, ग्राही, शीतल, खंजा, (लंगडा) करती है। तथा वातको अत्यन्त कुपित करनेवाली है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अथ कुलत्थः (कुलथी)।

कुलत्थिका कुलत्थश्च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। कुलत्थः कटुकः पाके कषायः पित्तरक्तकृत् ॥ ५७ ॥ लघुर्विदाही वीर्योष्णः श्वासकासकफानिलान्। हन्ति हिक्काश्मरीशुक्रदाहानाहान् सपीनसान्। स्वेदसंग्राहको मेदोज्वरक्रिमिहरः परः॥५८॥

कुलत्थिका, कुलत्थ (कुलित्थ, श्वेतबीज, सितेतर, कालावृन्त, ताम्रवृन्त ताम्रवृक्ष और ताम्रबीज) ये कुलथीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–कुलथी। बं०–कुलथी, कलाय। म० कुलीथ। गु० कुलथी। क०–हुरुली। तै०–उलवुलु। ता०–कोल्लू। फा०–किल्रत। अ०–हवुलकिलत। इं०–टुफ्लावर्डडोलीकोस Two-flowerep Dolicos लै०–डोलीकोस बाई-फ्लारेस् Dolichos Biflorus

गुण–कुलथी–पाकमें चरपरी, कसैली, पित्त रुधिरविकारकारक, हलकी, दाहकारक, उष्ण-वीर्य, श्वास, खांसी, कफ, वात, हिचकी, पथरी, वीर्य, दाह, अफारा, पीनस, पसीना-रोकनेवाली, मेद, ज्वर तथा कृमिको नष्ट करती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ तिलः।

तिलः कृष्णः सितो रक्तः स वन्योऽल्पतिलः स्मृतः। तिलो रसे कटुस्तिक्तो मधुरस्तुवरो गुरुः ॥ ५९ ॥ विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफपित्तनुत्[1]। बल्यः केश्यो हिमस्पर्शस्त्वच्यः स्तन्यो व्रणे हितः ॥ ६० ॥ दन्त्योऽल्पमूत्रकृद्ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः। कृष्णः श्रेष्ठतमस्तेषु शुक्लो मध्यमः सितः। अन्ये हीनतराः प्रोक्तास्तज्ज्ञै रक्तादयस्तिलाः ॥ ६१ ॥

तिल, (होमधान्य, पवित्र, पितृतर्पण, पापघ्न, पूतधान्य, जटिल, वनोद्भव, स्नेहफल, पूरफल और तैलफल) ये तिलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-तिल, काले तिल। बं०–तिलगाछ। म०–तील, कालेतील। गु० तल। ता०–क०–एल्लु। तै०-तनोवुलु। फा०-कुंजद। अ०–सिमसिम। इं०-सिसेमम् नाइजर सीड्स Sesamnm Niger Seeds लै०-सिसेमस् इंडिकम् Sisamus Jndicum

लक्षण–सफेद, काले और लाल, इस भांति तीन प्रकारके तिल होते हैं। जो तिल वनमें होते है, वे अल्पतिल कहाते हैं ॥

गुण–तिल–रसमें चरपरे, कडवे, मधुर, कसैले, भारी, पाकमें चरपरे, स्वादिष्ठ, स्निग्ध, गरम, कफ, तथा पित्तको नष्ट करनेवाले हैं। बलदायक, केशोंको उत्तम करनेवाले, स्पर्शमें शीतल, त्वचाको हितकारी, दुग्धवर्द्धक, व्रणरोगमें हितकारी, दांतोंको उत्तम करनेवाले, मूत्रको अल्प करनेवाले, ग्राही, वातनाशक, अग्निको दीपन करनेवाले और बुद्धिवर्द्धक हैं ॥

काले तिल–सर्वोत्तम और वीर्यवर्द्धक हैं, सफेद तिल मध्यम हैं लाल आदि तिल हीन गुणवाले हैं, ऐसा विद्वान् कहते हैं॥ ५९-६१ ॥

अथ अतसी (अलसी)।

अतसी नीलपुष्पी च पार्वती स्यादुमा क्षुमा। अतसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटुर्गुरुः। उष्णा दृक्छुक्रवातघ्नी कफपित्तविनाशिनी ॥ ६२ ॥

अतसी, नीलपुष्पी, पार्वती, उमा, क्षुमा, (पिच्छिला, देवी, मदगन्धा, मदोत्कटा, हैमवती, सुनीला, नीलपुष्पिका, चणका, क्षौमी, रुद्रपत्नी, सुवर्चला और मसृणा) ये अलसीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–गु०–अलसी। म०–अलशी, जवशी। बं०–मसिना, तिसी। क०–असगे, फा०–तुरूमे-कतान। अ०–बजरुल कत्तान। तै०–मल्लपगसि

1–'कफपित्तनुत्' इत्यत्र 'कफपित्तकृत्' इति वा पाठान्तरम्।

चेट्टु। ता०-याल्लिरै। इं०-नीलसीड Linseed लै०-लीनीसेमीना Liniseminia

गुण--अलसी-मधुर, कडवी, चिकनी, पाक में चरपरी, भारी, गरम, दृष्टि, वीर्य, वात, कफ तथा पित्तनाशक है ॥ ६२ ॥

अथ सर्षपः।

(लाल सरसों और पीली सरसों)

सर्षपः कटुकः स्नेहस्तुन्तुभश्च कदम्बकः ॥ ६३ ॥ गौरस्तु सर्षपः प्राज्ञैः सिद्धार्थ इति कथ्यते ॥ ६४ ॥ सर्षपस्तु रसे पाके कटुः स्निग्धः सतिक्तकः। तीक्ष्णोष्णः कफवातघ्नो रक्तपित्ताग्निवर्धनः ॥ ६५ ॥ रक्षोहरो जयेत्कण्डूं कुष्ठकोष्ठक्रिमिग्रहान्। यथा रक्तस्तथा गौरः किन्तु गौरो वरो मतः ॥ ६६ ॥

सर्षप, कटुक, स्नेह, तुन्तुभ, कदंवक, (भूतघ्न, रक्षिताफल, उग्रगन्ध, ग्रहघ्न, सरिषप, कदम्वद, बिम्बट, कदम्ब, तन्तुक, और राजक्षवक) ये सरसोंके संस्कृत नाम हैं ॥ सफेद सरसोंको विद्वान् सिद्धार्थ कहते हैं ॥

हिन्दी--सरसों। बं०-सरिषा, सर्षे। म०-सिरस। गु०-सरशव। क० विलीयसासेव। तै०-पच्चै आवालु। ता०वेल्लूलै कडुगु। फा०-सर्षफ। अ०-उर्फेअवीयद्। इं०-सिनापिसू आलब Sinapisalb लै०-ब्रेसिका कैंपेसट्रिस Brassica Cempestris

गुण--सरसों-रसमें और पाकमें चरपरी, स्निग्ध, कडवी, तीक्ष्ण गरम, कफ, वातनाशक, रुधिर-पित्त तथा अग्निवर्द्धक है राक्षस बाधाको हरनेवाली और खुजली, कोढ, कोठे की कृमि तथा ग्रहको नष्ट करती है। जो लाल सरसोंमें गुण हैं वे ही सफेद सरसोंमे हैं। परन्तु सफेद सरसों उत्तम होती है ॥६३-६६॥

अथ राजिका (राई, कृष्णराई)।

राजी तु राजिका तीक्ष्णगन्धा क्षुज्जनिकाऽऽसुरी। क्षवः क्षुताभिजनकः कृमिकः कृष्णसर्षपः ॥ ६७ ॥ राजिका कफपित्तघ्नी तीक्ष्णोष्णा रक्तपित्तकृत्। किञ्चिद्रूक्षाग्निदा कण्डूकुष्ठकोष्ठक्रिमीन् हरेत्। अतितीक्ष्णा विशेषेण तद्वत्कृष्णाऽपि राजिका ॥ ६८ ॥

राजी, राजिका, तीक्ष्णगन्धा, क्षुज्जनिका, आसुरी, कटु, असुरी, काकोदुम्बरिका, रक्तिका, रक्तसर्षप, अतितीक्ष्ण, मधुरिक, वृक्षक, क्षुतक, ज्वलन्ती और ज्वलत्प्रभा) ये राईके संस्कृत नाम हैं ॥

क्षव, क्षुताभिजनक, कृमिक, कृष्णसर्षप, राजक्षवक, कृष्णा, तीक्ष्णफला, राजिका, राज्ञी, राजसर्षप, कृष्णिका, सूरी, मुष्टक, व्यष्टक, कटुक और क्षुधाभिजनन) ये कृष्णराई के संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-राई, कृष्णराई। बं०-राइसर्षे, कालसर्षे म०-मोहरी, राई। गु०-राई तथा काली राई। क०-साखिराई। तै०-वर्णालु। ता०-कडुगु। अ०-खरदल। इं०-मस्टर्डसीडस Mustardseeds लै०--सिनापिस नाईग्रा Sinapis Nigra

गुण-राई-कफ पित्तनाशक, तीक्ष्ण, गरम, रक्तपित्तकारक, किञ्चित् रूक्ष, अग्निको दीपन करनेवाली और खुजली, कोढ तथा कोठेकी कृमिनाशक है। विशेष करके अत्यन्त तीक्ष्ण है, लाईमें भी ये ही गुण हैं। कृष्णराईको लाई कहते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अथ क्षुद्रधान्यम्।

क्षुद्रधान्यं कुधान्यं च तृणधान्यमिति स्मृतम्। क्षुद्रधान्यमनुष्णं स्यात्कषायं लघु लेखनम् ॥ ६९ ॥ मधुरं कटुकं पाके रूक्षं च क्लेदशोषकम्। वातकृद्बद्धविट्कं च पित्तरक्तकफाहहम् ॥ ७० ॥

क्षुद्रधान्य, कुधान्य और तृणधान्य ये क्षुद्रधान्यके संस्कृत नाम हैं ॥

गुण-क्षुद्रधान्य गरम नहीं, कसैला, हलका, लेखन, मधुर, पाकमें, चरपरा, रूक्ष, कलेदशोषक (गीलेपनको सुखानेवाला) वातकारक,

मलको बांधनेवाला, पित्त, कफ तथा रक्तविकारनाशक है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ कंगुः कङ्गनी)।

स्त्रियांकङ्गुप्रियंगू द्वे कृष्णा रक्ता सिता तथा। पीता चतुर्विधा कङ्गुस्तासु पीता वरा स्मृता ॥ ७१ ॥ कङ्गुस्तु भग्नसन्धानवातकृद् बृंहणी गुरुः। रुक्षा श्लेष्महराऽतीव वाजिनां गुणकृद् भृशम् ७२

कंगु, प्रियंगु, (प्रियंगू, कंगू, कंगुका, कंगुनिका, कंगुनी, चीनक और पीततण्डुल ये कंगनीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्ही-कंगनी, कांकुनि । बं०-कांगुनी। म०-कांग। गु०-कांग। क०-नवणे। तै०-प्रेंकणपुचेट्टु। ता०-कोल्लु कावळे। फा०-गल । लै०-पेनिक मिलियेस्यं Panicum Miliacenm

कंगनी-काली, लाल, सफेद और पीली इस भांति चार प्रकारकी हैं, इनमें पीली श्रेष्ठ है ॥

गुण-कंगनी टूटे हुए स्थानको जोडनेवाली, वातकर्त्ता, पुष्टिदायक, भारी, रूक्ष, अत्यन्त, कफनाशक और घोडोंके लिये अत्यन्त हितकारी है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

अथ चीनाकः (चैना)।

चीनाकः काककङ्गुश्च सुश्लक्ष्णः श्लक्ष्णकःस्मृतः। चीनकः कंगुभेदोऽस्ति स ज्ञेयः कंगुवद्गुणैः ॥ ७३ ॥

चीनाक, काककंगु,सुश्लक्ष्मण और श्लक्ष्णक ये चैनाके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-चैना, चीना ।बं०-चिन । म०-राळे। गु०-चीणा क०-चीनक । ता०-तेनै। फा०-उरजान । अ०-वारेगा । इं०-मिलेट Mallet. लै०-पेनिकम मिलीयेरी Panicum Miliari.

चैना भी कंगनीका ही भेद है इसमें कंगनीके सदृश गुण है ॥ ७३ ॥

अथ श्यामाकः (समा)।

श्यामाकः श्यामकः श्यामस्त्रिबीजः स्यादविप्रियः। सुकुमारो राजधान्यं तृणबीजोत्तमश्च सः। श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः कफपित्तहृत् ॥ ७४ ॥

श्यामाक, श्यामक, श्याम, त्रिवीज, अविप्रिय, सुकुमार, राजधान्य और तृणबीजोत्तम ये समेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-समा, सावाँ । बं०-शामाधान । म०-सावे। गु०-सामो। क०-सावि । तै०-श्यामालु। ता०-शामे। फा०-शामाख। लै०-पेनिकं फ्रूमेन्टेश्यं Panicum Frumentaceum.

गुण-समाःशोषणकर्त्ता, रूखा, वातकारक कफ तथा पित्तनाशक है ॥ ७४ ॥

अथ कोद्रवः (कोदो)

कोद्रवःकोरदूषः स्यादुद्दालो वनकोद्रवः। कोद्रवो वातलो ग्राही हिमः पित्तकफापहः। उद्दालस्तु भवेदुष्णो ग्राही वातकरो भृशम् ॥ ७५ ॥

कोद्रव, कोरदूष, उद्दाल, वनकोद्रव (कुद्रव, कोरदूषक, कोरदुष्य, कोद्दार, कोद्दाल,कुद्दाल, मदनाम्रक, कोर्द्रव) ये कोदोंके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कोदों । बं०-कोदोधान्य । म०-हरीक। गु०-कोदरो । क०-हारकं । तै०-आलुवालु। ता०-केवरु। अ०-कोदु । इं०-पकच्युआर्डपारपेल Punctured pasalum-लै०--पासपेल स्क्रोबिक्युटेल्यम् Paspalum Scordicutalium.

गुणः-कोदों वातकारक, ग्राही, शीतल, पित्त तथा कफनाशक है। उद्दाल अर्थात् वनकोदो गरम, ग्राही और अत्यन्त वातकारक है ॥७५॥

अथ चारुकः (सरवीज)।

चारुकःसरवीजः स्यात्कथ्यन्ते.तद्गुणा अथ। चारुको मधुरो रूक्षो रक्तपित्त-

कफापहः। शीतलो लघुवृष्यश्च कषायो वातकोपनः॥ ७६ ॥

सरपतेके बीजको चारुक कहते हैं॥

चारुक--मधुर, रूखा, रुधिर, कफ तथा पित्तनाशक है। शीतल, हलका, वीर्यवर्द्धक, कसैला और वातको कुपित करनेवालाहै॥७६॥

अथ वंशयवा (वांसके वीज)।

यवा वंशभवा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः। बद्धमूत्राः कफघ्नाश्च वातपित्तकराः सराः॥ ७७ ॥

बांससे उत्पन्न हुए येव- रूखे, कसैले, पाकमें चरपरे, मूत्रको रोकनेवाले, कफनाशक वात पित्तको करनेवाले और दस्तावर हैं॥ ७७ ॥

अथ कुसुम्भवीजम् (कसूमके वीज कर्र)।

कुसुम्भबीजं वरटा सैव प्रोक्ता वरट्टिका। वरटा मधुरा स्निग्धा रक्तपित्तकफापहा। कषाया शीतला गुर्वी स्यादवृष्याऽनिलापहा॥ ७८ ॥

कसूमके[2] बीजोंको वरटा और वरट्टिका कहते हैं॥

हिन्दी--कर्र, कर। बं०--कुसुमफल। म०-कर्डई। गु०-कसुम्बाना बीज । ता०--कुसुमै। फा०--तुख्मकापशा। अ०हबुल अस्फरा॥

गुण—कर्र—मधुर, चिकनी. कसैली, शीतल, भारी, वीर्यवर्द्धक नहीं और रक्तपित्त, कफ तथा वातविनाशक हैं॥ ७८ ॥

अथ गवेधुका (गरहेडुआ)।

गवेधुका तु विद्वद्भिर्गवेधुः कथिता स्त्रियाम्। गवेधुः कटुका स्वाद्वी कार्श्यकृत्कफनाशिनी॥ ७९ ॥

गवेधुका, गवेधु, (गवेडुका, कुन्त, क्षुद्रा, गोजिह्वा और गुन्द्रगुन्थ) ये गरहेडुएके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी—गरहेडुआ। म०—कसेरू। गु०--थेगी॥

गुण—गरहेडुआ चरपरा, मधुर, पतलाबनानेवाला और कफको नष्ट करनेवाला है ७९

अथ नीवारः (तीनी)।

प्रसाधिका तु नीवारस्तृणान्नमिति च स्मृतम्। नीवारः शीतलो ग्राही पित्तघ्नः कफवातकृत्॥ ८० ॥

प्रसाधिका, नीवार, तृणान्न, (अरण्यधान्य, मुनिधान्य, तृणोद्भव, तृणधान्य, वनव्रीहि और अरण्यशालि) ये तीनीके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी—तीनी, नीबार।। बं०—उडीधान्य। म०—देवभात। गु०—नानवी। क०जरहुमेधे। तै०निवरि वहु। ता०तनै। लै०—पिनिकं इटालिकं Panicum Italicum.

गुण—तीनी—शीतल, ग्राही, पित्तनाशक कफ तथा वातको करनेवाली है॥ ८०॥

अथ यावनालः (पनेरा, जुआर)।

यावनालो हिमः स्वादुर्लोहितश्लेष्मपित्तजित्। अवृष्यस्तुवरो रूक्षः क्लेदकृत्कथितो लघुः॥ ८१ ॥

हिन्दी—पनेरा, जुआर। म०—जोंधळे, ज्वारी। ता०—कंबु॥ बं०—जोयार। गु०—जुवार। क०-कारुजे। तै०—जौन्नगु। इं०—ग्रेटमिलेट Great Millet. हौलकस वलगेरीस Holcus Valgares. फा०—जुरेमका। अ०—हतारूमिया खंदरूस।

यावनाल (पेनरा)—शीतल, मधुर, रक्तविकार कफ तथा पित्तको नष्ट करता है, पुष्टिवर्द्धक नहीं, कसैला, रूक्ष, ग्लानिकारक और हलका है॥ ८१॥

परिभाषा।

धान्यं सर्वं नवं स्वादु गुरु श्लेष्मकरं स्मृतम्। तत्तु वर्षोषितं पथ्यं यतो लघु-

---

१—२१९ पृष्ठमें इसका विवरण है.
२—१६५ पृष्ठमें इसका विवरण है.

तरं हितम् ॥ ८२ ॥ वर्षोषितं सर्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति । न तु त्यजति वीर्यं स्वं क्रमान्मुञ्चत्यतः परम् ॥८३॥ एतेषु यवगोधूमतिलमाषा नवा हिताः । पुराणा विरसा रूक्षा न तथा गुणकारिणः ॥ ८४ ॥

पुराणाः--वर्षद्वयादुपरि स्थिताः । यवादयो नवाः स्वस्थान् प्रति हिता, पथ्याशिनां तु पुराणा हितः ॥ " पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूल्यभुक् । " इति वसन्ते वाग्भटेन उक्तत्वात् ॥

इति श्रीभावप्रकाशे धान्यवर्गः ।

सम्पूर्ण नवीन धान्य-मधुर, भारी और कफकारक होते हैं। एक वर्षके प्राचीन हो तो-अत्यन्त हलके, पथ्य और हितकारी हैं। एक वर्षके पश्चात् सम्पूर्ण भारीपन छोंडदेते हैं, परन्तु अपने वीर्यको नहीं छोडते और पश्चात् अनुक्रमसे शक्तिको भी छोडते जाते हैं। धान्योंमें-जौ, गेहूँ, तिल और उडद ये नवीन उत्तम और हितकारी हैं। पुराने होनेसे रसरहित और रूक्ष होजानेसे गुणकारक नहीं होते हैं, (इस स्थानमें 'प्राचीन' दो वर्षसे अधिक रहे हुओंको जानना नवीन जौ आदि धान्य स्वस्थ शरीरवालोंको हितकारी हैं,परन्तु पथ्य भोजन करनेवालोंको प्राचीन ही हितकारी है, क्योंकि वाग्भटमें कहा है कि-वसन्तऋतुमें " प्राचीन जौ, प्राचीन गेहूँ, जंगली पशुओंका मांस और लोहसे पका हुआ मांस खाना चाहिये " ॥ ८२-८४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्राम-वैश्यकृतवैद्यसंजीविनीभाषाटीकायां धान्यवर्गः ॥

अथ शाकवर्गः ।

तत्र शाकनिरूपणम् ।

पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा । शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरु विद्याद्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

पत्ते फूल, फल, नाल (डंडी), कंद, और संस्वेदज इस भांति छः प्रकारके शाक कहे हैं इनमें पहिलेकी अपेक्षा दूसरा भारी है ॥ १ ॥

अथ शाकानां गुणाः ।

प्रायः शाकानि सर्वाणि विष्टम्भीनि गुरूणि च । रूक्षाणि बहुवर्चांसि सृष्टविण्मारुतानि च ॥ २ ॥ शाकं भिनत्ति वपुरस्थि निहन्ति नेत्रं वर्णं विनाशयति रक्तमथापि शुक्रम् । प्रज्ञाक्षयं च कुरुते पलितं च नूनं हन्ति स्मृतिं गतिमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३ ॥ शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगास्ते हेतवो देहविनाशनाय । तस्माद्बुधः शाकविवर्जनं तु कुर्यात्तथाऽम्लेषु स एव दोषः ॥ ४ ॥

(एतानि शाकनिन्दकानि वचनानि सामान्यानि । अथ शाकेषु विशिष्टानि वचनानि ।)

प्रायः संपूर्ण शाक-विष्टम्भी, भारी, रूक्ष, मलको अधिक करनेवाले मल तथा वातनिःसारक हैं ॥

शाक-शरीरकी हड्डियोंको भेदनेवाला, नेत्रोंकोनष्ट करनेवाला, वर्ण-रुधिर वीर्यनाशक, बुद्धिका क्षयकर्त्ता, केशोंको सफेद करनेवाला और स्मृति (स्मरणशक्ति) तथा गतिको नष्ट करता है, ऐसा विद्वान् कहते हैं। संपूर्ण शाकोंमें रोग रहते हैं और वे रोग देहको नष्ट करनेमें हेतु हैं, इस कारण बुधजन सर्वदा शाकोंको छोड देते हैं। जो शाकमें दोष हैं वेही दोष (खट्टे) पदार्थोंमें हैं ॥ २-४ ॥ (ये शाककी निंदा करनेवाले सामान्य वचन हैं, इनमें जो विशेष वचन हैं वे नीचे जानने)॥

अथ पत्रशाकानि।

वास्तुकद्वयस्य (दोनों बथुओंके)।

नामानि गुणाश्च।

वास्तूकं वास्तुकं च स्यात्क्षारपत्रं च शाकराट्। तदेव तु बृहत्पत्रं रक्तं स्याद्गौडवास्तुकम् ॥ ५ ॥ प्रायशो यवमध्ये स्याद्यवशाकमतः स्मृतम्। वास्तूकद्वितयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम् ॥ ६ ॥ दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलप्रदम्। सरं प्लीहाऽस्रपित्तार्शःकृमिदोषत्रयापहम् ॥ ७ ॥

वास्तूक, वास्तुक, क्षारपत्र, शाकराट् (पांशुपत्र, शाकश्रेष्ठ, शाकवीर, कंकोल्ल, घनाघन, वास्तु, वसुक, हिलमोचिका, शाकराज, राजशाक और चक्रवर्ती) ये बथुएके संस्कृत नाम हैं ॥

बडे पत्तोंवाला जो बथुवा होता है उसको गौडवास्तुक कहते हैं, इसके संस्कृत नाम- गौडवास्तुक (चिल्ली, चिल्लिका, तुनी अम्र, लोहिता, क्षारदला, मृदुपत्री, क्षारपत्रा, वास्तकी, महद्दला और गौडवास्तु।)

हिन्दी-बथुवा, चिल्ली, बडाबथुआ। बं०-बेतुया बेतोशाक। म०-चाकवत, चिखिल। गु०-बथवो और बाथरो चीली। क०-चक्रवर्ती, विलीपचिल्लीके। फा०-मुसलेमा, मरमक। अ०-कतफ। इं०-ह्वाइटगुंजफुट Whitegoos e foot परपल गुजफट Purple gcose लै०-केनापाडंय आल्बम्, के. अट्रिपालि सिस Chenapadium Album Ch. Atri polisis.

बथुआ-अधिक करके जौके खेतमें होता है, इस कारण इसे यवशाक भी कहते हैं ॥

गुण-दोनों प्रकारका बथुआ-मधुर, खारा, पाकमें चरपरा, अग्निको दीपन करनेवाला, पाचक, रुचिकारक, हलका, दस्तावर और प्लीहा, रक्तपित्त, बवासीर, कृमि तथा त्रिदोषनाशक है ॥ ५-७ ॥

अथ पोतकी (पोई)।

पोतक्युपोदिका सा तु मालवाऽमृतवल्लरी। पोतकी शीतला स्निग्धा श्लेष्मला वातपित्तनुत् ॥ ८ ॥ अकण्ठ्या पिच्छिला निद्राशुक्रदा रक्तपित्तजित्। बलदा रुचिकृत्पथ्या बृंहणी तृप्तिकारिणी ॥ ९ ॥

पोतकी, उपोदिका, मालवा, अमृतवल्लरी, (कलंबी, पिच्छिला, पिच्छिलच्छदा, मोहिनी, मदशाक, विशाला, बलिपोदकी, उपोदिका, उपोती, वृश्चिकप्रिया, अपोदिका, पूतिका, और पूतिक) ये पोईके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-पोईका साग। बं०-पुईशाक। म०-मयालु। गु०-पोथी। इं०-रेडमलबार नाइट शोड्स Redmalbar Night Soads लै०-बसेलारुब्रा Bassella Rucra बसेला आल्वा BassellaAlba.

गुण-पोई-शीतल, स्निग्ध, कफकारक, वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाली, कंठको अहितकारी, पिच्छिल निद्रादायक, वीर्यवर्द्धक, रक्तपित्तनाशक, बलदायक, रुचिकारी, पथ्य, पुष्टिदायक और तृप्तिदायक है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ मारिषः (सफेद व लाल मरसा)।

मारिषो बाष्पको मार्षः श्वेतोरक्तश्च स स्मृतः। मारिषो मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुद् गुरुः ॥ १० ॥ वातश्लेष्मकरो रक्तपित्तनुद्विषमाग्निजित्। रक्तमार्षो गुरुर्नाति सक्षारो मधुरः सरः। श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः ॥ ११ ॥

मारिष, बाष्पक और मार्ष ये सफेद और लाल मरसेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-सफेद मरसा, लालमरसा, नवडा। बं०-श्वेतकांटा नटेशाक। म०-पोकळयाची भाजी, माठाची भाजी। गु०-डांभो। तै०-डुगलकुरा। लै०-एमेरेंथस् ट्रिकलर Amaranthus Tricalara ता०-कीरै।

सफेद मरसा-मधुर, शीतल, विष्टम्भी, पित्तनाशक, भारी, वात, कफकारक, रक्त

पित्तनाशक और अग्निकी विषमताको भी नष्ट करता है ॥

लाल मरसा-बहुत भारी नहीं, खारयुक्त, दस्तावर, कफकारक, पाकमें चरपरा और अल्प दोषवाला है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ तण्डुलीयः (चौलाई) ।

तण्डुलीयो मेघनादः काण्डेरस्तण्डुलेरकः । भण्डीरस्तण्डुलीबीजो विषघ्नश्चाल्पमारिषः ॥ १२ ॥ तण्डुलीयो लघुः शीतो रूक्षः पित्तकफास्रजित् । सृष्टमूत्रमलो रुच्यो दीपनो विषहारकः ॥ १३ ॥

तण्डुलीय, मेघनाद, काण्डेर, तण्डुलेरक भण्डीर, तंडुलीबीज, विषघ्न, अल्पमारिष, (तंडुलीयक, तण्डुल, तण्डुलीक, तंजुलीक, ग्रंथिल, बहुवीर्य, घनस्वन, सुशाक, पथ्यशाक, स्फूर्ज्जथु, स्वालिताह्वय, वीर और तण्डुलनामा) ये चौलाईके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-चौलाईका शाक । बं०-क्षुदेनटे । म०-तांदुळजा । गु०-तांदलजानी भाजी । क०, किरुकुशाले । तै०-मोलाकुरा । ता०-मुळक्कीरै । फा०-सफेदमर्ज । अ०-बुकलेय मानीया इं०-हरमेफ्रोडाइट एमेरेंथ Hermaphrodite Amaeranth लै०-एमेरेंथस टेलिफोलियस् Amaranthus Tenipholius.

गुण-चौलाई-हलकी, शीतल, रूक्ष, मलमूत्रको प्रवर्तितकरनेवाली, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, विषनाशक, पित्त, कफ तथा रक्त, विकार नाशक है ॥

अथ जलतण्डुलीय-(चौलाई भेदः) ।

पानीयतण्डुलीयं तु कचटं समुदाहृतम् । कचटं तिक्तकं रक्तपित्तानिलहरं लघु ॥ १४ ।

पानीयतण्डुल और कचट ये जलचौलाईके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-जलचौलाई । बं०-चांपानटे । गु०-पाणीनो तांदलजो । तै०-कुईकोरा । ता०-अरैक्कीरै ।

गुण-जलचौलाई-कडवी, हलकी रक्तविकार, पित्त तथा वातनाशक है ॥ १४ ॥

अथ पालक्या (पालक) ।

पालक्या वास्तुकाकारा छुरिका चीरितच्छदा । पालक्या वातला शीता श्लेष्मला भेदिनी गुरुः । विष्टम्भिनी मदश्वासपित्तरक्तविषापहा ॥ १५ ॥

पालक्य, वास्तुकाकारा, छुरिका, चीरितच्छदा, (पालंक्य, पलंक्या, क्षुरपत्रिका, सुपुत्रा, स्निग्धपत्रा, ग्रामिणी, ग्राम्यवल्लभा, क्षुरिका, पालक्या और पालकी) ये पालकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-पालकका शाक । बं०-पालङशाक । म०-पालक । गु०-टांको । क०-ता०-पालक्य । फा०-इस्पनाख, अस्पनाख । इं०-स्पाईनेज Spinage. लै०-स्पाईनेश्या ओलिरेश्या Spinasia Oleracea.

गुण-पालक-वातकारक, शीतल, कफकारक, दस्तावर, भारी, विष्टम्भी, मद, श्वास, पित्त, रक्तविकार तथा विनाशक है ॥ १५ ॥

अथ कालशाकम् (नाडीका शाक) ।

नाडिकं कालशाकं च श्राद्धशाकं च कालकम् । कालशाकं सरं रुच्यं वातकृत्कफशोथहृत् । बल्यं रुचिकरं मेध्यं रक्तपित्तहरंहिमम् ॥ १६ ॥

नाडिक, कालशाक, श्राद्धशाक और कालक ये नाडीशाकके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी-नाडीका शाक । म०-कुळीचीभाजी गु०-करली । लै०-फेलंज्युम् ट्यूबरोसम Phalongium Tuberosum.

गुण-नाडीका शाक-दस्तावर, रुचिकारी, वातकारक, कफ सूजनाशक, बलदायक, मेधाको हितकारी, शीतल और रक्तपित्तनाशक है ॥ १६ ॥

अथ पट्टशाकः (पटुआ शाक)

पट्टशाकस्तु नाडीको नाडीशाकश्च स स्मृतः । नाडीको रक्तपित्तघ्नो विष्टम्भी वातकोपनः ॥ १७ ॥

पट्टशाक, नाडीक, नाडीशाक, (नाडीच, केचुक, पेचुली, पेचु और विश्वरोचन) ये पटुआशाकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-पटुआशाक। बं०-पाटूशाक। म०-नाडीशाक। गु०-नालानी भाजी। लै०-आईपोमियारिप्टेन्स Ipomea reptans.

गुण-पटुआशाक-रक्तपित्तनाशक, विष्टम्भि और वातको कुपित करनेवाला है ॥१७॥

अथ कलम्बी।

कलम्बी शतपर्वी च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। कलम्बी स्तन्यदा प्रोक्ता मधुरा शुक्र कारिणी ॥ १८ ॥

कलम्बी, शतपर्वी, (कडम्बी, कलम्बू और कलंबिका,) ये कलंबीशाकके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी-कलमी शाक,। बं०-कलमी। म०-केलुट पेपा। गु०-कोर्बा। फा०-कलाम। अ०-कन्दकलंत्र। इं०-काबेज Cobbage लै०-कोस्टस स्पेसियोस Cotus Speciosus

गुण-कलमीशाक-दुग्धवर्द्धक, मधुर और शुक्रकारक है ॥ १८ ॥

अथ लोणी वृहल्लोणी च।

(नोनिया बडा नोनिया)

लोणा लोणी च कथिता बृहल्लोणी तु घोटिका। लोणी रूक्षा स्मृता गुर्वी वातश्लेष्महरी पटुः ॥ १९ ॥ अर्शोघ्नी दीपनी चाम्ला मन्दाग्निविषनाशिनी। घोटिकाऽम्ला सरा चोष्णा वातकृत्कफपित्तहृत् ॥ २० ॥ वाग्दोषव्रणगुल्मघ्नी श्वासकासप्रमेहनुत्। शोथे लोचनरोगे च हिता तज्ज्ञैरुदाहृता ॥ २१ ॥

लोणा और लोणी ये नोनियेके संस्कृत नाम हैं॥ बृहल्लोणी, घोटिका ये बडे नोनियेके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-नोनिया, कुल्फा, अम्लोनिया। बं०-बडलुणी, क्षुदेणुनी। म०-घोळ, लहान घोळ। गु०-लुणी, मोटी लुणी। क०-गोलि। तै०-अईलकुस। ता०-शिरुकीरै। फा०-खुरफा। अ०-वल्कतुलहूमक्का। इं०-पर्सलेन Pursea ne. लै०-पोर्चुलेका ओलिरेसिया Portulaca Olerasea.

गुण-नोनिया-रूक्ष, भारी, वात, कफनाशक, खारी, बवासीर नाशक, अग्निप्रदीपक, खट्टी, मन्दाग्नि तथा विषनाशक है। बडी नोनिया-खट्टी, दस्तावर, गरम, वातकारक, सूजन तथा नेत्ररोगमें हितकारी, कफ, पित्त, वचनदोष, व्रण, गुल्म, श्वास, खांसी तथा प्रमेहनाशक है ॥ १९-२१ ॥

अथ चांगेरी (अंबिलोना)

चाङ्गेरी चुक्रिका दन्तशठाऽम्बष्ठाऽम्ललोणिका। अश्मन्तस्कतु शफरी पिसली चाम्लपत्रका ॥ २२ ॥ चाङ्गेरी दीपनी रुच्या रूक्षोष्णा कफवातनुत्। पित्तलाऽम्ला ग्रहण्यर्शःकुष्ठातीसारनाशिनी॥२३॥

चांगेरी, चुक्रिका, दंतशठा, अम्बष्ठा, अम्ल, लोणिका, अश्मन्तक, शफरी, पिसली और अम्लपत्रक ये चांगेरीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-चांगेरी, अम्बिलोना। गु०-बहुखाटीलुणी, बं०-आमरुल॥

गुण-चांगेरी-अग्निको दीपन करनेवाली, रुचिकारक, रूक्ष, कफ तथा वातविनाशक है, पित्तकारक, खट्टी संग्रहणी, बवासीर तथा अतिसार नाशक है ॥२२॥२३॥

अथ चुक्रिका (चूका)।

चुक्रिका स्यात्तु पत्राम्ला रेचिनी शतवेधिनी। चुक्रा त्वम्लतरा स्वाद्वी वातघ्नी कफपित्तकृत्। रुच्या लघुतरा पाके वृन्ताकेनातिरोचनी ॥ २४ ॥

चुक्रिका, पत्राम्ला, रेचिनी, शतवेधिनी, (चुक, चुक्र, वास्तुक, लिकुच, अम्लवास्तुक, दलाम्ल, अम्लशाकाख्य और अम्लहिलमोचिका) ये चूकेके संस्कृत नाम हैं।

हिन्दी-चूका । बं०-चूकापालङ । म०-आंबट चुका । गु०-चूको खाटो । क०-हुलिचकोत । फा०-तुरशक । अ० हम्मेजा । इं०-ब्लेडर डाक Bladder Dock. लै०-रुमेक्सवेसिकरियस Rumex vesicarius

गुण-चूका-अधिक खट्टा, स्वादु, वातनाशक कफ तथा पित्तकारक, रुचिकारी, पाकमें अत्यन्त हलका, बैंगनके साथ खानेसे अत्यन्त रुचिकारक है ॥ २४ ॥

अथ चंचुकी (चेबुना)

चिञ्चा चञ्चुश्चञ्चुकी च दीर्घपत्रा सतिक्तका । चञ्चुः शीता सरा रुच्या स्वाद्वी दोषत्रयापहा । धातुपुष्टिकरी बल्या मेध्या पिच्छिलका स्मृता ॥ २५ ॥

चिंचा, चंचु, चेचुकी, दीर्घपत्रा, सतिक्तका (शुनकचंचूका, त्वक्सारा और पट्टुपत्रिका) ये चंचुके संस्कृतके नाम हैं ॥

हिन्दी-चंचु, चेबुना, चेचुक । बं०-चेचको । म०-लघुचंचु, थोरचंचु । गु०-छुंछु । तै०-ट्टुटु । लै०कार्कोरसएक्युटेंग्युलेरीस Carchorus. Acutangularis. ता०-पुळिकीरै ।

गुण-चंचु-शीवल, दस्तावर, रुचिकारक, स्वादु, त्रिदोषनाशक, धातुको पुष्ट करनेवाला बलकारक, मेधाको हितकारी और पिच्छिल है ॥ २५ ॥

अथ हिलमोचिका (वामन हाटी हुरहुर) ।

ब्रह्मी शंखधराऽऽचारी ब्राह्मी च हिलमोचिका । शोथं कुष्ठ कफं पित्तं हरते हिलमोचिका ॥ २६ ॥

ब्रह्मी, शंखधरा, आचारी, ब्राह्मी, हिलमोचिका (हिलमोचि, मोची, मत्स्यांगी हेलंची, मम्बी, मत्स्याक्षी, जलब्राह्मी और चक्रांगी, ये हुलहुलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-हुलहुल । बं०-हिंचेशाक । गु०-हिलमोचिका ॥

-हुलहुल-शोथ, कोढ, कफ और पित्तनाशक है ॥ २६ ॥

अथ शितिवारः (शिरियारी)

शितिवारः शितिवरः स्वस्तिकः सुनिषण्णकः । श्रीवारकः सूचिपत्रः पर्णकः कुंकुटः शिखी ॥ २७ ॥ चाङ्गेरीसदृशः पत्रैश्चतुर्दल इतीरितः । शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते ॥२८॥ सुनिषण्णो हिमो ग्राही मोहदोषत्रयापहः । अविदाही लघुः स्वादुः कषायो रूक्षदीपनः । वृष्यो रुच्यो ज्वरश्वासमेदकुष्ठभ्रमप्रणुत् ॥ २९ ॥

शितिवार, शितिवर, स्वस्तिक, सुनिषण्णक श्रीवारक, सूचिपत्र, पर्णक, कंकुट, शिखी, वितुन्न, सुनिषण्ण, चंचु, सुतपत्र, शितिचार सूच्याह्वय, सूच्याह्व, सूचीपत्रक, कुरण्ट, सूचिदल श्वेतांबर और बभ्रू) ये शिरियारीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-शिरियारी, चौपतिया । बं०-सुपुणीशाक । शुशुनीशाक । म०-करडू । गु०-सुनिसरणक । तै०-सुनिषण्णमनेनें शाखमु । फा०-अञ्जरा । लै०-ब्लेफेरिस इड्युलीस Blepharis Ednlis.

शिरियारी-चांगेरीके सदृश और चार पत्तोंवाली होती है । यह शाक-जलयुक्त देशमें होता है और इसे चतुःपत्री कहते हैं ॥

गुण-शिरियारी शीतल, ग्राही, मोह, तीनों दोष जीतनेवाली, अविदाही, हलकी, स्वादिष्ट कसैली, रूखी, अग्निप्रदीपक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक ज्वर, श्वास, प्रमेह, कोढ तथा भ्रमनाशक है ॥ २७ ॥ २९ ॥

अथ मूलकपत्रम् ।

पचनं लघु रुच्योष्णं पत्रं मूलकजं नवम् । स्नेहस्निग्धं त्रिदोषघ्नमसिद्धं कफपित्तकृत् ॥ ३० ॥

मूलीके ताजे पत्तोंका शाक-पाचक, हलका रुचिकारक, और गरम है । तैलमें भुना हुआ शाक-त्रिदोष नाशक और विना भुना हुआ कफ तथा पित्तकारक है ॥ ३० ॥

अथ द्रोणपुष्पी (गूमा)।

द्रोणपुष्पीदलं स्वादु रूक्षं गुरु च पित्तकृत् । भेदनं कामलाशोथमेहज्वरहरं कटु ॥ ३१ ॥

गूमेका शाक-स्वादु, रूक्ष, भारी, पित्तकारक, दस्तावर, चरपरा, और कामला, शोथ, प्रमेह तथा ज्वर नाशक है ॥ ३१ ॥

यवानीशाकम् (अजमायन)।

यवानीशाकमाग्नेयं रुच्यं वातकफप्रणुत् । उष्णं कटु च तिक्तं च पित्तलं गुल्मशूलनुत् ॥ ३२ ॥

अजवायनका शाक-अग्निकारी, रुचिकर्त्ता वात, कफनाशक, गरम, चरपरा, कडवा, पित्तकारक गुल्म और शूल नाशक है ॥३२॥

अथ दद्रुघ्नपत्रम् (पमार 'चकवड' शाक)।

दद्रुघ्नपत्रं दोषघ्नमस्रवातकफापहम् । कण्डूकासक्रिमिश्वासदद्रुकुष्ठप्रणुल्लघु ३३॥

पमार (चकवड) के पत्ते-दोषनाशक, रुधिर, कफ, खुजली, श्वास, खांसी, कृमि, दाद कोढ नाशक हैं ॥ ३३ ॥

अथ सेहुण्डः (थूहर) ।

सेहुण्डस्य दलं तीक्ष्णं दीपनं रोचनं हरेत्। आध्मानाष्ठीलिकागुल्मशूलशोथोदराणि च ॥ ३४ ॥

थूहरके पत्ते-तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, रोचक और अफारा, अष्ठीलिका, गुल्म, सूजन तथा उदररोगनाशक हैं ॥ ३५॥

अथ पर्पटः (पित्तपापडा)।

पर्पटो हन्ति पित्तास्रज्वरतृष्णाकफभ्रमान्।संग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः ॥ ३५ ॥

पित्तपापडेके पत्ते-ग्राही, शीतल, कडवे, हलके, वातकारक, पित्त, रक्तविकार, ज्वर, तृष्णा, कफ तथा दाह भ्रमनाशक हैं ॥ ३५ ॥

अथ गोजिह्वा (गोभीके पत्ते)।

गोजिह्वा कुष्ठमेहास्रकृच्छ्रज्वरहरीलघुः ३६

गोभीके पत्ते-कोढ, प्रमेह, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर नाशक तथा हलके हैं ॥ ३६ ॥

अथ पटोलपत्रम् (पटोलपात)।

पटोलपत्रं पित्तघ्नं दीपनं पाचनं लघु । स्निग्धं वृष्यं तथोष्णं च ज्वरकासक्रिमिप्रणुत् ॥ ३७ ॥

पटोलपत्र-पित्तनाशक, अग्निप्रदीपक, पाचन हलके, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, गरम, ज्वर, खांसी तथा कृमिनाशक हैं ॥ ३७ ॥

अथ गुडूचीपत्रम् (गिलोयशाक)।

गुडूचीपत्रमाग्नेयं सर्वज्वरहरं लघु । कषायं कटु तिक्तं च स्वादुपाकं रसायनम् ॥३८॥ बल्यमुष्णं च संग्राहि हन्यादोषत्रयं तृषाम् । दाहप्रमेहवातासृक्कामलाकुष्ठपाण्डुताः ॥ ३९ ॥

गिलोयके पत्ते-अग्निको बढानेवाले, सर्वज्वरनाशक, हलके, कसैले, चरपरे, कडवे, पाकमें मीठे, रसायनरूप, बलदायक, गरम ग्राही और त्रिदोषनाशक, तृषा, दाह, प्रमेह, वात, रक्तविकार, कामला, कुष्ठ तथा पाण्डुरोगनाशक हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ कासमर्दः (कसौंदीशाक)।

कासमर्दोऽरिमर्दश्च कासारिः कर्कशस्तथा । कासमर्ददलं रुच्यं वृष्यं कासविषास्रनुत् ॥ ४० ॥ मधुरं कफवातघ्नं पाचनं कण्ठशोधनम् । विशेषतः कासहरं पितघ्नं ग्राहकं लघु ॥ ४१ ॥

कासमर्द, अरिमर्द, कासारि, कर्कश (कालकंत, विमर्द, कासमर्दक, कनक, काल और जरण) ये कसौंदीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कसौंदी, चकौंडी । बं०-कालाकासुन्दा । म०-रानकासविन्दु । गु०-कासुन्दानां

पांदडां। क०-कासवदी। तै०-गुर्रपुताल्य। इं०-राउण्ड्पाडेड केश्या Round Podded Cassia लै०-केश्या सो फेरा Cassia Sophera

गुण-कसौंदीके पत्ते-रुचिकारी, वीर्यवर्द्धक, विष, खांसी, रक्तविकारनाशक, मधुर, कफ, वातनाशक, पाचक और कण्ठको शुद्ध करनेवाले, तथा विशेष करके खांसीको नष्ट करते हैं, पित्तनाशक, ग्राही और हलके हैं ॥

अथ चणकशाकम् (चनेका शाक)।

रुच्यं चणकशाकं स्याद् दुर्जरं कफवातकृत्। अम्लं विष्टम्भजनकं पित्तनुद्दन्तशोथहृत् ॥ ४२ ॥

चनेका शाक-रुचिकारक, दुर्जर, कफ, वातकारक, खट्टा, विष्टम्भकारक, पित्त तथा दांतोंकी सूजनको नष्ट करता है ॥ ४२ ॥

अथ कलायशाकम् (मटरका शाक)।

कलायशाकं भेदि स्याल्लघु तिक्तं त्रिदोषजित् ॥ ४३ ॥

मटरका शाक-मलभेदक, हलका, कडवा, और त्रिदोषनाशक है ॥ ४३ ॥

अथ सार्षपशाकम् (सरसोंका शाक)।

कटुकं सार्षपं शाकं बहुमूत्रमलं गुरु। अम्लपाकं विदाहि स्यादुष्णं रूक्षं त्रिदोषजित्। सक्षारलवणं तीक्ष्णं स्वादु शाकेषु निन्दितम् ॥ ४४ ॥

सरसोंका शाक-चरपरा, मूत्र तथा मलको बहुत करनेवाला, भारी, पाकमें खट्टा, विदाही गरम रूखा, त्रिदोषनाशक, क्षारयुक्त, नमकीन तीक्ष्ण, स्वादु और सब शाकोंमें निंदित है ॥ ४४ ॥

अथ पुष्पशाकानि।

तत्र अगस्तिपुष्पस्य गुणाः।

अगस्तिकुसुमं शीतं चातुर्थिकनिवारणम्। नक्तान्ध्यनाशनं तिक्तं कषायं कटुपाकि च। पीनसश्लेष्मपित्तघ्नं वातघ्नं मुनिभिर्मतम् ॥ ४५ ॥

अगथियेकाफूल-शीतल, चातुर्थिक ज्वरनाशक, रतौंधीको दूर करनेवाला, कडवा, कसैला, पाकमें चरपरा, पीनस, कफ, पित्त तथा वात नाशक है ऐसा मुनियोंने कहाहै॥ ४५

अथ कदलीपुष्पम् (केलेका फूल)।

कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तुवरं गुरु। वातापित्तहरं शीतं रक्तपित्तक्षयप्रणुत् ॥ ४६ ॥

केलेका फूल-स्निग्ध, मधुर, कसैला, भारी, शीतल, वात, पित्त, रक्तपित्त तथा क्षयको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥

शोभाञ्जन (सहँजना) पुष्पम्।

शिग्रोः पुष्पं तु कटुकं तीक्ष्णोष्णं स्नायुशोथकृत्। कृमिहृत्कफवातघ्नं विद्रधिप्लीहगुल्मजित्। मधुशिग्रोस्त्वक्षिहितं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ ४७ ॥

सहँजनके फूलका शाक-चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, जोडोंके नसोंमें सूजन करनेवाला, कृमि, कफ, वातनाशक, विद्रधि, प्लीहा, तथा गुल्मनाशक है। लाल सहँजनके फूलका शाक-नेत्रोंको हितकारी और रक्तपित्तको दूर करता है ॥ ४७ ॥

अथ शाल्मल्याः (सेमलके) पुष्पम्।

शाल्मलीपुष्पशाकं तु घृतसैन्धवसाधितम्। प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यं च न संशयः ॥४८॥ रसे पाके च मधुरं कषायं शीतलं गुरु। कफपित्तास्रजिद्ग्राहि वातलं च प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥

सेमलके फूलका शाक-जो घी और सेंधानोन डालकर बनाया हो तो दुःसाध्य प्रदरको निस्संदेह नष्ट करता है। रसमें और पाकमें मधुर, कसैला, शीतल, भारी, कफ तथा रक्तपित्तको नष्ट करता है ग्राही और वात कारक है ॥

अथ फलशाकानि।

तत्र कूष्माण्डस्य (पेठेके) नामानि गुणाश्च।

कूष्माण्डं स्यात्पुष्पफलं पीतपुष्पं बृहत्फलम्। कूष्माण्डं बृंहणं वृष्यं गुरु पित्तावातनुत् ॥ ५० ॥ बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम्। वृद्धं नातिहिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु। वस्तिशुद्धिकरं चेतोरोगहृत्सर्वदोषजित् ॥ ५१ ॥

कूष्माण्ड, पुष्पफल, पीतपुष्प, बृहत्फल (व्रणावास, तिमिष, ग्राम्यकर्कटी, कूष्माण्डक, कर्कारू, शिखिवर्द्धक, कुंभाण्ड, कुष्माण्डी, कर्कोटिका कुंभाण्डी, सुफला, कुष्बफला और नागपुष्पफला) ये पेठेके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-पेठा, कुम्हडा। म०-कोहला। बं०-कुमडागाछ। क०-दारकोहोला। गु०भूरूकोलुं। तै०-पुह्लाहा। फा०-रूमाकुदु। अ०-महदेवा। इं०-पम्पकीनPumpkinलै०-बेनीन कासा सेरिफेरा Benincas Ccrifera ता०-पूषणिक्काई।

गुण-पेठा-पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक. भारी और पित्त, रक्तविकार तथा वातविनाशक है। कच्चा पेठा-पित्तनाशक शीतल है। मध्यमावस्थाका पेठा--कफकारक है। पका पेठा--अत्यन्त शीतल नहीं, स्वादु, खारा, अग्निप्रदीक, हलका, वस्तिको शुद्ध करनेवाला तथा मानसिकरोग (अपस्मार, उन्मत्तता आदि) और सर्वदोषोंको जीतनेवाला है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ कूष्माण्डी (कुम्हडी)।

कूष्माण्डी तु भृशं लघ्वी कर्कारुरपि कीर्तिता। कर्कारुर्ग्राहिणी शीता रक्तपित्तहरा गुरुः। पक्वा तिक्ताऽग्निजननी सक्षारा कफवातनुत् ॥ ५२ ॥

बहुत छोटे पेठेको कूष्माण्डी और कर्कारु कहते हैं।

गुण-कूष्माण्डी-ग्राही, शीतल, रक्तपित्तनाशक और भारी है। पकी-कडवी, अग्निकारक, खारी कफ तथा वातनाशक है ॥५२॥

अथ अलाबूः (तुम्बी)।

अलाबूः कथिता तुम्बी द्विधा दीर्घा च वर्तुला। मिष्टतुम्बीफलं हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं गुरु। वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टिविवर्धनम् ॥ ५३ ॥

अलाबू, तुंबी, (तुंब, तुंबक, तुम्बा, पिंडफला, महाफला, आलाबू, एलाबु, लाबु, लाबुका, तुम्बिका, तुंबि, अलाबु और तुंबक) ये लंब कदूदूके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-लम्बाकद्दू, रामतोरई, लौकी, मीठीतोंबी। बं०-लाबु, कदु। म०-दुध्याभोपला। गु०-आलडी, क०-कडण्डबलकायि। तै०-तीहा तुखडीकाया। फा०-कुदुशिरिन्। अ०-किरा। इं०-ह्वाइटगोर्ड White Gourd लै०-कुकुर्बिटा लाजिनेरिया Cucurbita Lagenarla. ता०-शुरैकाई।

तोंबी-लंबी और गोल इस भांति दो प्रकार की होती है ॥

गुण-तोंबी हृदयको प्रिय, पित्त कफनाशक, भारी, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक और धातुको पुष्ट करती है।

अथ कटुतुंबी (कडवी तोंबी)।

इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्यात्सा तुम्बी च महाफला। कटुतुम्बी हिमाऽहृद्या पित्तकासविषापहा। तिक्ता कटुर्विपाके च वातपित्तज्वरान्तकृत् ॥ ५४ ॥

इक्ष्वाकु, कटुतुंबी, तुंबी, महाफला, (पिण्डफला, राजपुत्री- नृपात्मजा, फलिनी, तिक्ततुंबी, तिक्तका, कटुतिक्तका, लम्बा, कटुकालाबु, कटुफला, तुम्बिनी, बृहत्फला दन्तबीजा तिक्तबीजा, तुम्बिका, तुम्बीका, क्षत्रियवरऔर कटुतुम्बिनी) ये कडवी तोंबीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-कटुलौकी, कडवीतोंबी। बं०-तितलाउ। म०-कडूभोंपला। गु०-कडवी तुंबड़ी। क०-कडीसोरे। तै०-चेतिआनव। फा०-कटुतलख। अ०-करडलमर। इं० बांटलगोर्ड Bottle Gourd लै०-लेजीनेरिया वलगेरिस Lagenaria Valgeris

गुण-कडवी तोंबीका फल-शीतल, हृदयको अप्रिय, कडवी, पाकमें चरपरी, पित्त, खांसी, विष, वात, पित्त तथा ज्वरको नष्ट करती है (यह वमन विरेचन कारक है)॥ ५४॥

अथ कर्कटी (ककडी)।

एर्वारुःकर्कटी प्रोक्ता कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरुः। रुच्या पित्तहरा सामा पक्का तृष्णाऽग्निपित्तकृत्॥ ५५॥

एर्वारु, कर्कटी, (लोमशी, व्यालपत्रा, बृहत्फला, व्यालपत्री, लोमशा, स्थूला, तोयफला- हस्तिदन्तफला, छर्दापनिका, पीनसा, मूत्रला, मूत्रफला, त्रपुषा, हस्तिपर्णी, लोमशकाण्डा, बहुकन्दा, चिर्भटी, कर्कटाक्ष, शान्तनु, वालुङ्गी, त्रपुषी, इर्वारु, उर्वारु और ईर्वारु) ये ककडीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-ककडी। बं०-कांकुड। म०-कांकडी। गु०-काकडी। क०-कयेयसौत। तै०-दोषकाया। फा०-खयार दराज। अ०-किस्साकदस। इं०ककंबर Cucumber. लै०-क्युक्युमिस् सेटिवस Cucumis. Satlvus.

गुण-कच्ची ककडी-शीतल, रूखी, ग्राही, मधुर, भारी, रुचिकारी और पित्तनाशक है॥

पकी ककडी-तृषा और पित्तकारक है ५५॥

अथ चिचिण्डः (चचेंडा)

चिचिण्डः श्वेतराजिः स्यात्सुदीर्घो गृहकूलकः। चिचिण्डो वातवित्तघ्नो बल्यः पथ्यो रुचिप्रदः। शोषणोऽतिहितः किञ्चिद् गुणैर्न्यूनः पटोलतः॥ ५६॥

चिचिण्ड, श्वेतराजि, सुदीर्घ गृहकूलक, (चिचुण्ड, वेश्मकूल, बृहत्फला, अहिफला, दीर्घफला और चीनकर्कटिका) ये चचेंडेके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी-चचेंडा। बं०--चिचिण्डा। म०--टरकाकड़ी। गु०-पडोलु। तै०--पोटलकाया। इं०--स्नेकगोर्ड Snak gourd लै०--ट्रीकोसेंथिस ऐंग्विना Trichosanthis Anguins. ता०--पोटलंकाइ॥

गुण-चचेंडा--वात पित्तनाशक, बलदायक, पथ्य, रुचिकारक, शोषी (क्षयरोगी) को अत्यन्त हितकर्त्ता और परवलसे कुछ हीन गुणवाला है॥ ५६॥

अथ कारवेल्लम् (करेला, करेली)

कारवेल्लं कठिल्लं स्यात्कारवेल्ली ततो लघुः। कारवेल्लं हिमं भेदि लघु तिक्तामवातलम्॥ ५७॥ ज्वरपित्तकफास्रघ्नं पाण्डुमेहकृमीन् हरेत्। तद्गुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषाद् दीपनी लघुः॥५८॥

कारवेल्ल, कठिल्ल, (उपकांड, सुकांड, कठिल्ल, और कारवेल्लक) ये करेलेके संस्कृत नाम हैं॥ इससे छोटे करेलेको कारवेल्ली (करेली) कहते हैं॥

हिन्दी- करेला, करेली। बं०--बडकरेला उच्छेछोट करेला उच्छे। म०--कारलें क्षुद्रकारली। गु०--करेलुं। क०- हागेल। तै०--कारला। काकरकाया। फा०--कारेलाह। अ०--किस्स उलहिमार। इ०--हेरीमोर्डिका Hairy Mordica. लै०--मोमोर्डिका कोरेंटिया Memordica Choratia. ता०--पावलकायि॥

गुण-करेला-शीतल, मलभेदक, दस्तावर, हलका, कडवा, वातकारक नहीं, ज्वर, पित्त, कफ, रक्तबिकार, पांडुरोग, प्रमेह और कृमिनाशक है॥ करेलीमें भी करेलेके सदृश गुण हैं, यह विशेषकरके अग्निप्रदीक और हलकी है॥ ५७॥ ५८॥

अथ महाकोशातकी (नेनुआ)।

महाकोशातकी प्रोक्ता हस्तिघोषा महाफला। धामार्गवो घोषकश्च हस्तिपर्णश्च

स स्मृतः। महाकोशातकी स्निग्धा रक्तपित्तानिलापहा ॥ ५९ ॥

महाकोशातकी, हस्तिघोषा, महाफला, धामार्गव, घोषक, हस्तिपर्ण, (बृहत्कोशातकी, हस्तिकोशातकी, ग्राम्यकोशातकी, महत्पुष्पा, सपीतिका और हस्तिघोशातकी) ये घियातोरईके संस्कृत नाम ॥

हिन्दी--घियातोरई, नेनुआ । बं०-हस्तिघोषा, धुन्दुल । म०--घोसाळी, पारोशी, मिलके। गु०- गलकां । क०--अरहिरे। तै०--पुछावीरकाया। फा०- खियार । लै०-ल्युफापेंटेंड्रा Luffapentandra.

गुण-घियातोरई, चिकनी, रक्तपित्त तथा वायुको नष्ट करती है ॥ ५९ ॥

अथ राजकोशातकी (तोरई)।

धामार्गवःपीतपुष्पो जालिनी कृतवेधना। राजकोशातकी चेति तथोक्ता राजिमत्फला ॥ ६० ॥ राजकोशातकी शीता मधुरा कफवातकृत्। पितघ्नी दीपनी श्वासज्वरकासकृमिप्रणुत् ॥ ६१ ॥

धामार्गव, पीतपुष्प, जालिनी, कृतवेधना, राजकोशातकी, राजिमत्फला, (कोशातकी, स्वादुफला, सुपुष्पा, कर्कोटकी, धाराफला, दीर्घफला और सुकोषा) ये तोरइके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-तोरई। बं०-घोषलता। म०शिराळी, दोडकी। गु०-झुमखडां । क०-धारवितरोई । तै०-बीरकाया । इं०-एक्युटेंगलड ककम्बर Acutesngled Cucmbeer लै०-ल्युफाएटेंग्युला Luffa Aeutengula ता०-पींकंकाई।

गुण-तोरई-शीतल, मधुर, कफ तथा वात कारक, पित्तनाशक, अग्निप्रदीपक, श्वास, खांसी, ज्वर,कृमिको नष्ट करती है ॥६०-६१॥

अथ पटोलः (परवलः)।

पटोलः कूलकस्तिक्तः पाण्डुकः कर्कशच्छदः। राजीफलःपाण्डुफलो राजेयश्चामृताफलः ॥ ६२ ॥ बीजगर्भः प्रतीकश्च कुष्ठहा कासभञ्जनः। पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लघ्वग्निदीपनम् ॥६३॥ स्निग्धोष्णं हन्ति कासास्रज्वरदोषत्रयक्रिमीन्। पटोलस्य भवेन्मूलं विरेचनकरं सुखात् ॥ ॥६४॥ नालं श्लेष्महरं पत्रं पित्तहारि फलं पुनः। दोषत्रयहरं प्रोक्तं तद्वत्तिक्ता पटोलिका ॥ ६५ ॥

पटोल, कूलक, तिक्त, पाण्डुक, कर्कशच्छद राजीफल, पांडुफल, राजेय, अमृतफल, बीजगर्भ, प्रतीक, कुष्ठहा, कासभंजन, (राजीमान्, तिक्तोत्तम, कुष्ठारि, कासमर्दन, पंचराजीफल, ज्योत्स्ना,कच्छुर, ज्वर,नाशन, तिलक, पटु, पटुक, कर्कशदल, कुजल, वाजिमान्,लताफल, राजफल राजपटोल, वरतिक्त, तिक्त भद्रक, कटुफल, कटु, कटुक, नागफल, पंजर, कच्छुघ्नी और प्रतीक) ये परवलके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-परवले, कडवे, परवल । बं०-पलताल्ता । म०-कटु पडवल । गु०-परवल। क०-कहिपडवल। इं०-सेसपड्डूला Sespadula. लै०-ट्रीकोसथिस कुकुमेरिना Triehosanthis Cudumerina.

गुण-परवल-पाचक, हृदयको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, हलका, अग्निप्रदीपक, स्निग्ध, गरम, खांसी, रक्तविकार, ज्वर, त्रिदोष तथा कृमिविनाशक है ॥ परवलकी जड-सुखपूर्वक विरेचन करनेवाली है। परवलकी नाल (डंडी) -कफनाशक है। परवलके पत्ते पित्तनाशक हैं और फल त्रिदोषनाशक हैं ॥ कडवे परवलमें भी येही गुण हैं ॥ ६२-६५ ॥

अथ बिम्बी तुण्डिकेरी (कन्दूरी)

बिम्बी रक्तफला तुण्डी तुण्डिकेरी च बिम्बिका। ओष्ठोपमफला प्रोक्ता पीलुपर्णी च कथ्यते ॥ ६६ ॥ बिम्बीफलं

स्वादु शीतं गुरु पित्तास्रवातजित्। स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबन्धाध्मानकारकम्॥ ६७॥

बिम्बी, रक्तफला, तुंडी तुंडिकेरी, बिंबिका, ओष्ठोपमफला, पीलुमर्णी, (ओष्ठी, कर्मकरी, तुंडिकेरिका, तुण्डिकेरि, झुण्डिकेशी, बिम्बक, बिम्बजा, दन्तच्छदोपमा, रुचिरफला और छर्दिनी) ये कन्दूरीके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–कन्दूरी, कन्दरू,। बं०–तेलाकुच। म०–गोडी तोंडली। गु०–टिंडोराँ। लै०–कोकसिया इंडिका Coccia Indica ता०–कोवैकाई।

गुण–कन्दूरीका फल–स्वादु, शीतल, पित्त, रक्तविकार, वातविनाशक, स्तम्भन, लेखन, रुचिकारकविबन्ध तथा अफारेको करता है॥ ६६॥ ६७॥

अथ शिम्बिः (सेम)।

शिम्बिः शिम्बीः पुस्तशिम्बी तथा पुस्तकशिम्बिका। शिम्बीद्वयं च मधुरं रसे पाके हिमं गुरु। बल्यं दाहकरं प्रोक्तं श्लेष्मलं वातपित्तजित्॥ ६८॥

शिंबि, शिंबी, पुस्तशिंबी और पुस्तकशिंबिका ये सेमके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी–सेम, सेमि। बं०–वोरा, वरवटी। म०–वालमापडी। गु०–बालोर। तै०–चिकुण्डु। ता०–मोचै कोट्टै। अं०–वीन्सा। इं०–ब्लाकसीडेड डोलिकोस BlackSeeded Dolie hos लै०–डोलिकोस लबलब Dhlichos Lablad.

गुण–सेम–दो प्रकारकी होती है। दोनों प्रकारकी सेम रसमें तथा पाकमें मीठी, शीतल, भारी, बलदायक, दाहकारक, बात तथा पित्तको नष्टकरती हैं॥

अथ कोलशिंबिः (सुहरा सेम)।

कोलशिम्बिः कृष्णफला तथा पर्यङ्कपट्टिका। कोलशिम्बिःसमीरघ्नी गुर्व्युष्णा कफपित्तकृत्। शुक्राग्निसादकृद्द् वृष्या रुचिकृद्द् बद्धविट् गुरुः॥ ६९॥

कोलशिंबी, कृष्णफला, मयंकपट्टिका, (खड्गा, सूकरपादिका, कुशिंबी, कुत्साल्शिंबी और पुस्तक शिंबिका ये सुअरासेमके संस्कृत नाम हैं॥

हिं–सुअरासेम, कालीसेमि। बं०–शेमगाछ म०–आईची शेग। गु०–काली बालोर। तै०–कारुचिकटु॥

गुण–सुअरासेम–वातनाशक, भारी, गरम, कफ, पित्तकारक, शुक्र, जठराग्निको मंद करने वाली, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारी, मलको बांधने वाली और भारी है॥६९॥

अथ सौभाञ्जनफलम्। (सहँजनेकी फली)।

फलं सौभाञ्जनं स्वादु कषायं कफपित्तनुत्। शूलकुष्ठक्षयश्वासगुल्महृद्दीपनं परम्॥ ७०॥

सहँजनेकी फली–स्वादु, कसैली, कफ, पित्तको दूर करनेवाली है। शूल, कोढ, क्षय, श्वास, गुल्म, इनको हरनेवाली और अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाली है॥ ७०॥

अथ वृन्ताकम् (वैंगन, भंटा)।

वृन्ताकं स्त्री तु वार्ताकुर्भण्टाकी भाण्टिकाऽपि च। वृन्ताकं स्वादु तीक्ष्णोष्णं कटुपाकमपित्तलम्॥७१॥ ज्वरवातलासघ्नं दीपनं शुक्रलं लघु। तद्बालं कफपित्तघ्नं वृद्धं पित्तकरं लघु॥७२॥ वृन्ताकं पित्तलं किञ्चिदङ्गारपरिपाचितम्। कफमेदोऽनिलामघ्नमत्यर्थं लघु दीपनम्॥॥ ७३॥ तदेव हि गुरु स्निग्धं सतैलं लवणान्वितम्। अपरं श्वेतवृन्ताकं कुक्कुटाण्डसमं भवेत्। तदर्शःसु विशेषेण हितं हीनं च पूर्ववत्॥ ७४॥

वृन्ताक, वार्ताकु, भण्टाकी, भाण्टिका (वार्ताकी, कण्टवृन्ताकी, कण्टपत्रिका, निद्रालु,

मांसलफला, वृन्ताकी, महोटिका, चित्रफला, कंटकिनी, महती कटुफला, मिश्रवर्णफला, नीलफला, रक्तफला, शाकश्रेष्ठा, वृत्तफला नृपप्रियफला, हिंगुली, सिंही, दुष्प्रधर्षिणी, वार्ता, वातिकुण. वार्ताक, शाकबिल्व, राजकूष्माण्ड महाबृहती, शाकबिल्वक, वार्तिक, वातिगम, वंगण, अंगण, नीलवृषा, भाण्डिक और नीलकंटका) ये बैंगनके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी बैंगन, भंटा, भांटा। बं०-बेगुनगाछ। म०--वांगे। गु०--रींगणा। क०-वदने। तै०-वंकायि। ता०--कत्तरिकाइ। फा०-बादंगान्। अ०-वादंजान। इं०-ब्रिंजल Bringal लै०-मेलंगेना Solanum Melaugena.

गुण-बैंगन-मधुर, तीक्ष्ण, गरम, पाकमें चरपरा, पित्तकारक नहीं, अग्निप्रदीपक, वीर्यवर्द्धक, हलका, ज्वर, वात तथा कफनाशक और बडे बैंगन पित्तकारक तथा हलके हैं,। अग्निमें पकाये हुए बैंगन अर्थात् बैंगनका भर्त्ता किंचित् पित्तकारक, हलका अग्निको दीपन करनेवाला, कफ, मेद, वात तथा आमनाशक है। जो इन बैंगनोंमें तेल और नमक डाला हो तो, वेबैंगन भारी और स्निग्ध हैं। एक प्रकारका बैंगन मुरगेके अण्डेके सदृश होता है वह वैगन अर्शरोगमें विशेष हितकारी है और काले बैंगनोंसे गुणोंमें होता है ॥ ७१-७४ ॥

अथ डिण्डिशः (ढेंढस)।

डिण्डिशो रोमशफलो मुनिनिर्मित इत्जपि। डिण्डिशो रुचिकृद्भेदी पित्तश्लेष्मापहः स्मृतः। शीतलो वातकृद्रूक्षो मूत्रलश्चाश्मरीहरः ॥ ७५ ॥

डिण्डिश, रोमशफल और मुनिमिर्मित ये ढेंढसके संस्कृत नाम हैं ॥

हिंदी-ढेंढस, टिंडे। म०-कंटोली, फांगली। गु०-कंटोला। तै०-अगोरकर ॥

गुण-ढेंढस-रुचिकारक, दस्तावर, शीतल, वातकारक, रूक्ष, मूत्रवर्द्धक, पित्त, कफ तथा पथरीरोगनाशक है ॥ ७५ ॥

अथ पिण्डारम् (पिण्डालु)।

पिण्डारं शीतलं बल्यं पित्तघ्नं रुचिकारकम्। पाके लघु विशेषेण विषशान्तिकरं स्मृतम् ॥ ७६ ॥

पिण्डार-शीतल, बलकारक, पित्तनाशक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, पाकमें हलका, विशेष करके विषका शान्त करनेवाला कहा जाता है ॥ ७६ ॥

अथ कर्कोटी (ककोडा)।

कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजालीति चोच्यते। कार्कोटी मलहृत्कुष्ठहृल्लासारुचिनाशनी। श्वासकासज्वरान्हन्ति कटुपाका च दीपनी ॥ ७७ ॥

कर्कोटकी, पीतपुष्पा, महाजाली (महाजालिनिका, अवन्ध्या, बोधनाजालि, मनोज्ञा और मनस्विनी) ये ककोडेके संस्कृत नाम हैं॥

हिन्दी--ककोडा, खेखसा। बं०--काकरोल। म०--कांटली। गु० -कडवी घीसोडी। तै०--आगारकर ॥

गुण--ककोडा, मलनाशक, कोढ, जी मिचलाना और अरुचि नाशक है। श्वास, खाँसी और ज्वर नाशक है। पाकमें चरपरा और जठराग्निको प्रज्वलित करनेवाला है।

अथ डोडिका (करेरुआ)।

डोडिका विषमुष्टिश्च डोडीत्यपि सुमुष्टिका। डोडिका पुष्टिदा वृष्या रुच्या वह्निप्रदा लघुः। हन्ति पित्तकफार्शांसि कृमिगुल्मविषामयान् ॥ ७८ ॥

डोडिका, विषमुष्टिका, डोडी और सुमुष्टिका ये करेरुआके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-करेरुआ। गु०-मीठी खरखोली ॥

गुण-करेरुआ-पुष्टिदायक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक और हलका, पित्त, कफ, बवासीर कृमि, गुल्म तथा विषरोगनाशक है ॥ ७८ ॥

अथ कण्टकारी (कटेरी) फलम् ।

कण्टकारीफलं तिक्तं कटुकं दीपनं लघु । रूक्षोष्णं श्वासकासघ्नं ज्वरनिलकफापहम् ॥ ७९ ॥

कटेरीके फल-कडवे, चरपरे, अग्निप्रदीपक, हलके, रूखे, गरम, श्वास, खांसी, ज्वर, वात तथा कफविनाशक हैं ॥ ७९ ॥

अथ नालशाकम् ।

तत्र सर्षपनालम् ।

तीक्ष्णोष्णं सार्षपं नालं वातश्लेष्मव्रणापहम् । कण्डूवमिहरं दद्रूकुष्ठघ्नं रुचिकारकम् ॥ ८० ॥

सरसोंकी नाल (डंडी) तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, वात, कफ, व्रण खुजली, वमन, दाद तथा कोढ नाशक है ॥ ८० ॥

अथ कन्दशाकम् ।

तत्र सूरणस्य (जिमीकन्दके) नामानि गुणाश्च ।

सूरणः कन्द ओलश्च कन्दलोऽर्शोघ्न इत्यपि । सूरणो दीपनो रूक्षः कषायः कण्डुकृत्कटुः ॥ ८१ ॥ विष्टम्भी विशदो रुच्यः कफार्शःकृन्तनो लघुः । विशेषादर्शसे पथ्यः प्लीह गुल्मविनाशनः ॥ ८२ ॥ सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते । दद्रूणां कुष्ठिनां रक्तपित्तिनां न हितो हि सः । सन्धानयोगं सम्प्राप्तः सूरणो गुणवत्तरः ॥ ८३ ॥

सूरण, कन्द, ओल, कन्दल, अर्शोघ्न, (कण्ठाल, कण्डुल, कन्दी, सुकन्दी, स्थूलकन्दक, दुर्नामारि, सुवृत्त, कन्दशूरण, तीव्रकंठ, कन्दार्ह, कन्दवर्द्धन, बहुकन्द रुच्यकन्द और सूरणकन्द) ये जिमीकन्दके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी-सूरनकन्द, जिमीकन्द । बं०-ओल । म० गोडा सुरण । गु०-क०-सूरण । फा०-ओला । ते०-मंचा कन्दा । लै०-एमार्फोफलस-पेनिक्युलटस Amorphophallus panic-ulatus. ता०-करणै ।

गुण-जिमीकन्द-अग्निको दीपन करनेवाला, रूखा, कसैला खुजली करनेवाला, चरपरा, विष्टम्भी, विशद, रुचिकारी, हलका कफ तथा अर्शरोगनाशक है ।

विशेष करके अर्शरोगमें पथ्य है प्लीहा तथा गुल्मको नष्ट करता है । सम्पूर्ण कन्दशाकोंमें सूरण श्रेष्ठ कहा है । दाद, रक्तपित्त और कोढरोगवालोंको सूरण हितकारी नहीं है एक प्रकार की काँजी डालनेसे बहुत गुण कारक हो जाता है ॥ ८१-८३ ॥

अथ आरुकम् (आलू)

आरुकमप्यालुकं तत्कथितं वीरसेनकम् । काष्ठालुकशंखालुकहस्त्यालूकानि कथ्यन्ते । पिण्डालुकसप्तालुकरक्तालुकानि चोक्तानि ॥ ८४ ॥

काष्ठालुके काठिन्ययुक्तम् (कठालू) । शंखालुकं श्वेततायुक्तम् (शंखालु) हस्त्यालूकं दीर्घतायुक्तं महाशरीरम । पिण्डालुकं वर्तुलम् (पिण्डालू) । सप्तालुकं मधुरतायुक्तं रोमान्वितम् । रक्तालूकम् रक्तालू (रतालू) ।

आलुकं शीतलं सर्वं विष्टम्भि मधुरं गुरु । सृष्टमूत्रमलं रूक्षं दुर्जरं रक्तपित्तनुत् । कफानिलकरं बल्यं वृष्यं स्वल्पाग्निवर्द्धनम् ॥ ८५ ॥

आरुक, आलुक और वीरसेन ये आलूके संस्कृत नाम हैं ।

लक्षण-जो आलू कठिन होता है, उसको काष्ठालुक कहते हैं । जो श्वेततायुक्त होता है, उसको शंखालुक कहते हैं । जो लम्बा और बडा होता है, उसको हस्त्यालूक कहते हैं । जो गोल होता है, उसको पिंडालुक कहते हैं । जो मधुरतायुक्त और रोमवाला होता है, उसको सप्तालुक कहते हैं । जो लालरंगका होता है, उसको रक्तालूक कहते हैं । हिन्दीमें-रतालू ॥

गुण–सब जातिके आलू–शीतल, विष्टम्भी मधुर, भारी, मल, मूत्रकारक, रूखे, दुर्जर, रक्तपित्तनाशक, कफ, वातकारक, बलदायक, वीर्यवर्द्धक और किंचित अग्निवर्द्धक है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अथ रक्तालुभेदः (अरुई)।

रक्तालुभेदे या दीर्घा तन्वी च पृथुकाऽऽलुकी। आलुकी बलकृत् स्निग्धा गुर्वी हृत्कफनाशिनी। विष्टम्भकारिणी तैले तलिताऽतिरुचिप्रदा ॥ ८६ ॥

रक्तालूके भेदोंमेंही लम्बी तथा पतली होती है, उसको आलुकी कहते हैं ॥

हिन्दी–घुइयां, अरुई। मं०–अळवाचा कांदा। गु०–अलवी अ०–हुयाकल काश। इं०–ग्रेटलीव्हकेलेण्डयम् Great Leaved Caldndiuw. लै०–एरम इण्डिकम् Erum Indicum ता०–शेर्प्पकिळंगु।

गुण–घुइयां–बलदायक, स्निग्ध, भारी, हृदयरोग, कफनाशक और विष्टम्भक है,। तेलमें भुनी हुई घुइयां अत्यन्त रुचिकारी हैं॥ ८६ ॥

अथ मूलकद्वयम् (मूली, बडी मूली)।

मूलकं द्विविधं प्रोक्तं तत्रैकं लघुमूलकम्। शालमर्कटकं विस्रं शालेयं मरुसम्भवम् ॥ ८७ ॥ चाणक्यमूलकं तीक्ष्णं तथा मूलकपोतिका। नेपालमूलकं चान्यत्तद्भवेद्गजदन्तवत् ॥ ८८ ॥ लघुमूलं कटूष्णं स्याद्रुच्यं लघु च पाचनम्। दोषत्रयहरं स्वर्यं ज्वरश्वासविनाशनम् ॥ ८९ ॥ नासिकाकण्ठरोगघ्नं नयनामयनाशनम्। महत्तदेव रूक्षोष्णं गुरु दोषत्रयप्रदम्। स्नेहसिद्धं तदेव स्याद्दोषत्रयविनाशनम् ॥ ९० ॥

मूली दो प्रकारकी होती हैं, इसमें जो छोटी मूली है उसके–लघुमूलक, शालमक, शालमर्कटक, विस्र, शालेय, मरुसंभव, चाणक्यमूलट, तीक्ष्ण और मूलकपोतिका ये संस्कृत नाम हैं ॥

जो हाथीके दाँतके सदृश बढी मूली होती है, उसको नेपालमूलक कहते हैं ॥

हिन्दी–मूली, बडी मूली। बं–मूली, चणकमूली। मं०मुळा। गु०–मुला, नालाना मुला। ता०–क०–मलंगी। ते०–मुल्लिंगि। फा–तुख। अ०–फजलू। इं०–रेडीश Redish लै०–रफेनस सेटिवस Raphanus Sativus

गुण–छोटी मूली–चरपरी, गरम, रुचिकारक, हलकी, पाचक त्रिदोषनाशक, स्वरको उत्तम करनेवाली, ज्वर, श्वास, नासिकारोग, कण्ठरोग तथा नेत्ररोगनाशक है ॥

बडी मूली–रूखी, गरम, भारी और त्रिदोषको उत्पन्न करनेवाली है। यही मूली जो तेलमें पकाई हो तो त्रिदोषनाशक है॥८७-९०॥

अथ गृञ्जनम् (गाजर)

गृञ्जनं गाजरं प्रोक्तं तथा नारङ्गवर्णकम्। गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु। संग्राहि रक्तपित्तार्शोग्रहणीकफवातजित् ॥ ९१ ॥

गृंजन, गाजर, नारंगवर्णक, (पिण्डमूल, पीतकन्द, सुमूलक, स्वादुमूल, सुपीत, नारंग और पीतमूलक)ये गाजरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–गाजर। बं०–मं०–गु०–गाजर। क०–सेठी मूल। तै०–गृञ्जनं। फा०–जर्जक। अ०–जजर। इं०–केरटरूट् Casrotroot लै०–डौकस केरोटा Dancus earota

गुण–गाजर–मधुर, तीक्ष्ण, कडवी, गरम, अग्निको दीपन करनेवाली, हलकी, ग्राही, रक्तपित्त, बवासीर, संग्रहणी, कफ तथा वात नाशक है ॥ ९१ ॥

अथ कदलीकन्दः।

शीतलः कदलीकन्दो बल्यःकेश्योऽम्लपित्तजित्। वह्निकृद्दाहहारी च मधुरो रुचिकारकः॥ ९२ ॥

केलेका कंद–शीतल, बलदायक, केशोंको उत्तम करनेवाला, अम्लपित्तको नष्टकर्त्ता,

अग्निकारक, दाहनाशक, मधुर और रुचिकारक है ॥ ९ ॥

अथ मानकन्दः ।

मानकः स्यान्महापत्रः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। मानकः शोथहृच्छीतो रक्तपित्तहरो लघुः ॥ ९३ ॥

मानक, महापत्र, (स्थलपद्म, विस्तीर्णपर्ण, माण, बृहच्छद, छत्रपत्र और माणक) ये मानकंदके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मानकंद । गु०-मानकंद ॥

गुण०मानकंद-शीतल, हलका, सूजन तथा रक्तपित्तनाशक है ॥ ९३ ॥

अथ वाराहीकन्दः (गेठि) ।

वाराही पित्तला बल्या कट्वी तिक्ता रसायनी। आयुःशुक्राग्निकृन्मेहकफकुष्ठानिलापहा ॥ ९४ ॥

वाराही, (चर्मकारालुक, विष्वक्सेनप्रिया, घुष्टि, बदरा, कच्छा, वनमालिनी, विल्वबूला, शूकरी, क्रोडकन्या, विष्वक्सेनकान्ता, वराही कौमारी, त्रिनेत्रा, ब्रह्मपुत्री, क्रोडी, कन्या, गृष्टिका, माधवेष्टा, शूकरकंद, क्रोड, वनवासी कुष्ठनाशन, बल्य, अमृत, महावीर्य, शम्बरकन्द, वराहकंद, वीर, ब्राह्मीकंद, महौषध, सुकंदक, वृद्धिद, व्याधिहन्ता और मागधी)ये वाराहीकंदके संस्कृत नाम हैं ॥

गुण-वाराहीकंद, पित्तकारक, बलदायक, चरपरा, कडवा, रसायन, आयु, वीर्य, अग्निवर्द्धक, प्रमेह, कफ, कुष्ठ तथा वातविनाशक है ॥ ९४ ॥

अथ हस्तिकर्णा ।

गजकर्णा तु तिक्तोष्णा तथा वातकफान् जयेत्। शीतज्वरहरी स्वादुःपाके तस्यास्तु कन्दकः ॥ ९५ ॥ पाण्डुशोथकृमिप्लीहगुल्मानाहोदरापहा। ग्रहण्यर्शोविकारघ्नो वनसूरणकन्दवत् ॥ ९६ ॥

गजकर्णा, (हस्तिकंद, हस्तिपत्र, स्थूलकंद अतिकंदक, बृहत्पत्र, अतिपत्र, हस्तिकर्ण, रवगदोषारि, कुष्ठहन्ता, गिरिवासी, नागाश्रय, गजकंद और नागकंद) ये हस्तिकर्णकन्दके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-हस्तिकर्णकन्द । गु०-मानकंदनी एकजात ॥

गुण-हस्तिकर्ण-कडवा, गरम, पाकमें मधुर है । हस्तिकर्णका कंद-वनसूरणकंदके सदृश शीतज्वर, वात, कफ, पाण्डु, सूजन, कृमि, प्लीहा, गुल्म, अफरा, उदरके रोग, संग्रहणी, तथा बवासीरको नष्ट करता है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

अथ केमुकम् (केमुआं) ।

केमुकं कटुकं पाके तिक्तं ग्राहि हिमं लघु । दीपनं पाचनं हृद्यं कफपित्तज्वरापहम्। कुष्ठकासप्रमेहास्रनाशनं वातलं कटु ॥ ९७ ॥

केमुक, (केमुआं)-पाकमें चरपरा, कडवा ग्राही, शीतल, हलका, अग्निप्रदीपक, पाचक हृदयको प्रिय, वातकारक, चरपरा और कफ पित्त, ज्वर, कोढ, खांसी, प्रमेह, रक्तविकार नाशक है ॥ ९७ ॥

अथ कसेरु-चिचोढम् ।

कसेरु द्विविधं तत्तु महद्राजकसेरुकम् । मुस्ताकृति लघु स्याद्यत्तच्चिचोढमिति स्मृतम् ॥ ९८ ॥ कसेरुकद्वयं शीतं मधुरं तुवरं गुरु । पित्तशोणितदाहघ्नं नयनामयनाशनम्। ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मारुचिस्तन्यकरं स्मृतम् ॥ ९९ ॥

कसेरू दो प्रकारके होते हैं, जो बडे कसेरू होते हैं । उनको राजकसेरू कहते हैं और जो मोथेकी आकृतिवाला छोटा होता है, उसको चिचोढ कहते हैं ॥

हिन्दी-कसेरू । बं०-केशुर । म०-कचरा क०-सेकिनगडे । गु०-कसेला । तै०-इट्टिकोति । लै०-स्किपस् केसूरScripus Resoor

गुण-दोनों जातिके कसेरू-शीतल, मधुर, कसैले, भारी, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, वात, कफ,

अरुचिकारक, दुग्धवर्द्धक, पित्त, रक्तविकार दाह तथा नेत्ररोगनाशक हैं ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अथ शालूकम् (भसींडा)।

पद्मादिकन्दःशालूकःकरहाटश्च कथ्यते। मृणालमूलं भिस्साण्डं लजालूकश्च कथ्यते ॥ १०० ॥ शालूकं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्त्रहृद् गुरु। दुर्जरं स्वादुपाकश्च स्तन्यानिलकफप्रदम् । संग्राहि मधुरं रूक्षं भिस्साण्डमपि तद्गुणम् ॥ १०१ ॥

कमल आदिके कंदको संस्कृतमें शालूक और करहाट कहते हैं । कमलकी जडको भिस्सांड और लजालूक कहते हैं ॥

कमलकंद-शीतल, वीर्यवर्द्धक, भारी, दुर्जर पाकमें मधुर, दुग्धवर्द्धक, वात, कफकारक, ग्राही, मधुर, रूक्ष और पित्त, दाह तथा रक्तविकारनाशक है । भसींडेमें भी येही गुण हैं ॥ १०० ॥ १०१ ॥

अथ निषिद्ध (तजने योग्य) शाकानि ।

बालं ह्यनार्तवं जीर्णं व्याधितं कृमिभक्षितम् ॥ १०२ ॥ कन्दं विवर्जयेत् सर्वं यद्वाऽग्न्यादिविदूषितम् । अतिजीर्णमकालोत्थं रूक्षं सिद्धमदेशजम् ॥ १०३ ॥ कर्कशं कोमलं चातिशीतव्यालादिदूषितम् । संशुष्कं सकलं शाकं नाश्नीयान्मूलकं विना ॥ १०४ ॥

अतैलादिसिद्धम्--रूक्षम् । अदेशजम्-अशुभस्थानजम् ॥

जो कंद कच्चा, विना ऋतुमें उत्पन्न हुआ पुराना, व्याधित, दीमक आदि कीडोंका खाया हुआ, अग्नि आदिसे दूषित हुआ, अत्यन्त जीर्ण, रूखा, विना समय उत्पन्न हुआ, तेल आदिमें न पकाया हुआ, निकृष्ट भूमिमें उत्पन्न हुआ, कठिन, अत्यन्त कोमल, अत्यन्त शीतल, सर्पादिकसे दूषित ऐसा कंद नहीं खाना चाहिये । मूलीके अतिरिक्त और सब शाक सूखे हुए नहीं खाने चाहिये ॥ १०२-१०४

अथ संस्वेदजशाकानि ।

(पसीनेसे उत्पन्न शाक)

तेषां नामानि गुणाश्च ।

उक्तं संस्वेदजं शाकं भूमिच्छत्रं शिलीन्ध्रकम्। क्षितिगोमयकाष्ठेषु वृक्षादिषु तदुद्भवेत् ॥ १०५ ॥ सर्वे संस्वेदजाः शीता दोषलाः पिच्छिलाश्च ते। गुरवश्छर्द्यतीसारज्वरश्लेष्मामयप्रदाः ॥ १०६ ॥ श्वेतशुभ्रस्थलीकाष्ठवंशगोव्रणसम्भवाःनातिदोषकरास्ते स्युः शेषास्तेभ्यो विगर्हिताः ॥ १०७ ॥

॥ इति पञ्चमप्रकरणे शाकवर्गः ॥

संस्वेदज, भूमिच्छत्र, शिलीन्ध्रक,(भूछत्र पृथिवीकंद, शिलींध्र, कवच, भूच्छत्र, भूमिस्फोट, धरांकुर, भूसुता, छत्र, छत्राक, उच्छिलीन्ध्र और स्वेदक) ये संस्वेदकशाकके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-सांपकी छत्री, छतोना । बं०-छातकुण्ड, छातोना । म०-भुइफोड । गु० संस्वेदज शाको । इं०-कशरुम Mushroem लै०-फंगाई Fungi

यह शाक-पृथ्वी, गोबर, लकडी और वृक्षादि, शाकोंमें उत्पन्न होता है ॥

गुण-सम्पूर्ण संस्वेदज शाक-शीतल, दोषयुक्त, पिच्छल, भारी, वमन, अतीसार, ज्वर तथा कफ सम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करता है ॥

जो संस्वेदज शाक-श्वेतवर्णवाले, पवित्र स्थानमें उत्पन्न हुए काष्ठ, बांस तथा गोबरमें उत्पन्न हुए हों, वे अत्यन्त दोषकारक नहीं हैं, शेषके सम्पूर्ण संस्वेदज शाक निर्दित हैं ॥ १०५ ॥ १०७ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां शाकवर्गः समाप्तः।

इति भावप्रकाशे पूर्वखण्डस्य प्रथमो भागः ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ भावप्रकाशः

भाषाटीकासमेतः

★

पूर्वखण्डे-द्वितीयो भागः

अथ मांसवर्गः ।

अथ मांसस्य नामानि ।

मांसं तु पिशितं क्रव्यमामिषं पललं पलम् । मांसं वातहरं सर्वं बृंहणं बलपुष्टिकृत् । प्रीणनं गुरु हृद्यञ्च मधुरं रसपाकयोः ॥ १ ॥

मांस, पिशित, क्रव्य, आमिष, पलल और पल ये मांसके संस्कृत नाम हैं ॥

गुण–सर्वप्रकारके मांस–वातनाशक, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, तृप्तिदायक, भारी, हृदयको प्रिय रसमें तथा पाकमें मधुर हैं ॥१॥

अथ मांसभेदाः ।

मांसवर्गो द्विधा ज्ञेयो जाङ्गलाऽऽनूपभेदतः ॥ २ ॥

सम्पूर्ण मांस दो प्रकारके हैं एक जांगलमांस और दूसरे आनूपमांस ॥ २ ॥

अथ जांगलमांसस्य लक्षणं गुणाश्च ।

मांसवर्गेऽत्र जंघाला बिलस्थाश्च गुहाशयाः । तथा पर्णमृगा ज्ञेया विष्किराः प्रतुदा स्तथा ॥ ३ ॥ प्रसहा अथ च ग्राम्या अष्टौ जाङ्गलजातयः जाङ्गला मधुरा रूक्षास्तुवरा लघवस्तथा । बल्यास्ते बृंहणा वृष्या दीपना दोषहारिणः ॥ ४ ॥ मूकतां मिन्मिनत्वं च गद्गदत्वार्दिते तथा । बाधिर्य्यमरुचिच्छर्दिप्रमेहमुखजान् गदान् । श्लीपदं गलगण्डञ्च नाशयत्यनिलामयान् ॥५॥

यहां मांसवर्गमें जंघाल, बिलस्थ (बिलेशय) गुहाशय, पर्णमृग, विष्किर, प्रतुद और प्रसह ग्राम्य ये आठ जांगल जातिमें हैं ।

गुण–जांगल जातिके मांस–मधुर, रूक्ष, कसैले, हलके, बलदायक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक अग्निको दीपन करनेवाले, दोषनाशक, गूंगापन, मिन् मिनापन, तोतलापन अर्दितवात, (लकवा) बहरापन, अरुचि, वमन, प्रमेह, मुखरोग, श्लीपद, गलगण्ड तथा वातसम्बन्धी रोगोंको नष्ट करते हैं ॥ ३–५ ॥

अथ आनूपमांसस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

कूलेचराः प्लावाश्चापि कोशस्थाः पादिनस्तथा । मत्स्या एते समाख्याता पञ्चधाऽऽनूपजातयः ॥ ६ ॥ आनूपा मधुराः स्निग्धा गुरवो वह्निसादनाः । श्लेष्मलाः पिच्छिलाश्चापि मांसपुष्टिप्रदा भृशम् । तथाऽभिष्यन्दिनस्ते हि प्रायः पथ्यतमा स्मृताः ॥ ७ ॥

कूलेचर, प्लव, कोशस्थ, पादी और मत्स्य पांच अनूपजातिमें हैं ॥

गुण–अनूपजातिके मांस–मधुर, स्निग्ध, भारी, अग्निको मन्द करनेवाले, कफकारक, पिच्छिल, मांसको बहुत पुष्टिदायक, अभिष्यन्दी और विशेषकरके बहुत पथ्य हैं ६॥७॥

अथ जांगलाः।

तत्र जंघालगणना विशिष्टगुणाश्च।

हरिणैणकुरङ्गर्ष्यपृषतन्यंकुशम्बराः। राजीवोऽपि च मुण्डी चेत्याद्या जाङ्गलसंज्ञकाः॥ ८॥ हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णः प्रकीर्तितः। कुरङ्ग ईषत्ताम्रः स्यादेणतुल्याकृतिर्महान्॥९॥ ऋष्यो निलाङ्गको लोके स रोझ इति कीर्तितः। पृषतश्चन्द्रबिन्दुः स्याद्धरिणात्किञ्चिदल्पकः॥ १०॥ न्यंकुर्बहुविषाणोऽथ शम्बरो गवयो महान्। राजीवस्तु मृगो ज्ञेयो राजिभिः परितो वृतः॥ ११॥ यो मृगः शृङ्गहीनः स्यात्स मुण्डीति निगद्यते। जंघालाः प्रायशः सर्वे पित्तश्लेष्महराः स्मृता। किञ्चिद्वातकराश्चापि लघवो बलवर्द्धनाः१२

हरिण, एण, कुरंग, ऋष्य, पृषत, न्यकु, शम्बर, राजीव और मुण्डी इत्यादि पशु जंघालसंज्ञक हैं। जो मृग लाल वर्णका हो उसको हरिण, जो काला हो उसको एण, किंचित् लालवर्णका बडा और सदृश आकृतिवाला हो उसको कुरंग; जो नीले वर्णका हो उसको ऋष्य और लोकमें रोझ, जो चन्द्र के सदृश छींटवाला और हरिणसे कुछ छोटा हो उसको पृषत, जिसके बहुतसे सींग हों उसको न्यंकु (बारहसिंगा) बडे रोझको शम्बर, जिसके शरीरमें अधिक रेखा पडी हों उसको राजीव और जो मृग सींगरहित होता है उसको मुण्डी कहते हैं। प्रायः सर्वजंघाल-- पित्त, कफनाशक, कुछ वातकारक, हलके और बलवर्द्धक हैं॥ ८-१२॥

अथ विलेशयानां (फिलनिवासी प्राणियोंकी) गणना गुणाश्च।

गोधाशशभुजङ्गाखुशल्लक्याद्या विलेशयाः। विलेशया वातहरा मधुरा रसपाकयोः। बृंहणा बद्धविण्मूत्रा वीर्योष्णाश्च प्रकीर्तिताः॥ १३॥

गोह, खरगोश, सांप, मूसा और शल्लकी (सेई) इत्यादिक, बिलस्थ (मिट्टीमें रहनेवाले) कहाते हैं॥

बिलस्थोंके मांस- वातनाशक, रसमें पाकमें मधुर, पुष्टिकारक, मल मूत्रको बांधनेवाले और उष्णवीर्य हैं॥ १३॥

अथ गुहाशयानां (गुफानिवासी प्राणियोंकी) गणना गुणाश्च।

सिंहव्याघ्रवृका ऋक्षतरक्षुद्वीपिनस्तथा। बभ्रुजम्बूकमार्जारा इत्याद्याः स्युर्गुहाशयाः॥ १४॥ स्थूलपुच्छो रक्तनेत्रो बभ्रुदेहः स नाकुलः। गुहाशया वानहरा गुरूष्णा मधुराश्च ते। स्निग्धा बल्या हिता नित्यं नेत्र गुह्यविकारिणाम्॥१५॥

सिंह, वाघ, भेडिया, रीछ, तरक्षु (चीतल) चीवा, बभ्रु (नौला), गीदड और बिलाव इत्यादि जीव गुहाशय (गुफामें रहनेवाले कहाते हैं। जो मोटी पूँछवाला और लालनेत्रों) युक्त तथा बभ्रके सदृश देहवाला होता है- उसको नाकुल (न्यौला) कहते हैं॥

सम्पूर्ण गुहाशयोंका मांस-वातनाशक, भारी, गरम, मधुर, स्निग्ध, बलदायक तथा गुदाके रोगवालोंको सर्वदाहितकारी है॥१४॥१५॥

अथ पर्णमृगाणां (पत्ते खानेवाले प्राणियोंकी) गणना गुणाश्च।

वनौका वृक्षमार्जारो वृक्षमर्कटिकादयः। एते पर्णमृगाः प्रोक्ताः सुश्रुताद्यैर्महर्षिभिः॥ १६॥

वनौका वानरः वृक्षमार्जारो वृक्षविडालः। वृक्षमर्कटिका रूपी वानर इति लोके॥

स्मृताःपर्णमृगा वृष्याश्चक्षुष्याः शोषिणे हिताः। श्वासार्शःकासशमनाः सृष्टमूत्रपुरीषकाः॥ १७॥

वानर, वृक्षपर रहनेवाले बिलाव वनबिलाव और वृक्षमर्कटी (रूपी ये सुश्रुतआदि महर्षियों ने पर्णमृग कहे हैं ॥

पर्णमृगोंका मांस-वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, शोष (क्षय) रोगवालोंको हितकारी, मल तथा मूत्रको निकालनेवाला, श्वास, बवासीर तथा खांसीको नष्ट करता है ॥१६॥१७॥

अथ विष्किराणां (विष्किर पक्षियोंकी)

गणना गुणाश्च ।

वर्त्तका लाववर्तीरकपिञ्जलकतित्तिराः । कुलिङ्गकुक्कुटाद्याश्च विष्किराः समुदाहृताः ॥१८॥ विकीर्य भक्षयन्त्येते यस्मात्तस्माद्धि विष्किराः । कपिञ्जल इति प्राज्ञैः कथितो गौरतित्तिरिः ॥ १९ ॥ विष्किरा मधुराः शीताः कषायाः कटुपाकिनः । बल्या वृष्यास्त्रिदोषघ्नाः पथ्यास्ते लघवः स्मृताः ॥ २० ॥

वर्त्तक चित्रविचित्र रंगके पंखोंकी चिडिया लवा, बटेर, गौरतीतर, तीतर, घरकी चिडिया और मुरगा आदिक विष्किर कहाते हैं। ये जीव कुरेद कुरेद कर खाते हैं, उससे इनकी विष्किर संज्ञा है। कपिञ्जल अर्थात् गौरतीतर (कबूतर) जानना। विष्किर जीवोंका मांस-मधुर, शीतल, कसैला, पाकमें चरपरा, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, त्रिदोषनाशक, पथ्य और हलका है ॥ १८-२० ॥

अथ प्रतुदानां (चोंचसे खानेवाले पक्षियोंकी)

गणना गुणाश्च ।

हारीतो धवलःपाण्डुश्चित्रपक्षो बृहच्छुकः । पारावतः खञ्जरीटः पिकाद्याः प्रतुदाः स्मृताः । प्रतुद्य भक्षयन्त्येते तुण्डेन प्रतुदास्ततः ॥ २१ ॥

हारीतः-हरियल इति लोके ॥

कपीतो धवलः पाण्डुः शतपत्रो बृहच्छुकः ॥ २२ ॥ दार्वाघाट इत्यमरः । 'कठफोरा' इति लोके ॥

प्रतुदा मधुराःपित्तकफघ्नास्तुवरा हिमाः । लघवो बद्धवर्चस्काः किञ्चिद्वातकराः स्मृताः ॥ २३ ॥

हरियल, पिंडुकिया, चित्रपक्ष (एक प्रकारका तोता), बडा तोता, कबूतर, खंजन और कोयल आदिक प्रतुद कहे हैं। ये चोंचसे पदार्थको निखोलकर खाते हैं, इससे इनको प्रतुद कहा है। कबूतर-सफेद और पाण्डुवर्ण ऐसे दो प्रकारका होता है। शतपत्र यह बडे तोते हीका नाम है और अमरकोशमें तो कठफोरेको लिखा है ॥

प्रतुद जीवोंका मांस-मधुर, पित्त तथा कफ नाशक, कसैला शीतल, हलका,मलको बांधनेवाला और किंचित् वातकारक है ॥२१-२३॥

अथ प्रसहानां (दूसरेसे छीनकर खानेवाले पक्षियोंकी) गणना गुणाश्च ।

काको गृध्र उलूकश्च चिल्लश्च शशघातकः । चाषो भासश्च कुरर इत्याद्याः प्रसहाः स्मृताः ॥ २४ ॥

शशघातकः-'बाज' इति लोके । चाषो-नीलकण्ठ इति लोके । "भासो गृध्रविशेषः स्यात्" । कुररः 'कुरांकुर' इति लोके ॥

प्रसहाःकीर्तिता एते प्रसह्याच्छिद्य भक्षणात । प्रसहाः खलु वीर्योष्णास्तन्मांसं भक्षयन्ति ये । ते शोषभस्मकोन्मादशुक्रक्षीणा भवन्ति हि ॥ २५ ॥

कौआ, गिद्ध, उल्लू, चील, बाज, वशिकरा, वकुई, नीलकंठ, भास (एक प्रकारका गिद्ध) और कुञ्ज इत्यादि प्रसह कहाते हैं। ये बलात्कारसे छीन कर खाते हैं, इससे इनका नाम प्रसह है ॥

प्रसह जीवोंका मांस--उष्णवीर्य है, इससे जो इनको खाते हैं उनको--शोष, भस्मक और उन्मादरोग होता है तथा वीर्य क्षीण होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ ग्राम्याणां (ग्राम्यपशुओंकी) गणना गुणाश्च ।

छागमेषवृषाश्चाश्वा ग्राम्याः प्रोक्ता महर्षिभिः । ग्राम्या वातहराः सर्वे दीपनाः कफपित्तलाः । मधुरा रसपाकाभ्यां बृंहणा बलवर्द्धनाः ॥ २६ ॥

बकरी, मेंढा, बैल और घोडा इत्यादि जीव ग्राम्य हैं । ग्राम्य जीवोंका मांस-वातनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला, कफ पित्तकारक, पाकमें रसमें मधुर, पुष्टिदायक और बलवर्द्धक है ॥ २६ ॥

अथानूपाः ।

तत्र कूलेचराणां गणना गुणाश्च ।

लुलायगण्डवाराहचमरीवारणादयः। एते कूलेचराः प्रोक्ता यतः कूले चरन्त्यपाम् ॥ २७ ॥

लुलायः-महिषः । गण्डः खड्गः । चमरी-चमर पुच्छा गौः ॥

कूलेचरा मरुत्पित्तहरा वृष्या बलावहाः । मधुराः शीतलाः स्निग्धा मूत्रलाः श्लेष्मवर्धनाः ॥ २८ ॥

भैंसा, गेंडा, सुअर, चमरगाय, (सुरेगाय) और हाथी आदि कूलेचर जलके (किनारे रहनेवाले हैं ॥

कूलेचर जीवोंका मांस--वात-पित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, मधुर, शीतल, स्निग्ध, मूत्रको बढानेवाला और कफवर्द्धकहै॥२८॥२८

अथ प्लवानां (पंक्तियोंसे आकाशमें उडनेवाले पक्षियोंकी) गणना गुणाश्च ।

हंससारसकारण्डवकक्रौञ्चशरारिकाः । नन्दीमुखी सकादम्बा बलाकाद्याः प्लवाः स्मृताः। प्लवंते सलिले यस्मादेते तस्मात् प्लवाः स्मृताः ॥ २९ ॥

कारण्डः-कपर्दिकाख्यो बृहद्धंसभेदः ॥

स्थूला कठोरा वृत्ता च यस्याश्चञ्चुपरि स्थिता । गुटिका जम्बुसदृशी प्रोक्ता नन्दीमुखीति सा ॥ ३० ॥

बलाका-बगुली इति लोके ।

प्लवाः पित्तहराः स्निग्धा मधुरा गुरवो हिमाः । वातश्लेष्मप्रदाश्चापि बलशुक्रकराः सराः ॥ ३१ ॥

हंस, सारस, चकवा, बगला, क्रौंच (ढेंक), शरारी (बगलेका भेद), नन्दीमुखी, बत्तक और बलाका आदि जीवोंको प्लव कहा है। ये जलमें तैरते हैं, इस कारण इनका नाम प्लव है। जिसकी चोंचके ऊपर मोटी कठोर गोल और जम्बूके सदृश गोलाई हो. उसको नन्दीमुखी कहते हैं ॥

प्लव जीवोंका मांस-पित्तनाशक, चिकना, मीठा, भारी, शीतल, वात, कफको उत्पन्न करनेवाला, बलदायक, वीर्यवर्द्धक और दस्तावर है ॥ २९-३१ ॥

अथ कोशस्थानां (ढकनेके मध्यमें रहनेवाले प्राणियोंकी) गणना गुणाश्च ।

शंखः शंखनखश्चापि शुक्तिशम्बूककर्कटाः । जीवा एवंविधाश्चान्ये कोशस्थाः परिकीर्तिताः ॥ ३२ ॥

शंखनखः-क्षुद्रशंखः ॥

कोशस्था मधुराः स्निग्धा वातपित्तहरा हिमाः । बृंहणा बहुवर्चस्का वृष्याश्च बलवर्द्धनाः ॥ ३३ ॥

शंख, छोटाशंख, सीप, शम्बूक (जलकी छोटी सीप) और कर्कट (केकडा) आदिक तथा इसी प्रकारके और भी जीव कोशस्थ कहाते हैं ॥

कोशस्थ जीवोंका मांस-मधुर, चिकना, वात, पित्तनाशक, शीतल, पुष्टिकारक, बहुत मलकर्त्ता, वीर्यवर्द्धक और बलदायक है ॥ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ पादिनां (पावोंके प्राणियोंकी)।
गणना गुणाश्च।

कुम्भीरकूर्मनक्राश्च गोधामकरशंकवः। घण्टिकः शिशुमारश्चेत्यादयः पादिनः स्मृताः ॥ ३४ ॥

कुम्भीरो मारको जलजन्तुः। कूर्मः कच्छपः। नक्रः नाका इति लोके। गोधा गोहिर्जलजन्तुः। प्रकरः मगर इति लोके। शंकुः शाकुच इति लोके। घन्टिकः घडियाल इति लोके ॥

पादिनोऽपि च ये ते तु कोशस्थानां गुणैः समाः ॥ ३५ ॥

कुम्भीर (मार डालनेवाला जलका जीव) कछुआ, नाका, गोह, मगरमच्छ, शंकु; घडियाल और शिशुमार (सूँस) इत्यादि जलमें रहनेवाले जिनके पांव होते हैं, उनको पादी कहते हैं। पादी जीवोंका मांस भी कोशस्थके सदृश गुणकारक है ॥

अथ मत्स्यानां (मत्स्योंके) नामानि
गुणाश्च।

मत्स्यो मीनो विकारश्च झषो वैसारिणोऽण्डजः। शकुली पृथुरोमा च स सुदर्शन इत्यपि ॥ ३६ ॥ रोहिताद्यास्तु ये जीवास्ते मत्स्याः परिकीर्तिताः। मत्स्याः स्निग्धोष्णमधुरा गुरवः कफपित्तलाः ॥ ३७ ॥ वातघ्ना बृंहणा वृष्या रोचका बलवर्द्धनाः। मद्यव्यवायसक्तानां दीप्ताग्निनाश्च पूजिताः ॥ ३८ ॥

मत्स्य, मीन, विकार, झष, वैसारिण, अंडज शकुली, पृथुरोमा और सुदर्शन ये मच्छियोंके नाम हैं, रोहित आदिक जो जीव जलमें होते हैं, उनको मछली कहते हैं ॥

मछली-चिकनी, गरम, भारी, कफ तथा पित्तकारक, वातनाशक, पुष्टिदायक, वीर्यवर्द्धक रुचिकारक, बलवर्द्धक, और मद्य तथा मैथुनमें आसक्तोंको तथा प्रदीप्त जठराग्निवालोंको हितकारी है ॥

अथ जंघालादीनां (जांघवालोंके)।
नामानि गुणाश्च।

हरिणः शीतलो बद्धविण्मूत्रो दीपनो लघुः। रसे पाके च मधुरः सुगन्धिः सन्निपातहा ॥ ३९ ॥

हिरनका मांस-शीतल, मलमूत्रको बांधनेवाला, अग्निप्रदीपक, हलका, रसमें तथापाकमें मीठा सुगंधि और सन्निपातनाशक है ॥ ३९ ॥

अथ एणहरिणः (कालाहरिण)

एणः कषायो मधुरः पित्तासृक्कफवातहृत्। संग्राही रोचनो बल्यो ज्वरप्रशमनः स्मृतः ॥ ४० ॥

एण नामक मृग मांस-कसैला, मीठा, ग्राही, रुचिकारक, बलदायक और पित्त, रक्तविकार, कफ, वात तथा ज्वरनाशक है ॥ ४० ॥

अथ कुरङ्गः।

कुरङ्गो बृंहणो बल्यः शीतलः पित्तहृद्गुरुः। मधुरो वातहृद्ग्राही किञ्चित्कफकरः स्मृतः ॥ ४१ ॥

कुरङ्ग नामके मृगका मांस-पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, शीतल, पित्तनाशक, भारी, मधुर, वातनाशक, ग्राही और किंचित् कफकारक है ॥ ४१ ॥

अथ रोझः।

ऋष्यो नीलाण्डकश्चापि गवयो रोझ इत्यपि। गवयो मधुरो बल्यः स्निग्धोष्णः कफपित्तलः ॥ ४२ ॥

ऋष्य, नीलाण्डक, गवय और रोझ ये रोझ के संस्कृत नाम है ॥

रोझका मांस-मधुर, बलदायक, स्निग्ध, गरम और कफ तथा पित्तकारक है ॥ ४२ ॥

अथ पृशतः (चित्तलमृग)

पृषतस्तु भवेत्स्वादुर्ग्राहकः शीतलो लघुः। दीपनो रोचनःश्वासज्वरदोषत्रयास्त्रजित् ॥ ४३ ॥

पृषत (चित्तल), नामक, मृगका मांस- मधुर, ग्राही, शीतल, हलका, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक,श्वास,ज्वर, त्रिदोष तथा रक्तविकारनाशक है ॥ ४३ ॥

अथ न्यकुः (बारहसिंगा)

न्यङ्कुः स्वादुर्लघुर्बल्यो वृष्यो दोषत्रयापहः ॥ ४४ ॥

न्यंकुनाम मृग (बाहरसिंगे) का मांस- हलका, बलदायक, वीर्यवर्द्धक और त्रिदोषनाशक है ॥

अथ साबरम्।

साबरं पललं स्निग्धं शीतलं गुरु च स्मृतम् रसे पाके च मधुरं कफदं रक्तपित्तहृत्। राजीवस्तु गुणैर्ज्ञेयः पृषतेन समो जनैः ॥ ४५ ॥

साबर मृगका मांस-स्निग्ध, शीतल, भारी, रसमें पाकमें मीठा, कफकारक और रक्तपित्तविनाशक है।।राजीव नामक मृगके गुण चित्तलके मांसके सदृश ही जानने योग्य हैं ।।४५।।

अथ मुण्डी।

मुण्डी तु ज्वरकासास्त्रक्षयश्वासापहो हिमः ॥ ४६ ॥

मुण्डी (सींगरहित) मृगका मांस-शीतल और ज्वर, खांसी, रक्तविकार, क्षय तथा श्वासनाशक है ॥ ४६ ॥

अथ बिलेशयाः।

तत्र शश-(खरगोश) स्य नाम गुणाः।

लम्बकर्णः शशः शूली लोमकर्णो बिलेशयः। शशः शीतो लघुर्ग्राही रूक्षः स्वादुः सदा हितः ॥ ४७ ॥ वह्निकृत्कफपित्तघ्नो वातसाधारणः स्मृतः। ज्वरातीसारशोषास्त्रश्वासामयहरश्च सः ॥४८॥

लम्बकर्ण, शश, शूली, लोककर्ण और बिलेशय ये खरगोश (चौगडा) के संस्कृत नाम हैं ॥

खरगोशका मांस-शीतल, हलका, ग्राही, रूखा, स्वादु, सदा हितकारी,अग्निकारक, कफ पित्तनाशक और साधारण वातकारक है। ज्वर, अतिसार, शेष,रक्तविकार तथा श्वासको नष्ट करता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ सेधा (सेह साही)।

सेधा तु शल्यकः श्वावित्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। शल्यकः श्वासकासास्त्रशोषदोषत्रयापहः ॥ ४९ ॥

सेधा, शाल्यक और श्वावित् ये सेहके संस्कृत नाम हैं ॥

सेहका मांस-श्वास, खांसी, रक्तविकार, शोष तथा त्रिदोषनाशक है ॥ ४९ ॥

अथ पक्षिणां (पक्षियोंके) नामानि गुणाश्च।

पक्षी खगो विहङ्गश्च विहगश्च विहङ्गमः। शकुनिर्विः पतत्री च विष्किरो विकिरोऽण्डजः ॥ ५० ॥ धान्याङ्कुरचरा येऽत्र तेषां मांसं लघूत्तमम्। आनूपं बलकृन्मांसं स्निग्धंगुरुतरं स्मृतम् ॥५१॥

पक्षी, खग, विहंग, विहग, विहंगम, शकुनि वि, पतत्री, विष्किर, विकिर, और अण्डज, ये पक्षीके संस्कृत नाम हैं ॥

जो पक्षी धान्य तथा अंकुर खानेवाले हैं, इससे उनका मांस हलका और उत्तम है। जो पक्षी जलमें रहनेवाले हैं उनका मांस स्निग्ध,बलदायक और बहुत भारी है ५०॥५१

अथ तेषु विष्किरेषु वर्तकः (बटेर)

वर्तीको वर्त्तकश्चित्रस्ततोऽन्या वर्त्तका स्मृता। वर्त्तकोऽग्निकरः शीतो ज्वरदोषत्रयापहः। सुरुच्यः शुक्रदो बल्यो वर्त्तकाऽल्पगुणा ततः ॥ ५२ ॥

वर्त्तीक, वर्तक और चित्र ये बटेरके नाम हैं। इसकी जातिके दूसरे पक्षियोंको वर्त्तका कहते हैं ॥

बटेरका मांस-अग्निकारक, शीतल रुचिकारी, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, ज्वर, तथा त्रिदोषनाशक है। वर्त्तकामें इससे हीन गुण हैं ॥ ५२ ॥

अथ लावः (लवा)।

लावा विष्किरवर्गेषु ते चतुर्धा मता बुधैः। पांसुलो गौरकोऽन्यस्तु पौण्ड्रको दर्भरस्तथा ॥ ५३ ॥ लावा वह्निकराः स्निग्धा गरघ्ना ग्राहिका हिताः। पांसुलः श्लेष्मलस्तेषु वीर्योष्णोऽनिलनाशनः ॥ ५४ ॥ गौरो लघुतरो रूक्षो वह्निकारी त्रिदोषजित्। पौण्ड्रकः पित्तकृत्किञ्चिल्लघुर्वातकफापहः। दर्भरो रक्तपित्तघ्नो हृदामयहरो हिमः ॥ ५५ ॥

विष्किरवर्गमें लवा भी है, वह पांसुल गौरक, पौण्ड्रक और दर्भर इस भांति चार प्रकारका होता है ॥

लवेका मांस-अग्निकारक, स्निग्ध, विषविनाशक, ग्राही और हितकारी है ॥

पांसुलजातिका लवा-कफवकारक, उष्णवीर्य और वातनाशक है ॥

गौरकजातिका लवा-अत्यन्त हलका, रूक्ष, अग्निकारक और त्रिदोषनाशक है। पौण्डकजातिका लवा पित्तकर्ता, किंचित् हलका, वात तथा कफनाशक है। दर्भरजातिका लवा-रक्तपित्तनाशक हृदयरोगनाशक और शीतल है ॥ ५३ ५५ ॥

अथ वार्तीकः (बगेरा बटेरा)।

वालीको वर्तिचटको वार्तीकश्चैव स स्मृतः। वालीको मधुरः शीतो रूक्षश्च कफपित्तनुत् ॥ ५६ ॥

वालीक, वर्तिचटक और वार्तीक ये बगरेके संस्कृत नाम हैं ॥

बगेरेका मांस-शीतल, रूक्ष, कफ, तथा पित्तनाशक है ॥ ५६ ॥

अथ कृष्णतित्तिरिगौरतित्तिरी (तीतर)

तित्तिरिः कृष्णवर्णः स्याच्चित्रोऽन्यो गौरतित्तिरिः। तित्तिरिर्बलदो ग्राही हिक्कादोषत्रयापहः। श्वासकासज्वरहरस्तस्माद्गौरोऽधिको गुणैः ॥ ५७ ॥

जो तीतर काले रंगका हो, वह काला तीतर और जो चित्र विचित्र वर्णका हो, वह गौर तीतर कहता है ॥

तीतरका मांस--बलदायक, ग्राही, हिचकी, त्रिदोष श्वास, खाँसी तथा ज्वरनाशक है। काले तीतरकी, अपेक्षा और तीतरके मांसमें अधिक गुण हैं ॥ ५७ ॥

अथ चटकः (गवरैया चिडा)।

चटकः कालविंकः स्यात्कुलिङ्गः कालकण्ठकः। कुलिङ्गःशीतलःस्निग्धःस्वादुः शुक्रकफप्रदः। सन्निपातहरो वेश्मचटकश्चातिशुक्रलः ॥ ५८ ॥

चटक, कलविंक, कुलिंग और कालकंठक, ये चिडेके संस्कृत नाम हैं ॥

चिड़ेका मांस--शीतल, स्निग्ध, मधुर, वीर्य कफ वर्द्धक और सन्निपातनाशक है। घरोंमें रहनेवाले चिडोंका मांस अत्यन्त वीर्यवर्द्धक है ॥ ५८ ॥

अथ कुक्कुटः--वनकुक्कुटश्च (मुरगा)।

कुक्कुटःकृकवाकुः स्यात्कालज्ञश्चरणायुधः। ताम्रचूडस्तथा दक्षः प्रातर्नादी शिखण्डिकः ॥ ५९ ॥ कुक्कुटो बृंहणः स्निग्धो वीर्योष्णोऽनिलहृद्गुरुः। चक्षुष्यःशुक्रकफकृद्बल्यो वृष्यःकषायकः ॥ ६० ॥ आरण्यकुक्कुटःस्निग्धो बृंहणः श्लेष्मलो गुरुः। वातपित्तक्षयवमिविषमज्वरनाशनः ॥ ६१ ॥

कुक्कुट, कृकवाकु, कालज्ञ, चरणायुध, ताम्रचूड, दक्ष, प्रात्तर्नादी और शिखंडिक ये मुरगेके संस्कृत नाम हैं ॥

मुरगेका मांस- पुष्टिदायक, स्निग्ध, उष्णवीर्य, वात नाशक, भारी, नेत्रोंको हितकारी, वीर्य, कफवर्द्धक, बलदायक, वृष्य और कसैला है। वनमुरगेका मांस स्निग्ध, पुष्टिकारक कफकर्ता, भारी, वातपित्त, क्षय वमन तथा विषमज्वरनाशक है॥ ५९॥ ६१॥

अथ प्रतुदाः।

हारीतः (हरियल।

हारीतो रक्तपीतःस्याद्धरितोऽपि स कथ्यते ॥६२॥ हारीतो रूक्ष उष्णश्च रक्तपित्तकफापहः। स्वेदस्वरकरः प्रोक्त ईषद्वातकरश्च सः॥ ६३॥

हारीत, रक्तपीत और हरित ये हरियलके संस्कृत नाम हैं॥

हरियलका मांस -रूखा, गरम, रक्तपित्त तथाकफनाशक, स्वेदकारक, स्वरको उत्तम करनेवाला और किंचित् वातकारक है॥ ६२॥ ६३॥

अथ पाण्डुधवलपाण्डू (पण्डाक्ता)

पाण्डुस्तु द्विविधो ज्ञेयश्चित्रपक्षःकलध्वनिः। द्वितीयो धवलः प्रोक्तः स कपोतः स्फुटस्वनः॥६४॥ चित्रपक्षः कफहरो वातघ्नो ग्रहणीप्रणुत्। धवलः पाण्डुरुद्दिष्टो रक्तपित्तहरो हिमः॥ ६५॥

पंडाक्ता दो प्रकारकी होती है। एक चित्रित पंखोंयुक्त मीठे स्वरवाली होती है। पहिलीको पांडु, दूसरीको धवल कपोत कहते हैं॥ ६४॥

चित्रपक्षका मांस--कफनाशक वात तथा संग्रहणी नाशक है॥

धवलका मांस--रक्तपित्तनाशक और शीतल है॥ ६५॥

अथ मयूरः (मोर)।

मयूरश्चन्द्रकी केकी मेघरावो भुजङ्गभुक्। शिखी शिखावलो बर्हीं शिखण्डी नीलकण्ठकः॥ ६६॥ शुक्लापाङ्गःकलापी च मेघनादानुलास्यपि। रसे पाके च मधुरः संग्राही वातशान्तिकृत्॥ ६७॥

मयूर, चन्द्रकी, केकी, मेघराव, भुजंगभुक्, शिखी, शिखावल, बर्हीं, शिखंडी, नीलकंठ, शुक्लापांग, कलापी और मेघनादानुलासी ये मोरके संस्कृत नाम हैं॥

मोरका मांस--रसमें तथा पाकमें मधुर, ग्राही और बातनाशक है॥ ६६॥ ६७॥

अथ पारावतः (कबूतर, परेवा)।

पारावतः कलरवः कपोतो रक्तवर्द्धनः। पारावतो गुरुःस्निग्धो रक्तपित्तानिलापहः। संग्राही शीतलस्तज्ज्ञैः कथितो वीर्यवर्द्धनः॥ ६८॥

पारावत, कलरव, कपोत और रक्तवर्द्धन ये परेवा और कबूतरके नाम हैं। इन दोनोंका मास–भारी, स्निग्ध, ग्राही, शीतल वीर्यवर्द्धक और रक्तपित्त तथा वातनाशक है॥ ६८॥

अथ पक्ष्यण्डस्य (पक्षियोंके (अंडोंके) गुणाः।

नातिस्निग्धानि वृष्याणि स्वादुपाकरसानि च। वातघ्नान्यतिशुक्राणि गुरूण्यण्डानि पक्षिणाम्॥ ६९

पक्षियोंके अण्डेको हिन्दीमें अंडा। बं०-डिम्ब। गु०-इंडा कहते हैं। पक्षियोंका अंडा-बहुत स्निग्ध। नहीं, बृष्य, पाकमें तथा रसमें मधुर वातनाशक और अत्यन्त वीर्यवर्धक और भारी है॥

अथ ग्राम्यच्छागः (बकरा)।

छागलो बर्करश्छागो वस्तोऽजश्छेलकः स्तुभः। अजा छागा स्तुभा चापि छेलिका च गलस्तनी॥७०॥ छागमांसं लघु स्निग्धं स्वादुपाकं त्रिदोषनुत्। नातिशीतमदाहि स्यात्स्वादु पीनसनाशनम् ॥७१॥ परं बलकरं रुच्यं बृंहणं वीर्यवर्द्धनम्। अजायास्त्वप्रसूताया मांसं पीनस-

नाशनम् ॥७२॥ शुष्ककासेऽरुचौ शोषे हितमग्नेश्च दीपनं। अजासुतस्य बालस्य मांसं लघुतरंस्मृतम् ॥ ७३ ॥ हृद्यं ज्वर हरं श्रेष्ठं सुखदं बलदं भृशम्। मांसं निष्कासिताण्डस्य छागस्य कफकृद्गुरु ॥७४॥ स्रोतःशुद्धिकरं बल्यं मांसदं वातपित्तनुत्। वृद्धस्य वातलं रूक्षं तथा व्याधिमृतस्य च। ऊर्ध्वजत्रुविकारघ्नं छागमुण्डं रुचिप्रदम् ॥ ७५ ॥

छागल. बर्कर, छाग, बस्त, अज, छेलक और स्तुभ ये बकरेके संस्कृत नाम हैं ॥

बकरेका मांस-हलका, स्निग्ध, पाकमें मीठा, त्रिदोषनाशक, बहुत शीतल नहीं, दाहकारक नहीं, स्वादु, पीनसनाशक, अत्यन्त बलकर्त्ता, रुचिकारी. पुष्टिदायक और वीर्यवर्द्धक है ॥

अप्रसूता बकरीका मांस-पीनसको नष्ट करनेवाला, सूखी खांसी, अरुचि, शोषरोगमें हितकारी तथा अग्निप्रदीपक है।

बकरीके बच्चेका मांस-बहुत हलका, हृदयको प्रिय, ज्वरनाशक, श्रेष्ठ, सुखदायक और बहुत बलदायक है। जिसके अंडे निकालडाले हों ऐसे बकरेका मांस-कफकारक, भारी, नाडियोंको शुद्ध करनेवाला, बलदायक मांसवर्द्धक-वात तथा पित्तनाशक है। वृद्ध, रोगसे मृत बकरेका मांस, वातकारक और रूखा है। बकरेके मस्तकका मांस-हँसलीके ऊपरके विकारोंको नष्ट करनेवाला और रुचिकारी है ॥ ७० ॥ ७५ ॥

अथ मेषः (मेंढा)

मेढ्रो मेढो हुडो मेष उरणोऽप्येडकोऽपि च। अविर्वृष्णिस्तथोर्णायुःकथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ ७६ ॥ मेषस्य मांसं पुष्टौ स्यात् पित्तश्लेष्मकरं गुरु। तस्यैवाण्डविहीनस्य मांसं किञ्चिल्लघु स्मृतम् ॥७७॥

मेढ्र मेढ, हुड, मेष, उरण, एडक, अवि, वृष्णि और ऊर्णायु ये मेंढेके संस्कृत नाम हैं ॥

मेंढेका मांस-पुष्टिदायक, पित्त, कफकारक और भारी है। जिसके अंड निकाल लिये हों, ऐसे मेंढेका मांस कुछ हलका है ॥७६॥७७॥

अथ एडकः (दुम्बा)।

एडकः पृथुश्रृङ्गः स्यान्मेदः पुच्छस्तु दुम्बकः। एडकस्य पलं ज्ञेयं मेषामिषसमं गुणैः ॥ ७८ ॥ मेदःपुच्छोद्भवं मांसं हृद्यं वृष्यं श्रमापहम्। पित्तश्लेष्मकरं किञ्चिद्वातव्याधिविनाशनम् ॥ ७९ ॥

एडक, पृथुश्रृंग, मेदः पुच्छ और दुंबक ये दुंबेके संस्कृत नाम हैं ॥

एडकका मांस-मेंढेके मांसके सदृश गुणावाला है और दुम्बेका मांस-हृदयको प्रिय, वृष्य, श्रमनाशक, पित्त, कफकारक और वातसन्बन्धी रोगोंको नष्ट करता है ॥७८॥७९॥

अथ वृषभः (बैल)।

बलीवर्दस्तु वृषभ ऋषभश्च तथा वृषः। अनड्वान् सौरभेयोऽपि गौरुक्षा भद्र इत्यपि ॥ ८० ॥ सुरभिः सौरभेयी च माहेयी गौरुरुदाहृता। गोमांसं तु गुरु स्निग्धं पित्तश्लेष्मविवर्द्धनम्। बृंहणं वातहृद्बल्यमपथ्यं पीनसप्रणुत् ॥ ८१ ॥

बलीवर्द, वृषभ, ऋषभ, वृष, अनड्वान्, सौरभेय, गौ उक्षा और भद्र ये बैलके संस्कृत नाम हैं ॥

सुरभि, सौरभेयी, माहेयी और गौ ये गायके संस्कृत नाम हैं ॥

बैलका मांस-भारी, स्निग्ध, पित्त, कफवर्द्धक, पुष्टिकारक, वातनाशक, बलदायक, अपथ्य और पीनसरोगनाशक है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

अथ अश्वः (घोडा!)

घोटको वीतितुरगतुरङ्गाश्वतुरङ्गमाः। वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः॥८२॥

अश्वमांसं तु तुवरं वह्निकृत्कफपित्तलम्।
वातहृद्बृंहणं बल्यं चक्षुष्यं मधुरं लघु॥८३॥

घोटक, वीति, तुरंग, अश्व तुरंगम, वाजि, वाह, अर्व, गन्धर्व, हय, सैन्धव और सप्ति ये घोडेके संस्कृत नाम हैं॥

घोडेका मांस-कसैला, अग्निकारक, कफ तथा पित्तको करनेवाला, वातनाशक, पुष्टिदायक, बलकारक, नेत्रोंको हितकारी, मधुर और हलका है॥ ८२॥ ८३॥

अथ कूलेचराः।

तत्र महिषः (भैंसा)।

महिषो घोटकारिः स्यात्कासरश्च रजस्वलः। पीनस्कन्धः कृष्णकायो लुलायो यमवाहनः॥ ८४॥ महिषस्यामिषं स्वादु स्निग्धोष्णं वातनाशनम्। निद्राशुक्रप्रदं बल्यं तनुदार्ढ्यकरं गुरु। वृष्यश्च सृष्टविण्मूत्रं वातपित्तास्रनाशनम्॥ ८५॥

महिष, घोटकारि, कासर रजस्वल, पीनस्कन्ध, कृष्णकाय, लुलाय और यमवाहन ये भैंसेके संस्कृत नाम हैं॥

भैंसेका मांस-मधुर, स्निग्ध, गरम, वातनाशक, निद्रा, शुक्र, तथा बलका देनेवाला) शरीरको दृढ करनेवाला, वृष्य, मल, तथा मूत्रको अधिक करनेवाला, और भात, पित्त तथा रक्तविकार नाशक है॥ ८४॥ ८५॥

अथ मण्डूकः (मेंढक, मेघा)।

मण्डूकः प्लवगो भेको वर्षाभूर्दर्दुरो हरिः। मण्डूकः श्लेष्मलो नातिपित्तलो बलकारकः॥ ८६॥

मंडूक, प्लवग; भेक, वर्षाभू, दर्दुर और हरि ये मेंढकके संस्कृत नाम हैं॥

मेंढकका मास-कफकारक, अत्यन्त पित्तकारी नहीं और बलदायक है॥ ८६॥

अथ पादिनः।

तत्र कच्छपः (कछुआ)

कच्छपो गूढपात्कूर्मः कमठो दृढपृष्ठकः।
कच्छपो बलदो वातपित्तनुत्पुंस्त्वकारकः॥ ८७॥

कच्छप, गूढपात्, कूर्म, कमठ और दृढपृष्ठक ये कछुएके संस्कृत नाम हैं। कछुएका मांस-बलदायक, वात, पित्तको नष्ट करनेवाला और वीर्यकारक है॥ ८७॥

अथ सद्योहतस्य मांसस्य गुणाः।

सद्योहतस्य मांसं स्याद्व्याधिघाति यथाऽमृतम्। वयस्यं बृंहणं सात्म्यमन्यथा तद्धि वर्जयेत्॥ ८८॥

तत्कालके मारेहुए जीवोंका मांस-अमृतके सदृश, रोगनाशक, आयुस्थापक, पुष्टिदायक और शरीरके स्वभावसे मिलता हुआ है। इससे ग्रहण करे और बासी मांस त्याग देवे॥ ८८॥

स्वयं मृतस्य मांसस्य गुणाः।

स्वयं मृतस्य चाबल्यमतीसारकरं गुरु॥८९॥

स्वयं मरे हुए जीवका, मांस बलका हानिकारक, अतीसारको करनेवाला और भारी है॥ ८९॥

वृद्धबालमांसस्य गुणाः।

वृद्धानां दोषलं मांसं बालानां बलदं लघु। सर्पदष्टस्य मांसञ्च शुष्कमांसं त्रिदोषकृद्। व्यालदष्टञ्च दुष्टञ्च शुष्कं शूलकरं परम्॥ ९०॥

वृद्ध (बुड्ढे) जीवोंका मांस-दोषकारक और बालक जीवोंका मांस बलदायक और हलका है॥

सर्पके काटनेसे मरेहुए जीवोंका मांस और सूखा मांस त्रिदोषकारक है। हिंसक जीवोंके काटनेसे मरे हुऐ जीवोंका मांस और दूषित मांस अत्यन्त शूलकारक है॥ ९०॥

अथ विषादिमृतस्य (विषमृतका) मांसस्य गुणा ।

विषाम्बुरुङ्मृतस्यैतन्मृत्युदोषरुजाकरम्। क्लिन्नमुत्क्लेशजनकं कृशं वातप्रकोपणम् । तोयपूर्णं शिराजालं मृतमप्सु त्रिदोषकृत् ॥ ९१ ॥

विष, रोग अथवा जलसे मरे हुए जीवोंका, मांसदोषोंको उत्पन्न करनेवाला, रोगनाशक और मृत्युदायक है। गीला मांस-ग्लानिकारक, कृश करनेवाला और वातप्रकोपक है । जिसकी नसोंमें जल भरगया हो, उसका मांस और जलमें मरे हुएका मांस त्रिदोषकारी है ॥ ९१ ॥

जात्यादिपरत्वेन गुणा ।

विहङ्गेषु पुमाञ्छ्रेष्ठः स्त्री चतुष्पदजातिषु ॥९२॥ परार्द्धो लघु पुंसां स्यात् स्त्रीणां पूर्वार्द्धमादिशेत्। देहमध्यं गुरुप्रायं सर्वेषां प्राणिनां स्मृतम् ॥ ९३ ॥ पक्षक्षेपाद्विहङ्गानां तदेव लघु कथ्यते। गुरूण्यण्डानि सर्वेषां गुर्वी ग्रीवा च पक्षिणाम् ॥ ९४ ॥ उरःस्कन्धोदरं कुक्षी पादौ पाणी कटी तथा। पृष्ठत्वग्यकृदन्त्राणि गुरूणीह यथोत्तरम् ॥ ९५ ॥ लघु वातकरं मांसं खगानां धान्यचारिणाम्। मत्स्याशिनां पित्तकरं वातघ्नं गुरु कीर्तितम् ॥ ९६ ॥ फलाशिनां श्लेष्मकरं लघु रूक्षमुदीरितम्। बृंहणं गुरु वातघ्नं तेषामेव पलाशिनाम् ॥९७॥ तुल्यजातिष्वल्पदेहा महादेहेषु पूजिताः। अल्पदेहेषु शस्यन्ते तथैव स्थूलदेहिनः९८

पक्षियोंमें पुरुषजातिके पक्षियोंका और पशुओंमें स्त्रीजातिके पशुओंका मांस उत्तम है। पुरुषोंके ऊपरके भागका मांस हलका है और स्त्रियोंके नीचेके भागका मांस उत्तम है। सम्पूर्ण प्राणियोंके मध्यभागका मांस अधिक भारी होता है और पक्षियोंके पंख गिर जानेसे देहका मध्यभाग हलका होता है। संपूर्ण जातिके पक्षियोंका अण्डा और गरदन भारी होती है, तथा छाती, कन्धा, उदर, कोख, पांव, हाथ, कमर, पीठ, त्वचा, (चमडा,) कलेजा और आँत ये पूर्व पूर्वसे पीछे पीछेके भारी होते हैं । धान्य-गेहूँ, ज्वार, बाजरी आदि खानेवाले पक्षियोंका मांस-हलका और वातकारक है। मछली खानेवाले पक्षियोंका मांस-पित्तकारक, वातनाशक और भारी है। फल खानेवाले पक्षियोंका मांस-कफकारक, हलका और रूक्ष है मांस खानेवाले पक्षियोंका मांस-पुष्टिकारक भारी और वातनाशक है। जिनकी देह बडी और मोटी होती है। उनके सदृश जातिके प्राणियोंमें जो छोटे देहवाले होते हैं । उनका मांस-उत्तम और जिनकी देह छोटी होती है उनके सदृश जातिके प्राणियोंमें जिनकी देह बडी होती है । उनका मांस-उत्तम है ॥ ९२-९८ ॥

अथ मत्स्याः ।

रोहितः (रोहू) ।

रक्तोदरो रक्तमुखो रक्ताक्षो रक्तपक्षतिः। कृष्णपुच्छो झषः श्रेष्ठो रोहितः कथितो बुधैः ॥ ९९ ॥ रोहितः सर्वमत्स्यानां वरो वृष्योऽर्दितार्त्तिजित्। कषायानुरसः स्वादुर्वातघ्नो नातिपित्तकृत्। ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगान् हन्याद्रोहितमुण्डकम्१००

जिन मछलियोंके पेट, मुख, नेत्र और पंख ये लाल होते हैं तथा पूँछ काली होती है, उनको विद्वानोंने उत्तम रोहू मछली कहा है। रोहित (रोहूँ) मछली-सर्व मछलियोंमें श्रेष्ठ, वृष्य, अर्दितवात (लकवा) नाशक, कसैली, स्वादु, वातनाशक और अत्यन्त, पित्तकारक नहीं है। रोहूका मस्तक-हँसलीसे ऊपरके रोगोंको नष्ट करती है ॥ ९९-१०० ॥

अथ शिलीन्ध्रः (सिलन्ध)

शिलीन्ध्रः श्लेष्मलो बल्यो विपाके मधुरो गुरुः। वातपित्तहरो हृद्य आमवातकरश्च सः ॥ १०१ ॥

सिलन्ध मछली-कफकारी, बलदायक, पाकमें मधुर, भारी, वात, तथा पित्त नाशक, हृदयको प्रिय और आमवातकारक है ॥१०१॥

अथ भंकुरः (भाकुर)।

भंकुरो मधुरः शीतो वृष्यः श्लेष्मकरो गुरुः। विष्टम्भजनकश्चापि रक्तपित्तहरः स्मृतः ॥ १०२ ॥

भाकुर मछली-मधुर, शीतल, वृष्य, कफकारक, भारी, विष्टम्भजनक और रक्तपित्तनाशक है ॥ १०२ ॥

अथ मोचिका (मोई)।

मोचिका वातहृद्बल्या बृंहणी मधुरा गुरुः। पित्तहृत्कफकृद्रुच्या वृष्या दीप्ताग्नये हिता ॥ १०३ ॥

मोचिका (मोई) मछली-वातनाशक, बलदायक, पुष्टिकारक, मधुर, भारी, पित्तनाशक, कफकारक, रुचिउत्पन्न करनेवाली, वृष्य और जिनकी अग्नि दीप्त हैं उनके लिये हितकारी है ॥ १०३ ॥

अथ पाठीनः (बुआरी, बोयाल)।

पाठीनःश्लेष्मलो बल्यो निद्रालुःपिशिताशनः। दूषयेद्रुधिरं पित्तकुष्ठरोगं करोति च ॥ १०४ ॥

पाठीन मछली-कफकारक, बलदायक, निद्राजनक मांसको तोडनेवाली, रुधिरको दूषित करनेवाली, पित्त तथा कोढरोगकारक है ॥ १०४ ॥

अथ शृङ्गी (सींगी।

शृंगी तु वातशमनी स्निग्धा श्लेष्मप्रकोपनी। रसे तिक्ता कषाया च लघ्वी रुच्या स्मृता बुधः ॥ १०५ ॥

शृंगी (सींगी) मछली-वातनाशक, स्निग्ध कफको कुपित करनेवाली, रसमें कडवी, कसैली, हलकी और रुचिकारक है ॥१०५॥

अथ इल्लीसः (इल्सा)।

इल्लीसो मधुरः स्निग्धो रोचनो वह्निवर्द्धनः। पित्तहृत्कफकृत्किञ्चिल्लघुर्वृष्योऽनिलापहः ॥ १०६ ॥

इल्सा मछली-मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक अग्निवर्द्धक, पित्तनाशक, कफकारक, किंचित् हलकी, वृष्य और वातनाशक है ॥ १०६ ॥

अथ शष्कुली (सौरी)।

शष्कुली ग्राहिणी हृद्या मधुरा तुवरा स्मृता ॥ १०७ ॥

सौरी मछली-ग्राही, हृदयको प्रिय, मधुर और कसैली है ॥ १०७ ॥

अथ गर्गरः (गर्गरा)।

गर्गरः पित्तलः किञ्चिद्वातजित्कफकोपनः ॥ १०८॥

गर्गरा मछली-पित्तकारक, किंचित् वातनाशक और कफको कुपित करनेवाली है ॥ १०८ ॥

अथ कविका (कवई)।

कविका मधुरा स्निग्धा कफघ्नी रुचिकारिणी। किञ्चित्पित्तकरी वातनाशिनी वह्निवर्द्धिनी ॥ १०९ ॥

कविका मछली-मधुर, स्निग्ध, कफकारक रुचिकारक, किंचित् पित्तकर्ता, वायुको नष्ट करनेवाली, और अग्निवर्द्धक है ॥ १०९ ॥

अथ वर्मिमत्स्यः (वर्मी)।

वर्मिमत्स्यो हरेद्वातं पित्तं रुचिकरो लघुः ॥ ११० ॥

वर्मी मछली-वातनाशक, पित्तहारक, और हलकी है। ॥ ११० ॥

अथ दण्डमत्स्यः (दण्डारी)।

दण्डमत्स्यो रसे तिक्तः पित्तरक्तं कफं हरेत्। वातसाधारणः प्रोक्तः शुक्रलो बलवर्द्धनः॥ १११॥

दंडारी मछली-रसमें कडवी, रक्तपित्त तथा कफका नाशक, वातके लिये साधारण वीर्यको तथा बलको बढानेवाली है ॥ १११ ॥

अथ एरंगी (अरंगी)।

एरङ्गी मधुरः स्निग्धो विष्टम्भी शीतलो लघुः॥ ११२॥

एरंगी मछली-मधुर, स्निग्ध, विष्टम्भी, शीतल और हलकी है ॥ ११२ ॥

अथ महासफरी (पपता)।

महाशफरसंज्ञस्तु तिक्तः पित्तकफापहः। शिशिरो मधुरो रुच्यो वातसाधारणः स्मृतः॥ ११३॥

महाशफर मछली-कडवी, पित्त, कफनाशक, शीतल, मधुर, रुचिकारक और वायुके लिये साधारण है ॥ ११३ ॥

अथ गरघ्नी (गरई)।

गरघ्नी मधुरा तिक्ता तुवरा वातपित्तहृत्। कफघ्नी रुचिकृल्लघ्वी दीपनी बलवीर्यकृत्॥ ११४॥

गरघ्नी मछली-मधुर, कडवी, कसैली, वातनाशक, कफहारक, रुचिकारक, हलकी, अग्निप्रदीपक, बल तथा वीर्यवर्द्धक है ॥ ११४ ॥

अथ मद्गुरः (मँगुरी)।

मद्गुरो वातहृद्बल्यो वृष्यः कफकरो लघुः॥ ११५॥

मद्गुर मछली-वातनाशक, बलदायक, वृष्य, कफकारक, और हलकी है ॥ ११५ ॥

अथ सपादमत्स्यः (टेंगरा)।

सपादमत्स्यो मेधाकृन्मेदःक्षयकरश्च सः। वातपित्तकरश्चापि रुचिकृत्परमो मतः ११६

सपाद मछली-बुद्धिवर्द्धक, मेदका क्षय करनेवाली, वातपित्त तथा रुचिकारक है ॥ ११६ ॥

अथ प्रोष्ठी (शफरी पुण्ठी)।

प्रोष्ठी तिक्ता कटुः स्वादुः शुक्रघ्नी कफवातजित्। स्निग्धाऽऽस्यकण्ठरोगघ्नी रोचनी च लघुः स्मृता॥ ११७॥

प्रोष्ठी मछली-कडवी, चरपरी, स्वादु, शुक्रनाशक, कफ वातको जीतनेवाली है। स्निग्ध, मुखकी विरसता तथा कंठरोगका नाशक रुचिकारी और हलकी है ॥ ११७ ॥

अथ क्षुद्रमत्स्याः।

क्षुद्रा मत्स्याः स्वादुरसा दोषत्रयविनाशनाः। लघुपाका रुचिकरा बलदास्ते हिता मताः॥ ११८॥

छोटी मछली-स्वादु, त्रिदोषनाशक, पाकमें हलकी, रुचिकारी, बलदायक और हितकारी है ॥ ११८ ॥

अथ अतिक्षुद्रमत्स्याः।

अतिसूक्ष्माःपुंस्त्वहरा रुच्याःकासानिलापहाः॥ ११९॥

बहुत छोटी मछली-पुरुषतानाशक, रुचिकारी, खांसी और वातनाशक है ॥ ११९ ॥

अथ मत्स्याण्डः।

मत्स्यगर्भो भृशं वृष्यःस्निग्धः पुष्टिकरो लघुः। कफमेदःप्रदो बल्यो ग्लानिकृन्मेहनाशनः॥ १२०॥

मछलीका अंडा-अत्यंत वृष्य, स्निग्ध, पुष्टिकारक, हलका, कफ तथा मेदवर्द्धक, बलदायक, ग्लानिकारक, और प्रमेह नाशक है ॥ १२० ॥

अथ शुष्कमत्स्याः (सूखी मछली)।

शुष्कमत्स्या नवा बल्या दुर्जरा विड्विबन्धिनः॥ १२१॥

सूखी हुई मछली-बलवर्द्धक, दुर्जर, और मलरोधक है ॥ १२१ ॥

अथ दग्ध (भूँजे हुए) मत्स्याः ।

दग्धमत्स्यो गुणैः श्रेष्ठः पुष्टिकृद्बल-वर्द्धनः ॥ १२२ ॥

भुनी हुई मछली-उत्तम, पुष्टिकारक, और बलवर्द्धक है ॥ १२२ ॥

अथ कूपजादिमत्स्यगुणाः ।

कौपमत्स्याःशुक्रमूत्रकुष्ठश्लेष्मविवर्द्धनाः। सरोजा मधुराःस्निग्धा बल्या वातविनाशनाः ॥१२३॥ नादेया बृंहणा मत्स्या गुरवोऽनिलनाशनाः । रक्तपित्तकरा वृष्याःस्निग्धोष्णाःस्वल्पवर्चसः ॥१२४॥ चौञ्जाः पित्तकराःस्निग्धा मधुरा लघवो हिमाः। ताडागा गुरवो वृष्याः शीतला मलमूत्रदाः। ताडागवत्क्षिप्तजाता बलायुर्मतिदृक्कराः ॥ १२५ ॥

कूँएकी मछली-वीर्य, मूत्र, कोढ और कफ वर्द्धक है । छोटे तलावकी मछली-मधुर, स्निग्ध. बलदायक और वातविनाशक है। नदीकी मच्छी-पुष्टिकारक, भारी बातनाशक रक्तपित्तकारक, शक्तिवर्द्धक, गरम और अल्पविष्ठा लानेवाली, है। हौजकी मछली-पित्तकारक, स्निग्ध, मधुर, हलकी और शीतल है । तडागकी मछली-भारी, वृष्य, शीतल, मल तथा मूत्रजनक है । झरनेकी मछली-तडागके सदृश, बल, आयु, बुद्धि और दृष्टि कारक है ॥ १२३ ॥ १२५ ॥

अथ ऋतु विशेषे मत्स्यविशेषाः ।

हेमन्ते कूपजा मत्स्याः शिशिरे सारसा हिताः। वसन्ते ते तु नादेया ग्रीष्मे चौञ्जसमुद्भवाः ॥ १२६ ॥ तडागजाता वर्षासु तास्यपथ्या नदीभवाः। नैर्झराः शरदि श्रेष्ठा विशेषोऽयमुदाहृतः ॥१२७॥

इति श्रीभावप्रकाशे मांसवर्गः ।

हेमन्तऋतुमें कुँएकी मछली, शिशिरऋतुमें तालाबकी मछली, वसन्तऋतुमें नदीकी मछली ग्रीष्मऋतुमें हौजकी मछली, वर्षाऋतुमें तडाग की मछली और शरदृऋतुमें झरनेकी मछली श्रेष्ठ है, वर्षाऋतुमें नदीकी मछली अपथ्य है ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीवनीभाषाटीकायां मांसवर्गः ।

अथ कृतान्नवर्गः ।

तत्र अन्नानां साधनप्रकारः सिद्धानां गुणाश्च तत्र परिभाषा ।

समवायिनि हेतौ ये मुनिभिर्गणिता गुणाः। कार्य्येऽपि तेऽखिला ज्ञेयाः परिभाषेति भाषिताः ॥ १ ॥ क्वचित्संस्कारभेदेन गुणभेदो भवेद्यतः। भक्तं लघु पुराणस्य शालेस्तच्चिपिटो गुरुः ॥ २ ॥ क्वचिद्योगप्रभावेण गुणान्तरमपेक्ष्यते। कदन्नं गुरु सर्पिश्च लघूक्तं सुहितं भवेत् ॥ ३ ॥

मुनीश्वरोंने जिन पदार्थोंमें जो गुण कहे हैं, उन पदार्थोंके बनाये हुए अन्नमें भी वे सम्पूर्ण गुण होते हैं ये सामान्यतः कहा है। किसी अन्नमें संस्कारभेदसे अन्य गुण हो जाते हैं, जैसे कि-पुराने चावलोंका भात हलका होता है परन्तु वही शालिचावलोंका बना हुआ भात और चिउरा भारी होता है। कहीं संयोगके प्रभावसे भी गुणोंमें अन्तर हो जाता है, जैसे कि-दुष्ट अन्न भारी है और घी भी भारी है परन्तु वह दुष्ट अन्न यदि घीमें बना हो तो हलका और हितकारी होता है ॥ १-३ ॥

अथ भक्तस्य (भातके) नामानि साधनं गुणाश्च।

भक्तमन्नं तथाऽन्धश्च क्वचित्कूरं च कीर्तितम्। ओदनोऽस्त्री स्त्रियां भिस्सा दीदिविः पुंसि भाषितः॥ ४॥ सुधौतस्तण्डुलान् स्फीतांस्तोये पञ्चगुणे पचेत्। तद्भक्तं प्रस्रुतं चोष्णं विशदं गुणवन्मतम्॥ ५॥ भक्तं वह्निकरं पथ्यं तर्पणं रोचनं लघु। अधौतमस्रुतं शीतं गुर्वरुच्यं कफप्रदम्॥ ६॥

भक्त, अन्न, अन्ध, ओदन, भिस्सा और दीदिवि ये भातके संस्कृत नाम हैं। कहीं कूर भी भातका नाम है।

भली प्रकार उत्तम रीतिसे धोये हुए चावलों को पांच गुने जलमें पकावे; जब पक जाय तब वह जल (मांड) निकाल देवे तो वह उष्ण भात निर्मल और गुणकारी होता है॥

भात-अग्निकारक, पथ्य, तृप्तिदायक, रुचिकारक, और हलका है। विना धोये हुए चावलोंका, विना मांड निकाला हुआ भात और शीतल हुआ भात-भारी, अरुचिकारक और कफवर्द्धक है॥ ४-६॥

अथ दाली (दाल)।

दलितं तु शमीधान्यं दालिर्दाली स्त्रियामुभे। दाली तु सलिले सिद्धा लवणार्द्रकहिङ्गुभिः॥ ७॥ संयुक्ता सूपनाम्नी स्यात् कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। सूपो विष्टम्भको रूक्षः शीतस्तु स विशेषतः। निस्तुषो भृष्टसंसिद्धो लाघवं सुतरां व्रजेत्॥ ८॥

फलीके (मूंग, चना, अरहर, उडद आदि) धान्योंको दलनेसे दाल हो जाती है। दालि और दाली ये दालके नाम हैं। जलमें डालकर दालको पकावे, जब उसीज जाय तब उसमें नमक अदरख और हींग यथायोग्य डाले तब वह सूप (दाल) तैयार होती है, सूप (दाल)-विष्टम्भकारी, रूक्ष और विशेषकर शीतल है। भुनी हुई छिलके रहित दाल-अत्यन्त हलकी है॥ ७॥ ८॥

अथ कृशरा (खिचरी)।

तण्डुला दालिसंमिश्रा लावणार्द्रकहिङ्गुभिः। संयुक्ताः सलिले सिद्धाः कृशरा कथिता बुधैः॥ ९॥ कृशरा शुक्रला बल्या गुरुः पित्तकफप्रदा। दुर्जरा बुद्धिविष्टम्भमलमूत्रकरी स्मृता१०॥

दाल और चावल मिलाकर उसमें नमक, अदरक और हींग डालकर जलमें सिद्ध करे, उसको विद्वानोंने कृशरा (खिचरी) कहा है। खिचरी-वीर्यवर्द्धक, बलदायक, भारी, कफ पित्तको उत्पन्न करनेवाली, दुर्जर, बुद्धि, विष्टम्भ, मल तथा मूत्रकारक है॥ ९॥ १०॥

अथ तापहारी (ताहरी)

घृते हरिद्रासंयुक्ते माषजां भर्जयेद्वटीम्। तण्डुलांश्चापि निर्धौतान् सहैव परिभर्जयेत्॥ ११॥ सिद्धियोग्यं जलं तत्र प्रक्षिप्य कुशलः पचेत्। लवणार्द्रकहिङ्गूनि मात्रया तत्र निक्षिपेत्॥ १२॥ एषा सिद्धिसुमानज्ञैः प्रोक्ता तापहरी बुधैः। भवेत्तापहरी बल्या वृष्या श्लेष्माणमाचरेत्। बृंहणी तर्पणी रुच्या गुर्वी पित्तहरा स्मृता॥ १३॥

घीमें हलदी डालकर उसमें उडदकी बडी और धुले हुए स्वच्छ चावलोंको भून लेवे, पश्चात् जितने जलमें पक जाय उतना जल चढाकर कुशल पुरुष पकावे तथा योग्य नमक और हींग डाले, जब भली भांति पक जाय तब तापहारी कहाती है। ताहरी-तृप्तिदायक, रुचिकारक, बलदायक वृष्य, कफकारक, पुष्टिदायक भारी और पित्त नाशक है॥ ११-१३॥

अथ परमान्नम् (खीर)।

पायसं परमान्नं स्यात्क्षीरिकाऽपि तदुच्यते। शुद्धेऽर्द्धपक्के दुग्धे तु घृताक्तांस्तण्डुलान् पचेत् ॥ १४ ॥ ते सिद्धाः क्षीरिका ख्याता ससिताऽऽज्ययुतोत्तमा। क्षीरिका दुर्जरा प्रोक्ता बृंहणी बलवर्द्धनी ॥ १५ ॥

पायस, परमान्न और क्षीरिका ये खीरके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-खीर। गु०-दूधपाक।

अधऔटे स्वच्छ दूधमें घीसे भुने हुए चावल डाले, जब चावल पक जाय तब उसमें स्वच्छ बूरा और घी डाले यह उत्तम खीर बन जाती है। खीर-दुर्जर, पुष्टिकारक और बलवर्द्धक है ॥ १४-१५ ॥

अथ नालिकेरक्षीरी (नारियलकी खीर)।

नालिकेरं तनूकृत्य छिन्नं पयसि गोः क्षिपेत्। सितागव्याज्यसंयुक्ते तत्पचेन्मृदुनाऽग्निना ॥ १६ ॥ नालिकेरोद्भवा क्षीरी स्निग्धा शीताऽतिपुष्टिदा। गुर्वी सुमधुरा वृष्या रक्तपित्ताऽनिलाऽपहा॥ १७॥

नारियलके छोटे छोटे टुकडे करके गायके दूधमें डाले और उसमें स्वच्छ खांड और गायकाघी डाले, इस प्रकार कर धीमी अग्निसे पकावे तो नारियलकी खीर बन जाती है ॥

यह खीर-स्निग्ध, शीतल, बहुत पुष्टिकारक, भारी, मधुर, वीर्यवर्द्धक, रक्त पित्त तथा वातनाशक है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ सेविकाः (सेमई)।

समितां वर्त्तिकां कृत्वा सूक्ष्मां तु यवसन्निभाम्। शुष्का क्षीरेण संसाध्या भोज्या घृतसितन्विता ॥ १८ ॥ सेविका तर्पणी बल्या गुर्वी पित्तानिलापहा। ग्राहिणी सन्धिकृद्रुच्या तां खादेन्नातिमात्रया ॥ १९ ॥

मैदाकी बहुत बारीक जौके सदृश बत्ती बांटकर सुखाव, फिर दूधमें पकावे घी तथा खांड डालकर सेवन करे ॥

यह सेमई-तृप्तिकारक, बलवर्द्धक, भारी, पित्त, वातनाशक, ग्राही, (मलको रोकनेवाली), सन्धान कारक, और रुचिको उत्पन्न करनेवाली है, इसको बहुत नहीं खावे ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ मण्डकः (मण्डा)।

गोधूमो धवला धौताः कुट्टिताः शोषितास्ततः। प्रोक्षिता यन्त्रनिष्पिष्टाश्चालिताः समिता स्मृता ॥ २० ॥ वारिणा कोमलां कृत्वा समितां साधु मर्दयेत्। हस्ततालनया तस्या लोप्त्रीं सम्यक्प्रसारयेत् ॥ २१ ॥ अधोमुखघटस्यैतद्विस्तृतं प्रक्षिपेद्बहिः। मृदुना वह्निना साध्यः सिद्धो मण्डक उच्यते ॥ २२ ॥

लोप्त्री (लोई) इति लोके ॥

दुग्धेन साज्यखण्डेन मण्डकं भक्षयेन्नरः। अथवा सिद्धमांसेन सतक्रवटकेन वा ॥ २३ ॥ मण्डको बृंहणो वृष्यो बल्यो रुचिकरो भृशम्। पाकेऽपि मधुरो ग्राही लघुर्दोषत्रयापहः ॥ २४ ॥

सफेद गेहूं धोकर ओखलीमें कूटले, फिर सुखाकर पिसवावे और हलके कपडेकी चलनीमें छानले उसको मैदा कहते हैं। मैदाको पानीमें मांडकर भली भांति कुचले पश्चात् हाथोंसे लोई बनाकर रोटीके सदृश करले, फिर चूल्हेपर उलटे घडेकी तलीपर डाल कर मन्दाग्निसे पकावे इनको मण्डक कहते हैं। खांड ओर घृतयुक्त दूधके साथ अथवा पकाये हुए मांसके साथ तथा दही पकोडीके साथ भक्षण करे। मण्डक-पुष्टिकारक, वृष्य, बलवर्द्धक, अत्यन्त रुचिकारक, पाकमें मधुर, ग्राही, हलका और तीनों दोषोंको नष्ट करता है ॥ २० ॥ २४ ॥

अथपूरी (दुनौरी)।

कुर्यात्समितयाऽतीव तन्वीं पर्पटिकां ततः। स्वेदयेत्तप्तके तां तु पोलिकां जगदुर्बुधाः। तां खादेल्लप्सिकायुक्तां तस्या मण्डक वद् गुणाः॥ २५॥

मैदाकी अथवा चूनकी पर्पटिका पपडी अर्थात् पतली रोटीके सदृश पूरी बेल ले, पश्चात् तवेमें सेंकले उसको पोलिका एक प्रकारकी पूरी कहते हैं। इसको लप्सी (हलुए) के साथ भक्षण करे, इसके गुण मण्डकके सदृश हैं॥ २५॥

अथ लप्सिका (लप्सी)।

समितां सर्पिषा भृष्टां शर्करां पयसि क्षिपेत्। तस्मिन् घनीकृते न्यस्येल्लवङ्गं मरिचादिकम्॥२६॥ सिद्धैषा लप्सिका ख्याता गुणांस्तस्या वदाम्यहम। लप्सिका बृंहणी वृष्या बल्या पित्तानिलापहा। स्निग्धाश्लेष्मकरी गुर्वी रोचनी तर्पणी परम्॥ २७॥

मैदाको घीमें भूनकर शर्करा युक्त पानीमें डाले, जब पकते २ गाढा हो जाय तब उसमें लौंग, मिरच आदि डाले, वही सिद्ध होनेपर लप्सिका कहाती है। लप्सिका (हलुआ)– पुष्टिदायक, वृष्य, बलकारक, वात, पित्तनाशक, स्निग्ध, कफकारक, भारी, रुचिकारी और अत्यन्त तृप्तिकारक है॥ २६॥ २७॥

अथ रोटिल। (रोटी)।

शुष्कगोधूमचूर्णेन किञ्चित्पुष्टाश्च पोलिकाम्। तप्तके स्वेदयेत्कृत्वा भूर्यङ्गारैश्च तां पचेत्॥२८॥ सिद्धैषा रोटिका प्रोक्ता गुणं तस्याः प्रचक्ष्महे। रोटिका बलकृद्रुच्या बृंहणी धातुवर्द्धनी। वातघ्नी कफकृद् गुर्वी दीप्ताग्नीनां प्रपूजिता॥२९॥

सूखे गेहूँके चूनमें पानी डालकर मांडले और बेलकर तवेपर सेंककर फिर नीचे अंगारोंपर सेके, जब भली भाँति सिंक जाय तब रोटिका (रोटी) कहाती है॥

रोटिका–बलकारक, रुचिकारी, पुष्टिकारक, धातु वर्द्धक, वातनाशक, कफकारी. भारी और जिनकी अग्निप्रदीप्त है उनको हितकारी है॥ २८॥ २९॥

अथ अङ्गारकर्कटी (बाटी)।

शुष्कगोधूमचूर्णन्तु साम्बु गाढं विमर्दयेत्। विधाय वटकाकारं निर्धूमेऽग्नौ शनैः पचेत्॥३०॥ अङ्गारकर्कटी ह्येषा बृंहणी शुक्रला लघुः। दीपनी कफकृद्बल्या पीनसश्वासकासजित्॥ ३१॥

सूखे हुए उत्तम गेहूँके चूनको मांडकर हाथोंसे गोल गोल गोल लोई और धूम रहित मन्द मन्द अग्निसे पकावे, जब भलीभांति सिद्ध होजाय तो उसको अंगारकर्कटी (बाटी) कहते हैं। बाटी–पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक और पीनस, श्वास तथा खाँसीको नष्ट करती है॥

अथ यवरोटिका।

यवजा रोटिका रुच्या मधुरा विशदा लघुः। मलशुक्रानिलकरी बल्या हन्ति कफामयान्॥ ३२॥

जौकी रोटी–रुचिकारी, मधुर, विशद, हलकी, मलकी, मल वीर्य वात कारक, बलकारी और कफसम्बन्धी रोगोंको नष्ट करती है॥ ३२॥

अथ माष (उडदकी (रोटिका।

माषाणां दालयस्तोये स्थापितास्त्यक्तकञ्चुकाः। आतपे शोषिता यन्ते पिष्टास्ता धूमसी स्मृता॥ ३३॥ धूमसीरचिता चैव प्रोक्ता झर्झरिका बुधैः। झर्झरी कफपित्तघ्नी किञ्चिद्वातकरी स्मृता॥ ३४॥

उडदकी दालको पानीमें भिगोकर छिलके निकाल देवे पश्चात् धूपमें सुखाकर चक्कीमें पिसवावे, उस चूनको धूमसी कहते हैं, धूमसीकी बनाई हुई रोटीको संस्कृतमें झर्झरी

कहते हैं। यह रोटी-कफ, पित्तका नाशक और किंचित् वातकारक है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ चणक (चनेकी) रोटिका।

चणक्या रोटिका रूक्षा श्लेष्णपित्तास्त्रनुद् गुरुः। विष्टम्भिनी न चक्षुष्या तद्गुणा चापि शष्कुली ॥ ३५ ॥

चनेकी रोटी-रूखी, विष्टम्भकारक, भारी, नेत्रोंको हितकारी नहीं और कफ, पित्त तथा रक्तविकारका नाशक है। इसकी पूरीमें भी येही गुण हैं ॥ ३५ ॥

अथ पिष्टिका।

दालिः संस्थापिता तोयेततोऽपहृतकञ्चुका। शिलायां साधु सम्पिष्टा पिष्टिका कथिता बुधैः ॥ ३६ ॥

दालको पानीमें भिगोदे भीजनेपर छुलके निकाल डाले, पश्चात् शिलपर खूब पीसले इसको पिष्टिका (पिट्ठी) कहते हैं ॥३६॥

अथ वेढमिका (वेढई)।

माषपिष्टिकया पूर्णगर्भा गोधूमचूर्णतः। रचिता रोटिका सैव प्रोक्ता वेढमिका बुधैः ॥३७॥ भवेद्वेढमिका बल्या वृष्या रुच्याऽनिलापहा। उष्णा सन्तर्पणी गुर्वी बृंहणी शुक्रला परम् ॥ ३८ ॥ भिन्नमूत्रमला स्तन्यमेदःपित्तकफप्रदा। गुदकीलार्दितश्वासपक्तिशूलानि नाशयेत् ॥ ३९ ॥

गेहूँके मँडेहुए आटेमें उडदकी पिष्ठी भरके रोटी बनावे उसको पिट्ठीकी रोटी (वेढई) कहते हैं ॥

यह रोटी-बलदायक, वृष्य, रुचिकारक वातनाशक, गरम, तृप्तिदायक, भारी, पुष्टिकारक, अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, मलभेदक, मूत्र लानेवाली, दूध तथा मेदवर्द्धक, पित्त तथा कफकारक और गुदकील (गुदाके मस्से,) अर्दितवात, श्वास और पक्तिशूल नाशक है ॥ ३७ ॥ ३९ ॥

अथ पर्पटाः (पापड)

धूमसीरचिता हिङ्गुहरिद्रालवणैर्युताः। जीरकस्वर्जिकाभ्याञ्च तनूकृत्य च वेल्लिताः ॥ ४० ॥ पर्पटास्ते सदाऽङ्गारंभृष्टाः परमरोचकाः। दीपनाः पाचना रूक्षा गुरवः किञ्चिदीरिताः ॥ ४१ ॥ मौद्गाश्च तद्गुणाः प्रोक्ता विशेषाल्लघवो हिताः। चणकस्य गुणैर्युक्ताः पर्पटाश्चणकोद्भवाः। स्नेहभृष्टास्तु ते सर्वे भवेयुर्मध्यमा गुणैः ॥ ४२ ॥

उडदकी दालको पानीमें भिगोकर छुलके निकालकर धूपमें सुखा लेवे, उसको पिसवाकर बारीक आटा करले, उस आटेमें हींग, हलदी नमक, जीरा और सज्जी डालकर पानीसे मांडले और बहुत पतला पतला बेलले उसको पर्पट (पापड) कहते हैं। पापड अंगारोंपर भूनकर खावे तो अत्यन्त रुचिकारी, अग्निप्रदीपक, पाचक, रूक्ष और किंचित् भारी है, इसी प्रकार मूँगकी दालके पापडोंमें भी गुण हैं परन्तु विशेष हलके और हितकारक हैं, चनेके पापडोंमें चनेके सदृश गुण हैं। जो पापड (घी या तेल) में भूने जायँ तो मध्यम गुणदायक हैं ॥ ४० ॥ ४२ ॥

अथ पूरिका (कचौरी)।

माषाणां पिष्टिकां पूर्यांल्लवणार्द्रकहिंगुभिः। तया पिष्टिकया पूर्णा समिताकृतपोलिका ॥ ४३ ॥ ततस्तैलेन पक्का सा पूरिका कथिता बुधैः। रुच्या स्वादि गुरुः स्निग्धा बल्या पित्तास्रदूषिका ॥ ४४ ॥ चक्षुस्तेजोहरी चोष्णा पाके वातविनाशिनी। तथैव घृतपक्काऽपि चक्षुष्या रक्तपित्तहृत् ॥ ४५ ॥

उडदोंकी पिट्ठीमें नमक, अदरक तथा हींग, डालकर मैदाकी लोईमें भर लेवे, पश्चात् बेलकर इसको तेलमें सेंक लेवे, उसको पूरिका

(कचौरी) कहते हैं । कचौरी-स्वादिष्ठ, भारी स्निग्ध, बलकारी पित्त तथा रक्तविकारको दूषित करनेवाली, नेत्रोंका तेज हरनेवाली, पाकमें गरम और वातविनाशक है । यदि यह घीमें बनाई हुई हो तो नेत्रोंको हितकारी और रक्तपित्तका नाशक है ॥ ४३-४५ ॥

अथ वटकाः (बडा) ।

माषाणां पिष्टिकां युक्त्वा लवणार्द्रकहिंगुभिः । कृत्वा विदध्याद्वटकांस्तांस्तैलेपु पचेच्छनैः ॥ ४६ ॥ विशुष्का वटका बल्या बृंहणा वीर्यवर्द्धनाः । वातामयहरा रुच्या विशेषादर्दितापहाः ॥ ४७ ॥ विबन्धभेदिनः श्लेष्मकारिणोऽत्यग्निपूजिताः । संचूर्ण्य निक्षिपेत्तक्रे भृष्टजीरकहिङ्गुभिः ॥ ४८ ॥ लवणंतत्र वटकान् सकलानपि मज्जयेत् । शुक्लस्तक्रवटको बलकृद्रोचनो गुरुः ॥ ४९ ॥ विबन्धहृद्विदाही च श्लेष्मलः पवनापहः । राज्यक्तपातिनो वाऽन्यपाचनैस्तांस्तु भक्षयेत् ॥ ५० ॥

राज्यक्ता (राइता) इति लोके ॥

उडदोंकी पिट्ठीमें नोंन, अदरक और हींग मिलाकर धीरे २ तेलमें बडे पकावे अथवा पिट्ठीकी बडी बनाकर तेलमें पकावे ॥

बडे-बलदायक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, वायुरोगनाशक, रुचिकारक और विशेषकरके अर्दितवात (लकवा) को दूर करता दस्तावर कफकारी और प्रदीप्तअग्निवालोंके लिये उत्तम है । तथा हींग जीरेका चूर्ण भूनकर मट्ठे (छाछ) में डाले पश्चात् नमक डालकर उनमें बडी छोड देवे ॥

यह बडी वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, भारी मलभेदक, विदाही, कफकारक और वातनाशक है । अथवा रायतेमें मिलाकर वा और अन्य पाचन वस्तुओंके साथ खावे ॥४६-५०॥

अथ कांजिकवटकः (कांजीवडा) ।

मन्थनी नूतना धार्या कटुतैलेन लेपिता । निर्मलेनाम्बुनाऽऽपूर्य तस्यां चूर्णं विनिक्षिपेत् ॥ ५१ ॥ राजिकाजीरलवणहिङ्गुशुण्ठीनिशाकृतम् । निक्षिपेद्वटकांस्तत्र भाण्डस्यास्यं च मुद्रयेत् । ततो दिनत्रयादूर्ध्वमम्लाः स्युर्वटका ध्रुवम् ॥ ५२ ॥ काञ्जिकवटको रुच्यो वातघ्नः श्लेष्मकारकः शीतः । दाहं शूलमजीर्णं क्षिप्रं हरते दगामयेस्वहितः ॥ ५३ ॥

एक नवीन मट्टीका पात्र लेकर उसमें सरसोंका तेल चुपडे, पश्चात् कडवे तेलको चुपटकर निर्मल जल भरके उसमें राई, जीरा, नमक, हींग, सोंठ और हलदी इनका चूर्ण डालकर बडे डालदे और पात्रका मुख बन्द करके तीन दिन तक रक्खे रहने देवे, बडे खट्टे होजायँगे, उनको कांजिकवटक (कांजीके बडे) कहते हैं ॥

ये बडे-रुचिकारी, वातविनाशक, कफकारक, शीतल और दाह, शूल तथा अजीर्णनाशक हैं, नेत्ररोगियोंको अहितकारी हैं ५१-५३

अथ अम्लिकावटकाः (इमलीके बडे)

अम्लिकां स्वेदयित्वा तु जलेन सह मर्दयेत् । तन्नीरे कृतसंस्कारे वटकान्मज्जयेत्पुनः ॥ ५४ ॥ अम्लिकावटकास्ते तु रुच्या वह्निप्रदीपनाः । वटकस्य गुणैः पूर्वैरेतेऽपि च समन्विताः ॥ ५५ ॥

पकी इमलीको कतरकर जलमें औटावे और जलके साथही मलले, पश्चात उस बनाये हुए पानीमें बडे छोडदे और नमक मसाला आदि डालदे तो इमलीके बडे बन जाते हैं ॥

ये बडे-रुचिकारी, अग्निप्रदीपक हैं, इनमें पूर्वोक्त बडोंके भी सब गुण हैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ मुद्गवटकाः (मूँगवडा)।

मुद्गानां वटकास्तक्रे मज्जिता लघवो हिमाः। संस्कारजप्रभावेण त्रिदोषशमना हिताः ॥ ५६ ॥

मूँगके बडे छाछमें भिगोदे, उनको सेवन करे तो हलके और शीतल हैं। और संस्कारके प्रभावसे त्रिदोषनाशक तथा हितकारी होते हैं ॥ ५६॥

अथ माषवटिकाः (उडदकी बडी)

माषाणां पिष्टिका हिंगुलवर्णाद्रकसंस्कृता। तया विरचिता वस्त्रे वटिकाः साधुशोषिताः ॥ ५७ ॥ भर्जितास्तप्ततैलैस्ता अथवाऽम्बुप्रयोगतः। वटकस्य गुणैर्युक्ता ज्ञातव्या रुचिदा भृशम् ॥५८॥

उडदकी पिट्ठीमें हींग, नोन तथा अदरक मिलाकर कपडेपर बडी तोडकर सुखालेवे, ये बडी तेलमें डालकर अथवा पानीमें डालकर पकावे। ये बडी बडोंके सदृश गुणवाली हैं और अत्यन्त रुचिकारक हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ कूष्मांडकवटी (पेठेकी वरी)

कूष्माण्डकवटी ज्ञेया पूर्वोक्तवटिकागुणा। विशेषात्पित्तरक्तघ्नी लघ्वी च कथिता बुधैः ॥ ५९ ॥

पेठेकी बडी भी पूर्वोक्त बडीके सदृश गुणवाली है, विशेष करके रक्तपित्तनाशक और हलकी है ऐसा बुद्धिमान् पुरुषोंका मत है ५९

अथ समुद्रवटी (मूँगकी बडी)

मुद्गानां वटिका तद्वद्रचिता साधिता तथा। पथ्या रुच्या तथा लघ्वी मुद्गसूपगुणा स्मृता ॥ ६० ॥

उपरोक्त प्रकारही मूँगकी बडी बनावे। यह बडी-पथ्य है, रुचिकारी, हलकी और मूगकी दालके समान गुणवाली है ॥ ६० ॥

अलीकमत्स्यः।

माषपिष्टिकया लिप्तं नागवल्लीदलं महत्। तत्तु संस्वेदयेद्युक्त्या स्थाल्यामास्तारकोपरि। ततो निष्कास्य तत्खण्डचं ततस्तैलेन भर्जयेत् ॥ ६१ ॥

खण्ड्यम्-खंडेन योज्यमिति यावत् ॥

अलीकमत्स्य उक्तोऽयं प्रकारः पाकपंडितैः। तं वृन्ताकभटित्रेण वास्तूकेन च भक्षयेत् ॥ ६२ ॥

बडे नागरबेलके पान उडदकी पिट्ठीमें लपेटकर युक्तिसे कढाईमें पकावे, फिर छोटे छोटे कतरके तेलमें भून लेवे तो अलीकमत्स्य तैयार होते हैं. इनको बैंगनके भरतेके साथ अथवा बथुएके सागसे या रायतेसे भक्षण करे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अथ कथित (कढी)।

स्थाल्यां घृते वा तैले वा हरिद्रां हिंगु भर्जयेत्। अवलेहनसंयुक्तं तक्रं तत्रैव निक्षिपेत्। एषा सिद्धा समरिचा कथिता कथिता बुधैः ॥ ६३ ॥ कथिता पाचनी रुच्या लघ्वी वह्निप्रदीपिनी। कफानिलविबन्धघ्नी किञ्चित्पित्तप्रकोपिनी ॥ ६४ ॥ अलीकमत्स्याः शुष्का वा किंवा कथितया पुनः। बृंहणा रोचना वृष्या बल्या वातगदापहाः ॥ ६५ ॥ कोष्ठशुद्धिकराः शुष्काः किञ्चित्पित्तप्रकोपनाः। अर्दिते सहनुस्तम्भे विशेषेण हिताः स्मृताः ॥ ६६ ॥

कढाईमें घी अथवा तेल डालकर उसमें हलदी और हींगको भूने, पश्चात् उसमें घुला हुआ बेसन और मट्ठा डाले, फिर नोंन, मिरच, मसाला आदि डालकर पकावे, पकनेपर कथिता (कढी) तैयार होती है। कढी-पाचक, रुचिकारक, हलकी, अग्निप्रदीपक,

किंचित् पित्तप्रकोप और कफ, वात तथा मलके अवरोधको नष्ट करती है, ऊपर कहा हुआ अलीकमत्स्य सूखा खावे या कढीके साथ खावे। कढीके साथ साथ खाया हुवा-पुष्टिकारक, रुचिकारी, वृष्य, बलकारक और वातसम्बन्धी रोगोंको नष्ट करता है। यह अलीकमत्स्य सूखा खाय तो कोठेको शुद्ध करनेवाला, किंचित् पित्तप्रकोप अर्दितवातमें तथा हनुस्तम्भरोगमे विशेष करके हितकारी है ॥ ६३-६६ ॥

अथ मुद्गार्द्रकवटकाः (अदरकवडा)।

मुद्गपिष्टीविरचितान् वटांस्तैलेन पाचितान्। हस्तेन चूर्णयेत्सम्यक्तस्मिंश्चूर्णे विनिक्षिपेत् ॥ ६७ ॥ भृष्टं हिंग्वार्द्रकं सूक्ष्मं मरिचं जीरकं तथा। निम्बूरसं यवानीं च युक्त्या सर्वं विमिश्रयेत् ॥६८॥ मुद्गपिष्टीं पचेत् सम्यक्स्थाल्यामास्तारकोपरि। तस्यास्तु गोलकं कुर्यात्तन्मध्ये पूरणं क्षिपेत् ॥६९॥ तैले तान् गोलकान् पक्त्वा क्वथितायां निमज्जयेत्। गोलकाः पाचकाः प्रोक्तास्ते त्वार्द्रकवटा अपि ॥ ॥ ७० ॥ मुद्गार्द्रकवटा रुच्या लघवो बलकारकाः। दीपनास्तर्पणाःपथ्यास्त्रिपु दोषेषु पूजिताः ॥ ७१ ॥

मूंगकी पिट्ठीकी बडी बनाकर तेलमें पकावे पश्चात् हाथसे मलकर चूर्ण करले, उसमें भुनीहुई हींग, छोटे छोटे अदरकके टुकडे, भुनाहुआ जीरा, मिरच, नींबूका रस और अजवायन ये सब युक्तिसे मिलाकर फिर कढाईमें पकावे, पश्चात् इसके गोले बनाकर उसके भीतर मसाला भरकर फिर इन गोलोंको तेलमें पकावे पकनेपर कढीमें डालदेवे। ये बडे-रुचिकारक, पाचक हलके, बलदायक, अग्निप्रदीपके, तृप्तिकारक, पथ्य और त्रिदोष नाशक हैं ॥ ६७-७१ ॥

अथ पकौरी (फुलौरी)।

दालयश्चणकानां तु निस्तुषा यन्त्रपेषिताः। तच्चूर्णं वेसनं प्रोक्तं पाकशास्त्रविशारदैः ॥ ७२ ॥ वटिका वेसनस्यापि क्वथितायां निमज्जिता। रुच्या विष्टम्भजननी बल्या पुष्टिकरी स्मृता ॥ ७३ ॥

चनेकी दालके छिलके छुटाकर चक्कीमें पिसवावे उस दालके चूर्णको पाकशास्त्रके जाननेवाले बेसन कहते हैं, इस बेसनकी बडियोंको कढीमें डाले, उनको पकौडी कहते हैं, ये बडी रुचिकारक, विष्टम्भजनक, बलदायक और पुष्टिकारक हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अथ मांसस्य प्रकाराः।

तत्र शुद्धमांसम्।

पाकपात्रे घृतं दद्यात्तैलञ्च तदभावतः। तत्र हिंगु हरिद्रां च भर्जयेत्तदनन्तरम् ॥ ॥ ७४ ॥ छागादेरस्थिरहितं मांसं तत्खंडितं ध्रुवम्। धौतं निर्गालितं तस्मिन् घृते तद्भर्जयेच्छनैः ॥ ७५ ॥ सिद्धियोग्यं जलं दत्वा लवणन्तु पचेत्ततः। सिद्धौ जलेन संपिष्य वेशवारं परिक्षिपेत् ॥७६॥ वेशवारः-'पिसाहुआ मसाला' इति लोके। द्रव्याणि वेशवारस्य नागवल्लीदलानि च। तण्डुलाश्च लवङ्गानि मरिचानि समासतः ॥ ७७ ॥ अनेन विधिना सिद्धं शुद्धमांसमिति स्मृतम्। शुद्धमांसं परं वृष्यं बल्यं रुच्यञ्च बृंहणम्। त्रिदोषश्रेष्ठं दीपनं धातुवर्द्धनम् ॥ ७८ ॥

पकानेके बरतनमें घी और घी न मिले तो तेल डाले, तदनन्तर हींग तथा हलदीको डालकर उसमें भूने, पश्चात् बकरी आदिका हड्डीरहित मांस लेवे, उसके टुकडे करके धोवे, पश्चात् तेलमें अथवा घीमें धीरे धीरे पकावे

इसमें नोन और जल भी डाले । जब पकजाय तब उसमें गरममसाला डाल देवे, नागरबेलके पान, चाबल, लौंग और मिरच ये मसालेके पदार्थ संक्षेपसे जानने। इसप्रकारसे पकाये हुए मांसको शुद्ध मांस कहते हैं । शुद्धमांस-अत्यन्त वृष्य, बलदायक, रुचिकारक, पुष्टिकारी, त्रिदोषनाशक, श्रेष्ठ, अग्निको दीपन करनेवाला और धातुवर्धक है ॥ ७४-७८ ॥

अथ सहद्रकम् (सहर्वासु)

छागादेर्मांसमूर्वादेःकुट्टितं खण्डितं पुनः । शुद्धमांसविधानेन पचेदेतत्सहद्रकम् । सहद्रकं गुणग्रन्थे शुद्धमांसगुणं स्मृतम् ॥ ७९ ॥

बकरेका मांस और ऊरु (जंघे) आदिकके टुकडेकर कूटले और उपरोक्त शुद्ध मांसकी रीतिसे पकावे, पकनेपर इसको सहद्रक कहते हैं; सहद्रक मांसमें शुद्ध मांसके सदृश गुण हैं, ये गुण ग्रन्थोंमें कहे हैं ॥ ७९ ॥

अथ तक्रमांसम् (अखनी)

पाकपात्रे घृतं दत्त्वा हरिद्रां हिंगु भर्जयेत् । छागादेः सकलस्यापि खण्डान्यपि च भर्जयेत् ॥ ८० ॥ सिद्धियोग्यं जलं दत्त्वा पचेन्मृदुतरं तथा । जीरकादियुते तक्रे मांसखण्डानि तारयेत् ॥ ८१ ॥ तक्रमांसन्तु वातघ्नं लघु रुच्यं बलप्रदम् । कफघ्नं पित्तलं किञ्चित्सर्वाहारस्य पाचनम् ॥ ८२ ॥

पाकपात्र कढाई, डेगचीमें घी डालकर उसमें हलदी तथा हींग भूनले और बकरी आदिके मांसके टुकडे भी उसमें भूने, फिर यथायोग्य जल डालकर मन्द २ अग्निसे पकावे, पश्चात् जीरा आदि मसाला पडे हुए मट्ठेमें उन मांसके टुकडोंको डाले, तैयार होनेपर इसको तक्रमांस या अखनी कहते हैं, तक्रमांस (अखनी)-वात तथा कफका नाशक हलका, रुचिकारी, बलदायक किञ्चित् पित्तकारक और सम्पूर्ण प्रकारके आहारको पचानेवाला है ॥ ८०-८२ ॥

अथ हरीसा (आस)।

पाकपात्रे तु बृहति मांसखण्डानि निक्षिपेत् पानीयं प्रचुरं सर्पिः प्रभूतं हिङ्गु जीरकम् ॥ ८३ ॥ हरिद्रामार्द्रकं शुण्ठीं लवणं मरिचानि च । तण्डुलांश्चापि गोधूमाञ्जम्बीराणां रसान्बहून् ॥ ८४ ॥ यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्वानि भवन्ति हि । तथा पचेत्तु निपुणो बहुमांसं क्षितिपंथा ॥ ८५ ॥ एषा हरीसा बलकृद्वातपित्तापहा गुरुः । शीतोष्णा शुक्रदा स्निग्धा सरा सन्धानकारिणी ॥ ८६ ॥

पाकपात्रमें बडे २ मांसके टुकडे डालकर उसमें पानी, घी, हींग, जीरा, हलदी, अदरक, सोंठ नमक, मिरच, चावल, गहूँ तथा जम्बीनीबूका रस बहुत डालके पकावे, जब सब वस्तुएँ भलीभांति पकजायँ तब उतार लेवे, इसको हरीसा कहते हैं ॥

हरीसा (आस)-बलदायक, वात पित्तका नाशक, भारी, शीतल, गरम, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, दस्तावर, और टूटी हड्डी आदिको जोडनेवाला है ॥ ८३-८६ ॥

अथ तलितमांसम् (तलाहुआ मांस)।

शुद्धमांसविधानेन मांसं सम्यक्प्रसाधितम् । पुनस्तदाज्ये सम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥ ८७ ॥ तलितं बलमेधाऽग्निमांसौजः शुक्रवृद्धिकृत् । तर्पणं लघु सुस्निग्धं रोचनं दृढताकरम् ॥ ८८ ॥

शुद्ध मांसकी रीतिके अनुसार मांसको पकाकर पीछे उसको घीमें तल लेवे उसको तलितमांस कहते हैं ॥

तलितमांस-तृप्तिकारक, हलका, बहुत स्निग्ध, रुचिकारी, शरीरको दृढ करनेवाला, बल, बुद्धि, अग्नि, मांस, ओज तथा वीर्यवर्द्धक है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथ शूल्यपलम् (कवाब ।)

कालखण्डादिमांसानि ग्रथितानि शलाकया । घृतं सलवणं दत्त्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥ ८९ ॥ तत्तु शूल्यमिदं प्रोक्तं पाककर्मविचक्षणैः । शूल्यं पलं सुधातुल्यं रुच्यं वह्निकरं लघु । कफवातहरं बल्यं किञ्चित् पित्तकरं हि तत् ॥ ९० ॥

कलेजेके मांसको कुचलकर घी और नोन मिलाकर लोहेकी सलाईमें लपेटकर धुएँरहित अग्निपर पकावे पाककर्ममें कुशल पुरुष इसको शूल्यमांस कवाब कहते हैं। यह मांस अमृततुल्य, रुचिकारी, अग्निको दीपन करनेवाला, हलका, कफ वातनाशक, बलदायक और किञ्चित् पित्तकारक है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अथ मांसशृङ्गाटकम् (मांसका सिंगाडा)।

शुद्धमांसं तनूकृत्य कर्तितं स्वेदितं जले । लवङ्गहिङ्गुलवणमरिचार्द्रकसंयुतम् ॥ ॥ ९१ ॥ एलाजीरकधान्याकनिम्बूरससमन्वितम् । घृते सुगन्धे तद्भृष्टं मांसशृङ्गाटकं स्मृतम् ॥ ९२ ॥ मांसशृङ्गाटकं रुच्यं बृंहणं बलकृद् गुरु । वातपित्तहरं वृष्यं कफघ्नं वीर्यवर्धनम् ॥९३॥

शुद्ध मांसके छोटे २ टुकडे करके पानीमें पकावे पश्चात् उसमें लौंग, हींग, नोन, मिरच, अदरक, इलायची, जीरा, धनियां, नींबूका रस डालकर घीमें भूनले, उसको मांसशृंगाटक कहते हैं । मांसशृंगाटक-रुचिकारी, पुष्टिकारक, बलदायक, भारी, वात-पित्तका नाशक, वृष्य, कफनाशक औए वीर्यवर्द्धक है ॥ ९१-९३ ॥

अथ मांसरसः (सुरुवा)।

सिद्धमांसरसो रुच्यः श्रमश्वासक्षयापहः । प्रीणनो वातपितघ्नः क्षीणानामल्परेतसाम् ॥ ९४ ॥ विश्लिष्टभग्नसन्धीनां शुद्धानां शुद्धिकांक्षिणाम् । स्मृत्योजोबलहीनानां ज्वरक्षीणक्षतोरसाम् ॥ ९५ ॥ शस्यते स्वरहीनानां दृष्ट्यायुःश्रवणार्थिनाम् । प्रकाराः कथिताः सन्ति बहवो मांससम्भवाः । ग्रन्थविस्तरभीतेस्ते मया नात्र प्रकीर्तिताः ॥ ९६ ॥

पकाये हुए मांसका रस-रुचिकारी, तृप्तिदायक, वातनाशक, पित्तनाशक और परिश्रम, श्वास तथा क्षयका नाशक है। क्षीण (लेटे हुए) तथा अल्पवीर्यवालोंको पुष्टिकर्त्ता, बिखरी हुई और टूटी हुई संधियोंको जोडनेवाला, शरीरकी शुद्धि चाहनेवालोंको, स्मृति ओज तथा बलसे हीनोंको, ज्वरसे क्षीण हुए और क्षत रोगवालोंको, स्वरहीनोंको, दृष्टि, आयु और श्रवणशक्ति बढानेके इच्छुकों तथा स्वस्थशरीरवालोंको भी मांसका रस परम हितकारी है । मांस बनानेके भेद अनेक प्रकार के हैं;परन्तु यहां ग्रंथका विस्तार होनेके भयसे नहीं कहे हैं ॥ ९४ ॥ ९६ ॥

अथ शाकपाकविधिः ।

हिङ्गुजीरयुते तैले क्षिपेच्छाकं सुखण्डितम् । लवणं चाम्लचूर्णादि सिद्धे हिंगूदकं क्षिपेत् । इत्येवं सर्वशाकानां साधनेऽभिहितो विधिः ॥ ९७ ॥

तेलमें हींग तथा जीरा भूने पश्चात् सम्हाला हुआ शाक कतरकर उसमें छौंक देवे, जब गल जाय तब नोंन खट्टा चूर्ण आदि तथा हींगका पानी डाले, यही सम्पूर्ण शाक बनानेकी रीति है ॥ ९७ ॥

अथ मठकम (मठरी)।

समितां मर्दयेदन्यजलेनापि च सन्नयेत् । तस्यास्तु वटिकां कृत्वा पचेत्सर्पिषि नीरसम् ॥ ९८ ॥ एलालवङ्गकर्पूरमरिचाद्यैरलंकृते । मज्जयित्वा सितापाके ततस्तश्च समुद्धरेत् । अयं प्रकारः संसिद्धौ मठ इत्यभिधीयते ॥ ९९ ॥

सन्नयेत्--मर्दयेत् ॥

मठस्तु बृंहणो वृष्यो बल्यः सुमधुरो गुरुः। पित्तानिलहरो रुच्यो दीप्ताग्नीनां सुपूजितः ॥ १०० ॥ समिताशर्करासर्पिर्निमिता अपरेऽपि ये। प्रकारा अमुना तुल्यास्तेऽपि चेत्तद्गुणाः स्मृताः॥१०१॥

मेदाको घी तथा जलसे खूब मलकर उसमें इलायची, लौंग, कपूर, मिरच आदिक डाले, और चपटी बडी बनालेवे, फिर घी में सेंककर खांडकी चासनीमें पाग लेवे, फिर चासनीसे निकाल लेवे। इस प्रकारसे बनाई हुई वस्तुको मठ (मठरी) कहते हैं ॥

मठ—पुष्टिकारक, वृष्य, बलदायक, मधुर, भारी, वातपित्तनाशक रुचिकारी और प्रदीप्त अग्निवालोंके लिये उत्तम है इसी प्रकार और भी मैदा खांड तथा घीके बने पदार्थ (बालूसाइ आदि) जानने, उनमें भी यही गुण हैं ॥ ९९ ॥ १०१ ॥

अथ संयावः (गुजिया)।

पर्पटयः साज्यसमिता निर्मिता घृतभर्जिताः। कुट्टिताश्चालिताः शुद्धशर्कराभिर्मिवः र्दिताः ॥ १०२ ॥ तत्र चूर्णं क्षिपेदेलालवङ्गमरिचानि च। नालिकेरं सकर्पूरं चारबीजान्यनेकधा ॥ १०२ ॥ घृताक्तसमिता पुष्टरोटिका रचिता ततः। तस्यान्तःपूरणं तस्य कुर्यान्मुद्रां दृढां सुधीः ॥ १०४ ॥ सर्पिषि प्रचुरे तान्तु सुपचेन्निपुणो जनः। प्रकारज्ञैः प्रकारोऽयं संयाव इति कीर्तितः ॥ १०५ ॥

मैदा और घी मिलाकर रोटी बनाकर घीमें सेंक लेवे, सिंकनेपर कूट ले और छानले पश्चात् स्वच्छ बूरा मिलावे फिर इलायची लौंग, काली मिरच, नारियलकी मींग और कपूर चिरौंजी डाले। फिर मोवन पडी हुई मैदाकी रोटीसी बेल लेवे, पश्चात् उस चूर्णको उसके भीतर भरे और मजबूतीसे मुख बंदकर देवे, चतुर पुरुष इसको घीमें भली भांति सेंक लेवे, सिंकनेपर इसको संयाव (गुजिया) कहते हैं, इस संयावके गुण मठके सदृश जानने ॥ १०२ ॥ १०५ ॥

अथ कर्पूरनालिका।

घृताढ्यया समितया लम्बं कृत्वा पुटं ततः। लवङ्गोल्वणकर्पूरयुतया सितयाऽन्वितम् ॥ १०६ ॥ पचेदाज्येन सिद्धैषा ज्ञेया कर्पूरनालिका। संयावसदृशी ज्ञेया गुणैः कर्पूरनालिका ॥१०७॥

मोवन पडी हुई मैदाकी लोईको बेलकर लम्बा सुपुट बनावे। फिर लौंग, मिरच, कपूर और खांड मिलाकर उसके भीतर भरे और मुख बंद करके घृतमें सेंकलेवे, इसको कर्पूरनालिका कहते हैं, इसमें संयावके सदृश गुण हैं ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

अथ फेनिका (फेनी)।

समितायां घृताढ्यायां वर्तिं दीर्घां समाचरेत्। तास्तु सन्निहिता दीर्घा पीठस्योपरि धारयेत् ॥ १०८ ॥ वेल्लयेद्वेल्लनेनैता यथैका पर्पटी भवेत्। ततश्छुरिकया तां तु सलग्नामेव कर्तयेत् ॥१०९॥ ततस्तु वेल्लयेद् भूयः सट्टकेन च लेपयेत्। (शालिचूर्णं घृतं तोयं मिश्रितं सट्टकं वदेत्) ॥ ११० ॥ ततः संवृत्य तल्लोप्त्रीं विदधीत पृथक्पृथक्। पुनस्तां वेल्लयेल्लोप्त्रीं यथा स्यान्मडलाकृतिः॥१११॥ ततस्तां सुपचेदाज्ये भवेयुश्च स्फुटाः। सुगन्धया शर्करया तदुद्धूलनमाचरेत् ॥ ११२ ॥ सिद्धैषा फेनिकानाम्नी मण्डकेन समा गुणैः। ततः किञ्चिल्लघु रियं विशेषोऽयमुदाहृतः ॥ ११३ ॥

वेलयेत्-प्रसारयेत्। वेलनः 'वेलुन' इति लोके पर्पटी (रोटी)। लोप्त्री 'लोई' इति लोके ॥

मोवनयुक्त मैदाको मलकर उसमें घी डाल कर लम्बी लम्बी बत्ती बनावे, फिर सबको लपेटकर लम्बी लम्बी वत्ती करे, पश्चात् बेलनसे बेलकर रोटी बनावे, तदनंतर चाकूसे कतरकर सबको मिलाले, फिर कतरकर बेले और सट्टकका लेप करे (चावलका चूर्ण, घृत, और जल इन सबको मिला लेवे, इसको सट्टक कहते हैं। इस सट्टकको लपेटकर बेललेवे, फिर मिलाकर गोल गोल बना ले, तत्पश्चात् घीमें सेंक लेवे, जब सिंक जायंगी तब तारतार अलग हो जायँगी, फिर सुगंधित खांडकी चासनीमें पागलेवे, तैयार होनेपर फेनिक (फेनी) कहाती है, फेनीमें मंडकके सदृश गुण हैं, विशेषकरके किंचित् हलकी है ॥ १०८ ॥ ११३ ॥

अथ शष्कुली (खस्तापुरी)।

समितायां घृताक्तायां लोप्त्रीं कृत्वा च वेलयेत्। आज्ये तां भर्जयेत्सिद्धां शष्कुलीं फेनिकागुणाम् ॥ ११४ ॥

मोवनयुक्त मैदाको मलकर लोई करे, फिर पतली बेलकर घीमें छोड देवे, जब सिंकजाय तब निकाल लेवे इसको शष्कुली हो (खस्तापूरी कहते हैं, इसमें फेनीके सदृश गुण हैं ११४

अथ सेविकामोदकः (सेवके लड्डू)।

घृताढ्यया समितया कृत्वा सूत्राणि तानि तु। निपुणो भर्जयेदाज्ये खण्डपाकेन योजयेत्। युक्तेन मोदकान् कुर्यात्ते गुणैर्मण्डका यथा ॥ ११५ ॥

घृतयुक्त मैदाके सेव बनाकर घीमें सेंकलेवे, और खांडकी चासनीमें डालके लड्डू बनाले। इन लड्डुओंमें भी मंडकके सदृश गुण हैं ॥ ११५ ॥

अथ मुद्गमोदकाः (बून्दीके लड्डू)।

मुद्गानां धूमसीं सम्यग्घोलयेन्निर्मलाम्बुना। कटाहस्थघृतैरूर्ध्वे झर्झरं स्थापयेत्ततः ॥ ११६ ॥ धूमसीन्तु द्रवीभूतां प्रक्षिपेत् झर्झरोपरि। पतन्ति बिन्दवस्तस्मात्तान्सुपक्वान् समुद्धरेत्। सितापाकेन संयोज्य कुर्याद्धस्तेन मोदकान् ॥ ११७ ॥ लघुर्ग्राही त्रिदोषघ्नः स्वादुः शीतो रुचिप्रदः। चक्षुष्यो ज्वरहृद्बल्यस्तर्पणो मुद्गमोदकः ॥ ११८ ॥

मूंगकी धूमसीको जलमें घोलकर घीकी भरी हुई कढाईमें बडे बडे छेदनवाली पोलियामें उस सनी हुई मूंगकी धूमसीको झाडदेवे तो उसकी छोटी २ बूँद कढाईमें पडेंगी, उनको सिंकनेपर निकाललेवे और चासनीमें डालकर हाथसे लड्डू बनावे। बूँदीके लड्डू-हलके, ग्राही, त्रिदोषनाशक, स्वादिष्ठ, शीतल, रुचिकारक, नेत्रोंको हितकारी, ज्वरनाशक, बलदायक और तृप्तिकारक हैं ॥११६-११८॥

अथ बेसनमोदकाः (मोतीचूरके लड्डू)।

एवमेव प्रकारेण कार्या बेसनमोदकाः। ते बल्या लघवः शीताः किञ्चिद्वातकरास्तथा। विष्टम्भिनो ज्वरघ्नाश्च पित्तरक्तकफापहाः ॥ ११९ ॥

उपरोक्त लड्डूके सदृश ही बेसनके लड्डू बनावे उनको मोतीचूरके लड्डू कहते हैं। मोतीचूरके लड्डू-बलकारक, हलके, शीतल, किंचित् वातकारक, विष्टम्भी, ज्वरनाशक, पित्तरक्त तथा कफनाशक हैं ॥ ११९ ॥

दुग्धकूपिका।

तण्डुलचूर्णविमिश्रितनष्टक्षीरेण सान्द्रपिष्टेन। दृढकूपिकां विदध्यात्ताश्च पचेत्सर्पिषा सम्यक् ॥ १२० ॥ अथ तां कोरितमध्यां घनपयसा पूर्णगर्भाश्च। सट्टकमुद्रितवदनां सर्पिषि सुपक्ववदन-

नाश्च ॥ १२१ ॥ अथ पाण्डुखण्डपाके स्नपयेत्कर्पूरवासित कुशलः। अथ दुग्धकूपिका सा बल्या पित्तानिलापहा चैव। वृष्या शीता गुर्वी शुक्रकरी बृंहणी रुच्या। विदधाति कायपुष्टिं दृष्टिं दूरप्रसारिणीं सुचिरम् ॥ १२२ ॥

चावलोंके चूर्णमें मावा मिलाकर मजबूत कुप्पी बनावे, उसको घीमें छोडकर सेंक लेवे, पकनेपर निकालकर बीचमें छेदकर गाढा मिश्री युक्त दूध भर देवे और सट्टकसे मुख खूब बन्द करके फिर घीमें सेंके, जब उसका मुख सिंक जाय तब चतुर मनुष्य कपूरसे सुवासित खांडकी चासनीमें पागलेवे, उसको दुग्धकूपिका कहते हैं ॥

यह दुग्धकूपिका–बलकारक, पित्त तथा कफनाशक, वृष्य, शीतल, भारी वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारी, रुचिकारक, शरीरकी पुष्टि करनेवाली और दृष्टिको दूरदर्शक करनेवाली हैं ॥ १२०–१२२ ॥

कुण्डलिनी (जलेबी)।

नूतनं घटमानीय यस्यान्तः कुशलो जनः। प्रस्थार्द्धपरिमाणेन दध्नाऽम्लेन प्रलेपयेत् ॥ १२३ ॥ द्विप्रस्थां समितां तत्र दध्यम्लं प्रस्थसम्मितम्। घृतमर्द्धः शरावश्च घोलयित्वाघृतं क्षिपेत् ॥१२४॥ आतपे स्थापयेत्तावद्यावद्याति तदम्लताम्। ततस्तत्प्रक्षिपेत्पात्रे सच्छिद्रे भाजने तु तत् ॥ १२५ ॥ परिभ्राम्य परिभ्राम्य तत्सन्तप्ते धृते क्षिपेत्। पुनः पुनस्तदावृत्त्या विदध्यान्मण्डलाकृतिम् ॥ १२६ ॥ तां सुपक्वां घृतान्नीत्वा सितापाके तनुद्रवे। कर्पूरादि सुगन्धं च स्थापयित्वोद्धरेत्ततः ॥ १२७ ॥ एषा कुंडलिनी नाम्ना पुष्टिकान्तिबलप्रदा। धातुवृद्धिकरी वृष्या रुच्या च क्षिप्रतर्पणी ॥ १२८ ॥

नवीन मृत्तिकाके घडेमें आधसेर खट्टे दही का लेप कर देवे पश्चात् दो सेर मैदा उसमें डाले और एक सेर दही तथा आधसेर घृव घोलकर जबतक खट्टा न हो तबतक धूपमें रक्खा रहने दे, पश्चात् जिस बासनमें नीचे छेद हो, उस पात्रमें करके नीचे घृत भरी हुई कढाईमें गोल गोल करके छोडता जाय, जब वह सिंक जाय तब घीमेंसे निकालकर कपूर आदिसे सुगंधित हुई खांडकी चासनीमें डाल देवे और पश्चात् निचोडकर निकाल ले, उसको कुंडलिनी (जलेबी) कहते हैं। यह जलेबी–पुष्टिकारक, कांतिकारक, बलदायक, धातुवर्द्धक, वृष्य, रुचिकारक और तुरन्त तृप्तिकारक है ॥ १२३–१२८ ॥

अथ पश्चात् परिवेष्याणि।

रसाला (सिखरन्)।

आदौ माहिषमम्लमम्बुरहितं दध्याढकं शर्करां शुभ्रां प्रस्थयुगोन्मितां शुचिपटे किञ्चिच्च किञ्चित्क्षिपेत्। दुग्धेनार्द्धघटेन मृन्मयनवस्थाल्यां दृढं स्रावयेदेलाबीजलवङ्गचन्द्रमरिचैर्योग्यैश्च तद्योजयेत् ॥ ॥ १२९ ॥ भीमेन प्रियभोजनेन रचिता नाम्ना रसाला स्वयं श्रीकृष्णेन पुरा पुनः पुनरियं प्रीत्या समास्वादिता। एषा येन वसन्तवर्जितदिने संसेव्यते नित्यशस्तस्य स्यादतिवीर्य वृद्धिरनिशं सर्वेन्द्रियाणां बलम् ॥ १३० ॥ ग्रीष्मे तथा शरदि ये रविशोषितांगा ये च प्रमत्तवनितासुरतातिखिन्नाः। ये चापि मार्गपरिसर्पणशीर्णगात्रास्तेषामियं वपुषि पोषणमाशु कुर्यात् ॥ १३१ ॥ रसाला शुक्रला बल्या रोचनी वातपित्तजित्।

दीपनी बृंहणी स्निग्धा मधुरा शिशिरा सरा। रक्तपित्तं तृषां दाहं प्रतिश्यायं विनाशयेत् ॥ १३२ ॥

प्रथम खट्टा तथा जलरहित दो सौ छप्पन तोले भर भैंसका दही लेवे और उसको स्वच्छ कपडेमें रखकर एकसौ अट्ठाईस तोले भर सफेद बूरा डालकर नीचेको स्वच्छ नवीन मिट्टीके पात्रमें दही छानता जाय, पश्चात् इसमें पांचसौ बारह तोले भर दूध डाले और इलायची, लौंग, कपूर, मिरच यथायोग्य डाले। प्रिय भोजनके बनानेवाले भीमसेनने स्वयं यह रसाला बनाई थी और श्रीकृष्णने परम प्रीतिसे वारंवार स्वाद लेकर खाई थी। जो मनुष्य वसन्त ऋतुको त्यागकर नित्य रसाला भोजन करते हैं, उनके निरन्तर वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि होती है और सर्व इन्द्रियोंमें बल बढता है, जिनका शरीर ग्रीष्म तथा शरदृऋतुमें सूर्यके तापसे सूख गया है, जो मदोन्मत्त स्त्रियोंके संभोगसे अतिखिन्न हो गया है, और जिनका शरीर मार्ग चलनेसे शिथिल हो गया है, उन पुरुषोंके शरीरोंको यह तत्काल पुष्टि करती है। यह रसाला-(श्रीखण्ड) वीर्यवर्द्धक, बलदायक, रुचिकारक, बात तथा पित्तनाशक, अग्निको दीपन करनेवाली, पुष्टिकारक, स्निग्ध, मधुर, शीतल, दस्तावर और रक्तपित्त, तृषा, दाह तथा प्रतिश्याय (जुकाम) नाशक है ॥ १२९-१३२ ॥

अथ शर्करोदकम् (सरबत)।

जलेन शीतलेनैव घोलिता शुभ्रशर्करा। एलालवङ्गकर्पूरमरिचैश्च समन्विता ॥ ॥ १३३ ॥ शर्करोदकनाम्ना तत्प्रसिद्धं विदुषां मुखैः। शर्करोदकमाख्यातं शुक्रलं शिशिरं सरम् ॥ १३४ ॥ बल्यं रुच्यं लघु स्वादु वातपित्तप्रणाशनम्। मूर्च्छाछर्दितृषादाहज्वरशान्तिकरं परम् ॥१३५॥

शीतल जलमें सफेद खांड घोलकर उसमें इलायची, लौंग, कपूर तथा मिरच डाल देवे, उसको विद्वान् शर्करोदक (सरबत) कहते हैं॥

सरबत-वीर्यवर्द्धक, शीतल, दस्तावर, बलदायक, रुचिकारी, स्वादिष्ठ हलका, और वात, पित्त, मूर्छा, वमन, तृषा, दाह तथा ज्वरको शांत करती है ॥ १३३-१३५ ॥

अथ प्रपानकानि (सरबत)

तत्र आम्रफलप्रपानकम्।

आम्रमामं जले स्विन्नं मर्दितं दृढपाणिना। सिताशीतांबुसंयुक्तं कर्पूरमरिचान्वितम् ॥ १३६ ॥ प्रपानकमिदं श्रेष्ठं भीमसेनेन निर्मितम्। सद्यो रुचिकरं बल्यं शीघ्रमिन्द्रियतर्पणम् ॥ १३७ ॥

कच्ची अमियोंको जलमें औटाकर दृढतासे मल लेवे, पश्चात् सफेद बूरा, शीतलजलकपूर और मिरच डाले, इसको प्रपानक (आमका पन्ना) कहते हैं। यह श्रेष्ठ प्रपानक भीमसेनने निर्माण किया है। यह प्रपानक तत्काल रुचिकारी बलदायक और तुरन्त इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाला है ॥१३६ ॥ १३७॥

अथ अम्लिकाफलपानकम्।

अम्लिकायाः फलं पक्वं मर्दितं वारिणा दृढम्। शर्करामरिचैर्मिश्रं लवङ्गेन्दुसुवासितम् ॥ १३८ ॥ अम्लिकाफलसम्भूतं पानकं वातनाशनम्। पित्तश्लेष्मकरं किंचित्सुरुच्यं वह्निबोधनम् ॥ १६९ ॥

पकी इमलीको जलमें भिगोकर खूब मलले, उसमें सफेद बूरा, मिरच, लौंग और कपूर, आदि डालकर सुवासित करले, इसको अम्लिकाप्रपानक (इमलीका पन्ना) कहते हैं, यह इमलीका पन्ना-वातविनाशक, पित्त, कफकारी, रुचिकारक और अग्निवर्द्धक है ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

निम्बुकफलपानकम्।

भागैकं निम्बुजं तोयं षड्भागं शर्करोदकम्। लवङ्गमरिचैर्मिश्रं पानं पानकमुत्तमम् ॥१४०॥ निम्बूफलभवं पानमत्यम्लं वातनाशनम्। वह्निदीप्तिकरं रुच्यं समस्ताहारपाचकम् ॥ १४१ ॥

एक भाग नींबूके रसमें छः भाग खांडका पानी (सरबत) डाले और उसमें लौंग तथा मिरच डाले, इसको नींबूप्रपानक (नींबूका पन्ना) कहते हैं। नींबूका पन्ना–उत्तम, अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारक और सम्पूर्ण आहारको पचानेवाला है ॥१४०॥१४१॥

धान्याकपानकम्।

शिलायां साधु सम्पिष्टं धान्याकं वस्त्रगालितम्। शर्करोदकसंयुक्तं कर्पूरादिसुसंस्कृतम्। नूतने मृन्मये पात्रे स्थितं पित्तहरं परम् ॥ १४२ ॥

धनियेको शिलापर भलींभांति पीसकर वस्त्रमें छान लेवे उसमें बूरेका पानी डाले और कपूरादिसे सुगंधित करे और उसको नवीन मट्टीके पात्रमें रक्खे, वह पन्ना अत्यन्त पित्तनाशक है ॥ १४२ ॥

अथ कांजी।

(काजीविधिर्बटकवसरे लिखितः)

काञ्जीकं रोचनं रुच्यं पाचनं वह्निदीपनम्। शूलाजीर्णविबन्धघ्नं कोष्ठशुद्धिकरं परम्। न भवेत्काञ्जिकं यत्र तत्र जालिः प्रदीयते ॥ १४३ ॥

(कांजी बनानेकी विधि बडे बनानेके विषयमें लिख आये हैं), कांजीका प्रपानक–रुचियुक्त, रुचिकारक, पाचक, अग्निको दीपन करनेवाला और शूल अजीर्ण तथा मलबन्धनाशक है। और कोठेको अत्यन्त शुद्ध करने वाला है। कांजी जहां न मिले वहां नीचे लिखी हुई जाली देवे ॥ १४३ ॥

अथ जालिः।

आममाम्रफलं पिष्टं राजिकालवणान्वितम्। भृष्टहिङ्गुयुतं पूतं घोलितं जालिरुच्यते ॥ १४४ ॥ जालिर्हरति जिह्वायाः कुण्ठत्वं कण्ठशोधनी। मन्दं मन्दन्तु पीता सा रोचनी वह्निबोधिनी ॥ १४५ ॥

कच्ची अमियोंको पीसकर उसमें राई, सेंधानोन और भुनी हुई हींग डालकर उसे पानीमें घोल लेवे, उसको जाली कहते हैं। जाली–जीभकी जडताको नष्ट करती है तथा कण्ठको शुद्ध करती है, यह जाली धीरे धीरे पीवे तो अत्यन्त रुचिकारी और अग्निवर्द्धक है ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

अथ तक्रम् (छाछ)

तुर्यांशेन जलेन संयुतमतिस्थूलं सदम्लं दधि पायो माहिषमम्बुकेन विमले मृद्भाजने गालयेत्। भृष्टं हिङ्गु च जीरकञ्च लवणं राजीश्च किञ्चिन्मितां पिष्टां तत्र विमिश्रयेद्भवति तत्तक्रं न कस्य प्रियम् ॥ १४६ ॥ तक्रं रुचिकरं वह्निदीपनं तृप्तिकारकम् ॥ १४७ ॥

अत्यन्त गाढे और खट्टे भैंसके दहीको लेकर उसमें चौथा भाग जल डाले पश्चात् मृत्तिकाके पात्रमें वस्त्रसे छानलेवे फिर उसमें भुनी हींग, जीरा, नमक तथा राई इनको किंचित् पीसकर मिला देवे तो तक्र (मट्ठा) तैयार हो जाता है, यह छाछ किसको प्रिय नहीं? तक्र–रुचिकारी, अग्निको दीपन करनेवाला, अत्यन्त पाचन, पेटके सम्पूर्ण रोगोंको नष्टकरनेवाला और तृप्तिकारक है ॥१४६॥१४७॥

अथ दुग्धम् (दूध)।

विदाहीन्यन्नपानानि यानि भुंक्ते हि मानवः। तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत् ॥ १४८ ॥

दुग्धस्य अपरे गुणा उक्ता एव दुग्धवर्गे ॥

जो मनुष्य दाह करनेवाले अन्नपानका उपयोग करते हैं, उनकी दाहकी शांति करनेके लिये भोजनके अन्तमें दूध पीना चाहिये। दूधमें जो और गुण हैं वे दुग्धावर्गमें कहे हैं ॥ १४८ ॥

अथ सक्तवः (सत्तू) ।

धान्यानि भ्राष्ट्रभृष्टानि यन्त्रपिष्टानि सक्तवः ॥ १४९ ॥

चावल, जौ आदि धान्योंको भाडमें भुनाकर पिसवा ले उसको सत्तु कहते हैं ॥१४८॥

तत्र यवससक्तवः ।

यवजाः सक्तवः शीता दीपना लघवः सराः। कफपित्तहरा रूक्षा लेखनाश्च प्रकीर्त्तिताः ॥ १५० ॥ ते पीता बलदा वृष्या बृंहणा भेदनास्तथा । तर्पणा मधुरा रुच्याः परिणामे बलापहाः ॥ १५१ ॥ कफपित्तश्रमक्षुत्तृड्वृद्धिनेत्रामयापहाः । प्रशस्ता घर्मदाहव्यव्यायामार्तशरीरिणाम् ॥ १५२ ॥

जौके सत्तू-शीतल, अग्निप्रदीपक, हलके दस्तावर, कफ, पित्तनाशक, रूक्ष और लेखन हैं। सत्तुओंका पीना-बलदायक, वृष्य, पुष्टिकारक, मलभेदक, तृप्तिकरनेवाला, मधुर, रुचिकारी, अन्तमें बलनाशक है । कफ, पित्त, परिश्रम, भूख, प्यास, अण्डवृद्धि और नेत्ररोगको नष्ट करता है । जो पसीना, दाह तथा व्यायाम (कसरत) करनेसे व्याकुल हैं, उन मनुष्योंको यह हितकारी है ॥ १५०-१२५ ॥

अथ चणकयवसक्तवः ।

निस्तुषैश्चणकैर्भृष्टैस्तुर्यांशैश्च यवैः कृताः। सक्तवः शर्करासर्पिर्युक्ता ग्रीष्मेऽतिपूजिताः ॥ ९४ ॥

छुलके रहित भुनेहुए चनोंके और चौथे भाग भुने हुए जौके सत्तू बनाकर उसमें बूरा और घी मिलाकर खावे, ये ग्रीष्मऋतुमें अत्यन्त हितकारी है ॥ १५३ ॥

शालिसक्तवः ।

सक्तवः शालिसम्भूता वह्निदा लघवो हिमाः। मधुरा ग्राहिणो रुच्याः पथ्याश्च बल शुक्रदाः ॥ १९४ ॥

शालिचावालोंके सत्तू-अग्निप्रदीपक, हलके शीतल, मधुर, ग्राही, रुचिकारी, पथ्य बल तथा वीर्यवर्द्धक हैं ॥ १५४ ॥

अथ सामान्यपरिभाषा ।

न भुक्त्वा न रदैश्छित्त्वा न निशायां न वा बहून । न जलान्तरितान्न द्विः सक्तूः नद्यान्नकेवलान् ॥ १९९ ॥ पृथक्पानं पुनर्दानमामिषं पयसा निशि। दन्तच्छेदनमुष्णं च सप्त सक्तुषु वर्जयेत् ॥१९६॥

सत्तू-भोजन करनेके अनन्तर न पीवे, दांतोंसे कुचलकर न खावे, रात्रिमें न खाय, अधिक न खाय, पानी डालकर न खाय दो बार न खाय और केवल सत्तू न खाय । अलग पीना, एकबार जिसने खाये हों उसको दूसरीबार नहीं देना, मांसके साथ और दूधके साथ, रात्रिमें, दांतोंसे कुचलकर और गरम करके इस प्रकार सत्तू नहीं खाना चाहिये, ऐसे वर्जित हैं ॥१५५॥१५६॥

अथ धानाः (बहुरी) ।

यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः स्मृता धाना इति स्त्रियाम्। धानाः स्युर्दुर्जरा रूक्षारूक्षास्तृट्प्रदा गुरवश्च ताः । तथा मेहकफच्छर्दिनाशिन्यः सम्प्रकीर्त्तिताः१९७॥

भूसीरहित जौओंको भुनवा लेवे । उसको धाना या बहुरी कहते हैं। बहुरी-कठिनतासे पचनेवाली भारी, रूक्ष, तृषा लगानेवाली, प्रमेह, कफ, तथा वमननाशक है ॥ १५७ ॥

अथ लाजाः (खील)।

येषां स्युस्तण्डुलास्तानि धान्यानि सतुषाणि च। भृष्टानि स्फुटितान्याहुर्लाजा इति मनीषिणः॥ १५८॥ लाजाः स्युर्मधुराः शीता लघवो दीपनाश्च ते। स्वल्पमूत्रमला रूक्षा बल्याः पित्तकफच्छिदः। छर्यतीसारदाहास्रमेहमेदस्तृषापहाः॥ १५९॥

जिनमें चावल निकलते हैं, उन छुलके सहित धान्योंको भाडमें भुना लेवे, उसको लाजा कहते हैं। खीलें—मधुर, शीतल, हलकी, अग्निप्रदीपक, मल तथा मूत्रको अल्प करनेवाली, रूक्ष, बलदायक, पित्त, कफ, वमन, अतीसार, दाह, रक्तविकार, प्रमेह, मेद तथा तृषानाशक हैं॥ १५८॥ १५९॥

अथ चिपिटाः (चौले)

शालयः सतुषा आर्द्रा भृष्टा अस्फुटिताश्च ये। कुट्टिताश्चिपिटाः प्रोक्तास्ते स्मृताः पृथुका अपि॥ १६०॥ पृथुका गुरवो वात नाशनाः श्लेष्मला अपि। सक्षीरा बृंहणा वृष्या बल्या भिन्नमलाश्च ते॥ १६१॥

भूसी सहित गीले शालिधान्योंको भून कर विनाखिल ही तत्काल कूट लेवे, वे कुटकर चिपटे होजाते हैं उनको चिपिट और पृथुक कहते हैं। पृथुक (चौले)—भारी वातनाशक, कफकारक, खारे, पुष्टिकारक, वृष्य, बलदायक, और दस्तलानेवाले हैं॥ १६०॥ १६१॥

अथ होला।

अर्द्धपक्वैः शमीधान्यैस्तृणभृष्टैश्च होलकः। होलकोऽल्पानिलो भेदःकफदोषत्रयापहः। भवेद्यो होलको यस्य स च तत्तद्गुणो भवेत्॥ १६२॥

अधपके शमीधान्योंको तोडकर भूनलें, उसको होला कहते हैं। होला—अल्प वातकारक, मेद, कफ तथा त्रिदोषनाशक है। जिस धान्यके होले हों उसके गुण भी उन होलोंमें रहते हैं॥ १६२॥

अथ ऊंबी (ऊंबी)।

मञ्जरी त्वर्द्धपक्वा या यवगोधूमयोर्भवेत्। तृणानलेन संभृष्टा बुधैरूचीति सा स्मृता॥ १६३॥ ऊंची कफप्रदा बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा॥ १६४॥

जौ अथवा गेहूंकी अधपकी मंजरी (बाल) लेकर तृणोंकी आगमें भून लेवे, उसको ऊँची कहते हैं। ऊँची—कफकारक, बलदायक, हलकी, पित्त तथा वातनाशक है॥ १६३॥ १६४॥

अथ कुल्माषाः (घुघुरी)।

अर्धस्विन्नास्तु गोधूमा अन्येऽपि चणकादयः। कुल्माषा इति कथ्यन्ते शब्दशास्त्रेषु पण्डितैः। कुल्माषा गुरवो रूक्षा वातला भिन्नवर्चसः॥ १६५॥

गेहूँ अथवा चने आदिको अधसीजा कर लेवे उसको शब्दशास्त्रविशारद कुल्माष(घुघुरी) कहते हैं। कुल्माष—भारी, रूखी, वातकारक और मलभेदक है॥ १६५॥

अथ तिलकुट्टम् तिलकुट)।

पललन्तु समाख्यातं सैक्षवं तिलपिष्टकम्। पललं मलकृद्वृष्यं वातघ्नं कफपित्तकृत्। बृंहणं च गुरु स्निग्धं मूत्राधिक्यनिवर्त्तकम्॥ १६६॥

तिलोंको कूटकर उसमें गुड आदि मिलावे, उसको पलल या तिलकुट कहते हैं। तिलकुट—मलकारक, वृष्य, वातनाशक, कफ पित्तकर्ता, पुष्टिदायक, भारी, चिकनी और मूत्रकी अधिकताको नष्ट करती है॥ १६६॥

अथ तिलखलिः (खल पीना) ।

तिलकुट्टन्तु पिण्याकं तथा तिलखलिः स्मृता । पिण्याको लेखनो रूक्षो विष्टम्भी दृष्टिदूषणः ॥ १६७ ॥

तिलकुट्ट, पिण्याक और तिलखलि ये खलके संस्कृत नाम हैं ।

हिन्दी–खल, खरी । गु०–खोल । ता०–पिण्णाक्कु ।

तिलकी खल–ग्लानिकारक, रूक्ष, विष्टम्भी और दृष्टिको दूषित करती है ॥ १६७ ॥

अथ तंदुलः (चावल) ।

तण्डुलो मेहजन्तुघ्नः स नवस्त्वतिदुर्जरः ॥ १६८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे कृतान्नवर्गः ।

चावल–प्रमेह तथा कृमिरोगको नष्ट करता है । जो चावल नवीन हों, वे अत्यन्त दुर्जर हैं ॥ १६८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां कृतान्नवर्गः ।

अथ वारिवर्गः ।

जलस्य नामानि गुणाश्च ।

पानीयं सलिलं नीरं कीलालं जलमम्बु च । आपो वार् वारि कं तोयं पयः पाथस्तथोदकम् । जीवनं वनमम्भोऽर्णोऽमृतं घनरसोऽपि च ॥ १ ॥ पानीयं श्रमनाशनं क्लमहरं मूर्च्छापिपासापहं तन्द्राच्छर्दिविबन्धहृद्बलकरं निद्राहरं तर्पणम् । हृद्यं गुप्तरसं ह्यजीर्णशमकं नित्यं हितं शीतलं लघ्वच्छं रसकारणं निगदितं पीयूषवज्जीवनम् ॥ २ ॥

पानीय, सलिल, नीर, कीलाल, जल अम्बु, आप्, वार्, वारि, क तोय, पय, पाथ, उदक जीवनवन, अम्भ, अर्ण, अमृत, घनरस, (मेघप्रसव, कमल, भुवन, कबन्ध, पुष्कर, सर्वतोमुख सलिल, सल, अन्थ, कबन्ध, उद, दक नार शम्बर, अभ्रपुष्प घृत कृत्स्न, यादो, निवास, जीवनीय, कुलीनसे, कुलीन, पिप्पल, कुश, विष, काण्ड, सवर, सर, कृपीट, चन्द्रोरस, सदन, कर्बुर, व्योम, सम्ब, इरा, वाज, तामर, कंबल, स्यन्दन, सम्बल, जलपीथ, क्षर, ऋत, उर्ज्ज, कोमल, सोम, नारा, छद्म, क्षोद, नभ, मधु, पुरीष, रेत, कश, जन्म, वृबूक, बुस, तुग्या, कर्बूर सुक्षेम, धरुण, सुरा, अरविन्द, धनुन्धतु, जामि, आयुधानि, क्षय, आहि अक्षर, स्रोततृप्ति, रहस, रस, भेषज, सह, शव, षह, ओज, सुख, क्षत्र, आरया, शुभ, यादु, भूत, भविष्य, महत्, यश, मह, सर्णीक, सतीन, गहन, गभीर-गम्भलंग, अन्न, हवि, सद्म, योनि, मत्स्ययोनि, सत्य, रयिसत्, पूर्ण, सर्व, अक्षित, बर्हिनाम्, सर्पि, अप, पवित्र, इन्दु, हेम, स्व, सर्ग, सम्बर, अम्ब, वपु, अम्बु, तूप, शुक्र, तेज, दर्भ, जलाष, वज्र और नीलकण्ठप्रिय) ये पानीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी–जल, पानी । बं०–जल । म०–गु०–पाणी । क०–मुनीक । तै०–नीलु । फा०–आब । अ०–माय । इं०–वाटर Watter लै०–एक्वा Aqua.

गुण–जल–परिश्रमनाशक, ग्लानिहारक, बलकारक, तृप्तिदायक हृदयको प्रिय, गुप्तरसयुक्त, नित्यहितकारी, शीतल, हलका, स्वच्छ, रसका कारणरूप, अमृतके सदृश, जीवनदायक और मूर्च्छा, पिपासा, तन्द्रा, वमन, विबन्ध, निद्रा और अजीर्णको नष्ट करनेवाला है ॥ १ ॥ २ ॥

पानीयस्य भेदाः ।

पानीयं मुनिभिः प्रोक्तं दिव्यं भौममिति द्विधा । दिव्यं चतुर्विधं प्रोक्तं धाराजं करकाभवम् । तौषारश्च तथा हैमं तेषु धारं गुणाधिकम् ॥ ३ ॥

मुनियोंने दिव्य (आकाशका) और भौम (पृथ्वीका) इस प्रकार जल दोप्रकारका कहा है ॥

धाराज, करकाभव, तौषार और हैम इस भांति दिव्यजल चार प्रकारका है। इन चारोंमें भी धाराज अधिक गुणवाला है ॥ ३ ॥

धाराजलस्य लक्षणानि गुणाश्च)

धाराभिःपतितं तोयं गृहीतं स्थूलवाससा। शिलायां वा सुधायां वा धौतायां पतितञ्च तत् ॥४॥ सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके काचनिर्मिते। भाजने मृन्मये वाऽपि स्थापितं धारमुच्यते ॥ ५ ॥ धारं नीरं त्रिदोषघ्नमनिर्देश्यरसं लघु। सौम्यं रसायनं बल्यं तर्पणं ह्लादि जीवनम् ॥ ६ ॥ पाचनं मतिकृन्मूर्च्छातन्द्रादाहश्रमक्लमान्। तृष्णां हरति चात्यर्थं विशेषात्प्रावृषि स्थितम् ॥ ७ ॥

धारारूपसे गिरा हुआ जल स्वच्छ पत्थरपर गिरा हुआ हो अथवा धुली हुई पृथ्वीपर गिरा हो उसको वस्त्रसे छान लेवे और सुवर्णके, चाँदीके, तांबेके, स्फटिकके, कांचके अथवा मट्टीके पात्रमें भर रक्खे, उसको धाराजल कहते हैं ॥

गुण–धाराजल–त्रिदोषनाशक, अपूर्वरसवाला, हलका, सौम्य रसायन, बलदायक, तृप्तिकारक, आनन्ददायक, जीवनरूप, पाचन, बुद्धिवर्द्धक, और मूर्च्छा, आलस्य, दाह, परिश्रम ग्लानि तथा तृषानाशक है। यह धारा-वर्षाऋतुमें लिया हो तो अधिक पथ्य है ॥ ४ ॥ ७ ॥

धाराजलस्य भेदा :।

धाराजलं च द्विविधं गाङ्गसामुद्रभेदतः॥ ८॥

धाराजल दो प्रकारका है–एक गांग और दूसरा सामुद्र ॥ ८ ॥

गांगसामुद्रयोर्जलयोर्लक्षणं गुणाश्च।

आकाशगङ्गासम्बन्धि जलमादाय दिग्गजाः। मेघैरन्तरिता वृष्टिं कुर्वन्तीति वचः सताम् ॥ ९ ॥ गाङ्गमाश्वयुजे मासि प्रायो वर्षति वारिदः। सर्वथा तज्जलं ज्ञेयं तथैव चरके वचः ॥ १० ॥ स्थापिते हेमजे पात्रे राजते मृन्मयेऽपि वा। शाल्यन्नं येन संसिक्तं भवेदक्लेदि वर्णवत् ॥११॥ तद्गाङ्गं सर्वदोषघ्नं ज्ञेयं सामुद्रमन्यथा। तत्तु सक्षारलवणं शुक्रदृष्टिबलापहम् ॥१२॥ विस्रञ्च दोषलं तीक्ष्णं सर्वकर्मसु नो हितम्। सामुद्रं त्वाश्विने मासि गुणैर्गाङ्गवदादिशेत् ॥ १३ ॥ यतोऽगस्त्यस्य दिव्यर्षेरुदयात्सकलं जलम्। निर्मलं निर्विषं स्वादु शुक्रलं स्याददोषलम् ॥ १४ ॥ फूत्कारविषवातेन नागानां व्योमचारिणाम्। वर्षासु सविषं तोयं दिव्यमप्याश्विनं विना ॥ १५ ॥

सत्पुरुषोंका वचन है कि, दिग्गज आकाशगंगाका जल लेकर बादलोंसे छिपे हुए वर्षाते हैं। विशेष करके आश्विन मासमें जो जल वर्षता है, वह आकाशगंगाका होता है, उसको गांग समझना। सुवर्णके, चांदिके अथवा मट्टीके पात्रमें रक्खा हुआ गांगजल सर्वथा रोगियोंको देवे। चरकमें भी इसी प्रकार कहा है कि जिस जलमें भिगोये हुए चावल जैसेके वैसेही वर्णवाले रहजायँ, वह गांग जल जानना। यह जल सम्पूर्ण दोषनाशक है। जिसमें ये गुण न हो, वह सामुद्र जल जानना। सामुद्र जल–क्षारयुक्त, खारा, दुर्गन्धवाला, दोषवर्द्धक, तीक्ष्ण, सम्पूर्ण कार्योंमें निन्दित और वीर्य, दृष्टि तथा बलनाशक है आश्विन मासमें वर्षे हुए समुद्रजलमें भी गांगजलके सदृश गुण रहते हैं, क्योंकि–अगस्त्य मुनिके तारेके उदय होनेपर सर्व जल–निर्मल, विषरहित, स्वादिष्ठ,

वीर्यवर्द्धक और दोषरहित, होते हैं । इस कारण कहा है कि "वर्षा ऋतुमें दिव्य जल भी आकाशमें विचरनेवाले विषैले जीवोंकी पवनसे विषयुक्त होजाता है, परन्तु आश्विनमासमें गिरा हुआ दिव्यजल विषैला नहीं होता" ॥ ९-१५ ॥

अनार्त्तवजलस्य गुणाः ।

अनार्त्तवं प्रमुञ्चन्ति वारि वारिधरास्तु यत् । तत्त्रिदोषाय सर्वेषां देहिनां परिकीर्तितम् ॥ १६ ॥

अनार्त्तवम्-पौषादिमासचतुष्टयविषयम् ॥

जो जल विना ऋतु बादलोंसे वर्षता है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंको त्रिदोषकारक है । (यह जो विना ऋतुके जलकी निंदा की है, वह पौष आदि चार महीनोंकी जाननी) ॥ १६ ॥

करकाजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

दिव्यवाय्वग्निसंयोगात्संहताः खात्पतन्ति याः । पाषाणखण्डवच्चापस्ताः करक्योऽमृतोपमाः ॥ १७ ॥ करकाजं जलं रूक्षं विशदं गुरु च स्थिरम् । दारुणं शीतलं सान्द्रं पित्तहृत्कफवातकृत् ॥ १८ ॥

दिव्य वायु और अग्निके संयोगसे पत्थरके टुकडोंके सदृश जो जल गिरता है, उसको करकाभव जल (ओला) कहते हैं । ओलेका जल-अमृततुल्य, रूक्ष, विशद, भारी, स्थिर (बँधाहुआ), दारुण, शीतल, पित्तनाशक और कफ तथा वातकारक है ॥ १७ ॥ १८ ॥

तौषारजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निरापस्तदुद्भवाः । धूमावयवनिर्मुक्तास्तुषाराख्यास्तु ताः स्मृताः ॥ १९ ॥

अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निः-नदीमारभ्य समुद्रपर्यन्ते वह्निरास्ते, तदुद्भवाःवह्निभवाः । धूमावयवनिर्मुक्ताः-धूमांशरहिताः आपस्तुषाराख्याः । तुषू तुषार इति च लोके ॥

अपथ्याः प्राणिनां प्रायो भूरुहाणान्तु नो हिताः । तुषाराम्बु हिमं रूक्षं स्याद्वातलमपित्तलम् । कफोरुस्तम्भकण्ठाग्निमेहगण्डादिरोगनुत् ॥ २० ॥

नदीसे समुद्रपर्यन्त जो अग्नि रहती है, उस अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ और जिनमें धुएँका लेशमात्र न हो, उस जलको तौषार कहते हैं । अर्थात् जिसको ओस कहते हैं तौषारजल-प्राणियोंको अहितकारी और प्रायः वृक्षोंको हितकारी नहीं । तुषारका जलशीतल, रूक्ष, वातकारक, पित्तकारक नहीं और कफ, ऊरुस्तंभ कण्ठरोग, अग्नि, प्रमेह और गलगण्डादिरोग नष्ट करनेवाला है ॥ १९ ॥ २० ॥

हैमजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

हिमवच्छिखरादिभ्यो द्रवीभूयाभिवर्षति ॥ यत्तदेव हिमं हैमं जलमाहुर्मनीषिणः । हिमाम्बु शीतं पित्तघ्नं गुरु वातविवर्द्धनम् ॥ २१ ॥

हैमं जलम्-कुहासाजलम् ॥

अन्ये तु-और्वानलधूमेरितमम्बु समुद्रस्य यद् घनीभूतम् । पवनानीतमुदीच्य तद्धिममिति कथ्यते सद्भिः ॥

हिमं कुहासा इति लोके ॥

हिमं तु शीतलं रूक्षं दारुणं सूक्ष्ममित्यपि । न तद् दूषयते वातं न च पित्तं न वा कफम् ॥ २२ ॥

हिमालयके शिखर आदिमेंसे हिम बरफ पिघलकर वर्षता है, उसको विद्वान् हैमजल कहते हैं ॥

हिमका जल-शीतल, पित्तनाशक, भारी, और वातवर्द्धक है । अन्य विद्वान् कहते हैं, कि-'वडवानलके धुएँकी प्रेरणासे इकट्ठा हुआ और पवनसे उत्तर दिशामें आया हुआ जो समुद्रका जल है, वह हिम कहाता है । हिम-शीतल, रूक्ष, दारुण और सूक्ष्म है, तथा

वात, पित और कफको दूषित करनेवाला नहीं है" ॥ २१ ॥ २२ ॥

भौमजलस्य भेदः।

भौममम्भो निगदितं प्रथमं त्रिविधं बुधैः। जाङ्गलं परमानूपं ततः साधारणं क्रमात् ॥ २३ ॥

भौम (पृथ्वीसंबंधी) जल तीन प्रकारका है-एक जांगल, दूसरा आनूप और तीसरा धारण इस भाँति क्रमसे जानना ॥ २३ ॥

भौमादिजलत्रयाणां लक्षणं गुणाश्च।

अल्पोदकोऽल्पवृक्षश्च पित्तवातामयान्वितः। ज्ञातव्यो जाङ्गलो देशस्तत्रत्यं जाङ्गलं जलम् ॥ २४ ॥ बह्वम्बुर्बहुवृक्षश्च वातश्लेष्मामयान्वितः। देशोऽनूप इति ख्यात आनूपं तद्भवं जलम् ॥ २५ ॥ मिश्रचिह्नस्तु यो देशः स हि साधारणः स्मृतः। तस्मिन् देशे तदुदकं तत्तु साधारणं स्मृतम् ॥२६॥ जाङ्गलं सलिलं रूक्षं लवणं लघु पित्तनुत्। वह्निकृत्कफहृत्पथ्यं विकरात् हरते बहून् ॥ २७ ॥ आनूपं वार्यभिष्यन्दि स्वादु स्निग्धं घनं गुरुः। वह्निहृत्कफकृद्धृद्यं विकारान् कुरुते बहून् ॥ २८ ॥ साधारणं तु मधुरं दीपनं शीतलं लघु। तर्पणं रोचनं तृष्णादाहदोषत्रयप्रणुत् ॥ २९ ॥

जो देश थोडे जलवाला, अल्प वृक्षोंवाला, पित्त तथा वातसंबंधी रोगयुक्त हो, उस देशको जांगल देश जानना और उस देशमें होनेवाले जलको जांगल जल कहते हैं ॥

जो देश अधिक जलवाला, अधिक वृक्षोंवाला, वात तथा कफके रोगयुक्त हो, उस देशको अनूपदेश कहते हैं। उस देशमें होनेवाले जलको आनूप जल कहते हैं ॥

जिस देशमें-जांगल और अनूप देशोंके मिश्रित लक्षण हों, उस देशको साधारण कहते हैं। उसमें होनेवाले जलको साधारण जल कहते ॥

गुण-जांगजल-रूखा, खारा, हलका, पित्तनाशक, अग्निकारक, कफनाशक, पथ्य और अनेक विकारोंको नष्ट करता है। आनूपजल-अभिष्यन्दि, मधुर, स्निग्ध, घन, भारी, मंदाग्निकर्त्ता, कफकारक, हृदयको प्रिय और अनेक विकारोंको करनेवाला है। साधारणजल-मधुर, अग्निप्रदीपक, शीतल, हलका, तृप्तिकर्ता, रुचिकारक, तृषा, दाह, तथा, त्रिदोषनाशक है ॥ २४-२९ ॥

नादेयजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

नद्या नदस्य वा नीरं नादेयमिति कीर्तितम्। नादेयमुदकं रूक्षं वातलं लघु दीपनम् ॥ ३० ॥ अनभिष्यन्दि विशदं कटुकं कफपित्तनुत्। नद्यः शीघ्रवहा लघ्व्यः सर्वा याश्चामलोदकाः ॥ ३१ ॥ गुर्व्यः शैवलसञ्छन्ना मन्दगाः कलुषाश्च याः। हिमवत्प्रभवाः पथ्या नद्योऽश्माहतपाथसः ॥ ३२ ॥ गङ्गाशतद्रुसरयूयमुनाद्या गुणोत्तमाः। सह्यशैलभवा नद्यो वेणागोदावरीमुखाः ॥ ३३ ॥ कुर्वन्ति प्रायशः कुष्ठमीषद्वातकफावहाः। नदीसरस्तडागस्थे कूपप्रस्रवणादिजे। उदके देशभेदेन गुणान् दोषांश्च लक्षयेत् ॥३४॥

नदी और नदीके जलको नादेय कहते हैं। नादेय जल-रूखा, वातकारक, हलका, अग्निप्रदीपक, अभिष्यन्दि नहीं, विशद, चरपरा और कफ तथा पित्तनाशक है,जो नदियाँ शीघ्र चलनेवाली और निर्मल जलयुक्त हों, वे हलके जलवाली हैं। जो नदियां सिवारसे आच्छादित मंद वेगवाली और मलिन जलयुक्त हैं उनका जल भारी जानना। गंगा, सतलज, सरयू और यमुना आदि नदियां कि-जो हिमालयसे उत्पन्न हुई हैं, वे उत्तम गुणवाली जाननी। बेणा और गोदावरी आदि नदियां

कि-जो सह्याद्रिमेंसे उत्पन्न हुई हैं, वे विशेषकरके कोढ, किंचित् वात तथा कफको करती हैं। नदी, सरोवर, तलाव कुँआ अथवा झरने आदिके जलके गुण दोष उस उस देशके अनुसारही जानने ॥ ३०-३४ ॥

औद्भिदजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

विदार्य भूमिं निम्नां यन्महत्या धारया स्रवेत्। तत्तोयमौद्भिदं नाम वदन्तीति महर्षयः ॥३५॥ औद्भिदं वारि पित्तघ्नमविदाह्यतिशीतलम्। प्रीणनं मधुरं बल्यमीषद्वातकरं लघु ॥ ३६ ॥

जो जल नीचेकी पृथ्वीको फाडकर बडी धारसे बहता है, उसको महर्षियोंने औद्भिद जल कहा है ॥

गुण-औद्भिद जल-पित्तनाशक, दाहकारक नहीं, अत्यन्त शीतल, तृप्तिकारक, मधुर, बलदायक, किंचित् वातकारक और हलका है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

नैर्झरजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

शैलसानुस्रवद्वारिप्रवाहो निर्झरो झरः। स तु प्रस्रवणश्चापि तत्रत्यं नैर्झरं जलम् ॥ ३७ ॥ नैर्झरं रुचिकृन्नीरं कफघ्नं दीपनं लघु। मधुरं कटुपाकं च वातलं स्याच्च पित्तलम् ॥ ३८ ॥

जो जल-पर्वतके झरनोंमेंसे झरता है, वह जलप्रवाह निर्झर, झर और प्रस्रवण कहाता है। यह जल स्रवता है इस कारण इसको नैर्झर कहते हैं ॥

गुण-नैर्झर जल-रुचिकारक, कफनाशक, अग्निप्रदीपक, हलका, मधुर, पाकमें चरपरा, वातकारक और पित्तल है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सारसजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

नद्याः शैलादिरुद्धाया यच्च संश्रित्य तिष्ठति। तत्सरोजलसंज्ञं च तदम्भः सारसं स्मृतम् ॥ ३९ ॥ सारसं सलिलं बल्यं तृष्णाघ्नं मधुरं लघु। रोचनं तुवरं रूक्षं बद्धमूत्र मलं स्मृतम् ॥ ४० ॥

पर्वत आदिसे रुका हुआ नदीका जल स्रवस्रवके जहां एकत्र होता है, उस जलको सारस जल कहते हैं ॥

गुण-सारस (सरोवरका) जल-बलदायक, तृषानाशक, मधुर, हलका, रुचिकारक, रूक्ष, कसैला और मलमूत्रको बांधनेवाला है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

ताडागजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

प्रशस्तभूमिभागस्थो बहुसंवत्सरोषितः। जलाशयस्तडागः स्यात्ताडागं तज्जलं स्मृतम् ॥ ४१ ॥ ताडागमुदकं स्वादु कषायं कटुपाकि च। वातलं बद्धविण्मूत्रमसृक्पित्तकफापहम् ॥ ४२ ॥

अधिक वर्षोंसे संचित उत्तम स्थानपर रहनेवाला जो जलाशय है, उसको तडाग (तालाब) कहते हैं और उसमें रहनेवाले जलको तडाग कहते हैं ॥

गुण-ताडागजल=मधुर, कसैला, पाकमें चरपरा, वातकारक, मूत्र तथा मलको बांधनेवाला, रुधिरविकार, पित्त तथा कफको नष्ट करनेवाला है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

वाप्यजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

पाषाणैरिष्टकाभिर्वा बद्धः कूपो बृहत्तरः। समोपाना भवेद्वापी तज्जलं वाप्यमुच्यते ॥ ४३ ॥ वाप्यं वारि यदि क्षारं पित्तकृत्कफवातहृत्। तदेव मिष्टं कफकृद्वातपित्तहरं भवेत् ॥ ४४ ॥

पत्थरोंसे अथवा ईंटोंसे बहुत बडा कुँआ बनवाकर उसमें आनेजानेकी पैरी बना लेवे, उसको वापी अर्थात् बावडी कहते हैं और उस बावडीके जलको वाप्यजल कहते हैं ॥

गुण-यदि बावडीका जल खारा हो तो पित्तकारक और कफको तथा वातको नष्ट करता है। जो मीठा हो तो कफकारक और वात तथा पित्तको नष्ट करता है ॥ ४३ ॥ ४४

कौपजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

भूमौ खातोऽल्पविस्तारो गम्भीरो मण्डलाकृतिः। बद्धोऽबद्धः सकूपः स्यात्तदम्भः कौपमुच्यते ॥ ४५ ॥ कौपं पयो यदि स्वादु त्रिदोषघ्नं हितं लघु। तत्क्षारं कफवातघ्नं दीपनं पित्तकृत्परम् ॥ ४६ ॥

पृथ्वीमें अल्प बिस्तारवाला, गहरा और गोल आकारवाला, गड्ढा खुदवानेपर जो जल निकल आवे उसको (कुआं) कहते हैं और कुएँके जलको कौपजल कहते हैं। यदि कुएँका जल मीठा हो तो त्रिदोषनाशक, हितकारक और हलका है। जो खारा हो तो-कफवातनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला और अत्यन्त पित्तकारक है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

चौञ्जजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

शिलाकीर्णं स्वयं श्वभ्रं नीलाञ्जनसमोदकम्। लतावितानसंछन्नं चौञ्जमित्यभिधीयते ॥ ४७ ॥ अश्मादिभिरबद्धं यत्तच्चौण्ड्यमिति वा परे । तत्रत्यमुदकं चौञ्जं मुनिभिस्तदुदाहृतम् ॥ ४८ ॥ चौञ्जं वह्निकरं नीरं रूक्षं कफहरं लघु। मधुरं पित्तनुद्रुच्यं पाचनं विशदं स्मृतम् ॥ ४९ ॥

जो गड्ढा शिलाओंसे व्याप्त अञ्जनके सदृश नील जलवाला और अनेक लताओंसे ढका हुआ हो, उसको चौञ्ज कहते हैं । कोई आचार्य कहते हैं कि,-"जो यह शिला आदि से नहीं बंधा हो, उसको चौण्ड्य कहते हैं।" चौञ्जके जलको चौञ्ज्य कहते हैं। चौञ्ज्य जल-अग्निकारक, रूक्ष, कफनाशक, हलका, मधुर, पित्तनाशक, रुचिकारक, पाचन और स्वच्छ है ॥ ४७-४९ ॥

पाल्वलजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

अल्पं सरः पल्वलं स्याद्यत्र चन्द्रर्क्षगे रवौ ॥ ५० ॥ न तिष्ठति जलं किञ्चित्तत्यं वारि पाल्वलम्। पाल्वलं वार्यभिष्यन्दि गुरु स्वादु त्रिदोषकृत् ॥ ५१ ॥

रवौ सूर्ये चन्द्रर्क्षगे कर्कराशिस्थे श्रावणे मासि इति यावत्। चन्द्रर्क्ष मृगशिरस्तत्रगे इति भावः ॥

सूर्य जब मृगशिर नक्षत्रमें आवे तब जिसमें पानी नहीं रहता है, ऐसी छोटी तलैयाको पल्वल कहते हैं, और उसका जल पाल्वल कहाता है ॥

गुण-पाल्वल जल-अभिष्यन्दि, भारी, स्वादिष्ट, और त्रिदोष करनेवाला है ॥५०-५१

विकिरजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

नद्यादिनिकटे भूमिर्या भवेद्वालुकामयी। उद्धाव्यते ततो यत्तु तज्जलं विकिरं विदुः ॥५२॥ विकिरं शीतलं स्वच्छं निर्दोषं लघु च स्मृतम्। तुवरं स्वादु पितघ्नं क्षारं तत्पित्तलं मनाक् ॥ ५३ ॥

नदी आदिके समीपमें जो रेतीली पृथ्वी होती है उसके खुदवानेसे जो जल निकल आता है, उसको विकिर कहते हैं। विकिर जल-शीतल, स्वच्छ, निर्दोष, हलका, कसैला, मधुर और पित्तनाशक है। यह जल जो खारा हो तो किंचित् पित्तकारक है ॥५२॥५३॥

केदारजलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

केदार क्षेत्रमुद्दिष्टं कैदारं तज्जलं स्मृतम्। कैदारं वार्यभिष्यन्दि मधुरं गुरु दोषकृत् ॥ ५४ ॥

केदार नाम खेतका है और केदारके जलको केदार कहते हैं । केदार जल-अभिष्यन्दि, मधुर, भारी और दोषोंको उत्पन्न करनेवाला है ॥ ५४ ॥

वृष्टिजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

वार्षिकं तदहर्वृष्टं भूमिस्थमहितं जलम्। त्रिरात्रमुषितं तत्तु प्रसन्नममृतोपमम् ॥५५॥

पृथ्वीपर पडा हुआ वर्षाका जल प्रथम दिन अपथ्य रूप है। परन्तु तीन दिनके पश्चात् स्वच्छ हुआ जल अमृतके समान है ॥५५॥

प्रत्येकर्तुषु जलगुणानां भेदाः।

हेमन्ते सारसं तोयं ताडागं वा हितं स्मृतम्। हेमन्ते विहितं तोयं शिशिरेऽपि प्रशस्यते ॥ ५६ ॥ वसन्तग्रीष्मयोः कौपं वाप्यं वा नैर्झरं जलम्। नादेयं वारि नादेयं वसन्तग्रीष्मयोर्बुधैः ॥ ५७ ॥ विषवद्वनवृक्षाणां पत्राद्यैर्दूषितं यतः। औद्भिदं वाऽऽन्तरिक्षं वा कौपं वा प्रावृषि स्मृतम् ॥ ५८ ॥ शस्तं शरदि नादेयं नीरमंशूदकं परम्। दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः ॥ ५९ ॥ ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम्। अनभिष्यन्दि निर्दोषमान्तरिक्षजलोपमम् ॥ ६० ॥

रविकरैर्जुष्टमित्युक्ते दिवापदं समस्तदिवसप्राप्त्यर्थम्, शीतकरांशुभिर्जुष्टमित्युक्ते-निशीति पदं समस्तरात्रिप्राप्त्यर्थम् ॥

अन्यच्च--शरदि स्वच्छमुदयादगस्त्यस्याखिलं हितम्। वृद्धसुश्रुतस्तु--पौषे वारि सरोजातं माघे तत्तु तडागजम्। फाल्गुने कूपसम्भूतं चैत्रे चौञ्ज्यं हितं मतम् ॥ ६१ ॥ वैशाखे नैर्झरं नीरं ज्येष्ठे शस्तं तथौद्भिदम्। आषाढे शस्यते कौपं श्रावणे दिव्यमेव च ॥ ६२ ॥ भाद्रे कौप्यं पयः शस्तमाश्विने चौञ्ज्यमेव च। कार्तिके मार्गशीर्षे च जलमात्रं प्रशस्यते ॥ ६३ ॥

हेमन्तऋतुमें तथा शिशिरऋतुमें सरोवरका तथा तडागका जलमें हितकारी है। वसन्तऋतुमें और ग्रीष्मऋतुमें कुएँका, बावडीका तथा पर्वतके झरनेका जल हितकारी है। वसन्तमें तथ ग्रीष्ममें विद्वानोंको नदीका जल नहीं पीना चाहिये क्योंकि-उस समय वह वनके विषैले वृक्षोंके पत्तों आदिसे दूषित हुआ होता है। वर्षाऋतुमें औद्भिद, आन्तरिक्ष अथवा कूपका जल पीना चाहिये। शरदऋतुमें नदीका जल तथा जिस जलाशयके ऊपर सम्पूर्ण दिन सूर्यकी किरणें पडती हों और रात्रिमें चन्द्रमाकी किरणें पडती हों उस जलाशयका पानी हितकारी है, ऐसे जलाशयके जलको अंशूदक कहते हैं। अंशूदक जल-स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, अभिष्यन्दी नहीं, निर्दोष, अन्तरिक्ष जलके सदृश, बलकारक, रसायनरूप, मेधाको हितकारी, शीतल, हलका और अमृतके सदृश है। कोई ऐसा भी कहते हैं कि-"शरदऋतुमें अगस्त्यका उदय होनेपर सब जल हितकारी है" वृद्धसुश्रुत कहते हैं कि-"पौषमासमें सरोवरका जल, माघ मासमें तडागका, फाल्गुनमें कुएँका, चैत्रमें चौञ्जका, वैशाखमें झरनेका, ज्येष्ठमें औद्भिदका, आषाढमें कुएँका श्रावणमें अन्तरिक्षका, भाद्रपदमें कुएँका, आश्विनमें चौञ्ज्यका और कार्तिकमें तथा मार्गशिरमें सर्व जलाशयोंका जल हितकारी है ॥५६-६३

जलग्रहणस्य समयः।

भौमानामम्भसां प्रायो ग्रहणं प्रातरिष्यते। शीतत्वं निर्मलत्वञ्च यतस्तेषु मतो गुणः ॥ ६४ ॥

पृथ्वी परका जल-नदी, तालाव, सरोवर आदिका जल अधिक करके प्रातःकालमें भर लेना चाहिये क्योंकि, उस समय उसमें शीतलता और निर्मलता ये दो गुण होते हैं ॥६४॥

जलपानस्य विधिः।

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्च स एव दोषः। तस्मान्नरो वह्निविवर्द्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिवेदभूरि ॥ ६५ ॥

अधिक जल पिये तो भलीभाँति अन्न नहीं पचता है और जल नहीं पिये तो भी अन्न नहीं पचता है, इस कारण मनुष्यको अग्नि

बढानेके लिये जल थोडा २ बार बार पीना चाहिये ॥ ६५ ॥

शीतलजलपानविषयः।

मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये। श्रमे भ्रमे विदग्धेऽन्ने तमके वमथौ तथा। ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमम्बु प्रशस्यते ॥ ६६ ॥

मूर्च्छा, पित्त, गरमी, दाह, विष, रक्तविकार, मदात्यय, परिश्रम, भ्रम, तमकश्वास, वमन और ऊर्ध्व गत रक्तपित्त इन रोगोंमें तथा जिनका अन्न जलगया हो, उनको शीतल जल पीना चाहिये ॥ ६६ ॥

शीतलजलस्य निषेधः।

पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे। आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नवज्वरे ॥ ६७ ॥ अरुचिग्रहणीगुल्मश्वासकासेषु विद्रधौ। हिक्कायां स्नेहपाने च शीताम्बु परिवर्जयेत् ॥ ६८ ॥

पसलीके दर्दमें, प्रतिश्यायमें, वायु सम्बन्धी रोगोंमें, गलग्रहरोगमें, अफारेमें, कोष्ठबद्धमें, जुलाव लेनेपर, नवज्वरमें अरुचिमें, संग्रहणीमें, गुल्मरोगमें, श्वास, खांसीमें, विद्रधिमें हिचकी और स्नेह तेल आदिके पीनेमें शीतल जल वर्जित है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अल्पजलपानविषयः।

अरोचके प्रतिश्याये मन्देऽग्नौ श्वयथौ क्षये। मुखप्रसेके जठरे कुष्ठे नेत्रामये ज्वरे। व्रणे च मधुमेहे च पिबेत्पानीयमल्पकम् ॥ ६९ ॥

अरुचि, प्रतिश्याय, मन्दाग्नि, शोथ, क्षय, मुखसे जल बहना, उदररोग, कोढ, नेत्ररोग, ज्वर, व्रण, मधुमेह इनमें थोडा जल पीना चाहिये ॥ ६९ ॥

जलपानस्यावश्यकता।

जीवनं जीविनां जीवो जगत्सर्वस्तु तन्मयम्। नातोऽत्यन्तनिषेधेन कदाचिद्वारि वीर्यते ॥ ७० ॥ हारीतश्च -तृषा गरीयसी घोरा सद्यः प्राणविनाशिनी। तस्माद्देयं तृषार्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥ ७१ ॥ तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान् विमुञ्चति। अतः सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वर्जयेत् ॥ ७२ ॥

जल-प्राणियोंका जीवनरूप है और सम्पूर्ण जगत् जलसे भरा हुआ है, इस कारण किसी समयमें भी जल पीनेका अत्यन्त अवरोध नहीं करना चाहिये। हारीत मुनिने कहा है कि- 'तृषा अत्यन्त भयंकर है, क्योंकि तत्काल प्राणोंको नष्ट कर देती है; इस कारण तृषित मनुष्यको जल देना चाहिये, जिससे प्राण स्थिर रहें।'' तृषित (प्यासे) मनुष्यको मोह उत्पन्न होता है और मोहसे प्राण जाते हैं, इस कारण किसी समयमें भी जलका त्याग नहीं करे ॥ ७०-७२ ॥

गुणकारि जलम्।

अगन्धमव्यक्तरसं सुशीतं तर्षनाशनम्। स्वच्छं लघु च हृद्यञ्च तोयं गुणवदुच्यते ॥ ७३ ॥

जो जल-दुर्गन्धरहित कोई रसयुक्त न हो, बहुत शीतल, तृषानाशक, निर्मल, हलका और हृदयको प्रिय हो, वह जल गुणकारी जानना ॥ ७३ ॥

पिच्छिलं कृमिलं क्लिन्नं पर्णशैवालकर्दमैः। विवर्णं विरसं सान्द्रं दुर्गन्धं निहतं जलम् ॥ ७४ ॥ कलुषं छन्नमम्भोजपर्णनीलीतृणादिभिः। दुरपर्शनमसंस्पृष्टं सौरचान्द्रमरीचिभिः ॥ ७५ ॥ अनार्त्तवं वार्षिकं तु प्रथमं तच्च भूमिगम्। व्यापन्नं परिहर्तव्यं सर्वदोषप्रकोपनम् ॥ ७६ ॥

तत्कुर्यात्स्नानपानाभ्यां तृष्णाऽऽध्मानचिरज्वरान् । कासाग्निमान्द्याभिष्यन्दकण्डूगण्डादिकं तथा ॥ ७७ ॥

जो जल–पिच्छिल, कृमियुक्त, पत्ते सिवार तथा कीचसे खराब हुआ, वर्णरहित रसरहित, गाढा अथवा दुर्गन्धयुक्त हो, वह अहितकारी है। वैसे ही गन्दला, कमलके पत्ते सिवार तथा तृण आदिसे आच्छादित, बुरे स्थानका, सूर्य तथा चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे रहित, विना ऋतु (पौष आदि महीनोंमें) वर्षनेपर जो तीन दिनतक न रक्खा रहा हो और बिगडा हुआ जल छोड देना चाहिये, क्योंकि, उस जलसे सम्पूर्ण दोष कुपित होते हैं। ऐसे जलमें स्नान करनेसे तथा पीनेसे तृषा, अफारा, जीर्ण ज्वर, खांसी, अग्निकी मन्दता, अभिष्यन्द, कण्डू, गलगण्ड आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ७४–७७ ॥

दूषितजलस्य निर्दोषकारको विधिः।

निन्दितं चापि पानीयं क्वथितं सूर्यतापितम् । सुवर्णं रजतं लौहं पाषाणं सिकतामपि ॥ ७८ ॥ भृशं सन्ताप्य निर्वाप्य सप्तधा साधितं तथा । कर्पूरजातिपुन्नागपाटलादिसुवासितम् ॥ ७९ ॥ शुचिसान्द्रपटस्रावि क्षुद्रजन्तुविवर्जितम् । स्वच्छं कनकमुक्ताद्यैः शुद्धं स्याद्दोषवर्जितम् ॥ ८० ॥ पर्णपूलबिसग्रन्थिमुक्ताकनशैवलै । गोमेदेन च वस्त्रेण कुर्यादम्बुप्रसादनम् ॥ ८१ ॥

दूषित जलको उष्ण कर लेनेसे अथवा सूर्यकी किरणोंसे तपानेसे अथवा सुवर्ण, चांदी लोहा, पत्थर तथा रेतको बहुत तपाकर सात बार बुझानेसे, कपूर, चमेली, केशर, पाढर आदि द्वारा सुवासित करनेसे, पवित्र वस्त्रमें छानकर जिससे छोटे २ जीव निकल जांय इस प्रकार स्वच्छ करनेसे वा सुवर्ण, मोती आदि द्वारा स्वच्छ करनेसे शुद्ध और दोषरहित हो जाता है। पत्ते जड कमलकी नालसे मोती, सुवर्ण, शैवाल, गोमेद और वस्त्रसे जल को स्वच्छ करना चाहिये ॥ ७८–८१ ॥

पीतजलस्य पाककालाः।

शीतं जलं जीर्यति यामयुग्माद्यामैकमात्राच्छतशीतलश्च । तदर्द्धमात्रेण श्रृतं कदुष्णं पयःप्रपाके त्रय एव कालाः॥८२॥

इति श्रीभावप्रकाशे वारिवर्गः।

शीतल जल पिया हुआ दो प्रहरमें पचता है, गरमकरके शीतल किया हुआ जल पीनेसे एक प्रहरमें पचता है और किञ्चित् उष्ण पिया हुआ पानी चार घडीमें पचता है, इस प्रकार जल पचनेके तीन ही समय हैं ॥ ८२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसञ्जीवनीभाषाटीकायां वारिवर्गः ॥

अथ दुग्धवर्गः ।

दुग्धनामानि गुणाश्च ।

दुग्धं क्षीरं पयःस्तन्यं बालजीवनमित्यपि । दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वातपित्तहरं सरम् ॥ १ ॥ सद्यःशुक्रकरं शीतं सात्म्यं सर्वशरीरिणाम् । जीवनं बृंहणं बल्यं मेध्यं वाजीकरं परम् ॥२॥ वयःस्थापनमायुष्यं सन्धिकारि रसायनम् । विरेकवान्तिवस्तीनां सेव्यमोजोविवर्द्धनम् ॥३॥ जीर्णज्वरे मनोरोगे शोषमूर्च्छाभ्रमेषु च । ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दाहे तृषि हृदामये ॥ ४ ॥ शूलोदावर्तगुल्मेषु वस्तिरोगे गुदाङ्कुरे । रक्तपित्तेऽतिसारे च योनिरोगे श्रमे क्लमे ॥५॥ गर्भस्रावे च सततं हितं मुनिवरैः स्मृतम् । बालवृद्धक्षत-

क्षीणाः क्षुद्व्यवायकृशाश्च ये । तेभ्यः सदाऽतिशयितं हितमेतदुदाहृतम् ॥ ६ ॥

दुग्ध, क्षीर, पय, स्तन्य, बालजीवन, (पीयूष, ऊधस्य, अमृत, दोहज, अवदोह, और दोहापनय) ये दूधके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-म०-दूध । गु०-बं०-दुध । क०-हाल्लु । ते०-पालु । फा०-शीरे । अ०-जुवन । इं०-मिल्क Milk लै०-लक्टस् Laetus ता०-पाल्लु ।

गुण-दूध-मधुर, स्निग्ध, वात पित्तनाशक दस्तावर, वीर्यको शीघ्र उत्पन्न करनेवाला शीतल, सर्वप्राणियोंको अनुकूल, जीवनरूप, पुष्टिकारक, बल- दायक, बुद्धिको उत्तम करनेवाला, अत्यन्त वाजीकरण, आयुको स्थापन करनेवाला, आयुष्य, सन्धान कारक, रसायन और विरेचन, वमन क्रिया तथा वस्तिक्रिया-वालोंके सेवन योग्य और ओजवर्द्धक है। जीर्णज्वर, मानसिकरोग (उन्मादादिक,) शोष, मूर्च्छा भ्रम, संग्रहणी, पाण्डुरोग- दाह, तृषा, हृदयरोग, शूल, उदावर्तरोग गुल्म, वस्तिरोग, बवासीर, रक्तपित्त, अतीसार, योनिरोग, परिश्रम, ग्लानि और गर्भस्राव इनमें मुनियोंने दूध सर्वदा हितकारी कहा है। जो वालक, वृद्ध, क्षतवाला, क्षीण हुआ, भूँखसे दुर्बल हुआ अथवा मैथुनसे दुर्बल हुआ है, उनको दूध सर्वदा अत्यन्त हितकारी है ॥ १—६ ॥

गोदुग्धगुणाः ।

गव्यं दुग्धं विशेषेण मधुरं रसपाकयोः । शीतलं स्तन्यकृत्स्निग्धं वातपित्तास्रनाशनम् ॥ ७ ॥ दोषधातुमालस्रोतःकिञ्चित्क्लेदकरं गुरु । जरासमस्तरोगाणां शान्तिकृत्सेविनां सदा ॥ ८ ॥ कृष्णाया गोर्भवेद्दुग्धं वातहारि गुणाधिकम् । पीताया हरते पित्तं तथा वातहरं भवेत् । श्लेष्मलं गुरु शुक्लाया रक्ता चित्रा च वातहृत् ॥ ९ ॥

गायका दूध-विशेष करके रसमें तथा पाकमें मधुर, शीतल, दुग्धवर्द्धक, स्निग्ध, वात, पित्त तथा रक्तविकार नाशक है। दोष, धातु मल तथा नाडियोंको किंचित् आर्द्र करनेवाला, भारी और सर्वदा सेवन करनेवालोंके सम्पूर्ण रोग तथा वृद्धताको नष्ट करता है ॥

कालीगायका दूध-वातनाशक और अधिक गुणवाला है। पीली गायका दूध-पित्त तथा वातनाशक है। सफेद गायका दूध-कफकारक तथा भारी है। लाल तथा चितकबरी गायका दूध-वातनाशक है ॥ ७ ॥ ८ ॥

सद्यः प्रसूताया विवत्सायाश्च गोर्दुग्धगुणाः ।

बालवत्सविवत्सानां गवां दुग्धं त्रिदोषकृत् ॥ १० ॥

छोटे बछडेवाली तथा विनाबछडेवाली गायका दूध त्रिदोषकारक है ॥ १० ॥

बष्कयिण्या गोः (बाखरी) (गायके) दुग्धगुणाः ।

बष्कयिण्यास्त्रिदोषघ्नं तर्पणं बलकृत्पयः ॥ ११ ॥

बाखरी (बकना)-गायका दूध-त्रिदोषनाशक, तृप्तिकारक और बलदायक है ॥ ११ ॥

देशविशेषेण गोदुग्धगुणाः ।

जाङ्गलानूपशैलेषु चरन्तीनां यथोत्तरम् । पयो गुरुतरं स्नेहो यथाहारं प्रवर्तते ॥ १२ ॥

जांगलदेश, अनूपदेश और पर्वतोंमें चरनेवाली गायोंका दूध-एकसे एक अधिक भारी है और जिस वस्तुका गायें आहार करती हैं। उसी वस्तुका दूधमें चिकनापन होता है ॥ १२ ॥

आहारविशेषेण गोदुग्धगुणाः ।

स्वल्पान्नभक्षणाज्जातं क्षीरं गुरु कफप्रदम् । तत्तु बल्यं परं वृष्यं स्वस्थानां गुणदायकम् । पलालतृणकार्पासबीजजातं गुणैर्हितम् ॥ १३ ॥

जो गायें थोडा अन्न खाती हैं, इससे उनका दूध भारी, कफकारक, वलवर्द्धक अत्यन्त वृष्य और नीरोग मनुष्योंको गुणदायक है। जो पलाल, करवी, घास, बिनौला आदि खाती हैं, उनका दूध अत्यन्त हितकरी जानना ॥ १३ ॥

माहिषदुग्धगुणाः।

माहिषं मधुरं गव्यात् स्निग्धं शुक्रकरं गुरु। निद्राकरमभिष्यन्दि क्षुधाधिक्यकरं हिमम् ॥ १४ ॥

भैंसका दूध–गायके दूधसे अधिक मधुर, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, भारी, निद्रादायक, कफकारी, क्षुधावर्द्धक और शीतल है ॥ १४ ॥

अजादुग्धगुणाः।

छागं कषायं मधुरं शीतं ग्राहि तथा लघु। रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम् ॥ १५ ॥ अजानामल्पकायत्वात्कटुतिक्तनिषेवणात्। स्तोकाम्बुपानाद्व्यायामात्सर्वरोगापहंपयः ॥ १६ ॥

बकरीका दूध–कसैला, मधुर, शीतल, ग्राही, हलका रक्तपित्त, अतीसार, क्षय, खाँसी तथा ज्वरको नष्ट करता है, बकरी चरपरे तथा कडवे पदार्थोंको खाती है. पानी थोडा पीती है और फिरनेका अधिक परिश्रम करती है, इस कारण बकरीका दूध सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

मृग्यादि (हिरनी आदि) दुग्धगुणाः।

मृगीणां जाङ्गलोत्थानामजाक्षीरगुणं पयः ॥ १७ ॥

जङ्गलमें उत्पन्न हुई हिरनी आदिका दूध बकरीके दूधके सदृशही है ॥ १७ ॥

आविकदुग्धगुणाः।

आविकं लवणं स्वादु स्निग्धोष्णं चाश्मरीप्रणुत्। अहृद्यं तर्पणं वृष्यं शुक्रपित्तकफप्रदम्। गुरु कासेऽनिलोद्भूते केवले चानिले वरम् ॥ १८ ॥

भेडका दूध–खारी, स्वादिष्ठ. स्निग्ध, गरम, पथरीको नष्ट करनेवाला, हृदयको प्रिय नहीं, तृप्तिदायक, वृष्य, वीर्य, कफ पित्तकारक, वातकी खाँसी वा केवल वातरोगमें हितकारी है ॥ १८ ॥

घोटकीदुग्धगुणाः।

रूक्षोष्णं वडवाक्षीरं बल्यं शोषानिलापहम्। अम्लं पटु लघु स्वादु सर्वमैकशफं तथा ॥ १९ ॥

घोडीका दूध–रूखा, गरम, बलदायक, शोष तथा वातनाशक, खट्टा, खारा, हलका और स्वादिष्ठ है, एक खुरवाले सब पशुओंका दूध इसी तरह गुणयुक्त है ॥ १९ ॥

औष्ट्रदुग्धगुणाः।

औष्ट्रं दुग्धं लघु स्वादु लवणं दीपनं तथा। कृमिकुष्ठकफानाहशोथोदरहरं सरम् ॥ २० ॥

ऊँटनीका दूध–हलका, मधुर, खारा, अग्निप्रदीपक, दस्तावर और कृमि, कोढ कफ, अफारा, सूजन तथा उदररोग नाशक है॥२०॥

हस्तिनीदुग्धगुणाः।

बृंहणं हस्तिनीदुग्धं मधुरं तुवरं गुरु। वृष्यं बल्यं हिमं स्निग्धं चक्षुष्यं स्थिरताकरम् ॥ २१ ॥

हस्तिनीका दूध–पुष्टिकारक, मधुर, कसैला, भारी, वृष्य, बलदायक, शीतल, स्निग्ध, नेत्रोंको हितकारी और दृढता कारक है॥२१॥

स्त्रीदुग्धगुणाः।

नार्या लघु पयः शीतं दीपनं वातपित्तजित्। चक्षुःशूलाभिघातघ्नं नस्याश्च्योतनयोर्वरम् ॥ २२ ॥

स्त्रीका दूध–हलका, शीतल, अग्निको दीपन करनेवाला और वात, पित्त नेत्रोंकाशूल तथा अभिघातनाशक है नस्य देनेमें तथा आश्च्योतनकार्यमें उत्तम है ॥ २२ ॥

धारोष्णादिदुग्धगुणाः ।

धारोष्णं गोपयो बल्यं लघु शीतं सुधासमम् । दीपनञ्च त्रिदोषघ्नं तद्धाराशिशिरं त्यजेत् ॥ २३ ॥ धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतन्तु माहिषम् । शृतोष्णमाविकं पथ्यं शृतशीतमजापयः ॥ २४ ॥ आमं क्षीरमभिष्यन्दि गुरु श्लेष्मामवर्द्धनम् । ज्ञेयं सर्वमपथ्यं तु गव्यमाहिषवर्जितम् ॥ २५ ॥ नारीक्षीरं त्वाममेव हितं न तु शृतं हितम् । शृतोष्णं कफवातघ्नं शृतशीतन्तु पित्तनुत् ॥ २६ ॥ अर्द्धोदकं क्षीरशिष्टमामाल्लघुतरं पयः । जलेन रहितं दुग्धमतिपक्कं यथा यथा । तथा तथा गुरु स्निग्धं वृष्यं बलविवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

गायका धारोष्ण दूध—बलदायक, हलका, शीतल, अमृतके सदृश, अग्निको दीपन करनेवाला और त्रिदोषनाशक है। गायका दूध दुहकर शीतल होगया हो तो अग्निसे गरम करके उसका उपयोग करें । गायका दूध धारोष्ण और भैंसका दूध दुहकर पीछे शीतल होगया हो, वह प्रशंसित है। भेडका दूध गरम और बकरीका दूध औटाहिकर शीतल हुआ पथ्य हे। कच्चा दूध—अभिष्यन्दी, भारी कफ तथा आमवर्द्धक है, इस कारण गाय तथा भैंस के अतिरिक्त सब कच्चे दूध अपथ्य जानने। स्त्रीका दूध तो कच्चाही हितकारी है। परन्तु गरम किया हुआ अहितकारी। गरम किया हुआ दूध कफ, वातनाशक और गरम करके शीतल किया हुआ दूध पित्तनाशक है। दूधमें आधा जल डालकर उसको औटावें, जब केवल दूधही शेष रहे तब वह दूध=कच्चेसे भी अधिक हलका हे। जलरहित दूध जितना जितना अधिक पकावे उतना उतनाही भारी स्निग्ध, वृष्य और बलवर्द्धक होता है २३-२७

पीयूषकिलाटक्षीरशाकतक्रपिण्ड-मोरटानां लक्षणं गुणाश्च ।

क्षीरं तत्कालसूताया घनं पीयूषमुच्यते ॥ २८ ॥ नष्टदुग्धस्य पक्कस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाटकः ॥ २९ ॥

किलाटकः 'खरेटा' इति लोके ।

अपक्कमेव यन्नष्टं क्षीरक्षाकं हि तत्पयः ३० ॥

क्षीरशाकं 'तुषिंभरा' इति लोके ।

दध्ना तक्रेण वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवाससा । द्रवभावेन सहितं तक्रपिण्डः स उच्यते ॥ ३१ ॥ नष्टदुग्धं भवेन्नीरं मोरटं जैज्जटोऽब्रवीत् पीयूषश्च किलाटश्च क्षीरशाकं तथैव च ॥ ३२ ॥ तक्रपिण्ड इमे वृष्या बृंहणा बलवर्द्धनाः । गुरवः श्लेष्मला हृद्या वातपित्तविनाशनाः॥ ३३ ॥ दीप्ताग्नीनां विनिद्राणां विद्रधौ चाभिपूजिताः । मुखशोषतृषादाहरक्तपित्तज्वरप्रणुत् । लघुर्बलकरो रुच्यो मोरटः स्यात्सितायुतः ॥ ३४ ॥

तत्काल व्याई हुई गाय भैंसके दूधको पीयूष अर्थात् खीश कहते हैं। जो दूध जलकर नष्ट होगया हो या पिंड बन गया हो, उसको किलाट अर्थात् मावा (खोवा) कहते हैं। जो दूध कच्चाही जमकर मावेके सदृश होगया हो उसको क्षीर शाक कहते है। दूधको दही अथवा छांछसे जमाकर स्वच्छ वस्त्रमें बांध उसके जलको निकालनेसे जो पिण्ड बँध जाता है, उसमें यदि जलका अंश हो तो तक्रपिंड कहाता है। फट जानेपर दूधमेंसे जो जल निकलता है, उसको मोरहट कहते हैं, ऐसा जैज्जट आचार्य कहते हैं ॥

गुण—पीयूष, किलाट, क्षीरशाक और तक्रपिण्ड ये—वृष्य, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, भारी, कफकारक, हृदयको प्रिय, वात तथा पित्तना-

शक और जिनकी अग्नि प्रदीप्त हैं, जिनको निद्रा नहीं आती, उनको तथा विद्रधिरोगवालेको बहुत उत्तम है। बूरा सहित मोरट-हलका, बलदायक, रुचिकारक और मुखशोष, तृषा, दाह, रक्तपित्त तथा ज्वरनाशक है ॥ २८-३४ ॥

सन्तानिकागुणाः।

सन्तानिका गुरुः शीता वृष्या पित्तास्रवातनुत्। तर्पणी बृंहणी स्निग्धा बलासबलशुक्रला ॥ ३५ ॥

सन्तानिका, (मलाई)-भारी, शीतल, वृष्य, पित्त, रक्तविकार तथा वातनाशक है। तृप्तिकारक, पुष्टिदायक, स्निग्ध और कफ, बल तथा वीर्यवर्द्धक है ॥ ३५ ॥

खण्डादियुक्तस्य दुग्धस्य गुणाः

खण्डेन सहितं दुग्धं कफकृत्पवनापहम्। सितासितोपलायुक्तं शुक्रलं त्रिमलापहम्। सगुडं मूत्रकृच्छ्रघ्नं पित्तश्लेष्मकरं परम् ॥ ३६ ॥

खांड पडा हुआ दूध-कफकारक और वातनाशक है, बूरा अथवा मिश्री पडा हुआ दूध-वीर्यवर्धक और त्रिदोषनाशक है। गुड पडा हुआ दूध-मूत्रकृच्छ्रनाशक पित्त तथा कफको अत्यन्त करनेवाला है ॥ ३६ ॥

प्रभातादिसमये दुग्धपानगुणाः।

रात्रौ चन्द्रगुणाधिक्याद् व्यायामाकरणात्तथा। प्राभातिकं तदा प्रायः प्रादोषादूगुरु शीतलम् ॥ ३७ ॥ दिवाकरकराघाताद्व्यायामानलसेवनात्। प्राभातिकात्तु प्रादोषं लघु वातकफापहम् ॥ ३८ ॥

रात्रिमें चन्द्रमाके गुण अधिक होनेसे परिश्रम नहीं होनेसे प्रभातकालका दूध अधिक करके सन्ध्याकालके दूधसे भारी और शीतल है। दिनमें सूर्यकी किरणोंका ताप होनेसे और परिश्रमकी गरमीका सेवन होनेसे संध्याका दूध प्रभातके दूधसे हलका, वात तथा कफको नष्ट करता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

दुग्धसेवनस्य समयविशेषेण गुणाः।

वृष्यं बृंहणमग्निदीपनकरं पूर्वाह्णकाले पयो मध्याह्ने तु बलावहं कफहरं पित्तापहं दीपनम्। बाले वृद्धिकरं क्षयक्षयकरं वृद्धेषु रेतोवहं रात्रौ पथ्यमनेकदोषशमनं क्षीरं सदा सेव्यते ॥ ३९ ॥ वदन्ति पेयं निशि केवलं पयो भोज्यं न तेनेह सहौदनादिकम्। भवत्यजीर्णं न शयीत शर्वरीं क्षीरस्य पानस्य न शेषमुत्सृजेत् ॥ ४० ॥ विदाहीन्यन्नपानानि दिवा भुङ्क्ते हि यन्नरः। तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं रात्रौ क्षीरं सदा पिबेत् ॥ ४१ ॥ दीप्तानले कृशे पुंसि वातबद्धे पयःप्रिये। मतं हिततमं पथ्यं सद्यः शुक्रकरं यतः ॥ ४२ ॥

पूर्वाह्ण कालमें दूधका पीना-वृष्य, पुष्टिकारक और अग्निप्रदीपक है। मध्याह्नकालमें दूधका सेवन-बलवर्द्धक, कफ, पित्तनाशक और अग्निको दीपन करता है। रात्रिके समय दूधका सेवन-बालकोंको वृद्धि कारक क्षयका नाश करनेवाला, वृद्ध लोगोंको वीर्यवर्द्धक, अत्यन्त पथ्य, अनेक दोषोंको शान्त करनेवाला और अग्निको हितकारी है। रात्रिमें केवल दूधही पीना चाहिये, उसके साथ भोजन आदि न करे ऐसा, भी कोई २ कहते हैं कि, रात्रिमें दूधके साथ भोजन करनेसे अजीर्ण होता है और निद्रा नहीं आती है। पीनेके लिये पात्रमें लिया हुआ दूध सब पीजावे, परन्तु उसमेंसे छोडे नहीं। दिनमें जो दाहकारक अन्नआदि सेवन किया हो, उसके दाह शांति करनेके लिये नित्य रात्रिमें दूध पीना चाहिये। जिनकी अग्नि प्रदीप्त है उनको, दुर्बल शरीरवालोंको बालकको, युवा तथा वृद्धको दूध अत्यन्त हितकारी। पथ्य और तत्काल वीर्यवर्द्धक है ॥ ३९-४२ ॥

मथितदुग्धस्य गुणाः ।

क्षीरं गव्यामथाजं वा कोष्णं दण्डाहतं पिबेत् । लघु वृष्यं ज्वरहरं वातपित्तकफापहम् ॥ ४३ ॥

गाय अथवा बकरीका दूध रईसे मथकर किंचित् उष्ण करके पिये तो हलका, वृष्य, ज्वरनाशक और वात, पित्त तथा कफनाशक है ॥ ४३ ॥

दुग्धफेन (झाग) गुणाः ।

गोदुग्धप्रभवं किंवा छागीदुग्धसमुद्भवम् । भवेत्कोष्णं त्रिदोषघ्नं रोचनं बलवर्द्धनम् ॥ ४४ ॥ वह्निवृद्धिकरं वृष्यं सद्यस्तृप्तिकरं लघु । अतीसारेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ॥ ४५ ॥

गाय अथवा बकरीका दूधका झाग-त्रिदोषनाशक, रुचिकारक, बलवर्द्धक, अग्निदीपक, वृष्य, शीघ्रतृप्तिकारक और हलका है । यह फेन-अतिसारमें, अग्निकी मन्दतामें तथा जीर्ण ज्वरमें बहुत उत्तम है ॥ ४५ ॥

निन्दितं दुग्धम् ।

विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गन्धं ग्रथितं पयः । वर्जयेदम्ललवणयुक्तं बुद्ध्यादिहृद्यते ॥ ४६ ॥

इतिभावप्रकाशे दुग्धवर्गः ।

जो दूध-विवर्ण, विरस (बुरे स्वादका), खट्टा, दुर्गन्धित, फटा हुआ, अम्ल पदार्थ अथवा खारे पदार्थसे युक्त हो, उसको त्याग दे । क्योंकि इससे बुद्धि आदि नष्ट होती है ४६

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीवनीभाषाटीकायां दुग्धवर्गः॥

अथ दधिवर्गः ।

दध्नो नामानि गुणाश्च ॥

दध्युष्णं दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु । पाकेऽम्लं श्वासपित्तास्रशोथमेदःकफप्रदम् ॥ १ ॥ मूत्रकृच्छ्रे प्रतिश्याये शीतगे विषमज्वरेअतीसारेऽरुचौ कार्श्ये शस्यते बलशुक्रकृत् ॥ २ ॥

नाम । सं०-दधि । हिन्दी-म०-गु०-दही । क०-मोसर । तै०-पेरुगु । फा०-दोग । अ०-जुगरात । इं०-करड्लेडमिल्क Curdled Milk, ता०-तइरु ।

गुण-दही-गरम, अग्निदीपक, स्निग्ध, किंचित् कसैला, भारी, पाकमें खट्टा, श्वास, पित्त, रक्तविकार, सूजन, मेद तथा कफकारक है । यह दही-मूत्रकृच्छ्र प्रतिश्याय, शीतविषमज्वर, अतीसार, अरुचि और दुर्बलता इन सबमें अत्यन्त हितकारी, बल तथा वीर्यवर्द्धक है ॥ १ ॥ २ ॥

दधिभेदाः ।

आदौ मन्दं ततः स्वादु स्वाद्वम्लश्च ततः परम् । अम्लं चतुर्थमत्यम्लं पञ्चमं दधि पञ्चधा ॥ ३ ॥

मन्द, स्वादु, स्वाद्वम्ल, अम्ल और अत्यम्ल इस प्रकार दहीके पांच भेद हैं ॥ ३ ॥

मन्दादिदध्नो लक्षणं गुणाश्च ।

मन्दं दुग्धं यदव्यक्तरसं किञ्चिद्घनं भवेत् । मन्दं स्यात्सृष्टविण्मूत्रं दोषत्रयविदाहकृत् ॥ ४ ॥ यत्सम्यग्घनतां यातं व्यक्तस्वादुरसं भवेत् । अव्यक्ताम्लरसं तत्तु स्वादु विज्ञैरुदाहृतम् ॥ ५ ॥ स्वादु स्यादत्यभिष्यन्दि वृष्यं मेदःकफावहम् । वातघ्नं मधुरं पाके रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ ॥ ६ ॥ स्वाद्वम्लं मधुरं सान्द्रं कषायानुरसं भवेत् । स्वाद्वम्लस्य गुणा ज्ञेयाः

सामान्यदधिवर्जनैः ॥ ७ ॥ यत्तिरोहित-माधुर्यं व्यक्ताम्लत्वं तदम्लकम् । अम्लं तु दीपनं पित्तरक्तश्लेष्मविवर्द्धनम् ॥ ८ ॥ तदत्यम्लं दन्तरोमहर्षकण्ठादिदाहकृत् । अत्यम्लं दीपनं रक्तवातपित्तकरं परं ॥९॥

जो दही-दूधके सदृश अव्यक्तरसवाला और किंचित् गाढा हो, उसको मन्द जानना। मन्द दही-मल तथा मूत्रको प्रवर्त्तनेवाला, त्रिदोष और दाहको उत्पन्न करता है ॥

जो दही-भलीभांति गाढा हुआ, स्फुट हुआ स्वादुरसयुक्त अव्यक्त अम्लरसयुक्त हो,उसको विद्वान् लोग स्वादु कहते हैं । स्वादु दही-अत्यन्त अभिष्यन्दी, मैथुनशक्तिवर्द्धक, मेद तथा कफवर्द्धक, वातनाशक, पाकमें मधुर और रक्तपित्तको स्वच्छ करनेवाला है। जो दही-खट्टा, मीठा और गाढा कषायरसयुक्त है, इसको स्वाद्वम्ल कहते हैं। इस दहीके गुण सामान्य दहीके सदृश जानने ॥ जिस दहीमेंसे मिठास जाती रही हो और खट्टापन प्रगट हो, उस दहीको अम्ल जानना। अम्ल दही अग्नि-प्रदीपक और पित्तरक्त तथा कफवर्द्धक है ॥ जिस दहीसे दांत हर्षित होजायँ, रोम खडे हो जायँ और कण्ठ आदिमें दाह होजाय, उसको अत्यम्ल कहते हैं। अत्यन्त खट्टा दही-अग्नि-प्रदीपक रक्तविकार, वात तथा पित्तको अत्यंत उत्पन्न करता है ॥ ४-९ ॥

गोदधिगुणाः ।

गव्यं दधि विशेषेण स्वाद्वम्लं च रुचि-प्रदम् । पवित्रं दीपनं हृद्यं पुष्टिकृत्पवना-पहम् । उक्तं दध्नामशेषाणां मध्ये गव्यं गुणाधिकम् ॥ १० ॥

गायका दही-विशेष करके मीठा, खट्टा, रुचिकारक, पवित्र, अग्निप्रदीपक, हृदयको प्रिय, पुष्टिकारक और वातनाशक है। सम्पूर्ण दहियोंमें गायका दही अधिक गुणवाला जानना ॥ १० ॥

माहिषदधिगुणाः ।

माहिषं दधि सुस्निग्धं श्लेष्मलं वातपित्त-नुत् । स्वादुपाकमभिष्यन्दि वृष्यं गुर्वस्र-दूषकम् ॥ ११ ॥

भैंसका दही-बहुत स्निग्ध, कफकारक' वात पित्तनाशक, पाकमें मीठा, अभिष्यन्दि, वृष्य, भारी और रक्तविकारनाशक है ॥११॥

अजादधिगुणाः ।

आजं दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोषत्रया-पहम् । शस्यते श्वासकासार्शःक्षयकार्श्येषु दीपनम् ॥ १२ ॥

बकरीका दही-उत्तम, ग्राही, हलका,त्रिदो-षनाशक, अग्निप्रदीपक श्वास, खांसी, बवा-सीर, क्षय तथा दुर्बलतामें हितकारी है ॥१२॥

पक्वदुग्धजातस्य दध्नो गुणाः ।

पक्वदुग्धभवं रुच्यं दधि स्निग्धं गुणोत्त-मम् । पित्तानिलापहं सर्वधात्वग्निबलवर्द्ध-नम् ॥ १३ ॥

पके दूधका दही-रुचिकारक, स्निग्ध, उत्तम गुणवाला, पित्त वातनाशक और सम्पूर्ण धातु-ओंके तथा अग्निके बलको बढानेवाला है १३

निःसारदुग्धजनितदध्नो गुणाः ।

असारं दधि सङ्ग्राहि शीतलं वातलं लघु । विष्टम्भि दीपनं रुच्यं ग्रहणीरोग-नाशनम् ॥ १४ ॥

निःसार दूधका दही-ग्राही, शीतल, वात-कारक, हलका, विष्टम्भि, अग्निप्रदीपक, रुचि-कारक और संग्रहणी रोगनाशक है ॥ १४ ॥

गालितदध्नो गुणाः ।

गालितं दधि सुस्निग्धं वातघ्नं कफकृद्-गुरु । बलपुष्टिकरं रुच्यं मधुरं नाति-पित्तकृत् ॥ १५ ॥

गालित वस्त्रमें छना हुआ दही-स्निग्ध, वातनाशक, कफकारक, भारी, बलवर्द्धक,

पुष्टिकारक, रुचिकारी, मधुर, और अत्यन्त पित्तकारक नहीं है ॥ १५ ॥

शर्करासहितस्य दध्नो गुणाः।

सशर्करं दधि श्रेष्ठं तृष्णापित्तास्रदाहजित्। सगुड वातनुद्वृष्यं बृंहणं तर्पणं गुरु ॥ १६ ॥

बूरा पडा हुआ दही-श्रेष्ठ, तृषा, पित्त रक्तविकार तथा दाहनाशक है। गुड़ पडा हुआ दही वातनाशक, वृष्य, पुष्टिकारक, तृप्तिदायक और भारी है ॥ १६ ॥

रात्रौ दधिभक्षणनिषेधः।

न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम्। नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना ॥ १७ ॥

अयमर्थः--रात्रौ दधि न भुञ्जीत, भुञ्जीत चेत्तदा अघृतशर्करममुद्गसूपमक्षौद्रमनुष्णं विनाऽऽमलकैश्च ॥

दधि न भुञ्जीत ! तेन घृतशर्करादियुक्तं दधिरात्रावपि भुञ्जीतेत्यर्थः ॥

तथाच--शस्यते दधि नो रात्रौ शस्तं चाम्बुघृतान्वितम्। रक्तपित्तकफोत्थेषु विकारेषु तु नैव तत् ॥ १८ ॥

रात्रिमें दही नहीं खावे यदि खावे तो विना घृत और बूराके, विना मूँगकी दालके, विना शहदके, विना गरम किये हुए और विना आंवलोंके नहीं खावे घी, खांड आदि युक्त दही रात्रिमें भी खालेना चाहिये. कहा है कि, रातमें दही खाना उत्तम नहीं, यदि खानेकी आवश्यता हो तो घी तथा पानी डालकर खावे, रक्तपित्त तथा कफसम्बन्धी विकारोंमें घी पानीसहित भी दही नहीं खावे ॥१७॥१८॥

ऋतुविशेषे दध्नो विधिनिषेधौ।

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते। शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशस्तद्विगर्हितम् ॥ १९ ॥

हेमन्त, शिशिर और वर्षा इन तीन ऋतुओंमें दही खाना उत्तम है। शरद्, ग्रीष्म और वसन्त ऋतुमें दही खाना अधिक करके उत्तम नहीं है ॥ १९ ॥

विधिमन्तरा दधिसेवने दुर्गुणाः।

ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठपाण्ड्वामयभ्रमान्। प्राप्नुयात्कामलां चोग्रां विधिं हित्वा दधिप्रियः ॥ २० ॥

ज्वर, रक्तविकार, पित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाण्डुरोग, भ्रम और भयंकर कामलारोगको प्राप्त होता है, जो विधिको छोडकर दहीपर प्रेम करता है ॥ २० ॥

दधिसरमस्तुनोर्लक्षणं गुणाश्च।

दध्नस्तूपरि यो भागो घनः स्नेहसमन्वितः। स लोके सर इत्युक्तोदध्नो मण्डस्तु मस्त्विति ॥ २१ ॥ सरः स्वादुर्गुरुर्वृष्यो वातवह्निप्रणाशनः। साम्लो वस्तिप्रशमनः पित्तश्लेष्मविवर्द्धनः ॥ ॥ २२ ॥ मस्तु क्लमहरं बल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत्। स्रोतोविशोधनं ह्लादि कफतृष्णानिलापहम्। अवृष्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मलसञ्चयम् ॥ २३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे दधिवर्गः ॥

दहीके ऊपर जो चिकना और घन पदार्थ होता है वह सर कहाता है और दहीके मण्ड पानीको मस्तु दहीका तोर कहते हैं ॥

गुण–सर–मधुर, भारी, वृष्य, आयु, अग्निको नष्ट करनेवाला, अम्लसहित, वस्तिरोगको शान्तकर्त्ता, पित्त तथा कफवर्द्धक है ॥

मस्तु–क्लमनाशक, बलकारक, हलका, अन्नकी इच्छा करनेवाला, नाडियोंको शुद्ध करनेवाला, आनन्ददायक, कफ, तृषा तथा वातनाशक, वृष्य नहीं शीघ्र तृप्तिकारक और मलके संचयको तोडनेवाला है ॥ २१-२३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां दधिवर्गः।

अथ तक्रवर्गः ।

तक्रस्य पृथक्पृथङ्नामानि लक्षणं गुणाश्च ।

घोलं तु मथितं तक्रमुदश्विच्छच्छिकाऽपि च । ससरं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम् ॥ १ ॥ तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्वित्त्वर्द्धवारिकम् । छच्छिका सारहीना स्यात्स्वच्छा प्रचुरवारिका । घोलं तु शर्करायुक्तं गुणैर्ज्ञेयं रसालवत् ॥ २ ॥

मथितम् 'मथा हुआ' इति लोके ॥

छच्छिका 'छांछ' इति लोके ॥

वातपित्तहरं ह्लादि मथितं कफपित्तनुत् । तक्रं ग्राहि कषायाम्लं स्वादुपाकरसं लघु ॥ ३ ॥ वीर्योष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् । ग्रहण्यादिमतां पथ्यं भवेत् संग्राहि लाघवात् ॥ ४ ॥ किञ्च स्वादुविपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपणम् । अम्लोष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् । कषायोष्णविकासित्वाद्रौक्ष्याच्चापि कफापहम् ॥ ५ ॥ न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः । यथासुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ ६ ॥ उदश्वित्कफकृद्बल्यमामघ्नं परमं मतम् । छच्छिका शीतला लघ्वी पित्तश्रमतृषाहरी । वातनुत् कफकृत्सा तु दीपनी लवणान्विता ॥ ७ ॥

तक्र, छच्छिका, (दण्डाहत, घोल, गोरस द्रव, अम्ल, केकर, मथित, मलिन, भग्नसंधिक गोरसज, कालशेय, विलोडित, अरिष्ट, उदश्वित्, प्रमथित, अंबर, घल और केवल) ये तक्रके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मट्ठा तक्र । बं०-घोल । म०-ताक, तक्र । गु०-छाश । क०-अलिमज्जिगे । तै०-मज्जिगे । फा०-मस्त, मठा । अ०-हमीज । इं०-बटरमिल्क, Butter Milk, whey ता०-मोरू ।

भेद-घोल, मथित, तक्र, उदश्वित् और छच्छिका इस भांति छांछके पांच भेद हैं ॥

लक्षण-दहीको विना पानी डाले मलाईसहित विलोनेपर जो मट्ठा होता है उसको घोल कहते हैं । ऊपरकी मलाई निकालकर विना पानीका जो दही विलोया जाय उसको मथित कहते हैं । जो दही चौथा भाग पानी डालकर विलोया जाय वह तक्र (मट्ठा) कहाता है । आधा पानी डालकर विलोया हुआ दही उदश्वित् कहाता है और विलोकर जिसमेंसे मक्खन निकाल लिया हो तथा अधिक पानी डालकर विलोया हो, उसको छच्छिका छांछ कहते हैं ॥

गुण-बूरा डालकर सेवन किया हुआ घोल-आमके सदृश गुणवाला है । मथित-वात पित्तनाशक, हृदयको प्रिय कफ तथा पित्तनाशक है । तक्र-ग्राही, कसैला, खट्टा, पाकमें तथा रसमें मीठा, हलका, उष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक, वृष्य, प्रीणन, वातनाशक और ग्रहणी आदि रोगवालोंको पथ्य है । तक्र-हलका होनेसे ग्राही, मलको रोकनेवाला, किंचित् पाकमें स्वादु होनेसे पित्तप्रकोपी नहीं, अम्ल, उष्णवीर्य, दीपन, वृष्य, प्रीणन, वातनाशक, कसैला, गरम और विकाशी तथा रूक्ष होनेसे कफनाशक है । तक्रके सेवन करनेवाले मनुष्य कदापि पीडित नहीं होते और तक्र सेवनसे नष्ट हुए रोग उत्पन्न नहीं होते । जैसे देवताओंके सुखके लिये अमृत होता है, वैसे ही तक्र पृथ्वीमें मनुष्योंको सुखदायक है । उदश्वित्-कफकारक, बलवर्द्धक और अत्यन्त आमनाशक है । छच्छिका-शीतल, हलकी, पित्त, तृषा, वातनाशक और कफकारक है । लवण डालकर सेवन करनेसे अग्निको दीपन करता है ॥ १-७ ॥

भिन्नजातिमतां तक्राणां गुणाः ।

समुद्धृतघृतं तक्रं पथ्यं लघु विशेषतः । स्तोकोद्धृतघृतं तस्माद्गुरु वृष्यं कफावहम् । अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु पुष्टिकफप्रदम् ॥ ८ ॥

जिसमेंसे घी सम्पूर्ण निकाल लिया हो, ऐसा तक्र-पथ्य है और अत्यन्त हलका है। जिसमेंसे थोडा घृत निकाल लिया हो, ऐसा तक्र-उपरोक्त तक्रसे भारी, वृष्य और कफकारक है। जिसमेंसे बिलकुल घी नहीं निकाला हो, ऐसा तक्र-गाढा, भारी, पुष्टिकारक और कफकर्त्ता है ॥ ८ ॥

दोषव्याधिविशेषे तक्रगुणाः ।

वातेऽम्लं शस्यते तक्रं शुण्ठीसैन्धवसंयुतम् । पित्ते स्वादु सितायुक्तं सव्योषमधिके कफे ॥ ९ ॥ हिंगुजीरयुतं घोलं सैन्धवेन च संयुतम् । भवेदतीव वातघ्नमर्शोऽतीसारहृत्परम् ॥ १० ॥ रुचिदं पुष्टिदं बल्यं वस्तिशूलविनाशनम् । मूत्रकृच्छ्रे तु सगुडं पाण्डुरोगे सचित्रकम् ॥ ११ ॥

वातमें-खट्टा और सोंठ तथा सैंधा पडा हुआ तक्र उत्तम है। पित्तमें-बूरा मिला हुआ तथा मीठा तक्र उत्तम है। कफकी वृद्धिमें-सोंठ, मिरच और पीपलयुक्त तक्र उत्तम है। हींग, जीरा तथा सैंधा मिला हुआ घोल-अत्यन्त वातनाशक, बवासीर तथा अतीसार-नाशक, रुचिकारक, पुष्टिदायक, बलवर्द्धक और वस्ति शूल नाशक है। गुड डाला हुआ घोल-मूत्रकृच्छ्रपर उत्तम है और चीते युक्त घोल-पाण्डुरोगमें उत्तम है ॥ ९-११ ॥

पक्वापक्वतक्रगुणाः ।

तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च । पीनसश्वासकासादौ पक्वमेव प्रयुज्यते ॥ १२ ॥

कच्चा तक्र-कोठेमें कफको नष्ट करनेवाला और कण्ठमें कफ करता है। पीनस, श्वास और खांसी आदिमें पक्के तक्रका सेवन करे ॥ १२ ॥

तक्रसेवनविषयाः ।

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च तथा वातामयेषु च । अरुचौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्यादमृतोपमम् ॥ १३ ॥ तत्तु हन्ति गरच्छर्दिप्रसेकविषमज्वरान् ॥ १४ ॥ मेहं गुल्ममतीसारं शूलप्लीहोदरारुचीः । श्वित्रकोष्ठगतव्याधीन् कुष्ठशोथतृषाकृमीन् १५

शीतकाल, अग्निकी मन्दता, वातरोग, अरुचि और नाडियोंका अवरोध इनमें तक्र अमृतके सदृश काम करता है। तक्र-विष, वमन, जी मिचलाना, विषमज्वर, पाण्डुरोग, मेद, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, प्रमेह, गुल्म, अतीसार, शूल, प्लीहा, उदररोग, अरुचि, सफेद कोढ, सूजन, तृषा और कृमिको नष्ट करता है ॥ १३-१५ ॥

तक्रनिषेधः ।

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले । न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपित्तजे ॥ १६ ॥

क्षत (घाव) में, उष्णकालमें, दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्तपित्तज रोगमें तक्र कदापि नहीं देवे ॥ १६ ॥

तक्रस्य विशेषगुणाः ।

यान्युक्तानि दधीन्यष्टौ तद्गुणं तक्रमादिशेत् ॥ १७ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे तक्रवर्गः ।

पहिले जो आठ प्रकारके दही कहे हैं, उनमेंसे जिस दहीका जो तक्र हो, उस तक्रमें उसी दहीके सदृश गुण जानने ॥ १७ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां तक्रवर्गः ॥

अथ नवनीतवर्गः ।

नवनीतनामगुणाः ।

म्रक्षणं सरजं हैयङ्गवीनं नवनीतकम् । नवनीतं हितं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत् ॥ १ ॥ संग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शोऽर्दितकासहृत् । तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः ॥ २ ॥

म्रक्षण, सरज. हैयंगवीन, नवनीतक. (नवोद्धृत, मन्थज, दधिसार, नवनीत,कलम्बुट और दधिज) ये मक्खनके संस्कृत नाम है ॥

हिन्दी-मक्खन, नोंनी । बं०-नुनी, माखन म०-लोणी । गु०-माखण । क०-वेणो । तै०-पेन्ना । फ०-मसका । अ०-जुबूद । इं०-बटर Butter लै०-बुटिरम् Butyrum ता०-वेण्णै

गुण-गायका मक्खन-हितकारी, वृष्य, वर्णको उत्तम करनेवाला, बलदायक, अग्नि प्रदीपक, ग्राही और वात, पित्त, रक्तविकार. क्षय, बवासीर, अर्दितवात तथा खांसीको नष्ट करता है । यह मक्खन बालकोंके लिये तथा वृद्धके लिये हितकारी है, परन्तु बालकोंको तो अमृतसदृश ही है ॥ १ ॥ २ ॥

माहिषनवनीतगुणाः ।

नवनीतं महिष्यास्तु वातश्लेष्मकरं गुरु । दाहपित्तश्रमहरं मेदःशुक्रविवर्द्धनम् ॥३॥

भैंसका मक्खन-वात, कफकारक, भारी, दाह, पित्त तथा परिश्रमको नष्ट करता है । मेद, तथा वीर्यवर्द्धक है ॥ ३ ॥

दुग्धोत्थनवनीतगुणाः ।

दुग्धोत्थं नवनीतं तु चक्षुष्यं रक्तपित्तनुत् । वृष्यं बल्यमतिस्निग्धं मधुरं ग्राहि शीतलम् ॥ ४ ॥

दूधसे निकाला हुआ मक्खन-नेत्रोंको हितकारी, रक्तपित्तनाशक, वृष्य, बलदायक, अत्यन्त स्निग्ध, मधुर, ग्राही और शीतल है ॥ ४ ॥

सद्योनिःसारितनवनीतगुणाः ।

नवनीतं तु सद्यस्कं स्वादु ग्राहि हिमं लघु । मेध्यं किञ्चित्कषायाम्लमीषत्तक्रांशसंक्रमात् ॥ ५ ॥

तत्कालका निकाला हुआ मक्खन=मधुर ग्राही, शीतल, हलका, बुद्धिको हितकारी और किंचित् छांछका अंश रहनेसे कुछ कसैला तथा खट्टा है ॥ ५ ॥

पर्युषितनवनीतगुणाः ।

सक्षारकटुकाम्लत्वाच्छर्द्यर्शः कुष्ठकारकम् । श्लेष्मलं गुरु मेदस्यं नवनीतं चिरन्तनम् ॥ ६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे नवनीतवर्गः ।

बासी मक्खन-खारा, चरपरा, और खट्टा, होजानेसे वमन, बवासीर तथा कोढको करता है और कफकारी, भारी तथा मेदकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां नवनीतवर्गः॥

अथ घृतवर्गः ।

घृतनामानिगुणाः ।

घृतमाज्यं हविः सर्पिः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ । घृतं रसायनं स्वादु चक्षुष्यं वह्निदीपनम् ॥ १ ॥ शीतवीर्यं विषालक्ष्मीपापपित्तानिलापहम् । अल्पाभिष्यन्दि कान्त्योजस्तेजोलावण्यबुद्धिकृत् ॥ २ ॥ स्वरमृतिकरं मेध्यमायुष्यं बलकृद्गुरु । उदावर्तज्वरोन्मादशूलानाहव्रणान् हरेत् । स्निग्धं कफकरं रक्षोरक्तक्षयविसर्पनुत् ॥ ३ ॥

घृत, आज्य, हवि, सर्पि, (पुरोडाश, नवनीतक, पवित्र, वह्निभोग्य, तैजस, अभिघारक

ओज, तोयद पीथ, अमृत, होम्य, नवनीतज, भोजनाई और जीवन) ये घीके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-गु००घी । बं०-घि, घृत । म०-तूप । तै०-ता०-नेई । फा०-रोगेनेजर्द । अ०-समन। इं०-क्लेरीफाइड बटर lerified Butter लै०-बुटीरम डप्युरेटम् Butyrum Depuratmu

गुण-घी-रसायन, मधुर, नेत्रोंको हितकारी, अग्निप्रदीपक शीतवीर्य, विष, अलक्ष्मी, पाप, पित्त, और वातनाशक, किंचित् अभिष्यन्दि. कांति, बल, तेज, लावण्य, बुद्धि, स्वरकीनिर्मलता, तथा स्मरण शक्तिके लिके उत्तम मेधाको हितकारी, आयुवर्द्धक, बलकारी, भारी, स्निग्ध, कफकारक, उदावर्त, ज्वर, उन्माद, शूल, अफारा, व्रण, क्षय, विसर्प तथा रक्तविकारको नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

गोघृतगुणाः ।

गव्यं घृतं विशेषेण चक्षुष्यं वृष्यमग्निकृत्। स्वादुपाककरं शीतं वातपित्तकफापहम् ॥ ४ ॥ मेधालावण्यकान्त्योजस्तेजोवृद्धिकरं परम्। अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं वयसः स्थापकं गुरु ॥२॥ बल्यं पवित्रमायुष्यं सुमङ्गल्यं रसायनम् । सुगन्धं रोचनं चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम् ॥६॥

गायका घी-विशेष करके नेत्रोंकी हितकारी, वृष्य, अग्निप्रदीपक, पाकमें मधुर, शीतल, वात, पित्त तथा कफनाशक, बुद्धि, लावण्य, कांति, ओज तथा तेजकी वृद्धि करनेवाला, अलक्ष्मी, पाप तथा राक्षसनाशक, आयुस्थापक, भारी, बलवर्द्धक, पवित्र, आयुवर्द्धक, मङ्गलरूप, रसायन, सुगन्धयुक्त, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, सुन्दर और सम्पूर्ण घीमें उत्तम है ॥ ४-६ ॥

माहिषघृतगुणाः ।

माहिषं तु घृतं स्वादु पित्तरक्तानिलापहम् । शीतलं श्लेष्मलं वृष्यं गुरु स्वादु विपच्यते ॥ ७ ॥

भैंसका घी-मधुर, पित्त, रक्तविकार तथा वातनाशक है । शीतल, कफकारक, वृष्य, भारी, और पाकमें मधुर है ॥ ७ ॥

अजाघृतगुणाः ।

आजमाज्यं करोत्यग्निं चक्षुष्यं बलवर्द्धनम् । कासे श्वासे क्षये चापि हितं पाके भवेत् कटु ॥ ८ ॥

बकरीका घी-अग्निकारक, नेत्रोंको हितकारी, बलवर्द्धक, खांसी, श्वास, तथा क्षयमें हितकारी है । पाकमें चरपरा है ॥ ८ ॥

औष्ट्रघृतगुणाः ।

औष्ट्रं कटु घृतं पाके शोषक्रिमितृषापहम् । दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मोदरापहम् ॥ ९ ॥

ऊँटनीका घी-पाकमें चरपरा, शोष, कृमि, और तृषा नाशक है । अग्निप्रदीपक, कफ, वात कोढ, गुल्म तथा उदररोगनाशक है ॥ ९ ॥

आविकघृतगुणाः ।

पाके लघ्वाविकं सर्पिःसर्वरोगविनाशनम् । वृद्धिं करोति चास्थीनामश्मरीशर्करापहम् । चक्षुष्यमग्निधुक्षाणं वातदोषनिवारणम् ॥ १० ॥

भेडका घी-पाकमें हलका, सर्वरोगनाशक, हड्डियोंकी वृद्धि करनेवाला, पथरी तथा शर्करा नाशक, नेत्रोंको हितकारी, अग्निप्रदीपक और वायुके दोषोंको निवारण करता है ॥ १० ॥

नारीघृतगुणाः ।

कफेऽनिले योनिदोषे पित्ते रक्ते च तद्धितम् । चक्षुष्यमाज्यं स्त्रीणां वा सर्पिः स्यादमृतोपमम् ॥ ११ ॥

स्त्रीका घी-कफ, वात, योनिदोष, पित्त और रक्तविकारमें हितकारी, नेत्रोंको उत्तम, करनेवाला और अमृतके समान है ॥ ११ ॥

वडवाघृतगुणाः ।

वृद्धिं करोति देहाग्नेर्लघु पाके विषापहम् । तर्पणं नेत्ररोगघ्नं दाहनुद्वडवाघृतम् ॥ १२ ॥

घोडीका घी-शरीरकी अग्निको बढानेवाला पाकमें हलका, विषविनाशक, तृप्तिकारक, नेत्रके रोग और दाहनाशक है ॥ १२ ॥

दुग्धनिःसृतघृतगुणाः ।

घृतं दुग्धभवं ग्राहि शीतलं नेत्ररोगहृत् । निहन्ति पित्तदाहास्रमदमूर्च्छाभ्रमानिलान् ॥ १३ ॥

दूधसे निकाला हुआ घी-ग्राही, शीतल और नेत्ररोगनाशक है। पित्त, दाह, रक्तविकार मद, मूर्च्छा, भ्रम तथा वातनाशक है ॥ १३ ॥

ह्यस्तनदुग्धोत्थनवनीतगुणाः ।

हविर्ह्यस्तनदुग्धोत्थं तत्स्याद्धैयङ्गवीनकम् । हैयङ्गवीनं चक्षुष्यं दीपनं रुचिकृत्परम् । बलकृद् बृंहणं वृष्यं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ १४ ॥

पहिले दिनके दूधसे निकाला हुआ घी हैयंगवीन कहाता है। यह घी-नेत्रोंको हितकारी, अग्निप्रदीपक, अत्यन्त रुचिकारी, बलवर्द्धक, पुष्टिकारक, वृष्य और विशेष करके ज्वरनाशक है ॥ १४ ॥

पुराणघृतस्य गुणाः ।

वर्षादूर्ध्वं भवेदाज्यं पुराणं तत्त्रिदोषनुत् । मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादापस्मारतिमिरापहम् ॥ १५ ॥ यथायथाऽखिलं सर्पिः पुराणमधिकं भवेत् । तथातथा गुणैःस्वैःस्वैरधिकं तदुदाहृतम् ॥ १६ ॥

एक वर्षका रक्खा हुआ घी पुराना कहाता है। यह घी-त्रिदोषनाशक और मूर्च्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, मृगी तथा तिमिरनाशक है। सर्व प्रकारका घी-जितना जितना अधिक पुराना होता है, उतनाही अपने अपने गुणोंको अधिक करता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

नवीनघृतविषयाः ।

योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे । बलक्षये पाण्डुरोगे कामलानेत्ररोगयोः ॥ १७ ॥

नवीन घी भोजन, तर्पण, परिश्रम, बलका क्षय, पाण्डुरोग कामला तथा नेत्ररोग इन सबमें उपयोग करना चाहिये ॥ १७ ॥

घृतादानविषया ।

राजयक्ष्मणि बाले च वृद्धे श्लेष्मकृते गदे । रोगे सामे विषूच्याञ्च विबन्धे च मदात्यये । ज्वरे च दहने मन्दे न सर्पिर्बहुमन्यते ॥ १८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे घृतवर्गः ।

बालक तथा वृद्धको, राजयक्ष्मा, कफरोग, आम, विषूचिका, मलबन्ध, मदात्यय, ज्वर और मन्दाग्नि, इन सबमें विशेष घृत नहीं देना चाहिये ॥ १८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां घृतवर्गः ॥

अथ मूत्रवर्गः ।

गोमूत्रगुणाः ।

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तकषायकम् । लघ्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥ १ ॥ शूलगुल्मोदरानाहकण्डूवक्षिमुखरोगजित् । किलासगदवातामवस्तिरुक्कुष्ठनाशनम् । कासश्वासापंह शोथकामलापाण्डुरोगहृत् ॥ २ ॥ कण्डूकिलासगदशूलमुखाक्षिरोगान् गुल्मातिसारमरुदायममूत्ररोधान् । कासं सकुष्ठजठरक्रिमिपाण्डुरोगान् गोमूत्रमेकमपि पीतमपाकरोति ॥ ३ ॥ सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम् । अतोऽविशेषात्कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥ ४ ॥ प्लीहोदरश्वासकासशोथवर्चोग्रहापहम् । शूलगुल्मरुजानाहकामलापाण्डुरोगहृत् । कषायं तिक्ततीक्ष्णं च पूरणात्कर्णशूलनुत् ॥ ५ ॥

गोमूत्र–चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, खारा, कसैला, हलका, अग्नीप्रदीक, मेधाको हितकारी पित्तकारक, और कफ, वात नाशक है। शूल गुल्म, उदर, अफारा, खुजली, नेत्ररोग, और मुखरोगको जीतता है, किलासकोढ, वात, सम्बन्धी रोग, वस्तिरोग, कोढ खांसी, श्वास, सूजन, कामला तथा पांडुरोगनाशक है। गोमूत्र पिया जाय तो खुजली किलासकोढ, शूल, मुखरोग, नेत्ररोग, गुल्म, अतिसार, वातसम्बन्धी रोग मूत्ररोध, खांसी, कोढ, उदररोगकृमि और पांडुरोगनाशक है। सर्वमूत्रोंमें गौका मूत्र अधिक गुणवाला है। इस कारण जहां केवल मूत्रही कहा हो, वहां गायका मूत्रही लेना चाहिये। गायका मूत्र कसैला, कडवा, तीक्ष्ण, कानमें डालनेसे कर्णशूलनाशक और प्लीहा उदररोग, श्वास, खांसी सूजन, मलरोध, ग्रहबाधा, शूल, गुल्म, अफारा, कामला तथा पांडुरोगनाशक है॥ १–५॥

मनुष्यमूत्रगुणाः।

नरमूत्रं गरं हन्ति सेवितं तद्रसायनम्। रक्तपामाहरं तीक्ष्णं साक्षारलवणं स्मृतम्॥ ६॥

मनुष्यका मूत्र–खारा, तीक्ष्ण. रक्तविकारनाशक, खुजली विषको नष्ट करनेवाला और सेवन करनेसे रसायन है॥ ६।

मूत्रस्य सामान्य परिभाषा।

गोजाविमहिषाणां तु स्त्रीणां मूत्रं प्रशस्यते। खरोष्ट्रेभनराश्वानां पुंसां मूत्रं हितं स्मृतम्॥ ७॥

इति श्रीभावप्रकाशे मूत्रवर्गः॥

गौ, बकरी, भेड और भैंस इनके मूत्रोंमें तो स्त्री जातिका मूत्र उत्तम है और गधा, ऊंट हाथी, मनुष्य और घोडा इसमें पुरुष जातिका मूत्र उत्तम है॥ ७॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां मूत्रवर्गः॥

अथ तैलवर्गः।

तैलस्वरूपम्।

तिलादिस्निग्धवस्तूनां स्नेहस्तैलमुदाहृतम्। तत्तु वातहरं सर्वं विशेषात्तिलसम्भवम्॥ १॥

तिल आदि स्निग्ध वस्तुओंका जो स्नेहभाग निकलता है उसको तेल कहते हैं। संपूर्ण प्रकारके तेल–वातनाशक हैं तिलका तेल विशेषकरके वातनाशक है॥ १॥

तिलतैलगुणाः।

तिलतैलं गुरु स्थैर्यबलवर्णकरं सरम्। वृष्यं विकाशि विशदं मधुरं रसपाकयोः॥ २॥ सूक्ष्मं कषायानुरसं तिक्तं वातकफापहम्। वीर्येचोष्णं हिमं स्पर्शे बृंहणं रक्तपित्तकृत्॥ ३॥ लेखनं बद्धविण्मूत्रं मेध्यं व्यवायि व्रणमेहनुत्॥४॥ श्रोत्रयोनिशिरः शूलनाशनं लघुताकरम्। त्वच्यं केश्यं च चक्षुष्यमभ्यङ्गे भोजनेऽन्यथा॥ ५॥ छिन्नभिन्नच्युतोत्पिष्टमथितक्षतपिच्चिते। भग्नस्फुटितविद्धाग्निदग्धविश्लिष्टदारिते॥ ६॥ तथाऽभिहतनिर्भुग्नमृगव्याघ्रादिविक्षते। वस्तौ पानेऽन्नसंस्कारे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे। सेकाभ्यङ्गावगाहेषु तिलतैलं प्रशस्यते॥७॥

ननु बृंहणलेखनयोः कथं सामानाधिकरण्यमित्याह–

रूक्षादिदुष्टः पवनः स्रोतः संकोचयेद्यदा। रसोऽसम्यग्वहं कार्श्यं कुर्याद्रक्ताद्यवर्द्धयन्॥ ८॥ तेषु प्रवेष्टुं सारत्वसौक्ष्म्यस्निग्धत्वमार्दवैः। तैलं क्षमं रसं नेतुं कृशानां तेन बृंहणम्॥ ९॥

व्यवायिसूक्ष्मतीक्ष्णोष्णसरत्वैर्मेदसः क्षयम्। शनैः प्रकुरुते तैलं तेन लेखनमीरितम् ॥ १० ॥ द्रुतं पुरीषं बध्नाति स्खलितं तत्प्रवर्त्तयेत्। ग्राहकं सारकञ्चापि तेन तैलमुदीरितम् ॥ ११ ॥ घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्यं प्रजायते। तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥ १२ ॥

सं०-तैल। हिन्दी-बं०-म०-गु०-क०-तेल. तै०-नुने। फा०--रोगन। इं०--आइल Oil लै०-औल्युम् Olenm ता० नल्लेंगै ॥

गुण-तिलका तेल-भारी, स्थिरताकारक, बलदायक, वर्णको उत्तम करनेवाला, दस्तावर, वृष्य, विकाशि, विशद, रसमें तथा पाकमें मधुर, सूक्ष्म, कसैला, कडवा, वात कफनाशक, उष्णवीर्य, शीतल स्पर्शवाला, पुष्टिकारक, रक्तपित्तकर्त्ता, लेखन, मलमूत्रको, बांधनेवाला गर्भाशयको शुद्ध करनेवाला, अग्निप्रदीपक, बुद्धिदायक, मेधाको हितकारी, व्यवायि, व्रण, प्रमेह, कर्णरोग, योनिशूल और मस्तकशूल नाशक, शरीरमें लघुता करनेवाला. मलनेसे त्वचा, बाल, तथा नेत्रोंको हितकारी है। खानेसे त्वचा, केश तथा नेत्रोंको हानि कारक है। छिदा, भिदा, गिरा, पिसा मसला, घाव, पिचा, टूटा, फटा, बिंधा, अग्निसे जला, स्थानसे हटा, चिरा, चोट लगा, तिरछा, मृग, वाघ आदिसे घायल हुआ ये सब होनेपर, वस्तिकर्ममें, पीनेमें, अन्नके बनानेमें छौंकनेमें नस्य कर्ममें, कर्ण और नेत्रोंमें डालनेमें, सेंकनेमें, मर्दनमें और अवगाहनमें तिलका तेल उत्तम है ॥

कोई शंका करे कि-तिलका तेल बृंहण होनेपर लेखन किस प्रकार हो सकता है ?

वहाँ कहते हैं कि " रूक्ष, आदि पदार्थोंसे दूषित हुई वात-नाडियोंका संकोच करता है, तब रस भली भांति नहीं बहानेसे रुधिर आदिको नही वढाकरदुर्बलता करता है। उस समयमें तेल अपना प्रवेश करके अपनी कोमलता आदि गुणोंसे नाडियोंमें रसका प्रवेश करानेको तथा उनमें भलीभांति गति करानेको समर्थ होता है, इससे तेल दुर्बलोंको पुष्टिदायक कहा है, इसी प्रकार तेल सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होनेवाला, पतला, तीक्ष्ण, उष्ण और प्रवेश कारक होनेसे धीरे धीरे मेदका क्षय करता इसी कारण तैल लेखन 'कृशकारि' कहा है, तेल पतले मलको बांध देता है और छूटे हुए मलको निकाल देता है। इसकारण तेल ग्राही और सारक दोनों गुणयुक्त है। पका घी एक वर्ष पीछे हीनवीर्य हो जाता है और तेल पका हो अथवा कच्चा हो जितना पुराना होगा, उतना ही अधिक गुणवाला होता है ॥२-१२॥

सर्षपराजितैलयोर्गुणाः ।

दीपनं सार्षपं तैलं कटुपाकं लघु। लेखनं स्पर्शवीर्योष्णं तीक्ष्णं पित्तास्रदूषकम् ॥ १३ ॥ कफमेदोऽनिलार्शोघ्नं शिरःकर्णामयापहम्। कण्डूकुष्टकृमिश्वित्रकोठदुष्टक्रिमिप्रणुत् ॥ १४ ॥ तद्वद्राजिकयोस्तैलं विशेषान्मूत्रकृच्छ्रकृत् ॥ १५ ॥

राजिकयोः--कृष्णराजिकारक्तराजिकयोः ॥

सरसोंका तेल-अग्निप्रदीपक, रसमें तथा पाकमें चरपरा, हलका, लेखन, स्पर्श तथा वीर्यमें उष्ण, तीक्ष्ण, पित्त, रुधिरको दूषित करनेवाला, कफ मेद, वात, बवासीर, मस्तकके रोग, कर्णरोग, खुजली, कोढ, कृमि, फुलवहरी कोढ, कोठ तथा दुष्टकृमिनाशक, है। काली राई तथा लाल राईके तेलमें भी येही गुण हैं, विशेष करके राईका तेल मूत्रकृच्छ्रको करता है ॥ १३-१५ ॥

तुवरीतैलगुणा ।

तीक्ष्णोष्णं तुवरीतैलं लघु ग्राहि कफास्रजित्। वह्निकृद्विषहृत्कण्डूकुष्ठकोष्ठकृमिप्रणुत्। मेदोदोषापहं चापि व्रणशोथहरं परम् ॥ १६ ॥

तोरीका तेल–तीक्ष्ण, गरम, हलका, ग्राही, अग्निकारक, विष, कफ, रक्तविकार, खुजली, कोढ, कोठ रोग, कृमि, मेददोष, व्रण तथा सूजनको नष्ट करनेवाला है ॥ १६ ॥

अतसीतैलगुणाः ।

अतसीतैलमाग्नेयं स्निग्धोष्णं कफपित्तकृत्। कटुपाकमचक्षुष्यं बल्यं वातहरं गुरु ॥ १७ ॥ मलकृद्रसतः स्वादु ग्राहि त्वग्दोषहृद्घनम्। वस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये कर्णस्य पूरणे । अनुपानविधौ चापि प्रयोज्यं वातशान्तये ॥१८॥

अलसीका तेल-अग्निके अधिक अंशयुक्त, स्निग्ध, गरम, कफ तथा पित्तको करनेवाला पाकमें चरपरा, नेत्रोंको हितकारी, बलवर्द्धक, वातनाशक, भारी, मलकर्ता मधुररसयुक्त, ग्राही, चर्मदोषनाशक और घन है । वस्तिकर्ममें, पीनेमें, अभ्यंगमें नस्यकर्ममें, कानमें डालनेमें, वातकी शांतिके लिये अनुपान विधिमें इस तेलका उपयोग करे ॥ १७-१८॥

कुसुम्भतैलगुणाः ।

कुसुम्भतैलमम्लं स्यादुष्णं गुरु विदाहि च । चक्षुर्भ्यामहितं बल्यं रक्तपित्तकफप्रदम् ॥ १९ ॥

कुसुमका तेल-खट्टा, गरम, भारी, विदाही नेत्रोंको हितकारी, बलवर्द्धक, और रक्तपित्त, तृषा, कफकारक है ॥ १९ ॥

खसवीज (पोस्त) तैल गुणाः ।

तैलं तु खसवीजानां बल्यं वृष्यं गुरु मृतम्। वातहृत्कफहृच्छीतं स्वादुपाकरसं च तत्।

खसखसका अर्थात् पोस्तके बीजोंका तेल–बलवर्द्धक, वृष्य, भारी, वात, कफनाशक, शीतल, पाकमें तथा रसमें मधुर है ॥ २० ॥

एरण्डतैलगुणाः ।

एरण्डतैलं तीक्ष्णोष्णं दीपनं पिच्छिलं गुरु । वृष्यं त्वच्यं वयःस्थापि मेधाकान्तिबलप्रदम् ॥२१॥ कषायानुरसं सूक्ष्मं योनिशुक्रविशोधनम्। विस्रं स्वादु रसे पाके सतिक्तं कटुकं सरम् ॥ २२ ॥ विषमज्वरहृद्रोगपृष्ठगुह्यादिशूलनुत् । हन्ति वातोदरानाहगुल्माष्ठीलाकटिग्रहान् ॥ २३ ॥ वातशोणितविड्बन्धब्रध्नशोथामविद्रधीन्। आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः। एक एव निहन्ताऽयमेरण्डस्नेहकेसरी ॥ २४ ॥

अंडीका तेल–तीक्ष्ण, गरम, अग्निप्रदीपक, पिच्छिल, भारी, वृष्य, त्वचाको हितकारी, आयुःस्थापक, बुद्धि, कांति तथा बलवर्द्धक है। कसैला, रसवाला, सूक्ष्म, योनि तथा वीर्यको शुद्ध करनेवाला, दुर्गंधित, रसमें मधुर, पाकमें चरपरा, कडवा, दस्तावर, विषमज्वर, हृदयरोग, पीठ तथा गुह्यादिका शूल नाशक है। वातसम्बन्धी, उदररोग, अफारा, गुल्म अष्ठीला नामक रोग, कटिग्रह, (कमरका जकडजाना) वात, रक्तविकार, मलवन्ध, व्रध्न, सूजन, आम और विद्रधि, इनका नाशक है। अण्डीका तेलरूपी, सिंह शरीररूपी वनमें फिरते हुए आमवातरूपी बडे हाथीको नष्ट करता है ॥ २१-२४ ॥

सर्जरस तैलगुणाः ।

तैलं सर्जरसोद्भूतं विस्फोटव्रणनाशनम्। कुष्ठपामाकृमिहरं वातश्लेष्मामयापहम्॥२५॥

रालका तेल–विस्फोटक (फोडा), व्रण, कोढ, खुजली, कृमि वात तथा कफके रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ २५ ॥

सर्वतैलानां गुणाः ।

तैलं स्वयोनिगुणकृद्वाग्भटेनाखिलं मतम्। अतः शेषस्य तैलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिवत् ॥ २६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे तैलवर्गः ।

तेल जिस पदार्थमेंसे निकाला हो, उसी पदार्थके गुणोंको करता है, ऐसे वाग्भटने कहा है । इसी कारण शेष सम्पूर्ण जातिके तेलोंको गुण जिस पदार्थमेंसे निकाले हों, उसी पदार्थके सदृश जानने ॥ २६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीवनीभाषाटीकायां तैलवर्गः ॥

अथ सन्धानवर्गः ।

काञ्जिकस्य लक्षणं गुणाश्च ।

संहितं धान्यमण्डादि काञ्जिकं कथ्यते जनैः । काञ्जिकं भेदि तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु ॥ १ ॥ दाहज्वरहरं स्पर्शात् पानाद्वातकफापहम् । माषादिवटकैर्यत्तु क्रियते तद्गुणाधिकम् ॥ २ ॥ लघु वातहरं तत्तु रोचनं पाचनं परम् । शूलजीर्णविबन्धामनाशनं वस्तिशोधनम् ॥ ॥ ३ ॥ शोषमूर्च्छाभ्रमार्त्तानां मदकण्डूविशोषिणाम् । प्रशस्यते न काञ्जीकं कुष्ठिनां रक्तपित्तिनाम् ॥ ४ ॥ पाण्डूरोगे यक्ष्मणि च तथा शोषातुरेषु च । क्षतक्षीणे तथा श्रान्ते मन्दज्वरनिपीडिते । एतेषां न हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम् ॥ ५ ॥

धान्य मण्डक आदि जो मुख बन्दकर रक्खे हुए हों, उनको लोग कांजी कहते हैं ॥

गुण–कांजी–मलभेदक, दस्तावर, तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, पाचन, हलकी स्पर्श (लगाने) से दाह, ज्वरनाशक, पीनस, वात तथा कफ नाशक है, उडद आदिके वडोंसे कांजी बनाई जावे तो वह कांजी अधिक गुणवाली, हलकी, वातनाजक, रुचिको उत्पन्न करनेवाली, बहुत पाचक और शूल, अजीर्ण, मलबंध, तथा आमको नष्ट करनेवाली और वस्तिशोधक है । शोष, मूर्च्छा, भ्रम, मद, खुजली, जिनकी देह सूख गई, कोढ और रक्तपित्त रोगवालोंको हितकारी नहीं है । पांडुरोग, क्षय, शोथसे हुई आतुरता, क्षतसे हुई दुर्बलता, परिश्रम और मन्द ज्वरकी पीडा में कांजी अहितकारी तथा दोषोंको कुपित करनेवाली है ॥ १–५ ॥

तुषोदकस्य लक्षणं गुणाश्च ।

तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः ॥ ॥६॥ (यवैः उदके संहितैः सन्धानवर्गोक्तत्वात् ।) तुषाम्बु दीपनं हृद्यं पाण्डुक्रिमिगदापहम् । तीक्ष्णोष्णं पाचनं पित्तरक्तकृद् वस्तिशूलनुत् ॥ ७ ॥

तुषसहित कच्चे जौओंके टुकडे २ करके संधानकी रीतिसे पानीमें भिगो देवे, वह पानी तुषोदक कहाता है । तुषोदक–अग्निप्रदीपक, हृदयको प्रिय, तीक्ष्ण, गरम, पाचन, पित्त तथा वस्तिशूलनाशक है ॥ ६–७ ॥

सौवीरस्य लक्षणं गुणाश्च ।

सौवीरं तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषैः कृतम् । गोधूमैरपि सौवीरमाचार्य्याः केचिदूचिरे ॥ ८ ॥ सौवीरं तु ग्रहण्यर्शः कफघ्नं भेदि दीपनम् । उदावर्त्ताङ्गमर्दास्थिशूलानाहेषु शस्यते ॥ ९ ॥

तुष (छिलका) रहित कच्चे अथवा पके जौओंके टुकडे टुकडे करके पानीमें भिगो देवे,वह पानी सौवीर कहाताहै । कोई आचार्य कहते हैं कि–"इसी प्रकार गेहूँके टुकडे भिगोनेसे भी सौवीर होता है ।" सौवीर–संग्रहणी, बवासीर, कफनाशक, मलभेदक, अग्निप्रदीपक, उदावर्त्त, अंगमर्द हड्डियोंका दर्द तथा अफारा इनम बहुत उत्तम है ॥८॥९॥

आरनालस्य लक्षणं गुणाश्च ।

आरनालं तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः । पक्वैर्वा संहितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥ १० ॥

तुषरहित कच्चे अथवा पके गेहूँको भिगोनेसे आरनाल कांजी होती है। आरनालकांजीके गुण उपरोक्त सौवीर कांजीके सदृश ही जानने ॥ १० ॥

धान्याम्लस्य लक्षणं गुणाश्च ।

धान्याम्लं शालिचूर्णं च कोद्रवापिकृतं भवेत् । धान्याम्लं धान्ययोनित्वात् पीणनं लघु दीपनम् । अरुचौ वातरोगेषु सर्वेष्वास्थापने हितम् ॥ ११ ॥

चावलोंका चूर्ण अथवा कोदोंका चूर्ण भिगोनेसे जो तैयार हो, उसको धान्याम्ल कांजी कहते हैं। धान्याम्ल धान्योंसे उत्पन्न हुई है, इस कारण तृप्तिकारक, हलकी, अग्निप्रदीपक, अरुचिमें वातसम्बन्धी रोगोंमें तथा पिचकारी मारनेमें हितकारी है ॥ ११ ॥

शिण्डाकीलक्षणं गुणाश्च ।

शिण्डाकी राजिकायुक्तैः स्यान्मूलकदलद्रवैः । सर्षपस्वरसैर्वाऽपि शालिपिष्टकसंयुतैः । (संहितैरिति शेषः) । शिण्डाकी रोचनी गुर्वी पित्तश्लेष्मकरी स्मृता ॥ १२ ॥

राई और मूलीके पत्तोंको भिगोनेसे अथवा सरसोंका स्वरस और चावलोंका चून भिगोनेसे जो कांजी बनाई जाती है, उसको शिण्डाकी कहते हैं। शिण्डाकी कांजी-रुचिकारक, भारी और पित्त तथा कफकारक है ॥ १२ ॥

शुक्तस्य लक्षणं गुणाश्च ।

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च । यत्र द्रवेऽभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते ॥ १३ ॥ शुक्तं कफघ्नं तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनंलघु । पाण्डुक्रिमिहरं रूक्षं भेदनं रक्तपित्तकृत् ॥ १४ ॥

तेल और नमक डालकर जिस द्रवमें कन्द, मूल और फल आदि भिगोगर जो कांजी बनाई जाय। उस द्रवको शुक्त कहते हैं। शुक्त सिरका-कफनाशक, तीक्ष्ण, गरम रुचिकारक, पाचन, हलकारूषा, मलभेदक, रक्तपित्तको करनेवाला, पाण्डु और कृमिनाशक है ॥ १३ ॥ १४ ॥

आसुतस्य (सन्धानक) लक्षणं गुणाश्च ।

कन्दमूलफलाढ्यं यत्तु विज्ञेयमासुतम् । तद्रुच्यं पाचनं वातहरं लघु विशेषतः ॥ १५ ॥

कन्द, मूल फल आदिके रससे जो कांजी बनाई जाय, उसको आसुत कहते हैं। आसुत अचार-रुचिकारक, पाचन, वातनाशक और विशेष करके हलका है ॥ १५ ॥

मद्यस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च ।

मद्यन्तु सीधुर्मैरेयमिरा च मदिरा सुरा । कादम्बरी वारुणी च हालाऽपि बलवल्लभा ॥ १६ ॥ पेयं यन्मादकं लोकैस्तन्मद्यमभिधीयते । यथाऽरिष्टं सुरा सीधुरासवाद्यमनेकधा ॥ १७ ॥ मद्यं सर्वं भवेदुष्णं पित्तकृद्वातनाशनम् । भेदनं शीघ्रपाकं च रूक्षं कफहरं परम् ॥ १८ ॥ अम्लं च दीपनं रुच्यं पाचनं चाशुकारि च । तीक्ष्णं सूक्ष्मं च विशदं व्यवायि च विकासि च ॥ १९ ॥

मद्य, सीधु, मैरेय, इरा, मदिरा, सुरा, कादम्बरी, वारुणी, हाला, बलवल्लभा, (प्रसवा चपला, हलि, प्रिया, अमृता, वीरा, मेधावी, माधवी, कापिशायन, परिश्रुता, वरुणात्मजा, गन्धोत्तमा, परिश्रुता, कश्य, प्रसन्नेरा, मणिका, कपिशी, गन्धमादनी, कत्तोय, मद, कपिशिका, मत्ता, सीता, कामिनीप्रिया, मदगन्धा, माध्वीक, मधु, सन्धान, आसव, मदनी, सुप्रतिमा, मनोज्ञा, विधाता, मादनी, हली, गुणारिष्ट, सरक, मधुलिका, मदोत्कटा, महानन्दा, कारण, तत्त्व, मदिष्ठा, परिप्लुता, कल्प, साधुरसा, शुण्डा, मार्द्वीक, मदना, कापिश, अब्धिजा, कल्या और मधूल) ये मदिराके संस्कृत नाम हैं ॥

लक्षण-जो पीनेका पदार्थ मादक (नशा करनेवाला) हो उसको लोक मद्य कहते हैं। जैसे कि-अरिष्ट, सुरा, सीधु और आसव आदि मद्यके अनेक भेद हैं ॥

गुण-सम्पूर्ण जातिकी मदिरा-गरम, पित्तकारक, वातको नष्ट करनेवाली, मलभेदक, शीघ्र पचनेवाली, रूखी, अत्यन्त कफनाशक, खट्टी, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक, पाचन, शीघ्रता करनेवाली, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, विशद, व्यवायि (प्रथम शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पचनेवाली) तथा विकाशी हैं ॥१६॥१९॥

अरिष्टस्य लक्षणं गुणाश्च।

पक्वौषधाम्बुसिद्धं यन्मद्यं तत्स्यादरिष्टकम् ॥ २० ॥

अरिष्टम्-मद्यमिति लोके। यथा द्राक्षारिष्टम्, दशमूलारिष्टम्, बब्बूलारिष्टमिति ॥

अरिष्टं लघु पाकेन सर्वतश्च गुणाधिकम्। अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः ॥ २१ ॥

पकाई हुई औषधि और जलसे अर्थात् क्वाथ आदिसे जो मद्य बनाई जाती है उसे अरिष्ट कहते हैं, (लोकमें अरिष्टको मद्य ही कहते हैं, जैसे कि दाखोंका अरिष्ट, दशमूलका अरिष्ट और बबूलका अरिष्ट)। अरिष्ट-पाकमें हलका और सबसे अधिक गुणवाला है। जिस पदार्थका अरिष्ट बनाया जाय, उस अरिष्टमें उसी पदार्थके सदृश गुण होते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

सुरालक्षणं गुणाश्च।

शालिषष्टिकपिष्टादिकृतं मद्यं सुरा स्मृता। सुरा गुर्वी बलस्तन्यपुष्टिमेदःकफप्रदा। ग्राहिणी शोथगुल्मार्शोग्रहणीमूत्रकृच्छ्रनुत् ॥ २२ ॥

चावल अथवा सांठी चावलोंके चूर्ण आदिसे बनाई हुई मदिरा सुरा कहाती है। सुरा-भारी, बल, दुग्ध, पुष्टि, मेद तथा कफवर्द्धक है। और ग्राही, सूजन, गुल्म, बवासीर, संग्रहणी तथा मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करती है २२॥

वारुणीलक्षणगुणाः।

पुनर्नवाशिलापिष्टैर्वारुणी विहिता स्मृता। संहितैस्तालखर्जूररसैर्या साऽपि वारुणी। सुरावद्वारुणी लघ्वी पीनसाध्मानशूलनुत् ॥ २३ ॥

सुरातो भेदार्थं लघ्वीति ॥

पुनर्नवा या सांठी, शिलापर पीसकर उसकी मदिरा बनावे, उसको वारुणी कहते हैं। ताडी या खजूरीके रसकी जो मदिरा हो, उसको भी वारुणी कहते हैं। वारुणी सुराके सदृश ही है, परन्तु सुरासे हलकी है पीनस, अफरा तथा शूलको नष्ट करती है ॥ २३ ॥

द्विविधसीधुलक्षणगुणाः।

इक्षोः पक्वै रसैः सिद्धः सीधुः पक्वरसश्च सः। आमैस्तैरेव यः सीधुः स च शीतरसः स्मृतः ॥ २४ ॥ सीधुः पक्वरसः श्रेष्ठः स्वराग्निबलवर्णकृत्। वातपित्तकरः सद्यः स्नेहनो रोचनो हरेत् ॥ २५ ॥ विबन्धमेदः शोफार्शःशोफोदरकफामयान्। तस्मादल्पगुणः शीतरसः संलेखनः स्मृतः ॥ २६ ॥

ईखके पके हुए रससे जो मदिरा बनाई जाय, उसको पक्वरस सीधु कहते हैं। ईखके कच्चे ही रससे जो मदिरा बनाई जाय, उसको शीतरस सीधु कहते हैं। पक्वरस सीधु-श्रेष्ठ, स्वरको उत्तम करनेवाली, अग्निप्रदीपक, बलवर्धक, वर्णको उत्तम करनेवाली, वात, पित्तकारक, तत्काल स्निग्धता करनेवाली, रुचिकारक, मलबन्ध, मेद, सूजन, बवासीर, उदरकी सूजन तथा कफसम्बन्धी रोगोंको नष्ट करती है। इस मदिराकी अपेक्षा शीतरस सीधु हीन गुणवाली और लेखन है ॥ २४-२६ ॥

आसवलक्षणगुणाः

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ॥ २७ ॥

यथा लोहासवादिः ॥

आसवस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः ॥ २८ ॥

कच्ची औषधिसे और कच्चे पानीसे जो मदिरा बनाई जाय उसको आसव कहते हैं। जैसे कि, लोहासव आदि। जिस पदार्थका आसव बनाया जाय, उस आसवमें उस पदार्थ के सदृश ही गुण होते हैं ॥२७॥२८॥

नव पुराणमदिरागुणाः।

मद्यं नवमभिष्यन्दि त्रिदोषजनकं सरम्। अहृद्यं बृंहणं दाहि दुर्गन्धं विशदं गुरु ॥ २९ ॥ जीर्णं तदेव रोचिष्णु क्रिमिश्लेष्मानिलापहम्। हृद्यं सुगन्धि गुणवल्लघु स्रोतोविशोधनम् ॥ ३० ॥

नवीन मद्य-अभिष्यन्दि, तीनों दोषोंको उत्पन्न करनेवाली, दस्तावर, हृदयको अप्रिय, पुष्टिकारक, दाह करनेवाली, दुर्गन्धित, विशद और भारी है। पुरानी मदिरा रुचिको उत्पन्न करनेवाली, कृमि, कफ तथा वातविनाशक हृदयको प्रिय, सुगन्धित, गुणकारी' हलकी और स्रोतों अर्थात् छिद्रोंको शुद्ध करनेवाली है ॥ २९ ॥ ३० ॥

सात्विकादिमनुष्याणां
मद्येन जाताश्चेष्टाः।

सात्त्विके गीतहास्यादि राजसे साहसादिकम्। तामसे निन्द्यकर्माणि निद्रांश्च मदिराऽऽचरेत्॥३१॥ आचरेत्--कुर्यात्।

जो सत्त्वगुणी मनुष्यने मद्य पी हो तो गीत और हास्यादिक करता है, रजोगुणी मनुष्यने पी हो तो साहसादि, पुरुषार्थके वीर कर्मोंको करता है। तमोगुणी मनुष्यने पी हो तो उससे निन्द्य कार्य करता है तथा इसको निद्रा अधिक होती है ॥ ३१ ॥

मद्यपानप्रकारः।

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाः बलम्। प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥ ३२ ॥ किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम्। अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम्॥३३॥

जो मनुष्य प्रन्नतासे विधिपूर्वक तथा अपनी शक्तिके अनुसार मात्राभर नियमित समयमें मद्य पीता है और हितकारी अन्न भक्षण करता है, उस मनुष्यको मद्य अमृतके सदृश होती है, जैसा अन्नका स्वभाव है। वैसाही मद्यका स्वभाव है। जो विधिको छोडकर सेवन करता है, उसको रोगकारक होती है। जो युक्तिपूर्वक सेवन करता है, उसकी अमृततुल्य गुण कारी होती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

मद्यगन्धस्य दूरीकरणोपायः।

मुस्तैलवालगदजीरकधान्यकैला
यश्चर्वयन् सदसि वाचमभिव्यनक्ति।
स्वाभाविकं मुखजमुज्झति पूतिगन्धं
गन्धश्च मद्यलशुनादिभवश्च नूनम् ३४॥

इति श्रीभावप्रकाशे सन्धानवर्गः।

नागरमोथा, कबाबचीनी, कूठ, जीरा, धनियाँ और इलायची इनको चबाकर जो मनुष्य सभामें बातचीत करे, उसके मुखकी स्वाभाविक दुर्गन्ध दूर हो जाती है। मदिरा तथा लहसुन आदिसे उत्पन्न हुई दुर्गन्ध भी अवश्य नष्ट होजाती है ॥ ३४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां सन्धानवर्गः ॥

अथ मधुवर्गः।

मधुनामगुणाः।

मधु माक्षिकमाध्वीकक्षौद्रसारघ्यमीरितम्। मक्षिकावरटीभृङ्गवान्तपुष्परसोद्भवम् ॥ १ ॥ मधु शीतं लघु स्वादु रूक्षं ग्राहि विलेखनम्। चक्षुष्यं दीपनं स्वर्यं व्रणशोधनरोपणम् ॥ २ ॥ सौकुमार्यकरं सूक्ष्मं परं स्रोतोविशोधनम्। कषायानुरसं ह्लादि प्रसादजनकं परम् ॥ ३ ॥ वर्ण्यं मेधाकरं वृष्यं विशदं रोचनं हरेत्। कुष्ठार्शःकासपित्तास्रकफमेहक्लमक्रिमीन् ॥ ४ ॥ मेदस्तृष्णावमिश्वासहिक्काऽतीसारविड्ग्रहान्। दाहक्षतक्षयांस्तत्तु योगवाह्यल्पवातलम् ॥ ५ ॥

मधु, माक्षिक, माध्वीक, क्षौद्र, सारघ्य, मक्षिका वान्त, वरटीवान्त, भृंगवान्त, पुष्परसोद्भव, (पवित्र, कुसुमासव, माक्षीक, पुष्पासव, पुष्परसाह्वय और मकरन्दरस) ये मधुके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-मधु, शहत। बं०-मधु। म०-गु०-मध। क०-जनेतुप्य। तै०-तैनी। फा०-शहद, अमवीन। अ०-असल। इं०-Honey लै०-मल Mel.

गुण-शहत-शीतल, हलका, मधुर, रूक्ष, ग्राही, विलेखन, नेत्रोंको हितकारी, अग्निप्रदीपक, स्वरको उत्तम करनेवाला, व्रणशोधक, रोपण, सुकुमारता करनेवाला, सूक्ष्म स्रोतोंको शुद्ध करनेवाला, कसैले रससहित, आह्लादकारक, प्रसादजनक, वर्णको उज्वलकरनेवाला, बुद्धिकारक, वृष्य, विशद, रुचिकारक, कोढ, बवासीर, खाँसी, पित्त, रक्तविकार, कफ, प्रमेह, ग्लानि, कृमि, और मेद, तृषा, वमन, श्वास, हिचकी, अतिसार, मलबन्ध, दाह, क्षत और क्षय इन सबको नष्ट करता है। योगवाही (जिस पदार्थके साथ मिले, उसके ही सदृश करनेवाला) और किञ्चित् वातकारक है ॥ १ ॥ ५ ॥

मधुभेदाः।

माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पौतिकं छात्रमित्यपि। आर्घ्यमौद्दालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः ॥ ६ ॥

माक्षिक, भ्रामर, क्षौद्र, पौतिक, छात्र, आर्घ्यऔद्दालक और दाल ये आठ शहतके भेद हैं ॥ ६ ॥

माक्षिक लक्षणगुणाः।

मक्षिकाः पिङ्गवर्णास्तु महत्यो मधुमक्षिकाः। ताभिःकृतं तैलवर्णं माक्षिकं परिकीर्तितम् ॥ ७ ॥ माक्षिकं मधुषु श्रेष्ठं नेत्रामयहरं लघु। कामलाऽर्शःक्षतश्वासकासक्षयविनाशनम् ॥ ८ ॥

पिंगल वर्णवाली जो वडी मक्खी होती हैं, उनको मधुमक्खी कहते हैं। इनका किया हुआ जो तेलके सदृश वर्णवाला मधु होता है, वह माक्षिक मधु कहाता है। माक्षिक मधु-सब मधुओंमें श्रेष्ठ, नेत्ररोगनाशक, हलका, कामला, बवासीर, क्षत, श्वास, खाँसी तथा क्षयको नष्ट करता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

भ्रामरलक्षणगुणाः।

किञ्चित्सूक्ष्मैः प्रसिद्धेभ्यः षट्पदेभ्योऽलिभिश्चितम्। निर्मलं स्फटिकाभं यत्तन्मधु भ्रामरं स्मृतम् ॥ ९ ॥ भ्रामरं रक्तपित्तघ्नं मूत्रजाड्यकरं गुरु। स्वादुपाकमभिष्यन्दि विशेषात्पिच्छिलंहिमम् ॥ १० ॥

प्रसिद्ध भौंरोंसे किञ्चित् छोटे भौंरोंका बनाया हुआ स्फटिक मणिके सदृश निर्मल जो मधु हो, उसको भ्रामर कहते हैं। भ्रामर मधु-रक्तपित्तनाशक, मूत्रमें जडता करनेवाला, भारी, पाकमें मधुर, अभिष्यन्दि, विशेष करके पिच्छिल गिलगिला और शीतल है ॥ ९ ॥ १० ॥

क्षौद्रलक्षणगुणाः ।

मक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्राख्यास्तत्कृतं मधु । मुनिभिः क्षौद्रमित्युक्तं तद्वर्णात् कपिलं भवेत् । गुणैर्माक्षिकवत्क्षौद्रं विशेषान्मेहनाशनम् ॥ ११ ॥

कपिल रंगवाली सूक्ष्म मक्खियाँ क्षुद्रा कहाती हैं । इन मक्खियोंके किये हुए मधुको मुनियोंने क्षौद्र कहा है । क्षौद्र मधु-कपिल 'भूरे' वर्णवाला होता है और माक्षिकके सदृश गुणवाला तथा विशेष करके प्रमेहनाशक है ॥ ११ ॥

पौतिकमधुलक्षणगुणाः ।

कृष्णा या मशकोपमा लघुतराः प्रायो महापीडिका वृक्षाणां पृथुकोटरान्तरगताः पुष्पासवं कुर्वते । तास्तज्ज्ञैरिह पूतिका निगदितास्ताभिः कृतं सर्पिषा तुल्यं यन्मधु तद्वनेचरजनैः संकीर्तितं पौतिकम् ॥ १२ ॥ पौतिकं मधु रूक्षोष्णं पित्तदाहास्रवातकृत् । विदाहि मेहकृच्छ्रघ्नं ग्रन्थ्यादिक्षतशोषि च ॥ १३ ॥

अधिक करके मच्छरके सदृश, अत्यन्त सूक्ष्म, काली, लोगोंको बहुत पीडा करनेवाली और वृक्षोंकी खखोडलमें रहनेवाली जो मक्खी मधु बनावे, उनको विद्वान् पूतिका कहते हैं । उनका बनाया हुआ घीके सदृश जो मधु होता है, उसको वनमें फिरनेवाले लोग पौतिक कहते हैं । पौतिक मधु-रूक्ष, गरम, विदाही, पित्त, दाह, रक्तविकार वातकारक, प्रमेह मूत्रकृच्छ्रनाशक, गांठ आदि तथा क्षतको शोषण करता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

छात्रमधुनो लक्षणं गुणाश्च ।

वरटाः कपिलाः पीताः प्रायो हिमवतो वने । कुर्वन्ति छत्रकाकारं तज्जं छात्रं मधु स्मृतम् । छात्रं कपिलपीतं स्यात्पिच्छिलं शीतलं गुरु ॥ १४ ॥ स्वादुपाकं कृमिश्वित्ररक्तपित्तप्रमेहजित् । भ्रमतृण्मोहविषहृत्तर्पणञ्च गुणाधिकम् ॥ १५ ॥

अधिक करके हिमालयके वनमें पिंगल और पीली मक्खियां छत्रके सदृश आकारवाली जो मधु बनाती है उस मधुको छात्र कहते हैं । छात्र मधु-भूरे वर्णका, पीला, पिच्छिल, शीतल, भारी, पाकमें मधुर, तृप्तिदायक, अधिक गुणवाला, कृमि, सफेदकोढ, रक्तपित्त, प्रमेह, भ्रम, तृषा, मोह तथा विषको नष्ट करता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

आर्घ्यकलक्षणं गुणाश्च ।

मधूकवृक्षनिर्यासं जरत्कार्वाश्रमोद्भवम् । स्रवत्यार्घ्यं तदाख्यातं श्वेतकं मालवे पुनः ॥ १६ ॥ तीक्ष्णतुण्डास्तु याः पीता मक्षिकाः षट्पदोपमाः । अर्घ्यास्तास्तत्कृतं यत्तदार्घ्यमित्यपरे जगुः ॥ १७ ॥ आर्घ्यं मध्वतिचक्षुष्यं कफपित्तहरं परम् । कषायं कटुकं पाके तिक्तञ्च बलपुष्टिकृत् ॥ १८ ॥

जरत्कारु मुनिके आश्रममें उत्पन्न हुए महुएके वृक्षोंमें जो गोंद स्रवता है, वह आर्घ्य कहाता है । इसको मालवेमें श्वेतक कहते हैं । दूसरे मुनि कहते हैं । कि "भौंरेके सदृश और तीक्ष्ण मुखवाली जो पीली मक्खियां होती हैं, उनका नाम अर्घ्य है । उनके बनाये हुए मधुको आर्घ्य कहते हैं ।" आर्घ्य मधु-नेत्रोंको अत्यन्त हितकारी, कफपित्तनाशक, उत्तम, कसैला, पाकमें चरपरा, कडवा, बल तथा पुष्टिदायक है ॥ १६ ॥ १८ ॥

औद्दालकमधुलक्षणगुणाः ।

प्रायो वल्मीकमध्यस्थाः कपिलाः स्वल्पकीटकाः । कुर्वन्ति कपिलं स्वल्पं तत्स्यादौद्दालकं मधु ॥१९॥ औद्दालकं रुचिकरं स्वर्यंकुष्ठविषापहम् । कषायमुष्णमम्लञ्च कटुपाकञ्च पित्तकृत् ॥२०॥

प्रायः बांबीमें रहनेवाले कपिलवर्णयुक्त जो छोटे छोटे कीडे होते हैं, वे कपिलवर्णवाला थोडा मधु बनाते हैं, उस मधुको औद्दालक कहते हैं । औद्दालक मधु-रुचिकारक, स्वरके लिये उत्तम, कोढ तथा विषनाशक है । कसैला, गरम, खट्टा, पाकमें चरपरा पित्तकारक है ॥ १९ ॥ २० ॥

दालमधुलक्षणगुणाः ।

संस्तुत्य पतितं पुष्पाद्यत्तु पत्रोपरि स्थितम् । मधुराम्लकषायश्च तद्दालं मधु कीर्त्तितम् ॥ २१ ॥ दालं मधु लघु प्रोक्तं दीपनीयं कफापहम् । कषायानुरसं रूक्षं रुच्यं छर्दिप्रमेहजित् ॥ २२ ॥ अधिकं मधुरं स्निग्धं बृंहणं गुरुभारिकम् ॥२३॥

लघु--पाके, गुरुभारिकं--तुलितम् ॥

पुष्पोंमेंसे झरकर पत्तोंके ऊपर पडा हुआ जो मधुर, खट्टा और कसैला रस होता है, वह दाल मधु-कहाता है । दालमधु पाकमें हलका, अग्निप्रदीपक, कफनाशक, कसैले रसवाला, रूक्ष, रुचिकारी, वमन, प्रमेहनाशक, अधिक मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकारक और तौलमें भारी है ॥ २१-२३ ॥

नवपुराणमधुगुणाः ।

नवं मधु भवेत्पुष्टचै नातिश्लेष्महरं सरम् । पुराणं ग्राहकं रूक्षं मेदोघ्नमतिलेखनम् ॥ २४ ॥ मधुनः शर्करायाश्च गुडस्यापि विशेषतः । एकसंवत्सरे वृत्तं पुराणत्वं स्मृतं बुधैः ॥ २५ ॥

नवीन मधु-पुष्टिकारक, अत्यन्त कफनाशक नहीं और दस्तावर है । पुराना मधु-ग्राही, रूक्ष, मेदनाशक और अत्यन्त लेखन है । मधुको खाँडको तथा गुडको जब एक वर्ष बीत जाय तब ये पुराने होते हैं ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥ २४ ॥ २५ ॥

शीतलोष्णमधुनो गुणदोषाः ।

विषपुष्पादपि रसं सविषा भ्रमरादयः । गृहीत्वा मधु कुर्वन्ति तच्छीतं गुणवन्मधु ॥ २६ ॥ विषान्वयात्तदुष्णन्तु उष्णे चोष्णेन वा सह । उष्णार्त्तस्योष्णकाले च स्मृतं विषसमं मधु ॥ २७ ॥

विषैले भौंरे आदि विषैले फूलोंमेंसे रस लेकर मधु बनाते हैं, वह मधु शीतलही गुणकारी है । परन्तु उसमें किसी विषैले पदार्थका संयोग रहनेसे अथवा गरम पदार्थका संयोग रहनेसे अथवा गरम रोगोंसे पीडितको उष्णकालमें देनेसे वह मधु गरम होकर विषके सदृश काम करता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

मधूच्छिष्टनामगुणाः ।

मदनं तु मधूच्छिष्टं मधुशेषं च सिक्थकम् । मध्वाधारो मदनकं मधूषितमपि स्मृतम् ॥ २८ ॥ मदनं मृदु सुस्निग्धं भूतघ्नं व्रणरोपणम् । भग्नसन्धानकृद्वातकुष्ठवीसर्परक्तजित् ॥ २९ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे मधुवर्गः ।

मदन, मधूच्छिष्ट, मधुशेष, सिक्थक, मध्वाधार, मदनके, मधूषित (शिक्थ, सिक्थ, शिक्थक, मधुज, मधुसंभव मादन, काच, विघस, उच्छिष्ट, मोदन, मक्षिकामल, क्षौद्रेय, पीतराग, स्निग्ध, माक्षिकज, क्षौद्रज और मधूत्थित) ये मोमके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-बं०-मोम । म०-मेण । गु०-मीण । फा०-मोम । अ०-शमा । इं०-वॉक्स Wax

गुण-मोम-कोमल, स्निग्ध, भूतनाशक, व्रणरोपक, भग्नसंधानकारक, घावको भरनेवाला, वात, कोढ, विसर्प तथा रक्तविकारनाशक है ॥ २८ ॥ २९ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्राम वैश्यकृतभाषाटीकायां मधुवर्गः ॥

अथेक्षुवर्गः।

इक्षुनामगुणाः।

इक्षुर्दीर्घच्छदः प्रोक्तस्तथा भूमिरसोऽपि च। गुडमूलोऽसिपत्रश्च तथा मधुतृणः स्मृतः ॥ १ ॥ इक्षवो रक्तपित्तघ्ना बल्या वृष्याःकफप्रदाः। स्वादुपाकरसाःस्निग्धा गुरवो मूत्रला हिमाः ॥ २ ॥

इक्षु, दीर्घच्छद, भूमिरस, गुडमूल, असिपत्र, मधुतृण, (मधुयष्टि, विपुलरस, गुडदारु, रसाल, कोशकार, इक्षुर, असिपत्रक, पयोधर, कर्कोटक, वंश, कांतार, सुकुमारक, अधिपत्र, गुडतृण और मृत्युपुष्प,) ये ईखके संस्कृत नाम हैं ॥

हिन्दी-ईख, गन्ने। बं०-इक्षु, कुशिर, । म०. ऊस। गु०-शेरडी। क०-कवु। तै०-चिरकु। फा०-नेशकर। अ०-कसबुशसक्कर। इं०-शूगरकेन Sugarcane. लै०-सेखरम आलवम् Saecharum Album. ता०-करुंबु ॥

गुण-ईख-रक्तपित्तनाशक, बलदायक, मैथुनशक्तिवर्द्धक, कफकारक, पाकमें तथा रसमें मधुर, स्निग्ध, भारी, मूत्रवर्धक और शीतल है ॥ १ ॥ २ ॥

इक्षुभेदाः।

पौण्ड्रको भीरुकश्चापि वंशकः शतपोरकः। कान्तारस्तापसेक्षुश्च काण्डेक्षुः सूचिपत्रकः ॥ ३ ॥ नैपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोऽथ कोशकः। मनोगुप्ता च इत्येता जातयस्तत्र कीर्तिताः ॥ ४ ॥

पौण्ड्रक, भीरुक, वंशक, शतपोरक, कांतार, तापसेक्षु, काण्डेक्षु, सूचिपत्रक, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर, कोशक और मनोगुप्ता ये ईखकी जाति हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

पौण्ड्रकभीरुकेक्षुगुणाः।

वातपित्तप्रशमनो मधुरो रसपाकयोः। सुशीतो बृंहणो बल्यः पौण्ड्रको भीरुकस्तथा ॥ ५ ॥

सफेदपौंडा और भीरुक ईख-वात पित्तनाशक, रसमें तथा पाकमें मधुर, अत्यन्त शीतल, पुष्टिकारक और बलवर्धक हैं ॥ ५ ॥

कोशकारेक्षुगुणाः।

कोशकारो गुरुः शीतो रक्तपित्तक्षयापहः ॥ ६ ॥

कोशक नामक ईख-भारी, शीतल, रक्तपित्त तथा क्षयनाशक है ॥ ६ ॥

कान्तारेक्षुगुणाः।

कान्तारेक्षुर्गुरुर्वृष्यः श्लेष्मलो बृंहणः सरः ॥ ७ ॥

कान्तार ईख कालागन्ना-भारी, वृष्य, कफकारक पुष्टिदायक और दस्तावर है ॥ ७ ॥

वंशकेक्षुगुणाः।

दीर्घपोरः सुकठिनः सक्षारो वंशकः स्मृताः ॥ ८ ॥

वंशक, इक्षुक, दीर्घपोर-बहुत कठिन और क्षारयुक्त है ॥ ८ ॥

शतपोरकेक्षुगुणाः।

शतपर्वा भवेत्किञ्चित्कोशकारगुणान्वितः। विशेषात्किञ्चिदुष्णश्च सक्षारः पवनापहः ॥ ९ ॥

शतपोरक गन्ना-किंचित् कोशकके सदृश गुणयुक्त, विशेष करके किंचित्-गरम, खारयुक्त और वातविनाशक है ॥ ९ ॥

तापसेक्षुगुणाः।

तापसेक्षुर्भवेन्मृद्वी मधुरा श्लेष्मकोपनी। तर्पणी रुचिकृच्चापि वृष्या च बलकारिणी ॥ १० ॥

तापस (चीनिया) ईख-मृदु, मधुर, कफको कुपित करनेवाली, तृप्तिकारक, रुचिकर्त्ता, वृष्य और बलदायक है ॥ १० ॥

काण्डेक्षुगुणाः ।

एवं गुणैस्तु काण्डेक्षुः स तु वातप्रकोपणः ॥ ११ ॥

कांडेक्षुमें भी तापसेक्षुके सदृश गुण है परन्तु वातको कुपित करनेवाली है ॥ ११ ॥

सूचीपत्रादिक्षुगुणाः ।

सूचीपत्रा नीलपोरा नैपाला दीर्घपत्रकाः। वातलाः कफपित्तघ्नाः सकषाया विदाहिनः ॥ १२ ॥

सूचीपत्र जिसमें बहुत बारीक-पत्ते होते हैं नीलपोर, दीर्घपत्रक और नैपाल ईख-वातकारक. कफ पित्तनाशक, कसैली रक्तपित्तनाशक हैं ॥ १२ ॥

मनोगुप्तेक्षुगुणाः ।

मनोगुप्ता वातहरी तृष्णामयविनाशिनी। सुशीता मधुराऽतीव रक्तपित्तप्रणाशिनी ॥ १३ ॥

मनोगुप्तानामक ईख-वात तथा तृषासम्बन्धी रोगनाशक, शीतल, अत्यन्त मीठी और रक्तपित्तनाशक है ॥ १३ ॥

बालतरुणवृद्धेक्षुगुणाः ।

बाल इक्षुः कफं कुर्यान्मेदोमेहकरश्च सः। वातहारी युवा स्वादुरीषत्तीक्ष्णश्च पित्तनुत्। रक्तपित्तहरो वृद्धः क्षतहृद्बलवीर्यकृत् ॥ १४ ॥

थोडे दिनोंकी वा कच्ची-ईख कफकारक, मेद तथा प्रमेहको उत्पन्न करनेवाली है। अधपकी-ईख-वातनाशक, मधुर, किंचित् तीक्ष्ण और पित्तनाशक है। पकी ईख-रक्तपित्त क्षतनाशक, बल तथा वीर्यकारक है ॥ १४ ॥

इक्षोरङ्गभेदेन गुणभेदाः ।

मूले तु मधुरोऽत्यर्थं मध्येऽपि मधुरः स्मृतः। अग्रे ग्रन्थिषु विज्ञेय इक्षुः पटुरसो जनैः ॥ १५ ॥

गन्ना-जडमें अत्यन्त मधुर, मध्यमें मधुर और अग्रभागमें व गांठोंमें खारा है ॥ १५ ॥

चूषितेक्षुगुणाः ।

दन्तनिष्पीडितस्येक्षो रसः पित्तास्रनाशन। शर्करासमवीर्यः स्यादविदाही कफप्रदः ॥ १६ ॥

चूँसा हुआ गन्नेका रस-पित्त, रक्तविकारनाशक, शर्कराके समान वीर्यवाला, दाहकारक नहीं और कफकारक है ॥ १६ ॥

यांत्रिकेक्षुरसगुणाः ।

मूलाग्रजन्तुयन्त्रादिपीडनान्मलसङ्करात्। किञ्चित्कालविधृत्या च विकृतिं याति यान्त्रिकः। तस्माद्विदाही विष्टम्भी गुरुः स्याद्यान्त्रिको रसः ॥ १७ ॥

गन्नेकी जड, अग्रभाग, जीव तथा गांठ आदि सब यन्त्र (कोल्हू) में मिलनेसे, मैल आदि मिलनेसे और किंचित् अधिक समयतक रक्खे रहनेसे पिला हुआ रस विकारयुक्त होजाता है, इस कारण कोल्हूका पिला हुआ रस दाहको उत्पन्न करनेवाला, विष्टम्भी और भारी है ॥ १७ ॥

पर्युषितेक्षुरसगुणाः ।

रसः पर्युषिता नेष्टो ह्यम्लो वातापहो गुरुः। कफपित्तकरः शोषी भेदनश्चातिमूत्रलः ॥ १८ ॥

ईखका वासी रस-अप्रिय, खट्टा, वातनाशक, भारी, कफ पित्तको बढनेवाला, शोषकारक, मलभेदक और अत्यन्त मूत्रवर्धक है ॥ १८ ॥

पक्वेक्षुरसगुणाः ।

पक्वो रसो गुरुः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफवातनुत् । गुल्मानाहप्रशमनः किञ्चित्पित्तकरः स्मृतः ॥ १९ ॥

ईखका पका रस–भारी, स्निग्ध, बहुततीक्ष्ण कफ वातनाशक, गुल्म अफारेको शांत करनेवाला और किंचित् पित्तकारक है ॥ १९ ॥

इक्षुरसनिर्मितपदार्थगुणाः ।

इक्षोर्विकारास्तृड्दाहमूर्च्छापित्तास्रनाशनाः । गुरवो मधुरा बल्याः स्निग्धा वातहराः सराः ॥ वृष्या मोहहराः शीता बृंहणा विषहारिणः ॥ २० ॥

ईखके रससे बने हुए गुडादिक पदार्थ–तृषा, दाह, मूर्च्छा, पित्त तथा रक्तविकारोंके नाशक हैं, भारी, मधुर, बलदायक, स्निग्ध, बातनाशक, दस्तावर, वृष्य, मोहको नष्ट करनेवाले, शीतल, पुष्टिदायक और विषविनाशक हैं ॥ २० ॥

फाणितलक्षणगुणाः ।

इक्षो रसस्तु यः पक्वः किञ्चिद्गाढो बहुद्रवः । स एवेक्षुविकारेषु ख्यातः फाणितसंज्ञया ॥ २१ ॥ फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं कफशुक्रकृत् । वातपित्तश्रमान् हन्ति मूत्रवस्तिविशोधनम् ॥ २२ ॥

किंचित् गाढा, बहुत पतला और पका हुआ ईखका रस फाणित या राब कहाता है । राब–भारी, अभिष्यन्दी, पुष्टिकारक, कफ, वीर्यको करनेवाला, वात, पित्त तथा परिश्रमनाशक मूत्र वस्तिको शुद्ध करनेवाला है ॥ २१ ॥२२॥

मत्स्यण्डीलक्षणगुणाः ।

इक्षो रसो यः सम्पक्वो घनःकिञ्चिद्द्रवान्वितः । मन्दं यत्स्यन्दते तस्मात्तन्मत्स्यण्डी निगद्यते ॥ २३ ॥ मत्स्यण्डी भेदिनी बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा । मधुरा बृंहणी वृष्या रक्तदोषापहा स्मृता ॥ २४ ॥

भली भांति पकाया हुआ गाढा और थोडा द्रव्ययुक्त ईखका रस मत्स्यण्डी या मीजां कहाता है । मत्स्यण्डी–मलभेदक, बलकारक, हलकी, पित्त तथा वातनाशक है । मधुर,पुष्टिकारक, वृष्य तथा रुधिरसम्बन्धी रोगोंको नष्ट करती है ॥ २३ ॥ २४ ॥

गुडस्य लक्षणं गुणाश्च ।

इक्षो रसो यः सम्पक्वो जायते लोष्टवद्दृढः । स गुडो गौडदेशे तु मत्स्यण्डयेव गुडो मतः ॥ २५ ॥ गुडो वृष्ये गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः । नातिपित्तहरो मेदःकफक्रिमिबलप्रदः ॥ २६ ॥

ईखका रस भली भांति पकाकर जो लोष्ट समान गाढा हो जाता है उसको गुण कहते हैं । परन्तु गौडदेशमें मत्स्यण्डीको ही गुण कहते हैं ॥

सं०–हिन्दी–बं०–गुड । म०–गूळ । गु०–गोड । क०–हेसरू । तै०–ता०–वेल्लमु । फा०–कन्देसिया । अ०–कन्दे अस्वद । इं०–ट्रेकल Treacle. Water Apua.

गुण–वीर्यवर्द्धक, भारी, स्निग्ध, वातनाशक, मूत्रको शुद्ध करनेवाला, अत्यन्त पित्तनाशक नहीं मेद,कफ,कृमि तथा बलवर्द्धक है २५॥२६

पुराणगुडस्य गुणाः ।

गुडो जीर्णो लघुः पथ्योऽनभिष्यन्द्यग्निपुष्टिकृत् । पित्तघ्नो मधुरो वृष्यो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः ॥ २७ ॥

पुराना गुड–हलका, पथ्य, अभिष्यन्दी, नहीं, अग्निवर्द्धक, पित्तनाशक, मधुर, वृष्य, वातको हरनेवाला और रुधिरको स्वच्छ करनेवाला है ॥ २७ ॥

नवीनगुडस्य गुणाः ।

गुडो नवः कफश्वासकासक्रिमिकरोऽग्निकृत् ॥ २८ ॥

नवीन गुड-कफ, श्वास, खांसी, कृमि और अग्निवर्द्धक है ॥ २८ ॥

अनुपानभेदेन गुणस्य गुणाः।

श्लेष्माणमाशु विनिहन्ति सदार्द्रकेण पित्तं निहन्ति च तदेव हरीतकीभिः। शुण्ठ्या समं हरति वातमशेषमित्थं दोषत्रयक्षयकराय नमो गुडाय ॥ २९ ॥

अदरखके साथ खाया हुआ गुड तत्काल कफनाशक, हरडके साथ खाया हुआ गुड पित्तनाशक और सोंठके साथ खाया हुआ गुड सम्पूर्ण वातविनाशक है, इस प्रकार गुण तीनों दोषोंको नष्ट करता है, इस कारण गुणके अर्थ नमस्कार है ॥ २९ ॥

खण्डस्य गुणाः।

खण्डं तु मधुरं वृष्यं चक्षुष्यं बृंहणं हिमम्। वातपित्तहरं स्निग्धं बल्यं वान्तिहरं परम् ॥ ३० ॥

खांड-मधुर, वृष्य, नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारक, शीतल, वात तथा पित्तनाशक, स्निग्ध, बलदायक और अत्यन्त वमननाशक है ॥ ३० ॥

शर्करालक्षणगुणाः।

खण्डं तु सिकतारूपं सुश्वेतं शर्करा सिता। सिता सुमधुरा रुच्या वातपित्तास्रदाहहृत् ॥ मूर्च्छाछर्दिज्वरान् हन्ति सुशीता शुक्रकारिणी ॥ ३१ ॥

जो खांड रेतेके सदृश और सफेद होती है, उसको शर्करा और सिता कहते हैं।

हिन्दी-चीनी, बूरा। गु०-साकरियाखांड ॥ यह खांड (बूरा)-अत्यन्त मधुर, रुचिकारक वात, पित्त, रक्तविकार, दाह, मूर्च्छा, वमन तथा ज्वरको नष्ट करनेवाली, बहुत शीतल और वीर्यवर्द्धक है ॥ ३१ ॥

सितोपलानामगुणाः।

भवेत्पुष्पसिता शीता रक्तपित्तहरी लघुः। सितोपला सरा लघ्वी वातपित्तहरी हिमा ॥ ३२ ॥

सं०-सिता। हिं०-मिश्री। बं०-मिचरी। म०-खडीसाखर। गु०-खडीसाखर। क०-कलुसक्करी। तै०-फाटिकेपां। फा०-नवात। अ०-सक्करे अबीयद। इं०-प्युरि फाइड स्युगरकेंडी Purified Sugar Candy. लै०-सक्करम् प्युरिफिकिटम् Sackarum Purificitum. ता०-कल्कण्डु।

सफेद बूरा-शीतल, रक्तपित्तविनाशक और हलकी है। मिश्री-दस्तावर, हलकी, वात पित्तनाशक और शीतल है ॥ ३२ ॥

मधुखण्डगुणाः।

मधुजा शर्करा रूक्षा कफपित्तहरी गुरुः। छर्द्यतीसारतृड्दाहरक्तहृत्तुवरा हिमा ॥ ३३ ॥

शहदसे बनाई हुई खांड-रूखी, कफ पित्त नाशक, भारी, कसेली, शीतल वमन, अतीसार, तृषा, दाह, तथा रक्तविकारनाशक है ॥ ३३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे इक्षुवर्गः ॥

यथायथैषां नैर्मल्यं मधुरत्वं यथायथा। स्नेहलाघवशैत्यादि सरत्वञ्च तथा तथा ३४

खांड और बूरा-जितनी २ अधिक स्वच्छ करे उतनी २ ही अधिक मधुर, स्निग्ध, हलकी शीतल और दस्तावर होती है ॥ ३४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायामिक्षुवर्गः ॥

समाप्तोऽयं द्रववर्गः।

अथ अनेकार्थनामवर्गः ।

तत्र द्व्यर्थानि नामानि ।

अश्मन्तकः--अम्ललोणिका, कोविदारश्च। **कठिल्लकः**--कारवेल्लः, रक्तपुनर्नवा च। **कुलकः**--पटोलम्, कुपीलुश्च। (कुपीलुः कुचला इति लोके प्रसिद्धः)। **कोशातकी**- महाकोशातकी, राजकोशातकी च। **दीप्यकः**--यवानी, अजमोदा च। **मरुवकः**--फणिज्जकः, पिण्डीतकश्च। (मरुवकः--मरुआ इति लोके)। (पिंडीतकः मैनफल इति लोके)। **मधूलिका**--मूर्वा, जलयष्टी च। **रुचकम्**--सौवर्चलम्, बीजपूरकश्च। **लोणिक**-लोणिशाकं, चाङ्गेरीशाकश्च। **वसुकः**--रक्तार्कः, क्षारलवणश्च। **बाह्लीकम्**--कुंकुमं, हिंगु च। **वितुन्नकम्**--धान्यकं, तुत्थश्च। **स्वादुकण्टकः**-गोक्षुरःविकङ्कतश्च। **अग्निमुखी**--भल्लातकी, लांगली च। **अग्निशिखम्**--कुंकुमं, कुसुम्भश्च। **अजशृङ्गी**-मेषशृङ्गी, कर्कटशृङ्गी च। **प्रियंगुः**--फलिनी, कंगुश्च। **भृङ्गः**,--भृङ्गराजः, त्वक्च। **समङ्गा**-मंजिष्ठा, लज्जालुश्च। **अमोघा**-विडङ्गम्, पाटला च। **मोचा**--कदली, शाल्मलिश्च। **कुटन्नटः**--श्योनाकः, कैवर्तिमुस्तश्च। **कुनटी**धनिका, मनःशिला च। **घोण्टा**--पूगः, बदरी च। **त्रिपुटा**--त्रिवृत्, सूक्ष्मैला च। **शटी**--कर्चूरः, गन्धपलाशी च। **दन्तशठ**--जम्बीरः कपित्थश्च। **दन्तशठाः**--अम्लिका, 'चाङ्गेरी च। **अरुणम्**--मञ्जिष्ठा अतिविषा च। **कणा**--पिप्पली, जीरकश्च। **तालपर्णी**-मुशली, मुरा च। **पीलुपर्णी**--मूर्वा, बिम्बी च। **ब्राह्मणी**--भार्ङ्गी स्पृक्का च। **अपराजिता**--विष्णुक्रान्ता, शालिपर्णी च। **आस्फोता**--अपराजिता, सारिवा च। **पारावतपदी**--ज्योतिष्मती, काकजङ्घा च। **शारदी**--सारिवा, जलपिप्पली च। **उग्रगन्धा**--वचा, यवानी च। **परिव्याधः**--कर्णिकारः जलवेतसश्च। **अञ्जनम्**--स्रोतोऽञ्जनं, सौवीरश्च। **अग्निः**--चित्रकःभल्लातश्च,। **कृमिघ्नः**--विडङ्गः हरिद्रा च। **तेजनः**--शरः, वेणुश्च। **तेजनी**--तेजस्वती, मूर्वा च। **रोचनः**--कम्पिल्लः, रोचना च। (रोचना-गोरोचना)

दो अर्थवाले शब्द ।

अश्मन्तक--खट्टी नोनिया और कचनार। कठिल्लक--करेला और लाल पुनर्नवा। कुलक-परवल और कुचला। कोशातकी--तुरई और गलका तोरई। दीप्यक--अजवाइन और अजमोद। मरुवक--मरुआ और मैनफल। मधूलिका--मूर्वा और जलमुलेठी। रुचक--कालानिमक और विजौरानींबू। लोणिका--नोनियाशाक और चूका। वसुक--लालआक और खारानोंन। बाह्लीक--केशर और हींग। वितुन्नक--धनियां और नीलाथोथा। स्वादुकंटक--गोखरू और कंटाई। अग्निमुखी--भिलावा. और कलिहारी। अग्निशिख--केशर और कुसुम्भ। अजशृंगी--मेढाशिंगी और काकडासिंगी। प्रियंगु--गोंदी और कंगनी। भृङ्ग--भांगरा और तज। समंगा--मजीठ और लज्जालु। अमोघा--वायविडंग पाढर। मोचा--केला और सेमल। कुटन्नट टेंटू और केवटी

मोथा । कुनटी-धनियां और मैनशिला । घोंटा-सुपारी और बेर । त्रिपुटा-निसोत और छोटी इलायची । शटी-कचूर और गन्धपलाशी । दन्तशठ-जम्भीरीनींबू और कैथा । दन्तशठा-इमली और चूका । अरुण-मंजीठ और अतीस । कणा-पीपल और जीरा । तालपर्णी-मुसली और मुरा (गन्धद्रव्यविशेष) । पीलुपर्णी-मूर्वा और कन्दुरी । ब्राह्मणी-भारंगी और स्पृक्का (गन्धद्रव्यविशेष) अपराजिता-कोयल और शालिपर्णी । आस्फोता-कोयल और सरिवन । पारावतपदी-मालकांगनी और काकजंघा । शारदी-सरिवन और जलपीपल । उग्रगन्धा-वच और अजवायन । परिव्याध-कनेर और जलवेंत । अञ्जन-कालासुरमा और सफेदसुरमा ।

अग्नि-चीता और भिलावा । कृमिघ्न-वायविडंग और हलदी । तेजन-सरपता और बांस । तेजनी-मालकांगनी और मूर्वा । रोचन-कबीला और गोलोचन ।

राजादनम्-क्षीरिका, प्रियालश्च । शकुलादनी-कटुका, जलपिप्पली च । गोलोभी--श्वेतदूर्वा, वचा च । पद्मा-पद्मचारिणी, भार्ङ्गी च । श्यामा--सारिवा, प्रियंगुश्च । धान्यम्--धान्यकं, शाल्यादि च । सहस्रवीर्या--नीलदूर्वा, महाशतावरी च । सेव्यम्--उशीरं, लामज्जकश्च । उदुम्बरः--जन्तुफलं, ताम्रश्च । ऐन्द्री-इन्द्रवारुणी, इन्द्राणी च । कटम्भरा--कटुका, श्योनाकश्च । क्षारः--यवक्षारः, स्वर्जिका च । गण्डीरः--गण्डारी, मञ्जिष्ठा च । (गण्डारी- शाकविशेषः) । गन्धारी--दुरालभा, गन्धपलाशी च । चित्रा--इंद्रवारुणी, बृहदन्ती च । तुण्डिकेरी-कार्पासी, बिम्बी च । धारा--गुडूची, क्षीरकाकोली च । बालपत्रः-खदिरः, यवासश्च । वारि--वालकम्, उदकञ्च । अङ्गारवली--भार्ङ्गी, गुञ्जा च । अमृणालम्-लामज्जकम्, उशीरश्च । कुण्डली -गुडूची, कोविदारश्च । गन्धफली--प्रियंगुः, चम्पककलिका च । दीर्घमूलः--यवासः, शालिपर्णी चापि चिछला--शाल्मली, शिंशपा च । पुष्पफलः--कपित्थः, कूष्माण्डश्च । पोटगलः--नलः, काशश्च । यवफलः--कुटजः, वंशश्च । देवी- मूर्वाः, स्पृक्का च । विश्वा--शुंठी, अतिविषा च । शीतशिवम्--सैन्धवं, मिश्रेया च । कर्कशः--काम्पिल्यः, कासमर्दश्च । चर्मकषा--शातला, मांसरोहिणी च । नन्दिवृक्षः--अश्वत्थभेदः, गोमुखपत्रशाखश्च । (वेलिया पीपर इति लोके तुणिश्च) । पयः--क्षीरम्, उदकञ्च । रुहा-दूर्वा, मांसरोहिणी च । सिंही-बृहती, वासा च ॥

राजादन-खिरनी और चिरौंजी । शकुलादनी-कुटकी और गजपीपल । गोलोमी-सफेद दूब और वच । पद्म -सरोजनी और नारंगी । श्यामा-सरिवन और प्रियंगु । धान्य धनियाँ और बडी शतावर । सहस्रवीर्या-गीली दूब और बडीशतावर । सेव्य-खस और लामज्जक । उदुम्बर-गूलर और ताँबा । ऐन्द्री-इन्द्रायन और इन्द्रवारुणी । कटम्भरा-कुटकी और अरलू । क्षार-जवाखार और सज्जीखार । गण्डीर-गंडारीशाक और मँजीठ । गन्धारी-धमासा और गन्धपलाशी । चित्रा-इन्द्रायन और बडी दन्ती । तुण्डिकेरी-कपास और कुन्दुरू । धारा-गिलोय और क्षीरकाकोली बालपत्र-खैर और जवासी । वारि-नेत्रवाल

और पाती। अंगारवल्ली–भारंगी और घुंघुची। अमृणाल–लामज्जक और खास। कुण्डली–गिलोय और कचनार। गन्धफली–प्रियंगु और चम्पेकी कली। दीर्घमूल–सेमल और शालिपर्णी। पिच्छिल–जवासा और सीसम। पुष्पफल–कैथा और पेठा। पोटगल–नरसल और काँस। यवफल–इन्द्रजौ और बाँस। देवी–मूर्वा और स्पृक्का। विश्वा–सोंठ और अतीस। शीतशिव–सैंधव और सौंफ। कर्कश–कबीला और कसौंदी। चर्मकषासातला और मांसरोहिणी। नन्दीवृक्ष–वेलियापीपल और तुन। पय–दूध और पानी। रुहा–दूब और मांसरोहिणी। सिंही–कटेरी और अडूसा।

अथ त्र्यर्थानि नामानि।

क्रमुकः--पूगः तूदः, पट्टिकालोध्रश्च। **क्षुरकः**--कोकिलाक्षः गोक्षुरः, तिलकनामा पुष्पविशेषश्च। **प्रियकः**--प्रियंगुः, कदम्बः--, असनश्च। **पृथ्वीका**--कालाजाजी, बृहदेला, हिंगुपत्री च। **भूतीकम्**--भूनिम्बं,कतृणं, भूस्तृणञ्च। **सोमवल्कः**--कट्फलः श्वेतखदिरः, घृतपूर्णकरञ्जश्च। **सौगन्धिकम्** कह्लारं, कत्तृणं, गन्धकश्च। **भृङ्गः**--भृङ्गराजः, त्वग्, भ्रमरश्च। **अरिष्टः**--निम्बाः, रसोन, मद्यश्च। **मर्कटी**--कपिकच्छूः, अपामार्गः,करञ्जी च। **अम्बष्ठा**--पाठा, चांगेरी, मोचिका च। **कृष्णा**--पिप्पली, कालजाजी, नीली च। **क्षीरिणी**--दुग्धिका, क्षीरकाकोली, श्वेतसारिवा च। **मधुपर्णी**--गुडूची,गम्भारी, नीला च। **मण्डूकपर्णः**--श्योनाकः, मञ्जिष्ठा, ब्रह्ममाण्डूकी च। **श्रीपर्णी**--गम्भारी, गणिकारिका, कट्फलं च। **अमृता**--गुडूची,हरीतकी,धात्री च। **अनन्ता**--दुरालभा, नीलदूर्वा, लाङ्गली च। **ऋष्यप्रोक्ता**--अतिबला, महाशतावरी कपिकच्छूश्च। **कृष्णवृन्ता**--पाटली, गम्भारी, माषपर्णी च। **जीवन्ती**-गुडूची, शाकविशेषः, बन्दा च। **लता**--सारिवा, प्रियंगुः, ज्योतिष्मती च। **समुद्रान्ता**--दुरालभा, कार्पासी. स्पृक्का च। **हैमवती**--हरीतकी, श्वेतवचा, पीतदुग्धसेहुण्डश्च (यस्य मूलं चोक इति प्रसिद्धम्)। **अव्यथा**--हरीतकी, महाश्रावणी, पद्मचारिणी च। **षड्ग्रन्था**--वचा, गन्धपलाशी, करञ्जी च। **वरदा**--सुवर्चला (हुरहुर इति लोके), अश्वगन्धा, वाराही (गेठीति लोके) च। **इक्षुगन्धा**--काशः, कोकिलाक्षः, गोक्षुरश्च। **कालस्कन्धः**--तमालः, तिन्दुकं, कालाखदिरश्च। **महौषधम्**--शुण्ठी, रसोनः, विषश्च। **मधु**--क्षौद्रं, पुष्परस, मद्यश्च। **कपीतनः**--आम्रातकः, शिरीषः, गर्दभाण्डश्च। **मदनः**--पिण्डीतकः, धत्तूरः, सिक्थकश्च। **शतपर्वा**--वंशः, दूर्वा, वचा च। **सहस्रवेधी**- अम्लवेतसः, मृगमदः, हिंगु च। **ताम्रपुष्पी**--धातकी, पाटली, श्यामात्रिवृच्च। **सदापुष्पा**--श्वेतार्कः, रक्तार्कः, कुन्दश्च। **सुरभी**--सल्लकी, मुदा, एलावालुकं च। **लक्ष्मीः**--ऋद्धिः, वृद्धिः, शमी, च। **कालानुसार्यम्**--कालीयकं, तगरं, शैलेयश्च। **चाम्पेयः**--चम्पकः, नागकेसरः, पद्मकेसरश्च। **नादेयी**--गणि-

कारिका, चलजम्बुः, जलवेतसी च।
पाक्यम्--विडम्, सौवर्चलम्, यवक्षारश्च

तीन अर्थवाले शब्द।

क्रमुक-सुपारी, सहतूत और पठानीलोध। क्षुरकतालमखाना, गोखरू और तिलकपुष्प। प्रियक-प्रियंगु, कदम और विजेसार। पृथ्वीका- कलौंजी, बडीइलायची और हिंगुपत्री। भूतीक-चिरायता, कतृण, भूनिक। सोमवस्क-काय, सफेद खैर और घियाकरंज। सौगन्धिक-लाल कमल, कत्तृण और गन्धक। भृंग-भाँगरा, तज और भौंरा। अरिष्ट-नीम, लहसुन और मद्य। मर्कटी-कौंछ, चिरचिटा और करंज। अम्बष्ठा-पाढ, चूका और मोइया। कृष्णा-पीपली, कलौंजी और नील। क्षीरिणी-दुद्धी, क्षीरकाकोली और नील। मण्डूकपर्णी-अरलू, मँजीठ और ब्रह्ममण्डूकी। श्रीपर्णी-कंभारी, गनियारी और कट्फल। अमृता-गिलोय, हरड आँवले। अनन्ता-धमासा, नीलीदूब और कलियारी। ऋष्यप्रोक्ता-अतिवला, बडी शतावर और कौंछ। कृष्णवृन्ता-पाढल, कंभारी और मसिवन। जीवन्ती-गिलोय, जीवन्तीशाक और बांदा। लता सरिवन, प्रियंगु और मालकांगनी। समुद्रांता-धमासा, कपास और स्पृक्का। हैमवती-हरड, सफेद वच और पीले दूधकी कटेरी। अव्यथा-हरड, मुण्डी और सरोजनी। षड्ग्रन्था-वच, गंधपलासी और करंजी। वरदाहुलहुल, असगंध और वाराहीकन्द। इक्षुगन्धा-काँस, तालमखाने और गोखरू। कालस्कन्ध-श्यामतमाल, तैंदू और काल खैर। महौषध-सोंठ, लहसुन और विष। मधु-सहत, फूलका रस और मदिरा। कपीतन-अम्बाडा, सिरस वृक्ष और गर्दभांड। मदन-मैनाफल धत्तूरा और मोम। शतपर्वा-बाँस, दूब और वच सहस्रवेधी-अमलवेत, कस्तूरी और हींग। ताम्रपुष्पी-धायके फूल, पाढल और निसोत। सदापुष्प-सफेद आक, लाल आक और कुंद। सुरभी-सालई, मुरा और एलुआ। लक्ष्मी-ऋद्धि वृद्धि और छोंकरा। कालानुसार्य-पीला चन्दन, तगर और छडीला। चाम्पेय-चंपा, नागकेशर और कमलकेशर। नादेयी-गनियारी, जलजामुन और जलवेंत। पाक्य-विडनोंन, कालानोंन और जवाखार।

विशल्या--लाङ्गली, गुडूची, लघुदन्ती च। इन्द्रद्रुः--ककुभः, देवदारुः कुटजश्च। काश्मीरम्--कुंकुमम्, पुष्करमूलम्, गम्भारी च। काश्मीरी--गुन्द्रः, पटेरकः, शरश्च। गुन्द्रा--प्रियंगुः, भद्रम्, मुस्तकश्च। चुक्रम्--पत्राम्लः, अम्लवेतसम्. वृक्षाम्लश्च। पारिभद्रः--निम्बः, पारिजातः, देवदारु च। पातदारु--हरिद्रा. देवदारु, सरलश्च। वीरः--ककुभः, वीरणं, काकोली च। वीरतरुः--ककुभः, वीरणम्, शरश्च। मयूरः--अपामार्गः, अजमोदा, तुत्थं च। रक्तसारः--रक्तचन्दनं. पतङ्गं, खदिरश्च। वदरा--सुवर्चला, अश्वगन्धा, वाराही च। वसिरः--रक्तापामार्गः, गजपिप्पली, समुद्रलवणश्च। सौवीरम्--अञ्जलभेदः, बदरम्, सन्धानभेदश्च। वञ्जुलः--अशोकः, वेतसः, तिनिशश्च। शिला--मनःशिला, शिलाजतु, गैरिकश्च। सोमवल्ली--वाकुची, गुडूची, ब्राह्मी, च। अक्षीवः--शोभाञ्जनः, महानिम्बः, समुद्रलवणश्च। कारवी--कालाजाजी, शताह्वा, अजमोदा, च। धामार्गवः--रक्तापामार्गः, राजकोशातकी, महाकोशातकी, च। दुःस्पर्शः--यवासः, कपिकच्छूः, कण्टकारी, च। पलाशः--किंशुकः, गन्धपलाशी, पत्रं च। कालमेषी--मञ्जिष्ठा,

बाकुची, श्यामात्रिवृच्च । पलंकषा--गुग्गुलुः, गोक्षुरः, लाक्षा, च । मधुरसा--द्राक्षा, मूर्वा, गम्भारी च । रसा--रास्ना, शल्लकी, पाठा च । श्रेयसी-हरीतकी, रास्ना, गजपिप्पली च । लोहम्--अयः, कांस्यम्, अगरु च । सहा--मुद्गपर्णी, बलाभेद, (ककही इति लोके), शतपत्री (सेवती गुलाब इति लोके) च। रास्ना--नाकुली, नीलपुष्पः सिन्दुवारश्च ॥

विशल्या-कलियारी, गिलोय और छोटी दन्ती । इन्द्रद्रु-कोह, देवदारु और कुडा । काश्मीर-कैशर, पोहकरमूल और कभारी । काश्मीरी-गुन्द्र, पटेरा और सरपता । गुन्द्रा-प्रियगु, भद्रमोथा और मोथा । चुक्र-चूका, अमलवेत और वृक्षाम्ल । पारिभद्र-नीम, फरहद और देवदारु । पीतदारु-हल्दी, देवदारु और सरल । वीर-कोह, वीरणतृण और काकोली । वीरतरु-कोह, वीरणतृण और शरपता । मयूर-चिरचिटा अजमोदा और लीलाथोथा । रक्तसार--लालचंदन, पतंग और खैर । बदरा-हुलहुल, असगंध और वाराहीकंद । वसिर-लालचिरचिटा, गजपीपल और समुद्रलवण । सौवीर-सफेद सुरमा बेर और काँजीका भेद । वंजुल-अशोक, अमलवेत और तिनिस । शिला-मेनशिला, शिलाजीत और गेरू । सोमवल्ली-वावची, गिलोय और ब्राह्मी । अक्षीव-सहिंजना, वकायन और समुद्रलवण । कारवी-कलौंजी, शतावर और अजमोद । धामार्गव-लालओंगा, गलका तोरई और तोरई । दुःस्पर्श-जवासा, कौंछ और कटेरी । पलाशढाक, गंधपलाशी और पत्रज । कालमेषी-मँजीठ, वावची और कालीनिसोत । पलंकषा- गूगल, गोखरू और लाख । मधुरसा-दाख, मूर्वा और कंभारी । रसारास्ना, सालई और पाठा । श्रेयसी-हरड, रास्ना और गजपीपल । लोह-लोहा, काँसी और अगर । सहा-मुगवन ककही और सेवती । रास्ना-नाकुली, नील और सँभालू ॥

अथानेकार्थवाचिशब्दाः ।

अक्षशब्दः -स्मृतोऽष्टासु सौवर्चलविभीतके। कर्षपद्माक्षरुद्राक्षशकटेन्द्रियपाशके ॥ १ ॥ काकाख्यः काकमाची च काकोली काकणन्तिका। काकजङ्घा काकनासा काकोदुम्बरिकाऽपि च । सप्तस्वर्थेषु कथितः काकशब्दो विचक्षणैः ॥ २ ॥

सर्पद्विरदमेषेषु सीसके नागकेशरे । नागवल्ल्यां नागदन्त्यां नागशब्दः प्रयुज्यते ॥३॥ मांसे द्रवे चेक्षुवीर्ये (रसे) पारदे मधुरादिषु । बालरोगे विषे नीरे रसो नवसु वर्त्तते ॥ ४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे अनेकार्थवर्गः ।
अनेक अर्थवाले शब्द ।

अक्ष-संचरनोंन, बहेडा, एककर्ष, पद्माख, रुद्राक्ष, गाडी, इंद्रियऔर फांसे इस प्रकार अक्षशब्द आठ अर्थवाला कहा है ॥ १ ॥

काक-मकोय, काकोली, लाल घुँघुची, काकजंघा, काकनासा, कठूमर और कौआ-पक्षी ये सात अर्थ काक शब्दके कहे हैं ॥ २ ॥

नाग-सर्प, हाथी, मेंढा, शीशा, नागकेशर, नागरवेल पान और नागदन्ती ये नागशब्दके अर्थ हैं ॥ ३ ॥

रस-मांस, द्रव, ईखका रस, वीर्य, पारा, मधुर आदि छः रस, बालकका एक रोग, विष और जल ये नौ अर्थ रसशब्दके हैं ॥४॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायामनेकार्थवर्गः ।

अथ मानपरिभाषा।

तत्र मागधमानम्।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित्। अतःप्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ १ ॥ चरकस्य मतं वैद्यैराद्यैर्यस्मान्मतं ततः। विहाय सर्वमानानि मागधं मानमुच्यते ॥ २ ॥

तोलके विना कदापि पदार्थोंकी युक्ति नहीं होती, इस कारण प्रयोगोंमें कामोंके लिये यहाँ मान (तोल) कहता हूँ। प्राचीन वैद्योंने चरकके मतको स्वीकार किया है, इस कारण सम्पूर्ण तोलोको छोडकर चरकके मतानुसार मगधदेशके मागध मानको कहता हूँ ॥१॥२॥

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः। त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥३॥ जालान्तरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते। षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिश्च राजिका ॥ ४ ॥

तीस परमाणुका एक त्रसरेणु होता है और त्रसरेणुकाही पर्याय वंशी है। जाली तथा झरोखोंमें होकर जो सूर्यकी किरणें आती हैं उनका नाम वंशी है। छः त्रसरेणु (वंशी) की एक मरीचि होती है, छः मरीचिकी एक राई होती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः। यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ ५ ॥ षड्भिस्तु रत्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधानकौ। माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥६॥ टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते। क्षुद्रको वटकश्चैव द्रंक्षणः स निगद्यते ॥७॥ कोलद्वयन्तु कर्षःस्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका। अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम् ॥ ॥८॥ बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता। करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः ॥ ९ ॥ उदुम्बरश्च पर्यायैः कर्षमेव निगद्यते। स्यात् कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥१०॥ शुक्तिभ्याञ्च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका। प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ११ ॥ पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते। प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्द्धशरावकः ॥ १२ ॥ अष्टमानञ्च स ज्ञेयः कुडवाभ्याञ्च मानिका। शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ १३ ॥ शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाऽऽढकः। भाजनं कांस्यपात्रं च चतुःषष्टिपलश्च सः ॥ १४ ॥ चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः। उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञितः ॥१५॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः। शूर्पाभ्याञ्च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥ १६ ॥ द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः। चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ १७ ॥ पलानां द्विसहस्रश्च भार एकःप्रकीर्तितः। तुला पलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ ॥१८॥ माषटङ्काक्षबिल्वानि कुडवप्रस्थमाढकम्। राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणम् ॥ १९ ॥

तीन राईकी एक सरसों होती है। आठ सरसोंका एक जौ होता है। चार जौकी एक गुंजा होती है। छः गुंजोंका एक मासा होता है, मासेको हेम और धान्यक कहते हैं। चार मासेका एक शाण होता है, इस शाणको धरण तथा टंक भी कहते हैं, दो शाणका एक कोल

होता है, क्षुद्रक बटक और द्रंक्षण ये कोलकेही नाम हैं। दो कोलका एक कर्ष होता है। पाणिमानिका, अक्ष पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिंदुक, बिडालरदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुंबर ये सब कर्षके नाम हैं। दो कर्षका अर्द्धपल होता है। शुक्ति और अष्टमिका ये अर्द्धपलकेही नाम हैं। दो अर्द्धपलका एक पल होता है। मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी और बिल्व ये पलकेही नाम हैं। अन्य भाषाओंमें इसीको पक्का टकाभर कहते हैं। दो पलकी एक प्रसृति होती है, प्रसृत भी प्रसृतिका ही नाम है। दो प्रसृतिकी एक अंजली होती है। कुडव, अर्द्धशराव और अष्टमान ये अंजलीकेही नाम हैं। दो अंजलीकी एक मानिका होती है, शराव और अष्टपल ये मानिकाके ही नाम हैं। दो शराबका एक प्रस्थ होता है, चार प्रस्थका एक आढक होता है। भाजन कांस्यपात्र और चतुःषष्टिपल ये आढककेही नाम हैं। चार आढकका एक द्रोण होता है। कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट और राशि ये द्रोणके ही नाम हैं। दोणका एक शूर्प होता है। कुम्भ और चतुःषष्टिशरावक ये शूर्पके ही नाम हैं, दो शूर्पकी एक द्रोणी होती है। वाह और गोणी ये द्रोणीके नाम हैं। चार द्रोणीकी एक खारी होती है, ये खारी चार हजार छियानवे पलकी होती है। दो हजार पलका एक भार होता है और सौ पलकी एक तुला होती है, ये सब ग्रन्थोंका निश्चय है। माष, टंक, अक्ष, बिल्व, कुडव, प्रस्थ, आढक, राशि, गोणी और खारी ये उत्तरोत्तर चौगुणी हैं ॥५॥१९॥

मागधपरिभाषायां षड्गुरत्तिको माषश्चतुर्विंशतिरत्तिकाः टङ्कः। षणवतिरत्तिकः कर्षः। अयं चरकसम्मतः। सुश्रुतमते तु-पञ्चरत्तिको माषः, विंशतिरत्तिकः टङ्कः। अशीतिरत्तिकः कर्षः अयमेव कालिङ्गपरिभाषायामपि। यतः तत्राष्टरत्तिको माषो, द्वात्रिंशद्रत्तिकः टङ्कः। सार्द्धटङ्कद्वयमितः कर्षः ॥

मगधदेशकी परिभाषाके अनुसार छः रत्तीका मासा, चौबीस रत्तीका टंक और छियानवें रत्तीका कर्ष होता है, यह चरककी सम्मति है। सुश्रुतके मतसे पाच रत्तीका मासा, बीस रत्तीका टंक और अस्सीरत्तीका कर्ष होता है। कलिंगदेशकी परिभाषामें भी अस्सी रत्तीकाही कर्ष होता है, जिस परिभाषामें आठ रत्तीका माषा होता है, उसमें बत्तीस रत्ती टंक होता है और ढाई टंकका एक कर्ष होता है ॥

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः। द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ २० ॥ प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः। मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित्स्मृतम् ॥२१॥ मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरंगुलम्। विस्तीर्णञ्च तथोच्चञ्च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥ २२ ॥

इति मागधमानम्।

गुंजासे लेकर कुडवतक द्रव्यरूपपदार्थोंको, गीले पदार्थोंको और सूखे पदार्थोंको प्रमाणानुसार लेवे, द्रवपदार्थ और गीले पदार्थ प्रस्थपर्यन्त दूने भाग लेवे, क्योंकि, सूखे पदार्थोंसे गीले पदार्थोंमें बोझ अधिक होता है और प्रस्थसे लेकर तुला पर्यन्त दूनी लेनी कहीं नहीं लिखी है। मिट्टीका, लकडीका अथवा लोहे आदिका चार अंगुल चौडा और चार अंगुल ऊँचा जो बरतन हो, उससे कुडवकी माप होती है ॥ २०–२२ ॥

इति मागधमानम्।

अथ कालिङ्गमानम्।

यतो मन्दाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वानराः कलौ। अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते सुश्रुसम्मता ॥ २३ ॥ यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः। यवद्वयेन गुञ्जा स्यात्त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते ॥ २४ ॥ माषो गुञ्जाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्

क्वचित्। चतुर्भिर्माषकैः शाणः स निष्कटङ्क एव च ॥ २५ ॥ गद्याणो माषकैः षडभिः कर्षः स्याद्दशमाषकः। चतुष्कर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ॥ २६ ॥ चतुष्पलैश्च कुडवः प्रस्थाद्याःपूर्ववन्मताः। स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम् ॥२७॥ प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत्। नाल्पं हन्त्यौषधं व्याधिं यथाऽम्भोऽल्पं महानलम्। अतिमात्रं च दोषाय सस्योपस्थे: बहूदकम् ॥ २८ ॥

इति कालिङ्गमानम्।

कलियुगमें मनुष्य मन्द अग्निवाले छोटे शरीरके और हीन शक्तिवाले होते, हैं इस कारण उनके योग्य जो मात्रा विद्वानोंने स्वीकृत की है, वह अब कहते हैं ॥

बारह सफेद सरसोंका एक जौ होता है, दो जौकी एक गुंजा या रत्ती होती है। तीन गुंजेका एक वल्ल होता है। आठ गुंजेका मासा होता है, कहीं सात गुंजेकाभी मासा माना है। चार मासेका शाण होता है। शाणको टंक और निष्क भी कहते हैं। छः मासेका गद्याणक होता है, दश मासेका कर्ष होता है। चार कर्षका पल होवा है। पलका ही नाम दश शाण है। चार पलका कुडव होता है और प्रस्थआदिकी तोल तो मागधपरिभाषाके अनुसार ही जाननी। मात्राकी मर्यादा नहीं है, इस कारण काल, अग्नि, अवस्था, बल, प्रकृति, दोष और देश विचारकर मात्रा देवे। जिस प्रकार किंचित् जल अधिक अग्निको शांत नहीं कर सकता. उसी प्रकार थोडी औषधी बडी व्याधिको नष्ट नहीं कर सकती और जैसे खेतमें उत्पन्न हुए धान्योंपर अधिक पानी पडे तो हानि करता है, उसी प्रकार अल्परोगमें अधिक औषधि देवे तो भी हानि करती है ॥ २३-२८ ॥

इति मानपरिभाषा समाप्ता।

अथौषधसंज्ञाविधानम्।

स्वरसश्च तथा कल्कः क्वाथश्च हिमफाण्टकौ। ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ २९ ॥

स्वरस, कल्क, काथ, हिम और फांट इस भांति औषधियोंके पांच प्रकारके कषाय काथ, होते हैं। इनमें स्वरससे कल्क, कल्कसे क्वाथ, क्वाथसे हिम और हिमसे फांट हलका है ॥२९॥

स्वरसविधिः।

अहतात्तत्क्षणात्कृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवेत्। वस्त्रनिष्पीडितो यश्च स्वरसा रस उच्यते ॥ ३० ॥

अहतात्--शीताग्निकीटादिभिरनुपहतात्।

क्षुण्णात्--संपिष्टात् ॥

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तश्च द्विगुणे जले। अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः ॥ ३१ ॥

चूर्णितम्--चूर्णीकृतम् ॥

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे। जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादाशिष्टं च गृह्यते ॥ ३२ ॥ स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्द्धं प्रयोजयेत्। निशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत् ॥ ३३ ॥

निशोषितम् -निशायामुषितम् ॥

सितामधुगुडक्षाराञ्जीरकं लवणं तथा। घृतं तैलश्च चूर्णादीन्कोलमात्रान्रसे क्षिपेत् ॥ ३४ ॥

कोलः--टंद्वयकम् ॥

शीतसे, अग्निसे अथवा कीडे आदिसे खराब नहीं हुई गीली औषधिको कूट पीसकर उसको कपडेसे छान कर रस निकाल लेवे, उसको स्वरस कहते हैं। अथवा सोलह तोले गीली औषधियोंका चूर्ण कर उसको दुगुने जलमें

डालकर एक दिन राततक पडा रहने देवे, उस मेंसे जो रस निकले, वह भी उत्तम स्वरस कहाता है। गीली औषधि नहीं मिले तो रूखी औषधि लेकर उसका चूर्ण करे और उसमें अठगुणा जल डालकर औटावे, जब चौथा भाग शेष रहे तब उतारले, इसको भी स्वरस कहते हैं। पहला स्वरस भारी है इससे उसकी मात्रा अर्द्धपल या दो तोलेकी है। और दूसरे तथा तीसरे प्रकारका अर्थात् रात्रिमें भिगोकर बनाये हुए अग्निसे औटाकर बनाये हुए स्वरसकी मात्रा एक पल या चार तोले की है इस स्वरसमें मिश्री, सहत, गुड, खार, जीरा, लवण, घी, तेल और चूर्ण आदि डाले तो एक कोल डाले ॥ ३०–३४ ॥

तण्डुलस्वरस विधिः।

कण्डितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्। भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु ॥ ३५ ॥

४ तोले छिलके रहित चावलोंको अठगुने पानीमें भिगोकर कोमल करलेवे, पश्चात् वह स्वरसरूप पानी सर्व कर्मोंमें उपयोग करे ३५॥

हिमनिर्माणविधिः।

क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक् षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम्। निशोषितं हिमः सः स्यात्तथा शीतकषायकः। तस्य मानं सतं पाने पलद्वयमितं बुधैः ॥ ३६ ॥

क्षुण्णम्–चूर्णीकृतम् ॥

एक पल औषधिको भली प्रकार कूट पोसकर छः गुने गरम जलमें डाले और रात्रिभर धरा रहने दे पश्चात् प्रात कालहोनेपर छानलेवे, उसको हिम अथवा शीतकषाय कहते हैं। विद्वानोंने इसकी मात्रा दो पलकी कही है३६॥

मन्थनिर्माणविधिः।

जले चतुष्पले शीते क्षुण्णं द्रव्यपलं क्षिपेत्। मृत्पात्रे मन्थयेत्सम्यक्तस्माच्च द्विपलं पिबेत् ॥ ३७ ॥

क्षुण्णं–चूर्णीकृतम्। मन्थयेत्–मथनीयात् ॥

शीतल जलमें एक पल औषधिका चूर्ण भिगो देवे, जब भीग जावे तब इसको मिट्टीके पात्रमें रईसे मथलेवे, इसको मन्थ कहते हैं. इसकी मात्रा दो पलकी जाननी ॥ ३७ ॥

फाण्टनिर्माणविधिः।

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत्। मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत पटात् ॥ ३८ ॥ स स्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम्। क्षौद्रं सितागुडादींस्तु कर्षमात्रान्विनिक्षिपेत्३९

क्षुण्णे चूर्णीकृते स चूर्णद्रवः फांटः स्यात् इति अन्वयः ॥

भली भांति किया हुआ औषधिका चूर्ण एक पल मिट्टीके पात्रमें रख उसमें चौगुना गरम जल डालकर भिगोदेवे, और फिर कपडेसे छान लेवे, इसको फाण्ट कहते हैं। फांटकी मात्रा दो पलकी है, इसमें शहत, मिश्री. गुण आदि डाले तो एक कर्ष डालना चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

कल्कविधिः।

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत्। प्रक्षिप्य गालयेद्वस्त्रे तन्मानं कर्षसम्मितम् ॥ ४० ॥ कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया। सितां गुडं समं दद्याद्द्रवो देयश्चतुर्गुणः ॥ ४१ ॥

गीली औषधिको सिलपर पीसकर और सूखी औषधि हो तो उसमें पानी डालके पीसकर छान लेवे, उसको कल्क कहते हैं। प्रक्षेप और आवाप ये कल्कके नाम हैं। इसकी मात्रा एक कर्षकी है। कल्कमें मधु. घी अथवा तेल डालना हो तो दूना डाले। मिश्री अथवा गुण डालना हो तो कल्कके सदृश ही डाले और कोई द्रव डालना हो तो चौगुना डाले॥४०-४१

चूर्णविधिः।

अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्। तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसम्मिता ॥ ४२ ॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा मता। चूर्णेषु भर्जितं हिंगु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत् ॥४३॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः। पिबेच्चतुर्गुणैरेवं चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ ४४ ॥ चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपनकम्। पित्तवातकफातङ्के त्रिद्व्येकपलमाहरेत् ॥ ४५ ॥ यथा तैलं जले प्राप्तं क्षणेनैव विसर्पति। अनुपानवलादङ्गे तथा सर्पति भेषजम् ॥ ४६ ॥

उत्तम सूखी हुई औषधिको भलीभांति पीस कर वस्त्रसे छान लेवे, उसको चूर्ण कहते हैं। रज और क्षोद भी चूर्णके ही नाम हैं। चूर्णकी मात्रा एक कर्ष या एक तोले की है। चूर्णमें गुण डालना हो तो चूर्णके बराबर ही डाले और बूरा डालना हो तो दूनी डाले, चूर्णमें हींग डालना हो तो, भूनकर डाले कि, जिसमें जी मिचलाना न हो। घी आदि पतली वस्तुओंमे चूर्ण चाटना हो तो वह वस्तु दूनी डाले, और घोलकर पिये तो द्रव पदार्थ चूर्णसे चौगुना लेवे, चूर्ण, अवलेह, गोली और कल्क इनके ऊपर गरम जल, आदि पिये तो पित्तरोगमें एक पल, वायुरोगमें दो पल, और कफ रोगमें तीन पल पीवे,। जिस प्रकार पानीमें पडा हुआ तेल क्षणमात्रमें फैल जाता है वैसेही अनुपानके वलसे औषधि सम्पूर्ण अंगोंमें फैल जाती है ॥ ४२-४६ ॥

भावनाविधिः।

द्रवेण यावता सम्यक्चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत्। भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः ॥ ४७ ॥

जितने द्रव पदार्थमें भलीभांति चूर्ण डूब जाय, उतने द्रवसे चूर्णकी भावना देवे। उत्तम वैद्योंने भावनाका यही प्रमाण कहा है ॥४७॥

पुटपाकविधिः।

पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः। अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥ ४८ ॥ पुटपाकस्य पाकोऽयं लेपस्याङ्गारवर्णता। लेपश्च द्व्यगुलं स्थूलं कुर्याद् द्व्यंगुलमात्रकम् ॥ ४९ ॥ काश्मरीवटजम्ब्वादिपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम्। पलमात्रो रसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत्। कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाः कोलमिता बुधैः ॥ ५० ॥

पुटपाकके कल्कका स्वरस लिया जाता है, इस कारण पुटपाककी विधि कहता हूँ। औषधियोंका कल्क करके उसके ऊपर काश्मरी (कंभारी) वड अथवा जामुन आदिके पत्तोंको भली प्रकार लपेट देवे और उसके ऊपर दो अंगुल मट्टीका लेपकर अग्निमें छोड देवे, जब दहकते अंगारके सदृश वर्णवाला होजाय तब निकाल लेवे, यह पुटपाककी रीति है। पश्चात् मट्टी और पत्तोंको दूर करके कल्कके रससो निचोड लेवे। इस रसकी मात्रा एक पलकी है और उसमें शहत डालना हो तो एक तोला डाले। इस रसमें अन्य कोई कल्क, चूर्ण अथवा द्रवपदार्थ कादि डालना हो तो आठ मासे डाले ॥ ४८-५० ॥

उष्णोदकविधिः।

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्द्धकेन वा। अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं भवेत् ॥ ५१ ॥ श्लेष्मामवातमेदोघ्नं वस्तिशोधनदीपनम्। कासश्वासज्वरान् हन्ति पीतमुष्णोदकं निशि ॥ ५२ ॥

गरम करनेपर पानीका अष्टमांस, चतुर्थांश अथवा अर्द्धभाग शेष रहे तब पानीको गरम हुआ जाने अथवा भली प्रकार होनेको ही गरम हुआ जाने रात्रिमें गरम पानी पीवे तो कफ, आमवात, मेद. खांसी, श्वास तथा ज्वर नष्ट होता है, वस्तिशोधक और अग्निप्रदीपक है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

क्षीरपाकविधिः।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम्।
क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत्॥५३॥

द्रव्यसे दूध आठगुना लेवे और उसमे जल दूधसे चौगुना डाले पश्चात् ये सब औटावे, जब केवल दूध ही शेष रहे तब उतार ले, उसको पीवे तो आमसे उत्पन्न हुआ शूल नष्ट होता है ॥ ५३ ॥

क्काथविधिः।

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णद्रव्यपले क्षिपेत्। मृत्पात्रे क्काथयेद् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम्[१] ॥ ५४ ॥ कर्षादौ तु पलं यावद्दद्यात्षोडशिकं जलम्। ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत् चतुर्गुणमतश्चोर्ध्वं यावत्प्रस्थाधिकं जलम् ॥ ५५ ॥

षोडशिकम्--षोडशगुणम्।

तज्जलं पाययेद्धीमान् कोष्णं मृद्वग्निसाधितम्। शृतः क्काथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ॥ ५६ ॥

भली भांति कूटी हुई एक पल औषधिमें सोलह गुना जल डालकर मिट्टीके पात्रमें पकावे, जब आठवां भाग शेष रहे तब उतार लेवे, उसको क्वाथ कहते हैं। क्वाथ करना हो तो एक तोलेसे चार तोलेतक औषधिमें सोलह गुना पानी डाले, इससे ऊपर सोलह तोलेतक औषधिमें आठगुना पानी डाले और इससे पीछे चौसठ तोलेतक औषधिमें चौगुना जल डालकर धीमी २ अग्निसे पकावे और अष्टमांश शेष रहनेपर किंचित् गरम हो उस समय उसको पीवे। शृत कषाय और निर्यूह ये क्वाथके ही नाम हैं ॥ ५४-५६ ॥

क्वाथपानमात्रा।

मात्रोत्तमा पलेन स्यात्त्रिभिरक्षैस्तु मध्यमा। जघन्या च पलार्द्धेन स्नेहक्काथौषधेषु च ॥ ५७ ॥ तन्त्रान्तरे-क्काथ्यद्रव्यपलं वारि द्विरष्टगुणमिष्यते। चतुर्भागावशिष्टन्तु पेयं पलचतुष्टयम् ॥५८॥ दीप्तानलं महाकायं पाययेदञ्जलिं जलम्। अन्ये त्वर्द्धं परित्यज्य प्रसृतिं तु चिकित्सकाः ॥ ५९ ॥ क्वाथत्याग मनिच्छन्तस्त्वष्टभागावशेषितम्। पारम्पर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः पलद्वयम् ॥ ६० ॥

अष्टभागावशेषितस्य चतुर्भागावशिष्टापक्षया गुरुत्वाद्दीप्तानलं महाकायं पलद्वयं पाययेत्। मध्यमाग्निमल्पकायं पलमात्रं पाययेत्। "मात्रोत्तमा पलेन स्यात्" इत्यादिवचनात् ॥

क्काथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः। वातपित्तकफातङ्के विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ६१ ॥ जीरकं गुग्गुलं क्षारं लवणं च शिलाजतु हिङ्गु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत् ॥ ६२ ॥ क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यद्द्रवं तथा। कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत्कर्षसम्मितम् ॥ ६३ ॥ तत्रोपविश्य विश्रान्तः प्रसन्नवदनेक्षणः। औषधं हेमरजतमृद्राजनपरिस्थितम् ॥ ६४ ॥ पिबेत्प्रसन्नहृदयः पीत्वा पात्रमधोमुखम्। निधायाचम्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ ६५ ॥

स्नेह क्वाथ और औषधिकी मात्रा चार तोलेकी उत्तम, तीन तोलेकी मध्यम और दो तोलेकी अधम जाननी। अन्य ग्रन्थोंमें कहा है कि 'क्वाथ करनेके लिये एक पल औषधि लेकर उसमें सोलह गुना जल डाले, जब चौथा भाग शेष रहे तब वह पीवे" जो रोगी प्रदीप्त अग्निवाला और बडी देहवाला हो वह १६ तोले क्वाथ पिवे। अन्य वैद्य कहते हैं "इस १६ तोले क्वाथमेंसे आधा भाग छोडकर

१—कफके रोगोंमें अष्टमांश, वातरोगोंमें चतुर्थांश और पित्तके रोगोंमें अर्द्धावशेष जल ग्रहण करे

प्रदीप्त अग्निवाला और बडे शरीरवाला रोगी आठ तोळे पिवे । परन्तु वृद्धवैद्य कि, जिनकी क्वाथका भाग छोडनेकी इच्छा नहीं है, वे परम्पराकी पद्धति प्रमाण पकाकर आठवां भाग अर्थात् आठ रुपये भर ही शेष रखकर वे सब क्वाथ प्रदीप्त अग्निवाले तथा बडे शरीरवाले रोगियोंको पिलाते हैं" चौथा भाग शेष रहे हुए क्काथसे आठवां भाग शेष रहा हुआ क्काथ भारी होता है, इससे प्रदीप्त अग्निवाले और बडी कायावाले मनुष्यकी उतनाही क्काथ पीना चाहिये, परन्तु मध्य अग्निवाले तथा मध्य शरीर वाले मनुष्यको तो एक पल की ही मात्रा उत्तम है, इस वचनके अनुसार चार तोले ही पिवे । क्काथमें बूरा डालना हो तो वातरोगमें चौथा भाग, पित्तरोगमें आठवां भाग और कफरोगमें सोलहवां भाग डाले। शहत डालना हो तो कफके रोगमें चौथा भाग, पित्तरोगमें आठवां भाग और वातरोगमें सोलहवां भाग डाले। जीरा, क्षार, नोंन, शिलाजित, हींग अथवा सोंठ, मिर्च, गूगल, पीपल डालनी हो तो चारचार मासे डाले। दूध, घी, गुड, तेल, मूत्र और कोई द्रवपदार्थ, कल्क, अथवा चूर्ण आदि क्वाथमें डालना हो तो एक तोला डाले। इसी भांति बैठ विश्राम लेकर मुख, हृदय तथा नेत्रोंको प्रसन्न करके सुवर्णके, चांदीके, अथवा मट्टीके पात्रमें भरा हुआ क्वाथ पिवे, पश्चात् उस पात्रको उलटा करके रख देवे, फिर जलसे कुल्ले करके तांबूल आदि मुखशोधक पदार्थ खाय ॥ ५७-६५ ॥

अवलेहविधिः ।

क्वाथादेर्यत्पुनःपाकाद्धनत्वं सा रसक्रिया। सोऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ॥ ६६ ॥ सिता चतुर्गुणा कार्या- चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः । द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ ६७ ॥ सुपक्के तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहेऽप्सु मज्जनम् । स्थिरत्वं पीडिते मुद्रा गन्धवर्णरसोद्भवः ॥ ६८ ॥ दुग्धमिक्षुरसं यूषं पञ्चमूलकषायजम् । वासाक्वाथ यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥ ६९ ॥

क्वाथ आदिको पकाकर जो गाढा हो जाय, उसको रसक्रिया अवलेह और लेह कहते हैं । अवलेहकी मात्रा एक पलकी करे। अवलेहमें चीनी डालना हो तो चूर्णसे चौगुना, गुड डालना हो तो चूर्णसे दूना और द्रवपदार्थ मिलाना हो तो चूर्णसे चौगुना डाले, यही सर्वत्र निश्चय है। अवलेहमें जब चासनीके सदृश तार निकलने लगें, पानीमें डालनेसे डूब जाय, कठिन हो जाय, अँगुलीके दबानेसे अँगुलीकी रेखा उठ आवें और गन्ध वर्ण तथा रस अपूर्व हो जाय, उस अवलेहको भलीभांति पका हुआ जाने। अवलेहके ऊपर दूध, ईखका रस, पञ्चमूलके कषायका यूष और अडूसेका क्वाथ इनमेंसे यथायोग्य अनुपान देवे ॥ ६६-६९ ॥

गुटिकानिर्माणविधिः ।

वटका अथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी । मोदको वटिका पिण्डी गुडो वर्त्तिस्तथोच्यते ॥ ७० ॥ लेहवत्साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्कराऽथ वा । गुग्गुलुर्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी ॥ ७१ ॥

तत्र-वह्निसिद्धे गुडादौ ॥

कुर्यादवह्निसिद्धेन क्वचिद्गुग्गुलुना वटीः । द्रवेण मधुना वाऽपि गुटिकां कारयेद्बुधः । ॥ ७२ ॥ सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः । चूर्णे चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ॥७३॥

तत्समम्-चूर्णसमम् ॥

द्रवं तु द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः ॥

द्रवम्-द्रवरूप द्रव्यम् ।

कर्षप्रमाणं तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यते७४

बलमिति कालादेरपि उपलक्षणम् ॥

अब गुटिका बनानेकी विधि कहते हैं–गुटिका (गोली), वडी, मोदक, वटिका, पिंडी, गोला और बत्ती ये गोलियोंके ही प्रकार हैं। ये अग्निपर अवलेहके सदृश बनायी जाती हैं। इसमें गुड अथवा शर्करा बूरा का पाक करके औषधिका चूर्ण डालकर उसकी गोली बनावे। किसी समय विद्वान् विना पाकके ही गूगुलसे मधुसे अथवा अन्य द्रव पदार्थसे भी गोली बनाते हैं। बूरेकी गोली बनानी हो तो चूर्णसे चौगुना बूरा लेवे गुडकी बनानी हो तो गुड चूर्णसे दूना भाग लेवे और गूगलसे अथवा मधुसे गोली बनानी हो तो चूर्णके सदृश ही गूगल और मधु लेवे। अन्य किसी द्रवपदार्थसे गोलियां बनानी हों तो उत्तम वैद्य चूर्णसे दुगुना द्रवपदार्थ लेवे। इन गोलियोंकी मात्रा एक तोले की है, परन्तु इसमें बल और समय आदिको देखना चाहिये ॥ ७०–७४ ॥

घृततैलविधिः।

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव च। चतुर्गुणद्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ ७५ ॥

मात्रा पलोन्मिता भक्षणाय ॥

निक्षिप्य क्वाथयेत्तोयं क्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम्। पाददिष्टं गृहीत्वा तु स्नेहं तेनैव साधयेत् ॥ ७६ ॥ चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम्। मृद्वादिक्वाथ्यसंघाते दद्यादष्टगुणं पयः। अत्यन्तकठिने द्रव्ये नीरं षोडशिकं मतम् ॥ ७७ ॥

मृदुद्रव्ये–आर्द्रद्रव्ये गुडूच्यादौ। कठिने-शुष्कद्रव्ये शुंठ्यादौ ॥ अत्यन्त कठिने-चिरशुष्के देवदार्वादौ।

कर्षादितःपलं यावत्क्षिपेत्षोडशिकं जलम्। तदूर्ध्वं कुडवं यावद्भवेदष्टगुणं पयः। प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारीं यावच्चतुर्गुणम् ॥ ७८ ॥

पूर्वं 'चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये' इत्यादिना क्वाथ्यद्रव्यगतमृदुत्वादिगुणभेदेन जलगतपरिमाणमुक्तम् ॥ इदानीं केचिदाचार्याः कर्षादितः पलं यावदित्यादि वचनेन क्वाथ्यद्रव्यगतपरिमाणभेदेन जलगतपरिमाणं मन्यन्ते ॥

अम्बुक्वाथरसैर्यत्र पृथक्स्नेहस्य साधनम्। कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ ७९ ॥

अस्यायमर्थः-अम्बुना स्नेहसाधने कल्कं स्नेहस्य चतुर्थांशं दद्यात्। क्वाथेन स्नेहसाधने स्नेहस्य षष्ठभागं कल्कं दद्यात्। स्वरसैः स्नेहसाधने स्नेहस्य अष्टमभागं कल्कं दद्यात् ॥

पुनर्विशेषमाह।

दुग्धे दध्नि रसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः। कल्काच्च सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥ ८० ॥

कल्कात्--कल्कद्रव्यात्। चतुर्गुणं तोयं पेषणार्थम् ॥

द्रवाणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि। तत्र स्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ८१ ॥

अस्यायमर्थः--यत्र स्नेहेषु आदीनि पञ्चद्रवाणि दुग्धदधिस्वरसतक्रकल्कोपयुक्तजलानि प्रत्येकं स्नेहसमानि बोद्धव्यानि। यथापूर्वं दुग्धदधिस्वरसतक्रसमुदितं स्नेहाच्चतुर्गुणं भवति ॥

जो कल्क किया हो, उससे चौगुना घी अथवा तेल उसमें मिलाकर घृत अथवा तैलसे चौगुने द्रवपदार्थमें पकावे, द्रवपदार्थके जल जानेपर घी अथवा तेल ही शेष रहे तब निचोड

लेवे। खानेके लिये इस तेल अथवा घीकी मात्रा चार तोले की है। अथवा क्वाथ करने के चूर्णमें उससे चौगुना पानी डालकर पकावे; जब चौथा भाग जल शेष रहे, तब उसमें घी अथवा तेल डालकर सम्पूर्ण पानी जलजानेतक उसको पकावे और फिर उतार लेवे। (यहाँ जो चौगुना पानी डालना कहा है, वह गिलोय आदि कोमल पदार्थोंमें जानना। सोंठ आदि सूखे पदार्थ हों तो अठगुना पानी डाले, सूखे और गीले मिले हों तो भी अठगुना पानी डाले और देवदारु आदि बहुत दिनोंके सूखे पदार्थ हों तो सोलह गुनाडाले) एक तोलेंसे लेकर ४ तोलेपर्यन्त सोलह गुना पानी डालना, पांच तोलेसे सोलह तोलेतक अठगुना पानी डालना, चौंसठ तोलेसे लेकर चार हजार छानवे तोले तक चौगुना पानी डाले। (पानीका यह चतुर्गुण प्रमाण क्वाथ करनेके पदार्थोंके कोमलपने आदि गुणोंसे कहा है, परन्तु बहुतसे आचार्य तो यह जलका प्रमाण पदार्थोंकी तोलसे कहते हैं जैसे कि,एक तोलेसे चार तोलेतक पदार्थोंमें अठगुना जल डाले और चौसठ तोलेसे खारीतक पदार्थोंमें चौगुना पानी डाले, घी अथवा तेलको पानीसे पकाना हो तो घी अथवा तैलका चौथा भाग कल्क डाले, क्वाथसे पकाना हो तो छठा भाग कल्क डाले, और स्वरससे पकाना हो तो आठवां भाग डाले॥) फिर कहते हैं कि, दूधमें, दहीमें, स्वरसमें अथवा चौथे भाग पानीके सहित छांछमें पकाना हो तो आठवां भाग कल्क डाले, कल्कके पदार्थोंसे चौगुने पानीमें या कल्क पिसा हुआ होना चाहिये कि, जिससे उत्तम पाक हो जाय। जिस स्नेहको दूध, दही, स्वरस, छांछ और कल्क पीसतेमें पडा हुआ पानी, इन पांच पदार्थोंका योग देना हो, उस स्नेहमें दही, दूध, स्वरस और छांछ इन सब की तोल पकाते समय स्नेहके बराबर होती है (क्योंकि स्नेह पदार्थको चौगुने द्रवमें पकावे, ऐसा प्रथम कहा है तो ये दही आदि पदार्थ सब मिलाकर स्नेहसे चौगुने हो जायंगे)॥ ७५ ॥ ८१ ॥

द्रवेण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि। तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम् ॥ ८२ ॥ क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रोदितः क्वचित्। क्वाथ्यद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते ॥ ॥ ८३ ॥ कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे ॥ ८४ ॥

केवले द्रवे—क्वाथेतरस्मिन् स्वरसादिरूपे ॥

पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम्। स्नेहात्स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते ॥ ८५ ॥ वर्त्तिवत्स्नेहकल्कः स्याद्यदाऽङ्गुल्या विवर्तितः। शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ ८६ ॥ यदा फेनोद्गमस्तैले फेनशांतिश्च सर्पिषि। वर्णगन्धरसोत्पत्तिः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ ८७ ॥ स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा। ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् ॥ ८८ ॥ मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले। ईषत्काठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत्खरः ॥ ८९ ॥ तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः। आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमान्द्यकरो गुरुः ॥ ९० ॥ नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु। अभ्यङ्गार्थः खरः प्रोक्तो युञ्ज्यादेवं यथोचितम् ॥ ९१ ॥ घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नैकवासरे। प्रकुर्वन्त्युषितास्त्वेते विशेषाद् गुणसञ्चयम् ९२

केवल द्रवसे ही जो स्नेहका पाक करना हो तो औषधियोंको चौगुने पानीसे पीसकर उसमें कल्क डाले, । कहीं केवल क्वाथसे ही स्नेहको पकाना कहा हो तो वहां, औषधिके

चूर्णको क्वाथमें डालनेके पीछे उस औषधिका कल्क भी स्नेहमें डालना चाहिये। विना कल्क डाले ही स्नेहको पकाना हो तो वहां उस स्नेहको क्वाथके अतिरिक्त अन्य स्वरस आदि द्रव्यमें ही पकावे। फूलका कल्क डालकर स्नेहको पकाना हो तो वहां स्नेहसे चौगुना पानी और आठवां भाग फूलका कल्क चाहिये पाक करते करते जब कल्क अंगुलीके मलनेसे वत्तीसा हो जाय और अग्निमें डालनेसे कुछ शब्द न करे, तब स्नेहका पाक हुआ जाने। तेलका पाक करे तो तेलमें झाग आनेसे और घीका पाक करे तो घीका झाग बैठ जानेसे पाक सिद्ध हुआ जाने। स्नेहमें स्वरूप, गन्ध और रसकी उत्पत्ति हो, यह भी पूर्ण पाक हो जानेकी परीक्षा है। स्नेहका पाक-मृदु, मध्य और खर इस भांति तीन प्रकारका है। जिसमें कल्क किंचित् रस भरा हुआ रहे, वह पाक मृदु जानना, जिसमें कल्क रसरहित हो जाय परन्तु मृदु रहे, उसका पाक मध्य जानना, और कल्क जिसमें किंचित् कठिन होजाय उसका पाक खर जानना। जिसमें कल्क जल जाय, उस पाकको दाहकारक और निष्प्रयोजन जानना। जो पाक कचचा रह गया हो, वह जठराग्निकी मन्दता करता है, भारी, तथा शक्तिहीन होता है नाकमें डालनेके काममें मृदुपाक उपयोगी है, सब कामोंमें मध्य पाक उपयोगी है और अभ्यग कार्यमें खरपाक उपयोगी है, इस कारण इसको समझकर उसका उपयोग करे। घी, तेल, और गुण आदि पदार्थ उसी एक दिनमें नहीं सिद्ध करे। कुछ दिनों तक रख छोडे क्योंकि ये पदार्थ जितने पुराने हों, उतने ही अधिक गुणकारी होते हैं ॥ ८२-९२ ॥

सन्धानविधिः।

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सान्धितं भवेत्। आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ ९३ ॥

भेषजेषु यदुचितं तद्भेषजोचितम् ॥

जो पदार्थ द्रवरूप पदार्थोंमें अधिक कालतक रख छोडे, वह संधित हो जाता है। यह संधित (खट्टाहुआ) पदार्थ आसव और अरिष्ट नामक भेदोंसे दो प्रकारका है, जिस प्रकार औषधियोंमें काम आता है, वह प्रकार अब कहते हैं ॥ ९३ ॥

आसवारिष्टलक्षणम।

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः। अरिष्टः क्वाथसाध्यः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥ ९४ ॥

कच्ची औषधिसे और कच्चे पानीसे जो मद्य बनाई जाय, उसको आसव कहते हैं। (जैसे कुमार्यासव) और क्वाथ करके जो मदिरा बनाई जाय, उसको अरिष्ट कहते हैं। इनकी मात्रा एक पलकी है ॥ ९४ ॥

सामान्यारिष्टविधिः।

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवाद्द्रोणं गुडात्तुलाम्। क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्द्धं प्रक्षेपं दशमांशकम् ॥ ९५ ॥

दशमांशकम्--गुणस्यैव दशमांशकम् ॥

जहां अरिष्टमें डालनेके पदार्थोंकी तोल नहीं कही हो वहां १०२४ तोले द्रव और ४००तोले गुण डाले २०० तोले मधु और ४० तोले भर औषधि डाले ॥ ९५ ॥

द्विविधसीधुः।

ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः। सिद्धः पक्वरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः॥९६

मधुरद्रवैः-इक्षुरसादिभिः ।

विनापकी ईख आदिके मधुर रससे जो बनी हुई हो, वह शीतरस सीधु कहाती है। और पकाई हुई ईख आदिके रसोंसे जो मदिरा बनाई जाय, वह पक्वरस सीधु कहातीहै॥९६॥

सुरा-सुराजातिश्च।

परिपक्वान्नसन्धानात्समुत्पन्नां सुरां जगुः। सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात्ततः कादम्बरी

घना ॥ ९७ ॥ तदधो जगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद्घनः । पक्वोऽसौ हृतसारः स्यात्सुराबीजं किरावकम् ॥९८॥

सुराबीजम्--यवगोधूमतण्डुलादि ॥

यत्तालखर्जूररसैः सन्धिता सा हि वारुणी ॥ ९९ ॥

पके हुए अन्नका सन्धान करके जो मद्य उत्पन्न की जाती है, उसको सुरा कहते हैं। पतली सुरा प्रसन्ना कहाती है और गाढी सुरा कादम्बरी कहाती है, मदिराके नीचेकी रही हुई जगल कहाती है और बहुत गाढी नीचेकी जो गाद होती है, उसको मेदक कहते हैं। इस कीचडको पकाकर सारभाग निकाल लेनेपर जो गेंहू, जौ अथवा चावल अदिका फोकस शेष रहता है, उसको सुराबीज और किरावक कहते हैं। ताडी अथवा खजूरीके रसका संधान करके जो मदिरा बनाई जाती है, वह वारुणी कहाती है ॥ ९७-९९ ॥

शुक्तलक्षणम् ।

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च । विनिष्टमभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते १००

अभिषूयन्ते-द्रवेण आप्लाव्य सन्धीयन्ते ।

तैल और नमक डालकर जिस द्रवमें कंद, मूल और फल आदिका सन्धान करे तो वह द्रव शुक्त (सिरका) कहाता है ॥ १०० ॥

चुक्रलक्षणम् ।

विनिष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवैः । विनिष्टं सन्धितं यत्तु तच्चुक्रमभिधीयते ॥ १०१ ॥ गुडाम्बुना सतैलेन कन्दशाकफलैस्तथा । सन्धितं चाम्लतां यातं गुडचुक्रं प्रचक्षते । एवमेव हि शुक्तं स्यान्मृद्वीकासम्भवं तथा ॥१०२॥

विगडकर खट्टेहुए अथवा विगडेहुए मधुर द्रवका जो संधान किया जाता है, वह चुक्र कहाता है। गुड, पानी, तेल, कन्द, मूल और फल इनके संधानमें जब खट्टापन आवे, तब उसको गुडचक्र कहते हैं। दाखका शुक्त भी इसी प्रकार होता है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

तुषोदकसौवीरारनालकांजिकशिंडाकीलक्षणानि ।

तुषाम्बु सन्धितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः । यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सौवीरं साधितं भवेत् ॥ १०३ ॥ आरनालन्तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः । पक्वैर्वा संहितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥ १०४ ॥ कुल्माषधान्यमण्डादिसंहितं काञ्जिकं विदुः । शिण्डाकी संहिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥ १०५ ॥

इति भेषजविधयः ।

कच्चे तुषसहित जौओंका पानीमें जो सन्धान किया जाय, वह तुषोदक कहाता है। तुषरहित पके जौओंका जो सन्धान किया जाय, वह सौवीर कहाता है। भूसी रहित कच्चे अथवा पके गँहूओंका जो सन्धान किया जाय, उसको आरनाल कहते हैं। आरनालमें सौवीरके सदृश गुण हैं। उडदके बडे और मन्ड आदिका जो सन्धान किया जाय वह कांजिक कहाती है॥ मूली और सरसों आदिके पत्तोंका जो अचार करते हैं, उसको शिंडाकी कहते हैं ॥ १०३-१०५ ॥

इति औषधसंज्ञाविधानं समाप्तम् ॥

अथ धातूनां शोधनमारणविधिः ।

मारणयोग्यसुवर्णलक्षणम् ।

दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुंकुमप्रभम् । तारशुल्वोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत् ॥ १ ॥

सत्--उत्तमम् ॥

तच्छेदे कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम् । दाहे छेदे सितं श्वेतं कषे स्फुटलघु त्यजेत् ॥ २ ॥

जो सुवर्ण तपानेमें लाल, काटनेमें सफेद, कसौटी पर कसनेसे केशरके सदृश दीखे चांदी तथा तांबेसे रहित, स्निग्ध, कोमल और भारी हो, वह सुवर्ण उत्तम जानना । जो सुवर्ण सफेद, कठिन, रूखा, बुरे वर्णवाला, मलसे, रहित पतरोंवाला, तपाने तथा काटनेमें सफेद-कसनेमें भी सफेद, हलका और चोट मारनेसे फटजाय, ऐसा सुवर्ण त्याज्य है ॥ १ ॥ २ ॥

सुवर्णशोधनविधिः ।

पत्तलीकृतपत्राणि हेम्नो वह्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ ३ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये तु त्रिधा त्रिधा । एवं हेम्नः परेषाञ्च धा[illegible]ां शोधनं भवेत् ॥ ४ ॥

सुवर्णके पतले पतले पत्तर करके अग्निमें तपावे, जब लाल होजायँ तब तेलमें छाँछमें, काँजीमें, गोमूत्रमें और कुलथीके काथमें डालकर तीन तीन बार बुझावे तब सुवर्ण शुद्ध होता है । अन्य धातुओंकोभी इसी भांति शुद्ध करे ॥ ३ ॥ ४ ॥

अशुद्धसुवर्णदोषाः ।

बलं सवीर्यं हरते नराणां रोगव्रजं पोषयतीह काये । असौख्यकार्येव सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणञ्च कुर्यात् ॥ ५ ॥

अशुद्ध सुवर्ण-मनुष्योंके बल, वीर्यको हरण करनेवाला, शरीरमें अनेक रोगवर्द्धक, सर्वदा दुःख का कर्त्ता और मृत्युको भी करनेवाला है ॥ ५ ॥

सुवर्णमारणविधिः ।

स्वर्णस्य द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत् । तद्गोलकसमं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम् ॥६॥

वर्णस्य-अतितनूकृतपत्रस्य । गन्धम्-गन्धचूर्णम् ॥

गोलकञ्च ततो रुद्ध्वा शरावदृढसम्पुटे । त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटान्येवं चतुर्दश । निरुत्थं जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः ॥ ७ ॥

रुद्ध्वा सवस्त्रकुट्टिचिक्कणमृत्तिकया । वनोपलैः अरने उपले इति लोके । निरुत्थं-यत्पुनर्न जीवति ॥

जिसके बहुत पतले २ पत्तर कर लिये हों, ऐसे सुवर्णसे दूना पारा ले दोनोंको नींबूके रसमें खरल करके गोला बनालेवे । उस गोलेकी बराबर गन्धक ले उसका चूर्ण करके गोलेके चारों ओर लगा देवे और गोला रखनेकीघडियोंमें भी छिडक दे । गोलेके शराव संपुटमें रख संपुटको दृढतासे कपरमट्टी करके सुखाकर तीस अरने उपलोंकी अग्निमें रख देवे, सम्पूर्ण उपले बलकर जब राख शीतल होजाय, तब उसमेंसे निकालकर फिर तीस अरने उपलोंकी अग्निमें रख देवे इसी प्रकार वारंवार अग्नि देकर चौदह पुट देवे तो सुवर्णकी निरुत्थ[1] भस्म हो जायगी । प्रत्येक पुटमें ऊपर कहे अनुसार वारंवार गन्धक देता जावे॥६॥७

सुवर्णमारणस्य द्वितीयो विधिः ।

काञ्चने गलिते नागं षोडशांशेन निक्षिपेत्।चूर्णयित्वा तथाऽऽम्लेन घृष्ट्वा कृत्वा तु गोल कम् ॥ ८ ॥ गोलकेन समं गन्धं दत्वा चैवाधरोत्तरम् । शरावसम्पुटे धृत्वा पुटेद्दिंशद्वनोपलैः । एवं सप्तपुटैर्हैमं निरुत्थं भस्म जायते ॥ ९ ॥

अत्रापि पूर्ववद्गन्धः प्रदातव्यः ।

सुवर्णको गलाकर उसमें सोलहवां भाग सीसाडाल पश्चात् इस रसका बारीक चूर्ण करके नींबूके रसमें खरल कर गोला बनाले, गोलेकी बराबरही गन्धक लेकर उसका चूर्ण कर गोलेके चारों ओर लगा देवे और गोलेके रखनेके पात्रमें भी छिडक देवे । गोलेके ऊपर

१-जो घी सुहागा आदि मित्रपञ्चक डालनेसे भी नहीं जावे ॥

तथा नीचे दो घडियोंके संपुटमें रख संपुटको दृढतासे कपरमिट्टी करके सुखालेवे, पश्चात् बीस अरने उपलोंकी अग्निमें रक्खे इस प्रकार वारंवार अग्निकी सात पुट देनेसे सुवर्णकी भस्म होजाती हैं, इसमें भी पहिलेके सदृश बारंबार गन्धक देता जाय ॥ ८ ॥ ९ ॥

सुवर्णमारणस्य तृतीयो विधिः ।

काञ्चनाररसैर्घृष्ट्वा समसूतकगन्धयोः । कज्जलीं हेमपत्राणि लेपयेत्समया तथा ॥१०॥ काञ्च नारत्वचः कल्कैर्मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् । धृत्वा तत्संपुटे गोलं मृन्मूषासम्पुटे च तत् ॥११॥ विधाय सन्धिरोधं च कृत्वा संशोष्य गोलकम् । वह्निं खरतरं कुर्यादेवं दत्त्वा पुटत्रयम् ॥ ॥ १२ ॥ निरुत्थं जायते भस्म सर्वकर्मसु योजयेत् । काञ्चनारप्रकारेण लाङ्गली हन्ति काञ्चनम् ॥ १३ ॥ ज्वालामुखी तथा हन्याद्यथा हन्ति मनःशिला ॥१४॥

पारा और गन्धक दोनों समान भाग लेकर उसकी कचनारके रसमें मलकर कजली करले, फिर सुवर्णकी बराबर कजलीको सुवर्णके पतरोंपर लेपकर देवे पश्चात् कचनारकी छालको बारीक पीसकर उसकी दो मूषा बनावे उनके बीचमें सोनेके पत्तर रखके मिट्टीसे बन्द कर देवे फिर मिट्टिकी मूषामें रख दोनोंके मुखको कपरमिट्टीसे भलीभांति बन्द करदेवे और सुखाकर अत्यन्त तेज अग्नि देवे, इस प्रकार तीन सम्पुट देनेसे सुवर्णकी विरुत्थ भस्म होजाती है, इस भस्मको सर्व रोगोंपर देवे । जिस प्रकार कचनार सुवर्णको मारदेता है, वैसेही कलियारी, हुलहुल तथा मैनसिल भी सुवर्णको मार देता है ॥ १०–१४ ॥

सुवर्णमारणस्य चतुर्थो विधिः ।

शिलासिन्दूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धकैः । सप्तधा भावनां दद्याच्छोषयेच्च पुनः पुनः ॥ १५ ॥ ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोऽयं दीयते समः । पुनर्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते । एवं वेलात्रयं दद्यात्कल्कं हेममृतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

मैनसिल और सिंदूर दोनों समान लेकर इनका चूर्ण करके आकके दूधमें भावना देकर सुखा लेवे । इस प्रकार सुखा सुखाकर सात भावना देनेके पीछे गलाये हुए सुवर्णमें सोनेकी बराबरही कल्क डाले । कल्क डालनेके पीछे अग्निमें रखके धमावे कि, जिससे कल्क जल जाय, इस प्रकार तीन बार मैनसिल और सिन्दूरका कल्क डालनेसे सुवर्ण मर जाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

मारितसुवर्णगुणाः ।

सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम् । स्वादु तिक्तं च तुवरं पाके च स्वादु पिच्छिलम् ॥ १७ ॥ पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृतिमतिप्रदम् । हृद्यमायुष्करं कान्तिवाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत् । विषद्वयक्षयोन्मादत्रिदोषज्वरशोषजित् ॥ १८ ॥

वृष्यम्–वृषाय कामुकाय हितम् ॥

मारा हुआ सोना–शीतल, वृष्य, बलदायक, भारी, वृद्धता तथा रोगनाशक, मधुर, कडवा कसैला, पाकमें मधुर, पिच्छिल पवित्र, पुष्टिकारक, नेत्रोंको हितकारी, मेधा तथा स्मरणशक्तिवर्द्धक, बुद्धि तथा बलको वढानेवाला, हृदयको प्रिय, आयुवर्द्धक, कान्तिकारक, वाणीको शुद्ध करनेवाला अर्थात् हकलान मितमिनाना आदि दूर करे, स्थिरताकारक और स्थावर तथा जंगम इन दोनों प्रकारके विष, क्षय, उन्माद, तीनों दोष, ज्वर तथा शोषको नष्ट करता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

अशुद्धसुवर्णदोषाः ।

असम्यङ्मारितं स्वर्णं बलं वीर्यं च नाशयेत् । करोति रोगान्मृत्युं च तद्धन्याद्यत्नतः स्ततः ॥ १९ ॥

भली प्रकार नहीं मारा हुआ सोना-बल तथा वीर्यनाशक, रोगोंको उत्पन्न करनेवाला और मृत्युदायक है, इस कारण सुवर्णको बडे यत्नसे मारे ॥ १९ ॥

अथ धात्वादिमारणोपयुक्तान् पुटप्रकारानाह ।

लोहादेरपुनर्भावस्तद्गुणत्वं गुणाढ्यता। सलिले तरणं चापि तत्सिद्धिः पुटनाद्भवेत् ॥ २० ॥ गम्भीरे विस्तुते कुण्डे द्विहस्ते चतुरस्रके। वनोपलसहस्रेण पूरिते पुनरौषधम् ॥ २१ ॥ कोष्ठे रुद्ध्वा प्रयत्नेन गोविष्ठोपरि धारयेत्। वनोपलसहस्रार्द्धं कोष्ठिकोपरि निक्षिपेत् ॥२२॥ वह्नि विनिक्षिपेत्तत्र महापुटमिति स्मृतम् ॥ २३ ॥

कोष्ठं-मृन्मूषा । गोविष्ठ-'गोबर' इति लोके ॥

सपादहस्तमानेन कुण्डे निम्ने तथाऽऽयते। वनोपलसहस्रेण पूर्णं मध्ये विधारयेत्॥ २४ ॥ पुटेनद्रव्यसंयुक्तां कोष्ठिकां मुद्रितां मुखे। अथार्धानि करण्डानि अर्धान्युपरि निक्षिपेत्। एतद्गजपुटं प्रोक्तं ख्यातं सर्वपुटोत्तमम् ॥ २५ ॥

हस्तश्चतुर्विंशत्यंगुलप्रमाणः स सपादः तेन त्रिंश दंगुलप्रमाणेनेत्यर्थः। अथ एवोक्तम्-

साधारणनराङ्गुल्या त्रिंशदङ्गुलको गजः ॥ २६ ॥

(इति गजपुटम् ।)

"अरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिना" इत्यमरः। निःसृतकनिष्ठया मुष्ट्योपलक्षितो हस्तोऽरत्निरित्यर्थः ॥

षोडशांगुलके खाते कस्यचित्कौक्कुटं पुटम्। यत्पुटं दीयते खाते ह्यष्टसंख्यैर्वनोपलैः ॥ २८ ॥ कपोतपुटमेतत्तु कथितं पुटपण्डितैः। गोष्ठान्तर्गोखुरक्षुण्णं शुष्कं चूर्णितगोमयम् ॥ २९ ॥ गोवरं तत्समाख्यातं वरिष्ठं रससाधने। बृहद्भाण्डस्थितैर्यत्र गोवरैर्दीयते पुटम् ॥ ३० ॥ तद्गोवरपुटं प्रोक्तं भिषग्भिः सूतभस्मनि। बृहद्भाण्डे तुषैः पूर्णे मध्ये मूषां विधारयेत्। क्षिप्त्वाऽग्निं मुद्रयेद्भाण्डं तद्भाण्डपुटमुच्यते ॥ ३१ ॥

लोहादि धातुपर अग्निके पुट देनेसे फिर वह धातु जीवित नहीं होती, रखे रहनेपर उसमें अधिक गुण आते हैं और वह धातु पानी में तैरती है, ये सिद्धि पुट देनेसे होती हैं। दो हाथ ऊँचा और दो हाथ चौडा चौकोर गड्ढा खोदकर उसमें एक हजार अरने उपले भरे, पश्चात् औषधिको मट्टीकी मूषामें रख यत्नपूर्वक कपरमिट्टीसे बन्द करके उस गड्ढे में रखदेवे, पश्चात् ऊपरसे पांचसौ उपले उसके ऊपर चिनकर अग्नि लगा देवे इस प्रकार करनेको 'महापुट' कहते हैं। सवाहाथ गहरा और इतना ही लम्बा चौकोर गड्ढा खोदकर उसमें पांचसौ अरने उपले भरदेवे पीछे जिसमें औषधि रक्खी हो, उस मूषाका मुख बन्द करके कपर मट्टी कर उस गड्ढेमें रखकर ऊपरसे और पांचसौ उपले रखकर अग्नि लगा देवे, इस प्रकार करनेको 'गजपुट' कहते हैं, यह गजपुट सम्पूर्ण पुटोंमें उत्तम है। छोटी अंगुलीको छोडकर बाकी सब अंगुलियोंको मीचकर मुट्ठी बांध लेवे, ऐसे एक हाथके गड्-

(१-चौबीस अंगुल प्रमाणको एक हाथ कहते हैं तो सवा हाथ ३० अंगुल हुआ इसपर अन्य ग्रन्थका प्रमाण है कि, साधारण मनुष्यके ३० अंगुलोंको गज कहते हैं, इससे तीस अंगुल लम्बा चौडा ऊँचा गजपुट होता है।

ढेमें उपले भरकर उसके बीचमें मूषा रखके अग्नि दे देवे। इसको 'वाराहपुट' कहते हैं। एक विलस्तके लम्बे चौडे गड्ढेमें उपले भरकर मध्यमें मूषा रख अग्नि देवे। इसको 'कौक्कुट पुट' कहते हैं। गड्ढेमें आठ उपले भरकर बीचमें मूषा रख अग्नि देवे, इसको विद्वान लोग 'कपोतपुट' कहते हैं। गौशालाके भीतर गायोंके खुरोंसे कतरे हुए गोबरको सुखाकर जो चूर्ण होता हैं, उसको गोबर कहते हैं। यह गोबर पारेके सिद्ध करनेमें उत्तम है। बडे पात्रमें गोबर भरकर उसके बीचमें मूषा रखकर अग्नि देवे। इसको 'गोवरपुट' कहते हैं। पारेकी भस्म करनेमें यह गोबरपुट उपयोगी है, ऐसा विद्वान् वैद्योंने कहा है बडे पात्रमें भूसी भर उसके बीचमें मूषा रखकर अग्नि लगा देवे और पात्रका मुख बन्द करदेवे, उसको 'भांडपुटं' कहतेहैं२०-३१

अथ यन्त्रविधिः।

भाण्डे वितस्तिगम्भीरे मध्ये निहितकूपिका। कूपिकाकण्ठपर्यन्तं वालुकामिश्र पूरिते ॥ ३२॥ भेषजं कूपिकासंस्थं वह्निना यत्र पच्यते। वालुकायन्त्रमेतद्धि यन्त्रतन्त्रबुधैः स्मृतम् ॥ ३३॥

वालुकायन्त्र-एक विलस्त चौडे पात्रमें सीसी रखकर और सीसीसे बाहरकी खाली जगहमें गले तक रेती भरदेवे, फिर पात्रके नीचे अग्नि लगाकर उस शीशीकी औषधिको पकावे, इस यन्त्रको विद्वान् 'वालुकायन्त्र' कहते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

निबद्धमौषधं सूतैर्भूर्जे तत् त्रिगुणाम्बरे। रसपोटलिकां काष्ठे दृढं बद्ध्वा गुणेन हि ॥ ३४ ॥ सन्धानपूर्णकुम्भान्तः खावलम्बनसन्धितम् । अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं तत्तदुक्तक्रमेण हि। दोलायन्त्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनाख्यं तदेव हि ॥३५॥

दोलायन्त्र-औषधिको भोजपत्रमें बांधकर और भोजपत्रके ऊपर तिहेरा वस्त्र बांधके पोटली करलेवे इस पोटलीको एक लकडीके बीचमें डोरेसे लटकती हुई बांधे पश्चात् कांजी आदि सन्धित पदार्थोंसे भरी हांडीमें उस पोटलीको लटका देवे और ऊपर यह लकडी अटका देवे। हांडीके भीतर वह पोटली बीचमें लटकती हुई रक्खे और हांडीके नीचे इसी प्रकरणमें कहे हुए अनुक्रमसे अग्निवाले, यह 'दोला यन्त्र' कहाता है, दोलायन्त्रको कोई स्वेदनयन्त्र भी कहते हैं ॥ ३५ ॥ ३५ ॥

साम्बुस्थालीमुखे बद्धे वस्त्रे स्वेद्यं निधाय च। पिधाय पच्यते यन्त्रं तद्यन्त्रं स्वेदनं स्मृतम् ॥ ३६ ॥

स्वेदनयन्त्र-हांडीमें पानी भरके और ऊपर मुखपर वस्त्र बांधकर उस वस्त्रपर बाफ देनेकी औषधिको रख उसके ऊपर ढकनी ढक देवे और नीचे अग्नि जलादेवे वह 'स्वेदनयन्त्र' कहाता है ॥ ३६ ॥

अथ स्थाल्यां रसं क्षिप्त्वा निदध्यात्तन्मुखोपरि। स्थालीमूर्ध्वमुखीं सम्यङ्निरुध्य मृदुमृत्स्नया ॥ ३७ ॥ ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा चूल्ह्यमारोप्य यत्नतः। अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यावत्प्रहपञ्चकम् ॥ ३८ ॥ स्वाङ्गशीतं ततो यन्त्राद् गृह्णीयाद्रसमुत्तमम्। विद्याधराभिधं यन्त्रमेतत्तज्ज्ञैरुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

विद्याधरयन्त्र-एक हांडीमें पारा भरकर उस हांडीके खमुरप बडे मुखकी दूसरी हांडी लेकर ढक देवे, पहिली हांडीके मुखकी तथा दूसरी हांडीके पेटकी सन्धिको कोमल मट्टीसे बन्द कर देवे, और ऊपरकी हांडीमें पानी भर देवे, फिर चूल्हेपर चढाकर पांच प्रहरतक सावधानसे अग्नि जलावे पश्चात् अग्नि शीतल होनेपर ऊपरकी हांडीकी तलीमेंसे पारा छुटा लेवे, इस उत्तम पारेको ग्रहण करे, इसको 'विद्याधर यन्त्र' कहते हैं ॥ ३७-३९ ॥

वालुकाभिः समस्ताङ्गं गर्ते मूषां रसान्विताम् । दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यन्त्रं भूधरनामकम् ॥

भूधरयन्त्र--जिसमें एक छोटा गड्ढा किया हो ऐसा एक बडा गड्ढा करके उस छोटे गड्ढेमें रेत बालू भरे उसमें जिसके भीतर पारा भराहुआ हो ऐसी मूषा अथवा हांडी रखकर बडे गड्ढेमें जलते हुए उपले भरदेवे इसको 'भूधरयन्त्र' कहते हैं ॥

यन्त्रं डमरुसंज्ञं स्यात्तत्स्थाल्योर्मुद्रिते मुखे ॥ ४० ॥

डमरुयन्त्र-एक हाँडीके ऊपर दूसरी हाँडीको उलटी करके रक्खे, पश्चात् दोनोंके मुखकी सन्धियां बन्द करदेवे, इसको 'डमरुयन्त्र' कहते हैं ॥ ४० ॥

मारणयोग्यरजतलक्षणम् ।

गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहच्छेदघनक्षमम् । स्वर्णादिरहितं स्वच्छं तारं नवगुणं शुभम् ॥ ४१ ॥

भारी, चिक्कन, कोमल, सफेद, दाह, छेद तथा घनकी चोटको सहन करनेवाली, सुवर्णादि से रहित और स्वच्छ इन नौगुणों युक्त जो चांदी हो वह उत्तम और मारने योग्य है ॥ ४१ ॥

अयोग्यरजतलक्षणम् ।

कठिनं कृत्रिमं रूक्षं रक्तं पीतदलं लघुः । दाहच्छेदघनैर्नष्टं रूप्यं दुष्ट प्रकीर्तितम् ॥ ४२ ॥

जो चाँदी--कठोर, बनाई, रूक्ष, लाल--पीले पत्तरवाली, हलकी, तपानेसे अथवा काटनेसे फट जाय वह चाँदी दुष्ट कही है ॥ ४२ ॥

रजतशोधनविधिः ।

पत्तलीकृतपत्राणि तारस्याग्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ ४३ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा । एवं रजतपत्राणां विशुद्धिः संप्रजायते ॥४४॥

चाँदीके पतले पतले पत्तर करके अग्निमें तपावे और तपा तपाकर तेलमें, छांछमें, काँजीमें गोमूत्रमें और कुलथीके काढेमें बुझावे, इस प्रकार तीन तीन बार बुझानेसे सम्पूर्ण प्रकारकी चाँदी शुद्ध हो जाती है ॥

अशुद्धरजतदोषाः ।

रूप्यं त्वशुद्धं प्रकरोति तापं विबन्धकं वीर्यबलक्षयं च । देहस्य पुष्टिं हरते तनोति रोगांस्ततः शोधनमस्य कुर्यात्॥४५

विना शुद्ध की हुई चाँदी-शरीरमें ताप करनेवाली, मलबन्धकारक, वीर्य तथा बलनाशक, शरीरकी पुष्टताको नष्ट करनेवाली और रोगोंको उत्पन्न करनेवाली है इस कारण चाँदीको शुद्ध करना चाहिये ॥ ४५ ॥

रजतमारणविधिः ।

भागैकं तालकं मर्द्यं याममम्लेन केनचित् । तेन भागत्रयं तारपत्राणि परिलेपयेत् ॥४६॥ धृत्वा मूषापुटे रुद्ध्वा पुटेत्रिंशद्वनोपलैः ॥ समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् । एवं चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते ॥४७॥

एक भाग तबकिया हरतालको एक प्रहर तक किसी खट्टे नींबू आदिके रसमें खरल करे, पश्चात् उस हरतालको तीनभाग चाँदीके पतरोंपर प्रलेप करे फिर इन पतरोंको मूषामें रख कपरमिट्टी कर तीस उपलोंकी अग्निमें रक्खे, अग्नि शीतल होनेपर निकालले और फिर नींबूके रसका घोटा हुआ हरताल लेपकर कपरमिट्टीकर अग्निकी पुट देवे. इस प्रकार चौदह पुट देनेसे चाँदीकी भस्म होती है ॥४६॥४७॥

रजतमारणस्यापरो विधिः ।

स्नुहीक्षीरेण संपिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत् । तालकस्य प्रकारेण तारपत्रस्य

बुद्धिमान् । पुटैश्चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते ॥ ४८ ॥

उपरोक्त हरतालके सदृश सोनामाखीको थूहरके दूधसे खरल करे, पश्चात् सोनामाखीसे तिगुनी चाँदीके पतरोंपर इसका प्रलेप करे, फिर इन पतरोंको मूषामें रख कपरमिट्टी कर तीस उपलोंकी अग्निसे पुट देवे अग्नि शीतल होनेपर निकालले, फिर सोनामाखीका प्रलेप करके कपरमिट्टी कर अग्निके पुट देवे इस प्रकार चौदह पुट देनेसे चांदीकी भस्म हो जाती है ॥ ४८ ॥

मारितरजतगुणाः ।

रौप्यं शीतं कषायं च स्वादुपाकरसं सरम् । वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित् । प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यचिराद् ध्रुवम् ॥ ४९ ॥

चांदी- शीतल, कसैली, पाकमें तथा रसमें मधुर, दस्तावर, यौवनको स्थिर करनेवाली, स्निग्ध, लेखन, वात, पित्तनाशक और प्रमेह आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करनेवाली है ॥४९॥

मारणयोग्यताम्रलक्षणम ।

जपाकुसुमसंकाशं स्निग्धं गुरु घनक्षमम् । लोहनागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ॥ ५० ॥

जो तांबा जपा के फूलके सदृश कांतिवाला, स्निग्ध भारी, घनकी चोट सहन कर लेवे लोहा तथा सीसा आदि रहित हो, वह तांबा मारणकार्यमें उत्तम कहा है ॥ ५० ॥

अयोग्यत म्रलक्षणम् ।

कृष्णं रूक्षमतिस्वच्छं श्वेतं चापि घनासहम् । लोहनागयुतं चेति शुल्बं दुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ ५१ ॥

जो तांबा--काला, रूखा, अत्यन्त स्वच्छ, सफेद, घनकी चोटको न सहनेवाला, लोहा तथा सीसे सहित हो, वह तांबा अयोग्य जानना ॥ ५१ ॥

ताम्रशोधनविधिः ।

पत्तलीकृतपत्राणि ताम्रस्याग्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ ५२ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा । एवं ताम्रस्य पत्राणां विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ ५३ ॥ एको दोषो विषे ताम्रे त्वशुद्धेऽष्टौ भ्रमो वमिः । विरेकः स्वेद उत्क्लेदो मूर्च्छा दाहोऽरुचिस्तथा ॥५४॥ न विषं विषमित्याहुस्ताम्रन्तु विषमुच्यते । एको दोषो विषे ताम्रे त्वष्टौ दोषा प्रकीर्तिताः ॥ ५५ ॥

तांबेके पतले किये हुए कंटकवेधी पतरोंको अग्निमें तपावे, तपा तपाके तेलमें, छाँछमें, कांजीमें, गोमूत्रमें और कुलथीके काढेमें बुझावे, इस प्रकार तीन नीन बार करनेसे तांबेके पत्तर शुद्ध हो जाते हैं । विषमें तो केवल एक ही दोष है, परन्तु अशुद्ध तांबेमें-भ्रम, वमन, विरेचन, पसीना, उकलाहट, मूर्च्छा, दाह और अरुचि ये आठ दोष हैं । जिसको विष कहते हैं, वह विष नहीं है वास्तवमें तांबाही विष है क्योंकि विषमें तो एकही दोष है और तांबेमें आठ दोष हैं ॥५२॥५५॥

ताम्रमारणविधिः ।

सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद्बुधः । वासरत्रयमम्लेन ततः खल्वे विनिक्षिपेत् ॥ ५६ ॥ पादांशं सूतकं दत्त्वा याममम्लेन मर्दयेत् । तत उद्धृत्य पत्राणि लेपयेद् द्विगुणेन च॥५६॥ गन्धकेनाम्लघृष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम् । ततः पिष्ट्वा च मीनाक्षीं चाङ्गेरीं वा पुनर्नवाम् ॥ ५८ ॥

चांगेरी- चतुष्पत्राम्ला लोनिकाभेदः।

तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेद्द्व्यंगुलोन्मितम्। धृत्वा तद्गोलकं भाण्डे शरावेण च रोधयेत् ॥ ५९॥ वालुकाभिः प्रपूर्याथ विभूतिलवणाम्बुभिः। दत्त्वा भाण्डमुखे मुद्रां ततश्चुल्ल्यां विपाचयेत् ॥ ६०॥ क्रमवृद्ध्याऽग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम्। स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य मर्दयेच्छूरणद्रवैः ॥ ६१ ॥ यामैकं गोलकं तच्च निक्षिपेच्छूरणोदरे। मृदा लेपस्तु कर्त्तव्यः सर्वतोऽङ्गुष्ठमात्रकः ॥ ॥ ६२ ॥ पाच्यं गजकुटे क्षिप्तं मृतं भवति निश्चितम्। वमनं च विरेकं च भ्रमं क्लममथारुचिम्। विदाहं स्वेदमुत्क्लेदं न करोति कदाचन ॥ ६३ ॥

तांबेके सूक्ष्म पत्र करके तीन दिनपर्यन्त नींबूके रसमें स्वेद देवे पश्चात् खरलमें डालकर इसमें चौथा भाग पारा डालकर एक प्रहरतक खरल करे। फिर पत्रोंको निकालकर एक प्रहरतक नींबूके रसमें खरल करे और दूने गन्धकसे लेपन करके गोला करलेवे, पश्चात् मछेछी अथवा चौपतिया नोंनिया वा पुनर्नवाको पीसकर, उसके कल्कको गोलेपर दो अंगुल मोटा लेप देवे, फिर इस गोलेको पात्रमें रख शेष भागको वालूसे भरकर ऊपरसे शराव ढक देवे, पश्चात् मुखको राख और लवणसे २ चार प्रहरतक आँच देवे, अग्नि शीतल होनेपर उसमेंसे तांबा निकाल ले, पश्चात् एक प्रहर तक सूरन कन्दके रसमें खरल करे, खरल किये हुए तांबेका गोला करके उसके सूरनकन्दके पेटमें रक्खे, उसके ऊपर एक अँगूठा प्रमाण मिट्टीका प्रलेप करके तुरन्त जगपुटमें पकावे तो अवश्य तांबा मर जायगा। इस प्रकार मरा हुआ तांबा कदापि वमन, विरेचन, भ्रम, ग्लानि, अरुचि, दाह, पसीना अथवा उत्क्लेद नहीं करता है ॥ ५६-६२ ॥

मारितताम्रगुणाः।

ताम्रं कषायं मधुरं सतिक्तमम्लञ्च पाके कटु सारकं च। पित्तापहं श्लेष्महरं च शीतं तद्रोपणं स्याल्लघु लेखनं च ॥६४॥ पाण्डूदरार्शोज्वरकुष्ठकासक्षयान् पीनसमम्लपित्तम्। शोथं कृमीञ्शूलमपाकरोति प्राहुर्बुधा बृंहणमल्पमेतत् ॥ ६५ ॥ एको दोषो विषे ताम्रे त्वसम्यङ्मारिते पुनः। दाहःस्वेदोऽरुचिर्मूर्च्छा क्लेदो रेको वमिर्भ्रमः ॥ ६६ ॥

रेकः—विरेकः ॥

मारा हुआ तांबा—कसैला, मधुर, कडवा, खट्टा, पाकमें चरपरा, दस्तावर, पित्त तथा कफनाशक, शीतल, रोपण, हलका, लेखन, और पाण्डु, उदररोग, बवासीर, ज्वर, कोढ, खांसी, श्वास, क्षय, पीनस, अम्लपित्त, सूजन कृमि तथा शूल इनको नष्ट करता है। पण्डित कहते हैं कि—तांवा अल्प पुष्टिकारक है। विषमें तो एक ही दोष है, परन्तु भलीभांति नहीं मारे हुए तांबेमें दाह, पसीना, अरुचि, मूर्च्छा ग्लानि, विरेचन, वमन और भ्रम ये आठ दोष रहते हैं ॥ ६४-६६ ॥

वङ्गस्वरूपम्।

वङ्गं च गिरिजं तच्च खुरकं मिश्रकं द्विधा तयोस्तु खुरकं श्रेष्ठं मिश्रकं त्वहितं मतम् ॥ ६७ ॥

वंग (रांग)—पर्वतमें होती है और उसके खुरक तथा मिश्रक ये दो भेद हैं। इनमें खुरक उत्तम है और मिश्रक अहितकारी हैं ॥ ६७ ॥

अशुद्धवङ्गदोषाः।

वङ्गं विधत्ते खलु शुद्धिहीनमाक्षेपकम्पौ च किलासगुल्मौ। कुष्ठानि शूलं किल वातशोथं पाण्डुं प्रमेहञ्च भगंदरञ्च ॥ ६८ ॥ विषोपमं रक्तविकारवृन्दं क्षयञ्च कृच्छ्राणि कफज्वरञ्च । मेहाश्मरीविद्रधिमुष्क-

रोगान् नागोऽपि कुर्यात्कथितान्विकारान् ॥ ६९ ॥

विना शोधा हुआ रांग—आक्षेपवात कम्पवात, गुल्म, किलासकोढ, कोढ, शूल, वातसम्बन्धी सूजन, पाण्डु, प्रमेह, भगन्दर, विषके सदृश, भयंकर अनेक रुधिरसम्बन्धी विकार; क्षय, मूत्रकृच्छ्र, कफज्वर, पथरी, विद्रधि और अण्डकोषोंके रोगोंको उत्पन्न करता है। सीसा भी जो भलीभांति शोधा हुआ न हो तो वह भी इन सब विकारोंको उत्पन्न है ॥ ६८-६९ ॥

वङ्गशोधनविधिः ।

वङ्गनागौ प्रतप्तौ च गलितौ तौ निषेचयेत् । त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्याद्रविदुग्धेऽपि च त्रिधा ॥ ७० ॥

निषेचयेत्-तैलतक्रकाञ्जिकगोमूत्रकुलत्थकाथेषु प्रत्येकं त्रिधा त्रिधा ततोऽर्कदुग्धेऽपि त्रिधा॥

रांग, सीसेको तपावे और गला गलाकर तेलमें छांछमें कांजीमें, गोमूत्रमें और कुथलीके क्वाथमें तीन तीन वार बुझावे, पीछे आकके दूधमें भी तीन बार बुझावे, इस प्रकार करनेसे दोनोंकी शुद्धि हो जाती है ॥ ७० ॥

वंगमारणविधिः ।

मृत्पात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चाऽश्वत्थत्वचो रजः । क्षिप्त्वा वङ्गचतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत् ॥ ७१ ॥

चिञ्चा-तिन्तिडी । रजः-चूर्णम्, अयोदर्वी-लौहहाता इति लोके ।

ततो द्वियाममात्रेण वङ्गभस्म प्रजायते । अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाऽम्लेन विमर्दयेत् ॥ ७२ ॥ ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् । तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् । एवं दशपुटैः पक्कं वङ्गं भवति मारितम् ॥ ७३ ॥

मिट्टीके पात्रमें गलाये हुए रांगसे चौथा भाग इमली तथा पीपलकी छालका चूर्ण डालकर लोहेकी करछीसे दो पहरतक घोटे, इस प्रकार करनेसे रांगकी भस्म हो जाती है पश्चात् उस भस्ममें उसकी बराबर ही हरताल डालकर फिर नींबूके रसमें खरल करे, पश्चात् उसको अग्निके गजपुटमें पकावे, फिर दशवां भाग हरताल डालकर नींबूके रसमें खरलकर एक पहरतक मर्दन करे, और गजपुटमें पकावे इस प्रकार दश पुट देनेसे रांग भलीभांति मर जाता है ॥ ७१-७३ ॥

मारितवङ्गगुणाः ।

वङ्गं लघु सरं रूक्षं कुष्ठमेहकफक्रिमीन् । निहन्ति पाण्डुं सश्वासं नेत्र्यमीषत्तु पित्तलम् ॥ ७४ ॥ सिंहो गजौघं तु यथा निहन्ति तथैव वङ्गोऽखिलमेहवर्गम् । देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥ ७५ ॥

वंग-हलकी, दस्तावर, रूक्ष, कोढ, प्रमेह, कफ, कृमि, पाण्डु, तथा श्वासको नष्ट करता है। नेत्रोंको हितकारी. किंचित् पित्तकारक, है और जिस प्रकार सिंह हाथियोंके झुण्डको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार वंगकी भस्म सम्पूर्ण प्रमेहोंको नष्ट करती है, देहमें सुख उत्पन्न करती है, इंद्रियोंको बलवान करती है और मनुष्यके शरीरमें निश्चय पुष्टि देती है ॥ ७४-७५ ॥

जशदस्वरूपं गुणाश्च ।

जशदं गिरिजं तस्य दोषाःशोधनमारणे । वङ्गस्येव हि बोद्धव्या गुणांस्तु गणयाम्यथ ॥ ७६ ॥ जशदं च सरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत् । चक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डुं श्वासञ्चनाशयेत् ॥ ७७ ॥

जस्ता-पर्वतमें होता है। जस्तेके दोष शोधन और मारण रांगके सदृशही जानने । अब जस्तेके गुण कहताहूँ। जस्ता-दस्तावर, कडवा शीतल, कफ तथा पित्तनाशक है । नेत्रोंको

अत्यन्त हितकारी और प्रमेह, पाण्डु तथा श्वासको नष्ट करता है ॥ ७६-७७ ॥

नागशोधनविधिः।

तस्य साहजिका दोषा रङ्गस्यैव निदर्शिताः। शोधनश्चापि तस्यैव भिषग्भिर्गदितं पुरा ॥ ७८ ॥

रांगमें जो दोष हैं, वही शीशेमें स्वाभाविक है और शीशेका शोधन भी रांगके सदृश ही करे, ऐसा प्राचीन वैद्योंने कहा है ॥७८॥

नागमारणविधिः।

ताम्बूलरससम्पिष्टशिलालेपात् पुनःपुनः। द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थं भस्म जायते ॥ ७९ ॥

शिलाः-मनःशिला ॥

पानके रससे मनशिलको खरलमें बारीक पीसकर शीशीभर प्रलेप करके गजपुट देवे. इस प्रकार बारंबार प्रलेप करके अग्निकी बत्तीस पुट देनेसे शीशेकी निरुत्थ भस्म हो जाती है ॥ ७९ ॥

अपरो नागमारणविधिः।

अश्वत्थचिञ्चात्वक्चूर्णं चतुर्थांशेन निक्षिपेत्। मृत्पात्रे विद्रुतो नागो लोहदर्व्या प्रचालितः॥ ८० ॥ यामैकेन भवेद्भस्म तत्तुल्या स्यान्मनःशिला । काञ्जिकेन द्वयं पिष्ट्वा पचेद्गजपुटेन च ॥८१॥ स्वाङ्गशीत पुनः पिष्ट्वा शिलया काञ्जिकेन च। पुनःपचेच्छरावाभ्यामेवं षष्टिपुटैर्मृतिः॥८२॥

मिट्टीके पात्रमें शीशेको गलाकर उसमें शीशेसे चौथा भाग पीपलकी तथा इमलीकी छालका चूर्ण डालकर लोहेकी करछीसे एक प्रहरतक चलावे तो शीशेकी भस्म हो जाती है। उस भस्मके बराबर मैनशिलको कांजीमें पीसकर गजपुटमें पकावे, जब अग्नि शीतल हो जाय तब फिर उस भस्मको तथा मनशिलको कांजीमें पीसकर गजपुटमें पकावे, इस प्रकार अग्निकी साठ पुट देनेसे शीशा भली भांति मरजाता है ॥ ८०-८२ ॥

मारितशीशकगुणाः।

सीसं रङ्गगुणं ज्ञेयं विशेषान्मेहनाशनम् ॥८३॥ नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति व्याधिं च नाशयति जीवनमातनोति। वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति मृत्युञ्च नाशयति सन्ततसेवितः सः ॥ ८४ ॥

शीशेमें रांगके सदृश गुण हैं और वह विशेष करके प्रमेहको नष्ट करता है। जो शीशेको निरन्तर सेवन करे, तो सौ हाथियोंके सदृश बलवाला होता है। रोग नष्ट होते हैं, जीवनका विस्तार होता है, अग्नि प्रदीप्त होती है, कामदेवकी शक्ति बढती है और मृत्यु दूर होती है ॥ ८३-८४ ॥

अशुद्धलौहदोषाः।

खञ्जत्वकुष्ठामयमृत्युकारी हृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीञ्च। नानारुजानां च तथा प्रकोपं कुर्याच्च हृल्लासमशुद्धलौहम्॥८५॥

अशुद्ध लोहा-खंजता (लूलापन), कुष्ठ, मृत्यु, हृदयरोग, शूल पथरी, हृल्लास (सूखी रद्द अर्थात् उबकी) और अन्य अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ८५ ॥

लौहशोधनविधिः।

पत्तलीकृतपत्राणि लौहस्याग्नौ प्रतापयेत्। निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च कांजिके ॥ ८६ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा। एवं लौहस्य पत्राणां विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ ८७ ॥

लोहेके पतले किये हुए पत्रोंको अग्निमें तपाकर तेलमें, छांछमें, कांजीमें गोमूत्रमें और कुलथीके काढेमें तीन तीन बुझावे, इस प्रकार करनेसे लोहकी शुद्धि होती है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

लौहमारणविधिः।

शुद्धं लौहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः। मर्दयित्वा पुटेद्वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम् ॥ ८८ ॥ पुटत्रयं कुमार्याश्च कुठारच्छि-

न्नकारसैः। पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥ ८९ ॥

शुद्ध लोहेके चूर्णको छिलहिंटाके रससे खरल करके शरावसंपुटमें फूँक देवे, इस प्रकार तीन वार गजपुटमें फूंके, पीछे घीकुँवारके रसमें पीस पीसकर तीन गजपुट देवे और फिर हडसंघारीके रसमें पीसकर छः गजपुट देवे इस प्रकार करनेसे लोहा मरजाता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

लौहमारणस्य द्वितीयो विधिः।

क्षिपेच्च द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णतः।
मर्दयेत्कन्यकाद्रावैर्यामयुग्मं ततः पुटेत् ॥
एवं सप्तपुटैर्मृत्युं लौहचूर्णमवाप्नुयात् ९०॥

लोहेके चूर्णमें दशमां भाग शिंगरफ डालकर घीकुँवारके रससे दो प्रहरतक खरलमें पीस अग्निकी पुट देवे इस प्रकार अग्निकी सात पुट देनेसे लोहेका चूर्ण मर जाता है ॥ ९० ॥

लौहमारणस्य तृतीयो विधिः।

सत्योऽनुभूतो योगीन्द्रैः क्रमोऽन्यो लोहमारणे ॥ ९१ ॥ कथ्यते रामराजेन कौतूहलधियाऽधुना। सूतकाद् द्विगुणं गन्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ॥ ९२ ॥ द्वयोः समं लौहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः। यामयुग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पात्रके ॥ ९३ ॥ घर्मे धृत्वा रुबूकस्य पत्रैराच्छादयेद्बुधः। यामद्वयाद्भवेदुष्णं धान्यराशौ न्यसेत्ततः ॥ ९४ ॥ दत्त्वोपरि शरावं तु त्रिदिनान्ते समुद्धरेत्। पिष्टा च गालयेद्वस्त्रादेवं वारितरं भवेत् ॥९५॥ दाडिमस्य दिलं पिष्टा तच्चतुर्गुणवारिणा। तद्रसेनायसं चूर्णं सन्नीय प्लावयेदिति ॥ ९६ ॥ आतपे शोषयेत्तच्च पुटेदेवं पुनः पुनः। एकविंशतिवारैस्तन्म्रियते नात्रसंशयः। एवं सर्वाणि लौहानि स्वर्णादीन्यपि मारयेत् ॥ ९७ ॥

लोहेके मारनेमें बडे २ योगियोंमें जो सत्य अनुभव किया है उसको कौतुक बुद्धिसे रामराज नामक वैद्य कहते हैं सो यह है कि, पारेमें दूना गन्धक डालकर कजली करे, पश्चात् उस कजलीके समान लोहेका चूर्ण उसमें डालकर घीकुँवारके रससे दो प्रहरतक खरलमें मर्दन करे, पश्चात् इस चूर्णका गोला बना तांबेके पात्रमें रख धूपमें धर देवे और चारों ओरसे अण्डके पत्ते ढकदेवे इस प्रकार करनेसे दो पहरमें गरम होजाता है, पश्चात् उसको शरावमें रख धान्योंके समूहमें तीन दिनतक गाड देवे, फिर बाहर निकाल पीसकर कपडेमें छान लेवे, इस प्रकार करनेसे यह चूर्ण पानीमें तैरने लगता है, फिर इस चूर्णकोचौगुने पानीसे पीसे हुए अनारके पत्तोंमें भिगोकर धूपमें सुखावे पश्चात् अग्निकी पुट देवे, इस प्रकार वारंवार सुखाकर इकतीस पुट देवे, तो लोहेका चूर्ण निःसंदेह मरजाता है। सुवर्ण आदि अन्य धातुएँ भी इस रीतिसे मर सकती हैं ९१-९७॥

मारितलौहगुणाः।

लोहं तिक्तं सरं शीतं कषाय मधुरं गुरु। रूक्षं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् ॥ ९८ ॥ कफं पित्तं गरं शूलं शोफार्शःप्लीहपाण्डुताः। मेदोमेहकृमीन्कुष्ठं तत्किट्टं तद्वदेवं हि ॥ ९९ ॥ गुञ्जामेकां समारभ्य यावत्स्युर्नव रक्तिकाः। तावल्लोहं समश्नीयाद्यथादोषानलं नरः ॥ १०० ॥ कूष्माण्डं तिलतैलं च माषान्नं राजिकां तथा। मद्यमम्लरसञ्चैव वर्जयेल्लौहसेवकः ॥ १०१ ॥

लोहा-कडवा, दस्तावर, शीतल, कसैला, मधुर, भारी, रूखा, आयुःस्थापक नेत्रोंको हितकारी, लेखन, वातकारक और कफ, पित्त,

विष, शूल, सूजन, बवासीर, प्लीहा, पांडुता, मेद, प्रमेह, कृमि तथा कोढको नष्ट करता है। लोहेकी कीटमें भी लोहेके सदृश ही गुण हैं। अब कफादिक दोषोंपर जठराग्निका बलाबल विचारकर एक रत्तीसे नौ रत्ती तक खावे। लोहका सेवन करनेवालेको पेठा-(कुम्हडा), तिलका तेल, उडद, राई, मद्य और खटाईका त्याग करना चाहिये ॥ ९८-१०१ ॥

सर्वधातूनां मारणे साधारणो विधिः ।

शिलागन्धार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सर्वधातवः । म्रियन्ते द्वादशपुटैः सत्यं गुरुवचो यथा ॥ १०२ ॥

श्रीगुरुके वचनोंपर विश्वास रखकर कहता हूँ कि, मैनशिल और गन्धकको आकके दूधमें महीन पीस उससे बारबार लेप कर अग्निकी बारह पुट देवे, इस प्रकार करनेसे सुवर्ण आदिक सब धातु मर जाती हैं ॥ १०२ ॥

अथोपधातूनां मारणप्रकारः ।

अशुद्धस्वर्णमाक्षिकदोषाः ।

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान् । मालां तथैव व्रणपूर्विकाञ्च कुर्यादशुद्धं खलु माक्षिकञ्च॥१॥

अशुद्ध सोनामाखी-अग्निकी मन्दता, बलकी हानि, उग्र विष्टम्भिता, नेत्ररोग, कोढ, गण्डमाला और व्रण समूहको उत्पन्न करती हैं ॥१॥

स्वर्णमाक्षिकशोधनविधिः ।

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैन्धवस्य च । मातुलुङ्गद्रवैर्वाऽथ जम्बीरस्य द्रवैः पचेत् ॥ २ ॥ चालयेल्लोहजे पात्रे यावत् पात्रं सुलोहितम् । भवेत्ततस्तु संशुद्धिं स्वर्णमाक्षिकमृच्छति ॥ ३ ॥

तीन भाग सोनामाखी और एक भाग सैंधानोन लेकर बिजौरे नींबूके रससे लोहेके पात्रमें पकावे, जबतक वह पात्र लाल न होजाय तबतक करछीसे चलाता रहे, इस प्रकार करनेसे सोनामाखी शुद्ध होजाती है ॥ २ ॥ ३ ॥

स्वर्णमाक्षिकमारणविधिः ।

कुलत्थस्य कषायेण वृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत् । तक्रेण वाऽजमूत्रेण म्रियते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ ४ ॥

सोनामाखीको कुलथीके काढेमें अथवा तेलमें वा छांछमें अथवा बकरेके मूत्रमें खरल करके अग्निकी पुट देवे तो सोनामाखी मरजाती है ॥ ४ ॥

रूपमाक्षिकशोधनविधिः ।

स्वर्णमाक्षिकवद्दोषा विज्ञेयास्तारमाक्षिके । अस्तस्तद्दोषशान्त्यर्थं शोधनं तस्य कथ्यते ॥ ५ ॥ कर्कोटीमेषशृङ्गयुत्थैर्द्रवैर्जम्बीरजैर्दिनम् । भावयेदातपे तीव्रे विमला शुद्ध्यति ध्रुवम् ॥ ६ ॥

मेषशृङ्गी-मेढाशृङ्गी । विमला-तारमाक्षिकम् ॥

रूपामाखीमें भी सोनामाखीके सदृशही दोष रहते हैं, इस कारण उन दोषोंकी शांतिके लिये रूपामाखीकी शोधनविधि कहते हैं-रूपामाखीको एक दिन तक ककोढा, मेढासिंगी और नींबूके रसमें पीसकर धूपमें सुखावे, इस प्रकार करनेसे रूपामाखी शुद्ध होती है॥५॥६॥

रूप्यमाक्षिकमारणविधिः ।

कुलत्थस्य कषायेण वृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत् । मरणं वाऽजमूत्रेण तारमाक्षिकमृच्छति ॥ ७ ॥

रूपामाखीको कुलथीके काढेमें, तेलमें, छांछमें अथवा बकरेके मूत्रमें भली भांति खरलकर अग्निकी पुट देवे तो रूपामाखी मर जाती है ॥ ७ ॥

स्वर्णमाक्षिकरूप्यमाक्षिकयो-
विशेषगुणाः ।

न केवलं स्वर्णरूप्यगुणास्तापीजयोर्मताः । द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणास्तयोः ॥ ८ ॥ माक्षिकं मधुरं तिक्तं स्वर्यं वृष्यं रसायनम् । चक्षुष्यं वस्तिरुक्कुष्ठं पाण्डुमेहविषोदरम् । अर्शः शोफं क्षयं कण्डूं त्रिदोषञ्च नियच्छति ॥ ९ ॥

सोनामाखीमें सोनेके सदृश गुण रहते हैं और रूपामाखीमें चांदीके सदृश गुण रहते हैं यही नहीं किन्तु इनमें अन्य पदार्थोंके संसर्ग होनेसे अन्य गुण भी रहते हैं। सोनामाखी तथा रूपामाखी-मधुर, कडवी, स्वरको उत्तम करनेवाली, वृष्य, रसायन, नेत्रोंको हितकारी और वस्तिरोग, कोढ, पाण्डु, प्रमेह, विष, उदररोग, बवामीर, सूजन, क्षय, खुजली तथा वातादि तीनों दोषोंको नष्ट करनेवाली है ॥ ८ ॥ ९ ॥

तुत्थशोधनविधिः ।

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थं मार्जारकक्कपोतयोः ।
दशांशं टंकणं दत्त्वा पचेल्लघुपुटे ततः ।
पुटं दध्ना पुटं क्षौद्रैर्देयं तुत्थविशुद्धये १०

तूतिया (नीलाथोथा) में दशवां भाग सुहागा डालकर खरलमें मिलावें बिलार अथवा कबूतरकी विष्ठाके साथ मर्दन कर अग्निकी हलकी पुट देवे, पश्चात् दहीमें मर्दन कर पुट देवे, फिर सहतमें मर्दन कर पुट देवे तो नीलाथोथा शुद्ध होकर मर जाता है ॥ १० ॥

शुद्धतुत्थस्य गुणाः ।

तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु । लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥ ११ ॥ विषाश्मकुष्ठकण्डूघ्नं तद्गुणं खर्परं मतम् ॥ १२ ॥

तूतिया-चरपरा, खारा, कसैला, वमन करानेवाला, हलका, लेखन, हस्तावर, शीतल, नेत्रोंको हितकारी और कफ, पित्त, विष, पथरी, कोढ तथा खुजलीको नष्ट करता है। खपरियामें भी येही गुण है ॥ ११ ॥ १२ ॥

कांस्यपित्तलशोधनविधिः ।

अथ कांस्यस्य रीतेश्च शोधनं त्वभिधीयते । पत्तलीकृतपत्राणि कांस्यस्याग्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ १३ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषायेऽऽत्र त्रिधा त्रिधा । एवं कांस्यस्य रीतेश्च विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ १४ ॥

कांसीके सूक्ष्म किये हुए पत्रोंको अग्निमें तपाकर तेलमें, छाँछमें, कांजीमें, गोमूत्रमें और और कुलथीके काढेमें अनुक्रमसे तीन-तीन बार बुझावे, इस प्रकार करनेसे कांसी शुद्ध होजाती है । पीतल भी इसी प्रकारसे शुद्ध होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

कांस्यमारणविधिः ।

अर्कक्षीरेण सम्पिष्टो गन्धकस्तेन लेपयेत् । समेन कांस्यपत्राणि शुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः ॥ १५ ॥ ततो मूषापुटे धृत्वा पचेद्गजपुटेन च । एवं पुटद्वयात्कांस्यं रीतिश्च म्रियते ध्रुवम् ॥ १६ ॥

कांसीके पत्रोंकी बराबर गन्धक लेकर आकके दूधमें पीसे, पश्चात् नींबूके रससे बारंबार स्वच्छ किये हुए पत्रोंको लेपकर मूषासम्पुटमें रख गजपुटीकी अग्नि देवे, इस भांति दो पुट देनेसे कांसी मरजाती है । पीतल भी इसी विधिके करनेसे मर जाता है ॥ १५-१६ ॥

मृतकांस्यरीत्योर्गुणाः ।

कांस्यं कषायं तीक्ष्णोष्णं लेखनं विशदं सरम् । गुरु नेत्रहितं रूक्षं कफपित्तहरं परम् ॥ १७ ॥ रीतिका तु भवेद्रूक्षा सतिक्ता लवणा रसे । शोधिनी पाण्डुरोगघ्नी कृमिहन्नातिलेखनी ॥ १८ ॥

कांसी-कसैली, तीक्ष्ण, गरम, लेखन, विशद दस्तावर, भारी, नेत्रोंको हितकारी, रूखी और कफ तथा पित्तका अत्यन्त नाशक है। पीतल-रूखा, कडवा, रसमें खारा, देहको शोधन करनेवाला, पाण्डुरोगनाशक, कृमिहारक और अत्यन्त लेखन नहीं है ॥ १७ ॥ १८ ॥

सिन्दूरशोधनविधिः।

दुग्धाम्लयोगतस्तस्य विशुद्धिर्गदिता बुधैः ॥ १९ ॥

सिन्दूरको दूधमें या नींबूके रसमें दो दो पहर खरल करनेसे सिन्दूरकी शुद्धि होती है ॥ १९ ॥

सिन्दूरस्य गुणाः।

सिन्दूर उष्णो वीसर्पकुष्ठकण्डूविषापहः। भग्नसन्धानजननो व्रणशोधनरोपणः॥२०

सिन्दूर-गरम, विसर्प, कोढ, खुजली तथा विषविनाशक, टूटी हडडीको जोडनेवाला, व्रणको स्वच्छ करनेवाला तथा व्रणरोपण है ॥ २० ॥

अथ क्षिलाजतुलक्षणं शोधनविधिश्च।

गोमुत्रगन्धवत्कृष्णं स्निग्धं मृदु तथा गुरु। तिक्तं कषायं शीतञ्च सर्वश्रेष्ठं तदायसम् ॥ २१ ॥

आयसम्-अयउपधातुसम्बन्धि ॥

विन्ध्यादौ बहुलं तत्तु तत्र लोहं यतोऽधिकम्। तच्छोधनमृते व्यर्थमनेकमलमेलनात् ॥ २२ ॥ शिलाजतु समानीय सूक्ष्मं खण्डं विधाय च। निक्षिप्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत्सुधीः ॥ २३ ॥ मर्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम्। स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ॥ २४ ॥ उपरिस्थं घनं यत्स्यात्तत्क्षिपेदन्यपात्रके। एवं पुनःपुनर्नीतं द्विमासाभ्यां शिलाजतु ॥ २५ ॥ भवेत्कार्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिङ्गोपमं भवेत्। निर्धूमश्च ततः शुद्धं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २६ ॥

जो शिलाजीत-गोमूत्रके सदृश गन्धवाला, काला, चिकना, कोमल, भारी, कडवा, कसैला और शीतल हो वह शिलाजीत सर्वोत्तम जानना। शिलाजीत लोहेकी उपधातु है, विन्ध्याचल आदि पर्वतोंमें अधिक होता है। क्योंकि इन पर्वतोंमें ही लोहा अधिक होता है, शिलाजीतमें अनेक प्रकारके मलादिक मिले होते हैं इस कारण विना शोधा हुआ व्यर्थ है। शिलाजीतके सूक्ष्म टुकडे करके अत्यन्त गरम जलमें डाले और एक पहरतक पडा रहने देवे पश्चात् पानीको सफेद वस्त्रसे छानकर लेवे, इस पानीको मट्टीके पात्रमें डालकर धूपमें रक्खे, धूपमें रहनेसे पानीके ऊपर जमी हुई मलाईको लेकर वडे दूसरे बासनमें रक्खे उस मलाईको फिर गरम जलका संस्कार देवे, पश्चात् घोलकर पानीको वस्त्रमें छान लेवे, फिर मट्टीके वासनमें भरकर धूपमें रक्खे, धूपमें रहनेसे पानीके ऊपर आई हुई मलाईको लेकर फिर तीसरे पात्रमें डाले, इस भांति दो महीनेतक बारम्बार करनेसे जब पानीके ऊपर मलाई नहीं आवे और सब काला भाग नीचे ही रहजाय तो शिलाजीतके काले भागको शुद्ध हुआ जाने। जो शिलाजीत-अग्निके ऊपर डालनेसे लिंगके सदृश हो जाय और धुआँ न निकले तो शिलाजीतको शुद्ध और कार्यमें उपयोगी जानकर सम्पूर्ण कार्योंमें लावे ॥ २१-२६ ॥

अथान्यप्रकारः।

तत्र प्रथमतस्तस्य बहिर्मलमपाकर्त्तुं केवलजलेन प्रक्षालनं कर्त्तव्यम्। ततस्तदन्तर्गतमृत्तिकासिकतादिदोषदूरीकरणाय वक्ष्यमाणक्वाथेन तत्र भावना देया। तदाह वाग्भटः—व्याधिं व्याधितसात्म्यं समनुसरन्भावयेदय स्पात्रे। प्राक्के-

वलजलधौतं शुष्कं क्वाथैस्ततो भाव्यम् ॥ २७ ॥ तुल्यं गिरिजेन जले वसुगुणिते भावनौषधं क्वाथ्यम् । तत्क्वाथे पादांशे पूतोष्णे प्रक्षिपेद्गिरिजम् ॥२८॥ तत्समरसतां यातं संशुष्कं प्रक्षिपेद्रसे भूयः । स्वैःस्वैरेवं क्वाथैर्भाव्यं वारान्भवेत्सप्त ॥ २९ ॥ अथ स्निग्धस्य शुद्धस्य घृतं तिक्तकसाधितम् । त्र्यहं युञ्जीत गिरिजमेकैकेन तथा त्र्यहम् ॥ ३० ॥ फलत्रयस्य यूषेण पटोल्या मधुकस्य च । शिलाजमेवं देहस्य भवत्यत्युपकारकम् ॥ ३१ ॥

प्रथम तो बाहरके मलको दूर करनेके लिये केवल जलसे शिलाजीतको धोवे और पीछे उसके भीतर रहनेवाली मट्टी और रेती आदि दोषको दूर करनेके लिये जो क्वाथ नीचे लिखा है उस क्वाथसे भावना देवे। वाग्भट कहते हैं, कि-"रोग और रोगीको जो क्वाथ अनुकूल हो उसका विचार करके शिलाजीतके टुकडोंको उस क्वाथसे लोहेके पात्रमें भावना देवे। वह इसप्रकार है कि, प्रथम केवल जलसे धोकर सुखावे, पश्चात् शिलाजीतके बराबर भावना देनेकी औषधि लेकर उसका अठगुने जलमें क्वाथकरे, जलकर चौथा भाग जल जब शेष रहे तब उस गरम जलको छानकर उसमें शिलाजीत डाले, जब शिलाजीत पानीमें एकरस हो जाय तब उसको सुखाकर फिर नये क्वाथमें डाले, इस प्रकार रोगके और रोगीके हितके लिये उस क्वाथकी सात वार भावना देवे, पश्चात् स्निग्ध किये हुए और शुद्ध किये हुए मनुष्यको तीन दिनतक तिक्तक घी खिलावे, पश्चात् तीन दिनतक हरड, बहेडा और आमलोंके क्वाथके साथ शिलाजीत खिलावे, पश्चात् तीन दिनतक परवलके क्वाथ और उसके पीछे मुलहटीके क्वाथके साथ शिलाजीत सेवन करावे, इस प्रकार सेवन कराया हुआ शिलाजीत शरीरको उपकारी है।" ॥ २७-३१ ॥

१-अडूसा, नीम, गिलोय, कटेरी और परवल इन सबका कल्क डालकर जो घी बनाया जावे, उसको तिक्तक घी कहते हैं॥

क्वाथद्रव्याणां भावनां फलञ्चाह-हारीतः ।

लोहस्थितं निम्बगुडूचिसर्पिर्यवैर्यथावत्परिभावयेत्तत् । सन्तानिकाकीटपतङ्गदंशदुष्टौषधीदोषनिवारणाय ॥ ३२ ॥

सन्तानिका--तद्बहिःसंलग्नमृत्तिकादिमयी ॥

एवं भावनां दत्त्वा संशोष्य केवलेन जलेन शोधनं कर्त्तव्यम् ॥ तत्प्रकारमाह अग्निवेशः-उष्णे च काले रवितापयुक्ते व्यभ्रे निवाते समभूमिभागे । चत्वारि पात्राण्यसितायसानि न्यस्यातपे तत्र कृतावधानः ॥ ३३ ॥ शिलाजतु श्रेष्ठमवाप्य पात्रे प्रक्षिप्य तस्माद् द्विगुणञ्च तोयम् । उष्णं तदर्द्धं क्वथितञ्च दत्त्वा विशोधयेत्तन्मृदितं यथावत् ॥ ३४ ॥ ततस्तु यत्कृष्णमुपैति चोर्ध्वं सन्तनिकावद्रविरश्मितप्तम् । पात्रे तदन्यत्र ततो निदध्यात्तत्रापरं कोष्णजलं क्षिपेच्च ॥ ३५ ॥ पुनश्च तस्मादपरत्र पात्रे पश्चाच्च पात्रादपरत्र भूयः । यदा विशुद्धं जलमेवमूर्ध्वं कृष्णं समस्तं मलमेत्यधस्तात् ॥ ३६ ॥ तदा त्यजेत्तत्सलिलं मलञ्च शिलाजतु स्याज्जलशुद्धमेवम्॥३७॥

क्वाथके पदार्थोंकी भावना देनेके फलके विषयमें हारीत कहते हैं-"शिलाजीतको पात्रमें रख नीम, गिलोय, घी और जौके क्वाथकी सम्पूर्ण रीतिसे भावना देवे कि-जिससे शिलाजीतके भीतर लगी हुई मट्टी, कीडा,

पतंग आदिके दंशका दोष और दुष्ट औषधिके संसर्गसे हुआ दोष होजाता है" इस भाँति भावना देकर सुखानेके पीछे केवल जलसे स्वच्छ करे, उसकी रीतिके विषयमें अग्निवेश मुनि कहते हैं कि-"बादलोंके संसर्ग विना उष्णकालमें जब सूर्यका तेज हो और वायुका वेग न हो ऐसे सम भूमिके भागमें लोहेके चार पात्र रख सावधानतासे उत्तम शिलाजीत डाले, प्रथम उसको एक पात्रमें डाले, फिर शिलाजीतसे दूना जो जल, जलते जलते आधा शेष रहा हो ऐसा जल डाले इस जलमें भली भाँति उसको मलकर धूपमें रक्खे, सूर्यकी किरणोंके तेजसे पानीके ऊपर जो काली मलाई आवे, उसको लेकर दूसरे पात्रमें डाले और उसमें भी कुछ गरम जल डाले, धूपमें सुखाते २ जब इसके ऊपर काली मलाई आवे उसको लेकर तीसरे पात्रमें डाले और उसमें भी किञ्चित् गरम जल डालकर धूपमें सुखावे, इस पानीके ऊपर जो काली मलाई आवे उसको लेकर चौथे पात्रमें डाले और उसमें भी किंचित् उष्ण जल डालकर धूअमें रक्खे, इस प्रकार करनेसे ऊपर उत्तम जल आजाता है और काला मैल नीचे रहता है। जब ऐसा होजाय तब पानीको निकाल डाले और काला मैल जो नीचे रहा है, उसको जलसे शुद्ध हुआ शिलाजीत जाने ॥ ३२ ॥ ३७ ॥

शोधितशिलाजतुगुणाः।

शिलाजतु स्मृतं तिक्तं कटूष्णं कटुपाकि च। रसायनं योगावाहि श्लेष्ममेहाश्मशर्कराः ॥ ३८ ॥ मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं शोथमर्शांसि पाण्डुताम्। वातरक्तं तथा कुष्ठमपस्मारोदरं हरेत् ॥ ३९ ॥

शिलाजीत--कडवा, चरपरा, गरम, पाकमें भी चरपरा, रसायन, योगवाही, कफ, प्रमेह, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, सूजन, बवासीर, पाण्डु, वातरक्त, कोढ, अपस्मार तथा उदर रोगको नष्ट करता है ॥३८॥३९॥

अथ रसस्य शोधनविधिः।

तत्रादौ स्वेदनम्।

नानाधान्यैर्यथाप्राप्तैस्तुषवर्जैर्जलान्वितैः। मृद्भाण्डं पूरितं रक्षेद्यावदम्लत्वमाप्नुयात् ॥ १ ॥ तन्मध्ये भृङ्गरा मुण्डी विष्णुक्रान्ता पुनर्नवा। मीनाक्षी चैव सर्पाक्षी सहदेवी शतावरी ॥ २ ॥ त्रिफला गिरिकर्णी च हंसपादी च चित्रकम्। समूलं कुट्टयित्वा तु यथालाभं विनिक्षिपेत् ॥३॥

विष्णुक्रान्ता गिरिकर्णी च अपराजितैव श्वेतनीलपुष्पभेदात्।

पूर्वाम्लभाण्डमध्ये तु धान्याम्लकमिदं स्मृतम्। स्वेदनादिषु सर्वत्र रसराजस्य योजयेत्। अत्यम्लमारनालं वा तदभावे प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

तदभावे-धान्याम्लाभावे ॥

त्र्यूषणं लवणं राजी रजनी त्रिफलाऽऽर्द्रकम्। महाबला नागबला मेघनादः पुनर्नवा ॥ ५ ॥ मेषश्रृङ्गी चित्रकश्च नवसारं समं समम्। एतत्समस्तं व्यस्तं वा पूर्वाम्लेनैव पेषयेत् ॥ ६ ॥ प्रलिम्पेत्तेन कल्केन वस्त्रमङ्गुलमात्रकम्। तन्मध्ये निक्षिपेत्सूतं बद्ध्वा तत्रिदिनं पचेत्। दोलायन्त्रेऽम्लसंयुक्ते जायते स्वेदितो रसः ॥ ७ ॥

मेघनादः 'चौलाई' इति शाकविशेषः। मेषश्रृङ्गी (मेढाश्रृङ्गी) तदभावे कर्कटश्रृङ्गी ग्राह्या। नवसारं--नवसादरम् ॥

मट्टीके पात्रमें जल भरकर तुषरहित जो धान्य प्राप्त हो वह धान्य डालकर जबतक खट्टापन आवे तबतक ऐसाही रक्खा रहनेदेवे, पश्चात् उस काँजीवाले पात्रमें भाँगरा, गोरख-

मुण्डी, कोयल, पुनर्नवा, मछेछी, सरफोंका, सहदेई, सतावर, हरड, बहेडा, आमला, सफेद फूलकी कोयल, लज्जालू और चित्रक इन औषधियोंमेंसे जितनी मिलें, उनको ही जडसहित कूटकर डाले। इसको धान्याम्लक कहते हैं। पारेके स्वेदन आदि संस्कारोंमें सर्वस्थानोंपर इनकाही उपयोग करें। जहाँ यह धान्याम्लक न हो, वहाँ तुषरहित कच्चे अथवा पके गेहुओंकी कांजीका उपयोग करे। फिर सोंठ, मिरच, पीपल, लवण, राई, हल्दी, हरड, बहेडा, आमला, अदरख, कंघी, खिरैंटी, चौलाई, पुनर्नवा मेंढासिंगी, चीता और नवसादर इन सबको समान भाग लेकर सबको अथवा एक एकको उपरोक्त धान्या म्लकसे पीसकर कल्क करे, उस कल्कसे वस्त्रको एक अंगुल मोटा लेप करे, लेप किये हुए वस्त्रमें पारा बाँधकर काँजी भरे हुए दोलायंत्रमें तीन दिनतक स्वेदन देवे, इस प्रकार करनेसे पारा स्वेदित होता है, उपरोक्त औषधियोंमें मेंढासिंगी न मिले तो काकडासिंगी लेवे ॥१॥७॥

अन्यच्च--मूलकानलसिन्धूत्थत्र्यूषणार्द्रकराजिकाः। रसस्य षोडशांशेन द्रव्यं युञ्ज्यात् पृथक्पृथक् ॥ ८ ॥ द्रव्येष्वनुक्तमानेषु मतं मानमिदं बुधैः। पटावृतेषु चैतेषु सूतं प्रक्षिप्य काञ्जिके ॥ ९ ॥ स्वेदयेद्दिनमेकञ्च दोलायन्त्रेण बुद्धिमान् । स्वेदात्तीव्रो भवेत्सूतो मर्दनाच्च सुनिर्मलः ॥ १० ॥

मूलकम् 'मुराई मूली वा' इति लोके। अनलः-चित्रकम्। त्र्यूषणं त्रिकटु। राजिका--राई ॥

इष्टकाचूणचूर्णाभ्यामादौ मर्द्यो रसस्ततः। दध्ना गुडेन सिन्धूत्थराजिकागृहधूमकैः॥११॥ अन्यच्च--कुमारिकाचित्रकरक्तसर्षपैः कृतैः कषायैर्बृहतीविमिश्रितैः। फलत्रिकेणापि विमर्दितो रसो दिनत्रयं सर्वमलैर्विमुच्यते ॥ १२ ॥

मूली, चीतेकी छाल, सेंधानोंन, सोंठ, मिर्च, पीपल, अदरख और राई इनमेंसे प्रत्येक पदार्थ पारेसे सोलहवाँ भाग लेकर कल्क करे, "जहाँ पदार्थोंका प्रमाण न कहा हो, वहाँ सोलहवाँ भाग प्रमाण लेवे" ऐसा विद्वानोंने कहा है। पश्चात् उस कल्कको वस्त्रपर लेपकर उसमें पारा बाँधे, फिर काँजीसे भरे हुए दोलायन्त्रमें एक दिनतक स्वेद देवे। इस प्रकार स्वेद देनेसे पारा तीव्र होता है और नीचेके अनुसार पीसनेसे बहुत निर्मल होता है। स्वेद देनेके पीछे ईंटोंके चूर्णसे और चूनेसे पारेको पीसकर पश्चात् दही गुड़, सेंधानोंन, राई और घरके धुएँ खरल करके अथवा घीकुँवार, चीता, लालसरसों, कटेरी, हरड, बहेडा और आमला इनका क्वाथ करके तीन दिन इस क्वाथमें पारेको खरल करे तो पारा स्वच्छ हो जाता है ॥ ८-१२ ॥

मूर्च्छनविधिः।

त्र्यूषणं त्रिफलावन्ध्याकन्दैः क्षुद्राद्वयान्वितैः। चित्रकोर्णानिशाक्षारकन्याऽर्ककनकद्रवैः ॥ १३ ॥ सूतं कृतेन यूषेण वारान् सप्त विमर्दयेत्। इत्थं सम्मूर्च्छितः सूतस्त्यजेत्सप्तापि कंचुकान् ॥ १४ ॥

वन्ध्याकंदः (वांझ कांकुड)। क्षुद्राद्वयम् (छोटी कढाई बडी कढाई)। उर्णा (मेषकी ऊर्णा)। निशाहरिद्रा । क्षारः-यवक्षारः। कन्या-कुमारिका। अर्क--अर्कपत्ररसः। कनकः धत्तूरपत्ररसः ॥

हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल वांझककोडेका कंद, कटेरी, बडी कटेरी, चीता, ऊन, हलदी, जवाखार, घीकुँवारका रस, आकके पत्तोंकारस,और धतूरेके पत्तोंका रस इनका क्वाथ करके क्वाथसे पारेको सात, बार मर्दन करे, इस प्रकार करनेसे पारा

मूर्छित हो जाता है, इस प्रकार मूर्छित किया हुआ पारा सातों कांचलियोंसे रहित हो जाता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

ऊर्ध्वपातनविधिः ।

मयूरग्रीवताप्याभ्या नष्टपिष्टीकृतस्य च । यन्त्रे विद्याधरे कुर्याद्रसेन्द्रस्योर्ध्वपातनम् ॥ १५ ॥

ताप्यम्-सुवर्णमाक्षिकम् । नष्टपिष्टीकृतस्य कुमारिकाद्रवयोगेन तावत् मर्दनं कर्त्तव्यं यावत् पारदः पृथक् नदृश्यते इत्यर्थः । विद्याधरयन्त्रे डमरूयन्त्रे ॥

घीकुँवारके रसमें नीलाथोथा तथा सोनामाखीके साथ इस पारेको इस भांति खरल करे कि,-जिससे पारा अलग न दीखे, पश्चात् उसको डमरूयन्त्रमें डालकर उडा लेवे, इसको 'ऊर्ध्वपातन' कहते हैं ॥ १५ ॥

अधःपातनविधिः ।

त्रिफलाशिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः । नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्ध्वभाजनम् ॥ १६ ॥ ततो दीप्तैरधः पातमुपलैस्तस्य कारयेत् । यन्त्रे भूधरसंज्ञे तु ततः सूतो विशुद्धयति ॥ १७ ॥ स्वेदनादिक्रियाभिस्तु शोधितोऽसौ यदा भवेत् । तदैव धीमता नित्यं प्रयोज्यः सर्वकर्मसु ॥ १८ ॥

हरड, वहेडा, आमला, सहिंजना, चीता लवण और राई इनके साथ घीकुवारके रससे पारेको इस प्रकार खरल करे कि, जिससे पारा अलग न दीखे, पश्चात् उस पारेको ऊपरकी हांडीमें चुपडकर भूधरयन्त्रमें रख ऊपर उपलोंको सुलगाकर नीचेकी हांडीमें पातन करे । स्वेदन, मूर्च्छन, ऊर्ध्वपातन और अधःपातनरूप क्रियाओंसे जब पारेकी शुद्धि हो जाय तब पारा सम्पूर्ण काम करता है और सम्पूर्ण प्रयोगोंमें उपयोग करने योग्य होता है ॥ १६-१८ ॥

मुख्यदोषहरणार्थं शोधनविधिः ।

गृहकन्या हरति मलं त्रिफलाऽग्निं चित्रकोविषं हन्ति । तस्मादेभिर्मिश्रैर्वारान् संमूर्च्छयेत्सप्त ॥ १९ ॥

घीकुँवार पारेके मैलको नष्ट करता है, हरड बहेडा, तथा आमले पारेकी अग्निको नष्ट करते हैं और चीता पारेके विषको दूर करता है, इस कारण इन सबको एकत्रकर इनमें सतावर पारेको खरलमें मर्दन करे एक बारका रस जब सूख जाय तब दूसरीवार डाले इसप्रकार सातवार करे ॥ १९ ॥

सर्वदोषहरसंक्षिप्तशोधनविधिः ।

कुमारिकाचित्रकरक्तसर्षपैः कृतै कषायैर्बृहतीविमिश्रितैः । फलत्रिकेणापि विमर्दितो रसो दिनत्रयं सर्वमलैर्विमुच्यते ॥ २० ॥ कुमार्या च निशाचूर्णैर्दिनं सूतं विमर्दयेत् । एवं कदर्थितः सूतः षण्ढो भवति निश्चितम् ॥ २१ ॥ बह्वौषधिकषायेण स्वेदितः स बली भवेत् । सर्पाक्षीचिञ्चिकाबन्ध्याभृङ्गाब्दैः स्वेदितो बली । ततः स पावकद्रावैः स्विन्नः स्यादतिदीप्तिमान् ॥ २२ ॥

सर्पाक्षी (नागफणी)। चिञ्चिका (इमली) वन्ध्या (वांझककोडा) भृङ्ग:-भृङ्गराजः । अब्दः-मुस्ता । पावकः-चित्रकम् ॥

घीकुँवार चीता, लाल सरसों, कटेरी, हरड, बहेडा और आंवलोंका क्वाथ करके इससे तीन दिनतक खरलमें पारेको मर्दन करे इस प्रकार करनेसे पारा सम्पूर्ण मलोंसे रहित हो जाता है पश्चात् घीकुँवारके रससे और हलदीसे एक दिनतक पारेको मर्दन करे। इस प्रकार करनेसे पारा निःसन्देह नपुंसक हो जाता है । फिर नागफनी, इमली, वांझककोडा भांगरा और नागरमोथा इनके क्वाथमें दोलायन्त्रसे पारेको स्वेदन करे तो पारा बलवान्

हो जाता है। पश्चात् चीतेके क्वाथमें इसी प्रकार स्वेदन करे तो पारा अत्यन्त दीप्तिमान् हो जाता है ॥ २०-२२ ॥

पारदमारणविधिः।

धूमसारं रसं तोरी गन्धकं नवसादरम्। यामैकं मर्दयेदम्लैर्भागं कृत्वा समं समम् ॥ २३ ॥ काच्चकूप्यां विनिक्षिप्य ताञ्च मृद्वस्त्रमुद्रया। विलिप्य परितो वक्त्रे मुद्रां दत्त्वा विशोषयेत् ॥ २४ ॥ अधः सच्छिद्रपिठरीमध्ये कूपीं निवेशयेत्। पिठरीं वालुकापूरैर्भृत्वा चाकूपिकागलम् ॥ २५ ॥ निवेश्य चुल्ल्यां तदधो वह्निं कुर्याच्छनैः शनैः। तस्मादप्यधिकं किञ्चित्पावकं ज्वालयेत्क्रमात् ॥ २६ ॥ एवं द्वादशभिर्यामैर्म्रियते रस उत्तमः। स्फोटयेत्स्वाङ्गशीतं तमूर्ध्वगं गन्धकं त्यजेत् ॥ २७ ॥ अधस्थश्च मृतं सूतं गृह्णीयात्तं तु मात्रया। यथोचितानुपानेन सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २८ ॥

घरका धुआं, पारा, फिटकरी, गन्धक, और नौसादर इन पांचोंको समान भाग लेकर एक प्रहरतक नींबूके रससे खरल करे, फिर कांचकी शीशीमें भरकर शीशीके चारों ओर कपरौटी करे फिर मुखपर डाट लगाकर धूपमें सुखावे, पश्चात् जिसके नीचे छेद छोटासा हो ऐसी हांडीमें शीशी रखके हांडीमें शीशीके गलेतक रेत भर देवे, फिर चूल्हेपर चढाकर उसके नीचे मन्द मन्द अग्नि देवे और फिर अनुक्रमसे उस अग्निको बढाता जावे, इस प्रकार करनेपर बारह पहरमें पारा मर जाता है, वह उत्तम होता है। पश्चात् जब शीशी शीतल हो जाय तब उसको फोड डाले और ऊपर लगा हुआ गन्धक छोडकर नीचेका मरा हुआ पारा ले लेवे इस पारेका योगमात्रासे और योग्य अनुपानसे सर्व कामोंमे उपयोग करे ॥ २३-२८ ॥

पारदमारणस्य द्वितीयो विधिः।

अपामार्गस्य बीजानां मूषायुग्मं प्रकल्पयेत्। तत्सम्पुटे क्षिपेत्सूतं मलयूदुग्धमिश्रितम् ॥ २९ ॥

मलयूः—काकोदुम्बरिका।

द्रोणपुष्पीप्रसूनानि विडङ्गमरिमेदकः। एतच्चूर्णमधश्चोर्ध्वं दत्त्वा मुद्रा प्रदीयते ॥ ३० ॥ तद्गोलं स्थापयेत्सम्यङ् मृन्मूषासम्पुटे पचेत्। एवमेकपुटेनैव सूतकं भस्म जायते। तत्प्रयोज्यं यथास्थाने यथामात्रं यथाविधि ॥ ३१ ॥

चिरचिटेके बीजोंको पीसकर दो मूषा बनालेवे पश्चात् उसमें कठूमरके रससे घुटा हुआ पारा रक्खे, फिर गूमाके फूल, बायविडंग और काला खैर इनका चूर्ण लेकर पारेके ऊपर तथा नीचे रखदेवे, फिर सम्पुटकी संधि बन्द करदेवे, तदनन्तर इस मूषाको मट्टीकी मूषामें रख कपरमट्टीकर अग्निकी पुट देवे, इस प्रकार एक पुट देनेसे ही पारेकी भस्म हो जायगी, इस भस्मको योग्य स्थानमें, योग्य मात्रासे और योग्य रीतिसे कार्यमें लावे ॥ २९-३१ ॥

पारदमारणस्य तृतीयो विधिः।

काकोदुम्बरिकादुग्धै रसं किञ्चिद्विमर्दयेत्। तद्दुग्धधृष्टहिङ्गोश्च मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ ३२ ॥ क्षिप्त्वा तत्संपुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रदापयेत्। धृत्वा तद्गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषासम्पुटेऽधिके। पचेद्गजपुटेनैव सूतकं याति भस्मताम् ॥ ३३ ॥

प्रथम कठूमरके दूधसे पारेको किंचित् मर्दन करे फिर इसी दूधसे हींगको पीसकर दो मूषा बनावे, फिर पारेको सम्पुटमें रख सन्धि बन्द करके उस सम्पुटके गोलेको मोटी मट्टीकी मूषामें रक्खे और फिर कपरमट्टी करके गजपुटमें फूंक देवे, इस प्रकार करनेसे पारेकी भस्म होजाती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

पारदमारणस्य चतुर्थो विधिः ।

नागवल्लीरसैर्घृष्टः कर्कोटीकन्दगर्भितः । मृन्मूषासम्पुटे पक्वः सूतो यात्येव भस्मताम् ॥ ३४ ॥

पारेको पानोंके रसमें मर्दन करके बांझककोडेके कन्दमें रख बन्दकर फिर मिट्टीकी मूषामें रख कपरमट्टी करके गजपुटमें फूंक देवे, इस प्रकार करनेसे पारेकी भस्म हो जाती है ॥ ३४ ॥

रसकर्पूरनिर्माणविधिः ।

(तत्र पारदस्य संक्षिप्तशोधनं कर्त्तव्यम् ।)

शुद्धसूतसमं कुर्यात्प्रत्येकं गैरिकं सुधीः । इष्टकांखटिकां तद्वत्स्फटिकां सिन्धुजन्म च ॥ ३५ ॥ वल्मीकं क्षारलवणं भाण्डरञ्जकमृत्तिकाम् । सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य वाससा चापि शोधयेत् ॥ ३६ ॥

खटिका-खडी । स्फटिका-फटकरी । सिन्धुजन्मसैंधवम् । वल्मीकम्-वमई इति लोके । क्षारलवणम्-खारीनोन । भाण्डरञ्जकमृत्तिका-काविसा ॥

एभिश्चूर्णैर्युतं सूतं यावद्यामं विमर्दयेत् । तच्चूर्णसहितं सूतं स्थालीमध्ये परिक्षिपेत् ॥ ३७ ॥ तस्याः स्थाल्या मुखे स्थालीमपरां धारयेत्समाम् । सवस्त्रकुट्टितमृदा मुद्रयेदनयोर्मुखम् ॥ ३८ ॥ संशोष्य मुद्रयेद्भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत् । सम्यग्विशोष्य मुद्रां तां स्थालीं चुल्यां विधारयेत् ॥ ३९ ॥ अग्निं निरन्तरं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् । अंगारोपरि तद्यन्त्रं रक्षेद्यत्नादहर्निशम् ॥ ४० ॥ शनैरुद्घाटयेद्यन्त्रमूर्ध्वस्थालीगतं रसम् । कर्पूरवत्सुविमलं गृह्णीयाद्गुणवत्तरम् ॥ ४१ ॥ तदेवकुसुमचन्दनकस्तूरीकुंकुमैर्युक्तम् । खादन् हरति फिरंगव्याधिं सोपद्रवं सपदि ॥ ४२ ॥ विन्दन्ति वीर्यं बलं विपुलम् । रमयति रमणीशतकं रसकर्पूरस्य सेवकः सततम् ॥ ४३ ॥

प्रथम पारेको ऊपर कहे अनुसार संक्षेपसे शुद्ध करे, पश्चात् गेरू, चूना, ईंट, खडिया, फड़करी, सेंधानोंन, बमईकी मट्टी, खारीनोंन और पात्र रंगनेकी मट्टी इन सबमेंसे प्रत्येकको पारेकी बराबर लेकर सबको पीसे और वस्त्रसें छानकर इस चूर्ण सहित पारेको एक पहरतक मर्दन कर हाँडीमें रक्खे, पश्चात् उस हांडीके ऊपर उलटी दूसरी हांडी रखकर दोनों हांडियोंके मुखकी संधिको वस्त्रसहित मट्टीसे बन्द करे और सुखाकर फिर उसके ऊपर कपरमट्टी करके फिर सुखावे और फिर कपरोटी करके भलीभांति सुखावे, पश्चात् हांडीको चूल्हेपर चढाके चार दिनतक अखण्ड अग्नि देवे। अंगारोंके ऊपर रक्खेहुए यंत्रकी यत्नपूर्वक रक्षा करे, पश्चात् धीरेसे उस यंत्रको उघाडकर ऊपरकी हांडीमें आया हुआ अत्यन्त गुणवान् और कपूरके सदृश निर्मल पारेको ले लेवे यह पारा रसकर्पूर कहाता है । लौंग, चन्दन, कस्तूरी और केसरके साथ यह रसकपूर खाया जाय तो उपद्रवसहित फिरंग नामक रोग तत्काल शांत हो जाता है । यह अग्निप्रदीपक, शरीरमें पुष्टिदाता, वीर्य और बलको अत्यन्त बढानेवाला है और रसकपूर सेवन करनेवाला पुरुष सौ स्त्रियोंको भोग सकता है ॥ ३५-४३ ॥

सिन्दूररसविधिः ।

शुद्धसूतस्य गृह्णीयाद्भिषग्भागचतुष्टयम् । शुद्धगन्धस्य भागैकं तावत्कृत्रिमगन्धकम् ॥४४॥ अथवा पारदस्यार्द्धं शुद्धगन्धकमेव हि । तयोः कज्जलिकां कुर्याद्दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ ४५ ॥ मृत्तिकां वाससा सार्द्धं कुट्टयेदतियत्नतः । तया वारत्रयं सम्यक्काचकूपीं प्रलेपयेत् ॥४६॥ मृत्तिकां

शोषयित्वा तु कूप्यां कज्जलिकां क्षिपेत् । तां कूपीं वालुकायन्त्रे स्थापयित्वा रसं पचेत् ॥ ४७ ॥ अग्निं निरन्तरं दद्याद् यावद्दिनचतुष्टयम् । गृह्णीयादूर्ध्वसंलग्नं सिन्दूरसदृशं रसम् ॥४८॥ इति सिन्दूररसः॥

वैद्य-शुद्ध किया हुआ पारा चार भाग, शुद्ध किया हुआ गंधक एक भाग और बना हुआ गन्धक एक भाग लेवे । अथवा शुद्ध किया पारा दो भाग लेवे और शुद्ध किया गन्धक आधा भाग लेवे। पश्चात् पारेकी गन्धककी कज्जली करके एक दिनतक घोटे, वस्त्रके साथ कूटीहुई मट्टीसे अत्यन्त यत्नपूर्वक काँचकी शीशीपर तीन चार प्रलेप करके उसमें वह कजली रक्खे, इस शीशीको वायुकायन्त्रमें रख चार रात्रि दिनतक अखंडित अग्नि देवे पश्चात् शीशीके ऊपरके भागमें लगा हुआ सिंदूरके सदृश पारा ले लेवे, इस पारेको रससिंदूर कहते हैं ॥ ४४-४८ ॥

मारितमूर्च्छितपारदगुणाः ।

पारदः कृमिकुष्ठघ्नो जयदो दृष्टिकृत्सरः । मृत्युहृच्च महावीर्यो योगवाही ज्वरापहः ॥ ४९ ॥ स्मृत्योजोरूपदो वृष्यो वृद्धिकृद्धातुवर्द्धनः । षण्ढत्वनाशनः शूरः खेचरः सिद्धिदः परः ॥ ५० ॥ पारदः सकलरोगहा स्मृतः षड्रसो निखिलयोगवाहकः । पञ्चभूतमय एष कीर्तितस्तेन तद्गुणगणैर्विराजते ॥ ५१ ॥ उक्तश्च रसामृते-यस्य रोगस्य यो योगस्तेनैव सहः योजितः । रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जरवाजिनाम् ॥ ५२ ॥

पारा-कृमि तथा कोढनाशक, जयकारक, नेत्रोंको उत्तम करनेवाला, दस्तावर, मृत्युनाशक, अत्यन्त वीर्यवान्, योगवाही, जिस अनुपानसे देवे उसीके समान गुण करनेवाला, ज्वरनाशक, स्मृति ओज तथा रूपको देनेवाला कामी पुरुषोंको हितकारी, वृद्धिकारक, धातुवर्द्धक, नपुंसकतानाशक, आकाशमें विचरनेकी शक्तिको देनेवाला, वीरता और अनेक सिद्धिदायक है। रसामृत नामक ग्रन्थमें कहा है कि-"पारा सम्पूर्ण रोगनाशक, छः रसवाला और सब संसर्गी पदार्थोंके गुणोंको ग्रहण करनेवाला है। पारा पंचभूतमय कहाता है, इससे पाँचों भूतोंके गुणोंके समूह इसमें रहते हैं।" जिस रोगका जो उपाय है, उसके साथ पारेका उपयोग करे तो पारा मनुष्योंके हाथियोंके और घोडोंके उस रोगको नष्ट करता है ॥ ४९-५२ ॥

अथोपरसानां शोधनविधिः ।

तत्र हिंगुलशोधनविधिः ।

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम् । सप्तवारान्प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ १ ॥

भेडके दूधमें तथा अम्लवर्ग (खटाई नींबू आदिके रस) में हिंगुलकी यत्नपूर्वक सात भावना देवे तो सिंगरफ शुद्ध हो जाता है ॥ १

शोधितहिंगुलगुणाः ।

तिक्तं कषायं कटु हिंगुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्तहारि । हृल्लासकण्डूज्वरकामलाश्च प्लीहामवातौ च गरं निहन्ति ॥२॥

हिंगुल-कडवा, कसैला, चरपरा, नेत्ररोग नाशक और कफ, पित्त, हृल्लास, खुजली, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात तथा विष विनाशक है ॥ २ ॥

हिंगुलात्पारदनिष्कर्षणविधिः ।

निम्बूरसैर्निम्बपत्ररसैर्वा याममात्रकम् । घृष्ट्वा दरदमूर्ध्वन्तु पातयेत्सूतयुक्तिवत् ॥ ॥ ३ ॥ तत्रोर्ध्वपिठरीलग्नं गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् । शुद्धमेव हितं सूतं सर्वकर्मसुयोजयेत् ॥ ४ ॥

नींबूके रससे अथवा नीमके पत्तोंके रससे एक प्रहरतक हिंगुलको मर्दन कर पारेके विषय में कही हुई युक्तिके अनुसार पारेको ऊपर चढावे, हिंगुलका पारा शुद्ध होता है, इस कारण इसका सम्पूर्ण कार्योंमें उपयोग करे ॥ ३ ॥ ४ ॥

अशुद्धगन्धकदोषाः ।

अशुद्धो गन्धकः कुर्यात्कुष्ठं पित्तरुजां भ्रमम् । हन्ति वीर्यं बलं रूपं तस्माच्छुद्धः प्रयुज्यते ॥ ५ ॥

विना शुद्ध किया हुआ गन्धक-कोढ, पित्त सम्बन्धी रोग और भ्रमको उत्पन्न करता है तथा वीर्य, बल और रूपको नष्ट करता है, इस कारण शुद्ध किया हुआ गंधक ही उपयोगी है ॥ ५ ॥

गन्धकशोधनविधिः ।

लौहपात्रे विनिक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत् । तप्ते घृते तत्समानं क्षिपेद्गन्धकजं रजः ॥ ६ ॥ विद्रुतं गन्धकं दृष्ट्वा तनुवस्त्रे विनिक्षिपेत् । यथा वस्त्राद्विनिःसृत्य दुग्धमध्येऽखिलं पतेत् । एवं स गन्धकः शुद्धः सर्वकर्मोचितो भवेत् ॥ ७ ॥

लोहेके पात्रमें घी डालकर अग्निमें गरम करे, गरम हुए घीमें उसके बराबरही गन्धक का चूर्ण डाले, जब गन्धक पिघल जाय तब उसको इतने बारीक कपडेमें छोडे कि-जिससे वस्त्रसे स्रवकर दूधमें सब गन्धक गिर जावे इस प्रकार करनेसे गन्धक शुद्ध हो जाता है और वह सम्पूर्ण कामोंमें उपयोगी होजाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

शुद्धगन्धकगुणाः ।

गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्तुवरः सरः । पित्तलः कटुकः पाके कण्डूवीसर्पजन्तुजित् । हन्ति कुष्ठक्षयप्लीहकफवातान्रसायनम् ॥ ८ ॥

गन्धक-चरपरा, कडवा, उष्णवीर्य, दस्तावर, पित्तकारक, पाकमें चरपरा, वृद्धता तथा मृत्युनाशक और खुजली, विसर्प, कृमि, कोढ, क्षय, प्लीहा, कफ तथा वातनाशक है ॥ ८ ॥

अशुद्धाभ्रकदोषाः ।

पीडां विधत्ते विविधः नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदश्च कुर्यात् । हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यसह्यामशुद्धमभ्रं गुरु वह्निहृत्स्यात् ९

अशोधित अभ्रक-मनुष्योंको अनेक प्रकार की पीडादायक, हृदयमें तथा पसलीमें असह्य-पीडा उत्पन्न करनेवाला, भारी. जठराग्निको नष्ट करनेवाला और कोढ, क्षय तथा पाण्डुरोगकारक है ॥ ९ ॥

अभ्रशोधनविधिः ।

कृष्णाभ्रकं धमेद्वह्नौ ततः क्षीरे विनिक्षिपेत् । भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा तण्डुलीयाम्लयोर्द्रवैः । भावयेदष्टयामं तदेवमभ्रं विशुद्ध्यति ॥ १० ॥

काले अभ्रकको कोयलेमें डालकर अग्निसे धमावे, जब अभ्रक लाल होजाय तब दूधमें डाले, पश्चात् उसके परत अलग अलग करके चौलाई और नींबूके रससे आठ प्रहरतक भावना देवे, इस प्रकार करनेसे अभ्रक शुद्ध होजाता है ॥ १० ॥

अभ्रकमारणविधिः ।

कृत्वा धान्यभ्राकं तच्च शोषयित्वाऽथ मर्दयेत् । अर्कक्षीरैर्दिनं खल्वे चक्राकारं च कारयेत् ॥ ११ ॥ वेष्टयेदर्कपत्रैश्च सम्यग्गजपुटे पचेत् । पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं सप्तवारान् पुनः पुनः॥ १२॥ ततो वटजटाक्वाथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् । म्रियते नात्र सन्देहः प्रयोज्यं सर्वकर्मसु ॥ १३॥ तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लोहपात्रे विपाचयेत् । घृते जीर्णे तदभ्रन्तु सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ १४ ॥

नीचे लिखे अनुसार, धान्याभ्रक करके सुखावे, पश्चात् खरलमें एक दिनतक आकके दूधमें मर्दन करे। फिर उसकी टिकिया बना कर आकके पत्तोंमें लपेटकर भलीभांति गजपुटमें रखके फूँक देवे, इस प्रकार वारंवार करके सात सात बार होनेपर वडकी जटाओंके क्वाथसे खरलमें मर्दन करके तीनपर गजपुटमें फूँके, इस प्रकार करनेसे अभ्रक अवश्य मर जाता है, फिर लोहेके पात्रमें मरेहुए अभ्रकको बराबर घी डालकर उसमें उस अभ्रकको पकावे, जब सब घी जलजावे तब उसको सम्पूर्ण प्रयोगोंके कार्यमें लावे ॥११-१४॥

धान्याअभ्रकविधिः ।

पादांशशालिसंयुक्तमभ्रं बद्ध्वाऽथ कम्बले । त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे तत्क्लिन्नं मर्दयेत्करैः ॥ १५ ॥ कम्बलाद्गालितं सूक्ष्मं वालुकारहितञ्च यत् । तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तमभ्रमारणसिद्धये ॥ १६ ॥

अभ्रकसे चौथा भाग चावल लेकर उसके साथ अभ्रकको कम्बलमें बांधकर तीन रात्रिपर्यन्त पानीमें पडा रहने देवे, पश्चात् भीगे हुए अभ्रकको हाथसे मलकर खोल लेवे, कम्बलमेंसे जो निकले हुए रेतीके सदृश सूक्ष्म अभ्रकके कण हों, उनको धान्याभ्रक जानना। इस धान्याभ्रकको ऊपर कही हुई रीतिसे मारे॥ १५ ॥ १६ ॥

मारिताभ्रकगुणाः ।

अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुष्करं धातुविवर्द्धनञ्च । हन्यात्त्रिदोषं व्रणमेहकुष्ठं प्लीहोदरं ग्रन्थिविषक्रिमींश्च ॥१७॥ रोगान् हन्ति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव । दीर्घायुष्कांजनयति सुतान्सिंहतुल्यप्रभावान्मृत्योर्भीतिं हरति सुतरां सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥ १८ ॥

अभ्रक-कसैला, मधुर, बहुत शीतल, आयुकारक, धातुवर्द्धक और त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कोढ, प्लीहा, उदरकी गांठ, विष तथा कृमिनाशक है। जो मारा हुआ अभ्रक निरन्तर सेवन किया जाय तो रोगोंको हरता है, शरीरको दृढ करता है, वीर्यकी वृद्धि करता है, नित्य तारुण्यसे पूर्ण सौ स्त्रियोंके साथ रमण करता है, दीर्घायुवाले तथा सिंहके सदृश पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न कराता है और मृत्युको नष्ट करता है॥

अशुद्धहरितालदोषाः ।

अशुद्धं तालमायुर्हृत्कफमारुतमेहकृत् । तापस्फोटाङ्गसंकोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ १९

अशोधित हरताल-आयुनाशक, कफ, वात तथा प्रमेहको उत्पन्न करता है, ताप, स्फोट, और अङ्गका संकोच करता है इस कारण हरतालको शुद्ध करना चाहिये ॥ १९ ॥

हरितालशोधनविधिः ।

तालकंकणशः कृत्वा तच्चूर्णं काञ्जिके पचेत् । दोलायन्त्रेण यामैकं ततः कूष्माण्डजद्रवैः ॥ २० ॥ तिलतैले पचेद्यामं यामञ्च त्रिफलाजले । एवं यन्त्रे चतुर्यामं पक्वं शुद्ध्यति तालकम्॥२१॥

तबकिया हरतालका चूर्ण करके एक प्रहरतक दोलायन्त्रसे कांजीमें पकावे, पश्चात् एक प्रहरतक पेठेके रसमें, एक प्रहरतक तिलके तेलमें और एक प्रहरतक हरड, बहेडा और आमलोंके पानीमें पकावे, इसप्रकार दोलायन्त्र में चार प्रहरतक पकावे, तब हरताल शुद्ध होता है॥ २० ॥ २१ ॥

अथ हरितालमारणविधिः ।

सदलं तालकं शुद्धं पौनर्नवरसेन तु । खल्ले विमर्दयेदेकं दिनं पश्चाद्विशोषयेत् ॥ २२ ॥ ततः पुनर्नवाक्षारैः स्थाल्यामर्द्धं प्रपूरयेत् । तत्र तद्गोलकं धृत्वा

पुनस्तेनैव पूरयेत् ॥ २३ ॥ आकण्ठपिठरं तस्य पिधानं धारयेन्मुखे । स्थालीं चुल्ल्यां समारोप्य क्रमाद्वह्निं विवर्धयेत् ॥ २४ ॥ दिनान्यन्तरशून्यानि पञ्च वह्निं प्रदापयेत् । एवं तन्म्रियते तालं मात्रा तस्यैकरत्तिका । अनुपानान्यनेकानि यथायोग्यं प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥

शुद्ध की हुई पत्रोंवाली तबकिया हरतालको एक दिनतक खरलमें पुनर्नवाके रसमें पीसकर सुखालेवे फिर एक हांडी लेकर उसके आधे भागमें पुनर्नवाका खार भरकर उसके ऊपर हरतालका गोला रख पीछे पुनर्नवाके खारसे हाडीको भर देवे और मुखपर प्यालासे ढककर उस हांडीको चूल्हेपर चढावे, अनुक्रमसे अग्निको बढाता जावे, अखण्ड पांच दिन रात्रितक इस प्रकार अग्नि देनेसे हरताल मरजाता है। हरतालकी मात्रा एक रत्तीकी करे और उसमें योग्यता विचारकर अनेक अनुपानोंसे प्रयोग करे ॥ २२-२५ ॥

शोधितमारितहरितालगुणाः ।

हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् । कण्डूकुष्ठास्यरोगास्रकफपित्तकचव्रणान् ॥ २६ ॥ अन्यच्च-तालकं हरते रोगान् कुष्ठमृत्युज्वरापहम् । शोधितं कुरुते कान्तिं वीर्यवृद्धिं तथाऽयुषम् ॥ २७ ॥

हरताल-चरपरा, स्निग्ध, कसैला, गरम विष, खुजली, कोढ, मुखरोग, रक्तविकार, कफ, पित्त, केश और व्रणनाशक है। और भी कहा है कि, "शोधा हुआ हरताल रोगनाशक, कोढ, मृत्यु तथा ज्वरको हरनेवाला, कान्तिको उत्तम करनेवाला, वीर्यवर्द्धक और आयुको बढानेवाला है" ॥ २६ ॥ २७ ॥

अशुद्धमनःशिलादोषाः ।

तालकस्यैवभेदोऽस्तिमनोगुप्तेवचान्यका। तालकं त्वतिपीतं स्याद्भवेद्रक्ता मनःशिला ॥ २८ ॥ मनःशिला मन्दबलं करोति जन्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण । मलस्य बन्धं किल मूत्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदञ्च कुर्यात् ॥ २९ ॥

मैनशिल भी हरतालकाही भेद है, परन्तु अन्तर इतनाही है कि, हरताल बहुत पीला होता है और मैनशिल लाल होती है। अशोधित मैनशिल-प्राणियोंके बलकी मन्दता, मलबद्धता, मूत्ररोग और शर्करा युक्त मूत्रकृच्छ्रको करती है ॥ २८ ॥ २९ ॥

मनःशिलाशोधनविधिः ।

पचेत्त्र्यहमजामूत्रे दोलायन्त्रे मनःशिलाम् । भावयेत्सप्तधा पित्तैरजायाःसा विशुद्ध्यति ॥ ३० ॥

मैनशिलको तीन दिनतक दोलायन्त्रमें बकरीके मूत्रके साथ पकावे और पश्चात् उसको बकरीके पित्तसे सात भावना देवे, इस प्रकार करनेसे मैनशिल शुद्ध होजाती है ॥ ३० ॥

शोधितमनःशिलागुणाः ।

गुर्वी मनःशिला वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः । तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकासंभूतकफास्रनुत् ॥ ३१ ॥

मैनशिल--भारी, वर्णको उत्तम करनेवाली, दस्तावर, गरम, लेखन, चरपरी, कडवी, स्निग्ध, विष, श्वास, खांसी, भूत, कफ और रक्तविकार विनाशक है ॥ ३१ ॥

खर्परशोधनविधिः ।

नरमूत्रे च गोमूत्रे सप्ताहं रसकं पचेत् । दोलायन्त्रेण शुद्धः स्यात्ततः कार्येषु योजयेत् ॥ ३२ ॥

खपरियाको दोलायन्त्रसे सात दिनतक मनुष्यके मूत्रमें और सात दिनतक गायके मूत्रमें स्वेद देवे, इस प्रकार करनेसे खपरिया शुद्ध होती है, शुद्ध करनेके पश्चात् उसको काममें लावें ॥ ३२ ॥

शुद्धखर्परगुणाः ।

खर्परं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु । लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्त-हृत् । विषाश्मकुष्ठकण्डूनां नाशनं परमं मतम् ॥ ३३ ॥

खपरिया--चरपरी, खारी, वमनकारक, हलकी, लेखन, मलभेदक, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, कफ तथा पित्तनाशक और विष, पथरी, कोढ, तथा खुजलीको अत्यन्त नष्ट करनेवाली है ॥ ३३ ॥

सर्वोपरसानां साधारणशोधनविधिः ।

सूर्यावर्तो वज्रकन्दःकदली देवदालिका । शिग्रुः कोशातकी वन्ध्या काकमाची च बालकम् ॥३४॥ एषामेकरसेनैव त्रिक्षारै र्लवणैः सह । भावयेदम्लवर्गैश्च दिनमेकं प्रयत्नतः ॥ ३५ ॥ ततः पचेच्च तद्-द्रवैर्दोलायन्त्रे दिनं सुधीः । एवं शुद्ध्यन्ति ते सर्वे प्रोक्ता उपरसा हि ये ॥ ३६ ॥

हुलहुल कडवा, जमीकन्द, केला देवदाली, सहँजना, तोरई, बाँझककोडा, मकोय और सुगन्ध वाला इनमेंसे एकका रस, जवाखार, सुहागा, सज्जी, पांचोंनोंन अम्लवर्ग उनमें एक दिनतक, प्रयत्नसे उपरसोंकी भावना देवे और पीछे दोलायन्त्रमें एक दिनतक उपरोक्त पदार्थोंके रसमें रसमें पकावे इस प्रकार करनेसे सब उपरस शुद्ध होजाते हैं ॥ ३४ ॥ ३६ ॥

विशेषशुद्धिः ।

कङ्कुष्ठं गैरिकं शंखःकासीसं टङ्कणं तथा । नीलाञ्जनं शुक्तिभेदाः क्षुल्लकाः सवराटकाः ॥ ३७ ॥ जम्बीरवारिणा स्विन्नाः क्षालिताः कोष्णवारिणा । शुद्धिमायान्त्यमी योज्या भिषग्भिर्योग-सिद्धये ॥ ३८ ॥ एवं शोधितानाम् उप-रसनां पृथग्गुणा गुणग्रन्थे द्रष्टव्याः ।

मुरदाशंग, गेरू, शंख, कशीस, सुहागा, कालासुरमा, सीपकी जाति, छोटे शंख और कौडीइन सबको नींबूके रसमें स्वेद देवे, फिर गरम जलसे धोडाले इस प्रकार करनेसे सब शुद्ध होजाते हैं, वैद्य शुद्ध होजाते है, वैद्य शुद्ध किये हुए ही पदार्थोंको कार्यमें लावे। शुद्ध किये हुए उपरसोंमे जो पृथक् पृथक् गुण हैं, वे अन्यत्र कहे हुए गुणप्रकरणमें देख-लेना ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

रत्नानां शोधनमारणविधिः ।

तत्राशुद्धवज्रदोषाः ।

अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा। पाण्डुत्वं पङ्गुलत्वञ्च तस्मात्संशोध्य मारयेत् ॥ १ ॥

अशोधित हीरा-कोढ, पसलियोंमें दर्द, और लंगडेपन को करता है, इससे हीरेको शुद्ध करके मारना चाहिये ॥ १ ॥

हीरकशोधनविधिः ।

कुलत्थकोद्रवक्वाथे दोलायन्त्रे विपाच-येत् । व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं त्रिदिनात्त-द्विशुद्ध्यति ॥ २ ॥

हीरेको कटेरीके कन्दमें डालकर दोलाय-न्त्रद्वारा कुलथीके और कोदोंके क्वाथमें तीन दिनतक पकावे इस प्रकार करनेसे हीरा शुद्ध होजाता है ॥ २ ॥

अथान्यः शोधनविधिः ।

गृहीत्वाऽह्नि शुभे वज्रं व्याघ्रीकन्दोदरे क्षिपेत् । महिषीविष्ठया लिप्त्वा कारीषाग्नौ विपाचयेत् ॥ ३ ॥ त्रियामायां चतुर्यामं यामिन्यन्तेऽश्वमूत्रके । सेचयेत्पाचयेदेवं सप्तरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

शुभदिनमें हीरेको कटेरीके कन्दमें डालकर भैंसके गोबरका प्रलेप कर रात्रिके चार प्रहर-तक अरने उपलोंकी अग्निमें पकावे और प्रातः

काल घोडेके मूत्रमे बुझावें, इस प्रकार सात रात्रिपर्यंत करनेसे हीरा शुद्ध होजाता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

वज्रमारणविधिः।

हिङ्गुसैन्धवसंयुक्ते क्षिपेत्क्काथे कुलत्थजे। तप्तंतप्तं पुनर्वज्रं भवेद्भस्म त्रिसप्तधा ॥ ५ ॥

हीरेको तपा तपाके हींग और सैंधानोनसे युक्त किये हुए कुलथीके क्वाथमें डाले, इस प्रकार इक्कीस वार करनेसे हीरा भस्मरूप होजाता है ॥ ५ ॥

अथान्यविधिः।

मेषशृङ्गभुजङ्गास्थिकूर्मपृष्ठाम्लवेतसम्। शशदन्तं समं पिष्ट्वा वज्रीक्षीरेण गोलकम्। कृत्वा तन्मध्यगं वज्रं म्रियते ध्मातमेव हि ॥ ६ ॥

मेंढेका सींग, सर्पकी हड्डी, कछुएकी पीठ, अमलवेंत और खरगोशके दाँत इन सबको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें पीलकर उसका गोला बनावे, उसके भीतर हीरेको रखकर अग्निकी पुट देवे, इस प्रकार करनेसे हीर तुरन्त मरजाता है ॥ ६ ॥

मारितहीरकगुणाः।

आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च। सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न संशयः ॥ ७ ॥

मारा हुआ हीरा सेवन करनेसे--पुष्टि, बल तथा वीर्यकी वृद्धि होती है, शरीरका वर्ण उत्तम होता होता है, सुखकी प्राप्ति और निःसन्देह सर्व रोगोंका नाश होता है ॥ ७ ॥

शेषरत्नानां शोधनमारणविधिः।

वज्रवत् सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा। शुद्धानां मारितानां च तेषां शृणु गुणानपि ॥८॥ मणयो वीर्यतः शीता मधुरास्तुवरा रसात्। चक्षुष्या लेखनाश्चापि सारका विषहारकाः। धारणात्ते तु मंगल्या ग्रहदृष्टिहरा अपि ॥ ९ ॥

उपरत्नानां शोधनमारणविधिश्चिन्त्यः।

सम्पूर्ण रत्नोंको हीरेके सदृशही शुद्ध करके मारण करे। अब शुद्ध और मारित रत्नोंके गुण कहता हूँ, सुन। रत्न--शीतवीर्य, मधुर, रसमें कसैला, नेत्रोंको हितकारी, लेखन, दस्तावर और विषविनाशक है। रत्नोंके पहरनेसे मंगल होता है, ग्रहकी पीडा नष्ट होती है और ग्रहकी दृष्टि दूर होती है। (उपरत्नोंके शोधन और मारणकी बिधि वैद्यको इसी प्रकार समझ लेनी चाहिये) ॥ ८ ॥ ९ ॥

विषोपविषाणां शोधनविधिः।

वात्सनाभस्वरूपम्।

सिन्धुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा। यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः ॥ १ ॥

सम्हालूके सदृश पत्तौवाला, वछडेकी नाभिके सदृश आकारवाला और जिसके समीपमें दूसरे वृक्षकी वृद्धि नहीं होती है, वह वत्सनाभ विष कहावा है ॥ १ ॥

विषशोधनविधिः।

गोमूत्रे त्रिदिनं स्थाप्यं विषं तेन विशुद्ध्यति। रक्तसर्षपतैलाक्ते तथा धार्यं च वाससि ॥ २ ॥ ये गुणा गरले प्रोक्तास्ते स्युर्हीना विशोधनात्। तस्माद्विषं प्रयोगे तु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

विषको तीन दिनतक गोमूत्रमें रक्खे और पश्चात् लाल राईके तेलसे भीजे हुए कपडेमें रक्खे, इस प्रकार करनेसे विष शुद्ध होजाता है, विषमें जो गुण हैं, वे शुद्ध करनेसे न्यून होजाते हैं, इसकारण विषको शुद्ध करनेके पश्चात् औषधियोंमें उपयोग करे ॥ २ ॥ ३ ॥

विषगुणाः।

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च। आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदावहम्॥ ४॥

व्यवायि-सकलकायगुणव्यापनपूर्वकं पाकगमन शीलम्। विकाशि-ओजःशोषणपूर्वकं सन्धिबन्ध शिथिलीकरणशीलम्। आग्नेयम्-अधिकाग्न्यंशम्। योगवाहि-संगिगुणग्राहकम्। मदावहम्-तमोगुण प्राधान्येन बुद्धिविध्वंसकम्॥

तदेव युक्तियुक्तन्तु प्राणदायि रसायनम्। योगवाहि परं वातश्लेष्मजित्सन्निपातहृत्॥ ५॥

विष-प्राणनाशक, प्रथम सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पचनेवाला ओजको सुखा, कर सन्धियोंके बन्धनोंको शिथिल करनेवाला-अग्निका अधिक अंशवाला, वात तथा कफ नाशक, संसर्गी पदार्थोंके गुणग्रहण करनेवाला और अपनेमें तमोगुणकी प्रधानता होनेसे बुद्धिको नष्ट करनेवाला है॥ यह विष जो युक्तिपूर्वक सेवन किया जाय तो जीवनदायक, रसायन, योगवाही, वात तथा कफको जीतनेवाला और सन्निपातनाशक हैं॥ ४॥ ५॥

उपविषनिरूपणम्।

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकः। गुञ्जाऽहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयः॥ ६॥

एतेषां शोधनं चिन्त्यम्। गुणास्तत्रतत्र द्रष्टयव्याः॥

आकका दूध, थूहरका दूध, कलियारी, कनेर, घुँघची और धतूरा ये सात उपविषकी जाति हैं, इनको शुद्ध करनेकी विधि विचार लेनी और इनके गुण इनके प्रकरणमें देखने चाहिये॥ ६॥

अथ द्रव्याणां गुणवतामवधिः।

गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम्। मासद्वयात्तथा चूर्णं लभते हीनवीर्यताम्॥ १॥ हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरं यदि। हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा॥ २॥

घृततैलाद्या इति योगविशेषणम्। चतुर्मासाधिका वत्सरादुपरि चत्वारो मासा अधिका येषु ते॥

पदार्थोंमें गुण हरनेकी अवधि-औषधि जैसे की वैसेही रूपवाली हो तो वह भी एक वर्ष पीछे गुण रहित हो जाती है, चूर्ण दो महीने पीछे हीन शक्तिवाला होजाता है, गोली अवलेह एक वर्षके पश्चात् हीनशक्तिवाला होजाता है। घी और तेल आदि पदार्थ सोलह मासके पीछे शक्तिहीन हो जाते हैं॥ १॥ २॥

ग्रन्थान्तराद् घृततैलानां विशेषवर्णनम्।

घृतमब्दात्तत्परं पक्वं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात्। तैलं पक्वमपक्वञ्च चिरस्थायि गुणाधिकम्॥ ३॥

तदपि षोडशमासाभ्यन्तरीणं पक्वं तैलं गुणाधिकं बोद्धव्यम॥

ओषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात् परम्॥ ४॥

ओषध्यो--धान्यादयः। लघुपाकाः--शीघ्रपाकाः निर्वीर्याः स्युः॥

पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः॥ ५॥

पका घी एक वर्षके पीछे शक्तिरहित हो जाता है। तेल पका हो अथवा कच्चा हो तो भी बहुत कालतक अविचल अधिक गुणवाला रहता है। इसका प्रयोजन ऐसा जानना कि-पका तेल भी सोलह महीनेतक गुणवाला रहता

है। तत्काल पकनेवाली धान्य आदिक औषधियाँ एक वर्षके पीछे शक्तिरहित हो जाती हैं। आसव, धातु और रस चन्द्रोदयादि तो जितने बढकर अधिक पुराने हों, उतने ही अधिक गुण वाले होते हैं ॥ ३-५ ॥

अथ स्नेहपानविधिः।

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा। मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ॥ १ ॥ स्थावरो जङ्गमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते। तिलतैलं स्थावरेषु जङ्गमेषु घृतं वरम्। द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा यमकस्त्रिवृतो महान् ॥२॥

अस्यायमर्थः-द्वाभ्यां स्नेहाभ्यां घृततैलाभ्यां यमकाख्यः स्नेहः स्यात्। त्रिभिः स्नेहैः घृततैलवसारूपै स्त्रिवृताख्यः स्यात्। चतुर्भिर्घृततैलवसामज्जभिर्महान् महास्नेहः स्यादित्यर्थः ॥

पिबेत् त्र्यहं चतुरहं पञ्चाहं षडहानि वा ॥ ३ ॥

मृदुमध्यक्रूरकोष्ठापेक्षया त्र्यहं चतुरहं पञ्चाहं षडहानि वेति ॥

यदुक्तम्--मृदुकोष्ठस्त्रिरात्रेण स्निग्धस्नेहोपसेवया। मध्यकोष्ठश्चतुर्भिश्च दिवसैः स्निह्यति ध्रुवम् ॥ ४ ॥ पञ्चभिर्वाऽथ षड्भिर्वादिनैः क्रूरो विशुद्ध्यति। सप्तरात्रात् परं स्नेहः सात्मी भवति सेवितः ॥ ५ ॥

मृदुमध्यक्रूरकोष्ठानां सर्वेषां सप्तरात्रात्परं सात्मी भवति। वातानुलोम्यवह्निदीप्तिकोष्ठशुद्धिमृदुस्निग्धाङ्गतास्वरवचननांगलाघवधातुपुष्टिद्विजदाढ्यनिर्जरताबलवर्णकारी भवति। न तु भक्तद्वये वातानुलोम्यादीन् करोति ॥

घी, तेल, चरबी और मज्जा यह चार प्रकारकी स्नेह कहाती है। जब सूर्यका कुछ उदय हो उस समय मनुष्यको स्नेह पीना चाहिये। स्थावर और जंगम इन दोनोंमेंसे स्नेह उत्पन्न होता है, स्थावर (वृक्षादिक) से उत्पन्न हुए स्नेहोंमे तिलका तेल उत्तम है और जङ्गम (पशु आदि) से उत्पन्न हुए स्नेहोंमें घी उत्तम है। घी और तेल इन दोनोंको एकत्र करनेसे यमक नामक स्नेह होता है। घी तेल और चरबी इन तीनोंके इकट्ठे होनेसे त्रिवृत-नामक स्नेह होता है। घी, तेल चबरी और मींग इन चारोंके इकट्ठे होनेसे महास्नेह होता है। कोठा कोमल है मध्यम है, अथवा क्रूर है, इसका विचार करके तीन दिनतक चार दिन, तक, पांच दिनतक स्नेह पीना चाहिये। कहा है कि-"कोमल कोष्ठी तीन दिनतक स्नेहका सेवन करे तो स्निग्ध होता है, मध्यमकोष्ठी चार दिनतक स्नेहका सेवन करे तो स्निग्ध होता है और क्रूरकोष्ठी पांच अथवा छः दिनतक स्नेहका सेवन करनेसे शुद्ध होता है" सेवन किया हुआ स्नेह (तैल घृतादिक) सात रात्रिके पश्चात् शरीरके अनुसार हो जाता है, इसीसे वायुको उत्तम चलानेवाला, अग्निदीपक, कोठेको शुद्ध कर्त्ता, अंगोंको मृदु तथा स्निग्ध करनेवाला स्वर तथा वाणीको सुन्दर करनेवाला, शरीरमें लघुताकारक, धातुका पुष्टिकर्ता, दांतोंको दृढ करनेवाला, वृद्धता नाशक बलवर्द्धक और शरीरका वर्ण सुधारनेवाला है परन्तु दोबारका उपयोग किया स्नेह वातादिका अनुलोमन नहीं करता है ॥ १-५ ॥

दोषकालवयोवह्निबलान्यालोक्य योजयेत्। हीनाश्च मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान् ॥ ६ ॥ अमात्रया तथाऽकाले मिथ्याहारविहारतः। स्नेहः करोति शोथार्शस्तन्द्रानिद्राविसंज्ञिताः॥७॥

दोष, काल, अवस्था, अग्नि और बलको देखकर बुद्धिमान् वैद्य हीन, मध्यम अथवा अधिक मात्राका उपयोग करावे। स्नेहकी

अयोग्य मात्रा और अयोग्य आहार विहारसे शरीरमें सूजन, बवासीर, आलस्य, निद्रा और बेहोशपनको उत्पन्न करता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्यैकपलोन्मिता । मध्यमाय त्रिकर्षा स्याज्जघन्याय द्विकार्षिकी ॥ ८ ॥

मध्यमा मध्यमाग्नये । जघन्याय-हीनाग्नये ॥

अथवा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोऽन्याः सर्वसम्मताः । अहोरात्रेण महती जीर्यत्यह्नि तु मध्यमा । जीर्यत्यल्पा दिनार्द्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥ ९ ॥

अयमर्थः-या अहोरात्रेण जीर्यति सा मात्रा महती एवं मध्यमा कनिष्ठा च ज्ञेया ॥

प्रदीप्त अग्निवाले मनुष्योंको स्नेहकी चार तोलेकी मात्रा देवे, मध्यम अग्निवालोंको तीन तोलेकी मात्रा देवे और मन्दाग्निवालोंको दो तोलेकी मात्रा देवे । अथवा सम्पूर्ण वैद्योंकी स्वीकार की हुई स्नेहकी दूसरी तीन मात्रायें भी हैं, वे ये हैं कि, जो मात्रा एक दिनमें पचे उसको बडी मात्रा जाननी, जो सम्पूर्ण दिनरातमें पचे उसको मध्यम मात्रा जाननी और आधे दिनमें पचे उसको अल्पमात्रा जाननी । यह अल्पमात्रा सुखदाई है ॥ ८ ॥ ५ ॥

अल्पा स्याद्दीपनी वृष्या स्वल्पदोषे प्रपूजिता । मध्यमा स्नेहनी ज्ञेया बृंहणी भ्रमहारिणी । ज्येष्ठा कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ॥ १० ॥

सुश्रुतः पुनरेव--

या मात्रा प्रथमे यामे गते जीर्यति वासरे । सा मात्रा दीपयत्यग्निमल्पदोषे च पूजिता ॥ ११ ॥ या मात्रा वासरस्यार्द्धे व्यतीते परिजीर्यति । सा वृष्या बृंहणी च स्यान्मध्यदोषे प्रपूजिता ॥ १२ ॥ या मात्रा चरमे यामे स्थितेऽह्नः परिजीर्यति । सा मात्रा स्नेहनी ज्ञेया बहुदोषेषु पूजिता ॥ १३ ॥ केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् । देयं बहुकफे वह्निव्योषक्षारसमन्वितम् ॥ १४ ॥

अल्प दोषवाले मनुष्योंको अल्पमात्र बहुत उत्तम, अग्निको दीपन करनेवाली और मैथुनशक्तिको बढानेवाली है । मध्यम मात्रा-पुष्टिकारक, और भ्रम नाशक है । उत्तम मात्रा-कोढ, उन्माद, ग्रह और अपस्मारनाशक है । इस विषयमें सुश्रुत कहता है कि, जो मात्रा प्रथम प्रहरके पश्चात् पच जाती है, वह मात्रा अग्निको दीपन करती है और अल्पदोषीको बहुत उत्तम है । जो मात्रा दो प्रहरमें पचती है, वह मात्रा वृष्य, पुष्टिकारक और मध्यम दोषवालेको बहुत उत्तम है और जो मात्रा दिनके तीन पहर व्यतीत होनेपर पचती है । वह मात्रा बहुत स्निग्धता करनेवाली और अत्यन्त दोषवालेके लिये उत्तम है । पित्त अधिक हो तो केवल घी देवे और वात अधिक हो तो लवणसहित घी देवे और कफ अधिक होतो चीता, सोंठ, मिर्च, पीपल तथा खार इन पदार्थोंके सहित घी देवे ॥ १०-१४ ॥

रूक्षक्षतविषार्त्तानां वातपित्तविकारिणाम् । हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिःपानं प्रशस्यते ॥ १५ ॥ कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः । पिबेयुस्तैलसात्म्याश्च तैलं दार्ढ्यार्थिनस्तु ये । व्यायामकर्षिताः शुष्करेतोरक्ता महारुजः ॥ १६ ॥ महाग्निमारुतप्राणा वसायोग्या नराः स्मृताः । क्रूराशयाः क्लेशसहा वातार्त्ता दीप्तवह्नयः । मज्जानश्च पिबेयुस्ते सर्पिर्वा सर्वतो हितम् ॥ १७ ॥

क्रूराशयाः-क्रूरकोष्ठा। सर्वतः-सर्वस्मात्स्नेहात्।

रूक्ष, क्षत, तथा विषसे पीडित, वात पित्तके विकारसहित और जिनकी बुद्धि तथा स्मरण-शक्ति हीन हो गई हो ऐसे मनुष्योंको घी पीना बहुत उत्तम है, जिसके कोठेमें कृमि बढ गये हों वायुका उपद्रव हो, कफ मेद बढ गये हों जिनको तेल पीनेका अभ्यास हो, जिन्हें शरीरकी दृढताकी इच्छा हो, उनको तेल पीना चाहिये। जो कसरत करनेसे दुःखित हैं, जिनका वीर्य तथा रुधिर सूख गया है, जो महान् रोगोंसे व्याकुल हैं तथा जिनकी अग्नि प्रबल है, वात प्रबल है, उन मनुष्योंको चरबी पीनी चाहिये। जिनके कोठे क्रूर हैं, ओ क्लेशको सहनेवाले हैं, वातसे पीडित हैं, दीप्ताग्नियुक्त हैं, उनको मज्जा अथवा घी पीना चाहिये। घी सबसे हितकारी है ॥१५-१७॥

शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि। वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥ १८ ॥ नास्याभ्यञ्जनगण्डूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणे। तैलं घृतं वा युञ्जीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥ १९॥ घृते कोष्णं जलं पेयं तैले यूषः प्रशस्यते। वसामज्जौ पिबेन्मण्डमनुपानं सुखावहम् ॥ २० ॥

शीतकालमें दिनमें और उष्णकालमें रातको स्नेह पान करे, वायु तथा पित्तकी अधिकतामें रात्रिके समय और कफ तथा वातकी अधिकता हो तो दिनमें स्नेह पान करे। नस्यकर्ममें, मालिश करनेमें, कुल्ले करनेमें, मस्तक, कान अथवा नेत्रमें डालना हो तो दोषोंका बलाबल विचारकर तेलका अथवा घीका उपयोग करे। घृत पीवे तो ऊपरसे उष्णजल पीवे, तेलके ऊपर मूंगका क्वाथ पीवे और चरबी तथा मज्जाके ऊपर भातका गाढा गाढा मांड पीना चाहिये, स्नेहके ऊपर ये अनुपान हितकारी हैं ॥ १८-२० ॥

स्नेहद्विषः शिशून्वृद्धान् सुकुमारान् कृशानपि। तृष्णालुकानुष्णकाले सह भक्तेन पाययेत् ॥ २१ ॥ सर्पिष्मती बहुतिला यवागूः स्वल्पतण्डुला। सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यःस्नेहनकारिणी ॥ २२ ॥ शर्कराचूर्णसंयुक्ते दोहनस्थे घृते तु गाम्। दुग्धा क्षीरं पिबेद्रूक्षः सद्यः स्नेहनमुत्तमम् ॥ २३ ॥

जिनको स्नेह पानसे अरुचि है उनको, बालकोंको, वृद्धोंको, सुकुमार शरीरवालोंको कृश शरीरवालोंको, तथा उष्णकालमें जिनको अधिक तृषा लगती हो उनको भातके साथ स्नेह पान करावे। अधिक घी, तिल तथा थोडे चावलयुक्त और किंचित् गरम ऐसी यवागूके सेवन करनेसे शरीर तुरन्त स्निग्ध हो जाता है। रूक्ष हुआ मनुष्य दुहनेके वासनमें खांड और घी, डालकर उसमें गायको दुहे वह दूध पिवे तो तुरन्त उत्तम रीतिसे शरीरमें स्निग्धता होती है ॥ २१-२३ ॥

मिथ्याचाराद्बहुत्वाच्च यस्य स्नेहो न जीर्यति। विष्टभ्य वाऽपि जीर्येत वारिणोष्णेन वामयेत् ॥ २४ ॥ स्नेहस्याजीर्णशङ्कायां पिबेदुष्णोदकं नरः। तदोद्गारो भवेच्छुद्धो भक्तं प्रति रुचिस्तथा ॥ २५॥ स्नेहेन पैत्तिकस्याग्निर्यदा तीक्ष्णतरीकृतः। तदाऽस्योदीर्यते तृष्णा विषमा तस्य पाययेत् ॥ २६ ॥ शीतलं पायसं तेन तृष्णा तस्य प्रशाम्यति। अजीर्णी वर्जयेत्स्नेहमुदरी तरुणज्वरी ॥२७॥ दुर्बलोऽरोचकी स्थूलो मूर्च्छालो मेहपीडितः। दत्तवस्तिर्विरिक्तश्च वान्तस्तृष्णाश्रमान्वितः। अकालप्रसवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत् ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यको अयोग्य आहार विहारसे अथवा अधिक होनेसे स्नेह नहीं पचे अथवा अजीर्णतासे पचे तो वह मनुष्य उष्णजलसे वमन करे। स्नेहके अजीर्ण होनेकी शंका हो तो मनुष्य उष्णजल पीवे, इससे शुद्ध डकार आती है और अन्नमें रुचि उत्पन्न होती है। पित्तप्रकृतिवाले मनुष्यकी अग्नि स्नेहपानसे बहुत तीक्ष्ण होकर अधिक तृषा लगावे तो उसको शीतल खीर पिलावे, इस प्रकार पीनेसे तृषा शान्त हो जायगी। जिसको अजीर्ण, उदररोग तथा नवीनज्वर हो, जिनका शरीर दुर्बल हो, अन्नमें अरुचि हो, जिनका शरीर मोटा हो, जो मूर्च्छा तथा प्रमेहसे पीडित हो, जिसका वस्तिकर्म किया हो, जिन्होंने जुलाव ली हो तथा वमन करनेवालेको तृषितको परिश्रमीको और जो स्त्री अकालमें प्रसववाली हो उसको स्नेहपान नहीं करावे। जिस दिन मेघसे आकाश घिर रहा हो, उस दिन भी स्नेह पान न करे॥ २४-२८॥

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचित्त-काः॥ २९॥ वृद्धबालकृशा रूक्षाः क्षीणास्राः क्षीणरेतसः। वातार्तास्तिमिरार्ता ये तेषां स्नेहनमुत्तमम्॥ ३०॥ वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम्। मृदुस्निग्धाङ्गताऽग्लानिः स्नेहद्वेषोऽथ लाघवम्॥ ३१॥ विमलेन्द्रियता सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः। भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका॥ ३२॥ तन्द्राऽतीसारखण्डत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम्। रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम्॥ ३३॥ श्यामाकचणकाद्यैश्च तक्रपिण्याकसक्तुभिः। दीप्ताग्निः शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्दृढेन्द्रियः॥ ३४॥ निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेहसेवी भवेन्नरः। स्नेहे व्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान्। दिवास्वप्नमभिष्यन्दि रूक्षान्नञ्च विवर्जयेत्॥ ३५॥

जिनको स्वेद देना हो, जिनको जुलाव देकर शुद्ध करना हो, मद्य, स्त्री, अथवा व्यायाममें जिनका चित्त आसक्त हो, वातसे पीडित, रतौंधीका रोगी, वृद्ध, बालक, जो दुर्बल होता जाता हो इन सबको तथा रूक्षशरीरवालोंको, क्षीण हो गया है रुधिर जिनका और क्षीणवीर्यवालोंको स्नेह क्रिया करनी उत्तम है। भली प्रकार स्निग्ध हुएकी परीक्षा यह है कि-वायुका यथायोग्य बहना, अग्निका प्रदीप्त होना, मल चिकना और अलग २ निकले, शरीर कोमल और स्निग्ध दीखे, ग्लानि न हो, स्नेहसे द्वेषहो, शरीरमें लघुता और इंद्रियोंमें निर्मलता होती है। रूक्ष मनुष्यमें इससे उलटे लक्षण होते हैं। जो मनुष्य बहुत स्निग्ध हुआ हो उसके लक्षण ये हैं कि-अन्नमें अरुचि लारका गिरना, गुदामें दाह, मल पतला आवे, शरीरमें आलस्य और शरीर फीका पड जाता है। रूक्ष मनुष्यको स्नेहपानसे स्निग्ध करना चाहिये और जो अत्यन्त स्निग्ध मनुष्य हैं उनको समखिया कोदो और चने आदि खिलाकर तथा छांछ, खली और सत्तू आदि खिलाकर रूक्ष करना चाहिये। स्नेहका सेवन करनेवाला मनुष्य जरारहित, बल तथा वर्णसे युक्त होता है, अग्नि दीप्त होती है, कोठा शुद्ध होता है, धातु पुष्ट होती है और इन्द्रियां दृढ होती हैं। स्नेह सेवन करनेवालेको=कसरत, शीतमें रहना, वेगोंका रोकना, जागरण करना, दिनमें सोना और रूक्ष तथा शरीरमें गुरुता करनेवाला भोजन ये सब त्यागने चाहिये॥ २९-३५॥

पञ्चकर्मनामानि।

प्रथमं वमनं पश्चाद् विरेकश्चानुवासनम्। एतानि पञ्च कर्माणि निरूहो नावनं तथा ॥ १ ॥

वमन, विरेचन, अनुवासन, निरूह और नस्य ये पञ्चकर्म कहाते हैं ॥ १ ॥

अथ वमनविधिः।

शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम्। वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलो भिषक् ॥२॥ बलवन्तं कफव्याप्तं हल्लासादिनिपीडितम्। तथा वमनसात्म्यश्च धीरचितश्च वामयेत् ॥ ३ ॥ विषदोषे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे। हृद्रोगे कुष्ठवीसर्पे मेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥ ४ ॥ विदारिकाऽपचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु। अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ ५ ॥ नासाताल्वोष्ठपाकेषु कर्णस्रावेऽधिजिह्वके। गलशुण्ड्यामतीसारे पित्तश्लेष्मगदे तथा। मेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक् ॥ ६ ॥

प्रवीण वैद्य शरद्ऋतुमें,वसन्त ऋतुमें और वर्षा ऋतुमें प्राणियोंको वमन करावे और देवे। जो मनुष्य बलवान्, कफसे व्याप्त, हल्लासादिसे पीडित, धीरचित्तवाला और जिसकी प्रकृति वमनके अनुकूल हो उनको वमन करावे। विषदोष, स्तन्यरोग, मन्दाग्नि,श्लीपद अर्बुद, हृदयरोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण भ्रम, विदारिका, अपची, खांसी, श्वास, पीनस, अण्डवृद्धि, मृगी, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नाक, तालु तथा ओष्ठका पकना, कर्णस्राव, अधिजिह्वक, गलशुण्डी, अतिसार पित्त अथवा कफके रोग, मेद और अरुचि इन सब रोगोमें वैद्य, रोगीको वमन करावे ॥ २-६ ॥

न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः। नातिवृद्धो गर्भिणी च स्थूलो न क्षतातुरः ॥ ७ ॥ मतार्त्तो बालको रूक्षःक्षुधितश्च निरूहितः। उदावर्त्यूर्ध्वरक्ती च दुश्छर्द्यः केवलानिली ॥ ८ ॥ पाण्डुरोगी कृमिव्याप्तः पठनात्स्वरघातवान्। एतेऽप्यजीर्णव्यथिताः वाम्या ये विषपीडिताः। कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुकक्काथपानतः ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वरक्ती यस्य नासाक्षिकर्णास्यमार्गैः रक्तम् प्रवर्त्तते सः। भुक्तरूक्षकर्कशद्रव्यो दुष्छर्द्य मधुक स्थाने मधूकेति द्वितीयः पाठः ॥

तिमिर, गुल्म, उदररोगी, कृश, अतिवृद्ध, गर्भवती स्त्री, अत्यन्त स्थूल, क्षतसे व्याकुल, मदरोगी, बालक, रूक्ष, भूखा तथा निरूहणवस्ति किया हुआ उदावर्त्त रोगी तथा जिसकी नाक, कान, नेत्र और मुखमेंसे रक्त निकले, जिसे कठिनतासे वमन होती हो, अर्थात् वमनकी औषधिसे भी मुश्किलसे वमन होती हो, जिसके कोठेमें केवल वायुका दोष ही, पाण्डुरोगी, कृमिसे व्याप्त और पढनेसे स्वर जिसका नष्ट होगया हो, उनको वमन नहीं करावे। यदि ये अजीर्णसे पीडित हों, विषसे पीडित हों कफसे व्याप्त हुए हों और वमन करानेकी आवश्यकता हो तो इनको मुलहठीका क्वाथ पिलाकर वमन करावे ॥ ७-९ ॥

सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुञ्च वामयेत्। पाययित्वा यवागूं वा क्षीरतक्रदधीनि च ॥ १० ॥ आसात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यै र्दोषानुत्क्लेश्यदेहिनाम्। स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक् प्रवर्त्तते ॥ ११ ॥ वमनेषु च सर्वेषु सैन्धवं मधु वा हितम्। बीभत्सं वमनं दद्यादू विपरीतं विरेचनम् ॥ १२ ॥

बीभत्सम्-अरुच्यम् । विपरीतम् रुच्यम् ॥

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके । अर्द्धभागावशिष्टश्च वमनेष्ववचारयेत् ॥ १३ ॥ क्वाथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता । मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥ १४ ॥ वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे । अर्द्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः॥१५॥

अर्द्धत्रयोदशपलम्-सार्द्धषट्कम् ॥

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपलं मात्रयोत्तमम् । मध्यमं द्विपलं विद्यात्कनीयस्तु पलं भवेत् ॥ १६ ॥ वमने चाष्ट वेगाः स्युः पित्तान्ताउत्तमास्तु ते । षड् वेगा मध्यमा वेगाश्चत्वारस्त्वपरे मताः ॥१७॥

जो मनुष्य सुकुमार, कृश, बालक, वृद्ध अथवा भयभीत हो इनमेंसे किसीको वमन करानी हो तो प्रथम उनकी प्रकृतिसे न मिले ऐसे कफसे भोजनोंसे दोषोंको कुपित करके यवागू, दूध, छांछ और दही आदि पदार्थ पिलाकर वमन करावे । स्निग्ध किये हुए और अग्निसे स्वेदन किये हुए मनुष्यको वमन करावे तो भली भांति वमन होती है। सर्वप्रकारकी वमनोंमें सेंधानोन अथवा मधु देनेसे अनुकूल होता है। वमनकी औषधि वीभत्स जो रुचे नहीं देवे और रेचनमें औषधि विपरीत जो रुचे देवे। क्वाथ करनेका पदार्थ सोलह तोले लेकर दोसौ छप्पन तोले पानीमें पकावे, जब आधा शेष रहे तब रोगीको वमनके लिये देवे। क्वाथ पानीमें नौ प्रस्थकी मात्रा बडी, छः प्रस्थकी मध्यम और तीन प्रस्थकी अल्प मात्रा कहाती है। वमनमें, विरेचनमें और रुधिर निकालनेमें और रुधिर निकालनेमें प्रस्थ जहां आवे वहां छब्बीस तोलेका जानना, यह विद्वानोंने कहा है। कल्क चूर्ण और अवलेह इसकी बारह तोलेकी मात्रा उत्तम है, आठ तोलेकी मध्यम है चार तोलेकी मात्रा अल्प है, वमनमें आठ वेग हो और अन्तमें पित्त आवे तो उत्तम जानना, छः वेग मध्यम और चार वेग आवे तो कनिष्ठ जानना ॥ १०-१ ॥

कफं कटुकतीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत् । सुस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ १८ ॥ कृष्णां कट्फलसिन्धुं च कफे कोष्णजलैः पिबेत् । पटोलवासानिम्बांश्च पित्ते शीतजलैः पिबेत् ॥ १९ ॥

कट्फलम्-मयनफलम् ।

सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत् । अजीर्णे कोष्णपानीयं सिन्धुं पीत्वा वमेत सुधीः ॥ २० ॥

मदनम्-मयनफलम् ।

वमनं पाययित्वा तु जानुमात्रासनेस्थितम् । कण्ठमेरण्डनालेन स्पृशन्तं वामयेद्भिषक् ॥ २१ ॥ प्रसेको हृद्ग्रहः कोठः कण्डूर्दुश्छर्दिते भवेत् । अतिवान्तेः भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गारो विसंज्ञता ॥२२॥ जिह्वानिःसरणं चाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंहतिः । रक्तच्छर्दिः ष्ठीवनश्च कण्ठपीडा च जायते ॥ २३ ॥

हनुसंहितः-हन्वोरमिलनम् ।

वमनस्यातियोगे तु मृदु कुर्याद्विरेचनम् । वमनेन प्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहाः । स्निग्धाम्ललवणैर्युक्तैर्घृतक्षीररसैर्हिताः ॥ २४ ॥

रसैः-मांसरसैः ।

फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः । निःसृतान्तु तिलद्राक्षाकल्कलिप्तां प्रवेशयेत् ॥ २५ ॥

निःसृताम् जिह्वाम् ।

व्यावृत्तेऽक्षिणि धृताभ्यक्ते पीडनञ्च शनैः शनैः । हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यञ्च श्लेष्मवातहृत् ॥ २६ ॥ रक्तपित्तविधानेन रक्तष्ठीवमुपाचरेत् । धात्रीरसाञ्जनोशीरलाजचन्दनवारिभिः ॥ २७ ॥ मन्थं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् । शाम्यन्त्यनेन तृष्णाद्यारोगाश्छर्दिसमुद्भवाः ॥ २८ ॥ हृत्कण्ठशिरसां शुद्धिर्दीप्ताग्नित्वञ्च लाघवम । कफपित्तविनाशश्च सम्यग्वान्तस्य लक्षणम् ॥२९ ततोऽपराह्णे दीप्ताग्निं मुद्गषष्टिकशालिभिः हृद्यैश्च जाङ्गलरसैः कृत्वा यूषञ्च भोजयेत् ॥ ३० ॥ तन्द्रानिद्रास्यदौर्गन्ध्यं कण्डूश्च ग्रहणी विषम् । सुवान्तस्य न पीडायै भवन्त्येते कदाचन ॥ ३१ ॥ आजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा। स्नेहाभ्यङ्गश्च रोषश्च दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ३२ ॥

इति वमनाधिकारः ।

चरपरे, तीक्ष्ण और गरम पदार्थोंसे कफको जीते, मीठे और शीतल पदार्थोंसे पित्तको जीते । मीठे, खारे खट्टे और गरम पदार्थोंसे वातसहित कफको जीते । कफके ऊपर पीपल, मैनफल तथा सैंधानौन किञ्चित् गरम पानीके साथ पिवे । पित्तकी अधिकतामें पटोलपत्र, अडूसा और नीम शीतल जलसे पिवे । कफसहित वातमें मैनफलके चूर्णके साथ दूधपिवे । अजीर्ण हो तो किंचित् गरम पानी और सैंधानौन पीकर वमन करे । वैद्य रोगीको वमनकी औषध पिलाकर उकरू बिठलाकर उसके गलेमें उसके हाथसे ही अण्डीके पत्तेकी नाल डालकर वमन करावे । जैसी चाहिये वैसी वमन न हो तो उसके ये लक्षण होते हैं कि--मुखमें पानी आना, हृदयका रुकना, देहमें चकत्ते होना और खुजलीका होना होता है । बहुत वमन हो तो तो इसके लक्षण ये होते हैं कि--तृषाका लगना, हिचकी तथा डकारका आना, बेहोशीपन और जीभका बाहर निकलना, आँखोंका फटना, मुखका फैलना, वमनके साथअथवा थूकनेमें रुधिरका आना और गलेमें पीडाका होना ये लक्षण होते हैं वमनका अत्यन्त योग हो तो मृदु विरेचन करावे, वमन करनेमें जीभ भीतर बैठगई तो स्निग्ध, खारे और खट्टे रसोंसे युक्त कर घी युक्त दूधमें और मांसरसके हितकारी कुल्ले करावे और उस मनुष्यके आगे दूसरा मनुष्य बैठकर अम्लफल नीबू आदि खावे । जीभ निकल पडी हो तो जीभपर तिलका और दाखका कल्क चुपडकर उसको भीतरको प्रवेश करे । आँखकी पुतली फटगई हो तो घी चुपडकर धीरे धीरे भीतरको दबावे । मुख फटगया हो तो सेंक करे और नाकमें कफ तथा वातनाशक बूँद डाले । थूकनेमें रुधिर आता हो तो रक्तपित्तके अनुसार उपचार करे । आमला, रसोता खल, खील इनको चन्दनके जलमें विलोकर घी, मधु तथा खाँड डालके पिलावे तो वमनसे उत्पन्न हुई तृषा आदिके रोग शांत होते हैं । हृदय, गला तथा मस्तक शुद्ध हो जाय, अग्नि प्रदीप्त होजाय, शरीरमें लघुता आजाय कफ तथा पित्तका नाश होजाय तो भली भाँति वमन हुई जाने । जिसको भलीप्रकार वमन होगई हो, ऐसे प्रदीप्त अग्निवाले मनुष्यको दो पहर पीछे मूँग, साँठी चावल तथा रुचिकारी जंगली जीवोंका मांस इनका पाक करके बना हुआ यूष खिलावे । जिसको भली भाँति वमन हुई हो उसको निद्रा आलस्य, मुखकी दुर्गन्धता, खुजली, संग्रहणी और विषय कदापि पीडा नहीं करते । विद्वान् मनुष्यको वमन करनेके पश्चात् एक दिनतक अजीर्णकारक पदार्थ, शीतल जल, कसरत, मैथुन, तेलकी मालिश और क्रोध इनको छोड देना चाहिये ॥ १८ ॥ ३२ ॥

अथ विरेचनविधिः।

स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय दद्यात्सम्यग्विरेचनम्। अवान्तस्य त्वधःस्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः॥ ३३॥ मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम्। अथवा पाचनैरामं बलासं परिपाचयेत्॥ ३४॥ ऋतौ वसन्ते शरदि देहशुद्धौ विरेचयेत्। अन्यदाऽऽत्ययिके कार्ये शोधनं शीलयेद् बुधः॥ ३५॥

आत्ययिके- प्राणसङ्कटे॥

पित्ते विरेचनं युञ्ज्यादामोद्भूते गदे तथा। उदरे च तथाऽऽध्माने कोष्ठशुद्धौ विशेषतः॥ ३६॥ दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता लङ्घनपाचनैः। शोधनैः शोधिता ये तु न तेषां पुनरुद्भवः॥३७॥ बालो वृद्धो भृशं स्निग्धः क्षतक्षीणो भयान्वितः। श्रान्तस्तृषार्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी॥ ३८॥ नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी। शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता॥ ३९॥ जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरोगी भगन्दरी। अर्शःपाण्डूदरग्रन्थिहृद्रोगारुचिपीडिताः॥ ४०॥ योनिरोगप्रमेहार्त्ता गुल्मप्लीहव्रणार्दिताः। विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविषूचीकुष्ठसंयुताः। ॥ ४१॥ कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेढ्रामयान्विताः। प्लीहशोथाक्षिरोगार्त्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः॥ ४२॥ शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः। बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः॥ ४३॥ बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते। मृद्वी मात्रा मृदा कोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमा॥४४॥ क्रूरे तीक्ष्णा मता द्रव्यैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः। मृदुर्द्राक्षापयश्चंचुतैलैरपि विरिच्यते॥ ४५॥ मध्यमस्त्रिवृतातिक्ताराजवृक्षैर्विरिच्यते। क्रूरः स्नुकपयसा हेमक्षीरीदन्तीफलादिभिः॥ ४६॥

चञ्चुतैलम्--एरण्डतैलम्। हेमक्षीरी--(चोक)। दन्तीफलम्- बृहद्दन्तीफलं जयपालेति प्रसिद्धम्॥

प्रथम मनुष्यको स्नेहपान कराकर स्वेद देवे और पश्चात् वमन करावे, वमन करानेके पीछे योग्य रीतिसे जुलाब देवे, वमन कराये विना रेचन देवे तो कफ नीचेके भागमें आकर ग्रहणीनामक शरीरके भीतरके स्थानको ढक देता है कि--जिससे अग्नि मन्द होजाती है शरीरमें गुरुता होजाती है, अथवा प्रवाहिका आदिक रोग होजाते हैं। वमन विना कराये रेचन दिया हो तो कचे कफको उपायसे पकाना चाहिये, वसन्तऋतुमें और शरदऋतुमें शरीरको शुद्ध करनेके लिये रेचन देवे पीडा प्राण संकटमें सदृश हो तो विद्वान् वैद्य अन्य ऋतुओंमें भी रेचन देवे। पित्त, आमसे हुए रोग, उदररोग, अफारा और बद्धकोष्ठ इन रोगोंपर विशेष करके विरेचन देवे। लंघनसे और पाचनके उपायसे जीते हुए दोष किसी समयमें फिर पीछे कुपित होते हैं, परन्तु विरेचन देनेसे जिनको शुद्ध कर दिया हो ऐसे दोष पीछे उत्पन्नही नहीं होते। बालक, वृद्ध, अत्यन्त, स्निग्ध, क्षतसे क्षीण हुए, भयभीत, थका हुआ, तृषासे पीडित, अत्यन्त स्थूल, गर्भवाली स्त्री, नवीन ज्वररोगी, तत्काल प्रसूता स्त्री, मन्दाग्निवाला, मदात्यरोगी, जिसके बाण आदि शल्य लग रहा हो और रूक्ष शरीरवाला अर्थात् जिसने प्रथम स्नेह वा मुंजिस न ली हो, इनको विद्वान् वैद्य रेचन नहीं देवे। जीर्णज्व-

रवाले, विषव्याप्त, वातरोगों, भगन्दरवाले तथा बवासीर, पाण्डु, उदर, गांठ, हृदयरोग, अरुचि, योनिरोग, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, व्रण, कर्णरोग, मस्तकरोग, मुखरोग, गुदरोग, शिश्नरोग, प्लीहा, सूजन, नेत्ररोग, कृमिरोग, क्षारसे हुए विकार, वातविकार, शूल तथा मूत्राघात इनसे पीडितोंको तथा विषव्याप्त हुओंको रेचन देना चाहिये । जिस मनुष्यके कोठेमें पित्त अधिक हो उसको मृदु कोठेवाला जानना, जिसके कोठेमें कफ अधिक हो उसको मध्यम कोठेवाला जानना और जिसके कोठेमें वात अधिक हो उसको कठोर कोठेवाला जानना । कठिन कोठेवालेको रेचनकी मृदु-मात्रा देवे । मध्यम कोठेवालेको मध्यम मात्रा देवे और कठिन कोठेवालेको तीव्र मात्रा देवे । मृदु पदार्थोंकी मात्रा मध्यम कहाती है और तीव्र पदार्थोंकी मात्रा तीव्र कहाती है, नरम कोठेवाले मनुष्यको दाख, दूध और अण्डीके तेल आदिसे भी रेचन लगता है, मध्यम कोठे-वाले मनुष्यको निसोत, कुटकी और अमलता-ससे रेचन लगता है । कठिन कोठेवाले मनु-ष्यको थूहरका दूध, चोक, दन्ती और जमाल-गोटे आदिसे रेचन लगता है ॥ ३३ ॥ ४६ ॥

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफा-न्तिका । वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥ ४७ ॥ द्विपलं श्रेष्ठमा-ख्यातं मध्यमं च पलं भवेत् । पलार्द्धं च कषायाणां कनीयस्तु विरेचनम्॥४८ कल्कमोदकचूर्णानां कर्षो मध्वाज्यले-हतः । कर्षद्वयं पलं वाऽपि वयोरोगाद्य-पेक्षया ॥४९॥ पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षा-क्वाथादिभिः पिबेत् । त्रिफलाक्वाथगोमूत्रैः पिबेद्व्योषं कफार्दितः॥५०॥त्रिवृत्सैन्धव-शुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः । वाता-र्दितो विरेकाय जाङ्गलानां रसेन वा॥५१॥

जिससे तीसवार वेग होकर दस्त आवे और अन्तमें कफ आम निकले वह रेचनकी मात्रा उत्तम जाननी । जिससे बीसवार वेग होकर दस्त आवे और अन्तमें कफ आवे वह मात्रा रेचनकी मध्यम जाननी जिससे दशवार वेग होकर दस्त आवे और अन्तमें कफ आवे उसको रेचनकी कनिष्ठ मात्रा जाननी । रेचन होनेके लिये दो पल कषायकी मात्रा उत्तम है । एक पल कषायकी मात्रा मध्यम है और अर्द्ध पल कषायकी मात्रा कनिष्ठ होती है कल्क, लड्डू और चूर्ण ये प्रत्येक एक तोले शहदमें अथवा एक तोले घी में मिलाकर दो तोलेकी मात्रा देवे अवस्था और रोगपर ध्यान देकर योग्य मालूम हो तो चार तोलेकी भी मात्रा देवे, पित्तसे पीडित मनुष्यको दाख आदि क्वाथके साथ निसोतका चूर्ण खाना चाहिये । कफसे पीडित मनुष्योंको हरड, बहेडा तथा आमलेके क्वाथ और गोमूत्रके साथ सोंठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण खाना चाहिये । वायुसे पीडित मनुष्योंको रेचनके लिये खट्टे पदार्थोंके साथ अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ निसोत सैंधानोंन तथा सोंठ इनका चूर्ण खाना चाहिये ॥ ४७-५१ ॥

एरण्डतैलं त्रिफलाक्वाथेन द्विगुणेन वा । युक्तं पीतं पयोभिर्वा नचिरेण विरि-च्यते ॥ ५२ ॥

शीघ्रमेव विरिच्यते इत्यर्थः ।

त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेष-जम् । समृद्वीकारसं क्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥ ५३ ॥ त्रिवृद्दुरालभामुस्त-शर्करोदीच्यचन्दनम् । द्राक्षाऽम्बुना सयष्ट्याह्वं शीतलञ्च घनात्यये ॥ ५४ ॥

उदीच्यम्-वाला । घनात्यये-शरदि ॥

पिप्पलीं नागरं सिन्धुं श्यामां त्रिवृतया सह । लिह्यात् क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम् ॥ ५५ ॥

श्यामा-सारिवा ।

त्रिवृता शर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् । अभया मरिचं शुण्ठी विडङ्गामलकानि च ॥ ५६ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च । एतानि समभागानि दन्ती तु त्रिगुणा भवेत् ॥ ५७ ॥ त्रिवृताऽष्टगुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा । मधुना मोदकान् कृत्वा कर्षमात्रान् प्रमाणतः ॥ ५८ ॥ एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतश्चानु पिवेज्जलम् । तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते ॥५९॥ पानाहारविहारेषु भवेन्निर्यन्त्रणः सदा । विषमज्वरमन्दाग्निपाण्डुकासभगन्दरान् ॥ ६० ॥ पृष्ठपार्श्वोरुजघनजङ्घोदररुजं जयेत् । स्नेहाभ्यङ्गश्चारोषश्च दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ६१ ॥ सततं शीलनादेव पलितानि प्रणाशयेत् । अभयामोदका ह्येते रसायनवराःस्मृताः॥६२॥

इति अभयादिमोदकः ।

हरड, बहेडा तथा आमलेके दूने क्वाथके साथ अथवा दूधके साथ अण्डीका तेल पिवे तो भी तुरन्त रेचन लगता है । वर्षाऋतुमें रेचनके लिये दाखके रसके और मधुके साथ निसोत, इन्द्रजौ, पीपल और सोंठ इनका उपयोग करे । शरदूऋतुमें रेचनके लिये दाख रसके साथ, निसोत, धमासा, नागरमोथा, खांड, नेत्रवाला सफेद चन्दन, और मुलहठीके चूर्णका उपयोग करे, यह रेचन शीतल है । शिशिर और बसंत ऋतुमें रेचनके लिये शहतके साथ पीपल, सोंठ, सेंधानोंन, सारिवा और निसोत इनका चूर्ण खाना चाहिये । ग्रीष्मऋतुमें रेचनके लिये समान भाग निसोतका और मिश्रीके चूर्णका उपयोग करे । हरड, मिर्च, सोंठ, वायविडंग, आमला, पीपलामूल, दालचीनी, पत्रज और नागरमोथा इन सबको समान भाग लेकर इसमें तिगुनी दन्ती आठ गुना निसोत छः गुना मिश्री डालकर शहतके साथ एक एक तोलेके लड्डू बनावे । इन लड्डुओंमेंसे प्रातःकाल एक एक लड्डू खावे और उसके ऊपर शीतल जल पिवे । इसके खानेके पीछे जबतक उष्ण जल न पिवे अथवा उष्ण अन्न न खावे, तबतक दस्त होते रहते हैं । इन मोदकोंको खानेवालेको सर्वदा खाने पीने और विहार करनेमें अधिक परहेज करनेकी आवश्यकता नहीं है । ये लड्डू खानेसे विषमज्वर, अग्निकी मन्दता, पाण्डु रोग, खांसी, भगन्दर, पीठका दर्द, पसलीका दर्द, ऊरूका दर्द, जंघेका दर्द तथा उदररोग नष्ट होता है । जिस दिन ये लड्डू खावे, उस दिन शरीरमें तेल नहीं मले और क्रोध भी नहीं करे । इनको नित्य सेवन करनेसे बलीपलित नष्ट होता है, ये अभयादि मोदक रसायनमें उत्तम हैं ॥ ५२-६२ ॥

पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी । सुगन्धि किञ्चिदाघ्राय ताम्बूलं शीलयेद्‍ बुधः । निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न शयी च ॥ ६३ ॥ शीताम्बु न स्पृशेत् क्वापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः । बलसौषधपित्तानि वायुर्वान्ते यथा व्रजेत् । रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजञ्च कफो व्रजेत् ॥ ६४ ॥ दुर्विरिक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धता कुक्षिशूलरुक् । पुरीषवातसङ्गश्च कण्डूर्मण्डलगौरवम् ॥ ६५ ॥ विदाहोऽरुचिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते । तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्त्वा स्निग्धं तु रेचयेत् । तेनास्योपद्रवा यान्ति दीप्ताग्निर्लघुता भवेत् ॥ ६६ ॥

रेचनकी औषधि पीनेके पश्चात् शीतल जलसे नेत्रोंको सींचकर किंचित् सुगंधित पदार्थ अतर आदि सूँघे, पान चावे, वायुरहित

स्थानपर बैठे, दस्तके वेगको नहीं रोके सोवे नहीं, शीतल जलका स्पर्श न करे और किंचित् उष्णजल पीता रहे। जिस प्रकार वमन करनेसे कफ, औषधि, पित्त और वात ये सब मुख द्वारसे निकलते हैं, वैसेही रेचन लेनेसे मल, पित्त, औषधि और कफ ये सब गुदद्वारसे निकलते हैं। ठीक विरेचन न लगे तो नाभिमें तथा कोखमें दर्द होता है, मल तथा अधोवायु रुक जाती है, देहमें खुजली होने लगती है, चकत्ते पड जाते हैं, देह भारी हो जाती है। दाह, अरुचि, अफारा, भ्रम और वमन होती है। जिसको भलीभांति रेचन लगा हो उस मनुष्यको पाचनपदार्थ देकर उसके आमको पकाकर पीछे स्नेह पान कराकर स्निग्ध करे और पश्चात् रेचन देवे, इस प्रकार करनेसे ये सब उपद्रव नष्ट होते हैं, अग्नि दीप्त होती है और शरीर हलका होता है ॥६३-६६

विरेकस्यातियोगेन मूर्च्छा भ्रंशो गुदस्य च । शूलं कफातियोगः स्यान्मांसधावनसन्निभम् ॥ ६७ ॥ मेदोनिभं जलाभासं रक्तञ्चापि विरिच्यते । तस्य शीताम्बुभिः सिक्त्वा शरीरं तण्डुलाम्बुभिः ॥ ६८ ॥ मधुमिश्रैस्तथा शीतैः कारयेद्वमनं मृदु । सहकारत्वचः कल्को दध्ना सौवीरकेण वा ॥ ६९ ॥ पिष्ट्वा नाभिप्रलेपेन हन्त्यतीसारमुल्बणम् । सौवीरं तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषीकृतैः ॥ ७० ॥

सौवीरम्-सन्धानम् ॥

अजाक्षीरं रसश्चापि वैष्किरं हारिणं तथा । शालिभिः षष्टिकैस्तुल्यैर्मसूरैर्वाऽपि भोजयेत् ॥ ७१ ॥ वर्त्तिकालवविकिरकपिञ्जलकृतित्तिराः । चकोरक्रकाराद्याश्च विष्किराः समुदाहृताः । कपिञ्जल इति ख्यातो लोके कपिशतित्तिरः ॥ ७२ ॥

क्रकरः--'कराट' इति लोके । हरिणस्ताम्रवर्णो मृगः ॥

शीतैःसंग्राहिभिर्द्रव्यैःकुर्यात्संग्रहणं भिषक् । लाघवे मनसस्तुष्टावनुलोमं गतेऽनिले ॥ ७३ ॥

रेचन अधिक लगजाय तो मूर्च्छा होती है, कांच निकलती है, पेटमें दर्द होने लगता है, आम अधिक निकलती है और मांसके धोवन सदृश, मेदके सदृश, तथा जलके सदृश रक्त गिरने लगता है। इस प्रकार जिसको बहुत दस्त होने लगे तो उसके शरीर पर शीतल जल छिडके और चावलोंके शीतल धोवनमें शहत मिलाकर पिलावे जिससे थोडी वमन हो जाय। आमकी छालके कल्कको दहीमें अथवा जौकी कांजीमें पीसकर नाभिपर लेप करे, इस प्रकार करनेसे भयंकर दस्त भी बंद होते हैं। कच्चे अथवा पके तुषरहित जौकी कांजी सौवीर कहाती है। शालि चावल अथवा सांठी चावलोंके साथ अथवा मसूरके साथ बकरीका दूध और विष्किर पक्षीका तथा लाल हिरनका मांस रस देवे, इससे भी दस्त बन्द हो जाते हैं। बटेर, लवा, कबरातीतर, चकोर और कराट आदि पक्षी विष्किर कहाते हैं। बहुत रेचन लगा हो तो वैद्य शीतल और दस्तको रोकनेवाली औषधिसे दस्त रोके। जैसा चाहिये ऐसा रेचन लगा हो तो शरीरमें लघुता होती है, मन प्रसन्न होता है और वायुकी गति ठीक होती है ॥ ६७-७३ ॥

सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि । इन्द्रियाणां बलं बुद्धेःप्रसादो वह्निदीप्तता ॥ ७४ ॥ धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् । प्रवातसेवां शीताम्बु स्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ॥ ७५ ॥ व्यायामं मैथुनं

चैव न सेवेत विरेचितः । शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् ॥ ७६ ॥ जंघालविष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् । हरिणैणकुरंगर्ष्यवातायुमृगमात्रकाः । राजीवः पृषतश्चैव जंघालाः शरभादयः ॥ ७७ ॥

इन लक्षणोंसे भली भांति जुलाव होनेकी परीक्षा करके उस मनुष्यको रात्रिमें पाचन पदार्थ देवे । रेचनके सेवन करनेसे इन्द्रियोंमें शक्ति बढती है, बुद्धि स्वच्छ होती है, अग्नि दीप्त होती है और धातुकी तथा शरीरकी स्थिरता होती है । रेचन लेनेके पश्चात् शीतल पवन, शीतलजल, अजीर्णकारक अन्न, व्यायाम मैथुन और तेलका मलना इनका सेवन नहीं करे । रेचनके ऊपर चावल, सांठी चावल और मूंगआदिकी यवागू बनाकर खावे । अथवा जंघाल पशुओंके वा विष्किर पक्षियोंके मांसके रसके साथ चांवलोंका भात खावे, वह हितकारी है । हरिण, एण, कुरंग, ऋष्य, वातायु, राजीव और पृषत आदि मृगकी जाति हैं और शरभ आदि पशु जंघाल कहाते हैं ॥७४–७७॥

अथ स्नेहवस्तिविधिः ।

वस्तिर्द्विधाऽनुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् । यः स्नेहो दीयते स स्यादनुवासननामकः ॥ ७८ ॥ कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते । वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वस्तिरिति स्मृतः ॥ ७९ ॥

वस्तिभिः-मृगादीनां मूत्राशयैः ॥

तत्रानुवासनाख्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते । अनुवासनभेदश्च मात्रावस्तिरुदीरितः ॥ ८० ॥ पलद्वयं तस्य मात्रा तस्मादर्द्धाऽपि वा भवेत् । अनुवास्यस्तु रूक्षःस्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥८१॥ नानुवायस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी । नास्थाप्या नानुवास्याश्च जीर्णोन्मादतृडर्दिताः ॥ ८२ ॥ शोथमूर्च्छाऽरुचिभयश्वासकासक्षयातुराः । नेत्रं कार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः । नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वाविधीयते ॥ ८३ ॥

नेत्रम्-नाडी ॥

तथा चोक्तं विश्वप्रकाशे--नेत्रं मन्थगुणे वस्त्रे तरुमूले विलोचने । नेत्रबन्धे च नाड्यां च नेत्रो नेतरि भेद्यवत् ॥८४॥ इति ॥

अनुवासन और निरूहण इस प्रकार वस्तिके दो भेद हैं । घी अथवा तेल आदिकी पिचकारी अनुवासन वस्ति कहाती है और क्वाथ, दूध तथा तेलको एकत्र करके उससे जो पिचकारी लगाई जाय, उसको निरूहणवस्ति कहते हैं । मृग। आदिके मूत्राशयकी कोथलीरूप साधनसे पिचकारी दी जाती है, इस कारण पिचकारीको वस्ति कहते हैं । वस्ति मूत्राशयका नाम है । दोनों प्रकारकी वस्तियोंमें यहां प्रथम अनुवासनवस्तिकी रीति कहते हैं । मात्रावस्ति यह अनुवासनवस्तिका ही भेद है । मात्रावस्तिमें घी आदिकी मात्रा आठ तोले भरकी अथवा चार तोलेकी करे । जो मनुष्य रूक्ष शरीरवाला, तीक्ष्ण अग्निसे युक्त हो और केवल बातवाला जो मनुष्य हो, उसको अनुवासनवस्ति देवे । कुष्ठरोगी, प्रमेहवाला, स्थूलशरीरी और उदररोगवाला जो मनुष्य हो उसको अनुवासन वस्ति नहीं देवे । अजीर्ण, उन्माद, तृषा, सूजन, मूर्च्छा, अरुचि, भय, श्वास, खांसी और क्षय इनसे पीडितोंको निरूहवस्ति नहीं देवे और अनुबासनवस्ति भी नहीं देवे । वस्ति देने की नली-सुवर्ण आदि धातुओंकीः वृक्षकी, बांसकी, नरसलकी, हांथीदांतकी, सींगके अग्रभागकी और मणिकी बनावे । विश्वप्रकाशकोषमें कहा है कि, नपुंसकलिंगवाला नेत्रशब्दमें, वृक्षकी जडमें, नेत्रमें, नेत्रके बन्धमें और नलीमें है ॥७८–८४॥

एकवर्षात्तु षड्वर्षाद्यावन्मानं षडङ्गुलम्। ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसम्मितम् ॥ ८५ ॥ ततः परं द्वादशभिरङ्गुलैर्नेत्रदीर्घता। मुद्गच्छिद्रं कलायाभं छिद्रं कौलास्थिसन्निभम्। यथासंख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसन्निभम् गोपुच्छसन्निभं मूले स्थूलं तस्मात् क्रमात्कृशम् ॥८६॥

मुद्गच्छिद्रादिप्रमाणं नेत्रं क्रमेण षड्वर्षाय द्वादशवर्षाय तदूर्ध्ववर्षाय च ज्ञेयम् ॥

आतुराङ्गुष्ठमानेन मूले स्थूलं विधीयते। कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च गुटिकामुखम् ॥ ८७ ॥

परीणाहोऽत्र स्थौल्यम् ॥

तन्मूले कर्णिके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थकात् ॥ ८८ ॥

कर्णिका-गवादिकर्णवत् ॥

योजयेत्तत्र वस्तिश्च बन्धद्वयविधानतः। मृगाजशूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत् ॥ ८९ ॥

(वस्तिरिति शेषः।)

मूत्रकोषस्य वस्तेस्तु तदलाभे तु चर्मणः। कषायरक्तः स मृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ॥ ९० ॥

एक वर्षसे लेकर छः वर्षतक बालकको वस्ति देवे तो छः अंगुलकी नलीका उपयोग करे, छः वर्षसे पीछे बारह वर्षतकके मनुष्यको वस्ति देवे तो आठ अंगुलकी नलीका उपयोग करे। और बारह वर्षसे ऊपरके मनुष्यको बस्ति देवे तो, बारह अंगुलकी नलीका उपयोग करे। छः अंगुलकी नलीमें मूंगके दानेके सदृश आठ अंगुलकी नलीमें मटरके सदृश और बारह अंगुलकी नलीमें बेरकी गुठलीकी बराबर छेद रक्खे। नली चिकनी तथा गायकी पूंछके सदृश जडमें मोटी और उसके पीछे ऊपरसे क्रमवार सूक्ष्म होनी चाहिये। नली-जडमें रोगीके अंगूठेकी बराबर मोटी होनी चाहिये, ऊपरके भागमें बिचली अंगुलीकी बराबर मोटी होनी चाहिये और गोल मुखवाली होवे। नलीके तीन भाग छोडकर चौथे भागरूप जडमें गाय आदिके कानके सदृश दो कर्णिका बनावे और उन कर्णिकाओंमें हिरणके, बकरेके, सुअरके, बैल अथवा भैंसके मूत्राशयकी कोथलीको दो बन्धनोंसे बांधकर मिला देवे, यदि मूत्राशयकी कोथली न मिले तो चमडेकी या रबरकी कोथली बनाकर बांध देवे। ये कोथली कसैले रंगसे रंगी, बहुत नरम चिकनी और दृढ हों तो हितकारी होती हैं ॥ ८५-९० ॥

व्रणवस्तेस्तु नेत्रं स्याच्छ्लक्ष्णमष्टाङ्गुलोन्मितम्। मुद्गच्छिद्रं गृध्रपक्षनालिकापरिणाहि च ॥ ९१ ॥ शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः। कुरुते परिवृद्धिश्च वस्तिः सम्यगुपासितः ॥ ९२ ॥ दिवा शीते वसन्ते च स्नेहवस्तिः प्रदीयते। ग्रीष्मवर्षाशरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् ॥९३॥ न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वाऽनुवासयेत्। मदं मूर्च्छांश्च जनयेद्द्विधा स्नेहः प्रयोजितः ॥ ९४ ॥

द्विधा-भोजने वस्तौ च ॥

रूक्षं भुक्तवतोऽत्यन्तं बलं वर्णश्च हापयेत्। युक्तस्नेहमतो जन्तुं भोजयित्वाऽनुवासयेत् ॥ ९५ ॥

युक्तस्नेहं-यथोचितस्नेहं। भोज्य-भोजयित्वेत्यर्थः ॥

व्रणमें पिचकारी लगानी हो तो नली आठ अंगुलकी और मूँगके समान छिद्रवाली और गीधके पंखके सदृश मोटी होनी चाहिये। भलीभांति वस्तिके सेवन करनेसे शरीर पुष्ट

तथा वर्ण उत्तम होता है, बल बढता है, आरोग्यकी प्राप्ति और आयुकी वृद्धि होती है। शीतकालमें और वसन्तऋतुमें स्नेहकी वस्ति दिनमें देना उत्तम है और ग्रीष्मऋतुमें, वर्षाऋतुमें तथा शरदृऋतुमें स्नेहकी वस्ति रात्रिमें देनी उत्तम है। रोगीको अधिक घी अथवा तेलका भोजन कराकर अनुवासनवस्ति नहीं देवे, कारण कि-भोजनमें और पिचकारीमें ऐसे दोवार स्नेहका उपयोग होनेसे मद और मूर्च्छा उत्पन्न होती है । जिसने अत्यन्त रूक्ष अन्न खाया हो उसको वस्ति देवे तो बल और वर्णका नाश होता है, इस कारण रोगीको यथा योग्य घीवाला अन्न खिलाकर पश्चात् वस्ति देवे ॥

हीनमात्रावुभौ वस्ती नातिकार्यकरौ स्मृतौ । अतिमात्रौ तथाऽऽनाहक्लमातीसारकारकौ ॥ ९६ ॥

उभौवस्ती--अनुवासनिरूहाख्यो ॥

उत्तमा स्यात् पलैः षड्भिर्मध्यमा स्यात्पलैस्त्रिभिः । पलार्धयर्द्धेन हीना स्यादुक्तमात्राऽनुवासने ॥ ९७ ॥ शताह्वासैन्धवाभ्याञ्च देयं स्नेहे च चूर्णकम् । तन्मात्रोत्तममध्यान्त्या षट्चतुर्द्वयमाषकैः ॥ ९८ ॥ विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातबलाय च । भुक्तान्नायानुवास्याय वस्तिदेयोऽनुवासनः ॥ ९९ ॥ अथानुवास्यं त्वभ्यक्तमुष्णाम्बुस्वेदितं शनैः । भोजयित्वा यथा शास्त्रं कृतचंक्रमणं ततः । उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं योजयेत् स्नेहवस्तिना ॥ १०० ॥

उष्णाम्बुस्वेदितम्--उष्णाम्बुनां स्नापितम् ॥

सुप्तस्य वामपार्श्वेन वामजंघाप्रसारिणः । कुञ्चितापरजंघस्य नेत्रं स्निग्धे गुदे न्यसेत् ॥ १०१ ॥ बद्धं वस्तिमुखं सूत्रैर्वामहस्तेन धारयेत् । पीडयेद्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः ॥ १०२ ॥ जृम्भाकासक्षयादींश्च वस्तिकाले न कारयेत् । त्रिंशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो वस्तेस्तु पीडिते ॥ १०३ ॥ ततः प्रणिहिते स्नेहे उत्तानो वाक्छतं भवेत् । स्वजानुनः करावर्त्तं कुर्याच्छोटिकया पुनः ॥ १०४ ॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवैष निश्चयः । निमिषोन्मेषणं पुंसामङ्गुल्या छोटिकाऽथ वा ॥ १०५ ॥ गुर्वक्षरोच्चारणं वा स्यान्मात्रेयं स्मृता बुधैः । प्रसारितैः सर्वगात्रैर्यथावीर्यं प्रसर्पति ॥ १०६ ॥

यथावीर्यं--स्नेहादि ।

ताडयेत्तलयोरेनं त्रींस्त्रीन्वारान्छनैः शनैः। स्फिजोश्चैव तथा श्रोणी शय्याञ्चैवोत्क्षिपेत्ततः ॥ १०७ ॥ स्फिजोश्चैनं स्वपाणिभ्यां पूर्ववत्ताडयेद्बुधः । शय्यां च पादतस्तस्य त्रींन्वारानुत्क्षिपेत्ततः । जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम् ॥ १०८ ॥

अनुवासन और निरूह नामक दोनों वस्ति जो अल्पमात्रासे दी जावें । तो योग्य कार्य नहीं करती और अधिकमात्रासे दी जावें तो अफारा, ग्लानि और अतीसारको उत्पन्न करती हैं। अनुवासनवस्तिमें स्नेहकी छः पलकी मात्रा उत्तम जाननी, तीन पलकी मात्रा मध्यम और डेढपलकी कनिष्ठ मात्रा जाननी । स्नेहमें सौंफका और सेंधानमकका चूर्ण डाले. इस चूर्णकी मात्रा छः मासेकी उत्तम, चार मासेकी मध्यम और दो मासेकी कनिष्ठ मात्रा जाननी। रेचन लेनेसे सात दिन व्यतीत होनेपर जिसके शरीरमें बल आगया हो, ऐसे रोगीको भोजनके पश्चात् अनुवासन वस्ति देवे । रोगीको भली भांति तेल मलकर धीरे धीरे उष्ण जलसे

स्वेदित करके भोजन करावे और पश्चात् शास्त्रकी रीतिके अनुसार चारोंओर फिराकर मल, मूत्र तथा वायुका त्यागकराकर अनुवासनवस्ति देवे । रोगीको बांई करवटसे सुलाकर बांई जांघको फैला देवे और दाहिनी जांघको सकोड लेवे, फिर गुदाको चिकनी करके पश्चात् उसमें नली रक्खे, फिर धीर बुद्धिवाला वैद्य डोरेसे बँधी हुई पिचकारीके मुखको वाम हाथसे पकडकर दायें हाथसे मध्यवेगसे दाब देवे पिचकारी देनेके समयमें रोगीको जँभाई, खांसना और छींकना आदि त्याग देना चाहिये । पिचकारीके दबानेका काल तीस मात्रा तकका जाने । अपने घुटुनेपर हाथ फेरके एक चुटकी बजावे अथवा नेत्र, मींचकर खोले अथवा एक गुरु अक्षर जैसे ए का उच्चारण करे तो उतने समयकी एक मात्रा होती है। शरीरमें स्नेह भलभांति पहुंचनेके पीछे सौ मात्रातक अर्थात् जबतक सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण हो, उस समयतक सम्पूर्ण शरीर चित्त करके सोवे कि, जिससे सम्पूर्ण शरीरमें स्नेह फैल जाय । पश्चात् धीरे धीरे रोगीके पांवोंके दोनों तलुओंमें वैद्य तीन तीन वार अपने हाथके तलुएसे ठोके, ऐसे ही दोनों कूले ठोके। पश्चात् उसकी शय्या उचकाकर अपने हाथसे पूर्ववत् तीन वार ठोके फिर पाँवोंकी ओरकी शय्या उचकावे, इस प्रकार विधान होनेके पीछे रोगीको सुखसे निद्रा करावे ॥९६-१०८॥

सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु । उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ॥ १०९ ॥

उपद्रवस्थाने-उषचोषाविति सुश्रुते पाठः ॥

जीर्णान्नमथ सायाह्नेस्नेहे प्रत्यागते पुनः । लघ्वन्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निस्तु-नरो यदि ॥ ११० ॥ अनुवासिताय दातव्यमितरेऽह्नि सुखोदकम् । धान्य-शुण्ठीकषायं वा स्नेहव्यापत्तिनाशनम् ॥ १११ ॥

सुखोदकम् उष्णोदकम् । व्यापत्तिर्व्याधिः ॥

अनेन विधिना षड् वा सप्त चाष्टौ नवापि वा । विधेया वस्तयस्तेषामन्ते चैव निरूहणम् ॥ ११२ ॥ दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद्बस्तिवंक्षणौ । सम्यग्दत्ते द्वितीयस्तु मूर्द्धस्थमनिलं जयेत् ॥ ११३ ॥ बलं वर्णश्च जनयेत्तृतीयस्तु प्रयोजितः । चतुर्थपञ्चमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजी ॥ ११४ ॥ षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एव च । अष्टमो नवमश्चापि मज्जानश्च यथाक्रमम् ॥ ११५ ॥

यथाक्रममिति वचनात् अष्टमोऽस्थि स्नेहयेत् ॥

एवं शुक्रगतान्दोषान्द्विगुणः साधुः साधयेत् ॥ ११६ ॥

अष्टादशदिवसावधिकः वस्तिः ॥

अष्टादशाष्टादशकादिनाद्यो ना विषेवते । स कुञ्जरबलोऽश्वस्य ज्वतुल्योऽमरप्रभः ॥ ११७ ॥

जिस रोगीको विना उपद्रव पवनसहित और विष्ठा सहित स्नेह गुदामेंसे तुरन्त निकल जाय उसको भली भांति अनुवासित हुआ जाने। (मूलमें 'उपद्रवं विना' इसके बदले सुश्रुतमें 'उषचोषौ विना' यह पाठ है) स्नेह गुदामेंसे निकलनेके पश्चात् और खाये हुए अन्नके पच जानेपर रोगी जो प्रदीप्त अग्निवाला हो तो उसको सायंकालमें हलका अन्न खानेको देवे फिर दूसरे दिन जिसको अनुवासनवस्ति दी हो उसके स्नेहके विकारोंको नष्ट करनेके लिये उष्णजल पिलावे अथवा धनियांका और सोंठका काढा पिलावे । इस प्रकार छः, सात, आठ अथवा नौ अनुवासनवस्ति देवे और सम्पूर्ण वस्ति देनेके पश्चात् अन्तमें निरूहणवस्ति देवे । पहिली वस्तिसे मूत्राशय और पेडू चिकना होता है, दूसरी वस्तिसे मस्तककी वायु

शान्त होती है, तीसरी वस्तिसे बल ठीक होता है तथा वर्ण उत्तम होता है। चौथी और पांचवीं वस्तिसे बल, रस तथा रुधिर स्निग्ध होता है, छठी वस्तिसे मांस स्निग्ध होता है, सातवीं वस्तिसे मेदा स्निग्ध होती है, आठवीं वस्तिसे हड्डियां स्निग्ध होती हैं और नौवीं वस्तिसे मज्जा स्निग्ध होती है, इस प्रकार अठारह वस्ति देनेसे वायुके सर्व दोष नष्ट होते हैं जो पुरुष अठारह दिनतक अठारह वस्तियोंका सेवन करे, वह पुरुष हाथीके सदृश बलवान्, घोडेके सदृश वेगवाला और देवताओंके सदृश कांतियुक्त होता है ॥१०९-११७॥

रूक्षाय बहुवाताय स्नेहवस्तिं दिनेदिने। दद्याद्वैद्यस्तथाऽन्येषामग्न्याबाधभयात् त्र्यहात्। स्नेहोऽल्पमात्रो रूक्षाणां दीर्घकालमनत्ययः ॥ ११८ ॥

अनत्ययः-अबाधः ॥

तथा निरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते। अथवा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः। तस्याप्यल्पतरो देयो न हि स्निग्धेऽवतिष्ठते ॥ ११९ ॥

अवतिष्ठते-दत्तः स्नेह इति शेषः ॥

अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः। तदाऽङ्गसदनाध्माने शूलं श्वासश्च जायते ॥१२०॥ पक्वाशये गुरुत्वश्च तत्र दद्यान्निरूहणम्। तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधैर्युक्तं फलवर्तिमथापि वा ॥१२१॥ यथाऽनुलोमनो वायुर्मलः स्नेहश्च जायते। तथा विरेचनं दद्यात्तीक्ष्णं नस्यं च शस्यते ॥१२२॥ यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहवर्तिरनिःसृतः। सर्वोऽल्पो व्यावृतो रौक्ष्याद्युपेक्ष्यः स विजानता॥१२३॥ अनायातं त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत्। स्नेहवस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ॥ १२४ ॥ गुडूच्येरण्डपूतीकभार्ङ्गीवृषकरौहिषम्। शतावरीं सहचरं काकनासां पलोन्मिताम् ॥ १२५ ॥ यवमाषातसीकोलकुलत्थान् प्रसृतोन्मितान्। चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च ॥ १२६ ॥ पचेत्तैलाढकं सर्वैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः। अनुवासनमेतद्धि सर्ववातविकारनुत् ॥ १२७ ॥

पूतीकः--करञ्जः। रौहिषम्--ईषत्सुगन्धतृण विशेषः। काकनासाकौआठोडी। प्रसृतम्--पलद्वयम् ॥

षोढा सप्त व्यापदस्तु जायन्ते वस्तिकर्मणः। दूषितात्समुदायेन ताश्चिकित्स्यास्तु सुश्रुतात् ॥ १२८ ॥

समुदायेन--समुचितनेत्रादिसामग्र्या ॥

पानाहारविहाराश्च परिहारश्च कृत्स्नशः। स्नेहपानसमाः कार्या नात्र कार्या विचारणा ॥ १२९ ॥

जो मनुष्य रूक्ष और अधिक वातवाला हो, उसको वैद्य नित्य वस्ति देवे और शेष मनुष्योंको अग्निके बाधके भयसे तीन दिनके अनन्तर वस्ति देवे। रूक्ष शरीरकाले मनुष्योंको अल्पमात्राकी अनुवासनवस्ति देवे तो अधिक कालतक गुण नहीं करती। स्निग्ध मनुष्योंको अल्प मात्राकी निरूहवस्ति देवे तो वह अनुकूल होती है। अथवा जिस मनुष्यको वस्ति देनेके पीछे तुरन्त ही केवल स्नेह निकल जाय उसको भी बहुत थोडी मात्राकी वस्ति देवे, क्योंकि स्निग्ध शरीरमें डाला हुआ स्थिर नहीं रहता। भली भाँति शुद्धि न होनेसे मनुष्यका जो विष्ठासहित स्नेह है, वह पीछे नहीं निकले तो अंग शिथिल होजाता हैं। पेट अफर जाता है, दर्द होता है श्वास और पक्वाशयमें गुरुता

होती है। इस प्रकार हुआ हो तो तीक्ष्ण औषधियोंवाली तीक्ष्ण निरूहवस्ति देवे, अथवा वस्त्रादिककी मोटी बत्ती बनाकर उनमें औषधि डालकर गुदामें प्रवेश करावे कि, जिससे वायु अनुलोम हो और विष्ठासहित स्नेह बाहर निकले ऐसे मनुष्यको विरेचन देना भी उत्तम है और तीक्ष्ण नस्य देना भी उत्तम है। अनुवासनवस्ति बाहर निकलनेपर जिस मनुष्यको कुछ उपद्रव न करे, वह मनुष्य रूक्ष होनेसे उसके शरीरमें सम्पूर्ण स्नेह काममें आगया, यह समझ चतुर वैद्य उसकी उपेक्षा करे अर्थात् उस स्नेहको बाहर निकालनेका यत्न नहीं करे। स्नेह एक रात्रि दिनतक बाहर निकाले, परन्तु उसको निकालनेके लिये दूसरी बार स्नेहकी वस्ति नहीं देवे। गिलोय, अण्ड, करञ्ज, भारंगी, अडूसा, रोहिषतृण, शतावर, कटसरैया और कौआठोडी इन सबको चार चार तोले लेकर और जौ, उडद, अलसी, वेरकी गुठसी तथा कुलथी इन औषधियोंको आठ आठ तोले लेवें, फिर सबको चार द्रोण जलमें पकावे, जब एक द्रोण शेष रहे तब उसमें चार चार तोले सब जीवनीयगणकी औषधियोंके साथ एक आढक तेल पकावे, इस प्रकार पकाये हुए तेलका उपयोग करे। तो वातसम्बन्धी सर्व विकार नष्ट होते हैं। यह अनुवासन तेल कहाता है। वस्तिक्रियामें कुछ विपरीतता होजाय तो बयालीस प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। जो ये रोग उत्पन्न हों तो सुश्रुतके कहे अनुसार नली आदि सामग्रियोंसे उनकी चिकित्सा करे। इस क्रियामें पान-आहार, विहार और सम्पूर्ण निषेध स्नेहपानकी रीतिके अनुसार पाले, इस कार्यमें संशय न करे॥ ११८॥ १२९॥

अथ निरूहवस्तिविधिः।

निरूहवस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणान्तरैः। तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुङ्गवैः॥ १२०॥

कारणान्तरैः--समवायिकारणभेदैः॥

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः। स्वस्थाने स्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम्॥ १३१॥ निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थं पादोत्तरं परम्। मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनं च कुडवास्त्रयः॥१३२॥

परम्=श्रेष्ठम्॥

अतिस्निग्धोऽक्लिष्टदोषः क्षतक्षीणः कृशस्तथा॥ १३३॥

अक्लिष्टदोषः--अदत्तोत्क्लेशन इति यावत्। क्षतक्षीणः--उरःक्षतवान्।

आध्मानच्छर्दिहिक्काऽर्शः कासश्वासप्रपीडितः। गुदशोफातिसारार्तो विषूची कुष्ठसंयुतः॥ १३४॥ गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी। वातव्याधाबुदावर्त्ते वातसृग्विषमज्वरे॥ १३५॥ मूर्च्छातृष्णोदरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च। वृद्धचसृग्दरमन्दाग्निप्रमेहेषु निरूहणम्॥ १३६॥ शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद्बुधः। उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजनम्। मध्याह्ने गृहमध्ये च यथायोग्यं निरूहयेत्॥१३७॥

स्निग्धम्—स्वभ्यक्तम्। स्विन्नम्—उष्णाम्बुस्नापितम्॥

स्नेहवस्तिविधानेन बुधः कुर्यान्निरूहणम्। जाते निरूहे च ततो भवेदुत्कटकासनः॥ १३८॥ तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रन्तु निरूहागमनेच्छया।

अत्र मुहूर्त्तमात्रशब्देन तदपि बाधितम्-निरूहप्रत्यागमनकालको मुहूर्तमात्रः॥

अनायातं मुहूर्तं तु निरूहं शोधनैर्हरेत्। निरूहैरेव मतिमान् क्षारमूत्राम्लसैन्धवैः ॥ १३९ ॥ यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट् पित्तकफवायवः। लाघवं चोपजायेत सुनिरूहं तमादिशेत् ॥ १४० ॥ यस्य स्याद्वस्तिरल्पाल्पवेगो हीनमलानिलः। मूर्च्छार्तिजाड्यारुचिमान् दुर्निरूहं तमादिशेत् ॥ १४१ ॥

अलग अलग औषधियोंके दिलानेसे निरूहवस्तिके अनेक भेद होते हैं और ये भेद होनेसे ही महात्मामुनियोंने उन वस्तियोंके पृथक् पृथक् नाम कहे हैं। पण्डितोंने निरूहवस्तिका दूसरा नाम आस्थापन कहा है, कारण कि, इससे दोषोंकी और धातुओंकी अपने अपने स्थानमें स्थिति होती है। निरूहवस्तिकी सवा प्रस्थकी मात्रा उत्तम जाननी, एक प्रस्थकी मात्रा मध्यम जाननी और तीन पावकी मात्रा निकृष्ट जाननी। अत्यन्त स्निग्ध शरीरवाला, जिसके दोषोंको पकाकर इन्हे स्थानोंसे न निकाले हो उसको, उरःक्षतरोगी, कृश, अफारायुक्त, वमन, हिचकी, बवासीर, खांसी, श्वास, गुदाके रोग, सूजन, अतीसार, विपूचिका और कोढ इन रोगोंसे पीडित तथा गर्भवती स्त्री, मधुमेहवाला और जलोदररोगी इन सबको निरूहवस्ति नहीं देवे। वातसम्बन्धी रोग, उदावर्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, तृषा, उदररोग, अफारा, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, अण्डवृद्धि, रक्तप्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त और हृदयरोग इनसे पीडितोंको विद्वान् वैद्य विधिपूर्वक निरूहणवस्ति देवे, मल, मूत्र तथा अधोवायुके वेगोंका जो त्याग करचुका हो, भूखा उष्णजलसे स्वेदित और तैलादिकका जिसे मालिस की हो ऐसे रोगीको विद्वान् वैद्य मध्याह्नके समयमें घरके भीतर पहिलेके अनुसार यथायोग्य निरूहवस्ति देवे। निरूहवस्ति देनेके पीछे उस पिचकारीको गुदद्वारसे बाहर निकाले और दो घडीतक रोगी उकरू बैठा रहे। दो घडीके भीतर निरूह वस्ति बाहर निकलती है। जो दो घडीमें निरूह वस्तिका द्रव्य बाहर नहीं निकले तो जवाखार गोमूत्र, नींबूका रस और सैंधानमक इनकी पिचकारी मारनेरूप शोधनके उपायसे उस निरूहवस्तिके तेलको बाहर निकाले जिस मनुष्यको क्रमानुसार मल, पित्त, कफ, और वात निकले और शरीरमें लघुता हो तो उस मनुष्यके निरूहवस्ति उत्तम लगी हुई जाने। जिस मनुष्यको अल्पवेगसे पिचकारी बाहर निकले, मल तथा पवन अल्प अल्प निकले, मूर्च्छा, पीडा, जडता और अरुचि हो उसको निरूहवस्ति भली भांति नहीं लगी हुई जानना ॥ १३ ॥ १४१ ॥

विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः। आस्थापने स्नेहवत्योः सम्यग्दाने तु लक्षणम् ॥ १४२ ॥

विविक्तता-दत्तौषधनिः सरणम्।

अनेन विधिना युंज्यान्निरूहं वस्तिदानवित्। द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् ॥ १४३ ॥ सस्नेह एकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह। कषायकटुमूत्राद्याः कफतृष्णास्त्रयो हिताः ॥ १४४ ॥ पित्तश्लेष्मानिलाविष्टे क्षीरयूषरसैः क्रमात्। निरूढं भोजयित्वा च ततस्तमनुवासयेत् ॥१४५॥ सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः। वस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बलायुषी ॥ १४६ ॥ दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः। पश्चात्संशमनीयञ्च दद्याद्वस्तिं विचक्षणः ॥ १४७ ॥

दी हुई औषधि निकल जाय, मनमें प्रसन्नता हो, और व्याधिनिग्रह (रोगोंका घटना) हो, ये स्नेहवस्ति तथा निरुहवस्ति भली भांति

देनेके लक्षण हैं। वस्ति देनेमें यथार्थ चतुर वैद्य इस प्रकारसे निरूहवस्ति देवे। योग्य लगे तो यह वस्ति दूसरी वार तीसरी वार और चौथी वार भी देवे। वायुरोग हो तो स्नेहवाली एक निरूहवस्ति देवे, पित्तका रोग हो तो दूधवाली दो निरूहवस्ति देवे और कफरोग हो तो कसैले, चरपरे और गो मूत्र आदि पदार्थोंको गरम करके इनकी तीन निरूहवस्ति देवे। जो मनुष्य पित्त कफ, और वायुसे घिरा हुआ हो, उसको अनुक्रमसे दूधकी, मूंगके रसकी और मांस रसकी वस्ति देवे। जिसको निरूहवस्ति दी हो, उस मनुष्यको भोजनके पश्चात् अनुवासनवस्ति देवे । सुकुमार शरीरवालेको, वृद्धको और बालकको कोमल वस्ति हितकारक हैं, जो इनको तीक्ष्ण वस्ति दी जाय तो इनके बलका और आयुका नाश होता है। विद्वान वैद्य प्रथम उत्क्लेशनवस्ति देवे, पश्चात् दोषहरवस्ति देवे और तदन्तर संशमनीयवस्ति देवे ॥ १४२-१४७ ॥

अथोत्क्लेशनवस्तिः ।

एरण्डबीजं मधुकं पिप्पली सैन्धवं वचा । हपुषाफलकल्कश्च वस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ॥ १४८ ॥

अण्डीके बीज, महुएकी छाल, पीपल, सैंधानोंन, वच और पलाशीके फलका कल्क इनकी वस्ति देनेको उत्क्लेशनवस्ति कहते हैं कि, जिससे दोष पककर अपने अपने स्थानोंसे छूटकर अलग हो जाते हैं ॥ १४८ ॥

अथ दोषहरवस्तिः ।

शताह्वा मधुकं बिल्वं कौटजं फलमेव च । सकाञ्जिकः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ १४९ ॥

शतावर, महुआ, बेलगिरि, इन्द्रजौ और कांजी इनको गोमूत्रमें पीसकर उससे वस्ति देवे उसको दोषहरवस्ति कहते हैं कि, जिससे वात आदिक दोषोंका नाश होता है ॥१४९॥

अथ शमनवस्तिः ।

प्रियङ्गुर्मधुकं मुस्ता तथैव च रसाञ्जनम् सक्षीरःशस्यते वस्तिर्दोषाणां शमनः स्मृतः ॥ १५० ॥

फूलप्रियंगु (ककूँदनीके बीज), महुआ, नागरमोथा और रसौंत इनको दूधमें पीसकर उससे वस्ति देवे, यह संशमनीयवस्ति कहाती है कि, जिससे दोषोंका शमन होताहै ॥१५०॥

लेखनवस्तिः ।

त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः । ऊपकादिप्रतीवापैर्वस्तयो लेखनाः स्मृताः ॥ १५१ ॥

हरड, बहेडा और आमलोंका क्वाथ, गोमूत्र शहत और जवाखार इनसे जो वस्ति देवे उसको लेखनवस्ति कहते हैं, ये वस्ति लेखन हैं ॥ १५१ ॥

अथ बृंहणवस्ति ।

बृंहणद्रव्यनिष्क्वाथैःकल्कैर्मधुरकैर्युताः । सर्पिर्मांसरसोपेता वस्तयो बृंहणाः स्मृताः ॥ १५२ ॥

धातुओंको बढानेवाले पदार्थोंका क्वाथ मधुर पदार्थोंका कल्क, घी और मांसके रससे जो वस्ति देवे वह बृंहणवस्ति कहाती है, इस वस्तिसे धातुओंकी वृद्धि होती है ॥ १५२ ॥

अथ पिच्छिलवस्तिः ।

बदर्यैरावतीशेलुशाल्मलीपुष्पजांकुराः १५३

ऐरावती (नारंगी) शेलुः (बहुआर) ।

क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिलसंज्ञिताः । अजोरभ्रैणरुधिरैर्युक्ता देया विचक्षणैः ॥ १५४ ॥

अजः-छागः उरभ्रो मेषः । एणः-कृष्णमृगः ।

मात्रा पिच्छिलवस्तीनां पलैर्द्वादशभिर्मताः ॥ १५५ ॥

बेर, नारंगी, शेलु (निसारे), शेमलके फूलोंके अंकुर इनको दूधमें पकाकर मधु डालकर बकरेके, घोडेके तथा काले हिरणके रुधिरके साथ जो वस्ति दी जाय वह पिच्छिलवस्ति कहाती है, इस वस्तिसे शरीरमें पिच्छिलता होती है। पिच्छिलवस्तिकी मात्रा बारह पलकी जाननी ॥ १५३-१५५ ॥

अथ निरूहमात्रा विधिः।

दत्त्वाऽदौ सैन्धवस्याक्षं मधुनः प्रसृतिद्वयम्। विनिर्मथ्य ततो पश्चात्स्नेहस्य प्रसृतित्रयम् ॥ १५६ ॥ एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत्। सम्मूर्च्छिते कषायन्तु चतुःप्रसृतिसम्मितम् ॥ ॥ १५७ ॥ गृह्णीयाच्च तदावापमन्ते द्विप्रसृतोन्मितम्। क्षिप्त्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं कुशलो भिषक् ॥१५८॥ एवं प्रकल्पितो वस्तिर्द्वादशप्रसृतिर्भवेत्। वाते चतुष्पलं क्षाद्रं दद्यात् स्नेहस्य षट्पलम् ॥ १५९ ॥ पित्ते चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहं पलत्रयम्। कफे तु षट्पलं क्षौद्रं क्षिपेत्स्नेहं चतुष्पलम् ॥ १६० ॥

प्रथम एक तोला सेंधानोंन लेकर सोलह तोले शहद डालकर खूब पीसे, पश्चात् उसमें चौबीस तोले स्नेह डालकर सबको मर्दन करके खूब मिला लेवे, पश्चात् उसमें आठ तोले कल्क डालकर घोंट लेवे, फिर बत्तीस तोले क्वाथ और तत्पश्चात् सोलह तोले योग्य चूर्ण डालकर सबको खूब मर्दन करे, फिर विद्वान् वैद्य उससे निरूहवस्ति देवे, इस प्रकार की हुई वस्ति तोलमें बारह प्रसृति होती है। विशेष यह है कि, वातकी अधिकता हो तो चार पल शहद और छः पल स्नेह डाले, पित्तकी अधिकता हो तो चार पल शहद और तीन पल स्नेह डाले, और कफकी अधिकता हो तो छः पल शहद और चार पल स्नेह डाले१५६-१६०॥

अथ मधुतैलकवस्तिः।

एरण्डक्वाथतुल्यांशं मधुतैलं पलाष्टकम्। शतपुष्पापलार्द्धेन सैन्धवार्धेन संयुतम्। मधुतैलकसंज्ञोऽयं वस्तिर्दारुविलोडितः ॥१६१॥ मेदोगुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्त्तनाशनः। बलवर्णकरश्चैव वृष्यो दीपनबृंहणः ॥ १६२ ॥

आठ पल एरंडकी जडका क्वाथ करके उसमें चार पल शहद, चार पल तेल, आधा पल दो तोले सौंफ और आधा पल सेंधानमक डालकर सबको रईसे विलोवे मथे, यह मधुतैलकवस्ति कहाती है। इस पिचकारीसे बलकी वृद्धि होती है, वर्ण उत्तम होता है, मैथुनकी शक्ति बढती है, अग्नि प्रदीप्त होती है, धातुकी पुष्टि होती है और मेद, गुल्म, प्लीहा, मल तथा उदावर्त इन सबका नाश होता है ॥ १६१-१६२ ॥

अथ यापनवस्तिः।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतं प्रसृतं भवेत्। हपुषा सैन्धवाक्षांशो वस्तिः स्याद्यापनः परः ॥ १६३ ॥

शहद, घी, दूध, और तेल इनको आठ २ तोले लेकर उसमें एक तोला हाऊबेर और एक तोला सेंधानोंन डालकर घोंटे, इसकी जो पिचकारी करे उसको यापनवस्ति कहते हैं। यह वस्ति पाचन और दस्तावर है ॥ १६३ ॥

अथ युक्तरथवस्तिः।

एरण्डमूलनिष्क्वाथो मधुतैलं ससैन्धवम्। एष युक्तरथो वस्तिः सवचापिप्पलीफलः ॥ १६४ ॥

एरंडकी जडका क्वाथ करके उसमे शहत, तेल, सेंधानोंन, वच और पीपल डाले तो वह पिचकारी युक्तरथवस्ति कहाती है ॥ १६४ ॥

अथ सिद्धवस्तिः।

पञ्चमूलस्य निष्क्वाथैस्तैलं मागधिका मधु। ससैन्धवः सयष्ट्याह्वः सिद्धवस्ति-

रिति स्मृतः ॥ १६५ ॥ स्नानमुष्णोदकैः कुर्याद्दिवास्वप्नमजीर्णताम् । वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत् स्नेहवस्तिवत् ॥ १६६ ॥

पंचमूलक क्काथमें तेल, पीपल, सैंधानमक तथा मुलहठी डालकर जो पिचकारी दीजाय वह सिद्धवस्ति कहाती है । वस्ति लेने वाले मनुष्यको गरम जलसे स्नान करना, दिनमें सोना, और अजीर्णकारक पदार्थ खाना इन सबोंको छोड देना चाहिये और सब स्नेहवस्तिकी रीतिके अनुसार आचरण करे ॥ १६५–१६६ ॥

अथोत्तरवस्तिविधिः ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञितम् । निरूहादुत्तरो यस्मात्तस्मादुत्तरसंज्ञकः ॥ १६७ ॥ द्वादशांगुलकं नेत्रं मध्ये च कृतकर्णिकम् । मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ॥ १६८ ॥ पञ्चविंशतिवर्षाणामधो मात्रा द्विकर्षिकी । तदूर्ध्वं पलमात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरैः ॥ १६९ ॥ अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनः । स्थितस्य जानुमात्रे च पीठे स्निग्धशलाकया ॥ १७० ॥ स्निग्धया मेढ्रमार्गे तु ततो नेत्रं नियोजयेत् । शनैः शनैर्घृताभ्यक्तं मेढ्ररन्ध्रांगुलानि षट् ॥१७१॥ ततोऽवपीडयेद्वस्तिं शनैर्नेत्रं विनिर्हरेत् । ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहवस्तिक्रमो हितः ॥ १७२ ॥

अब इनके उपरान्त उत्तरवस्ति–लिंगमें अथवा योनिमें पिचकारी मारनेकीविधि कहता हूँ, यह वस्ति निरूहणवस्ति देनेके पश्चात् देनी चाहिये, इसी कारण इनको उत्तरवस्ति कहते हैं । मध्यमें गौके कानके समान कर्णिकावाली मालतीके फूलकी डंडीके समान और सरसों जिस छिद्रमें निकल जायँ इतने बडे छेदवाली, ऐसी बारह अंगुलकी नली बनावे । पच्चीश वर्षसे हीन अवस्थावालेको इस वस्तिमें स्नेहकी दो तोलेकी मात्रा, पच्चीस वर्षसे अधिक अवस्थावालोंको चार तोलेकी मात्रा देवे, ऐसा उत्तम वैद्य कहते हैं । निरूहवस्तिसे शुद्ध हुए और स्नानसे तथा भोजनसे तृप्त हुए पुरुषको आसनपर उकरू बैठाकर उसके लिंगमें प्रथम जैसी चाहिये ऐसी चिकनी सलाई लेकर उसके मार्गकोसाफ करके पश्चात् घीसे भरी छः अंगुलका नली धीरे धीरे लिंगके छिद्रमें डाले, पश्चात वस्तिको दबाकर पश्चात् लिंगमेंसेस्नेह बाहर निकाले तब पूर्वोक्त कही हुई स्नेहवस्तिकी रीतिके अनुसार करे, इस प्रकार करना हितकारी है ॥ १६७–१७२ ॥

स्त्रीणां कनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशांगुलम् । मुद्गप्रवेशयोग्यश्च योन्यन्तश्चतुरंगुलम् ॥ १७३ ॥ द्व्यंगुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं नियोजयेत् । मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ॥१७४॥ शनैर्निष्कम्पमाधेयं सूक्ष्मं नेत्रं विचक्षणैः । मालतीपुष्पवृन्ताभं नेत्रमित्युदितं पुनः ॥ १७५ ॥

सूक्ष्मशब्दाभिधानं बालानां ततोऽपि नेत्रस्य सूक्ष्मताबोधनार्थम् ।

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी मूत्रमार्गे पलोन्मानं बालानां च द्विकार्षिकी ॥ १७६ ॥ उत्तानायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वै विचक्षणः । अप्रत्यागच्छति भिषग् वस्तावुत्तरसंज्ञिते ॥१७७॥ भूयो वस्तिं विदध्याच्च संयुक्तं शोधनैर्गुणैः । फलवर्त्तिं विदध्याद्यो योनिमार्गे दृढां भिषक् ॥ १७८ ॥ सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धां शोधनद्रव्यसंयुताम् । दह्यमाने तथा वस्तौ दद्याद्वस्तिं विशारदः । क्षीरवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन वा ॥१७९॥

दह्यमाने वस्तौ यस्मिन् स्थाने वस्तिर्दत्त-स्मिन् दह्यमाते ॥

वस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्त्तवजा रुजः। हन्यादुत्तरवस्तिस्तु नोचितो मेहिने क्वचित् ॥ १८० ॥ सम्यग्दत्तस्थ लिङ्गानि व्यापदः क्रम एव च। वस्ते-रुत्तरसंज्ञस्य समानाः स्नेहवस्तिना १८१

स्त्रियोंके अंगमें उत्तरवस्तिकी क्रिया करनी हो तो कनिष्ठ अंगुलीके सदृश मोटी और जिसमें मूंग निकल जाय इतने छेदवाली दश अंगुलकी सूक्ष्म नली वनवावे, यह नली गर्भा शयमें चार अंगुल डाले और मूत्रके मार्गमें डालनी हो तो दो अंगुल डाले। बालकोंको मूत्रकृच्छ्रका विकार हुआ हो तो इससे भी अधिक सूक्ष्म नली वनवाकर हाथको कांपनेसे रोककर धीरे २ लिंगके भीतर एक अंगुल डाले, ये नली मालतीके फूलकी डंडीके सदृश चाहिये, ऐसी ऊपर कहआये हैं। स्त्रियोंके गर्भाशयमें स्नेहकी आठ तोलेका मात्रा करे और मार्गमें चार तोलेकी मात्रा करे। बाल कोंके लिंगमें दो तोलेकी मात्रा करे। विद्वान् वैद्य स्त्रीको सीधी सुलाकर घुटने ऊपरको करके पिचकारी मारे ये उत्तरवस्ति बाहर न निकले तो वैद्य शोधनगुणवाली दूसरी पिच-कारी मारे अथवा योनिके मार्गमें सूतसे बनी चिकनी और शोधनपदार्थोंको संयुक्त करके दृढ फलवर्त्ती प्रवेश करावे। जिस स्थानमें पिचकारी मारी, हो उसी स्थानमें दाह हो तो चतुर वैद्य दूधवाले वृक्षोंके क्वाथसे अथवा शीतल जलसे दूसरी पिचकारी मारे यह उत्तर-वस्ति पुरुषोंके वीर्यके दोषों को और स्त्रियोंके ऋतुसम्बन्धी दोषोंको नष्ट करती है। प्रमेह-रोगवालोंको कदापि उत्तरवस्ति भली भांति होनेके लक्षण, भली भांति न देनेसे हुई पीडा और अन्य समस्त अनुक्रम स्नेहकी वस्तिके सदृश ही जानने ॥ १७३-१८१ ॥

फलवर्तिविधिः।

घृताभ्यक्ते गुदे क्षिप्ता श्लक्ष्णा स्वाङ्गु-ष्ठसन्निभा। मलप्रवर्तिनी वर्तिः फलव-र्तिश्च सा स्मृता ॥ १८२ ॥

मल निकलनेके लिये गुदामें घी चुपडकर रोगीके अँगूठेके सदृश मोटी और चिकनी बत्ती प्रवेश करे, इसको वैद्यलोग फलवर्त्ति कहते हैं ॥ १८२ ॥

नस्यग्रहणविधिः।

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौ-षधम्। नावनं नस्यकर्मेति तस्य नाम-द्वयं मतम् ॥ १८३ ॥

नस्यकर्म--नासिकायां कर्म चिकित्सायेन तत् नस्यकर्म ॥

नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा। रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ॥ १८४ ॥ कफपित्तानिलध्वंसि पूर्वमध्यापराह्णके। दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे ॥ १८५ ॥

दिनस्य त्रिधा विभक्तस्य पूर्वभागादौ।

नाकसे ग्रहण करनेकी जो औषधि हो उसको विद्वान् नस्य कहते हैं, इसके नावन और नस्यकर्म ये दो नाम है। जिससे नाककी चिकित्सा होती है, इस कारण उसको नस्य-कर्म कहते हैं। रेचन और स्नेहन ये नस्यके दो भेद हैं। जिस नस्यसे भीतरके पदार्थोंकी हीनता हो, वह रेचन कहाता है और जिस नस्यसे भीतरके पदार्थोंकी वृद्धि की जाय वह स्नेहन कहाता है। कफ नष्ट करना हो तो प्रातः-कालके समयमें नस्य देवे, पित्तका नाश करना हो तो मध्याह्न समयमें नस्य देवे और वातको नष्ट करना हो तो सायंकाल समयमें नस्य देवे। जो रोग भयंकर हो तो रात्रिमें भी नस्य देवे ॥ १८३-१८५ ॥

नस्यग्रहणे वर्ज्याः।

नस्यं त्यजेद्भोजनान्ते दुर्दिने चापतर्पितः। तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी ज्वरदूषितः ॥ १८६ ॥ अजीर्णी दत्तवस्तिश्च पीतस्नेहोदकासवः। क्रुद्धः शोकाभिभूतश्च तृषार्त्तो वृद्धबालकौ। वेगावरोधी श्रान्तश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत् ॥ १८७ ॥ (नस्यमिति शेषः)॥ अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत् ॥ अशीतिवर्षादूर्ध्वञ्च नावनं नैव दीयते। १८८ ॥

भोजनके पश्चात् तत्काल, मेघोंसे छायेहुए दिनमें लंघन करके नवीन प्रतिशाय रोगमें, गर्भिणी स्त्रीको, ज्वरसे दूषित हुएको, अजीर्णमें, जिसको वस्ति दी हो उसको, जिसने स्नेह, जल अथवा आसव तुरंत पिया उसको क्रोध हो तब, शोकाकुलको, प्यासा, वृद्ध, बालक, मलमूत्रका वेग रोकनेवाला, परिश्रमी और जिसको स्नान करनेकी इच्छा हो इन सबको नस्य देना वर्जित है बालक जबतक आठ वर्षका न हो तबतक उसको नस्य नहीं देवे और अस्सी वर्षसे ऊपरके वृद्धको भी नस्य नहीं देवे ॥ १८६-१८८ ॥

रेचननस्यविधानम्।

अथ वैरेचनं नस्यं ग्राह्यं तैले सुतीक्ष्णके। तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहै क्वाथै रसैस्तथा ॥ १८९ ॥

तीक्ष्ण तेलोंसे अथवा तीक्ष्ण औषधियोंमें पकाये हुए स्नेहोंसे अर्थात् तेलोंसे, क्वाथोंसे वा रसोंसे रेचन नस्य देवे ॥ १८९ ॥

रेचनस्य मात्रा।

नासिकारन्ध्रयोरष्टौ षट् चत्वारश्च विन्दवः। प्रत्येकं रेचनं योग्यं मुख्यमध्यालपमात्रया ॥ १९० ॥

नासिकाके दोनों छिद्रोंमें रेचन, नस्य देवे, प्रत्येक छिद्रमें आठ आठ बूँदें डाले, यह उत्तम मात्रा है। छः छः बूँदें डाले, यह मध्यम मात्रा है और चार चार बूँदें डाले, यह कनिष्ठ मात्रा है ॥ १९० ॥

नस्यौषधप्रमाणम्।

नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम्। हिङ्गु स्याद्यवमात्रन्तु माषैकं सैन्धवं मतम् ॥ १९१ ॥ क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात्पानीयञ्च त्रिकार्षिकम्। कार्षिकं मधुरद्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत्॥१९२॥

नस्यकर्ममें तीक्ष्ण औषधि आधा तोला लेवे हींग एक जौ भर लेवे सैंधानमक एक मासा लेवे, दूध आठ शाण लेवे. पानी तीन तोले और मधुर द्रव्य एक तोलाभर लेवे १९१।१९२

रेचननस्यस्य द्वौ भेदौ।

अवपीडः प्रधमनो द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ। शिरोविरेचनस्यार्थे तौ तु देयो यथायथम् ॥ १९३ ॥

रेचननस्यके अवपीड और प्रधमन इन नामवाले और दो भेद हैं। नस्य देकर मस्तकको खाली करना हो तो योग्यरीतिसे इन दोनों भेदोंका उपयोग करे ॥

नस्यभेदद्वयलक्षणम्।

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः। सोऽवपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ १९४ ॥ षडङ्गुला द्विवक्त्रा या नाडी चूर्णतया धमेत्। तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हितम् ॥ १९५ ॥

जिसके साथ तीक्ष्णपदार्थ मिले हों ऐसी औषधिका कल्क करके सबको निचोडकर जो रस निकल, वह अवपीड कहाता है। छः अंगुलकी दो मुखवाली नलीमें आधा तोला तीक्ष्ण चूर्ण भरकर मुखसे फूँककर उस चूर्णको नाकमें चढा देवे, उसको प्रधमन कहते हैं ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

रेचनस्नेहननस्यस्योपयोगः।

ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसंक्षये। अरोचके प्रतिश्याये शिरःशूले च पीनसे ॥ १९६ ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषु नस्यं वैरेचनं हितम्। भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहेन शस्यते ॥ १९७ ॥ गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे। मनोविकारे कृमिषु पूज्यते चावपीडनम् ॥ १९८ ॥ अत्यन्तोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते। चूर्णं प्रधमनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥ १९९ ॥

ऊर्ध्वजत्रुगत अर्थात् हंसलीके ऊपरके रोगोंमें, कफसे उत्पन्न हुए रोगोंमें, स्वरके क्षयमें, अरुचिमें, जुकाम, शिरके दर्दमें, पीनसमें, सूजन, मृगी तथा कोढमें रेचन नस्य देना हितकारी है। डरे हुएको, स्त्रियोंको, कृश मनुष्योंको और बालकोंको स्नेहन नस्य देना उत्तम है। गलेके रोगमें, सन्निपातमें निद्रामें, विषमज्वरमें, मनके विकारोंमें (अपस्मारादिकोंमें) और कृमिरोगमें अवपीडन नस्य देना योग्य है। अत्यन्त कुपित हुए दोषोंमें और जिनमें ज्ञान नष्ट हो जाय ऐसे रोगोंमें धीर वैद्योंको चूर्णका प्रधमन नस्य देना योग्य है, कारण कि, वह अत्यन्त तीक्ष्ण है ॥ १९६-१९९ ॥

रेचननस्यौषधिगुणौ।

नस्यं स्याद् गुडशुण्ठीभ्यां पिप्पलीसैन्धवेन वा। जलपिष्टेन कर्णाक्षिनासामूर्द्धभवा गदाः ॥ २०० ॥ मन्याहनुगलोद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठजाः। मधूकसारकृष्णाभ्यां वचामरिच सैन्धवैः ॥ २०१ ॥ नस्यं कोष्णाम्भसा पिष्टं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम्। अपस्मारे तथोन्मादे सन्निपातेऽपतन्त्रके ॥ २०२ ॥

सोंठके चूर्णको तथा गुडको एकत्र करके अथवा पीपल तथा सैंधको पानीमें पीसकर उससे नस्य देवे तो कानके नेत्रोंके, नाकके, मस्तकके, गरदनके, ठोढीके, बाहुओंके और पीठके रोग नष्ट होते हैं। महुएका सत, पीपल, बच, मिरच और सैंधा इनको थोडे थोडे उष्ण जलमें पीसकर उससे नस्य देवे तो मृगी, उन्माद, सन्निपात और अपतन्त्रक इनकी असंज्ञाका नाश होता है ॥ २००-२०२ ॥

रेचनस्यापरविधिः।

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च। बस्तमूत्रेण संपिष्टं नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ २०३ ॥

सैंधानोंन, सहिंजनके बीज, सरसों और कूठ इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर इससे नस्य देवे तो तन्द्रा नष्ट होती है ॥ २०३ ॥

प्रधमननस्यौषधिः।

रोहितस्य च पित्तेन भावितं मरिचं वचा। कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः ॥ २०४ ॥

मिरच, वच, और कायफल इनका चूर्ण करके रोहेडा मछलीके पित्तकी भावना देकर नलीसे प्रधमन नस्य देवे ॥ २०४ ॥

बृंहणस्नेहननस्यकल्पना।

अथ बृंहणनस्यस्य कल्पना कथ्यतेऽधुना। मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ॥ २०५ ॥ मर्शस्य तर्पणी मात्रा मुख्या शाणैः स्मृताऽष्टभिः। मध्यमा तु चतुःशाणैर्हीना शाणमिता मता ॥ २०६ ॥ एकैकस्मिंस्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः। मर्शस्य द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषबलाबलम्। एकान्तरं द्व्यन्तरं वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ २०७ ॥

एकान्तरम्-एकं दिनमन्तरं नस्यशून्यं यत्र तत् एकान्तरम् ॥

त्र्यहं पञ्चाहमथवा सप्ताहं वा सुयन्त्रितः ॥

अथवा त्र्यहम्-त्रीण्यहानि यावत् प्रतिदिनम् । एवं पञ्चाहं सप्ताहम् । सुयन्त्रितः—सावधानः । यथा छिक्का न भवति ॥

वमनरूपं शोधनम् ॥

मर्शे शिरोविरेकेच व्यापदो विविधाः स्मृताः ॥ २०८ ॥ दोषोत्क्लेशात्क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् । दोषोत्क्लेशनिमित्तासु युञ्ज्याद्वमनशोधनम् ॥ २०९ ॥

वमनरूपं शोधनम् ॥

अथ क्षयनिमित्तासु यथास्वं बृंहणं हितम् । शिरोनासाशिरोगेषु सूर्यावर्त्तार्द्धभेदके ॥ २१० ॥ दन्तरोगे बले हीने मन्याबाह्वंसजे गदे । मुखशोषे कर्णनादे वातपित्तगदे तथा ॥ २११ ॥ अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने । पूज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः ॥२१२॥

अब बृंहण नस्यकी विधि कहते हैं । इसके मर्श और प्रतिमर्श इस भांति दो भेद हैं । तर्जनी अंगुलीसे गिरी हुई आठ बूँदोंकी जो मात्रा हो वह शाण कहाती है, इस शाणसे जो स्नेहननस्य दिया जावे यह वह मर्श कहाता है । आठ आठ शाणकी मात्रा एक एक नथनेमें डाली जाय वह मर्शकी उत्तम मात्रा जाननी चार चार शाणकी मात्रा एक एक नथनेमें डाली जावे तो मर्शकी मध्यम मात्रा जाननी और एक एक शाणकी मात्रा एक एक नथनेमें डाली जाय मर्शकी कनिष्ठ मात्रा जाननी । (जो एक एक नाकमें दो दो बूँद ही डाली जायँ वह प्रतिमर्श कहाती है) । विद्वान् वैद्य दोषका बलाबल देखकर एक दिनमें दो तीन बार अथवा एक दिनके अन्तरसे वा दो दिनके अन्तरसे मर्श नस्यका उपयोग करावे अथवा तीन, पांच अथवा सात दिन तक बराबर नस्यका उपयोग करावे, परन्तु उसमें रोगीको छींकना आदि न हो, ऐसी सावधानतासे रक्खे । मर्श नस्य देनेके समयमें स्थानसे भ्रष्ट हुए दोष कुपित हुए हों तो उससे और मस्तकके खाली करनेको रेचन नस्य देनेसे मेद-आदिके क्षय होनेसे अनेक प्रकारकी व्याधियां उत्पन्न होती हैं । जो दोषके कोपसे रोग उत्पन्न हों तो वमनरूप शोधनका उपयोग करे और मेद आदिके क्षयसे रोग उत्पन्न हों, तो फिर स्नेहका उपयोग करे । मस्तकरोग, नासिकाके रोग, नेत्ररोग, सूर्यावर्त्तरोग आधीशीशी, दन्तरोग, बलका क्षय, गर्दन, भुजा, कन्धा इनके रोगोंमें, मुखशोष, कर्णनाद, वातपित्त सम्बन्धी विकार, विना समय बालोंका श्वेत हो जाना, जिसमें दाढी, मूँछ बिलकुल गिर पडे ऐसा इनमें स्नेहोंसे अथवा मधुर पदार्थोंके रससे स्नेहन नस्य देना योग्य है ॥२०५-२१२

बृंहणस्नेहननस्ययोर्विधिः ।

सशर्करं पयःपिष्टं भृष्टमाज्येन कुङ्कुमम् । नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवा रुजः ॥ २१३ ॥ भ्रूशङ्खाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्तार्द्धभेदकान् । नस्यं स्यादणुतैलेन तथा नारायणेन वा । माषादिना वा सर्पिर्भिस्तत्तद्भेषजसाधितैः ॥ २१४ ॥

शर्कराखण्ड सहित दूधमें घृतसे सिंकी हुई केशरको पीसकर नस्य देवे तो वातरक्तसे हुई पीडायें नष्ट होती हैं, उसी प्रकार भौंह, कपाल, नेत्र, मस्तक तथा कानके रोग, सूर्यावर्त और आधाशीशी ये भी नस्यसे नष्ट होते हैं । अणुतेल, नारायणतेल, माषादितेल अथवा उन्हीं उन्हीं योग्य औषधियोंसे पकाये हुए घीसे भी स्नेहननस्य देवे ॥ २१३ ॥ २१४ ॥

अणुतैलमुक्तं सुश्रुतेन । तद्यथा-- "तिलपरिपीडनोपकरणकाष्ठानि आहृत्य यैरनल्पकालं तिलाः परिपीडितास्तानि अणूनि खण्डशःकल्पयित्वा उलूखले

संकुटच कटाहे पानीयेन आप्लाव्य क्वाथयेत्। ततस्तैलं निःसरति, तत्तैलं हस्तेन जलान्निःसार्य वातघ्नौषधकल्केन पचेत्। तत् अणुतैलमिति। तद्वातरोगहरम्"

अणुतेल बनानेकी विधि सुश्रुतमें इस भांति कही है कि-"तेल पिलनेके कोल्हूकी लकडी कि जिससे अधिक कालतक तेल पिला हो उसको लाकर उसके सूक्ष्म सूक्ष्म टुकडे काटकर ओखलीमें कूटलेवे और पानीसे भरी कढाईमें डालकर नीचे अग्नि बाले, जब, उसमेंसे तेल निकले उस तेलको हथेलीसे निकल लेवे फिर वातनाशक औषधिके कल्कसे पकावे। इसको अणुतेल कहते हैं। यह तेल वातसम्बन्धी रोगों को नष्ट करता है"॥

नस्यस्यान्यो विधिः।

तैलं कफे स्याद्वाते च केवले पवने तथा। दद्यान्नस्यं सदा पित्ते सर्पिर्मज्जनमेव च ॥ २१५॥ माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुबुकरौहिषैः। कृतोऽश्वगन्धया क्वाथो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः॥ २१६॥ कोष्णो नस्यप्रयोगेण पक्षाघातं सकम्पनम्। जयेदर्दितवातश्च मन्यास्तम्भापबाहुकौ ॥ २१७॥ प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्वित्रिबिन्दुमिता मता। प्रत्यकेशो नासिकया स्नेहनेति विनिश्चितम्॥ २१८॥ स्नेहे ग्रन्थिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः। तर्जनी या स्रवेद्बिन्दुः सा मात्रा बिन्दुसंज्ञिता॥ २१९॥ एवंविधैर्बिन्दुसंज्ञैरष्टाभिःशाण उच्यते। स देयो मर्शनस्येषु प्रतिमर्शो द्विबिन्दुकः॥ २२०॥ समयाः प्रतिमर्शो बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश। प्रभाते दन्तकाष्ठान्ते गृहान्निर्गमने तथा॥२२१॥ व्यायामाध्वव्यवायान्ते विण्मूत्रान्तेऽञ्जने कृते। कवलान्ते भोजनान्ते दिवास्वप्नोत्थिते तथा॥ २२२॥ वमनान्ते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते। ईषदुच्छिङ्कनात् स्नेहो यथा वक्त्रं प्रपद्यते। नस्ये निषिक्तं तं विद्यात् प्रतिमर्शप्रमाणतः॥२२३

मात्रा युक्तम्॥

उच्छिष्टं न पिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम्॥ २२४॥

उच्छिष्टम्--नस्यावेशिष्टं॥

कफवातरोगमें और केवल वातमें तेलका नस्य देवे पित्तरोग हो तो सर्वदा घीका और मज्जा नाम चरबीका नस्य देवे। उडद, कौंचके बीज, रयसन, एरंडकी जड, बला, रोहिषतृण और असगन्ध इनका क्काथ करके उसमें हींग तथा सैंधानोन डालकर किंचित् उष्ण करके क्वाथका नस्य देवे तो कंपसहित पक्षाघात अर्दितवात लकवा, गरदनका रहजाना और भुजाओंका रहजाना इन सब रोगोंको नष्ट करता है। नाकके प्रत्येक नथनेमें स्नेहकी दो बूँदे डाले तो इसको प्रतिमर्श नस्य कहते हैं। तर्जनी अंगुलीको स्नेहमें दो पोरुएतक डुबोकर निकाल लेवे उस अंगुलीमेंसे जो बूँद टपके, वह बिंदुरूप मात्रा कहाती है कि, जो मर्शनामक नस्यमें उपयोगी है। प्रतिमर्श नामक नस्यमें ऐसी दो बूँदोंका उपयोग करनेमें आता है शाणरूप मात्रासे जो नस्य दियाजाय वह मर्श कहाता है और दो दो बूँदें जिस नस्यमें दीजायँ, वह प्रतिमर्श कहाता है। विद्वानोंको प्रतिमर्श नस्य देनेके चौदह समय जानने-प्रभात समय १ दँतौनके पश्चात् २, घरसे बाहर निकलते समय ३, व्यायाम करनेके पीछे ४, मार्ग चलकर आनेके पश्चात् ५, मैथुनके पीछे ६, मलत्यागनेके पश्चात् ७, मूत्रके पीछे ८, अंजन लगानेके पीछे ९, केवल खानेके पश्चात् १०, भोजनके पश्चात् ११, दिनमें सोनेके पीछे

१२, वमन करनेके पश्चात् १३ और सायंकालमें १४ प्रतिमर्श नस्य दिया जाता है। किंचित् छींक आनेपर नाकमें डाला हुआ पदार्थ यदि मुखमें आजाय तब जानना कि, प्रतिमर्शकी जैसी मात्रा चाहिये वैसी होचुकी है। नाकमेंसे मुखमें आयेहुये पदार्थको पिवे नहीं बरन् तुरन्त थूंक देवे ॥ २१५ ॥ २२४ ॥

प्रतिमर्शनस्यविषयः ।

क्षीणे तृष्णास्यशोषार्त्ते बाले वृद्धे च पूज्यते ॥ प्रतिमर्शान्न जायन्ते रोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥ २२५ ॥ वलीपलितनाशश्च बलमिन्द्रियजं भवेत् । विभीतं निम्बगम्भारी शिवा शेलुश्च काकिनी ॥ २२६ ॥ एकैकतैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥ २२७ ॥

क्षीण, तृषासे व्याकुल, मुख तथा शोष रोगी और वृद्धको प्रतिमर्श नस्य हितकारी है प्रतिमर्शका उप योग करनेसे हँसलीके ऊपर भागमें रोग उत्पन्न नहीं होते, वली देहमें सिंकुडन पडजाना तथा पलितका नाश होता है और इंद्रियोंकी शक्ति उत्तम होती है। बहेडा, नीम, कम्भारी, हरड, निसोरे और मालकांगनी इनमेंसे एक पदार्थके तेलका नस्य लेनेका अभ्यास करे तो अवश्य पलित विना समय बालोंका श्वेत होजाना नष्ट होता है ॥ २२५ ॥ २२७ ॥

नस्यसामान्यविधिः ।

अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे । देशे वातरजोमुक्ते कृतदन्तनिघर्षणम् । विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नभालगलं तथा ॥ २२८ ॥ उत्तानशायिनं किञ्चित्मलम्बशिरसं नरम् । आस्तीर्णहस्तपादश्च वस्त्राच्छादितलोचनम् ॥ २२९ ॥ समुन्नमितनासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत् । कोष्णेनाच्छिन्नधारेण हेमतारादिशुक्तिभिः । शुक्त्या वा यंत्रयुक्त्या वा प्लोतैर्वा नस्यमाचरेत् ॥ २३० ॥

प्लोतैः-- वस्त्रैस्तदुपलक्षितैस्तूलैरपि ॥

नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकम्पयेत् । न कुप्येन्न प्रभाषेत नोच्छिक्केन्न हसेत्तथा ॥ २३१ ॥ एतैर्हि विहतः स्नेहो नैवान्तः सम्प्रपद्यते । ततः कासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसम्भवः ॥ २३२ ॥ शृङ्गाटकमभिव्याप्य स्थापयेन्न गिलेद्द्रवम् । पञ्च सप्त दशैव स्युर्मात्राः स्नेहस्य धारणे ॥ २३३ ॥ उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासावक्त्रगतं द्रव्यम् । वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत्संमुखं न हि ॥ २३४ ॥

अब नस्य लेनेकी विधि कहता हूँ। दँतौन करनेके पश्चात्, शुद्धि करनेके पीछे और धूमपान कराकर कपालमें तथा गलेमें स्वेदित करनेके पीछे रोगीको वायु तथा धूल से रहित स्थानमें चित्त सुलावे, मस्तकको किंचित् लटकता रहने देवे, हाथ पांव लम्बे करावे, नेत्रोंको वस्त्रसे ढककर और नाककी नोंक ऊँची करके नस्य देवे। सोने अथवा चांदी आदिकी चमचीसे वा सीपसे या किसी यन्त्रकी युक्तिसे वा कपडे अथवा रुईके फोहेसे, बीचमें धार न टूटे इस प्रकार किंचित् उष्ण नस्य नाकमें डाले। नाकमें नस्य जिस समय डाला जाता हो उस समय रोगी मस्तकको नहीं हिलावे, क्रोध नहीं करे किसीसे बोले नहीं, छींक नहीं लेवे और हँसे भी नहीं कारण कि—मस्तक हिलाने आदिसे स्नेह भीतर नहीं पहुँचता और खाँसी, जुकाम, मस्तकपीडा और नेत्रपीडा उत्पन्न होती है। नस्यको कपालकी हड्डीतक पहुँच जाने तक स्थिर रक्खे, जिससे निकल न जाय, पांच सात अथवा दश गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक नस्यको धारण कर रक्खे, पश्चात् बैठकर नाक

मेंसे मुखमें आये हुए द्रवको थूंक देवे, जब थूंक देवे, तब दाहिनी अथवा बांई ओर थूँके, किन्तु सामने नहीं थूँके ॥ २२८॥२३४॥

नस्यदानानन्तरंकर्तव्यं कर्म ।

नीते नस्ये मनस्तापं रजः क्रोधं च सन्त्यजेत् । शयीत निद्रां त्यक्त्वा च प्रोत्तानो वाक्छतं नरः ॥ २३५ ॥ तथा शिरोविरेकान्ते धूमो वा कलवो हितः । नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि प्रयोगतः ॥ २३६ ॥ शुद्धिहीनातियोगा हि विज्ञेयाः शास्त्रचिन्तकैः ।: लाघवं मलसंशुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः ॥ २३७ ॥ चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् । कण्डूः प्रदेहो गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः । मूर्ध्नि हीनविशुद्धेस्तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥ २३८ ॥

हीनविशुद्धेर्हि-ननस्येन विशुद्धिः ।

मस्तुलुङ्गामो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः । शून्यता शिरश्चापि मूर्ध्नि गाढं विरेचिते ॥ २३९ ॥

मस्तुलुंगम्-मस्तकांतःस्नेहः इंद्रियविभ्रमः-इन्द्रियाणाम् अयथाविषयग्रहः ॥

नस्य देनेके पीछे मनमें सन्तापको नहीं आनेदेवे, धूलसे दूर रहे, क्रोधका त्याग करे और जबतक सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण हो तबतक निद्रा नहीं लेवे, चित्त सोता रहे, मस्तकको रेचन नस्यसे खाली करनेपर धूमपान करे और कवल खावे, यह हितकारी है । नस्यका प्रयोग करनेके पश्चात् शास्त्र जाननेवाले आगेके लक्षणोंसे शुद्धिके हीनयोगकी और अतियोगकी परीक्षा करें । मस्तककी भलीभांति शुद्धि होजाय तो शरीरमें लघुता होती है, मल साफ उतरता है, स्रोतोंके रोग नष्ट होते हैं और चित्तमें तथा इंद्रियोंमें प्रसन्नता होती है । हीनयोग अर्थात् नस्य अल्प देनेसे मस्तक भलीभांति शुद्ध नहीं हुआ हो तब खुजली, शरीरमें चिकनापन तथा भारीपन होता है। नाडियोंमें कफ बढता है। मस्तक बहुत खाली होगया हो तो नाकमेंसे माथेकी चरबी गिरने लगती है। वायुकी वृद्धि होती है इंद्रियां अपने अपने विषयको भली भांति ग्रहण नहीं करसकतीं और मस्तक जड होजाता है ॥२३५-२३९॥

नस्यकाहीनयोगातियोगचिकित्सा ।

हीनातिशुद्धे शिरसिः कफवातघ्नमाचरेत । तत्र हीनेन नस्येन शुद्धे वातघ्नमाचरेत् ॥ २४० ॥ सम्यग्विशुद्धे शिरसि सर्पिर्नस्येन दीयते । कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः ॥ २४१ ॥ लक्षणं तदतिस्निग्धे तत्र रूक्षं प्रदापयेत् । भोजयेच्चानभिष्यन्दि नस्ये वातिक्रमादिशेत् ॥ २४२ ॥

नस्यका हीनयोग और अतियोग होगया हो तो जिसके कफ वात नष्ट हो ऐसा उपाय करे नस्यका अल्पयोग हुआ हो तो जिससे वातका नाश हो ऐसा उपाय करे और रेचन नस्यसे मस्तक बहुत खाली होगया हो तो फिर घीका नस्य देवे । स्नेहन नस्यसे मस्तक बहुत स्निग्ध होगया हो तो कफका स्राव होता है, मस्तकमें गुरुता होती है और इंद्रियोंमे भ्रम होता है । इस प्रकार हुआ हो तो वैद्य रोगीको रूक्ष पदार्थोंका नस्य देवे । जिससे सरदी न हो, ऐसे पदार्थ खावे और जिससे वातकी वृद्धि हो ऐसी क्रियाका उपयोग करे२४०-२४२॥

इति पंचकर्म ॥

धूमपानविधिः।

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा। रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः॥ १॥ शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रयोगिकस्तथा। बृंहणस्य च पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च॥ २॥ रेचनस्यापि पर्यायौ शौधनस्तीक्ष्ण एव च। अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रान्तो भीतश्च दुःखितः॥ ३॥ दत्तवस्तिर्विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा। पिपासितश्च दाहार्तस्तालुशोषी तथोदरी॥४॥ शिरोऽभितापी तिमिरा छर्द्याध्मानप्रपीडितः। क्षतोरस्कां प्रमेहार्त्तः पाण्डुरोगी च गर्भिणी॥ ५॥ रूक्षः क्षौणोऽभ्यवहृतक्षीरक्षौद्रघृतासवः। भुक्तान्नदधिवत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा॥६॥ अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान्। तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनाञ्जनतर्पणम्॥ ७॥ सर्पिरिक्षुरसं द्राक्षां पयो वा शर्कराऽम्बु वा। मधुराम्लौ रसौ वाऽपि वमनाय प्रदापयेत्॥ ८॥ धूमस्तु द्वादशाद्वर्षाद्गृह्यतेऽशीतिकान्न च। कासश्वासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः॥ ९॥ वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद्धूमः सुयोजितः। धूमोपयोगात्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनाः। दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगन्धिवदनो भवेत्॥ १०॥

शमन कुपित हुए दोषोंको शांत करनेवाला, बृंहण धातुओंको पुष्ट करनेवाला रेचन शरीरको दोषोंसे खाली करनेवाला, कासहा खांसीको नष्ट करनेवाला, वामन वमनकारक और व्रणधूपन व्रणको धुआँ देनेवाला इस धूमपानके छः भेद हैं। मध्य तथा प्रायोगिक ये दो शमनके पर्याय हैं। स्नेहन और मृदु ये दो बृंहणके पर्याय हैं। और शोधन तथा तीक्ष्ण ये दो रेचनके पर्याय हैं। थका हुआ, भयभीत, दुःखित जिसके पिचकारी लगाई हो, जिसको रेचन दिया हो, जो रात्रिमें जागा हो, तृषित, दाहमें पीडित, जिसकी तालू सूख गईहो, उदररोगी, जिसका मस्तक तप्त हो, तिमिररोगी, वमन किये हुए, अफारेवाला, उरःक्षतरोगयुक्त, प्रमेहसे पीडित, पाण्डुरोगी, गर्भवाली स्त्री, रूक्षशरीरी, क्षीण हुआ, जिसने दूध शहद घी अथवा आसवका उपयोग किया हो, जिसने अन्न दही अथवा मछली खाई हो, बालक, वृद्ध और दुर्बलशरीरयुक्त इनको धूमपानका ग्रहण योग्य नहीं है। जो धूम अयोग्य समयमें पिवे अथवा बहुत पिवे तो भी उपद्रवोंको उत्पन्न करता है, धूमपानसे कोई उपद्रव हो तो उसको शांत करनेके लिये पिवे, नस्य देवे, अञ्जन आंजे, तृप्त करे, घी लगावे, ईखका रस पिवे अथवा मधुर और खट्टे रसका उपयोग करावे। बारह वर्षके पीछे धूमपान वर्जित है। जो धुएँका योग्य रीतिसे पान कियाजाय तो खांसी, श्वास, जुखाम, गरदनका स्तम्भ, जात्रडेका स्तम्भ, मस्तककी पीडा, वातके विकार और कफके विकार नष्ट होते हैं। धुएँका उपयोग करनेसे-इंद्रियां, वाणी तथा मन स्वच्छ होते हैं। केश, दांत और दाढी मूँछ दृढ होती हैं और मुख सुगंधित होता है - १-१०॥

धूमपाननलिकामानम्।

धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखण्डा च त्रिपर्विका। कनिष्ठिकापरीणाहा राजमाषागमान्तरा॥ ११॥

राजमाषागमान्तरा-समस्ता नाडी॥

धूमनाडी भवेद्दीर्घा शमने रोगिणोऽङ्गुलैः। चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद्द्वात्रिंशद्भिर्मृदौ मता॥ १२॥

मृदौ-बृंहणे ॥

तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्ने षोडशोन्मितैः।

तीक्ष्णे-रेचने ॥

दशाङ्गुलैर्वामनीये तथा स्याद्व्रणनाडिका ॥ १३ ॥

तथा-दशांगुलमिता ॥

कलायमण्डलस्थूला कुलत्थागमरन्ध्रिका ॥ १४ ॥

शमन धूम देना हो तो रोगीके चालीस अंगुलकी लम्बी, बृंहण धूम देना हो तो रोगीके बत्तीस अंगुलीकी लम्बी, रेचन धूम देना हो तो रोगीके चौबीस अंगुलकी लंबी, कासनाशक धूम देना हो तो रोगीके सोलह अंगुलकी लंबी, वामक धूम देना हो तो रोगीके दश अंगुलकी लम्बी और व्रणको धूम देना हो तो भी रोगीके दश अंगुली लम्बी नली बनवावे, यह नली तीन संधिवाली, तीन पेचोंकी, छोटी अंगुलीके सदृश मोटी और जिसमें चौराईका दाना चलाजाय ऐसे छिद्रवाली बनवावे। परन्तु वमन और व्रणको धूम देनेकी नली मटरके समान गोल और जिसमें कुलथीका दाना चला जाय ऐसे छिद्रवाली बनवावे ॥ ११-१४ ॥

धूमपानविधिः।

अथेषीकां प्रलिम्पेच्च सुश्लक्ष्णां द्वादशाङ्गुलम् ॥ १५ ॥

इषीकाम्-शरकाण्डम् ॥

धूमद्रव्यस्य कल्केन लेपश्चाष्टाङ्गुलः स्मृतः। कल्कं कर्षमितं लिप्त्वा छायाशुष्कञ्च कारयेत् ॥ १६ ॥ इषीकामपनीयाथ स्नेहोक्तां वर्तिमादरात्। अङ्गारैर्दीपितां कृत्वा धृत्वा नेत्रस्य रन्ध्रके ॥ १७ ॥ वदनेन पिबेद् धूमं वदनेनैव संत्यजेत्। नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव धमेत्सुधीः ॥ १८ ॥ शरावसम्पुटे क्षिप्त्वा कल्कमङ्गारदीपितम्। छिद्रे नेत्रं निवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ॥ १९ ॥

नली तैयार करनेके पीछे सरकण्डेकी बारह अंगुलकी लम्बी सलाई लेकर जो औषधि धूमपान करनेकी हो, उसका कल्क उस सलाईपर आठ अंगुलतक लगावे। एक तोलाभर कल्क लगावे, उसको छायोंमें सुखाकर उसमेंसे सरकंडेकी सलाई निकाल लेवे, फिर उस छिद्रमें घृतसे भिगोकर बत्ती बहुत सँभाल कर रक्खे। इस बत्तीको अंगारोंसे सुलगाकर औषधिकी नलीके नालको छिद्रमें रखकर मुखसे धुएँको पिवे और मुखसे ही निकाल देवे, और नाकसे पीकर धुआं मुखसे ही निकाल देवे। जो व्रणको धुआं देना हो तो अंगारेसे सुलगाये हुए कल्कको शरावसम्पुटमें रख ऊपरके शराव (शिकोरे) के छिद्रमें नली लगाकर उससे व्रणको धुआं देवे॥ १५-१९

धूमपानौषधिकल्कः।

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्वरसं मृदौ। रेचने तीक्ष्णकल्कश्च श्वासघ्ने क्षुद्रकोषणम् ॥२०॥ वामने स्नायुचर्माद्यं दद्याद्धूमस्य पानकम्। व्रणे निम्बवचाद्यश्च धूपनं संप्रशस्यते। अन्येऽपि धूमा गेहेषु कर्तव्या रोगशान्तये ॥ २१ ॥

शमन धूममें इलायची आदिका, बृंहण, धूममें घृतादि युक्त रालका, रेचक, धूममें राई आदि तीक्ष्ण पदार्थका, कासघ्न, धूममें कटेरी और काली मिरचका, वामन धूममें स्नायु,

(जीवोंकी नस) और चमडे आदिका, व्रणको धूम देनेमें नीम और वच आदिका कल्क उपयोगमें लेवे, इसी प्रकार शान्तिके लिये घरमें और भी धूनी देवे ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ गृहदेयधूमः (अपराजित) ।

मयूरपिच्छं निम्बस्य पत्राणि बृहतीफलम् ॥ २२ ॥ मरिचं हिंगु मांसी च बीजं कार्पाससम्भवम्। छागरोमाहिनिर्मोकी विष्ठा बैडालिकी तथा ॥ २३ ॥

अहिनिर्मोकः--सर्पकंचुकः ॥

गजदन्तश्च तच्चूर्णं किञ्चिद्घृतविमिश्रितम्। गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान् बालग्रहान् हरेत्। पिशाचात्राक्षसान् हत्वा सर्वज्वरहरं भवेत् ॥ २४ ॥ इत्यपराजितो धूमः।

मोरपँख, नीमके पत्ते, कटेरीके फल, काली मिरच, हींग, जटामांसी, विनौले, बकरीके बाल, सांपकी किंचली, विलावकी विष्ठा और हाथीदांत, इनका चूर्ण, करके उसमें थोडा घी डालकर उस चूर्णका घरमें धुआं देवे तो संपूर्ण बालग्रह, पिशाच और राक्षस दूर होते हैं। सर्व प्रकारके ज्वर भी नष्ट होते हैं यह धूम 'अपराजित धूम' इस नामसे कहा जाता है ॥ २२-२४ ॥

धूमपाने त्याज्यकार्यम् ।

मनस्तापं रजःक्रोधौ धूमपाने निवारयेत्। नेत्राणि धातुजान्याहुर्नलवंशादिजान्यपि ॥ २५ ॥

धूमपान करनेवाले मनमें सन्ताप नहीं आने देवे, धूलसे दूर रहे और क्रोध नहीं करें। धुएँकी नाल किसी ताम्र आदि धातुकी बनवानी चाहिये अथवा बांस नरसल आदिकी बनवावे ॥ २५ ॥

गण्डूषकवलप्रतिसारणविधिः।

तत्र गण्डूषविधिः ।

स्नेहक्षीरकषायादिद्रवैः सम्पूर्णमाननम्। आपूर्यस्थीयते तावद्विधिर्गण्डूषधारणे ॥ ॥१॥ कफपूर्णास्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत्। नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत्तावद्गण्डूषधारणम् ॥ २ ॥ गण्डूषान्सुस्थितः कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः। मनुष्यस्त्रींस्तथा पंच सप्त वाऽऽदोषनाशनात् ॥३॥

गलादिक इति आदिशब्देन गण्डकपोलौ गृह्येते सुश्रुतोक्तत्वात् ॥

स्नेह, दूध और क्वाथ आदि द्रवपदार्थोंसे मुखको पूर्ण भरके जबतक रह सके तबतक रक्खे, यह कुल्ले करने समयकी अवधि है। कफसे मुख जबतक भरजावे तबतक अथवा जो दोष हो उसका छेदन होनेपर अथवा नेत्रोंमेंसे और नाकमेंसे जब पानी झरने लगे तबतक मुखमें क्वाथको धारण करे। मनुष्य स्वस्थतापूर्वक कपालमें गलेमें, तथा गालोंपर जबतक पसीना आवे तबतक अथवा जो दोष हो उसका नाश होनेतक तीन, पांच तथा सात कुल्ले करे ॥

गण्डूषभेदाः ।

चतुर्विधः स्याद्गण्डूषः स्नेहनः शमनस्तथा। शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तादृशः ॥ ४ ॥ स्निग्धोष्ण स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः। पित्ते कट्वम्ललवणैरुष्णैः संशोधनः कफे। कषायतिक्तमधुरै कटुष्णै रोपणो व्रणे ॥ ५ ॥

चिकनाहट करनेवाला शान्त कर्त्ता स्वच्छ करनेवाला और स्वच्छ धातुओंकी भरती करके घावको भर लावे, ऐसा इस भांति

कुल्लेके चार भेद हैं । वातकी अधिकता हो तो स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंसे कुल्ले करै, इसको स्नेहन कहते हैं । पित्तकी अधिकता हो तो मधुर और शीतल पदार्थोंसे कुल्ले करै, इसको शमन कहते हैं । कफकी अधिकता हो तो चरपरे, खट्टे, खारे और उष्ण पदार्थोंसे कुल्ले करे, इसको शोधन कहते हैं । व्रण हो तो किंचित् गरम, कसैले, कडवे और मधुर पदार्थोंसे कुल्ले करै, इसको रोपण कहते हैं ॥४-५॥

गण्डूषकवलौषधमानम् ।

दद्याद्द्रवेषु चूर्णश्च गण्डूषे कोलमात्रकम् । कर्षप्रमाणः कल्कश्च कवले दीयते बुधैः ॥ ६ ॥

कुल्ले करनेके द्रवमें एक तोला चूर्ण डाले और कवलमें कर्ष प्रमाण कल्क डाले ॥६॥

गण्डूषकवलयोरवस्थामर्यादा ।

धार्यन्ते पञ्चमाद्वर्षाद्गण्डूषाः कवलादयः । व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम् । इन्द्रियाणां प्रसादश्च गण्डूषे विधृते भवेत् ॥ ७ ॥ हरेदास्यस्य वैरस्यं शोषं पाकं व्रणं तृषाम् । दन्तचालश्च गण्डूषो वैशद्यं तु करोति हि ॥ ८ ॥

कुल्ले और कवलका उपयोग पांच वर्षकी अवस्था होनेके पश्चात् करे । कुल्लेको मुखमें धारण करनेसे रोगोंका नाश, सन्तोषकी प्राप्ति, स्वच्छता मुखमें लघुता और इंद्रियोंमें प्रसन्नता होती है । कुल्लोंके करनेसे मुखकी विरसता, मुखका सूखजाना, मुखका पकजाना व्रण तृषा और दातोंका हिलना नष्ट होता है तथा स्वच्छता प्राप्त होती है ॥ ७ ॥ ८ ॥

कवलविधिः ।

वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे । अर्द्धं निक्षिप्य संचर्व्य निष्ठीवेत्कवले विधिः ॥ ९ ॥ कवलः कुरुते कांक्षां भक्ष्येषु हरते कफम् । तृष्णां शोषं च वैरस्यं दन्तचालं च नाशयेत् ॥ १० ॥

वात, पित्त तथा कफको नष्ट करनेवाले पदार्थके कवलको मुखमें रख आधा चाबकर थूंक देवे, यह कवलकी विधि है । केवल-भक्ष्य पदार्थोंमें इच्छाको उत्पन्न करता है । कफ, तृषा, शोष, विरसता और दातोंके हिलनेको नष्ट करता है ॥ ९ ॥ १० ॥

प्रतिसारणविधिः ।

दन्तजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः । शनैर्घर्षणमंगुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ ११ ॥ वैरस्यं मुखदौर्गन्ध्यं मुखशोषं तथा तृषाम् ॥ अरुचिं दन्तपीडां च निहन्ति प्रतिसारणम् ॥१२॥ हीने जाड्यकफोत्क्लेशावरसज्ञानमेव च । अतियोगान्मुखे पाकःशोषस्तृष्णा वमिः क्लमः ॥ १३ ॥

अंगुली द्वारा चूर्ण, कल्क अथवा अवलेहसे दांतोंको जीभको तथा मुखको धीरे २ घिसे, इसको प्रतिसारण मञ्जन कहते हैं । प्रतिसारण विसता, मुखकी दुर्गन्ध, मुखका शोष, तृषा, अरुचि और दांतकी पीडाको नष्ट करता है । जो प्रतिसारणकी हीन मात्रेका उपयोग किया हो तो शरीरमें जडता होती है. कफका प्रकोप होता है और रसोंका ज्ञान नहीं होता होत है । वैसेही जो उसका अत्यन्त योग हुआ हो तो मुखका पकना, मुखशोष, तृषा, वमन अथवा ग्लानि होती है ॥ ११-१३ ॥

अथ स्वेदविधिः ।

स्वेदश्चतुर्विधःप्रोक्तस्तापोष्मस्वेदसंज्ञितः । उपनाहो द्रवस्वेदः सर्वे वातार्तिहारिणः॥१॥

तापस्वेद ऊष्मस्वेदश्च ताभ्यां संज्ञित उपनाहः उपनाहस्वेद इत्यर्थः ॥

१ तापस्वेद, २ ऊष्मस्वेद, ३ उदनाहस्वेद, और ४ द्रवस्वेद, इस भांति स्वेद निकालनेके चार भेद हैं ये सम्पूर्ण स्वेद वायु रोगोंको नष्ट करता है ॥ १ ॥

स्वेदो तापोष्मजौ प्रायःश्लेष्मघ्नौ समुदीरितौ । उपनाहस्तु वातघ्न-पित्तसङ्गे द्रवो हितः ॥ २ ॥

द्रवः-स्वेदः ॥

महाबले महाव्याधौ शीते स्वेदो महान् स्मृतः । दुर्बले दुर्बलः स्वेदो मध्यमे मध्यमो मतः ॥ ३ ॥ बलासे रूक्षणः स्वेदो रूक्षस्निग्धः कफानिले ।

रूक्षणः-रूक्षयतीति रूक्षणः। नन्द्यादित्वाल्ल्युट्, प्रत्ययः ।

कफमेदोवृते वाते कोष्णं गेहं रवेः करान् । नियुद्धं मार्गगमनं गुरु प्रावरणं ध्रुवम् ॥ ४ ॥ चिन्ताव्यायामभारांश्च सेवेतामयमुक्तये । येषां नस्यं प्रदातव्यं वस्तिश्चापि हि देहिनाम् । शोधनीयाश्च ये केचित्पूर्वं स्वेद्याश्च ते मताः ॥ ५ ॥

तापस्वेद और ऊष्मस्वेद ये विशेष करके कफ नाशक हैं । उपनाहस्वेद वायुको नष्ट करता है पित्तका विशेष सम्बन्ध हो तो द्रवस्वेद हितकारी होता है । अत्यन्त बलवान् वातसम्बन्धी महारोग हो तो प्रबल स्वेद करावे मध्यम प्रकारकी व्याधि हो तो मध्यम प्रकारका स्वेद देवे और अल्प व्याधि हो तो अल्प साधारण स्वेद देवे । कफका रोग हो तो रूक्ष करनेवाला स्वेद देवे और कफसहित वायुका रोग हो तो रूक्षता तथा स्निग्धता इन दोनोंको करनेवाला स्वेद देवे । कफ तथा मेदसहित वायुरोग हो तो इस रोगसे छूटनेके लिये किंचित् गरमीयुक्त गृहमें रहे, सूर्यकी किरणोंका सेवन करे, बाहु युद्ध करे, मार्गमें अधिक चले और मोटे तथा भारी वस्त्र पहरे, चिन्ता किया करे, व्यायाम और बोझ उठानेका अभ्यास करे । जिसको नस्य देना हो, वस्ति देनी हो अथवा रेचन देना हो उसके शरीरमें प्रथम स्वेदकी क्रिया करनी चाहिये२-५

स्वेद्या ऊर्ध्वं त्रयोऽपीह भगन्दर्यर्शसस्तथा । अश्मर्या चातुरो जन्तुः शमयेच्छस्त्रकर्मणः ॥६॥ शस्त्रकर्म "ऊर्ध्वं पश्चाच्च '' इति सुश्रुते । पश्चात्स्वेद्या हृते शल्ये मूढगर्भगदे तथा । काले प्रजाताऽकाले वा पश्चात्स्वेद्या नितम्बिनी ॥ ७ ॥ सर्वान् स्वेदान्निवाते च जीर्णान्ते वाऽवचारयेत् । स्वेदाद्धातुस्थिता दोषाः स्नेहक्लिन्नस्य देहिनः ॥८॥ द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठान्तर्गत्वा यान्ति विरेकताम् । स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी । स्वेद्यमानशरीरस्य हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ॥ ९ ॥

शीतलैःआर्द्रवस्त्रादिभिः ॥

भगन्दर, बवासीर अथवा पथरी इनसे व्याकुल हुएको शस्त्रक्रिया करानेसे पहिले अथवा शस्त्रक्रिया करानेके पीछे स्वेद देवे, ऐसा सुश्रुतमें कहा है । स्त्रीके उदरमें शल्य हो तो उसको निकालनेके पश्चात् स्वेद देवे, स्त्रीके उदरमें अधिकालसे गर्भ जैसेका वैसा ही स्थिर रहनेके दर्द रहता हो तो उसको दूर करके पश्चात् स्वेद देवे, वैसे ही समयपर प्रसव हुआ हो तो भी स्त्रीको प्रसव होनेके पश्चात् स्वेद देवे । सम्पूर्ण प्रकारके स्वेद वायुरहित स्थानमें और खाये हुए अन्नके पच जानेपर देवे । घी अथवा तेल आदि स्नेह पदार्थसे अभ्यंग करनेके पश्चात् स्वेद देनेसे धातुओंमें रहनेवाले दोष द्रवताको प्राप्त हो कोठेके भीतर जाकर रेचके सदृश मलके साथ निकल जाते हैं । रोगीके शरीरको प्रथम स्नेह पदार्थका

अभ्यङ्ग मालिस करनेके पश्चात् स्वेद देवे स्वेद देनेमें उनके नेत्रोंको गीले वस्त्र आदि शीतल-पदार्थसे ढक रक्खे और हृदयको वैसेही शीतल पदार्थसे ढका रक्खे ॥ ६-९ ॥

अजीर्णी दुर्बलो मेही क्षतक्षीणः पिपासितः। अतिसारी रक्तपित्ती पाण्डुरोगी तथोदरी। मेदस्वी गर्भिणी चैव न हि स्वेद्या विजानता ॥ १० ॥ स्वेदादेषां याति देहो विनाशं नो साध्यत्वं यान्ति चैषां विकाराः ॥ एतानपि मृदुस्वेदैः स्वेदासाध्यानुपाचरेत्। मृदुस्वेदं प्रयुञ्जीत तथा हृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ ११ ॥ अतिस्वेदात्सन्धिपीडा दाहस्तृष्णा क्लमो भ्रमः। पित्तासृक्पिडिकाकोपस्तत्र शान्तैरुपाचरेत् ॥ १२ ॥

अजीर्णरोगी, दुबला, प्रमेहरोगी, क्षतक्षीण तृषित अतिसाररोगवाला रक्तपित्तरोगी, पाण्डु, उदर, तथा मेदरोगवाला और गर्भवती स्त्री इनको विद्वान् वैद्य स्वेद नहीं देवे। कारण कि, इनको स्वेद देनेसे बहुत दुःख होता है और ये रोग होनेसे इनके विकार स्वेदसे साध्य नहीं होते। इन रोगोंके विकार स्वेदसे साध्य होते हैं, जो ऐसा जाननेमें आवे तो इन रोगवालोंको भी मृदु २ स्वेदके उपचार करे। हृदयपर, अण्डकोषोंपर और नेत्रोंपर स्वेद देना हो तो मृदु मृदु साधारण स्वेद देवे। स्वेदका अति योग होनेसे सन्धियोंमें पीडा, दाह, तृषा, ग्लानि भ्रम, पित्त तथा रुधिरके प्रकोपसे हुए फोडे निकल आते हैं। जो स्वेद देनेसे इस प्रकार हो तो उसमें शीतल उपचार करे॥ १०-१२ ॥

तापस्वेदविधिः।

तेषु तापाभिधः स्वेदो वालुकावस्त्रपाणिभिः। कपालकन्दुकाङ्गारैर्यथायोग्यं हि जायते ॥ १३ ॥

रेती, वस्त्र, हाथ, ठीकरा अथवा वस्त्रकी पोटलीको तपाकर इनसे योग्यरीतिके अनुसार जो सेंका जाय उसको तापस्वेद कहते हैं, अङ्गारोंसे सेंक करना भी तापस्वेदमें गिना जाता है ॥ १३ ॥

ऊष्मस्वेदविधिः।

प्रतप्तैरम्लसिक्तैश्च काये (१) नक्तकवेष्टिते। ऊष्मस्वेदः प्रयोक्तव्यो लोहपिण्डेष्टकादिभिः ॥ अथवा वातनिर्णाशिद्रव्याक्वाथरसादिभिः। उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं विधाय च ॥ १४ ॥ विमुद्यास्यं त्रिखण्डां च धातुजां काष्ठजामुत। षडङ्गुलास्य गोपुच्छां नाडीं युञ्ज्याद्द्विहस्तकाम् ॥ १५ ॥ सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम्। हस्तिशुण्डिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥ १६ ॥

त्रिखण्डामिति स्वेदसौकर्यार्थम्। षडंगुलास्या मिति मूले षडंगुलविशालमुखां गोपुच्छमिव क्रम कृशाम् तेन अग्रेगोपुच्छाग्रपरिमाणेन कृशां नाडीम् अन्तःसरन्ध्राम्! द्विहस्तकां हस्तद्वयपरिमाणाम्। हस्तिशुण्डिकयेति-हस्तिशुण्डावत् क्रमकृशत्वान्नाड्या इयं संज्ञाः ॥

पुरुषायाममात्रं वा भूमिं सम्मार्ज्य खादिरैः। काष्ठैर्दग्ध्वा तथाऽभ्युक्ष्य क्षीरधान्याम्लवारिभिः ॥ १७ ॥ वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम्। एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानं स्वेदमाचरेत् ॥ १८ ॥

पसीने आदि पोछनेके लिये हाथमें रखे हुए वस्त्रसे शरीरको लपेटकर तपाये हुए और

१ रल्लक इति पाठन्तरम्।

पश्चात् जिसके ऊपर खट्टा रस छिडका हुआ हो ऐसे लोहेके गोलेसे अथवा ईट आदिसे जो सेंक किया जाय उसको उष्मस्वेद कहते हैं। वातनाशक पदार्थोंका उष्ण क्वाथ अथवा रस आदि एक एक घडेमें भरे, उस घडेका मुख बन्द कर देवे। इस घडेके बगलमें एक छिद्र करके उसमें धातुकी अथवा काष्ठकी नली लगाकर उससे जो स्वेद किया जाय वह भी ऊष्मस्वेद कहाता है। यह नली स्वेद देने की अनुकूलताके लिये तीन सन्धिवाली, जडमें छः अंगुल चौडी, गायको पूँछके समान अनुक्रमसे पतली, भीतर छेदवाली और दो हाथ लम्बी बनावे। वात रोगवाले मनुष्यको भली भांति बैठाकर स्नेह पदार्थका अभ्यङ्ग कर शरीरपर मोटा वस्त्र उढाकर, इस नलीसे स्वेद देवे यह नली हाथीके सूंडके सदृश अनुक्रमसे पतली होती है, इसी कारण हस्ति शुण्डिका कहलाती है।पृथ्वीमें साढेतीन अथवा चार हाथ लम्बा गड्ढा खोदे, उसमें खैरकी लकडी बालकर अग्नि बाहर निकाल लेवे फिर उस गड्ढेमें दूध अथवा पूर्वोक्त धान्याम्लका पानी छिडककर उसमें वातको नष्ट करनेवाले आक, एरण्ड आदिके पत्ते विछाकर उसपर रोगीको सुलावे, पश्चात् मोटा वस्त्र उढा देवे, इस भांति जो गड्ढेका स्वेद दिया जाय वह ऊष्मस्वेद कहाता है। रोगीको उसीसे हुए उडद आदि पदार्थोंमें सुलाकर जो स्वेद दिया जाय वह भी ऊष्मस्वेद कहाता है॥ १४-१८॥

उपनाहस्वेदविधिः।

तथोपनाहस्वेदश्च कुर्य्याद्वातहरौषधैः। प्रदिह्य देहं वातार्त्तं क्षीरमांसरसादिभिः ॥ १९॥ अम्लपिष्टैः सलवणैः सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः। अथ ग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेन च ॥ २०॥ दधिसौवीरकक्षीरैर्वीरतर्वादिना तथा। कुलित्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः ॥२१॥ शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः। एरण्डमूलजीरैश्च रास्नामूलकशिग्रुभिः ॥२२॥ मिसिकृष्णाकुठेरैश्च लवणैरम्लसंयुतैः। प्रसारण्यश्वगन्धाभ्यां बलाभिर्दशमूलकैः॥ २३॥ गुडूच्या वानरीबीजैर्यथालाभसमाहृतैः। क्षुण्णैः स्विन्नैश्च वस्त्रेण बद्धैः संस्वेदयेन्नरम्। महाशाल्वणसंज्ञोऽयं योगः सर्वानिलार्त्तहृत्॥ २४॥

अस्यायमर्थः-उपनाहस्वेदश्च कुर्यात्। केन प्रकारेण इत्याकांक्षायां तत्प्रकारमाह वातहरौषधैः। कथम्भूतैः? अम्लपिष्टैः अम्लेन कांजीकतक्रादिना पिष्टैः सलवणैः स्नेहसंयुतैः, क्षीरमांसरसान्वितौ सुखोष्णैः वातार्त देहं, प्रदिह्य-प्रलिप्य स्वेदयेदित्यर्थः॥

अथवाऽम्लेन सम्पिष्टैः कोष्णैः सूक्ष्मपटस्थितैः। भेषजैः स्वेदयेत्किं वा स्विन्नैः कोष्णैः पटस्थितैः॥ २५॥

वातनाशक औषधियोंको कांजी अथवा छांछ आदि खट्टे रसोंसे पीसकर उसमें नोंन, घी, दूध, मांसका रस, ग्राम अथवा जलके समीप रहनेवाले जीवोका मांस काकोली आदि जीवनीयगणकी औषधि, दही, कांजी और वीरतरु आदि गणकी औषधि डालकर गरम करके उससे रोगीको सहता सहता उसके शरीरपर लेप करे। पश्चात् कुलथी, उडद, गेहूँ, अलसी, तिल, सरसों, सोंफ,देवदारु, निर्गुंडी, कलौंजी, अण्डकीजड, जीरा, रायसन, मूली, सहँजना, वरियारी, पीपल, वनतुलसी, पांचों नमक, अम्लपदार्थ, गन्धप्रसारिणी, असगन्ध, बला, दशमूल, गिलोय और कौंचके बीज इनमेंसे जितने पदार्थ मिलें उतने लेकर पीसे। फिर औटाकर रोगीके शरीरपर वस्त्रके सदृश बांधकर जो स्वेद दियाजाय वह एक प्रकारका उपनाहस्वेद कहाता है। उपरोक्त पदार्थोंसे

किया हुआ स्वेदका प्रयोग 'महाशाल्वण' इस नामसे प्रसिद्ध है और वह प्रयोग सम्पूर्ण प्रकारकी वातसम्बन्धी पीडाको नष्ट करता है। औषधियोंको अम्लरससे पीस किंचित् उष्णकर मृदुवस्त्रसे शरीरपर बांधकर जो स्वेद दिया जाय वह भी उपनाह स्वेद कहाता है। औषधियोंको औटाकर किंचित् उष्ण हो तब वस्त्रपर लेपकर शरीरपर बाँधकर जो स्वेद दियाजाय वह भी उपनाहस्वेद कहाता है ॥ १९-२५ ॥

द्रवस्वेदविधिः।

द्रवस्वेदस्तु वातघ्नो द्रव्यक्काथेन पूरिते। कटाहे कोष्ठके वाऽपि सूपविष्टोऽवगाहयेत् ॥२६॥ सौवर्णं राजतं वाऽपि ताम्रं लौहश्च दारुजम्। कोष्ठकं तत्र कुर्वीतोच्छ्राये षड्विंशदङ्गुलम्। आयामे तावदेव स्याच्चतुष्कोणस्तु चिक्कणम् ॥ २७ ॥

पक्षान्तरमाह।

नाभेः षडङ्गुलं यावन्मग्नं क्काथस्य धारया। कोष्णया स्कन्धयोः सिक्तस्तिष्ठेत् स्निग्धतनुर्नरः ॥ २८ ॥

असमर्थः-प्रथमतो वातघ्नद्रव्यकाथेनाकण्ठपूरितकोष्ठके कटाहे वा सूपविष्टस्तिष्ठेत्। अथवा नाभेःषडंगुलमूर्ध्वं यावत् काथे मग्न उपविष्टः। पश्चात् क्काथस्य धारया स्कन्धयोः सिच्यमानस्तिष्ठेत्। यावत् कोष्ठकं परिपूर्णं भवति इत्यर्थः। क्वाथपक्षे प्रथमतः स्नेहाभ्यक्ततनुरुपविशेत् ॥

मुहूर्तकं समारभ्य यावत्स्यात्तच्चतुष्टयम्। तावत्तदवगाहेत यावदारोग्यनिश्चयः ॥ २९ ॥ एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिषा स्वेदयेन्नरम्। एकान्तरो द्व्यन्तरो वा युक्तः स्नेहोऽवगाहने ॥ ३० ॥

एतावता क्वाथो दुग्धञ्च नित्यमेव युज्यते। स्नेहस्तु दिनमेकं द्वे वा दिने गमयित्वा युक्तः अग्निमान्द्यशङ्कया इति भावः।

शिरामुखैर्लोमकूपैर्धमनीभिश्च तर्पयेत्। शरीरे बलमाधत्ते युक्तः स्नेहोऽवगाहने ॥३१॥ जलसिक्तस्य वर्द्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुरादयः। तथैव धातुवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते ॥ ३२ ॥ नातः परतरः कश्चिदुपायो वातनाशनः। शीतशूलव्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे। दीप्तेऽग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ३३ ॥

कढाव अथवा कोठीमें गलेतक वातनाशक औषधियोंका क्काथ भरकर रोगीको उसमें भली भांति बैठाकर गोता लगावे, यह द्रवस्वेद कहाता है। यह कोठी सुवर्णकी, चांदीकी, ताँबेकी, लोहेकी अथवा लकडीकी छब्बीस अंगुल चौडी लम्बी और चौकोर तथा चिकनी होनी चाहिये, पक्षान्तर-रोगीको शरीरको घी, तेल आदिकी मालिश कर नाभिसे ऊपर छः अंगुल तक क्वाथमें बैठावे, इस भांति क्वाथसे भरीहुई कोठीमें बैठाकर उसके दोनों कंधोंपर किंचित् उष्ण क्काथकी धारा डाले, जबतक कोठी पूरी न होजाय तबतक डालता रहे, यह भी द्रवस्वेद कहाता है। दो घडीसे आठघडीतकके समयतक आरोग्य निश्चय होने पर्यन्त रोगीको इसी प्रकार स्नान करावे; ऊपर कहे अनुसार तेलसे, दूधसे अथवा घीसे भरेहुए पात्रमें रोगीको स्नान करावे, वह भी द्रवस्वेद कहाता है। द्रवस्वेद देनेमें क्काथका और दूधका प्रतिदिन उपयोग करना चाहिये, परन्तु स्नेहपदार्थोंका उपयोग करना हो तो बीचमें एक दिनका अथवा दो दिनका अन्तर डालकर करे कारण कि, स्नेहका नित्य उपयोग करनेसे अग्नि मन्द होजानेका भय रहता है। द्रवस्वेदके उपयोगमें लिया हुआ घी आदि स्नेह पदार्थ नसोंके मुखोंमें, रोमोंके छिद्रोंमें और बडी

नाडियोंमें भीतर जाकर शरीरको तृप्त करते हैं और बल देते हैं। जिस प्रकार वृक्षकी जडमें पानी सींचनेसे वृक्षके अंकुर आदि वृद्धिको प्राप्त होते हैं। वैसेही स्नेहका सेचन होनेसे धातुओंकी वृद्धि होती है। वातको नाश करनेके लिये इस द्रवस्वेदसे अधिक दूसरा कोई भी उपाय नहीं। शीत शूल, अंगोंका जकडजाना तथा भारीपन नष्ट होजाय, अग्नि दीप्त होजाय और शरीरमें कोमलता आजाय तब स्वेदकी क्रियाको छोड देनी चाहिये ॥ २६-३३ ॥

मूर्धतैलविधिः ।

अभ्यङ्गः परिषेकश्च पिचुर्वस्तिरिति क्रमात् मूर्द्धतैलं चतुर्द्धा स्याद्वलवत्तद्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अभ्यङ्ग--तैलेन शिरसोमर्दनम् । परिषेकः-शिरसि धारापातनम् । पिचुः-तैलाक्तं तूलं 'फोहा' इति लोके। वस्तिः-वक्ष्यमाणः।

मस्तकमें तेलका मर्दन करना, ऊँचेसे तेलकी धार डालना, तेलसे भीगेहुए रूईके फोहे रखना और तेलसे वस्ति देना, इन प्रकार शिरमें तेल डालनेके चार भेद हैं ॥

त्रयोऽभ्यङ्गादयः पूर्वे प्रसिद्धाः सर्वतः स्मृताः। शिरोवस्तिविधिश्चात्र प्रोच्यते सुज्ञसम्मतः ॥ २ ॥ शिरोवस्तिश्चर्मणः स्याद् द्विमुखो द्वादशांगुलः। शिरःप्रमाणस्तं बद्ध्वा मस्तके माषपिष्टके ॥३॥ सन्धिरोधं विधायाशु स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत्। तावद्धार्यस्तु यावत्स्यान्नासाकर्णमुखस्रुतिः ॥४॥ वेदनोपशमो वाऽपि मात्राणां वा सहस्रकम्। स्वजानुनः करावर्तं कुर्याच्छोटिकया युतम् ॥ ५ ॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवैष निश्चयः। विना भोजनमेवात्र शिरोवस्तिः प्रशस्यते ॥ ६ ॥ प्रयोज्यस्तु शिरोवस्तिः पञ्च सप्त दिनानि वा। विमोच्य शिरसो वस्तिं गृह्णीयाच्च समन्ततः ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वकायं ततः कोष्णे नीरे स्नानं समाचरेत्। अनेन दुर्जया रोगा वातजा यान्ति संक्षयम्। शिरःकम्पादयस्तेन सर्वकालेषु युज्यते ॥ ८ ॥

पञ्च सप्त दिनानि वा इति उक्त्वासर्वकालेषु इति शिरःकम्पादिरोगानुवृत्तौ ज्ञेयम् ॥

इनमें पहिलेके तीन भेद सर्व स्थानोंमें प्रसिद्ध हैं, इस कारण इनका व्याख्यान नहीं करते। अब मस्तकमें तेलसे वस्ति देनेकी विधि कि, जिसको विद्वानोंने स्वीकृत किया है, उसका व्याख्यान करते हैं। दो मुखकी बारह अंगुल ऊँची और मस्तकमें आजाय ऐसी चमडेकी टोपी बनवावे, इस, टोपीको मस्तकमें पहरकर उडदके आटेसे उसकी सन्धियोंको बन्दकर तथा उसके मुखके नीचे उडदके आटेकी बाड लगाकर ऊपरके मुखमें किञ्चित् उष्ण तेल खूब भरदेवे, यह मस्तकमें तेलकी वस्ति दी जाति है। नाक कान और मुखमेंसे पानी झरे तबतक, वा वेदना मिटने पर्यन्त, अथवा हजार मात्रा होनेतक इस वस्तिको धारण करे। अपने घुटुओंपर हाथको फेरके घुमाकर एक चुटकी बजावे, जितनी देरमें चुटकी बजे इतने समयकी एक मात्रा होती है, ऐसा सर्व ग्रन्थोंका निश्चय है। जबतक रोगीने भोजन नहीं किया हो, उससे पूर्वही यह वस्तिं देना उत्तम है, पांच अथवा सात दिनतक यह प्रयोग नित्य करे, वस्तिके धारणका समय पूर्ण हो जाय तब टोपीको उतारकर चारों ओरसे तेल लेलेवे, उसके पश्चात् रोगीको किंचित् उष्ण जलमें खडा करके स्नान करावे, यह वस्ति देनेसे मस्तकका कंप आदि वातसम्बन्धी रोग भारी कठिन हों तो भी क्षय होते हैं। पांच अथवा सात दिनतक वस्तिकी क्रिया करनेपर भी रोग नष्ट नहीं हो तो अधिक दिनतक यह वस्ति देवे ॥ २-८ ॥

अथ कर्णपूरणविधिः।

स्वेदयेत्कर्णदेशन्तु किंचिन्नुः पार्श्वशायिनः। मूत्रैः स्नेहै रसैरुष्णैः श्रोत्ररन्ध्रं प्रपूरयेत्॥ १॥ कर्णश्च पूरितं रक्षेच्छतं पञ्चशतानि वा। सहस्रं वाऽपि मात्राणां श्रोत्रकण्ठशिरोगदे ॥२॥ मूत्राद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते। तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते॥ ३॥ तद्यथा--कर्णे शूलाकुले कोष्णं बस्तमूत्रं ससैन्धवम्। निक्षिपेत्तेन शाम्यन्ति शूलपाकादिका रुजः॥ ४॥ शृङ्गवेरंच मधुकं सैन्धवं तैलमेव च। कटूष्णं कर्णयोर्देयमेतत्स्याद्वेदनापहम् ॥५॥ पीतार्कपत्रमाज्येन लिप्तं वह्नौ प्रतापयेत्। तद्रसः श्रवणे क्षिप्तः कर्णशूलहरः परः॥ ६॥

रोगीको एक करवट सुलाकर उसके कानके प्रदेशको किंचित् सेंककर कानके छिद्रको उष्णमूत्रसे स्नेहसे अथवा रससे भर देवे। कर्णरोग हो तो सौ मात्रातक, गलरोग हो तो पांचसौ मात्रातक और मस्तक रोग हो तो हजार मात्रातक कानको तेल आदिसे पूरित रहने देवे। कर्णको मूत्र आदिसे भरना हो तो भोजनसे पहिले भरे और तेल आदिसे भरना हो तो सूर्यके अस्त होजानेके पश्चात् भरे यह उत्तम है। कर्णमें शूल होता हो तो सैंधानमक सहित किंचित् उष्ण बकरेका मूत्र कानमें डाले, इस प्रकार करनेसे कर्णका शूल तथा कानका पकना आदि सर्व पीडा शान्त हो जाती है। अदरखका रस, शहत, सैंधानमक और तेल इतने पदार्थ कानमें किंचित् गरम २ डाले तो कानकी पीडा नष्ट होती है। आकके पीले पत्तोंको घी चुपडकर अग्निमें सेंककर उनका रस कानमें डाले तो कानका शूल नष्ट होता है, कानका दर्द दूर होनेका यह उत्तम उपाय है॥ १-६॥

अथ लेपनविधिः।

आलेपस्य तु नामानि लेपो लेपनलिप्तकौ। दोषघ्नो विषहा वर्ण्यः स च लेपस्त्रिधा मतः॥ १॥ त्रिप्रमाणश्चतुर्भागत्रिभागार्द्धांगुलोन्नतः। आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दूषयति च्छविम्॥ २॥

चतुर्भाग-त्रिभागा-र्द्धांगुलोन्नतः एवं विप्रमाणः दोषघ्नो लेपः।

शोथघ्नीदारुसिद्धार्थशुण्ठीशोभाञ्जनत्वचाम्। आरनालेन पिष्टानां प्रलेपः सर्वशोथहा॥ ३॥

शोथघ्नी-पुनर्नवा॥

शिरीषं मधु यष्टी च तगरं रक्तचन्दनम्। एला मांसी निशायुग्मं कुष्ठं वालकमेव च॥ ४॥ इति सञ्चूर्ण्य लेपोऽयं पंचमांशघृतप्लुतः। जलेन क्रियते सुज्ञैर्दशाङ्ग इति संज्ञितः। विसर्पं चैव विस्फोटाञ्छोथदुष्टव्रणाञ्जयेत्॥ ५॥

नाम-आलेप, लेप, लेपन और लिप्तक ये लेपके पर्याय हैं। भेद-दोषोंको नष्ट करनेवाला विषविनाशक और वर्णको उत्तम करनेवाला इस भांति लेपके तीन भेद हैं। एक अंगुलका ऊँचा थर, दो अंगुलका ऊँचा थर और आधी अंगुलका ऊंचा थर इस भांति लेपके थरके तीन भेद हैं। गीला लेप रोगनाशक है और सूखा हुआ लेप कांतिको नष्ट करता है। पुनर्नवा, साठी, देवदारू, सरसों, सोंठ और सहँजनेकी छाल इन पांचोंको कांजीमें पीस इनका लेप करे तो सम्पूर्ण प्रकारकी सूजन नष्ट होती है। शिरस, मुलहठी, नगर, लालचन्दन, इलायची, जटामांसी, हलदी, दारुहलदी, कूठ और नेत्रवाला इन पदार्थोंका चूर्णकर उसमें पांचवां भाग घी डालकर पानीसे लेप करे।

इससे विसर्प, विस्फोटक, सूजन और दुष्ट-व्रणोंका क्षय होता है। इस लेपको विद्वान लोग दशांगलेप कहते हैं ॥ १-५ ॥

विषहा लेपः।

अजादुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः। शोथमारुष्करं हन्ति लेपो वा कृष्णमार्त्तिकः ॥ ६ ॥

नवनीतेनर्द्धिकेन। कृष्णमार्त्तिकः कृष्णमृत्तिकाकृतः ॥

बकरीके दूधमें तिल पीस उसमें भैंसका मक्खन मिलाकर लेप करे अथवा काली मिट्टीका लेप करे तो भिलावे आदिसे हुई सूजन नष्ट होती है, इस लेपको विद्वान् विषहा कहते हैं ॥ ६ ॥

कृमिविषापहलेपः।

लांगल्यतिविषालाबूजालिनीबीजमूलकैः। लेपो धान्याम्बुसम्पिष्टः कीटविस्फोटनाशनः ॥ ७ ॥

कलिहारी, अतीस, कडुई, तोंबी, घियातोरईके बीज और मूली इन औषधियोंको कांजीमें पीस लेप करे तो विषैले कीडेसें उत्पन्न हुआ विस्फोट नष्ट होता है ॥ ७ ॥

मुखकान्तिदो लेपः।

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियङ्गवः। वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यंगघ्ना मुखकान्तिदाः ॥८॥ अथ लेपविधिश्चैव प्रोच्यते सुज्ञसम्मतः। (आ) प्रलेपश्च प्रदेहश्च द्वौ भेदौ तस्य भाषितौ ॥ ९ ॥ चर्मार्द्रं माहिषं यद्वत्प्रोच्यते सम्मितस्तयोः। शीतस्तनुर्विशोषी च प्रलेपःपित्तहन्मत। आर्द्रो घनस्तथोष्णःस्यात् प्रदेह श्लेष्मवातहा ॥ १० ॥

रक्त चन्दन, मंजीठ, लोध, कूठ, प्रियंगु, बडके अँकुर, और मसूर इनका लेप करे तो मुखके ऊपरकी झांई नष्ट होती है और मुखकी कांति उत्तम होती है। इस लेपको विद्वान् वर्ण्य कहते हैं। प्रलेप और प्रदेह इस भांति लेपके दो भेद हैं। इन दोनों लेपोंको जितना भैंसका गीला चमडा होता है, उतना ही मोटा और वैसा ही चमकता हुआ रखना चाहिये। जो लेप शीतल, पतला और सूख जाय ऐसा हो वह प्रलेप कहाता है, प्रलेपसे पित्त नष्ट होता है जो लेप तुरन्त नहीं सूखे, गाढा और गरम हो वह प्रदेह कहाता है, प्रदेहसे वात और कफ नष्ट होता है ॥ ८-१० ॥

न रात्रौ लेपनं कुर्याच्छुष्यमाणं न धारयेत् ॥ ११ ॥ शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति। तमसा पिहितो ह्यूष्मा लोमकूपमुखे स्थितः। विना लेपेन निर्याति रात्रौ नो लेपयेदतः ॥ १२ ॥

तमसा-रात्र्यन्धकारेण।

रात्रावपि प्रलेपादिर्व्रणे देयो विचक्षणैः। अपाकिन्यतिगंभीरे रक्तश्लेष्मसमुद्भवे ॥ ॥१३॥ प्रलेपो यथा--मधुकं चन्दनं मूर्वानलमूलंच पर्पटम्। उशीरं वालकं पद्मं प्रलेपः पित्तशोथहृत् ॥ १४ ॥

प्रदेहो यथा--बीजपूरजटा हिंस्रा देवदारु महौषधम्। रास्नाऽरणिः प्रदेहोऽयं वातशोथविनाशनः ॥ १५ ॥

अरणिः-अग्निमन्थः।

कृष्णापुराणपिण्याकशिग्रुत्वक्सिकताशिवाः। गोमूत्रपिष्टः कोष्णोऽयं प्रदेहः श्लेष्मशोथहा ॥ १६ ॥

रात्रिमें लेप नहीं करे, सूखे हुए लेपको शरीरपर नहीं रक्खे, परन्तु जिस गांठ या फोडेको पीडन करना यानी लेपसे बिठाना हो तो उसपर किये हुए प्रदेहको शुष्क हो जानेपर भी लगे रहने देना चाहिये। रोमोंके छिद्रोंके मुखमें रहनेवाली गरमी रात्रिके

अन्धकारसे ढक जाती है, इस कारण रात्रिमें प्रलेप नहीं करे। यदि लेप किया हो रात्रिको वह गरमी रोमोंमें रुक जाती है। जो व्रण पकता न हो, अत्यन्त गम्भीर हो और रुधिरसे तथा कफसे उत्पन्न हुआ हो, उसपर विद्वानोंको रात्रिमें भी लेप करना चाहिये। मुलहठी, चन्दन, मूर्वा, लाल कमलकी जड, पद्मकाष्ठ, सुगन्धवाला, खस और कमल इनका प्रलेप पित्तकी सूजनको नष्ट करता है। बिजौरेकी जड जटामांसी, देवदार, सोंठ, रसायन और अरनी इनका प्रदेह वात सम्बन्धी सूजनको नष्ट करता है। पीपल, पुरानी खल. सहँजनेकी छाल, खांड और हरड इनको गोमूत्रमें पीसकर किंचित् उष्ण प्रदेह करे तो कफसम्बन्धी सूजन नष्ट होती है ॥ ११–१६ ॥

अथ शोणितस्रावणविधिः।

(फस्त खोलना)।

शोणितं स्रावयेज्जन्तोरामयं प्रसमीक्ष्य च। प्रस्थं प्रस्थार्द्धमथवा प्रस्थार्द्धार्द्धमथापि वा ॥ १ ॥ शरत्काले स्वभावेन शोणितं स्रावयेन्नरः। त्वग्दोषग्रन्थिशोथाद्या नश्यन्ति रुधिरोद्भवाः ॥ २ ॥ व्यभ्रे वर्षासु विद्रुत्सु शीते ग्रीष्मे शरद्यपि। मध्याह्ने शीतकाले च रुधिरं स्रावयेद् बुधः ॥ ३ ॥ मधुरं वर्णतो रक्तमशीतोष्णं तथा गुरु। शोणितं स्निग्धविस्रश्च विदग्धं पित्तकृद्भवेत् ॥४॥ विस्रता द्रवता रागश्चलनं विलयस्तथा। भूम्यादिपंचभूतानामेते रक्ते गुणाः स्मृताः ॥ ५ ॥ रक्ते दुष्टे भवेच्छोथो रक्तमण्डलमेव च। व्यथा दाहश्च पाकश्च कण्डूश्च पिडकोद्गमः ॥ ६ ॥ वृद्धे रक्ताङ्गनेत्रत्वं शिराणां पूर्णता तथा। गात्राणां गौरवं निद्रा मेहो दाहश्च जायते ॥ ७ ॥ क्षीणेऽस्त्रे मधुराकांक्षा मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता। शैथिल्यं च शिराणां स्याद्वाताद्धुन्मार्गगामिता ॥८॥

वातात्-रूक्षक्षैण्यजनितात्।

प्राणीके रोगपर ध्यान देकर एक प्रस्थ, अथवा सोलह तोले रुधिर निकाले शरदृतुमें स्वभाविक रीतिसे मनुष्य रुधिर निकलावावे। रुधिरसे उत्पन्न हुए चर्मदोष, गांठ और सूजन आदि विकार रुधिर निकलवानेसे नष्ट होते हैं। जिस समय बादल न हो, वर्षाऋतुमें, बिजली चमकती हो, ग्रीष्मऋतुमें, शरदृतुमें, मध्याह्नसमयमें और शीतकालमें विद्वान् वैद्य रोगोंपर ध्यान देकर रुधिर निकाले। रुधिर मधुर, वर्णमें लाल, शीतलतासे तथा उष्णतासे रहित, भारी, चिकना, कच्चे पदार्थके सदृश गन्धवाला और पित्तके सदृश दाहशक्तिवाला होता है। रुधिरमें जो गन्ध है वह पृथ्वीका गुण है। द्रवता जलका गुण है, रक्तता तेजका गुण है, चलन वायुका गुण है और शब्द आकाशका गुण है। अर्थात् इस प्रकार रुधिरमें पांचो भूतोंके गुण हैं। रुधिर बिगड गया हो तो सूजन, लाल चकत्ते, शरीमें पीडा, दाह, शरीरका पकजाना, खुजली और फुन्सी होती हैं। शरीरमें रक्त बढ गया हो तो अंग तथा नेत्र लाल होजाते हैं। नसें सूज जाती हैं। गात्रमें भारीपन होता है। निद्रा अधिक आती हैं प्रमेह तथा दाह होता है। शरीरमें रुधिरकी क्षीणता हो तो मधुर पदार्थ खानेकी इच्छा, मूर्च्छा, त्वचामें रूक्षता तथा रुधिरकी क्षीणतासे उत्पन्न हुई वात और शरीरकी नसें शिथिल हो जाती हैं और अयोग्य क्रमसे चलने लगती हैं ॥ १–८ ॥

अरुणं फेनिलं रूक्षं परुषं तनु शीघ्रगम्। आस्कन्दि सूचिनिस्तोदि रक्तं स्याद्वातदूषितम् ॥ ९ ॥ पित्तेन पीत

हरितं नीलं श्यावं च विस्रकम्। अस्वादूष्णं मक्षिकाणां पिपिलीनामनिष्टकम् ॥ १० ॥ शीतलं बहुलं स्निग्धं गैरिकोदकसन्निभम्। मांसपेशीप्रभं स्कन्दि मन्दगं कफदूषितम् ॥ ११ ॥ त्रिदोषदुष्टं संसृष्टं त्रिदुष्ट पूतिगन्धकम्। सर्वलक्षणसंयुक्तं काञ्जिकाभं च जायते ॥ १२ ॥ विषदुष्टं भवेच्छ्यावं नासिकोन्मार्गगं तथा। विस्रं काञ्जिकसंकाशं सर्वकुष्ठकरं तथा ॥ १३ ॥ इन्द्रगोपप्रभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थमसंहतम्। शोथे दाहेऽङ्गपाके च रक्तवर्णेऽस्रजः स्रुतौ ॥ १४ ॥ वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले। पाण्डुरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते ॥ १५ ॥ ग्रन्थ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगाधिमन्थकाभिधे। विदारीस्तनरोगेषु गात्राणां सादगौरवे ॥ १६ ॥ रक्ताभिष्यन्दतन्द्रायां पूतिघ्राणस्य दैहिके। यकृत्प्लीहविसर्पेषु विद्रधौ पिडकोद्गमे ॥ १७ ॥ कर्णोष्ठघ्राणवक्त्राणां पाके दाहे शिरोरुजि ॥ उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावे प्रशस्यते ॥ १८ ॥ दोषेष्वेषु प्रोक्षणैर्वा जलौकालाबुकादिभिः। अथवाऽपि शिरामोक्षैः कारयेद्रक्तपातनम् ॥ १९ ॥

रुधिर यदि वायुसे बिगडा हो तो लाल झागोंवाला, रूक्ष, कठोर, पतला, शीघ्र, चलनेवाला और सुइयोंके सदृश पीडा करनेवाला होता है। रुधिर यदि पित्तसे बिगडा हो तो मधुरता रहित, गरम, मक्खियों तथा चीटियोंको अप्रिय पीला, हरे रंगवाला, नीला, काला और कच्चे पदार्थके सदृश गंधवाला होता है। यदि रुधिर कफसे बिगडा हो तो शीतल, बहुत स्निग्ध, गेरूके पानीके सदृश कांतिवाला, मांसकी पेशीके सदृश फैलनेवाला और मंदगतियुक्त होता है। जो रुधिर दो दोषोंसे बिगडा हो तो उसमें दो दोषोंके लक्षण देखनेमें आते हैं जो तीन दोषोंसे बिगडा हो तो दुर्गन्धतायुक्त, सम्पूर्ण लक्षणोंवाला तथा काँजीके सदृश होता है। जो रुधिर विषसे बिगडा हो तो काला, नाकमेंसे निकलनेवाला, कच्चे पदार्थके सदृश गंधवाला, कांजीके समान और सर्वप्रकारके कोढोंको उत्पन्न करनेवाला होता है। शुद्ध रुधिर पतला और चौमासमें होनेवाले वीरबहूटी कीडेके सदृश रंगवाला होता है। वातरक्त, सूजन, दाह, अंगोंका पकना, शरीरका लालरंग होना, नाक, आदिमेंसे रक्त निकलना, कोढ, पीडासहित वायुके दुर्जय होनेपर, विषसे दूषित होजाना, पाण्डुरोग, श्लीपद, रुधिरका विषसे दूषित होजाना, गांठ, अर्बुद, अपचीनामक गलेकी गांठ, क्षुद्ररोग, अधिमंथ, विदारी, स्तनरोग, गात्रका पीडित होजाना, भारीपन, रक्ताभिष्यन्द, तन्द्रा, नाक अथवा मुखमेंसे दुर्गन्धका निकलना, दाह, यकृत्, प्लीहा, विसर्प, विद्रधि, पिडका, कर्ण, होठ, नाक और मुखका पकना, मस्तकरोग, उपदंश और रक्तपित्त इतने रोगोंमें रुधिर निकालना बहुत उत्तम है। इन रोगोंमें सिंगियें लगवाकर अथवा जोंक लगवाकर वा तूँबी आदि लगवाकर अथवा नस खोलकर रुधिर निकाले ॥ ९–१९ ॥

न कुर्वीत शिरामोक्षं कृशस्यातिव्यवायिनः। क्लीबस्य भीरोर्गर्भिण्याः सूतायाः पाण्डुरोगिणः ॥ २० ॥ पंचकर्मविशुद्धस्य पीतस्नेहस्य चार्शसाम्। सर्वाङ्गशोथयुक्तानामुदरिश्वासकासिनाम् ॥ २१ ॥ छर्द्यतीसारयुक्तानामतिस्विन्नतनोरपि। ऊनषोडशवर्षस्य गतसप्ततिकस्य च ॥ आघातात् स्रुतरक्तस्य शिरामोक्षो न शस्यते ॥ २२ ॥

स्रुतरक्तस्य-रक्तपित्तादिना गतरक्तस्य ॥

एषां चात्ययिके योगे जलौकाभिर्विनिर्हरेत्। तथा च विषजुष्टानां शिरामोक्षो न शस्यते ॥ २३ ॥ गोशृङ्गेण जलौकाभिरलाबूभिरपि त्रिधा। वातपित्तकफैर्दुष्टं शोणितं स्रावयेद् बुधः ॥ २४ ॥ द्विदोषाभ्यान्तु दुष्टं यत्त्रिदोषैरपि दूषितम्। दूषितं स्रावयेद्युक्त्या शिरा मोक्षैः पदैस्तथा ॥ २५ ॥ गृह्णाति शोणितं शृङ्गं दशां गुलमितं बलात्। जलौका हस्तमात्रं तु तुम्बी तु द्वादशाङ्गुलम् ॥ २६ ॥ पदमङ्गुलमात्रस्य शिरा सर्वाङ्गशोधिनी। शीते निरन्ने मूर्च्छार्तिनिद्राभीतिमदश्रमैः ॥ २७ ॥ युक्ते नास्रावयेद्रक्तं तथा विण्मूत्रसङ्गिनाम्। शोणिते चापवृत्ते तु कुष्ठत्रिकटुसैन्धवैः ॥ २८ ॥ मर्दयेद्व्रणवक्त्रं च तेन रक्तं प्रवर्तते। तस्मान्न शीते नात्युष्णे नास्विन्ने नातितापिते ॥ २९ ॥ पीत्वा यवागूं तृप्तस्य स्रावयेच्छोणितं बुधः। अतिस्विन्नस्योष्णकाले तथैवातिशिराव्यधात् ॥ ३० ॥ अति प्रवर्तते रक्तं तत्र कुर्यात्प्रतिक्रियाम्। अतिप्रवृत्ते रक्ते तु लोध्रसर्जरसाञ्जनैः ॥ ३१ ॥ यवगोधूमचूर्णैश्च धवधन्वनगैरिकैः सर्पनिर्मोकचूर्णैर्वा भस्मना क्षौमवस्त्रयोः ॥ ३२ ॥ मुखं व्रणस्य बद्ध्वा च शीतैश्चोपचरेद्व्रणम्। विध्येदूर्ध्वशिरां तावद्दहेत्क्षारेण वह्निना ॥ ३३ ॥ व्रणं कषायः सन्धत्ते रक्तं स्कन्दयते हिमम्। व्रणास्यं पाचयेत्क्षारो दाहः संकोचयेच्छिराः ॥ ३४ ॥ रक्ते दुष्टेऽवशिष्टेऽपि व्याधिनैव प्रकुप्यति। अतो रक्षेत् सावशेषं रक्ते नातिस्रुतिर्हिता ॥ ३५ ॥

दुर्ब, बहुत मैथुन करनेवाला, नपुंसक, भयभीत, गर्भवती स्त्री, प्रसूता स्त्री, पाण्डुरोगी, वमन आदि पञ्चकर्मोंसे शुद्ध हुआ, जिसने स्नेहपान किया हो, अर्शरोगी, सब अंगोंमें सूजनयुक्त, उदररोगी, श्वास, खाँसी, वमन, अतिसार इन रोगोंसे युक्त जिसके शरीरमें स्वेदन-क्रिया अधिक की हो, सोलह वर्षकी अवस्थासे छोटा,सत्तरवर्षसे अधिक आयुवाला, जिसका रक्तपित्त आदिसे रुधिर निकल गया हो, इन सबकी नस खोलकर रुधिर नहीं निकाले इन रोगियोंके रुधिर निकालनेकी यदि अत्यन्त आवश्यकता हो तो जोंक लगाकर निकाले परन्तु इन रोगियोंको विष चढा हुआ हो तो उनकी फस्त खोलकर ही रुधिर निकालना उत्तम है। विद्वान् वैद्य वायुसे, पित्तसे अथवा कफसे बिगडे रोगोंका रुधिर सिंगी, जोंक अथवा तूँबी लगाकर निकाले, परन्तु दो दोषसे अथवा तीन दोषसे बिगडा हो तो युक्तिसे फस्त खोलकर और पछने लगाकर रुधिरको निकाले । सींगी-आसपासके दश अंगुलतकके रुधिरको बलात्कारसे खींचती है। जोंकएक हाथतकके रुधिरको खीचती है तूँबी बारह अंगुलतकके रुधिरको खींचती है पछना-एक अंगुलतकके रुधिरको निकालता है। और फस्त खोलनेसे सम्पूर्ण शरीरका रुधिर निकलकर शुद्ध होजाता है। शीतकालमें, भूखा, मूर्च्छित, निद्रायुक्त,भयभीत, मदयुक्त, थका हुआ और जिसका मल मूत्र रुक गया हो, इन सबका रुधिर नहीं निकाले। रुधिर निकालनेकी क्रिया करनेपर भी रुधिर नहीं निकले तो कूठ, सोंठ, मिरच, पीपल और सैंधानमकको बारीक पीसकर उस व्रणके मुखपर लगाकर रगडे तो रुधिर निकलने लगता है। जिस समय अत्यन्त शीत तथा उष्णता न हो, रोगीको स्वेदनक्रिया न की हो और उसका शरीर अत्यन्त

गरम न किया हो उस समय रोगीको यवागू पिलाकर उसे तृप्त करके पश्चात् रुधिर निकालना चाहिये। जिसको अत्यन्त पसीना आरहा हो, उष्णकाल हो अथवा जिसको शस्त्र अत्यन्त गहरा लग गया हो उसके रुधिर अधिक निकलता है, इस प्रकार रुधिर बहुत निकलने लगे तो लोध, राल, रसौत, जौ तथा गेहूँका चून, धायका चूर्ण, धतूरेका चूर्ण, गेरु, साँपकी काँचलीका चूर्ण, रेशमी कपडेकी भस्मसे अथवा सादे कपडेकी भस्मसे उस घावके मुखको बन्द करके उसके ऊपर शीतल उपचार करे, उस बिंधी हुई नसके ऊपरभागको फिर बेधे, बीधे हुएके ऊपर खारी डाले, वा बींधे हुएको अग्निसे जलावे, औषधि डालनेसे बींधे हुएका जोड मिल जाता है, शीतल उपचार करनेसे रुधिरकी रुकावट होती है, क्षार डालनेसे व्रणका मुख जुडजाता है और दाग देनेसे नस सुकड जाती है। बिगडा हुआ रक्त शरीरमें किंचित् शेष रह जाय तो भी व्याधिका प्रकोप नहीं होता, इस कारण रुधिरको शेष रख देवे, कारण कि-रुधिक निकालना उत्तम नहीं है ॥ २० ॥ ३५ ॥

आन्ध्यमाक्षेपकं तृष्णां तिमिरं शिरसो रुजः। पक्षाघातं श्वासकासौ हिक्कादाहौ च पाण्डुताम् ॥ ३६ ॥ कुरुतेऽतिस्रुतं रक्तं मरणं वा करोति च। देहस्योत्पत्तिरसृजा देहस्तेनैव धार्यते ॥ ३७ ॥ रक्तं जीवस्य चाधारस्तस्माद्रक्षेदसृग्बुधः। शीतोपचारैः कुपिते स्रुतरक्तस्य मारुते ॥ ३८ ॥ कोष्णेन सर्पिषा शोथं सव्यथं परिषेचयेत्। क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः ॥ ३९ ॥ रसः समुचितः पाने क्षीरं षष्टिकया हितम्। पीडाशान्तिर्लघुत्वं च व्याध्युपद्रवसंक्षयः ॥ ४० ॥ मनःस्वास्थ्यं भवेच्चिह्नं सम्यङ्निःसारितेऽसृजि। व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानप्रवातकान् ॥ ४१ ॥ एकाशनं दिवा निद्रां क्षाराम्लकटुभोजनम्। शोकं वादमजीर्णञ्च त्यजेदाबलदर्शनात् ॥ ४२ ॥

रुधिर बहुत निकले तो अन्धापन, आक्षेपक वात, तृषा, तिमिर, मस्तकरोग, पक्षाघात, श्वास, खाँसी, हिचकी, दाह तथा पाण्डुरोग तनकी उत्पत्ति होती है किसी समय मृत्यु भी होजाती है, शरीरकी उत्पत्ति रुधिरसे हुई है, रुधिरही शरीरको धारण करता है और रुधिरही जीवका आधाररूप है, इस कारण विद्वानोंको रुधिरकी रक्षा करनी चाहिये। रुधिर निकालनेके पश्चात् शीतल उपचार करनेसे वायुका प्रकोप हो तो पीडायुक्त सूजनपर किंचित् उष्णतायुक्त घी लगावे। रुधिर निकलनेसे अधिक निर्बलता होजाय तो रोगीको हिरण, खरगोश, मेंढा, काला हिरन और बकरेके मांसका रस पिलाना चाहिये। दूधके साथ सांठीके चावलोंको खिलावे तो इससे अच्छा होता है। रुधिर बराबर ठीक निकलगया हो तो पीडाकी शांति शरीरमें लघुता, रोग तथा उपद्रवका क्षय और मनकी स्वस्थता इतने चिह्न होते हैं। रुधिर निकालनेके पश्चात् शरीरमें जबतक बल न आवे तबतक अत्यन्त परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शीतल जलसे स्नान, अधिक पवनमें रहना, एक समय भोजनका अभ्यास, दिनमें सोना, खारा, अम्ल तथा तीक्ष्ण पदार्थ खाना, शोक करना और विवाद करना इन सबको छोड देवे तथा अजीर्ण नहीं होने देवे ॥ ३६ ॥ ४२ ॥

नेत्रस्वच्छकारिणी क्रिया।

सेक आश्च्योतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा। पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १ ॥

सेक, पानी आदिकी धार डालनी, आश्च्योतन बूँदे डालना, पिंडी, लुपडी बांधना,

विडाल, लेप करना, तर्पण, तृप्ति करनेके लिये नेत्रोंमें दूध आदि भरना, पुटपाक, पकाया हुआ रस नेत्रोंमें डालना, और अञ्जन आंजना इनती क्रियाओंसे नेत्रोंका उपचार है ॥ १ ॥

सेकविधिः ।

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः । मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरंगुलः ॥ २ ॥ स सस्नेहो भवेद्वाते पित्ते रक्ते च रोपणः । लेखनस्तु कफे कार्यस्तस्य मात्राऽभिधीयते ॥३॥ षड्भिर्वाचां शतैः स्नेहे चतुर्भिश्चैव रोपणे । तैस्त्रिभिर्लेखने कार्यः सेको नेत्रप्रसादने ॥ ४ ॥ निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्याच्छोटिकाऽथ वा । गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ ५ ॥ सेकस्तु दिवसे कार्यो रात्रौ चात्यन्तिके गदे । एरण्डस्य दलैः पिष्टैः पक्वमाजं पयो हितम् । सुखोष्णं नेत्रयोरन्तःसिक्तं वातार्तिनाशनम् ॥ ६ ॥

रोगीके नेत्रोंको मिचवाकर उसके ऊपर चार अंगुल ऊँचेसे पतली धारा डाले । यह धारा नेत्रसम्बन्धी सम्पूर्ण रोगोंमें उत्तम है । वातकी पीडा हो तो घी आदि स्नेह पदार्थोंकी धार देवे, यह स्नेहन सेक कहाता है । पित्तकी अथवा रुधिरकी पीडा हो तो हरड आदिके रसकी धार देवे, यह रोपण सेक कहाता है । कफकी पीडा हो तो मलको उखाडनेवाले सोंठ आदिके रसकी धारा देवे, यह लेखन सेक कहाता है । स्नेहन सेक करना हो तो छःसौ मात्रातक करे रोपण सेक करना हो तो चारसौ मात्रातक करे और लेखनसेक करना हो तो तीनसौ मात्रा तक करे,इससे नेत्र स्वच्छ होजाते हैं । मनुष्य नेत्र मींचकर खोले इतने समयकी वा एक चुटकी बजानेमें जितना समय लगे इतने समयकी अथवा एक गुरु अक्षर जितने समयमें बोला जाय इतने समयकी एक मात्रा होती है । धारा डालनेका सेक दिनमें ही करे परन्तु महादुःखदायी रोग हो तो रात्रिमें भी करे । पिसे हुए अण्डीके पत्तोंके साथ बकरीका दूध पकाकर किंचित् गरम गरम उस दूधको नेत्रोंपर डाले तो वह सेचन उत्तम है और वातसम्बन्धी पीडाको नष्ट करता है ॥ २ ॥ ६ ॥

आश्च्योतनविधिः ।

क्वाथक्षौद्रासवस्नेहबिन्दुना यत्तु पातनम् । द्व्यङ्गुलोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्च्योतनं हितम् ॥ ७ ॥ बिन्दवोऽष्टौ लेखने स्यू रोपणे दश बिन्दवः । स्नेहे ते द्वादश प्रोक्ताः शीतले कोष्णरूपिणः ॥ ८ ॥ उष्णे तु शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः । वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ॥९॥ कफे तिक्तोष्णरूक्षं च क्रमादाश्च्योतनं हितम् । आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्छतोन्मिता ॥ १० ॥ ततः परं लोचनाभ्यां भेषजानामयोगतः । आश्च्योतनं न कर्तव्यं निशायां केनचित्क्वचित् ॥ ११ ॥ तद्यथाबिल्वादिपञ्चमूलेन बृहत्येरण्डशिग्रुभिः--क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः ॥ १२ ॥

रोगीके नेत्रोंको दो अंगुल खोलकर उसमें क्वाथ, शहद, आसव अथवा स्नेहकी बूँदें डाले इसको आश्च्योतन कहते हैं, यह हितकारी है । लेखनक्रिया करनी हो तो आठ बूँदे डाले, रोपण क्रिया करनी हो तो बारह बूँदे डाले । स्नेहन क्रिया करनी हो तो दश बूँदे डाले, शीतकाल हो तो किञ्चित् गरम करके बूँदें डाले और उष्णकाल हो तो शीतल बूँदे डाले, यह सम्पूर्ण क्रियाओंका सिद्धान्त है । वातकी पीडा हो तो कडवी तथा स्नेहयुक्त

बूँदें हितकारी हैं । पित्तकी पीडा हो तो मधुर और शीतलता युक्त बून्दें डालना हितकारी हैं कफकी पीडा तो कडुवे गरम तथा रूक्ष औषधियोंकी बूँदें डालना हितकारी है । सम्पूर्ण आश्च्योतनकी मात्रा सौ गुरु अक्षरोंका जितने समयमें उच्चारण हो, इतने समयकी जाननी । कोई वैद्य किसी रोगपर नेत्रोंमें रात्रिके समय बून्दें नहीं डाले । बेल आदि पंचमूल, कटेरी, अरण्ड और सहँजनेका क्वाथ करके उसकी सहती सहती गरम बून्दें नेत्रोंमें डाले, इससे वाताभिष्यन्द वातसे आंखोंका दुःखना नाश होता है ॥ ७-१२ ॥

पिण्डिकाविधिः ।

युक्तभेषजकल्कस्य पिण्डी कवलमात्रया । वस्त्रखण्डेन सम्बध्य नेत्रेऽभिष्यन्दनाशिनी ॥ १३ ॥ स्निग्धोष्णा पिण्डिका वाते पित्ते सा शीतला मता। रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयम् ॥ १४ ॥ सा यथा--एरण्डदलमूलत्वक्पिण्डिका वातनाशिनी । धात्री विरचिता पित्ते शिग्रुपत्रकृता कफे ॥ १५ ॥

योग्य औषधियोंका कल्क करके उसकी कवलके सदृश टिकिया नेत्रोंपर रखकर उसपर ऊपरसे वस्त्रकी पट्टी बांधे । यह पिण्डीकी क्रिया है, इस टिकियाको रखकर बांधनेसे नेत्र दुःखनेकी पीडा नष्ट होती है । नेत्र वातसे दुखने लगे हों तो स्नेहयुक्त गरम टिकिया रक्खे । पित्तसे दुखने लगे हों तो शीतलतायुक्त टिकिया रक्खे, गरम और रूखे पदार्थोंकी टिकिया कफरोगमें रक्खे, यह विद्वानोंने कहा है । अण्डके पत्ते, जड, और छाल इनकी टिकियासे वातकी पीडा नष्ट होती है । आमलोंकी टिकियासे पित्तकी पीडा नष्ट होती है और सहँजनेकी टिकियासे कफकी पीडा नष्ट होती है ॥ १३-१५ ॥

बिडालकविधिः ।

बिडालको बहिर्लेपो नेत्रपक्ष्मविवर्जितः । तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखालेपविधानवत् ॥ १६ ॥ यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीतार्क्ष्यैः समांशकैः । जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः ॥ १७ ॥

नेत्रके पलकोंको छोडकर बाहरके भागपर लेप करे, इसको बिडालकविधि कहते हैं । मुखके ऊपर लेप करनेकी जो मात्रा कही है, वही मात्रा विडालककी जाननी । मुलहठी, सुवर्णगेरू, सैंधानमक, दारुहलदी और खपरिया इनको समान भाग लेकर पानीमें पीसकर नेत्रके बाहरके भागपर लेप करे तो नेत्रके सम्पूर्ण रोगोंका नाश होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

तर्पणविधिः ।

वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः । अभितो माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिपिण्डितौ ॥ १८ ॥ समौ दृढौ च सम्बाधौ कर्त्तव्यौ नेत्रकोशयोः । पूरयेद्घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ १९ ॥ सर्पिषा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेन वा निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणि यावत् स्युस्तावदेव हि ॥ २० ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः । भिषग्भिरेष विख्यातस्तर्पणस्योदितो विधिः ॥२१॥ यद्रूक्षञ्च परिष्यन्दि नेत्रं कुटिलमाविलम् । शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम् ॥ २२ ॥ तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः । शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युतं वातविपर्ययैः ॥ २३ ॥ दत्तेन तर्पयेत् सम्यङ्ङ् नेत्ररोगविशारदः। तर्पणं धारयेद्वर्त्मरोगे वाचां शतं बुधः ॥२४॥ स्वस्थे कफे सन्धिरोगे वाचां पंच

शतानि च। षट् शतानि कफे कृष्णरोगे सप्त शतानि हि॥२५॥ दृष्टिरोगे शतान्यष्टावधिमन्थे सहस्रकम्। सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेव हि तर्पणम्॥२६॥ पूर्णे चापाङ्गमार्गेण स्रावयित्वाऽक्षि शोधयेत्। स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः॥२७॥ यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विरेचयेत्। एकाहं वा त्र्यहं वाऽपि पञ्चाहं तर्पणं चरेत्॥२८॥

जिसमें वायु, धूंप अथवा धूल न हो ऐसे घरमें रोगीको चित्त सुलाकर सने हुए उडदके चूनका ऐकसा दृढ गांठ रहित ऐसा दोनों नेत्रोंपर घेरा बनावे, पश्चात् रोगीकी आंखोंको मिचवाकर उष्ण जलसे पिघलाया हुआ घी अथवा सौ वार जलसे धोया हुआ घी अथवा दूधसे निकाला हुआ घी जबतक पलक डूबे तबतक उस घेरेमें भरे, इसके भरनेपर धीरेसे रोगीकी आंखें खुलवावे, यह तर्पणकी प्रसिद्ध विधि वैद्योंने कही है। नेत्र रूक्ष हो गये हों, पानी झरता हो, मैंले तथा पलकों रहित होगये हों, नेत्रोंकी नसें लाल होकर बहुत पीडा करती हों, तिमिर, अर्जुन, फूला, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, शुष्कनेत्र, नेत्रपाक, नेत्रोंकी सूजन अथवा वातविपर्यय रोग हो तो इन सब रोगों में विद्वान् वैद्य तर्पणविधि करे। वर्त्मरोग हो तो जबतक सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण हो तबतक नेत्रोंपर तर्पणको रहने देवे। स्वस्थतामें कफमें तथा सन्धि रोगमें पांचसौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक तर्पणको रहने देवे। काली पुतलीके रोगोंमें सातसौ और दृष्टिरोगोंमें आठसौ गुरु अक्षरोंके उच्चारणतक तर्पण धारण करे। अधिमन्थरोग (पुतलीमें मानों कोई वस्तु चुभती हो एसी पीडा उठकर आधे मस्तकमें वेदना) हो तो सहस्र गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक तर्पणको रहने देवे और वातसम्बन्धी रोग हो तो भी सहस्र गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक तर्पणको रहने देवे। तर्पण विधि पूर्ण होनेपर नेत्रके कोयेसे घीको बहाकर निकाल डाले, फिर गरम किये जौके आटेसे नेत्रोंको साफ कर डाले तत्पश्चात् घीके जोरसे बढेहुए कफको यथायोग्य धूमपान कराकर दूर करे। एक दिन तीन दिन अथवा पांच दिनतक तर्पण किया करे॥१८–२८॥

यथार्थतर्पणचिह्नम्।

तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत्। सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं नेत्रपाटवम्। निर्वृतिर्व्याधिशान्तिश्च क्रियालाघवमेव च॥२९॥

निर्वृतिः-सुखम्। क्रियालाघवम्-नेत्रस्य क्रियायां निमेषोन्मेषादौ लघुता॥

गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकण्डूपदेहवत्। घर्षतोदयुतं नेत्रमतितर्पितमादिशेत्॥॥३०॥ आस्रावशोफपीडाढचमुपदेहसमाकुलम्। रूक्ष मस्रावमरुणं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम्॥३१॥ अनयोर्दोषबाहुल्यात्प्रयतेत चिकित्सितेत। रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया॥३२॥

अनयोः-अतितर्पितहीनतर्पितयोः॥

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायां संभ्रमेषु च। आशान्तोपद्रवे चाक्षिण तर्पणं न प्रशस्यते॥३३॥

तर्पण यथार्थ हुआ हो तो निद्रा सुखपूर्वक आवे और सुखपूर्वक ही जगजाय, स्वच्छता, नेत्रोंकी, शक्ति तथा सुख बढाता है। व्याधिकी शांति होती है खोलना, मींचना आदि क्रिया करनेमें लघुता होती है इस प्रकारके चिह्न होनेसे नेत्रोंका तर्पण भली भांति हुआ जानना। जो तर्पणका अधिक योग हुआ हो तो नेत्र भारी होते हैं। मैले होजाते हैं। अत्यन्त

स्निग्धता होती है। आंसू बहते हैं। खुजली होती है। जिस प्रकार थर चढा हो नेत्र इस भांति हो जाते हैं और घिसनेके समान पीडा होती है, इन चिह्नोंसे वैद्य नेत्रोंका अत्यन्त तर्पण हुआ जाने। जो नेत्रका हीन तर्पण हुआ हो तो नेत्रोंमेंसे पानी झरता है। सूजन तथा पीडा होती है। नेत्र लिप्ततासे आकुल रहते हैं रूक्षता होती है। गीलापन नहीं रहता और लाली होती है जो तर्पण अधिक अथवा हीन हुआ हो तो दोषोंकी वक्रता होती है, इस कारण उनकी चिकित्सा करनेका प्रयत्न करे। जो अत्यन्त तर्पण हुआ हो तो रूक्ष उपचार करे और हीन तर्पण हुआ हो तो स्निग्ध उपचार करे। वादलके दिनमें अत्यन्त उष्ण तथा शीतल समयमें जब चिन्ता तथा सम्भ्रम हो तब और उपद्रव शान्त होनेसे पहले नेत्रोंका तर्पण करना योग्य नहीं है ॥ २९-३३ ॥

पुष्टपाकविधिः।

द्वे बिल्वे स्निग्धमांसस्य परद्रव्यपलं मतम्। द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ ३४ ॥ तदकेत्र समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम्। पुटपाकविधानेन तत्पश्चात्तद्रसं बुधः ॥ ३५ ॥ तर्पणोक्तेन विधिना यथावदवधारयेत्। दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः॥ ३६ ॥ स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा। हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्य स तु लेखनः। दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥ ३७ ॥

इतरः--रोपणः ॥

स्नेहमांसवसामज्जमेदःस्वाद्वौषधैःकृतः। स्नेहनः पुटपाकः स्याद्धार्योऽयं वाक्छतं नरैः ॥ ३८ ॥ जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः। कृष्णलोहरजस्ताम्रशङ्खविद्रुमसिन्धुजैः ॥ ३९ ॥ समुद्रफेनकासीसस्रोतोऽञ्जदधिमस्तुभिः। लेखनो वाक्छतं तस्य परं धारणमिष्यते ॥ ४० ॥ स्तन्यजाङ्गलमज्जाऽऽज्यतिक्तद्रव्यविपाचितः। लेखनात्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ॥ ४१ ॥ "निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकाभिः स्यात्पञ्चतिक्तक इति प्रथितो गणोऽयम् ॥" आचरेत्तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्तिदर्शने ॥

व्यापत्तिदर्शने--मिथ्याकृतपुटपाकजनितव्याधिदर्शने ॥

तेजांस्यनिलमाकाशमादर्शं भास्वराणि च। नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुटपाकवान् ॥ ४२ ॥

स्नेहयुक्त आठ तोले मांस लेकर उसमें अन्य औषधि चार तोले, द्रवपदार्थ सोलह तोले डालकर सबको एकत्र पीसे पश्चात् उसका गोला बनाकर पत्तोंसे ढककर पूर्वोक्त पुटपाककी रीतिसे अग्निमें पकावे, पश्चात् उसमेंसे रस निचोड लेवे, उस रसको तर्पणकी रीतिके अनुसार सम्पूर्ण प्रकारसे नेत्रोंमें उपयोग करे। रोगीको चित्त सुलाकर उसके नेत्रोंमें यह रस डाले। स्नेहन, लेखन और रोपण इस भांतिसे इस रसके तीन भेद हैं। अत्यन्त रूक्ष हुए मनुष्योंको स्नेहन रस उत्तम है, स्निग्ध मनुष्योंको लेखन रस उत्तम है और दृष्टिको बल देनेके लिये रोपण रस उत्तम है जिससे पित्तरुधिरका विकार, व्रण और वात नष्ट होते है। स्नेह, मांस, चरबी, मज्जा, मेद तथा मधुर औषधियोंसे बनाये हुए पुटपाकका रस स्नेहन होता है, स्नेहन रसको दोसौ गुरु अक्षरोंका जबतक, उच्चारण हो तबतक, धारण करे। जंगली जीवोंका कलेजा और मांस, लेखन औषधि काले लोहेका चूर्ण, तांबेका चूर्ण, शंख, मूँगा, सेंधानोंन, समुद्रफेन, कसीस,

सुरमेका चूर्ण और दहीका पानी इनके किये हुए पुटपाकका रस लेखन होता है। लेखन रसको सौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक धारण कर रक्खे। स्त्रीका दूध जंगली पशुओंका मांस, मधु, घी, नीम, गिलोय, अडूसा, परवल और कटेरी इनसे बनाया हुआ पुटपाकका रस रोपण होता है। रोपण रसको तीनसौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक धारण कर रक्खे। नीम, गिलोय, वाँसा, परवल, कटेरीतक जो पदार्थ कहे वह तिक्तकगण कहाता है। पुटपाकके रसका अधिक अथवा न्यून उपयोग होनेसे रोगोंकी उत्पत्ति देखनेमें आवे तो तर्पणके विषयमें कही हुई क्रिया करे। नेत्रका तर्पण किया हो अथवा पुटपाकके रसका उपयोग किया हो तो वह रोगी तेजके सम्मुख नहीं देखे, वायुके सामने दृष्टि नहीं करे, आकाशको नहीं देखे, शीशा और प्रकाशित बिजली आदि पदार्थोंको भी नहीं देखे ॥ ३४-४२ ॥

अञ्जनविधिः।

अथ सम्पक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत्। अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनं मतम् ॥ ४३ ॥ तद्यथा-रसो वटी तथा चूर्णमिति त्रिविधमञ्जनम्। यथापूर्वं बलं तेषु श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥ ४४ ॥ तत्प्रत्येकं त्रिधा प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा। स्नेहनं चेति लिङ्गानि तेषां विस्तरतः शृणु ॥ ४५ ॥ लेखनं क्षारतीक्ष्णाम्लरसैरञ्जनमुच्यते। नेत्रवर्त्मशिराशालश्रोत्रशृङ्गाटकस्थितम् ॥ ४६ ॥ मुखनासाक्षिभिर्दोषमुत्क्लिश्य स्रावयेच्च तत्। कषायं तिक्तकं चापि सस्नेहं रोपणं मतम् ॥ ४७ ॥ तत्स्नेहशैत्याद्वर्ण्यं स्याद् दृष्टेश्च बलवर्द्धनम्। मधुरं स्नेहसंपन्नमञ्जनं स्यात् प्रसादनम् ॥ ४८ ॥ दृष्टिदोषप्रसादार्थं स्नेहनार्थश्च तद्धितम्। हरेणुमात्रा वर्तिस्तु लेखनी स्यात्प्रमाणतः ॥ ४९ ॥ सार्द्धैकरेणुकमिता रोपणी वर्तिरिष्यते। क्रियते। स्नेहनी वर्तिर्द्विहरेणुकमात्रया। रसाञ्जनस्य मात्रा तु पिष्टवर्तिमिता मता ॥ ५० ॥

सम्पूर्ण दोषोंके पकजानेके पश्चात् नेत्रोंमें योग्य अञ्जन आँजे, जो नेत्रोंमें लगाया जावे वह पदार्थ अञ्जन कहाता है रसरूप, बत्तीरूप और चूर्णरूप ये अञ्जनके तीन भेद हैं। इनमें चूर्णसे बत्ती बलवान् है और बत्तीसे रस बलवान् है। इस प्रत्येक अञ्जनके लेखन, रोपण स्नेहन इस भांति तीन तीन भेद है। इनका लक्षण विस्तारसे कहते हैं, सो सुनो, जो खारा, तीक्ष्ण और खट्टे रसवाला अञ्जन हो, वह लेखन अञ्जन कहाता है। यह अञ्जन नेत्रोंके पलकोंमें, नसोंके समूहमें, कानमें और कपालकी हड्डीमें रहनेवाले दोषोंको स्थानसे गिराकर, मुखसे नाकसे तथा नेत्रोंसे निकाल देता है। कसैले तथा कडवे रसवाला और स्नेहयुक्त जो अञ्जन हो, वह रोपण कहाता है। यह रोपण अञ्जन स्निग्ध तथा शीतल होनेसे वर्णको उत्तम करता है और दृष्टिके बलको भी बढाता है। मधुर रसवाला और स्नेहयुक्त जो अञ्जन होता है, वह प्रसादन कहाता है। स्नेदन अञ्जन दृष्टिके दोषको शुद्ध करनेके लिये और दृष्टिको स्निग्ध करनेके लिये उपयोगी है। लेखन बत्ती बनावे तो एक मटरके बराबर बनावे। दृष्टिका बल बढानेके लिये जो बत्ती बनाई जाय वह डेढ मटरकी बराबर बनावे और दृष्टिको स्निग्ध करनेके लिये जो बत्ती बनाई जाय वह दो मटरकी बराबर बनावे। रसरूप अञ्जनकी मात्रा एक पिष्टवर्तिकी बराबर बनावे ॥ ४३-५० ॥

चूर्णं तु लेखनं वैद्यैर्द्विशलाकं प्रदीयते। रोपणं त्रिशलाकं स्याच्चतस्रः स्नेहनाञ्जने ॥ ५१ ॥

चतस्रः-शलाकाः । स्नेहनाञ्जने-चूर्णे ॥

मुखे या मुकुलाकारा कलायपरिमण्डला । अष्टांगुला शलाका स्यादश्मजा धातुजाऽथवा ॥ ९२ ॥

कलायपरिमंडला-अग्रे कलायवद्वर्तुला ॥

ताम्रलोहाश्मसञ्जाता शलाका लेखने मता । सुवर्णरजतोद्भूता स्नेहने समुदाहृता ॥ ९३ ॥ अंगुली च मृदुत्वेन रोपणे सम्प्रयुज्यते । कृष्णभागावधिं लिम्पेदपाङ्गे यादवञ्जनम् ॥ ९४ ॥ हेमन्ते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते । पूर्वाह्णे वाऽपराह्णे वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ ९५ ॥ वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते तु सदैव हि । अथवा सर्वदा प्रातः सायं वाऽञ्जनमाचरेत् ॥ ९६ ॥ नातिशीतोष्णवातभ्रवेलायां तत्प्रयुज्यते। श्रान्तेऽथ रुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे ॥ ९७ ॥ अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रज्युते । रागोपदेहौ तिमिरं शूलं संरम्भमेव च । निद्राक्षयश्च क्षुरुते निषिद्धे युक्तमञ्जनम् ॥ ९८ ॥

लेखन चूर्ण आंजना हो तो उसकी दो सलाई आंजे, रोपण चूर्ण आंजना हो तो उसकी तीन सलाई आंजे और स्नेहन चूर्ण आंजना हो तो उसकी चार सलाई आंजे । आंजनेकी सलाइ कलीके सदृश मुखवाली, मटरके सदृश गोल, आठ अंगुलकी और पत्थरकी अथवा धातुकी होनी चाहिये । लेखन चूर्ण आँजना हो तो ताँबेकी, लोहेकी अथवा पत्थरकी सलाई होनी चाहिये । स्नेहचूर्ण आंजना हो तो सोनेकी अथवा चाँदीकी सलाई होनी चाहिये, रोपण चूर्ण आँजना हो तो अंगुलीसे आँजे, कारण कि अंगुली कोमल होती है । अंजन आंजना हो तो वह काली पुतलीके नीचेसे नेत्रके कोनेतक आंजे । हेमन्त ऋतुमें और शिशिर ऋतुमें मध्याह्न समयमें अंजन आंजना चाहिये । ग्रीष्म ऋतुमें और शरद्‌ऋतुमें पूर्वाह्न समय अथवा अपराह्न समयमें अंजन आँजे, वर्षाऋतुमें जिस समय बादल न हो और बहुत गरमी न हो उस समय आँजे । वसन्त ऋतुमें जब रुचे तबही अंजन लगावे अथवा अधिक करकेसर्वदाप्रातःकाल वा सन्ध्या समय आंजे । जिस समयमें बहुत शीतलता, उष्णता, वायु और बादल न हो उस समयमें अंजन लगावे।थकाहुआ,रुदन किया हुआ, भयभीत हुआ, जिसने मदिरा पी हो, नवीन ज्वरवाला, अजीर्णयुक्त और जिसने मल मूत्रके वेगको रोका हो, इन सबको अंजन नहीं लगाना चाहिये । जिनको अंजन आँजनेका निषेध किया है, उनके अंजन आँजे तो नेत्रोंमें लाली होती है, नेत्र सूजेसे होजाते हैं, तिमिर, शूल तथा दोषोंका कोप होता है और निद्राका नाश होता है ॥ ५१ ॥ ५८ ॥

लेखनकारिणी वर्तिः ।

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला । पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ ५९ ॥ छागक्षीरेण सम्पिष्य वर्तिः कुर्याद्यवोन्मिताम् । एरण्डमात्रां संपिष्य जलैः कुर्याद्यथाऽञ्जनम् ॥ ६० ॥ तिमिरं मांसवृद्धिश्च काचं पटलमर्बुदम् । रात्र्यान्ध्यं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया हरेत् ॥ ६१ ॥

इति चन्द्रोदयावर्तिर्लेखनी ।

शंखकी नाभि, बहेडेकी मींग, हरड, मैनशिल, पीपल, मिर्च, कूठ और वच इनको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर एक अंडीकी बराबर जौके आकारवाली बत्ती बनावे । इस बत्तीको पानीमें पीस, कर योग्य रीतिसे आँजे । इसके लगानेसे तिमिर,मांसकी वृद्धि, काच, पटल, अर्बुद रतौंधी और एक वर्षका फूला नष्ट होता है, इस बत्तीका नाम चन्द्रोदया वर्त्ति है ॥ ५९ ॥ ६१ ॥

रोपणकारिणी वर्तिः।

अशीतिस्तिलपुष्पाणि षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः। जातिपुष्पाणि पञ्चाशन्मरिचानि तु षोडश ॥ ६२ ॥ सूक्ष्मं पिष्ट्वाऽम्बुना वर्तिः कृता कुसुमिकाऽभिधा। तिमिरार्जुनशुक्राणां नाशिनी मांसवृद्धिनुत्। एतस्या अञ्जने प्रोक्ता मात्रा सार्धहरेणुका ॥ ६३ ॥

इति कुसुमिकारोपणी वर्तिः।

अस्सी–तिलके फूल, साठ–पीपलके बीज, पचाश–चमेलीके फूल और सोलह–दाने मिर्च इनको पानीमें बारीक पीसकर जो बत्ती बनाई जाय उसको कुसुमिकावर्त्ति कहते हैं। यह वर्त्ति–तिमिर, अर्जुन तथा फूलेको नष्ट करती है, और मांसकी वृद्धिको भी दूर करती है, इस वर्त्तीको आँजनेमें डेढ मटरकी बराबर मात्रा जाननी ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

स्नेहनकारिणी वर्तिः।

धात्र्यक्षपथ्याबीजानि एकद्वित्रिगुणानि च पिष्ट्वा वर्तिं जलैः कुर्यादञ्जनं द्विहरेणुकम्। नेत्रस्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजं तथा ॥ ६४ ॥

आमलेकी गुठलीकी मींग एक भाग, बहेडेकी गुठलीकी मींग दो भाग और हरडोंकी गुठलीकी मींग तीन भाग इनको पानीमें पीसकर वत्ती बनावे वह दो मटरकी बराबर नेत्रोंमें लगावे। ये लगानेसे नेत्रोंका पानी गिरना तथा वातरक्तका विकार नष्ट होता है ॥ ६४ ॥

लेखनकारिणी रसक्रिया।

तुत्थमाक्षिकसिन्धूत्थाः सिताशंखमनःशिलाः। गैरिकं सिन्धुफेनश्च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥६५॥ संयोज्य मधुना कुर्यादञ्जनार्थं रसक्रियाम्। वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरीं पराम् ॥६६॥

नीलाथोथा, सोनामाखी, सेंधानोंन, खाँड, शंखका चूर्ण मैनशिल, गेरू, समुद्रफेन और कालीमिर्च इनको खूब पीसकर मधुमें मिलाकर आँजे। इसके लगानेसे पलकोंके रोग, अर्म, तिमिर, काच और शुक्ररोग इन सबका अत्यन्त शीघ्र नाश होता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

रोपणो रसक्रिया।

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला। समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचं तथा ॥६७॥ एततसमांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मने अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणाञ्च प्ररोहणम् ॥६८॥

रसौत, राल, चमेलीके फूल, मैनशिल, समुद्रफेन, सेंधानोंन, गेरू और मिर्च इसको समान भाग लेकर शहतमें खूब बारीक पीसे, पश्चात् पलकोंपर लगावे तो पलकोंका गीलापन तथा खुजली नष्ट होती है। पलकोंके बाल गिर गये हों तो फिर उगने लगते हैं ॥६७॥६८॥

स्नेहनकारिणी रसक्रियाः।

कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत्। ईषत्कर्पूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम् ॥ ६९ ॥

निर्मलीके फल और थोडे कपूरको सहतमें घिसकर आँजे तो नेत्र स्निग्धतापूर्वक स्वच्छ होते हैं ॥ ६९ ॥

लेखनचूर्णम्।

दक्षाण्डत्वक्छिलाकाचशंखचन्दनसैन्धवैः अञ्जनं हरते नित्यं सर्वानक्षिगदान्बलात् ॥ ७० ॥

दक्षः–कुक्कुटः ॥ तथा च निघण्टुः–"कृकवाकुस्तथा दक्षः कालज्ञोऽथ शिखण्डिकः" इति ॥

मुरगेके अंडेका छिलका, मैनशिल, नमक, शंख, चंदन और सेंधानोंन इनका चूर्ण करके नित्य आँजे तो नेत्रोंके सम्पूर्ण रोग अवश्यही नष्ट होते हैं ॥

निघंटुमें "कृकवाकु, दक्ष, कालज्ञ और शिखंडिक" ये मुरगेके संस्कृत नाम कहे हैं. इसीसे हमने इस श्लोकमें दक्षाण्डका अर्थ मुरगेका अण्डा किया है ॥ ७० ॥

रोपणचूर्णम्।

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा। गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ ७१ ॥ शुष्कं तच्च जलं सर्वं पर्पटीसन्निभं भवेत्। विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक् त्रिवेलं त्रिफलारसैः ॥ ७२ ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत्। अञ्जयेन्नयनं तेन सर्वदोषप्रशान्तये। समस्तनेत्ररोगघ्नं चूर्णमेतन्न संशयः ॥ ७३ ॥

पत्थरके खरलमें खपरियाको पीस पानीमें भलीभाँति भिगो देवे फिर उसके ऊपरके जलको नितारले और नीचेके कूडेको फेंक देवे, इन सबको सुखाकर पपडीके सदृश जब होजाय तब उसका चूर्ण करे। फिर हरड, बहेडा और आमलेके रसकी तीन भावना देवे और फिर दशवाँ भाग कर्पूरका चूर्ण मिलावे, यह चूर्ण आँजे तो सम्पूर्ण दोषोंकी शांति होती है। नेत्रोंके सब रोग निःसन्देह नष्ट होते हैं ॥ ७१ ॥ ७३ ॥

स्नेहनचूर्णम्।

अग्नितप्तं हि सौवीरं निषिञ्चेत्त्रिफलारसैः। सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् ॥ ७४ ॥

सौवीरम्--श्वेतमञ्जनम् ॥

अञ्जयेत्तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम्। सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः ७५

सफेद सुरमेको अग्निमें तपा तपाकर सातवार हरड बहेडे तथा आमलेके रसमें डालकर बुझावे, फिर तपा कर सातवार स्त्रीके दूधमें बुझावे, फिर इस सुरमेका चूर्ण करके नित्य नेत्रोंमें आँज तो नेत्रोंको हितकारी होता है, नेत्रसंबन्धी सम्पूर्ण विकारोंका निः संदेहनाश होता है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

प्रत्यञ्जनविधिः।

गतदोषमपेताश्रु प्रपश्यत्सम्यगम्भसि। प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यञ्जनं ततः ॥ ७६ ॥ न वा निर्वातदोषेऽक्षिणधावनं सम्प्रयोजयेत्। प्रत्यञ्जने कृते दद्याच्चूर्णं तीक्ष्णप्रसादनम् ॥७७॥

नेत्रोंके दोष दूर होनेके पश्चात् आँसू निकल जानेपर तथा नेत्रोंमें देखनेकी जब शक्ति आगई हो तब नेत्रोंको जलसे धोडाले, पश्चात् दोषोंको निःशेषकरनेके लिये उसी दोषके अनुसार दूसरी बार आंजे। नेत्रोंके जबतक दोष दूर न होजाय तबतक नेत्रोंको नहीं धोवे, नेत्रोंको धोनेके पीछे प्रत्यजन आँजे कि जिससे तीक्ष्ण औषधिके लगानेसे हुआ नेत्रोंका ताप नष्ट होजाय ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

नयनामृतचूर्णम्।

तद्यथा-शुद्धनागेन्द्रतुल्यं तु शुद्धं सूतं विनिक्षिपेत्। कृष्णाञ्जनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ७८ ॥ दशमांशेन कर्पूरं तस्मिंश्चूर्णे विनिक्षिपेत्। एतत्प्रत्यञ्जनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ ७९ ॥

कृष्णाञ्जनम्--स्रोतोऽञ्जनम् ॥

तथा च मदनपालः—

स्रोतोऽञ्जनन्तु तद्विद्यादञ्जनाभं यदञ्जनम् ॥ ८०

इति नयनामृतं प्रत्यञ्जनम् ॥

शुद्ध किये हुए सीसेको पिघलाकर उसमें उसके बराबरही शुद्ध पारा डाले और दोनोंके बराबर काला सुरमा डाले; पश्चात् इन सबका एकत्र चूर्ण करके उसमें उसका दशवाँ भाग कर्पूर डाले। इसका नेत्रोंमें प्रत्यजन करे तो नेत्रके रोग निःशेष होजाते हैं; इसका नाम 'नयनामृत' है। मदनपालनामक कोषमें कहा

है कि जो सुरमा अंजनके सदृश काला हो वह स्रोतोंजन कहाता है" ॥ ७८-८० ॥

दृष्टिस्वच्छकारिणी शलाका ।

त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा। गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः। तच्छलाका हरत्येव सर्वान्नेत्रभवान्गदान् ॥ ८१ ॥

इति भेषजविधानानि ।

शुद्ध शीशेको बारम्बार तपा तपाकर हरड बहेडा तथा आमलोंके रसमें, घीमें गोमूत्रमें शहदमें और बकरीके दूधमें बुझावे, पश्चात् इस सीसेकी सलाई बनाकर नेत्रमें फेरे तो इससे नेत्र सम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट होता है ॥ ८१ ॥

अथ भेषजभक्षणसमयः ।

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः। कषायांस्तु विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥ ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम्। किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने। सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥ २ ॥

विद्वान् पुरुष अधिक करके औषधि प्रातःकालमें खावे और क्वाथ पीना हो तो प्रातःकालमें ही पिवे परन्तु उसमें नीचे लिखे भेदोपर ध्यान रक्खे। किंचित् सूर्योदय होनेके पश्चात्, दिनको भोजन करनेके समयमें, सन्ध्याको भोजन करनेके समयमें बारम्बार और रात्रिमें इस भांति मनुष्योंको औषधि खानेके पांच समय हैं ॥ १ ॥ २ ॥

प्रथमकालः ।

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः। लेखनार्थे च भैषज्यं प्रभातेऽनन्नमाहरेत् ३॥

पित्त अथवा कफकी अत्यन्त अधिकतामें रेचन लेना हो, उलटी करानी हो वा लेखनके अर्थ प्रातःकालमें विना खाये औषधिका उपयोग करे ॥ ३ ॥

द्वितीयकालः ।

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते। अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥ ४ ॥ समानवाते विगुणे मन्देऽग्नावतिदीपनम्। दद्याद्भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक् ॥ ५ ॥ व्यानकोपे तु भैषज्यं भोजनान्ते समाहरेत्। हिक्काक्षेपककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात् ॥ ६ ॥

अपान वायुके विगुण होनेपर दिनके भोजनसे किंचित् पहिले औषध लेना उत्तम है, अरुचि हो तो खानेके विचित्र पदार्थोंके साथ खावे कि-जिससे रुचि होती है। रोगीके नाभिस्थानमें रहनेवाली समान वायु बिगडी हो और अग्नि मन्द हो गई हो तो कुशल वैद्य अग्निको प्रदीप्त करनेवाली औषधि भोजनके मध्यमें देवे। सर्व शरीरमें रहनेवाली व्यान वायुका कोप हुआ हो तो भोजनके अन्तमें औषधि खिलावे। हिचकी, आक्षेपक वायुकी अथवा कम्पकी अधिकता हो तो पहिले और भोजनके पीछे भी औषधि खिलावे ॥ ४-६॥

तृतीयकालः ।

उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादिकारिणि। ग्रासग्रासान्तरे देयं भैषज्यं सान्ध्यभोजने ॥ ७ ॥ प्राणे प्रदुष्टे सान्ध्यस्य भुक्तस्यान्ते प्रदीयते। औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥ ८ ॥

स्वरभंग आदि रोगोंको उत्पन्न करनेवाली उदानवायु कुपित होनेपर सायंकालके भोजनमें ग्रास ग्रासके साथ औषधि देवे, हृदयमें

रहनेवाली प्राणवायुका कोप हो तो अधिक करके सायंकालके भोजन करनेके पश्चात् धीर वैद्य औषधि सेवन करावे, यह तीसरा समय है ॥ ७-८ ॥

चतुर्थकालः।

मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च।
सान्नश्च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः॥९॥

तृषा, वमन, हिचकी, श्वास अथवा विषकी पीडा हो तो अन्नके साथ या बारम्बार औषध सेवन करावे, यह चौथा समय है ॥ ९ ॥

पञ्चमकालः।

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा।
पाचने शमने देयमनन्नं भेषजं निशि॥१०॥

हंसलीके ऊपरके भागमें विकार हो और लेखन क्रिया बृंहणक्रिया, पाचनक्रिया अथवा शमनक्रिया करनी हो तो रात्रिमें विना भोजन किये औषधि सेवन करे ॥ १० ॥

निरन्नकोष्ठे औषधिसेवनगुणाः।

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं
हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव।
तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं
ग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयश्च॥११॥

जो मनुष्य निरन्न कोठेमें औषधिका सेवन करे तो औषधिकी शक्ति अधिक होती है, और वह औषधि अवश्य तुरन्त रोगको नष्ट करती है। परन्तु बालक, वृद्ध, युवती स्त्रियां अथवा मृदुप्रकृतिवाले मनुष्य निरन्न कोठेमें औषधि सेवन करे तो तुरन्त उनको ग्लानि होती है और शरीरके बलका नाश होता है ॥ ११ ॥

अन्नेन सहौषधसेवनगुणाः।

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्या-
दन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति।
एतद्धितं स्थविरबालकृशाङ्गनाभ्यः
प्राग्भोजनाद्यदशितं किल तच्च तद्वत्॥१२॥

तद्वत्-अन्नावृतवत्. भेषजमिति शेषः ॥

औषधशेषे भुक्तं भोजनशेषे यदौषधं पीतम्। न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्तरोगांश्च ॥ १३ ॥

पीतमित्युपलक्षणम्, लीढादिकं च ॥

अन्नमें मिलाकर जो औषधिका सेवन किया जाय वह तुरन्त पक जाती है। बलका क्षय नही करती है तथा मुखमेंसे बारम्बार निकलती भी नहीं। वृद्ध, बालक, दुर्बल शरीरवाले और स्त्रियोंको इस प्रकार औषधिका सेवन करना हितकारी है। भोजन करनेके पहिले औषधिके उपयोग करनेसे जो गुण होता है, उसके सदृशही अन्नके साथ खाई हुई औषधि भी गुण करती है। औषधि किंचित् बाकी रहनेपर भोजन करे अथवा भोजन किंचित् शेष रहनेपर औषधिका पान करे तो वह औषधि रोगोंको शान्त नहीं करती और अन्य रोगोंको कुपित करती है ॥१२-१३ ॥

औषधपाकापाकचिह्नम्।

अनुलोलोमोनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णासुमनस्कताः। लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥ १४ ॥ क्लमो दाहोऽङ्गसदनभ्रममूर्च्छाशिरोरुजः। अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥ १५ ॥

रोगीको औषधि पचगई हो तो पवन अपने अनुकूल चलती है। स्वस्थता होती है। भूख तथा तृषा, लगती है। मनमें प्रसन्नता होती है, शरीरमें लघुता होती है। और डकार ठीक आती है जो रोगीको औषधि न पची हो तो ग्लानि, दाह, अंगमें पीडा, भ्रम, मूर्च्छा, मस्तकमें दर्द, अरुचि तथा बलकी हानि होती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

चरकोक्तौषधसेवनविधिः।

देवान्गुरूंस्तथा विप्रान्पूजयित्वा प्रणम्य च। आशिषश्च समादाय श्रद्धया भेषजं

भजेत् ॥ १६ ॥ रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा । सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥ १७ ॥ ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रर्कानिलानलाः । देवाश्च सौषधिग्रामा भूमिदेवाश्च पान्तु वः॥१८॥ औषधं हेमरजतमृद्धाजनपरिस्थितम् । पिबेदाप्तजनस्याग्रे प्रसन्नवदनेक्षणः॥१९॥ विश्रान्तस्तूपविश्याथ पीत्वा पात्रमधोमुखम् । निक्षिप्याचम्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ २० ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे पंचमप्रकरणम्, चिकित्सायां सप्ताङ्गानि च सम्पूर्णानि ॥

देवता, गुरु तथा ब्राह्मणोंको पूज, प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लेकर श्रद्धासे औषधिका सेवन करें, गुरु तथा ब्राह्मण रोगीको आशीर्वाद देवे कि–"जैसे रसायन ऋषियोंको और अमृत देवताओंको तथा सुधा नागोंको रोगरहित तथा बलवान् करती है। उसी प्रकार यह औषधि तुमको रोगरहित तथा बलवान् करे । ब्रह्मा, दक्ष, अश्विकुमार, रुद्र, इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि, अन्यदेवता औषधियोंका समूह और ब्राह्मण तुम्हारी रक्षा करे। रोगी अपने मुख और नेत्रोंको प्रसन्न रख अपने स्नेही और भले मनुष्योंके आगे सुवर्णके, चांदीके अथवा मिट्टीके पात्रमें रक्खी हुई औषधि सेवन करे । विश्रामसे बैठकर औषधिको पीवे, पीनेके पश्चात् औषधिके पात्रको पृथ्वीपर औंधा डाल देवे, पश्चात् जलसे आचमन करके पान आदिका सेवन करे ॥ १६-२० ॥

इति श्रीभावप्रकाशे वैद्यसञ्जीविनीभाषाटीकायां मुरादाबादनिवासिमाथुरवैश्यवंशोद्भवकविवर-लालाशालिग्रामवैश्यकृतायां पञ्चमप्रकरणं सम्पूर्णम् ।

अथ षष्ठं प्रकरणम् ।

चिकित्सार्थं रोगिणो वाग्भटोक्तपरीक्षा ।

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैस्तं परीक्षेत रोगिणम् । आयुरादि दृशा स्पर्शाच्छीतादि प्रश्नतः परम् ॥ १ ॥

आयुरादि-आदिशब्दात्साध्यत्वासाध्यत्वादि । दृशादर्शनेन । स्पर्शेन शीतादि शीतोष्णमृदुकठिनत्वादि, नाडीपरीक्षणं वा । प्रश्नतः-उदरलाघवगौरवतृषाऽतृषाबुभुक्षाऽबुभुक्षाबला--बलादि । तत्र दर्शनं नेत्रजिह्वामूत्रादीनां कर्त्तव्यम् ॥

मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्यातास्तथैव च । तथा दुष्परिपृष्टाश्च मोहयेयुश्चिकित्सकान् ॥ २ ॥

दर्शनसे स्पर्शसे और पूछनेसे रोगीकी परीक्षा करनी चाहिये। दर्शसे अर्थात् रोगीके नेत्र, जीभ तथा मूत्र आदिको देखकर आयुकी और रोगके साध्यत्व असाध्यत्व आदिकी परीक्षा करें। स्पर्शसे अर्थात् रोगीके शरीरको स्पर्श करके शीतताकी, उष्णताकी, कोमलताकी और कठोरता आदिकी परीक्षा करे अथवा नाडीकी परीक्षा करे। पूँछनेसे अर्थात् रोगीको पूँछकर उसके पेटकी लघुता, गुरुता, तृषा, तृषाका अभाव, भूख, सूखका अभाव, बल, और बलका अभाव आदिकी परीक्षा करे। जो रोग भली भांति नहीं देखे, भली भांति नहीं कहे और भली भांति नहीं पूँछे वे रोग वैद्यको मोहित कर देते हैं, इस कारण वैद्य विकारोंको यथार्थ रीतिसे देखे, पूँछे और कहलावे ॥ १ ॥ २ ॥

नेत्रपरीक्षा ।

नेत्रं स्यात्पवनाद्रूक्षं धूम्रवर्णं तथाऽरुणम् । कोणं गतं प्रविष्टं च तथा

स्तब्धविलोकनम् ॥ ३ ॥ हरिद्राखण्डवर्णं वा रक्तं वा हरितं तथा। दीपद्वेषि सदाहश्च नेत्रं स्यात्पित्तकोपतः ॥४॥ चक्षुर्बलासबाहुल्यात् स्निग्धं स्यात् सलिलप्लुतम्। तथा धवलवर्णञ्च ज्योतिर्हीनं बलान्वितम् ॥५॥ नेत्रं द्विदोषबाहुल्यात्स्याद्दोषद्वयलक्षणम्। त्रिदोषलिङ्गसंयेन तं मारयति रोगिणम् ॥ ६ ॥ त्रिदोषदूषितं नेत्रमन्तर्मग्नं भृशं भवेत् । त्रिलिङ्गं सलिलस्रावि प्रान्ते नोन्मीलयत्यपि ॥ ७ ॥

वायुके प्रकोपसे नेत्र, रूक्ष, धुएँके सदृश रंगवाले, लाल, तिरछे देखनेवाले और भीतर को घुसे हुए होते हैं। पित्तके प्रकोपसे नेत्र हलदीके टुकडेके सदृश पीले लाल, हरे वर्णके दीपकके ऊपर अरुचिवाले और दाहयुक्त होते हैं। कफके प्रकोपसे नेत्र स्निग्ध, पानीसे व्याप्त हुए, सफेद, तेजरहित और दृढतायुक्त होते हैं। दो दोषोंके प्रकोपसे नेत्र दो दोषोंके लक्षणयुक्त होते हैं और रोगीकी मृत्यु कर देते हैं। जो नेत्र तीनों दोषोंसे दूषित हुए हों वे बहुत भीतरको बैठ जाते हैं पानी निकलता है तथा अन्तिम भागसे खुल सकते हैं ॥ ३-७ ॥

जिह्वापरीक्षा।

शाकपत्रप्रभा रूक्षा स्फुटना रसनाऽनिलात्। रक्ता श्यावा भवेत्पित्तालिप्ताऽऽर्द्रा धवला कफात् ॥ ८ ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा कृष्णा दोषत्रयेऽधिके। सैव दोषद्वयाधिक्ये दोषद्वितयलक्षणा ॥ ९ ॥

वायुके प्रकोपसे जीभ सागोनके पत्तोंके सदृश, रूखी और फटी हुई होती है। पित्तके प्रकोपसे जीभ लाल और काली होती है। कफके प्रकोपसे जीभ गीली और धौली होती है। दो दोषोंके प्रकोपसे जीभ दो दोषोंके लक्षणयुक्त होती है और तीन दोषोंके प्रकोपसे जीभ जली हुईके सदृश और कठोर स्पर्शवाली होती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

मूत्रपरीक्षा।

वातेन पाण्डुरं मूत्रं रक्तं नीलञ्च पित्ततः।
रक्तमेव भवेद्रक्ताद्धवलं फेनिलं कफात् १०

वातके प्रकोपसे मूत्र पीले रंगका होता है पित्तके प्रकोपसे मूत्र लाल तथा नीला होता है रुधिरके कुपित होनेसे मूत्र लाल होता है और कफके कुपित होनेसे मूत्र सफेद तथा झागों युक्त होता है ॥ १० ॥

नाडीपरीक्षा।

पुंसो दक्षिणहस्तस्य स्त्रिया वामकरस्य तु। अंगुष्ठमूलगां नाडीं परीक्षेत भिषग्वरः ॥११॥ अंगुलीभिस्तु तिसृभिर्नाडीमवहितः स्पृशेत् । तच्चेष्टया सुखं दुःखं जानीयात्कुशलोऽखिलम् ॥१२॥ सद्यःस्नातस्य सुप्तस्य क्षुत्तृष्णाऽऽतपशीलिनः। व्यायामश्रान्तदेहस्य सम्यङ्नाडी न बुध्यते ॥ १३ ॥ वातेऽधिके भवेन्नाडी प्रव्यक्ता तर्जनीतले । पित्ते व्यक्ता मध्यमायां तृतीयाङ्गुलिका कफे ॥ १४ ॥ तर्जनीमध्यमामध्ये वातपित्ताधिके स्फुटा । अनामिकायां तर्जन्यां व्यक्ता वातकफे भवेत् ॥ १५ ॥ मध्यमानामिकामध्ये स्फुटा पित्तकफेऽधिके। अङ्गुलित्रितयेऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सन्निपाततः ॥१६॥ वाताद्वक्रगतिंधत्ते पित्तादुत्प्लुत्य गामिनी। कफान्मन्दगतिर्ज्ञेया सन्निपातादतिद्रुता ॥ १७ ॥ वक्रमुत्प्लुत्य चलति धमनी वातपित्ततः । वहेद्वक्रञ्च मन्दञ्च वातश्लेष्माधिकत्वतः ॥ १८ ॥ उत्प्लुत्य मन्दे चलति नाडी पित्तकफे-

ऽधिके । कामात्क्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिन्तामयप्लुता ॥१९॥ स्थित्वा स्थित्वा चलेद्या सा हन्ति स्थानच्युता तथा । अतिक्षीणा च शीता च प्राणान् हन्ति न संशयः ॥ २० ॥ ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् । मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च सैव मन्दतरा मता ॥ २१ ॥ चपला क्षुधितस्य स्यात्तृप्तस्य भवति स्थिरा । सुखिनोऽपि स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥ २२ ॥

श्रेष्ठ वैद्य पुरुषके दहने हाथके और स्त्रीके वाम हाथके अंगूठेकी जडमें जो नाडी है,उसकी परीक्षा करे, सावधान रहकर तीनों अंगुलियोंसे नाडी स्पर्श करें और उस नाडीकी चेष्टा सुखदुःखादि सब जान लेवे। तत्काल स्नान किया हुआ, सोया हुआ, भूखा, प्यासा, धूपसे तपा हुआ और व्यायाम करनेसे थका हुआ इनकी नाडी भली भांति समझमें नहीं आती है। वातकी अधिकता हो तो नाडी तर्जनी अंगुलीके नीचे चलती है, पित्तकी अधिकता हो तो नाडी बीचकी अंगुलीके नीचे चलती है, कफकी अधिकता हो तो नाडी तीसरी अनामिकाके नीचे चलती है। वात तथा पित्तकी अधिकता हो तो नाडी तर्जनीके तथा मध्यमाके मध्यमें चलती है, वात तथा कफकी अधिकता हो तो नाडी अनामिका और तर्जनीके मध्यमें चलती है और जो पित्त कफकी प्रधानता हो नाडी मध्यमा और अनामिकाके मध्यमें चलती है। त्रिदोषका कोप हो तो तीनों अंगुलियोंमें चलती है, वातकी अधिकता हो तो नाडी टेढी बांकी चलती है,पित्तकी अधिकता हो तो नाडी उछल उछलकर चलती है, कफकी अधिकतासे नाडी धीरे धीरे चलती है। त्रिदोषका प्रकोप हो तो नाडी अत्यन्त शीघ्र चलती है। वायु तथा पित्तकी अधिकता हो तो नाडी आडी और उछल उछलकर चलती है। वात तथा कफकी अधिकता हो तो नाडी टेढी और धीरे धीरे चलती है। पित्त तथा कफकी अधिकता हो तो उछल उछलकर धीरे धीरे चलती है। काम तथा क्रोधसे नाडी वेगयुक्त चलती है। और चिन्ता अथवा भयसे नाडी क्षीण हुई चलती है। जो नाडी ठहर ठहरकर चलती हो, अपने स्थानको छोडकर अन्यत्र चलती हो, अत्यन्त क्षीण हो अथवा अत्यन्त शीतल हो गई हो, वह नाडी निःसन्देह प्राणों का नाश करती है। ज्वरका कोप हो तो नाडी गरम होती है और वेगसे चलती है। जिसकी अग्नि मन्द होगई हो और जिसकी धातुएँ क्षीण होगई हो, उसकी नाडी बहुत धीरे धीरे चलती है। भूखे मनुष्यकी नाडी चपल होती है। तृप्त हुएकी नाडी स्थिर होती है, सुखी मनुष्यकी नाडी भी स्थिर और बलवती होती है॥ ११-२२ ॥

अथ येनयेन रोगज्ञानं स्यात्तत्तदाह।

हेतुस्तदनु संप्राप्तिः पूर्वरूपं च लक्षणम्। तथैवोपशयः पञ्च रोगविज्ञानहेतवः॥२३॥

हेतु, सम्प्राप्ति, पूर्वरूप, लक्षण और उपशय ये पांच वैद्यको रोगोंके यथार्थ ज्ञान होनेमें कारण हैं ॥ ३२ ॥

हेतुलक्षणम्।

यत्तु न स्याद्विना येन तस्य तद्धेतुरुच्यते । शास्त्रे सव्यवहाराय तत्पर्यायान् प्रचक्ष्महे ॥ २४ ॥ निदानं कारणं हेतुर्निमित्तं च निबन्धनम् । मूलमायतनं तत्र प्रत्ययोऽपि निगद्यते ॥ २५ ॥

तत्र हेतुर्व्याधीनां ज्ञानाय । हेतुर्यथा—वर्षारूक्षश्रमहिमानशनालि मैथुनशोकचिन्ताभयादयो वातप्रकोपहेतवो वातजान् व्याधीन बोधयन्ति । शरत्कट्वम्लोष्णतीक्ष्णक्रोधतृषाक्षुधाऽभिघातातपादयः पित्तप्रकोपहेतवः पित्तजान् व्याधीन्वोधयन्ति। वसन्तमधुरस्निग्धशीतादयः कफप्रकोपहेतवः कफजान् व्याधीन् बोधयन्ति॥

जो रोग जिसके विना न हो उस रोगका वह हेतु कहाता है, निदान, कारण, हेतु, निमित्त, निबन्धन, मूल, आयतन, और प्रत्यय ये शब्द एक अर्थवाले हैं। वैद्यकशास्त्रकी छन्दोबद्ध कवितामें हेतुशब्दके ये अधिक पर्याय कहे हैं ॥

वर्षाऋतु, रूक्षपदार्थ, मश्र, हिम, भोजनका अभाव, मैथुन, शोक, चिन्ता और भय आदिक जो वातके कुपित होनेमें कारण हैं। उन्हींसे वातसम्बन्धी रोग जाने जाते हैं। शरदृऋतु, कडवे पदार्थ, अम्लपदार्थ, गरमपदार्थ, तीक्ष्ण पदार्थ, क्रोध, तृषा, भूख, चोट और धूप आदिक जो पित्तके कुपित होनेमें कारण हैं उन्हींसे पित्तसम्बन्धी रोग जाने जाते हैं। वसन्तऋतु, मधुर पदार्थ, स्निग्ध पदार्थ, और शीत अदिक जो कफके कुपित होनेमें कारण हैं, उन्हींसे कफसम्बन्धी रोग जाने जाते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

सम्प्राप्तिलक्षणम् ।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता।
उत्पत्तिरामयस्यासौ संप्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ २६ ॥

यथा दुष्टेन दोषेण-यथा कारणभेदेन दोषेण । यथा च अनुविसर्पता अनेकधा दोषाणां विसर्पता ऊर्ध्वाधस्तिर्यगादिगतिभेदेन तथा च विसर्पता आमयस्य या उत्पत्तिः असौ शास्त्रे व्यवहाराय सम्प्राप्तिः । संप्राप्तिः। पर्यायानाह-जातिरागतिरिति ॥

दोष-कि जो ऊँची, नीची और तिरछी आदि पृथक् २ गतिसे शरीरमें फैलते हैं, वेही दोष जिस कारणसे दुष्ट होकर और जिस गतिसे शरीरमें फैलकर रोगकी उत्पत्ति हो, उसी कारणसहित वह गति सम्प्राप्ति कहाती है वैद्यकशास्त्रमें व्यवहारके लिये जाति और आगति ये दो सम्प्राप्तिके पर्याय माने हैं॥२६॥

सम्प्राप्त्यौपाधिकभेदाः ।

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः।
सा भिद्यते यथाऽत्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ २७ ॥

सम्प्राप्तिर्व्याधीनां ज्ञानाय हेतुः । यथा मिथ्याहारविहारकुपितवाताद्यामाशयगमनरसदूषणकोष्ठाग्निबहिर्निरसनरूपं ज्वरोत्पत्तिप्रकारं बोधयति । तथा व्याधीनां संख्यादोषांशकल्पनाप्राधान्यबलकालांश्च बोधयति । तेषु ज्ञातेषु चिकित्साविशेशश्च स्यात् । संख्यादिरूपविशेषाः तेभ्यः सा सम्प्राप्तिर्भिद्यते भेदवती क्रियते इत्यर्थः । तत्र संख्यां विवृणोति यथा ज्वरोऽष्टधा अतीसारः षड्विध इत्यादि ॥

संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और काल ये विशेषतासे सम्प्राप्तिके अलग २ भेद माने हैं इस ग्रन्थमें ज्वर आठ प्रकारके हैं और अतीसार छः प्रकारके हैं इत्यादि रोगोंके भेदोंकी संख्या कही जायगी । उन्हीं भेदोंसे सम्प्राप्तिका जो निश्चय किया जाय वह संख्यासम्प्राप्ति कहाती है ॥ २७ ॥

विकल्पव्याख्यानम् ।

दोषाणां समवेतानां विकल्पोंशांशकल्पना ॥ २८ ॥

समवेतानाम्-समुदितानां दोषाणाम्। अंशांश कल्पना-हीनमध्याधिकभेदैर्भागकल्पना विकल्पः ॥

एकत्र हुए दोषोंमें कौनसा अधिक है, कौनसा मध्यम है और कौनसा दोष हीन है? इस प्रकार दोषोंके भागोंकी जो कल्पना की जाय वह विकल्प कहाता है। इस विकल्पमें संप्राप्तिका जो निश्चय किया जाय संप्राप्ति कहाती है ॥ २८ ॥

प्राधान्यव्याख्यानम्।

स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत्॥ २९॥

व्याधेःस्वतन्त्रेण प्राधान्यं पारतन्त्र्येण अप्राधान्यञ्च वदेदित्यर्थः। यथा स्वतन्त्रस्य ज्वरस्य प्राधान्यं ज्वराधीनानां श्वासादीनामप्राधान्यम्॥

जो रोग स्वतन्त्र हो वह प्रधान व्याधि कहाती है और जो रोग इस स्वतन्त्र व्याधिके अधीन हो, वह अप्रधान व्याधि कहाती है। जैसे कि—ज्वरको लेकर श्वास आदि व्याधियां हुई हों तो ज्वर प्रधान है और श्वास आदि व्याधियां अप्रधान है। इसी प्रकार प्रधानतासे तथा अप्रधानतासे संप्राप्तिका जो निश्चय किया जाय वह प्रधानसम्प्राप्ति कहाती है॥ २९॥

बलव्याख्यानम्।

हेत्वादिकात्स्न्याँवयवैर्बलाबलविशेषणम् ३०

अत्रापि व्याधेरित्यनुवर्त्तते। हेत्वादेः हेतुपूर्वरूप रूपाणाम् कात्स्न्येंन साकल्येन अवयवैः एकदेशेन व्याधेर्बलाबलयोर्विशेषणम् विशेषबोधः।

हेतु, पूर्वरूप, और लक्षण ये सम्पूर्ण अंशोंसे हैं, अथवा थोडे २ अंशोंमें हैं? इस परीक्षासे व्याधिकी सबलता और निर्बलताका जो निश्चय किया जाय वह बलसंप्राप्ति कहाती है॥ ३०॥

कालव्याख्यानम्।

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम्॥ ३१॥

नक्तमत्राव्ययं रात्रिवाचकम्। एतेन एतदुक्तम्। यस्मिन्नक्तादिरंशो यस्य दोषस्य प्रकोप उक्तोऽस्ति सोंऽशस्तद्दोषजस्य व्याधेः काल इत्यर्थः॥

रात, दिन, ऋतु, और भोजन किये अन्नादिक इनके जिस जिस अवयवके उस उस दोषका प्रकोप होना कहा है। उस उस अवयवके उस उस दोषसे हुई व्याधिका काल जानना। इस प्रकार कालसे संप्राप्तिका जो निश्चय किया जाय वह कालसंप्राप्ति कहाती है॥ ३१॥

नक्ताद्यंशेर्वातादिप्रकोपः।

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः। वयोऽहोरात्रभुक्तानामन्तमध्यादिगाः क्रमात्॥ ३२॥ इति॥

ते—वातपित्तकफाः॥

ऋतुषु वातादिकोपः।

वर्षासु शिशिरे वायुः पित्तं शरदि उष्णके। वसन्ते तु कफः कुप्येदेषा प्रकृतिरार्त्तवी॥ ३३॥

रात्रि आदिके किस किस अवयवमें किस २ दोषका प्रकोप होता है, इस विषयमें वाग्भट कहते हैं कि—"वातादिक दोष सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाले हैं तो भी विशेष करके वायु नाभिके नीचे रहती है, पित्त हृदयके मध्यमें रहता है और कफ हृदयके ऊपरके भागमें रहता है। पुरुषकी अवस्थाका अन्त वृद्धावस्था वायुके प्रकोप होनेका समय है अवस्थाके मध्यभाग पित्तके प्रकोपका समय है और अवस्थाका आदि भाग बालकपन कफके प्रकोप होनेका समय है। दिन तथा रात्रिका अन्तभाग वायुके कुपित होनेका समय है, मध्यभाग पित्तके प्रकोप होनेका समय है और आधभाग कफके प्रकोप होनेका समय है। भोजन किये अन्नादिका अन्त वायुके प्रकोपका समय है, मध्यभाग पित्तके प्रकोप होनेका समय है, और आदिभाग कफके प्रकोपका समय है। किस ऋतुमें किस दोषका प्रकोप होता है यह भी कहा है कि—"वर्षाऋतुमें और शिशिरऋतुमें वातका प्रकोप होता है, शरदऋतु और ग्रीष्मऋतुमें पित्तका प्रकोप होता है और वसन्तऋतुमें कफका प्रकोप होता है, यह ऋतुओंका स्वभाव है॥ ३२॥ ३३॥

पूर्वरूपलक्षणम् ।

पूर्वरूपं तु तद्येन विद्याद्भाविनमामयम्।
सामान्यं च विशिष्टश्च द्विविधं तदुदाहृतम् ॥ ३४ ॥ सामान्यं तत्र दोषाणां विशेषैरनधिष्ठितम् । विशिष्टमीषद्व्यक्तं स्याद्विशेषैश्च समन्वितम् ॥ ३६ ॥

जिससे भविष्यकालमें रोगकी उत्पत्ति होना मालूम हो, वह रोगका पूर्वरूप कहाता है। सामान्य पूर्वरूप और विशेष पूर्वरूप इस भांति पूर्वरूपके दो भेद हैं। जो पूर्वरूप दोषोंकी विशेषतारहित हो वह सामान्य पूर्वरूप कहाता है और जो पूर्वरूप दोषोंकी विशेषतासे युक्त हो, वह विशेष पूर्वरूप कहाता है॥ ३४ ॥ ३५ ॥

दोषाणां विशेषाः ।

जृम्भातिशयनेत्रदाहाग्निमान्द्यादयः। तत्र पूर्वरूपं व्याधीनां ज्ञानाय हेतुः । यथा श्रमादयो भाविनं ज्वरं बोधयन्ति । अथ च अत एव श्रमादयोऽतिशयितजृम्भायुक्ता भाविनं वातज्वरं नेत्रदाहयुक्ताः पित्तज्वरं वह्निमान्द्ययुक्ता भाविनं कफज्वरं बोधयन्ति ॥

जैसे कि, अत्यन्त जम्भाई आवे, नेत्रोंमें दाह हो और अग्निकी मंदता होना आदि जो दोषोंका विशेष है, उससे रहित केवल श्रमादि ज्वरका सामान्य पूर्वरूप है अर्थात् वह भविष्यकालमें सामान्य रीतिसे ज्वर आना जनाता है और यह विशेषतासे युक्त हुए श्रमादिक ज्वरका विशेष पूर्वरूप है अर्थात् श्रमादिक जो अत्यन्त जम्भाईसे युक्त हो, वह भविष्यकालमें वातज्वरका आना जनाता है। नेत्रोंका दाहसे युक्त होना भविष्यकालमें पित्तज्वर आना जनाता है और अग्निकी मन्दतासे युक्त हो, वह भविष्यकालमें कफज्वर आना जनाता है॥

लक्षणलक्षणम् ।

पूर्वरूपं विशिष्टं यद्व्यक्तं तल्लक्षणं स्मृतम्।
लिङ्गं चिह्नश्च संस्थानं व्यञ्जनं रूपमाकृतिः ॥ ३६ ॥

विशिष्टं पूर्वरूपम्—ईषद्व्यक्तरूपम्, तदेव सम्यग्व्यक्तं लक्षणं स्मृतम्। तस्य शास्त्रे व्यवहाराय पर्यायानाह- लिङ्गमित्यादि ॥

असुक प्रकारके रोगकी किंचित् सूचना देनेवाला विशेष पूर्वरूपकी अपेक्षा अधिक प्रकाशवाला अर्थात् अधिक स्पष्टतासे रोगको बतानेवाला रोगका जो रूप होता है, वह लक्षण कहाता है । वैद्यकशास्त्रमें व्यवहारके लिये लिंग, चिह्न, संस्थान, रूप और आकृति ये लक्षणके पर्याय शब्द माने हैं॥ ३६ ॥

ज्वरसामान्यलक्षणम् ।

स्वेदावरोधःसन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा।
युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरः परिकीर्तितः ॥ ३७ ॥

युगपदेतल्लक्षणं ज्वरं बोधयति ॥

जिस रोगमें पसीना रुकजाय, संताप हो और सब अंग जकडजावें ये सब एकही समयमें हों तो वह रोग ज्वर कहाता है। (एक समयमें होनेसे ये लक्षण ज्वरको सूचित करते हैं) ॥ ३७ ॥

उपशयलक्षणम् ।

औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ।
नृणामुपशयं विद्यात्स हि सात्म्यमिति स्मृतः ॥ ३८ ॥

जिससे मनुष्योंको सुख हो ऐसी औषधिका, अन्नका और विहारका जो सेवन हो, वह उपशय कहाता है और सात्म्य भी इसका पर्याय है ॥ ३८ ॥

वायोरुपशयः ।

मधुरलवणसाम्लस्निग्धनस्योष्णनिद्रा-
गुरुरविकरवस्तिस्वेदसंमर्दनानि ।

दधिघृततिलतैलाभ्यङ्गसन्तर्पणानि प्रकुपितपवमानं शान्तमेतानि कुर्युः ॥ ३९ ॥

मधुर, खारा, अम्ल तथा स्निग्धपदार्थ, नस्य, गरमपदार्थ, निद्रा, भारी पदार्थ, सूर्यकी किरणें, वस्तिक्रिया, स्वेदन, शरीरका मर्दन, दही, घृत, तिल, तेलकी मालिश और तृप्ति ये कुपित हुए पवनको शांत करते हैं। इन पदार्थोंके तथा क्रियाओंके सेवन करनेसे जिस रोगकी शांति हो तो जानना कि यह रोग वायुका है ॥ ३९ ॥

पित्तोपशयः ।

तिक्तस्वादुकषायशीतपवनच्छायानिशावीजनज्योत्स्नाभूगृहयन्त्रवारिजलजं स्त्रीगात्रसंस्पर्शनम् । सर्पिःक्षीरविरेकसेकरुधिरस्त्रावप्रदेहादिकं पानाहारविहारभेषजमिदं पित्त प्रशान्तिं नयेत् ॥ ४० ॥

कडवे, मधुर, कसैले शीतल पदार्थ, वायु, छाया, रात्रि, पंखेकी पवन, चाँदनी, पृथ्वीके भीतर बनवाया हुआ शीतलतायुक्त घर, फुवारोंकाजल, कमल, स्त्रीके शरीरका स्पर्श, घी, विरेचन, पानीका छिडकना, रुधिर निकलवाना और शीतल पदार्थोंका प्रलेप आदिक, पान आहार, विहार और औषधि पित्तको शांत करती हैं। इन पदार्थोंके तथा क्रियाओंके सेवन करनेसे जिस रोगकी शांति हो तो जानना कि यह रोग पित्तका है ॥ ४० ॥

कफोपशयः ।

रूक्षक्षारकषायतिक्तकटुकव्यायामनिष्ठीवनं धूमात्युष्णशिरोविरेकवमनस्वेदोपवासादिकम् । तृड्वाताध्वनियुद्धजागरजलक्रीडाऽङ्गनासेवनं पानाहारविहारभेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं हरेत् ॥ ४१ ॥

जलक्रीड़ा कफं कथं हरति ? तदाह–जलक्रीडाजलितशैत्येनावसद्धोष्मा पङ्कलिप्तोऽमितः पाकाग्नि रिवोग्रो भूत्वा कफं शोषयतीति समाधिः ॥

रूखे, खारे, कसैले, कडवे तथा चरपरे पदार्थ, व्यायाम, थूकना, धूमपान, अत्यन्त उष्ण, मस्तकका खाली करना, वमन, स्वेद, उपवास आदि, तृषा, वात, रास्ता का चलना, बाहुयुद्ध, जागना, जलक्रीडा और स्त्रियोंका सेवन इत्यादि पान, आहार, विहार और औषधि ये उग्र कफको भी शान्त करती हैं पदार्थोंका तथा क्रियाओंका उपयोग करनेसे जो रोग शान्त हो तो जानना कि यह रोग कफ सम्बन्धी है।

यहाँ प्रश्न होता है कि–जलक्रीडा कफको शांत कैसे करती है ? इसका समाधान यह है कि, जलमें क्रीडा करनेसे उत्पन्न हुई शीतलतासे बाहरको निकलनेवाली शरीरकी उष्णता चारों ओरसे कीचसे ढकीं चूल्हेकी अग्निके सदृश उग्र होकर कफका शोषण करती है ॥ ४१ ॥

रोगनिदानविवेचनम् ।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः । तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ॥ ४२ ॥

सर्वेषां रोगाणां निदानं सन्निकृष्टं कारणम् । कुपिताः स्वहेतुदुष्टाः मलाः वातपित्तकफा एव इत्यन्वयः ॥ तथा च वाग्भटः–" दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम् " इति ॥ ननु आगन्तुजव्याधिषु व्यभिचारः स्यात् । तन्न, तत्रापि उत्पत्त्यनन्तरं दोषोप्रकोपस्य अवश्यम्भावित्वात् उत्पन्नद्रव्येषु गुणयोगस्येव । उक्तञ्च चरके–"आगन्तुहि व्यथापूर्वो जायते पश्चान्निजैर्दोषै रनुबध्यते " इति । तत्प्रकोपस्य तु–दोषप्रकोपस्य तु निदानम् । विविधानि नानाविधानि यानि अहितानि असात्म्यानि आहारदीनि तेषां सेवनम् ॥

अपने हेतुओंसे दुष्टहुए वात, पित्त और कफही संपूर्ण रोगोंका निदान है और उनके प्रकोपका कारण अनेक प्रकारके असात्म्य आहार विहार आदिका सेवन है। वाग्भटने भी कहा है कि-"वात आदि दोषही सम्पूर्ण रोगोंके मुख्य कारण हैं" ॥ यहाँ शंका होती है कि "प्रहार आदिसे उत्पन्न हुए आगन्तुक व्याधियोंके कारण भी वात पित्त आदिमें सम्भव नहीं होसकते, इसकी क्या रीति है?" वहाँ कहते हैं कि-जिस प्रकार द्रव्योंकी उत्पत्ति होनेके पश्चात् उनमें गुणोंका योग होता है, वैसेही आगन्तुक व्याधियोंकी उत्पत्ति होनेके पश्चात् उनमें भी दोषोंका प्रकोप अवश्य होता है, इस कारण इन व्याधियोंके भी वात पित्तादिक कारण हैं। चरकने भी कहा है कि "प्रथम आगन्तुकव्याधि व्यथाके लिये अकेली होकर पश्चात् अपने दोषोंमें सम्बन्ध पाती है" ॥ ४२ ॥

वायुकोपकारणम्।

नीवारस्त्रिपुटः सतीनचणकः श्यामाकमुद्गाढकी निष्पावश्च मकुष्ठकश्च वरटा मङ्गल्यकः कोद्रवः। यद्द्रव्यं कटुकं सतिक्ततुवरं शीतञ्च रूक्षं लघु स्वल्पाशो विषमाशनं निरशनं भुक्ते ह्यजीर्णेऽशनम् ॥ ४३ ॥ भुक्तं जीर्णतरं परिश्रमभरो गर्त्तादिकोलंघनं बाहुभ्यां तरणं तरोः प्रपतनं मार्गेऽतियानं पदा। दण्डादिप्रहृतिस्तथोच्चपतनं धातुक्षयो जागरो मार्गस्यावरणं व्यवायभृशता वातादिवेगाहतिः ॥४४॥ अत्यर्थं वमनं विरेचनमतिस्रावोऽधिकश्चासृजो रोगान्मांसविहीनताऽतिमदनश्चिन्ता च शोको भयम्। वर्षा वै शिशिरो दिनस्य रजनेर्भागौ तृतीयौ घनाःप्राग्वातस्तुहिनं शरीरमरुतो दुष्टेरमी हेतवः ॥ ४५ ॥

नीवारः-प्रसाधिका" तीनी इति लोके। त्रिपुटः--खेसरी इति लोके। सतीन-वर्तुलकलायः। निष्पावः--कोलशिम्बिसदृशफला राजशिंबिस्तस्या बीजमन्नं भवति। वरटी--वराटिका, कुसुम्भबीजम्। " वररे इति लोके। मङ्गल्यको-मसूरः ॥ विषमाशनम्।

बहु स्तीकमकाले वा भुक्तं तद्विषमाशनम् ॥ ४६ ॥

अतियानम्--पादाभ्यामतिचलनम्। तरोः प्रपतलम्, तरोरित्युपलक्षणम्। जागरो रात्रौ। वातादिवेगाहतिः अदिशब्देन विण्मूत्राश्रुच्छिक्कोद्गारच्छर्दिशुक्र क्षुत्तृषोच्छ्वासनिद्राः संगृह्यन्ते। दिनस्य विधा विभक्तस्य। एवं राजनेश्च। यस्य पुनरुक्तिस्तेन तेन वातस्य अतिदुष्टिर्बोद्धव्या ॥

नीवार, पसाई, मटर, चना, समा, मूंग, अरहर, चौरा, मोरा, मोथी, कसूमके बीज, मसूर, कोदो, चरपरे, कडवे, कसैले, शीतल, रूक्ष और हलके पदार्थ, अल्पभोजन थोडा कुसमयमें वा बहुत भोजन करना उपवास, भोजनके ऊपर भोजन, पहिला भोजन जीर्ण न होनेपर भोजन, अधिक परिश्रम, गड्ढे आदि का उलंघना, हाथोंसे पानीमें तैरना, वृक्ष आदिके उपरसे गिरना, पांवोंसे अधिक मार्गमें फिरना, लकडी का चोट लगना, ऊँचे स्थानसे गिरना, धातुओंका क्षय, रात्रिमें जगना, शोक आदिसे घिरना, अत्यन्त मैथुन, वात, विष्ठा, मूत्र, आंसू, छींक डकार, वमन, वीर्य, भूख, तृषा, श्वास, निद्रा इनके वेगोंका रोकना अत्यन्त वमन, अत्यन्त विरेचन, रुधिरका अत्यन्त गिरना अथवा अधिक निकलना, रोग होनेसे मांसरहित होजाना, अत्यन्त कामदेव, चिंता, शोक, भय, वर्षाऋतु, शिशिरऋतु, दिनका तीसरा भाग, रात्रिका तीसरा भाग, बादल, पूर्वदिशाकी वायु और हिम ये सब शरीरकी वायुके कुपित होनेमें

कारण हैं। उपरोक्त कारणोंमें जिस जिस कारणकी पुनरुक्ति है उस उस कारणसे वायु का अत्यन्त कोप होता है ॥ ४३-४६ ॥

पित्तकुपितकारणम्।

कट्वम्लोष्णविदाहितीक्ष्णलवणक्रोधोपवासातपस्त्रीसम्भोगतृषाक्षुधाभिहननव्यायाममद्यादिभिः। भुक्तेऽजीर्यति भोजने च शरदिग्रीष्मे तथा प्राणिनां मध्याह्ने च तथाऽर्द्धरात्रसमये पित्तप्रकोपो भवेत् ४७

चरपरे, खट्टे, गरम, विदाही, तीक्ष्ण और खारे पदार्थ, क्रोध, उपवास, धूप, स्त्रीका सम्भोग, तृषा भूखका रोकना. व्यायाम मद्य आदि, अजीर्णमें भोजन, शरदृतु, मध्याह्न और अर्द्धरात्रिका समय ये सब शरीरमें पित्त कुपित होनेके कारण हैं ॥ ४७ ॥

विदाहिलक्षणम्।

विदाहि द्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात्तथा तृषाम्। हृदि दाहश्च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥४८॥ माषैस्तिलैः कुलत्थैश्च मत्स्यैर्मेषामिषेण च। गव्येन दधितक्रेण नृणां पित्तं प्रकुप्यति ॥ ४९॥

जो पदार्थ खानेके पश्चात् अधिक देरसे पके, खट्टी डकार आवे, तृषा लगावे और हृदयमें दाह करे वह विदाही पदार्थ कहाता है। उडद, तिल, कुलथी, मछली, मेंढेका मांस, गायका दही और गायकी छांछ इनसे भी मनुष्योंको पित्तका कोप होता है ॥४८॥४९॥

कफकुपितकारणम्।

गुरुपटुमधुराम्लस्निग्धमाषैस्तिलैश्च द्रवदधिदिननिद्राशीतसर्पिःप्रपूरैः। प्रथमदिवसभागे रात्रिभागेऽपि चाद्ये भवति हि कफकोपो भुक्तमात्रे वसन्ते ॥ ५०॥

प्रथमदिवसभागे त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य प्रथमभागे। एवं रात्रेश्चाद्यभागे ॥

भारी, खारे, मधुर तथा अम्ल पदार्थ, उडत, तिल, द्रवपदार्थ, दही, दिनमें सोना, शीत, एक स्थानपर बैठे रहना, दिनके तीन भागोंमें पहिला भाग रात्रिका भी पहिला भाग भोजन करनेके पश्चात् तुरतका समय और वसन्त ऋतु ये सब शरीरमें कफके कुपित होनेके कारण हैं ॥ ५० ॥

एकोरोगोऽन्यरोगनिमित्तम्।

ननु सर्वेषां रोगाणां निदानं दुष्टा दोषा एव किमन्यदप्यस्तीति संशये चरक आह--निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपलक्ष्यते ॥ ५१ ॥ इति ॥

रोगस्य निदानार्थकरः रोगोऽपि उपलक्ष्यते दृश्यते ॥

अत्र दृष्टान्तमाह--

तद्यथा ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते। रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते ॥ प्लीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ ५२ ॥ आर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते। प्रतिश्यायादथो कासः कासात् सञ्जायते क्षयः ॥ ५३ ॥

अन्ये तु आहुः मधुकोशे—रोगस्य रोगश्चेन्निदानं तथा निदानमित्येव उच्यते, तद्विहाय निदानार्थकर इति वचनमेतद्बोधयति, रोगस्य रोगो निदानार्थकरः निदानकार्यकरणे सहायः। निदानन्तु रक्तपित्तादीन् कतिचिद्रोगान्प्रति ज्वरादिरेव हेतुरिति सिद्धान्तः। अत एव अग्रे स्पष्टमेव आह चरकः-कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा इति। प्रथमस्य रोगस्य ज्वरादेर्यो दुष्टो दोषो हेतुः स एव पश्चाद्भाविनो रक्तपित्तादेरपि रोगस्य हेतुः ॥

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥ ५४ ॥

इति नियमात् । तत्र यदा रक्तपित्तादेरुपद्रवलक्षण एव योगेन रोगत्वविघातः स्यात् । ततः सर्वेषामिति वचनं सामान्यम् । निदानार्थकर इति विशेषवचनात् ॥

दुष्ट हुए दोषही सम्पूर्ण रोगोंके निदान हैं, अथवा अन्य भी कोई निदान है ?" ऐसी शंका होनेपर उसका उत्तर चरकसे कहते हैं कि-"एक रोग भी अन्य रोगके निदानका काम करनेवाला होता है । जैसे कि, ज्वरमें रक्तपित्त होता है और ज्वरसे तथा रक्तपित्तसे श्वास होता है, प्लीहाके बढनेसे जठर रोग होता है और जठरके रोगसे सूजन होती है । अर्शसे पेटमें पीडा तथा गुल्म होता है और जुखामसे खांसी तथा खांसीसे क्षय होता है ॥

मधुकोश नामकग्रन्थमें कहा है कि-' जो एक दूसरे रोगको उत्पन्न करता है, वह दूसरे रोगका निदान होता है" यही कहना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं कहकर निदानका काम करनेवाला होता है ऐसा कहा है इसको बताते हैं कि-निदानको अपना काम करनेमें रोग सहायक होता है, परन्तु आप निदानरूप नहीं होता, ज्वरसे रक्तपित्त आदि रोग उत्पन्न होते हैं वहां ज्वरही निदान होता है, ऐसा सिद्धान्त है । दुष्ट हुआ जो दोष वह प्रथम उत्पन्न हुए ज्वर आदिका निदान होता है कारण कि कुपित हुए दोष ही सम्पूर्ण रोगोंके निदान हैं, ऐसा नियम है ॥ परन्तु इसका कहना अयोग्य है कारण कि, जो ज्वरका निदान है वही जो रक्तपित्त आदिका निदान होता हो तो रक्तपित्त आदिके उपद्रवोंके लक्षण ही एकसे होनेसे उनकी रोगता खंडित हुई जाती है, इस कारण कुपित हुए दोष ही सर्वरोगोंके निदान हैं, इस वचनको सामान्य गिनकर एक रोग भी अन्य रोगके निदानका काम करनेवाला अर्थात् निदान ही होता है, ऐसा अर्थ मानना योग्य है ॥ ५१-५४ ॥

रोगहेतुना रोगविचित्रता ।

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ॥ ५५ ॥

यथा ज्वरो रक्तपित्तमुत्पाद्य स्वयं प्रशाम्यति ननु यो दोषोद्रेकेण ज्वरो रक्तपित्तमुत्पादितवांस्तस्मिन् सति स तु ज्वरः कथं शाम्यति तत्र व्याधिस्वभाव एव कारणमिति न दोषः ।

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ॥ ५६ ॥

अन्यो हेत्वर्थमपि कुरुते स्वयञ्च न प्रशाम्यति । यथा प्रतिश्यायः कासं करोति स्वयञ्च न प्रशाम्यति तथाऽर्शो जठरगुल्मो करोति स्वयञ्च न निवर्तत इति ॥

चरक कहते हैं कि-"कोई रोग दूसरे रोगका निदान रूप होकर आप शान्त होजाता है" जैसे कि ज्वर रक्तपित्तको उत्पन्न करके आप शान्त होता है ।

यहां शंका होती है कि-दोषकी अधिक वृद्धिसे जिस ज्वरने रक्तपित्तको उत्पन्न किया, रक्तपित्त होनेपर उस ज्वरकी शांति कैसे होनी चाहिये ? वहां कहते हैं कि, इस विषयमें रोगोंका ऐसा स्वभाव ही है, ऐसा मानना अर्थात् ऐसा माननेमें कोई दोष नहीं आवेगा । फिर चरक कहते हैं कि "कोई रोग अन्य रोगको उत्पन्न करता है और उत्पन्न करके आपशान्त भी नहीं होता" जैसे कि-जुखाम खांसीको उत्पन्न करता है और उत्पन्न करके आप शान्त नहीं होता, वैसे ही अर्श जठरके रोगोंको तथा गुल्म रोगको उत्पन्न करता है और आप शान्त नहीं होता ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अधिकक्षीणदोषधातुप्रलानां सुश्रुतोक्तचिकित्सा ।

अत्यन्तकुत्सितावेतौ सदा स्थूलकृशौ नरौ । श्रेष्ठो मध्यशरीरस्तु स्थूलः क्षीणो न पूजितः ॥ ५७ ॥ कर्षयेद् बृंहयेच्चापि

सदा स्थूलकृशौ नरौ । रक्षणञ्चापि मध्यस्य कुर्वीत कुशलो भिषक् ॥५८॥

अन्यच्च--

क्षपयेद् बृंहयेच्चापि दोषधातुमलान् भिषक् । नरो रोगान्वितो यावद्रोगेण रहितो भवेत् ॥ ५९ ॥

क्षपयेदतिप्रवृद्धान्दोषधातुमलांस्तत्र क्षैण्यहेतुभिरौषधान्नविहारैर्ह्रासयित्वा समीकुर्यात् । बृंहयेत् क्षीणान् दोषादीन्स्तद्वृद्धिहेतुभिरौषधान्नविहारैर्वर्द्धयित्वा समीकुर्यात् ॥

अस्वस्थो येन विधिना स्वस्थो भवति मानवः। तमेव कारयेद्वैद्यो यत स्वास्थ्यं सदेप्सितम् ॥ ६० ॥

सुश्रुत कहते हैं कि-"सर्वदा मोटा और पतला शरीरवाला मनुष्य उत्तम नहीं है, मध्यशरीरवाला मनुष्य श्रेष्ठ है । मोटा मनुष्य और कृश मनुष्य दोनों उत्तम नहीं हैं। सदा विद्वान् वैद्य स्थूल मनुष्यके शरीरमें कर्षण क्रिया करे। कृश मनुष्यके शरीरमें बृंहण क्रिया करे और मध्यमशरीरवाले मनुष्यको जैसाको तैसाही रहने देवे " फिर कहा है कि-' रोगी मनुष्य जबतक रोगमुक्त हो, तबतक वैद्य दोषोंका, धातुओंका और मलोंका कर्षण करे और बृंहण करे "। कर्षण करे अर्थात् अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुए दोषोंको, धातुओंको और मलोंको जो क्षीण करे, ऐसी औषधियोंसे अन्नोंसे तथा विहारोंसे क्षीण करके सम करे । बृंहण करे अर्थात् क्षीण हुए दोष आदिको जो वृद्धि करे, ऐसी औषधियोंसे अन्नोंसे तथा विहारोंसे बढाकर सम करे। अस्वस्थ मनुष्य जिस विधिसे स्वस्थ हो वही विधि वैद्य करे, कारण कि-सर्वदा सबको स्वस्थताकी ही इच्छा होती है ॥ ५७-६० ॥

अथ स्वस्थलक्षणम् ।

समदोषःसमाग्निश्च समधातुसमक्रियाः । प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ ६१ ॥

समक्रियः-शरीरानुरूपकर्मा । आत्मा-शरीरम् तन्त्रान्तरेऽपि-

विण्मूत्राखिलदोषधातुसमता कांक्षाऽन्नपाने रुचिर्भुक्तं जीर्यति पुष्ट्ये परिणतिः स्वप्नावबोधौ सुखम् । गृह्णीते विषयान् यथास्वमुचितान् वृत्तिं मनोवृत्तितः स्वस्थस्याभिहितं चतुर्दशविधं जन्तोरिदं लक्षणम् ॥ ६२ ॥

रुचिः-शरीरकान्तिः । ननु अहर्निशर्तुभुक्तवस्तुदोषाणां वृद्धेः कथं समदोषता ? उच्यते-अहोरात्रप्रथमभागादिषु तत्तद्दोषवृद्धेः स्वस्थवृत्तोक्तविधिभिरूपशमात्समदोषतेति न दोषः । किञ्च--

यत्समत्वं हि दोषाणां भिषग्भिरवधार्यते । नतत्स्वास्थ्यं विना वक्तुं शक्यमन्येन हेतुना ॥ ६३ ॥

तेन समदोषस्वस्थयोर्लक्षणमन्योन्यापेक्षया । स्वस्थसमदोषः स्वस्थेभ्यो हितं च तदोषधातुमलानां स्वप्रमाणस्थितानां साम्यानुवृत्तिहेतुर्यद्व्यापच्च स्वस्थानुवृत्तिं करोति । (ऋतुचर्याऽध्याये सेव्यत्वेनोक्तम् । तथा मात्राशितीऽध्याये रक्तशालिषष्टिकयव गोधूमजाङ्गलमांसजीवन्तीशाकादिमोदपक्षीरादि । तथा यजोजस्करं रसायनं वाजीकरणं सर्वदा शीलनीयत्वेन निर्दिष्टम्) ॥

जिस मनुष्यके दोष, अग्नि, मल और धातु ये समान हों, शरीरसे जैसा चाहिये वैसा काम

होता हो और शरीर, इंद्रियां तथा मन प्रसन्न रहते हों वह मनुष्य स्वस्थ कहाता है ॥ अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि–" विष्टा, मूत्र, संपूर्ण दोष, सम्पूर्ण धातुओंकी समता, अन्नकी इच्छा, जलकी इच्छा, शरीरकी कांति, खाये हुए अन्नका पचना, अन्न पुष्टि करे ऐसा परिणाम होना, सुखपूर्वक शयन, सुखपूर्वक जागना, योग्य विषयोंका यथार्थ रीतिसे ग्रहण होना, हर्ष और मनकी निर्मलता ये चौदह लक्षण जिसमें हों, उसको स्वस्थ जानना "। यहां शंका होती है कि-सर्वदा मनुष्योंको दिनका, रात्रिका, ऋतुओंका और भोजनका सम्बंध होनेसे दोष बढाही करते हैं, इस कारण दोषोंकी समता कैसे हो ? वहां कहते हैं कि, दिन, रात्रि, ऋतु तथा भोजन इनके प्रथम आदिमें उन्हीं २ दोषोंकी जो वृद्धि होती है, उनकी स्वस्थता रहनेके आचरणमें कहे प्रकारसे उपशम किया जाय तो दोषोंकी समता होती है। इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं। फिर भी कहा कि " जिसको वैद्य दोषोंकी समता विचारते हैं, वह समता स्वस्थताके विना दूसरे हेतुसे नहीं कही जालकती " इससे सिद्ध होता है कि, समदोषके लक्षणको लेकर समदोषता प्राप्त होती है। इसकारण जो स्वस्थ हो, वह समदोष कहाता है और जो समदोष हो, वह स्वस्थ कहाता है ॥ ६१-६३ ॥

अथ दोषधातुमलवृद्धिनिदानम् ।

तत्तद्वृद्धिकराहारविहारातिनिषेवणात् । दोषधातुमलानां हि वृद्धिरुक्ता भिषग्वरैः ॥ ६४ ॥

दोष, धातु और मलोंकी वृद्धि करनेवाले आहार विहारोंके अतिसेवन करनेसे जो दोष आदि बढाजाता है उसको वैद्यश्रेष्ठ वृद्धि कहते हैं ॥ ६४ ॥

अतिवृद्धानां तेषां लक्षणान्याह ।

वाते वृद्धे भवेत् कार्श्यं पारुस्यं चोष्णकामिता । गाढं मलं बलश्चाल्पं गात्रस्फूर्तिर्विनिद्रता ॥ ६५ ॥ विण्मूत्रनेत्रगात्राणां पीतत्वं क्षीणमिन्द्रियम् । शीतेच्छातापमूर्च्छाः स्युः पित्ते वृद्धेऽल्पमूत्रता ॥ ६६ ॥ विडादिशौक्ल्यं शीतत्वं गौरवञ्चातिनिद्रता । सन्धिशैथिल्यमुत्क्लेदो मुखसेकः कफेऽधिके ॥ ६७ ॥

" वातकी अत्यन्त वृद्धि " हुई हो तो दुर्बलता, कठोरता, गरमीकी इच्छा, मलकी गाढता अल्पबल, शरीरका फडकना और निद्राका नहीं आना ये होते हैं। " पित्तकी अत्यन्त वृद्धि " हुई हो तो मल, मूत्र, नेत्र तथा शरीरमें पीलापन होता है, इंद्रियां क्षीण होती हैं, शीतकी इच्छा होती है, ताप तथा मूर्च्छा होती है और मूत्र अल्प होजाता है। "कफकी अत्यन्त वृद्धि " हो तो मलादिकमें श्वेतपन, शीत तथा शरीरमें भारीपन होता है, निद्रा अधिक आती है, संधियोंमें शिथिलता तथा ग्लानि होती है और मुखसे पानी बहता है ॥ ६५-६७ ॥

रसे वृद्धेऽन्नविद्वेषो जायते गात्रगौरवम् । लालाप्रसेकश्छर्दिश्च मूर्च्छा सादो भ्रमः कफः ॥ ६८ ॥ प्रवृद्धं रुधिरं कुर्याद्गात्रमारक्तवर्णकम् । लोचनं च तथा रक्तं शिराः पूरयतेऽपि च ॥ ६९ ॥

" रसकी अत्यन्त वृद्धि " हो तो अन्नमें द्वेष तथा शरीरमें गुरुता होती है। लार झरती है। वमन, मूर्च्छा शरीरमें पीडा, श्रम और कफकी वृद्धि होती है। " रुधिरकी अत्यन्त वृद्धि " हो तो शरीर तथा नेत्र लाल होजाते हैं और नसें पूर्ण होजाती हैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

अन्यच्च--रक्तन्तु कुरुते वृद्धं विसर्पप्लीहविद्रधीन् । कुष्ठं वातास्रकं गुल्मं शिरापूर्णत्वकामले ॥ ७० ॥ गात्राणां गौरवं निद्रा मदोदाहश्च जायते । व्यङ्गाग्निसादसम्मोहा रक्तत्वङ्नेत्रमूत्रता ॥ ७१ ॥

गुदमेढ्रास्यपाकार्शःपिडकामशकास्तथा। इन्द्रलुप्ताङ्गमर्दासृग्दरास्तापः करांघ्रिषु ॥ ७२ ॥ शमयेद्रक्तवृद्धयुत्थान् रक्तश्रुतिविरेचनैः। मांसं वृद्धन्तु गण्डौष्ठस्फिग्गुपस्थोरुबाहुषु ॥ ७३ ॥ जंघयोः कुरुते वृद्धिं तथा गात्रस्य गौरवम्। उदरे पार्श्वयोर्वृद्धिः कासश्वासादयस्तथा। दौर्गन्ध्यं स्निग्धता गात्रे मेदोवृद्धौ भवेदिति ॥ ७४ ॥

और भी कहा है कि, रुधिर अत्यन्त बढा हो तो विसर्प, प्लीहा, विद्रधि, कुष्ठ, वातरक्त, गुल्म, नसोंकी परिपूर्णता, कामला, शरीरकी गुरुता, निद्रा, मद, दाह, झाईं, अग्निकी मंदता, मोह, त्वचा, नेत्र तथा मूत्रमें लाली होना; गुदका पकना, लिंगका पकना, मुखका पकना, बवासीर, फुन्सी, मस्से, गंजापन रोग, अंगोका टूटना, प्रदर, हाथोंमें ताप तथा पांवोंमें ताप होता है। रुधिर बढनेसे जो रोग उत्पन्न हुए हों, उनको रुधिर निकाले और रेचन देनेसे शांत करे। मांस अत्यन्त बढा हो तो कपोल, ओष्ठ, कूले, लिंग, जंघा, भुजा और पिंडरी बढती है तथा शरीरमें गुरुता होती है। "मेदा अत्यन्त बढी" हो तो उदर तथा पसवाडोंकी वृद्धि होती है, खांसी, श्वास, दुर्गन्धता और शरीरमें स्निग्धता होती है ॥ ७०-७४ ॥

अन्यच्च--प्रवृद्धं कुरुते। मेदः श्रममल्पेऽपि चेष्टिते। तृट्स्वेदगलगण्डौष्ठरोगमेहादिजन्म च ॥ ७५ ॥ श्वासं स्फिग्जठरग्रीवास्तनानां लम्बनं तथा। वृद्धान्यस्थीनि कुर्वन्ति अस्थीन्यन्यानि चास्थिषु ॥ ७६ ॥ आचरन्ति तथा दन्तान् विकटान्महतस्तथा। मज्जावृद्धिः समस्ताङ्गनेत्रगौरवमाचरेत्। शुक्राश्मरी शुक्रवृद्धौ शुक्रस्यातिप्रवर्त्तनम् ॥ ७७ ॥

फिरभी कहा है कि, मेदा अत्यंत बढी हो तो किंचित् परिश्रम करनेसे अधिक श्रम होता है तृषा अत्यन्त लगती है, पसीना बहुत आता है, गलगण्ड तथा होठके रोग होते हैं, प्रमेह आदि भी उत्पन्न होते हैं, श्वास होता है और कूले, पेट, गरदन, तथा स्तन लम्बे हो जाते हैं। "हड्डी अत्यन्त बडी हो" तो हड्डियोंमें दूसरी-हड्डियां उत्पन्न हो जाती हैं और दांत विकट तथा मोटे हो जाते हैं। "मज्जा अत्यन्त बढी हो" तो सब अंगमें और नेत्रोंमें गुरुता हो जाती है। "वीर्य अत्यन्त बढा हो" शुक्राश्मरी नामक पथरीरोग होता है और वीर्यकी अधिक प्रवृत्ति होती है ॥ ७५-७७ ॥

मलप्रवृद्धावाटोपो जायते जठरे व्यथा ॥ ७८ ॥ मूत्रे वृद्धे मुहुर्मूत्रमाध्मानं वस्तिवेदना। स्वेदे वृद्धे तु दौर्गन्ध्यं त्वचि कण्डूश्च जायते ॥ ७९ ॥ आर्तवातिप्रवृत्तिः स्याद्दौर्गन्ध्यं चार्तवे भवेत्। अङ्गमर्दश्च जायेत लिङ्ग स्यादार्तवेऽधिके ॥ ८० ॥ स्तनयोरतिपीनत्वं क्षीरस्रावो मुहुर्मुहुः। तोदश्च तत्र भवति स्तन्याधिक्यस्य लक्षणम् ॥ ८१ ॥ उदरादिप्रवृद्धिस्तु वृद्धे गर्भेऽभिजायते। स्वेदश्च गर्भवत्याः स्यात् प्रसवे व्यसनं महत्॥८२॥

"मल अत्यन्त बढ रहा" हो तो अफारा और पेटमें पीडा होती है। "मूत्र अत्यन्त बढ-रहा हो" तो वरंवार मूत्र आता है, मूत्राशयमें अफारा और पीडा होती है। "पसीना अत्यन्त बढ रहा हो" तो दुर्गन्धता और त्वचामें खुजली होती है। "स्त्रियोंके रजकी अत्यन्त वृद्धि हो तो" रजकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है, रजमें दुर्गन्ध आती है और अंग टूटते हैं। "स्त्रियोंका दूध अत्यन्त बढ रहा हो तो" स्तन अत्यन्त पुष्ट होते हैं, दुग्ध वारंवार झरता है और स्तनोंमें पीडा होती है। गर्भवती स्त्रियोंका गर्भ अधिक बढ गया हो तो" उदर

आदि अंग बढ जाते हैं, पसीना बहुत आता है और प्रसवके समयमें अधिक कष्ट होते हैं ॥ ७८-८२ ॥

अथातिवृद्धदोषधातुमलक्षयविधिः।

तत्तद्धासकराहारविहारपरिषेवणात्। दोषधातुमलनां हि ह्रासो निगदितो नृणाम् ॥ ८३ ॥ पूर्वः पूर्वोऽतिवृद्धत्वाद्वर्द्धयेद्धि परस्परम्। तस्मादतिप्रवृद्धानां धातूनां ह्रसनं हितम् ॥ ८४ ॥

दोष, धातु और मलोंको हीन करनेवाले आहार विहारोंको भली भांति सेवन करनेसे मनुष्योंके दोष धातु और मल बलहीन होते हैं, इनमें दोष अत्यन्त बढकर धातुओंको बढाते हैं और धातुएँ बढकर मलोंको बढाती हैं, इस कारण अत्यन्त बढी हुई धातुओंको अल्प करना हितकरी है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथ दोषधातुमलक्षयनिदानम्।

आसात्म्यान्नसदाक्रोधशोकचिन्ताभयश्रमैः। अतिव्यवायानशनात्यर्थसंशोधनैरपि ॥ ८५ ॥ वेगानां धारणाच्चापि साहसादभिघाततः। दोषाणामथ धातूनां मलानाञ्च भवेत्क्षयः ॥ ८६ ॥

विरुद्ध प्रकृतिवाला अन्न, सर्वदा क्रोध शोक, चिंता, भय, श्रम, अत्यन्त मैथुन, उपवास, अत्यन्त रेचन आदि, दस्त आदिके वेगोंका रोकना, साहस और प्रहार आदि अभिघात इनसे दोषोंका धातुओंका और मलोंका क्षय होता है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

अथ क्षीणदोषादिलक्षणम्।

वातक्षयेऽल्पचेष्टत्वं मन्दवाक्यं विसंज्ञता। पित्तक्षयेऽधिकः श्लेष्मा वह्निमान्द्यं प्रभाक्षयः ॥ ८७ ॥ सन्धयः शिथिला मूर्छा रौक्ष्यं दाहः कफक्षये। हृत्पीडाकण्ठशोषौ त्वक् शून्या तृट् च रसक्षये ॥ ८८ ॥ शिरा श्लथा हिमा मूर्च्छा त्वक्पारुष्यं क्षयेऽसृजः। गण्डौष्ठकन्धरास्कन्धवक्षोजठरसन्धिषु ॥ ८९ ॥ उपस्थशोथ (?) पिण्डीषु शुष्कता गात्ररूक्षता। तोदो धमन्यः शिथिला भवेयुर्मांससंक्षये ॥ ९० ॥ प्लीहाभिवृद्धिः सन्धीनां शून्यता तनुरूक्षता। प्रार्थना स्निग्धमांसस्य लिङ्गं स्यान्मेदसः क्षये ॥ ९१ ॥ अस्थिशूलं तनौ रौक्ष्यं नखदन्तत्रुटिस्तथा। अस्थिक्षये लिङ्गमेतद्वैद्यैः सर्वैरुदाहृतम् ॥ ९२ ॥ शुक्राल्पत्वं पर्वभेद स्तोदः शून्यत्वमस्थनि। लिङ्गान्येतानि जायन्ते नराणां मज्जसंक्षये ॥ ९३ ॥ शुक्रक्षये रतेऽशक्तिर्व्यथाशेफसि मुष्कयोः। चिरेण शुक्रसेकः स्यात्सेके रक्ताल्पशुक्रता ॥ ९४ ॥

'वायु क्षीण होनेसे' शरीरकी चेष्टा अल्प होती है, अल्प बोल सकता है और विसंज्ञता (संज्ञारहितता) होती है। 'पित्तके क्षय होनेसे' कफ अधिक होता है, अग्नि मन्द हो जाती है और कांतिका क्षय होता है। 'कफ क्षीण हो तो' संधियोंमें शिथिलता होती है, गला सूख जाता है, त्वचा सूख जाती है और तृषा लगती है। 'रुधिर क्षीण हो तो' नसें शिथिल तथा शीतल होती हैं, मूर्च्छा आती है और त्वचा कठोर हो जाती है। 'मांस क्षीण होनेसे' कपोल, होंठ, गरदन, खम्भे, उदर, संधियां, लिंग और पांवकी पिंडरी सूख जाती हैं, शरीर रूक्ष हो जाता है, पीडा होती है और नाडियां शिथिल हो जाती हैं। 'मेदा क्षीण होनेसे' प्लीहा बढ जाती है, संधियां शून्य हो जाती हैं, शरीर रूक्षता और स्नेहयुक्त मांस भक्षणकी इच्छा होती है। 'अस्थि

क्षीण होनेसे' अस्थियोंमें शूल होता है, शरीर रूक्ष होता है और नख तथा दांत टूटने लगते हैं, अस्थि क्षीण होनेके ये चिह्न सब वैद्योंने कहे हैं। 'मज्जा क्षीण होनेसे वीर्यकी अल्पता, संधियोंका टूटना, पीडा और अस्थियोंमें शून्यता ये चिह्न होते हैं। 'वीर्यका क्षय होनेसे' मैथुनमें आसक्ति होती है, लिंगमें तथा अण्डकोषोंमें पीडा होती है, वीर्य देरसे स्खलित होता है और अल्प तथा रक्त युक्त होता है ॥८७-९४॥

अथौजःक्षयनिदानम्।

ओजः संक्षीयते कोपाच्चिन्ताशोकश्रमादिभिः। रूक्षतीष्णोष्णकटुकैःकर्षणैरपरैरपि ॥ ९५ ॥

कोप, चिन्ता, शोक, श्रम आदि, रूक्ष, तीक्ष्ण, गरम तथा चरपरे पदार्थ और कर्षण क्रियासे भी ओजका क्षय होता है ॥ ९५ ॥

अथौजःक्षीणलक्षणम्।

बिभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं चिन्तयेद्व्यथितेन्द्रियः। अभ्युत्थायोन्मना रूक्षः क्षामः स्यादोजसः क्षये ॥ ९६ ॥

'ओज क्षीण होनेसे' मनुष्य बलहीन हो जाता है, वारंवार भयभीत होता है, चिन्ता तथा इंद्रियोंमें पीडा होती है, कान्तिरहित होजाता है, मनमें भय पाता है, रूक्ष, तथा दुर्बल हो जाता है ॥ ९६ ॥

अथ मल (विष्ठा) क्षीणलक्षणम्।

पुरीषस्य क्षये पार्श्वे हृदये च व्यथा भवेत्। सशब्दस्यानिलस्योर्ध्वगमनं कुक्षिसंवृतिः ॥ ९७ ॥

'विष्ठा क्षीण होनेसे' पसली तथा हृदयमें पीडा होती है, वायु शब्द करती हुई ऊपरको चलती है और कोखें सुकड जाती हैं ॥ ९७ ॥

अथ मूत्रादिक्षयलक्षणम्।

मूत्रक्षयेऽल्पमूत्रत्वं वस्तौ तोदश्च जायते। स्वेदनाशो त्वचो रौक्ष्यं चक्षुषोरपि रूक्षता ॥ ९८ ॥ स्तब्धाश्च रोमकूपाः स्युर्लिङ्गं स्वेदक्षये भवेत्। आर्तवस्य स्वकाले चाभावस्तस्याल्पताऽथवा॥९९॥ जायते वेदना योनौ लिङ्गं स्यादार्तवक्षये। अभावः स्वल्पता वा स्यात्स्वल्पस्य प्रभवस्तथा ॥ १०० ॥ म्लानौ पयोधरावेतल्लक्षणं स्तन्यसंक्षये। अनुन्नतो भवेत् कुक्षिर्गर्भस्यास्पन्दनं तथा। इति गर्भक्षये प्राज्ञैर्लक्षणं समुदाहृतम्॥१०१

'मूत्र क्षीण होनेसे' मूत्र अल्प हो जाता है और मूत्राशयमें पीडा होती है। 'पसीना क्षीण होनेसे' त्वचा रूखी हो जाती है, नेत्र भी रूक्ष होजाते हैं और रोमोंके छिद्र स्तब्ध हो जाते हैं। 'स्त्रियोंके रज क्षीण होनेसे' रज समयानुसार नहीं आता, अल्प हो जाता है और योनिमें पीडा होती है। 'स्त्रियोंके दूध क्षीण होनेसे दूधका अभाव होजाता है, यदि आवे तो अल्प आता है और स्तन मुरझा जाता है स्त्रियोंका गर्भ क्षीण होनेसे' पेट नीचा होजाता है और गर्भ पेटमें फरकता नहीं है ये लक्षण विद्वानोंने कहे हैं ॥ ९८-१०१ ॥

अथ क्षीणधातुवर्धनविधिः।

तत्तत्संवर्द्धनाहारविहारातिनिषेवणात्। तत्तत् प्राप्य नरः शीघ्रं तत्तत्क्षयमपोहति ॥ १०२ ॥ ओजस्तु वर्द्धते नृणां सुस्निग्धैः स्वादुभिस्तथा। वृष्यैरन्यैर्विशेषात्तु क्षीरमांसरसादिभिः ॥ १०३ ॥

धातु दोष तथा मलोंको बढानेवाले आहार विहारोंका अत्यन्तसेवन करनेसे उनकी प्राप्ति होनेपर तुरन्त क्षीणता नष्ट होजाती है। भली

भांति स्नेहसे युक्त, मधुर और मैथुनकी शक्तिको बढानेवाले तथा स्वादिष्ठ आहारोंसे मनुष्योंका ओज बढता है और उसमें भी दूध तथा मांसरस आदिके उपयोगसे अत्यन्त बढता है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

अन्यच्च-

दोषधातुमलक्षीणो बलक्षीणोऽपि मानवः। तत्तत्संवर्धनं यत्तदन्नपानं प्रकांक्षति ॥ ॥१०४॥ यद्यदाहारसंजातं क्षीणः प्रार्थयते नरः। तस्यतस्य स लाभेन तत्तत्क्षयमपोहति ॥ १०५ ॥

और भी कहा है कि-जिसके दोष, धातु, मल तथा बल क्षीण होगये हों, वह मनुष्य उन्ही उन्ही पदार्थोंको बढानेवाले अन्न पानोंकी इच्छा करता है। धातु आदिकी क्षीणता पाये हुए मनुष्यको जिस जिस आहारकी इच्छा हो, वह वह आहार मिलनेसे धातु आदिका क्षय नष्ट होजाता है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

अथ वातादिक्षीणतायां वस्त्वभिलाषा

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च। यवमुद्गप्रियंगूंश्च वातक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १०६ ॥

जिसकी वात क्षीण हुई हो वह मनुष्य-कसैले, चरपरे, कडवे, रूक्ष शीतल तथा हलके पदार्थ, जौ, मूँग, और कंगनी इनकी इच्छा करता है ॥ १०६ ॥

तिलमाषकुलत्थादिपिष्टान्नविकृतिं तथा। मस्तुशुक्ताम्लतक्राणि काञ्जिकं च तथा दधि ॥ १०७ ॥ कट्वम्ललवणोष्णानि तीक्ष्णं क्रोधं विदाहि च। समयं देशमुष्णञ्च पित्तक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १०८ ॥

जिसका पित्त क्षीण हुआ हो वह मनुष्य-तिल उडद, कुलथी आदि पिसे हुए अन्नका विकार, दहीकी मलाई, सिरका, अम्लछांछ कांजी, दही, चरपरे, अम्लखारा-गरम तथा तीक्ष्ण पदार्थ, क्रोध, विदाही पदार्थ, उष्णकाल और गरम प्रदेश इनकी इच्छा करता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च दधि क्षीरं दिवास्वप्नं कफक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १०९ ॥

जिसका कफ क्षीण हुआ हो वह मनुष्य-मधुर स्निग्ध, शीतल, खारा, अम्ल तथा भारी पदार्थ, दही, दूध और दिनमें शयनकी इनकी इच्छा करता है ॥ १०९ ॥

रसक्षीणो नरः कांक्षत्यम्भोऽतिशिशिरं मुहुः। रात्रिनिद्रां हिमं चन्द्रं भोक्तुञ्च मधुरं रसम् ॥ ११० ॥ इक्षु मांसरसं मन्थं मधु सर्पिर्गुडोदकम्। द्राक्षादाडिमशुक्तानि सस्नेहलवणानि च। रक्तसिद्धानि मांसानि रक्तक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १११ ॥

जिसका रस क्षीण हुआ, हो वह मनुष्य-बारम्बार अत्यन्त शीतल जल, रात्रीमें निद्रा, हिम, चन्द्रमा, मधुर रस, ईख, मांसका रस, मन्थ, शहद, घी और गुडयुक्त जलकी इच्छा करता है। जिसका रुधिर क्षीण होगया हो, वह मनुष्य दाख अथवा दाडिमका सिरका, स्नेहयुक्त तथा लवणयुक्त पदार्थ और रुधिरमें पकाये हुए मांसकी इच्छा करता है ११०।१११॥

अन्नानि दधिसिद्धानि खाण्डवांश्च बहूनपि। स्थूलक्रव्यादमांसानि मांसक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११२ ॥

खाण्डवाः--मधुराम्लादिरससंयोगपाचिताः गुडासवप्रभृतयः ॥

जिसका मांस क्षीण होगया हो वह मनुष्य-दहीमें पकाया हुआ अन्न मधुर तथा खारे आदि रसोंके संयोगसे पकाये हुए पदार्थ और मांसका भक्षण करनेवाले मोटे प्राणियोंके मांसकी इच्छा करता है ॥ ११२ ॥

मेदः सिद्धानि मांसानि ग्राम्यानूपौदकानि च। सक्षाराणि विशेषेण मेदःक्षीणोऽभिकक्षति ॥ ११३ ॥

जिसकी मेदा क्षीण होगई हो वह मनुष्य-मेदामें पकाये हुए ग्राम्य आनूप तथा जलचर प्राणियोंके मांसकी और विशेष करके खारे पदार्थोंकी इच्छा करता है ॥ ११४ ॥

अस्थिक्षीणस्तथा मांसं मज्जास्थिस्नेहसंयुतम्। स्वाद्वम्लसंयुतं द्रव्यं मज्जाक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११४ ॥

जिसकी अस्थियाँ क्षीण होगई हों, वह मनुष्य-मज्जासे तथा अस्थियोंके स्नेहसे संयुक्त मांसकी और जिसकी मज्जा क्षीण होगई हो, वह मधुर तथा अम्ल रसवाले पदार्थोंकी इच्छा करता है ॥ ११४ ॥

शिखिनः कुक्कुटस्याण्डं हंससारसयोस्तथा। ग्राम्यानूपौदकानाञ्च शुक्रक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११५ ॥

जिसका वीर्य क्षीण होगया वह मनुष्य-मोर, मुरगा हंस, सारस, ग्रामके पक्षी, आनूप और जलमें रहनेवाले पक्षी, इनके अण्डोंकी इच्छा करता है ॥ ११५ ॥

यवान्नं यवकान्नञ्च शाकानि विविधानि च। मसूरमाषयूषञ्च मलक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११६ ॥

जिसकी विष्ठा क्षीण होगई हो वह मनुष्य-जौ, सूक्ष्म गेहूँ, अनेक प्रकारके शाक और मसूर तथा उडदका यूष इनकी इच्छा करता है ॥ ११६ ॥

पेयमिक्षुरसं क्षीरं सगुडं बदरोदकम्। मूत्रक्षीणोऽभिलषति त्रपुसैर्वारुकाणि च ॥ ११७ ॥

जिसका मूत्र क्षीण होगया हो वह मनुष्य-पीनेके पदार्थ, ईखका रस, दूध, गुडयुक्त बेरका जल, खीरा और ककड़ी इनकी इच्छा करता है ॥ ११७ ॥

अभ्यङ्गोद्वर्त्तने मद्यं निवातशयनाशने। गुरु प्रावरणं चैव स्वेदक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११८ ॥

जिसका श्वेद क्षीण हो गया हो वह मनुष्य-तैलादिककी मालिस उबटन, मद्य, पवन रहित स्थानमें शयन तथा बैठनेकी और भारी वस्त्रोंकी इच्छा करता है ॥ ११८ ॥

कट्वम्ललवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च। फलशाकानि पानानि स्त्री कांक्षत्यार्त्तवक्षये ॥ ११९ ॥

जिसका रज क्षीण होगया हो वह स्त्री--चरपरे खट्टे, खारे, गरम, विदाही और गुरुतायुक्त पदार्थ, फलोंका शाक तथा अन्न पानोकी इच्छा करती है ॥ ११९ ॥

सुराशाल्यन्नमांसानि गोक्षीरं शर्करां तथा। आसवं दधि हृद्यानि स्तन्यक्षीणाऽभिवांछति ॥ १२० ॥

जिसका दूध क्षीण होगया हो वह स्त्री-मदिरा, चावल, मांस, गायका दूध, खांड, आसव, दही और हृदयको प्रिय मालूम हो-ऐसे अन्नादिककी इच्छा करती है ॥ १२० ॥

मृगाजाविवराहाणां गर्भान्वाञ्छति सस्कृतान् । वसाशूल्यप्रकारादीन्भोक्तुं गर्भपरिक्षये ॥ १२१ ॥

जिसका गर्भ क्षीण हो गया हो वह स्त्री- मृग, बकरा, मेंढा, सुअर इनके पके हुए गर्भकी चरबीकी तथा लोहेके कांटेसे पकाये हुए मांस आदि खानेको इच्छा करती है ॥

अथ सुश्रुतोक्तबललक्षणम् ।

रसादिशुक्रपर्य्यन्तधातुपुष्टिनिमित्तकम् । चेष्टासु पाटवं यत्तु बलं तदभिधीयते१२२

सुश्रुत कहते हैं कि-रससे लेकर वीर्यपर्यन्त सम्पूर्ण धातुएँ पुष्ट होनेके लिये चेष्टा करनेमे शरीरकी जो समर्थता है, वह बल कहाता है ॥ १२२ ॥

अथ बलक्षयनिदानम् ।

अभिघाताद्भयात्क्रोधाच्चिन्तया च परिश्रमात् । धातूनां संक्षयाच्छोकाद्बलं संक्षीयते नृणाम् ॥ १२३ ॥

चोटसे, भयसे, क्रोधसे, चिंतासे, परिश्रमसे, धातुओंके क्षयसे और शोकसे मनुष्योंका बल क्षीण होता है ॥ १२३ ॥

अथ बलक्षयलक्षणम् ।

गौरवं स्तब्धता गात्रे मुखम्लानिर्विवर्णता । तन्द्रा निद्रा वातशोथो बलव्यापत्तिलक्षणम् ॥ १२४ ॥

शरीरमें गुरुता, स्तब्धता मुखका मुरझाना, वर्णका बिगडना, तंद्रा, निद्रा और वातसंबंधी सूजन ये बलके क्षयके लक्षण हैं ॥ १२४ ॥

अथ बलवृद्धिनिदानम् ।

दोषसाम्यकरं यत्तु वह्निसाम्यकरं च यत् । धातुपुष्टिकरं द्रव्यं बलं तदभिवर्द्धयेत् ॥ १२५ ॥

जो पदार्थ दोषोंकी तथा अग्निकी समता करनेवाला है और धातुओंका पुष्ट करता है, वह पदार्थ बलको बढाता है ॥ १२५ ॥

अथ बलाबललक्षणम् ।

कृशोऽपि बलवान्कश्चित्स्थूलोऽप्यल्पबलो यतः । तस्माच्चेष्टापटुत्वेन बलवन्तं विदुर्बुधाः ॥ १२६ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचिते श्रीभावप्रकाशे पूर्वखण्डे षष्ठं प्रकरणम् ॥

कोई मनुष्य शरीरके दुर्बल होनेपर भी बलवान् होता है और कोई मनुष्य शरीरके मोटे होनेपर भी अल्प बलवान् होता है, इस कारण विद्वान् वैद्योंने निश्चय किया है कि शरीरकी हाल चाल आदि चेष्टा करनेमें जो मनुष्य समर्थ हो, वही बलवान् होता है ॥ १२६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे मुरादाबादनिवासिमाथुरवैद्यवंशोद्भवकविवरलालाशालग्रामवैश्यकृतायां वैद्य-संजीविनीभाषाटीकायां षष्ठप्रकरणं संपूर्णम्

इति पूर्वखण्डम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ भावप्रकाशः

भाषाटीकासमेतः

★

मध्यमखण्डम् २.

अथ ज्वराधिकारः ।

यतः समस्तरोगाणांज्वरो राजेति विश्रुतः । अतो ज्वराधिकारोऽत्र प्रथमं लिख्यते मया ॥ १ ॥

ज्वर सम्पूर्ण रोगोंका राजा है ऐसा कहा है । इस कारण मैं सबसे पहिले यहां ज्वराधिकार लिखता हूँ ॥ १ ॥

अथ ज्वरोत्पत्तिः ।

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः ॥२॥

अस्यायमर्थः—दक्षकर्त्तृको योऽपमानः तेन संक्रुद्धो यो रुद्रः,तस्य यो निःश्वासः, तस्मात्सम्भव ऊत्पत्तिर्यस्य स ज्वरः । क्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भूतत्वेन ज्वरःस्वभावात्पैत्तिक इति बोध्यते । यत् उक्तं चरकेण— 'क्रोधात्पित्तम्'' इत्यादि । तेन सर्वज्वरेषु पित्तोप शमकारिणी चिकित्सा कर्त्तव्या । अत एवाह वाग्भटः—

ऊष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मणा विना । तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् ॥ ३ ॥

रुद्रसम्भूतत्वेन ज्वरस्य देवतात्मकत्वात्पूजार्हत्वं च उपदर्शितम् । अत एवं वैदेहः—

ज्वरः सम्पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति ॥ इति ।

सुश्रुतमें लिखा है कि—'' दक्ष प्रजापतिके अपमान करनेसे क्रोधित हुए महादेवजीका जो श्वास निकला, उसीसे ज्वर उत्पन्न हुआ है ।'' ज्वर कुपित हुए महादेवजीके श्वाससे उत्पन्न होनेके कारण स्वाभाविक रीतिसे पित्तप्रकृतिवाला है, ऐसा जानना. क्योंकि, '' क्रोधसे पित्त उत्पन्न होता है '' इत्यादि प्रमाण चरकमें कहे हैं। तात्पर्य यह है कि–सम्पूर्ण ज्वरोंमें जिससे पित्त शमन हो, ऐसी चिकित्सा करनी चाहिये । वाग्भट भी कहते हैं कि– '' पित्तके विना गरमी नहीं होती और गरमीके विना ज्वर नहीं होता, इस कारण पित्तज्वरमें पित्तविरुद्ध अर्थात् पित्तको कुपित करनेवाली चिकित्सा कदापि न करे '' । श्रीमहादेवजीसे उत्पन्न होनेके कारण ज्वर देवतारूप है, इस कारण पूजन करनेके योग्य भी है, यह वैदेह आचार्यका मत है कि–उत्तम रीतिसे ज्वरका पूजन करे तो ज्वर तत्काल शान्त होजाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ ज्वरमूर्तिः ।

रुद्रकोपाग्निसम्भूतः सर्वभूतप्रतापनः । त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिराः सुमहोदरः ॥ ॥ ४ ॥ वैयाघ्रचर्मवसनः कपिलो माल्यविग्रहः । पिङ्गेक्षणो ह्रस्वजंघो बीभत्सो

बलवान्महान् ॥ ५ ॥ पुरुषो लोकाना- शार्थमसौ ज्वर इति स्थितः । तैस्तैर्नामभिरन्येषां सत्त्वानां परिकीर्त्यते ॥ ६ ॥ जन्मादौ निधने चैव प्रायो विशति देहिनाम् । ऋते देवमनुष्याभ्यां नान्यो विषहते हि तम् ॥ ७ ॥

रुद्रकी क्रोधरूप अग्निसे उत्पन्न हुआ और सर्व जीवोंको संतापित करनेवाला ऐसा ज्वरनामवाला पुरुष प्राणियोंके नाश करनेके लिये प्रगट हुआ । यह पुरुष तीन पाँववाला, भस्मरूपी, आयुधको धारण किये, तीन शिरयुक्त, दीर्घ उदरवाला, वाघम्बरको पहिरे, कपिल रंगकी, मुण्डोंकी मालाको धारण किये हुए, पीली आँखोंवाला, छोटी छोटी जाँघें, भयंकररूप, महाबलवान् और बहुत लम्बा ऐसा ज्वररूपी पुरुष मनुष्योंके नाश करनेके लिये स्थित है । यह ज्वर मनुष्योंके अतिरिक्त और जीवोंमें अन्य अन्य नामोंसे कहा जाता है । यह बहुधा करके प्राणियोंके जन्म और मरणके समय शरीरमें प्रविष्ट होता है । इसको देवता और मनुष्योंके विना और कोई भी नहीं सह सकता, यह सुश्रुतमें कहा है ।।४।।७।।

ज्वरसंख्यादिः ।

ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसंघातागन्तुजः स्मृतः । तस्य ज्वरस्य संख्यारूप सम्प्राप्तिमाह **ज्वरोऽष्टधेति** । अष्टधात्वं विवृणोति--**पृथगिति** । वातिकःपैत्तिकः श्लैष्मिकश्चेति त्रयः । द्वन्द्वजाश्च त्रयः- वातपैत्तिकः, वातश्लैष्मिकः, पित्तश्लैष्मिकश्चैति । **संघातजः** । सान्निपातिक एकः । **आगन्तुजो**ऽभिघातजः । द्व्युल्वणैकोल्वणैःषट्स्युर्हीनमध्याधिकैश्च षट् । समश्चैको विकारास्ते सन्निपातास्त्रयोदश इति चरके त्रयोदश सन्निपाता उक्ताः । ते यथा--वातोल्वणः,पित्तोल्वणः, कफोल्वणः, वातपित्तोल्वणः, वातश्लेष्मोल्वणः, पित्तश्लेष्मोल्वणः एवं षट् । अधिकवातो मध्यपित्तो हीनकफः, अधिकवातो मध्यकफो हीनपित्तः, अधिकपित्तः मध्यवातः हीनकफः, अधिकपित्तः मध्यकफः हीनवातः, अधिककफः मध्यवातःहीनपित्तः, अधिकैकफः मध्यपित्तो हीनवातेश्चति षट् । त्र्युल्वण एकः एवं त्रयोदश । अत्र तु त्रिदोषजत्वेन साम्यात्सान्निपातिक एक एव गणितः । आगन्तुज इति । अत्रागन्तुशब्देन अभिघातादयो हेतव उच्यन्ते । कुत्रचिद्व्याधयः कार्यकारणयोरभेदोपचारात् । आगन्तुजाः अभिघाताद्यनेककारणयोगादनेके भवन्ति, तथाप्यागन्तुजत्वेन साम्यादागन्तुकोऽप्यत्र एक एव गणितः ॥

ननु आगन्तुजेऽपि ज्वरे वातादिलक्षणदर्शनादागन्तुजः कथं दोषजाद्भिन्नः ? उच्यते--उत्तरकालं दोषोत्पत्तेः । तथा च चरके--आगन्तुको हि व्यथापूर्वं जायते पश्चाद्भिन्नैर्दोषैरनुबध्यते इति ।

अब ज्वरकी संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं--वातसे उत्पन्न होनेवाला पित्तसे उत्पन्न होनेवाला कफसे उत्पन्न होनेवाला, वायु और पित्त दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला, वायु और कफ दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला, पित्त और कफ दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला, वातादि तीनों दोषोंसे उत्पन्न होनेवाला और चोट आदिके लगनेसे उत्पन्न होनेवाला ऐसा ज्वर आठ प्रकारका है । तीनों दोषोंसे उत्पन्न होनेवाला जो सन्निपातिक ज्वर है उसके भेद कहता हूँ, द्व्युल्वण अर्थात्

दोष जिसमें अधिक हों और एकोल्वण अर्थात् जिसमें एक दोष अधिक हो, इस प्रकार द्व्युल्वण और एकोल्वण इनके भेदोंसे छः प्रकारके और मध्य तथा अधिक दोष इनके भेदोंसे छः प्रकारका और जिसमें तीनों दोष उल्वण हों एक वह, इस प्रकार सब तेरह सन्निपात कहे। जैसे कि,चरकमें कहे हैं-

वातोल्वण १, पित्तोल्वण २, कफोल्वण ३, वातपित्तोल्वण ४, वातकफोल्वण ५, पित्तकफोल्वण ६, ये छः हुए। अधिकवात, मध्यपित्त, हीनकफ, १ अधिकवात, मध्यकफ, हीनपित्त२, अधिकपित्त, मध्यवात, हीनकफ३ अधिकपित्त, मध्यकफ, हीनवात ४, अधिककफ, मध्यवात, हीनपित्त ५ अधिककफ, मध्यपित्त, हीनवात ६ ये ६ हुए और एक त्र्युल्वण अर्थात् जिसमें तीनों दोष उल्वण हों, इसी प्रकार सन्निपातके तेरह भेद कहे हैं। किन्तु यहां तो तीनों दोषोंके समान होनेसे एकही सन्निपात कहा है। "आगंतुज इति" अर्थात् प्रहार (चोट) आदि नवीन कारणोंसे जो ज्वर उत्पन्न हो उसको आगंतुज ऐसा कहते हैं। कहीं कहीं कारण और कार्यके अभेदोपचारसे आगन्तु शब्दसे आगन्तुक रोग भी माना है। यद्यपि आगन्तुजज्वर प्रहार आदि अनेक कारणोंके योगसे अनेक प्रकारका होता है तथापि आगन्तुजत्वज्वकी समानतासे यही आगन्तुज ज्वर एकही गिना है॥

शङ्का-आगन्तुज ज्वरमें वातातिक ही लक्षण देखनेमें आते हैं, फिर किस कारण आगन्तुजकी दोषोंसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरोंसे अलग गिना है?

समाधान-आगन्तुज रोगमें दोषोंकी उत्पत्ति पीछे होती है, इस कारण उसको दोषोंसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरोंसे अलग कहा है। चरकमें लिखा है कि-आगन्तुजज्वर प्रथम किसी प्रकारकी पीडा उत्पन्न होकर उत्पन्न होता है, पश्चात् उन्हीं २ दोषोंसे सम्बन्धित हो जाता है॥

अथ दूरसमीपकारणकथनपूर्वकज्वरसंप्राप्तिः।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः। बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः॥ ८॥

मिथ्याहारविहाराभ्याम्-अनुचिताहारचेष्टाभ्यां हेतुभूताभ्याम्। दोषाः-वातपित्तकफाः। आमाशया श्रयाः-आमाशयं गताः। रसानुगाः-रसदूषकाः। बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं-कोष्ठगतोग्नेरूष्माणम्, न तु समस्तमग्निं, तदा तु दोषपाकासम्भवः स्यात्। बहिः प्रक्षिप्य ज्वरदाः स्युर्ज्वरकारिणो भवेयुरित्यर्थः॥

अयोग्य आहार और अयोग्य विहारके करनेसे वात, पित्त, कफ ये तीन दोष आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोष्ठको अग्निकी उष्णताको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करनेवाले होतेहैं। यह कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालता है, समस्त अग्निको ही निकालता ऐसा नहीं समझना चाहिये। कारण यह है कि, जो अग्नि बाहर निकल जावेगी पश्चात् दोषोंका पाचन कैसे होगा?८॥

अथ ज्वरसामान्यविशेषपूर्वरूपम्।

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः। इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु॥ ९॥ जृम्भाऽङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः। अप्रहर्षश्च शीतं च भवन्त्युत्पत्स्यति ज्वरे॥ १०॥ सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भाऽत्यर्थं समीरणात् पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिनन्दनम्॥ ११॥

श्रमोऽव्यापार विनैव। अरतिःअस्वथचित्तत्वम्। विवर्णत्वं ग्लानगात्रता। वैरस्यं मुखस्य अप्रकृतरसता। नयनप्लवः नयनयोः अश्रुपूर्णत्वम्। शीतवातातपादिषु मुहुरिच्छाद्वेषौ आदिशब्दाज्ज्वलने जले च। यतः उक्तं चर-

केण-"ज्वलनातपवातेषु भक्तिद्वेषावनिश्चितौ" इति। शयनादिषु इति अन्ये। अङ्गमर्दः अङ्गस्फोटनम्। गुरुता गात्रस्य। रोमहर्षः रोमाञ्चता, अरुचिर्भोज्ये। तमः तमोमग्नस्येव ज्ञानम्। अप्रहर्षः हर्षाभावः। शीतं लगति। चकाराद्बलहानिः। उपदेशबलद्वेषादयोऽ भवन्ति। एकादशश्लोकस्थं सामान्यत इति पदं पूर्वश्लोकाभ्यां सम्बन्धनीयम्। तेन सामान्यतो ज्वरे उत्पत्स्यति भविष्यति, श्रमादयः पूर्वमेव भवन्ति इत्यर्थः। उत्पत्स्यति इति आत्मनेपदि नोऽपि शतृभावः आर्षत्वात्। विशेषात् उच्यते। समीरणात् ज्वर उत्पत्स्यति अतिशयेन जृम्भा भवति। पित्तज्वर उत्पत्स्यति अत्यर्थं नयनयोर्दाहो भवति। कफज्वर उत्पत्स्यति अत्यर्थेन न अन्नाभिनन्दनम् अन्नकांक्षा न भवति। जृम्भादयो भवन्ति यतः सामान्यधर्माक्रान्तो विशिष्टो धर्मो भवति॥

ज्वर उत्पन्न होनेसे पहिले जो लक्षण होते हैं, उनको कहते हैं। विना ही परिश्रम किये श्रम (थकावट) मालूम हो, चित्तका कहीं नहीं लगना, शरीरका रंग बदल जाना, मुखमें विरसता, नेत्र जलसे डबडबे होजायँ, शीत, पवन और गरमी, धूप उनकी बारबार इच्छा हो, और बारबार द्वेष हो, जम्भाई आने लगें, शरीर टूटे और भारी हो जाय, रोमांच हो आवे, भोजनमें अरुचि हो जाय, चारों ओर अन्धकार दीखे, आनन्दका नाश हो, और सरदी लगे, ये लक्षण ज्वर आनेसे किंचित् पहिले होते हैं। चरक कहते हैं कि, अग्नि, धूप, पवन और जलमें बारम्बार इच्छा हो, और बारम्बार द्वेष हो, ऐसा निश्चय नहीं है। अन्य वैद्य कहते हैं कि, सरदी, पवन, धूप और शयन इनसे बारबार प्रीति और बारबार द्वेष करे,। मूलके "उत्पत्स्पति" इस शब्दमें 'पद' धातुके व्याकरणके अनुसार आत्मनेपदी होनेपर भी 'शानच्' प्रत्यय नहीं किया, किंतु 'शतृ' प्रत्यय किया है, यह ऋषियोंके वैदिक सम्प्रदायके अनुसार किया है, ऐसा समझना, ये सामन्य पूर्वलक्षण कहे अब कुछ विशेष कहते हैं—वातज्वरके पहिले जम्भाई अधिक आती है, पित्तज्वरके आनेसे पहिले नेत्रोंमें जलन होती है और कफज्वरके आनेसे पहिले अन्नसे रुचि जाती रहती है॥ ९-११॥

अथ द्वन्द्वजपूर्वरूपम्।

रूपैरन्यतराभ्यां तु संसृष्टैर्द्वन्द्वजं विदुः१२

अन्यतराभ्याम्-जृम्भानेत्रदाहाभ्यां जृम्भान्नारुचिभ्यां नेत्रदाहान्नरुचिभ्यां वा संसृष्टैः रूपैः श्रमादिभिः द्वन्द्वजं द्विदोषजं पूर्वरूपं विदुः॥

उपरोक्त प्रकारके मिले हुए लक्षणोंसे द्वन्द्वज पूर्वरूप कहना अर्थात् वातपित्तज्वरके उत्पन्न होनेसे पूर्व जम्भाइयोंका आना और नेत्रोंमें जलन होती है। वातकफज्वरके आनेसे पूर्व जृम्भा और भोजनमें अरुचि होती है और कफपित्तज्वर आनेसे पहले नेत्रोंमें दाह और भोजनमें अरुचि होती है॥१२॥

अथ सान्निपातिकपूर्वरूपम्।

सर्वलिङ्गसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे॥१३॥

सर्वदोष प्रकोपजे-पूर्वरूपे सर्वलिङ्गसमावाय आतिशयितजृम्भानेत्रदाहान्नारुचिसहितानां श्रमादीनां समवायोभवति॥

जब त्रिदोषज्वर आनेवाला होता है तो उससे कुछ पहिले सब लक्षण होते हैं अर्थात् जम्भाई, नेत्रोंमें जलन और अन्नमें अरुचि ये सब लक्षण अधिकतर होते है॥ १३॥

अथ ज्वरसामान्यलक्षणम्।

स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा।
युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते॥ १४॥

ताप इति वक्तव्ये सन्तापाभिधानं देहेन्द्रियमनेसां संतापबोधनार्थम् । यत उक्तं चरकेण ज्वरविशेषणम् देहेन्द्रियमनस्तापीति । तत्र देहसंतापो देहोष्णता । इंद्रियसंतापः इंद्रियवैकृत्यम् । यत उक्तम्—

इन्द्रियाणां तु वैकृत्यं यत्र सन्तापलक्षणम् । वैचित्त्यमरतिर्ग्लानिर्मनःसन्तापलक्षणम् ॥ १९ ॥ इति ।

सर्वाङ्गग्रहणम्-सर्वेषामङ्गानां वेदनया ग्रहणं सर्वाणि अङ्गानि स्तम्भनगृहीतानि इव वा भवंति । युगपदिति, मिलितमेतल्लक्षणम्, प्रत्येकस्य व्यभिचारात् यथा स्वेदावरोधः कुष्ठपूर्वरूपेतथा संतापो दाहव्याधौ तथा सर्वाङ्गग्रहणं सर्वाङ्गरोगाख्यवातव्याधौ ॥

जिस रोगमें स्वेदावरोध (पसीनेका न आना), सन्ताप और सम्पूर्ण शरीरमें पीडाका होना ये सब लक्षण एक साथ हों, उसको ज्वर कहते हैं ।

शंका होती है कि–पित्तज्वरमें तो पसीने आते हैं और यहां स्वेदावरोध अर्थात् पसीनोंका न आना ऐसा कहा इनमें विरुद्धता आती है ?

उत्तर–स्वेदावरोध यह तो सामान्य लक्षण है और पित्तज्वर विशेष है ऐसा जैज्जट, कार्त्तिक, और कुण्ड आदि वैद्योंका मत है अन्य वैद्य इस प्रकार कहते हैं कि–"स्वेदका अवरोध" अर्थात् स्वेद जो अग्नि है उसका अवरोध अर्थात् दोषोंसे आच्छादित हो जाना इस प्रकार व्याकरणसे अर्थ जाना ॥१४-१५॥

अथ स्वेदावरोधकारणम् ।

रुणद्धि चाप्यपां धातुं यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः । भवत्यत्युष्णगात्रश्च स्विद्यंवेन्ते न च सर्वशः । यस्माज्ज्वरोऽत्र भवति सर्वशः स्विद्यते न च ॥१६॥

ज्वर रसरूप धातुओंको रोक देता है, इस कारण ज्वररोगीका शरीर बहुत गरम हो जाता है, परन्तु पसीना नहीं आता ॥१६॥

अथ ज्वरसामान्यचिकित्सा ।

अंशांशं यत्र दोषाणां विवेक्तुं नैव शक्नुयात् । साधारणीं क्रियां तत्र विदध्यात्तु चिकित्सकः ॥ १७ ॥ सामान्यतो ज्वरी पूर्वं निर्वाते निलये वसेत् । निर्वातमायुषो वृद्धिमारोग्यं कुरुते यतः ॥ १८ ॥ व्यजनस्यानिलस्तृष्णास्वेदमूर्च्छाश्रमापहः । तालवेत्रभवो वातत्रिदोषशमनो मतः ॥ १९ ॥ वंशव्यजनजः सोष्णो रक्तपित्तप्रकोपणः । चामरो वस्त्रसम्भूतो मायूरो वेत्रजस्तथा ॥२०॥ एते दोषजितो वाताःस्निग्धा हृद्याः सुपूजिताः । नवज्वरी भवेद्यत्नाद्गुरूष्णवसनावृतः ॥ २१ ॥ यथर्तुपक्वपानीय पिबेत् किञ्चिन्निवारयन् । विनापि भेषजैर्व्याधिःपथ्यादेव निवर्तते । न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥ २२ ॥

जिस ज्वरमें वैद्य दोषोंके अंशांशको न जान सके उसमें वैद्यको उचित है कि, साधारण चिकित्सा करे ज्वररोगोंकी यही सामान्य चिकित्सा है कि, जिस रोगसे ज्वर आवे, उसी दिनसे उसको वायु रहित घरमें रक्खे । निर्वातस्थान–आयुका बढानेवाला और आरोग्य करनेवाला है । पंखेको हवा, तृषा, पसीना, मूर्च्छा और श्रमको नष्ट करती है । ताडके पंखेकी पवन–त्रिदोषनाशक है । बांसके पंखेकी पवन–उष्ण और रक्तपित्तको कुपित करती है । चमरकी, मस्त्रके पंखेकी, मोरछलकी और बेंतके पंखेकी पवन–वात आदि दोषनाशक, स्निग्ध, हृदयको हितकारी और उत्तम है । नवीन ज्वरवाले रोगीको भारी और गरम ऐसे वस्त्र उढावे और पहरावे तथा

ऋतुके अनुसार औटाये हुए जलको थोडा २ पीनेको देवे। विनाही औषधिके रोग केवल पथ्य करनेसे शान्त हो जाते हैं, किन्तु पथ्य-हीन मनुष्यके सैकडों औषधियोंके करनेसे भी शान्त नहीं होते ॥ १७ ॥ २२ ॥

अथ तरुणज्वरत्याज्यानि।

परिषेकान् प्रदेहांश्च स्नेहान् संशोधनानि च। दिवास्वप्नं व्यवायश्च व्यायामं शिशिरं जलम् ॥ २३ ॥ क्रोधप्रवातभोज्यांश्च वर्जयेत्तरुणज्वरी ॥ २४ ॥

परिषेकः--स्नानादिः। प्रदेहोऽनुलेपनाभ्यङ्गादिः ॥

नवीन ज्वरवाला रोगी स्नानादिक, चन्दनादिकका शरीरपर लेप करना अथवा तैलादिक मर्दन, स्नेहपानादि, वमन, विरेचनादि दिनमें सोना, मैथुन, दंड कसरत, शीतजलको पीना, क्रोध करना, पवनका सेवन और भोजन इन सबको त्याग देवे ॥

अथ त्याज्यसेवनावगुणाः।

शोषं छर्दिं मदं मूर्च्छां भ्रमं तृष्णामरोचकम्। प्राप्नोत्युपद्रवानेतान् परिषेकादिसेवनात् ॥ २५ ॥

आदिशब्देन प्रदेहादयो गृह्यन्ते ॥

हारीतस्तु पृथक्पृथक् दोषानाह--

व्यायामाज्ज्वरसंवृद्धिर्व्यवायात्स्तम्भमूर्च्छनम्। मृतिश्च स्नेहपानाद्यैर्मूर्च्छा च्छर्दिर्मदोऽरुचिः। गुर्वन्नभोजनात् स्वप्नाद्विष्टम्भो दोषकोपनम्। अग्निसादः खरत्वञ्च स्रोतसां चाप्रवर्तनम् ॥ २६ ॥

मृतिरिति व्यवायादित्यत्र सम्बध्यते। स्वप्नात्दिवास्वापात् ॥

उपरोक्त स्नानादिक सेवन करनेसे शोष, वमन, मद, मूर्च्छा, भ्रम, तृषा और अरुचि इत्यादि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। यहां आदि-शब्दसे प्रदेहादिक जानना। हारीतने प्रत्येकके अलग अलग दूषण कहे हैं। उनको कहते हैं कि, व्यायाम अर्थात् दण्ड कसरत करनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है। मैथुन करनेसे शरीर जकडासा होजाता है तथा मूर्च्छा और मृत्यु होती है, स्नेहपान करनेसे मूर्च्छा, वमन, मद और अरुचि होती है। भारी अन्न खानेसे और दिनमें शयन करनेसे मलविष्टम्भ होजाता है, दोषोंका कोप होता है, जठराग्नि मन्द होजाती है, तीव्रता और शरीरके स्रोत छिद्र बन्द होजाते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

तथा चोक्तम्। अन्यच्च वर्जयेत्

सज्वरो ज्वरमुक्तो वा विदाहीनि गुरूणि च। असात्म्यान्नानि पानानि विरुद्धाध्यशनानि च ॥ २७ ॥ व्यायाममतिचेष्टां वाऽभ्यङ्गं स्नानं च वर्जयेत्। तेन ज्वरः शमं याति शान्तश्च न पुनर्भवेत् ॥ २८ ॥

इसी प्रकार कहा है कि और भी छोडे। रोगी ज्वरयुक्त हो अथवा ज्वरसे रहित होगया हो तब भी दाहकारक और भारी तथा अपनी प्रकृतिके प्रतिकूल अन्न, पान, विरुद्ध (संयोग विरुद्धादि) और अधिक अधिक भोजन अथवा भोजनपर भोजन, दण्ड, करसत, चलना, फिरना इत्यादि अधिक चेष्टा करना तैलादिकको शरीर में मलना और स्नान इन सबको त्याग देवे। इस प्रकार करनेसे ज्वर शान्त होजाता है और शांत होकर फिर उत्पन्न नहीं होता ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथज्वरलंघनम्।

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधाय यत्। विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लङ्घनमाचरेत् ॥ २९ ॥ ज्वरादौ लंघनं प्रोक्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम्। ज्वरान्ते भेषजं दद्याज्ज्वरमुक्ते विरेचनम् ॥ ३० ॥ त्रिविधं त्रिविधे दोषे तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत्। दोषेऽल्पे लङ्घनं पथ्यं मध्ये लंघ-

नपाचनम् । प्रभूते शोधनं तच्च मूलादुन्मूलयेन्मलान् ॥ ३१ ॥

चरक और वाग्भट में कहा है कि, दूषित हुए वातादि दोष आमाशयमें स्थित होकर जठराग्निको ढककर आमके साथ मिलकर शरीरके छिद्रोंको आच्छादित करके ज्वरको उत्पन्न करते हैं इस कारण आमदोषादिकोंके पचानेके लिये, जठराग्निको दीपन करनेके लिये और शरीरके छिद्रो को शुद्ध करनेके लिये ज्वरमें लंघन कराने चाहिये । ज्वरके आदिमें लंघन करावे, ज्वरके मध्यमें पाचन देवे, ज्वके अंतमें औषधि देनी चाहिये और ज्वरके जानेपर विरेचन देवे । वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी अल्प,मध्य और अधिकता देखकर लंघन, पाचन और शोधन देवे । वहां दोष अल्प हों तो लंघन करानाही श्रेष्ठ है, दोष मध्य हों तो लंघन करावे और पाचनभीं देवे और जो दोष अत्यन्त वढे हों तो शोधन कराना चाहिये, क्योंकि, शोधन कर विरेचनादि करानेसे मल जडसे उखड जाते हैं ॥ २९ ॥ ३१ ॥

चक्रदत्तः--तरुणं तु ज्वरं पूर्वं लंघनेन क्षयं नयेत् । आमदोषमलिङ्गाद्वा लंघयेत्तं यथाविधि ॥ ३२ ॥

चक्रदत्त कहता है कि, नवीन ज्वरको प्रथम लंघन कराकर क्षय करे और जो अपक्वदोषोंके लक्षण दीखें तो अथवा उनके लक्षण स्पष्ट न दीखें तो यथा विधि लंघन करावे ॥ ३२ ॥

अथ दोषपाकसमयः ।

वातःपचति सप्ताहात्पित्तं तु दशभिर्दिनैः । श्लेष्मा द्वादशभिर्घस्त्रै पच्यते वदतांवर ॥ ३३ ॥

वायु सात दिनमें लंघन करनसे पचता है पित्त दश दिनतक लंधन करनेसे पचता और कफ बारह दिन लंधन करनेसे पचजाता है ॥ ३३ ॥

लंघनं लंघनीयस्तु कुर्याद्दोषानुरूपतः । त्रिरात्रमेकरात्रं वाऽहोरात्रमथवा ज्वरे ॥ ३४ ॥ निर्वातसेवनात्स्वेदाल्लंघनादुष्णवारिणः । पानादामज्वरे क्षीणे पश्चादौषधमाचरेत ॥ ३५ ॥

लंघन कराने योग्य ज्वररोगीको दोषानुसार तीन रात, एकरात और एक दिनरात लंघन करे । वायुरहित स्थानमें रहने पसीने निकलवानेसे अथवा बफारा देनेसे लंघन करनेसे और उष्ण जलको पीनेसे आमज्वरको क्षीण करके पश्चात् औषधि सेवन करे ॥ ३४ ३५ ॥

आत्रेयेणोक्तम्--ज्वरादौ लंघनं प्रोक्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम् । ज्वरान्ते भेषजं दद्याज्ज्वरमुक्ते विरेचनम् ॥ ३६ ॥ दोषशेषस्य पाकार्थमग्नेः सन्धुक्षणाय च । लंघितश्चाप्यदोषश्चेद्यवागूपानमाचरेत् ॥ ३७ ॥ शालिषष्टिकमुद्गानां यूषं वा शस्तमाचरेत् । पञ्चकोलेन संसिद्धां यवागूं मध्यलंघने ॥ ३८ ॥ अत्यर्थं लंघितं दृष्ट्वा तस्य संतर्पणं हितम् । द्राक्षादाडिमखर्जूरप्रियालैः सपरूषकैः । तर्पणार्हस्य कर्त्तव्यं तर्पणं ज्वरशान्तये ॥ ३९ ॥

अत्र लंघनशब्देन अनशनमुच्यते । यत आह सुश्रुतः -

आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्यावन्तं कालमातुरः । तावत्त्वनशनं कुर्यात्ततः संसर्गमाचरेत् ॥ ४० ॥

आनद्धस्तिमितैर्दोषैः सम्बद्धः । संसर्गमौषधान्ना दिप्रसंगम् । यत् आह चरकः--

चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ । पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लंघनम् ॥ ४१ ॥

चतुष्प्रकारा संशुद्धिः—वमनविरेचननिरूहवस्ति, शिरोविरेचनानि न तु अनुवासनं तस्य नृहणत्वात् । अत्र लंघनं कर्षणमित्यर्थः । तथा च सुश्रुतः—

शरीरलाघवकरं यद्द्रव्यं कर्म वा पुनः । तल्लंघनमिति ज्ञेयं बृंहणं तु पृथग्विधम् ॥ ४२ ॥

लंघनात्कर्षणादन्यत् शरीरपोषकमित्यर्थः ॥

ननु -"आनद्धस्तिमितैदोषैः" इत्यादिपूर्वोक्तसुश्रुत वचनात्सामान्यतो ज्वरिणा यथा अनशानरूप लंघनं क्रियते, तथा "चतुष्प्रकारा संशुद्धिः इत्यादि चरकवचनाद्वमनादिरूपं लघनं सर्वैज्वरिभिः कथं न क्रियते ?

तत्र उच्यते--वमनादिकम् अवस्थाविशेषे तु क्रियते न तु सर्वज्वरेषु । तथा च सुश्रुतः--

सोत्क्लेशे बलिने देयं वमनं श्लैष्मिकज्वरे । पित्तप्राये विरेकस्तु कार्यः प्रशिथिलाशये ॥ ४३ ॥ सरुजेऽतिरुजे कार्यं सोदावर्ते निरूहणम् । कफाभिपन्ने शिरसि कार्यं मूर्द्धविरेचनम् ॥ ४४ ॥

अपि च सर्वज्वरिभिः पिपासानिग्रहश्च न कार्यः यत आह हारितः--

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यःप्राणविनाशिनी । तस्माद्देयं तृषार्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥ ४५ ॥

अतोऽवस्थाविशेष एव पिपासासहनं ज्वरिभिर्मारूतसेवनं च कार्यम् सुश्रुतेन प्रवातसेवनस्य सर्वथा निषिद्धत्वात् । अती मारूतसेवनमपि अवस्था विशेष एव युक्तम् । आतपसेवनं च अवस्थाविशेष एव उक्तम् ॥

लङ्घनाम्बुयवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते। तदा तु मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः ॥ ४६ ॥ ज्वरघ्नैः पाचनैर्हृद्यैः कषायैः समुपाचरेत् ॥ ४७ ॥

इत्यत्र लंघनपाचनयोः स्फुट एव भेदः । व्यायामोऽपि न कार्यः, तस्य अतिनिषिद्धत्वात् । अवस्थाविशेषे पुनः पार्श्वपरिवतर्नादिरूपः सोऽपि कर्तव्यः तस्मात् चतुष्प्रकारा संशुद्धिरित्यादिश्लोके लंघन पदं कर्षणपर्यायमिति निर्णीतम् ॥

आत्रेयऋषि कहते हैं कि-ज्वरके प्रारम्भमें लंघन करावे, ज्वरके मध्यमें पाचन देवे और ज्वरके अन्तमें बलानुसार कोठेको शुद्ध करनेके लिये रेचन देवे, लंघन करनेसे जिसके दोष नष्ट होगये हैं उसके शेष दोषोंको पचानेके लिये और अग्निको दीप्त करनेके लिये यवागू पान करावे शालिधानोंके चावल, सांठी धानके चावल और मूंगका यूष बनाकर पिलावे और जो मध्यम लंघन किये हो तो पंचकोल पिपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ की यवागू बनाकर पिलावे जिसने अत्यन्त लंघन किये हों, उसको दाख, अनार, खजूर, चिरौंजी और फालसे इनसे सन्तर्पण करे, यह अत्यन्त हितकारक है । जो रोगी तर्पणकरने योग्य हैं उनके ज्वरकी शांतिके लिये अवश्य तर्पण करावे । सुश्रुत कहते हैं कि, जबतक दोष निश्चल रहें तबतक, लंघन कराने चाहिये, पीछे औषध देवे (आनद्ध स्तिमितता—दोषोंकी निश्चलता और संसर्गऔषधात्राादिका संसर्ग ऐसा तात्पर्य है) चरकमें चार प्रकारकी संशुद्धि, तृषा, वायुसेवन, आतप, पाचन, उपवास और व्यायाम इन सबको लंघन कहा है यहां लंघनशब्दका अर्थ कर्षण समझना । जैसा कि, सुश्रुतमें कहा है कि, जो द्रव्य अथवा जो क्रिया

शरीरको हलका करनेवाली है उसको लंघन कहते हैं और जो द्रव्य अथवा जो क्रिया शरीरको पुष्ट करती है उसको बृंहण कहते हैं। ऐसा कहनेपर भी यहां लंघनशब्दका अर्थ उपवासही समझना चाहिये। जैसे कि सुश्रुतमें कहा है कि—जबतक रोगी दोषोंके सम से आतुर रहे तबतक लंघन करावे जब दोष क्षय होने लगे तब अन्न आदिके साथ संसर्ग औषधि देवे ॥

वमन, विरेचन, निरूहवस्ति और शिरोविरेचन इस भांति चार प्रकारकी संशुद्धि जाननी, यहां अनुवासन वस्ति ग्रहण करनी नहीं चाहिये, कारण यह है कि, यह विधि तो शरीर कर्षण करनेवाली है और अनुवासनवस्ति शरीरको पुष्ट करनेवाली है॥

शंका—ऐसे सुश्रुतके कहे अनुसार ज्वर रोगीको सामान्यरीतिसे उपवासरूपी लंघन कराते हैं परन्तुचरकमें जो चार प्रकारकी वमन विरेचनादि शुद्धिरूप लंघन कहे हैं उनको क्यों नहीं कराते ?

उत्तर—वमन विरेचनादि क्रिया ज्वरकी विशेष अवस्थाओंमें कराते हैं किंतु सर्व ज्वरोंमें नहीं कराते। क्योंकि सुश्रुतमें कहाहै कि यदि रोगी बलवान् हो और ज्वर कफसे उत्पन्न हुआ हो और कफकी अधिकतासे जिसको उबकाई आती हों तो वमन करावे जिस रोगीका कोठा कठिन होवे और ज्वरमें पित्तकी अधिकता होवे तो विरेचन करावे, जो वायुसे ज्वर उत्पन्न हुआ हो और उदावर्त भी हो तो निरूहवस्ति प्रयोग करे और जो शिर कफसे भरगया हो तो शिरोविरेचनादि करे । सर्वज्वरोंमें प्यास को नहीं रोकना चाहिये, कारण यह है कि, तृषा अत्यन्त भयंकर घोर है और तत्काल प्राणोंका नाश करनेवाली है, इस कारण प्यासे मनुष्यको प्राणधारक पानी पीनेको देवे। ज्वरवाले मनुष्यको ज्वरकी अवस्थाओंमें तृषाका सहन उचित नहीं है, ज्वरवाले मनुष्यको अधिक वायुका सेवन नहीं करना चाहिये ऐसा सुश्रुतमें कहा है। इस कारण वायुका सेवन ज्वरकी अवस्थाविशेषमें उचित है किन्तु सर्व अवस्थाओंमें उचित नहीं है। इसी प्रकार धूपका सेवन भी अवस्थाविशेषमें उचित है परंतु सर्व अवस्थाओंमें सेवन करना उचित नहीं है जो लंघनके करनेसे उष्ण जलके पीनेसे तथा यवागूके पीनेसे दोष नहीं पचे तो मुखकी विरसता, तृषा, अरुचि और ज्वरके नाशक हृदयको हितकारी ऐसे जो पाचनरूप क्वाथ हैं उनको पिलावे। इस वचनमें लंघनको और पाचनको स्पष्टरीतिसे पृथक् दिखाया है, ज्वरमें व्यायाम दण्ड कसरत आदि परिश्रम करना भी अत्यंत निषिद्ध है। इस कारण नहीं करना चाहिये परन्तु अवस्थाविशेषमें करवट लेना इत्यादि व्यायाम करना चाहिये ॥ ३६–४७ ॥

अथोपवासरूपलंघफलनम् ।

लंघनेन क्षयं नीते दोषे सन्धुक्षितेऽनले ।
विज्वरत्वं लघुत्वं च क्षुच्चैवास्योपजायते ॥ ४८ ॥

लंघनेन--अनशनेन, दोषे प्रवृद्धे क्षयं नीते। यत आह-"आहारं पचति शिखी, दोषनाहारवर्जितः। पचतीति ! सन्धुक्षिते अनले आच्छादकदोषे क्षीणेऽग्नौ प्रदीप्ते यथोक्तसम्प्राप्तिसामग्रीविघटनाद्विज्वरत्वम् । शरीरस्य गौरवाभावेन लघुत्वम् । क्षुत्-बुभुक्षा च जायते इत्यर्थः । अन्यच्चाह सुश्रुतः--

अनवस्थितदोषाग्नेर्लंघनं दोषपाचनम् ।
ज्वरघ्नं ज्वरिणः कांक्षारुचिलाघवकारकम् ॥ ४९ ॥

अवनवस्थिदोषाग्नेः-स्वस्थानादितस्ततो गतो दोषोऽग्निश्च यस्य ज्वरिणःकांक्षा अन्नाभिलाषः रुचि, लंघनेन आमपाकान्मुखशोषादिनाशे मुखस्य यत्प्रकृतत्वं सैव रुचिः शोभाः " रुचिः स्त्री दीप्ति शोभायामभीष्टार्थाभिलाषयोः इति मेदिनीकारः ॥

लंघनकरनेसे बढे हुए दोष क्षीण होते हैं और जठराग्नि दीप्त होती है इससे ज्वर नष्ट होजाता है, शरीरमें लघुता होती है और भूख लगती है। अग्नि आहारको पचाती है, और जब आहार नहीं रहता तब दोषोंको पकाती हैव ऐसा शास्त्रमें कहा है। इस कारण वृद्धिको प्राप्त हुए अग्निको ढकनेवाले दोषोंका लंघनोंके द्वारा क्षय होनेसे अग्नि दीप्त होती है। तब आगे कही हुई ज्वरकी संप्राप्तिके कारणोंका नाश होनेसे, ज्वर उतर जाता है। शरीर हलका होता है और भूख लगने लगती है। सुश्रुतमें भी कहा है कि, जिसके दोष और अग्नि अपने स्थानसे इधर उधरको चले गये हों ऐसे ज्वररोगीको लंघन करानेसे दोष पचजाते हैं, ज्वर जाता रहता है। अग्नि दीप्त होजाती है। अन्नमें इच्छा उत्पन्न होती है। आमके पचनेसे और मुखशोषादिके नाश होनेसे पहिलेके सदृश मुखकी शोभा उत्पन्न होती है और शरीरका हलकापन प्रगट होता है। " रुचिशब्द स्त्रीलिंग है वह दीप्ति, शोभा, आसक्ति और अभिलाषा इन अर्थोंमें आता है " ऐसा मेदिनी कोषमें कहा है, इस कारण हमने मूलके रुचिशब्दका शोभा अर्थ किया है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथ सम्यक्कृतलंघनलक्षणम्।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे। हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गये ॥ ५० ॥ स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासासहोदये। कृतं लंघनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ ५१ ॥

हृदयस्य शुद्धिः अवनरोधः। उद्गारशुद्धिःसधूमाम्लोद्गाराभावः। कण्ठस्य शुद्धिः कफानवलिप्तत्वम्। आस्यशुद्धिः मुखस्य प्रकृतरसत्वम्। तन्द्राक्लमे तन्द्रा च क्लमश्च तस्मिन्। तन्द्रा निद्रा,क्लमोऽत्र ग्लानिः। क्षुत्पिपासासहोदये क्षुत्पिपासयोः सह युगपदुदये। अन्तरात्मनि--मनसि। एतानि लक्षणानि मिलितानि एव सम्यक्कृतं लंघनं बोधयन्ति न तु प्रत्येकम् ॥

अधोवायु, मल और मूत्रका शुद्ध रीतिसे निकलना, शरीरमें हलकापन, हृदय, डकार, कण्ठ, और मुख इनका शुद्ध होना, तन्द्रा और ग्लानिका नाश, पसीनेका आना, रुचिका होना, भूख, और प्यास इनका एकसाथ एक समयमें उत्पन्न होना और अन्तःकरणमें पीडाका न होना, ये सब लक्षण हों तो उनको भली प्रकारसे लंघन हुए जानना। इन लक्षणोंमेंसे जो एक दो लक्षण हों तो लंघन भली प्रकार नहीं हुआ और सम्पूर्ण लक्षण एक साथ हों तो अच्छे लंघन हुए जानना॥५०-५१॥

अथ हीनलंघनलक्षणम्।

कफोत्क्लेशः सहृल्लासः ष्ठीवनं च मुहुर्मुहुः कण्ठस्य हृदयाशुद्धिस्तन्द्रा स्याद्धीनलंघने ॥ ५२ ॥

कफोत्क्लेश - कफस्य वमनाय उपस्थितिः। हृल्लासः--उपस्थितवमनरवमिव। ष्ठीवनं हृदयाकफनिर्गमः ॥

कफ वमनके समान निकलनेको तत्पर, वारंवार उबकाई आवे तथा वारंवार कफका थूकना, कफसे कण्ठ जकडा होवे, हृदय भारी और तन्द्रा हो ये सब लक्षण हीन लंघनके जानने ॥ ५२ ॥

अथातिलंघनलक्षणम्।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च। क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥ ५३ ॥ मनसः संभ्रमोऽभीक्ष्णमूर्ध्ववातस्तमो हृदि। देहाग्निबलहानिश्च लंघनेऽतिकृते भवेत् ॥ ५४ ॥

कर्णनेत्रयोः स्वविषयग्रहणासामर्थ्यम्। मनसः संभ्रमः भ्रांतिः। ऊर्ध्ववातः उद्गारबाहुल्यम्। हृदि तमः अन्धकारप्रविष्टस्येव ज्ञानम् ॥

शरीरकी समस्त संधियोंमें पीडा होती हो, देह टूटे, खांसी, मुखशोष, क्षुधाका नाश, अरुचि, तृषा, कान और नेत्रोंमें निर्बलता, मनमें भ्रमका होना, वारंवार बहुत डकारोंका आना, हृदयमें अन्धकारका होना, देह अग्नि और बलकी हानि होना ये सब लक्षण अत्यंत लंघन किये हुए मनुष्यके होते हैं ॥५३॥५४॥

अथ बलानुकूललंघनकथनम् ॥

बलाविरोधिना चैनं लङ्घनेनोपपादयेत् । बलाधिष्ठानमारोग्यंयदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥ ५५ ॥

अयमर्थः--एनं रोगिणं बलाविरोधिना अनतिबलक्षयकारिणा लंघनेन उपपादयेत् उपचरेत्। कुत इति चेत्तत्राह-यदर्थं यस्मै आरोग्याय अयं क्रियाक्रमः चिकित्सोपक्रमः । तत् आरोग्यं बलाधिष्ठानं बलाश्रयमित्यर्थः ॥

वैद्यको चाहिये कि, जिससे बलका नाश होवे ऐसे लंघन न करावे। क्योंकि, आरोग्य बलके अधीन है और उस आरोग्यके लिये ही यह सब क्रियाक्रम कहा है ॥ ५५ ॥

अथ लंघननिषेधः।

तद्धि मारुततृष्णाक्षुन्मुखशोषभ्रमान्वितैः । न कार्यं गुर्विणीबालवृद्धदुर्बलभीरुभिः । न क्षयाध्वश्रमक्रोधकामशोषचिरज्वरी ॥ ५६ ॥

तत्--अनशनम् । उल्बणमारुतयुक्तेन ज्वरिणा न कार्यम्,मारुतोऽत्र निरामो बोद्धव्यः। सामे मारुते लंघन कार्यमेव । यत आह तन्त्रान्तरे--

अवश्यमेव कुर्वीत ज्वरी सामे समीरणे । लंघनं ह्यामपाकार्थं न तदूर्ध्वं यथा कफे । तद्धि मारुततृष्णायां लंघनं कार्यमेव च ॥ ५७ ॥

न तथा मुखशोषभ्रमावपि निरामावेव विवक्षितौ । सामैस्तु तल्लंघनं कार्यमेव । गुर्विणीबालवृद्धादिभिरपि निरामैरेव नैव लंघनं कार्यम्। सामैः पुनस्तैरपि लंघनं कार्यमेव । क्षयो धातुक्षयो राजयक्ष्मा च वातजे ज्वरे लंघनं न कार्यम् । तदूर्ध्वम् आमपाकादूर्ध्वम्। अत एवोक्तम्--

कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लंघनं बहु । आमक्षयादूर्ध्वमपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ ५८ ॥

सुश्रुत कहता है कि-यह लंघन वातज्वरवाले, तृषावाले, क्षुधासे पीडित मुखशोषरोगी, भ्रमरोगी, गर्भिणी स्त्री, बालक, वृद्ध, दुर्बल, भीरु, धातुक्षयवाले, क्षयरोगी, अत्यन्त, मार्ग चलनेसे थके हुए, परिश्रम करनेसे थके हुए,क्रोधी, कामसे पीडित, शोषरोगी और बहुत कालके ज्वररोगी, इनको कदापि लंघन नहीं कराने चाहिये, यहां ऐसा जानना कि-यदि वातज्वरवाले मनुष्यके जो वायु आमसे रहित हो तो अवश्य लंघन नहीं करावे और जो वायु आम सहित हो तो अवश्य लंघन करावे. कारण यह कि, वातज्वरमें आमको पचानेके लिये लंघन कराये जाते हैं। जिस प्रकार कफमें आमके पकजानेपर भी लंघन कराये जाते हैं, उस प्रकार वातमें आमके पच जानेपर लंघन नहीं कराये जाते हैं। कारण यह है कि-कफ और पित्त ये दोनों द्रवरूप होनेसे बहुत लंघनोंको सह सकते हैं, परन्तु वायु तो आमके पचजानेपर क्षणभर भी लंघन सहन नहीं कर सकता है ऐसा अन्य ग्रन्थोंमें कहा है। भ्रम और मुखशोष भी जो आमसे रहित हों तो लंघन नहीं करावे और जो आमसहित हों तो अवश्य लंघन करावे। उसी प्रकार गर्भवती स्त्री, बालक और वृद्ध आदि जो आमसे रहित हों तो लंघन नहीं करावे और जो आमसहित हों तो अवश्य लंघन करावे ॥ ५६-५८ ॥

अथामलक्षणम् ।

आहारस्य रसः सारो यो न पक्वोऽग्निलाघवात् । आमसंज्ञां स लभते बहुव्याधिसमाश्रयः ॥ ५९ ॥

आहारका साररूप जो रस है, वह अग्निकी लघुता अर्थात् मन्दतासे नहीं पचता उसको आम कहते हैं, वह अनेक व्याधि उत्पन्न होनेका आश्रय अर्थात् कारण है ॥ ५९ ॥

तन्त्रान्तरे तु--

आममन्नरसं केचित्केचित्तु मलसञ्चयम् । प्रथमां दोषदुष्टिं वा केचिदामं प्रचक्षते ॥ ६० ॥ अविपक्वमसंसक्तं दुर्गन्धं बहुपिच्छिलम् । सादनं सर्वगात्राणामाममित्यामशब्दितः ॥ ६१ ॥ तेनामेन समायुक्ता दोषा दूष्याश्च तादृशाः । तदुद्भवा आमयाश्च सामा इति बुधैः स्मृताः ॥ ६२ ॥

कोई वैद्य अन्नके अपक्व रसको आम कहते हैं कोई मलके समूहको आम कहते हैं और कोई वैद्य दोषोंकी प्रथम दुष्टताको आम कहते हैं । अपक्व, मलसे अलग रहनेवाला, दुर्गन्धवाला, अधिकतर चिकना और सर्व शरीरको पीडित करनेवाला ऐसा जो पदार्थ है, उसको आम कहते हैं । उस आमसे संयुक्त हुए दोष और दूष्य एवं उन दोष और दूष्योंसे उत्पन्न हुए रोगोंको साम कहते हैं ॥ ६०-६२ ॥

अथ सामवायुलक्षणम् ।

वायुः सामो विबन्धाग्निसादतन्द्राऽन्त्रकूजनैः । वेदनाशोथनिस्तोदैः क्रमशोऽङ्गानि पीडयेत् ॥ ६३ ॥ विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो भृशम् । स्नेहाद्यैर्वृद्धिमायाति मेघे सूर्योदये निशि ॥ ६४ ॥

विचरेद्युगपत् -वायुरामश्चैककालं विचरेत् । कुपितः सामो वायुः भृशमतिशयेन गृह्णाति अङ्गानि इत्यर्थः ॥

साम वायु मलरोधक है अग्निको मन्द करती है । तन्द्रा और आलस्यको करती है । आँतोंमें शब्द करती है अनुक्रमसे वेदना, सूजन और तोडने जैसी पीडा इनको उत्पन्न करती है । कुपित हुई सामवायु एकही समय आमसहित सम्पूर्ण अंगोंमें विचरती है और सब अंगोंका ग्रहण करके पीडित करती है तथा तैल घृतादि स्नेहपदार्थोंसे वर्षाऋतुमें, सूर्योदयमें और रात्रिमें वृद्धिको प्राप्त होती है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अथ निरामवायुलक्षणम् ।

निरामो विशदो रूक्षो निर्गन्धोऽत्यल्पवेदनः । विपरीतगुणैः शान्तिं स्निग्धैर्याति विशेषतः ॥ ६५ ॥

निरामवायु-साफ, रूखी, दुर्गन्धरहित, बहुत थोडी पीडा करनेवाली और अपनेसे विपरीतगुणवाले पदार्थोंसे शान्त होती है और विशेष करके तैल घृतादि चिकने पदार्थोंसे शान्त होती है ॥ ६५ ॥

अथ सामपित्तलक्षणम् ।

पित्तं सामं भवेदम्लं दुर्गन्धं हरितं गुरु । अम्लिकाकण्ठहृद्दाहकरं श्यावं तथा स्थिरम् ॥ ६६ ॥

साम पित्त-अम्ल दुर्गंधित, हरा, भारी, खटाईके समान कण्ठमें और हृदयमें दाह करनेवाला, श्यामलतायुक्त और स्थिर होता है ॥ ६६ ॥

अथ निरामपित्तलक्षणम् ।

निरामं पित्तमाताम्रमत्युष्णं कटुकं सरम् । दुर्गन्धि रुचिकृद्वह्निबलवर्द्धनमीरितम् ॥ ६७ ॥

निराम पित्त-लाल, बहुत गरम, चरपरा, सारक, दुर्गंधित, रुचिकारक, तथा जठराग्नि और बलको बढानेवाला है ॥ ६७ ॥

अथ सामकफलक्षणम् ।

आविलस्तन्तुलः स्त्यानः कण्ठदेशे च तिष्ठति । सामो बलासो दुर्गन्धस्तृट्क्षुधोरुपघातकृत् ॥ ६८ ॥

साम कफ-मैला, तन्तुयुक्त, गाढा, कण्ठको पकडनेवाला, दुर्गंधि तथा क्षुधा और तृषाका नाश करनेवाला होता है ॥ ६८ ॥

अथ निरामकफलक्षणम् ।

श्लेष्मा निरामो निर्गन्धः फेनवांश्छेदवानपि । भवेत्स पिण्डितः पाण्डुरास्यवैरस्यनाशकृत् ॥ ६९ ॥

निराम कफ-दुर्गन्धरहित, झागोंदार, खंडित गांठदार, पाण्डुरङ्गका और मुखकी विरसताको नष्ट करनेवाला होता है ॥ ६९ ॥

अथ सामव्याधिलक्षणम् ।

आलस्यतन्द्राहृदयाविशुद्धिर्दोषापवृत्त्याविलमूत्रताभिः । गुरूदरत्वारुचिसुप्तताभिरामान्वितं व्याधिमुदाहरन्ति ॥ ७० ॥ आमं जयेल्लङ्घनकोष्णपेयालघ्वन्नसूपौदनतिक्तयूषैः । विरूक्षणस्वेदनपाचनैश्च संशोधनैरूर्ध्वमधस्तथैव ॥ ७१ ॥

आलस्य, तन्द्रा, हृदयमें अशुद्धता, मलादिकका नहीं उतरना, मूत्रका गँदला होना, उदरमें भारीपन अरुचि और अधिकतर निद्राका आना ये लक्षण हों तो साम व्याधि जानना। लंघन, उष्ण पेया, हलका अन्न, दाल, भात, कडवे पदार्थोंका यूष, रूखा करना, स्वेदन पाचन और ऊर्ध्व वमनादिक तथा अधःशोधन विरेचनादिक इनसे आमको जीते ॥७०॥७१॥

अथ जलपानावश्यकता ।

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान् विमुञ्चति । अतः सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वर्जयेत् ॥ ७२ ॥

सुश्रुतमें कहा है कि-तृषित मनुष्यको मोह उत्पन्न होता है और मोहसे प्राण नष्ट होते हैं, इस कारण किसी अवस्थामें भी जलका पीना निषेध नहीं करे ॥ ७२ ॥

हारीतेनोक्तम्--तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राणविनाशिनी । तस्माद्देयं तृषार्त्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥ ७३ ॥

अवश्यं पेयमपि जलं ज्वरी किञ्चिद्वारयन्पिबेत् ।

जीविनां जीवनं जीवो जगत्सर्वं तु तन्मयम् । अतोऽत्यन्तनिषेधेन क्वचिद्वारि वारयेत् ॥ ७४ ॥

जीवनम्-जलम् । किञ्चित्तु वारयेदेव । उक्तं च-

ज्वरे नेत्रामये कुष्ठे मन्देऽग्नावुदरे तथा । अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ क्षये । व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ ७५ ॥

प्रसेके-मुखप्रसेके । मन्दमाचरेत्-अल्पं पिबेत् ।

अतियोगेन सलिलं तृष्यतोऽपि प्रयोजितम् । प्रयाति श्लेष्मपित्तत्वं ज्वरितस्य विशेषतः ॥ ७६ ॥

तृषा बडी भयंकर है और तत्काल प्राणोंका नाश करनेवाली है, इस कारण तृषित मनुष्यको प्राणधारक जल पिलाना चाहिये। जल तो ज्वररोगी अवश्य पीवे परन्तु थोडा २ ठहर ठहर कर पीवे। जल प्राणियोंका जीवन है और जब जगत् जलरूप है, इस कारण किसी अवस्थामें भी जलका अत्यन्त निषेध नहीं किया है । इसके कहनेसे थोडा थोडा पानी पीना चाहिये, सुश्रुतमें भी कहा है-ज्वर, नेत्ररोग, कुष्ठरोग मन्दाग्नि, उदररोग, अरुचि, प्रतिश्याय, मुखमें पानीका भरभर आना, सूजन, क्षय, व्रण और मधुमेह इन रोगोंमें जल थोडा पीना चाहिये और बहुत भी जल नहीं पीना चाहिये जैसे कहा है कि-यदि तृषासे पीडित मनुष्य

अधिक जल पीवे तो उसके वह जल कफपित्त होजाता है और ज्वररोगी जो अधिक जल पीवे तो उसको विशेषकरके कफपित्त होजाता है ॥ ७३-७६ ॥

नवज्वरेशीतलजलपाननिषेधः।

नवज्वरे प्रतिश्याये पार्श्वशूले गलग्रहे। सद्यः शुद्धौ तथाऽऽध्माने व्याधौ वातकफोद्भवे ॥ ७७ ॥ अरुचिग्रहणीगुल्मश्वासकासेषु विद्रधौ। हिक्कायां स्नेहपाने च शीतं वारि विवर्जयेत्। सेव्यमानेन शीतेन ज्वरस्तोयेन वर्द्धते ॥ ७८ ॥

अत्र शीतं जलम्ःअक्कथितं निषिद्धम्। तथा सति क्कथितमायातम् ॥

नवीनज्वर, प्रतिश्याय, पसलियोंकी पीडा, गलेका पडजाना, जिसने तत्काल वमन अथवा विरेचन किया हो, आध्मान, वात और कफके रोग, अरुचि, संग्रहणी, गुल्म, श्वास, खांसी, विद्रधि, हिचकी और जिसने स्नेहपान किया हो इनको शीतल जल नहीं पीना चाहिये। यहां अपक्व शीतल जलका निषेध है किन्तु औटाकर जो शीतल किया गया है उसका निषेध नहीं है, कारण यह है कि शीतल जलको पीनेसे ज्वर वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ क्कथितजललक्षणगुणाः।

क्काथ्यमानं तु निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं च यत्। ततोयं क्कथितं ज्ञेयं दोषघ्नं पाचनं लघु ॥ ७९ ॥

निर्वेगम्ःशनैः-कथितम् ॥

जो जल औंटाते २ धीरे २ झागरहित और मलरहित हो जावे उसको औंटा हुआ जल जानना। यह क्वथितजल-त्रिदोषनाशक पाचक और हलका है ॥ ७९ ॥

अथ क्कथितजलपानविधिः।

वातश्लेष्मज्वरार्ताय हितमुष्णाम्बु तृष्यते। दीपनं स्यात्तु कफजे वातपित्तानुलोमनम्। तद्धि मार्दवकृद्दोषस्रोतसां शीतमन्यथा ॥ ८० ॥

सुश्रुत कहता है कि-वातकफज्वरवाले मनुष्योंको तृषाके समय औंटायाहुआ जल अत्यन्त हितकारी है। यह जल-अग्निको दीपन करनेवाला, कफको छेदन करनेवाला वातपित्तको अनुकूल करनेवाला तथा दोष और शरीरके स्रोतोंको नरम करता है और शीतल जल इससे विपरीत गुणोंवाला है ॥ ८० ॥

वाग्भटश्च--तृष्णायां पथ्यमुष्णाम्बु पिबेद्वातकफज्वरे। तत्कफं विलयं नीत्वा तृष्णामाशु निवर्तयेत् ॥ ८१ ॥ उदीर्य चाग्निंस्रोतांसि मृदूकृत्य विशोधयेत्। वातपित्तकफस्वेदशकृन्मूत्राणि सारयेत् ॥ ८२ ॥

वाग्भट भी कहता है कि-वातकफज्वरमें तृषाके समय उष्णजल पीना चाहिये। उष्णजल-कफको दूर करके तत्काल तृषाको शांत करता है, अग्निको दीप्त करके स्रोतों को नरम कर शुद्ध करता है तथा वात, कफ, स्वेद, विष्ठा और मूत्रको प्रवर्तित करता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अथोष्णोदकलक्षणगुणाः।

क्वाथ्यमानं तु निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं तथा। अर्द्धावशिष्टं यत्तोयं तदुष्णोदकमुच्यते ॥ ८३ ॥ ज्वरकासकफश्वासपित्तवाताममेदसाम्। नाशनं पाचनं चैव पथ्यमुष्णोदकं सदा ॥ ८४ ॥

जो जल औंटाते औंटाते धीरे २ झाग रहित निर्मल और आधा बाकी रहजाय, उसको उष्णोदक कहते हैं। वह उष्णजल-ज्वर, खाँसी, कफ, श्वास, पित्त, वात, आम और मेदको नष्ट करता है, पाचक और सर्वदा पथ्य है ८३॥८४॥

अथर्तुभेदेन जलपाकभेदाः।

त्रिपादशेषं सलिलं ग्रीष्मे शरदि शस्यते ॥ ८५ ॥ निदाघे त्वर्द्धपादोनं पादहीनन्तु

शारदम् । हिमेऽर्द्धशेषं शिशिरे तथा वर्षावसन्तयोः ॥८६॥ शिशिरे च वसन्ते च हिमे चार्द्धावशेषितम् । अष्टमांशावशेषन्तु वारि वर्षासु शस्यते ॥ ८७ ॥ इति केचिद्बुधाः प्रावृड्वर्ज्येष्वागमदर्शनात् । पक्षयोस्त्रिषु वेदेषु बाणेष्वाङ्गेषु वस्तुषु । एषु भागावशेषं स्यादम्बु वर्षादिषु क्रमात् ॥ ८८ ॥

अत्र दोषाणां तथा उल्वणता हीनता वा तथा व्यवस्था कल्पनीया ॥

तत्पादहीनं पित्तघ्नमर्द्धहीनन्तु वातनुत् । त्रिपादहीनं श्लेष्मघ्नं संग्राह्यग्निप्रदीपनम् ॥ ८९ ॥

ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें एक पादहीन अर्थात् सेर भरको औंटा तीनपाव कर जल सेवन करना चाहिये । अन्य वैद्य कहते हैं कि-ग्रीष्मऋतुमें अर्द्धावशेष अर्थात् सेरभरका आध सेर और शरदऋतुमें सेरका तीनपाव पीना चाहिये । हेमन्त, शिशिर, वर्षा और वसन्त ऋतुमें सेरभरका आधसेर शेष रहा जल पीना चाहिये परन्तु कितने विद्वान् कहते हैं कि, शिशिर, वसन्त और हेमन्त ऋतुमें तो अर्द्धावशिष्ट ही जल पीना चाहिये । परन्तु वर्षा ऋतुमें अष्टावशेष अर्थात् सेरभरका आधपाव शेष रक्खे । और कितने वैद्य कहते हैं कि-वर्षा ऋतुमें आठवां भाग शेष रहा, शरद ऋतुमें छठा भाग शेष रहा, हेमन्त ऋतुमें चौथा भाग शेष रहा, शिशिर ऋतुमें पांचवां भाग शेष रहा, वसन्त ऋतुमें तीसरा भाग शेष रहा और ग्रीष्म ऋतुमें आधा भाग शेष रहा हुआ जल पीना चाहिए । इस प्रकार उष्णजलके विषयमें अनेक मत दिखाई देते हैं, इस कारण दोषोंकी उग्रता और हीनताके अनुसार उसकी कल्पना करे । वह गरमजल-चार भागका तीन भाग शेष रहा अर्थात् सेर भरका तीन पाव पित्तनाशक है चार भागका दो भाग अर्थात् सेरभरका आधसेर शेष रहा वातविनाशक है । चार भागका एक भाग अर्थात् सेरभरका एक पाव शेष रहा जल कफनाशक है तथा मलरोधक और अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ८५-८९ ॥

अथ ग्रन्थान्तरेष्वारोग्याम्बुनाम्नोक्तस्यास्य लक्षणगुणानाह ।

पादशेषं तु यत्तोयमारोग्याम्बु तदुच्यते । आरोग्याम्बु सदा पथ्यं कासश्वासकफापहम् ॥ ९० ॥ सद्यो ज्वरहरं ग्राहि दीपनं पाचनं लघु । आनाहपाण्डुशूलार्शोगुल्मशोथोदरापहम् ॥ ९१ ॥

जो जल औंटते २ चार भागका एक भाग अर्थात् सेरभरका पावभर शेष रहा हो उसको आरोग्याम्बु कहा है । आरोग्याम्बु-सदैव पथ्य है तथा खांसी; श्वास और कफको नष्ट करनेवाला है, विशेष करके ज्वरको तत्काल हरनेवाला है, मलरोधक, अग्निप्रदीपक, पाचन, हलका, एवं आनाह, पाण्डुरोग, शूल बवासीर, गुल्म, सूजन और उदर रोगको नष्ट करता है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अथर्तुभेदेन जलग्रहणम् ।

हेमन्ते शिशिरे चाम्बु सारसं वा तडागजम् । वसन्तग्रीष्मयोः कौप्यं वाप्यं वा नैर्झरं हितम् ॥ ९२ ॥ नादेयं वारि नादेयं वसन्तग्रीष्मयोर्बुधैः । विषवत्पत्रपुष्पादिदुष्टनिर्झरयोगतः ॥ ९३ ॥ औद्भिदं चान्तरिक्षं वा कौप्यं वा प्रावृषि स्मृतम् । शस्तं शरदि नादेयं नीरमंशूदकं परम् ॥ ९४ ॥ दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः । ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् ॥ ९५ ॥ अनभिष्यन्दि निर्दोषं चान्तरिक्षजलो-

१-नीरं हंसोदकं परम् । इत्यपि पाठः ।

पमम् । बल्यं रसायनं मेध्यं शीतं लघु सुधासमम् ॥ ९६ ॥ " शरद्यगस्त्यस्योदयादखिलं सलिलं हितम् ॥ ९७ ॥ " वृद्धसुश्रुतः--कार्त्तिके मार्गशीर्षे च जलमात्रं प्रशस्यते ॥ ९८ ॥

हेमन्त और शिशिर ऋतुमें सरोवरका अथवा तालाबका जल लेना चाहिये । वसन्त ऋतु और ग्रीष्म ऋतुमें कुएँका, बावडीका अथवा झरनेका जल हितकारी है । वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें नदीका जल नहीं लेना चाहिये, क्योंकि विषैले पत्ते, फूल तथा दुष्ट झरनोंका उसमें योग होता है । वर्षाऋतुमें औद्भिद (जो पृथ्वीको फोडकर बहता है), आकाशसम्बन्धीय (मेघका) जल अथवा कुएँका जल लेना चाहिये । शरद ऋतुमें अंशूदक जल हितकारी है जिस जलके ऊपर दिनमें सूर्यकी किरणें पडती हों और रात्रिमें चन्द्रमाकी किरणें पडती हों उसको अंशूदक कहते हैं । अंशूदक जल-स्निग्ध, त्रिदोषनाशक अभिष्यन्दि (शरदीको नहीं करनेवाला), निर्दोष, आकाशके जलके समान बलकारक, रसायन, मेधाजनक, शीतल, हलका और अमृतके समान है । अन्य ग्रन्थोंमें लिखा है कि-शरद ऋतुमें अगस्त्य ऋषिका उदय होने पर सर्व जल हितकारी है । इसी प्रकार वृद्ध सुश्रुत भी कहता है कि-कार्त्तिक और अगहनके महीनेमें सम्पूर्ण जल हितकारी होते हैं ॥ ९२-९८ ॥

अथ शृतशीत जलविषयः ।

दाहातिसारपित्तास्रमूर्च्छामद्यविषार्तिषु । मूत्रकृच्छ्रे पाण्डुरोगे तृष्णाच्छर्दिश्रमेषु च ॥ ९९ ॥ मद्यपानसमुद्भूते रोगे पित्तोत्थिते तथा । सन्निपातसमुत्थेषु शृतशीतं प्रशस्यते ॥ १०१ ॥

सुश्रुत कहता है कि-दाह, अतिसार, पित्त, रुधिरविकार मूर्च्छा, मद्यजनित पीडा, विषजन्यरोग, मूत्रकृच्छ, पाण्डुरोग, तृष्णा, वमन, श्रम, मद्यपान करनेसे उत्पन्न हुए रोग, पित्तजन्यरोग और सन्निपातजन्यरोग इनमें औटाये हुए जलको शीतल करके पीवे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अथ क्वथितजलशीतीकरणविधिगुणौ ।

शृताम्बु तत्त्रिदोषघ्नं यदन्तर्बाष्पशीतलम् । अरूक्षमनभिष्यन्दि कृमितृड्ज्वरहृल्लघु ॥ १०१ ॥ धारापातेन विष्टम्भि दुर्जरं पवनाहतम् । भिनत्ति श्लेष्मसंघात मारुतं चापकर्षति ॥ १०२ ॥ अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ॥ १०३ ॥

अन्तर्बाष्पशीतलम्- पिहितमेव शीतलम् ।

जो जल औटाकर ढका हुआ ही अपने आप शीतल हुआ है, वह शृतशीतजल-त्रिदोषनाशक, रूखा नहीं अनभिष्यन्दि, हलका, कृमि, तृषा और ज्वरको हरनेवाला है । जो जल धारारूपसे पतित करके शीतल किया है वह विष्टम्भकारक है जो उष्ण जल वायुसे ताडित किया गया है अर्थात् जिसको खूब पवन लग गई है वह दुर्जर (बहुत देरमें कठिनतासे पचनेवाला) है । रात्रिमें किया हुआ गरम जल कफके समूहको तोडता है, वायुका अपकर्षण करता है और अजीर्णको शीघ्र ही पचा देता है ॥ १०१-१०३ ॥

अथात्र विशेषः ।

दिवा शृतं पयो रात्रौ गुरुतामधिगच्छति । रात्रौ शृतं दिवा पीतं गुरुत्वमधिगच्छति ॥१०४॥ तत्तु पर्य्युषितं वह्निगुणोत्सृष्टं त्रिदोषकृत् । गुर्वम्लपाकं विष्टम्भि सर्वरोगेषु निन्दितम् ॥ १०५ ॥ शृतशीतं पुनस्तप्तं तोयं विषसमं भवेत् । निर्य्यूहोऽपि तथा शीतः पुनस्तप्तो विषोपमः ॥ १०६ ॥

दिनमें औटाया हुआ जल रातमें भारी हो जाता है और रातका औटाया हुआ जल दिनमें पिये तो, भारी होता है । यह औटाकर

बासी हुआ जल-त्रिदोषकारक, भारी, अम्ल पाकी, विष्टम्भकारक और सर्वरोगोंमें निन्दनीय है। जो जल औटाकर शीतल हुआ है, उसको यदि फिर गरम करे तो वह विषके समान होजाता है। इसी प्रकार क्वाथ भी शीतल होनेपर दुबारा गरम किया जाय तो विषके समान हो जाता है ॥१०४--१०६॥

अथोष्णजललक्षणरात्रिपानगुणौ ।

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेन द्विकेन वा । अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ॥ १०७ ॥ श्लेष्मानिलाममेदोघ्नं दीपनं वस्तिशोधनम् । श्वासकासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि ॥ १०८ ॥

अष्टावशेष रहे जलको चतुर्थांश शेष रहे जलको, अर्द्धावशेषको अथवा केवल औटाये हुएही जलको, उष्णोदक कहते हैं। रात्रिमें उष्णजलको पीनेसे--कफ, वात, आम और मेदा नष्ट होती है, अग्नि दीप्त होती है, वस्तिशोधक तथा श्वास, खांसी और ज्वर नष्ट होता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथोष्णजलविशेषगुणाः ।

उष्णं तदग्निजननं लघ्वच्छं वस्तिशोधनम् ॥ १०९ ॥ पार्श्वेरुक्पीनसाध्मानहिक्कानिलकफापहम् । शस्तं तृट्श्वासशूलेषु सद्यःशुद्धौ नवज्वरे ॥ ११० ॥

उष्णजल--अग्निको प्रकट करनेवाला, हलका, स्वच्छ, वस्तिशोधक तथा पसलियोंकी पीडा, पीनस, आध्मान, हिचकी, वात और कफके रोगोंको नष्ट करता है, एवं तृषा, श्वास, शूल, जिसने तत्काल वमन विरेचन की हो और नवीनज्वरी इन सबको अत्यन्त हितकारक है ॥ १०९ ॥ ११० ॥

अथ शीतजलविषयः ।

मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये । भ्रमश्रमपरीतेषु तमके श्वयथौ तथा ॥ १११ ॥ धूमोद्गारे विदग्धेऽन्ने शोषे च मुखकण्ठयोः । ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतलाम्बु प्रशस्यते ॥ ११२ ॥

शीतलं जलम्--आममेव न तु क्वथितम्. क्वथितन्तु शीतं दाहादिषु यदुक्तम् तत् सज्वरेषु, विज्वरेषु तु दाहादिषु आमं शीतं प्रशस्यते इति भेदः ॥

सुश्रुत कहता है कि--मूर्च्छा, पित्त, गरमी' दाह, विष, रुधिरके रोग, मदात्ययरोग, भ्रम, श्रम, तमकश्वास, सूजन, धुएकी डकार, भोजनकी विदग्ध अवस्थामें, मुखशोष, कण्ठशोष और ऊर्ध्वगत रक्तपित्त रोग इन रोगोंमें शीतल जल ही हितकारक है। औटाकर शीतल किया हुआ जो जल दाहादिक रोगोंमें कहा है वह ज्वरसहित दाहादिकमें जानना और ज्वररहित केवल दाहादिक रोगोंमें तो विना औटाया हुआ ही शीतल जल उत्तम है ॥ १११ ॥ ११२ ॥

जलपानविधिः ।

आमं जलं पाकमुपैति यामात्पक्कं पुनः शीतलमर्द्धयामात् । पक्कं कदुष्णञ्च ततोऽर्द्धकालादेवं तु पीतस्य जलस्यपाके ॥ ११३ ॥

कच्चा जल एक प्रहरमें पचता है। औटाकर शीतल किया हुआ जल चार घडीमें पचता है। औटाया हुआ कुछ कुछ गरम जल दो घडीमें पचता है, ये पिये हुए जलके पकनेके तीन समय कहे हैं ॥ ११३ ॥

अथ रोगविशेषे जलसंस्कारः ।

पित्तमद्यविषार्त्तेषु तिक्तकैः शृतशीतलम् । जलमिति शेषः ॥

तिक्तानि बहुलानि, तेभ्यो निश्चित्य योगमाह सुश्रुतः—

मुस्तपर्पटकोदीच्यच्छत्राख्योशीरचन्दनैः श्रृतं शीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वरशान्तये ॥ ११४ ॥ छत्राऽत्र धान्याकः। यत आह निघण्टौ धन्वन्तरिः--कुस्तुम्बुरुः स्वर्णिका च च्छत्रा धान्यं वितुन्नकम् ॥ ११५ ॥ धान्यकं दीपनं रुच्यं पाचनं स्वादुपाकि च। दोषत्रयतृषादाहश्वासकासज्वरप्रणुत् ॥ ११६ ॥ इत्यादि ॥

पित्तदोष, मद्यविकार और विषसे पीडित मनुष्योंको कडवे द्रव्योंके द्वारा जलको औटाकर शीतल करके पीनेको देवे, यह अत्यन्त हितकारक है ॥

कडवे द्रव्य तो अनेक हैं, इस कारण उनमेंसे उन उन पदार्थोंका सुश्रुत निश्चय करके योग कहता है। नागरमोथा, पित्तपापडा, सुगन्धवाला, धनिया, खस और चन्दन इनको जलमें डालकर औटावे, पश्चात् उस जलको शीतल करके तृषा, दाह और ज्वरको शमन करनेके लिये पिवे। यहां छत्राशब्दका अर्थ धनियेका लिया है। क्योंकि कुस्तुम्बुरु स्वर्णिका, छत्रा, धान्य और वितुन्नक ये धनियेके नाम हैं, ऐसा धन्वन्तरिने निघण्टुमें कहा है। धनिया अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिको उत्पन्नकर्ता, पाचन तथा पचनेमें मधुर है और वातादि तीनों दोष, तृषा, दाह, श्वास खांसी और ज्वरको नष्ट करता है, इत्यादि इसके गुण भी कहे हैं ॥ ११४--११६ ॥

चक्रदत्तवङ्गसेनवृन्दादयः छत्रास्थाने नागरं पठन्ति। तद्यथा--मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः। नागरम्--कटुकमपि न अत्र पित्तजनकं मधुरपाकित्वादिति तेषामभिप्रायः। नागरं मुस्तकमिति केचित्। क्वचिदेकदेशेन समुदायोऽवगम्यते। यथा भीमो भीमसेन इति। चन्दनैरित्यत्र सहार्थे तृतीया। तेन मुस्तादिभिः षड्भिरामैरेव क्षुण्णाः सहितं जलं श्रृतं जलमेव केवलं यथर्तुपक्कं पश्चात्तच्छीतलीकृतं दद्यात् ॥ तथा च वङ्गसेनः--यदप्सु श्रृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते। कर्षमात्रं ततो द्रव्यं ग्राहयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ ११७ ॥

अस्यायमर्थः-यद्यस्माद्धतोः अप्सु जले श्रृतशीतासु श्रृतासु केवलासु एव यथर्तुपक्कासु शीतासु तासु शीतलीकृतासु षडङ्गादि द्रव्यं प्रयुज्यते आममेव संक्षुद्य जले स्थाप्यते, तत् प्रक्षेप्यत्वात् कर्षमात्रं द्रव्यं समुचितं षडङ्गादि प्रास्थिकेऽम्भसि प्रस्थमात्रे क्वथितशीतले जले क्षिप्त्वा ग्राहयेत्, अत एव षडंगमभिधाय षडंगपानीयमिति वंगसेनादिभिरुक्तम्। अस्मिन् पक्षे चन्दनं श्वेतमेव ग्राह्यं नतु रक्तम् तत्कषायलेपयोरेव प्रयोक्तुं युक्तम्। यत आह—

"कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम्" ॥ ११८ ॥ इति ॥

षडंगपानीयमिदम्, षड्ंगादेः पाने अनुविधातव्ये प्रक्रिया विहिता वङ्गसेनेन—

कर्षमात्रं यथा द्रव्यं ग्राहयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि। अर्द्धश्रृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ॥ ११९ ॥

आदिशब्देन यूषयवागूविलेपीभक्तानि गृह्यन्ते।

चक्रदत्त, वंगसेन और वृन्द आदि वैद्य तो 'छत्रा' शब्दके स्थानमें 'नागर' को स्थापन करके ''मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः' ऐसा पाठ कहते हैं। नागर अर्थात् सोंठ यद्यपि चरपरी है तथापि मधुरपाकी होनेसे पित्तको उत्पन्न करनेवाली नहीं हैं, ऐसा समझ

कर छत्रा शब्दके स्थानमें नागरको स्थापन करते हैं और कितने वैद्य उक्त नागरशब्दका अर्थ 'नागरमोथा' करते हैं। जैसे कि, किसी स्थलमें 'भीम' शब्दसे भीमसेनका ज्ञान होता है, इसी प्रकार और भी स्थानोंमें एकदेशके कहनेसे समस्तका ज्ञान होता है ॥ नागरमोथा आदि छः औषधियोंको कच्चा ही एकत्र कूट कर जलमें डाले, उस जलको ऋतुके अनुसार पकाकर पश्चात् शीतल करके पित्त आदिके रोगियोंको देवे ॥

किन्तु वंगसेन कहता है कि, जलको ऋतुके अनुसार औटावे, पश्चात् शीतलकर उस ६४ तोले जलमें नागरमोथा आदि छः औषधियोंको कच्ची ही कूटकर सब एकत्र करके एक तोला भर डाल देवे, ऐसे कहनेसे यह ज्ञान होता है कि-वंगसेन क्वाथ करनेका पक्ष नहीं लेता, केवल जल बनानेका ही पक्ष लेता है। वंगसेन आदि वैद्य नागरमोथा आदि छः औषधिरूप अंगसे संस्कृत किये हुए जलको 'षडंगपानीय' कहते हैं। यह पूर्वोक्त विषयको पुष्ट करता है। यहां चन्दन कहनेसे सफेद चन्दन समझना, किन्तु लाल चन्दन नहीं समझना, क्योंकि क्वाथमें और प्रलेपमें ही लाल चन्दन लेना श्रेष्ठ है। कहा भी है-''विशेष करके लाल चन्दन क्वाथमें और लेपमें लेना चाहिये'' यह षडंगपानीय बनानेकी विधि कही और षडंग आदि पान बनाना हो तो वंगसेन आदि बड़े ग्रन्थोंके अनुसार बनाना। जैसे कि-वे अपने ग्रन्थमें लिखते हैं-६४ तोले जलमें कुटी हुई औषधि एक तोला डालकर पकावे, जब वह जल आधा शेष रहे तब उसका प्रयोग करे। पेया, यवागू, विलेपी और भात बनाने की भी यही विधि जाननी ॥११७-११९॥

पानप्रक्रियां शार्ङ्गधरोऽप्येतामेवाह--

क्षुण्णं द्रव्यं पलं साध्यं चतुःषष्टिपले जले। अर्द्धशिष्टन्तु तद्देयं पाने पेयादिसंविधौ ॥१२०॥ पानप्रयोगश्च षडङ्गमुक्तवान्। अस्मिन् पक्षे चन्दनं रक्तं ग्राह्यम्। कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥१२१॥ इति वचनात् ॥

शार्ङ्गधर भी पान बनानेकी प्रक्रिया इस प्रकार कहता है कि ६४ पल जलमें कुटी हुई औषधि ४ तोले प्रमाण डालकर पकावे और जब वह जल आधा रह जाय तब उसको प्रयोग करे, पेया आदि बनानेकी विधि भी इसी प्रकार समझनी। यहां जलका क्वाथ कहा है, इस कारण यहां सफेद चन्दन नहीं, किन्तु लाल चन्दन लेना चाहिये। क्योंकि ''विशेष करके क्वाथ और लेपमें लालचन्दन लेना चाहिये'' ऐसा कहा है ॥ १२०॥१२१॥

रक्तचन्दनगुणाः।

रक्तं हिमं स्वादुपाकं छर्दितृष्णाऽस्रपित्तजित्। तिक्तं नेत्रहितं वृष्यं ज्वरव्रणविषापहम् ॥ १२२ ॥

लाल चन्दन शीतल, स्वादुपाकी, कडवा, नेत्रोंको हितकारी, वीर्यको बढ़ानेवाला तथा वमन, तृषा, रक्तपित्त, ज्वर, व्रण और विष इनको नष्ट करता है। यह लालचन्दनके गुण कहे हैं ॥ १२२ ॥

षडङ्गादि प्रयुज्यते इति आदिशब्देन वक्ष्यमाणादयो योगा उच्यन्ते। यथा--

"श्रीपर्णीचन्दनोशीरसमधूकपरूषकम्।"

श्रीपर्णीपरूषकयोः फलं ग्राह्यम्, मधूकस्य तु पुष्पम् ॥

पानं पित्तज्वरं हन्यात्सारिवाद्यं सशर्करम् ॥ १२३ ॥ हन्यात्सयष्टिमधुकं तथैवोत्पलपूर्वकम्। पाने श्रृतं जलं किं वा सोत्पलं शर्करायुतम् ॥ १२४ ॥

हन्यात्पित्तज्वरमिति शेषः। उत्पलमत्र कमलमित्यादि ॥

पान बनानेके और भी अनेक प्रयोग हैं। कुम्भेरके फल, चन्दन, खस, महुएके फूल, फालसे, सारिवा और मिश्री इनसे बनाया

हुआ पान पित्तज्वरको नष्ट करता है । मुलैठी और कमल डालकर अथवा कमल और सफेद खांड जलमें डालकर पकावे, फिर उसका पान बनाकर सेवन करे, यह पित्तज्वरादि रोगोंको नष्ट करता है । इत्यादि और भी अनेक प्रयोग जानने ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

अथ दिननिद्रानिषेधः ।

दिवा स्वापं न कुर्वीत यतोऽसौ स्यात्कफावहः । ग्रीष्मवर्ज्येषु कालेषु दिवास्वापो निषिद्ध्यते ॥ १२५ ॥ उचितो हि दिवास्वापो नित्यं येषां शरीरिणाम् । वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा ॥ १२६ ॥

रोगी दिनमें शयन नहीं करे, क्योंकि दिनमें सोनेसे कफकी वृद्धि होती है। इस कारण ग्रीष्म ऋतुके विना शेष सर्व ऋतुओंमें दिनमें सोना नहीं चाहिये । परन्तु जिन मनुष्योंको सदैव दिनमें सोनेका अभ्यास है जो वे दिनमें नहीं सोवें तो उनके वायु आदि दोष कुपित होते हैं इस कारण उनके लिये दिन में सोनेका निषेध नहीं है ॥१२५॥१२६॥

अथ दिवाशयनार्हमनुष्याः ।

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतक्लान्तानतीसारिणः । शूलश्वासवमीतृषापरिगताम् हिक्कामरुत्पीडितान् । क्षीणान्क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान् वृद्धांस्तथाऽजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्निरान्निरशनान् कामं दिवा स्वापयेत् ॥ १२७ ॥

व्यायाम अथवा अधिकतर परिश्रम करनेसे, स्त्रीप्रसंग करनेसे, अधिक मार्ग चलनेसे और अधिकतर हाथी घोडे आदिपर चढनेसे जो थक गये हैं उनको तथा श्रमयुक्त, अतिसाररोगी, शूलरोगी, श्वासरोग, वाला, वमनयुक्त, तृषारोगी, हिक्कारोगी, वातसे पीडित, क्षीण, जिनका कफ क्षीण हो गया हो, वालक, मदिरा, अथवा अन्यान्य मादक द्रव्योंको भक्षण करनेवाले, वृद्ध, अजीर्णरोगी, रात्रिमें जागनेवाले और उपवास करनेवाले अर्थात् जिन्होंने लंघन किया है, ऐसे मनुष्योंको इच्छाके अनुसार दिनमें सुलावे ॥ १२७ ॥

अथ वातादिज्वरपाकावधिः ।

वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः । श्लेष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः पाकमुपैति हि ॥ १२८ ॥ रसस्य आमत्वे अवधिमतिक्रम्यापि ज्वरस्तिष्ठति । यत आह सुश्रुतः--बहुदोषस्य मन्दाग्नेः सप्तरात्रात्परं ज्वरे । लंघनाम्बुयवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते ॥ १२९ ॥ तदा तं मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः । कषायैः पाचनैर्हृद्यैर्ज्वरघ्नैः समुपाचरेत् ॥१३०॥ इति ॥

वातज्वर सात दिनमें पचता है, पित्तज्वर दश दिनमें पचता है और कफज्वर वारह दिन में पचता है । जो रस आम अर्थात् कच्चा हो तो इस अवधिके उपरान्त भी ज्वर रहता है । जैसा कि सुश्रुत कहता है--"बहुत दोषयुक्त और मन्दाग्निवाले मनुष्यको सात दिनके पश्चात् ज्वर रहे और उसके दोष लंघन, उष्ण जल और यवागूसे भी न पचें तो मुखकी विरसतानाशक, तृषानिवारक, अरुचिको दूर करनेवाले, पाचन करनेवाले, हृदयको हितकारी और ज्वरको नष्ट करनेवाले ऐसे क्वाथोंके द्वारा चिकित्सा करे ॥१२८-१३०॥

अथ ज्वरतरुणाद्यवस्था ।

आसप्तरात्रात्तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः । द्वादशाहमभिव्याप्य मध्यं जीर्णं ततः परम् ॥ १३१ ॥

आसप्तरात्रादिति-अत्र रात्रिपदादयं रात्रिशब्दो दिवसस्य उपलक्षकः । तेन सप्तमदिवसादर्वाग् ज्वरस्तरुण इत्यर्थः । तथा चोक्तं तन्त्रान्तरे--

ज्वरे व्यतीते षडहे जीर्ण इत्युच्यते बुधैः । द्वादशाहात्परं जीर्णःमाहुरन्ये मनीषिणः ॥ १३२ ॥ अत एव जातूकर्णः--"जीर्णः त्रयोदशदिवसे' इति ॥

ज्वर सात दिन तक तरुण कहा जाता है, बारह दिन तक मध्यम कहा जाता है और इसके पश्चात् जीर्ण कहा जाता है, ऐसा विद्वान् वैद्य कहते हैं। 'आसप्तरात्रात्' इस पदमें जो रात्रिशब्द है, वह दिनवाचक जानना। ऐसा ही अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि--"छः दिन के पश्चात् ज्वर जीर्ण हो जाता है, ऐसा विद्वान् कहते हैं" । कोई विद्वान् बारह दिनके पश्चात् ज्वरको जीर्ण कहते हैं और इसी प्रकार जातूकर्ण ऋषि भी कहता है कि--"ज्वर तेरहवें दिनमें जीर्ण होजाता है" ॥१३१॥१३२॥

अथ ज्वरौषधदानसमयः।

वातिके सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिके । श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युञ्जीत भेषजम् ॥ १३३ ॥ पाययेदातुरं साममौषधं सप्तमे दिने । शमनेनाथवा दृष्ट्वा निरामं तमुपाचरेत् ॥ १३४ ॥ गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं शृतम् । वातज्वरे तथा पेयं कालिङ्गं सप्तमेऽहनि ॥ १३५ ॥ एतां क्रियां प्रयुञ्जीत षड्रात्रं सप्तमेऽहनि । विवेत्कषायसंयोगात्पेयां ज्वरविनाशिनीम् ॥ १३६ ॥

एतां क्रियाम्--लंघनादिरूपाम् । कषायसंयोगात्कषायेण साधितां पेयामित्यर्थः ॥

खरनादेनाप्युक्तम्-इति षड्रात्रिकः प्रोक्तो नवज्वरहरो विधिः । ततः परं पाचनीयं शमनीयं ज्वरे हितम् ॥ १३७ ॥ सप्ताहादौषधं केचिदाहुरन्ये दशाहतः । लंघने भोजिते केचिद्देयमामोल्वणे न तु ॥ १३८ ॥

सप्ताहात्-सप्ताहमारभ्येत्यर्थः । अत्र ल्यब्लोपे कर्मणि पञ्चमी ॥

दशरात्रात्परं सर्वैर्दातव्यमिति निश्चितम् ॥ १३९ ॥ इति ॥

अत एव दशरात्रेण-द्वादशाहेन वेति । लंघनवताआतुरेणेत्यर्थः ॥

ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम् । पाचनं पाययेद्वैद्यो निरामं सप्तमेऽहनि ॥ १४० ॥

सप्तमेऽहनि लघ्वन्नं दत्त्वा अष्टमे दिने कषायं पाययेदित्यर्थः ॥

सप्तरात्रात्परं केचिन्मन्यन्ते देयमौषधम् ॥ १४१ ॥

सप्तरात्रात् परम्-अष्टमेऽहनि इत्यर्थः । केचित् चरकादयः ॥

चक्रदत्तोऽपि--सप्तरात्रेण पच्यन्ते सप्तधातुगता मलाः । निरामस्तु ततः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमे दिने ॥ १४२ ॥

एवं सति कषायदाने सप्तमाष्टमयोर्दिवसयोर्विकल्पः । तत्रापि वयोबलाग्निदोषदेशकालोचितं कुर्यात् । भेषजमन्नञ्च दोषपाकं दृष्ट्वा दद्यादित्याह सुश्रुतः--पैत्तिके च ज्वरे देयमल्पकालसमुत्थिते । अचिरज्वरितस्यापि भैषज्यं दोषपाकतः ॥ १४३ ॥

अस्यायमर्थः--अल्पकालसमुत्थिते पैत्तिके ज्वरे दोषपाकं दृष्ट्वा भैषज्यं देयम् न तु तत्र दशरात्रापेक्षा तथा अचिरज्वरितस्यापि पैत्तिकेतरनवज्वरयुक्तस्यापि दोषपाके दृष्ट्वा भैषज्यं देयमित्यर्थः ॥

वातज्वरमें छः दिन तक लंघन कराकर पश्चात् सातवें दिन औषधि देवे, पित्तज्वरमें दश दिनतक लंघन कराकर पश्चात् औषधि देनी चाहिए और कफज्वरमें बारह दिनतक लंघन कराकर पश्चात् औषधि देवे। परन्तु यह पहले कह चुके हैं कि, जो वातज्वर रोगी साम हो तो सातवे दिन औषधि पिलावें और निराम हो तो रोगको शमन करनेवाली औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करे। इसी प्रकार शार्ङ्गधर भी कहता है कि "वातज्वरके सब लक्षण हों तो गिलोय, पीपलामूल और सोंठ इनका पाचनरूपी क्वाथ बनाकर सातवें दिन रोगीको पिलावे" हारीत भी कहता है कि "छः दिनतक तो लंघन आदि क्रिया करे और सातवें दिन क्वाथसे सिद्ध की हुई ज्वरनाशक ऐसी पेया पीनी चाहिये"। खरनाद भी कहता है-"इस प्रकार तरुणज्वरको हरनेवाली विधि छःदिनतक कही है पश्चात् पाचन और शमन क्रिया ज्वरमें हितकारी है" वाग्भट भी कहता है कि-"रोगीको सातवें दिन हलका अन्न भोजन कराकर फिर उस दिनसे औषधि देवे, ऐसा कितने वैद्य कहते हैं। और कितने वैद्य कहते हैं कि, रोगीको दशवें दिन हलका अन्न भोजन कराकर फिर उसी दिनसे औषधि देवे। और कितने वैद्य कहते हैं कि, जो आम उल्वण हो तो औषधि कदापि न देवे" इस विषयमें चरक तो यह कहते हैं कि-"ज्वरवाले रोगीको छः दिनके पश्चात् जो वह निराम हो तो सातवें दिन हलका अन्न भोजन कराकर पश्चात् आठवें दिन क्वाथ पिलावे, इसी प्रकार सुश्रुत कहता है कि-"सात दिनके पश्चात् आठवें दिन औषधि देनी चाहिये, ऐसा चरकादि ऋषियोंका मत है"। चक्रदत्त भी कहता है कि -" सात धातुओंमें प्राप्तहुआ मल सातदिनमें पचता है, इस कारण विशेष करके ज्वर आठवें दिन आमरहित हो जाता है" इस प्रकार अनेक मतभेद हैं। इन सबसे यह सिद्ध होता है कि, क्वाथ देनेमें सातवें और आठवें दिनका विकल्प हैं सातवे अथवा आठवें दिन जो क्वाथ देना कहा है, इस कहनेके ही ऊपर न रहे, किन्तु अवस्था, बल, अग्नि, दोष, देश और काल इनको देखकर औषधि देवे कारण यह है कि, दोष पहले ही पच जाय तो अवधि से पहिले ही औषधि और अन्न देना चाहिये और जो नहीं पचे तो समयके आनेपर भी नहीं देनी चाहिये। जैसा कि, सुश्रुत कहता है कि, थोडे समयके उत्पन्न हुए पित्तज्वरमें जब दोषोंके पाक हों तब औषधि देवे, किन्तु उसमें दशही दिन वीत जानेका रास्ता न देखे उसी प्रकार थोडे कालसे उत्पन्न हुए वातज्वर में और थोडे कालसे उत्पन्न हुए कफज्वर में भी जब दोषोंका पाक हो तब औषधि देवे ॥ १३३--१४३ ॥

अथ दोषपाकलक्षणम् ।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च । पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ १४४ ॥

ज्वरे मृदौ-स्वल्पीभूते । मलेषु वातपित्तकफमूत्र पुरीषेषु, प्रचलेषु स्वमार्गसञ्चारिषु । पक्वम्-निरामम् ।

"दोषप्रकृतिर्वैकृत्यादेतेषां पक्वलक्षणम्॥"

दोषाणां दुष्टवातपित्तकफानां प्रकृतिः ज्वरस्य तदुपद्रवाणां च उत्पादनम्, तस्याः वैकृत्यं वैपरीत्यं तस्माद्दोषपाकज्ञानम् ॥

अन्येषां मते-क्षुत्क्षामत्वं लघुत्वञ्च गात्राणां ज्वरमार्दवम् । दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ १४५ ॥

दोषप्रवृत्तिः-दोषाणां स्वमार्गसञ्चारः ।

सुश्रुत कहता है- कि, "जब ज्वर हलका हो जाय शरीर भी हलका हो जाय, वात, पित्त, कफ, मूत्र और विष्ठा ये मल अपने अपने मार्ग में संचार करने लगें तो दोष पचकर आम रहित हो गये, ऐसा जानना। इस प्रकार जब दोष पच जायँ तब ज्वरमें औषधि देनी चाहिये' दुष्ट हुए वात, पित्त और कफ इनके

ज्वरको तथा ज्वरके उपद्रवोंको उत्पन्न करने का जो स्वभाव है वह स्वभाव बदल गया हो तो दोषोंका, पाक हुआ जानना, यह कितने वैद्योंका मत है । भूख, शरीरका हलकापन, ज्वरकी सूक्ष्मता, दोषोंका अपने अपने मार्गमें संचरण और उत्साह इन लक्षणोंसे जानना कि ज्वर आमसे रहित हो गया ॥१४४॥१४५॥

ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् । तत्राऽनुक्ते प्रभातं स्यात्कषायेषु विशेषतः ॥ १४६ ॥ मुख्यभैषज्यसम्बन्धो निषिद्धस्तरुणज्वरे । तोयपेयादिसंस्कारे त्वदोषं तत्र भेषजम् ॥ ॥ १४७ ॥ न कषायं प्रशंसन्ति नराणां तरुणे ज्वरे । कषायेणाकुलीभूता दोषा जेतु सुदुस्तराः ॥ १४८ ॥

आकुलीभूताः—प्रवृद्धाः । स्वमार्गं परित्यज्य इतस्ततो गताः । अत्रकषायशब्देन क्वाथो गृह्यते ॥

उक्ताश्च क्वाथस्य पर्यायाः—

शृतः क्वाथः कथायश्च निर्यूहः स निगद्यते । तोयपेयादिसंस्कारे निर्दोषं तत्र भेषजम् ॥ १४९ ॥

तत्र तरुणज्वरे । भेषजं-मुख्यभेषजं क्वाथरूप नतु कल्पनमुद्दिश्य कषायः प्रतिषिध्यते इति । कल्पनं तोयपेयायवाग्वादिकम् ॥

मनुष्योंको औषधि सेवन करनेके पांच काल कहे हैं और जिस औषधिके पीनेका समय नहीं कहा है, उसको प्रातःकाल सेवन करना चाहिये । कषाय अर्थात् काढेको विशेष करके प्रातःकाल ही पीना चाहिये । तरुणज्वरमें कषाय पीनेका निषेध है, परन्तु वह कषाय यदि जल और पेयादिके संस्कारके लिये उपयोगमें लाया गया हो तो निषेध नहीं है । कहा भी है कि-"मनुष्योंको तरुण ज्वरमें कषाय देना नहीं चाहिये । कारण यह है कि-कषायसे वृद्धिको प्राप्त हुए दोष अपने मार्गको छोडकर आममें मिल जाते हैं । फिर उनको जीतना अत्यन्त कठिन हो जाता है" । शृत, क्वाथ, कषाय और निर्यूह ये क्वाथके नाम हैं । तरुणज्वरमें जल, पेया और यवागूको सिद्ध करनेके लिये कषायका उपयोग करनेमें किसी प्रकार निषेध नहीं है ॥ १४६--१४९ ॥

ननु स्वरसश्च तथा कल्कः क्वाथश्च हिमफाण्टकौ । ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १५० ॥ इति वचनात्स्वरसादयोऽपि कथं न निषिध्यन्ते ?

तत्राह--तत्र यस्तु कषायः स्यात्स वर्ज्यस्तरुणज्वरे" ॥ १५१ ॥

चतुर्थभागावशेषकरणेन अष्टमभागशेषकरणेन च कषायवर्णः कषायरसश्च यः कषायः क्वाथः स्यात् स तरुणज्वरे निषिद्धः ।

शंका--स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फांट ये पांचों क्वाथ कहे जाते हैं और इनमें उत्तरोत्तर अधिक हलकापन है । इस वचन से स्वरस आदि पांचों पदार्थोंको कषाय कहने पर "तरुण ज्वरमें कषाय पीना निषेध है" इस कहनेसे केवल एक क्वाथका ही निषेध कैसे समझें, पांचों कषायोंका निषेध क्यों नहीं मानते ?

समाधान--जलका चौथा अथवा आठवां भाग शेष रहे ऐसी रीतिसे जो पकाया हुआ क्वाथ कसैले रंगका और कसैले रसयुक्त हो जाय उसीको कषाय अर्थात् क्वाथ कहते हैं और वही तरुणज्वरमें निषिद्ध है । यह शास्त्र का वचन है ॥ १५०--१५१ ॥

"पादशिष्टः कषायः स्यात्" । अतः षडङ्गादिः तरुणज्वरे न निषिद्धः । पाकादूर्ध्वं पाके चोक्तलक्षणाभावेन

कषायत्वाभावात् ॥ दोषो वृद्धाः कषायेण स्तम्भितास्तरुणज्वरे । स्तभ्यन्ते न विपच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम् १५२

कषायेण स्तम्भिताः-प्रवृत्तये निवारिताः। 'यत आह कषायरसगुणान् कषायः स्तम्भनः शीतो रूक्षः पित्तकफापहः।' इत्यादि ॥

स्तभ्यन्ते--आध्मानं कुर्वन्ति। न विपच्यन्तेसुखेन न विपच्यन्ते दुःखं दत्वा विलंबेन विपच्यन्ते इति यावत् ॥

अन्यच्च-न च्यवन्ते न पच्यन्ते कषायैः स्तम्भिता मलाः । तिर्यग्विमार्गगा वा ते घोरं कुर्युर्नवज्वरम् ॥ १५३ ॥

सोलह भाग जलका जो चार भाग जल शेष रहा हो, ऐसी विधिसे जो पकाया गया हो, उस क्वाथको कषाय कहते हैं। इस कारण तरुणज्वरमें षडंग आदि पानीका निषेध नहीं जानना, कारण यह है कि, अपाकके होनेसे षडंग आदिमें कषायके लक्षण नहीं मिलते तरुणज्वरमें बडे हुए दोष कषायोंसे स्तंभन करनेसे स्तंभित हो जाते हैं. परिपक्व नहीं होते। परन्तु ऐसे बलात्कारसे स्तंभित किये हुए दोष विषमज्वरको पैदा करते हैं॥ कषाय, स्तम्भन दोषोंको रोकनेवाला, शीतल, रूखा तथा पित्त और कफको नष्ट करनेवाला है। इस वचनके कहे अनुसार कषायमें दोषोंको स्तम्भन करनेका गुण रहता है। इस प्रकार तरुणज्वरमें कषायके देनेसे दोष वृद्धिको प्राप्त होकर स्तम्भन अर्थात् अफारेको उत्पन्न करते हैं। सुखसे नहीं पकते, किन्तु दुःख देकर विलम्बसे पचते हैं अन्न ग्रन्थोंमें भी कहा है कि--"कषायसे स्तंभित हुए दोष स्थानसे नहीं टलते हैं और न पकते हैं, किन्तु टेढे भागमें जाकर तरुण ज्वरको अत्यन्त भयंकर कर देते हैं" ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

अथ तरुणज्वरे वमननिषेधः।

अनवस्थितदोषाणां वमनं तरुणज्वरे। हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहं च कुरुते भृशम् ॥ १५४ ॥

अयमर्थः--कफादिदोषोपस्थितौ स्वयमेव चेद्भवति वमनं न तद्दोषाय। अनवस्थितदोषाणां तरुणज्वरे वमनं यत्नकृतं हृद्रोगादीन्करोति इत्यर्थः । एतेन वचनेन तरुणज्वरे यत्नाद्वमनं निषिद्धम्। अवस्थाविशेषे तदपि कर्त्तव्यमित्याह--

सद्योभुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते। वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः ॥ १५५ ॥

वमनं वेति विकल्पो लंघनापेक्षया, वमनार्हस्य इत्यनेन गर्भिण्यतिकृशातिवृद्धादिनिषेधः॥

वमितं लंघयेत्प्राज्ञो लंघितं न तु वामयेत्। वमनं क्लेशबाहुल्याद्धन्यालंघनकर्षितम्। न कार्यं गुर्विणीबालवृद्धदुर्बलभीरुभिः ॥ १५६ ॥

अनशनमिति शेषः। अनेन अनशनवचनेन गुर्विण्यादीनाम् अनशननिषेधः। ज्वरे सामे पाचनं निरामे शमनं पथ्यान्नं मण्डादिकञ्च दद्यात् । पाचनलक्षणं पश्चाद्गुणप्रस्तावे बौद्धव्यम् ॥

कफ आदि दोषोंका अधिकतर ऊपरको आनेसे जो अपने आप ही वमन हो जाय तब तो कोई हानि नहीं, किन्तु तरुणज्वरोंमें जो कफादि ऊपरको नहीं आते हों, ऐसे रोगियोंको यत्नपूर्वक वमन नहीं करानी चाहिये। यत्नपूर्वक वमन करानेसे हृदयरोग, श्वास, अफारा और मोह उत्पन्न होता है। इसकारण तरुणज्वरमें यत्नसे वमन नहीं करानी चाहिये, तथापि अवस्था विशेषमें वमन करानी निषेध नहीं है। जैसे कहा है कि--"तत्काल भोजन किये हुए मनुष्यको तृप्तिसे जिसको ज्वर उत्पन्न

हुआ हो और वह मनुष्य वमन कराने योग्य हो तथा गर्भिणी, अत्यन्त कृश और अत्यन्त वृद्ध न हो तो उसको लंघनके बदले वमन करानी चाहिये" ऐसा वाग्भटका मत है। इस विषयमें वृद्ध वाग्भट कहता है कि--' जिसने वमन की हो उसको लंघन कराने चाहिये और जिसने लंघन किये हों, उसको वमन नहीं करानी चाहिये। कारण यह है, कि वमन अत्यन्त क्लेश युक्त होनेके कारण लंघन से कृश हुए मनुष्यको क्षार डालती है। गर्भवती स्त्री, बालक, वृद्ध दुर्बल और भयभीत इनको वमन नहीं करावे, गर्भवती आदिका जो ज्वर आमसहित हो तो पाचन औषधि देवे और जो आमरहित हो तो शमन औषधि तथा पथ्य अन्नका रस इत्यादि देवे पाचनके लक्षण द्रव्यखण्डमें कह चुके हैं, सो देख लेना॥

अथ पाचनशमनौषधदानसमयः ।

पाययेदातुरं सामं पाचनं सप्तमे दिने । शमनेनाथवा दृष्ट्वा निरामं तमुपाचरेत् । कृशं चैवाल्पदोषञ्च शमनीयैरुपाचरेत् ॥ १५७ ॥

जो रोगी आमसहित हो तो सातवें दिन पाचन देना चाहिये और आमरहित हो तो शमनसे उपचार करे, तथा जो दुर्बल और अल्पदोषयुक्त हो तो भी शमनकी ही औषधि देवे॥ १५७॥

ननु--लालाप्रसेको हृल्लासो हृदयाशुद्ध्यरोचकौ ॥ १५८ ॥ तन्द्राऽऽलस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता । क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवान्ज्वरः॥१५९॥ आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् । भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो जनयति ज्वरम् ॥ १६० ॥

भूयःबाहुल्येन ।

पाययेद्दोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः । स सुप्तं कृष्णसर्पं तु कराग्रेण परामृशेत् ॥ १६१ ॥ इति वचनात् आमज्वरे भेषजनिषेधात् कथं सामे ज्वरे पाचनं देयम् ?

शंका—लारका गिरना, अथवा मुखसे पानीका गिरना उबकाईका आना, हृदयका भारीपन, अरुचिका होना, तन्द्रा और आलस्य हो भोजनका पाक न हो, मुखमें विरसता हो, मुखमें शरीरमें भारीपन, क्षुधाका नाश मूत्रका अधिक आना, शरीर बन्धासा हो और ज्वरका अधिकवेग होना ये आमज्वरके लक्षण हैं । आमज्वरमें औषधि नहीं देनी चाहिये। जो आमदोषोंमें औषधि दी जावे तो वह ज्वरकी वृद्धि करती है। अन्यत्र भी कहा है कि-जो वैद्य आमज्वरमें भूलसे दोषोंको हरनेवाली औषधि देता है, वह सोते हुए काले सांपको हाथके अग्रभागसे छूकर जगाता है" इन वचनोंसे सिद्ध होता है कि, आमज्वरमें औषधि नहीं देनी चाहिये, फिर तुम पाचन देना कैसे कहते हो? ॥ १५८--१६१ ॥

उच्यते--निरुपद्रवे सामज्वरे पाचनं देयम् । सोपद्रवे तु सामे भेषजं निषिद्धम् ॥ सप्ताहात्परतोऽदुष्टे सामे स्यात्पाचनं ज्वरे । निरामे शमनं स्तब्धे सामे नौषधमाचरेत् ॥ १६२ ॥

अदुष्टे—निरुपद्रवे । स्तब्धे--सोपद्रवे ॥

समाधान -जो आमज्वर उपद्रवोंसे रहित हो तो पाचन देना चाहिये और जो उपद्रवोंसे सहित हो तो कदापि औषधि नहिं देनी चाहिये। क्योंकि, वाग्भट कहता है कि--" जो सात दिनके पश्चात् ज्वर आमसहित भी हो परन्तु उपद्रवोंसे रहित हो तो पाचन देवे और आमसे रहित हो तो शमन देवे, किन्तु जो ज्वर आम और उपद्रव दोनोंसे संयुक्त हो तो कदापि औषधि नहीं देनी चाहिये " ॥१६२ ॥

सामान्यज्वरपाचनकषायः ।

नागरं देवकाष्ठञ्च ध्यामकं बृहतीद्वयम् । दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितेभ्यो ज्वरापहम् ॥ १६३ ॥

ध्यामकम्-रोहिषं, तदलाभे उशीरं दद्यात् । बृहती द्वयम--बृहत्फला सूक्ष्मफला च । बृहती, क्षुद्राबृहती चेति कटकारीद्वयं वा दद्यात् । " कण्ठकारीद्वयंशुण्ठी ध्यामकं सुरदारु च " इति शार्ङ्गधरेण उक्तत्वात् ॥

सोंठ देवदारु, रोहिषतृण, कटेरी और बडी कटेरी इनको समान भाग लेकर काथ बनावे, पश्चात् ज्वररोगीको ज्वरके पचानेके लिये देवे यह सुश्रुत कहता है, इसी प्रकार शार्ङ्गधर भी कहता है कि--" दोनों प्रकारकी छोटी बडी कटेरी, रोहिषतृण, सोंठ और देवदारु इन पांच औषधियोंका काथ देना चाहिये । इसमें यदि रोहिषतृण, न मिले तो उसके अभावसे खस लेनी चाहिये । इसको नागरादिकाथ कहते हैं ॥ १६३ ॥

सर्वज्वरेषु सामान्यसंशमनौषधिः ।

अथ संशमनीयानि कषायाणि निबोध मे । सर्वज्वरेषु देयानि यानि वैद्येन जानता ॥ १६४ ॥ वृश्चीवो बिल्ववर्षाभूः पयः सोदकमेव च । पचेत्क्षीरावशेषं तत्पेयं सर्वज्वरापहम् ॥ १६५ ॥

वृश्चीवः -श्वेतपुनर्नवा । वर्षाभूः -रक्तपुनर्नवा ॥ तथा च मदनपालः--

पुनर्नवः श्वेतमूलो वृश्चीवो दीर्घपत्रकः । पुनर्नवाऽपरा रक्त वर्षाभू रक्तपुष्पकः ॥ १६६ ॥

सुश्रुत कहता है कि " अब मैं संशमनीय औषधियोंको कहता हूँ कि, जिनको जानकर वैद्य सब ज्वरोंमें प्रयोग करे । सफेद पुनर्नवा बेलका गूदा, लाल पुनर्नवा, दूध और जल इन सबको मिलाकर पकावे जब जलकर केवल दूध शेष रहे तब उतारकर छानलेवे, फिर शीतल करके पान करे तो सर्व प्रकारके ज्वर दूर होते हैं "। " सफेद जडवाले और लम्बे पत्तेवाले पुनर्नवेको वृश्चीव कहते हैं और लाल फूलके तथा लाल जडवाले पुनर्नवेको रक्तपुनर्नवा कहते हैं " ऐसा मदनपालनिघंटुमें कहा है ॥ १६४--१६६ ॥

दुग्धपाकविधिः ॥

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषं पातव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥१६७॥ उदकाद्द्विगुणं क्षीरं शिंशपोशीरमेव च । तत्क्षीरशेषं क्वथितं पेयं सर्वज्वरापहम् ॥ १६८ ॥

चार तोले औषधि, बत्तीस तोले दूध और दूधसे चौगुना जल डाले, फिर सबको मिलाकर पकावे, जब जलकर केवल दूधही शेष रहे तब पिये, यह दूध पाककी विधि कही । दूसरे प्रकारसे भी कही है कि- " जलसे दुगुना दूध लेकर उसमें सीसमका बुरादा और खस डालकर पकावे, जब दूध शेष रहे और जल जलआय तब पिये, इसको पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं " ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

अथ गुडूच्यादिक्वाथः ।

गुडूचीधान्यकारिष्टपद्मकं रक्तचन्दनम् । एषां क्वाथः सुप्रसिद्धः सर्वज्वरहरः स्मृतः ॥१६९॥ दीपनो दाहहल्लासतृष्णाछर्द्यरुचिं हरेत् ॥ १७० ॥

गिलोय, धनियां नीमकी छाल, पद्माख और लालचन्दन इनका जगत्प्रसिद्ध क्वाथ सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला, अग्निदीपक तथा दाह, उबकाई, तृषा, वमन और अरुचिको दूर करनेवाला है ॥ १६९ ॥ १७० ॥

अथ संशोधननिषेधः ।

छर्दिमूर्च्छामदश्वासभ्रमतृड्विषमज्वरान्। संशोधनस्य पानेन प्राप्नोति तरुणज्वरी ॥ १७१ ॥

निषिद्धमपि संशोधनमवस्थाविशेषे देयम् ।

रोगे शोधनसाध्ये तु यं विद्याद्दोषदुर्बलम् । तं समीक्ष्य भिषक्कुर्याद्दोषप्रच्यावनं मृदु ॥ १७२ ॥

दोषदुर्बलम्-दोषैरुपचितैर्दुर्बलम् न तु उपवासा दिकृशम् ॥

सद्योज्वरे विषेऽजीर्णे मन्देऽग्नावुदरे तथा । स्तन्यरोगे च हृद्रोगे कासश्वासेषु वामयेत् ॥ १७३ ॥ जीर्णज्वरगरच्छर्दिगुल्मप्लीहोदरेषु च । शूले शोथे मूत्रघाते कृमिरोगे विरेचयेत् ॥ १७४ ॥ चले दोषे मृदौ कोष्ठे नेक्षेत्तत्र बलं नृणाम्। अव्यापाद्दुर्बलस्यापि शोधनं हि तदा भवेत् ॥ १७५ ॥

कुतो बलं न अपेक्षणीयम् ? इत्याशंकायामाहतदा तस्यामवस्थायां शोधनं दुर्बलस्यापि दोषदुर्बलस्यापि अव्यापद्भवेत् । छर्द्यादिव्याधिकृन्न भवतीत्यर्थः बलवतः पुरुषस्य-पक्वदोषस्य ॥

पक्वोऽप्यनिर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन्महात्ययम् । विषमं वा ज्वरं कुर्याद्बलव्यापदमेव वा ॥ १७६ ॥

पक्वः-लंघनाम्बुपानपेयादिभिः । अनिर्हृतः-अधोमार्गेणानुत्सृष्टः । महात्ययं-विषमं ज्वरं चातुर्थिकं तस्यैव महात्ययत्वादिति गदाधरः । गम्भीरमिति कार्तिकः । महात्ययं महाकष्टं वा । बलव्यापदम्बलक्षयम् ॥

सुश्रुत कहता है कि-" तरुण नवीन ज्वरवाला रोगी शोधन औषध पिये तो वमन, मूर्च्छा, मद, नसा, श्वास, भ्रम, तृषा और विषमज्वर उत्पन्न होता है "। यद्यपि तरुणज्वरमें संशोधनका निषेध है, तथापि अवस्थाविशेषमें संशोधन कराना चाहिये । कहा है कि-"रोगी दोषोंकी वृद्धिसे बहुत दुःखित होगया हो और रोगी शोधनसे ही शांत हो, विना शोधनके शांत न हो तो वैद्यको उचित है कि, मृदुरीतिसे संशोधन देकर दोषोंको उखाडे । तत्कालका उत्पन्न हुआ ज्वर, विषविकार, अजीर्णदोष, अग्निकी मन्दता, अरुचि स्तनरोग, हृदयरोग खाँसी और श्वास इन रोगोंमें वमन करावे । जीर्णज्वर, विषविकार, वमन, गुल्म (वायगोला), प्लीहा, उदररोग-शूल,सूजन,मूत्रघात और कृमिरोग इन रोगोंमें विरेचन (जुलाव) करानी चाहिये । जो दोष चञ्चल हो और कोठा नरम हो तो वैद्य उसके बलाबलके विना विचारे ही शोधन औषधि देवे, कारण यह है कि-ऐसी अवस्थामें दोषोंसे दुर्बल हुए मनुष्यके शोधनसे वमनादि विकार उत्पन्न नहीं होते हैं । बलवान् पुरुषके पके हुए दोष जो अपने स्थानमें स्थित हों तो उनका शोधन नहीं करनेसे अन्यान्य रोग उत्पन्न होते हैं । सुश्रुत कहता है कि-"लंघनसे, जलपानसे और पेयादिसे जो दोष पकगया है, उसको, यदि अधोमार्ग दस्त द्वारा न निकालाजाय तो वह देहमें स्थित होकर महात्यय विषमज्वर अथवा बलक्षयको उत्पन्न करता है"। महात्यय यह अत्यन्त हानिकारक चातुर्थिक है, ऐसा गदाधर आचार्य कहता है। महात्ययको गम्भीरज्वर कहते हैं, ऐसा कार्तिक वैद्य कहता है अथवा महात्यय शब्दका अर्थ अत्यन्त कष्टका है ॥ १७१-१७६ ॥

अथ संशोधनम् ।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ताहरीतकीभिः क्वथितः कषायः । सामे सशूले कफवातपित्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च १७७

इति आरग्वधादिः क्वाथः ।

अन्यच्च--पथ्यारग्वधतिक्तात्रिवृदामल-

कैः शृतं तोयम् । पाचनसारकमुक्तं मुनिभिर्जीर्णज्वरे सामे ॥ १७८ ॥ इति आरोग्यपञ्चकद्वयम् ॥

अमलतास, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड इनका काथ आम और शूलयुक्त कफ, वात और पित्तज्वरमें अत्यन्त हितकारी है। दीपन और पाचन है। हरड, अमलतास, कुटकी, निसोत और आमले इनका काथ आमसहित जीर्णज्वरमें पाचन है और दस्तको लानेवाला है। इन दोनों क्वाथोंको आरोग्यपंचक कहते हैं ॥ १७७ ॥ २७८ ॥

अथ सारिवादिकल्कः।

अनन्तां बालकं मुस्तं नागरं कटुरोहिणीम् । पिष्ट्वा सुखाम्बुना कल्कं पाययेदक्षसम्मितम् ॥ १७९ ॥ कल्कः स्वल्पेन कालेन हन्यात्सर्वज्वरामयान् । विदध्यात्कोष्ठसंशुद्धिं दीपयेच्च हुताशनम् ॥ १८० ॥

अनन्ता-सारिवा ॥

सारिवा, सुगन्धवाला, नागरमोथा, सोंठ और कुटकी इनको मन्दोष्णजलमें पीसकर एक तोला भर पिवे तो थोडेही दिनोंमें सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं। कोठा शुद्ध होता है और जठराग्नि दीप्त होती है ॥१७९-१८०॥

अथ संशोधनशमनौषधनिषेधः।

पीताम्बुर्लंघनक्षीणो जीर्णो भुक्तः पिपासितः। न पिबेदौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरत् ॥ १८१ ॥

पीताम्बुः-पीततिक्ताम्बुः । भुक्तो-भुक्तवानित्यर्थः अत्र अध्यवसितादित्वात् कर्तरि क्तप्रत्ययः। इतरत् संशमनम् ॥

जिस मनुष्यने कडवा जल पिया हो, जो लंघन उपवास करनेसे क्षीण होगया हो, वृद्ध, जिसने तत्काल भोजन किया हो और तृषासे पीडित इनको कदापि संशोधन और शमन औषधि नहीं पीनी चाहिये ॥ १८१ ॥

अथ सुदर्शनचूर्णम्।

त्रिफला रजनीयुग्मं कण्टकारीयुगं शटी। त्रिकटु ग्रन्थिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः ॥ १८२ ॥ कटुका पर्पटी मुस्तं त्रायमाणा च बालकम् । निम्बः पुष्करमूलञ्च मधुयष्टी च वत्सकः ॥ १८३ ॥ यवानीन्द्रयवो भार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रजा । वचात्वक्पद्मकोशीरचन्दनातिविषावलाः ॥ १८४ ॥ शालिपर्णी पृश्निपर्णी विडङ्गं तगरं तथा । चित्रकं देवकाष्ठञ्च चव्यं पत्रं पटोलजम् ॥ १८५ ॥ जीवकर्षभकौ चैव लवङ्गं वंशलोचनम् । पुण्डरीकञ्च काकोली पत्रकं जातिपत्रकम् ॥ १८६ ॥ तालीसपत्रमेतानि समभागानि चूर्णयेत् । अर्द्धांशं सर्वचूर्णस्य किरातं प्रक्षिपेत्सुधीः ॥ १८७ ॥ एतत्सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम् । ज्वरांश्च निखिलान् हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ १८८ ॥ दोष जागन्तुकांश्चापि धातुस्थान्विषमज्वरान् । सन्निपातोद्भवांश्चापि मानसानपि नाशयेत् ॥ १८९ ॥ शीतादीनपि दाहादीन्मोहं तन्द्रां भ्रमं तृषाम् । कासं श्वासञ्च पाण्डुञ्च हृद्रोगं कामलामपि ॥ १९० ॥ त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलं निवारयेत् । शीताम्बुना पिबेदेतत्सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ १९१ ॥ सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् । तथा ज्वराणां सर्वेषां चूर्णमेतत्प्रणाशनम् ॥१९२

हरड, बहेडा, आमला, हलदी, दारुहलदी, कटेरी, कटाई, कचूर, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाण, सुगन्धवाला, नीमकी छाल, पोहकरमूल, मुलहठी, कुडेकी छाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, सहिंजनेके बीज, सोरठकी मिट्टी, वच, दालचीनी, पद्माख, खस, चन्दन, अंतीस, खिरैंटी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी खरिवन, वायविडंग, तगर, चीता, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, लौंग, वंशलोचन, पुण्डेरिया, काकोली, तेजपात, जावित्री और तालीसपत्र ये सब समान भाग लेवे और सबकी बराबर चिरायता लेवे। पश्चात् सबका एकत्र चूर्ण करे। इसको सुदर्शन चूर्ण कहते हैं। यह सुदर्शन चूर्ण-तीनों दोषोंको हरनेवाला है और सर्वप्रकारके ज्वरोंको निःसन्देह नष्ट करनेवाला है। तथा दोषोंसे उत्पन्न हुए, आगन्तुज ज्वर, धातुगतज्वर, विषमज्वर, सन्निपातोत्पन्नज्वर, और मानसिक पीडासे उत्पन्नहुए ज्वर इन सबको अवश्य दूर करता है। एवं शीतादिविकार, दाहादिदोष, प्रमेह, तन्द्रा भ्रम, तृषा, खाँसी, श्वास, पाण्डुरोग, हृदयरोग, कामलारोग, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, कटिशूल, जंघाशूल, और पार्श्वशूलको निवारण करता है। सम्पूर्ण ज्वरोंको नष्ट करनेके लिये इसको शीतल जलके साथ भक्षण करे। जिस प्रकार विष्णुका सुदर्शनचक्र दैत्योंको नष्ट करता है, उसी प्रकार यह सुदर्शनचूर्ण सम्पूर्ण ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ १८२-१९२ ॥

अत्र मुख्यद्रव्याभावे प्रतिनिधिद्रव्याणि ।

पुष्करमूलाभावे तु कुष्ठमपि दद्यात्। भार्ङ्ग्यभावे कण्टकारीमूलम् । सौराष्ट्र्यभावे स्फटिकां दद्यात्। तगरालाभे कुष्ठं देयम्। जीवकर्षकयोरलाभे विदारीकन्दस्य भागद्वयं दद्यात् । पुण्डरीकं श्वेतकमलम् । काकोल्यभावे अश्वगन्धामूलम् । तालीसपत्रकाभावे स्वर्णतालीं प्रदीयते इति, अथवा कण्टकारीजटा देया ॥

इस चूर्णमें यदि पोहकरमूल न मिले तो उसके बदले कूट लेना चाहिये, भारंगी न मिले तो कटेरीकी जड लेनी चाहिये, सोरठकी मिट्टी न मिले तो फिट्करी, तगर न मिले तो कूठ, जीवक और ऋषभक इन दोनोंके अभावमें विदारीकन्द दो भाग लेना चाहिये। काकोलीके न मिलनेपर असगन्धकी जड डालनी चाहिये। तालीशपत्र न मिले तो स्वर्णतालीश अथवा कटेरीकी जड लेनी चाहिये ॥

इति सुदर्शन चूर्णम् ।

अथ निम्बादिचूर्णम् ।

निम्बपत्रवराव्योषयवानीलवणत्रयम् । क्षारौ दिग्वह्निरामेषुत्रिनेत्रान् क्रमशोंऽशकान् ॥ १९३ ॥ सर्वमेकीकृतं चूर्णं प्रत्यूषे भक्षयेन्नरः । ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च तथा त्रिदिवसज्वरम् ॥ १९४ ॥ चातुर्थिकं महाघोरं सततं सन्ततं दिवा। धातुस्थं च त्रिदोषोत्थं ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ १९५ ॥

नीमके पत्ते दश भाग, हरड एक भाग, आमला एक भाग, बहेडा एक भाग, सोंठ एक भाग, कालीमिर्च एक भाग, पीपल एक भाग, आजवायन पांच भाग, सैंधानमक एक भाग, विरियासंचर नमक एक भाग, कालानिमक एक भाग और जवाखार दो भाग लेवे। इन सबको एकत्र पीस कूट चूर्ण बनाकर प्रातःकाल भक्षण करे। इसको खानेसे ऐकाहिकज्वर, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चौथिया, सतत दिनरातमें दोबार आनेवाले, सन्तत-सात, दश और बारह दिन तक एकसा रहने वाला ज्वर, धातुगत ज्वर और तीनों दोषोंसे

उत्पन्न हुआ ज्वर अवश्य नष्ट होजाता है ॥१९३-१९५॥

इति निम्बादिचूर्णम् ॥

अथ शट्यादिक्वाथः।

शटी निशाद्वयं दारु शुण्ठी पुष्करमूलकम्। एला गुडूची कटुका पर्पटश्च यवासकः ॥ शृंगी किराततिक्तश्च दशमूली तथैव च। क्वाथमेषां पिबेत्कोष्णं सिन्धुचूर्णयुतं नरः। ज्वरान्सर्वान्द्रुतं हन्ति नात्र कार्याविचारणा ॥ १९७ ॥

इति शट्यादिक्वाथः। अनुभूतोऽयम् ॥

कचूर, हलदी, दारुहलदी, देवदारु, सोंठ, पोहकर, मूल, इलायची, गिलोय, कुटकी, पित्तपापडा, जवाखार, काकडाशिंगी, चिरायता और दशमूलकी समस्त औषधि इनका काथ बनाकर उसमें सेंधेनिमकका चूर्ण डालकर सुहाता सुहाता पीवे। यह सर्व प्रकारके ज्वरोंको निसन्देह नष्ट करता है। यह हमारा कईबार अजमाया हुआ है ॥१९६॥१९७॥

अथ हरीतक्यादिगुटी।

हरीतकीत्रिवृद्वृद्धदारकाणां पृथग्भवेत्। पलद्वयं कणा शुण्ठी गुडूची गोक्षुरो वरी ॥ १९८ ॥ सहदेवी विडंगश्च प्रत्येकं पलसम्मितम्। मधुना वटिकां कृत्वा खादञ्ज्वरमपोहति। कासं श्वासं मलस्तम्भं वह्निमान्द्यं नियच्छति ॥१९९॥ अनुभूतेयम् ॥

हरड, निसोत, त्रिधारा और विधारा ये प्रत्येक आठ आठ तोले लेवे। पीपल, सोंठ, गिलोय, गोखरू, सतावर, सहदेई और वायविडंग ये प्रत्येक चार चार तोले लेवे। सबको एकत्र पीसकर सहतमें गोली बना लेवे। इन गोलियोंको भक्षण करनेसे ज्वर, खाँसी, श्वास, मलरोध और अग्निकी मन्दता नष्ट होती है। यह भी हमारी अनुभवकी हुई है ॥१९८॥१९९

अथ लाक्षादितैलम्।

लाक्षा दशाक्षा त्वरुणा षडक्षा सचन्दनं लोहितचन्दनश्च। त्वक्पत्रकं वारि सुरा समुस्ता प्रत्येकमेतानि पलोन्मितानि ॥ २०० ॥ किराततिक्तस्त्रिवृता सतिक्ताऽमृताकणापर्पटकण्टकार्यः। विडंगविश्वामलकानि वासारसानिशावीरणसिन्दुवाराः ॥ २०१ ॥ एतानि देयानि पृथक्पलार्द्धमानानि सर्वाणि च भेषजानि। कल्कानमीषां विदधीत गव्यदुग्धेन वैसार्द्धतुलामितेन ॥ २०२ ॥ तैलं तिलानां तु तुलानुमानं तैनेव कल्केन शनैः पचेच्च। हन्याज्ज्वरांस्तैलमिदं समस्तान् कुर्याद्‌ बलं वीर्यमतीव पुष्टिम् ॥ २०३ ॥ विमर्दनादाशु परिश्रमं श्रमं शमं नयेत्सञ्जनयेद् द्युतिं तनोः। तथा व्यथामस्थिसमुद्भवामपि प्रहृत्य निद्रां समुपार्जयेत्सुखम् ॥२०४॥

अरुणा-मञ्जिष्ठा। वारि-बालम्। रसा-रास्ना ॥

उत्तम पीपलकी लाख दश तोले, मजीठ ६ तोले, चन्दन ४ तोले, लालचन्दन ४ तोले, दालचीनी ४ तोले, तेजपात ४ तोले, सुगन्धवाला ४ तोले, कपूर कचरी ४ तोले और नागरमोथा ४ तोले, चिरायता दो तोले, निसोत दो तोले, कुटकी दो तोले, गिलोय दो तोले, पीपल दो तोले, कटेरी दो तोले, वायविडंग दो तोले, सोंठ दो तोले, आमले दो तोले, अडूसा दो तोले, रास्ना दो तोले, हलदी दो तोले, खस दो तोले और सह्मालू दो तोले, इन सबको ६०० तोले गायके दूधमें पीस लेवे. फिर इस कल्कको ४०० तोले तिलके तेलमें मिलाकर उत्तम विधिसे तेलको सिद्ध करे। इसको धीरे २ मन्द मन्द अग्निसे पकावे। यह तेल सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरने-

वाला है, तथा बल, वीर्य और अत्यन्त पुष्टिको उत्पन्न करता है। इस तेलको शरीरादिकमें मर्दन करनेसे परिश्रम और श्रम तत्काल दूर होजाता है, शरीरमें कांति उत्पन्न होती है, हड्डियोंकी पीडा दूर होती है तथा सुखपूर्वक निद्रा आती है ॥२००-२०४॥

अथ द्वितीयलाक्षादितैलम्।

लाक्षारससमं तैलं तैलान्मस्तु चतुर्गुणम्। अश्वगन्धा निशा दारुकौन्तीकुष्ठाब्दचन्दनैः ॥ २०५ ॥ समूर्वारोहिणीरास्नाशताह्वामधुकैः समैः। सिद्धं लाक्षादिकं नाम तैलमभ्यञ्जनादिना ॥ २०६ ॥ सर्वज्वरक्षयोन्मादश्वासापस्मारवातनुत्। यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीनां च शस्यते ॥ २०७ ॥

मस्तु-दधिजलम्। कौन्ती-रेणुका। चन्दनमत्र श्वेतमेव, न तु रक्तम्। रोहिणी-कटुका॥

लाखका रस एक भाग, तिलका तेल एक भाग, दहीका तोड ४ भाग, असगन्ध, हलदी, देवदारु, रेणुका, कूठ, नागरमोथा, चन्दन, मूर्वा, कुटकी, रास्ना, सतावर और मुलहठी इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले लेवे, सबको मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे। इस तेलको मर्दन करनेसे सर्व प्रकारके ज्वर, क्षय, उन्माद, श्वास, अपस्मार, वातरोग, क्षय, राक्षस और भूतबाधा दूर होती है। यह तेल गर्भिणी स्त्रियोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ २०५-२०७ ॥

अथ महालाक्षादितैलम्।

लाक्षा हरिद्रा मञ्जिष्ठा फेनिलं मधुकं बला। लामज्जकं चन्दनं च चम्पकं नीलमुत्पलम् ॥ २०८ ॥ प्रत्येकमेषां षण्मुष्टीः पक्त्वा तोये चतुर्गुणे। चतुर्भागावशेषे तु गर्भे चैतत् समावपेत् ॥२०९॥ रेणुका पद्मकश्चैव वाजिगन्धा तथैव च। वेतसं चोरकं कुष्ठं देवदारु नखं त्वचम् ॥ २१० ॥ शतपुष्पा पुण्डरीकं मांसी मधुकमेव च। एभिरक्षमितैः कल्कैः कषायेणैव पेषितैः॥२११॥ मस्तुशुक्तारनालानामाढकांशं समावपेत्। क्षीराढकसमायुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २१२ ॥ अभ्यंगात्तैलमेतद्धि शीघ्रं दाहानपोहति। व्यपोहति तथा वातपित्तश्लेष्मभवज्वरम् ॥२१३॥ सम्प्रलापं सतृष्णश्च तालुशोषभ्रमान्वितम्। ग्रहोपसृष्टा ये बाला रक्षसा दूषिताश्च ये। तेषां कष्टं प्रशमयेत्तैलं लाक्षादिकं महत् ॥ २१४॥

फेनिलम्-बदरी। लामज्जकम्-उशीरवत् पीतच्छवितृणविशेषः "लामज्जकं यदा न स्यादुशीरं दीयते तदा"। चम्पकमित्यस्य स्थाने कुत्रापि गैरिकमिति पाठः। "नीलोत्पलस्यालाभे तु कुमुदं देयमिष्यते ॥" समावपेत्-प्रक्षिपेदित्यर्थः। चोरकं-ग्रन्थिपर्णस्य भेदः "भटिडर" इति नैपालदेशे भवति। तदलाभे ग्रन्थिपर्णं देयम्। पुण्डरीकं श्वेतकमलम्। मस्तु-दधिजलम्। शुक्तम्-सन्धानभेदः। आरनालः-सोऽपि सन्धानभेदः। इति महालाक्षादितैलम् ॥

लाख, हलदी, मञ्जीठ, बेर (किसीके मतमें रीठा,) मुलहटी, खिरैंटी, लामज्जकतृण चन्दन, चम्पा (किसीके मतमें गेरू) और नीलकमल ये प्रत्येक चौबीस चौबीस तोले लेकर चौगुने जलमें पकावे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे, फिर उसमें रेणुका, पद्माख, असगन्ध, वेत, भटेउर,

कूठ, देवदारु, नख, सुगन्ध द्रव्य, दालचीनी, सौंफ, पुंडरिया किसीके मतसे सफेद कमल जटामांसी और मुलहठी ये प्रत्येक एक एक तोले लेकर उसी क्वाथसे पीसकर मिलादेवे पश्चात् दहीका तोड, शुक्त और आरनाल प्रत्येक एक एक आढक, दूध एक आढक तिलका तेल १६ पल सबको मिलाकर यथाविधिसे तैलको पकावे। इस तेलको शरीरादिकमें मर्दन करे तो शीघ्रही दाह जलन नष्ट होती है। तथा यह तेल प्रलाप, तृष्णा, तालुशोष और भ्रमसहित वात, पित्त और कफज्वरको नष्ट करता है। जो बालक ग्रहसे ग्रसित है और जो मनुष्य राक्षसबाधासे पीडित हैं, उनके कष्टको यह महालाक्षादि तैल अवश्य दूर करता है। शुक्त और आरनालके लक्षण प्रथम कह आये हैं सो देख लेना। यदि लामज्जकतृण न मिले तो उसके बदले खस लेनी, नील कमलके न मिलनेपर कुमुद (कमोदिनीका फूल या बबूला) लेना चाहिये। भटेउरके अभावमें गठिवन लेना चाहिये। इसको महालक्षादि तैल कहते हैं ॥ २१२-२१४ ॥

अथ नवज्वरे रसप्रयोगः (उदकमञ्जरी रसः)

सूतो गन्धष्टङ्कणः सोषणश्च सर्वैस्तुल्या शर्करा मत्स्यपित्तैः। भूयोभूयो मर्दयेत्तत्रिरात्रं वल्लो देयः शृङ्गवेरद्रवेण ॥ २१५ ॥
तापे शीतं व्यजनैस्तक्रभक्तं वृन्ताकाढ्यं पथ्यमेतत्प्रदिष्टम्। अह्नैवोग्रं हन्ति सद्योज्वरं तु पित्ताधिक्ये मूर्ध्नि तोयं च दद्यात् ॥ २१६ ॥ अस्य प्रक्रिया-- पारा शुद्ध भाग १, गन्धकभाग १, सोहागाभृष्ट भाग १, मरिचभाग १, शर्कराभाग ४, रोहितमत्स्यपित्त भाग ४। प्रतिदिनं सर्वं दिनत्रयं मर्दयेत्। रसमिमं रत्तिकात्रयमितम् आर्द्रकरसेन दद्यात्। ओदनं तक्रं वृन्ताकफलं भोक्तुं दद्यात्। व्यजनाद्यैः शीतलमुपचारं कुर्यात्। अयमुदकमञ्जरीरसो नवज्वरेषु रसरत्नप्रदीपे उक्तः ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक एक भाग, कालीमिर्च एक भाग, भुनाहुआ सुहागा एक भाग, सफेद खांड चार भाग और मछलीका पित्त चार भाग इन सबको एकत्र खरलमें डालकर तीन दिनतक बारंबार घोटे, फिर इसमेंसे तीन रत्ती प्रमाण लेकर अदरखके रसके साथ सेवन करे, पश्चात् जो गरमी मालूम हो तो शीतल जल पीवे, पंखे आदिसे हवा करे इत्यादि शीतल प्रयोग करे। तक्र और भात तथा बैंगन इनका भोजन यह सब इनमें पथ्य हैं। इसको सेवन करनेसे अत्यन्त उग्र तरुण ज्वर एक ही दिनमें दूर होजाता है इस रसको खानेसे यदि अधिक गरमी मालूम हो अथवा पित्तकी तेजी हो तो रोगीके मस्तकपर पंखेसे हवा चलावे अथवा शीतल जलकी धारा देवे, यह सर्व प्रकारके नवीन ज्वरोंमें हितकारी है, यह 'उदकमंजरीरस' रसरत्नप्रदीपमें कहा है ॥ २१५ ॥ २१६ ॥

अथ ज्वरधूमकेतुरसः ।

अद्योत्समं[1] सूतसमुद्रफेनं हिङ्गुं सगन्धं परिमृद्य यामम्। नवज्वरे वल्लयुगं त्रिघस्रमार्द्राम्भसाऽयं ज्वरधूमकेतुः ॥ २१७ ॥
अस्य प्रक्रिया यथा--पाराशुद्ध--गन्धकशुद्धहिङ्गुलशुद्ध--समुद्रफेन--समभागं सर्वं याममेकम् आर्द्रकरसेन संमर्द्य रत्तिकाषट्कमितम् आर्द्रकरसेन दिनत्रयं नवज्वरी भक्षयेद्दिनत्रयान्नवज्वरो नश्येत्। इति ज्वरधूमकेतुः रसेन्द्रचिन्तामणौ ॥

शुद्धपारा, शुद्धसमुद्रफेन, शुद्धसिंगरफ और शुद्ध गन्धक इन सबको समानभाग

१ 'भवेत्समं सूतसमुद्रफेन हिंगुलगन्धम्' यह पाठ रसेन्द्रचिन्तामणिका है। ऐसे स्थानपर हिंगुल अर्थ होगा।

लेकर एकत्र करे फिर एक प्रहरतक अदरखके रसमें खरल करके छः छः रत्तीकी गोलियां बनालेवे, प्रतिदिन एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करे, इस प्रकार तीन दिनतक सेवन करनेसे ही तरुण ज्वर नष्ट होता है, यह, ज्वरधूमकेतुरस' रसेन्द्रचिन्तामणिग्रन्थमें कहा है ॥ ३१७ ॥ इति ज्वरधूमकेतुः ॥

अथ महाज्वरांकुशो रसः ।

शुद्धसूतो विषं गन्धः प्रत्येकं शाणसम्मितः । धूर्तबीजं त्रिशाणं स्यात्सर्वेभ्यो द्विगुणा भवेत् ॥ २१८ ॥ हेमाह्वा कारयेदेषां सूक्ष्मं चूर्णं प्रयत्नतः । जम्बीरबीजकैर्देयं चूर्णं गुञ्जाद्वयोन्मितम् ॥ २१९ ॥ आर्द्रकस्य रसेनापि ज्वरं हन्ति त्रिदोषजम् । ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ॥ २२० ॥ विषमञ्च ज्वरं हन्यान्नवं जीर्णञ्च सर्वथा । महाज्वरांकुशो नाम्ना रसोऽयं सर्वसम्मतः ॥ २२१ ॥ प्रक्रिया--शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्धविष, प्रत्येकं टंक १, धत्तूरबीजं टंक ३, चोकं १२ टंक, सर्वेषां चूर्णमतिसूक्ष्मं कर्तव्यम् । इति महाज्वरांकुशः सर्वज्वरेषु शार्ङ्गधरे ।

शुद्ध पारा १ टंक, शुद्ध वत्सनाभविष १ टंक, शुद्ध गन्धक १ टंक, धतूरके बीज ३ टंक और चोख पीले फूलवाली कटेरीकी जड़ १२ टंक इन सबको एकत्र बारीक पीसकर चूर्ण करलेवे, इसमेंसे दो रत्ती प्रमाण जम्भीरीनींबूके रसमें, अदरखके रसमें अथवा जीरेके साथ सेवन करे । इसको सेवन करनेसे त्रिदोषज्वर, ऐकाहिकज्वर, द्व्याहिकज्वर, त्र्याहिकज्वर, चातुर्थिक ज्वर, विषमज्वर, नवीनज्वर और जीर्णज्वर इत्यादि सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं । यह महाज्वरांकुश रस सर्व वैद्योंकी सम्मतिसे बनाया गया है और शार्ङ्गधरमें भी कहा है ॥ २१८-२२१ ॥

अथ ज्वरघ्नी वटिका ।

शार्ङ्गधरे--एको भागो रसाच्छुद्धाच्छैलेयः पिप्पली शिवा । आकारकरभो गन्धः कटुतैलेन शोधितः ॥ २२२ ॥ फलानि चेन्द्रवारुण्याश्चतुर्भागमिता अमी । एकत्र मर्दयेच्चूर्णमिन्द्रवारुणिकारसैः ॥ २२३ ॥ माषोन्मितां वटीं कृत्वा दद्यात्सद्योज्वरे बुधः । छिन्नारसानुपानेन ज्वरघ्नी वटिका मता ॥ २२४ ॥

शैलेयः--'छर' इति लोके । शिवा-हरीतकी । आकरकरभः 'अकरकरा' इति लोके । चतुर्भागमिता अमी शैलेयादयः षट् समुदिता भागचतुष्टयमिताः ॥

शुद्ध पारा एक भाग तथा भूरिछरीला, पीपल, हरड, अकरकरा, कडवे तेलसे शुद्ध किया हुआ गन्धक और इन्द्रायनके फल ये सब चार चार भाग लेवे, इन सबको एकत्र करके इन्द्रायनके रसमें खरल करे और उडदकी बराबर गोलियां बना लेवे, इसको गिलोयके रसके अनुपानसे नवीन ज्वरमें देवे । इसको ज्वरघ्नी वटिका कहते हैं । यह शार्ङ्गधरमें कहा है ॥ २२२-२२४ ॥

अथ द्वितीयज्वरघ्नी वटिका ।

रसप्रदीपे--रसं गन्धञ्च दरदं जैपालं क्रमवर्द्धितम् । दन्तीरसेन सम्पिष्य वटी गुञ्जामिता भवेत् ॥ २२५ ॥ प्रभाते सितया सार्द्धमशिता शीतवारिणा । एकेन दिवसेनैव नवज्वरहरी भवेत् ॥ २२६ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग, शुद्ध सिंगरफ तीन भाग और शुद्ध जमालगोटेके बीज चार भाग लेवे । सबको एकत्र पीसकर जमालगोटेकी जडके रसमें खरलकर और गुञ्जेके समान रत्तीभरकी गोलियाँ बना लेवे । एक गोली प्रातःकाल सफेद चीनी और

शीतल जलके साथ सेवन करे तो एक ही दिनमें नवीन ज्वर नष्ट होजाता है। यह ज्वरघ्नी वटिका रसरत्नप्रदीपमें लिखी है ॥ २२५ ॥ २२६ ॥

अथ नवज्वरहरी वटी।

रसो गन्धो विषं शुण्ठी पिप्पली मरिचानि च। पथ्या विभीतकं धात्री दन्तीबीजं च शोधितम् ॥ चूर्णमेषां समांशानां द्रोणपुष्पीरसैः पुटेत्। वटीं माषनिभां कुर्याद्भक्षयेन्नूतने ज्वरे ॥ २२७ ॥ इति नवज्वरहरी वटी ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्ध वत्सनाभ विष. सोंठ, पीपल. कालीमिरच, हरड, बहेडा, आमला और शुद्ध किये हुए जमालगोटेके बीज ये सब समानभाग लेकर चूर्ण करे, पश्चात् गूमाके रसमें भावना देकर खरल करे। फिर उडदके समान गोलियाँ बना लेवे, इनको नवीन ज्वरमें सेवन करे ॥ २२७ ॥

अथ सर्वज्वरहरवटी।

एकभागो रसो भागद्वयं शुद्धश्च गन्धकम्। गरलस्य त्रयो भागाश्चतुर्भागा हिमावती ॥२२८॥ जैपालकः पञ्चभागो निम्बुद्रवविमर्दितः। कृमिघ्नप्रमिता वट्यः कार्याः सर्वज्वरच्छिदः ॥ २२९ ॥ श्रृज्वेरेण दातव्या वटिकैका दिने दिने जीर्णज्वरे तथाऽजीर्णे सामे वा विषमे तथा। ज्वरं सर्वं निहन्तीयं दावो वनमिवानलः ॥ २३० ॥

शुद्धपारा एकभाग, शुद्धगन्धक दो भाग, शुद्धवत्सनाभ विष तीन भाग, सत्यानासी कटेरी (जिसमें पीला दूध निकलता है, पीले फूल होते हैं और काले दाने निकलते हैं) की जड चार भाग और शुद्ध जमाल गोटे पाँच भाग लेवे सबको एकत्र पीसकर नींबूके रसमें खरल करे और वायविडंगके समान गोलियाँ बनालेवे, प्रतिदिन एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करे, यह सर्बज्वरहरवटी सर्वप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करती है तथा जीर्णज्वर, अजीर्णज्व., सामज्वर, विषमज्वरको दूर कर देती है। जिस प्रकार दावाग्नि वनको भस्म करदेती है ॥ २२८–२३० ॥

अथ सामान्यज्वरे महाज्वरांकुशरसः।

शुद्धं सूतं विषं गन्धं धूर्तबीजं त्रिभिः समम्। चतुर्णां द्विगुणं व्योषं चूर्णं गुञ्जाद्वयोन्मितम् ॥ २३१ ॥ आर्द्रकस्य रसैः किंवा जम्बीररस्य रसैर्युतम्। महाज्वरांकुशो नाम्ना सर्वज्वरविनाशनः ॥ २३२ ॥ ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकञ्च चतुर्थकम्। विषमं वा त्रिदोषं वा ज्वरं हन्ति न संशयः॥२३३॥ प्रक्रिया--शुद्धपारदटंकः १, शुद्धविषटंकः १, शुद्धगन्धकटंकः १, धत्तूरबीजटंकाः ३, त्रिकटु प्रत्येकटंकाः ४, सर्वेषां चूर्णमतिसूक्ष्मं कर्तव्यम्। इति महाज्वरांकुशः सर्वज्वरेषु ॥

शुद्धपारा एकभाग, शुद्धविष एकभाग. शुद्ध गंधक एकभाग, धतूरेके बीज तीन भाग, सोंठ चार भाग, काली मिर्च चार भाग और पीपल चार भाग लेवे, सबको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण करे, इसमेसे प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण अदरखके रसके साथ अथवा जम्भीरी नींबूके रसके साथ सेवन करे। यह महाज्वरांकुश रस सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है तथा ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक, विषमज्वर और त्रिदोषज्वरको नष्ट करनेवाला है ॥ २३१–२३३ ॥

अथ श्वासकुठाररसः।

सूतं गन्धं विषं चैव टंकणं च मनःशिला। एतानि टंकमात्राणि मरिचं

त्वष्टंककम् ॥२३४॥ कटुत्रयं टंकषट्कं खल्ले क्षिप्त्वा विचूर्णयेत् । रसः श्वासकुठारोऽयं सर्वज्वरहरः परः ॥ २३५ ॥ इति श्वासकुठारो रसः श्वासे सर्वज्वरे च । रसरत्नाकरे ॥

शुद्धपारा एक टंक, शुद्धगंधक एक टंक, शुद्ध वत्सनाभ बिष एक टंक, सुहागा एक टंक, शुद्ध मैनशिल एक टंक, कालीमिर्च ८ टंक और त्रिकुटेकी तीनों औषधि ६ टंक लेवे, सबको एकत्र करके खरल करे, यह श्वासकुकारस सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है, यह रसरत्नाकरग्रन्थमें लिखा है॥२३४-२३५॥

अथ ज्वरांकुशः ।

दारुमूषां शिखिग्रीवां रसकञ्च पृथक् पृथक् टङ्कत्रयानुमानेन गृहीत्वा कनकद्रवैः ॥ २३६ ॥ मर्दयेत्त्रिदिनं कार्या वटी चणकमात्रया । मरिचैरेकविंशत्या सप्तभिस्तुलसीदलैः ॥ २३७ ॥ खादेद्वटीद्वयं पथ्यं दुग्धभक्तं सशर्करम् । तरुणं विषमं जीर्णं हन्यात्सर्वज्वरं ध्रुवम्॥२३८॥

दारुमूषा दारुमूषी । शिखिग्रीवा-तुत्थम् । रसकम्-'खपरिया' इति लोके । प्रत्येकं स्यात् टंकत्रयम् । धत्तूरपत्रस्य रसेन मर्दयेत । ज्वरांकुशः सर्वज्वरेषु ॥

दारुमूषा (विषविशेष), शुद्धतूतिया और शुद्ध खपरिया प्रत्येक तीन तीन टंक लेकर धतूरेके रसमें तीन दिनतक खरल करे और चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे. प्रतिदिन दो गोली २१ काली मिरच और सात तुलसीके पत्तोंके साथ सेवन करे, इसमें मिश्री मिलाकर दूध और भातका भोजन करे, यह ज्वरांकुशरस-तरुणज्वर, विषमज्वर, जीर्णज्वर और सर्वप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता है२३६-२३८॥

अथ हुताशनरसः ।

नागरं कर्षमात्रञ्च टङ्कणं कर्षकद्वयम् । मरिचं सार्द्धकर्षं स्यात्तावद्दग्धवराटकम् ॥ २३९ ॥ विषं कर्षं चतुर्थांशं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् । रसो हुताशनो नाम्ना खाद्यो गुञ्जामितो ज्वरे ॥ २४० ॥

सोंठ एक तोला, सुहागा दो तोले, कालीमिर्च १॥ तोला, कौडीकी भस्म १॥ तोला और शुद्ध विष तीन मासे लेवे, सबको एकत्रकर पीस लेवे तो यह हुताशन रस बनता है । इसमेंसे प्रतिदिन एक रत्ती प्रमाण ज्वरमें खाय, इससे सर्वप्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २३९ ॥ २४० ॥

अथ ज्वरघ्नी वटिका ।

शुद्धजैपालटङ्कं तु कट्वी टङ्कद्वयोन्मिता । गैरिकं टङ्कमेकञ्च कन्यानीरेण मर्दयेत् ॥ २४१ ॥ कलायसदृशी कार्या वटिका ताञ्च भक्षयेत् । शीतलेन जलेनैव वटी जीर्णज्वरापहा ॥ २४२ ॥

शुद्ध जमालगोटा ४ मासे, कुटकी ८ मासे और गेरू ४ मासे इन सबको खरलमें डालकर घीकुवारके रससे खरल करे और मटरकी बराबर गोली बनालेवे, इसमेंसे एक गोली प्रतिदिन भक्षण करे, यह जीर्णज्वरको नष्ट करती है ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

अथ रविसुन्दररसः ।

द्विभागतालेन हतं च ताम्रं रसं च गन्धं च समीनमायुः । विषं समं च द्विगुणञ्च ताम्रं त्रिःसप्तवारेण दिवाकरांशौ॥२४३॥ विमर्द्य चारिष्टरसेन चूर्णं गुञ्जैकदत्तं सितया समेतम् । ज्वराङ्कुशोऽयं रविसुन्दराख्यो ज्वरान्निहन्त्वष्टविधान् समस्तान् ॥ २४४ ॥

अस्य प्रक्रिया--पारदटङ्कः १, गन्धटंकः १, विषटङ्कः १, द्विगुणतालकहतताम्राटङ्कौ २, रोहितमत्स्यकपित्तटंकः १, सर्वमेकत्र चूर्णयित्वा निम्बपत्ररसैर्भावयित्वा २१ वारानुष्णे संशोष्य रत्तिकामात्रं १ सितशर्करया भक्षणीयम्। इति सर्वज्वरे रविसुन्दरो रसः।

शुद्धपारा १ टंक, शुद्धगंधक १ टंक, शुद्धविष १ टंक, दुगुनी हरतालसे मारा हुआ ताँबा २ टंक और रोहूमछलीका पित्त १ टंक लेवे, सबको एकत्र नीमके पत्तोंके रसमें खरल करके २१ बार भावना देवे और २१ वार सूर्यका धूपमें सुखावे, फिर इसमेंसे एक रत्ती प्रमाण लेकर मिश्रीके साथ सेवन करे तो यह ज्वरोंके लिये अंकुशरूप रविसुन्दररस आठ प्रकारके अथवा सब प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ २४३ ॥ २४४ ॥

अथ कज्जली।

शुद्धं सूतं तथा गन्धं खल्वे तावद्विमर्दयेत्। सूतं न दृश्यते यावत्किन्तु तत्कज्जलं भवेत् ॥ २४५ ॥ एषा कज्जलिका ख्याता बृंहणी वीर्यवर्द्धिनी। नानाऽनुपानयोगेन सर्वव्याधिविनाशिनी ॥ २४६ ॥

शुद्धपारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समान भाग लेकर खरलमें तबतक मर्दन करे कि जबतक पारा नहीं दीखे, जब मर्दन करते करते पारा दीखना बन्द हो जावे और कज्जलके समान होजाय तो यह कज्जली बनती है यह कज्जली-पुष्टिकारक और वीर्यको बढानेवाली है तथा अनेक अनुपान विशेषोंसे सर्वरोगोंको हरनेवाली है। कज्जली बनानेकी विधि और गुण रसरत्नप्रदीपमें कहे हैं ॥ २४५ ॥ २४६ ॥

अथ रसपर्पटी।

जपापत्ररसेनाथ वर्द्धमानरसेन च। भृङ्गराज रसेनापि काकमाच्या रसे न च। रसं संशोधयेत्तेन तत्समं शोधयेद्वलिम् ॥ २४७ ॥ भृङ्गराजरसैः पिष्ट्वा शोधयेदर्करश्मिभिः। सप्तधा वा त्रिधा वाऽपि पश्चाच्चूर्णन्तु कारयेत् ॥ २४८ ॥ चूर्णयित्वा समं तेन रसेन सह मर्दयेत्। नष्टसूतं यदा चूर्णं भवेत्कज्जलसन्निभम् ॥ २४९ ॥ निर्धूमबदराङ्गारे द्रवीकुर्यात् प्रयत्नतः। तत्र तं महिषीविष्ठास्थापिते कदलीदले ॥ २५० ॥ निक्षिपेत्तदुपर्यन्यतपत्रं दत्त्वा प्रपीडयेत्। शीतलश्च ततः पत्रात्समुद्धृत्य विचूर्णयेत्। एवं सिद्धा भवेद्व्याधिघातिनी रसपर्पटी ॥२५१॥ ज्वरादिव्याधिभिर्व्याप्तं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः। चकार कृपया युक्तः सुधावद्रसपर्पटीम् ॥ २५२ ॥ रत्तिकासम्मितां तावद्भ्रष्टजीरकसंयुताम्। गुञ्जाऽर्धभृष्टहिङ्ग्वाढ्यां भक्षयेद्रसपर्पटीम्। रोगानुरूपभैषज्यैरपि तां भक्षयेद्बुधः ॥ २५३ ॥ पिबेत्तदनु पानीयं शीतलं चुलुकत्रयम्। प्रत्यहं तस्य चैकैकां रत्तिकां वर्द्धयेद्भिषक् ॥ २५४ ॥ नाधिकां दशगुञ्जातो भक्षयेत्तां कदाचन। एकादशदिनारम्भात्तां ततो वऽपकर्षयेत् ॥ २५५ ॥ एवमेतां समश्नीयान्नरो विंशतिवासरान्। शिवं गुरूंस्तथा विप्रान्पूजयित्वा प्रणम्य च ॥ २५६ ॥ श्रद्धया भक्षयेदेतां क्षीरमांसरसाशनः। ज्वरश्च ग्रहणीं वाऽपि तथाऽतीसारमेव च॥२५७॥ कामलां पाण्डुरोगश्च शूलं प्लीहां जलोदरम्। एवमादीन् गदान् हत्वा हृष्टः

पुष्टश्च वीर्यवान् । जीवेद्वर्षशतं साग्रं वलीपलितवर्जितः ॥ २५८ ॥

प्रथम पारेको लेकर जवा गुडहल अर्थात् औंडहुल के पत्तोंके रसमें, सफेद अरण्डके रसमें, भांगरेके रसमें और मकोयके रसमें यत्नपूर्वक शोधन करे, फिर उसीके समान गन्धक लेकर भाँगरेके रसमें पीसकर सूर्यकी धूपमें सुखावे, इस प्रकार सातवार या तीनवार गन्धकको शुद्ध करलेवे पश्चात् उस गन्धकके चूर्णको शुद्ध किये हुए पारेके साथ खरलमें डालकर मर्दन करे जब मर्दन करते करते पारा दीखना बन्द होजाय तथा कज्जलके समान काला होजाय तब उसको लोहेकी करछीमें करके वेरकी लकडियोंके धुएँ रहित अङ्गारोंपर उस करछीको रख देवे, जब वह गरम होकर पानीके समान पतली हो जाय तब भैंसके गोवरके ऊपर एक केलेका पत्ता रख देवे और शीघ्रताके साथ उसके ऊपर करछीमेंसे कज्जलीको डाल देवे और ऊपरसे दूसरा पत्ता दबाकर ढक देवे, जब शीतल होजाय तब उस पत्तेसे उठाकर चूर्ण कर लेवे, इस प्रकार व्याधिनाशक रसपर्पटी सिद्ध होती है। पूर्वकालमें श्रीशिवने जब इस जगत्को ज्वरादि रोगोंसे व्याप्त देखा तब कृपा करके अमृतके समान यह रसपर्पटी बनाईथी इसमेंसे एक रत्ती प्रमाण लेकर एक रत्ती भुने जीरेके साथ और आधी रत्ती भुनी हींगके साथ भक्षण करे और यथा रोगमें यथा यथा अनुपानोंके साथ भक्षण करे, उसके ऊपर तीन चुल्लू शीतल जल पिवे, प्रतिदिन एक एक रत्ती बढाकर भक्षण करे और दश गुञ्जेसे अधिक न बढावे। जब ग्यारहवाँ दिन होजाय तब एक एक क्रमसे घटाताजाय, घटाते २ फिर एक रत्तीतक कर लेवे। इस प्रकार बीस दिनतक सेवन करे, महादेव गुरु और ब्राह्मणोंकी पूजा करके तथा उनको प्रणाम करके श्रद्धासे इसको भक्षण करे। इसपर दूध और मांसरस भोजन करे। इसको सेवन करनेसे ज्वर, अतीसार, संग्रहणी, कामला, पांडुरोग, शूल, प्लीहा, तिल्ली और जलोदररोग नष्ट होता है तथा रोगी हृष्ट, पुष्ट और वीर्यवान् होजाता है और वह मनुष्य १०० वर्षसे अधिक वलीपलितसे रहित होकर जीता है। इति रस पर्पटी ॥ २४७–२५८ ॥

अथ ज्वरिणोऽन्नकालनिर्णयः ।

क्षुत्सम्भवति पक्केषु रसदोषमलेषु च । काले वा यदि वाऽकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ २५९ ॥ आमे पाकं गते नृणां यदा भोजनलालसा । भवेत्काले ह्यकाले वा सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ २६० ॥

रस, दोष और मलोंके पकनेपर रोगीको भूख लगती है। वह भूँखका समय हो या न हो, उसीको अन्नकाल कहते हैं अर्थात् रोगीको अन्न भोजनके लिये देनेका वही समय है. और भी कहा है–"जब मनुष्योंके आम पच जाता है तब भोजनकी इच्छा उत्पन्न होती है। चाहे वह समय हो अथवा न हो, उसीको अन्नकाल कहते हैं अर्थात् वही भोजन देनेका समय कहा है" इससे यह सिद्ध होता है कि जब ज्वर पकजाय तब अन्न देना चाहिये॥२५९॥२६०॥

अथ ज्वरपाककालान्नदानकालौ ।

वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः। श्लैष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः पाकमुपैति हि ॥ २६१ ॥ ज्वरस्य पाक उपशमः । ज्वरपाकेनैव रसपाको दोषपाकोऽपि कथितः। यथा दोषपाकं विना ज्वरपाको न भवति, रसपाकं विना दोषपाकश्च न भवति ॥

वातज्वर सात रात्रिमें, पित्तज्वर दश रात्रिमें और कफ ज्वर बारह दिनमें पकता है । जब ज्वरका पाक होता है तब रस और दोषोंका भी पाक होता है। क्योंकि विना दोषोंका पाक हुआ ज्वरका पाक नहीं होता विना रसका पाक हुए दोषोंका पाक नहीं होता ॥

ननु, यथा पैत्तिकज्वरो दशाहोरात्रेण पाकं याति, एकादशदिनेऽन्नं दीयते. तथा श्लैष्मिको ज्वरो द्वादशाहोरात्रेण पाकंयाति, त्रयोदशे दिवसेऽन्नं दीयते। तथा वातिको ज्वरः सप्ताहोरात्रेण पाकं याति, अष्टमे दिवसेऽन्नं कथं न दीयते? कथं सप्तम एव दिवसेऽन्नं दीयते? इति।

शंका–पित्तज्वर दश दिन रातमें पचता है और ग्यारहवें दिन उसमें दिया अन्न जाता है, तथा कफज्वर बारह दिन रातमें पचता है और तेरहवें दिन उसमें अन्न दिया जाता है। उसी प्रकार वातज्वर सात दिनमें पचता है, उसमें भी आठवें दिन अन्न देना चाहिये सो आठवे दिन अन्न क्यों नहीं देते, सातवें ही दिन क्यों अन्न देते हैं?

उच्यते–कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लङ्घनं बहु। आमक्षयादूर्ध्वमपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ २६२ ॥

इति वचनादामरसपाके जाते आहारलाभं विना वायुः क्षणमात्रमपि सोढुं न शक्नोति, स आशुकारित्वात्क्षणादाक्षेपकादीन्विकारान् सञ्जनयति। अतो वातिके ज्वरे पाकादीनामन्तिमे सप्तम एव दिनेऽन्नं दीयते ॥

ज्वराभिभूतः षडहे व्यतीते विपक्वदोषः कृतलंघनादिः। यो भेषजं खादति वैद्यवश्यो निःसंशयं हन्त्यचिरात्स रोगान् ॥ २६३ ॥

ज्वराभिभूतः–वातज्वराभिभूतः। विपक्वदोषः– पक्ववातः। कृतलंघनादिः आदिशब्दात् कृतपक्वजल पाननिवात गृहवासगुरूष्णवसनधारणादिः भेषजमिति अन्नस्यापि उपलक्षणम् ॥

ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नं प्रतिभोजितम्। पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेत्तु तम् ॥ २६४ ॥ इति ॥

ज्वरितम्-वातज्वरिणम्। षडहेऽतीते इति उपलक्षणम्। पित्तज्वरिणं दशाहेऽतीते। श्लेष्मज्वरिणं द्वादशाहेऽतीते। लघ्वन्नं प्रतिभोजितं ज्वरिणम् ॥

पाचनं शयनीयं वा कषायं पाययेत्पुनः। स एव सर्वज्वरिणं दिनान्ते भोजयेल्लघु ॥ २६५ ॥

दिनान्ते–अन्तशब्दोऽत्र मध्यवाची, तेन त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य मध्यभागे पित्तस्य प्राधान्यसमये ॥

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः। वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात् ॥ २६६ ॥

ते-वातपित्तश्लेष्माणः। पित्तकालोऽपि मध्याह्नादर्वाक् ॥

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत्। याममध्येऽरसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः ॥ २६७ ॥

समाधान–"कफ और पित्त ये दोनों धातु द्रवरूप अर्थात् पतले होनेके कारण बहुतसे लंघनोंको सहते हैं, परन्तु वायु तो आम पक जानेके पश्चात् क्षण भर भी लंघनको नहीं सह सकती" इससे सिद्ध होता है कि–आमरसके पकनेके पश्चात् आहार न मिले तो क्षणभर भी लंघनको नहीं सह सकती। यह शीघ्रकारी होनेके कारण विकलता आदि विकारोको उत्पन्न कर देती है, इस कारण वातज्वरमें पचनेके अन्तदिन अर्थात् सातवें ही दिन अन्न दिया जाता है। धन्वन्तरि भी कहते हैं कि– 'वातज्वरवाला मनुष्य वैद्यके कहे अनुसार

लंघन, उष्णजलपान, वातरहित स्थानमें निवास, भारी और गरम वस्त्रोंका धारण इत्यादि नियमोंको पालता हुआ वातदोषके पचजानेपर छः दिनके पश्चात् सातवें दिन अन्न और औषधिको जो भक्षण करता है । वह मनुष्य थोडेही कालमें रोगोंको नष्ट कर देता है " इसी प्रकार चरक भी कहता है कि–" वातज्वरवाले मनुष्यको छः दिनके पश्चात्, पित्तज्वरवालेको दश दिनके पश्चात् और कफज्वरवालेको बारह दिनके पश्चात् हलका अन्न भोजन कराकर पाचन अथवा शमन क्वाथ पिलाना चाहिये " और भी कहा है कि–"वैद्य सर्व ज्वरवाले रोगियोंको पाचन अथवा शमन क्वाथ पिलावे और दिनके तीन भाग कर उसके मध्यभागमें अर्थात् पित्तकी प्रधानताके समयमें हलका अन्न देवे । पित्तका प्राधान्य समय दिनका मध्यभाग है, ऐसा वाग्भटके कथनसे सिद्ध होता है । वाग्भट कहता है कि–" यद्यपि वात, पित्त और कफ सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं, तथापि अनुक्रमसे हृदयके और नाभिके नीचेके भागमें मध्य भागमें और ऊपरके भागमें विशेष करके रहते हैं और उसी प्रकार अनुक्रमसे अवस्थाके, दिनके रात्रिके तथा भोजनके अन्तमें मध्यमें और आदिमें प्रधानता पाई जाती है । यद्यपि पित्तकी प्रधानताका समय दिनका सम्पूर्ण मध्यभाग है, तथापि रोगीको दुपहरसे पहिले ही अन्न देना चाहिये । क्योंकि एक प्रहरके मध्यमें भोजन नहीं करना चाहिये और दोपहर तक भोजन विना भूखा नहीं रहना चाहिये । कारण यह है कि, पहिले प्रहरमें रसकी उत्पत्ति नहीं होती है और दूसरे प्रहरतक भोजन नहीं करनेसे बलका नाश होता है ॥ २६२–२६७ ॥

श्लेष्मक्षये प्रवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा।
वेगापायेऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ॥ २६८ ॥

तदा पित्तप्राधान्यसमये । अन्यथा–उक्तसमयादन्यथा । वेगापाये–जठराग्निवेगनाशे । तत् भोजनं ज्वरवेगाभिवर्द्धनं भवतीत्यर्थः ॥

शंका–उपरोक्त वचनसे जो यह कहा कि एक प्रहरके भीतर भोजन नहीं करना चाहिये और दुपहरके समय भोजन किये विना नहीं छोडना चाहिये, इसमें क्या कारण है । जो एक प्रहरके भीतर तथा दो प्रहरके बाद भोजनका निषेध किया ?

समाधान–"दिनके मध्य भागमें कफके क्षय होनेसे अग्निअधिकतर बढकर बलवान्हो जाती है, इस कारण जठराग्निके वेगके समयमें ही भोजन देना चाहिये । अग्निका वेग शांत होनेके पश्चात् जो भोजन किया जावे तो वह भोजन ज्वरके वेगको बढाता है " ऐसा शास्त्रमें कहा है, इस कारण दोपहरसे पहिले ही भोजन देना चाहिये, यह हमारा मत है ॥ २६८ ॥

अथ विषमज्वरेऽन्नदानसमयः ।

सर्वज्वरेषु सप्ताहं मात्रावल्लघु भोजयेत् ।
वेगापायेऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ॥ २६९ ॥

सर्वज्वरेषु–सर्वविषमज्वरेषु । वेगपाये-ज्वरवेगापाये । भोजयेत्, अन्यथा ज्वरवेगापायं विना तद्भोजनं ज्वरवेगाभिवर्द्धनं भवति ॥

चरक कहता है कि–सर्व प्रकारके विषम ज्वरोंमें जब ज्वरका वेग शांत हो जाय तो सात दिन पर्यन्त मात्राके अनुमानसे हलका अन्न भोजन करावे और जो ज्वरके वेगके विनाशांत हुए ही भोजन दिया जाय तो वह भोजन ज्वरके वेगको बढानेवाला होता है ॥ २६९ ॥

अथ भोजनादिस्थाननिर्णयः ।

आहारनिर्हारविहारयोगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयः ॥ २७० ॥

श्रेष्ठ पुरुषोंको उचित है कि–भोजन, मलमूत्रादिका त्याग, स्त्रीसंग ये सब एकान्त स्थानमें करे ॥ २७० ॥

अथ ज्वरोपवेशनगुणः ।

ज्वरे प्रमेहो भवति स्वल्पैरपि विचेष्टितैः। निषण्णं भोजयेत्तस्मान्मूत्रोच्चारौ च कारयेत् ॥ २७१ ॥

निषण्णम्-यथास्थानस्थितमेव, न तु स्थानान्तरं नीतम् ॥

सुश्रुत कहता है कि, "ज्वरमें अल्प चेष्टा करनेसे अर्थात् अधिकतर उठने बैठनेसे अथवा चलने फिरनेसे प्रमेहरोग उत्पन्न होजाता है इस कारण ज्वररोगी जहां बैठा हो, वहीं उसे भोजन करादेवे और उसी स्थानके निकट मल मूल त्याग करावे किन्तु भोजनादि करनेके लिये दूसरी जगह न लिया जावे"॥ २७१ ॥

अथ कवलविधिगुणौ ।

यथादोषोचितैर्द्रव्यैः कर्तव्यः कवलग्रहः। अरोचकास्यवैरस्यमलपूतिप्रसेकहृत् २७२ भृष्टजीरकचूर्णेन सिन्धुजन्मयुतेन च । जिह्वादन्तान् मुखस्यान्तर्घृष्ट्वा कवलमाचरेत् ॥ २७३ ॥ मुखे मलं विगन्धत्वं विरसत्वं च नश्यति । मनः प्रसन्नं भवति भोजनेऽतिरुचिर्भवेत् ॥ २७४ ॥

ज्वररोगी भोजन करनेके समय यथादोषानुसार द्रव्योंका कवलग्रह कुल्ले करे कि--जिससे अरुचि, मुखकी विरसता, मुखका मैल, मुखमें दुर्गन्धका आना और मुखमें बारबार पानीका भरभर आना ये सब दूर होते हैं। भुने हुए जीरेके चूर्णमें सैंधेनमकका चूर्ण मिलाकर उससे मुखके भीतर जीभ और दांतोंको घिसकर कवल कुल्ले करे। कवलविधिके करनेसे मुखका मैल, दुर्गन्धता और विरसता नष्ट होती है, चित्त प्रसन्न होता है और भोजनमें अधिक रुचि उत्पन्न होती है ॥ २७२--२७४ ॥

अथ ज्वरिणे हितवस्तुदातव्यता ।

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् । अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽपि च ॥ २७५ ॥

अयमर्थः- यद्यपि ज्वरितस्य हिते भक्ष्येऽरुचिर्भवेत् तथापि ज्वरितो हितमेवाश्नीयादिति नियमः ॥

गुर्वभिष्यन्द्यकाले च ज्वरी नाद्यात् कथञ्चन । न तु तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय च ॥ २७६ ॥ आनद्धः स्तिमितैर्दोषैर्यावन्तं कालमातुरः । तावत्कालं स लघ्वन्नमश्नीयात्सुविरक्तवत् २७७॥

आनद्धः स्तिमितैर्दोषैः-अपक्वैर्दोषैर्व्याप्त इत्यर्थः

सातत्यात्स्वाद्वभावाच्च पथ्यं द्वेषत्वमागतम्। कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत्पुनः ॥ २७८ ॥

सातत्यात्--एकस्यैव भक्ष्यस्य सर्वदा उपयोगात्॥ स्वाद्वभावात् भक्ष्यान्तरादपि विस्वादुता पथ्यमप्रियं स्यात्तदाऽपि तदेव पथ्यं प्रियत्वं गमयेत् ॥

अथ ज्वरितोऽन्नकाले अश्नीयादेवेति द्वितीयो नियमः । कुतः इति चेत् ? यतो हि हेतोः अभुञ्जानः क्षीयते पक्वदोषधातुर्भवतिततः म्रियतेऽपि च ।

ज्वरिरोगीको हितकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे अरुचि हो तो भी उसको हितकारक ही पदार्थ भोजन करावे । क्योंकि सुश्रुत कहता है कि--" भारी और अभिष्यन्दकारक पदार्थ ज्वररोगीको कभी भी किसी रीतिसे भी नहीं भक्षण करने चाहिये और उसीप्रकार विना समयमें भी भोजन नहीं करना चाहिये। कारण यह है कि,अहितपदार्थोंका किया हुआ भोजन ज्वरवालेकी आयुको और सुखको नष्ट करता है । जबतक ज्वरवाला मनुष्य आम दोषोंसे व्याप्त रहे, तबतक वह अत्यन्त विर-

क्तके समान थोडा और हलका अन्न भोजन करता रहे । ज्वररोगीको हितवस्तुमें जो अरुचि होती है, उसका कारण यह है कि, सदैव एकही भोजनके अथवा उसके स्वादिष्ठ न होनेसे उसमें अरुचि होती है। ज्वरमें जो पथ्य हितकारक पदार्थ अप्रिय भी लगे तो भी पथ्य ही वस्तु देना उत्तम है । ज्वररोगीको पथ्यभोजन अप्रिय लगे तो उसकी अन्य कल्पना करके दूसरी प्रकारसे वही बनाकर देवे अथवा उसीके गुणोंवाली अन्य पथ्यवस्तु भोजन करावे। ज्वरवालेको भोजनके समय अवश्य भोजन करना चाहिये। कारण यह है कि, भोजनके समय भोजन नहीं करनेसे क्षीण हो जाता है तथा जठराग्निके दोषोंसे और धातुओंके पाकसे मर जाता है ॥ २७५-२७८॥

ज्वरहितकार्यन्नादिकम् ।

रक्तशाल्यादयः शस्ताः पुराणाः षष्टिकैः सह । यवाग्वोदनलाजार्थे ज्वरितानां ज्वरापहाः ॥ २७९ ॥ मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्समकुष्ठकान् । यूषार्थे यूषसात्म्यानां ज्वरीतानां प्रदापयेत्॥२८०॥ पटोलपत्रं वार्ताकं कुलकं कारवेल्लकम् । कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वां बालमूलकम् ॥ २८१ ॥ पत्रं गुडूच्याः शाकार्थे ज्वरितानां ज्वरापहम् । लावान् कपिञ्जलानेणान् हरिणान् पृषताञ्छशान् ॥२८२॥ कुरङ्गान्कालपुच्छांश्च तथैव मृगमात्रकान् । मांसार्थे मांससात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥ २८३ ॥ ॥ सारसक्रौञ्चशिखिनस्तथा तित्तिरकुक्कुटान् । गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति केचिदेवं व्यवस्थिताः ॥ २८४ ॥

तित्तिरइत्यत्र कृष्णतित्तिरः ॥

ज्वरितानां प्रकोपं तु यदा याति समीरणः । तदैतेऽपि हि शस्यन्ते मात्राकालोपपादिताः । ॥ २८५ ॥ निम्बुकं दाडिमं धात्रीफलमम्लं प्रकांक्षते । प्रदद्यादम्लसात्म्याय काञ्जिकं वा पुरातनम् ॥२८६॥ एतेषां गुणनामानि पूर्वोक्तानि॥

ज्वरवाले मनुष्योंको यवागू, भात और खीलोंके लिये लाल शालि चावल और पुराने सांठी चावल अत्यन्त हितकारक हैं और ज्वरको नष्ट करनेवाले हैं। जिन ज्वररोगियोंको यूष माफिक है, उनको यूषके लिये मूंग, मसूर, चने, कुलथी और मोट देना चाहिये। ज्वररोगीको पटोलपत्र, बैंगन, परवल, करेला, ककोडा, पित्तपापडा, गोजिया, कच्ची मूली और गिलोयके पत्ते इनका शाक देना चाहिये, वे ज्वरनाशक हैं। जिन ज्वरवाले मनुष्योंको मांसका भक्षण माफिक है । उनको लवा, तीतर, कालाहिरन, लालहिरन, चितकबराहिरन, खरगोश, किंचित् लालहिरन, कालापुच्छहिरन और सम्पूर्ण जातिके हिरनोंका मांस देना चाहिये । कितने वैद्य कहते हैं कि-" सारस, क्रौञ्च मोर, कालातीतर और मुरगा इनका मांस भारी और गरम होनेके कारण ज्वररोगियोंके लिये हितकारक नहीं है परन्तु जिस ज्वररोगीको बायुका कोप हो, उसको मात्रा और कालका विचारकर इनका मांस देना हितकारक है "। जिन रोगियोंको खटाई खाना सात्म्य है, उनको यदि खटाईकी इच्छा हो, तो नींबू, अनारदाना, आमले अथवा पुरानी कांजी देवे, इन सब पदार्थोंके नाम और गुण पहिले द्रव्यखण्डमें कह चुके हैं ॥ २७९-२८६ ॥

अथान्नसाधनविधिमण्डलक्षणे ।

तण्डुलानां सुसिद्धानां चतुर्दशगुणे जले । रसः सिक्थैर्विरहितो मण्ड इत्यभिधीयते ॥ २८७ ॥ शुण्ठीसैन्धवसंयुक्तो दीपनः पाचनश्च सः । अन्नस्य सम्यक्सिद्धौ

च ज्ञेया मण्डस्य सिद्धता ॥ २८८ ॥ पेयायूषयवागूनां विलेपीभक्तयोरपि । मण्डो ग्राही लघुः शीतो दीपनो धातुसाम्यकृत् ॥ २८९ ॥ ज्वरघ्नस्तर्पणो बल्यः पित्तश्लेष्मश्रमापहः ॥ २९० ॥

उत्तम शालिधानके चावलोंको लेकर चौदहगुने जलमें पकावे, जब चावल भली प्रकारसे गलजायँ तब उन चावलोंको अलग कर लेवे और उसको ग्रहण करे, उसकी मांड संज्ञा है। उसमें सोंठका चूर्ण और सेंधानमक मिलाकर सेवन करे तो अग्नि दीप्त होती है और पाचनभी होता है। यहाँ चावलोंके भली प्रकार पकजानेसे मंडका सिद्ध होना जानना इसी प्रकार पेया, यूष, यवागू, विलेपी और भातको भी अन्नके पकजानेसे सिद्ध हुआ जानना। मंडग्राही, हलका, शीतल, अग्निको दीप्त करनेवाला, धातुओंको सम करनेवाला, ज्वरनाशक, तृप्तिकारक, बलकर्ता तथा पित्त, कफ और श्रमको नष्ट करनेवाला है ॥ २८८–२९० ॥

अथ पेयाविधिगुणौ।

चतुर्दशगुणे नीरे रक्तशाल्यादिभिः कृता द्रवाधिका स्वल्पसिक्था पेया प्रोक्ता भिषग्वरैः ॥ २९१ ॥ साऽतिलघ्वी ग्राहिणी च । धातुपुष्टिविधायिनी । तृड्ज्वरानिलदौर्बल्यकुक्षिरोग विनाशिनी ॥ २९२ ॥ स्वेदाग्निजननी ज्ञेया वातवर्चोऽनुलोमनी। शुण्ठीसैन्धवसंयुक्ता दीपनी पाचनी च सा। आमशूलहरी रुच्या स्याद्विबन्धविनाशिनी ॥ २९३ ॥

लाल शालि आदि चावलोंको चौदहगुने जलमें पकाकर जो अधिक पतली और थोडे चावलोंके कणोंवाली हों उसको उत्तम वैद्य पेया कहते हैं। गुण–पेया अत्यन्त हलकी मलको रोकनेवाली, धातुको पुष्ट करनेवाली तथा तृषा, ज्वर, बात, दुर्बलता और कोखके रोगोंको हरनेवाली है। पसीनेको लानेवाली, अग्निको दीप्त करनेवाली, वायु और मलको अनुलोमनकारी और जो इसमें सोंठ और सेंधेनमकका चूर्ण मिला दियाजाय तो यह दीपन, पाचन, रुचिकारक, आमशूल और विबन्धको नष्ट करनेवाली हो जाती है॥२९३॥

अथ प्रमथ्याविधिगुणौ।

प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यपलात्कल्कीकृताच्छृतात्। तोयेऽष्टगुणिते तस्याः पानमाहुः पलद्वयम् ॥ २९४ ॥

द्रव्यम्–पाच्यद्रव्यम् । तस्याः–पलद्वयशेषायाः ॥

गुणैः प्रमथ्या पेयावत्ततो लघ्वी विशेषतः ॥ २९५ ॥

चार तोले द्रव्यको लेकर उसको जलमें पीसकर आठगुने जलमें पकावे, जब आठ तोले शेष रहे तब उतार लेवे, इसको प्रमथ्या कहते हैं। प्रमथ्याके गुण–पेयाके समान हैं और विशेष करके यह हलकी है॥२९४॥२९५॥

अथ यूषविधिगुणौ।

अष्टादशगुणे नीरे शिम्बीधान्यशृतो रसः विरलान्नो घनः किञ्चित्पेयातो यूष उच्यते। उक्तः स एव निर्यूहो रुचिकृच्च विशेषतः ॥ २९६ ॥

शिम्बीधान्य दो दलवाले अन्न को अठारह गुने जलमें पकावे, जब अन्न अच्छी प्रकारसे गलजाय और पेयासे कुछ अधिक गाढा होजाय तब उसको यूष कहते हैं और इसीको निर्यूह भी कहते हैं। यह विशेष करके रुचिकारक है ॥ २९६ ॥

अथ यूषापरविधिः।

कल्कद्रव्यपलं शुण्ठी पिप्पली चार्द्धकार्षिकी। वारिप्रस्थेन विपचेत्तद्द्रवो यूष उच्यते ॥ २९७ ॥

अयमर्थः--यूषधान्यं पलमितं तत्कल्कीकृतम्। शुण्ठी पिप्पली च समुदिता अर्द्धकर्षमिता कल्कीकृता । उभयमपि प्रस्थमितेन वारिणा पचेत्। तद्भवो यूषः ॥

यूषो बल्यो लघुः पाके रुच्यः कण्ठ्यः कफापहः ॥ २९८ ॥

शिम्बीधान चार तोले लेकर जलमें पीस लेवे, फिर सोंठ और पीपल दोनों आधाकर्ष लेकर जलमें पीस लेवे, पश्चात् सबको ६४ तोले जलमें पकावे। उससे जो रस प्रगट हो उसको यूष कहते हैं। यूष-बलकारक, पाकमें हलका, रुचिकारक, कंफको हितकारी और कफनाशक है ॥ २९७ ॥ २९८ ॥

अथ वृन्दटीकातो मुद्गयूषविधिः।

मुद्गानां द्विपलं तोये शृतमर्द्धाढकोन्मिते। पादस्थं मर्दितं पूतं दाडिमस्य पलेन तत् ॥ २९९ ॥ युक्तं सैन्धवविश्वाह्वधान्यकैः पादिकांशिकैः । कणाजीरकयोश्चूर्णं शनैः केनावचूर्णितम् (?) ॥ ३०० ॥ संस्कृतो मुद्गयूषोऽयं पित्तश्लेष्महरो मतः॥

आठ तोले मूँगको लेकर एकसौ अट्ठाईस तोले जलमें पकावे, जब जल जलकर चौथा भाग शेष रहे तब उतारकर मूँगको हाथोंसे खूब मसलकर कपडेमें छान लेवे। उसमें चार तोले अनारका रस और सैंधानमक, सोंठ तथा तथा धनियाँ प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिलादेवे पश्चात् किंचित् पीपल और जीरेके चूर्णसे बघार लेवे तो यह संस्कृत मूँगका यूष पित्तकफनाशक है ॥ २९९ ॥ ३०० ॥

अथ मुद्गयूषगुणाः।

मुद्गानामुत्तमो यूषो दीपनः शीतलो लघुः। व्रणोर्ध्वजत्रुतृड्दाहकफपित्तज्वरास्रजित् ॥ ३०१ ॥

मूँगका यूष-जठराग्निको बढानेवाला शीतल, हलका तथा व्रण ऊर्ध्वजत्रुरोग, तृषा, कफ, पित्त, ज्वर और रुधिरके विकारोंको नष्ट करता, एवं सब यूषोंमें उत्तम है ॥ ३०१ ॥

अथ मुद्गामलकयूषगुणाः।

मुद्गामलकयूषस्तु भेदी पित्तानिलापहः। तृड्दाहशमनः शीतो मूर्च्छाश्रम मदापहः ॥ ३०२ ॥

मूँग और आमलेका यूष दस्तावर वातनाशक, तृषा और दाहको शमन करनेवाला, शीतल तथा मूर्च्छा श्रम और मदको दूर करता है ॥ ३०२ ॥

मसूरयूषगुणाः।

मसूरयूषः संग्राही बृंही स्वादुः प्रमेहनुत् ॥ ३०३ ॥

मसूरका यूष-मलरोधक, पुष्टिकारक, स्वादिष्ट और प्रमेहको हरनेवाला है ॥ ३०३ ॥

अथ यवागूविधिगुणौ।

यवागूः षड्गुणे तोये संसिद्धा घनसिक्थका । पृथग्द्रवैस्तु विरलैः संयुक्ता ज्वरिणे हिता ॥ ३०४ ॥ यवागूर्दीपनी लघ्वी तृष्णाघ्नी वस्तिशोधनी। श्रमग्लानिहारी पथ्या ज्वरे चैवातिसारके॥३०५॥

धानोंको छः गुने जलमें पकावे, जब अन्न गलजाय और खूब गाढी होजाय, परन्तु अलग अलग रहे और जल थोडा रहे, उसको यवागू कहते हैं। यवागू ज्वररोगीको अत्यन्त हितकारी है।अग्निको दीप्त करनेवाली,हलकी, तृषनाशक, वस्तिशोधक, श्रम और ग्लानिको, हरनेवाली, ज्वर और अतिसारमें पथ्य है ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥

विलेपीविधिगुणो।

चतुर्गुणाऽम्बुसंसिद्धा विलेपी घनसिक्थका। पृथग्द्रवेण रहिता ख्याता शिथिलभक्तिका ॥ ३०६ ॥

संसिद्धाः-अतीव सिद्धा। विलेपी 'गिलहथी' इति लोके॥

विलेपी दीपनी बल्या हृद्या संग्राहिणी लघुः। व्रणाक्षिरोगिणां पथ्या तर्पणी तृड्ज्वरापहा॥ ३०७॥

शालि चावलोंको चौगुने जलमें पकावे, जब चावल गल जाँय, परन्तु अलग अलग हों और जलसे रहित हों तब उसको विलेपी कहते हैं। विलेपी अग्निको दीप्त करनेवाली, बलकारक, हृदयको हितकारी, मलरोधक, हलकी, व्रण और नेत्ररोगियोंको पथ्य, तृप्तिकारक, तृषा और ज्वरको दूर करती है॥ ३०६॥ ३०७॥

अथ भक्तविधिगुणौ।

जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुष्पलम्। विपचेत्स्रावयेन्मण्डं तद्भक्तं मधुरं लघु॥ ३०८॥ चक्रदत्तस्तु--अन्नं पञ्चगुणे तोये यवागूं षड्गुणे पचेत्। तत्र अन्नम्--भक्तम्। तथा च "भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमोदनोऽस्त्री सदीदिविः" इत्यमरः॥

भक्तं वह्निकरं पथ्यं तर्पणं मूत्रलं लघु। सुधौतं प्रस्रुतं चोष्णं विशदं गुणवत्तरम्॥ ३०९॥ अधौतमस्रुतं शीतं वृष्यं गुरु कफप्रदम्। अत्युष्णं बलहृद्भक्तं शीतं शुष्कञ्च दुर्जरम्। अतिक्लिन्नं ग्लानिकरं दुर्जरं तण्डुलान्वितम्॥ ३१०॥

अतिक्लिन्नम्--सजलं यत्पर्युषितम्॥

भृष्टतण्डुलजं रुच्यं सुगन्धि कफहल्लघु वातास्थापितमन्दाग्निविरिक्तानां प्रशस्यते॥ ३११॥

सोलह तोले चावलोंको चौदह गुने जलमें पकावे, जब चावल अच्छी प्रकारसे गलजायँ तब मांडको पसाकर अलग कर देवे, उसको भात कहते हैं। भात मधुर और हलका है। चक्रदत्त तो यह कहते हैं कि-"जो पाँच गुने जलमें पकाया जावे उसको अन्न या भात कहते हैं जो छः गुने जलमें सिद्ध किया जाय, उसको यवागू कहते हैं"। अन्न शब्दका अर्थ यहां भात है. क्योंकि-"भिस्सा, भक्त, अन्धस्, अन्न, ओदन और दीदिवि" ये भातके नाम अमरकोशमें कहे हैं। भात-अग्निको दीप्त करनेवाला, पथ्य, तृप्तिकारक, मूत्रका लानेवाला और हलका है। उत्तम रीतिसे धुला हुआ, पसायाहुआ और गरम भात विशद तथा अधिक गुणोंवाला है, नहीं धोया हुआ, नहीं पसाया हुआ और शीतल भात-वीर्यजनक भारी और कफकारी है। अत्यन्त गरम भात बलको हरनेवाला है। शीतल और सुखाया हुआ भात--अत्यन्त कठिनतासे पचनेवाला है बहुत जलवाला वासी भात-ग्लानिकारक है। जिसमें चावल अच्छी प्रकारसे न गले हों ऐसा भात दुर्जर अर्थात् बहुत कालमें कठिनतासे पाचत होता हैं। भुनेहुए चावलोंका भात-रुचिकारक, सुगन्धियुक्त कफनाशक, हलका, तथा वातरोगी, निरूहवस्तियुक्त मन्दाग्निवाले और जिन्होंनेजुलाब लिया है,उन मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी है॥ ३०८--३११॥

अथ रसौदनविधिः।

मांसलं सक्थिजं मांस तथाऽनस्थि च तैत्तिरम्। चतुष्पलोन्मितं सूक्ष्मं कल्पितं क्षालितं जले॥ ३१२॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलशुण्ठीजीरकधान्यकैः। द्विशाणैः संयुते तोये क्वाथ्यमर्द्धाढकोन्मिते॥ ३१३॥ पादस्थितं जलं तत्र दर्व्या संकुट्टिताद्धरेत्। तं रसं मर्दितं हिङ्गुभृष्टसैन्धवजीरकैः। युक्तं प्रधूपितं पथ्यं शुद्धानां शुद्धिकांक्षिणाम्॥ ३१४॥

पुष्ट जीवकी जांघका मांस तथाहड्डीरहित तीतरका मांस सोलह तोले लेकर उसके महीन महीन टुकडे करके जलसे धोलेवे, पश्चात् पीपल, पीपलामूल, सोंठ, जीरा और धनियां ये प्रत्येक आठ मासे लेवे, फिर सबको मिलाकर एकसौ अठ्ठाईस तोले जलमें पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब मांसको खूब करछीसे कूटकर हाथोंसे मलकर रस निकाल लेवे । पश्चात् हींग, सैंधानमक और भुनेजीरेसे बघारकर भातमें मिला देवे, इसको रसौदन कहते हैं । यह रसौदन वमन विरेचनादिसे शुद्ध हुए मनुष्योंके लिये और जो शुद्ध होनेकी इच्छा करते हैं, उनके लिये पथ्य है ॥ ३१२--३१४ ॥

अथ रसौदन गुणाः ।

रसौदनो गुरुर्वृष्यो बल्यो वातज्वरापहः ॥ ३१५ ॥

रसौदन--भारी मैथुनशक्तिको बढानेवाला, बलकारक और वातज्वरको हरनेवाला है ॥ ३१५ ॥

अथ मण्डादिपदार्थप्रक्रिया ।

साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुःषष्टिपलेऽम्बुनि । तत्क्वाथेनार्द्धशिष्टेन मण्डपेयादि साधयेत् ॥ ३१६ ॥ वृद्धवैद्याः पलं द्रव्यं ग्राहयन्त्याढकेऽम्भसि । भेषजस्यातिबाहुल्यात्कदाचिदरुचिर्भवेत् ॥३१७॥ यैरन्नैरौषधैर्यैश्च कृता मण्डादयो बुधैः । विचार्य यद्गुणानेतांस्तद्गुणानेव निर्दिशेत् ॥ ३१८ ॥

यह केवल जलसे मण्ड आदि पदार्थोंको सिद्ध करनेकी विधि कही । अब औषधियोंसे सिद्ध करनेकी विधि कहते हैं । सोलह तोले औषधि लेकर दोसौ छप्पन तोले जलमें पकावे, जब आधाजल शेष रहे तब उस काथसे मण्ड और पेयादिकको सिद्ध करे । परन्तु वृद्धवैद्य तो दोसौ छप्पन तोले जलमें केवल चार तोले औषधि डालते हैं, यह कारण है कि औषधि अधिकके होनेसे रोगीके अरुचि होनेकी सम्भावना है, जिन अन्न और औषधियोंसे मण्डादिक बनाये जावें, उन्हीं अन्न और औषधिके अनुसार विचारकर गुण कहे गये हैं ॥ ३१६--३१८ ॥

औषधसिद्धपेयागुणाः ।

अन्नकाले हिता पेया यथास्वं पाचनैः कृता । दीपनी पाचनी लघ्वी ज्वरार्तानां ज्वरापहा ॥ ३१९ ॥

उन्हीं उन्हीं यथादोषानुसार पाचन औषधियोंसे सिद्ध की हुई पेया भोजनके समयमें देनेसे हितकारी होती है अग्निको दीप्त करती है, पाचन है, हलकी और ज्वरकी पीडाको हरनेवाली है ॥ ३१९ ॥

अथ वातज्वरादिपेयासाधनौषधविधानम् ।

पञ्चमूल्याः कषायन्तु पाचनं वातिकज्वरे । राक्षौद्रं पैत्तिके मुस्तकटुकेन्द्रयवैः कृतम् ॥ ३२० ॥ पिप्पल्यादिकषायं तु पाचनं कफजे ज्वरे । लघुना पञ्चमूलेन पिप्पल्या सह धान्यय॥३२१॥ महत्या पञ्चमूल्याऽथ व्याघ्रीदुःस्पर्शगोक्षुरैः । सिद्धानि भिषगन्नानि प्रयुञ्जीत यथाक्रमम् । वातपित्ते श्लेष्मपित्ते कफवाते त्रिदोषजे ॥ ३२२ ॥

अयमर्थः वातपित्ते लघुना पंचमूलेन सिद्धानि अन्नानि भिषक् प्रयुञ्जीत ॥

शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी कण्टकारीद्वयं तथा । गोक्षुरः पञ्चमः प्रोक्तः पञ्चमूलमिदं लघु ॥ ३२३ ॥

श्लेष्मपित्ते पिप्पल्या सह धान्यया कफवाते महत्या पञ्चमूल्या ॥

श्रीफलः सर्वतोभद्रा पाटला गणिकारिका। श्योनाकः पञ्चमः प्रोक्तं पञ्चमूलमिदं महत् ॥ ३२४ ॥

त्रिदोष व्याघ्रीदुःस्पर्शगोक्षुरैः, व्याघ्री कण्टकारिका। दुःस्पर्शःयवासः ॥

जैसे वातज्वरमें पंचमूलका क्वाथ पाचन है। पित्तज्वरमें नागरमोथा, कुटकी और इन्द्रजौका क्वाथ पाचन है और कफज्वरमें पिपल्यादि क्वाथ पाचन है। इस प्रकारका जैसा दोष हो, उसी दोषको पचानेवाली औषधियोंके क्वाथसे पेया करनी चाहिये। वातपित्तज्वरमें लघुपंचमूले क्वाथसे, कफपित्तज्वरमें पीपल और धनियोंके क्वाथसे, कफवातज्वरमें बृहत्पञ्चमूलके क्वाथसे और त्रिदोषज्वरमे कटेरी, जवासा और गोखरू इनके क्वाथसे सिद्ध किया हुआअन्न विशे करके पेया देना चाहिये। शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, बडी-कटेरी और गोखरू इनको पञ्चमूली अथवा लघुपञ्चमूल कहते हैं। बेल, कुम्भेर, पाढल, अरनी और श्योनाक इनको बृहत्पञ्चमूल कहते हैं ॥ ३२४ ॥

पेयां वा रक्तशालीनां वस्तिपार्श्वशिरोरुजि। श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् ॥ ३२५ ॥ विबद्धवर्चाः सयवां पिप्पल्यामलकैः श्रृताम्। सर्पिष्मतीं पिबेत्पेयां ज्वरी दोषानुलोमनीम् ॥ ३२६ ॥ कासी श्वासी च हिक्की च पञ्चमूलीश्रृतां पिबेत् ॥ ३२७ ॥

यवोऽत्र अन्नम्। अत्र पञ्चमूली बृहती लध्वी च हिता, तया श्रृतां पेयां पिबेदित्यर्थः ॥

पेया भेषजसंयोगाल्लघुत्वाच्चाग्निदीपनी। वातमूत्रपुरीषाणां दोषाणां चानुलोमिका ॥ ३२८ ॥ स्वेदनाय च सोष्णत्वाद् द्रवत्वात्तृट्क्षयाय च। आहारभावात्प्राणाय सरत्वाल्लाघवाय च। ज्वरघ्नी हेतुसाम्यत्वात्तस्मात्तांपूर्वमाचरेत् ॥ ३२९ ॥

हेतुसाम्यत्वात् हेतवः--वातपित्तकफास्तेषां साम्यत्वात् ॥

ज्वरमें यदि मूत्राशय, पसली और शिरमें पीडा हो तो गोखरू और कटेरीके क्वाथसे सिद्ध की हुई ज्वरको हरनेवाली लाल शालिचावलोंको पेया पीनी चाहिये। ज्वरमें मलका अवरोध होगया हो तो पीपल और आमलोंके क्वाथसे पकाई हुई पेयामें घृत डालकर पीवे, इससे दोष योग्य मार्गसे प्रवर्तित होने लगते हैं। ज्वर खाँसी, श्वास और हिचकी हो तो लघुपञ्चमूल अथवा बृहत्पञ्चमूलके क्वाथसे सिद्ध की हुई लाल शालिचावलोंकीकी पेया पिवे। पेया औषधियोंके संयोग होनेसे और हलकी होनेसे अग्निको दीप्त करती है। तथा वायु, मूत्र, विष्ठा और दोषोंको यथामार्गमें प्रवर्तित करती है। पेया उष्ण होनेके कारण पसीनेको लाती है, पतली होनेसे तृषाको दूर करती है, आहाररूप होनेके कारण तृप्तिकारक है, दस्तावर होनेके कारण हलकी है वात, पित्त एवं कफको साम्य करनेके हेतु पेया ज्वरनाशक है, इस कारण ज्वरमें प्रथम पेयाका उपयोग करना चाहिये ॥३२५-३२९॥

अथ पञ्चमुष्टिकयूषः।

यवकोलकुलत्थानां मुद्गमूलकशुण्ठयोः। एकैकमुष्टिमादाय पचेदष्टगुणे जले ॥ ३३० ॥ पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः। शूले प्रशस्यते गुल्मे कासे श्वासे क्षये ज्वरे ॥ ३३१ ॥

जौ, बेर, कुलथी, मूँग, मूलीकी डण्डी प्रत्येक चार चार तोले लेकर अठगुने जलमें पकावे तो पञ्चमुष्टिक यूष सिद्ध होता है।

वह पञ्चमुष्टिकयूष वात, पित्त और कफनाशक है तथा शूल, गुल्म खाँसी, श्वास, क्षय और ज्वरमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ३३०-३३१ ॥

अथ वर्तिप्रयोगः ।

रुद्धमूत्रपुरीषस्य गुदे वर्ति निधापयेत् । पिप्पलीपिप्पली मूलयवानीचव्यसाधिताम् ॥ पाययेत्तु यवागूं वा मारुताद्यनुलोमिनीम् ॥ ३३२ ॥

ज्वरमें यदि विष्ठा और मूत्र रुक गया हो तो पीपल, पीपलामूल, अजवायन और चव्य इनसे सिद्ध की हुई बत्ती गुदामें चढावे अथवा वातादि दोषोंको यथामार्गमें स्थित करनेवाली यवागू पिलावे ॥ ३३२ ॥

अथ पेयायवाग्वपवादः ।

मदात्यये मद्यनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफोत्थिते । ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च यवागूर्न हिता ज्वरे ॥ ३३३ ॥ दाहच्छर्दर्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयाऽन्वितम् । घर्मार्तं मद्यपं चापि तोयालोडितसक्तुकम् ॥ ३३४ ॥ शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् । ज्वरापहैः फलरसैर्युक्त मन्नं हितं क्वचित् ॥ ३३५ ॥

लाजतर्पणम्-लाजसक्तुरूपं तर्पणम् ॥

पित्त कफसे उत्पन्न हुए ज्वरमें यदि मदात्ययरोग हो अथवा रोगी नित्य मद्य पीता हो वा ऊध्वर्गत रक्तपित्त सहित हो तो उसको यवागू नहीं देनी चाहिये । इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतुमें भी यवागू पीना हितकारक नहीं है । जलन और वमनसे पीडित, दुर्बल, निराहार तृषासे व्याकुल, गरमीसे पीडित और निरन्तर मदिराको पीनेवाला ऐसे ज्वररोगीको पेया अथवा यवागू नहीं देनी चाहिये, किन्तु खीलों के सत्तूको जलमें घोलकर उसमें मिश्री और शहत मिलाकर तर्पणरूप पीनेको देवे और किसी समय ज्वरनाशक फलोंके रससे संयुक्त अन्न भी देना चाहिये ॥ ३३३-३३५ ॥

अथ सन्तर्पणस्वरूपम् ।

द्राक्षादाडिमखर्ज्जूरमृदिताम्बु सशर्करम् । लाजचूर्ण समध्वाज्यं सन्तर्पणमुदाहृतम् ॥ ३३६ ॥

लाजचूर्णं द्राक्षादिजलशर्करामध्वाज्यसहितं तर्पणम् उक्तमित्यर्थः ॥

खीलोंके सत्तू, दाख, अनार और खजूर इनको जलमें घोलकर उसमें मिश्री, शहद और घी डालकर ज्वरवाला मनुष्य पीवे, इसको सन्तर्पण कहते हैं ॥ ३३६ ॥

अथ लाजसक्तुगुणाः ।

लाजानां सक्तवः क्षौद्रसितायुक्ता विशेषतः । छर्द्यतीसारतृड्दाहविषमूर्च्छाज्वरापहाः ॥ ३३७ ॥

खीलोंके सत्तुओंमें शहत और मिश्री मिलाकर पिवे तो विशेष करके वमन अतिसार तृषा, दाह, विष, मूर्छा और ज्वरका नाश हो ॥ ३३७ ॥

अथ चरकोक्ततर्पणप्रकारः ।

तत्र तर्पणमेवादौ प्रदेयं लाजसक्तुभिः । ज्वरापहैः फलरसैर्युक्तं समधुशर्करम् ॥ ३३८ ॥

ज्वरनाशक फलोंके रसयुक्त, शहत और चीनी मिश्रित सत्तुओंका प्रथम तर्पण देवे॥३३८

अथ ज्वरघ्नफलान्याह चरकः ।

द्राक्षादाडिमखर्जूरप्रियालैः सपरूषकैः । तर्पणार्हस्य दातव्यं तर्पणं ज्वरनाशनम् ॥ ३३९ ॥

प्रियालमत्र पक्वफलम् न तन्मज्जा, गुरुत्वात् । तर्पणार्हस्य--दाहच्छर्दितृषार्तस्य । लंघितस्य क्षीणस्येत्यर्थः ॥

ये ज्वरनाशक फल कौन कौनसे हैं, उनको चरकने इस प्रकार कहा है। दाहसे, वमनसे तथा तृषासे पीडित और लंघनोंसे क्षीण हुए ज्वरवाले मनुष्यको दाख, अनार, खजूर, चिरौंजीका पका फल और फालस इनके रसोंसे संयुक्त तर्पण देनेसे ज्वरका नाश होता है॥ ३३९॥

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः॥ ३४०॥

रसोऽत्र मांसस्यरसः, तेन सिक्त ओदनो रसौदनः। "अन्नेन व्यञ्जनम्" इत्येन समासः॥

मुद्गसूपौदनश्चैव हितः कफसमुत्थिते। स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः॥ ३४१॥

स एव—मुद्गयूषौदन एव॥

कृशोऽल्पदोषो यः क्षीणकफोजीर्णज्वरान्वितः। विबन्धासृष्टदोषश्च रूक्षपित्तानिलज्वरी। पिपासार्तः सहादश्च पयसा स सुखी भवेत्॥ ३४२॥ अजादुग्धं गुडोपेतं पातव्यं ज्वरशान्तये। तदेव तु पयः पीतं तरुणे हन्ति मानवम्॥ ३४३॥

तरुणे, ज्वरे इति शेषः॥

जीर्णे ज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम् तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम्॥ ३४४॥

श्रम, उपवास और वायुसे उत्पन्न हुए ज्वरमें सदैव रसौदन हितकारी है। रस अर्थात् मांसके रससे भीजा हुआ जो ओदन अर्थात् भात है उसको रसौदन कहते हैं कफसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मूँगके यूषसे भीजा हुआ भात हितकारी है और पित्तज्वरमें मूँगके यूषके साथ मिश्री मिला हुआ भात शीतल होनेके कारण हितकारी है। जो मनुष्य दुर्बल, अल्पदोषवाले, क्षीणकफवाले, जीर्णज्वरयुक्त, जिसके मलबन्ध होनेके कारण दोष अनुलोमन नहीं होते, रूक्ष, पित्त और वातज्वरवाले, तृषा और दाहसे पीडित हैं, उनको दूध पीनेसे सुख होता है अर्थात् उपरोक्त मनुष्योंके लिये दूधका सेवन अत्यन्त हितकारी है। बकरीके दूधमें गुड मिलाकर सेवन करनेसे ज्वर शांत होता है और जो तरुणज्वरमें दूध पिया जावे तो मनुष्यको मार देता है, अन्यत्र भी लिखा है कि, जीर्णज्वर और कफके क्षीण होनेपर अमृतके समान गुण करता है और जो वही दूध तरुण (नवीन) ज्वरमें पिया जावे तो विषके समान मनुष्यको मार देता है॥ ३४०–३४४॥

अथ ज्वररोगिनियमाः।

न द्विरद्यान्न पूर्वाह्णे नाभिष्यन्दि कदाचन। न तीक्ष्णं न गुरुप्रायं भुञ्जीत तरुणज्वरी॥ ३४५॥ न जातु तर्पयेत्प्राज्ञः सहसा ज्वरकर्शितम्। तेन संशमितोऽप्यस्य पुनरेव भवेज्ज्वरः॥३४६॥

ज्वरवाले रोगीको दोबार भोजन नहीं करना चाहिये। पूर्वाह्णके समय भी नहीं भोजन करना चाहिये। अभिष्यन्दि, तीक्ष्ण और अधिक भारी अन्न भी ज्वरवालेको नहीं खाने चाहिये। ज्वरसे कर्षित हुए मनुष्यको कदापि एक साथ तर्पण नहीं देना चाहिये, कारण यह है कि, तर्पणसे शांत हुआ भी ज्वर फिर आ जाता है॥ ३४५॥ ३४६॥

ज्वरमुक्तिपूर्वलक्षणम्।

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कम्पो विड्भिदसंज्ञता। कूजनं चातिवैगन्ध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे॥ ३४७॥

विड्भिद्—मलप्रवृत्तिः। अत्र सम्पदादित्वात् भावे क्विप्। कूजनं-कुन्थनम्। अति-

वैगन्ध्यं गात्रस्य । ज्वरमुक्तौ भविष्यंत्यामेतल्लक्षणं भवति ॥

दाह, पसीना भ्रम, तृषा, कम्प, दस्तोंका होना, संज्ञाहीनता, कूँजना औ शरीरमें अत्यन्त दुर्गन्धता आना ये ज्वरके मोक्ष होनेके पूर्वलक्षण हैं अर्थात् जब ज्वर छूटनेको होता है तो ये सब लक्षण होते हैं ॥ ३४७ ॥

ननु दोषक्षयं विना न व्याधिनिवृत्तिः, क्षीणाश्च दोषाः कथमेवं विधं रूपं करिष्यन्ति ?

उच्यते—कश्चित्क्षीणोऽपि विनाशकाले स्वशक्तिं दर्शयति । यथा निर्वाणावस्थायां दीपो विशेषात् प्रज्वलति ॥ वाग्भटोऽप्याह—

धातून्प्रक्षोभयन् दोषो मोक्षकाले विलीयते । ततो नरः श्वसन् कूजन् वमन् स्विद्यन्न चेष्टते ॥ ३४८ ॥ त्रिदोषजे ज्वरे ह्येतदन्तर्वेगे च धातुगे । लक्षणं मोक्षकाले स्यादन्यस्मिन् स्वेददर्शनम् ३४९

पूर्वोक्तमेतद्दाहादिलक्षणं मोक्षकाले एतेषु एव ज्वरेषु स्यात् । केषु ? त्रिदोषजेषु अन्तर्वेगे धातुगे ज्वरे च । अन्यस्मिन्स्वेदमात्रदर्शनं भवति ॥

शंका—दोषोंके क्षयहुए विना रोगकी निवृत्ति नहीं होती, फिर किस कारण रोगकी निवृत्तिके समयमें क्षीणहुए दोष दाहादि दारुण विकारोंको करते हैं ?

समाधान—कोई क्षीण हुआ भी अपने विनाशके समय अपनी विशेषशक्ति दिखाता है, जैसे कि, दीपक बुझने के समय अत्यन्त प्रज्वलित होता है । वाग्भटभी कहता है—कि "दोष मुक्त होनेके समय धातुओंको क्षोभित करके नाशको प्राप्त होते हैं, इसी कारण रोगी श्वास लेता है, कूँजता है, वमन करता है, पसीनेयुक्त और चेष्टारहित हो जाता है ।

ये उपरोक्त दाहादि लक्षण त्रिदोषज्वर, अन्तर्वेगीज्वर और धातुगतज्वरके मोक्षके समय होते हैं और अन्य ज्वरोंमें तो मोक्षके समय केवल पसीनाही आता है ॥३४८॥३४९॥

अथ ज्वरमुक्तिलक्षणम् ।

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् । स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगिमनोऽन्नलिप्सा कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ ३५० ॥ स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च । क्षवथुश्चान्नकांक्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ३५१ ॥

शरीरका हलका होना, ग्लानि, बेहोशी और सन्तापका नष्ट होना, मुखका पकना अर्थात् मुखमें छाले पड़जाना, इन्द्रियाँ अपने अपने कार्य करनेको समर्थ हों, पीडाका नाश, पसीना और छींकका आना, मनका स्वाभाविक स्थितिमें स्थित होना, अन्नमें अभिलाषाका उत्पन्न होना और शिरमें खुजलीका होना ये ज्वरमुक्तिके लक्षण जानने । सुश्रुत भी कहता है कि—"देहमें पसीनोंका आना, हलका होना, शिरमें खुजलीका चलना, मुखका पकना, छींकका आना और अन्नमें इच्छाका होना ये ज्वरमुक्तिके लक्षण हैं ॥ ३५०-३५१ ॥

अथ ज्वरमुक्तपालनीयनियमाः ।

व्यायामश्च व्यवायश्च स्नानं चंक्रमणानि च । ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान् भवेत् ॥ ३५२ ॥ व्यायामश्च व्यवायश्च प्रवातं शिशिरं जलम् । ज्वरमुक्तो न सेवते बलवान्भवेत् ॥ ३५३ ॥ जन्तोर्ज्वरविमुक्तस्य स्नानं कुर्यात्पुनर्ज्वरम् । तस्माज्ज्वरविमुक्तोऽपि स्नानं विषमिव त्यजेत् ॥ ३५४ ॥ बलवर्णाग्निवपुषां यावन्न प्रकृतिर्भवेत् । तावज्ज्वरेण मुक्तोऽपि वर्जनीयानि वर्जयेत् ॥३५५॥

ज्वरके मुक्त होनेपर भी जबतक शरीरमें बल न आवे तबतक परिश्रम, स्त्रीप्रसंग, स्नान,

चलना फिरना इत्यादि न करने चाहिये और भी कहा है कि, ज्वरके मुक्त होनेपर भी जब तक बलवान् न हो तबतक परिश्रम, मैथुन, पवनका सेवन और शीतल जल इनको नहीं सेवन करे। ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य यदि स्नान करलेवे तो फिर ज्वर उत्पन्न हो जाता है। इस कारण ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य स्नानको भी विषके समान समझकर त्याग देवे। जबतक बल, वर्ण, अग्नि और देह ये पहिलेके समान प्रकृतिके अनुसार न हों, तबतक ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य भी त्यागने योग्य वस्तु त्याग देवे ॥ ३५२-३५५ ॥

अथ वातज्वराधिकारः ।

वातलाहारचेष्टाभ्यां वायुरामाशयाश्रयः। बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरकृत्स्याद्रसानुगः ॥ ३५६ ॥

वातकारक आहार और विहारके करनेसे वायु आमाशयमें प्राप्त होकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करती है ॥ ३५६ ॥

वातज्वरपूर्वरूपम् ।

तस्य पूर्वरूपमुक्तम्-" जृम्भाऽत्यर्थं समीरणात् " इति। समीरणज्वरे उत्पत्स्यति अत्यर्थं जृम्भा स्यात्। जृम्भा च श्रमादिपूर्विका भवति ॥

जब वातज्वर उत्पन्न होनेको होता है उससे कुछेक पहिले प्रथम श्रमादि उत्पन्न होकर फिर जम्भाई अधिक आती है ॥

वातज्वरलक्षणम् ।

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठौष्ठमुखशोषणम्। निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ३५७ ॥ शिरोहृद्गात्ररुग् वक्त्रवैरस्यं बद्धविट्कता। शूलाध्माने जृम्भणञ्च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥३५८॥

एतानि लक्षणानि प्रायोभावित्वेन सुश्रुते निर्दिष्टानि। चकारादन्यान्यपि चरकनिदानोक्तानि बोद्धव्यानि। तान्येव श्लोकेन प्रदर्शयति-

भवन्ति विविधा वातवेदनाः स्यादसुप्तता। पिण्डिकोद्वेष्टनं कर्णस्वनो वक्त्रकषायता ॥३५९॥ गात्रसादो हनुस्तम्भो विश्लेषः सन्धिजानुनोः। शुष्ककासो वमिर्लोमः दन्तहर्षः श्रमभ्रमौ। अरुणं मूत्रनेत्रादि तृट्प्रलापोष्णगात्रताः ॥ ३६० ॥

विषमो वेगः-शरीरोष्णतादिरूपो ज्वरवेगो विषमो भवतीत्यर्थः। क्षवस्तम्भः छिक्काया अभावः। तथा च वाग्भटः-

हर्षो रोमाङ्गदन्तेषु वेपथुः क्षवथोर्ग्रहः ३६१ चरकोऽपि-- क्षवथूद्गारविनिग्रहः " इति।

शिरोहृद्गात्र रुक्-गात्रपदे प्रयुक्ते शिरोहृच्छब्दप्रयोगः तत्रतत्र विशेषेण वेदनाबोधनार्थः।

शरीर काँपे, ज्वरका विषम वेग हो, कण्ठ, होंठ और मुख सूखे, निद्राका न आना, छींकका रुकना, देहमें रूखापन, शिर हृदय और शरीरमें पीडा, मुखमें विरसता, मलका बन्धजाना, शूल अफारा होवे जम्भाई अधिक आवे, वातज्वरमें ये लक्षण विशेष करके होते हैं ऐसा सुश्रुत कहता है। चरकके निदानमें इसके सिवाय अन्य लक्षण भी कहे हैं। वे ये हैं कि--निद्रा न आवे, पिंडरियोंमें हडफूटनहो, कानोंमें शब्द हो मुख कसैला हो, जाय अंगोंमें पीडाहो, ठोडी जकड जाय, सन्धि और घुटनों में फटने सरीखी पीडा हो, सूखी खाँसी आवे, वमन हो, रोमांच हो आवे, दन्तहर्ष हो, श्रम और भ्रमहो, मूत्र और नेत्रादि लाल हो जाय, प्यास लगे, वृथा वकवाद हो और सब शरीर गरम होजाता है। इसी प्रकार वाग्भट में भी कहा है कि--"वातज्वरमें रोमांच खडे होजाते हैं दांत खट्टे होजाते हैं, कम्प होता है और

छींक नहीं आती है"। चरक भी कहता है कि- वातज्वरमें छींक और डकार रुक जाती है ॥ ३५७-३६१ ॥

अथवातज्वरचिकित्सा ।

आमाशयस्थो हत्वाऽग्निं सामो मार्गान् पिधापयन् । विदधाति ज्वरं दोषस्तस्मा- ल्लंघनमाचरेत् ॥ ३६२ ॥

इति वचनात्सामान्यतो ज्वरितगात्रस्य यावदा--रोग्यदर्शनं लंघनविधानम् । वातज्वरिणो लंघन विधाने विशेषमाह चरकः—

ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नं प्रतिभोजि- तम् । पाचनं शमनीयं च कषायं पाय- येद्भिषक् ॥३६३॥ सुश्रुतोऽप्याह-वातिके सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिके । श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युञ्जीत भेषजम्॥३६५॥

वातादि दोष दुष्ट होकर आमाशयमें जाकर अग्निको आच्छादित करके अन्न आदि अपक्व रसके साथ मिलकर शरीरके स्रोतों को ढक- कर ज्वरको उत्पन्न करते हैं, इस कारण ज्वरमें लंघन कराने चाहिये । इस प्रकार ये सामान्य रीतिसे ज्वररोगीको लंघन कराने कहे, परन्तु वातज्वरमें लंघन करानेके विषयमें चरक विशेष कहता है कि, वातज्वरवाले मनुष्यको छः दिनतक लंघन करावे पश्चात् सातवें दिन हलका अन्न भोजन कराकर वैद्य पाचन अथवा शमन औषधि देवे । सुश्रुत भी कहता है कि, वातज्वरमें सातवें दिन, पित्तज्व- रमें ग्यारहवें दिन और कफज्वरमें तेरहवें दिन औषधि देनी चाहिये ॥ ३६२-३६४ ॥

ननु "अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः" इति श्रुतिः तदन्नं विना प्राणिभिः कथं स्थातव्यमि- त्यत आह—

दोषाणामेव सा शक्तिर्लङ्घने या सहि- ष्णुता । न हि दोषक्षये कश्चित्सहते लङ्घनं महत् ॥ ३६५ ॥ कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लङ्घनं बहु । आमक्षयादूर्ध्वं मपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ ३६६ ॥

शंका-अन्नही प्राणियोंको प्राणरूप है, ऐसा श्रुतिमें कहा है, फिर अन्नके बिना मनुष्य किस प्रकार जी सकते हैं ?

समाधान-लंघनोंको सहन करना, यह दोषकी शक्ति है, कुछ मनुष्यकी शक्ति नहीं है, क्योंकि दोषोंके क्षय होनेपर कोई मनुष्य भी लंघनोंको नहीं सह सकता कफ और पित्त ये दोनों पतले धातु हैं इस कारण ये बहुत लंघनोंको सह सकते हैं; परन्तु वायु तो आमके क्षय होनेपर क्षणभर भी लंघनको नहीं सह सकती ॥ ३६५ ॥ ३६६ ॥

अथ दशमूलादिक्वाथः ।

श्रीफलः सर्वतोभद्रा कामदूती च शोणकः । तर्कारी गोक्षुरः क्षुद्रा बृहती कलशी स्थिरा ॥ ३६७ ॥ रास्ना कणा कणामूलं कुष्ठं शुण्ठी किरातकः । मुस्तो बलाऽमृता बालं द्राक्षा यासः शताह्विका ॥ ३६८ ॥ एषां क्वाथो निह न्त्येव प्रभञ्जनकृतं ज्वरम् । सोपद्रवं च योगोऽयं सर्वयोगवरः स्मृतः ॥ ३६९ ॥

श्रीफलः--बिल्वः । सर्वतोभद्रा--गम्भारी । काम दूतीपाटला । शोणकः--शोनापाठा इति लोके । तर्कारी,गणकारी । कलशी-पृश्निपर्णी । स्थिरा शालपर्णी । बालम्-सुगन्धवाला । यासो-यवासः ॥

बेल, कुम्भेर, पाढल, सोनापाठा, अरणी, गोखरू, कटेरी, कटाई, पृश्निपर्णी, शाली- पर्णी, रायसन पीपल, पीपलामूल, कूठ, सोंठ, चिरायता, नागरमोथा, खिरैटी, गिलोय, सुगन्धवाला, दाख, जवासा और

सतावर इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पीनेसे उपद्रवसहित वातज्वर नष्ट होता है यह योग सर्व योगोंमें उत्तम है ॥ ३६७-३६६९ ॥

अथ बृहत्पञ्चमूलीकाथः ।

श्रीपर्णीतर्कारीश्रीफलटुण्टुकपालामूलैः। पाचनमुचितं मारुतजनितज्वरहारि वारिणा क्वथितैः ॥३७०॥ सुश्रुतः-"पञ्चमूलीकषायन्तु पाचनं वातिके ज्वरे" इति॥

अथ पञ्चमूली बृहत्पञ्चमूली, अत एव बृहती ॥

कुम्भेर, अरणी, बेल, स्योनाक और पाढल इन पांच औषधियोंको जलमें औंटाकर क्वाथ बनाकर वातज्वरमें पाचन देना चाहिये। इसी प्रकार सुश्रुत भी कहता है कि-"वातज्वरमें पञ्चमूलीका कषाय पाचन है ॥ ३७० ॥

अथ किरातादिक्वाथः ।

किराताह्वाऽमृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः॥ त्रिपर्णीकलशीबिल्वैः क्वाथो वातज्वरापहः ॥ ३७१ ॥

उदीच्यम्-बालकम् । त्रिपर्णी शालपर्णी । कलशीपृश्निपर्णी ॥

चिरायता, गिलोय, सुगन्धवाला, कटाई, कटेरी, गोखरू, शालिपर्णी और पृश्निपर्णी इनका क्वाथ वातज्वरको नष्ट करता है॥३७१॥

अथ कालिङ्गक्वाथः ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं शृतम्। वातज्वरे तथा पेयं कालिङ्गं सप्तमेऽहनि ॥ ३७२ ॥

कालिङ्गम्-शृतमिन्द्रयवं तस्य शृतम् ॥

गिलोय, पीपलामूल और सोंठ इनके साथ इन्द्र जौका काढा बनाकर वातज्वरमें सातवें दिन पिवे ॥ ३७२ ॥

अथ शुण्ठ्यादिक्वाथः ।

विश्वामृताग्रन्थिकसिद्धतोयं मरुज्ज्वरः स्यात् पिबतः कुतोऽयम् । क्वाथोऽथ कुस्तुम्बुरुदेवदारुक्षुद्रौषधैः पाचनमत्र चारु ॥ ३७३ ॥

क्वाथः पाचनमिति, वेदाः प्रमाणमितिवत्॥

सोंठ, गिलोय और पीपलामूल इनका क्वाथ वातज्वरमें पिवे तो वातज्वर कहाँ रहा? अथवा धनियाँ, देवदारु और कटेरी तथा सोंठ इनका क्वाथ वातज्वरमें उत्तम पाचन है॥३७३॥

अथ बृहत्पञ्चमूलादिक्वाथः ।

पञ्चमूलीबलारास्नाकुलत्थैः सहपौष्करैः । क्वाथो हन्याच्छिरः कम्पं पर्वभेदं मरुज्ज्वरम् ॥ ३७४ ॥

पञ्चमूली--बिल्वादिः ।

पंचमूल (बेलगिरी, श्योनाक, कुम्भेर, पाढल और अरणी,) खिरैंटी, रायसन, कुलथी, और पोहकरमूल इनका क्वाथ-शिरःकम्प, संधियोंकी पीडा और वातज्वरको नष्ट करता है ॥ ३७४ ॥

अथ कणादिक्वाथः ।

कणारसोनामृतवल्लिविश्वानिदिग्धिकासिन्धुकभूमिनिम्बैः । समुस्तकैराचरितः कषायो हिताशिनां हन्ति गदानिमांस्तु ॥ ३७५ ॥ ज्वरं मरुद्दुष्टिसमुद्भवं तथा बलासजं चानलमन्दता च । कण्ठावरोधं हृदयावरोधं स्वेदञ्च रोमाञ्चहिमत्वमोहान् ॥ ३७६ ॥

पीपल, लहसुन, गिलोय, सोंठ, कटेरी, सैंधानमक, चिरायता और नागरमोथा इनका क्वाथ-पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्योंके वातज्वर, मंदाग्नि, कंठरोध, हृदयका अवरोध,

पसीना, रोमांचोंका खडे होना, शीतता और मोहको नष्ट करता है ॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥

अथ कल्पतरुरसः ।

शुद्धं शङ्करशुक्रमक्षतुलितं मारारिनारीरजस्तद्वत्तावदुमापतिस्फुटगलालङ्कारवस्तु स्मृतम् । तावत्येव मनःशिला च विमला तावत्तथा टंकणं शुण्ठी द्व्यक्षमिता कणा च मरिचं दिक्पालसंख्याक्षकम् ॥३७७॥ विषादिवस्तूनि शिलोपरिष्टाद्विचूर्णयेद्वाससि शोधयेच्च । ततस्तु खल्वे रसगन्धकौ च चूर्णश्च तद्यामयुगं विमर्द्य ॥ ३७८ ॥ कल्पतरुनामधेयो यथार्थनामा रसः श्रेष्ठः । समीरणश्लेष्मगदान् हरते मात्राऽस्य गुञ्जैका ॥ ३७९ ॥ आर्द्रकेन सममेष भक्षितो हन्ति वातकफसम्भवं ज्वरम् । श्वासकासमुखसेकशीततावह्निमान्द्यविषुचीश्च नाशयेत् ॥३८०॥ नस्येन स्वेन हरति शिरोऽर्ति कफवातजाम् । मोहं महान्तमपि च प्रलापं क्षवथुग्रहम् ॥ ३८१ ॥ सामान्यज्वरचिकित्सोक्तो महाज्वराङ्कुशः प्रदेयोऽत्र ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला, वत्सनाभ एक तोला, मैनशिल एक तोला, सोनामाखी एक तोला, सुहागा एक तोला, सोंठ दो तोले, पीपल दो तोले और कालीमिरच दश तोले लेवे, प्रथम वत्सनाभादि औषधियोंको शिलापर खूब बारीक पीसकर कपडेमें छान लेवे, पश्चात् इस चूर्णको तथा पारेको और गन्धकको खरलमें डालकर दो प्रहरतक खरल करे तो कल्पतरु नाम रस सिद्ध होता है । यह कल्पतरुके समान गुणोंवाला है. यह कल्पतरु रस वात और कफके रोगोंको नष्ट करता है । इसकी मात्रा एक रत्तीकी जाननी । अदरखके रसके साथ इसका भक्षण करनेसे वातज्वर, कफज्वर, श्वास, कास, मुखसे पानीका गिरना, शीतका लगना, मन्दाग्नि और विषूचिका रोग नष्ट होता है । इस रसका नस्य देनेसे कफसम्बन्धी और वातसम्बन्धी शिरकी पीडा, प्रलाप, मोह और छींकका रुकना ये सब दूर होते हैं । सामान्य ज्वरकी चिकित्सामें जो महाज्वरांकुश कह आये हैं उसको भी यहां देना चाहिये ॥ ३७७ ॥ ३८१ ॥

अथ त्रिपुरभैरवरसः ।

विषमहौषधमागधिकोषणद्युमणिरक्तकमार्द्रकमर्दितम् । क्रमविवर्द्धितमुद्दलते ज्वरं त्रिपुरभैरव एष रसो वरः ॥३८२॥

द्युमणिः-मारितं ताम्रम्, तस्य भागाः पञ्च । रक्तकम्-हिंगुलम्, तस्य भागाः षट् । मात्राऽस्य रत्तिकार्द्धम् त्रिपुरभैरवो रसो ज्वरे प्रयोज्यः ॥

वत्सनाभ विष एक भाग, सोंठ दो भाग, पीपल तीन भाग, मिरच चार भाग, तांबेके भस्म पांचभाग और सिंग्रफ छः भाग इन सबको एकत्र करके अदरखके रसमें खरल करे तो त्रिपुरभैरव रस सिद्ध होता है । यह ज्वर नष्ट करता है । इसकी मात्रा आधी रत्ती भरकी है ॥ ३८२ ॥

अथ स्वेदविधिगुणौ ।

वातश्लेष्मज्वरे स्वेदं जंघापार्श्वास्थिशूलिनि । पीनसश्वासबाधिर्ये कारयेत्तद्विधानवित् ॥ ३८३ ॥ स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् । हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति ॥ ३८४ ॥

जंघामें पीडा हो, पसली और हड्डियोंमें शूल हो तथा पीनस, श्वास और बधिरता हो तो ऐसे वातज्वर अथवा कफ ज्वरमें विधिपूर्वक स्वेदकर्मको जाननेवाला वैद्य स्वेद देवे । स्वेदशरीरकी रस बहनेवाली नाडियोंको नरम

करके अग्निको अग्न्याशयमें पहुँचाकर कफ और वायुके बन्धनको तोडकर ज्वरको दूर करता है ॥ ३८३ ॥ ३८४ ॥

अथ वालुकास्वेदः।

खर्परभृष्टपटस्थितकाञ्जिकसंसिक्तवालुकास्वेदः। शमयति वातकफामयशूलाङ्गभङ्गकम्पादीन् ॥ ३८५ ॥ कम्पे शिरोहृदयगात्रव्यथायां जृम्भायां पादसुप्ततायाम्। पिण्डिकोद्वेष्टनेऽङ्गसादे हनुस्तम्भे च लोमहर्षे ॥ ३८६ ॥

वालूको खीपडेमें गरम करके कपडेमें बांधकर उसकी पोटली बनाकर कांजीमें उसको बुझाकर वारंवार स्वेद देवे। यह वालुकास्वेद वातकफके रोग, शिरःशूल और अंगभंगादिकोंको शमन करता है। कम्प, शिरकी पीडा, हृदयकी पीडा, शरीरकी पीडा, जम्भाई, पावोंका सोजाना, पिंडरियोंकी हडफूटन, अंगकी जडता, ठोडीका जकड जाना और रुओंका खडा होना इनको शमन करता है ॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥

अथ कवलविधिगुणौ।

मातुलुङ्गफलकेशरो धृतः सिन्धुजन्ममरिचान्वितो मुखे। हन्ति वातकफरोगमास्यगं शोषमाशु जडतामरोचकम् ॥ ३८७ ॥ अयं कवलः कण्ठौष्ठमुखशोषे प्रदेयः) ॥

बिजौरेनींबूकी केशर, सैंधानमक और कालीमिरच इनको एकत्र पीसकर इसका मुखमें कवल धारण करे तो वातसम्बन्धी और कफसम्बन्धी मुखगत रोग, मुखशोष, जडता और अरुचि तत्काल नष्ट होजाती है ॥३८७॥

अन्यच्च-शर्करादाडिमाभ्याश्च द्राक्षादाडिमयोस्तथा। कल्कं विधारयेदास्ये शोषवैरस्यनाशनम् ॥ ३८८ ॥ द्राक्षामलकयोः कल्कं सघृतं वदने क्षिपेत्। तेन घृष्ट्वा मुखस्यान्तः कुर्वीत प्रतिसारणम् ॥ ३८९ ॥ तेन तालुगलान्तस्थः संशोषश्चैव शाम्यति। सुरसं जायते वक्त्रं रुचिर्भवति भोजने ॥ ३९० ॥

मिश्री और अनारका अथवा दाख और दाडिमका कल्क मुखमें धारण करनेसे मुखशोष और मुखकी विरसता दूर होती है। दाख और आमलोंका कल्क बनाकर उसमें घी मिलाकर मुखमें रक्खे और उससे मुखके भीतरका भाग घिसे तो लार गिरकर तालु और गलेका शोष शान्त हो जाता है, मुखकी विरसता दूर होकर रसान्वित हो जाता है और भोजनमें रुचि उत्पन्न होती है ३८८-३९॥

अथ निद्रानाशकारणम्।

नावनं लंघनं चिन्ता व्यायामः शोकभीरुषः। एभिरेव भवेन्निद्रानाशः श्लेष्मातिसंक्षयात् ॥ ३९१ ॥

नस्य, लंघन, चिन्ता, परिश्रम, शोक, भय और क्रोध इन कारणोंसे कफका अत्यन्त क्षय होकर निद्रा नष्ट होजाती है ॥ ३९१ ॥

अथ निद्रानाशचिकित्सा।

भृष्टन्तु विजयाचूर्णं मधुना निशि भक्षयेत्। निद्रानाशेऽतिसारे च ग्रहण्यां पावकक्षये ॥ ३९२ ॥ गुडं पिप्पलिमूलस्य चूर्णेनालोडितं लिहेत्। चिरादपि च संनष्टां निद्रां प्राप्नोति मानवः ॥ ॥ ३९३ ॥ वायसजंघामूलं बद्धं वा शिरसि काकमाच्याश्च। विधृतं निद्राजनकं त्वङ्मूलं वा शृतं सगुडम् ॥ ॥ ३९४ ॥ मूलन्तु काकमाच्या बद्धं सूत्रेण मस्तके नियतम्। विदधाति नष्टनिद्री निद्रामाश्वेव सिद्धमिदम्।

शीलयेन्मन्दनिद्रस्तु क्षीरमद्यरसान्दधि । अभ्यङ्गोद्वर्तनस्नानमूर्द्धकर्णाक्षितर्पणम् ॥ ॥ ३९५ ॥ कान्ताबाहुलताऽऽश्लेषो निर्वृतिः कृतकृत्यता । मनोनुकूला विषयाः कामं निद्रासुखप्रदाः ॥३९६॥ रसे शाके च सूपे च सर्पिर्यूषपयःसु च । निद्रां सञ्जनयत्याशु पलाण्डुरुपयोजितः ॥ ३९७ ॥ ऐक्षवं पोतका माषः सुरा मांसरसः पयः । गोदुग्धतिलमत्स्याश्च निद्रां कुर्वन्ति देहिनाम् ॥ ३९८ ॥

भुनी हुई भांगका चूर्ण करके शहतमें मिलाकर रात्रिमें भक्षण करे तो निद्राका नाश, अतीसार, संग्रहणीरोग और अग्निकी क्षीणता नष्ट होती है । पीपलामूलका चूर्ण गुडमें मिलाकर खानेसे बहुत दिनोंकी नष्ट हुई निद्रा आजाती है । काकजंघाकी जडको अथवा मकोयकी जडको शिरमें धारण करनेसे बांधनेसे किंवा मकोयकी जड और छालका क्वाथ बनाकर उसमें गुड मिलाकर पिवे तो निद्रा उत्पन्न होती है । मकोयकी जडको सूतमें बांधकर निरन्तर मस्तकपर धारण करनेसे नष्ट हुई निद्रा तत्काल आजाती है । जिनकी निद्रा मन्द होगई हो अर्थात् थोडी आती हो वे दूध, मदिरा, मांसरस, दही, तेलकी मालिस, उबटन, स्नान, शिरमें तेल लगाना, कानोंमें तेल डालना और नेत्रोंमें तेल भरना इनका अभ्यास करें । सुन्दर स्त्रीकी बहुरूपी लताका आलिंगन, सन्तोष, कृतार्थता और मनको जो प्रिय लगे ऐसे विषय, निद्राके सुखको देनेवाले हैं । मांसके रसमें, शाकमें दालमें, घीमें, यूषमें और दूधमें प्याज मिलाकर खाय तो तत्काल निद्रा आजाती है । ईखके रससे बने हुए पदार्थ, पोईका शाक, उडद, मदिरा, मांसरस, दूध, गेहूँ, तिल और मछली ये सब पदार्थ मनुष्योंको निद्रा लानेवाले हैं ॥ ३९२-३९८ ॥

अथ दारुषट्कलेपः ।

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः । लिम्पेत् कोष्णैरम्लपिष्टैः शूलाध्मानयुतोदरम् ॥ ३९९ ॥

देवदारु, सफेद वच, कूठ, सतावर, सोया, हींग और सैंधानमक इन सबको नींबूके रसमें पीसकर कुछेक गरम करके लेप करे तो उदरका शूल और अफारा दूर हो जाता है ॥ ३९९ ॥

अथ कर्णनादचिकित्सा ।

कटुतैलं कणाहिङ्गुवचालशुनसाधितम् । उष्णं विनिहितं हन्ति कर्णयोर्निःस्वनव्यथाम् ॥ ४०० ॥

पीपल, हींग, वच और लहसुन इनको कडवे तेलमें पकाकर उस तेलको कानमें डालनेसे कानमें शब्द होनेकी व्यथा नष्ट हो जाती है ॥ ४०० ॥

अथ शुष्ककासचिकित्सा ।

कणा सुगन्धिवचया यवान्या च समन्विता । ताम्बूलसहिता हन्ति शुष्ककासं मुखे धृता ॥ ४०१ ॥

सुगन्धित वच, अजवायन और पान इनके साथ पीपलको मुखमें रखनेसे सूखी खाँसी नष्ट होती है ॥ ४०१ ॥

अथ वातज्वरहितवस्तूनि ।

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः। मुद्गामलकयूषस्तु बद्धविट्काय दीयते ॥ ४०२ ॥ पेयां वा रक्तशालीनां वस्तिपार्श्वशिरोरुजि । श्वदंष्ट्रकण्टकारीभ्यां-सिद्धां ज्वरहरीं पिवेत् । कासी श्वासी च हिक्की च पञ्चमूलीशृतां पिवेत्॥४०३॥ पेयामिति शेषः ॥

श्रम, उपवास और वायुसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मांस, रसयुक्त भात हितकारी है । जो

वातज्वरमें मल बन्ध गया हो तो मूँग और आमलोंका यूष देवे । वातज्वरमें मूत्राशय, पसली और शिरमें पीडा हो तो गोखरू और कटेरीके क्वाथसे सिद्ध की हुई लाल शालि चावलोंकी ज्वरनाशक पेया पिवे, वातज्वरमें खाँसी, श्वास, हिचकी हो तो पञ्चमूलके क्वाथसे सिद्धकी हुई पेया पिवे ॥४०२॥४०३॥

अथ पित्तज्वराधिकारः ।

पित्तलाहारचेष्टाभ्यां पित्तमामाशयाश्रयम् । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरकृत्स्याद्रसानुगम् ॥ ४०४ ॥

तहां प्रथम पित्तज्वरकी दूरके और समीपके कारण कहकर सम्प्राप्ति कहते हैं । पित्तकारक आहार और विहारके करनेसे दुष्ट हुआ पित्त आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करता है ॥ ४०४ ॥

पित्तस्य पङ्गुत्वात्तेन कोष्ठाग्नेरूष्मा बहिर्नेतुं न शक्यते । तथाहि-पङ्गु कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥४०५॥ इति । ततोऽत्र पित्तं वातसहायं बोद्धव्यम् । यत आह-द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येकदोषजः । एकस्तु कुपितो दोष इतरानपि कोपयेत् ॥ ४०६ ॥

"पित्त पंगु है, कफ पंगु है, मल और धातु भी पंगु हैं, इस कारण वायु जहां उनको ले जाती है, वहीं वे बादलोंके समान चले जाते हैं ।" ऐसा कहा है । पित्त पंगु होनेके कारण कोठेकी अग्निको कैसे बाहर ले जासकता है अर्थात् नहीं ले जासकता है, तथापि वायुकी सहायतासे बाहर ले जाता है, ऐसा जानना । कहा भी है कि-संसारमें कोई द्रव्य एक रसवाला नहीं और कोई भी रोग एक दोषसे नहीं होता है, एक दोषके कुपित होनेसे दूसरे दोष भी कुपित होजाते हैं ॥ ४०५ ॥ ४०६ ॥

पित्तज्वरे उत्पत्स्यति नेत्रदाहः स्यात् । स च श्रमादिपूर्वको भवति ॥

पित्तज्वरके उत्पन्न होनेसे कुछेक पहिले श्रम आदि होकर नेत्रोंमें दाह होता है ॥

अथ पित्तज्वरलक्षणम् ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राऽल्पत्वं तथा वमिः । कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ ४०७ ॥ प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा । पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥ ४०८ ॥

अतिसार-पित्तस्य तस्य सरत्वात्सद्रवमलप्रवृत्तिः, तु अतिसारवत्तस्य ज्वरोपद्रवत्वात् । वमिः--यदापित्तं कफस्य स्थानं याति तदा बोद्धव्यम् । प्रलापः-अनर्थकं वचः । मूर्च्छा-रूपादेरज्ञानम् । मदः-पूगकोद्रवधत्तूरभक्षणादिव मत्तता । भ्रमः--चक्रारूढस्येव ज्ञानम् । चकारात् रक्तकण्ठादयो बोद्धव्याः ॥

पित्तज्वरमें ज्वरका वेग तीक्ष्ण होता है, अतिसार होता है, निद्रा अल्प आती है पित्त कफके स्थानमें जाता है तब वमन होती है कण्ठ, होठ, मुख और नासिका पक जाते हैं, पसीना आता है, रोगी वृथा बकवाद करता है, मुखमें कडवापन अथवा तीखापन होता है । बेहोशी होती है, दाह, मद तथा कफ आदिके होता है, विष्ठा, मूत्र और नेत्र पीले हो जाते हैं तथा भ्रम होता है । पित्तज्वरमें अतिसार होता है उसमें अतिसारके समान पतला मल नहीं आता है किन्तु पित्त द्रवरूप होनेसे द्रवरूप दस्त आता है, ऐसा जानना । कारण यह है कि-अतिसार ज्वरका उपद्रव है ॥ ४०७ ॥ ४०८ ॥

अथ पित्तज्वरचिकित्सा ।

आमाशयस्थो हत्वाऽग्निं सामो मार्गान्पिधापयन् । विदधाति ज्वरं दोषस्तस्याल्लंघनमाचरेत् ॥ ४०९ ॥ इति वचनात्सामान्यतो ज्वरितमात्रस्य यावदारोग्यदर्शनं लंघनविधानम् । पित्तज्वरिणो लंघनविधाने विशेषमाह सुश्रुतः--

पैत्तिके दशरात्रेण ज्वरे युञ्जीत भेषजम् ॥ ४१० ॥

दशरात्रेण--लंघनवता व्यतीतेनेत्यर्थः ॥

दुष्ट हुए वातादि दोष आमाशयमें जाकर अग्निको आच्छादित करके अन्न आदि अपक्व रसके साथ मिलकर शरीरके स्रोतोंको ढककर ज्वरको उत्पन्न करते हैं इस कारण ज्वरमें लंघन कराने चाहिये। इस प्रकार सामान्य रीतिसे ज्वरके आरोग्य होने पर्यन्त लंघन करावे। तहां पित्तज्वरमें लंघन करानेके विषयमें सुश्रुत विशेष कहता है कि-"पित्तज्वरमें दश रात्रितक लंघन कराकर पश्चात् औषधि देनी चाहिये" ॥ ४०९ ॥ ४१० ॥

अथ तिक्तादिक्वाथः ।

तिक्तामुस्तयवैः पाठाकट्फलाभ्यां सहोदकम् । पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिकज्वरे ॥ ४११ ॥

कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, पाढ और कायफल इनका क्वाथ बनाकर उसमें चीनी मिलाकर पिवे। यह पित्तज्वरमें उत्तम पाचन है ॥ ४११ ॥

पर्पटादिक्वाथः ।

पर्पटो वासकस्तिक्ता कैरातो धन्वयासकः। प्रियङ्गुश्च कृतः क्वाथ एषां शर्करया युतः। पिपासादाहपित्तास्रयुक्तं पित्तज्वरं हरेत् ॥ ४१२ ॥

पित्तपापडा, अडूसा, कुटकी, चिरायता, धनियां और फूलप्रियंगू इनके क्वाथमें चीनी मिलाकर पीनेसे प्यास, दाह और रक्तपित्तसहित पित्तज्वर नष्ट होता है ॥

अथ द्राक्षादिक्वाथः ।

द्राक्षा हरीतकी मुस्ता कटुका कृतमालकः। पर्पटश्च कृतः क्वाथ एषां पित्तज्वरापहः ॥ ४१३ ॥ मुखशोषप्रलापार्तिदाहमूर्च्छाभ्रमप्रणुत्। पिपासारक्तपित्तानां शमनो भेदनो मतः ॥ ४१४ ॥

दाख, हरड, नागरमोथा, कुटकी, अमलतास और पित्तपापडा इनका क्वाथ बनाकर पिवे तो यह पित्तज्वर मुखशोष, प्रलाप, पीडा, दाह, मूर्छा, भ्रम, प्यास और रक्तपित्तको शमन करता है तथा दस्तावर है ॥ ४१३ ॥ ४१४ ॥

अथ पोटलादिकक्वाथः ।

पटोलयवधान्याकमधुकं मधुसंयुतम् । हन्ति पित्तज्वरं दाहं तृष्णाश्चातिप्रमाथिनीम् ॥ ४१५ ॥

पटोलपात, इन्द्रजौ, धनियां और मुलहठी इनके क्वाथमें सहत डालकर पीनेसे-पित्तज्वर दाह और अत्यन्त तीव्र तृषा नष्ट होती है ॥ ४१५ ॥

अथ गुडूच्यादिक्वाथः ।

गुडूच्यामालकैर्युक्तः केवलो वापिपर्पटः । पित्तज्वरं हरेत्तूर्णं दाहशोषभ्रमान्वितम् ॥४१६॥ एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः। किं पुनर्यदि युञ्जीत चन्दनोशीरवालकैः ॥ ४१७ ॥

गिलोय, आमले और पित्तपापडा इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे अथवा केवल एक पित्तपापडेका ही क्वाथ बनाकर पीनेसे दाह, शोष और भ्रमयुक्त पित्तज्वर नष्ट होता है। केवल एक पित्तपापडा ही पित्तज्वरको नष्ट

करनेके लिये श्रेष्ठ है और जो उसमें चन्दन, खस और सुगन्धवाला मिला दिया जाय तो कहना ही क्या है ॥ ४१६ ॥ ४१७ ॥

अथ ह्रीबेरादिक्वाथः।

ह्रीबेरचन्दनोशीरघनपर्पटसाधितम् । दद्यात् सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ॥ ४१८ ॥

सुगन्धवाला, चन्दन, खस, नागरमोथा और पित्तपापडा इनसे पकाया हुआ जल अत्यन्त शीतल करके पिवे तो तृषा, वमन, ज्वर और दाह नष्ट होता है ॥ ४१८ ॥

अथ भूनिम्बादिक्वाथः।

भूनिम्बातिविषालोध्रमुस्तकेन्द्रयवामृताः। बालकं धान्यकं बिल्वं कषायो माक्षिकान्वितः। विड्भेदश्वासकासांश्च रक्तपित्तज्वरं हरेत् ॥ ४१९ ॥

चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इन्द्रजौ, गिलोय, सुगन्धवाला, धनियां और बेलगिरी इनका क्वाथ सहत मिलाकर पिवे तो यह मलभेद, श्वास, खांसी, रक्तपित्त और पित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ ४१९ ॥

अथ महाद्राक्षादिक्वाथः।

द्राक्षाचन्दनपद्मानि मुस्ता तिक्ताऽमृताऽपि च। धात्री बालमुशीरं च लोध्रेन्द्रयवपर्पटाः ॥ ४२० ॥ परूषकं प्रियङ्गुश्च यवासो वासकस्तथा। मधुकं कुलकश्चापि किरातो धान्यकं तथा ॥ ४२१ ॥ एषां क्वाथो निहन्त्येव ज्वरं पित्तसमुत्थितम्। तृष्णां दाहं प्रलापश्च रक्तपित्तं भ्रम क्लमम् ॥४२२॥ मूर्च्छां छर्दिं तथा शूलं मुखशोषमरोचकम्। कासं श्वासश्च हृल्लासं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४२३ ॥

दाख, लालचन्दन, कमल, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, आमले सुगन्धवाला, खस, लोध, इन्द्रजौ, पित्तपापडा, फालसे, फूलप्रियंगू, जवासा, अडूसा, मुलहठी, बेर, चिरायता और धनियाँ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रलाप, रक्तपित्त भ्रम, क्लम, (ग्लानि), मूर्च्छा, वमन, शूल, मुखशोष, अरुचि, खांसी, श्वास और उबकाई ये सब नष्ट होते हैं ॥ ४२०–४२३ ॥

अथ धान्याकक्वाथः।

ससितो निशि पर्युषितः प्रातर्धान्याकसम्भवः क्वाथः। पीत शमयत्यचिरादन्तर्दाहं ज्वरं पैत्तम् ॥ ४२४ ॥

रात्रिके समय धनियेको भिगोदेवे, प्रातःकाल क्वाथ बनाकर उसमें मिश्री मिलाकर पिवे तो थोडेही समयमें अन्तर्दाहयुक्त पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ४२४ ॥

अथामृताहिमवासाहिमौथ।

अमृताया हिमः प्रातः ससितः पैत्तिकं ज्वरम्। वासायाश्च तथा कासरक्तपित्तज्वरान्जयेत् ॥ ४२५ ॥

गिलोयका हिम बनाकर उसमें मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पिवे तो पित्तज्वर नष्ट होता है। अडूसेके हिममें मिश्री अथवा चीनी मिलाकर प्रातःकाल पिवे तो खांसी, रक्तपित्त और पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २४५ ॥

अथ गुडूच्यादिक्वाथः।

गुडूची भूमिनिम्बश्च बाल वीरणमूलकम्। लघुमुस्तं त्रिवृद्धात्री द्राक्षा वासा च पर्पटः ॥ ४२६ ॥ एषां क्वाथो हरत्येव ज्वरं पित्तकृतं द्रुतम्। सोपद्रवमपि प्रातर्निपीतो मधुना सह ॥ ४२७ ॥

गिलोय, चिरायता, सुगन्धवाला, खस, मोथा, निसोत, आमले, दाख, अडूसा और पित्तपापडा इनका क्वाथ बनाकर सहतके साथ प्रातःकाल पिवे तो उपद्रव सहित घोर पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ४२६ ॥ ४२७ ॥

अथ प्रलेपः ।

पलाशस्य बदर्या वा निम्बस्य मृदुपल्लवैः । अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं हन्याद्दाहयुतं ज्वरम् ॥ ४२८ ॥

ढाकके, बेरीके अथवा नीमके कोमल पत्ते लेकर नींबूके रसमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे दाहसहित पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ४२८ ॥

अथ शीतलजलधारा ।

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रे निहिते च नाभौ । शीताम्बुधारा बहुला पतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं ज्वरञ्च ॥ ४२९ ॥

पित्तज्वरवाले मनुष्यको चित्त सुलाकर उसकीनाभिके ऊपर ताँबे अथवा काँसीके पात्रको स्थापन करे। उसमें अत्यन्त शीतल जलकी धारा छोडे तो तत्काल दाह और ज्वर नष्ट होता है ॥ ४२९ ॥

अथ पथ्याद्यवलेहः ।

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैर्लिहन् दाहज्वरापहाम् । कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासान्हन्ति वमीमपि ॥ ४३० ॥ तैलघृतक्षौद्रैरित्यत्र न समुच्चयस्तेन केवलेन क्षौद्रेणापि लिह्यात ॥

हरडको तेल, घी और सहतके साथ अथवा केवल सहतके साथही हरडको चाटनेसे दाहसहित पित्तज्वर, खांसी, रक्तपित्त, विसर्प, श्वास और वमन दूर होती है ॥ ४३० ॥

अथार्द्रवस्त्रधारणम् ।

काञ्जिकार्द्रपटेनावगुण्ठनं दाहनाशनम् । अथ गोतक्रसंस्विन्नशीतलीकृतवाससा ॥ ४३१ ॥

कांजीमें वस्त्रको भिगोकर रोगीके शरीरपर उढावे अथवा गायके तक्र में वस्त्रको उसेकर पश्चात् खूब शीतल करके शरीरपर धारण करे तो दाह दूर होजाता है ॥ ४३१ ॥

अथ कवलः ।

द्राक्षामलककल्केन कवलोऽत्र हितो मतः । पक्वदाडिमबीजैर्वा धान्यकल्केन च क्वचित् ॥ ४३२ ॥

पित्तज्वरमें दाख और आमलोंके कल्कका कवल हितकारी है। पके अनारके कल्कका वा धनियोंके कल्कका कवल हितकारक है ॥ ४३२ ॥

अथ तर्पणम् ।

दाहकम्पार्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयाऽन्वितम् । शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् ॥ ४३३ ॥

लाजतर्पणम्-लाजसक्तुरूपं तर्पणम् । सन्तर्पणस्वरूपमुक्तं सामान्यज्वरचिकित्सायाम् । "मुद्गयूषौदनो देयः सितया पैत्तिके ज्वरे । "

दाह और कम्पसे पीडित, दुर्बल, निराहार और तृषायुक्त ऐसे ज्वररोगीको खीलोंके सत्तुओंमें मिश्री और सहत डालकर पिलावे यह तर्पण है। सन्तर्पणका स्वरूप सामान्यज्वरकी चिकित्सामें प्रथम कह आये हैं । पित्तज्वरमें मूँगकी यूषसे भीजा हुआ भात चीनी मिलाकर खानेको देवे ॥ ४३३ ॥

अथ पित्तज्वरोपचारः ।

हर्म्ये शुभ्राभ्रसङ्काशे शशाङ्ककरशीतले । मलयोदकसंसिक्ते सुप्यात्पित्तज्वरी नरः ॥ ४३४ ॥

पित्तज्वरवाला श्वेतबादलके समान निर्मल, चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल हुआ और जिसमें चन्दन खस आदिका जल छिडका हो, ऐसे भवनमें शयन करे ॥ ४३५ ॥

हारावलीचन्दनशीतलानां सुगन्धपुष्पाम्बरभूषितानाम्। नितम्बिनीनां सुपयोधराणामालिङ्गनान्याशु हरन्ति दाहम् ॥ ४३५ ॥ आह्लादश्चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत्पुनः। हितश्च भोजयेदन्नं न प्रीतिसुरतं महत् ॥ ४३६ ॥ वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः। नार्यश्चन्दनदिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्यहरा मताः ॥ ४३७ ॥

जिनके कण्ठमें मोतियोंकी माला पडी है, जिनका शरीर चन्दनादिके प्रलेपसे शीतल होरहा है, सुगन्धित पुष्प और सुन्दर वस्त्रोंसे जिनका शरीर अलंकृत होरहा है और पुष्ट स्तनोंवाली ऐसी स्त्रियोंका आलिंगन तत्काल दाहको नष्ट करता है। जब स्त्रीके आलिंगनसे रोगीका मन आल्हादित होजाय और मैथुन करनेकी इच्छा करे तो तत्काल स्त्रीको रोगीके समीपसे हटा लेवे। पश्चात् रोगीको हितकारक पदार्थ भोजन करावे किन्तु प्रीतिके साथ स्त्रीके प्रसंग नहीं करावे। प्रफुल्लित कमलवाली बावडी, जिनमें सुन्दर फुहारे छूट रहे हों ऐसे घर और चन्दनादिसे चर्चित स्त्री ये सब पित्तज्वरसे उत्पन्न हुई दाहकी दीनताको शांत करते हैं ॥ ४३५-४३७ ॥

इति पित्तज्वराधिकारः।

अथ कफज्वराधिकारः।

श्लेष्मलाहारचेष्टाभ्यां कफो ह्यामाशयाश्रयः। बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरकृत्स्याद्रसानुगः ॥ ४३८ ॥ कफस्य कोष्ठाग्नितेजसो बहिर्नयने पङ्गुत्वाशङ्कायां जातायां पित्तस्येव सिद्धान्तो बोद्धव्यः ॥

अब कफज्वरके दूर और समीप के कारण कहकर सम्प्राप्ति कहते हैं।

कफको करनेवाले आहार और विहारोंके करनेसे कफ आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करता है। 'कफ पंगु है' ऐसा पहिले कह चुके हैं, इस वचनसे कफ पंगु होनेपर कोठेकी अग्निको बाहर कैसे लेजा सकता है? ऐसी शंका होती है। इसका समाधान पित्तज्वराधिकारके आरम्भमें कह आये हैं उसके अनुसार जानना ॥ ४३८ ॥

अथ कफज्वरपूर्वरूपम्।

"कफादन्नाभिनन्दनम्" इति। कफज्वरे उत्पत्स्यति अनन्नाभिलाषः स्यात्स च श्रमादिपूर्वको भवति ॥

जब कफज्वर उत्पन्न होनेको होता है, तब उससे कुछ पहिले श्रमादि उत्पन्न होकर विशेष करके अन्नमें अरुचि उत्पन्न होती हैं ॥

अथ कफज्वरलक्षणम्।

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता। शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तम्भस्तृप्तिरथापि वा ॥ ४३९ ॥ गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता। प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥ ४४० ॥

स्तैमित्यमङ्गानाम्, आर्द्रपटावगुण्ठितत्वमिव। स्तिमितो वेगः ज्वरस्य मन्दोवेगः। आलस्यं समर्थस्यापि कर्मणि अनुत्साहः। स्तम्भः अङ्गानाम् अनम्रता तृप्तिः अन्नानभिलाषः सत्यपि भोजनसामर्थ्ये। गौरवं गात्राणाम्। शीतं 'लगति' इति। शेषः। उत्क्लेदः वमनोपस्थितिरिव। अतिनिद्रता निद्राधिक्यम्। प्रतिश्यायो नासारोगविशेषः। अरुचिः भोजनानिच्छा, चकारात्पिडिका श्वेता मुखप्रसकश्छर्दि--स्तन्द्रा

हृदयोपलेप उष्णाभिलाषो वह्निमान्द्यमिति ॥ यत उक्तम्—

प्रसेकः पिडिका श्वेता छर्दिस्तन्द्रोष्णकामिता । कफेन लिप्तं हृदयं भवेदग्नेश्च मन्दता ॥ ४४१ ॥

कफज्वरमें शरीर भीजे वस्त्रसे ढके हुएके समान मालूम होता है । ज्वरका मन्दवेग हो, आलस्य हो, मुखमें मीठापन हो, मूत्र और विष्ठा सफेद हो, शरीरके सम्पूर्ण अवयव जकड जाँय खानेकी इच्छा होने परभी अन्नमें इच्छा न हो, शरीरमें भारीपन, शीतलगे, वमन होनेकीसी इच्छा हो, रोमांच खडे होजाय, अत्यन्त निद्रा आवे, जुखाम हो, भोजनमें अरुचि, खांसी और आंखें सफेद हो जाय तथा मुखके द्वारा पानीका गिरना, सफेद फुंसियोंका निकलना, वमन हो, तन्द्रा हो गरमीकी इच्छा हो, हृदय कफसे लिसासा प्रतीत हो और अग्निकी मन्दता होती है ॥ ४३९ ॥ ४४१ ॥

अथ कफज्वरचिकित्सा ।

आमाशयस्थो हत्वाऽग्निं सामो मार्गान्पिधापयन् । विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ॥ ४४२ ॥ इति वचनात्सामान्यतो ज्वरितमात्रस्य यावदारोग्यदर्शनं लङ्घनविधानम् । श्लेष्मज्वरिणो लंघनविधाने विशेषमाह सुश्रुतः- श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युञ्जीत भेषजम् ॥ ४४३ ॥ इति ।

द्वादशाहेन लङ्घनवता व्यतीतेनेत्यर्थः ॥

वातादि दोष दुष्ट होकर आमाशयमें जाकर अग्निको आच्छादित करके अन्न आदि अपक्वरसके साथ मिलकर शरीरके छिद्रों को ढककर ज्वरको उत्पन्न करते हैं इस कारण ज्वरमें लंघन कराने चाहिये इस कथनानुसार सामान्य रीतिसे ज्वरमें आरोग्य होनेपर्यन्त लंघन कराने चाहिये ऐसा कहा, तहाँ कफज्वरके विषयमें सुश्रुत विशेष कहता है कि- " कफज्वरमें लंघन करते हुए बारह दिनके बीत जानेपर पश्चात् औषधि देनी चाहिये " ॥ ४४२ ॥ ४४३ ॥

अथ पिप्पल्यादिक्वाथः ।

पिप्पल्यादिकषायन्तु कफजे परिपाचनम् ॥ ४४४ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली । नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकैलाजमोदिकाः ॥ ४४५ ॥ सर्षपो हिंगु भार्ङ्गी च पाठेन्द्रयवजीरकाः । महानिम्बश्च मूर्वा च विषा तिक्ता विडङ्गकम् ॥ ४४६ ॥ पिप्पल्यादिगणो ह्येष कफमारुतनाशनः । गुल्मशूलज्वरहरो दीपनस्त्वामपाचनः ॥ ४४७ ॥

कफज्वरमें पाचन करनेवाला पिप्पल्यादि क्वाथ देवे । पीपल, पीपलामूल, कालीमिरच, गजपीपल, सोंठ, चीता चव्य, रेणुका, इलायची, अजमोद, सरसों, हींग, भारंगी, पाढ, इन्द्रजौ जीरा, बकायन मूर्वा, अतीस, कुटकी, और वायविडंग इन सब औषधियोंके समुदायको पिप्पल्यादिगण कहते हैं यह पिप्पल्यादिगण–कफ और वातनाशक है तथा गुल्म, शूल और ज्वरको हरनेवाला है, अग्निको दीप्त करनेवाला और आमको पचानेवाला है ॥ ४४४ ॥ ४४७ ॥

अथ पिप्पल्यवलेहः ।

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः । प्लीहानं हन्तिहिक्काञ्च बालानामपि शस्यते ॥ ४४८ ॥

सहतमें पीपलका चूर्ण मिलाकर चाटनेसे श्वास, खाँसी, ज्वर, प्लीहा, तिल्ली और हिचकी दूर होती है तथा बालकोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ ४४८ ॥

अथ चतुर्भद्रिकावलेहः।

पिप्पली त्रिफला चापि समभागाञ्ज्वरी लिहन्। मधुना सर्पिषा चापि कासी श्वासी सुखी भवेत् ॥ ४४९ ॥

पीपल, हरड, बहेडा, आमला इनको समान भाग लेकर चूर्ण करे, फिर सहत अथवा घीके साथ चाटे तो कफज्वरवाला, खाँसी और श्वासरोगी सुखी होता है, अर्थात खाँसी और श्वास दूर होता है ॥ ४४९ ॥

अथान्यप्रकारः।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी कृष्णा च मधुना सह। श्वासकासज्वरहरो लेहोऽयं कफनाशनः ॥ ४५० ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडाशिंगी और पीपल इनका चूर्ण एकत्र करके सहतमें मिलाकर चाटे तो श्वास, खाँसी, ज्वर और कफका नाश होता है ॥ ४५० ॥

अथाष्टाङ्गावलेहः।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी यवानी कारवी तथा। कटुत्रयश्च सर्वाणि समभागानि चूर्णयेत् ॥ ४५१ ॥ आर्द्रकस्वरसैर्लिह्यान्मधुना वा कफज्वरी। कासश्वासारुचिच्छर्दिहिक्काश्लेष्मानिलापहा४५२

कायफल, पोहकरमूल काकडाशिंगी, अजवायन कलौंजी, सोंठ, मिरच और पीपल ये सब औषधि समानभाग लेकर चूर्ण करले, इस चूर्णको अदरखके रसमें अथवा सहतमें मिलाकर कफज्वररोगी चाटे तो खाँसी, श्वास, अरुचि, वमन, हिचकी, कफ और बात नष्ट होते हैं ॥ ४५१ ॥ ४५२ ॥

अथ निर्गुण्डीक्वाथः।

सिन्दुवारदलक्वाथं कणाढ्यं कफजे ज्वरे। जंघयोश्च बले क्षीणे कर्णे च पिहिते पिबेत् ॥ ४५३ ॥

कफज्वरमें जो जंघाओंका बल क्षीण होगया हो और कानोंमें बधिरता हो तो सम्हालूके पत्तोंके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पिवे ॥ ४५३ ॥

अथ यवान्यादिक्वाथः।

यवानी पिप्पली वासा तथा सारसवल्कलम्। एषां क्वाथं पिबेत्कासे श्वासे च कफजे ज्वरे ॥ ४५४ ॥

अजवायन, पीपल, अडूसा और पोस्तका डोंडा इनका क्वाथ बनाकर खाँसी, श्वास और कफज्वरमें पिवे ॥ ४५४ ॥

अथ वासादिक्वाथः।

वासाक्षुद्रामृताक्वाथः क्षौद्रेण ज्वरकासहृत् ॥ ४५५ ॥

अडूसा, कटेरी और गिलोयके क्वाथ सहत डालकर पीनेसे ज्वर और खांसी दूर होती है ॥ ४५५ ॥

अथ मरिच्यादिक्वाथः।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं कारवी कणा। चित्रकं कट्फलं कुष्ठं ससुगन्धिवचा शिवा ॥ ४५६ ॥ कण्टकारीजटा शृङ्गी यवानी पिचुमन्दकः। एषां क्वाथो हरत्येव ज्वरं सोपद्रवं कफात्४५७

कालीमिरच, पीपलामूल, सोंठ, कलौंजी, पीपल, चीता, कायफल, कूठ, सुगन्धितवच, हरड, कटेरीकी जड, काकडासिंगी, अजवायन और नीमकी छाल इनका क्वाथ उपद्रवसहित कफज्वरको नष्ट करता है

अथ कल्पतरुरसः।

कफवातव्याधिहरत्वाद्वाताधिकारोक्तकल्पतरुरसो योज्यः ॥

सिन्धुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेण कफे हितः ॥ ४५८ ॥

कवल इति शेषः ॥

मुद्गयूषौदनो देयो ज्वरे कफसमुत्थिते४५९

वातज्वराधिकारमें कहा हुआ कल्पतरुरस कफ वात नाशक होनेसे इस कफज्वरमें प्रयोग करना चाहिये। कवल-सैंधानमक, सोंठ मिरच, पीपल और राई इनको अदरखके रसमें पीसकर मुखमें कवल धारण करे। यह कफज्वरमें हितकारी है । कफज्वरमें मूँगके यूषके साथ भात खानेको देवे ॥ ४५८ ॥ ४५९ ॥

इति कफज्वराधिकारः ।

अथ वातपित्तज्वराधिकारः ।

वातपित्तकरैर्वातपित्ते ह्यामाशयाश्रये । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगे ज्वरकारिणी ॥ ४६० ॥

स्यातामिति शेषः ।

वहाँ सबसे प्रथम वातपित्तज्वरके विप्रकृष्ट और सनिकृष्ट कारण कहकर संप्राप्ति कहते हैं। वात और पित्तकारक आहार विहारके करनेसे वात और पित्त आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ४६० ॥

अथ वातपित्तज्वरपूर्वरूपम् ।

प्राग्रूपे वातपित्तस्य भवतो वातपैत्तिके ४६१

ज्वरः इति शेषः ।

वातपित्तज्वरमें वातज्वर और पित्तज्वर दोनोंके पूवरूप होते हैं ॥ ४६१ ॥

अथ वातपित्तज्वरलक्षणम् ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहो निद्रानाशः शिरोरुजा । कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः । पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ ४६२ ॥

पर्वभेदः पर्वाणि भिद्यन्ते इति, सन्धिषु व्यथा ॥

तृष्णा, मूर्च्छा, भ्रांति दाह, निद्राका नाश, शिरमें पीडा, कण्ठ और मुखका सूखना, वमन, रोमोंका खडा होना, अरुचिका होना, अन्धकारदर्शन सन्धियोंमें पीडा और जम्भाइयोंका आना ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥ ४६२ ॥

वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

वातपित्तज्वरे देयमौषधं पञ्चमेऽहनि ॥

वातपित्तज्वरमें पांचवें दिन औषधि देनी चाहिये ।

अथ किरातादि क्वाथः ।

किराततिक्तममृता द्राक्षा चामलकं शटी । निष्क्वाथ्य सगुडं क्वाथं वातपित्तज्वरे पिबेत् ॥ ४६३ ॥

चिरायता गिलोय, दाख, आमले और कचूर, इनके क्वाथमें गुड डालकर पीनेसे वाततित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ४६३ ॥

अथ पञ्चभद्रक्वाथः ।

गुडूची पर्पटो मुस्तं किरातो विश्वभेषजम् । वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ॥ ४६४ ॥

गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ इनका क्वाथ वातपित्तज्वरमें देना चाहिये । यह पञ्चभद्र क्वाथ उत्तम है ॥ ४६४ ॥

अथ त्रिफलादिक्वाथः ।

त्रिफला शाल्मली रास्ना राजवृक्षाटरूषकैः । शृतमम्बु हरत्याशु वातपित्तभवं ज्वरम् ॥ ४६५ ॥

हरड, बहेडा, आमला, सेमल, रायसन, अमलतास और अडूसा इनका क्वाथ वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ ४६५ ॥

अथ मधुकादिहिमः ।

मधुकं सारिवा द्राक्षा मधूकं चन्दनोत्पलम् । काश्मरीफलकं लोध्रं त्रिफला

पद्मकेशरम् ॥ ४६६ ॥ परूषकं मृणालञ्च क्षिपेत्संचूर्ण्य वारिणि । निशोषितं सिताक्षौद्रलाजयुक्तन्तु तत्पिबेत् ॥४६७॥ वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णां मूर्च्छाऽरुचिभ्रमान् । शमयेद्रक्तपित्तञ्च जीमूतमिव मारुतः ॥४६८॥ अत्र मधुकादि मृणालान्तं समुदितं पलद्वयपरिमितं संचूर्ण्य क्षिपेत् । वारिणि षट्पलपरिमिते । मधुकादिहिमो दाहे ॥

मुलहठी, सारिवा, दाख, महुआ, चन्दन, कमल, कुम्भेरका फल, लोध, त्रिफला, कमलकेसर, फालसे और कमलकी नाल ये सब आठ तोले लेकर चूर्ण करे और २४ तोले जलमें रात्रिके समय डालकर रख देवे, पश्चात् उस वासी जलमें मिश्री, सहत और खीलोंके सत्तू डालकर पिवे। जिस प्रकार पवन बादलोंको दूर कर देती है उसी प्रकार यह हिम वातपित्तज्वर, दाह, तृषा मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम और रक्तपित्तको दूर करता है ॥४६६-४६८॥

अथान्नम् ।

मुद्गामलकयूषस्तु वातपित्तज्वरे हितः ।
महादाहे प्रदातव्यो यूषश्चणकसम्भवः ॥
॥ ४६९ ॥ अन्यच्च-"दाडिमामलकमुद्गसम्भवो यूष उक्त इति वातपैत्तिके" इति ॥

कफवातहरा मुद्गाःकारवेल्ल्यादयस्तथा।
प्रायेण न च ते देया वातपित्तोत्तरे ज्वरे ॥ दत्तास्तु ज्वरभिष्टम्भशूलोदावर्तकारिणः ॥ ४७० ॥

मूंग और आमलोंका यूष वातपित्तज्वरमें हितकारी है और जो वातपित्तज्वरमें अत्यन्त दाह हो तो चनेका यूष देना चाहिये। पूर्व कहा हुआ अनार आमले और मूँगका यूष वातपित्तज्वरमें देना योग्य है । मूँग और करेला आदि कफवातनाशक पदार्थ वातपित्तज्वरमें नहीं देने चाहिये और जो यह दिये जायँ तो ज्वर, विष्टम्भ, शूल, और उदावर्त रोगको उत्पन्न करते हैं ॥ ४६९ ॥ ४७० ॥

इति वातपित्तज्वराधिकारः ॥

अथ वातकफज्वराधिकारः ।

वातश्लेष्मकरैर्वातकफावामाशयाश्रयौ ।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगौ ज्वरकारिणौ ॥ ४७१ ॥

वहां प्रथम विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट कारण कहकर वातकफ ज्वरकी सम्प्राप्ति कहते हैं। वात और कफकारक आहार विहारके करनेसे वात और कफ आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर वातकफज्वरको उत्पन्न करतेहैं ४७१

अथ वातकफज्वरपूर्वरूपम् ।

प्राग्रूपे वातकफयोः स्यातां वातकफज्वरे ॥ ४७२ ॥

वातकफज्वरमें वातज्वर और कफज्वरको इन दोनोंके पूर्वरूप होते हैं ॥ ४७२ ॥

अथ वातकफज्वरलक्षणम् ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च । शिरोग्रहः प्रतिश्यायःकासः स्वेदाप्रवर्तनम् ॥४७३॥ सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ४७४ ॥

स्वेदाप्रवर्त्तनम्-स्वेदस्य आसमन्ताद्भावेन प्रवृत्तिः।

तथा च हारीतः-"शिरोग्रहः स्वेदभवश्च कासो ज्वरस्य लिङ्गं कफवातजस्य" ४७५

स्वेदभावः-स्वेदोत्पत्तिः ॥

शरीर गीले कपडेसे ढकासा मालूम हो, संधियोंमें पीडा हो, निद्रा आवे, देहमें भारीपन हो, शिरमें पीडा, प्रतिश्याय हो, खाँसी, पसीनेका आना, सन्ताप हो और ज्वरका

मन्दवेग हो, यह वात कफज्वरके लक्षण जानने । यहां 'स्वेदाप्रवर्तनम्' इस पदमें पसीनोंका चारों ओरसे अधिक आना ऐसा अर्थ समझना चाहिये । जैसे कि, हारीतसंहितामें कहा है कि–' शिरमें पीडा हो, पसीने आवें और खाँसी हो तो वातकफज्वरके लक्षण जानने'' ॥ ४७३-४७५ ॥

ननु स्वेदः पित्तस्य धर्मः अत, एव पित्तज्वरे " कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते " इत्युक्तम् । तस्मात्कथं वातश्लेष्मज्वरे स्वेदस्यातिप्रवृत्तिः ?

शंका–पसीनोंका आना तो पित्तका धर्म है, क्योंकि पित्तज्वरमें कण्ठ, होठ, मुख और नासिका ये पकजाते हैं और पसीने आते हैं ऐसा कहा है, फिर वातश्लेष्मज्वरमें पसीनोंका आना कैसे हो सकता है ?

उच्यते–विकृतिविषमसमवायारब्धत्वान्न दोषः इति कार्तिकः । प्रकृतिसमसमवायस्य विकृतिविषमसमवायस्य च अयमर्थः–प्रकृत्या हेतुभूतया समःकारणानुरूपः समवायःकार्यकारणभावः सम्बन्धः प्रकृतिसमसमवायः । कारणानुरूपं कार्यमिति यावत् । यथा प्रकृतैर्यथास्थितैः शुक्लैस्तन्तुभिः समवायकारणैरारब्धःपटः शुक्ल एव भवति । यथा च प्रकृतेन केवलेन वातेन पित्तेन कफेन वा तज्जनितो ज्वरो वाताद्युचितैर्धर्मैर्वेपथुवेगाधिक्यस्तैमित्यादिभिर्युक्तो भवति । विकृतिविषमसमवायस्तु विकृत्या हेतुभूतया विषमः कारणाननुरूपःसमवायः कार्यस्य कारणे सम्बन्धः । यथा संयोगाद्विकृताभ्यां हरिद्राचूर्णाभ्यां हेतुभूताभ्यां विषमः कारणाननुरूपो लोहितो वर्णो जायेत । तथा योगेन विकृताभ्यां वातश्लेष्माभ्यां हेतुभूताभ्यां विषमा कारणाननुरूपा स्वेदस्य अतिप्रवृत्तिरिति सिद्धान्तः ॥

समाधान–कार्तिक ग्रन्थकार कहता है कि–'विकृति विषमसमवाय होनेसे वातकफज्वरमें पसीने अधिक आते हैं । इस कारण कुछ विरोध नहीं आता'' वैद्यक शास्त्रमें 'प्रकृतिसमसमवाय' और 'विकृतिविषम समवाय' ऐसे दो प्रकारके समवाय हैं और इनमें कार्य–कारणभाव सम्बन्ध माना है, जिस प्रकार सफेद तन्तुरूप समवायिकारणसे बना हुआ वस्त्र उस कारणको मिलता हुआ अर्थात् सफेद ही होता है वैसे ही कारणका स्वभावानुसार कारणके मिलनेसे कार्य उत्पन्न होता है, यह प्रकृतिकासम समवाय माना जाता है । जैसे कि, केवल वातसे उत्पन्न हुआ वातज्वर वातसम्बन्धी कम्पादि धर्मसे युक्त होता है केवल पित्तसे उत्पन्न हुआ पित्तज्वर पित्तसम्बन्धी तीव्रतादि धर्मयुक्त होता है और केवल कफसे उत्पन्न हुआ कफज्वर कफ सम्बन्धी स्तैमित्य आदि लक्षणयुक्त होता है । जैसे संयोगसे विकारको प्राप्त हुए हलदी और चूना इनमें उन कारणोंके न मिलनेसे लाल रंग रूप कार्य उत्पन्न होता है । उसी प्रकार विकृत होनेसे कारण नहीं मिलनेसे ऐसा कार्य उत्पन्न होता है । इस कारण " विकृति विषमसमवाय'' माना जाता है । इस विकृतिविषमसमवायके अनुसार संयोगके होनेसे विकारको प्राप्त हुए वात और कफ इन दोनोंमें उनके स्वभाव न मिलनेसे अधिक पसीना आता है ऐसा सिद्धान्त है ॥

वातकफज्वरचिकित्सा ।

वातश्लेष्मज्वरे देयमौषधं नवमेऽहनि ॥ ४७६ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । दीपनीयः स्मृतो वर्गो वातश्लेष्मज्वरापहः । कोलमात्रोपयोगित्वात् पञ्चकोलमिदं स्मृतम् ॥ ४७७ ॥ तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं दीपनं कफदा-

हनुत् । गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥ ४७८ ॥

वातकफज्वरमें नववें दिन औषधि देनी चाहिये। पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनको पंचकोल कहते हैं यह पंचकोल-अग्निकोदीप्तकरनेवाला और वातकफज्वरनाशक है। इसमें पांचों पदार्थ एक एक कोलपरिमाण लेनेसे यह पंचकोल कहाजाता है। पंचकोल-तीक्ष्ण, उष्ण, उत्तम, पाचन, दीपन कफदाह-नाशक, पित्तप्रकोपक तथा गुल्म, प्लीहा, उदररोग, अफारा और शूलको नष्ट करता है ॥ ४७६-४७८ ॥

किरातादिक्वाथः।

किरातविश्वाऽमृतवल्लिसिंहिकाव्याघ्रीकणामूलरसोनसिन्दुकैः। कृतः कषायो विनिहन्ति सत्वरं ज्वरं समीरात्सकफात्समुत्थितम् ॥ ४७९ ॥

चिरायता, सोंठ, गिलोय, कटेरी, कटाई, पीपलामूल, लहसुन और सम्हालू इनका क्वाथ कफवातज्वरको हरनेवाला है ॥ ४४९ ॥

अथ पिप्पल्यादिक्वाथः।

पिप्पल्यादिगणक्काथं पिबेद्वातकफज्वरी। नातः परं किञ्चिदस्ति ज्वरे भेषजमुत्तमम् ॥ ४८० ॥

वातकफज्वरवाला पिप्पल्यादिगणका क्वाथ पिवे। इसके समानवातकफज्वरमें दूसरी औषधि नहीं है ॥ ४८० ॥

अथ बृहत्पिप्पल्यादिक्वाथः।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् वचा। सातिविषाऽजाजी पाठावत्सकरेणुकाः ॥ ४८१ ॥ किराततिक्तको मूर्वा सर्षपा मरिचानि च। कट्फलं पुष्करं भार्ङ्गी विडङ्गं कर्कटाह्वयम् ॥ ४८२ ॥ अर्कमूलं बृहतींसहीश्रेयसी सदुरालभा। दीप्यकश्चाजमोदा च शुकनासा सहिंगुका ॥ ४८३ ॥ एतानि समभागानि गण एषोऽष्टविंशतिः। एषां क्वाथो निपीतः स्याद्वातश्लेस्मज्वरापहः ॥ ४८४ ॥ हन्ति वातं तथा शीतं प्रस्वेदमतिवेपथुम्। प्रलापश्चातिनिद्राश्च रोमहर्षारुची तथा ॥ ४८५ ॥ महावातेऽपतन्त्रे च शून्यत्वे सर्वगात्रजे। पिप्पल्यादिमहाक्वाथो ज्वरे सर्वत्र पूजितः॥४८६॥

अत्र श्रेयसी--रास्ना, वातश्लेष्मज्वरहरत्वात् ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ वच, अतीस, जीरा, पाढ, इन्द्रजौ, रेणुका चिरायता, मूर्वा, सरसों, कालीमिरच, कायफल, पोहकरमूल, भारंगी, वायविडंग, काकडाशिंगी, आककी जड, बडी कटेरी, रायसन, धमासा, अजवायन, अजमोद, इनोनाक, हींग इन २८ औषधियोंके समूहको पिप्पल्यादिगण कहते हैं। इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पिवे तो-वातकफज्वर, वात, शीत, पसीना, अत्यन्त कम्प, प्रलाप, अत्यन्त निद्रा, रोमांचोंका खडा होना, अरुचि, अपतन्त्र नामक महावायु और सब शरीरकी शून्यताये नष्ट होजाते हैं। यह पिप्पल्यादि महाक्वाथ सर्वप्रकारके ज्वरोंमें पूजा जाता है ॥ ४८१-४८६ ॥

अथ दशमूलीक्वाथः।

दशमूलीरसः पीतः कणाढ्यः कफवातजे। ज्वरे विपाकेऽनिद्रायां पार्श्वरुक्छ्वासकासके ॥ ४८७ ॥

दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर, मुखपाक, निद्रानाश, पसलियोंकी पीडा, श्वास और खाँसीयुक्त कफवातज्वरम पीना चाहिये ॥ ४८७ ॥

पिप्पलीक्वाथः

पिप्पलीभिः शृतं तोयमनभिष्यन्दि दीपनम् । वातश्लेष्मज्वरं हन्ति सेवितं प्लीहनाशनम् ॥ ४८८ ॥

पीपलका क्वाथ सेवन करनेसे वातकफज्वरको नष्ट करता है, अनभिष्यन्दि, अग्निप्रदीपक और प्लीहाको दूर करता है ॥४८८॥

अथ सूर्यशेखररसः ।

सूतकं टंकणं भृष्टं गन्धं शुद्धं समं समम् । द्विगुणं सूतकाद्देयं जैपालं तुषवर्जितम् ॥ ४८९ ॥ सैन्धवं मरिचं चिञ्चात्वक्क्षारः शर्कराऽपि च । प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरैर्मर्दयेद्दिनम्॥४९०॥ सूर्यशेखरनामाऽयं रसो गुञ्जाद्वयोन्मितः। भक्षितस्तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहः ॥ ४९१ ॥ सूर्यशेखरो रसो वातश्लेष्मज्वरे शीतज्वरे च रसप्रदीपे ॥

शुद्धपारा, भुनाहुआ सुहागा और शुद्धगन्धक ये सब समान भाग, शुद्ध तुषरहित जमालगोटेके बीज पारेसे दुगुने, सैंधानमक, कालीमिरच, इमलीका खार और खांड ये सब पारेकी बराबर लेवे, फिर सबको एकत्र जम्भीरी नींबूके रसमें एक दिन खरल करे तो सूर्यशेखर नामक रस तैयार होता है। दो रत्ती परिमाण इनको गरम जलके साथ सेवन करे। इससे वातकफज्वर और शीतज्वर नष्ट होता है, यह रसप्रदीपमें कहा है ॥४८९-४९१॥

अथोद्‌धूलनम् ।

स्वेदोद्गमे भृष्टकुलत्थचूर्णनिपातनं शस्तमिति ब्रुवन्ति । जीर्णं शकृद्वोर्लवणस्यभाजनं संचूर्णितं स्वेदहरं सुधूलनात्४९२

जो वातकफज्वरमें पसीना अधिक आता हो तो भुनी हुई कुलथीको पीसकर मालिस करे। गायका पुराना गोबर और नमक रखनेका बासन इन दोनोंको एकत्र पीसकर शरीरमें मलनेसे पसीनेका आना बन्द होता है ॥ ४९२ ॥

मरिचाद्युद्‌धूलनम् ।

मरिचं पिप्पली शुण्ठी पथ्या लोध्रश्च पौष्करम् । भूनिम्बः कटुका कुष्ठं कर्चूरो लिङ्गिका शटी ॥४९३॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । एतदुद्‌धूलनं श्रेष्ठं स्रोतोवत्स्वेदनिर्गमे४९४

लिंगिका- 'पञ्चगुरिआ' इति लोके । अत्र शटी गन्धपलाशी ।

भूनिम्बः कारवी तिक्ता वचा कट्फलजं रजः । एषामुद्‌धूलनं श्रेष्ठं सततं स्वेदसंस्रवे ॥ ४९५ ॥

पूर्वोक्तो वालुकास्वेदोऽपि अत्र समुचितः ॥

कालीमिरच, पीपल, सोंठ, हरड, लोध, पोहकरमूल, चिरायता, कुटकी, कूठ, कचूर, शिवलिंगी और कपूरकचरी इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसकर शरीरपर मलनेसे प्रवाहके समान भी पसीनेका निकलना बन्द हो जाता है। चिरायता, कालाजीरी, कुटकी, वच और कायफल इनको एकत्र पीसकर शरीरमें मलनेसे निरन्तर पसीनेका निकलना बन्द होजाता है ॥

अथ वालुकास्वेदः ।

पीनसश्वासबाधिर्ये जंघापार्श्वास्थिशूलिनि । वातश्लेष्मज्वरे दद्यादौषधं तद्विधानवित् ॥ ४९६ ॥

पहिले कहा हुआ वालुकास्वेद भी वातकफज्वरमें श्रेष्ठ है क्योंकि पीनस, श्वास, बधिरता, जंघा, पार्श्व और अस्थिशूल इन उपद्रवोंसहित वातकफज्वरमें वालुकास्वेद करना चाहिये, ऐसा पहिले कहचुके हैं ॥ ४९६ ॥

अथ कवलः ।

मातुलुङ्गफलकेशरो धृतः सिन्धुजन्मम-

रिचान्वितो मुखे। हन्ति वातकफरोगमास्यगं शोषमाशु जडतामरोचकम्॥४९७

सेंधानमक और काली मिरचके साथ विजौरे नींबूकी केशरका कवल मुखमें धारण करनेसे वात और कफके रोग, मुखशोष, जडता और अरुचि नष्ट होती है ॥ ४९७ ॥

अथ वातकफज्वरान्नविधानम्।

महत्या पञ्चमूल्याऽन्नं सम्यक्सिद्धं चिकित्सकः। सप्तमे दिवसे दद्याद्ज्वरे वातबलासजे ॥ ४९८ ॥

वैद्य वातकफज्वरमें सातवें दिन बृहत्पञ्चमूलके क्वाथमें अच्छी प्रकारसे पकाया हुआ अन्न रोगीको देवे ॥ ४९८ ॥

इति वातकफज्वराधिकारः॥

अथ पित्तकफज्वराधिकारः।

पित्तश्लेष्मकरैः पित्तकफावामाशयाश्रयौ। बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगौ ज्वरकारिणौ ॥ ४९९ ॥

तहां प्रथम पित्तकफज्वरके विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट कारण कहकर सम्प्राप्ति कहते हैं। पित्तकारक और कफकारक आहार विहारोंके करनेसे पित्त और कफ आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ४९९ ॥

अथ पित्तकफज्वरपूर्वरूपम्।

प्राग्रूपे पित्तकफयोः स्यातां पित्तकफज्वरे ॥ ५०० ॥

पित्तकफज्वरमें पित्तज्वर और कफज्वर इन दोनोंके पूर्वरूप होते हैं ॥ ५०० ॥

अथ पित्तकफज्वरलक्षणम्।

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा। मुहुर्दाहो मुहुः शीतं पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ५०१ ॥

आस्यतिक्तत्वं पित्तेन, लिप्तत्वं कफेन, तन्द्रा अर्द्धोन्मीलितनेत्रत्वम्, मोहो मूर्च्छा ॥

पित्तके कारण मुखमें कडवापन और कफसे मुख लिसासा हो, तन्द्रा, मोह, खांसी, अरुचि, तृषा, बारंबार दाह हो और बारंबार शीत लगे, ये पित्तकफज्वरके लक्षण हैं॥५०१॥

अथ पित्तकफज्वरचिकित्सा।

पित्तश्लेष्मज्वरे देयमौषधं दशमेऽहनि॥५०२

पित्तकफज्वरमें दशवें दिन औषधि देनी चाहिये ॥ ५०२ ॥

अथ गुडूच्यादिक्वाथः।

गुडूची निम्बधान्याकं चन्दनं कटुरोहिणी। गुडूच्यादिरयं क्वाथः पाचनो दीपनः स्मृतः। तृष्णादाहारुचिच्छर्दिपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ५०३ ॥

गिलोय, नीमकी छाल, धनियां, लालचन्दन और कुटकी इनका क्वाथ पाचन, अग्निको दीप्त करनेवाला तथा तृषा, दाह, अरुचि, वमन और पित्तकफज्वरको नष्ट करताहै ५०३

अथामृताष्टकक्वाथः।

अमृताकटुकारिष्टपटोलघनचन्दनम्। नागरेन्द्रयवं चैतदमृताष्टकमीरितम् ॥ ॥५०४॥ क्वाथितं सकणाचूर्णं पित्तश्लेष्मज्वरापहम्। हृल्लासारोचकच्छर्दितृष्णादाहनिवारणम् ॥ ५०५ ॥

गिलोय, कुटकी, नीमकी छाल, पटोलपत्र, नागरमोथा, लालचन्दन, सोंठ और इन्द्रजौ इन सब औषधियोंके समुदायको अमृताष्टक कहते हैं। इस अमृताष्टकका क्वाथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे पित्तकफज्वर नष्ट होता है यह उबकाई, अरुचि, वमन तृषा और दाहको निवारण करता है ॥ ॥ ५०४ ॥ ५०५ ॥

अथ कण्टकार्यादिक्वाथः।

कण्टकार्यमृता भार्ङ्गी विश्वेन्द्रयववास

कम्। भूनिम्बश्चन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ ५०६ ॥ विपाच्य पाययेत्क्वाथं पित्तश्लेष्मज्वरापहम्। दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासशूलनिवारणम् ॥५०७॥

कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, अडूसा, चिरायता, लालचन्दन, नागरमोथा, पटोलपत्र और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे पित्तकफज्वर, दाह, तृषा, अरुचि वमन, खाँसी और शूल नष्ट होता है ॥५०६॥५०७॥

अथ नागरादिक्वाथः ।

नागरोशीरबिल्वाब्दधान्यमोचरसाम्बुभिः । कृतः क्वाथो भवेद्ग्राही पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

सोंठ, खस, बेलगिरी, नागरमोथा, धनियाँ, मोचरस और सुगन्धवाला इनका क्वाथ पित्तकफज्वरनाशक और मलरोधक है ॥ ५०८ ॥

अथ कटुकीकल्कः ।

शर्करामक्षमात्राञ्च कटुकीं चोष्णवारिणा । पित्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः पित्तश्लेष्मसमुद्भवम् ॥ ५०९ ॥

एक तोलाभर कुटकी और खांड लेकर उनका कल्क बनावे और गरमजलके साथ पिवे तो पित्तकफज्वर नष्ट होता है ॥ ५०९ ॥

अत्र कटुक्याः द्वादश माषाः शर्करायाश्चत्वारो माषाः एवं कर्ष इति चरकः । वैद्यस्य व्यवहारे कटुकी शर्करयोःसमभागयोरेव कर्षः॥

इसमें चरक कहता है कि, बारह मासे कुटकी और चार मासे खांड लेनी चाहिये, परन्तु वैद्य लोग तो कुटकी और खांड दोनोंको समान भाग लेकर एक तोला करते हैं ॥

अथ वासारसः ।

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसितायुतः। पित्तश्लेष्मज्वरं हन्ति साम्लपित्तं सकामलम् ॥ ५१० ॥

पत्ते और फूल सहित अडूसेके रसमें सहत और मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त और कामलासहित पित्तकफज्वर नष्ट होता है ॥ ५१० ॥

अत्र वासारसोऽर्द्धपलपरिमितो देयः । मधुसितयोः प्रत्येकं टङ्कः प्रक्षेप्यः ॥

यहां अडूसेका रस दो तोले परिमाण लेना चाहिये, मिश्री २४ रत्ती परिमाण लेनी चाहिये और सहत भी चौबीस २४ रत्ती डालना चाहिये ॥

अथ शृङ्गवेरादिक्वाथः ।

कषायः परिपक्वस्तु शृङ्गवेरपटोलयोः । पित्तश्लेष्मज्वरवमीदाहकण्डूहरो भवेत् ५११

अदरख और पटोलपत्रका क्वाथ बनाकर पीनेसे पित्त कफज्वर, वमन, दाह और खुजली नष्ट होती है ॥ ५११ ॥

अथान्नम् ।

पटोलधान्ययोर्यूषः पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ५१२ ॥

पटोलपत्र और धनियेंके यूषसे सिद्ध किये हुए अन्न पित्तकफज्वर नाशक हैं ॥ ५१२ ॥

इति पित्तकफज्वराधिकारः ॥

अथ सन्निपातज्वराधिकारः ।

त्रिदोषजनकैर्वातपित्तश्लेष्मामगेहगाः । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगा ज्वरकारिणः ॥ ५१३ ॥

अत्र सन्निपातज्वरका विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट कारण कहकर सम्प्राप्ति कहते हैं। त्रिदोषकारक आहार और विहारके करनेसे वात, पित्त और कफ आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकाल ज्वरको दूषित करते हैं ॥५१३॥

अथ सन्निपातज्वरपूर्वरूपम् ।

प्राग्रूपाणि त्रिदोषाणां स्युस्त्रिदोषज्वरे नृणाम् ॥ ५१४ ॥

सन्निपातज्वरमें मनुष्योंको वातज्वर, पित्त-ज्वर और कफज्वर इन तीनोंके पूर्वरूप होते हैं ॥ ५१४ ॥

अथ सन्निपातज्वरलक्षणम् ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा । सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने । सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः ॥ ५१५ ॥ तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासश्वासोऽरुचिर्भ्रमः । परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परा । ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ ५१६ ॥ शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ ॥ ५१७ ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनम् । कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥ ५१८ ॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वं मुदरस्य च । चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपात ज्वराकृतिः ॥ ५१९ ॥

लोचने सास्रावे साश्रुणी कलुषे अस्वच्छे । निर्भुग्ने निर्गते कुटिले च । कण्ठः शूकैरिवृतः—धान्याग्रै रिवावृता । जिह्वा परिदग्धा-परिदग्धा इव ज्ञायते । अथवा परिदग्धा इव कृष्णा दृश्यते । स्रस्ताङ्गता शिथिलाङ्गता । ष्ठीवनमित्यादि । कफसंयुक्तस्य रक्तस्य ष्ठीवनम् । शिरसो लोठनमितस्ततश्चालनम् । कृशत्वं नातिगात्राणामिति-गात्राणामतिशयितं कार्श्यं न, व्याधिप्रभावात् । सततं निरन्तरम् । कोठः 'वरटी-दष्टसंस्थानं कोठ इत्यभिधीयते । श्यावः कपिलो वर्णः । मूकत्वमवचनत्वमपवचनत्वं वा । स्रोतसां कर्णनासादीनाम्॥

क्षणभरमें दाह हो, क्षणभरमें शीत लगे, हड्डी, संधि और शिरमें पीडा हो, नेत्र स्रावयुक्त गँदले लाल और टेढे हों, कानोंमें शब्द और पीडा हो, कण्ठमें धानके तूरके समान कांटे होजायँ, तन्द्रा हो तथा बेहोसी हो, वृथा बकवाद करे । खाँसी, श्वास, भोजनमें अरुचि हो, भ्रान्ति हो, जिह्वा अग्निसे जले हुएके समान और स्पर्शमें खरखरी हो, सम्पूर्ण अंग शिथिल होजायँ, कफ मिले हुए रक्त-पित्तको थूँके, शिरको इधर उधर लुटावे, तृषा हो, निद्रा नहीं आवे, हृदयमें पीडा हो पसीना मूत्र और विष्ठा ये बहुत कालमें थोडे उतरे, शरीर बहुत कृश नहीं हो, निरन्तर कण्ठमें शब्द हो, पिंगलवर्ण और लाल-रंगकी ततैयाके काटनेके समान शरीरमें गोल गोल चकत्ते पडजायँ कम बोले अथवा बिलकुल नहीं बोले, कान, नाक आदि शरीरके छिद्र पकजायँ, उदरमें भारीपन और दोष बहुत कालमें पचे, ये सन्निपातज्वरके लक्षण हैं । सन्निपातज्वरमें शरीर अत्यन्त दुर्बल नहीं होता, यह व्याधिकाही प्रभाव है ॥ ५१५ ॥ ५१९ ॥

ननु वातादयः परस्परविरुद्धगुणास्तेषां सम्भूय एककार्यारम्भकत्वं नोपपद्यते परस्परोपघाताद्दहनसलिलयोरिव,तत्कथं वातपित्तकफाः मिलित्वा विकारोत्पादकाः ?

शंका-वात, पित्त और कफ ये परस्पर विरुद्ध गुण वाले हैं, ये सब मिलकर एक कार्यको कैसे करसकते हैं ? कारण यह है कि, अग्नि और जलके समान ये परस्पर एक दूसरेको नष्ट करनेवाले हैं, ऐसा होनेपर वात, पित्त और कफ ये सब मिलकर कैसे सन्निपात ज्वर को उत्पन्न करते हैं ?

अत्र समाधानमुक्तं दृढबलेन—विरुद्धैरपि न त्वेते गुणैर्घ्नन्ति परस्परम् । दोषाः सहजसाम्यत्वाद्विषं घोरमहीनिव ॥५२०॥

समाधान—इस विषयमें दृढबल आचार्य ऐसा समाधान करता है कि—"दोष स्वाभावि-

करीतिके अनुसार समान मिलनेसे, परस्पर विरुद्ध गुणवाले होनेपर भी जिस प्रकार भयंकर विष सर्पको नहीं मारता, उसी प्रकार ये परस्पर एक दूसरेका नाश नहीं करते" ॥

गदाधरस्तु हेत्वन्तरमुक्तवान्–दैवाद्दोषस्वभावाद्वा दोषाणां सान्निपातिके । विरुद्धैश्च गुणैस्तैश्च नोपघातःपरस्परम् ॥५२१

गदाधर वैद्य इस विषयमें अन्य कारण कहता है कि–"वातादि दोष विरुद्ध गुणवाले होनेपर भी सन्निपातज्वरमें दैवकी गतिसे अथवा वे अपने स्वभावसे परस्पर एक दूसरेका नाश नहीं करते ॥ ५२१ ॥

ननु भिन्नचयप्रकोपकालानां वातपित्तकफानां युगपदुत्पत्त्यभावात्कथं सम्भूय सन्निपातज्वरारम्भकत्वमुपपद्यते ?

शंका–वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंका चयकाल और प्रकोपकाल अलग अलग है, इस कारण इन सबकी एस समयमें उत्पत्ति नहीं होसकती, फिर ये सब मिलकर कैसे सन्निपातज्वरको उत्पन्न करते हैं ? यह संदेह होता है ॥

उच्यते–त्रिदोषजनकनिदानबलेन युगपदेषांप्रकोपादिति सिद्धान्तः ॥

समाधान–जिससे तीनों दोष उत्पन्न हों, ऐसे मिथ्या आहारविहारादिके करनेसे ये तीनों दोष एक ही समयमें कुपित होते हैं, ऐसा सिद्धान्त है ॥

अथ सामान्यसंनिपातत्रयोदशभेदाः ।

एकोल्वणास्त्रयस्तेषु द्व्युल्वणाश्च तथेति षट् । त्र्युल्वणश्च भवेदेको विज्ञेयः स तु सप्तमः ॥ ५२२ ॥ प्रवृद्धमध्यहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च षट् । सन्निपातज्वरस्यैवं स्युर्विशेषास्त्रयोदश ॥ ५२३ ॥

अत्र प्रवृद्धवातः मध्यपित्तो हीनकफः १ मध्यवातः प्रवृद्धपित्तो हीनकफः २, हीनवातः प्रवृद्धपित्तो मध्यकफः ३, प्रवृद्धवातः हीनपित्तो मध्यकफः ४, मध्यवातः हीनपित्तः प्रवृद्धकफः ५, हीनवातो मध्यपित्तः प्रवृद्धकफः ६ इति षट् ॥

वातोल्वण, पित्तोल्वण, कफोल्वण, वातपित्तोल्वण, वातकफोल्वण, पित्तकफोल्वण, वातपित्तकफोल्वण (७) अधिकवात मध्यपित्त हीनकफ १, मध्यवात अधिकपित्त हीनकफ २, हीनवात अधिकपित्त मध्यकफ ३, अधिकवात हीनपित्त मध्यकफ ४, मध्यवात हीनपित्त अधिककफ ५ और हीनवात मध्यपित्त अधिककफ ६ इस प्रकार सन्निपातज्वरके तेरह भेद हैं ॥ ५२२ ॥ ५२३ ॥

अथानुक्रमेण त्रयोदशसन्निपातनामानि ।

विस्फारकश्चाशुकारी कम्पनो बभ्रसंज्ञकः । शीघ्रकारी तथा भल्लुःसप्तमः कूटपालकः ॥५२४॥ सम्मोहकः पाकलश्च याम्यः क्रकच इत्यपि । ततः कर्कटकः प्रोक्तस्ततो वैदारिकाभिधः५२५

तन्त्रान्तरे विस्फारकः इत्यत्र विस्फोरक इति पाठः । बभ्रस्थाने बभ्रुरिति पाठः । कुत्रापि बद्ध इति पाठः । भल्लुरित्यत्र फल्गुरिति वा पाठः । याम्य इत्यत्र संग्राम इति पाठः । कर्कटक इत्यत्र कर्कोटक इति वा पाठः ।

विस्फारक, आशुकारी, कम्पन, बभ्र, शीघ्रकारी, भल्लु, कूटपालक, सम्मोहक, पालक, याम्य, क्रकच, कर्कटक और वैदारिक ये ऊपर कहे हुए तेरह सन्निपातोंके अनुक्रमसे तेरह नाम जानने । अन्य ग्रन्थोंमें विस्फारकको विस्फोरक, बभ्रको बभ्रु अथवा बद्ध, भल्लुको फल्गु, याम्यको संग्राम और कर्कटकको, कर्कोटक कहा है ॥ ५२४ ॥ ५२५ ॥

अथ वातोल्वणबिस्फारक लक्षणम्।

श्वासः कासो भ्रमो मूर्च्छा प्रलापो मोहवेपथू। पार्श्वस्य वेदना जृम्भा कषायत्वं मुखस्य च ॥ ५२६ ॥ वातोल्वणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लक्षयेत्। एष विस्फारको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ५२७ ॥

श्वास, खांसी, भ्रांति, मूर्च्छा, वृथा बकवाद, मोह, कम्प, पसलियोंमें पीडा, जम्भाइयोंका आना और मुखमें कसैलापन ये वातोल्वण सन्निपात ज्वरके लक्षण हैं। यह दारुण वातोल्वण सन्निपात 'विस्फारक' नामसे प्रसिद्ध है ॥ ५२६ ॥ ५२७ ॥

अथ पितोल्वणाशुकारिलक्षणम्।

अतिसारो भ्रमो मूर्च्छा मुखपाकस्तथैव च। गात्रे च बिन्दवो रक्ता दाहोऽतीव प्रजायते ॥५२८॥ पित्तोल्वणस्य लिंगानि सन्निपातस्य लक्षयेत्। भिषग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी प्रकीर्तितः ॥ ५२९ ॥

अतिसार, भ्रांति, मूर्च्छा, मुखका पकना, देहमें लाल लाल बिन्दुओंका पड जाना और अत्यन्त दाहका होना ये पितोल्वण सन्निपातज्वरके लक्षण हैं। यह पित्तोल्वण सन्निपात 'आशुकारी' नामसे प्रसिद्ध है॥५२८॥५२९॥

अथ कफोल्वणकंपनलक्षणम्।

जडता गद्गदा वाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि॥ प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधुर्यमेव च ॥ ५३० ॥ कफोल्वणस्य लिंगानि सन्निपातस्य लक्षयेत्। मुनिभिः सन्निपातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ५३१ ॥

जडता, गद्गद बोले, रात्रिमें निद्रा भी आवे, नेत्रोंमें स्तब्धता और मुखमें मधुरता ये कफोल्वणसन्निपातको ऋषिलोग 'कम्पन' कहते हैं ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥

अथ वातपित्तोल्वणबभ्रलक्षणम्।

वातपित्ताधिको यस्तु सन्निपातः प्रकुप्यति। तस्य ज्वरो मदस्तृष्णा मुखशोषः प्रमीलकः ॥ ५३२ ॥ आध्मानारुचितन्द्राश्च कासश्वासभ्रमश्रमाः। मुनिभिर्बभ्रम (भ्रु) नामाऽयं सन्निपात उदाहृतः ॥ ५३३ ॥

जब वात और पित्ताधिकवाला सन्निपात कुपित होता है तब ज्वर, मद, तृषा, मुखशोष, प्रमीलक, नेत्र मिचेसे हो जाँय अफरा, अरुचि, तन्द्रा, खांसी, श्वास, भ्रम और थकावट ये सब लक्षण होते हैं इस वातपित्तोल्वण सन्निगातको मुनिजन 'ब्रभ्र' या 'बभ्रु' कहते हैं ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥

अथ वातकफोल्वणशीघ्रकारि-
सन्निपातलक्षणम्।

वातश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति। तस्य शीतज्वरो मूर्च्छा क्षुत्तृष्णा पार्श्वनिग्रहः ॥ ५३४ ॥ शूलमस्विद्यमानत्वं तन्द्रा श्वासश्च जायते। असाध्यः सन्निपातोऽयं शीघ्रकारीति कथ्यते। न हि जीवत्यहोरात्रमनेनाविष्टविग्रहः ॥ ५३५ ॥

जब वातकफाधिक सन्निपात कुपित होता है तो शीतज्वर, मूर्च्छा, भूख, तृषा, प्यास, पसलियोंमें पीडा, शूल, पसीनेका न आना, तन्द्रा और श्वास ये सब लक्षण होते हैं। यह सन्निपात असाध्य है, इसको मुनिजन 'शीघ्रकारी' कहते हैं। जिसके यह सन्निपात कुपित होता है, वह मनुष्य एक दिनरात भी नहीं जीता है ॥ ५३४ ॥ ५३५ ॥

अथ पित्तकफोल्बणभल्लुलक्षणम्।

पित्तश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति। अन्तर्दाहो बहिः शीतं तस्य

तृष्णा प्रवर्द्धते ॥ ५३६ ॥ तेयत दक्षिणे पार्श्वे उरःशीर्षगलग्रहः । ष्ठीवति श्लेष्म-पित्तञ्च कृच्छ्रात्कोठश्च जायते ॥५३७॥ विड्भेदश्वासहिक्काश्च वर्द्धन्ते सम्प्रमी-लकाः । ऋषिभिर्भल्लुनामाऽयं सन्निपात उदाहृतः ॥ ५३८ ॥

जब पित्तकफाधिक सन्निपात कुपित होता है, तब शरीरके भीतर दाह, ऊपरसे शरदी लगे, तृषा अधिक बढजाय, दाहिनी पसलीमें पीडा हो, हृदय मस्तक और कण्ठमें वेदना हो, अत्यन्त कठिनतासे कफपित्तको थूँके, शरीरमें चकत्तेसे पडजायँ, दस्त आने लगे, श्वास, हिचकी और आँख मिंचीसी हो जावें। ये लक्षण होते हैं । इस सन्निपातको ऋषिलोग 'भल्लु' कहते हैं ॥ ५३८ ॥

अथ वातपित्तकफोल्वणकूटपालक-लक्षणम् ।

सर्वदोषोल्वणो यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति । त्रयाणामपि दोषाणां तस्य रूपाणि लक्षयेत् ॥ ५३९ ॥ व्याधिभ्यो दारुणश्चैष वज्रशस्त्राग्निसन्निभः । केवलोच्छ्वासपरमःस्तब्धाङ्गः स्तब्धलोचनः ॥ ५४० ॥ त्रिरात्रात्परमेतस्य जन्तोर्हरति जीवितम् । तदवस्थन्तु तं दृष्ट्वा मूढो व्याहरते जनः ॥ ५४१ ॥ धर्षितो राक्षसैर्नूनमवेलायां चरन्ति ये । अम्बया ब्रुवते केचिद्यक्षिण्या ब्रह्मराक्षसैः॥५४२॥ पिशाचैर्गुह्यकैश्चैव तथाऽन्यैर्मस्तके हतम् । कुलदेवार्चनाहीनं धर्षितं कुलदैवतैः ॥ ५४३ ॥ नक्षत्रपीडामपरे गरकर्मेति चापरे । सन्निपातमिमं प्राहुर्भिषजः कूटपालकम् ॥ ५४४ ॥

जब त्रिदोषोल्वण सन्निपात कुपित होता है, तब उसमें तीनों दोषोंके लक्षण दिखाई देते हैं । यह सन्निपात सर्व व्याधियोंसे वज्र और शस्त्रके समान भयंकर है । इसमें रोगी केवल ऊँचा श्वासही लेता रहता है, सम्पूर्ण शरीर जकडजाता है, नेत्र पत्थरके समान हो जाते हैं, यह सन्निपात तीन दिनके बाद मनुष्योंके प्राणोंको हरलेता है, इस सन्निपातवाले मनुष्यको देखकर कितने मूर्ख मनुष्य कहते हैं कि, इसको कुसमय आधीरात. या दोपहरके बखतमें फिरनेवाले राक्षसोंने पकड लिया है। कोई कहते हैं कि–देवीने दबालिया है, कोई कहते हैं कि–यक्षिणीने पकडा है, कोई कहते हैं कि–ब्रह्मराक्षस चिपटगया है, कोई पिशाच और कोई यक्षबाधा कहते हैं, कोई कहते हैं कि, इसके शिरमें किसीने चोट मारदी है, कोई कहते हैं कि–इसने अपने कुलदेवताका पूजन नहीं किया, उन्होंने इसको यह करदिया है कोई कहते हैं कि–इसको ग्रह नक्षत्र आदिने पीडा की है और कितने मूर्ख मनुष्य कहते हैं कि इसको किसीने विष दे दिया है, इस सन्निपातको वैद्यलोग 'कूटपालक' कहते हैं ॥

अथाधिकवात–मध्यपित्त–हीनकफसंमोहक-सन्निपातलक्षणम् ।

प्रवृद्धमध्यहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च यः । तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः । प्रलापायाससम्मोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः ॥ ५४५ ॥ एकपक्षाभिघातश्च तत्राप्येते विशेषतः । एष सम्मोहको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ५४६ ॥

रोगास्त एवोक्ताःउक्ता एव ते रोगाः व्यथावेपथुनिद्रानाशविष्टम्भादयो वातजा,ः दाहतृष्णोष्णतास्वेदादयःपित्तजाः, गौरवाग्निमान्द्योत्कासनासिकामुखप्रसेकादयःकफजाः । तत्रापि प्रलापादयः पक्षाघातान्त विशेषाद्भवन्ति ॥

अधिकवात मध्यपित्त हीनकफ सन्निपातमें पूर्वोक्त व्यथा, कम्प, निद्राका न आना और मलविष्टम्भ आदि वातसम्बन्धी रोग होते हैं। दाह, तृषा, उष्णता और पसीना आदि पित्तसम्बन्धी रोग होते हैं और भारीपन, अग्निकी मन्दता, खाँसी तथा नाक और मुखसे पानीका गिरना आदि कफसम्बन्धी रोग होते हैं। एवं प्रलाप, परिश्रम, मोह, कंप, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम और पक्षाघात ये विशेष करके होते हैं। इस भयंकर सन्निपातको मुनिजन 'सम्मोहक' कहते हैं ॥ ५४५ ॥ ५४६ ॥

ननु वातः प्रवृद्धः स ज्वरं करिष्यति, पित्तन्तु मध्यं सममिति यावत्। तत्कथं ज्वरं करिष्यति ? यत आह--धातवस्तन्मला दोषाः स्युर्नाशायातमास्तनौ । समाः सुखाय विज्ञेया बलायोपचयाय च ॥ ५४७ ॥ इति चेच्छृणु।

शङ्का–वायु वृद्धिको प्राप्त होकर ज्वरको उत्पन्न करती है किन्तु पित्त मध्य अर्थात् सम होनेसे कैसे ज्वरको उत्पन्न करता है ? क्योंकि धातु, मल और दोष ये असमान होनेसे शरीरको नष्ट करते हैं सम होनेसे सुख, बल और पुष्टिको करते हैं ऐसा कहा है ॥

अत्र पित्तं मध्यमपि अप्रकृतमेव, यतोऽप्रकृतयोर्वातश्लेष्मणोरपेक्षया मध्यं, तेन मध्यकुपितमित्यर्थः ॥

समाधान–सन्निपातमें पित्त मध्यम है, परंतु प्रकृतिमें स्थित नहीं है अर्थात् विकृत हुए जो वात, कफ उनसे मध्य रहता है, कुछ प्रकृतिमें मध्यम सम नहीं है ॥ ५४७ ॥

ननु कफः क्षीणः स कथं ज्वरं करिष्यति ? हीनशक्तित्वात् ॥

शङ्का–क्षीण हुआ कफ कैसे ज्वरको उत्पन्न करता है ? क्योंकि जिसकी शक्ति हीन होजाती है, वह कार्य करनेको समर्थ नहीं रहता ॥

उच्यते-दोषाः क्षीणा अपि व्याधीन् कुर्वन्त्येव, यत आह--

वातक्षयेऽल्पचेष्टत्वं मन्दवाक्त्वं विसंज्ञता। पित्तक्षयेऽधिकः श्लेष्मा वह्निर्मन्दःप्रभाक्षयः। शिथिलाःसन्धयो मूर्च्छा रौक्ष्यं दाहः कफक्षये ॥ ५४८ ॥ इति शङ्का सिद्धान्तश्चात्र परत्रापि ॥

समाधान–दोष क्षीण होनेपर भी व्याधियोंको उत्पन्न करते है। क्योंकि वायुके क्षय होनेसे चेष्टा अल्प होजाती है, वाणी मन्द पडजाती है और संज्ञाका नाश होजाता है। पित्तके क्षय होनेसे कफ अधिक बढजाता है, अग्नि मन्द होजाती है और कांति नष्ट हो जाती है कफके क्षय होनेसे संधि शिथिल हो जाती हैं, मूर्च्छा, रूक्षता और दाह उत्पन्न होता है। यही शंका और समाधान अन्य सन्निपातोंमें भी समझ लेना ॥ ५४८ ॥

अथ मध्यवाताधिकपित्त-हीनकफ-पाकल सन्निपातलक्षणम्।

मध्यप्रवृद्धहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च यः। तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ५४९ ॥ मोहप्रलापमूर्च्छाः स्युर्मन्यास्तम्भः शिरोग्रहः। कासःश्वासो भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशो हृदि व्यथा ॥ ५५० ॥ खेभ्यो रक्तं विसृजति संरक्तस्तब्धनेत्रता। तत्राप्येते विशेषाः स्युर्मृत्युरर्वाक् त्रिवासरात् ॥ ५५१ ॥ भिषग्भिः सन्निपातोऽयं कथितः पाकलाभिधः ॥ ५५२ ॥

मध्यवात अधिकपित्त हीनकफ सन्निपातमें तत्तत् दोषबलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होते हैं, तथा मोह, प्रलाप, मूर्च्छा, गरदनका जकडजाना, शिरमें पीडा, खांसी, श्वास, भ्रम, तन्द्रा, संज्ञाका नाश, हृदयमें व्यथा, इन्द्रियोंके छिद्रोंमेंसे रुधिरका

गिरना, नेत्रोंमें लाली और नेत्रोंका जड हो-जाना ये विशेष करके होते हैं। इस सन्निपातमें रोगी तीन दिनके अन्दर मरजाता है, इस सन्निपातको वैद्यजन 'पाकल' कहते हैं ॥ ५४९ ॥ ५५२ ॥

अथ हीनवाताधिकपित्त-मध्यकफ-याम्लपिपातलक्षणम्।

हीनप्रवृद्धमध्य वातपित्तकफैश्च यः। तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः। हृदयं दह्यते चास्य यकृत्प्लीहान्त्रपुप्फुसाः॥५५३॥ पच्यन्तेऽत्यर्थमूर्ध्वाधः पूयशोणितनिर्गमः। शीर्णदन्तश्च मृत्युश्च तत्राप्येतद्विशेषतः ॥ ५५४ ॥ भिषग्भिः सन्निपातोऽयं याम्यो नाम्ना प्रकीर्तितः ॥ ५५५ ॥

हीनवात अधिकपित्त मध्यकफ सन्निपातमें उन्हीं २ दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह, और भारीपन आदि सकल लक्षण होते हैं तो भी हृदयमें दाह होता है, यकृत् तिल्ली, आंतें और फेफडा ये पक जाते हैं मुख और गुदासे रुधिर और रादका निकलना, दांतोंका गिरना और मरण ये विशेष करके होते हैं, इस सन्निपातको वैद्यजन'याम्य'कहतेहैं ५५३–५४५

अथाधिकवात-हीनपित्त-मध्यकफ-क्रकचसन्निपातलक्षणम्।

प्रवृद्धहीनमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः। तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः। प्रलापायाससम्मोहाः कम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः ॥ ५५६ ॥ मन्यास्तम्भेन मृत्युः स्यात्तत्राप्येतद्विशेषतः। भिषग्भिः सन्निपातोऽयं क्रकचः सम्प्रकीर्त्तितः ॥ ५५७ ॥

अधिकवात हीनपित्त मध्यकफ सन्निपातमें तत्तत् दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होते हैं तो भी बकवाद, परिश्रम, मोह, कम्प, मूर्च्छा, बेचैनी, भ्रम और मन्यानाडी गरदनके जकड जानेसे मृत्यु ये विशेष लक्षण होते हैं, इसको वैद्यजन 'क्रकचसन्निपात' कहते हैं ॥५५६॥५५७॥

अथ मध्यवात–हीनपित्ताधिककफ-कर्कटक-सन्निपातलक्षणम्।

मध्यहीनप्रवृद्धैस्तु वातपित्तकफैश्च यः। तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ५५८ ॥ अन्तर्दाहो विशेषोऽत्र न च वक्तुं स शक्यते। रक्तमालक्तकेनेव लक्ष्यते मुखमण्डलम् ॥ ५५९ ॥ पित्तेनाकर्षितः श्लेष्माहृदयान्न प्रसिच्यते। इषुणेवाहतं पार्श्वं तुद्यते खन्यते हृदि ॥ ५६० ॥ प्रमीलकश्वासहिक्का वर्द्धन्ते तु दिनेदिने। जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूकैरिवावृतः ॥ ५६१ ॥ विसर्गं नाभिजानाति कूजेच्चापि कपोतवत्। अतीव श्लेष्मणा पूर्णः शुष्कवक्त्रौष्ठतालुकः ॥ ५६२ ॥ तन्द्रानिद्रातियोगार्तो हतवाङ्निहतद्युतिः। न रतिं लभते नित्यं विपरीतानि चेच्छति ॥ ५६३ ॥ आयम्यते च बहुशो रक्तं ष्ठीवति चाल्पशः। एष कर्कटको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ५६४ ॥

मध्यवात हीनपित्त अधिककफ सन्निपातमें तत्तद्दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होते हैं तथा विशेष करके शरीरके भीतर जलन बोलनेमें असमर्थता हो, मुखमण्डल जैसे आलसे रंग दिया हो ऐसा लाल दीखे, पित्तसे खींचा हुआ कफ हृदयसे बाहर नहीं निकले, पसलियोंमें तीरछेदन सरीखी पीडा हो, हृदयमें खोदनेकी तरह पीडा हो, आंखें मिंचीसी हो जायँ, त्रास और हिचकी प्रतिदिन बढती जायँ, जीभ जली हुईके समान काली और खरखरी हो जाय, कण्ठमें धानके तूरके समान कांटे भर-

जायँ, मलमूत्रादि बेहोशीमें निकल जायँ, कबूतरके समान गलेमें कूजे, कण्ठ कफसे भरा रहे, मुख, होठ, और तालू सूख जायँ, तन्द्रा और निद्रा अधिक आवे, वाणी और कांति नष्ट हो जाय, किसी प्रकार कहीं चैन नहीं हो, विपरीत पदार्थोंकी इच्छा करे और बारम्बार खांसनेसे थोडा २ रुधिर थूके, ये लक्षण होते हैं। इस अत्यन्त घोर सन्निपातको 'कर्कटक' कहते हैं ॥ ५५८-५६४ ॥

अथ हीनवात-मध्यपित्ताधिककफ-वैदारिकसन्निपातलक्षणम्।

हीनमध्यप्रवृद्धैस्तु वातपित्तकफैश्च यः। तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ५६५ ॥ अल्पशूलं कटीतोदो मध्ये दाहो रुजा भ्रमः। भृशं क्लमः शिरोवस्तिमन्याहृदयवाग्रुजः ॥ ५६६ ॥ प्रमीलकश्वासकासहिक्काजाड्यविसंज्ञताः। प्रथमोत्पन्नमेनन्तु साधयन्ति कदाचन ॥ ५६७ ॥ एतस्मिन्सन्निवृत्ते तु कर्णमूले सुदारुणा। पिडिका जायते जन्तोर्यया कृच्छ्रेण जीवति ॥ ५६८ ॥ स वैदारिकसंज्ञोऽयं सन्निपातः सुदारुणः। त्रिरात्रात्परमेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥ ५६९ ॥

जब हीनवात मध्यपित्त अधिककफ सन्निपात कुपित हुआ हो तो उसमें उन्हीं २ दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होते हैं। विशेष करके नीचे लिखे लक्षण होते हैं। अल्प शूल, कमरमें तोडने सरीखी पीडा, छातीमें दाह और पीडा, भ्रांति, अत्यन्त ग्लानि, मस्तक, मूत्राशय, नाड हृदय और वाणीमें पीडा हो, आंखें मिचजायँ, श्वास, खाँसी, हिचकी, जडता और अत्यन्त बेहोशी होती है। इस सन्निपातके उत्पन्न होते ही यदि चिकित्सा की जावे तो कदाचित् आराम होजाय नहीं तो नहीं। इस सन्निपात के निवृत्त होनेपर रोगीके कानकी जडमें बहुत बडी फुडिया निकलती है। इस फुडियाके निकलनेपर अत्यन्त कठिनतासे जीता है, इस महाभयंकर घोर सन्निपातको वैद्यजन 'वैदारिक' कहते हैं। इसके उत्पन्न होनेसे तीन रात्रि व्यतीत हो जायँ तो औषधिकी कल्पना करना वृथा है ॥ ५६५-५६९ ॥

ग्रन्थान्तरेऽपि-

शीताङ्गस्त्रिमलोद्भवज्वरगणे तन्द्री प्रलापी ततो रक्तष्ठीवथिता च तत्र गणितः सम्भुग्ननेत्रस्तथा। साभिन्यासकजिह्वकश्च कथितः प्राक्सन्धिगोऽथान्तको रुग्दाहः सहचित्तविभ्रम इह द्वौ कर्णकण्ठग्रहौ ॥ ५७० ॥

तन्द्री-तन्द्रिकः। प्रलापी-प्रलापकः। रक्तष्ठीवथिता-रक्तष्ठीवी। सम्भुग्ननेत्रः-भुग्ननेत्रः। अभिन्यासकः-अभिन्यासः। कर्णकंठग्रहौ-कर्णग्रहः कर्णिका, कंठग्रहः कंठकुब्जकः ॥

अन्य ग्रन्थोंमें इन वातोल्वणादि तेरह सन्निपातोंके शीतांगादि जो नाम कहे हैं, उनको कहते हैं. ॥ ५७० ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए ज्वरोंमें शीतांग, तन्द्रिक, प्रलापक, रक्तष्ठीवी, भुग्ननेत्र, अभिन्यास, जिह्वक, संधिग, अन्तक, रुग्दाह, चित्तविभ्रम, कर्णक और कण्ठकुब्जक ये तेरह सन्निपातज्वर गिने जाते हैं ॥

अथ तेषां लक्षणानि।

शीतांगसन्निपातलक्षणम्। १

हिमशिशिरशरीरः सन्निपातज्वरी यः श्वसनकसनहिक्कामोहकम्पप्रलापैः। क्लमबहुकफवाताददाहवम्यङ्गपीडास्वरविकृतिभिरार्तः शीतगात्रः स उक्तः ॥५७१॥

अब इन तेरहके लक्षण कहते हैं—जिस सन्निपातज्वरमें रोगीका शरीर बर्फके समान शीतल हो, श्वास, खांसी, हिचकी,

मोह, कम्प. प्रलाप और ग्लानि हो, कफ बहुत निकले, वायुका अधिक कोप हो, अधिक दाह तथा वमन हो, सब अंगोंमें पीडा और स्वर बैठजाय उस सन्निपातको 'शीतगात्र' कहते हैं ॥ ५७१ ॥

अथ तन्द्रिकसन्निपातलक्षणम् । २

तन्द्राऽतीव ततस्तृषाऽतिसरणं श्वासोऽधिकः कासरुक् सन्तप्तातितनुर्गले श्वयथुना सार्द्धश्च कण्डूः कफः । सुश्यामा रसना क्लमः श्रवणयोर्मान्द्यश्च दाहस्तथा यत्र स्यात्स हि तन्द्रिको निगदितो दोषत्रयोत्थो ज्वरः ॥ ५७२ ॥

जिस ज्वरमें अत्यन्त तन्द्रा हो, तृषा लगे, अतीसार हो, श्वास अधिक हो, खांसी हो, शरीर अधिक सन्तापित हो, गलेमें सूजन और खुजली तथा कफ हो, जीभ काली होजाय, ग्लानि, कानोंमें बधिरता और दाह हो, उस सन्निपातको 'तन्द्रिक' कहते हैं॥५७२॥

अथ प्रलापकसन्निपातलक्षणम् । ३

यत्र ज्वरे निखिलदोषनितान्तरोषजाते प्रलापबहुलाः सहसोत्थिताश्च । कम्पव्यथापतनदाहविसंज्ञता स्युर्नाम्ना प्रलापक इति प्रथितः पृथिव्याम् ॥ २७३ ॥

जिस ज्वरमें सम्पूर्ण दोषोंके अत्यन्त कुपित होनेसे प्रलाप और कम्प, वारंवार उठकर भागना, व्यथा, गिरना, दाह और अत्यन्त बेहोशी हो, उसको लोकमें 'प्रलापक' कहते हैं ॥ ५७३ ॥

अथ रक्तष्ठीविसन्निपातलक्षणम् । ४

निष्ठीवो रुधिरस्य रक्तसदृशं कृष्णं तनौ मण्डलं लौहित्यं नयने तृषाऽरुचिवमिश्वासातिसारभ्रमाः । आध्मानश्च विसंज्ञता च पतनं हिक्काऽङ्गपीडा भृशं रक्तष्ठीविनि सन्निपातजनिते लिङ्गं ज्वरे जायते ॥ ५७४ ॥

जिस ज्वरमें रुधिरको थूके, शरीरमें रुधिरके समान तथा काले चकत्ते पडजायँ, नेत्र लाल होजायँ, तृषा, अरुचि, वमन, श्वास, अतीसार, भ्रांति और अफारा हो अथवा पेट फूलजाय, संज्ञा जाती रहे अर्थात् अचेत होजाय, वारंवार गिरगिर पडे, हिचकी और शरीरमें अत्यन्त पीडा हो, उस सन्निपातज्वरको ' रक्तष्ठीवी ' कहते हैं ॥ ५७४ ॥

अथ भुग्ननेत्रसन्निपातज्वरलक्षणम् । ५

भृशं नयनवक्रता श्वसनकासतन्द्रा भृशं प्रलापमदवेपथुश्रवणहानिमोहास्तथा । पुरो निखिलदोषजे भवति यत्र लिंगं ज्वरे पुरातनचिकित्सकैः स इह भुग्ननेत्रो मतः ॥ ५७५ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें नेत्रोंमें अत्यन्त टेढापन हो, श्वास, खांसी, तन्द्रा, अत्यन्त प्रलाप, मद और कम्प हो । कानोंमें बहरापन होजाय और मोह हो, उसको प्राचीन वैद्य 'भुग्ननेत्र' कहते हैं ॥ ५७५ ॥

अथाभिन्याससन्निपातलक्षणम् । ६

दोषास्तीव्रतरा भवन्ति बलिनः सर्वेऽपि यत्र ज्वरे मोहोऽतीव विचेष्टता विकलता श्वासो भृशं मूकता । दाहश्चिक्कणमाननश्च दहनो मन्दो बलस्य क्षयः सोऽभिन्यास इति प्रकीर्तित इह प्राज्ञैर्भिषग्भिः पुरा ॥ ५७६ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें सब दोष अत्यन्त बलवान् और तीव्र हों, अत्यन्त बेहोशी हो, विचेष्टता हो, अत्यन्त बेकली तथा श्वास हो, अधिकतर मूकता गूँगापन हो, दाह हो, मुख चिकना हो, अग्निमन्द और बलकी हानि हो, उसको वैद्योंने ' अभिन्यास ' कहा है ॥५७६॥

अथ जिह्वकसन्निपातलक्षणम् । ७

त्रिदोषजनिते ज्वरे भवति यत्र जिह्वा भृशं वृता कठिनकण्टकैस्तदनु निर्भरं

मूकता । श्रुतिक्षतिबलक्षतिश्वसनकाससन्तप्तयः । पुरातनभिषग्वरास्तमिह जिह्वकं चक्षते ॥ ५७७ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें जीभ अत्यन्त कठिन कांटोंसे आच्छादित हो, अत्यन्त मूकता हो, कानोंमें बहरापन बलकी हानि हो, श्वास, खांसी और अधिकतर संताप हो, उसको प्राचीनवैद्य 'जिह्वक' कहते हैं ॥ ५७७ ॥

अथ सन्धिगसन्निपातलक्षणम् ।

व्यथाऽतिशयिता भवेच्छ्वयथुसंयुता सन्धिषु प्रभूतकफता मुखे विगतनिद्रता कासरुक् । समस्तमिति कीर्तितं भवति लक्ष्म यत्र ज्वरे त्रिदोषजनिते बुधैः स हि निगद्यते सन्धिगः ॥ ५७८ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें संधियोंमें सूजन और अत्यन्त पीडा हो, मुखमें अत्यन्त कफ आवे, निद्राका नाश और खांसीकी पीडा हो. उसको विद्वान् वैद्य ' संधिग ' कहते हैं ॥ ५७८ ॥

अथान्तकसन्निपातज्वरलक्षणम् । ९

यस्मिँल्लक्षणमेतदस्ति सकलैर्दोषरुदीते ज्वरेऽजस्रं मूर्द्धविधूननं सकसनं सर्वांगपीडाऽधिका । हिक्काश्वासकदाहमोहसहिता देहेऽतिसन्तप्तता वैकल्यञ्च वृथा वचांसि मुनिभिः सङ्कीर्तितः सोऽन्तकः ॥ ५७९ ॥

जिससन्निपातज्वरमें निरन्तर रोगी शिरको हिलाया करे, खांसी, सर्व शरीरमें अत्यन्त पीडा हो, हिचकी श्वास, दाह, मोह देहमें अत्यन्त सन्ताप, विकलता और वृथा बकवाद करे, उसको मुनिजन 'अंतक सन्निपात' कहते हैं ॥ ५७९ ॥

अथ रुग्दाहसन्निपातलक्षणम् । १०

दाहोऽधिको भवति यत्र तृषा च तीव्रा श्वासप्रलापविरुचिभ्रममोहपीडाः। मन्याहनुव्यथनकण्ठरुजः श्रमश्च रुग्दाहसंज्ञ उदितस्त्रिभवो ज्वरोऽयम् ॥ ५८० ॥

जिस सन्निपातमें दाह अधिक हो, प्यास अत्यन्त तेज हो, श्वास हो, बकवाद करे, अरुचि हो, भ्रम हो वेहोशी हो, पीडा हो, नाड और ठोडीमें अत्यन्त वेदना हो, कंठमें पीडा श्रम हो, उसको 'रुग्दाह' सन्निपात कहते हैं ॥ ५८० ॥

अथ चित्तभ्रमसंनिपातलक्षणम् । ११

गायति नृत्यति हसति प्रलपति विकृतं निरीक्षते मुह्येत् । दाहव्यथाभयार्तो नरस्तु चित्तभ्रमे ज्वरे भवति ॥ ५८१ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें रोगी गाना गावे, नाचे, हसे वृथा बके, बुरी तरहसे देखे वेहोशी, को प्राप्त होजाय तथा दाह व्यथा और भयसे पीडित हो, उसको 'चितभ्रम' कहते हैं॥५८१॥

अथ कर्णिकसंनिपातलक्षणम् । १२

दोषत्रयेण जनितः । किल कर्णमूले तीव्रो ज्वरे भवति तु श्वयथुर्व्यथा च । कण्ठग्रहो बधिरता श्वसनं प्रलापः प्रस्वेदमोहदहनानि च कर्णिकाख्ये ॥५८२॥

जिस ज्वरमें तीनों दोषोंके अत्यन्त कुपित होनेसे कानकी जडमें अत्यन्त सूजन और पीडा हो, कंठरुक जाय, बहरापन, श्वास, वृथा, बकवाद, पसीनोंकाआना, बेहोशी और दाह हो,उसको 'कर्णिक' सन्निपात कहते हैं५८२

अथ कण्ठकुब्जसंनिपातलक्षणम् । १३

कण्ठः शूकशतावरुद्धवदतिश्वासः प्रलापोऽरुचिर्दाहो देयरुजा तृषाऽपि च हनुस्तम्भः शिरोऽर्तिस्तथा । मोहो वेपथुना सहेति सकलं लिंगं त्रिदोषज्वरे यत्र स्यात्स हि कण्ठकुब्ज उदितः प्राच्यैश्चिकित्साबुधैः ॥ ५८३ ॥

जिस सन्निपातज्वरमे कंठ सैकडों धानके शूकके समान कांटोंसे घिर जाय, अत्यन्त

श्वास हो, प्रलाप हो, अरुचि, दाह, शरीरमें पीडा हो, तृषा हो, मोह और कंपहो, उसको प्राचीन वैद्य "कंठकुब्ज" कहते हैं ॥ ५८३ ॥

अथ संनिपातज्वरसाध्यासाध्यत्वम् ।

सन्धिगस्तेषु साध्यः स्यात्तन्द्रिकश्चित्तविभ्रमः । कर्णिको जिह्वकः कण्ठकुब्जः पञ्चापि कष्टकाः । रुग्दाहस्त्वतिकष्टेन संसाध्यस्तेषु भाषितः ॥ ५८४ ॥ रक्तष्ठीवी भुग्ननेत्रः शीत गात्रः प्रलापकः । अभिन्यासोऽन्तकश्चैते षडसाध्याः प्रकीर्तिताः ॥ ५८५ ॥

इनमें 'संधिग सन्निपात' साध्य है। तन्द्रिक, चित्तविभ्रम, कर्णिक, जिह्वक और कण्ठकुब्ज ये पांच कष्टसाध्य हैं। रुग्दाह अत्यन्त कष्टसाध्य है। रक्तष्ठीवी भुग्ननेत्र, शीतगात्र, प्रलापक, अभिन्यास और अंतक ये छः असाध्य हैं ॥ ५८४ ॥ ५८५ ॥

अथान्यग्रन्थोक्तवातोल्वणादित्रयोदशसंनिपातानां कुम्भीपाकादिनामान्याह ।

कुम्भीपाकः प्रोर्णुनावः प्रलापी ह्यन्तर्दाहो दण्डपातोऽन्तकश्च । एणीदाहश्चाथ हारिद्रसंज्ञो भेदा एते सन्निपातज्वरस्य ॥५८६॥ अजघोषभूतहासौ यन्त्रापीडश्च संन्यासः । संशोषी च विशेषास्तस्यैवोक्तास्त्रयोदशान्यत्र ॥ ५८७ ॥

कुम्भीपाक प्रोर्णुनाव, प्रलापी, अन्तर्दाह, दण्डपात, अन्तक, एणीदाह, हारिद्र, अजघोष, भूतहास, यन्त्रापीड, संन्यास और संशोषी ये तेरह सन्निपातोंके अनुक्रमसे नाम कहे हैं ॥ ५८६ ॥ ५८७ ॥

अथ कुम्भीपाकलक्षणम् । १

घोणाविवरझरद्बहुशोणासितलोहितं सान्द्रम् । विलुठन्मस्तकमभितः कुम्भीपाकेन पीडितं विद्यात् ॥ ५८८ ॥

जिस मनुष्यकी नाकमेंसे लाल और काला बहुत गाढा रुधिर गिरे और जो अपने शिरको बारंबार इधर उधरको गेरे, उसको 'कुम्भीपाक' सन्निपातसे पीडित जानना ॥ ५८८ ॥

अथ प्रोर्णुनावसंनिपातलक्षणम् । २

उत्क्षिप्य यःस्वमंग क्षिपत्यधस्तान्नितान्तमुच्छ्वसिति । तं प्रोर्णुनावजुष्टं विजानीयात् ॥ ५८९ ॥

जो मनुष्य बारंबार उठ उठकर पृथ्वीमें गिरगिर पडे अथवा हाथ पाँवोंको उठाकर पटके, बहुत हाँपे, उस विचित्र दुःखवाले रोगीको 'प्रोर्णुनाव' सन्निपातसे पीडित जानना ॥ ५८९ ॥

अथ प्रलापिसन्निपातलक्षणम् । ३

स्वेदभ्रमांगभेदाः कम्पो दवथुर्वमिर्व्यथा कण्ठे । गायश्च गुर्वतीत प्रलापिजुष्टस्य जायते लिंगम् ॥ ५९० ॥

जिस मनुष्यके प्रलापी सन्निपात कुपित होता है, उसके पसीना, भ्रम, संधियोंमें तोडने सरीखी पीडा, कम्प, दाह, वमन, कण्ठमें पीडा और शरीरमें भारीपन ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५९० ॥

अथान्तर्दाहसन्निपातलक्षणम् ।

अन्तर्दाहः शैत्यं बहिःश्वयथुररतिरपि तथा श्वासः । अङ्गमपि दग्धकल्पं सोऽन्तर्दाहार्दितः कथितः ॥ ५९१ ॥

जिस मनुष्यके शरीरके भीतर दाह हो, ऊपरसे शरदी लगे, सूजन, बेचैनी, श्वास और सम्पूर्ण शरीर जलासा हो जाय, उसको अन्तर्दाह' सन्निपात ज्वरसे पीडित जानना ॥५९१॥

अथ दण्डपातसन्निपातलक्षणम् । ५

नक्तन्दिवा न निद्रामुपैति गृह्णाति मूढधीर्नभसः । उत्थाय दण्डपाती भ्रमातुरः सर्वतो भ्रमति । ५९२ ॥

नभसोगृह्णाति-आकाशात्किञ्चिद् गृहीतुं करौ प्रसारयतीत्यर्थः ॥

जिस मनुष्यके 'दण्डपात' सन्निपात कुपित होता है, वह मनुष्य रात और दिन किसी समय निन्द्राको प्राप्त नहीं होता, बुद्धिके भ्रमसे आकाशको पकडनेके लिये हाथ बढावे और बेहोशीसे आतुर होकर चारों ओर दौड-कर गिर पडे ॥ ५९२ ॥

अथान्तकसन्निपातलक्षणम्। ६

संपूर्यते शरीरं ग्रन्थिभिरभितस्तथोदरं मरुता। श्वासातुरस्य सततं विचेतनस्या न्तकार्तस्य ॥ ५९३ ॥

जिस मनुष्यके 'अन्तक' नामवाला सन्निपात कुपित होता है उसके शरीरमें बहुतसी गांठें पडजाती हैं, उदर वायुसे भरजाता है, निरन्तर श्वाससे पीडित रहता है और बेहोश रहता है ॥ ५९३ ॥

अथैणीदाहसन्निपातलक्षणम्। ७

परिधावतीव गात्रे रुक्पात्रे भुजगपतग-हरिणगणः। वेपथुमतः सदाहस्यैणीदा-हज्वरार्तस्य ॥ ५९४ ॥

रुक्पात्रे—पीडाभाजने। गात्रस्य विशेषण-मेतत्।

जिस मनुष्यके 'एणीदाह' सन्निपात कुपित होता है, उसको कम्प और दाह होता है तथा उसका शरीर अत्यन्त कष्टसे पीडित होता है और उसके शरीरपर साँप, पाँखी और हिर-नोंके समूह दौडते प्रतीत होते हैं ॥

अथ हारिद्रकसन्निपातलक्षणम्। ८

यस्यातिपीतमङ्गं नयने सुतरां मलस्त-तोऽप्यधिकम्। दाहोऽतिशीतता वहिरस्य स हारिद्रको ज्ञेयः ॥ ५९५ ॥

जिस मनुष्यका शरीर अत्यन्त पीला होजाय, नेत्र शरीरसे भी अधिक पीले हो जायँ, मल नेत्रोंसे भी अधिक पीला होजाय, भीतर दाह हो और बाहर सरदी लगे उसको 'हारिद्रक' सन्निपातसे पीडित जानना ॥

अथाजघोषसन्निपातलक्षणम्। ९

छगलकसमानगन्धः स्कन्धरुजावान्निरु-द्धगलरन्ध्रः। अजघोषसन्निपातादाता-म्राक्षः पुमान् भवति ॥ ५९६ ॥

शरीरमें बकरेके समान गन्ध आवे, कन्धोंमें पीडा हो, गलेका छिद्र रुक जाय और नेत्र लाल होजायँ, ये सब लक्षण जिस ज्वरवालेके हों, उसको 'अजघोष' सन्निपातसे पीडित जानना ॥ ५९६ ॥

अथभूतहाससन्निपातलक्षणम्। १०

शब्दादीनधिगच्छति न स्वान्विषयान् यदिन्द्रियग्रामैः। हसति प्रलपति परुषं स ज्ञेयो भूतहासार्तः ॥ ५९७ ॥

जिस मनुष्यकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने विष-यको ग्रहण करनेमें असमर्थ होजायँ तथा वह हँसे और वृथा बके, उसको 'भूतहास' सन्निपात ज्वरसे पीडित जानना ॥ ५९७ ॥

अथ यन्त्रापीडसन्निपातलक्षणम्। ११

येन मुहुर्ज्वरवेगाद्यन्त्रेणेवावपीड्यते गात्रम्। रक्तं पित्तञ्च वमेद्यन्त्रापीडः स विज्ञेयः ॥ ५९८ ॥

जिस मनुष्यका शरीर ज्वरके वेगसे बार-बार कोल्हूमें पेलनेकी तरह पेलासा प्रतीत हो और वह रुधिर सहित पित्तकी वमन करे उसको 'यन्त्रापीड' सन्निपात ज्वरसे पीडित जानना ॥ ५९८ ॥

अथ संन्याससन्निपातज्वरलक्षणम्। १२

अतिसरति वमति कूजति गात्राण्यभित-श्चिरं नरः क्षिपति। संन्याससन्निपाते पल-पत्युग्राक्षिमण्डलो भवति ॥ ५९९ ॥

जिस मनुष्यके 'सन्यास' नामक सन्निपा-तज्वर कुपित होता है, वह अतीसार दस्त और वमनसे पीडित हो, गूंजे, वारंवार अंगोंको इधर उधर पटके, बकवाद करे और नेत्रमं-डल अत्यन्त उग्र हो जाते हैं ॥ ५९९ ॥

अथसंशोषिसंनिपातलक्षणम् । १३

मेचकवपुरतिमेचकलोचनयुगलो मलोत्सर्गात् । संशोषिणि सितपिडिकामण्डलयुक्तो ज्वरे नरो भवति ॥ ६०० ॥

जिस मनुष्यके 'संशोषी' नामक सन्निपात कुपित होता है, उसका शरीर दस्तके आनेसे काला पड जाता है और नेत्र अत्यन्त काले हो जाते हैं तथा शरीरमें सफेद सफेद फुन्सी और चकत्ते पड जाते हैं ॥ ६०० ॥

अथ संनिपातज्वरभयंकरता ।

नारायण एव भिषग् भेषजमेतेषु जाह्नवीनीरम् । नैरुज्यहेतुरेको नित्यं मृत्युञ्जयो ध्येयः ॥ ६०१ ॥

सन्निपात ज्वरमें एक श्रीनारायण ही तो वैद्य है, एक गंगाजलही औषधि है और मृत्युञ्जय सदाशिव काही ध्यान करना चाहिये ॥ ६०१ ॥

अथासाध्यसंनिपातज्वरलक्षणम् ।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः । शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ ६०२ ॥

सुदारुणः मारकत्वात् । यतस्तेन शोथेन कश्चिदेव प्रमुच्यते, को वा जीवितं न त्यजतीत्यर्थः ।

सन्निपात ज्वरके अन्तमें कानकी जडमें महाभयंकर सूजन उत्पन्न होती है, उस सूजनके होनेसे कोई ही मनुष्य बचते हैं, प्रायः मरही जाते हैं ॥ ६०२ ॥

अथ संनिपातसाध्यासाध्यता ।

सन्निपातज्वरान्कष्टानसाध्यानपरे जगुः । दोषे प्रवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसम्पूर्णलक्षणः ॥ सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कष्टसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ ६०३ ॥

सर्वाणि दाहशीतादीनि सम्पूर्णानि आतुरगातानि प्रोक्तानियावल्लक्षणानि यस्य सः। ततोऽन्यथा दोषे पक्वेऽग्नौ दीप्ते स्वल्पलक्षणकः कष्टसाध्य इत्यर्थः ॥

कितने वैद्य कष्टसाध्य सन्निपातको भी असाध्य कहते हैं, परन्तु उनमें ऐसा समझना चाहिये कि-जो वातादि दोषोंकी वृद्धि हो, जठराग्नि नष्ट हो गई हो और दाह शीतादि सम्पूर्ण लक्षण हों तो उस सन्निपात ज्वरको असाध्य जानना और जो दोष पक्व हो, अग्नि दीप्त हो और थोडे थोडे लक्षण हों तो उस सन्निपातज्वरको कष्टसाध्य जानना॥६०३॥

अथ सामान्यसन्निपातज्वरचिकित्सा ।

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् । कस्तेन न कृतो धर्मः काञ्च पूजां न सोऽर्हति ॥ ६०४ ॥ मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातं चिकित्सता । यश्च तत्र भवेज्जेता स जेताऽऽमयसंकुले ॥ ६०५ ॥

जो वैद्य सन्निपातरूपी सागरमें डूबे हुए मनुष्यको बाहर निकालता है उसने कौनसा धर्म नहीं किया और वह कौनसी पूजाके योग्य नहीं ? अर्थात् उसने सम्पूर्ण धर्म किये और वह सर्व पूजाओंके योग्य है। सन्निपातकी चिकित्सा करनेमें मृत्युके साथ लड़ना होता है, इस कारण जिसने सन्निपातको जीत लिया वह सर्व प्रकारके रोगोंके समूहोंको जीत सकता है ॥ ६०४ ॥ ६०५ ॥

श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्याद्व्याधौ त्रिदोषजे। संसर्गे यो गरीयान् स्यादुपक्रम्यः स वै भवेत् ॥ ६०६ ॥

संसर्गे–दोषद्वयसंसर्गे । गरीयान्–बलवत्तरः॥

अंशांशं यत्र दोषाणां विवेक्तुं नैव शक्नुयात् । क्रियां साधारणीं तत्र विदधीत चिकित्सकः ॥ ६०७ ॥ लङ्घनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा । अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ६०८

सन्निपातज्वरमें प्रथम कफको जीतना चाहिये। त्रिदोषज्वरमें जो दो दोषोंकी उल्वणता हो तो उसमें जो दोष बलवान् हो, प्रथम उसको जीते। जहां दोषोंके अशांशके विचारको वैद्य नहीं जान सके, वहाँ साधारण चिकित्सा करनी चाहिये। सन्निपातज्वरमें प्रथम लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन अवलेह और अंजन ये प्रयोग करने चाहिये ॥ ६०६-६०८ ॥

"क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत्। पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रिया संकरो हितः ॥ ६०९ ॥"

इति वचनेन क्रियासंकरस्य निषिद्धत्वात् कथमत्र नस्यनिष्ठीवनावलेहाञ्जनानि युगपद् विधीयन्ते इत्याशंक्याह--

शंका-"एक क्रियाके करनेसे जो गुण न हो तो उस क्रियाका वेग शांत होनेपर दूसरी क्रिया करनी चाहिये। क्योंकि क्रियाओंका संकर (मेल) हितकारी नहीं है।" इस वचनसे क्रियासंकरका निषेध है, फिर इस सन्निपातज्वरमें नस्य, अंजन, निष्ठीवन और अवलेह इन सबका एक ही समय प्रयोग करना कैसे कहा? ॥ ६०९ ॥

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः क्रियासांकर्यमिष्यते। भिन्नरूपतया तास्तु न हि कुर्वन्ति दूषणम् ॥ ६१० ॥

समाधान-"जो समानरूपवाली क्रियायें एक ही समय की जावें तो क्रियाओंका संकर होता है ऐसा जानना चाहिये, किन्तु भिन्न-भिन्न रूपवाली क्रियायें जो एक ही समय की जावें तो कोई हानि नहीं" यह सिद्धान्त है ६१०

अथ सन्निपातज्वरलंघनावधिः।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा। लंघनं सन्निपातेषु कुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥ ६११ ॥ लंघने त्रिरात्रादिविकल्प उल्वणवाताद्यपेक्षया। दोषाणां शीघ्रमध्यमन्दशक्तित्वात् व्याध्यभावाद्वा। अरोग्यदर्शनादिति - यावदारोग्यदर्शनं स्यात्तावद्वा लंघनं कुर्यात्। एतेन त्रिरात्राद्यवधेर्न नियतत्वं सूचितम्। अत एव सुश्रुतः प्राहसप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा। पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा ॥ ६१२ ॥

घोरतर इति स्वभावादेव तदा घोरतरो भूत्वा इति ॥

सन्निपातज्वरमें तीन रात्रिपर्यन्त, पांच रात्रिपर्यन्त, दश रात्रि पर्यन्त अथवा जबतक आरोग्य न हो, तबतक बरोबर लंघन उपवास करावे।

वायु शीघ्रगतिवाली है, पित्त मध्यगतिवाला है और कफ मन्दगतिवाला है, इससे इन दोषोंकी उल्वणतापर ध्यान रखकर तीन, पांच और दश रात्रिपर्यन्त लंघन करानेका विकल्प कहा है। आरोग्य होने पर्यन्त लंघन कराने जो कहे उससे यह सूचना दी है कि, कुछ तीन रात्रि आदिकी अवधि नहीं है। इस कारण सुश्रुत कहता है कि-"सातवें दशवें अथवा बारहवें दिन पर्यन्त सन्निपातज्वर स्वाभाविक रीतिसे अत्यन्त घोर होकर शान्त हो जाता है अथवा मारडालता है ६११॥६१२

अथ मारणशान्तकारणम्।

पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात्। हन्ति विमुञ्चत्यथ वा त्रिदोषजो धातुमलपाकात् ॥ ६१३ ॥

त्रिदोषजो ज्वर इति शेषः। धातुमलपाकात्-धातुपाकाद्धन्ति मलपाकाद्विमुञ्चतीत्यर्थः॥ धातुमलपाके प्राक्तनकर्मैव हेतुः। तत्र यदि जीवनसंवर्द्धकं कर्म अस्ति तदा मलपाकः, अन्यथा धातुपाकः, स च रसादिशुक्रान्तधातूनां पाको बोद्धव्यः ॥

पित्तकी, कफकी और वायुकी वृद्धिसे क्रमपूर्वक दस दिन, बारह दिन और सात-दिनमें जो धातु पक जावे तो सन्निपातज्वर मार डालता है और मल पकजाय तो शान्त हो जाता है। धातुओंके और मलोंके पकनेमें पूर्वजन्मके कर्म ही कारणरूप हैं। वहां शुभ कर्मका उदय होनेसे मलोंका पाक होता है और अशुभकर्मके उदयसे धातुओंका पाक होता है। धातुओंका जो पाक होता है, वहां रससे वीर्यपर्यन्त होता है, ऐसा जानना॥६१३

अथ धातुपाकलक्षणम् ।

निद्रानाशो हृदि स्तम्भो विष्टम्भो गौरवारुची । अरतिर्बलहानिश्च धातूनां पाकलक्षणम् ॥ ६१४ ॥

विष्टम्भः उदरस्य, गौरवम् गात्राणाम् ॥

स बाध्यमानो हृदि नाभिदेशे गात्रेषु वा पाकरुजान्वितेषु । पीडां ज्वरार्तोऽङ्गुलिभिश्चगच्छेत् स धातुपाकी कथितो भिषग्भिः ॥ ६१५ ॥ नाभेरूर्ध्वं हृदोऽधस्तात्पीडिते चेद्व्यथा भवेत् । धातोः पाकं विजानीयादन्यथा तु मलस्य च ॥

निद्राका न आना, हृदयका बँध जाना, मलका अवरोध, शरीरमें भारीपन, अरुचि, बेचैनी और बलका नाश ये सब लक्षण हों तो जानना कि, धातुओंका पाक हुआ है। अन्य वैद्य भी कहते हैं कि, ज्वरसे पीडित मनुष्यके हृदयमें नाभिके ऊपर पाकके कारण दुखते हुए अङ्गोंमें अंगुलियोंके दबानेसे पीडा हो तो उसको धातुपाक हुआ जानना। अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि, नाभिके ऊपर और हृदयके नीचे दबानेसे जो पीडा हो तो धातुओंका पाक हुआ जानना और जो पीडा न हो तो मलका पाक हुआ जानना॥ ६१४-६१६ ॥

अथ मलपाकलक्षणम् ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः । इन्द्रियाणाञ्च वैमल्यं मलानां पाकलक्षणम् ॥ ६१७ ॥

दोषाः-वातादयस्तेषां प्रकृतिः दाहतन्द्रागौरवादि करणम्, तस्य वैकृत्यं वैपरीत्यम् । वैमल्यं मलराहित्यम् । मलानां दोषाणां पाकलक्षणम् ॥

शश्वत्त्विन्द्रियपञ्चकस्य पटुता वह्नेश्च यत्र क्रमात्तृष्णादिप्रशमो ज्वरस्य मृदुता तं दोषपाकं वदेत् । हृन्नाभ्योरतिवेदनाऽतिसरणं तीव्रो ज्वरस्तृण्मदा श्वासाधिक्यमरोचकोऽरतिरिति स्याद्धातुपाकाकृतिः ॥ ६१८ ॥

वातादि दोषोंका जो स्वभाव दाह, तन्द्रा, भारीपन आदिके करनेका है, वह न हो अर्थात विपरीत हो जाय, ज्वर और शरीरका हलका हो जाना तथा इंद्रियोंमें निर्मलता ये लक्षण हों तो मलपाक हुआ जानना। अन्यत्र भी लिखा है कि, निरन्तर पांचो इंद्रियां अपने कार्य करनेमें समर्थ हों, जठराग्नि दीप्त हो, अनुक्रमसे तृषादिका शान्त होना और ज्वरका हलका होना ये लक्षण हों तो दोषोंका पाक हुआ जानना और हृदय तथा नाभिमें अत्यन्त पीडा हो अधिकतर पतला दस्त आवे ज्वरका तीव्र वेग हो, तृषा, मद, श्वासकी अधिकता, अरुचि और बेचैनी ये लक्षण हों तो धातुओंका पाक हुआ जानना ६१७॥६१८

अथ ज्वरमुक्तिवधपरमावधिः ।

सप्तमी द्विगुणी यावन्नवम्येकादशी तथा । एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ ६१९ ॥

नवम्येकादशी आगमनदिवसं विहाय बोद्धव्यानेन आगमनदिवसं नीत्वा दशमी द्वादशी तथा अत्र रात्रिरिति अध्याह्रियते ॥

सन्निपातज्वर अपने आनेके दिनसे चौद-

हवीं, वीसवीं अथवा चौबीसवीं रातमें शांत हो जाता है या मार देता है। यह सन्निपातकी मर्यादा जाननी ॥ ६१९ ॥

अथ सन्निपातज्वरप्रथमकर्तव्यता।

सन्निपातज्वरी पूर्वं सम्यङ्लंघनमाचरेत्। शृतं शीतं पिबेदम्भः समये भेषजं भजेत् ॥ ६२० ॥ सन्निपातेन तृष्यन्तं पार्श्वरुक्तालुशोषिणम्। यः पाययेज्जलं शीतं स मृत्युर्नरविग्रहः ॥ ६२१ ॥

शीतमक्वथितम् शृतं तु शीतं विहितमेव ॥

सन्निपातज्वररोगीको प्रथम उत्तम विधिसे लंघन कराने चाहिये। औटाकर शीतल किया हुआ जल पिलावे और समयके प्राप्त होनेपर औषधि देवे। जो मूर्ख वैद्य सन्निपातसे पीडित मनुष्यको तृषायुक्त पसलियोंमें पीडा और तालु शोष होनेपर विना औटाया हुआ कच्चा शीतल जल पिलाता है, उसको साक्षात् मृत्युही समझना चाहिये ॥ ६२० ॥ ६२१ ॥

अथ वालुकास्वेदः।

वतश्लेष्मकृते स्वेदान् कारयेद्रूक्षनिर्मितान्। स्निग्धः स्वेदो निषिद्धोऽत्र विना केवलवातजात् ॥ ६२२ ॥ खर्परभृष्टपटस्थितकाञ्जिकसंसिक्तवालुकास्वेदः। शमयति वातकफामयमस्तकशूलाङ्गभङ्गादीन् ॥ ६२३ ॥ स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम्। हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति६२४

वात और कफकी अधिकतावाले ज्वरमें रूखे पदार्थोंसे बनाया हुआ स्वेद देना चाहिये केवल वातसे उत्पन्न हुए ज्वरको छोडकर इस वातकफोत्पन्न ज्वरमें स्निग्ध पदार्थोंका स्वेद देना निषेध है। रेतको टिकरेमें गरम करके कपडेमें बांधकर उसके ऊपर काँजीके छींटे देकर स्वेद देवे। यह बालुकास्वेद वात और कफके रोगोंको, मस्तकके शूलको और शरीरके टूटने आदिको दूर करता है तथा शरीरके स्रोतोंको नरम करता, जठराग्निको आमाशयमें स्थापन करनेवाला और वातकफके स्तम्भको तोड़कर ज्वरको नष्ट करता है ॥६२२-६२४॥

अथ सैन्धवादिनस्यम्।

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च। बस्तमूत्रेण सम्पिष्टं नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ ६२५ ॥

श्वेतमरिचम्—शिग्रुबीजम्।

सैंधानिमक, सहिंजनेके बीज, सरसों और कूठ इन सबको बकरेके मूत्रमें पीसकर नस्य देनेसे तन्द्रा नष्ट होती है ॥ ६२५ ॥

अथ मधूकसारादिनस्यम्।

मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाःसमाः। श्लक्ष्णं पिष्ट्वाऽम्भसा नस्यं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ ६२६ ॥ मातुलुंगार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणान्वितम्। अन्यद्वा सिद्धविहितं नस्यं तीक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥६२७॥ तेन प्रभिद्यते श्लेष्मा प्रभिन्नश्च प्रसिच्यते। शिरोहृदयकण्ठास्यपार्श्वरुक्चोपशाम्यति ॥ ६२८ ॥ मोहामयेन मुग्धं बोधयितुं यादृशः शक्तः। कल्पतरुनामधेयो रसो न तादृक् परं किंचित् ॥६२९॥

महुएका सार, सैंधानिमक, वच, मिर्च और पीपल इन सबको समान भाग लेकर जलमें पीसकर नस्य देनेसे तन्द्रा नष्ट होकर संज्ञा आजाती है। बिजौरा नींबू तथा अदरखके रसको किंचित् गरम करके उसमें सैंधानिमक, विरियासोंचर निमक और कचिया निमक मिलाकर नस्य देवे अथवा सिद्धलोगोंका कहा हुआ अन्य कोई तीक्ष्ण नस्य देवे, इससे कफ कटकर पतला होकर मुख नासिकाके द्वारा बाहर निकल जाता है मस्तक, हृदय, कंठ, मुख और पसलियोंकी पीडा शांत हो जाती है, मोहरूपी रोगसे मूढ हुए मनुष्यको जागृत करनेके लिये जैसा कल्पतरुरस उत्तम है ऐसी

अन्य औषधि उत्तम नहीं है (कल्पतरुरस वातज्वरमें कह आये हैं ॥ ६२६–६२९ ॥

अथ निष्ठीवनम् ।

जिह्वाताल्गलक्लोम मरुत्पित्तेन दूषितम् । तदा संचारयेच्छोषं जिह्वाविरसतां तथा ॥ ६३० ॥ स्फुटनश्च तदा जिह्वां लेपयेन्मधुपिष्टया । द्राक्षया साज्यपातेन जिह्वा स्यात्सरसा मृदुः ॥६३१॥ आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं कटुकत्रयम् । आकण्ठाद्धारये दास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥ ६३२ ॥ तेना स्यतालुकोष्ठांसमन्यापार्श्वशिरोगलात् । लीनाऽप्याकृष्यते श्लेष्मा लाघवं चास्य जायते ॥ ६३३ ॥ पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा निद्राश्वासगलामयाः । मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥ ६३४ ॥ सकृद्द्विस्त्रिश्चतुष्कुर्यात् दृष्ट्वा दोषबलाबलम् । तद्धितं परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ ६३५ ॥

जीभ, तालु, गला और तृषा लगनेका स्थान, वात, और पित्तसे दूषित हो तो शोष, जीभमें विरसता और जीभ फटने लगती है उस जीभकी विरसता और फटनेको दूर करनेके लिये दाखको सहतमें पीसकर घीमें मिलाकर जीभपर मले, इससे जीभ रसयुक्त और नरम हो जाती है । अदरखके रसमें सैंधानिमक सोंठ, मिर्च और पीपलको मिलाकर मुखमें कंठतक भरलेवे और वारंवार थूके। इससे मुख, तालु, कोठा, कंधे, नाक, पसली, मस्तक और गला इसमें छिपा हुआ भी कफ खिंचकर आजाता, है, शरीरमें हलकापन प्रकट होता है, तथा संधियोंका टूटना, ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, श्वास, गलेकी पीडा, मुख और नेत्रोंका भारीपन, जडता और कफका उत्क्लेद ये सब दूर हो जाते हैं । दोषोंका बलाबल विचारकर इसको एक वार, दोवार, तीनवार और चारवार भी करना चाहिये। सन्निपात रोगियोंके लिये यह अत्यन्त उत्तम औषधि है, ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥६३०--६३५ ॥

अथाष्टांङ्गावलेहः ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी व्योषं यासश्च कारवी । श्लक्ष्णं चूर्णीकृतं चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ ६३६ ॥ एषाऽवलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् । हिक्कां श्वासं च कासञ्च कण्ठरोगञ्च नाशयेत् । एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्णमार्द्रकजै रसैः॥६३७॥

पौश्करं पुष्करमूलं, तदलाभे कुष्ठं देयम् । शृङ्गी कर्कटशृङ्गी । व्योषं, शुण्ठीपिप्पलीमरिचानि । यासो यवासः, केचिद्यासस्थाने यवानीं प्रक्षिपन्ति । कारवी 'मनरैसा' इति लोके ॥

अष्टाङ्गं मधुना लिह्यादार्द्रकस्य रसेन वा । संमोहं दारुणं हन्यात्तन्द्रकाससमन्वितम् ॥ ६३८ ॥ सर्वेषु सन्निपातेषु न क्षौद्रमवचारयेत् । शीतोपचारि क्षौद्रं स्याच्छीतं चात्र विरुध्यते ॥ ६३९ ॥

सन्निपातज्वरेषु श्लेष्मनिग्रहार्थं सर्वदा स्वेदो हितः । तत्राग्निसम्बन्धेन देहस्य उष्णता तिष्ठति उष्णेन मधुनो विरोधः ॥ उष्णैर्विरुध्यते सर्वं विषान्वयतया मधु । तृष्णार्तमुष्णैरुष्णञ्च तन्निहन्ति यथा विषम् ॥ शीतोपचारि क्षौद्रं स्याच्छीतं चात्र विरुध्यते ॥६४०॥ शीतेनोपचारोऽस्यास्तीति शीतोपचारि, शीतंचात्र सन्निपातेन विरुध्यते । अवलेहःप्रायेणोर्ध्वजत्रुजरोगहरत्वात्सायमुपयुज्यते॥ उक्तञ्चऊर्ध्वजत्रुगदघ्नी या सा सायमवलेहिका।

अधोरोगहरी या सा भोजनात्प्राक्प्रयुज्यते ॥ ६४१ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडाशिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा और कलौंजी इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसे और शहतमें मिलाकर चाटे तो यह अष्टांग अवलेह-महादारुण सन्निपातको, हिचकी, श्वास, खाँसी और कण्ठके रोगोंको नष्ट करता है। जो कफकी उल्वणता हो तो इन औषधियोंके चूर्णको अदरखके साथ चाटना चाहिये। अन्य ग्रन्थोंमें कहा है कि-अष्टांग चूर्णको सहतके साथ अथवा अदरखके रसके साथ चाटनेसे तन्द्रा और खाँसी सहित दारुण मोह नष्ट होजाता है। सर्व प्रकारके सन्निपातोंमें सहतका उपयोग नहीं करना चाहिये। कारण यह है कि, मधुके ऊपर शीतल उपचार कियेजाते हैं और सन्निपातज्वरमें शीतल उपचार विरुद्ध है"। सन्निपातज्वरमें कफको नष्ट करनेके लिये सदैव स्वेद हितकारी है, किन्तु उसमें अग्निके सम्बन्धसे शरीरमें उष्णता रहती है और उष्णतासे सहतका विरोध है। जैसा कि, सुश्रुत कहता है कि-" विषका सम्बन्ध होनेके कारण सर्व प्रकारके सहत उष्ण पदार्थोंसे विरुद्ध है। उष्ण होनेके कारण तृषासे पीडित और रूक्ष हुए मनुष्यको यह सहत विषके समान मार देता है। शहत शीत उपचारवाला है और सन्निपातमें शीत उपचारका निषेध है।" अष्टांग अवलेह-विशेष करके गलेके ऊपरके रोगोंको हरनेवाला है इस कारण इसको सन्ध्याके समय सेवन करना चाहिये। चरक कहता है कि, जो अवलेह कण्ठसे ऊपरके रोगोंको हरनेवाला है, उसको सन्ध्याके समय सेवन करना चाहिये और जो अवलेह कण्ठसे नीचेके रोगोंको हरनेवाला है। उसको भोजनसे पहिले सेवन करना चाहिये। कितने वैद्य इस अष्टाग अवलेहमें जवासेकी जगह अजवायन डालते हैं ॥ ६३६-६४१ ॥

अथ चतुरङ्गावलेहः।

स्विन्नमामलकं पिष्ट्वा द्राक्षया सह मेलयेत्। विश्वभेषजसंयुक्तं मधुना सह लेहयेत्। तेतास्य शाम्यति श्वासः कासो मूर्च्छाऽरुचिस्तथा ॥ ६४२ ॥

उसीजे हुए आमलोंको पीसकर उसमें दाख और सोंठका चूर्ण मिलाकर सहतके साथ चाटनेसे श्वास खाँसी मूर्छा और अरुचि नष्ट हो जाती है ॥ ६४२ ॥

अथाञ्जनम्।

शिरीषबीजं गोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः। अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ६४३ ॥

सिरसके बीज, पीपल, मिरच, सैंधानिमक, लहसन, मैनशिल और वच इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर अञ्जन बनाकर नेत्रोंमें आँजे तो चेतना उत्पन्न होती है ॥ ६४३ ॥

अथ लोहचूर्णाद्यञ्जनम्।

अयोरजःश्वेतलोध्रं मरिचं चाञ्जनं तथा। गोमूत्रेण समायुक्तं तन्द्रानाशनमुत्तमम् ॥ ६४४ ॥

लोहेका चूर्ण, सफेद लोध और काली मिरच इनको गोमूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे तन्द्रा नष्ट होती है ॥ ६४४ ॥

अथ दण्डपाण्युक्ताञ्जनम्।

अञ्जनं सम्यगारब्धं मधुसिन्धुशिलोषणैः। प्रमोहद्रोहि भवति भाषितं दण्डपाणिना ॥ ६४५ ॥

सहत, सैंधानिमक, मैनशिल और कालीमिरच इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे अत्यन्त बेहोशी नष्ट होजाती है। इसको दण्डपाणिने कहा है ॥

अथ लेपः।

सूतं विषञ्च मरिचं तुत्थकं नवसादरम्। चूर्णितं स्वरसैर्मर्द्यं धूर्तपत्ररसोनयोः ॥ ६४६ ॥ सन्निपातकृते मोहे मूर्ध्नि

लिम्पेत्पदोपरि। अस्थिव्यथास्वनेनैव लेपं कुर्यात्पदोपरि ॥ ६४७ ॥

सन्निपातज्वरमें बेहोशी हो तो पारा, वत्सनाभ, कालीमिरच, नीलाथोथा और नवसादर इन सबको एकत्र धतूरेके रसमें और लहसुनके रसमें मर्दन करे। फिर शिरके मध्यभागकी हजामत बनवाकर उसमें इसका लेप करे और जो कहीं हड्डीमें पीडा होती हो तो वहाँपर भी इसी प्रकारसे इसका लेप करना चाहिये ॥ ६४६ ॥ ६४७ ॥

अथ दशमूलक्वाथः।

बिल्वश्योनाकगम्भारी पाटलागणिकारिकाः। पित्तघ्नं वातकफहृत् पञ्चमूलमिदं महत् ॥ ६४८ ॥ शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका। गोक्षुरुर्वातपित्तघ्नं कनीयः पञ्चमूलकम् ॥ ६४९ ॥ उभयं दशमूलं तत् पिप्पलीचूर्णसंयुतम्। सन्निपातज्वरं हन्ति हृत्कण्ठग्रहनाशनम्। तन्द्रावातकफातङ्कश्वासपार्श्वार्ति कासनुत् ॥ ६५० ॥ महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च। तेषां तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि कृत्स्नशः ॥ ६५१ ॥

अत्र बिल्वादीनां पञ्चानां मूलस्य वल्कलं ग्राह्यम्।

बेल, श्योनाक- कुम्भेर, पाढल और अरणी इनको बृहत्पञ्चमूल कहते हैं। यह पंचमूल पित्तनाशक और वातकफको हरनेवाला है। शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती बड़ी कटेरी कटेरी और गोखरू इनको लघु पंचमूल कहते हैं। यह लघुपञ्चमूल-वात और पित्तनाशक है। बृहत्पंचमूल और लघुपंचमूल दोनोंको मिलानेसे दशमूल होता है। दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे सन्निपातज्वर नष्ट होता है। हृदय और कण्ठका अवरोध, तन्द्रा, वात, कफके रोग, श्वास, पसलियोंकी पीडा और खांसी दूर होती है। इस दशमूलकी औषधियोंमें जिनकी बडी जड है और जो काष्ठगर्भित अर्थात् छालसे लिपटी हुई हैं, उनकी जडकी छाल लेनी चाहिये और जिनकी छोटी जड है वह समस्त लेनी चाहिये ॥ ६४८ ॥ ६५१ ॥

अथ द्वादशाङ्गक्वाथः।

दशमूलीकषायस्तु पिप्पलीपौष्करान्वितः। सन्निपातज्वरे देयः श्वासकाससमन्विते ॥ ६५२ ॥

दशमूलके क्वाथमें पीपल और पोहकरमूल मिलाकर श्वास, खांसीयुक्त सन्निपातज्वरमें देना चाहिये ॥ ६५२ ॥

अथ चतुर्दशाङ्गक्वाथः।

चिरज्वरे वातकफोल्वणे वा त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः। किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः शुद्ध्यर्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः ॥ ६५३ ॥

पुराने ज्वरमें, वातकफोल्वणज्वरमें अथवा त्रिदोषजज्वरमें-किराततिक्तादिगणमें दशमूल मिलाकर क्वाथ बनाकर देवे और जो विरेचन करानेकी इच्छा हो तो उसमें निसोतका चूर्ण डाल देवे ॥ ६५३ ॥

अथ किराततिक्तादिगणः।

किराततिक्तको मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम्। किरातादिगणो ह्येष चातुर्भद्रकमित्यपि ॥ ६५४ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनको किराततिक्तादिगण कहते हैं और इसी को चतुर्भद्रक भी कहते हैं ॥ ६५४ ॥

अथाष्टादशाङ्गक्वाथः।

दशमूली शटी श्रृङ्गी पौष्करं सदुरालभम्। भार्ङ्गी कुटजबीजञ्च पटोलं कटुरोहिणी ॥ ६५५ ॥ अष्टादशाङ्ग इत्येष

सन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्ति श्वासहिक्कावमीहरः ॥ ६५६ ॥

दशमूलकी समस्त औषधि, कचूर, काकड़ाशिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारंगी, कुडेके बीज, पटोलपत्र और कुटकी इन सब औषधियोंके समुदायको अष्टादशांग कहते हैं। इस अष्टादशांग अर्थात् उपरोक्त अठारह औषधिओंका क्वाथ संनिपातज्वरनाशक है, खांसी, हृदयका रुकना, पसलियोंकी पीडा, श्वास, हिचकी और वमन दूर होजाती है ॥६५५।६५६

अथ द्वितीयाष्टादशाङ्गक्वाथः ।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्दतिक्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषायः । तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वास त्रिदोषजनितज्वरनाशनःस्यात् ॥ ६५७ ॥ उक्तं च वङ्गसेनेन-"अष्टादशाङ्ग इत्येष मृत्युकल्पं ज्वरं जयेत्" इति ॥

चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनियां और गजपीपल इन अठारह औषधियोंके समुदायको भी अष्टादशांग कहते हैं। इन अष्टादशांगका क्वाथ-तन्द्रा, प्रलाप, खांसी, अरुचि, दाह, मोह, श्वास और त्रिदोषज्वरको नष्ट करता है। वगसेनने भी कहा है कि-"यह अष्टादशांग क्वाथ मृत्युरूप ज्वरको भी हरता है ॥ ६५७ ॥

अथ सन्निपातज्वरे रसः ।

मृतसंजीवनी वटिका ।

विषं त्रिकटुकं गन्धं टङ्कणं मृतशुल्वकम् । धत्तूरस्य च बीजानि हिङ्गुलं नवमं स्मृतम् ॥ ६५८ ॥ एतानि समभागानि दिनैकं विजयाद्रवैः । मर्दयेच्चणकाकारा कर्तव्या वटिकाऽथवा॥६५९॥ भक्षणीयाऽनुपातव्यो रविमूलकषायकः । मृतसञ्जीवनी नाम्ना सन्निपातज्वरान्तकृत् ॥ ६६० ॥

वत्सनाभविष, सोंठ, मिरच, पीपल, गन्धक, सुहागा, तांबेकी भस्म, धतूरेके बीज और सिंगरफ इन नौ औषधियोंको समान भाग लेकर एक दिन पर्यंत भांगके रसमें खरल करके चनेकी बराबर गोली बनालेवे। इसको खाकर ऊपरसे आककी जडका क्वाथ बनाकर पीना चाहिये। यह मृतसंजीविनी वटिका सन्निपातज्वरको नष्ट करती है। यह रसप्रदीपग्रन्थमें कही है ॥ ६५८ ॥ ६६० ॥

अथ त्रिनेत्ररसः ।

शुद्धसूतं समं गन्धं सूतांशं मृतताम्रकम् । त्रिभिस्तुल्यैर्गवां क्षीरैर्मर्दयेदातपे खरे । मर्दयेद्दिनमेकन्तु निर्गुण्डीशिग्रुजद्रवैः ॥ ६६१ ॥ विधाय गोलं तं गोलमन्धमूषागतं पचेत् । त्रियामं वालुकायन्त्रे ततः खल्वे विचूर्णयेत् ॥ ६६२ ॥ अष्टमांशं विषं तत्र क्षिपेत्तेनापि मर्दयेत् । त्रिनेत्राख्यो रसो ह्येष देयो गुञ्जाद्वयोन्मितः ॥ ६६३ ॥ पञ्चकोलकषायेण छागीदुग्धेन वा सह । रसेनानेन भुक्तेन सन्निपातज्वरो महान् । संक्षयं व्रजति क्षिप्रं कर्तव्यो नात्र संशयः ॥ ६६४ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक एकभाग और शुद्ध तांबा एक भाग लेवे और तीन भाग आकका दूध लेवे, इन तीनों औषधियोंको इस आकके दूधमें डालकर प्रचण्ड धूपमें खरल करे, फिर एकदिन निर्गुण्डी और सहिंजनेके रसमें खरल करके गोला बनालेवे। उस गोलेको अन्धमूषामें रखकर मुख बन्दकर तीन प्रहरतक वालुकायन्त्रमें पचावे, जब स्वांगशीतल होजाय तब पीसकर बारीक चूर्ण करे, उसमें आठवां भाग विष डालकर खरल करे। इसको त्रिनेत्ररस कहते हैं।

इसकी मात्रा दो रत्तीकी है । अनुपान-पञ्च-कोल पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ का क्वाथ अथवा बकरीका दूध है । इस रसको सेवन करनेसे अत्यन्त भयंकर सन्निपात भी शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६६१-६६४ ॥

अथ रसेन्द्रचिन्तामण्युक्तभस्मेश्वररसः ।

भस्म षोडशनिष्कं स्यादारण्योपलसम्भवम् । मरिचं निष्कमात्रञ्च विषं निष्कं विचूर्णयेत् ॥ ६६५ ॥ रसो भस्मेश्वरो नाम सन्निपातज्वरान्तकृत् । एकगुञ्जामितो भक्ष्य आर्द्रकस्य द्रवणे हि॥६६६॥

अरने उपलोंकी भस्म १६ सोलह निष्क, काली मिर्च एक निष्क चौबीस रत्ती और विष एक निष्क लेकर तीनोंको एकत्र खरल करे तो भस्मेश्वर नामक रस तय्यार होता है । यह भस्मेश्वर रस सन्निपातज्वरनाशक है । एक रत्ती प्रमाण इसको अदरखके रसके साथ भक्षण करना चाहिये ॥ ६६५ ॥ ६६६ ॥

अथाग्निकुमाररसः ।

द्वौ कर्षौ सूतकाद्ग्राह्यौ गन्धकाद्द्वौ तथैव च । यत्नतस्तूभयं मर्द्यं दिनं हंसपदीद्रवैः ॥ ६६७ ॥ कल्कस्य वटिकां कृत्वा निक्षिपेत्काचभाजने । कर्षैकममृतं तत्र क्षिप्त्वा वक्त्रं निरोधयेत् ॥ ॥ ६६८ ॥ कूपिकायाः परौ भागौ वालुकाभिश्च पूरयेत् । सार्द्धं यावदहोरात्रं तावत्तत्र पचेद्रसम् ॥ ६६९ ॥ याममात्रोऽनलो देयः स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् । तोलार्द्धममृतं तत्र क्षिपेत्तावत्तथोषणम् ॥ ६७० ॥ भक्षितो रत्तिकामात्रो रसस्त्वग्निकुमारकः । सन्निपातज्वरं हन्याद्वातं मन्दाग्नितामपि ॥६७१॥ शूलञ्च ग्रहणीं गुल्मं क्षयं जत्रुगदं तथा । श्वासकासादिकान्सर्वान् गदान्षेष विनाशयेत् ॥ ६७२ ॥ इति अग्निकुमारो रसः सन्निपातज्वरादिषु रसेन्द्रचिन्तामणौ ॥

पारा दो तोले और गन्धक दो तोले लेवे, दोनोंको एकत्र हंसपदी (लजालू) के रसमें एक दिन खरल करके गोली बनाकर काँचकी आतसीशीशीमें भरके रखदेवे, फिर उसमें एक तोला माठा विष डालकर शीशीका मुख बन्दकर एक दूसरे मट्टीके बासनमें शीशीको रखदेवे और उसके गलेतक वालू भरदेवे फिर उसको डेढ दिनरात पचावे, पश्चात् एक प्रहरतक अंगारोंपर रक्खा रहने देवे, जब अपने आप शीतल हो जाय तब निकालकर चूर्ण कर लेवे और उस चूर्णमें आधा तोला विष, आधा तोला काली मिर्च मिलावे तो अग्निकुमार रस सिद्ध होता है । इसको एक रत्ती परिमाण खाय तो सन्निपातज्वर, वात, मन्दाग्नि, शूल, संग्रहणी, गुल्म, क्षय, कण्ठसे ऊपरके रोग और सब प्रकारके श्वास कासादि रोग नष्ट होते हैं । यह अग्निकुमार रस रसेन्द्र चिंतामणिमें कहा है ॥ ६६७ ॥ ६७२ ॥

अथ पञ्चवक्त्ररसः ।

गन्धेशटङ्कमरिचं विषं धत्तूरजैर्द्रवैः । दिनं संमर्दितं शुष्कं पञ्चवक्त्रो रसो भवेत् ॥ ६७३ ॥ आर्द्रकस्य द्रवेणैष दातव्यो रत्तिकामितः । सन्निपातज्वरे देयो घोरे तद्दोषनाशनः ॥ ६७४ ॥ इति पञ्चवक्त्रो रसः सन्निपाते रसेन्द्रचिन्तामणौ ॥

गन्धक, पारा, सुहागा, कालीमिर्च और विष ये सब समान भाग लेकर धत्तरेके रसमें एक दिनतक खरल करके सुखा लेवे तो पञ्चवक्त्र रस तैयार होता है । इस पञ्चवक्त्र रसको एक रत्ती भर अदरखके रसमें घोर सन्निपातज्वरमें भी देवे तो इससे सन्निपात नष्ट हो जाता है ॥ ६७३ ॥ ६७४ ॥

अथामृतादिवटी ।

अमृतवराटकमरिचैर्द्विपञ्चनवभागयोजितै रचिता । वटिका मुद्गसमाना कफत्रिदोषाग्निमान्द्यहरी ॥ ६७५ ॥

मीठा विष दो भाग, कौडोकी भस्म पांच भाग और कालीमिर्च नौ भाग लेवे, इन तीनोंको एकत्र खरल करके मूँगके बराबर गोलियाँ बनालेव । यह अमृतादिवटी कफ, त्रिदोष और मन्दाग्निको हरती है ॥ ६७५ ॥

अथ शीतज्वरे रसः ।

शीतज्वरारिरसः ।

सूतकं गन्धकञ्चैव हरितालं मनःशिला । एकनिष्कं द्विनिष्कञ्च चतुर्निष्कं तथैव च ॥ ६७६ ॥ पञ्चनिष्कं रसैः कारवेल्ल्याः सम्यक् प्रकल्पयेत् । ताम्रपत्राणि तुल्यानि तेन कल्केन लेपयेत् शरावसंपुटे तानि कृत्वा तेषामुपर्यपि । दद्यात्तां पिष्टिकां पश्चात्पुटपाकेन पाचयेत् ॥ ६७८ ॥ ततः संचूर्णयेदेवं रसः क्षौद्रेण भक्षितः । यवैकमात्रया हन्ति घोरं शीतज्वरं ध्रुवम् ॥ ६७९ ॥ पाराटंक १, गन्धकटंक २, हरितालटंक ४, मनःशिलाटंक ५, ताम्रपत्रटंक १२ । इति शीतज्वरारी रसप्रदीपे ॥

पारा १ टंक, गन्धक २ टंक, हरिताल ४ टंक और मैनशिल ५ टंक लेवे, सबको एकत्र करके करेलेके रसमें खरल कर लेवे, फिर ताँबेके पत्र १२ टंक लेकर इसी कल्कका इसपर लेप करदेवे, फिर इनको शरावसम्पुटमें रखकर ऊपरसे भी इसी कल्कका लेप कर पुटपाकके द्वारा पकावे, जब स्वांगशीतल, होजाय तब पीसकर चूर्ण करलेवे, इसमेंसे एक जौकी बराबर सहतके साथ सेवन करे तो घोर शीतज्वर नष्ट होता है ॥ ६७६ ॥ ६७९ ॥

अथ शीतकेशरी रसः

पारदं गन्धकञ्चैव तुत्थञ्च दरदं विषम् । विषादष्टगुणं योज्यं मरिचं विश्वभेषजम् ॥ ६८० ॥ अश्वगन्धाऽथ विजया कासमर्दः कठिल्लकः । चतुर्णाञ्च रसैरेतैश्चूर्णान्येतानि मर्दयेत् ॥ ६८१ ॥ तुलस्यास्तु दलैः सार्द्धं भक्षितो रत्तिकामितः । हन्ति शीतज्वरं घोरं नाम्नाऽयं शीतकेसरी ॥ ६८२ ॥

पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, नीलाथोथा १ भाग, सिंग्रफ १ भाग, विष १ भाग, कालीमिर्च और सोंठ आठ भाग लेवे । सबका एकत्र चूर्ण करके असगंध, भाँग, कसौंदी और करेला इन चारोंके रसमें खरल करे तो शीतकेशरी रस सिद्ध होता है । इसमें से एक रत्ती प्रमाण तुलसीदलके रसके साथ खाय तो इससे महादारुण शीतज्वर नष्ट होता है ॥ ६८० ॥ ६८२ ॥

अथ शीतभञ्जीरसः ।

तालकं शुक्तिकाचूर्णं तुल्यं तत्रोभयोरपि । नवमांशञ्च तुत्थं स्यान्मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ ६८३ ॥ तत्तु संशुष्कमुपलैर्वन्यैर्गजपुटे पचेत् । शीतं तच्चचूर्णयेदर्द्धगुञ्जामात्रं सितायुतम् ॥ ६८४ ॥ प्रभाते भक्षयेत्तेन याति शीतज्वरः क्षयम् । वान्तिर्भवति कस्यापि कस्यचिन्न भवत्यपि ॥ ६८५ ॥

हरिताल और सीपका चूर्ण समान भाग और नीलाथोथा नौ भाग लेवे, इन तीनों औषधियोंको एकत्र घीकुवारके रसमें खरल करके सुखालेवे फिर इसको संपुटमें रखकर गजपुटमें अरण्य जंगली उपलोंकी आगसे पचावे, जब स्वांगशीतल हो जाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे । यह शीत भंजीरस आधी रत्ती मिश्रीके साथ प्रातःकाल भक्षण करें तो.

अवश्य शीतज्वर नष्ट होजाता है । इससे किसी मनुष्यको वमन होती है और किसी मनुष्यको नहीं भी होती है ॥ ६८३ ॥ ६८५ ॥

अथ रसेन्द्रचिन्तामण्युक्तशीतभंजीरसः ।

तालकं तुत्थकं ताम्रं सूतगन्धकटंकणम् । सर्वमेतत्समं चूर्णं कारवेल्लीरसद्रवैः ॥ ६८६ ॥ दिनैकं मर्दयेत्तेन रसकर्दमकेन तु । ताम्रस्य भाजनस्यान्तर्लिम्पेदर्द्धांगुलोन्मितम् ॥ ६८७ ॥ तत्पचेद्वालुकायंत्रे यवा यावत्स्फुटन्ति हि । शीतलं तद्धि गृह्णीयात्ताम्रपात्रोदराद्भिषक् । शीतभञ्जीरसो माषमात्रो मरिचसंयुतः । भक्षितः पर्णखण्डेन नाशयेद्विषमज्वरान् ॥ ६८८ ॥

हरिताल, नीलाथोथा, तांबा, पारा, गन्धक और सुहागा इनको समान भाग लेकर चूर्ण करके एक दिनतक करेलेके रसमें खरल करे, फिर इस कल्कका ताबेके बासनके भीतर आधे अगुल ऊँचा लेप करदेवे. फिर उस बासनको वालुकायंत्रमें पकावे और उस बालूमें कुछ जौके दाने डालदेवे, जब जौके दाने भुनकर फुटने लगें, तब सिद्ध जानकर निकाल लेवे । जब स्वांगशीतल हो जाय तब उस तांबेके बासनमेंसे औषधिको यत्नसे छुटालेवे । इसको शीतभंजीरस कहते हैं । यह रस एक मासे कालीमिर्चके साथ पानमें रखकर खाय तो विषमज्वर नष्ट हो जाता है ॥६८६॥६८८॥

अथ रसरत्नप्रदीपोक्तशीतभंजीरसः ।

तालको दरदोद्भूतः पारदो गन्धकः शिला । क्रमाद्भागार्द्धरहितं कारवेल्ल्यम्बुमर्दितम् ॥ ६८९ ॥ अनास्य प्रमाणेन ताम्रपात्रं प्रलेपयेत् । अधोमुखं दृढे भाण्डे तन्निरुध्याथ पूरयेत् ॥६९०॥ चुल्ल्यां वालुकया घस्रमग्निं प्रज्वालयेदधः । शीतं संचूर्ण्य माषोऽस्य नागवल्लीदले स्थितः ॥ ६९१ ॥ भक्षितो मरिचैः सार्द्धं समस्तविषमज्वरान् । शीतदाहादिकान् हन्ति पथ्यं शाल्योदनं पयः ॥ ६९२ ॥ इति शीतभञ्जीरसः शीतज्वरादिविषमज्वरेषु रसरत्नप्रदीपे ।

हरिताल, सिंग्रफ हिंगुल से निकाला हुआ पारा हरितालसे आधाभाग पारेसे आधागन्धक और गन्धकसे आधी मैनशिल लेवे, सबको एकत्र पीसकर करेलेके रसमें विधिपूर्वक घोटे । फिर इस कल्कका एक तांबेके बासनके भीतर लेप करदेवे । पश्चात् उस बासनको एक मजबूत बासनमें उलटा रखकर ऊपरसे रेती बालू भरकर चूल्हेपर रक्खे और एक दिनरात अग्नि देवे । शीतल होनेपर इसका चूर्ण करलेवे तो शीतभंजी रस सिद्ध होता है । इसको एक मासे लेकर कालीमिर्चके साथ पानमें रखकर खाय तो विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ६८९-६९२ ॥

अथ कट्फलादिपानम् ।

कट्फलं त्रिफला दारु चन्दनं सपरूषकम् । कटुका पद्मकोशीरं विपचेत्कर्षकं जले ॥६९३॥ त्रिदोषदाहतृष्णाघ्नं पानमात्रे प्रपूजितम् । दीर्घकालज्वरार्तानामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥ ६९४॥

कर्षं कट्फलाद्युशीरान्तानां समुदितानां जले प्रस्थमिते विपचेदर्द्धशेषं पिबेत् । कट्फलादिपानं तृष्णायां दाहे च ॥

कायफल, हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, चन्दन फालसे, कुटकी, पद्माख और खस इन सबको एक तोला प्रमाण लेकर ६४ तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते आधा जल रहजाय तब उतार लेवे । यह जल त्रिदोष, दाह और तृषाको हरनेवाला है, सर्व प्रकारके

पानोंमें उत्तम है और बहुत कालसे जो ज्वरसे पीडित हैं उनके लिये अमृतके समान है ॥ ६९३ ॥ ६९४ ॥

अथ शीतलजलनिषेधः।

सन्निपाते तु दाहार्तं यः सिंचेच्छीतवारिणा। आतुरः स कथं जीवेद्भिषग्वा स कथं भवेत् ॥६९५॥ एष सन्निपातिनो दाहे शीताम्बुसेकनिषेधो रुग्दाहादन्यत्र, तत्र वाप्यवगाहनस्योक्तत्वात् ॥

सन्निपातज्वरमें दाहसे पीडित मनुष्यके शरीरको जो वैद्य शीतलजलसे सींचता है वह कैसे वैद्य हो सकता है? और वह रोगी कैसे बच सकता है? सन्निपातज्वरमें दाहसे पीडित मनुष्यको जो शीतल जलका सेवन निषेध किया है, वह रुग्दाहको छोडकर अन्य सन्निपातोंमें जानना, क्योंकि रुग्दाहसन्निपातमें तो जलके भीतर घुसकर स्नान करना चाहिये ॥ ६९५ ॥

अथान्नम्।

दुःस्पर्शगोक्षुरक्षुद्रासिद्धमाहारमर्पयेत्। दोषशान्तिबलाग्न्यर्थं त्रिदोषज्वरिणो भिषक् ॥ ६९६ ॥

दुःस्पर्शः--यवासः। आहारम्--उचितमन्नम् ॥

लाजसक्तून्समश्नीयात्सैन्धवेन समन्वितान्। ते चेज्जीर्यन्त्यविघ्नेन ज्वरी जीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ रक्तपित्तहितत्वेन तृषादाहज्वरेषु च। लाजानां सक्तवः शीता नैव तेऽत्र हिता मताः ॥ ६९७ ॥ पाचनो दीपनः स्वेद्यो लाजमण्डो यतः स्मृतः। दशमूलादिसंसिद्धः सन्निपातज्वरे हितः ॥ ७९८ ॥ सन्निपातज्वरी यस्तु कम्पते प्रलपत्यपि। किंचिदेव न जानाति चिकित्सा तस्य कथ्यते ॥ ६९९ ॥ अभ्यञ्जयेत् पुराणेन सर्पिषा पूर्वमेव तम्। बलारास्नागुडूच्याद्यैस्तैलैश्च परिषेचयेत् ॥ ७०० ॥ वर्तको वर्तिका लावो वार्तीकस्तित्तिरिः शशः। कुलिङ्गश्च रसैरेषां तर्पयेत यथानलम् ॥ ॥७०१॥ सन्निपाते क्षुधार्तं यो भोजयेत पिशितौदनम्। स कथं भिषगाख्यां तु लभते मनुजाधमः ॥ ७०२ ॥

वैद्यको चाहिये कि, सन्निपातरोगके दोषोंको शांत करनेके लिये बल और जठराग्निको बढानेवाला जवासा, गोखुरू और कटेरी इनके क्वाथसे सिद्ध किया हुआ योग्य आहार देवे। कितने वैद्य कहते हैं कि, ज्वरवाले मनुष्यको सैंधानमक डालकर खीलोंके सत्तू खानेको देवे, जो वह निर्विघ्न पचजावे तो ज्वररोगी अवश्य जीता है। परंतु खीलोंके सत्तू रक्तपित्त, तृषा और दाहज्वरमें हितकारी होनेके कारण शीतल है और शीतलवस्तु सन्निपातमें अत्यन्त अहितकारी है, इस कारण खीलोंके सत्त सन्निपातज्वरमें सेवननहीं करने चाहिये। सन्निपात ज्वरमें तो दशमूलादि औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए खीलोंका मांडपाचन, दीपन, पसीनेको लानेवाला और हितकारी है। सन्निपातज्वरमें यदि रोगी कांपे, बकवाद करे और अज्ञान होजाय उसकी चिकित्सा अब कही जाती है-ऐसे रोगीके शरीरमें प्रथम पुराने घीकी मालिस करे तथा बलादि, रास्नादि और गुडूच्यादि औषधियोंका तेल बनाकर सेवन करावे। इस रोगीको अग्निके अनुसार बटेर, बत्तक, लवावगेरा, तीतरा, खरगोश और कुलिंग घरका चिडा इनके मांसके रससे तृप्त करे। संनिपातज्वरमें भूँखसे व्याकुल रोगींको जो वैद्य मांसयुक्त भात भोजन करनेके लिये देता है, वह मनुष्योंमें अधम कैसे वैद्य होसकता है? ॥६९६-७०२॥

वातोल्वणसन्निपातज्वरचि०।

पंचमूलीकषायन्तु दद्याद्वातोल्वणे ज्वरे। भृशोष्णं वा सुखोष्णं वा दृष्ट्वा दोषबला-

बलम् ॥७०३॥ पञ्चमूली महती, प्रथमप्राप्तायास्त्यागे वचनाभावात् ॥

वातोल्वण संन्निपातज्वरमें-दोषोंका बलाबल विचारकर बहुत गरम अथवा किंचित् गरम पञ्चमूलका क्वाथ देवे। यहां बृहत्पंचमूल लेना चाहिये ॥ ७०३ ॥

पित्तोल्वणसन्निपातज्वरचिकि० ।

परूषकादिक्वाथः ।

परूषकश्च त्रिफला देवदारु च कट्फलम् । चन्दनं पद्मकश्चैव तथा कटुकरोहिणी ॥ ॥ ७०४ ॥ पृश्निपर्णी श्रृतं त्वेभिरुषितं शीतलं जलम् । पित्तोत्तरे नृणामेतत्सन्निपाते चिकित्सितम् ॥ ७०५ ॥

पित्तोल्वणसंन्निपातमें-फालसे, हरड, बहेडा आमले, देवदारु, कायफल, लालचन्दन, पद्माख कुटकी और पृश्निपर्णी इनका क्वाथ बनाकर बासी करके शीतल होनेपर पिवे तो पित्तोल्वण संन्निपात नष्ट होता है ॥७०४७०५

अथ किरातादिसप्तकः ।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम् । पाठोदीच्यं मृणालश्च श्रृतं पित्ताधिके पिबेत् ॥ ७०६ ॥

पित्तोल्वणसंन्निपातमें—चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाढ, सुगन्धबाला और कमलकी नाल इनका क्वाथ बनाकर पिवे७०६

कफोल्वणसन्निपातज्वरचिकित्सा ।

बृहत्यादिक्वाथः ।

बृहती पौष्करं भार्ङ्गी शटी श्रृंगी दुरालभा वत्सकस्य तु बीजानि पटोलं कटुरोहिणी ॥७०७॥ बृहत्यादिर्गणः शस्तः सन्निपाते कफोत्तरे । श्वासादिषु च सर्वेषु हितः सोपद्रवेष्वपि ॥ ७०८ ॥

कफोल्वणसंनिपातमें—बृहती, बडी कटेरी, पोहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इनका काथ बनाकर पिवे। यह कफोल्वणसंनिपातमें हितकारी है तथा श्वासादि उपद्रवसहित संनिपातको दूर करता है इसको बृहत्यादिकाथ कहते हैं ॥ ७०७ ॥ ७०८ ॥

वातपित्तोल्वणसन्निपातज्वरचि० ।

चातुर्भद्रकक्वाथः ।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम् । चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातपित्तोल्वणे ज्वरे ॥ ७०९ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनको चातुर्भद्रक कहते हैं । इनको क्वाथ वातपित्तोल्वण संनिपातज्वरमें हितकारी है ॥ ७०९ ॥

पित्तकफोल्वणसन्निपातज्वराचि० ।

पर्पटादिकाथः ।

पर्पटः कट्फलं कुष्ठमुशीरं चन्दनं जलम् । नागरं मुस्तकं श्रृंगी पिप्पल्येषां श्रृतं हितम् । तृष्णादाहाग्निमान्द्येषु पित्तश्लेष्मोल्वणे ज्वरे ॥ ७१० ॥

पित्तकफोल्वण संनिपातज्वरमें-पित्तपापडा, काय, फल, कूठ, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला, सोंठ, नागरमोथा, काकडासिंगी और पीपल इनका क्वाथ हितकारी है तथा तृषा, दाह और मन्दाग्निको नष्ट करता है। इसको पर्पटादिक्वाथ कहते हैं ॥

यहां वात कफोल्वणसंनिपातज्वरकी चिकित्सा लिखनी चाहिये थी,सो नहीं लिखी। उसके न लिखनेका कारण यह है कि-वातकफोल्वणसंनिपात शीघ्र असाध्य हो जाता है ॥ ७१० ॥

वातपित्तकफोल्वणसन्निपातज्वरचि.।

योगराजक्वाथः ।

नागरं धान्यकं भांर्गी पद्मकं रक्तचन्दनम् । पटोलः पिचुमन्दश्च त्रिफला मधुकं बला ॥ ७११ ॥ शर्करा कटुका

मुस्तं गजाह्वा व्याधिघातकः। किराततिक्तममृता दशमूला निदिग्धिका ॥ ॥ ७१२ ॥ योगराजो निहन्त्येष सन्निपातं त्रिकोल्वणम्। सन्निपातशमुत्थानं मृत्युमप्यागतं जयेत् ॥ ७१३ ॥

गजाह्वा—गजपिप्पली। व्याधिघातकः—कृतमालः। किराततिक्त द्वैगुण्यार्थं पृथक् पठितम् ॥

सोंठ, धनियां, भारंगी, पद्माख, लालचन्दन, पटोलपत्र, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलहटी, खिरैंटी, मिश्री, कुटकी, नागरमोथा, गजपीपल, अमलतास, चिरायता, गिलोय, दशमूल, और कटेरी इनका क्वाथ त्रिदोषोल्वणसन्निपातको नष्ट करता है और सन्निपातसे उत्पन्न हुई मृत्युको भी जीतता है। इसको योगराज क्वाथ कहते हैं ॥७११-७१३॥

प्रवृद्धं कर्षयेद्दोषं क्षीणं संवर्द्धयेद्भिषक्। चिकित्सेयं विधातव्या दोषयोर्वृद्धहीनयोः ॥ ७१४ ॥

अस्यायमर्थः—प्रवृद्धं दोषं कर्षयेत्, तत्क्षैण्यहेतुभिः औषधान्नविहारैः कृशीकृत्य समीकुर्यात्। क्षीणं दोषं संवर्द्धयेत्, तद्वृद्धिहेतुभिरौषधान्नविहारैर्वर्द्धयित्वा समीकुर्यादित्यर्थः ॥

अब प्रवृद्ध मध्य और हीन वातादि दोषोंसे उत्पन्न हुए सन्निपातज्वरोंकी चिकित्सा कहते हैं—

बढे हुए दोषको जिससे दोष क्षीण हो, ऐसे आहार विहार और औषधियोंसे समान करे और क्षीण हुए दोषकी वृद्धि हो. ऐसे आहार विहार और औषधियोंसे समान करे ॥ ७१४ ॥

प्रवृद्धे शमिते दोषे मध्यमः स्वयमेव हि। शान्ति याति शमं नीतेऽनुबन्ध्ये त्वनुबन्धवत् ॥ ७१५ ॥

अस्य अयमर्थः-वर्षासु वायुरनुबन्ध्यः सेव्यः प्रधानमिति यावत्। पित्तश्लेष्माणौ अनुबन्धौ वायोरनुचरौ। शरदि पित्तमनुबन्ध्यं वातकफेऽनुबन्धे वसन्ते कफोऽनुबन्ध्यो वातपित्ते अनुबन्धे। तत्र यथा अनुबन्ध्ये प्रशमं नीतेऽनुबन्धः स्वयमेव शान्ति याति, तथा प्रवृद्धे दोषे शमिते ह्रासयित्वा समीकृते मध्यमो दोषः, हि निश्चयेन स्वयमेव शान्ति याति प्रकृतो भवतीत्यर्थः ॥

जब वृद्धिको प्राप्त हुआ दोष शान्त होगया तब मध्यम दोष अपने आपही शान्त हो जाता है, जैसे कि. वर्षाऋतुमें वायु प्रधान है और पित्त तथा कफ उसके अनुचर अप्रधान हैं, शरद ऋतुमें पित्त प्रधान है कफ वात उसके अनुचर हैं वसन्त ऋतुमें कफ प्रधान है और वायु तथा पित्त उसके अनुचर हैं इनमें प्रधानको शान्त करनेसे जैसे उसके अनुचर अपने आप ही शांत हो जाते हैं, इसी प्रकार सन्निपातमें भी वृद्धिको प्राप्त हुए दोषको क्षीण करनेसे मध्यम दोष आपही अवश्य शान्त हो जाते हैं ॥ ७१५ ॥

शीताङ्गादि १३ सन्निपातचिकित्सा।

तत्र शीताङ्गचिकित्सा। १

भास्वन्मूलं जीरकव्योषभार्ङ्ग्यौ व्याघ्री शुण्ठी पुष्करं गोजलेन। सिद्धं सद्यः शीतगात्रार्तिमोहश्वासश्लेष्मोद्रेककासान्निहन्ति ॥ ७१६ ॥

भास्वन्मूलम्—अर्कमूलम् ॥

आककी जड, जीरा, मिर्च, पीपल, भारंगी, कटेरी, दुगुनी सोंठ, यहां दुगुनी सोंठ इसलिये कही कि, त्रिकुटेकी सोंठ एक भाग और एक भाग पृथक् जाननी और पोहकरमूल इनको गोमूत्रमें पकाकर सेवन करनेसे तत्काल ही शीतांग सन्निपातकी पीडा, मोह, श्वास, कफकी अधिकता और खांसी नष्ट हो जाती है ॥ ७१६ ॥

कर्कोटिकाकन्दरजःकुलत्थैः कृष्णावचाकट्फलकृष्णजीरैः । किराततिक्तानलकट्फलाम्बुपथ्याभिरुद्वर्तनमत्र शस्तम् ॥ ७१७ ॥

कर्कोटिकाकन्दरजः-खेखसामूलरजः ॥

शीतांग सन्निपातमें—काकोडेकी जडका चूर्ण कुलथी, पीपल, वच, कायफल, कालाजीरा, चिरायता, चीता, कायफलका पानी और हरड इनको एकत्र पीसकर शरीरमें मले तो शीतांगसन्निपात दूर होजाय ॥ ७१७ ॥

रसविषमरिचमहेशप्रियफलभस्मैकभूचतुर्वसुभिः । भागैर्मितमुद्धूलनमिदमतिस्वेदशैत्यहरम् ॥ ७१८ ॥

पारा १ भाग, वत्सनाभविष १ भाग, काली मिर्च ४ भाग और धतूरेके फलकी भस्म ८ भाग लेवे । सबको एकत्र करके देहमें मले तो इससे अत्यन्त पसीनेका निकलना और शीतका वेग दूर हो जाता है ॥

अथ तन्द्रिकचिकित्सा । २

क्षुद्राऽमृतापौष्करनागराणि शृतानि पीतानि शिवायुतानि । शुण्ठीकणागस्तिरसोषणानि नस्येन तन्द्राविजयोल्वणानि ॥ ७१९ ॥

कटेरी, गिलोय, पोहकरमूल, सोंठ और हरड इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे तंद्रिकसन्निपात दूर हो जाता है । सोंठ, पीपल, अगस्तियाका रस और मिर्च इनका नस्य देनेसे तन्द्राका नाश हो जाता है ॥ ७१९ ॥

मरिचकचपचंपचारुक्क्रिमिहरनागरशर्वरीगवाक्ष्यः । छगलकजलकल्किता नितान्तं नसि निहिता ननु तन्द्रिकं जयन्ति ॥ ७२० ॥

कचः-वालकः । पचम्पचा-दारुहरिद्रा । रुक्कुष्ठम् । क्रमिहरः-विडङ्गः । शर्वरी-हरिद्रा । गवाक्षी-इन्द्रवारुणी । नसि-नासिकायाम् ॥

मिर्च, सुगन्धवाला, दारुहलदी, वच, कूठ, वायविडंग, सोंठ, हलदी और इन्द्रायन इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर नस्य देनेसे तंद्रिकसन्निपात दूर हो जाता है ॥ ७२० ॥

तुरङ्गलालालवणोत्तमेन्दुमनःशिलामागधिकामधूनि । नियोजितान्यक्षणि निश्चितं च तन्द्रां च निद्रां च निवारयन्ति ॥७२१॥

लवणोत्तमम्-सैन्धवम् । इन्दुः-कर्पूरः । निद्राम्—अतिनिद्राम् ॥

घोडेकी लार, सैंधानमक, कपूर, मैनशिल, पीपल, और सहत इनको एकत्र पीसकर आँखोंमें आंजनेसे तन्द्रा और अत्यन्त निन्द्रा अवश्य नष्ट होजाती है ॥ ७२१ ॥

अथ प्रलापकचिकित्सा । ३

सतगरवरतिक्तारेवताम्भोदतिक्तानलदतुरगगन्धाभारतीहारहूराः । मलयजदशमूलीशङ्खपुष्पीसुपक्वाः प्रलपनमपहन्युः पानतो नातिदूरात् ॥ ७२२ ॥

वरतिक्तोऽत्र पर्पटो, न तु महानिम्बः, तन्त्रातरानुरोधात् । नलदम्—लामज्जकम्, तदलाभादुशीरं ग्राह्यम् । भारती-ब्राह्मी 'बरम्भी' इति लोके । हारहूरा—द्राक्षा ॥

सान्त्वनैरञ्जनैस्तीक्ष्णैर्नस्यैस्तिमिरसेवनैः । सर्वतो विकृतं चित्तमस्य प्रकृतिमानयेत् ॥ ७२३ ॥

तगर, पित्तपापडा, अमलतास, नागरमोथा, कुटकी, लामज्जक, इसके न मिलनेपर खस लेवे, असगन्ध, ब्राह्मी, दाख, लालचन्दन, दशमूल, और शंखाहुली कौडिल्ला इनका क्वाथ बनाकर पोनेसे बहुत शीघ्र ही प्रलापक सन्निपात नष्ट हो जाता है । प्रलापक सन्निपातवाले रोगीको धीरजसे अंजन तथा तीक्ष्ण नस्यसे और अन्धकारका सेवन कराकर नीरोग करे ॥ ७२२ ॥ ७२३ ॥

रक्तष्ठीविसन्निपातचिकित्सा । ४

रोहिषधन्वयवासकवासापर्पटगन्धलताकटुकाभिः । शर्करया सममेष कषायः क्षतजष्ठीविन उद्यदुपायः ॥ ७२४ ॥

रोहिषम्-सुगन्धतृणविशेषः 'रोहिस' इति लोके । गन्धलता-प्रियंगुः ॥

रोहिषतृण, धमासा, अडूसा, पित्तपापडा, फूलप्रियंगू और कुटकी इनके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पिवे तो रक्तष्ठीवी सन्निपात नष्ट हो जाता है ॥ ७२४ ॥

पद्मकचन्दनपर्पटमुस्तं जातीजीवकचन्दनवारि । क्लीतकनिम्बयुतं परिपक्वं वारि भवेदिह शोणितहारि ॥ ७२५ ॥

क्लीतकम्-यष्टीमधुकम् । इह-रक्तष्ठीविनि ॥

पद्माख, लालचन्दन, पित्तपापडा, नागरमोथा, चमेली, जीवक, लालचन्दन, सुगन्धवाला, मुलहठी और नीम इनका क्वाथ पीनेसे रक्तष्ठीवीसन्निपातका रुधिर गिरना बन्द हो जाता है ॥ ७२५ ॥

मधुकमधूकपरूषकपाथश्चन्दनपल्लवदारुसनाथः श्रीपर्णीफलशीतकषायः ससित इह स्यादस्रजयाय ॥ ७२६ ॥

पाथः-वालः । पल्लवं पत्रकम् । सनाथः-समाधनः । श्रीपर्णी-गम्भारी ॥

मुलहठी, महुआ, फालसा, सुगन्धवाला, लालचन्दन, तेजपात और देवदारु तथा कुम्भेरके फल इनका क्वाथ बनाकर अत्यन्त शीतल करके मिश्री मिलाकर, पीनेसे रक्तष्ठीवीका रुधिर गिरना बन्द हो जाता है ॥७२६॥

अथ भुग्ननेत्रचिकित्सा । ५

तुरङ्गगन्धालवणोग्रगन्धामधूकसारोषणमागधीभिः । बस्ताम्बुशुण्ठीलशुनान्विता भिर्नस्यं कृशं भुग्नदृशं करोति ॥ ७२७ ॥

असगन्ध, सैंधानिमक, वच, महुएका सार, मिर्च, पीपल, सोंठ और लहसुन इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर नस्य देनेसे भुग्ननेत्रसन्निपात शांत होजाता है ॥ ७२७ ॥

अथाभिन्यासचिकित्सा । ६

शृङ्ग्यादिक्वाथः ।

शृङ्गीभार्ङ्ग्यभयाजाजीकणाभूनिम्बपर्पटैः । देवदारुवचाकुष्ठयासकट्फलनागरैः ॥ ७२८ ॥ मुस्तधान्याकतिक्तेन्द्रयवपाठाहरेणुभिः । हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ ७२९ ॥ विशालारग्वधारिष्टशटीवाकुचिकाफलैः। विडङ्गरजनीदार्वीयवानीद्वयसंयुतैः ॥ ७३० ॥ समांशैर्विहितः क्वाथो हिङ्ग्वार्द्रकरसान्वितः । अभिन्यासज्वरं घोरं हन्ति तन्द्राश्च तत्क्षणात् ॥ ७३१ ॥ प्रमेहं कर्णशूलश्च सन्निपातांस्त्रयोदश । हिक्का श्वासश्च कासं च तथा सर्वानुपद्रवान् ॥ ७३२ ॥

काकडाशिंगी, भारंगी, हरड, जीरा, पीपल, चिरायता, पित्तपापडा, देवदारु, वच, कूठ, जवासा, कायफल, सोंठ, नागरमोथा, धनियां, कुटकी, इन्द्रजौ, पाढ, रेणुका, गजपीपल, चिरचिटा, पीपलामूल, चीता, इंद्रायन, अमलतास, नीम, कचूर, बावचीके बीज, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी, अजवायन और अजमोद, इनका क्वाथ बनाकर इसमें हींग और अदरकका रस मिलाकर पीनेसे तत्काल भयंकर अभिन्यास ज्वर, तन्द्रा, प्रमेह, कानकी पीडा, तेरह प्रकारका सन्निपात, हिचकी, श्वास, खांसी और सर्वप्रकारके उपद्रव दूर होजाते हैं ॥७२८-७३२ ॥

अथ जिह्वकचिकित्सा । ७

किराततिक्ताकुलकृत्कुलिङ्गकचूरकृष्णाकटुतैलयुक्तः । अम्लद्रवः संशमयेद्रसज्ञादोषान्स्तुतो दाशरथिर्यथाऽत्र ॥७३३॥

आकुलकृत् 'अकरकरहा' इति लोके। अम्लद्रवः बीजपूरादिरसः॥

चिरायता, अकरकरा, कुलिंजन, कचूर, पीपल और सरसोंका तेल इनको एकत्र पीसकर कवल बनावे और बिजौरे आदिका रस मिलाकर मुखमें धारण करनेसे जिस प्रकार स्तुति करनेसे जन्मजन्मांतरके दोष दशरथनंदन श्रीरामचंद्रजी दूरकर देते हैं उसी प्रकार जिह्वकसन्निपातके दोषोंको यह किरातादि कवल दूर कर देता है॥ ७३३॥

अथ शाल्मरपर्ण्याद्यवलेहः।

शाल्मरपर्णा माल्मरमूलामयमधुप्लुता। शङ्खकपुष्पीसहिता सेव्या वाचां विशुद्धये॥ ७३४॥

शाल्मरपर्णी--ब्राह्मी। माल्मरमूलं--बिल्वमूलम्। आमयः-कुष्ठम्॥

वाणीको शुद्ध करनेके लिये बेलकी जड, कूठ, सहत और शंखाहूली कौडिल्ला इनके साथ ब्राह्मीका रस सेवन करे॥ ७३४॥

अथ क्षुद्रादिविश्वादिक्वाथौ।

क्षुद्रानागरपुष्करऽमृतलताब्राह्मीवचासुव्रताभार्ङ्गीवासकयासतोयसुरसाक्वाथो जयेज्जिह्वकम्। विश्वावर्मविभावरीयुगवरावत्सादनीवारिदव्याघ्रीनिम्बपटोलपुष्करजटारुग्दारुभिर्वा कृतः॥७३५॥

पुष्करं पुष्करमूलम्, तथा च अमरसिंहः-- "मूले पुष्करकाश्मीरपद्मपत्राणि पौष्करे" सुव्रता गन्धपलाशी काश्मीरे प्रसिद्धा। सुरसा-तुलसी। विश्वादि योगान्तरम्। वर्म पर्पटः। विभावरीयुगं हरिद्रा दारुहरिद्रा च। वरा त्रिफला। वत्सादनी गुडूची व्याघ्री कण्टकारिका॥

कटेरी, सोंठ, पोहकरमूल, गिलोय, ब्राह्मी, वच, गन्धपलाशी, भारंगी, अडूसा जवासा, सुगन्धवाला और तुलसी इनका क्वाथ जिह्वकसन्निपातको नष्ट करता है: अथवा सोंठ, पित्तपापडा, हलदी, दारुहलदी। हरड,बहेडा, आमला, गिलोय, नागरमोथा, कटेरी, नीम, पटोलपात, पोहकरमूल, बालछड, कूठ और देवदारु इनका क्वाथ जिह्वक सन्निपातको नष्ट करता है॥ ७३५॥

अथ सन्धिगसंनिपातचिकित्सा। ८

शटीसुरतरूत्तमास्थविरदारुरास्नाः समा सनागरसुधान्विताः पिब शतावरीसंयुताः। मृदुज्वलनपाचिताः सह पुरेण सन्धिग्रहव्यथापहतये वृथा शिशिरसेवनं मा कृथाः॥ ७३६॥

उत्तमा-त्रिफला। स्थविरदारुः 'विधारा' इति लोके। सुधा-गुडूची। पुरो गुग्गुलुः॥

सन्धिगसन्निपातकी पीडा दूर करनेके लिये कचूर, देवदारु, हरड,बहेडा,आमला, विधारा, रास्ना, सोंठ, गिलोय और सतावर इनको समान भाग लेकर मन्द मन्द अग्निसे क्वाथ बनाकर गूगल डालकर पिवे और शीतल पदार्थोंका सेवन त्याग देवे॥ ७३६॥

वचाकवचकच्छुरासहचराऽमृताभंगुरा--सुराह्वननागरातरुणदारुरास्नापुराः। वृषातरुणभीरुभिः सह भवन्ति सन्धिग्रहव्यथोरुजडिमक्लमभ्रमणपक्षघात द्रुहः॥ ७३८॥

कवचः-पर्पटकः। कच्छुरा-यवासः। भंगुरा-अतिविषा। सुराह्वो-देवदारुः। अतरुणदारुः वृद्धदारुः। पुरो-गुग्गुलुः। वृषा-वृहद्दंती एरंडवत्पत्रविटपा। तदलाभे दन्ती. च ग्राह्या, समानगुणत्वात्। तरुणः एरंडः। भीरुः--शतावरी॥

वच, पित्तपापडा, जवासा. कटसरैया, गिलोय, अतीस, देवदारु, नागरमोथा, सोंठ,

विधारा, रास्ना, गूगल, बृहद्दन्ती जो बृहद्दन्तीन मिले तो दन्ती ही लेवे, क्योंकि गुणोंमें दोनों समान हैं) और सतावर इनका क्वाथ संधिगसन्निपातकी पीडा और जांघोंकी जडता, ग्लानि, भ्रमण और पक्षाघातको नष्ट करता है ॥ ७३७ ॥

सुरदारुशटीसुधालतासुवहाशुण्ठचमृताः शृता जले। सपुराः शमयन्ति सेविताः सततं सन्धिगतं सदागतिम् ॥ ७३८ ॥

देवदारु, कचूर, दुगुनी गिलोय, रासना और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर गूगल डालकर सेवन करे तो संधिगत वायु नष्ट होती है ॥ ७३८ ॥

मुस्तैरण्डप्राणदाबाणदारुच्छिन्नारास्नाभीरुकर्चूरतिक्ताः। वासावीश्वापञ्चमूलाऽश्वगन्धा हन्युर्मन्यास्तम्भसन्धिग्रहार्तीः ॥ ७३९ ॥

प्राणदा--हरीतकी। बाणः--नीलपुष्पसहचरः। तिक्ता--कटुकी ॥

नागरमोथा, अण्डकी जड, हरड, काले फूलका पियावांसा, देवदारु, गिलोय, रासना, सतावर, कचूर, कुटकी, अडूसा, सोंठ, पंचमूल और असगन्ध इनका क्वाथ-गले की नसोंका जकडना और संधियोंकी पीडाको दूर करता है ॥ ७३९ ॥

अथान्तकज्वरचिकित्सा। ९

इहापहाय व्रतमुष्णवारि ज्वरारि यूषादि गदापहारि। ज्वरच्छिदं जीवितदञ्च नित्यं मृत्युञ्जयं चेतसि चिन्तयस्व॥७४०

इह-अन्तके। व्रतम्--लंघनादिनियमम् ॥

अन्तक नामक सन्निपातज्वरमें--लंघन आदि नियमोंको ज्वरनाशक क्वाथोंको और रोगनाशक यूष आदिको छोडकर ज्वरको हरनेवाले और प्राणोंके रक्षक मृत्युञ्जय जो सदाशिव हैं, उनका निरंतर चित्तमें चिंतवन करना चाहिये ॥ ७४० ॥

कर्पूरप्रकरावदातवपुषं संयोगमुद्राजुषं शश्वद्भक्तजनेषु भावुकजुषं भालस्फुरच्चक्षुषम्। सपूर्णामृतकुम्भसम्भृतकरं शुभ्राक्षमालाधरं पिङ्गोत्तुङ्गजटाकलापरुचिरं चन्द्रार्धमौलिं स्तुहि ॥

अब सदाशिवका ध्यान कहते हैं-मुकुटमें जो अर्द्धचंद्रको धारण करनेवाले और कपूरके समान उज्ज्वल शरीरवाले हैं, सुन्दर संयोगमुद्राको धारण किये और भक्तजनोंपर निरंतर प्रेम रखनेवाले, कपालमें त्रिनेत्र प्रकाशित, अमृतसे भरे हुए कुम्भको हाथमें सुन्दर रुद्राक्षकी मालाको धारण किये और पिंगल तथा ऊँचे जटामण्डलसे सुशोभित ऐसे सदाशिवकी रोगीको स्तुति करनी चाहिये ॥ ७४१ ॥

भिषग्भिरिति निर्णीतं सन्निपातेऽन्तकाभिधे। भेषजं जाह्नवीनीरं वैद्यो गोविन्द एव हि ॥ ७४२ ॥

अन्तकसन्निपातमें-गंगाजल तो औषधि है और श्रीविष्णु भगवान् ही वैद्य हैं, ऐसा वैद्योंने निश्चय किया है ॥ ७४२ ॥

अथ रुग्दाहचिकित्सा। १०

तत्र षडङ्गपानीयम्।

उशीरचन्दनोदीच्यद्राक्षामलकपर्पटैः। शृतं शीतं जलं दद्याद्दाहतृड्ज्वरशान्तये ॥ ७४३ ॥ ससितो निशि पर्युषितः प्रातर्धान्याकतण्डुलकाथः। पीतः शमयत्यचिरादन्तर्दाहं ज्वरं पैत्तम् ॥७४४॥

धान्याकतण्डुलाः-कण्डितधान्याकबीजानि॥

खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला, दाख, आमले और पित्तपापडा, इनके द्वारा पकाया हुआ जल शीतल करके दाह, तृषा और ज्वरकी शान्तिके लिये षडंगपानीय देवे। कुटेहुए धनियेके चावलोंको रातको भिगो देवे, फिर प्रातःकाल मिश्री मिलाकर पिवे तो थोडे ही समयमें अन्तर्दाह और पित्तज्वर शान्त

हो जाता है । यह धान्याक क्वाथ है ॥ ७४३ ॥ ७४४ ॥

अथ पथ्यावलेहः ।

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैर्लिह्याद्दाहविनाशिनीम् ॥ ७४५ ॥

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैः इत्यत्रः न समुच्चयः । तेन केवलेन मधुनाऽपि लिह्यात् ॥

दाहको नष्ट करनेके लिये तेलके साथ वा घीके साथ अथवा सहतके साथ हरडको चाटे, यह पथ्यावलेह है ॥ ७४५ ॥

अथ लेपः ।

प्रशमयति दाहमचिराद्दधियुक्कर्कन्धुपलवैर्लेपः । लेपो हिमकरमलयजनिम्बदलैस्तक्रपिष्टैर्वा ॥ ७४६ ॥

हिमकरः—कर्पूरः । तथा च "घनसारश्चन्द्रसंज्ञः" इत्यमरः ॥

बेरीके पत्तोंको दहीमें पीसकर देहमें लेप करे अथवा कर्पूर, चन्दन, नीमके पत्ते इनको मट्ठेमें पीसकर शरीरपर लेप करे तो तत्काल दाह शान्त हो जाता है ॥

अथ जलधारा ।

उत्तानसुप्तस्य, गभीरताम्रकांस्यादिपात्रे निहिते च नाभौ । शीताम्बुधारा बहुला पतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं ज्वरञ्च७४७

रुग्दाह संनिपातवाले रोगीको सीधा चित्त सुलाकर उसकी नाभिपर ताँबे अथवा काँसी आदिका गहरा बासन स्थापित करे, फिर उसमें बहुत शीतल जलकी धारा छोडे तो तत्काल दाह शान्त हो जाता है ॥ ७४७ ॥

अथावगाहनम् ।

शीताम्भसा तु शतशश्च विलोडितेन गव्येन चन्दनयुतेन धृतेन दिग्ध्वा । दाहज्वरी सकमलोत्पलमाल्यधारी क्षिप्रं विशेत्सलिलकोष्ठमनल्पकालम् ॥ ७४८ ॥

दाहज्वरवाले मनुष्यकी देहमें सौवार शीतलजलसे धुले हुए गायके घीमें घिसा हुआ चन्दन मिलाकर लेप करे, फिर कमल और कमोदिनीकी माला पहनाकर बहुत शीघ्र शीतल जलके कुण्डमें प्रवेश करावे ॥ ७४८ ॥

अथावगुण्ठनम् ।

काञ्जिकार्द्रपटेर्नावगुण्ठनं दाहनाशनम् । अथ गोतक्रसंस्विन्नशीतलीकृतवाससा ॥ ७४९ ॥

कपडेको काँजीमें भिगोकर अथवा गायके तक्रमें औटाकर फिर शीतल करके शरीरपर धारण करनेसे दाह नष्ट होजाता है ॥ ७४९ ॥

अथान्नम् ।

दाहवम्यर्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयाऽन्वितम् । शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् ॥ ७५० ॥

लाजतर्पणम्—लाजसक्तुरूपं तर्पणम् ।

दाह और वमनसे पीडित, दुबला, निराहार रहनेवाला और तृषायुक्त ऐसे मनुष्यको मिश्री और शहत मिलाकर खीलोंके सत्तू भक्षण करावे । यह तर्पण है ॥ ७५० ॥

अथ दाहनाशकान्योपायाः ।

वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः । नार्यश्चन्दनादिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्यहरा मताः ॥ ७५१ ॥

खिले हुए कमलोंसे सुशोभित बावडी, जिसमें शीतल जलके फुवारे छूट रहे हों, ऐसा मनोहर घर और जिनकी देहमें चन्दनादिका लेप हो रहा हो, ऐसी तरुण स्त्री दाह और दीनताको हरती है ॥ ७५१ ॥

मुक्तावलीचन्दनशीतलानां सुगन्धपुष्पाम्बरभूषितानाम् । नितम्बिनीनां सुपयोधराणामालिङ्गनान्याशु हरन्ति दाहम् ॥ ७५२ ॥ प्राह्लादश्चास्य विज्ञाय ताः

स्त्रीरपनयेत्पुनः । हितश्च भोजयेदन्नं येनाप्नोति सुखं महत् ॥ ७५३ ॥

प्राह्लादम्–कामकृतहर्षम् ।

मोतियोंकी मालासे अलंकृत और चन्दनादिकसे शीतल की हुई एवं सुगंधित पुष्पोंसे और वस्त्रोंसे विभूषित और पुष्ट कुच वाली तरुण स्त्रीके आलिंगनसे तत्काल दाह नष्ट होजाता है। स्त्रीको आलिंगन करनेसे रोगीके कामदेव उत्पन्न होनेपर तत्काल उस स्त्रीको उससे अलग करलेवे और उस रोगीको हितकारक भोजन करावे, जिससे कि–महासुख उत्पन्न हो ॥ ७५२ ॥ ७५३ ॥

अथ चित्तभ्रमचिकित्सा। १३

कणोषणोग्रालवणोत्तमानि करञ्जबीजं प्रमदामलानि । पथ्याक्षसिद्धार्थकाहिङ्गु शुण्ठीयुतानि बस्ताम्बुविमिश्रितानि ॥ पिष्ट्वा गुटीयं नयने निधया प्रचेतनेति प्रथिताऽन्वितार्था । चित्तभ्रमापस्मृतिभूत दोषशिरोऽक्षिरोगभ्रमनाशहेतुः ॥ ७८४॥

बस्ताम्बु–छागमूत्रम् ॥

पीपल, कालीमिर्च, वच, सैंधानमक, करंजके बीज, हलदी, आमले, हरड, बहेडा, सरसों, हींग और सोंठ इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर गोली बनाकर नेत्रोंमें आँजनेसे यह गोली चेतनाको उत्पन्न करती है, इस कारण यह प्रचेतना कही जाती है। इस गोलीसे चित्तका भ्रम, स्मरणका अभाव, भूतबाधा, शिरकी पीडा, नेत्रकी पीडा और भ्रमका नाश होता है॥ ७५४॥

कुम्भोद्भवतरोरम्भो गुडविश्वकणान्वितम् । निहितं नसि नूनं स्याच्चित्तभ्रमविनाशनम् ॥ ७५५ ॥

कुम्भोद्भवतरोरम्भ अगस्तिवृक्षस्त्वक्कल्करसः॥

गुड, सोंठ और पीपल इनके चूर्णको अगस्तियाके कल्कके रसमें मिलाकर नस्य देनेसे चित्तभ्रम संनिपात नष्ट होता है ॥ ७५५ ॥

मुरामूर्द्धजमेघाह्वमधूकमलयोद्भवैः। मरुत्तरुमधूनिमिश्रैः पुरपाणिजपांसुभिः ७५६ लोहलामज्जकैलाभिर्धूपश्चित्तभ्रमापहः । ग्रहदोषहरः श्रीदः सौभाग्यकर उत्तमः ॥ ७५७ ॥

मुरा–एकाङ्गी । मूर्द्धजाः–वाला । मरुत्तरुः–देवदारुः पुरः गुग्गुलुः। पाणिजः--नखः। पांसु--पर्पटकम्। लोहम्--अगुरु । लामज्जकम्-उशीरवत्पीत तृणविशेषः, तदलाभे उशीरं ग्राह्यम् ॥

कपूरकचरी, सुगन्धवाला, नागरमोथा, महुआ, चन्दन, देवदारु, सहत, गूगल और नखद्रव्य इनका चूर्ण तथा अगर, लामज्जक न मिलनेपर खस, और इलायची इन सब द्रव्योंकी धूम बनाकर देवे तो चित्तभ्रम नष्ट होता है ग्रहदोष दूर होता है लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और सौभाग्यकी वृद्धि होती है यह उत्तम धूप है ॥ ७५६ ॥ ७५७ ॥

मृद्वीकामरदारुमत्स्यशकलामुस्तामलक्योऽमृतापथ्यारेवतरामसेनकरजोराजीफलैः संयुताः । हन्युश्चित्तरुजोऽथ दर्दुरदलापाठापटोलीपयः पथ्यापर्पटराजवृक्षकटुकाशम्बूकपुष्प्यः स्मृताः ॥

मृद्वीका--द्राक्षा। मत्स्याशकला--कटुकी। आरेवतः--आरग्वधः । रामसेनकः--किराततिक्तकः । रजः-पर्पटकः । राजीफलः पटोलः। अथ योगान्तरमाहदर्दुरदला--मण्डूकपर्णी, सा च ब्राह्मी मंजिष्ठा- क्षोण कच्च, तथापि अत्र ब्राह्मी ग्राह्या । यत उक्त द्रव्य गुणग्रन्थे ब्राह्मी मतिप्रदा मेध्या ज्वरहन्त्री रसायनी ।" ब्राह्मी 'बरम्भी' इति लोके। पयः- वालकम्-राजवृक्षः-आरग्वधः। शम्बूकपुष्पी-शङ्खपुष्पी॥

दाख, देवदारु, कुटकी, नागरमोथा, आमले,

हरड, अमलतास, चिरायता, पित्तपापडा और पटोलपात इनका काथ, अथवा ब्राह्मी, पाठ, पटोलपत्र, सुगन्धवाला, हरड, पित्तपापडा, अमलतास, कुटकी और शंखाहूली इनका काथ बनाकर पीनेसे चित्तभ्रमसंनिपात नष्ट होता है ॥ ७५८ ॥

अथ कर्णिकसन्निपातचिकित्सा । १२

प्रलेपस्तमस्तं नयत्यन्तमेकः समुद्रिक्तशोथश्च रक्तावशेषः । सुवक्वे च शस्त्रक्रिया पूजजित्सा व्रणत्वं गते चोचिता तच्चिकित्सा ॥ ७५९ ॥

अयमर्थः- अन्तम्-कर्णिकम्,- एकः प्रलेपः, अस्तंनाशंनयति । तच्चिकित्सा--व्रणचिकित्सा॥

जो कर्णिक अल्प हो वा अत्यन्त सूजनयुक्त हो गया हो अथवा वह नहीं पका हो तो उसको नीचे लिखे प्रलेपोंसे नष्ट करे और कर्णिक पक गया हो तो शस्त्रक्रियासे चिरवाकर उसकी राधको दूर करे और जो व्रण हो जाय तो व्रणकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७५९ ॥

निशाविशालाभयमाणिमन्थदार्वीङ्गुदीमूलकृतः प्रलेपः । प्रभाकरक्षीरयुतः प्रभावाद् व्यस्तः समस्तोऽप्यथ कर्णिकघ्नः ॥ ७६० ॥

हलदी, इन्द्रायण, कूठ, सैंधानमक, देवदारु और हिंगोटकी जड इनको आकके दूधमें पीसकर लेप करनेसे कर्णिक नष्ट होजाता है। इन सब औषधियोंका अथवा थोडी औषधियोंका प्रलेप करनेसे भी कर्णिकसंनिपात नष्ट होजाता है ॥ ७६० ॥

कुलत्थःकट्फलं शुण्ठी कारवी च समांशकैः । सुखोष्णैर्लेपनं कार्यं कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥ ७६१ ॥

कुलथी, कायफल, सोंठ और कालीजीरी इन सबको समान भाग लेकर जलमें पीसकर मन्दोष्ण करके वारंवार कानकी जडमें लेप करे तो कर्णिक नष्ट होजाता है ॥ ७६१ ॥

गैरिकं कठिनी शुण्ठीकट्फलारग्वधैः समैः । उष्णैःकाञ्जिकसम्पिष्टैर्लेपःकर्णकमूलनुद् ॥ ७६२ ॥

गेरू, खडिया, सोंठ, कायफल और अमलतास इनको कांजीमें पीसकर गरम करके लेप करे तो कर्णके मूलकी सूजन दूर हो जाती है ॥ ७६२ ॥

शिग्रुराजिकयोः कल्कं कर्णमूले प्रलेपयेत् । कर्णमूलभवः शोथस्तेन लेपेन शाम्यति ॥

सहिंजना और राई इनको जलमें पीसकर कानकी जडमें लेप करे तो कानकी जडकी सूजन शान्त हो जाती है ॥

अशिशिरजलपरिमृदितं मरिचकणाजीरसिन्धुजं त्वरितम् । नस्यविधिसेवितं ननु कर्णकरुग्नाशकृद् गदितम् ॥७६३॥

मिर्च, पीपल, जीरा और सैंधानमक इनको गरम जलमें पीसकर तत्काल नस्य देवे तो कर्णकी पीडा शान्त होती है ॥ ७६३ ॥

भार्ङ्गीजयापौष्करकण्टकारीकटुत्रिकोग्रावनकुण्डलीभिः । कुलीरशृङ्गीकटुकारसाभिः कृतः कषायः किल कर्णिकघ्नः ॥ ७६४ ॥

भार्ङ्गी—भारङ्गी तदलाभे कण्ठकारीमूलं ग्राह्यम् । जया—'गनिआरी' इति लोके । पौष्करं—पुष्करमूलम् । उग्रा- वचा । कुण्डली-गुडूची । कुलीरशृङ्गी-कर्कट शृङ्गी। रसा रास्ना ॥

भारंगी, अरणी, पोहकरमूल, कटेरी, सोंठ, मिर्च, पीपल, वच, नागरमोथा, गिलोय, काकडाशिंगी, कुटकी और रास्ना इनका क्वाथ बनाकर पिवे तो कर्णिककी पीडा शान्त हो जाती है ॥ ७६४ ॥

दशमूलमत्स्यशकलाचपलात्रिफलामहौषधकिरातयुतम्। मरिचं परिक्वथितमाशु बलादपहन्ति कर्णरुजः सकलाः ॥ ७६५ ॥

चपला–पिप्पली ॥

दशमूल, कुटकी, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, चिरायता और मिर्च इनका क्वाथ बनाकर सेवन करे तो बलात्कारसे कर्णककी समस्त पीडायें शान्त होती हैं॥७६५॥

अथ कण्ठकुब्जचिकित्सा। १३

फलत्रिकत्र्यूषणमुस्तकट्वीकलिंगासिंहाननशर्वरीभिः। क्वाथः कृतः कृन्तति कण्ठकुब्जं कण्ठीरवः कुञ्जरमाशु यद्वत्॥ ७६६ ॥

सिंहासनः--वासकः। शर्वरी--हरिद्रा ॥

जिस प्रकार सिंह तत्काल हाथीको मारदेता है, उसी प्रकार–हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, कुटकी इन्द्रजौ, अडूसा और हलदीका क्वाथ तत्काल कंठ, कुब्जको नष्ट करता है ॥ ७६६ ॥

किरातकटुकणाकुटजकण्टकारीशटीकलिद्रुकिलिमाभयाकटुककट्फलाम्भोधरैः। विषामलकपुष्करानलकुलीरश्रृंगी वृषैर्महोषधसखैरयं जयति कण्ठकुब्जं गणः ॥ ७६७ ॥

शटी–कर्च्चूरः। कलिद्रुः- विभीतकः किलिमः- देवदारुः कटुकं-मरिचम्। विषा-अतिविषा। किरातादिभिः किंविशिष्टैर्महौषधसखैः महौषधस्य सखिभिः तेन एतैः सहितेन महौषधेनत्यर्थः।

'अथवा उल्वणवातादिप्रवृद्धमध्यक्षीणवातादिहेतुकानां कुम्भीपाकादीनां त्रयोदशानामिव चिकित्सा विधातव्या ॥

चिरायता, कुटकी, पीपल, इन्द्रजौ, कटेरी कचूर, बहेडा, हरड, देवदारु, मिर्च, कायफल, नागरमोथा, अतीस, आमला, पोहकर मूल, चीता, काकडासिंगी अडूसा और सोंठ इनका क्वाथ कंठकुब्जको नष्ट करता है।

कुम्भीपाक आदि नामवाले जो तेरह संनिपात हैं और उनके कारण उल्वणवातादि तथा प्रवृद्ध मध्य और हीनवातादि ही हैं, उनकी चिकित्सा भी इसी प्रकार करनी चाहिये॥७६७

इति संनिपातज्वराधिकारः ॥

अथागन्तुकज्वराधिकारः।

तत्रागन्तुकज्वरनिदानम्।

अभिघाताभिषंगाभ्यामाभिचाराभिशापतः। आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत्॥ ७६८ ॥

अभिघातःशस्त्रमुष्टिलगुडादिभिः हननम्। अभिषङ्गः-कामशोकभयक्रोधभूतादीनामावेशः। अभिचारः--कृत्याद्युत्पादनम्। अभिशापः- ब्राह्मणगुरु वृद्धसिद्धादिकृतः शापः। तम् आगन्तुकज्वरम्। यथास्वं- यथादोषलक्षणम्। दोषैर्विभावयेद्विजानीयात्॥

शस्त्र, घूँसा और लाठी आदिकी चोटका नाम अभिघात है काम, शोक, भय, क्रोध और भूतादिकोंके आवेश होनेका नाम अभिषग है। किसी शत्रुकी की हुई कृत्यादिका उत्पन्न करना, किसी प्रकारका अपघात जादूसे मूठ चलानेका नाम अभिचार है और ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध और सिद्ध आदिके शापका नाम अभिशाप है। इन्हीं सब कारणोंसे आगन्तुकज्वर उत्पन्न होता है, इस ज्वरको उन उन दोषोंके लक्षणोंके अनुसार कुपित हुए वातादिक दोषोंके समझ लें ॥ ७६८ ॥

अथागन्तुकज्वरान्यनिदानम्।

ये भूतविषवाय्वग्निक्षतभङ्गादिसम्भवाः।

रागद्वेषभयाद्यैश्च ते स्युरागन्तवो गदाः ॥ ७६९ ॥

जो रोग–भूत, विष, वायु, अग्नि, घाव और हड्डी आदिका टूटना इत्यादिसे उत्पन्न होते हैं तथा राग द्वेष और भयसे उत्पन्न होते हैं उनको आगन्तु कहते हैं ॥ ७६९ ॥

भयाद्यै "रिति आद्यशब्देन भूतविषवाय्वग्निक्षतभङ्गादयः संगृह्यन्ते । तेन रागादयो भङ्गाद्यन्ता हेतवोऽपि आगन्तुसंज्ञाः स्युः । कार्यकारणयोरभेदोपचारात् । एतेन आगन्तुजः स्मृतः" इत्यत्रापि आगन्तुशब्दो हेतुवाची, आगन्तुर्जायते दोषैरित्यत्र व्याधीवाची

कार्य और कारणको अभिन्न मानना तो शास्त्रकारोंकी पद्धति है इस कारण राग आदि जो आगन्तु रोगोंके कारण हैं, वे भी आगन्तु कहे जाते है। इस प्रकार कहनेसे ज्वर "आगन्तुज" कहा जाता है इस वचनमें 'आगन्तु' शब्द हेतुवाचक है और 'दोषोंसे आगन्तु होता है' इस वचनमें आगन्तु शब्द व्याधि वाचक है, ऐसा जानना ॥

ननु अभिघाताभिषंगाभ्या मित्यादिश्लोके 'दोषैयथास्वं विभावेत्' इति वचनेनैवं प्रतीयते-अभिघातादीनां विप्रकृष्टकारणत्वं मिथ्याहारविहाराणामिव, दोषाणां सन्निकृष्टकारणत्वम्, तथा सति 'दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्र' इत्यादि श्लोके आगन्तुज्वरस्याष्टमत्वविघातः, दोषजेष्वेव प्रवेशात् ॥

शंका–'अभिघाताभिषंगाभ्याम्' इस श्लोकमें कहा है कि, आगन्तु ज्वरमें उन उन दोषोंसे लक्षण ऊपरसे जानने, तो इस वचनके ऊपरसे जानाजाता है कि अभिघातादि मिथ्या आहार विहारके समान दूरके कारण हैं और दोष समीपके कारण हैं ऐसा माननेपर 'दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्र' इस श्लोकमें आगन्तु ज्वर आठवां नहीं हो सकता. कारण यह है कि, उस ज्वरका दोषजन्य ज्वरोंमें ही अन्तर्भाव हो जाता है ॥

उच्यते–आगन्तुज्वरस्य दोषा आरम्भका न, किन्तु पश्चादनुबन्धिनः । तथा च आगन्तु ज्वरस्य संप्राप्तिमाह चरकः–"आगन्तुर्हि व्यथापूर्वो जायते, पश्चान्निजैर्दोषैरनुबध्यते" इति ॥

समाधान–दोष आगन्तु ज्वरको उत्पन्न नहीं करते, किन्तु आगन्तु ज्वरके उत्पन्न होनेके पश्चात् उसके सहायक हो जाते हैं। आगन्तुज्वरकी सम्प्राप्तिके विषे चरक कहता है कि, आगन्तु ज्वर प्रथम व्यथासे उत्पन्न होता है और पीछेसे अपने अपने दोषोंसे सम्बन्ध पाता है ॥

अथ कस्मादागन्तोः को दोषो भवतीत्याह ।

कामशोकभद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः । भूताभिषंगात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ७७० ॥

कामशोकभयात्--कामशोकभयजात् आगंतो वायुः कुप्यति । क्रोधात्-क्रोधजात् आगन्तोः पित्त प्रकुप्यति । भूताभिषंगात् भूतावेशजात् आगन्तोः त्रयो मला दोषाः कुप्यन्तीत्यर्थः । भूतसामान्य लक्षणाः--भूतस्य--भूतलक्षणस्य सामान्यं समानता येषां तानि भूतसामान्यानि लक्षणानि येषां ते भूतसामान्यलक्षणाः मलाः ।

काम, शोक, और भयसे उत्पन्न हुए ज्वरमें वायु कुपित होती है । क्रोधसे उत्पन्न हुए आगंतुज्वरमें--पित्त कुपित होता है और भूतके आवेशसे उत्पन्न हुए आगंतुज्वरमें–तीनों दोष भूतके समान लक्षणोंवाले कुपित होते हैं७७०॥

अथागन्तुज्वरे हेतुविशेषण लक्षणविशेषः ।

श्यावास्यता विषकृते तृष्णाऽतीसार एव च। भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ ७७१ ॥

विषकृते--स्थावरजंगमविषभक्षणकृते ज्वरे। मुखे स्यावः शुक्लानुविद्धः कृष्णो वर्णः, शाकवर्णो वा। अतीसारः-स्थावरविषेणैव तस्य अधोगामित्वात्। तोदः--सूचीव्यधनेनेव व्यथा ॥

स्थावर और जंगम विषको भक्षण करनेसे उत्पन्न हुए ज्वरमें -मुख काला अथवा सफेदी लिये काला होता है, दस्त आते हैं, भोजनमें अरुचि होती है, तृषा अधिक लगती है, सुई चुभोने सरीखी पीडा होती है और मूर्च्छा होती है। इसमें जो दस्त होते हैं, वे केवल स्थावर विषसे ही होते हैं, क्योंकि, वह अधोगामी है, ऐसा जानना ॥ ७७१ ॥

औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुस्तथा।

औषधिकी गन्धसे उत्पन्न हुए ज्वरमें-मूर्च्छा, शिरमें पीडा और वमन होती है ॥

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽऽलस्यमभोजनम्। हृदये वेदना चास्य गात्रञ्च परिशुष्यति ॥ ७७२ ॥

कामसे उत्पन्न हुए ज्वरमें-चित्तविभ्रंश अर्थात् मनमें व्याकुलता, तन्द्रा, आलस्य, भोजनका न करना छातीमें वेदना और गात्रमें शोष होता है ॥ ७७२ ॥

कामजे--समीहितकान्ताद्यप्राप्तिनिमित्तके ज्वरे। चकाराद्वाग्भटाक्तान्यपि लक्षणानि बोद्धव्यानि ॥

तानि यथा--"कामाद् भ्रमोऽरुचिर्दाहो ह्रीनिद्राधीधृतिक्षयः" इति ॥

अत्यन्त प्रिय इच्छित स्त्री वा पुरुषके न मिलनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसको कामज्वर कहते हैं चकारसे वाग्भटोक्त भी लक्षण जानने। जैसे कि, कामसे भ्रम, अरुचि, दाह, लज्जाका नाश, निद्राका नाश, बुद्धिका नाश और धीरजका क्षय होता है ॥

मूर्च्छाऽङ्गमर्दस्तृष्णनेत्रचापल्यं कुचवक्षयोः। स्वेदः स्याद्धृदि दाहश्च स्त्रीणां कामज्वरे भवेत् ॥ ७७३ ॥

स्त्रियोंके जो कामज्वर उत्पन्न होतो-मूर्च्छा शरीरका टूटना, तृषा, नेत्रोंमें चंचलता, स्तनोंमें चंचलता, अधिक पसीनोंका आना और हृदयमें दाह होता है ॥ ७७३ ॥

वालकं शतपत्राणि गन्धसारमुशीरकम्। चोचधान्येयकं मांसी क्वाथः कामज्वरापहः ॥ ७७४ ॥ सन्ध्यायां संस्तरःकार्यः सुगन्धैः कुसुमैर्भृशम्। क्रीडनीयं स्वकान्तेन सह रात्रौ तथा स्त्रिया ॥ ७७५ ॥

सुगन्धवाला, कमल चंदन, खस, दालचीनी, धनियाँ और बालछड इनका क्वाथ कामज्वर हो, वह स्त्री संध्याके समय अत्यन्त सुगंधित पुष्पोंकी शय्यापर शयन करे और रात्रिको अपनेप्राणप्यारेके साथ क्रीडा करे, ऐसा किसी ग्रंथमें कहा है ॥ ७७४ ॥ ७७५ ॥

भयात्प्रलापःशोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः।

भयात् भयजे ज्वरे प्रलापः। शोकाच्च चकारेण प्रलाप एव अनुकृष्यते। कोपाच्च कोपादपि वेपथुर्भवति ॥

भय अथवा शोकसे उत्पन्न हुए ज्वरमें-प्रलाप होता है और कोपसे उत्पन्न हुए ज्वरमें कम्प होता है ॥

ननु वेपथुः वातस्य धर्मः, तत् कथं क्रोधजे ज्वरे वेपथुः। यत उक्तम्-क्रोधोत्थितं पित्तमिति ॥

शंका-कम्प तो वायुका धर्म है, फिर कोपसे उत्पन्न हुए ज्वरमें कम्प कैसे होता है? यह बडा संदेह है।

"एकः प्रकुपितो दोष इतरानपि कोपयेत्।" इति वचनात्पित्तकोपितवात-

जन्य एव अत्र वेपथुः । क्रोधाद्वायुरपि भवति । यत उक्तं विदेहेन-" क्रोधशोकौ स्मृतौ वातपित्तरक्तप्रकोपणौ ॥ "

समाधान-'कोपको प्राप्त हुआ एक दोष अन्य दोषोंको भी कुपित करता है ' इस वचनके अनुसार कोपज्वरमें पित्तसे प्रकोपको प्राप्त हुई वायुसे भी कम्प होता है, कोपसे वायु भी होती है । क्योंकि, विदेह कहाता है-"क्रोध और शोक यह वात पित्त और रुधिरको कुपित करनेवाले कहे जाते हैं " ॥

भूताभिषंगादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् । केचिद्भूताभिषङ्गोत्थंब्रुवते विषमज्वरम् ॥ ७७६ ॥

भूताभिषंगोत्थो विषमज्वरो भवति, कदाचिद्वेगवान् कदाचिच्छान्तवेग इत्यर्थः ॥

भूतके आवेशसे उत्पन्न हुए ज्वरमें- उद्वेग. हँसना, रोना और कम्प होता है कितने वैद्य कहते हैं कि--भूतके आवेशसे विषमज्वर होता है, अर्थात् कभी अत्यंत वेगसे और कभी थोडेही वेगसे चढता है ७७६ ॥

अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ ७७७ ॥ तृष्णा चेति चकारेण हारीतानुवादिवाग्भटोक्तश्च बोद्धव्यम् । तद्यथा–

तत्राभिचारिकैर्मन्त्रैर्हूयमानस्य तप्यते । पूर्वं मनस्ततो देहस्ततो विस्फोटतृड्भ्रमैः । सदाहमूर्च्छाग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्द्धते ज्वरः ॥ ७७८ ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुए ज्वरमें- मोह और तृषा उत्पन्न होती है । चकारसे हारीतसंहिता और वाग्भटोक्त लक्षण भी जानने । वाग्भट कहते हैं कि--अभिचार सम्बंधी मंत्रोंसे हवनादिक किया जाय तो उससे प्रथम मन संतापित होता है, पश्चात् विस्फोट, तृषा और भ्रमसे देह संतापित होती है तथा दाहयुक्त मूर्च्छासे व्याकुल हुए उस रोगीके दिन प्रति दिन ज्वर बढता है ७७७ ॥ ७७८ ॥

अथागन्तुज्वरचिकित्सा ।

आगन्तुजे ज्वरे नैव नरः कुर्वीत लंघनम् ॥ ७७९ ॥ तथा च वाग्भटः–शुद्धवातक्षयागन्तुजीर्णज्वरिषु लंघनम् । नेष्यत इति शेषः लंघनं न हितं कामशोकचिन्ताप्रहारजे । भयभूतश्रमक्रोधलंघनैश्च कृते ज्वरे ॥ ७८० ॥ किन्त्वग्नौ दीपिते तत्र दद्यान्मांसरसौदनम् । अभिघातज्वरे युञ्ज्यात्क्रियामुष्णविवर्जिताम् ॥ ७८१ ॥ कषायं मधुरं स्निग्धं यथादोषमथापि च । अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यंगेन सर्पिषः । रक्तावसेकैर्मेध्यैश्च तथा मांसरसौदनैः ॥ ७८२ ॥

मेध्यैः–मेधायै हितैः ॥

व्यधबन्धश्रमात्यध्वभंगभ्रंशसमुद्भवान् । ज्वरानुपाचरेत्सर्पू क्षीरमांसरसौदनैः ॥ ७८३ ॥

व्यधः–ताडनं, कर्णादिवेधो वा । भङ्गः-छेदभेदादिकः । भ्रंशो--वृक्षादितः पतनम् ॥

आगंतु ज्वरमें रोगीको लंघन नहीं कराने चाहिये । वाग्भट भी कहता है कि, शुद्ध वातज्वर, आगंतुज्वर और जीर्णज्वर इनमें लंघन नहीं कराने चाहिये । अन्य वैद्य भी कहते हैं कि-कामसे, शोकसे, चिन्तासे, प्रहार श्रमसे, क्रोधसे और लंघन से उत्पन्न हुए ज्वरमें लंघन से उत्पन्न हुए ज्वरमें लंगन कराना उत्तम नहीं है । ऐसे ज्वरमें, अग्निको दीप्त करके मांसरसयुक्त भात भोजन करनेके लिये देवे । अभिघातसे उत्पन्न हुए ज्वरमें उष्णतारहित क्रिया करे और कषाय, मधुर तथा स्निग्ध वस्तुओंका प्रयोग करावे तथा दोषानुसार क्रिया करे । घृतको पीनेसे, घीकी मालिस करनेसे, रुधिरको निकलवानेसे और बुद्धिको हितकारी

ऐसे मांसरसयुक्त भातको भक्षण करनेसे अभि, घातज्वरका नाश होता है । मारनेसे, बाँधनेसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, बहुत मार्गके चलनेसे, छेदन भेदनादिसे और वृक्षादिकसे गिरनेसे उत्पन्न हुए ज्वरमें प्रथम मांसरस और दूध पीना चाहिये ॥ ७७७९-७८३ ॥

अध्वश्रान्तेषु वाऽभ्यङ्गं दिवा निद्रांश्च कारयेत् । औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रबोधनैः । जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ ७८४ ॥

अत्यन्त मार्गके चलनेसे जिसको ज्वर उत्पन्न हुआ हो, उसको तेलकी मालिस करे और उसको दिनमें सुलावे । औषधिकी गंधसे और विषसे उत्पन्न हुए ज्वरमें बुद्धिमान् वैद्य विष और पित्तको नष्ट करनेवाले सर्वगन्धके क्वाथको पिलावे ॥ ७८४ ॥

सर्वगन्धम् ।

चातुर्जातककर्पूरं कङ्कोलागुरुकुंकुमम् । लवङ्गसहितश्चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥ ७८५ ॥

तप, तेजपात, बडी इलायची, नागकेशर, कपूर, शीतलचीनी, अगर, केसर और लौंग इन सबके समुदायको सर्वगन्ध कहते हैं॥७८५

क्रोधजे पित्तजित्कार्यं धार्यं सद्वाक्यमेव च । आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥ ७८६ ॥ हर्षणैश्च शमं यान्ति कामक्रोधभयज्वराः ॥ ७८७ ॥ कामैरथ मनोघ्नैश्च पित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः । सद्वाक्यैश्च शमं याति ज्वरः क्रोधसमुत्थितः ॥ ७८८ ॥

कामैः--कामविषयैः । मनोघ्नैः--धिक्कारादिभिर्भयजनकवचनैर्वा ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुए ज्वरमें पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये और महात्माओंके वचनोंको अंगीकार करें । कामसे क्रोधसे अथवा भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर धीरज बँधानेसे, इष्ट वस्तुके मिलनेसे, वायुको शमन करनेसे और आनन्दको उत्पन्न करनेवाली वार्ताओंको करनेसे शांत होता है । क्रोधसे उत्पन्न हुआ ज्वर-इष्ट विषयोंसे, धिक्कार आदिसे भयको उत्पन्न करनेवाले वचनोंके कहनेसे और पित्तनाशक उपचारोंसे शांत होता है, क्रोधसे उत्पन्न हुआ ज्वर- उत्तम वचनोंसे भी शांत होता है ॥ ७८६-७८८ ॥

कामात्क्रोधज्वरो नश्येत् क्रोधात्कामज्वरस्तथा । घातिताभ्यामुभाभ्यां च कामक्रोधज्वरक्षयः ॥ ७८९ ॥

घातिताभ्यामुभाभ्यां मनसि निगृहीताभ्यां कामक्रोधाभ्याम् ॥

कामसे क्रोधज्वरका नाश होता है और क्रोधसे कामज्वरका नाश होता है काम और क्रोध दोनोंको मनमें रोकनेसे कामज्वर और क्रोधज्वर दोनोंका नाश होता है ॥ ७८९ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः । जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःसान्त्वैश्च मानसम् ॥ ७९० ॥ ताडनैरित्यस्य स्थाने केचित् पूजनैरिति पठन्ति ॥

भूत बाधासे उत्पन्न हुए ज्वरको भूतविद्यामें कहे अनुसार बंधन, आवेश और ताडनादिसे जीते । 'तांडनैः इस पदके बदले कोई 'पूजनैः' ऐसा पाठ कहते हैं अर्थात् पूजनादिसे भूतज्वरको नष्ट करे; मानसिक ज्वरको मनके शांत करनेसे जीते ॥ ७९० ॥

सहदेवाया मूलं विधिना कण्ठे निबद्धमपरहति । एकद्वित्रिचतुर्भिर्दिवसैर्भूतज्वरं पुंसाम् ॥ ७९१ ॥

विधिपूर्वक सहदेईकी जडको कण्ठमें बाँधनेसे एक, दो, तीन अथवा चार दिनमें भूतज्वर नष्ट होजाना है ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादि-

भिर्जयेत्। दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहदुष्टिजौ ॥ ७९२ ॥

अभिचारसे और अभिशापसे उत्पन्न हुए ज्वरको होमआदि क्रियाओंसे जीते और उत्पातसे तथा ग्रहोंके दोषसे उत्पन्न हुए ज्वरको दानसे, स्वस्तिवाचनसे और अतिथिपूजनसे जीतें॥ ७९२ ॥

इति आगन्तुकज्वराधिकारः।

अथ विषमज्वराधिकारः।

तत्र विषमज्वरस्य निदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह।

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः। धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ ७९३ ॥

अयमर्थः--ज्वरोत्सृष्टस्य ज्वरेण त्यक्तस्य। सन्निकृष्ट हेतुमाह। दोषः अल्पः ज्वरमुक्तः स्वल्पोऽपि। विप्रकृष्टहेतुमाह। अहितम् आहारविहारादि तेन सम्भूतः सम्पूर्णो जातः अन्यतमं धातुं रसरक्तादिकं प्राप्य दूषयित्वा पुनर्विषमज्वरं करोति। ज्वरोत्सृष्टस्य वेति वाशब्देन इति बोध्यते,–प्रथमतोऽपिविषमज्वरो भवति। यत उक्तम्—"आरम्भाद्विषमो यस्तु" इति ॥

ज्वरत्यक्त मनुष्यके अवशेष रहे अल्पदोष भी अहितकारक आहार विहारादिके सेवन करनेसे सम्पूर्ण होकर रस तथा रक्तादि किसी धातुको दूषित करके पश्चात् विषमज्वरको उत्पन्न करते हैं स्वल्प दोष विषमज्वरके समीपके कारण हैं और अहितकारक आहारविहारादि दूरके कारण है, ऐसा समझना। मूल श्लोकमें 'वा' शब्द जो है, उससे ऐसा जानना कि, आरम्भसे भी विषमज्वर होता है अर्थात् किसी अन्य ज्वरके बिनाही उत्पन्न हुए, प्रथमसे भी विषमज्वर होता है। कहा भी है कि-"आरम्भसे ही जो विषमज्वर उत्पन्न होता है, वह मनुष्यको मार देता है"॥७९३॥

अथ दोषः कं धातुं दूषयित्वा विषमज्वरं करोति? इत्यपेक्षायामाह–

सन्ततं रसधातुस्थः सततं रक्तधातुगः। दोषः क्रुद्धो ज्वरं पुंसां सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः ॥ ७९४ ॥ मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि अस्थिमज्जागतः पुनः। कुर्याच्चातुर्थिकं घोरमन्तकं रोगसङ्करम् ॥ ७९५ ॥

अन्तकमिव मारकत्वात् ॥

जब कुपित हुए दोष मनुष्योंके रसधातुमें प्राप्त होतें हैं, तब सन्ततज्वरको उत्पन्न करते हैं, जब रुधिरमें स्थित होते हैं, तब सततज्वरको उत्पन्न करते हैं। जब मांसमें स्थित होते हैं. तब अन्येद्युष्कज्वरको उत्पन्न करते हैं और जब मेदमें स्थित होते हैं, तब तृतीयकज्वरको उत्पन्न करते हैं और जब अस्थि (हड्डी) तथा मज्जामें प्राप्त होते हैं, तब घोर कालके समान प्राणनाशक, रोगोंके समूहरूप ऐसे चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करते हैं॥

अथ विषमज्वरसामान्यलक्षणम्।

यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च। वेगतश्चापि विषमो ज्वरः स विषमः स्मृतः ॥ ७९६ ॥

जो ज्वर अनियमित काल (विना समय) में उत्पन्न होता हो, जो शीत लगकर या उष्णतासे चढे और जिसका वेग भी विषम हो, उसको विषमज्वर कहते हैं॥ ७९६॥

यस्त्वनियतात्कालात्स्यादित्यस्य अयमर्थः-यथा वातिको ज्वरः सप्तदिनानि। पैत्तिको दशदिनानि। श्लैष्मिको द्वादश दिनानि। दोषाणां प्राबल्यैर्वातिकश्चतुर्दशदिनानि। पैत्तिको विंशतिदिनानि। श्लैष्मिकश्चतुर्विंशतिदिनानि स्यात्। तथा विषमज्वरो नियतं कालं व्याप्य न

स्यादित्यर्थः। शीतोष्णाभ्यां गुणाभ्यां स्यात्। वेगतश्चापि विषमः कदाचिदति वेगवान् कदाचिच्छान्तवेगः ॥

जिस प्रकार वातज्वर सात दिनतक, पित्तज्वर दशदिनतक, कफज्वर बारह दिनतक और जो दोषोंकी प्रबलता होतो वातज्वर चौदह दिनतक, पित्तज्वर बीस दिनतक और कफज्वर चौबीस दिनतक नियमित कालसे रहता है उसी प्रकार विषमज्वर नियमित कालसे नहीं रहता है और इस ज्वरमें सरदी और गरमी भी अनियमित होती है, इस ज्वरका वेगभी विषम होता हैं, अर्थात् किसी समय अत्यन्त तेज और कभी शांत होता है ॥

विषमज्वरभेदाः।

सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ७९७ ॥

विषमज्वरके सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक ये पाँच भेद हैं॥७९७॥

अथ सन्ततज्वरलक्षणम्।

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा। सन्तत्या योऽविसर्गी स्यात्सन्ततः स निगद्यते॥ विकल्पो वातिकादिभेदात्। सन्तत्या नैरन्तर्येण। अविसर्गी अपरित्यागी ॥

जो ज्वर सातदिनतक, दशदिनतक अथवा बारह दिनतक निरन्तर एकसा चढा रहे छूटे नहीं, उसको संततज्वर कहते हैं। यहाँ सात, दश और बारह दिनका जो विकल्प किया है, वह वात, पित्त और कफके भेदसे जानना ॥ ७९८ ॥

ननु 'मुक्तानुबन्धित्वं विषमत्वम्' इति विषमलक्षणम्, तदत्र न घटत इति कथमयं विषमेषु पठ्यते ?

शंका-उतरकर फिर चढ आवे, यह विषमज्वरका लक्षण है, सो इस सन्ततज्वरमें नहीं घटसकता, अतएव फिर सन्ततज्वरको विषमज्वरमें कैसे मानते हो ?

घटत एवेति न दोषः। यत उक्तं चरकेण-विसर्गं द्वादशे कृत्वा दिवसे व्यक्तलक्षणम्।

दुर्लभोपशमः कालं दीर्घमेवानुवर्तते ॥ ७९९ ॥ यत्तु खरनादेनोक्तम्-ज्वराः पञ्च तु ये प्रोक्ताः पूर्वं सन्ततकादयः। चत्वारः सन्ततं हित्वा ज्ञेयास्ते विषमज्वराः ॥ ८०० ॥ इति, तच्चिरेण त्यागाभिप्रायेण ॥

समाधान-विषमज्वरके लक्षण सन्ततज्वरमें घटते ही हैं, इस कारण कोई दोष नहीं। क्योंकि चरक कहते हैं कि-बारहवें दिन उत्तम रीतिसे मुक्त होकर पश्चात् बहुत समयतक स्थित रहता है और शांत होना बहुत दुर्लभ होजाता है। "प्रथम संतत आदि जो पांचज्वर कहे हैं, उनमेंसे संततको छोडकर बाकीके चार विषमज्वर जानने" ऐसे खरनादके मतमें जो यह सन्तत ज्वर छोड दिया है, सो "संतत ज्वर बहुत दिनोंमें मुक्त होता है" इस अभिप्रायसे ॥ ७९९-८०० ॥

अथ सततज्वरलक्षणम्।

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते ॥ ८०१ ॥

द्वौ कालौ-अहनि एककालं रात्रौ एककालम्। यतो दोषाणामहोरात्रे प्रत्येकं द्वौ द्वौ प्रकोपकालौ। यतउक्तं वाग्भटेन ॥

"वयोऽहो रात्रिभुक्तानामन्तमध्यादिगाः क्रमात्"

जो ज्वर एक अहोरात्र दिनरात में दो बार आवे उसको सततज्वर कहते हैं। यह ज्वर दो बार आता है, अर्थात् एक बार दिनमें और एक बार रात्रिमें आता है, कारण यह कि-एक अहोरात्रमें प्रत्येक दोषके कुपित होनेका समय

होता है। वाग्भट इस श्लोकमें कहते हैं कि-दिनके अन्तमें वायु, मध्यमें पित्त और कफ प्रबल होता है। उसी प्रकार रात्रिके अंतमें वायु, मध्यमें पित्त और आदिमें कफ प्रबल होता है॥ ८०१॥

अथान्येद्युष्कज्वरलक्षणम्।

अन्येद्युर्यस्त्वहोरात्रादेककालं प्रवर्तते ॥ ८०२॥ एककालं दोषापेक्षया एककालमपि द्वितीयम्, प्रथमकाले हृद्येव दोषस्थितेः।

जो ज्वर अहोरात्रमें एकवार आवे, उसको अन्येद्युष्क इकंतरा कहते हैं। यह ज्वर दोषोंकी अपेक्षासे दिनरातमें एक बार आता है, किन्तु वह अपने बढनेके पहिले समयको त्याग करके अन्य समयमें आता है, ऐसा जानना। कारण यह है कि-पहिले समयमें दोषकी स्थिति हृदयमेंही रहती है॥ ८०२॥

अथ तृतीयज्वरचातुर्थिकज्वरलक्षणम्।

तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः ॥ ८०३॥ तृतीयेऽह्नि इत्यागमनदिनं गृहीत्वा। यत उक्तम् दिनमेकमतिक्रम्य यो भवेत्स तृतीयकः। दिनद्वयं त्वतिक्रम्ययः स्यात्स हि चतुर्थकः॥ ८०४॥

जो ज्वर तीसरे दिन आता है, उसको तृतीयक या तिजारी कहते हैं जो चौथे दिन आता है उसको चातुर्थिक (चौथिया) कहते हैं। तीसरे दिन और चौथे दिन आनेवाले ज्वरोंमें जिस दिन ज्वर आता हो, उस दिनको भी लगालेना चाहिये, क्योंकि, बीचमें एक दिनको छोडकर जो ज्वर आता है, उसीको तृतीयक कहते हैं और बीचमें दो दिनको छोडकर जो ज्वर आता है, उसको चातुर्थिक कहते हैं॥ ८०३-८०४॥

अथ सुश्रुतप्रमाणम्।

कफस्थानविभागेन यथासंख्यं करोति हि। सततान्येद्युस्तृतीयचतुर्थकप्रलेपकान्॥ ८०५॥ अहोरात्रादहोरात्रात्स्थानात्स्थानं प्रपद्यते। दोष आमाशयं प्राप्य करोति विषमज्वरम्॥ ८०६॥ अयमर्थः-आमाशयोरःकण्ठशिरःसन्धयः पञ्चकफस्थानानि। एषु तिष्ठन् दोषो यथा संख्यं सततादीन्करोति।

इस विषयमें सुश्रुतकहते हैं कि-कफके स्थान विभागके अनुसार दोष अनुक्रमसे सतत, अन्येद्युष्को तृतीय, चातुर्थिक और प्रलेपक ज्वरको उत्पन्न करता है, जैसे कि, दोष एक एक दिनरातमें एक स्थानसे दूसरे स्थानमें प्राप्त होता है तो अपने अनुक्रमसे आमाशयमें जाकर विषमज्वरको उत्पन्न करता है। यह सुश्रुतका प्रमाण नीचेके अनुसार जानना,-आमाशय, हृदय, कंठ, मस्तक और संधि ये पाँच कफके स्थान हैं, इनमें स्थित दोष अनुक्रमसे सतत आदि पाँच ज्वरोंको उत्पन्न करता है॥८०५-८०६

तत्र आमाशये स्थितो दोषः सततं करोति द्वौ कालौ। अहोरात्रे कालद्वये दोष प्रकोपात्। हृदये स्थितो दोष आमाशयमागत्य अन्येद्युष्कं करोति एककालम्। नैकदा। एकस्मिन्नेव अहोरात्रे दोष आमाशयमागत्य अन्येद्युष्कं करोति। तत्र द्वौ दोष प्रकोपकालौ। एकस्मिन्काले हृदये तिष्ठति, अपरस्मिन् आमाशय इति।

इनमें आमाशयमें रहनेवाला दोष दो बार आनेवाले सततज्वरको उत्पन्न करता है, क्योंकि एक दिनरातमें दो बार उस दोषका कोप होता है। हृदयमें रहनेवाला दोष आमाशयमें प्राप्त होकर दिनरातमें एक बार आनेवाले अन्येद्युष्क ज्वरको उत्पन्न करता है। यद्यपि एक अहोरात्रमें दोषके प्रकोपका समय दो बार है, तथापि एक समयमें दोष हृदयमें रहते हैं, उसमें ज्वरको उत्पन्न नहीं कर सकते, दूसरे

समयमें आमाशयमें ज्वरको उत्पन्न करते हैं क्योंकि, दोषकी स्थिति आमाशयमें होनेसे ज्वर होता है ॥

कण्ठे स्थितो दोषोऽहोरात्राद्धृदयमायाति। तृतीय दिन आमाशयमागत्य स्वप्रकोपकाले तृतीयकं ज्वरं करोति एककालं न तु द्वौ कालौ स्वभावात्।

कंठमें स्थित दोष एक दिनरातमें हृदयमें जाते हैं और हृदयमेंसे दूसरे दिनरातमें आमाशयमें जाते हैं और वहां जाकर अपने कोपके समयमें एक समयमें ही तृतीय ज्वरको उत्पन्न करते हैं, (यद्यपि ये दोष आमाशयमें एक दिनराततक रहते हैं, तो भी वे दिनराके दो समयोंमें ज्वरको उत्पन्न नहीं करसकते, एकही समयमें ज्वरको उत्पन्न करते हैं, ऐसा उनका स्वभाव है) ॥

एवमेव शिरः स्थितो दोषः अहोरात्रात् कण्ठमायाति। ततः पुनः अहोरात्राद्धृदयमायाति। चतुर्थे दिन आमाशयमागत्य स्वप्रकोपकाले चातुर्थिकं ज्वरं करोति एककालं न तु द्वौ कालौ स्वभावादेव।

इसी प्रकार मस्तकमें रहनेवाले दोष एक दिन रातमें कण्ठमें आते हैं और दूसरे अहोरात्रमें हृदयमें आते हैं, तथा तीसरे अहोरात्रमें आमाशयमें आते हैं और यहां आकर अपने प्रकोपके समय एकही कालमें चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करते हैं (यद्यपि दोष आमाशयमें एक अहोरात्रपर्यन्त रहते हैं, तथापि वे अहोरात्रके दो समयमें ज्वरको उत्पन्न नहीं करते, एकही समयमें उत्पन्न करते हैं, ऐसा उनका स्वभाव है)

ननु, दोषस्यागमनक्रमेण निजस्थानगमनक्रमात्कथं तृतीयचतुर्थदिवसयोर्ज्वरागमनम्?

शङ्का–दोषोंको उन उन स्थानोंमेंसे आमाशयमें आते समय जितना जितना विलम्ब होता है, उतनाही विलम्ब उन स्थानोंमें पीछे जानेमें होना चाहिये तो इस रीतिसे तीसरे और चौथे दिन ज्वरकी सम्प्राप्ति होनी कैसे सम्भव हो सकती है?

उच्यते--दोषो हि प्रकोपसमये वेगं परित्यज्य लाघवात्स्वस्थानन्तु वेगदिवं एव याति। यत आह-" दोषः प्रकोपकाले हि वेगवत्त्वेन लाघवात्। वेगवासर एवायं स्वस्थानमधिगच्छति।"

समाधान–दोष प्रकोपके समयमें अत्यन्त वेगवान् होनेसे पश्चात् उसी वेगके दिन झटपट अपने स्थानमें चले जाते हैं, कहा है कि–" दोष अपने प्रकोपके समयमें वेगवान् होनेसे वेगकेही दिन वह बहुत शीघ्रतासे पीछे अपने स्थानमें पहुँच जाते हैं।

सन्धिषु स्थितः प्रलेपकं करोति। सन्धयश्चामाशयेऽपि सन्ति। तेषु स्थितः प्रलेपकं सर्वदा करोति।

संधियोंमें हरनेवाले दोष प्रलेपक नामवाले ज्वरको उत्पन्न करते हैं, संधियाँ आमाशयमें जो हैं इस कारण उनमें स्थित दोष प्रलेपक ज्वरको सर्वदा करते हैं ॥

निवृत्तः पुनरायाति विषमो नियते दिने। स्वभावं कारणं तत्र मन्यन्ते मुनिपुङ्गवाः ॥ ८०७ ॥

निवृत्तिको प्राप्त हुआ विषमज्वर पश्चात् नियमित दिनसे आता है, उसमें उन दोषोंका स्वभाव ही कारणरूप है, ऐसा महात्मा मुनिजनोंने माना है ॥ ८०७ ॥

अथ स्वभावस्य कारणत्वे कफस्थानविभागनिरपेक्षत्वाच्चतुर्थकविपर्ययादिज्वरा अपि स्वस्वकाले प्रभवन्तीत्याह–

अधिशेते यथा भूमिं बीजं काले प्ररोहति। अधिशेते तथा धातून्दोषः काले प्रकुप्यति ॥ ८०८ ॥ स चापि

विषमो देहं न कदाचित्प्रमुञ्चति । ग्लानिगौरवकार्श्येभ्यः स यस्मान्न प्रमुच्यते ॥ ॥ ८०९ ॥ वेगे तु समतिक्रान्ते गतोऽयमिति लक्ष्यते । धात्वन्तरेषु लीनत्वात्सौक्ष्म्यान्नैवोपलभ्यते ॥ ८१० ॥

दोषोंका स्वभाव ही कारणरूप होनेसे ऊपर कहे हुए कफके स्थानोंके विभागकी अपेक्षा रक्खे विना भी चातुर्थिक विपर्यय आदि अन्य विषमज्वर अपने अपने समयमें प्रकट होते हैं। जिस प्रकार बीज पृथ्वीमें पडे रहते हैं और फिर अपने नियत समयके आनेपर उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार दोष धातुओंमें रहते हैं और अपने ठीक समयके आनेपर कुपित होते हैं ॥ सुश्रुत भी कहता है कि—यह विषमज्वर कभी भी शरीरसे मुक्त नहीं होता, कारण यह है कि विषमज्वरवाला मनुष्य ग्लानिसे भारीपनसे और दुर्बलतासे मुक्त नहीं होता, वेग शान्त होनेके पश्चात् ज्वर जाता रहा, ऐसा जान पडता है, परन्तु जाता नहीं है, अन्य धातुओं में गुप्त रीतिसे स्थित होजाता है, और अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता है ॥ ८०८-८१० ॥

अथ द्विदोषोल्वणतृतीयज्वरलक्षणम् ।

कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः । वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ८११ ॥

त्रिकग्राही वेदनया त्रिकं गृह्णाणीत्यर्थः । वातकफात्मकः पृष्ठाद् व्यथा पृष्ठं व्याप्य भवति इत्यर्थः "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" इति सूत्रेण पञ्चमी ॥

कफ और पित्तकी उल्वणतावाला तृतीयकज्वर प्रथम त्रिक स्थानसे उत्पन्न होकर सर्व शरीरमें व्याप्त हो जाता है, वातकफोल्वणतावाला तृतीयकज्वर प्रथम पीठसे उत्पन्न होकर फिर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाता है। और वातपित्तोल्वण तृतीयकज्वर प्रथम ज्वरसे उत्पन्न होकर पश्चात् सम्पूर्ण देहमें विस्तृत हो जाता है, इस प्रकार यह तृतीयकज्वर तीन प्रकारका है ॥ ८११ ॥

अथ कफोल्वणादिचातुर्थिकज्वरलक्षणम् ।

चतुर्थको दर्शयति स्वभावं द्विविधं ज्वरः । जङ्घाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरसोऽनिलसम्भवः ॥८१२॥ मध्यकायन्तु गृह्णाति पूर्वं यस्तु स पित्तजः । विषमज्वर एवान्यश्चतुर्थकविपर्ययः ॥ ८१३ ॥

श्लैष्मिकः—श्लेष्मोल्वणः । तथा अनिलसम्भवो वातोल्वणः सन्ततादीनां त्रिदोषजत्वम् ॥

यत उक्तं चरके-'प्रायशः सन्निपातेन पञ्च स्युर्विषमज्वराः' इति ।

प्रायशोग्रहणादिकदोषजा द्विदोषजा अपि भवन्तीति जैयटः । पूर्वं प्रथमं जंघाभ्यां व्यथया जंघे व्याप्य पश्चात् सकलं शरीरं व्याप्नोति । एवमुल्वणवातजातः शिरसः पूर्वं व्यथया शिरो व्याप्य सकलं शरीरं व्याप्नोतीर्थः ॥

चातुर्थिकज्वर तीन प्रकारका अपना स्वभाव दिखाता है। कफोल्वण चातुर्थिकज्वर प्रथम जंघाओंकी पिण्डलियोंमें पीडा करके पश्चात् सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाता है। वातोल्वण चातुर्थिकज्वर प्रथम मस्तकमें व्याप्त होकर पश्चात् सर्व शरीरमें फैल जाता है और पित्तोल्वण चातुर्थिकज्वर प्रथम शरीरके मध्यभागमें पीडासे व्याप्त होकर सर्व देहमें फैल जाता है ॥

चरकमें कहा है कि-"ये पांचों प्रकारके विषमज्वर विशेष करके सन्निपातसे उत्पन्न होते हैं" अतएव ये उपरोक्त सन्तत आदि ज्वर त्रिदोषसे उत्पन्न होते हैं, ऐसा जानना। इस विषयमें जैयट कहता है कि, चरकमें

'विशेष करके ऐसा जो कहा है उससे यह जाना जाता है कि, संततादि एक दोषसे और दो दोषोंसे भी उत्पन्न होते हैं ॥८१२॥८१३॥

अथ चातुर्थिकविपर्ययाद्यन्य-विषमज्वरलक्षणम्।

अस्थिमज्जागतो दोषश्चार्तिकविपर्ययः। जायते भिषजा ज्ञेयो विषमज्वर एव सः ॥ ८१४ ॥

चातुर्थिकविपर्ययाख्यो ज्वरः सोऽपि विषमज्वर एव वैद्येन ज्ञातव्यः। किंधातुस्थ इत्यपेक्षायामाहअस्थीत्यादि ॥

स मध्ये ज्वरयत्यह्नी आद्यन्ते च विमुञ्चति ॥ ८१५ ॥

चातुर्थिकविपर्यय इत्युपलक्षणम्। सन्ततादि विपर्ययोऽपि बोद्धव्यः। यथा अहोरात्रे द्वौ कालौ मुञ्चति शेषं सर्वमहोरात्रं तिष्ठतीति सततविपर्ययः। अहोरात्रे एककालं मुञ्चति शेषं सर्वमहोरात्रं तिष्ठति इति अन्येद्युष्कविपर्ययः। मध्ये एकं दिनं ज्वरयति आदावन्ते च मुञ्चतीति तृतीयकविपर्ययः। एते विषमज्वरा उपलक्षकाः। अन्येरात्रिज्वरादयोऽपि विषमज्वरा बोद्धव्याः। यथा समौ वातकफौ यस्य क्षीणपित्तस्य देहिनः। रात्रौ प्रायो ज्वरस्तस्य दिवा हीनकफस्य तु ॥ ८१६ ॥

प्रायः बाहुल्येन ॥

सन्तत आदि पांच विषमज्वरोंसे भिन्न जो चातुर्थिक विपर्यय नामक ज्वर है, उसको भी वैद्य विषमज्वरही समझते हैं। यह विषमज्वर अस्थि तथा मज्जामें रहनेवाले दोषोंसे होता है, जो ज्वर बीचके दो दिनोंमें आवे और आदि तथा अन्तके दिनमें न आवे अर्थात् चौथिये ज्वरसे विपरीत हो तो उसको चातुर्थिक विपर्यय कहते हैं। जिसप्रकार ऊपर कहे अनुसार चौथिये ज्वरसे विपरीत चातुर्थिक विपर्यय नामका ज्वर है, उसी प्रकार सतत आदि ज्वरोंसे विपरीत भी अन्य ज्वर जानने। जैसे कि एक दिनरातमें दो समय छोडकर और बाकी सब दिनरातमें रहे, उसको सततविपर्यय और एक दिनरात में एक समय छोडकर बाकी सब दिनरातमें रहे, उसको अन्येद्युष्क विपर्यय कहते हैं॥

यह कहना भी एक उपलक्षणमात्र है, इस कारण ऊपरसे रात्रिज्वर आदि अन्य विषमज्वरोंको भी समझना चाहिये। कहा है कि-''जिस मनुष्यके वात और कफ समान हों और पित्त क्षीण हो, उसके बाद विशेष करके रात्रिमें ज्वर उत्पन्न होता है और जिस मनुष्यके वात और पित्त समान हो और कफ क्षीण हो उसके विशेष करके दिनमें ज्वर आता है ॥ ८१४-८१६ ॥

अथ सन्ततादिज्वरे प्रथमं कस्यचिच्छीतं कस्यचिद्दाह उत्पद्यत इत्यत्र हेतुमाह-

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरम्। तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्तर्दाहं करोति च ॥ ८१७ ॥

शीतं-शीतहितम्। प्रशान्तयोः-प्रशान्तवेगयोः। अन्तः-अभ्यन्तरे ॥

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च। तस्मिन्प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमन्ततः ॥ ८१८ ॥

अन्ततः-हस्तपादादितः ॥

त्वचामें रहनेवाले कफ और वायु प्रथम शीतयुक्त ज्वरको उत्पन्न करते हैं और पश्चात् उनका वेग शान्त होनेपर पित्त भीतर दाहको उत्पन्न करता है। तैसे ही त्वचामें रहनेवाला पित्त प्रथम अत्यन्त दाहको उत्पन्न करता है और पश्चात् पित्तका वेग शान्त

होनेपर कफ और वायु हाथ पाँव आदि भागोंमें शीतको उत्पन्न करते हैं ॥८१७॥८१८

अथ शीतदाहादिज्वरत्रिदोषजता ।

द्वावेतौ दाहशीतादी ज्वरौ संसगजौ स्मृतौ । दाहपूर्वस्तयोः कष्टःसुखसाध्यतमोऽपरः ॥ ८१९ ॥

संसर्गजौ--सांनिपातिकौ । कष्टः--कष्टसाध्यः ॥

शीतपूर्वक और दाहपूर्वक ये दोनों ज्वर त्रिदोषसे अर्थात् संनिपातसे उत्पन्न होते हैं इनमें दाहपूर्वक ज्वर कष्टसाध्य है और शीतपूर्वक ज्वर सुखसाध्य है ॥ ८१९ ॥

अथान्यप्रकारको विषमज्वरः ।

विदग्धेऽन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते । तेनार्द्धं शीतलं देहमर्द्धमुष्णं प्रजायते ॥ ८२० ॥

अन्नरसे विदग्धे-आहारजे रसे दुष्टे, देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते, दुष्टे स्थिते । तेन हेतुना शीतलं कफेन, उष्णं पित्तेन, अर्द्धत्वं चार्द्धनारीश्वराकारेण नरसिंहाकारेण वा ॥

आहारसे उत्पन्न हुआ रस दुष्ट होता है तो शरीरमें कफ और पित्त दुष्ट होकर रहते हैं, इस कारण आधा शरीर शीतल और आधा शरीर उष्ण होता है ।

जिस प्रकार अर्द्धनारीश्वरके शरीरका एक भाग स्त्रीरूप है और दूसरा भाग पुरुषरूप है । उसी प्रकार इस ज्वरवाले रोगीका आधा शरीर शीतल रहता है और आधा शरीर गरम रहता है । अथवा जिसप्रकार नृसिहके स्वरूपके ऊपरके तथा नीचेके दो भागोंमेंसे एक भाग मनुष्याकार है और एक भाग सिंहरूप है, तैसे ही इस ज्वररोगीके ऊपरके तथा नीचेके दो भागोंमेंसे एक भाग शीतल होता है और एक भाग गरम होता है॥८२०॥

काये दुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः । तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः ॥ ८२१ ॥

अन्ते-हस्तपादादौ ॥

काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चान्ते व्यवस्थितम् । शीतत्वं तेन गात्रे स्यादुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥ ८२२ ॥

जब दूषित पित्त देहमें स्थित होता है और दूषित कफ जब हाथ, पाँव आदिमें रहता है तब शरीर गरम होता है और हाथ, पाँव शीतल होते हैं, और जब दुष्ट हुआ कफ शरीरमें रहता है और दुष्ट हुआ पित्त हाथ, पाँव आदिमें स्थित होता है तब शरीर शीतल होता है और हाथ पांव गरम होते हैं ॥८२१॥८२२॥

अथ प्रलेपकविषमज्वरलक्षणम् ।

प्रलिम्पन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च । मन्दज्वरविलेपी च स शीतः स्यात्प्रलेपकः ॥ ८२३ ॥

गौरवेण उपलक्षितः । मन्दज्वरविलेपी । मन्दवेगस्य सदा सम्बन्धोऽस्यास्तीति मन्दज्वरविलेपी । अयं विषमज्वरः ॥

जो ज्वर सर्वदा मन्दवेगके सम्बन्धका हो, जिसमें पसीनोंसे सर्व शरीर लेपित कियासा मालूम हो, तथा भारीपन और शीतयुक्त हो, उसको प्रलेपक ज्वर कहते हैं ॥ ८२३ ॥

तथा च सुश्रुतः--प्रलेपकाख्यो विषमः प्रायशः क्लेशशोषिणाम् । ज्वराश्च विषमाः सर्वे प्रायः क्लेशाय शोषिणाम् ॥ ८२४ ॥

यद्यपि सम्पूर्ण विषमज्वर विशेष करके शोषयुक्त मनुष्यको अत्यन्त दुःख देनेवाले हैं, तथापि उनमें प्रलेप नामवाला विषमज्वर तो शोषरोगियोंके प्राणोंका नाश ही करनेवाला है, ऐसा सुश्रुत कहता है, इस कारण प्रलेपकज्वर विषयज्वरमें माना जाता है ॥ ८२४ ॥

अथ विषमज्वरसामान्यचिकित्सा ।

ज्वराश्च विषमाः सर्वे सन्निपातसमुद्भवाः । यथोल्बणस्य दोषस्य तेषु कार्यं चिकित्सितम् ॥ ८२५ ॥ विषमेष्वपि कर्तव्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् । स्निग्धोष्णैरन्नपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम् ॥ ८२६ ॥

सर्व प्रकारके विषमज्वर सन्निपातसे उत्पन्न होते हैं । जो दोष इनमें उल्बण हो, प्रथम उसीकी चिकित्सा करनी चाहिये । विषमज्वरमें भी वमन विरेचनसे शोधन करना चाहिये और स्निग्ध तथा उष्ण अन्नपानोंसे ज्वरको शांत करे ॥ ८२५ ॥ ८२६ ॥

कालिङ्गकः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी। पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ॥८२७॥ निम्बः पटोलं त्रिफला मृद्वीका मुस्तवत्सकौ । किराततिक्तममृता चन्दनं विश्वभेषजम् ॥ ८२८ ॥ गुडूच्यामलकं मुस्तमर्द्धश्लोकसमापनाः । कषायाः शमयन्त्याशु पञ्च पञ्चविधं ज्वरम् ॥ ८२९ ॥

कालिङ्गकः--इन्द्रयवः । वत्सकः-कुटजः । चन्दनमत्ररक्तचन्दनम् । कषायाः पञ्च । पञ्चविधम् सन्ततसततान्येष्कतृतीयचतुर्थकरूपम् ॥

इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी (१). पटोलपात सारिवा, गौरिया, नागरमोथा, पाढ और कुटकी (२), नीम, पटोलपत्र, त्रिफला, दाख, आमला, हरड, बहेडा, नागरमोथा और इन्द्रजौ (३), चिरायता, गिलोय, लालचन्दन और सोंठ (४), गिलोय, आमले और नागरमोथा (५) ये आधे आधे श्लोकमें कहे हुए पांचौ क्वाथ पांचों प्रकारके विषमज्वरों (संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक)को तत्काल शमन करते हैं ॥८२७-८२९॥

महाबलामूलमहौषधाभ्यां क्वाथो निहन्याद्विषमज्वरं हि । शीतं सकम्पं परिदाहयुक्तं विनाशयेद् द्वित्रिदिनप्रयोगात् ॥ ८३० ॥

कंघीकी जड और सोंठका काथ बनाकर सेवन करनेसे शीत कम्प और दाहयुक्त विषमज्वरको दो तीन दिनमें नष्ट कर देता है ॥ ८३० ॥

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारिकाकाथः । पीतः सकणाचूर्णःसमधुर्विषमं ज्वरं हन्ति ॥ ८३१ ॥

नागरमोथा, आमले, गिलोय, सोंठ और कटेरी इनके क्वाथमें पीपलका चूर्ण और सहत मिलाकर पीनेसे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ८३१ ॥

तिलतैललवणयुक्तः कल्को लशुनस्य सेवितः प्रातः । विषमज्वरमपहरेद्वातव्याधीनशेषांश्च ॥ ८३२ ॥

लहसनके कल्कको तिलके तेलऔर नमकके साथ मिलाकर प्रातःकाल नित्य सेवन करे तो विषमज्वर और वातसम्बन्धी सब रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ८३२ ॥

कालाजाजी तु सगुडा विषमज्वरनाशिनी । मधुना चाऽभया लीढा हन्त्याशु विषमज्वरान् ॥ ८३३ ॥

कालाजाजी तु 'भङ्गरैला' इति लोके । सा च किंचिद्भृष्टा गुठतुल्या कर्षमिता भक्षणीया ॥

एक तोला भर कलौंजी लेकर उसको अग्निमें भूनकर तोलाभर गुड मिलाकर भक्षण करे तो विषमज्वर नष्ट होजाता है ॥ ८३३ ॥

पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः । द्रोणपुष्पीरसो वाऽपि निहन्ति विषमज्वरान् ॥ ८३४ ॥

तुलसीके पत्तोंके रसमें काली मिरचीका चूर्ण डालकर पीनेसे विषमज्वर नष्ट होजाता है। अथवा द्रोणपुष्पी के रसमें काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पिवे तो विषमज्वर दूर होता है ॥ ८३४ ॥

समगुडमसितं जीरकमीषन्मरिचं च भक्षितं सद्यः । ऐकाहिकं प्रशमयेत्समरे ष्विव दानवानिन्द्रः ॥ ८३५ ॥

कालाजीरा और गुड समानभाग लेकर उसमें किंचित् काली मिरचोंका चूर्ण मिलाकर भक्षण करे तो तत्काल विषमज्वरको नष्ट करता है, जिस प्रकार इन्द्र संग्राममें दैत्यों का तत्काल नाश करता है ॥ ९३५ ॥

शुण्ठचजाजी गुडं पिष्टं पीतमुष्णेन वारिणा । जीर्णमद्येन क्रमेण तीव्रं शीत ज्वरं जयेत् ॥ ८३६ ॥

सोंठ, जीरा और गुड इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पीनेसे, अथवा जीर्ण मदिराके साथ किंवा तक्र के साथ पीनेसे तत्काल शीतज्वर नष्ट होता है ॥ ८३६ ॥

अथ सन्ततादिज्वरचिकित्सा ।

गुडूचीमोदकः ।

अमृतायाः शतं चूर्णं वाससा परिशोधितम् । पृथक् षोडश भागाः स्युर्गुडमाक्षिकसर्पिषाम् ॥ ८३७ ॥ यथाग्नि भक्षयेदेतन्नरो हितमिताशनः । नास्य कश्चिद्भवेद्व्याधिर्न जरा पलितं न च ॥ ८३८ ॥ न ज्वरा विषमा नैव मोहो नानिलरक्तकम् । न च नेत्रगता रोगाः परमेतद्रसायनम् ॥ ८३९ ॥ मेधाकरं त्रिदोषघ्नं प्रयोगादस्य बुद्धिमान् । जीवेद्वर्षशतं साग्रं यथैवादितिजस्तथा॥८४०॥

१०० तोले उत्तम गिलोयका कपडेमें छना हुआ चूर्ण लेकर १६ तोले गुड, सोलह तोले सहत और १६ तोले घी मिलावे, सबको एकत्र करके मोदक बना लेवे । अपनी अग्निका बलाबल विचारकर इसको भक्षण करे, इसपर हितकारी और परिमित भोजन करे, इसको सेवन करनेवाले मनुष्यके कोई रोगभी उत्पन्न नहीं होता । न बुढापा आता है, न बाल सफेद होते हैं। तथा विषमज्वर, मोह, वातरक्त और नेत्ररोग कभी नहीं होते । यह परमोत्तम रसायन है, मेधाजनक और त्रिदोषनाशक है, इसको सदैव प्रयोग करनेसे सौ बर्षसे अधिक देवके समान जीवित रहता है ॥८३७॥८४०॥

अथविषमज्वरि भोजनम् ।

तक्रमांशं पयोमांसं दधिमांसमथापिवा । माषमांसञ्च भुञ्जानो मुच्यते विषमज्वरात् ॥ ८४१ ॥

जो मनुष्य तक्रके साथ मांसको, दूधके साथ मांसको, दहीके साथ मांसको अथवा उडदोंके साथ मांसको भक्षण करता है, वह विषमज्वरसे मुक्त हो जाता है ॥ ८४१ ॥

अग्निवेशेनोक्तम् -सुरा समण्डा पानार्थे भोजने चारणायुधाः। तित्तिरा विष्किराः पथ्याः कुक्कुटा विषमज्वरे ॥ ८४२ ॥

चरणायुधाः--गृहकुक्कुटाः । कुक्कुटाः - वनकुक्कुटाः । किष्किराः--वर्तिकालावविकिरचकोराद्याः ।

अग्निवेश ऋषि कहते हैं कि, विषमज्वरवाले मनुष्यको मांडके साथ मद्य पीनेको देवे और घरेलू और बनेलू मुरगा, तीतर और समस्त विष्किर जातिके जीवोंका मांस भोजन करनेके लिये देवे, यह पथ्य हित है ॥८४२॥

अथ सन्ततादिज्वराणां विशेषचिकित्सा ।

त्रायन्तीकटुकाऽनन्तासारिवाभिः शृतं जलम् । पटोलाब्दवृषातिक्तासारिवाभिः शृतं जलम् । सन्तताख्ये ज्वरे देयं वातादीनां निवृत्तये ॥ ८४३ ॥

वृषाः--बृहद्दन्ती एरण्डवत्पत्रविटपा, तदलाभे दन्ती च ग्राह्या समानगुणत्वात् ॥

पटोलेन्द्रयवानन्तापथ्यारिष्टाऽमृताजलम् । क्वथितं तज्जलं पीतं ज्वरं सततकं जयेत् ॥ ८४४ ॥

अनंता-सारिवा। अरिष्टः-निम्बः।जलं वालकम् ।

संततज्वरमें वायु आदिकी निवृत्तिके लिये त्रायमाण, कुटकी, अनन्तमूल और सारिवा इनके क्वाथ अथवा पटोलपत्र, नागरमोथा बृहद्दन्ती (न मिलनेपर इसके बदले दंती जमालगोटेकी जड लेनी,) कुटकी और सारिवा इनका क्वाथ पिवे । पटोलपत्र, इंद्रजौ, अनंतमूल, हरड, नीम, गिलोय और सुगंधवाला इनका क्वाथ पीनेसे सततज्वर नष्ट होता है ॥ ८४३ ॥ ८४४ ॥

द्राक्षापटोलनिम्बाब्दशक्राह्वत्रिफलाशृतम्। जलं जन्तुः पिबेच्छीघ्रमन्येद्युर्ज्वरशान्तये ॥ ८४५ ॥

शक्राह्वः-इन्द्रजवः ॥

दाख, पटोलपत्र,नीमकी छाल, नागरमोथा, इंद्रजौ और त्रिफला इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे अन्येद्युष्क ज्वर नष्ट होता है, अन्येद्युष्क ज्वरको शांत करनेके लिये यह क्वाथ अवश्य पीना चाहिये ॥ ८४५ ॥

कर्म साधरणं त्यक्त्वा तृतीयकचतुर्थकौ । भिषजा प्रतिकर्तव्यौ विशेषोक्तचिकित्सितैः ॥ ८४६ ॥ उशीरं चन्दनं मुस्तं गुडूचीधान्यनागरम् । अम्भसा क्वथितं पेयं शर्करामधुयोजितम् । ज्वरे तृयीयके पुंसां तृष्णादाहसमन्विते ॥ ८४७ ॥

तृतीय और चातुर्थिकज्वरमें प्रथम वैद्यको वमन और विरेचनादि साधारण कर्म करके पश्चात् विशेष चिकित्सा करनी चाहिये । तृषा और दाहयुक्त तृतीयकज्वरमें खस, लाल चन्दन, नागरमोथा, गिलोय, धनियाँ और सोंठके क्वाथमें मिश्री और सहत डालकर पिवे ॥ ८४६ ॥ ८४७ ॥

अपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः । बद्धा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ ८४८ ॥

रविवारके दिन चिरचिटेकी जडको सात लाल धागोंमें लपेटकर कमरमें बांधे तो तृतीयकज्वर नष्ट होजाता है ॥ ८४८ ॥

स्थिरातामलकीदारुशिवावृषमहौषधैः । सितामधुयुतः क्वाथश्चतुर्थकहरः परः ॥ ८४९ ॥

स्थिरा--शालिपर्णी । तामलकी-भूधात्री । शिवाहरितकी । वृषः वासा ॥

शालीपर्णी, भुंईआम्ला, देवदारु, हरड, अडूसा और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत और मिश्री मिलाकर पीनेसे चौथिया ज्वर नष्ट होजाता है ॥

आगस्तिपत्रस्य रसेन नस्यं निहन्ति चातुर्थकमुग्रवीर्यम् । शिरीषपुष्पस्य निशाद्वयस्य कल्केन वा तद्घृतसंयुतेन ॥ ८५० ॥

तत्--नस्यम् ॥

अगस्तियेके पत्तोंके स्वरसका नस्य देनेसे अथवा सिरसके फूल, हलदी और दारुहलदी इनके कल्कका घृत मिलाकर नस्य देनेसे घोर चातुर्थिक ज्वर दूर होजाता है ॥ ८५० ॥

ज्वरस्य वेगकालञ्च चिन्तयञ्ज्वर्यते तु यः । तस्येष्टैरद्भुतैर्वाऽपि विषमैर्नाशयेत् स्मृतिम्॥८५१॥सन्ततं विषमं चापि सततं सुचिरोत्थितम्। ज्वरं सुभोजनैः पथ्यैरिष्टैश्च समुपाचरेत् ॥ ८५२ ॥ सन्ततादिविपर्ययाणां विषमज्वराणां चिकित्सा सन्ततादीनामिव कर्तव्या ॥

जो मनुष्य ज्वरके वेगको और ज्वरके आनेके समयको स्मरण करते ही ज्वरित होजाता है, उस मनुष्यकी उस उस स्मृतिको प्रियपदार्थोंसे, अद्‌भुतपदार्थोंसे अथवा विषमपदार्थोंसे भुला देवे ॥ बहुत दिनोंके सततज्वरमें, सन्ततज्वरमें और विषम ज्वरमें हितकारक भोजन देवे । सन्तत विपर्यय आदि अन्यज्वरोंकी चिकित्सा भी सन्तत आदि विषम ज्वरोंके समान करनी चाहिये ॥८५१॥ ८५२॥

शीताभिभूते पुरुषे कुर्याच्छीतहरीं क्रियाम्। दाहाभिभूते तु विधिं विदध्याद्दाहनाशनम् ॥ ८५३ ॥ आच्छादनैर्बहुतरैर्गुरुभिः कम्बलादिभिः । तूलवत्या महाशीतं शीतादि ज्वरिणो हरेत् ॥ ८५४ ॥

तूलवती तु 'रजाई' इति लोके ॥

तं स्तनाभ्यां सुपीनाभ्यां पीवरोरुनितम्बिनी । युवती गाढमालिङ्ग्य्त्तेन शीतं प्रशाम्यति ॥८५५॥ कान्ताङ्गसङ्गसञ्जाते तद्वच्छीते निवारिते । प्रह्लादं चास्य विज्ञाय पृथक् तां कारयेत् स्त्रियम् ॥ ॥ ८५६ ॥ ततो दाहे तु सञ्जाते पत्रैरेरण्डसम्भवैः । शीतलैर्धारितैरंगे दाहं तस्यापनोदयेत् ॥ ८५७ ॥

यदि रोगीको शीतके कारण पीडा होती हो तो शीतनाशक चिकित्सा करनी चाहिये और जो दाहसे पीडा होती हो तो दाहनाशक चिकित्सा करनी चाहिये शीतादिसे पीडित ज्वरवाले रोगीको भारी कम्बल आदि आच्छादनोंसे ढके, तथा तोसक लिहाफ गरम ऊनी वस्त्र और रजाई ओढाकर शीतको दूर करे । पुष्ट जंघाओंवाली और बडे नितम्बवाली तथा कठोर कुचोंवाली स्त्रीसे आलिंगन करावे तो शीत नष्ट हो जाता है । आलिंगनके पश्चात् शीतके निवारण होनेपर जब रोगीको कामदेव उत्पन्न हो जाय, तब उस स्त्रीको उसके शरीरसे अलग कर देवे । पश्चात् जब दाह उत्पन्न हो तो एरण्डके शीतल पत्ते धारण करनेसे दाह नष्ट होजाता है ॥ ८५३-८५७ ॥

अथ शीतज्वरे भूतभैरवचूर्णम् ।

तालकं शुक्तिकाचूर्णं दत्तं तत्रोभयोरपि। नवमांशश्च तुत्थं स्यान्मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ ८५८ ॥ तत्तु संशुष्कमुपलैर्वन्यैर्गजपुटे पचेत् । शीतं तच्चूर्णयेच्चूर्णं गुञ्जामात्रं सितायुतम् ॥ ८५९ ॥ प्रभाते भक्षयेत्तेन याति शीतज्वरः क्षयम् । वान्तिर्भवति कस्यापि कस्यचिन्न भवत्यपि ॥ ८६० ॥ एकेन दिवसेनैव शीतज्वरहरं परम् । मध्याह्नसमये पथ्यं शिखरिण्योदनं तथा ॥ ८६१ ॥

हरताल और सीपका चूर्ण नौ भाग और नीलाथोथा एक भाग लेवे, सबको एकत्र मिलाकर घीकारके रसमें खरल करे, फिर जब यह सूखजाय तब अरने उपलोंके गजपुटमें रखकर पकावे, पकनेके पश्चात् जब स्वयं शीतल होजाय तब चूर्ण करलेवे, प्रातःकाल सफेद खाँडके साथ एकरत्ती प्रमाण इस चूर्णको भक्षण करे तो शीतज्वर नष्ट हो जाता है । इस रसको भक्षण करनेसे किसी मनुष्यको वमन होती है और किसीको नहीं भी होती है । यह रस एक दिनमें ही शीतज्वरको अवश्य नष्ट करता है । इसके ऊपर मध्याह्नके समय सिखरन भातका पथ्य देवे८५८॥८६१॥

अथ कायस्थादिधूपलेपतैलानि ।

कायस्थानाकुलीतिक्तावयस्थापुरचोरकैः । सहदेवावचाकुष्ठैः शीतघ्नैर्धूपलेपनैः ॥ ८६२ ॥ एतैरेवौषधैः पिष्टैर्लवणक्षारसंयुतैः । साम्लैर्विपाचित्तं तैलमभ्यंगाच्छीतनाशनम् ॥ ८६३ ॥

कायस्था-हरीतकी । नाकुली-रास्नाभेदः 'नाई' इति लोके । वयस्था-गुडूची । पुरो-

गुग्गुलुः। चोरकः-भंडीउरः, तदलाभेगठिवन। सहदेवा-बृहद्बला। क्षारो--यवक्षारः। इति कायस्थादिधूपनलेपनतैलानि ॥

हरड, नाई, कुटकी, गिलोय, गूगल, भटेउर यदि यह न मिले तो गठिवन लेनी चाहिये, सहदेई, वच और कूठ इन सब औषधियोंका धूप बनाकर देनेसे अथवा इन सबको पीसकर शरीरमें लेप करनेसे शीतका नाश होता है। इन सब औषधियोंको पीसकर लवण, जवाखार और नींबूका रस मिलाकर तेल डालकर पकावे, इस तेलकी मालिस करनेसे शीत नष्ट होता है॥ ८६२॥ ८६३॥

अथ दाहचिकित्सा।

एरण्डस्य तु पात्राणि लिप्तभूमौ निधापयेत्। दाहादिज्वरिणो देहे तानि पत्राणि धारयेत्॥ ८६४॥ तेन नश्यति दाहोऽस्य ज्वरश्चैवोपशाम्यति। दाहे शान्ते यदा शैत्यं तच्च युक्त्या निवारयेत्॥ ॥ ८६५॥ जघनचक्रचलन्मणिमेखला सरसचन्दनचन्द्रविलेपना। वनलतेव तरुं परिवेष्टयेत्प्रबलदाहनिपीडित मङ्गना॥ ८६६॥

चन्द्रः-कर्पूरः।

तदङ्गसङ्गसञ्जाते शैत्ये दाहे निवारिते। प्रह्लादश्चास्य विज्ञाय तां स्त्रीमपनयेत्पुनः॥ ८६७॥

लिपी हुई भूमिपर अंडके पत्तोंको बिछालेवे, पश्चात् दाहज्वरवाले मनुष्यके शरीरपर उन पत्तोंको धारण करे तो दाह शान्त हो जाता है और ज्वर नष्ट होजाता है। दाह शान्त होनेके पश्चात् यत्नपूर्वक शीतका निवारण करे। जिसके नितम्बोंपर चलायमान मणियोंकी मेखला अर्थात् रत्नजडित जंजीर पडी हो, तथा जिसका शरीर सरस कपूर, केशर, चन्दनादिसे चर्चित हो, ऐसी स्त्रीको दाहसे पीडित मनुष्यके अंगसे खूब आलिंगन करावे। स्त्रीके आलिंगनसे शीत और दाह नष्ट हो जायगा, जब कामदेव चैतन्य होजाय तब उस स्त्रीको उसके समीपसे अलग कर लेवे॥८६४-८६७॥

अथ षड्गुणतक्रतैलम्।

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः। सिद्धं हरेत्षड्गुणतक्रपक्कं तैलं ज्वरं दाहसमन्वितं च॥८६८॥

सज्जी, सोंठ, कूठ, मूर्वा, लाख, हलदी, और मंजीठ इनसे छःगुनी छाँछमें पकाया हुआ तैल दाह सहित ज्वरको नष्ट करता है॥ ८६८॥

अथ महाषड्गुणतक्रतैलम्।

रास्नानागरकुष्ठचन्दननिशायष्ट्याह्वकृष्णाबलालाक्षासैन्धवसारिवामधुरसादेवाह्वरोहीतकैः। सोशीराम्बुधिफेनरोहिषजलैस्तैलं पचेत् षड्गुणे तक्रे तच्च जयेज्ज्वरं दृढतरं दाहादिशीतादिकम्॥८७९

चन्दनमत्र श्वेतम्। मधुरसा-मूर्वा। रोहीतकः-रोहिणीति लोके रोहिष इति तृणविशेषः। जलंवालम्।

रायसन, सोंठ, कूठ, चन्दन, हलदी, मुलहठी, पीपल, खिरैंटी, लाख, सैंधानमक, सारिवा, मूर्वा, देवदारु, बहेडा, खस, समुद्रफेन, सुगंधिततृण और सुगन्धवाला इन सब औषधियोंके साथ छःगुने तक्रमें सिद्ध किया हुआ तेल दाहपूर्वक अथवा शीतपूर्वक घोर ज्वरको नष्ट करता है॥ ८६९॥

अथ पद्मकादितैलम्।

पद्मकोत्पलकह्लारमृणालबिसपौष्करैः। कुमुदोशीरमञ्जिष्ठापद्मगैरिककट्फलैः॥ ॥ ८७०॥ सारिवाद्वयलोध्राह्वक्षीरिखर्जूरमस्तकैः। धात्रीशतावरीयुक्तैः क्वाथे कल्के प्रयोजितैः॥ ८७१॥ लाक्षारसपयःशुक्तमस्तुभिः सह काञ्जिकैः।

पक्कं तैलमिदं त्वच्यं दाहज्वरहरं परम् ॥ ८७२ ॥

पद्माख, उत्पल नामक कमल, कह्लार जातिका लाल कमल, कमलकी नाल, कमलकंद, पोहकरमूल, कमोदिनी, खस, मंजीठ, कमल, गेरू, कायफल, कालीसर, गौरीसर, लोध, दुद्धी, खजूरका मस्तक, आमले और सतावर इनका क्वाथ और कल्क बनावे तथा लाखका रस, दूध, शुक्त, दहीका तोड और और काँजी एवं तैल ये सब समान लेवे, सबको मिलाकर यथाविधि तेलको पकावे, यह तेल त्वचाको अत्यन्त हितकारी है और दाहसहित ज्वरको हरनेवाला है ॥ ८७०-८७२ ॥

अथ प्रलपकचिकित्सा ।

प्रलेपके प्रयुञ्जीत श्लेष्मज्वरहरीं क्रियाम् ।

प्रलेपकज्वरमें सकल क्रिया कफनाशक करनी चाहिये ॥

माहेश्वरो धूप ।

रुद्रजटा गोशृङ्गं विडालविष्ठोरगस्य निर्मोकः । मदनफलभूतकेश्यौ वंशत्वग्रुद्रनिर्माल्यम् ॥ ८७३ ॥ घृतयवमयूरपुच्छच्छगलकलोमानि सर्षपाः सवचाः । हिङ्गुगवास्थिमरीचाः समभागाश्छागमूत्रसंपिष्टाः ॥ ८७४ ॥ धूपनविधिना शमयन्त्येते सर्वान् ज्वरान्नियतम् । ग्रहडाकिनीपिशाचप्रेतविकारानयं धूपः॥८७५

रुद्रजटा--जटाधारी । भूतकेशी--जटामांसी । रुद्रनिर्माल्यं--पुष्पादि । मयूरपुच्छम् -चन्द्रकम्॥

माहेश्वरधूप-जटामांसी, गायका सींग, बिलावकी विष्ठा, साँपकी कैंचली, मैनफल भूतकेशी-बालछड, जटामांसी, बाँसकी छाल और रुद्रका निर्माल्य बेलपत्र, घी जौ मोरकी पूँछ, बकरेके रोम, सरसों, वच, हींग, गायकी हड्डी और कालीमिर्च इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीसकर धूप देवे तो यह धूप-सर्वप्रकारके ज्वरोंको अवश्य दूर करता है तथा ग्रह, डाकिनी, पिशाच और प्रेतबाधाको नष्ट करता है ॥ ८७३-८७५ ॥

अथ देवस्तुतिपूजने ।

सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम् ।
पूजयन्प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ ८७६ ॥

सोमम्--उमया सहितम् । सानुचरं--नन्द्यादिगणसहितम् । प्रयतः--पवित्रः ॥

विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपतिं विभुम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति ॥ ८७७ ॥

सहस्रमूर्द्धानमिति 'सहस्रशीर्षा' इत्यादिवेदाभिहितम्, नामसहस्रेण भारतोक्तेनेत्यर्थः । ज्वरस्यापि देवत्वात्पूजा कार्या । यत आह विदेहः—

तीर्थायतनदेवाग्निगुरुवृद्धोपसर्पणैः ।
श्रद्धया पूजनैश्चापि सहसा शाम्यति ज्वरः ॥ ८७८ ॥

तीर्थम्--ऋषिजुष्टं जलम् । आयतनं--देवाधिष्ठितम्, पुरुषोत्तमक्षेत्रश्रीशैलादि ॥

पवित्र होकर पार्वती, नंदी आदि गण और मातृगणसहित श्रीसदाशिवका पूजन करनेसे विषमज्वर नष्ट हो जाता है ॥ स्थावर और जंगमके स्वामी, सर्व व्यापक और 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि वेदमंत्रोंमें कही हुई विष्णुभगवानकी स्तुति और महाभारतके आनुशासनिक नामक तेरहवें पर्वमें कहे हुए विष्णुसहस्रनामस्तोत्रसे स्तुति करनेसे सर्व प्रकारके ज्वरनष्ट होते हैं ॥ ज्वर भी देवरूप है, इस कारण ज्वरका पूजन भी करना चाहिये, विदेह कहता है कि-ऋषियोंसे सेवित किया हुआ तीर्थरूप जल, देवताओंके निवासस्थान पुरुषोत्तमक्षेत्र श्री शैल आदि, देवता, अग्नि, गुरु और वृद्धजन इनकी

शरण लेनेसे और श्रद्धापूर्वक पूजन करनेसे भी ज्वर शांत होता है ॥ ८७६-८७८ ॥

इति विषमज्वराधिकारः ।

अथ सप्तधातुज्वराधिकारः ।

रसादिधातुगतज्वरलक्षणचिकित्से ।

रसगतज्वरलक्षणम् ।

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ । रसस्थे तु ज्वरे लिङ्गं दैन्यं चास्योपजायते ॥ ८७९ ॥

गुरुता—गात्राणाम् । हृदयस्थस्य दोषस्य उपचित त्वाद्वमनमिव, दैन्यं—क्लीबचित्तता रसस्थे—रसधातुगते ज्वरे ॥ यद्यपि रसैकधातुं प्राप्य सन्ततश्चायं तथाप्यनुक्रमधातुगतकथनार्थ एवात्र निर्देशः ॥

शरीरमें भारीपन, हृदयमें रहनेवाले दोषोंके बढनेसे वमन आनेको होवे, ग्लानि, वमन, अरुचि और दीनता ये लक्षण रसगत ज्वरमें होते हैं ।

यद्यपि रसनामक एक धातुमें रहनेवाला ज्वर प्रथम कहा हुआ संततज्वरही है और इसी प्रकार अन्य धातुओंमें रहनेवाले ज्वर भी विषमज्वरोंमें कहे गये हैं, तथापि उन धातुओंमें रहनेवाले ज्वरोंके लक्षण और चिकित्साको अनुक्रमसे कहनेके लिये इस प्रकरणमें निर्देश करते हैं ॥ ८७९ ॥

अथ रसगतज्वरचिकित्सा ।

रसस्थे तु ज्वरे तस्मिन्कुर्याद्वमनलङ्घने ॥ ८८० ॥

जब मनुष्योंका ज्वर रसमें प्राप्त होजाय तब उनको वमन और लंघन करावे ॥ ८८० ॥

अथ रक्तगतज्वरलक्षणम् ।

रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ । प्रलापः पिडिका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥

मोहः—व्यग्रचित्तता ॥

रुधिरका थूकना, दाहका होना, बेहोसी, वमन, विभ्रम, प्रलाप, शरीरमें फुंसी आदि निकले और तृषा अधिक लगे, ये लक्षण रुधिरगत ज्वरके जानने ॥ ८८१ ॥

अथ रुधिरगतज्वरचिकित्सा ।

सेकं संशमनं लेपं रक्तमोक्षमसृग्गते ॥ ८८२ ॥

जब ज्वर रुधिरमें पहुँच जाय तब जलादिसे सेचन, संशमन लेप करे और रक्तमोक्षण फस्त करावे ॥ ८८२ ॥

अथ मांसगतज्वरलक्षणम् ।

पिण्डकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता । ऊष्माऽन्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ८८३ ॥

उष्णान्तर्मोहविक्षेपाविति केचित्पठंति । अत्र ऊष्मा--अन्तः, विक्षेपः--हस्तपादादिचालनम् ।

पिंडलियोंमें वेष्टनके समान पीडाका होना, तृषा, मल और मूत्रका अधिक उतरना, शरीरके भीतर गर्मी, दाह, हाथ पांवोंको इधर उधर फेंकना और ग्लानि हो, यह मांसगत ज्वरके लक्षण जानने ॥ ८८३ ॥

अथ मांसगतज्वरचिकित्सा ।

तीक्ष्णं विरेकश्च तथा कुर्यान्मांसगते ज्वरे ॥ ८८४ ॥

मांसगतज्वरमें तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा विरेचन कराने चाहिये ॥ ८८४ ॥

अथ मेदोगतज्वरलक्षणम् ।

भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च । दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदस्थे चासहिष्णुता ॥ ८८५ ॥

भृशं स्वेदः, मेदोमलत्वात् ॥

अत्यन्त पसीनेका आना, अधिक तृषाका लगना, मूर्च्छा आजाना, प्रलाप करना, वमनका होना, रोगीके शरीरमें दुर्गन्धका आना, अरुचिका होना, ग्लानिका होना और सहन करनेकी शक्तिका नहीं रहना, ये मेदगतज्वरके

लक्षण हैं । मेदज्वरमें पसीना इस लिये अधिक आता है कि, पसीना मेदका मल है ॥ ८८५ ॥

अथ मेदोगतज्वरचिकित्सा ।

मेदःस्थे मेदसो नाशं विदधीत चिकित्सकः ॥ ८८६ ॥

मेदगतज्वरमें मेदनाशक-चिकित्सा करनी चाहिये ॥

अथास्थिगतज्वरलक्षणम् ।

मेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च । विक्षेपणञ्च गात्राणां विद्यादस्थिगते ज्वरे ॥ ८८७ ॥

अस्थिगतज्वरमें-हड्डियोंके भेदनेकीसी पीडा, कंठमें गर्मी, पेटका बोलना, श्वास, दस्त वमन और अंगोंको इधर उधर पटकना, ये लक्षण होते हैं ॥ ७८७ ॥

अथास्थिगतज्वरचिकित्सा ।

अस्थिस्थे तु ज्वरे कुर्याद्वातनाशनकं विधिम् । वस्तिकर्म प्रयोक्तव्यमभ्यंगोन्मर्दनं तथा ॥ ८८८ ॥

अस्थिगतज्वरमें वातनाशक विधिका प्रयोग करना चाहिये तथा वस्तिकर्म, अभ्यंग और मर्दन ये सब करने चाहिये ॥ ८८८ ॥

अथ मज्जागतज्वरलक्षणम् ।

तमःप्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा । अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे ॥ ८८९ ॥ असाध्यत्वान्नात्र चिकित्सा ॥

मज्जागतज्वरमें अंधकारमें प्रवेश करने जैसा प्रतीत हो, हिचकी आवे खाँसी हो, शीत लगे, वमन हो, भीतर दाह हो, महाश्वास हो और मर्मस्थानोंमें छेदने सरीखी पीडा होती है। यह ज्वर असाध्य है, इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ८८९ ॥

अथ शुक्रगतज्वरलक्षणम् ।

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे । शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ॥ ८९० ॥

शुक्रगतज्वरमें लिंग जड हो जाय और वीर्य अधिकतर वहे, इस ज्वरमें मनुष्य मरजाता है ॥ ९८९ ॥

ननु शुक्रगते मरणमित्युक्तम्, तच्च शुक्रं सर्वदेहगम् । नैवम्--स्वाश्रयस्थशुक्रगे मरणम् ।

शंका-ज्वर वीर्यमें पहुँचनेसे मृत्यु होती है और वीर्य सब शरीरमें रहता है; इस बातमें हमको बडा भारी सन्देह है, यह क्यों कहा कि, ज्वरके वीर्यमें जानेपर मृत्यु होजाती है ? ऐसा कैसे होसकता है ?

समाधान-वीर्य रहनेके जो मुख्य स्थान हैं, उन स्थानोंमें स्थित वीर्यमें जो ज्वर प्राप्त हो तो मरण होता है ॥

इति सप्तधातुज्वराधिकारः ॥

अथ जीर्णज्वराधिकारः ॥

यो द्वादशभ्यो दिवसेभ्य ऊर्ध्वं दोषत्रयेभ्यो द्विगुणेभ्य ऊर्ध्वम् । नृणां तनौ तिष्ठति मन्दवेगो भिषग्भिरुक्तो ज्वर एष जीर्णः ॥ ८९१ ॥

जो ज्वर बारह दिनके पश्चात् और तीनों दोषोंकी अवधिके दुगुने दिनोंके उपरान्त मनुष्योंके शरीरमें मन्द वेगसे रहता है, उसको वैद्य जीर्णज्वर कहते हैं ॥ ८९१ ॥

अथ वातबलासकजीर्णज्वरलक्षणम् ।

नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनः कृच्छ्रेण सिध्यति । स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥ ८९२ ॥

वातबलासकी नर ईदृग् भवेत् । शूनः - शोथी । श्लेष्मभूयिष्ठा- बहुश्लेष्मकः ।

जिस मनुष्यको वातबलासक नामवाला जीर्णज्वर होता है, वह नित्य मन्दज्वरयुक्त,

रूखापन, सूजनसहित, जकडे अंगोंवाला और अत्यन्त कफयुक्त होता है, यह ज्वर कष्टसाध्य है ॥ ८९२ ॥

अथ जीर्णज्वरसामान्यचिकित्सा।

जीर्णज्वरी नरः कुर्यान्नोपवासं कदाचन। लङ्घनात्स भवेत्क्षीणो ज्वरस्तु स्याद्बली यतः ॥ ८९३ ॥ पुराणेऽपि ज्वरे दोषा यद्यपथ्यैः पुनस्तथा। लङ्घयेत्तत्र तत्पश्चात् पूर्वामेवाचरेत्क्रियाम् ॥ ८९४ ॥

तथा--पूर्ववत्।

जीर्णज्वरवाले रोगीको कदापि लंघन नहीं कराना चाहिये। कारण यह है कि-लंघन (उपवास) करनेसे रोगी क्षीण होजाता है और रोग बलवान् होजाता है और यदि जीर्णज्वरमें भी कुपथ्य अहित पदार्थ सेवन करनेसे दोष फिर कुपित होगये हों तो प्रथम लंघन कराकर पश्चात् पूर्वोक्त ज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८९३ ॥ ८९४ ॥

अथ त्रिकण्टकक्काथः।

निदिग्धिकानागरकामृतानां क्काथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम्। जीर्णज्वरारोचककासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दित पीनसेषु ॥ ८९५ ॥ हन्त्यूर्ध्वजमयं प्रायः सायं तेनोपयुज्यते ॥ ८९६ ॥

कटेरी, सोंठ और गिलोय इनके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे-जीर्णज्वर, अरुचि, खाँसी, शूल, श्वास, मंदाग्नि, अर्दित (लकवा) और पीनसरोग नष्ट होता है। यह विशेष करके ऊर्ध्वज अर्थात् कंठके ऊपरके रोगोंको दूर करता है, इससिये इसको सन्ध्याके समय सेवन करना चाहिये ॥ ८९५ ॥ ८९६ ॥

अथ पिप्पल्यादि,।

पिप्पलीमधुसंयुक्तः क्काथश्छिन्नोद्भवोद्भवः। जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलकृतोऽथवा ॥ ८९७ ॥

गिलोयके काथमें अथवा पंचमूलके काथमें पीपलका चूर्ण और सहत डालकर पीनेसे जीर्णज्वर और कफ नष्ट होता है ॥ ८९७ ॥

अमृतायाः कषायस्तु शीतलीकृतमीरितम्। मधुपादयुतं पीतं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ८९८ ॥

गिलोयके काथको शीतल करके उसमें चौथाई भाग सहत डालकर पीनेसे जीर्णज्वर नष्ट होता है ॥ ८९८ ॥

पिप्पलीमधुसंमिश्रं गुडूचीस्वरसं पिबेत्। जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम् ॥ ८९९ ॥

गिलोयके स्वरसमें पीपलका चूर्ण और सहत डालकर पीनेसे जीर्णज्वर, कफ, प्लीहा खांसी और अरुचि दूर होती है ॥ ८९९ ॥

जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली। कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुकृमिरोगनुत्। द्विगुणः पिप्पलीचूर्णाद्गुडोऽत्र भिषजां मतः ॥ ९०० ॥

जीर्णज्वर और मन्दाग्निमें गुडके साथ पीपलका चूर्ण सेवन करे। यह खांसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृदयरोग, पाण्डुरोग और कृमिरोगको नष्ट करता है यहां पीपलके चूर्णसे गुड दुगुना लेना चाहिये ॥ ९०० ॥

पिप्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी। श्वासकासज्वरहरी पाण्डुप्लीहोदरापहा ॥ ९०१ ॥

पीपलको सहतमें मिलाकर चाटनेसे मेद, कफ, श्वास, खांसी, ज्वर, पाण्डु, प्लीहा (तिल्ली) औ उदररोग नष्ट होता है ॥ ९०१ ॥

आमलं चित्रकं पथ्या पिप्पली सैन्धवं तथा। चूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्वज्वरहरः परः। भेदी रुचिकरः श्लेष्महन्ता दीपनपाचनः ॥ ९०२ ॥

आमले, चीता, हरड, पीपल और सैंधानिमक इन सबका चूर्ण करके सेवन करे तो सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं, यह भेदक (दस्तावर), रुचिकारक, कफनाशक, दीपन और पाचन है ॥ ९०२ ॥

अथाष्टादशाङ्गक्काथः ।

द्राक्षाऽमृता शटी शृङ्गी मुस्तकं रक्तचन्दनम् । नागरं कटुका पाठा भूनिम्बः सदुरालभः ॥ ९०३ ॥ उशीरं धान्यकं पद्मं वालकं कण्टकारिका । पुष्करं पिचुमन्दश्च दशाष्टाङ्गमिदं स्मृतम् । जीर्णज्वरारुचिश्वासकासश्वयथुनाशनम् ॥ ९०४ ॥

दाख, गिलोय, कचूर, काकडासिंगी, नागरमोथा, लालचन्दन, सोंठ, कुटकी, पाढ, चिरायता, धमासा, खस, धनियां कमल, सुगन्धवाला, कटेरी, पोहकरमूल और नीम इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर क्काथ बनाकर सेवन करे तो जीर्णज्वर, अरुचि, श्वास,खांसी और सूजन नष्ट होती है९०३-९०४

अथ वर्द्धमानपिप्पली ।

त्रिवृद्धया पञ्चवृद्धया वा सप्तवृद्धयाऽथवापि वा । गव्यक्षीरेण संपिष्टाः पिबेद्दशदिनानि हि ॥ ९०५ ॥ तथैवापनयेदेता एवं विंशतिवासरान् । पिबतां ज्वरशान्तिः स्यात्पाण्डुरोगश्च शाम्यति । कासः श्वासोऽग्निमान्द्यश्च कफाधिक्यश्च नश्यति ॥ ९०६ ॥

त्र्यादिवृद्धिः यथा कफवृद्धिर्दुग्धवृद्धिर्यथा अग्निवृद्धिः ॥

नित्य तीन तीन बढाकर अथवा पाँच पाँच बढाकर किंवा सात सात बढाकर पीपलोंको गायके दूधमें पीसकर दश दिनतक पीवे, फिर दश दिनतक इसी रीतिसे क्रमक्रमसे कमती करके पीवे, इस प्रकार बीस दिन तक पीवे तो इससे ज्वर और पांडुरोग शान्त होता है । यह खांसी, श्वास, मन्दाग्नि और कफकी अधिकताको नष्ट करता है । कफकी वृद्धि और अग्निकी वृद्धिके अनुसार तीन तीन नित्य बढावे और जैसे जैसे पीपल बढावे, वैसेही दूधको बढावे । इसको वर्द्धमान पीपल कहते हैं ॥ ९९५ ॥ ९०६ ॥

वातश्लेष्मज्वरोक्ता स्यात्क्रिया वातबलासके । जीर्णज्वरे कफे क्षीणे दाहे तृष्णासमन्विते ॥ ९०७ ॥ पयः पीयूषसदृशं तन्नवे तु विषोपमम् । चन्दनाद्यं हितं तैलं शोषाधिकारकीर्तितम् । तथा नारायणं तैलं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ९०८ ॥

वातबलासक नामवाले जीर्णज्वरमें, वातकफज्वरमें कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये । जीर्णज्वर, कफकी क्षीणता और तृषा, दाह आदि ज्वरमें दूधका पीना अमृतके समान है और जो नवीन ज्वरमें दूध पिया जाय तो विषके सदृश अपकार करता है। शोषरोगमें जो चन्दनादि तेल आगे कहा है और वातरोगमें जो नारायण तेल कहा है, ये दोनों जीर्णज्वरोंको अवश्य नष्ट करते हैं॥९०७-९०८

इति जीर्णज्वराधिकारः ॥

अथ दुर्जलजनितज्वरचिकित्सा ।

हरीतक्यादिचूर्णम् ।

हरीतकी निम्बपत्रं नागरं सैन्धवोऽनलः । एषां चूर्णं सदा खादेद्दुर्जलज्वरशान्तये ॥ ९०९ ॥

हरड, नीमके पत्ते, सोंठ, सैंधानामक और चीता इनका चूर्ण करके नित्य सेवन करे तो दूषित जलके पीनेसे उत्पन्न हुआ ज्वर नष्ट होजाता है ॥ ९०९ ॥

अथ शुण्ठीक्काथः ।

अरुचिमनलमान्द्यं पीनसश्वासकासानु-

दरमुदकदोषानाशु हन्यादशेषान्। जनयति तनुकान्ति चित्तनेत्रप्रसादं पलपरिमितशुण्ठीक्षौद्रसिद्धः कषायः ॥ ९१० ॥

सोंठके चार तोले क्वाथमें सहत मिलाकर पीनेसे अरुचि मन्दाग्नि, पीनस, श्वास, खांसी, उदरके रोग और जलसम्बन्धी सर्व विकार नष्ट होते हैं यह शरीरमें कांति उत्पन्न करता है तथा चित्त और नेत्रोंको प्रसन्न करता है ॥ ९१० ॥

अथ दुर्जलजेता रसः।

विषं भागद्वयं दग्धं कपर्दं पञ्चभागकम्। मरिचं नागरश्चैव चूर्णं वस्त्रेण शोधयेत् ॥ ९११ ॥ आर्द्रकस्य रसेनास्य कुर्यान्मुद्गनिभां वटीम्। वारिणा वटिकायुग्मं प्रातः सायञ्च भक्षयेत् ॥ ९१२ ॥ अयं रसो ज्वरे योज्यःसामे दुर्जलजेऽपि च। अजीर्णाध्मानविष्टम्भशूलेषु श्वासकासयोः ॥ ९१३ ॥

वत्सनाभ विष दो भाग, कौडीकी भस्म पांच भाग, कालीमिर्च पांच भाग और सोंठ पांच भाग लेवे, सबको एकत्र पीसकर अदरकके रसमें खरल करके मूँगकी बराबर गोली बनालेवे। इन गोलियोंमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल और संध्यासमय जलके साथ दो गोली सेवन करे। यह रस-आमज्वर,दूषितजलजनितज्वर, अजीर्ण, अफारा, मलबन्ध, शूल, श्वास, और खांसीमें अत्यन्त हितकारक है। इस लिये इन रोगोंमें अवश्य सेवन करना चाहिये ॥ ॥ ९११ ॥ ९१३ ॥

अथ पटोलादिक्वाथः।

पटोलमुस्ताऽमृतवल्लिवासकं सनागरं धान्यकिराततिक्तकम्। कषायमेषां मधुना पिबेन्नरो निवारयेद्दुर्जलदोषमुल्वणम् ॥ ९१४ ॥

पटोलपत्र, नागरमोथा, गिलोय, अडूसा, सोंठ, धनिया और चिरायता इनके क्वाथमें सहत डालकर पीवे तो दुष्ट जलके पीनेसे उत्पन्न हुए सब दोष नष्ट होजाते हैं ॥ ९१४ ॥

अथ किरातादिचूर्णम्।

किराततिक्तात्रिवृदम्बुपिप्पलीविडंगविश्वाकटुरोहिणीरजः। निहन्ति लीढं मधुनाऽतिसत्वरं सुदुस्तरं दुर्जलदोषजं ज्वरम् ॥ ९१५ ॥

चिरायता, निसोत, सुगन्धवाला, पीपल वायविडंग, सोंठ और कुटकी इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटे तो यह बहुत शीघ्र दुष्टजलसे उत्पन्न हुए दुस्तर ज्वरको नष्ट करता है ॥ ९१५ ॥

अथ शुण्ठ्यादिकल्कः।

भोजनाग्रे नरैर्भुक्तं शुण्ठ्यजाज्यभयोत्थितम्। कल्कन्तु सेवितं नित्यं नानादेशोद्भवं जलम् ॥ ९१६ ॥

भोजन करनेसे पहिले नित्य सोंठ, जीरा, और हरड इनका कल्क सेवन करे तो अनेक देशोंके जलके पीनेसे उत्पन्न हुए ज्वर शान्त होजाते हैं ॥ ९१६ ॥

अथार्द्रकादिकल्कः।

सहार्द्रकयवक्षारौ पीत्वा कोष्णेन वारिणा। नानादेशसमुद्भूतवारिदोषमपोहति ॥ ९१७ ॥

अदरक और जवाखारका कल्क बनाकर कुछेक गरम जलके साथ पीनेसे अनेक देशोंके जलके पीनेसे उत्पन्न हुए रोग दूर होजाते हैं ॥ ९१७ ॥

अथ साध्यज्वरलक्षणम्।

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ॥ ९१८ ॥

जो बलवान् रोगीको अल्प दोषोंसे उत्पन्न

हुआ उपद्रव रहित ज्वर हो तो साध्य समझना ॥ ९१८ ॥

अथ ज्वरोपद्रवाः ।

श्वासमूर्च्छाऽरुचिच्छर्दितृष्णातीसारविड्ग्रहाः । हिक्काकासांगदाहाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥ ९१९ ॥

श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, तृषा, अतीसार, मलवन्ध हिचकी, खांसी और शरीरमें दाह ये दशज्वरके उपद्रव हैं ॥ ९१९ ॥

अथ ज्वरोपद्रवचिकित्सा ।

सञ्जातोपद्रवो व्याधिस्त्याज्यो न स्याच्चिकित्सकैः । व्याधौ शान्ते प्रणश्यन्ति सद्यः सर्वेऽप्युपद्रवाः ॥ ९२० ॥ अतो व्याधिं जयेद्यत्नात्पूर्वं पश्चादुपद्रवान् । भिषग्भ्यः कुशलः सोऽत्र जयेत्पूर्वमुपद्रवम् ॥ ९२१ ॥ तेष्वपि प्रचुरेषु प्राङ् नाशयेदाशुकारिणम् । मूलव्याधिं जयेत्पूर्वं यत्र यो वा भवेद्बली । अविरोधेन कार्यातदुभयोरपि च क्रिया ॥ ९२२ ॥

जिन रोगोंमें उपद्रव हों, उन रोगोंकी चिकित्सा करना वैद्य त्याग न देवे, क्योंकि रोगकी शांति होनेके पश्चात् सब उपद्रव नष्ट होजाते हैं, इस कारण प्रथम यत्नपूर्वक व्याधिको जीते और उसके पश्चात् उपद्रवोंको जीते । किन्तु चतुर वैद्य तो प्रथम उपद्रवोंको ही जीतते हैं और बहुतसे उपद्रवोंमे जो उपद्रव अधिक दुःखदायक हो, उसीको प्रथम यत्नोंसे जीतना चाहिये । और जोर मूलव्याधि बलवान् हो और उपद्रव बलहीन हो तो प्रथम मूल व्याधिहीको जीतना चाहिये अथवा विरोधरहित अर्थात् जो रोग और उपद्रवोंके परस्पर विरुद्ध नहीं हो, इस प्रकार एक ही समय इन दोनोंकी चिकित्सा करनी उचित है ॥ ९२०-९२१ ॥

अथ ज्वरे श्वासचिकित्सा ।

सिंही व्याधी ताम्रमूली पटोली
श्रृंगी पद्मा पुष्करं रोहिणी च ।
शाकं शट्याः शैलमल्ल्याश्च बीजं
श्वासं हन्यात्सान्निपातं दशांगः॥९२३॥

सिंही(बडी कटैया) । व्याघ्री लघुकण्टकारी । ताम्रमूली-दुरालभा । रोहिणी (कुटकी) । शैलमल्ली (कोरैआ) ॥

कटेरी, कटाई, जवासा, पटोलपत्र, काकडासिंगी, पद्माख, पोहकरमूल, कुटकी, कचूर और इंद्रजौ इन दश औषधियोंका प्रयोग संनिपातोद्भव श्वासरोगको नष्ट करता है ॥ ९२३ ॥

अथ द्वात्रिंशत्क्काथः ।

भार्गीनिम्बघनाऽभयामृतलताभूनिम्बवासाविषात्रायन्तीकटुकाबचात्रिकटुकश्योनाकशक्रद्रुमैः । रास्नायासपटोलपाटलशटीदार्वीविशालात्रिवृद्ब्राह्मीपुष्करसिंहिकाद्वयनिशाधात्र्यक्षदेवद्रुमैः ॥९२४ क्काथोऽयं खलु सन्निपातनिवहान्द्वात्रिंशतां पानतो दुर्द्धर्षान्निजतेजसाविजयते सर्पान् गुरुत्मानिव । किञ्च--श्वासबलासकासगुदरुग्धृद्रोगहिक्कामरुन्मन्यास्तम्भगलामयार्दितमलावष्टम्भवर्ध्मानपि॥९२५

विषा-अतिविषाः । शक्रद्रुमः-'बकुल' इति लोके । देवद्रुमः-देवदारुः ॥

भारंगी, नीम, नागरमोथा, हरड, गिलोय, चिरायता, अडूसा, अतीस, त्रायमाण, कुटकी, वच, सोंठ, मीरच, पीपल, सोनापाठा, कुडेकी छाल किसी मतसे मौलसिरी, रासना, जवासा, पटोलपत्र, पाढल, कचूर, दारुहलदी, इंद्रायन, निसोत, ब्राह्मी, पोहकरमूल, कटेरी, कटाई, हलदी, आमले, बहेडा और देवदारु इन बत्तीस औषधियोंको समान भाग लेकर क्वाथ बना-

कर पीनेसे जिसप्रकार गरुड अपने पराक्रमसे सर्पोंको परास्त करता है, उसी प्रकार यह क्वाथ अपने प्रभावसे घोर सन्निपातोंको जीतता है तथा श्वास, कफ, खाँसी, गुदाके रोग--बवासीर आदि, छातीकी पीडा, हिचकी, वातविकार, नाडका जकडजाना, गलरोग, आर्दितरोग, मलविष्टम्भ और वर्ध्मरोग (बद) को दूर करता है ॥ ९२४ ॥ ९२५ ॥

अथ पिप्पल्यादिचूर्णम्।

मधुना कृष्णाकट्फलकर्कटशृंगीभवं चूर्णम्। श्वासामये महोग्रे लीढ्वा लोकः सुखीभवति ॥ ९२६ ॥

पीपल, कायफल और काकडाशिंगी इनका चूर्ण करके शहतमें मिलाकर चाटे तो अत्यंत उग्र श्वासवाले रोगी सुखी होते हैं ॥ ९२६ ॥

वन्योपलाग्नितापितदात्रस्याग्रेण पञ्जरे दाहः। अपहरति श्वासामसंशयं भाषितं मुनिभिः ॥ ९२७ ॥

अरने उपलोंकी अग्निमें दरांतको तपाकर उसके अग्र भागका हड्डी पञ्जरमें दाग देवे तो श्वास रोग अवश्य नष्ट होजाता है॥९२७॥

अथ ज्वरे मूर्च्छाचिकित्सा।

आर्द्रकस्य रसैर्नस्यं मूर्च्छायामाचरेन्नरः। अञ्जनञ्च प्रयुञ्जीत मधुसिन्धुशिलोषणैः ॥ ९२८ ॥ शीताम्भसाऽक्षिसेकः सुरभिर्धूपः सुगन्धिपुष्पञ्च। मृदूतालवृन्तवातः कोमलकदलीदलस्पर्शः ॥ ९२९ ॥

मूर्च्छाको दूर करनेके लिये रोगीको अदरकके रसका नस्य देवे अथवा सहत, सैंधानोन, मैनशिल और कालीमिर्च इनका अंजन बनाकर नेत्रोंमें लगावे। शीतल जलसे नेत्रोंको सींचे। सुगंधित धूप देवे। सुगंधित पुष्पोंका उपयोग करे। नरम ताडके पंखोंकी मन्द पवन करे और कोमल केलेके पत्तोंका स्पर्श करावे ॥ ९२८ ॥ ९२९ ॥

अथ ज्वरेऽरुचिचिकित्सा।

अरुचौ तु शृंगवेरजरसकैः सोष्णैः ससिन्धुजैः कवलः। सिन्धूत्थमातुलुंगीफलकेशरधारणं वक्त्रे ॥ ९३० ॥

अरुचि हो तो अदरकके रसको गरम करके उसमें सैंधानमक डालकर उसका कवल बनाकर मुखमें रक्खे और बिजौर नींबूकी केसरको सैंधेनमकके साथ मुखमें धारण करे९३०॥

अथ ज्वरे वमनचिकित्सा।

क्वाथो गुडूच्याः समधुः सुशीतः पीतः प्रशान्तिं वमनस्य कुर्यात्। विण्मक्षिकाणां मधुनाऽवलीढा सचन्दना शर्करयाऽन्विता वा ॥ ९३१ ॥

गिलोयका क्वाथ बनाकर शीतल करके शहत मिलाकर पीवे तो वमन शान्त होजाती है। मक्खियोंकी विष्ठाको और चन्दनको सहतके साथ अथवा मिश्रीके साथ मिलाकर चाटनेसे वमन शान्त होती है ॥ ९३१ ॥

अथ ज्वरे तृषाचिकित्सा।

दन्तशठबीजपूरकदाडिमबदरैः सचुक्रकैर्वदने। लेपो जयति पिपासामथ रजतगुटी मुखान्तःस्था ॥ ९३२ ॥

जम्भीरी नींबू, बिजौरा नींबू, अनार, बेर और चूका इनको एकत्र पीसकर मुखमें लगावे तो तृषा शांत होजाती है। मुखके भीतर चाँदीकी गोली रखनेसे तृषा शांत होजाती है ॥ ९३२॥

शीतं पयः क्षौद्रयुतं निपीतमाकण्ठमाश्वेव तदुद्वमेच्च। तर्षं महान्तं शमयेद्धि वक्त्रे धृत्वाऽथवा क्षौद्रवटाग्रलाजात्॥९३३

शीतलदूधमें सहत मिलाकर गलेतक पी लेवे और फिर वमन करदेवे, इस प्रकार कईबार करनेसे तृषा शांत होजाती है। सहत, बडका अग्रभाग और खीलें इनको एकत्र

पीसकर मुखमें धारण करनेसे प्यास शांत हो जाती है ॥ ९३३ ॥

अथ ज्वरेऽतीसारचिकित्सा।

लङ्घनमेकं मुक्त्वा न चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः। समुदीर्णदोषनिचयं शमयति तत्पाचयत्यपि च ॥ ९३४ ॥

बलवान् ज्वरमें अतीसारवाले मनुष्यको केवल लंघनके सिवाय अन्य कोई औषधि नहीं है, क्योंकि लंघन–बढे हुए दोषोंका शमन और पाचन करता है ॥ ९३४ ॥

वत्सादनीवत्सकवारिवाहविश्वम्भरानिम्बविषाः सविश्वाः। ज्वरेऽतिसारं त्वरितं जयन्ति विश्वाऽमृतावत्सकवारिवाहाः९३५

गिलोय, इंद्रजौ, नागरमोथा, चिरायता, नीम, अतीस और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे ज्वरातीसा शीघ्रही दूर होता है। सोंठ, गिलोय, इंद्रजौ और नागरमोथा इनका क्वाथ भी ज्वरमें उत्पन्न हुए अतीसारको नष्ट करता है ॥ ९३५ ॥

पाठामृतापर्पटमुस्तविश्वाकिराततिक्तेन्द्रयवान् विपाच्य। पिबन् हरत्येव हठेन सर्वाञ्ज्वरातिसारानपि दुर्निवारान् ९३६

पाढ, गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, सोंठ चिरायता और इंद्रजौ इनका क्वाथ बनाकर पिया जाय तो यह क्वाथ ज्वरमें उत्पन्न हुए दुस्तर अतीसारको भी बलात्कारसे नष्ट कर देता है ॥ ९३६ ॥

अथ ज्वरे मलबन्धचिकित्सा।

विड्ग्रहे वातजित्कर्म कुर्याद्त्रानुलोमनम्। मलं प्रवर्त्तयेदाशु तीक्ष्णाभिः फलवर्तिभिः ॥ ९३७ ॥

ज्वरमें मल रुकगया हो तो वातको अनुलोमन करनेवाली और वातको हरनेवाली क्रिया करनी चाहिये। गुदामें तीक्ष्ण औषधियोंकी बनाई हुई फलवर्ती प्रयोग कराकर तत्काल मलको उतारे ॥ ९३७ ॥

पथ्यारग्वधतिक्तात्रिवृदामलकैः शृतं तोयम्। जीर्णज्वरे विबन्धे दद्यादाश्वेव विड्ग्रहः शाम्येत् ॥ ९३८ ॥

जो जीर्ण ज्वरमें मलबन्ध हुआ हो तो हरड, अमलतास, कुटकी, निसोत और आमला इनका क्वाथ बनाकर सेवन करे। इससे तत्काल मलबन्ध शांत होजाता है ॥ ९३८ ॥

अथ ज्वरे हिक्काचिकित्सा।

नीरेण सिन्धूत्थरजोऽतिसूक्ष्मं नस्येन नूनं विनिहन्ति हिक्काम्। शुण्ठी हठाद्वा सितया समेता धूपोऽथवा हिङ्गुसमुद्भवश्च ॥ ९३९

सेंधेनमकका अत्यन्त बारीक चूर्ण करके पानीके साथ नस्य देनेसे हिचकी दूर होजाती है। वा खांडके साथ सोंठका नस्य देनेसे बलात्कारसे हिचकी दूर होती है। अथवा हींगकी धूनी देनेसे हिचकी नष्ट होजाती है ॥ ९३९ ॥

अथ ज्वरे कासचिकित्सा।

कासे कणा कणामूलं कलिंगट्टुफलं रजः। सविश्वभेषजं लिह्यान्मधुना वा वृषाद्रसम् ॥ ९४० ॥

रजः पर्पटकम् ॥

ज्वरमें खाँसी उत्पन्न हुई हो तो पीपल, पीपलामूल, इद्रजौ, पित्तपापडा और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतके साथ चाटे, अथवा अडूसेके रसको सहतके साथ सेवन करे तो खाँसी दूर होती है ॥ ९४० ॥

पुष्कर मूलकटुत्रिकशृंगीकट्फलयासककारविकाभिः। मधुललिताभिरयं खलु लेहः कासरिपु कफरोगहरश्च ॥ ९४१ ॥

पोहकरमूल, सोंठ, पीपल, मिरच, काकडाशिंगी, कायफल, जवासा और कलौंजी इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे खाँसी और कफसम्बन्धी रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ९४१ ॥

अथ ज्वरे दाहचिकित्सा ।

दाहाधिकारे लिखितं दाहे कुर्याच्चिकित्सितम् । परं ज्वरे विरुद्धं यन्नोचितं तच्चिकित्सितम् ॥ ९४२ ॥

ज्वरमें जो दाह उत्पन्न हुई हो तो दाहाधिकारमें कही हुई सम्पूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये और उसमें जो चिकित्सा ज्वरके विरुद्ध बढानेवाली हो उसको छोड देवे॥९४२

अथ सुखसाध्यज्वरलक्षणम् ।

सन्तापोऽभ्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनाञ्च मार्दवम् । बहिर्वेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमेव च ॥ ९४३ ॥

तृष्णादीत्यादिशब्देनान्तर्दाहसन्ध्यस्थिव्यथाश्वासा गृह्यन्ते, तेषां मार्दवमल्पता । बहिर्वेगस्य ज्वरस्य इति शेषः ॥

ऊपर अधिक सन्ताप हो और तृषा, अंतर्दाह, संधि और अस्थियोंमें पीडा एवं श्वास इनकी अल्पता हो, ये बहिर्वेग ज्वरके लक्षण हैं और वह सुखसाध्य है ॥ ९४३ ॥

वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात् । प्राकृतः सुखसाध्यस्तु ज्वरः सुरभिसम्भवः ॥ ९४४ ॥

सुरभिः--वसन्तः ॥

वर्षाऋतुमें वायुसे, शरद्ऋतुमें पित्तसे और वसन्तऋतुमें जो कफसे ज्वर आता है, उसको प्राकृत ऋतुके स्वभावके अनुसार उत्पन्न हुआ जानना, इनमें वसन्तऋतुमें उत्पन्न हुआ प्राकृत ज्वर सुखसाध्य है ॥ ९४४ ॥

अथ कष्टसाध्यज्वरलक्षणम् ।

वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ ९४५ ॥ अन्तर्दाहोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः । सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः । अन्तर्वेगस्य लिङ्गानि कष्टसाध्यत्वमेव च ॥ ९४६ ॥

अन्यः–प्राकृतादन्यः वैकृतः । वर्चोविनिग्रहः–पुरीषाप्रवृत्ति ॥

प्राकृतसे विपरीत वैकृतज्वर कष्टसाध्य है और वायुसे उत्पन्न हुआ प्राकृतज्वर भी अन्तर्दाह, तृषाकी अधिकता, प्रलाप, श्वास, भ्रम, संधि और हड्डियोंमें शूल, पसीनेका अभाव, दोष और मलका अवरोध इन अन्तर्वेगी ज्वरके लक्षणोंसे युक्त साध्य है ॥ ९४५-९४६ ॥

अथ वर्षादौ दोषप्रधानता ।

वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् । कुर्यात्पित्तञ्च शरदि तस्य चानुबलः कफः ॥ ९४७ ॥ तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् । कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥९४८॥

वर्षाऋतुमें वायु प्रधान है और पित्त तथा कफ अप्रधान हैं, इस कारण वर्षातुमें दुष्ट हुई पवन पित्त और कफकी सहायतासे ज्वरको उत्पन्न करती है । शरद् ऋतुमें पित्त प्रधान है और कफ अप्रधान है। इसकारण शरद् ऋतुमें पित्त दुष्ट होकर कफकी सहायतासे पित्तज्वरको उत्पन्न करता है। वसन्त ऋतुमें कफ प्रधान है और वायु तथा पित्त अप्रधान हैं । इस कारण वसन्त ऋतुमें कफ दुष्ट होकर वात और पित्तके साथ मिलकर कफज्वरको उत्पन्न करता है ॥९४७॥९४८॥

तत्प्रकृत्या-तस्य पित्तस्य प्रकृत्या स्वभावेन । यत उक्तम्-"कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लंघनं बहु" । विसर्गाच्च-शरदो विसर्गकालत्वाच्च । यत उक्तम्--" वर्षाशरद्धेमन्ता विसर्गकालास्तत्र उपचि-

तबलाः प्राणिनो भवन्ति सोमस्य बलवत्त्वात् " इति ।

पित्तके स्वभाव होनेसे और शरदृऋतुमें विसर्गकालके होनेसे शरदृऋतुमें उत्पन्न हुए ज्वरमें लंघनसे कुछ भय नहीं है । कफ और पित्त ये द्रवधातु हैं, इस कारण वे बहुत लंघनोंको सह सकते हैं, ऐसा कहा है। शरदृऋतु विसर्ग काल है, इसके विषयमें प्राचीन ग्रन्थकार भी कहते हैं कि-वर्षा, शरद् और हेमन्त ये तीन ऋतु विसर्गके काल हैं, इस कारण इनमें चन्द्रमाके बलवान् होनेसे सर्वप्राणी अधिक बलवान् होते हैं ॥

तत्र-शरदि पित्तज्वरे अनशनाद्भयं न, वसन्ते कफज्वरेऽपि कफप्रकृत्या लंघनाद्भयं न भवति । किन्तु वसन्तस्यादानकालत्वान्निः शङ्कं न कर्तव्यम् । यत उक्तम्-" शिशिरवसन्तग्रीष्मास्त्वादान कालास्तत्रापचितबलाः प्राणिनो भवन्ति सूर्यस्य बलवत्त्वात्" इति । एतेनेदमुक्तम्--वर्षासु वायुः प्रधानम् । पित्तश्लेष्माणावप्रधानौ । शरदि पित्तं प्रधानम् । कफोऽप्रधानः । वसन्ते श्लेष्मा प्रधानो वातपित्ते अप्रधाने । तत्र प्रधानस्य प्राधान्येन चिकित्सा कर्त्तव्या । तथा च उक्तम्-संसर्गे यो गरीयान्स्यादुपक्रम्यः स वै भवेत् । शेषदोषाविरोधेन सन्निपाते तथैव च ॥ ९४९ ॥ इति ॥

संसर्गे-दोषद्वयसंसर्गे । गरीयान् प्रधानः ।

यद्यपि वसन्त ऋतुमें उत्पन्न हुए कफज्वरमें भी कफका स्वभाव होनेसे लंघनसे कुछ भय नहीं है, तथापि वसन्त ऋतु आदानकाल होनेसे उसमें निःशंकपनेसे लंघन नहीं कराने चाहिये । कहा भी है कि-"शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ये तीन ऋतु आदानके काल हैं, इसलिये इनमें सूर्यके बलवान् होनेसे सर्व प्राणी हीनबलवाले होते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि-वर्षाऋतुमें वायु प्रधान है, पित्त और कफ अप्रधान हैं, शरदृऋतुमें पित्त प्रधान है और कफ अप्रधान है और वसन्त ऋतुमें कफ प्रधान है और वायु तथा पित्त अप्रधान हैं।" प्राकृत प्रधान दोषकी चिकित्सा प्रधानतासे करे, क्योंकि ऐसा करना चाहिये कि, जो अप्रधानताके लिये निषिद्ध न हो । वैकृतज्वरमें भी प्रधान दोषकी चिकित्सा प्रधानतासे करनी चाहिये । कहा भी है कि-दो दोषोंके संसर्गमें और तीन दोषोंके संसर्गरूप सन्निपातमें जो दोष प्रधान हो, उसकी चिकित्सा करे और इस बातपर पूर्ण ध्यान रक्खे कि, अप्रधान दोषोंके विरुद्ध नहीं होवे ॥ ९४९ ॥

अथासाध्यज्वरलक्षणम् ।

ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गम्भीरो दीर्घरात्रिकः। असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमन्तकृज्ज्वरः ॥ ९५० ॥

दीर्घरात्रिकः बहुरात्रानुबन्धी । केशसीमन्तकृत्प्रभावात्केशेषु सीमन्तं यः करोति ॥

क्षीण मनुष्यको और सूजनवाले मनुष्यको उत्पन्न हुआ ज्वर, गम्भीर ज्वर, बहुत कालसे आनेवालाज्वर, बलवान् ज्वर और जो ज्वर अपने प्रभावसे बालोंमें मांगसी काढ देवे,' ऐसा ज्वर असाध्य है ॥ ९५० ॥

गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया । आनद्धत्वेन चात्यर्थं कासश्वासोद्गमेन च ॥ ९५१ ॥

आनद्धत्वेन -विबद्धमलत्वेन ॥

अन्तर्दाह, तृषा, मलकी विबन्धता खांसी और श्वासकी अधिकता, जिसमें ये लक्षण हों, उसको गम्भीर जानना ॥ ९५१ ॥

अथ सामान्यज्वरे क्रमेण कर्णमूलोत्पन्नशोथसाध्यासाध्यता ।

ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरान्ततो

वा श्रुतिमूलशोथः । क्रमादसाध्यः खलु कृच्छ्रसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ ९५२ ॥

ज्वर आनेसे पहिले जो कानकी जडमें सूजन उत्पन्न हो तो उसको असाध्य जानना। ज्वरके मध्यमें जो कानकी जडमें सूजन उत्पन्न हो तो उसको कष्टसाध्य जानना और जो ज्वरके अन्तमें कानकी जडमें सूजन उत्पन्न हो तो उसको सुखसाध्य जानना, ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ ९५२ ॥

अथारिष्टम्।

रोगिणो मरणं यस्मादवश्यम्भावि लक्ष्यते। तल्लक्षणमरिष्टं स्याद्रिष्टमप्यभिधीयते ॥ ९५३ ॥

जिन लक्षणोंसे रोगीकी मृत्युका ज्ञान हो उन लक्षणोंको अरिष्ट अथवा रिष्ट कहते हैं ॥ ९५३ ॥

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः। ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः ॥ ९५४ ॥

शीघ्रमिन्द्रियनाशनः-उत्पन्नमात्र एव चिकित्स्य मानोऽपि इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां शक्तियो नाशयति ॥

जो ज्वर बहुत बलवान् कारणोंसे उत्पन्न हुआ हो और बहुतसे लक्षणों युक्त हो और जिसके उत्पन्न होते ही चिकित्सा करनेपर भी नेत्रादि इंद्रियोंकी शक्तिका नाश होगया हो, उसको शीघ्र प्राणनाशक जानना ॥ ९५४ ॥

अन्यच्च अरिष्टमाह—विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा। शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ ९५५ ॥

विशंज्ञः—विगतज्ञानः। ताम्यते-नष्टहर्षः। शेते निपतितोऽपि वा-अत्रापिवाशब्द एवार्थः। निपतित एव तिष्ठति न च उत्थातुं समर्थः। तथा सन् शेते वा। शीतार्दितः बहिः। अन्तरुष्णः अन्तरुर्दाहवान्।

जो मनुष्य ज्ञानशून्य बेहोश होगया हो हर्षसे बिलकुल रहित हो गया हो, निरन्तर पडाही रहा करे, कभी उठा ही नहीं जाय, अथवा असमर्थ होकर नित्य सोया ही करे, ऊपरसे शीतसे पीडित हो और भीतर दाहसे व्याकुल हो, वह मनुष्य ज्वरसे मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ९५५ ॥

अन्यच्च—यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान्। वक्त्रेण चैवौच्छ्वसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम् ॥ ९५६ ॥

हृष्टरोमा-रोमाञ्चवान्। हृदि संघातशूलवान्-सन्निपातिकशूलवान्। वक्त्रेण चैव उच्छ्वसिति न तु नासिकया ॥

जिस मनुष्यके रोमांच हो आते हों, नेत्र लाल हो गये हों, हृदयमें सन्निपात सम्बन्धी शूलकी पीडा होती हो और नाकसे श्वास नहीं ले सके, मुखसे ही श्वास लेता हो, उस मनुष्यको ज्वर मार देता है ॥ ९५६ ॥

अन्यच्च—हिक्काश्वासतृषायुक्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम्। सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ ९५७ ॥

क्षपयति—समापयतीत्यर्थः।

जो हिचकी, श्वास और तृषासे पीडित हो, मूढ होगया हो, नेत्र फूटकर निकलेसे हों, निरन्तर ऊँचा श्वास लिया करे और क्षीण होगया हो, उस मनुष्यको ज्वर मार देता है ॥

हतप्रभेन्द्रियं क्षाममरोचकनिपीडितम्। गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ॥ ९५८ ॥

हतप्रभेन्द्रियम्-हता प्रभा दीप्तिर्येषाम्, अथवा हता प्रभाप्रतिभा विषयग्रहणशक्तिर्येषां तथा विधानि इन्द्रियाणि यस्य तं हतप्रभेन्द्रियम्। क्षामं-क्षीणम्। गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं

गम्भीरः—उक्तलक्षणकः, तीक्ष्णवेगः-अतिदुःसहवेगः ताभ्यामार्तं दुःखितम् ॥

जिसकी कांति नष्ट होगई हो, जिसकी इंद्रियोंकी अपने अपने विषयको ग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट हो गई हो, जो क्षीण होगया हो, जो गम्भीर ज्वरसे पीडित हो, जो अत्यन्त तीव्र वेगवाले ज्वरसे पीडित हो और जो अरुचिसे पीडित हो, उस ज्वरवाले रोगीको वैद्य छोड देवे ॥ ९५८ ॥

अन्यच्च—मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे । शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ॥ ९५९॥ (व्याख्यातोऽयं श्लोकः)

जब ज्वर वीर्यके स्थानमें पहुँच जाता है, तब लिंगमें शिथिलता उत्पन्न होती है और वीर्य अधिकतर निकलता है, ऐसा शुक्रगत ज्वर मनुष्यको मार देता है ॥ ९५९ ॥

अथ विषमज्वरारिष्टम् ।

आरम्भाद्विषमो यस्य यस्य वा दीर्घरात्रिकः । क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गम्भीरो यस्य हन्ति तम् ॥ ९६० ॥

यस्य आरम्भाद्विषमः-प्रथममेव विषमः न तु ज्वरोत्सृष्टस्य । यस्य दीर्घरात्रिकः यस्य क्षीणस्य अतिरूक्षस्य च गम्भीरो भवति त विषमो दीर्घरात्रिको गम्भीरश्च हन्तीत्यर्थः । इति ज्वराधिकारः ॥

प्रथम अन्य प्रकारके सामान्य ज्वर आये विना ही जिसको विषमज्वर उत्पन्न हुआ हो अथवा जिसको बहुत कालसे ज्वर आता हो अथवा क्षीण हुए और अत्यन्त रूखे मनुष्योंको गम्भीर ज्वर उत्पन्न हुआ हो तो उनको वही ज्वर मार देता है ॥ ९६० ॥

इति ज्वराधिकारः सम्पूर्णः ।

अथातिसाराधिकारः ।

अतिसारनिदानम् ।

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः । विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चापि भोजनैः ॥१॥ स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः । शोकदुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्तुपर्ययैः ॥ २ ॥ जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः । नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥

गुरु (भारी) भोजन करनेसे, अत्यन्त स्निग्ध, अत्यन्त रूखे, अत्यन्त गरम, अत्यन्त पतले, अत्यन्त स्थूल, अत्यन्त शीतल और विरुद्ध भोजन करनेसे तथा अजीर्णमें भोजन करनेसे, विषम भोजन करनेसे स्नेहन आदि क्रियाओंको बारम्बार प्रयोग करनेसे अथवा स्नेहन आदि क्रियाओंको विधिरहित सेवन करनेसे, विषसे, भयसे, शोकसे, दुष्ट जलसे, मदिराको अत्यन्त पीनेसे, प्रकृति विरुद्ध आहारादिके करनेसे, ऋतुविरुद्ध विहार आहारादिके करनेसे, जलमें क्रीडा करनेसे मूत्र और मलके वेगको बलात्कारसे रोकनेसे और पक्वाशयकी दुष्ट हुई कृमियोंसे मनुष्योंके अतीसार रोग उत्पन्न होता है ॥१–३

गुरु-मात्राया स्वभावेन संस्कारेण च । अतिशब्दस्थूलान्तैः सह सम्बद्ध्यते । स्थूलम् असम्यक् पिष्टं गोधूमादि । विरुद्धं संयुक्तं क्षीरमत्स्यादि । अध्यशनम् "अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते" अजीर्णम् आमं विदग्धं च । बहु स्तोकमकाल च भुक्तं यद्विषमं हि तत् । भोजनैरिति गुर्वादिभिर्विष मान्तैः सर्वैः सह सम्बध्यते । स्नेहाद्यैः- स्नेहपानस्वेदन वमनविरचनानुवासननिरूहान्तैः अतियुक्तैः बारंवारं प्रयुक्तैर्मिथ्याप्रयुक्तैः अविधिप्रयुक्तैश्च तैः । विषैः विषाण्यत्र स्थावराणि तेषामधोगत्वात् ।

शोकः--बन्ध्वादिवियोगजनितमनः पीडा । सात्म्यर्तुपर्ययैः--सात्म्यविपरीतैः असात्म्यैः तथा यस्मिन् ऋतौ यदु चितं तद्विपरीतैः । जलाभिरमणैः जलक्रीडादिभिः । वेगविघातैः-मूत्रपुरीषादिहठधारणै । कृमिदोषतः पक्वाशयस्य दुष्टेः । एतानि यथासम्भवं वातादीनां दुष्टे कारणानि वोद्धव्यानि ॥

व्याख्या-जो भोजन मात्रासे वा स्वभावसे अथवा संस्कारसे भारीपनयुक्त हो उसको गुरु भोजन कहते हैं। अच्छी प्रकारसे नहीं पिसे हुए जो गेहूँ आदि धान्य हों, उनको अति स्थूल कहते हैं। दूधके साथ मछली इत्यादि संयुक्त पदार्थोंको विरुद्ध भोजन कहते हैं, भोजन किया हुआ पेटमें जाकर कच्चा रहे अथवा जो अच्छी प्रकारसे नहीं पचे, उसको अजीर्ण कहते हैं। अधिक थोडा अथवा विना समयके जो भोजन किया जाय, उसको विषम भोजन कहते हैं। स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन, क्वाथकी पिचकारी और तेल आदि की पिचकारी इनको स्नेहन आदि क्रिया जाननी। यद्यपि विष स्थावर और जंगम दो प्रकारका है, तथापि यहां विष कहनेसे स्थावर विषही समझना चाहिये, क्योंकि नीचेको जानेका स्वभाव स्थावर विषका ही है। बन्धु आदिके वियोगसे उत्पन्न हुई मनकी पीडाको शोक समझना। भारी भोजन आदि जो कहे, ये सम्पूर्ण कारण यथासम्भव वातादिक दोषोंसे समझने चाहिये ॥

ननु, एवं सति स्वहेतुदुष्टे वातादिना अतिसारो भवत्येव तावन्मात्रं वाच्यं किमर्थं गुर्वाद्यभिधानम् ?

शंका-यह बडे सन्देहकी बात है कि, अपने हेतुओंके द्वारा दूषित वातादिकोंसे तो अतीसार उत्पन्न होता ही है, फिर इस प्रकार नहीं कहकर भारी भोजन आदि कारण क्यों कहे ?

उच्यते-गुर्वादिहेतुदूषिता एव वातादयो-बाहुल्येन अतिसारं जनयन्ति, न तु लङ्घनभुक्तजीर्णतादिलघ्वन्नक्रोधतृषाक्षुधाभिहननदध्यारनालव्यायामवर्षाशरद्वसन्तादिभिः कुपिताः अतो गुर्वादीनि उच्यन्ते । एवमन्यत्रापि बोद्धव्यम् ॥

समाधान-भारी भोजन आदि कारणोंसे दूषित वातादिक ही प्रायः अतिसारको उत्पन्न करते हैं, परन्तु लंघन, भोजनका परिपाक होना आदिक, लघु अन्न, क्रोध, तृषा, भूखका रोकना, दही, कांजी, व्यायाम (कसरत), वर्षाऋतु, शरदृऋतु और वसन्त ऋतु इत्यादिकोंसे कुपित वातादिक अतिसारको उत्पन्न नहीं करते हैं, इसी कारण भारी भोजन आदि कहे हैं। ऐसाही और स्थानोंमें भी समझना चाहिये ॥

अथातिसारपूर्वरूपम् ।

हृन्नाभिपार्श्वोदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधात् । विट्संग आध्मानमथाऽविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ४ ॥

विटसङ्गः-पुरीषाप्रवृत्तिः । अविपाको भुक्तस्य पुरःसराणि-एतानि लक्षणानि पूर्वभावीनि ॥

हृदय, नाभि, पसली, पेट और कोख इनमें तोडने सरीखी पीडा हो, अंगोंमें ग्लानि, वायुका अवरोध, मलका रुकना, अफारा और किये हुए भोजनका नहीं पचना ये सब लक्षण अतिसार होनेसे कुछ पहिले होते हैं ॥ ४ ॥

अथातिसारसम्प्राप्तिः ।

संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धो वर्चोमिश्रो वायुनाऽधः प्रणुन्नः । सरत्यतीवातिसारं तमाहु र्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति॥५

अपां धातुः--अत्र समासाकरणाद्द्रवत्वेन च रसजलमूत्रस्वेदभेदःकफपित्तरक्तादयो द्रवधातवो

गृह्यन्ते । प्रवृद्धः अग्निं संशम्य शमयित्वा वर्चोमिश्रपुरीषयुक्तः वायुना अधः प्रणुन्नः--अधः प्रेरितः । अथ सामान्य रूपमाह--अतिसरती । नदीवत् । अतिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरमिति । यो रसादिद्रवधातुः अतीव सरतीति प्रकृतिक्रम्य गुदाध्वना सरति तं व्याधिमतिसारमाहुः' किंविधम् ? घोरम् । " घोरं भीमं भयानकम् " इत्यमरः ॥ अस्य संख्यामाहषडविधं तं वदन्तीति ॥

रस, जल, मूत्र, स्वेद (पसीना), मेद, कफ, पित्त और रुधिर इत्यादि द्रवधातु बढी हुई अग्निको शान्त करके विष्ठाके साथ मिल कर वायुके बलसे गुदाके मार्गसे मलरूप होकर पतित होती है । इस प्रकार यह प्रेरित हुई धातु अपनी प्रकृतिको त्यागकर नदीके समान प्रवाह रूपसे अधोमार्ग द्वारा निकलती है, उसको भयंकर अतिसार रोग कहते हैं ॥ ५ ॥

षडविधत्वं विवृणोति--एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ॥ ६ ॥

अतिसारकी संख्या--वह अतिसाररोग छः प्रकारका कहा है जैसे--वातसे उत्पन्न हुआ, पित्तसे उत्पन्न हुआ, कफसे उत्पन्न हुआ, त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ, शोकसे उत्पन्न हुआ, और आमसे उत्पन्न हुआ अतीसार इस भाँति छः प्रकारका है ॥ ६ ॥

अथातिसारसामान्यचिकित्सा ।

आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः । अतोऽतिसारे सर्वस्मिन्नामं पक्वञ्च लक्षयेत् ॥ ७ ॥

आम और पक्वके क्रमको त्यागकर अतिसारमें अन्य क्रिया ही नहीं है, इस कारण सम्पूर्ण अतीसारोंमें प्रथम आम और पक्वका निश्चय करना चाहिये ॥ ७ ॥

अथामातिसारचिकित्सा ।

तत्रामपक्वलक्षणम् ।

संसृष्टमामैर्दोषैस्तु न्यस्तमप्सु निमज्जति। पुरीषं भृशदुर्गन्धि पिच्छिलं चामसंज्ञितम् ॥ ८ ॥

आमदोषयुक्त मल जलमें डालनेसे डूब जाता है और उसमें अत्यन्त दुर्गन्ध आती है और वह पिच्छिल अर्थात् चिकना होता है, उसको आम कहते हैं ॥ ८ ॥

एतान्येव तु लिंगानि विपरीतानि यस्य वै । लाघवञ्च विशेषेण तं तु पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥

जिसके उपरोक्त लक्षणोंसे विपरीत लक्षण हो अर्थात् जलमें डालनेसे नहीं डूबे और बहुत दुर्गन्ध भी नहीं आवे, चिकना भी नहीं हो और विशेषकरके हलका हो, इन लक्षणोंसे युक्त मलको पक्व कहते हैं ॥ ९ ॥

न च संग्राहकं दद्यात्पूर्वमामातिसारिणे । अकाले संगृहीतस्तु विकारान्कुरुते बहून् ॥ १० ॥ दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोभगन्दरान् । शोथपाण्डूवामयप्लीहगुल्ममेहोदरज्वरान् ॥ ११ ॥

आमयुक्त अतिसारवाले रोगीको प्रथम ग्राही अर्थात् मलको रोकनेवाली औषधि नहीं देवे, क्योंकि विनाही समय (अपक्व दोष) में मलको रोकनेसे दण्डक (जिससे हाथ, पांव, मस्तक ये बांस तथा लकडीकी सदृश जकड जाते हैं ऐसा एक प्रकारका आक्षेपक वायुरोग, अलसक जिसमें पेट अफरकर मल तथा मूत्र बन्द हो जाता है अथवा दण्डकालसक विषूचिका भेद, अफारा, संग्रहणी, बवासीर, भगन्दर, सूजन, पाण्डुरोग, प्लीहा, गुल्म, प्रमेह, उदररोग और ज्वरादि अनेक विकार उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

डिम्भस्थः स्थविरस्थश्च वातपित्तात्मकश्च यः । क्षीणधातुबलश्चापि बहुदोषोऽतिविश्रुतः । आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरणं भवेत् ॥ १२ ॥

परन्तु जो वह आमातिसार बालक और वृद्धको उत्पन्न हुआ हो तथा वह रोगी वातपित्त स्वभाववाला हो, धातु क्षीण और बल हीन हो, अनेक दोषयुक्त हो और जिसके बहुत मलस्राव हुआ हो, ऐसे अतिसार रोगीको आमयुक्त होनेपर भी मलरोधक औषधि देकर दस्त रोकने चाहिये, क्योंकि ऐसे रोगी पाचन औषधि देनेसे मर जाते हैं ॥ १२ ॥

लङ्घनमेकं मुक्त्वा न चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः । समुदीर्णदोषनिचयं तत्पाचयेत्तथा शमयेत ॥ १३ ॥

दुर्बलस्य तु लङ्घनेदोष एव ।

अतिसारमें बलवान् रोगीको लंघनके सिवाय अन्य औषधि ही नहीं देनी चाहिये, क्योंकि लंघन बढे हुए दोषोंको शमन करते हैं और पाचन भी करते हैं ॥ १३ ॥

अथ जलविधानम् ।

दुःसहपिपासायां दोषपाकाय-
षडंगविधिना अर्द्धश्रृतं
योगचतुष्टयमाह ।

धान्याम्बुभ्यां श्रृतं तोयं तृष्णादाहातिसारिणे । ह्रीवेरश्रृंगवेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा । मुस्तोदीच्यश्रृतं शीतं प्रदातव्यं पिपासवे ॥ १४ ॥

१-जो अतिसारवाले रोगीको जलन और अधिक प्यास हो तो उसको धनियाँ और सुगंधवालाको जलमें औटाकर अर्द्धहीन शेष क्वाथ करके तृषादाहयुक्त अतिसारमें पिलावे। २-सुगन्धवाला और सोंठके द्वारा पकाया हुआ जल शीतल करके पीनेको देवे। ३-नागरमोथा और पित्तपापडा इनके द्वारा जलको सिद्धकर शीतल करके पीनेको देवे ४-नागरमोथा और सुगन्धबाला इनके द्वारा पकाया हुआ जल शीतल करके पीनेको देवे ॥ १४ ॥

अथ लंघनान्ते भोजनम् ।

हितं लंघनमेवादौ पूर्वरूपेऽतिसारिणे । कार्यं वाऽनशनस्यान्ते प्रद्रवं लघु भोजनम् ॥ १५ ॥

अतिसारके जब पूर्वरूपके लक्षण होने लगें तो प्रथम लंघन उपवास कराने उत्तम हैं, पश्चात् लंघनके अन्तमें द्रव पतले और हलके पदार्थ भोजन करावे ॥ १५ ॥

अथ पथ्यादिक्वाथः ।

पथ्यादारुवचामुस्तैर्नागरातिविषान्वितैः। आमातिसारनाशाय क्वाथमेभिः पिबेन्नरः ॥ १६ ॥

आमातिसारको नष्ट करनेके लिये हरड, दारुहलदी वच, नागरमोथा, सोंठ और अतीस इनका क्वाथ बनाकर पीवे ॥ १६ ॥

अथ पाठादिचूर्णम्

पाठाहिंग्वजमोदोग्रापथ्यकोलाह्वजं रजः । उष्णाम्बुपीतं सरुजं जयत्यामं ससैन्धवम् ॥ १७ ॥

पाढ, हींग, अजमोद, वच, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका चूर्ण बनाकर सैधानमक डालकर गरम जलसे पान करे तो पीडायुक्त आमातिसार नष्ट होजाता है ॥ १७ ॥

अथ हरीतक्यादिकल्कः ।

हरीतकी सातिविषा हिंगु सौवर्चलं वचा । सैन्धवश्चापि संपिष्य पाययेदुष्णवारिणा । आमातिसारं योगेन पाचयित्वा चिकित्सयेत् ॥ १८ ॥ आमातिसारो योगेन यद्येतेन न शाम्यति । न तं योगशतेनापि चिकित्सति चिकित्सकः ॥ १९ ॥

हरड, अतीस, हींग, काला निमक, वच और सैंधानमक इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पीवे, यह योग आमातिसारमें आमको पचाकर अतिसारको नष्ट कर देता है। यदि इस प्रयोगका सेवन करनेसे जो आमाति सार शान्त नहीं हो तो फिर अन्य सैकडों प्रयोगोंसे भी शान्त नहीं होगा ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ वत्सकादिक्वाथः।

वत्सकातिविषाबिल्वं मुस्तकं बालकं शटी। अतिसारं जयेत्सामं चिरजं रक्तशूलजित् ॥ २० ॥

इन्द्रजौ अतीस, बेलगिरी, नागरमोथा, सुगन्धवाला और कचूर इनका क्वाथ बहुत कालके उत्पन्न हुए आम अतिसारको दूर करता है ता रुधिरविकार और शूलको नष्ट करता है ॥ २० ॥

अथ शुण्ठीपुटपाककल्कौ।

एरण्डरससम्पिष्टं पक्वमामञ्च नागरम्। आमातिसारशूलघ्नं पाचनं दीपनं परम् ॥ २१ ॥

सोंठको अरण्डके रसमें पीसकर फिर पुटपाकविधिसे पकावे पश्चात् चूर्ण करके सेवन करनेसे अथवा कच्ची ही सोठका सेवन करनेसे आमातिसार और शूल नष्ट होता है। यह पाचन और अत्यन्त दीपन है ॥ २१ ॥

अथ धान्यादिपञ्चक्वाथः।

धान्यबालकबि ल्वाद्गनागरैः पाचितं जलम्। आमशूलविबन्धघ्नं पाचनं दीपनं परम् ॥ २२ ॥

धनिया, सुगन्धवाला, बेलगिरी, नागरमोथा और सोंठ इनका क्वाथ आम, शूल, और विबन्धनाशक पाचन और दीपनहै॥ २२॥

अथ धान्यादिचतुष्कक्वाथः।

पित्ते धान्यचतुष्कं तु शुण्ठीत्यागाद्वदन्ति हि। रक्तेऽपि पित्तसाधर्म्याद्देयं धान्यचतुष्टयम् ॥ २३ ॥

यदि पित्तकी अधिकता हो तो सोंठको छोडकर बाकीकी धनियाँ आदि चार औषधिओंका क्वाथ बनाकर देवे और रुधिरका अतिसार हो तो भी रुधिरका धर्म पित्तके समान होनेसे उसमें भी यही काथ देवे ।॥२३॥

अथ पक्वातिसारचिकित्सा।

लोध्रादिचूर्णम्।

सलोध्रं धातकीबिल्वमुस्ताम्रास्थिकलिङ्गकम्। पिबेन्माहिषतक्रेण पक्वातिसारनाशनम् ॥ २४ ॥

लोध, धायके फूल बेलगिरी, नागरमोथा, आमकी गुठली और इन्द्रजौ इनका चूर्ण बनाकर भैंसके तक्रके साथ पीनेसे पक्वातिसार नष्ट होता है ॥ २४ ॥

अथ समङ्गादियोगचतुष्टयम्।

समङ्गा धातकीपुष्पं मञ्जिष्ठा लोध्र एव च। शाल्मलीवेष्टको लोध्रो दाडिमद्रुफलत्वचौ ॥ २५ ॥ आम्रास्थिमध्यं लोध्रश्च बिल्वमध्यं प्रियंङ्गु च। मधुकं शृङ्गवेरश्च दीर्घवृन्तत्वगेव च ॥ २६ ॥ चत्वार एते योगाः स्युः पक्वातिसारनाशनाः। ते योगा उपयोज्याः स्युः सक्षौद्रास्तण्डुलाम्बुना ॥ २७ ॥

समङ्गा-लज्जालुः। शाल्मलीवेष्टको मोचरसः। दाडिमस्य द्रुमफलयोः त्वचौ, प्रियंगोर्नपुंसकत्वमत्र फले वर्तमानत्वात्। शृङ्गवेरमत्र-शुण्ठी। दीर्घवृन्तः—स्योनाकस्तस्य त्वचः। समङ्गादीनि चत्वारि चूर्णाणि ॥

१-लज्जावती (छुईमुई), धायके फूल, मंजीठ और लोध इन चार औषधियोंके चूर्णको समंगादि चूर्ण कहते हैं ॥

२-मोचरस, लोध, अनारके फलकी छाल और अनारके वृक्षकी छाल इन चार औषधियोंके चूर्णको शाल्मलीवेष्टकादि चूर्ण कहते हैं॥

३-आमकी गुठलीकी मींग, लोध, बेलगिरी और फूलप्रियंगू इन चार औषधियोंके चूर्णको आम्रास्थ्यादि चूर्ण कहते हैं ॥

४-मुलेठी, सोंठ और श्योनाककी छाल इन तीन औषधियोंके चूर्णको मधुकादि चूर्ण कहते हैं ॥

इन चार चूर्णोंमेंसे कोईसा एक चूर्ण लेकर सहतमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे पक्वातिसार नष्ट होता है ॥ २५-२७ ॥

अथ गङ्गाधरक्वाथः।

कञ्चटदाडिमजम्बूशृंगाटकपत्रबर्हिष्ठम्। जलधरनागरसहितं गंगामपि वेगवाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ २८ ॥

कञ्चट--(चौराई) शाकस्य भेदः। कञ्चटादिभिश्चतुर्भिः अत्र पत्रशब्दः सम्बध्यते। (बर्हिष्ठं-बालकम्)॥

जलचौलाई अथवा जलपीपल (पनसिका, गंगतिरिया), अनारके पत्ते, जामुनके पत्ते, सिंहाडेके पत्ते, सुगन्धवाला, नागरमोथा और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पीवे तो गंगाके समान प्रवाहवाले भी दस्त, रुक जाते हैं।।२८।।

अथ गङ्गाधरचूर्णम्।

मोचरसमुस्तानागरपाठारलुधातकीकुसुमैः। चूर्णं मथितसमेतं रुणद्धि गंगाप्रवाहमपि सद्यः ॥ २९ ॥

अरलु शोनापाठा॥मथितं-निर्जलं दधि वस्त्रपूतम्॥

मोचरस, नागरमोथा, सोंठ, पाढ, सोनापाठा और धायके फूल इनको कूट पीसकर चूर्ण करले। इस चूर्णको मथित (जिस दहीको कपडेमें छाना हो और जिसमें जल नहीं पडा हो, उसको मथित कहते हैं) के साथ सेवन करनेसे अत्यन्त वेगवाले गंगाके प्रवाहके समान भी दस्त रुक जाते हैं ॥ २९ ॥

अथ द्वितीयगङ्गाधरचूर्णम्।

मुस्ता वत्सकबीजं मोचरसो बिल्वधातकीलोध्रम्। गुडमथितसंप्रयुक्तं गंगामपि वेगवाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ३० ॥

नागरमोथा, इन्द्रजौ, मोचरस, बेलगिरी, धायके फूल और लोध इनका चूर्ण करके गुडमें मिलाकर मथित नामक तक्रके साथ सेवन करनेसे अत्यन्त वेगवाले गंगासमान प्रवाहवाले भी दस्त रुक जाते हैं ॥ ३० ॥

अथ वृद्धगङ्गाधरचूर्णम्।

मुस्तारलुकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रबालकैः। बिल्वमोचरसाभ्याञ्च पाठेन्द्रयववत्सकैः ॥ ३१ ॥ आम्रबीजसमंगातिविषायुक्तैश्च चूर्णितः। मधु तण्डुलपानीयं पीतं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ ३२ ॥ हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं हन्ति वेगतः। वृद्धं गंगाधरं चूर्णं रुन्ध्याद्गीर्वाणवाहिनीम् ॥ ३३ ॥

नागरमोथा, सोनापाठा, सोंठ, धायके फूल, लोध, सुगन्धवाला, बेलगिरी, मोचरस, पाढ, इन्द्रजौ, कुडेकी छाल, आमकी गुठली, लज्जावती और अतीस इनका चूर्ण करके सहत और चावलोंके जलके साथ पीनेसे यह सब प्रकारके अतिसार, प्रवाहिका और संग्रहणीको तत्काल नष्ट करता है। यह वृद्धगंगाधर चूर्ण गंगाके समान प्रवाहवाले दस्तोंकी भी रोक देता है ॥ ३३ ॥

अथाङ्कोलकल्कः।

अङ्कोलमूलकल्कस्तण्डुलपयसा समाक्षिकः पीतः। सेतुरिव वारिवेगं झटिति निरुन्ध्यादतिसारम् ॥ ३४ ॥

अंकोलः " ढेला " इति प्रसिद्धः ॥

अंकोलकी जडको पीसकर चावलोंके जल और सहतके साथ पीवे तो जिसप्रकार पुलसे

जलका प्रवाह रुक जाता है, उसी प्रकार इससे अतिसारका वेग शीघ्रही रुक जाता है ॥३४॥

अथ कुटजाष्टकावलेहः ।

कुटजत्वक्तुलामार्द्रां द्रोणनीरे पचेद्भिषक् । पादशेषं शृतं नीत्वा वस्त्रपूतं पुनः पचेत् ॥ ३५ ॥ लज्जालुर्धातकी बिल्वं पाठा मोचरसस्तथा । मुस्ता चातिविषा चैव चूर्णमेषां पलंपलम् ॥३६॥ निक्षिप्य विपचेत्तावद्यावद्दर्वीं प्रलिप्यते । जलेन च्छागदुग्धेन पीतोमण्डेन वा जयेत् ॥ ॥ ३७ ॥ घोरान्सर्वानतिसारान्नानावर्णान्सवेदनान् । असृग्दरं समस्तश्च तथाऽर्शांसि प्रवाहिकाम् ॥ ३८ ॥

कुडेकी गीली छाल चारसौ तोले लेकर एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहे तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे, फिर इसको चूल्हेपर चढाकर पकावे और उसमें लज्जावती, धायके फूल, वेलगिरी, पाढ, मोचरस, नागरमोथा और अतीस इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डालदेवे। जब पकते पकते करछीसे लगने लग जाय, तब उतार लेवे। इस अवलेहको जलके साथ, बकरीके दूधके साथ अथवा मांडेके साथ पीवे। यह सब प्रकारके वेदनायुक्त विविधवर्णवाले और भयंकर और भयंकर अतिसारोंको तथा सर्व प्रकारके रक्तप्रदर, बवासीर और प्रवाहिकाको करता है ॥३८॥

अथामलकालवालः ।

कृत्वाऽऽलवालं सुदृढं पिष्टैरामलकैर्भिषक् । आर्द्रकस्य रसेनाशु पूरयेन्नाभिमण्डलम् ॥ ३९ ॥ नदीवेगोपमं घोरं प्रवृद्धं दुर्द्धरं नृणाम् । सद्योऽतिसारमजयं नाशयत्येष योगराट् ॥ ४० ॥

आमलोंको जलमें पीसकर रोगीकी नाभिके चारों और घेरासा बनादेवे, फिर उसमें तत्काल अदरखका रस भर देवे तो शीघ्र ही अत्यन्त भयंकर वृद्धिको प्राप्त हुआ नदीके वेगके समान वेगवाला भी दुर्जय अतिसार नष्ट होता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ पाठादिचूर्णम् ।

पाठां पिष्ट्वा च गोदध्ना तथा मध्यत्वगाम्रजा । अतिसारं व्यथां दाहं हन्त्येवाशु न संशयः ॥ ४१ ॥

पाढ और आमके वृक्षके भीतरकी छालको गायके दहीमें पीसकर पीवे तो अतिसार, पीडा और दाह तत्काल नष्ट होजाता है ॥४१॥

अथ वातातिसारलक्षणम् ।

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः । शकृदामं सरुक्छब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥ ४२ ॥

अरुणम्- ईषद्रक्तम । शकृत्--पुरीषम् । सरुक्छब्दम्--शब्दो गुदे । तत्साहचर्याद्रुगपि गुद एव वोद्धव्या ॥

वातसे उत्पन्न हुए अतिसारमें कुछ ललाई लिये फेनयुक्त, रूखा आम मिलाहुआ, वारंवार थोडा थोडा, पीडा और शब्दयुक्त मल उत्तरता है, ये लक्षण वातातिसारमें होते हैं ॥४२॥

अथ वातातिसारचिकित्सा ।

वचा चातिविषा मुस्तं बीजानि कुटजस्य च। श्रेष्ठः कषाय एतेषां वातातिसारशान्तये ॥ ४३ ॥

वच, अतीस, नागरमोथा और इंद्रजौ इनका क्वाथ वातातिसारको नष्ट करता है ॥ ४३ ॥

अथ पित्तातिसारलक्षणम् ।

पित्तात्पीतं शकृद्रक्तं दुर्गन्धि हरितं द्रुतम् । गुदपाकतृषामूर्च्छादाहयुक्तं प्रवर्तते ॥ ४४ ॥

पित्तसे उत्पन्नहुए अतिसारमें पीला, लाल, दुर्गन्धवाला और हरा मल उतरता है गुदाका पकना तृषा, मूर्च्छा और दाह अधिक होता है, ये लक्षण पित्तातिसारके हैं ॥ ४४ ॥

अथ पित्तातिसारचिकित्सा ।

बिल्वादिक्वाथः ।

बिल्वशक्रयवाम्भोदवालकातिविषाकृतः। कषायो हन्त्यतिसारं सामं पित्तसमुद्भवम् ॥ ४५ ॥

वेलगिरी, इंद्रजौ, नागरमोथा, सुगन्धवाला और अतीस इनको क्वाथ बनाकर पीवे तो पित्तसे उत्पन्न हुआ आमयुक्त अतिसार नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

अथ रसाञ्जनादिचूर्णम् ।

रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलत्वचम् । धातकीं शृङ्गवेरञ्च पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥ निहन्ति मधुना पीतं पित्तातिसामुरल्वणम् । अग्निं सन्दीपयेदेतच्छूलमाशु निवारयेत् ॥ ४६ ॥

रसौत, अतीस, कुडेके बीज, कुडेकी छाल, धायके फूल और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाके चावलोंके साथ सेवन करे तो तो भयंकर पित्तातिसार नष्ट होता है यह चूर्ण अग्निको दीपन करता है और शूलको तत्काल हरता है ॥ ४६ ॥

रक्तातिसारलक्षणरूपसम्प्राप्तिः ।

पित्तकृन्ति यदऽत्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके । तदाऽस्य जायतेऽभीक्ष्णं रक्तातिसार उल्वणः ॥ ४७ ॥

पित्तातिसारमें जब अधिकतर पित्तकारक पदार्थ सेवन कियेजाते हैं, तब मनुष्योंके घोर भयंकर रक्तातिसार उत्पन्न होता है ॥ ४७ ॥

अथ रक्तातिसारचिकित्सा ।

तत्र कुटजदाडिमक्वाथः ।

वत्सत्वग्दाडिमतरुशलाटुफल सम्भवा त्वक्च । त्वग्युगलं पलमानं विपचेदष्टांशसम्मिते तोये ॥ ४८ ॥ अष्टमभागं शेषं क्काथं मधुना पिबेत्पुरुषः । रक्तातिसारमुल्वणमतिशयितं नाशयेन्नियतम् ४९

कुडेकी छाल और अनारके कच्चे फलका छिलका ये दोनों दो दो तोले लेकर आठगुने जलमें पकावे, जब आठवां भाग जल शेष रहे, तब सहत डालकर पिलावे तो यह अतिशयित और भयंकर रक्तातिसारको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथ कुटजादिक्वाथः ।

कुटजोऽतिविषा मुस्ता बालकं लोध्रचन्दनम् । धातकी दाडिमं पाठा क्काथमेषां समाक्षिकम् ॥ ५० ॥ पिवेद्रक्तातिसारे तु दाहशूलप्रशान्तये । कुटजादि कषायोऽयं सर्वातिसारनाशनः ॥ ५१ ॥

इंद्रजौ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धावाला, लोध, लालचंदन, धायके फूल, अनार और पाढ इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर रक्तातिसारमें उत्पन्न हुए दाह और शूलको शान्त करनेके लियेपिलावे तो यह कुटजादिक्वाथ सर्व प्रकारके अतिसारोंको नष्ट करता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ तिलकल्कः ।

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्करापञ्चभागिकः । आजेन पयसा पीतः सद्योऽतिसारनाशनः ॥ ५२ ॥

काले तिलोंका कल्क बनाकर उसमें पांचवाँ भाग सफेद खाँड मिलाकर बकरीके दूधके साथ पीवे तो यह कल्क अतिसारको तत्काल बन्द करता है ॥ ५२ ॥

अथ वत्सकादिक्वाथः ।

सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः । सामे सशूले सहशोणिते च चिरप्रवृत्ते विहितोऽतिसारे ॥ ५३ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, बेलगिरी, सुगंधवाला और नागरमोथा इनका क्वाथ आम, शूल और रुधिरयुक्त बहुतदिनोंके पुराने अतिसारमें परम हितकारी है ॥ ५३ ॥

अथ कृष्णमृदादिकल्कः ।

कृष्णमृन्मधुकं लोध्रं कौटजं तण्डुलाम्बुना । पीतमेकत्र सक्षौद्रं रक्तसंधारणं परम् ॥ ५४ ॥

काली मिट्टी, मुलहटी, लोध और इन्द्रजौ इनका कल्क बनाकर उसमें सहत मिलाकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे रक्तातिसार शांत हो जाता है ॥ ५४ ॥

अथ गुडबिल्वः ।

गुडेन भक्षयेद्बिल्वं रक्तातिसारनाशनम् । आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगहरं परम् ५५

बेलके गूदेमें गुड मिलाकर भक्षण करनेसे रक्तातिसार, आमशूल, मलबन्ध और कुक्षिरोग नष्ट होता है ॥ ५५ ॥

अथ जम्ब्वादिस्वरसः ।

जम्ब्वाम्रामलकीनां तु कुट्टयेत्पल्लवान्नवान् । संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् । तत्पीतं मधुना युक्तं रक्तातिसारनाशनम् ॥ ५६ ॥

जामुन, आम और आमले इनके कोमल पत्ते लेकर उनको कूटकर रस निचोड लेवे, फिर उस रसमें सहत मिलाकर बकरीके दूधके साथ पीवे तो रक्तातिसार दूर हो ॥ ५६ ॥

अथ कुटजक्षीरम् ।

निष्क्वाथ्य मूलममलं गिरिमल्लिकायाः सम्यक् पलद्वितयमम्बुचतुःशरावे । तत्पादशेषसलिले खलु शोषणीयं क्षीरे पलद्वयमिते कुशलैरजायाः ॥ ५७ ॥ प्रक्षिप्य माषकानष्टौ मधूनितत्र शीतले । रक्तातिसारी तत्पीत्वा नैरुज्यं क्षिप्रमाप्नुयात् ॥ ५८ ॥

कुडेकी उत्तम छाल आठ तोले लेकर चार शराव, (३२ तोलेका एक शराव होता है) जलमें विधिपूर्वक पकावे, जब पकते पकते जल चौथा भाग शेप रहे, तब आठ तोले बकरीका दूध डालदेवे, जब केवल दूधमात्रही बाकी रहे तब उतार लेवें, शीतल होनेपर आठ मासे सहत मिलाकर पिलावे, इससे रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ शतावरीकल्कः ।

पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरभुग्जयेत् । रक्तातिसारं पीत्वा वा तथा सिद्धं घृतं नरः ॥ ५९ ॥

सतावरके कल्कको दूधके साथ पीनेसे अथवा सतावरके द्वारा सिद्ध किये हुए घृतको पीनेसे रक्तातिसार नष्ट होता है, परन्तु इसदूधका भोजन करना चाहिये ॥ ५९ ॥

अथ नवनीतावलेह ।

गोदुग्धनवनीतं च मधुना सितया सह । लीढं रक्तातिसारे तु ग्राहकं परमं मतम् ॥ ६० ॥

गायके दूधमेंसे निकाले हुए नवीन घीको सहत और मिश्रीके साथ सेवन करनेसे रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ६० ॥

अथ चन्दनकल्कः ।

पीतं मधुसितायुक्तं चन्दनं तण्डुलाम्बुना । रक्तातिसारजिद्रक्तपित्ततृड्दाहमेहनुत् ॥ ६१ ॥

चन्दनमत्र--श्वेतचन्दनम् ॥

सफेद चन्दनको घिसकर सहत और खाँड मिलाकर चावलोंके धोवन जलके साथ पीनेसे रक्तातिसार, रक्तपित्त, तृष्णा, दाह और प्रमेह दूर होता है ॥ ६१ ॥

अथ गुददाहपाकोपायः ।

विरेकैर्बहुभिर्यस्य गुदं पित्तेन दह्यते । पच्यते वा तयोः कार्यं सेकप्रक्षालनादिकम् ॥ ६२ ॥

आदिशब्देन लेपादिसंग्रहः।

बहुत दस्त होनेके कारण जो पित्तसे गुदामें दाह हो अथवा गुदा पकजाय तो गुदसेचन, प्रक्षालन और लेपादि करे ॥ ६२ ॥

पटोलयष्टीमधुकक्वाथेन शिशिरेण हि। गुदप्रक्षालनं कार्यं तेनैव गुदसेचनम् ६३

पटोलपत्र और मुलहठी इनका क्वाथ बनाकर शीतल करके उससे गुदाको धोवे, अथवा उससे ही गुदाको सींचे ॥ ६३ ॥

दाहे पाके हितं छागीदुग्धं सक्षौद्रशर्करम्। गुदस्य क्षालने सेके युक्तं पाने च भोजने ॥ ६४ ॥

गुदाके दाह और पाकमें मिश्री तथा सहत मिलाकर बकरीके दूधके द्वारा गुदसेचन, प्रक्षालन, पीना और भोजन करना ये सब हितकारी हैं ॥ ६४ ॥

अथ गुदबहिर्निःसरणचिकित्सा।

गुदनिःसरणे प्रोक्तं चाङ्गेरीघृतमुत्तमम्। अतिप्रवृत्त्या महती भवेद्यदि गुदव्यथा ॥ ६५ ॥ स्विन्नमूषकमांसेन तदा संस्वेदयेद्गुदम्। अथ गोधूमचूर्णस्य संभृतस्य तु वारिणा। साज्यस्य गोलकं कृत्वा मृदु संस्वेदयेद्गुदम् ॥ ६६ ॥

मल त्यागते समय जो गुदा बाहर निकल आवे तो चांगेरी घृतका सेवन उत्तम है। अधिक दस्तोंके आनेसे जो गुदामें अत्यन्त पीडा उत्पन्न हुई हो तो चूहेके मांसको पकाकर उससे गुदाको बफारा देवे, अथवा गेहूँके आटेको जलमें पकाकर उसमें घी डालकर गोला बनावे, उस गोलेका सुहाता सुहाता सेक करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्यान्तः प्रवेशयेत्। प्रविष्टं स्वेदयेन्मन्दं मूषकस्यामिषेण हि ॥ ६७ ॥

मूषकस्यामिषेण काञ्जिकस्विन्नेन एरण्डपत्रादिस्थापितेन स्वेदयेत् ॥

जो गुदभ्रंश अर्थात् कांच बाहर निकल आवे तो उसके ऊपर स्नेहादि तेल घी आदि की मालिस करके उसको भीतरको प्रवेश करावे। पश्चात् कांजीमें औटाये हुए और अरण्डके पत्ते आदिपर रक्खे हुए चूहेके मांस का थोडा थोडा सेंक करे ॥ ६७ ॥

शम्बूकमांसं सुस्विन्नं सतैललवणान्वितम्। ईषद्घृतेन चाभ्यज्य स्वेदयेत्तेन यत्नतः ॥ ६८ ॥

घोंघेके मांसको पकाकर उसमें तेल और नमक डालकर प्रथम कुछेक घीको गुदापर मलकर पश्चात् इस मांसके द्वारा विधिपूर्वक स्वेद देवे तो गुदाका बाहर निकलना तत्काल बन्द होता है ॥ ६८ ॥

गुदभ्रंशमशेषेण नाशयेत्क्षिप्रमेव च। मूषकस्याथ वसया पायुं सम्यक्प्रलेपयेत्। गुदभ्रंशाभिधो व्याधि प्रणश्यति न संशयः ॥ ६९ ॥

चूहेकी चरबीका गुदाके ऊपर अच्छी प्रकारसे लेप करनेसे निश्चय गुदभ्रंश रोग नष्ट होता है ॥ ६९ ॥

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लक्षारनागरसंयुतम्। घृतं विपक्वं पातव्यं गुदभ्रंशगदापहम् ७०

चांगेरी चतुःपत्री अम्ललोणिका, तस्याः स्वरसः। कोलस्य क्वाथः, दध्यम्लं दधिरूपमम्लम्। एतत्त्रयं मिलितं घृताच्चतुर्गुणम्। क्षारनागरयोः क्वाथः ॥

चार पत्तेकी खट्टी लोनियाका स्वरस, बेरका क्वाथ और खट्टा दही, ये सब घीसे चौगुने लेकर सोंठ और जवाखार इनका चूर्ण डालकर घृतको सिद्ध करे। इस घृतको पीनेसे गुदभ्रंशकी पीडा दूर होती है, इसको चांगेरीघृत कहते हैं ॥ ७० ॥

कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् । एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ ७१ ॥

पद्मिनीपत्रं संशोष्य संचूर्ण्य शर्करायुक्तं खादेत् ।

कमलिनीके कोमल पत्तोंको सुखाकर चूर्ण करलेवे फिर उसमें मिश्री मिलाकर भक्षण करे तो निश्चय गुदाका निकलना बन्द हो जाता है ॥ ७१ ॥

अयं तु गुदभ्रंशोऽतिसारं विनाऽपि भवति, ततः क्षुद्ररोगेषु लिखितः । अत्र गुदस्य दाहपाकव्यथाप्रसंगाद् भ्रंशोऽपि लिखितः । चिकित्सा तूभयत्र तुल्यैव ।

यह गुदभ्रंश रोग अतिसारमें होता है और अतिसारके विना भी उत्पन्न होजाता है, इस कारण इसको क्षुद्र रोगोंमें कहा है। गुदाका दाह और गुदाके पाककी पीडाके प्रसंगसे यहांपर भी लिख दिया है । अतिसारमें उत्पन्न हुए और विना अतिसारमें उत्पन्न हुए गुदभ्रंश दोनोंकी चिकित्सा एकसी जाननी ॥

अथ कफातिसारलक्षणम् ।

श्वेतं स्निग्धं घनं बद्धं शीतलं मन्दवेदनम् । गौरवारुचिसंयुक्तं श्लेष्मणा सार्यते शकृत् ॥ ७२ ॥

कफातिसारमें सफेद, चिकना, गाढा, बन्दहुआ, शीत, अल्पपीडावाला, भारीपन और अरुचि संयुक्त ऐसा मल उतरता है ॥७२

अथ कफातिसारचिकित्सा ।

श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लंघनपाचनम् । योज्यश्चामातिसारघ्नो यथोक्तो दीपनो गणः ॥ ७३ ॥

कफातिसारमें प्रथम लंघन और पाचन हितकारक है आमातिसारनाशक अग्निदीपक औषधियां भी प्रयोग करनी चाहिये ॥ ७३ ॥

अथ चव्यादिक्वाथः ।

चव्यं सातिविषामुस्तं बालबिल्वं सनागरम् । वत्सकत्वक्फलं पथ्या छर्दिश्लेष्माऽतिसारनुत् ॥ ७४ ॥

चव्य, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, सोंठ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और हरड इनका काथ वमन और कफातिसारको नष्ट करता है ॥ ७४ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिंगु सौवर्चलं व्योषमभयाऽतिविषा वचा । पीतमुष्णाम्बुना चूर्णमेषां श्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७५ ॥

हींग भूनी, कालानोंन, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, अतीस और वच इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीनेसे कफातिसार नष्ट होता है ॥ ७५ ॥

अथ वातकफोत्पन्नातिसारचिकित्सा ।

क्रिमिशत्रुवचाबिल्वपाठाधान्याककट्फलम् । एषां क्काथं भिषग्दद्यादतिसारे द्विदोषजे । तेषां चिकित्सा प्रोक्तैव विशिष्टा च निगद्यते ॥ ७६ ॥

वैद्य वायु और कफसे उत्पन्न हुए अतिसारमें वायविडंग, वच, बेलगिरी, पाढ, धनियां और कायफल इनका क्वाथ देवे ॥७६

कट्फलं मधुकं लोध्रं त्वग्दाडिमफलस्य च । सतण्डुलजलं चूर्णं वातश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७७ ॥

कायफल, मुलेहठी, लोध और अनारके फलकी छाल इन सबका एकत्र चूर्ण करके चावलोंके जलके साथ पीनेसे वातकफातिसार नष्ट होता है ॥ ७७ ॥

चित्रकातिविषा मुस्तं बालबिल्वं सनागरम् । वत्सकत्वक्फलं पथ्या वातश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७८ ॥

चीता, अतीस, नागरमोथा बेलगिरी, सोंठ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और हरड इनका क्वाथ वातकफातिसारको नष्ट करता है ॥७८॥

अथ पित्तकफातिसारचिकित्सा।

मुस्ता सातिविषा मूर्वा वचा च कुटजः समाः। एषां कषायः सक्षौद्रः पित्तश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७९ ॥

नागरमोथा, अतीस, चुरनहार और इन्द्रजौ इनके क्वाथमें सहत डालकर पीनेसे पित्तकफातिसार नष्ट होता है ॥ ७९ ॥

अथ सन्निपातातिसारलक्षणम्।

तन्द्रायुक्तो मोहसादास्यशोषी वर्चः कुर्यान्नैकरूपं तृषार्तः। सर्वोद्भूते सर्वलिङ्गोपपत्तिः कृच्छ्रे साध्यो बालवृद्धाबलानाम् ॥ ८० ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए अतिसारमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं। विशेष करके तृषाकी पीडा, तन्द्रा, वेहोशी, ग्लानि, मुखशोष और मलका रंग अनेक प्रकारका होता है। बालक, वृद्ध और बलहीन मनुष्यको उत्पन्न हुआ यह त्रिदोषज अतिसार कष्टसाध्य है ॥ ८० ॥

सन्निपातातिसारचिकित्सा।

पञ्चमूल्यादिक्वाथः।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः। पाठाभूनिम्बबर्हिष्ठकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥ ८१ ॥ सर्वजं हन्त्यतिसारं ज्वरञ्चापि तथा वमिम्। सशूलोपद्रवं श्वासं कासं चापि सुदुस्तरम् ॥ ८२ ॥ पञ्चमूली च सामान्या पित्ते योज्या कनीयसी। वाते पुनर्बलासे च सा योज्या महती मता ॥ ८३ ॥

पंचमूल, खिरैंटी, बेलगिरी, गिलोय नागरमोथा, सोंठ, पाढ, चिरायता, सुगन्धवाला और इन्द्रजौ इनका क्वाथ त्रिदोषज अतिसार, ज्वर, वमन, शूलके उपद्रवयुक्त श्वास और दुस्तर खांसीको भी नष्ट करता है। सामान्य रीतिसे पित्तके रोगोंमें लघुपंचमूल लेना चाहिये और वात तथा कफके रोगोंमें बृहत्पञ्चमूल लेना चाहिये ॥ ८१-८३ ॥

अथ चतुःसममोदकः।

अभया नागरं मुस्तं गुडेन सह योजितम्। चतुःसमेयं गुटिका सर्वातिसारनाशिनी ॥ ८४ ॥ आमातिसारमानाहं सविबन्धं विषिचिकाम्। कृमीनरोचकं हन्यादीपयत्याशु चानलम् ॥ ८५ ॥

हरड, सोंठ, नागरमोथा और गुण ये चारों पदार्थ समान भाग लेकर गोली बनालेवे। यह चतुःसमगोली सर्व प्रकारके अतिसारोंको नष्ट करती है। तथा आमातिसार, अफारा, मलबन्ध, विषूचिका, कृमिरोग और अरुचिको हरती है और तत्काल अग्निको दीप्त करती है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अथ कुटजपुटपाकः।

तत्कालकृष्टकुटजत्वचं तण्डुलवारिणा। पिष्ट्वा चतुःपलमितां जम्बूपत्रेण वेष्टिताम् ॥८६॥ सूत्रेण बद्ध्वा गोधूमपिष्टेन परिवेष्टिताम्। लिप्ताञ्च घनपङ्केन निर्दहेद्गोमयाग्निना ॥८७॥ अङ्गारवर्णाञ्च मृदं दृष्ट्वा वह्नेः समुद्धरेत्। ततो रसं समादाय शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ ८८ ॥ उक्तः-कृष्णात्रिपुत्रेण पुटपाकस्तु कौटजः। जयेत्सर्वानतिसारान् रक्तजान्सुचिरोत्थितान् ॥ ८९ ॥

गीली कुडेकी छाल सोलह तोले लेकर चावलोंके जलमें पीसकर गोला बनालेवे उस गोलेको जामुनके पत्तोंमें लपेटकर डोरेसे बांध देवे, फिर उसके ऊपर गेहूँके आटेका लेप करदेवे, पश्चात् मिट्टीकी गाराका लेप करके अरने उपलोंकी अग्निमें पकावे, जब

पकते पकते मिट्टीका रंग अंगारोंके समान लाल हो जाय, तब उसको निकाल लेवे, फिर उसको निकालकर शीतल होनेपर सहत मिलाकर पिवे । यह पुनर्वसु ऋषिका कुटजपुटपाक सर्व प्रकारके अतिसार रक्तातिसार और बहुत पुराने अतिसारको नष्ट करता है ॥ ८६-८९ ॥

अथ कुटजावलेहः ।

कुटजत्वक्कृतः क्काथो वस्त्रपूतो हिमीकृतः । संलीढोऽतिविषायुक्तः । स्यात्त्रिदोषातिसारनुत् ॥ ९० ॥ इच्छन्त्यत्राष्टमांशेन क्काथादतिविषारजः । प्रक्षेपयेच्चतुर्थांशमिति केचिद्वदन्ति हि ॥ ९१ ॥

कुडेकी छालका क्वाथ बनाकर वस्त्रसे छानकर शीतल करलेवे, फिर उसमें अतीसका चूर्ण मिलाकर सेवन करे तो त्रिदोषातिसार नष्ट होता है । यहां कितनेक वैद्य कहते हैं कि, क्वाथसे अतीसका चूर्ण अठवां भाग लेना चाहिये और कितने वैद्य कहते हैं कि, क्वाथसे अतीसका चूर्ण चौथा भाग लेना चाहिये९०॥९१

अथाङ्कोटवटकः ।

पलमङ्कोटमूलस्य पाठां दार्वीश्च तत्समाम् । पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्मितान् ॥९२॥ छायाशुष्कांश्च तान्कुर्यात्तेष्वेकं तण्डुलाम्बुना । पेषयित्वा प्रदद्यात्तु पानाय गदिने भिषक् ॥ ९३ ॥ वातपित्तकफोद्भूतान्द्वन्द्वजान्सान्निपातिकान् । हन्यात्सर्वानतिसारान्वटकोऽयं प्रयोजितः ॥ ९४ ॥

अंकोलकी जड, पाढ और दारुहलदी ये तीनों औषधि चार चार तोले लेकर चावलोंके जलमें पीसकर छायामें सुखाकर एक एक तोलेके बडे बना लेवे । प्रतिदिन एक बडा चावलोंके जलमें पीसकर रोगीको पीनेके लिये देवे । ये बडे-वातके दोषसे उत्पन्न हुए अतिसार, पित्तके दोषसे उत्पन्न हुए अतिसार वा कफके दोषसे उत्पन्न हुए अतिसार अथवा द्वन्द्वज दोषसे उत्पन्न हुए अतिसार किंवा सन्निपातसे उत्पन्न हुए अतिसार और भी अनेक प्रकारके अतिसारोंको शान्त करते हैं ॥ ९२-९४ ॥

अथागन्तुजशोकातिसारसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

तैस्तैर्भावैःशोचतोऽल्पाशनस्य बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तोः । कोष्ठे गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं तच्चाधस्तात्काकणन्तीप्रकाशम् । निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड्वा निर्गन्धं वा गन्धवद्वाऽतिसारः । शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः ॥ ९५ ॥

अयमर्थः-तैस्तैर्भावैः-बन्धुवित्तक्षयादिभिःशोचतः शोकं कुर्वतः, जन्तोः प्राणिनः, बाष्पोष्मा-बाष्पः शोकजदेहोष्मणा जनितं नेत्रनासागलादिषु जलं तेन सहितः । ऊष्मा शोकजं देहतेजः । स कोष्ठं गत्वा वह्निमाविश्य जठराग्निं मन्दीकृत्य बाष्पसाहित्यादूष्मणाऽपि वह्नेर्मन्दीभाव इति न दोषः । वह्नेर्मन्दीभावादेव अल्पाशनस्येति जन्तोर्विशेषणम् । ततः तस्य जन्तो रक्तं क्षोभयेत् स्वस्थानात् चालयेदिति संप्राप्तिः। अथ लक्षणम्-तच्च रक्तम् । अधस्तात्-गुदात् । काकणन्तीप्रकाशम्-गुञ्जाफलसदृशम् । विड्विमिश्रं गन्धवच्च, अविट् निर्गन्धं वा निर्गच्छेत् , शोकोत्पन्नोऽतिसारः अतिमात्रं दुश्चिकित्स्यः, शोकापनोदनं विना केवलेन भेषजेन प्रतीकर्तुमशक्यत्वात् । एषोऽतिसारः कष्टसाध्यः कथितः ॥

बन्धुओंके और धनादिके नष्ट होनेसे जब यह प्राणी शोक करता है, तब इसके बाष्प (शोकसे उत्पन्न हुई शरीरकी उष्णतासे नेत्र,

नासिका और गलेमें रहनेवाला जल) सहित गरमी कोठेमें प्राप्त होकर अग्निको मन्द करती है उस अग्निके मन्द होनेके प्रभावसे भोजन थोडा किया जाता है। तब वही बाष्पोष्मा कोष्ठमें जाकर मनुष्यके रक्तको बिगाडकर अपने स्थानमेंसे चलायमान करदेती है, यह तो सम्प्राप्ति हुई। अब लक्षण सुनो-पश्चात् वह रुधिर गुदाके मार्गसे विष्ठासहित और दुर्गन्धसहित अथवा विष्ठारहित और दुर्गन्धरहित होकर घुंघुचीके समान लाल निकलता है, इसको शोकातिसार कहते हैं। यह शोकातिसार चिकित्सा करनेमें अत्यन्त कठिन है। क्योंकि, विना शोकके दूर किये केवल औषधियोंसे ही इसका प्रतिकार और उपचार नहीं हो सकता इस कारण यह शोकातिसार कष्टसाध्य है ॥ ९५ ॥

अथ भयातिसारलक्षणम्।

भयेन क्षोभिता दोषा दूषयन्ति मलं यदा। तदाऽतिसार्यते जन्तुः क्षिप्रमुष्णं जलप्लवम् ॥९६॥ वातपित्तातिसारस्य प्रायो लिंगैः समन्वितम्। भयोपशमनाच्छामो यस्मिन् स्यात्स भयात्स्मृतः ॥ ९७ ॥

प्लवतीति प्लवम्, जले प्लवमानमित्यर्थः ॥

भयरूप कारणोंसे क्षोभको प्राप्त हुए वात, पित्त और कफ ये दोष जब मलको दूषित करते हैं (यह सम्प्राप्ति जाननी) तब तत्काल विशेष करके वात और पित्तके लक्षणोंवाला गरम और पानीमें तैरनेवाला मल गुदाके मार्गसे प्रवाहरूप होकर निकलता है, उसको भयातिसार कहते हैं। इसमें भयके शान्त होनेसे रोगी सुखी होता है (यह लक्षण जानने) ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

ननु भयातिसारस्य कथमागन्तुजत्वमयमपि दोषज एव। यत आह-भयेन क्षोभिता दूषिता दोषाः मलं दूषयन्ति, तत् मलमतिसरति, अत्र पूर्वमेव दोषसम्बन्धः ॥

शंका-भयातिसार आगन्तुज कैसे होसकता है? क्योंकि भयसे क्षोभको प्राप्त हुए अर्थात् दूषित हुए वातादि दोष मलको दूषित करते हैं और वह मल प्रवृद्ध रूपसे निकलता है, इस कहनेसे यह जाना जाता है कि, इसमें पहिलेसे ही दोषोंका सम्बन्ध होता है इस कारण भयातिसार दोषजन्य है ॥

उच्यते-" रागद्वेषभयाच्चैव ते स्युरागन्तवो गदाः " ॥ ९८ ॥ इति वचनात् भयातिसार आगन्तुज एव। भयेनैव हेतुभूतेन दोषाः वातपित्तकफा अतिसारं जनयन्ति। क्षोभिताः-सञ्चालिताः, न तु दूषिताः। भयेन त्रयाणामपि दोषाणां दूषणासम्भवात्। अतिसर्तुं चलिता वातपित्तकफा मलं दूषयन्ति। तत्सर्वं वातपित्तकफमलं भयेनैव अतिसार्यते पश्चात् वातसम्बन्धेन " भयाद्वायुः " इति वचनात्। अतएव भयातिसारे वातहरी एव क्रिया कथितेति साधुः ॥

समाधान-'राग, द्वेष और भयसे जो रोग उत्पन्न होता है, उसको आगन्तुज कहते हैं' इस वचनानुसार भयातिसार आगन्तुज है। भयसे क्षोभको प्राप्त हुए ' इस शब्दका अर्थ 'भयसे दूषित हुए ' ऐसा नहीं समझना, किन्तु ' भयसे चलायमान किये हुए ' ऐसा समझना चाहिये। कारण यह है कि-भयसे तीनों दोषोंका दूषित होना सम्भव नहीं हो सकता, भयका वेग आनेसे जोरसे निकलनेके लिये चलायमान हुए वात, पित्त और कफ ये मलको दूषित करते हैं और फिर वात, पित्त, कफ और मल ये सब भयके कारण चलित होजाते हैं इस अतिसारमें पीछेसे दुष्ट वायुका सम्बन्ध होता है, क्योंकि ' भयसे वायु होती है " ऐसा कहा है, इस कारण भयातिसारमें वातनाशक चिकित्सा ही करनी कही है इस प्रकार भयातिसारके आगन्तुज होनेमें कोई संदेह नहीं है ॥ ९८ ॥

अथ शोकातिसारभयातिसारचिकित्सा ।

भयशोकसमुद्भूतौ ज्ञेयौ वातातिसारवत् । तयोर्वातहरी कार्या हर्षणाश्वासनैः क्रियाः ॥ ९९ ॥

वातातिसारवत्--वातातिसारलक्षणयोस्तयोश्चिकित्सा च हर्षणाश्वासनपूर्विका वातहरी कर्तव्या ॥

भयातिसार और शोकातिसारके लक्षण वातातिसारके समान होते हैं, इसलिये इन दोनों अतिसारोंमें हर्ष उत्पन्न करनेवाले कर्म करे, धीरज बँधावे और वातविनाशक चिकित्सा करे ॥ ९९ ॥

अथामातिसारसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तो दोषाः कोष्ठे धातुसङ्घान्मलांश्च । नानावर्णान्नैकशः सारयन्ति शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ १०० ॥

अन्नं भुक्तं तदजीर्णञ्चेति कर्मधारये । अन्नाजीर्णम्तस्मात्प्रसूताः । क्षोभयन्तः चालयन्तः । नैकश इत्यत्र नाकादित्वान्नाक्षरविपर्ययः ॥

भोजन किये हुए पदार्थोंके अजीर्ण होनेके चलायमान हुए वातादि दोष कोठेकी रसरक्तादि धातुओंको और मलमूत्रादि मलोंको चलायमान करके बारंबार शूल युक्त और अनेक वर्णकी विष्ठाको गुदाके द्वारसे बाहर निकालते हैं यह छठा आमातिसार कहा है ॥ १०० ॥

ननु, आमेन दोषा दूष्यंते गुर्वादिभक्षणादिभिरिव, ते च अतिसारम् उत्पादयन्ति, न तु आमोऽतिसारमुत्पादयन्ति, तेन आमातिसारोऽपि दोषज एव किमर्थं स पृथगुक्तः ?

शंका-जिसप्रकार भारी पदार्थोंके भोजन आदिसे दोष दूषित होते हैं, उसी प्रकार आमसे दोष दूषित होते हैं इस प्रकार दूषित हुए दोषही अतिसारको उत्पन्न करते हैं, परंतु आम अतिसारको नहीं उत्पन्न करता है इस लिये आमातिसारके दोषजन्य होनेपर भी फिर इसको अलग क्यों कहा ?

उच्यते-आमातिसारस्य चिकित्सार्थम् । अतिसारेषु सर्वेषु एव संग्राहकमौषधमुक्तम्, आमातिसारे तु संग्राहकं निषिद्धम् । यत उक्तम्- नामे संग्राहकं दद्यादतिसारे कदाचन । संगृहीतो बलादामो विकारान्कुरुते बहून् ॥ १०१ ॥

बलाद्भेषजबलात् । विकारान्--ग्रहण्याध्मानशूलगुल्मशोथोदरज्वरादीन् ॥

समाधान-आमातिसारकी चिकित्सा अलग जाननेके लिये आमातिसार अलग कहा है, सर्व प्रकारके अतिसारोंमें मलको रोकनेकी औषधिको कही है आमातिसारमें मलको रोकनेकी औषधि निषेध है । कहा भी है कि-"आमातिसारमें कदापि संग्राहक औषधि नहीं देनी चाहिये क्योंकि-संग्राहक, औषधियोंके बलसे स्तम्भित हुआ आम संग्रहणी, अफारा शूल, गुल्म, सूजन, उदररोग और ज्वरादि अनेक विकारोंको उत्पन्न करता है" ॥ १०१ ॥

अथामातिसारचिकित्सा ।

वत्सकातिविषाशुण्ठी बिल्व हिङ्गुयवाम्बुदाः । चित्रकेण युतः क्वाथ आमातिसारनाशनः ॥ १०२ ॥

कुडेकी छाल, अतीस, सोंठ, बेलगिरी, हींग, इन्द्रजौ, नागरमोथा, और चीता इनका क्वाथ आमातिसारको नष्ट करता है ॥ १०२ ॥

अथ शोथातिसारचिकित्सा ।

शोथघ्नीन्द्रयवौ पाठा श्रीफलातिविषाघनाः क्वथिताः सोषणाः पीताः शोथातिसारनाशनाः ॥ १०३ ॥

शोथघ्नी-पुनर्नवा । ऊषणम्-मरिचम् ॥

पुनर्नवा, इन्द्रजौ, पाढ, बेलगिरी, अतीस, नागरमोथा और कालीमिरच, इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे शोथातिसार नष्ट होता है ॥ १०३ ॥

अथ छर्द्यतिसारचिकित्सा ।

आम्रास्थिमध्यमालूरफलक्काथः समाक्षिकः । शर्करासहितो हन्याच्छर्द्यतिसारमुल्वणम् ॥ १०४ ॥

मालूरफलम्—विल्वफलम् ॥

कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः । निहन्याच्छर्द्यतिसारं तृष्णां दाहं ज्वरं भ्रमम् ॥ १०५ ॥

आमकी गुठली और बेलगिरी इनके क्काथमें सहत और मिश्री डालके पीनेसे भयंकर छर्द्यतिसार नष्ट होता है। भुनी हुई मूँगके क्वाथमें खीले सहत और मिश्री डालकर पान करनेसे छर्द्यतिसार उलटी दस्त तृषा, दाह, ज्वर और भ्रम दूर होता है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

अथ निःसारकचिकित्सा ।

दध्ना ससारेण समाक्षिकेण भुञ्जीत निःसारकपीडितस्तु । सुतप्तकुप्यक्वथितेन वाऽपि क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ॥ १०६ ॥

निःसारकः निठाहीति लोके । सुतप्तकुप्यक्वथितेन—सुतप्तसुवर्णरजतनिर्वापणक्कथितेन । भुञ्जीत पथ्यमिति शेषः ॥

निः सारकसे पीडित हुए मनुष्यको मलाईवाले दहीमें सहत डालकर पथ्य भोजन करावे। अथवा अत्यन्त तपाया हुआ सोना यारूपा दूधमें बुझाकर फिर उस दूधको शीतल करके उसमें सहत डालकर पथ्य भोजन करावे ॥ १०६ ॥

अथ विष्ठाक्षयचिकित्सा ।

दीप्ताग्निर्निष्पुरीषो यः शकृत्त्यजति फेनिलम् । स पिबेत्फाणितं शुण्ठीं दधि तैलं पयो घृतम् ॥ १०७ ॥ बलाविश्वाशृतं क्षीरं गुडतैलानुयोजितम् । दीप्ताग्निं पाययेत्प्रातः सुखदं वर्चसः क्षये ॥ १०८ ॥

दीप्त अग्निवाले मनुष्यकाजो मल क्षीण होगया हो और उसकी गुदामेंसे झागोंदार थोडा थोडा मल निकलता हो, उसको राब, सोंठ, दही, तेल, दूध और घी पिलावे। पुरीषके क्षय होनेपर दीप्ताग्निवाले मनुष्यको खिरैंटी और सोंठके द्वारा सिद्ध किये हुए दूधमें गुड और तेल डालकर प्रातः काल पिलावे तो इससे रोगी सुखी होता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथबिल्वतैलम् ।

तुलां संकुटच बिल्वस्य पचेत्पादावशेषितम् । सक्षीरं साधयेत्तैलं श्लक्ष्णपिष्टैरिमैः समैः ॥ १०९ ॥ बिल्व सधातकीकुष्ठं शुण्ठीरास्नापुनर्नवाः । देवदारुवचामुस्तं लोध्रमोचरसान्वितम् ॥ ११० ॥ एभिर्मृद्वग्निना पक्कं ग्रहण्यर्शोऽतिसारनुत् । बिल्वतैलमिति ख्यातमत्रिपुत्रेण भाषितम् ॥ १११ ॥

बेलगिरी सौ पल लेकर कूट लेवे, फिर उसका चतुर्थांश शेष क्वाथ बनावे फिर उस क्काथमें दूध और तेल तथा बेलगिरी, धायके फूल, कूठ, सोंठ, रासना, पुनर्नवा, देवदारु, वच, नागरमोथा, लोध और मोचरस इनका कल्क डालकर तेलको मंदमंद अग्निसे पकावे। पुनर्वसुमुनिका कहा हुआ यह बिल्वतैल-ग्रहणी, बवासीर और अतिसारको नष्ट करता है ॥ १०९ ॥ १११ ॥

अथातिदेशः ।

ग्रहण्यर्शोऽधिकारे ये स्नेहाः समुपदर्शिताः। प्रयोज्यास्तेऽतिसारेऽपि त्रयाणां तुल्यहेतुना ॥ ११२ ॥

ग्रहणी और अर्श अधिकारमें भी तैल घृतादि

स्नेह कहे हैं उन सबका अतिसारमें भी प्रयोग करना चहिये क्योंकि इन तीनों रोगोंके हेतु समान हैं ॥ ११२ ॥

प्रवाहिकासम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य । प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ११३ ॥

अस्य अयमर्थः--अहिताशनस्य--अतिशयेन वातल भक्ष्यभोजिनःप्रवृद्धो वायुःप्रवाहतः-कण्ठे हृद्बलेन । सशब्दं वायुमपानमागतं त्यजतः । निचितं--संचितं । बलासं--कफं । मलाक्त--पुरीषयुक्तम् । अल्पं बहुशः--वारंवारमधस्तात गुदान्नुदति । वैद्याः तां प्रवाहिकां प्रवदन्ति ॥

अत्यन्त वायुकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे मनुष्योंकी अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई वायु जोरसे अपान वायु छोडते समय उस मनुष्यकी गुदामेंसे विष्ठासे मिले हुए और संचित हुए कफको बारंबार थोडा थोडा नीचे गिरावे, उसको वैद्य प्रवाहिका कहते हैं ॥ ११३ ॥

अथ दोषभेदेन प्रवाहिकालक्षणम् ।

प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च । सशोणिता शोणितसम्भवा च ताःस्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥ ११४ ॥

तत्र रूक्षप्रभवा—वातजा । स्नेहप्रभवा—कफजा । तुशब्दात्तीक्ष्णोष्णभवा—पित्तजा रक्तजा च ।

जिस प्रवाहिकामें शूल हो, उसको वायुसे उत्पन्न हुई जानना और वह रूक्षपदार्थोंके सेवन करनेसे होती है । जिस प्रवाहिकामें दाह हो उसको पित्तसे उत्पन्न हुई जानना और वह तीक्ष्ण तथा उष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे होती है । जिस प्रवाहिकामें कफकी अधिकता हो उसको कफसे उत्पन्न हुई जानना और वह स्नेहपदार्थोंके सेवन करनेसे होती है । जिस प्रवाहिकामें रुधिर निकलता है, उसको रुधिरसे उत्पन्न हुई जानना और वह उष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे होती है ॥ ११४ ॥

अथातिदेशः

तासामतिसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमं चामविपक्वतां च ॥ ११५ ॥

प्रवाहिकाके लक्षण, चिकित्सा और पक्व अपक्वता अतिसारके समान जानना ॥ ११५ ॥

अथ प्रवाहिकाचिकित्सा ।

बिल्वाद्यवलेहः ।

बिल्वपेशी गुडं लोध्रं तैलं मरिचसंयुतम् । लीढ्वा प्रवाहिकाक्रान्तः सत्वरं सुखमाप्नुयात् ॥ ११६ ॥

बेलगिरी, गुड, लोध, तेल और कालीमिर्च इन सबको एकत्र करके अवलेह बनावे । इस अवलेहको सेवन करनेसे प्रवाहिकाका रोगी तत्काल सुखी होता है ॥ ११६ ॥

अथ धातक्यादिः ।

धातकीं बदरीपत्रं कपित्थं सहमाक्षिकम् । सलोध्रमेकतो दध्ना पिबेन्निर्वाहिकार्दितः ॥ ११७ ॥

एकतः—प्रत्येकं दध्ना पिबेदित्यर्थः ।

धायके फूल, बेरीके पत्ते, कैथका रस, सहत और लोध इनमेंसे किसी एकको अथवा सबको अलग अलग दहीके साथ पान करनेसे प्रवाहिकारोग नष्ट होजाता है ॥ ११७ ॥

अथसाध्यातिसारलक्षणम् ।

पक्वजाम्बवसंकाशं - यकृत्खण्डनिभं तनु । घृततैलवसामज्जावेसवारपयोदधि ॥ ११८ ॥ मांसधावनतोयाभं कृष्णं नीलारुणप्रभम् । कर्बुरं मेचकं स्निग्धं चन्द्रिकोपगतं घनम् ॥ ११९ ॥

कुणपं मस्तुलुङ्गाभं सगन्धं क्वथितं बहु । तृष्णादाहारुचिश्वासहिक्कापार्श्वास्थिशूलिनम् ॥ १२० ॥ संमूर्च्छाऽरतिसंमोहयुक्तं पक्ववलीगुदम् । प्रलापयुक्तश्च भिषग् वर्जयेदतिसारिणम् १२१

जिसका मल पकी जामुनके समान, यकृत् खण्डके समान, सूक्ष्म, घीके समान, तेल सरीखा, चरबी और मज्जाके समान, दालके पानीके समान, दूध और दहीके समान, मांसके धोये हुये जलके समान, काला, नीला और लालरंगका, चित्रितरंगका, अनेक रंगका, बहुत काला, चिकना, मोरपुच्छचन्द्रिकाके समान चित्र विचित्र, सघन, सडे हुए मुरदेके समान गंधवाळा, मस्तकमें रहनेवाली चरबीके सदृश, भारी, दुर्गन्धयुक्त और बहुत गरम हो. तथा रोगीको तृषा, दाह, अरुचि, श्वास, हिचकी, पसलियोंमें शूल और हड्डियोंमें शूल, मूर्च्छा, बेचैनी और बेहोसी हो गुदोके वलि पकजायँ और रोगी प्रलाप करे, ऐसे अतिसारयुक्त मनुष्यका वैद्य उपाय न करे ॥ ११८-१२१ ॥

असंवृतगुदं क्षीणं शूलाध्मानैरुपद्रुतम् । गुदे पक्वे गतोष्माणमतिसारिखमुत्सृजेत् ॥ १२२ ॥

असंवृतगुदं—गुदसवरणाक्षम् । गुदे पक्वे गुदं पाकारम्भके पित्ते विद्यमानेऽपि शीतगात्रं नष्टाग्निं वा

श्वासशूल पिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् । विशेषेण नरं वृद्धमतिसारो विनाशयेत् ॥ १२३ ॥

जिस अतिसारवाले रोगीकी गुदा-मल निकलनेके बाद बन्द न हो तथा वह मनुष्य क्षीण होगया हो, शूल और अफारे युक्त हो, गुदाके पकानेवाले पित्तके रहनेपर भी शरीर शीतल हो और जिसकी जठराग्नि नष्ट होगई हो, ऐसे अतिसारवाले रोगीको वैद्य त्याग देवे । श्वास, शूल और तृषासे पीडित, क्षीण, ज्वरसे व्याकुल और विशेष करके वृद्धमनुष्योंको उत्पन्न हुआ अतिसार मार देता है ॥ १२२-१२३ ॥

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् । छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कांश्च दृष्ट्वाऽतिसारिणं त्यजेत् ॥१२४॥ हस्तपादाङ्गुलीसन्धिप्रपाको मूत्रनिग्रहः । पुरीषस्योष्णताऽतीव मरणायातिसारिणः ॥ १२५ ॥ अतिसारी राजरोगी ग्रहणीरोगवानपि । मांसाग्निबलहीनो यो दुर्लभं तस्य जीवनम् ॥ १२६ ॥

सूजन, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, खांसी, अरुचि, वमन, मूर्च्छा और हिचकी इन लक्षणोंसे युक्त अतिसाररोगीको त्यागदेवे । जिसकी हाथ पाँवोंकी अंगुली पक गई हों, संधियाँ पकगई हों, मूत्र रुकगया हो और मल अत्यन्त गरम हो. ये सब लक्षण अतिसाररोगीके मरनेके लिये उत्पन्न होते हैं । अतिसार रोगी, क्षयरोगी और ग्रहणीरोगी जो मांस और अग्निके बलसे हीन होगया हो तो उसका जीना दुर्लभ है ॥ १२४-१२६ ॥

बाले वृद्धे त्वसाध्योऽयं लिङ्गैरेतैरुपद्रुतः । अपि यूनामसाध्यं स्यादतिदुष्टेषु धातुषु ॥ १२७ ॥

उपरोक्त लक्षणोंसे युक्त बालकोंसे और वृद्धोंके उत्पन्न हुआ अतिसार असाध्य है और धातुओंके दुष्ट होनेसे युवा मनुष्योंके भी उत्पन्न हुआ अतिसार असाध्य है ॥

अथातिसारमुक्तलक्षणम् ।

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति । दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥ १२८ ॥

जिसकी अग्नि प्रदीप्त हो, कोठा हलका होगया हो और जिसके मलके विना मूत्र और

अधोवायु अच्छी प्रकारसे निकलती हो, ऐसे मनुष्यको अतिसारसे मुक्त हुआ जानना॥१२८॥

अथातिसारेऽपथ्यम् ।

स्नानावगाहावभ्यङ्गं गुरुस्निग्धादिभोजनम् । व्यायाममग्निसन्तापमतिसारी विवर्जयेत् ॥ १२९ ॥ स्नानमुद्धृतजलेन । अवगाहो नद्यादौ ।

अतिसारवाला रोगी स्नान नहीं करे, नदीमें नहीं घुसे तथा तैलादिककी मालिस, भारी, स्निग्ध भोजन और कसरत नहीं करे तथा अग्निका सन्ताप भी त्याग देवे ॥ १२९ ॥

अथ शंखपोटलीरसः ।

प्रत्येकं दश गद्याणाः शुद्धसूतकगन्धयोः ॥ १३० ॥ त्रयोविंशत्यहं खल्वे पिष्ट्वा कुर्याच्च कज्जलीम् । पश्चादर्कस्य दुग्धेन पिष्ट्वा तां कज्जलीं त्र्यहम्॥१३१॥ ततो वज्रस्य दुग्धेन पिष्ट्वा तां कज्जलीं त्र्यहम् । आर्द्रकं चित्रकं श्वेतं निःसहायश्च मर्दयेत् ॥ १३२ ॥ पेषयेत्तद्रसैरेवं कज्जलीं तां दिनत्रयम् । पीतानाश्च कपर्दानां चूर्णं गद्याणविंशतिः ॥१३३॥ विंशतिः शंखचूर्णस्य चत्वारिंशच्च मिश्रितम् । त्रिदिनं मर्दयेत् खल्वे पूर्वोक्तेन क्रमेण च ॥ १३४ ॥ त्र्यहमर्कस्य दुग्धेन वज्रीदुग्धेन च त्र्यहम् । तन्मध्ये कज्जलीं क्षिप्त्वा चित्रकार्द्ररसेन तु ॥ १३५ ॥ खल्वे पिष्ट्वा द्वयोः कार्या गुट्यो बदरसम्मिताः । लिप्त्वा दग्ध्वाऽऽशु चूर्णेन पक्वकुल्हरिकान्तरम् ॥१३६॥ प्रक्षिप्य गुटिकास्तत्र चूर्णलिप्तपिधानकम् । दत्त्वा वस्त्रं मृदा लिप्त्वा गर्तं हस्तप्रमाणकम् ॥ १३७ ॥ तद्गर्भे कुल्हरीं मुक्त्वा पुटो देयश्च शाणकैः । पश्चाच्चित्रकनीरेण स्वाङ्गशीतश्च पेशयेत् ॥ १३८ ॥ गुटिकां पूर्वरीत्यैव कृत्वा देयः पुनः पुटः । दग्धानां गुटिकानाञ्च चूर्णं कृत्वाऽथ कूपिके ॥१३९॥ क्षेप्यं चैवं हि निष्पन्नो रसोऽयं शंखपोटली । आमज्वरातिसारे च श्वासे कासे तथैव च ॥ १४० ॥ श्लेष्मपित्तामवातेषु मन्दाग्नौ ग्रहणीषु च अष्टादशप्रमेहेषु जीर्णे जीर्णबलेषु च ॥ १४१ ॥ द्वात्रिंशन्मरिचैःसाकं संवृतं वल्लपंचकम् । सर्वरोगेषु दातव्यं मरिचाज्यं विना ज्वरे ॥ १४२ ॥ शालयो दधिदुग्धादि भोजनं मधुरं हितम् । कट्वम्लक्षारतैलाद्यान्दूरतः परिवर्जयेत् ॥१४३॥ विधिनाऽनेन कर्तव्यो रसोऽसौ शंखपोटली । क्रमेण विनिवर्तन्ते प्रोक्तरोगा न संशयः॥१४४॥

पारा दश गद्याण (एक गद्याण ४८ रत्तीका होता है) और शुद्ध गंधक दश गद्याण लेकर तेईस दिनतक खरलमें पीसकर कज्जली बनावे, फिर इस कज्जलीको तीन दिनतक आकके दूधमें खरल करे, फिर तीन दिनतक थूहरके दूधमें खरल करे, पश्चात् अदरख और सफेद चीतेके रसमें तीन तीन दिनतक खरल करे, तदनन्तर पीली कौडीके बीस गद्याण चूर्णको और बीस गद्याण शंखके चूर्णको मिलाकर इस चालीस गद्याण चूर्णको अलग खरलमें खरल करे, फिर इस चूर्णकोऊपर कहे अनुसार आकके दूधमें और तीन दिनतक थूहरके दूधसें खरल करे, फिर इस चूर्णमें उक्त कज्जलीको मिलाकर अदरख और चीतेके रसमें खरल करके बेरकी बराबर गोली बनालेवे, फिर मिट्टीकी कुलिया लेकर उसमें चूना चुपडकर उसको अग्निमें तपावे और उसमें यह गोली रखकर उसके ऊपर चूनेसे लिपा हुआ ढक्कन ढक देवे, फिर उस कुलिया और ढकने पर कपरमिट्टी करके एक हाथ गहरा

खड्ढा खोदे और उसमें कुलियाको रखकर पुट देवे, जब अच्छी प्रकारसे पकजाय तब उस कुलियामेंसे रसको निकालकर चीतेके रसमें खरल करे, इसीप्रकार फिर गोली बना कर पहिले कहे अनुसार कुलियामें रखकर दूसरी बार पुष्ट देवे, जब पक जाय तब गोलियोंका चूर्ण करके शीशीमे भरके रखदेवे तो शंखपोटलीरस होता है। ज्वररोग, आमातिसार, श्वास, खांसी, कफ, पित्त, आमवातरोग मन्दाग्नि, ग्रहणी, अठारह प्रकारके प्रमेह, अजीर्ण और बलकी क्षीणता इनमें यह रस पांच वल्ल (१५ रत्ती) प्रमाण सेवन करे, सर्व प्रकारके रोगोंमें ३२ मिरचोंके साथ घीमें मिलाकर इस रसको सेवन करे, परन्तु ज्वरमें मिर्च और घीके साथ नहीं खाय, इस रसपर शालि चावल, घी, दही, दूध. आदि मधुर पदार्थ इनका पथ्य करे। इसपर तेल, तीक्ष्ण, अम्ल और क्षार आदि पदार्थोंको दूरसे छोड देवे। इस विधिके अनुसार इस शंखपोटली रसको सेवन करनेसे उपरोक्त सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं ॥ १३० ॥ १४४ ॥

अथ विजयावलेहः।

त्रैलोक्यविजयाजातीफले तुल्ये कलिन्दकम्। गृहीत्वा द्विगुणं श्रेष्ठो लेहःसर्वातिसारनुत् ॥ १४५ ॥

एक भाग भाँग, एक भाग जायफल और दो भाग इन्द्रजौ इन सबको एकत्र पीसकर सहत मिलाकर अवलेह बनावे, यह अवलेह सब प्रकारके अतिसारोंको शान्त करता है ॥ १४५ ॥

अथातिविषावलेहः।

बिल्वमोचरसलोध्रधातकीपुष्पचूतफलबीजसंयुता । नाशयेदतिविषावलेहिका सिन्धुवेगमपि दुर्धरं ध्रुवम् ॥ १४६ ॥

इति अतिसाराधिकारः।

बेलगिरी, मोचरस, लोध, धायके फूल, आमकी गुठलीकी मींग और अतीस इन सबको समान भाग लेकर अवलेह बनाकर सेवन करनेसे समुद्रके वेगके समान भी वेगवाले दस्त रुक जाते हैं ॥ १४६ ॥

इति अतिसाराधिकारः।

अथ ज्वरातिसाराधिकारः।

अथ ज्वरातिसारनिदानम्।

ज्वरातिसारयोरुक्तं निदानं यत्पृथक्पृथक्। तस्माज्ज्वरातिसारस्य निदानं नोदितं पुनः ॥ १ ॥

ज्वरका निदान और अतिसारका निदान पृथक् कह आये हैं, इसकारण यहां ज्वरसहित अति सारके निदानको दुबारा कहनेकी आवश्यकता नहीं है. ज्वरका निदान और अतिसारका निदान मिलकर ज्वरातिसारका निदान होता है ॥ १ ॥

अथ ज्वरातिसारचिकित्सा।

ज्वरातिसारयोरुक्तं भेषजं यत्पृथक्पृथक्। न तन्मिलितयोः कार्यमन्योन्यं वर्द्धयेद्यतः ॥ २ ॥

ज्वरमें और अतिसारमें जो पृथक् पृथक् औषधि कही है, वह औषधि ज्वरातिसारमें नहीं सेवन करनी चाहिये, क्योंकि ज्वरोक्त औषधि अतिसारको बढानेवाली है और अतिसारोक्त औषधि ज्वरको बढानेवाली है ॥२॥

अयमभिप्रायः—ज्वरहरमनुलोमनं भवति अति सारहरं स्तम्भनं भवति अतः परस्परविरुद्धत्वात्पृथगुक्तं भेषजं मिलितयोर्न कार्यम् ॥ अनुलोमनं ज्वरघ्नं ग्राहकमतिसारहृद्भवति । पृथगुक्तमौषधं तज्ज्वरातिसारे विरुद्धमन्योन्यम् ॥ ३ ॥ अतस्तौ प्रतिकुर्वीत विशेषोक्तचिकित्सितैः ॥ ४ ॥

भावार्थ यह है कि, ज्वरनाशक औषधि मलको अनुलोमन करती है और अतिसार-नाशक औषधि मलरोधक है, इस कारण पर-स्पर विरुद्ध होनेसे ज्वरके लिये और अति-सारके लिये अलग अलग कही हुई औषधि मिलेहुए ज्वर और अतिसारमें सेवन नहीं करनी चाहिये। कहा भी है कि, " ज्वरको हरनेवाली औषधि अनुलोमन है और अति-सारको हरनेवाली औषधि ग्राही है, इस कारण इन दोनों रोगोंके लिये अलग २ कही हुई औषधि ज्वर और अतिसार दोनों मिले हुएमें अन्योन्य विरुद्ध होती है " इसलिये ज्वर-सहित अतिसारमें विशेष कही हुई चिकित्सासे प्रतिकार करना चाहिये ॥ २ ॥ ४ ॥

लंघनमेकं मुक्त्वा न चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः । समुदीर्णदोषनिचयं तत्पाचये-त्तथा शमयेत् ॥ ५ ॥ लंघनमुभयोरुक्तं मिलिते कार्यं विशेषतस्तदनु । उत्पल-षष्ठकसिद्धं लाजामण्डादिकं सकलम् ॥६॥

बलवान् अतिसारवाले रोगीके लिये लंघ-नके अतिरिक्त अन्य कोई औषधि नहीं है। लंघन वृद्धिको प्राप्त हुए दोषोंका शमन करता है और पाचन भी करता है, इसलिये मिले हुए ज्वर और अतिसारमें लंघन ही कराने चाहिये, पश्चात् उत्पल क्काथ और लाजमण्डादि क्वाथ इत्यादि विशेष चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथोत्पलषष्ठक्वाथः

पृष्टिपर्णीबलाविल्वधनिकानागरोत्पलैः । ज्वरातिसारयोर्वाऽपि पिबेत्साम्लं शृतं नरः ॥ ७ ॥

अत्र लाजमण्डाद्यपेक्षया वाशब्दः । अतिसारे पुरीषातिप्रवृत्त्या अम्लत्वञ्च दाडिमरसादिना कर्तव्यम् ॥

पिठवन, खिरैंटी, बेलगिरी, धनियाँ, सोंठ और कमल इनका क्वाथ बनाकर खट्टा करके पीवे तो ज्वर और अतिसार नष्ट होता है। अतिसारमें मलकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है, इस कारण इस क्वाथको अनार आदिके रससे खट्टा करना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ कणादिक्वाथः ।

कणाकरिकणालाजक्काथो मधुसितायुतः। पीतो ज्वरातिसारस्य तृष्णामाशु विना-शयेत् ॥ ८ ॥

पीपल, गजपीपल और खीलोंका क्वाथ बनाकर सहत और शक्कर डालकर पीवे तो ज्वरसहित अतिसारकी तृषा शान्त होती है ॥८

अथ नागरादिक्वाथः ।

नागराऽतिविषामुस्ताऽमृताभूनिम्बवत्स-कैः । क्काथःसर्वज्वरान् हन्ति चातिसारं सुदारुणम् ॥ ९ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, गिलोय, चिरा-यता और इन्द्रजौ इनका क्वाथ सर्व प्रकारके ज्वरोंको और महादारुण अतिसारको नष्ट करता है ॥ ९ ॥

अथ बृहद्गुडूच्यादिक्वाथः ।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीबिल्वाह्ववाल-कैः । पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनोशीरप-र्पटैः ॥१०॥ पिबेत्कषायं सक्षौद्रं ज्वरा-तिसारनाशनम् । हृल्लासारुचितृड्दाहव-मीनाश्च निवृत्तये ॥ ११ ॥

गिलोय, अतीस, धनियाँ, सोंठ बेलगिरी नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढ, चिरायता, इन्द्रजौ, लालचन्दन, खस और पित्तपापडा इनका क्वाथ बनाकर सहत डालकर पीनेसे ज्वरसहित अतिसार नष्ट होता है तथा उब-काई, अरुचि, तृषा, दाह और वमन ये सभी दूर होते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

अथोत्पलादिचूर्णम् ।

उत्पलं दाडिमत्वक् च पद्मकेशरमेव

च । पीतं तण्डुलतोयेन ज्वरातिसारनाशनम् ॥ १२ ॥

कमल, अनारकी छाल और कमलकेसर इनका चूर्ण करके चावलोंके जलके साथ पीनेसे ज्वरातिसार नष्ट होता है ॥ १२ ॥

अथ बिल्वादिक्वाथः।

बिल्वबालकभूनिम्बगुडूचीमुस्तवत्सकैः।
कषायः पाचनः शोथज्वरातिसारनाशनः ॥ १३ ॥

बेलगिरी, सुगन्धवाला, चिरायता, गिलोय, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका क्वाथ पाचन है तथा सूजन और ज्वरातिसारको दूर करता है ॥ १३ ॥

अथ नागरादिक्वाथः।

नागराऽतिविषाबिल्वगुडूचीमुस्तवत्सकैः।
कषायः पाचनः शोथज्वरातिसारनाशनः ॥ १४ ॥

सोंठ, अतिस, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका क्वाथ पाचन है तथा सूजन और ज्वरसहित अतिसारको हरता है ॥ १४ ॥

अथ दशमूलीक्वाथः।

दशमूलीकषायेण विश्वामक्षसमां पिबेत्।
ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ १५ ॥

इति ज्वरातिसाराधिकारः।

दशमूलके क्वाथमें एक तोलाभर सोंठका चूर्ण डालकर ज्वर अतिसार और सूजनयुक्त संग्रहणी रोगमें पीना चाहिये ॥ १५ ॥

इति ज्वरातिसाराधिकारः।

अथ ग्रहणीरोगाधिकारः।

अथ ग्रहणीसम्प्राप्तिः।

अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः।
भूयः सन्दूषितो वह्निर्ग्रहणीमपि दूषयेत् ॥ १ ॥

अपि शब्दात् अजातातिसारस्यापि ग्रहणीरोगः स्यात्।

अतिसारके निवृत्त होनेपर मदाग्निवाले और अपथ्य पदार्थोंके सेवन करनेवाले मनुष्योंके फिर अग्नि दूषित होकर ग्रहणीको भी दूषित करती है। मूलमें 'अपि' कहनेसे जाना जाता है कि, जिसको अतिसार नहीं हुआ हो, उसको भी ग्रहणी रोग होता है ॥१॥

अथ ग्रहणीस्वरूपम्।

ग्रहणी अग्निधरा कला। यत आह चरके- " अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता। अपक्वं धारयत्यन्नं पक्वं त्यजाति चाप्यधः ॥ २ ॥ " षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्त्तिता। आमपक्वाशयान्तःस्था ग्रहणी साऽभिधीयते ॥ ३ ॥ ग्रहण्या बलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीबलः। तस्मादग्नौ प्रदुष्टे तु ग्रहण्यपि विदुष्यति। तस्मात्कार्यः परिहारो ह्यतिसारे विरिक्तवत् ॥ ४ ॥

विरिक्तेनेव विरिक्तवत् ॥

ग्रहणी अग्निधरा नामवाली कला है, उसको चरकमें इस प्रकार कहा है कि-"अग्निके रहनेका जो स्थान है, वह अन्नको ग्रहण करता है इसी कारण उसको 'ग्रहणी' कहा जाता है। यह ग्रहणी-अपक्व अन्नको धारण करती है और पक्व अन्नको नीचे निकालती है" ॥ सुश्रुतमें भी कहा है कि-"आमाशय और पक्वाशयके बीचमें रहनेवाली जो छठी पित्तधरानामवाली कला कही है, उसको ग्रहणी कहते हैं, ग्रहणीका बल अग्नि है और उस अग्निका भी बल ग्रहणी है, इस लिये अग्नि भी ग्रहणी कही जाती है, अतः एव अग्निके दूषित होनेसे ग्रहणी भी दूषित होती है" ॥ २-४ ॥

अथ ग्रहणीरोगसंख्यापूर्वक-
सामान्यलक्षणम् ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यन्तमूर्च्छितैः । सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥ ५ ॥ पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् । ग्रहणी रोगमाहुस्तमायुर्वेद-विदो जनाः ॥ ६ ॥

अत्यन्त दूषित हुए, वात, पित्त, कफ और तीनों दोषोंसे दूषित हुई ग्रहणी खाये हुए अन्नादिकको बारंबार कच्चाही अथवा पका भी निकालती है, इसमें पीडायुक्त, दुर्गन्ध सहित, बारंबार बँधा हुआ और बारंबार पतला मल गिरता है, इस रोगको आयुर्वेदके जाननेवाले विद्वान् ग्रहणी कहते हैं ॥ ५-६ ॥

अतिसारे द्रवधातुप्रवृत्तिः ग्रहण्यान्तु बद्ध-स्यापि मलस्य प्रवृत्तिरिति तयोर्भेदः ॥

अतिसारमें द्रव धातुकी प्रवृत्ति होती है और ग्रहणीमें बँधा हुआ मल उतरता है, इतना ही अतिसार और संग्रहणीमें भेद है ॥

वातोत्पन्नग्रहणीनिदानं सम्प्राप्ति-
पूर्वकलक्षणञ्च ।

कटुतिक्तकषायातिरूक्षशीतलभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥७॥ मारुतः कुपितो वह्निं सञ्छाद्य कुरुते गदम् । तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खराङ्गता ॥ ८ ॥ कण्ठास्यशोषः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः । पार्श्वोरुवंक्षण-ग्रीवारुगभीक्ष्णं विषूचिका ॥ ९ ॥ हृत्पीडा कार्श्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकी र्तिता । गृद्धिः सर्वरसानाञ्च मनसः सदनं तथा ॥ १० ॥ जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च । स वातगुल्म-हृद्रोगप्लीहाशङ्की च मानवः ॥ ११ ॥ चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेन वत् । पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासाश्वासा-र्दितोऽनिलात् ॥ १२ ॥

प्रमितम्--परिमितम् । गदम्--ग्रहणीगदम् । शुक्तपाकम्--अम्लपाकम् ।

चरपरे, कडवे और कसैले भोजन करनेसे, अत्यन्त रूखे और शीतल भोजन करनेसे, विरुद्धभोजन करनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, अधिक भोजन करनेसे अजीर्णमें भोजन करनेसे, उपवास करनेसे, अथवा अल्प भोजन करनेसे, अधिक मार्गके चलनेसे मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे और अत्यन्त मैथुन करनेसे, कुपित हुए वातादि दोष अग्निको आच्छादित करके ग्रहणीरोगको उत्पन्न करते हैं । ऐसे रोगीका अन्न अत्यन्त दुःखके साथ पचे और उसका पाक खट्टा हो, शरीरमें खरदरापन हो, कण्ठ और मुख सूखे क्षुधा और तृषा लगे, अँधेरा आवे, कानोंमें शब्द हो, पसली, जंघा, वंक्षण और कंठमें पीडा हो, विषूचिका हो अर्थात् दोनों द्वारसे कच्चे अन्नकी प्रवृत्ति होवे, हृदयमें पीडा हो, देहमें कृशता और दुर्बलता हो, बिसरता, पेटमें कतरनेके समान पीडा हो, सम्पूर्ण रसों को खानेकी इच्छा हो, मनमें ग्लानि हो, भोजन किये हुए अन्नके जीर्ण होनेपर अफारा हो और भोजन करनेके पश्चात् सुख उत्पन्न हो तथा इस वातग्रहणीवाले रोगीको वातगुल्म, हृदयरोग और प्लीहाकी आशंका हो, वातके द्वारा खाँसी और श्वासकी पीडा हो और बहुत देरमें अत्यन्त दुःखसे पतला सूखा, थोडा कच्चा, शब्दयुक्त और झागोंदार मल उतरता है ॥ ७-१२ ॥

अथ पित्तजग्रहणीनिदानं सम्प्राप्ति-
पूर्वकलक्षणं च ।

कटुतिक्तविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्ब-णम् । आप्लावयद्धन्त्यनलं जलं तप्तमि-वानलम् ॥ १३ ॥ सोऽजीर्णं पीतनी-लाभं पीताभः सार्यते द्रवम् । अत्यम्लो-

द्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृषार्दितः ॥ १४ ॥

आप्लावयत्--अमज्जयत् ॥

चरपरे, कडवे, दाहकारक, खट्टे और क्षारादि पदार्थोंके सेवन करनेसे बढा हुआ पित्त जिस प्रकार गरम जल अग्निको बुझादेता है, उसी प्रकार जठराग्निको भी नष्ट करदेता है । इस प्रकार जिसकी जठराग्नि नष्ट होगई है वह पीला पड जाता है और उसको अजीर्णसे नीला, पीला और पतला मल उतरता है । वह मनुष्य अत्यन्त खट्टी डकारोंसे, हृदय और गलेकी दाहसे अरुचि और तृषासे पीडित होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

ननु पित्तमग्निगुणयुक्तं तत्कथमग्निं हन्ति? इत्याह--जलं तप्तमिवानलमिति । यथा अग्निगुणयुक्तमपि तप्तं जलम् अनलं हन्ति तथा पित्तमपि हन्ति । सार्यते, अत्र पित्तेनेति कर्तृपदमध्याहरणीयम् ॥

किसीको शंका हो कि--"पित्त तो आग्नेय गुणवाला है, वह अग्निको किस प्रकार नष्ट कर सकता है ?" तो उसका उत्तर यह है कि--"जिस प्रकार गरम जल अग्निके गुणोंवाला होनेपर भी अग्निको भिजोकर बुझा देता है, उसी प्रकार पित्त अग्निके गुणोंवाला होनेपर भी जठराग्निको भिजोकर नष्ट कर देता है ॥"

कफोत्पन्नग्रहणीनिदानं सम्प्राप्ति-
पूर्वकलक्षणं च ।

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिमैथुनात् । भुक्त मात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः ॥ १५ ॥ तस्यान्नं पच्यते दुःखं हृल्लासच्छर्द्यरोचकाः । आस्योपदेहमाधुर्यकासष्ठीवनपीनसाः ॥ ॥ १६ ॥ हृदयं मन्यते स्तब्धमुदरं स्तिमितं गुरु । दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ॥ १७ ॥ भिन्नामश्लेष्मसंश्लिष्टगुरुवर्चःप्रवर्तनम् । अकृशस्यापि दौर्बल्यमालस्यश्च कफात्मके १८

भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद् । भुक्तेत्यत्र अध्यवसितादित्वात्कर्त्रर्थे क्तः । तेन भुक्तवतः सद्यः शयनादित्यर्थः । आस्योपदेहः-मुखस्य कफेन लिप्तत्वम् । स्तिमितं-विबद्धं निश्चलमिति यावत् । स्त्रीषु अहर्षणं रिरंसाया अभावः । भिन्नं-स्फुटितम् । आममपक्वं श्लेष्मसंश्लिष्टम् तत एव गुरु वर्चः--पुरीषंतस्य प्रवृत्तिः ॥

भारी, अत्यन्त चिकने और शीतल आदि भोजन करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे और भोजनपर भोजन करतेसे, खाकर तत्काल सो रहनेसे, कुपित हुआ कफ जठराग्निको नष्ट करता है, ऐसे रोगीका अन्न अत्यन्त कठिनतासे और दुःखके साथ पचता है, उसे उबकाई आवे, वमन, अरुचि हो, कफसे मुख चिपकासा रहे, मुखमें मीठापन, खांसी आवे, वारंवार थूके, जुकाम हो; हृदय जकडा हो, पेट भारी और जड हो, डकार दुष्ट और मीठी आवे, ग्लानि हो, स्त्रीप्रसंगमें अनिच्छा हो, विष्ठा पतली, कच्ची, कफयुक्त और भारी निकले, शरीरके पुष्ट होनेपर भी निर्बलता हो और आलस्य हो ॥ १५-१८ ॥

अथ त्रिदोषोत्पन्नग्रहणीनिदानं-
सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणं च ।

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे । त्रिदोषं निर्दिशेदेवं तेषां वक्ष्यामि भेषजम् ॥ १९ ॥

वातकी ग्रहणीमें, पित्तकी ग्रहणीमें और कफकी ग्रहणीमें जो निदान और जो लक्षण अलग अलग कहे हैं, यदि वे सब निदान और लक्षण हों तो उसको त्रिदोषजग्रहणीरोग जानना, उन सबका निदान और लक्षण पहिले कह चुके हैं ॥ १९ ॥

अथ ग्रहणीरोगभेदः संग्रहणी ।

द्रवं घनं सितं स्निग्धं सकटीवेदनं शकृत् । आमं बहु सुपैच्छिल्यं सशब्दं

मन्दवेदनम् ॥ २० ॥ पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यश्चापि विमुञ्चति । अन्त्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं भवेत् ॥२१॥ दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं च गच्छति । दुर्विज्ञेया दुर्निवारा चिरकालानुबन्धिनी । सा भवेदामवातेन संग्रह ग्रहणी मता ॥ २२ ॥

स्निग्धम्-स्नेहसदृशम् । दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं च गच्छतीति व्याधेरेव प्रभावः ॥

पन्द्रह दिनमें, एक महीनेमें, दश दिनमें अथवा नित्य पतला, गाढा, थोडा चिकना, कमरकी पीडायुक्त, कच्चा, बहुत, पिच्छिल, शब्दयुक्त और अल्पवेदना सहित मल उतरे तथा आँतें बोलें, आलस्य हो, दुर्बलता हो और ग्लानि हो इसको संग्रहणी रोग कहते हैं । यह रोग दिनमें कुपित होता है और रात्रिमें शांत होता है । यह दुर्विज्ञेय (कठिनतासे जानी जाय) और दुर्निवार तथा बहुत कालतक रहनेवाली आमवात संग्रहसे संग्रहणी होती है । इसका दिनमें कोप और रात्रिमें शांति होना, यह व्याधिका प्रभाव जानना॥२०-२१॥

अथ ग्रहणीरोगभेदः-घटीयन्त्रम् ।

प्रसुप्तिः पार्श्वयोः शूलं तथा जलघटीध्वनिः । तं वदन्ति घटीयन्त्रमसाध्यं ग्रहणीगदम् ॥ २३ ॥

प्रसुप्तिः-प्रकर्षेण शयनम् । तथा जलघटीध्वनिः-अधोमुखीकृताया जलघटया नलनिःसरणे यथा ध्वनिः तथा मलनिर्गमसमये भवति । यदा गदोऽयं देहं व्याप्नोति तदा तस्य जीवितं गच्छति ॥

निद्रा अधिक आवे, पसलियोंमें शूल हो, जिस प्रकार रहटके धडेमेंसे जल निकलते समय शब्द होता है, उसी प्रकार जिसमें मल निकलनेके समय धगूधग् शब्द होता हो, वह 'घटीयंत्र' नामसे प्रसिद्ध असाध्य ग्रहणी रोग जानना, जब यह रोग शरीरमें व्याप्त हो जाता है, तब प्राण नष्ट हो जाते हैं ॥ २३ ॥

अथ सामान्यग्रहणीरोगचिकित्सा ।

ग्रहणीमाश्रितं रोगमजीर्णवदुपाचरेत् । लंघनैर्दीपनीयैश्च सदाऽतिसारभेषजैः ॥ २४ ॥ दोषं सामं निरामञ्च विद्यादत्रातिसारवत् । अतिसारोक्तविधिना तस्यामञ्च विपाचयेत् ॥ २५ ॥ पेयादि पटु लघ्वन्नं पञ्चकोलादिभिर्युतम् । दीपनानि च तक्रं च ग्रहण्यां योजयेद्भिषक् ॥ २६ ॥ कपित्थबिल्वचाङ्गेरी तक्रदाडिमसाधिता । यवागूः पाचयत्यामं शकृत् संवर्तयत्यपि ॥ २७ ॥

संवर्तयति-घनीकरोति ।

ग्रहणीमें रहनेवाले रोगकी लंघनोंसे और अग्निको दीप्त करनेवाली अतिसारकी औषधियोंसे अजीर्णके समान चिकित्सा करनी चाहिये । इस रोगमें दोषोंकी समता और निरामता अतिसारके समान जाननी । और अतिसारमें कही हुई विधिसे आमको पचावे । वैद्य ग्रहणी रोगमें पंचकोल (पीपल, पीपलामूल चव्य, चीता और सोंठ) आदिसे संयुक्त हलका अन्न और पेयादि अग्निको दीप्त करनेवाले पदार्थ और मट्ठा इनका प्रयोग करे । कैथ, बेलगिरी, चांगेरी, (खट्टीनोनियां) मट्ठा और अनारका रस इनके द्वारा पकाई, हुई यवागू आमको पचाती है और मलको भी गाढा करती है ॥ २४-२७ ॥

अथ गोदधिगुणाः ।

गव्यं दध्युत्तमं बल्यं पाके स्वादु रुचिप्रदम् । पवित्रं दीपनं स्निग्धं पुष्टिकृत्पवनापहम् । उक्तं दध्नामशेषाणां मध्ये गव्यं गुणाधिकम् ॥ २८ ॥

गायका दही-उत्तम, बलकारक, पाकमें मधुर, रुचिकारक, पवित्र. अग्निको दीप्त करनेवाला, स्निग्ध, पुष्टिकारक, वातनाशक और सर्व प्रकारके दहियोंमें गायका दही अधिक गुणकारक है ॥ २८ ॥

अथ माहिषदधिगुणाः।

माहिषं दधि सुस्निग्धं श्लेष्मलं वातपित्तनुत्। स्वादुपाकमभिष्यन्दि वृष्यं गुर्वस्रदूषणम् ॥ २९ ॥

भैंसका दही-अत्यन्त चिकना, कफकारक, वातपित्तनाशक, स्वादुपाकी, अभिष्यन्दि, वृष्य, भारी और रुधिरको दूषित करता है २९

अथाजादधिगुणाः।

आजं दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोषत्रयापहम्। शस्यते श्वासकासार्शःक्षयकार्श्येषु दीपनम् ॥ ३० ॥

उत्तमं ग्राहि-ग्रहण्यामतिश्रेष्ठमित्यर्थः ॥

बकरीका दही-उत्तम, मलरोधक, हलका, त्रिदोषनाशक, अग्निको दीप्त करनेवाला तथा श्वास, खांसी, बवासीर, क्षय और कृशतामें हितकारी है। बकरीका दही श्रेष्ठ और ग्राही होनेके कारण ग्रहणी रोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ३० ॥

अथ तक्रभेदाः।

तक्रन्तु घोलमथितोदश्वित्तक्रप्रभेदतः सुश्रुताद्यैर्मुनिश्रेष्ठैश्चतुर्द्धा परिकीर्तितम् ॥ ३१ ॥ ससरं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम। तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्विच्चार्द्धवारिकम् ॥ ३२ ॥ वातपित्तहरं घोलं मथितं कफपित्तनुत्। उदश्वित्कफदं बल्यं श्रमघ्नं परमं मतम् ३३

सुश्रुत आदि मुनियोंने तक्रके चार भेद कहे हैं। तक्र, घोल, मथित, और उदश्वित् इन चारोंके बनानेकी रीति इस प्रकार समझनी- जो मलाई युक्त विना जलके दही मथागया हो, उसको घोल कहते हैं। जो मलाई निकाल कर विना जलके मथागयाहो उसको मथितकहते हैं। जिसमें चौथाई भाग जल डालकर मथागया हो, उसको तक्र कहते हैं। जिसमें आधा-जल डालकर मथागया हो, उसको उदश्वित् कहते हैं। तहाँ घोल-वात, पित्तनाशक है। मथित-कफ और पित्तको दूर करनेवाला है और उदश्वित्-कफकारक है तथा बलदायक, श्रमविनाशक और परमहितकारक है ॥ ३१ ॥ ३३ ॥

अथ तक्रगुणाः।

तक्रं ग्राहि काषायाम्लं मधुरं दीपनं लघु। वीर्योष्णं बलदं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् ॥३४॥ यान्युक्तानि दधीन्यष्टौ तद्गुणं तक्रमादिशेत्। ग्रहण्यादिमतां तक्रं पथ्यं संग्राहि लाघवात् ॥ ॥ ३५ ॥ वातघ्नमम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कं त्वविदाहि च। किञ्च स्वादुविपाकं च अन्ते पित्तप्रकोपनम्। कषायोष्णविकासित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे हितम् ॥ ३६ ॥

तक्र अर्थात् चौथाई भाग जल डालकर मथा हुआ मट्ठा-मलरोधक, कसैला, खट्टा, मधुर, अग्निको दीप्तकरनेवाला, हलका, उष्णवीर्य, बलकारक, वृष्य, तृप्तिकारक और वातविनाशक है। आठ प्रकारके जो दही कहे हैं, उनके तक्रमें भी उन्हींके अनुसारगुण जानने। तक्र-ग्रहणी आदि रोगवालोंको पथ्य हैं, हलका होनेके कारण मलरोधक है, अम्ल और सान्द्र होनेके कारण वातनाशक है। ताजा अर्थात् तत्कालका मथा हुआ तक्र दाहकारक नहीं है, पाकमें मधुर है और अन्तमें पित्तको कुपित करता है। यह कसैला, उष्ण, विकासी संधियोंको शिथिल करनेवाला और रूक्ष होनेके कारण कफको भी दूर करता है ॥ ३४ ॥ ३६ ॥

निः सारितघृततक्रगुणाः।

तक्रमुद्धृतसर्वाज्यं पथ्यं लघु विशेषतः। स्तोकोद्धृतघृतं तस्माद्गुरु वृष्यं कफावहम्। अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु पुष्टिबलप्रदम् ॥ ३७ ॥

जिसमेंसे सम्पूर्ण घी निकाल लिया हो, ऐसा मठ्ठा पथ्य और विशेष करके हलका है। जिसमेंसे थोडा थोडा घी निकाला हो, ऐसा तक्र-भारी, वीर्यजनक और कफकारक है। जिसमेंसे कुछ भी घी नहीं निकाला हो, ऐसा तक्र-गाढा, भारी, पुष्टिकारी और बलवर्द्धक है ॥ ३७ ॥

अथ रोगविशेषे तक्रविशेषः।

वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं पित्ते स्वाद्वम्लशर्करम्। पिबेत्तक्रं कफे चापि क्षारत्रिकटुसंयुतम् ॥ ३८ ॥ हिङ्गुजीरयुतं घोलं सैन्धवेनावधूलितम्। ग्रहण्यर्शोऽतिसारघ्नं भवेद्वातहरं परम्। रोचनं पुष्टिदं बल्यं वस्तिशूलविनाशनम् ॥ ३९ ॥

वातरोगमें-खट्टे तक्रमें सैंधानिमक डालकर सेवन करना चाहिये। पित्तरोगमें-खट्टा और मीठा तक्र मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। कफके रोगमें-जवा खार आदि और त्रिकुटेका चूर्ण तक्रमें डालकर पीना चाहिये। हींग, जीरा और सैंधानिमक मिश्रित घोल नामवाला तक्र-संग्रहणी बवासीर अतिसार और वातका नाशक है, रुचिकारक, पुष्टिकारक बलदायक और वस्तिकी पीडाको शान्त करता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ पक्वापक्वतक्रगुणाः।

तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च। पीनसश्वासकासादौ पक्वमेव विशिष्यते ॥ ४० ॥

अपक्व तक्र-कोठेके कफको दूर करता है और कण्ठमें कफको उत्पन्न करता है, इसलिये पीनस, श्वास और कासादि रोगोंमें पक्व तक्र ही अर्थात् औटाई हुई छांछही देनी-चाहिये ॥ ४० ॥

अथ तक्रनिषेधः।

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले। न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके ॥ ४१ ॥

तक्र-ग्रीष्मऋतुमें घावके रोगमें, दुर्बलतामें, मूर्च्छामें, भ्रममें, दाह, और रक्तपित्तरोगमें नहीं देना चाहि ॥ ४१ ॥

अथ तक्रप्रशंसा।

न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः। यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥४२॥

तक्रको सेवन करनेवाला मनुष्य कदापि रोगी नहीं होता और तक्रसे जलाये हुए रोग फिर कभी उत्पन्न नहीं होते, जिस प्रकार स्वर्गमें देवताओंको अमृत सुखकारक है, उसी प्रकार पृथिवीमें मनुष्योंके लिये छांछ हितकारी है ॥ ४२ ॥

अथ षड्यूषणम्।

मुद्गयूषं रसं तक्रं धान्यजीरकसंयुतम्। सैन्धवेनान्वितं दद्यात्षड्यूषणमितीरितम् ॥ ४३ ॥

रसम्--लघु ग्राहि मांसरसम् ॥

मूंगका यूष, हलका तथा दस्तको रोकनेवाला मांसका रस और धनिया, जीरा तथा सैंधानमक इनसे संयुक्त तक्रको षडयूषण कहते हैं, यह षडयूपण ग्रहणी रोगमें हितकारी है ॥ ४३ ॥

अथ लाईचूर्णम्।

कर्षं गन्धकमर्द्धपारदमुभे कुर्याच्छुभां कज्जलीं द्व्यक्षं त्र्यूषणतश्च पञ्चलवणं सार्द्धञ्च कर्षं पृथक्। भृष्टं हिङ्गु च

जीरकद्वययुतं सर्वार्द्धभङ्गान्वितं खादेट्टङ्क-मितं प्रवृत्तिगदवांस्तक्रेण बिल्वेन वा ॥ ४४ ॥

शुद्ध गंधक एक तोला और शुद्ध पारा आधा तोला लेकर दोनोंकी सुन्दर कज्जली बनावे, फिर उसमें सोंठ, मिरच, पीपल का चूर्ण ३ तोले, पांचों नोंन डेढ तोला, भुनी हींग और दोनों जीरोंका चूर्ण प्रत्येक एक एक तोला और सबसे आधी भांग मिलावे तक्रके साथ अथवा बेलके गूदेके साथ इस चूर्णको चौबीस रत्तीभर सेवन करे, यह संग्रहणीरोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ४४ ॥

अथ जातीफलादिचूर्णम् ।

जातीफललवङ्गैलापत्रत्वङ्नागकेशरैः । कर्पूरचन्दनतिलत्वक्क्षीरीतगरामलैः ॥ ॥ ४५ ॥ तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः । शुण्ठीविडङ्गमरिचैः समभागं विचूर्णितैः ॥ ४६ ॥ यावन्त्येतानि सर्वाणि दद्याद्भङ्गाश्च तावतीम् । सर्वचूर्णसमां कृत्वा प्रदेया शुभ्रशर्करा ॥ ४७ ॥ कर्षमात्रमिदं खादेन्मधुना प्लावितं जनः । नाशयेद् ग्रहणीं श्वासं क्षयं कासमरोचकम् ॥ ४८ ॥

जायफल, लौंग, इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, कपूर, चन्दन, सफेद तिल, वंशलोचन, तगर, आमले, तालीसपत्र, पीपल हरड, कलौंजी, चीता, सोंठ, वायविडंग और कालीमिरच ये सब औषधि समान भाग लेवे और सबकी बराबर भांग लेवे, सबको एकत्र बारीक चूर्ण करे और सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिलावे इस चूर्णमेंसे प्रतिदिन एक तोलाभर लेकर सहतमें मिलाकर भक्षण करे तो ग्रहणी खाँसी, क्षय, श्वास और अरुचि दूर होती है ॥ ४५ ॥ ४८ ॥

अथ चित्रकादिवटिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं क्षारो लवणपञ्चकम् । व्योषं हिंग्वजमोदा च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥४९॥ वटिका मातुलुङ्गस्य रसैर्वा दाडिमस्य च । कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥५०॥

अजमोदा--यवानिका ॥

चीता, पीपलामूल, जवाखार, पांचों नमक, त्रिकुटा भुनी हींग, अजमोद और चव्य, इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे, इस चूर्णको बिजौरे नींबूके रसमें अथवा अनारके रसमें खरल करके गोली बनालेवे । यह गोली आमको पचाती है और जठराग्निको दीप्त करती है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ विल्वकल्कः ।

श्रीफलशलाटुमज्जा नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः । ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा शीलितो जयति ॥ ५१ ॥

श्रीफलशलाटु–बिल्वस्य आमं फलम् । गुडभागद्वयम् ॥

कच्चे बेलका गूदा और सोंठका चूर्ण ये दोनों बराबर लेवे और इनमें गुड मिलाकर कल्क करे । इसको सेवन करके इसपर तक्रके साथ भोजन करे, इससे अत्यन्त उग्र संग्रहणी भी दूर होजाती है ॥ ५१ ॥

अथ वार्ताकुगुटिका ।

चतुष्फलं सुधाकाण्डं त्रिफला लवणत्रयम् । वार्ताकोः कुडवं चार्कमूलाद्बिल्वं तथाऽनलात् ॥ ५२ ॥ दग्ध्वा द्रवेण वार्ताकोर्गुटिका भोजनान्तरे । भुक्ता भुक्तं पचत्याशु नाशयेद् ग्रहणीगदम् । कासं श्वासं तथाऽर्शांसि विषूचीश्च हृदामयम् ॥ ५३ ॥

थूहरकी लकडी सोलह तोले, हरड, बहेडा, आमला, साँभर–सैंधा–काला नमक ये प्रत्येक भी सोलह सोलह तोले लेवे, बैंगन, आककी जड, बेलगिरी और चीता प्रत्येक एक एक

कुडवपरिमाण लेवे, सबको एकत्र आगमें जलालेवे फिर महीन पीसकर बैंगनके रसमें गोली बनालेवे। भोजनके अन्तमें इन गोलियोंको सेवन करनेसे भोजन तत्काल जीर्ण हो जाता है तथा संग्रहणी, खांसी, श्वास, बवासीर, विपूचिका और हृदयरोग नष्ट होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

मुस्तकादिचूर्णम् ।

मुस्तकातिविषाबिल्वकौटजं सूक्ष्मचूर्णितम् । मधुना च समालीढं ग्रहणीं सर्वजां जयेत् ॥ ५४ ॥

कौटजः--इन्द्रयवः ।

नागरमोथा, अतीस, बेलगिरी और इंद्रजौ इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके सहत मिलाकर चाटे तो त्रिदोषजन्य संग्रहणी दूर होती है ॥ ५४ ॥

अथ सर्जरसचूर्णम् ।

श्वेतो वा यदि वा रक्तः सुपक्वो ग्रहणी गदः । गुडेनाधिकसर्जेन भक्षितेनाशु नश्यति ॥ ५५ ॥

एक भाग गुडमें दो भाग रालका चूर्ण डालकर भक्षण करे तो सफेद अथवा लाल और पका हुआ संग्रहणीरोग तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥

अथाजादुग्धम् ।

बिल्वाब्दशक्रयववालकमोचसिद्धमाजंपयः पिबति यो दिवसत्रयं ना । सोऽति प्रवृद्धचिरजं ग्रहणीविकारं सामं सशोणितमसाध्यमपि क्षिणोति ॥ ५६ ॥

बेलगिरी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला और मोचरस इनको बकरीके दूधमें डालकर पकावे। फिर उस दूधको तीनदिनतक पीवे तो अत्यन्त बढी हुई, बहुत पुरानी और रुधिरयुक्त तथा असाध्य संग्रहणी भी नष्ट होजाती है ॥ ५६ ॥

अथ कल्याणगुडः ।

प्रस्थत्रयं त्वामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वाऽर्द्धतुलां गुडस्य । चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योषैः सकृष्णाहवुषाऽजमोदैः ॥ ५७ ॥ विडङ्गसिन्धुत्रिफलायवानीपाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः । दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ ५८ ॥ तं भक्षयेदक्षपलप्रमाणं यथेष्टचेटस्त्रिसुगन्धियुक्तम् । अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ ५९ ॥ शाम्यन्ति चायं चिरमन्तरग्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः । स्त्रीणान्तु वन्ध्यामयनाशनः स्यात्कल्याणको नाम गुडः प्रसिद्धः ॥ ६० ॥ तैले मनाक् त्रिवृदभृष्टत्रिफलयाः पलत्रयम् । सिद्धे निधेयमत्रैव गुडे कल्याणपूर्वके ॥ ६१ ॥

आमलोंका रस तीन प्रस्थ, उत्तम शुद्ध गुड दोसौ तोले पीपलामूल, जीरा, चव्य, सोंठ, मिरच, पीपल, कालाजीरा, हाऊबेर, अजमोद, वायविडंग, सैंधानिमक हरड, बहेडा, आमला, अजवायन, पाढ, चीता और धनियां, प्रत्येकका, चूर्ण चार चार तोले, निसौत का चूर्ण ८ पल और तिलका तेल ८ पल लेकर इस चूर्णको आमलेके रसमें मिलाकर ऊपर लिखी हुई ओषधियोंका चूर्ण उसमें डालकर विधिपूर्वक पाक बना लेवे। प्रतिदिन इसमेंसे चार तोले लेकर कुछ दालचीनी, इलायची, तेजपातका चूर्ण मिलाकर भक्षण करे। इसको सेवन करनेसे सर्वप्रकारकी ग्रहणी, श्वास, खांसी, स्वरभेद और सूजन दूर होती है तथा बहुत दिनोंकी नष्ट हुई अग्नि फिरसे दीप्त होती है और पुरुषत्व बढता है। यह कल्याणगुड स्त्रियोंके वंध्यापनको नष्ट करता है। इस कल्याणगुडमें निसोंतका चूर्ण और त्रिफलेका चूर्ण तेलमें भूनकर डालना चाहिये ॥ ५७-६१ ॥

अथ महाकल्याणगुडः।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं गजपिप्पली। धान्यकश्च विडङ्गानि यवानी मरिचानि च ॥६२॥ त्रिफला चाजमोदा च नीलिनी जीरकस्तथा। सैन्धवं रोमकश्चापि सामुद्रं रुचकं विडम् ॥ ६३ ॥ आरग्वधश्च त्वक्पत्रं सूक्ष्मैला चोपकुञ्चिका। शुण्ठी शक्रयवाश्चैव प्रत्येकं कर्षसम्मिताः॥६४॥ मृद्वीकायाः पलान्यत्र चत्वारि कथितानि हि। निवृतायाः पलान्यष्टौ गुडस्यार्धतुलां तथा ॥ ६५ ॥ तिलतैलपलान्यष्टावामलक्या रसस्य तु। प्रस्थत्रयमिदं सर्वं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६६ ॥ औदुम्बरं चामलकं बादरञ्च यथाबलम्। तावन्मात्रमिदं खादेद्भक्षयेद्वा यथानलम् ॥६७॥ निखिलान्ग्रहणीरोगान्प्रमेहांश्चैव विंशतिम्। उरोघातं प्रतिश्यायं दौर्बल्यं वह्निसङ्क्षयम् ॥ ६८ ॥ ज्वरानपि हरेत्सर्वान्कुर्यात् कान्तिं मतिं बलम्। पाण्डुरोगाञ्छवाद्धन्ति रक्तपित्तञ्च विट्ग्रहम् ॥ ६९ ॥ धातुक्षीणो वयःक्षीणः स्त्रीषु क्षीणः क्षयी च यः। तेभ्यो हितश्च वन्ध्यायै महाकल्याणको गुडः ॥ ७० ॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, धनियाँ, वायविडंग अजवायन, कालीमिरच, हरड, बहेडा, आमला, अजमोद, नील, जीरा, सैंधानिमक, रेहगवांनिमक,समुद्रनोन, विरिया, संचरनोन, अमलतास, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची, कलौंजी, सोंठ और इंद्रजौ प्रत्येक एक एक तोला लेवे, दाख सोलह तोले-निसोत आठ पल गुड, पचास पल, तिलका तेल बत्तीस तोले और आमलोंका रस तीन तीन प्रस्थ लेवे, सबको एकत्र मिलाकर मन्द-मन्द अग्निसे धीरे धीरे पकावे। अग्निका बला, बल विचारकर प्रतिदिन इसमेंसे गूलरके फलके समान, आमलेके समान अथवा बेरके समान भक्षण करे। यह महाकल्याणगुड-सब प्रकारके ग्रहणीरोग, बीस प्रकारके प्रमेह, उरोघात, जुकाम, दुर्बलता, मंदाग्नि और सर्व प्रकारके ज्वरोंको दूर करता है तथा कांति बुद्धि और बलको बढाता है। पाण्डुरोग, रक्तपित्त, मलरोध, धातुक्षीण, अवस्थाक्षीण, स्त्रीसे क्षीण, क्षयसे क्षीण और वन्ध्या स्त्री इन सबको यह गुड अत्यन्त हितकारी है॥ ६२ ॥ ७० ॥

अथ कूष्मांडकल्याणगुडः।

कूष्माण्डानां सुपक्वानां स्विन्नानां निष्कुलत्वचाम्। सर्पिःप्रस्थे पलशतं ताम्रपात्रे शनैः पचेत् ॥ ७१ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं गजपिप्पली। धान्यकानि विडङ्गानि नागरं मरिचानि च ॥ ७२ ॥ त्रिफलाचाजमोदा च कलिङ्गाजाजिसैन्धवम्। एकैकस्य पलञ्चैकं त्रिवृतोऽष्टौ पलानि च ॥ ७३ ॥ तैलस्य च पलान्यष्टौ गुडात्पञ्चशदेव तु। आमलक्या रसस्यात्र प्रस्थत्रयमुदीरितम् ॥ ७४ ॥ तावत्पाकं प्रकुर्वीत मृदुना वह्निना भिषक्। यावद्दर्व्याः प्रलेपः स्यात्तदैनमवतारयेत् ॥ ७५ ॥ औदुम्बरं चामलकं बादरं वा यथाबलम्। तावन्मात्रमिदं खादेद्भक्षयेद्वा यथाऽनलम् ॥ ७६ ॥ अनेनैव विधानेन प्रयुक्तस्य दिने दिने। निहन्ति ग्रहणीरोगान् कुष्ठानर्शोभगन्दरान् ॥ ७७ ॥ ज्वरमानाहहृद्रोगगुल्मोदरविषूचिकाः। कामलां पाण्डुरोगञ्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ ७८ ॥ वातशोणितवीसर्पदद्रुयक्ष्महलीमकान्। वातपित्तकफान् सर्वान्दुष्टाञ्छुद्धान्समाचरेत् ॥ ७९ ॥ व्याधिक्षीणा

वयःक्षीणाः स्त्रीषु क्षीणाश्च ये नराः । तेभ्यो हितो गुडोऽयं स्याद्वन्ध्यानामपि पुत्रदः । वृष्यो बल्यो बृंहणश्च वयसः स्थापनस्तथा ॥ ८० ॥

अच्छी प्रकारसे पका हुआ पेठा लेकर फिर उसको छीलकर टुकडे करके सौ पल लेकर तीन प्रस्थ घीमें ताँबेके बासनमें मंद मंद अग्निसे पकावे, पश्चात् पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, धनियाँ, वायविडंग, सोंठ, कालीमिरच, हरड, बहेडा आमला अजमोद, इन्द्रजौ, जीरा और सैंधानोंन प्रत्येक चार चार तोले, निसोत बत्तीस तोले, तिलका तेल ३२ तोले, गुड दोसौ तोले, और आमलोंका स्वरस ३ प्रस्थ लेवे, सबको मिलकर यथाविधिसे गुडको पकावे, जबतक करछीसे नहीं लगे, सबतक मन्द मन्द अग्निसे पकाता जाय फिर उतार लेवे, प्रतिदिन इनमेंसे अग्नि का बलाबल विचारकर गूलरके समान, आमले के समान अथवा बेरके समान खाय। यह कूष्मांडकल्याणगुड-सर्व प्रकारके ग्रहणीरोग, कोढ, बवासीर, भगन्दर, ज्वर, आनाह, हृदयरोग, गुल्म, उदररोग, विषूचिका, कामला, पाण्डुरोग, बीस प्रकारके प्रमेह, वातरक्त विसर्प, दद्रु, राजयक्ष्मा, हलीमक, वातपित्त और समस्त कफके रोगोंको दूर करता है। जो मनुष्य रोगोंसे क्षीण होगये हैं जो आयुसे क्षीण हो गये हैं और जो मनुष्य अत्यन्त स्त्री प्रसंग करनेसे क्षीण होगये हैं, उनके लिये यह गुढ अत्यन्त हितकारी है तथा वन्ध्या स्त्रियोंको पुत्र देनेवाला है, वीर्यजनक, बलकारक, पुष्टिकारक और अवस्थाको स्थापन करनेवाला है ॥ ७१-८० ॥

बिल्वतैलम् ।

अतिसाराधिकारलिखितं बिल्वतैलञ्चात्र हितम् ॥

इति ग्रहणीरोगाधिकारः ॥

अतिसारके अधिकारमें जो बिल्वतैल कहा है, वह भी इस संग्रहणीरोगमें हितकारी है।

इति श्रीभावप्रकाशे मध्यमखण्डे शालिग्राम-
वैश्यकृतवैद्यसंजीवनीभाषाटीकायां
ग्रहणीरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

इति मध्यमखण्डस्य प्रथमो भागः ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ भावप्रकाशः

भाषाटीकासमेतः

★

मध्यमखण्डे द्वितीयो भागः २.

अथ अर्शोऽधिकारः ।

अथार्शः सन्निकृष्टनिदानम् ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च । अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्गुदवलित्रये ॥ १ ॥

गुदाकी तीन वलियों में वातसे, पित्तसे कफसे, त्रिदोषसे, और स्वाभाविक ऐसे छः प्रकारकी बवासीर उत्पन्न होती हैं ॥ १ ॥

केचिद्रुधिरस्यापि दोषत्वं मन्यन्ते, तन्मतमाश्रित्य आह–शोणितादिति । सहजानि–शरीरे सहजातानि । संख्यां चाह--षट्प्रकाराणीति । गुदवलित्रये–सार्द्धचतुरङ्गुलं गुदस्य मानम् । तस्य अवयवभूतास्तिस्रो वलयः शंखावर्तनिभाः उपर्युपरि सन्ति । तासां नामानि प्रवाहणी विसर्जनी संवरणी चेति । तत्र गुदोष्ठोऽर्द्धांगुलमानस्तदूर्ध्वमंगुलसमाना प्रथमा वलिः। सार्द्धैकांगुलमाना द्वितीया । तृतीया च तावती ॥

कितनेक आचार्य रुधिरको भी दोष मानते हैं, इस लिये उनके मतको लेकर रुधिरकी भी जाननी । स्वाभाविक शरीरके संग उत्पन्न हुईको कहते हैं । इस रीतिसे छः प्रकारकी बवासीर होती है, यह संख्या समझनी । गुदाका प्रमाण साढे चार अंगुलका है, उसके अवयवरूप शंखावर्तकी आँटीके समान तीन वलि एकके ऊपर एक हैं । उनमें पहिली वलिका नाम प्रवाहणी (जो मलको नीचे उतारती है), दूसरी वलिका नाम विसर्जनी (जो मलको बाहर निकालती है) और तीसरी वलिका नाम संवरणी (जो गुदाको यथावत् बना देती है) कहते हैं । गुदाका ओंठ जो आधे अंगुलका है, उसके ऊपर एक अंगुलके प्रमाण पहली वलि है, डेढ अंगुलके प्रमाण दूसरी वलि है और तीसरी वलि भी डेढ अंगुलके प्रमाण है ।।

यत उक्तम्--

अर्द्धाङ्गुलप्रमाणेन गुदोष्ठं परिचक्षते । गुदोष्ठादंगुलश्चैकं प्रथमान्तु वलिं विदुः । सार्द्धैकांगुलमानेन पृथगन्ये प्रकीर्तिते ॥ २ ॥

कहा भी है कि–"गुदाका ओंठ आधे अंगुलका है और उस ओंठके ऊपर एक अंगुलकी पहिली वलि है उसके ऊपर डेढ अंगुलकी दूसरी वलि है और उसके ऊपर डेढ अंगुलकी तीसरी वलि है" ॥ २ ॥

अथ वातार्शोविप्रकृष्टनिदानम् ।

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च । प्रमितात्यशनं तीक्ष्णं मद्यं मैथुनसेवनम् ॥ ३ ॥ लंघनं देशकालौ च शीतौ

व्यायामकर्म च। शोको वातातपस्पर्शौ हेतुर्वातार्शसां मतः ॥ ४ ॥

प्रमितम्--परिमितम् ।

कसैले, चरपरे, कडवे, रूखे, शीतल और हलके ऐसे भोजन करनेसे बहुत थोडा भोजन करनेसे, अधिक भोजन करनेसे, तीक्ष्ण मदिरा पीनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे लंघन करनेसे, शीतदेश (हिमालय, मानसरोवर, काश्मीरादि) और शीतकाल (हेमन्त शिशिरादि) के होनेसे 'दंड, कसरत करनेसे, शोक करनेसे, अत्यन्त वायु और धूपके सेवन करनेसे वातकी बवासीर उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

तीक्ष्णमिति मद्यविशेषणम् । पिष्टादिमृदुमद्यस्य वातशमकत्वात् । आतपस्तूष्णवीर्योद्भूतरौक्ष्याद्वातप्रकोपे वातार्शसां हेतुः ।

जौ आदिके चूनकी बनाई हुई मृदु मद्य वो वायुको शांत करनेवाली है, इसकारण तीखी शराब पीनेसे वातकी बवासीर प्रगट होती है। आतप तो उष्ण सत्त्वसे होनेवाले रूखेपनके कारण वातको कुपित करनेका हेतु बनती है ॥

ननु अर्शांसि सर्वाणि त्रिदोषजानि, यत आह-पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रये । सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥ ५ ॥ तथाशति कथं वातार्शसामिति ?

शंका-'गुदाकी तीन वलियोंमें पाँचों प्रकारकी वायु, पित्त और कफ इन तीनोंके कुपित होनेसे बवासीर उत्पन्न होती है, ऐसा कहा है ये प्राचीन ग्रंथोंके वचन हैं, अतएव सब प्रकारकी बवासीर तीनों दोषोंसे उत्पन्न होती है ऐसा सिद्ध होता है, फिर वातज बवासीर, पित्तकी बवासीर और कफकी बवासीर अलग २ क्यों कही ? ॥ ५ ॥

उच्यते--तत्तदाधिक्याद्व्यपदेशभेद इति न दोषः । अतएव अग्रे वक्ष्यते-वातोल्वणानामिति । तथा च चरकः--

अर्शांसि नाम जायन्ते नासन्निपतितैस्त्रिभिः । दोषैर्दोषविशेषात्तु विशेषः कथ्यतेऽर्शसाम् ॥ ६ ॥ इति ॥

समाधान-यद्यपि बवासीर तीनों दोषोंके प्रकोपसे होती है, तथापि जिस अर्शमें जिस दोषकी अधिकता हो, वह अर्श उसी दोष सम्बन्धी जाना जायगा । इसी लिये आगे वायुसम्बन्धी अर्शको वातोल्वण' कहेंगे । चरकमें भी कहा है कि-''बवासीर तीनों दोषोंके सन्निपातसे होती है तो भी उसमें दोषकी अधिकतासे वात, पित्त आदिके साथ अर्शका नाम कहा जाता है'' ॥ ६ ॥

अथ पित्तार्शोविप्रकृष्टनिदानम् ।

कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामोऽग्न्यातपप्रभा । देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ ७ ॥ विदाहि तीक्ष्णमुष्णञ्च सर्वं पानान्नभोजनम् । पित्तोल्वणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥८

उष्णद्रव्यस्य स्पर्शनादि बोद्धव्यम् । उष्णपानभोजनस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात् । अग्न्यातपप्रभा--अग्न्यातपयोः प्रभा--तेजः । अथवा अग्न्यातपतद्द्रव्यस्य तेजः--दीप्तिःप्रभा । अशिशिरोदेशो-मरुः । शरद्ग्रीष्मश्च कालः । क्रोधः-कोपः । असूयनं-परसम्पत्तौ द्वेषः । प्रकोपे-उत्पत्तौ ॥

चरपरे खट्टे और खारे पदार्थोंको सेवन करनेसे उष्ण पदार्थोंका स्पर्शादि करनेसे, कसरत करनेसे, अग्नि और सूर्यके आतपसे, उष्णदेश और उष्ण कालके होनेसे, क्रोध

१ मरुदेश । निर्जलदेश, मारवाड) को उष्णदेश जानना । शरद् और ग्रीष्म इन दो ऋतुओंको उष्णकाल कहते हैं ।

करनेसे, मदिराको पीनेसे, पराई सम्पदाको देखकर जलनेसे और सर्व प्रकारके दाहकारक, तीक्ष्ण और उष्ण अन्नपानोंके सेवन करनेसे पित्तोल्वण बवासीर उत्पन्न होती है ॥ ७॥ ८॥

अथ कफार्शोविप्रकृष्टनिदानम् ।

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च। अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतिः ॥ ९॥ प्राग्वातसेवी शीतौ च देशकालावचिन्तनम् । श्लैष्मिकाणां समुद्दिष्टमेतम् कारणमर्शसाम् ॥ १०॥

मधुर, चिकने, शीतल, खारे, खट्टे और भारी ऐसे पदार्थोंके भोजन करनेसे, कसरत नहीं करनेसे, दिनमें सोनेसे, सुखपूर्वक नित्य सेज, गद्दी, तकिया आदिपर बैठे रहनेसे या सोते रहनेसे, पुरवाई पवनको सेवन करनेसे शीतदेशके निवाससे, शीतकालके सहनेसे और चिंता नहीं करनेसे कफसम्बन्धी बवासीर उत्पन्न होती है ॥ ९॥ १०॥

द्वित्रदोषजार्शोविप्रकृष्टनिदानम् ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्वणानि च। सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणं समम् ॥ ११॥

जनकत्वेन त्रयो दोषाः येषां तानि त्रिदोषाणि—त्रिदोषजानि। तेषाम् अर्शसां सर्वो हेतुः पृथग्वातपित्तकफार्शोहेतुः । त्रिदोषार्शोलक्षणं श्वासरुजा विबन्धैः सहजार्शोभिः समम् ॥

जिसमें दो दोषोंके हेतु और लक्षण मिलते हों, उसको द्वन्द्वज बवासीर कहते हैं। अलग अलग वातादि दोषसम्बन्धी बवासीरके जो कारण और लक्षण होते हैं, वे सब जिसमें हों, उसको सन्निपातकी बवासीर कहते हैं और उसमें स्वाभाविक बवासीरके श्वास, मलरोध आदि लक्षण भी होते हैं ॥ ११॥

ननु, त्रिदोषाणामिति विशेषणं व्यर्थम्। यतः सर्व एव व्याधयस्त्रिदोषजाः-- द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येकदोषजः। एकस्तु कुपितो दोष इतरानपि कोपयेत् ॥ १२॥ इति युक्तिमत्याह- स्वकारणाद् वृद्धो वायुः शैत्यात्कफं द्रवत्वात्पित्तं वर्धयते इति।

शंका—बवासीरको 'त्रिदोषज' यह जो विशेषण दिया है सो व्यर्थ है, क्योंकि सम्पूर्ण व्याधियाँ तीनों दोषोंसे प्रकट होती हैं। कहा है कि—"जैसे कोई द्रव्य एक रसवाला नहीं है उसी प्रकार कोई रोग भी एक एक दोषसे उत्पन्न नहीं होता है, कारण यह है कि—कोपको प्राप्त हुआ कोई एक दोष दूसरे दोषको भी कुपित करता है"। इस विषयमें युक्ति भी कही है कि "अपने कारणोंसे वृद्धिको प्राप्त हुई वायु शीतलतासे कफको और द्रवपनसे पित्तको बढाती है" इस युक्तिसे प्रकुपित हुए एक दोषसे दूसरे दोषका कुपित होना सम्भव है ?

उच्यते--यत्र स्वस्वकारणात्रयो दोषाः कुप्यन्ति--तत्र त्रिदोषजव्यपदेश इति न दोषः।

समाधान—जिस रोगमें तीनों दोष एक दूसरेसे नहीं, किन्तु अपने कारणोंसे अलग अलग कुपित हुए हों तो उसी रोगको तीनों दोषोंसे कुपित हुआ कहा जाता है ॥ १२॥

अथार्शःपूर्वरूपम् ।

विष्टम्भोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च। कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता ॥ १३॥ ग्रहणीदोषपार्श्वार्तिराशङ्का चोदरस्य च। पूर्वरूपं विनिर्दिष्टमर्शसामभिवृद्धये ॥ १४॥

पेटमेंके अन्नका विष्ठा होकर नहीं निकलना, दुर्बलता कोखमें अफारा, कृशता, डकारोंकी अधिकता, जांघोंमें पीडा, मल थोडा

उतरे, ग्रहणी और पार्श्वशूल तथा उदर रोगकी आशंका ये सब बवासीरके पूर्वरूप हैं १३॥१४

अथार्शासम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् । मांसांकुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ताञ्जगुः ॥ १९ ॥

त्वङ्मांसपदेन त्वङ्मांसमाश्रितं रक्तमपि गृह्यते किञ्चित्साधारणरक्तस्त्रावणोपदेशात् । आदिशब्देन नासानेत्रनाभिमेढ्रादिषु अपि कुर्वन्ति ।

दोष, त्वचा, मांस और मेदको दूषित करके गुदा नासिका, नेत्र, नाभि और लिंग इत्यादि स्थानोंमें अनेक प्रकारके पूर्णाकारवाले मांसके अंकुरोंको उत्पन्न करते हैं, उन अंकुरोंको अर्श कहते हैं ॥

'त्वचाको और मांसको' इन वचनोंसे त्वचामें और मांसमें रहनेवाले रुधिरका भी ग्रहण होता है, अतएव दोष रुधिरको भी दूषित करके बवासीरको उत्पन्न करते हैं, ऐसा जानना । क्योंकि, बवासीरकी पीडामें कुछ साधारणरीतिसे रुधिरस्राव भी कहा है ॥१५॥

अथ वातार्शोलक्षणम् ।

गुदांकुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः । म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाःपरुषाः खराः । मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः ॥ १६ ॥ बिम्बीकर्कन्धुखर्जूरकर्कोटीफलसन्निभाः। केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित् सिद्धार्थकोपमाः ॥ १७ ॥ शिरःपार्श्वांसकटचूरुवङ्क्षणाभ्यधिकव्यथाः । क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्रोगारोचकप्रदाः ॥ १८ ॥ कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः । तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥१९॥ रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते । कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते । गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासम्भवस्तत एव च ॥ २० ॥

बह्वनिलाः-वातोल्वणाः । गुदांकुरा- अर्शासिचिमिचिमान्विताः-चिमिचिमा व्यथाविशेषः 'चडचडा' इति लोके, तदन्विताः । श्यावारुणाः-श्यावा धूम्रवर्णाः, अरुणवर्णा वा । स्तब्धाः-कठिनाः-विशदाः पिच्छिलाः। परुषाः-गोजिह्वावत्खरस्पर्शाः । कर्कशाः-खराः । कर्कोटीफलवत्सूक्ष्मानेककण्टकचिताः । बिम्ब्यादिफलसन्निभाः । आवृत्त्या अत्र विकल्पबोधकं वक्ष्यमाणं केचित्केचिदिति पदं प्रतिसम्बन्धनीयम् । कदम्बपुष्पाभाः-स्थिरानेकसूक्ष्मशिखराः । सिद्धार्थकोपमाः-पीतसूक्ष्मपिटकाचिताः । तैरार्त इत्यर्शोभिः पीडितः तैरार्तो विबद्धमुपवेश्यत इति आर्तस्य प्रयोज्यकर्तुः कर्मता आर्षत्वात् । ग्रथितम् मलगुठिकाऽग्रथितविडवर्तिरूपम् । पिच्छा पिच्छिलोद्रवभागः । बद्धं-संहतम् । विट्शब्दो नपुंसकेऽप्यस्ति । उपवेश्यते-त्यज्यते । तत एव वातार्शस एव गुल्मादीनां सम्भवः । अष्ठीला-नाभेरधोभागे पाषाणपिण्डिकाबद्धातव्याधिविशेषः ॥

वातकी उल्वणतावाली बवासीरके अंकुर (मस्से) सूख चिमचिमानेवाले कुम्हलायेसे धुएँके रंगके या लाल रंगके, कठिन विशद, कठोर, खरखरे, आपसमें बराबर न हों, टेढे तीक्ष्ण, फटेमुखवाले, कन्दूरी, बेर, खजूर और ककोडेके फलके समान हों, एवं मस्तकमें, पसलियोंमें, कन्धेमें, कमरमें, जांघ और जांघकी संधियोंमें अत्यन्त पीडा होती हो, छींक,डकार, मलबन्ध, छातीमें पीडा, अरुचि, खांसी, श्वास, अग्निकी विषमता, कानोंमें शब्द और भ्रम होता है । इस अर्शरोगसे पीडित मनुष्योंका मल गांठदार, थोडा थोडा, शब्दस

हित, प्रवाहिकाके लक्षणयुक्त, पीडासहित झागोंसे संयुक्त और पतला तथा बँधा हुआसा उतरता है । त्वचा, नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र और मुख ये सब काले होजाते हैं । वायगोला, प्लीहा, उदररोग और अष्ठीला (नाभीके नीचे लम्बे पत्थरके समान एक वातसम्बन्धी रोग होता है. उसको अष्ठीला कहते हैं) ये सब लक्षण होते हैं ॥ १६-२० ॥

अथ पित्तार्शोलक्षणम् ।

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतसितप्रभाः । तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः॥२१॥ शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकावक्त्रसन्निभाः । दाहपाकज्वरस्वेदतृष्णामूर्च्छारतिप्रदाः ॥ २२ ॥ सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः । यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्मुखादयः॥२३॥

तनु-अघनम् । श्लथाः-लम्बिनः । सन्निभाः-आकृत्या । पाको गुदस्य । सोष्माणः-उष्णस्पर्शाः । हरितशाकवर्णम् । पीतम्-हरितालवर्णम् । हारिद्रम्-हरिद्रावर्णम् । आदिशब्दात् मलमूत्रपुरीषाणां ग्रहणम् ॥

पित्तोल्बण बवासीरमें गुदाके अंकुर नीलमुखवाले, लाल, पीले और काले होते हैं, उनमेंसे पतला रुधिर टपकता रहे, दुर्गन्ध आवे, बारीक, मृदु लटकते हों । कोई तोतेकी जीभके समान, कोई कलेजेके टुकडेके समान, कोई जोंकके मुखके समान हों । इस बवासीरमें दाह, गुदाका पकना, ज्वर, पसीनेका आना, तृषा, मूर्च्छा और बेकली होवे. इसका स्पर्श गरम हो, मल-पतला, नीला, गरम, पीला, लाल और आमसंयुक्त हो, जौके मध्यभागके समान हो, इसमें त्वचा और नखादि शाकके समान हरितवर्ण, हरतालके समान और हलदीके समान रंगवाले होते हैं २१-२३

अथ पित्तोत्तररुधिरार्शोलक्षणम् ।

रक्तोल्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः । वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः ॥ २४ ॥ तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः । स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ २५ ॥

गुदे कीलाः-अर्शांसि पित्ताकृतिसमन्विताः-पित्तार्शोलक्षणयुक्ताः । आकारेण च वटप्ररोहसदृशाः ॥

भेकाभःपीड्यते दुःखैःशोणितक्षयसम्भवैः। हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाःकलुषेन्द्रियः ॥ २६ ॥ विट् श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्नवर्तते । तनु चारुणवर्णं च फेनिलं वाऽसृगर्शसाम् ॥ २७ ॥

दुःखैः-रोगैः त्वक्पारुष्याम्बुशीतप्रार्थनादिभिः । कलुषेन्द्रियः-व्याकुलसर्वेन्द्रियः । असृगर्शसाम्-रक्तार्शसाम् ॥

रक्तोल्वण बवासीरके अंकुर पित्तकी बवासीरके आकृतिवाले होते हैं, बडके अंकुरके समान, गुञ्जाके समान, मूँगेके समान वे कडे मलके आनेसे दबकर दूषित और गरम रुधिरको छोडते हैं । रक्तके अधिकतर निकलनेसे बवासीरवाला रोगी मेंडकके समान पीला पड जाता है, त्वचा कठोर होजाती है, जलकी प्रार्थना और शीतकी इच्छा आदि दुःखोंसे पीडित हो जाता है । उस मनुष्यका वर्ण, बल और उत्साह हीन होजाता है । ओजक्षय हो जाता है और सम्पूर्ण इन्द्रियां व्याकुल होजाती हैं । विष्ठा काली, कठिन और रूक्ष उतरती है, अधोवायुका अवरोध होता है । इसमें रुधिर पतला, लाल और झागोंदार निकलता है ॥ २४-२७ ॥

कट्यूरुगुदशूलश्च दौर्बल्यं यदि वाऽधिकम् । तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम् ॥ २८ ॥ शिथिलं श्वेतपीतं च विट् स्निग्धं गुरु शीतलम् । यद्यर्शसां घनं चासृक् तन्तुमत्पाण्डु पिच्छिलम्

॥२९॥ गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धं च कारणम् । श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ॥ ३० ॥

तत्र--रक्तार्शसि । अनुबन्धः--उल्बणम् । रूक्षणम्-रूक्षयतीति रूक्षणम् रूक्षद्रव्यम् । पित्तोल्वणस्य तु लक्षणम्-"रक्तोल्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृति-समन्विताः" इत्यादिनोक्तं रक्तपित्तयोःसमानलिंगत्वात् ॥

जो रुधिरकी बवासीर रूक्ष कारणोंसे उत्पन्न हुई हों तथा कमर, जांघ और गुदामें शूल हो और अत्यन्त निर्बलता हो तो रुधिरमें वायुका अनुबन्ध होता है । जिस रुधिरकी बवासीरमें विष्ठा शिथिल सफेद, पीली, चिकनी, भारी और शीतल हो, रुधिर गाडा, तन्तुयुक्त पाण्डुवर्ण और चिकना हो, गुदा चिकनी और स्तब्ध हो, भारी और स्निग्ध कारणोंसे उत्पन्न हुई हो तो रुधिरमें कफका अनुबन्ध जानना । रक्तानुबन्धी बवासीरके लक्षण तो पित्तकी बवासीरकेही समान होते हैं, सो पहिले कहही चुके हैं। क्योंकि पित्त और रुधिरके लक्षण समान हैं, इस कारण दुबारा कहनेकी आवश्यकता नहीं है २८-३०

अथ कफोल्वणार्शोलक्षणम् ।

श्लेष्मोल्वणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः । उत्सन्नोपचिताःस्निग्धाः स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥ ३१ ॥ पिच्छिलाः स्तिमिताःश्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः । करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ ३२ ॥ वङ्क्षणानाहिनः पायुवस्तिनाभिविकर्षिणः । सकासश्वासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥ ॥ ३३ ॥ मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः । क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ॥ ३४ ॥ वसाभाः सकफप्रायपुरीषा सप्रवाहिकाः । न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥ ३५ ॥

उत्सन्नाः—उन्नताः । उपचिताः—स्थूलाः । स्निग्धाः—स्नेहाभ्यक्ताः । स्थिराः—निश्चलाः । पिच्छिलाः—कफोल्वणत्वात् । स्तिमिताः—आर्द्रचर्मावगुण्ठिता इव श्लक्ष्णाः—मणिवन्मसृणाः । करीरःवंशांकुरः । पनसास्थ्याभाः गोस्तनसन्निभाः—तदाकृतयः । वङ्क्षणानाहिनः--वंक्षणयोरानाहकारिणः । पाय्वादिषु आकर्षणवत्पीडाकारिणः । कृच्छ्रम्--मूत्रकृच्छ्रम् । शिरोजाड्यम्--शिरोभागेशीताक्रान्तमिव । क्लैब्यम्-स्त्रीषु अनिच्छा । अत्र छर्दिः शब्दः सान्तः आर्षत्वात् । आमप्रायविकारदाः--आमबहुला व्याधयोऽतिसारग्रहण्यादयस्तान् ददति ॥

कफकी बवासीरमें गुदाके अंकुर बहुत गहरी जडवाले घन, अल्पपीडायुक्त, सफेद, ऊँचे, मोटे, चिकने, स्तब्ध, गोल, भारी, कठिन, पिच्छिल, चमडेसे लिपटे हुए ऐसे, मणिके समान चिकने, खुजलीवाले और स्पर्शमें प्रिय हो, करील, कटहर और गायके थनके समान हो तथा वंक्षणस्थानमें पीडा, गुदा, मूत्राशय और नाभिमें आकर्षणके समान वेदना हो, खांसी, श्वास, उबकाई, मुखसे पानीका गिरना, अरुचि, पीनस, प्रमेह मूत्रकृच्छ्र, शिरमें जडता और शीतज्वरको करने वाले हों, नपुंसकता अर्थात् स्त्रीप्रसंगमें इच्छाका नहीं होना, जठराग्निकी, मृदुता, वमन, अधिक आमवाले अतिसार, संग्रहणी आदि रोगोंका प्रकट होना, चर्बीके समान कांतिवाले, कफसे व्याप्त मलका उतरना और प्रवाहिकाका होना ये लक्षण होते हैं। इस बवासीरके मस्सोंमेंसे न रुधिर बहता है, न मस्से टूटते हैं, परंतु शरीरकी त्वचा आदि पांडुवर्ण कर देते हैं और वे चिक्कन हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ ३५ ॥

अथ द्वन्द्वजार्शोलक्षणम्।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वो ल्वणानि च ॥ ३६ ॥

जिसमें दो दोषोंके कारण और लक्षण मिलते हों, उसको द्वंद्वोल्वण कहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ त्रिदोषोल्वणस्वाभाविकार्शोलक्षणम्।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैःसहजानि च ॥ ३७ ॥ सर्वैर्लक्षणैर्वातपित्तकफार्शोलक्षणैः प्रागुक्तैः सर्वात्मकानि सन्ति तानि अर्शांसि अतस्तथा तैरेव लक्षणैःसहजानि अर्शांसि आहुः ॥

जिसमें वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंके लक्षण दिखाई देवे, उसको त्रिदोषोल्वण कहते हैं और सहज अर्थात् स्वाभाविक अर्शके भी ये ही लक्षण होते हैं ॥ ३७ ॥

अथान्यग्रन्थोक्तस्वाभाविकार्शोऽन्यलक्षणम्।

अर्शांसि सहजातानि दारुणानि भवन्ति हि। दुर्दर्शनानि पाण्डूनि परुषाण्यरुणानि च ॥ ३८ ॥ अन्तर्मुखानि तैरार्तः क्षीणः क्षीणस्वरो भवेत् । क्षीणानलः क्षीणरेताःशिरासन्ततविग्रहः ॥ ३९ ॥ अल्पप्रजः क्रोधशीलो भग्नकांस्यस्वनान्वितः । शिरोदृक्कर्णनासासु रोगी हृल्लेपसेकवान् ॥ ४० ॥

स्वाभाविक अर्थात् शरीरके साथ उत्पन्न हुई बवासीर अत्यन्त दारुण होती है, भयंकर पाण्डुवर्ण, खरखरे, शूल और भीतरको मुख किये मस्से होते हैं। इससे पीडित मनुष्य क्षीण, क्षीणस्वरवाला, क्षीणअग्निवाला, क्षीण वीर्यवाला और नसोंसे व्याप्त शरीरवाला होता है। उसको सदैव मलका अवरोध रहता है, सन्तान थोडी होती है, वह क्रोधी, फूटे, कांसेके शब्दके समान उसका शब्द होता है मस्तक, नेत्र, कान और नासिकामें पीडा होती है, हृदय कफसे लिपासा रहता है और उसके मुखसे बारम्बार पानी निकलता रहता है ॥ ३८ ॥ ४० ॥

अथ सुखसाध्यार्शोलक्षणम्।

बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्वणानि च। अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥ ४१ ॥

बाह्यायां वलौ--संवरण्याम् । न चिरोत्पतितानिअनतिक्रान्तसंवत्सराणि एतानि लक्षणानि मिलितानि सुखसाध्यत्वबोधकानि ॥

गुदाकी संवरणीनामक वलिमें उत्पन्न हुई, एक दोषोल्वण और थोडे कालसे उत्पन्न हुई ऐसी बवासीर सुखसाध्य होती है। (जिसको उत्पन्न हुए एक वर्ष नहीं बीता हो, उसको थोडे कालसे उत्पन्न हुआ जानना) ॥ ४१ ॥

अथ कष्टसाध्यार्शोलक्षणम्।

द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानिच। कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ ४२ ॥

द्वितीयायां वलौ--विसर्जन्याम् । परिसंवत्सराणि परिगतः संवत्सरो येषां तानि अतीतसंवत्सराणीति यावत् । एतानि प्रत्येकं कष्टसाध्यलक्षणानि ॥

जिस बावासीरको उत्पन्न हुये एक वर्ष वीत गया हो, जो दो दोषोल्वण हो और जो गुदाकी विसर्जनी दूसरी वलिमें उत्पन्न हुई हो, उसको कष्टसाध्य जानना ॥ ४२ ॥

अथ साध्यार्शोलक्षणम्।

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरां वलिम्। जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥ ४३ ॥

अभ्यन्तरां वलिम्-प्रवाहिणीम् । एतान्यपि प्रत्येकमसाध्यानि लक्षणानि।

जो बवासीर जन्मसे ही शरीरके साथ उत्पन्न हुई हो, अथवा त्रिदोषोल्वण हो, किंवा गुदाकी प्रवाहिणी नामक भीतरकी तीसरी बलिमें उत्पन्न हुई हो, उसको असाध्य जानना ॥ ४३ ॥

अथ याप्यार्शोलक्षणम् ।

शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्वये । याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ ४४ ॥

जिस रोगीकी आयु बाकी हो, चिकित्साके चारों पाद ठीक हों और रोगीकी जठराग्नि अत्यन्त दीप्त हो तो उसको याप्य जानना और जो ये सब सामग्री नहीं हों तो उसकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे, क्योंकि वह असाध्य है ॥ ४४ ॥

यदि आयुःशेषो वर्तते । चिकित्सायाः चत्वारः पादाः । ते यथा-वैद्यवचनकारी धनवानुदारो जितेन्द्रियो रोगी, शस्त्रकर्मणि कुशलो वैद्यः, अनलस आप्तः प्रियपरिचारकः, नवरसवीर्यादिकमौषधम्, एषां समन्वये समागमे । अतिदीप्तकायाग्नेः पुरुषस्य तानि अर्शांसि याप्यन्ते चिकित्सायाम् । अतोऽन्यथा प्रत्याख्येयानि--चिकित्साहीनानीत्यर्थः ॥

रोगी–वैद्यके वचनोंको माननेवाला, धनवान्, उदारचित्त और जितेन्द्रिय होना चाहिये। वैद्य-शस्त्रकर्ममें कुशल होना चाहिये । सेवक आलस्यरहित, यथार्थ कहनेवाला और प्रिय होना चाहिये। औषधि–नवीन रस और वीर्ययुक्त होनी चाहिये, ये चिकित्साके चार पाद हैं ॥

अथार्शोऽरिष्टकथनम् ।

हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा । शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः ॥ ४५ ॥

असाध्यः-संनिहितमरणो बोध्यः । अर्शसः अर्शोरोगयुक्तः ॥

जिस बवासीरवाले रोगीके हाथ, पांव, मुख, नाभि, गुदा और अण्डकोशोंमें सूजन हो, छाती और पसलियोंमें शूलकी पीडा हो, उसको मृत्युकेसमीपहुआ जानो ॥ ४५ ॥

हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरङ्गस्य रुग्ज्वरः। तृष्णा गुदास्यपाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम् ॥ ४६ ॥

गुदस्य आस्यमोष्ठदेशस्तस्य पाकः । हृत्पार्श्वशूलादि समस्तं चारिष्टलक्षणम् ॥

हृदय और पसलियोंमें शूल, मोह, वमन, अंगमें पीडा, ज्वर, तृषा, और गुदाका पकना अर्थात् गुदाके ऊपर पीले फोडा होना ये सब लक्षण जिस अर्शरोगमें हों उसको मृत्युके निकट जानना ॥ ४६ ॥

तृष्णारोचकशूलार्तमतिप्रस्रुतशोणितम्। शोथातिसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि ॥ ४७ ॥

तृषा, अरुचि और शूल इनसे पीडित, अथवा सूजन और अतिसारसे पीडित, किंवा जिसका रुधिर बहुत निकलगया हो, ऐसा अर्शरोगी मर जाता है ॥ ४७ ॥

अथ लिङ्गाद्यर्शोलक्षणम् ।

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि च । गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च ॥ ४८ ॥

यथास्वं यथात्मीयलक्षणम् । न च अत्रोक्तनिदानपूर्वं सम्प्राप्तिलक्षणं युक्तम् । तत्रार्शपदन्तु मांसांकुरः साम्यात् । गण्डूपदः--केंचुलकः ॥

लिंग आदि अवयवोंमें और नाभिमें भी अलग अलग प्रकारकी बवासीर होती है, उसके अंकुर केंचुएके मुखके समान चिकने और नरम होते हैं ॥ ४८ ॥

अथ चर्मकीललक्षणम्।

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः। कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः ॥ ४९ ॥

खरम्—कर्कशम् ॥

चर्मकील मांसके अंकुरके समान होते हैं, इस लिये अर्शरोगमें उसकी सम्प्राप्तिपूर्वक लक्षण कहते हैं—जब व्यानवायु कफको ग्रहण करके त्वचाके बाहर कीलके समान, स्थिर और कठोर अर्शको उत्पन्न करती है, उसको चर्मकील कहते हैं ॥ ४९ ॥

अथ वातादिचर्मकीललक्षणम्।

वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितरक्तता। श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥ ५० ॥

सवर्णता—शरीरसमानवर्णता ॥

वातके चर्मकीलमें पीडा और कठोरपन होता है। पित्तके चर्मकीलमें कालापन और लाली होती है और कफके चर्मकीलमें चिकनापन, गांठदार और शरीरके रंगके समान वर्ण होता है ॥ ५० ॥

अथार्शःसामान्यचिकित्सा।

यद्वातस्यानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये। अन्नपानौषधं सर्वं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥ ५१ ॥

अर्शसैः—अर्शोरोगयुक्तैः ॥

जो अन्न पानी और औषधि वायुको अनुलोमन करनेवाले हैं तथा अग्निके बलको बढानेवाले हैं वे सब अर्शरोगमें सदैव सेवन करने चाहिये ॥ ५१ ॥

शालिषष्टिकगोधूमयवान्नानि घृतैः सह। अजाक्षीरेण वा निम्बपटोलानां रसेन वा। कान्दैर्वार्ताकुमूलांसै रसैर्मांसरसेन वा ॥ ५२ ॥

शालिधानके चावल, सांठीके चावल, गेहूँ और जौ इनका भोजन घीके साथ या बकरीके दूधके साथ, नीम अथवा कडवे परवलोंके रसके साथ, जमीकन्द, बैंगन, मूली या मांसकेरसके साथ सेवन करे ॥ ५२ ॥

जीवन्त्युपोदिकाशाकैस्तण्डुलीयकवास्तुकैः ॥ ५३ ॥ अन्यैश्च सृष्टविण्मूत्रमरुद्भिर्वह्निदीपनैः। अर्शांसि भिन्नवर्चांसि हन्याद्वातातिसारवत् ॥ ५४ ॥

जिस बवासीरको विष्ठाका भेदन नहीं होता हो, ऐसी बवासीरको जीवन्ती, पोई, चौलाई और बथुआ इन शाकोंसे तथा अन्यान्य विष्ठा, मूत्र और वायुको प्रवर्तन करनेवाले और अग्निको दीप्त करनेवाले द्रव्योंसे जीते और जिसमें दस्त होता है, ऐसी बवासीरको वातातिसारके समान चिकित्सा करे ॥५३५४॥

सतक्रं लवणं दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम्। न प्ररोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहताः ॥ ५५ ॥ तक्राभ्यासोऽर्शसैः कार्यो बलवर्णाऽग्निवृद्धये। स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु सम्यक् चरति तद्रसः ॥५६॥ तेन पुष्टिस्तथा तुष्टिर्बलं वर्णश्च जायते। वातश्लेष्मविकाराणां शतञ्च विनिवर्तते ॥ ५७ ॥

सैंधानमक तक्रमें डालकर पीनेसे वायु और विष्ठाको अनुलोमन करता है। तक्रसे नष्ट किये हुए बवासीरके मस्से फिर उत्पन्न नहीं होते हैं। बवासीरवाले मनुष्योंको बल–वर्ण और जठराग्निको बढानेके लिये मट्ठा पीनेका अभ्यास करना उचित है। तक्रके अभ्याससे शरीरके छिद्र शुद्ध होकर अन्नादिकका रस अच्छी प्रकार से संचार करता है। और उससे पुष्टि, तुष्टिबल और वर्ण उत्तम होता है. वायु और कफके सैकडों विकार नष्ट होजाते हैं ॥ ५५-५७ ॥

अथ वारिजादिचूर्णम् ।

चिरबिल्वाग्निसिन्धूत्थनागरेन्द्रयवारलूः । तक्रेण पिबतोऽर्शांसि निपतन्त्यसृजा सह ॥ ५८ ॥

चिरबिल्वः--करञ्जः, तस्य फलस्य अत्र मज्जा ग्राह्या । अरलुः--शोणाकः ॥

करंजके फलका वक्कल, चीता, सैंधानिमक, सोंठ, इन्द्रजौ और अरलू इनका चूर्ण करके तक्रके साथ पिये तो रुधिरके साथ बवासीरके अंकुर गिरजाते हैं ॥ ५८ ॥

अथ रजनीलेपः ।

लेपं रजनिचूर्णेन सुधादुग्धयुतेन च । अर्शोरोगनिवृत्त्यर्थं कारयेत्तु चिकित्सकः ॥ ५९ ॥

वैद्य अर्शरोगकी निवृत्तिके लिये हलदीके चूर्णको थूहरके दूधमें मिलाकर लेप करे ५९॥

अथ पिप्पल्यादिलेपः ।

पिप्पली सैन्धवं कुष्ठं शिरीषस्य फलं तथा । सुधादुग्धार्कदुग्धं वा लेपोऽयं गुदजान् हरेत् ॥ ६०

पीपल, सैंधानिमक, कूठ और सिरसके बीज इनको थूहरके दूधमें अथवा आकके दूधमें पीसकर लेप करनेसे बवासीर नष्ट होजाती है ॥ ६० ॥

अथ हरिद्रादिलेपः ।

हरिद्रा जालिनीचूर्णं कटुतैलसमन्वितम् । एष लेपो वरः प्रोक्तो ह्यर्शसामन्तकारकः ॥ ६१ ॥

जालिनी-'कटुतोरई' इति लोके ॥

हलदी और कडवी तोरईका चूर्ण करके सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करे, यह लेप अर्शको नष्ट करनेके लिये उत्तम है ॥ ६१ ॥

अथ तिलभक्षणम् ।

असितानां तिलानान्तु पलं शीतजलेन च खादतोऽर्शांसि शाम्यन्ति दृढा दन्ता भवंति च ॥ ६२ ॥

चार तोले काले तिल लेकर शीतल जलके साथ भक्षण करे तो बवासीर दूर हो जाती है और दांत दृढ हो जाते हैं ॥ ६२ ॥

अथ रुधिरस्रावणम् ।

शस्त्रैर्वाऽथ जलौकोभिः प्रच्छन्नं कठिनार्शसः शोणितं सञ्चितं दृष्ट्वा हरेत् प्राज्ञः पुनः पुनः ॥ ६३ ॥

जो बवासीरके मस्से भीतरको दबेसे और कठिन हों तो शस्त्र अथवा जोंकसे रुधिर निकलवा देवे और जब जब रुधिर इकट्ठा हो जाय तबही रुधिर निकलवा देवे ॥ ६३ ॥

अथ बृहत्काशीसाद्यतैलम् ।

काशीसं सैन्धवं कृष्णा शुण्ठी कुष्ठञ्च लाङ्गली । शिलाभिदश्वमारश्च दन्ती जन्तुघ्नचित्रकम् ॥ ६४ ॥ तालकं कुनटी स्वर्णक्षीरी चैतैः पचेद्भिषक् । तैलं स्नुह्यर्कपयसा गवां मूत्रं चतुर्गुणम् ॥ ६५ ॥ एतदभ्यङ्गतोऽर्शांसि क्षारेणेव पतन्ति हि । क्षारकर्मकरं ह्येतन्न च सन्दूषयेद्वलिम् ॥ ६६ ॥

काशीसं 'कसीस' इति लोके । लांगली कलिहारी' इति लोके । शिलाभित्पाषाणभेदः । अश्वमार'कनेर' इति लोके । स्वर्णक्षीरी 'चोक' इति लोके ॥

हीराकसीस, सैंधानिमक, पीपल, सोंठ, कूठ, कलिहारी, पाखानभेद, कनेर, जमालगोटेकी जड, वायविडंग, चीता, हरिताल, मैनशिल और सत्यनाशी कटेरी जिसकी जडको चोक कहते हैं इनका कल्क बनाकर थूहरके दूध और आकके दूधके द्वारा चौगुनके गोमूत्रमें तेलको सिद्ध करे । जैसे क्षारसे बवासीरके मस्से गिरजाते हैं, उसी प्रकार इस तेलके लगानेसे बवा-

सीरके मस्से नष्ट हो जाते हैं, यह तेल क्षारका कर्म करता है और वलिको भी दूषित नहीं करता है ॥ ६४-६६ ॥

अथ समशर्करचूर्णम् ।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं
चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमूर्ध्वमन्त्यात् ।
खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्य-
गुल्मारुचिश्वसनकण्ठहृदामयेषु ॥६७॥

तद्यथा–एलाबीजमत्र सूक्ष्मं ग्राह्यम् । यत आह मदनपालः–"एला सूक्ष्मा कफश्वासकासार्शोमूत्रकृच्छ्रनुत" इत्यादि । तस्या बीजं भागः १, त्वग्भागः २, दलम् पत्रकम् ३, नागम्–नागकेशरम् । यत आह निघण्टौ धन्वन्तरिः–"नागपुष्पं मतं नागं केशरं नागकेशरम्" इत्यादि । तस्य भागा ४, मरिचम् ५, पिप्पली ६, शुंठी ७, शर्करा-भागा २८, इति समशर्करचूर्णम् ॥

इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग, तेजपात ३ भाग, नागकेशर ४ भाग, मिरच ५ भाग, पीपल ६ भाग और सोठ ७ भाग इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करके सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिलावे । इस चूर्णको भक्षण करे, तो बवासीर, मन्दाग्नि, गोला, अरुचि, श्वास, कण्ठरोग और हृदयरोग दूर हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

इस चूर्णमें छोटी इलायचीके दाने डालने चाहिये । क्योंकि, मदनपाल निघंटुमें कहा है कि "छोटी इलायची–कफ, श्वास, खाँसी बवासीर और मूत्रकृच्छ्रको दूर करती है" ॥

अथ विजयचूर्णम् ।

त्रिकत्रयं वचा हिङ्गु पाठा क्षारौ निशाद्वयम् । चव्यतिक्ताकलिङ्गानि शक्राह्वो लवणानि च ॥ ६८ ॥ ग्रन्थिबिल्वाऽजमोदाश्च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः । एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ६९ ॥ चूर्णं बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा । एरण्डतैलयुक्तं वा लिह्याच्चूर्णमिदं नरः ॥ ७० ॥ हन्यादर्शांसि सर्वाणि श्वासशोषभगन्दरान् । हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वातगुल्मं तथोदरम् ॥७१॥ हिक्कां कासं प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं सकामलम् । आमवातमुदावर्तमन्त्रवृद्धिं गुदक्रिमीन् ॥ ७२ ॥ अन्ये च ग्रहणीदोषा भिषग्भिर्ये प्रकीर्तिताः । विजयो नाम चूर्णोऽयं तान् सर्वानाशु नाशयेत् ॥७३॥ महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् । अप्रजानाञ्च नारीणां हितमेतद्धि भेषजम् ॥ ७४ ॥

त्रिकत्रयम्--त्रिफलात्रिकटुत्रिसुगन्धीनि । क्षारौस्वर्जिका यवक्षारश्च । लवणानि पंच । ग्रन्थि–पिप्पलीमूलम् । विडालपदकन्-कर्षम् ॥

हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, दालचिनी, इलायची, तेजपात, वच, हींग, पाढ, सज्जी, जवाखार, हलदी, दारुहलदी, चव्य, कुटकी, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, पाँचों निमक, पीपलामूल, बेलगिरी और अजमोद ये अठ्ठाईस औषधि समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करले, इस चूर्णको गरम जलके साथ अथवा अंडीके तेलमें मिलाकर एक तोलाभर भक्षण करे । इससे सब प्रकारकी बवासीर, श्वास, शोष, भगन्दर, हृदयका शूल, पसलियोंका शूल, वातगुल्म, उदररोग, हिचकी, खाँसी, प्रमेह, पाण्डु, कामला, आमवात, उदावर्त, अन्त्रवृद्धि, गुदाकी कृमि और जो वैद्योंने संग्रहणी आदि रोग कहे हैं, वे सब तत्काल नष्ट हो जाते हैं । जो मनुष्य महाज्वरसे पीडित हैं और जो भूतबाधासे

व्याकुल हैं और जिन स्त्रियोंके सन्तान उत्पन्न नहीं होती है, उनके लिये यह विजयचूर्ण अत्यन्त हितकारी है ॥ ६८-७४ ॥

अथ लघुसूरणमोदकः ।

मरिचमहौषधचित्रकसूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः । सर्वसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥ ७५ ॥ ज्वलनं ज्वलयति जाठरमुन्मूलयतीह शूलगुल्मगदाम् । निःशेषयति श्लीपदमर्शांसि विनाशयत्याशु ॥ ७६ ॥ तद्यथा—मरिचभागः १ । शुण्ठीभागौ २ । चित्रकभागाः ४ । सूरणभागाः ८ । गुडभागाः १५ ।

मिरच १ भाग, सोंठ २ भाग, चीता ४ भाग और जिमीकंद ८ भाग लेवे, सबको एकत्र पीस लेवे और सबके समान गुड मिलाकर लड्डू बना लेवे । प्रसिद्ध फलवाले इन मोदकोंको सेवन करनेसे जठराग्नि दीप्त होती है, शूल और गुल्मकी पीडा नष्ट होती है, श्लीपदरोग और बवासीर दूर हो जाती है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

अथ बृहत्सूरणमोदकः ।

षोडश सूरणभागा वह्नेरष्टौ महौषधस्यास्य । अर्द्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्द्धेन ॥ ७७ ॥ त्रिफला कणा समूला तालीसारुष्करक्रिमिघ्नानाम् । भागा महौषवसमा दहनांशा तालमूली च ॥ ७८ ॥ भागाः सूरणतुल्या दातव्या वृद्धदारकस्यापि । भृङ्गैले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ ७९ ॥ द्विगुणेनगुडेन युक्तः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामधनैः । गुरुवृष्यभोजनरतैरितरेषूपद्रवं कुर्यात् ॥ ८० ॥ भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन । भीमस्य मारुतेरपि महाशनौ तेन तौ जातौ ॥ ८१ ॥ अग्निबलवर्णहेतुर्न केवलं सूरणो महावीर्यः । हन्ता शस्त्रक्षारानलै विनाऽप्यर्शसामेषः ॥ ८२ ॥ श्वयथुश्लीपदहृद्ददग्रहणीं च फलानिलाद्भूताम् । नाशयति वलीपलित मेधां कुरुते जराश्च हरेत् ॥ ८३ ॥ हिक्कां कासं श्वासं सराजरोगं प्रमेहांश्च । प्लीहानं च तथोग्रं हन्त्याशु रसायनं पुंसाम् ॥ ८४ ॥ ७९ श्लोकस्थानाम् एषां भागा यथा—सूरणभागाः १६ । चीताभागाः ८ । शुण्ठीभागाः ४ । मरिचभागौ २ । हरडै । बहेडा । आमला । पीपरि । पीपरामूल । तालीश । भिलावाँ । तद्सत्त्वे रक्तचन्दनम् । विडङ्गं प्रत्येकं भागाः ४ । तालमूलीभागाः ८ । विधारा भागाः १६ । तजभागः १ । इलायची छोटी बीज भागः १ । गुडभागाः ॥ १७६ ॥

जिमीकंद १६ भाग, चीता ८ भाग, सोंठ ४ भाग, मिरच २ भाग, त्रिफला ४ भाग, पीपल ४ भाग, पीपलामूल ४ भाग तालीसपत्र ४ भाग, भिलावे ४ भाग, वायविडंग ४ भाग, कालीमुसली ८ भाग, विधारा १६ भाग, दालचीनी १ भाग और छोटी इलायची १ भाग सबको एकत्र पीस लेवे और सबसे दुगुना गुड मिलाकर लड्डू बनालेवे, ये मोदक मैथुनशक्तिको बढानेवाले हैं, ऐसे पदार्थ धनवान् मनुष्योंको भारी और पुष्टिकारक पदार्थ खानेवालोंको सेवन करने चाहियें । उनके ऊपर घृतादिक उत्तम भोजन करना उचित है । इन उत्तम पदार्थोंको नहीं सेवन करनेवाले मनुष्योंको ये मोदक उपद्रव

करते हैं, पूर्वकालमें इन मोदकोंको सेवन करनेसे अगस्त्य ऋषि और मारुतनन्दन भीमसेनको भस्मक रोग हो गया था, इस कारण वे अधिक भोजन करने लगे थे। यह महाशक्तियुक्त बृहत्सूरण मोदक केवल अग्नि, बल और उत्तम वर्णको ही करता है, ऐसा न समझना, परन्तु ये शस्त्र क्षार अग्निके विनाही बवासीरको नष्ट करते हैं। सूजन, श्लीपद, हृदयरोग, कफसे और वायुसे उत्पन्न हुई ग्रहणी और वलीपलितको भी नष्ट करते हैं तथा बुद्धिको बढानेवाले और बुढापा, हिचकी श्वास, क्षयरोग, प्रमेह तथा अत्यन्त उग्र प्लीहाको नष्ट करते हैं और पुरुषोंके लिये उत्तम रसायन हैं ॥ ७७-८४ ॥

अथ श्रीबाहुशालगुडः।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी। गवाक्षा मुस्तविश्वाब्दविडङ्गानि हरीतकी ॥ ८५ ॥ पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात्। वृद्धदारपलान्यष्टौ सूरणस्य तु षोडश ॥ ८६ ॥ जलद्रोणद्वये क्वाथ्यं चतुर्भागावशेषितम्। पूतं पूतं रसं भूयः क्वाथेभ्यस्त्रिगुणं गुडम् ॥ ८७ ॥ मेलयित्वा पचेत्तावद्यावद्दर्वीप्रलेपनम्। अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ८८ ॥ त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान् द्विपलांशिकान्। एलात्वङ्मरिचं चापि नागकञ्चापि षट्पलम् ॥ ८९ ॥ द्वात्रिंशच्च पलान्यत्र चूर्णयित्वा निधापयेत्। ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशिनः ॥ ९० ॥ हन्यादर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराण्यपि। गुल्मानपि प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ ९१ ॥ दीपयेदनलं मन्दं यक्ष्माणं चापकर्षति। आढ्यवाते प्रतिश्याये पीनसे च हितौ मतः ॥ ९२ ॥ भवन्त्यनेन पुरुषाः शतं वर्षाण्यनामयाः। दीर्घायुषः प्रजनना वलीपलितवर्जिताः॥९३॥ गुडः श्रीबाहुशालोऽयं रसायनवरो मतः। दुर्नामान्तकरो ह्येष दृष्टो वारसहस्रशः ॥ ९४ ॥ यावद्दर्वीप्रलेपः स्याद् गुडो वा तन्तुमान् भवेत्। तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः ॥ ९५ ॥ क्षिप्तस्तु निश्चलस्तिष्ठेत् पतितस्तु न शीर्यति। एष पाकः समस्तानां गुडानां परिकीर्तितः ॥ ९६ ॥ सार्द्धं पलं पलं चार्द्धं भक्षयेद्गुडखण्डयोः। श्रेष्ठा तु मध्यमा हीना मात्रोक्ता मुनिभिस्त्रिधा ॥ ९७ ॥

निसोत ४ तोले, तेजबल ४ तोले, जमालगोटा ४ तोले. गोखरू ४ तोले, चीता ४ तोले, कचूर ४ तोले, इन्द्रायन ४ तोले, नागरमोथा ४ तोले, सोंठ ४ तोले, मोथा ४ तोले, वायविडंग ४ तोले, हरड ४ तोले, भिलावे ३२ तोले, विधारा ३२ तोले और जिमीकन्द ३२ तोले, इन सबको २०४८ तोले जलमें पकावे, जब जलके २ चौथाई भाग बाकी रहे तब उतारकर छान लेवे, फिर इस काथमें तिगुना गुड मिलाकर पकावे जब वह करछीसे चिपकने लगजाय, तब उतार लेवे, फिर उसमें निसोत ८ तोले, तेजबल ८ तोले, जिमीकन्द ८ तोले, चीता ८ तोले, इलायची २४ तोले, दालचीनी २४ तोले, कालीमिरच २४ तोले और नागकेशर २४ तोले इनका चूर्ण करके मिला देवे, इसको श्रीबाहुशालगुड कहते हैं। रोगीका बलाबल विचारकर इसका भक्षण करावे। यह गुण-सर्वप्रकारकी बवासीर, सर्व प्रकारके उदररोग, गुल्म, प्रमेह, पाण्डु रोग और हलीमक रोगको नष्ट करता है, मन्दाग्निको दीप्त करता है और क्षयरोगको नष्ट करता है, आढ्यवात, प्रतिश्याय और पीनसरोगको दूर करता है। इस गुडके सेवन करनेसे

मनुष्य अधिक आयुवाले होते हैं, बहुत सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं, वलीपलितरोग निवृत्त होकर सौ वर्षपर्यन्त रोगरहित जीते हैं। यह श्रीबाहुशालगुड-सब रसायनों श्रेष्ठ है, यह निश्चय बवासीरको नष्ट कर देता है, ऐसा हजारों बार देखा है। गुडपाककी परीक्षा-गुडका पाक करछीसे चिपटने लगे अथवा गुडमें तार निकलने लगे और जलसे भरे हुए पात्रमें डालनेसे गुड तैरे नहीं किन्तु स्थिर रहे और ऊपरसे डालने विखरे नहीं, तो गुडका पाक उत्तम बना जानना। सर्वप्रकारके गुडों का पाक इसी प्रकार जानना। गुड तथा खांड का उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ ये तीन प्रकार की मात्रा है, इनमें छः रुपये भरकी उत्तम, चार रुपये भरकी मध्यम और दो रुपये भर की कनिष्ठ मात्रा जाननी ॥८५-९७॥

अथ तिलादिमोदकः ।

तिला भल्लातकाः पथ्या गुडश्चैतैः समांशकैः । दुर्नामश्वासकासघ्नः प्लीहपाण्डुज्वरापहः ॥ ९८ ॥

तिल, भिलावें, हरड और गुड इन सबको समान भाग लेकर लड्डू बनावे। ये बवासीर, श्वास, खांसी, प्लीहा, पाण्डुरोग और ज्वरको नष्ट करते हैं ॥ ९८ ॥

अथ सगुडाभया ।

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कण्डूकुक्षिरुजापहा । गुदजान्नाशयत्याशु भक्षिता सगुडाभया ॥ ९९ ॥

हरडके चूर्णमें गुड मिलाकर गोली बनावे यह गोली पित्त, कफ, खुजली और कोखके दर्दको नष्ट करती है। इन गोलियोंको भक्षण करते ही बवासीर नष्ट हो जाती है ॥ ९९ ॥

अथ शंकरलोहः ।

प्रणम्य शङ्करं रुद्रं दण्डपाणिं महेश्वरम् । जीवितारोग्यमन्विच्छन् नारदोऽपृच्छदीश्वरम् ॥ १०० ॥ सुखोपायेन हे नाथ शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना । चिकित्सामर्शसां नृणां कारुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥ १०१ ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा नराणां हितकाम्यया अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं भैषज्यं शङ्करोऽवदत् ॥ १०२ ॥

एक समय जीवोंके जीवन और आरोग्यकी इच्छा करनेवाले नारदमुनि सम्पूर्ण विश्वके कल्याणरूप, रुद्र, हाथमें दण्डको धारण करनेवाले, जगत्प्रभु, श्रीमहादेवजीको प्रणाम करके पूँछने लगे कि-हे विश्वनाथ ! ऐसा कोई सहज उपाय है, जो शस्त्र क्षारकर्म और अग्निके विना बवासीर रोगवाले मनुष्योंकी चिकित्सा हो जाय ? वह आप करुणा करके कहिये इस प्रकार नारदजीकी प्रार्थनाको सुनकर महादेवजी मनुष्योंके हित करनेकी इच्छासे अर्शरोगको दूर करनेवाली यह परमोत्तम औषधि बताने लगे ॥ १००-१०२ ॥

पाण्डचवज्रादिलोहानामादायान्यतमं शुभम् । कृत्वा निर्मलमादौ तु कुनटचा माक्षिकेण च ॥ १०३ ॥ पत्तूरमूलकल्केन लिम्पेद्रस युतेन च । वह्नौ निक्षिप्य विधिवत् सारङ्गारेण निर्द्धमेत् ॥१०४॥

कुनटी-मनःशिला । माक्षिकं-सुवर्णमाक्षिकम् । पत्तरं-पटकार इति लोके । रसः-पारदः । सारः-काष्ठसारः ॥

ज्वाला च तस्य रोद्धव्या त्रिफलाया रसेन च । ततो विज्ञाय गलितं शंकुनोर्ध्वं समुच्छ्रयेत् ॥ १०५ ॥ त्रिफलाया रसे पूते तदाकृष्य तु निर्द्धमेत् । न सम्यग्गलितं यत्तु तेनैव विधिना पुनः ॥ १०६ ॥ ध्मातं निर्वापयेत्तस्मिँल्लोहं तत्त्रिफलारसे । यल्लोहं न मृतं तत्तु पाच्यं भूयोऽपि पूर्ववत् ॥ १०७ ॥ मारणान्न मृतं यच्च तत्पक्तव्यमलोहवत् ।

ततः संशोष्य विधिवच्चूर्णयेल्लोहभाजने ॥ १०८ ॥ लोहेन च तथा पिष्याद् दृषदा सूक्ष्मचूर्णितम्। कृत्वा लोहमये पात्रे मृत्तिकालिप्तरन्ध्रके ॥ १०९ ॥ रसैः पङ्कोपमं कृत्वा तं पचेद्गोमयाग्निना। पुटानि क्रमशो दद्यात् पृथगेभिर्विधानतः ॥ ११० ॥ त्रिफलार्द्रकभृङ्गाणां केशराजस्य बुद्धिमान्। मानकन्दक भल्लातवह्नीनां सूरणस्य च ॥ १११ ॥

भृङ्गः-भङ्गरिया। केशराजः-केशराग इति लोके॥

हस्तिकर्णपलाशस्य कुलिशस्य तथैव च। पुटे पुटे चूर्णयित्वा लोहात्षोडशिकं पलम् ॥ ११२ ॥ तन्मात्रं त्रिफलायाश्च पलेनाधिकमाहरेत्। अष्टभागावशेषे तु रसे तस्याः पचेद् बुधः ॥ ११३ ॥ अष्टौ पलानि दत्त्वा च सर्पिषो लोहभाजने। ताम्रे वा लोहदर्व्या तु चालयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ११४ ॥ ततः पाकविधानज्ञः स्वच्छे चोर्ध्वं च सर्पिषि। मृदुमध्यादिभेदेन गृह्णीयात् पाकमन्यतः॥११५॥आरम्भे तद्विधानज्ञः कृतकौतुकमङ्गलः। भ्रामरं घृतसंयुक्तं विलिह्याद्र रत्तिकाक्रमात् ॥ ११६ ॥ द्वादशरत्तिकापर्यन्तं यथाग्निवलं खादेत् ॥ वर्द्धमानानुपानं च गव्यक्षीरेण संयुतम्। गव्याभावे त्वजायाश्च स्निग्धवृष्यादिभोजनम् ॥ ११७ ॥

हे नारद ! पाण्डय अथवा वज्रादि लोहोंमें से कोई उत्तम लोहा लेकर पत्र करावे, उनको प्रथम शुद्ध करके पश्चात् मनशिल, सोनामाखी और पत्तरकी जडका कल्क और पारा इनका लेप करे, फिर विधिपूर्वक बेरीके कोयलोंमें उस लोहेको रखकर धमावे, जब उसमेंसे अग्निकी लपटें निकलने लगें तब उसको त्रिफलेके रसमें बुझा देवे, पश्चात् लोहेको गला जानकर सण्डासीसे उस लोहेके पत्रोंको उठाकर छने हुए त्रिफलेके रसमें छोड देवे, लोहेका जितना भाग अच्छी प्रकारसे न न गला हो उसको फिर उपरोक्त विधिसे अग्निमें तपाकर त्रिफलेके रसमें बुझावे, फिर भी जो उसमेंसे जितना नहीं गले उसकोदुबारा उक्त विधिसे अग्निमें तपाकर त्रिफलेके रसमें बुझादेवे, इस प्रकार बारंबार तपानेसे भी जो न गले तो अन्य धातुओंकी तरह पकाकर त्रिफलेके रसमें बुझावे, पश्चात् इस लोहेको त्रिफलेके रसमें बुझाकर धूपमें सुखावे, पश्चात् इसको लोहेके बासनमें डालकर चूर्ण कर लेवे, फिर लोहेकी मूसलीसे सिलपर मर्दीन पीसलेवे. फिर इस चूर्णको लोहेके बासनमें डालकर त्रिफलेके रसकी कीचसी बनाकर बासनपर कपरमिट्टी करके मुख बन्द कर अरने उपलोंकी अग्निसे गजपुटमें पकावे, पश्चात् अनुक्रमसे त्रिफला, अदरख, भांगरा, कालाभांगरा, मानकन्द, भिलावे, चीता, जिमीकन्द, हस्तिकर्ण, पलाश, थूहर इनके रसके द्वारा गजपुटमें पकावे। प्रत्येक पुटमें इस लोहेका चूर्ण ६४ तोले और त्रिफलेका रस ६८ तोले डालना ×चाहिये। यहां त्रिफलेका रस ऐसा लेना चाहिये कि, जो अठगुने जलमें पकाकर एक भाग जल शेष रहा हो, फिर लोहेके अथवा तांबेके बरतनमें ३२ तोले घी और वह क्वाथ छोडकर उसमें वह लोहा डालकर विधिपूर्वक पकावे और लोहेकी करछीके चलाता रहे पाकको जाननेवाला वैद्य देखता रहे जब कि. स्वच्छ घी तैरकर ऊपर आ जावे तब मृदु, मध्य और तीक्ष्ण जैसा

× एक एक पुट देकर कमसे कम पच्चीस पुट देवे अर्थात् ढाईसौ दिनमें यह लोहा सिद्ध करे। यह वृद्ध वैद्यका मत है। इस प्रकार करनेसे लोहा पानीमें तैरने लगता है॥

पाक करना हो वैसा पकाकर उतारलेवे । इस शंकरलोहेके प्रयोगके आरम्भमें उत्सव और मंगल कार्य करने चाहिये, इस लोहेको सहत तथा घीमें मिलाकर पहिले दिन एक रत्ती,दूसरे दिन दो रत्ती इस प्रकार बढाता एक एक रत्ती हुआ अग्निके बलानुसार १२रत्तीतक सेवन करे, वर्द्धमान पिप्पलीके समान इसके ऊपर गायके दूधका और जो गायका दूध न मिले तो बकरीके दूधका अनुपान करे, तथा स्निग्ध और वृष्य पदार्थोंका भोजन करे ॥ १०३--११७ ॥

सद्यो वह्निकरं चैव भस्मकं च नियच्छति । हन्ति वातं तथा पित्तं कुष्ठानि विषमज्वरम् ॥ ११८ ॥ गुल्माक्षिपांडुरोगांश्च निद्रालस्यमरोचकम् । शूलञ्च परिणामञ्च प्रमेहमपबाहुकम् ॥ ११९ ॥ श्वयथुं रुधिरस्रावं दुर्नामानं विशेषतः । बलकृद् बृंहणश्चैव कान्तिदं स्वरबोधनम् ॥ १२० ॥ शरीरलाघवकरमारोग्यं पुष्टिवर्द्धनम् । आयुष्यं श्रीकरश्चैव बलतेजस्करं शुभम् ॥ १२१ ॥ सश्रीकं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् । दुर्नामारिरियं नाम्ना दृष्टो वारसहस्रशः॥१२२॥ अनेनार्शांसि दह्यंते यथा तूलञ्च वह्निना। सौकुमार्याल्पकायत्वान्मद्यसेवी यदा नरः । जीर्णमद्यादिसंयुक्तभोजनैः सह दापयेत् ॥ १२३ ॥

यह शंकरलोह जठराग्निको तत्काल उत्पन्न करता है, भस्मकरोगको नष्ट करता है । वात, पित्त, कोढ, विषमज्वर, गुल्म, नेत्ररोग, पांडुरोग, निद्रा, आलस्य, अरुचि, शूल, परिणामशूल, प्रमेह, अपबाहुक, सूजन और रुधिरस्रावको दूर करता है विशेष करके बवासीरको नष्ट करता है, इस उत्तम लोहको सेवन करनेसे बलको वृद्धि होती है, पुष्टि होती है, कांति बढती है, स्वर सुन्दर होता है शरीरमें, लघुता उत्पन्न होती है आरोग्य और पुष्टिकी वृद्धि होती है आयुकी वृद्धि होती है, लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, प्रताप और शोभा बढती है, सर्व गुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न होते हैं, वली (शरीरमें वलोंका पडना) पलित (विना समय ना लोंका सफेद हो जाना) नाशक है । इस शंकर लोहका नाम दुर्नामारि भी है, इससे बवासीर शान्त होजाती है ऐसा हजारों वार देखा है कि-जिस प्रकार अग्निसे रुई जलजाती है, उसी प्रकार इस लोहसे बवासीर दूर हो जाती है । जो रोगी सुकुमार और कोमल शरीरवाले हैं और मदिराको सेवन करते हैं, इनको पुरानी मदिरा आदि संयुक्त भोजनके साथ देवे ॥ ११८-१२३ ॥

लावतित्तिरवर्तीरमयूरशशकादयः । चटकः कलविङ्कश्च वर्तका हरितालकः ॥ १२४ ॥ श्येनकश्च बृहल्लावो वनविष्किरकादयः । पारावतमृगादीनां मांसं जाङ्गलकं शुभम् ॥ १२५ ॥

वर्तीर- ' वगेरी ' इति लोके, वनचटकः। कलविङ्कः--गृहचटकः। वर्तका 'वटेरी' इति लोके । हरितालकः -हरिलः ' हरिल ' इति लोके । विस्किराः वर्तकादयः ॥

मद्गुरो रोहितः श्रेष्ठः शकुलश्च विशेषतः । मत्स्यराजा इति प्रोक्ता हितमत्स्याय देहिने ॥ १२६ ॥ वृन्ताकस्य फलं शस्तं पटोलं बृहतीफलम् । प्रलम्बा भीरुवेत्राग्रं ताडकं तण्डुलीयकम् १२७

प्रलम्बा--लम्बालावूः । भीरुः--शतावरी । पत्रम् पत्रशाकं । ताडकं देवदाली 'अकरकरा' इति लोके ॥

देवताडः कृतकोशो गरागरी । प्रोक्ताखुविषहृद्धेणी देवदाली च ताडकः । देवदाली रसे तिक्ता कफार्शःशोथपाण्डुताः ॥ नाशयेत्" इत्यादि ॥

वास्तूकं धान्यशाकश्च चित्रकं चक्रमर्दकम् । नालिकेरश्च खर्जूरं दाडिमं लवलीफलम् ।

चक्रमर्दकम्—चकवडशाकम् ॥

शृङ्गाटकश्च पक्काम्रं द्राक्षा तालफलानि च । हितान्येतानि वस्तूनि लोहमेतत्समश्नताम् ॥ १२८ ॥

इस लोहको सेवन करनेवाले मनुष्योंको-लवा तीतर, मोर, वगेरा, खरगोश, चिडा, जंगली चिडा, बत्तक, हरियल, सिकरा. वडा लवा और वनमें रहनेवाले विष्किरादि परेवा, कबूतर और जंगली हिरन आदि पशुपक्षियोंका मांस हितकारी है । जिनमनुष्योंको मछली खानेका अभ्यास है,उनके लिये मद्गुर, रोहू और शकुल ये सब बडी मछली हितकारी है । बैंगन, परवल, कटेरीके फल, लम्बी तोम्वी, सतावरके पत्ते, बेंतके अग्रभाग या शाक, बंदाल, चौलाई, बथुआ, धनियेका शाक, चीता, चकवड, नारियल, छुहारे, अनार, हरफारेवडी, सिंगाडेपके आम, दाख और ताडके फल ये सब पदार्थ इस लोहको सेवन करनेवाले मनुष्योंको हितकारी हैं ॥ १२४-१२८ ॥

नाश्नीयाल्लकुचं कोलकर्कन्धुबदराणि च ॥१२९॥ जम्भीरं बीजपूरश्च तिन्तिडीं करमर्दकम् ॥

कोलम्--क्षुद्रबदरम् । कर्कन्धुः--बृहद्बदरम् ॥

आनूपानि च मांसानि क्रकरं पुण्ड्रकाणि च ॥ १३० ॥

क्रकरम्--करकरम् ।

हंससारसदात्यूहचाषक्रौञ्चबलाकिकाः । मानकन्दं कसेरूणि कतकश्च कलिङ्गकम् ॥ १३१ ॥

दात्यूहः--नीलकण्ठः । चाषः (डाकु) । कलिंगक (तरबूज)

कूष्माण्डकं च कर्कोटं क्रमुकश्च विशेषतः । कटुकं कालशाकश्च कण्टुरुः कर्कटी तथा । ककारादीनि सर्वाणि द्विदलानि च वर्जयेत् ॥ १३२ ॥

इस लोहको सेवन करनेवाला मनुष्य-बडहल, बेर, बडे बेर, जम्भीरीनींबू, विजौरा नींबू, इमली, करौंदा, अनूपदेशके जीवोंका मांस, केकडा, पुंड्रक, हंस, सारस, पपैया नीलकंठ, क्रौञ्च और बगला इन सबका मांस, मानकन्द, कसेरू, निर्मलीफल, तरबूज, पेठा, ककोडा, सुपारी कडवे परवल, नाडीका शाक, कुन्दुरु, ककडी और समस्त ककारादि पदार्थ और द्विदल अन्न चनाआदि इन सबका त्याग करना चाहिये ॥ १२९-१३२ ॥

शङ्करेण सामाख्यातो यक्षराजानुकम्पया । जगतामुपकाराय दुर्नामारिरयं ध्रुवम् ॥ १३३ ॥ स्थानाच्चलति मेरुश्च पृथ्वी पर्येति वायुना । पतन्ति चन्द्रताराश्च मिथ्या चेदहमब्रुवम् ॥ १३४ ॥ ब्रह्मघ्नाश्च कृतघ्नाश्च क्रूरा येऽसत्यवादिनः । वर्जनीयाः सधर्मेण भिषजा गुरुनिन्दकाः ॥ १३५ ॥ मुनिरसपिष्टविडङ्गं मुनिरसलीढं चिरस्थितं घर्मे । द्रावयति लोहदोषान् वह्निर्नवतीतपिण्डमिव ॥ १३६ ॥

मुनिः -अत्रागस्त्यः ।

काले मलप्रवृत्तिर्लाघवमुदरे विशुद्धिरुद्गारे । अङ्गेषु नावसादो मनःप्रसादोऽस्य परिपाके ॥ १३७ ॥ क्रिमिरिपुचूर्णं लीढं सहितं स्वरसेन वङ्गसेनस्य । क्षपयत्यचिरान्नियतं लोहाजीर्णोद्भवं शूलम् ॥ १३८ ॥

वङ्गसेनस्य--अगस्तेः ॥

भवेद्यद्यतिसारस्तु दुग्धं पीत्वा तु तं जयेत् । गुञ्जाद्वादशकादूर्ध्वं वृद्धिरस्य भयप्रदा ॥ १३९ ॥ इति शंकरप्रणीतं लोहम् ॥

यह दुर्नामारिलोह श्रीमहादेवजीने जगत्के उपकारके लिये और कुबेरके ऊपर दया करके कहा है । इससे बवासीर अवश्य नष्ट होती है । महादेवजी कहते हैं कि-जो मैं यह असत्य कहता हूँ तो अपने स्थानसे सुमेरु पर्वत हटजाय, पृथ्वी उलट जाय चन्द्रमा और तारागण आकाशसे पतित होजायँ ब्रह्मघाती, कृतघ्नी, क्रूर, असत्यवादी और गुरुनिन्दक ऐसे मनुष्योंको यह लोहा कदापि नहीं देना चाहिये इस लोहेके सेवन करनेसे जो शरीरमें कोई विकार उत्पन्न हो तो अगस्तियाके रसमें वायविडंगको पीसकर बहुत देरतक धूपमें रखदेवे, जब सूखजाय तब चूर्ण करके अगस्तियाके रसके साथ चाटे । जिस प्रकार अग्नि माखनके पिंड को पिघला देती है, उसी प्रकार यह लोहेके दोषोंको पिघला देता है । पेटमें इस चूर्णके पकनेके समय मल ठीक समयपर उतरता है, पेटमें हलकापन होता है, डकार शुद्ध आती हैं, अंगमें ग्लानि नहीं रहती और मनमें प्रसन्नता होती है । वायविडंगका चूर्ण करके अगस्तियाके स्वरसमें मिलाकर चाटे तो लोहके अजीर्णसे उत्पन्न हुआ शूल तत्काल अवश्य नष्ट होता है। यदि इस लोहेके सेवन करनेसे अतिसार उत्पन्न हो तो दूध पीना चाहिये, इससे अतिसार नष्ट होजाता है इस लोहेको बारह रत्तीसे अधिक भक्षण करे तो भय उत्पन्न होता है इस कारण बारह रत्तीसे अधिक नहीं खाना चाहिये ॥ १२३ ॥ १३९ ॥

अथ रक्तार्शश्चिकित्सा

रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ स्रवद्भिषक् । दुष्टास्रे निःसृते न स्युः शूलानाहासृगामयाः ॥ १४० ॥

रुधिरकी बवासीरमें वैद्यनिकलते हुए रुधिरको पहिले ही नहीं रोके, क्योंकि, दूषित रुधिरको रोकनेसे शूल, अफारा और रक्तके विकार उत्पन्न होते हैं ॥ १४० ॥

चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवासाः सनागराः क्वथिताः । रक्तार्शसां प्रशमना दार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च ॥ १४१ ॥

चन्दनमत्र रक्तम् । नागरमत्र मुस्तकम् ॥

लालचन्दन, चिरायता, धमासा, नागरमोथा, दारुहलदी, दालचीनी, खस और नीम इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे रुधिरकी बवासीर नष्ट होजाती है, इसको चन्दनादिक्वाथ कहते हैं ॥ १४१ ॥

नवनीततिलाभ्यासात् केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् । दधिसरमथिताभ्यासाद् गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः ॥ १४२ ॥

दध्नस्तूपरि यो भागो घनस्नेहयुतः सरः । मथितं सररहितं निर्जलं वस्त्रपूतं दधि ॥ १४३ ॥

नैनी घी और तिल मिलाकर नित्य खानेसे, नागकेशर, नैनी घी और मिश्री इनको एकत्र मिलाकर भक्षण करनेसे, अथवा दहीकी मलाई और मलाईरहित मथाहुआ दही इनको सेवन करनेसे खूनी बवासीर दूर होजाती है, दहीके ऊपरका जो चिकना भाग रहता है उसको 'सर' कहते हैं । सर रहित और कपडेमें छनीहुईनिर्जल दहीको 'मथित' कहते हैं ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

सपद्मकेशरं क्षौद्रं नवनीतं नवं लिहन् । सिताकेशरसंयुक्तं रक्तार्शसि सुखी भवेत् ॥ १४४ ॥

कमलकी केशर, सहत, नवीन नैनू घी, मिश्री और नागकेशर इनको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे रुधिरकी बवासीरवाला रोगी सुखी होता ॥ १४४ ॥

पयसा श्रृतेन यूषैः सतीनमुद्गाढकीम-

सूराणाम् । ओदनमद्यादम्लैः शालिश्यामाककोद्रवजम् । शशहरिणलावमांसैः कपिञ्जलैरेणमांसैश्च ॥ १४५ ॥

ओदनमद्यादम्लैः-ईषत्सुगन्धैश्च ॥

मटर, मूँग, अरहर और मसूर इनका किंचित् खट्टे और सुगंधियुक्त किये हुए यूषके साथ, औटाये हुए दूधके साथ और खरगोश, हिरन, लवा, तीतर और काले हिरनके मांसके साथ शाली चावलोंका, सामेका और कोदोंका भात खात खाय तो रुधिरसम्बन्धी बवासीर नष्ट हो जाती है ॥ १४५ ॥ ॥

अथ समङ्गादिदुग्धम् ।

समङ्गोत्पलमोचाकतिरीटोत्पलचन्दनैः । सिद्धं छागीपयो दद्याद्गुदजे शोणितात्मके ॥ १४६ ॥

समङ्गा-लज्जालुः । मोचाकः-मोचरसः । तिरीटः । लोध्रः । चन्दनं रक्तम् । इति समङ्गादिदुग्धम् ॥

लज्जावन्ती, कमल, मोचरस, लोध और लालचन्दन इनको बकरीके दूधमें औटाकर उस दूधको पीनेसे रुधिरकी बवासीर दूर होती है ॥ १४६ ॥

अथ क्षारसूत्रम् ।

भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरैः पुनः पुनः । बन्धनात्सुदृढं सूत्रं छिनत्त्यर्शो भगन्दरम् ॥ १४७ ॥

हलदीके चूर्ण और थूहरके दूधमें सूतको वारंवार भावना देकर उस सूतसे गुदाके अंकुरोंको दृढ बांधनेसे बवासीर और भगन्दर नष्ट हो जाते हैं ॥ १४७ ॥

अथ नासिकाद्यर्शश्चिकित्सा ।

नासानाभिसमुत्थेषु तथा मेढ्रादिजेष्वपि । त्रिष्वप्यर्शःसु कुर्वीत तत्रतत्र यथोचितम् ॥ १४८ ॥

नासिका, नाभि और लिंग आदिमें उत्पन्न हुई बवासीरकी चिकित्सा यथायोग्य करनी चाहिये ॥ १४८ ॥

अथ चर्मकीलचिकित्सा ।

चर्मकीलन्तु संछिद्य दहेत्क्षारेण चाग्निना ॥ १४९ ॥

चर्मकीलको प्रथम काटकर क्षार अथवा अग्निसे जला देना चाहिये ॥ १४९ ॥

अथार्शोऽपथ्यानि ।

वेगावरोधं स्त्रीपृष्ठयानान्युत्कटकासनम् । यथास्वं दोषलं चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥ १५० ॥

मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, स्त्रीका स्पर्श, हाथी, घोडे आदिकी सवारी, उकरू बैठना और जिस जिस दोषकी अधिकतावाली बवासीर हो, उस उस दोषको बढानेवाला अन्न इन सबको त्याग देवे ॥ १५० ॥

इति अर्शोऽधिकारः ॥

अथ जठराग्निविकाराधिकारः ।

तत्र सन्निकृष्टनिदानपूर्वकजठराग्निविकारसमस्थिती ।

कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः । मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः ॥ १ ॥

जठराग्नि कफकी अधिकतासे मन्द होती है, पित्तकी अधिकतासे तीक्ष्ण होती है, वातकी अधिकतासे विषम होती है और तीनों दोषोंकी समतासे सम होती है, इस प्रकार जठराग्नि चार प्रकारको होती है ॥ १ ॥

अथ मन्दाग्निलक्षणम् ।

स्वल्पाऽपि नैव मन्दाग्नेर्मात्रा मुक्ता विपच्यते छर्दिः सादः प्रसेकः स्याच्छिरोजठरगौरवम् ॥ २ ॥

मन्दाग्निवाले मनुष्यको थोडा भोजन किया हुआ भी नहीं पचता है, वमन होती है, ग्लानी रहती है, लार गिरती है, शिर और पेटमें भारीपन रहता है ॥ २ ॥

अथ तीक्ष्णाग्निलक्षणम्।

मात्रातिमात्राऽप्यशिता तीक्ष्णाग्नेः पच्यते सुखम्। अत एव हि केनापि मतस्तीक्ष्णाग्निरुत्तमः ॥ ३ ॥

तीक्ष्ण अग्निवाले मनुष्यको बहुत भोजन किया हुआ भी सहजमें पच जाता है, इस कारण कोई वैद्य तीक्ष्ण अग्निको उत्तम मानते हैं ॥ ३ ॥

अथ विषमाग्निलक्षणम्।

अशिता खलु मात्राऽपि विषमाग्नेस्तु देहिनः। कदाचित्पच्यते सम्यक् कदाचिन्न विपच्यते ॥ ४ ॥ तस्याध्मानमुदावर्त्तं शूलं जठरगौरवम्। प्रवाहणमतिसारस्तथा स्यादन्त्रकूजनम् ॥ ५ ॥

विषम अग्निवाले मनुष्यको किया हुआ भोजन कभी अच्छी प्रकारसे पचता है और कभी नहीं पचता। विषमाग्निमें अफरा, उदावर्त्त, शूल पेटमें भारीपन, अधोवायुके त्यागते समय कफयुक्त विष्ठाका गिरना, अतिसार और आंतोंकी गडगडाहट ये सब लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ समाग्निलक्षणम्।

समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते। सोऽग्निरुत्तम एतेषु न तीक्ष्णस्तूत्तमो मतः ॥ ६ ॥

समाग्निवाले मनुष्यको परिमाणका किया हुआ भोजन अच्छी प्रकारसे पच जाता है, चारों प्रकारकी अग्निमें समाग्नि उत्तम और तीक्ष्णाग्नि उत्तम नहीं है ॥ ६ ॥

सः मधुरस्निग्धादिभोज्यः समाग्निः उत्तमः।

मधुर और स्निग्ध आदि भोजन करनेपर भी जो अग्नि समान रहती है उसको भी उत्तम जानना ॥

तर्हि कथं तीक्ष्णाग्नेर्विकारमध्ये गणना?

शंका-जिसमें किया हुआ भोजन अच्छी प्रकारसे पचजाता है, उसको उत्तम कहते हैं। फिर उस तीक्ष्ण अग्निको विकारोंमें क्यों कहा है?

उच्यते-समोऽग्नि क्षुधाविघातात् आशु एव तथा विकारं न करोति। तीष्णस्तु स्वल्पकालमपि क्षुधाविघातादाश्वेव पैत्तिकान् विकारान् कुरुते। उक्तं च--

"तीक्ष्णः पित्तसमुत्थानान् विषमो वातहेतुकान्। तथा करोति मन्दाग्निर्विकारान् कफसम्भवान्" ॥ ७ ॥

समाधान-समानअग्निवाला मनुष्य भूख लगनेपर यदि थोडी देरतक भोजन नहीं करे तो वह कुछ विकार नहीं करती और तीक्ष्ण अग्नि तो भूखके समय भोजन न मिलनेपर तत्काल पित्तके विकारोंको उत्पन्न करती है, इस कारण तीक्ष्ण अग्निको विकारोंमें कहा है। कहा भी है कि-" तीक्ष्ण अग्नि पित्त सम्बन्धी और विषम अग्नि वातसम्बन्धी विकारोंको उत्पन्न करती है और मन्दाग्नि कफके विकारोंको उत्पन्न करती है " ॥७॥

अथ भस्मकरोगनिदानम्।

बह्वतिरूक्षान्नभुजां नराणां क्षीणे कफे मारुतपित्तवृद्धौ। अतिप्रवृद्ध पवनान्वितोऽग्निर्भुक्तं क्षणाद्भस्म करोति यस्मात्॥ तस्मादसौ भस्मकसंज्ञकोऽभूदुपेक्षितोऽयं पचते च धातून् ॥ ८ ॥

अत्यन्त तीक्ष्ण और रूक्ष अन्नको भोजन करनेवाले मनुष्योंके कफ क्षीण होकर वात और पित्तकी वृद्धि होकर जठराग्नि अत्यन्त

बढकर वातके साथ मिलकर जो कुछ भोजन किया जाता है, उसको क्षणमात्रमें भस्म कर देती है, इसी लिये इस अग्निरूप रोगको भस्मक कहते हैं। इसमें भूँख लगनेपर जो भोजन न मिले तो यह रस रक्तादि धातुओंको भस्म करने लगता है ॥ ८ ॥

अथ भस्मकोपद्रवारिष्टे।

तृट्स्वेददाहमूर्च्छादीन् कृत्वैषोऽत्यग्निसम्भवान्। पक्त्वाऽन्नमाशु धात्वादीन् स क्षिप्रं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ९ ॥

यह भस्मकरोग अग्निकी अत्यन्त अधिकतासे तृषा पसीना, दाह और मूर्च्छा आदिको उत्पन्न करके अन्नको तत्काल पचाकर शीघ्रही धातुओंका नाश करता है ॥ ९ ॥

अथाजीर्णविप्रकृष्टनिदानम्।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च। कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ १० ॥

सन्धारणात्—क्षुधामूत्रपुरीषादीनाम्। स्वप्न विपर्ययात् -दिवाशयनाद्रात्रौ जागरणात्। लघु चापि इति अपिशब्दात् स्निग्धोष्णादिगुणयुक्तमपि ॥

अत्यन्तजल पीनेसे, विषम कभी कम, कभी ज्यादे भोजन करनेसे, क्षुधा, मूत्र और मलादिके वेगोंको रोकनेसे, दिनमें सोनेसे और रातमें जागनेसे मनुष्योंके समयपर स्वाभावके अनुसार हलका और स्निग्ध उष्ण भोजन किया हुआ भी अन्न पचता नहीं है ॥ १० ॥

अन्यच्च-तृष्णाभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन। प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति ॥ ११ ॥

परिप्लुतेन--व्याप्तेन ॥

और भी कारण कहते हैं कि—तृषासे भयसे और क्रोधसे तथा लोभसे रोग और दीनतासे पीडित अथवा द्वेषसे संयुक्त मनुष्योंके किया हुआ भोजन अच्छी प्रकार नहीं पचताहै ॥ ११

अथ बहुभोजनमेवाजीर्णहेतुः, तच्चानेकरोगकारणमित्याह।

अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः। रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णंप्राप्नुवन्ति हि ॥ १२ ॥

अनात्मवन्तः—अबुद्धिमन्तः। रोगानीकस्य विषूच्यादेः। मूलं कारणम् ॥

प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम्। तन्मूलो रोगसङ्घातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥ १३ ॥

तद्विनाशात्—अजीर्णविनाशाद्विनश्यति। रोगसङ्घातः—रोगसमूहः ॥

जो मूर्खमनुष्य पशुओंके समान अप्रमाण अंधाधुन्ध भोजन करते हैं, उनके विषूचिकादि रोगोंका—मूलकारणरूप अजीर्ण उत्पन्न होता है। और भी लिखा है कि—प्रायः आहारकी विषमतासे मनुष्योंके अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है, उस अजीर्ण होनेसे रोगोंका समूह उत्पन्न होता है और उस अजीर्णके नष्ट होनेसे वे सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथाजीर्णसामान्यलक्षणम्।

ग्लानिगौरवविष्टम्भभ्रममारुतमूढताः। विबन्धो वा प्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥ १४ ॥

मारुतमूढता-वायोरवरोधः। विबन्धः-मलाप्रवृत्तिः ॥

ग्लानि, भारीपन, विष्टम्भ, भ्रम, अधोवायुका रुकना और मलका अवरोध अथवा प्रवृत्ति ये अजीर्णके सामान्य लक्षण हैं ॥१४॥

अथ सन्निकृष्टकारणसहिताजीर्णभेदाः।

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिले-

त्रिभिः। आजीर्णं केचिदीक्षन्ते चतुर्थं रसशेषतः॥ १५॥

त्रिभिरित्येकशः, न तु मिलितैः। केचित् सुश्रुतादयः। सरशेषतः भुक्तस्य पक्वस्य सारभूतो यो द्रवः स रसः सोऽपि पच्यते, तस्य सारभूतो यो द्रवः स चापक्वः सारः रसशेषः तस्माच्चतुर्थमजीर्णम्॥

कफसे आमाजीर्ण, पित्तसे विदग्धाजीर्ण और वातकी अधिकतासे विष्टब्धाजीर्ण होता है, कितने सुश्रुतादि आचार्य कहते हैं कि-"भोजन किये हुए और पेटमें पके हुए अन्नादिकका जो साररूप द्रवभाग है, उस द्रवभागमें भी पकते २ जो कच्चा भाग शेष रह जाता है, उसको रसशेष कहते हैं और उस रस-शेषसे चौथा रसाजीर्ण होता है॥१५॥

ननु' आमाजीर्णाद्रसशेषस्य को भेदः?

शंका-फिर आमाजीर्ण और रसशेषाजीर्णमें भेदही क्या है?

उच्यते-आमं मधुरतां गतमपक्वमन्नमेव रसशेषस्तु भुक्तस्य पक्वस्य सारभूतो यो द्रवः स चापक्व इति भेदः॥

समाधान-मधुरतासे युक्त जो अपक्व अन्न है, उससे उत्पन्न हुए अजीर्णको आमाजीर्ण कहते हैं और भोजन किये पश्चात् पकेहुए अन्नका साररूप द्रवभाग अपक्व रहगया हो उससे उत्पन्न हुए अजीर्णको रसशेषाजीर्ण कहते हैं, इस कारण आमाजीर्ण और रस शेषाजीर्ण परस्पर भिन्न हैं॥

आजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च। वदन्ति षष्ठञ्चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम्॥ १६॥ निर्दोषम्-गौरवभ्रमशूलादिदोषाजनकम्। दिनपाकि च-अहोरात्रेण पाकं यातीति स्वभावः। यत्तु मात्राकालसात्म्यादिदोषात् दिनान्तरे पाकं याति तद्दिनपाकि। अत एव 'यामामध्ये न भोक्तव्यम्, इति वचनम्। प्राकृतम्-अविकारकम्। प्रतिवासरम्-प्रतिदिनभावि। भुक्तं यावन्न जीर्णं तावदजीर्णमित्युच्यते, एतदभिधानस्य प्रयोजनं पाकार्थं वामपार्श्वे शयनं प्रियशब्दसेवनादिकम्। न चात्राहारस्य निषेधः। "प्रातराशे त्वजीर्णे तु सायमाशी न दुष्यति" इति वचनेन सायमाशस्यावश्यं कर्तव्यत्वात्॥

कितने आचार्य कहते हैं कि-"भारीपन भ्रम और शूल इत्यादि दोषोंको नहीं उत्पन्न करनेवाला जो अन्न मात्रा काल तथा सात्म्य आदि दोषोसे उसदिन नहीं पचे, किंतु दूसरे दिन पचे, यह दिनपाकी पांचवा अजीर्ण है" इसलिये इस अजीर्णमें "दिनके एक प्रहरतक भोजन नहीं करना चाहिये ऐसा कहा है।

कितने वैद्य कहते हैं कि-"विकारोंको उत्पन्न नहीं करनेवाला जो अजीर्ण है, वह प्रतिदिन रहता है अर्थात् किया हुआ भोजन जबतक न पचे तबतक उसकी अजीर्ण संज्ञा है, यह छठा अजीर्ण है। इस छठे अजीर्णके कहनेका प्रयोजन यही है कि-इसके पचानेको बांई करवट लेकर लेटना, लोटपोटकर सोना और मिष्ट गायन कथा आदि प्रियशब्द सुनना चाहिये, पर यहाँ खानेका निषेध नहीं क्योंकि, "प्रातःकाल भोजन करनेसे उत्पन्न हुए अजीर्णमें सन्ध्याके समय भोजन करना कुछ हानिकारक नहीं है" इस वचनानुसार रात्रिमें अवश्य भोजन करना चाहिये॥१६॥

अथामाजीर्णलक्षणम्।

तत्रामे गुरुतोत्क्लेशः शोथो गण्डाक्षिकूटगः। उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धं प्रवर्तते॥ १७॥

गुरुता उदराङ्गयोः। उत्क्लेशः उपस्थितवमनमिव। अक्षिकूटः-अक्षिपुटकः॥

आमाजीर्णमें-पेट और अंगोंमें भारीपन होता है, वमनकीसी इच्छा होती है, गाल और आंखके पलकोंपर सूजन और जैसा भोजन किया हो, उसीके अनुसार डकार आती है ॥ १७ ॥

अथ विदग्धाजीर्णलक्षणम् ।

विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः । उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते ॥ १८ ॥

विविधाः रुजः--ऊषचोषदाहादयः ॥

विदग्धाजीर्णमें-भ्रम होता है, तृषा लगती है, मूर्च्छा होती है, पित्तके कारण सन्ताप चोष और दाहादिक अनेक प्रकारकी व्यथा होती हैं धुएँ युक्त खट्टी डकार आती हैं, पसीना और दाह होता है ॥ १८ ॥

अथ विष्टब्धाजीर्णलक्षणम् ।

विष्टब्धशूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः । मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनम् ॥ १९ ॥

वातवेदनाः—तोदभेदादयः । स्तम्भोऽङ्गानाम् । मोहो मूर्च्छा ॥

विष्टब्धाजीर्णमें-शूल, अफारा, तोड़ने, छेदने सरीखी अनेक वायुकी पीडा होती हैं, मल और वायुका अवरोध, शरीरका जकड जाना, अंगोंमें पीडा और मूर्च्छा होती है॥१९

अथ रसशेषाजीर्णलक्षणम् ।

रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे ॥२०॥

रसशेषाजीर्णमें-हृदयके अशुद्ध होनेसे और भारीपन होनेसे अन्नमें अरुचि होती है ॥२०॥

अथाजीर्णोपद्रवाः ।

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः । उपद्रवा भवन्त्येते मरणश्चाप्यजीर्णतः ॥ २१ ॥

अजीर्णसे-मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, लारका गिरना ग्लानि और भ्रम ये सब उपद्रव होते हैं और मरण भी होता है ॥ २१ ॥

अथोक्ताजीर्णे विषूच्यादिरोगाः ।

आमं विदग्धं विष्टब्धमित्यजीर्णं यदीरितम् । विषूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका ॥ २२ ॥

आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण ये जो तीन प्रकारके अजीर्ण कहे हैं, इनसे विषूचिका, अलसक और विलम्बिका ये महारोग होते हैं ॥ २२ ॥

नात्र यथासंख्यम् । तदा विष्टब्धाद्विलम्बिका भवितुमर्हति । सा च कफवाताभ्यां भवतीति एकैकतोऽजीर्णाद्विषूच्यादित्रयोत्पत्तिः ॥

इनमें आमाजीर्णसे विषूचिका, विदग्धाजीर्णसे अलसक और विष्टब्धाजीर्णसे विलम्बिका होती है, यह अनुक्रम नहीं मानना चाहिये परन्तु एक एक अजीर्णसे विषूची आदि तीनों रोग होते हैं, यदि अनुक्रम लिया जाय तो पित्तसम्बन्धी विष्टब्धाजीर्णसे विलम्बिका होनी चाहिये सो ठीक नहीं, क्योंकि, विलम्बिका कफ और वायुसे होती है, इस कारण यह अनुक्रम नहीं लेना चाहिये ॥

अथ विसूचीकार्थः ।

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् सन्तिष्ठतेऽनिलः । यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विसूचीति निगद्यते ॥ २३ ॥

जिस रोगमें अजीर्णके कारण वायु शरीरमें सुई छेदनकीसी पीडा करती है, उस रोगको वैद्य विसूचिका (हैजा) कहते हैं ॥२३॥

अथ विसूचिकानिदानम् ।

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः ॥ २४ ॥

विदितागमाः—ज्ञातायुर्वेदाः ॥

परिमाणका भोजन करनेवाले और आयुर्वेदको जाननेवाले मनुष्योंको विसूचिका रोग नहीं उत्पन्न होता है, किन्तु जिन मूर्ख मनुष्योंको मन और इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं और भोजनमें अत्यन्त आसक्त हैं, उनको यह विसूचिका उत्पन्न होती है ॥ २४ ॥

अथ विसूचिकालक्षणम् ।

मूर्च्छाऽतिसारौ वमथुः पिपासा शूलं भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः । वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥ २५ ॥

उद्वेष्टनं हस्तपादयोः । शिरसो भेदः—शिरःशूलम् ॥

विसूचिकामें मूर्च्छा, अतिसार दस्तोंका होना, वमन, तृषा, शूल, हाथ–पावोंका जकडना, जम्भाई, दाह, शरीरका वर्ण बदल जाना, कम्प, हृदयमें पीडा और शिरमें पीडा होती है ॥ २५ ॥

अथ विसूचिकोपद्रवाः ।

निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता । अमी उपद्रवा घोरा विसूच्याः पञ्च दारुणाः ॥ २६ ॥

अमी—निद्रानाशादयः उपद्रवा । सर्वेषामेव रोगाणां घोराः—भयङ्कराः । विसूच्या पञ्च दारुणाः विसूच्यास्तु पञ्चापि यदि स्युस्तदा दारुणाः- प्राण-भयंकराः ॥

निद्राका नाश, बेकली, कम्प, मूत्रका अवरोध और मूर्च्छा ये पांचों उपद्रव सब रोगोंमें भयंकर हैं, परन्तु विसूचिकामें उत्पन्न हों तो अत्यन्त दारुण हैं अर्थात् ये पांचों हो जायँ तो प्राण जानेका भय होता है ॥ २६ ॥

अथालसकलक्षणम् ।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्यत्यथ कूजति । निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावुपरि धावति ॥ २७ ॥ वातवर्चो निरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि । तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च यस्य तु ॥ २८ ॥

आनह्यते--आध्मायते । प्रताम्यति-ताडयति । कूजति--आर्तनादं करोति । कुक्षौ अजीर्णेन निरुद्धो मारुत उपरि धावति--हृदय कण्ठादिकं गच्छतीत्यर्थः ॥

पेट अत्यन्त अफरजाय, अंगोंको पटके, पीड़ाके मारे चिल्लावे, पेटमें अजीर्णसे रुकी रुई वायु छाती और कंठ आदि ऊपरके भागोंमें जावे, मल और, वायुको अत्यन्त अवरोध हो, तृषा और डकार आवे, ये सब लक्षण जिसके हों, उसके अलसकरोग उत्पन्न हुआ जानना ॥ २७ ॥ २८ ॥

काश्यपस्त्वाह—नाधो याति न चाप्यूर्ध्वमाहारो यत्र पच्यते । कोष्ठे स्थितोऽलसीभूतस्ततोऽसावलसः स्मृतः ॥२९॥

काश्यपमुनि कहते हैं कि–किया हुआ भोजन न तो ऊपरको वमनद्वारा निकले, न नीचे दस्तोंके द्वारा निकले और जठराग्निसे पके भी नहीं, किन्तु कोठेमें स्थित होकर रहता है इस कारण इस रोगको अलसक कहते हैं ॥ २९ ॥

अथ विसूचिकालसकारिष्टे ।

यः श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञो वम्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः । क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय ॥ ३० ॥

सर्वविमुक्तसन्धिः--सर्वा विमुक्ताः शिथिलीभूताः सन्धयो यस्य सः ॥

जिसके दांत, होंठ और नख काले पड़गये हों, संज्ञा नष्ट होगई हो, वमनसे पीडित हो, आँखे गड़गई हों, स्वर क्षीण हो गया हो और सम्पूर्ण सन्धिबन्धन ढीले पड़गये हों, वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

अथ विलम्बिकालक्षणम्।

दुष्टन्तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्ध्वमधश्चयत्र। विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणः ॥३१॥

भृशदुश्चिकित्स्याम्। प्रत्याख्येयामनुपचरणीयां। इयमसाध्येति जैयटः॥

जिसमें भोजन किया हुआ दुष्ट आहार, कफ और वायुके कारण मुखके द्वारा और गुदाके द्वारा नहीं निकले, उसको विद्वान् वैद्य विलम्बिका कहते हैं। यह विलम्बिकारोग चिकित्सा करनेमें अत्यन्त कठिन है, इस लिये इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥३१॥

अथ जीर्णाहारलक्षणम्।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः। लघुता क्षुत् पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ ३२ ॥

डकार शुद्ध आवे, चित्तमें उत्साह हो, मल मूत्रादिक ठीक उतरे, शरीरमें हलकापन हो, भूख और प्यास ठीक लगे, ये जीर्ण आहारके लक्षण हैं ॥ ३२ ॥

अथाजीर्णचिकित्सा।

हरीतकी तथा शुण्ठी भक्ष्यमाणा गुडेन च। सैन्धवेन युता वा स्यातसातत्येनाग्निदीपनी ॥ ३३ ॥

हरड और सोंठ इन दोनोंको पीसकर गुडमें मिलाकर भक्षण करनेसे अथवा सैंधेनमकके साथ भक्षण करनेसे जठराग्नि अत्यन्त दीप्त होती है ॥ ३३ ॥

गुडेन शुण्ठीमथ चोपकुल्यां पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा। आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात् ॥ ३४ ॥

आमाजीर्ण, बवासीर और मलबन्धमें नित्य गुडके साथ सोंठ, पीपल, हरड अथवा अनारका सेवन करना चाहिये ॥ ३४ ॥

व्योषं दन्ती त्रिवृच्चित्रं कृष्णामूलं विचूर्णितम्। तच्चूर्णं गुडसंमिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ३५ ॥ एतद् गुडाष्टकं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम्। शोथोदावर्तशूलघ्नं प्लीहपाण्ड्वामयापहम् ॥ ३६ ॥ सर्वचूर्णसमो गुडो देयः॥

सोंठ, मिरच, पीपल, जमालगोटेकी जड, निसोत, चीता और पीपलामूल इन सबको समान भाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण करे और सब चूर्णकी बराबर गुड मिलावे, इस गुडाष्टकको प्रातःकाल उठकर भक्षण करे। यह बल, वर्ण और अग्निको दीप्त करता है तथा सूजन उदावर्त, शूल, प्लीहा और पाण्डुरोगको नष्ट करता है॥

दहनाजमोदसैन्धवनागरमरिचानि चाम्लतक्रेण। सप्ताहादग्निकरं पाण्ड्वर्शोनाशनं परमम् ॥ ३७ ॥

चीता, अजमोद, सैंधानमक, सोंठ, और मिरच इनका चूर्ण करके खट्टे मट्ठेके साथ पिये तो सात दिनमें अग्निकी वृद्धि होती है, यह पाण्डुरोग और बवासीरको नष्ट करता है ॥ ३७ ॥

तत्रामे वमनं कार्यं विदग्धे लङ्घनं हितम्। विष्टब्धे स्वेदनं शस्तं रसशेषे शयीत च ॥ ३८ ॥

आमाजीर्णमें वमन करनी चाहिये, विदग्धाजीर्णमें लंघन कराने चाहियें, विष्टब्धाजीर्णमें सेक आदिसे स्वेदन कराना चाहिये और रसशेषाजीर्णमें शयन करना चाहिये॥३८

वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते। कणासिन्धुवचाकल्कं पीत्वा च शिशिराम्भसा ॥ ३९ ॥

जलमत्र शरावमात्रम्। वचा कर्षार्द्धमिता। द्वयोश्चूर्णमुष्णेन जलेन पिबेत्। कणादिकल्कं वा पीत्वा वान्तिरामे प्रशस्यते इत्यनेनान्वयः॥

आमाजीर्णमें आधा तोला वच और यथायोग्य सैंधानोंन दोनोंको पीसकर ३२ तोले गरम जलमें डालकर पिये और वमन करे तो आमाजीर्ण दूर हो।

पीपल, सैंधानमक और वच इनका कल्क बनाकर शीतल जलमें मिलाकर पीवे, इससे वमन होगी, यह आमाजीर्णमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ३९ ॥

धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः। आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम् ॥ ४० ॥

जो चतुर वैद्य आमाजीर्णमें धनियां और सोंठका क्वाथ पिलाता है, उससे आमाजीर्ण शान्त होजाता है, यह प्रयोग शूलको नष्ट करता है और आमाशयको शुद्ध करता है ॥ ४०

भवेद्यदा प्रातरजीर्णशङ्का तदाऽभयां नागरसैन्धवाभ्याम्। विचूर्णितां शीतजलेन भुक्त्वा भुञ्ज्यादशङ्कं मितमन्नकाले ॥ ४१ ॥

जो प्रातःकाल अजीर्णकी शंका हो तो हरड सोंठ और सैंधानमक इनका चूर्ण करके शीतल जलके साथ पीवे और जब भोजनका समय हो, तब, शंकाको छोडकर परिमाणका भोजन करे ॥ ४१ ॥

विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रं दन्दह्यते हृच्च गलश्च यस्य। द्राक्षां सितामाक्षिकसम्प्रयुक्तां लीढ्वाऽभयां चापि सुखं लभेत ॥ ४२ ॥

जिसके भोजन करते ही अन्नका विदग्धपाक होकर हृदय और कण्ठमें दाह हो तो वह सहत और मिश्रीके साथ दाख और हरड चाटे, इससे सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥

हिंग्वष्टकम्।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः। प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेतज्जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्ति ॥ ४३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोद, सैंधानमक, जीरा और कालाजीरा ये सब समान भाग और आठवां भाग भुनी हींग लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके घीमें मिलाकर भोजनके प्रथम ग्रासमें खानेसे जठराग्नि दीप्त होती है और बातसम्बन्धी रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ४३ ॥

अथ बृहदग्निमुखचूर्णम्।

द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जं लवणानि च। सूक्ष्मैलापत्रकं भार्ङ्गी क्रिमिघ्नं हिङ्गु पौष्करम् ॥ ४४ ॥ शटी दार्वी त्रिवृन्मुस्तं वचा चेन्द्रयवास्तथा। वृक्षाम्लं जीरकं धात्री श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ ४५ ॥ अम्लवेतसमम्लीका यवानी देवदारु च। अभयाऽतिविषा श्यामा हपुषाऽरग्वधं समम् ॥ ४६ ॥ तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः। क्षाराणि लौहकिट्टश्च तप्तं गोमूत्रसेचितम् ॥ ४७ ॥ सूक्ष्मचूर्णानि कृत्वा तु समभागानि कारयेत्। मातुलुङ्गरसेनैव भावयेद्दिवसत्रयम् ॥ ४८ ॥ दिनत्रयन्तु शुक्तेन तथाऽऽर्द्रकरसेन च। अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥ ४९ ॥ उपयुक्तं विधानेन नाशयत्यचिराद्गदान्। अजीर्णमथ गुल्मश्च प्लीहानं गुदजानि च ॥ ५० ॥ उदराण्यन्त्रवृद्धिश्च अष्ठीलां वातशोणितम्। प्रणुदत्युल्वणान् दोषान्नष्टाग्निं च प्रदीपयेत् ॥ ५१ ॥

द्वौ क्षारौ स्वर्जिका यवक्षारश्च। लवलानि पञ्च। वृक्षाम्लं 'विषाम्बिल' इति लोके। श्रेयसी-हरीतकी। उपकुञ्चिका 'मगरैला' इति

लोके। अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यम्। श्यामा-प्रियंगुः। मुष्ककः-, 'घण्टापाढल' इति लोके। कोकिलाक्षः 'कोइलषा' इति लोके ॥

जवाखार, सज्जी, चीता, पाढ, करंज, पांचों नमक, तेजपात, भारंगी, वायविडङ्ग, हींग, पोढकरमूल, कचूर, दारुहलदी, निसोत, नागरमोथा वच, इन्द्रजौ, विषां बिल, आमले हरड, कलौंजी, अमलवेत, इमली, अजवायन, देवदारु, छोटी हरड, अतीस, फूलप्रियंगु, हाऊवेर और अमलतास ये सब समान भाग ले। तिल, मोखा सहँजना, तालमखाना और ढाक इन सबका खार अग्निमें तपाकर गोमूत्रमें बुझाया हुआ लोहेका मैल इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके बिजौरे के रसकी तीन दिनतक भावना देवे, पश्चात् तीन दिनतक सिर्केमें और तीन दिनतक अदरखके रसमें खरल करे तो अग्निमुखचूर्ण तैयार हो। यह अग्निमुखचूर्ण अत्यन्त अग्निदीपक दीप्ताग्निके समान है। इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे बहुत दिनोंके अजीर्ण, गुल्म, प्लीहा, बवासीर, उदररोग, अन्त्रवृद्धि अष्ठीला और वातरक्त रोग नष्ट होते हैं। यह चूर्ण उल्वण हुए दोषोंको शान्त करता है और नष्ट हुई अग्निको दीप्त करता है ॥४४-५१॥

अथ वैश्वानरक्षारः।

स्नुह्यर्कचित्रकैरण्डवरुणं सपुनर्नवम्। तिलापामार्गकदलीः पलाशं तिन्तिडीं तथा ॥ ५२ ॥ गृहीत्वा ज्वालयेदेतत्प्रस्थं भस्माखिलं यथा। जलाढके विपक्तव्यं यावत् पादावशेषितम् ॥५३॥ सुप्रसन्नं विनिस्राव्य लवणप्रस्थसंयुतम्। पक्वं निर्धूमकठिनं सूक्ष्मचूर्णीकृतं पुनः ॥ ५४ ॥ यवानीजीरकव्योषस्थूलजीरकहिङ्गुभिः। शीतोदकेन तच्चूर्णं पिबेत् प्रातर्हि मात्रया ॥ ५५ ॥ तस्मिञ्जीर्णेऽन्नमश्नीयाद्यूषैर्जाङ्गलजैः रसैः। ईषदम्लैः सलवणैः सुखोष्णैर्वह्निदीपनैः ॥ ५६ ॥ एतेनाग्निर्विवर्द्धेत बलमारोग्यमेव च। तत्रानुपानं शस्तं हि तक्रं वा भोजने हितम् ॥ ५७ ॥ मन्दाग्न्यर्शोविकारेषु वातश्लेष्मामयेषु च। सर्वाङ्गशोथरोगेषु शूलगुल्मोदरेषु च। अश्मर्यां शर्करायाश्च विण्मूत्रानिलरोगिषु ॥५८॥

थूहर, आक, चीता, अण्ड, वरना, पुनर्नवा तिल, चिरचिटा, केला, ढाक, और इमली इन सबकी लकडियोंको लेकर विधिपूर्वक जलाकर ६४ तोले भस्मको ग्रहण करे, फिर इस भस्मको २५६ तोले जलमें डालकर पकावे, जब चौथाईभाग जल शेष रहे तब उतारकर वस्त्रसे छान लेवे, फिर उस निर्मल क्षार जलमें १२८ तोले सैंधानिमक डालकर पकावे, जब पकते पकते निर्धूम और कठिन होजाय तब उतार लेवे, फिर उसका बारीक चूर्ण करके उसमें अजवायन, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, कलौंजी और हींग इनका चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल शीतलजलके साथ खाय, जब इनकी मात्रा पच जाय तब कुछेक खट्टा, नमकीन, कुछेक गरम और अग्निको दीप्तकरनेवाले यूषके साथ और जंगली जीवोंके मांसके रसके साथ भोजन करे। इसप्रकार करनेसे अग्निकी वृद्धि होती होती है, बल और आयु बढती है। भोजन करनेके पश्चात् छांछ का पीना अथवा भोजनके साथ तक्रका पीना इस प्रयोगमें हितकारी है। यह वैश्वानरक्षार मंदाग्नि, बवासीर, वात और कफसन्बन्धी रोग संपूर्ण शरीरगत सूजन, शूल, गुल्म, उदररोग, पथरी, शर्करा, विष्ठा और मूत्रके रोग तथा वातके रोगोंमें हितकारी है ॥ ५२-५८ ॥

अथ लवणभास्करः।

सामुद्रलवणं कार्यमष्टकर्षमितं बुधैः। सौवर्चलं पञ्चकर्षं विडसैन्धवधान्यकम्

॥ ५९ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं पत्रकं कृष्णजीरकम् । तालीशं केशरं चव्यमम्लवेतसकं तथा ॥ ६० ॥ द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद्द बुधः । मरिचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् ॥६१॥ दाडिमं स्याच्चतुष्कर्षं त्वगेला चार्द्धकर्षिका । एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम् ॥ ६२ ॥ भक्षयेच्छाणमानन्तु तक्रमस्तुककाञ्जिकैः । वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम् ॥ ६३ ॥ अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धञ्च भगन्दरम् । शूलं शोथं श्वासकासामदोषांश्चापि हृद्रुजम् ॥ ६४ ॥ अश्मरीं शर्करां चापि पाण्डुरोगं क्रिमीनपि । मन्दाग्निं नाशयेदेतद्दीपनं पाचनं परम् ॥ ६५ ॥ हिताय सर्वलोकानां भास्करेण विनिर्मितम् । हन्यात्सर्वाण्यजीर्णानि भुक्तमात्रमसंशयम् ॥ ६६ ॥ अत्र दाडिमस्य बीजानां कर्षचतुष्टयं देयम् ॥

समुद्रलवण ८ तोले, कालानिमक ५ तोले, विरियासंचरनिमक २ तोले, सैंधानिमक २ तोले, धनियां २ तोले पीपल २ तोले, पीपलामूल २ तोले, तेजपात २ तोले, काला जीरा २ तोले, तालीसपत्र २ तोले, नागकेशर २ तोले, चव्य २ तोले, अमलवेत २ तोले, कालीमिरच १ तोले, जीरा १ तोले, सोंठ १ तोला, अनारके बीज ४ तोले, तालचीनी ६ मासे और इलायचीके दाने ६ मासे लेवे, इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करलेवे, इसको 'लवणभास्कर' कहते हैं। इस लवणभास्कर चूर्णको तक्र, दहीकी मलाई और काँजीके साथ २४ रत्ती प्रमाण खाना चाहिये। इस लवणको खानेसे बवासीर, संग्रहणी, कोढ, मलबन्ध, भगन्दर, वात और कफजनित गुल्म, प्लीहा, उदररोग, क्षयरोग, शूल, सूजन, श्वास,खाँसी, आमसम्बन्धी दोष, हृदयके रोग, पथरी, शर्करा, पांडुरोग, क्रिमि, अग्निकी मन्दता नष्ट होती है। यह निमक पाचन करनेमें और अग्निको दीप्त करनेमें अत्यन्त उत्तम है। और सब लोकोंके हितके लिये श्रीसूर्यनारायणने बनाया है। इस लवणको भक्षण करनेसे तत्काल अजीर्ण नष्ट हो जाता है. इसमें संदेह नहीं ॥ ५९-६६ ॥

अथ वडवानलचूर्णम् ।

सैन्धवसमूलमगधाचव्यानलनागरं पथ्या। क्रमवृद्धमग्निवृद्धौ वडवानलनाम चूर्णं स्यात् ॥६७॥

सैंधानिमक १ भाग, पीपलामूल २ भाग, पीपल ३ भाग, चव्य ४ भाग, चीता ५ भाग, सोंठ ६ भाग, हरड सात ७ भाग लेवे, सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करलेवे, इस चूर्णको 'वडवानल' चूर्ण कहते हैं, इसको भक्षण करनेसे जठराग्नि अत्यन्त दीप्त होती हैं ॥ ६७ ॥

अथ द्वितीयवडवानलचूर्णम् ।

पथ्यानागरकृष्णाकर अविल्वाग्निभिः सिता तुल्यैः । वडवानल इव जरयति बहु गुर्वतिभोजनं चूर्णम् ॥ ६८ ॥

हरड, सोंठ, पीपल, करंज, बेलगिरी और चीता इन सबको एकत्र चूर्ण करके और सब चूर्णके समान खाँड मिलाकर भक्षण करे तो यह वडवानल समुद्रकी अग्निके समान बहुत भोजन किये हुएको भी शीघ्र ही पचा देता है ॥ ६८ ॥

अथ समशर्करचूर्णम् ।

एलात्वङ्नागपुष्पाणां मात्रोत्तरविवर्द्धिता । मरिचं पिप्पली शुण्ठी चतुष्पश्चोत्तरोत्तरा ॥ ६९ ॥ द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावती सितशर्करा। चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ७० ॥

इलायची एक भाग, दालचीनी २ भाग, नागकेशर ३ भाग, काली मिर्च ४ भाग, पीपल ५ भाग और सोंठ ६ भाग लेव, सबको एकत्र चूर्ण करके सब चूर्णके बराबर खांड मिलावे, इस चूर्णको 'समशर्कर' चूर्ण कहते हैं। इसको भक्षण करनेसे जठराग्नि अत्यन्त दीप्त होती है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथाजीर्णे क्रव्यादरसः।

द्विपलं गन्धकं शुद्धं पलमेकन्तु पादरम्। मृतलोहं तथा ताम्रं कर्षद्वयमितं पृथक् ॥ ७१ ॥ संचूर्ण्य सर्वं सम्मिश्रं द्रावयित्वाऽग्नियोगतः। सम्यग् द्रुतं समस्तं तत्पश्चाडुगुलदले क्षिपेत् ॥७२॥ पुनः सञ्चूर्ण्य तत्सर्वं लोहपात्रे निधापयेत्। जम्बीरस्य रसं तत्र पूतं पलशतं क्षिपेत् ॥ ७३ ॥ चुल्ल्यां निवेश्य तद्यत्नान्मृदुना वह्निना पचेत्। रसे तस्मिन् धनीभूते तत्संशोष्य विचूर्णयेत् ॥७४॥ पञ्चकोलकषायस्य चुक्रेण सहितस्य च। भावना तत्र दातव्या पश्चात्संशोषयेच्छनैः ॥७५॥ भृष्टटङ्कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत्। मरिचेनापि तुल्येन तदर्द्धेन विडेन च ॥ ७६ ॥ भावयेत्सप्तकृत्वस्तु चणकाम्लजलेन च। ततः संशोष्य संपिष्य कूपमध्ये निधापयेत् ॥ ७७ ॥ रसः क्रव्यादनामाऽयं भैरवानन्दयोगिना। उक्तः सिंहलराजाय बहुमांसाशिने पुरा ॥ ७८ ॥ भक्षयेद्भोजनस्यान्ते माषद्वयमितं रसम्। भक्षयित्वा रसं पश्चात् पिबेत्तक्रं ससैन्धवम् ॥ ७९ ॥ अत्यर्थं गुरु यद्भुक्तमतिमात्रमथापि च। तत्सर्वं जीर्यति क्षिप्रं रसस्यैतस्य भक्षणात् ॥ ८० ॥ शूलं गुल्मञ्च विष्टम्भं प्लीहानमुदरं तथा। रस क्रव्यादनामाऽयं विनिहन्ति न संशयः ॥ ८१ ॥

इति क्रव्यादरसोऽजीर्णे रसेन्द्रचिन्तामणौ रसरत्नप्रदीपे च ॥

शुद्ध गन्धक ८ तोले, शुद्ध पारा ४ तोले, मारा हुआ लोहा २ तोले और माराहुआ तांबा २ तोले लेवे, इन सबको एकत्र करके अग्निके योगसे पिघलाकर अंडेके पत्तेपर डालदेवे पश्चात् उसका चूर्ण करके लोहेके वासनमें डालकर ४०० तोले नींबूका रस डालदेवे, फिर उसको चूल्हेपर चढाकर यत्नपूर्वक मंद मन्द अग्निसे पकावे, जब पकते पकते रस गाढा होजाय तब उसको सुखाकर चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ) के काथकी और चूकेके रसकी भावना देकर धीरे धीरे सुखा लेवे, फिर इस चूर्णके बराबर भुना सुहागा, सुहागेके बराबर मिरचोंका चूर्ण और मिरचोंके चूर्णसे आधा विडलवणका चूर्ण मिलावे, पश्चात् इस चूर्णको चनेके खारकी सात भावना देकर सुखालेवे, फिर पीसकर सीसीमें भरकर रख देवे, इसको 'क्रव्यादरस' कहते हैं। यह क्रव्यादरस पूर्वकालमें भैरवानन्द योगीने बहुत मांसको खानेवाले सिंहलद्वीपके राजाके लिये कहा था, भोजन करनेसे पश्चात् बारह रत्तीप्रमाण इसको खाना चाहिये और ऊपरसे सैंधानिमकके साथ तक्रको पीवे, अत्यन्त भारी और अधिक भोजन किया हुआ इस रसको भक्षण करनेसे तत्काल पच जाता है, यह क्रव्यादरस-शूल, गुल्म, मलबन्ध, प्लीहा और उदरके समस्त रोगोंको निःसंदेह दूर करता है ॥ ७१-८१ ॥

अथ ज्वालानलरसः।

क्षारत्रयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमिदं समम्। सर्वैस्तुल्या जया भृष्टा तदर्द्धा शिग्रुजा जटा

॥ ८२ ॥ एतत्सर्वं जयाशिग्रुवह्नीनां केवलैर्द्रवैः । भावयेत्त्रिदिनं घर्मे ततो लघुपुटे पचेत् ॥ ८३ ॥ मार्कवस्य द्रवैर्घृष्टो रसो ज्वालानलो भवेत् । निष्कोऽस्य मधुना लीढोऽनुपानं गुडनागरम् ॥ ८४ ॥ हन्त्यजीर्णमतीसारं ग्रहणीमग्निमार्दवम् । श्लेष्महृल्लासवमनमालस्यमरुचिं जयेत् ॥ ८५ ॥ पञ्चकोलमृपिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः॥८६॥

जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, पारा, गंधक और पंचकोल ये सब समान भाग लेवे और सबके समान भुनीहुई भाँग लेवे और भाँगसे आधा भाग सँहिजनेकी जड लेवे, इन सबको तीन दिनतक सँहिंजना और चीता इनके रसोंकी धूपमें भावनां देवे, पश्चात् लघुपुटमें पकावे, फिर निकालकर भाँगरेके रससे पीस लेवे तो 'ज्वालानल' नामक रस सिद्ध होता है, इसको २४ रत्तीप्रमाण सहतके साथ चाटे और ऊपरसे गुड तथा सोंठका अनुपान करे, इससे अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, अग्निकी मन्दता, कफ, उबकाई, वमन, आलस्य और अरुचि नष्ट होजाती है ॥ ऊपर जो पञ्चकोल कहा है वह-पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इन पांचोंको समझना ॥८२-८६॥

अथाग्निकुमाररसः ।

टङ्कणं रसगन्धौ च समं भागत्रयं विषात्। कपर्दः स्वर्जिकाक्षारो मागधी विश्वभेषजम् ॥ ८७ ॥ पृथक् पृथक्कर्षमात्रं वसुभागमिहोषणम् । जम्बीराम्लैर्दिनं घृष्टं भवेदग्निकुमारकः । विषूचीशूलवातादिह्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ८८ ॥ अग्निकुमारो विसूच्यामजीर्णे च, रसरत्नप्रदीपे रसेन्द्रचिन्तामणौ च ॥

क्षारः-यवक्षारः ॥

सुहागा १ तोला, पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, वत्सनाभ ३ तोले, कौडी १ तोला, सज्जी १ तोला, पीपल १ तोला, सोंठ १ तोला और कालीमिर्च ८ तोले लेवे, इन सबको एकत्र करके एक दिनतक नींबूके रसमें खरल करे तो 'अग्निकुमाररस' सिद्ध होता है। यह रस-विसूचिका, शूल, वायु आदि और अग्निकी मन्दताको नष्ट करता है । यह रस-रत्नप्रदीपमेंतथा रसेन्द्रचिन्तामणिमें विसूचिका और अजीर्णपर कहा है ॥

अथ रामबाणरसः

पारदाऽमृतलवङ्गगन्धकं भागयुग्ममरिचेन मिश्रितम् । तत्र जातिफलमर्द्धभागिकं तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम् ॥८९॥ वह्निमान्द्यदशवक्रनाशनो रामबाण इति विश्रुतो रसः । संग्रहणिकुम्भकर्णकमामवातखरदूषणं जयेत् ॥ ९० ॥ दीयते तु मरिचानुपानतः सद्य एव जठराग्निदीपनः । रोचन कफकुलान्तकारकः श्वासकासवमिजन्तुनाशनः ॥ ९१ ॥

पारदभागः १ । विषभागः १ । लवङ्गभागः १ । गन्धकभागः १ । मरिचभागौ २ । जातीफलस्यार्धभागः ॥

पारा १ भाग, वत्सनाभ १ भाग, लौंग १ भाग, गंधक १ भाग, कालीमिर्च २ भाग और जायफल आधा भाग लेवे, इन सबको एकत्र करके इमलीके रसमें खरल करे तो 'रामबाण' रस सिद्ध होता है । यह रामबाण नामवाला रस अग्निकी मन्दतारूप रावणको नष्ट करता है, संग्रहणी तथा ग्रहणीरूप कुम्भकर्णको जीतता है और आमवातरूपी खरदूषणका नाश करता है, यह मिर्चके अनुपानसे सेवन किया हुआ तत्काल जठराग्निको दीप्त करता है, रुचिको उत्पन्न करता है, कफके समूहको नष्ट करता है और श्वास, खांसी, वमन तथा कृमिको भी दूर करता है ॥ ८९-९१ ॥

अथ शंखवटी ॥

पलं चिञ्चसारं पलमितमिदं पञ्चलवणं द्वयं सम्पक्पिष्टं भवति लघुनिम्बूफलरसैः। ततः पिष्टे तस्मिन् पलपरिमितं शंखशकलं क्षिपेद्वारान्सप्त द्रवमिह च तेनैव विधिना ॥ ९२ ॥ पलप्रमाणं कटुकत्रयं च पलार्द्धमानं वचहिङ्गुभागः। विषं पलद्वादशभागयुक्तं तावद्रसो गन्धक एष चोक्तः ॥ ९३ ॥ बदरास्थिप्रमाणेन वटीमेतस्य कारयेत् । भक्षयेत्सेवया साम्यात्सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ ९४ ॥ सर्वोदरेषु शूलेषु विसूच्यां विविधेषु च। अग्निमान्द्येषु गुल्मेषु सदा शंखवटी हिता ॥ ९५ ॥ इति शंखवटीरसः रसरत्नप्रदीपे ॥

इमलीका खार ४ तोले, ओर पांचों नमक ४ तोले लेकर कागजीनींबूके रसमें पीस लेवे, फिर इस रसमें चार तोले शंखका टुकडा सातवार तपा तपाकर नींबूके रसमें बुझाकर मिला देवे, पश्चात् इसमें चार तोले त्रिकुटा, दो तोले वच और हींग, वत्सनाभ १२ पल, वत्सनाभकी बराबर पारा और पारेकी बराबर गन्धक लेवे, इन सबको एकत्र मिलाकर बेरकी गुठलीके समान गोली बनावे। इन गोलियोंको सेवन करनेसे सब प्रकारके अजीर्ण शांत होते हैं। यह शंखवटी सर्वप्रकारके उदररोगोंपर, शूलपर, विसूचिकापर, अग्निकी विविध प्रकारकी मंदतापर और गुल्मरोगपर सदैव हितकारी है ॥ ९२-९५ ॥

अथ बृहच्छंखवटी।

स्नुह्यर्कचिञ्चापामार्गरम्भा तिलपलाशजान्। लवणानाददीतैषांप्रत्येकं कर्षमात्रया ॥ ९६ ॥ लवणानि पृथक्पञ्च ग्राह्याणि पलमात्रया । स्वर्जिका च यवक्षारष्टङ्कणत्रितयं पलम् ॥ ९७ ॥ सर्वं त्रयोदशपलं सूक्ष्मं चूर्णं विधाय च। निम्बूफलरसे प्रस्थसम्मिते तत्परिक्षिपेत ॥ ९८ ॥ तत्र शंखस्य शकलं पलं वह्नौ प्रताप्य तु। वारान्निर्वापयेत्सप्त सर्वं द्रवति तद्यथा ॥ ९९ ॥ नागरं त्रिपलं ग्राह्यं मरिचन्तु पलद्वयम्। पिप्पली पलमाना स्यात्पलार्द्धं भृष्टहिङ्गुतः ॥ १०० ॥ ग्रन्थिकं चित्रकश्चापि यवानी जीरकं तथा। जातीफलं लवङ्गञ्च पृथक्कर्षद्वयोन्मितम् ॥ १०१ ॥ रसो गन्धो विषं चापि टङ्कणश्च मनःशिला । एतानि कर्षमात्राणि सर्वं संचूर्ण्य मिश्रयेत ॥ १०२ ॥ शरावार्द्धेन चुक्रेण वटिकां तस्य कारयेत्। माषप्रमाणा सद्वैद्यैर्बृहच्छंखवटी स्मृता ॥ १०३ ॥ सर्वाजीर्णप्रशमनी सर्वशूलनिवारिणी। विसूच्यलसकादीनां सद्यो भवति नाशनी १०४

थूहरका खार ४ तोले, इमलीका खार ४ तोले, आकका खार ४ तोले, चिरचिटेका खार ४ तोले, केलेका खार ४ तोले, तिलका खार ४ तोले, ढाकका खार ४ तोले, पांचों नमक २० तोले, जवाखार, सज्जीखार और सुहागा ये तीनों ४ तोले इस प्रकार ५२ तोले द्रव्य लेकर बारीक चूर्ण करके ६४ तोले नींबूके रसमें डाल देवे पश्चात् ४ तोले भर शंखके टुकडेको अग्निमें तपाकर सातवार इस रसमें बुझा देवे कि-जिजसे वह द्रवरूप होजावे, फिर सोंठ १२ तोले, काली मिरच ८ तोले, पीपल ४ तोले, भुनी हींग २ तोले, पीपलामूल २ तोले, चीता २ तोले, अजवायन २ तोले, जीरा २ तोले, जायफल २ तोले, लौंग २ तोले, पारा १ तोला, गंधक १ तोला, वत्सनाभ १ तोला, सुहागा १ तोला और एक तोला मनशिल, सबको एकत्र पीसकर पूर्वोक्त रसमें

मिला देवे, फिर १६ तोले चूकेका रस मिलाकर उडदके समान गोलियाँ बनावे। इन गोलियोंको 'बृहत शंखवटी' कहते हैं। यह गोली सब प्रकारके अजीर्णको शांत करती है। सब प्रकारके शूलोंको नष्ट करती है और विसूची तथा अलसक आदि रोगोंको तत्काल दूर करती है ॥ ९६-१०४ ॥

अथाजीर्णकण्टकरसः ।

टङ्कणकणामृतानां सहिङ्गुलानां समं भागम्। मरिचस्य भागयुगलं निम्बूनीरैर्वटी कार्या ॥ १०५ ॥ वटिकां कलायसदृशीमेकां द्वे वा समश्नीयात्। सत्यमजीर्णे शान्त्यै वह्नेर्वृद्ध्यै कफध्वस्त्यै ॥ १०६ ॥

सुहागा, पीपल, वत्सनाभ और सिंग्रफ इन सबको समान भाग ले और काली मिरच दो भाग डालकर नींबूके रससे मटरके समान गोलियाँ बना लेवे, इनमेंसे एक अथवा दो गोली खानेसे अजीर्ण शांत होजाता है, अग्निकी वृद्धि होती है और कफका नाश होता है, यह सत्य है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

अथ विषूचिकाचिकित्सा ।

जलपीतमपामार्ग शूलं हन्याद्विसूचिकाम्। सतैलं कारवेल्ल्यम्बु नाशयेद्धि विसूचिकाम् ॥ १०७ ॥

चिरचिटेको जलमें घोटकर पीनेसे विसूचिकाका शूल दूर होता है। करेलेके रसमें तेल मिलाकर पीनेसे विसूचिका नष्ट होती है ॥ १०७ ॥

बालमूलस्य तु क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः। विसूचीनाशनः श्रेष्ठो जठराग्निविवर्द्धनः ॥ १०८

छोटी मूलीके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे विसूचिका नष्ट होती है और जठराग्नि दीप्त होती है ॥ १०८ ॥

बिल्वनागरनिष्क्वाथो हन्याच्छर्दिं विसूचिकाम् । बिल्वनागरकैटर्यक्वाथस्तदधिको गुणैः ॥ १०९ ॥

कटर्यः-कट्फलः ॥

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रे मूलं समावाप्य च मातुलुङ्ग्याः । छायाविशुष्का वटिका कृता सा हन्याद्विसूचीं नयनाञ्जनेन ॥ ११० ॥ अनुभूतमिदम् ॥

बेलगिरी और सोंठका क्वाथ बनाकर पीनेसे वमन और विसूचिका दूर होती है, बेलगिरी, सोंठ और जायफल इनका क्वाथ ऊपरके क्वाथसे अधिक गुणोंवाला है। सोंठ, मिर्च, पीपल, करंजके फल, हलदी, दारुहलदी और बिजौरे नींबूकी जड इन सबको एकत्र पीसकर गोली बनाकर छायामें सुखा देवे, इस गोलीको नेत्रोंमें आँजनेसे विसूचिका नष्ट होजाती है, यह हमने अपने आपअनुभव किया है ॥ १०९ ॥ ११० ॥

अपामार्गस्य पत्राणि मरिचानि समानि च । अश्वस्य लालया पिष्ट्वाऽञ्जनाद्धन्ति विसूचिकाम् ॥ १११ ॥

चिरचिटेके पत्ते और काली मिरच समान भागलेकर घोडेकी लारमें पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे विसूचिका नष्ट होजाती है ॥१११॥

विसूच्यामतिवृद्धायां तक्रं दधि समजलम् । नारिकेलाम्बु पेयं वा प्राणत्राणाय योजयेत् ॥ ११२ ॥

विसूचिका अत्यन्त बढ गई हो तो उसकी प्राण रक्षाके लिये दही छाछमें बराबरका जल मिलाकर अथवा नारियलका जल मिलाकर पिलावे ॥ ११२ ॥

त्वक्पत्रकैरण्डकशिग्रुकुष्ठैरम्लप्रपिष्टैःसवचाशताह्वैः । उद्वर्तनं खल्वीविसूचिकाघ्नं तैलं विपक्वञ्च तदर्थकारि ॥ ११३ ॥

दालचीनी, तेजपात, अण्ड, सहिंजना, कूठ,

वच और सोया इनको नींबूके रसमें पीसकर शरीरमें लगानेसे खल्वी और विसूचिका नष्ट होजाती है और इन्हीं पदार्थोंके द्वारा तेलको पकाकर लेप करनेसे भी खल्वी तथा विसूचिका नष्ट होजाती है ॥ ११३ ॥

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं चुक्रं तैले तु साधितम्। विसूच्यां मर्दनं तेन खल्वीशूलनिवारणम् ॥ ११४ ॥

कूट और सैंधानिमक इनका कल्क बनाकर चूकेके रसमें तैलको सिद्ध करे, इस तेलका मालिश करनेसे खल्वी और हैजा एवं शूल नष्ट होजाता है ॥ ११४ ॥

पिपासायां तथोत्क्लेशे लवङ्गस्याम्बु शस्यते। जातीफलस्य वा पीतंशृतं भद्रघनस्य वा ॥ ११५ ॥

जो विसूचिकामें तृषा हो अथवा उत्क्लेश हो तो लौंगका पानी पिलावे अथवा जायफलका क्वाथ पिलावे किंवा भद्रमोथका काथ पिलावे ॥ ११५ ॥

अथोत्क्लेशलक्षणम्।

उत्क्लिश्यान्नञ्च निर्गच्छेत्प्रसेकष्ठीवनेरितम्। हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ ११६ ॥

जिस मनुष्यको उबकाई आवे और अन्न न निकले और मुखसे पानी वहे वा थूकनेके साथ उत्क्लेशित हो, अन्न न निकले और हृदयमें पीडा होने लगे, उसको 'उत्क्लेशरोग' कहते हैं ॥ ११६ ॥

अथ दारुषटकम्।

सरुग्वानऽद्धमुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत्। दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः॥११७॥

हैमवती--श्वेतवचा।

देवदारु, सफेद वच, कूठ, सौंफ, हींग और सैंधानमक इन सब औषधियोंको कांजीमें पीसकर जिस मनुष्यके उदरमें पीडा हो अथवा पेट फूल गया हो, उसपर लेप करना चाहिये ॥ ११७ ॥

तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सक्षारमार्तिं जठरे निहन्यात्। स्वेदो घटैर्वाऽप्यथ बाष्पपूर्णैरुष्णैस्तथाऽन्यैरपि पिण्डतापैः ॥ ११८ ॥

जौका आटा और जवाखार मिलाकर मट्ठेमें पकावे उसको गरम गरम लेकर उदरपर लेप करे अथवा स्वेदन करे तो उदरकी पीडा शांत होती है। बाफसे भरे हुए घडेके स्वेद लेनेसे अथवा अन्य उष्ण पदार्थोंके सेकनेसे उदरपीडाकी शांति होती है ॥ ११८ ॥

अथालसकविलम्बिकयोश्चिकित्सा।

बिलम्बिकालसकयोरयमेव क्रियाक्रमः। अत एव तयोरुक्तं पृथङ्नहि चिकित्सितम् ॥ ११९ ॥

जो चिकित्सा विसूचिकाकी कही है, वही चिकित्सा विलम्बिका और अलसकरोगमें करनी चाहिये। इसीलिये हमने उनकी अलग २ औषधि नहीं लिखी ॥ ११९ ॥

अथ भस्मकरोगचिकित्सा।

तं भस्मकं गुरुस्निग्धसान्द्रमन्दहिमस्थिरैः। अन्नपानैर्नयेच्छान्ति पित्तघ्नैश्च विरेचनैः ॥ १२० ॥ अत्युद्धताग्निशान्त्यै माहिषदधिदुग्धसर्पींषि। संसेवेत यवागूं समपिष्टे पयसि सर्पिषा सिद्धाम् ॥१२१॥ असकृत् पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम्। श्यामात्रिवृद्विपक्वञ्च पयो दद्याद्विरेचनम् ॥ १२२ ॥ यत्किञ्चिन्मधुरं मेध्यं श्लेष्मलं गुरु भोजनम्। सर्वं तदत्यग्निहितंभुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ १२३ ॥ सिततण्डुलसितकमलं छागक्षीरेण पायसं सिद्धम्।

भुक्त्वा च तेन पुरुषो दशदिवसात्तुच्छभोजनो भवति ॥ १२४ ॥

भारी, स्निग्ध, कठोर, मन्द, शीतल और स्थिर इस प्रकारके गुणयुक्त अन्न तथा पानीसे और पित्त-नाशक पदार्थ अथवा विरेचन करानेसे भस्मकरोग शान्त होता है। अत्यन्त बढी हुई जठराग्निको शांत करनेके लिये भैंसका दूध, दही और घृत परमोत्तम है। अथवा घृत और सहत मिलाकर यवागूका सेवन करनेसे भस्मकरोग शान्त होता है। अथवा चावलोंका चूर्ण और दूध समभाग लेकर घृतमें पाक की हुई वस्तुका भोजन करे अथवा सदैव पित्तनाशक द्रव्योंका देना और खीर आदिका खाना अत्यन्त हितकारी है। काली निसोतको दूधमें पकाकर विरेचनके लिये पिलावे तो सर्व दुःखहारी है। मधुर पदार्थ पवित्र, कफकारी और भारी भोजन भस्माग्निवालेको परम हितकारी है और भोजन करनेके उपरान्त दिनमें सोना भी सुखसाधक है। सफेद चावल और सफेद कमलकी बकरीके दूधमें खीर बनाकर खानेसे दशदिनमें अल्प भोजन करने लगेगा ॥ १२०-१२४ ॥

अथ द्रव्यविशेषाजीर्णे पाचनद्रव्यम् ।

अलं पनसपाकाय फलं कन्दलसम्भवम् । कन्दलस्य तु पाकाय बुधैरपि घृतं हितम् । घृतस्य परिपाकाय जम्बीरस्य रसो हितः ॥ १२५ ॥ नारिकेलफलतालबीजयोः पाचकं सपदि तण्डुलं विदुः । क्षीरमेव सहकारपाचनं क्षारमज्जनि हरीतकी हिता ॥ १२६ ॥ मधूकमालूरनृपादनानां परूषखर्जूरकपित्थकानाम् । पाकाय पेयं पिचुमन्दबीजं घृतेऽपि तक्रेऽपि तदेव पथ्यम् ॥१२७॥ खर्जूरशृङ्गाटकयोः प्रशस्तं विश्वौषधं कुत्र च भद्रमुस्तम् । यज्ञाङ्गबोधिद्रुफलेषु शस्तं प्लक्षे तथा पर्युषितं प्रपीतम् ॥ १२८ ॥ तण्डुलेषु च पयः पयःस्वथो दीपकन्तु चिपिटे कणायुतम् । षष्टिका दधिजलेन जीर्यते कर्कटी च सुमनेषु जीर्यति ॥ १२९ ॥

सुमनेषु- गोधूमेषु जीर्यति ।

कटहरके अजीर्णमें केलेकी फली खाना उत्तम है और केलेके अजीर्णमें घृत खाना हितकारी है घृतके अजीर्णमें जम्भीरी नींबूका रस श्रेष्ठ है नारियल और तालके बीजोंके परिपाकके लिये चावल अच्छे हैं, आमके पचानेके लिये दूध श्रेष्ठ है चिरौंजीके पचानेको हरड ठीक है। महुआ, बेल, खिरनी, फालसे, खजूर और कैथ इनके परिपाकके लिये नीमकी निबौलियोंको घोटकर पीना परमोत्तम है। घी और मट्ठेके अजीर्णमें भी नीमकी निबौलियोंका रस फलदायक है, खजूर और सिंघाडोंके अजीर्णके लिये सोंठ और नागर मोथा भी किसी वैद्यने उत्तम लिखा है, गूलर, पीपल, और पाखरके अजीर्णको जीर्ण करनेके लिये सोंठका वासी काथ पीना परमोत्तम है, चावलोंके अजीर्णमें दूध पीना श्रेष्ठ है और दूधके अजीर्णमें अजवायन ही रसायन है, चावलोंके अजीर्णमें अजवायन और पीपल घोटकर पीना गुणदायक है साँठीके चावल दहीका पानी पीनेसे पच जाते हैं और ककडियोंका अजीर्ण गेहूँसे पचता है ॥ १२५-१२९ ॥

गोधूममाषहरिमन्थसतीसमुद्गपाको भवेज्झटिति मातुलपुत्रकेण । खर्जूरिकाबिसकशेरुसितासु शस्तं शृङ्गाटके मधुफलेष्वपि भद्रमुस्तम् ॥ १३० ॥

मातुलपुत्रकम्-धत्तूरफलम् ।

गेहूँ, उडद, चने और मटरके अजीर्ण धतूरेके खानेसे दूर होते हैं। कंगनी, समा, खजूर, कमलकी डंडी, कसेरु, मिश्री, सिंघाडे

और महुएके अजीर्णमें मोथेका क्वाथ हितकारी है ॥ १३० ॥

कङ्गुश्यामाकनीवाराः कुलत्थाश्चाविलम्बितम् । दध्नो जलेन जीर्यन्ति वैदलः काञ्जिकेन तु ॥ १३१ ॥ पिष्टान्नं शीतलं वारि कृशरां सैन्धवं पचेत् । माषेण्डरीं निम्बुफलं पायसं मुद्गयूषकः ॥ १३२ ॥ वटो वेसवाराँल्लवङ्गेन फेनः समं पर्पटः शिग्रुबीजेन याति । कणामूलतो लड्डुकापूपसट्टादिपाको भवेच्छष्कुलीमण्डयोश्च ॥ १३३ ॥

वेसवारो 'वगस' इति लोके ॥

तद्यथा-स्नेहो निशा हिङ्गुलवङ्गकैलाधान्याकजीरार्द्रकनागराणि । अम्लोषणं सैन्धवचूर्णमन्ने यथोचितं संस्कृतये प्रणीतम् ॥

इति सट्टासट्टकपानविशेषः।

मण्डं ' मांड ' इति लोके ॥

कंगनी, समा तथा कुलथीके अजीर्णमें दहीका पानी पीना श्रेष्ठ है और दालवाली वस्तुके अजीर्णको काँजी दूर करती है। पिट्ठीके पदार्थों (कचौरी पकौडी, दही बडे और बढी आदि) का अजीर्ण, शीतल जलसे दूर होता है और खिचडीका अजीर्ण सैंधानिमक पचाता है। माषेण्डरी (अमृती) को नींबूका रस; खीरको मूंगका यूष फलदायक है। बडेका अजीर्ण वेसधार (तैलादिक स्नेह, हलदी, हींग, लौंग, मिरच, इलायची, जीरा, धनियां, अदरख, सोंठ, खटाई और सैंधानिमक ये सम्पूर्ण वस्तु यथायोग्य अन्नादिकके सुधारनेके लिये डाली जांय, उसको वेसवार कहते हैं) से पचाता है। लौंगसे फेनिका अजीर्ण पचता है, पापडके अजीर्णको सहिंजनेके बीज दूर करते हैं। लड्डू-मालपुये और सट्टक (पन्नाविशेष) आदिको पीपलामूल पचाता है और पूरी मांडसे पचती है ॥ १३१-१३३ ॥

किमत्र चित्रं बहुमत्स्यमांसभोजी सुखी काञ्जिकपानतः स्यात् । इत्यद्भुतं केवल वह्निपक्वो मांसेन मत्स्यः परिपाकमेति ॥ १३४ ॥ आममाम्रफलं मत्स्यं तद्बीजं पिशिते हितम् । कूर्ममांसं यवक्षारः शीघ्रं पाकमुपैति हि ॥ १३५ ॥ कपोतपारावतनीलकण्ठकपिञ्जलानां पिशितानि भुक्त्वा । काशस्य मूलं परिपिष्य पीत्वा सुखी भवेन्ना बहुशो हि दृष्टम् ॥ १३६ ॥

कपोतः--धवलः पाण्डुः ॥

मांसानि सर्वाण्यपि यान्ति पाकं क्षारेण सद्यस्तिलनालजेन । चंचूकसिद्धार्थकवास्तुकानां गायत्रिसारक्वथितेन पाकः ॥ १३७ ॥

चञ्चूकः ' चेचू ' इति लोके । गायत्री-खदिरः ॥

पालङ्किकाकेबुककारवल्ली वार्ताकुवंशाङ्कुरमूलकानाम् । उपैति कालाम्बुपटोलकानां सिद्धार्थको मेघरवश्च पक्ता॥१३८॥

मेघरवः ' चारा ' इति लोके ॥

मछलियोंका खानेवाला काँजी पीनेसे सुख पाता है इसमें किंचित् मात्रा भी आश्चर्य नहीं है, परन्तु यह बात महा आश्चर्यकी है कि-केवल अग्निसे पकाई हुई मछलियाँ मांस खानेसे तुरन्त पचजाती हैं, कच्चे आमका फल मछलीके अजीर्णको दूर करता है। कछुएके मांसका अजीर्ण जवाखारसे बहुत शीघ्र पचता है। पांडुक, कबूतर, नीलकण्ठ और तीतर इनके मांसके अजीर्णको कांसकी जड जडसे खोदेती हैं। मैंने बहुत बार विचारकर देखा कि, तिलकी नालका खार पूर्ण मांसोंके अजीर्णको पचाता है। चेचू, सरसों और बथुएके शाकका अजीर्ण खैरसारके क्वाथ पीनेसे दूर होता है, पालक, कैबुक, करैला, बैंगन,

बाँसका कल्ला, मूली, पोई, लौकी, चौलाई और परवल इन सबका अजीर्ण सफेद सरसोंके शाक खानेसे शान्त होता है ॥ १३४-१३८॥

विपच्यते शूरणकं गुडेन तथाऽऽलुकं तण्डुलधावनेन । पिण्डालुकं जीर्यति कोरदूषाम् कशेरुपाकः किल नागरेण ॥ १३९ ॥ लवणस्तण्डुलतोयात्सर्पिर्जम्बीरकाद्यम्लात् । मरिचादपि तच्छीघ्रं पाकं यात्येव काञ्जिकात्तैलम् ॥१४०॥ क्षीरं जीर्यति तक्रेण तद्रव्यं कोष्णमण्डकात् । माहिषं मणिमन्थेन शंखचूर्णेन तद्दधि ॥ १४१ ॥

मण्डकः 'मांड' इति लोके ॥

जिमीकन्दका अजीर्ण गुडसे दूर होता है। आलू चाँवलोंके धोवनसे ठीक पचते हैं, पिण्डालू कोदों अन्नके खानेसे शान्त होता है, कसेरूका अजीर्ण सोंठसे दूर होता है, नमकका अजीर्ण चावलोंके पानीसे घी जम्भीरी नींबूके रससे अथवा काली मिर्चसे बहुत शीघ्र शान्त होता है और तेलका परिपाक काँजीसे होता है, दूधका अजीर्ण मट्ठेसे, गौका घी उष्ण मांडसे भैंसका दूध सैंधेनमकसे और भैंसका दही शंखके चूर्णसे पचता है १३९-१४१

रसालं जीर्यति व्योषात्खण्डं नागरभक्षणात् । सिता नागरमुस्तेन तथेक्षुश्चादिकारसात् ॥ १४२ ॥ जरामिरा गैरिकचन्दनाभ्यामभ्येति शीघ्रं मुनिभिः प्रदिष्टम् । उष्णेन शीतं शिशिरेण चोष्णं जीर्णो भवेत् क्षारगणस्तथाऽम्लैः ॥ १४३ ॥

इरा--मदिरा ॥

पौंडेका अजीर्ण त्रिकुटेसे, खाँड सोंठके चूर्णसे, चीनी सोंठ और मोथेसे और ईखका रस अदरखके रससे पचता है। मदिरा गेरू चन्दनको घोटकर पीनेसे, शीतल वस्तुका अजीर्ण गरम वस्तुके खानेसे पचता है, उष्णपदार्थोंसे और नमकीन पदार्थ खटाई इत्यादिसे जीर्ण होते हैं ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

तप्तं तप्तं हेम वा तारमग्नौ तोये क्षिप्तं सप्तकृत्वस्तदम्भः । पीत्वाऽजीर्णं तोयजातं निहन्यात्तत्र क्षौद्रं भद्रमुस्तं विशेषात् ॥ १४४ ॥

तत्र- तोयाजीर्णे ॥

इति जठराग्निविकाराधिकारः ।

जिस प्राणीको पानीका अजीर्ण होजाय तो सोनेको अथवा चांदीको बारंबार अग्निमें तपाकर पानीमें बुझावे, इसी प्रकार सातवारका बुझाया हुआ पानी पीवे तो पानीका अजीर्ण शान्त होता है और जो गरम पानीसे अजीर्ण हो तो उसके लिये सहत और नागरमोथा विशेष करके परमोत्तम है ॥ १४४ ॥

इति जठराग्निविकाराधिकारः ॥

अथ कृमिरोगाधिकारः ।

तत्र कृमिभेदाः ।

क्रिमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।

बहार और भीतरके भेदोंसे कीडे दो प्रकारके हैं ॥

कृमिनिदानम् ।

बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः। नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः ॥ १ ॥

तत्र--तेषु । बाह्याः क्रिमयः । मलोद्भवाः-- त्वग्लग्नबहिर्मलस्वेदसंभवाः ॥

बाहरके मल प्रस्वेदादि, कफ, रुधिर और विष्ठा इनसे शरीरमें कृमि उत्पन्न होते हैं इन कारणोंसे भेदसे बाहरके कृमिरोग चार

प्रकारके हैं और नामभेदसे बीस प्रकारके होते हैं, उनमेंसे मल अर्थात् पसीनेसे उत्पन्न हुए कृमि बाहरी कहलाते हैं ॥ १ ॥

अथ बाह्यकृमिरूपम् ।

तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः । बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिक्षाश्च नामतः ॥ २ ॥

तिलानामिव परिणाहावयवसन्निवेशवर्णा येषाम् । ते द्विधा । तत्र-यूका बहुपादाः कृष्णाः केशाश्रयाः, लिक्षाः-सूक्ष्माः । श्वेताः वस्त्राश्रयाः ॥

बाह्यकृमि तिलके समान प्रमाणवाले, तिलकी आकृति और तिलके वर्णवाले होते हैं । ये कृमि अधिक पांवोंवाले और सूक्ष्म होते हैं, उनमें कितनी जूँ और कितनी लीखें होती हैं तथा केश और वस्त्रोंके आश्रयसे रहती है । इनमें जो काले और बहुत पांववाले कृमि होते हैं, उनको जूँ कहते हैं और जो सूक्ष्म सफेद वर्णवाले होते हैं, उनको लीख कहते हैं ॥२॥

अथ बाह्यकृमिविकारः ।

द्विधा ते कोठपिटिकाः कण्डूगण्डान्प्रकुर्वते ।

वे दोनों प्रकारके कृमि गांठ, फुन्सी, खुजली और गलगण्ड रोगोंको दूर करते हैं ॥

अथान्तःकृमिविप्रकृष्टनिदानम् ।

अजीर्णभोजी मधुराम्लसेवी द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता । व्यायामवर्जी च दिवाशयी च विरुद्धभोजी लभते कृमींश्च३

अजीर्णमें भोजन करना, मधुर तथा खट्टे पदार्थोंका सेवन, पतले पदार्थोंका रुचि, पिसे हुए तथा गुडसे बने पदार्थोंका भोजन, व्यायाम नहीं करना, दिनमें सोना और विरुद्ध पदार्थोंका भोजन करना, इनसे भीतरके कृमि उत्पन्न होवे हैं ॥ ३ ॥

अथ जातकृमिलक्षणम् ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः । भक्तद्वेषोऽतिसारश्च सञ्जातक्रिमिलक्षणम् ॥ ४ ॥

ज्वर, वर्णका विगडना, शूल, हृदयमें पीडा ग्लानि, भ्रम, भोजनसे द्वेष और अतिसार इन लक्षणोंसे शरीरके भीतर कृमि उत्पन्न हुए जानना ॥ ४ ॥

अथ कफोत्पन्नकृमिविप्रकृष्टनिदानम् ।

मांसमाषगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः॥५

शुक्तम् कालान्तरेण अम्लीभूत इक्षुरसविकारः॥

कफसम्बन्धी कृमि-मांस, उडद, गुड, दूध, दही और शिरका इनके विकारोंसे होते हैं॥५

अथ कफजक्रिमिसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः पृथुब्रध्ननिभाः केचित् केचिद्गण्डूपदोपमाः ॥ ६ ॥ रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः । श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते ॥७॥ अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुहाः । चुरवा दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥ ८ ॥ हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् । मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकासक्षवथुपीनसान् ॥ ९ ॥

ब्रध्नश्चर्मलता । रूढोऽङ्कुरितः । तनवःपरिणाहेण तथा दीर्घास्तनुदीर्घाः । चुरवाः चुरवनामानः । तत्कर्तव्यविकाराः हृल्लासादयः ॥

कफसे आमाशयमें उत्पन्न हुए कृमि वृद्धिको प्राप्त होकर चारों ओर विचरते हैं, इनमें कितने एक मोटे चर्मलताके समान, कितने एक केचुएके समान, कितने एक धान्यके उत्पन्न हुए अंकुरके सदृश, कितने एक सूक्ष्म लम्बे तथा बारीक होते हैं, ये कृमि-सफेद और

लाल वर्णवाले होते हैं । अन्त्राद, उदरावेष्ट, हृदयाद, महागुह, चुरव, दर्भकुसुम और सुगन्ध इन नामोंसे ये कृमि सात प्रकारके हैं। कफसे कृमि हुए हों तो हृल्लास, मुखसे लारका गिरना, खाये हुए अन्नका न पचना, अरुचि. मूर्च्छा, वमन, ज्वर, अफारा, खांसी, छींक और पीनस ये रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ६-९ ॥

अथ रक्तोत्पन्नकृमिलक्षणम् ।

रक्तवाहिशिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः । अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥ १० ॥ केशादा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः । षट् ते कुष्ठककर्माणः सहसौरसमातरः ॥११॥

सौरसमातृभ्यां सह वर्तन्ते इति सहसौरसमातरः ॥

रुधिरसे उत्पन्न हुए कृमि-रुधिरको बहानेवाली शिराओंमें रहते हैं । सूक्ष्म, बहुत पांवोंवाले, गोल तथा लाल होते हैं और सूक्ष्मताके कारण कितने एक नहीं भी दीखते। केशाद लोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुंबर, सौरस और मातर इन नामोंसे ये कृमि छः प्रकारके हैं, इन कृमियोंसे कोढ उत्पन्न होता है ॥१०॥११॥

अथ पुरीषजकृमिलक्षणम् ।

पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः । वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुखाः ॥ १२ ॥ तदाऽस्योद्गारनिःश्वासा विड्गन्धानुविधायिनः । पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः ॥ १३ ॥ ते पञ्च नाम्ना क्रिमयः ककेरुकमकेरुकाः । सौसुरादा मल्लनाख्या लेलिहा जनयन्ति च ॥ १४ ॥ विड्भेदशूलविष्टम्भपार्श्यपारुष्यपाण्डुताः । रोमहर्षाग्निसदनगुदकण्डूर्विमार्गगाः १५॥

वृद्धास्तेऽधोविसर्पिणः स्युः, यदा ते आमाशयोन्मुखा भवेयुरित्यन्वयः । ते विमार्गगाः सन्तो विडभेदादीन् जनयन्तीत्यर्थः ॥

विष्ठासे उत्पन्न हुए कृमि पक्वाशयमें होते हैं वे कृमि नीचेको चलते हैं, जब वृद्धिको प्राप्त होते हैं, तब आमाशयमें विचरते हैं। फिर डकार और श्वास लेनेमें मलके सदृश दुर्गन्ध आती है । वे बडे, गोल, सूक्ष्म, मोटे, रंगमें काले, पीले, सफेद और अत्यन्त काले भी होते हैं । ककेरुक, मकेरुक, सौसुराद, मल्लन और लेलिह इन नामोंसे ये कृमि पांच प्रकारके हैं। जब वे कृमि उलटे मार्गमें गमन करते हैं, तब दस्त, शूल, मलबन्ध, कृशता, कठोरता, पीलापन, रोमांच, मन्दाग्नि और गुदामें खुजली ये सब उपद्रव होते हैं ॥१२॥१५॥

क्रिमिचिकित्सा ।

विडङ्गव्योषसंयुक्तमन्नमण्डं पिबेन्नरः । दीपनं क्रिमिनाशाय जठराग्निविवृद्धये ॥ १६ ॥ प्रत्यहं कटुकं तिक्तं भोजनं कफनाशनम् । क्रिमीणां नाशनं रुच्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ १७ ॥ विडङ्गशृतपानीयं विडङ्गेनावधूलितम् । पीतं क्रिमिहरं दृष्टं क्रिमिजांश्च गदाञ्जयेत् ॥ ॥ १८ ॥ लिह्याद्विडङ्गचूर्णं वा मधुना क्रिमिनाशनम् । पलाशबीजस्य रसं पिबेन्माक्षिकसंयुतम् ॥ १९ ॥ पिबेत्त द्बीजकल्कं वा मधुना क्रिमिनाशनम् ॥ २० ॥ कम्पिल्लंचूर्णकर्षार्द्धं गुडेन सह भक्षितम् । पातयेत्तत्क्रिमीन्सर्वानुदरस्थान्न संशयः ॥ २१ ॥ विडङ्गं कौटजं बीजं तथा बीजं पलाशजम् । संचूर्ण्य खादेत्खण्डेन क्रिमीन्नाशयितुं नरः ॥ २२ ॥ निम्बपत्रसमुद्भूतं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत् । धत्तूरपत्रजं वापि

क्रिमिनाशनमुत्तमम् ॥ २३ ॥ रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तूरपत्रजः। ताम्बूलपत्रजो वाऽपि लेपो यूकाविनाशनः। धत्तूरपत्रकल्केन तद्रसेनैव पाचितम् ॥ २४ ॥ तैलमभ्यङ्गमात्रेण यूकानाशयति क्षणात्। क्रिमीणां विट्कफोत्थानामेतदुक्तं चिकित्सितम्। रक्तजानान्तु संहारं कुर्यात्कुष्ठचिकित्सया॥२५

वायविडङ्ग, सोंठ, मिर्च और पीपल इनका चूर्ण माडमें मिलाकर, पीवे तो अग्नि दीप्त होती है और पेटके कीडे नष्ट होते हैं। सदैव चरपरा और कडवा भोजन करना कफ तथा कृमियोंका नाशक है, रुचिको उत्पन्न करनेवाला है और जठराग्निको अत्यन्त दीप्त करता है। वायविडङ्गका क्वाथ करके फिर उसमें और वायविडङ्गका चूर्ण डालकर पीवे तो कृमियोंका नाश होता है और कृमियोंसे उत्पन्न हुए रोगोंका भी नाश होता है। वायविडङ्गका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटे तो कृमि दूर होते हैं। ढाकके वीजोंके रसमें सहत मिलाकर पीवे अथवा ढाकके बीजोंका कल्क बनाकर सहत डालके पीवे तो कृमि नष्ट होते हैं। आधा तोला कवीलेका चूर्ण गुडके साथ खाय तो उसके उदरमें रहनेवाले सम्पूर्ण कृमि निःसन्देह निकल जाते हैं। वायविडंग, इन्द्रजौ और ढाकके बीज इनका महीन चूर्ण करके खाँडके साथ खाय तो इसे कृमि नष्ट होते हैं। नींबूके अथवा धतूरेके पत्तोंका रस सहतके साथ पीवे तो उससे सब प्रकारके कृमि दूर होते हैं। धत्तूरके पत्तोंके रसमें अथवा पानोंके रसमें पारा संयुक्त करके लेप करे तो उससे जूं, लीख नष्ट होती हैं, धत्तूरेके पत्तोंके कल्कसे अथवा धत्तूरेके पत्तोंके रससे पकाये हुए तेलका मालिश करे तो क्षणमात्रमें जुओंका नाश होता है। विष्ठासे तथा कफसे उत्पन्न हुए कृमियोंकी तथा यूकानामक कृमियोंकी यह चिकित्सा कही, परन्तु रुधिरसे उत्पन्न हुए कृमियोंको नष्ट करना हो तो कुष्ठकी चिकित्सा करे ॥ १६ ॥ २५ ॥

अथ क्रिमिरोगिणोऽपथ्यानि।

क्षीराणि मांसानि घृतानि चापि दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति। अम्लञ्च मिष्टञ्च रसं विशेषात्क्रिमीञ्जिघांसुः परिवर्जयेद्धि ॥ २६ ॥

कृमियोंको नष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य दूध, मांस, घी, दही, पत्तोंवाला चने आदिका शाक और विशेष करके खट्टे मीठे रस इनका त्याग करे ॥ २६ ॥

इति कृमिरोगाधिकारः।

पाण्डुरोगकामलाहलीमकाधिकारः।

तत्र पाण्डुरोगसंख्यापूर्वकसन्निकृष्ट निदानम्।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्च वातपित्तकफैस्त्रयः। चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमो भक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

वायुसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे अर्थात् तीनों दोषों से और मिट्टीके खानेसे उत्पन्न हुआ इस प्रकार पांडुरोग पांच प्रकारका है॥१॥

पञ्चमो भक्षणान्मृद इति। ननु मृत्तिकाऽपि दूषितदोषद्वारेणैव पाण्डुरोगं जनयतीति मृद्भक्षणजः पाण्डुरोगो दोषजादभिन्न एव, कथं पञ्चम इति?

शंका-मिट्टी भी स्वयं दूषित दोषद्वारा पाण्डुरोगको उत्पन्न करती है, इस कारण मिट्टीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोग दोषसे उत्पन्न हुए पांडुरोगसे पृथक् नहीं हो तो पांच प्रकारके पांडुरोग क्यों कहे?

उच्यते-अपरकारणकुपिता वातादयोऽन्यानपि रोगान्कुर्वन्ति, मृत्तिकाभक्षणा-

त्कुपितास्तु वातादयो विशेषतः पाण्डुरोगमेव जनयन्त्येवेति विशेषः । चिकित्साविशेषाच्च पञ्चमः चरकेणोक्तः । तच्चिकित्सा अपरकारणकुपितदोषजनितपाण्डुरोगचिकित्सा भवतीति सुश्रुतेन मृत्तिकाजः पृथक् न पठितः ॥

समाधान–अन्य कारणोंसे कुपित हुए वातादि दोष अन्यरोगोंको भी उत्पन्न करते हैं, परन्तु मिट्टीके भक्षणसे कुपित हुए हों तो विशेष करके पांडुरोगको ही उत्पन्न करते हैं. इस कारण मिट्टीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पांडुरोगकी चिकित्सा भी भिन्न प्रकारकी है, इसीसे चरक मुनिने मिट्टीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पांडुरोगको पांचवाँ कहाँ है और सुश्रुतने 'मिट्टीके भक्षणसे हुए पांडुरोगकी चिकित्सा अन्यकारणों द्वारा कुपित हुए दोषोंसे उत्पन्न हुए पांडुरोगकी चिकित्सा करनेसे होजाती है' ऐसा जानकर मिट्टीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पांडु रोगको पृथक् नहीं कहा ॥

अथ पाण्डुरोगविप्रकृष्टनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम् । निषेवमाणस्य विदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पाण्डुरतां नयन्ति ॥ २ ॥

तीक्ष्णम्–राजिकादि ।

अत्यन्त मैथुनसे, खट्टे तथा नमकीन पदार्थोंसे, मद्य से मट्टी खानेसे, दिनमें सोनेसे और अत्यन्त तीक्ष्ण राई आदि पदार्थोंका सेवन करनेसे मनुष्योंके वातादि दोष रुधिरको दूषित कर त्वचाको पांडुवर्ण करदेते हैं ॥ २ ॥

अथ पांडुरोगपूर्वरूपम् ।

त्वक्स्फोटनिष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः । विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥३॥

प्रेक्षणकूटशोथः-अक्षिगोलशोथः ॥

पांडुरोगका आरम्भ होनेसे प्रथम ही त्वचाका फटना, थूकना, शरीरमें ग्लानि, मट्टीके खानेकी इच्छा, नेत्रोंके गोलोंपर सूजन, विष्ठा तथा मूत्रका पीला होना और अन्नका न पचना ये लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

अथ वातोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणाभता । वातपाण्ड्वामये कंपस्तोदानाहभ्रमादयः ॥ ४ ॥ कृष्णारुणाभता पाण्डुत्वं न अतिक्रामति ॥ अत एव सुश्रुते–"सर्वेषु चैतेष्वपि पाण्डुभावो यतोऽधिकोऽतः खलु पाण्डुरोगः" इति । भ्रमादय इति आदिशब्दाद्भेदशूलादयः ।

वायुसे उत्पन्न हुए पांडुरोगमें चमडी, मूत्र तथा नेत्रादि रूखे, काले और लाली लिये होते हैं । कम्प, अंगोंमें पीडा, अफरा और भ्रमादिक भेदन और शूलादिक होते हैं । त्वचा आदिमें काला और लाल जो मिश्रित रंग होता है, वह विना पीलेपनके नहीं होता । क्योंकि सुश्रुतमें कहा है कि–"पाण्डुरोगके सब भेदोंमें पाण्डुता पीलापन अधिक होती है, इसलिये ही इस रोगको पाण्डुरोग कहते हैं" ॥ ४ ॥

अथ पित्तोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

पीतत्वङ्नखविण्मूत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः । भिन्नविट्कोऽतिपीताभः पित्तपाण्ड्वामये नरः ॥ ५ ॥

भिन्नविट्कः सद्रवमलः ॥

पित्तसे पाण्डुरोग हुआ हो तो मनुष्योंकी त्वचा, नख, विष्ठा तथा मूत्र पीला होजाता है । दाह, तृषा, ज्वर, विष्ठा पतली और शरीरकी कान्ति अत्यन्त पीली पडजाती है ॥ ५ ॥

अथ कफोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम्।

कफप्रसेकः श्वयथुस्तन्द्रालस्यातिगौरवैः। पाण्डुरोगी कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ६ ॥

अत्रोपलक्षणे तृतीया ॥

कफसे पाण्डुरोग हुआ हो तो थूंकनेमें कफका आना, सूजन, तन्द्रा, आलस्य तथा अत्यन्त भारीपन होता है और त्वचा, मूत्र, नेत्र तथा मुख ये सफेद होजाते हैं ॥ ६ ॥

अथ सन्निपातोत्पन्नपांडुरोगलक्षणम्।

सर्वान्नसेविनः सर्वे दुष्टा दोषास्त्रिदोषजम्। त्रिदोषलिङ्गं कुर्वन्ति पाण्डुरोगं सुदुःसहम् ॥ ७ ॥

सम्पूर्ण अन्नोंके सेवन करनेवाले मनुष्यके दूषित हुए तीनों दोषोंसे उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षणोंवाला अत्यन्त असह्य पाण्डुरोग होता है ॥ ७ ॥

अथ मृद्भक्षणजनितपाण्डुरोगसम्प्राप्तिः।

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः। कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥८॥ कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तञ्च रूक्षयेत्। पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्ध्यपि ॥ ९ ॥ इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजो वीर्यौजसी तथा। पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥ १० ॥

स्रोतांसि--शिरामुखानि। तेजः--दीप्तिः। ओजः-सर्वधातुरसः ॥

जिस मनुष्यको मट्टी खानेका अभ्यास हो, उसके तीनों दोषोंमेंसे एक कुपित होता है। कसैली मट्टीसे वायु कुपित होती है, खारी मट्टीसे पित्त कुपित होता है और मीठी मट्टीसे कफ कुपित होता है। ये मट्टी—अपनी रूक्षतासे रसादिकको तथा खाये हुए अन्नको दूषित करती है, तब ये कच्चे ही रससे सम्पूर्ण शरीरकी नसोंके स्रोत भरके रोक देती हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियोंका बल, तेज, वीर्य तथा ओज सब धातुओंका रस का विनाश करके तुरन्त ही बल वर्ण और जठराग्निके मन्द करनेवाले पाण्डुरोगको उत्पन्न करती हैं ॥१०॥

अथ मृद्भक्षणोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम्।

मृद्भक्षणाद्भवेत्पाण्डुस्तन्द्रालस्यनिपीडितः। सकासश्वासशूलार्तः सदाऽरुचिसमन्वितः ॥११॥ शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपन्नाभिमेहनः। कृमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृक् कफान्वितम् ॥ १२ ॥

कृमिकोष्ठः--उदराभ्यन्तरस्थकृमिर्भवेदित्यनेन सम्बध्यते। अतिसार्येत मलमितिकमकर्तरि तत्कर्मवन्मन्तव्यम्। तस्मिन् कर्मण्यर्थेऽत्र लिङ्प्रत्ययः ॥

मट्टी, खानेसे पाण्डुरोगवालेके लक्षण–तन्द्रा, आलस्य, खांसी, श्वास, शूल और अरुचि बनी रहती है, पेटमें कीडे रहते हैं। उसकी आंखोंके गोलक, कपोल, भ्रुकुटी, पांव, नाभि और लिंगपर सूजन होती है और कफसंयुक्त अनेक दस्त आते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ पाण्डुरोगिणोऽसाध्यलक्षणानि।

ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दिं तृष्णाक्लमान्वितः। पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः ॥ १३ ॥ पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिद्ध्यति। कालप्रकर्षाच्छूनाङ्गो यो वा पीतानि पश्यति ॥ १४ ॥

खरीभूतः—अतिरूक्षितसर्वधातुः।

ज्वर, अरुचि, हृल्लास, छर्दि, तृषा, ग्लानि और इन्द्रियोंमें सामर्थ्य न रही हो तथा त्रिदोषग्रसित हो तो चतुर वैद्यको चाहिये कि–उस

पाण्डुरोगवाले रोगीको त्याग दे। अथवा जो पाण्डुरोग बहुत पुराना हो और उसकी संपूर्ण धातुओंमें अत्यन्त रूखापन आगया हो और थोडे ही समयके उपरान्त पाण्डुरोगवाले मनुष्यके शरीरपर सूजन हो तथा उसको सब वस्तु पीलीही दिखाई देती हो तो उस रोगीका अच्छा होना कठिन है ॥ १३ ॥ १४ ॥

बद्धाल्पविट् सहरितं सकफं योऽतिसार्यते । दीनः स्वेदातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्च्छातृष्णान्वितः ॥ १५ ॥ पाण्डुदन्तनखो यस्तु पाण्डुनेत्रश्च यो भवेत् । पाण्डुसंघातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति ॥ १६ ॥

पाण्डुसंघातदर्शी—यः पीतवर्णस्य राशिं पश्यति ॥

जिस पाण्डुरोगवाले रोगीका गन्धा हुआ मल हरे रंग संयुक्त और अत्यन्त थोडा २ उतरे, दीनता आगई हो, पसीना बहुत आता हो और वमन, मूर्च्छा तथा तृषासे चित्त व्याकुल हो वह रोगी असाध्य है किसी प्रकार बच नहीं सकता अथवा जिस पाण्डुरोगवाले प्राणीके दांत, नख और नेत्रोंमें पीलापन आगया हो और सब वस्तु पीली ही पीली दिखाई देवे, वह रोगी अवश्य यमलोकको सिधारेगा ॥ १५ ॥ १६ ॥

अन्तेषु शूनं परिहीणमध्यं
म्लानं तथाऽन्तेषु च मध्यशूनम् ।
गुदे मुखे शेफसि मुष्कयोश्च
शूनं प्रताम्यन्तमसंज्ञकल्पम् ॥
विवर्जयेत्पाण्डुकिनं यशोऽर्थी
तथाऽतिसारज्वरपीडितश्च ॥ १७ ॥

अन्तेषु-हस्तपादादिषु । म्लानम्-क्षीणम् । प्रताम्यन्तम्—ग्लानिं गच्छन्तम् । असंज्ञकल्पम्—मृतसदृशम् ॥

जिस पाण्डुरोगवालेके हाथ-पांवोंपर सूजन आजाय और मध्य भागपर सूजन न आवे, अथवा उसके मध्यभाग पर सूजन आगई हो और हाथ, पांव सूजन रहित हों तथा गुदा, मुख, लिंग और अण्डकोषोंपर सूजन हो, चित्तपर ग्लानि हो, संज्ञा न रहकर मृतकके सदृश हो, अतिसार और ज्वरकी पीडा हो, ऐसे पाण्डुरोगीको यशस्वी वैद्य त्याग देवे ॥ १७

अथपांडुरोगभेदकामलानिदान-
पूर्वकसंप्राप्तिः ।

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते । तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ १८ ॥

पित्तं कर्तृ, दग्ध्वा सदूष्य, रोगाय कामलारूपाय । पाण्डुरोगिण एव अतिशयितपित्तलसेवया कामला भवति, नायं नियमः किंतु कामला स्वतन्त्राऽपि भवति । यथा राजयक्ष्मा कासादुपेक्षिताद्भवति, नायं नियमः; किन्तु राजयक्ष्मा स्वतन्त्रोऽपि भवति तद्वदेव ।

जो पांडुरोगवाले मनुष्य अधिक पित्तकारी पदार्थोंका अधिक सेवन करते हैं, उनका पित्त कोपको प्राप्त हो रुधिर और मांसको दूषित करके कामलारोगको उत्पन्न करता है। ऐसा मत समझना कि, पांडुरोगवाले ही रोगीको पित्तकारी पदार्थोंके खानेसे कमलारोग होता है, यह कमलारोग आपसे आप भी होजाता है जैसे खांसीका उपाय न करनेसे राजयक्ष्मा होजाता है, ऐसा नियम नहीं है, किन्तु राजयक्ष्मा आपसे आप भी उत्पन्न हो जाता है, है, इसी प्रकार कामलाका भेद समझना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ कामलालक्षणम् ।

हारिद्रनेत्रः सुभृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः । पीतरक्तशकृन्मूत्रो भेकवर्णो

हतेन्द्रियः। दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः ॥ १९ ॥

हारिद्रं हारिद्रावर्णम् । पीतरक्तशकृन्मूत्रः-- पीते रक्ते वा शकृत्मूत्रे यस्य सः। भेकवर्णः-- बृहद्भेकवर्णः ॥

कामलारोगमें रोगीके नेत्र, त्वक्, नख और मुखका रंग हलदीके सदृश पीले हों। मल, मूत्र पीला वा लाल हो, बडे मेंडकके समान शरीरका वर्ण होजाय, इन्द्रियाँ शक्तिहीन होजाँय। हृदयमें दाह, भोजनका न पचना, शरीरका दुर्बल और शिथिल होजाना, अन्नमें अरुचि ये लक्षण होजाते हैं ॥ १९ ॥

अथकामलभेदः

कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता।

एका कोष्ठाश्रया। अपरा शाखाश्रया ॥

अधिक पित्तवाला कामलारोग यह एक कोठाश्रय होता है और दूसरा शाखाश्रय होता है ॥

अथ कोष्ठाश्रयकामलावर्णनम्।

कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला ॥ २० ॥

यह कामलारोग जब बहुत पुराना हो जाता है तब रूक्ष अर्थात् खरीभूत होकर जठराग्निको रोक लेता है। जैसे घटका मुखछोटा और पेट बडा होता है इसी प्रकार रोगीका उदर समझना, कुम्भके समान आकार कोष्ठके आश्रय जानना, इसीसे यह 'कुम्भकामलारोग' कहलाता है ॥ २० ॥

अथ कुम्भकामलारिष्टलक्षणम।

छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः। नश्यति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुम्भकामली ॥ २१ ॥

वमन, अरुचि, हृल्लास सूखी रद, ज्वर, क्लम, श्वास, खांसी और मल फटा हुआ पतला होता है, जब कुम्भकामलारोगमें ये लक्षण हों तो वह रोगी शीघ्रही यमपुरीमें वास करना चाहता है ॥ २१ ॥

अथ कामलाद्व्यरिष्टम्।

कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः। संरक्ताक्षिमुखच्छर्दिविण्मूत्रो यश्च ताम्यति ॥ २२ ॥ दाहारुचितृषानाहतन्द्रामोहसमन्वितः। नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं हि कामलावान् विपद्यते ॥ २३ ॥

जिस कामलावाले रोगीका मल मूत्र काला, मिलाहुआ हरे रंगका हो और लाल नेत्र तथा लाल वर्णही मुखका हो, वमन भी लाल रंगकी हो, सब शरीरपर सूजन हो, कफ रक्तयुक्त हो, चित्तमें ग्लानि रहे, दाह, अरुचि, अफारा, तन्द्रा, मोह, मन्दाग्नि और संज्ञा जाती रहै, ऐसा रोगी किसी प्रकार बच नहीं सकता ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ पांडुरोगभेदो हलीमकः।

यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्धरितश्यावपीतकः। बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः ॥ २४ ॥ स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च श्वासतृष्णारुचिभ्रमाः। हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः ॥ २५ ॥

पाण्डोः पाण्डुरोगिणः।

जब पाण्डुरोगवालेके शरीरमें वात, पित्त बढ जाता है, तब उसकी त्वचाका रंग हरा, काला, और पीला पडजाता है, बल और उत्साहकी क्षीणता, तन्द्रा, मन्दाग्नि, कुछ थोडासा ज्वर, स्त्रीप्रसंगमें अरुचि, अंगअंगमें पीडा, श्वास, तृषा, अरुचि और भ्रम होतो 'हलीमकरोग' समझना चाहिये। यह रोग वात पित्तसे प्रगट होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ पाण्डुरोगचिकित्सा।

सप्तरात्रं गवां मूत्रैर्भावितश्चायसो रजः। पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा प्रविबेन्नरः

॥२६॥ गोमूत्रसिद्धं मण्डूरचूर्णं सगुडमश्नतः। पाण्डुरोगः क्षयं याति पंक्तिशूलं च दारुणम् ॥ २७ ॥ अथोमलं सुसन्ततं भूयो गोमूत्रसाधितम्। मधुसर्पिर्युतं लीढवा पाण्डुरोगी सुखी भवेत् ॥ २८ ॥

लोहसारकी भस्मको सात दिनतक गोमूत्रमें भावना देकर फिर पीछे इसको दूधके साथ खाय तो पाण्डुरोग नष्ट होता है। अथवा गोमूत्रसे बना हुआ मण्डूर गुडमें मिलाकर खानेसे पाण्डुरोग और महाकठिन परिणामशूलका विनाश होता है। अथवा मण्डूरको बारम्बार आगमें तपा तपाकर गोमूत्रमें बुझावे जब भली प्रकार भस्म हो जाय, तब घी और सहतमें मिलाकर चाटनेसे पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ २६-२८ ॥

अथ पुनर्नवादिमण्डूरः।

पुनर्नवा त्रिवृद्व्योषं विडङ्गं दारु चित्रकम्। कुष्ठं हरिद्रा त्रिफला दन्ती चव्यं कलिङ्गकम् ॥ २९ ॥ कटुका पिप्पलीमूलं मुस्तं शृङ्गी च कारवी। यवानी कट्फलश्चेति पृथक् पलमितं समम् ॥३०॥ मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाद्गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत्। गुडेन वटकान् कृत्वा तक्रेणालोड्य तान्पिबेत् ॥ ३१ ॥ पुनर्नवादिमण्डूरवटकोऽश्विविनिर्मितः। पाण्डुरोगं निहन्त्याशु कामलाञ्च हलीमकम्। श्वास कासञ्च यक्ष्माणं ज्वर शोथं तथोदरम् ॥ ३२ ॥ शूलं प्लीहानमाध्मानमर्शांसि ग्रहणीं क्रिमीन्। वातरक्तञ्च कुष्ठं च सेवनान्नाशयेद् ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ अत्र पुनर्नवादिमण्डूरमू ॥२४॥ प्रत्येकपलम् १॥ लोहकिट्टचूर्णपलानि ४८॥ गोमूत्रपलानि १९२॥

पुनर्नवा, निसोत, सोंठ, मिरच, पीपल वायविडङ्ग, देवदारु, चीता, कूठ, हलदी, हरड, बहेडा, आमला, जमालगोटेकी जड, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल, मोथा, काकडासिंगी, कालाजीरा, अजवायन और कायफल ये सब औषधि एक एक पल लेकर चूर्ण करे चूर्णसे दूना मण्डूर लेवे फिर इनसे अठगुना गोमूत्र लेकर उसमें पचावे, फिर उसमें गुड डालकर गोली बनावे। उन गोलियोंको छांछमें घोलकर पिये। यह 'पुनर्नवादिमण्डूर' अश्विनीकुमारोंने बनाया है। यह पाण्डुरोग कामला, हलीमक, श्वास, खांसी, राजयक्ष्मा, ज्वर, सूजन, उदररोग, शूल, प्लीहा, अफारा, बवासीर, संग्रहणी, कृमिरोग, वातरक्त और कुष्ठका नाशक होता है ॥ २९-३३ ॥

अथ नवायसं चूर्णम्।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा। एतानि नवभागानि नव भागा हतायसः। एतदेकीकृतं चूर्णं नरोऽष्टादशरत्तिकम् ॥ ३४ ॥ प्रलिह्यान्मधुसर्पिर्भ्यां पिबेत्तक्रेण वा सह। गोमूत्रेण पिबेद्वाऽपि पाण्डुरोगं विनाशयेत् ॥३५॥ शोथं हृद्रोगमुदरं क्रिमिं कुष्ठं भगन्दरम्। नाशयेदग्निमान्द्यञ्च दुर्नामकरोचकम् ॥ ३६ ॥ आर्द्रकस्य रसेनापि लिह्यात्कफसमृद्धिमान् ॥ ३७ ॥

अत्र नवायसलोहं नवरत्तिकापरिमितं भक्षणीयम्। यत उक्तं रसप्रदीपे—

गुञ्जामेकां समारभ्य यावत्स्युर्नव रत्तिका। तावल्लोहं समश्नीयाद्यथादोषानलं नरः ॥ ३८ ॥ एवं सति प्रथमदिने त्र्यूषणादिसहितं रत्तिकाद्वयमितं प्रतिदिनं रत्तिकाद्वयंद्वयं वर्द्धयेत्। यावत्

त्र्यूषणादिसहिता दश रत्तिकाः स्युः ततस्ता प्रतिदिनं खादेत् ॥

इति नवायसं चूर्णम् ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमले नागरमोथा, वायविडङ्ग और चीता ये सब औषधि एक एक तोला और लोहभस्म नौ तोले, सबको पीसकर एकत्र करले। इसमेंसे अठारह रत्ती घी और सहतमें मिलाकर चाटे वा छांछके साथ अथवा गोमूत्रके साथ पीवे। यह चूर्ण खानेसे पाण्डु रोग, सूजन, हृदयरोग कृमि, कुष्ठ, भगन्दर, मन्दाग्नि, बवासीर और अरुचिको नष्ट करता है। इसके खानेकी यह रीति है-पहिले दिन दो रत्ती खाय, दूसरे दिन चार रत्ती खाय, तीसरे दिन छः रत्ती, इस प्रकार नित्य दो दो रत्ती अधिक करे, जिसमें चूर्णके साथ मिलाकर अठारह रत्ती पूरी हो जावें। रसप्रदीपमें इसका उपरोक्त प्रमाण लिखा है ॥ ३४-३८ ॥

अथ कामलाचिकित्सा ।

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या मरिचकस्य वा क्वाथो माक्षिकसंयुक्तः शीतलः कामलापहः ॥ ३९ ॥ अञ्जने कामलार्तानां द्रोणपुष्पीरसो हितः । गुडूचीपत्रकल्कं वा पिबेत्तक्रेण कामली ॥ ४० ॥ धात्रीलोहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्कराः । लीढा निवारयन्त्याशु कामलामुद्धतामपि ॥ ४१ ॥ कुम्भाख्यकामलायां तु हितः कामलिको विधिः । गोमूत्रेण पिबेत् कुम्भकामला वाञ्छिलाजतु ॥ ४२ ॥ दग्ध्वाऽक्षकाष्ठैर्मलमायसन्तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् विचूर्ण्य लीढं मधुनाऽचिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति । अपहरति कामलार्तिं नस्येन कुमारिकाजलं सद्यः॥४३

त्रिफलेके वा गिलोयके अथवा दारुहलदी के किंवा नीमके क्वाथको शीतल करके उसमें सहत मिलाकर पीवे तो कामलाका विनाश होता है। गूमेके रसका अञ्जन बनाकर लगावे तो कामलारोगवालेको परम हितकारी है। गिलोयके पत्तोंको पीसकर उसका रस छांछमें मिलाकर पीनेसे कामलारोग दूर होता है। आमले, लोहभस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, हलदी, घी और बूरा इन सबको मिलाकर चाटनेसे महाप्रबल कामलारोगका विनाश होता है, कुम्भकामलारोगमें भी सब विधि कामलारोगकीही करनी चाहिये। उत्तम शिलाजीतको गोमूत्रके साथ पीवे तो कुम्भकामलारोग दूर होता है। लोहमण्डूरको बहेडेकी लकडियोंमें फूंककर आठबार गोमूत्रमें बुझावे, फिर इसका चूर्णकर सहतके साथ चाटे तो यह शीघ्रही कुम्भकामलाको दूर करता है। घीकुंवारके रसका नस्य लेवे तो तत्कालही कामलारोग दूर होता है ॥ ३९-४३ ॥

अथ हलीमकचिकित्सा ।

मारितं चायसं चूर्णं मुस्ताचूर्णेन संयुतम् । खदिरस्य कषायेण पिबेद्धन्तुं हलीमकम् ॥ ४४ ॥ सितातिलबलायष्टीत्रिफलारजनीयुगैः । लोहं लिह्यात्समध्वाज्यं हलीमकनिवृत्तये ॥ ४५ ॥

लोहसारकी भस्म और मोथेका चूर्ण लेकर खैरसारके क्वाथके साथ पीवे तो हलीमकरोग दूर होता है। मिश्री, तिल, खिरैंटी, मुलहटी, त्रिफला, हलदी, दारुहलदीके चूर्णके साथ लोहेकी भस्ममें सहत और घी मिलाकर चाटे तो हलीमकरोग नष्ट होता है ॥४४॥४५॥

अथामृतलतादिघृतम् ।

अमृतलतारसकल्कं प्रसाधितं तुरगविद्विषः सर्पिः । क्षीरचतुर्गुणमेतद्वितरेच्च हलीमकार्तेभ्यः ॥ ४६ ॥ मधुरैरन्नपानै-

स्तं वातपित्तहरैर्हरेत् । कामलापाण्डुरोगोक्तां क्रियां चात्रोपयोजयेत् ॥ ४७ ॥

गिलोयका रस और उसका कल्क अंसका घृत डालकर बनावे, फिर उसमें चौगुना दूध डालकर पकावे, इस 'अमृनलतादिघृत' को हलीमकरोगवाला सेवन करे तो हलीमकरोग समूल नष्ट हो। इस हलीमकरोगको मधुर और वातपित्त हरनेवाले अन्न पानोंसे और पांडुरोग तथा कामलारोगमें कही हुई औषधियोंसे शान्त करे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ पांडुकामलाहलीमकसामान्यचिकित्सा ।

फलत्रिकामृतवासातिक्ताभूनिम्बनिम्बजः क्वाथः । क्षौद्रयुतोऽयं हन्याद्धलीमकं पाण्डुकामलारोगम् ॥ ४८ ॥

त्रिफला, गिलोय, अडूसा, कुटकी, चिरायता और नीमकी छालका क्वाथ बनाकर उसमें सहत मिलाकर पीवे तो हलीमक, पांडु और कामला रोग विनष्ट होता है ॥ ४८ ॥

अथ त्र्यूषणादिमण्डूरवटकः ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडंगं चव्यचित्रकम् । दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिकोदेवदारु च ॥ ४९ ॥ एषां द्विपलिकान् भागान्कृत्वा चूर्णं पृथक् पृथक् । मण्डूरचूर्णं द्विगुणं शुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ ५० ॥ मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेन्नरः । उदुम्बरसमाकारान्वटकांस्तान्यथाग्नि च ॥ ५१ ॥ उपयुञ्जीत तक्रेणजीर्णे सात्म्यश्च भोजनम् । मण्डूरवटिका ह्येताः प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥ ५२ ॥ कुष्ठानि जठरं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान् । अर्शांसि कामलां मेहं प्लीहानं शमयन्ति च ॥५३॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला नागरमोथा, वायविडंग, चव्य, चीता, दारुहलदी, दालचीनी, सोनामाखी, पीपलामूल और देवदारु इन सबको चार चार तोले लेकर अलग अलग पीस चूर्ण करे, इन सबसे दूने मंडूरके चूर्णको आठगुने गोमूत्रमें पकाकर ऊपर कहेहुए चूर्णको उसमें डालकर गूलरके समान गोली बनाकर मट्ठेके साथ अपनी शक्त्यनुसार भक्षण करे और जब वह पचजाय तो भोजन करे। यह 'मंडूरवटिका' पांडुरोगवालेके, लिये प्राणदायक है। कुष्ठ, उदररोग, सूजन, जंघाओंका जकडना, कफरोग, बवासीर, कामला, प्रमेह और प्लीहादिक सब रोगोंको शान्त करती है ४९--५३॥

अथाष्टादशाङ्गलौहः ।

किराततिक्तः सुरदारु दार्वी मुस्ता गुडूची कटुका पटोलम् । दुरालभा पर्पटकं सनिम्बं कटुत्रिकं वह्नि फलत्रिकञ्च ॥ ५४ ॥ फलं विडङ्गस्य समांशकानि सर्वैः समं चूर्णमथायसश्च । सर्पिर्मधुभ्यां वटिका विधेया तक्रानुपानाद्भिषजा प्रयोज्या ॥ ५५ ॥ निहन्ति पाण्डुञ्च हलीमकं च शोथं प्रमेहं ग्रहणीरुजञ्च । श्वासञ्च कासञ्च सरक्तपित्तमर्शास्यथो वाग्ग्रहमामवातम् ॥ व्रणांश्च गुल्मान् कफविद्रधिञ्च चित्रञ्च कुष्ठञ्च ततः प्रयोगात् ॥ ५६ ॥

चिरायता, देवदारु, दारुहलदी, मोथा, गिलोय, कुटकी, परवल, जवासा, पित्तपापडा, नीम, सोंठ, मिर्च, पीपल, चीता, हरड, बहेडा, आमला, और वायविडंग ये सब औषधि समभाग लेकर और सबकी बराबर लोहभस्म मिलाकर घी और सहतके साथ मोदक बनाकर मट्ठेके साथ सेवन करे तो, पांडु, हलीमक, सूजन, प्रमेह, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, रक्तपित्त, अर्श, जीभका रुकना,

आमवात, व्रण, वायगोला, कफरोग, विद्रधि, श्वेत कुष्ठ और प्रकारके कुष्ठादिक जो हैं वे सम्पूर्ण शान्त होते हैं ५४--५६ ॥

यवगोधूमशाल्यन्नै रसैर्जाङ्गलजैर्हिते ।
मुद्गाढकीमसूराद्यैरेषु भोजनमिष्यते॥५७

एषु--पांडुरोगकामलाहलीमकेषु ॥

इति पांडुकामलाहलीमकरोगाधिकारः ।

जौ, गेहूं, शालिधानोंके चावलोंका भात, जंगली जीवोंके मांसका रस, मूँग, अरहर और मसूर आदिक भोजन पांडु, कामला और हलीमकरोगमें देना उचित है ॥ ५७ ॥

इति पांडुकामलाहलीमकरोगाधिकारः ।

अथ रक्तपित्ताधिकारः ।

तत्र रक्तपित्तनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

घर्मव्यायामशोकाध्वव्यावायैरतिसेवतैः । तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च । पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम् ॥ १ ॥

तीक्ष्णं--मरिचादि, उष्णमग्नितापादि । क्षारो- यवक्षा रादिः । विदग्धं-दूषितम् । स्वगुणैः--स्वकारणैः गुणैः तीक्ष्णादिभिः । गुणैरिति बहुत्वेन तीक्ष्णाम्ललवण-कटूष्णघर्मादयो गृह्यन्ते । विदहति--दूषयति ॥

धूप, व्यायाम, शोक, मार्गगमन और मैथुन इनका अधिकतर सेवन करनेसे, तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार तथा लवणपदार्थ इनका अत्यन्त प्रयोग करनेसे खट्टे और चरपरे पदार्थोंको अधिक खानेसे दूषित हुआ पित्त अपने गुणोंसे शीघ्रही रुधिरको दूषित करता है तीक्ष्ण अर्थात् मरिचादि पदार्थ, उष्ण अर्थात् अग्निका सेवन आदि, क्षार अर्थात् जवाखारादि पदार्थ, अपने गुणोंसे अर्थात् अपने कारणरूप तीक्ष्ण, खट्टे, खारे, तीखे और गरम आदि गुणोंसे जानना ॥ १ ॥

अथ रक्तपित्तसामान्यलक्षणम् ।

ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधाऽपि वा ॥ २ ॥

इस प्रकार पित्तसे दूषित होनेके कारण रुधिर और उसके साथ पित्त मिलकर ऊर्ध्व मार्गोंसे अथवा अधोमार्गोंसे वा दोनों मार्गोंसे बहने लगता है । उसको रक्तपित्त कहते हैं ॥ २ ॥

अत्र रक्तमित्युपलक्षणम् । तेन संसृष्ट पित्तश्च । अत एव रक्तश्च पित्तश्च रक्तपित्तमिति द्वन्द्व इति सुश्रुतः । रक्तश्च तत्पित्तं चेति रक्तपित्तं कर्मधारयश्च । रागप्राप्तं पित्तं रक्तपित्तमित्युच्यते मनीषिभिरिति उभयत्रापि न दोषः । कारणत्रयाद्रक्तस्यापि समाख्यानम् । "संयोगाद्दूषणात्तत्तु समान्याद्गन्धवर्णयोः ।"

यहां सुश्रुत कहता है, कि, रुधिर और पित्त ये दोनों बहने लगते हैं, इस कारण यह रोग रक्तपित्त कहा जाता है । अन्य ग्रन्थकार कहते हैं कि, पित्त लालरंगका होकर बहने लगता है, इस कारण यह रोग रक्तपित्त कहा जाता है ।" तीनों कारणोंसे पित्त रंजित होकर रक्तपित्त कहाजाता है । अतएव दोनों पक्षोंमें किसी प्रकारका दोष नहीं आता, रुधिरका और पित्तका संयोग होता है । पित्तसे रुधिर दूषित होता है और रुधिर तथा पित्तकी गन्ध और वर्ण समान होते हैं । इन तीन कारणोंसे रंजित हुआ जो पित्त है, उसको विद्वान् लोग 'रक्तपित्त' कहते हैं ॥

अथ रक्तपित्तप्रवृत्तिमार्ग. ।

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते॥३॥

कोपको प्राप्त हुआ पित्त--नाक, आँख, कान और मुख इन ऊँचे मार्गोंसे बहता है तथा लिंग, योनि और गुदा इन नीचे मार्गोंसे बहता है और सम्पूर्ण रोमकूपोंसे भी बहता है ॥ ३ ॥

अथ रक्तपित्तपूर्वरूपम् ।

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः लोहगन्धश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन् भविष्यति ॥ ४ ॥

जब रक्तपित्त होनेको होता है, तब उससे कुछ पहिले ग्लानि, शीतकी इच्छा, गलेमें धुयेंकासा घुटना, वमनका होना, रुधिरके समान गन्धका निकलना और बारंबार श्वासोंका आना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

अथ कफजवातजरक्तपित्तस्वरूपम् ।

सान्द्रं सपाण्डु सस्नेहं पिच्छिलं च कफान्वितम् । श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षश्च वातिकम् ॥ ५ ॥

कफज रक्तपित्तका रुधिर-गाढा, पांडुवर्ण, स्नेहयुक्त और पिच्छिल होता है । वातसम्बन्धी रक्तपित्तका रुधिर-काला, लाल, झागोंसे युक्त, पतला और रूखा बहता है ॥ ५ ॥

अथ पित्तजरक्तपित्तस्वरूपम् ।

रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम् । मेचकाङ्गारधूमाभमञ्जनाभश्च पैत्तिकम् ॥ ६ ॥

मेचकम्--चिक्कणं कृष्णवर्णम् । अञ्जनं--स्रोतोऽञ्जनं तदाभम् ॥

पित्तज रक्तपित्तका रुधिर-क्काथके सदृश काला, गोमूत्रके तुल्य चिकना, काले रंगका, कोयलेके धुएँके समान और अंजनके समान प्रवर्त्तित होता है ॥ ६ ॥

अथ संसर्गविशेषेण मार्गभेदाः ।

संसृष्टलिङ्गं संसर्गात्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् । उर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतानुगम् । द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यां तत्प्रवर्तते ॥ ७ ॥

कफके संसर्गवाला रक्तपित्त-ऊर्ध्वमार्गसे बहता है । वातसम्बन्धी रक्तपित्त--अधोमार्गसे बहता है । कफ और वायुके संसर्गवाला रक्तपित्त-दोनों मार्गोंसे बहता है और जो तीनों दोषोंसे संसर्गज सान्निपातिक रक्तपित्त होता है, उसमें तीनों दोषोंके लक्षण देखेजाते हैं ॥ ७ ॥

अथ रक्तपित्तोपद्रवाः ।

दौर्बल्यं श्वासकासज्वरवमथुमदाः पाण्डुतादाहमूर्च्छा भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा । तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूयनिष्ठीवनश्च द्वेषो भक्तेऽविपाको विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गात् ॥ ८ ॥

विकृतिः--मांसप्रक्षालनाभतादिः ।

दुर्बलता, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, मद, पाण्डुता, दाह, मूर्च्छा, भोजन करनेके पश्चात् घोर दाह, अधैर्यपन, सदैव हृदयमें असाधारण पीडा, प्यास, दस्तोंका होना, मस्तकमें सन्ताप, थूकनेमें दुर्गन्धता, अन्नमें अरुचि, भोजनका न पचना और मांसके धोवनके समान रुधिरका बहना, ये सब रक्तपित्तके उपद्रव हैं ॥ ८ ॥

अथ रक्तपित्तसाध्यासाध्यता ।

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते । यत्त्रिदोषमसाध्यं स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगवत् ॥ ९ ॥ ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् । व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्याऽनश्नतस्तुयत्॥ १० ॥

जो रक्तपित्त एकदोषज हो तो साध्य समझना । दो दोषोंवाला हो, तो याप्य जानना और जो तीनों दोषोंवाला हो तथामन्दाग्निवाले

मनुष्यकेउत्पन्न हुआ हो और अत्यन्त वेगवाला हो तो असाध्य जानना। जो रक्तपित्त ऊर्ध्व-मार्गसे निकलता हो तो साध्य समझना। अधोमार्गसे बहता हो तो याप्य जानना और जो दोनों मार्गोसे बहता हो तथा व्याधियोंसे क्षीण हुए, वृद्धमनुष्यके और भोजनसे थके हुए मनुष्यके उत्पन्न हुआ हो तो वह रक्तपित्त असाध्य जानना ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ साध्यरक्तपित्तविवेचनम्।

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम्। रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥ ११ ॥

जो रक्तपित्त एक मार्गसे बहता हो, बलवान्के उत्पन्न हुआ, अत्यन्त वेगरहित, तत्कालका, हेमन्त और शिशिर ऋतुमें उत्पन्न और उपद्रवरहित हो तो साध्य जानना ॥ ११ ॥

अथासाध्यरक्तपित्तम्।

मांसप्रक्षालनाभं क्वथितमिव च यत् कर्दमाम्भोनिभं वा मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम्। यत्कृष्णं यच्च नीलं भृशमपि कुणपं यत्र चोक्ता विकारास्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति ॥ १२ ॥

उक्ता विकाराः—दौर्बल्यादयः। सुरपतिधनुषातुल्यम्-नानावर्णम् ॥

जो रक्तपित्तका रुधिर मांसके धोवनके समान अथवा काढेके समान वा कीचसे मिले-हुए पानीके समान वा मेद, राध अथवा रुधिरके समान वा कलेजेके टुकडेके रंगका किंवा पकी जामुनके समान या काला अथवा मोरके गलेके समान नीला अथवा प्रथम मुर-देके समान गन्धवाला अथवा प्रथम कहे हुए विकारोंवाला और इन्द्रधनुषके समान अनेक प्रकारके रंगवाला हो तो असाध्य जानना ॥ १२

येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः। पश्येद्दृश्यं वियच्चापि तदसाध्यमसंशयम् ॥ १३ ॥

येन रक्तपित्तेन उपहतः मनुष्य दृश्यं घटपटादिकं रक्तं पश्यति न नश्यति। वियच्चापि अदृश्यमपीत्यर्थः ॥

जो रक्तपित्तसे पीडित मनुष्य घटपटादि दृश्य पदार्थोंको और आकाशादि अदृश्य-पदार्थोंको अत्यन्त रक्तवर्ण देखे, वह रक्तपित्त-रोगी निश्चय असाध्य है ॥ १३ ॥

अथ रक्तपित्तारिष्टम्।

लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः। लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः ॥ १४ ॥

लोहितोद्गारदर्शी-व्याधिमहिम्ना उद्गारमपि लोहितं पश्यतीत्यर्थः ॥

जो रक्तपित्तवाला रोगी बारंबार रुधिरको वमन करे, नेत्र लाल होजाँय और उसको बारंबार डकारमें भी रुधिर आवे, वह अवश्य मरजाता है ॥ १४ ॥

अथ रक्तपित्तचिकित्सा।

पित्तास्रं स्तम्भयेन्नादौ प्रवृत्तं बलिनो यतः। हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहगुल्मज्वरादिकृत् ॥ १५ ॥

बलवान् मनुष्यके उत्पन्न हुए रक्तपित्तको प्रथम कदापि स्तम्भन औषधियोंके द्वारा नहीं रोकना चाहिये। क्योंकि, प्रथम रक्तपित्तको बन्द करनेसे हृदयरोग, पांडुरोग, संग्रहणी, प्लीहा, गुल्म और ज्वरादिरोग उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रसाधिकाः। श्यामाकाश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ १६ ॥

शालिधान्य, साठीधान्य, नीवार, कोंदों, प्रसाधिका, समा और कंगुनी इनका भात रक्तपित्तरोगीको भोजनके लिये देवे ॥१६॥

मसूरमुद्गचणकाः समकुष्ठाढकीफलाः। प्रशस्ताः सूपयूषार्थे कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ १७ ॥

रक्तपित्तरोगीको दालके लिये और यूषके लिये मसूर, मूँग, चने, मोठ और अरहरकी योजना करनी चाहिये ॥ १७ ॥

दाडिमामलकं विद्वानम्लार्थं चापि दापयेत्। पटोलनिम्बन्यग्रोधप्लक्षवेतसपल्लवान् ॥ १८ ॥ शाकार्थे शाकसात्म्यानां तण्डुलीयादयो हिताः । पारावतान् कपोतांश्च लावान्रक्ताक्षवर्तकान् ॥१९॥ शशान्कपिञ्जलानेणान्हरिणान्कालपुच्छकान् । रक्तपित्तहरान्विद्याद्रसांस्तेषां प्रयोजयेत्। ईषदम्लाननम्लांश्च घृतभृष्टान्ससैन्धवान् ॥ २० ॥ कफानुगे यूषशाकान्दद्याद्वातानुगे रसम्। पथ्यं सतीनयूषेण ससितैर्लाजसक्तुभिः ॥२१॥

रक्तपित्तरोगीको खटाईके लिये वैद्य अनार और आमले देवे। जिनको शाक अनुकूल हो तो ऐसे रक्तपित्तरोगियोंको शाकके लिये परवल, नीम, वडके अंकुर अथवा कोमल पत्ते, पाखर, और बेंतके कोमल पत्ते और चौलाई आदि हितकारक शाक देने चाहिये। रक्तपित्तरोगीको मांसके लिये कबूतर, परेवा, लवा, चकोर, बत्तक, खरगोस, एण, हरिण और कालपुच्छहरिण इनके मांसका रस रक्तपित्तको नष्ट करनेके लिये देवे। कफजरक्तपित्तमें किंचित् अम्ल अथवा अम्ल नहीं, घीमें भुना हुआ और सैंधानमक मिलाहुआ शाक और यूष देवे। वातजरक्तपित्तमें मटरके यूषके और खीलोंके सत्तूमें मिश्री मिलाकर मांसरस पथ्य देवे ॥ १८-२१ ॥

अथ धान्यादिहिमः।

धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः। रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णां शोषञ्च नाशयेत् ॥ २२ ॥

धनियां, आमला, अडूसा, दाख और पित्तपापडा इन सबका हिम बनाकर पीनेसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, तृषा और शोष नष्ट होता है। यह 'धान्यकादि' नामसे प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥

ह्रीबेरमुत्पलं धान्यं चन्दनं यष्टिकाऽमृता। उशीरञ्च त्रिवृच्चेषांकाथं समधुशर्करम् ॥ २३ ॥ पाययेत्तेन सद्यो हि रक्तपित्तं प्रणश्यति। रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां दाहं ज्वर तथा ॥ २४ ॥ पद्मोत्पलानां किञ्जल्कः पृश्निपर्णी प्रियङ्गुका। जले साध्या रसे तस्मिन् पेया स्याद्रक्तपित्तिनाम् । वासापत्रसमुद्भूतो रसः समधुशर्करः ॥ २५ ॥ क्वाथो वा हरते पीतो रक्तपित्तं सुदारुणम्। पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः। समधुर्हरते रक्तपित्तं कासज्वरक्षयान् ॥ २६ ॥ उत्पलं कुमुदं पद्मं कह्लारं लोहितोत्पलम्। मधुकञ्चेति पित्तासृक्तृष्णाच्छर्दिहरो गणः ॥२७॥ वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च। रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ २८ ॥ आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशर्करः। क्षौद्राढ्यः सकलश्वासरक्तपित्तनिबर्हणः ॥ २९ ॥

सुगन्धबाला, कमल, धनियां, चन्दन, मुलहठी, गिलोय, खस और निसोत इनका काथ बनाकर सहत और बूरा मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त तत्काल नष्ट हो जाता है। कमल

अथवा उत्पल कमलकी केशर, उग्ररक्तपित्त, तृषा, दाह और ज्वरको दूर करती है। पिठवन और फूलप्रियंगु इनका क्वाथ बनाकर उसमें पकी हुई पेया 'दूधपानी' मिलाकर रक्तपित्तवाले रोगीको पीनेको देवे। अडूसेके पत्तोंका स्वरस अथवा क्वाथ बनाकर उसमें शहत अथवा मिश्री मिलाकर पीनेसे दारुण रक्तपित्त नष्ट होजाता है। अडूसेके पत्तोंको पीसकर पुटपाक करे, फिर उसका रस निकालकर उसमें शहत मिलाकर पीवे अथवा अडूसेके पत्तोंका हिम बनाकर उसमें शहत मिलाकर पीवे तो रक्तपित्त, खांसी, ज्वर और क्षयरोग नष्ट होते हैं। उत्पल, कुमुद, कमल, लाल कमोदिनी और लाल कमल ये पांचों तथा मुलहठी इन सब औषधियोंको समूह रक्तपित्त, तृषा और वमनको दूर करता है। अडूसेके विद्यमान होनेपर जीवनकी आशा करनेवाले रक्तपित्त, क्षय और खांसीके रोगी क्यों व्यर्थ दुःख पाते हैं? अडूसा, दाख, और हरड इनके क्वाथमें मिश्री और शहत डालकर पीनेसे सर्व प्रकारके श्वास और रक्तपित्त रोग नष्ट होते हैं॥ २३-२९॥

अथ दूर्वाद्यघृतम्।

दूर्वा सोत्पलकिञ्जल्कमञ्जिष्ठा सैलवालुका। सिता शीतमुशीरञ्च मुस्तं चन्दनपद्मकम्॥ ३०॥ विपचेत्कार्षिकैरेतैराजं प्रस्थमितं घृतम्। तण्डुलानां जलं छागीक्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम्॥ ३१॥ तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते। कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत्॥ ३२॥ चक्षुः स्रवति रक्तं चेत्पूरयेत्तेन चक्षुषी। मेढ्रपायुप्रवृत्ते तु वस्तिकर्मसु योजयेत्॥ ३३॥ रोमकूपप्रवृत्ते तु तदभ्यङ्गं प्रयोजयेत्। सर्वेषु रक्तपित्तेषु तस्माच्छ्रेष्ठमिदं घृतम्॥ ३४॥

दूब, कमल, कमलकी केसर, मंजीठ, एलुआ मिश्री, शीतलचीनी या कपूर, खस, नागरमोथा, लाल चन्दन और पद्माख प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर कल्क बनावे, इस कल्कको चौगुने चावलोंके जलमें और बकरीके दूधमें डालकर ६४ तोले बकरीका घी विधिपूर्वक पकाना चाहिये। जो रुधिरको वमन होती हो तो इस घृतको पीना उत्तम है। जो नाकमेंसे रुधिर निकलता हो तो इस घृतका नस्य देना हितकारी है। जो कानमेंसे रुधिर बहता होय तो इस घृतको कानमें डालना शुभ है। जो नेत्रोंमेंसे रुधिर गिरता हो तो इस घृतको नेत्रोंमें लगाना श्रेष्ठ है। जो लिंगमेंसे अथवा गुदामें रुधिर बहता हो तो इस घृतकी पिचकारी लगानी सुखद है। जो रोमकूमोंमेंसे रुधिर निकालता हो तो इस घृतकी मालिस अत्यन्त फलदायक है। यह 'दूर्वाद्यघृत' सर्व प्रकारके रक्तपित्तोंमें उपयोगी होनेके कारण श्रेष्ठ है॥ ३०॥ ३४॥

मृद्वीकां चन्दनं लोध्रं प्रियङ्गुं च विचूर्णयेत्। चूर्णमेतत्पिबेत्क्षौद्रवासारससमन्वितम्॥ ३५॥ नासिकामुखपायुभ्यो योनिमेढ्रादिवेगितम्। रक्तपित्तं स्रवद्धन्ति सिद्ध एष प्रयोगराट्॥ ३६॥ यच्च शस्त्रक्षतेनेव रक्तं स्रवति वेगतः। तदप्येतेन चूर्णेन तिष्ठत्येयवावचूर्णितम्॥ ३७॥

दाख, चन्दन, लोध और फूलप्रियंगु इन सबका चूर्ण करके सहत और अडूसेके रसके साथ सेवन करे तो यह उत्तम प्रयोग नाकमेंसे, मुखमें, गुदामेंसे, योनिमेंसे और लिंग आदिसे वेगपूर्वक गिरते रुधिरको तत्काल बन्द कर देता है। जो शस्त्रके लगनेसे घाव होकर उसमें रुधिर बहता हो और वह रुधिर बन्द नहीं हो सके तो उस घावके ऊपर इस चूर्णको बुरकानेसे तत्काल रुधिरका बहना बन्द होजाता है॥ ३५॥ ३७॥

इक्षूणां मध्यकाण्डानि सकन्दं नीलमुत्पलम् । केशरं पुण्डरीकस्य मोचामधुकपद्मकैः ॥ ३८ ॥ वटप्ररोहशुङ्गाश्च द्राक्षा खर्जूरमेव च । एतानि समभागानि कषायं सम्प्रकल्पयेत् ॥ ३९ ॥ उषितं मधुसंयुक्तं पाययेच्छर्करान्वितम् । सप्रमेहं रक्तपित्तं क्षिप्रमेतन्नियच्छति ॥ ४० ॥

ईखके बीचका कांड (गन्नेकी गांठ,) जड समेत नील कमल, कमलकी केसर, केला, मुलहठी, पद्माख, वडके अंकुर अवथा कोमल पत्ते, दाख और खजूर इन सबको समान भाग लेकर हिम बनावे, इस हिममें मिश्री और सहत मिलाकर पीवे तो रक्तपित्त और प्रमेह तत्काल नष्ट होजाते हैं ॥ ३८-४० ॥

द्राक्षया फलिनीभिर्वा प्रियालमधुकेन वा । श्वदंष्ट्रया शतावर्या रक्तजित्साधितं पयः ॥ ४१ ॥

दाखसे तथा फूलप्रियंगुसे अथवा चिरौंजीसे तथा मुलहठीसे अथवा गोखुरूओंसे किंवा सतावरसे पकाया हुआ दूध रक्तपित्तको दूर करता है ॥ ४१ ॥

पक्वोदुम्बरकाश्मर्यः पथ्याखर्जूरगोस्तनाः । मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक्पृथक् ॥ ४२ ॥

अत्र काश्मर्याः फलमेव ग्राह्यं फलसाहचर्यात् ॥

पके गूलरके फल अथवा कुम्भेरके फल अथवा हरड या खजूर किंवा दाख इनको सहतमें मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

अतिनिःसृतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृक् । सकृद्वा भक्षयेदाज्यं मांसं वा पित्तसंयुतम् ॥ ४३ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमेंसे अत्यन्त रुधिर निकल चुका हो, वह मनुष्य बकरेके रुधिरमें सहत मिलाकर पीवे अथवा एक बार सहतके साथ घी खाय अथवा पित्तसहित मांसको खाय ॥ ४३ ॥

नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम् । सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्ध्नि प्रलेपेन ॥ ४४ ॥ घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु पेयं सशर्करं नासिकया च यो वा । द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा सशर्करं चेक्षुरसं हिताय ॥ ४५ ॥

जो नाकसे रुधिर गिरता हो अर्थात् नकसीर छूटती हो तो आमलोंको महीन पीसकर घीमें भूनकर माथेपर लेपकर देवे, जिस प्रकार बांधसे जलका वेग रुकजाता है, उसीप्रकार इस लेपसे रुधिरका गिरना बन्द होजाता है । अथवा शीतलजलमें बूरा मिलाकर सरबत बनाकर नाकके द्वारा पीनेसे या नाकके द्वारा दूध पीनेसे अथवा दूधके साथ दाखका रस पीनेसे किंवा ईखके रसमें खांड मिलाकर पीनेसे नकसीर बन्द हो जाती है ॥४४॥४५॥

नस्ये दाडिमपुष्पस्य रसो दूर्वाभवोऽपि वा । आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्रावरक्तजित् ॥ ४६ ॥

अनारके फूल वा दाखका रस अथवा आमकी गुठलीका रस किंवा प्याजके रसका नस्य देनेसे नाकमें से रुधिरका गिरना बन्द हो जाता है ॥ ४६ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डावलेहः ।

पुराणं पीनमानीय कूष्माण्डस्य फलं बृहत् । तद्बीजाधारबीजत्वक्छिराशून्यं समाचरेत् ॥ ४७ ॥ ततस्तस्य तुलां नीत्वा पचेज्जलतुलाद्वये । तस्मिन्नीरेऽर्द्धशिष्टे तु यत्नतः शीतलीकृते । तानि कूष्माण्डखण्डानि पीडयेद्दृढवाससा

॥ ४८ ॥ यत्नतस्तज्जलं नीत्वा पुनः पाकाय धारयेत् । कूष्माण्डं शोषयेद्घर्मे ताम्रपात्रे ततः क्षिपेत् ॥ ४९ ॥ क्षिप्त्वा तत्र घृतं प्रस्थं कूष्माण्डं तेन भर्जयेत् । मधुवर्णं तदालोक्य तज्जलं तत्र निक्षिपेत् ॥ ५० ॥ सितायाश्च तुलां तत्र क्षिप्त्वा तल्लेहवत्पचेत् । सुपक्वे पिप्पलीशुण्ठीजीराणां द्विपले पृथक् ॥ ५१ ॥ पृथक्पलार्द्धं धान्याकं पत्रैला मरिचत्वचम् । चूर्णमेषां क्षिपेत्तत्र घृतार्द्धं क्षौद्रमावपेत् । एतत्पलमितं खादेदथवाऽग्निबलं यथा ॥ ५२ ॥ खण्डकूष्माण्डलेहोऽयं रक्तपित्तञ्च नाशयेत् । पित्तज्वरं तृषां दाहं प्रदरं कृशतां वमिम् ॥ ५३ ॥ कासं श्वासं च हृद्रोगं स्वरभेदं क्षतं क्षयम् । नाशयत्येव वृद्धिञ्च बृंहणो बलवर्द्धनः ॥ ५४ ॥

उत्तम पुराना वडा और मोटा पेठा लेकर छील बनाकर उसके बीज और बीजोंके रहनेके स्थान निकालकर बगेल देवे, फिर उस मेंसे सौ पल गूदा लेकर आठसौ तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते जल आधा बाकी रहजाय तब उतारकर यत्नपूर्वक शीतल करे, फिर उसमेंसे पेठेके टुकडोंको निकालकर उत्तम मोटे वस्त्रमें खूब खैंच कर बाँधे और दबाकर जल निचोड़ देवे और निचुडे हुए जलको फिर पकानेके लिये अलग रख देवे। फिर उन पेठेके टुकडोंको धूपमें सुखाकर तांबेके बासनमें डालकर ६४ चौसठ तोले घी मिलाकर भूने, जब भुनते भुनते सहतके समान होजाय तब पूर्वोक्त पेठेके निचोडे हुए जलमें डालकर और उसमें १०० सौ पल उत्तम मिश्री डाल कर अवलेहकी तरह पकावे। जब अच्छी प्रकारसे पककर तैयार होजाय तब उसमें आठ तोले पीपल, आठ तोले सोंठ, आठ तोले जीरा, दो तोले धनियाँ, दो तोले तेजपात, दो तोले इलायची, दो तोले काली मिरच और दो दोले दालचीनी इन सबका चूर्ण करके मिला देवे और ३२ बत्तीस तोले सहत मिला देवे तो यह ' खण्डकूष्माण्ड अवलेह' तैयार होता है। इसमेंसे ४ तोले प्रमाण खाय अथवा अपनी अग्निके बलानुसार इसमेंसे सेवन करे तो यह अवलेह रक्तपित्त, पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रदर, कृशता, वमन, खांसी, श्वास, हृदयरोग, स्वरभेद, क्षत, क्षय और अन्त्रवृद्धिको नष्ट करता है। यह पुष्टिकारक और बलको बढानेवाला है ॥४७-५४॥

अथ बृहत्कूष्माण्डावलेहः ।

पुराणं पीनमानीय कूष्माण्डस्य फलं दृढम् । तद्बीजाधारबीजत्वक्छिराशून्यं समाचरेत् ॥ ५५ ॥ ततोऽतिसूक्ष्मखण्डानि कृत्वा तस्य तुलां पचेत् । गोदुग्धस्य तुलामध्ये मन्देऽग्नौ वा पचेच्छनैः ॥ ५६ ॥ शर्करायास्तुलां सार्द्धां गोघृतं प्रस्थमात्रकम् । प्रस्थार्द्धं माक्षिकञ्चापि कुडवं नारिकेलतः ॥ ५७ ॥

प्रियालफलमज्जानं द्विपलं तिखुरीपलम् । क्षिपेदेकं च विपचेल्लेहवत्साधु साधयेत् ॥ ५८ ॥ भिषक्सुवक्कमालोक्य ज्वलनादवतारयेत् । कोष्णे तत्र क्षिपेदेषां चूर्णं तानि वदाम्यहम् ॥ ५९ ॥ एकोऽक्षः शत पुष्याया अथ क्षीरी यवानिका । गोक्षुरः क्षुरकः पथ्या कपिकच्छुफलानि च ॥ ६० ॥ सप्तमी त्वक् च सर्वेषामक्षयुग्मं पृथक्पृथक् धान्याकं पिप्पली मुस्तमश्वगन्धा शतावरी ॥ ६१ ॥ तालमूली नागबला बालकं पत्रकं शटी । जातीफलं लवङ्गञ्च सूक्ष्मला बृहदेलिका ॥ ६२ ॥

शृङ्गाटकं पर्पटकं सर्वं पलमितं पृथक् । चन्दनं नागरं धात्रीफलश्चापि कशेरुकम् ॥ ६३ ॥ प्रत्येकं पञ्च कर्षाणि चत्वार्येतानि निक्षिपेत् । पलद्वयमुशीरस्य मषाणस्योषणस्य च ॥ ६४ ॥ कूष्माण्डस्यावलेहोऽयं भक्षितः पलमात्रया । किं वा यथावह्निबलं भुक्तो रोगान् विनाशयेत् ॥ ६५ ॥ रक्तपित्तं शीतपित्तमम्लपित्तमरोचकम् । वह्निमान्द्यं सदाहञ्च तृष्णां प्रदरमेव च ॥ ६६ ॥ रक्तार्शोऽपि तथा छर्दिं पाण्डुरोगञ्च कामलाम् । उपदंशं विसर्पञ्च जीर्णञ्च विषमज्वरम् ॥ ६७ ॥ लेहोऽयं परमो वृष्यो बृंहणो बलवर्द्धनः । स्थापनीयःप्रयत्नेन भाजने मृन्मये नवे ॥६८॥

पुराना, कठिन, उत्तम पका हुआ और बडा पेठा लेकर उसको छील बनाकर बीजोंको और बीजोंके रहनेके स्थानको निकालकर फेंकदेवे, फिर उसके छोटे छोटे टुकडे करके उसमेंसे चारसौ तोले लेकर चारसौ तोले उत्तम गायके दूधमें धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निसे पकावे, फिर उसमें उत्तभ सफेद बूरा डेढसौ पल, गायका घी चौंसठ तोले, सहत बत्तीस तोले, नारियलकी गिरी सोलह तोले, चिरौंजीकी मींग आठ तोले और तबाखीर चार तोले डालकर विधिपूर्वक अवलेहके समान पकावे, जब अच्छी प्रकारसे पककर तैयार हो जाय, तब उसको अग्निमेंसे उतार लेवे, जब कुछ कुछ गरम रहे, तब लिखी औषधियोंको मिला देवे । जैसे-सौफ एक तोला, वंशलोचन दो तोले, अजवायन दो तोले, गोखरू दोतोले, तालमखाना दो तोले, हरड दो तोले, कौंछके बीज दो तोले, दालचीनी दो तोले, धनियां चार तोले, पीपल चार तोले नागरमोथा चार तोले, असगन्ध चार तोले सतावर चार तोले, कालीमुसली चार तोले, गंगेरन चार तोले, सुगन्धवाला चार तोले, तेजपात चार तोले, कचूर चार तोले, जायफल चार तोले, लौंग चार तोले, छोटी इलायची चार तोले, बडी इलायची चार तोले, सिंघाडे चार तोले, पित्तपापडा चार तोले, चन्दन पांच तोले, सोंठ पांच तोले, आमले पांच तोले, कसेरू पांच तोले, खस आठ तोले, मखाने आठ तोले और कालीमिरच आठ तोले इन सबका चूर्ण करके मिला देवे तो यह 'बृहत्कूष्माण्डावलेह' सिद्ध होता है। इस अवलेहको चार तोले प्रमाण अथवा अपनी अग्निके बलानुसार सेवन करे तो रक्तपित्त, शीपपित्त, अम्लपित्त, अरुचि, मन्दाग्नि, दाह, तृषा, प्रदर, रुधिरकी बबासीर, वमन, पांडुरोग, कामल, उपदंश. विसर्प, जीर्णज्वर और विषमज्वर नष्ट होता है। यह अवलेह मैथुनशक्तिको अत्यन्त बढानेवाला, धातुको पुष्ट करनेवाला और बलको बढानेवाला है। इस अवलेहको मिट्टीके उत्तम नवीन बासनमें भरकर रखना चाहिये ॥ ५५-६८ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डकम् ।

कूष्माण्डकस्य स्वरसं पलानां शतमात्रया । रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ ६९ ॥ मृद्वग्निना पचेत्तावद्यावद्द्रवति पिण्डवत् । धात्रीतुल्या सिता योज्या पलार्द्धं लेहयेदनु ॥ ७० ॥ खण्डकूष्माण्डकं ह्येतद् भुक्तमभ्यासतो हरेत् । रक्तपित्तमम्लपित्तं दाहं तृष्णाञ्च कामलाम् ॥ ७१ ॥

उत्तम पेठेका स्वरस चारसौ तोले गायका दूध चारसौ तोले और आमलोंका चूर्ण बत्तीस तोले सबको एकत्र मिलाकर धीरे धीरे मन्द-मन्द अग्निसे तबतक पकावे, जबतक पिंड न बँधे। जब पिंड बँध जाय तब इसमें बत्तीस तोले उत्तम बूरा मिला देवे तो यह 'खण्डकूष्माण्डक' नामवाला अवलेह तैयार होता है। इस अवलेहमें नित्य दो दो तोले प्रमाण खाना

चाहिये। इस अवलेहको सेवन करनेसे रक्त-पित्त, अम्लपित्त, दाह, तृषा और कामलारोग नष्ट हो जाता है ॥ ६९-७१ ॥

अथ खण्डखाद्यलौहः।

शतावरी छिन्नरुहा वृषो मुण्डतिका बला। तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा ॥ ७२ ॥ भार्ङ्गी पुष्करमूलञ्च पृथक् पञ्च पलानि च। जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥७३॥ दिव्यौषधिहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य वा। पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहस्य चूर्णितम् ॥ ७४ ॥ खण्डतुल्यं घृतं देयं पलं षोडशकं बुधैः। पचेताम्रमये पात्रे गुडपाको मतो यथा ॥ ७५ ॥ प्रस्थार्धं मधुनो देयं शुभाश्मजतुकस्य च। शृंगी कृष्णा विडङ्गञ्च शुण्ठयजाजी पलंपलम् ॥ ७६ ॥ त्रिफला धान्यकं पत्रं कणा मरिचकेशरम्। चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ७७ ॥ यथाकालं प्रयुञ्जीत बिडालपदमात्रकम्। गव्यक्षीरानुपानञ्च सेव्योः मांसरसः पयः ॥ ७८ ॥ गुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धमांसादिबृंहणम्। रक्तपित्तं क्षयं कासं पार्श्वशूलं विशेषतः ॥ ७९ ॥ वातरक्तं प्रमेहञ्च शीतपित्तं वमिं क्लमम्। श्वयथुं पाण्डुरोगञ्च कुष्ठं प्लीहोदरं तथा ॥ ८० ॥ आनाहं मूत्रसंस्रावमम्लपित्तं निहन्ति च। चक्षुष्यं बृहणं वृष्यं माङ्गल्यं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ८१ ॥ आरोग्यंपुत्रदं श्रेष्ठं कामाग्निबलवर्द्धनम्। श्रीकरं लाघवञ्चैव खण्डखाद्यं प्रकीर्तितम् ॥८२॥ छागं पारावतं मांसं तित्तिरः क्रकरः शशः। कुरङ्गः कृष्णसारश्च मांसमेषां प्रयोजयेत् ॥ ८३ ॥ नारिकेलपयःपानं सुनिषण्णकवास्तुकम्। शुस्कमूलकजीवाख्यं पटोलं बृहतीफलम् ॥ ८४ ॥ वार्ताकुं पक्कमाम्रञ्च खर्जूरं स्वादु दाडिमम्। ककारपूर्वकं यच्च मांसं चानूपसम्भवम्। वर्जनीयं विशेषेण खण्डखाद्यं समश्नता ॥ ८५ ॥ लोहान्तरवदत्रापि पुटनादिक्रियेष्यते। न पुनर्माक्षिकेणैव शिलयैव हि मारणम् ॥ ८६ ॥

भार्ङ्गी (वामन्हाटी)। दिव्यौषधी-मनःशिला रुक्मलौहं गजबेली इति लोके। सुनिषण्णकं-चतुष्पत्री शाकविशेषः। जीवन्ती जीव इति शाकविशेषः। ककारपूर्वकम्-कटुकः कालशाकं कूष्मांडं कर्कटी कर्कोटकं कलिङ्गं कर्कन्धु करमर्दकं करीरं कतकं कशेरु कांजिकम् इति वर्जनीयम्। इति खण्डखाद्यम् लौहम् ॥

सतावर, गिलोय, अडूसा, गोरखमुण्डी, खिरेंटी, मुसली, खैर, त्रिफला, भारंगी और पोहकरमूल ये प्रत्येक औषधि बीस तोले लेकर एक हजार चौबीस तोले भर जलमें पकावे। जब पकते २ आठवां भाग काढा शेष रह जाय तब मैनशिल अथवा सोनामाखीसे मारा हुआ तीक्ष्ण लोहा ४८ तोले, खांड ६४ तोले, घृत ६४ तोले फिर सबको मिलाकर तांबेके बासनमें जिस प्रकार गुडका पाक बनता है, उसी प्रकार इसको पकावे, शीतल होनेपर ३२ तोले सहत मिला देवे, वंशलोचन, शिलाजीत, काकडाशिंगी, पीपल, वायविडंग, सोंठ, जीरा, त्रिफला, धनियाँ, तेजपात, कालाजीरा, मिरच और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले लेकर सबको मिलाकर खूब हाथोंसे मथकर चिकने बासनमें भरके रख देवे; इसको

'खण्डखाद्यलोह' कहते हैं । समयानुसार इस औषधिमेंसे एक तोला प्रमाण लेकर गायके दूधके साथ सेवन करना चाहिये । इस लोहे पर मांसका रस, दूध, भारी और वृष्य अन्नपान, स्निग्ध, मांसादि पुष्टिकारक पदार्थ ये सब सेवन करने चाहिये । इस लोहको भक्षण करनेसे रक्तपित्त, क्षय, खांसी, पार्श्वशूल, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन, ग्लानि, सूजन, पांडुरोग, कोढ, प्लीहा, उदररोग, अफारा, मूत्रका स्रवना और अम्लपित्त, ये सब रोग नष्ट होते हैं । यह 'खंडखाद्यलोह' नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिका करनेवाला, मैथुनशक्तिको वढानेवाला, मंगलरूप, प्रीतिवर्धक, आरोग्यदायक, पुत्र उत्पादक, परमोत्तम, कामाग्निबलवर्द्धन, लक्ष्मीजनक और शरीरमें लघुता करनेवाला है । इस लोहेपर बकरेका मांस, कबूतरका मांस, तीतरका मांस, केकडाका मांस, खरगोसका मांस, कुरंग और कृष्णसारादि जीवोंका मांस खाना चाहिये । इस लोहेको सेवन करनेवाला मनुष्य नारियलका जल, शिरीआरीका शाक, बथुआ सूखी मूली, जीवंतीका शाक, परवल,कटेरीके फल, बैंगन, पका आम, खजूर और मधुर अनार इन सबको त्याग देवे । जिन पदार्थोंके नामोंमें प्रथम 'के' आवे ऐसे ककारादि नामवाले समस्त पदार्थ और अनूपदेशके जीवोंका मांस इनको भी विशेष करके त्याग देवे । इस लोहमें तीक्ष्ण लोहको मैनशिल और सोनामाखीसे ही केवल मारना, ऐसा नहीं समझना चाहिये, परन्तु अन्य लोहेके समान इसमें भी पुटपाक आदि सम्पूर्ण क्रिया करनी चाहिये ॥ ७२-८६ ॥

अथ शतावरीपाकः ।

शतावरीमूलकल्कं कल्कात्क्षीरं चतुर्गुणम् । क्षीरतुल्यं घृतं गव्यं सितया कल्कतुल्यया ॥ ८७ ॥ घृतशेषं पचेत्तु पलार्द्धं लेहयेत् सदा । रक्तपित्तं ह्यम्लपित्तं क्षयं श्वासञ्च नाशयेत् ॥८८॥

इति रक्तपित्ताधिकारः ।

शतावरका कल्क आठ तोले, दूध बत्तीस तोले, गायका घी ३२ तोले और मिश्री आठ तोले लेवे । सबको विधिपूर्वक मिलाकर यथा विधिसे घृतको पकावे । जब पकते पकते घृतमात्र बाकी रहजाय तब उतार लेवे, इसमेंसे नित्य दो तोले प्रमाण सेवन करे तो रक्तपित्त, अम्लपित्त, क्षय और श्वास ये नष्ट होते हैं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

इति रक्तपित्ताधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ अम्लपित्तश्लेष्मपित्ताधिकारः ।

तत्राम्लपित्तविप्रकृष्टनिदानम् ।

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् । पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

विरुद्ध–संयोगविरुद्ध जैसे दूध मछली, दुष्टबिगडा हुआ भोजन, खट्टा, दाहकारक और पित्तको कुपित करनेवाले अन्न पानोंको जो मनुष्य खाता पीता है. उसके अम्लपाकको प्राप्त हुआ और प्रथम वर्षादि ऋतुओंमें अम्लपाकी जलोंसे तथा ऐसी औषधियोंसे संचित हुआ पित्त कुपित होता है, उसको महात्मा वैद्य 'अम्लपित्तरोग' कहते हैं ॥ १ ॥

दुष्टम्–व्यापन्नमन्नम् । पित्तप्रकोपि इत्युक्तेऽपि अम्लविदाहि इति विशेषार्थम् । पित्तप्रकोपि पानम् तक्रसुरादि, अन्नम् माषादि । स्वहेतूपचितं पुरा यत् वर्षास्वम्लविपाकैः जलैः औषधीभिश्च तादृशीभिरुपचितम् सञ्चितम् अम्लपित्तम् ।

---

(१) कंदुक, कडवे-परवल,कालशाक, कूष्मांड (पेठा) ककडी, करेला, कलिंग (तरबूज); कर्कन्धु (बेर), कांदा, कतकफल, केला और कांजी इत्यादि जानने ॥

तदम्लपित्त प्रवदन्ति अम्लपित्ताख्यं रोगं वदन्ति ॥

यद्यपि पित्तको कुपित करनेवाले इतना ही कहनेसे खट्टे और दाहकारकका समावेश होता है, तथापि खट्टे और दाहकारक ये अलग कहे हैं; इस कहनेका अभिप्राय यह है कि-पित्तका विशेष प्रकोप होता है। छाँछ तथा मदिरा आदि पान पदार्थ और उडद आदि अन्न पित्तको कुपित करनेवाले जानने ॥

अथाम्लपित्तरोगलक्षणम्।

अविपाकक्लमोत्क्लेशैस्तिक्ताम्लो द्गारगौरवैः। हृत्कण्ठदाहारुचिभिरम्लपित्तं वेदद्भिषक् ॥

अन्नादिकका नहीं पचना, ग्लानि, वमनकीसी इच्छाका होना, कडवी और खट्टी डकारोंका आना, शरीरमें भारीपन, हृदय और गलेमें दाह और अरुचि इन लक्षणोंके होनेसे अम्लपित्तरोग कहना चाहिये ॥

अम्लपित्तस्य द्वौ भेदौ।

अम्लपित्तं द्विधा प्रोक्तमधोगं च तथोर्ध्वगम् ॥ २ ॥

ऊर्ध्वग-ऊंची गतिवाला और अधोग-नीची गतिवाला ऐसे अम्लपित्तरोग दो प्रकारका है ॥ २ ॥

अथोर्ध्वगाम्लपित्तलक्षणम्।

वान्तं हरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्ताभमतीव चाच्छम्। मत्स्योदकाभं त्वतिपिच्छिलाभं श्लेष्मानुजातं सहितं रसेन ॥ ३ ॥

आरक्तम्--ईषल्लोहितम्, रक्ताभं वा। अतीव चाच्छम्--निर्मलम्। रसेन लवणकटुतिक्तरूपेण ॥

हरे, पीले, नीले, काले, किंचित् लाल, अत्यन्त निर्मल, मछलीके धोवनके समान, अत्यन्त चिकने, पिच्छिल, कफसंयुक्त और खारे, तीखे तथा कडवे रसवाले ऐसे पित्त वमनमें गिरते होंतो 'ऊर्ध्वग अम्लपित्त' जानना ॥ ३ ॥

अथाधोगाम्लपित्तलक्षणम् ॥

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि यद्यात्यधो वा विविधप्रकारम्। हृल्लासकोष्ठानलसादहर्षस्वेदाङ्गपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ४ ॥

मूर्च्छा--सर्वदा ज्ञानशून्यता। मोहः-विपरीतज्ञानम्। अधो वेति वाशब्द ऊर्ध्वगापेक्षया। विविधप्रकारम्--हरिद्रावर्णयोगात् कदाचित् हृल्लासादि करं च भवति ॥

तृषा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, और मोहको करनेवाला, उबकाई, मन्दाग्नि, रोमांचोंका होना, पसीना, अंगोंमें पीलापन इत्यादि विकारोंको करनेवाला जो अम्लपित्त गुदाके मार्गसे बहता है, उसको 'अधोग अम्लपित्त' कहते हैं ॥ ४ ॥

अथाम्लपित्तविशेषावस्था।

भुक्ते विदग्धेऽप्यथवाऽप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित्। उद्गारमेवंविधमेव कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजश्च ॥ ५ ॥ करचरण दाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम्। जनयति कण्डूमण्डलपिडिकाशत निचितरोगचयम् ॥ ६ ॥

भुक्ते विदग्धे तिक्ताम्लवमिं करोति। तथा उद्गारम् एवंविधमेव तिक्ताम्लमेव करोति। अथवा कदाचिदभुक्तेऽपि तिक्ताम्लां वान्तिं करोति। तथा कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरोरुजश्च करोति। तथा करचरणदाहादिकं जनयति। तथा

कच्छूमण्डलपिडकाव्याप्तगात्रे रोगचयं करोति । अन्नविपाकक्लमादिकं जनयति॥

भोजन करनेपर जब अन्नका विदग्ध पाक होता है अथवा कदाचित् विनाही भोजन करनेपर कडवी और खट्टी वमन आती है तथा कडवी और खट्टी डकार आती है। कंठमें, हृदयमें और कोखमें दाह, होता है। शिरमें पीडा, हाथ और पांवोमें दाह, सन्तोष होता है। भयंकर अरुचिको उत्पन्न करता है। कफ और पित्तजनित ज्वर होता है, तथा खुजली, मण्डलाकार चकत्ते और फुडियोंसे व्याप्त देहमें अन्नका विदग्ध पाक एवं ग्लानि आदि रोगोंके समूहको उत्पन्न करताहै॥५॥६॥

अथाम्लपित्ते दोषसंसर्गः ।

सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत् । दोषलिङ्गेन मतिमद्भिषङ्मोहकरं हि तत् ॥७॥ ऊर्ध्वाधःप्रवृत्त्या छर्द्यतीसाराभ्यां तुल्यतया वैद्यभ्रान्तिकृत् ॥

बुद्धिमान् वैद्य दोषोंके चिह्नोंसे जानले कि, यह अम्लपित्त वातसम्बन्धी है अथवा वात और कफ इन दोनोंके संसर्गवाला है,या कफसंबंधी है ? यह अवश्य जानना चाहिये। यदि यह अम्लपित्त ऊर्ध्वःगतिसे हो तो वमनकी शान्ति होती है और अधोगतिसे हो तो अतिसार प्रतीत होता है। यहां वैद्यको भ्रम उत्पन्न होता है। इसलिये खूब विचारकर निदान करे, जिसमें किसी प्रकारके सन्देह न रहें ॥ ७ ॥

अथ दोषभेदेन लक्षणभेदः ।

कंपप्रलापमूर्च्छाश्चिमिचिमिगात्रावसादशूलानि । तमसो दर्शनविभ्रममोहहर्षास्तथाऽनिलेन युते ॥ कफनिष्ठीवनगौरवजड़ताऽरुचिशीतसादवमिलेपाः। दहनबलहानिकण्डूनिद्राश्चिह्नं कफानुगे भवति । उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवेऽम्लपित्ते स्यात् ॥ ८ ॥

चिमिचिमि-झिनिझिनीति लोके । हर्ष-रोमाञ्चः॥

वातज अम्लपित्तमें कंप, प्रलाप, मूर्च्छा, सब शरीरमें झनझनाहट, ग्लानि अन्धकारदर्शन, बिभ्रम, मोह, रोमांचोंका होना ये सब लक्षण होते हैं। कफज अम्लपित्तमें कफका थूकना शरीरमें भारीपन जडता अरुचि, शीत, ग्लानि, वमन मुखमें और छातीमें कफ लिसासा रहे । जठराग्निके बलका नाश, खुजली और निद्राका अधिक आना ये सब लक्षण होते हैं। वात और कफ दोनों दोषोंसे जो अम्लपित्त उत्पन्न हुआ हो तो उसमें उपरोक्त दोनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

अथाम्लपित्तसाध्यासाध्यविचारः ।

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः । चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित् ॥ ९ ॥

कस्यचित्-हीनाहाराचारशीलस्य ।

यह अम्लपित्तरोग जो थोडे ही दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो तो औषधि करनेसे साध्य होता है। बहुत दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो तो याप्य जानना । हीन आहार विहारवाले मनुष्यको तो थोडे ही दिनोंका उत्पन्न हुआ कष्टसाध्य जानना ॥ ९ ॥

अथ कफपित्तलक्षणम् ।

तमो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा । प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ १०

अन्धकार दर्शन, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, मस्तकमें पीडा, मुखसे लारका गिरना और मुखमें मधुरताका होना ये कफपित्तके लक्षण जानने ॥ १० ॥

अथाम्लपित्तचिकित्सा ।

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः । कारयेन्मदनैः क्षौद्रै सैन्धवैश्च तथा भिषक् ॥ ११ ॥ विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं

मधुधात्रीफलद्रवैः। उर्ध्वगं वमनैर्विद्वा नधोगं रेचनैर्हरेत् ॥ १२ ॥ अम्लपित्त-मिति शेषः ॥

अम्लपित्तरोगमें प्रथम वैद्य कडवे परवल, नीम, अडूसा, मैनफल, सहत और सैंधेनिमकके क्वाथसे वमन करावे तथा निसोतका चूर्ण, सहत और आमलोंका रस इनके द्वारा विरेचन करावे। ऊर्ध्वगत अम्लपित्तको वमन कराकर दूर करे और अधोगत अम्लपित्तको विरेचन कराकर दूर करे ॥११॥१२॥

यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः यथा स्वं लाजसक्तून्वा सितामधुयुतान्पिबेत् ॥ १३ ॥

जौ अथवा गेहूँके बनाये हुए यूषादिपदार्थ और जिनमें मिरचादिक तीक्ष्ण वस्तु न पडी हो, ऐसे पदार्थ पीने चाहिये अथवा भक्षण करने चाहिये तथा खीलोंके सत्तुओंमें मिश्री और शहद मिलाकर दोषोंका विचारकर पीवे ॥ १३ ॥

निस्तुषयववृषधात्रीक्वथितं सलिलं त्रिगन्धमधुयुक्तम्। द्रुततरमपहरति वमिं सञ्जनितामम्लपित्तेन ॥ १४ ॥

तुषरहित जौ, अडूसा और आमला इनका क्वाथ बनाकर उसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची और शहत डालकर पीवे तो अम्लपित्तसे उत्पन्न हुई वमन तत्काल नष्ट हो जाती है ॥ १४ ॥

छिन्नोद्भवानिम्बपटोलपत्रं क्षौद्रान्वितं पीतमनेकरूपम्। सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तं यथाऽशनिस्तालतरुं प्रवृद्धम् ॥१५

गिलोय, नीमके पत्ते और कडवे परवलके पत्ते इनको एकत्र पीसकर शहत मिलाकर पीनेसे जिस प्रकार वज्रसे बडे बडे ताडके वृक्ष नष्ट होजाते हैं, उसी प्रकार इससे अनेक रूपवाले महादारुण रक्तपित्त नष्ट होजाते हैं ॥

वासामृतापर्पटकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः। त्रिफलाकुलकैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥ १६ ॥

अडूसा, गिलोय, पित्तपापडा, नीमकी छाल चिरायता, भांगरा, हरड, बहेडा, आमले और कडवे परवल इनका क्वाथ बनाकर सहत मिलाकर पीनेसे अम्लपित्त नष्ट होजाता है ॥ १६ ॥

शिवपालपिण्डी।

पाठापटोलयवचन्दनधान्यधात्री-
वासावराङ्गदलनागकणाभयाभिः।
लेहः सिताज्यमधुभिः शिवपालपिण्डी
हन्त्यम्लपित्तमरुचिज्वरदाहशोषान् ॥१७॥

पाढ, पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियां, आमला, अडूसा, दालचीनी, तमालपत्र, नागकेशर, पीपल, हरड, खांड, कमल और शहत इनका अवलेह बनावे, इस अवलेहको 'शिवपालपिंडी' कहते हैं। यह अवलेह अम्लपित्त, अरुचि, ज्वर, दाह और शोषको नष्ट करता है ॥१७॥

हन्त्यम्लपित्तवमनारुचिदाहमोह-
खालित्यमेहशिशिरव्रणशुक्रदोषान्।
भुक्त्वा नरः सततमामलकीरसेन
वृद्धोऽप्यनेन हि भवेत्तरुणो रिरंसुः ॥१८॥

जो मनुष्य नित्य आमलोंके रसके साथ भोजन करता है तो उसके अम्लपित्त, वमन, अरुचि दाह, मोह, खालित्य, प्रमेह, शीत, व्रण और समस्त वीर्यके विकार नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रतापसे वृद्ध मनुष्य भी स्त्रियोंके साथ गमन करनेकी इच्छा करता है ॥ १८ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डकावलेहः।

कूष्माण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकम्। रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ १९ ॥ धात्रीतुल्या सिता योज्या गव्यमाज्यं पलद्वयम्। मन्दा-

ग्निना पचेत् सर्वं यावद्भवति पिण्डितम् ॥२०॥ पलार्द्धं पलमेकं वा प्रत्यहं भक्षयेदिदम् । खण्डकूष्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तापहं परम् ॥ २१ ॥

उत्तम पेठेका रस चारसौ तोले, गायका दूध चारसौ तोले, आमलोंका चूर्ण बत्तीस तोले, खांड बत्तीस तोले और गायका घी आठ तोले लेवे । सबको एकत्र करके तबतक पकावे जबतक पिंड बँधे, यह 'खण्डकूष्मांडक' इस नामसे प्रसिद्ध है । इस अवलेहमेंसे प्रतिदिन दो तोले अथवा चार तोले खाय तो अम्लपित्त अच्छी प्रकारसे नष्ट हो जाता है ॥ १९–२१ ॥

अथ नारिकेलखंडकः ।

कुडवं नारिकेलस्य जले मृद्वग्निना पचेत् । नारिकेलजलालाभे गव्ये पयसि तत्पचेत् ॥ २२ ॥ धान्यकं पिप्पली मुस्तं चातुर्जातं विचूर्णितम् । प्रत्येकं टङ्कमात्रं तु शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥ २३ ॥ पलमात्रस्तदर्द्धोऽपि भक्षितः प्रत्यहं नरैः । नारिकेलकखण्डोऽयं पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥ २४ ॥ अम्लपित्तं रक्तपित्तं शूलञ्च परिणामजम् । क्षयं क्षपयति क्षिप्रं शुष्कं दावानलो यथा ॥ २५ ॥ पलमात्रगव्यघृतेन नारिकेलस्य भर्जनं कर्तव्यमिति सम्प्रदायः ॥

नारियलकी गिरी सोलह तोले लेकर नारियलके जलमें अथवा नारियलका जल न मिले तो गायके दूधमें पकावे । जब पकते पकते गाढा होजाय तब उसमें धनियां, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, इलायची, और नागकेशर इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण चौबीस २ रत्तीभर मिला देवे तो "नारिकेलखण्ड" सिद्ध होता है । प्रतिदिन इस औषधिमेंसे चार तोले अथवा दो तोलेभर खाय तो इससे पुरुषत्व, निद्रा और बलकी प्राप्ति होती है । अम्लपित्त, रक्तपित्त, क्षय और परिणामशूल ये सब नष्ट होजाते हैं । जिस प्रकार दावानलसे सूखे वनका नाश होता है । इस औषधिमें प्रथम चार तोले गायके घीमें नारियलकी गिरीको भूनना चाहिये ।

अथ बृहन्नारिकेलखण्डः ।

प्रस्थं तु नारिकेलस्य सूक्ष्मं दृषदि पेषितम् । निष्कुलीकृतकूष्माण्डखण्डानामर्द्धमाढकम् ॥ २६ ॥ तद्द्रव्यं भर्जयेद्द्रव्ये घृते तु कुडवोन्मिते । ततस्तत्र क्षिपेच्छुद्धं गोदुग्धं चाढकोन्मितम् ॥ २७ ॥ तत्रैव निक्षिपेद्द्वाभ्यां सितां प्रस्थद्वयोन्मिताम् । पचेत्सर्वाणि चैकत्र मृदुना वह्निना भिषक् ॥ २८ ॥ सुपक्के शीतले तत्र चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् । सूक्ष्मैलां धान्यकं धात्रीं पर्पटं जलदं जलम्॥२९॥ उशीरं चन्दनं द्राक्षां शृङ्गाटञ्च कशेरुकम् । त्वक्पत्रकं सकर्पूरं कर्षयुग्मं पृथक् पृथक् ॥ ३० ॥ सर्वं संमिश्रयेद्द्रक्षेद्भाजने मृन्मये नवे । पलमात्रमिदं प्रातर्भक्षयेद्वा यथानलम् ॥ ३१ ॥ एतन्निषेवितं हन्ति रोगानेतान्न संशयः । अम्लपित्तं ज्वरं पित्तं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ३२ ॥ वातरक्तं तृषां दाहं पाण्डुरोगं च कामलाम् । क्षयं क्षपयति क्षिप्रं शूलञ्च परिणामजम् ॥ ३३ ॥ नारिकेलस्य खण्डोऽयमश्विभ्यां भाषितः पुरा । वर्णदो बृंहणो वृष्यः पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥ ३४ ॥

पत्थरपर बारीक पिसा हुआ नारियल चौसठ तोले, छिलके और बीजोंसे रहित पेठेके टुकडे एकसौ अट्ठाईस तोले लेवे, सबको

सोलह तोले गायके घीमें भूनकर पश्चात् उसमें दोसौ छप्पन तोले उत्तम गायका दूध और एकसौ अट्ठाईस तोले उत्तम स्वच्छ खांड डाले फिर सबको मन्द मन्द अग्निसे धीरे धीरे पकावे। जब उत्तम विधिसे पककर तैयार होजाय तब उसको शीतल करके उसमें छोटी इलायची, धनियां, आमले, पित्तपापडा, नागरमोथा, सुगन्धवाला, खस, चन्दन, दाख, सिंगाडे, कसेरू, तज, तेजपत्र और भीमसेनी कपूर, ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर सबका चूर्ण करके मिलादेवे तो यह 'वृहन्नारिकेल खण्ड' सिद्ध होता है। इस औषधिको मट्टीके नवीन बर्तनमें रखना चाहिये। इस औषधिमेंसे चार तोले भर अथवा अपनी अग्निके बलानुसार प्रातःकाल खाय। इसको सेवन करनेसे अम्लपित्त, ज्वर, पित्त, रक्तपित्त अरोचक, वातरक्त, तृषा, दाह, पांडुरोग, कामला, क्षय और परिणामशूल इन सबका तत्काल नाश हो जाता है। पूर्वकालमें श्रीमान् अश्विनीकुमारोंका कहा हुआ यह नारिकेलखण्ड शरीरके वर्णको सुन्दर करता है। धातुको पुष्ट करता है। कामी मनुष्योंके लिये परम हितकारी है। पुरुषत्व, निद्रा तथा बलको बढानेवाला है॥ २६-३४॥

अथ कफपित्तचिकित्सा।

अभया पिप्पली द्राक्षा सिताधान्ययवासकम्। मधुना कण्ठदाहघ्नं पित्तश्लेष्महरं परम्॥ ३५॥

हरड, पीपल, दाख, खांड, धनियां, जवासा इनका चूर्ण करके शहतमें मिलाकर चाटनेसे कफपित्त और कंठका दाह दूर होताहै॥३५॥

पटोलयवधान्याकपिप्पल्यामलकानि च। एषां क्षौद्रयुतः क्वाथः पित्तश्लेष्महरः परः॥ ३६॥

कडवे परवल, इन्द्रजौ धनियां, पीपल, और आमला इनका क्वाथ बनाकर सहत मिलाकर पीनेसे श्लेष्मपित्त नष्ट हो जाता है॥ ३६॥

पित्तश्लेष्मवमीकण्डूकोठविस्फोटदाहनुत्। दीपनः पाचनः क्वाथः शृङ्गवेरपटोलयोः॥ ३७॥

अदरख और परवल इनका क्वाथ बनाकर पीवे तो यह अग्निको दीप्त करनेवाला पाचन और कफ, पित्त, वमन, खुजली, चकत्ते, फोडे और दाहको नष्ट करता है॥ ३७॥

पिप्पलीखण्डपथ्याभिस्तुल्याभि र्मोदकः कृतः। पित्तश्लेष्महरो भुक्तो वह्निमान्द्यं च नाशयेत्॥ ३८॥

पीपल, खांड और हरड इनको समान भाग लेकर लड्डू बनाकर खानेसे कफपित्त और अग्निकी मन्दता दूर होती॥ ३८॥

इति अम्लपित्तश्लेष्मपित्ताधिकारः सम्पूर्णः॥

अथ क्षयरोगाधिकारः।

तत्र क्षयरोगविप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानम्।

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्। त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात्॥ १॥

वेगोऽत्र-"वातमूत्रपुरीषाणि निगृह्णाति यदा नरः" इति चरकवचनात्। क्षयात्- क्षीयतेऽनेनेति क्षयः। तेन अतिव्यवायानशनेर्ष्यादयो धातुक्षयहेतवः क्षयशब्देन उच्यन्ते। साहसात्-बलवता समं मल्लयुद्धादितः। विषमाशनात्--"बहु स्तोकमकाले वा भुक्तं तद्विषमाशनम्" तस्मात्। त्रिदोषः--सान्निपातिकः। हेतुचतुष्टयात्-अन्येऽपि हेतवो हेतुचतुष्टय एव अन्तर्भवन्ति। यक्ष्मणः पर्याया राजयक्ष्मक्षयशोषा।

अधोवायु आदिके वेगोंको रोकनेसे क्षयरोग उत्पन्न होता है। चरकमें भी कहा है कि,

"मनुष्य लज्जा अथवा भय आदि किसी कारणसे जब वायु, मूत्र और मलादिकके वेगोंको रोकता है, तब उसको रोगोंकी उत्पत्ति होती है।" अत्यन्त मैथुन, अत्यन्त उपवास और अत्यन्त ईर्ष्या आदि जो धातुओंके क्षय होनेके कारण हैं; उनसे भी क्षयरोग उत्पन्न होता है। बलवान्‌के साथ मल्ल युद्धादिक अथवा द्वेषादिक साहसके कार्य करनेसे भी क्षयरोग उत्पन्न होता है। बहुत भोजन, थोडा भोजन अथवा बिना भोजन करनेसे भी क्षयरोग उत्पन्न होता है। यह क्षयरोग सान्निपातिक है अर्थात् यह तीनों दोषोंसे होता है। क्षयरोगके और भी बहुतसे कारण हैं। वे सब इन चार हेतुओंमें ही अन्तर्भूत हैं, ऐसा जानना। यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, क्षय और शोष ये चारों इस रोगके नाम हैं ॥ १ ॥

अथ यक्ष्मादिशब्दनिरुक्तिः ।

वैद्यो व्याधिमता यस्माद्व्याधेर्यत्नेन यक्ष्यते । स यक्ष्मा प्रोच्यते लोके शब्दशास्त्रविशारदैः ॥ २ ॥

यक्ष्यते--पूज्यते ॥

वैद्य रोगीसे अच्छी प्रकारसे यत्नपूर्वक पूजन अर्थात् पालन किया जाता है, इस कारण शब्दशास्त्रको जाननेवाले विद्वान् इसको 'यक्ष्मा' कहते हैं ॥ २ ॥

राज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः । तस्मात्तं राजयक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः॥

प्रथम राजा चन्द्रमाके यह रोग उत्पन्न हुआ था, इस कारण इसको विद्वान् 'राजयक्ष्मा' कहते हैं ॥

क्रियाक्षयकरत्वात्तु क्षय इत्युच्यते बुधैः। संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

यह सम्पूर्ण क्रियाओंका क्षय करता है, इस कारण इसको पंडितलोग क्षय कहते हैं। यह रोग रसादि धातुओंको शोषण करता है, इस कारण इसको 'शोष' ऐसा कहते हैं ॥३॥

अथ क्षयरोगसंप्राप्तिः ।

कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु । अतिव्यवायिनो वाऽपि क्षीणे रेतस्यनन्तराः । क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ ४ ॥ कफप्रधानैर्दोषैः रसवर्त्मसु रुद्धेषु अनन्तराः सर्वे धातवः क्षीयन्ते, ततो मानवः शुष्यति । कारणभूतस्य रसस्य क्षये कार्याणां रक्तादीनामनुक्रमेण क्षीयमाणत्वात् ॥

कफप्रधान वातादि तीनों दोष जब कुपित होते हैं, तब उनसे रसके वहनेवाली नाडियोंके मार्ग रुक जाते हैं, तब सम्पूर्ण धातु क्षीण होने लगती हैं। धातुओंके क्षीण होनेसे मनुष्य भी क्षीण हो जाता है। समस्त धातुओंके कारणभूत रसके क्षय होनेसे कार्यरूप रुधिर आदि धातुओंका भी अनुक्रमसे क्षय हो जाता है। जब धातुकाक्षय होने लगता है तो मनुष्यके शरीरका क्षीण होना भी सम्भव है ॥ ४ ॥

मार्गावरोधे रसक्षयहेतुमाह चरकः-- रसः स्रोतःसु रुद्धेषु स्वस्थानस्थो विदह्यते । स ऊर्ध्वं कासवेगेन बहुरूपः प्रवर्तते ॥ ५ ॥ स्वस्थानस्थः---हृदयस्थः । कासं विनाऽपि रसक्षयो भवति, मार्गावरोधकुपितवातेन रसस्य शोषणात्।

मार्गोंके रुकनेसे क्षय होनेमें चरक कहते हैं कि, स्रोतों अर्थात् छिद्रोंके रुक जानेपर हृदयमें रहनेवाले रसका विदाह हो जाता है, इस प्रकार विदाहको प्राप्त हुआ रस ऊपरसे खांसीके वेगसे मुखद्वारा अनेक प्रकारका होकर निकलता है। इसको देखकर ऐसा मत समझना कि, खांसीके होनेसे ही रसका क्षय होता है। किन्तु खांसीके विना भी मार्गोंके अवरोधसे कुपित वायुसे रसका क्षय होता है। कहा भी है कि, मार्गोंके रुकनेपर वायुके कोपसे भी धातुओंका क्षय होता है ॥ ५ ॥

अथ रसक्षयहेतुः।

वायोर्धातुक्षयात् कोपान्मार्गस्यावरणेन च। अनुलोमक्षयं दृष्ट्वा प्रतिलोमक्षयावहः ॥ ६ ॥

जिस प्रकार कारणभूत रसके क्षयसे कार्यभूत धातुओंका सीधे क्रमसे क्षय होता है, उसी प्रकार उलटे क्रमसे कार्यभूत वीर्यके क्षयसे कारणभूत धातुओंका भी क्षय होता है ॥ ६ ॥

अतिव्यवायिनो वा रेतसि क्षीणे प्रतिलोमक्रमेण अनन्तराः सर्वे धातवो रसपर्यन्ताः क्षीयन्ते। तद्यथा—शुक्रे क्षीणे मज्जा क्षीयते, मज्जायां क्षीणायामस्थि क्षीयते, एवं पूर्वपूर्वं क्षीयते ॥

जैसे अत्यन्त मैथुन करनेवाले पुरुषके वीर्य क्षीण होनेपर वीर्यसे ऊपरकी सम्पूर्ण रसपर्यन्त धातु उलटे क्रमसे क्षीण होती हैं। जैसे कि, वीर्यके क्षीण होनेसे मज्जा क्षीण होती है। मज्जाके क्षीण होनेसे अस्थि क्षीण होती है। अस्थिके क्षीण होनेपर मेद क्षीण होती है। मेदके क्षीण होनेसे मांस क्षीण होता है। मांसके क्षीण होनेपर रुधिर क्षीण होता है और रुधिरके क्षीण होनेसे रस क्षीण होता है ॥

ननु कार्यस्य शुक्रस्य क्षये कथं कारणभूतानां मज्जादीनां क्षयः ?

शंका—कार्यरूप वीर्यके क्षय होनेसे कारणरूप मज्जा आदिका क्षय किस प्रकार हो सकता है ?

उच्यते—शुक्रक्षयात् वायुः कुप्यपि। स वायुः सान्निध्यात् क्रमेण मज्जादीन् सर्वान् धातून् शोषयति। तदनन्तरं मानवः शुष्यति ॥

समाधान—वीर्यके क्षय होनेसे वायु कुपित होती है और वह वायु समीप होनेके कारण अनुक्रमसे मज्जा आदि समस्त धातुओंको शोषण करती है तो मनुष्य क्षीण हो जाता है ॥

अथ क्षयरोगपूर्वरूपम्।

श्वासाङ्गसादकफसंस्रवतालुशोषवम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः। शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥ ७ ॥

स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकण्ठगृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च। तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तरून्पवनधूमदवार्दितांश्च ॥ ८ ॥

जब क्षयरोग होनेको होता है तब उससे पहिले श्वास, अंगोंमें ग्लानि, कफका गिरना, तालूका सूखना, वमन, अग्निकी मन्दता, मद, नाकसे पानीका गिरना खाँसी और निद्रा ये सब लक्षण होते हैं, वह मनुष्य मांसके खानेकी और स्त्रीप्रसंगकी भी अभिलाषा करता है। उसके नेत्र सफेद हो जाते हैं और वह सपनेमें कौआ, तोता, शल्लकि, मोर, गिद्ध, बन्दर, और करकटा इनपर अपनेको बैठा देखता है जलरहित सूखी नदियोंको देखता है। सूखे हुए तथा पवनसे, धुयेंसे और दावानलसे पीडित वृक्ष उसको दिखाई देते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ क्षयरोगलक्षणम्।

अंसपार्श्वाभितापश्च सन्तापः करपादयोः। ज्वरः सर्वाङ्गिकश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ९ ॥

अंसयोः पार्श्वयोश्चाभितापः पीडा। अत्र सकलधातुक्षयपूर्वकः सकलशरीरशोषो बोद्धव्यः। एतानि त्रीणि लक्षणानि प्रायोभावित्वेन चरकेण उक्तानि। सुश्रुतेन यक्ष्मणि षड्लक्षणानि उक्तानि—भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणितदर्शनम्। स्वरभेदश्च जायन्ते षड्रूपे राजयक्ष्मणि ॥ १० ॥

कंधे और पसलियोंमें पीडा, हाथ और पाँवोंमें संताप और सम्पूर्ण अंगोंमें ज्वर ये तीन क्षय रोगके लक्षण हैं। इस रोगमें सम्पूर्ण धातुओंका क्षय होकर सम्पूर्ण शरीरका शोषण होता है, ऐसा जानना। कंधे और पसलियोंमें पीडा आदि जो तीन लक्षण चरकमें कहे हैं, वे तो होनहारके कहे हैं, परन्तु सुश्रुतमें और छः लक्षण कहे हैं। जैसे-अन्नमें अरुचि, ज्वर, श्वास, खाँसी, रुधिरका दर्शन और स्वरभेद ये छः लक्षण क्षयरोगमें होते हैं॥ ९॥ १०॥

अथ दोषोल्वणताविशेषेण लक्षणम्।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्वयाः। ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः॥ ११॥ शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च। कासःकण्ठस्य च ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः॥ १२॥

अनिलादुल्वणात्। एवं पित्तात् कफाच्च॥

वायुकी उल्वणता हो तो स्वरभेद, शूल, कंधे और पसलियोंमें संकोच होता है। पित्तकी उल्वणता हो तो ज्वर, दाह, अतिसार और रुधिर निकलता है, कफकी उल्वणता हो तो शिरमें भारीपन, अन्नमें अरुचि खाँसी और कंठका जकडना ये सब लक्षण होते हैं॥ १२॥

यत आह सुश्रुतः-

एक एव मतः शोषः सन्निपातात्मको गदः। उद्रेकात्तत्र लिङ्गानि दोषाणां निपतन्ति हि॥ १३॥

सुश्रुत कहता है कि, यह क्षयरोग तीनों दोषोंका सन्निपातरूप होनेसे एकही प्रकारका माना जाता है तो भी उसमें दोषोंकी उल्वणता होनेसे उन्हीं उन्हीं दोषोंके चिह्न देखे जाते हैं॥ १३॥

अथक्षयरोगासाध्यता।

एकादशभिरेभिर्वाऽपि षड्भिर्वाऽपि समन्वितम्। त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासासृगामयैः। जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन् सुविमलं यशः॥ १४॥

निर्मल कीर्तिकी इच्छा करनेवाले वैद्य उक्त ग्यारह अथवा छः अथवा ज्वर, खांसी, और रुधिरकी वमन इन तीन लक्षणोंसे पीडित क्षय रोगीको छोड देते हैं॥ १४॥

अथ विशेषता।

सर्वैरर्द्धैस्त्रिभिर्वाऽपि लिङ्गैर्मांसबलक्षये। युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा॥ १५॥

सर्वैर्लिङ्गैः एकादशभिः। अर्द्धः-षड्भिः। त्रिभिः--ज्वरकासरुधिरवमनः। अतोऽन्यथा मांसबले सति सर्वरूपोऽपि न प्रत्याख्येयः किंतु चिकित्स्यः॥

परन्तु जिस रोगीके मांस और बलका क्षय होगया हो उसको इन ग्यारह लक्षणों अथवा छःलक्षणों किंवा तीन लक्षणोंसे युक्त जानकर छोडदेवे। किंतु जिसका मांस और बल क्षीण नहीं हुआ हो, उसको संपूर्ण लक्षणोंयुक्त होनेपर भी नहीं छोडना चाहिये। उसकी चिकित्सा करनी चाहिये॥ १५॥

महाशनं क्षीयमाणमतिसारनिपीडितम्। शूनमुष्कोदरश्चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत्॥ १६॥

महाशनं क्षीयमाणमित्येकमसाध्यं लक्षणम्। अतिसारनिपीडितमिति द्वितीयम्॥

मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तश्च जीवितम्। तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणां मलरेतसी॥ १७॥

शूनमुष्कोदरमिति तृतीयम्॥

जो क्षयरोगी अधिक भोजन करनेपर भी क्षीण होता जाय तो उसका असाध्य समझकर वैद्य त्याग देवे अर्थात् उसकी चिकित्सा न करे।

जो क्षयरोगी अतिसारसे पीडित हो, उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । कहा भी है कि, मनुष्योंका बल मलके आधीन है और जीवन वीर्यके आधीन है और इसलिये क्षयरोगी के मल और वीर्यकी यत्नपूर्वक रक्षाकरनी चाहिये । जिस क्षयरोगीके अण्डकोश और उदर सूज गया हो, उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ क्षयरोगारिष्टम् ।

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् । कृच्छ्रेण बहु मेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥ १८ ॥

मेहन्तम्-शुक्रं क्षरन्तम् । शुक्लाक्षत्वाद्येकैकशोरिष्टलक्षणम् ॥

जिस क्षयरोगोकी आंखें सफेद होगई हों, अन्नमें अरुचि हो, ऊर्ध्वश्वाससे पीडित हो अथवा कष्टसे बहुतसा वीर्य गिरता हो, उस रोगीको अवश्य यह क्षयरोग मारदेता है ॥ १८ ॥

अथ क्षयरोगिणो जीवनावधिः ।

परं दिनसहस्रन्तु यदि जीवति मानवः । सुभिषग्भिरुपक्रान्तस्तरुणः शोषपीडितः ॥ १९ ॥

शोषपीडितो मानवश्चेत्तरुणो भवति सुभिषग्भिरुपक्रान्तो भवेति, तदा परं दिनसहस्रं द्वितीयं दिनसहस्रं यदि जीवति तत्र जीवनविकल्प इत्यर्थः एतेन शोषपीडितो मानवश्चेत्तरुणो भवति सद्वैद्यैश्चिकित्सितो भवति तदा प्रथमदिनसहस्रं जीवेदेवेत्युक्तम् ।

क्षयरोगसे पीडित मनुष्य जो तरुण हो और उत्तम वैद्यके द्वारा चिकित्सा की जाय तो एक हजार दिनतक जीता है, यह परम अवधि कही है ॥ १९ ॥

अथ क्षयरोगचिकित्सा ।

ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम् । उपक्रमेतात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् २०

आत्मवन्तम्-यत्नवन्तं धृतिमन्तं वा ॥

जो क्षयरोगी ज्वरकी पीडासे रहित, बलवान्, चिकित्सा सम्बन्धी क्रियाओंको सह सके, यत्नवाला, धीरजवान्, प्रदीप्त अग्निवाला और जो कृश न हो, ऐसे यक्ष्मारोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २० ॥

अथ निदानविशेषेण शोषविशेषः ।

व्यवायशोकवार्द्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषितान् । व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणौ लक्षणैः शृणु ॥ २१ ॥ व्रणशोषी उरःक्षतशोषी च ।

अत्यन्त मैथुन करनेसे जो शोष होता है, उसको 'व्यवायशोष' कहते हैं । शोकसे उत्पन्न हुए शोषको 'शोकशोष' कहते हैं । वृद्ध अवस्थासे उत्पन्न हुए शोषको 'वार्द्धक्यशोष' कहते हैं । दण्ड कसरत आदिके करनेसे उत्पन्न हुए शोषको 'व्यायामशोष' कहते हैं । अधिक मार्गके चलनेसे उत्पन्न हुए शोषको 'अध्वशोष' कहते हैं । व्रणहोनेके कारण उत्पन्न हुए शोषको 'व्रणशोष' कहते हैं और छातीमें क्षतके होनेसे उत्पन्न हुए शोषको 'उरःक्षतशोष' कहते हैं । अब इनके अलग अलग लक्षण कहते हैं, सो सुनो ॥ २१ ॥

अथ व्यवायशोषलक्षणम् ।

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः। पाण्डुदेही यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥ २२ ॥ शुक्रस्य क्षयलिंगैः सुश्रुतोक्तैः । तानि यथा शुक्रक्षये मेढ्रवृणवेदना, व्यवाये चाशक्तिः । चिराद्वा प्रसेकः प्रसेके चाल्पशुक्रदर्शनमिति । यथापूर्वं क्षीयन्ते च अस्य धातवः प्रथमं शुक्रं क्षीयते पश्चाच्छुक्रक्षयजनितवायुना मज्जादयोऽपि धातवो यथापूर्वं क्षीयन्ते ॥

व्यवायशोषमें सुश्रुतमें कहे हुए सम्पूर्ण वीर्यक्षयके चिह्न होतेहैं अर्थात् लिंग और अंडकोषोंमें पीडा होती है । मैथुन करनेमें अशक्तता अथवा मैथुन करते समय बहुत देरसे वीर्य स्खलित होता है और बहुत थोडा वीर्य निकलता है ॥ उस रोगीका शरीर पांडुवर्ण होजाता है, तथा प्रथम वीर्यके क्षीण होनेसे फिर उसकी क्षीणतासे वायुके कुपित होनेके कारण ऊपरकी मज्जादि धातुएँ भी अनुक्रमसे क्षीण हो जाती हैं ॥ २२ ॥

अथ शोकशोषलक्षणम् ।

प्रध्यानशीलः स्रस्तांगः शोकशोष्यपि तादृशः । विना शुक्रक्षयकृतैर्विकारैरुपलक्षितः ॥ २३ ॥ प्रध्यानशीलः-यस्याभावेन शोको जनितस्तद्ध्यानपरः । स्रस्ताङ्गः-शिथिलांगः । तादृशः-व्यवायशोषिसदृशः । तेन शुक्रादिसर्वधातुक्षययुक्तो भवति । परं शुक्रक्षयकृतैर्विकारैर्मेढ्रवृषणवेदनादिभिर्वर्जितो भवति, व्याधिस्वभावात् ॥

शोकशोषमें रोगीको जिस वस्तुके अभावसे शोक हुआ हो, वह उसी वस्तुका सदैव ध्यान करता है उसके अंग शिथिल होजाते हैं। और व्यवायशोषवाले रोगीके समान शुक्रादि सम्पूर्ण धातुओंके क्षयसे युक्त होजाता है, किंतु व्याधिके स्वभावसे उसके लिंगमें और अंडकोषोंमें पीडा आदि उपद्रव नहीं होते हैं ॥ २३ ॥

अथ वार्धक्यशोषलक्षणम् ।

जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः । कम्पनोऽरुचिमान्भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः ॥ २४ ॥ ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारुचिपीडितः । संप्रस्रुतास्यनासाक्षः शुष्करूक्षमलच्छविः॥२५॥

मन्दशब्दः--स्वल्पार्थः । शुष्करूक्षमलच्छविः--शुष्के रूक्षे च मलच्छवी यस्य सः ॥

वार्द्धक्यशोषवाले मनुष्यका शरीर दुबला होजाता है वीर्य, बल, बुद्धि और इन्द्रियां मन्द हो जाती हैं । कम्प होता है, शरीरकी शोभा नष्ट होजाती है कांसेके फूटे बासनके शब्दके समान स्वर होजाता है थूकनेमें कफ नहीं आता, भारीपन और अरुचिसे पीडित होता है । मुख, नाक और आँखोंमेंसे पानी बहता रहता है, विष्ठा और शरीरका रंग सूखा और रूखा होजाता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथाध्वशोषिलक्षणम् ।

अध्वप्रशोषी स्रस्तांगः सम्भृष्टपरुषच्छविः । प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥

सम्भृष्टपरुषच्छविः--सभृष्टस्येव परुषा छविर्यस्य सः । प्रसुप्तगात्रावयवः--प्रसुप्तः स्पर्शाज्ञः। क्लोम--पिपासास्थानम् ॥

अध्वशोषमें मनुष्यके अंग शिथिल होजाते हैं, शरीरकी कांति अग्निमें भुने हुए पदार्थके समान और खरदरी होजाती है शरीरके अवयवोंको स्पर्श करनेसे स्पर्शका ज्ञान नष्ट होजाता है और तृषा लगनेका स्थान, गला और मुख ये सूख जाते हैं ॥

अथ व्यायामशोषिलक्षणम् ।

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः । लिङ्गैरुरः क्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥ २६ ॥

एभिरेव-स्रस्तांगत्वादिभिरध्वशोषिलक्षणैरेव। भूयिष्ठम्--अत्यर्थम्॥

व्यायामशोषमें विशेष करके अध्वशोषके लक्षण मिलते हैं और क्षतके न होनेपर भी उरःक्षतशोषके लक्षण होते हैं ॥ २६ ॥

अथ व्रणशोषनिदानासाध्यलक्षणम् ।

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् । व्रणितस्य भवेच्छोषः स चासाध्यतमः स्मृतः ॥ २७ ॥

रुधिरके क्षय होनेसे, घावकी पीडासे और आहारके घटनेसे व्रणवाले मनुष्यके शोष होता है, वह तीनों प्रकारका व्रणशोष अत्यन्त असाध्य है ॥ २७ ॥

अथोरःक्षतशोषनिदानम् ।

धनुषाऽऽयस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम् । युद्ध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः ॥२८॥ वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं चान्यं निगृह्णतः । शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥ २९ ॥ अधीयानस्य चात्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम् । महानदीं वा तरतो हयैर्वा सह धावतः ॥ ३० ॥ सहसोत्पततो दूरं तूर्णञ्चापि प्रनृत्यतः । तथाऽन्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य वा ॥ ३१ ॥ स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः । विक्षते वक्षसि व्याधिर्बलवान् समुदीर्यते ॥ ३२ ॥

आयस्यतः—आयासं कुर्वतः । अन्यं—गजोष्ट्रादिकम् । शिला-दीर्घपाषाणः । अश्मा-प्रस्तरखण्डः । निर्घातः--अस्त्रविशेषः। व्याधिः-उरःक्षताख्यः ॥

बहुत धनुष बाण अर्थात् तीरकमान चलानेसे, बडे भारी बोझको उठानेसे, बलवान्के साथ युद्ध करनेसे, विषम अथवा ऊँचे स्थानसे गिरनेसे, दौडते हुए बैल, घोडे, हाथी, ऊंट आदिको रोकनेसे शिला, लकडी, पत्थर और शस्त्रादिकको जोरसे फेंकनेसे, दूसरोंको मारनेसे, बहुत ऊँचे स्वरसे बोलनेसे, अथवा वेद शास्त्रोंके पढनेसे, वेगपूर्वक दूर जानेसे, बडी गम्भीर नदियोंको तैरनेसे घोडेके साथ-दौडनेसे, एक साथ अकस्मात् उछलनेसे कूदनेसे अथवा कला खानेसे, जल्दी जल्दी नाचनेसे तथा इसीप्रकार अन्यान्य साहसके काम करनेसे, जिसके अत्यन्त चोट लगी हो ऐसे मनुष्यके, स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्ति रखनेवाले और रूखा तथा बहुत थोडा प्रमाणका भोजन करनेवाले मनुष्यकी छाती फटकर बलवान् उरःक्षतः रोग उत्पन्न होता है ॥ २८-३२ ॥

अथोरःक्षतशोषलक्षणम् ।

उरो विरुज्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विभज्यते । प्रपीड्यते ततः पार्श्वे शुष्यत्यङ्गं प्रकम्पते ॥ ३३ ॥ क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते । ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदोऽग्निवधस्तथा ॥ ३४ ॥ दुष्टःश्यावः सदुर्गन्धः पीतो विग्रथितो बहुः । कासमानस्य चाभीक्ष्णं कफः सासृक् प्रवर्तते । स क्षती क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः क्षयात् ॥ ३५ ॥

विरुज्यते-पीड्यते । भिद्यते-विदार्यते इव । विभज्यते-द्विधा भज्यते इव । स क्षती-स पुरुषः क्षतीउरःक्षतवान् । अत्यर्थं क्षीयते-क्षीणो भवति ॥

उरःक्षतरोगवाले मनुष्यकी छाती अत्यन्त दुखती है। कोई छातीको चीरे डालता है अथवा दो टुकडे किये डालता है, ऐसा जान पडता है। पँसलियोंमें पीडा होती है, सम्पूर्ण अंग सूखने लगते हैं, देह कांपने लगती है, अनुक्रमसे वीर्य, बल, वर्ण, कांति और अग्नि हीन होती जाती है । ज्वर, व्यथा, मनमें दीनता, मलका भेद अर्थात् दस्तोंका होना, अग्निकी मन्दता, खांसीके आते समय दूषित, काले रंगका, दुर्गन्धित, पीला, गांठदार, बहु-

तसा और रुधिरयुक्त कफ वारंवार निकलता है और उरःक्षतरोगी वीर्यके तथा ओजके क्षयसे अत्यन्त क्षीण होजाता है ॥ ३३-३५ ॥

अथोरःक्षतविशेषलक्षणम् ।

उरोरुक्छोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः क्षते । क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः ॥ ३६ ॥

क्षते-उरः क्षतवति । उरोरुक् शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः विशेषतः भवत्येवास्मिन् उरःक्षतवति साम्नकफशुक्रौजसां क्षयात् क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहश्च भवति॥

उरःक्षतरोगवाले मनुष्यकी छातीमें अत्यन्त पीडा होती है । रुधिरकी वमन और खांसी अधिकतर आती है । रुधिरसहित कफका, वीर्यका तथा ओजका क्षय होनेसे लोहितरंग का रुधिर सहित मूत्र उतरता है और पँसली, पीठ तथा कमरमें महावेदना होती है ॥ ३६ ॥

अथ निदानविशेषेणोरःक्षतलक्षणम् ।

व्रणरोधात्क्षयाच्चैव कोष्ठात्प्रतिमलात्तथा। क्षतोरस्कस्यान्नपाके निःश्वासो वाति पूतिकः ॥ ३७ ॥

क्षयात्-धातुक्षयहेतोरतिव्यवसायोदितात्कोष्ठात् । प्रतिमलात्कोष्ठात्प्रतिलोममलात् । पूतिकः-पूतिगन्धः ।

व्रणके अवरोधसे धातुको क्षीण करनेवाले अत्यन्त मैथुनादिकसे और कोठेमें वायुकी प्रतिलोमतासे प्रतिलोम हुए मलसे जिसकी छाती फटगई हो, उस मनुष्यका श्वास अन्नके पचते समयमें दुर्गन्धित निकलता है ॥ ३७ ॥

अथोरःक्षतसाध्यासाध्यलक्षणम् ।

अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः । परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिङ्गं तु वर्जयेत् ॥ ३८ ॥

जो उरःक्षतरोगमें अल्प लक्षण हों, अग्नि प्रदीप्त हो, शरीरमें बल हो और यह रोग थोडे ही दिनोंसे हुआ हो, तो साध्य होता है । जिसको उत्पन्न हुए एक वर्षसे अधिक बीत गया हो, वह याप्य है और जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों, उसको असाध्य समझकर छोड देना चाहिये अर्थात् उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

अथ राजयक्ष्मचिकित्सा ।

बलिनो बहुदोषस्य पञ्च कर्माणि कारयेत् । यक्ष्मिणः क्षीणदेहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपमम् ॥ ३९ ॥ मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तञ्च जीवितम् । तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ ४० ॥ शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयो हिताः । मद्यानि जाङ्गलाः पक्षिमृगाः पथ्या विशुष्यताम् ॥ ४१ ॥

बलवान् और बहुत दोषोंसे युक्त राजयक्ष्मावाले रोगीको वमन, विरेचन, नस्य, निरूहवस्ति और अनुवासनवस्ति ये पंच कर्म कराने चाहिये, परन्तु क्षीणदेहवाले मनुष्यको ये पञ्च कर्म विषके समान अपकारी होते हैं । कारण यह कि, मनुष्योंका बल मलके अधीन है और जीवन वीर्यके अधीन है । इस कारण क्षयरोगवाले मनुष्यके वीर्यकी और मलकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये । क्षयरोगवाले मनुष्योंके लिये शालिचावल, सांठीचावल, गेहूं, जौ और मूँग आदि अन्न, मदिरा और जांगल प्रदेशके पशु पक्षियोंका मांस पथ्य है ॥ ३५-४१ ॥

अथ षडङ्गयूषः ।

सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम् । दाडिमामलकोपेतं स्निग्धमाजं रसं पिबेत ॥ ४२ ॥ तेन षड्विनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ॥ ४३ ॥ द्रव्यतो द्विगुणं

मांसं सर्वतो ऽष्टगुणं जलम्। पादस्थं संस्कृतं चाज्ये षडङ्गो यूष उच्यते॥४४॥ तद्यथा यवपलम् १। कुलत्थपलम् १। छागमांसपलानि ४। जलपलानि ४८। शेषपलानि १२। ततः पलमितं घृते संस्करणीयम्। तत्र कर्षमितं सैन्धवं देयम्। सौरभार्थं हिङ्गु देयम्। पिप्पली नागरञ्च पृथङ् माषमितं कल्कीकृत्य देयम्। इति षडङ्गयूषः॥

जौ चार तोले, कुलथी ४ तोले और बकरे का स्निग्ध मांस १६ तोले इन सबको अठगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथा जल बाकी रह जाय, तब उसमें चार तोले घी ढालकर बघार देवे। सैंधानमक एक तोला डाले, सुगंधिके लिये हींग डाले तथा अनार और आमलोंका रस डाले। पीपल और सोंठका कल्क छः छः रत्ती डाले। इस मांसरसको 'षडंगयूष' कहते हैं। यह क्षयरोगवाले मनुष्योंको पिलाना चाहिये। इसके पीनेसे राजयक्ष्मागत पीनस आदि समस्त विकार निवृत्त होजाते हैं॥ ४२-४४॥

ककुभत्वङ्नागबला वानरिबीजं विचूर्णितं पयसा। पीतं मधुघृतयुक्तं ससितं यक्ष्मादिकासहरम्॥ ४५॥ छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सनागरम्। छागमांसं शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत्॥ ४६॥

अर्जुनकी छाल, गँगेरन (गुलशकरी) और कौंछके बीज इनको दूधमें पीसकर सहत घी और बूरा मिलाकर पीवे तो राजयक्ष्मादिरोग और खांसी दूर हो जाती है यक्ष्मरोगी बकरेके मांसको खाय, बकरीके दूधको पीवे, सोंठ मिलाकर बकरीका घी खाय, बकरेकी सेवा करे और बकरे बकरियोंके रहनेके स्थानमें सोवे। इन उपायोंके करनेसे क्षयरोग नष्ट हो जाता है॥४५॥४६॥

मधुताप्यविडङ्गाश्मजतुलोहघृताभयाः। घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमाना हिताशिनः॥ ४७॥

ताप्यम्-सुवर्णमाक्षिकम्॥

सहत, सोनामाखी, वायविडंग, शिलाजीत, लोहा, घी और हरड इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे और इसपर पथ्य भोजन करनेसे अत्यन्त उग्र क्षयरोग नष्ट हो जाता है॥ ४७॥

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन् क्षयी। क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके॥ ४८॥

क्षयरोगवाला मनुष्य खांड और सहत मिलाकर नैनी घी खाय और इसपर दूध युक्त भोजन करे अथवा सहत और घीको विषम भाग लेकर चाटे तो पुष्टि होती है॥ ४८॥

अथ सितोपलादिचूर्णम्।

सितोपला तुगाक्षीरी पिप्पली बहुलात्वचः। अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणिताश्चूर्णिता मधुसर्पिषा॥ ४९॥ लेहयेद्राजरोगार्तं कासश्वासज्वरातुरम्। पार्श्वशूलिनमल्पाग्निं सुप्तजिह्वं रुचिच्युतम्। हस्तपादाङ्गदाहे च ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे॥५०॥

सितोपला (मिश्री)। बहुला सूक्ष्मैला॥

दालचीनी एक भाग, छोटी इलायची दो भाग, पीपल चार भाग, वंशलोचन आठ भाग और मिश्री १६ भाग, इन सबका चूर्ण करके सहतके तथा घीके साथ क्षयरोगवालेको चटावे। खांसी, श्वास, क्षय, पार्श्वशूल, मन्दाग्नि, जिह्वाकी जडता और अरुचि तथा हाथ, पांव और सम्पूर्ण शरीरका दाह, ज्वर और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तको भी यह 'सितोपलादि' चूर्ण दूर कर देता है॥४९॥५०॥

अथ जातीफलाद्यचूर्णम् ।

जातीफलं विडङ्गानि चित्रकं तगरं तिलाः । तालीसं चन्दनं शुण्ठी लवंगमुपकुञ्चिका ॥ ९१ ॥ कर्पूरश्चाभया धात्री मरिचं पिप्पली तुगा एषां । त्र्यक्षसमा भागाश्चातुर्जातकसंयुताः ॥९२॥ पलानि सप्त भङ्गायाः सिता सर्वसमा मता । चूर्णमेतत् क्षयं कासं श्वासञ्च ग्रहणीगदम् ॥ ९३ ॥ अरोचकं प्रतिश्यायं तथा चानलमन्दताम् । एतान् रोगान्निहन्त्येव वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ९४॥

जायफल, वायविडंग, चीता, तगर, तिल, तालीसपत्र, चन्दन, सोंठ, लौंग, कालाजीरा, भीमसेनीकपूर, हरड, आमले, मिरच, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर ये प्रत्येक पदार्थ तीन तीन तोले भर लेवे, भांग २८ तोले लेवे और सबकी बराबर मिश्री लेवे, सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनावे । जिसप्रकार इन्द्रका वज्र वृक्षोंको नष्ट करता है, उसी प्रकार यह चूर्ण क्षय, खांसी, श्वास, ग्रहणी, अरुचि, प्रतिश्याय और अग्निकी मन्दताको नष्ट करता है । इसको 'जातीफलाद्यचूर्ण' कहते हैं ॥ ५१–५४ ॥

अथ लाक्षादितैलम् ।

बालरोगाधिकारोक्तं तैलं लाक्षादि योजयेत् । अभ्यङ्गे यक्ष्मिणो नित्यं वृद्धवैद्यो विशेषतः ॥ ५५ ॥

बालरोगाधिकारमें जो लाक्षादितैल कहा है, उस तेलको वृद्धवैद्यके उपदेशसे क्षयरोगीके शरीरपर मर्दन करे ॥ ५५ ॥

अथ वासावलेहः ।

वासकस्य रसप्रस्थं मानिका सितशर्कराः । पिप्पल्या द्विपलं तावत् सर्पिषश्च शनैः पचेत् ॥ ५६ ॥ तस्मिंल्लेहत्वमायाते शीते क्षौद्रपलाष्टकम् । दत्त्वाऽवतारयेद्वैद्यो लीढो लेहोऽयमुत्तमः ॥५७॥ हन्त्येव राजयक्ष्माणं कासं श्वासञ्च दारुणम् । पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलं रक्तपित्तं ज्वरं तथा ॥ ५८ ॥

अडूसेका रस ६४ तोले, उत्तम सफेद खांड ३२ तोले, पीपल आठ तोले और घी आठ तोले लेवे, सबको एकत्र मिलाकर धीरे धीरे मन्द अग्निसे पकावे । जब लेहके समान होकर शीतल होजाय, तब ३२ तोले सहत मिला देवे तो उत्तम वासावलेह तैयार होता है । यह वासावलेह–राजयक्ष्मा, दारुण खांसी, श्वास, पार्श्वशूल, हृदयशूल, रक्तपित्त और ज्वरको दूर करता है ॥ ५६–५८ ॥

अथ व्यवायशोषचिकित्सा ।

व्यवायशोषिणं क्षीणं रसमांसाज्यभोजनैः । सुकूलैर्मधुरैर्हृद्यैर्जीवनीयैरुपाचरेत् ॥ ५९ ॥

रसः--मांसरसः । सुकूलैः--हितैः ॥

व्ययावशोषसे क्षीण हुए मनुष्यको मांसका रस, मांस और घृतसंयुक्त भोजन और अनुकूल मधुर तथा जो अपनेको प्रिय लगे, ऐसे जीवनीय पदार्थोंके द्वारा उपचार करे ॥५९॥

अथ शोकशोषचिकित्सा ।

हर्षणैः श्वसनैः क्षीरैः स्निग्धैर्मधुरशीतलैः । दीपनैर्लघुभिश्चान्नैः शोषरोगमुपाचरेत् ॥ ६० ॥

शोकशोषवाले मनुष्यका हर्षको बढानेवाले पदार्थोंके उपचार करे, धीरज बँधाये, दूधका उपयोग करे और स्निग्ध, मधुर, शीतल, अग्निको दीपन करनेवाले और हलके अन्न भोजनके लिये देवे ॥ ६० ॥

अथ व्यायामशोषचिकित्सा ।

व्यायामशोषिणं स्निग्धैः क्षतक्षयहितै-

हिमैः । उपाचरेज्जीवनीयैर्विधिना श्लेष्मिकेण तु ॥ ६१ ॥

व्यायामशोषवाले मनुष्यको स्निग्ध, उरःक्षत शोषकी चिकित्सामें कहे हुए शीतल और जीवनीयपदार्थ तथा कफको करनेवाले पदार्थोंसे बृंहण चिकित्सा करे ॥ ६१ ॥

अथाध्वशोषचिकित्सा ।

आस्यासुखैर्दिवास्वप्नैः शीतैर्मधुरबृंहणैः।
अन्नमांसरसाहारैरध्वशोषमुपाचरेत् ॥६२॥

अध्वशोषवाले मनुष्यको उत्तम मुलायम आसन, गद्दी, शय्यापर बिठलावे, दिनमें सुलावे और शीतल मधुर और पुष्टिको करनेवाले अन्न और मांसके रस ऐसे भोजनोंसे उपचार करे ॥ ६२ ॥

अथ व्रणशोषचिकित्सा ।

व्रणशोषं जयेत्स्निग्धैर्दीपनैः स्वादुशीतलैः । ईषदम्लैरनम्लैर्वा यूषमांसरसादिभिः ॥ ६३ ॥

स्निग्ध, अग्निको दीप्त करनेवाले, मधुर, शीतल, और किंचित् अम्ल अथवा अम्लरहित यूषोंसे और मांसके रस आदिसे व्रणशोषकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

अथोरःक्षतचिकित्सा ।

तत्र बलादिचूर्णम् ।

बलाऽश्वगन्धा श्रीपर्णी बहुपुत्री पुनर्नवा । पयसा नित्यमभ्यस्ताः शमयन्ति क्षतक्षयम् ॥ ६४ ॥

श्रीपर्णी–गम्भारी । बहुपत्री--शतावरी ॥

खिरैंटी, असगन्धः कुम्भेके फल, सतावर और पुनर्नवा इनको दूधमें पीसकर नित्य पीनेसे उराक्षतशोप नष्ट होता है ॥ ६४ ॥

अथैलादिगुटिका ।

एलापत्रत्वचोऽर्द्धाक्षाः पिप्पल्यर्द्धपलं पृथक् । सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः ॥ ६५ ॥ संचूर्ण्य मधुना युक्ता वटिकाः सम्प्रकल्पयेत् । अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेत्तु दिनेदिने ॥ ६६ ॥ क्षतं क्षयं ज्वरं कासं श्वासं हिक्कां वमिं भ्रमम् । मूर्च्छां मदं तृषां शोषं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ६७ ॥ प्लीहानमाढचवातं च रक्तपित्तं स्वरक्षयम् । एलादिगुटिका हन्ति वृष्या सन्तर्पणी परा ॥ ६८ ॥

इलायची छः मासे, तेजपात छः मासे, दालचीनी छः मासे, पीपल दो तोले, मिश्री चार तोले, मुलहठी चार तोले, खजूर चार तोले और दाख चार तोले इनको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर एक एक तोलेकी गोलियां बनावे । इनमेंसे एक गोली नित्य खाय तो उरःक्षत, शोप, ज्वर, खांसी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, शोष, पँसलियोंकी पीडा, अरुचि, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ रक्तपित्त, और स्वरभंग ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं । गोलियाँ कामीपुरुषोंके लिये अत्यन्त हितकारी हैं और तृप्तिको करनेवाली हैं ६५-६८

अथ द्राक्षादिघृतम् ।

द्राक्षायाः प्रस्थमेकं तु मधुकस्य पलाष्टकम् । पचेत्तोयाढके शुद्धे पादशेषेण तेन तु ॥ ६९ ॥ पलिके मधुकद्राक्षे पिष्टे कृष्णापलद्वयम् । आदाय सर्पिषः प्रस्थं पचेत् क्षीरे चतुर्गुणे ॥ ७० ॥ सिद्धे शीते पलान्यष्टौ शर्करायाः प्रदापयेत् । एतद् द्राक्षाघृतं सिद्धं क्षतक्षीणसुखावहम् ॥ ७१ ॥ वातं पित्तं ज्वरं श्वासं विस्फोटकहलीमकान् । प्रदरं रक्तपित्तञ्च हन्यान्मांसबलप्रदम् ॥ ७२ ॥

उत्तम बडी बडी काली दाख चौंसठ तोले, मुलहठी बत्तीस तोले स्वच्छ जलमें पकावे,

जब पकते पकते चौथा भाग क्वाथ शेष रह-जाय तब उसमें मुलहठीका चूर्ण चार तोले, पीसी हुई दाख चार तोले, पीपलका चूर्ण ८ तोले और घी चौंसठ तोले भर डालकर चौगुने दूधमें पकावे। पकते पकते केवल घी बाकी रहजाय तब उतारलेवे, शीतल होनेपर बत्तीस तोले खांड मिलादेवे तो द्राक्षादिघृत सिद्ध होता है। यह घृत उरःक्षत, शोष, वायु, पित्त, ज्वर, श्वास, विस्फोटक, हलीमक, प्रदर और रक्तपित्तको नष्ट करता है तथा मांस और बलको वढाता है ॥ ६९-७२ ॥

अथामृतप्राशावलेहः ।

क्षीरे धात्री च मञ्जिष्ठा क्षीरिणाश्च तथा रसैः । पचेत्समैर्घृतप्रस्थं मधुरैः कर्षसम्मितैः ॥ ७३ ॥ द्राक्षादिचन्दनोशीरैः शर्करोत्पलपद्मकैः । मधूककुसुमानन्ताकाश्मरीतृणसंज्ञकैः ॥ ७४ ॥ प्रस्थार्द्धं मधुनः शीते शर्करार्द्धतुलां तथा । पलार्द्धिकांश्च संचूर्ण्य त्वगेलापद्मकेसरान् ॥ ७५ ॥ विनीय तत्र सलिह्यान्मात्रां नित्यं सुयंत्रितः । अमृतप्राशमित्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् । क्षीरमांसाशिनां हन्ति रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ॥७६॥ तृष्णारुचिश्वासकासच्छर्दिमूर्च्छाप्रमर्दनम् । मूत्रकृच्छ्रज्वरघ्नश्च बल्यं स्त्रीरतिवर्द्धनम् ॥ ७७ ॥

उत्तम गायके घीमें आमले, मँजीठ और विदारीकन्दका रस इनको समान भाग मिलाकर, पश्चात् जीवनीयगणकी समस्त औषधि एक एक तोला, दाख, चन्दन, लालचन्दन, खस, खांड, कमल, पद्माख, महुवेके फूल, सारिवा, कुम्भेरके फल और सुगन्ध रोहिषतृण इनका कल्क बनाकर घीको दूधमें पकावे। जब पककर शीतल हो जाय तब उसमें सहत बत्तीस तोले, खांड दो सौ तोले, दालचीनीका चूर्ण दो तोले, इलायचीका चूर्ण दो तोले और कमलकी केशरका चूर्ण दो तोले इनको मिलादेवे तो अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ यह 'अमृतप्राश' नामवाला अवलेह सिद्ध होता है। जितेन्द्रिय होकर इस अवलेहका नित्य सेवन करे। इसपर दूध और मांसके साथ भोजन करे। इस प्रकार करनेसे उरःक्षत, क्षय, रक्तपित्त, तृषा, अरुचि, श्वास, खांसी, वमन, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र और ज्वरका नाश होता है। स्त्रियोंमें प्रीति उत्पन्न होती है तथा बलकी वृद्धि होती है ॥ ७३ ॥ ॥ ७७ ॥

अथोरःक्षतरोगपथ्यापथ्यानि ।

यद्यच्च तर्पणं शीतमविदाहि हितं लघु । अन्नपानं निषेव्यं स्यात्क्षतक्षीणैः सुखार्थिभिः ॥ ७८ ॥ शोकं स्त्रियः क्रोधमसूयनञ्च त्यजेदुदारान्विषयान् भजेच्च । तथा द्विजातींस्त्रिदशान् गुरूंश्च वाचश्च पुण्याः शृणुयाद् द्विजेभ्यः ॥ ७९ ॥

उरःक्षतशोषवालेको जो सुखकी इच्छा हो, तो जो जो अन्नपान तृप्तिदायक हैं, शीतल, दाहरहित, हितकारक और हलके हैं, उन सबका सेवन करे तथा शोक, स्त्रीप्रसंग, क्रोध, और परनिन्दा, द्वेषबुद्धि आदिको त्यागदेवे, उत्तम शांति सन्तोषादि विषयोंको सेवन करे। ब्राह्मण देवता और गुरुजनोंकी भक्ति करे और ब्राह्मणोंसे पवित्र कथाओंको श्रवण करे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ राजयक्ष्मणि रसाः ।

तत्रमृतेश्वरो रसः ।

रसभस्मामृतासत्त्वं लोहं मधुघृतान्वितम् । अमृतेश्वरनामाऽयं षड्गुञ्जो राजयक्ष्मणि ॥ ८० ॥ अमृतेश्वररसो राजयक्ष्मणि रसेन्द्रचिन्तामणौ ॥

रसभस्म--मारितो रसः । अमृतासत्त्वम्--गुडूचो सत्त्वम् । लोहं मारितम् ॥

परेकी भस्म, गिलोयका सत्त्व और मारा हुआ लोह इनको एकत्र करके सहत और घीमें मिलाकर प्रतिदिन छः रत्ती भर चाटे। यह 'अमृतेश्वररस' राजयक्ष्मारोगको शान्त करता है। यह रस रसेन्द्रचिन्तामणिमें लिखा है ॥ ८० ॥

अथ राजमृगाङ्करसः ।

त्रयोंऽशा मारितात्सूतादेकोंऽशो हेमभस्मतः । एकोंऽशो मृतताम्रस्य शिला गन्धश्च तालकम् ॥ ८१ ॥ प्रत्येकं भागयुग्मं स्यादेतत् सर्वं विचूर्णयेत् । वराटीः पूरयेत्तेन छागीक्षीरेण टङ्कणम् ॥ ८२ ॥ पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे ताश्च धारयेत् । कुप्यां पचेद् गजपुटे स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ८३ ॥ रसो राजमृगाङ्कोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः । मरिचैरूनविंशत्या कणाभिर्दशभिस्तथा ॥ ८४ ॥ मधुना सर्पिषा चापि दद्यादेतं रसं भिषक् । अनेन नश्यति क्षिप्रं वातश्लेष्मभवः क्षयः ॥ ८५ ॥ इति राजमृगाङ्को रसो राजयक्ष्मणि रसेन्द्रचिन्तामणौ ॥

मारा हुआ पारा तीन भाग, सोनेकी भस्म एक भाग, तांबेकी भस्म एक भाग, मैनशिल दो भाग, गन्धक दो भाग और हरिताल दो भाग इन सबका एकत्र चूर्ण करके एक बडी पीली कौडीमें भर लेवे। फिर बकरीके दूधमें पिसे हुए सुहागेसे कौडीका मुख बन्द करके उस कौडीको मट्टीके पात्रमें रक्खे, फिर वासनपर कपरौटी कर गजपुटमें फूँकदेवे, स्वांग शीतल होनेपर इसको निकालकर मट्टीको अलग करके रस निकाल लेवे। इसे 'राजमृगांकरस' कहते हैं। इस रसको प्रतिदिन चार रत्तीभर खानेसे क्षयुरोग नष्ट होजाता है। वैद्य १९ कालीमिरच, दश पीपल, सहत और घीके साथ इस रसको देवे। इसके सेवन करनेसे वायु और कफसम्बन्धी क्षयरोग तत्काल नष्ट होजाता है ॥ ८१ ॥ ८५ ॥

अथाग्निरसः ।

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं कुर्यात्खल्वेन कज्जलीम् । तयोः समं तीक्ष्णचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ ८६ ॥ द्वियाममातपे गोलं ताम्रपात्रे निधापयेत् । आच्छाद्यैरण्डपत्रेण स्यादुष्णं यामयुग्मतः ॥ ८७ ॥ धान्यराशौ न्यसेत्पश्चदष्टरात्रात्तदुद्धरेत् । संचूर्ण्य गालयेद्वस्त्रैः सत्यं वारितरं भवेत् ॥ ८८ ॥ त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः । नवभागोन्मितैरेभिः समैरेष रसो भवेत् ॥ ८९ ॥ निष्कद्वयमितं नित्यं मधुना सह लेहयेत् । अयमग्निरसो नाम्ना कासक्षयहरः परः ॥ ९० ॥ इति अग्निरसः शार्ङ्गधरे ॥

शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग, इन दोनोंकी एकत्र खरलमें कज्जली बनावे, फिर इस कज्जलीकी बराबर तीक्ष्ण लोहेका चूर्ण लेकर इस कज्जलीमें मिला देवे, फिर इसको घीक्वारके रसमें दो प्रहरतक खरल करे, फिर इसका गोला बनाकर तांबेके पात्रमें रखकर, अरंडके पत्तोंसे ढककर उस तांबेके पात्रको धूपमें धरलेवे। जब दो प्रहरतक गरम होजाय तब पीछे धानोंके ढेरमें गाडदेवे, पश्चात् आठ दिनमें निकाले, फिर इस गोलेको चूर्ण करके कपडेमें छान लेवे तो यह चूर्ण अवश्य जलमें तैरने लगेगा, तत्पश्चात् त्रिकुटा तीन भाग, त्रिफला तीन भाग इलायची एक भाग, जायफल एक भाग और लौंग एक भाग, सबको एकत्र पीसकर नवभाग रस इसमें मिलादेवे तो यह 'अग्निरस' सिद्ध होता है सहतके साथ इसमेंसे नित्य ४८ रत्ती भर चाटे तो खांसी और क्षयका नाश होता है ॥ ८६ ॥ ९० ॥

इति क्षयरोगाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ कासरोगाधिकारः ।

तत्र कासनिदानसंप्राप्ति पूर्वक-
सामान्यलक्षणम् ।

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च । विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव ॥ १ ॥ प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः सम्भिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः । निरेति वक्रात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥ २ ॥

सदोषः-तादृक्प्राणनिलरूपः ।

मुख अथवा नाकमें धुँआ और धूल जाकर उसकी धसके लगनेसे, अत्यन्त कसरत करनेसे, अधिकतर रूखे अन्नोंको भक्षण करनेसे, भोजन करते समय नासिकादि छिद्र अथवा अन्यान्यके मार्गोंमें भोजन जानेसे, मल दस्त पेशाबके वेगोंको और छींकको रोकनेसे प्राण वायु दूषित होकर उदान वायुके साथ मिलकर फूटे कांसेके बासनके समान शब्द करती हुई एक साथ मुखसे बाहर निकालती है । इस रोगको विद्वान् लोग 'कास' खांसी ऐसा कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ काससंख्या ।

पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः । क्षयांयोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

क्षयाय -राजयक्ष्मणे ॥

वातज, पित्तज, कफज, छातीमें क्षतके होनेसे उत्पन्न और क्षयसे उत्पन्न हुई इस प्रकार खांसी पांच प्रकारकी जाननी । इनकी उपेक्षा अर्थात् चिकित्सा न करनेसे ये पांचों प्रकारकी खांसी राजयक्ष्मारोगको उत्पन्न करती हैं इन पांचों प्रकारकी खांसियोंमें उत्तरोत्तर बलवान् हैं अर्थात् वातकी खांसीसे पित्तकी, पित्तकी खांसीसे कफकी, कफकी खांसीसे क्षतकी और क्षतकी खांसीसे क्षयकी खांसी बलवान् है ॥ ३ ॥

अथ कासपूर्वरूपम् ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता । कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ४ ॥

भोज्यानामवरोधः--कवलगिलने कण्ठव्यथा॥

जब खांसी उत्पन्न होनेकी होती है तब उससे कुछ काल पहिले गले और मुखमें फांसेसी लगने लगती हैं, कंठमें खुजलीसी होती है और भोजनके ग्रासको निगलते समय गलेमें व्यथा होती है ॥ ४ ॥

अथ वातकासलक्षणम् ।

हृच्छङ्खपार्श्वोदरमूर्द्धशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः । प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥५॥

शंखः-ललाटैकदेशः । शुष्कं--श्लेष्मादिरहितम् हि ॥

वातकी खांसीमें—हृदय, कनपटी, पसली, उदर और मस्तक इनमें शूल होता है, मुखकी कांति हीन हो जाती है । बल, स्वर और ओज क्षीण होता है तथा बराबर बडे वेगसे खांसी उठती है, स्वर बैठ जाता है और कफ नहीं गिरता अर्थात् सूखी खांसी होती है ॥ ५ ॥

अथ पित्तकासलक्षणम् ।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः । पित्तेन पीतानि वमेत् कटूनि कासेत् सपाण्डुः परिदह्यमानः ६॥

सपांडुः-पांडुरोगयुक्तः ॥

पित्तकी खांसीमें हृदयमें दाह, ज्वरकी व्यथा, मुख शोषकी पीडा होती है, मुखमें कडुवापन, तृषा, पीली और चरपरी वमन, पांडुरोग और दाह होकर खांसी उठती है ॥ ६ ॥

अथ कफकासलक्षणम्।

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदञ्छिरोरुजार्तः कफपूर्णदेहः। अभक्तरुग् गौरवकण्डुयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन ॥ ७ ॥

प्रलिप्यमानेन मुखेन-श्लेष्मलिप्तेन मुखेन उपलक्षितः। अभक्तरुक्-न भक्ते रुक् रुचिर्यस्य सः। कंडुः कंठ एव च ॥

कफकी खांसीमें-मुखकफसे ह्लिसासा रहता है, मस्तकमें पीडा हो, शरीर कफसे पूर्ण रहे, खानेमें रुचि नहीं हो, देह भारी हो, गलेमें खुजली चले और खांसीमें बराबर बहुत गाढा कफ निकलता रहे ॥ ७ ॥

अथ क्षतजकासनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः। रूक्षस्योःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥ ८ ॥

अश्वगजयोर्निग्रहः दमनम् ॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे, अत्यन्त भारको उठानेसे, अधिकतर मार्गके चलनेसे, अत्यन्त युद्ध करनेसे और भागते हुए घोडे हाथी आदिको बलपूर्वक रोकनेसे, रूक्ष मनुष्यका हृदय फटकर कुपित हुई वायु खांसीको उत्पन्न करती है ॥ ८ ॥

अथ क्षतजकासलक्षणम्।

स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत् सशोणितम्। कण्ठेन कूजत्यत्यर्थं विभग्नेनेव चोरसा ॥ ९ ॥ सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना। दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ १० ॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः। पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतोद्भवात् ॥ ११ ॥

कंठेन इति उपलक्षणे तृतीया। एवमुरसेति ॥

क्षतज खांसीवाला रोगी प्रथम सूखा खांसता है। फिर खखारमें रुधिर आवे, गला निरन्तर कूँजता रहता है और हृदय फटेके समान मालूम हो, तथा तीक्ष्ण सूइओंसे छेदा गयासा मालूम हो, छातीमें शूलकी पीडा होती हो, हृदयका स्पर्श पीडाके मारे नहीं सह सके, सन्ताप, भेदने सरीखी पीडा, सम्पूर्ण शरीरकी सन्धियोंमें वेदना हो, श्वास, ज्वर और तृषा उत्पन्न होती हो, स्वर बैठ जाय और खांसीके वेगसे कबूतरके समान घुटघुट करता है९-११

अथ क्षतजकासनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेग निग्रहात्। घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयोमलाः ॥ कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ १२ ॥

घृणिनाम्-विचिकित्सायुक्तानाम् ॥

विषम भोजन, अहित भोजन करनेसे, अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करनेसे, मूत्र मलादिके वेगोंको रोकनेसे, घृणा अर्थात् पराये गुणोंमें दोषोंके आरोपण करनेसे और अत्यन्त शोक करनेसे मनुष्योंकी जठराग्नि मन्द होकर तीनों दोषोंको कुपित करके शरीरकी क्षीण करनेवाली ऐसी क्षयकी खांसीको उत्पन्न करती है ॥१२॥

अथ क्षयजकासलक्षणम्।

स गात्रशूलज्वरमोहदाहप्राणक्षयं चोपलभेत कासी। शुष्कं विनिष्ठीवति निर्बलस्तु प्रक्षीण मांसो रुधिरं सपूयम्। तं सर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति ॥ १३ ॥

क्षयकी खांसीमें-रोगीके शरीरमें शूल, ज्वर तथा मोह होता है। दाह, इन्द्रियकी क्षीणता होती है, सूखा थूकता है और बलकी तथा मांसकी क्षीणता होनेसे अत्यन्त राधयुक्त रुधिर खांसीमें थूकता है, यह क्षयसे उत्पन्न

हुई जो खांसी सम्पूर्णलक्षण युक्त हो तो चिकित्सा करनेमें अत्यन्त कठिन है ॥ १३ ॥

अथ काससाध्यासाध्यता ।

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः । साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः ॥ १४ ॥

एवं क्षतोत्थितः क्षीणानामासाध्यः । बलवतां साध्यो याप्यो वा स्यात् ॥

क्षतसे अथवा क्षयसे उत्पन्न हुई खांसी जो क्षीण मनुष्योंको उत्पन्न हो तो असाध्य होती है और बलवान् मनुष्योंको उत्पन्न हुई हो तो साध्य होती है अथवा याप्य होती है ॥ १४ ॥

नवौ कदाचित्सिध्येतामपि पादगुणान्वितौ । स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तितः ॥ १५ ॥

सिध्येताम् क्षतजक्षयजो सद्वैद्यसद्भेषजसत्परिचारकयुक्तस्य सदातुरस्य जातौ । स्थविराणां जराकासः-वृद्धानां यः कासो भवति स जराकाससंज्ञः । स सर्व एव वातजादिरपि याप्यः ॥

यदि चिकित्साके चारों पाद (उत्तम वैद्य, औषधि, उत्तम परिचारक और उत्तम रोगी) ठीक हों, और क्षतज अथवा क्षयज खांसी थोडे दिनोंमें उत्पन्न हुई हो तो यह खांसी क्षीण मनुष्योंके उत्पन्न हुई भी कदाचित् साध्य होती है। वृद्ध मनुष्योंके उत्पन्न हुई जो खांसी है, जिसको जराकास कहते हैं, वह किसी प्रकारकी भी हो, सब याप्य जानना १५

त्रीन् पूर्वान् साधयेत् साध्यान् पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत् ॥ १६ ॥

वातज, पित्तज और कफज इन तीन प्रकारकी खासियोंको साध्य समझकर चिकित्सा करके नष्ट करे और क्षतसे तथा क्षयसे उत्पन्न हुई खांसीको याप्य समझकर पथ्य देकर कालक्षेप करावे ॥ १६ ॥

अथ कासोपेक्षादोषः ।

ज्वरारोचकहल्लासस्वरभेदक्षयादयः । भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ १७ ॥

खांसीकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् कि-'यह है ही क्या ? अपने आप आराम हो जायगा' ऐसा समझकर जो लोग खांसीकी चिकित्सा नहीं करते हैं, उनके ज्वर, अरुचि, उबकाई, स्वरभेद और क्षयादि रोग उत्पन्न होते हैं। इस कारण खांसीकी शीघ्रही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १७॥

अथ कासचिकित्सा ।

तत्र प्रथमं वातजकासचिकित्सा ।

वास्तूको वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्णकम् । स्नेहास्तैलादयो भक्ष्यास्तथेक्षुरसगौडिकाः ॥ १८ ॥ दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च । शस्यते वातकासेषु स्वाद्वम्ललवणानि च ॥ १९ ॥

वायसीशाकं 'काकोदुम्बरिका' इति लोके ।

सुनिषण्णकं 'सुषुणि' इति लोके शाकविशेषः ॥

वातकी खांसीमें-बथुयेका शाक, मकोयका शाक, मूली, चौपतिया शाक, तैलादिक स्नेहपदार्थ, ईखका रस, गुडके बने हुए पदार्थ, दही, कांजी, खट्टे फल, मीठे, खट्टे तथा खारे अथवा नमकीन पदार्थ और प्रसन्ना मदिराका भेदका पीना ये सब हितकारी है ॥१८॥१९॥

चाङ्गेरीसदृशैः पत्रैः सुनिषण्णं चतुर्दलम् । शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते ॥ २० ॥

'चौपतिया' इति लोके ।

सिरियारीका स्वरूप-इसके पत्ते चांगेरी अर्थात् लोनियाके समान होते हैं, एक एक शाखामें चार चार पत्ते होते हैं. प्रायः इसका शाक सजल भूमिमें उत्पन्न होता है, इसको शिरिआरी अथवा चौपतिया कहते हैं ॥

ग्राम्यानूपौदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् । रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्भिषक् ॥ २१ ॥

ग्राम्यानूपौदकैः रसैरित्यन्वयः । आत्मगुप्ता-'आल्कुषी' इति लोके ॥

वैद्य, वातकी खांसीमें-ग्राम, जलाप्रायप्रदेश और जलमें रहनेवाले जीवोंके मांसके रसके साथ अथवा उडद या कौंछके यूषके साथ चावल, जौ गेहूँ और सांठीके चावल खानेको देवे ॥ २१ ॥

दशमूलीकृता श्वासकासहिक्कारुजापहा । यवागूर्दीपनी वृष्या वातरोगविनाशिनी ॥ २२ ॥

दशमूलके द्वारा बनाई हुई यवागू-श्वास, खांसी, हिचकी और वातके रोगोंको नष्ट करती है । अग्निको दीप्त करती है और मैथुनशक्तिको बढाती है ॥ २२ ॥

रसः कर्कोटकानां वा घृतभृष्टः सनागरः । वातकासप्रशमनः शृङ्गीमत्स्यस्य वा पुनः ॥ २३ ॥

केकडेका अथवा शृंगीमछलीका रस घीमें भूनकर सोंठ डालकर पीनेसे वातकी खांसी नष्ट होजाती है ॥ २३ ॥

अथ पित्तकासचिकित्सा ।

कण्टकारीयुगंद्राक्षावासाकर्चूरवालकैः । नागरेण च पिप्पल्या क्वथितं सलिलं पिबेत् । शर्करामधुसंयुक्तं पित्तकासहरं परम् ॥ २४ ॥

कटेरी, बडी कटेरी, दाख, अडूसा, कचूर, सुगन्धवाला, सोंठ और पीपल इनका क्वाथ बनाकर मिश्री और सहत मिलाकर पीनेसे पित्तकी खांसी दूर होती है ॥ २४ ॥

अथ कफकासचिकित्सा ।

पिप्पली कट्फलं शुण्ठी शृङ्गी भार्ङ्गी तथोषणम् । कारवी कण्टकारी च सिन्दुवारो यवानिका ॥ २५ ॥ चित्रको वासकश्चैषां कषायं विधिवत्कृतम् । कफकासविनाशाय पिबेत् कृष्णारयोयुतम् ॥ २६ ॥

पीपल, कायफल सोंठ, काकडासिंगी, भारंगी, कालीमिर्च, कालाजीरा या कलौंजी, कटेरी, सम्हालू, अजवायन, चीता और अडूसा इनका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे कफकी खांसी दूर हो जाती है, इसको 'पिप्पल्यादि क्वाथ' कहते हैं ॥ २५–२६ ॥

अथ क्षतजकासचिकित्सा ।

इक्षिवक्षुवालिकापद्ममृणालोत्पलचन्दनम् । मधुकं पिप्पली द्राक्षा लाक्षा शृङ्गी शतावरी ॥ २७ ॥ द्विगुणा च तुगाक्षीरी सितासर्वचतुर्गुणा । लिह्यात्तन्मधुसर्पिर्भ्यां क्षतकासनिवृत्तये ॥ २८ ॥

इक्षुबालिका—इक्षुभेदः, 'चन्द्र' इति लोके । पद्मम्पद्मकाष्ठम् । मृणालं बिसम् । उत्पलम्कमलम् । चन्द्रनमत्र धवलम् , चूर्णत्वात् । शृङ्गी-कर्कटशृङ्गी । तुगाक्षीरी-वंशरोचना, सा च इक्षोर्द्विगुणा ।

ईख, इक्षुबालिका—एक प्रकारका तृण अथवा ईख, पद्माख, कमलकी नाल, कमल, चन्दन, मुलहठी, पीपल, दाख, लाख, काकडाशिंगी, सतावर, ईखसे दुगुना वंशलोचन और सबसे चौगुनी मिश्री लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके सहत और घीके साथ चाटनेसे क्षतजन्य खांसी नष्ट हो जाती है ॥२७–२८॥

अथ क्षयजकासचिकित्सा ।

चूर्णं काकुभमिष्टं वासकरसभावितं बहून् वारान् । मधुघृतासितोपलाभिर्लेह्यं क्षयकासरक्तहरम् ॥ २९ ॥

काकुभं चूर्णम्—ककुभचूर्णम् ।

लोहके चूर्णको अडूसेके रसमें बारम्बार भावना देकर सहत, घी और मिश्रीके साथ चाटे तो क्षयजन्य खांसी दूर होजाती है ॥२९॥

अथ कासरोगसामान्यचिकित्सा ।

ताप्यामानस्य कासेन नासास्रावे स्वरे जडे । क्षवथौ गन्धनाशे च धूमपानं प्रयोजयेत् ॥ ३० ॥ मनः शिलालमरिचमांसीमुस्तेङ्गुदैः पिबेत् । धूमं त्र्यहं च तस्यानु पयश्च सगुडं पिबेत् ॥३१॥

आलम्-हरितालम् ॥

एष कासान्पृथग्द्वन्द्वसर्वदोषसमुद्भवान् । शतैरपि प्रयोगाणामसाध्यान्साधयेद्ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

खांसीके सन्ताप होनेसे नाकमेंसे पानी गिरता हो, स्वर बैठ गया हो, छींक आती हो और गन्ध लेनेकी शक्ति नष्ट होगई हो तो धूम पान करे । मैनशिल, हरिताल, मिरच, बासछड, नागरमोथा, तथा हिंगोट इन सबका चूर्ण करके बीडी बनाकर चिलममें रखकर धूम पान करे और उसके ऊपर गुड मिलाकर दूध पीवे तो एक दोषसे, दो दोषोंसे अथवा सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न हुई खांसी और सैंकडों औषधियोंके सेवन करनेसे जो खांसी अच्छी नहीं हुई हो, वह भी इस धूमपानसे अवश्य नष्ट हो जाती है ॥ ३०–३२ ॥

बदरीदलमालिप्तं शिलयाऽऽतपशोषितम् । तद्धूमपानं सक्षीरं महाकासनिवारणम् ॥ ३३ ॥

मैनशिलको जलमें पीसकर बेरीके पत्तोंपर लेप करके धूपमें सुखा देवे, फिर इसको चिलममें रखकर पीवे तो भयंकर खांसी दूर होजाती है ॥ ३३ ॥

कण्टकारीकृतः क्वाथः सकृष्णः सर्वकासहा । कण्टकार्याः कणायाश्च चूर्णं समधु कासहृत् ॥ ३४ ॥

कटेरीके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डाल करके पीनेसे सब प्रकारकी खांसी दूर होजाती है, कटेरी और पीपल इन दोनोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे खांसी दूर हो जाती है ॥ ३४ ॥

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागान् प्रकल्प्याक्षसमानमीषाम् । पलार्द्धमानं मरिचं प्रदेयं पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥३५॥ सिता समस्तेन समाऽथ चूर्णं रोगानिमानाशु बलान्निहन्ति । कासज्वरारोचकमेहगुल्मश्वासाग्निमान्द्यग्रहणीविकारान् ॥ ३६ ॥

लौंग १ तोला, जायफल १ तोला, पीपल १ तोला, मिरच २ तोले, सोंठ १६ तोले और सबकी बराबर उत्तम सफेद बूरा लेवे, इन सबका चूर्ण अथवा गोली बनाकर खानेसे खांसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह गुल्म, श्वास, मंदाग्नि और ग्रहणीविकार तत्काल नष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

कुनटी सैन्धवं व्योषं विडङ्गामयहिङ्गुभिः । लेहः साज्यमधुः कासश्वासहिक्कानिवारणः ॥ ३७ ॥

मैनशिल, सैंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल वायविडंग, कूठ, और भूनी हींग इन सबका चूर्ण करके चाटनेसे खांसी, श्वास और हिचकी दूर होजाती है ॥ ३७ ॥

हरीतकी कणा शुण्ठी मरिचं गुडसंयुतम् । कासश्लेष्मापहं प्रोक्तं परं वह्नेः प्रदीपनम् ॥ ३८ ॥

हरड, पीपल, सोंठ और मिरच इनका चूर्ण करके गुडमें, मिलाकर खानेसे खांसी और कफ नष्ट होजाता है और अग्नि अत्यन्त दीप्त होती है ॥ ३८ ॥

कर्षः कर्षांशपलं पलद्वयं स्यात्ततोऽर्द्ध-कर्षश्च । मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिम-गुडयावशूकानाम् ॥ ३९ ॥

कर्षांशोऽत्रकर्षद्वयम् ।

सर्वौषधिभिरसाध्याः कासा ये वैद्यनिर्मुक्ताः । अपि पूयं छर्दयतां तेषामिद-मौषधं परमम् ॥ ४० ॥

मिरच एक तोला, पीपल दो तोले, अनार ४ तोले, गुड ८ तोले और जवाखार आधा तोला इन सबको एकत्र मिलाकर चाटनेसे भयंकर खांसी नष्ट होजाती है । जो खांसी अनेक प्रकारकी औषधियोंके करनेसे आरोग्य नहीं हो तथा जिसको वैद्योंने भी त्याग दिया हो, वह खांसी इससे शीघ्र नष्ट होजाती है तथा जिस खांसीमें रुधिरकी वमन होती हो, उसके लिये यह औषधि परमोत्तम है ॥ ३९-४० ॥

अथ मरिचादिगुटिका ।

मरिचं कर्षमात्रं स्यात्पिप्पली कर्षसम्मिता । अर्द्धकर्षो यवक्षारः कर्षयुग्मं च दाडिमम् ॥ ४१ ॥ एतच्चूर्णीकृतं युञ्ज्यादष्टकर्षगुडेन हि । शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वावक्त्रे विधारयेत् । अस्याः प्रभावात्सर्वेऽपि कासा यान्त्येव संक्षयम् ॥ ४२ ॥

कालीमिरच १ तोला, पीपल १ तोला, जवाखार ६ मासे और अनारके फलकी छाल २ तोले इन सबको चूर्ण करके आठ तोले गुडमें मिलाकर चौवीस २ रत्तीकी गोलियां बनावे, एक गोलीको मुखमें रखनेसे सर्व प्रकारकी खांसी नष्ट हो जाती है ॥४१ ४२॥

अथ भृगुहरीतकी ।

समूलवल्कच्छदकण्टकार्यास्तुलां ततो द्रोणमितं जलं च । हरीतकीनां शतमेकपात्रेविपाच्य कुर्याच्चरणाम्बुशेषम् ॥ ४३ ॥ तस्मिन् कषाये तनुवस्त्रपूते हरीतकीभिः सहितां गुडस्य । तुलां विनिक्षिप्य पचेत् सुपक्कमेतत्समुत्तार्य सुशीतलं च ॥ ४४ ॥ पलं पलं चापि कटुत्रयं च तथा चतुर्जातपलं विचूर्ण्य । पलानि षट् पुष्परसस्य चापि विनिक्षिपेत् तत्र विमिश्रयेच्च॥४५॥ प्रपूज्यमानो विधिनैष लेहो यथाबलश्चापि यथानलश्च । वातात्मकं पित्तकृतं कफोत्थं त्रिदोषजातान्यपि च त्रिदोषम् ॥ ४६ ॥ क्षतोद्भवश्च क्षयजश्च कासं श्वासश्च हन्यात् सह पीनसेन । यक्ष्माणमेकादशरूपमुग्रं हरीतकी या भृगुणोपदिष्टा ॥ ४७ ॥

पुष्परसः—मधु ॥

जड, छाल और पत्ते समेत कटेरीका सर्वांग चारसौ तोले और हरड सौ तोले लेवे, दोनोंको एक पात्रमें डालकर एक हजार चौवीस तोले जलमें पकावे, पकते पकते जब चौथाई भाग क्वाथ बाकी रहजाय तब उसको उतारकर बारीक वस्त्रमें छानकर रखदेवे। फिर उस छने हुए क्वाथमें पूर्वोक्त पकाई हुई सौ हरड और गुड चारसौ तोले डालकर पकावे, जब अच्छी प्रकारसे पककर अवलेहके समान तैयार हो जाय तब उसको उतारकर शीतल कर लेवे, पश्चात् उसमें सोंठ ४ तोले, कालीमिरच ४ तोले, पीपल ४ तोले, इलायची ४ तोले, दालचीनी ४ तोले, तेजपात ४ तोले, नागकेशर ४ तोले और सहत २४ तोले इन सबको मिला देवे । इस अवलेहको विधिपूर्वक शरीरके बलके अनुसार और अग्निके बलानुसार सेवन करे तो वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, क्षतज, क्षयजश्वास, पीनस और एकादशलक्षणोंवाला महाभयंकर राजयक्ष्मारोग नष्ट होजाता है,

यह भृगुऋषिकी कही हुई 'भृगुहरीतकी' नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४२-४७ ॥

अथ कण्ठकार्यवलेहः ।

कण्टकारीतुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम् । पादशेषं गृहीत्वा च तत्र चूर्णानि दापयेत् ॥ ४८ ॥ पृथक्पलांशान्येतानि गुडूची चव्यचित्रकौ । मुस्तं कर्कटशृङ्गी च त्र्यूषणं धन्वयासकः ॥ ४९ ॥ भार्ङ्गी रास्ना शटी चैव शर्करापलविंशतिः । प्रत्येकश्च पलान्यष्टौ प्रदद्याद् घृततैलयोः ॥ ५० ॥ पक्त्वा लेहत्वमानीय शीते मधु पलाष्टकम् । चतुर्भागं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्याश्च चतुःपलम् ॥ ५१ ॥ क्षिप्त्वा निदध्यात्सुदृढे मृन्मये भाजने शुभे । लेहोऽयं हन्ति हिक्कार्तिकासश्वासानशेषतः ॥५२॥ इति कासाधिकारः ॥

कटेरीका पंचांग चारसौ तोले लेकर एक हजार चौबीस तोले भर जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उसको उतारकर छान लेवे, फिर इस क्काथमें गिलोयका चूर्ण ४ तोले, चव्य ४ तोले, चीता ४ तोले, नागरमोथा ४ तोले, काकडाशिंगी ४ तोले, सोंठ ४ तोले, मिरच ४ तोले, पीपल ४ तोले, धमासा ४ तोले, भारंगी ४ तोले, रासना ४ तोले, कचूर ४ तोले, खांड ८० तोले, घी ३२ तोले, और ३२ तोले तेल इन सबको डालकर उत्तम विधिसे पकावे, जब पकते २ अवलेहके समान हो जाय तब शीतल करके उसमें बत्तीस तोले सहत, वंशलोचन आठ तोले और पीपल सोलह तोले और मिला देवे । इस अवलेहको उत्तम चिकने मट्टीके बासनमें भरके रखदेवे । इसको सेवन करनेसे हिचकी, खाँसी और श्वासरोग नष्ट होजाता है ॥ ४८-५२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृत-वैद्यसंजीवनीभाषाटीकायां कास-रोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ हिक्कारोगाधिकारः ।

तत्र हिक्कारोगविप्रकृष्टनिदानम् ।

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः। शीतपानाशनस्नानरजो धूमात्तथाऽनिलैः ॥ १ ॥ व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघाताऽपतर्पणैः। हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ २ ॥

विदाह करनेवाले, भारी, मलरोधक, रूखे और अभिष्यन्दी ऐसे पदार्थ खानेसे, शीतल जल पीनेसे शीतल अन्न खानेसे, शीतल जलमें नहानेसे, धूल और धुएँके मुख नासिकामें जानेसे, अत्यन्त पवन लगनेसे, अत्यन्त परिश्रमके काम करनेसे, भारी बोझको उठानेसे, अधिकतर मार्ग चलनेसे, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे और उपवास आदिसे तृप्तिको नष्ट करनेसे मनुष्योंको हिचकी, श्वास और खाँसी उत्पन्न होती है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ हिक्कासंख्यारूपसम्प्राप्तिः ।

वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि । अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ॥ ३ ॥

वायु कफसे मिलकर अन्नजा १, यमला २, क्षुद्रा ३ गम्भीरा ४, महती ५ इन पांच प्रकारकी हिचकियोंको उत्पन्न करती है ॥३॥

अथ हिक्कासामान्यलक्षणम् ।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन्। स दोषवानाशु

हिनस्त्यसून् यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ॥ ४ ॥

वायुरत्र सोदानप्रणो बोद्धव्यः। उदेति ऊर्ध्वं याति। सस्वनः हिगिति शब्दवान्। ऊर्ध्वगमनं विशिनष्टि--यकृदित्यादि। प्लिह इति शब्दोऽपि अस्ति दीर्घत्वविकल्पात्। मुखादिति ल्यबलोपे पञ्चमी। तेन यकृत्प्लीहान्त्राणि मुखमानीय आक्षिपन् निःसारयन्निव इत्यर्थः। वायुः दोषवान् दोषोऽत्र कफः तद्वान् वायुः कफेन अनुगत इति सम्प्राप्तिः। हिनस्तीति हिक्का। पृषोदरादित्वात् रूपसिद्धिः। हिगिति शब्दं करोति ॥

बारम्बार हिक हिक्ऐसा शब्द करती हुई और यकृत्, प्लीहा तथा आंतोंको खींकर मुखमें लाती हुई एसी जो उदानवायु प्राणवायुके साथ मिलाकर ऊँची गतिसे चलती है और कफके अनुसरण होकर प्राणियोंके जीवनका तत्काल नाश करती है। इसमें हिक् हिक्, ऐसा जो शब्द होता है इसलिये पंडित लोग इसको 'हिक्का' कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ हिक्कापूर्वरूपम्।

कण्ठोरसोर्गुरुत्वञ्च वदनस्य कषायता।
हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ ५ ॥

वदनस्य कषायता वातात् ॥

कण्ठ और छातीमें भारीपन, वातकी अधिकताके कारण मुखमें कसैलापन और पेटका फूलना ये हिचकीके पूर्वलक्षण हैं, अर्थात् जब हिक्कारोग उत्पन्न होनेको होता है तब उससे कुछ काल पहिले ये लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

अथान्नजाहिक्कालक्षणम्।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः।
हिक्कयेदूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ६ ॥

अनिलः---प्राणो वायुः ॥

अत्यन्त अन्न-पानीके सेवन करनेसे एक साथ प्राणवायु दबकर ऊर्ध्वगति होकर हिक् हिक् ऐसा शब्द करती है, उसको वैद्य 'अन्नजा हिक्का' कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ यमलाहिक्कालक्षणम्।

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का सम्प्रवर्तते।
कम्पयन्ती शिरो ग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥

बहुत देरमें एक साथ दो दो वेगोंसे जो हिचकी आवे तथा शिर और गरदनको कँपावे, उसको वैद्य 'यमला हिक्का' कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ क्षुद्राहिक्कालक्षणम्।

विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्तते।
क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात्प्रधावति ॥ ८ ॥

विकृष्टकालैः--चिरेण। जत्रुः--कक्षोरसोः सन्धिः ॥

जो हिचकी बहुत देरमें बारंबार कण्ठ हृदयकी संधिसे चलती है, उसको 'क्षुद्रा हिचकी' कहते हैं ॥ ८ ॥

गम्भीराहिक्कालक्षणम्।

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी। अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता ॥ ९ ॥

अनेकोपद्रववती—तृष्णाज्वरादियुक्ता ॥

जो हिचकी नाभिसे उत्पन्न होकर भयंकर रूप धारण करके गम्भीर शब्द करती है तथा जिसमें तृषा और ज्वरादि उपद्रव होते हैं, उसको 'गम्भीरा हिचकी' कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ महतीहिक्कालक्षणम।

मर्माणि पीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते।
महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकम्पिनी ॥ १० ॥

मर्माणि--वस्तिहृदयशिरःप्रभृतीनि ।

जो हिचकी सम्पूर्ण गात्रोंको कम्पायमान करती है तथा वस्ति हृदय और मस्तक आदि मर्मस्थानोंको पीडित करतीहुई निरन्तर प्रवर्तित होती है, उसको महती अथवा 'महाहिक्का' कहते हैं ॥ १० ॥

अथ हिक्काऽसाध्यता ।

आकम्पते हिक्कतो यस्य देहो
दृष्टिश्चोर्ध्वं ताम्यते नित्यमेव ।
क्षीणोऽन्नद्विट् क्षौति यश्चातिमात्रं
तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ ॥ ११ ॥

आकम्पते- विस्फार्यत इव । तौ-द्वाविति । आकम्पत इत्यादिना नित्यमेव इत्यन्तेनैकौ हिक्कमानः । क्षीण इत्यादिना अतिमात्रमित्यन्तेनअपरः । तौ द्वौ अन्त्यौ च गम्भीरया महत्या च हि क्कया हिक्कमानौ वर्जयेत् ।

हिचकी आते समय जिस मनुष्यका शरीर पसर जाय और दृष्टि ऊपरको ग्लानियुक्त होकर फैल जावे उसको वैद्य त्याग देवे । तथा जिस मनुष्यका शरीर क्षीण होगया हो, अन्नमें अरुचि हो और छींकें अधिक आवें, उसको भी वैद्य त्याग देवे । तैसेही जिसको गम्भीरा हिचकी अथवा महती हिचकी हो, उसकी चिकित्सा वैद्यको नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥

अथ यमलाहिक्काऽसाध्यता ।

अतिसञ्चितदोषस्य भक्तद्वेषकृशस्य च । व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥ १२ ॥ आयासाच्च समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम् । यमिका च प्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यके अत्यन्त दोषोंका संचय हो, जिसके ऊपर अरुचि होनेके कारण दुर्बलता उत्पन्न हुई हो, जिसका शरीर व्याधियोंसे क्षीण होगया हो, जिसका शरीर वृद्ध हो और जो अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करता हो, उसको उत्पन्न हुई हिचकी तत्काल जीवनको नष्ट करदेती है । तथा परिश्रमसे उत्पन्न हुई हिचकी भी तत्काल मारदेती है, यमलानामवाली हिचकी जो प्रलापसे, पीडासे, मोहसे और तृषासे संयुक्त हो तो वह तत्काल रोगीके प्राणोंको नष्ट करती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अक्षीणस्याप्यदीनस्य स्थिरधात्विन्द्रियस्य च । तस्य साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा ॥ १४ ॥

बलवान्, प्रसन्नचित्तवाला और जिसकी धातु और इन्द्रियाँ स्थिर हैं, ऐसे मनुष्यको उत्पन्न हुई यमला हिक्का साध्य और जो क्षीण है, दीन, होगया है और जिसकी धातु और इन्द्रियाँ स्थिर नहीं हैं, ऐसे मनुष्यको उत्पन्न हुई यमला हिचकी मार देती हैं ॥ १४ ॥

अथ हिक्काचिकित्सा ।

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम् । भेषजं पानमन्नं वा हिक्काश्वासेषु तद्धितम् ॥ १५ ॥

जो औषधि अथवा अन्नपान कफको और वायुको हरनेवाली है, उष्ण है और वायुको अनुलोमन करनेवाली है वे सब औषधि और अन्नपान हिक्कारोगमें और श्वासमें हितकारी हैं ॥ १५ ॥

हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते । ऊर्ध्वाधः शोधनं शस्तं दुर्बले शमनं मतम् ॥ १६ ॥

हिक्का और श्वाससे पीडित मनुष्यको प्रथम तेलकी मालिस करके पश्चात् स्वेदन क्रिया करे और वमन तथा विरेचन देवे, यह हितकारी है । जो हिक्का अथवा श्वासवाला रोगी दुर्बल हो तो उसको शमन औषधि देवे ॥ १६ ॥

प्राणावरोधतर्जनविस्मापनशीतवारिपरि-

षेकैः। चित्रैः कथाप्रयोगैः शमयेद्धिक्कां मनोऽभिघातैश्च ॥ १७ ॥

श्वासको रोकना, तिरस्कार करना, आश्चर्यजनक बातोंको कहना, शरीरपर शीतल जलका छिडकना, चित्रविचित्र कथा वार्ता कहना और मनको खेदित, करनेवाले प्रयोगोंको करना इन सबसे हिक्काको शांत करना चाहिये ॥ १७ ॥

हिक्कार्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम्। मधुकसौवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिबेत् ॥ १८ ॥

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पली शर्करान्विता। नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनंत्रयम् ॥ १९ ॥

सोंठ डालकर औटाया हुआ बकरीका दूध हिचकी वाले मनुष्यको हितकारी है। सहत और कालानमक इनको विजौरेके रसमें मिलाकर पीनेसे हिचकी नष्ट हो जाती है। मुलैठी और सहत-१, पीपल और मिश्री-२, सोंठ और गुड-३, इन तीनों नस्योंमेंसे किसी एक नस्यको देनेसे हिचकी दूर होती है॥१८॥१९॥

प्रवालशङ्खत्रिफलाचूर्णं मधुघृतप्लुतम्। पिप्पली गैरिकं चेति लेहो हिक्कानिवारणः ॥ २० ॥ नैपाल्या गोविषाणाद्वा कुष्ठात् सर्जरसस्य वा। धूमं कुशस्य वा कृत्वा पिबेद्धिक्काप्रशान्तये ॥ २१ ॥

मूँगा, शंख, हरड, बहेडा, आमला, पीपल और गेरू इनका चूर्ण करके सहत और घीमें मिलाकर चाटनेसे हिचकी दूर होती है। हिक्काको शांत करनेके लिये मैनशिल गायके सींगका अथवा कूठका वा राकका अथवा कुशाका धुआँ पीना चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥

निर्धूमाङ्गारनिक्षिप्तहिङ्गुमाषरजोभवः। हिक्का पञ्चापि हन्त्याशु धूमः पीतो न संशयः ॥ २२ ॥

हींग और उडदोंका चूर्ण करके निर्धूम अंगारोंपर डालकर उसका धुआँ पीवे तो उससे निश्चय पांचों प्रकारकी हिचकी शीघ्र शान्त हो जाती है ॥ २२ ॥

हरेणुकाकणानां च क्वाथो हिङ्गुसमन्वितः। हिक्का प्रशमनः श्रेष्ठो धन्वन्तरिवचो यथा ॥ २३ ॥

रेणुका और पीपल इनका क्वाथ बनाकर हींग डालकर पीनेसे निस्संदेह हिचकी शान्त हो जाती है। यह धन्वन्तरिका वाक्य है॥२३॥

चन्द्रसूरस्य बीजान् क्षिपेदष्टगुणे जले। यदा मृदूनि मृद्गीयात्ततो वाससि गालयेत् ॥ २४ ॥ हिक्कातिवेगविकलस्तज्जलं पलमात्रया। पिबेत्पिबेत्पुनश्चापि हिक्काऽवश्यं प्रशाम्यति ॥ २५ ॥ इति चन्द्रसूररसः ॥

इति हिक्काधिकारः।

हालोंके बीजोंको लेकर अठगुने जलमें पकावे, जब वे पकते पकते गाढे और नरम होजायँ, तब उनको खूब अच्छी प्रकारसे वस्त्रमें छान लेवे इस जलमेंसे हिक्कारोगी बारम्बार चार चार तोले पीवे इस जलको पीनेसे अत्यन्त वेगसे उत्पन्न हुई हिचकी अवश्य शान्त हो जाती है। इसको 'चन्द्रसूररस' कहते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

इति हिक्कारोगाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ श्वासरोगाधिकारः।

तत्र श्वासनिदानम्।

यैरेव कारणैर्हिक्का देहिनां सम्प्रवर्तते। तैरेव बहुभिः श्वासो व्याधिर्घोरः प्रजायते ॥ १ ॥

मनुष्योंको जिन कारणोंसे हिक्कारोग उत्पन्न होता है, उन्हीं बहुतसे कारणोंसे भयंकर श्वासरोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

अथ श्वासभेदाः ।

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा । भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ २ ॥

विशेष करके यह श्वासनामक एक महाव्याधि महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास, इन पांच भेदोंसे पांचप्रकारका गिना जाता है ॥ २ ॥

अथ श्वासपूर्वरूपम् ।

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च । आनाहो वक्त्रवैरस्यं शंखनिस्तोद एव च ॥ ३ ॥

हृदयमें पीडाका होना, शूल, अफारा, पेटका फूलना, मुखमें विरसता और कनपटियोंमें तोडनेसरीखी पीडाका होना ये सब श्वासके पूर्वलक्षण हैं ॥

अथ श्वाससम्प्राप्तिः ।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः । विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासं करोति सः ॥ ४ ॥

विष्वक्व्रजति—सर्वतो विमार्गान् याति । संरुद्धः कफेन रुद्धमार्गः ॥

जब वायु कफयुक्त होकर उस कफसे प्राण, अन्न और जलके बहानेवाले मार्गोंको रोक लेती है और अपने आप उस कफके साथ विचरण करनेसे चारों ओरको रुककर पश्चात् श्वासको उत्पन्न करती है ॥ ४ ॥

अथ महाश्वासलक्षणम् ।

ऊर्ध्वायमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः । उच्चैः श्वसिति सन्नद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥ ५ ॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः । विवृताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥ ६ ॥ दीनस्य श्वसितश्चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम् । महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ ७ ॥

ऊर्ध्वायमानवातः—ऊर्ध्वं नीयमानो वातो यस्य सः । शब्दवत् सशब्दं यथा स्यात् । कीदृक् स शब्दः तद्बोधयितुमाह-मत्तर्षभः इव उच्चैः श्वसिति इति अन्वयः । सन्नद्धः आनद्धः आनाहयुक्त इति यावत् । ज्ञानं शास्त्रम् । विज्ञानं तदर्थविनिश्चयः । विशीर्णवाक् स्खलितवचनः । दीनः—म्लानः । मारकश्चायं महाश्वासः ॥

जिस मनुष्यको महाश्वास होता है, उसकी प्राणवायु शब्द करती हुई ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होती है तब वह मनुष्य उससे महादुःखित होता है जिस प्रकार भागनेसे रोकाहुआ मस्त बैल श्वास लेता है, उसी प्रकार यह मनुष्य निरन्तर श्वास लेता है उसका ज्ञान विज्ञान सब भ्रष्ट होजाता है नेत्र भ्रमयुक्त हो जाते हैं आंखें और मुख फैल जाता है मूत्र और मल रुकजाता है जीभ तुतला जाती है दीन होजाता है और इसके श्वासका शब्द दूरसे ही सुनाई देता है इस महाश्वाससे पीडित रोगी तत्काल मर जाता है वह श्वास मनुष्योंके मारनेके लिये ही उत्पन्न होता है ॥ ५-७ ॥

अथोर्ध्वश्वासलक्षणम् ।

ऊर्ध्वं श्वसिति योऽत्यर्थं नः च प्रत्याहरत्यधः । श्लेष्मावृतमुखस्रोतःक्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥ ८ ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यँस्तु विभ्रान्ताक्षः इतस्ततः । प्रमुह्यन् वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥ ९ ॥ ऊर्ध्वं श्वासे प्रकुपिते ह्यधः श्वासो निरुद्ध्यते । मुह्यतस्तान्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्य निहन्त्यसून् ॥ १० ॥

सर्वेषु श्वासेषु अर्ध्वं श्वासोऽत्र अत्यर्थमिति विशेषः । न च प्रत्याहरत्यधः—न श्वासमधः

करोति श्लेष्मावृतेत्यादि । श्लेष्मणाऽऽवृतं यन्मुखं स्रोतांसि च तैः क्रुद्धो यो मन्धवहस्तेन आर्दितः। विपश्यन्–इतस्ततो विकृतं यथा स्यादेवं पश्यद्। अधः श्वासो निरुद्ध्यते–श्वासो नाधः प्रवर्तत इत्यर्थः। मुह्यतः–मोहं प्राप्नुवतः। ताम्यतः-ग्लानि प्राप्नुवतश्च ऊर्ध्वश्वासः असून् प्राणान् हन्ति ॥

जिस मनुष्यको ऊर्ध्वश्वास उत्पन्न होता है, उस मनुष्यका बहुत ऊँचा श्वास चलता है उसका कभी नीचेका श्वास नहीं जाता, मुख और सम्पूर्ण शरीरके छिद्र कफसे घिर जानेके कारण वायु कुपित होकर तीव्र पीडाको करती है, उनकी दृष्टि सदैव ऊपरको रहती है आंखोंको चारों ओरको चकराकर विकृतरूपसे देखता है मूर्च्छित होता है वेदनासे पीडित होता है मुख सूखजाता है और अत्यन्त बेकली होती है, ऊर्ध्वश्वासके कुपित होनेपर नीचेको श्वास प्रवर्त्तित नहीं होता और वह ऊर्ध्वश्वास मोहको प्राप्त हुए और ग्लानिको प्राप्त हुए उस मनुष्यके जीवनको नष्ट करता है । सर्व प्रकारके श्वासोंमें यह ऊर्ध्वश्वास बहुत ऊँचेसे चलता है, यह विशेष है ॥ ८–१० ॥

अथ छिन्नश्वासलक्षणम्।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः। न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुजार्दितः ॥ ११ ॥ आनाहस्वेद मूर्च्छार्तो दह्यमानेन वस्तिना । विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन् रक्तैकलोचनः ॥ १२ ॥ विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन् नरः। छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥ १३ ॥

विच्छिन्नं–सविच्छेदम्। सर्वप्राणेन–सर्वबलेन। मर्मच्छेदरुजार्दितः-–हृदयशिरच्छेदवेदनयेन पीडितः। दह्यमानेन वस्तिना उपलक्षितः। विप्लुताक्षः–अश्रुपूर्णनेत्रः। विचेताः-–उद्विग्नचित्तः। छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः। यस्तु श्वसिति विच्छिन्नमित्यादिलक्षणयुक्तो यः स नरः छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः पीडितो बोद्धव्यः। मारकश्चायं भिन्नश्वासः॥

जिसके छिन्नश्वास उत्पन्न होता है, वह दुःखित होकर रह रहकर अपने सम्पूर्ण बलसे श्वासको त्यागता है। मर्मस्थानोंमें छेदनेसरीखी पीडा होती है। समयपर श्वास लेनेको असमर्थ होता है । पेटके अफरनेसे, पसीनेसे, मूर्च्छासे और मूत्राशयके दाहसे दुःखी होता है नेत्र जलसे डुबेडुबेसे रहते हैं, शरीर अत्यन्त क्षीण होजाता है । निरन्तर हांफता रहता है, चित्तमें उद्वेग होता है। वृथा बकवाद करता है, मुख सूख जाता है, शरीरका रंग बदल जाता है अथवा बिगड जाता है और एक आंख लाल होजाती है। इन लक्षणोंवाला छिन्नश्वाससे पीडित मनुष्य तत्काल प्राणोंको त्याग देता है। यह छिन्नश्वास मारनेके लिये ही उत्पन्न होता है ॥ ११–१३ ॥

अथ तमकश्वासलक्षणम्।

प्रतिलोमो यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते। ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ १४ ॥ करोति पीनसं तेन कण्ठे घुर्घुरकं तथा। अतीव तीव्रवेगश्च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ १५ ॥ प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते सन्निरुध्यते। प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः । तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥ १७ ॥ तथाऽस्योध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम्। न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः॥ १८ ॥ पार्श्वे तस्यावगृ-

ह्लाति शयानस्य समीरणः । आसीनो लभते सौख्यमुष्णञ्चैवाभिनन्दति॥ १९॥ उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान् । विशुष्कास्यो मुहुः श्वासी मुहुश्चैवावधम्यते ॥ २० ॥ मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते । स याप्य स्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ २१ ॥

संगृह्य—व्यथया । समुदीर्य—वर्द्धयित्वा । पीनसं-नासास्रावम् । तेन श्लेष्मणा घुर्घुरं घुरघुरशब्दम् । प्राणप्रपीडकं प्राणाधिष्ठानहृदयप्रपीडकम् । प्रताम्यति-तमसि प्रविशतीव । वेगेन—श्वासवेगेन । 'सन्निरुध्यते निश्चेष्टो भवति' इति चरकः । 'सन्निरुध्यतेऽश्वासः' इति जैयटः । श्लेष्मणा मुच्यमानेन निर्गच्छता । सुखं-सुखमिव । उध्वंसते-व्यथितो भवति । शयानः-शयननिहिताङ्गः । अवगृह्णातिपीडयति । उष्णञ्चैवाभिनन्दति इत्यनेन तमको वातकफारब्ध इति बोद्धव्यः । उच्छ्रिताक्षोऽश्रू नाक्षः ललाटेन स्विद्यता उपलक्षितः । अवधम्यते गजारूढस्येव सर्वं गात्रं चाल्यते । तमकस्यैव पित्तानुबन्धजनितज्वरादियोगेन ॥

जब वायु अपने मार्गको छोडकर कुमार्गी होकर नाडियोंमें प्राप्त होती है तब गरदनको और शिरको जकडकर कफको बढाकर उस कफसे नाकमें पीनस, कण्ठमें घुर घुर शब्दको और हृदयको पीडित करनेवाले तीव्र श्वासको उत्पन्न करता है । यह श्वास जिस मनुष्यको होता है, वह मनुष्य अपनेको घोर अन्धकारमें पडाहुआ देखता है, त्रासको प्राप्त होता है, श्वासके वेगसे चेष्टारहित होजाता है, खांसीके बारंबार आनेसे मूर्च्छित होजाता है, कफके निकलते समय अत्यन्त दुःख होता है, जब कफ निकल जाता है तो थोडी देरके लिये चैन पडता है, कण्ठमें पीडा होती है, बोलते समय कष्ट होता है; सोते समय लेटनेपर वायुके कारण पसलियोंमें अत्यन्त पीडा होती है, उठबैठनेपर कुछ आराम मालूम होता है, निरंतर ऊष्ण पदार्थोंकी इच्छा करता है, नेत्र ऊँचे सूजेसे रहते हैं, मस्तकमें पसीना आता है, अत्यन्त पीडा होती है, मुख बारंबार सूखा करता है; बारंबार श्वास ले लेकर हाथीपर बैठे मनुष्यके समान हिलता है । यह श्वास मेघोंके उदय होनेसे, वर्षासे, शीतसे, पूर्वकी पवनसे और कफको हरनेवाले पदार्थोंके सेवन करनेसे वृद्धिको प्राप्त होता है । यह तमक श्वास याप्य है । जो नवीन हो तो कदाचित् साध्य भी होता है । श्वासके वेगसे चेष्टारहित होजाता है, ऐसा जो लक्षणोंमें कहा है, सो चरकके मतानुसार कहा है, किंतु जैयट तो ऐसा कहता है कि 'उस मनुष्यका श्वास रुकजाता है ।' 'तमक' श्वासवाले मनुष्यके उष्ण वस्तुओंकी अभिलाषा उत्पन्न होती है' ऐसा जो लक्षणोंमें कहा है सो ऊपरसे जानना । कारण तमक श्वास वात और कफसे उत्पन्न होता है ॥ १४-२१ ॥

अथ प्रतमकश्वासलक्षणम् ।

ज्वरमूर्च्छापरीतश्च विद्यात्प्रतमकं भिषक् ॥ २२ ॥

जो तमकश्वास ज्वर, और मूर्च्छासे अत्यन्त युक्त हो तो उसको 'प्रतमकश्वास' कहते हैं ॥२२

अथ मतान्तरम् ।

उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः । तमसा वर्द्धतेऽत्यर्थं शीतलैश्च प्रशाम्यति ॥ २३ ॥ मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकन्तु तम् ॥ २४ ॥

उदावर्तः-रोगविशेषः । रजः-धूलिः । अत्र अजीर्ण-मामादि । क्लिन्नं-विदग्धम् । कायनिरोधः-अङ्गयोगानां निरोधः तस्मादुत्पन्नः

अथवा क्लिन्नकायः वृद्धनरः निरोधः वेगानां तु सप्तदशविधः ॥

उदावर्त. रज, आम आदि अजीर्ण और योगका निरोध करनेसे, वृद्ध अवस्था होनेसे और मूत्रादि सत्रह वेगोंके रोकनेसे उत्पन्न हुआ तथा अन्धकारसे बढनेवाला और शीतल पदार्थोंसे शांत होनेवाला ऐसा जो श्वास होता है, उसको 'प्रतमक' कहते हैं। इसमें रोगीको ऐसा प्रतीत होता है कि, मैं घोर अन्धकारमें पडा हूँ ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ क्षुद्रश्वासलक्षणम्।

रुक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रवातमुदीरयन्। क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखो नाङ्गप्रबाधकः ॥ २५ ॥ हिनस्ति न च गात्राणि न च दुःखं यथेतरे। न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम् ॥ २६ ॥ नेन्द्रियाणां व्यथां चापि काञ्चिदुत्पादयेद्रुजम्। स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥ २७ ॥

क्षुद्रः अल्पनिदानलिङ्गः। उदरीयन्-ऊर्ध्वं गच्छन्। दुःखः-दुःखप्रदः। इतरे चत्वारः श्वासाः तथा नायम्। सर्वं महाश्वासादयोऽपि अव्यक्तलक्षणाः सन्तः साध्याः ॥

रूक्षतासे और अत्यन्त परिश्रम करनेसे उत्पन्न हुआ जो श्वास, उसको 'क्षुद्रश्वास' कहते हैं वह वायुको बढाता है, किन्तु अत्यन्त दुःख नहीं देता है तथा अन्यान्य दूसरे श्वासोंके समान शरीरको पीडित करनेवाला और दुःखदायक भी नहीं है, अन्नपानोंकी योग्य गतिको नहीं रोकता है, इंद्रियोंको व्यथित भी नहीं करता है और वेदनाको भी नहीं करताहै, यह क्षुद्रश्वास साध्य है और दूसरे महाश्वासादि जो चार प्रकारके श्वास हैं, उनके यदि लक्षण प्रगट नहीं हुए हों तो वे भी साध्य हैं॥२५-२७

अथ श्वाससाध्यासाध्यता।

क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥ २८ ॥ कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा। यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु वै ॥ २९ ॥

बहवः ज्वरादयः ॥

इन पांचों श्वासोंमें क्षुद्रश्वास सुखसाध्य है, तमक श्वास कष्टसाध्य है और बाकीके तीनों श्वास असाध्य हैं। तमकश्वास भी जो दुर्बल मनुष्योंको उत्पन्न हुआ हो तो असाध्य है। ज्वरादिरोग प्रायः प्राणोंको हरनेवाले हैं, परन्तु श्वास और हिचकीके समान तत्काल प्राणोंको हरनेवाला कोई भी रोग नहीं है ॥ २८-२९ ॥

अथ श्वासचिकित्सा।

श्वासहिक्कातुरं प्रायः स्निग्धैः स्वेदैरुपाचरेत्। युक्तैर्लवणतैलाभ्यां तैरस्य ग्रथितः कफः ॥ ३० ॥ श्वासो विलयमायाति मारुत श्चोपशाम्यति। स्विन्नं ज्ञात्वा ततश्चैनं भोजयेच्च रसौदनम् ॥ ३१ ॥ स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम्। पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्याय-कफापहम् ॥ ३२ ॥

शृङ्गवेरम्-आर्द्रकम्।

श्वास और हिक्कासे पीडित मनुष्योंको विशेष करके निमक और तेल संयुक्त स्निग्ध, स्वेदन क्रियाओंसे उपचार करे। इस उपचारके करनेसे कफ टूट जाता है तथा श्वास नष्ट हो जाता है और वात भी शांत हो जाता है, स्वेदनक्रियासे जब पसीना निकल चुके, तब उस रोगीको मांसके रसके साथ भात देवे तथा सहतके साथ अदरखका रस पिलावे तो श्वास, खांसी प्रतिश्याय,जुखाम और कफ दूर होते हैं ॥ ३०-३२ ॥

प्रस्थं विभीतकानामस्थि विना साधये-

दजामूत्रे । अयमवलेहो लीढो मधुसहितः श्वासकासघ्नः ॥ ३३ ॥

बहेडे चौंसठ तोले लेकर उनकी गुठली निकाल डाले, फिर उनको बकरेके मूत्रमें पकावे, उसमें सहत मिलाकर चाटनेसे श्वास और खांसी दूर हो जाती है॥ ३३ ॥

देवदारुबलामांसीः पिष्ट्वा वर्तिं प्रकल्पयेत्। तां घृताक्तां पिबेद्धूमं श्वासं हन्ति सुदारुणम् ॥ ३४ ॥

देवदारु, खिरैंटी और बालछड इनको एकत्र पीसकर बत्ती बनावे, उस बत्तीको घीमें सानकर उसका धुआं पान करनेसे महादारुण श्वास भी दूर होजाता है ॥ ३४ ॥

दशमूलीशटीरास्नापिप्पलीविश्वपौष्करैः। शृङ्गीतामलकीभार्ङ्गीगुडूचीनागराग्निभिः ॥ ३५ ॥ यवागूं विधिना सिद्धां कषायं वा पिबेन्नरः । श्वासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिहिक्काकासप्रशान्तये ॥ ३६ ॥

दशमूल, कचूर, रासना, पीपल, अतीस अरंडकी जड, काकडाशिंगी, भुईं आमला, भारंगी, गिलोय, सोंठ और चीता इनकी विधिपूर्वक बनाई हुई यवागू अथवा काथको पीनेसे श्वास, हृदयकी जडता, पसलीकी पीडा, हिचकी और खांसी दूर हो जाती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

दशमूलस्य वा क्वाथः पौष्करेणावचूर्णितः । श्वासकासप्रशमनः पार्श्वशूलनिवारणः ॥ ३७ ॥

दशमूलका काथ बनाकर उसमें अरंडकी जडका अथवा पोहकरमूलका चूर्ण डालकर पान करनेसे श्वास, खांसी और पसलीकी पीडा दूर हो जाती है ॥ ३७ ॥

रम्भाकुन्दशिरीषाणां कुसुमं पिप्पलीयुतम् । पिष्ट्वा तन्दुलतोयेन पीत्वा श्वासमपोहति ॥ ३८ ॥

केला, कुन्द, और शिरस इन सबके फूलोंको पीपलके साथ पीसकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे श्वास दूर होजाता है ॥ ३८ ॥

शृङ्गीमहौषधकणाघनपौष्कराणां चूर्णं शटीमरिचयोश्च सिताविमिश्रम् । क्वाथेन पीतममृतावृषपञ्चमूल्याः श्वासंत्र्यहेण विनिहन्ति हि घोररूपम् ॥ ३९ ॥

काकडाशिंगी, सोंठ, पीपल, नागरमोथा, पोहकरमूल, कचूर और कालीमिर्च इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनावे फिर उस चूर्णको खांडमें मिलाकर गिलोय, अडूसा तथा पंचमूलके काथमें मिलाकर पीवे तो भयंकर श्वास भी तीन दिनमें नष्ट हो जाता है ॥

पञ्चमूली तु सामान्या पित्ते योज्या कनीयसी महती मारुते देया सैवदेया कफाधिके ॥ ४० ॥

जहां 'पंचमूली' शब्द साधारण है, तहां पित्तपर लघु पञ्चमूली और वातपर तथा कफाधिक्यवातपर बृहत्पञ्चमूली लेना चाहिये॥४०

कूष्माण्डकशिफाचूर्णं पीतं कोष्णेन वारिणा । शीघ्रं शमयति श्वासं कासश्चापि सुदारुणम् ॥ ४१ ॥

पेठेकी जडके चूर्णको कुछ कुछ गरम जलके साथ पीनेसे श्वास और दारुण खांसी दूर हो जाती है ॥ ४१ ॥

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां कणां रास्नां शटीं गुडम् । कटुतैलं लिहन् हन्याच्छ्वासान् प्राणहरानपि ॥ ४२ ॥

हलदी, मिरच, दाख, पीपल, रास्ना, कचूर और गुड इन सबको सरसोंके तेलमें मिलाकर चाटनेसे भयंकर प्राणोंको हरनेवाला भी श्वास नष्ट हो जाता है ॥ ४२ ॥

अथ भार्ङ्गीगुडः ।

शतं संगृह्य भार्ङ्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथा

शतम्। शतं हरीतकीनाञ्च पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ ४३ ॥ पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे वस्त्रनिपीडिते। आलोड्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयास्ततः ॥ ४४ ॥ पुनः पचेत्तु मृद्वग्नौ यावल्लेहत्वमेति तत्। शीते च मधुन स्तत्र षट्पलानि विनिक्षिपेत् ॥ ४५ ॥ त्रिकटु त्रिसुगन्धश्च पलमात्रं पृथक्कृ पृथक्कृ यवक्षारं कर्षयुग्मं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ॥ ४६ ॥ भक्षयेदभयमेकां लेहस्यार्द्ध-पलं तथा। श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ ४७ ॥ अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा। स्वरवर्णप्रदो ह्येष जठराग्नेश्च दीपनः। नाम्ना भार्ङ्गी-गुडःख्यातो भिषग्भिः सकलैर्मतः॥४८॥

भारंगी चारसौ तोले, दशमूलकी औषधि चारसौ तोले और हरड चारसौ तोले लेकर चौगुने जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय, तब उसको उतारकर वस्त्रमें छानलेवे, फिर उसमें चारसौ तोले गुड और उसी क्वाथमेंकी हरड डालकर मन्द मन्द अग्निसे धीरे धीरे पकावे। जब पकते पकते सीरेके समान होजाय, तब उसमें शीतल होनेपर चौबीस तोले सहत मिलादेवे तथा सोंठ चार तोले, मिर्च चार तोले पीपल चार तोले, दालचीनी चार तोले, तेजपात चार तोले, इलायची चार तोले और जवाखार दो तोले, इनका चूर्ण करके मिलादेवे। फिर इसमेंसे प्रतिदिन एक हरड और दो तोले इस अवलेहको सेवन करे तो इससे महादारुण श्वास, पांचप्रकारकी खाँसी, बवासीर, अरुचि, गुल्म, अतिसार और क्षयरोग नष्ट होता है। यह 'भार्गीगुड' नामसे प्रसिद्ध है। भार्ङ्गीगुड अवलेह-स्वर और वर्णको उत्तम करनेवाला और जठराग्निको दीप्त करनेवाला है ॥४३॥४८॥

अथ महाकट्फलादियोगः।

अष्टाङ्गचूर्णसंयुक्तं छागक्षीरं प्रयोजयेत्। श्वासं कासान्वितं घोरं हन्यादेतन्न संशयः ॥ ४९ ॥

कायफल, अरंडकी जड, काकडाशिंगी, अजवायन, कलौंजी, सोंठ, मिरच और पीपल इन आठ पदार्थोंको समान भाग लेकर चूर्ण करके बकरीके दूधके साथ पीनेसे घोर खाँसी युक्त भी श्वास अवश्य नष्ट हो जात है ॥ ४९ ॥

अथ दशमूलरसः।

दशमूलरसो देयः श्वासनिर्मूलशान्तये। अवश्यं मरणीयोऽपि जीवेद्वर्षशतं नरः ॥ ५० ॥

श्वासको जडसे नष्ट करनेके लिये दशमूलका रस सेवन करना चाहिये, जो मनुष्य श्वाससे अवश्य मरनेवाला हो, वह मनुष्य भी इसके प्रसादसे सौ वर्षतक जीता है ॥ ५० ॥

अथ श्वासकुठाररसः।

रसो गन्धो विषश्चापि टङ्कणश्च मनःशिला। एतानि कर्षमात्राणि मरिचं चाष्टकर्षकम् ॥ ५१ ॥ कटुत्रयं कर्षयुग्मं पृथगत्र विनिक्षिपेत्। रसः श्वासकुठारोऽयं सर्वश्वासनिवारणः ॥ ५२ ॥

इति श्वासाधिकारः।

पारा एक तोला, गंधक एक तोला, वत्सनाभ एक तोला, सुहागा एक तोला, मैनशिल एक तोला और काली मिर्च आठ तोले इन सबका बारीक चूर्ण करके उसमें दो तोले सोंठका चूर्ण, दो तोले मिर्चका चूर्ण और दो तोले पीपलका चूर्ण अलग अलग मिलादेवे तो यह 'श्वासकुठार' नामवाला रस सिद्ध होता है। इस रसमेंसे दो रत्तीभर पानमें

रखकर खाय, इससे सब प्रकारके श्वास नष्ट होते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैद्यकृत-
वैद्यसंजीवनीभाषाटीकायां
श्वासाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ स्वरभेदाधिकारः ।

तत्र स्वरभेदनिदानसम्प्राप्तिपूर्वकं
सामान्यलक्षणम् ।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसन्दूषणैः प्रकुपिताः पवनादयस्तु । स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधःसः ॥ १ ॥

अध्ययनम्-उच्चैर्वेदादिपाठः । अभिघातः-कंठादिदेशे लगुडादिभिः । एतैरत्युच्चभाषणादिभिश्चतुर्भिः सन्दूषणैरन्यैरपि निजैर्दुष्टहेतुभिः। स्रोतःसु-स्वरवहेषु चतुर्षु प्रतिष्ठां स्थितिं गताः स्वरं हन्युरिति लक्षणम् । स स्वरभेदः षड्विधः वातपित्तकफसन्निपातक्षयमेदोभवभेदैः ॥

अत्यंत ऊंचे स्वरसे बोलनेसे, विषको भक्षण करनेसे ऊंचे स्वरसे वेद--शास्त्रादिकके पाठ करनेसे, कंठ आदि प्रदेशमें लकडी इत्यादिकी चोटके लगनेसे और अन्यान्य अपने अपने दुष्ट कारणोंसे कोपको प्राप्त हुए वातादि दोष स्वरके वहनेवाले स्रोतोंमें स्थित होकर स्वरको नष्ट करते हैं, उस रोगको 'स्वरभेद' कहते हैं। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, क्षयज और मेदज इस रीतिसे स्वरभेद छः प्रकारका है ॥ १ ॥

अथ वातजस्वरभेदलक्षणम् ।

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवत्स्वरञ्च ।

वातसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें-टूटे फूटे धीरे धीरे गधेके स्वरके समान वचन बोलता है तथा उसके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा ये काले पड जाते हैं ॥

अथ पित्तजस्वरभेदलक्षणम् ।

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद् गलेन स च दाहसमन्वितेन ॥ २ ॥

गलदाहः वचनसमय एव बोद्धव्यः ॥

पित्तज स्वरभेदमें--वह मनुष्य दाहयुक्त गलेसे बोलता है तथा उसके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा ये सब पीले पड जाते हैं ॥ २ ॥

अथ कफजस्वरभेदलक्षणम् ।

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् ॥ दिवा सूर्यरश्मिभिः कफस्य अल्पीभावात् ॥

कफज स्वरभेदमें-निरंतर कफसे गला रुकासा रहता है, धीरे धीरे थोडा बोलता है और दिनमें सूर्यकी किरणोंसे कफके कटकर निकलनेसे कुछ अधिक बोलता है ॥

अथ सन्निपातजस्वरभेदलक्षणम् ।

सर्वात्मके भवति सर्वविकारसम्पत् तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ॥ ३ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें- तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं, यह स्वरभेद असाध्य है ऐसा ऋषियोंने कहा है ॥ ३ ॥

अथ क्षयजस्वरभेदलक्षणम् ।

धूम्येत् वाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च स्यादेव चापि हतवाक्परिवर्जनीयः ॥

वाक् धूम्येत--सधूमेव निःसरति क्षयं वाऽऽप्नुयात् वागेव ॥

क्षयज स्वरभेदमें--बोलते समय मुखमेंसे धुआँसा निकलता है अथवा बोलते समय शब्द नष्ट होजाते हैं, इस प्रकार नष्टवाणीवाले मनुष्यको असाध्य समझकर उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥

अथ मेदोजन्यस्वरभेदलक्षणम् ।

अन्तर्गलं स्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्तः ॥ ४ ॥

अन्तर्गलम् गलस्य मध्य एव स्वरं वदति । दिग्धगलः--मेदसा श्लेष्मणाच लिप्तगलः । तृषार्तः--मेदसः उष्मणा अवरोधात् ॥

मेदोजस्वरभेदमें--मनुष्य बहुत देरसे गलेके भीतर ही जो दूसरोंके समझमें नहीं आवे ऐसे शब्द बोलता हैं, मेदसे और कफसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें गला कफसे ढ्लिलासा रहता है और तृषासे पीडित रहता है ॥ ४ ॥

अथ स्वरभेदासाध्यलक्षणम् ।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः । मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो नैव स सिद्धिमति ॥ ५ ॥

क्षीणस्य--क्षयरोगिणः । कृशस्य-अपुष्टस्य ॥

क्षयरोगीका, वृद्धका, दुर्वलमनुष्यका स्वरभेद अथवा बहुत दिनोंका पुराना वा जन्मसे उत्पन्न हुआ, मेदवाले मनुष्यको उत्पन्न हुआ और तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ ऐसा स्वरभेद असाध्य होता है ॥ ५ ॥

अथ स्वरभेदचिकित्सा ।

वातादिजनितश्वासकासघ्ना ये प्रकीर्तिताः । योगास्तानत्र युञ्जीत यथादोषं चिकित्सकः ॥ ६ ॥

वातादिसे उत्पन्न हुए श्वासको और खाँसीको हरनेवाले जो प्रयोग कहे हैं, उन्हीं प्रयोगोंको वैद्यलोग दोषोंकी पद्धतिके अनुसार इस स्वरभेदमें करें ॥ ६ ॥

वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाक्षिकम् । कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं कवल मन्यते ॥ ७ ॥

पलमात्रं पृथक्पृथक् गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः । तेन निष्कृष्यते श्लेष्मा स्वरश्चाशु प्रसीदति ॥ ८ ॥

जो वातसे स्वरभेद हुआ हो तो लवणके साथ तेलको, पित्तसे स्वरभेद हुआ हो तो सहतके साथ घीको और जो कफसे स्वरभेद हुआ हो तो क्षार तथा चरपरे पदार्थोंके साथ सहतका कवल कराना चाहिये। कवल करानेसे गला, तालु, जीभ और दन्तमूलोंमें रहा हुआ कफ निकलजाता है और स्वर तत्काल साफ होजाता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

आद्ये कोष्णं जलं पेयं भुक्त्वा घृतरसौदनम् । क्षीराम्बुपानं पित्तोत्थे पिबेत्सर्पिरतन्द्रितः ॥ ९ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् । पिबेन्मूत्रेण मतिमान्कफजे स्वरसंक्षये ॥ १० ॥

वातजस्वरभेदमें–घी और मांसके रसके साथ भात खाय और मंदोष्ण जल पीवे। पित्तज स्वरभेदमें आलस्यको छोडकर दूध और पानी तथा घी पीवे और कफजस्वरभेदमें–पीपल, पीपलामूल, मिर्च और सोंठ इनका चूर्ण करके गोमूत्रके साथ सेवन करे ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ निदिग्धिकावलेहः ।

निदिग्धिका तुला ग्राह्या तदर्द्धं ग्रन्थिकस्य तु । तदर्द्धं चित्रकस्यापि दशमूलञ्च तत्समम् ॥ ११ ॥ जलद्रोणद्वये क्वाथ्यं गृह्णीया दाढकं ततः । पूते क्षिपेत्तदर्द्धन्तु पुराणस्य गुडस्य च॥१२॥ सर्वमेकत्र कृत्वा तु लेहवत्साधु साधयेत्। अष्टौ पलानि पिप्पल्यास्त्रिजातकपलं तथा ॥ १३ ॥ मरिचस्य पलं चैकं सर्वमेकत्र चूर्णितम् । मधुनः

कुडवं दत्त्वा तदश्नीयाद्यथानलम् ॥१४॥ निदिग्धिकाऽवलेहोऽयं भिषग्भिर्मुनिभिर्मतः । स्वरभेदहरो मुख्यः प्रतिश्यायहरस्तथा ॥ १५ ॥ कासश्वासाग्निमान्द्यादीन्गुल्ममेहगलामयान् । आनाहमूत्रकृच्छ्राणि हन्याद्ग्रन्थ्यर्बुदानि च॥१६॥

कटेरी चारसौ तोले, पीपलका मूल दो सौ तोले, चीता सौ तोले और दशमूलकी औषधि सौ तोले इन सबको दो हजार अडतालीस तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते दो सौ छप्पन तोले जल बाकी रहजाय, तब उस काथको वस्त्रमें छानकर फिर उस क्काथसे आधा पुराना गुड डालकर अवलेहकी तरह पकावे, जब यह सीरेके समान हो जाय तब इसमें त्रिजातकका और पीपलका चूर्ण बत्तीस तोले और कालीमिरचोंका चूर्ण चार तोले और सहत सोलह तोले मिलावे तो यह 'निदिग्धिकादि अवलेह' तैयार होता है । इस अवलेहका अपनी जठराग्निके बलानुसार सेवन-प्रतिश्यायको नष्ट करनेवाला है तथा खांसी, श्वास, अग्निकी मन्दता, गुल्म, प्रमेह, गलेके रोग, विष्ठाके अवरोधसे पेटका अफरना, मूत्रकृच्छ्र, ग्रन्थि और अर्बुदको नष्ट करता है ॥ ११ ॥ १६ ॥

अथ मृगनाभ्याद्यवलेहः ।

मृगनाभिः ससूक्ष्मैला लवङ्गकुसुमानि च । त्वक्क्षीरी चेति लेहोऽयं मधुसर्पिः समायुतः । वाक्स्तम्भमुग्रं जयति स्वरभ्रंशसमन्वितम् ॥ १७ ॥

कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग, वंशलोचन इनका चूर्ण करके सहत और घीमें मिलाकर चाटनेसे स्वरभेद और जिह्वाकी जडता दूर होती है ॥ १७ ॥

अथ ब्राह्म्याद्यवलेहः ।

ब्राह्मी वचाऽभया वासा पिप्पली मधुसंयुता । अस्य प्रयोगात्सप्ताहात्किन्नरैः सह गीयते ॥ १८ ॥

इति स्वरभेदाधिकारः ॥

ब्राह्मी, वच, हरड, अडूसा और पीपल इनको पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे सात दिनमें किन्नरके समान गायन करसकता है ॥ १८ ॥

इति स्वरभेदाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथारोचकाधिकारः ।

तत्र सनिदानवातारोचकलक्षणम् ।

वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः । अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तः कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन॥१॥

वातादि दोषोंसे, शोकसे, भयसे, पीडासे, लोभसे, क्रोधसे, मनको बिगाडनेवाले भोजन, रूप और गन्धसे अन्नादिपर जो अरुचि उत्पन्न होती है, उसको 'अरोचक' कहते हैं । वातज, पित्तज,कफज शोकादि आगन्तुज और त्रिदोषज ऐसे अरोचक रोग पांच प्रकारका है । वातज अरोचकके लक्षण-तहांवातज अरुचिमें दांत खट्टे और मुख कसैला रहता है ॥ १ ॥

अथ पित्तजारुचिलक्षणम् ।

कट्वम्लमुष्णं विरसञ्च पूति पित्तेन विद्याल्लवणञ्च वक्त्रम् ॥

यतो विदग्धश्लेष्मास्यं लवणभावमुपैति ततो लवणं हि वक्त्रम् ॥

पित्तकी अरुचिमें मुख चरपरा, खट्टा, विरस और दुर्गंधित रहता है। क्योंकि, दाहको प्राप्त हुए कफके खारे होनेके कारण मुख खारा हो जाता है ॥

अथ कफजारुचिलक्षणम् ।

माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यस्निग्धत्वदौर्गन्ध्ययुतं कफेन ॥ २ ॥

तथा पैच्छिल्यं मुखस्य अभ्यन्तरेस्निग्धत्वं-बहिः ॥

कफकी अरुचिमें मुख मधुर, पिच्छिल, भारी, शीतलतायुक्त और दुर्गंधित होजाता है ॥ २ ॥

अथागन्तुजारुचिलक्षणम्।

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात्। स्वाभाविकश्चास्यमथारुचिश्च त्रिदोषजे नैकरसं भवेच्च ॥ ३ ॥

क्रोधादीत्यादिशब्देन अहृद्ययोरशनरूपयोर्ग्रहणम्। स्वाभाविकश्च अविकृतरसम्। त्रिदोषजमाहनैकरसम् अनेकरसमास्यं स्यात् ॥

शोकसे, भयसे, अत्यन्त लोभसे, क्रोधादिकसे, अप्रिय भोजन करनेसे, अप्रियरूपको देखनेसे और अप्रियगन्धको सूँघनेसे, मुख स्वाभाविक रसयुक्त होता है। कुछ विकृति नहीं होती है। त्रिदोषसे उत्पन्न हुई अरुचिमें मुख अनेक रसोवाला होता है ॥ ३ ॥

अथ वातजाद्यरोचकविशेषलक्षणम्।

हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्तात् तृड्दाहचोषबहुलं सकफप्रसेकम्। श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्याद् वैगुण्यमोहजडताभिरथापरञ्च ॥ ४ ॥

हृच्छूलपीडनयुतम्–हृदि शूलेन पीडनं तेन युतम् चोषः–पार्श्वस्थिताग्निनेव सन्तापः। बहुभिः त्रिभिर्दोषैः। बहुरुजम्–उक्तवातादिरोगयुक्तम् वैगुण्यम्मनसो व्याकुलत्वम्। जडता–शून्यता। अपरम्–आगन्तुजम् ॥

वातकी अरुचिमें–हृदयमें शूलके समान पीडा होती है पित्तकी अरुचिमें तृषा, अत्यन्त दाह और अग्निसेवनके समान सन्ताप होता है, कफकी अरुचिमें मुखमेंसे कफ युक्त थूक निकलता है, त्रिदोषकी अरुचिमें उपरोक्त सब लक्षण होते हैं और आगन्तुज कारणोंसे उत्पन्न हुई अरुचिमें मनमें व्याकुलता, मोह और शून्यता होती है ॥ ४ ॥

विशेषविवेचनम्।

भक्तद्वेषभक्ताच्छन्दौ चरकसुश्रुताभ्याम् अरोचकत्वेनैव संगृहीतौ। वृद्धभोजस्त्वेषां लक्षणानि पृथगाह-

प्रक्षिप्तं तु मुखे चान्नं यत्र नास्वादते नरः। अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु ॥ ५ ॥

न आस्वादते–अन्नस्य मिष्टतां न प्राप्नोति। तदन्नं मिष्टं न लगतीति यावत् ॥

भक्तद्वेष और भक्ताच्छन्दको यद्यपि चरक और सुश्रुतमें अरुचिहीमें माना है, तथापि वृद्ध भोजने इनके लक्षण अरुचिसे अलग लिखे हैं। वृद्ध भोज कहता है कि, मुखमें दिया हुआ अन्नका ग्रास अच्छा न लगे तो उसको 'अरोचक' कहते हैं ॥ ५ ॥

चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तु भोजनम्। द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥ ६ ॥

मनसे भोजनका चिन्तन करके, भोजनको देख करके और भोजनका स्पर्श करके जो भोजनपर द्वेष उत्पन्न होता है, उसको 'भक्तद्वेष' कहते हैं ॥ ६ ॥

कुपितस्य भयार्तस्य तथा भक्ताविरोधिनः। यत्र नान्ने भवेच्छ्रद्धा स भक्तच्छन्द उच्यते ॥ ७ ॥

क्रोधसे, भयसे, पीडासे और प्रेमके अनुरोधसे जो अन्नपर श्रद्धा नहीं रहती, उसको 'भक्ताच्छन्द' कहते हैं ॥ ७ ॥

अथारोचकचिकित्सा।

भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम्। रोचनं दीपनं वह्नेर्जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥ ८ ॥

भोजनसे आगे सदैव लवण और अदरखका भक्षण पथ्य है, यह रुचिका करनेवाला, अग्निको दीप्त करनेवाला और जिह्वा तथा कण्ठको शुद्ध करनेवाला है ॥ ८॥

शृङ्गवेररसं वाऽपि मधुना सह योजयेत्। अरुचिश्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ ९ ॥

सहतके साथ अदरखके रसको पीनेसे अरुचि, श्वास, खांसी, प्रतिश्याय और कफ नष्ट होता है ॥ ९॥

अथाम्लीकापानकम्।

पक्काम्लीका सिता शीतवारिणा वस्त्रगालिता। एलालवङ्गकर्पूरमरिचैरवधूलिता ॥ १० ॥ पानकस्यास्य गण्डूषं धारयित्वा मुखे मुहुः। अरुचिं नाशयत्येव पित्तं प्रशमयेत्तथा ॥११॥

पकी हुई इमली और खांड इनको शीतल जलमें घोलकर उसको वस्त्रमें छानलेवे, फिर उसमें इलायची, लौंग, कपूर और मिरचाका चूर्ण डालदेवे इसको 'अम्लीकापानक' कहते हैं। इस पानक के मुखमें बारंबार कुल्ले धारण करनेसे अरुचि नष्ट होती है और पित्त शांत होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ तक्रम्।

राजिकाजीरकौ भृष्टौ भृष्टं हिङ्गु सनागरम्। सैन्धवं दधि गोः सर्वं वस्त्रपूतं प्रकल्पयेत् ॥१२॥ तावन्मात्रं क्षिपेत्तक्रं यथा स्याद् रुचिरुत्तमा। तक्रमेतद्भवेत्सद्यो रोचनं वह्निवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

भुनी हुई राई, भुना, हुआ जीरा, भुनी हुई हींग, भुनी हुई सोंठ, सैंधानिमक और गायका दही इन सबको मिलाकर वस्त्रमें छान लेवे, फिर जितनीमें वह ठीक होजाय, उतनी ही उसमें छाँछ मिलावे। यह तक्र-तत्काल रुचिको उत्पन्न करता है और जठराग्निको बढाता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ शिखरिणी।

सम्यगावर्तितं दुग्धं निबद्धं दधि माहिषम्। एकीकृत्य पटे घृष्टं शुभ्रशर्करया समम् ॥ १४ ॥ एलालवङ्गकर्पूरमरिचैश्च समन्वितम्। नाम्ना शिखरिणी कुर्याद्रुचिं सकलवल्लभा ॥ १५ ॥

अच्छी प्रकारसे औटाया हुआ दूध और वस्त्रमें बाँधा हुआ पानी रहित भैंसका दही इनको एकत्र करके उसमें उत्तम सफेद चीनी मिलाकर मोटे वस्त्रमें घिसकर छान लेवे फिर उसमें इलायची, लौंग भीमसेनीकपूर और काली मिरच डाले तो सिखरन सिद्ध होजाती है। सब लोगोंको प्रिय यह सिखरन रुचिको उत्पन्न करती है ॥ २४ ॥ १५ ॥

अथ दाडिमादिचूर्णम्।

द्वे पले दाडिमाम्लस्य खण्डं दद्यात्पलत्रयम्। त्रिसुगन्धि पलं चैकं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ १६ ॥ तच्चूर्णं मात्रया भुक्तमरोचकहरं परम्। दीपनं पाचनं च स्यात् पीनसज्वरकासजित् ॥ १७ ॥

खट्टे अनारके दाने आठ तोले, खांड १२ तोले, दालचीनी, इलायची, तेजपात एक तोला इन सबका एकत्र चूर्ण करके मात्रानुसार खाय तो अरुचि नष्ट होजाती है। यह चूर्ण-अग्निको दीप्त करनेवाला पाचन है। तथा पीनस, ज्वर और खाँसीको दूर करता है ॥ १६ ॥ १७॥

अथ लवङ्गादिचूर्णम्।

लवङ्गकङ्कोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्पलं कृष्णजीरकम्। जलं सकृष्णागुरुभृङ्गकेसरं कणा च विश्वा नलदं सहैलया ॥ १८ ॥ तुषारजातीफलवंशरोचनाः सितार्द्धभागाः सकलं विचूर्णितम्। सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं वश्यतमं त्रिदोषजित् ॥ १९ ॥ उरो-

विबन्धं तमकं गलग्रहं सकासहिक्कारुचियक्ष्मपीनसम्। ग्रहण्यतीसारमुरःक्षतं नृणां तथा प्रमेहान्निखिलान्निहन्ति॥२७॥

कंकोलम्--सुगंधविशेषः। नतम्--तगरम्। जलम्--बालकम्। भृङ्गम्--त्वक्। नलदम्--उशीरम्। तुषारः--कर्पूरः॥

लौंग, कंकोल, खस, चन्दन, तगर, नीले कमलके बीज, कालाजीरा, सुगन्धवाला, अगर, तज, नागकेशर, पीपल, सोंठ, उशीर, इलायची, भीमसेनी कपूर, जायफल, वंशलोचन और सबसे आधी खांड लेवे, सबको एकत्र मिलालेवे। इसको सेवन करनेसे रुचि उत्पन्न होती है, तृप्ति होती है, अग्नि दीप्त होती है, बलकी वृद्धि होती है, मैथुनशक्ति बढती है, तीनों दोष शान्त होते हैं तथा छातीका जकडना, तमकश्वास, गलग्रह, खाँसी, हिचकी, अरुचि क्षयरोग, पीनस, संग्रहणी अतिसार, उरःक्षत और सर्व प्रकारके प्रमेह रोग नष्ट होजाते हैं॥ १८–२०॥

अथ यवानीखाण्डवचूर्णम्।

यवानी दाडिमं शुण्ठी तिन्तिडीकाम्लवेतसम्। बदराम्लश्च कुर्वीत चतुःशाणमितानि च। सार्द्धद्विशाणं मरिचं पिप्पली दशशाणिका॥ २१॥ त्वक्सौवर्चलधान्याकजीरकं द्विद्विशाणिकम्। चतुःषष्टिमितैः शाणैः शर्करामत्र योजयेत्॥ २२॥ चूर्णितं सर्वमेकत्र यवानीखाण्डवाभिधम्। चूर्णं जयेत्पाडुरोगं हृद्रोगं ग्रहणीज्वरम्॥ २३॥ छर्दिशोषातिसारांश्च प्लीहानाहविबन्धताम्। अरुचिं शूलमन्दाग्निमर्शोजिह्वागलामयान्॥ २४॥

अजवायन, अनार, सोंठ, इमली अमलवेत और सुखाया हुआ बेरका गूदा ये प्रत्येक, पदार्थ एक एक तोला, कालीमिरच साठ रत्ती, पीपल दो सौ चालीस रत्ती, दालचीनी, कालनिमक, धनियाँ और जीरा प्रत्येक पदार्थ अडतालीस रत्ती भर लेवे, खांड चौबीस शाण लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करले तो 'यवानीखांडवचूर्ण' तैयार हो जाता है। चूर्णको सेवन करनेसे पाण्डुरोग, छातीका दर्द, ग्रहणी, ज्वर, वमन, शोष, अतिसार, प्लीहा, अफारा, मलबन्ध, अरुचि, शूल, अग्निकी मन्दता, बवासीर, जिह्वाके रोग और गलेके रोग नष्ट होजाते हैं॥ २१–२४॥

इति अरोचकाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ छर्द्यधिकारः।

तत्र विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानपूर्वकसंप्राप्तिः।

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि। अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः॥ १॥ आमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात्क्रिमिदोषतः। नार्याश्चापन्नसत्त्वयास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः। बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्भुक्तमुत्क्लिश्यते बलात्॥२॥

आमात्--असम्यक् पक्वात् रसात्। अजीर्णात्-यथास्थितात् भुक्तात्। आपन्नसत्त्वायाः-प्राप्तगर्भायाः। अन्यैर्बीभत्सैर्विकृतः हेतुभिः घृणाकारिभिः अनिष्टश्रवणस्पर्शनदर्शनभक्षणपानैः उत्क्लिश्यते॥

दुष्टैर्दोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः। छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते॥ ३॥

अत्यन्त पतले और चिकने भोजन करनेसे अप्रिय और खारा भोजन करनेसे, विना समय भोजन करनेसे, अत्यन्त भोजन करनेसे,

अहित भोजन करनेसे, आमसे, भयसे, उद्वेगसे, अंजीर्णसे, कृमिदोषसे, गर्भके रहनेसे, बहुत शीघ्र शीघ्र भोजन करनेसे दूषित हुई वायु, दुष्ट हुआ पित्त और दुष्ट हुए कफसे तथा दुष्ट हुए तीनों दोषोंसे ग्लानिजनक पदार्थोंके देखनेसे, सुननेसे, स्पर्श करनेसे अथवा भक्षण करनेसे अथवा बलात्कार भोजन करनेसे और अत्यन्त भयंकर कारणोंसे कुपित दोषोंसे भोजन की हुई वस्तु पीछे उछलकर पांच प्रकारकी छर्दिको उत्पन्न करती है, अब उनके लक्षण कहे जाते हैं ॥ १-३ ॥

अथ वमनपूर्वलक्षणम् ।

हल्लासोद्गारसंरोधौ प्रसेको लवणास्यता । द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ४ ॥

उबकाईका आना, डकारका रुकना, मुखसे पानीका गिरना, मुखमें खारापन और अन्नपानमें अत्यन्त अरुचि होती है । ये वमनके पूर्वलक्षण जानने ॥ ४ ॥

अथ वमनसामान्यलक्षणम् ।

छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः। निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः॥५

छादयन्-पूरयन् । अङ्गभंजनैः-अंगभेदैः । अर्दयन्-अङ्गानि पीडयन् । वक्त्रम् प्रधावितः दोषः छर्दिः इत्युच्यते ॥

जो दोष वेगोंसे मुखको भरता हुआ, अंगोंको तोडता हुआ और पीडाको करता हुआ मुखमें आता है, उसको 'वमन' कहते हैं ॥५॥

अथ वातजच्छर्दिलक्षणम् ।

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः। उद्गारशब्दप्रबलं सफेनं विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम् । कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्तोऽनिलाच्छर्दयतीव दुःखम् ॥ ६ ॥

कषायम्-कषायरसम् । दुःखमिव छर्दयति ।

वातकी छर्दिमें छाती और पसलियोंमें पीडा मुखशोष, मस्तक और नाभिमें दर्द, खांसी, स्वरभङ्ग, अंगोंमें सुई चुभने सरीखी पीडा, डकारका प्रबल शब्द, झागोंयुक्त, टूटीसी, काली, पतली, कसैली और थोडी छर्दि उलटी अत्यन्त कष्टसे तथा बडे वेगसे होती है ॥ ६ ॥

अथ पित्तजछर्दिलक्षणम् ।

मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्द्धताल्वक्षिसन्तापतमोभ्रमार्तः । पीतं भृशोष्णं हरितञ्च तिक्तं धूम्रञ्च पित्तेन वमेत् सदाहम्॥७॥

पित्तकी छर्दिमें-मूर्च्छा, तृषा, मुखमें शोष, मस्तक, तालू और नेत्रोंमें सन्ताप, अन्धेरी आवे, भ्रम हो तथा पीली, बहुत गरम, हरी, कडवी, धुएँ युक्त और दाहयुक्त वमन होती है ॥ ७ ॥

अथ कफजवमनलक्षणम् ।

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्राऽरुचिगौरवार्तः । स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्धि शुक्लं सलोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ ८ ॥

कफकी वमनमें-तन्द्रा, मुखमें मधुरता, कफका गिरना, तृप्तिका होना, निद्राका आना अरुचि और भारीपन इनसे पीडित होता है, रोमाञ्चोंका खडा होना तथा स्निग्ध, गाढी, मीठी, सफेद और अल्प पीडावाली वमन होती है ॥ ८ ॥

अथ त्रिदोषजवमनलक्षणम् ।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबला प्रसक्ता । छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥ ९ ॥

---

१ आम--अर्थात् अच्छी प्रकारसे नहीं पका हुआ अन्नरस । २ अजीर्ण--अर्थात् जैसा भोजन किया हो, वैसाही पेटमें रक्खा रहे, पका न हो ॥

त्रिदोषजन्य वमनमें-शूल, अन्नका अच्छी प्रकारसे परिपाक न होना, अरुचि, दाह, तृषा, श्वास और अत्यन्त मोह होता है, तथा खारी, खट्टी, नीलेरंगकी, गाढी, गरम और रुधिरवाली वमन होती है ॥ ९ ॥

अथागन्तुजवमनलक्षणम् ।

असात्म्यजा च क्रिमिजाऽऽमजा च बीभत्सजा दौर्हृदजा च या हि। सा पञ्चमी ताञ्च विभावयेच्च दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥ १० ॥

एताः पञ्च अपि आगन्तुजत्वेन साम्यात् एकैव, अत एव सा आगन्तुजा पञ्चमी । विभावयेत्-अनुबन्धयेत्

अहित भोजन करनेसे, कृमि तथा आमसे, ग्लानि कारण पदार्थोंके देखनेसे और गर्भवती स्त्रियोंको गर्भके रहनेसे उत्पन्न हुई इस प्रकार आगन्तुज वमन पांच प्रकारकी है और वह आगन्तुज वमन पूर्वोक्त लक्षणोंसे यथादोषानुसार जाननी चाहिये ॥ १० ॥

अथ वमनोपद्रवाः ।

कासः श्वासो ज्वरस्तृष्णा हिक्का वैचित्त्यमेव च । हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्दैपद्रवाः ॥ ११ ॥

वैचित्त्यम्-विकृतचित्तत्वम् । तमकोऽत्र तमः, श्वासपदेनैव तमकाख्यस्यापि श्वासस्य उक्तिः ॥

खांसी, श्वास, ज्वर, तृषा हिचकी, चित्तकीविकृति, घबराहट, छातीकी पीडा और अन्धकारसा दिखाई देना ये सब वमनके उपद्रव हैं ॥ ११ ॥

अथ वमनसाध्यासाध्यता ।

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता । सचन्द्रिकां तां प्रवदन्त्यसाध्यां साध्यां चिकित्सेन्निरुपद्रवां च ॥ १२ ॥

सचन्द्रिकाम्-मयूरपिच्छचन्द्रिकाप्रभायुक्ताम्॥

जो वमन क्षीणमनुष्यको अधिकतर, उपद्रवयुक्त रुधिर और राध सहित तथा मोरपूँछके समान कांतिवाली हो तो असाध्य जाननी और जो वमन उपद्रव रहित होय तो साध्य है ॥ १२ ॥

अथ वमनचिकित्सा ।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्यो मता लंघनमेव तस्मात् । विधीयते मारुतजां विना तु संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ १३ ॥

सर्वप्रकारकी वमन आमाशयमें दोष होनेसे होती हैं, इसकारण इनमें लंघन कराने चाहिये अथवा कफ और पित्तनाशक संशोधन देवे किन्तु वातकी छर्दिमें यह चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १३ ॥

हन्यात्क्षीरोदकं पीतं छर्दिं पवनसम्भवाम् । मुद्गामलकयूषो वा ससर्पिष्कः ससैन्धवः ॥ १४ ॥

क्षीरोदकम्-नाशितस्य क्षीरस्य उदकम् ॥

दही डालकर दूधको फाडकर उस दूधका पानी पीनेसे अथवा घृतसहित और सैंधेनिमकके साथ मूँगका तथा आमलोंका यूष पीनेसे वमन दूर होती है ॥ १४ ॥

गुडूचीत्रिफलानिम्बपटोलैः क्वथितं जलम् । पिबेन्मधुयुतं तेन छर्दिर्नश्यति पित्तजा ॥ १५ ॥

गिलोय, हरड, बहेडा, आमला, नीम और पटोलपत्र इनका क्काथ बनाकर सहत डालकर पीनेसे पित्तजन्य वमन दूर होती है ॥१५॥

हरीतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम् । अधोमार्गीकृते दोषे छर्दिः शीघ्रं निवर्तते ॥ १६ ॥

हरडका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे दोषोंके गुदाके मार्गसे जानेपर वमन शीघ्र दूर होती है ॥ १६ ॥

विडङ्गत्रिफलाविश्वाचूर्णं मधुयुतं जयेत् । विडङ्गप्लवशुण्ठीनां चूर्णं वा कफजां वमिम् ॥ १७ ॥

प्लवम्-कैवर्तमुस्तकं 'गुडतजी' इति लोके ।

वायविडंग, हरड, बहेडा, आमला और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे अथवा वायविडंग, केवटी मोथा और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे कफकी वमन दूर हो जाती है ॥

पिष्ट्वा धात्रीफलं लाजान्छर्कराश्च पलोन्मिताम् । दत्त्वा मधु पलश्चापि कुडवं सलिलस्य च । वाससा गालितं पीतं हन्ति छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥ १८ ॥

आमले, धानकी खील और चार तोले खांड इनको पीसकर चार तोले सहत और सोलह तोले जल डालकर वस्त्रमें छान लेवे, इसको पीनेसे त्रिदोषजन्य वमन दूर हो जाती है॥१८

गुडूच्या रचितं हन्ति हिमं मधुसमन्वितम् । दुर्निवारामपि च्छर्दिं त्रिदोषजनितां बलात् ॥ १९ ॥

गिलोयका हिम बनाकर सहत डालकर पीनेसे त्रिदोष सम्बन्धी अत्यन्त दुर्निवार वमन बलात्कारसे नष्ट हो जाती है ॥ १९ ॥

एलालवङ्गगजकेसरकोलमज्जा-
लाजाप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पलीनाम् ।
चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा
छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजाताम् २०

इलायची, लौंग, नागकेशर, बेरका गूदा, धानकी खीलें, फूलप्रियंगु, मोथा, चन्दन और पीपल इनका चूर्ण बनाकर सहत तथा खांडमें मिलाकर चाटनेसे कफ, वायु तथा पित्तसे उत्पन्न हुई वमन दूर हो जाती है। इसको 'एलादिचूर्ण' कहते हैं ॥ २० ॥

अश्वत्थवकुलं शुष्कं दग्धं निर्वापितं जले । तज्जलं पानमात्रेण छर्दिं जयति दुर्जयाम् ॥ २१ ॥

सूखी हुई पीपलकी तथा मौलसिरीकी छालको जलाकर पानीमें बुझालेवे, उस पानीको पीनेसे तत्काल दुर्जय वमन दूर हो जाती है ॥ २१ ॥

पथ्यात्रिकटुधान्याकजीरकाणां रजो लिहन् । मधुना नाशयेच्छर्दिमरुचिञ्च त्रिदोषजाम् ॥ २२ ॥

हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, धनियां और जीरा इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई वमन और अरुचि नष्ट होजाती है ॥ २२ ॥

बिल्वत्वचो गुडूच्या वा क्वाथः क्षौद्रेण संयुतः । छर्दिं त्रिदोषजां हन्ति पर्पटः पित्तजां तथा ॥ २३ ॥

बेलकी छाल अथवा गिलोयका काथबनाकर सहत डालकर पीनेसे त्रिदोषजन्य वमन दूर हो जातीहै तथा पित्तपापडेकोपीनेसे पित्तकी वमन दूर होजाती है ॥ २३ ॥

आम्रास्थिबिल्वनिर्यूहः पीतः समधुशर्करः । निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ २४ ॥

आमकी गुठली और बेलगिरी इनका काथ बनाकर सहत तथा खांड मिलाकर पीनेसे जिस प्रकार अग्नि आहुतिका नाश करती है, उसी प्रकार इससे वमनसहित अतिसारका नाश होता है ॥ २४ ॥

जम्ब्वाम्रपल्लवशृतं लाजरजःसंयुतं शीतम् । शमयति मधुना युक्तं वमिमतिसारं तृशामुग्राम् ॥ २५ ॥

जामुनके पत्ते और आमके पत्ते इनका काथ बनाकर उसमें धानकी खीलोंका चूर्ण और सहत डालकर पीनेसे वमन, अतिसार और घोर तृषा शांत होती है ॥ २५ ॥

बीभत्सजां हृद्यतमैरिष्टैर्दौर्हृदजां फलैः। लङ्घनैरामजां छर्दिं जयेत्सात्म्यैरसात्म्यजाम् ॥ २६ ॥

बीभत्स पदार्थोंके दर्शन आदिसे उत्पन्न हुई वमनको अत्यन्त प्रियपदार्थोंके उपयोगसे जीते, गर्भसे उत्पन्न हुई वमनको प्रियफलोंके उपयोगसे जीते। आमसे उत्पन्न वमनको लंघनोंसे जीते और अहित पदार्थोंसे उत्पन्न वमनको हितपदार्थोंसे जीते ॥ २६ ॥

कृमिहृद्रोगवद्धन्याच्छर्दिं कृमिसमुद्भवाम्। तत्रतत्र यथादोषं क्रियां कुर्याच्चिकित्सकः ॥ २७ ॥

वैद्य कृमिदोषसे उत्पन्न हुई वमनको कृमिरोगोक्त और हृदयरोगोक्त चिकित्सासे जीते और उस उस रोगमें उस उस दोषानुसार विचारकर क्रिया करे ॥ २७ ॥

सोद्गारायां भृशं छर्द्यां मूर्वाया धान्यमुस्तयोः। समधूकाञ्जनं चूर्णं लेहयेन्मधुसंयुतम् ॥ २८ ॥

बहुत डकारवाली वमन हो तो मूर्वा, धनियां नागरमोथा, मुलहठी और रसौत इनका चूर्ण, करके सहतमें मिलाकर चाटे ॥ २८ ॥

सौवर्चलमजाजी च शर्करा मरिचानि च। क्षौद्रेण सहितं लीढं सद्यश्छर्दिनिवारणम् ॥ २९ ॥

कालानिमक जीरा, खांड और कालीमिरच इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे वमन तत्काल शान्त होजाती है॥२०॥

इति छर्द्यधिकारः सम्पूर्णः

अथ तृष्णाधिकारः।

तत्र तृषानिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः।

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वाऽप्यूर्ध्वं चित्तं पित्तविवर्द्धनैश्च। पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥१॥

स्रोतः स्वपां वाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृट् सम्भवतीह जन्तोः। तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थीक्षयात्तथाऽन्याऽऽमसमुद्भवा च। भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशस्तु ॥ २ ॥

नराणां पित्तं स्वस्थान एव संचितं पित्तं सवातम् पित्ताववर्द्धनैःकट्वम्लोष्णादिभिः कुपितं पितं भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयादुपवासादेश्च वातः कुपितः तद्द्वयमूर्ध्वं प्राप्तम् ऊर्ध्ववशात्पिपासां जनयेत् ॥

मनुष्योंके अपने स्थानमें संचित हुआ पित्त अपने बढानेवाले तीखे, खट्टे तथा उष्ण आदि पदार्थोंसे कोपको प्राप्त होता है और अपने स्थानमें संचित हुई वायु भयसे, श्रमसे तथा बलके क्षय करनेवाले उपवासादिकसे कोपको प्राप्त होती है, इस प्रकार कोपको प्राप्त हुए पित्त और वायु ये दोनों ऊपरको आकर तालुको दूषित करके तृषाको उत्पन्न करते हैं। १ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ क्षतज, ५ क्षयज, ६ आमदोषज और ७ भोजन किये हुए अन्नसे उत्पन्न होनेवाली इस प्रकार तृषा होनेवाली इस प्रकार तृषा सात प्रकारकी है। अब इनके अनुक्रमसे लक्षण कहता हूँ ॥ २ ॥

न केवलं तालुनि एव दूषिते तृषा भवति किन्तु जलवाहिस्रोतःसु अपि। अत आह स्रोतःसु इत्यादि ॥

न केवल तालुके ही दूषित होनेसे मनुष्योंको तृषा उत्पन्न होती है, किन्तु जलवाहितस्रोतोंके दूषित होनेपर भी उत्पन्न होती है ॥

ननु अत्र बहुवचनं न युक्तम्, यतो जलवहे द्वे स्रोतसी सुश्रुतेन उक्ते।

जलको बहानेवाले दो स्रोत हैं, ऐसा सुश्रुत कहता है, फिर यहां 'जलको बहानेवाले स्रोत' ऐसा बहुवचन क्यों कहा ?

उच्यते–तयोरेव अनेकप्रतानयोगान्न दोषः । अपां वाहिषु स्रोतःसु इति जिह्वादेरपि उपलक्षणम् यत आह चरकः रसवाहिनीश्च धमनीर्जिह्वाहृदयगलतालुक्लोमसशोषात् । नृणां देहेषु कुरुतस्तृष्णामतिबलां पित्तानिलौ ॥ ३ ॥

समाधान–दो स्रोतोंका बहुतसे तंतुओंसे योग है, इस कारण यहां बहुवचन आनेमें कुछ भी दोष नहीं आता । 'स्रोत' यह शब्द उपलक्षणरूप है, इस कारण इस शब्दसे जीभ आदिका ग्रहण करना चाहिये । क्योंकि, चरक कहता है कि, पित्त और पवन रसको बहानेवाली नाडी, जीभ, गला, तालू और तृषा लगनेके स्थानके संशोषणके मनुष्योंके शरीरमें प्रबल तृषा उत्पन्न करती हैं ॥ ३ ॥

अथ तृषासामान्यलक्षणम् ।

ताल्वोष्ठकण्ठास्यविशोषदाहौ सन्तापमोहभ्रमविप्रलापाः । सर्वाणि रूपाणि भवन्ति तस्यामुत्पत्तिकाले तु विशेषतो हि ॥ ४ ॥

तालू, हौंफ, कंठ और मुख इनमें शोष तथा दाह संताप, मोह, भ्रम और बकवाद ये सब तृषाके लक्षण हैं । तृषाकी उत्पत्तिके समयमें ये लक्षण विशेष करके उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

अथ वातजतृषालक्षणम् । १

क्षामास्यता मारुतसम्भवायां तोदस्तथा शङ्खशिरःसु चापि । स्रोतोनिरोधो विरसश्च वक्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ५

शङ्खशिरःसुशंखयोः शिरसि च तोदः । स्रोतोनिरोधः-रसाम्बुवाहिनीधमनीनिरोधः ॥

वायुकी तृषामें–मुख उतर आता है, कनपटी और मस्तकमें पीडा होती है, रसको तथा जलको बहनेवाली धमनी रुकजाती हैं । मुखका स्वाद विरस होता है और यह तृषा शीतलजलसे वृद्धिको प्राप्त होती है ॥ ५ ॥

अथ पित्तजतृषालक्षणम् । २

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाह रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः । शीताभिनन्दा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिधूपनञ्च ॥ ६ ॥

विलापः- प्रलापः । प्रततश्च शोषः-अविरतः शोषः । शीताभिनन्दा-शीतेच्छा । परिधूपनम् । कण्ठाद्धूमनिर्गम इव ॥

पित्तकी तृषामें–मूर्च्छा, अन्नपर अरुचि, बकवाद, दाह, नेत्रोंमें लाली, निरंपर शोष, शीतकी इच्छा मुख कडवा होजाता है और कंठमेंसे धुआँसा निकलता है ॥ ६ ॥

अथ कफजतृषालक्षणम् । ३

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णा बलासेन भवेन्नरस्य । निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तथाऽर्दितःशुष्यति चातिमात्रम् ॥ ७ ॥

अग्नौ--जठराग्नौ । कफसंवृते--स्वकारणकुपितेन कफेन उपरिष्टाच्छादिते । बाष्पावरोधात्-अग्नेरूष्मावरोधादवरुद्धानलोष्मणा अम्बुवहस्रोतः शोषणात् । बलासेन--कफेन । नरस्य तृट् भवेत्, तया तृष्णया अर्दितः पीडितः शुष्यति कृशो भवति ॥

जठराग्निके ऊपर भागमें अपने कारणोंसे कोपको प्राप्त हुए कफसे आच्छादित होनेके कारण जठराग्निकी उष्णता रुककर उस उष्णतासे जलको बहानेवाले स्रोतोंका शोषण होनेके कारण कफसे जो तृषा होती है उस तृषासे पीडित हुए मनुष्यमें अत्यंत कृशता होजाती है निद्रा बढजाती है, भारीपन होता है और मुख मधुर होजाता है ॥ ७ ॥

अथ क्षतजतृषालक्षणम् । ४

क्षतस्य रुक्छोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ॥ ८ ॥

क्षतस्य--शस्त्रादिक्षतयुक्तस्य । रुक्--पीडा ॥

शस्त्रादिकसे जखमी हुए मनुष्यको पीडाके होनेसे और रुधिरके निकलनेसे जो तृषा लगती है, उसको 'क्षतज' कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ क्षयजतृषालक्षणम् । ५

रसक्षयाद्या क्षयसम्भवा सा तयाऽभिभूतस्तु निशादिनेषु । पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः ॥ रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत् ॥ ९ ॥

व्यवस्येत्--जानीयात् ॥

रसके क्षय होनेसे जो तृषा उत्पन्न होती है, उसका 'क्षयज' कहते हैं। इस तृषासे पीडित मनुष्य रात दिन पानी पिया करता है, परन्तु कभी सन्तोष नहीं होता। कोई कोई वैद्य इसको सन्निपातकी तृषा भी कहते हैं। सुश्रुतमें जो रसक्षय होनेके लक्षण कहे हैं; वे सब लक्षण कहे हैं; वे सब लक्षण इस तृषामें होते हैं, ऐसा वैद्य जाने ॥ ९ ॥

रसक्षयलक्षणानि सुश्रुतेन उक्तानि-"रसक्षये हृत्पीडा कम्पः शोषः शून्यता तृष्णाच" इति ।

सुश्रुतमें कहा है कि "जब रसका क्षय होता है तो हृदयमें पीडा, कंप, शोष, जडता और तृषा उत्पन्न होती है" ॥

अथामोत्पन्नतृषालक्षणम् । ६

त्रिदोषलिङ्गाऽऽमसमुद्भवा च
हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ॥ १० ॥

जो तृषा आमसे उत्पन्न होती है, उसमें तीनों दोषोंके चिन्ह होते हैं। उसमें हृदयमें पीडा, थूक आना और ग्लानि ये विकार उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥

अथ भुक्तोद्भवतृषालक्षणम् । ७

स्निग्धं तथाऽम्लं लवणञ्च भुक्तं
गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ॥ ११ ॥

लवणञ्चेति चकारात्कटु च ॥

स्निग्ध, खट्टे, खारे, तीखे और भारी अन्नोंको भक्षण करनेसे जो तृषा उत्पन्न होती है, उसमें बारंबार शीघ्र २ जल पीनेकी इच्छा होती है ॥ ११ ॥

अथ तृषोपद्रवा : ।

दीनस्वरः प्रताम्यन् दीनाननहृदयशुष्कगलतालुः । भवति खलुः सोपसर्गा तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥ १२ ॥

शोषिणी--धातुशोषिणी ॥

स्वरका दुबला होजाना, ग्लानि, मुख और हृदयकी दीनता, गले और तालुओंका सूखना इन सब उपद्रवोंवाली तृषा हो तो कष्टसाध्य है और धातुओंको भी शोषण करती है ॥ १२ ॥

अथोपद्रवयुक्ततृषारिष्टम् ।

ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम्। सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम्। घोरोपद्रवयुक्ता तृष्णा मरणाय विज्ञेया ॥ १३ ॥

आदिशब्दादतीसारदीनां ग्रहणम् । अतिप्रसक्ताः--नितरां घोरोपद्रवयुक्ताः अतीव मुखशोषादियुक्ताः ॥

ज्वर, प्रमेह, क्षय, खाँसी, श्वास और अतिसार इत्यादि रोगोंसे पीडित मनुष्योंको, रोगसे कृश हुए मनुष्योंको और वमन करनेवाले मनुष्योंको जो अत्यन्त घोर तृषा लगती है तथा मुखशोष आदि उपद्रवोंसे युक्त जो सर्व प्रकारकी तृषा उत्पन्न होती है वह मारनेके लिये ही उत्पन्न होती है ॥ १३ ॥

अथ तृषाचिकित्सा ।

वातघ्नमन्नपानं मृदु लघु शीतञ्च वाततृष्णायाम् ॥ तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते । स्वादु तिक्तं द्रवं शीतं पित्ततृष्णापहं परम् ॥ १४ ॥

वातकी तृषामें वातनाशक, कोमल, हलके और शीतल ऐसे अन्नपान उपयोग करे

कफकी तृषामें गुडके साथ दहीका सेवन श्रेष्ठ है। मधुर, कडवे, पतले और शीतल पदार्थोंके उपयोग करनेसे पित्तकी तृषा शांत होजाती है ॥ १४ ॥

मुस्तपर्पटकोदीच्यच्छत्राख्योशीरचन्दनैः श्रृतं शीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वर शान्तये ॥ १५ ॥

छत्रा--धान्याकम्, कश्चिद्धात्रीश्च दद्यात् । चन्दनमत्र धवलम्, तस्य अतितृष्णाहरत्वात् । श्रृतमर्द्धपक्कमत्र कर्तव्यम् ॥ इति षडङ्गपानम् ॥

नागरमोथा पित्तपापडा, सुगन्धवाला, धनियाँ, खस और चन्दन इन सबको जलमें औटाकर उस जलको शीतल करके पीनेसे तृषा, दाह और ज्वर शांत होजाता है। इसमें कुछेक आमले भी डालने चाहिये। यहां चन्दनशब्दसे लालचन्दन नहीं, सफेद चन्दन समझना चाहिये। कारण यह है कि, सफेद चन्दनसे तृषा विशेष करके दूर होती है। इसे औटाते समय जब इसमेंसे आधा जलजाय तब इसको अग्निपरसे उतार लेना चाहिये। इस जलको 'षडंगपान' ऐसा कहते हैं ॥ १५ ॥

लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुडविमर्दितम् । काश्मरीशर्करायुक्तं पिबेत्तृष्णार्दितो नरः ॥ १६ ॥

धानकी खीलोंको शीतल जलमें भिगो देवे, फिर उसको मलकर उसमें गुड घोलकर कुम्भेरके फल और मिश्री डालकर पीवे तो उससे तृषाकी पीडा शांत होजाती है ॥ १६ ॥

आस्तरणमार्द्रवासः प्रावरणं चार्द्रवासः स्यात् । तेन पिपासा शाम्यति दाहश्चोग्रोऽपि देहिनां नियतम् ॥ १७ ॥

भीजे हुए वस्त्रपर सोनेसे अथवा भीजे वस्त्रको ओढकर सोनेसे तृषा और उग्र दाह नष्ट होजाता है ॥ १७ ॥

गोस्तनीक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूत्पलैः । नियतं नासिकापीते तृष्णा शाम्यति दारुणा ॥ १८ ॥

ईखका रस और दूध मिलाकर उसमें दाख, मुलहठी सहत और कमल डालकर उसको नासिकाके द्वारा पान करनेसे दारुणतृषा शांत होजाती है ॥ १८ ॥

वैशद्यं जनयत्यास्ये सन्दधाति मुखे जलम् । तृष्णादाहप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ॥ १९ ॥

सहतका कुल्ला मुखमें धारण करनेसे मुखमें विशदता उत्पन्न होती है और गीलापन होता है तथा घोर तृषा और दाह दूर होता है॥१९॥

जिह्वातालुगलक्लोमशोषे मूर्ध्नि निधापयेत् । केशरं मातुलुङ्गस्य घृतसैन्धवसंयुतम् ॥ २० ॥

जीभ, तालु, कण्ठ और तृषा लगनेका स्थान सूखता हो तो बिजौरे नींबूके रसको घीमें तथा सेंधेनिमकमें पीसकर मस्तकपर लगावे तो तुरन्त शांति हो ॥ २० ॥

दाडिमं बदरं लोध्रं कपित्थं बीजपूरकम् । पिष्ट्वा मूर्द्धनि लेपस्तु पिपासादाहनाशनः ॥ २१ ॥

अनार, बेर, लोध, कैथ और बिजौरानींबू इनको एकत्र पीसकर मस्तकपर प्रलेप करनेसे तृषा और दाह शांत हैं ॥ २१ ॥

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासितम् । पाययेद्वामयेच्चाथ तेन तृष्णाप्रशाम्यति ॥ २२ ॥

तृषातुर मनुष्यको सहत डालकर शीतल जल गलेतक पिलाकर वमन करादेवे तो तृषा शांत हो जायगी ॥ २२ ॥

प्रातः शर्करयोपेतः क्काथो धान्याकसम्भवः । जयेत्तृष्णां तथा दाहं भवेत्स्रोतोविशोधनम् ॥ २३ ॥

प्रातःकाल धनियाँका क्वाथ बनाकर उसमें खांड डालकर पीनेसे तृषा और दाह दूर होजाते हैं और स्रोत शुद्ध होजाते हैं ॥ २३ ॥

आमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्च वटरोहकम्। एतच्चूर्णस्य मधुना गुटिकां धारयेन्मुखे तृष्णां प्रवृद्धां हन्त्येषा मुखशोषञ्च दारुणम् ॥ २४ ॥

आमले, कमल, कूठ, धानकी खील और बडके अंकुर इन सबका एकत्र चूर्ण करके सहतमें गोली बनाकर मुखमें रखनेसे महा उग्र तृषा और मुखकादारुण शोष नष्ट होजाता है ॥ २४ ॥

क्षतोद्भवां रुग्विनिवारणेन
जयेद्रसानामसृजश्च पानैः ॥

घावके होने उत्पन्न हुई तृषाको-उसकी पीडाको दूर करनेसे, रसोंको पिलानेसे और रुधिरके पिलानेसे दूर करे ॥

क्षयोत्थितां क्षीरजलं निहन्याद्
मांसोदकं वा मधुरोदकं वा ॥ २५ ॥

रसके क्षय होनेसे उत्पन्न हुई तृषाको-दूधसहित जलाकर, मांसका रस पिलाकर और मधुर पानी शरबत वगैरह पिलाकर शान्त करे ॥ २५ ॥

आमोद्भवां बिल्ववचायुतानां
जयेत्कषायैरथ दीपनानाम् ॥

आमसे उत्पन्न हुई तृषाको-बेलगिरी और वच तथा दीपनपदार्थोंका क्वाथ पिलाकर शान्त करे ॥

गुर्वन्नजामुल्लिखनैर्जयेच्च
क्षयं विना सर्वकृताञ्च तृष्णाम् ॥२६॥

उल्लिखनैः लेखनद्रव्यैः ॥

भारी भोजन करनेसे तृषा उत्पन्न हो तो-कफको उखाडनेवाले पदार्थोंसे दूर करे। क्षय की तृषाको छोडकर सर्वप्रकारकी तृषाको इन्हीं पदार्थोंसे दूर करना चाहिये ॥ २६ ॥

स्निग्धेऽन्ने भुक्ते या तृष्णा स्यात्तां गुडाम्बुना शमयेत्। अतिरोगदुर्बलानां तृष्णां शमयेन्तृणामिहाशु पयः ॥२७॥

पयोऽत्र दुग्धम् ॥

स्निग्ध अन्नको भक्षण करनेसे जो तृषा उत्पन्न हो तो उसको गुडके सरबतसे शान्त करे। अत्यन्त रोगसे दुर्बल हुए मनुष्यकी तृषा दूधसे तत्काल शान्त होजाती है ॥२७॥

मूर्च्छाछर्दितृषानाहस्त्रीमद्यभृशकर्शिताः। पिबेयुः शीतलं तोयं रक्तपित्ते मदात्यये ॥ २८ ॥ सात्म्यान्नपानभैषज्जैस्तृष्णां तस्य जयेत्पुरा। तस्यां जितायामन्योऽपि व्याधिः शक्यश्चिकित्सितुम् ॥२९॥

मूर्च्छा, वमन, तृषा, अफरा, स्त्रीप्रसंग और मद्यपानसे पीडित मनुष्योंको शीतल जल पिलावे। रक्तपित्तमें तथा मदात्ययमें हितकारक अन्न पानोंसे एवं हितकारक औषधियोंसे तृषाको शान्त करे। जब तृषा शान्त हो जाय तो फिर दूसरे रोग भी चिकित्सा करने योग्य होजाते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

तृषा पूर्वमपक्षीणो न लभेत जलं यदि। मरणं दीर्घरोगं वा प्राप्नुयात्त्वरितं नरः ॥ ३० ॥

तृषासे व्याकुल हुए मनुष्यको प्रथम जो जल न मिले तो वह मनुष्य मर जाता है अथवा कोई बड़ा रोग उत्पन्न होता है ॥ ३० ॥

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति। तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न कचिद्वारि वारयेत् ॥ ३१ ॥ अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान् धारयते चिरम्। तोयाभावात्पिपासार्तः क्षणात् प्राणैर्विमुच्यते ॥ ३२ ॥ इति तृषाधिकारः ॥

तृषातुर मनुष्यको मोह उत्पन्न होता है और मोहसे प्राण नष्ट होजाते हैं। इस कारण कभी

किसी अवस्थामें भी जल देना वर्जित नहीं है। अन्नके न मिलनेपर तो प्राणी बहुत दिनों तक जी सकता है किन्तु जलके न मिलनेपर तृषासे पीडित मनुष्य क्षणमात्रमें मर जाता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति तृषाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ मूर्च्छा-भ्रम निद्रा-तन्द्रा संन्यासाधिकारः।

तत्र मूर्च्छानिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः।
वेगाघातादभीघाताद्धीनसत्त्वस्य वा पुनः
करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च।
निविशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ २ ॥

क्षीण हुए बहुत दोषवाले, विरुद्ध भोजनको सेवन करनेवाले, मलमूत्रादिकके वेगको रोकनेवाले, लकडी आदिकी जिनके चोट लगी हो और अल्प सत्त्व गुणवाले, जिनके मनके स्थानोंमें, ज्ञानेन्द्रियोंमे और कर्मेन्द्रियोंमें दोष प्रवेश करते हैं, उनको मूर्च्छा उत्पन्न होती है ॥ १ ॥ २ ॥

बहुदोषस्य-अधिकदोषस्य, न तु अनेकदोषस्य। तदा मूर्च्छा त्रिदोषजैव स्यात्

'बहुत दोषवाले' इस शब्दका अर्थ अधिक दोषवाले' ऐसा समझना। 'अनेक दोषवाले' ऐसा नहीं समझना। कारण यह है कि, यदि ऐसा समझा जाय तो मूर्च्छा तीनों दोषोंके समुदायसे होती है, ऐसा अर्थ होता है।

तथैव अस्तु को दोषः ?

शंका-'मूर्च्छा तीनों दोषोंके समुदायसे होती है। ऐसाही अर्थ होनेमें क्या अनुचितहै ? तत्र पृथग्दोषजानां मूर्च्छानां वक्ष्यमाणत्वात्। वेगाघातात्-मलादेः। अभिघातात् लगुडादिना ॥

समाधान-एक एक दोषसे मूर्च्छा होती है, ऐसा आगे कहा है, इस कारण यहां निदानपूर्वक सम्प्राप्तिके विषयमें तीनों दोषोंके समुदायसे मूर्च्छा होती है, ऐसा कहना उचित नहीं है।

हीनसत्त्वस्य स्वल्पसत्त्वगुणस्यअर्थात् अधिकतमोगुणस्य। यत उक्तम्-' मूर्छा पित्ततमःप्राप्या' इति। करणायतनेषु करणं मनस्तस्य आयतनेषु स्वस्थानेषु बाह्येषु कर्मेन्द्रियेषु। आभ्यन्तरेषु-बुद्धीन्द्रियेषु ॥

'अल्प सत्त्वगुणवाले मनुष्यको मूर्च्छा आती है' इस वाक्यका अर्थ 'अधिक तमोगुणवालेको मूर्च्छा आती है' ऐसा समझना। कारण यह है कि, मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक होता है ॥

अथ मूर्च्छासामान्यलक्षणम्।

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः। तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥ सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत्। मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥ तमोगुणः अज्ञानहेतुः। अभ्युपैति आगच्छति। सुखदुःखव्यपोहकृत्-सुखदुःख ज्ञाननाशकरम्। नष्टे सुखदुःखज्ञाने नरः काष्ठवत्पतति। तां मोहो मूर्च्छेति प्राहुः इत्यन्वयः ॥

संज्ञाको बहानेवाली नाडियोंके वायु आदिसे अवरुद्ध होनेपर सहसा सुखके तथा दुःखके ज्ञानको नष्ट करनेवाला तमोगुण प्राप्त होता

है। इस तमोगुणसे सुख दुःखका ज्ञान नष्ट होकर मनुष्य काष्ठके समान गिरजाता है। यह रोग मूर्च्छा अथवा मोह कहा जाता है। वह मूर्च्छा छः प्रकारकी है ॥ ३ ॥ ४ ॥

मूर्च्छाया मूर्च्छायोऽपि पर्यायः। यत उक्तम्—संज्ञोपघातो मूर्च्छायो मूर्च्छा स्यान्मूर्च्छनं तथा। कश्मलं प्रलयो मोहः संन्यामृतोपमः ॥ ५ ॥

मूर्च्छाका पर्यायशब्द 'मूर्च्छाय' भी है। कहा भी है कि "संज्ञोपघात, मूर्च्छाय, मूर्च्छा मूर्च्छन, कश्मल, प्रलय और मोह ये सब मूर्च्छाके नाम हैं"। जिससे यह मनुष्य मृतकके समान हो जाय ऐसा जो मोह वह 'संन्यास' कहा जाता है ॥ ५ ॥

अथ मूर्च्छाषड्विधत्वम्।

वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च। षट्स्वप्येतासु पित्तन्तु प्रभुत्वेनाऽवतिष्ठते ॥ ६ ॥ यत उक्तम्—'मूर्च्छा पित्ततमःप्राया' इति ॥

१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ रक्तज, ५ मद्यसे उत्पन्न होनेवाली और ६ विषसे उत्पन्न होनेवाली इस प्रकार मूर्च्छा छः प्रकार की है। इन सब प्रकारकी मूर्च्छाओंमें भी पित्त अध्यक्षपनेसे होता है। कहा भी है कि,-मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिकतासे होता है ॥ ६ ॥

अथ मूर्च्छापूर्वरूपम्।

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञानाशो बलक्षयः। सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं तां विभावयेत् ॥ ७ ॥

हृदयकी पीडा, जम्भाइयोंका आना, ग्लानि, संज्ञाका नाश और बलका नाश ये सब मूर्च्छाओंके पूर्व लक्षण हैं, आगे उसके वातादि भेदोंसे अलग अलग लक्षण कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ वातजमूर्च्छालक्षणम्।

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवाऽरुणम्। पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रश्च प्रतिबुध्यते ॥ ८ ॥ वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च। कार्श्यं श्यावारुणा छाया मूर्च्छाये वातसम्भवे ॥ ९ ॥

नीलम्—नीलवर्णम्। कृष्णम्—कज्जलाभम्। अरुणम्- अलक्तरागं। तमः प्रविशति—मूर्च्छति। श्यावारुणा छाया गात्रस्य ॥

वातकी मूर्च्छामें आकाशको नीला, काला अथवा लाल देखता देखता मूर्च्छित हो जाता है, फिर तत्काल चैतन्य अर्थात् होशमें हो जाता है। शरीरमें कम्प अंगोंमें तोडने सरीखी पीडा, हृदयमें पीडा, शरीर कृश होजाता है और शरीरका रंग कालेपनको लिये लाल हो जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ पित्तजमूर्च्छालक्षणम्। २

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा। पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदः प्रतिबुध्यते ॥ १० ॥ सपिपासः ससन्तापो रक्तपित्ताकुलेक्षणः। सम्भिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छाये पित्तसम्भवे ॥ ११ ॥

आकाशको लाल, हरा अथवा पीले रंगका देखता देखता मूर्च्छित होजाय, पसीने युक्त होकर फिर होश हो तृषा लगे, संताप उत्पन्न हो, नेत्र लाल तथा पित्तसे व्याकुल होजायँ, दस्त पतला होने लगे और शरीरकका रंग पीला होजाय तो जानना कि, उसको पित्तसे मूर्च्छा उत्पन्न हुई है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ कफजमूर्च्छालक्षणम्। ३

मेघसंकाशमाकाशं तमोभिर्वा घनैर्वृतम्। पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ १२ ॥ गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेण

चर्मणा । सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छायं कफसम्भवे ॥ १३ ॥

आकाशको बादलोंसे आच्छादित देखकर अथवा घोर अंधकारसे घिरा हुआ देखकर मूर्छित होजाय । फिर बहुत कालमें चैतन्य हो, जिस प्रकार गीले चमडेसे ढकदेते हैं, उसी प्रकार उसका शरीर भारी अंगोंसे युक्त जान पडता है । मुखमें पानी भर भर आवे और उपकाई आवे तो जानना कि, यह कफकी मूर्छा है ॥

मेघसंकाशम्–शुभ्रमेघसंकाशमित्यर्थः । य आह सुश्रुतः–" कफेन पश्येद्रूपाणि श्वेताभ्रप्रतिमानि तु"। घनैर्निविडैस्तमोभिः । गुरुभिरङ्गैरुपलक्षितः । मूर्च्छायः षड्विधः उक्तः सुश्रुतेन ॥

'बादल' यहां जो बादलशब्द कहा सो बादल सफेद समझने । क्योंकि, सुश्रुतने कहा है कि, कफसे सफेद बादलोंके समान रूपोंको देखता है । सुश्रुतने छः प्रकारकी मूर्च्छा कही है ॥

अथ चरकमतेन त्रिदोषमूर्च्छालक्षणम् ।

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवागतः। जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥ १४ ॥

जो मूर्च्छा सन्निपातसे होती है उसमें तीनों दोषोंके चिह्न देखनेमें आते हैं और उसमें मृगीके समान मनुष्य बडे जोरसे गिरजाता है। उससे गिरा हुआ मनुष्य बहुत कालमें चैतन्य होता है ॥ १४ ॥

अपस्मार इवागतस्तेन महता अभिघातेन पतति चिरेण प्रतिबुध्यते ॥ तर्हि तयोः को भेदः ? इत्यत आह--

"सान्निपातिकमूर्च्छायो विना बीभत्सचेष्टितैः॥१९॥" कफेन वमनदन्तघट्टनाक्षिविकृत्यादिभिर्विना पातयति ॥

जब मृगी और सन्निपातकी मूर्च्छाके लक्षण तो एकसेही मिलते हैं, फिर इनमें अन्तरही क्या रहा ? यदि कोई ऐसी शंका करे तो उसके समाधानके लिये चरक कहता है कि " मृगीमें झागोंसहित वमन, दांतोका चबाना और नेत्रोंमें विकृति " इत्यादिक भयानक चेष्टायें होती हैं और सान्निपातिकमूर्च्छामें ये चेष्टायें नहीं होती है ॥ १५ ॥

अथ रुधिरोत्पन्नमूर्च्छानिदानम् ।

पृथिव्यम्भस्तमोरूपं रक्तगन्धस्तदन्वयः। तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ॥ १६ ॥

तमोरूपम्--तमोबहुलम् । मानवाश्च ये तामसाः नतु सात्त्विका राजसाश्च ॥

पृथिवी और जल ये दोनों तमोगुणके अधिक अंशोंयुक्त हैं और गन्ध तथा रुधिर पृथिवीके तथा जलके पदार्थरूप हैं । इस कारण सत्त्वगुणी और रजोगुणी नहीं, किंतु जो तमोगुणी मनुष्य हैं, वे रुधिरकी गन्धसे मूर्च्छित होजाते हैं ॥ १६ ॥

अत्रैके वदन्ति नैव युक्तिः समीचीना, तर्हि चम्पकादिगन्धेनापि मूर्च्छा प्रसज्येत, तत्रापि गन्धस्य पार्थिवत्वात् ॥ अत आह--

द्रव्यस्वभावमित्येके दृष्ट्वा यदपि मुह्यति। दर्शनादसृजस्तज्जाद्गन्धाच्चैव प्रमुह्यति१७

इस विषयमें बहुतसे मत हैं । कोई कहते हैं कि, गन्ध तमोगुणके कार्यरूप पृथिवीका भाग है । इस कारण इससे मनुष्य मूर्च्छित होते हैं, यह युक्ति ठीक नहीं । क्योंकि यदि ऐसा हो, तो चम्पक आदिकी गंध भी पृथिवीसम्बन्धी है, इसलिये उसकी गंधसे भी मूर्च्छा होनी चाहिये ॥

इस युक्तिको छोडकर कितने वैद्य कहते हैं कि, " रुधिरकी गन्धसे नहीं किन्तु रुधिरके देखनेसे अत्यन्त मूर्च्छा होती है। यह रुधिरके ऐसे स्वभाव होनेसे ही होती है " ॥

भोज तो ऐसा कहता है कि, रुधिरके दर्शनसे और गन्धसे भी मूर्च्छा होती है ॥१७॥

अथ रुधिरमूर्च्छालक्षणम्। ४

स्तब्धाङ्गयष्टिस्त्वसृजो गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥ १८ ॥

रुधिरकी मूर्च्छा हो तो शरीर स्तब्ध हो जाता है और गूढ श्वास हो जाता है ॥ १८ ॥

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः। त एव तस्मात्ताभ्यान्तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ॥ १९ ॥

ये गुणाः लघुरूक्षाशुविशदव्यवायितीक्ष्णविकाशिसूक्ष्मोष्णानिर्देश्यरसत्वादयः तैलादौ द्रव्ये व्यस्तास्तीव्राश्च सन्ति, त एव गुणाः विषमद्ययोस्तु तीव्रतरत्वेन स्थिताः। तत्रापि भेदः " त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः" इति ॥

लघुता, रूक्षता, शीघ्रता, विशदता, व्यवायिपन, तीक्ष्णता, विकाशीपन, सूक्ष्मपन, उष्णपन और निरूपण करनेके लिये अशक्य रसयुक्तपन इत्यादि जो गुण तैलादिक पदार्थोंमें अलग अलग रहते हैं और तीव्र हैं, वेही गुण विषयमें और मद्यमें अत्यन्त तीव्रतासे रहते हैं। उनमें भी इतना भेद है कि, मद्यकी अपेक्षा ये गुण विषमें अधिक बलवान् हैं, मद्यमें तथा विषमें ये दोनों गुण होनेसे मद्य और विषसे मूर्च्छा होती है ॥

अथ मद्यजमूर्च्छालक्षणम्। ५

मद्येन प्रलपञ्छेते नष्टविभ्रान्तमानसः। गात्राणि विक्षिपन् भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥ २० ॥

नष्टविभ्रान्तमानसः--नष्टं सर्वथा स्मृतिहीनं विभ्रान्तं रज्जौ सर्पज्ञानयुक्तं मानसं यस्य सः। जरां--जीर्णताम्। तत्--मद्यम् ॥

मद्यकी मूर्च्छामें मन सर्वथा स्मृतिहीन हो जाता है और ऐसी भ्रांति होजाती है कि,रस्सी आदिको साँप समझने लगता है। जबतक पी हुई मदिरा जीर्ण नहीं होती, तबतक मूर्च्छित मनुष्य अपने अंगोंको धरतीपर पटका करता है ॥ २० ॥

अथ विषजमूर्च्छालक्षणम्।

वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युः स्तम्भश्च विषमूर्च्छिते। वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ २१ ॥ विषस्य—मूलकन्दफलपत्रक्षीरादिभेदभिन्नस्य। यथास्वं लक्षणमुक्तं सुश्रुते कल्पस्थाने तल्लक्षणं मद्यापेक्षया तीव्रतरं वेदितव्यम्, न तु संज्ञानाशेन साम्यधर्मात् ॥

विषकी मूर्च्छामें कम्प, निद्रा, तृषा और अन्धकार उत्पन्न होता है, विषके जो मूल, कन्द, फल, पत्र और क्षीरादिक अलग अलग भेद हैं, उनके जो जो लक्षण सुश्रुतके कल्पस्थानमें कहे हैं वे वेही लक्षण मद्यके लक्षणोंकी अपेक्षा अधिक तीव्र हैं ऐसा जानना, किन्तु संज्ञानाश करनेका धर्म मद्यमें और विषमें समान है। कुछ लक्षण समान नहीं है ॥२१॥

अथ मूर्च्छाभ्रमतन्द्रादिपरस्परभेदः।

मूर्च्छा पित्ततमःप्रायो रजः पित्तानिलाद् भ्रमः। तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥ २२ ॥

मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक होता है, भ्रम, रजोगुण, पित्त और वायुसे होता है, तन्द्रा तमोगुण, वायु और कफसे होती है और निद्रा कफ तथा तमोगुणसे होती है ॥२२॥

रजःपित्तानिलाद् भ्रम इति न अत्र समु-

त्वयः । केवलपित्तज्वरे भ्रमस्य उक्तत्वात् । भ्रमश्च चक्रारूढस्येव भ्रमद्वस्तुज्ञानं स्वदेहस्य भ्रमत इव ज्ञानश्च ॥

रजोगुण, पित्त और वायु इन तीनोंके समुदायसे भ्रम होता है, ऐसा नहीं समझना। क्योंकि, केवल पित्तज्वरमें भी भ्रम होता है, ऐसा कहा है । जिस प्रकार घूमते हुए चाकके ऊपर सम्पूर्ण पदार्थ घूमते हुए दिखाई देते हैं, उसी प्रकार सब वस्तुओंको घूमता हुआ देखे और अपने शरीरको भी घूमता हुआ देखे, ये लक्षण जिसमें होते हैं उसको भ्रम कहते हैं ॥

अथ तन्द्रालक्षणम् ।

इंद्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः । निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥

इन्द्रियाणामर्थः प्रयोजनं येषु अर्थाद्विषयेषु । असंवित्तिः-असम्यक्ज्ञानम् इति इंद्रियार्थासम्यग्ज्ञानादि । निद्रायां प्रबुद्धस्य क्लमाभावः, तन्द्रायान्तु प्रबोधितस्यापि क्लम इत्यनयोर्भेदः ॥

निद्रासे घिरे हुएके समान जिसमें विषयोंका ज्ञान नष्ट हो जाय, शरीरमें भारीपन, जम्भाई, तथा चेष्टा प्राप्त हो, उसको तन्द्रा कहते हैं । जब मनुष्यको निद्रा आती है, फिर जागनेपर उसको क्लम नहीं रहता और तन्द्रामें तो जागनेके पश्चात् भी क्लम रहता है । इतनाही निद्रामें और तन्द्रामें भेद है ॥ ३२ ॥

अथ क्लमलक्षणम् ।

योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वाससङ्गतः । क्लमः इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥ २४ ॥

इन्द्रियाणां बुद्धीन्द्रियाणां कर्मेन्द्रियाणाञ्च अर्थः प्रयोजनं विषयग्रहणं तस्य प्रबाधकः प्राबल्येन बाधकः ॥

जो विना ही परिश्रम किये उत्पन्न हो, श्वाससंयुक्त और ज्ञानेंद्रियोंके तथा कर्मेन्द्रियोंके ग्रहणका जो अत्यन्त रोकनेवाला देहमें श्रम होता है, उसको क्लम कहते हैं ॥२४॥

निन्द्रालक्षणम् ।

यदा मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः ॥ २५ ॥

क्लान्ते ग्लाने, श्रान्ते इति यावत् । कर्मात्मानःक्लमान्विताः । कर्मेन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणि च क्लमान्वितानि श्रान्ततानि ॥

जब मन क्लमको प्राप्त होकर थकी हुई ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके विषयके ग्रहणसे रुकता है, तब मनुष्य सो जाता है ॥ २५ ॥

सन्न्याससम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः । संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥ २६ ॥ स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः । प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम् ॥ २७ ॥

आक्षिप्य विनाश्य । संन्यस्यन्ति-मूर्च्छयन्ति । प्राणायतनम्-हृदयम् । संन्यस्तः-मूर्च्छितः । काष्ठीभूतः-क्रियारहितः अत एव मृतोपम इति । सद्यःफलां क्रियाम्-सूचीव्यधनाञ्जनावपीडकपिकच्छुघर्षणवृश्चिकादिदंशनादिरूपाम् ॥

जब हृदयमें रहनेवाले अत्यन्त बलवान् कुपितदोष प्राणोंके स्थानरूप हृदयमें वाणीकी, देहकी तथा मनकी चेष्टाको नष्ट करके बलहीन मनुष्यको मूर्च्छित कर देते हैं, उसको संन्यास कहते हैं । जब वह मनुष्य काष्ठके समान क्रियारहित मृतकके समान होजाता है तब इस मनुष्यके शरीरमें सुई चुभोना, तीक्ष्ण

अंजन लगाना, तीक्ष्ण नस्य देना, कौंचकी फली घिसकर लगानी और बिच्छू आदिसे कटवाना इत्यादि तत्काल फल करनेवाली क्रिया यदि न की जावे तो यह मनुष्य शीघ्र ही मर जाता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ संन्यासमूर्च्छाभेदः।

दोषेषु मदमूर्च्छायौ गतवेगेषु देहिनः। स्वयमप्युपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना ॥ २८ ॥

मदमूर्च्छायौः--मदः अप्रवृद्धः उन्मादः मूर्च्छायः मूर्च्छा ॥

दोषोंके वेग बीतनेपर नहीं बढा हुआ उन्माद और मूर्च्छा अपने आपही शांत हो जाती हैं, किन्तु संन्यास तो विना औषधियोंके शांत होता ही नहीं ॥ २८ ॥

अथ मूर्च्छाचिकित्सा।

सेकावगाहा मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च। शीतानि पानानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥ २९ ॥

मणयश्चन्द्रकान्तादयः। हाराः-मुक्तादिहाराः। शीताः प्रदेहाः-सकर्पूरचन्दनानुलेपनानि। शीतानि पानानि--सितामलकादिपानकानि। गन्धवंति-कर्पूरादिसुगन्धवंति। सर्वासु मूर्च्छासु अनिवारितानि। अस्यायमभिप्रायः-सेकादीनि अन्यासु मूर्च्छासु हितानि एव, किन्तु वातश्लेष्मजास्वपि न निवारितानि तत्रापि पित्तस्य प्राधान्यात् ॥

शीतल जलका सींचना, शीतल जलमें अवगाहन, चन्द्रकांत आदि मणि और मोती आदिके हारोंका धारण, कपूर मिश्रित चन्दनादिकका लेपन, मिश्री संयुक्त और कपूरसे सुवासित किया हुआ आमले आदिके रसका पानक और पंखेकी पवन ये सब उपचार सर्वप्रकारकी मूर्च्छामें हितकारी हैं ॥ २९ ॥

सिद्धानि वर्गे मधुरे पयांसि
सदाडिमा जाङ्गलजा रसाश्च।
तथा यवा लोहितशालयश्च
मूर्च्छासु पथ्याःससतीनमुद्गाः ॥ ३० ॥

सतीनः--कलायः।

मधुर औषधियोंके द्वारा पका हुआ दूध, दाडिमका रस मिलाहुआ जांगलदेशके जीवोंका मांसरस, जौ, लालचावल, मटर और मूँग ये सब मूर्च्छामें पथ्य हैं ॥ ३० ॥

कोलमज्जोषणोशीरकेसरं शीतवारिणा। पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढ्वा कृष्णां वा मधुसंयुताम् ॥ ३१ ॥

बेरकी गिरी, काली मिरच, खस और नागकेसर इनको शीतल जलके साथ पीसकर पीनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है ॥ ३१ ॥

शीतेन तोयेन बिसं मृणालं कृष्णाञ्च पथ्यां मधुनाऽवलिह्यात्। कुर्याच्च नासावदनावरोधं क्षीरं पिबेद्वाऽप्यथ मानुषीणाम् ॥ ३२ ॥

पीपलका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है। कमलका कंद, कमलकी नाल, पीपल और हरड इनको पीसकर सहतके साथ चाटनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है। नाकके तथा मुखके श्वासको रोकनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है। स्त्रीका दूध पीनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है ॥ ३२ ॥

द्राक्षासितादाडिमलाजवन्ति कट्वारनीलोत्पलपद्मवन्ति। पिबेत्कषायाणि च शीतलानि पित्तज्वरं यानि च यापयन्ति ॥ ३३ ॥

दाख, खांड, अनार, धानकी खीलें, दहीका तोड, नीले कमल और सफेद कमल इनका शीतल क्षाय पीवे और जो क्वाथ पित्तज्वरको नष्ट करनेवाले हैं, वे भी पीवे ॥ ३३ ॥

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः । अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ३४ ॥

सिरके बीज, पीपल, काली मिरच, सैंधानमक, लहसुन, मैनशिल और वच इनको गोमूत्रमें पीसकर अंजन बनाकर नेत्रोंमें आंजनेसे चेतना प्राप्त होती है ॥

अञ्जनं सम्यगारब्धं मधुसिन्धुशिलोषणैः । प्रमोहद्रोहि भवति भाषितं भिषजां वरैः ॥ ३५ ॥

शिला-मनःशिला । ऊषणम्—मरिचम् ॥

सहत, सैंधानिमक, मैनशिल और कालीमिर्च इनका अंजन अच्छी प्रकारसे बनाकर नेत्रोंमें आंजनेसे मूर्च्छाकी बेहोशी दूर हो जाती है ॥ ३५ ॥

मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः। श्लक्ष्णं पिष्ट्वाऽम्भसा नस्यं कुर्यात् संज्ञाप्रबोधनम् ॥ ३६ ॥

महुवेका सार, सैंधानिमक, वच, मिर्च और पीपल इनको समानभाग लेकर जलमें बारीक पीसकर नस्य लेनेसे संज्ञा उत्पन्न होती है ॥ ३६ ॥

अथ रुधिरोत्पन्नमूर्च्छादिचिकित्सा ।

रक्तजायां तु मूर्च्छायां हितः शीताक्रियाविधिः । मद्यजायां पिबेन्मद्यं निद्रां सेवेत् वा सुखम् । विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥

रुधिरकी मूर्च्छामें चिकित्सा हितकारी है । मद्यकी मूर्च्छामें फिर दुबारा मद्य पीना अथवा सुखपूर्वक सोना हितकारी है । विषकी मूर्च्छामें विषनाशक औषधियोंका प्रयोग हितकारी है ॥ ३७ ॥

अथ संन्यासचिकित्सा ।

प्रभूतदोषस्तमसोऽतिरेकात् सम्मूर्च्छितो नैव विबुध्यते यः । संन्यस्तसंज्ञः स हि दुश्चिकित्स्यो नरो भिषग्भिः परिकीर्तितोऽसौ ॥ ३८ ॥

अधिक दोषवाला मनुष्य तमोगुणकी अधिकतासे मूर्च्छित होकर पीछे जागृत नहीं हो तो उसको वैद्य संन्यासरोगयुक्त कहते हैं और उसकी चिकित्सा अत्यन्त कठिन है ॥ ३८ ॥

अञ्जनान्यवपीडाश्च धूमाः प्रधमनानि च । सूचीभिस्तोदनं शस्तं दाहपीडा नखान्तरे ॥ ३९ ॥ लुञ्चनं केशलोम्नाञ्च दन्तैर्दशनमेव च । आत्मगुप्तावघर्षश्च हितस्तस्य प्रबोधने ॥ ४० ॥

अवपीडः-कल्की कृतौषधरसस्य नासापुटे दानम् । प्रधमनम्--औषध चूर्णस्य द्विमुख्या नाडिकया मुखवातेन नासापुटे दानम् । तस्य- संन्यस्तस्य ॥

संन्यासरोगवाले मनुष्यको अंजन लगावे, औषधियोंका कल्क बनाकर उनका रस नाकमें निचोडें, धुवाँ देवे, औषधिके चूर्णको दो मुखवाली नलीमें भरकर उसमें मुखसे फूँक मारकर नाकमें चढावे । अंगोंमें सुई चुभोवे, नखूनोंमें अग्निका दाह देवे, केश और रोमोंको उखाडे, दांतोंसे कटवावे और शरीरपर कौंछकी फलीको घिसे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ मूर्च्छोपयोगी रसः ।

कणामधुयुतं सूतं मूर्च्छायां प्राशयेद्भिषक् । शीतसेकावगाहादीन्सर्वाङ्गे पीडनं हठात् ॥ ४२ ॥

वैद्य मूर्च्छाको दूर करनेके लिये पारेकी भस्मको पीपलके चूर्ण और सहतके साथ चटावे, शीतल सेचन और शीतलजलका अवगाहन आदि कर्म करे तथा बलात्कारसे सम्पूर्ण अंगोंको दबावे ॥ ४१ ॥

ताम्रचूर्णसमोशीरं केशरं शीतवारिणा ।

पीतं मूर्च्छां द्रुतं हन्याद्वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४२ ॥

ताम्रचूर्णम्--मारितताम्रचूर्णम् ॥

तांबेकी भस्म, खस और नागकेशर इनको समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर शीतल जलके साथ पीनेसे जिस प्रकार बिजलीसे वृक्ष नष्ट होजाते हैं, उसी प्रकार इससे मूर्च्छा तत्काल नष्ट होजाती है ॥ ४२ ॥

अथ भ्रमचिकित्सा।

पिबेद्दुरालभाक्वाथं सघृत भ्रमशान्तये। पथ्याक्वाथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा ॥ ४३ ॥

धमासेका काथ बनाकर घी डालकर पीनेसे भ्रम दूर होजाता है। हरडके क्वाथसे अथवा आमलोंके रससे सिद्ध किये हुए घीको पीनेसे भ्रम दूर हो जाता है ॥ ४३ ॥

शुण्ठीकृष्णाशताह्वानां साभयानां पलं पलम्। गुडस्या षट्पलान्येषाग्गुटिका भ्रमनाशिनी ॥ ४४ ॥

सोंठ, पीपल, सतावर और हरड ये सब औषधि चार चार तोले और गुड चौवीस तोले इन सबको मिलाकर बेरकी बराबर गोली बनाकर खाय तो भ्रम रोगका विनाश होता है ॥ ४४ ॥

ताम्रं दुरालभाक्वाथैः पीतन्तु घृतसंयुतम्। निवारयेद् भ्रमं शीघ्रं तद्यथा शंभुभाषितम् ॥ ४५ ॥

तांबेकी भस्मको जवाके क्वाथके साथ मिलाकर पीवे तो तुरन्तही भ्रमरोग शान्त होता है, जिस प्रकार कि, शिवजीने शिवसंहितामें कहा है ॥ ४५ ॥

अथ तन्द्रानिद्राचिकित्सा।

तुरङ्गलालालवणोत्तमेन्दुमनः शिलामागधिकामधूनि। नियोज्य तान्यक्षिण विमिश्रितानि तन्द्रां सनिद्रां विनिवारयन्ति ॥ ४६ ॥

इन्दुः- कर्पूरः ॥

घोडेकी लारमें सैंधानमक, कपूर, मैनशिल, पीपल और सहत इनको महीन पीसकर नेत्रोंमें लगावे तो निद्रासहित तन्द्रारोग निवारित होता है ॥ ४६ ॥

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च। बस्तमूत्रेण सम्पिष्टं नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ ४७ ॥

श्वेतमरिचम्--शिग्रुबीजम् ॥

सैंधानिमक, सहिंजनके बीज, सरसों और कूठ इन सबको कूट पीसकर बकरेके मूत्रमें खरल करके नस्य ले तो उसी समय तन्द्राका नाश होता है ॥ ४७ ॥

शुण्ठीकणोग्रालवणोत्तमानि नस्येन तन्द्राविजयोल्वणनि। क्षुद्रामृतापौष्करनागराणि भार्ङ्गीशिवाभ्यां कथितानि पानात् ॥ ४८ ॥

शिवा--हरीतकी ॥

सोंठ, पीपल, वच और सैंधानिमक इनको महीन पीसकर नस्य ले तो महाघोर तन्द्राका भी विनाश होता है। कटेरी, गिलोय, पोहकरमूल, सोंठ, भारंगी और हरडके काढेको पीनेसे तन्द्रा और निद्रा दोनोंका निवारण होता है ॥ ४८ ॥

इति मूर्च्छाभ्रमनिद्रातन्द्रासंन्यासाधिकारः।

अथ मदात्ययाधिकारः।

तत्र मद्यस्वभावः।

मद्यं स्वभावतः प्राज्ञैर्यथैवान्नं तथा स्मृतम्। अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ १ ॥

मद्य स्वभावहीसे अन्नके समान है, ऐसा विद्वान् लोगोंने कहा है अर्थात् जो मद्य विना युक्तिके साथ दियाजाता है तो अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है जो विधिपूर्वक पिया जाय तो महारसायन है ॥ १ ॥

प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या निहन्त्यसून् । विषं प्राणहरंतच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ २ ॥

अन्नही प्राणियोंका प्राण है, परन्तु युक्ति विना अन्न सेवन करनेसे प्राणोंका नाशकारक है । यह सब जानते हैं कि, विष प्राण हरता है, परन्तु युक्तिके साथ सेवन करनेसे महारसायन है ॥ २ ॥

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् । प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥ ३ ॥

काल इति । यस्मिन्काले यादृशं मद्यमुचितं तस्मिंस्तादृशं पेयम् ॥

जो मनुष्य आनंदसहित विधिपूर्वक यथायोग्य समयपर मात्रानुसार प्रसन्नचित्त होकर हितकारक अन्नोंके साथ बलाबल विचार मद्यपान करते हैं, उनको मद्य अमृतके समान गुणकारी है ॥ ३ ॥

अथ मद्यपानविधिः ।

कृतशारीरसंस्कारः शुचिरुत्तमगन्धवान् । उद्दामगन्धिभिः स्फीतैर्मृदुभिर्वसनैर्वृतः ॥ ४ ॥

विचित्रविविधस्रग्वी रक्ताभरणभूषितः । सानन्दः सावधानश्च पिबेन्मद्यं शनैः शनैः ॥ ५ ॥

शरीरको अच्छी प्रकारसे स्वच्छ करके अर्थात् मलमूत्र दंतधावनादि करके पवित्र होकर, उत्तम फुलेल आदि सुगन्धोंको लगाकर, उत्तम सुवासित महीन अथवा कोमल वस्त्र धारण कर, अनेक प्रकारके चित्र विचित्र मदनबाणादि सुगन्धित पुष्पोंकीमालाओंसे उरःस्थलको सुशोभित करके लाल रंगके आभूषणोंसे भूषित हो आनन्दयुक्त होकर सावधानीके साथ धीरे धीरे ठहर ठहरकर थोडी थोडी मदिरा पीवे ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ मद्यपानस्थानम् ।

उपवनेषु सुरभिसुरङ्गसुमनः समूहमनोहरेषु । मञ्जुगुञ्जन्मधुकरनिकरेषु कूजत्कलकण्ठेषु ॥ ६ ॥ सुरभिशिशिरमधुरसमीरेषु मन्दिरेषु । सुधाशुभ्रेषु सुधूपधूपितेषु सूपधानेषु।संस्तीर्णविहितशयनासनेषु ॥ ७ ॥ उपविष्टोऽथ वा तिर्यग् भृशं हृष्टःसुरां पिबेत् । सौवर्णै राजतैः पात्रैः पिबेन्मणिमयैरपि ॥ ८ ॥ रूपयौवनमत्ताभिर्वल्लभाभिर्विशेषतः । वस्त्राभरणमाल्यैश्च भूषिताभिर्यथर्तुकैः । दीयमानं मृगाक्षीभिः पिबेन्मद्यं मुदान्वितः ॥ ९ ॥

जहां उत्तम वर्णवाले सुगंधित सुरंजित पुष्प मनको हरण करनेवाले खिल रहे हों, उनपर मधुरध्वनिसे भ्रमरोंके समूह गुंजार करते हों, जहां मधुरस्वरसे कोयल कूह कूह करती हों और जहां शीतल मन्द सुगन्ध पवन मधुर मधुर चलती हो ऐसे उपवन अथवा कुसुमकाननके भीतर चूने कलईसे स्वच्छ पुताया हुआ हवादार और उत्तम धूपोंसे सुवासित किये हुए बंगलेमें उत्तम आसन अथवा पलँग बिछा हो और उसपर गद्दे तकिये नरम नरम लगे हुए हों तथा उसके ऊपर स्वच्छ चार बिछी हुई हो, उस शयन करनेके आसनपर बैठकर अथवा तिरछा लेटकर अत्यन्त आनन्दके साथ मद्यको पीवे । रूप और यौवनसे उन्मत्त हुई अत्यन्त प्रिय,यथा यथा ऋतुके अनुसार वस्त्रोंसे आभूषणोंसे और सुवासित पुष्पोंसे सुसज्जित तथा हिरनके समान नेत्रवाली ऐसी स्त्रियां

१–स्वशरीरसुखे स्थितः इत्यपि पाठः ।

सोनेके, चांदीके अथवा रत्नोंके या कांचके प्याले गिलासोंमें भर भरकर वारम्बार देंवे तो पुरुष प्रीतिपूर्वक उस मदिराको पीवे ॥६-९॥

अथ तन्त्रान्तरोक्तमद्यपानमात्रा।

शुद्धकायः पिबेन्मद्यं सोपदंशं पलद्वयम्। मध्याह्ने द्विगुणं तच्च सुस्निग्धं भक्षयेदनु ॥ १० ॥ प्रदोषेऽष्टपलं तद्वत्मात्रा मद्यरसायने। अनेन विधिना सेव्यं मद्यं नित्यमतन्द्रितैः ॥ ११ ॥

शुद्धकायः--उत्सृष्टमलमूत्रः। पलद्वयं पारिशेष्यात् पूर्वाह्णे बोद्धव्यम्। अतन्द्रितैः मात्रया सावधानैः॥

मल मूत्रादिको त्याग शुद्ध होकर प्रातःकालमें चाटदाल, सेव, नमकीन, पदार्थके साथ आठ रुपये भर मदिरा पीवे। मध्याह्नके समय सोलह रुपये भर मदिरा पीवे और उसके उपरान्त अत्यन्त स्निग्ध भोजन करे। सायंकालमें ३२ रुपये भर मद्य पीवे, मद्यकी यह मात्रा रसायन रूप है। इस कारण मनुष्योंको मात्रामें भूल नहीं करनी चाहिये, नित्य इसी विधिसे मद्यका सेवन करना चाहिये ॥ १० ॥ ११ ॥

अन्ये त्वाहुः-बुद्ध्यादयो गुणा यावदुल्लसन्ति निरत्ययाः। मात्रेयं विहिता मद्यपानेऽन्या रोगजन्मने ॥ १२ ॥

अन्य ग्रन्थोंमें तो यह कहा है कि, जबतक शुद्ध बुद्धि आदि गुण अबाधित रीतिसे प्रकाशित रहें, तबतक उतनी ही मद्य पीवे, इसके सिवाय अन्य मात्रा रोगोत्पत्तिके लिये कारण जाननी, अधिक मात्रा सदैव रोगको उत्पन्न करती है ॥ १२ ॥

अथ कस्मिन् ऋतौ कीदृङ्मद्यं-पेयमित्याह।

ग्रीष्मे मद्यं हिमं स्वादु माध्वीकादि सुखप्रदम्। शीतं प्रशस्यते चोष्णं तीक्ष्णं गौडिकपैष्टिकम् ॥ १३ ॥

जिस ऋतुमें जैसी मद्य पीनी योग्य है, वही पीनी चाहिये। जैसे कि, ग्रीष्म ऋतुमें शीतल और मधुर माधवी नामक मदिरा सुखदायी है। शीतलकालमें उष्ण तथा तीक्ष्ण गौडिक और पैष्टिक मद्य हितकारी है ॥ १३ ॥

अथ हितकार्यन्नम्।

मद्यानुकूलैर्विविधैः फलैर्वर्णमनोहरैः। सुगन्धैर्लवणैर्हृद्यैर्भृष्टैर्मांसैः पृथग्विधैः ॥ १४ ॥ स्निग्धैरन्नैश्च भक्ष्यैश्च सह मद्यं पिबेन्नरः ॥ १५ ॥

अन्नैः सिद्धैः--ओदनपर्पटकादिभिः। भक्ष्यैः-लड्डूकफेणिकादिभिः॥

मद्यको पीनेवाला मनुष्य मद्यके अनुकूल मनोहर फल सुगन्धित और प्रिय नमकीन पदार्थ, अलग अलग प्रकारके मांस, भात, पापड, और लड्डू तथा फेनी आदि स्निग्ध भक्ष्योंके साथ मद्य पीवे ॥ १४ ॥ १५ ॥

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानवासोधूपानुलेपनैः। स्निग्धोष्णैस्तादृशैरन्नैर्वातप्रकृतिकः पिबेत् ॥ १६ ॥

वातप्रकृतिवाला मनुष्य-स्निग्ध और उष्ण मालिश, अगर आदि सुगंधित वस्तुका लेपकर स्नान, वस्त्र, धूप और अनुलेपन इत्यादि उपचार करके उसी प्रकार अन्नके साथ मद्य को पीवे ॥ १६ ॥

शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्धशीतलैः। फलैरन्नैः सह नरः पित्तप्रकृतिकः पिबेत्। श्लैष्मिको जाङ्गलैर्मांसैर्मरिचैर्मदिरां पिबेत् ॥ १७ ॥

पित्तप्रकृतिवाला मनुष्य-अनेक प्रकारके शीतल उपचारसे मधुर, स्निग्ध तथा शीतल फलोंके साथ और उसी प्रकारके अन्नोंके साथ मद्य पीवे। कफप्रकृतिवाला मनुष्य-जांगलदेशके जीवोंके मांसके साथ और मिरचके साथ मद्य पीवे ॥ १७ ॥

प्राक् पिबेच्छ्लैष्मिको मद्यं भक्तस्योपरि पैत्तिकः । वातिकस्तु पिबेन्मद्यं समदोषा यथक्षते ॥ १८ ॥ वातिकस्तु पिबेन्मद्यं प्रायो गौडिकपौष्टिकम् । कफपित्तात्मको यस्तु माध्वीकं माधवं पिबेत् ॥ १९ ॥ विधिर्वसुमतामेष कथितश्चरकादिभिः । यथोपपत्तिकं वाऽपि पिबेन्मद्यं हि मात्रया ॥ २० ॥

कफप्रकृतिवाला मनुष्य भोजनसे पहिले मद्य पीवे, पित्तप्रकृतिवाले पुरुषको भोजन करनेके बाद मद्य पीनी चाहिये, वातप्रकृति वाला भोजनके मध्यमें मद्य पीवे । और समदोषवाला मनुष्य जैसी रुचि हो, उसी प्रकार पीवे । वातप्रकृतिवाले मनुष्यको विशेष करके गुडकी और जौके आटेकी मदिरा पीनी चाहिये । कफ प्रकृतिवाले और पित्तप्रकृतिवाले को खांड आदि मधुर पदार्थोंकी मदिरा पीनी चाहिये । चरकादि ऋषि कहते हैं कि, यह विधि केवल धनवानोंके लिये कही है। इस लिये निर्धनोंको जेसी मिल जाय, वे वैसीही पीलेवें ॥ २० ॥

अथ मद्यगुणाः ।

रसवातादिमार्गाणां सत्त्वबुद्धीन्द्रियात्मनाम् । प्रधानस्यौजसश्चैव हृदयं स्थानमुच्यते ॥ २१ ॥ मद्यं हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसो गुणान् । दशभिर्दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ॥२२॥ लघूष्णतीक्ष्ण सूक्ष्माम्लव्यवायाशुकरं तथा । रूक्षं विकाशि विशदं मद्यं दशगुणं स्मृतम् ॥ २३ ॥ गुरु शीतं मृदु स्निग्धं सान्द्रं स्वादु स्थिरं तथा । प्रसन्नं पिच्छिलं सूक्ष्ममोजो दशगुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥ गौरवं लाघवाच्छैत्यमौष्ण्यादम्लस्वभावतः । माधुर्यं मार्द्रवं तैक्ष्ण्यात् प्रसादश्चाशुभावनात् ॥ २५ ॥ रौक्ष्यात् स्नेहं व्यवायित्वात्स्थिरत्वं सूक्ष्मतामपि विकाशिभावात्पैच्छिल्यं वैशद्यात्सान्द्रतां तथा ॥ २६ ॥ सौक्ष्म्यान्मद्यं निहन्त्येवमोजसः स्वगुणैर्गुणान् । सत्त्वं तदाश्रयं चाशु संक्षोभ्य कुरुते मदम् । हृदि मद्यगुणाविष्टे हर्षस्तर्षो रतिः सुखम् ॥२७॥ विकाराश्च यथासत्त्वं चित्रा राजसतामसाः । जायन्ते मोहनिन्द्रान्ता इत्येतन्मद्यलक्षणम् ॥ २८ ॥

रस और वातादि मार्गोंका, चित्त, बुद्धि, अहंकार और शरीरमें प्रधान ओजका स्थान हृदय है, यह मद्य उस हृदयमें प्रविष्ट होकर अपने दश गुणोंसे ओजके दश गुणोंको क्षोभित करके चित्तमें विकार उत्पन्न करती है । मद्य-लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी प्रथम सब शरीरमें व्याप्त होकर पश्चात् पचनेवाली, आशुकर शीघ्र शरीरमें फैलनेवाली, रूक्ष, विकाशि और विशद शरीरकी आर्द्रता दूर करनेवाली इन दश गुणों वाली है । ओज-गुरु, शीतल, मृदु, स्निग्ध, सान्द्र, मधुर, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल और सूक्ष्म इन दशगुणोंसे युक्त है । तहां मद्य लघु होनेसे ओजके गुरु गुणको, उष्ण होनेसे ओजकी शीतलताको, अम्ल होनेसे ओजके मधुर गुणको, तीक्ष्ण होनेसे ओजके मृदुगुणको, आशुकारी होनेसे ओजकी प्रसन्नताको, रूक्ष होनेसे ओजकी स्निग्धताको, व्यवायी होनेसे ओजकी स्थिरताको, विकाशी होनेसे ओजके सूक्ष्मगुणको, विशद होनेसे ओजकी पिच्छिलताको और सूक्ष्म होनेसे ओजके सान्द्र गुणको नष्ट करती है । इस प्रकार मद्य अपने दश गुणोंसे ओजके दश गुणोंको क्षोभित करती है, इसी प्रकार मद्य अपने गुणोंसे ओजके गुणोंको, चित्तको और चित्तके रहने के स्थानको तत्काल क्षोभित करके मस्तपनेको उत्पन्न करती है । मद्यके गुण हृदयमें प्राप्त

होनेपर हर्ष, तृषा, रति, सुख और प्रकृतिके अनुसार मोहसे निद्रापर्यन्त रजोगुणके तथा तमोगुणके विचित्र विकार उत्पन्न होते हैं, यह मद्यका स्वरूप अर्थात् लक्षण है ॥२१-२८॥

हर्षमोजो बलं पुष्टिमारोग्यं पौरुषं तथा। युक्त्या पीतं करोत्याशु मद्यं मदसुखप्रदम् ॥२९॥ रोचनं दीपनं हृद्यं स्वरवर्णप्रसादनम्। प्रीणनं बृंहणं बल्यं भयशोकश्रमापहम् ॥ ३० ॥ स्वपितं नष्ट निद्राणां मूकानां वाग्विशोधनम्। नाशनं चातिनिद्राणां विबन्धानां विबन्धनुत् ॥ ३१ ॥ वधबन्धपरिक्लेशदुःखानां चाप्यबोधकम्। अपि प्रवयसां मद्य मुत्सर्गामोदकारकम्॥ ३२ ॥ बहुदुःखक्षतस्यास्य शोकैरुपहतस्य च। विश्रामो जीवलोकस्य मद्यं युक्त्वा निषेवितम् ॥ ३३ ॥

जो लोग मद्यसे मदके सुखको चाहते हैं, वेही मद्यको युक्तिपूर्वक पीवें। क्योंकि मद्य युक्तिपूर्वक पीनेसे तत्काल हर्ष, ओज, बल, पुष्टि, आरोग्य और पुरुषत्वको उत्पन्न करती है। युक्तिसे सेवन की हुई मदिरा रुचि उत्पन्न करती है अग्निको दीप्त करती है, हृदयको प्रिय, स्वर और वर्णको शुद्ध करनेवाली, तृप्तिकारक, धातुओंको पुष्ट करनेवाली, बलको बढानेवाली, भय, शोक और श्रमको हरनेवाली, जिन मनुष्योंको निद्रा न आती हो, उनको निद्रा लानेवाली, गूंगे मनुष्योंकी वाणीको शुद्ध करनेवाली, अत्यन्त निद्राको नष्ट करनेवाली, मलबन्धवाले रोगियोंके मलबन्धको तोडनेवाली, वध, वन्धन क्लेशादि दुःखोंके बोधको हरनेवाली, युक्तिपूर्वक पी हुई मदिरा वृद्ध मनुष्योंको भी स्वाभाविक रीतिसे परमानन्द उत्पन्न करनेवाली है। अनेक प्रकारके दुःखोंसे पीडित, घावयुक्त और विविध प्रकारके क्लेशोंसे फँसे हुए और शोकसे व्याकुल प्राणियोंको मद्य जगत्में विश्राम रूप है ॥ २९-३३ ॥

मदस्त्रिलक्षणो भवति। एको मदोऽधिकसत्त्वगुणस्य पुंसो भवति। द्वितीयोऽधिकरजोगुणस्य। तृतीयोऽधिकतमोगुणस्य ॥

प्रधानाधममध्यानां रुक्माणां व्यक्तिदायकः। यथाऽग्निरेवं सत्त्वानां मद्यं प्रकृतिदर्शकम् ॥ ३४ ॥

मद तीन प्रकारका होता है। तहां एक तो अधिक सत्त्वगुणवाले पुरुषोंको होता है, दूसरे प्रकारका मद अधिक रजोगुणवाले मनुष्योंको होता है और तीसरे प्रकारका मद अधिक तमोगुणवाले प्राणियोंको होता है। जैसे कि चरकमें लिखा है-जिस प्रकार सुवर्णकी उत्तमता, मध्यमता और अधमताको अग्नि तपानेसे प्रगट कर देती है। उसी प्रकार मद्य-मनुष्योंकी उत्तम, अधम और मध्यम प्रकृतिको प्रगट करनेवाली है ॥ ३४ ॥

अथ सात्त्विकमदलक्षणम्।

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्द्धनश्च। सम्पाठगीतस्वरवर्द्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥३५॥

प्रीतिः-परेण मैत्री। सुखः सुखयतीति सुखः सुखकर इत्यर्थः। पानान्नेत्यादि-पानादिषु अनुषङ्गवर्द्धनः। अतिरम्यः-मनोविकारित्वेऽपि न दुःखकरः। प्रथमगुणविकारित्वात् प्रथमः। एवं द्वितीयः तृतीयश्च ॥

पहिले प्रकारका मद जो कि सत्त्वगुण नामक पहिले गुणका विकार रूप है, यह मद--बुद्धि, स्मरणशक्ति और प्रीतिको उत्पन्न करता है, सुखको करता है, अन्नमें, पानमें तथा निद्रामें रुचिको बढानेवाला है। गीत वादित्र और पढनेमे स्वरको शुद्ध करनेवाला है और मनको विकृत करनेपर भी दुःखदायक

नहीं होता। यह मद पहिले गुणका विकाररूप होनेसे पहिले गिना जाता है। इसी प्रकार जो दूसरे रजोगुण का विकाररूप है, वह दूसरा और जो तीसरे गुण तमोगुणका विकाररूप है, वह तीसरा मद जानना ॥ ३५ ॥

अथ राजसमदलक्षणम्।

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः। आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मद्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥ ३६ ॥

अव्यक्तेत्यत्र ईषदर्थे नञ्। विचेष्टः-विरुद्धचेष्टः, उन्मत्तस्य लीलाकृतिभ्यां सहितः।

राजसमदसे मत्त हुआ पुरुष-विरुद्ध चेष्टा करता है, उन्मत्तके समान लीला करता है। उन्मत्तकी आकृतिके समान आकृति करलेता है, बारम्बार आलस्यसे और बारम्बार निद्रा से मूर्च्छित हो जाता है और उस मनुष्यकी बुद्धि, स्मृति और वचन यथार्थ स्पष्ट नहीं रहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ तामसमदलक्षणम्।

गच्छेदगम्यां न गुरूंश्च मन्येत् खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः। ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतन्त्रः ॥ ३७ ॥

मन्येदिति परस्मैपदमार्षत्वात्। अस्वतन्त्रः-मदपरवशः ॥

तमोगुण मदसे मत्त हुआ मनुष्य-मदके परवश हो जाता है, अगम्या स्त्रियोंमें गमन करने लगता है। माता पिता आदि गुरुजनोंको कुछ नहीं समझता, अभक्ष्य पदार्थोंको भक्षण करने लगता है। संज्ञा जाती रहती है अर्थात् ज्ञान-रहित होजाता है और हृदयमें स्थिति छिपी हुई गुप्त बातोंको भी कहने लगता है ॥ ३७ ॥

यद्यपि मदस्त्रिविधोऽस्ति तथापि सुश्रुतेनातितामसनामा चतुर्थोऽन्यो मद उक्तः, तल्लक्षणम्।

चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्विव निष्क्रियः। कार्याकार्यविभागाज्ञो मृतादपि परो मृतः ॥ ३८ ॥

मूढः-मोहयुक्तः ॥

को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम्। बहुदोषमिवामूढः कान्तारं स्ववशः कृती ॥ ३९ ॥

अमूढः-विचारबहुलः।

चौथे प्रकारके मदमें-मनुष्य मोह युक्त हो जाता है। टूटी लकडीके समान क्रियारहित मृतकसे भी अधिक मृतक हो जाता है और उस मनुष्यको कार्य अकार्यकी कुछ भी सुधि बुधि नहीं रहती। इस चौथे प्रकारके उन्मादके समान मदको कौन विचारशील, स्वतन्त्र और विचक्षण पुरुष प्राप्त होता है अर्थात् कोई भी प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकार विचारशील. स्वतन्त्र और विचक्षण पुरुष निर्जनवन में नहीं गमन करता, उसी प्रकार इस चौथे मदको कोई भी पुरुष सेवन नहीं करता ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ केषां मदाधिक्यं केषां च मदाल्पत्वं भवतीत्याह।

नातिमाद्यन्ति बलिनः कृताहारा महाशनाः। स्निग्धाः सत्त्ववयोयुक्ता मद्यनित्यास्तदन्वयाः ॥ ४० ॥ मेदःकफाधिका मन्दवातपित्ता दृढाग्नयः। विपर्ययेऽतिमाद्यन्ति विष्टब्धाः कुपिताश्च ये। मद्येन चाम्लरूक्षेण साजीर्णे बहुनाऽपि च ॥ ४१ ॥

बलवान्, जो आहार कर चुका हो, बहुत भोजन करनेवाला हो, स्निग्ध, धैर्ययुक्त, युवा अवस्थावाला, नित्य मद्य पीनेवाला, जिसके

कुलमें परम्परासे मद्य पीते हैं, जिसके शरीरमें मेद और कफ अधिक है, वात और पित्तकी मन्दता है और दृढ अग्निवाले पुरुषोंको मद अत्यन्त नहीं चढता और जो इससे विपरीत गुणोंवाले हैं तथा मलबन्धवाले और क्रोधी मनुष्योंको मद अधिक चढता है। खट्टा और रूक्ष मद्य पीनेसे, अजीर्णमें मद्य पीनेसे और अधिक मद्य पिया जाय तो भी अत्यन्त मद चढता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ मदात्ययनिदानम्।

विषस्य ये गुणा दृष्टा सन्निपातप्रकोपनाः। त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः ॥ ४२ ॥ तस्मादविधिपीतेन तथा मात्राधिकेन च। युक्तेन चाहितैरन्नैरकाले सेवितेन च। मद्येन खलु जायन्ते मदात्ययमुखा गदाः ॥ ४३ ॥

तीनों दोषोंको कुपित करनेवाले जो गुण विषमें देखनेमें आते हैं, वे ही गुण मद्यमें भी देखनेमें आते हैं, परन्तु विषके गुण मद्यके गुणोंसे बलवान् हैं। मद्यमें विषके गुणोंसे हीन शक्तिवाले गुण हैं, इसलिये विधिरहित पिया हुआ, अधिक पिया हुआ, अहितकारक अन्नोंके साथ पिया हुआ और अयोग्य समय सेवन कियाहुआ मद्य मदात्यय आदि रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ विधिमन्तरा सेवितमद्यमन्यविकारोत्पादकमित्याह।

निर्भुक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम्। उत्पादयेत् कष्टतमान् विकारानुत्पादयेच्चापि शरीरभेदम्॥४४

एकान्ततः--नैरतर्न्येण। विकारान् -मदात्ययादीन्। शरीरस्य भेदन् नाशम् ॥

बिना अन्नके पिया हुआ मद्य अथवा जो मनुष्य निरन्तर बारम्बार मद्य पीवे तो मद्य महादुःखदायक मदात्यय आदि विकारोंको उत्पन्न करती है और शरीरका भी नाश करती है ॥ ४४ ॥

अथ मदात्ययादिविकारान्यहेतुः।

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन। व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥४५॥ अत्यम्लरूक्षावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन। उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान् विकारान्॥४६

क्रोधको प्राप्त हुआ, भयभीत, तृषासे व्याकुल, शोकसे सन्तापित, क्षुधासे पीडित. दंड कसरतके करनेसे और बोझके ढोनेसे तथा अधिक मार्गके चलनेसे थका हुआ, मलमूत्रादिके वेगोंके रोकनेसे पीडित, अत्यन्त खट्टे और रूखे पदार्थोंके खानेसे जिसका उदर भर रहा हो, अजीर्णमें भोजन करनेवाला, निर्बल और उष्णतासे संतापित ऐसे मनुष्योंका सेवन किया हुआ मद्य अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ मद्योत्पन्नविकाराः।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि च। पानविभ्रममत्युग्रं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ४७ ॥

मद्यसे–१ मदात्यय, २ परमद, ३ पानाजीर्ण और ४ अत्यन्त उग्र पानविभ्रम ये विकार उत्पन्न होते हैं। अब इनके लक्षण कहते हैं ॥ ४७ ॥

अथ मदात्ययसामान्यलक्षणम्। १

शरीरदुःखं बलवत्प्रमोहो हृदयव्यथा। अरुचिः सततं तृष्णा ज्वरः शीतोष्णलक्षणः ॥ ४८ ॥ शिरःपार्श्वास्थिसन्धीनां वेदना विक्षते यथा। जायतेऽतिबला जृंभा स्फुरणं वेपनं श्रमः ॥ ४९ ॥ उरो-

विबन्धः कासश्च हिक्का श्वासः प्रजागरः । शरीरकम्पः कर्णाक्षिमुखरोगास्त्रिकग्रहः ॥ ५० ॥ छर्दिर्विड्भेद उत्क्लेशो वातपित्तकफात्मकः । भ्रमः प्रलापो रूपाणामसताञ्चैव दर्शनम् ॥ ५१ ॥ तृणभस्मलतापर्णपांसुभिश्चावपूरणम् । प्रधर्षणं विहङ्गैश्च भ्रान्तचेताः स मन्यते ॥५२॥ व्याकुलानामशस्तानां स्वप्नानां दर्शनानि च । मदात्ययस्य रूपाणि सर्वाण्येतानि लक्षयेत् ॥ ५३ ॥

जिसको मदात्यय हुआ हो, उस मनुष्यके शरीरमें अत्यन्त दुःख होता है, बलवान् मोह, हृदयमें व्यथा अरुचि, निरन्तर तृषाका लगना, शीतल और उष्ण ज्वरका होना, शिर, पसली और हड्डीकी संधियोंमें पके फोडेके समान वेदना, जम्भाइयोंका अधिक आना, अंगोंका स्फुरण होना । अर्थात् फडकना, कम्प, श्रम, छातीका जकडना, खांसी, हिचकी, श्वास और जागरण हो, कान, नेत्र और मुखमें रोग हो, त्रिकस्थानमें पीडा, वमन, विरेचन, वात, पित्त और कफका उत्क्लेद होना, भ्रम और प्रलाप होना तथा बुरे रूपोंका देखना, भ्रमयुक्त चित्तवाला वह मनुष्य अपने शरीरपर तृण, भस्म, बेल और पत्ते उड उडकर गिरते देखे, चारोंओरसे पक्षी उडे चले आते हैं, ऐसा प्रतीत हो, व्याकुल और अशुभ रूप स्वप्न देखे, ये सब लक्षण जिसके हों, उसको मदात्यययुक्त जानना ॥ ४८ ॥ ॥ ५३ ॥

अथ वातजमदात्ययनिदानम् ।

स्त्रीशोकभयभाराध्वकर्मभिर्योऽतिकर्षितः ॥ ५४ ॥ रूक्षाल्पप्रमिताशी च यः पिबत्यतिमात्रया । रूक्षं परिणतं मद्यं निशि निद्रां निहत्य च । करोति तस्य तच्छीघ्रं वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ५५ ॥

तत्--मद्यम् ॥

मैथुन, शोक, भय, भार, राह चलना और श्रम आदि कर्मोंके करनेसे जो मनुष्य कृश हो गये हैं तथा रूक्ष, अल्प और बहुत थोडे भोजन करनेवाले ऐसे मनुष्य जो रूक्ष मद्यको अत्यन्त पीते हैं तो उनके वह मद्य पेटमें परिणामको प्राप्त होकर रात्रिकी निद्राको नष्ट करके तत्काल वायुसम्बन्धी मदात्ययको उत्पन्न करता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ वातजमदात्ययलक्षणम् ।

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः । विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ५६ ॥

हिचकी, श्वास, शिरका कांपना, पसलियोंमें पीडा, जागरण और प्रलाप ये सब लक्षण वातके मदात्ययमें होते हैं ॥ ५६ ॥

अथ पित्तजमदात्ययनिदानम् ।

तीक्ष्णोष्णमद्यमम्लं च योऽतिमात्रं निषेवते । अम्लोष्णतीक्ष्णभोजी च क्रोधनोऽज्ञानवान्नरः ॥ तस्योपजायते तीव्रः पित्तप्रायो मदात्ययः ॥ ५७ ॥

खट्टे, गरम और तीक्ष्णपदार्थोंको भोजन करनेवाला जो क्रोधी और अज्ञानी मनुष्य तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल मद्यको अत्यन्त सेवन करता है, उसको तीव्र पित्तका मदात्यय उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥

अथ पित्तजमदात्ययलक्षणम् ।

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातिसारविभ्रमैः । विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ ५८ ॥

तृषा, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम और शरीरके रंगका हरा होना ये सब लक्षण पित्तके मदात्ययमें होते हैं ॥ ५८ ॥

अथ कफजमदात्ययनिदानम् ।

मधुरस्निग्धगुर्वाशी यः पिबत्यतिमात्रया । अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासन-

सुखे रतः। मदात्ययं कफप्रायं स नरो लभते ध्रुवम्॥ ५९॥

कसरत अर्थात् परिश्रम नहीं करनेवाला दिनमें सोनेवाला, लित्य शय्यापर बैठे रहनेवाला अथवा गद्दे तकिये लगाकर लेटे रहनेवाला तथा मधुर, स्निग्ध और भारीभोजन करनेवाला मनुष्य जो अत्यन्त मद्य पीता है, उस मनुष्यको अत्यन्त कफका मदात्यय उत्पन्न होता है॥ ५९॥

अथ कफजमदात्ययलक्षणम्।

छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः।
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम्॥ ६०॥

वमन, अरुचि, उबकाई, तन्द्रा, शरीर भीजे वस्त्रसे ढकासा मालूम होवे और भारीपन रहे और शीत लगे ये सब लक्षण कफके मदात्यय में होते हैं॥ ६०॥

अथ सान्निपातिकमदात्ययनिदानलक्षणे।

त्रियोषो हेतुभिःसर्वैःसर्वैर्लिङ्गैर्मदात्ययः।

उपरोक्त सम्पूर्ण कारणोंसे उत्पन्न हुआ और सम्पूर्ण लक्षणोंवाला जो मदात्यय होता है, उसको त्रिदोषज कहते हैं॥

अथ परमदलक्षणम्। २

श्लेष्मक्षयोऽङ्गगुरुता विरसास्यता च
विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्च।
लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि सन्धिषु चापि भेदः॥ ६१॥

कफका क्षय, अंगोंमें भारीपन, मुखमें विरसता, मल और मूत्रका अवरोध. तन्द्रा, अरुचि, तृषा, मस्तकमें दर्द और सन्धियोंमें अर्थात् जोडोंमें तोडने सरीखी पीडा ये सब परमदके लक्षण जानने। ऐसा विद्वान् वैद्य कहते हैं॥ ६१॥

अथ पानाजीर्णलक्षणम् ३।

आध्मानमुग्रमथवोद्गिरणं विदाहः
पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि।
ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि।
पित्तप्रकोपजनितानि च कारणानि॥ ६२॥

उद्गिरणं वान्तिरुद्गारो वा। पीयत इति पानं मद्यम्।

मद्यके अजीर्णमें उग्र अफारा होता है अथवा वमन होती है अथवा डकार अधिक आती है, दाह होता है और पित्तके प्रकोपसे जो लक्षण होते हैं वे सब लक्षण देखनेमें आते हैं, इसको वैद्य पानाजीर्ण कहते हैं॥ ६२॥

अथ पानविभ्रमलक्षणम्। ४

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूम-
मूर्च्छावमीमदशिरोरुजनप्रदेहाः।
द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु
तंपानविभ्रममुशन्त्यखिलेषु धीराः॥ ६३॥

कण्ठधूमः—कण्ठाद्धूमनिर्गम इव। प्रदेहः- कफेन लिप्तास्यता। द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषुसुराविकारेषु अन्नविकारेषु च द्वेषः। अखिलेषु मद्यविकारेषु॥

हृदयमें तथा देहमें सुई चुभोनेकीसी व्यथा हो, कफका स्राव, कण्ठमें धुआंसा निकलता प्रतीत हो, मूर्च्छा आवे, वमन, मद और शिरमें पीडा होती हो, मुख कफसे लिसासा हो, सर्व प्रकारकी मदिरापर और सब प्रकार के अन्नके ऊपर द्वेष उत्पन्न हो तो जानना कि, मद्यके विकारोंमें 'पान विभ्रम' विकार उत्पन्न हुआ है, ऐसा प्राचीन धन्वन्तरि वैद्य कहते हैं॥ ६३॥

अथ मदात्ययाद्यसाध्यलक्षणम्।

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहं
तैलप्रभास्यमतिपानहतं त्यजेच्च।

जिह्वौष्ठदन्तमसितं त्वथवापि नीलं
पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे च ॥६४॥
हिक्का ज्वरो वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः
कासभ्रमावपि च पानहतं त्यजेत्तम्॥६५॥

अत्यन्त मद्यपान करनेसे जिस मनुष्यका ऊपरका होंठ ऊपरको सुकड गया हो, शीत अत्यन्त हो, मुख तेलके समानवर्णवाला हो जाय, ऐसे मनुष्यकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे। मद्यपानसे मूर्च्छित हुए मनुष्यके जो जीभ, होंठ तथा दांत काले अथवा नीले, नेत्र पीले अथवा लाल रंगके होगये हों और हिचकी, ज्वर, वमन, कंप, एसलियोंमें शूल, खाँसी तथा भ्रम हो तो उस मनुष्यकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथ मदात्ययादिविकार-
चिकित्सा ।

मद्योत्थानाश्च रोगाणां मद्यमेव हि भेषजम्। यथा दहनदग्धानां दाहनं स्वेदनं हितम् ॥ ६६ ॥ मिथ्यातिहीन-मद्येन यो व्याधिरुपजायते । समेनैव निपीतेन मद्येन स हि शाम्यति ॥६७॥

जिस प्रकार अग्निसे जले हुएको दाहन और स्वेदन हितकारी है, उसी प्रकार मद्यसे उत्पन्न हुए रोगोंको मद्यही औषधि है। मद्यके मिथ्यायोगसे वा अत्यन्त योगसे और हीन योगसे जो रोग उत्पन्न हों वे रोग समयोगवाले मद्य पीनेसेही शांत होते हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

बीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम् । यवानीहपुषाजाजीशृङ्गवेरावचूर्णितम् ॥ ॥ ६८ ॥ सस्नेहैः सक्तुभिर्युक्तमुपदंशैश्चिरोत्थितम्। दद्यात्सलवणं मद्यं वातपैत्तिकशान्तये ॥ ६९ ॥

वातसे तथा पित्तसे उत्पन्न हुए मदात्ययरोगको शान्त करनेके लिये पुराने मद्यमें नमक डालकर तथा बिजौरा नींबू, अमलवेत, बेर, अनार, अजवायन, हाऊवेर, जीरा और सोंठ इनका चूर्ण डालकर स्नेहयुक्त सत्तुओंके साथ और मसालेके साथ रोगीको पीनेको देवे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

मद्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् । जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ ७० ॥

प्रथम पिया हुआ मद्य जीर्ण होनेपर कालानमक, सोंठ, मिरच और पीपल इनके साथ तथा जलके साथ मद्य देवे तो वातजमदात्यय नष्ट होजाता है ॥ ७० ॥

चव्यं सौवर्चलं हिङ्गु पूरकं विश्वदीप्यकम् । चूर्णं मद्येन पातव्यं पानात्ययरुजापहम् ॥ ७१ ॥

चव्य, कालानमक, भूनी हींग, बिजौरा सोंठ और अजवायन इनका चूर्ण करके मद्यके साथ पीनेसे मदात्ययरोग दूर होजाता है ॥ ७१ ॥

लावतित्तिरदक्षाणां रसैश्च शिखिनामपि। पक्षिणां मृगमत्स्यानामानूपानां तथौदनैः ॥ ७२ ॥ स्निग्धौष्णलवणाम्लैश्च वेशवारैर्मुखप्रियैः। स्निग्धैर्गोधूमकैरन्नैर्वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ७३ ॥

लवा, तीतर, मुरगा, मोर, जलप्रायदेशमें रहने वाले मृग और मछली, इनके मांसके रससे संयुक्त भात, स्निग्ध, उष्ण, खारे, खट्टे और मुखको प्रिय-लगे, ऐसे अचार मसालेके साथ और स्निग्धतायुक्त गेहूँके भोजनोंसे वातका मदात्यय शान्त होता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

नारीणां यौवनोष्माणां निर्दयैरुपगूहनैः। श्रोण्यूरुकुचभारैश्च संरोधोष्णैसुखप्रदैः ॥ ७४ ॥ शयनाच्छादनैरुष्णैश्चान्तर्गेहैः सुखप्रदैः। मारुतैः प्रबलैः शीघ्रं प्रशाम्यति मदात्ययः ॥ ७५ ॥

जिन युवतियोंके शरीरमें यौवनकी छटा छिटका रही हो, उनके निर्दय अलिंगनसे, नितम्ब, जंघा और कुच इनके भारसे तथा प्यारसे दबानेसे जो गरमीका सुख होता है, उससे, गरम शयन शय्यागद्दी आदिके सुखसे, गरम आच्छादनोंसे और सुखदायक घरोंके भीतरके भवनोंमें रहनेसे वातकी प्रबलतावाला मदात्यय शांत होता है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

पित्तपानात्यये योज्याः सर्वतश्च क्रिया हिमाः। सितामाक्षिकसंयुक्तं मद्यमर्द्धोदकं पिबेत् ॥ ७६ ॥

पित्तके मदात्ययमें-सम्पूर्ण शीतलक्रिया प्रयुक्त करनी चाहिये। मद्यमें आधा पानी डालकर मिश्री-और सहत मिलाकर पीनेसे पित्तजमदात्यय नष्ट होजाता है ॥ ७६ ॥

मद्यं खर्जूरमृद्वीकापरूषकरसैर्युतम्। सदाडिम रसं शीतं सक्तुभिश्चावचूर्णितम् ॥७७॥ सशर्करं वा माध्वीकं संयुक्तमथ वा परम्। दद्याद्बहूदकं काले पातुं पित्तमदात्यये ॥ ७८ ॥

खजूर, दाख, फालसे, अनार इनके साथ मिश्री तथा सत्तू डालकर शीतल गुडवाला माध्वीक मद्य अथवा इनसे संयुक्त किया हुआ दूसरे प्रकारका मद्यउसमें बहुतसा पानी मिलाकर समयपर पिये तो पित्तका मदात्यय नष्ट होजाता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

शशान्कपिञ्जलानेणाँल्लावानसितपुच्छकान्। मधुराम्लान् प्रयुञ्जीत भोजने शालिषष्टिकान् ॥ ७९ ॥ पटोलयवमिश्रं वा छागलं कल्पयेद्रसम्। सतीनमुद्गमिश्रं वा दाडिमामलकान्वितम् ॥८०॥ द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकरसेन च। कल्पयेत्तर्पणान्यूपात्रसांश्च विविधात्मकान् ॥ ८१ ॥ शीतानि चान्नपानानि-शीतशय्यासनानि च। शीतवातजलस्पर्शाः शीतान्युपवनानि च ॥ ८२ ॥ क्षौमपद्मोत्पलानाञ्च मणीनां मौक्तिकस्य च। चन्दनोदकशीतानां स्पर्शाश्चन्द्रांशुशीतलाः ॥ ८३ ॥

पित्तके मदात्ययमें-खरगोस, तीतर, एणमृग, लवा तथा कालपृच्छमृग इनका मांस देना चाहिये मीठे तथा खट्टे पदार्थ, शालिचावल और साठीके चावल देने चाहिये परवके यूषसे अथवा मटर सहित मूँगके यूषके साथ अथवा अनारके और आमलोंके रसके साथ बकरेके मांसका रस उपयोगी है। पित्तके मदात्ययमें तृप्तिकारक यूषोंकी, अलग अलग प्रकारके रसोंकी, शीतल अन्न पानोंकी, शीतल शय्याकी, शीतल आसनोंकी शीतल पवनकी, शीतल जलके स्पर्शकी, शीतल उपवनोंकी, और चन्द्रमाके किरणोंकी योजना करनी चाहिये ॥ ७९-८३ ॥

रूक्षतर्पणसंयुक्तं यवानीव्योषसंयुतम्। यवगोधूमकं चान्नं रूक्षयूषेण भोजयेत् ॥८४॥ कुलत्थकानां शुष्काणां मूलकानां रसेन वा। प्रभूतकटुसंयुक्तं यवान्नं वा प्रदापयेत् ॥ ८५ ॥

कफसम्बन्धी मदात्ययमें-रूक्ष, तृप्ति करनेवाले पदार्थ तथा अजवायन, सोंठ, मिरच और पीपल इनके साथ जौ तथा गेहूँका भोजन रूक्ष यूषोंके साथ भक्षण कराना चाहिये, अथवा कुलथीके और सूखी मूलीके रसके साथ अथवा तीखे पदार्थोंके साथ जौका भोजन कराना चाहिये ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

छागमांसरसं रूक्षमम्लं वा जाङ्गलं रसम्। व्योषयूषं मनागम्लं पिबेत्कफमदात्यये ॥ ८६ ॥

कफके मदात्ययमें-रूक्ष द्रव्योंके साथ बकरेके मांसका रस अथवा अम्ल किये हुए जांग-

लदेशके जीवोंका मांसरस अथवा कुछ खटाई डालकर सोंठ मिरच तथा पीपलका यूष पिलावे ॥ ८६ ॥

स्थाल्यामथ कपाले वा भृष्टं कृत्वा तु नीरसम्। कट्वम्ललवणं मांसं खादेत् कफमदात्यये ॥ ८७ ॥

मांसको हांडीमें अथवा खीवटेमें सूखा भूनकर उसमें तीखे खट्टे और खारे पदार्थ मिलाकर खाय तो कफका मदात्यय दूर होजाता है ॥ ८७ ॥

वामकद्रव्ययुक्तेन मद्येनोल्लेखनं मतम्। मदात्यये कफोद्भूते लंघनञ्च यथाबलम् ८८

कफके मदात्ययमें-वमनकारक औषधियोंसे संयुक्त मद्य पिलाकर कफको निकालना चाहिये तथा शक्त्यनुसार लंघन कराना चाहिये ॥ ८८ ॥

यदिदं कर्म निर्दिष्टं वातपित्तकफान् प्रति। सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सकैः ॥ ८९ ॥

सन्निपातिक मदात्ययमें वातज, पित्तज और कफज मदात्ययकी जो अलग२ चिकित्सा कही हैं वे सब चिकित्सा वैद्य इसमें करे ८९॥

अथ प्रसङ्गप्राप्तकोद्रवादिमद-
चिकित्सा।

सगुडः कूष्माण्डरस शमयति मदमाशु कोद्रवजम्। धत्तूरजञ्च दुग्धं सशर्करं चाशु पानेन ॥ ९० ॥

कोदोंको खानेसे जो मद होतो-पेठेके रसमें गुड मिलाकर सेवन करे, इससे कोदोंका मद तत्काल शांत होजाता है। धतूरेका मद-आमला मिश्री मिलाकर दूधको पीनेसे नष्ट होजाता है ॥ ९० ॥

सच्छर्दिमूर्च्छातीसारं मदं पूगफलोद्भवम्। सद्यः प्रशमयेत्पीतमाकण्ठं शीतलं वारि शीतलम् ॥ ९१ ॥ वन्यकरीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षादपि च। शाम्यति पूगफलोद्भवमदः सशूलः शर्कराकवलात् ॥ ९२ ॥

सुपारीके खानेसे उत्पन्न हुए वमन, मूर्च्छा और अतिसारसहित मदको तृप्तिपूर्वक कण्ठपर्यंत पिया हुआ शीतलजल तत्काल दूरकर देता है। सुपारीका मद-अरनें उपलोंको सूंघनेसे, जलको पीनेसे और नमक खानेसे भी दूर होजाता है। सुपारीका मद शूलसहित हो तो खाँडयुक्त कवल धारण करे तो इससे तत्काल शांत हो जाता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

तत्क्षणान्मृदितं चूर्णं समाघ्रातं प्रणाशयेत्। ताम्बूलोत्थं मदं पुंसामेकमेव स्वभावतः ॥ ९३ ॥ जातीफलमदं शीघ्रं हन्ति पथ्या निषेविता। शीततोयावगाहश्च शर्करा दधियोजिता। विभीतमदशान्त्यर्थमेतदेव मतं पुनः ॥ ९४ ॥

पानका मद-तत्काल चूनेको हाथोंसे मलकर सूँघनेसे शांत होजाता है। जायफलका मद-हरडके खानेसे शीतल जलमें प्रवेश करनेसे अथवा खांडके साथ दही खानेसे शांत होजाता है। बहेडेका मद भी दहीमें बूरा मिलाकर खानेसे शांत होजाता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

मद्यं पीत्वा यदि ना तत्क्षणमवलेढि शर्करां सघृताम्। जातु न मदयति मद्यं मनागपि प्रथितवीर्यमपि ॥ ९५ ॥

मनुष्य यदि मद्य पीकर तत्काल घीमें मिलाकर बूरा खाय तो प्रबल पराक्रमवाला भी मद्य किंचित् भी नशा नहीं करता ॥ ९५ ॥

इति मदात्यय--परमद--पानाजीर्ण--पान-
विभ्रमाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ दाहाधिकारः ।

दाहः सप्तविधः । तत्र प्रथमं पित्तदाहः ।

पित्तज्वरसमः पित्तदाहः स्यात्तस्य संक्रमः ॥ १ ॥ दाह ऊष्मात्मको व्याधिः पित्त ज्वरसमानः पित्तज्वरलक्षणयुक्तः । पित्तज्वरे तु आमाशयाद् दुष्टात् दाहो ज्वराधिक इति भेदः । तस्य दाहस्य पित्तज्वरोक्तः संक्रमः चिकित्सा ॥

दाहरोग सात प्रकारका है, तहां सबसे पहिले पित्तके दाहको कहते हैं--दाह गरमीरूप व्याधि है, इसमें पित्तज्वरके लक्षण होते हैं। इस कारण जो पित्तज्वरकी चिकित्सा कही है, वही चिकित्सा दाहकी करनी चाहिये। पित्तज्वरमें आमाशयके दुष्ट होनेसे दाह और ज्वर ये दोनों होते हैं और यह व्याधि केवल दाहरूप है, इस कारण पित्तज्वर और दाहमें भेद है ॥

अथ रुधिरदाहः । २

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम् । सन्धूप्यते चोष्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ लोहगन्धांगवदनो वह्निनेवावकीर्यते ॥ २ ॥

उद्रिक्तम्- अतिरिक्तं सत् दहति दाहाख्यं व्याधि करोति । सन्धूप्यते अग्निना दह्यत इव । उष्यते समीपस्थेनेव वह्निना ताप्यते । चूष्यत इति पाठान्तरे आचूषणेनेव पीडामनुभवति इत्यर्थः । वह्निनेव अवकीर्यते शरीरोपरि वह्निः प्रक्षिप्यत इव ॥

सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाला जो रुधिर सो अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त और कुपित होकर दाह नामवाली व्याधिको उत्पन्न करता है। इसमें रोगीको सब संसार अग्निसे जलते हुएके समान प्रतीत होता है अथवा समीपमें रक्खी हुई अग्निसे सब शरीर तपता हुआ मालूम होता है, शरीरमें चूसने सरीखी पीडा होती है, शरीरपर अग्नि डालनेके समान वेदना होती है, इस मनुष्यका शरीर और नेत्र लालवर्ण हो जाते हैं, शरीरमेंसे तथा मुखमेंसे तपे लोहे पर जल डालनेके समान गन्ध आने लगती है ॥ २ ॥

अथ रक्तपूर्णकोष्ठजदाहः । ३

असृजा पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽन्यः स्यात्सुदुस्तरः ॥ ३ ॥

असृजा–शस्त्रादिक्षतात् निस्सृतरक्तेन ॥

शस्त्र आदिके लगनेसे जो घाव होजाता है, उस घावमेंसे निकलेहुए रुधिरसे जिस मनुष्यका कोठा भरजाता है, उसके जो महादुस्तर दाह उत्पन्न होता है, वह तीसरे प्रकारका दाह गिना जाता है ॥ ३ ॥

अथ मद्यदाहः । ४

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः । दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ ४ ॥

स पानोष्मा–मद्यपानजनित ऊष्मा । पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः--पित्तरक्ताभ्यां वर्द्धितः ॥

मद्यपानके करनेसे उत्पन्न हुई गरमी चमडी में प्राप्त हुई और पित्त तथा रुधिरसे बढी हुई भयंकर दाहको उत्पन्न करती है, इसमें पित्तके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथ तृष्णानिरोधजदाहः । ५

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् ॥५॥ सबाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः । संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कास्य वेपते ॥ ६ ॥

अब्धातौ-रसे । क्षीणे क्षयं प्राप्ते । तेज समुद्धतं-वृद्धम् । मन्दचेतसः-अल्पबुद्धेः, यतस्तेन तृषा--निरोधः कृतः ॥

जो मनुष्य अपनी मूर्खतासे प्यासको रोकता है, उसके तृषाके अवरोधसे शरीरकी जलमय धातु क्षीण होकर वृद्धिको प्राप्त हुआ तेज शरीरके बाहर तथा भीतर दाहको उत्पन्न करता है और उसमें गला, तालू और होठ सूख जाते हैं और वह जीभ निकालकर हाँपता हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ धातुक्षयजदाहः । ६

धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः । क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः ॥ ७ ॥

सीदेत्--म्रियेत ॥

धातुके क्षयसे जो दाह होता है, उससे पीडित मनुष्य मूर्च्छासे तथा तृषासे युक्त होता है, क्रियारहित हो जाता है, स्वर बैठ जाता है और वह मनुष्य अन्तमें मर जाता है ॥ ७ ॥

अथ मर्माभिघातजदाहः । ७

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ।

मर्माणि-शिरोहृदयवस्त्यादीनि ॥

मस्तक, हृदय और मूत्राशय आदि मर्मोंके अभिघातसे जो दाह होता है, वह असाध्य है । यह सातवां दाह है ॥

अथ दाहासाध्यता ।

सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रस्य देहिनः ॥ ८ ॥

जिसके शरीरमें भीतर तो दाह हो और ऊपरसे शरीर शीतल हो, ऐसा सब प्रकारका दाह वर्जित है ॥

अथ दाहचिकित्सा ।

शतधौतघृताभ्यङ्गं लेपं वा यवसक्तुभिः । कोलामलकयुक्तैर्वा धान्याम्लैरपि बुद्धिमान् ॥ ९ ॥

बुद्धिवान् वैद्य दाहवाले मनुष्यके शरीरमें घीको सौवार धोकर मालिस करे अथवा जौके सत्तू और बेर तथा आमले सहित धान्याम्लनामक काँजीका लेप करे ॥ ९ ॥

छादयेत्तस्य सर्वाङ्गमारनालार्द्रवाससा । लामज्जकेन युक्तेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥ १० ॥

दाहसे पीडित मनुष्यके शरीरको काँजीमें भीजे वस्त्रसे ढके, शरीरपर लामज्जकसंयुक्त चन्दनका प्रलेप करे ॥ १० ॥

सुप्याद्दाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसंस्तरे । चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजनैः ॥ परिषेकावगाहेषु व्यजनानाञ्च सेवने । शस्यते शिशिरं तोयं दाहतृष्णोपशान्तये ॥ ११ ॥

दाहसे व्याकुल मनुष्यको कमलके पत्र और केलेके पत्तोंकी शय्यापर सुलावे । चन्दन मिले हुए जलके कण जिनमेंसे गिरते हों, ऐसे पंखोंसे पवन करे, दाह और तृषाको शांत करनेके लिये जलका सींचना वा छिडकना, जलमें घुसकर स्नान करना और पंखेमें भी शीतल जलकाही उपयोग करना चाहिये ॥ ११

फलिनीलोध्रसेव्याम्बु हेमपत्रं कुटन्नटम् । कालेयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ १२ ॥

फलिनी—प्रियंगुः । सेव्यम्—उशीरम् । अम्बु—बालकम् । हेमपत्रम्—नागकेशरम् । कुटन्नट-वितुन्नकं 'गुडतजी' इति लोके । क्वचिच्चम्पावती इति नाम । कालेयकम्—'कलम्बक' इति लोके ॥

फूलप्रियंगु, लोध, सुगन्धबाला, खस, नागकेशरके पत्ते, केवटी मोथा और पीला चन्दन इनका रस निकालकर प्रलेप दाहमें हितकारी है ॥ १२ ॥

ह्रीवेरपद्मकोशीरचन्दनाम्बुजवारिणा ।

सम्पूर्णामवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ १३ ॥

सुगन्धवाला, पद्माख, खस, चन्दन और कमल इनसे सुवासित किया हुआ जल चौबच्चेमें भरदेवे, उसमें दाहसे पीडित मनुष्यको बैठावे ॥ १३ ॥

वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः। नार्यश्चन्दनदिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्यहरा मताः ॥ १४ ॥

जिनमें सुन्दर सुन्दर रंग रंगके मनोहर कमल खिल रहे हैं, ऐसी बावड़ियाँ, जिनमें फुहारे छूट रहे हैं, ऐसे भवन और सर्व अंगोंमें जिनके चन्दन लग रहा है, ऐसी स्त्रियाँ दाहसम्बन्धी दुःखको दूर करती हैं ॥ १४ ॥

पाययेत्कमलस्याम्भः शर्कराम्भःपयोऽपि च। क्षीरमिक्षुरसञ्चापि कारयेत्पित्तजिद्विधिम् ॥ १५ ॥

दाहवाले मनुष्यको कमलका जल पिलावे, खांडकी सरबत पिलावे, मिश्री मिलाकर दूध पिलावे, केवल दूध ही पिलावे और ईखका रस पिलावे इत्यादि पित्तको शमन करनेवाले उपचार करने चाहिये ॥ १५ ॥

अथ चन्दनादिक्वाथः।

पटीरपर्पटोशीरनीरनीरदनीरजैः। मृणालमिसिधान्याकपद्मकामलकैःकृतः॥१६॥

पटीरम्--चन्दनम्

अर्द्धशिष्टः सिताशीतः पीतः क्षौद्रसमन्वितः। क्वाथोन्यपोहयेद्दाहं नृणाञ्च परमोल्वणम् ॥ १७ ॥

सफेद चन्दन, पित्तपापडा, सुगंधवाला, खस, नागरमोथा, कमलगट्टा, कमलकी नाल, सौंफ, धनियाँ, पद्माख और आमले इनका अर्द्धावशेष क्वाथ बनावे, उसमें शीतल होनेपर मिश्री और शहद डालकर पीनेसे मनुष्योंका अत्यन्त उग्र दाह शान्त हो जाता है ॥ १७ ॥

अथ कांजिकतैलम्।

तिलतैलं भवेत्प्रस्थं तत्षोडशगुणे शनैः। काञ्जिके विपचेत्तस्याद्दाहज्वरहरं परम् ॥ १८ ॥

इति दाहाधिकारः।

सोलह भाग काँजीमें धीरे धीरे पकाया हुआ तिलका चौंसठ तोले तेल दाह और ज्वरके सन्तापको दूर करता है ॥ १८ ॥

इति दाहाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथोन्मादाधिकारः ।

तत्र उन्मादनिरुक्तिः।

मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः। मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥ १ ॥

अयमर्थः--यस्माद्धतोरुद्धताः प्रवृद्धाः दोषा उन्मार्गमाश्रिताः मदयन्ति--चित्तं विक्षिपन्ति अस्मिन् सोऽयमुन्माद इति कीर्तितः। स उन्मादः मानसो व्याधिः मनोवक्तृत्यकरणात् ॥

इस रोगमें वृद्धिको प्राप्त हुए वात पित्त कफ दोष अपने मार्गोंको छोडकर अन्य मार्गोंमें आश्रित होकर चित्तको विक्षिप्त करते हैं, इसलिये इसको 'उन्माद' कहते हैं। यह मनको विकृत करदेता है, अत एव यह मानसिकरोग है ॥ १ ॥

अथावस्थाभेदेनोन्मादनामान्तरम्।

सचाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च॥२॥

सः-उन्मादः। तरुणः--नवीनः ॥

यह उन्माद बढा न हो नवीन हो तो 'मद' कहा जाता है ॥ २ ॥

अथोन्मादविप्रकृष्टनिदानम् ।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् । उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमा च चेष्टा ॥ ३ ॥

दुष्टम्--धतूरबीजादिसहितम् । अशुचि-रजस्वलास्पर्शादि । प्रधर्षणम्--अभिभवः । विषमा चेष्टाबलवद्विग्रहादिः ॥

विरुद्ध धतूरे आदि मिश्रित भोजनसे रजस्वला आदिसे स्पर्श किये हुए भोजनसे तथा देवता, गुरु और ब्राह्मणोंके अपमानसे, भयसे, हर्षसे अथवा मनमें चोटके लगनेसे एवं बलवान्के साथ द्वेषादिक विरुद्ध चेष्टा करनेसे इत्यादि कारणोंसे उन्मादरोग उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

अथोन्मादसन्निकृष्टनिदानम् ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः । मानसेन च दुःखेन स पञ्चविधि उच्यते । विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ॥ ४ ॥

१ अत्यन्त कुपित हुई वायुसे, २ अत्यन्त कुपित हुए पित्तसे, ३ अत्यन्त कुपित हुए कफसे, ४ अत्यन्त कुपित हुए तीनों दोषोंसे, ५ मनके दुःखसे और ६ विषादिकोंके भक्षण करनेसे इस प्रकार छः प्रकारका उन्माद होता है । इस उन्मादरोगमें यथादोषानुसार औषधि देनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथोन्मादसम्प्राप्तिः ।

तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य । स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चित्तम् ॥५॥

अल्पसत्त्वगुणवाले मनुष्यके विरुद्ध भोजन आदि कारणोंमे दुष्ट हुए वातादिदोष बुद्धिके निवासरूप हृदयको और बुद्धिको भी दूषित करके मनको बहाने वाले हृदयमें रहकर दश स्रोतोंमें स्थिर होकर तत्काल मनुष्योंके चित्तको विकृत करते हैं ॥ ५ ॥

अल्पसत्त्वस्य—अल्पसत्त्वगुणस्य । मलाःवातादयः । बुद्धेर्निवासं—हृदयं प्रदूष्येति । एतेन आश्रयस्य दुष्ट्या तदाश्रितायाः बुद्धेरपि दुष्टिरुक्ता । मनोवहानि स्रोतांसि—हृदयाश्रितानि दश एतानि विशेषतो बोद्धव्यानि। चरकेण सकलशरीरस्रोतांस्येव मनोऽधिष्ठानत्वेन उक्तानि । प्रमोहयन्ति—विकृतिं कुर्वन्ति ॥

ऊपरके वचनमे मनको बहन करनेवाले स्रोतोंकी जो दश संख्या कही है, उनपर विशेष ध्यान देना चाहिये । कारण कि, चरक तो ' शरीरमें जितने स्रोत हैं, वे सब मनके अधिष्ठान हैं ' ऐसा कहता है ॥

अथोन्मादसामान्यलक्षणम् ।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च । अबद्धवाक्यं हृदयश्च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम्॥६॥

धीविभ्रमः-शुक्तिकायां रजतज्ञानम् । सत्त्वपरिप्लवः--सत्त्वं मनस्तस्य चाञ्चल्यम् । अबद्धवाक्यम्असंबद्धभाषित्वम्। शून्यम्-स्मृति शून्यम्॥

सीपको चांदी समझना ऐसा बुद्धिका भ्रम, मनकी चञ्चलता, दृष्टिको चारों ओर व्याकुलतासे फिराना, अधीरता, असम्बद्ध भाषण और हृदयकी शून्यता विचारणाशक्ति जाती रहे ये उन्मादके सामान्य लक्षण हैं ॥ ६ ॥

अथ वातजोन्मादनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

रूक्षोष्णशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः । चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम् ॥७॥

रूक्ष, गरम और शीतल अन्नको भोजन करनेसे, विरेचनसे, धातुओंके क्षयसे और उपवासादिकोंसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई वायु चिन्तादिकसे दुष्ट हुए हृदयको अतिशय दूषित करके बुद्धिको तथा स्मरण शक्तिको भी तत्काल नष्ट करदेती है ॥ ७ ॥

अथ वातजोन्मादलक्षणम् । १

अस्थानहास्यस्मितनृत्यगीतवागङ्गविक्षेपणरोदनानि । पारुष्यकार्श्यारुणवर्णताश्च जीर्णे बलश्चानिलजस्य रूपम् ॥ ८ ॥

अस्थाने--अनवसरे, हास्यादीनि रोदनान्तानि जीर्णे आहारे बलं व्याधेः ॥

विनाही कारण हँसना या मुसकराना प्रसङ्ग विना नाचना, प्रसंगविना गाना, विना प्रसंग बोलना विना कारण इधर उधर हाथ पैरोंका चलाना, विना प्रसंग रोना, गाल बजाना, दुर्बलता, रूखापन, शरीरका लाल रंग हो जाना और आहारके जीर्ण होनेपर रोगका बढना ये सब बातसम्बन्धी उन्मादके लक्षण जानने ॥ ८ ॥

अथ पित्तजोन्मादसम्प्राप्तिः ।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितंपित्तमुदीर्णवेगम् । उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात् ॥ ९ ॥

हृदि स्थितं पित्तं, चितं,सञ्चितं पुनः अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैरुदीर्णवेगं सदुन्मादं कुर्यात् । पूर्ववत्—हृदयं प्रदूष्य इत्यर्थः ॥

अस्थिर बुद्धिवाले मनुष्योंके हृदयमें संचित हुआ पित्त अजीर्णसे और तीखे,खट्टे,दाहकारक तथा उष्ण भोजनोंसे प्रकुपित होकर हृदयको अत्यंत दूषित करके अत्यंत उग्र भयानक उन्मादको उत्पन्न करता है ॥ ९ ॥

अथ पित्तजोन्मादलक्षणम् । २

अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः सन्तर्जनाभिद्रवणौष्ण्यरोषाः । प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषा पीतास्यता पित्तकृतस्य लिङ्गम् ॥ १० ॥

अमर्षः—असहिष्णुता । संरम्भः-आडम्बर इति यावत् । सन्तर्जनम्—परित्रासनम् । अभिद्रवणम्-पलायनम् । औष्ण्यम्-गात्रे च उष्णो दाहविशेषः । प्रच्छाय इत्यादि—छायायां शीतयोश्चान्नजलयोरभिलाषा ॥

असहनता, शील न रहे, इधर उधर हाथ पाँवोंको पटके तथा अन्यान्य और उपद्रव मचावे, नंगा होजाय, दूसरोंको त्रास देवे, भाग जाय, शरीरमें एक प्रकारका दाह हो, छायाकी इच्छा, शीतल अन्नकी इच्छा, शीतल जलकी इच्छा और मुखमें पीलापन ये सब पित्तजन्य उन्मादके लक्षण जानने ॥ १० ॥

अथ कफजोन्मादनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि सम्प्रवृद्धः । बुद्धिं स्मृतिश्चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन् सञ्जनयेद्विकारम् ॥ ११ ॥

सम्पूरणै-भोजनादिभिः । मन्दविचेष्टितस्यव्यायामरहितस्य । सोष्मा कफ इति । कफोऽपिउन्मादं करिष्यन् पित्तसहायम् अपेक्षते, व्याधिस्वभावात् । मर्मणि--अत्र मर्मशब्देन हृदयमुच्यते ॥

परिश्रम नहीं करनेवाले मनुष्योंके भोजन आदिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ पित्तसहित कफ हृदयमें बुद्धिको तथा स्मृतिको नष्ट करदेता है और चित्तको मोहयुक्त करके उन्मादको उत्पन्न करता है ॥

इस वचनमें 'पित्तसहित कफ' कहा, इससे यह जान पडता है कि, जब कफ उन्माद करनेको तैयार होता है तब उसको व्याधिके स्वभावसे पित्तकी सहायताकी आवश्यकता होती है ॥ ११ ॥

अथ कफजोन्मादलक्षणम् । ३

वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियता च निद्रा । छर्दिश्च लाला च बलश्च भुक्ते नखादिशौक्ल्यञ्च कफात्मके स्यात् ॥ १२ ॥

वाक्चेष्टितं मन्दं वचनमल्पम् । नारीविविक्तप्रियता—नारीप्रियता विजनप्रियता च । भुक्ते सति बलं व्याधेः ॥

कफके उन्मादमें थोडा बोलता है, स्त्रीकी इच्छा होती है, एकांतवास अच्छा मालूम होता है, निद्रा आती है, वमन होती है, लार गिरती है भोजन करनेसे पश्चात् व्याधिका बल बढता है और नखादिक बहुत सफेद हो जातेहैं॥१२॥

अथ सान्निपातिकोन्मादनिदानपूर्वकलक्षणम् । ४

यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैः स तु हेतुभिः स्यात् । सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १३ ॥

सः—सान्निपातिक उन्मादः । सन्निपातग्रहणेनैव सर्वात्मकत्वं लब्धं पुनः सर्वैरिति यत्कृतं तद्रजस्तमःप्रापणार्थं तेन रजस्तमोमिलित इत्यर्थः । तेन वातादयो रजस्तमोभिर्मनोदोषैः मिलिताः समस्तैश्च निदानैः कुपिता उन्मादं जनयन्ति। सर्वैर्हेतुभिः समस्तैर्मिलितैः स्यात् । यतोऽन्यो व्याधिः सर्वैर्हेतुभिः मिलितैरेव भवतीति नियमो नास्ति । अयं तु व्याधिप्रभावात्सर्वैर्हेतुभिर्मिलितैः स्यात् । तादृक् उन्मादः विरुद्धभैषज्यविधिरिति कोऽर्थः ? त्रिदोषजे प्रत्येकं वातादेः प्रत्यनीका चिकित्सा कार्या । सा च परस्परविरोधिनी त्रिदोषं हन्ति । किञ्चिदेव द्रव्यम् आमलकादि । न च अत्र यौगिकम्, व्याधिप्रभावात् । अत एव विवर्ज्यः- न चिकित्स्य इत्यर्थः ॥

सम्पूर्ण कारणोंसे कुपित हुए और रजोगुण तथा तमोगुण मनके दोषोंके साथ मिलकर वात, पित्त और कफ इन तीन दोषोंसे जो अत्यन्त घोर उन्माद होता है, ' उसको सान्निपातिक उन्माद ' कहते हैं । उसमें सब लक्षण देखे जाते हैं । अन्य त्रिदोषजन्य रोग सम्पूर्ण कारणोंके मिलनेसे ही होते हैं, ऐसा नियम नहीं है; किन्तु यह ' सन्निपातिक उन्माद ' तो सम्पूर्ण कारणोंके मिलनेसे ही होता है, ऐसा इसका स्वभाव है । इस उन्मादमें जो कुछ औषधि आदिकी जावे वह सब विरुद्ध पडती है, इस कारण इस उन्मादकी चिकित्सा ही नहीं करनी चाहिये । अन्यरोगोंमें त्रिदोषजन्य वायु आदि प्रत्येक दोषोंकी परस्पर विपरीत चिकित्सा की जाती है और वह चिकित्सा एक दूसरे दोषोंसे विरुद्ध होती है। इस उन्मादमें तो तीनों दोषोंके समान प्रबलता होती है, इस कारण इसमें एक दूसरे दोषसे विरुद्ध चिकित्सा काम नहीं देती । आमला आदि कोई एकही द्रव्य तीनों दोषोंको एक साथमें शान्त करता है, किन्तु वह द्रव्य इस उन्मादमें व्याधिके स्वभावसे उपयोगी नहीं होसकता । उन्मादकी चिकित्सा व्यर्थ जाती है ॥ १३ ॥

अथ मनोदुःखजोन्मादविप्रकृष्टनिदानम् ।

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथाऽन्यैर्वित्रासितस्य धनबान्धवसंक्षयाद्वा । गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतरो च मनसो विकारः ॥ १४ ॥

अन्यैः—हिंस्रादिभिः । गाढम्—अतिशयेन । क्षते-अभिहते ।प्रियया-प्राप्तुमशक्यया। रिरंसोः। पुरुषस्य । विकारः—उन्मादरूपः ॥

चोर, राजपुरुष, शत्रु अथवा अन्यान्य मनुष्योंके त्रास देनेसे बाधनका और बांधवोंका नाश होनेसे मन अत्यन्त दुःखित होकर अथवा जो अपनेको न मिलसके, ऐसी स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छासे मनमें अत्यन्त चोट लगकर अधिकतर प्रबल उन्माद उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

अथ मनोदुःखजोन्मादलक्षणम्। ५

चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसंज्ञो गायत्यथो हसति रोदिति चातिमूढः १५

चित्रमाश्चर्यम्। मनोऽनुगतं गोप्यमपि, विसंज्ञोविरुद्धज्ञानः। अतिमूढः-अतीव ज्ञानशून्यः, अत्र विकल्पो बोद्धव्यः॥

मनके दुःखसे जो उन्माद होता है, उसमें विपरीत ज्ञानवाला अथवा ज्ञानसे रहित होकर वह विचित्र प्रकारसे बोलता है, मनमें स्थित गुप्त बातको भी कह देता है, कभी गाता है, कभी हँसता है और कभी रोता है ॥ १५ ॥

अथ विषजन्योन्मादलक्षणम्। ६

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः श्यावाननो विषकृते तु भवेत्परासुः १६॥

विषजन्य उन्मादमें-आँखें लाल होजाती हैं, बल, इंद्रियोंकी सामर्थ्य और शरीरकी कांति नष्ट होजाती है, मुख काला होजाता है और मन अत्यन्त दीन हो जाता है। यह मनुष्य जीता नहीं ॥ १६ ॥

अथोन्मादारिष्टम्।

अवाङ्मुखस्तन्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः। जागरूको ह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति ॥ १७ ॥

जो उन्मादसे पीडित मनुष्य मुखको नीचेही किये रहे अथवा सदैव ऊपरको उठाये रहे, जागा करे तथा जिसका मांस और बल क्षीण होगया हो ऐसा मनुष्य उन्मादसे अवश्य मर जाता है ॥ १७ ॥

अथ देवाद्युन्मादसामान्यलक्षणम्।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादियुक्तः। प्रकोपकालो नियतश्च यस्य देवादिजन्मा मनसो विकारः॥ १८॥

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टः-न मर्त्यस्येव वागादयो यत्र सः, विक्रमः-पराक्रमः, वीर्यम्-शौर्यम्। ज्ञानादिविज्ञानबलादियुक्तः-ज्ञानं बुद्धिः आदिपदेन तद्भेदाः मेधाविचरणास्मृत्यादयो गृह्यन्ते। विज्ञानं शिल्पादिविषयकं ज्ञानम्। बलम्-चेष्टापाटवम्, आदिपदेन अभिमानादि गृह्यन्ते। नियतः-वक्ष्यमाणतिथ्यादिभिः। मनोविकारः-उन्मादः॥

देवादिकजुष्ट उन्मादमें-उस मनुष्यका बोलना, पराक्रम, शूरता और मनुष्योंकीसी नहीं होती और वह मनुष्य बुद्धि, विचारशक्ति, धारणाशक्ति, स्मरणशक्ति, शिल्प आदिके ज्ञान, बल तथा अभिमान इत्यादिसे संयुक्त होता है। इस उन्मादके प्रकोपका समय अमुक तिथिमें नियमित होता है जो कि, आगे कहा जायगा ॥ १८ ॥

अथ देवग्रहजुष्टलक्षणम्'

सन्तुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो निस्तन्द्रोऽप्यवितथसंस्कृतप्रभाषी तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः ॥ १९ ॥

अतिदिव्यमाल्यगन्धः-अतिशयेन दिव्यस्य माल्यस्येव गन्धो यस्य सः। निस्तन्द्रः-निद्रारहितः। अवितथम्-सत्यम्। ब्रह्मण्यः-ब्राह्मणभक्तः॥

देवग्रहग्रसित उन्मादमें मनुष्य-संतोषी होता है, पवित्र रहता है, उसके शरीरमें दिव्य पुष्पोंकी सी सुगन्ध आती है, निद्रारहित होता है, सत्य और शुद्ध संस्कृत भाषा बोलता है, तेजस्वी होता है, उसके नेत्र स्थिर होते हैं,

दूसरोंको वरदान देता है और ब्राह्मणों की भक्ति करता है ॥ १९ ॥

अथ दैत्याविष्टलक्षणम् ।

सस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः । सन्तुष्टो भवति न चान्नपानजातै दुष्टात्मा भवति स देव शत्रुजुष्टः ॥ २० ॥

विमार्गदृष्टिः कुमार्गरतः । दुष्टात्मा-दुष्टस्वभावः ॥

दैत्यग्रहग्रसित उन्मादवाला मनुष्य--पसीने से तराबोर हो जाता है, ब्राह्मण गुरु और देवताओंकी निन्दा करता है, उसके नेत्र टेढे होजाते हैं, किसीसे भयभीत नहीं होता, कुमार्गमें रुचि रखता है, किसी अन्नपानसे सन्तुष्ट नहीं होता और उसका स्वभाव दुष्ट हो जाता है ॥ २० ॥

अथ गन्धर्वाविष्टलक्षणम् ।

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः । नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २१ ॥

हृष्टात्मा--हृष्टजीवात्मा । पुलिनं-तोयोत्थितं तटं, वनान्तरं- वनमध्यं, तयोःसेवी । चारु च अल्पशब्दमिति हसनक्रियाविशेषणं ॥

गन्धर्व ग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्न अन्तःकरणयुक्त रहता है, जलाशय तट और वन उपवनोंमें निवास करता है, उत्तम आचार रखता है, गान- सुगन्ध तथा पुष्पोंके ऊपर प्रेम रखता है और नाचते नाचते मन्द मुसकान करता है ॥ २१ ॥

अथ यक्षाविष्टलक्षणम् ।

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक्सहिष्णुः तेजस्वी वदति च किंददामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २२ ॥

यक्षग्रहग्रसित मनुष्य--गम्भीर होता है, उसके नेत्र लाल होते हैं, प्रिय सुन्दर बारीक और रंगीन वस्त्र पहनता है, शीघ्र शीघ्र चलता है, थोडा बोलता है, सहनशील और तेजस्वी होता है तथा किसको क्या दूं ? ऐसा बोलता है ॥ २२ ॥

अथ पित्राविष्टलक्षणम् ।

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान् शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः । मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिलाषी तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥ २३ ॥

प्रेतानां मृतानां पितॄणाम् । दिशति ददाति । अपसव्यवस्त्रः--दक्षिणस्कन्धकृतोत्तरीयः ॥

पितृग्रहसे पीडित मनुष्य--कुशा आदिपर अपने पित्रोंको पिंड देता है, शांतचित्त रहता है, अपसव्य अर्थात् दहिने कन्धेपर वस्त्र रखकर अपने पित्रोंको जल भी देता है । मांस, तिल, गुड और खीर खानेकी इच्छा करता है और पित्रोंकी भक्ति करता है ॥ २३ ॥

अथ नागाविष्टलक्षणम् ।

यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचित् सृक्किण्यौ मुहुरपि जिह्वयाऽवलेढि । क्रोधालुर्घृतमधुदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयः स खलु भुजङ्गमेन जुष्टः ॥ २४ ॥

प्रसरति स सर्पवदुरसा चलति । सृक्किण्यौओष्ठप्रान्तौ ॥

सर्पग्रहसे ग्रसित मनुष्य--कभी सांपके समान पृथिवीमें छातीके बलसे चलता है, बारम्बार जीभसे गलफुओंको चाटता है, क्रोधित होता है और सहत, घी, दूध तथा खीर खानेकी इच्छा करता है ॥ २४ ॥

अथ राक्षसाविष्टलक्षणम् ।

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः । क्रोधालुर्विविधबलो निशाविहारी शौचद्विड् भवति स राक्षसैर्गृहीतः ॥ २५ ॥

राक्षसग्रहसे जुष्ट मनुष्य--मांस रुधिर और मदिराके विकारोंकी इच्छा करता है, अत्यन्त निर्लज्ज हो जाता है, अत्यन्त निर्दय व अत्यन्त शूर हो जाता है क्रोधी होजाता है, उसके शरीरमें अनेक प्रकारके बल आ जाते हैं, रात्रिमें भ्रमण किया करता है और पवित्रतासे द्वेष करता है ॥ २५ ॥

अथ ब्रह्मराक्षसाविष्टलक्षणम् ।

देवविप्रगुरुद्वेषी वेदवेदाङ्गनिन्दकः । आत्मपीडाकरोऽहिंस्रो ब्रह्मराक्षससेवितः ॥ २६ ॥

अहिंस्रः--अहिंसाशीलः ।

ब्रह्मराक्षसोंसे पीडित मनुष्य -देवता, ब्राह्मण और गुरु इनसे द्वेष करता है, वेद और वेदके अंगोंकी निन्दा करता है, अन्य किसी मनुष्य को नहीं मारता, किन्तु अपने शरीरको पीडित करता है ॥ २६ ॥

अथ पिशाचविष्टलक्षणम् ।

उद्वस्त्रः कृशपरुषो विरुद्धभाषी दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः । बह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी व्याचेष्टंस्त्रसति रुदन् पिशाचजुष्टः ॥ २७ ॥

उद्वस्त्रः-नग्नः 'दिगम्बरः' इति विदेहवचनात् । कृशः-निर्मांसः । परुषः--रूक्षः । अतिलोलः--सर्वस्मिवन्नपानादौ लोलुपः । व्याचेष्टन्--विरुध्दमाचेष्टन् ॥

पिशाचग्रहसे पीडित मनुष्य -नग्न होजाता है, दुर्बल हो जाता है, विरुद्धवाक्य बोलता है दुर्गन्धित होजाता है, अत्यन्त अपवित्र रहता है, रूखा होजाता है, सर्व प्रकारके अन्न पानों में लंपट होजाता है. बहुत भोजन करता है, निर्जन स्थान और वनोंके मध्यमें रहता है और विरुद्ध चेष्टा करता तथा रोता रोता त्रासको प्राप्त होजाता है ॥ २७ ॥

अथ हिंस्रकराक्षसादिग्रासनिदानम् ।

अशुचिं भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाऽक्षतम् । हिंस्रा हिंस्युर्विहारार्थं सत्कारार्थमथापिवा ॥ २८ ॥

जो मनुष्य अपवित्र रहनेवाला और मर्यादा को तोडनेवाला होता है, वह मनुष्य घावयुक्त हो अथवा घावरहित हो तो भी राक्षसादिक हिंसक जाती उस मनुष्यके मारनेके लिये अथवा उससे अपनी पूजा करानेके लिये उसको पकडते हैं ॥ २८ ॥

अथ हिंसार्थगृहीतलक्षणम् ।

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः सफेनवामी निद्रालुः पतति च कम्पते च योऽति । यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात् सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशेऽब्दे ॥ २९ ॥

यश्चाद्रि इत्यादि । यः पर्वतादिपतितः स ग्रहैर्गृह्यत, इत्यर्थः । आदिशब्देन भित्तिप्रासादयो गृह्यन्ते, तथा त्रयोदशेऽब्दे सर्व एव देवादिगृहीता असाध्याः॥

पर्वतके ऊपरसे, हाथीके ऊपरसे, वृक्षादिक के ऊपरसे भीतके ऊपरसे ऊँचे भवन आदिके ऊपरसे गिरेहुए मनुष्यको राक्षसादि हिंसक जाति ग्रसलेती है, तब उस मनुष्यके नेत्र जड होजाते हैं । वेगसे शीघ्र चले, झागोंयुक्त वमन करे, निद्रा अधिक आवे, गिर पडे और अत्यन्त कांपे, ऐसे मनुष्यका उन्माद असाध्य है । देवादिक ग्रहग्रसित सर्व प्रकारके उन्माद तेरहवें वर्षमें असाध्य होजाते हैं ॥ २९ ॥

अथ देवाद्यावेशसमयः ।

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययो-

रपि । गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपत्तिथौ ॥ ३० ॥ पितरः कृष्णपक्षे च पञ्चम्यामपि चोरगाः । रक्षःपिशाचा रात्रौ च चतुर्दश्यां विशन्ति हि ॥३१॥

विशेष करके देवग्रह पूर्णमासीके दिन, दैत्य दोनों संध्याकालोंमें, गन्धर्व अष्टमीके दिन, यक्षग्रह पडवाकेदिन, पितृग्रह कृष्णपक्षमें सर्पग्रह पंचमीके दिन, राक्षस रात्रिमें और पिशाचग्रह चतुर्दशीके दिन मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

कृष्णपक्षे अमावास्यायां प्रायशः यदन्यत्रापि । तिथ्यभिधानप्रयोजनं लक्षणार्थं तत्र तत्र तिथौ च बलिदानार्थम्॥

पितृग्रह विशेष करके कृष्णपक्षकी अमावास्याके दिन प्रवेश करते हैं और किसी समय अन्य तिथियोंमें भी प्रवेश करते हैं । लक्षण समझनेके लिये और उन उन तिथियोंमें बलिदान करनेके लिये तिथि कही है ।

अथ देवादिग्रहोमनुष्यशरीरे
प्रविशन् न दृश्यत इत्याह ।

दर्पणादीन्यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा । स्वमणिं भास्करार्चिश्च यथा देहं च देहधृक् । विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणम् ॥ ३२ ॥

दर्पणादीनिति -आदिशब्देन अन्यदपि निर्मलद्रव्यम् जलतैलादिद्रव्यञ्च गृह्यते । छाया-प्रतिबिम्बं । स्वमणिः-सूर्यमणिः । देहधृक्--जीवात्मा ॥

जो देवादिक ग्रह मनुष्योंके शरीरमेंप्रवेश करते हैं, वे मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करते समय क्यों नहीं दीखते ? ऐसी कोई शंका करे उसके समाधानके लिये कहते हैं-जिस प्रकार दर्पण अथवा जल वा तेल आदिक द्रव पदार्थोंमें छाया प्रवेश करती है और प्रवेश करती दीखती नहीं, जिस प्रकार शीत और गरमी मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करती है, किन्तु प्रवेश करती दीखती नहीं, जिस प्रकार सूर्यकी किरणें सूर्य कांत आतसी सीसा मणिमें प्रवेश करती हैं और प्रवेश करती नहीं दीखती, जिस प्रकार जीव शरीरमें प्रवेश करता है और प्रवेश करता दीखता नहीं उसी प्रकार देवादिक ग्रह शरीरमें प्रवेश करते हैं, किन्तु प्रवेश करते दीखते नहीं ॥ ३२ ॥

अथोन्मादचिकित्सा ।

वातिके स्नेहपानं प्राग्विरेकः पित्तसम्भवे । कफजे वमनं कार्यं परो वस्त्यादिकः क्रमः ॥ ३३ ॥

वातके उन्मादमें प्रथम स्नेहपान कराना चाहिये । पित्तके उन्मादमें प्रथम विरेचन कराना चाहिये और कफके उन्मादमें प्रथम वमन करानी चाहिये पश्चात् पिचकारी आदि लगानी चहिये ॥ ३३ ॥

यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारे चिकित्सितम् । उन्मादे तच्च कर्त्तव्यं सामान्यं दोषदूष्ययोः ॥ ३४ ॥

अपस्मार रोगमें दोषोंके लिये तथा दोषोंसे दूषित हुई धातुओंके लिये जो कुछ चिकित्सा कही जाती है, वह सब चिकित्सा उन्मादमें भी करनी चहिये ॥ ३४ ॥

जलाग्निद्रुमशैलेभ्यो विषमेभ्यश्च तं सदा । रक्षेदुन्मादिनं यत्नात् सद्यःप्राणहरं हि तत् ॥ ३५ ॥

उन्मादरोगीकी जलसे, अग्निसे, वृक्षोंसे, पर्वतोंसे तथा अन्यान्य विषम स्थानोंसे यत्नपूर्वक सर्वदा रक्षा करनी चाहिये । कारण यह है कि, जल और अग्नि आदि तत्काल मृत्युको करनेवाले हैं ॥ ३५ ॥

ब्राह्मीकूष्माण्डीफलषड्ग्रन्थाशंखपुष्पिकास्वरसाः । दृष्टा उन्मादहृतःपृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः ॥ ३६ ॥

अयमर्थः–ब्राह्मीरसः (तोला) ४, कुष्ठचूर्णमाषौ २, मधु अष्टौ माषाः पेयाः। इति एको योगः॥ कूष्माण्डबीजचूर्णमाषाः ८। कुष्ठचूर्णमाषौ २। अयं द्वितीयो योगः॥ शंखपुष्पीस्वरसं पलैकं १, कुष्ठचूर्णं माषद्वयं २, मधुनः अष्टौ माषाः पेयाः। अयं तृतीयो योगः॥

ब्राह्मीका रस चार तोले, कूठका चूर्ण १२ रत्ती और सहत ४८ रत्ती इन सबको एकत्र मिलाकर पीनेसे उन्माद नष्ट होता है। पेठेके बीजोंका चूर्ण ४८ रत्ती और कूठका चूर्ण १२ रत्ती इनको सहतमें मिलाकर खानेसे उन्माद नष्ट होजाता है। शंखाहुलीका रस चार तोले, कूठका चूर्ण १२ रत्ती और सहत ४८ रत्ती इनको एकत्र मिलाकर पीनेसे उन्मादका नाश होता है॥ ३६॥

अथ सिद्धार्थकादि।

सिद्धार्थको हिङ्गु वचा करञ्जो देवदारु च। मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभी त्वक् कटुत्रयम्॥ ३७॥ समांशानि प्रियङ्गुश्च शिरीषो रजनीद्वयम्। बस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदःपानमञ्जनम्॥३८॥ नस्यमालेपनञ्चैव स्नानमुद्वर्तनं तथा। अपस्मारविषोन्मादकृत्याऽलक्ष्मीज्वरापहम्॥ ३९॥ भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते। सर्पिरेतेन संसिद्धं सगोमूत्रं तदर्थकृत्॥ ४०॥

सरसों हींग, वच, करंज, देवदारु, मंजीठ, हरड, बहेडा, आमला, फट्कूरी, मालकांगुनी, दालचीनी, सोंठ, मिर्च, पीपल, फूलप्रियंगू, सिरस, हलदी और दारुहलदी इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीसकर औषधि बनावे। इस औषधिको पीनेसे, नेत्रोंमें आँजनेस, नस्य देनेसे, शरीरपर प्रलेप करनेसे, स्नान करनेसे और उबटन करनेसे--अपस्मार, विष, उन्माद, अभिचार अलक्ष्मी, ज्वर और भूतबाधा दूर होती है। इस औषधिका उपयोग करके राजद्वारमें जाना बहुत श्रेष्ठ है। इन्हीं औषधियोंके द्वारा पकाया हुआ घी गोमूत्रके साथ सेवन किया जाय तो वह भी येही गुण करता है॥३७-४०

अथोन्मादिनस्त्रासभयकरणम्।

ब्रूयादिष्टविनाशश्च दर्शयेदद्भुतानि च। बद्धं सार्षपतैलाक्तं रक्षेदुत्तानमातपे॥ ४१॥

उन्माद रोगीसे उसकी प्रिय इष्ट वस्तुका नाश होना कहे, इसको आश्चर्यजनक खेल दिखावे और उसके शरीरमें सरसोंके तेलका लेप कर तथा बांध धूपमें चित्त सुलावे॥४१॥

कपिकच्छ्वाऽथवा तप्तैर्लोहतैलजलैः स्पृशेत्। कशाभिस्ताडयेत्तं वा सुबद्धं विजने गृहे॥ ४२॥

शरीरमें कौंछकी फली घिसकर लगावे, तपेहुए लोहेसे, तेलसे अथवा जलसे स्पर्श करावे, एकान्त घरमें अच्छी, प्रकारसे उसको बाँधकर खूब कोडे लगावे॥ ४२॥

सर्पेणोद्धृतदन्तेन दशैर्सिहगजैश्च तम्। त्रासयेच्छस्त्रहस्तैश्च शत्रुभिस्तस्करैस्तथा॥ ४३॥

जिसके दाँत निकाल लिये गये हों ऐसे सांपसे कटवावे, सिंह तथा हाथियोंसे डरपावे, शत्रु तथा चोरोंसे भयभीत करावे॥ ४३॥

अथवा राजपुरुषा बहिर्नीत्वा सुसंयतम्। त्रासयेयुर्वधैरेनं तर्जयन्तौ नृपाज्ञया॥४४॥ देहदुःखभयेभ्यो हि यतः प्राणभयं भवेत्। ततस्तस्य शमं याति सर्वतो विप्लुतं मनः॥ ४५॥

अथवा राजासे आज्ञा लेकर उनके राजनौकरोंसे नगरके बाहर लिया जाकर खूब

बांधकर तिरस्कार करते करते मार डालनेकी धमकी देवे कारण यह है कि. भयके लगनेसे और शरीरपर दुःखोंके पडनेसे प्राण जानेका भय उत्पन्न होता है और उस भयके होनेसे विकृत हुआ चित्त कदाचित् अपने ठिकाने आजाता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

इष्टद्रव्यविनाशेन मनो यस्याभिहन्यते । तस्य तत्सदृशप्राप्त्या ज्ञात्वाऽऽश्वासैः शमं नयेत् ॥ ४६ ॥

उन्मादरोगीको गई हुई वस्तुके समान दूसरी वस्तु देवे, जिसका मन किसी प्रिय वस्तुके विनाशसे अभिघातको प्राप्त हुआ हो, उस मनुष्यके लिये विचार करके उसी वस्तुके समान दूसरी वस्तु देनेका धीरज देकर चित्त को शांत करे, इस प्रकार करनेसे बिगडा हुआ मन शांत होता है ॥ ४६ ॥

अथ त्र्यूषणाञ्जनम् ।

त्र्यूषणं हिङ्गु लवणं वचा कटुकरोहिणी । शिरीषस्य करञ्जस्य बीजं गौराश्च सर्षपाः ॥ ४७ ॥ गोमूत्रपिष्टैरेभिस्तु वर्तिर्नेत्राञ्जने हिता । हन्त्युन्मादमपस्मारं तथा चातुर्थकं ज्वरम् ॥४८॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, सैंधानिमक, वच, कुटकी, सिरसके बीज, करंजके बीज और सफेद सरसों इनको गोमूत्रमे पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रोंमें आंचनेसे उन्माद, मृगी और चौथियाज्वर नष्ट हो जाता है॥४७॥४८

अथ सारस्वतचूर्णम् ।

कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा । माङ्गल्यपुष्पी च समान्यमूनि सर्वैः समानाश्च वचा विचूर्ण्य ॥ ४९ ॥ ब्राह्मीरसेनाखिलमेव भाव्यं वारत्रयं शुष्कमिदं हि चूर्णम् । अक्षप्रमाणं मधुना घृतेन लिह्यान्नरः सप्त दिनानि चूर्णम् ॥५०॥

माङ्गल्यपुष्पी--शंखपुष्पी 'शंखाहुली' इति लोके ।

सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा हिताय सर्वलोकानां दुर्मेधा (दुर्बुद्धी) नां विचेतसाम् ॥ ५१ ॥ एतस्याभ्यासतः पुंसां बुद्धिर्मेधा धृतिः स्मृतिः । सम्पत्तिः कविताशक्तिः प्रवर्द्धेतोत्तरोत्तरम् ॥ ५२ ॥

कूठ, असगंध, सैंधानिमक, अजमोद, जीरा, कालाजीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, पाढ और शंखाहुली इनको समान भाग लेवे और सब ओषधियोंकी बराबर वच लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके ब्राह्मीके रसकी तीन भावना देवे। जब यह चूर्ण सूखजाय तब इसमेंसे एक एक तोला लेकर सहतमें तथा घीमें मिलाकर सात दिन तक चाटे। ब्रह्माजीने पूर्व कालमें सर्व लोकोंके हितके लिये विशेषकर दुष्टबुद्धिवाले मनुष्योंके लिये यह 'सारस्वतचूर्ण' निर्माण किया है। इस चूर्णको नित्य सेवन करनेसे मनुष्योंकी बुद्धि, धारणाशक्ति, धीरज, स्मरणशक्ति, संपत्ति और कविताशक्तिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है ॥ ४९ ॥ ५२ ॥

अथ विश्वाद्यचूर्णम् ।

विश्वाजमोदरजनीद्वयसैन्धवोग्रायष्टयाह्वकुष्ठमगधोद्भवजीरकाणाम् । चूर्णं प्रभातसमये लिहतः ससर्पिर्वाग्देवता निवसति स्वयमेव वक्त्रे ॥ ५३ ॥

सोंठ, अजमोद, हलदी, दारुहलदी, सैंधानिमक, वच, मुलहठी, कूठ, पीपल और जीरा इनका चूर्ण करके घीमें मिलाकर प्रातःकाल चाटे तो साक्षात् सरस्वती देवी मुखमें निवास करती है ॥ ५३ ॥

अथ महाचैतसघृतम् ।

क्वाथे विचूर्णिते क्षिप्त्वा तत्षोडशगुणं जलम् । पादशेषं प्रकर्तव्यमेष क्वाथविधिः स्मृतः ॥ ५४ ॥ दशमूली तथा रास्ना

वातारिस्त्रिवृता बला । मूर्वा शतावरी चेति क्काथैस्तु कुडवैः पृथक् ॥ ९५ ॥ कृतैः क्काथैर्घृतप्रस्थद्वयं मृद्वग्निना पचेत्। कल्कीकृतैर्वक्ष्यमाणद्रव्यैः सम्यक् पुनः पचेत् ॥ ९६ ॥ विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम्। स्थिराऽनन्ता रजन्यौ द्वे प्रियङ्गुः सारिवाद्वयम्॥९७॥ नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठादन्तीदाडिमकेसरम्। विडङ्गं ह्यग्निपत्री च कुष्ठं चन्दनपद्मके ॥ ९८ ॥

अग्निपत्री--अगिनौतीति अगिया इति च लोके ॥

तालीशपत्रं बृहती मालतीकुसुमं नवम्। अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैः कर्षमितैः पृथक् ॥ ५९ ॥ चतुर्गुणं जलं दत्त्वा पिष्टैस्तद्विपचेद्‌ घृतम्। महाचैतसनामेदं सर्वचेतोविकारनुत् ॥ ६० ॥ अपस्मारे महोन्मादे मन्देऽग्नौ ज्वरकासयोः। वातरक्ते प्रतिश्याये शोषे कार्श्ये तृतीयके ॥ ६१ ॥ मूत्रकृच्छ्रे कटीः शूले विसर्पाभिहतेषु च । पाण्ड्वामये तथा कण्ड्वां विषे मेहे गरेऽपि च ॥ ६२ ॥ देवादिहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम्। शस्तं स्त्रीणाञ्च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ॥ ६३ ॥ अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् । हन्ति भ्रमं मदं मुर्च्छां मेधास्मृतिमतिप्रदम् ॥ ६४ ॥

दशमूल, दायसन, एरंड, निसोत, खिरैंटी, मूर्वा और शतावर ये प्रत्येक औषधि सोलह सोलह तोले लेकर कूट लेवे। सबको एकत्र करके सोलहगुने जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाइ भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्वाथमें दोसौ अठाशी तोले घीको मन्द मन्द अग्निसे पकावे, फिर इन्द्रायन, हरड, बहेडा, आमले, रेणुका, देवदारु, एलुआ, सालपर्णी, धमासा, हलदी, दारुहलदी, फूलप्रियंगू, दोनों प्रकारकी सारिवा, नीले कमल, इलायची, मंजीठ, जमालगोटेके बीज, अनारकी केसर, वायविडंग, अग्निपत्री, कूठ, लालचन्दन, पद्माख, तालीसपत्र, कटाई और मालतीके नवीन फूल ये प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले लेकर चौगुने जलमें पीसकर तथा अलग अलग कल्क बनाकर उस कल्कसे अच्छी प्रकार घृतको सिद्ध करे तो यह 'महाचैतस' नामक घृत सिद्ध होता है। यह घी चित्तके समस्त विकारोंको शांत करता है तथा अपस्मार, महोन्माद, अग्निकी मन्दता, ज्वर, खाँसी, वातरक्त, सरेकमा, शोष, कृशता, एकान्तरज्वर, मूत्रकृच्छ्र, कटिशूल, विसर्प, पांडुरोग, खुजली, विष, प्रमेह और स्थावर विषादिकोंको नष्ट करता है। उसी प्रकार देवादिक ग्रहसे पीडित हुए पित्तके विकार और मनकी शून्यतामें हित है तथा वन्ध्या स्त्रियोंको पुत्र देनेवाल है। भ्रम, मद, मूर्च्छा, गद्गद कण्ठका होना, अलक्ष्मीके निवासको और पापके सन्तापादि सम्पूर्ण दोषोंको निवारण करनेवाला है ॥ ५४-६४ ॥

अथ देवाद्युन्मादचिकित्सा।

पूजाबल्युपहारेष्टिहोममन्त्राञ्जनादिभिः। जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक् ॥ ६५ ॥

श्रेष्ठ वैद्य--पूजा, बलिदान, उपहार, हवन, इष्टमन्त्रका आराधन और अञ्जनादिकोंसे आगन्तुक देवतादिकोंकी यथायोग्य पूजा करे ॥ ६५ ॥

अथ कृष्णाञ्जनम्।

कृष्णामरिचसिन्धूत्थमधु गोरोचनाकृतम्। अञ्जनं सर्वदेवादिकृतोन्मादहरं परम् ॥ ६६ ॥

पीपल, मिरच, सैंधानिमक, सहत और गोरोचन इन सब औषधियोंको कूट पीस छानकर अञ्जन बनावे, इस कृष्णांजनके लगानेसे देवादिकोंके कोपसे उत्पन्न हुए सब प्रकारके उन्माद तत्काल नष्ट होते हैं ॥ ६६ ॥

अथर्क्षलोमकधूपः ।

ऋक्षजम्बूकलोमानि शल्लकी लशुनं तथा । हिङ्गु मूत्रश्च बस्तस्य धूममस्य प्रयोजयेत् । एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः ॥ ६७ ॥

ऋक्ष और गीदड स्यार के रोम, सेईके कांटे, लहशुन हींग और बकरेका मूत्र इन सबको मिलाकर धूप देनेसे बलवान् ग्रहदोषोंकी भी तुरन्त शान्ति होती है ॥ ६७

अथ कल्याणघृतम् ।

कल्याणकश्चं युञ्जीत महद्वा चैतसं घृतम् । तैलं नारायणं वाऽथ महानारायणं तथा ॥ ६८ ॥ ऋते पिशाचादन्येषु प्रतिकूलं न चाचरेत् । रोगिणं भिषजं यत्ते क्रुद्धा हन्युर्महौजसः ॥६९॥

इति उन्मादाधिकारः ।

कल्याण घृत वा महाचैतस घृत अथवा नारायण तैल वा महानारायण तेलका उन्माद रोगमें चतुर वैद्य सेवन करावे । पिशाचोंके अतिरिक्त और देवताओंके विरुद्ध कोई किसी प्रकारका आचरण न करे, क्योंकि ये महाबलवान् प्रतिकूल आचरण करनेसे क्रोधित होकर रोगीको वा वैद्यको तत्कालही मारडालते हैं । फिर कोई उपाय नहीं बन सकता है ॥

इति उन्मादाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथापस्माराधिकारः ।

तत्रापस्मारनिदानसहितसम्प्राप्तिः ।

चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतासि स्थिताः । कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ १ ॥

चिन्ता और शोकादिकोंसे कुपित हुए दोष हृदयके स्रोतोंमें अर्थात् मनके बहानेवाली नाडियोंमें स्थित होकर स्मृतिका नाश करके अपस्मारनामक रोगको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

अथापस्मारसंख्या ।

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैर्दोषैः स स्याच्चतुर्विधः ॥ २ ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे और त्रिदोषसे इस रीतिसे अपस्मार चार प्रकारका है ॥ २ ॥

अथापस्मारसामान्यलक्षणम् ।

तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतिः । अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरतरो हि सः ॥ ३ ॥

संरम्भः--नेत्रविकृतिहस्तपादादिविक्षेपणादिकम् ॥

जिस रोगमें ऐसा जानपडे कि, मैं अन्धकारमें प्रवेश करता हूँ और दोषोंके प्रकोपसे स्मृति नष्ट हो जाय, नेत्रोंमें विकार हो और हाथ पावोंको इधर उधर फेंके, ये अपस्मार रोगके लक्षण हैं । इसी महाभयंकर रोगको वैद्यलोग ' मृगी ' कहते हैं ॥ ३ ॥

अथापस्मारपूर्वरूपम् ।

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता । निद्रानाशश्च तस्मिंश्च भविष्यति भवन्त्यथ ॥ ४ ॥

शून्यता हृदयस्यैव । ध्यानम्-विस्मापनम् । मूर्छामनोमोहः । प्रमूढता-इन्द्रियमोहः । भविष्यतिभाविनि । तस्मिन्-अपस्मारे ॥

अपस्माररोग होने से पहिले हृदय कम्पायमान और शून्यता, पसीना, विस्मय, मूर्छा, मनमें मोह, इन्द्रियोंमें मूढता और निद्राका नाश हो जाता है ॥ ४ ॥

अथ वातजापस्मारलक्षणम्।

कम्पते प्रदशेद्दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि। अभितोऽरुणवर्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात्॥ ५॥

जिसको वातकी मृगी हो. उसके शरीर में कम्प, दांतोंका चबाना, मुखसे झागोंका उगलना ऊँचा श्वास लेना, नेत्रोंमें अग्निके समान चारों ओर लाल रूपोंका देखना, ये वातकी मृगी के लक्षण हैं॥ ५॥

अथ पित्तजापस्मारलक्षणम्।

पीतफेनाङ्गवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः। सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिके॥ ६॥

पीतस्य असृग्रूपस्य बावस्तुनो दर्शनं यस्य सः पीतासृग्रूपदर्शनः॥

जिसको पित्तकी मृगी हो, उस मनुष्यके शरीरमें मुखमें और नेत्रोंमें पीलापन हो, सफेद या लाल वर्ण वस्तुको देखे, तृषा लगे और संसारके सब पदार्थोंमें अग्निकी प्रचण्ड ज्वालासी व्याप्त दिखाई देवे, ये पित्तका मृगी के लक्षण हैं॥ ६॥

अथ कफजापस्मारलक्षणम्।

शुक्लफेनाङ्गवक्त्राक्षः शीतो हृष्टाङ्गजो गुरुः। पश्येच्छुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिके मुच्यते चिरात्॥ ७॥

शीतः-शीताङ्गः। हृष्टाङ्गजः- हृष्टरोमा। गुरुः- गुरुगात्रः॥

जिसको कफकी मृगी हो, उस पुरुष के शरीरका, मुखका और नेत्रोंका रंग फेनसा सफेद, अंगों में भारीपन, शीत और रोमोंका खडा होना, सब लोकको वस्तुको सफेद ही सफेद देखना और बहुत कालोपरान्त चितका शान्त होना ये लक्षण कफ के मृगीके हैं॥ ७॥

अथ सन्निपातापस्मारलक्षणम्।

समस्तैर्लक्षणैरेतैर्विज्ञातव्यस्त्रिदोषजः। अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः॥ ८॥

स च त्रिदोषजः असाध्यः तथा क्षीणस्य अनवश्च एकदोषजोऽपि असाध्य इत्यर्थः॥

अपस्मारमें ऊपर कहे हुए त्रिदोषके सम्पूर्ण लक्षणोंसे जो पूर्ण हो, उस प्राणी को तीनों दोषोंसे अपस्मार रोग जानना, यह रोग असाध्य है और क्षीण मनुष्यको बहुत दिनों की मृगी एक दोषसे उत्पन्न हुई भी असाध्य है। ये लक्षण सन्निपातकी मृगीके हैं॥ ८॥

अथापस्मारारिष्टम्।

प्रस्फुरन्तश्च बहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम्। नेत्राभ्याञ्च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत्॥ ९॥

प्रस्फुरन्तम्-गात्रस्फुरणयुक्तम्। नेत्राभ्याञ्च विकुर्वाणम्-मनेत्रे विकृते कुर्वन्तम्॥

जिस मृगीवाले मनुष्यके अंग अधिक फडकते हों, शरीर क्षीण हो गया हो नेत्र विकृत हों, भृकुटी चलायमान हो तो वह रोगी किसी प्रकार मृत्युके पंजे से बच नहीं सकता॥ ९॥

अथापस्मारप्रकोपसमयः।

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः। अपस्मारं प्रकुर्वन्ति वेगं किञ्चिदथान्तरम्॥ १०॥

पक्षात्पित्तं द्वादशाहाद्वायुर्मासात्कफः अपस्मारं करोतीत्यर्थः। वेगं किञ्चिदथान्तरम्-किंचित्स्वल्पं वेगम्, आनन्तम् उक्तकालानामन्तरालेऽपि कुर्वन्ति॥

प्रकोप होनेपर पित्तका अपस्मार एक पक्ष में अर्थात् पन्द्रह दिनमें उत्पन्न होता है और पक्षके मध्यमें भी थोडा सा वेग करता है। वातका अपस्मार बारह दिनमें उत्पन्न होता है

और इसके मध्यमें भी किंचित् वेग करता है और कफका अपस्मार एक महीनेसे उत्पन्न होता है और एक मासके मध्यमें भी अणुमात्र अपना वेग करता है ॥ १० ॥

ननु हेतुभूतेषु दोषेषु विद्यमानेषु सदैव तद्व्याधिप्रकोपः कथं न स्यात् ?

शंका-अपस्मारके कारणरूप दोषोंके सदैव विद्यमान रहनेपर अपस्मार सर्वदा क्यों नहीं रहता ?

अत आह-देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित् । शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयः ॥ ११ ॥

अयमर्थः-यथा उत्पत्तिकारणसामग्र्यां सत्यामपि वास्तुकादिवीजानि स्वभावात् शरदि एव प्ररोहन्ति तथा हेतुभूतेषु दोषेषु विद्यमानेषु अपि स्वभावात् अपस्मारो द्वादशाहादिषु एव वेगं करोति इत्यर्थः ॥

समाधान-जिस प्रकार उत्पत्तिके कारणरूप पूर्ण वर्षा होनेपर भी बथुए इत्यादिके बीज स्वभावके कारण शरद ऋतुमें ही उपजते हैं । उसी प्रकार कारणरूप दोषोंके विद्यमान होनेपर भी अपने स्वभावसे ही द्वादशादिक दिवसमें अपस्मार भी अपने कोपको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अथापस्मारचिकित्सा ।

तैलेन लशुनः सेव्यः पयसा च शतावरी । ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ १२ ॥

तेलमें मिलाकर लहसुन, दूधमें औटाकर सतावर और सहतमें मिलाकर ब्राह्मीकारस सेवन करे तो सब प्रकारके अपस्मारका निवारण होता है ॥ १२ ॥

चूर्णैः सिद्धार्थकादीनां भक्षितैरथवाऽपि तैः । गोमूत्रपिष्टैः सर्वाङ्गलिप्तैः शाम्यत्यपस्मृतिः ॥ १३ ॥ सिद्धार्थशिग्रुकटवङ्गकिणिहीभिः प्रलेपनम् । चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ १४ ॥

कट्वङ्गः-सोनापाठा । किणिही-चिरचिटा ।

सरसों, सहँजना, सोनापाठा, चिरचिटा इन सबका चूर्ण खानेसे अथवा इनको गायके मूत्रमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे अथवा इन्हीं औषधियोंमें चौगुना गोमूत्र मिलाकर और उतनाही तेल मिलाकर विधिपूर्वक पकाकर सब शरीरपर मालिस करनेसे अपस्माररोग शान्त होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

निर्गुण्डीभववन्दारनावनस्य प्रयोगतः । उपैति सहसा नाशमपस्मारो महागदः ॥ १५ ॥

मनोह्वा तार्क्ष्यविष्ठा च शकृत्पारावतस्य च । अञ्जनाद्धन्त्यपस्मारमुन्मादं च विशेषतः ॥ १६ ॥

मनोह्वा मनःशिला । शकृत् विष्ठा ।

निर्गुण्डीके बन्देके रसका नस्य लेनेसे महाबलवान् अपस्मार रोगका तुरन्त ही नाश होता है । मैनशिल, रसौत, गोबर और कबूतरकी बीट इन सब औषधियोंको महीन पीस अञ्जन बनावे, इस अञ्जनको नेत्रोंमें लगानेसे अपस्मार और उन्माद अवश्य ही दूर होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

यः खादेत्क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः । अपस्मारं महाघोरं चिरोत्थं स जयेद् ध्रुवम् ॥ १७ ॥

सहतके साथ घुडबचके चूर्णको चाटे और दूध भात खाय तो महाघोर बहुत दिनोंका पुराना अपस्मार अवश्य ही नष्ट होता है ॥ १७

कूष्माण्डकफलोत्थेन रसेन परिपेषितम् । अपस्मारविनाशाय यष्ट्याह्वं स विबेत्त्र्यहम् ॥ १८ ॥

त्र्यहमिति एकस्य पानात् दिवसत्रयेणैव अपस्मारोपशम । भवतीत्यभिप्रायः ॥

मुलैठीको महीन पीसकर पेठेके रसके साथ तीन दिन पीनेसे अपस्मारका नाश होता है ॥ १८ ॥

अथ ब्राह्मीघृतम्।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशङ्खपुष्पीशृतं घृतम्। पुराणं स्यादपस्मारोन्मादग्रहहरं परम् ॥ १९ ॥ एतस्य प्रक्रिया—पुराणं गोघृतं प्रस्थमितम्। वचाकुष्ठशङ्खपुष्पाणां समुदितानां कुडवमितानां कल्केन प्रस्थमितब्राह्मीरसपिष्टेन पचेत् ॥

वच सोलह तोले, कूठ सोलह तोले, शंखपुष्पी सोलह तोले इन सबको चौंसठ तोले ब्राह्मीके रसमें पीसकर उसमें चौंसठ तोले पुराना गौका घृत मिलाकर कल्क बनावे। उसका सेवन करनेसे अपस्मार, उन्माद और संपूर्ण ग्रहदोषोंका विनाश होता है ॥ १९ ॥

अथ कूष्मांडघृतम्।

कूष्माण्डकरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत्। यष्टयाह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ॥ २० ॥

अठारह गुणे पेठेके रसमें स्वच्छ गायके घी और मुलेठीका कल्क मिलाकर पकावे, जब पक करके स्वांगशीतल हो जाय, तब उस कूष्माण्डघृतका सेवन करे तो अपस्मारका शीघ्रही विनाश होता है ॥ २० ॥

अथ कल्याणचूर्णम्।

हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता ॥ २१ ॥ दशमूलीजलं तस्य कल्याणाख्यं प्रयोजयेत्। पञ्चकोलं समरिचं त्रिफला विडसैन्धवम् ॥ २२ ॥ कृष्णाविडङ्गपूतीकयवानीधान्यजीरकम्। पीतमुष्णाम्बुना चूर्णं वातश्लेष्मामयापहम् ॥ २३ ॥ अपस्मारे तथोन्मादेऽप्यर्शसि ग्रहणीगदे। एतत्कल्याणकं चूर्णं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ २४ ॥

हृदयमें कंप, नेत्रोंमें पीडा, शरीरमें पसीना और हाथ, पाँवोंमें शीतलता जिस मृगीरोगवाले मनुष्यके हो, उसको दशमूलका क्वाथ और कल्याणचूर्ण देवे। उस कल्याणचूर्णमें क्या क्या औषधि हैं, सो सब लिखते हैं—पीपल, पीपलामूल, चव्य चीता, सोंठ, मिर्च, हरड, बहेडा, आमला, विडलोन, सैंधानोन, वायविडंग, करंजुआ, अजवायन, धनियाँ और जीरा इन सब औषधियोंका चूर्ण महीन पीसकर गरम पानीके साथ कॉंपनेसे वात कफके रोग, अपस्मार, उन्माद, बवासीर, संग्रहणी और मन्दाग्नि इन सबको शान्त करता है ॥ २१-२४ ॥

द्वौ कीटमेढ्रौ विधिवदानीय रविवासरे। कण्ठे भुजे वा सन्धार्य जयेदुग्रामपस्मृतिम् ॥ २५ ॥ अयं तु कीटो नदीतीरे सिकतामध्ये तिष्ठति ॥

नदीके किनारे रेतके भीतर रहनेवाले कीडोंके दो मेढ्र रविवारके दिन विधिपूर्वक लाकर अपस्मारवाले रोगीके कंठ और भुजामें बांधनेसे महाभयंकर अपस्मारका भी विनाश होता है ॥ २५ ॥

शिग्रुकुष्ठजलाजाजीलशुनव्योषहिङ्गुभिः। बस्तमूत्रे शृतं तैलं नावनं स्यादपस्मृतौ ॥ २६ ॥

जलम्—वालकम्। अजाजी-जीरकः। बस्तःछागः। नावनम् नस्यम् ॥

सहिंजना, कूट, सुगन्धवाला, जीरा, लहसुन, सोंठ, मिरच, पीपल और हींग इन औषधियोंको पीसकर बकरेके मूत्र और तेलमें पकाले, उसकी नस्य लेनेसे अपस्मारका नाश होता है ॥ २६ ॥

उन्मादेषु यदुद्दिष्टं पथ्यं नस्याञ्जनौष-

धम्। अपस्मारेऽपि तत्सर्वं प्रयोक्तव्यं भिषग्वरैः ॥ २७ ॥

उन्मादमें जो जो पथ्य, नस्य, अंजन और औषधि लिखी हैं, वे सब औषधि अपस्मारमें भी व्यवहारमें लानी चाहिये ॥ २७ ॥

अथ भूतभैरवरसः।

मृतसूताभ्रलोहञ्च शिलागन्धश्च तालकम्। रसाञ्जनञ्च तुल्यांशं नरमूत्रेण मर्दयेत् ॥ २८ ॥ तद्गोलद्विगुणं गन्धं लोहपात्रे क्षणं पचेत् । पञ्चगुञ्जोन्मितं भक्ष्यमपस्मारहरं परम् ॥ २९ ॥ व्योषं सौवर्चलं हिङ्गु नरमूत्रेण सर्पिषा। पिबेत्कर्षमितं पश्चाद्रसोऽयं भूतभैरवः ॥ ३० ॥

इति अपस्माराधिकारः।

पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, लोहेकी भस्म, मैनशिल, गन्धक, हरिताल और रसौत इन सबको समान भाग लेकर मनुष्यके मूत्रमें खरल करे। फिर इसका गोला बनाकर, गोलेसे दूनी गन्धकके साथ लोहके बर्तनमें क्षणमात्र पकावे, इस प्रकार 'भूतभैरव' नाम रस सिद्ध होता है। इस रसको पांच रत्ती खानेसे अपस्मारका नाश होता है। इसको खाकर त्रिकटु, कालानिमक और भूनी हींग इनको महीन पीसकर मनुष्यके मूत्र और घृतके साथ पीवे २८-३० ॥

इति अपस्माररोगाधिकारः समाप्तः।

अथ वातव्याध्यधिकारः।

तत्र वातव्याधिसामान्यकारणानि।

कषायकटुतिक्तकप्रमितरूक्षलघ्वन्नतः पुरः पवनजागरप्रतरणाभिघातश्रमैः। हिमादनशनात्तथा निधुवनाच्च धातुक्षयात् मलादिरयधारणान्मदनशोकचिन्ताभयैः १ अतिक्षतजमोक्षणाद्दृदकृतातिमांसक्षयाद्तीव वमनान्नृणामतिविरेचनादामतः। पयोदसमये दिनक्षणदयोस्तृतीयांशयोर्जरामतिगतेऽशिते शिशिरसंज्ञकालेऽपि च ॥ २ ॥ देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली। करोति विविधान्रोगान् सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् ॥ ३ ॥

कसैला, चरपरा, कडवा, अत्यन्त थोडा, अत्यन्त अधिक, रूखा, हलका ऐसा अन्न भोजन करनेसे, पूर्वदिशाकी पवनको सेवन करनेसे, जागनेसे, पानीमें तैरनेसे, चोट आदिके लगनेसे, श्रमसे, अत्यन्त शीतके लगनेसे, उपवास आदि करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, धातुओंके क्षयसे, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, कामदेवकी पीडासे, शोकसे, चिन्तासे, भयसे, बहुत रुधिरके निकलवानेसे, रोगसे मांसके क्षीण होनेसे, अत्यन्त वमन और विरेचन करनेसे और आमसे वातसम्बन्धी व्याधि उत्पन्न होती है। वर्षाऋतुमें, दिनके तथा रात्रिके तीसरे भागमें, भोजन किये अन्नके जीर्ण होनेपर और शिशिर ऋतुमें भी बलवान् वायु शरीरके खाली स्रोतोंको भरकर सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाले अथवा एक किसी अंगमें रहनेवाले अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करती है ॥ १-३ ॥

प्रमितम् अत्र वैपरीत्येन उपसर्गस्तेन अपरिमितमित्यर्थः। प्रकर्षेण मितमत्यल्पं च । लघ्वन्नम् अतिपुराणं शाल्यादि । कतिचिदन्नानि नवानि अपि वातलानि। यत आह गुणरत्नमालायाम्--नीवारस्त्रिपुटःसतीनचणकश्यामाकमुद्गाढकीनिष्पावाश्च मकुष्ठकश्च वरटा मंगल्यकः कोद्रवः ॥ ४ ॥

एते वातकरा इति शेषः। नीवारः-प्रसाधिका तिनीति लोके। त्रिपुटः-खेसारीति लोके।

त्रिपुटः-खेसारीति लोके । सतीनः-कलायः । निष्पावो--राजमाषः वोडा इति लोके । मकुष्ठक--मोड इति लोके । वरटा-वरटिका वरै इति लोके । मंगल्यः-मसूरी । पुरःपवनः-प्राग्वातः । आमतः आमेन मार्गावरणात् । यत उक्तम् "वायोर्धातुक्षयात्कोपो मार्गस्यावरणेन" च इति । पयोदसमये--वर्षासु । जरामतिगते-अशिते भुक्तेऽतीव जीर्णता गते । देहे स्रोतांसि इत्यादिना संप्राप्तिरुक्ता कषायादिभिर्हेतुभिः ॥

अत्यन्त पुराने शालिचावल आदि अन्न हलके अन्न गिने जाते हैं, कितने नवीन अन्नभी वायुको उत्पन्न करनेवाले हैं, गुणरत्नमाला निघण्टुमें लिखा है कि, तिनी (नीवार पुनेरा,) कस्सा (खेसारी,) मटर, चने, समा, मूँग, अरहर, लोविया, मोठ, कर्र और मसूर तथा कोदों ये धान्य वायुको उत्पन्न करनेवाले हैं। आमसे मार्गका आवरण होता है, इस कारण आमसेभी वायुसम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि, धातुओंके क्षयसे और मार्गोंके आवरणसे वायुका कोप होता है ॥ ४ ॥

अथ वषर्त्वादिकारणप्रबलवातोत्पन्नव्याधिनामान्याह ।

शिरोग्रहोऽल्पकृशता जृम्भाऽत्यर्थं हनुग्रहः । जिह्वास्तम्भो गद्गदत्वं मिन्मिनत्वञ्च मूकता ॥ ५ ॥ वाचालता प्रलापश्च रसानामनभिज्ञता । बाधिर्यं कर्णनादश्च स्पर्शाज्ञत्वं तथाऽर्दितम् ॥ ६ ॥ मन्यास्तम्भोऽत्र गणितो बाहुशोषोऽपबाहुकः । वर्णिता चैव विश्वाची ऊर्ध्ववात उदीरितः ॥ ७ ॥ अध्मानश्च प्रत्याध्मानं वाताष्ठीला प्रत्यष्ठीला । तूनी च प्रतितूनी च वह्निवैषम्यमेव च ॥ ८ ॥ आटोपः पार्श्वशूलं च त्रिकशूलं तथैव च । मुहुश्च मूत्रणं मूत्रनिग्रहो मलगाढता ॥ ९ ॥ पुरीषस्यप्रवृत्तिश्च गृध्रसी च ततः परा । कलायखञ्जता वाऽपि खञ्जता पङ्गुता तथा ॥ १० ॥ क्रोष्टुशीर्षकखल्यौ च वातकण्टक एव च । पादहर्षः पाददाह अक्षेपो दण्डकाभिधः ॥ ११ ॥ वातपित्तकृताक्षेपस्तथा दण्डापतानकः । अभिघातकृताक्षेप आयामो द्विविधः स्मृतः ॥ १२ ॥ आन्तरश्च तथा बाह्यो धनुर्वातश्च कुब्जकः । अपतन्त्रोऽपतानश्च पक्षाघातोऽखिलाङ्गकः ॥ १३ ॥ कम्पः स्तम्भो व्यथा तोदो भेदश्च स्फुरणं तथा । रौक्ष्यं कार्श्यञ्च काष्णर्यञ्चशैत्यं लोम्नाञ्च हर्षणम् ॥ १४ ॥ अङ्गमर्दोऽङ्गविभ्रंशः शिरासङ्कोच एव च । अङ्गशोषश्च भीरुत्वं मोहश्च चलचित्तता ॥ १५ ॥ निद्रानाशः स्वेदनाशो बलहानिस्तथैव च । शुक्रक्षयो रजोनाशो गर्भनाशः परिभ्रमः ॥ १६ ॥ एत एवाशीति संख्या रोगा योगेन रूढितः । वातव्याधीति नामानो मुनिभिः परिकीर्तिताः ॥ १७ ॥

शिरोग्रह १ । अल्पकृशता २ । जृम्भा ३ । हनुग्रह ४ । जिह्वास्तम्भ ५ । गद्गदता ६ । मिन्मिनत्व ७ । मूकता ८ । वाचालत्व ९ । प्रलाप १० । रसाज्ञान ११ । बाधिर्य १२ । कर्णनाद १३ । त्वक्छून्यता १४ । अर्दित १५ । मन्यास्तम्भ १६ । बाहुशोष १७ । अपबाहुक १८ । विश्वाची १९ ऊर्ध्वबाहु २० । आध्मान २१ । प्रत्याध्मान २२ । वाताष्ठीला २३ । प्रत्यष्ठीला २४ । तूनी २५ । प्रतितूनी २६ । वह्निवैषम्य २७ । आटोप २८ । पार्श्वशूल २९ ।

त्रिकशूल ३०। मुहुर्मूत्रण ३१। मूत्रनिग्रह ३२। मलगाढता ३३। मलाप्रवृत्ति ३४। गृध्रसी ३५। कलायखञ्जता ३६। खंजता ३७। पंगुता ३८। क्रोष्टुशीर्ष ३९। खल्ली ४०। वातकंटक ४१। पादहर्ष ४२। पाददाह ४३। दण्डकाक्षेप ४४। वातपित्तकृताक्षेप ४५। दण्डापतानक ४६। अभिघाताक्षेप ४७। अन्तरायाम ४८। बाह्यायाम ४९। धनुर्वात ५०। कुब्जक ५१। अपतन्त्र ५२। अपतानवात ५३। पक्षाघात ५४ सर्वांगवात ५५। कम्प ५६। स्तम्भ ५७। व्यथा ५८। तोद ५९। भेद ६०। स्फुरण ६१। रौक्ष्य ६२। कार्श्य ६३। कार्ष्ण्य ६४। शैत्य ६५। लोमहर्ष ६६। अङ्गमर्द ६७। अङ्गविभ्रंश ६८। शिरासंकोच ६९। अंगशोष ७०। भीरुता ७१। मोह ७२। चलचित्तता ७३। निद्रानाश ७४। स्वेदनाश ७५। बलहानि ७६। शुक्रनाश ७७। रजोनाश ७८ गर्भनाश ७९। परिश्रम ८० ये अस्सी रोग वातव्याधि नामसे कहलाते हैं, ऐसा मुनियोंका वाक्य है ॥ ५ ॥ १७ ॥

एत एव शिरोग्रहादय एव। योगेन वातेन वाताद्व्याधिर्वातव्याधिरिति निरुक्त्या, तदा वातज्वरादिष्वपि प्रसंगः स्यादत आह–रूढितः--प्रसिद्धितः। शिरोग्रहादयोऽशीतिरेव वातव्याधिसंज्ञाः प्रसिद्धाः, नतु वातज्वरादयः ॥

'वातव्याधि' यह यौगिक नाम है और रूढि नामभी है। शिरोग्रह आदि वातसे उत्पन्न होते हैं, इस कारण ये वातव्याधि कहलाते हैं, अतएव वातव्याधि शब्दका जो समाससिद्ध अर्थ है, उस उसमें प्रवर्तन होनेसे 'वातव्याधि' शब्द यौगिक गिना जाता है,। किन्तु ये अस्सी व्याधिही 'वातव्याधि' कही जाती हैं, पर वातज्वर आदि व्याधि 'वातव्याधि' नहीं कही जाती। ऐसी प्रसिद्धि है; इस कारण 'वातव्याधि' शब्द रूढभी गिना जाता है, जो केवल यौगिक ही गिना जाता तो वातज्वर आदि व्याधियोंमें भी इस शब्दकी प्रवृत्ति हो जाती ॥

अथ वातव्याधिसामान्यचिकित्सा।

मधुरलवणसाम्लस्निग्धनस्योष्णनिद्रागुरुविकरवस्तिस्वेदसन्तर्पणानि। दहनजलदशोपाभ्यङ्गसंमर्दनानि प्रकुपितपवनानां शान्तिमेतानि कुर्युः ॥ १८ ॥

मधुर, खारे, खट्टे और स्निग्ध पदार्थ, नस्य लेना, गरम पदार्थ, निद्रा, भारी पदार्थ, सूर्यकी धूप, वस्तिकर्म, सेक आदि स्वेदनकर्म, तर्पण करना, दाग देना, जलका छिडकना, क्रोध, स्नेहका अभ्यंग और शरीरको मर्दन करना ये सब कर्म कुपित हुई वायुको शान्त करते हैं ॥ १८ ॥

अथ शिरोग्रहलक्षणम्।

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्द्धधराशिराः। रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिरोग्रहः ॥ १९ ॥

मूर्द्धधराशिराः--ग्रीवागताः। पवनः शिरोग्रहः स्यात् इत्यन्वयः। स च असाध्यः ॥

कुपित हुई वायु रुधिरमें प्राप्त होकर नाडमें रहनेवाली शिराओंको रूक्ष, वेदनायुक्त और काली कर देती है, उसको 'शिरोग्रह' कहते हैं। यह शिरोग्रह असाध्य है ॥ १९ ॥

अथ शिरोग्रहचिकित्सा।

शिरोग्रहे तु कर्तव्या शिरागतमरुत्क्रिया। दशमूलीकषायेण मातुलुङ्गरसेन च। शृतेन तैलेनाभ्यङ्गः शिरोवस्तिश्च युज्यते ॥ २० ॥

शिरोग्रह हुआ हो तो शिराओंमें रहनेवाली वायुकी चिकित्सा करनी चाहिये। दशमूलके क्वाथसे और बिजौरे नींबूके रसके द्वारा पकाये हुए तेलका अभ्यंग और इसी तेलकी शिरोवस्ति देनी चाहिये (शिरोवस्तिकी विधि प्रथम खण्डमें कह आये हैं, सो देख लेना) ॥ २० ॥

अथ जृम्भालक्षणम् । ३

पीत्वैकं श्वासमनिलः पुनस्त्यजति वेगवान् । आलस्यनिद्रायुक्तश्च जम्भ इति कथ्यते ॥ २१ ॥

वेगवाला पवन एक श्वासको पीकर फिर उस श्वासको बाहर निकालता है और उसके साथ आलस्य तथा निद्रासी प्रतीत होती है; उसको 'जृम्भा' जंभाई कहते हैं ॥ २१ ॥

जृम्भशब्दस्त्रिलिङ्गः । तथा च "जृम्भस्तु त्रिषु जृम्भणम्" इत्यमरः ॥

मूलश्लोकमें जृम्भाशब्दके बदले जृम्भ लिखा है, उसका कारण यह है कि, संस्कृतभाषामें जृम्भशब्द त्रिलिंग है, यानी जृम्भ शब्द तीनों लिंगोंमें होता है और जृम्भणशब्द नपुंसक लिंगमें है, ऐसा अमरकोषमें कहा है ॥

अथ जृम्भाचिकित्सा ।

शुण्ठी पिप्पल्यूषणं दीप्यकश्च सिन्धूद्भूतं चेति सर्वं पृथग्वा । तद्रूपं वा सूक्ष्मचूर्णीकृतं वा जृम्भारम्भस्तम्भकृत्स्यात्तदेव ॥ २२ ॥

सोंठ, पीपल, कालीमिरच, अजवायन और सैंधानिमक इन पदार्थोंको अलग अलग अथवा एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करके खाय तो तत्कालही जम्भाई रुक जाती है ॥ २२ ॥

जृम्भावेगे समुत्पन्ने शोभने शयने नरम् । स्वापयेत्तेन नियमाज्जृम्भावेगः प्रशाम्यति ॥ २३ ॥

जब जम्भाई आना आरम्भ हो तब उस मनुष्यको सुन्दर शय्यापर शयनभवनमें सुला देवे; इससे जम्भाई रुक जाती है ॥ २३ ॥

जृम्भावेगः क्षयं याति कटुतैलेन मर्दनात् । भोजनात्स्वादुभोज्यानां तथा ताम्बूलभक्षणात् ॥ २४ ॥

सरसोंके तेलकी मालिस करनेसे, मधुरभोजनसे और नागरवेल तांबूल के खानेसे जम्भाई शांत होजाती है ॥ २४ ॥

अथ हनुग्रहनिदानलक्षणे । ४

जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः । कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनुम् ॥ २५ ॥ करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् । हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ २६ ॥

निर्लेखनम्-कर्षणम् । शुष्कं-चणकादि । स्रंसयित्वा-अधः कृत्वा । विवृतास्यत्वम्--व्यात-मुखत्वम् । संवृताम्--दन्तलग्नताम् ॥

जीभको घिसनेसे, चने आदि सूखे पदार्थोंके चाबनेसे तथा चोट से कोपको प्राप्त हुई ठोडीकी जडमें हरनेवाली वायु ठोढीको नीचे करके मुखको बंद करदेती है अथवा खोलदेती है। इसमें कठिनतासे चबाना और बोलना होता है। इसको 'हनुग्रह' कहते हैं । इस रोगमें जो मुख बन्द रहजाता है तो दांतके जावडे परस्पर मिल जाते हैं, और जो मुख खुला रहजाता है तो दांतके जावडे परस्पर नहीं मिलसकते ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ हनुग्रहचिकित्सा ।

संवृतं चिबुकं स्निग्धं स्विन्नमुन्नमयेद्भिषक् । विवृतं नमयित्वा तु कुर्यात्प्राप्तामिह क्रियाम् ॥ २७ ॥

मुख बन्द होगया हो तो जावडेको स्नेहन और स्वेदन संस्कार कराकर मुखको खोल देवे और जो मुख खुल गया हो तो ठोडीको नमाकर योग्य क्रिया करे ॥ २७ ॥

पिप्पलीमार्द्रकश्चापि सञ्चर्व्य च मुहुर्मुहुः । निष्ठीवेत्तप्ततोयेन शोधयेद्वदनान्तरम् ॥ २८ ॥

पीपल और अदरख इनको चबा चबाकर वारंवार थूके और गरम जलसे मुखके भीतरके भागको स्वच्छ करे ॥ २८ ॥

निष्कुष्य लशुनं सम्यक्संक्षुद्य तिलतैलवत् । सैन्धवेनान्वितं खादेद्धनुस्तम्भार्दितो नरः ॥ २९ ॥

लहसुनको कूटकर तिलके तेलके साथ और सैंधेनमकके साथ खाय तो हनुग्रह दूर हो जाता है ॥ २९ ॥

रसोनगुटिकामाषविदलं परिपेष्य च । योजयेत्पिष्टिकां ताञ्च सैन्धवार्द्रकहिङ्गुभिः ॥ ३० ॥ ततस्तु वटकान् कृत्वा तिलतैले पचेच्छनैः । भक्षयेत्तान्यथावह्नि हनुस्तम्भात् सुखी भवेत् ॥ ३१ ॥

लहसुन और उडदकी भीजी हुई धुली दाल दोनोंको एकत्र पिट्ठी पीसकर उसमें सैधानिमक, अदरख और हींग डालकर बडे बनावे, इन बडोंको तिलके तेलमें धीरे धीरे मंदाग्निसे पकावे, फिर अपनी जठराग्निके बलानुसार सेवन करे तो हनुग्रह नष्ट होजाता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अभ्यज्य पक्वतैलेन स्वेदयेन्मृदुनाऽग्निना । वस्तिं विधारयेन्मूर्ध्नि तैलेन परिपूरितम् ॥ ३२ ॥

पकाये हुए प्रसारणी तेलकी मालिस करके मन्द अग्निसे सेककर मस्तकके ऊपर तेलसे भी हुई वस्तिको धारण करे तो हनुग्रह नष्ट होजाता है ॥ ३२ ॥

अथ प्रसारणीतलम् ।

समूलपत्रशाखायाः प्रसारण्याः शतं पलैः । सम्यक्संक्षुद्य सलिले द्रोणमात्रे पचेद्भिषक् ॥ ३३ ॥ सलिलस्य चतुर्थांशं क्वाथं समवशेषयेत् । ततः पलशते तैले तं कषायं पुनः पचेत् ॥ ३४ ॥ पचेत्पलशतं मस्तु काञ्जिकं मस्तुना समम् । ततः शुद्धं पचेद् दुग्धं गव्यं तैलाच्चतुर्गुणम् ॥३५॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं व चा । शतपुष्पा देवदारु रास्ना च गजपिप्पली ॥ ३६ ॥ प्रसारणीभवं मूलं मांसी रक्तश्च चन्दनम् । तथा वातारिमूलञ्च बलामूलञ्च नागरम् ॥ ३७ ॥ तैलस्य चाष्टमांशेन सर्वकल्कानि साधयेत् । नाम्ना प्रसारणी तैलं विख्यातं तत्प्रयुज्यते ॥ ३८ ॥

चारसौ तोले मूल, पत्र और शाखाओं समेत प्रसारणी का पंचांग लेकर अच्छी प्रकारसे कूटकर एक हजार चौवीस तोले जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार लेवे, फिर उस क्राथको वस्त्रमें छानकर चूल्हेपर चढादेवे और उसमें तिलका तेल चारसौ तोले,दहीका तोड चारसौ तोले, काँजी चारसौ तोले और तेलसे चौगुना उत्तम गायका दूध डालकर यथाविधि पकावे । फिर इसमेंसे चीता, पीपलामूल, मुलैठी, सैंधानिमक, वच, सोया देवदारु, रासना, गजपीपल प्रसारिणीकी जड, जटामांसी, लाल चन्दन, अरण्डकी जड, खिरैंटीकी जड और सोंठ ये सब पचास तोले लेकर कल्क बनाकर तेलमें मिलाकर पकावे तो प्रसारणी तेल सिद्ध होता है ॥ ३३-३८ ॥

पाने नस्ये शिरोवस्तौ मर्दने स्वेदने तथा । प्रयुक्तं वातजान् रोगान् सर्वानपि विनाशयेत् ॥ ३९ ॥ विशेषतो हनुस्तम्भं जिह्वास्तम्भं तथाऽर्दितम् । गद्गदत्वञ्च विश्वाचीं मन्यास्तम्भापबाहुकौ ॥ ४० ॥ त्रिकशूलं गृध्रसीञ्च खञ्जतां पङ्गुतां तथा । कलायखञ्जतां खञ्जं स्तम्भं सङ्कोचमेव च ॥ ४१ ॥ आन्तरं बाह्यमायामं तथा दण्डापतानकम् । धनुर्वातञ्च कुब्जत्वं व्यपोहति न संशयः ॥ ४२ ॥ क्षीणानां स्थविराणाञ्च वातसंकोचितात्मनाम् । प्रसारयेद्यतोऽङ्गानि तदुक्तैषा प्रसारणी ॥४३॥

इस प्रसारिणी तेलको-पीनेसे, नस्यसे शिरोवस्तिसे, मर्दनसे और स्वेदनकर्मसे संपूर्ण

वातजन्य व्याधि नष्ट होजाती हैं और विशेष करके हनुग्रह, जिह्वास्तम्भ, अर्दित, गद्गदता, विश्वाची, मन्यास्तम्भ, अपबाहुक, त्रिकशूल, गृध्रसी, खंजता, पङ्गुता, कलायखंजता, खंज, स्तम्भ, संकोच, अंतरायाम, बाह्यायाम, दंडापतानक, धनुर्वात और कुब्जत्वका नाश होता है। यह प्रसारिणी औषधि वातके कारण अंगमें संकुचित हुए, क्षीण हुए और सुकडे हुए वृद्ध मनुष्योंके अंगोंको फैला देती है इस कारण संकोचको नष्ट करनेवाली यह प्रसारिणी नामसे कही जाती है ॥ ३९-४३ ॥

अथ जिह्वास्तम्भलक्षणम्। ५

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः। जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ ४४ ॥

अनीशता-असामर्थ्यम्।

कुपित हुई वायु वाणीकी बहानेवाली शिराओंमें प्राप्त होकर जीभको स्तब्ध करदेती है। इसको 'जिह्वास्तम्भ' कहते हैं। इसमें मनुष्य खान पान और बोलनेमें असमर्थ होजाता है ॥ ४४ ॥

अथ जिह्वास्तम्भचिकित्सा।

जिह्वास्तम्भे यथावस्थं वाताव्याधिचिकित्सितम्। सामान्योक्ता क्रिया चात्रार्दितस्यापि हिता मता ॥ ४५ ॥

जिह्वास्तंभरोगमें अवस्था आदिकी योग्यताके अनुसार वातव्याधिहीकी चिकित्सा करे और अर्दितरोगमें जो सामान्य चिकित्सा कही है, वह भी हितकारी है ॥ ४५ ॥

अथ गद्गदमिन्मिनमूकतालक्षणानि। ६-८

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः। नरान् करोत्यवचनान् मूकमिन्मिनगद्गदान् ॥ ४६ ॥

कफसहित वायु शब्दको चलानेवाली धमनियोंका आवरण करके मनुष्योंको वचनक्रियारहित करदेती है। यही वायु जो प्रबल हो तो मनुष्योंको मूक कर देती है अर्थात् गूँगा कर देती है और जिसमें पदोंका तथा व्यंजनोंका लोप होजाय ऐसा गद्गदपनयुक्त कर देती है ॥ ४६ ॥

अवचनान् अत्र ईषदर्थे नञ्, तेन ईषद्वचनान्। स एव वायुः प्रबलश्चेत्तदा मूकान् अवचनान्। मिन्मिनान् सानुनासिकवचनान्। गद्गदाँल्लुप्तपदव्यञ्जनाभिधायिनः करोति इति अन्वयः। एषां समानाधिकरणत्वेऽपि दुष्टेरनुत्कर्षादिना अदृष्टवशाद्वा भेदो बोद्धव्यः ॥

पदोंका तथा व्यंजनोंका जिसमें बोलते समय लोपहोजाय, उसको गद्गदत्व कहते हैं। गूँगेके समान जो अक्षरोंको नाकसे बोले, उसको मिन्मिनत्व कहते हैं और गूंगापनको मूकता कहते हैं। यद्यपि इन सब रोगोंका एकही स्थान है तथापि दोषोंकी न्यूनाधिकतासे अथवा प्रारब्धके योगसे इन रोगोंके भेद होजाते हैं, ऐसा जानना ॥

अथ गद्गदमिन्मिनमूकताचिकित्सा।
तत्र सारस्वतघृतम्।

प्रस्थं घृतस्य पलिकैः शिग्रुवचालवणधातकीलोध्रैः। आजे पयसि सपाठैःसिद्धं सारस्वतं नाम्ना ॥ ४७ ॥

सहिंजना, वच, सैंधानिमक, धायके फूल, लोध और पाढ इनको चार चार तोले लेकर कल्क बनाकर उस कल्कसे बकरीके दूधमें सौंसठ तोले घृतको पकावे, इसको 'सारस्वतघृत' कहते हैं ॥ ४७ ॥

विधिवदुपयुज्यमानं जडगद्गदमूकतां क्षणाज्जित्वा। स्मृतिमतिमेधाप्रतिभाः कुर्यात्सुस्पष्टवाक्त्वमपि ॥ ४८ ॥

इस घृतको विधिपूर्वक सेवन करनेसे जडता, गद्गदपना और मूकता क्षणभरमें नष्ट

हो जाती है, वाणी स्पष्ट होती है और स्मृति, मेधा तथा तर्कशक्ति प्राप्त होती है ॥ ४८ ॥

अथ कल्याणावलेहः ।

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् । अजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैन्धवम् ॥ ४९ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । तच्चूर्णं सर्पिषा लेह्यं प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ५१ ॥ एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नरः । मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिस्वनः ॥ ५१ ॥

हलदी, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा अजमोद मुलहठी, और सैंधानिमक इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके घीमें मिलाकर नित्य चाटे तो मनुष्य २१ दिनमें श्रवण मात्रसे धारण करनेकी शक्तिवाले, मेघके तथा दुन्दुभि शब्दके समान स्वरवाले और मदोन्मत्त कोयलके समान स्वरवाले हो जाते हैं ॥ ४९–५१ ॥

अथ प्रलापलक्षणम् । १०

स्वहेतुकुपितादवातादसंबद्धं निरर्थकम् । वचनं यन्नरो ब्रूते स प्रलापः प्रकीर्तितः ॥ ५२ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुई वायुसे जो मनुष्य असंबद्ध और व्यर्थ बोलने लगता है, उसको 'प्रलाप' कहते हैं ॥ ५२ ॥

अथ प्रलापचिकित्सा ।

सतगरवरतिक्तारेवताम्भोदतिक्ता
नलदतुरगगन्धाभारतीहारहूराः ।
मलयजदशमूलीशङ्खपुष्पः सुपक्काः
प्रलपनमपहन्युःपानतो नातिदूरात् ॥ ५३ ॥

वरतिक्तोऽत्र पर्पटः । नलदम्–उशीरम् । भारती–ब्राह्मी । हारहूरा–द्राक्षा ॥

तगर, पित्तपापडा, अमलतासे, नागरमोथा, कुटकी, सुगन्धवाला, असगन्ध, ब्राह्मी, दाख, चन्दन, दशमूल और शंखाहुली इनका विधिपूर्वक क्काथ बनाकर सेवन करनेसे प्रलाप तत्काल नष्ट होजाता है ॥ ५३ ॥

अथ रसाज्ञानलक्षणम् । ११

भुञ्जानस्य नरस्यान्नं मधुरप्रभृतीन् रसान् । रसज्ञा यन्न जानाति रसाज्ञानं तदुच्यते ॥ ५४ ॥

भोजन करते समय जिस मनुष्यकी जिह्वा मधुर आदि रसोंको न जाने, उसको 'रसाज्ञान' कहते हैं ॥

अथ रसाज्ञानचिकित्सा ।

घर्षेज्जिह्वां जडां सिन्धुत्र्यूषणैः साम्लवेतसैः । अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमीरितम् ॥ ५५ ॥

सैंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल और अमलवेत इनको एकत्र पीसकर जिह्वाको घिसे। जो अमलवेत नहीं मिले तो उसके बदले चूका ले लेवे ॥ ५५ ॥

अथ किराततिक्तादिकल्कः ।

किराततिक्ता कटुका कुटजस्य फलं वचा । ब्राह्मी फलश्च पालाशं सर्जिका कृष्णजीरकम् ॥ ५६ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रं नागरमूषणम् । एषां कल्कैर्मुहुर्घर्षेज्जिह्विकामार्द्रिकारसैः ॥ ५७ ॥ तेन सम्यग्विजानाति रसना सकलान्रसान् । कल्कः किराततिक्तादिर्जिह्वायाः शून्यतां हरेत् ॥ ५८ ॥

चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ, वच, ब्राह्मी, ढाकके बीज, सज्जीखार, कालाजीरा, पीपल, पीपलामूल, चीता, सोंठ और मिरच इन सबको अदरखके रसमें पीसकर जीभपर बारम्वार घिसे तो जीभको रसका ज्ञान अच्छी प्रकार होजाता है। यह 'किरातति-

क्तादि कल्क ' जीभकी जडताको दूर करता है ॥ ५६-५८ ॥

अथ बाधिर्यकर्णनादौ । १२, १३

बाधिर्यकर्णनादयोर्लक्षणं चिकित्सा च तदधिकारे वक्ष्यामः ॥

'बधिरता और कर्णनाद' इनके लक्षण तथा चिकित्सा कर्णरोगाधिकारमें कहेंगे ॥

अथ त्वक्शून्यतालक्षणम् । १४

स्पृश्यमाना त्वचा या तु शीतोष्णं मृदु कर्कशम् । न जानाति बुधैस्त्वक् च शून्येति परिकीर्तिता ॥ ५९ ॥

जो स्पर्श करते समय त्वचामें शीतल, गरम, कोमल, कठिन इनकी खबर न पडे, उसको पंडित त्वक् शून्य कहते हैं ॥ ५९ ॥

त्वक्शून्यताचिकित्सा ।

सुप्तवाते त्वसृङ्मोक्षं कारयेद्बहुशो भिषक् । दद्याच्च लवणाङ्गारधूमैस्तैलसमन्वितैः ॥ ६० ॥

त्वक्शून्यता हुई हो तो वैद्य वारंवार रोगी के शरीरमेंसे रुधिर निकलवावे, फस्त खुलवावे तथा अंगारके ऊपर तैल और सैंधानिमक डालकर धुआँ देवे ॥ ६० ॥

अथार्दितसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् । १५

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च । हसतो जृम्भतो भाराद्विषमाच्छयनासनात् ॥ ६१ ॥ शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिगः । अर्दयत्यनिलो वक्त्रमर्दितं जनयेत्ततः ॥ ६२ ॥ वक्री भवति वक्त्रार्द्धं ग्रीवा चाप्यपवर्तते । शिरश्चलति वाक्सङ्गो नेत्रादीनाञ्च वैकृतम् ॥ ६३ ॥ ग्रीवाचिबुकदन्तानां तस्मिन् पार्श्वे च वेदना । तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः ॥ ६४ ॥

व्याहरतः-वदतः । कठिनानि-पूगफलादीनि । विषमाच्छयनासनात्-ग्रीवादिवैपरीत्येन शयनादासनाच्च । अर्दयति-पीडयति । ततस्तदनन्तरम् । अर्दितं जनयेत् । अर्दिते किं स्यात्तदाह-वक्री भवति इत्यादि । अपवर्तते-वक्रा भवति । चलति-कम्पते । वाक्सङ्ग-वाङ्निरोधः । नेत्रादीनामिति आदिशब्देन भ्रूगण्डनासिकादीनां ग्रहणम् । वैकृत्यम्-वेदनास्फुरणवक्रत्वादि । ग्रीवेत्यादि-यस्मिन् पार्श्वे अर्दितं तस्मिन् पार्श्वे ग्रीवादीनां वेदना ॥

ऊंचे स्वरसे बोलनेसे, सुपारी आदि कठिन पदार्थोंके खानेसे, अत्यन्त हंसनेसे, अत्यन्त जम्भाई लेनेसे अधिकतर भारको उठानेसे, नाडको टेढी तिरछी रखकर विषम रीतिसे सोनेसे और विषम रीतिसे बैठनेसे मस्तक, नाक, होंठ, ठोढी, ललाट और नेत्रोंकी संधि इनमें रहनेवाली वायु मुखको पीडित करती है, इससे अर्दितरोग उत्पन्न होता है जब यह अर्दित रोग उत्पन्न होता है, तब इसमें आधा मुख टेढा होजाता है, नाड टेढी हो जाती है, मस्तक कांपने लगता है बोलनेमें असमर्थ हो जाता है, नेत्र, भौंह, गाल और नाक इनमें वेदना, स्फुरण तथा टेढापन होता है और जिस ओर यह अर्दितरोग होता है, उसी ओरकी गरदन, ठोढी और दांतोंमें वेदना होती है, रोगके ज्ञाता वैद्य इस रोगको अर्दित 'लकवा' कहते हैं ॥ ६१-६४ ॥

वातात्पित्तात्कफाच्च स्यात्त्रिविधं तत्समासतः ॥

वातज, पित्तज और कफज इस प्रकार संक्षिप्त रीतिसे अर्दितरोग तीन प्रकारका है ॥

लालास्रावो व्यथा कम्पः स्फुरणं हनुवाग्ग्रहः । ओष्ठयोः श्वयथुः शूलं चार्दिते वातजे भवेत् ॥ ६५ ॥

वातके अर्दितरोगमें-रोगीके मुखसे लार गिरा करती है, पीडा होती है, शिराओंमें

स्फुरण होता है, कम्प होता है, ठोडी जकड जाती है, कम बोला जाता है, होठमें सूजन और शूल होता है ॥ ६५ ॥

पीतमास्यं ज्वरस्तृष्णा पित्तजे मोहधूपने

पित्तके अर्दितरोगमें–मुख पीला हो जाता है, ज्वर आजाता है, तृषा अधिक लगती है, मोह और उष्णता होती है ॥

गण्डे शिरसि मन्यायां शोथः स्तम्भः कफात्मके ॥ ६६ ॥

कफके अर्दित रोगमें--गले, माथे और मन्यानाडीमें सूजन और स्तम्भ होता है ॥६६

अथार्दितासाध्यलक्षणम् ।

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः । न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ६७ ॥

अनिमिषाक्षस्य--निमेषासमर्थचक्षुषः । प्रसक्तम्-प्रकर्षेण लग्नम्, अव्यक्तञ्च भाषितुं शीलं यस्य तस्य अर्दितं न सिद्ध्यति त्रिवर्षम्-अतीतवर्षत्रयम् अथवा त्रयाणां चक्षुर्नासामुखानां वर्षः स्रावो यत्र तत् । वेपनस्य कम्पनशीलस्य तस्य गाढमतिशयेन न सिद्ध्यति इति अन्वयः॥

जो मनुष्य अस्फुट तथा परस्पर मिले हुए अक्षरोंको बोलता हो और जिसके नेत्र पलक मारनेमें असमर्थ हों, उस मनुष्यका अर्दित रोग आरोग्य नहीं होता। जिस मनुष्यके अर्दितरोगको उत्पन्न हुए तीन वर्ष बीत गये हों अथवा नेत्र, नाक तथा मुख स्रवता हो और शरीर कांपता हो, उस मनुष्यका अर्दित रोग आराम नहीं होता ॥ ६७ ॥

अथार्दितरोगचिकित्सा ।

स्नेहपानानि नस्यञ्च भोज्यान्यनिलहारि च । उपनाहाश्च शस्यन्ते नावनं वस्तयोऽर्दिते ॥ ६८ ॥

वस्तिरत्र शिरोवस्तिरेव ॥

अर्दितरोगीको घृतादि स्नेहपान करावे, वात नाशक नस्य देवे, वातनाशक भोजन खिलावे, उपनाह, स्वेद और शिरावस्ति करावे ॥ ६८ ॥

दशमूलकषायेण मातुलुङ्गरसेन वा पञ्चमूल्या वा क्षीरं वातात्मके हितम्॥६९॥

वातज अर्दितरोगमें दशमूलके क्वाथसे अथवा बिजौरेके रससे अथवा खिरैंटीके क्वाथसे अथवा पंचमूलके क्वाथसे पकाये हुए दूधको पिये ॥ ६९ ॥

पिष्टं मांसघृतं जग्ध्वा नवनीतेन सोऽर्दिती । क्षीरमांसरसैर्भुक्त्वा दशमूलीरसं पिबेत् ॥ ७० ॥

अर्दितरोगी मांसको घीमें पीसकर नैनी घीके साथ खाय और ऊपरसे दूध और मांसरसके साथ भोजन करे तथा दशमूलका रस पिये ॥ ७० ॥

अर्दिते पित्तजे शीतान् स्नेहांश्चैव विनिर्दिशेत् । घृतवस्तिप्रसेकञ्च क्षीरमेकं तथैव च ॥ ७१ ॥

पित्तज अर्दितरोगमें शीतल स्नेहोंका उपयोग करे, शिरमें घीकी पिचकारी लगावे, घृत अथवा दूधका सेवन करे और विशेष करके दूधका उपयोग करे ॥ ७१ ॥

जिह्मीभूताननो मूको दाहवान् योऽर्दिती भवेत् । कुर्यात्प्रक्रियां तस्य वातपित्तविनाशिनीम् ॥ ७२ ॥

जिस अर्दितरोगीका मुख टेडा होगया हो, दाह होता हो और अपने आप गूंगा होगया हो उसकी वातपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७२ ॥

श्लेष्मभागे क्षये नीते बृंहणैः समुपाचरेत् । अर्दिते शोथ युक्ते वमनं च प्रशस्यते ॥ ७३ ॥

कफके अर्दितरोगवाले मनुष्यका कफ क्षय करके पुष्टिकारक पदार्थोंसे उपचार करे। जो

अर्दितरोग सूजनयुक्त हो तो उसमें वमन कराना उत्तम है॥ ७३ ॥

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं खादेन्नरो योऽर्दितरोगयुक्तः । तस्यार्दितं नाशमुपैति शीघ्रं वृन्दं घनानामिव वायुवेगात् ॥ ७४ ॥

जो अर्दित रोगवाला मनुष्य तिलके तेलमें मिलाकर लहसुनके कल्कको सेवन करता है, उसका अर्दितरोग तत्काल नष्ट होजाता है, जिस प्रकार वायुके वेगसे बादलोंका समूह तत्काल विनष्ट होजाता है ॥ ७४ ॥

अथ मन्यास्तम्भनिदानलक्षणे ।

दिवास्वप्नासनस्थानविकृतोर्ध्वनिरीक्षणैः। मन्यास्तम्भं कुरुते स एव श्लेष्मणावृतः ॥ ७५ ॥

आसनस्थानविकृतोर्ध्वनिरीक्षणैः- आसनेन स्थानेन वा अतिशयेन विकृतं ग्रीवादि विकृतं यथा स्यादेवम् उपरिभागे यन्निरीक्षणं तेन स एव कुपितो वातः श्लेष्मणा आवृतः मन्यास्तम्भं करोति । ग्रीवायाः पश्चाद्भागे चतुर्दश शिरा मन्यासंज्ञाः। तथा च अमरसिंहः-" पश्चाद्ग्रीवाशिरा मन्याः "इति। तासां स्तम्भं करोति च ॥

दिनमें सोनेसे अथवा विपरीत आसनपर बैठनेसे अथवा विपरीत रीतिसे ऊपर गरदनको करके देखनेसे कोपको प्राप्त हुई वायु कफके साथ मिलकर नाडके पिछले भागमें रहनेवाली मन्यानामक शिराओंको स्तब्ध कर देती है, इसको 'मन्यास्तम्भरोग' कहते हैं ॥ ७५ ॥

अथ मन्यास्तम्भचिकित्सा ।

दशमूलीकृतं क्वाथं पञ्चमूल्याऽपि कल्पितम् । रूक्षं स्वेदं तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रयोजयेत् ॥ ७६ ॥

दशमूलके क्वाथका अथवा पंचमूलके काथका रूक्ष स्वेदन और नस्य इनका उपयोग मन्यास्तम्भको नष्ट कर देता है ॥ ७६ ॥

तैलेनाज्येन वा ग्रीवामभ्यज्यार्कदलैरथ । एरण्डपत्रैर्वाच्छाद्य स्वेदयेद्बहुशो भिषक् ॥ ७७ ॥

तेल अथवा घीकी गरदनपर मालिस करके आकके पत्तोंसे अथवा अरण्डके पत्तोंसे गरदनको बांधे और बारंबार सेंक करे तो मन्यास्तम्भ नष्ट हो जाता है ॥ ७७ ॥

कुक्कुटाण्डद्रवैरुष्णैः सैन्धवाज्यसमन्वितैः । ग्रीवां संमर्दयेत्तेन मन्यास्तम्भः प्रशाम्यति ॥ ७८ ॥

मुरगेके अण्डके रसको गरम करके उसमें सैंधानमक और घी डालकर गर्दनको मलनेसे मन्यास्तम्भ दूर होता है ॥ ७८ ॥

अथ बाहुशोषलक्षणम् । १७

अंसदेशे स्थितो वायुः शोषयेदंसबन्धनम् । अंसबन्धनशोषात्स्याद्बाहुशोषः सवेदनः ॥ ७९ ॥

कन्धे अथवा खवोंमें रहनेवाली वायु खवोंके बन्धनको सुखा देती है, उस खवोंके बन्धनके सूखनेसे अत्यन्त वेदनावाला 'बाहुशोषरोग' उत्पन्न होता है ॥ ७९ ॥

अथ बाहुशोषचिकित्सा ।

बाहुशोषे पिबेद्भुक्त्वा सर्पिःकल्याणकं महत् । बलामूलशृतं तोयं सैन्धवेन समन्वितम् । बाहुशोषकरे वाते मन्यास्तम्भे च शस्यते ॥ ८० ॥

बाहुशोष उत्पन्न हुआ हो तो भोजन करनेके पश्चात् महाकल्याणनामक घी पिये। खिरैंटीकी

जडका क्वाथ बनाकर उसमें सैंधानिमक मिलाकर पिये तो बाहुशोष और मन्यास्तम्भको नष्ट करता है ॥ ८० ॥

अथापबाहुकलक्षणम्।

शिराः संकोच्य बाहुस्थः स कुर्यादपबाहुकम् ॥ ८१ ॥

स वायुः बाहुस्थः शिराः-बाहुस्थशिराः ॥

बाहुमें रहनेवाली वायु, बाहुमें रहनेवाली शिराओंको संकुचित करके 'अपबाहुक' रोगको उत्पन्न करती है ॥ ८१ ॥

अथापबाहुकचिकित्सा।

परमौषधमपबाहुकमन्यास्तम्भोर्ध्वजत्रुगतरोगे। शीतलजलेन नस्यं तदुपशमे जिङ्गिनी च पुरः ॥ ८२ ॥ मूलं बलायास्त्वथ पारिभद्रजं तथाऽऽत्मगुप्तास्वरसं पिबेद्वा। युञ्जीत यो माषरसेन नस्यं भवेदसौ वज्रसमानबाहुः ॥ ८३ ॥

बलाया मूलं कल्कीकृतं पिबेत् तथा पारिभद्रमूलञ्च। पारिभद्रोऽत्र 'फरहद' इति लोके। वातहरत्वात् ॥

अपबाहुक रोगमें, मन्यास्तम्भ रोगमें और कण्ठसे ऊपरके रोगोंमें शीतल जलका नस्य देवे, नस्यके शान्त होनेके पश्चात् जिंगिनी और गूगलका उपयोग करे, यह उत्तम औषधि है। खिरैंटीकी जड और फरहदकी जडको पीसकर पीनेसे अथवा कौंछके स्वरसको पीनेसे और उडदोंके रसका नस्य लेनेसे बाहु वज्रके समान होजाती है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अथ माषतैलम्।

माषातसीयवकुरण्टककण्टकारीगोकण्टटुण्टुकजटाकपिकच्छुतोयैः। कार्पासकास्थिशणबीजकुलत्थकोलक्काथेन बस्तपिशितस्य रसेन वाऽपि ॥८४॥ शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पया च सैरण्डमूलकपुनर्नवया सरण्या। रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्वं माषाख्यमेतदपबाहुहरं हि तैलम् ॥ ८५ ॥

उडद, अलसी, जौ, कटसरैया, कटेरी, गोखरू, अरलूकी जड, जटामांसी, कौंछ, सुगन्धवाला, कपास, सनके बीज, कुलथी और बेर इनके काथसे, बकरेके मांसके रससे, सोंठ, पीपल, सौंफ, अरण्डकी जड, पुनर्नवा प्रसारणी, रास्ना, खिरैंटी, गिलोय और कुटकी इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल अपबाहुकको नष्ट करता है। इसको 'माषतैल' कहते हैं॥८५॥

अथ विश्वाचीलक्षणम्। १९

तलं प्रत्यङ्गुलीनां या कण्डरा बाहुपृष्ठतः। बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची सा निगद्यते ॥ ८६ ॥

कण्डरा-महास्नायुः। तलम्-हस्तस्य उपरिभागः। तलशब्दोऽत्र उपरिवाचकः, यथा भूमितलमिति। तेन अयमर्थः बाहुपृष्ठतः बाह्वोः पृष्ठं बाहुपृष्ठमारभ्य तलं प्रति हस्ततलं यावल्लक्षीकृत्य अंगुलीनां या कण्डरा, तां सन्दूष्य बाह्वोः प्रसारणाकुञ्चनादिकर्मक्षयकरी भवति। सा इह वातव्याधिषु विश्वाची इत्युच्यते। बाह्वोरिति द्वित्वं सम्भवपरम्। एकस्मिन्नपि बाहौ विश्वाचि भवति ॥

बाहुकी पृष्ठसे लेकर हाथके ऊपर भागतक अंगुलियोंतक रहनेवाली जो कंडरा नामक मोटी नसें हैं, उनको दूषित करके दोनों बाहुओंको फैलाने, सकोडने आदि कामोंको नष्ट करानेवाला जो रोग उत्पन्न होता है, उसको 'विश्वाची' कहते हैं। यह रोग एक बाहुमें भी हो जाता है ॥ ८६ ॥

अथ विश्वाचीचिकित्सा।

दशमूलीबलामाषक्काथं तैलाज्यमिश्रीतम्। सायं भुक्त्वा पिबेन्नस्यं विश्वाच्यामपबाहुके ॥ ८७ ॥

जो विश्वाची अथवा अपबाहुकरोग उत्पन्न हुआ हो तो सन्ध्याके समय दशमूल, खिरैंटी और उडद इनके क्वाथमें तैल और घी मिलाकर सायंकालको भोजन करनेके बाद पीवे और फिर नस्य लेवे ॥ ८७ ॥

अथ माषादितैलम्।

माषसिन्धुबलाराम्नादशमूलकहिंगुभिः। वचाशिवजटाख्याभिः सिद्धं तैलं सनागरम् ॥ ८८ ॥ ऊर्ध्वं भक्ताशनाद्धन्याद्बाहुशोषापबाहुकौ। विश्वाचीमुद्धतां चापि पक्षाघातं तथाऽर्दितम् ॥ ८९ ॥

भोजन करनेसे पश्चात् उडद, सैंधानिमक, खिरैंटी, रायसन, दशमूल हींग, वच और बेलगिरी इनके द्वारा पकाया हुआ तेल सोंठके साथ उपयोग किया जाय तो बाहुशोष, अपबाहुक, अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई विश्वाची, पक्षाघात और अर्दित (लकवा) इन सबका नाश होता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अथोर्ध्ववातलक्षणम्। २०

अधःप्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन च। करोत्युद्गारबाहुल्यमूर्ध्ववातः स उच्यते ॥ ९० ॥

वायुः--समानवायुः। मारुतेन अपानवायुना स्वहेतुदुष्टेन। अधःप्रतिहतः अधोनिरुद्धः॥

समानवायु कफसे और अपने कारणोंसे दुष्ट हुई अपान वायुसे नीचेसे रोकी जाकर वारंवार डकार आनेके रोगको करती है। उसको 'ऊर्ध्ववात' कहते हैं ॥ ९० ॥

अथोर्ध्ववातचिकित्सा।

भागा दश विश्वायास्तत्तुल्या वृद्धदारकस्यापि। त्रय एव च पथ्यायाश्चतुरंशं हिंगु संभ्रष्टम् ॥ ९१ ॥ एकः सैन्धवभागस्तत्तुल्यं चित्रकं चात्र। संवृद्धमूर्ध्ववातं हन्त्येतच्चूर्णितं भुक्तम् ॥९२॥

अत्र वृद्धदारकाभवे त्रिवृन्मूलं ग्राह्यम्॥

सोंठ दश भाग विधारा दश भाग, जो विधारा कहीं नहीं मिले तो निसोत दशभाग, हरड तीन भाग, भुनीहींग चार भाग, सैंधानिमक एक भाग और चीता एक भाग लेवे, इन सबका एकत्र चूर्ण करके सेवन करे तो इससे उग्र ऊर्ध्ववात नष्ट होजाती है ॥ ९२ ॥

अथाध्मानलक्षणम्। २१

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम्। आध्मानमिति जानीयाद्धोरं वातनिरोधजम् ॥ ९३ ॥

आटोपो गुडागुडाशब्दः भृशंमाध्मातं वातपूर्ण-भस्त्रावत्। वातनिरोधजम्--अधोवातनिरोधजम्॥

जिस रोगमें नीचेकी वायुके रुकनेसे उदरमें अधिक पीडायुक्त गुडगुडाहट और पेट मसकके समान फूल जाय, इस भयंकर रोगको 'आध्मान' कहते हैं ॥ ९३ ॥

अथाध्मानचिकित्सा।

आध्माने लंघनं पूर्वं दीपनं पाचनं ततः। फलवर्त्तिक्रियां कुर्याद्वस्तिकर्म च शोधनम् ॥ ९४ ॥

आध्मानरोगमें प्रथम लंघन करावे और फिर अग्निदीपन करनेवाली और पाचन औषधि देवे। फलवर्ती क्रिया, पिचकारी लगावे और संशोधन भी करावे ॥ ९४ ॥

अथ नारायणचूर्णम्।

कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृता स्यात्पलोन्मिता। खण्डादपि पलं ग्राह्यं चूर्णमाध्माननाशनम् ॥ ९५ ॥

पीपल १ तोला, निसोत ४ तोले और खांड ४ तोले इनका एकत्र चूर्ण करके उस चूर्णको

सहतके साथ एक तोलाभर चाटे तो आध्मान तत्काल नष्ट होजाता है ॥ ९५ ॥

अथ दारुषट्कलेपः।

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः । लिम्पेदुष्णैरम्लपिष्टैः शूलाध्मानयुतो दरम् ॥ ९६ ॥

हैमवती--वचा ॥

देवदारु, वच, कूठ, सोया, हींग और सैंधानिमक इनको तक्रमें अथवा नींबूके रसमें पीसकर गरम करके लेप करनेसे पेटका शूल और आध्मान नष्ट हो जाता है ॥ ९६ ॥

अथ महानाराचरसः।

अभयाऽऽरग्वधो धात्री दन्ती तिक्ता स्नुही त्रिवृत्। मुस्ता प्रत्येकमेतानि ग्राह्याणि पलमात्रया ॥ ९७ ॥ तानि संकुट्य सर्वाणि जलाढकयुगे पचेत्। तत्र तोयेऽष्टमं भागं कषायमवशेषयेत् ॥ ९८ ॥ निस्त्वग्जैपालबीजानि नवानि पलमात्रया। तनुवस्त्रधृतान्येव तस्मिन्क्वाथे शनैः पचेत् ॥ ९९ ॥ ज्वालयेदनलं मन्दं यावत्क्वाथो घनो भवेत्। ततः खल्वे क्षिपेद्भागानष्टौ जैपालबीजतः ॥ १०० ॥ भागांस्त्रीन्नागराद्द्वौ च मरिचाद्द्वौ च पारदात्। गन्धकाद्द्वौ च तानीह यावद्यामं विमर्दयेत् ॥ १०१ ॥ रसौ नाराचनामाऽयं भक्षितो रत्तिकामितः। जलेन शीतलेनैव रोगानेतान्विनाशयेत् ॥ १०२ ॥ आध्मानं शूलमानाहं प्रत्याध्मानं तथैव च। उदावर्तं तथा गुल्ममुदराणि हरत्यसौ ॥ १०३ ॥ वेगे शान्ते तु भुञ्जीत शर्करासहितं दधि । ततस्तत्सैन्धवेनापि ततो दध्योदनं मनाक ॥ १०४ ॥

अमलतास, आमला, जमाल गोटा, कुटकी, थूहर, निसोत तथा नागरमोथा प्रत्येक चार चार तोले लेकर सबको एकत्र कूटकर पांचसौ तोले जलमें पकावे जब पकते पकते आठवां भाग जल शेष रह जाय, तब उसमें छुकले रहित नये जमालमोटेके बीज बारीक कपडेकी पोटलीमें बांधकर धीरे धीरे पकावे, अग्निकी मन्द मन्द आंच देनेसे जब यह काथ गाढा हो जाय तब इसको खरलमें डालकर उसमें आठ भाग जमालगोटेके बीज, तीन भाग सोंठ, दो भाग काली मिर्च, दो भाग पारा और दो भाग गन्धक डालकर एक प्रहरतक खरल करे तो ‘महानाराच, नामक रस तैयार होजाता है, इस रसको शीतलजलके साथ खाय तो इससे आध्मान, शूल, आनाह, प्रत्याध्मान, उदावर्त, गुल्म और उदरके सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं। रोगके वेग शान्त होनेपर रोगीको मिश्रीके साथ दही खिलावे और सेंधेनिमकके साथ थोडा दही भात खिलावे ॥ ९७ ॥ १०४ ॥

अथ प्रत्याध्मानलक्षणम्। २२

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम्। प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलितानिलम् ॥ १०५ ॥

विमुक्तपार्श्वहृदयम्–पार्श्वहृदये विहाय जातम्, तदेव आध्मानं कफव्याकुलितानिलं कफेन अवरुद्ध वातम् ॥

पसली और हृदयको छोडकर आमाशयमें उत्पन्न हुआ और जिसमें कफके कोपसे वायु रुकगई हो, ऐसा जो आध्मान है, उसको ‘प्रत्याध्मान’ कहते हैं ॥ १०५ ॥

अथ प्रत्याध्मानचिकित्सा।

प्रत्याध्माने समुत्पन्ने कुर्याद्वमनलङ्घने। दीपनादीनि युञ्जीत पूर्ववद्वस्तिकर्म च ॥ १०६ ॥

प्रत्याध्मान उत्पन्न हुआ हो तो प्रथम वमन

तथा लंघन करावे, दीपन तथा पाचन औषधियोंका उपयोग करे और आध्मानके समान वस्तिकर्म करावे ॥ १०६ ॥

अथ वाताष्ठीलालक्षणम् । २३

नाभेरधस्तात्सञ्जातः सञ्चारी यदि वाऽचलः । अष्ठीलावद्घनो ग्रन्थिरूर्ध्वमायत उन्नतः ॥ वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गनिरोधिनीम् ॥ १०७ ॥

अष्ठीला वर्तुलः पाषाणखण्डः । आयतः दीर्घः । वाताष्ठीलेति स्वरूपपरं न तु विशेषपरं, व्यावर्तकाभावात् । बहिर्मार्गनिरोधिनी शिश्नभगगुदनिरोधिनी । तेन मूत्रमरुन्मलावरोधः सूचितः ॥

नाभीके नीचे गोल पथरीके समान कठोर, भारी, ऊँची, ऊपरके भागमें लम्बी और स्थिर अथवा चंचल जो गांठ उत्पन्न होती है, उसको 'वाताष्ठीला' कहते हैं यह गांठ लिंग, योनि तथा गुदाको रोक देती है। जिससे विष्ठा, मूत्र और वायुका अवरोध होजाता है। पित्तकी और कफकी अष्ठीला नहीं होती इस कारण यहां 'वाताष्ठीला' यही नाम समझना, परन्तु वातज अष्ठीला ऐसा भेद नहीं समझना ॥ १०७ ॥

अथ प्रत्यष्ठीलालक्षणम् । २४

एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम् । प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम् ॥ १०८ ॥

एतामेव-अष्ठीलामेव जठरे तिर्यगुत्थितामिति भेदः ॥

वायु, विष्ठा तथा मूत्रको रोकनेवाली वेदनायुक्त जो अष्ठीला पेटमें होती है, उसको 'प्रत्यष्ठीला' कहते हैं ॥ १०८ ॥

अथ वाताष्ठीलाप्रत्यष्ठीलाचिकित्सा ।

अष्ठीलायाः क्रिया कार्या गुल्मस्यान्तरविद्रधेः । चूर्णं हिंग्वादिकं चात्र पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ १०९ ॥

गुल्मकी और अन्तरविद्रधिकी जो चिकित्सा कही है, वही चिकित्सा अष्ठीलाकी भी करनी चाहिये और इस रोगमें नीचे कहा हुआ हिंग्वादिचूर्ण भी गरम जलके साथ पीना चाहिये ॥ १०९ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिङ्गुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्याऽग्निपाठाः शटी वृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम् । पथ्यापौष्करवेतसाम्लहपुषायोज्यं तदेभिः कृतं चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरद्रवैः ॥ ११० ॥

भूनी हींग, पीपलामूल, धनियाँ, जीरा, वच, चव्य, चीता पाठ, कचूर, विषांबिल, तीनों प्रकारके निमक, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, सज्जी, अनार, हरड, पोहकरमूल, अमलवेत और हाऊबेर इन सबका एकत्र चूर्ण करके, अदरखके रसकी तथा बिजौरे नींबूके रसकी भावना देवे तो हिंग्वादिचूर्ण सिद्ध होता है ॥ ११० ॥

अथ तूनीलक्षणम् । २५

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता । भिन्दन्तीव गुदोपस्थं सा तूनी नामतो मता ॥ १११ ॥

उपस्थम्--शिश्नं भगञ्च ॥

विष्ठाके स्थानसे तथा मूत्राशयसे उत्पन्न हुई गुदा, लिंग तथा योनिमें भेदने सरीखी पीडा करती हुई जो वेदना नीचेको को जाती है, उसको 'तूनी' कहते हैं ॥ १११ ॥

अथ प्रतितूनीलक्षणम् । २९

गुदोपस्थोत्थिता सैव प्रतिलोमं विधाविता । वेगैः पक्काशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते ॥ ११२ ॥ अधस्तादुत्थिता ऊर्ध्वगामिनी वेगैर्वेदनावेगैर्मुहुर्मुहुः स्वभावोपशमोपलक्षितैः सा तु नामतः प्रतितूनी । सैव वेदना-वेगैः उत्पत्ति-प्रशमलक्षितैः ॥

जो वेदना गुदामेंसे तथा लिंगसे उठकर उलटी दौडकर वारंवार शान्त होकर वेगपूर्वक पक्काशयमें जाती हो उसको 'प्रतितूनी' कहते हैं ॥ ११२ ॥

अथ तूनीप्रतितूनीचिकित्सा ।

तून्याश्च प्रतितून्याश्च प्रशस्ताः स्नेहवस्तयः । पिबेद्वा स्नेहलवणं पिप्पल्यादिमथाम्बुना । उष्णेन रामठं क्षारं प्रगाढमथ वा घृतम् ॥ ११३ ॥

तूनी अथवा प्रतितूनी हुई हो तो स्नेहकी पिचकारी लगावे अथवा तेलमें सैंधानिमक डालकर पिये अथवा पिप्पल्यादिगणका क्काथ पीवे अथवा हींग तथा जवाखारको गरमजलसे पिये अथवा अच्छी प्रकारसे घी पीवे ॥ ११३ ॥

अथ त्रिकशूललक्षणम् । ३०

स्फिगस्थ्नोः पृष्ठवंशास्थ्नोर्यः सन्धिस्तत् त्रिकं मतम् । तत्र वातेन या पीडा त्रिकशूलं तदुच्यते ॥ ११४ ॥

कूलेकी दो अस्थियोंकी और पीठके वांसकी दो अस्थियोंकी जो संधि है, उसको 'त्रिक कहते हैं । इस त्रिकस्थानमें वायुसे जो पीडा उत्पन्न होती है, उसको 'त्रिकशूल' कहते हैं ॥ ११४ ॥

अथ त्रिकशूलचिकित्सा ।

कारयेद्वालुकास्वेदं त्रिकशूले प्रयत्नतः । यद्वाऽधस्तात्करीषाग्निं धारयेत्सततं नरः ॥ ११५ ॥

त्रिकशूलमें उस मनुष्यको यत्नपूर्वक वालुकास्वेद देवे अथवा उसकी खाटके नीचे वनके उपलोंकी अग्नि रखकर सेंक देवे ॥ ११५ ॥

अथ त्रयोदशाङ्गगुग्गुलुः ।

आभाऽश्वगन्धा हपुषा गुडूची शतावरी गोक्षुरकश्च रास्ना । श्यामा शताह्वा च शटी यवानी सनागरा चेति समं विचूर्ण्य ॥ ११६ ॥ सर्वैः समं गुग्गुलमत्र दद्यात्क्षिपेदिहाज्यश्च तदर्द्धभागम् । तद्भक्षयेदर्द्धपिचुप्रमाणं प्रभातकाले पयसाऽथ यूषैः ॥ ११७ ॥ मद्येन वा कोष्णजलेन वाऽथ क्षीरेण वा मांसरसेन वाऽपि । त्रिकग्रहे जानुहनुग्रहे च वाते भुजस्थे चरणस्थितेच ॥ ११८ ॥ सन्धिस्थिते चास्थिगते च तस्मिन् मज्जास्थिते स्नायुगतेच कोष्ठे । रोगान् हरेद्वातकफानुविद्धान् वातेरितान् हृद्ग्रहयोनिदोषान् ॥ ११९ ॥ भग्नास्थिविद्धेषु च खञ्जतायां सगृध्रसीके खलु पक्षघाते । महौषधं गुग्गुलुमेतमाहुस्त्रयोदशाङ्गं भिषजः पुराणाः ॥ १२० ॥

आभा-बब्बूलः । तथा च "आभा बब्बूलपर्यायः कथितः कोविदैरिह" इति ॥

बबूर, असगंध, हाऊबेर, गिलोय, सतावर, गोखरू, रासना, निसोत, सोया, कचूर, अजवायन और सोंठ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे और सब चूर्णके बराबर गूगल लेवे और गूगलसे आधा घी लेवे। सबको एकत्र मिलाकर खूब कूटे तो त्रयो दशांग गूगल बनजाता है । इस गूगलको प्रातःकाल दूधके साथ वा यूषके साथ अथवा मद्यके साथ वा कुछेक गरम जलके साथ वा केवल ताजे पानीके साथ अथवा मांसके रसके साथ आधे तोले प्रमाण खाये । तो इससे त्रिकशूल. जानुस्तम्भ, हनुग्रह, भुजागतवायु, पादगतवायु,

संधिगतवायु, अस्थिगतवायु, मज्जागतवायु, स्नायुगतवायु, कोष्ठगतवायु, वातकफके समस्त रोग, वायुके रोग, छातीका स्तम्भ योनिदोष, भग्नास्थिसे उत्पन्न हुए रोग, विद्ध होनेसे उत्पन्न हुए रोग, खंजता, गृध्रसी और पक्षाघात ये सम्पूर्ण रोग दूर हो जाते हैं। प्राचीन-वैद्य इस त्रयोदशांगगूगलको वायुसम्बंधी रोगोंपर उत्तम औषधि कहते हैं ॥११६-१२०॥

अथ मुहुर्मुत्र-मूत्रनिग्रहनिदान-पूर्वकलक्षणम्। ३१, ३२

मारुतेऽविगुणे वस्तौ मत्रं सम्यक्प्रवर्तते।
विकारा विविधाश्चापि तस्मिन्दुष्टे भवन्ति हि ॥ १२१ ॥

अविगुणे--अनुलोमे । विकाराः-विविधाः मुहुर्मुत्रर्मूत्रनिग्रहादयः ॥

वायु जब दुष्ट नहीं होती है, तब मूत्राशयमें अच्छी प्रकारसे मूत्रको प्रवर्तन करती है और जब वायु दुष्ट होजाती है, तब मुहुमूत्रण तथा मूत्रनिग्रह आदि अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करती है। वारंवार मूते, उसको 'मुहुर्मूत्रण' कहते हैं और जिसमें मूत्रका अवरोध होता है, उसको 'मूत्रनिग्रह' कहते हैं। मुहुर्मूत्रण आदि विकार 'वस्तिवात' इस नामसे नामसे भी कहे जाते हैं ॥ १२१ ॥

अथ मुहुर्मूत्रणमूत्रनिग्रहचिकित्सा ।

बलामूर्वात्वचश्चूर्णं ससितं कर्षसम्मितम्। पिबेत्कुडवदुग्धेन मुहुर्मूत्रणशान्तये ॥ १२२ ॥

खिरैंटी, चुनहार और दालचीनी इनका चूर्ण करके मिश्री मिलाकर सोलह तोले दूधके साथ इस चूर्णको एक तोलेका प्रमाण खाय तो मुहुर्मूत्रणकी शांति होती है॥ १२२॥

पथ्याविभीतधात्रीणां चूर्णं चूर्णं मृतायसः। मधुना सह संलीढं मुहुर्मूत्रणशान्तिकृत् ॥ १२३ ॥

हरड, बहेडा और आमला इनका चूर्ण तथा लोहेका भस्म सहतमें मिलाकर चाटे तो मुहुर्मूत्रणकी शांति होती है ॥ १२३ ॥

यवक्षारस्य चूर्णन्तु संयोज्य सितया सह। भक्ष येन्नियतं तस्य प्रशाम्येन्मूत्रनिग्रहः ॥ १२४ ॥

जवाखारके चूर्णको खांडके साथ मिलाकर सेवन करे तो मूत्रनिग्रह अवश्य नष्ट होजाता है ॥ १२४ ॥

कूष्माण्डस्य तु बीजानि बीजानि त्रपुसस्य च। वस्तौ सन्धारयेत्तेन प्रशाम्येन्मूत्रनिग्रहः ॥ १२५ ॥

पेठेके बीज और खीरेके बीजोंको पेडूके ऊपर पीसकर रखनेसे मत्रनिग्रह दूर होजाता है॥ १२५॥

आमलक्याश्च कल्केन वस्तिभागं प्रलेपयेत्। तेन प्रशाम्यति क्षिप्रं नियमाम्मूत्रनिग्रहणः ॥ १२६ ॥

आमलोंका कल्क बनाकर पेडूके ऊपर रखनेसे मूत्र निग्रह तत्काल नष्ट होजाता है ॥ १२६ ॥

मेहनस्याथ योनेर्वा मुखस्याभ्यन्तरे शनैः। घनसारयुतं वर्तिं धारयेन्मूत्रनिग्रहे ॥ १२७ ॥

लिंगके अथवा योनिके मुखमें धीरे धीरे कपूरकी बत्ती चढावे तो मूत्रका अवरोध दूर होजाता है ॥ १२७ ॥

अथ गृध्रसीलक्षणम्। ३५

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदं क्रमात्। गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ॥ १२८ ॥ वाताद्वातकफाभ्यां सा विज्ञेया द्विविधा पुनः। वातजायां भवेत्तोदो देहस्यातीव वक्रता ॥ १२९ ॥ जानुजङ्घोरुसन्धीनां स्फुरणं स्तब्धता भृशम्। वातश्लेष्मोद्भवायां तु गौरवं

वह्निमार्दवम् । तन्द्रा मुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च ॥ १३० ॥ गृध्रसी वातजा केवला स्फिगादिपदपर्यन्तं स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति । क्रमाद् वृद्धिक्रमात् । तेन यथायथा वर्द्धते तथातथा स्फिगादीनि आक्रामति, नात्र ग्रहणे निर्देशक्रमनियमः । तथा मुहुः स्पन्दते स्फिगादिषु शिरा कम्पं करोतीत्यर्थः ॥

कूलेकी संधि, कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पांव इनमें स्तब्धता, वेदना तथा सुई चुभाने सरीखी पीडा और कूलेकी संधि आदि शिरा, वारंवार कांपे यह 'गृध्रसीरोग' कहा जाता है, अब यह रोग जितना जितना अधिक बढ़ता जाता है, उतना ही कूले आदि की संधियोंको विशेष दबाता है। वातज और कफज इस प्रकार गृध्रसी दो प्रकारकी है। तहां वातकी गृध्रसीरोगमें सुई चुभोने सरीखी पीडा होती है, देह अत्यन्त बाँकी हो जाती है, घुटने जंघा और सांथलकी संधियोंकी शिरा कांपती है और बहुत स्तम्भ होता है और जो वात तथा कफ दोनोंसे उत्पन्न हुई गृध्रसी हो तो शरीरमें भारीपन, अग्निकी मन्दता, तन्द्रा मुखसे पानीका गिरना और अन्नपर अरुचि होती है ॥ १२८-१३० ॥

अथ गृध्रसीचिकित्सा ।

गृध्रस्यार्तं नरं सम्यग्रेकेण वमनेन वा । ज्ञात्वा निरामं दीप्ताग्निं वस्तिभिः समुपाचरेत् ॥ १३१ ॥ नादौ वस्तिविधिं कुर्याद्यावदूर्ध्वं न शुद्ध्यति । स्नेहो निरर्थकःस स्याद्भस्मन्येव हुतं यथा १३२

गृध्रसीवातसे पीडित मनुष्यको अच्छी प्रकार विरेचन और वमन देकर आमरहित और दीप्ताग्निको जानकर स्नेहकी पिचकारी लगावे, जबतक वमनरूप ऊर्ध्वशोधन नहीं होता तबतक राखमें हुवनके समान स्नेहकी पिचकारी व्यर्थ होती है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

तैलमेरण्डजं प्रातर्गोमूत्रेण पिबेन्नरः । मासमेकं प्रयोगोऽयं गध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ १३३ ॥

प्रातःकाल गोमूत्रके साथ अण्डीका तेल एक महीने तक पिये तो गृध्रसीवात और ऊरुग्रह नष्ट होजाता है ॥

तैलं घृतं चार्द्रकमातुलुङ्गरसं सचुक्रं सगुडं पिबेद्वा । कट्यूरुपृष्ठत्रिकशूलगुल्मगृध्रस्युदावर्तहरः प्रयोगः ॥ १३४ ॥

तेल, घी, अदरखका रस और बिजौरेका रस इन सबको एकत्र मिलाकर उसमें चूकेका रस अथवा गुड डालकर पिये तो कटिशूल, ऊरुशूल, पृष्ठशूल, गुल्म, गृध्रसी और उदावर्त ये सब रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ३४ ॥

निष्कुष्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् तत्पानं तु कटीशूले गृध्रस्यां परमौषधम् ॥ १३५ ॥

अरण्डके बीजोंको छीलकर उनके छिलके अलग करके गिरीको दूधमें पीसकर पीनेसे कटिशूल और गृध्रसीवात नष्ट होती है, यह परमौषधि है ॥ १३५ ॥

एरण्डमूलं बिल्वश्च बृंहती कण्टकारिका । कषायो रुचकोपेतः पीतो वंक्षणवस्तिजम् ॥ १३६ ॥

अण्डकी जड, बेलगिरी, बडी कटेरी और छोटी कटेरी इनके काथमें कालानिमक डालकर पीनेसे वंक्षणशूल, वस्तिशूल और गृध्रसी सम्बन्धी शूल बहुत दिनोंका पुराना भी नष्ट होजाता है ॥ १३६ ॥

गृध्रसीजं हरेच्छूलं चिरकालानुबन्धि च । गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां कृष्णाचूर्णं पिबेन्नरः।दीर्घं कालोत्थितां हन्ति गृध्रसीं कफवातजाम् ॥ १३७ ॥

गोमूत्रके और अरण्डके तेलके साथ पीपलका चूर्ण पिये तो बहुत दिनोंकी पुरानी और कफ

तथा वात दोनोंसे उत्पन्न हुई गृध्रसी नष्ट होती है ॥ १३७ ॥

सिंहास्यदन्तीकृतमालकानां पिबेत्कषायं रुबुतैलमिश्रम् । यो गृध्रसीनष्टगतिः प्रसुप्तः स शीघ्रगः स्याद्धि किमत्र चित्रम् ॥ १३८ ॥

गृध्रसीसे मनुष्यकी चलनशक्ति नष्ट होगई हो और जो जड होगया हो, वह मनुष्य अडूसा, जमालगोटा, और चिरायता इनका क्वाथ बनाकर उसमें अण्डीका तेल मिलाकर पिये तो अत्यन्त शीघ्र गमन करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ १३८ ॥

बृहन्निम्बतरोः सारो वारिणा परिपेषितः । स पीतो नाशयेत्क्षिप्रमसाध्यामपि गृध्रसीम् ॥ १३९ ॥

बकायनके भीतरकी छालको पानीमें पीसकर पीनेसे असाध्य गृध्रसी भी नष्ट हो जाती है ॥ १३९ ॥

शेफालिकादलक्काथो मृद्वग्निपरिपाचितः। दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रः प्रणाशयेत् ॥ १४० ॥

शेफालिका-निर्गुण्डी ॥

निर्गुण्डीके पत्तोंका क्वाथ मन्द मन्द अग्निसे पकाकर पीनेसे असाध्य गृध्रसी भी नष्ट होजाती है ॥ १४० ॥

अथ रास्नागुग्गुलुः ।

रास्नायास्तु पलं चैकं पञ्च कर्षाणि गुग्गुलोः । सर्पिषा वटिकां कृत्वा भक्षयेद्गृध्रसीहरीम् ॥ १४१ ॥

चार तोले भर रास्ना और पांच तोलेभर गूगल इनको एकत्र मिलाकर घीके योगसे गोली बनाकर सेवन करनेसे गृध्रसी नष्ट हो जाती है ॥ १४१ ॥

अथ रास्नासप्तकक्वाथः ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् । क्काथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जङ्घोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ॥ १४२ ॥

रासना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरू, अरण्ड और पुनर्नवा इनका क्वाथ बनाकर उसमें सोंठका चूर्ण डालकर पीनेसे जंघागत वायु, उरुगत वात, पृष्ठगत वात, त्रिकशूल और पार्श्वशूल नष्ट होजाता है १४२

अथ पथ्यादिगुग्गुलुः ।

पथ्याविभीतामलकीफलानां शतं क्रमेण द्विगुणाभिवृद्धम् । प्रस्थेन युक्तश्च पलङ्कषाणां द्रोणे जले संस्थितमेकरात्रम् ॥ १४३ ॥ अर्द्धावशिष्टं क्वथितं कषायं भाण्डे पचेत्तत् पुनरेव लौहे । अमूनि वह्नेरवतार्य दद्याद् द्रव्याणि सञ्चूर्ण पलार्द्धकानि ॥ १४४ ॥ विडङ्गदन्तीत्रिफलागुडूचीकृष्णात्रिवृन्नागरकोषपानि । यथेष्टचेष्टस्य नरस्य शीघ्रं हिमाम्बुपानानि च भोजनानि ॥ १४५ ॥

हरड १००, बहेडे २००, आमले ४०० और गूगल ६४ तोले इन सबको एक हजार चौबीस तोले जलमें एक रात्रिभर भिगोकर रक्खे। फिर इनका अर्द्धावशेष क्वाथ बनाकर और छानकर लोहेके बर्तनमें पकावे जब अच्छा गाढा होजाय तब अग्निपरसे उतारकर इसमें वायविडंग, जमालगोटा, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, निसोत, पीपल, सोंठ और कालीमिर्च इनका दो दो तोले चूर्ण डाले। यह 'पथ्यादि गुग्गुल' सिद्ध होता है। इस गूगलको सेवन करनेवाला मनुष्य यथेष्ट विहार करे। इसपर शीतल जल पिये तथा शीतल ही पदार्थोंका भोजन करे१४३-१४५

निषेव्यमाणो विनिहन्ति रोगान् सगृध्रसीं नूतनखञ्जताञ्च । प्लीहानमुग्रं जठ-

राग्निगुल्मं पाण्डुत्वकण्डूवमिवातरक्तम् ॥ १४६ ॥ पथ्यादिको गुग्गुलुरेष नाम्ना ख्यातः क्षितावप्रमितप्रभावः । बलेन नागेन समं मनुष्यं जवेन कुर्यात्तुरगेण तुल्यम् ॥ १४७ ॥ आयुःप्रकर्षं विदधाति चक्षुर्बलं तथा पुष्टिकरो विषघ्नः । क्षतस्य सन्धानकरो विशेषाद्रोगेषु शस्तः सकलेषु तज्ज्ञैः ॥ १४८ ॥

इस गूगलको सेवन करनेसे गृध्रसी, नवीन खंजता, अत्यन्त उग्र प्लीहा, गुल्म, पांडुरोग, मन्दाग्नि, कण्डू, वमन, वातरक्त और विशेष करके गृध्रसीवात नष्ट होती है। यह पथ्यादि नामवाला गूगल पृथ्वीमें अत्यन्त प्रभाववाला है। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य बलमें हाथीके समान, वेगमें घोडेके समान होजाता है तथा यह आयुकी वृद्धी करता है, नेत्रोंकी ज्योति बढाता है, शरीरकी पुष्टी करता है, विषको दूर करता है घावको भरता है, और विशेष करके सम्पूर्ण रोगोंमें हितकारी है ऐसा वैद्योंका मत है ॥ १४६-१४८ ॥

अथ कलायखञ्जलक्षणम् । ३६

कम्पते गमनारम्भे खञ्जन्निव च लक्ष्यते।
कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम् ॥ १४९ ॥

गमनारम्भे कम्पते एतस्य खञ्जादयमेव भेदः । कलायखञ्ज इति शास्त्रे रूढा संज्ञा, न तु यौगिकी ॥

चलते समय लँगडेके समान चले या कांपे और जिसके सब सन्धिबन्धन शिथिल होजायँ, उस मनुष्यको 'कलायखञ्ज' हुआ जानना। इसमें चलते समय कम्प हो और लँगडाता चले, इस लिये खञ्जता और कलायखञ्जतामें अन्तर है। (कलायखञ्ज) यह नाम वैद्यक शास्त्रमें अर्थके अनुसार नहीं होनेसे यौगिक नहीं; किन्तु रूढ है, ऐसा जानना ॥ १४९ ॥

अथ कलायखञ्जचिकित्सा ।

क्रमः कलायखञ्जस्य खञ्जपङ्ग्वोरिव स्मृतः । विशेषात्स्नेहनं कर्म कार्यमत्र विचक्षणैः ॥ १५० ॥

कलायखञ्जताकी चिकित्सा खञ्जता और पंगुताके समान करनी चाहिये और इसमें विशेष करके स्नेह क्रिया करे ॥ १५० ॥

अथ खञ्जपंगुलक्षणम् । ३७, ३८

वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा । खञ्जस्तदा भवेज्जन्तुः पङ्गुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ १५१ ॥

सक्थ्नः-कट्यादिगुल्फस्य । कण्डराम्-महास्नायुम् । आक्षिपेत् गमनादौ कम्पयेत् । वधात् गमनादिक्रियाघातात् ॥

कटिमें रहनेवाली वायु कुपित होकर कमरसे लेकर पाँवके गुल्फोंतककी जो मोटी नसें हैं, उनको जब खींचती है अर्थात् चलते समय कँपाती है, तब वह मनुष्य 'खञ्ज' अर्थात् लंगडा होजाता है। कमरसे पांवकी गांठोंतक दोनों सांथलोंकी चलनेकी क्रिया नष्ट होजाती है, उसको 'पंगु लूला' कहते हैं ॥ १५१ ॥

अथ खञ्जपंगुचिकित्सा ।

उपाचरेदभिनवं खञ्जं पंगुमथापि च ।
विरेकास्थापनस्वेदगुग्गुलुस्नेहवस्तिभिः ॥ २५१ ॥

खञ्जता अथवा पंगुतारोग जो थोडे दिनोंका उत्पन्न हुआ हो तो विरेचनसे, विरूहवस्तिसे, स्वेदनसे, गूगलको सेवन कराकर तथा स्नेहवस्तियोंसे चिकित्सा करे ॥ १५२ ॥

अथ कोष्टुकशीर्षलक्षणम् । ३९

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः । ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ १९३ ॥

क्रोष्टुकः-शृगालः ॥

वायुसे तथा रुधिरसे घुटनोंके मध्यमें गीदडके मस्तकके समान बहुत बडी और मोटी अत्यन्त पीडावाली सूजन होती है, उसको 'क्रोष्टुकशीर्ष' कहते हैं ॥ १५३ ॥

अथ कोष्टुकशीर्षचिकित्सा ।

गुग्गुलुं क्रोष्टुशीर्षे तु गुडूचीत्रिफलाम्भसा । क्षीरेणैरण्डतैलं वा पिबेद्वा वृद्धदारकम् ॥ १५४ ॥ गुग्गुलुं शुद्धं कर्षमितं गुडूचीत्रिफलाम्भसा गुडूचीपथ्याविभीतामलकैः समुदितैः चतुष्कर्षमितैः प्रस्थामितेन जलेन पक्त्वा क्वाथेन उष्णेन पलद्वयमितेन गुग्गुलुं पिबेत् । एरण्डतैलं कर्षमितं क्षीरेण गव्येन पलंपरिमितेन पिबेत् । वृद्धदारकचूर्णं वा दुग्धेन गव्येन पलचतुष्टयमितेन पिबेत् ॥

गिलोय, हरड, बहेडा और आमला यह प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर चौंसठ तोले जलमें पकाकर क्वाथ बनावेजब आठ तोले जल शेष रहे तब इस गरमागरम क्वाथके साथ शुद्ध किये गूगलको एक तोलाभर खाय तो क्रोष्टुकशीर्षरोग नष्ट होजाता है । दूधके साथ अण्डीका तेल अथवा विधारेके पीनसे क्रोष्टुकशीर्षरोग नष्ट हो जाता है । जो अण्डीका तेल पीना हो तो तेल एक तोला और गायका दूध चार तोले लेना चाहिये । विधारेका चूर्ण पीना हो तो गायके सोलह तोले दूधके साथ पीवे ॥ १५४ ॥

रसैस्तित्तिरमांसस्य पीतैर्गुग्गुलुसंयुतैः । वातरक्तक्रियाभिश्च जयेज्जम्बूकमस्तकम् ॥ १५५ ॥

गूगलके साथ तीतरके मांसका रस पिये तथा वातरक्तकी चिकित्साके समान क्रोष्टुकशीर्षकी चिकित्सा करे ॥ १५५ ॥

अथ खल्लीलक्षणम् । ४०

खल्ली तु पादजंघोरुकरमूलावमोटिनी ॥ १५६ ॥

अवमोटिनी—परिवर्त्तनशीला ॥

जिससे पांव, जंघा, सांथल और हाथकी जड सब ठेठराजाँय, उसको 'खल्लीवात' कहते हैं ॥ १५६ ॥

अथ खल्लीचिकित्सा ।

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कश्चुक्रतैलसमन्वितः। सुखोष्णो मर्दने योज्यः खल्लीशूलनिवारणः ॥ १५७ ॥

कूठ और सैंधेनिमकका कल्क बनाकर तेल और चूका मिलाकर थोडा गरम करके मर्दन करनेसे खल्ली वात नष्ट हो जाती है ॥ १५७ ॥

अथ वातकण्टकलक्षणम् । ४१

रुक् पादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा । वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् ॥ १५८ ॥

पांव विषमरीतिसे पडे अथवा परिश्रमसे वातके कारण जो घुटुनोंमें पीडा होती है, उसको 'वातकण्टक' कहते हैं ॥ १५८ ॥

अथ वातकण्टकचिकित्सा ।

रक्तावसेचनं कुर्यादभीक्ष्णं वातकण्टके । पिबेदेरण्डतैलं वा दहेत्सूचीभिरेव च ॥ १५९ ॥

अभीक्ष्णम्—पुनः पुनः ॥

वातकण्टक हुआ हो तो बारंबार रुधिर निकलवावे अथवा अण्डीका तेल पिये अथवा सुइयोंसे दाग देवे ॥ १५९ ॥

अथ पादहर्षलक्षणम् । ४२

हृष्येते चरणौ यस्य भवतश्च प्रसुप्तकौ ।

पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपजः ॥ १६० ॥

हृष्येते रोमाञ्चितौ भवतः । प्रसुप्तकौ सिनसिनी युक्तौ ॥

कफके तथा वायुके कुपित होनेसे दोनों पांव रोमांचयुक्त होकर झनझन करने लगते हैं, उसको 'पादहर्ष' कहते हैं ॥ १६० ॥

अथ पादहर्षचिकित्सा ।

पादहर्षे तु कर्तव्यः कफवातहरो विधिः ॥ १६१ ॥

पादहर्षरोगमें कफ तथा वायुको हरण करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १६१ ॥

अथ पाददाहलक्षणम् । ४३

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः । विशेषतश्चङ्क्रमणे पाददाहं तमादिशेत् ॥ १६२ ॥

पित्त तथा रुधिरसंयुक्त वायु पाँवोंमें दाह करती है और चलते समय विशेष करके दाह होता है, इसको 'पाददाह' कहते हैं॥१६२

अथ पाददाहचिकित्सा ।

वातरक्तक्रमं कुर्यात्पाददाहे विशेषतः ।
मसूरविदलैः पिष्टैः शृतशीतेन वारिणा ।
चरणौ लेपयेत्सम्यक्पाददाहप्रशान्तये ॥ १६३ ॥

विशेष करके पाददाह रोगमें वातरक्तकी चिकित्सा करे । औटाये हुए जलको शीतल करके उसमें मसूरको पीसकर पांवपर लेप करे, इससे पाददाह नष्ट हो जाता है ॥१६३॥

नवनीतेन संलिप्तौ वह्निना परितापितौ ।
मुच्यते चरणौ क्षिप्रं परितापात्सुदारुणात् ॥ १६४ ॥

पांवपर नैनी घीका लेप करके अग्निमें सेंके तो दारुण पाददाह भी नष्ट हो जाता है ॥ १६४ ॥

अथ दण्डकाक्षेपादिचतुर्विधाक्षेपकाणां सम्प्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम् । ४४-४७

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः । तदाऽऽक्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चलः । मुहुराक्षेपणाद्वायुराक्षेपक इति स्मृतः ॥ १६५ ॥

मुहुर्मुहुर्देहमाक्षिपति गजारूढस्य इव पुरुषस्य गात्रं दोलयेति । किंविशिष्टो मारुतः ? मुहुश्चलः वारं वारं सञ्चरणशीलः अयं वायुराक्षेपक इति स्मृतः देहस्य यत् मुहुराक्षेपणं चालनं ततः ॥

जब कोपको प्राप्त हुई वायु सर्व धमनियोंमें प्राप्त होती है तब वारंवार संचरण करनेवाली उस वायुसे मनुष्य हिलता है जिस प्रकार हाथीपर बैठे हुए मनुष्यका शरीर हिलता है । इस कारण शरीरको वारंवार हिलानेवाली होनेसे इसको 'आक्षेपक' कहते हैं ॥१६५॥

पित्तश्लेष्मान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ।
कुर्यादाक्षेपकं चान्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ १६६ ॥

पित्तान्वितः श्लेष्मान्वितश्च केवलश्च वायुः आक्षेपकत्रितयं कुर्यात् । अन्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ अन्यो दण्डात् अभिघातजो वायुः चतुर्थमाक्षेपकं कुर्यादित्यर्थः ॥

पित्तसंयुक्त वायुसे उत्पन्न हुआ, कफसंयुक्त वायुसे उत्पन्न हुआ, केवल वायुसे उत्पन्न हुआ और अभिघातसे उत्पन्न हुआ इस प्रकार आक्षेपकरोग चार प्रकारका है ॥ १६६ ॥

अथ केवलवातोत्पन्नाक्षेपकलक्षणम् ।

पाणिपादशिरःपृष्ठश्रोणीः स्तभ्नाति मारुतः । दण्डवास्तब्धगात्रस्य दण्डकः सोऽनुपक्रमः ॥ १६७ ॥

अयं वातजाक्षेपको दण्डाख्यः । सोऽनुप-

क्रमः स्वस्वभावादेव असाध्यः अत्र च मुर्हुमुहुराक्षेपणं बोद्धव्यम् ॥

वायुसे हाथ, पांव, मस्तक, पीठ और श्रोणी ये जकड जाँय जिसमें सम्पूर्ण शरीर लकडीके समान जकड जाय, उसको 'दंडापतानक' कहते हैं। केवल वायुसे उत्पन्न हुआ और जिसमें शरीर हाथीपर बैठक समान हाला करे, ऐसा यह 'दंडकाक्षेप' स्वभावसेही असाध्य है ॥ १६७ ॥

अथ कफयुक्तवातोत्पन्नदण्डापतानकलक्षणम् ।

कफावृतो यदा वायुर्धमनीष्वेव तिष्ठति । स दण्डवत्स्तम्भयाति कृच्छ्रो दण्डापतानकः ॥ १६८ ॥ दण्डापतानकः–स आक्षेपको दण्डापतानकाख्यः । कृच्छ्रः कष्टसाध्यः । अत्र च मुहुर्मुहुराक्षेपणं बोद्धव्यम् । आगन्तुजाक्षेपकस्य लक्षणं सामान्यमेव बोद्धव्यम् ॥

जब कफसे व्याप्त वायु धमनियोंमें रहती है, तब धमनी लकडीके समान स्तब्ध होजाती है और शरीर हाथीपर बैठे हुएके समान बारंवार हिलाकरता है इसको 'दंडापतानकाक्षेपरोग' कहते हैं। यह दंडापतानकाक्षेप कष्टसाध्य है ॥ अभिघातकृताक्षेप जो आगन्तुजाक्षेप कहाजाता है उसके लक्षण अलग अलग नहीं कहें, अतएव आक्षेपकके जो सामान्य लक्षण कहे हैं; वे उसके भी जानने चाहियें। पित्तसंयुक्त वायुसे उत्पन्न हुए आक्षेपकके लक्षण भी अलग नहीं देखनेमें आते, इस कारण उसके लक्षण भी सामान्य लक्षणोंसे न्यूनाधिक रहित जानने ॥ १६८ ॥

अथ चतुष्प्रकाराक्षेपकचिकित्सा ।
तत्र महाबलातैलम् ।

बलामूलकषायस्य दशमूलीशृतस्य च । यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा ॥ १६९ ॥ अष्टावष्टौ स्मृता भागास्तैलादेकस्तदेकतः । पचेदावाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ १७० ॥ तथाऽगुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च । मञ्जिष्ठां पद्मकं कुष्ठमेलां कालाञ्च सारिवाम् ॥ १७१ ॥ मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम् । शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ १७२ ॥ तत्साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृन्मयेऽपिवा । प्रक्षिप्य कलशे सम्यक्स्वनुगुप्तं निधापयेत् ॥ १७३ ॥ एतन्महाबलातैलं प्रयुक्तमविलंबितम् । सर्वानाक्षेपकादींस्तु वातव्याधीन् व्यपोहति ॥ १७४ ॥ हिक्कां श्वासमधीमन्थं गुल्मं कासं सुदुस्तरम् । षण्मासादुपयुक्तं तदन्त्रवृद्धिश्च नाशयेत् ॥ १७५ ॥ यथाबलमलं मात्रां सूतिकायै च दापयेत् । या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ॥ १७६ ॥ क्षीणवाते मर्महते ह्यभिघातहते तथा । भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैतत्प्रयुज्यते ॥ १७७ ॥ एतद्धि राज्ञा कर्तव्यं कर्तव्यं राजपूजितैः । सुखिभिः सुकुमारैश्च धनिभिर्मानवैः सदा ॥ १७८ ॥

एकतः--एकत्र । आवाप्य--प्रक्षिप्य ॥

खिरैंटीका क्वाथ आठभाग, दशमूलका क्वाथ आठ भाग, जौ, कालीमिर्च और कुलथीका क्वाथ आठ भाग, दूध आठ भाग और तेल एक भाग इन सबको एक बर्तनमें डालकर और उसमें जीवनीयगणकी औषधि, सैंधानिमक, अगर राल, धूपसरल, देवदारु, मंजीठ, पद्माख, कूठ इलायची, कालीसारिवा, बालछड, छारछबीला, तेजपत्र, तगर, गौरीसारिवा, वच, सतावर, असगन्ध सोया और

पुनर्नवा इन सब पदार्थोंको डालकर यथाविधिसे तेलको पकावे तो 'महाबलानामक' तैल तैयार होता है । इस तेलके सिद्ध होनेके पश्चात् सोने, चांदी अथवा मट्टीके कलशेंमें भरकर उत्तम रीतिसे रख देवे । इस तेलका प्रयोग करनेसे सर्व प्रकारकी वातव्याधि नष्ट होती हैं । विशेष करके आक्षेपकादिरोग नष्ट होते हैं तथा हिचकी, श्वास, अधिमन्थ, गुल्म और भयंकर खांसी भी दूर होजाती है और छः महीनेके प्रयोग करनेसे अन्त्रवृद्धिका भी नाश होजाता है । बल और मलके अनुसार प्रसूता स्त्रीको इस तेलकी मात्रा देवे । जिन स्त्रियोंको गर्भ रहनेकी इच्छा है तथा जो पुरुष वीर्यक्षीण होगये हैं उनके लिये भी यह तेल महाहित, कारी है । क्षीणवातपर मर्महत अभिघातपर, अन्यान्य अभिघातोंपर, टूटे हुए पर और परिश्रमके दुःखपर अच्छी प्रकारसे इस तेलका प्रयोग करना चाहिये । राजा, राजमान्य-सुखीलोग, सुकुमार लोग और धनवान् मनुष्योंको यह तेल सदैव रखना चाहिये ॥ १६ ॥ १७८ ॥

अथान्तरायामलक्षणम् । ४८

अंगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः । स्नायुप्रवानमनिलस्तदाक्षिपति वेगवान् ॥ १७९ ॥ विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफ वमन् । अभ्यन्तरे धनुरिव यदा नमति मानवः । तदा सोऽभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ १८० ॥ यदा स बली मारुतोऽभ्यन्तरायामं कुरुते तदांगुल्यादिसंश्रितोऽनिलः । स्नायुरत्र उपलक्षणम् । तेन शिराकण्ठरोरपि ग्रहणम् । आक्षिपति कम्पयति । तदा स मानवः विष्टब्धाक्षः स्तब्धनेत्रः भग्नपार्श्वः भग्ने इव पार्श्वे यस्य सः ।

जब बलवान् वायु अतरायाम 'को करती है सब अंगुली, गुल्फ, पेट, हृदय, वक्षःस्थल और गला इनमें रहनेवाली पवन वेगवान् होकर स्नायुके समूहको, शिराओंको और कंठको कँपाती है और उस समय उस मनुष्यकी आँखे पथराजाती हैं, ठोडी जकडजाती है, पसली टूटीके समान होजाती है कफका वमन करता है और वह छातीसे कमानके समान नमजाता है ॥ १७९ ॥ १८० ॥

अथ बाह्यायामलक्षणम् । ४९

महाहेतुर्बली वायुः सशिराः स्नायुकण्डराः। मन्यापृष्ठश्रिता बाह्याः संशोष्यानामयेद्बहिः ॥ १८१ ॥ यत्र तं बहिरायामं प्रवदन्ति भिषग्वराः । तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकट्यूरुभञ्जनम् ॥ १८२ ॥

वक्षःकट्यूरुभञ्जनम्-तत्रादि यो वक्षःकट्यूरून् भञ्जयति संमर्दयति तमसाध्यं प्राहुः ॥

बडे बडे कारणोंसे प्रबल हुई वायु गर्दनमें तथा पीठमें रहनेवाली पीछेकी शिराओंको, स्नायुओंको तथा कंडराओंको सुखा देती है उससे मनुष्य पीठकी ओर कमानके समान नमजाता है । इस रोगको 'उत्तम वैद्य ' बाह्यायाम' कहते हैं यह रोग असाध्य है और इसमें भी जो छाती, कमर तथा साँथलोंमें मर्दनके समान पीडा हो तो अत्यन्त असाध्य है ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

अथान्तरायामबाह्यायामचिकित्सा ।

बाह्यायामेऽन्तरायामे विधेयाऽर्दितवत्क्रिया ॥ १८३ ॥

जो अन्तरायाम और बाह्यायाम उत्पन्न हुआ हो तो अर्दितके समान चिकित्सा करे ॥१८३॥

अथ धनुःस्तम्भलक्षणम् । ५०

धनुस्तुल्यो नमेद्यस्तु स धनुःस्तम्भसंज्ञितः । विवर्णबद्धवदनः स्रस्ताङ्गो नष्टचेतनः । प्रस्विद्येच्च धनुःस्तम्भी दशरात्रं न जीवति ॥ १८४ ॥

वायुके कोप होनेसे मनुष्य कमानके समान नव जाता है, उसको, 'धनुर्वात' कहते हैं। शिथिल अंगोंवाला, भयानकतायुक्त, पसीने सहित और जिसका मुख फैलगया हो तथा विपरीत रंगवाला होगया हो और ठोडी बन्ध गयी हो तो ऐसा धनुर्वातका रोगी दश रात्रिके भीतर मर जाता है ॥ १८४ ॥

अन्तरायामेऽङ्गुल्यादिषु आक्षेपः स्तब्धाक्षत्वादिकश्च भवति । धनुःस्तम्भे तु धनुर्वन्नमनमात्रमिति एतयोर्भेदः । विवर्णबद्धवदनः, बन्धोऽत्र चिबुकस्य ज्ञेयः ॥

अन्तरायाममें तो अंगुली आदियोंमें आक्षेप होता है तथा आंखें पथरा जाती हैं और धनुर्वातमें तो केवल कमानके समान नव जाता हैं, इस कारण अंतरायाम और धनुर्वातमें भेद है॥

अथ कुब्जकलक्षणम् । ५१

हृदयं यदि वा पृष्ठमुन्नतं क्रमशःसरुक् । क्रुद्धो वायुर्यदा कुर्यात्तदातं कुब्जमादिशेत् ॥ यदेयुक्त्वा यदि वेति विकल्पार्थस्तेन न पुनरुक्तिदोषः ॥ १८५ ॥

कोपको प्राप्त हुई वायु छातीको अथवा पीठको अनुक्रमसे ऊँची और वेदनायुक्त कर देवे, इस रोगको 'कुब्जक' कहते हैं॥१८५॥

ननु अन्तरायामः क्रोडनतो भवति, बहिरायामः पृष्ठनतो भवति । ताभ्यामस्य को भेदः ?

शंका–अन्तरायाममें छातीसे नवता है और बाह्यायाममें पीठसे नवता है. फिर इस कुब्जकमें कौनसा भेद रहा ?

उच्यते–अन्तरायामबहिरायामयोः प्रकृतस्यैव अन्तःशरीरस्य बहिःशरीरस्य च नमनम् अत्र तु हृदयं पृष्ठं वा शरीराद्बहिर्भवतीति भेदः ॥

समाधान–अन्तरायाममें और बाह्यायाममें शरीर जैसा तैसा ही रहकर छातीसे अथवा पीठसे नवता है, परन्तु कुब्जकमें तो छाती तथा पीठ शरीरके भागसे बाहर निकलजाती है, यह भेद है ॥

अथ धनुर्वातकुब्जकचिकित्सा ।

बाह्यायामेऽन्तरायामे धनुःस्तंभे च कुब्जके । याज्यं प्रसारणीतैलं तेन तेषां शमो भवेत् ॥ १८६ ॥

धनुर्वात, कुब्जक, अंतरायाम और बाह्यायाम उत्पन्न हुआ हो तो प्रसारिणीतेल (जो कि हनुग्रहकी चिकित्सामें कह चुके हैं,) का उपयोग करनेसे ये रोग शांत होजाते हैं१८६॥

वातव्याधिषु सामान्या याः क्रियाः कथिताः पुरा । कर्तव्या एव ताः सर्वास्तैलमेतद्विशेषतः ॥ १८७ ॥

प्रथम वातव्याधियोंमें जो सामान्यचिकित्सा कही है, वह सब चिकित्सा इसमें अवश्य करनी चाहिये और विशेष करके प्रसारिणीतैलका उपयोग करना चाहिये ॥ १८७ ॥

अथापतन्त्रकलक्षणम् । ५२

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रपद्यते । पीडयन् हृदयं गत्वा शिरः शङ्खौ च पीडयन् ॥ १८८ ॥ धनुर्वन्नमयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा। स कृच्छ्रादुच्छ्वसेदुच्चैः स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः । कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः॥ १८९ ॥

स्थानात्--पकाशयात् ऊर्ध्वं-शिर उद्दिश्य आक्षिपेत्-चालयेत । अथ निमीलकः-अथवा निमीलिताक्षः । यत्रैतानि भवन्ति सोऽपतन्त्रकः ॥

अपने कारणोंसे कोपको प्राप्त हुई वायु पक्वाशयमेंसे ऊपर जाकर हृदयको पीडित करती है। मस्तक तथा कनपटिओंको भी पीडित करती है । गात्रको कमानके समान नवा देती है और कँपाती है और चित्तको मोहयुक्त करती है । जिससे कि, यह मनुष्य अत्यन्त कठिनतासे ऊंचा श्वास लेता है, आंखोंको खोल देता है, अथवा मींच लेता है, कबूतरके समान कूँजता है, बेसुध होजाता है, ये सब लक्षण जिसमें हों. उसको 'अपतंत्रक' रोग कहते हैं ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

अथापतन्त्रकचिकित्सा ।

अथापतन्त्रकेणार्तमातुरं नापतर्पयेत् । निरूहवस्ति वमनं सेवयेन्न कदाचन ॥ १९० ॥ श्वसनाः कफवाताभ्यांरुद्धास्तस्य विमोक्षयेत् । तीक्ष्णैः प्रधमनैः संज्ञां तासु मुक्तासु विन्दति ॥ १९१ ॥

श्वसनाः-प्रश्वासोच्छ्वासवहा धमनीः ॥

अपतंत्रसे पीडित मनुष्यको तृप्ति विरुद्ध क्रिया नहीं करे और कभी भी निरुहवस्ति तथा वमनका सेवन नहीं करावे, परन्तु कफसे तथा वायुसे रुकी हुई उन श्वासको चलानेवाली नाडियोंको तीक्ष्ण प्रधमन (तीक्ष्ण चूर्णका नस्य) देकर खोल देवे । क्योंकि, नाडियोंके खुलजानेसे रोगीको संज्ञा प्राप्त होती है ॥

अथ मरिचादिनस्यम् ।

मरिचं शिग्रुबीजानि विडङ्गश्च फणिज्जकम् । एतानि सूक्ष्मचूर्णानि दद्याच्छीर्षविरेचने ॥ १९२ ॥

फणिज्जकः-मरुवकः ॥

शिरोविरेचन अर्थात् शिरको खाली करनेके लिये कालीमिर्च, सहिंजनेके बीज, वायविडंग और मरुआ इनका बारीक चूर्ण करके नस्य देवे ॥ १९२ ॥

अथ हरीतक्यादियोगः ।

हरीतकी वच रास्ना सैन्धवं साम्लवेतसम् । घृतमार्द्रकसंयुक्तमपतन्त्रकनाशनम् । अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमीरितम् ॥ १९३ ॥

हरड, वच, रासना, सैंधानमक, अमलवेत घी और अदरखका रस इनका प्रयोग करनेसे अपतन्त्रक रोग नष्ट हो जाता है ॥ १९३ ॥

अथापतानकलक्षणम् । ५३

दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञाञ्च हत्वा कण्ठेन कूजति । हृदिं मुक्ते नरः स्वास्थ्य याति मोहं वृते पुनः । वायुना दारुणं प्राहुरेके तमपतानकम् ॥ १९४ ॥

दृष्टिम्-रूपग्रहणशक्तिम् । संस्तभ्य-नाशयित्वा ॥

वायुकुपित होकर मनुष्यके देखनेकी शक्ति तथा संज्ञा (होश) को नष्ट कर देवे, गलेमें कूंजे और मोहसे घिरे हुए हृदयको जब वायु त्याग देवे तब फिर होश होवे । इस महादारुणरोगको कितने वैद्य 'अपतानक' कहते हैं ॥ १९४ ॥

अथापतानकासाध्यता ।

गर्भजातनिमितश्च शोणितातिस्रवाच्च यः । अभिघातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानकः ॥ १९५ ॥

गर्भकी उत्पत्तिसे उत्पन्न हुआ, रुधिरके बहुत निकालनेसे उत्पन्न हुआ और अभिघातसे उत्पन्न हुआ अपतानक आरोग्य नहीं होता है ॥ १९५ ॥

अथापतानकचिकित्सा ।

अथापतानकेनार्तमस्रुताक्षमवेपनम् । अखट्वापातिनं चैव त्वरया समुपाचरेत् ॥ १९६ ॥

अपतानकरोगसे पीडित मनुष्यके नेत्रोमेंसे पानी न बहता हो, कम्प नहीं होता और

खाटपर न पडगया हो तो इससे पहिले ही तत्काल चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १९६ ॥

अपतानकिने शस्तं दशमूलीशृतं जलम्। पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं जीर्णे मांसरसौदनम् ॥ १९७ ॥

अपतानक रोगीको दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पिलावें क्वाथ पचजाय तब मांसरयुक्त भात खिलावें ॥ १९७ ॥

तैलेन मर्दनं चैव तं तीक्ष्णं विरेचनम्। स्रोतोविशोधनं पश्चात् सर्पिःपानं हितं स्मृतम् ॥ ९८ ॥

तेलसे मर्दन करे, तीक्ष्ण जुलाब देवे और पश्चात् घी पिलावें कि जिससे स्रोत साफ होजाँय ॥ १९८ ॥

हन्त्यभुक्तवता पीतमम्लं दध्यपतानकम्। मरिचेन समायुक्तं स्नेहवस्तिरथापि वा ॥ १९९ ॥

भोजनसे पहिले मरिचके चूर्णके साथ खट्टे दहीको पिवें तो अपतानकरोग नष्ट होजाता है। स्नेहकी पिचकारी लगानेसे भी अपतानकरोग नष्ट होजाता है ॥

अथ पक्षाघातलक्षणम्। ५४

गृहीत्वाऽर्द्धं तनोर्वायुः शिराः स्नायूर्विशोष्य च। पक्षमन्यतमं हन्ति सन्धिबन्धान्विमोक्षयन् ॥ २०० ॥ कृत्स्नोर्ध्वकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः। एकाङ्गवातं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ॥ २०१ ॥

अर्द्धम्-अर्द्धनारीश्वरवत्पक्ष बाहुपार्श्वोरुजंघादिभागम्। अन्यतमम्-वाम दक्षिणं वा। विमोक्षयन् शिथिली कुर्वन्। अकर्मण्यः-कर्मासमर्थः। विचेतनः ईषत्स्पर्शादिज्ञानयुक्तः ॥

वायु शरीरके आधे भागको पकड़कर शिराओंको तथा स्नायुओंको सुखा डालती है, संधियोंके बन्धनोंकोशिथिल करके दहिने अथवा बायें किसी एक ओरके अंगको मारदेती है, जिससे मनुष्यका आधा शरीर कुछ काम नहीं करसकता और स्पर्शज्ञान आदि भी अल्प रहजाता है। इस रोगको कितने वैद्य पक्षाघात' कहते हैं कुछ वैद्य एकांगवात कहते है और कोई २ वैद्य पक्षवध कहते हैं। जिस प्रकार अर्द्धनारीश्वरका आधा शरीर स्त्रीमय है और आधा शरीर पुरुषमय है, उसी प्रकार इस रोगवाले मनुष्यका आधा शरीर मारा जाता है और वह आधा शरीर किसी कार्य करनेके योग्य नहीं रहता है ॥ २००-२०१ ॥

अथान्यदोषयुक्तवायुलक्षणम्।

दाहसन्तापमूर्च्छाःस्युर्वायो पित्तसमन्विते। शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफावृते ॥ २०२ ॥

दाहो बाह्यः, सन्तापः आभ्यन्तरः। एतल्लक्षणमन्यत्रापि वातव्याधौ बोद्धव्यम् सामान्यनिर्दिष्टत्वात् ॥

वायु जो पित्तसंयुक्त हो तो अन्तर्दाह, बाहर सन्ताप तथा मूर्च्छा होती है और कफसंयुक्त हो तो शीतलता, सूजन तथा भारीपन होता है, यही लक्षण अन्यान्य वातव्याधियोंमें भी जानने क्योंकि, इस लक्षणमें सामान्य रीतिसे वायुशब्दका ग्रहण है ॥ २०२ ॥

अथ पक्षाघातसाध्यासाध्यता।

शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः। साध्यमन्येन संयुक्तमसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ २०३ ॥

शुद्धः-केवलः। अन्येन पित्तेन कफेन वा। क्षयहेतुकम्-क्षयो धातुक्षयस्तत्कुपितवातनिमित्तकम् ॥

पक्षाघात जो केवल वायुसे उत्पन्न हुआ हो तो अत्यन्त कष्टसाध्य है, पित्तसे या कफसे संयुक्त वायुसे उत्पन्न हुआ हो तो साध्य है

और धातुओंके क्षयसे कुपित हुई वायुसे उत्पन्न हुआ हो तो असाध्य है ॥ २०३ ॥

अपरमसाध्यलक्षणम् ।

गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षये। पक्षाघातं परिहरेद्वेदनारहितो यदि॥२०४ वेदनारहितो यदि इति भिन्नमसाध्यलक्षणम् ।

गर्भवती स्त्री, प्रसूता स्त्री, बालक, वृद्ध क्षीण और जिसके रुधिरका क्षय होगया हो ऐसे मनुष्योंके उत्पन्न हुआ पक्षाघात आराम नहीं होता है। अतएव इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥

पक्षाघात जो वेदनासे रहित हो तो असाध्य है इसलिये इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ २०४ ॥

अथ पक्षाघातचिकित्सा ।
तत्र माषादिक्वाथः ।

माषात्मगुप्तावातारिवाट्यालकजटाशृतम् । हिंगुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातं विनाशयेत्। माषिके हिंगुसिंधूत्थे जरणाद्यास्तु शाणिकाः ॥ २०५ ॥

उडद, कौंछ, एरण्ड और खिरैंटीकी जड इनका क्वाथ बनाकर उसमें हींग और सैंधानिमक डालकर पीनेसे पक्षाघात नष्ट होता है। (हींग और सैंधानिमक पांच पांच रत्ती लेना चाहिये और जीरा आदि पदार्थ चौबीस रत्ती लेना, ऐसी मर्यादा है) ॥२०५॥

अथ ग्रन्थिकादितैलम् ।

ग्रन्थिकाग्निकणाशुण्ठीरास्नासैन्धवकल्कितम् । माषक्वाथशृतं तैलं पक्षाघातं व्यपोहति ॥ २०६ ॥

पीपलामूल, चीता, पीपल, सोंठ, रास्ना और सैंधानिमक इनका कल्क डालकर उडदके क्वाथमें पकाया तेल पक्षाघातको दूर करता है ॥ २०६ ॥

अथ माषादितैलम् ।

माषात्मगुप्तातिविषारुबूकरास्नाशताह्वालवणैः सुपिष्टैः । चतुर्गुणे माषबलाकषाये तैलं शृतं हन्ति हि पक्षघातम् ॥२०७॥

उडद, कौंछ, अतीस, अरण्ड, रास्ना सोया और सैंधानिमक इनका उत्तम विधिसे कल्क बनाकर तेलसे चौगुने उडदके तथा खिरैंटीके क्वाथमें पकाया हुआ तेल पक्षाघात को नष्ट कर देता है ॥ २०७ ॥

अथ सर्वांगवातलक्षणम् । ५५

सर्वाङ्गपवने क्रुद्धे गात्रस्फुरणभञ्जने । वेदनाभिः परीताश्च स्फुटन्तीवास्य सन्धयः ॥ २०८ ॥

सन्धयः वेदनाभिः परीताः युताः स्फुटन्तीव॥

सम्पूर्ण अंगोंमें वायुका कोप होनेसे गात्रकी सिरायें कांपने लगती हैं, अंग टूटने लगते हैं और वेदनाके मारे संधि फटीसी होजाती है, इसको 'सर्वांगवात' कहते हैं ॥ २०८ ॥

अथ सर्वांगवातचिकित्सा ।

सर्वाङ्गगतमेकाङ्गगतञ्चापि समीरणम् । तैलावगाहनं हन्ति तोयवेगमिवाचलः ॥ २०९ ॥

जिस प्रकार जलके वेग पर्वतसे नष्ट होजाते हैं उसी प्रकार तेलका अवगाहन सर्वांगवात तथा पक्षाघातको नष्ट करता है ॥ २०९ ॥

अथ स्थाननामलक्ष्यलक्षणवातव्याधिवर्णनम् ।

स्थाननामानुरूपैश्च लिङ्गैः शेषान् विनिर्दिशेत् । सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ॥ २१० ॥ प्रथमं ह्रस्वकेशत्वं ततो वाचालताऽपि च । आटोप पार्श्वशूलञ्च पुरीषस्यातिगाढता ॥ २११ ॥

आटोपः-गुडगुडाशब्दः ॥

शेष वातरोग जो कि यहां नही कहे हैं उनको उनके स्थान और नामके अनुसार

लक्षणोंसे जानलेना चाहिये और इन सबमें पित्तादिकका सम्पूर्ण कल्पना करके जान लेना। जैसे कि, केशोंकी अल्पताको 'ह्रस्वकेशत्व २' कहते हैं। बहुत बोलना 'वाचालता ९' कही जाती है। पेटमें जो गुडगुड शब्द होता है, वह 'आटोप २८' कहा जाता है। पसलियोंमें जो शूल होता है, वह 'पार्श्वशूल २९ कहा जाता है। विष्ठाकी जो अत्यन्त कठिनता है, वह 'मलगाढता ३३' कही जाती है ॥ २१० ॥ २११ ॥

तथा मलाप्रवृत्तिश्च कम्पः स्तम्भश्च रूक्षता। कार्श्यं कार्ष्ण्यं च शैत्यश्च लोमहर्षो व्यथा तथा ॥ २१२ ॥

दस्तका जो नहीं उतरना, वह मलाप्रवृत्ति ३४' कही जाती है। अंगका जो कांपना है, वह 'कम्प ५६' कहा जाता है। अंगका जो जकड जाना है, वह 'स्तम्भ ५७' कहा जाता है। शरीरका जो रूखापन है वह 'रूक्षता ६२' कही जाती है। शरीरकी जो दुर्बलता है, वह 'कार्श्य ६३' कहा जाता है। शरीरका जो कालापन है वह 'कार्ष्ण्य ६४' कहा जाता है। शरीरकी जो शीतलता है, वह 'शैत्य ६५' कहा जाता है। रोमांचोंका जो खडा होना है, वह 'रोमहर्षण ६६' कहा जाता है। अंगमें जो पीडा होती है, वह 'व्यथा ५८' कही जाती है ॥ २१२ ॥

तोदो भेदः शिरास्फूर्तिरङ्गमर्दोऽङ्गशुष्कता। सङ्कोचश्चाङ्गविभ्रंशो मोहश्चश्चलचित्तता ॥ २१३ ॥

तोदः—सूचीव्यधनेनेव पीडा। भेदः विदारणेनेव व्यथा। अङ्गविभ्रंशः-अंगस्य स्थानत्यागेन स्खलनम्।

अंगमें जो सुई छेदनेसरीखी पीडा होती है, वह 'तोद ५९' कहा जाता है। मानों शरीरको कोई चीरडालता है, ऐसी जो पीडा होती है, वह 'भेद ६०' कहा जाता है। शिराओंको जो फडकना है, वह 'शिरास्फूर्ति ६१' कही जाती है। अंगोंका जो टूटना है वह 'अंगमर्द ६७' कहाजाता है। अंगों सूखना है, वह 'अंगशुष्कता ७०' कही जाती है। अंगोंका जो संकुचना है, वह 'अंगसंकोच' कहा जाता है। अंगोका जो अपने स्थानसे स्खलन होना है, वह 'अंगविभ्रंश ६८' कहा जाता है। चित्तका जो मूढ हो जाना है, वह 'मोह ७२' कहा जाता है। चित्तका जो चञ्चलपन है, वह 'चलचित्तता ७३' कही जाती है ॥ २१३ ॥

निद्रानाशः स्वेदनाशो बलहानिश्च भीरुता। शुक्रक्षयो रजोनाशो गर्भनाशः परिश्र(भ्र)मः ॥

निद्रानाशः—निद्राल्पत्वमपि। गर्भनाशः-आमगर्भपातः। गर्भशय्यायां वाताधिष्ठानाद्गर्भाग्रहणमिति जैज्जटः। परिश्रम आयासं विना श्रमः (भ्रमः) ॥

निद्राका बिलकुल नहीं आना अथवा कम आना, वह 'निद्रानाश ७४' कहा जाता है। पसीनेका जो न आना है, वह 'स्वेदनाश ७५' कहा जाता है। बलका जो नाश होना है, वह 'बलहानि ७६' कही है। डरपोकपन जो है, वह 'भीरुता ७७' कही जाती है। वीर्यका नष्ट होना जो है, वह 'शुक्रक्षय' कहा जाता है। स्त्रीको रजका नाश होता है सो 'रजोनाश ७८' कहा जाता है। अपक्व गर्भका गिर जाना अथवा जैज्जटके मतानुसार गर्भाशयमें वायुके स्थित होनेसे गर्भका नहीं रहना जो है, वह गर्भनाश ७९ कहाजाता है।

विना परिश्रम किये हुए थकजाना जो है, वह 'परि- (भ्र) श्रम ८०' कहा जाता है ॥ २१४ ॥

'वह्निवैषम्य २७' अर्थात् अग्निकी विषमता के लक्षण जठराग्निके विकारोंमें अग्निमांद्यमें कह आये हैं, सो देखलेना ॥

अथोक्तवातव्याधिचिकित्सा ।

सामान्यवातरोगाणां या चिकित्सा प्रचक्ष्यते । एषां सैव विधातव्या तयैते यान्ति संक्षयम् ॥ २१५ ॥

वातव्याधियोंमें जो सामान्य औषधि कही है, वही औषधि ह्रस्वकेशत्व आदि रोगोंमें प्रयोग करनी चाहिये । इस प्रकार करनेसे उन रोगोंका नाश होता है ॥ २१५ ॥

अथान्यप्रकारेण वातव्याधिनिरूपणम् ।

एवंविधानि रूपाणि करोति कुपितोऽनिलः । हेतुस्थानविशेषेण भवेद्रोगविशेषकृत् ॥ २१६ ॥

एवंविधानि रूपाणि शिरोग्रहादीनि अशीतिः।

हेत्वित्यादि । हेतुविशेषः—पित्तश्लेष्माद्यावृतत्वादिः । यथा—श्लेष्मावृतो वायुः मन्यास्तम्भं करोति । स्थानविशेषःकोष्ठादिः । यथा "तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः" इत्यादि ॥

कोपको प्राप्त हुई इस प्रकार यह वायु शिरोग्रह आदि अस्सी रूपोंको उत्पन्न करती है । हेतुओंके भेदसे तथा स्थानोंके भेदसे भी वातव्याधियोंका विशेष विवेचन समझना योग्य है ॥ २१६ ॥

अथोदानादिवायोः पित्तकफबन्धेन-लक्षणम् ।

उदाने पित्तसंयुक्ते दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः । अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतता च कफावृते ॥ २१७ ॥

कंठमें रहनेवाली उदानवायु जो पित्तसे संयुक्त हो तो दाह, मूर्च्छा, भ्रम तथा ग्लानि होती है । जो कफसे संयुक्त होती है तो पसीनेका अभाव, रोमांचोंका हो आना, अग्निकी मन्दता और शरीरकी शीतलता होती है॥२१७

प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते । दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यञ्च कफावृते ॥ १२८ ॥

प्राणः-हृदयाश्रयो वायुः ॥

हृदयमें रहनेवाली जो प्राणवायु पित्तसे संयुक्त हो तो वमन तथा दाह होता है । कफसे संयुक्त हो तो दुर्बलता, ग्लानि, तन्द्रा तथा विरसता होती है ॥ २१८ ॥

स्वेदो दाहस्तृषा मूर्च्छा समाने पित्तसंयुते । कफेन सक्ते विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ २१९ ॥

कफेन संयुक्ते समाने विण्मूत्रे सक्ते अवरुद्धे भवतः । गात्रहर्षः-रोमाञ्चः ॥

जठराग्निके नीचे रहनेवाली जो समानवायु पित्तसे संयुक्त हो तो पसीना, दाह, तृषा तथा मूर्च्छा होती है और कफसे संयुक्त हो तो विष्ठा तथा मूत्रका अवरोध और रोमांचोंका खडा होना ये लक्षण होते हैं ॥ २१९ ॥

अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता । अधःकाये गुरुत्वञ्च शीतता च कफावृते ॥ २२० ॥

अपानः-गुदाश्रयो वायुः ॥

गुदामें रहनेवाली अपान वायु पित्तसे संयुक्त हो तो दाह, उष्णता और लालमूत्र हो जाता है और जो कफसे संयुक्त हो तो शरीरके नीचेके भागमें भारीपन तथा शीतपन होता है ॥ २२० ॥

व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः । स्तम्भोऽथ दण्डकश्चापि शूलशोथौ कफावृते ॥ २२१ ॥

दण्डकः-आक्षेपकभेदः ॥

सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाली व्यानवायु जो पित्तसे संयुक्त हो तो दाह, अंगोंका फेकना तथा ग्लानि होती है और जो कफसे संयुक्त हो तो जडता,दंष्टकाक्षेप,शूल तथा सूजन ये लक्षण होते हैं ॥ २२१ ॥

अथ पित्तकफावृतवायुचिकित्सा ।

वाते सपित्ते कुर्वीत वातपित्तहरीं क्रियाम् । सकफे तत्र कुर्वीत वातश्लेष्महरीं क्रियाम् ॥ २२२ ॥

वायु पित्तसे संयुक्त हो तो वात तथा पित्त दोनोंको हरनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये और जो कफसे संयुक्त हो तो वायु तथा कफ इन दोनोंको हरनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २२२ ॥

अथ त्वगादिस्थानस्थितरसादिधातुगतवायुलक्षणम् ।

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते । आतन्यते सरागा च सर्वरुक् त्वग्गतेऽनिले ॥ २२३ ॥

सर्वरुक्–सप्तत्वग्व्यथा । त्वग्गते त्वक्छब्देन-अत्र रस उच्यते । त्वगाधार्यत्वात्तेनरसगत इत्यर्थः ॥

जब वायु रसमें स्थित हो जाती है, तब शरीरकी चमडी लखी फहुटीई, जड, पतली, काली, सुई चुभोने सरीखी पीडा युक्त, खिचीसी और ललाई लिये होती है और सातों त्वचाओंमें व्यथा होती है ॥

रुजस्तीव्राः ससन्तापा वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः । गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले ॥ २२४ ॥

अरूंषि–व्रणानि । भुक्तस्य-भुक्तेत्यत्र अध्यवसितादित्वात् कर्त्तरिक्तः । तेन भुक्तवतः-स्तम्भः सन्तर्पणेन रक्तवृद्धेः ॥

रुधिरगत वायु हो तो तीव्र पीडा होती है, सन्ताप होता है, शरीरका रंग बिगड जाता है, दुर्बलता होजाती है, अरुचि हो जाती है, गात्रमें व्रण होते हैं और भोजन करनेके पश्चात् तृप्तिसे रुधिरकी वृद्धि होकर स्तब्धता होती है ॥ २२४ ॥

गुर्वङ्गं तुद्यते स्तब्धं दण्डमुष्टिहतं यथा । सरुक् स्तिमितमत्यर्थं वाते मांससमाश्रिते ॥ २२५ ॥

दण्डमुष्टिताडितमिव तुद्यते । स्तिमितं निश्चलमित्यर्थः ॥

वायु मांसगत हो तो अङ्ग भारी हो जाता है, लकडी अथवा मुट्ठीके मारनेके समान पीडा होती है, स्तब्धता होती है, रोगी व्यथायुक्त होता है और अत्यन्त निश्चल हो जाता है ॥ २२५ ॥

तथा मेदःश्रितः कुर्याद् ग्रन्थीन् मन्दरुजो व्रणान् ॥ २२६ ॥

तथा--मेदाश्रितः मांसगतवत् । मांसमेदसोर्गतवातयोरेकलिङ्गत्वम् । अदूरान्तरेण प्रत्यासत्तेः आश्रयप्रभावात् दूरेण प्रत्यासत्तेरस्थिरूपाया मेदाच्च कुर्यात् ग्रन्थीनित्यादिर्विशेषः ॥

मेदोऽस्थिपर्वणां सन्धिशूलं मांसबलक्षयः । अस्वप्नं सतता रुक् च वाते दुष्टेऽस्थिसंस्थिते । वाते मज्जगते पीडा न कदाचित् प्रशाम्यति ॥ २२७ ॥

मज्जगते अस्थिगतवत् । यथा मेदोगतो मांसगतवत्यात् । पीडाऽत्र कदापि न प्रशाम्यत्ययं विशेषः ॥

वायु मेदगत हो तो मांसगत वायुके समान सम्पूर्ण लक्षण होते हैं तथा अल्प पीडावाली ग्रन्थि और फोडे होते हैं, इतनी मेदगत, वायुमें विशेषता है । दुष्ट वायु अस्थियोंमें स्थित हो तो अस्थियोंकी सन्धियोंमें तोडने सरीखी पीडा होती है । संधियोंमें शूल चलता है, मांस तथा बलका क्षय होता है, निद्रा नहीं आती और प्रबल पीडा होती है । मज्जागतवायुमें अस्थिगतवायुके समान लक्षण होते हैं, परन्तु इतनी विशेषता होती है कि, मज्जागतवायुसे उत्पन्न हुई पीडा कभी भी शान्त नहीं होती२२६-२२७

क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा । विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ २२८ ॥

शुक्रं बध्नाति स्खलयत्येव न । गर्भं क्षिप्रं मुञ्चतिआममेव पातयति । बध्नाति-मूढं करोति, वातदुष्टशुक्रारब्धत्वात् । विकृतिम् शुक्रस्य वर्णान्तरत्वादिरूपां गर्भस्य विकृताङ्गत्वादिरूपां जनयति ॥

कोपको प्राप्त हुई वायु वीर्यमें प्राप्त हो तो वीर्य स्खलित नहीं होने देती, अपक्व गर्भको ही गिरा देती है। मूढ करदेती है, वीर्यके रंगको बदल देती है अथवा वीर्यको बिगाड देती है और गर्भमें अंगविकृति आदि करती है। वात-दूषित वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण गर्भ कच्चा ही गिर जाता है अथवा मूढ होजाता है, यह सम्भव है ॥ २२८ ॥

अथ रसादिधातुगतवायुचिकित्सा ।

वायौ त्वगाश्रिते स्नेहाभ्यङ्गं स्वेदश्च कारयेत् । रक्तस्थे शीतलाँल्लेपान् विरेकं रक्तमोक्षणम् ॥ २२९ ॥

वायु रसमें स्थित हो तो स्नेहका अभ्यंग तथा स्वेदन क्रिया करे। वायु रुधिरमें प्राप्त हो तो शीतल लेप करे, विरेचन देवे तथा फस्त आदि खुलवार रुधिर निकलवावे ॥ २२९ ॥

मांसमेदोगते वाते सविरेकं निरूहणम् । अस्थिमज्जगते स्नेहं बहिरन्तश्च योजयेत् ॥ २३० ॥

वायु मांस अथवा मेदमें स्थित हो तो विरेचन देवे और निरूहवस्ति करे। वायु अस्थियोंमें अथवा मज्जामें स्थित हो तो बाहर तथा भीतर स्नेहकी योजना करें ॥ २३० ॥

केतकिनागबलातिबलानां यद्बहुलेन रसेन विपक्वम् । तैलमनल्पतुषोदकसिद्धं मारुतमस्थिगतं विनिहन्ति ॥ २३१ ॥

केवडा और गुलसकरी तथा कंधी इनके बहुतसे स्वरससे और बहुतसे तुषोदकसे पकाये हुए तेलको केतक्यादि तैल कहते हैं। इस तेलका उपयोग करनेसे अस्थिगतवायु नष्ट हो जाती है ॥ २३१ ॥

हर्षोऽन्नपानं शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् ॥ २३२ ॥

वायु वीर्यमें प्राप्त हो तो स्त्री आदिसे हर्ष उपजावे और वीर्यको बढानेवाले अन्न पान देवे क्योंकि, इस प्रकार करनेसे बल तथा वीर्यकी वृद्धि होती है ॥ २३२ ॥

अथ स्थानविशेषेण वातव्याधिविशेषः ।

तत्र कोष्ठगतवायुलक्षणम् ।

वाते कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः। ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शः पार्श्वशूलश्चजायते ॥ २२३ ॥

जब दुष्ट वायु कोठेमें स्थित होती है तो मूत्र तथा विष्ठाका अवरोध होता है और गुल्म, हृदयरोग, ब्रध्न, बवासीर और पसलियोंमें शूल ये सब लक्षण होते हैं ॥ २३३ ॥

कोष्ठलक्षणम् ।

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुन्दुकः फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ २३४ ॥ उन्दुकः 'पीठ' इति लोके । एतेन कोष्ठशब्देन सर्व एवाशयाः कथ्यते, तथापि विशेषार्थमाशयादिगत-वातलक्षणान्यपि पृथग्वक्ष्यन्ते ॥

कच्चे भोजन रहनेका स्थान, अग्निके रहनेका स्थान, पक्व भोजनके रहनेका स्थान, मूत्रका स्थान, रुधिरका स्थान, हृदय पीठ और फेफडा इन सबको मिलाकर कोठा कहा जाता है। यद्यपि 'कोठा' यह शब्द सब आशयोंको कहा जाता है तो भी विशेष जाननेके लिये आमाशयादिमें रहनेवाली वायुके लक्षण पृथक् ही कहे हैं ॥ २३४ ॥

अथ कोष्ठवातचिकित्सा ।

पाचनीयै रसर्युक्तैरन्यैर्वा पाचयेन्मलान् । विशेषतः पिबेत्क्षीरं नरः कोष्ठगतेऽनिले ॥ २३५ ॥

दुष्ट वायु कोठेमें स्थित हो तो मनुष्य पाचन करनेवाले रसोंकी योजना करे अथवा अन्यान्य उपायोंसे मलको पकावे और विशेष करके दूध पीवे ॥ २३५ ॥

अथामाशयगतवायुलक्षणम् ।

हृत्पार्श्वोदरनाभीरुक्तृष्णोद्गार विसूचिकाः । कासः कण्ठस्य शोषश्च श्वासश्चामाश्रयेऽनिले ॥ २३६ ॥

चरक कहाता है कि, जब वायु आमाशयमें रहती है तब हृदय, पसली, पेट और नाभि इनमें पीडा होती है, तृषा लगती है, डकार आती है, विसूचिका खांसी, कंठमें शोष और श्वास होता है ॥

अथामाशयलक्षणम् ।

नाभेः स्तनान्तरं जन्तोराहुरामाशयं बुधाः ॥ २३७ ॥

चरक कहाता है कि, प्राणियोंके शरीरमें नाभि और स्तनके बीचका जो भाग है, उसको 'आमाशय' कहते हैं ॥ २३७ ॥

अथामाशयगतवायुचिकित्सा ।

आमाशयस्थे त्वनिले प्रशस्तं प्राग्लङ्घनं दीपनपाचनञ्च । प्रच्छर्दनं तीक्ष्णविरेचनं वा मुद्गा यवाः शालियुताः पुराणाः ॥ २३८ ॥

वायु अमाशयमें स्थित हो तो प्रथम लंघन कराने चाहिये और दीपन तथा पाचन औषधि देनी उत्तम है अथवा वमन और तीक्ष्ण विरेचन देना उत्तम है। इस रोगवाले मनुष्यको पुरानी मूँग, जौ और चावल पथ्य है ॥२३८॥

भूतीकपथ्याशटिपुष्कराणि बिल्वामृतादारुकनागराणि । उग्राविषामागधिकाविडानि क्वाथास्त्रयः सामसमीरणघ्नाः ॥ २३९ ॥

भूतीकः—रोहिषः सुगन्धस्तृणविशेषः, तदलाभे उशीरं ग्राह्यम् । पुष्करम्—पुष्करमूलम् । दारुकम् देवदारु । उग्रा--वचा । विषा अतिविषा ॥

रोहिष, हरड, कचूर और पोहकरमूल इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे आमाशयगत वायु नष्ट होजाती है । जो रोहिषतृण न मिलसके तो उसके अभावमें खस डालनी चाहिये । बेलगिरी, गिलोय, देवदारु और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे आमाशयगत वायु नष्ट होजाती है । वच, अतीस, पीपल और बिरियासञ्चरनिमक इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे आमाशयगत वायु नष्ट हो जाती है ॥ २३९ ॥

अथषड्धरणयोगः ।

चित्रकेन्द्रयवौ पाठा कटुकाऽतिविषाऽभया । आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं तोयं सुखाम्बुना । योगेऽस्मिन्भिषजा ग्राह्याः षण्णां षड्धरणाः पृथक् । दिनेषु षट्सु दातव्यास्तेन षड्धरणः स्मृतः ॥२४०॥

अत्र षण्णां समुदितानां षड्धरणमितानां चूर्णीकृतानां एकस्मिन्नहनि एकटङ्को ज्ञेयः ॥

चीता, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी, अतीस और हरड ये प्रत्येक औषधि चौबीस रत्तीभर लेकर उनका चूर्ण करके कपडेमें छान लेवे। फिर इसमेंसे नित्य २४ रत्ती चूर्ण लेकर थोडा गरम जलके साथ पीवे तो अमाशयगत वायु नष्ट हो जाती है। इस चूर्णको इसी प्रकार छः दिनतक पीवे तो छः दिनमें आराम हो जाता है, इसलिये यह षड्धरणयोग कहा जाता है ॥ २४० ॥

अथान्यषड्धरणयोगः ।

आमाशयगते वाते छर्दिश्चापि यथाक्रमम् । देयः षड्धरणो योगः सप्तरात्रं सुखाम्बुना ॥ २४१ ॥

अयमर्थः--प्रथमदिवसे वमनं कारयितव्यम्, ततो द्वितीयं दिनमारभ्यषड्दिनपर्यन्तं पाठक्रमेणैकैकस्य चूर्णं टङ्कमितं देयमित्यर्थः ॥

पहिले दिन वमन कराकर दूसरे दिन चीतेका चौबीस रत्ती चूर्ण गरमजलसे पीवे, तीसरे दिन इन्द्रजौका चौबीस रत्ती चूर्ण गरमजलसे पीवे चौथे दिन पाढेका चौबीस रत्ती चूर्ण गरमजलके साथ पीवे, पाचवें दिन कुटकीका चूर्ण चौबीस रत्ती गरमजलके साथ पीवे, छठ दिन अतीसका चूर्ण चौबीस रत्ती गरम जलके साथ पिये और सातवें दिन हरडका चूर्ण चौबीस रत्ती गरमजलके साथ पीवे। इस प्रकार करनेसे भी आमाशयगत वायु नष्ट होजाती है ॥ २४१ ॥

अथ पक्वाशयगतवायुलक्षणम् ।

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च । कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ॥ २४२ ॥

आटोपः -वातस्य क्षुब्धत्वम्, न तु गुडगुडाशब्दः । तस्य अन्त्रकूजनोक्तत्वात् ॥

जब वायु पक्वाशयमें स्थित होती है तो पेटमें आंतें गुरगुड किया करती हैं। शूल और पीडा होती है, वायु कुपित होती है, मूत्र और विष्ठा थोडी थोडी उतरती है, अफारा आजाता है और त्रिकस्थानमें पीडा होती है ॥ २४२ ॥

अथ पक्वाशयगतवायुचिकित्सा ।

वह्नेः संवर्द्धनं कार्यं कर्मौदावर्तकं तथा । देयः स्नेहविरेकश्च पक्वाशयगतेऽनिले ॥ २४३ ॥

वायु पक्वाशयमें स्थित हो तो जठराग्निको बढानेका उपाय करना चाहिये उदावर्तकी जो चिकित्सा कही है वह सब करना चाहिये और स्नेहसंयुक्त विरेचन करना अत्यन्त सुखकारी है ॥ २४३ ॥

अथोदरगतवायुचिकित्सा ।

वाते जठरगे दद्यात्क्षारचूर्णादिदीपनम् ॥

वायु पेटमें स्थित हो तो क्षार तथा चूर्ण आदि दीपन औषधि देनी चाहिये ॥

अथ कुक्षिगतवायुचिकित्सा ।

शुण्ठीकुटजबीजाग्निचूर्णं कोष्णाम्बु कुक्षिगे ॥ २४४ ॥

वायु कोखमें स्थित हो तो सोंठ, इन्द्रजौ और चीता इनका चूर्ण करके थोडा गरमजलके साथ पीवे ॥ २४४ ॥

गुदगतवायुलक्षणम् ।

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः । जङ्घोरुत्रिकपार्श्वांसपृष्ठरोगो गुदेऽनिले ॥ २४५ ॥ रोगोऽत्र रुजा, पीडेति यावत् ॥

जब वायु गुदामें स्थित होती है तो विष्ठा, मूत्र और अधोवायुका अवरोध होता है, शूल चलता है, पेट अफरता है पथरी और शर्करारोग होता है तथा पिडली, साँथल, कमर, पसली, कंधे और पीठ इनमें पीडा होती है ॥ २४५ ॥

गुदगतवायुचिकित्सा ।

वाते गुदगते दुष्टे कर्मौदावर्तकं हितम् ॥ २४६ ॥

दुष्ट वायु जो गुदामें स्थित हो तो उदावर्तमें जो चिकित्सा कही है, वह सब करनी चाहिये ॥ २४६ ॥

हृदयगतवायुचिकित्सा ।

हृदयानिलनाशाय गुडूचीं मरिचान्विताम् । पिबेत्प्रातः प्रयत्नेन सुखं तप्ताम्भसा सह ॥ २४७ ॥

प्रातःकाल यत्नपूर्वक थोडा गरमजलके साथ मिरच तथा गिलोयको पीवे तो हृदयमें रहनेवाली दुष्ट वायु नष्ट होती है ॥ २४७ ॥

पिबेदुष्णाम्भसा पिष्टमश्वगन्धं विभीतकम्। गुडयुक्तं प्रयत्नेन हृदयानिलनाशनम् ॥ २४८ ॥

असगंध और बहेडा इनको एकत्र पीसकर गुडमें मिलाकर गरम जलके साथ पीवें तो हृदयमें रहनेवाली दुष्ट वायु नष्ट होती है २४८

देवदारुसमायुक्तं नागरं परिपेषितम्। हृद्वातवेदनायुक्तः पीत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥ २४९ ॥

देवदारु और सोंठ इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पीनेसे हृदयगत वायुसे पीडित मनुष्य सुखी होती है ॥ २४९ ॥

अथ कर्णेंद्रियादिगतवायुलक्षणम्।

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्यात्क्रुद्धः समीरणः ॥ २५० ॥

कोपको प्राप्त हुई वायु जब कान आदि इंद्रियोंमें रहती है, तब इंद्रियोंकी शक्तिका नाश करती है ॥ २५० ॥

अथ कर्णेंद्रियादिस्थितवायुचिकित्सा।

श्रोत्रादिष्वनिले दुष्टे कार्यो वातहरः क्रमः। स्नेहाभ्यङ्गोऽवगाहश्च मर्दनालेपनानि च ॥ २५१ ॥

दुष्ट हुई वायु जब कानआदि इंद्रियोंमें स्थित हो, तो वायुकी चिकित्सा करे, स्नेहपदार्थोंकी मालिस करे, स्नेहकी कोठीमें अवगाहन करावे, स्नेहको शरीरपर लगावे और स्नेहका लेप करे ॥ २५१ ॥

अथ शिरागतवायुलक्षणम्।

कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुञ्चनपूरणम्। स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्लीं कुब्जत्वमेव च ॥ २५२ ॥

कुञ्चनम्-संकोचम्। पूरणम्-स्थूलत्वम्। बाह्यायामम्-पृष्ठेन नतम्। आभ्यन्तरायामम्-क्रोडेन नतम्। शूलं शिरायामेव ॥

शिराओंमें रहनेवाली वायु शिराओंमें शूलकी पीडा, शिराओंका संकोच, शिराओंकी स्थूलता, अंतरायाम, बाह्यायाम, खल्ली और कुब्जताको करती है ॥ १५२ ॥

अथशिरागतवायुचिकित्सा।

स्नेहाभ्यङ्गोपनाहाश्च मर्दनालेपनानि च। वाते शिरागते कुर्यात्तथा चासृग्विमोक्षणम् ॥ २५३ ॥

वायु शिराओंमें स्थित हो, तो स्नेहका अभ्यंग करे। स्नेहसहित बफारा, स्नेहकी मालिश करे, स्नेहका लेपन और रुधिर निकलवावे ॥ २५३ ॥

अथ स्नायुगतवायुलक्षणम्।

शूलमाक्षेपकः कंपः स्तंभः स्नाय्वनिलाद्भवेत् ॥ २५४ ॥ स्वेदोपनाहाग्निकर्म बन्धनोन्मर्दनानि च। शुद्धे स्नायुगते वाते कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ २५५ ॥

स्नायुगतवातसे शूल, आक्षेपक और स्तम्भ होता है। कोपको प्राप्त हुई वायु जब स्नायुमें प्राप्त हो तो पसीने निकलवावे, दाग देवे, पक्का बंधन बाँधे और स्नेह चुपडे, यह उपाय बुद्धिमानोंको करना चाहिये ॥ २५४॥२५५॥

अथ संधिगतवायुलक्षणम्।

हन्ति सन्धिगतः सन्धीञ्छूलशोथौ करोति च ॥ २५६ ॥

हन्ति-विश्लेषयति ॥

संधि में रहनेवाली वायु संधियोंको छोड देती है और शूल तथा सूजनको उत्पन्न करती है ॥ २५६ ॥

अथ संधिगतवायुचिकित्सा।

कुर्यात् सन्धिगते वाते दाहस्नेहोपनाहनम्। इन्द्रवारुणिकामूलं मागधीगुडसंयुतम्। भक्षयेत्कर्षमात्रं तत्सन्धिवातं व्यपोहति ॥ २५७ ॥

जब वायु संधियोंमें प्राप्त हो तो दाग देना और पसीना निकलवाना चाहिये, इन्द्रायनकी जड और पीपल इनको गुडमें मिलाकर एक तोले प्रमाण भक्षण करे तो संधियोंमें रहनेवाली वायु नष्ट होती है ॥ २५७ ॥

अथ वातरोगकष्टसाध्यत्वम् ।

हनुस्तम्भार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः । कालेन महता यत्नात् सिद्धयन्ति ह्यथवा न वा ॥ २५८ ॥

शतेषु एकःकश्चिन्मुच्यते इत्यर्थः । परं कः सिद्धयति ? यस्तरुणो भवति तथा बलवानुपद्रवरहितश्च ॥

हनुग्रह, अर्दित, आक्षेप, पक्षाघात और अपतानक ये व्याधियाँ यत्न करनेसे बहुत बहुत दिनोंमें आराम होजाती हैं अथवा नहीं भी होती हैं । इन रोगी मनुष्योंमें सैकडोंमें कोई एक दो मनुष्य जो युवा, बलवान् और उपद्रव रहित हो तो उसको आराम होजाता है, नहीं तो नहीं आराम होता, सब यमलोकको जाते हैं ॥ २५८ ॥

अथ वातव्याध्युपद्रवाः ।

विसर्पदाहरुग्भङ्गमूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः । क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्ति पक्षवधादयः ॥ २५९ ॥

वाताः-वातविकाराः कार्यकारणयोरभेदोपचारात् । वातादिति पाठे वातात्पक्षवधादय इति योज्यम् ॥

वातके प्रकोपसे होनेवाली व्याधियोंसे जिनका मांस तथा बल क्षीण होजाता है वे मनुष्य विसर्प, दाह, व्यथा, भंग, मूर्च्छा, अरुचि और मन्दाग्निकी पीडासे मरजाते हैं ॥ २५९ ॥

अथ वातव्याध्यसाध्यलक्षणम् ।

शूनं सुप्तत्वचं म्लानं कम्पाध्माननिपीतम् । रुजार्तिमन्तश्च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ २६० ॥

जिनका शरीर सुन्न होगया है, त्वचा जड होगई है ग्लानियुक्त, कम्प और अफारेसे पीडित और पीडासे व्याकुल ऐसे मनुष्योंको वातव्याधि अन्तमें मार देती है ॥ २६० ॥

अथ प्रकृतिस्थितवातपञ्चककार्य्यम् ।

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः । वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम् ॥ २६१ ॥

जिस मनुष्यकी वायु अप्रतिहतगतिवाली, अपने स्थानमें रहनेवाली और सम प्रकृतिवाली हो वह मनुष्य रोगरहित सौ वर्ष भी अधिक जीता है ॥ २६१ ॥

अथ चक्रदत्तप्रोक्तमहामाषादितैलम् ।

माषस्यार्द्धाढकं देयं तुलार्द्धं दशमूलतः । पलानि च्छागमासस्य त्रिंशद्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ २६२ ॥ चतुर्भागावशेषं तं कषायमवतारयेत् । प्रस्थे द्वे तिलतैलस्य पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ २६३ ॥ जीवनीयानि मञ्जिष्ठा चव्यं चित्रककट्फलम् । सव्योषं पिप्पली मूलं रास्नामलकगोक्षुरम् ॥ २६४ ॥ आत्मगुप्ता तथैरण्डः शताह्वा लवणत्रयम् । देवदार्वमृताकुष्ठमश्वगन्धा वचा शटी ॥ २६५ ॥ एतैरक्षमितैः कल्कैः पाचयेन्मृदुनाऽग्निना । पक्षाघातार्दिते पुंसि हनुस्तंभार्दिते तथा ॥ २६६ ॥ कर्णशूले शिरःशूले तिमिरे च त्रिदोषजे । पाणिपादशिरोग्रीवाश्रवणे मन्द एव च ॥ २६७ ॥ कलायखञ्जे पङ्गौ च गृध्रस्यामपबाहुके । पाने वस्तौ तथाऽभ्यङ्गे नस्ये कर्णादिपूरणे ॥ २६८ ॥ तैलमेतत्प्रशंसन्ति सर्ववातविकारनुत् । महामाषादिनामेदं भाषितं मुनिभिः पुरा ॥ २६९ ॥

उडद १२८ तोले, दशमूल २०० तोले और बकरेका मांस १२० तोले इन सबको एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उसको उतारकर उसमें १२८ तोले तिलका तेल और तेलसे चौगुना ५१२ तोले दूध डाले और जीवनीयगण, मंजीठ, चव्य, चीता, कायफल, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, रायसन, आमले गोखुरू, कौंछके, बीज, अंड, सोया, तीनों प्रकारके निमक, देवदारु गिलोय, कूठ, असगन्ध वच और कचूर इन प्रत्येक औषधियोंका एक एक तोले कल्क डालकर उसको मन्द मन्द अग्निसे पकावे तो यह 'महामाषादि तैल' सिद्ध होता है। यह तैल पक्षाघात, हनुग्रह कानकी पीडा, मस्तककी पीडा, त्रिदोषजन्यतिमिर, हाथकी जडता, पाँवकी जडता शिर, गरदन और कानोंकी मन्दता, कलायखञ्ज, पंगुता, गृध्रसी और अपबाहुकरोग इन सब रोगोंमें हितकारी है। पान, नस्य, पिचकारी और कान आदिके भरनेमें इस तेलका उपयोग करना वायुसम्बन्धी सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करता है। यह महामाषादि तेल पूर्व कालमें मुनियोंने कहा है ॥ २६२-२६९ ॥

अथ द्वितीयमहामाषादितैलम् ।

माषा यवातसी क्षुद्रा मर्कटी च कुरण्टकः । गोकण्टष्टुण्टुकश्चैषां प्रत्येकं पलसप्तकम् चतुर्गुणाम्बुना पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥२७०॥ कार्पासकास्थि बदरं शणबीजं कुलत्थकम् । पृथक् चतुर्दशपलं चतुर्गुणजले पचेत् ॥२७१॥ कषायं तत्र गृह्णीयाच्चतुर्थांशावशेषितम् । प्रस्थश्च छागमांसस्य चतुःषष्टिपले जले ॥२७२॥ प्रक्षिप्य पाचयेद्धीमान्पादशेषं रसं नयेत् । तैलप्रस्थे ततः क्वाथान्सर्वांस्तान्क्रमशः पचेत् ॥ २७३ ॥ कल्कद्रव्यैः पचेदेभिरमृताकुष्ठसैन्धवैः । रास्नापुनर्नवैरण्डैः पिप्पल्या शतपुष्पया ॥ २७४ ॥ बलाप्रसारिणीभ्याञ्च मांस्या कटुकया तथा। पृथक्कर्षमितैरेतैः साधयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ २७५ ॥ हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं वातव्याधीनशेषतः । आक्षेपकं पक्षघातमूरुस्तम्भापबाहुकौ । हस्तकम्पं शिरःकम्पं विश्वाचीमर्दितं तथा ॥ २७६ ॥

उडद, जौ, अलसी, कटेरी, कौंछ, कटसरैया, गोखरू, और अरलू ये प्रत्येक औषधि सातसात पल लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उस क्वाथको उतार लेवे फिर उसमें कपासके बीज (बिनोले), बेर, सनके बीज और कुलथी ये प्रत्येक औषधि चौदह चौदह पल लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उसको उतार लेवे, फिर चौंसठ तोलेभर बकरेका मांस लेकर चौंसठ पल जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल रह जाय तब उतार लेवे फिर ६४ तोले तेलमें इन क्वाथोंको अनुक्रमसे पकावे। फिर गिलोय, कूठ, सैंधानिमक, रायसन, पुनर्नवा, एरण्ड, पीपल, सौंफ, खिरैंटी, प्रसारणी, बालछड और कुटकी ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर अलग अलग कल्क बनाकर तेलमें डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे तो महामाषादि तैल सिद्ध हो जाता है। यह तेल आक्षेपक, पक्षाघात, ऊरुस्तम्भ, अपबाहुक, हस्तकम्प, शिरःकम्प, विश्वाची, अर्दित और सम्पूर्ण वातव्याधियोंको तत्काल नष्ट कर देता है ॥२७०-२७६॥

अथ मध्यमनारायणतैलम् ।

अश्वगन्धा बला बिल्वं पाटला बृहतीद्वयम् । श्वदंष्ट्राऽतिबला निम्बः श्योनाकश्च पुनर्नवा ॥ २७७ ॥ प्रसारिणी

चाग्निमन्थः कुर्याद्दशपलं पृथक् । चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥ २७८ ॥ तैलाढकेन संयोज्य शतावर्या रसाढकम् । प्रक्षिपेत्तत्र गोक्षीरं ततस्तैलाच्चतुर्गुणम् ॥ २७९ ॥ पृथक्पलमितैः कल्कैर्द्रव्यैरेभिः पचेद्भिषक् । वचाचन्दनकुष्ठैलामांसीशैलेयसैन्धवैः ॥ २८० ॥ अश्वगन्धाबलारास्नाशतपुष्पेन्द्रदारुभिः। पर्णीचतुष्टयेनैव तगरेण प्रसाधयेत्२८१

असगन्ध, खिरैंटी; बेलगिरी, पाढल, कटेरी, बडी कटेरी, गोखरू, कन्धी, नींम, अरलू, पुनर्नवा, प्रसारणी और अरनी ये औषधि प्रत्येक दशदश पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उस क्वाथको छान लेवे । फिर इस क्वाथमें तेल १ आढक, शतावरका रस १ आढक और गायका दूध ४ आढक डाले तथा वच, लाल चन्दन, कूठ, इलायची, बालछड, छारछबीला, सैंधानिमक, असगन्ध, खिरैंटी, रायसन, सोया, देवदारु, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी और तगर इन प्रत्येक औषधिका कल्क चार चार तोले डालकर वैद्य इस तेलको उत्तम रीति से तैयार करे। इस प्रकार करनेसे मध्यमनारायणतैल सिद्ध होता है ।।२७७-२८१।।

तत्तैलं भोजनेऽभ्यङ्गे पाने वस्तौ च योजयेत् । पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं गलग्रहम् ॥ २८२ ॥ कुब्जत्वं बधिरत्वञ्च गतिभङ्गं कटीग्रहम् । गात्रशोषेन्द्रियध्वंसं शुक्रनाशं ज्वरक्षयान् ॥ २८३ ॥ अन्त्रवृद्धिं कुरण्डञ्च दन्तरोगं शिरोग्रहम् । पार्श्वशूलं च पङ्गुत्वं बुद्धिनाशञ्च गृध्रसीम् ॥ २८४ ॥ अन्यांश्च विविधान् वातान् हरेत्सर्वाङ्गसंश्रयान् । अस्याः प्रभावाद्वन्ध्याऽपि नारी, पुत्रं प्रसूयते ॥ २८५ ॥ यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्यविनाशनः । तथेदं वातरोगाणां नाशनं तैलमुत्तमम् ॥ २८६ ॥

इस तेलको भोजनमें, अभ्यंगमें, पिचकारी में और पीनेमें उपयोग करे तो इससे पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, कुब्जता, बधिरता, गतिभंग, कमरकी पीडा, गात्रशोष, इन्द्रियध्वंस, वीर्यका क्षय, ज्वर, क्षय, अन्त्रवृद्धि, कुरण्ड, दन्तरोग, मस्तककी वेदना पार्श्वशूल, पंगुता बुद्धिका नाश, गृध्रसी और अन्यान्य भी समस्त शरीरमें रहनेवाले वातरोग नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रतापसे वन्ध्या स्त्रियां भी पुत्रको उत्पन्न करती हैं। जिस प्रकार नारायणदेव दुष्ट दैत्योंका नाश करते हैं, उसी प्रकार यह उत्तम नारायणतैल वायुसम्बन्धी समस्त रोगोंको दूर करता है ।।२८२-२८६।।

अथ महानारायणतैलम् ।

तिलतैलं समादाय चतुराढकसम्मितम्। पञ्चपल्लवकल्केन शोधयेद्दोषशान्तये ॥ २८७ ॥ तत्राजं दुग्धमथवा गव्यं तैलसमं पचेत् । शतावरीरसञ्चापि तैलतुल्यं पचेद्भिषक् ॥ २८८ ॥ दशमूली बला रास्ना शिग्रूत्पलपुनर्नवाः । शेफालिका नागबला बला चैव प्रसारिणी ॥ २८९ ॥ अश्वगन्धा सहचरो दर्भमूलं करञ्जकः । खदिरं चन्दनं लोध्रं वचा- शतपलाशकम् । वकुलैरण्डवरुणशालयुग्मकटंभराः॥ २९० ॥ शिरीष शिखरी वासा हिंस्रा जम्बूर्विभीतकम् । काञ्चनारः कपित्थश्च पारिभद्रः प्रियालकम्। पाषाणभेदः शम्पाको दुग्धिका दाडिमीफलम् ॥ २९१ ॥ उदुम्बरः सप्तला

च कन्यका मालतीत्वचम् । मागधीफ-
लमूलश्च यवकोलकुलत्थकम् ॥ २९२ ॥
आत्मगुप्तार्ककार्पासबीजं वृक्षादनी
स्नुही । केतकीमूलधत्तूरलाङ्गलीगर्दभा-
ण्डकम् ॥ २९३ ॥ चित्रकश्च महानिम्बं
पञ्चवल्कलमेव च । मुडीठेकारिमुसली
हंसपादी विशल्यकम् ॥ २९४ ॥ एषां
दशपलान् भागान् वारिण्यष्टगुणे पचेत्।
पादशेषं परिस्राव्य तत्र तैलं पुनः
पचेत् ॥ २९५ ॥ छागो मेषश्च हरिण
एणश्च बहुशृङ्गकः । शशः शल्यः शिवा
गोधा सिंहो व्याघ्रश्च भल्लुकः ॥२९६॥
वन्यो वराहः खड्गी च महिषो घोटक
स्तथा । कपिर्बभ्रुर्बिडालश्च मूषकश्चोरु-
दर्दुरः ॥ २९७ ॥ वर्तीकस्तित्तिरिर्लावः
खञ्जरीटश्चकोरकः । उलूको नीलकण्ठश्च
वनकुक्कुट एव च ॥ २९८ ॥ गृध्रश्च
गरुडो हंसश्चक्रः कारण्डवोऽपि च ।
कपोतः सारसः क्रौञ्चो वन्यः पारावत
स्तथा । रोहितो मद्गुरश्चापि शिलीन्ध्रः
भृङ्गकस्तथा ॥ २९९ ॥ इल्लीसो गर्गरो
वर्मिः क्वथः काकः पिकोऽपि च । महा-
मत्स्यः कच्छपश्च शिशुमारश्च सांकुचिः
॥३००॥ मकरो घण्टिकाकारस्तदलाभे
तु गोधिका । यथालाभममीषाञ्च क्वाथं
तैलसमं पचेत् ॥ ३०१ ॥ रास्नाऽश्वग-
न्धामिसिदारुकुष्ठपर्णीचतुष्काऽगुरुकेस-
राणि । सिन्धूत्थमांसी रजनीद्वयञ्च
शैलेयकं चन्दनपुष्करञ्च ॥ ३०२ ॥
एला सयष्टी तगराब्दपत्रं भृङ्गोऽष्टवर्गस्तु
वचा पलासी । स्थौणेयवृश्चीवकचोर-
काख्यं मूर्वात्वचं कट्फलपद्मकञ्च॥३०३

मृणालजातीफलकेतकाख्यं सनागपुष्पं
सरलं मुरा च । जीवन्तिकोशीरवरास्त-
थैव दुरालभा वानरिका नखश्च ॥३०४॥
कैवर्तमुस्तार्जुनतिक्तकश्च वातामखर्जूर-
कतुम्बराश्च । सधातकीग्रन्थिकपर्पटाश्च
पटोलहेमाह्व (ज) जयन्तिकाश्च ३०५
त्रायन्तिकालम्बुषशक्रबीजं रसाञ्जनाभा
त्रिवृताऽरुणा च । द्राक्षाकणाद्रोणपुनर्न
वाश्च कौन्ती क्रिमिघ्ना हयमारकश्च
॥ ३०६ ॥ नीलोत्पलं पद्मककारवीभ्यां
रम्भाऽनलो गोक्षुरकः क्षुरश्च । कङ्को-
लकालेयकुसुम्भपुष्पं तुरुष्ककाश्मी-
रकसिक्थकश्च । लवङ्गकर्पूरसालका-
ण्डकस्तूरिकाबालकमम्बरञ्च । कल्का-
नमीषां विपचेत् सुवैद्यः पृथक्
पृथक्कर्षयुगोन्मितानाम् ॥३०७॥

दारु-देवदारु । पर्णीचतुष्कम्--शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी मुद्गपर्णी माषपर्णी । केशरः- पुन्नाग-स्तस्य पुष्पं ग्राह्यम् ; तदलाभे नागकेशरं ग्राह्यम् । शैलेयकम्-'छरीला' इति लोके । चन्दनमत्र श्वेतम् । पुष्करम्- पुष्करमूलम् । "तगरस्याप्यलाभे तु कुष्ठं दद्याद्भिषग्वरः ।" भृङ्गस्त्वक् । अष्टवर्गालाभे शतावरी· विदार्य श्वगन्धावाराहीः द्विगुणा दद्यात् । वाराही 'गेटि' इति लोके । पलासी-कर्चूरभेदः, गन्ध-पलशीति काश्मीरे प्रसिद्धा । तदलाभे चूर एव देयाः, स्थौणेयं गठिवनभेदः । ईषत्सु-गन्धि थूनेर इति लोके । वृश्चीवः श्वेतमूला पुनर्नवा । चोरकः-ग्रंथिपणस्यैव भेदः भडिउर इति नेपालदेशे प्रसिद्धः । केतकस्य मूलं पुष्पञ्च

रसालकाण्डी इति च पाठभेदः ।

दद्यात् । कैवर्तमुस्ता 'केवटी मोथा गुडतजी' इतिच लोके । तिक्तकः किरात तिक्तकः । वातामं 'बादाम' इति लोके । हेमाह्वं धत्तूरस्य फलं मूलं पत्रञ्च । जयन्तिका-जेत्रित्वक् । त्रायन्तिका अत्र लभ्यत एव न । अलम्बुषा-लज्जालूभेदः । आभा-बब्बूलः तस्य त्वक् । अरुणा-मञ्जिष्ठा । द्रोणः-(द्रोगुमारुक्) गूमा-पञ्चाङ्गः । पुनर्नवा-रक्तपुष्पा । हयमारकः-करवीरस्वस्य मूलम् । पद्मकनीलोत्पलादन्योत्पलम् । पद्मकाष्ठम्-उक्तमेव । कारवी-"मगरैला" इति लोके । रम्भायाः कन्दम् । क्षुरस्य फलानि । रसालकाण्डम् आण्डी 'जवादि सुगन्धद्रव्यम् ॥

चार आढक तिलका तेल लेकर दोषकी शांतिके लिये उनको पंचपल्लवके क्वाथसे शुद्ध करे, फिर उस तेलमें चार आढक बकरी का अथवा गायका दूध और चार आढक सतावरका रस पकावे फिर दशमूल, गिरैंटी, रायसन, सहिंजना, नीलकमल, पुनर्नवा, निर्गुण्डी, कंघी, गंगेरन, प्रसारण, असगन्ध, कटसरैया, डाभकी जड, करंजुआ, खैर, लालचन्दन, लोध, वच, विजयसार, ढाक, मौलसिरी. अंड, बरना, दो प्रकारका साल, कुटकी, सिरस, चिरचिटा, अडूसा, बालछड, जामुनकी छाल, बहेडा, कचनार, कैथ, नीम, चिरौंजी, पाषाणभेद, अमलतास, दुद्धी, अनार, गूलर, सातला, घीक्वार, चमेली, तज, पीपल, नरसलकी जड, जौ, बेर, कुलथी कौंछ, आककी जड, कपास, गिलोय, थूहर चीगा, केवडेकी जड, धतूरा, कलिहारी, वलिया, पीपलकी छाल, बकायन, पंचवल्कल, गोरखमुण्डी, टेकारी, मुसली, लाल लज्जालू और इन्द्रायन ये प्रत्येक पदार्थ दशदश पल लेकर अठगुने जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इस क्वाथमें इस तेलको पकावे । फिर बकरा, मेंढा, हिरन, एणहिरण, सांबर, खरगोश, सेई, छपकली गोय, सिंह, बाघ, रीछ, जंगली सुअर, गेंडा, भैंसा, घोडा, बन्दर, नौला विलाव, चूहा, मेंडक, बत्तक, तीतर, लवा, खञ्जन, चकोर, उल्लू, नीलकण्ठ, वनमुरगा, गीध, गरुड, हंस, चकवा, कारंडव, कबूतर, सारस, कुंडा, जंगली कबूतर, रोहू मछली, मुद्गुर मछली, शिलीन्ध्र, शृंगक, इल्लीश, गर्गरीमछली, वर्मि, क्वथ मछली, कौवा, कोयल, महामत्स्य, कछुवा शिशुमार, संकुच, मगर, घडियाल, अगर घडियाल न मिल सके तो उसके बदलेमें गोह लनी चाहिये । इनमें जितने जीवोंके मांस मिल सकें उतने ही लेने चाहिये । इनके चार आढक रसमें तेलको पकावे । फिर रास्ना, असगन्ध, सोआ, देवदारु, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, कूठ, अगर, पुन्नाग, जो पुन्नाग न मिल सके तो उसके बदलेमें नागकेशर लेनी चाहिये । सैंधानिमक, बालछड, हलदी, दारुहलदी, भूरिछरीला, चन्दन, पोहकरमूल, इलायची, मुलठी, तगर, जो तगर न मिल सके तो कूठ लेना चाहिये । नागरमोथा, तेजपात, तज, मेदा, आदि अष्टवर्ग, जो अष्टवर्ग न मिल सके तो उसके बदलेमें दोनों सतावर, विदारीकन्द, असगन्ध तथा वाराहीकन्द, वच, गन्धपलाशी काश्मीर देशमें प्रसिद्ध है. यदि गन्धपलाशी न मिले तो कचूर लेना चाहिये । थुनेर, सफेद फूलका पुनर्नवा. नेपाल देशमें होनेवाला भटेउर, मूर्वाकी छाल, तज, कायफल, पद्माख, कमलकी नाल, जायफल, केवडेकी जड़ और फूल, नागकेसर, धूपसरल, कपूरकचरी, गिलोय, सुगन्धवाला, हरड, बहेडा, आमला, धमासा, कौंछ, नख सुगन्धद्रव्य, केवटीमोथा, अर्जुन, चिरायता, बदाम छोहारे, धनियां, तुम्बुरु, धायके फूल, पीपलामूल, पित्तपापडा, परवल, धतूरेकी छाल, अरणी, त्रायमाण, अलम्बुषा-एक प्रकारकी लज्जावन्ती, इन्द्रजौ, रसोत, बबूरकी छाल, निसोत

मंजीठ, दाख, पीपल, गूँमा, लालफूलकी पुनर्नवा, निर्गुण्डीके बीज अथवा मेहँदीके बीज, वायविडंग, कनेरकी जड, नीले कमल, कमल, कालाजीरा कलौंजी, केलेका कन्द, चीता, गोखरू, तालमखाना, कंकोल, पीला चन्दन, कसूमके फूल, शिलारस, केसर, मोम, लौंग, कपूर, तालके कांड, जवादि कस्तूरी, सुगन्धवाला और अम्बर इन प्रत्येक औषधिका अलग अलग दो दो तोले कल्क बनाकर उस कल्कसे इस तेलको पकावे तो यह महानारायण नामक तैल सिद्ध होता है॥ २८७–३०७ ॥

शुभे च नक्षत्रमुहूर्तलग्ने सन्तोष्य विप्रांश्च भिषग्वरांश्च ॥ ३०८ ॥ सम्पूज्य नारायणनामधेयं देवं त्रिनेत्रं जगतामधीशम्। पात्रे तु हेम्नः खलु राजते वा ताम्रेऽथवा लोहमयेऽपि रक्षेत् ॥३०९॥ अभ्यञ्जनेऽञ्जने नस्ये निरूहे चावनाहने । पाने चैतद् यथाव्याधि प्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥ ३१० ॥ बहुनाऽत्र किमुक्तेन तैलमेतत्प्रयोजितम्। अवश्यं वातजान् व्याधीनशीतिमपि नाशयेत् ॥३११॥ एतस्याभ्यासतो जन्तोर्जरा जातु न जायते। पतन्ति वलयो नैव पलितश्च न जायते ॥ ३१२ ॥ नेत्रं तेजस्वि नितरां गरुडस्येव जायते। नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्यं कर्णनादो न जायते। पाणिकम्पः शिरःकम्पः प्रलापश्च न जायते ॥ ३१३ ॥ बुद्धिभ्रंशो न जायते तस्मात्कर्मसु पाटवम्। यथा जलेन सिक्तस्य शाखिनः पल्लवादयः ॥ ३१४ ॥ वर्द्धन्ते धातवस्तद्वद्देहिनोऽनेन नित्यशः । आमं गर्भं त्यजेद्या तु सूतिकारुग्युता च या ॥ ३१५ ॥ या च दुःप्रसवक्षीणा ताभ्य एतद्धितं परम्। बन्ध्या च लभते पुत्रं गर्भपातो न जायते ॥ ३१६ ॥ योनिरोगाः प्रणश्यन्ति प्रदरश्च प्रशाम्यति । अस्मात्तैलवरादन्यत्कुत्रचिन्नास्ति भेषजम् ॥ ३१७ ॥ बल्यं वृष्यं बृंहणञ्च रसायनमिदं महत्। पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैरभिहतान् सुरान् ॥३१८॥ भिन्नान्भग्नास्थिकान् विद्धान् पिच्चितान् व्यथयाऽर्दितान्। दृष्ट्वाहिताय देवानां नराणां चाब्रवीदिदम्। तैलं नारायणो देवो महानारायणाभिधम् ॥ ३१९ ॥

शुभ नक्षत्रमें शुभ मुहूर्तमें तथा शुभ लग्नमें वैद्य ब्राह्मणोंका और उत्तम प्राचीन वैद्योंका पूजन करके जगत्के स्वामी और तीनों गुणोंको चलानेवाले नारायण देव और त्रिनेत्र शूलपाणि शिवजीका पूजन करके सोनेके, रूपेके, तांबेके अथवा लोहेके बासनमें इस तेलको भरकर रख देवे। वैद्य व्याधिके अनुसार अभ्यंगमें, अंजनमें, नस्यमें, निरुहवस्तिमें, अवगाहनमें और पानमें इसको प्रयोग करे। विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन ? परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि, इस तेलको विधिपूर्वक व्यवहार किया जाय तो यह अस्सी प्रकारके वातरोगोंको अवश्य नष्ट कर देता है। इस तेलका अभ्यास करनेसे शरीरमें वली नहीं पडती, विना समय ही बाल सफेद नहीं हो जाते, नेत्र गरुडके समान अत्यन्त तेजयुक्त होते हैं, ऊँचेसे सुनना, बहरापन और कानमें अनेक प्रकारके शब्द होना यह कभी नहीं होता, हाथ नहीं कांपते, मस्तक नहीं कांपता, प्रलाप नहीं होता, बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती और सब काम करनेमें समर्थ होता है। जिस प्रकार जलसे सींचे हुए वृक्षके पल्लव आदि वृद्धिको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार इस तेलके सींचनेसे प्राणियोंकी धातु वृद्धिको प्राप्त होती है। जिस स्त्रीके कच्चा गर्भ गिर जाता है, सूतिका रोगवाली और जो स्त्रियां प्रसवकी

वेदनासे क्षीण होगई हैं, उनके लिये यह तेल अत्यन्त हितकारी है। इस तेलका उपयोग करनेसे वन्ध्या स्त्रियोंको भी पुत्रकी प्राप्ति होती है। गर्भपात नहीं होता योनिके समस्त रोग नष्ट होते हैं और प्रदररोग शांत होता है। इस परमोत्तम तेलसे अधिक बलवर्द्धक मैथुन शक्तिको बढानेवाली और धातुओंको पुष्ट करने वाली अन्य औषधि नहीं है। यह तैल श्रेष्ठ रसायन है। पूर्वकालमें दैत्योंके तथा देवताओंके युद्धमें दैत्योंके प्रहारसे जो देवताओंके शरीरमें चोट लगी थी, हड्डी टूट गई थी, शरीर वेधा गया था, हाडपिंजर चूर्ण होगये थे और वे पीडासे व्याकुल थे, तब श्रीनारायणदेवने देवताओंके तथा मनुष्योंके भी हितके लिये यह महानारायणतैल निर्माण किया था ॥ ३०८-३१९ ॥

इति महानारायणतैलम् ।

अथ महायोगराजगुग्गुलुः ।

नागरं पिप्पलीमूलं चव्यमूषणचित्रकम् । भृष्टं हिंग्वजमोदा च सर्षपो जीरकद्वयम् ॥ ३२० ॥ रेणुकेन्द्रयवौ पाठा विडङ्गं गजपिप्पली । कटुकाऽतिविषा भार्ङ्गी वचा मूर्वा च पत्रकम् ॥ ३२१ ॥ देवदारु कणा कुष्ठं रास्ना मुस्ता च सैन्धवम् । एला त्रिकण्टकं पथ्या धान्यकञ्च विभीतकम् । धात्री च त्वगुशीरञ्च यवक्षारीऽखिलान्यपि ॥ ३२२ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । यावन्त्येतानि चूर्णानि तावानेवात्र गुग्गुलुः ॥ ३२३ ॥ संमर्द्य सर्पिषा पश्चात्सर्वं संमिश्रयेच्च तत् । एकं पिण्डञ्च तत्कृत्वा धारयेत् घृतभाजने । गुटिकाष्टङ्कमात्रास्तु खादेत्तास्तु यथोचिताः ॥ ३२४ ॥

अत्र दोषकालाद्यपेक्षया ॥

सोंठ, पीपलमूल, चव्य, कालीमिरच, चीता, भुनी हुई हींग, अजमोद, सरसों, जीरा, कालाजीरा, रेणुका, इन्द्रजौ, पाढ, वायविडंग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, वच, मूर्वा, तेजपात, देवदारु, पीपल, कूठ, रायसन, नागरमोथा, सैंधानिमक, इलायची, गोखरू, हरड, धनिया, बहेडा, आमला, तज, खस और जवाखार इन सब पदार्थोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावे, फिर इस सब चूर्णके बराबर गूगल लेवे, सबको एकत्र मिलाकर खूब घीमें मर्दन करके एक पिंड बनावे। उस पिंडको घीके बासनमें रख देवे, फिर उसकी चौबीस चौबीस रत्तीकी गोलियां बनावे। दोष और कालानुसार विचारकर इन गोलियोंको सेवन करे ॥ ३२०-३२४ ॥

आदौ शाणोन्मितं खादेत्सार्द्धशाणं ततः परम् । तदग्रे कर्षमर्द्धं तु पूर्णकर्षं ततः परम् ॥ ३२५ ॥ गुग्गुलुर्योगराजोऽयं महामुख्यो रसायनम् । मैथुनाहारपानानां नियमो नात्र विद्यते ॥ ३२६ ॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं प्लीहगुल्मोदरान पि । आनाहं मन्दमग्निञ्च श्वासं कासमरोचकम् ॥ ३२७ ॥ प्रमेहं नाभिशूलञ्च क्रिमिक्षयमुरोग्रहम् । सर्वान्वातामयान् हन्यादामवातमपस्मृतिम् ॥ ३२८ ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं तथा दुष्टव्रणानपि । शुक्रदोषं रजोदोषमुदावर्तं भगन्दरम् ॥ ३२९ ॥

इन गोलियोंके सेवन करनेकी यह विधि है कि, प्रथम कुछेक दिनोंतक तो एक एक गोली खाय फिर डेढ डेढ गोली खाय, फिर छः छः मासे खाय, फिर एक एक तोला भर खाय, यह योगराजगूगल अत्यन्त मुख्य और रसायन है। इसके सेवन करनेमें मैथुन और अन्न-

पानका कुछ नियम नहीं है। इस गूगलको सेवन करनेसे बवासीर, संग्रहणी, प्लीहा, गुल्म, उदरके समस्तरोग, पेटका अफारा, अग्निकी मन्दता, श्वास, खाँसी, अरुचि, प्रमेह, नाभिशूल, कृमि, क्षय, छातीका जकडना, सर्व प्रकारके वातरोग, आमवात, अपस्मार, कोढ, दुष्टव्रण, वीर्यविकार, रजोदोष, उदावर्त और भगन्दर इन सब रोगोंका नाश होता है ॥ ३२५-३२९ ॥

रास्नादिक्काथसंयुक्तः सर्ववातामयात् हरेत्। काकोल्यादिशृतात्पित्तं कफमारग्वधादिना ॥ ३३० ॥ दार्वीशृतेन मेहांश्च गोमूत्रेण च पाण्डुताम्। मधुना मेदसो वृद्धिं कुष्ठं निम्बशृतेन च ॥३३१॥ छिन्नाक्काथेन वातास्रं शोथं मूलकजाच्छृतात्। पाटलाक्काथसहितो विषं मूषकसम्भवम् ॥ ३३२ ॥ त्रिफलाक्काथसंयुक्तो दारुणांनेत्रवेदनाम्। पुनर्नवादिक्काथेन हन्ति सर्वोदराण्यपि ॥ ३३३ ॥

इस गूगलको रास्नादि क्वाथके साथ पीनेसे सर्व प्रकारकी वातव्यादि शान्त होती है। इसको काकोल्यादि क्वाथके साथ पीनेसे पित्त शान्त होता है आरग्वधादि क्वाथके साथ पीनेसे कफ दूर होता है। दारुहलदीके काथके साथ पीनेसे प्रमेह नष्ट होता है। गोमूत्रके साथ पान करनेसे पांडुरोग नष्ट होता है। सहतके साथ खानेसे मेदकी वृद्धि नष्ट होती है। नीमके क्वाथके साथ पीनेसे कोढ नष्ट होता है। गिलोयके क्वाथके साथ पीनेसे वातरक्त नष्ट होता है। मूलीके क्वाथके साथ पीनेसे सूजन दूर होती है। पाढलके क्वाथके साथ पीनेसे चूहेका विष तथा त्रिफलेके क्वाथके साथ पीनेसे नेत्रकी दारुण पीड़ा शान्त होती है और पुनर्नवादिक्वाथके साथ पीनेसे सर्व प्रकारके उदररोग नष्ट होते हैं ॥ ३३०-३३३॥

रास्नादिक्वाथः।

रास्ना पुनर्नवा शुण्ठी गुडूच्येरण्डजं शृतम्। सप्तधातुगते वाते सामे सर्वाङ्गगे पिबेत् ॥ ३३४ ॥

रास्ना, पुनर्नवा, सोंठ, गिलोय और एरंड इनका क्वाथ रास्नादिक्वाथ कहा जाता है। सप्तधातुगत वायु आमसंयुक्त वायु और सर्वशरीरस्थ वातके विकारोंमें यह क्वाथ पीवे तो उपयोगी है ॥ ३३४॥

अथ रसोनकल्कः।

युक्तः कल्को रसोनस्य तिलतैलेन सिन्धुना। वातरोगान्हरेत्सर्वाञ्ज्वरांश्च विषमानपि ॥ ३३५ ॥

लहसुनका कल्क बनाकर उसमें तिलका तेल और सैंधानिमक मिलाकर भक्षण करे तो समस्त वायुसम्बन्धी रोग और विषमज्वर नष्ट होजाते हैं ॥ ३३५ ॥

अथ द्वितीयरसोनकल्कः

क्षीरेण तैलेन घृतेन वाऽपि मांसेन सार्धं लशुनानि खादेत्। शाल्योदनेनापि च षष्टिकेन पलार्द्धवृद्ध्या दिवसानि सप्त ॥ ३३६ ॥ वातोत्थरोगान्विषमज्वरांश्च शूलान् सगुल्मान् दहनस्य मान्द्यम्। प्लीहानमुग्रं भुजपार्श्वशूलं शिरोव्यथां कृन्तति शुक्रदोषान् ॥ ३३७ ॥

दूध, तेल, घी, मांस भात अथवा सांठीके चावलोंका भात इनके साथ सात दिन तक क्रमसे प्रत्येक दिन दो दो तोले बढाकर लहसुनका कल्क भक्षण करे तो वातसम्बन्धी रोग, विषमज्वर, शूल, गुल्म, अग्निकी मन्दता प्लीहाकी पीडा, हाथ और पसलियोंकी पीडा, मस्तककी व्यथा और वीर्यके समस्त दोष दूर होते हैं ॥ ३३६ ॥ ३३७॥

अथ लशुनसेवनस्य तृतीयविधिः ।

अन्नप्रकारैः पललप्रकारैर्गोधूमकैर्वा यव-सक्तुभिर्वा । दुग्धेन तैलेन घृतेन वाऽपि युक्तानि शीते लशुनानि खादेत् ॥ ३३८ ॥ संवर्तका लावकपिञ्जलैर्वा मृग्याः पलैर्वाप्यथ कौक्कुटैर्वा । वाराहवातीरकहारिणैर्वा सुसंस्कृतैरग्निबलं समीक्ष्य ॥ ३३९ ॥

अन्नके बने पदार्थोंके साथ, मांसके बन पदार्थोंके साथ गेहूँके बने पदार्थोंके साथ, जौके सत्तूके साथ, दूधके साथ, तेलके साथ, घीके साथ, संवर्तकके मांसके साथ, लवाके मांसके साथ, तीतरके मांसके साथ, हिरनीके मांसके साथ, मुरगेके मांसके साथ, सुअरके मांसके साथ बटेरके मांसके साथ, अथवा हिरनके मांसके साथ शीतकालमें अग्निका बलाबल विचारकर लहसुनको सेवन करना चाहिये । जो अन्न मांस आदि पदार्थोंके साथ लहसुन खाना हो तो उन पदार्थ आदिसे अच्छी प्रकारसे संशोधन करना चाहिये ॥ ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥

अथ रसोनाष्टकम् ।

रसोनपक्वकन्दस्य गुलिका निस्तुषी कृताः । पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरीकुर्यात्तदंकुरम् ॥ ३४० ॥ निशयुग्रगन्धनाशाय दध्ना सन्नीय रक्षयेत् । ततः प्रक्षाल्य संशोष्य शिलायां परिपेषयेत् ॥ ३४१ ॥ कल्कस्य पञ्चमं भागं चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् । सौवर्चलं यवानीञ्च भर्जितं हिङ्गु सैन्धवम् ॥ ३४२ ॥ कटुत्रिकं जीरकञ्च समभागानि चूर्णयेत् । तिलतैलञ्च कल्कस्य तुर्यांशं तत्र मिश्रयेत् ॥ ३४३ ॥ खादेत्कर्षमितं प्रातः किं वा दोषाद्यपेक्षया । अनुपानं प्रकुर्वीत वातारिशृतमन्वहम् ॥ ३४४ ॥

लहसुनकी पकी हुई गांठको छीलकर साफ करले फिर उसको चीरकर उसके बीचके अंकुरोंको निकाल डाले पश्चात् उसकी उग्र गन्धको दूर करनेके लिये उन कलियोंको रात्रिमें दहीके बीचमें गाड देवे फिर प्रातःकाल धोकर सुखावे और सिलपर पीसकर कल्क बनावे । उसमें कालानिमक, अजवायन, भुनी हींग, सैंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल और जीरा इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे । लहसुनके कल्कसे पांचवां भाग इस चूर्णको मिलावे और कल्कसे चौथाई भाग तिलका तेल मिलावे, फिर इसमेंसे प्रातःकाल एक तोलाभर खाय अथवा दोषोंका विचार करके योग्य मात्रानुसार खाय और नित्य एरंडका क्वाथ पीवे ॥ ३४० ॥ ३४४ ॥

सर्वाङ्गैकाङ्गजं वातमर्दितञ्चापतन्त्रकम् । अपस्मारं तथोन्मादमूरुस्तंभञ्च गृध्रसीम् ॥ ३४५ ॥ उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडां कृमीन् हरेत् । मद्यं मांसं तथाऽम्लञ्च रसं सेवेत नित्यशः ॥ ३४६ ॥

यह रसोनाष्टक-सर्वांगवात, एकांगवात, अर्दित (लकवा,) अपतन्त्रक, अपस्मार, उन्माद, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, छातीकी पीडा, पीठकी पीडा, कमरकी पीडा, पसलियोंका शूल तथा कोखकी पीडा और कृमिओंको नष्ट करता है । रसोनाष्टकको सेकन करनेवाला नित्य मद्यको मांसको तथा खट्टे रसको सेवन करे ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥

आयासमातपं रोषमतिनीरं गुडं स्त्रियम् । रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतान्निरन्तरम् ॥ ॥ ३४७ ॥ वर्जयेत्तदतीसारी प्रमेही पाण्डुरोगवान् । अरोचकी गर्भिणी च मूर्च्छार्शोरोगसंयुतः ॥ ३४८ ॥ रक्तपित्ती च शोषी च यक्ष्मी छर्द्यर्दितो नरः । पित्ते तु पथ्यभुक्कुर्यात् प्रयोगान्ते विरे-

चनम् ॥ ३४९ ॥ अन्यथा तस्य जायन्ते कुष्ठपाण्ड्वामयादयः । स्त्रीस्तन्ये त्वरितं दद्याद्बालानामप्यनिच्छताम् । तथा च लभते सिद्धिं महावीर्याद्रसोनतः॥३५०॥

परिश्रम धूप, क्रोध, अत्यन्त जल, गुड तथा मैथुन इनका त्याग कर देवे । अतिसार, प्रमेह, पांडुरोग, अरुचि, मूर्च्छा, बवासीर, रक्तपित्त, शोष, भयंकर क्षयरोग और वमन इनसे पीडित तथा गर्भवती स्त्रियाँ लहसुनका भक्षण त्याग देवें। पित्तकी पीडा हो तो पथ्यसे भोजन करे, इस रसोनाष्टकको सेवन करनेके पश्चात् विरेचन लेवे, जो विरेचन न लेवे तो कोढ तथा पाण्डुरोगादि उत्पन्न होते हैं। रसोनाष्टककी नहीं इच्छा करनेवाले बालकोंको भी उनकी माताके दूधमें तत्काल इस रसोनाष्टकको मिलाकर देवे। इस प्रकार करनेसे लहसुनके गुणोंकी बहुलतासे बालकोंके समस्त वातविकार शान्त होते हैं ॥ ३४७-३५० ॥

अथ वातारिरसः ।

रसो गन्धो वरा वह्निर्गुग्गुलुःक्रमवर्द्धितः । तत्रैकभागः सूतः स्याद्गन्धको द्विगुणः स्मृतः ॥ ३५१ ॥ त्रिभागा त्रिफला योज्या चतुर्भागस्तु चित्रकः । गुग्गुलुः पञ्चभागःस्याद्रुबुतैलेनः मर्दितः ॥३५२॥ क्षिप्त्वा तत्रोदितं चूर्णं तेन तैलेन मर्दयेत् । गुटिकां कर्षमात्रान्तु भक्षयेत्प्रातरेव हि ॥ ३५३ ॥ नागरैरण्डमूलानां कषायं प्रपिबेदनु । अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम् ॥ ३५४ ॥ विरेकपरिणामे तु स्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत् । वातारिसंज्ञको ह्येष रसो नियतसेवितः । मासेन मरुतो रोगान् हरेत्सुरतवर्जितः ॥ ३५५ ॥

पारा एक भाग, गंधक दो भाग, त्रिफला तीन भाग,चीता चार भाग और अरंडके तेलमें मर्दन किया हुआ गूगल पांच भाग इन सबको एकत्र मिलाकर अण्डीके तेलमें मर्दन करे इसमेंसे प्रतिदिन एक एक तोलेकी गोली बनाकर भक्षण करे और गोली खानेके पश्चात् सोंठ और अरंडकी जडके क्वाथका अनुपान करे। फिर अण्डीके तेलको पीठपर मलकर सेंकदेवें। कदाचित् रेचन लगे तो स्निग्ध और गरम अन्न भोजन करे । यह 'वातारिनामक' रस नियमपूर्वक सेवन किया जाय और मैथुनका त्याग कर देवें तो एक महीनेमें वातसम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं। इति वातारिरस ॥ ३५१-३५५ ॥

इति वातव्याध्यधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ ऊरुस्तम्भाधिकारः ।

तत्रोरुस्तम्भस्य विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणानि ।

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ! जीर्णाजीर्णे तथाऽऽयाससंक्षोभस्वप्नजागरैः ॥ १ ॥ सश्लेष्ममेदाः पवनः साममत्यर्थसञ्चितम् । अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत् प्रतिपद्यते ॥२॥ सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन सः । तथा स्तभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥३॥परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ । ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः ॥ ४ ॥ संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः । तमूरुस्तम्भमित्याहुरामवातमथापरे ॥ ५ ॥

जीर्णाजीर्णे-किंचित् जीर्णे किञ्चित् अजीर्णे॥ शीतादिभिः निषेवितैः भुक्तैः । संक्षोभेण संचलनेन । दिवास्वप्नेन-रात्रौ जागरणेन । अभि-

भूय दूषयित्वा । इतरं दोषं खफं पित्तञ्च । स्तिमितेन--आर्द्रेण, वृतेनेति यावन्नतु घनेन । स पवनः तदा ऊरू स्तभ्नाति, तेन स्तम्भेन अचेतनौ--शुन्यौ । परकी याविव अक्रियावित्यर्थः । ध्यानम्--मूढता । पादसम्बन्धिनीभिः सदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिश्च संयुक्तौ । अयं सुश्रुतेतेन महावातव्याधिषु पठितः ॥

कुछ जीर्ण और कुछ अजीर्ण हो ऐसी अवस्थामें शीतल, गरम, पतले, सूखे, भारी और चिकने ऐसे भोजन करनेसे, परिश्रम करनेसे, शरीरको संचलन करनेसे, दिनमें सोनेसे और रात्रिमें जागनेसे कफ तथा मेदसहित वायु आमसंयुक्त तथा अत्यन्त संचित हुये कफको तथा पित्तको दूषित करके सांथलोंमें प्राप्त होती हैं और सांथलोंमें प्राप्त होकर लिपटे हुए कफसे सांथलकी हड्डियोंमें मिलकर स्तब्ध कर देती है कि, जिससे सांथल अकडजाती हैं। सुन्न हो जाती हैं, अत्यन्त भारी और जैसे कि, दूसरोंकी हों ऐसी जान पडती हैं। इस रोगमें मूढता, अंगोंका टूटना, तन्द्रा, वमन, अरुचि, ज्वर, पांवकी ग्लानि, पांवोंकी मंदता और जडता ये सब लक्षण होते हैं। यह रोग 'ऊरुस्तम्भ' कहाजाता है कितने वैद्य इसको आढ्यवात कहते हैं। सुश्रुतने इनको महावातव्याधियोंमें कहा है ॥ १ ॥ ५ ॥

अथोरुस्तम्भपूर्वरूपम् ।

प्राग्रूपं तस्य निद्राऽतिध्यानं स्तिमितता ज्वरः । रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जङ्घोर्वोः सदनं तथा ॥ ६ ॥

जब ऊरुस्तम्भ होनेको होता है तो निद्रा, अत्यन्त ध्यान, क्रियारहितपना, ज्वर रोमाञ्चोंका हो आना, अरुचि, वमन और पिण्डलियोंमें तथा सांथलोंमें पीडा उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥

अथोरुस्तम्भरूपम् ।

वातशङ्किभिरज्ञानात्तत्र स्यात्स्नेहनात्पुनः । पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा । जङ्घोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वद्दाऽदाहवेदना ॥ ७ ॥ पादं च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च । संस्थाने पीडने गत्यां चालने चाप्यनीश्वरः । अन्यनेयौ-रहि संभग्नावूरू पादौ च मन्यते ॥ ८ ॥

ज्ञानात्--अनिश्चयात् । स्तम्भसुप्तिकर्मरहितपाद-दशनन वातशङ्किभिः वातव्याधिशङ्किभिः । तत्र ऊरुस्तम्भे । स्नेहनात्--स्नेहदानात् । स्नेहादिना स्नेहन्या चिकित्साया । पादसदनादयः ऊरुभग्नौपमत्वात् ते विकाराः स्युः जंघोर्वोर्गमनादौ अशक्तिः । अदाहवेदना-ईषद्दाहेन सह वेदना । अन्यनेयौ--अन्यचाल्यौ भवतः ॥

पांवोंका सोना, पांवोंकी जडता और क्रियाओंसे रहित होना इत्यादि लक्षणोंके मिलनेसे मनुष्योंको वातरोगका भ्रम होता है। उस भ्रमसे वह वातरोगोंके समान तैलादिकका मलना आदि स्नेहन चिकित्सा करता है तो उसको दूनी पीडा होजाती है। पांवोंमें पीडा, जड़ता और सुन्नता हो, पैरोंको उठाते धरते समय अत्यन्त वेदना हो, पैरोंकी पिण्डली और सांथलोंमें अत्यन्त ग्लानि, चलनेमें असमर्थता, कुछ २ दाहयुक्त पीडा यह सब अधिकतासे होती है। जब यह रोग होता है तो पैरोंको उठाते चलाते समय विशेष पीडा होती है, शीतल पदार्थोंका स्पर्श मालूम नहीं होता और बैठनेमें, दबानेमें, चलानेमें एवं हलानेमें असमर्थ होता है और वह मनुष्य अपनी सांथलोंको तथा पाँवोंको टूटासा जानता है और उसके पाँव दूसरोंके उठानेसे उठते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथोरुस्तम्भारिष्टम् ।

यदा दाहार्तितोदार्तो वेपनः पुरुषो भवेत् । ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥ ९ ॥ अन्यथा-दाहाद्युपद्रवरहितं, तमपि नवम्- उत्पन्न मात्रं साधयेत् ॥

जो ऊरुस्तम्भमें दाह, व्यथा, हुई चुभानेसरीखी पीडा हो और रोगी कांपने लगे तो उस मनुष्यको वह ऊरुस्तम्भ मार देता है और जो दाहादिक उपद्रव नहीं हों तथा ऊरुस्तम्भ तत्कालका उत्पन्न हुआ हो तो साध्य है ॥ ९ ॥

अथोरुस्तम्भचिकित्सा ।

स्नेहासृक्स्राववमनं वस्तिकर्म विरेचनम् । वर्जयेदामवाते तु यतस्तैस्तस्य कोपनम् ॥ १० ॥ तस्मादत्र सदा कार्यं स्वेदलङ्घनरूक्षणम् । आममेदःकफाधिक्यान्मारुतं परिरक्षता ॥ ११ ॥ यत्स्यात्कफप्रशमनं न तु मारुतकोपनम् । तत्सर्वं सर्वदा कार्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् । सर्वो रूक्षः क्रमः कार्यस्तत्रादौ कफनाशनः ॥ १२ ॥ पश्चाद्वातविनाशाय विधातव्याऽखिला क्रिया । भोज्याः पुराणाः श्यामाककोद्रवोद्दालशालयः ॥ १३ ॥ जाङ्गलैरघृतैर्मांसैः शाकैश्चालवणैर्हितैः । शाकैरलवणैर्द्द्याज्जलतैलाज्यसाधितैः ॥ १४ ॥ सुनिषण्णकनिम्बार्कवृन्तारग्वधपल्लवैः । वायसीवास्तुकाद्यैश्च साधितैः शालमूलकैः ॥ १५ ॥ शाकैरलवणैर्युक्तं जीर्णे शाल्योदनं भिषक् । रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्तिपूर्वकः ॥ १६ ॥ स्नेहस्वेदक्रमस्तत्र कार्यो वातामयापहः । प्रतारयेत्प्रतिस्रोतो नदीं शीतजलां शिवाम् ॥ १७ ॥ सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुनः पुनः ॥ १८ ॥

ऊरुस्तंभमें स्नेहन, रुधिरका निकलवाना वमनक्रिया, वस्तिकर्म और विरेचन इनको त्यागदेवे, क्योंकि इन स्नेहादिक कर्मोंसे ऊरुस्तंभका उलटा प्रकोप होता है, इस कारण ऊरुस्तंभमें सदैव स्वेदन, लंघन तथा रूक्ष क्रिया करनी चाहिये । इस रोगमें वायुका बचाव करके आम, मेद और कफ अधिक होनेसे जो जो औषधि कफको शान्त करनेवाली और वायुको कुपित नहीं करनेवाली है, उनको सदैव इसमें सेवन करे । इस ऊरुस्तंभरोगमें सकल रूक्षक्रिया करनी चाहिये । उसमें भी प्रथम कफको नष्ट करनेवाली क्रिया प्रयुक्त करनी चाहिये और फिर वातनाशक क्रिया प्रयुक्त करे । घृतरहित जंगल प्रदेशके प्राणियोंके मांसके साथ और लवणरहित हितकारक शाकोंके साथ पुराना सामा, पुराने कोदों पुराने वनकोदों और पुराने चावल इनका भोजन करे । शिरीआरी, नीमके पत्ते, आककी शाखा अमलतासके पत्ते, मकोय, बथुआ और मूली इत्यादि जलमें बनाये हुए, तेलमें और घीमें पकाये हुए निमकरहित शाख खाने चाहिये । खाया हुआ भोजन जीर्ण होनेके पश्चात् वैद्य उसको निमकरहित शाकोंके साथ लाल शालिचावलोंका भात भक्षण करावे । जो रूक्ष क्रिया करनेसे निद्राका नाश तथा पीडासहित वायुका प्रकोप हो तो वायुकी वेदनाको हरनेवाली स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करे । रोगीको शीतलजलवाली सुन्दर नदीमें उसके वाहके साथ चलावे अर्थात् तैरावे और निर्मल तथा शीतल और स्थिर जलवाले तालावमें वारंबार तैरावे १०-१८ ॥

शरीरबलमग्निश्च कार्यैषा रक्षता क्रिया । यथा विशुष्केऽस्य कफे शान्तिमूरुग्रहे

व्रजेत् । सक्षारमूत्रस्वेदांश्च रूक्षाण्युत्सादनानि च ॥१९॥ कुर्याद्दाहे च मूत्राद्यैः करञ्जफलसर्षपैः । मूलैर्वाप्यश्वगन्धाया मूलैरर्कस्य वा भिषक् ॥ २० ॥ पिचुमन्दस्य वा मूलैरथवा देवदारुणः । क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतैर्भिषक् ॥ २१ ॥ गाढमुत्सादनं कुर्यादूरुस्तंभे सवेदने । दन्तीद्रवन्तीसुरसासर्षपैश्चापि बुद्धिमान् ॥ २२ ॥ तर्कारीसुरसाशिग्रुवचावत्सकनिम्बकैः । पत्रमूलफलैस्तोयं शृतमुष्णञ्च सेवयेत् ॥ २३ ॥

शरीरके वलका और अग्निका बचाव करके जिस प्रकार कफ सूखकर ऊरुस्तंभ शांत हो, उसीप्रकार चिकित्सा करनी चाहिये। क्षार तथा मूत्र संयुक्त पदार्थोंसे स्वेदन करे और रूक्षपदार्थोंसे सांथलोंको मले। दाह हो तो मूत्रादिकसे अथवा करंजवेके फलोंसे संयुक्त सरसोंसे अथवा असगन्धके चूर्णसे अथवा आककी जडके चूर्णसे अथवा नीमकी जडके चूर्णसे अथवा देवदारुके चूर्णसे साथलोंको खूब मले। वेदनायुक्त ऊरुस्तंभमें उपरोक्त पदार्थोंको सहत, सरसों और बाँबीकी मट्टी इनसे सांथलोंको खूब दृढ रीतिसे मर्दन करे ऊरुस्तम्भकी पीडामें बुद्धिमान् वैद्य दन्ती जमालगोटेकी जड, छोटी दन्ती, काली तुलसी और सरसों इनसे भी सांथलोंको खूब मर्दन करे। अरणी, काली तुलसी सहिंजना वच, कुडा और नीम इसके पत्तोंका, जडका तथा फलोंका क्काथ बनाकर उस क्काथको गरम २ सेवन करे ॥ १९-२३ ॥

भल्लातकाऽमृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः। पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भानिबर्हणाः ॥ २४ ॥

भिलावे गिलोय, सोंठ, देवदारु, हरड, पुनर्नवा और दशमूल इनको सेवन करनेसे ऊरुस्तंभरोग नष्ट होता है ॥ २४ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च । कल्कं मधुयुतं पीत्वा ऊरुस्तम्भाद्विमुच्यते ॥ २५ ॥

पीपल, पीपलामूल और भिलावे इनका कल्क बनाकर सहतमिलाकर सेवन करनेसे ऊरुस्तंभरोग नष्ट होता है ॥ २५ ॥

रास्नाश्यामाकपथ्यामरिचमिसिशिवावल्लशटचश्वगन्धायासच्छिन्नाजमोदासुमुषमतिविषावृद्धदारौ बृहत्यौ ॥२६॥ शुण्ठी तिक्ता यवानी सहचरचविकैरण्डदार्व्याजकर्ण्य ऊरुस्तम्भामवातं कफपवनरुजं दण्डकांश्चाशु हन्यात् ॥ २७ ॥

रायसन, समा, हरड, कालीमिरच, सोया, हलदी, वायविडंग, कचूर, असगन्ध जवासा, गिलोय, अजमोद, बनतुलसी अतीस, विधारा, कटेरी, कटाई, सोंठ, कुटकी, अजवायन, कटसरैया, चव्य, अरण्ड, दारुहलदी, और राल इनका क्वाथ-ऊरुस्तंभ, आमवात, कफके रोग, वातके रोग और दंडकाक्षेपको तत्काल नष्ट कर देता है। इसको रास्नादि क्वाथ कहते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

ग्रन्थिकारुष्ककृष्णानां क्काथं क्षौद्रान्वितं पिबेत् । लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ॥ २८ ॥

पीपलामूल, भिलावे और पीपल इनका क्वाथ बनाकर सहत मिलाकर पीनेसे ऊरुस्तंभ नष्ट होता है। त्रिफलेका तथा कुटकीका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे ऊरुस्तंभ नष्ट होता है ॥ २८ ॥

सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नरः पिप्पलीवर्द्धमानं वा माक्षिकेण गुडेन वा ॥ २९ ॥

षड्धरणचूर्ण जो कि वातव्याधिमें कहा है, उसको सुखोष्ण जलके साथ पीनेसे ऊरुस्तंभ-

रोग नष्ट होता है। सहतके साथ अथवा गुडके साथ वर्द्धमानपीपलका सेवन करे तो ऊरुस्तंभरोग नष्ट होता है॥ २९॥

ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव च। शिलाज्जतुं गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ नागरम्। ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा॥ ३०॥

ऊरुस्तंभरोगमें कडवे सूरणका आसव भी सेवन करना लिखा है। मूत्रके साथ अथवा दशमूलके रसके साथ शिलाजीत, गूगल, पीपल और सोंठको पीनेसे ऊरुस्तंभकी पीडा दूर होजाती है॥ ३०॥

त्रिफला पिप्पली मुस्तं चव्यं कटुकरोहिणी॥ ३१॥ लिह्याद्वा मधुना चूर्णमूरुस्तम्भार्दितो नरः। घृतं सौरेश्वरं दद्यादूरुस्तम्भे कफोत्तरे॥ ३२॥ दद्याच्छुण्ठीघृतं वाऽपि वैश्वानरमथापि वा। सैन्धवाद्यं हितं तैलममृताख्यो हि गुग्गुलुः॥ ३३॥

त्रिफला, पीपल, नागरमोथा, चव्य और कुटकी इन सबका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे ऊरुस्तंभकी पीडा शान्त होती है। उरुस्तम्भमें कफकी अधिकता हो तो सौरेश्वरघृत अथवा वैश्वानर चूर्ण अथवा शुंठी घृत व सैंधवाद्यतैल अथवा अमृतागुग्गुल देना हितकारी है॥ ३१–३३॥

अथ कुष्ठाद्यतैलम्।

कुष्ठश्रीवेष्टकोदीच्यसरलं दारु केशरम्। अजगन्धाश्वगन्धे च तैलं तैः सार्षपं पचेत्। सक्षौद्रं मात्रया तस्मादूरुस्तम्भार्दितः पिबेत्॥ ३४॥

कूठ, लोबान, सुगन्धवाला, सरल धूप, देवदारु, नागकेशर, वनतुलसी और असगन्ध इनके कल्कसे पकाया हुआ सरसोंका तेल सहतके साथ यथामात्रानुसार पियाजाय तो ऊरुस्तम्भ नष्ट होजाता है॥ ३४॥

अथाष्टकट्वरतैलम्।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलान्नागरादष्ट कट्वरम्। तैलप्रस्थं समं दध्ना गृध्रस्यूरुग्रहापहम्॥ ३५॥ सघृतं सस्नेहदाध तक्रं कट्वरमुच्यते। अष्टकट्वरतैलं च तैलं सार्षपमिष्यते। पिप्पलीमूलशुण्ठयाश्च प्रत्येकं द्विपलं कृतम्॥ ३६॥

पीपलामूल ८ तोले, सोंठ ८ तोले, मलाई युक्त दहीसे बनाई हुई खट्टी छांछ ५४ तोले और दही ६४ तोले सरसोंका तेल ६४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे। इसको 'अष्टकट्वर' तेल कहते हैं। इस तेलका उपयोग करनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर हो जाता है॥ ३५–३६॥

अथ द्विपञ्चमूलाद्यतैलम्।

द्विपञ्चमूली त्रिफला चित्रकं देवदारु च। एकाष्ठीला त्वपामार्गं श्रेयसी वायसी शुभा॥ ३७॥ बला भार्ङ्गी पृथक्पर्णी सुवहा मदयन्तिका। विशालोशीरका-श्मर्यस्तिस्रो देयास्तथाऽग्निकः॥ ३८॥ चिरबिल्वो ह्यशोकश्च कलश्यंशुमती तथा। पयस्या पीलुपर्ण्यश्च गुडूची च शतावरी॥ ३९॥ एषां पञ्च पलान् भागाञ्जलद्रोणेषु सप्तसु। अष्टभागावशेषेण पचेत्तैलाढकं ततः॥४०॥ कुष्ठञ्च शतपुष्पा च त्र्यूषणं चित्रकं वरा। देवदार्वगुरु श्रेष्ठं विडङ्गं मुस्तमेव च॥ ॥ ४१॥ अश्वगन्धा स्थिरा पाठा मूली श्यामाकमेव च। पिप्पल्यः शृंगवेरञ्च दन्ती हिङ्ग्वम्लवेतसम्॥ ४२॥ अनेन गर्भेण भिषक्कषायेण च साधयेत्। सिद्धशीतञ्च पूतञ्च क्षौद्रेण सह संसृजेत्॥

॥ ४३ ॥ तदस्य नस्यपानार्थं तदेवाभ्यञ्जने भवेत् । ऊरुस्तम्भश्चिरोद्भूतस्तैलेनानेन शाम्यति । आमवातं शीतवातं क्षुद्रवातश्च नाशयेत् ॥ ४४ ॥

दशमूल, त्रिफला, चीता, देवदारु, बडी मौलसरी' चिरचिटा, गजपीपल, कोआठोडी, मकोय, खिरैंटी, भारङ्गी, पृश्निपर्णी, निर्गुण्डी, मोनिया, इन्द्रायन, खस, कुंभेर, लालचीता, करंज, अशोकके पत्र, शालपर्णी क्षीरकाकोलीकी प्रतिनिधि, मूर्वा, गिलोय और सतावर ये प्रत्येक औषधि बीस बीस तोले सात द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उस क्वाथमें एक आढक परिमाण तेल पकावे। फिर इस तेलको कूठ; सोया, सोंठ, दुगुनी मिरच, पीपल, चीता, त्रिफला, देवदारु, उत्तम अगर, वायविडंग, नागरमोथा, असगन्ध, पृष्टिपर्णी, पाढ, मूली, समा, अदरख, दन्ती, हींग और अमलवेत इनके क्वाथसे, तथा कल्कसे पकावे, जब पककर स्वयं शीतल होजाय तब कपडेमें छान लेवे। फिर उसमें सहत मिलाकर व्यवहार करे। इस तेलसे नस्य, पान और मालिश करे तो बहुत दिनोंका ऊरुस्तंभ नष्ट हो जाता। यह तेल आमवात क्षुद्रवात और शीतवातको भी दूर करता है ॥ ३७–४४ ॥

अथ महासैन्धवाद्यतैलम् ।

सिन्धुरुग्विश्वजासोग्राभार्ङ्गीयष्टीस्थिराफलैः । दारुविश्वशटीधान्यकृष्णाकट्फलपौष्करैः ॥ ४५ ॥ दीप्यकातिविषैरण्डनीलीनीलाम्बुजैः पचेत् । तैलं सकाञ्जिकं हन्तिपानाभ्यञ्जननावनैः ॥ ॥ ४६ ॥ आमवातं कृमीन् गुल्मान् प्लीहोदरशिरोरुजःमन्दाग्नि पक्षसन्ध्यण्डवातस्तम्भगदानपि ॥ ४७ ॥

सैंधानिमका कूठ, छोटी सतावर, वच, भारंगी, मुलहठी, पृश्निपर्णी, जायफल, देवदारु, सोंठ, कचूर, धनियां, पीपल, कायफल, पोहकरमूल, अजवायन, अतीस, एरंड, नील और नीलकमल इनके द्वारा पकाया हुआ तेल काँजी मिलाकर पान अभ्यंग तथा नस्यमें प्रयोग करे तो आमवात, कृमि, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, मस्तककी पीडा, मंदाग्नि, पक्षावात, संधिवात अण्डकोषकी पीडा और वातस्तंभ रोग होता है ॥ ४५–४७ ॥

अथ सैन्धवाद्यतैलम् ।

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात् । द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि विंशतिर्द्वे तथाऽऽढके ॥ ४८ ॥ आरनालात् पञ्चप्रस्थं तैलस्यैरण्डजस्य च । गृध्रस्यूरुहास्यार्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ ४९ ॥

इति ऊरुस्तम्भनिदानचिकित्साधिकारः ।

सैंधानिमक दो पल, सोंठ पांच पल, चीता दो पल, पीपलामूल दो पल, भिलावेकी गुठली बीस पल और आरनाल काँजी दो आढक इनसे पांच प्रस्थ अंडीके तेलको पकावे तो 'सैन्धवाद्यतैल' सिद्ध होता है। यह तेल-गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ, मुखकी पीडा और सर्व प्रकारके वायुसम्बन्धी विकारोंको नष्ट करता है ॥

इति ऊरुस्तम्भाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथामवाताधिकारः ।

तत्रामवातनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्लोलुपस्य च ॥ १ ॥ स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा । वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति ॥ २ ॥ तेनात्यर्थमपक्वोऽसौ धमनीभिः प्रपद्यते । वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः

॥३॥ स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः। जनयत्यग्निदौर्बल्यं हृदयस्य च गौरवम् ॥ ४ ॥ व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः ॥ ५ ॥

विरुद्धाहारचेष्टस्य–विरुद्धाहारः क्षीरमत्स्यादिः। विरुद्धचेष्टा-भुक्तव्यामामादिः ताभ्यां युक्तस्य। निश्चलस्य निर्व्यायामपरस्य। स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वत इति मिलितो हेतुः। श्लेष्मस्थानम्-आमाशयसन्ध्यादि, तेन श्लेष्मस्थानगमनेन अत्यन्तम् अपक्वः पित्तस्थानगमनेन पक्वो भविष्यति इति अभिप्रायः। असौ आमः धमनीभिः प्रपद्यते, धमनीमार्गं चलति। भूयो दूषितः--अतिशयेन दूषितः। सोऽन्नजो रसः आमः स्रोतांसि अभिष्यन्दयति-संश्रित्य रसवहशिरावरोधं कृत्वा स्रोतांसि गुरूणि कुर्यात्। नानावर्णः वातादिजनितवर्णभेदात् नानावर्णः ॥

दूध, मछली आदि विरुद्ध आहार, विरुद्ध चेष्टाकरनेवाले वा कसरत नहीं करनेवाले मन्द अग्निवाले भोजनमें लंपट और स्निग्ध अन्न खाकर कसरत करनेवाले मनुष्यके वायुसे प्रेरित हुआ आमरस कफके आमाशय और संधि आदि स्थानोंमें दौडकर पहुँच जाता है। आम जो पित्तके स्थानोंमें जाय तो पक्व जाता है, किन्तु ऊपरकहे अनुसार कफके स्थानमें प्राप्त होनेके कारण अत्यन्त अपक्व रहा यह आम धमनियोंके मार्गसे चलता है। इस प्रकार संचलन करता हुआ यह आम फिर वातसे, पित्तसे तथा कफसे अत्यन्त दूषित होकर स्रोतों में रहनेवाले रसको वहन करनेवाली शिराओंको रोककर स्रोतोंको भारी कर देता है। वातादिदोषोंसे अनेक प्रकारके वर्णवाला और अत्यन्त चिकना पिच्छिल यह आम अग्निको दुर्बल कर देता है और हृदयमें भारीपनको करता है। यह महादारुण आम व्याधियोंका आश्रयरूप है ॥ १–५ ॥

अथामस्वरूपम्।

अजीर्णाद्यौ रसो जातः सञ्चितो हि क्रमेण वै। आमसंज्ञां स लभते शिरोगात्ररुजाकरः ॥ ६ ॥

अजीर्णात्-भुक्तादजीर्णात् ॥

भोजन किये हुए अन्नके नहीं पकनेसे जो अन्नका अपक्व रस उत्पन्न होता है, वह क्रम क्रमसे जब एकत्रित होजाता है तब वह आम कहा जाता है और वह आम मस्तकमें तथा गात्रमें वेदना करता है ॥ ६ ॥

अथामवातसामान्यलक्षणम्।

युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ। स्तब्धश्च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥ ७ ॥

एतौ-वातकफौ। त्रिकसन्धिप्रवेशकौ वेदनयेति बोद्धव्यम् ॥

एकही समय कुपित हुए वात और आम ये दोनों त्रिकस्थानकी संधियोंमें पीडा करते हुए प्रवेश करके गात्रको जकड देते हैं। तब यह रोग 'आमवात' कहा जाता है ॥ ७ ॥

अथ तन्त्रान्तरोक्तामवातलक्षणम्।

अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा चालस्यं गौरवं ज्वरः। अपाकः शून्यताऽङ्गानामामवातस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥ विशेषार्थमस्य संग्रहः ॥

अंगोंका टूटना, अरुचि, तृषा, आलस्य, भारीपन, ज्वर, अन्नका नहीं पकना और अंगोंकी शून्यता ये आमवातके लक्षण हैं॥ आमवातमें विशेष जाननेके लिये अन्यग्रन्थोंमें कहे हुए ये लक्षण हमने इस स्थलमें लिखे हैं ॥

अथ वाताधिक्यामवातलक्षणम्।

स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत्। हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसन्धिषु ॥ ९ ॥ करोति सरुजं शोथं

यत्र दोषः प्रपद्यते । स देशो रुज्यतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥ १० ॥ जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचि गौरवम् । उत्साहहानिर्वैरस्यं दाहश्च बहुमूत्रताम् ॥ ११ ॥ कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम् । तृट्छर्दिभ्रमयमूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विड्विबद्धताम् । जाड्यान्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ १२ ॥

यदा प्रकुपितो भवेत्यकर्षेण कुपितः स्यात्तदा वक्ष्यमाणानुपद्रवान्करोति । हस्तेत्यादि–यत्र दोषः दुष्टः आमः प्रपद्यते गच्छति । तानाह-जाड्यम् अकर्मण्यत्वम् । अन्यानुपद्रवान्-कलायखञ्जत्वादीन् ॥

सम्पूर्ण रोगोंमें अत्यन्त कष्टजनक जब यह आमवात अधिक कुपित होता है, तब हाथ, पांव, मस्तक, गुल्फ, त्रिक, घुटने, सांथल और घुटनोंके जोड, इनमें पीडायुक्त सूजन उत्पन्न करता है। दुष्ट हुआ यह आम जिस प्रदेशमें जाता है, उसी शरीरके प्रदेशमें बीछूके काटे हुएके समान घोर पीडा करता है। आमवातसे जठराग्नि निर्वल हो जाती है, मुखमें थूक आने लगता है, अरुचि होती है शरीरमें भारीपन, उत्साहका नाश, विरसता, दाह, मूत्रकी बहुलता, पेटमें कठिनता, शूल, निद्राका नाश, तृषा, वमन, मूर्च्छा हृदयमें जडता, मलका अवरोध, जडता, आंतोंका कूँजना, अफारा और दूसरे कलायखञ्जादिक भी दुःख दायक उपद्रव होते हैं ॥ ९-१२ ॥

अथामवातविशेषलक्षणम् ।

पित्तात्सदाहरागश्च सशूलं पवनात्मकम् । स्तिमितं गुरुकण्डूकं कफजुष्टं तमादिशेत् ॥ १३ ॥

गुरुकण्डूकम्-बहुकंडूकम् ।

दाह तथा लाली हो तो आमवातको पित्तका जानना, जो शूल चले तो वायुका आमवात जानना, और खुजली बहुत चलती हो तथा जडता हो तो कफका आमवात जानना ॥१३॥

अथामवातसाध्यासाध्यता ।

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते । सर्वदेहचरैः शोथैः स कष्टः सान्निपातिकः ॥ १४ ॥

जो आमवात एक दोषका हो तो साध्य जानना, जो दो दोषोंका हो तो याप्य जानना और जो तीनों दोषोंका हो तथा सम्पूर्ण शरीर में सूजन हो तो असाध्य जानना ॥१४॥

अथामवातचिकित्सा ।

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च । विरेचनं स्नेहनश्च वस्तयश्चाममारुते ॥ १५ ॥

आमवातमें प्रथम लंघन करना, सेक करना तिक्त पदार्थ, अग्निको दीप्त करनेवाले पदार्थ और तीक्ष्ण पदार्थ सेवन करे, विरेचन देवे, स्नेहन कर्म करे और पिचकारी लगानी यह सब उपचार करे ॥ १५ ॥

रूक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा । उपनाहाश्च कर्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिताः ॥ १६ ॥

रेतीकी पोटली बनाकर उसका रूक्ष सेंक करे और स्नेहरहित उपनाह स्वेद देवे ॥१६॥

आमवाताभिभूताय पीडिताय पिपासया । पञ्चकोलेन संसिद्धं पानीयं हितमुच्यते ॥ १७ ॥

आमवातसे दुःखित मनुष्य तृषासे पीडित हो तो उसको पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनसे पकाया हुआ जल देना उत्तम है ॥ १७ ॥

शुष्कमूलकयूषं वा यूषं वा पाञ्चमौलिकम् । सकं काञ्जिकं वापि शुण्ठीचूर्णावचूर्णितम् ॥ १८ ॥

आमवातवाले मनुष्यको सूखी मूलीका यूष अथवा पञ्चमूलका यूष अथवा जिसमें सोंठका चूर्ण मिला हो, ऐसी कांजीको देवे ॥ १८ ॥

सौवीरस्विन्नवार्ताकं तथा तिक्तफलानि च । वास्तूकशाकं सारिष्टशाकं पौनर्नवं हितम् ॥ १९ ॥ पटोलं गोक्षुरं चैव वरुणं कारवेल्लकम् । यवान्नं कोरदूषान्नं पुराणं शालिषष्टिकम् ॥ २० ॥ लावकानां तथा मांसं हितं तक्रेण संस्कृतम् । हितश्च यूषः कौलत्थः कलायश्चणकस्य च ॥ २१ ॥

सौवीर नामक कांजीमें बैंगनको उबालकर अथवा कडवे फलोंको उबालकर सेवन करे । बथुवेका शाक नीमके पत्तोंका शाक, पुनर्नवेका शाक, परवलों, गोखरुओंका शाक, बरना, करेला, जौ, कोदों, पुराने शालिधान और साठी धान, तक्रमें संशोधन किया हुआ लवाका मांस, कुलथीका यूष, मटर और चने-ये सब आमवातमें हितकारी हैं ॥१९-२१॥

रुच्यं दद्याद्यथासात्म्यमामवातहितश्च यत् । शतपुष्पा वचा विश्वश्वदंष्ट्रावरुणत्वचः ॥ २२ ॥ पुनर्नवा सदेवाह्वाशटीमुण्डितकाः समाः । प्रसारणी च तर्कारीफलश्च मदनस्य च । शुक्तकाञ्चिकपिष्टा च कोष्णा चालेपने हिता ॥२३॥

आमवात रोगीकी प्रकृतिके अनुसार जो उसको रुचे और आमवातमें हितकारी हो, वही उसको देवे । सोया, वच, सोंठ, गोखरु, बरनाकी छाल, पुनर्नवा, देवदारु, कचूर और गोरखमुण्डी, प्रसारिणी, अरणी, मैनफल इनको सिरकेकी कांजीमें पीसकर सुखोष्ण लेप करे तो आमवातमें अत्यन्त हितकारी है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अहिंस्रा केबुकान्मूलं शिग्रुर्वल्मीकमृत्तिका । मूत्रपिष्टैश्च कर्तव्यमुपनाहः प्रलेपनम् ॥ २४ ॥

हींस अरण्डको जड, सहिंजना और बांबीकी मट्टी इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर पीडाके स्थानमें बांधनेसे अथवा लेप करनेसे आमवातरोग शान्त होता है ॥ २४ ॥

चित्रकं कटुका पाठा कलिङ्गातिविषामृताः । ॥ २५ ॥ देवदारुवचामुस्तनागरातिविषाभयाः । पिबेदुष्णाम्बुना नित्यमामवातस्य भेषजम् ॥ २६॥

चीता, कुटकी, पाढ़, इन्द्रजौ, अतीस, गिलोय, देवदारु, वच, नागरमोथा, सोंठ, अतीस और हरड इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ नित्य पीवे तो आमवात नष्ट होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

शटीशुण्ठ्यभयाश्चोग्रा देवाह्वातिविषाऽमृताः । कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् ॥ २७ ॥

कचूर, सोंठ, हरड, वच, देवदारु, अतीस और गिलोय इनका क्वाथ पिये और रूक्ष भोजन करे तो आमवात शान्त होता है ॥२७॥

पुनर्नवा च बृहतीवर्द्धमानफणिज्जकैः । कल्पयेत्काथमामे तु मूर्वाशिग्रुद्रुमैर्भिषक् ॥ २८ ॥

पुनर्नवा, कटाई, एरण्ड, मरुआ, मूर्वा, और सहिंजनेका पंचांग इनका क्वाथ बनाकर वैद्य आमवात रोगीको पिलावे ॥ २८ ॥

सेचनं चामवातस्य रुबूकपयसाऽपि वा । लिह्यात् पथ्यां सविश्वां वा मूत्रैर्वा गुग्गुलुं पिबेत् ॥ २९ ॥ विश्वालम्बुषयोः

कल्क मद्याद्वा तिलविश्वयोः। विश्वपथ्यामृताक्काथं कवोष्णं कौशिकान्वितम्। कटीजङ्घोरुपृष्ठानां रुजं पीतं निवर्तयेत् ॥ ३० ॥

आमवातरोगपर एरंडके पानीका सेचन करे अथवा सोंठके साथ हरडको खाय अथवा मूत्र के साथ गूगलको खाय अथवा सोंठ तथा गोरखमुंडीका कल्क खाय अथवा तिलका तथा सोंठका कल्क खाय अथवा सोंठ हरड तथा गिलोय इनका क्वाथ बनाकर उसमें गूगल डालकर कुछेक गरम करके पीवे तो कमर, सांथल तथा पीठकी पीडा शान्त हो जाती है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ हिंग्वाद्यचूर्णम्।

हिङ्गु चव्यं विडं शुण्ठी कृष्णाजाजी सपुष्करम्। भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद् भवेत् ॥ ३१ ॥

हींग, चव्य, विरियासंचरनिमक, सोंठ, काला-जीरा और अरंडकी जड यह सब पदार्थ एकसे एक दुगुना लेकर चूर्ण बनाकर सेवन करे तो आमवातकी पीडा शान्त होजाती है ॥ ३१ ॥

अथ पिप्पल्यादिचूर्णम्।

पिप्पली पिप्पलीमूलं सैन्धवं कृष्णजीरकम्। चव्यचित्रकतालीसपत्रकं नागकेशरम् ॥ ३२ ॥ एषां द्विपलिकान् भागान् पञ्च सौवर्चलस्य च। मरिचाजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम् ॥ ३३ ॥ दाडिमात्कुडवश्चैव द्वे पले चाम्लवेतसात्। सर्वमेकत्र संक्षुद्य योजयेत् कुशलो भिषक् ॥ ३४ ॥ पिप्पल्याद्यमिति ख्यातं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम्। अर्शांसि ग्रहणीं गुल्ममुदरं सभगन्दरम् ॥ ३५ ॥ कृमिकण्डूवरुचीहन्यात्सुरयोष्णोदकेन वा। नातः परतरं किञ्चिदामवातस्य भेषजम् ॥ ३६ ॥

पीपल, पीपलामूल, सैंधानिमक, काला-जीरा, चव्य, चीत, तालीसपत्र और नागकेशर यह प्रत्येक पदार्थ आठ आठ तोले, काला-निमक पांच तोले लेवे, काली मिर्च, जीरा और सोंठ चार चार तोले लेवे, दाडिमीसार सोलह तोले लेवे और अमलवेत आठ तोले भर लेवे, इन औषधियोंको एकत्रित करके चतुर वैद्य कूट पीस चूर्ण बनाकर रोगीको देवे। इसको 'पिप्पल्यादि चूर्ण' कहते हैं। इसको (मदिराके) सहतके साथ अथवा गरमजलके साथ पिये तो नष्ट हुई जठराग्नि फिरसे दीप्त होती है और बवासीर, ग्रहणी, गुल्म, उदरके रोग, भगन्दर, कृमि, खुजली और अरुचि दूर होजाती है। आमवातकी इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है ॥ ३२ ॥ ३६ ॥

अथ पथ्याद्यचूर्णम्।

पथ्याविश्वयवानीभिस्तुल्याभिश्चूर्णितं पिबेत्। तक्रेणोष्णोदकेनापि काञ्जिकेनाथवा पुनः ॥ ३७ ॥ आमवातं निहन्त्याशु शोथं मन्दाग्नितामपि। पीनसं कासहृद्रोगं स्वरभेदमरोचकम् ॥ ३८ ॥

हरड, सोंठ और अजवायन इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर तक्र के साथ, गरम जलके साथ अथवा कांजीके साथ पीवे तो आमवात, सूजन, जठराग्निकी मंदता, पीनस खांसी, हृदयकी पीडा, स्वरभेद और अरुचि दूर होती है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथ रसोनादिकषायः।

रसोनविश्वनिर्गुण्डीक्वाथमामार्दितः पिबेत्। नातः परतरं किञ्चिदामवातस्य भेषजम् ॥ ३९ ॥

आमसे पीडित मनुष्यको लहसुन सोंठ और निर्गुण्डी इनका क्वाथ पीना चाहिये इस क्वाथसे अधिक आमवातकी अन्य औषधि नहीं है ॥ ३९ ॥

अथ रास्नापञ्चकक्वाथः ।

रास्नां गुडूचीमेरण्डं देवदारु महौषधम् । पिबेत्सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ ४० ॥

रासना, गिलोय, अरंड जड, देवदारु और सोंठ इनका क्वाथ सर्वांगवात, आमवात, संधिगतवात, अस्थिगतवात और मज्जागतवातमें पीना चाहिये ॥ ४० ॥

अथ पिप्पल्यादिक्वाथः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । क्वथितं वारि तत्पेयमामवातविनाशनम् ४१

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पीवे तो आमवात नष्ट हो जाता है ॥ ४१ ॥

अथ शट्यादिकल्कः ।

शटीविश्वौषधीकल्कं वर्षाभूक्काथसंयुतम् । सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुरामवातविनाशनम् ४२॥

कचूर तथा सोंठ इनका कल्क बनाकर पुनर्नवेके क्वाथके साथ सात दिनतक पीवे तो आमवात नष्ट होजाता है ॥ ४२ ॥

अथ रास्नासप्तकक्वाथः ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् । क्वाथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जंघोरुपार्श्वत्रिकपृष्ठशूली ॥ ४३ ॥

रासना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखरू, अरंडकी जड और पुनर्नवा इनका क्वाथ बनाकर उसमें सोंठका चूर्ण डालकर पीनेसे पिंडलियोंका, सांथलोंका, पसलियोंका, त्रिकस्थानका और पीठका शूल नष्ट होजाता है ॥ ४३ ॥

आमवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् । खादेद्वाप्यभयाविश्वं गुडूचीं नागरेण वा ॥ ४४ ॥

पीपलका चूर्ण डालकर दशमूलका क्वाथ पीनेसे अथवा सोंठ तथा हरडको भक्षण करनेसे अथवा गिलोय तथा सोंठको भक्षण करनेसे आमवात नष्ट हो जाता है ॥ ४४ ॥

अथ चित्रकादिचूर्णम् ।

चित्रकेन्द्रयवापाठाकटुकातिविषाभयाः । आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना ॥ ४५ ॥

चीता, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी, अतीस और हरड इनका चूर्ण करके कुछेक गरम जलका साथ पीनेसे आमाशयकी वायु दूर हो जाती है ॥ ४५ ॥

अथ पुनर्नवादिचूर्णम् ।

पुनर्नवाऽमृता शुण्ठी शताह्वा वृद्धदारकम् । शटी मुण्डितिका चूर्णमारनालेन पाययेत् ॥ ४६ ॥ आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना । आमवातं निहन्त्याशु गृध्रसीमुद्धतामपि ॥ ४७ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, सोंठ, सोया, विधारा, कचूर और गोरखमुंडी इनका चूर्ण बनाकर आरनाल नामक कांजी अथवा गरम जलके साथ पीनेसे आमवातरोग तत्काल नष्ट होजाता है और भयंकर गृध्रसीवात नष्ट होजाती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ नागरचूर्णम् ।

कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत्सदा । आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥४८॥

सोंठका चूर्ण एक तोलाभर लेकर कांजीके साथ नित्य पीवे तो आमवातरोग शांत होजाता है । यह औषधि कफ तथा वायुको हरनेवाली उत्तम है ॥ ४८ ॥

अथ पञ्चकोलचूर्णम् ।

पञ्चकोलकचूर्णं तु पिबेदुष्णेन वारिणा । मन्दाग्निशूलगुल्मामकफारोचकनाशनम् ४९

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका चूर्ण बनाकर गरम जलके साथ

पीवे तो अग्निकी मन्दता, शूल, गुल्म, आम, कफ और अरुचि इनका नाश होता है ॥४९॥

अथैरण्डतैलम्।

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः। एक एव निहन्ताऽऽशु एरण्डस्नेहकेसरी॥५०॥

शरीररूपी वनमें विचरण करनेवाले आमवातरूपी उन्मत्त हाथीको इकला अंडीका तेलरूप सिंह मारदेता है ॥ ५० ॥

अथैरण्डतैलहरीतकी।

एरण्डतैलयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत्। आमानिलार्तियुक्तो गृध्रसीवृद्ध्यर्दितो नियतम् ॥ ५१ ॥

आमवातसे, गृध्रसीसे और अर्दितवातसे पीडित मनुष्यको अंडीके तेलके साथ हरडका चूर्ण अवश्य सेवन करना चाहिये ॥ ५१ ॥

अथारग्वधपत्रप्रयोगः।

आरग्वधस्य पत्राणि भृष्टानि कटुतैलतः। आमघ्नानि नरः कुर्यात्सायं भक्तावृतानि च ॥ ५२ ॥

सन्ध्याके समय सरसोंके तेलमें अमलतासके पत्तोंको सेंककर भक्षण करे और उसके पश्चात् भोजन करे तो आमकी पीडा नष्ट होजाती है ॥ ५२ ॥

अथ कटिग्रहपंगुरोगलक्षणचिकित्से।

वायुः कट्याश्रितः शुद्धः सामो वा जनयेद्रुजम्। कटीग्रहः स एवोक्तः पङ्गुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ ५३ ॥ शुण्ठीगोक्षुरककाथः प्रातःप्रातर्निषेवितः। सामे वातकटीशूले पाचनं रुक्प्रणाशनम्॥५४॥

कटिमें रहनेवाली शुद्ध अथवा आमसहित वायु व्यथाको उत्पन्न करती है, इसको कटिग्रह कहते हैं। जो इसमें दोनों सांथल विकारको प्राप्त होजावें तो इसको पंगुरोग कहते हैं। सोंठ और गोखरू इनका क्वाथ नित्य प्रातःकाल सेवन करे तो आमसहित वायुरोगीका कटिशूल नष्ट होता है और आमका पाचन होता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

यवक्षारसमायुक्तं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम्। दशमूलीकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा ॥ ५५ ॥

अण्डीके तेलमें जवाखार डालकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है और दशमूलके साथ अथवा सोंठके क्वाथके साथ अंडीका तेल पीनेसे कटिशूल नष्ट होता है ॥ ५५ ॥

कटीशूलेषु पातव्यं तैलमेरण्डसम्भवम्। महौषधगुडूच्योश्च क्वाथं पिप्पलीसंयुतम्। पिबेदामे सरुक्कोष्ठे कटीशूले विशेषतः ॥ ५६ ॥

आममें, कोठेकी पीडामें और विशेष करके कटिग्रहपर सोंठ और गिलोयके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीवे ॥ ५६ ॥

विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् ॥ ५७ ॥ तत्पायसं कटीशूले गृध्रस्यां परमौषधम्। सर्पिस्तैलं गुडं शुक्तं पञ्चमं विश्वभेषजम् ॥ ५८ ॥ पीतमेतद्भवेत्सद्यस्तर्पणं कटिशूलनुत्। न हि चैतत्समं किञ्चिन्निरामे कटिमारुते॥५९॥ शुकतरुवल्कलसहितं गोमूत्रं स्थापितन्तु सप्ताहम्। हिङ्गुवचाशतपुष्पासैन्धवयुक्तेन तेनाथ ॥ ६० ॥ तत्पुटपक्कं हन्यात्कटीरुजं दारुणां पुंसाम्। आममेदोवृद्धिभवान्विकारांश्चानिलोद्भवान् ॥ ६१ ॥

अंडीके बीजोंको साफ कर पीस करके दूधमें पकाकर उस दूधपाकको सेवन करनेसे कटिग्रह तथा गृध्रसीवात दूर हो जाता है। कटिग्रह तथा गृध्रसीका यह उत्तम उपाय है। घी, तेल, गुड, शुक्तनामक कांजी और सोंठ

इन सबको एकत्र मिलाकर पीवे तो तत्काल तृप्ति होती है और कटिग्रह नष्ट होता है आमरहित कटिग्रहपर इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है । देवदारुको छालको गोमूत्रमें पीसकर सात दिनतक रखदेवे फिर इसको हींग, वच, सोया और सैंधेनिमकके साथ पीसकर पुटपाककी विधिसे पकावे । इसकको सेवन करनेसे दारुण कटिग्रह तथा आम, मेद और वायुकी वृद्धिसे उत्पन्न हुए दूसरे विकार भी शान्त हो जाते हैं ॥ ५७-६१ ॥

अथामृताद्यचूर्णम् ।

अमृतानागरगोक्षुरमुण्डितिकावरुणकैः कृतं चूर्णम् । मस्त्वारनालपीतं सामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ ६२ ॥

गिलोय, सोंठ, गोखरू, गोरखमुंडी और वरना इनका चूर्ण करके दहीके तोडके साथ अथवा आरनालके साथ पीवे तो आमवातका नाश होता है ॥ ६२ ॥

अथालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकंत्रिफलानागरामृताः। यथोत्तरं भागवृद्ध्या श्यामाचूर्णं च तत्समम् ॥ ६३ ॥ पिबेन्मस्तु सुरां तत्र काञ्जिकोष्णोदकेन वा । आमवातं जयत्याशु सशोथं वातशोणितम् ॥ ६४ ॥ त्रिकजानूरुसन्धिस्थज्वरारोचकनाशनम् । अलम्बुषादिकं चूर्णं रोगानीकविनाशनम् ॥ ६५ ॥

गोरखमुण्डी एक भाग, गोखरू दो भाग, त्रिफला तीन भाग, सोंठ चार भाग, गिलोय पांच भाग और निसोतका चूर्ण १५ भाग लेवे सबको एकत्र कूट पीसकर दहीके पानीके साथ, मदिराके साथ, काँजीके साथ अथवा गरम जलके साथ पिये तो सूजन सहित आमवात, वातरक्त, त्रिकस्थानमें प्राप्त हुआ ज्वर, घुटने जंघा और साँथलोकी पीडा और अरुचि इन सबका नाश होता है । यह अलम्बुषादिचूर्ण रोगोकी सेनाको नष्ट करनेवाला है ॥ ६३ ॥ ६५ ॥

हरीतक्यक्षधात्रीभिः प्रसिद्धा त्रिफला क्रमात् । प्रत्येकं तेन वा युञ्ज्याद्भाग वृद्धिं यथोत्तरम् ॥ ६६ ॥

हरड, बहेडा, आमला इन तीनोंको त्रिफला कहते हैं । एक एक भागसे बढाके उपयोग करना अथवा प्रत्येक एक एक उपयोग करना ॥ ६६ ॥

द्वितीयालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं मूलं वरुणकस्य च । गुडूची नागरश्चेति समभागानि कारयेत् ॥ ६७ ॥ काञ्जिकेन तु तत्पेयं बिडालपदमात्रकम् । आमवाते प्रवृद्धे च योगोऽयममृतोपमः ॥ ६८ ॥

गोरखमुंडी, गोखरू, वरनाकी जड, गिलोय और सोंठ इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करे । इसमेंसे एक तोला चूर्ण लेकर काँजीके साथ पीवे, तो बढे हुए आमवातरोगपर यह उपाय अमृतके समान है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

तृतीयालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं गुडूची वृद्धदारुकम् । पिप्पली त्रिवृता मुस्ता वरुणं सपुनर्नवम् ॥ त्रिफला नागरश्चेति सूक्ष्म चूर्णानि कारयेत् ॥ ६९ ॥ मस्त्वारनालतक्रेण पयोमांसरसेन वा । आमवातं निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम् ॥७०॥

गोरखमुंडी, गोखरू, गिलोय, विधारा, पीपल निसोत, नागरमोथा, वरना, पुनर्नवा त्रिफला और सोंठ इनका बारीक चूर्ण बनाकर दहीके पानीके साथ तक्रके साथ, दूधके साथ अथवा मांसरसके साथ पीवे वो तत्काल आम-

वात नष्ट हो जाता है तथा संधियोंमें प्राप्त हुई सूजन भी दूर हो जाती है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ वैश्वानरचूर्णम् ।

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यवान्यास्तद्वदेव तु । भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥ ७१ ॥ दश द्वौ च हरीतक्याः सूक्ष्मचूर्णीकृतं शुभम् । मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥७२॥ पीतं जयत्यामवातं गुल्महृद्बस्तिजान् गदान् । प्लीहानं ग्रन्थिशूलादीनानाहं गुदजानि च ॥ ७३ ॥ विबन्धं जाठरान् रोगान् कटीवस्तिसमुत्थितान् । वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥७४॥

सैंधानिमक दो भाग, अजवायन दो भाग, अजमोद तीन भाग, सोंठ पांच भाग और हरड बारह भाग इन सबका बारीक चूर्ण बनाकर दहीके पानीके साथ और आरनाल नामक कांजीके साथ, तक्रके साथ, घीके साथ अथवा गरमजलके साथ पीवे तो आमवात, गुल्म, हृदयकी पीडा, मूत्राशयकी पीडा, प्लीहा, ग्रंथि, शूलादि, अफारा, बवासीर, मलबन्ध, उदरके रोग और कमरके तथा मूत्राशयके रोग सब नष्ट होते हैं। यह वैश्वानरचूर्ण वायुको योग्यमार्गमें संचार करानेवाला है ।। ७१–७४ ॥

अथासीतकचूर्णम् ।

असीतकं मागधिका गुडूची श्यामा वराही गजकर्णशुण्ठी । समा धृताः कृत्स्नमिदं तु चूर्णं पिबेत्तदुष्णोदकमण्डयूषैः ॥ ७५ ॥ तक्रै रसैर्मद्यसमस्तुभिर्वा यथेष्टचेष्टाशनतत्परस्य । अबाहुकं गृध्रसिखञ्जवातं विश्वाचितूनीप्रतितूनिरोगान् ॥ जंघामवातार्दितवातरक्तं कटिग्रहं गुल्मगुदामयञ्च । प्रकोष्ठकं पांडुगरोग्रशोफं हन्यादुरुस्तम्भमुदीर्णवेगम् ॥ ७६ ॥

विष्णुक्रान्ता, पीपल, गिलोय, निसोत, बाराहीकन्द, एरंड और सोंठ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर उस चूर्णको गरम जलके साथ, मांडके साथ, यूषके साथ, तक्रके साथ, मांसके साथ, रसके साथ, मद्यके साथ अथवा दहीके पानीके साथ पीवे. इसपर आहारविहार इच्छानुसार करे।इस चूर्णसेअपवाहुक, गृध्रसी, खंज, विश्वाची, तूनी, प्रतितूनी, पिंडलीके रोग, आमवात, अर्दित, वातरक्त, कटिग्रह, गुल्म, बवासीर, क्रोष्टुशीर्ष, पांडुरोग, विष, उग्र सूजन और प्रबल वेगवाला ऊरुस्तंभरोग नष्ट होता है ।।७५।। ७६।।

अथ शुण्ठीधान्यघृतम् ।

शुण्ठीनां षट्पलं पिष्टं धान्याकं द्विपलं तथा । चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७७ ॥ वातश्लेष्मामयान् हन्यादग्निवृद्धिकरं परम् । दुर्नामश्वासकासघ्नं बलवर्णाग्नि वर्द्धनम् ॥ ७८ ॥

सोंठ चौबीस तोले, आठतोले धनियां इनका कल्क बनाकर चौंसठ तोले भर घी चौगुने जलमें डालकर पकावे तो 'शुंठीधान्यकघृत' सिद्ध होता है। यह घी अग्निको अच्छी प्रकारसे दीप्त करता है, बलको बढाता है, वर्णको उत्तम करता है और वायुसम्बन्धी रोग, कफसम्बन्धी रोग, बवासीर, श्वास और खांसी इन सब रोगोंको दूर करता है ॥ ७७–७८ ॥

अथ घृतसिद्धिः ।

पुष्ट्यर्थं पयसा साध्यं दध्ना विण्मूत्रसंग्रहे । दीपनार्थं मतिमता मस्तुना च प्रकीर्तितम् ॥ ७९ ॥ सर्पिर्नागरकल्केन सौवीरं तच्चतुर्गुणम् । सिद्धमग्निकरं श्रेष्ठमामवातहरं परम् ॥ ८० ॥

जो पुष्टिके लिये बनावे तो इसको दूधमें पकाना चाहिये। मल तथा मूत्रके अवरोधके लिये बनावे तो इसको दहीसे पकावे और अग्निको दीप्त करनेके लिये बनावे तो बुद्धिमान् वैद्य इसको दहीके तोडके साथ पकावे। सोंठका कल्क डालकर चौगुनी सौबीर नामक कांजीमें घृतको पकावे तो शुंठीघृत सिद्ध होता है। यह घी अग्निको दीप्त करनेमें उत्तम है और आमवातको नष्ट करनेका सहज उपाय है ॥ ७९-८० ॥

अथ शुण्ठीघृतम्।

नागरक्वाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्। चतुर्गुणेन तेनाथ केवलेन जलेन वा ॥ ८१ ॥ वातश्लेष्मप्रशमनमग्निसन्दीपनं परम्। नागरं घृतमित्युक्तं कटीशूलामनाशनम् ॥ ८२ ॥

चौंसठ तोलेभर घीमें सोंठका कल्क डालकर उस घीको चौगुने सोंठके क्वाथमें अथवा केवल पानीमें पकावे तो 'शुण्ठीघृत' सिद्ध होता है। यह घीवात तथा कफको शमन करता है, अग्निको अच्छी प्रकारसे दीप्त करता है और कटिग्रह तथा आमको दूर करता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अथ कांजिकाद्यघृतम्।

हिङ्गु त्रिकटुकं चव्यं माणिमन्थं तथैव च। कल्कान् कृत्वा तु पलिकान् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८३ ॥ आरनालाढकं दत्त्वा तत्सर्पिर्जठरापहम्। शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटिग्रहम्। नाशयेद्ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ८४ ॥

हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, चव्य और सेंधानिमक इन प्रत्येकको एक एक तोला लेकर कल्क बनाकर चौंसठ तोलेभर घीको दोसौ छप्पन तोले कांजीमें पकावे तो 'कांजिकाद्यघृत' सिद्ध होता है, यह घी, मन्दाग्निको अच्छी प्रकारसे दीप्त करता है तथा शूल, मलबन्ध, उदरके रोग, अफरा, आमवात, कटिग्रह और ग्रहणीदोष इनको नाश करता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथ शृङ्गवेराद्यघृतम्।

शृङ्गवेरयवक्षारपिप्पलीमूलपिप्पलीः। पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिरारनालं चतुर्गुणम् ॥ ८५ ॥ शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटिग्रहम्। नाशयेद् ग्रहणीदोषमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ८६ ॥

अदरख, जवाखार, पीपलामूल और पीपल इनका कल्क बनाकर चौगुनी आरनालनामक कांजीमें घृतको सिद्ध करे इसको 'शृंगवेराद्यघृत' कहते हैं। यह घी अग्निको अच्छी प्रकारसे दीप्त करता है और शूल, मलबन्ध, अफारा, आमवात, कटिग्रह और ग्रहणीदोष इन सबका नाश करता है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

पिबेद्धिन्दुघृतं वाऽपि धान्वन्तरमथापि वा। महाशुण्ठीघृतं वापि आमवाते पुनः पुनः ॥ ८७ ॥ यत्किञ्चिल्लेखनं सर्पिर्दीपनं पाचनञ्च यत्। तत्सर्वमामवातेषु योज्यं वा मस्तु षट्पलम् ॥ ८८ ॥

आमवातमें बिंदुघृत अथवा धान्वन्तरघृत अथवा महाशुंठीघृत बारंबार पीना चाहिये। जो जो घी कफके उखाडनेवाले, अग्निको दीप्त करनेवाले और आमको पाचन करनेवाले हैं, उन सबको आमवातपर उपयोग करना चाहिये। अथवा चौबीस तोले मस्तुका उपयोग करे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथाजमोदादिचूर्णवटकौ।

अजमोदमरिचपिप्पलिविडङ्गसुरदारुचित्रकशताह्वाः। सैन्धवपिप्पलीमूलं भागा नवकस्य पलिकाः स्युः ॥ ८९ ॥ शुण्ठी

दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य । पथ्यापलानि पञ्च च सर्वाण्येकत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ ९० ॥ समगुडवटकानदतश्चूर्णं वाऽत्युष्णवारिणा पिबतः । नश्यन्त्यामानिलजा रोगाः सुकष्टाश्च ॥ ९१ ॥ प्रतितूनी विश्वाची रोगाश्चान्येऽपि गृध्रसी चोग्रा । कटिपृष्ठगुदस्फुटनं चैवार्तिं जंघयोस्तीव्राम् ॥ ९२ ॥ श्वयथुश्च सर्वसन्धिषु ये चान्येऽप्यामवातसम्भूताः । सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्यांशुविध्वस्तम् ॥ ९३ ॥ क्षुद्बोधमरोगित्वं स्थिरयौवनमथ वलीपलितनाशम् । कुरुते च तथाऽभ्यासाद् गुणानथान्यांस्तथा सुबहून् ॥ ९४ ॥

अजमोद, मिर्च, पीपल, वायविडंग देवदारु, चीता, सोया, सैंधानिमक और पीपलामूल ये नौ पदार्थ प्रत्येक चार चार तोले लेवे । सोंठ चालीस तोले लेवे, विधारा चालीस तोले लेवे और हरड बीस तोले लेवे इन सब पदार्थोंको एकत्रित करके सबका चूर्ण कर उसमें बराबरका गुड मिलाकर बडे बनावे । इन बडोंको सेवन करनेसे अथवा कुछेक गरम जलसे उस चूर्णको खानेसे जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे अन्धकारका नाश होता है, उसी प्रकार इस औषधिसे आमवातसम्बन्धी समस्त दुःखदायक रोग नष्ट होते हैं । इसको सेवन करनेसे तूनी, प्रतितूनी, विश्वाची, अन्यान्य वातरोग, उग्र गृध्रसी, कमर, पीठ, गुदा और पिंडलियोंमें फोडने सरीखी पीडाका होना, सर्व सन्धियोंमें प्राप्त हुई सूजन और अन्यान्य भी आमसे तथा वातसे उत्पन्न हुए रोग नष्ट होते हैं । इस अजमोदादि औषधिका अभ्यास करनेसे भूख जागृत होती है । आरोग्य प्राप्त होता है । यौवन स्थिर होता है । बली तथा पलित रोगोंका नाश होता है । यह अत्यन्त गुणोंसे युक्त है ॥ ८९-९४ ॥

अथ योगराजगुग्गुलुः ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानीं कारवीं तथा । विडङ्गमजमोदां जीरके सुरदारु च ॥ ९५ ॥

चव्यैलासैन्धवं कुष्ठं रास्नागोक्षुरधान्यकम् । त्रिफलां मुस्तकं व्योषं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ ९६ ॥ तालीसपत्रं पत्रं च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु गुग्गुलुम् ॥ ९७ ॥ संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् । अतो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारवानपि ॥ ९८ ॥ अग्निमान्द्यामवातादीन् क्रिमिदुष्टव्रणानपि । प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥ ९९ ॥ अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा । वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जागतानपि ॥ १०० ॥

चीता, पीपलामूल, अजवायन, कलौंजी, वायविडंग, अजमोद, जीरा, कालाजीरा, देवदारु, चव्य, इलायची, सैंधानिमक, कूठ, रासना, गोक्षुरू, धनियां, त्रिफला, नागरमोथा सोंठ, मिरच, पीपल, तज, खस, जवाखार, तालीसपत्र और तेजपत्र इनका बारीक चूर्ण बनावे और इस सब चूर्णकी बराबर गूगल लेकर घीमें खूब मर्दन करके चूर्णमें मिलावे । इस गूगलको घीके चिकने बासनमें भरके रख देवे । अग्निका बलाबल विचारकर इसकी मात्राको सेवन करेऔर इसपर यथेच्छ भोजन करें । इसमें मंदाग्नि, उदरके रोग, अफारा, बवासीर, आमवातादिरोग, कृमि, दुष्टव्रण, प्लीहा इन सब रोगोंका नाश होता है और अग्नि दीप्त होती है । तेजकी वृद्धि होती है, बल बढता है । यह गूगल संधियोंमें तथा मज्जामें रहनेवाले वातरोगोंको दूर करता है ९५-१००

अथ प्रसारणीलेहः ।

प्रसारण्याढके क्वाथे प्रस्थो गुडरसो मतः । पक्वः पञ्चोषणरजोयुक्तः स्यादामवातहा ॥ १०१ ॥

दो सौ छप्पन तोलेभर प्रसारणीके क्वाथमें चौसठ तोलेभर गुडका रस डालकर पकावे। फिर उसमें पीपल पीपलामूल, सोंठ, चीता और चव्य इनका चूर्ण डालकर मिलाकर सेवन करे तो आमवातका नाश होता है ॥ १०१ ॥

अथ खण्डशुण्ठी ।

नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिमोक्षीरंद्विप्रस्थसंयुक्तं खण्डस्यार्द्धं शतं पचेत् ॥ १०२ ॥ व्योषत्रिजातकद्रव्यात्प्रत्येकं च पलं पलम् । निदध्याच्चूर्णितं तत्र खादेदग्निबलं प्रति ॥ १०३ ॥ आमवातप्रशमनं बलपुष्टिविवर्द्धनम् । बल्यमायुष्यमोजस्यं वलीपलितनाशनम् । आमवातप्रशमनं सौभाग्यकरमुत्तमम् ॥ १०४ ॥

सोंठ बत्तीस तोले, घी अस्सी तोले, दूध एकसौ, अट्ठाईस तोले और खांड बीस तोले इनका पाक करके उसमें सोंठ, मिरच, पीपल तज, तेजपात और इलायची प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले लेकर चूर्ण बनाकर मिलादेवे तो 'खंडशुंठी' सिद्ध होती है। इस खंडशुंठी को अग्निके बलानुसार सेवन करे तो आमवात शांत होता है, बल तथा पुष्टि बढती है, आयुष्यकी वृद्धि होती है ओज बढता है और उत्तम सौभाग्य प्राप्त होता है ॥ १०२-१०४ ॥

अथ रसोनपिण्डः ।

पलं शतं रसोनस्य तिलस्य कुडवं तथा। हिङ्गु त्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पञ्च लवणानि च ॥ १०५ ॥ शतपुष्पा निशा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ । अजमोदा यवानी च धान्यकं चापि बुद्धिमान् ॥ १०६ ॥ प्रत्येकञ्च पलं चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । घृतभाण्डे दृढे चैनं स्थापयेद्दिनषोडशम् ॥ १०७ ॥ प्रक्षिप्य तैलमानञ्च प्रस्थार्द्धं काञ्जिकस्य च । खादेत् कर्षप्रमाणन्तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ १०८ ॥ आमवाते रक्तवाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंस्थिते । अपस्मारेऽनले मन्दे कासे श्वासे गरेषु च । सोन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तुषु शस्यते ॥ १०९ ॥

लहसुन ४०० तोले, तिल १६ तोले, हींग ४ तोले, सोंठ ४ तोले, मिर्च ४ तोले, पीपल ४ तोले, जवाखार ४ तोले, सज्जी ४ तोले, पञ्चलवण ४ तोले, सोंफ ४ तोले, हलदी ४ तोले, कूठ ४ तोले, पीपला मूल ४ तोले, चीता ४ तोले, अजमोद ४ तोले, अजवायन ४ तोले और धनियां ४ तोले इन सबका बारीक चूर्ण करके उसमें ३२ तोले तेल और ३२ तोले कांजी डालकर घीके चिकने उत्तम मजबूत वर्तनमें भरके सोलह दिनतक रखदेवे। इसमें से नित्य एक तोलाभर खाय और जल तथा सहतका अनुपान करे। इससे आमवात, वातरक्त, सर्वांगवात, एकांगवात, अपस्मार अग्निकी मन्दता, खांसी, श्वास, विष, उन्माद, वातभग्न, शूल और कृमि इन सबका नाश होता है ॥ १०५-१०९ ॥

प्रसारणीतैलम् ।

प्रसारण्या रसे सिद्धं तैलमेरण्डजं पिबेत्। सर्वदोषहरञ्चैव कफरोगहरं परम्॥११०॥

प्रसारिणीके रससे पकाया हुआ अण्डीका तेल पिया जाय तो सर्वप्रकारके रोग नष्ट होते हैं और विशेष करके कफके रोग नष्ट होते हैं ॥ ११० ॥

द्विपञ्चमूलाद्यतैलम् ।

द्विपञ्चमूलीनिर्यासफलदध्यम्लकाञ्जिकैः।

वस्तिः कट्यूरुपार्श्वार्तिकफवातामयान् ग्रहान् । हन्ति वस्तिप्रदानेन करोत्यग्नि बलं महत् ॥ १११ ॥

दशमूल, गोंद, जायफल, दही और खट्टी कांजी, इनसे पकाये हुए तेलकी पिचकारी लगावे तो कमरका दर्द, पसलियोंका शूल, कफके रोग, वातरोग इन सबका नाश होता है तथा अग्निका बल बढता है ॥१११॥

बृहत्सैन्धवाद्यतैलम् ।

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यवानिका। स्वर्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ॥ ११२ ॥ वचाऽजमोदा सरणी पौष्करं मधुकं कणा। एतान्यर्द्धपलांशानि सूक्ष्मपिष्टानि कारयेत् ॥११३॥ प्रस्थमेरण्डतैलस्य प्रस्थन्तु शतपुष्पजम् । काञ्जिकं द्विगुणं दत्त्वा मस्तुं च द्विगुणं तथा ॥ ११४ ॥ एतं सम्भृत्य सम्भारं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । सिद्धमेतत्प्रयोक्तव्यमामवातहरं परम् ॥११५॥ पानाभ्यञ्जनवस्तौ च कुरुतेऽग्निबलं भृशम् । वातार्तिवंक्षणे शस्तं कटीजानूरुसन्धिजे ॥ ११६ ॥ शूले हृत्पार्श्वजे तद्वद् वृद्धे श्लेष्मणि पीडिते। बाह्यायामार्दितानाहैरन्त्रवृद्धिनिपीडिते। अन्यांश्चानिलजान्रोगान्नाशयत्याशु देहिनाम् ॥ ११७ ॥

सैंधानिमक, हरड, रास्ना, सोया, अजवायन, सज्जी, मिरच, कूठ, सोंठ, कालानिमक, विरियासंचरनिमक, वच, अजमोदा या पसरन, अरंडकी जड, पोहकरमूल, मुलहठी और पीपल ये प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर खूब पीसकर कल्क बनावे। फिर चौंसठ तोले तेल, चौंसठ तोले सोया, एकसौ अट्ठाईस तोले कांजी और एकसौ अट्ठाईस तोले दहीका तोड इन सबको एकत्र करके उसमें पहिले कल्क डालकर उस तेलको कोमल अग्निसे धीरे धीरे पकावे तो 'बृहत्सैन्धवाद्य' तैल सिद्ध होता है। पीनेमें, मालिस करनेमें और वस्तिकर्ममें इस तेलका उपयोग करे तो आमवात अच्छी प्रकारसे नष्ट होजाता है। यह तेल अग्निके बलको अत्यन्त बढाता है। वातसे उत्पन्न हुई वंक्षणकी पीडा, कटिग्रह, घुटनोंकी पीडा, जंघेकी वायु, संधियोंकी पीडा, हृदयका शूल, पसलियोंका शूल, कफकी वृद्धि, बाह्यायाम, अर्दित, अफारा, अन्त्रवृद्धि तथा इसके शिवाय और भी मनुष्योंके वातसम्बन्धी रोग नष्ट होजाते हैं ॥११२-११७॥

अथ निरूहवस्तिः ।

स्वल्पप्रसारणीतैलं तैलं वा सैन्धवादिकम् । दशमूलाद्यतैलेन वस्तिदानं प्रशस्यते ॥ ११८ ॥ तैलस्य द्विपलं दद्यात्काञ्जिकस्य चतुःपलम् । दशमूलरसं मूत्रं पृथक्पञ्च पलानि तु ॥ ११९ ॥ वचा मदनवाट्या वा शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः। पिप्पल्यतिविषामुस्तारास्नाकट्फलपौष्करैः ॥ १२० ॥ अक्षांशकैश्च तत्सर्वं मन्थयीत विचक्षणः। प्रस्थार्द्धं प्रथमं देयो वस्तिर्निरभिशंकितः ॥ १२१ ॥ द्वितीये च तृतीये च वर्जयेत्प्रसृतद्वयम्। सर्ववातविकारेषु मेहेषु वृषणामये ॥१२२॥ कुक्षौ हृत्पृष्ठपार्श्वेषु जानुजङ्घाकटिग्रहे। विबन्धानाहरोगेषु शर्कराश्मरिपीडिते ॥ १२३ ॥ भग्नविश्लिष्टगात्रेषु पिच्चितेषु क्षतेषु च। एतन्निरूहवत्प्राज्ञो निरायासो महागुणः ॥ १२४ ॥

लघुप्रसारिणी तैलकी अथवा सैंधवाद्यतैलकी अथवा दशमूलाद्यतैलकी पिचकारी लगानी आमवातमें हितकारी है। इस पिचकारीमें तेल आठ तोले, कांजी सोलह तोले,

दशमूलका रस बीस तोले और गोमूत्र बीस तोले भरे। फिर इन सब पदार्थोंको एकत्र मिलाकर वच; मैनफल, खिरैंटी, सोया, कूठ सैंधानिमक, पीपल, अतीस, नागरमोथा, रासना, कायफल और अरंडकी जड यह प्रत्येक एक एक तोला लेकर पहिला मिश्रित किया हुआ तेल आदि औषधियोंका मथन करे फिर निःशंक होकर बत्तीस तोले इस द्रवकी पिचकारी लगावे। दूसरी वार तथा तीसरी वार चौबीस तोले इस द्रवकी पिचकारी लगावे। सर्वप्रकारके वातविकार, प्रमेह, वृषण की पीडा, कुक्षिरोग, हृदयरोग, पीठकी, पीडा, पसलियोंकी पीड़ा, जानुगत वायुकी पीडा, जंघागत वायुकी पीडा, कमरका दर्द, विवन्ध, अफारा, शर्करारोग, अश्मरीरोग, भग्नशरीर और पिच्चित हुए व्रणमें यह निरूह-वस्ति अत्यन्त गुणकारक है और थोडा परिश्रम करनेवाली है ॥ ११८-१२४ ॥

अथामवातेऽपथ्यम् ।

दधिमत्स्यगुडं क्षीरं पोतकीं माषपिष्टकम् । वर्जयेदामवातार्तो मांसमानूपसम्भवम् ॥ १२५ ॥ अभिष्यन्दकरा ये च ये चान्ये गुरुपिच्छिलाः । वर्जनीयाः प्रयत्नेन आमवातार्दितैर्नरैः ॥ १२६ ॥

आमवातसे पीडित मनुष्य-दही, मछली, गुड, दूध, पोईका शाक, उडदोंके बडे और अनूपदेशके जीवोंका मास इन सबका त्याग कर देवे। जो पदार्थ अभिष्यन्दी हैं, जो पदार्थ पिच्छिल और भारी हैं, उन सबको आमवातसे पीडित मनुष्य अवश्य त्याग देवे॥ १२५ ॥ १२६ ॥

अथ मध्यमरास्नादिक्वाथः ।

रास्नैरण्डशतावरीसहचरीदुःस्पर्शवासाऽमृतादेवाह्वातिविषाभयाघनशटीशुण्ठीकषायः कृतः। पीतः सौरुबुतैलएष विहितः सामे सशूलेऽनिले कट्यूरुत्रिकपृष्ठकोष्ठजठरक्रोडेषु चामार्तिजि ॥ १२७ ॥

रासना, अरंडकी जड, सतावर, कटसरैया, जवासा, अडूसा 'गिलोय, देवदारु, अतीस' हरड, नागरमोथा, कचूर और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर अण्डीका तेल डालकर पीनेसे आमसहित तथा शूलसहित वायु, कटिग्रह, ऊरुस्तम्भ, पीठकी पीडा, पीठका रहजाना, कोठकी पीडा और उदरकी पीडा, जो कि आमसे उत्पन्न होती हैं, वे सब नष्ट होजाती हैं ॥ १२७ ॥

अथ महारास्नादिक्वाथः ।

रास्ना वातारिमूलञ्च वासकञ्च दुरालभम् । शटीदारुबलामुस्तनागरातिविषाभयाः ॥१२८॥ श्वदंष्ट्रा व्याधिघातश्च मिसिधान्यपुनर्नवाः । अश्वगन्धाऽमृता कृष्णा वृद्धदारः शतावरी ॥ १२९ ॥ वचा सहचरश्चैव चविका बृहतीद्वयम् । समभागान्वितैरेतै रास्नाद्विगुणभागिकैः ॥ १३० ॥ कषायं पाययेत्सिद्धमष्टभागावशेषितम् । शुण्ठीचूर्णसमायुक्तमाभाद्येन द्युतं तथा ॥१३१॥अलम्बुषादिसंयुक्तमजमोदादि संयुतम् । यथादोषंयथाव्याधि प्रक्षेपं कारयेद्भिषक् ॥१३२॥ सर्वेषु वातरोगेषु सन्धिमज्जगतेषु च। आनाहेषु च सर्वेषु सर्वगात्रानुकम्पने॥१३३॥ कुब्जके वामने चैव पक्षाघाते तथाऽर्दिते। जानुजंघास्थिपीडासु गृध्रस्यां च हनुग्रहे ॥१३४॥ प्रशस्तं वातरक्ते स्यादूरुस्तम्भे तथाऽर्शसि। विश्वाचीगुल्महृद्रोगविषूचीक्रोष्टुशीर्षके ॥ १३५ ॥ अंत्रवृद्धौ श्लीपदे च योनिशुक्रामये तथा । पुंसां मेदूगते रोगे स्त्रीणां वन्ध्यामये तथा ॥ १३६ ॥ योषितां गर्भदं मुख्यं नास्ति किञ्चिदतः परम् । सर्वेषां पाचनानान्तु श्रेष्ठमेतद्धि

पाचनम् । महारास्नादिकं नाम प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ १३७ ॥

रासना, अरण्डकी जड, अडूसा, जवासा, कचूर, खिरैंटी, नागरमोथा, अतीस, हरड गोखरू, अमलतास,, सौंफ, धनियां, पुनर्नवा, असगन्ध, गिलोय, पीपल, विधारा, सतावर, बच, कटसरैया, चव्या, कटेरी और कटाई इन सब औषधियोंमें रासना दो भाग लेवे और सब औषधि एक एक भाग लेकर इनका अष्टावशेष क्वाथ बनावे । इसमें वैद्य दोष तथा व्याधिके अनुसार शुण्ठीचूर्ण अथवा आभाद्यचूर्ण अथवा अलंबुषादि चूर्ण अथवा अजमोदादिचूर्ण डाल, इस क्वाथको पीनेसे समस्त वातरोग, सन्धिवात, मज्जागतवात, सर्व प्रकारका आनाह, सर्व अंगोंका कांपना, कुब्जक वात, वामनवात, पक्षाघात, अर्दितवात, जानुगत वायु, जंघागत वायु, अस्थियोंमें प्राप्तहुई वायुकी पीडा, गृध्रसीवात, हनुग्रह, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, बवासीर, विश्वाची, गुल्म, हृदयरोग, विषूचिका, क्रोष्टुशीर्ष, अन्त्रवृद्धि, श्लीपदरोग, योनिरोग, शुक्ररोग, लिंगगतरोग और स्त्रियोंके वंध्यारोग नष्ट होते हैं । स्त्रियोंको गर्भ देनेवाली इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है । सर्वप्रकारके क्वाथोंमें यह उत्तम पाचन है । यह महारास्नादि प्रजापतिने स्वयं कहा है ॥ १२८ ॥ १३७ ॥

अथ रास्नादिदशमूलक्वाथः ।

रास्नाविश्वविडङ्गानि रुबूकं त्रिफला तथा । दशमूलं पृथक् श्यामा क्काथो वातामयापहः ॥ १३८ ॥ अर्द्धावभेदके त्वाढ्ये चार्दिते वातखञ्जके । नेत्ररोगे शिरःशूले ज्वरापस्मारयोस्तथा । मनोभ्रंशे च विविधे कथितश्च शुभप्रदम् ॥ १३९ ॥

रासना, सोंठ, वायविडंग, एरण्ड, त्रिफला, दशमूल और निसोत इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे वातसम्बंधी रोग, आधाशीशी, ऊरुस्तम्भ, अर्दित, खञ्ज, नेत्रके समस्त रोग, मस्तकका शूल, ज्वर, अपस्मार और अनेक प्रकारके मन सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं ॥

इति आमवाताधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ पित्तव्याध्यधिकारः ।

तत्र पित्तव्याधिविप्रकृष्टसंनिकृष्टनिदानम् ।

कट्वम्लोष्णविदाहितीक्ष्णलवणक्रोधोपवासातपस्त्रीसम्भोगतृषाक्षुधाभिहननव्यायाममद्यादिभिः । मध्ये चापि हि भोजनस्य जरता भुक्तेन मध्यक्षणे मध्याह्ने रजनी निदाघशरदोः पित्तं करोत्यामयान् ॥ १ ॥

मद्यादिभिः इत्यादिशब्देन दधिमत्स्यमाषतिलातसीकाञ्जिकादीनि संगृह्यन्ते । तीक्ष्णम्—राजिकादि । मध्ये चापि हि भोजनस्य—यावता कालेन भुंक्ते तस्य कालस्य मध्यमभागे । जरता भुक्तेन—भुक्तस्य जरणकालमध्ये । मध्याह्नेमध्यन्दिने--त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य मध्यांशे तथा रात्रेः मध्यमेंऽशे ॥

चरपरे वा तीखे, खट्टे, गरम, दाहकारक, तीक्ष्ण, नमकीन वा खारे पदार्थोंके खानेसे, क्रोध करनेसे, उपवास लंघनादि करनेसे, सन्ताप अथवा धूपको सेवन करनेसे, स्त्रीप्रसंग करनेसे, तृषाको रोकनेसे, भूँखको मारनेसे, दंड कसरत अथवा परिश्रमके काम करनेसे, मदिरा पीनेसे, दही, मछली, उडद, तिल, अलसी तथा कांजी आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे, भोजन करते समयके मध्यकालमें, भोजन पचनेके मध्यकालमें, दिनके मध्यभागमें, रात्रिके मध्यभागमें ग्रीष्मऋतु और और शरदऋतुमें पित्त कुपित होकर रोगको उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

अथ पित्तरोगाः ।

अकालपलितं नेत्ररक्तत्वं तस्य पीतिमा। तद्वन्मूत्रस्य पीतत्वं मलस्यापि च पीतता ॥ २ ॥ नखानामाम्ररक्तत्वं तेषामपि च पीतता । दन्तानां चापि पीतत्वं पीतत्वं वपुषस्तथा ॥ ३ ॥ तमसो दर्शनं चापि तथा च वदनाम्लता । उच्छ्वासस्योष्णता चापि धूमोद्गारस्तथैव च ॥ ४ ॥ भ्रमः क्लमस्तथा क्रोधो दाहो मेदस्समन्वितः । तेजोद्वेषश्च शीतेच्छा ह्यतृप्तिररतिस्तथा ॥ ५ ॥ भक्षितस्य विदाहश्च जठरानलतीक्ष्णता । रक्तप्रवृत्तिर्विड्भेदः पुरीषस्त्रोणता तथा ॥ ६ ॥ मूत्रोष्णा मूत्रकृच्छ्रं शुक्राल्पत्वं तनूष्णता । स्वेदस्य चापि दौर्गन्ध्यं देहप्रावरणं तथा ॥ ७ ॥ शरीरस्यावसादश्च पाकश्च वपुषस्तथा । चत्वारिंशदमी पित्तव्याधयो मुनिभिर्मताः ८ एषां चिकित्सा तु स्वप्रकरणे बोद्धव्या ॥

इति पित्तव्याध्यधिकारः ।

विना ही समय बालोंका पकना अर्थात् सफेद हो जाना, नेत्र लाल हों, नेत्र पीले हों, मूत्र पीला हो, विष्ठा पीली हो, नखोंमें गुलाबीपन, नखोंमें पीलापन, दांतोंमें पीलापन शरीर पीला हो, अन्धकारदर्शन, मुखमें खट्टापन, श्वासका गरम होना, मुखमेंसे धुयेंकी तरह डकारका आना, भ्रम, ग्लानि, क्रोध, दाह, मेद, प्रकाशसे द्वेष, शीतकी इच्छा, अतृप्ति, अरति, भोजनका विदाहपाक होना, जठराग्निकी तीक्ष्णता, रुधिरका निकलना, दस्तोंका आना, विष्ठाका गरम होना, मूत्रका गरम होना मूत्रकृच्छ्र, वीर्यकी अल्पता, शरीरका गरम रहना, पसीनेमें दुर्गन्धका होना, देहका फटना, शरीरमें पीडा और शरीरका पकना ये चालीस रोग मुनियोंने पित्तव्याधि कही हैं । इन पित्त व्याधियोंकी चिकित्सा इन इन व्याधियोंके प्रकरणमें कही, सो उस उस प्रकरणमें समझलेनी चाहिये ॥ २ ॥ ८ ॥

इति पित्तव्याध्यधिकारः ।

अथ श्लेष्मव्याध्यधिकारः ।

तत्र श्लेष्मव्याधिसंनिकृष्टविप्रकृष्टनिदानम् ।

गुरुमधुररसादिस्निग्धमन्दोदराग्निद्रवदधिदिननिद्राशीतनिश्चेष्टितानि । प्रथमदिवसभागे भुक्तमात्रे वसन्ते भवति हि कफरोगोरात्रिभागेऽपि चाद्ये॥ १॥

मधुररसादि इत्यादिशब्देन अम्ललवणौ गृह्येते निश्चेष्टितम्--कायिकव्यापाराकरणम् । प्रथमदिवसभागे--त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य आद्यभागे । भुक्तमात्रे--भुक्तस्य पाककालस्य त्रिधा विभक्तस्य प्रथमकाले कफरोगो भवति ॥

भारी पदार्थोंके खानेसे, मधुररसको सेवन करनेसे खट्टे और लवण रसको भक्षण करनेसे, स्निग्ध पदार्थोंको सेवन करनेसे, जठराग्निकी मन्दतासे, द्रव जल-दुग्धादि पदार्थोंसे, दहीको सेवन करनेसे, दिनमें सोनेसे, शीतसे और कामकाज आदि शरीरके व्यापार नहीं करनेसे अर्थात् खाली बेफाम बैठे रहनेसे, दिनके प्रथम भागमें, भोजन पचनेके पहिले समयमें तथा रात्रिके पहिले भागमें कफके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

अथ कफरोगाः ।

प्रथमं मुखमाधुर्यं तथैव मुखलिप्तता । मुखप्रसेकश्च तथा निद्राधिक्यं तथैव च ॥ २ ॥ कण्ठे घुर्घुरता चापि कटुकांक्षोष्णकामिता । बुद्धिमान्द्यमचैतन्यमालस्यं तृप्तिरेव च ॥ ३ ॥ अग्निमान्द्यं

मलाधिक्यं मलशैत्यं तथैव च । मूत्राधिक्यं मूत्रशौक्ल्यं शुक्राधिक्यं तथैव च ॥ ४ ॥ स्तैमित्यं गौरवं शैत्यमेत एव हि विंशतिः । योगतो रूढितःप्रोक्ता मुनिभिः श्लैष्मिका गदाः ॥ ५ ॥

एषां चिकित्सा तु स्वप्रकरणे बोद्धव्या ॥

मुखमें मधुरता, मुखमें कफका लिहसासा रहना, मुखसे थूकका निकलना, निद्राकी अधिकता, कण्ठमें घरघराहट, तीखे पदार्थोंकी इच्छा, उष्ण पदार्थोंकी इच्छा, बुद्धिकी मन्दता, अचैतन्यता चपलताका घटजाना, आलस्य, तृप्ति, अग्निकी मन्दता, विष्ठाकी अधिकता, विष्ठाकी शीतलता, मूत्रकी अधिकता, मूत्रका श्वेत होना, वीर्यकी अधिकता, शरीरको भीजे वस्त्रसे ढके हुएकी भाफिक मालूम होना, शरीरका भारीपन और शरीरका शीतल रहना ये बीस व्याधियाँ मुनियोंने श्लेष्मसंबंधी कही हैं । यद्यपि इनके सिवाय और भी कफके रोग होते हैं तथापि योगरूढि रीतिके अनुसार इन्हीं व्याधियोंमें 'श्लेष्मव्याधि' यह शब्द प्रवर्तित होता है । इन व्याधियोंकी चिकित्सा अपने अपने प्रकरणोंमें कही है, इस कारण उन उन प्रकरणोंमें समझनी चाहिये ॥ २–५ ॥

इति श्लेष्मव्याधीधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ वातरक्ताधिकारः ।

तत्र प्रथमं वातरक्तनिदानम् ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः । क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ १ ॥

कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरावसवैः ॥ २ ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नातिजागरैः । प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् । स्थूलानां सुखिनाञ्चापि प्रकुप्येद्वातशोणितम् ॥ ३ ॥ हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च विदाह्यन्नं सविदाहाशनस्य ॥

क्षारो यवक्षारादिः । अजीर्णभोजनैः अजीर्णे भोजनैः अतिमात्रभोजनैरित्यर्थः । क्लिन्नादीनि मांसविशेषणानि । शुष्कमातपे शोषितम् । अम्बुजं मत्स्यादिमांसम् । आनूपं गौडादिपूर्वदेशजम् । पिण्याकं तिलखलिः । मूलकं प्रसिद्धमेव । निष्पाव (वोडा) शाकं पत्रशाकम् । आदिशब्देन वृन्ताकादीनां फलशाकादीनां फलं गृह्यते । दोषरहितमपि मांसं वातशोणितं प्रकोपयेत् । शीतादिषु मांसं विशेषतो वातशोणितं प्रकोपयेत् । आरनालसौवीरशुक्तानि सन्धानभेदाः । तक्रं चतुर्थांशजलयुक्तवस्त्रपूतं दधि । सुरा सन्धानभेदः । विरुद्धं क्षीरमत्स्यादि । अध्यशनम्–'अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशतमुच्यते' । अतिजागरो निशि । प्रायशः बाहुल्येन । सुकुमाराणां अल्पतरकायव्यापाराणाम् । अथ च मिथ्याहारविहारिणाम् अल्पाहारविहारिणाम् । स्थूलानां सुखिनां रक्तवृद्ध्या । हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतःयतः वायुर्वर्द्धते रुधिरञ्च अधोगच्छति । हत्या उपलणानि । पद्भ्यामपि चलतः । अश्नतश्च विदाह्यन्नम् । विदाहि निष्पावकुलत्थसर्षपशाकादि । सविदाहाशनस्य सविदाहमशन यस्य । भुक्ते विदग्धे तदुपरि भुञ्जानस्य इत्यर्थः । अध्यशनमुक्तमप्येतद्वचनं विदग्धं जीर्णम् । भोज-

नस्य विशेषतो हेतुत्वम् । पश्चात् वातशोणितं प्रकुप्यति इति अन्वयः। एतेषां कारणानां मध्ये केनचिद्वायुः केनचित् रक्तं केनचिदुभयमपि प्रकुप्येत् ॥

नमकीन, खट्टे, चरपरे, तीखे, जवाखारादि खारे चिकने और गरम ऐसे पदार्थोंका भोजन करनेसे, अत्यन्त भोजन करनेसे सडा हुआ तथा धूपमें सूखा हुआ ऐसा मछलियोंका तथा गौड आदि पूर्वदेशके जीवोंका मांस खानेसे, तिलोंकी खलको खानेसे, मूली, कुलथी उडद, लोविया, पत्रशाक, बैंगन आदि फल शाक और मांसको खानेसे, ईख, दही, आरनाल, सौवीर शुक्त, तक्र, सुरा और आसवको सेवन करनेसे, दूधके साथ मछली आदि विरुद्ध आहार करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, क्रोध करनेसे, दिनमें सोनेसे और अत्यन्त रात्रिमें जागनेसे प्रायः मिथ्याहार विहार करनेवाले, सुकुमार, स्थूल शरीरवाले और बैठे रहकर सुख भोगनेवाले, हाथी घोडेपर चढकर जानेवाले तथा बहुत मार्ग चलनेवाले, लोविया, कुलथी, सरसों आदि शाकको भक्षण करनेवाले और भोजनके विदग्ध पाक होनेपर भोजन करनेवाले मनुष्योंके वायु तथा रुधिर प्रकुपित होता है। इन सब कारणोंनें किसी कारणसे वायु कुपित होती है. किसी कारणसे रुधिर प्रकुपित होता है और किसी कारणसे दोनों कुपित होते हैं ॥ १-३ ॥

कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च दुष्टं शीघ्रं पादयोश्चीयते तु । तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥ ४ ॥

अथ सम्प्राप्तिमाह—कृत्स्नेत्यादि । पूर्वोक्तैर्हेतुभिः कृत्स्नं समस्तम् । अधोगतं पादयोः चीयते सञ्चितं भवति । तत्-रुधिरम् दूषितेन स्वहेतुभिर्वायुना सम्पृक्तं मिलितम् वातरक्तम् उच्यते ॥

ऊपर कहे हुए कारणोंसे सम्पूर्ण रुधिर तत्काल बिगड जाता है और वह बिगडा हुआ रुधिर नीचे जाकर दोनों पांवोंमें एकत्रित होजाता है । यह रुधिर कारणोंसे दूषित होकर वायुके साथ मिल जाता है और इसमें वायुकी प्रबलता होती है, इस कारण इसको वातरक्त कहते हैं ॥ ४ ॥

ननु च एतस्य सम्प्राप्तिरुक्ता सुश्रुतेन- "शीघ्रं रक्तं दुष्टिमायाति तच्च वायोर्मार्गं संरुणद्ध्याशु चैव । क्रुद्धोऽत्यर्थं मार्गरोधात्स वायुरत्युद्रिक्तं दूषयेद्रक्तमाशु ॥ ५ ॥" इति । अत्र प्रथमं रक्तस्य दुष्टिरतो रक्तवातमिति व्यपदेष्टुमुचितं भवति ।

शंका—"रुधिर तत्काल बिगड जाता है और वह शीघ्रगतिवाला रुधिर वायुके मार्गको तुरन्त रोक देता है। मार्गके रुकनेसे अत्यन्त कुपित हुई वायु अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुए रुधिरको तत्काल दूषित करती है" ॥ ५ ॥

इस सुश्रुतके वचनमें प्रथम रुधिरका बिगडना कहा है, इस कारण इस रोगको "रक्तवात" ऐसा कहना ठीक था; किन्तु 'वातरक्त' ऐसा नाम क्यों कहा ?

तत्राह-तत्प्राबल्यादिति । तस्य वातस्य दोषत्वेन प्रधान्यात् वातरक्तमिति व्यपदिश्यते ॥

समाधान-दोषोंके कारणोंसे इस रोगमें वायुकी प्रधानता है, इस कारण यह रोग वातरक्त कहा जाता है ॥

अथ वातरक्तपूर्वरूपम् ।

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्ष्ण्यं स्पर्शाज्ञत्वं

---

१ निर्विकार मांस भी वायु तथा रुधिरको कुपित करता है और सडा हुआ तथा धूपमें सुखाया हुआ तो विशेष करके वात और रक्तको कुपित करता ही है ॥

क्षतेऽतिरुक् । सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनं पिडिकोद्गमः ॥ ६ ॥ जानुजंघोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु । निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ ७ ॥ कण्डूः सन्धिषु रुग्दाहो भूत्वा नश्यति चासकृत् । वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ ८ ॥

घर्मागमनमत्यर्थं भवति, न वा सर्वथा भवति, एतच्च व्याधिमहिम्ना कुष्ठवद्बोद्धव्यम् । क्षतेऽतिरुक्-यदि क्षतं स्यात् तदा तत्र अतिरुक् । सदनम्-सुप्तिः । अङ्गानां पिडिकाप्रादुर्भावः । जान्वादिषु निस्तोदः पीडाविशेषः । वैवर्ण्यमुत्वक्कान्तिक्षयः ॥

जब वातरक्त होनेको होता है तब पसीना अत्यन्त आता है अथवा किंचिन्मात्र भी नहीं आता । शरीरमें कृशता, स्पर्शका ज्ञान नष्ट हो जाता है, व्रण हो तो उसमें अत्यन्त पीडा होती है; सन्धियोंमें शिथिलता, आलस्य, अंगोंमें जडता, फुडियां फुंसियोंका निकलना, जानु, जंघा, ऊरु, कटि, हाथ, पांव और सम्पूर्ण अंगोंकी सन्धियोंमें शस्त्र छेदने सरीखी पीडा होती है तथा अङ्ग फडकते हैं, मेद बढ जाता है, भारीपन, ग्लानि खुजली, संधियोंमें व्यथा, वारम्वार दाह होकर शान्त होना त्वचाकी कांतिका नष्ट हो जाना और अंगोंमें चकत्ते पडजाते हैं ॥

पसीनेका अत्यन्त होना अथवा किंचिन्मात्र भी नहीं होना, यह व्याधिके प्रभावसे होता है ॥ ६-८ ॥

अथ वाताधिक्यवातरक्तलक्षणम् ।

वातेऽधिकेऽधिके तत्र शूलं स्फुरणतोदनम् । शोथस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावता वृद्धिहानयः ॥ ९ ॥ धमन्यङ्गुलिसधीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् । शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः ॥ १० ॥

वातरक्तमें वायुकी अधिकता होय तो शूल होता है । अंगोंका फडकना, व्यथा, सूजनमें रूक्षता तथा कालापन और कुछेक लाली लिये हुए कालापन होता है सूजन बढती है, घटती है, नाडियोंमें तथा अंगुलियोंकी संधियोंमें संकोच होता है अङ्ग रह जाते हैं, अत्यन्त व्यथा होती है, शीतपर द्वेष होता है, शरीर अकड़ जाय, कम्प और स्पर्शका ज्ञान नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥ १० ॥

तत्र पादयोः शूलादिकम् । यत आह सुश्रुतः- "स्पर्शोद्विग्नौ तोदभेदप्रशोफौ स्वापोपेतौ वातरक्तेन पादौ " इति । तथा शोथस्य रौक्ष्यादिकं वृद्धिहानयश्च विज्ञेयाः । सुप्तिः स्पर्शाज्ञता ॥

शूल तथा फडकना आदि पांवमें ही होते है, ऐसा जानना, कारण यह है कि-"वातरक्तमें दोनों पांव स्पर्शसे उद्वेगको प्राप्त होते हैं और दोनों पांवोंमें व्यथा, भेदन, सूजन तथा जडता होती है" ऐसा सुश्रुतने कहा है ॥

अथ रक्ताधिक्यवातरक्तलक्षणम् ।

रक्ते शोथोऽतिरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते । स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः ॥ ११ ॥ रक्तेऽधिक इत्यनुवर्तनीयम् । एवं वक्ष्यमाणपित्तादिषु इति । एतच्च आरम्भकरक्ताद्रक्तान्तरं बोद्धव्यम् । रक्तमपि रक्तान्तरदूषकं भवति । यदुक्तं दुष्टरक्तलक्षणम्-'पित्तवद्रक्तेन अतिकृष्णं च' इति । अतिरुक् तोदः अतिरक्तादौ यत्र सः । शोथः चिमिचिमायते चिमिचिमेति कण्डूभेदः, स्पर्शाप्रियेति यावत् । 'चुहचुहा' इति

लोके, तद्युक्तः क्लेदसमन्वितः-क्लेद आर्द्रता, तद्युक्तः ॥

वातरक्तमें रुधिरकी अधिकता हो, तो अत्यन्त व्यथायुक्त तोडने सरीखी पीडा सहित, लालरंगकी खुजली और क्लेदसंयुक्त सूजन होती है। इसमें चिमचिम ऐसा होता है और स्निग्धपदार्थ तथा रूक्ष पदार्थोंसे यह सूजन शान्त नहीं होती है। इसमें जो रुधिरकी अधिकता होती है, वह रुधिर वातरक्तके उत्पन्न करनेवाले रुधिरसे अलग समझना चाहिये, क्योंकि, रुधिर भी अन्य रुधिरको दूषित करता है ॥ ११ ॥

अथ पित्ताधिक्यवातरक्तलक्षणम्।

पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदः स्तृषा। स्पर्शासहत्वं रुग्दाहः शोथःपाको भृशोष्णता ॥ १२ ॥

पित्ते अधिके विदाहः विशेषेण दाहः। विदाहदयश्च पादयोरेव बोद्धव्याः। य आह सुश्रुतः-"पित्तासृग्भ्यामुग्रदाहौ भवेतामत्यर्थोष्णौ रक्तशाथौ मृदू च। पादाविति शेषः। संमोहः आतुरस्य। स्वेदः पादयोः। मूर्च्छा पादयोः समुच्छ्रायः शोथ इति यावत्। न तु मूर्च्छा मोहः। संमोहस्य उक्तत्वात् ॥

वातरक्तमें जो पित्तकी अधिकता हो तो अत्यन्त दाह होती है, रोगी बहुत बेहोश हो जाता है, पसीने आते हैं, मूर्च्छा आती है, मद होता है; तृषा लगती है, स्पर्शको नहीं सह सकता, व्यथा, शरीरमें दाह, सूजन पकती है और बहुत गरमी होती है, अत्यन्त दाहका होना और किसीके स्पर्शको नहीं सहना इत्यादि धर्म पांवमें होते हैं। क्योंकि "पित्तसे और रुधिरसे दोनों पांव अत्यन्त दाहयुक्त, अत्यन्त गरम, लाल, सूजनयुक्त और मृदुतायुक्त होते हैं" ऐसा सुश्रुतमें कहा है ॥१२॥

अथ कफाधिकद्विदोषत्रिदोषाधिकवातरक्तलक्षणम्।

कफे स्तैमित्यगुरुता सुप्तिः स्निग्धत्वशीतता। कण्डूर्मन्दा च रुग्द्वन्द्वसर्वलिङ्गश्च सङ्करे ॥ १३ ॥ कफे अधिके स्तैमित्यं शरीरस्यार्द्रचर्मावगुण्ठितत्वमिव। गुरुतादयः पादयोरेव। यत आह सुश्रुतः-"कण्डूमन्तौ श्वेतशीतौ सशोथौ पीनौ स्तब्धौ श्लेष्मदुष्टे तु रक्ते" पादाविति शेषः। अधिकद्विदोषम् अधिकत्रिदोषं च। तदाह-"द्वन्द्वसर्वलिङ्गं च सङ्करे' इति। संकरे-द्वित्रिदोषसंसर्गे ॥

वातरक्तमें जो कफकी अधिकता हो तो शरीर गीले चमडेसे ढके हुएकी माफिक मालूम होता है, भारीपन होता है, जडता होती है, स्निग्धता होती है शीतता होती है, कुछ कुछ खुजली चलती है और व्यथा होती है दो दोषोंकी अधिकता हो तो दोनों दोषोंके लक्षण होते हैं। भारीपन तथा जडता आदि पांवमें होती है. ऐसा जानना कारण यह है कि, रुधिर जब कफसे दूषित होता है तो पांवोंमें खुजली, सफेद और शीतल सूजन युक्त कठिन और स्तब्ध हो जाते हैं, ऐसा सुश्रुतमें कहा है ॥ १३ ॥

अथ वातरक्तप्रसर्पणप्रकारः।

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि। आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनुसर्पति १४

आखोर्मूषकस्य। आखोर्विषमिवेत्यनेनमन्द विसर्पत्वंबोधितम्। देहमनुसर्पति-अप्रतिक्रियाणाम्॥

पांवोंकी जडमें और किसी समय हाथोंकी जडमेंसे उत्पन्न होकर जिस प्रकार चूहेका विष धीरे धीरे शरीरमें फैलता है, उसी प्रकार कुपित हुआ वातरक्त चिकित्सा नहीं करनेवाले मनुष्योंके शरीरमें धीरे धीरे फैलता है ॥१४॥

अथ वातरक्तोपद्रवाः ।

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः । मूर्च्छा चाऽमन्दरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ॥ १५ ॥ हिक्कापाङ्गुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः । अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥ १६ ॥

मांसकोथः–मांसगलनम् । मूर्च्छा-तदङ्गसमुच्छ्रायः । अमन्दरुक्-पीडाबाहुल्यम् । प्रवेपकः–कम्पः । प्रवेपनं प्रवेपः, ततः स्वार्थे कः ॥

निद्राका नहीं आना, अरुचि, श्वास, मांस गलगलकर गिरना, शिरमें व्यथा, मूर्च्छा, कम दीखना, तृषा, ज्वर, मोह, कम्प, हिचकी पंगुता, विसर्प-चकत्तोंका होना, पकना, सुई चुभाने सरीखी पीडा, भ्रम, ग्लानि, अंगुलियोंका टेढा हो जाना, फूटना, दाह मर्मस्थानोंमें पीडा और अर्बुद (गांठ) ये सब वातरक्तके उपद्रव जानने ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ वातरक्तासाध्ययाप्यसाध्यता ।

एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यं मोहेनैकेन चापि यत् । अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥ १७ ॥

मोहेनैकेनेति वचनम्-अस्वप्नादिभिः समस्तैरसाध्यत्वं बोधयति ॥

उपरोक्त सब उपद्रव वातरक्तमें हों तो उसको असाध्य जानना अथवा केवल एक मोह ही हो तो भी उसके असाध्य जानना और जो इन उपद्रवोंमें थोडे बहुत उपद्रव हों तो उस वातरक्तको याप्य समझना और जो कोई उपद्रव न हों तो उसको साध्य समझना ॥ १७ ॥

एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः ॥ १८ ॥

नवम्-संवत्सरात् अर्वाचीनम्, तत्साध्यम् ॥

जो वातरक्त एक दोषवाला और एक वर्षका हो तो उसको साध्य जानना । दो दोषवालेको याप्य जानना और तीनों दोष युक्त अथवा जिसमें सब उपद्रव हों तो उसको असाध्य जानना ॥ १८ ॥

आजानु स्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्तुतश्च यत् । उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः । वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ १९ ॥

आजानु-पद्भ्यां जानुपर्यन्तं यद्भवेत्तदसाध्यं स्यात् । स्फुटितं यच्च त्वङ्मात्रे शीतेनेव किंचिद्विदीर्णम् । प्रभिन्नम्-अधिकविदीर्णम् । प्रस्रुतम्-वहत् ॥

जो वातरक्त पांवोंसे लेकर घुटनोंतक फैले, उसको असाध्य जानना । जिस प्रकार शीतसे त्वचा फटजाती है, उसीप्रकार जिस वातरक्तमें त्वचा फट जाय उसको असाध्य जानना । जो वातरक्त अत्यन्त फटगया हो अथवा बलक्षय या मांसक्षयआदि उपद्रवोंसे संयुक्त हो तो उसको असाध्य जानना । जो वातरक्तको उत्पन्न हुए एक वर्ष हुआ हो, उसको याप्य जानना ॥ १९ ॥

अथ वातरक्तचिकित्सा ।

वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् । अल्पाल्पं रक्षयेद्वायुं यथादोषं यथाबलम् ॥ २० ॥

रक्षयेत् वायुम्-यथावायुर्न वर्द्धते तथा रक्तं हरेदित्यर्थः ॥

प्रथम वातरक्तवाले रोगीको स्नेहपान आदिसे स्निग्ध करके उसके दोष और बलानुसार थोडा २ रुधिर बारंबार निकलवावे । किन्तु रुधिरको निकलवानेमें वायुकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये अर्थात् जिससे वायु न बढे उस रीतिसे रुधिर निकलवाना चाहिये ॥२०॥

उग्राङ्गदाहतोदेषु जलौकोभिर्विनिर्हरेत् ॥ २१ ॥ शृङ्गन्तु वै चिमिचिमाकण्डूरुग्वेपनान्वितम् । प्रच्छन्नेन शिराभिर्वा देशाद्देशान्तरं व्रजत् ॥ २२ ॥

निर्हरेत्-निष्कासयेत् । चिमिचिमा 'चुहचुहा' इति लोके । प्रच्छन्नम् 'पछाना' इति लोके । व्रजदिति रक्तविशेषणम् ॥

घोर दाह होता हो अथवा सुई चुभोने सरीखी पीडा होती हो तो जोंक लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये । चमचमाहट, खुजली, व्यथा तथा कम्प हो तो सिंगी लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये और वातरक्त शरीरके एक प्रदेशमेंसे दूसरे प्रदेशमें जाता हो तो पछना लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

अङ्गे म्लाने तु न स्राव्यं रक्षेद्वातोत्तरश्च यत् ॥ २३ ॥ गम्भीरं श्वयथुं स्तम्भं कम्पवायुशिरामयान् । ग्लानिमन्यांश्च वातोत्थान् कुर्याद्वायुरसृक्क्षयात् ॥२४॥ खञ्जादीन् वातरोगांश्च मृत्युश्चानवशोषितम् । कुर्यात्तस्मात् प्रमाणेन स्निग्धाद्रक्तं विनिर्हरेत् ॥ २५ ॥

शरीरमें ग्लानि यदि हो तो रुधिर नहीं निकालना चाहिये और यदि निकालें तो जिससे वायुकी वृद्धि न हो, ऐसी रीतिसे निकालना चाहिये । रुधिरके क्षय होनेसे वायुकी वृद्धि हो तो गम्भीर सूजन, अकडपन कम्प, शिराओंमें पीडा, ग्लानि और अन्यान्य भी वातसम्बन्धीरोग उत्पन्न होते हैं । रुधिर जो योग्य रीत्यनुसार अवशेष न रहे तो खंजतादि वातरोगोंको उत्पन्न करता है तथा मरणको भी करता है, इस कारण वातरक्तरोगीको स्निग्ध करके उसके शरीरमेंसे प्रमाणके सनान रुधिर निकलवावे ॥ २३-२५ ॥

विरेच्यः स्नेहयित्वाऽऽदौ स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः । रूक्षैर्वा मृदुभिः शस्तमसकृद्बस्तिकर्म च । नहि वस्तिसमं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥ २६ ॥

वातरक्त रोगीको प्रथम स्निग्ध करके स्नेहयुक्त दस्तावर औषधि अथवा रूक्ष या कोमल विरेचन औषधि देकर मलरहित करे । वातरक्त रोगीको वारंवार पिचकारी लगाना भी उत्तम है । पिचकारीके समान वातरक्तका अन्य उपाय नहीं है ॥ २६ ॥

बाह्यमालेपनाभ्यङ्गपरिषेकोपनाहनैः । विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् २७

जो वातरक्त बाहर हो तो आलेपन, अभ्यंग, सेचन तथा औषधियोंको बांधकर चिकित्सा करनी चाहिये और जो वातरक्त गम्भीर हो तो रेचन, निरूहवस्ति तथा स्नेहपानसे चिकित्सा करे ॥ २७ ॥

दिवास्वप्नं ससन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा । कटूष्णगुर्वभिष्यन्दि लवणाम्लौ च वर्जयेत् ॥ २८ ॥

वातरक्तरोगी दिनमें सोना, धूपका सेवन, दण्ड कसरत, आदि, मैथुन, कडवे रसवाले पदार्थ, भारी पदार्थ, अभिष्यन्दी पदार्थ, नमकीन पदार्थ और अम्ल रसके पदार्थोंको त्याग देवे ॥ २८ ॥

पुराणा यवगोधूमा नीवाराः शालिषष्टिकाः । भोजनार्थे रसार्थे तु विष्किराः प्रतुदा हिताः ॥ २९ ॥

वातरक्तरोगीके भोजनके लिये पुराने जौ, पुराने गेहूँ, नीवार लालशालिधान तथा सांठीधान हितकारी हैं । और विष्किर मुरगा आदि तथा प्रतुद तोता चिडे आदि जातिके पक्षियोंका मांसरस हितकारी है ॥ २९ ॥

आढक्यश्चणका मुद्गा मसूराः सकुलत्थकाः । यूषार्थे बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता

वातशोणिते ॥ ३० ॥ सुनिषण्णकवेत्राग्रकाकमाचीः शतावरीम् । वास्तुकोपोदिकाशाकं शाकं सौवर्चलं तथा । घृतमांसरसैर्भृष्टं शाकसात्म्याय दापयेत् ॥ ३१ ॥

सुनिषण्णः—चांगेरीसदृशः चतुष्पत्रशाकः, सजले स्थले भवति । 'सूसुनि' इति लोके । धवलो चिल्मी इति कचित् ।

वातरक्तरोगीको यूषके लिये अरहर, चने मूँग, मसूर और कुलथी इनके बहुत घीवाले यूष हितकारी हैं । जिनको शाक सात्म्य है, ऐसे वातरोगियोंको शिरिआरी, वेतका अग्रभाग, पुनर्नवा, शतावर, बथुआ, पोई और ब्राह्मी इनका शाक घीमें तथा मांसरसमें भूनकर सेवन कराना चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनवस्तिभिः ॥ ३२ ॥ सुखोष्णैरुपनाहैश्च वातोत्तरमुपाचरेत् । हितो गोधूमचूर्णस्य च्छागीक्षीरघृताप्लुतः ॥ ३३ ॥

घी, तेल, चरबी और मज्जा इनका पान, अभ्यंग, वस्तिकर्म और सुखोष्ण उपनाह इनसे वातोत्तर वातरक्तकी चिकित्सा करनी चाहिये । बकरीके घीमें अथवा दूधमें गेहूँके आटेको उबालकर उसका लेप करनेसे वातरक्त शान्त होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

लेपस्तद्वत्तिला भृष्टाः पिष्टाः पयसि निर्वृताः । क्षीरपिष्टातसीलेपो वर्द्धमानफलेन वा ॥ ३४ ॥ उभे शताह्वे मधुकं बलां च प्रियालकं चापि कसेरुकं च । विदारिकन्दश्च सितोपलाश्च कुर्यात्प्रदेहं पवने सरक्ते ॥ ३५ ॥

तिलोंको भूनकर पीसलेवे, फिर दूधमें पकाकर उसका लेप करे अथवा अलसीको दूधमें पीसकर उसका लेप करे अथवा अंडीको पीसकर लेप करना हितकारी है । सोंफ, काशनी, मुलहठी, खिरैंटी, चिरौंजी, कसेरू, विदारीकन्द और खांड इनको घीमें पीसकर लेप करनेसे वातरक्त शान्त होता है ॥ ३४–३५ ॥

रास्ना गुडूची मधुकं बले द्वे सजीवकं सर्षभकं पयश्च । घृतं च सिद्धं मधुशेषयुक्तं रक्तानिलार्तिं प्रणुदेत् प्रदेहः ॥ ३६ ॥

रासना, गिलोय, दो प्रकारकी खिरैंटी, जीवक, ऋषभक दूध और घी इनको एकत्र पकावे और उसमें मोम मिलाकर उसका गाढा लेप करनेसे वातरक्तकी पीडा शान्त होती है ॥ ३६ ॥

वासागुडूचीचतुरङ्गुलानमेरण्डतैलेन पिबेत् कषायम् । क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥ ३७ ॥

अडूसा, गिलोय, और अमलतास इनका क्वाथ बनाकर उसमें अंडीका तेल डालकर पीनेसे सम्पूर्ण शरीरमें उत्पन्न हुआ वातरक्त विकार अनुक्रमसे सर्व प्रकारसे नष्ट होजाता है ॥ ३७ ॥

दशमूलीशृतं क्षीरं सद्यः शूलनिवारणम् । परिषेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा ॥ ३८ ॥

वाताधिक्य वातरक्तमें दशमूलसे पकाये हुए दूधको पान करे और सुहाते सुहाते गरम घीका सेचन करे, इससे तत्काल शूल शान्त होता है ॥ ३८ ॥

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलाऽमृतसाधितम् । क्वाथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥ ३९ ॥

कडवे परवल, कुटकी, सतावर, त्रिफला और गिलोय इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे दाहयुक्त, वातरक्त शान्त हो जाता है ॥ ३९ ॥

त्रिवृद्विदारीक्षुरकक्वाथो वातास्रनाशनः । अमृता कफवातघ्नी कफमेदोविशो-

षिणी। वातरक्तप्रशमनी कण्डूवीसर्पनाशिनी ॥ ४० ॥ गुडूच्याः स्वरसं कल्कं चूर्णं वा क्काथमेव च। प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात्॥४१॥

निसोत, विदारीकन्द और गोखरू इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे वातरक्तका नाश होता है।गिलोय-कफ और वायुको हरनेवाली है,कफ तथा मेदको सुखानेवाली है,वातरक्तको शान्त करनेवाली है और खुजली तथा विसर्पको हरनेवाली है। इसलिये गिलोयके स्वरसको, कल्कको, चूर्णको अथवा क्वाथको वहुत दिनोंतक सेवन करे तो वातरक्तसे मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अमृतानागरधान्यककर्षत्रितयेन पाचनं सिद्धम्। जयति सरक्तं वातं सामं कुष्ठान्यशेषाणि ॥ ४२ ॥

गिलोय १ तोला, सोंठ १ तोला और धनियाँ १ तोला इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे वातरक्त, आमवात और सर्व प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ४२ ॥

वत्सादन्युद्भवः क्काथः पीतो गुग्गुलुमिश्रितः। समीरणसमायुक्तं शोणितं सम्प्रणाशयेत् ॥ ४३ ॥ तिस्रोऽथवा पञ्च गुडेन पथ्या जग्ध्वा पिबेच्छिन्नरुहाकषायम्। तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णमाजानुभिन्नं च्युतमप्यवश्यम् ॥ ४४ ॥

गिलोयका क्वाथ बनाकर उसमें गूगल डालकर पीनेसे वातरक्तका नाश होता है। तीन अथवा पांच हरडोंका चूर्ण बनाकर गुडमें मिलाकर खाय और उसके ऊपर गिलोयका क्वाथ पीवे तो घुटनोंतक भेदा हुआ और स्रवता हुआ भयंकर वातरक्त अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

गुग्गुलवमृतवल्लीभिर्द्राक्षाळुङ्गरसेन वा। त्रिफलाया रसैर्युक्ता गुटिकाः कोलसम्मिताः ॥ ४५ ॥ भक्षयेन्मधुनाऽऽलोड्य शृणु कुर्वंति यत्फलम्। पादस्फोटं महाघोरं स्फुटत्सर्वाङ्गसञ्चयम्। तत्सर्वं नाशयत्याशु साध्यश्चैव सशोणितम् ॥ ४६ ॥ माहिषं नवनीतं तु बलिना परिमिश्रितम्। गोमूत्रमिश्रितं कृत्वा क्षीरेण लवणेन च ॥ ४७ ॥ तदेकत्र समालोड्य वह्निना भावयेच्छनैः। गात्रमुद्वर्तयेत्तेन देहस्फुटनशान्तये ॥ ४८ ॥

गूगल और गिलोय इनको दाख और बिजौर नींबूके रसमें अथवा त्रिफलाके रसमें बेरकी बराबर गोली बनाकर उनको शहदमें मिलाकर चाटनेसे महाघोर और सम्पूर्ण अङ्गोंको तोडनेवाला पादस्फोट रोग और वातरक्त तत्काल नष्ट हो जाते हैं। यह औषधि 'गुग्गुलवटिका' कही जाती है। आमलेसार गन्धकको भैंसके माखन, गोमूत्र, दूध, और सैंधेनिमकके साथ मिलाकर धीरे धीरे अग्निसे गरम करके शरीरमें लगानेसे अङ्गोंका फटना शांत होता है ॥ ४५ ॥ ४८ ॥

घृतेन वातं सगुडा विबन्धं पित्तं सिताढ्या मधुना कफञ्च। वातासृगुग्रं रुबुतैलमिश्रा शुण्ठ्याऽऽमवातं शमयेद् गुडूची ॥ ४९ ॥

गिलोय-घीके साथ सेवन की जाय तो वायुको नष्ट करती है। गुडके साथ सेवन की जाय तो मलवन्धको दूर करती है। खांडके साथ सेवन की जावे तो पित्तको शान्त करती है। सहतके साथ सेवन की जाय तो कफ नष्ट होता है अंडीके तेलके साथ सेवन की जाय तो उग्र वातरक्त नष्ट होता है और सोंठके क्वाथके साथ सेवन की जाय तो आमवातको शान्त करती है ॥ ४९ ॥

सिंहास्यपञ्चमूलीछिन्नरुहैरण्डगोक्षुरक्काथः। एरण्डतैलरामठसैन्धवचूर्णान्वितः पीतः

॥ ५० ॥ प्रशमयति वातरक्तं तथाऽऽमवातं कटीशूलम् । मूत्रपुरीषविबन्धं ब्रध्नविकारं सुदुर्वारम् ॥ ५१ ॥

अडूसा, पञ्चमूल, गिलोय, एरंड और गोखरू इनका क्वाथ बनाकर उसमें अंडीका तेल, हींगका चूर्ण और सैंधेनिमकका चूर्ण डालकर पीनस वातरक्त आमवात, कटिशूल, मूत्र तथा मलका अवरोध और दुःसाध्य ब्रध्न रोग भी नष्ट होजाता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

गन्धर्वहस्तवृषगोक्षुरकामृतानां मूलं बलेक्षुरकयोश्च पचेत्तु धीमान् । वातासृगाशु विनिहन्ति चिरप्ररूढमाजानुगं स्फुटितमूर्ध्वगतन्तु धीमान् ॥५२॥

एरंड, अडूसा, गोखरू, गिलोय, खिरैंटी और गोखरू इनकी जड़का क्वाथ बनाकर पीनेसे बहुत दिनोंका, घुटनोंतक पहुँचा हुआ फटा हुआ और ऊपरको चलता हुआ उग्र वातरक्त तात्काल नष्ट होजाता है ॥ ५२ ॥

कफपित्तप्रशमनं कण्डूवीसर्पनाशनम् । वातरक्तप्रशमनं हृद्यं गुडघृतं स्मृतम् ॥ ५३ ॥

गुडके साथ घीको मिलाकर सेवन करनेसे कफ और पित्तको शान्त करता है, कण्डू और विसर्पको नष्ट करता है, वातरक्तको शान्त करता है और हृदयको भी हितकारी है॥५३॥

पिप्पलीवर्द्धमानं वा सेव्यं पथ्या गुडेन वा ॥ ५४ ॥

वर्द्धमानपिप्पलीको सेवन करनेसे अथवा हरडके चूर्णको गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे वातरक्त शान्त होता है ॥ ५४ ॥

कोकिलाक्षामृताक्राथे पिबेत्कृष्णां यथाबलम् । पथ्यभोजी त्रिसप्ताहान्मुच्यते वातशोणितात् ॥ ५५ ॥

तालमखाना तथा गिलोय इनका क्वाथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे इक्कीस दिनमें वातरक्त नष्ट होजाता है । परन्तु अग्निके बलानुसार इसपर पथ्य भोजन करना चाहिये ॥ ५५ ॥

मधुकाद् द्विगुणं तैलं तैलादाजं पयो भवेत् । तद्यथाग्निबलं पेयं वातरक्तरुजापहम् ॥ ५६ ॥

मुलहठी, मुलहठीसे दुगुना तेल और तेलसे दुगुना बकरीका दूध इन सबको मिलाकर अग्निके बलानुसार पीवे तो वातरक्त नष्ट होजाता है ॥ ५६ ॥

अगस्तिपुष्पचूर्णेन माहिषं जनयेद्दधि । तदुत्थनवनीतेन देहजं स्फुटनं जयेत् ॥ ५७ ॥

अगस्त्यके फूलोंका चूर्ण बनाकर भैंसके दूधमें डालकर दही जमावे फिर उसमेंसे माखन निकालकर उपयोग करे तो शरीरका फटना दूर होजाता है ॥ ५७ ॥

त्रिफला निम्बमञ्जिष्ठा वचा कटुकरोहिणी । वत्सादनी दारुनिशा कषायो नवकार्षिकः । वातरक्तं तथा कुष्ठं पामानं रक्तमण्डलम् ॥ ५८ ॥ कण्डूकपालिका कुष्ठं पानादेवापकर्षति । पञ्चरत्तिकमापेण कषायो नवकार्षिकः ॥ ५९ ॥ किञ्चैवं साधिते क्काथे योग्या मात्रा प्रदीयते । कर्षादौ तु पलं यावद्दद्यात् षोडशिकं जलम् ॥ ६० ॥ ततस्तु कुडवं यावद्दद्यादष्टगुणं जलम् । चतुर्गुणमतश्चोर्ध्वं यावत्प्रस्थादिकं भवेत् ॥ ६१ ॥

हरड, बहेडा, आमला, नीम, मंजीठ, वच, कुटकी, गिलोय और दारुहलदी ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर उसका काथ बनाकर पिये तो बातरक्त, कोढ,

पामा, रक्तमण्डल, कण्डू और कपालकुष्ठ तत्काल नष्ट होता है । सोलह सोलह मासेका एक एक तोला होता है, यहां पांच२ रत्तीका एक एक मासा जानना । इसको नवकार्षिक ' क्वाथ कहते हैं, इसमेंसे योग्य मात्रानुसार पीवे । क्वाथ करनेके लिये एक तोलासे लेकर चार तोलेतक औषधिमें सोलह गुना जल डालना चाहिये । इसके ऊपर सोलह तोले औषधिमें अठगुना जल डालना चाहिये और इसके उपरान्त चौंसठ तोले-तक औषधिमें चौगुना पानी डालना चाहिये ॥ ५७ ॥ ६१ ॥

विरेचनैर्घृतक्षीरपानैः सेकैःसवस्तिभि । लेपनं शाल्मलीकल्कमविक्षीरेण संयुतम् ॥ ६२ ॥

विरेचन, घी तथा दुग्धपान, सेवन और पिचकारी लगाना तथा सेमलके चूर्णको भेडके दूधमें लेप करना इनसे वातरक्त नष्ट होता है ॥ ६२ ॥

रक्तोत्तरं क्षीरघृतं मधुकोशीरवारिभिः । सेचनं चात्र कर्तव्यमविक्षीरैःक्षणं क्षणम् ॥ ६३ ॥ सहस्रशतधौतेन घृतेन रुधिरोत्तरे। लेपन सुष्ठु शीतेन घृतसर्जरसेन वा ॥ ६४ ॥ शीतैर्निर्वापणैश्चापि रक्तपित्तोत्तरं जयेत् ॥ ६५ ॥

वातरक्तमें रुधिरकी अधिकता हो तो दूध, घी, मुलहठीका पानी और खसका पानी इनसे अथवा भेडके दूधसे क्षण क्षण भरमें सेचन करें । सौवार अथवा हजारवार घृतको धोकर उस घीसे अथवा घी और राल इनको मिलाकर लेप करनेसे रुधिरकी अधिकतावाला वातरक्त नष्ट होजाता है । रुधिरकी तथा पित्तकी अधिकता वातरक्तमें हो तो उसको भी शीतल पदार्थोंसे सेचन करना चाहिये ॥ ६३-६५ ॥

सरागे सरुजे दाहे रक्तं विस्राव्य लेपयेत्। तिलाः प्रियालं मधुकं बिसमूलं च वेतसम् । सघृतं पयसा पिष्टं प्रलेपाद्दाहरोगनुत् ॥ ६६ ॥

लाल, दाह और व्यथायुक्त वातरक्त हो तो रुधिरको निकलवाकर पश्चात् तिल, चिरौंजी, मुलहठी, कमलकी जड और बेंत इनको दूधमें पीसकर घी डालकर गाढा लेप करे तो दाहकी पीडा शांत हो जाती है ॥ ६६ ॥

पित्तोत्तरे तु काश्मर्यद्राक्षारग्वधचन्दनैः ॥ ६७ ॥ मधुकक्षीरकाकोलीयुक्तैः क्काथं सुशीतलम् । शर्करामधुसंयुक्तं वातरक्ते पिबेन्नरः ॥ ६८ ॥

वातरक्तमें पित्तकी अधिकता हो तो कुम्भेरके फल, दाख, अमलतास, लाल चन्दन, मुलहठी और क्षीरकाकोली इनका क्वाथ वनाकर उसको अच्छी प्रकारसे शीतल करके उसमें खांड तथा सहत डालकर पीवे॥६७-६८॥

धारोष्णं मूत्रसंयुक्तं क्षीरं दोषानुलोमनम् । पिबेद्वा सत्रिवृच्चूर्णं पित्तरक्तावृतानिले ॥ ६९ ॥

मूत्रके साथ धारोष्ण दूधमें निसोतका चूर्ण डालकर पीनेसे पित्ताधिक्य वातरक्त नष्ट होता है, यह दोषोंको अनुलोमन करनेवाला है ६९॥

क्षीरेणैरण्डतैलं वा प्रयोगेण पिबेन्नरः । बहुदोषे विरेकार्थं जीर्णे क्षीरौदनाशनः ॥ ७० ॥

अधिक दोषवाले मनुष्य रेचन के लिये दूधके साथ अंडीका तेल पिये और जीर्ण होनेपर दूध भातका भोजन करे ॥ ७० ॥

पटोलं त्रिफला भीरुर्गुडूची कटुरोहणी । क्काथः पित्ताधिके शस्तः शर्करामधुसंयुतः ॥ ७१ ॥

कडवे परवल, त्रिफला, सतावर, गिलोय और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर उसमें खांड तथा सहत डालकर पीनेसे पित्ताधिक्य-वातरक्त शान्त होजाता है ॥ ७१ ॥

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् । वमनं मृदु नात्यर्थं स्नेहसेकौ विलङ्घनम् ॥ कोष्णाः सेकाश्च शस्यन्ते वातरक्ते कफोत्तरे ॥ ७२ ॥

वातरक्तमें कफकी अधिकता हो तो कडवी औषधियोंके द्वारा पकाये हुए घृतको पिये । वारंवार विरेचन लेवे, मृदुरीतिसे थोडी वमन करे, स्नेहपान करे और सुहाते २ गरम पदार्थोंसे सेंक करे और लंघन करे ॥ ७२ ॥

तैलमूत्रसुराशुक्तः परिषेकाः सदा हिताः ।

तैल, मूत्र, मद्य और शुक्तका पानी इनका सेचन करना हितकारी है ।

गौरसर्षपकल्केन प्रदेहो वा रुजापहः ॥ ७३ ॥

अथवा सफेद सरसोंका कल्क बनाकर उसका उत्तम रीतिसे गाढा लेप करनेसे भी पीडा शांत हो जाती है ॥ ७३ ॥

शिग्रुः सवरुणकल्को धान्याम्लेनानिलार्तिजिल्लेपात् । भवति न वेति विकल्पो न विधेयः सिद्धयोगेऽस्मिन् ॥ ७४ ॥

सहिंजना और वरना इनको धान्याम्लनामक कांजीमें पीसकर लेप करनेसे वातरक्तकी पीडा शान्त होजाती है । यह सिद्धयोग है, इसमें कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ७४ ॥

कल्कः श्लेष्मोत्तरे लेपो वाजिगन्धानिलोद्भवः । लेपः सर्षपनिम्बार्कहिंस्राक्षारतिलैर्हितः ॥ श्रेष्ठः सक्तुघृतक्षारकपित्थत्वग्भिरेव च ॥ ७५ ॥

असगन्ध और तिल इनका कल्क बनाकर लेप करनेसे कफाधिक्यवातरक्त नष्ट होजाता है । सरसों, नीम, आक, बालछड, जवाखार और तिल इनका लेप करनेसे कफाधिक्यवातरक्त शान्त होजाता है । सत्तू, घी, जवाखार और कैथकी छाल इनको पीसकर लेप करनेसे कफाधिक्यवातरक्त शान्त होता है ॥ ७५ ॥

मसूरशिग्रोस्तद्बीजं हितं धान्याम्लसंयुतम् । मुहूर्तालिप्तमम्लैश्च सिञ्चेद्वातकफोत्तरे ॥ ७६ ॥

मसूरकी दाल और सहिंजनेके बीज इनको धान्याम्लनामक कांजीके साथ पीसकर इसका दो घडीतक लेप करे फिर खट्टेपदार्थोंसे सेचन करे तो वायुकी तथा कफकी अधिकतावाला वातरक्त शान्त होता है ॥ ७६ ॥

मुस्तामलकनिशाभिः क्वथितं तोयं समाक्षिकं पेयम् । जयति सदागतिरक्तं सकफं वा सततयोगेन ॥ ७७ ॥

नागरमोथा, आमले और हल्दी इनका काथ बनाकर सहत डालकर नित्य पीनेका अभ्यास करे तो केवलवातरक्त अथवा कफाधिक्यवातरक्त शान्त होता है ॥ ७७ ॥

हरिद्रामृतकक्वाथं मधुना मधुरीकृतम् । पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं वातरक्ते कफाधिके ॥ ७८ ॥

हल्दी तथा गिलोयका क्वाथ अथवा त्रिफलेका क्वाथ सहत डालकर पीनेसे कफाधिक्यवातरक्त नष्ट होता है ॥ ७८ ॥

हरीतकीं वा तक्रेण पाययेदुदकेन वा । गृहधूमो वचा कुष्ठं शताह्वा रजनीद्वयम् ॥ प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते वातकफोत्तरे ॥ ७९ ॥

तक्रके साथ अथवा जलके साथ हरडका चूर्ण सेवन किया जाय तो कफाधिक्यवातरक्तका नष्ट होता है । घरका धुआँ, वच, कूठ, सोया, हल्दी और दारुहलदी इनको एकत्र पीसकर

प्रलेप करनेसे वाताधिक्य और कफाधिक्य वातरक्तका शूल नष्ट होजाता है ॥ ७९ ॥

अमृता कटुका यष्टी शुण्ठीकल्कं समाक्षिकम् ॥ ८० ॥ गोमूत्रपीतं जयति सकफं वातशोणितम्। धात्रीहरिद्रामुस्तानां कषायं वा समाक्षिकम् ॥ ८१ ॥

गिलोय, कुटकी, मुलहटी और सोंठ इनका कल्क बनाकर सहत मिलाकर गोमूत्रके साथ पीनेसे कफाधिक्यवातरक्त नष्ट होता है अथवा आमले, हलदी और नागरमोथेका क्वाथ पिये तो परम हितकारी है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

अथ लाङ्गलीगुटिका।

लाङ्गल्यास्त्वमृतातुल्यं कन्दमुद्धृत्य यत्नतः। योजयेत्त्रिफलालौहरजस्त्रिकटुकैः समैः ॥ ८२ ॥ गुग्गुल्वमृतवल्लीभिर्द्राक्षालुङ्गरसेन वा। त्रिफलाया रसैर्युक्ता गुटिकाः कोलसंमिताः ॥ ८३ ॥ भक्षयेन्मधुनाऽऽलोड्य शृणुकुर्वन्ति यत्फलम्। पादस्फोटं च दुर्भग्नं जानुप्राप्तं च यद्भवेत् ॥ ८४ ॥ यच्च देहोद्गतं रक्तं यच्चासाध्यं प्रकीर्तितम्। घ्नन्त्येता भक्ष्यमाणस्य प्रबलं वातशोणितम्॥८५॥

कलिहारीका कंद यत्नपूर्वक लाकर और उस कन्दकी बराबर गिलोय लेवे तथा हरड, बहेडा, आमला लोहचूर्ण, सोंठ, मिरच और पीपल यह समान भाग मिला देवे फिर गूगल अथवा दाखके या बिजौरेके रससे अथवा त्रिफलेके रससे बेरके समान गोली बनावे इन गोलियोंको सहतमें मिलाकर खाय तो पादस्फोट, दुर्भग्न, घुटनोंतक प्राप्त हुआ असाध्य और शरीरमें रुधिर निकलता हुआ प्रबल वातरोग ये सब दूर होते हैं ॥ ८२-८५ ॥

अथ बलाघृतम्।

बलामतिबलां मेदामात्मगुप्तां शतावरीम्। काकोलीं क्षीरकाकोलीं रास्नां मृद्वीं च पेषयेत् ॥ ८६ ॥ घृतं चतुर्गुणं क्षीरं तैः सिद्धं वातरक्तनुत्। हृत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलादाहनाशनम् ॥ ८७ ॥

खिरैंटी, कंघी, मेदा, कौंछ, सतावर, काकोली, क्षीरकाकोली, रासना और दाख इनका कल्क डालकर चौगुने दूधमें घृतको सिद्ध करे। यह घृत वातरक्त, हृदयकी पीडा, पांडुरोग, विसर्प, कामला और दाहको दूर करता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

अथापरपिण्डतैलम्।

बलास्थिरानागबलागुडूचीशतावरीकल्ककषायसिद्धम्। तैलं विदध्यादनुवासनेषु तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णम् ॥ ८८ ॥

खिरैंटी, पृश्निपर्णी, गंगेरन, गिलोय और सतावर इनके कल्क और क्वाथसे तेलको सिद्ध करे। इस तेलकी पिचकारी लगावे तो प्रबल वातरक्त नष्ट होता है ॥८८॥

अथ पारूषकघृतम्।

त्रायन्तिका चालनकी द्विकाकोली शतावरी। कसेरुका कषायेण कल्कैरेभिः पचेद् घृतम् ॥ ८९ ॥ उभे परूषके द्राक्षाकाश्मर्यससुरद्रुमान्। पृथग्विदार्याः स्वरसं तथा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ९० ॥ एतदायोजितं सर्पिः पारूषकमिति स्मृतम्। वातरक्ते क्षते क्षीणे विसर्पे पैत्तिके ज्वरे ॥ ९१ ॥

त्रायमाणा, आमले, काकोली, क्षीरकाकोली, सतावर और कसेरू इनका क्वाथ बनाकर उसमें दोनों प्रकारके फालसे, दाख, कुम्भेरके फल तथा देवदारु इनका कल्क डालकर विदारीकन्दके स्वरससे घृतको चौगुने दूधमें पकावे तो पारूषकघृत सिद्ध होता है। इस घृतका उपयोग करनेसे वात-

रक्त, क्षय, क्षीणता, विसर्प तथा पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ८९-९१ ॥

अथ शतावरीघृतम् ।

शतावरीकल्कगर्भं रसे तस्याश्चतुर्गुणे । क्षीरतुल्यं घृतं सिद्धं वातशोणितनाशनम् ॥ ९२ ॥

सतावरका कल्क डालकर सतावरके चौगुने स्वरसमें दूधकी बराबर घी डालकर पकावे तो 'शतावरी घृत' सिद्ध होता है। इस घृतका उपयोग करनेसे वातरक्त नष्ट होता है ॥ ९२ ॥

अथर्षभकघृतम् ।

श्रावणीक्षीरकाकोलीक्षीरिकाजीवकैःसमैः। सिद्धं त्वार्षभकं सर्पिः सक्षीरं वातरक्तनुत् ॥ ९३ ॥ अत्र क्षीरम् चतुर्गुणम् ॥

गोरखमुंडी, क्षीरकाकोली, वंशलोचन और जीवक ये सब औषधि समान भाग लेकर कल्क बनाकर उस कल्कको डालकर चौगुने दूधमें घृतको सिद्ध करे, इसको 'ऋषभकघृत' कहते हैं। यह घी वातरक्तको नष्ट करता है ॥ ९३ ॥

अथ गुडूचीघृतम् ।

गुडूचीक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं घृतं शृतम् । हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम् ॥ ९४ ॥

गिलोयका क्वाथ और सोंठका कल्क डालकर चौगुने दूधमें घीको पकाकर सेवन करे तो यह घी वातरक्त तथा दुस्तर कोढको भी दूर करता है ॥ ९४ ॥

अथ द्वितीयं गुडूचीघृतम् ।

क्षीरं स्नेहमयं दद्याच्चतुर्भिश्च चतुर्गुणम् । एकद्वित्रिद्रवैर्द्रव्यैः कुर्यात्स्नेहाच्चतुर्गुणम् ॥ ९५ ॥ अमृतायाः कषायेण कल्केण च महौषधात् । मृद्वग्निना घृतं सिद्धं वातरक्तहरं परम् ॥ ९६ ॥ आमवाताढ्यवातादीन्कृमिकुष्ठव्रणानपि । आर्शांसि गुल्मांश्चतथा नाशयेदाशु योजितम् ॥९७॥

गिलोयका क्काथ और सोंठका कल्क डालकर मृदु अग्निसे पकाया हुआ घी वातरक्तको विशेष करके दूर करता है और आमवात तथा ऊरुस्तम्भादि वातरोग, कृमि, कोढ, व्रण, बवासीर तथा गुल्मको भी दूर करत है ॥ ९५-९७ ॥

अथ तृतीयं गुडूचीघृतम् ।

अमृतास्वरसविपक्वं सर्पिस्तत्कल्कसाधितं पीतम् । अपहरति वातरक्तमुत्तानं चावगाढं च ॥ ९८ ॥

गिलोयके स्वरसमें गिलोयके कल्कसे घृत को पकाकर सेवन करे तो अत्यन्त बढा हुआ वातरक्त नष्ट होता है ॥ ९८ ॥

अथ चतुर्थं गुडूचीघृतम् ।

अमृतायाः पलशतं जलद्रोणावशेषितम्। घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कल्कादष्टौ पलानि च ॥ ९९ ॥ चतुर्गुणेन पयसा वातासृक्कुष्ठनाशनम् । कामलापाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ १०० ॥

गिलोय चारसौ तोले भर लेकर एक हजार चौबीस तोले जलमें क्वाथ बनावे, फिर इस क्वाथमें ३२ तोले गिलोयका कल्क डालकर चौगुने दूधमें घी पकावे। यह 'चतुर्थ गुडूची घी, वातरक्त, कोढ, कामला, पांडुरोग, प्लीहा, खांसी और ज्वरको दूर करता है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अथ पञ्चमगुडूचीघृतम् ।

अमृता मधुकं द्राक्षा त्रिफला नागरं बला । वासारग्वधवृश्चीवदेवदारुत्रिकण्टकम् ॥ १०१ ॥ कटुका रोहिणी कृष्णा

काश्मर्यस्य फलानि च । रास्नाक्षुरक गन्धर्ववृद्धदारघनोत्पलैः ॥ १०२ ॥ कल्कैरेभिः समैः कृत्वा सर्पिः प्रस्थं विपाचयेत् । धात्रीरसः समो देयो वारि त्रिगुणसंयुतः ॥ १०३ ॥ सम्यक्सिद्धं च विज्ञाय भोज्ये पाने च शस्यते । बहु दोषोत्थितं वातरक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ १०४ ॥ उत्तानं चातिगम्भीरं त्रिक-जङ्घोरुजानुकम् । क्रोष्टुशीर्षमहाशूले आमवातेसुदारुणे ॥ १०५ ॥ दाहरोगो पसृष्टस्य वेदनां चातिदुस्तराम् । मूत्रकृ-च्छ्रमुदावर्तं प्रमेहं विषमज्वरान्॥१०६॥ एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वातपित्तकफोत्थि-तान् । सर्वकालोपयोगेन वर्णायुर्बलवर्द्धनम् । अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतद नुत्तमम् ॥ १०७ ॥

गिलोय, मुलहठी, दाख, त्रिफला, सोंठ, खिरैंटी, अडूसा, अमलतास, सफेद पुनर्नवा, देवदारु, गोखरू, कुटकी, मँजीठ, पीपल, कुम्भेरके फल, रासना, तालमखाना, एरण्ड, विधारा, नागरमोथा और नीले कमल इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनाकर उस कल्कको डालकर-चौंसठ तोले आमलोंके रस में और उससे तिगुने जलमें चौंसठ तोले घी को पकावे, उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेके पश्चात् भोजनमें तथा पीनेमें इस घृतका उप-योग करे तो अनेक दोषोंसे उत्पन्न हुआ वात रक्त, ऊपरको उभरा हुआ और गम्भीर वात-रक्त, त्रिक, जंघा, ऊरु, जानु और क्रोष्टु-शीर्ष इनका शूल, महाभयंकर शूल, दारुण आमवात, दाहरोग, अत्यन्त दुस्तर पीडा, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, विषमज्वर और वातपित्त तथा कफसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके रोग इन सबको दूर करता है। इसका सदैव उप-योग करनेसे वर्ण; आयु और बल अधिक बढता है' यह अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ घृत परमोत्तम है ॥ १०१-१०७ ॥

अथ षष्ठं गुडूचीघृतम् ।

गुडूचीस्वरसे सर्पिर्जीवनीयैश्च साधितम् । कल्कैश्चतुर्गुणैः क्षीरं सिद्धं वाऽजस्रवा तनुत् ।

गिलोयके स्वरससे और जीवनीयगणके कल्कसे चौगुने दूधमें पकाया हुआ घी वात-रक्तको शान्त करता है ॥ १०८ ॥

अथ महागुडूचीघृतम् ।

अमृतायाः शतं प्राप्य जलद्रोणे विपा-चयेत् । चतुर्भागावशिष्टन्तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १०९ ॥ क्षीरं चतुर्गुणं तत्र दापयेन्मतिमान् भिषक् । कल्क श्चात्र प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः॥११० काकोलीं क्षीरकाकोलीं जीवकर्षभकौ च यत् । शतावरीं पयास्यां च मधुकं नीलमुत्पलम् ॥ १११ ॥ अश्वकन्दस्य मूलानि स्थिरं वा कटुरोहिणीम् । ऋद्धिं वृद्धिं तथा मेदे श्वदंष्ट्रां बृहतीद्वयम् ॥ ११२ ॥ गुडूचीं पिप्पलीं रास्नां वासकं चापि संहरेत् । तदेकस्थं समै र्भागैः पाचयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ११३ ॥ पानाभ्यञ्जननस्येषुपरिषेके च दापयेत् । वातरक्तं सशोषाढ्यं सदाहं क्रोष्टुशी र्षकम् ॥ ११४ ॥ खञ्जोरुस्तम्भवातं च वातरक्तं सुदारुणम् । बहूदितं वातकृच्छ्रं गृध्रसीं वातकण्टकम् । नाशयेद्योजितं सर्पिर्धन्वन्तरिवचो यथा ॥ ११५ ॥

चारसौ तोले गिलोयको एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे जब पकते पकते चौथा भाग जल शेष रह जाय तब उस क्वाथमें चौंसठ तोले घी तथा चौगुना दूध डालकर

काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, सतावर, विदारीकन्द, मुलैठी, नीले कमल, असगन्धकीजड,पृश्निपर्णी कुटकी, ऋद्धि,वृद्धि; मेदा, महामेदा, गोखरू, कटेरी, बडी कटेरी, गिलोय, पीपल, रासना और अडूसा इन सब पदार्थोंको समान भाग लेकर कल्क बनाकर उसमें डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे तो महागुडूची घृत सिद्ध होता है। धन्वंतरि भगवान् कहते हैं कि, इस घृतको पान करनेमें, अभ्यंगमें नस्यमें तथा सेचनमें प्रयोग करे तो शोथ और दाहयुक्त वातरक्त, क्रोष्टुशीर्ष, खञ्जवात, ऊरुस्तम्भ, दारुण वातरक्त, बहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ वातकृच्छ्र, गृध्रसी और वातकंटक इन सब रोगोंका नाश होता है ॥ १०९-११५ ॥

शताह्वादितैलम् ।

क्वाथेन शतपुष्पायाः कुष्ठस्य मधुकस्य च। एकैकं साधयेत्तैलं वातरक्तरुजापहम् ॥ ११६ ॥

सौंफके क्वाथसे पहलीवार, दूसरी बार कूठके क्वाथसे और तीसरी बार मुलहठीके क्वाथसे पकाया हुआ तैल वातरक्तकी पीडाको शान्त करता है ॥ ११६ ॥

अथ महापिण्डतैलम् ।

सारिवारिष्टकूष्माण्डपोतकीभस्मजाम्बुना । गुडूचीगव्यदुग्धाभ्यां कर्मरङ्गरसेन च ॥ ११७ ॥ विपचेत्तिलजं तैलं दत्त्वैतानि भिषग्वरः । काकोल्यौ जीवकं मेदे शताह्वाक्षीरिणीयुतैः ॥ ११८ ॥जिङ्गीसिथाऽमृतानन्तासर्जसैन्धवचन्दनैः। हन्याद्वातास्रजं घोरं स्फुटितं गलितं तथा ॥ ११९ ॥ चर्मदलाख्यं पामादींस्त्वग्दोषश्च विपादिकाम् । कुष्ठान्यर्शांसि वीसर्पं व्रणशोथं भगंदरम् ॥ १२० ॥ न सोऽस्ति वातरक्तस्य विकारो योऽभिवर्द्धितः । यन्न हन्यात्प्रसह्यैतत्पिण्डतैलं महत् स्मृतम् ॥ १२१ ॥

सारिवा, नीम, पेठा और पोई इनके भस्मके जलसे, गिलोयके क्वाथसे, गायके दूधसे, कमरखके रससे और काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, मेदा, महामेदा, सोया, खिरनी, मंजीठ, मोम, गिलोय, सारिवा, राल, सैन्धानिमक और लाल चन्दन इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल 'महापिंडतैल' कहा जाता है। इस तेलका उपयोग करनेसे यह घोर वातरक्त, फटता और गलता हुआ चर्मदल कोढ, पामादिरोग, त्वचाके समस्त विकार, विपादिका, कोढ, बवासीर, विसर्प व्रण, शोथ और भगन्दर इन सब रोगोंको दूर करता है। ऐसा कोई भी वातरक्तका बढा हुआ विकार नहीं है कि, जिसको यह महापिंडतैल दूर न कर देवे ॥ ११७-१२१ ॥

अथ पिण्डतैलम् ।

सारिवासर्जमञ्जिष्ठायष्टिसिक्थैः पयोऽन्वितैः । तैलं पक्वं प्रयोक्तव्यं पिण्डाख्यं वातशोणिते ॥ १२२ ॥

सारिवा, राल, मँजीठ, मुलहठी और मोम इनका कल्क डालकर चौगुने दूधमें पकाया हुआ तेल 'पिंडतैल' कहा जाता है। इस तेलका वातरक्त पर उपयोग करना चाहिये ॥ १२२ ॥

अथ द्वितीयं पिंडतैलम् ।

सारिवासर्जयष्ट्याह्वमधुसिक्थैः पयोऽन्वितैः । सिद्धमैरण्डजं तैलं वातरक्तरुजापहम् । अपूतमथितस्यास्य पिण्डतैलस्य योगतः ॥ १२३ ॥

सारिवा, राल, मुलैठी और मोम इनका कल्क डालकर चौगुने दूधमें पकाया हुआ अण्डीका तेल वातरक्तकी पीडाको शान्त करता है ॥ १२३ ॥

अथ महापद्मतैलम् ।

पद्मकेशरयष्ट्याह्वफेनिलापद्मकोत्पलैः । पृथक् पञ्चपलैर्दत्तं बलांकिंशुकचन्दनैः ॥ १२४ ॥ जले शृतं पचेत्तैलं प्रस्थं सौवीरसम्मितम् । लोध्रकाकोलिकोशीरजीवकर्षभकेशरैः ॥ १२५ ॥ मदयन्तिलतापत्रपद्मकेशरपद्मकैः । प्रपौण्डरीककालीयमेदामांसीप्रियङ्गुभिः ॥१२६॥ कुंकुमैर्द्विगुणैः कर्षैर्मञ्जिष्ठायाः पलेन च । महापद्म (क) मिदं तैलं वातासृग्ज्वरनाशनम् ॥ १२७ ॥

कमलकी केसर, मुलहठी, रीठा, पद्माख, नीले कमल, खिरैंटी, टेसू और लालचन्दन यह प्रत्येक पदार्थ बीस बीस तोले लेकर इनका क्वाथ बनाकर उसमें लोध, काकोली, खस, जीवक, ऋषभक, नागकेसर, मदनबाण, तेजपात, कमलकी केसर, पद्माख, प्रपौंडरीक, दारुहलदी, मेदा, बालछड और फूलप्रियंगु इन प्रत्येक पदार्थका एक एक तोला कल्क डाले, केसरका दो तोले कल्क डाले और मञ्जीठका चार तोले कल्क डाले तथा सौवीर नामक कांजी चौसठ तोले और तेल चौसठ तोले मिलाकर यत्नपूर्वक पकावे तो 'महापद्मक' तेल सिद्ध होता है। यह तेल वातरक्त और ज्वरका नाश करता है ॥ १२४-१२७ ॥

अथ खुड्डाकपद्मकतैलम् ।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीक्वाथसाधितम् । स्यात्पिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः । खुड्डाकपद्मकमिदं तैलं वातास्रपित्तनुत् ॥ १२८ ॥

पद्माख, खस, मुलहठी और हलदी इनके क्वाथमें राल, मंजीठ, बडी सतावर, काकोली और लाल चन्दन इनका कल्क डालकर पकाया हुआ तेल 'खुड्डाकपद्मक' कहा जाता है। यह तेल वातरक्तको नष्ट करता है ॥ १२८ ॥

अथ गुडूचीतैलम् ।

तुलां पचेज्जलद्रोणे गुडूच्याः पादशेषितम् । क्षीरद्रोणन्तु ताभ्यां च पचेत्तैलाढकं शनैः ॥ १२९ ॥ कल्कैर्मधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयगणोत्थितैः । कुष्ठैलागुरुमृद्वीका मांसी व्याघ्रनखं नखी । हरेणु श्रावणी व्योष्यं शताह्वा शृङ्गिसारिवे ॥ १३० ॥ त्वक्पत्रागुरुविक्रान्ता स्थिरा तालमकी तथा । नतकेशरह्रीवेरं पद्मकोत्पलचन्दनम् । सिद्धं कर्षसमैर्भागैः पानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ १३१ ॥ सेव्यं वातास्रजान् हन्ति स्रोतोधात्वन्तराश्रितान् । धन्यं पुंसवनं स्त्रीणां गर्भदं वातपित्तनुत् ॥ १३२ ॥ स्वेदकण्डूरुजायामशिरःकम्पामयार्दितान् । हन्याद्व्रणकृतान्दोषान् गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥१३३॥

चार सौ तोले गिलोयको एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उस क्वाथमें एक हजार चौबीस तोले दूध डाले और मुलहठी, मंजीठ, जीवनीयगणकी औषधि, कूठ, इलायची, अगर, दाख, बालछड, थूहर, नख, निर्गुण्डीके बीज, गोरखमुण्डी, सोंठ, मिरच, पीपल, सोया, काकडाशिंगी, सारिवा, तज, तेजपत्र, अगर, अरणी पृश्निपर्णी, भुँईआमला, तगर नागकेशर, सुगन्धवाला, पद्माख, नीलकमल और लाल चन्दन यह प्रत्येक औषधि एक एक तोला भर ले कल्क डालकर दोसौ छप्पन तोले तेल धीरे धीरे पकावे तो यह 'गुडूचीतेल' सिद्ध होता है। पीनेमें अभ्यंगमें तथा पिचकारी लगानेमें इस तेलका उपयोग करनेसे स्रोतोंमें तथा धातुओंमें प्राप्त हुए वातरक्तके विकार शान्त होते हैं। यह उत्तम गुडूचीतेल धन्य है, पुत्रको देनेवाला है, स्त्रियोंके गर्भको उत्पन्न

करता है और वात तथा पित्तको शान्त करने वाला है। यह तेल पसीना, खुजली, व्यथा, आयाम, शिरःकंप, अर्दित और व्रणके विकारोंको शान्त करता है ॥१२९-१३३॥

अथ मृताह्वयतैलम् ।

गुडूची मधुकं हस्वपञ्चमूलं पुनर्नवा । रास्नामेरण्डमूलञ्च जीवनीयानि लाभतः ॥ १३४ ॥ पलानां शतिकैर्भागैर्बलाप-श्चशतं भवेत् । कोलं बिल्वं यवान्माषान्कुलत्थांश्चाढकोन्मितान् ॥ १३५ ॥ काश्मर्याणाञ्च शुष्काणां द्रोणं द्रोण-शतेऽम्भसः । साधयेज्जर्जरं पूतं चतुर्द्रोणञ्च शेषयेत् ॥ १३६ ॥ तैलद्रोणं पचेत्तेन दत्त्वा पञ्चगुणं पयः । पिष्ट्वा त्रिपलिकञ्चैव चन्दनोशीरकेशरम् ॥ १३७ ॥ पत्रैलागुरुकुष्ठानि तगरं मधुयष्टिका । मञ्जिष्ठार्द्धपलञ्चैव तत्सिद्धं सर्वयौगिकम् ॥ १३८ ॥ वातरक्ते क्षते क्षीणे भारार्त्ते क्षीणरेतसि । वेपनोत्क्षिप्तभग्नानां सर्वैकाङ्गजरोगिणाम् ॥ १३९ ॥ योनिदोषमपस्मारमुन्मादं विषमज्वरम् । हन्यात्पुंसवनञ्चैव तैलाग्र्यममृताह्वयम् ॥१४०॥

गिलोय, मुलहठी, लघुपंचमूल, पुनर्नवा, रासना, अण्डकी जड और जितनी मिल सके उतनी जीवनीयगणकी औषधि यह प्रत्येक द्रव्य चारसौ तोले लेवे। खिरैंटी दो हजार तोले लेवे। बेर, बेलगिरी, जौ, उडद और कुलथी यह प्रत्येक पदार्थ दोसौ छप्पन तोले लेवे, सुखाये कुम्भेरके फल एक द्रोण लेवे। इन सब पदार्थोंको कूटकर सौ द्रोण जलमें काथ बनावे, जब यह पककर नरम होजाय तब वस्त्रमें काथको छान लेवे, फिर अग्निसे पकावे, जब चार द्रोण जल शेष रहजाय तब उतार लेवे, फिर इस क्वाथमें दूध पांच भाग. लाल चन्दन, खस और नागकेसर यह प्रत्येक पदार्थ बारह बारह तोले लेवे, सबको पीसकर कल्क बनाकर डाल देवे। तेजपत्र, इलायची, अगर, कूठ, तगर, मुलहठी तथा मंजीठ यह प्रत्येक औषधि दोदो तोले लेकर कल्क बनाकर डाल देवे, फिर इस कल्क तथा उस दूध मिले क्वाथसे एक द्रोण तेलको पकावे तो यह 'अमृताह्वय' नामक तेल सिद्ध होता है। यह तेल वातरक्तपर, क्षतमें, क्षीणतामें भारसे पीडित हुएपर, वीर्यकी क्षीणतामें, कम्पमें क्षिप्त, भग्न, सर्वांगवातरोगपर और एकांग वातरोगपर हितकारी है। इस तेलसे योनिके विकार, अपस्मार, उन्माद तथा विषमज्वर भी दूर होता है और यह स्त्रियोंके गर्भको देने॰ वाला है ॥ १३४-१४० ॥

अथ मृणालाद्यमिश्रकतैलम् ।

मृणालोत्पलशालूकसारिवोदीच्यकेशरैः । चन्दनद्वयभूनिम्बपद्मबीजकसेरुकैः ॥ १४१ पटोलकटुकानन्तागुन्द्रापर्पटवासकैः । पिष्ट्वा तैलं घृतं पक्वं तृणमूलरसेन वा । क्षीरद्विगुणसंयुक्तं वस्तिकर्मसु योजितम् । नस्याभ्यञ्जनपानैर्वा हन्यात्पित्तगदानिदम् ॥ १४२ ॥

कमलकी नाल, नीलकमल, कमलकन्द, सारिवा, सुगन्धवाला, नागकेसर, लालचन्दन, सफेदचन्दन, चिरायता, कमलगट्टे, कसेरू, परवल, कुटकी, सारिवा (जहां एक पाठमें एक औषधि दो वार आवे तो दो भाग, और तीन वार आवे तो तीन भाग लेनी चाहिये, ऐसा सम्प्रदाय है) गुन्द्रपटेर, पित्तपापडा और अडूसा इनका कल्क डालकर तृणपञ्चमूलके क्वाथमें दुगुने दूधके साथ तेल और घृतको पकावे तो 'मृणालाद्यमिश्रक' सिद्ध होता है। वस्तिकर्म, नस्य, अभ्यङ्ग और पीनेसे यह मिश्रक पित्तसम्बन्धी रोगोंको दूर करता है ॥ १४१-१४२ ॥

अथ धत्तूराद्यतैलम् ।

कनकशिखरिमानक्षारसंसिद्धतोये
कुसुमलवणयुक्तैः सर्जनिर्यासपूर्णः ।
विधिश्रृततिलतैलं कल्कयुक्तं निहन्ति
प्रचुरतदमिदानीमिन्द्रलुप्तास्त्रवातम् १४३

धतूरा, चिरचिटा और मानकन्द इनकी भस्मका क्वाथ बनाकर उसमें लौंग, सैंधानिमक और रालका कल्क डालकर विधि पूर्वक पकाये तिलके तेलको इसी कल्कके साथ व्यवहार करे तो विशेष करके वातरक्त और इन्द्रलुप्तरोगको दूर करता है ॥ १४३ ॥

अथ नागबलातैलम् ।

शुद्धां पचेन्नागबलातुलान्तु जलार्मणे पादकषायसिद्धम् । विस्राव्य तैलाढकमत्र देयमजापयस्तैलविमिश्रितन्तु ॥ १४४ ॥ नतं सयष्टीमधुकश्च कल्कं दत्त्वा पृथक्पश्चपलं विपक्वम् । तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णं वस्तिप्रदानेन हि सप्तरात्रात् । दशाहयोगेन करोत्यरोगं पीतश्च तैलोत्तममश्विनोक्तम् ॥ १४५ ॥

चारसौ तोले उत्तम गुलशकरी लेकर एक हजार चौबीस तोले जलमें क्वाथ बनावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उस क्वाथको वस्त्रमें छान लेवे । फिर उस क्वाथमें तगर और मुलहठी इनका बीस तोले कल्क डालकर तथा चौगुना बकरीका दूध डालकर उससे दोसौ छप्पन तोले तेल पकावे तो 'नागबला तेल' सिद्ध होता है । अश्विनीकुमारोंका कहा हुआ यह तेल है ' इस तेलकी पिचकारी लगानेसे वृद्धिको प्राप्त हुआ भी वातरक्त सात दिनमें नष्ट होजाता है और जो यह तेल पिया जाय तो दश दिनमें वातरक्त नष्ट होजाता है ॥ १४५ ॥

अथ जीवकाद्यमिश्रकतैलघृते ।

जीवकर्षभकौ मेदे ऋष्यप्रोक्ता शतावरी । मधुकं मधुपर्णी च काकोलीद्वयमेव च ॥ १४६ ॥ मुद्गमाषाख्यपर्णी च दशमूलं पुनर्नवा । बलाऽमृता विदारी च साश्वगन्धाश्मभेदकौ ॥ १४७ ॥ कुर्यात्कल्कं कषायश्च ताभ्यां तैलं घृतं पचेत् । लाभतश्च वसा मज्जा मांसं प्रतुदविष्किरात् ॥१४८॥ चतुर्गुणेन पयसा तत्सिद्धं वातशोणितम् । सर्वदेहाश्रितान् हन्ति व्याधीन्घोरांश्च वातजान् ॥ १४९ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, सतावर, मुलहठी, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, दशमूलकी दशों औषधि, पुनर्नवा, खिरैंटी, गिलोय, विदारीकन्द, असगन्ध और पाखानभेद इनका कल्क और इन्हींके क्वाथमें चौगुने दूधके साथ जितना मिलसके उतना प्रतुद और विष्किर पक्षियोंके मांस, चर्बी तथा मज्जा डालकर घी और तेलको पकावे तो यह 'जीवकाद्यमिश्रक' सिद्ध होता है । यह मिश्रक वातरक्त और सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त भयंकर वातव्याधियोंकी भी दूर करता है ॥ १४६–१४९ ॥

शतपाकबलातैलम् ।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरचतुर्गुणम् । शतपाकं भवेदेतद्वातासृग्वातपित्तनुत् ॥ १५० ॥ धन्यं पुंसवनश्चैव नराणां शुक्रवर्द्धनम् । रेतोयोनिविकारघ्नमेतद्वातविकारनुत् ॥ १५१ ॥

खिरैंटीके क्वाथमें खिरैंटीका कल्क डालकर तथा चौगुना दूध डालकर तेलको पकावे । जब पक जाय तब फिर इन्हीं द्रव्योंके साथ इस तेलको पकावे, इस प्रकार सौबार इस तेलको पकावे तो यह 'शतपाकबलातैल' सिद्ध होता है । यह तेल भाग्यको बढानेवाला, पुत्रको देनेवाला, मनुष्योंके वीर्यको बढानेवाला शुक्र और योनिके रोगोंको हरनेवाला,

वात तथा पित्तके विकारोंको नष्ट करनेवाला और वातसम्बन्धी सम्पूर्ण रोगोंको दूर करता है ॥ १५० ॥

अथ मधुकाद्यतैलम् ।

मधुयष्टयाः पलशतं कषाये पादशेषिते । तैलाढकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ॥ १५२ ॥ शतपुष्पावरीमूर्वापयस्यागुरुचन्दनैः । स्थिराहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः ॥ १५३ ॥ काकोलीक्षीरकाकोलीतामलक्यृद्धिपद्मकैः । जीवकर्षभजीवन्तीत्वक्पत्रनखवालकैः॥ १५४ प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठासारिवेन्दुवितुन्नकैः । वातासृक्पित्तदाहार्त्तिज्वरघ्नं बलवर्णकृत् ॥ १५५ ॥

चारसौ तोले मुलहठीका क्वाथ बनावें।जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसमें सौंफ, सतावर, मूर्वा, विदारीकन्द,अगर, लालचन्द, पृश्निपर्णी, हंसपदी बालछड, मेदा, महामेदा गिलोय, काकोली. क्षीरकाकोली, भुँई आमले, ऋद्धि, पद्माख, जीवक, ऋषभक, जीवन्ती, दालचीनी, तेजपात, सुगन्धनख, सुगन्धवाला, कमल, मंजीठ, सारिवा, कपूर और केवटीमोथा इनका चार चार तोले कल्क, २५ तोले दूध और २५६ तोले तेल डालकर उत्तम विधिसे तेलको पकावे तो यह 'मधुकाद्यतेल' सिद्ध होता है। इस तेलको सेवन करनेसे बल और वर्णकी वृद्धि होती है तथा वातरक्त, पित्त, दाहकी पीडा और ज्वर नष्ट होता है ॥ १५२-१५५ ॥

अथ शतपाकमधुकतैलम् ।

मधुयष्टयाः पलं पिष्ट्वा तैलप्रस्थं चतुर्गुणे । क्षीरे साध्यं शतं वारांस्तदेव मधुकान्वितम् ॥ १५६ ॥ सिद्धं देयं त्रिदोषे स्यात् वातास्रश्वासकासनुत्।धन्यं पुंसवनं चैव कामलादाहनाशनम्॥१५७॥

चारसौ तोले मुलहठीका कल्क बनाकर चौगुने दूध चौंसठ तोले तेलको पकावे, जब पकजाय तब फिर इसी तेलको दूसरी बार इन्हीं द्रव्योंसे पकावे, इस प्रकार सौवार इसी तेलको इस कल्क और दूधसे पकावे तो यह 'शतपाक मधुकतेल' तैयार होता है। यह तेल भाग्यको बढानेवाला, पुत्रका देनेवाला तथा वातरक्त, श्वास, खाँसी, कामला और दाहको दूर करता है, दोनों दोषोंके प्रकोपमें भी इस तेलको देना चाहिये ॥ १५६ ॥ १५७॥

अथ सहस्रपाकबल तैलम् ।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरसमं पचेत् । सहस्रशतपाकं वा वातासृग्वातरक्तनुत् ॥ १५८ ॥ रसायनमिदं श्रेष्ठमिन्द्रियाणां प्रसादनम् । जीवनं बृंहणं स्वर्यं शुक्रासृग्दोषनाशनम् ॥ १५९ ॥

खिरेंटीके क्वाथसे और कल्कसे दूध और तेल समभाग डालकर विधिपूर्वक पकावे, इस प्रकार हजारवार इस तेलको पकावे तो यह 'सहस्रपाकबलातैल' सिद्ध होता है। यह तेल वातरुधिरके विकार, वातरक्त और वीर्यके दोषोंको दूर करता है, उत्तम रसायन, इंद्रियोंको स्वच्छ करनेवाला, जीवनको बढानेवाला, धातुओंको पुष्ट करनेवाला और स्वरको उत्तम करनेवाला है ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

अथ पुनर्नवागुग्गुलुः ।

पुनर्नवामूलशतं विशुद्धं रुबूकमूलञ्च तथा प्रयोज्य। दत्त्वा पलं शोडषकञ्च शुण्ठयाः संकुट्य सम्यग्विपचेद्घटेऽपाम् ॥ १०६ ॥ पलानि चाष्टावथ कौशिकस्य तेनाष्टशेषेण पुनः पचेत्तु । एरण्डतैलं कुडवञ्च दद्याद्दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि पञ्च ॥ ॥१६१॥ निकुम्भचूर्णस्य पलं गुडूच्याः पलद्वयं चार्द्धपलं पलं प्रति । फलत्रयत्र्यूषणचित्रकाणि सिन्धूत्थभल्लातविड-

ङ्कानि ॥ १६२ ॥ कर्षं तथा माक्षिक धातुचूर्णं पुनर्नवायाः पलमेव चूर्णम्। चूर्णानि दत्त्वा ह्यवतार्य शीते खादेन्नरः कर्षसमप्रमाणम् ॥ १६३ ॥ वा तास्रुजं वृद्धिगदं च सप्त जयत्यवश्यं त्वथ गृध्रसीं च। जंघोरुपृष्ठत्रिकवस्तिज च तथाऽऽम-वातं प्रबलं च हन्ति ॥ १६४ ॥

पुनर्नवेकी जड ४०० तोले, अरण्डकी जड ४०० तोले और सोंठ ६४ तोले इनको उत्तम रीतिसे कूट कर १०२४ तोले जलमें पकावें। जब पकते पकते आठवां भाग जल शेष रह जाय तब उस क्वाथको छान लेवे, फिर इस क्वाथमें ३२ तोले गूगल डालकर पकावे, पकते समय इसमें १६ तोले अण्डीका तेल, निसोत का चूर्ण २० तोले, जमालगोटेका चूर्ण ४ तोले, गिलोयका चूर्ण १० तोले, हरडका चूर्ण ४ तोले, बहेडेका चूर्ण ४ तोले, आमलोंका चूर्ण ४ तोले, सोंठका चूर्ण ४ तोले, मिरचका चूर्ण ६ तोले, पीपलका चूर्ण ४ तोले, चीतेका चूर्ण ४ तोले, सैंधानिमक का चूर्ण ४ तोले, भिलावेका चूर्ण ४ तोले, वायविडंगका चूर्ण ४ तोले, सोनामुखीका चूर्ण एक तोला और पुनर्नवेका चूर्ण एक तोला डालकर पकावे, जब अच्छी प्रकारसे पकजाय तब अग्निपरसे उतार लेवे। शीतल होनेपर इसमेंसे एक तोले भर नित्य खाय। यह गूगल—वातरक्त, सात प्रकारकी वृद्धि, गृध्रसी, जंघा, ऊरु, पृष्ठ, त्रिक और वस्ति इनमें प्राप्त हुए वातके विकारोंको शान्त करता है तथा प्रबल आमवातको नष्ट करता है ॥ १६०–१६४ ॥

अथ समशर्करागुग्गुलुः

यावशूकसुरदारुसैन्धवं मुस्तकत्रुटिवचा-यवानिकाः। व्योषदीप्यकनिशाफल त्रिकं जीरकद्वयविडङ्गचित्रकम् ॥१६५॥ कार्षिकं सुमसृणं सुयोजितं संयुतं पुरप-लैश्च पञ्चभिः। शर्करां पुरसमां सुपेषये-त्तत्सर्पिषि विनिक्षिपेत्ततः ॥ १६६ ॥ वातरक्तमुदरं भगन्दरं प्लीहयक्ष्मविषम-ज्वरं गरम्। श्वित्रकुष्ठमखिलव्रणानयं चित्तविभ्रममदांश्च दारुणान् ॥ १६७ ॥ गृध्रसीं च गुदजाग्निमन्दतां हन्ति कोष्ठ-जनितं महागदम्। वज्रमिन्द्रसुकरादिव च्युतं गुप्तशैलकुलमुत्तमं द्रुतम् ॥१६८॥ अन्नपानपरिहारवर्जितं सर्वकालसुखदं निरत्ययम्। सेव्यमानमिदमश्विनिर्मितं गुग्गुलोर्हि वटिका रसायनम् ॥ १६९ ॥ चत्वारो माषका हीने मध्यमेऽष्टौ च माषकाः। श्रेष्ठा द्वादशकाः प्रोक्ताः कोष्ठं विज्ञाय पाययेत् ॥ १७० ॥ स्रंसनत्वाद् गुरुत्वाद्वा गुग्गुलोः करणक्रमः ॥१७१॥

जवाखार, देवदारु, सैंधानिमक, नागर-मोथा, इलायची, वच, अजवायन, सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोद, हलदी, हरड, बहेडा, आमला, जीरा, कालाजीरा, बायवि-डंग और चीता इनको एकत्र बारीक पीसकर इसमें २० तोले गूगल मिलाकर और २० तोले खांड मिलावे। फिर उस गूगलको गरम घीमें मिलाकर खूब कूटे तो यह 'समशर्करा-गूगल' सिद्ध होता है। जिस प्रकार इन्द्रके हाथसे छूटा हुआ वज्र बडे बडे पर्वतोंको भिन्न कर देता है उसी प्रकार यह गूगल वातरक्त, उदरके रोग, भगन्दर, प्लीहा, क्षयरोग, विषमज्वर, विष, श्वित्रकोढ, सर्व प्रकारके व्रण, चित्तविभ्रमसम्बन्धी दारुणरोग, गृध्रसी, बवासीर, अग्निकी मन्दता और कोष्ठगत बडे बडे रोगोंको दूर करता है। अश्विनी कुमारोंका बनाया हुआ यह समशर्करागूगल—रसायन, सब कालमें सुख देनेवाला है। इसपर अन्नपान किसीका परहेज नहीं है। हीन कोठेवाले मनुष्यको यह गूगल चार मासे देवे, मध्यम कोठेवाले मनुष्यको आठ मासे देवे

और श्रेष्ठ कोठेवाले मनुष्यको बारह मासे देवे। कोठेको देखकर गूगलको देवे। गूगल स्रंसन पदार्थ है और भारी है, इस कारण गूगल देनेमें यह क्रम कहा है ॥ १६५-१७१ ॥

अथामृतागुग्गुलुः ।

प्रस्थमेकं गुडूच्याश्च अर्द्धप्रस्थं च गुग्गुलोः । प्रत्येकं त्रिफलायास्तु तत्प्रमाणं विनिर्दिशेत् ॥ १७२ ॥ सर्वमेकत्र संकुट्य क्वाथयेदुल्वणेऽम्भसि । पादशेषं परिश्राव्य कषायं ग्राहयेद्भिषक् । पुनः पचेत्कषायन्तु यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ ॥ १७३ ॥ दन्तीव्योषविडङ्गानि गुडूचीत्रिफलात्वचः । ततश्चार्द्धपलं चूर्णं गृह्णीयाच्च पृथक्पृथक् ॥१७४॥ कर्षन्तु त्रिवृतायाश्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् । तस्मिन् सुसिद्धं विज्ञाय कवोष्णे प्रक्षिपेद्बुधः ॥ ॥१७५॥ ततश्चाग्निबलं मत्वा खादेत्कर्षप्रमाणतः । वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ॥ १७६ ॥ दुष्टव्रणं प्रमेहांश्च आमवातं भगन्दरम् । नाड्याढ्यवातं श्वयथुं सर्वानेनान् व्यपोहति ॥१७७

गिलोय ६४ तोले, गूगल ३२ तोले, हरड ६४ तोले, बहेडे, ६४ तोले और आमले ६४ तोले लेवे, इन सबको एकत्र करके अत्यन्त गरम पानीमें इनका क्वाथ बनावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको उतारकर छान लेवे, फिर उसको अग्निपर चढाकर पकावे जब गाढा होने लगे तब जमालगोटे, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, गिलोय, हरड, बहेडा, आमला, और दालचीनी यह प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर और निसोतका एक तोला चूर्ण इसमें मिलादेवे जब यह गूगल अच्छी प्रकारसे पककर तैयार होजाय तब उतार लेवे, मन्दोष्ण हो तब इसको ढाल देवे, फिर अग्निके बलाबलका विचार करके इस गूगलमेंसे नित्य एक तोला भर खाय। यह गूगल -वातरक्त, कोढ, बवासीर, मन्दाग्नि, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीव्रण, ऊरुस्तम्भ और सूजनको दूर करता है ॥१७२ -१७७॥

अथ द्वितीयोऽमृतागुग्गुलुः ।

त्रिप्रस्थममृतायाश्च प्रस्थमेकन्तु गुग्गुलोः । प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥ १७८ ॥ सर्वमेकत्र संकुट्य साधयेदुल्वणेऽम्भसि । पुनःपचेत्पादशेषं यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ १७९ ॥ दन्तीचित्रकमूलानां कणाविश्वफलत्रिकम् । गुडूचीत्वग्विडङ्गानां प्रत्येकार्द्धपलं मतम् ॥ १८० ॥ त्रिवृताकर्षमेकन्तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत् सिद्धे चोष्णे क्षिपेत्तच्च अमृतागुग्गुलुं परम् ॥ १८१ ॥ अतो यथाबलं खादेदम्लपित्ती विशेषतः । वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ॥ १८२ ॥ दुष्टव्रणं प्रमेहांश्च आमवातं भगन्दरम् । नाड्याढ्यवातं श्वयथुं हन्यात्सर्वामयांस्तथा। अश्विभ्यां निर्मितश्चायममृताख्यो हि गुग्गुलुः ॥ १८३ ॥ (गुडरामठशुण्ठीनां मांसकूष्माण्डयोरपि । गुडूच्या गुग्गुलोश्चैव प्रस्थः षोडशभिः पलैः ॥ १८४ ॥)

गिलोय ३ प्रस्थ, गूगल १ प्रस्थ, हरड १ प्रस्थ, बहेडे १ प्रस्थ, आमले १ प्रस्थ, और पुनर्नवा १ प्रस्थ इन सब पदार्थोंको एकत्र कूटकर अत्यन्त गरम पानीमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उस क्वाथको छानकर अग्निपर चढादेवे जब यह पकते पकते गाढा होजाय तब इसमें जमालगोटेकी जड, चीतेकी जड, पीपल, सोंठ,

हरड बहेडा, आमले, गिलोय, तज और वायविडंग यह प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले और निसोत एक तोला लेवे सबका एकत्र चूर्ण करके मिला देवे। जब गूगल अच्छी प्रकारसे पक जाय तब उसको उतारकर ढाल देवे तो यह 'अमृतागुग्गुलु' सिद्ध होता है विशेष करके अम्लपित्तके रोगियोंको अग्निके बलानुसार यह गुग्गुल सेवन करना चाहिये। अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ यह गूगल वातरक्त, कोढ बवासीर, अग्निकी मन्दता, दुष्ट व्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडी व्रण ऊरुस्तम्भ, सूजन और सम्पूर्णरोगोंको नष्ट करता है॥ १७८॥ १८४॥

अथ नवपुराणगुग्गुलोर्लक्षणम्।

स्निग्धः काञ्चनसंकाशः पक्वजम्बूफलोपमः। नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः॥ १८५॥ शुष्को दुर्गन्धिकश्चैव वर्णान्यत्वमुपागतः। पुराणः स तु विज्ञेयो न स देयस्तु रोगिणे॥ १८६॥

जो गूगल चिकना, सोनेके समान चमकदार, पकी हुई जामुनके समान कांतिवाला, सुगन्धी और पिच्छिल ऐसा हो तो उसको नवीन जानना। जो गूगल सूखा, दुर्गंधित तथा जिसका रंग बदल गया हो, उसको पुराना जानना। ऐसा गूगल रोगीको नहीं देना चाहिये॥ १८५॥ १८६॥

अथ चन्द्रप्रभावटिका।

क्रिमिरिपुदहनव्योषत्रिफलामरदारुचव्यभूनिम्बाः। मागधिमूलं मुस्तं शटीवचाधातुमाक्षिकश्चैव। लवणक्षारनिशायुक्कुस्तुम्बुरुगजकणाः सहातिविषाः॥ १८७॥ कर्षांशिकान्येव समानि कुर्यात्पलाष्टकं चाश्मजतु प्रदद्यात्। निष्पत्रशुद्धस्य पुरस्य धीमान् पलद्वयं लौहरजस्तथैव॥ १८८॥ सिताचतुष्कं पलमत्र वा स्यात्त्रिकुंभकुंभत्रिसुगन्धियुक्तम्। पृथक्पलं चूर्णमथावपेच्च चन्द्रप्रभेयं गुटिका विधेया॥ १८९॥ ज्वरातिसारग्रहणीविकारांश्चार्शांसि निर्णाशयेत षडेव। भगन्दरान् कामलपांडुरोगान्निर्निष्टवह्नेः कुरुते च दीप्तिम्॥ १९०॥ हन्त्यामयान् पित्तकफानिलोत्थान्नाडीगते मर्मगते व्रणे च। क्षतक्षते गृध्रसियक्ष्मरोगे मेहे गजाख्ये प्रबले प्रयोज्या॥ १९१॥ शुक्रक्षये चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे शुक्रप्रवाहेऽप्युदरामये च। शंभुं समभ्यर्च्य कृतप्रसादं प्राप्ता गुटी चन्द्रमसा प्रशस्ता॥ १९२॥ न पानभोज्ये परिहारवादो न शीतवातातपमैथुनेषु। भुक्तस्य पूर्वं सततं प्रयोज्या तक्रानुपानाप्यथ मस्तुपाना। अजारसो जाङ्गलजो रसो वा पयोऽथवा शीतजलानुपानम्॥ १९३॥ शुक्रदोषान्निहन्त्यष्टौ प्रमेहांश्चापि विंशतिम्। वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते॥ १९४॥ गिरिजतुगुग्गुलुलौहान्येकीकृत्याथ भावयेद्बहुशः। क्वाथैस्तद्व्याधिहरैस्तदनु च चूर्णीकृतं मिलितम्। कृमिरिप्वादिक चूर्णैर्गिरिजतु समधान्यपटोलयूषेण१९५

वायविडंग, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, चिरायता, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, वच, सोनामाखी, सैंधानिमक, जवाखार, हलदी, दारुहलदी, धनियां, गजपीपल और अतीस यह प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर चूर्ण बना लेवे शिलाजीत बत्तीस तोले लेवे, शुद्ध किया हुआ गूगल आठ तोले लेवे लोहचूर्ण

आठ तोले लेवे, (शिलाजीत, गूगल और लोहचूर्णको एकत्र करके जिन जिन रोगोंमें देना है, उन उन रोगोंको हरनेवाली औषधियोंके क्वाथमें अवश्य भावना देनी चाहिये,) खांड १६ तो लेवे, निसोत, जमालगोटा, तज तमालपत्र तथा इलायची इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण चार चार तोले लेना चाहिये, इन सब पदार्थोंको एकत्रित करके गोली बनावे, इनको ' चन्द्रप्रभा ' गोली कहते हैं । चन्द्रप्रभा वटी ज्वर, अतिसार, ग्रहणीके विकार, छः प्रकारकी बवासीर, भगन्दर, कामला और पाण्डुरोगको नष्ट करती है और अत्यन्त मन्द हुई अग्निको दीप्त करती है । वात पित्त कफसे उत्पन्न हुए रोगोंपर, नाडीव्रणपर, मर्मगत-व्रणोंपर, क्षतसे उत्पन्न हुएक्षयपर. गृध्रसीपर, क्षयरोगमें तथा अत्यन्त प्रबल गजमेह, वीर्यकी क्षीणता, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, वीर्यप्रवाह और उदरके रोगोंपर भी इन चन्द्रप्रभा गोलियोंका प्रयोग करना चाहिये । प्रसन्न हुए श्रीसदाशिवका पूजन करनेपर ये उत्तम गोलियां चन्द्रमाको प्राप्त हुई हैं। इन गोलियोंको सेवन करनेवाले मनुष्यको भोजन, पान, शीत, पवन, धूप और मैथुन इनका परहेज करनेकी आवश्यकता नहीं है । भोजन करनेसे पहिले तक्रके साथ, दहीके तोडके साथ, बकरीके मांसके रसके साथ, जांगल प्रदेशके प्रणियोंके मांसरसके साथ, दूध और शीतल जलके साथ सदैव इन गोलियोंका उपयोग करना चाहिये । ये गोलियां वीर्यके आठ प्रकारके दोष और बीस प्रकारके प्रमेहको नष्ट करती हैं । इन गोलियोंको उपयोग करनेसे वृद्धमनुष्य भी वली और पलित रोगसे मुक्त होकर युवाके समान होजाता है ॥ १८७ ॥ १९५ ॥

अथ कैशोरगुग्गुलुः ।

वरमाहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् । प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलाञ्च यथोक्तपरिमाणाम् ॥ १९६ ॥ द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन । विपचेत्तदप्रमत्तो दर्व्या संघट्टयेन्मुहुर्यावत् ॥ १९७ ॥ अर्द्धक्षयितं तोयं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात् । अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संसाधयेदयस्पात्रे ॥१९८॥ सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपलस्पर्शे। त्रिफलाचूर्णार्द्धपलं त्रिकटोश्चूर्णं षडक्षपरिमाणम् ॥ १९९ ॥ क्रिमिरिपुचूर्णार्द्धं पलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दन्त्योः । पलमेकन्तु गुडूच्या दत्त्वा संचूर्ण्य यत्नेन ॥२००॥ उपयुज्य चानुपानं यूषं क्षीरं सुगन्धि सलिलञ्च । इच्छाहारविहारी भेषजमुपयुज्य सर्वकालमिदम् ॥ २०१ ॥

उत्तम भैंसके नेत्रके उदर अर्थात् मध्यके समान चौंसठ तोले गूगल लेकर पानीमें डाल देवे । फिर उसमें चौंसठ तोले हरड, बहेडा और आमले तथा बत्तीस पल गिलोय यत्नपूर्वक डालकर आगपर चढादेवे । सावधान होकर जबतक आधा न जल जाय तबतक वारंवार करछीसे चलाता रहे । फिर उसको अग्निपरसे उतारकर वस्त्रमें छानकर पश्चात् लोहके बासनमें करके अग्निपर चढ़ावे, गाढे होनेपर उतार ले । जब शीतल हो जाय तब हरड बहेडा और आमलेका चूर्ण दो दो तोले, सोंठ, मिरच और पीपलका चूर्ण दो तोले, निसोतका चूर्ण दो तोले, दन्ती का चूर्ण दो तोले और गिलोयका चूर्ण चार तोले मिलादेवे । इसको यथायोग्य अनुमान, यूष, सुगंधित गुलाब, केवडा आदिके अर्कके साथ देवे । इसपर यथेच्छ आहारविहार करे ॥ १९६ ॥ २०१ ॥

तनुरोधि वातशोणितमेकद्वित्र्युल्वणं चिरोत्थमपि । भग्नस्रुतपरिशुष्कं स्फुटितं दीर्णमाजानु यच्चापि ॥ २०२ ॥ व्रणकासकुष्ठगुल्मश्वयथुं गरपाण्डुमेहांश्च । मन्दाग्निञ्च विबन्धं प्रमेहपिडिकाश्च

नाशयत्याशु ॥ २०३ ॥ सततं निषेव्यमाणः कालवशाद्धन्ति सर्वगदान्। अभिभूय जरादोषं करोति कैशोरकं रूपम् ॥ २०४ ॥ प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थौ जलश्चाढकमाढकम् । गुडवद्गुग्गुलोः पाकः सन्धेयस्तु विशेषतः ॥ २०५ ॥

यह शरीरको बिगाडनेवाला वातरक्त, एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज, बहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ, भग्नरोग, स्रवता हुआ, सूखा हुआ, फटा हुआ, घुटनोंतक प्राप्त हुआ वातरक्त, व्रण, खांसी, कोढ, गुल्म, सूजन विषविकार, पांडुरोग, प्रमेह, मंदाग्नि, विबन्ध और प्रमेह पिडिका इन सबको शीघ्रही दूर कर देता है। यह सदैव सेवन किया हुआ कालवशसे सर्व रोगोंको नष्ट करदेता है। वृद्ध अवस्थाको दूर करके किशोर अवस्थाको प्राप्त करता है ॥ २०२ ॥ २०५ ॥

अथ त्रिफलागुग्गुलुः।

त्रिफलातिविषादारुदार्वीमुस्तापरूषकैः। खदिरासननक्ताह्वगुडूचीनृपपादपैः २०६ भूनिम्बनिम्बटुकाकलिङ्गकुलकैः समैः। क्वाथं कृत्वा ततः पूतं शृतमष्टगुणेऽम्भसि ॥ २०७ ॥ गुडूच्यास्तत्र सुकृतं चूर्णमर्द्धं तु वारिणि। क्षिप्त्वा सुनूतने भाण्डे वासयेद्र रजनीगतम् ॥ २०८ ॥ सोमोपेतेन पूतेन कौशिकं परिभावयेत्। षड्गुणेन तु सप्ताहं शिलाजतुसमन्वितम् ॥२०९॥ शुक्तस्य तु पलान्यष्टौ समावाप्य विचक्षणः। ताप्यचूर्णं पलश्चैकं द्वे पले मधुसर्पिषोः ॥ २१० ॥ एकीकृत्य समं सर्वं लिह्यात्सुत्रिफलाम्बुना । तनुना मुद्गयूषेण जाङ्गलानां रसेन वा। जीर्णेऽजीर्णे च भुञ्जीत पुराणं शालिषष्टिकम् ॥ २११ ॥ यथारोगं यथासात्म्यं रसैर्यूषैश्च संस्कृतैः । त्रिसप्ताहप्रयोगेण वातरक्तं सुदारुणम् ॥ २१२ ॥ निहन्ति वीर्यतः क्षिप्रं कुष्ठरोगान् व्रणानपि। छिन्नं भिन्नञ्च सन्धत्ते त्रिफलाख्यो हि गुग्गुलुः ॥ २१३ ॥

त्रिफला, अतीस, देवदारु, दारुहलदी, नागरमोथा, फालसे, खैर, विजयसार, हलदी, गिलोय, अमलतास, चिरायता, नीम, कुटकी, इन्द्रजौ और पटोलपत्र यह सब समान भाग लेकर अठगुने जलमें पकावे, गिलोय काथके जलसे आधी लेवे। पश्चात् उस जलको उत्तम मट्टीके बासनमें करके एक रात्रितक सुवासित करे। फिर इसमें छःगुनी बावची मिलाकर वस्त्रमें छानकर इसमें गूगलकी सात दिनतक शिलाजीत मिलाकर भावना देवे। फिर शुक्तनामक कांजी ३२ तोले, सोनामाखीका चूर्ण चार तोले, सहत और घी आठ तोले सबको मिलाकर एकमें एक कर लेवें। इसको त्रिफलेके जलके साथ अथवा मूँगके यूषके साथ या जांगलीजीवोंके मांसके रसके साथ मिलाकर खाय। जब जीर्ण होने लगे तब पुराने शालि या सांठी धान और यथारोगानुसार और प्रकृतिके अनुसार रस और यूषोंको सेवन करे। इसको तीन सप्ताह पर्यन्त सेवन करनेसे दारुण वातरक्त नष्ट होता है और यह अपने प्रभावसे कुष्ठ और व्रणोंको भी दूर कर देता है। यह त्रिफलागूगल छिन्न भिन्न अंगोंको जोडनेवाला है ॥ २०६-२१३ ॥

अथ सिंहनादगुग्गुलुः।

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम्। सौगन्धिकं पलश्चैकं कौशिकस्य पलत्रयम् ॥ २१४ ॥ कुडवं चित्रतैलस्य सर्वमादाय यत्नतः। पाचयेत्पाकविद्वैद्यः पात्रे लोहमये दृढे ॥२१५॥ हन्ति वातं

तथा पित्तं श्लेष्माणं खञ्जपङ्गुताम् । श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ २१६ ॥ कुष्ठानि वातरक्तञ्च गुल्मशूलोदराणि च । आमवातं जयत्येतदपि वैद्यविवर्जितम् ॥ २१७ ॥ सर्वदाऽस्योपयोगेन जरापलितनाशनम् । सर्पिस्तैलरसोपेत— मश्नीयाच्छालिषष्टिकम् ॥ २१८ ॥ सिंहनाद इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा । वह्नेर्दीप्तिकरं पुंसां भाषितो दण्डपाणिना ॥ २१९ ॥ अत्राहुस्त्रिफलाक्काथं पृथक् त्रिपलसम्मितम् । किञ्चिन्निर्याति चैरण्डस्नेहे पाकोऽधिके खरः ॥ २२० ॥

त्रिफलेका काथ बारह तोले कूटा हुआ गन्धक चार तोले, गूगल बारह तोले और अंडीका तेल पावभर लेवे। सबको एकत्र करके पाकको जाननेवाला वैद्य लोहेके दृढ और उत्तम पात्रमें पकावे, यह वात, पित्त तथा कफके विकार, खंज, पंगुता, दुर्जर श्वास, पांचों प्रकारकी खांसी, कोढ, वातरक्त, गुल्म, शूल, उदररोग और दुर्जर आमवातरोगको भी नष्ट करता है। इसका सदैव उपयोग करनेसे यह जरा और पलितरोगोंको नष्ट करता है। घी, तेल और मांस रसके साथ शालि और सांठी धानोंके चावलोंको खायें। 'सिंहनाद' नामक यह गूगल रोगरूपी हाथियोंके मदको हरनेवाला है। अग्निको दीप्त करनेवाला है। ऐसा श्रीमहादेवजीने कहा है॥ ११४-२२०॥

अथ द्वितीयः सिंहनादगुग्गुलुः ।

अष्टौ पलान्यत्र पलङ्कषायाः प्रस्थं पृथक् शुद्धफलत्रयस्य । दत्त्वा पचेद्द्रोणयुगे जलस्य दादावशेषं पुनरेव वैद्यः॥२२१॥ दन्तीत्रिवृत्त्र्यूषणवारुणीनां विडङ्गमुस्तत्रिफलाऽमृतानाम् । कन्दोग्रगन्धालुकमाणकानां सगन्धकानां च सपारदानाम् ॥ २२२ ॥ पलार्द्धमानं प्रमितं सुचूर्ण्य दद्याद्विपक्कं पुनरेव तत्र । फलानि संचूर्ण्य च कानकानि सहस्रसंख्याकलितानि पश्चात् ॥ २२३ ॥ खादेद्धि माषद्वितयं प्रतप्तं तोयादिकं देयमतोऽनुपाने । आमानिलं सन्धिगतं सशूलं शिरोगतं जानुकटिस्थितञ्च ॥ २२४ ॥ अर्शोऽतिवृत्तिं विषमज्वरार्तिं प्रमेहकुष्ठानि भगन्दरञ्च । हन्यान्नराणामिति सिंहनादो मेदोमरुच्छ्लेष्मगदान्पुरोऽयम् ॥ २२५ ॥ दोहोऽत्यन्तप्रवृत्तिर्वा विकारोऽन्यो भवेद्वली । तत्कृतस्तु तदा तत्र तक्रभक्तं हितं भवेत् । उद्वर्तनं शीतजलस्नानं च शयनं तथा ॥ २२६ ॥ विरेकातिशयं कुर्यात्सिंहनादो यतः सुधीः । ज्ञात्वा बलं शरीरे तु दद्यादेवं न वा भिषक् ॥ २२७ ॥ तोयारनालगोक्षीरैः क्रमात्पक्वं विशुध्यति । फलं कनकसंज्ञन्तु कृत्वा चूर्णं ततः क्षिपेत् ॥ २२८ ॥

शुद्ध गूगल बत्तीस तोले, शुद्ध हरड ३२ तोले, शुद्ध बहेडा ३२ तोले और शुद्ध आमले ३२ तोले इन सबको दो हजार अडतालीस तोले भर जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग रहजाय तब उतार लेवे, फिर इसमें जमालगोटे, निसोत, सोंठ, मिरच, पीपल, भुँईआमले, वायविडंग, नागरमोथा, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, सूरण, वच, आलुक, मानकन्द, गन्धक और पारा ये प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर चूर्ण बनाकर उसमें डालकर दूसरी बार पकावे। पकजानेके बाद एक हजार धत्तूरेके फूलोंका चूर्ण करके मिलादेवे तो यह 'सिंहनाद गूगल' तय्यार होता है। यह गूगल बारह रत्ती प्रमाण खाय

और गरम जल आदिका अनुपान करे। यह गूगल मनुष्योंका आमवात, शूल, संधिगत-शिरोगत और जानु कटी इनमें रहनेवाला वात, बवासीर, विषमज्वरकी पीडा, प्रमेह, कोढ, भगन्दर और मेद, वायु तथा कफसे उत्पन्न हुए रोगोंको दूर करता है। इस गूगलको सेवन करनेसे दाह, अतीसार अथवा अन्यान्य कोई विकार हो तो तक्रके साथ भात खाय। उबटन, शीतल जलसे स्नान और शयन करना हितकारी है। यह सिंहनादगूगल बहुत दस्त लाता है, इस कारण बुद्धिमान् वैद्य रोगीके शरीरका बल विचारकर बारह रत्ती प्रमाण देवे अथवा इससे भी कम देवे। इस गूगलमें धत्तूरेके फलोंका चूर्ण डालना कहा है, सो उनका ऐसेही नहीं डालना चाहिये किन्तु प्रथम उसके फलोंका अनुक्रमसे पानीसे और, नालसे तथा गायके दूधसे पकावे, प्रथम शुद्ध करके फिर इनका चूर्ण करके डाले। पानी आदिमें पकानेसे धत्तूरेके फल शुद्ध हो जाते हैं ॥ २२१-२२८ ॥

अथ तृतीयसिंहनादगुग्गुलुः।

पिचितां गुग्गुलोर्मानीं कटुतैले पलाष्टके। प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ २२९ ॥ पादशेषं सुपूतश्च पुनरग्नावधिश्रयेत्। त्रिकटुत्रिफलामुस्ता विडङ्गामलकानि च ॥ २३० ॥ गुडूच्यग्नित्रिवृद्दन्तीवचासूरणमानकम्। कस्तूरीरससूतांशं प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ २३१ ॥ सहस्रं कानकफलं सिद्धे संचूर्ण्य निक्षिपेत् ॥ २३२ ॥ ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम्। धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलं सुविपुलं तथा ॥ २३३ ॥ आमवातं शिरोवातं ग्रन्थिवातं भगन्दरम्। जानुजङ्घाश्रितं वातं सकटीग्रहवेदनम् ॥२३४॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च भग्नं च तिमिरोदरे। अम्लपित्तं तथा कुष्ठं प्रमेहं गुदनिर्गमम् ॥ २३५ ॥ कासं पञ्चविधं श्वासं क्षयं च विषमज्वरम्। प्लीहानं श्लीपदं गुल्मान्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ २३६ ॥ शोथान्त्रवृद्धिशूलानि गुदजानि विनाशयेत्। मेदःकफामसञ्जातरोगवारणदर्पहा ॥२३७॥ सिंहनाद इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः। भिषग्भिर्वर्जिते रोगे भाषितो दण्डपाणिना ॥ २३८ ॥

बत्तीस तोले सरसोंके तेलमें खूब कूटा हुआ ३२ तोले गूगल लेवे, हरड ६४ तोले, बहेडे ६४ तोले और आमले ६४ तोले इन सबको डेढ द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर कपडेमें छान लेवे, फिर दूसरीवार आगपर पकावे उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग, आमले, गिलोय, चीता, निसोत, जयालगोटेके बीज, वच, जिमीकन्द, मानकन्द, कस्तूरी, दसोंत और पारा ये प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर पीस डालकर विधिपूर्वक पकावे जब पकजाय तब जल आरनाल, कांजी और गायके दूधसे शुद्ध किये हुए धतूरेके एक हजार फलका चूर्ण बनाकर डालदेवे तो यह 'सिंहनादगूगल' सिद्ध होता है। इस गूगलको बारह रत्ती प्रमाण खाय और गरम जल आदिका अनुपान करे। यह गूगल तत्काल जठराग्निको वडवानलके समान दीप्त करता है, धातुओंको बढ़ाता है, जीवनकी वृद्धि करता है, विपुल बलको उत्पन्न करता है तथा आमवात, शिरोवात, ग्रन्थिवात, भगन्दर, जानु और जंघागतवात, कमरकी पीडा, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, भग्न, तिमिर, उदररोग, अम्लपित्त, कोढ, प्रमेह, गुदा का निकलना खांसी, पांच

१ तोयारनालेति परिभाषा अत्राप्यनुवर्तते।

प्रकारका श्वास, विषमज्वर, प्लीहा, श्लीपद, गुल्म, पाण्डुरोग, कामला, सूजन, अंत्रवृद्धि शूल और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करता है । भेद, कफ और आम इन रोगरूपी हाथियोंके गर्वका हरनेवाला यह 'सिंहनाद-गूगल' इस नामसे प्रसिद्धयोग अमृतके समान है । वैद्यसे वर्जित रोगोंका दूर करनेके लिये यह श्रीमहादेवजीने कहा है ॥ २२९-२३८ ॥

शतावरी नागबला वृद्धदारकमुच्चटा । पुनर्नवाऽमृता कृष्णा वाजिगन्धा त्रिकण्कम् ॥२३९॥ पृथगदशपलान्येषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । तदर्द्धशर्करायुक्तं चूर्णं संमर्दयेद्बुधः ॥ २४० ॥ स्थापयेस्सुदृढे भाण्डे मध्वर्द्धाढकसंयुतम् । घृतप्रस्थेन वाऽऽलोड्य त्रिसुगन्धपलेन च ॥२४१॥ तं खादेदिष्टभक्ष्यान्नो यथावह्निवलं नरः । वातरक्तं क्षयं कुष्ठं कार्श्यं पित्तास्त्रसम्भवम् ॥२४२॥ वातपित्तकफोत्थांश्च रोगानन्यांश्च तत्कृतान् । हत्वा करोति पुरुषं कृत्वा सर्वामयाप्लुतम् ॥ २४३ ॥ वलीपलितनिर्मुक्तं मेधामृतिविभूषितम् । करोति पुरुषं धन्यं पञ्चवर्षशतायुषम् । योगसारामृतो नाम लक्ष्मीकीर्तिविवर्द्धनः ॥ २४४ ॥

सतावर, गंगरेन, विधारा, उटंगनके बीज, पुनर्नवा, गिलोय, पीपल, असगन्ध और गोखरू ये प्रत्येक पदार्थ चालीस चालीस तोले लेकर उनका बारीक चूर्ण बनाकर उनमें आधाभाग खांड मिलावे, सबको खूब मर्दन करे । फिर उसमें १२८ तोले सहत और ६४ तोले घी तथा तज, तेजपत्र और इलायचीका चूर्ण प्रत्येक चार चार तोले मिलाकर अत्यन्त दृढ बासनमें भरकर रखदेवे तो यह 'योगसारामृत' सिद्ध होता है । मनुष्योंको यह 'योगसारामृत' अपनी जठराग्निके बलानुसार खाना चाहिये और यथेष्ट अन्नपान भोजन करे । लक्ष्मी तथा कीर्तिको बढानेवाला यह योगसारामृत—वातरक्त, कोढ, कृशता, पित्त तथा रुधिरसे उत्पन्न होनेवाले रोग और वात, पित्त तथा कफसे उत्पन्न हुए अन्यान्य रोगोंको भी दूर करके वली और पलितरोगको नष्ट करता है, मेधा और स्मरणशक्तिसे शोभायमान करता है । भाग्यको बढाता है और उसकी पांचसौ वर्षकी आयु करता है ॥ २४४ ॥

अथ वातरक्ते त्याज्यानि ।

व्यायामं मैथुनं कोपमुष्णाम्ललवणं रसम् । दिवास्वप्नमभिष्यन्दि गुरु चान्यद्विवर्जयेत् ॥ २४५ ॥

इति श्रीलटकनतनयभावमिश्रकृते भावप्रकाशे वातरक्तनिदानचिकित्साधिकारः ।

व्यायाम मैथुन, क्रोध, उष्ण, खट्टा और खारेरसवाले पदार्थ, दिनमें सोना और जो जो पदार्थ अभिष्यन्दी तथा भारी हैं, उन सबको यह वातरक्त रोगी त्याग देवे ॥२४५॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्य–संजीवनीभाषाटीकायां मध्यमखण्डे वातरक्ताधिकारः सम्पूर्णः ॥

इति मध्यमखण्डस्य द्वितीयो भागः ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ भावप्रकाशः

भाषाटीकासमेतः

★

मध्यमखण्डे तृतीयो भागः ३.

अथ शूलाधिकारः ।

तत्र शूलनिदानम् ।

दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत । सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

१ वायुसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ तीनों दोषोंसे ५ आमसे, ६ वातपित्तसे, ७ वात तथा कफसे और ८ पित्तकफसे इस प्रकार शूल आठ प्रकारका है, इन सम्पूर्ण शूलोंमें वातका शूल अधिक प्रबल है ॥ १ ॥

अथ वातोत्पन्नशूलस्य निदान–सम्प्राप्ति–लक्षणानि ।

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् । कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ २ ॥ कषायतिक्तातिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकैः । विट्छुक्रमूत्रानिलसन्निरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाषात् ॥ वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पृष्ठपार्श्वत्रिकवस्तिदेशे । जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ॥ ३ ॥ मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विण्मूत्रसंस्तम्भनतोदभेदैः । संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ४ ॥

व्यायामः–मल्लयुद्धादिः । यानम् तुरगरथादि । मैथुन–स्त्रीसेवा । प्रजागरो–रात्रौ । एषामतियोगा· च्छीतलजलप्रभूतपानात् ।कलायः त्रिपुटः । आढकीतुवरी । कोरदूषः–कोद्रवः । अत्यर्थरूक्षम्-अतिरूक्षद्रव्य सेवा । अध्यशनम्-भुक्तस्य उपरि भोजनम् । अभिघातो-लोष्टादिभिः । कषायतिक्तरससेवा–कषायः विरूढजान्नम्, विरूढमङ्कुरितमन्नम्, कलायचणकादि तज्जमन्नं भक्ष्यम् । वल्लूरकं-शुष्कमांसम् । तस्य शूलस्य देशमाह-हृदादिषु । तत्र हृच्छूलस्य पृथगपि लक्षणं पठन्ति ।

प्रकृतमनुचरति । जीर्णे–भुक्ते । प्रदोषे-राज्यागमे रात्रिभवशीतेन वातप्रकोपात् । घनागमे-वर्षासु मेघोदये च ॥

कसरत, यान, रथ, घोडे आदिकी सवारी, मैथुन, रात्रिमें जागरण इनको अत्यन्त करनेसे, शीतल जलके अधिक पीनेसे, मटर, मूँग, अरहर तथा कोदोंके अत्यन्त भक्षणसे, रूक्ष पदार्थोंको अत्यन्त सेवन करनेसे, अध्यशन–भोजनपर भोजन करनेसे, अभिघात–लाठी ईंट आदिकी चोट लगनसे, कसैले, कडवे रसके सेवनसे, जिसमें अंकुर निकल आये हों,

ऐसा अन्न तथा विरुद्ध पदार्थ-दूध, मछली आदि के खानेसे, सूखा हुआ मांस तथा सूखे-हुए शाक भिंडी, ग्वार आदि के भक्षणसे, विष्ठा, वीर्य, मूत्र, अधोवायु इनके वेगको रोकनेसे, अत्यन्त शोक तथा अत्यन्ताधिक उपवास करनेसे, बहुत हँसनेसे और अत्यन्त बोलनेसे वृद्धिको प्राप्त हुई वायु हृदय, पीठ, पसली, त्रिकस्थान और मूत्राशयमें शूलको उत्पन्न करती है। पश्चात् खाया हुआ अन्न पच जानेपर प्रदोष (सन्ध्याकाल) में, वर्षासमयमें, शीतकालके समयमें वायुका कोप होनेपर शूल अधिक कुपित होता है। यह शूल वारंवार कुपित होता है और वारंवार शांत होता हैं, इस शूलसे विष्ठा तथा मूत्र रुकजाता है, पीडा अधिक होती है और अंगोंमें भेद होता है। यह वातशूलके लक्षण हैं। सेक आदि स्वेदन करनेसे, अभ्यंग तेलकी मालिस से मर्दन से और स्निग्ध तथा गरम भोजन करनेसे यह शूल शांत होता है ॥ २ ॥ ४ ॥

अन्य ग्रन्थोंमें हृदयके, शूलके, पसलीके और वस्तिशूलके अलग लक्षण भी कहे हैं सो कहते हैं-

अथ हृदयशूललक्षणम् ।

कफपित्तावरुद्धस्तु मारुतो रसवर्द्धितः ॥ ५ ॥ हृत्स्थः प्रकुरुते शूलमुच्छ्वास-स्यावरोधकम् । सहृच्छूल इति ख्यातो रसमारुतकोपजः ॥ ६ ॥

कफ तथा पित्तसे रुकी हुई और रससे बढी हुई हृदयमें रहनेवाली वायुसे श्वास रुकती है, तब शूलको उत्पन्न करती है। रस और वायुके कोपसे उत्पन्न हुआ वह शूल हृदयशूल कह-लाता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ पार्श्वशूललक्षणम् ।

कफं निगृह्य पवनः सूचीभिरिव निस्तु-दन् । पार्श्वस्थः पार्श्वयोः शूलं कुर्यादा-ध्मानसंयुतम् ॥ ७ ॥ तेनोच्छ्वसिति वक्त्रेण नरोऽन्नञ्च न कांक्षति । निद्राञ्च नाप्नुयादेव पार्श्वशूलः प्रकीर्तितः ॥८॥

वायु कफको लेकर सुईके चुभोनेकी सदृश पसलियोंमें पीडा उत्पन्न करती है और साथमें पेटपर अफारा भी करती है। यह शूल हुआ हो तो मनुष्य मुखसेही ऊँचे श्वास लेता है,अन्नकी इच्छा नहीं होती और निद्रा भी नहीं आती। इन लक्षणोंवाला यह शूल पार्श्वशूल कहा जाता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ वस्तिशूललक्षणम् ।

संरोधात्कुपितो वायुर्वस्तिं संश्रित्य तिष्ठति । वस्तेरध्वनि नाडीषु ततः शूलोऽस्य जायते । विण्मूत्रवातसंरोधी वस्तिशूलः स उच्यते ॥ ९ ॥

वेगोंके रोकनेसे कुपित हुई वायु मूत्राशयमें भरी रहती है,इससे मूत्राशयके मार्गकी नाडि-योंमें शूल होता है और इससे मल, विष्ठा, मूत्र तथा वायु भी रुक जाती है, यह वस्तिशूल कहलाता है ॥ ९ ॥

अथ पित्तशूलनिदानसम्प्राप्ति-लक्षणानि ।

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपि-ण्याककुलत्थयूषैः । कट्वम्लसौवीरसु-राविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः । ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकु-प्याथ करोति शूलम् । तृण्मोहदाहार्ति-करं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयु-क्तम् ॥ १० ॥ मध्यन्दिने कुप्यति चार्द्धरात्रे निदाघकाले जलदात्यये च । शीते च शीतैः समुपैति शान्तिं सुस्वा-दुशीतैरतिभोजनैश्च ॥ ११ ॥

निष्पावः राजमाषः। सौवीरं-सन्धानभेदः। सुराविकारैः 'परिपक्वान्नसन्धानसमुत्पन्ना सुरा मता' तस्याः प्रकारैः। रविप्रतापः—आतपः। ग्राम्याति—योगः—मैथुनाधिक्यम्। विदाहीत्युत्क्वापि अशनविदग्धैरिति। बोधयति--अविदाहिवस्तुनोऽपि पित्तवशाद्विदाहित्वं भवति। जलदात्यये-शरदि। शीतैः—वातादिभिः॥

खारोंसे, अत्यन्त तीक्ष्ण-गरम मरिच आदि और विदाहकारक पदार्थोंसे, तेल-चौरा-खल और कुलथीके यूषसे, तीक्ष्ण तथा खट्टे पदार्थोंसे, सौवीर कच्चे यवोंको अथवा पकेहुवोंको अर्थात् उनकी भूसी दूर करके जलमें सन्धान करनेको सौवीर कहते हैं, बरन् अंग्रेजीमें उसको भी राव कहते हैं।) से, सुराके विकारसे, क्रोधसे, अग्निके तापसे, परिश्रमसे, सूर्यकी तीक्ष्ण धूपसे, फिरनेसे, अधिक मैथुन करनेसे और विदाही भोजनोंसे कुपित हुआ पित्त नाभिमें शूलको उत्पन्न करता है। इससे तृषा, मोह, दाह, पसीना, मूर्च्छा, भ्रम और शोष होता है। यह शूल मध्याह्नके समयमें, अर्धरात्रिमें, ग्रीष्म ऋतुमें और शरद् ऋतुमें अधिक कुपित होता है। शीतकालमें शीतल-वायु आदिके लगनेसे अत्यन्त शीतल, अति मधुर भोजनोंसे शान्त होता है॥ १०॥ ११॥

अथ कफजशूलनिदानसंप्राप्तिलक्षणानि।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः। अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम्॥ १२॥ हृल्लासकासससदनारुचिसंप्रसेकैरामाशयैस्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः। भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदयेऽथ शिशिरे कुसुमागमे च॥ १३॥ पक्वं दध्ना समं क्षीरं विज्ञेया दधिकूर्चिका। तक्रेण तत्कूर्चकं स्यात्तयोः पिण्डः किलाटक१४

आनूपम्-बहुलजलदेशजं भक्ष्यम्। वारिजम्शालूकादि। पयोविकारः--पायसादिः। पिष्टम्--माषादिः। अन्यैर्गुर्वादिभिः। स्तिमितमार्द्रपटावगुण्ठितमिव यत्कोष्ठं शिरश्चतयोर्गुरुत्वैः सहासूर्योदय इति--त्रिधा विभक्तदिवसप्रथमभागस्य उपलक्षणम्। शिशिरेतत्र कफस्य अतिसञ्चयात्। कुसुमागमे--वसन्ते॥

अधिक जलवाले देशोंमें उत्पन्न हुए भक्ष्योंसे-पक्षियोंके मांससे और मछली आदिका मांस अथवा जलमें उत्पन्न हुए कमलकन्द आदि पदार्थोंसे किलाट-फटे दूधके मावे से, दूधपाक आदि पदार्थोंसे, मांससे, ईखके रससे, उडदादि पिसे अन्नसे, खिचडी, तिल, पूरी, कचौरी, दहीबडे और अन्य कफको उत्पन्न करनेवाले कारणोंसे कुपित हुआ कफ आमाशयमें शूलको उत्पन्न करता है। इस शूलसे हृल्लास, खासी, ग्लानि अरुचि हो और मुखसे लार गिरती है, उदर और मस्तक भारी रहता है। भोजन करनेके पश्चात् यह शूल सर्वदा अत्यन्त पीडा करता है और दिनके पहिले भागमें शिशिर ऋतुमें, वसन्तऋतुमें, कफका सञ्चय तथा वृद्धि होनेसे यह शूल अधिक पीडा करता है॥ १२॥ १४॥

अथ द्विदोषोत्पन्नशूललक्षणम्।

द्विदोषलक्षणैरेतैर्विद्याच्छूलं द्विदोषजम्॥ १५॥

सम्पूर्ण दोषोंके लक्षण ऊपर कहे हैं, उनमेंसे जिस शूलमें दो दोषोंके लक्षण एकत्र देखनेमें आवें, उस शूलको दोषोंसे उत्पन्न हुआ जानना॥ १५॥

अथ त्रिदोषोत्पन्नशूललक्षणम् ।

सर्वेषु देशेषु च सर्वलिङ्गं विद्याद्भिषक्सर्वभवं हि शूलम् । सुकष्टमेनं विषवज्रकल्पं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः १६

सर्वेषु देशेषु हृत्पृष्ठपार्श्वत्रिकवस्तिनाभ्यामाशयेषु । सर्वभवं त्रिदोषजम् ॥

जो शूल दर्द, ऊपर कहे हुए हृदय, पीठ, पसली, त्रिक, वस्ति, नाभि और आमाशय इन सब स्थानोंमें होता हो और तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त हो, उसको त्रिदोषज शूल जानना यह शूल बहुत कष्ट, दायक है, विष तथा बज्रके सदृश है और चिकित्सा करनेके योग्य भी नहीं है, ऐसा वैद्योंने कहा है ॥ १६ ॥

अथामोत्पन्नशूललक्षणम् ।

आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यमानाहकफप्रसेकैः । कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति ॥१७॥

कफस्य--कफशूलस्य । आमोद्भवम् -आमादुद्भवो यस्य तम् । अत्र आमशूले जाते पश्चाद्दोषसम्बन्धः अत एव अस्य शूलस्य अष्टमत्वमुक्तम् स च प्रथमम् आमाशये भवति पश्चात् सम्बन्धिभिः दोषै वस्तिनाभिहृत्पार्श्वकुक्षिषु भवति यथा दोषसम्बन्धः ॥

जिस शूलमें अफारा, उबकाई वमन शरीरमें भारीपन मन्दता, मुखसे कफका आनाह, गिरना ये उपद्रव हों तथा कफज शूलके सदृश लक्षण हों, उस शूलको आमशूल कहते हैं । यह आमशूल उत्पन्न होने पर उसमें दोषोंका सम्बन्ध होता है, इस कारण आमशूलको आठवां कहा है, यह शूल प्रथम आमाशयमें होता है और पीछेसे दोषोंका सम्बन्ध होने पर जिस दोषका सम्बन्ध हुआ हो, उस दोष की रीतिके अनुसार वस्तिमें, नाभिमें, कोख में, हृदयमें, पसलियोमें और पेटमें होता है१७

दोषभेदेन आमशूलस्थानभेदः ।

वातात्मकं वस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् । हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥ १८ ॥

हृत्पार्श्वकुक्षौ हृत्पार्श्वाभ्यां सहिते कुक्षौ । कफसन्निविष्ट कफेन आविष्टम् ॥

आमशूल वायुके सम्बन्धसे हुआ हो तो मूत्राशयमें, पित्तके सम्बन्धसे हुआ हो तो नाभिमें कफके सम्बन्धसे हुआ हो तो हृदयमें पसलियोमें तथा उदरमें और तीनों दोषोंके सम्बन्धसे हुआ हो तो सम्पूर्ण प्रदेशोमें होता है ॥ १८ ॥

वस्तौ हृत्कटिपार्श्वेषु स शूलः कफवातिकः । कुक्षौ हृन्नाभिमध्ये तु स शूलः कफपैत्तिकः । दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः ॥ १९ ॥

कफके तथा वायुके सम्बन्धसे हुआ हो तो मूत्राशय हृदय, कमर और पसलियोंमें होता है, कफ तथा पित्तके सम्बन्धसे हुआ हो तो पेटमें, हृदय और नाभिके मध्यमें होता है और वायु तथा पित्तके सम्बन्धसे हुआ हो तो दाह तथा ज्वरको उत्पन्न करता है, यह बात पित्तका शूल अत्यन्त भयंकर है ॥१९॥

अथ तन्त्रान्तरोक्तामशूललक्षणम् ।

अतिमात्रं यदा भुक्तं पावके मृदुता गते । स्थिरीकृतन्तु तत्कोष्ठे वायुरावृत्य तिष्ठति ॥ २० ॥ यदन्नं न गतं पाकं तच्छूलं कुरुते भृशम् । मूर्च्छाध्मानविदाहांश्च हृत्क्लेशं सविलम्बिकम् ॥ २१ ॥ कम्पं वान्तिमतीसारं प्रमेहं जनयेदपि । अविपाकोद्भवं शूलमेतमाहुर्मनीषिणः ॥ २२ ॥

अविपाकोद्भवम्-आमोद्भवमित्यर्थः ॥

अत्यन्त भोजन किये अन्नसे जठराग्नि मन्द होजानेके कारण वायु कोठेमें अन्नको स्थिर करती है, वह अन्न वातमें मिलकर उदरमें स्थिर होकर जम जाता है और बात अन्नके चारों ओर रहता है। फिर वह अन्न पक्व नहीं होता तो वही दुष्ट अन्न नहीं पचकर भारी शूलको उत्पन्न करता है तथा मूर्च्छा: अफारा, दाह, हृदयमें क्लेश, विलंबिका कफ, वमन, अतिसार और प्रमेहको उत्पन्न करता है, इस शूलको विद्वान् आमशूल कहते हैं ॥ २०-२२ ॥

अथ शूलोपद्रवाः ।

वेदनाऽतितृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवारुची । कासःश्वासो वमिर्हिक्का शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ २३ ॥

वेदना (पीडा), अत्यन्त तृषा, मूर्च्छा, मलबन्ध, भारीपन, अरुचि, खांसी, श्वास वमन और हिचकी ये शूलके दश उपद्रव जानने ॥ २३ ॥

अथ शूलसाध्यासाध्यत्वम् ।

एकदोषानुगःसाध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः । सर्वदोषान्वितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ २४ ॥

जो एक दोषवाला हो वह साध्य, दो दोषवाला हो वह कष्टसाध्य और तीन दोषवाला हो तथा अधिक उपद्रव सहित हो वह असाध्य तथा भयंकर जानना ॥ २४ ॥

अथ शूलारिष्टम् ।

वेदनाऽतितृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवं ज्वरः । भ्रमोऽरुचिःकृशत्वं च बलहानिस्तथैव च । उपद्रवा दशैवैते यस्य शूलेषु नास्ति सः ॥ २५ ॥

वेदना, अत्यन्त तृषा, मूर्च्छा, अफारा, भारीपन, ज्वर, भ्रम, अरुचि, दुर्बलता और बलकी हानि इन दश उपद्रवों सहित शूल रोगी हो तो वह रोगी कदापि नहीं बच सकता ॥ २५ ॥

अथ शूलभेदः--परिणामः ।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वातः सन्निहितो यदा । कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बली । भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ॥ २६ ॥

स्वैर्निदानैरित्यादिना निदानपूर्विका सम्प्राप्तिरुक्ता । भुक्ते जीर्यतीत्यादिना लक्षणमुक्तम् । समावृत्य व्याप्य ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुई बलवान् वायु जब कफ और पित्तमें व्याप्त होती है तब शूल उत्पन्न होता है और वह शूल भोजन कियेके पचनेके समयमें होता है, इसको परिणाम शूल कहते हैं ॥ २६ ॥

तस्य लक्षणमप्यतत्समासेनाभिधीयते । अध्मानाटोपविण्मूत्रविबन्धारतिवेपनैः । स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भिषक् ॥ २७ ॥

उसके लक्षण भी संक्षेपसे कहते हैं--पेटका फूलजाना, गुडगुड शब्द होना, मलमूत्रका अवरोध, अरति मनका न लगना तथा कंप ये लक्षण हों और स्निग्ध तथा उष्ण पदार्थोंसे शांत होता हो, उसको वैद्य वातसे उत्पन्न हुआ परिणामशूल कहते हैं ॥ २७ ॥

तृष्णादाहारतिस्वेदकट्वम्ललवणोत्तरम् । शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद्बुधः ॥ २८ ॥

जिसमें तृषा, दाह, अरति, पसीना, तीक्ष्ण, खट्टे तथा खारे पदार्थोंसे हुआ हो और शीतल पदार्थोंसे जो शान्त होता हो, उसको विद्वान् पित्तसे उत्पन्न हुआ परिणामशूल कहते हैं ॥ २८ ॥

छर्दिहृल्लाससंमोहस्वल्परुग्दीर्घसन्ततिः । कटुतिक्तोपशान्तौ च विज्ञेयश्च कफात्मकम् ॥ २९ ॥

जिसमें वमन, हृल्लास, मोह तथा अल्प पीडा हो, बहुत दिनोंतक रहे और तीक्ष्ण तथा कडवे पदार्थोंसे जो शांत होता हो तो उस शूलको कफसे उत्पन्न हुआ परिणामशूल जानना ॥ २९ ॥

संसृष्टलक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत् । त्रिदोषजमसाध्यं स्यात्क्षीणमांसबलानलम् ॥ ३० ॥

उपरोक्त लक्षणोंमेंसे दो दोषोंके लक्षण मिलते हों तो वह द्वन्द्वज और जिसमें उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषज जानना । जो शूल त्रिदोषज हो और जिसने मांसबल तथा अग्निको क्षीणकर दिया हो वह परिणामशूल असाध्य जानना ॥ ३० ॥

अथान्नद्रवनामकशूललक्षणम् ।

जीर्णे जीर्यति चाप्यन्ने यच्छूलमुपजायते । पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन वा । न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ ३१ ॥ नेदं शूलमसाध्यं चिकित्साभिधानात् ॥

भोजन किया हुआ अन्न पचनेके समयमें अथवा पचनेके पश्चात् जो शूल उत्पन्न होजाता है तथा पथ्यसे अपथ्यसे भोजनसे अथवा अभोजनसे जिसके शांत होनेका नियम नहीं है वह अन्नद्रवशूल कहाता है, इस शूलको असाध्य नहीं जानना, क्योंकि ग्रन्थोंमें वैद्यलोगोंने चिकित्सा कही है ॥ ३१ ॥

अथ शूलचिकित्सा ।

वमनं लंघनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः । क्षारश्चूर्णानि गुटिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ ३२ ॥ विज्ञाय वातशूलन्तु स्नेहस्वेदैरुपाचरेत् । स्वल्पशूलाकुलस्य स्यात् स्वेद एव सुखावहः ॥ ३३ ॥

वमन, लंघन, स्वेदन, पाचन, फलवर्त्ति गुदामें(बत्ती चढाना) क्षार, चूर्ण और गोली ये सब उपाय शूलकी शांति करनेके लिये उत्तम कहे हैं । शूल वायुसे हुआ जाने तो स्नेह तथा स्वेदन उपचार करे. किंचित् शूल हो तो स्वेद करनेसे सुख होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ मृत्तिकास्वेदः ।

मृत्तिकां सजलां पाकाद्घनीभूतां पटे क्षिपेत् । कृत्वा तत्पोटलीं शूली यथास्वेदं विधारयेत् ॥ ३४ ॥

मट्टीमें पानी डालकर पकावे, जब गाढा होजाय तब कपडेमें रख पोटली कर लेवे, इससे योग्य सेक करे तो वायुका शूल दूर होता है, इसको मृत्तिकास्वेद कहते हैं ॥३४॥

अथ कार्पासास्थ्यादिस्वेदः ।

कार्पासास्थिकुलत्थकैस्तिलयवैरेरण्डमूलातसीवर्षाभूशणबीजकाञ्जिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक् । स्वेदःस्यादथ कूर्परोदरशिरःस्फिग्जानुपादाङ्गुलीगुल्फस्कन्धकटीरुजो विजयते निःशेषवातार्तिहा॥३५॥

कपासकी अस्थि (बिनोले), कुलथी, तिल और जौ इन सबको अथवा एक एकको अण्डीकी जड, अलसी, सोंठ, सनके बीज और काँजी इन सबके साथ मिलाकर गरमकर लेवे, इससे स्वेद देवे तो पहुँचा, पेट, शिर, कूला, घुटुआ, पैर, पांव, अंगुली, एडी, कन्धा और कमर इनका शूल नष्ट होता है और अन्य वायुसंबंधी सम्पूर्ण पीडा दूर होती है, इसका कार्पासास्थ्यादिस्वेद कहते हैं ॥ ३५ ॥

अथ तिलादिगुटिका ।

तिलैश्च गुटिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि शूलं सुदुस्तरं तेन शान्तिं गच्छति सत्वरम् । नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनं काञ्जिकान्वितम् ॥ ३६ ॥

मदनम्-मयनफलम् ॥

विश्वमेरण्डजं मूलं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् । हिङ्गुसौवर्चलोपेतं सद्य शूलनिवारणम् ॥ ३७ ॥

तिलोंको पीसकर गोली बनावे और पेटके ऊपर फेरे तो इससे भयंकर शूल भी तुरन्त शांत होजाता है । अथवा मैनफलको काँजीमें पीसकर नाभिके ऊपर लेप करे तो शूल मूलसे जाता रहता है । सोंठ और अण्डीकी जड इनका क्वाथ करके उसमें भूनी हींग तथा कालानोन डालकर पीवे तो तुरंत ही शूल नष्ट होता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथ वातजशूलचिकित्सा ।

पुंसः शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः । पायसैः कृशरैः पिण्डैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करैः ॥ ३८ ॥ वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः। ससैन्धवव्योषयुतः सलावः सहिंगुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥ ३९ ॥

शूलरोगीको तिल चावलकी यवागू तथा स्निग्ध मेंढक आदिके मांससे स्वेदन करना अत्यन्त उपकारी है । लवापक्षीका मांस और कुलथी इन दोनोंका क्वाथ करके हींगके साथ थोडासा सैंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल, अनारदानेके रस और सञ्चरनिमक मिलाके सेवन करे तो शीघ्र वातशूल दूर होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः । सहिंगुलवणोपेतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ ४० ॥

खिरैंटी, पुनर्नवा, अण्ड, छोटी कटेरी, बडी कटेरी इनके क्वाथमें हींग और सैंधानिमक डालके पीवे तो वातशूल नष्ट हो ॥४०॥

तुंबुरूण्यभया हिंगु पौष्करं लवणत्रयम्। पिबेदुष्णाम्बुना वाऽपि शूलगुल्मापतन्त्रकी ॥ ४१ ॥

अथवा तुंबुरू, हरड, हींग, पोहकरमूल संचर, सैंधानोन और विडनिमक इनका समान भाग चूर्ण कर गरम जलके साथ पीवे तो शूल, गोला और अपतंत्र वात दूर हो ४१॥

यवानीहिंगुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः। सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनिषूदनाः ॥ ४२ ॥

अजवायन, हींग, सधानिमक, सज्जीखार जवाखार, संचरनिमक और हरडे चूर्णका मद्य अथवा मांडसे पीवे तो वातशूल दूर हो४२॥

सौवर्चलाम्लिकाजाजीमरिचैर्द्विगुणोत्तरैः। मातुलुङ्गरसैः पिष्टा गुटिका वातशूलनुत् ॥ ४३ ॥ बीजपूरकमूलं च घृतेन सह पाययेत् । जयेद्वातभवं शूलं कर्षमेकं प्रमाणतः ॥ ४४ ॥

संचरनिमक २ भाग, इमली ४ भाग, जीरा ८ भाग और कालीमिरच १६ भाग इन सबको बिजोरेके रसमें खरलकर गोली बनावे, यह वातशूलको नष्ट करती है । अथवा बिजौरेकी जडका दो तोले चूर्ण कर घीके साथ पीवे तो बातशूल नष्ट हो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अथ पित्तजशूलचिकित्सा ।

गुडं शालियवक्षारः सर्पिःपानं विरेचनम् । जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ ४५ ॥ मणीरजतताम्राणां भाजनानि गुरूणि च । तोयेन परिपूर्णानि शूलस्योपरि धारयेत् ॥४६॥ विरेचनं पित्तहरं प्रशस्तं रसाश्च शस्ताः शशलावकानाम् ॥ सगुडां घृतसंयुक्तां भक्षयेद्वा हरीतकीम् । प्रलिह्याच्छूलशान्त्यर्थं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥ ४७ ॥

जिसको पित्तका शूल हुआ हो उसके लिये गुड, शालि चावलोंका भात, जवाखार, घी पीना, विरेचन और जांगलदेशके पशु पक्षि-

योंका मांस ये औषधि रूप हैं। मणि, चांदी अथवा तांबेके भारी भारी पात्रोंमें जल भरकर पित्तज शूलक ऊपर धरे इससे पित्तजशूल नष्ट होता है। पित्तका हरनेवाला विरेचन, खरगोश और लवेके मांसका रस यह पित्तज शूलको शान्त करता है। हरडोंका चूर्ण करके उसको गुड घीमें मिलाकर चाटनेसे अथवा सहतके साथ आमलका चूर्ण चाटे तो पित्तज-शूलको शांति होती है॥ ४५-४७॥

अथ कफजशूलचिकित्सा।

शाल्यन्नं जाङ्गलं मांसमरिष्टं कटुकं रसम्। मधुना जीर्णगोधूमं कफशूले प्रयोजयेत्॥ ४८॥

अरिष्टम्-भेषजवारिक्वाथसिद्ध मद्यम्॥

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम्। सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफशूलं प्रणाशयेत्॥ ४९॥

कफसम्बन्धी शूल हुआ होतो शालिचावल, जांगलदेशके पशुपक्षियोंका मांस, अरिष्ट योग्य औषधियोंके जलके क्वाथसे बनाई हुई मदिरा, तीक्ष्ण रस और मदिराके साथ पुराने गेहूँके पदार्थ ये सेवन करे। सेंधानोंन, विडनोंन, कालानोंन, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, मिरच और हींग इनका चूर्ण करके सुहाते २ गरम जलके साथ पीवे तो इससे कफज-शूल नष्ट होता है॥ ४८॥ ४९॥

अथामशूलचिकित्सा।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलप्रणाशिनी। सेव्यमामहरं सर्वमग्नेर्मन्दस्य वर्द्धनम्॥ ५०॥ तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम्। प्रयोज्यं मधुसर्पिभ्यां सर्वशूलनिवारणम्॥ ५१॥ दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः। अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च लिम्पेच्छूलयुतोदरम्॥ ५२॥ मूलं बैल्वं तथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम्। हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम्॥ ५३॥

आमशूल हुआ हो तो कफशूलको नष्ट करनेवाली क्रिया करे आमको नष्ट करनेवाले सब पदार्थोंका सेवन करे और मन्द हुई अग्निको प्रदीप्त करे। राईका चूर्ण और हरड, बहेडा तथा आमले इनका चूर्ण मद्यमें तथा घीमें मिलाकर खावे तो इससे सर्व प्रकारके शूल नष्ट होते हैं अथवा देवदारु, सफेदबच, कूठ, सोया, हींग और सैंधानिमक इनको नींबूके रसमें पीसकर सुहाता सुहाता गरम लेप करे, इससे उदरका शूल निर्मूल होता है। अथवा बेलकी जड, अरण्डकी जड, चीता और सोंठ इनका चूर्ण करके हींग और सैंधेनोनके साथ खाय तो इससे तत्काल शूल निवृत्त होता है॥ ५०-५३॥

वातरोगान्तर्गताधमान चिकित्सायां लिखितो नाराचनामा रसोऽन्यच्च विरेचनं शूले हितम्॥

वायुसम्बन्धी रोगोंके प्रकरणमें आधमानकी चिकित्सापर जो नाराचनामक रस कहा है, वह और अन्य भी विरेचन शूलपर हितकारी है॥

अथ कूष्माण्डक्षारः।

कूष्माण्डं तनु कृत्वा तु क्षिप्त्वा घर्मे विशोषयेत्। स्थाल्यां निक्षिप्य तत्सर्वं पिधानेन पिधाय च॥ ५४॥ चुल्ल्यां निवेश्य वह्निं च ज्वालयेत्कुशलो जनः। यथा तन्न भवेद्भस्म किन्त्वङ्गारो दृढो भवेत्। तदा निर्वापयेच्छीतं सर्वथा चूर्णितन्तु तत्॥ ५५॥ माषद्वयमितं तावच्छुण्ठीचूर्णेन मिश्रितम्। जलेन भक्षयेन्नित्यं महाशूलाकुलो नरः। असाध्यमपियच्छूलं तदप्येतेन शाम्यति५६॥

पेठेके छोटे २ टुकडे करके धूपमें सुखावे-पश्चात् इन सब टुकडोंको हांडामें भरकर ऊपरसे डक देवे, फिर चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जला देवे, परन्तु अग्नि इस प्रकार जलावे कि जिससे पेठेके टुकडे जल न जाय किन्तु दृढ अंगारोंके सदृश होजायँ। फिर इनको शीतल होनेपर चूर्ण कर लेवे और बारह रत्ती इसके चूर्णमें बारह रत्ती सोंठका चूर्ण मिलाकर पानीसे नित्य भक्षण करे तो इससे असाध्य शूलभी शान्त होजाता है। अत्यन्त शूलसे व्याकुल हुए मनुष्योंको यह उपाय करना चाहिये, इसको 'कूष्माण्डक्षार' कहते हैं ॥ ५४-५६ ॥

अथ परिणामशूलचिकित्सा ।

लंघनं प्रथमं कुर्याद्वमनं सविरेचनम् । पक्तिशूलोपशान्त्यर्थं तत्र वान्तेर्विधिर्यथा ॥ ५७ ॥ पीत्वा तु क्षीरमाकण्ठं मदनक्वाथसंयुतम् । कान्तारकस्य पौण्ड्रस्य कोशकारस्य वा रसम् ॥ ५८ ॥ कषायो क्वाथ निम्बस्य कटुतुम्बीरसोऽथ वा । यथाविधि वमेद्धीमान्पक्तिशूलार्दितो जनः ॥ ५९ ॥ त्रिवृता च तथा दन्त्या तैलेनैरण्डजेन वा । दत्तं विरेचनं सद्यः पक्तिशूलनिवारणम् ॥ ६० ॥

परिणामशूलकी शांतिके लिये प्रथम लंघन और पश्चात् वमन तथा विरेचन करावे। वमनकी विधि इस प्रकार है कि-परिणाम शूलसे पीडित मनुष्य मैन फलके क्वाथके साथ दूधको अथवा कालेगन्ने के रसको अथवा पौंड्रक ईखके रसको वा कोशकार ईखके रसको वा नीमके क्वाथको अथवा कडवी तोंबीके क्वाथको गलेतक पीकर विधिपूर्वक वमन करे। निसोत, जमालगोटेकी जड अथवा अण्डीके तेलका जुलाब देवे तो तुरन्त परिणामशूल नष्ट होता है ॥ ५७-६० ॥

अथ विडङ्गादिमोदकः ।

विडङ्गतण्डुलव्योषत्रिवृद्दन्तीसचित्रकम् । सर्वाण्येतानि संहृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ६१ ॥ गुडेन मोदकान्कृत्वा खादेदुष्णेन वारिणा । जयेत्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ ६२ ॥

वायविडंग, चावल, सोंठ, मिरच, पीपल, निसोत, दन्ती और चीता इन सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके गुडमें मिलाकर लड्डू बनालेवे। फिर गरम जलके साथ खाय, तो तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ परिणामशूल नष्ट होता है। इनको विडंगादिमोदक कहते है ॥ ६१-६२ ॥

अथ शुण्ठयादिकल्कः ।

नागरतिलगुडंकल्क पयसा संपिष्य यः पुमाँल्लिह्यात् । उग्र परिणतिशूलं नश्येत्तस्य त्रिरात्रेण ॥ ६३ ॥ पीतं शम्बूकजं जलेनोष्णेन तत्क्षणात् । पक्तिजं नाशयत्येव शूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ ६४ ॥

जो मनुष्य सोंठ तिल और गुड़ इनका कल्क करके दूधमें पीसकर चाटे तो उग्र परिणामशूल भी तीन दिनमें नष्ट होजाता है। अथवा छोटे २ घोघोंकी भस्मको गरम जलके साथ पीवे तो जिस प्रकार विष्णु दैत्योंका नाश करता है, उसी प्रकार यह भस्म परिणामशूलको तुरन्त शान्त करता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अथ पथ्यादिलोहः ।

लौहपथ्याकणाशुण्ठीचूर्णं समधुसर्पिषा । विलिहन्विनिहन्त्येव शूलं हि परिणामजम् ॥ ६५ ॥

लोहेकी भस्म, हरड पीपल और सोंठ इनका चूर्ण करके सहत और घीके साथ चाटे तो इससे परिणामशूल अवश्य नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

अथ नारिकेलक्षारः ।

नारिकेलं सतोयश्च लवणेन सुपूरितम् । मृदा च वेष्टितं शुष्कं पक्वगोमयवह्निना ॥ ६६ ॥ पिपल्या भक्षितं हन्ति शूलं हि परिणामजम् । वातिकं पैत्तिकश्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ६७ ॥

पानी भरे हुए गीले नारियलके पेटमें भलीभांति नोन भर देवे, पश्चात् कपडमट्टी करके सुखाकर अरने उपलोंकी अग्निसे पकावे और भस्म कर लेवे, यह भस्म पीपलके चूर्णके साथ खाय तो इससे वायुसम्बन्धी पित्तसम्बन्धी, कफसम्बन्धी और त्रिदोषसम्बन्धी परिणामशूल नष्ट होता है ॥ ६६–६७ ॥

अथान्नद्रवशूलचिकित्सा ।

अन्नद्रवाख्ये शूले तु न तावत्स्वास्थ्यमश्नुते । यावत्कटुकपित्ताम्लमन्नं न चर्छर्दयेद्द्रवम् ॥ ६८ ॥ जातमात्रे जरत्पित्ते शूलमाशु विनाशयेत् । पित्तार्तं वमनं कृत्वा कफार्तश्च विरेचनम् । अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्तेयदीरितम् ॥ ६९ ॥ जरत्पित्तेऽपि यत्पथ्यं प्रोक्तमन्नद्रवे तु यत् ॥ ७० ॥ आमपक्वाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम् । माषेण्डरीं सलवणां सुस्विन्नां तैलपाचिताम् । तादृशीं सर्पिषा खादेदन्नद्रवनिपीडितः ॥ ७१ ॥ धात्रीफलभवं चूर्णमयश्चूर्णसमन्वितम् । यष्टीचूर्णेन वा युक्तं लिह्यात्क्षौद्रेण तद्वदे ॥ ७२ ॥

जबतक तीक्ष्ण, गरम और पित्तमिले खट्टे अन्नको रोगी वमन न करेगा, तबतक अन्नद्रवके शूलमें स्वस्थता प्राप्त नहीं होसकती। परिणामशूल पित्तसे उत्पन्न हुआ हो तो तुरन्तही वमन करके नष्ट करदेवे और कफसे हुआ हो तो विरेचनसे नष्ट करदेवे। जो चिकित्सा परिणामशूलमें कही है, वही अन्नद्रवशूलमें भी करे । जो चिकित्सा अन्नद्रवशूलमें कही है, वह परिणामशूलमें भी करे। रोगीको आमाशय और पक्वाशय शुद्ध होनेसे अन्नद्रवशूल शान्त होता है ।

अन्नद्रवशूलसे पीडित मनुष्य हींग, मिरच, जीरा तथा अदरख पडी हुई उडदकी पिट्ठीकी छोटी छोटी बडियाँ करके उनको भली भांति तेलमें पकाकर घीके साथ खाय । आमलोंका चूर्ण करके उसमें लोहेका चूर्ण अथवा मुलठीका चूर्ण मिलाकर सहतके साथ खाय तो इससे अन्नद्रवशूल नष्ट हो जाता है ॥६८-७२॥

श्यामाकतण्डुलैः सिद्धं सिद्धं कोद्रवतण्डुलैः । प्रियंगुतण्डुलैः सिद्धं पायसं सहितं हितम् ॥ ७३ ॥

अत्र प्रियंगुः—कंगुविशेषः ॥

समा, कोदों अथवा कंगनीकी दूधमें खीर बनाकर उसमें बूरा इत्यादि पदार्थ डालकरखाय तो अन्नद्रवशूलवालेको हितकारी है ॥ ७३ ॥

गौडिकं शौरणं कन्दं कूष्माण्डमपि भक्षयेत् । कलाययवसक्तून् वा सक्तून्वा लाजसम्भवान् ॥ ७४ ॥

गौडिकम्-गुडेन संस्कृतं पक्वान्नम् ॥

कुलत्थसक्तूनथ वा दध्ना दद्याच्च दाधिकम् । चणकानामथो सक्तू कोद्रवस्यौदनं तथा ॥ ७५ ॥

दाधिकम्-दध्ना संस्कृतं भक्तं 'महेरि' इति लोके ॥

गोधूममण्डकं तत्र सर्पिषा गुडसंयुतम् । ससितं शीतदुग्धेन मृदितं क्वथितं हितम् ॥ ७६ ॥ अन्नद्रवो दुश्चिकित्स्यो दुर्विज्ञयो महागदः । तस्मात्तस्य प्रशमने परं यत्नं समाचरेत् ॥ ७७ ॥

गुडके बने पदार्थ, सूरनकंद, पेठा, मटर, जौके सत्त, खीलोंके सत्तू, कुलथीके सत्तू, दहीके साथखाय, अथवा दहीके बने पदार्थ खाय चनेके सत्तू, अथवा कोदोंका भात खाय, यह भी हितकारी है। गेहूँके मण्डक (गेहूँकी खीर) को घी और गुड तथा बूरा मिलाकर शीतल-दूधमें मिलाकर खाय यह भी हितकारी है। भिषक्जनोंको उचित है कि, अन्नद्रवशूल भयंकर महारोग और दुश्चिकित्स्य है। इस कारण इसकी शांति करनेमें भलीभांति प्रयत्न करें ॥ ७४ ७७ ॥

अन्नद्रवे जरत्पित्ते वह्निर्मन्दो भवेद्यतः । तस्मादत्रान्नपानानि मात्राहीनानि कारयेत् ॥ ७८ ॥

अन्नद्रवशूलमें और परिणामशूलमें जठराग्नि मन्द होजाती है, इसलिये इस रोगमें अन्न और जलकी अल्पमात्र देनी चाहिये ॥ ७८ ॥

कलाययवगोधूमाः श्यामाकः कोरदूषकाः । राजमाषाश्च माषाश्च कुलत्थाः कंगुशालयः ॥ ७९ ॥ दधिलुप्तरसं क्षीरं सर्पिर्गव्यं समाहिषम् । वास्तूकं कारवेल्ली च कर्कोटकफलानि च ॥ ८० ॥ बार्हिणो हरिणा मत्स्या रोहिताद्याः कपिञ्जलाः । एतस्मिन्नामये शस्ता मता मुनिचिकित्सकैः ॥ ८१ ॥

दधिलुप्तरसम्-दध्नालुप्तः प्रकृतो रसो यस्य तत्क्षीरं दधियुक्तं क्षीरमित्यर्थः ॥

मटर, जौ, गेहूं, समा, कोदों, चौरा, उडद, कुलथी, कंगनी, शालिचावल, दही मिला दूध, गाय तथा भैंसका घी, बथुआ, करेले, ककोडे, मोर तथा हिरनका मांस, रोहू आदि मछलियाँ और तीतरका मांस ये अन्नद्रवशूलमें परम हितकारी हैं, ऐसा वैद्योंने माना है ॥७९-८१॥

अथ गुडमण्डूरम् ।

गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः पलम् । त्रिपलं लौहकिट्टस्य तत्सर्वं मधुसर्पिषा ॥ ८२ ॥ समा लोड्य समश्नीयादक्षमात्रप्रमाणतः । आदिमध्यावसानेषु भोजनस्य निहन्ति तत् ॥ ८३ ॥ अन्नद्रवं जरत्पित्तमम्लपित्तं सुदारुणम् । परिणामसमुत्थश्च शूलं संवत्सरोत्थितम् ॥ ८४ ॥

गुड, आमलोंका चूर्ण, हरडोंका चूर्ण यह प्रत्येक चार चार तोले, लोहेकी किट्ट की भस्म १२ तोले इनको सहत तथा घीमें मिलाकर भोजनके आदिमें, मध्यमें तथा अन्तमें एक एक तोलाभर खाय तो यह महादारुण अन्नद्रवशूल, परिणामशूल और जरत्पित्त इनको नष्ट करता है। इसको 'गुडमंडूर' कहते हैं ॥ ८२-८४ ॥

अथ शूलरोगेऽपथ्यम् ।

व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकं रसम् । वेगरोधं शुचं क्रोधं द्विदलं शूलवांस्त्यजेत् ॥ ८५ ॥

इति शूलपरिणामशूलान्नद्रवजरत्पित्ताधिकारः ।

व्यायाम, मैथुन, मद्यपान, नमक, तीक्ष्णरस, विष्ठा आदिके वेगका अवरोध, शोक, क्रोध और चना, मूंग आदिकी दाल इनको शूलरोगी त्यागदेवे ॥ ८५ ॥

इति शूलाधिकारः समाप्तः ।

अथोदावर्ताधिकारः ।

तत्रोदावर्तनिदानम् ।

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः । क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसम्भवः ॥ १ ॥

इंद्रियमत्र शुक्रम् । अत्र तृतीया सहार्था । धृत्या वेगविघातेन ॥

१ अधोवायु, २ विष्ठा, ३ मूत्र, ४ जम्भाई, ५ आंसू, ६ छींक, ७ डकार, ८ वमन, ९ वीर्य १० भूँख, ११ प्यास १२ श्वास और १३ नींद इन तेरह वेगोंको रोकनेसे उदावर्तरोगकी उत्पत्ति होती है ॥ १ ॥

अथोदावर्तसामान्यलक्षणम् ।

यत्रोर्ध्वं जायते वायोरावर्तः स चिकित्सकैः । उदावर्त इति प्रोक्तो व्याधिस्तत्रानिलः प्रभुः ॥ २ ॥

आवर्तः भ्रमः ॥

जिस रोगमें वायुका चक्कर ऊपरको जाता है, उसको वैद्य उदावर्त कहते हैं, इस रोगमें वायु मुख्य है ॥ २ ॥

अथाधोवातवरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् । १

वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गो ध्मानं क्लमो रुजा । जठरे वातजाश्चान्ये रोगाःस्युर्वातनिग्रहात् ॥ ३ ॥

सङ्गः-अप्रवृत्तिः । ध्मानमाध्मानम् । क्लमः-अनायासश्रमः । रुजा जठरे । अन्ये तोदशूलगुल्मादयः ॥

अधोवायुके रोकनेसे वायु. मूत्र तथा विष्ठाका अवरोध होता है तथा पेटका फूलना, अनायासही परिश्रम और पीडाका होना और शूल, गुल्म आदि अन्य वायुसंबन्धी रोग भी होते हैं ॥ ३ ॥

अथ पुरीषावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् । २

आटोपशूलौ परिकर्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः । पुरीषमास्यादथ वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ४ ॥

पुरीषवेगे धारिते सति आटोपः सरुक् गुडगुडा शब्दः । शूलमिति पक्वाशये । परिकर्तिका गुदे कर्तनवत्पीडा। ऊर्ध्ववातः उद्गारः॥

विष्ठाके वेगको रोकनेसे-पेटमें, गुडगुडाहट, पक्वाशयमें पीडा, गुदामें कतरनेके सदृश पीडा होती है । मलका रुकजाना, खट्टी डकारोंका आना अथवा डकारके साथ मल भी निकलता है ॥ ४ ॥

अथ मूत्रावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् । ३

वस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा । विनामो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिंगं मूत्रनिग्रहे ॥ ५ ॥

विनामः-व्यथया वपुषो नमनम् । वंक्षणानाहः-वंक्षणयोराकर्षणवद्व्यथा ॥

मूत्रका वेग रोकनेसे मूत्राशयमें तथा लिंगमें शूल, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकमें पीडा, पीडासे शरीरका न उठना और पेडूमें अफारा ये होते हैं ॥ ५ ॥

अथ जृम्भावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् । ४

मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात् पवनात्मकाः स्युः । तथाऽक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥ ६ ॥

जम्भाईको रोकनेसे मन्या (गले नाडके पीछेकी नस) और गलेका स्तम्भ, मस्तकमें वातसम्बन्धी पीडा, नेत्र, नाक, मुखमें और कानोंमें तीव्र पीडा होती है ॥ ६ ॥

अथ नेत्रोदकावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् । ५

आनन्दजं वाप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि । शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ७ ॥

आनन्द अथवा शोकके कारण प्राप्त हुए आँसुओंके वेगोंको कभी न रोके क्योंकि, रोकनेसे मस्तकमें भारीपन, नेत्रपीडा और पीनसरोग होता है ॥ ७ ॥

अथ छिक्कावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् । ६

मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्द्धावभेदकौ । इन्द्रियाणाञ्च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥ ८ ॥

छींकके रोकनेसे मन्या नाडके पीछेकी नस का स्तम्भ, शिरमें शूल, अर्दितवात, आधे मुखका टेढा हो जाना और सब इंद्रियोंकी दुर्बलता ये रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ ८ ॥

अथोद्गारावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथवाऽप्रवृत्तिः । उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति जन्तोर्विकाराःपवन प्रसूताः ॥९॥

कण्ठास्यपूर्णत्वं कवलेनेव । तोदः हृदि आमाशये च । कूजः-अव्यक्तशब्दः । उदरे वायोरप्रवृत्तिः, उच्छ्वासादिनिरोधात् । पवनसूताःन्पवनाज्जाताः । विकाराः-हिक्कादयः ॥

डकारके रोकनेसे-कण्ठ कौरसे रुका हुआसा प्रतीत हो, हृदय तथा आमाशयमें चीटियोंके काटनेकेसी अत्यन्त पीडा, पेटमें वायुका कूँजना, श्वास आदिके रुकनेसे पवनकी अप्रवृत्ति और अन्य हिचकी आदि वायुसम्बन्धी विकार होते हैं ॥ ९ ॥

अथ वमनावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् । ८

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गसोथपाडूवामयज्वराः । कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः ॥ १० ॥

वमनका वेग रोकनेसे-शरीरमें खुजली, चकत्ते, दाह, अरुचि, झाँई, सूजन, पाण्डुरोग, ज्वर, कोढ, हृल्लास और विसर्प ये सब रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥

अथ वीर्यावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् । ९

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च । शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकारा विहते तु शुक्रे ॥ ११ ॥

तत्स्रवणम्-शुक्रस्रावः । ते ते विकाराः-वातकुण्डलिकादयः ॥

स्त्रीप्रसंग करनेके समय वीर्यका वेग रोकनेसे-मूत्राशय गुदा तथा अण्डकोषोंमें सूजन और पीडा, मूत्रका अवरोध, शुक्राश्मरी, वीर्यका स्राव और अन्य वातकुण्डलिका आदि विकार होते हैं ॥ ११ ॥

अथ क्षुधावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् । १०

तन्द्राङ्गमर्दावरुचिःश्रमश्च क्षुधाविघातात् कृशता च दृष्टेः ॥ १२ ॥

भूँखके रोकनेसे-तन्द्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, परिश्रम और दृष्टिकी मन्दता ये उपद्रव होते हैं ॥ १२ ॥

अथ तृषावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम । ११

कण्ठस्य शोथः श्रवणावरोधस्तृष्णाविघाताद् हृदये व्यथा च ॥ १३ ॥

प्यासके रोकनेसे-कण्ठ और मुखका सूजन, श्रवणशक्तिका मन्द होना और हृदयमें पीडाये लक्षण होते हैं ॥ १३ ॥

अथ श्वासावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् । १२

श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवापि गुल्मः ॥ १४ ॥

थका हुआ मनुष्य श्वासको रोके तो-हृदयमें पीडा, मोह और गुल्मरोग उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

अथ निद्रावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् । १३

जृम्भाङ्गमर्दोऽतिशिरोऽतिजाड्यं निद्राविघातादथवापि तन्द्रा ॥ १५ ॥

अतिजाड्यम्-गौरवम् । 'शिरोगात्राक्षिगौरवम्' इति तन्त्रान्तरे पाठात् ॥

निद्राको रोकनेसे-जम्भाई, अंगोंका टूटना, मस्तक, शरीर तथा नेत्रोंमें भारीपन होता है और तन्द्रा भी होती है ॥ १५ ॥

अथ रूक्षादिवस्तुकुपितवातोत्पन्नोदावर्तनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः । भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति च ॥ १६ ॥ वातमूत्रपुरीषास्रुकफमेदोवहानि वै । स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं च प्रवर्वयेत् ॥ १७ ॥ ततो हृद्बस्तिशूलार्तो हल्लासारतिपीडितः । वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः॥१८॥ श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान्। वमिहिक्काशिरोरोगमनः श्रवणविभ्रमान् । बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातकोपजान् ॥ १९ ॥

उदावर्तयति–वायुःऊर्ध्वभ्रमेणेव वातादिवहानि स्रोतांसि निरुणद्धि, न तु विडादीनधो गमयति । मनोविभ्रमः–रज्जो सर्पज्ञानम्-श्रवणविभ्रमः–अन्यथाश्रवणम् ॥

रूखे, कसैले, तीक्ष्ण और कडवे भोजनोंसे कुपित हुई कोठेमें रहनेवाली वायु तुरन्त उदावर्तको उत्पन्न करती है। कुपित हुई वात–अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, आँसू कफ और मेदाका वहानेवाली नाडियोंके मार्गको रोककर मलको स्तंभित करता है तब हृदय तथा वस्तिशूल, हल्लास, अरति इनकी पीडा होनेसे मनुष्यके अधोवायु, मूत्र और विष्ठा थोडे थोडे अत्यन्त परिश्रमसे उतरते हैं। श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय, दाह, मोह, तृषा, ज्वर, वमन, हिचकी, मस्तकमें दर्द, मनका भ्रम, कुछका कुछ सुनाई मालूम होना और भी बहुतसे वायुके कोपसे हुए विकार होते हैं ॥ १६–१९ ॥

अथोदावर्तासाध्यलक्षणम्।

तृष्णाछर्दिपरिक्लिष्टं क्षीण शूलैरुपद्रुतम् । शकृद्वमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ २० ॥

परिक्लिष्टम्—क्लेशसंयुक्तम्

उदावर्तरोगी जो तृषा तथा वमनसे व्याकुल हो, क्षीण होगया हो, शूलोंसे दुःखित हो और विष्ठाकी वमन करता हो, तो विद्वान् वैद्य उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ २० ॥

अथानाहसामान्यलक्षणम् ।

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन । प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ २१ ॥

आमम्–अपक्वमाहारसारम् शकृत्पुरीषं वा । क्रमेण निचितं सञ्चितम् । भूयो विगुणानिलेन-दुष्टवायुना विबद्धंव्यायामशोषितं वा । यथास्वम्–पूर्ववदप्रवर्तमानम् एनं विकारमानाहम् आहुः ॥

आम अथवा मल क्रमसे संचित हो दुष्ट वायुसे बँधकर अथवा सूखकर अपने मार्गसे नहीं निकले, इस विकारको वैद्य 'आनाह' कहते हैं ॥ २१ ॥

अथामजातानाहलक्षणम् ।

तस्मिन् भवन्त्यामसमुद्भवे तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः । आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भ उद्गारविघातनञ्च ॥ २२ ॥

विघातनम्—अप्रवृत्तिः ॥

आहारके कच्चे रससे जो आनाह हुआ हो तो तृषा, प्रतिश्याय, मस्तकमें दाह आमाशयमें शूल, शरीरमें भारीपन, हृदयका जकड जाना और डकारका न आना ये लक्षण होते हैं ॥ २२ ॥

अथ मलसंचयेनोत्पन्नानाहलक्षणम् ।

स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा शकृतो वमिश्च । श्वासश्च पक्वाशयजे भवन्ति तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि ॥ २३ ॥

पक्वाशयजे शकृत्सञ्चयज आनाहे स्तम्भ-शब्दः कटीपृष्ठयोः स्तब्धतावाची पुरीषमूत्रयोरप्रवृत्तिवाची च अलसोक्तानि लक्षणानि आध्मानवात विघातादीनि ॥

जो मलके संचयसे आनाह हुआ हो तो कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका अवरोध, शूल, मूर्च्छा, विष्ठा मिली हुई वमन और अलसक, अफारा तथा वायुका विघात आदि लक्षण होते हैं ॥ २३ ॥

अथोदावर्तचिकित्सा।

अधोवातनिरोधोत्थे उदावर्ते हितमतम्। स्नेहपानं तथा स्वेदो वर्तिर्वस्तिर्हितो मतः ॥२४॥ विड्विघातसमुत्थे तु विड्भङ्गान्नं तथौषधम्। वर्त्यभ्यङ्गावगाहाश्च स्वेदो वस्तिर्हितो मतः ॥ २५ ॥

वर्तिः—फलवर्तिः ॥

अधोवायुका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ हो, तो उसमें स्नेहपान, स्वेद, फलवर्ति और वस्तिकर्म यह हितकारी है। विष्ठाका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो दस्तावर अन्न दस्तावर औषधि, फलवर्ति, मालिश, जल या तेलमें बैठना स्वेदन तथा वस्तिकर्म करना हितकारी है ॥ २४ ॥ २५ ॥

मूत्रावरोधजनिते क्षीरवारि वचां पिबेत। दुःस्पर्शास्वरसं वाऽपि कषायं ककुभस्य च ॥ २६ ॥

दुःस्पर्शा—कण्टकारी दुरालभा च,तुल्यगुणत्वात्

मूत्रका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो दूधमें जल मिलाकर और वचका चूर्ण डालकर पीवे, अथवा कटेरीका स्वरस अथवा कोह (अर्जुन) को छालका स्वरस पीवे ॥ २६ ॥

एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम्। सितामिक्षुरसं क्षीरं द्राक्षां यष्टीमथापि वा। सर्वथैव प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिम् ॥ २७ ॥

ककडीके बीजोंको पानीमें पीसकर इसमें निमक डालकर पीवे, अथवा मिश्री, ईखका रस, दूध, दाख तथा मुलहठीका रस पीवे। इस उदावर्तमें मूत्रकृच्छ्रके उपाय तथा पथरीके उपाय भी सर्वथा करे ॥ २७ ॥

जृम्भाभिघातजे स्नेहं स्वेदं वाऽपि प्रयोजयेत्। अन्यानपि प्रयुञ्जीत समीरणहरान् विधीन् ॥ २८ ॥

जम्भाईके वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो स्नेहन अथवा स्वेदन क्रिया करे और वातनाशक अन्य उपाय भी करे ॥ २८ ॥

नेत्रनीरोवराधोत्थे मुञ्चेद्वाऽपि दृशोर्जलम्। स्वप्यात्सुखेन तस्याग्रे कथयेच्च कथाःप्रियाः ॥ २९ ॥

आँसुओंका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो भलीभाँति रोकर नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाकर निकाल डाल, फिर सुखसे शयन करे और आनन्दसहित उसके सामने प्रिय कथायें कहे ॥ २९ ॥

छिक्काविघातजे तीक्ष्णघ्राणस्यार्कप्रदर्शनैः। प्रवर्तयेत्क्षुतं सक्तां स्नेहस्वेदौ च शीलयेत् ॥ ३० ॥

छींकका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो मिरच तथा राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंको सूंघकर उनकी नस्य लेवें। तथा सूर्यके सामने देखनेसे भी छींकें आवें तो छींक लेवे, नाकमें वस्त्रादिककी बत्ती डालकर छींक लेवे, स्नेहन तथा स्वेदनका भी सेवन करे ॥ ३० ॥

उद्गारस्यावरोधे तु स्नैहिकं धूममाचरेत्। छर्दिनिग्रहसञ्जाते वमनं लङ्घनं हितम् ॥ ३१ ॥ विरेचनं चात्र मतं तैलेनाभ्यञ्जनं तथा। वस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं चतुर्गुणजलं पयः ॥ ३२ ॥ आवारिनाशं क्वथितं पीतवन्तं प्रकामतः। रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥३३॥

तस्याभ्यङ्गोऽवगाहश्च मदिरा चरणायुधः शालिः पयोनिरूहश्च हितं मैथुनमेव च ॥ ३४ ॥

डकारका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो स्नेहयुक्त पदार्थोंका धूमपान करे। वमनके वेगोंको रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो वमन तथा लंघन कराना हितकारी है। दस्त करावे, तेलका मर्दन करे ये सब उपाय इस रोगमें अत्यन्त उपयोगी हैं। वीर्यके वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो पुरुष दूधमें चौगुना पानी डालकर तथा मूत्राशयको शुद्ध करनेवाले पदार्थ डालकर जब सब जल जलजाय केवल दूधही शेष रहे तब मिश्री डालकर पीवे और प्यारी नारीके साथ रमण करे और अभ्यंग जल या तेलमें बैठना, मद्यका पीना, मुरगेका मांस, शालिचावल, दूध, निरूहवस्ति तथा मैथुन ये भी हितकारी हैं ॥ ३१-३४ ॥

क्षुद्विघातसमुद्भूते स्निग्धमुष्णं तथा लघु । रुच्यमल्पं हितं भक्ष्यं पुष्पं सेव्यं सुगन्धि यत् ॥ ३५ ॥

भूखका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो-स्निग्ध, हलका, रुचिकारी और मनोवांछित अल्प भोजन करना चाहिये, यह उदावर्तरोगी सुगन्धित पुष्पोंका भी सेवन करे ॥ ३५ ॥

तृष्णाविघातसम्भूते शीतः सर्वो विधिर्हितः । कर्पूरशिशिरं स्वल्पं पिबेत्तोयं शनैः शनैः ॥ ३६ ॥ श्रमश्वासधृतौ शस्तौ विश्रामसरसौदनौ । निद्रावेगविधतोत्थे पिबेत्क्षीरं सितायुतम् । संवाहनं सुशय्याऽत्र हितः स्वप्नः प्रियाः कथाः ॥ ३७ ॥

तृषाका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो-सम्पूर्ण शीतल उपचार हितकारी हैं, तथा कपूरसे वा उत्पलसे सुवासित किया हुआ जल थोडा थोडा वारंवार पिये । परिश्रमके श्वास रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो विश्राम और मांसरसयुक्त भातका भोजन करे। निद्राका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ हो तो मिश्री डाला हुआ गरम दूध पीवे अथवा हाथ पांवोंको दबाकर सुन्दर शय्यापर शयन करे और जो मनको अधिक प्रिय लगे, ऐसी कथा सुने ॥३६॥३७॥

अथ रूक्षादिहेतुकुपितोत्पन्नोदावर्तचिकित्सा ।

हिंगुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पिष्टवर्तिं विनिर्मिताम् । घृताभ्यक्तांगुदे न्यस्येदुदावर्तविनाशिनीम् ॥ ३८ ॥

हींग, सहद और सैंधानोन इनको पीसकर बत्ती बनावे, फिर घीमें भिगोकर गुदामें रखवावे तो इससे उदावर्त नष्ट होता है, इसको पिष्ट फलवति कहते हैं ॥ ३८ ॥

अथ मदनबलादिफलवर्तिः ।

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः । गुडक्षीरसमायुक्ताः फलवर्तिरिहोदिता ॥ ३९ ॥

मैनफल, पीपल, कूठ, वच और सफेद सरसों इनको गुड तथा दूधमें पीसकर गुदामें रक्खे तो उदावर्तरोग नष्ट होता है ॥ ३९ ॥

अथ नाराचचूर्णम् ।

खण्डपलं त्रिवृताक्षः कृष्णाकर्षौ द्वयोश्चूर्णम् । प्राग्भोजनस्य मधुना विडालपदकं नरो लिह्यात् ॥ ४० ॥ एतद्गाढपुरीषे देयं विज्ञैरुदावर्ते । मधुरं नरपतियोग्यं चूर्णं नाराचकं नाम्ना ॥ ४१ ॥

खांड चार तोले, निसोत १ तोला और पीपलका चूर्ण १ तोला इनको एकत्र करके भोजनसे पहिले इसमें १ तोला सहत मिलाकर चाटे तो उदावर्त दूर होता है। जिसमें विष्ठा अत्यन्त दृढ हो गई हो ऐसे उदावर्तमें वैद्य यह यत्न करे। यह चूर्ण अत्यन्त धनी और राजाओंके खाने योग्य है। इसका नाम 'नाराच' चूर्ण है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ गुडाष्टकम् ।

सञ्योषपिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती च चित्रकम् । तच्चूर्णं गुडसंमिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ४२ ॥ एतद्गुडाष्टकं नाम्ना बलवर्णाग्निवर्द्धनम् । उदावर्तप्लीहगुल्मशोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ ४३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, निसोत, दन्ती, और चीता इनका चूर्ण करके गुडमें मिलाकर प्रातः काल उठते ही खावे । इस गुडाष्टकके सेवनसे बल, कांति तथा अग्निकी वृद्धि होती है और उदावर्त, प्लीहा, गुल्म, सूजन तथा पाण्डुरोग इनका नाश होता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ मूलाद्यघृतम् ।

मूलकं शुष्कमार्द्रं वा वर्षाभूः पञ्चमूलकम् । कृतमालफलं चाप्सु पक्त्वा तेन घृतं पचेत् । तत्पीतं शमयेत् क्षिप्रमुदावर्त्तमशेषतः ॥ ४४ ॥

पञ्चमूलकमत्र बृहत् ॥

सूखी अथवा गीली मूली, सोंठ, बृहत्पंचमूल और अमलतासका गूदा इनका क्वाथ करके इसमें घृतको पचावे, यह घी पीवे तो तत्काल उदावर्तरोग भली भांति शान्त हो जाता है ॥ ४४ ॥

अथानाहचिकित्सा ।

तुल्यकारणकार्यत्वादुदावर्तहरीं क्रियाम् । आनाहेषु च कुर्वीत विशेषश्चाभिधीयते ॥ ४५ ॥ त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुष्पञ्चभागिकाः । गुडेन तुल्या गुटिका हरत्यानाहमुल्वणम् ॥ ४६ ॥

उदावर्त और आनाहके कारण तथा कार्य समान ही हैं, इसलिये आनाहमें उदावर्तको ही चिकित्सा करे । जो विशेष चिकित्सा है, सो कहते हैं-दो भाग निसोत, चार भाग पीपल और पांच भाग हरड इनको सबके समान गुडमें मिलाकर गोली बनावे और सेवन करे तो उग्र आनाहभी दूर होजाता है ॥४५॥४६॥

अथ त्रिकटुकादिवर्तिः ।

वर्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः मधुनि गुडे वा पक्वैर्विहिता साङ्गुष्ठसम्मिता विज्ञैः ॥ ४७ ॥ वर्तिरियं दृष्टफला शनैः प्रणिहिता गुदे घृताभ्यक्ता । आनाहमुदरजार्तिं शमयति जठरं तथा गुल्मम् ॥ ४८ ॥

इति उदावर्तानाहनिदानचिकित्साधिकारः ।

सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधव, सरसों, घरका धुआँ कूठ और मैनफल इनका चूर्ण करके सहत अथवा घीमें पकावे, फिर अंगूठेकी बराबर बत्ती बनावे, इसको घीसे चुपडकर धीरे धीरे गुदामें रक्खे, इससे अफारा उदररोग और गुल्मरोग नष्ट होता है, विद्वान् लोगोंने इस वर्त्तीका फल प्रत्यक्ष देखा है ॥४७॥४८॥

इति उदावर्तानाहाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ गुल्माधिकारः ।

तत्र गुल्मसन्निकृष्टविप्रकृष्टकारणपूर्वकलक्षणम् ।

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः । कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥ १ ॥

दुष्टाः स्वकारणैः मिथ्याहाराध्यशनादिभिः । मिथ्याविहारः बलवद्विग्रहादिः । पञ्चधेति वातपित्तकफसन्निपातरक्तजा एवं पञ्च । द्वन्द्वजास्तु प्रकृतिसमवेतत्वात् पृथक् न गण्यन्ते अर्शोवत् ।

कोष्ठान्तः हृदयाद्वस्तिपर्यन्तं कोष्ठः तस्य मध्ये कुत्रापि । ग्रन्थिरूपिणम् गुटिकाकारम् ।

भोजनके ऊपर भोजन करना आदि मिथ्या आहारसे और बलवान् मनुष्यके साथ लडना आदि मिथ्या विहारोंसे अत्यन्त दूषित वात, पित्त, कफ और रुधिर यह कोठेमें अर्थात् हृदयसे लेकर मूत्राशयतकके भागमें गोलीके सदृश गुल्मको उत्पन्न करता है । वायुसे, पित्तसे, कफसे, तीनों दोषोंसे और रुधिरसे उत्पन्न हुआ, इस भांति गुल्म पांच प्रकारका होता है । यद्यपि जो गुल्म दो दोषोंसे होते हैं, उनको गिने तो पांचसे अधिक संख्या होती हैं तथापि सन्निकृष्ट निदानरूप वातपित्तादिकसे ही संयुक्त होते हैं, इसलिये अर्शोंके सदृश उनको पृथक् नहीं गिना है ॥ १ ॥

अथ गुल्मभेदः ।

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितः । पुरुषाणां तथा स्त्रीणां रक्तजं चोपजायते ॥ २ ॥

यह गुल्म पुरुषोंके तथा स्त्रियोंके कुपित हुए वात, पित्त, कफ, त्रिदोष और रुधिरसे भी होती हैं ॥ २ ॥

अथार्तवोत्पन्नगुल्मः ।

आर्तवादपि गुल्मः स्यात्स तु स्त्रीणां प्रजायते । अन्यस्त्वसृग्भवः पुंसां तथा स्त्रीणां प्रजायते ॥ ३ ॥

आर्तव से भी गुल्म होता है परन्तु यह गुल्म स्त्रियोंके ही होता हैं । रुधिरसे होनेवाले जो अन्य गुल्म हैं, वे पुरुषोंके भी होते हैं और स्त्रियोंके भी होते हैं ॥ ३ ॥

अथ गुल्मस्थानानि ।

तस्य पञ्चविधं स्थान पार्श्वहृन्नाभिवस्तयः ॥ ४ ॥

गुल्म-दोनों पसलियोंमें, हृदयमें, नाभि और मूत्राशयमें होता है, इस भांति गुल्मके पांच स्थान हे ॥ ४ ॥

अथ गुल्मसामान्यलक्षणम् ।

हृद्वस्त्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः । वृत्तश्चयापचयवान् स गुल्म इति कीर्तितः ॥ ५ ॥

हृदयके तथा नाभिके मध्यमें रहनेवाला अथवा विचरनेवाला, किसी समय बढनेवाला और किसी समय अल्प होनेवाला जो गोला होता है, उसको गुल्म कहते हैं ॥ ५ ॥

नाभिशब्देन वस्तिर्बोध्यः सामीप्यादेव । यथा'गङ्गायां घोषः'इति।वस्तेरपि गुल्माश्रजत्वेन उक्तत्वात् । अन्ये हृद्वस्त्योरेव पाठान्तरं पठन्ति । अन्ये तु वस्तौ विद्रधिःस्यात् न गुल्म इति।तन्न,वस्तेरपि गुल्मस्थानत्वात्। तथा च चरके-"पञ्चस्थानानि गुल्मस्य पार्श्वहृन्नाभिवस्तयः" इति। सञ्चारी चलनशीलः । अचलः स्थिरः । वृत्तो वर्तुलः। चयापचयवानिति कदाचिच्चीयते वृद्धिं गच्छति कदाचिदपचीयते हीनो भवति । एतल्लक्षणं सामान्योक्तमपि वातिके व्यवतिष्ठते इति जैज्जटः । गणदासस्तु सामान्यमेवाह-सर्वगुल्मानां वातमूलत्वात् ॥

यहां नाभि कहनेसे मूत्राशय जानना, जैसे गंगामें घोष है , इस वाक्यमें " गंगा " शब्दसे समीप होनेके कारण गंगाका किनारा समझना, तैसे ही इस वाक्यमें भी मूत्राशय नाभिके समीप होनेके कारण नाभिसे मूत्राशय ही जानना । कितने वैद्य तो उपरोक्त वाक्यको ' हृदय तथा मूत्राशयके मध्यमें ' फेरकर ऐसा पढते हैं और कितने कहते हैं कि-' मूत्राशयमें विद्रधि होता है, गुल्म नहीं

होता ' परन्तु यह बात भूलकी है, क्योंकि, " गुल्मके हृदय, नाभि, पसलियाँ तथा मूत्राशय ये पांचस्थान हैं " ऐसा चरकमें कहा है। उपरोक्त लक्षण यद्यपि सामान्य-रीतिसे कहे हैं, तथापि ये लक्षण वातज गुल्ममें ही मिलते हैं, ऐसा जेज्जटनामक वैद्यने कहा है। गणदासनामक वैद्य कहता है कि-" ये लक्षण सब गुल्मोंके लिये साधारण हैं, क्योंकि सब गुल्मोंकी जड वायु है ॥

अथ गुल्मपूर्वरूपम्।

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृषाक्षमत्वान्त्रविकूजनानि। आटोपमाध्मानमपक्तिशूलमासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ६ ॥ अरुचिं कृच्छ्रविण्मूत्रवाततवं चान्त्रकूजनम्। आनाहं चोर्ध्ववातश्च सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ७ ॥

डकारोंका बहुत आना, मलबन्ध, तृषाका होना, सामर्थ्यका नाश, आंतोंका बोलना-पेटमें गुडगुड शब्द हो, अफारा हो और अन्न न पचनके कारण पीडा हो, ये लक्षण हों तो जानना कि गुल्मरोग हुआ है। विष्ठा, मूत्र तथा अधोवायुका कष्टसे उतरना, अरुचि, आंतोंमें शब्द होना, अफारा और वायु ऊर्ध्वगत हो, ये लक्षण सब गुल्मोंमें होते हैं ॥६-७

अथ वातगुल्मनिदानम्।

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च। शोकाभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ ८ ॥

विचेष्टनम्-विरुद्धा चेष्टा बलवद्भिग्रहादिः। शोकाभिघातः-शोकेन मनोऽधिष्ठानस्य हृदयस्य अभिघातः। अतिमलक्षयः-विरेकादिना। निरन्नता उपवासः ॥

रूक्ष, विषम और अत्यन्त ऐसे अन्नपानको सेवन करनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, बलवान् पुरुषके साथ लडना आदि विरुद्ध चेष्टासे, हृदयमें शोक और अभिघात चोट लगनेसे, विरेचन आदिसे, मलका अत्यन्त क्षय और उपवास इन करणोंसे वायुसम्बन्धी गुल्म होता है ॥ ८ ॥

अथ वातगुल्मलक्षणम्।

यः स्थानसंस्थानरुजाविकल्पं विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम्। श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजश्च ॥ ९ ॥ करोति जीर्णेऽत्यधिकं प्रकोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च। वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषाय तिक्तं कटु चोपशेते ॥ १० ॥

श्यावारुणत्वं शरीरस्य। शिशिरज्वरम्-शीतज्वरम्। जीर्णे आहारे प्रकुप्यति, भुक्ते च शांति गच्छति, स वातिको गुल्मः। रूक्षा आहारः कषाय तिक्तकटुरसाः। तत्र तस्मिन्वातगुल्मे। नोपशेते न सुखयति ॥

स्थान स्थानमें पीडा होती हो, मल तथा अधोवायु रुकती हो, गला तथा मुख सूख जाता हो, शरीर नीला और लाल हो जाय, शीतज्वर हो, हृदय, कोख, पसली, कन्धा और शिर इनमें पीडा हो,अन्नके पचनेके समय गोला अधिक हो जाय और भोजन करनेपर गोला मृदु नरम हो जाय, ये लक्षण हों तो वायुसे उत्पन्न हुआ गुल्म जानना, इसमें रूक्ष, कसैले, कडवे और चरपरे पदार्थ अहितकारी है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ पित्तगुल्मनिदानम्।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधाऽतिमद्यार्कहुताशसेवा। आमोऽभिघातो रुधिरञ्च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥ ११ ॥

विदाहि-वंशकरीरादि। अतिशब्दो मद्यादिषु योज्यः। आमोऽत्र विदग्धाजीर्णबोधकः। अभिघातो लगुडादिना ॥

चरपरे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही तथा रूक्ष पदार्थोंके सेवन करनेसे, मद्यपान तथा धूपके अत्यन्त सेवनसे, अग्निके समीप रहनेसे विदग्ध अजीर्ण, लकडी आदिके अभिघात चोट और बिगडे हुए रुधिरसे पित्तसम्बन्धी गुल्म उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

अथ पित्तगुल्मलक्षणम्।

ज्वरः पिपासा सदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च। स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ १२ ॥

अङ्गरागः-देहस्य लौहित्यम्।

ज्वर, प्यास, ग्लानि, अङ्गोंका लाल होना, भोजन पचनेके समयमें भारी शूल होना, पसीना आवे, दाह हो और गुल्म व्रणके सदृश स्पर्श न सह सके. ये लक्षण हों तो पित्तसे उत्पन्न हुआ गुल्म जानना ॥ १२ ॥

अथ कफत्रिदोषजगुल्मकारणम्।

शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनञ्च सम्पूरणं प्रस्वपनं दिवा च। गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य सर्वस्तु दिष्टो निचयात्मकस्य ॥ १३ ॥

सम्पूरणम्-उदरपूरणम्। निचयात्मकस्य-सान्निपातिकस्य। सर्वो हेतुः--वातपित्तकफानां हेतु ॥

शीतल, भारी तथा स्निग्ध अन्नपान, व्यायामका त्याग और दिनमें सोना इनसे कफसम्बन्धी गुल्म उत्पन्न होता है। वात पित्त तथा कफके जो निदान हैं, वे सब मिलनेसे तीनों दोषसम्बन्धी गुल्म होता है ॥ १३ ॥

अथ कफजगुल्मलक्षणम्।

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि। कफस्य लिंगानि च यानि तानि भवन्ति गुल्मे कफकोपजाते ॥ १४ ॥

कफस्य लिङ्गानि वेदनाल्पतावह्निमान्द्यादीनि ॥

शरीरमें गीलापन, शीतज्वर, ग्लानि, उबकाई, खांसी, अरुचि, शरीरमें भारीपन और थोडी २ पीडाका होना तथा अग्निकी मन्दता ये लक्षण हों तो कफसे हुआ गुल्म जानना १४

अथ द्विदोषजगुल्मकल्पना।

व्यामिश्रलिङ्गानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ १५ ॥

सन्निपातिके सर्वो हेतुः उपलक्षणम् ॥

जो दो दोषोंके मिश्रित लक्षण दीखते हों, तो औषधिकी कल्पनाके लिये वातसे तथा पित्तसे हुए, वायु तथा कफसे हुए और पित्त कफसे हुए इस प्रकार और भी तीन गुल्मोंकी कल्पना कर लेवे ॥ १५ ॥

अथ त्रिदोषजगुल्मलक्षणम्।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम्। मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १६ ॥

जो तीनों दोषोंसे गुल्म हुआ हो तो अत्यन्त पीडा तथा दाह होता है, गोला पत्थरके सदृश घन तथा ऊपरको उठा हुआ, तत्काल विदग्धाजीर्णको उत्पन्न करनेवाला, मनको भ्रमित करता, शरीरको दुर्बल करता तथा जठराग्निके बलको हरनेवाला और मृत्युको करनेवाला गुल्म होता है, इसको असाध्य समझना ॥ १६ ॥

अथार्तवरुधिरोत्पन्नगुल्मलक्षणम्।

नवप्रसूताऽहितभोजना या या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा। वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥ १७ ॥ पैत्तस्य लिंगेन समानलिङ्गं विशेषणश्चाप्यपरं निबोध। यः स्पन्दते

पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलःसमगर्भलिंगः। स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥ १८ ॥

नवप्रसूता—प्रकृताग्निबलवर्णमांसहीना। अहितभोजना या च आमगर्भं विसृजेत्, नवममासादर्वाक् प्रसूयते साऽपि अहितभोजना ऋतौ वा आर्तवप्रवृत्तिकाले अहितभोजना अपथ्याचरणा वा। वायुः रक्तं परिगृह्य गुटिकाकारं गर्भाशये गुल्मं करोति। भोजनपदं विहारस्यापि उपलक्षणम्। यतश्चाह चरकः—" ऋतावनाहारतया भयेन विरूक्षणैर्वेगविनिग्रहैश्च। संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रिया रक्तभवोऽभ्युपैति ॥" धातुरूपरक्तजस्यापि विप्रकृष्टनिदानानि लक्षणानि च पैत्तिकस्येव बोद्धव्यानि। परमत्र अभिघातादिहेतुविशेषः। चिरात् स्पन्दते चलति। नाङ्गैः—न हस्तपादाद्यैः। समगर्भलिङ्गः-अत्र समशब्दः सर्वशब्दार्थः,तेन समानि सर्वाणि गर्भलिङ्गानि आर्तवप्रवृत्तिकाले आर्तवादर्शनमुखपीततास्तनमुखकृष्णतादोहदादीनि यत्र सः। एते च व्याधिप्रभावात्। यथा यक्ष्मिणे रिरंसा। स रौधिरः-आर्तवरूपरक्तजः स्त्रीणां प्रजायते इति। गर्भसमानलिंगत्वे विशेषज्ञानार्थमाह—'मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः।' नवमदशममासयोः प्रसवकालत्वादित्येके। तत्र 'यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैः।' इत्यादिनैव संशयस्य निराकृतत्वात्। गर्भः प्रत्यङ्गैः निरन्तरं निःशूलं स्पन्दते। गुल्मश्चैतद्विपरीत इति। किञ्च नवमे दशमे प्रसूयत इति उत्सर्गो न तु नियमः। तदधिककालेऽपि प्रसवदर्शनादागमाच्च। यत आह चरकः—"तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं पुष्टं यदा वर्षगणैरपि स्यात्।" तस्मात्'मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः' इति न संशयव्यवच्छेदार्थम्, किन्तु तदा सुखेन चिकित्सार्थम्। यत उक्तम्—"रक्तगुल्मपुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्।" पुराणता चास्य दशमासातिक्रमेणैव भवति। जैज्जटेनापि उक्तम्—"दशमासोपरि पिण्डिते गुल्मे स्नेहादिना उपस्कृतदेहायै न गर्भाशयक्षतिमादधाति रक्तभेदनम्" इति ॥

जो नवप्रसूता स्त्री अहित आहारविहार करे अथवा जो स्त्री अपने गर्भको गिराकर अहित आहार विहार करे अथवा जो स्त्री रजस्वला होनेपर अहित आहार विहार करे, उस स्त्रीके रुधिरको वायु ग्रहण करके गर्भाशयमें गोलेके सदृश गुल्मको उत्पन्न करती है। इस गुल्ममें पीडा, दाह और पित्तगुल्मके लक्षण होते हैं। चरकमें भी कहा है कि–'रजोधर्मके समय उपवास करनेसे, भयसे रूक्षपदार्थोंका उपयोग करनेसे, मूत्र आदिके वेगोंको रोकनेसे, स्तम्भन करनेसे, उल्लेखन आदि योनिसंबन्धी दोषोंसे स्त्रीके रुधिरजन्य गुल्म उत्पन्न होता है" धातुरूप रुधिरसे उत्पन्न हुए गुल्मके विप्रकृष्टनिदान तथा लक्षण पित्तसे उत्पन्न हुए गुल्मके सदृशही जानने, परन्तु अभिघात चोट आदि निदान विशेष करके होते हैं। रजोरूप गुल्ममें और भी विशेष कहते हैं कि–रजगिरते समयमें रजका नहीं दीखना, मुखका पीलापन, स्तनोंके अग्र-

भाग काले होना तथा खाने पीने आदिके भाव-अभाव इत्यादि जो जो गर्भके चिह्न हैं, वे सब चिह्न व्याधिके प्रभावसे जिस गुल्मके देखनेमें आवें (जिस प्रकार क्षय रोगवाले को स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छा व्याधिके प्रभावसे होतीहै, उसीप्रकार रजसम्बन्धी रुधिरके गुल्मवाली स्त्रीके चिह्न व्याधिके प्रभावसे होतेहै) तथा जिसमें हाथ, पांव आदि अंगोंका नहीं चलना, अधिकतर केवल पिंडाकारकाही चलना ज्ञात हो और जिसमें शूल हो, उस गुल्मको रजोरूप रुधिरसे उत्पन्न हुआ जानना। यह गुल्म स्त्रियोंके ही होता है। गर्भ तो हाथ, पांव आदि शाखाओंसे निरन्तर और शूल विना ही फडकता है और यह गुल्म तो अधिकवार पिंडाकार ही चलता है और शूल युक्त होता है। इस गुल्मकी चिकित्सा दशवें महीनेके व्यतीत होनेपर करे। कोई कहते हैं कि "गर्भ होनेका सन्देह न रहे, इस कारण दशवें मासके व्यतीत हो जानेपर चिकित्सा करना कहा है। क्योंकि नववां और दशवां महीना प्रसव होनेका काल है" परन्तु ऐसा कहना अयोग्य है क्योंकि-गर्भ तो हाथ, पांव आदि अंगोंसे निरन्तर और शूल विना ही चलता है, इत्यादि कथनके द्वारा गर्भके संशयको दूर किया है, फिर 'नववें अथवा दशवें महीने प्रसव हो' यह भी एक सामान्य बात है, कुछ नियमरूप नहीं है। क्योंकि दशवें महीने से अधिक काल बीतनेपर भी प्रसव होते दीखते हैं और ग्रन्थोंमें भी दशम मासके बीतनेपर प्रसव होना लिखा है। चरकमें कहा है कि-"स्त्री गर्भ रहनेके पश्चात् अत्यन्त अधिक काल अर्थात् बहुत वर्ष व्यतीत होनेपर भी गर्भको जनती है और इस प्रकार उत्पन्न हुआ बालक अति पुष्ट होता है" इसलिये दशवें महीने चिकित्सा करना जो कहा है, वह गर्भका संशय दूर करनेके लिये नहीं कहा है, वरन् दशवे महीने सुगमतासे चिकित्सा हो सकती है, इससे कहा है--ऐसा जानना चाहिये। कहा है कि-"रुधिर सम्बन्धी गुल्म यदि पुराना हो तो उसको सुखसाध्य समझना" फिर दशवां महीना व्यतीत होनेपर रुधिर सम्बन्धी गुल्म जीर्ण हुआ मानने योग्य होता है। जेज्जट आचार्य भी कहता है कि-"दशवां महीना व्यतीत होनेके पश्चात् गुल्म की स्थिति होती है, तब तेल आदिसे स्त्रीके शरीरको संस्कार देकर रुधिरका भेदन करे तो इससे गर्भाशयकी हानि नहीं होती है" ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथासाध्यगुल्मलक्षणम् ।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम् । मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १९ ॥

दाहपरीतम्-दाहेन व्याप्तसकलदेहम् । शीघ्रविदाहि-शीघ्र विदग्धाजीर्णकरम् । दारुणम्-मारकम् । मनोपहारिणम्-मनोवैकल्यकारकम् । शरीराग्नि-बलापहारिणम्-शरीरस्य कार्श्यकरम् ॥

जो गुल्म अत्यन्त पीडा तथा दाहयुक्त हो, पत्थरके सदृश घन तथा ऊपरको उठा हुआ हो, तत्काल विदग्धाजीर्णको उत्पन्न करनेवाला हो, मनको भ्रमित करता शरीरको दुर्बल तथा जठराग्निके बलको हरनेवाला हो और त्रिदोषज गुल्म यह असाध्य जानना॥१९

अपरमसाध्यलक्षणमाह ।

सञ्चितः क्रमशोः गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः । कृतशूलः शिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः ॥ २० ॥ दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासच्छर्द्यरतिज्वरैः । तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति ॥ २१ ॥

महावस्तुपरिग्रहः व्यापकतया बृहत्स्थलं गृह्णाति । युज्यते-युक्तो भवति ॥

जो गुल्म क्रम क्रम करके अत्यन्त बढ गया हो और बहुत स्थान घेर लिया हो, शूलको

करनेवाला हो, शिराओंसे बँधकर कछुएकी भांति ऊँचा होगया हो और दुर्बलता, अरुचि, हृल्लास, खांसी, वमन, अत्यन्त ज्वर, तृषा, तन्द्रा तथा प्रतिश्याय इनसे युक्त हो इस गुल्मरोगीको असाध्य जानना ॥२०॥२१॥

अपरश्च—गृहीत्वा सज्वरं श्वासं छर्द्यतीसारपीडितम् । हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम् ॥ २२ ॥

कर्षति-मारणाय कर्षति ॥

जो गुल्मरोगी ज्वर, श्वास, वमन और अतिसार इनसे पीडित हो तथा हृदय, नाभि, हांथ तथा पांवमें सूजन हो तो उस गुल्मरोगी की मृत्यु होती है ॥ २२ ॥

अपरश्च—श्वासः शूलं पिपासाऽन्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता। जायते दुर्बलत्वञ्च गुल्मिनो मरणाय वै ॥ २३ ॥

ग्रन्थिमूढता-ग्रंथिरूपस्य गुल्मस्य अकस्माद् विलयनम् ॥

श्वास, शूल, तृषा, अन्नमें अरुचि, गुल्मक अकस्मात् गुप्त होजाना और दुर्बलता इन लक्षणों युक्त गुल्मरोगी मृत्युगत हुआ जानना ॥ २३ ॥

अथ गुल्मचिकित्सा ।

वातारितैलेन पयोयुतेन पथ्यासमेतेन विरेचनं हि । संस्वेदनं स्निग्धमतिप्रशस्तं प्रभञ्जनक्रोधकृते च गुल्मे ॥ २४ ॥

वायुके कोपसे गुल्म हुआ हो तो दूध और हरड सहित अण्डीके तेलका विरेचन देवे तथा स्निग्धपदार्थोंसे स्वेदन करे, यह हितकारक है ॥ २४ ॥

स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकसम्भवः । पीतस्तैलेन शमयेद्गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ २५ ॥

सज्जी, कूठ और केतकीका खार इनको मिलाकर तेलमें डालकर पीये तो इससे वायुसम्बन्धी गुल्म शांत होजाता है ॥ २५ ॥

तित्तिरांश्च मयूरांश्च कुक्कुटान्क्रौञ्चवर्तकान् । सर्पिः शालीन्प्रसन्नाश्च वातगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ २६ ॥ पित्तगुल्मे त्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफलाम्बुना । विरेकाय सितामुक्तं कम्पिल्लं वा समाक्षिकम्॥२७

त्रिफलाम्बुना—त्रिफलाक्काथेन । कम्पिल्लं कबीला' इति लोके ॥

अभयां द्राक्षया खादेत्पित्तगुल्मी गुडेन वा , योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेत् ॥ २८ ॥ अपरैश्च बलासघ्नैर्युक्तियुक्तैः शमं नयेत् ॥ २९ ॥

वायुसे उत्पन्न हुए गुल्ममें तीतर, मोर, मुरगा, क्रौंच तथा बटेरका मांस, घी, शालिचावल और प्रसन्नानामक मदिरा इनका सेवन करावे। पित्तके कोपसे गुल्म हुआ हो तो विरेचनके लिये हरड, बहेडा तथा आमलोंके क्वाथके साथ निसोतका चूर्ण खाय अथवा सहतके साथ कबीलेका उपयोग करे। पित्तगुल्मवाला मनुष्य दाखके साथ अथवा गुडके साथ हरड खाय तो पित्तजगुल्म नष्ट होता है। कफसे गुल्म हुआ हो तो वायुसे हुए गुल्ममें जो प्रयोग कहे हैं, वे प्रयोग करे और कफको नष्ट करनेवाला जो प्रयोग हैं,उन प्रयोगोंसे भी कफगुल्मको शान्त करे ॥ २६-२९ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिङ्गुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्याग्नि, पाठाशटी वृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम् । पथ्यापौष्करवेतसाम्लहपुषाजाज्यस्तदेभिः कृतं चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरद्रवैः ॥ ३० ॥ गुल्माध्यानगुदाङ्कुरान्

ग्रहणिकोदावर्तसंज्ञं गदं प्रत्याध्मानगरोद राश्मरियुतांस्तूनीद्वयारोचकान् । ऊरुस्तम्भमतिभ्रमं चमनसो बाधिर्यमष्ठीलिकां प्रत्यष्ठीलिकया सहापहरते प्राक्पीतमुष्णाम्बुना ॥ ३१ ॥ हृत्कुक्षिवंक्षणकटीजठरान्तरेषु वस्तिस्तनांसफलकेषु च पार्श्वयोश्च । शूलानि नाशयति वातबलासजानि हिंग्वाद्यमाद्यमिदमाश्विनसंहितोक्तम् ॥ ३२ ॥

हींग, पीपलामूल, धनिया, जीरा, वच, चव्य, चीता, पाढ, कचूर, तिंतिडीक, तीनों जातिके नमक, सोंठ. मिरच, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, दाडिम, हरड. पोहकरमूल, अमलवेत, हाऊबेर और जीरा, इनका चूर्ण करके अदरकके रसकी तथा बिजौरे नींबूकी भावना देकर उष्णजलके साथ खाय तो इससे गुल्म अफारा, बवासीर, ग्रहणी, उदावर्त्त, प्रत्याधमान, विष, उदरके रोग, पथरी, दोनों प्रकारकी तूनी, अरुचि, ऊरुस्तम्भ, मनका अत्यन्त भ्रम, हरापन, अष्ठीलिका, और प्रत्यष्ठीलिका ये रोग तुरन्त नष्ट होते हैं। अश्विनीकुमारकी संहितामें कहा हुआ 'हिंग्वाद्य. नामक' यह चूर्ण हृदय, कोख, वंक्षण, कमर, पेट, वस्ती, स्तन, खम्भा और पसलियाँ इनमें वायुसे हुए तथा कफसे हुए शूलको नष्ट करता है ॥ ३०-३२ ॥

अथ क्षाराष्टकादियोगः ।

धीमानुपाचरेद्गुल्मं प्रत्येकैश्च त्रिदोषजम् । सन्निपातोत्थिते गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥ ३३ ॥ शरपुंखस्य लवणं पथ्याचूर्णं समं द्वयम् । शाणप्रमाणमश्नीयाच्चूर्णं गुल्मगदापहम् ॥ ३४ ॥ स्वर्जिका शाणमाना स्यात्तावदेव गुडं भवेत् । उभग्रोर्वटिकां खादेद् गुल्मामयविनाशिनीम् ॥ ३५ ॥ पलाशवज्रिशिखरिचिञ्चार्कतिलनालजाः । यवजः स्वर्जिका चेति क्षारा ह्यष्टौ प्रकीर्तिताः । ते गुल्महराः क्षारा अजीर्णस्य च पाचकाः ॥ ३६ ॥

बुद्धिमान् वैद्य वायुसे हुए गुल्ममें वातनाशक उपचार करे, पित्तसे हुए गुल्ममें पित्तनाशक उपचार करे और कफसे हुए गुल्ममें कफनाशक उपचार करे। यदि तीनों दोषोंसे गुल्म हुआ हो तो उसमें त्रिदोषनाशक उपचार करे। सरफोकेका खार और हरडोंका चूर्ण इनका समान भाग लेकर चार मासे खाये तो इससे गुल्म नष्ट होता है। अथवा चार मासे सज्जी और चार मासे गुड इनकी गोली बनाकर खाय तो गुल्मका नाश होता है। अथवा ढाक, थूहर, ओंगा, इमली, आक, तिल, जौ और सज्जी ये आठ क्षार कहाते हैं। ये गुल्मको नष्ट करते हैं और अजीर्णका पाचन करते हैं ॥ ३३-३६ ॥

अथ वज्रक्षारः ।

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारः सुवर्चलम् । टङ्कणं स्वर्जिका क्षारतुल्यं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ३७ ॥ वज्रीक्षीरै रविक्षीरैरातपे भावयेत् त्र्यहम् । वेष्टयेदर्कपत्रेण रुध्वा भाण्डे पुनः पचेत् ॥ ३८ ॥ तत्क्षारं चूर्णयेत्पश्चात् त्र्यूषणं त्रिफला तथा । यवानी जीरको वह्निश्चूर्णमेषाञ्च कारयेत् ॥ ३९ ॥ सर्वचूर्णसमं क्षारं सर्वमेकत्र कारयेत् । तच्चूर्णं टङ्कयुगलं सलिलेन प्रयोजयेत् ॥ ४० ॥ गुल्मशूले तथाऽजीर्णे शोथे सर्वोदरेषु च । मन्दे वह्नावुदावर्ते प्लीह्नि चापि परं हितम् ॥ ॥ ४१ ॥ वातेऽधिके जलैः कोष्णैर्हितं

पित्तेऽधिके घृतैः। गोमूत्रेण कफाधिक्ये काञ्जिकेन त्रिदोषजे ॥ ४२ ॥ वज्रक्षार इति ख्यातः प्रोक्तः पूर्वं स्वयम्भुवा। सेवितो हरतेऽजीर्णं तथाऽजीर्णभवान् गदान् ॥ ४३ ॥

समुद्रनोंन, सैंधानोंन, कचियानोंन, जवाखार, सोरा, सुहागा और सज्जी इनको समान भाग लेकर उस चूर्णको थूहरके दूधकी अथवा आकके दूधकी तीन दिनतक धूपमें भावना देवे। पश्चात् उसका गोला बनाकर आकके पत्तोंमें लपेट हांडीमें रक्खे और हांडीका मुख बन्द करके उस गोलेको अग्निमें पकावे और पश्चात् उस क्षारका चूर्ण करे। तदनन्दर सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, अजवायन, जीरा और चीता इनका चूर्ण करे, इस क्षारके चूर्णको और सोंठ आदिके चूर्णको समान भाग लेकर एकत्र करे। पश्चात् उसमेंसे आठ मासे चूर्ण पानीमें घोलकर पीवे तो इससे गुल्मशूल, अजीर्ण, सूजन, सब प्रकारके उदररोग, अग्निकी मन्दता, उदावर्त और प्लीहा ये भली भांति नष्ट होते हैं। जो वायु अधिक हो तो किंचित् उष्ण जलसे, पित्त अधिक हो तो घीसे, कफ अधिक हो तो गोमूत्रसे और तीनों दोषोंके कोपसे हुआ हो तो कांजीसे इस चूर्णको उपयोग करे। पूर्वकालमें ब्रह्माके कहे हुए इस वज्रक्षार नामक प्रयोगका सेवन करनेसे अजीर्ण तथा अजीर्ण सम्बन्धी रोग नष्ट हो जाते हैं॥ ३७-४३ ॥

सुवर्चिका टङ्कमिता तत्समानाऽऽर्द्रिकाऽपि च। उभे भुञ्जीत युगपद्गुल्मामयनिवृत्तये ॥ ४४ ॥

सुवर्चिका-'सोरा' इति लोके ॥

गुल्मी कुमारिकामांसं कर्षार्द्धं गोघृतान्वितम्। शुक्तिचूर्णस्य गुटिकां टङ्कमात्रां सुवेष्टयेत् ॥ ४५ ॥

कुमारिका-'घिवकुमारी' इति लोके ॥

गुडेन शाणमानेन तां लिहेद् गुल्मरोगवान्। गिलेद्व्योषाभयासिन्धुसूक्ष्मचूर्णावधूलिताम् ॥ ४६ ॥

चार मासे सोरा और चार मासे अदरख इनको एकत्र करके खाय तो गुल्मका नाश होता है। अथवा गुल्मवाला मनुष्य आधा तोला घीकारका गूदा लेकर उसमें घी मिलावें। पश्चात् उसके ऊपर सोंठ, मिरच, पीपल, हरड और सैंधानिमक इनका बारीक चूर्ण बुरबुराकर खाय तो इससे गुल्म नष्ट होता है ॥ ४४-४६ ॥

अथ गुल्मरोगित्याज्यपदार्थाः।

बल्लूरं मूलकं मत्स्यं शुष्कशाकानि वैदलम्। न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ४७ ॥ वैदलानां निषेधेऽपि माषकुलत्थयोः नात्र निषेध इति सुश्रुतटीका ॥

सूखा हुआ मांस, मूली, मछली, सूखे हुए शाक, दो दालवाले अन्न, आलु और मधुर फल, इनको गुल्मरोगी मनुष्य त्याग देवे। सुश्रुतकी टीकामें लिखा है कि-' जिनकी दो दाल होती हैं ऐसे विदल अन्न गुल्म रोगीको निषिद्ध हैं परन्तु उडद और कुलथीका निषेध नहीं है ॥ ४७ ॥

अथ रौधिरगुल्मचिकित्सा।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य योज्यं स्नेहविरेचनम्। शताह्वा चिरबिल्वत्वग्दारुभार्ङ्गीकणोद्भवः ॥ ४८ ॥ कल्कःपीतो जयेद् गुल्मं तिलक्वाथेन रक्तजम्। तिलक्वाथो गुडव्योषघृतभार्ङ्गीयुतो भवेत् ॥४९॥ योनिरक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पेषु योषिताम्। पीतो धात्रीरसो युक्तो मरिचैश्चास्रगुल्म-

नुत ॥ ५० ॥ सुररोचतिकाचूर्णं शर्करामाक्षिकान्वितम् । विदधीताशु गुल्मिन्यामलसं चंक्रमेण च ॥ ५१ ॥ विशेषमपरश्चामुं शृणु रक्तप्रभेदनम् । पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेच्च सा ॥ ॥ ५२ ॥ यास्मिन्न च रसक्षीरतोयसाध्यरसादिषु । सक्षारं त्र्यूषणं सर्पिः प्रपिबेदस्रगुल्मिनी ॥ ५३ ॥ फेनोद्गारस्य निष्पत्तिमिष्टदुग्धसमाकृते । स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥५४॥

इति गुल्मनिदानचिकित्साधिकारः ।

रक्तगुल्मवाले रोगीके शरीरको स्वेदनका तथा स्नेहनका संस्कार देकर स्नेहयुक्तपदार्थोंका विरेचन देवे, तदनन्तर अन्य चिकित्सा करे । सतावर, करञ्जकी छाल, दारुहलदी, भारंगी और पीपल इनका कल्क करके तिलके क्वाथके साथ पीवे तो इससे रुधिरसम्बन्धी गुल्म नष्ट होता है । स्त्रियोंका रज नष्ट हुआ हो अथवा योनिके रुधिरसे गुल्म हुआ हो तो तिलका क्वाथ करके उसमें गुड, सोंठ, मिरच, पीपल घी और भारंगी ये पदार्थ डालकर पीवे । आमलोंके रसमें कालीमिरच डालकर पिये तो इससे रुधिरसम्बन्धी गुल्म नष्ट होता है । रुधिरसम्बन्धीगुल्मवाली स्त्रीको दोषोंसे स्वच्छ करनेके लिये गोरखमुण्डी और वंशलोचन इनका चूर्णमिश्री तथा सहतमें मिलाकर खिलावे । यदि इन प्रयोगोंसे गुल्मवालीको आलस्य हो तो इधर उधर फिरावे । स्त्रियोंके रुधिरसम्बन्धी गुल्म जिससे तत्काल नष्ट होजाय ऐसा और प्रयोग कहते हैं कि-ढाकके खारके पानीमें पकाया हुआ घी पिये अथवा जवाखार, सोंठ, मिरच और पीपल इनका चूर्ण घीमें डालकर पीवे तो स्त्रीका रुधिरसम्बन्धी गुल्म नष्ट होजाता है ॥ ४८ ॥ ५४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे गुल्माधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ प्लीहयकृदधिकारः ।

तत्र शरीरावयवविशेषेण प्लीहस्वरूपम् ।

शोणिताज्जायते प्लीहा वामतो हृदयादधः । रक्तवाहिशिराणां स मूलं ख्यातो महर्षिभिः ॥ १ ॥

बाईं ओर हृदयसे नीचे रुधिरसे प्लीहा उत्पन्न होती है और यह रुधिरको बढानेवाली शिराओंकी मूल है, ऐसा महर्षियोंने कहा है ॥ १ ॥

अथ प्लीहरोगनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च । प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ तं प्लीहसंज्ञं गदमामनन्ति ॥ २ ॥ वामे स पार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र । मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः ॥ ३ ॥

विदाहि- कुलत्थमाषसर्षपशाकादि । अभिष्यन्दि माहिषं दध्यादि । कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुत इत्यर्थः । प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्चेति समाप्तेः असृजः पित्तस्य च समानधर्मत्वात् ॥

कुलथी, उडद तथा सरसोंका शाक आदि विदाहकारक पदार्थोंको और भैंसका दही आदि अभिष्यन्दी पदार्थोंको सेवन करनेवाले मनुष्यका अत्यन्त दूषित हुआ रुधिर और कफ वृद्धिको प्राप्त होकर प्लीहाको बढाते हैं; इसको 'प्लीहारोग' कहते हैं । अत्यन्त दूषितहुए रुधिर और कफसे प्लीहाकी वृद्धि होती है ऐसा जो कहा सो इस रोगकी संप्राप्ति जानना । क्योंकि रुधिर और पित्तका धर्म समान है । यह प्लीहा—बाईं पसलीमें बढती है इससे रोगी अत्यन्त दुःखी होता है तथा मन्द मन्द ज्वर, अग्निकी मन्दता, कफ तथा पित्तके चिह्न, बल क्षीण और शरीर अत्यन्त पीला होजाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ रौधिरप्लीहलक्षणम्।

क्लमो भ्रमो विदाहाश्च वैवर्ण्यं गात्रगौरवम्। मोहो रक्तोदरत्वश्च ज्ञेयं रक्तजलक्षणम् ॥ ४ ॥

ग्लानि, भ्रम, दाह, वर्णकी विपरीतता, शरीरमें भारीपन, मोह और रक्तोदरका होना ये लक्षण रुधिरसे हुई प्लीहाके जानने ॥ ४ ॥

अथ पित्तजप्लीहलक्षणम्।

सज्वरः सपिपासश्च सदाहो मोहसंयुतः। पीतगात्रो विशेषेण प्लीहा पैत्तिक उच्यते ॥ ५ ॥

यदि प्लीहारोग पित्तसे हुआ हो तो ज्वर, तृषा, दाह, मोह और विशेष करके शरीरका पीलापड़ जाना ये लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

अथ कफजप्लीहलक्षणम्।

प्लीहा मन्दव्यथः स्थूलः कठिनो गौरवान्वितः। अरोचकेन संयुक्तः प्लीहा कफज उच्यते ॥ ६ ॥

जो प्लीहा हीनपीडावाली हो तथा मोटी, कठोर, भारी और अरुचियुक्त हो तो जानना कि–कफसे हुआ प्लीहारोग है ॥ ६ ॥

अथ वातजप्लीहलक्षणम्।

नित्यमानद्धकोष्ठः स्यान्नित्योदावर्तपीडितः। वेदनाभिः परीतश्च प्लीहा वातिक उच्यते ॥ ७ ॥

जो वायुसे हुआ प्लीहारोग हो तो कोठा जकडा हुआ रहता है, नित्य उदावर्तकी पीडा और पीडा चारों ओर व्याप्त रहती है ॥ ७ ॥

अथ असाध्यप्लीहलक्षणम्।

दोषत्रितयरूपाणि प्लीह्नयसाध्ये भवन्त्यपि।

जिस प्लीहामें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों, उस प्लीहारोगको असाध्य जानना ॥

अथ शरीरावयवविशेषे यकृत्स्वरूपम्।

अधो दक्षिणतश्चापि हृदयाद्यकृतः स्थितिः। तं रञ्जकपित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम् ॥ ८ ॥

दाहिनी पसलीमें हृदयके नीचे यकृत्की स्थिति होती है। यकृत् रुधिरसे होता है और रञ्जकपित्तका स्थान माना जाता है ॥ ८ ॥

अथ यकृद्रोगः।

प्लीहामयस्य हेत्वादि समस्तं यकृदामये। किन्तु स्थितिस्तयोर्ज्ञेया वामदक्षिणपार्श्वयोः ॥ ९ ॥

प्लीहारोगके जो जो निदान, संप्राप्ति और लक्षण हैं वे सब यकृत् रोगके भी निदान, संप्राप्ति और लक्षण जानने, केवल इतना ही अन्तर है कि–प्लीहाकी स्थिति बांई पसलीमें और यकृतकी स्थिति दाहिनी पसलीमें है॥९॥

अथप्लीहरोगचिकित्सा।

पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः। तथा दुग्धेन पातव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये ॥ १० ॥ अर्कपत्रं सलवणं पुटदग्धं सूचूर्णितम्। निहन्ति मस्तुना पीतं प्लीहानमतिदारुणम् ॥ ११ ॥

प्लीहाकी शांतिके लिये समुद्रकी सीपकी भस्म करके दूधके साथ पीवे अथवा पीपलका चूर्ण करके दूधके साथ पीवे। अथवा आकके पत्तेमें नोंन रखकर उसको पुटपाकसे जलाकर चूर्ण करलेवे, पश्चात् यह चूर्ण दहीके पानीके साथ पीवे तो इससे अत्यन्त दारुण प्लीहाभी शांत होती है ॥ १० ॥ ११ ॥

हिंगु त्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारं च सैन्धवम्। मातुलुङ्गरसोपेतं प्लीहशूलहरं भवेत् ॥ १२ ॥

हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, कूठ, जवाखार और सैंधानिमक इनका चूर्ण कर बिजौरे

नींबूके रससे पिये तो इससे प्लीहा और शूलका नाश होता है ॥ १२ ॥

पलाशक्षारतोयेन पिप्पली परिभाविता । प्लीहगुल्मार्तिशमनी वह्निमान्द्यहरी मता ॥ १३ ॥

पीपलका चूर्ण पलाशक्षार के जलकी भावना देकर खाय तो इससे प्लीहाकी तथा गुल्मकी पीडा शान्त होजाती है और अग्निकी मन्दता भी नष्ट हो जाती है ॥ १३ ॥

रसेन जम्बीरफलस्य शंखनाभीरजः पीतमवश्यमेव । शाणप्रमाणं शमयेदशेषं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥ १४ ॥ शरपुंखमूलकल्कस्तक्रेणालोडितः पीतः। प्लीहानं यदि न हरति शैलोऽपि तदा जले प्लवते ॥ १५ ॥

शंखकी नाभिकी भस्म करके नींबूके रसके साथ चार मासे पीवे तो इससे कछुएके सदृश ऊंची प्लीहा भी अवश्य भली प्रकार नष्ट हो जाती है वा सरफोंकेकी जडका कल्क करके तक्र में मिलाकर पीवे तो इससे भी यदि प्लीहा रोग नष्ट न हो, तो पत्थरभी जलमें तैरने लगे अर्थात् जिस प्रकार जलमें पत्थरका तैरना असंभव है उसी प्रकार इस यत्नसे प्लीहारोगका नष्ट न होना असंभव है १४-१५

सुपक्वसहकारस्य रसः क्षौद्रसमन्वितः । पीतः प्रशमयत्येव प्लीहानं नेह संशयः ॥ १६ ॥

भली भांति पकेहुए आमके रसको सहतके साथ पिये तो इससे प्लीहारोग अवश्य नष्ट हो जाता है इसमें किंचित् भी संशय नहीं है ॥ १६ ॥

सुस्विन्नं शाल्मलीपुष्पं निशापर्युषितं नरः। राजिकाचूर्णसंयुक्तं खादेत् प्लीहोपशान्तये ॥ १७ ॥ यवानिकाचित्रकयावशूकषड्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम् । चूर्णं हरेत् प्लीहगदं निपीतमुष्णाम्बुना मस्तुरसासवैर्वा ॥ १८ ॥

सेमलके फूलको भलीभांति उसेकर रात्रिमें धरा रहने दे अथवा फिर राईके चूर्णके साथ खाय तो प्लीहा रोगकी शांति होती है अथवा अजवायन, चीता, जवाखार, पीपलामूल, दन्ती और पीपल इनका चूर्ण करके उष्ण पानीसे अथवा मद्यसे पिये तो इससे प्लीहारोग नष्ट होजाता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ यकृद्रोगचिकित्सा ।

प्लीहोद्दिष्टाः क्रियाः सर्वा यकृद्रोगे समाचरेत् । कार्यश्च दक्षिणे बाहौ तत्र शोणितमोक्षणम् ॥ १९ ॥ विडङ्गकृष्णयोः क्षारं पूतीकस्याम्बुना सह । पिबेत्प्रातर्यथावह्नि यकृत्प्लीहप्रशान्तये ॥ २० ॥

अत्र पूतीकः--करञ्जः ॥

इति प्लीहयकृदधिकारः ।

यकृत् रोगमें प्लीहाके लिये जो क्रिया कही है वे सब करे और दाहिनी बाँहकी नस खुलवाकर रुधिर निकलवा देवे । अथवा वायविडंग तथा पीपलकी भस्म करके जठराग्निके बलानुसार प्रातःकाल करंजके रसके साथ पीवे तो इससे प्लीहा तथा यकृत रोग शांत होता है ॥ १९ ॥ २० ॥

इति प्लीहयकृदधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ हृद्रोगाधिकारः ।

तत्र हृदयरोगनिदानम् ।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः । सञ्चिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

प्रसङ्गः-सततं सेवा । संचिन्तनम् अतिचिन्ता, राजभयादिकमिति यावत् । हृदामयः

स पञ्चविधः । वातिकः पैत्तिकः श्लैष्मिकः सन्निपातिकः क्रिमिजश्चेति ॥

अत्यन्त उष्ण, भारी, खट्टे, कसैले और कडवे पदार्थ निरंतर सेवन करनेसे, परिश्रमसे, अभिघातसे, भोजनके ऊपर भोजन करनेके अभ्याससे, राजभय आदिके अत्यन्त चिंतनसे और मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे वात, पित्त कफ तथा त्रिदोषसंबंधी और कृमिज इस भांति पांच प्रकारका हृदयरोग होता है ॥१॥

अथ हृदयरोगसम्प्राप्तिलक्षणे ।

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयङ्गताः । हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

विगुणाः-दुष्टाः । बाधां दोषभेदेन नानाविधां व्यथाम् । भङ्गवत्पीडामिति गणदासः ॥

दूषित हुए वातादि दोष हृदयमें रहकर रसको दूषित कर अनेक प्रकारकी पीडा उत्पन्न करते हैं उसको 'हृदयरोग' कहते हैं ॥ २ ॥

अथ वातजहृदयरोगलक्षणम् ।

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा । निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोटयते पाट्यतेऽपि वा ॥ ३ ॥

मारुतजे हृद्रोग इति शेषः । आयम्यते व्यथया विस्तार्यत इव । तुद्यते सूचीभिरिव विद्ध्यते । निर्मथ्यते मन्थनेनेव । दीर्यते करपत्रेण द्विधा क्रियत इव । स्फोटयते अस्त्रेणेव । पाट्यते कुठारेण बहुधा क्रियत इव ॥

वायुसबंधी हृदयरोगमें सम्पूर्ण हृदयमें पीडा व्याप्त हो जाती है । सुई चुभोनेकीसी, मथनेके सदृश, चीरनेके समान, शस्त्रसे फाडने सरीखी और कुल्हाडीसे काटनेके सदृश अनेक प्रकारकी पीडा होती है ॥ ३ ॥

अथ पित्तजहृदयरोगलक्षणम् ।

तृष्णोष्मदाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदये क्लमः । धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥ ४ ॥

ऊष्मा शीतगात्रस्येव शीतवाताभिलाषहेतुः किञ्चिदन्तरौष्ण्यम् । दाहः पार्श्वस्थेन वह्निनेव दुःखहेतुर्गात्रस्य सन्तापः । चोषः चूषणेनेव पीडा । हृदये क्लमः हृदयाकुलत्वं ग्लानिवदित्यर्थः । धूमायनम्कण्ठाद्धूमनिर्गमः क्लेदः किञ्चिद्दुर्गन्धः शठित इव ॥

पित्तसम्बन्धी हृदयरोगमें तृषा, जिससे शीतल पवनकी इच्छा हो ऐसी भीतर किंचित् गरमी रहती है, जैसे अग्नि शरीरके समीपमें ही रहती हो ऐसा शरीरको दुःखदायी सन्ताप होता है, चूसनेके सदृश पीडा होती है, हृदयको व्याकुल करनेवाली ग्लानि होती है, कंठसे धुआं निकलता है, मूर्च्छा होती है, सडा हुआ पसीना आता है और मुख सूख जाता है ॥ ४ ॥

अथ कफयुक्तहृदयरोगलक्षणम् ।

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम् । माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि ॥ ५ ॥

बलासावतते हृदि—कुपितकफव्याप्ते । गौरवं हृदयस्य । स्तम्भो जडता । मार्दवं जलप्लुतमिव । माधुर्यमुखे ॥

कफसम्बन्धी हृदयरोग हुआ हो तो कुपित कफसे व्याप्त हुए हृदयमें भारीपन रहता है तथा कफका स्राव, अरुचि, जडता, जठराग्निकी मृदुता और मुखमें मीठापन रहता है॥५

अथ त्रिदोषजहृदयरोगलक्षणम् ।

विद्यात् त्रिदोषमप्येवं सर्वलिङ्गं हृदामयम् ॥ ६ ॥

तीनों दोषोंके कोपसे जो हृदयरोग हुआ हो तो उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥६

अथ कृमिजहृदयरोगनिदानसम्प्राप्तिः ।

त्रिदोषहेतुहृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते। तिलक्षीरगुडादींश्च ग्रन्थिस्तस्योपजायते ॥ ७ ॥ मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति । संक्लेदात्कृमयश्चास्य पतन्त्युपहतात्मनः ॥ ८ ॥

अत्र क्रिमयो जायन्ते अस्मिन्निति क्रिमिज निरुक्तिः । मर्मैकदेशे हृदयैकदेशे संक्लेदंशठितत्वं रस उपगच्छति । संक्लेदाद्रसस्य शठितत्वादुपहतात्मनः तिलाद्यहिताहारेण ॥

तीनों दोषोंसे हुए हृदयरोगमें जो मूर्ख मनुष्य तिल दूध तथा गुडादिक पदार्थोंका सेवन करता है उसका रस हृदयके एक भागमें सडजाता है, उसके सडनेसे इस दूषित हृदयमें कीडे उत्पन्न होजाते हैं। इस हृदयरोगमें कृमियें उत्पन्न होते हैं इस लिये इसको कृमिज कहते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ कृमिजहृद्रोगलक्षणम् ।

उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः । अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ९ ॥

उत्क्लेद :उपस्थितवमनत्वमिव । शोषःयक्ष्मा ॥

जो कृमिज हृदयरोग हुआ हो तो उत्क्लेद, मुखसे पानी गिरना, सुईसे छेदने सरीखी पीडा, शूल, हृल्लास, अंधेरेका आना, अरुचि, नेत्रोंका काला होना और क्षयरोग लक्षण होते हैं ॥ ९ ॥

अथ हृदयरोगोपद्रवाः ।

क्लोम्नः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः । क्रिमिजे तु क्रिमीणां ये श्लैष्मिकाणां हि ते मताः ॥ १० ॥

क्लोम्नः पिपासास्थानस्य सादः शोषः । शोषो मुखस्य । तेषां हृद्रोगाणाम् । क्रिमिजे तु हृद्रोगे श्लेष्मिकाणां क्रिमीणां ये उपद्रवा हृल्लासास्यस्रवण विपाकादयः ते मताः ॥

तृषा लगनेके स्थानमें शोष मुखका सूखना और भ्रम होता है । यह हृदयरोगोंके उपद्रव हैं । यदि कृमिज हृदयरोग हो तो कफसे हुए कृमियोंके हृल्लास और मुखस्राव आदि उपद्रव भी होते हैं ॥ १० ॥

अथ हृदयरोगचिकित्सा ।

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये । हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तंहत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ११॥ हरीतकीवचारास्नापिप्पलीनागरोद्भवम् । शटीपुष्करमूलोत्थं चूर्णं हृद्रोगनाशनम् ॥ १२ ॥

घीके साथ, दूधके साथ अथवा गुडके पानीके साथ कोहकी छालका चूर्ण पीवे तो इससे हृदयरोग, जीर्णज्वर तथा रक्तपित्तका नाश होता है और आयुकी, वृद्धि होती है। अथवा हरड, वच, रायसन, पीपल, सोंठ, कचूर और पोहकरमूल इनका चूर्ण करके खाय तो हृदयरोगका नाश होता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

पुटदग्धं हरिणशृङ्गं पिष्टं गव्येन सर्पिषा पिबतः। हृत्पृष्ठशूलमचिरादुपैति शान्ति सुकष्टमपि ॥ १३ ॥ तैलाज्यगुडविपक्वं चूर्णं गोधूमपार्थोत्थम् । पिबति पयोभुक्स भवति गतसकलहृदामयः पुरुषः ॥ १४ ॥

पार्थः 'कोह' इति लोके ।

हिरनके सींगको संपुटमें रख भस्म करके चूर्ण करलेवे, पश्चात् गायके घीके साथ पीवे तो इससे हृदय और पीठका शूल महादुःखदायी हो तो भी तत्काल शांत हो जाता है।

गेहूँ तथा कोहके चूर्णको बराबरके तेल अथवा गायके घी और गुडमें पकावे फिर उसे मधुके साथ भक्षण कर दूध पीनेवाला पुरुष सब हृदयरोगसे मुक्त होजाता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

गोधूमककुभचूर्णं पक्कमजाक्षीरगव्यसर्पिर्भ्याम् । मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोगमुद्धतं पुंसाम् ॥ १५ ॥

गेहूँ तथा कोहके चूर्णको बराबरके दूधमें अथवा गायके घीमें पकावे, पश्चात् सहत तथा मिश्रीके साथ भक्षण करे तो इससे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुआ हृदयरोग भी शांत हो जाता है ॥ १५ ॥

अथार्जुनघृतम् ।

पार्थस्य कल्केन रसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥ १६ ॥

कोहकी छालके कल्कसे तथा स्वरससे पकाया हुआ घी सम्पूर्ण हृदयरोगोंमे हितकारी है ॥ १६ ॥

अथ बलाद्यघृतम् ।

घृतं बलानागबलार्जुनानां क्काथेन कल्केन च यष्टिकायाः । सिद्धन्तु हन्याद्धृदयामयं हि सवातरक्तक्षतरक्तपित्तम् ॥ १७ ॥

इति हृद्रोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

खिरेंटी, गुलसकरी तथा कोह इनके क्काथसे और मुलहठीके कल्कसे पकाया हुआ घी हृदयरोग, वातरक्त, क्षत और रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ १७ ॥

इति हृदयरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः ।

तत्र मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनृत्यद्रुतपृष्ठयानात् । आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाऽष्टौ ॥ १ ॥

तीक्ष्णौषधम्--राजिकासूरणादिकयुक्तम् । रूक्षेति मद्यविशेषणम् । प्रसङ्गः-सन्ततं सेवा । नृत्यम्-नर्तनम् । नित्येति द्वितीयः पाठः । द्रुतपृष्ठयानात् अश्वादिना गमनात् । आनूपम्-प्रचुरजलदेशसम्भवम् । अष्टौ वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकसान्निपातिकशल्यजपुरीषज शुक्रजाश्मरीजानि ॥

अत्यन्त व्यायाम करनेसे, राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंकी औषधिका तथा रूक्ष मद्यका अत्यन्त सेवन करनेसे, बहुत नाचनेसे, घोडा आदिकी सवारी पर चढकर बहुत दौडनेसे, अधिक जलवाले देशकी मछलियोंको खानेसे, भोजनपर भोजन और अजीर्णसे मनुष्योंके आठ प्रकारका मूत्रकृच्छ्र होता है । १ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ तीनों दोषोंसे, ५ शल्यसे, ६ विष्ठासे, ७ वीर्यसे और ८ पथरीसे हुआ इस प्रकार मूत्रकृच्छ्रके आठ भेद जानने ॥१॥

अथ मूत्रकृच्छ्रसम्प्राप्तिसामान्यलक्षणे ।

पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य वस्तौ । मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ २ ॥

अपने अपने कारणोंसे कुपित हुआ एक एक दोष अथवा इसी प्रकार कुपित हुए सम्पूर्ण दोष मूत्राशयमें कुपित होकर जब मूत्रके मार्गको पीडित करते हैं तब मनुष्य बहुत कष्टसे मूत्र कर सकता है ॥ २ ॥

अथ वातजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् १ ।

तीव्रा च रुग् वंक्षणवस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ॥ ३ ॥

तीव्रा-मारणात्मिका । वंक्षणः ऊरुमेढ्राणामभ्यन्तरालसन्धिः ॥

जो वायुसे-मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो वंक्षण तथा मूत्राशयमें और लिंगमें अत्यन्त तीव्र पीडा

होती है और बारंबार अल्प अल्प मूत्र आता है ॥ ३ ॥

अथ पित्तजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् । २

पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥ ४ ॥

कृच्छ्रमिति क्रियाविशेषणम् ॥

जो पित्तसे-मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो बारंबार पीला रुधिरयुक्त, वेदनासहित और दाहयुक्त थोडा थोडा मूत्र उतरता है ॥ ४ ॥

अथ कफजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् । ३

बस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्वशोथो मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५ ॥

सपिच्छम् पिच्छिलम् ॥

जो कफसे-मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो मूत्राशय और लिंगमें भारीपन तथा सूजन होती है और चिकनासा मूत्र उतरता है ॥ ५ ॥

अथ सन्निपातमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् । ४

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवन्ति तत् कृच्छ्रतमं हि कृच्छ्रम् ॥ ६ ॥

जो तीनों दोषोंसे-मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं, यह मूत्रकृच्छ्र बहुत दुःखदायी है ॥ ६ ॥

अथ शल्यजनितमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ५ ।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च । मत्रकृच्छ्रं तदाघातान्जायते भृशदारुणम् । वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ ७ ॥

मूत्रवाहिषु स्रोतःसु । शल्येन-कण्टकेन । क्षतेषु सक्षतीकृतेषु अथवा अभिहतेषु-मुष्ट्यादिभिः अभिहतेषु। तदाघातात्-मूत्रमार्गाघातात्। तत्कृच्छ्रं जायते । भृशदारुणम्-मारकम् । तस्य-शल्यजस्य ।

मूत्रका वहन करनेवाले स्रोत कांटे आदि शल्यसे क्षययुक्त होजायँ अथवा मुट्ठी आदिकी चोट लगे तो मूत्रके मार्गका आघात होनेसे मृत्युके सदृश महादारुण मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है और वह शल्यज मूत्रकृच्छ्र कहलाता है । इस मूत्रकृच्छ्रके लक्षण वायुसे हुए मूत्रकृच्छ्रके सदृशही होते हैं ॥ ७ ॥

• अथ पुरीषजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् । ६

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः । आध्मानं वातशूलञ्च मूत्रसंगं करोति च ॥ ८ ॥

विष्ठाका अवरोध होनेसे दूषित हुई वायु पेटमें अफारेको उत्पन्न करती है और मूत्रका अवरोध होता है ॥ ८ ॥

अथ वीर्यजन्यमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् । ७

शुक्रदोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधारिते । सशुक्रं मूत्रयेत कृच्छ्राद्वस्तिमेहनशूलवान् ॥ ९ ॥

उपहते-दूषिते ॥

जब वीर्यके दोषोंसे दूषित होकर मूत्रका मार्ग संकुचित होता है तब अल्प अल्प मूत्र उतरता है, मूत्रके साथ वीर्य निकलता है और मूत्राशय तथा लिंग शूल होता हैं ॥ ९ ॥

अथाश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् । ८

अश्मरीहेतुकञ्चापित्रमूकृच्छ्रमुदाहृतम् ॥ ॥ १० ॥ सुश्रुते शर्कराजमपि मूत्रकृच्छ्रमुक्तम्, अत्र तु तस्य नवमसंख्यानियमार्थमश्मरीशर्करयोः साम्यमाह--

अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे। विशेषणं शर्करायाः शृणुकीर्तयतो मम ॥ ११ ॥

सम्भवाः--कारणम् ॥

पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना । विमुक्तकफसन्धाना क्षरन्ती शर्करा मता ॥ १२ ॥

पित्तेन पच्यमाना--मूत्रशुक्रश्लेष्मसंहतिः प्रथमं पित्तेन इन्धनकर्मणा पच्यमाना । पश्चाद्वातेन शोषिता कफेनाश्लिष्टा अश्मरी, सैव विमुक्तकफसन्धाना- त्यक्तकफाश्लेषा सती शर्करारूपा मूत्रमार्गात्क्षरन्ती शर्करा मता ॥ एतावता किञ्चिदेव भेदः ॥

पथरी होनेसे मूत्र जो कष्टसे होता है वह अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र कहाता है। जो कि सुश्रुत में 'शर्कराज' कंकरीसे हुआ नामक नववां मूत्रकृच्छ्र भी कहा है तो भी इस प्रकरणमें मूत्रकृच्छ्रकी आठ ही संख्याका नियम रखनेके कारण और पथरी तथा कंकरी इनके समान ही होनेके कारण शर्कराज मूत्रकृच्छ्रका पृथक नहीं गिना। कहा है कि "पथरी और कंकरी इनके निदान तथा लक्षण तुल्यही हैं तो भी पथरीसे कंकरीमें जो भेद है उसको कहते हैं सुनो, पित्त-जो कि पकानेका काम करता है उससे पककर पश्चात् वायुसे सूखकर और कफके संयोगको प्राप्त हुई पथरी नामक वस्तु कि जो मूत्र वीर्य और कफका समुदाय रूप है, यह पथरी जब कफके संयोगसे छूटकर मूत्रके मार्गसे कंकरीरूप झरने लगती है तब वह कंकरी कहाती है" इस प्रकार पथरी और कंकरीमें केवल इतना ही भेद है ॥ ११-१२ ॥

अथ शर्करोपद्रवाः।

हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्वलः। तथा भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रश्च दारुणम् ॥ १३ ॥

हृदयमें पीडा, कम्प शूल, पेटमें अग्निकी मन्दता मूर्च्छा और दारुण मूत्रकृच्छ्र ये शर्करासे हुए मूत्रकृच्छ्रमें उपद्रव होते हैं ॥ १३ ॥

अथ वातजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्वेदोपनाहोत्तरवस्तिसेकान् । स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान् दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे॥१४

अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धात्रिकण्टकैः । प्रपिबेद्वातरोगार्तः शूलवान् मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ १५ ॥

वायुसे मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो-वैद्य रोगीको अभ्यंग तैलादिकी मालिश, स्नेहन, निरूहवस्ति तथा उत्तरवस्ति देवे, अंगोंमें योग्य औषधियां बँधवावे, घी आदिसे सिकवावे तथा वातनाशक, शालिपर्णी आदि पदार्थोंसे पकाये हुए रस पिलावे अथवा गिलोय सोंठ, आंवला, असगन्ध और गोखरू इनका क्राथ करके पिलावे तो इससे वायु सम्बन्धी रोग, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १४॥१५॥

अथ पुनर्नवाद्यमिश्रकम्।

नर्नवैरण्डशतावरीभिः पत्तूरवृश्चीवबलाश्मभिद्भिः। द्विपञ्चमूलेन कुलत्थकेन यवैश्च तोयोत्क्वथिते कषाये ॥ १६ ॥

तैलं वराहर्क्षवसा घृतञ्च तैरेव कल्कैर्लवणैश्च सिद्धम् । तन्मात्रयाऽत्र प्रतिहन्ति पीतं शूलान्वितं मारुतमूत्रकृच्छ्रम्॥१७॥

पुनर्नवा, एरण्ड, शतावर, पत्तूर सफेद फूलवाली, सोंठ, खिरैंटी, पाखानभेद बृहत्पञ्चमूल, लघुपञ्चमूल, कुलथी और जौ इनका क्वाथ करके उस क्वाथमें इन्हीं पदार्थोंका कल्क डालकर तथा सैंधानोंन डालकर पकाया हुआ तेल, सुअरकी चरबी, रीछकी चरबी और घी इनको योग्यतानुसार पीवे तो इससे शूलसहित वायुसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ पित्तजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मो विधिर्वस्तिपयोविकाराः । द्राक्षाविदारी-

क्षुरसैर्वृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥ १८ ॥

मूत्रकृच्छ्र पित्तसे हुआ हो तो वैद्य रोगीके अंगोंपर जल आदि शीतल पदार्थोंका सेवन करावे, रोगीको ऐसे ही शीतल पदार्थों युक्त कोठीमें अवगाहन करावे, शीतल लेप करे, ग्रीष्म ऋतुके योग्य उपचार करे और दाखका रस, विदारीकन्दका रस, ईखका रस तथा घी इनकी पिचकारी लगावे तथा इन्हीं पदार्थोंको डालकर दूधके विकार खिलावे ॥ १८॥

अथ तृणपञ्चमूलम्।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम्। पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम् ॥ १९ ॥

कुश, कांस, रामसर, दाभ और ईख इन पांचोंकी जडको 'तृणपञ्चमूल' कहते हैं, इस पञ्चमूलका उपयोग करनेसे पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है और वस्त्याशय शुद्ध होता है॥ १९ ॥

अथ शतावर्यादिक्वाथः।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकसेरुकाणाम्। क्वाथं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां युक्तं पिबेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे॥२०॥

सतावर, कांस, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द, शालिचावल, ईख और कसेरू इनका क्वाथ करके सहत और मिश्री डाल जब शीतल होजाय तब पीवे तो पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है॥ २० ॥

अथर्वारुबीजादिपानम्।

एर्वारुबीजं मधुकञ्च दार्वीं पित्ते पिबेत्तण्डुलकीरसेन। दार्वीं तथैवामलकीरसेन समाक्षिकं पित्तकृते तु कृच्छ्रे॥ २१ ॥

खीरेके बीज, मुलहठी और दारुहलदी इन सबको चावलोंके जलमें पीसकर चावलोंके जलसे ही पीवे तो इससे पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। अथवा दारुहलदीको आमलोंके रसमें पीसकर सहत डालकर पीवे तो इससे पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है॥ २१ ॥

अथ हरीतक्यादिक्वाथः।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम्। क्वाथं पिबेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे॥ २२ ॥

हरड गोखरू, अमलतासका बीजा, पाषाणभेद, धनिया और धमासा इनका क्वाथ करके सहत डाल, कर पीवे तो इससे दाहयुक्त तथा वेदनायुक्त मूत्रकृच्छ्र और मलबन्ध नष्ट होता है॥ २२ ॥

अथ शतावरीघृतम्।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिकक्ष्वामलकेषुसिद्धम्। सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्र वेषु योज्यम् २३

शतावर, कांस, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द ईखका रस और आमले इनको दूध अथवा घीमें पकाकर मिश्री डाले, पश्चात् इसको पीवे तो इससे पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है॥ २३ ॥

अथ त्रिकण्टकाद्यघृतम्।

त्रिकण्डकैरण्डकुशाद्यभीरुकर्कारुकेषु स्वरसेषु सिद्धम्। सर्पिर्गुडार्द्धांशयुतं प्रयोज्यं कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातदोषे२४॥ अयं विशेषेण पुनर्विधेयः सर्वाश्मरीणां प्रवरः प्रयोगः॥ २५ ॥

गोखरू, एरंड, कुशा आदिकी जड, शतावर ककड़ीके बीज और ईखका स्वरस इनको घीमें पकावे फिर इसमें आधाभाग गुड डालकर खाय तो इससे मूत्रकृच्छ्र पथरी और मूत्राघात ये नष्ट होते हैं। यह उत्तम प्रयोग सब प्रकारकी पथरियोंमें विशेष करके देवे॥ २४॥ २५॥

अथ कफजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

क्षारोष्णतीव्रौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहः । तक्रञ्च तिक्तोषणसिद्ध-तैलान्यभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥२६॥

खार, उष्ण तथा तीव्र औषधि और अन्नपान स्वेदन, जौका भोजन, वमन, निरूहवस्ति, तक्र और कडवे पदार्थोंसे कालीमिरचोंसे पकाये हुए तेलका अभ्यंग अथवा पीनेसे कफसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥२६॥

मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा । कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मं पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत् ॥ २७ ॥ तक्रेण युक्तं शितिवारकस्य बीजं पिबेन्मूत्रविघातहेतोः । पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २८ ॥ त्रिकटु त्रिफला मुस्तं गुग्गुलञ्च समाक्षिकम् । गोक्षुरक्काथसंयुक्तं गुटिकां भक्षयेद् बुधः ॥ २९ ॥ प्रमेहं मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं तथैव च । अश्मरीं प्रदरञ्चैव नाशयेदविकल्पतः ३०

गोमूत्र, मदिरासे तथा केलेके स्वरससे छोटी इलायचीको बारीक पीसकर पिये तो कफसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। अथवा आरी के बीजोंको तक्रमें पीसकर पीवे तो कफसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। अथवा मूँगेकी भस्मको चावलके धोवनसे पीवे तो कफसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। अथवा सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, मोथा, गूगल और सहत इनकी गोली बनाकर गोखरूके क्वाथके साथ खाय तो यह प्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात और पथरी इनको इनको नष्ट करती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २७ ॥ ३० ॥

अथ त्रिदोषजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

सर्वत्रिदोषप्रभवे च वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्यम् । त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने तु वस्तिः ॥ ३१ ॥ बृहती धावनी पाठा यष्टी मधु कलिंगका । पाचनीयो बृहत्यादिः कृच्छ्रदोषत्रयापहः ॥ ३२ ॥ गुडेन मिश्रितं क्षीरं कदूष्णं कामतः पिबेत् । मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करावातरोगनुत् ॥ ३३ ॥

तीनों दोषोंसे मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो-रोगीके बलको विचारकर तीनों दोषोंकी चिकित्सा करे। कफ अधिक हो तो प्रथम वमन करावे, पित्त अधिक हो तो प्रथम विरेचन देवे और वायु अधिक हो तो प्रथम पिचकारी लगावे अथवा बडी कटेरी, पिठवन, पाढ, मुलहठी और इन्द्रजौ इनका क्वाथ तीनों दोषसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्रको दूर करता है अथवा दूधमें गुडको मिलाकर उसको किंचित् उष्णकर इच्छानुसार पिलावे तो इससे सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र, शर्करा और वायुसंबन्धी रोग नष्ट होते हैं ॥ ३१ ॥ ३३ ॥

अथाभिघातजन्यमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

मूत्रकृच्छ्रेऽभिघातोत्थेवातकृच्छ्रक्रिया मता ॥ ३४ ॥ मद्यं पिबेद्वा ससितं ससर्पिः शृतं पयो वाऽर्द्धसिताप्रयुक्तम् । धात्रीरसञ्चेक्षुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम् ॥ ३५ ॥

चोटके लगनेसे मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो-वायुसे हुए मूत्रकृच्छ्रके लिये जो क्रिया कही है वे करे। रुधिर सहित मूत्र उतरता हो तो घी, मिश्री तथा सहत इनसे मिलाकर मद्य पीवे अथवा औटाया हुआ दूध सहतके साथ तथा आधा भाग बूरा डालकर पीवे, वा आमलोंका रस तथा ईखका रस इनको मिलाकर उसमें सहत डालकर पीये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथ पुरीषजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गवस्तयः स्युः पुरीषजे । क्वाथो गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतः

सदा। मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जन्म पीतं शीघ्रं नियच्छति ॥ ३६ ॥

विष्ठाके रोकनेसे मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो-स्वेदन, दस्तावर चूर्णोंका सेवन, तैलादिक अभ्यंग और वस्ति कर्म करे। अथवा गोखरूके बीजोंका क्वाथ करके उसमें जवाखार डालकर नित्य पीवे तो विष्ठासे हुआ मूत्रकृच्छ्र तत्काल नष्ट होजाता है ॥ ३६ ॥

अथ वीर्यजन्यमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा।

लेहः शुक्रविबन्धोत्थे सशिलाजतु माक्षिकम्। एलाहिङ्गुयुतं क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः ॥ ३७ ॥ मूत्रदोषमशुद्ध्यर्थं शुक्रंदोषहरं च तत्। वृष्यंबृंहितधातोश्च विधेयाः प्रमदोत्तमाः ॥ ३८ ॥

शिलाजीत तथा सहत इनको मिलाकर चाटे तो इससे वीर्यजनित मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है अथवा दूधमें इलायची, हींग तथा घी इसको मिलाकर पीवे तो मूत्रके दोष स्वच्छ होजाते हैं और वीर्यके दोष नष्ट होजाते हैं। अथवा जिसको वीर्यके दोषसे मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो उसको वृष्य पदार्थ खिलाकर वीर्यको बढावे, पश्चात् उस पुरुषका उत्तम स्त्रियोंसे रमण करावे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथाश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा।

सप्तच्छदारग्वधकेबुकैला निम्बः करञ्जः कुटजो गुडूची। साध्याजले तेन पचेद्यवागूं सिद्धं कषायं मधुसंयुतं वा ॥३९॥ एर्वारुबीजकल्कश्च श्लक्ष्णपिष्टोऽक्षसंमितः। धान्याम्ललवणैः पेयो मत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥ ४० ॥ त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापर्वतभेदपथ्याः। निघ्नन्ति पीता मधुनाऽश्मरीन्तु संप्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ ४१ ॥

सतोना, अमलतास, सुपारी, इलायची, नीम, करंज, कुडेकी छाल और गिलोय इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पीवे अथवा इस क्वाथसे यवागू बनाकर खाय तो पथरीसे हुआ मूत्रकृच्छ्र नष्ट होजाता है। अथवा ककडीके बीजोंका कल्क करके खूब पीस लेवे, इसको एक तोला लेकर कांजी तथा सैंधेके साथ खाय तो मूत्रकृछ्र नष्ट होता है। वा गोखरू, अमलता डाम, कास, धमासा, पाषाणभेद और हरड इनको पीस सहतके साथ पीवे तो इससे मृत्युके सदृश मूत्रकृच्छ्रभी नष्ट होजाता है ॥ ३९ ॥ ४१ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रसामान्यचिकित्सा।

निदिग्धिकायाः स्वरसं कुडवं मधुसम्मितम्। मूत्रदोषहरं पीत्वा नरः सम्पद्यते सुखी ॥ ४२ ॥ कषायोऽतिबलामूलसाधितोऽशेकृच्छ्रजित्। पीतश्च त्रपुसीबीजं सतिलाज्यपयोऽन्वितम् ॥ ४३ ॥

कटेरीका सोलह तोले स्वरस शहद डालकर पीवे तो मूत्रदोष दूर होकर मनुष्यको सुखकी प्राप्ति होती है। अतिबला (कंघी)की जडका क्वाथ करके पीवे तो इससे सर्व प्रकारके मूत्रकृच्छ्रदूर होजाते हैं अथवा खीराके बीज और तिल इनको घीमें तथा दूधमें पीसकर पीवे तो मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

त्रिफलायाः सुपिष्टायाः कल्कं कोलसमन्वितम्। वारिणा लवणीकृत्य पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥ ४४ ॥ यवोरुबूकतृणपञ्चमूलीपाषाणभेदैः सशतावरीभिः। कृच्छ्रेषु गुग्गुल्वभयाविमिश्रैः कृतः कषायो गुडसंप्रयुक्तः ॥ ४५ ॥ मूलानि कुशकाशेक्षुशराणां चेक्षुबालिका। मूत्राघाताश्मरीकृच्छ्रे पञ्चमूली तृणात्मिका ॥४६॥ गुडमामलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं

प्रियम् । पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्र-निवारणम् ॥ ४७ ॥

हरड, बहेडा और आमला इनका कल्क करके इसमें बेरकी मींग और सैंधनोंन डालकर पानीसे पीवे तो इससे मूत्रकृच्छ्र हो जाता है । जौ, एरंड, तृणपंचमूल, पाषाणभेद, शतावर, गूगल और हरड इनका काथ करके गुड डालकर पीवे तो इससे मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । अथवा कुशा, कांस, ईख, रामसर और नरसल इनकी जडको पीसकर पीवे तो मूत्रघात और पथरी सम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । गुड और आमलोंका सेवन–वृष्य, श्रमनाशक, तृप्तिदायक, प्रिय और पित्त, रुधिरविकार, दाह, तथा शूलनाशक है ॥४४॥४७॥

सितातुल्यो यवक्षारःसर्वकृच्छ्रप्रसाधनः । द्राक्षासितोपलाकल्कं कृच्छ्रघ्नं मस्तुनायुतम् ॥ ४८ ॥ विदारी सारिवा छागशृङ्गी वत्सादनी निशा । कृच्छ्रं पित्तानिलाद्धन्ति वलिजं पञ्चमूलम् ॥ ४९ ॥

मिश्री मिलाकर जवाखार खाय तो सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्रे नष्ट होते हैं अथवा दाख और मिश्री इनका कल्क करके दहीके पानीके साथ पीवे तो मूत्रकृच्छ्र दूर होता है । विदारीकन्द, सारिवा, मेंढासिंगी, गिलोय, हलदी, वायविडङ्ग और तृणपञ्चमूल इनको पीसकर पीवे तो तत्काल मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥४८॥४९॥

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनामेर्वारुबीजलवणोत्तमकुंकुमानाम् । चूर्णानि तण्डुलजले लुलितानि पीत्वा प्रत्यग्रमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ ५० ॥ अयोरजः सूक्ष्मपिष्टं मधुना सह योजितम् । मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥ ५१ ॥

इलायची, पाषाणभेद शिलाजीत, पीपल, ककडीके बीज, सैंधानिमक और केसर इनका चूर्ण करके चावलोंके पानीमें मिलाकर पीवे तो मृत्युको प्राप्त होनेवाला भी मूत्रकृच्छ्ररोगी रोगरहित होकर जीवित रहता है । वा लोहेकी भस्मको बारीक पीस सहतमें मिलाकर तीन दिनतक चाटे तो इससे शीघ्र मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ सुकुमारकुमारकपुनर्नवावलेहः ।

पुनर्नवामूलतुलां दर्भमूलं शतावरीम् । बला तुरङ्गगन्धा च तृणमूलं त्रिकण्टकम् ॥ ५२ ॥

विदारीकन्दनागाह्वगुडूच्यतिबलास्तथा । पृथग् दशपलान् भागानपां द्रोणे विपाचयेत् ॥ ५३ ॥ तेन पादावशेषेण घृतस्यार्द्धाढकं पचेत् । मधुकं शृङ्गवेरञ्च द्राक्षां सैन्धवपिप्पलीम् ॥ ५४ ॥ द्विपलांशान् पृथग्दत्त्वा यवान्याः कुडवं तथा । त्रिंशद्गुडपलान्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च ॥ ५५ ॥ एतदीश्वरपुत्राणां प्रागभोजनमनिन्दितम् । राज्ञां राजसमानानां बहुस्त्रीपतयश्च ये ॥ ५६ ॥ मूत्रकृच्छ्रे कटिस्त्रस्ते तथा गाढपुरीषिणाम् । मेढ्रवंक्षणशूले च योनिशूले च शस्यते ॥ ५७ ॥ यथोक्तानाञ्च गुल्मानां वातशोणितनिश्चये । बल्यं रसायनं श्रीदं सुकुमारकुमारकम् । पुनर्नवाशते द्रोणे प्रदेयः सोऽपि चापरः ॥ ५८ ॥ मूत्राघातादिविधानमपि कार्यम् ॥

इति सुकुमारकुमारकावलेहः ।

चारसौ तोले पुनर्नवेकी जड और डाभकी जड, सतावर, खिरैंटीकी जड, असगन्ध,

तृणपञ्चमूल, गोखरू, विदारीकन्द, नागकेसर, गिलोय, अतिबला ये प्रत्येक चालीस चालीस तोले लेकर एक हजार चौवीस तोले जलमें क्वाथ करे, जब चौथा भाग शेष रहे तब उस क्वाथमें एकसौ अट्ठाईस तोले घी पकावे, इस घीमें-मुलहठी, अदरख, मुनक्का, सैंधानिमक और पीपल इन प्रत्येक पदार्थके चूर्णको आठ आठ तोले डाले और एकसौ बीस तोले अण्डीका तेल डाले। तब सुकुमारकुमारक-पुनर्नवावलेह' सिद्ध होता है, इस अवलेहको सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, कमरकी शिथिलता, विष्ठाकी अत्यन्त दृढता, लिङ्गका शूल, वंक्षण-शूल, योनिका शूल, सर्व प्रकारके गुल्म और वातरक्त इनका नाश होता है। यह अवलेह-राजाओंको, राजाके सदृश पुरुषोंको और अधिक स्त्रीवाले पुरुषोंको सेवन करावे। यह लेह-बलवर्द्धक, लक्ष्मीदायक और बालकोंको सुकुमार शोभायमान करनेवाला है ॥ ५२-५८ और भी मूत्राघातमें जो चिकित्सा कही है सो करे ॥

इति मूत्रकृच्छ्राधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मूत्राघाताद्यधिकारः ।

तत्र मूत्राघातकारणम् ।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश । प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥

विशेष करके मूत्रादिकके वेगोंको रोकनेसे कुपित हुए दोष वातकुण्डलिका आदि तेरह प्रकारके मूत्राघातोंको उत्पन्न करते हैं ॥१॥

अथ वातकुण्डलिकालक्षणम् । १

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्वस्तौ सवेदनः । मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥ मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्तते । वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणाम् ॥ ३ ॥

रौक्ष्यात् कायस्य । वेगविघातात्-मूत्रादिवेगनिरोधात्--आविश्य आवृत्य । मूत्रमिति राक्ष्यादिभिर्वेगविघातादिभिश्च, विगुणः-दुष्टः । कुण्डलीकृतः वातावर्तो वस्तावेव भ्रमन् तिष्ठति । कुण्डलीभूतो वायुः वस्तौ मूत्राशये चरति-प्रधावति, आवद्धत्वादू भ्रमन् तिष्ठति ॥

शरीरके रूक्ष होनेसे अथवा मूत्र आदिके वेगोंको रोकनेसे दूषित हुई वायु कुण्डलाकार (गोलाकार) हो मूत्रमें मिलकर पीडाको उत्पन्न करती है। तब मूत्रमें मिली होनेसे मूत्राशयमेंही विचरती रहती है, इससे अल्प अल्प और पीडायुक्त मूत्र उतरता है, यह तीव्र और महादारुण रोग 'वातकुण्डलिका' कहाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथाष्ठीलालक्षणम् । २

आध्मापयन् वस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम् । कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥ ४ ॥

वातः तस्तिगुदं रुद्ध्वा-अर्थाचद्रन्तर्गतं मूत्रं मलञ्च निरुद्धय वस्ति गुदञ्च आध्यभापयन्-आध्मानं कुर्वन् । अष्ठीलाम्-अष्ठीलातुल्यां ग्रन्थि कुर्यात । चलोन्नतां चलामुन्नताञ्च ॥

वायु मूत्र तथा मलको रोककर मूत्राशय तथा गुदामें अफारा करके चंचल, ऊँची, तीव्र-पीडावाली और मूत्र तथा विष्ठाके मार्गको रोकनेवाली पिंडीके सदृश गांठको उत्पन्न करती है, इसको 'अष्ठीला' कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ वातवस्तिलक्षणम् । ३

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः । निरूणद्धि मुखं तस्य वस्तेर्वस्तिगतोऽ-

निलः ॥ ५ ॥ मूत्रसङ्गो भवेत्तेन वस्तिकुक्षिनिपीडितः। वातवस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥

अकुशलः—मूर्खः। पुरुषस्य वस्तेर्मुखं निरुणद्धि वस्तिगतो वायुः तेन वायुना। मूत्रसङ्गः विघातो भवति। वस्तिकुक्षिनिपीडित इति वस्तौ कुक्षौ निपीडितः संपीडितो वायुरिति सम्बन्धः। मूत्रसङ्गःमूत्रावरोधः ॥

जो मूर्ख मनुष्य मूत्रके वेगको रोकता है उसके मूत्राशयमें रहनेवाली वायु मूत्राशयके मुखको बन्द कर देती है, तब मूत्र रुकजाता है और वस्त्याशय तथा कोखमें पीडा होती है, इसको 'वातवस्ति' कहते हैं यह वातवस्तिरोग कष्टसाध्य जानना ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ मूत्रातीतलक्षणम्। ४

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते। मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥

मेहमानस्य—मूत्रमुत्सृजतः। मन्दं वा अल्पं वा ॥

मूत्रको अधिक समय रोकनेसे फिर मूत्र तत्काल नहीं उतरे अथवा थोडा थोडा उतरे उसको 'मूत्रातीत' रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ मूत्रजठरलक्षणम्। ५

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्तहेतुकः। अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ ८ ॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम्। तन्मूत्रजठरं विद्यादधोवस्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥

तदुदावर्तहेतुक इति-मूत्रवेगधारणजनितोदावर्तनिदानम् आध्मानं कुर्यात्। अधोवस्तिनिरोधनम्-वस्तेरधोदेशे विबन्धकारकम् ॥

मूत्रका वेग रुकनेसे कुपित हुई अपानवायु पेटको अत्यन्त भरदेती है। तब इस प्रकारका उदावर्त हुआ नाभिके नीचे तीव्र वेदनायुक्त अफारा करता है कि, जिससे अधोवस्ति (मूत्राशयके नीचेका भाग) रुक जाता है, इस रोगको 'मूत्रजठर' कहते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ मूत्रोत्सङ्गलक्षणम्।

वस्तौ वाऽप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः। मूत्रं प्रवृत्तं सज्येत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १० ॥ स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वापि नीरुजम्। विगुणानिलजो व्याधि स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥ ११ ॥

नाले—मेढ्रे। मणौ—मेढ्रग्रन्थौ। सज्येत—निरुद्धं स्यात्। सरक्तं प्रवाहतः-कण्ठत्दद्बलेन सशब्दं मूत्रपुरीषवातानामधःप्रेरणं प्रवाहणम्। तेन कुपितेन वायुना वस्त्यादिभेदात् सरक्तं मूत्रं स्रवेदित्यर्थः ॥

जिस पुरुषका प्रवृत्त हुआ मूत्र मूत्राशयमें लिंगमें अथवा लिंगके अग्रभागमें रुका रहे और हृदयके श्वासादि बलसे करे तब वायु वस्तिको भिन्न करके पीडायुक्त अथवा विना पीडाके रुधिरयुक्त थोडा २ मूत्र धीरे २ स्रवित करे ऐसे दूषित वायुसे उत्पन्न हुआ 'मूत्रोत्सङ्ग' नामक रोग कहाता है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ मूत्रक्षयलक्षणम् ॥

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य वस्तिस्थौ पित्तमारुतौ। मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ १२ ॥

क्लान्तदेहस्य म्लानदेहस्य। तदाह्वयं-मूत्रक्षयसंज्ञम् ॥

जिसका शरीर रूक्ष और ग्लानियुक्त हो ऐसे मनुष्यके मूत्राशयमें रहनेवाले पित्त और मूत्रका क्षय करके पीडा तथा दाहको उत्पन्न करते हैं। यह रोग 'मूत्रक्षय' कहाता है॥१२

अथ मूत्रग्रन्थिलक्षणम् । ८

अन्तर्वस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् । अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥

अन्तर्वस्तिमुखे-वस्त्यभ्यन्तरे । अल्पः— क्षुद्रामलकप्रमाणः ॥

मूत्राशयके भीतर सहसा गोल आकारवाली स्थिर, छोटे आमलेके सदृश बडी और पथरीके समान पीडायुक्त गांठ उत्पन्न होती है । उसको 'मूत्रग्रंथि' कहते हैं ॥ १३ ॥

ननु अस्य अश्मर्या सह को भेदः ?

शंका—इस मूत्रग्रन्थिमें और पथरीमें क्या अंतर है ?

उच्यते—अश्मरी क्रमशः सञ्चयेन स्यात् । अयं तु सहसा भवेत् इति भेदः । अपरो भेदः--अश्मर्यां पित्ताधिक्यं मन्यते, अत्र तु रक्तेपेव । यत उक्तं तन्त्रान्तरे--

" रक्तं वातकफाद्दुष्टं वस्तिद्वारे सुदारुणम् । ग्रन्थिं कुर्यात्स कृच्छ्रेण सृजेन्मूत्रं तदावृतम् ॥ "

समाधान—पथरी क्रम क्रमसे मूत्र आदिका संचय होकर होती है और यह गांठ तो सहसा होजाती है इतनाही अन्तर है । दूसरा भेद यह भी है कि, पथरीमें पित्त अधिक होता है और इस मूत्रग्रन्थिमें तो रुधिरही अधिक होता है । अन्य ग्रन्थोंमें कहा है कि—"वायुसे तथा कफसे दूषित हुआ रुधिर मूत्राशयमें अत्यन्त दारुण गांठको उत्पन्न करता है कि—जिससे बहुत पीडायुक्त मूत्र उतरता है वह मूत्र रुधिरसहित होता है " ॥

अथ मूत्रशुक्रलक्षणम् । ९

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् । स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद्वा प्रवर्तते । भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १४ ॥

मूत्रितस्य—मूत्रवेगयुक्तस्य । शुक्रं स्थानाच्च्युतं पश्चाद्वायुना उद्धतम्—ऊर्ध्वं नीतम् । भस्मोदकप्रतीकाशं—भस्मसहितजलसदृशम् मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥

जो पुरुष मूत्रका वेग होनेपर विना मूते स्त्रीका संग करें उसका स्थानसे भ्रष्ट हुआ और पश्चात् वायुसे ऊपरको चढा वीर्य वीर्य मतनेसे प्रथम अथवा पीछे राख मिले हुए पानीके सदृश निकलता है, इस रोगको 'मूत्रशुक्र' कहते हैं ॥ १४ ॥

अथोष्णवातलक्षणम् । १०

व्यायामाध्वातपैः पित्तं वस्तिं प्राप्यानिलावृतम् । वस्तिं मेढ्रं गुदञ्चैव प्रदहत् स्रावयेदधः ॥ १५ ॥ मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा । कृच्छ्रात्पुनःपुनर्जन्तोरुष्णवातं वदन्ति तम् ॥ १६ ॥

सरक्तम्—ईषल्लोहितम् ।

व्यायाम (परिश्रम) करनेसे, अत्यन्त मार्ग चलनेसे तथा धूपमें फिरनेसे पित्त मूत्राशयमें प्राप्त हो वायुसे लिपट कर मूत्राशय लिंग, योनि और गुदा इनमें दाह करके मनुष्यको अधिक कष्टसे वारंवार हलदीके समान वर्णवाला किंचित् लाल अथवा रुधिरयुक्त मूत्र उतारता है, इसको 'उष्णवात' कहते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

मूत्रसादलक्षणम् ।

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येते ऽनिलेन चेत् । कृच्छ्रान्मूत्रं तथा पीतं रक्तं श्वेतं घनं स्रवेत् ॥ १७ ॥ सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेच्च तत् । शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ १८ ॥

१ आर्षः सन्धिः ।

संहन्येते—घनीक्रियेते । शुष्कम्- अल्पम् । समस्तवर्णम्--उक्तसकलवर्णयुक्तम् ॥

पित्त कफ अथवा दोनों पवनसे गाढे हुए हों तो वारंवार पीला, लाल अथवा सफेद वा शंखकी भस्मके सदृश वा इन सब रंगोंवाला, गाढा, दाहयुक्त और थोडा थोडा मूत्र स्रवता है, उसको 'मूत्रसाद' कहते हैं ॥१७॥१८॥

अथ विड्विघातलक्षणम् । १२

रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्तं शकृद्यदा । मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः। विड्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥

उदावर्तमूर्ध्वनीतम् । बिट्गन्धं वाशब्दोऽत्र योजनीयः ॥

रूक्षहुए मनुष्यकी अथवा दुर्बलहुए मनुष्यकी वायुसे ऊपरको चढी हुई विष्ठा जब मूत्रके स्रोत को प्राप्त होती है तब वह मनुष्य विष्ठायुक्त वा विष्ठाकी गन्धयुक्त वारंवार मूत्र करता है । इसको 'विड्विघात' कहते हैं ॥ १९ ॥

अथ वस्तिकुण्डलक्षणम् ।

द्रुताध्वलङ्घनायासैरभिघातात् प्रपीडनात् । स्वस्थानाद्वस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ २० ॥ शूलस्पन्दनदाहार्तो विन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि । पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान् ॥ ॥ २१ ॥ वस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् । पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ २२ ॥ तस्मिन् पित्तान्विते दाहःशूलं मूत्रविवर्णता । श्लेष्मणा गौरवं शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥ २३ ॥

द्रुताध्वलङ्घनम्—शीघ्रं मार्गचलनम् । उद्वृत्तः उत्थितः । स्पन्दनम्—किञ्चित् चलनम् । घोरम्—मारकम् । शस्त्रविषोपमम्—शस्त्रं खड्गादि तद्वच्छीघ्रमारकम्, विषमत्र गरलस्तद्वद्विलम्ब्य मारकम् । एतावत मारकमवश्यं शीघ्रं विलम्बेन वा ॥

वेगपूर्वक अत्यन्त चलनेसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे अभिघात चोटसे अथवा दबानेसे वस्ति अपने स्थानसे उठकर गर्भके सदृश मोटी तथा शूलयुक्त होजाती है, किंचित् कांपती रहती है, दाहसे पीडा करती है, मूत्र बूँद बूँद स्रवता है और दबानेसे मूत्रकी धाराभी निकलती है परन्तु धार निकलनेसे जडतायुक्त होजाती है और पीडा होती है, इसको 'वस्तिकुण्डल' कहते हैं । यह रोग भयंकर है, खड्ग आदि शस्त्रके सदृश तत्काल मृत्यु करनेवाला है, विषके सदृश विलम्बसे भी मारडालता है, वायुकी प्रबलता युक्त है और अधिक करके मूर्खलोगोंसे इसका निवारण भी नहीं होसकता । यही रोग पित्तसे युक्त हो तो दाह, शूल तथा मूत्रकी विवर्णता होती है और यदि कफसे युक्त हो तो भारीपन तथा सूजन होता है और मूत्र स्निग्ध, गाढा तथा सफेद होता है, यह रोग थोडे समयमें वा अधिक समयमें मार डालता है ॥ २० ॥ २३ ॥

अथ वस्तिकुण्डलासाध्यलक्षणम् ।

श्लेष्मरुद्धबिलो वस्तिः पित्तोदीर्णो न सिद्ध्यति । अविभ्रान्तबिलः साध्यो न च यःकुण्डलीकृतः । स्याद्वस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च ॥ २४ ॥

बिलम्—वस्तिमुखरन्ध्रम् । पित्तोदीर्णःपित्तेन उद्धृतः । अविभ्रान्तबिलः—कफेन अनावृतबिलः । पश्चात् कुण्डलीकृतः सः साध्यः ।

एतेन कुण्डलीभूतोऽसाध्यः । कुण्डलीभूतस्य लक्षणमाह- तृडित्यादि । कुण्डलीभूतस्य अथ अर्थः--कफेन विलावरोधात्तत्रवातः कुण्डलाकारेण तिष्ठति इत्यर्थः ॥

जो मूत्राशय पित्तसे ऊँचा होगया हो और मूत्राशयका मुख कफसे रुक गया हो वह वस्तिकुण्डल असाध्य होता है। जिस मूत्राशयका मुख कफसे न ढका हो और कुण्डलाकार न हुआ हो वह वस्तिकुण्डल साध्य जानना। जिस मूत्राशयमें वायु कुण्डलाकार होगया हो तो तृषा, मोह तथा श्वास होता है अर्थात् यह लक्षण कुण्डलीभूत हुएके जानने ॥ २४ ॥

अथ मूत्राघातचिकित्सा।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम्। दद्यादुत्तरवस्तीश्च मत्राघाते सवेदने ॥ २२ ॥

पीडायुक्त मूत्राघात हो तो-स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करके पश्चात् स्नेहयुक्त पदार्थोंसे विरेचन देवे तथा उत्तरवस्ति भी देवे, यह हितकारी है ॥ २५ ॥

नलकुशकाशेक्षुबलाक्काथं प्रातः सुशीतलं ससितम्। पिबतो नश्यति नियतं मत्रग्रह इत्युवाच कविः ॥ २६ ॥

नरसल, कुशा, कास, ईख और खिरैंटी इनका काथ बनावे। शीतल होनेपर मिश्री डालकर पीवे तो इससे मूत्राघात अवश्य नष्ट होता है, ऐसा शुक्राचार्यने कहा है ॥ २६ ॥

गोजानाम्नो मूलं पलमेकं क्वथितशेषितं पीतम्। क्षीप्त्वा मधु च सिताश्च प्रणुदति मूत्रस्य संरोधम् ॥ २७ ॥

चार तोले गोजियाकी जड लेकर इसका काथ करे, इसमें सहत तथा मिश्री डालकर पीवे तो मूत्रका अवरोध नष्ट हो जाता है॥२७॥

गोधापद्या मूलं क्वथितं घृततैलगोरसोन्मिश्रम्। पीतं निरुद्धमचिराद्भिनन्ति मूत्रस्य संघातम् ॥ २८ ॥

गोधापदी (काली मुसली) की जडका काथ करके इसमें घी, तेल तथा दहीका पानी डालकर पीवे तो इससे अधिक समयका रुका हुआ मूत्र भी उतरता है ॥ २८ ॥

पिबेच्छिलाजतु क्वाथे युक्तं वीरतरादिजे। क्वाथं सपत्रमूलस्य गोक्षुरस्य फलस्य च ॥ पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्रकृच्छ्ररुजापहम् ॥ २९ ॥

वीरतरांग दि गण (पथरीकी चिकित्साके प्रकरणमें कहेंगे) का क्वाथ करके उसमें शिलाजीत डालकर अथवा धमासेका क्वाथ डालकर वा अडूसेका क्वाथ डालकर पीवे तो इससे मूत्राघात नष्ट होता है। पत्ते जड तथा फलसहित गोखरू लेकर उसका क्वाथ करके उसमें सहत तथा मिश्री डालकर पीवे तो इससे मूत्रकृच्छ्रकी पीडा नष्ट होती है ॥ २९ ॥

घनसारस्य चूर्णेन वस्तस्याथाविकाम्बुना। गुण्डयित्वा ध्वजे क्षिप्त्वा मूत्ररोधं जहातितम् ॥ ३० ॥

कपूरका चूर्णकर बकरी और भेडके मूत्रमें पीस कपडेकी बत्तीपर लपेटकर लिंगमें डाले तो इससे मूत्रका रोग नष्ट होता है ॥ ३० ॥

सदाभद्राश्मभिन्मूलं शतावर्याः सचित्रकम्। रोहिणीकोकिलाक्षौ च वचाशैलत्रिकण्टकम् ॥ ३१ ॥ श्लक्ष्णपिष्टः सुरापीतो मूत्राघातप्रबाधनः। पिबेद्बर्हिशिखामूलं दुग्धभुक् तण्डुलाम्भसा ३२

कंभारी, पाखानभेद तथा शतावरकी जड चीता, कुटकी, तालमखाना, वच, झारछबीला और गोखरू इनको बारीक पीस मदिराके साथ पीवे तो इससे मूत्राघात नष्ट होता है।

मोरशिखाकी जड पीसकर चावलोंके धोवनसे पिये और दूधका भोजन करे तो मूत्राघात दूर होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

वस्तिमुत्तरवस्तिं वा सर्वेषामेव दापयेत्। निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वा तत्परिस्रुतम् ॥ ३३ ॥ जले कुङ्कुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि। सतैलं पाटलाभस्मक्षारं बद्ध्वा परिस्रुतम् ॥ ३४ ॥

सब मूत्रघातोंमें वस्ति और उत्तरवस्ति देवे। वा कटेरीकी जडका स्वरस निकालकर पीवे तो मूत्राघात दूर हो, केशरका कल्क करके उसमें सहत डालकर रात्रिमें रखा रहने देवे फिर प्रातःकाल पीवे तो मूत्राघात दूर होता है। अथवा पाढलकी भस्म और जवाखार जलमें घोलकर तेल डालके पीवे तो मूत्राघात नष्ट होता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिःसिद्धं पयो वा तृणपञ्चमूले। गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ ३५ ॥

गोखरू, अण्डकी जड और सतावर इनका क्वाथ करके पीवे तो मूत्राघात नष्ट होता है। तृणपंचमूलका क्वाथ करके पीवे तो इससे मूत्राघात नष्ट होता है। गुडसे मिश्रित किया हुआ घी दूधमें डालकर पीवे तो मूत्रकृच्छ्र आदि रोगोंपर हितकारी होता है ॥ ३५ ॥

सिताक्षारान्वितं मूलं वायसीतैलकूर्चयोः। कोशकाररसैः पीतं वस्तिकुण्डलजिद्भवेत् ॥ २६ ॥ शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना। पिबेत् सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते ॥ ३७ ॥

मालकांगनी और चौयेकी जड इनको पीस इसमें मिश्री तथा जवाखार डालकर गाढे ईख के रसके साथ पीवे तो मूत्राघात नष्ट होता है। चन्दनको घिस उसमें मिश्री मिलाकर चावलोंके जलके साथ पीवे और औटाया हुआ शीतल दूधके अन्न खाय तो इससे रुधिर सहित उष्णवातका नाश होता है ॥ ३६-३७॥

अथ शिलोद्भिदादितैलम्।

शिलोद्भिदैरण्डशमस्थिरादिपुनर्नवाभीरुरसेषु सिद्धम्। तैलं शृतं क्षीरमथानुपानं कालेषु कृच्छ्रादिषु संप्रयोज्यम् ३८

पाषाणभेद, एरंडकी, जड शालपर्णी, पुनर्नवा और सतावर इनके रससे तेल पकावे और दूधके अनुपानसे सेवन करे इससे मूत्रकृच्छादिरोग नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥

अथ धान्यगोक्षुरघृतम्।

धान्यगोक्षुरकक्काथकल्कयुक्तं घृतं हितम्। मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे शुक्रदोषे च। ॥ ३९ ॥

धनियां तथा गोखरू इनके क्वाथसे तथा कल्कसे पकाया हुआ घी खाय तो मूत्राघात, मूत्रदोष और वीर्यके दारुण दोषोंमें हितकारी होता है ॥ ३९ ॥

अथ भद्रावहघृतम्।

अम्बष्ठा पाटला चैव वर्षाभूद्वयमेव च। विदारिकन्दः काशश्च कुशमोरटगोक्षुराः ॥ ४० ॥ पाषाणभेदो वाराही शालिमूलं शरस्तथा। भल्लातकं शिरीषस्य मूलमेषामथाहरेत् ॥ ४१ ॥ समभागानि सर्वाणि क्काथयित्वा विचक्षणः। पादशेषकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥४२॥ कल्कंदत्त्वाऽथ मतिमान् गिरिजं मधुकं तथा। नीलोत्पलश्च काकोली बीजं त्रापुसमेव च ॥ ४३ ॥ कौष्माण्डश्च तथैर्वारुसम्भवश्च समं भवेत्। उष्णवातं निहन्त्येतद् घृतं फद्रावहं स्मृतम् ॥४४॥

पाठा, पाढल, सोंठ, विषखपरा, विदारीकन्द, कास, कुशा, ईखकी जड, गोखरू, पाषाणभेद, वाराही कन्द, शालिधान्यकी जड, रामसर, भिलावा और सिरसकी जड इनको समान भाग लेकर क्वाथ करे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उसमें शिलाजीत, मुलहठी, नील कमल, काकोली, खीरेके बीज, पेठेके बीज और ककडीके बीज समान भाग ले कल्क डालकर चौंसठ तोले घी पकावे, यह 'भद्रावह' नामक घी उष्णवात (मूत्रकृच्छ्र) को नष्ट करता है ॥ ४०-४४ ॥

अथ विदारीघृतम् ।

विदारी वृषको यूथी मातुलुङ्गी च भूस्तृणम् । पाषाणभेदः कस्तूरी वसुकोवशिरोऽनलः ॥ ४५ ॥ पुनर्नवा वचा रास्ना बला चातिबला तथा । कशेरुविषशृङ्गाटतामलक्यः स्थिरादयः ॥४६॥ शरेक्षुदर्भमूलश्च कुशः काशस्तथैव । पलत्रयन्तु संहृत्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४७ ॥ पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् । शतावर्यास्तथा धात्र्याः स्वरसो घृतसम्मितः ॥ ४८ ॥ षट्पलं शर्करायाश्च कार्षिकाण्यपराणि च । यष्ट्याह्वं पिप्पली द्राक्षाकाश्मर्यं सपरूषकम् ॥ ४९ ॥ एला दुरालभा कौन्ती कुंकुमं नागकेशरम् । जीवनीयानि चाष्टौ च दत्त्वा च द्विगुणं पयः ॥ ५० ॥ एतत्सर्पिर्विपक्तव्यं शनैर्मृद्वग्निना बुधैः । मूत्राघाते सर्वेषु विशेषात्पित्तजेषु च ॥ ५१ ॥ शर्कराऽश्मरिशूलेषु शोणितप्रभवेषु च । हृद्रोगे पित्तगुल्मे च वातासृक्पित्तजेषु च ॥ ५२ ॥ कासश्वासक्षतोरस्कधनुःस्त्रीभारकर्षिते । तृष्णाछर्दिमनःकम्पशोणितच्छर्दने तथा ॥ ५३ ॥ रक्ते यक्ष्मण्यपस्मारे तथोन्मादे शिरोग्रहे । योनिदोषेरजोदोषे शुक्रदोषे स्वरामये ॥५४॥ एतत्स्मृतिकरं वृष्यं वाजीकरणमुत्तमम् । पुत्रदं बलवर्णाढ्यं विशेषाद्वातनाशनम् ॥५५॥ पानभोजननस्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते । विदारीघृतमित्युक्तं रसायनमनुत्तमम् ५६

विदारीकन्द, अडूसा, जूही, बिजौरा, भूतृण, पाखानभेद, कस्तूरी, सांभरनोंन, दरियाई नोंन, चीता, पुनर्नवा, वच, रसना, खिरैंटी, गंगेरन, कसेरू, भारसींडा, सिंघाडे, भुई आमला, स्थिरादि गण, रामसर, ईख, डाभ, कुशा और कांस, ये प्रत्येक पदार्थ आठ आठ तोले सोलह सेर जलमें पकावे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उसमें एक सेर घी, शतावर तथा आमलोंका ६४ तोले स्वरस, चौबीस तोले बूरा और मुलहठी, पीपल, दाख, कंभारी, फालसे इलायची, धमासा, रेणुक, केसर, नागकेसर और जीवनीयगणकी आठों औषधि ये प्रत्येक एक एक तोला और दो सेर दूध ये सब डालकर मन्द मन्द अग्निसे धीरे २ पकावे तो यह 'विदारीघृत' सिद्ध होता है। यहघृत सब प्रकारके मूत्राघात, विशेष करके पित्तसे हुए मूत्राघात, शर्करा, पथरी, शूल, रुधिरविकारसे हुए शूल, हृदयरोग, पित्तसे हुआ गुल्म, पित्तजवातरक्त, खाँसी, श्वास, क्षत, धनुष चढानेसे कर्षित हुए तथा स्त्रीप्रसंग करनेसे कर्षित हुए, तृषा वमन मनकी पीडा, कम्प, रुधिरकी वमन, क्षयरोग, अपस्मार, उन्माद, शिरोग्रह, योनिदोष, रजके दोष, वीर्यके दोष और स्वरभङ्ग आदि स्वरके रोग इन सब रोगोंमें हितकारी है। यह घी स्मृतिको बढानेवाला, वृष्य, उत्तम वाजीकरण, पुत्रदायक, बलवर्णकर्त्ता और विशेष करके वातविनाशक है और पीनेमें खानेमें तथा नस्यमें सर्वत्र उपयोगी है और रसायन है ॥४५-५६॥

पिष्ट्वाऽऽखुमूलमुष्णेन चारनालेन पेय्यते । बद्धमूत्रं निहन्त्याशु तथैव करभीभवम् ॥ ५७ ॥ स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणितं यस्य रिच्यते । मैथुनोपरमश्चास्य बृंहणीयो विधिर्हितः ॥५८॥ ताम्रचूडवसातैलं हितं चोत्तरवस्तिषु । स्वगुप्ताफलमृद्वीकाकृष्णेक्षुरसितारजः ॥ ५९ ॥ समांशमर्द्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च । सर्वं सम्यग्विमथ्याक्षमात्रं लीढ्वा पयः पिबेत् । हन्ति शुक्रक्षयोत्थांश्च दोषान् वन्ध्यासुतप्रदम् ॥ ६० ॥

मूसाकानीकी जडको अथवा सफेद अरनीकी जडको पीसकर उष्ण आरनाल काँजीसे पीवें तो मूत्रका अवरोध तत्काल दूर होता है। अथवा जिसके अत्यंत मैथुत करनेसे मूत्रमें रुधिर आवे उसको मैथुनसे रोककर धातुको बढानेवाले उपाय करे पश्चात् मुरगेकी चरवी और तेलसे उत्तरवस्ति देवे, यह अत्यंत हितकारी है अथवा कौंचके बीज, दाख, काली ईखका रस और काली मिट्टी इनको समान भाग लेवे, और दूध, सहत तथा घी इनका आधा भाग लेवे, सबको मिलाकर एक तोला भर खाय और ऊपरसे दूधको पीवे तो इससे वीर्यके क्षयसे उत्पन्न हुई पीडा नष्ट होती है और वंध्या स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ५७-६० ॥

अथ क्षौद्रार्द्धभागघृतम् ।

क्षौद्रार्द्धभागः कर्तव्यो भागः स्यात्क्षीरसर्पिषोः ॥ ६१ ॥ शर्करायाश्चचूर्णं च द्राक्षाचूर्णं च तत्समम् । स्वयंगुप्ताफलश्चैव तथैवेक्षुरकस्य च ॥ ६२ ॥ पिप्पलीनां तथा चूर्णं समभागं प्रदापयेत् । तदैकध्यं समानीय खल्लेनातिविमथ्य च ॥ ६३ ॥ तस्य पाणितलं चूर्णं लिहेत् क्षीरं ततः पिबेत् । एतत्सर्पिः प्रयुञ्जाना योनिदोषात् प्रमुच्यते ॥ ६४ ॥

एक भाग दूध, एक भाग घी, आधा भाग सहत, एक भाग मिश्री, दाख, कौंचके बीज, तालमखाना और पीपल ये एक एक भाग लेवे । उनको एकत्र करके रईसे भलीभाँति मथकर इसमेंसे एक तोला घी चाटे और उसके ऊपर दूध पिये । इस घीको सेवन करनेवाली स्त्री योनिके दोषसे मुक्त होती है ॥ ६१-६४ ॥

अथ वर्तिः ।

कर्पूररजसा युक्ता वस्त्रवर्तिः शनैः शनैः मेढ्रमार्गान्तरे न्यस्ता मूत्राघातं व्यपोहति ॥ ६५ ॥

वस्त्रको कपूरके चूर्णसे भलीभाँति लपेटकर लिंगके मार्गमें रक्खे तो इससे मूत्राघात नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

अथातिदेशः ।

मूत्रकृच्छ्रेऽश्मरीरोगे भेषजं यत्प्रकीर्तितम् । मूत्राघातेषु कृच्छ्रेषु तत्कुर्याद्देशकालवित् ॥ ॥ ६६ ॥

इति मूत्राघाताद्यधिकारः ।

मूत्रकृच्छ्रमें जो औषधि कही हैं तथा पथरी रोगमें जो औषधि कही हैं, वे सब औषधि देशके तथा कालके अनुसार मूत्रघात और मूत्रकृच्छ्ररोगमें देवे ॥ ६६ ॥

इति मूत्राघाताद्यधिकारः समाप्तः ।

अथाश्मर्यधिकारः ।

तत्राश्मरीनिदानम् ।

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजा मता । प्रायः श्लेष्माश्रयाःसर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥

श्लेष्माश्रयाः--श्लेष्मसमवायिकारणाः।शुक्रजांविना ॥ शुक्रजायास्तु शुक्रस्यैव समवायिकारणत्वात् । अन्ये तु शुक्राश्मर्यापि कफस्य

कारणत्वमिच्छंति । प्रायःशब्दश्च नात्रविशेषार्थः । यमोपमाः चिकित्सां विना ॥

वात, पित्त और कफसे ऐसे तीनप्रकारकी और चौथी पथरी वीर्यसे होती है वीर्यसे हुई पथरीको छोडकर शेष तीनों प्रकारकी पथरी अधिक करके कफाश्रयसे होती हैं और वीर्यसे हुई पथरीमें वीर्यही कारण है । कोई २ वैद्य तो वीर्यसे हुई पथरीमें भी कफको कारण मानते हैं । सर्वप्रकारकी पथरी विना चिकित्साके अवश्य यमरूप (मृत्युकर्त्ता) हो जाती हैं ॥ १ ॥

अथाश्मरीसम्प्राप्तिः ।

विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा । यदा तदाऽश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥

यदा पवनो वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं कफंवा शोषमुपनयेत्तदाऽश्मरी भवति । क्रमेण क्रमशो वर्द्धः माना।यथा गोःपित्तेषु रोचना इव इति अन्वयः तस्याः अनेकदोषाश्रयत्वमाह "नैकदोषाश्रयाः सर्वाः । "

जब वायु मूत्राशयमें रहनेवाले वीर्य सहित मूत्रको अथवा पित्तसहित कफको सुखाती है, तब पथरी उत्पन्न होती है । यह पथरी जिसप्रकार गायके पित्तमें गोरोचन बढ़ता है, उसी प्रकार अनुक्रमसे बढती है । सब प्रकारकी पथरी अनेक दोषोंके समागमसे होती हैं ॥२॥

अथाश्मरीपूर्वरूपम् ।

वस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् । मत्रे बस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ॥ ३ ॥

वस्तः छगलकः ॥

जब पथरी होनेको होती है तब मूत्राशयमें अफारा, मूत्राशयके चारों ओर अत्यन्त पीडा, मूत्रमें बकरेके मूत्रकीसी दुर्गन्ध, मूत्रकृच्छ्र, ज्वरअरुचि ये लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

अथाश्मरीसामान्यलक्षणम् ।

सामान्यलिङ्गं रुङ्नाभिसेवनीवस्तिमूर्द्धसु । विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने ॥ ४ ॥ तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् । तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥ ५ ॥

वस्तिमूर्द्धा-नाभेरधोदेशः । विशीर्णधारम्-सविच्छदधारम् । तया अश्मर्या । मार्गः–मूत्रवाहिस्रोतः । तद्व्यपायात्-कदाचिद्वायुना अश्मर्यामूत्रमार्गादन्यत्र गमतात् । सुखंमेहेत-मूत्रयेत् । गोमेदकोपमं-गोमेदको मणिः किञ्चिल्लोहितः तद्वर्णम्।तत्संक्षोभात्तस्याः अश्मर्याः-सञ्चाराद्घर्षणम् मूत्रवहे स्रोतसि क्षते जाते । सास्रं-सरक्तम् मेहेत् । आयासात्--प्रवाहनादिजनितात् ॥

पथरी हुई हो तो नाभिमें, सीमनमें तथा नाभिसे नीचेके प्रदेशमें पीड़ा होती है, पथरीसे मूत्रके बहन करनेवाले स्रोतोंका रोध होनेपर मूत्रकी धार बीचमें ही कट जाती है, किसी समय वायुसे पथरी मूत्रके मार्गसे अन्यस्थानको चली जाती है तब गोमेद मणिके सदृश वर्णवाला स्वच्छ मूत्रका सुखसे उतरता है, पथरीके संचारसे मूत्रका मार्ग घिसकर मूत्र रुधिरयुक्त उतरता है और अत्यन्त पीडा होती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ वातोल्वणाश्मरीलक्षणम् । १

तत्र वाताद्भृशं चार्तो दन्तान् खादति वेपते । मृद्नाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन् ॥ ६ ॥ सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः । श्यावारूक्षाऽश्मरी सा स्यात् सञ्चिता कण्टकैरिव ॥ ७ ॥

पथरीमें यदि वायुकी उल्वणता हो तो मनुष्य अत्यन्त पीडायुक्त होता है तथा दांतोको चबावे कांपता है, लिङ्ग तथा नाभिको दबावे और निरन्तर पीडासे चिल्लाता है और अधोवायुके साथ विष्ठा आती है, बारम्बार बूँदबूँद मूतता है, यह पथरी नीली, रूखी और मानो ऊपर काटे लगे हैं ऐसी होती है ॥ ६ ॥७ ॥

अथ वातोल्वणाश्मरीचिकित्सा।

तस्याःपूर्वेषु रूपेषु स्नेहदिक्रम इष्यते ॥८॥

पथरीके पूर्वरूप होनेपर स्नेहद आदि प्रयोग करने चाहिये ॥ ८ ॥

अथ शुण्ठयादिकषायः।

शुण्ठयग्निमन्थपाषाणशिग्रूवरुणगोक्षुरैः। काश्मर्यारग्वधफलैः क्राथं कृत्वा विचक्षणः। रामठक्षारलवणंचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः ॥ ९ ॥

अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं दीपनं पाचनं परम्। हन्यात्कोष्ठाश्रितं वातं कटयूरुगुदमेढ्रजम् ॥ १० ॥

सोंठ, अरनी, पाखानभेद, सहँजना, वरना, गोखरू, कम्भारी और अमलतास इनका क्राथ करके उसमें हींग जवाखार और सैंधानिमक इनका चूर्ण डालकर पिये तो इससे पथरी मूत्रकृच्छ्र, कोटेकी वायु तथा कमर, घुँटने गुदा और लिङ्गकी वायु नष्ट होती है, अग्नि दीप्त होती है और अन्न आदि भलीभांति पचते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

अथैलादिक्राथः।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोम्बूकैः। शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं सशर्करश्चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥११॥

इलायची, पीपल, मुलहठी, पाखानभेद रेणुक, गोखरू, अडूसा और अरण्डकी जड इनके क्राथमें शिलाजीतको भलीभांति पकाकर क्वाथ पीवे तो पथरी और मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ११ ॥

अथ वरुणादिक्वाथः।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठा शुण्ठीं गोक्षुरसंयुताम्। यवक्षारगुडं दत्त्वा क्राथयित्वा पिबेमिद्धम्। अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १२ ॥

बरनेकी छाल, सोंठ, गोखरू, जवाखार और गुड इनका क्वाथ करके पिये तो वायुकी उल्वणतासे हुई पथरी अधिक कालकी हो तो भी नष्ट होजाती है ॥ १२ ॥

अथ पाषाणभेदाद्यघृतम्।

पाषाणभेदो वसुको वशिरोऽश्मन्तकस्तथा। शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका ॥ १३ ॥ कपोतवंकार्तगलकाञ्चनोशीरगुन्द्रकाः। वृक्षादनी भल्लुकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥१४॥ यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च। ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्राथे शृतं घृतम्। भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ १५ ॥

पाषाणभेद, आककी जड, लाल चिरचिटा, कोविदार, सतावर, गोखरू, भटकटैया, कटेरी, ब्राह्मी, नीलेफूलकी कटसरैया, कचनार, खस, गुन्द्रतृण, बन्दा वरना, सागौनके फल, जौ कुलथी, बेर और निर्मली फल इनका क्वाथ करके उसमें ऊषकादि गणकी औषधि डालकर उस क्वाथमें पकायाहुआ घी खाय तो वायुकी उल्वणतासे हुई पथरी तत्काल नष्ट होजाती है ॥ १३-१५ ॥

अथ वीरतरादिगणः।

वीरवृक्षोऽग्निमन्थश्च काशवृक्षादनीकुशाः। मोरटेन्दीवरः सूर्यभक्तागोक्षुरुटुण्टुकाः ॥ १६ ॥ वसुको वशिरो दर्भशैरीयावश्मभेदकः। गुन्द्रो नलः कुरुण्टश्च गणो वीरतरादिकः ॥ १७ ॥

अश्मरीशर्कराकृच्छ्रमारुतार्तिहरो मतः । बृहद्वाते वीरतरस्तदभावे मतः शरः ॥१८॥ क्षारान्यवागूं पेयां च कषायांश्च- पयांसि च । भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽ- स्मिन्वातनाशने ॥ १९ ॥

इति वाताश्मरी ।

कोह, अरनी, कांस, वांदा, कुशा, ईखकी जड, नीले कमल, हुलहुल, गोखरू टैंटू, आककी जड, लाल चिरचिटा, डाभ, कट- सरैया, पाखानभेद, गुन्द्रतृण, नरसल और कुरंट यह वीरतरादिगण कहाता है । ये सब औषधि पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और वायुके रोगोंको नष्ट करती हैं । इस लिये इन औषधि- योंमें क्षार, यवागू, पेया, क्वाथ, दूध और भोजन सिद्ध करके देवे तो इससे पथरी आदि वायुसे उत्पन्न हुए रोग नष्ट होजाते हैं ॥ १६–१९ ॥

इति वाताश्मरीचिकित्सा ॥

अथ पित्तोल्वणाश्मरीलक्षणम् । २

पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवो- ष्मणा । भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीता सिताऽश्मरी ॥ २० ॥

पित्तकी उल्बणतासे पथरी हुई हो तो वस्तिमें दाह और अग्निपे पकानेके सदृश पीडा होती है और पथरी मिलावेकी गुठलीके सदृश, लाल, पीली तथा सफेद होती है ॥२०

अथ पित्ताश्मरीचिकित्सा ।

तत्र कुशादिघृतम् ।

कुशःकाशःशरो गुन्द्रा उत्कटो मोरटोऽ- श्मभित् । दर्भो विदारी वाराही शालि- मूलं त्रिकण्टकः ॥ २१ ॥ भल्लुकः पाटला पाठा पत्तूरोऽथ कुरण्टकः । पुन- र्नवा शिरीषश्च कथितास्तेषु साधितम् ॥ ॥ २२ ॥ घृतं शिलाह्वमधुकैर्बीजैरिन्दी- वरस्य च । त्रपुसैर्वारुकादीनां बीजै- श्चावापितं शुभम् । भिनत्ति पित्तसंभूता- मश्मरीं क्षिप्रमेव च ॥ २३ ॥

बीजम्-बोजसारः सरोबीजं वा ॥

कुश, कास, रामसर, गुन्द्रतृण, उत्कट एक प्रकारके तृण, ईखकी जड, पाखानभेद, डाभ, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, शालिपर्णीकी जड, गोखरू, भिलावे, पादुर, पाढ, पत्तूर, कटसरैया, पुनर्नवा और सिरस इनके क्काथमें घी पकावे, उसमें शिलाजीत, मुलहठी, महु- एके बीज, खीरे और ककडीके बीज इनका चूर्ण डालकर खाय तो इससे तत्काल पित्ता- श्मरी नष्ट होती है ॥ २१–२३ ॥

क्षारान्यवागूं पेयाश्च कषायांश्च पयांसि च ॥ २४ ॥ भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽ- स्मिन् पित्तनाशने । शिलाजतु शिलाह्वं स्यात्पटीरो गुत्थगुन्द्रकौ ॥२५॥ मधुकः कृतहस्वत्वाद्बीजैर्बीजकमुच्यते । कुर्या- त्क्षीरादिकं क्काथे तस्मिन्क्षेपमवापकैः । वर्गत्वेन यथालाभं परिभाषा प्रव- र्तते ॥ २६ ॥

पित्तको नष्ट करनेवाला वीरतरादि वर्ग जो ऊपर कहा है, उसमें क्षार, यवागू, पेया, कषाय, दूध और भोजन सिद्ध करके पित्तकी उल्बणतासे हुई पथरीवालेको देवे । वर्गके लिये वैद्यकग्रन्थोंकी यह परिभाषा है कि वर्गमेंकी सब औषधि नहीं मिले तो उनमेंसे जितनी मिलें, उनका ही उपयोग करे ॥ इति पित्ताश्मरी ॥ २६ ॥

अथ कफोल्वणाश्मरीलक्षणम् ।

वस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः । अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽ- थवा सिता ॥ २७ ॥ एता भवन्ति बालानां तेषामेव तु भूयसा । आश्रयो- पचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखाः॥२८॥

कफकी उल्वणतासे पथरी हुई हो तो नोंचने सरीखी पीडा होती है और पथरी शीतलतायुक्त, भारी, मोटी सहतके समान वर्णवाली अथवा सफेद होती है। यह पथरी अधिक करके बालकोंके ही होती है और बालकोंके वृद्धिका आश्रय अल्प होता है, इससे बालकोंकी पथरी निकालनेमें सुगम होती है २७-२८

अथ कफाश्मरीचिकित्सा।

तत्र वरुणादिघृतम्।

गणे वरुणकादौ तु गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः। कुष्ठभद्राह्वमरिचचित्रकैः समुराह्वयैः ॥ २९ ॥ एतैः सिद्धमजासर्पिरूषकादिगणेन वा। भिनत्ति कफसम्भूताश्मरीं क्षिप्रमेव च। शट्यादिस्तेन चात्रेष्टो गणः श्यामादिको बुधैः ॥३०॥

वरुणादि गण, गूगल, इलायची, रेणुका, कूठ, नीम, काली मिर्च, चीता और देवदार इनको डालकर अथवा ऊषकादि गणकी औषधि डालकर इनमें पकाया हुआ बकरीका घी खाय तो कफकी उल्वणतासे हुई पथरी तुरन्त नष्ट होजाती है। शठ्यादि गणके काथमें अथवा श्यामादि गणके क्वाथमें घी पकाकर उसका उपयोग करनेसे भी कफकी उल्वणतासे हुई पथरी नष्ट होती है, ऐसा पंडितोंने माना है ॥ २९-३० ॥

अथ वरुणादिगणः।

वरुणार्तगलौ शिग्रुस्तर्कारीनक्तमालकौ। मोरटारणिबिल्वाश्च बिम्बीवसुकचित्रकाः ॥ ३१ ॥ शैरीयो वशिरः क्षौद्रमजश्रृङ्गी शतावरी। दर्भो बृहतिका व्याघ्री मुनिभिः परिकीर्तितः ॥ ॥ ३२ ॥ वरुणादिगणो ह्येष कफमेदोनिवारणः। विनिहन्ति शिरःशूलं गुल्माभ्यन्तरविद्रधीन् ॥ ३३ ॥

वरना, झिंटी, सहँजना, तर्कारी करंज, ईखकी जड, अरनी, बेल, कुंदरू, आककी जड, चीता, कटसरैया, लाल चिरचिटा, सहत, मेंढासिंगी, शतावर, डाभ, भटकटैया और बडी भटकटैया इन औषधियोंको वारुणादिगण कहते हैं यह वारुणादिगण कफ तथा मेदाका निवारण करता है और मस्तक शूल, गुल्म तथा भीतरके विद्रधिको नष्ट करताहै॥ ३१-३३

क्षारान्यवागूं पेयां च कषायांश्च पयांसि च। भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्कफनाशने ॥ ३४ ॥

कफको नष्ट करनेवाले इस वर्गमें क्षार, यवागू, पेया, कषाय, दूध तथा भोजनको सिद्ध करके कफके रोगोंमें देवे ॥ ३४ ॥ इति कफाश्मरी ॥

अथ शुक्राश्मरीनिदानम्।

शुक्राष्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात्। अध्ययानामनेकार्थत्वात्तुशब्दोऽत्र अवधारणार्थः। तेन महतामेव न तु बालानाम्, वक्ष्यमाणसम्प्राप्तेरसम्भवान्नतु शुक्राभावो वाच्यः। शुक्रधारणात्-शुक्रवेगागमस्य धारणात् ॥

वीर्यकी पथरी अधिक अवस्थावालोंके ही होती है, बालकोंके नहीं होती। यद्यपि बालकोंके भी वीर्य होता है तो भी शुक्राश्मरीकी जो सम्प्राप्ति कहेंगे, वह बालकोंके होनी असम्भव है, इसलिये बालकोंके वीर्यकी पथरी होतीही नहीं। स्थानसे भ्रष्ट होकर प्रवृत्त हुए वीर्यके रुकनेसे वीर्यकी पथरी होजाती है ॥

अथ शुक्राश्मरीसम्प्राप्तिः।

स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः। शोषयित्वोपसंहृत्यशुक्रं तच्छुक्रमश्मरी ॥ ३५ ॥ अनिलः मैथुनवेगेन स्थानाच्च्युतं शुक्रं मैथुनवेगनिवारणेन धृतं शुक्रं, मुष्कयोः-मेढ्रसहि-

तयोः 'मेढ्रवृषणयोरन्तरे' इति सुश्रुतवचनात्तेन मेढ्रवृषणमध्यगतवस्तिमुखे, उपसंहृत्यएकीकृत्य शोषयति, तच्छुक्रमश्मरी–तथाभूतं शुक्रंभेवाश्मरी ॥

मैथुनका वेग होनेपर स्थानसे पतित हुए और पीछे मैथुनका वेग शान्त होनेपर नहीं निकले हुए वीर्यको वायु लिंगके तथा अण्डकोषोंके मध्यमें मूत्राशयके मुखपर एकत्र करके सुखा देती है। तब वह वीर्य पथरीरूप होजाता है ॥ ३५ ॥

अथ शुक्राश्मरीलक्षणम् ।

वस्तिरुककृच्छ्रमूत्रत्वमुष्कश्वयथुकारिणी । तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते । पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा ॥ ३६ ॥

तस्याम्-शुक्राश्मर्याम् उत्पन्नमात्रायां यदा सा कथमपि विलीयते-विलयं याति । तदा शुक्रम् एति-मूत्रमार्गात् प्रवर्तते । पीडिते तु अवकांशेऽस्मिन् । तुशब्दोऽवधारेण, तेन अस्मिन्नेव अवकाशे स्थाने मेढवृषणयोरन्तरे पीडिते सति सा विलीयते अन्तर्लीना भवति । अवस्थाभेदात् अश्मरी शर्करा सिकता भवतीति आह-अश्मर्येव च शर्करा । चकारात् सिकता च भवतिशकरासिकतयोश्च भेदो महत्त्वाल्पत्वाभ्यां बोद्धव्यः ॥

वीर्यकी पथरी होते ही मूत्राशयमें पीडा, बूँद, बूँद मूत्रका उतरना और अंडकोषोंमें सूजन होती है। लिंग और अण्डकोषोंका मध्यभाग दबानेसे यह पथरी भीतर लीन हो जाती है। इस प्रकार जब लीन होजाती है तभी मूत्रके मार्गसे वीर्य प्रवर्तित होता है जिस वीर्यकी पथरी होती है, वह अपनी स्थितिके भेदसे शर्करारूप तथा रेतीरूप होजाता है। वीर्यके कण मोटे हों तो शर्करारूप और सूक्ष्म हों तो रेतेके समान होता है ॥ ३६ ॥

अथ शुक्राश्मर्याः शर्करारूपत्वमाह ।

सा भिन्नमूर्तिर्वातेन शर्करेत्यभिधीयते ३७

सा-अश्मरी ॥

इस वीर्यकी पथरी जब वायुसे बिखर जाती है, तब शर्करा कहाती है ॥ ३७ ॥

अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे । निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते । मूत्रस्रोतःप्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥ ३८ ॥

तस्मिन् आश्रये । सा शर्करा अश्मरी । सक्ता लग्ना सती ॥

वायुसे बिखर २ कर टुकडे टुकडे रूप यह पथरी वायुके सीधे चलनेसे मूत्रके साथ निकलती है और वायु उलटी चले तब रुकती है। मूत्रके मार्गमे प्रवृत्त होकर अनेक उपद्रवोंको करती है ॥ ३८ ॥

अथाश्मर्य्युपद्रवाः ।

दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिरोगमथारुचिम् । पाण्डुत्वमुष्णवातञ्च तृष्णां हृत्पीडनं वामम् ॥ ३९ ॥

उष्णवातम्–मूत्राघातविशेषणम् ॥

शर्करासे दुर्बलता, ग्लानि, शरीर कृश, कूखमें पीडा, अरुचि, पाण्डुता, उष्णवात, मूत्राघात, तृषा, हृदयमें पीडा और वमन होती है ॥ ३९ ॥

अथाश्मरीशर्करारिष्टम् ।

प्रशूननाभिवृषणं बद्धमूत्र रुजातुरम् । अश्मरी क्षपयत्याशु शर्करा सिकतान्विता ॥ ४० ॥

शर्करा सिकतेति नामद्वयमन्वर्थम् ॥

जिसकी नाभि और अंडकोष सूखयायँ, मूत्र रुक रहा हो और पीडासे व्याकुलता हो तो वह मनुष्य तत्काल मर जाता है । वीर्यकी पथरी ही शर्करारूप हो जाय तो शर्करा और वही रेतरूप होजाय तो सिकता कहाती है ॥ ४० ॥

अथाश्मरीचिकित्सा।

शुक्राश्मर्यान्तु सामान्यो विधिश्मरिनाशनः। यवक्षारगुडोन्मिश्रं रसं पुष्पफलोद्भवम् ॥ ४१ ॥ पिबेमून्त्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम्। तिलापामार्गकदलीपलाशयवबिल्वजः ॥ ४२ ॥ क्वाथः पेयोऽविमूत्रेण शर्कराश्मरिनाशनः। क्रमुकाङ्कोलकतकशाकेन्दीवरजैः फलैः। पीतमुष्णाम्बु सगुडं शर्करां पातयत्यधः ॥ ४३ ॥

जो अन्य पथरियोंकी चिकित्सा कही है, वह भी शुक्राश्मरीमें करे। अथवा नारियलके रसमें जवाखार तथा गुड मिलाकर पीवे तो इससे मूत्रकी रुकावट, पथरी तथा शर्करा नष्ट होजाती है। तिल, चिरचिटा, केला, ढाक, जौ और बेल इनका क्वाथ करके बकरीके मूत्रके साथ पीवे तो शर्करा तथा शुक्राश्मरीका नाश होता है। सुपारी, अंकोल, निर्मलीके फल, सागोनके फल और कमल गट्टे इनका क्वाथ करके गुड डालकर पीवे तो शर्करा नष्ट होती है ॥ ४१-४३ ॥

पाषाणभिद्गोक्षुरकोरुबूकौ द्वे कण्टकार्यौ क्षुरकाह्वमूलम्। दध्ना पिबेत्क्षीरसुपिष्टमेतत्स्याद्भेदनार्थं सिकताश्मरीणाम् ॥ ४४ ॥ यः पिबेद्रजनीं सम्यक् सगुडां तुषवारिणा। तस्याशु चिरगूढाऽपि यात्यस्तं मेढ्रदशर्करा ॥ ४५ ॥

पाषाण भेद, गोखरू, एरंडकी जड; छोटी और बडी कटेरी तथा तालमखाने इनको दूधमें पीसकर दहीमें डालकर खाय, तो इससे पथरी तथा शर्करा नष्ट हो जाती है। हलदीको गुडके साथ भली भांति मिलाकर तुषोदकके साथ पीवे तो इससे अधिक कालकी पथरी भी नष्ट होजाती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

१ केबुकाङ्कोल इति पाठान्तरम् ॥

पिबतःकुटजं दध्ना पथ्यमन्नञ्च खादतः। निपतत्यचिरात्तस्य नियतं मेढ्रशर्करा ॥ ४६ ॥ त्रापुसबीजं पयसा पीतं वा नारिकेलजं कुसुमम्। विण्मूत्रशर्करायां भवति सुखी कतिपयैर्दिवसैः ॥ ४७ ॥ श्वदंष्ट्रा वरुणः शुण्ठी क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत्। शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रहरं परम् ॥ ४८ ॥

कुडेकी छालके कल्कको दहीमें डालकर पीवे और पथ्य अन्न खाय तो शर्करा अवश्यन ष्ट हो जाती है। खीरेके बीजोंको अथवा नारियलके फूलोंको पीसकर दूधमें डालकर पीवे तो मूत्रसे पीडित तथा शर्करा सहित मनुष्य किञ्चित् दिनोंमें सुखी होता है। गोखरू वरना और सोंठ इनका क्वाथ करके सहत डालकर पीवे तो इससे पथरी, शर्करा, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र भली भांति नष्ट होता है ॥ ४६-४८ ॥

कूष्माण्डकरसो हिङ्गुयवक्षारसमायुतः। वस्तौ मेढ्रे च शूलघ्नो मूत्रकृच्छ्रहरस्तथा ॥ ४९ ॥

पेठेके रसमें हींग तथा जवाखार डालकर पीवे तो इससे मूत्राशयकी पीडा, लिंगका शूल, पथरी तथा मूत्रकृच्छ्र अवश्य नष्ट होता है ॥ ४९ ॥

पुनर्नवाऽयोरजनीश्वदंष्ट्राफलप्रवालश्च सदर्भ पुष्पः। क्षीराम्रयेरसप्रपिष्टो हितो भवेश्मरिशर्करासु ॥ ५० ॥

पुनर्नवा, लोहेकी भस्म, हलदी, गोखरू, मूँगेकी भस्म और डाभके फूल इन सबको दूध, आमका रस, मदिरा और ईखका रस इनमें पीसकर पीवे तो इससे वीर्यकी पथरी तथा शर्करा नष्ट होती है ॥ ५० ॥

वरुणत्वक्छिलाभेदशुण्ठीगोक्षुरकैःकृतः। कषायः क्षारसंयुक्तः शर्कराश्च भिनत्त्यपि ॥ ५१ ॥

वरनेकी छाल, पाखानभेद, सोंठ और गोखरू, इनका क्वाथ करके, उसमें जवाखार डालकर पीवे, तो शर्करा नष्ट होजाती है ॥ ५१ ॥

अथ तृणपञ्चमूलाद्यघृतम् ।

पञ्चमूल्यास्तृणाख्यायास्तथा गोक्षुरकस्य तु । पृथग्दशपलान् भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ५२ ॥ चतुर्भागावशिष्टेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् । गुडगोक्षुरबीजञ्च कल्कं तत्र प्रदापयेत् ॥ ५३ ॥ तत्सिद्धं मूत्रदोषेषु शर्करास्वश्मरीषु च । स्नेहने भोजने चैव प्रयोज्यं सर्पिरुत्तमम् ॥ ५४ ॥

तृणपञ्चकमूल और गोखरू इन प्रत्येकको चालीस चालीस तोले लेकर १६ सेर जलमें पकावे जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उसमें गुड तथा गोखरूका कल्क डालकर एक सेर घी पकावे । इस उत्तम घीको स्नेहनमें तथा भोजनमें सेवन करे तो मूत्रसम्बन्धी विकार, पथरी और शर्करा नष्ट हो जाती है ॥ ५२ ॥ ५४ ॥

अथ वरुणतैलम् ।

त्वक्पत्रफलमूलस्य वरुणस्य त्रिकण्टकात् । कषायेण पचेत्तैलं वस्तिनाऽस्थापनेन च । शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥

छाल, पत्ते, फल तथा मूलसहित वरना गोखरू लेकर इनके क्वाथमें पकाये हुए तेलसे अस्थापन निरूहवस्ति देवे तो इससे पथरी, शर्करा, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ५५ ॥

अथ कुशाद्यतैलम् ।

कुशाग्निमन्थशैरेयनलदर्भेक्षुगोक्षुराः । कपोतवंकावसुकवशीरेन्दीवरीशराः ॥ ५६ ॥ धातक्यरलुवन्दाकाः कर्णपूराश्मभेदकाः । एषां कल्ककषायाभ्यां सिद्धं तैलं प्रयोजयेत् ॥ ५७ ॥ पानाभ्यञ्जनयोगेन वस्तिनोत्तरवस्तिना । शर्कराश्मरिरोगेषु मूत्रकृच्छ्रे च दारुणे ॥ ५८ ॥ प्रदरे योनिशूले च शुक्रदोषे तथैव च । वन्ध्यागर्भप्रदं प्रोक्तं तैलमेतत्कुशादिकम् ॥ ५९ ॥

कुशा, अरणी, पियावांसा नरसल, डाभ, ईख, गोखरू, ब्राह्मी, आककी जड, लाल चिरचिटा, साता वर, रामसर, आमला, अरलू, बांदा, सिरस और पाषाणभेद इनके क्वाथसे पकाया हुआ तेल 'कुशाद्यतैल' कहाता है । इस तेलको पीनेमें, अभ्यंगमें, वस्तिमें और उत्तरवस्तिमें उपयोग करे तो इससे शर्करा, पथरी, दारुण मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, योनिशूल और वीर्यके दोष नष्ट होजाते हैं, यह तेल वंध्याओंको गर्भदायक है ॥ ५६ ॥ ५९ ॥

अथाश्मरीणां सामान्यचिकित्सा ।

नागर-वरुण-गोक्षुर-पाषाणभित्कपोतवंकजः क्वाथ । गुडयवशूकविमिश्रः पीतो हन्त्यश्मरीमुग्राम् ॥ ६० ॥ त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् । अविक्षीरेण सप्ताहं पेयमश्मरिनाशनम् ॥ ६१ ॥

सोंठ, वरना, गोखुरू, पाखानभेद और ब्राह्मी इनका क्वाथ करके उसमें गुड तथा जवाखार डालकर पीवे तो इससे उग्र पथरी भी नष्ट होजाती है अथवा गोखुरूके बीजोंका चूर्ण कर सहतमें मिलावे और सात दिनतक बकरीके दूधके साथ पीवे तो इससे पथरीका नाश होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

पिबेद्वरुणजं मूलं क्वाथं तत्कल्कसंयुतम् । क्वाथः शिग्रुमलोत्थश्च कदुष्णोऽश्मरिनाशनः ॥ ६२ ॥ शृङ्गवेरयवक्षार-

पथ्याकालीयकान्वितः। दधिमण्डो भिनत्त्युग्रामश्मरीमांशु पानतः ॥ ६३ ॥

वरनेकी जडका क्वाथ करके उसमें वरनेकी जडकाही कल्क डालकर पिये तो इससे पथरीका नाश होता है सहँजनेकी (गोंद) जडका क्वाथ करके किंचित् उष्ण पीवे तो इससे पथरी दूर होती है। अदरख, जवाखार, हरड और दारुहल्दी इनका चूर्ण कर दहीके मण्डके साथ पीवे तो उससे भयंकर पथरी भी तत्काल नष्ट होजाती है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

पाषाणभेदवरुणगोक्षुरककपोतवंकजः क्वाथः। गिरिजतुगुडप्रगाढः कर्कटिकात्रपुसबीजयुतः॥ ६४ ॥ पेयोऽश्मरीमवश्यं दुर्भेदामपि भिनत्ति योगवरः। शिखरिणमिव शतकोटिः शतमन्योर्हस्तनिर्मुक्तः ॥ ६५ ॥

पखानभेद, वरना, गोखुरू और ब्राह्मी इनका क्वाथ करके उसमें शिलाजीत तथा गुडको भलीभांति मिलावे और ककडी तथा खीरेके बीजोंका कल्क डालकर पीवे। इस उत्तम उपायसे जो पथरी किसीसे न भिदे, वह भी अवश्य भिदजाती है। जिस प्रकार इंद्रके हाथमेंसे निकाला हुआ वज्र पर्वतोंको भेद डालता है, उसीप्रकार यह योग पथरीको भेद डालता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

श्रीकरिणीफलबीजं पिष्टं मथितेन यः यःपुमानद्यात्। शाकमशितमथवाऽस्या हन्यादश्मरिभवां पीडाम् ॥ ६६ ॥

अरणी के फलोंके बीजोंको बिना पानी पडे मठ्ठा में पीसकर खाय अथवा इसके शाकको खाय तो इससे पथरीकी पीडा दूर होजाती है ॥ ६६ ॥

श्वदंष्ट्रैरण्डबीजानि नागरं वरुणत्वचः। एतत्क्वाथवरं प्रातः पिबेदश्मरिनाशनम् ॥ ६७ ॥

गोखरू, एरण्डके बीज, सोंठ और वरनेकी छाल इनका उत्तम क्वाथ करके प्रातःकाल पीवे तो इससे पथरीका नाश होता है ॥ ६७ ॥

रक्तोद्भवे रूक्षमृणालतालकाशेक्षुबालेक्षुकुशोदकानि पिबेत्सिताक्षौद्रयुतानि खादेद्विदारिमिक्षुत्रपुसानि चैव ॥ ६८ ॥

पथरीसे मूत्रमें रुधिर देखनेमें आवे तो सूखे हुए कमलकी नाल, ताडका फल, कांस, ईख, वाली ईख और डाभ इनको पानीमें पीसकर उसमें सहत तथा मिश्री डालकर पीवे और विदारीकन्द, ईख, तथा खीरको भक्षण करे ॥ ६८ ॥

पलान्यष्टौ तु कुर्वीत क्षाराणां वरुणत्वचाम्। तदर्द्धं यावशूककन्तु ततोऽप्यर्द्धं गुडात्स्मृतम् ॥ ६९ ॥ एकीकृत्य विमृद्यैतत् खादेत् कर्षप्रमाणतः। घर्माम्बुपानतोऽवश्यं कृच्छ्राश्मरिविनाशनम् ॥ ७० ॥

वरनेकी छालका बत्तीस तोले खार, सोलह तोले जवाखार और आठ तोले गुड इनको एकत्रकर इसमेंसे एक तोले खाय और ऊपरसे गरम जल पीवे तो इससे मूत्रकृच्छ्र तथा पथरीका नाश होता है ॥ ६९ ७० ॥

अथ वरुण द्यचूर्णम्।

वरुणकभस्मपरिस्रुतसलिलं तच्चूर्णत्वमायाति ॥ ७१ ॥ तद्गुडयुक्तं हन्यादुदरगतामश्मरीं घोराम्। प्लीहानं गुल्मवरं श्रोण्यां कुक्षौ रुजां तीव्राम् ॥ ७२ ॥ आमचयं वस्तिगदान् कृच्छ्रं वा वातजं घोरम्। वह्निसदनं सुकष्टमश्ममयीमश्मरीश्चाशु ॥ ७३ ॥

वरनेकी भस्म करके उस भस्मको पानीमें डाले और वस्त्रमें डालकर नितारे, पश्चात् उस नितरे. हुए पानीको जवाखारके चूर्णसे मिश्रित करके तबतक पकावे, जबतक वह सब जल-

कर चूर्णरूप हो। फिर इस चूर्णको गुडमें मिलाकर खाय तो इससे भयंकर पथरी, प्लीहा, गुल्म, कमर तथा पेटकी पीडा, आमका सञ्चय, बस्तिरोग, वायुसे हुआ भयंकर मूत्रकृच्छ्र, अग्निकी मंदता और पत्थरकी समान कठोर पथरी तत्काल नष्ट होजाती है॥७१-७३॥

अथ वरुणकगुडः।

नो जग्धं कृमिभिर्धनं सुतरुणं स्निग्धं शुचिस्थानजं घस्रे पुण्यनिरीक्षिते वरुणकं छित्त्वा तुलां ग्राहयेत्। संगृह्याशु चतुर्गुणाप्सु विपचेत्पादावशेषं जलं तत्तुल्येन गुडेन वै दृढतरे भाण्डे पचेत्तत्पुनः ॥ ७४ ॥ ज्ञात्वैवं घनतां गुडे परिगते प्रत्येकमेषां पलं शुण्ठ्येर्वारुकबीजगोक्षुरकणापाषाणभिच्छीतलाः। कूष्माण्डत्रपुसाक्षबीजकुनटीवास्तूकशोभाञ्जनैर्द्राक्षैलागिरिजाभयाकृमिहृतां चूर्णीकृतानां क्षिपेत् ॥ ७५ ॥ पथ्याशी प्रतिवासरं गुडममुं युज्यात्प्रमाणं नरःखादेत्तस्य समस्तदोषजनिताऽश्मर्यः पतन्ति द्रुतम् ॥ ७६ ॥

वरनेका वृक्ष कि जो कीडोंसे खाया न हो, तरुण स्निग्ध और पवित्रदेशमें उत्पन्न हुआ हो, उसको शुभदिनमें, शुभलग्नमें काटकर उसमेंसे चार सौ तोले लेवे और चौगुनपानीमें क्वाथ करे, जब जल चौथा भाग शेष रहे तब उसके बराबरही गुड मिलावे और दृढ पात्रमें पाक करे। जब गुड पककर गाढा होजाय तब उसमें सोंठ, ककडीके बीज, गोखरू पीपल पाखानभेद, पद्माख, पेठा, खीरा तथा बहेडेके बीज, धनियाँ, बथुआ, सहँजना दाख, इलायची, शिलाजीत, हरड और वायविडंग इन प्रत्येक पदार्थोंका चार चार तोले चूर्ण डाले तो 'वरुणकगुड' सिद्ध होता है, पथ्य भोजनका नियम रखकर नित्य योग्य प्रमाणसे यह गुड खाय तो इससे सब दोषोंसे उत्पन्न हुई पथरी तुरंत गिरपडती हैं॥ ७४-७६ ॥

अथ कुलत्थाद्यघृतम्।

कुलत्थसिन्धूत्थविडङ्गसारं सशर्करं शीतलियावशूकम्। बीजानि कूष्माण्डकगोक्षुराभ्यां घृतं पचेत्तद्वरुणस्य तोये ॥ ॥ ७७ ॥ दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं मूत्राभिघातञ्च समूत्रबन्धम्। आमूलमेतानि निहन्ति शीघ्रं प्ररूढवृक्षानिव वज्रपातः ॥ ७८ ॥

वरनेका क्वाथ करके उसमें कुलथी, सैंधा, वायविडंगके चावल, शर्करा पद्माख, जवाखार, पेठेके बीज और गोखरूके बीज इनका कल्क डालकर पकाया हुआ घी 'कुलत्थाद्यघृत' कहाता है। जिस प्रकार वज्रपात दृढ जडवाले वृक्षको भी तत्काल उखाड डालता है, उसी प्रकार यह घी सब प्रकारकी कष्टसाध्य पथरियोंको, मूत्रकृच्छ्रको, मूत्राघातको और सब प्रकारके मूत्रावरोधको जडसे नष्ट करता है॥

अथ शरादिपञ्चमूलाद्यघृतम्।

शरादिपञ्चमूल्या वा कषायेण पचेद् घृतम् ॥ ७९ ॥ प्रस्थं गोक्षुरकल्केन सिद्धमद्यात् सशर्करम्। आश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं रेतोमार्गरुजापहम् ॥ ८० ॥

रामसर आदि तृणपञ्चमूलका क्वाथ करके उसमें गोखरूका कल्क डालकर एक सेर घी पकावे, इस घीमें शक्कर को मिलाकर खाय तो इससे पथरी तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है और वीर्यके मार्गकी पीडा भी दूर होती है॥ ७९ ॥ ८० ॥

अथ वरुणाद्यघृतम्।

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत् पादशेषे परिस्राव्य घृतप्रस्थं

विपाचयेत् ॥ ८१ ॥ वरुणं कदलीं विल्वं तृणजं पञ्चमूलकम् । अमृतां चाश्मभेदश्च बीजञ्च त्रपुसस्य च ॥ ॥ ८२ ॥ शतपर्वा तिलक्षारं पालाशक्षारमेव च । यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत् ॥ ८३ ॥ अस्य मात्रां पिबेज्जन्तुर्देशकालव्यपेक्षया । जीर्णे चास्मिन् पिबेत्पूर्वं गुडं जीर्णञ्च मस्तु च । अश्मरीं शर्कराञ्चैव मूत्रकृच्छ्रं च । नाशयेत् ॥ ८४ ॥

चारसौ तोले वरनेको कूटकर एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे, चौथा भाग जल जब शेष रहे तब उसको वस्त्रसे छानकर उसमें एक सेर घी पकावे और उस घीमें वरना, केला बेर, तृणपंचमूल, गिलोय, पाखानभेद, खीरेके बीज, सफेद वच, तिलोंका खार, ढाकका खार और जूहीकी जड ये प्रत्येक एक एक तोला डाले। देश तथा कालके अनुसार मात्राकरके इस घीको पीवे और उसके जीर्ण होनेपर पुराना गुड तथा दहीका पानी पीवे तो इससे पथरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्रका नाश होता है ॥ ८१-८४ ॥

अथ वीरतराद्यतैलम्

सैन्धवाद्यन्तु यत्तैलमृषिभिः परिकीर्तितम् । तत्तैलं द्विगुणे क्षीरे पचेद्वीरतरादिना ॥८५॥ क्वाथेन पूर्वकल्केन साधितन्तु भिषग्वरैः । एतत्तैलवरं श्रेष्ठमश्मरीणां निवारणम् ॥ ८६ ॥

मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे पिच्चिते मथिते तथा । भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैव प्रशस्यते ॥ ८७ ॥

मुनियोंने जो सैंधवाद्यनामक तैल कहा है उस तेलको दूने दूधसे मिलाकर पूर्वोक्त वीरतरादिगणके क्वाथसे तथा तेजगणके कल्कसे उत्तम वैद्य पकावे तो वीरतरादि तैल सिद्ध होता है। यह तैल पथरियोंको भलीभाँति नष्ट करता है और मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, पिचेहुए मसले हुए भग्नमें और अत्यन्त परिश्रम करनेमें भी परम हितकारी है ॥ ८५-८७ ॥

अथापरवीरतरादितैलम् ।

वीरवृक्षाश्मभेदाग्निमन्थश्योनाकपाटलाः। वृक्षादनीसहैरण्डभल्लूकोशीरपद्मकम् ॥ ॥ ८८ ॥ कुशकाशशरेक्षूणामास्फोताकोकिलाक्षयोः । शतावरी श्वदंष्ट्रा च सोत्कटाह्वयवञ्जुलाः ॥ ८९ ॥ कपोतवंका श्रीपर्णी काश्मरी मूलसंयुता । एतैः कषायैः कल्कैश्च तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ ९० ॥ वातपित्तविकारेषु वस्ति दद्याद्विचक्षणः । शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ ९१ ॥

अर्जुनकी छाल, पाखानभेद, अरनी, सोनापाठा, पाटला, बाँदा, एरंडकी जड, भिलावा, खस, पद्माख, कुशा काँस, रामशर, ईखकी जड, मोगरा तालमखाना, सतावर, गोखरू, दोनों जातिके कटीला, तेजवला, ब्राह्मी और खंभारीकी जड इन सबके क्वाथमें इनकाही कल्क डालकर तैल पकावे, चतुर वैद्य वायुसम्बन्धी तथा पित्तसंबन्धी विकारोंमें इस तेलसे पिचकारी लगावे । यह तेल-पथरी, शर्करा, शूल, और मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करता है ॥ ८८-९१ ॥

पुनर्नवाद्यतैलम्।

पुनर्नवाऽमृताभीरुसक्षारलवणत्रयैः । शटीकुष्ठवचामुस्तरास्नाकट्फलपौष्करैः ॥ ९२ ॥ यवानीहपुषाहिंगुसताह्वासाजमोदकैः । विडङ्गाऽतिविषायष्टीपञ्चकोलकसंयुतम् ॥ ९३ ॥ एतैरसक्ष्मैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् । गोमूत्रं द्विगुणं देयं काञ्जिकं तद्वदेव तु ॥ ९४ ॥

पुनर्नवाद्यमित्येतत्तैलं पानेन वस्तिना ।
शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रप्रमोचनम् ॥
॥९५॥ कट्यूरुवस्तिमेढ्रस्थ कुक्षिवंक्षण-
संयुतम् । कफवातामशूलघ्नमन्त्रवृद्धेश्च
नाशनम् ॥ ९६ ॥

पुनर्नवा, गिलोय सतावर जवाखार, तीनों प्रकारके लवण, कचूर, कूठ वच, मोथा, रासना कायफल और पोहकरमूल, अजवायन, ह्वाऊ-बेर, हींग, सौंफ, अजमोद, वायविडंग, अतीस, मुलहठी, और पंचकोल इन प्रत्येक औषधिके एक एक तोले कल्कसे एक सेर तेल पकावे और पकाते समय उसमें दूना गोमूत्र तथा दूनी काँजी डाले, इस भाँति पकाया हुआ तेल 'पुनर्नवाद्यतैल' कहाता है । यह तेल पीनेसे और इस तेलकी पिचकारीसे शर्करा पथरी, शूल मूत्रकृच्छ्र, कफ वात, आमशूल और अंत्र-वृद्धि इनका नाश होता है ॥ ९२-९६ ॥

अथ सैन्धवाद्यतैलवीरतरादिगणोपयोगः ।

ब्रध्नाधिकारनिर्दिष्टं सैन्धवाद्यमिहेष्यते ।
सर्वथैवोपयोज्यस्तु गणो वीरतरादिकः
॥ ९७ ॥ घृतैःशीतैः कषायैश्च क्षीरैश्चो
त्तरवस्तिभिः । बलवत्यो न शाम्यन्ति
प्रत्याख्याय समुद्धरेत् ॥ ९८ ॥ यदृ-
च्छया मूत्रमार्गमायान्त्यभ्यन्तराश्रिताः।
स्रोतसाऽपहरेच्छित्त्वा बडिशेनाथ चोद्ध-
रेत् ॥ ९९ ॥

इति अश्मरीरोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

पथरी, शर्करा तथा सिकतामें ब्रध्नरोगके अधिकारमें कहे सैन्धवाद्य तेलकाभी उपयोग करे । इस पीडामें घी, क्वाथ तथा दूध बनाकर और उत्तरवस्ति देवे तो वीरतरादिगणकी औषधियोंका उपयोग करे । यदि पथरी बलवान् हो और किसी औषधिसे शान्त न हो तो यन्त्र आदिके द्वारा लिंगसे पथरीको निकाल लेवे । भीतर रहनेवाली पथरी यदृच्छासे मूत्रके मार्गमें आरती हो तो उसको काटकर मूत्रमार्ग-द्वारा निकाल लेवे ॥ ९७-९९ ॥

इति अश्मर्यधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ प्रमेहाधिकारः ।

तत्र प्रमेहनिदानम् ।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौ-
दकानूपरसः पयांसि । नवान्नपानं गुड-
वैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥१॥

बैठे रहनेका सुख, निद्राका सुख, दही, ग्राम्य जीवोंका मांस जलचर जीवोंका मांस, जलवाले देशके प्राणियोंका मांस, दूध, नवीन अन्न, नवीन पान, गुड, गुडकी राब और सम्पूर्ण कफकारी पदार्थ ये सब प्रमेह होनेके कारण हैं ॥ १ ॥

अथ प्रमेहसंप्राप्तिः ।

मेदश्च मांसश्च शरीरजश्च क्लेदं कफो
वस्तिगतं प्रदूष्य । करोति मेहान् समु-
दीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ।
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्सन्दूष्य
मेहान् कुरुतेऽनिलश्च ॥ २ ॥

कफ-मूत्राशयमें रहनेवाली मेदा को मांसको और शरीरके क्लेदको दूषित करके प्रमेहको उत्पन्न करता है । उष्णपदार्थोंसे बढाहुआ पित्त भी सौम्यधातु कफ आदिका क्षय होनेपर इन्हीं मेद आदि पदार्थोंको दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है । कफ आदि सब धातु क्षीण होनेपर वायु भी प्रमेहकी संपादन करनेवाली धातुओंको दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करती है ॥ २ ॥

अथ प्रमेहसंख्यासाध्यत्वादिके ।

साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षड्
याप्या नसाध्याः पवनाच्चतुष्काः । सम-
क्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च
यथाक्रमं ते ॥ ३ ॥

कफसे दशप्रकारके प्रमेह होते हैं, वे साध्य हैं । पित्तसे छः प्रकारके प्रमेह होते हैं वे याप्य हैं । वायुसे चार प्रकारके प्रमेह होवे हैं वे

असाध्य हैं। कफसे हुए प्रमेह साध्य इस कारण होते हैं कि-वे केवल मेदा आदिके दूषित होनेसे होते हैं और कर्षणरूप एक क्रियासेही नष्ट होते हैं। पित्तसे हुए प्रमेह याप्य इस कारण हैं कि-वे कफ आदि सौम्य धातुके क्षय होनेपर मेदा आदिके दूषितपनेसे होते हैं और मधुर तथा रूक्ष आदि विषम क्रियासे नष्ट होते हैं। वायुसे हुए प्रमेह असाध्य इस कारण हैं कि, सम्पूर्ण धातुओंके क्षयसे होते हैं और शरीरका क्षय करनेवाले हैं ॥३॥

अथ प्रमेहदोषदूष्यज्ञानम्।

कफश्च पित्तं पवनश्च दोषा मेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः। मज्जारसौजःपिशितञ्च दूष्याः प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥ ४ ॥

कफ, पित्त और वायु ये दोष हैं और उनसे मेदा, रुधिर, वीर्य, रस, वसा, लसीक, मज्जा तथा ओज और मांस ये दूषित होते हैं। जो दूषित होते हैं वे दूष्य कहाते हैं। उपरोक्त प्रमेह वीस प्रकारके हैं ॥ ४ ॥

अथ प्रमेहपूर्वरूपम्।

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः। दाहश्चिक्कणता देहे तृट् स्वाद्वास्यञ्च जायते ॥ ५ ॥

प्रमेह होनेवाला हो तो दांत आदिमें मैल हाथ पांवोंमें दाह, शरीरमें चिकनापन तृषा और मुख्यमें मीठापन होता है ॥ ५ ॥

अथ प्रमेहसामान्यलक्षणम्।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता।
दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः।
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ६

मूत्रकी अधिकता और मैलापन यह प्रमेहका सामान्य लक्षण है दोष और दूष्य इनकी विशेषता न होनेपर भी संतोषकी विशेषतासे मूत्रके वर्ण आदिमें जो अन्तर होता है, उससे प्रमेहोंके भेदोंकी कल्पना की गई है ॥ ६ ॥

अथ कफजप्रमेहलक्षणम्।

अच्छं बहुतरं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम्। मेहत्युदकमेहेन किञ्चिच्चाविलपिच्छिलम् ॥ ७ ॥

१-उदकमेह हुआ हो तो स्वच्छ, अधिक सफेद, शीतल, गन्धरहित, पानीके सदृश, किंचित् गँदला और चिकना मूत्र आता है ॥७

इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः।
सान्द्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ८

२-इक्षुमेह हुआ हो, तो ईखके रसके सदृश अत्यन्त मीठा मूत्र होता है ॥

३-सान्द्रमेह हुआ हो, तो मूत्र रात्रिमें धरा हुआ जसा गाढा होता है, ऐसा आता है ॥८॥

सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम्
संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम्॥९॥

४-सुरामेह हो, तो मदिराके सदृश मूत्र उतरता है और वह मूत्र रात्रिमें रखे हुएके सदृश ऊपर स्वच्छ और नीचे गाढा होता है॥

५-पिष्टमेह हुआ हो, तो चावलोंके धोवनेके समान सफेद और अधिक मूतता है तथा मूत्र करते समय रोमांच हो जाते हैं ॥ ९ ॥

शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति। मूत्राणून् सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥ १० ॥

६-शुक्रप्रमेह हुआ हो, तो वीर्यके सदृश तथा वीर्य मिला मूत्र आता है ॥

७-सिकतामेह हुआ हो, तो मूत्रमें रेतीके सदृश सूक्ष्म और परस्परमें नहीं मिले कफके कण होते हैं ॥ १० ॥

शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम्। शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति। लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ ११ ॥

८--शीतमेह हुआ हो, तो वारंवार मीठा और शीतल मूत्र आता है ॥

९--शनैर्मेह हुआ हो, तो धीरे धीरे मन्द मन्द मूत्र उतरता है ॥

१०--लालामेह हुआ हो, तो लारके तन्तुके समान तारवाला और चिकना मूत्र आता है ॥ ११ ॥

अथ पित्तजप्रमेहलक्षणम् ।

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ॥ १२ ॥

११--क्षारमेह हुआ हो, तो जिसमें खारे जलके सदृश गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्श हो, ऐसा मूत्र आता है ॥ १२ ॥

नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मषीनिभम् । हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत् ॥ १३ ॥

१२-नीलमेह हुआ हो, तो नीलके सदृश मूत्र होता है ॥

१३--कालप्रमेह हुआ हो, तो स्याहीके सदृश श्यामवर्णका मूत्र आता है ॥

१४--हारिद्रमेह हुआ हो, तो हलदीके सदृश वर्णवाला, दाहयुक्त और तीक्ष्ण मूत्र आता है ॥ १३ ॥

विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम् । विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहिनः ॥ १४ ॥

१५--मांजिष्ठमेह हुआ हो तो कच्चे पदार्थके सदृश गन्धवाला, और मंजीठके पानीके सदृश रंगका मूत्र होता है ॥

१६--रक्तमेह हुआ हो तो गन्धयुक्त, गरम, खारा और रक्तके सदृश लाल मूत्र आता है १४

अथ वातजप्रमेहलक्षणम् ।

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः । मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥

१७-वसामेह हुआ हो, तो वारंवार चरबीसे मिला और चरबीके सदृश वर्णवाला मूत्र होता है ॥

१८--मज्जामेह हुआ हो, तो मज्जासे मिश्रित और मज्जाके सदृश वर्णवाला मूत्र वारंवार आता है ॥ १५ ॥

कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद् बुधः । हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रवेगविवर्जितम् । सलसीकं विबद्धञ्च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ १६ ॥

१९--मधुमेह और क्षौद्रमेह हुआ हो, तो कसेला, मीठा और रूक्ष मूत्र होता है ॥

२०--हस्तिमेह हुआ हो, तो उन्मत्त हस्तीके सदृश निरन्तर वेगरहित लसीकासहित और रुक रुककर मूत्र आता है ॥ १६ ॥

अथ कफजप्रमेहोपद्रवाः ।

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः । उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ १७ ॥

यदि कफसे प्रमेह हुआ हो, तो खाये हुए अन्नका नहीं पचना, अरुचि, वमन, निद्रा, खांसी और पीनस ये उपद्रव होते हैं ॥ १७ ॥

अथ पित्तजप्रमेहोपद्रवाः ।

वस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः। दाहस्तृष्णाऽम्लको मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ १८ ॥

पित्तसे प्रमेह हुआ हो, तो मूत्राशय तथा लिंगमें शूल, अण्डकोषोंका फटना, ज्वर, दाह, तृष्णा, खट्टी डकारोंका आना, मूर्च्छा और पतले दस्तका होना ये लक्षण होते हैं ॥ १८ ॥

अथ वातजप्रमेहोपद्रवाः ।

वातजानामुदावर्तकम्पहृद्ग्रहलोलताः । शूलमुन्निद्रता शोषः श्वासः कासश्च जायते ॥ १९ ॥

यदि वायुसे प्रमेह हुआ हो, तो उदावर्त, कंप, हृदयका रुकना, चपलता, शूल, निद्रासे रहितपना, शोष, श्वास और खांसी ये उपद्रव होते हैं ॥ १९ ॥

अथ प्रमेहारिष्टम् ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च । पिडिकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ २० ॥ मूर्च्छाच्छर्दिज्वरश्वासकासवीसर्पगोरवैः। उपद्रवैरुपेतो यः प्रमेही दुष्प्रतिक्रियः ॥ २१ ॥

प्रमेहयुक्त मनुष्य जो उपरोक्त उपद्रवोंसे घिरा हो, मूत्र अधिक आता हो और फुन्सियोंसे अत्यन्त पीडित हुआ हो, वह मनुष्य मर जाता है अथवा जो प्रमेही मनुष्य मूर्च्छा, वमन, ज्वर, श्वास, खांसी, विसर्प और गुरुता इन उपद्रवोंसे युक्त हो, तो असाध्य जानना ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ स्त्रीणामप्रमेहे कारणम् ।

रजः प्रवर्तते यस्मान्मासि मासि विशोधयेत् । सर्वाञ्छरीरदोषांश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः ॥ २२ ॥

स्त्रियोंके महीनेके महीने रज प्रवर्तित होता है । उससे ही शरीरके सब दोष स्वच्छ हो जाते हैं, इसलिये स्त्रियोंके प्रमेह नहीं होता ॥ २२ ॥

अथासाध्यप्रमेहलक्षणम् ।

जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा न साध्यरोगः स हि बीजदोषात् । ये चापि केचित् कुलजा विकारा भवन्ति तांश्चापि वदन्त्यसाध्यान् ॥ २३ ॥ सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः । मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥ २४ ॥ मधुमेहो मधुनिभो जायते स किल द्विधा । क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा ॥ २५ ॥ आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् । क्षीणः क्षणात्क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २६ ॥

जिसको जन्मसे ही प्रमेह हुआ हो अथवा माता पिताकी परंपरासे जिसको प्रमेह हुआ हो, वह असाध्य है । क्योंकि, यह प्रमेह वीर्यके दोषसे ही उत्पन्न होता है । अन्य भी जो कोई रोग, कुलकी परंपरासे प्राप्त हुआ हो, वह भी असाध्य है, ऐसा विद्वानोंने कहा है । अथवा सब प्रकारके प्रमेह जो अधिक कालतक चिकित्सा विना रहें तो मधुमेहरूप होजाते हैं, ये भी असाध्य हैं । मधुमेह दोप्रकारका होता है, वह इस भांति है कि-धातुओंके क्षयसे वायुका कोप होनेपर होता है, अथवा दोषसे वायुका मार्ग रुकजानेसे होता है । दोषसे वायुका मार्ग रुकजानेपर वह वायु अकस्मात् दोषोंके चिह्नोंको दिखाती है और तैसेही क्षणमात्रमें मूत्राशयको खालीकर डालती है तथा क्षणमात्रमें पूर्ण करती है, इसीसे प्रमेह कष्टसाध्य होजाता है ॥ २३-२६ ॥

अथ मधुमेहशब्दप्रवृत्तौ कारणम् ।

मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विव मेहति । सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥ २७ ॥

अधिक करके सब प्रमेहोंमें मनुष्य मीठा और मधुके सदृश मूत्र मूत्रता है और शरीरमें मधुरता होती है, इस लिये सब प्रमेहोंको 'मधुमेह' इस नामसे कहते हैं ॥ २७ ॥

अथ प्रमेहोपेक्षाजनितदशपिडिकानां नामस्थानानि ।

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी । मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥ २८ ॥ विद्रधिश्चेति पिडिकाः

प्रमेहोपेक्षया दश । सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २९ ॥

प्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे सन्धियोंमें, मर्मस्थानोंमें और अधिक मांसवाले प्रदेशोंमें दश प्रकारकी पिडिका होती हैं । वे अनुक्रमसे १ शराविका, २ कच्छपिका, ३ जालिनी, ४ विनता, ५ अलजी, ६ मसूरिका, ७ सर्षपिका, ८ पुत्रिणी, ९ विदारिका, तथा १० विद्रधि इन नामोंसे कही हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ दशप्रकारकपिडिकालक्षणम् ।

अन्तोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शराविका । गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा तु सर्षपी ॥३०॥ सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः । जालिनी तीव्रदाहा तु शिराजालसमावृता ॥ ३१ ॥ अविगाढरुजाक्लेदा पृष्ठे वाप्युदरेऽपि वा । महती पिडिका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता ॥ ३२ ॥ महत्यल्पचिता ज्ञेया पिडकाऽपि च पुत्रिणी । मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ॥ ३३ ॥ रक्ताऽसिता स्फोटचिता विज्ञेया त्वलजी बुधैः । विदारीकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका । विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा ॥ ३४ ॥

जो पिडिका–अन्तमें ऊची, मध्यमें नीची हो और मट्टीके सकोरे सरइयाके सदृश हो, उसको 'शराविका' जाननी । जो पिडिका दाहयुक्त तथा कछुएकी पीठके सदृश हो उसको 'कच्छपिका' जाननी । जो पिडिका तीव्रदाह वाली और सूक्ष्म सूक्ष्म नसोंके जालसे लिपटी हुई हो, उसको 'जालिनी' जाननी । जो पिडिका बडी, मोटी, नीलवर्णकी और पीठ तथा पेटमें हुई हो, वह 'विनता' जाननी । जो पिडिका लाल तथा काली हो और अन्य फुन्सियोंसे व्याप्त हो, वह 'अलजी' जाननी । जो पिडिका, मसूरकी दालके बराबर बडी हो, 'वह, मसूरिका' जाननी । जो पिडिका सफेद सरसोंके समान आकार वाली हो और इतनीही बडी हो, वह 'सर्षपिका' जाननी । जो पिडिका बडी और सूक्ष्म सूक्ष्म फुन्सियोंसे व्याप्त हो, वह 'पुत्रिणी' जाननी । जो पिडिका विदारीकन्दके सदृश गोल हो और कठोर हो वह 'विदारिका' जाननी । जो पिडिका विद्रधिके लक्षणों (जो आगे कहेंगे) से युक्त हो वह "विद्रधिका" जाननी ॥ ३०–३४ ॥

अथ प्रमेहपिडिकादोषनिर्णयः ।

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ॥ ३५ ॥

जो प्रमेह जिस दोषयुक्त हो, उस प्रमेहकी पिडिकाभी उसी दोषवाली होती है ॥ ३५ ॥

अथ प्रमेहमन्तरा पिडिकोत्पत्तिः ।

विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः । तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ॥ ३६ ॥

जिस मनुष्यकी मेदा दूषित हो, उसके विना प्रमेहके भी पिडिका होती हैं । जबतक इन पिडिकाओंने अपने अपने स्थानको भलीभांति पकडा न हो, तबतक ये पिडिका नहीं दीखती ॥ ३६ ॥

अथ पिडिकाऽसाध्यत्वम् ।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः । सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडिकाः परिवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

गुदा, हृदय, शिर, कन्धा, पीठ इनके मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुई, उपद्रवयुक्त और मन्दाग्निवालेके हुई पिडिकाओंकी चिकित्सा नहीं करे ॥ ३७ ॥

अथ पिडिकोपद्रवाः ।

तृड्श्वासमांससङ्कोचमोहहिक्कामदज्वराः । विसर्पमर्मसंरोधाः पिडिकानामुपद्रवाः ॥ ३८ ॥

तृषा, श्वास, मांसका संकोच, मोह हिचकी, मद, ज्वर, विसर्प और मर्मस्थानोंका अवरोध ये पिडिकाओंके उपद्रव हैं ॥ ३८ ॥

अथ प्रमेहपथ्यानि ।

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमाश्चणकास्तथा। आढक्यश्च कुलत्थाश्च पुराणा मेहिनां हिताः ॥ ३९ ॥ मेहिनां तिक्तशाकानि जाङ्गला हरिणाण्डजाः । यवान्नविकृतिर्मुद्गाः शस्यन्ते शालिषष्टिकाः ॥ ४० ॥

समा, कोदों, वनकोदों, गेहूँ, चना, अरहर और कुलथी ये धान्य यदि पुराने हों तो प्रमेहरोगीको हितकारी हैं । कडवे शाक, जांगलदेशके हिरन तथा पक्षी जौके आटेके बने पदार्थ, मूँग, लाल चावल और सांठीके चावल ये प्रमेहरोगीको हितकारी हैं॥३९।४०॥

अथ प्रमेहेऽहितवस्तूनि ।

सौवीरकं सुरा तक्रं तैलं क्षीरं घृतं गुडम् । अम्लेक्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ॥ ४१ ॥

सौवीर, मदिरा, तक्र, तेल, दूध, घी, गुड, अम्लपदार्थ ईखका रस, आटेके बने पदार्थ और अनूप देशके जीवोंका मांस इनको प्रमेहरोगी त्याग देवे ॥ ४१ ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

तत्र आदित एव प्रमेहिणमुपस्निग्धमन्यतमेन प्रियंग्वादिसिद्धेन तलेन वामयेत्, प्रगाढं विरेचयेच्च । विरेचनादनन्तरं सुरसादिकषायेण आस्थापयेत् । महौषधभद्रदारुमुस्तावापेन मधुसैन्धवयुक्तेन । दह्यमानंवा न्यग्रोधादिकषायेण निस्तैलेन ॥

जिसको प्रमेह हुआ हो उसको प्रथमसेही प्रियंगु आदिसे सिद्ध किये तेलसे स्निग्ध करके वमन तथा विरेचन करावे । विरेचन करानेके पीछे सुरसादि क्वाथमें सोंठ देवदारु तथा मोथेका चूर्ण डालकर सहत तथा सेंधा मिलावे और पश्चात् उस क्वाथसे निरूहबस्ति देवे । जो दाह होता हो तो तेलरहित न्यग्रोधादि क्वाथसे निरूहवस्ति देवे ॥

वातोत्कटेषु मेहेषु स्नेहपानं विशेषतः । पारिजातजयानिम्बवह्निगायत्रिणां पृथक् ॥ ४२ ॥ पाठायाः सागुरोः पीताद्वयस्य शारदस्य च । जलेक्षुमद्यसिकताशनैर्लवणपिष्टकान् । सान्द्रमेहान् क्रमाद्घ्नन्ति क्वाथाश्चाष्टौ समाक्षिकाः ॥ ४३ ॥

वायुकी अधिकतावाले प्रमेहोंमें विशेष करके स्नेहपान करावे । निम्ब का क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पीवे तो इससे उदकप्रमेह नष्ट होता है । नीलीदूब अथवा अरनेका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पीवे तो इससे इक्षुमेह नष्ट होता है । नीमका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पीवे तो इससे सुरामेह नष्ट होता है । चीतेका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पीवे तो इससे सिकतामेह दूर होता है खैरका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पीवे तो इससे 'शनैर्मेह' नष्ट होता है । कालीपाढका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे क्षारमेह नष्ट होता है । अगरका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पीवे तो इससे 'पिष्टप्रमेह' नष्ट होता है । दोनों जातिकी हलदीका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पीवे तो इससे 'सान्द्रप्रमेह' नष्ट होता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

हरीतकीकट्फलमुस्तलोध्राः पाठाविडङ्गार्जुनधन्वनाश्च । उभे हरिद्रे तगरं विडंगं कदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च॥४४॥

हरड, कायफल, मोथा और लोध इनका क्वाथ करके उसमें सहत मिलाकर पीवे तो इससे कफ सम्बन्धी प्रमेह नष्ट होता है । पाढ, वायविडंग, कोह और धमासा इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे

कफसम्बन्धी प्रमेह नष्ट होता है । हलदी, दारुहलदी, तगर और वायविडंग इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पीवे तो इससे कफसम्बन्धी प्रमेह नष्ट होता है । कदम्ब, शाल, कोह और चीता इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पीवे तो इससे कफसम्बन्धी प्रमेह नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

दार्वी विडंगः खदिरो धनश्च सुराह्वकुष्ठा-गुरुचन्दनानि । दार्व्यग्निमन्थौ त्रिफला वचा च पाठा च मूर्वा च तथा श्वदंष्ट्रा ॥ ४५ ॥

दारुहलदी,, वायविडंग, खैर और धाय इनका क्वाथ करके उसमें सहत मिलाकर पीवे तो इससे कफसम्बन्धी प्रमेह दूर होता है।देवदारु, कूठ, अगर और चन्दन इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पीवे तो इससे कफसम्बन्धी प्रमेह नष्ट होता है । दारुहलदी, अरनी, हरड, बहेडा, आमला और वच इनका क्वाथ करके सहत डालकर पीवें तो कफसम्बन्धी प्रमेह दूर होता है । अथवा पाढ, मूर्वा और गोखरू इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो इससे कफसम्बन्धी प्रमेह नष्ट होजाता है ॥ ४५ ॥

वचा ह्युशीराण्यभया गुडूची वृषं शिवा-चित्रकसप्तपर्णाः । पादैः कषायाः कफमेहविघ्नैर्दशोपदिष्टा मधुसम्प्र-युक्ताः ॥ ४६ ॥

वच, खस, हरड और गिलोय इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो उससे कफसम्बन्धी प्रमेह दूर होता है। अडूसा, हरड, चीता और सतौना इनका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पीवे तो कफसम्बन्धी प्रमेह नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

उशीरलोध्रार्जुनचन्दनानामुशीरमुस्ताम-लकाभयानाम् । पटोलनिम्बामलका-मृतानां मुस्ताभयामुष्ककवृक्षका-णाम् ॥ ४७ ॥

खस, लोध, कोह और चन्दन इनका क्वाथ करके सहत डालकर पीनेसे पित्तसम्बन्धी प्रमेह दूर होता है अथवा खस, मोथा, आमले और हरड इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पीवे तो पित्तसम्बन्धी प्रमेह दूर होता है परवल, नीम, आमले और गिलोय इनका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पिये तो पित्तसम्बन्धी प्रमेह नष्ट होता है। मोथा, हरड और मोखावृक्ष इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पीवे तो इससे पित्तसम्बन्धी प्रमेह दूर होता है ॥ ४७ ॥

लोध्राम्रकालीयकधातकीनां विश्वार्जुनै-लातिविषोत्पलानाम् । शिरीषधान्यार्जुन-केशराणां प्रियङ्गुपद्मोत्पलकिंशुका-नाम् ॥ ४८ ॥

लोध, आमकी छाल, दारुहलदी तथा धाय इनका क्वाथ करके सहत डालकर पीवे तो पित्तसम्बन्धी प्रमेह नष्ट होता है। सौंठ, अर्जुन, इलायची, अतीस और कमल इनका क्वाथ करके सहत डालकर पीनेसे पित्तसम्बन्धी प्रमेह नष्ट होता है। सिरस, धनियाँ, कोह और नागकेसर इनका क्वाथ करके इसमें सहत डालकर पीवे तो पित्तसम्बन्धी प्रमेह दूर होता है। प्रियंगु, कमल, उत्पल तथा कुसुम इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसम्बन्धी प्रमेह नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

अश्वत्थपाठासनवेतसानां कटंकटेर्युत्पल-मुस्तकानाम् । पैत्तेषु मेहेषु दशोपदिष्टाः कषाययोगा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ ४९ ॥

पीपलकी छाल, पाढ, पीतशाल तथा बेंत इनका क्वाथ करके सहत डालकर पीवे तो पित्तसम्बन्धी प्रमेह दूर होता है। दारुहलदी, उत्पल और मोथा इनका क्वाथ करके सहत डालकर पीवे तो पित्तसंबन्धी प्रमेह दूर होता है ॥ ४९ ॥

कफमेहहरक्वाथसिद्धं सर्पिःकफे हितम्। पित्तमेहघ्ननिर्यूहसिद्धं पित्तहरं घृतम् ॥ ॥ ५० ॥ कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरोहीतककौटजानि। पटोलकालीयगदागुरूणि क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेही ॥ ५१ ॥

कफसम्बन्धी प्रमेहको नष्ट करनेवाले क्वाथोंसे पकाया हुआ घी कफसम्बन्धी प्रमेहको नष्ट करता है। पित्तसम्बन्धी प्रमेहको नष्ट करनेवाले क्वाथोंसे पकाया हुआ घी पित्तसम्बन्धी प्रमेहको नष्ट करता है अथवा कबीला, सतौना, शाल, रोहेठा, बहेडा, कुडेके बीज, परवल, दारुहलदी, कूठ और अगर इनका चूर्ण कर सहतमें मिलाकर चाटनेसे कफसम्बन्धी प्रमेह दूर होता है ॥५०॥५१॥

दूर्वा कसेरुपूतीककुम्भीकप्लवशैवलम्। जलेन क्वथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥ ५२ ॥

दूब, कसेरू करंज, कायफल, मोथा तथा सिवार इनका क्वाथ पीवे तो इससे शुक्रमेह अवश्य दूर होता है ॥ ५२ ॥

त्रिफलारग्वधद्राक्षाकषायो मधुसंयुतः। पीतो निहन्ति फेनाभं प्रमेहं नियतं नृणाम् ॥ ५३ ॥

हरड, बहेडा, आमला,अमलतास और दाख इनका क्वाथकर उसमें सहत मिलाकर पीवें तो फेनोंके सदृश प्रमेह दूर होता है ॥ ५३ ॥

अश्वत्थाच्चतुरङ्गुल्या न्यग्रोधादेः फलत्रयात्। सरक्तसारमञ्जिष्ठाः क्वाथाः पञ्च समाक्षिकाः ॥५४॥ मधुना त्रिफलाचूर्णमथवाऽश्मजतूद्भवम्। लोहजं वाऽभयोत्थं वा लिह्यान्मेहनिवृत्तये ॥५५॥ कटंकटेरीमधुकत्रिफलाचित्रकैः समैः। सिद्धः कषायः पातव्यः प्रमेहाणां विनाशनः ॥ ५६ ॥

त्रिफला अथवा शिलाजीत वा हरडोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाकर खाय तो प्रमेह नष्ट होजाता है। दारुहलदी, मुलहठी, त्रिफला और चीता इन सबका काढा पीनेसे सब प्रकारके प्रमेह दूर होते हैं ॥ ५४–५६ ॥

लत्रिकं दारुनिशां विशालं मुस्तां च निष्क्वाथ्य निशांशकल्कम्। पिबेत्कषायं मधुसम्प्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु समुच्छ्रितेषु ॥ ५७ ॥

त्रिफला, दारुहलदी, इन्द्रायन, मोथा और हलदी इनका क्वाथ करके सहत डालकर पीवे तो सम्पूर्ण प्रमेह नष्ट होते हैं, इस क्वाथको फलत्रिकादिक्वाथ' कहते हैं ॥ ५७ ॥

गोभक्षितान् यवान् मूत्रभावितान् केवलानपि। चित्रितोदश्विता खादेन्निम्बमुद्गरसेन वा ॥ ५८ ॥

गायके खाये, हुए जौको गोबरमेंसे निकालकर गोमूत्रकी भावना देवे, अथवा विना भावनाकेही चितकबरी गायके उदश्वित् (आधा पानी पडा हुआ मट्ठा) के साथ अथवा नीमके तथा मूँगके रसके साथ खाय तो प्रमेह नष्ट होता है ॥ ५८ ॥

भक्षयेतम्बुना मासं प्रमेही यवपिष्टकम्। मेदोघ्ना बद्धमूत्राश्च समाःसर्वेषु धातुषु। यवातस्माद्विशिष्यन्ते प्रमेहेषु विशेषतः ॥ ५९ ॥

एक मासतक पानीके साथ जौके आटेका भक्षण करनेसे प्रमेह नष्ट होजाते हैं। जौ प्रमेहको नष्ट करनेवाले, मूत्रको रोकनेवाले और सब धातुओंमें समस्थितवाले हैं, इस लिये विशेष करके प्रमेहमें जौ बहुत हितकारी हैं ॥ ५९ ॥

त्रिकण्टकाद्यमोदकः।

त्रिकटु त्रिफला पाठा मूलं शोभाञ्जनस्य च ॥ ६० ॥ विडङ्गतण्डुला हिङ्गु

तथा कटुकरोहिणी बृहती कण्टकारी च हरिद्रे द्वे यवानिका ॥ ६१ ॥ केवुकं शालपर्णीं च तथाऽतिविषचित्रकौ । सौवर्चलं जीरकश्च हपुषा धान्यमेव चँ ॥ ६२ ॥ एषां कर्षप्रमाणश्च श्लक्ष्णचूर्णश्च कारयेत् । यवसक्तुपलानाश्च नवतिं द्वितयाधिकाम् ॥ ६३ ॥ घृततैलमधूनाश्च प्रत्केकश्च पलानि षट् । एभिः कर्ष प्रमाणश्च प्रत्यहं मोदकं सुधीः । भक्षयेन्नाशयेदुग्रान् प्रमेहानतिदारुणान् ॥ ६४ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला-पाढ, सहँजनेकी जड, वायविडंगके दाने, हींग, कुटकी, दोनों प्रकारकी कटेरी, हलदी, दारुहलदी, अजवायन, सुपारी, शालिपर्णी, अतीस, चीता, कालानोन, जीरा, हाऊबेर और धनि, याँ इन प्रत्येक पदार्थोंको एक एक तोले लेकर बारीक चूर्ण करके पश्चात् तीनसौ अडसठ तोले जौंके सत्तुओंमें यह चूर्ण डालकर चौबीस तोले घी और चौबीस तोले सहत डाले और एक एक तोलेक लड्डू बनालेवे, इन लड्डुओंमेंसे नित्य एक एक लड्डू खाय तो अत्यन्त दारुण प्रमेह भी नष्ट हो जाता है ॥ ६०-६४ ॥

न्यग्रोधाद्यचूर्णम् ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थश्योनाकारग्वधासनम् । आम्रं कपित्थं जम्बूश्च प्रियालं ककुभं धवम् ॥ ६५ ॥ मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम् । पटोलं मेषशृङ्गी च दन्ती चित्रकमाढकी ॥ ६६ ॥ करञ्जत्रिफलासक्तुर्भल्लातकफलानि च । एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ६७ ॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह योजयेत् । फलत्रयारसं चानु पीत्वा मूत्रं विशुध्यति ॥ ६८ ॥ एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च । प्रशमं यान्ति योगेन पिडिका न च जायते ॥ ६९ ॥

बड़, गूलर, पीपल, अरलू, अमलतास, बिजेसार, आम, कैथ जामुन, चिरौंजी, कोह, धाय, महुआ, मुलहठी, लोध, वरुणा, फरदह, परवल, मेंढ़ासिंगी, दन्ती, चीता, अरहर, हरड, बहेडा, आमला, इन्द्रजौ और भिलावे इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करे, इस चूर्णको सहतमें मिलाकर खाय और ऊपरसे त्रिफलेका काथ पीवे तो इससे मूत्र शुद्ध होजाता है, बीसों प्रकारके प्रमेह और सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र शांत हो जाते हैं तथा प्रमेह-पिडिका भी नहीं होती ॥ ६५-६९ ॥

अथ लोहादिचूर्णगुडूचीस्वरसौ ।

चूर्णानि लोहत्रिफलासितानां क्षौद्रेण लिह्याच्च पृथक् समं वा । मेहान् समस्तानपि नाशयन्ति पीताः कदाचित्स्वरसा गुडूच्याः ॥ ७० ॥

लोहेकी भस्म 'त्रिफला और मिश्री इनका चूर्ण मिश्रित कर सहतमें मिलाकर चाटे अथवा केवल लोहेकी भस्म अथवा त्रिफले चूर्णको तथा केवल मिश्रीके चूर्णको सहतमें मिलाकर पृथक् पृथक् चाटे तो सब प्रकारके प्रमेह नष्ट होजाते हैं । अथवा केवल गिलोयका स्वरस निकाळकर पीनेसे भी प्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ ७० ॥

अथ त्रिकटुगुटिका ।

त्रिकटु त्रिफलातुल्यं गुग्गुलुश्च समांशकम् । गोक्षुरक्काथसंयुक्तां गुटिका कारयेद्बुधः ॥ ७१ ॥ दोषकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकाम् । न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥७२॥

प्रमेहवातरोगांश्च वातशोणितमेव च। मूत्राघातं मूत्रदोषं प्रदरं चाशु नाशयेत् ॥ ७३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा और आमला इनका समान भाग चूर्णकर उसमें समान भाग गूगल डाले, पश्चात् गोखरूके क्वाथसे इसकी गोली बनालेवे वायुका अनुलोमन करनेवाली यह गोली दोष काल तथा शरीरके बलको विचारकर खाय तो प्रमेह, वायुसम्बन्धी रोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रदोष तथा प्रदरकानाश होता है। यह गोली खानेवाले अपनी इच्छाके अनुसार बरतें और किसी प्रकारका परहेज नहीं करें ॥ ७१-७३ ॥

अथ दाडिमाद्यघृतम्।

दाडिमस्य च बीजानि कृमिघ्नस्य च तण्डुलाः। रजनी चविकाऽजाजी नागरं त्रिफला कणा ॥ ७४ ॥ त्रिकण्टकस्य च फलं यवानी धान्यकं तथा। वृक्षाम्लचविकालोध्रसिन्धूद्भवसमाहितैः ॥७५॥ कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतंप्रस्थं विपाचयेत्। भोज्ये पाने प्रदातव्यं सर्वर्त्तुषु च मात्रया ॥ ७६ ॥ प्रमेहान्विंशतिं चैव मूत्राघातं तथाऽश्मरीम्। कृच्छ्रं सुदारुणञ्चैव हन्यादेव न संशयः ॥ ७७ ॥ विबन्धानाहशूलघ्नं कामलाज्वरनाशनम्। दाडिमाद्यं घृतं चैतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ ७८ ॥

दाडिमी आनारके दाने, वायविडंग, हलदी, चव्य, जीरा, सोंठ, हरड, बहेडा, आमला, पीपल, गोखरू, धनियाँ, अजवायन, वृक्षाम्ल (इमली) लोध और सैंधानोंन इन प्रत्येक पदार्थोंका एक एक तोले कल्कसे एकसेर घी पकावे तो 'दाडिमाद्यनामक घृत' सिद्ध होता है। अश्विनीकुमारोंका कहा यह घी सर्व ऋतुओंमें मात्राके अनुसार भोजन पानके उपयोगमें सेवन करे। इससे बीसों प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, पथरी, महादारुण मूत्रकृच्छ्र, मलबन्ध, आनाह, शूल कामला तथा ज्वर अवश्य ही नष्ट होते हैं ॥ ७४-७८ ॥

अथ गोक्षुरादिचूर्ण गुटिका च।

श्वदंष्ट्रा सकणा मुस्ता गुडूची फल्गुपल्लवाः दर्भाङ्कुरास्तु गण्डारी रोहिषस्य च पल्लवाः ॥ ७९ ॥ काला पुनर्नवा श्यामा शारिवा देवदारु च। पिप्पली शृङ्गवेरं च विडङ्गं मरिचानि च ॥८०॥ पाठा कम्पिल्लकं भार्ङ्गी द्वे हरिद्रे निदिग्धिका। एरण्डमूलं दन्ती च चित्रकं कटुरोहिणी ॥ ८१ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्। यावन्त्येतानि चूर्णानि स्युस्तावत्स्यादयोरजः ॥ ८२ ॥ ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा। अलाभे चापि मद्यानां प्रमेहान् हन्ति विंशतिम् ॥८३॥ श्वयथुश्च तथाऽर्शांसि पाण्डुरोगं हलीमकम्। औदराण्यथ शूलानि प्लीहानं चापकर्षति ॥ ८४ ॥ एभिर्गोमूत्रपिष्टैस्तु गुटिकाः कारयेद्भिषक्। रोगेष्वेतेषु मुख्याः स्युर्बलमांसविवर्द्धनाः ॥८५॥

गोखरू, पीपल, मोथा, गिलोयके सूक्ष्मसूक्ष्म पत्ते, डाभके अंकुर, मंजीठ, रोहिषके पत्ते, निसोत, पुनर्नवा, शारिबा, देवदारु, पीपल, अदरख, वायविडंग, मिरच, पाढ, कबीला, भारंगी, दोनो हलदी, कटेरी, एरंडकी जड, जमालगोटेकी जड चीता और कुटकी इनको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करे, पश्चात् सब चूर्णसे दूना लोहेका चूर्ण लेवे, इन सबको मिलानेसे 'गोक्षुरादि' चूर्ण सिद्ध होता है। यह चूर्ण मद्यसे और मद्य न मिले तो उष्ण पानीसे पीवे तो बीसों प्रकारके प्रमेह, सूजन,

बवासीर, पांडुरोग, हलीमक, सब प्रकारके उदररोग, शूल तथा प्लीहा नष्ट होती है । इस चूर्णको गोमूत्रमें पीसकर गोलियां बना लेवे, उनको 'गोक्षुरादि गुटिका' कहते हैं। ये गोलियां भी उपरोक्त रोगोंको नष्ट करनेमे मुख्य हैं। तथा बल और मांसको बढानेवाली हैं ॥ ७९-८० ॥

अथ सिंहामृतघृतम् ।

कण्टकार्या गुडूच्याश्च संहरेच्च शतं शतम् । संकुट्टचोदूखले विद्वान् चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ८६ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । त्रिकटुत्रिफलारास्नाविडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥८७॥ काश्मर्याणाञ्च मूलानि पूतीकस्य त्वचा सह । कलिङ्ग इति सर्वाणि सूक्ष्मपिष्टानि कारयेत् ॥ ८८ ॥ अक्षमात्रां पिबेत्प्राज्ञः शालिभिः पयसा हितैः । प्रमेहं मधुमेहञ्च मूत्रकृच्छ्रं भगन्दरम् ॥ ८९ ॥ आलस्यं चान्त्रवृद्धिश्च कुष्ठरोगं विशेषतः । क्षयञ्चैव निहन्त्येतन्नाम्ना सिंहामृतं घृतम् ॥ ९० ॥

सौ सौ तोले कटेरी और गिलोय लेकर चार हजार छियानवे तोले जलमें क्वाथ करे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उसमें एक सेर घी पकावे और पकाते समय उस घीमें सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला रासना, वायविडंग, चीता, खम्भारीकी जड, करंजकी छाल और इन्द्रजौ इनका बारीक चूर्ण करके डाले, यह घी एक तोलाभर सेवन करे और उसके ऊपर दूध चावल खाय तो प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, आलस्य, अन्त्रवृद्धि, कुष्ठरोग और क्षय इनका नाश होता है । इसको 'सिंहामृतघृत कहते हैं ॥८६-९०॥

अथ धान्वन्तरघृतम् ।

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी । वषाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ॥ ९१ ॥ सुधानीपकदम्बाश्च बिल्वं भल्लातकानि च । शटी पुष्करमूलं च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ९२ ॥ पृथग्दशपलान्भागानेतांस्तोयार्मणे पचेत् । यवकोलकुलत्थानां प्रस्थंप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९३ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं पचेद्भिषक् । निचुलं त्रिफला भार्ङ्गी रोहिषं गजपिप्पली ॥ ९४ ॥ शृङ्गबेरं विडङ्गानि वच्यं कम्पिल्लकं तथा । गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेत्तु यथाबलम् ॥ ९५ ॥ एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् । कुष्ठप्रमेहगुल्मांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ॥ ९६ ॥ प्लीहोदराणि चार्शांसि विद्रधिं पिडिकाश्च याः । अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतन्नियच्छति ॥९७॥ पृथक्तोयार्मणे ह्यत्र पचेद्द्रव्याच्छतंशतम् । शतत्रयाधिके तोये व्युत्सर्गः क्रमतो भवेत् ॥ ९८ ॥

दशमूल, दोनों प्रकारकी करञ्ज, देवदारु, हरड, सफेद गदहपूर्णा, वरना, दन्ती, चीता, पुनर्नवा, लाल गदहपूर्णा, दोनों प्रकारके करञ्च, बेल, भिलावे, कचूर, पोहकरमूल और पीपलामूल इन प्रत्येक पदार्थोंका चालीस तोले चूर्ण, चौसठ तोले जौ, चौसठ तोले मिरच और चौसठ तोले कुलथी इनका १०२४ जलमें क्वाथ करे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब इसमें एक सेर (६४ तोले) घी पकावे और उस घीमें पकते समय नीम, त्रिफला, भारंगी रोहिषतृण, गजपीपल सोंठ, वायविडंग, वच और कवीला इनका चूर्ण डाले, इस भांति सिद्ध किया घी 'धान्वन्तरघृत' कहाता है । शरीर आदिके बलके अनुसार यह उत्तम घी सेवन करे तो कोढ, प्रमेह, गुल्म, सूजन, वातरक्त, प्लीहा, उदररोग, विद्रधि, प्रमेहसम्बन्धी, पिडिका, अपस्मार और उन्माद इन सबका नाश होता है ९१-९८

अथार्जुनाद्यघृततैले ।

अर्जुनपटोलनिम्बैः सवचादीप्यकरसासमञ्जिष्ठैः । भल्लातकागुरुघनैः सगदानलचन्दनोशीरैः ॥ ९९ ॥ गोक्षुरकसोमवल्कैर्नवपटोलैर्हरिद्रया त्रिफलाः । अश्मन्तकार्जुनाभ्यां दीप्यकयुक्तेन चैव लोध्रेण ॥ १०० ॥ मञ्जिष्ठातिविषाभ्यां कल्ककषायैः पचेत्तैलम् । कफवातोत्थे मेहे पित्तकृते साधयेत् सर्पिः ॥ १०१ ॥

अर्जुनकी छाल, परवल, नीम, वच, अजवायन, रास्ना, मंजीठ, भिलावे, अगर, मोथा, कूठ, चीता, चन्दन, खस, गोखरू और सफेद कत्था इनका क्वाथ कर उसमें नवीन परवल, हलदी, हरड, बहेडा, आमला, पखान भेद, कोह, अजमोद, लोध, मंजीठ और अतीस इनका कल्क डालकर पकाया हुआ घी 'अर्जुनाद्यघृत' कहाता है। इस घीके उपयोग करनेसे पित्तसम्बन्धी प्रमेह नष्ट होते हैं। इसी क्वाथमें इसी कल्कसे पकाया हुआ तेल अर्जुनाद्यतैल' कहाता है। इस तेलके उपयोग करनेसे कफसम्बन्धी तथा वायुसम्बन्धी प्रमेह दूर होते हैं ॥ ९९-१०१ ॥

अथ सारलेहः ।

सारवर्गकषायं चतुर्थांशावशिष्टमवतार्य परिस्राव्य पुनरपनीय साधयेत्। सिध्यति चामलकलोध्रप्रियङ्गुदन्तीकृष्णायसताम्रचूर्णान्यावपेत् । तदेतददग्धं लेहीभूतमवतार्यानुगुप्तं निदध्यात् । ततो यथायोगमुपयुञ्जीत । एष लेहः सर्वमेहानपहन्ति ॥ १०२ ॥

सारवर्गकी औषधियोंका क्काथ करे, चौथाई पानी शेष रहनेपर उतारलेवे, वस्त्रसे छानकर फिर चूल्हेपर चढादेवे, पकनेपर उसमें आमले, लोध, प्रियंगू, दन्ती, लोहेकी भस्म और तांबेकी भस्म इनका चूर्ण डाले, जब वह अवलेहके सदृश गाढा होजाय तो उसको उतार लेवे जिससे जल न जाय, फिर स्वच्छ पात्रमें करदेवे और योग्य रीतिसे सेवन करे तो इससे सर्वप्रकारके प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १०२ ॥

अथ गोक्षुरकाद्यवलेहः ।

गोकण्टकं सदलमूलफलं गृहीत्वा संकुट्टितं पलशतं क्वथितं तु तोये। पादस्थितेन सलिलेन पलानि दत्त्वा पञ्चाशतं तु विपचेदथ शर्करायाः ॥ १०३ ॥ तस्मिन् घनत्वमुपगच्छति चूर्णितानि दद्यात्पलद्वयमितानि सुभाजनानि । शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलाजातीयकोषककुभत्र पुसीफलानि ॥ १०४ ॥ वांसीपलाष्टकमिह प्रणिधाय नित्यं लेह्यं तु शुद्धममृतं पलसंमितन्तत् । हन्त्याशु मूत्रपरिदाहविबन्धशुक्रकृच्छ्राश्मरीरुधिरमेहमधुप्रमेहान् ॥ १०५ ॥

पत्र, जड, तथा फलसहित चारसौ तोले गोखरू लेवे, भलीभांति कूटकर पानीमें क्वाथ करे, चौथा भाग जल शेष रहनेपर उसमें दोसौ तोले चीनी डालकर पकावे । जब यह पानी गाढा होने लगे तब उसमें सोंठ, पीपल, मिरच नागकेसर, तेजपात, इलायची, जायफल, कंकोल, कोहके फल और खीरेके बीज इन प्रत्येक पदार्थका आठ आठ तोले चूर्ण और बत्तीस तोले वंशलोचनका चूर्ण डालकर उतार लेवे तो 'गोक्षुरकाद्यवलेह' सिद्ध होता है । यह शुद्ध अमृतके सदृश अवलेह नित्य चार तोले चाटे तो मूत्रका दाह, मलबंध वीर्यके दोष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, रक्तप्रमेह और मधुमेह इनको तत्काल नष्ट करता है ॥ १०३ ॥ १०५॥

अथासनादियोगः ।

असनञ्च प्रियालञ्च शालं खदिरकं तथा । शालवर्गं तथा ग्राह्यं भवेच्चैतद्विचक्षणैः ॥ १०६ ॥ मधुमेहत्वमापन्नं भिष-

ग्भिः परिवर्जितम् । योगेनानेन मतिमान्प्रमेहिणमुपाचरेत् ॥ १०७ ॥

पीतसाल, चिरौंटी, शाल, खेर और शालवर्गकी औषधि इनका योगकर बुद्धिमान् वैद्य प्रमेह रोगीका उपचार करे तो जो प्रमेह मधुमेहताको प्राप्त होगया हो तथा जिसकी चिकित्सा अन्य वैद्योंने छोड दी हो, वह प्रमेहभी नष्ट होजाता है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

अथ शिलाजतु-स्वर्णमाक्षिक-रौप्यमाक्षिकप्रयोगाः ।

मासि शुक्रे शुचौ वाऽपि शैलाः सूर्यांशुतापिताः । जतुप्रकाशं स्वरसं शिलाभ्यः प्रस्रवन्ति हि ॥ १०८ ॥ शिलाजत्विति विख्यातं महाव्याधिनिवारणम् । त्रप्वादीनां तु लोहानां षण्णामन्यतमश्च यत् ॥ १०९ ॥ ज्ञेयं स्वगन्धतश्चापि षड्योनिप्रथितं क्षितौ । लोहाद्द्रवतितद्यस्माच्छिलाजतु जतुप्रभम् ॥ ११० ॥ तस्य लोहस्य तद्वीर्यरसं वाऽपि बिभर्त्ति तत् । त्रपुसीसायसादीनि प्रधानान्युत्तरोत्तरम् ॥ १११ ॥ यथा तथा प्रयोगेऽपि श्रेष्ठे श्रेष्ठगुणाः स्मृता । तत्सर्वं तिक्तकटुकं कषायानुरसं सरम् ॥ ॥ ११२ ॥ कटुपाक्युष्णवीर्यञ्च शोषणं छेदनं तथा । तत्र यल्लघु कृष्णाभं स्निग्धं निःशर्करश्च यत् ॥ ११३ ॥ गोमूत्रगन्धि नीलं वा तत्प्रधानञ्च वक्ष्यते । तद्भावितं सारगणैर्हृतदोषं दिनादितः ॥ ११४ ॥ पिबेत्सारोदकेनैव श्लक्ष्णपिष्टं यथाबलम् । जाङ्गलेन रसेनाद्यात्तस्मिञ्जीर्णे तु भोजनम् ॥ ११५ ॥ उपयुज्य तुलामेकाममृतस्यास्य जन्मतः । विजित्य मधुमेहाख्यं मातङ्गं रोगकारकम् ॥ ११६ ॥ वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः । शतंशतं तुलायां तु सहस्रं दशतौलिकम् ॥ ११७ ॥

जेठ अथवा आषाढके महीनेमें सूर्यकी किरणोंसे तपकर पर्वत अपनी शिलाओंमेंसे लाखके सदृश रसको छोडता है वह रस 'शिलाजीत' कहाता है जो महा रोगोंको नष्ट करता है । सीसेसे लेकर लोहेपर्यंत छहों धातुओंका शिलाजीत होता है । इस भाँति शिलाजीत छः प्रकारका है । अपनी अपनी गंधसे परीक्षा करनी चाहिये । जो शिलाजीत लोहसे लाखके सदृश उत्पन्न होता है, उसमें लोहेका रसवीर्य होता है । राँग, सीसा और लोहेसे जो लाखके सदृश शिलाजीत उत्पन्न होते हैं, ये उत्तरोत्तर अधिक गुणवाले हैं । सब प्रकारके शिलाजीतोंमें लोहेका शिलाजीत श्रेष्ठ गुणवाला है । सब प्रकारके शिलाजीत कडवे, चरपरे, कसेले, रसके संबंधी, दस्तावर पाकमें चरपरे, वीर्यमें गरम, शोषण और मलच्छेदक हैं । जो शिलाजीत हलका, काली तथा नीली कांतियुक्त, स्निग्ध, शर्करारहित और गोमूत्रके सदृश गंधवाला हो, वह श्रेष्ठ कहाता है । सारवर्गकी औषधियोंसे भावना देकर बारीक पीस शरीर आदिके बलानुसार सारगणके क्वाथके साथ पीवे और इसके पचनेपर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करे । जन्मसे अमृतके सदृश यह शिलाजीत चारसौ तोले खाय तो इससे मनुष्य महापीडायुक्त मधुमेहनामक हाथीको जीतकर सौ वर्षतक आरोग्यसे जीता है और उसका शरीर, वर्ण तथा बल अति ऊत्तम होता है । जब एकतुला (चारसौ तोले) खानेसे सौ वर्षतककी आयु होती है तो दशतुला खानेसे हजार वर्षकी आयु होती है ॥ १०८–११७ ॥

भल्लातकविधानेन परिहारविधिः स्मृतः । मेहं कुष्ठमपस्मारमुन्मादं श्लीपदं परम् ॥

॥११८॥ शोषं शोफार्शसी गुल्मं पाण्डुतां विषमज्वरम् । व्यपोहत्यचिरात्काला-च्छिलाजतु निषेवितम् ॥ ११९ ॥ न सोऽस्ति रोगो यं वापि न निहन्याच्छि-लाजतु । शर्करां चिरसम्भूतां भिनत्ति च तथाऽश्मरीम् ॥ १२० ॥ भावनालो-डने चास्य कर्त्तव्ये भेषजैर्हितैः । एवं च माक्षिकं धातुं तापीजममृतोपमम् ॥१२१॥ मधुरं काञ्चनाभासमम्लं वा रजतप्रभम् । व्यपोहति जराकुष्ठमेहपाण्ड्वामयक्ष-यान् । तद्भावितान् कुलत्थांश्च कपोतांश्च विवर्जयेत् ॥ १२२ ॥

जितना परहेज भिलावे खानेमें होता है, उतनाही परहेज इसमें करे। शिलाजीतका सेवन करनेसे प्रमेह, कोढ, अपस्मार, उन्माद, श्लीपद, क्षय, सूजन, बवासीर, गुल्म, पांण्डु-रोग और विषज्वर ये तत्काल नष्ट होजाते हैं। जिसको शिलाजीत नष्ट नहीं कर सके, ऐसा कोई भी रोग नहीं है। शिलाजीत अधिक कालसे हुई पथरी शर्कराको भी नष्ट करदेता है। हितकारी औषधियोंमें शिलाजीतकी भावना देवे तथा ऐसी ही औषधियोंमें मिलावे। इसीप्रकार सोनामाखी अथवा रूपा-माखी कि, जो अमृतके तुल्य हैं, उनको सार-गणकी औषधियोंसे भावना देकर सारगणके क्वाथके साथ पीवे तो इससे ज्वर, कोढ, प्रमेह, पाण्डुरोग तथा क्षय, इनका नाश होता है। जो सोनामाखी मधुर हो तथा सुवर्णके सदृश वर्णवाली हो तथा जो रूपामाखी खारी और चाँदीके सदृशवर्णवाली हो वह उत्तम जाननी। सोनामाखी तथा रूपामाखी सेवन करनेवाले कुलथी और कबूतरका मांस त्याग देवें ॥ ११८-१२२ ॥

अथ प्रमेहपिडिकाचिकित्सा।

प्रमेहपिडिकानां प्राक्कार्थं रक्तावसेचनम् । पाटनञ्च विपक्कानां तासां पाने प्रशस्यते ॥ १२३ ॥ क्काथो वनस्पतेर्बस्तमूत्रं तीक्ष्णञ्च शोधनम् । एलादिकेन कल्केन तैलं च व्रणरोपणम् ॥ १२४ ॥ आरग्व-धादिना क्काथं कुर्यादुद्वर्तनानि च । शालसारादिना सेकान् भोज्यादींश्चण-कादिना ॥ १२५ ॥

प्रमेहसम्बन्धी पिडिका हो गई हों, तो प्रथम उनमेंसे रुधिर निकलवावे और पकगई हों, तो शस्त्रसे चिरवाना उत्तम है। वनस्पति-योंके क्वाथसे बकरीके मूत्रसे और तीक्ष्ण पदार्थोंसे पिडिकाओंकी जगह शुद्ध करे। शुद्ध करनेसे पश्चात् इलायची आदि पदार्थोंके कल्कसे पकायाहुआ तेल लगावे कि, जिससे व्रण भर आता है। पिडिकावालेको अमलतास आदिका क्वाथ पिलावे और योग्य पदार्थोंसे उबटन और शालसारादिके योग्य क्वाथसे सेवन करे, पिडिकावालेको चने आदि पदा-र्थोंका भोजन करावे ॥ १२३-१२५ ॥

अथ प्रमेहिणः आरोग्यपरीक्षा।

प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छि-लम् । विशदं तिक्तकटुकं तदाऽऽरोग्यं प्रचक्षते ॥ १२६ ॥

इति प्रमेहपिडिकानिदानचिकित्साधिकारः।

जब प्रमेहरोगीका मूत्र स्वच्छ, पिच्छिलता-रहित, विशद और तिक्त तथा कटुरसंयुक्त हो, तब आरोग्य हुआ जानना ॥ १२६ ॥

इति प्रमेहाधिकारः समाप्तः।

अथ मेदोऽधिकारः।

तत्र मेदोवृद्धिनिदानम्।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः। मधुरान्नारसप्रायैः स्नेहान्मेदो विव-र्द्धते ॥ १ ॥

व्यायाम (कसरत) नहीं करनेसे, दिनमें सोनेके अभ्याससे, कफकारी आहारोंके सेवन करनेसे, मधुर अन्नोंसे, मधुर रसोंसे और घी आदि स्नेहोंके सेवनसे मेदकी वृद्धि होती है ॥ १ ॥

अथ मेदोवृद्धिसम्प्राप्तिः ।

मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात्पुष्यन्त्यन्ये न धातवः । मेदस्तु चीयते तस्मादशक्तः सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

मेदसे मार्ग रुकनेके कारण अन्य धातुओंका पोषण नहीं होता । इससे मेदा बढती जाती है कि, जिससे मनुष्य सब कामोंमें अशक्त होजाता है ॥ २ ॥

अथ मेदोवृद्धिलक्षणम् ।

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः । युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ ३ ॥

जिसके मेदकी वृद्धि हुई हो, वह मनुष्य क्षुद्रश्वास, तृषा, मोह, निद्रा, पीडा, ग्लानि, क्षुधा, पसीना तथा दुर्गन्धतासे युक्त होता है और अल्पशक्तिवाला तथा अल्प मैथुनवाला होजाता है ॥ ३ ॥

मेदस्तु सर्वभूतानामुदरे हि व्यवस्थितम् । अतएवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ ४ ॥

मेद सब प्राणियोंके पेटमें रहती है इसलिये मेदकी वृद्धिवाले मनुष्यका अधिक करके पेट बढजाता है ॥ ४ ॥

मेदसाऽऽवृतमार्गत्वाद्वायुःकोष्ठे विशेषतः । चरन् सन्धुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ५ ॥ तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारञ्चापि कांक्षति । विकारांश्चश्नुते घोरान् कांश्चित्कालविपर्ययात् ॥ ६ ॥ एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ । एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानिलौ यथा ॥ ७ ॥

वायुका मार्ग मेदसे रुकनेके कारण वह वायु विशेष करके कोठेमेंही फिरती रहनेसे अग्निको प्रदीप्त करती है और खाये हुए अन्नको सुखाभी डालती है कि जिससे मेदवृद्धिवाले मनुष्यको आहार तत्काल पच जाता है और फिर भोजन करनेकी इच्छा होती है । कुछ कालके अनन्तर इस मनुष्यके भयंकर विकार भी उत्पन्न होते हैं, अग्नि और वायु ये विशेष करके उपद्रवोंको उत्पन्न करते हैं और जिस प्रकार दावानिल (अग्नि और और वायु) वनको जला देती हैं, उसी प्रकार यह मेद उस मोटे मनुष्यको जला देती है ॥ ५ ॥ ७ ॥

मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः । विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥ ८ ॥ मेदोमांसातिवृद्धत्वाद्वृद्धस्फिगुदरस्तनः । मेदसोऽयथोपचयान्नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥ स्थूले स्युर्दुस्तराः कुष्ठा विसर्पाः सभगन्दराः । ज्वरातीसारमेहार्शःश्लीपदापचिकामलाः ॥ १० ॥ मेदसः स्वेददौर्गन्ध्याज्जायन्ते जन्तवोऽणवः ॥ ११ ॥

मेद अत्यन्त बढनेपर वायु आदि धातु सहसा दारुण विकारोंको उत्पन्न करके तत्काल जीवनका नाश कर देती है, मेद और मांसकी अत्यन्त वृद्धि होनेपर मनुष्यके नितम्ब पेट और स्तन मोटे होते हैं जिसका मेद अयोग्य प्रकारसे बढता हो, वह मनुष्य बहुत मोटा कहाता है । मोटे मनुष्यको कोढ, विसर्प, भगन्दर, ज्वर, अतीसार, प्रमेह, बवासीर, श्लीपद, अपची और कामला ये रोग दुस्तर होजाते हैं । मेदसे पसीनेमें दुर्गन्धता होनेपर सूक्ष्म जीवभी हो जाते हैं ॥ ८-११ ॥

अथ मेदोवृद्धिचिकित्सा ।

पुराणाः शालयो मुद्गाः कुलत्थोद्दालकोद्रवाः । लेखना वस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥ धूमपानं तथा क्रोधो रक्तमोक्षणमेव च ॥ १२ ॥ जीर्णे च भोजनं कार्यं यवगोधूमयोः सदा । उपवासोऽसुखा शय्या सत्त्वौदार्यं तमोजयः ॥ १३ ॥

मेदकी वृद्धिवाला मनुष्य सदा पुराने, चावल, मूँग, कुलथी, वनकुलथी और कोदा तथा लेखनवस्ति इनका सेवन करे। यह मनुष्य धूमपान, क्रोध तथा रक्तमोक्षण इनका सेवन करें। उपवास, सुख न हो ऐसी शय्यामें शयन, मनकी उदारता और निद्रा आदि तमोगुणके जीतनेसे स्थूलता नष्ट होजाती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

सन्तर्पणकृतैर्दोषैः स्थौल्याद्युक्त्या विमुच्यते । श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ॥१४॥ हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनः । सचव्यजीरकव्योषहिंगुसौवर्चलानलाः । मस्तुनाः सक्तवःपीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥१५॥

स्थूलता कि जो अत्यन्त तृप्त करनेवाले दोषोंसे हुई है, उससे मुक्त होनेके लिये यह युक्ति कि–परिश्रम मैथुन, मार्ग, मदिरा और रात्रि जागरण इनसे प्रेम रक्खे, चिन्तामें तत्पर रहे और जौ तथा समेके भोजन करे; ऐसा मनुष्य अपनी अत्यन्त स्थूलताको अवश्य नष्ट कर देता है। चव्य, जीरा, त्रिकुटा, हींग, कालानोंन ओर चीता इनका चूर्ण डालकर दहीके पानीके साथ सत्त पीवे तो इससे मेद नष्ट होजाती है और अग्नि दीप्त होती है॥१४-१५॥

फलत्रयं त्रिकटुकं सतैलं लवणान्वितम् ॥ १६ ॥ षण्मासादुपयोगेन कफमेदोऽनिलापहम्। विडंगं नागरं क्षारः काललोहरजो मधु ॥ १७ ॥ यवामलकचूर्णैस्तु योगोऽयं स्थौल्यनाशनः। मूलं वा त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं मधूदकम् ॥ १८ ॥ बिल्वादिपञ्चमूलस्य प्रयोगः क्षौद्रसंयुतः । अतिस्थौल्यहर प्रोक्तो मण्डलं सेवितो ध्रुवम् ॥ १९ ॥

हरड, बहेडा, आमला सोंठ, मिर्च, पीपल, तेल और लवण इनको छः महीनेतक भली भांति उपयोग करे तो इससे कफ, मेद तथा वायु नष्ट होती है। वायविडंग, सोंठ, जवाखार, कांतिसार जो तथा आमला इनके चूर्णमें सहत मिलाकर खाय तो इससे अत्यन्त स्थूलता नष्ट होती है। ली अथवा त्रिफलेका चूर्ण सहतमें मिलाकर सहत मिले पानीके साथ सेवन करे अथवा बृहत्पञ्चमूलका चूर्ण सहतमें मिलाकर खाय, इस प्रकार जो चालीस दिनतक करे तो इससे अवश्य अत्यन्तस्थूलता नष्ट होती है ॥ १६ ॥ १९ ॥

कर्कशदलवह्निसलिलं शतपुष्पाहिङ्गुसंयुक्तम्। पुटके निहन्ति नियतं सर्वभवां मेदसां वृद्धिम् ॥ २० ॥ क्षारं वातारिपत्रस्य हिंगुयुक्तं पिबेन्नरः । मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तं मण्डसमन्वितम् ॥ २१ ॥

परवल और चीता इनका क्वाथ कर, इसमें सौंफ तथा हींगका चूर्ण डालकर पीवे तो इससे पेटमें सब प्रकारसे हुई मेदकी वृद्धि अवश्य नष्ट होती है अथवा एरंडका क्षार हींग डालकर पीवे और ऊपरसे मांडसहित भात खाय तो इससे मेदकी वृद्धि नष्ट हो जाती है ॥ २० ॥ २१ ॥

गवेधुकनां पिष्टानां यवनाश्चाथ सक्तवः। सक्षौद्रत्रिफलाक्काथाः पीता मेदोहरा मताः ॥ २२ ॥ गुडूची त्रिफलाक्काथस्तथा लोहरजोऽन्वितः । अश्मजं महि-

षाक्षं वा तेनैव विधिना पचेत् । अतिमुक्ताद्बीजमध्यं मधुलीढं हन्त्युदरवृद्धिम् ॥ २३ ॥

गवेधुक मुनियोंके खानेका अन्नविशेष अथवा जौके सत्तू और त्रिफलेके क्वाथमें सहत डालकर पीवे तो इससे मेद वृद्धि दूर होती है। गिलोय, हरड, बहेडा और आमला इनके क्वाथमें लोहभस्म डालकर पीवे तो मेदकी वृद्धि नष्ट होती है। शिलाजीत अथवा गूगलको उपरोक्त गिलोय आदिके क्वाथमें पकाकर खाय तो मेदकी वृद्धि दूर होती है। कुन्दपुष्पभेद या माधवीलता के बीजके मध्यभागको सहतमें मिलाकर चाटनेसे मेदोवृद्धि दूर होती ॥ २२ ॥ २३ ॥

मधुना चित्रकमूलं तथैव हितभोजनो भुङ्क्ते। यद्वा रुबूकमूलं मधुदिग्धं स्थाप्यते निशांसकलाम् । तस्य सलिलस्य पानाज्जठरे वृद्धिः शमं याति ॥ २४ ॥ प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् । उष्ममन्नस्य मण्डं वा पिबन् कृशतनुर्भवेत् ॥ २५ ॥

चीतेकी जडका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटे अथवा एरंडकी जडको रात्रिभर सहतमें भीजा रहने देवे, उसके रसको प्रातःकाल पीवे और हितकारी भोजनका नियम रक्खे तो उदरकी वृद्धि नष्ट होती है। प्रातःकाल नित्य सहत मिलाकर जल पीवे तो मोटापन दूर होता है। पकाये हुए भातका गरम मांड पीवे तो शरीर कृश होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

बदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता । स्थौल्यनुत्स्यादग्निमन्थरसक्वाथः शिलाजतु ॥ २६ ॥ शैलेयकुष्ठागुरुदेवदारुकौन्तीसमुस्तान्यथ पञ्चपत्रैः। श्रीवासपृक्का खरपुष्पदेवपुष्पं तथा सर्वमिदं प्रपिष्य ॥ २७ ॥ धत्तूरपत्रस्य रसेन गाढमुद्वर्तनं स्थौल्यहरं प्रदिष्टम् ॥२८॥

बेरके पत्तोंका कल्क डालकर, कांजीसे पकाई पेया सेवन करे तो इससे मेदकी वृद्धि दूर होती है। अथवा अरनीके क्वाथमें शिलाजीत डालकर पीवे तो इससे स्थूलता नष्ट होती है। शिलाजीत, कूठ, अगर, देव दारु, रेणुकानामक सुगन्धितद्रव्य, मोथा, श्रीवासस्पृक्का, पिंडशाक, ब्राह्मी और लौंग इन सबको धतूरेके पत्तोंके रससे पीसकर शरीरको भली भांति मले तो स्थूलता नष्ट होती है ॥२६॥२८॥

अथामृतादिगुग्गुलुः।

अमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं कलिपथ्यामलकानि गुग्गुलुः। क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं पिडिकास्थौल्यभगन्दराञ्जयेत् ॥ २९ ॥

गिलोय एक भाग, इलायची दो भाग, वायविडंग तीन भाग, इन्द्रजौ चार भाग, बहेडा पांच भाग, हरड छः भाग, आमला सात भाग और गूगल आठ भाग इनको सहतमें मिलाकर खाय तो इससे पिडिका, स्थूलता और भगन्दर इनका नाश होता है ॥ २९ ॥

अथ दशाङ्गगुग्गुलुः।

व्योषाग्नित्रिफलामुस्ताविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् । खादन्सर्वाञ्जयेद्व्याधीन्मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥३०॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, मोथा और वायविडंग इनका चूर्णकर सबके बराबर गूगल मिलाकर खाय तो मेद, कफ आम और वायु इनसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

अथ त्र्यूषणादिगुग्गुलुः।

त्र्यूषणाग्निवनवेल्लवचाभिर्भक्षयन् समघृतं महिषाक्षम् । आशु हन्ति कफमारुतमेदोदोषजान्बलवतोऽपि विकारान् ॥ ३१ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, चीता, मोथा और वच इनका, चूर्ण गूगलमें डालकर गूगलके बराबर घी मिलावे तो 'त्र्यूषणादि गूगल' सिद्ध होता है। यह गूगल कफसे वायुसे तथा मेदके दोषोंसे हुए बलवान् विकारोंको तत्काल नष्ट करता है ॥ ३१ ॥

अथ लोहरसायनम् ।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खदिरं वृषम्। त्रिवृताऽलम्बुषी शुण्ठी निर्गुण्डी चित्रकस्तथा॥३२॥एषां दशपलान्भागां-स्तोये पञ्चाढके पचेत्। पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत्॥३३॥पल द्वाद-शकं देयं रुक्मलोहं सुचूर्णितम् ॥ ३४ ॥ पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलान्वितम्। पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते ॥ ३५ ॥ प्रस्थार्द्धं माक्षिकं देयं शिला-जतु पलद्वयम् । एलात्वचः पलार्द्धञ्च विडङ्गानि पलत्रयम् ॥ ३६ ॥ मरिचा-ञ्जनकृष्णे द्वे द्विपलञ्च फलान्वितम्। पलद्वयन्तु कासीसं सूक्ष्मचूर्णीकृतं बुधैः ॥ ३७ ॥ चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्। ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रकम् ॥ ३८ ॥ अनुपानं पिबेत्क्षीरं जाङ्गलानां रसं तथा। वात-श्लेष्महरं श्रेष्ठं कुष्ठमेहोदरापहम् ॥३९॥ कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुं सभगन्द-रम्। मूर्च्छामोहविषोन्मादगराणि विष-माणि च ॥ ४० ॥ स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे परमौषधम्। कर्षयेच्चाति-मात्रेण कुक्षिं पातालसन्निभम् ॥ ४१ ॥ बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम्। श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् ॥ ॥४२॥ नाश्नीयात्कदलीं कन्दं काञ्जिकं करमर्दकम्। करीरं कारवेलञ्च कक-रादि विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

गूगल, मुसली, बहेडा, आमला, खैर, अडूसेकी छाल,निसोत, गोरखमुंडी, सोंठ, निर्गुडी और चीता ये प्रत्येक पदार्थ चालीस चालीस तोले लेकर पाँच आढक (बीस सेर) जलमें काथ करे, चौथा भाग जल शेष रहे, तब क्वाथको उतार उसमें भली भाँति चूर्णित किया हुआ (अडतालील तोले) कांतलोह, चौंसठ तोले पुराना घी और बत्तीस तोले शर्करा (बूरा, चीनी) डालकर तांबेके पात्रमें फिर उसका क्वाथ करे, शीतल होजानेपर उतार लेवे, फिर उसमें बत्तीस तोले सहत, आठ तोले शिलाजीत, दो तोले इलायची, दो तोले दालचीनी, बारह तोले बायविडंग, आठ तोले मिर्च, आठ तोले रसौत, चार तोले पीपल और आठ तोले कसीस, इनका चूर्ण डाल मथकर स्निग्ध पात्रमें उसको रक्खे तो 'लोहरसायन' सिद्ध होता है। वमन विरेचनादिसे शरीरको शुद्ध करके उसमेंसे एक तोलाभर खाय और उसके ऊपर दूध तथा जांगल देशके जीवोंके मांसका रस पीवे। यह रसायन श्रेष्ठ है और वायु, कफ कोढ, प्रमेह, उदररोग, कामला, पांडुरोग, सूजन, भगन्दर, मूर्च्छामोह, विषा उन्माद और विषम विषको भी नष्ट करता है। यह रसायन स्थूलताको कर्षण करनेवाला उत्तम उपाय है। मेदरोगीकी परम औषधि है, पातालके सदृश पेटको अत्यन्त पतला करनेवाला है तथा बलदायक, बुद्धिको स्वच्छ करनेवाला, उत्तम वाजीकरण, लक्ष्मीदायक, पुत्रदाता और वलीपलितनाशक है। इस रसायनको सेवन करनेवालेको केला कन्द, काँजी, करौंदे, करील, करेला इत्यादि ककार त्याग करना चाहिये ॥ ३२-४३ ॥

अथ लौहारिष्टः ।

शालसारादिनिर्यूहं चतुर्थांशावशेषितम्। परिस्रुतं ततः शीतं मधुना मधुरीकृतम्

॥४४॥ फाणितीभावमापन्ने गुडे शोधितमेव च । सूक्ष्मपिष्टानि चूर्णानि पिप्पल्यादेर्गणस्य च ॥ ४५ ॥ ऐकध्यमावपेत्कुम्भे संस्कृते घृतभाविते । पिप्पलीचूर्णमधुभिः प्रलिप्ते चान्तरे शुचौ ॥ ॥ ४६ ॥ श्लक्ष्णानि तीक्ष्णलोहस्य तनुपत्राणि बुद्धिमान् । खदिराङ्गारतप्तानि बहुशः प्रक्षिपेद्बुधः ॥ ४७ ॥ सुपिधानं ततःकृत्वा यवखल्वे निधापयेत् । मासांस्त्रींश्चतुरो वाऽपि यावद्वा लोहसंक्षयात् ॥ ॥ ४८ ॥ ततो जातरसं जन्तुः प्रातः प्रातर्यथाबलम् । उपयुञ्ज्याद्यथायोग्यमाहारं चास्य कल्पयेत् ॥ ४९ ॥ एष स्थूलं समाकर्षेन्नष्टस्याग्नेः प्रशोधनः । शोथघ्नःकुष्ठमेहघ्नो गुल्मपाण्ड्वामयापहः ॥ ५० ॥ प्लीहोदरहरःशीघ्रं विषमज्वरनाशनः । अभिष्यन्दापहरणे लोहारिष्टो महागुणः ॥ ५१ ॥

शालसार आदि औषधियोंका क्वाथ कर चौथा भाग जल शेष रहनेपर वस्त्रसे छान लेवे फिर शीतल होनेपर सहत डालकर मधुर करे, पश्चात् गुडकी चासनीकर पिप्पल्यादि गणका चूर्ण और वह क्वाथ मिलावे । फिर घी चुपडे पवित्र पात्रमें पीपलका चूर्ण और सहत लगाकर उसको रक्खे, पश्चात् बुद्धिमान् वैद्य तीक्ष्ण लोहके पतले पत्रोंको खैरकी अग्निमें बारम्बार तपातपाकर उसमें डाले, फिर पात्रका मुख भली भाँति बन्दकर उस घडेको तीन चार महीनेतक अथवा जबतक लोहा गले, तबतक जौके ढेरमें रक्खे, यह सब लोहा उसमें रसरूप होजाय तो 'लौहारिष्ट' सिद्ध होता है । शरीरादिकके बलानुसार प्रातःकाल यह लोहारिष्ट पीवे और उसके ऊपर योग्य आहार करे तो लौहारिष्ट स्थूल शरीरको पतला करदेता है, नष्ट हुई जठराग्निको प्रदीप्त करता है और सूजन, कोढ, प्रमेह, गुल्म, पाण्डुरोग, प्लीहा, उदररोग, इनको नष्ट करता है, विषमज्वरको तत्काल नष्ट करता है और अभिष्यन्दको दूर करनेमें अधिक गुण करता है ॥ ४४-५१ ॥

अथ व्योषाद्यसक्तुप्रयोगः ।

व्योषचित्रकशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम् । बृहत्यौ द्वे हरिद्रे च पाठामतिविषां स्थिराम् ॥ ५२ ॥ हिङ्गुक्रमुकमूलानि यवानीं धान्यचित्रकम् । सौवर्चलमजाजीश्च हपुषाश्चेति चूर्णयेत् ॥ ५३ ॥ चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाःस्युर्मानतःसमाः । सक्तूनां षोडशगुणे भागे सन्तर्पणं पिबेत् ॥ ५४ ॥ प्रयोगात्त्वस्य शाम्यन्ति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः । प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामलाः ॥ ५५ ॥ प्लीहा पाण्ड्वामयःशोथो मूत्रकृच्छ्रमरोचकः । हृद्रोगो राजयक्ष्मा च कासश्वासौ गलग्रहः ॥ ५६ ॥ कृमयो ग्रहणीदोषःश्वैत्यं स्थौल्यमतीव च । नराणां दीप्यते वह्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ ५७ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, दोनोंचीता, सहँजना, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, दोनों प्रकारकी कटेरी, हलदी, दारुहलदी, पाढ, अतीस, शालपर्णी, हींग, सुपारीकी जड, अजवायन, धनियाँ, कालानोंन, जीरा और हाऊबेर इनका चूर्ण करे, पश्चात् इस चूर्णको घीके और सहतके समान ले सोलह गुने सत्तू डालकर पीवें । इस प्रयोगसे तृप्तिसे हुए रोग 'प्रमेह' मूढवात, कोढ बवासीर, कामला, प्लीहा, पाण्डुरोग, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृदयरोग, क्षयरोग खाँसी, श्वास, गलग्रह, कृमि, ग्रहणी, श्वेतकोढ और अत्यन्त स्थूलता ये नष्ट होते हैं, अग्नि दीप्त होती है और बुद्धि तथा स्मरणशक्ति बढती है ॥ ५२-५७ ॥

अथ त्रिफलाद्यतैलम्।

त्रिफलाऽऽतिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः। निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ ५८ ॥ गुडूचीन्द्रासुरीकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः। तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसादिरसप्लुतम् ॥ ५९ ॥ पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यवस्तिषु योजितम्। स्थूलतालस्यपाण्डवादीञ्जयेत्कफकृतामयान् ॥ ६० ॥

हरड, बहेडा, आमला, मूर्वा, निसोत, चीता, अडूसा, नीम, अमलतास, वच, सतवन, हलदी, गिलोय, इन्द्रवारुणी, पीपल, कूठ सरसों और सोंठ इनको समान भाग लेकर इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल सुरसादिगणके क्वाथके साथ पीनेमें, अभ्यङ्गमें, गण्डूष धारण (कुल्ले करने) में नस्यमें और पिचकारी देनेमें उपयोग करे तो इससे स्थूलता आलस्य तथा पाण्डुता आदि कफसम्बन्धी सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ५८-६० ॥

महासुगन्धितैलम्।

चन्दनं कुकुंमोशीरप्रियङ्गुत्रुटिरोचनाः। तुरुष्कागुरुकस्तूरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥ ६१ ॥ जातीकङ्कोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च। नलिका नलदं कुष्ठं हरेणु तगरं प्लवम् ॥ ६२ ॥ नवव्याघ्रनखं स्पृक्का बोलो दमनकं तथा। स्थौणेयकं चोरकं च शैलेयं सैलवालुकम् ॥ ६३ ॥ सरलं सप्तपर्णं च लाक्षा तामलकी तथा। लामज्जकं पद्मकञ्च धातक्याः कुसुमानि च ॥ ६४ ॥ प्रपौण्डरीकं कर्चूरं समांशैः शाणमात्रकैः। महासुगन्धमित्येतत्तैलप्रस्थेन साधयेत् ॥ ६५ ॥ प्रस्वेदमलदौर्गन्धकण्डूकुष्ठहरं परम्। अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा ॥ ६६ ॥ युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः। सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदाशतम् ॥ ६७ ॥ वन्ध्याऽपि लभते गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते। अपुत्री पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ६८ ॥

चन्दन, केसर, खस, प्रियंगु, इलायची, गोरोचन, लोबान, अगर, कस्तूरी, कपूर, जावित्री, जायफल कंकोल, सुपारी, लौंग, नली, जटामाँसी, कूठ, रेणुका, तगर, नागरमोथा, व्याघ्रका नवीन नख, स्पृक्का, बोल, दौना, स्यौणेयक, चोरक, शैलेय, एलुआ, सरल, सतवन, लाख, आमला, लामज्जक तृण, पद्माख, धायके फूल, पुंडरीक और कचूर ये प्रत्येक पदार्थ तीन तीन मासे लेकर इससे चौंसठ तोले तैल पकावे तो ' महासुगन्धि तैल' सिद्ध होता है। इस तेलसे पसीना, मलसे हुई दुर्गन्धता, खुजली तथा कोढ भली भांति नष्ट होता है। इस तेलका अभ्यंग (मालिश) करे तो सत्तर वर्षका वृद्ध भी युवा, अधिक वीर्यवान्, स्त्रियोंको अत्यन्त प्रिय, भाग्यवान, सुन्दर और सौ स्त्रियोंसे संग करनेको समर्थ होता है वन्ध्या स्त्रियोंके गर्भ रहता है, नपुंसक पुरुषताको प्राप्त होता है, विना पुत्रवाली स्त्रीके पुत्रकी प्राप्ति होती है और आयु सौ वर्षकी होती है ॥ ६१-६८ ॥

वासादलरसो लेपाच्छङ्खचूर्णेन संयुतः। बिल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनं ॥ ६९ ॥

अडूसेके पत्तोंके रसमें शंखका चूना मिलाकर लेप करनेसे अथवा बेलके पत्तोंके स्वरसका लेप करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध दूर होती है ॥ ६९ ॥

अलम्बुषाभवं चूर्णं पीतं काञ्जिकसंयुतम्। दौर्गन्ध्यं नाशयत्याशु दृष्टं मेदोभवं नृणाम् ॥७०॥

गोरखमुंडीको पीसकर कांजीके साथ पीनेसे मेदसे उत्पन्न हुई मनुष्यकी दुर्गंध दूर होती है ॥ ७० ॥

बिल्वशिवासमभागा लेपाद्भुजमूलगन्धमपहरति । परिणतपिडिकामपि पूतिकरञ्जोत्थबीजं वा ॥७१॥

बेलके पत्ते और हरड इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बगलकी दुर्गन्ध दूर होती है और पूतिकरंजके बीजको पीस लेप करनेसे पक्वपिडिकाभी नष्ट होजाती है ॥ ७१ ॥

चिञ्चापत्रस्वरसं म्रक्षितकल्कादियोजितं जयति । हस्वहरिद्रोद्वर्तनमचिराच्चिरदेहदौर्गन्ध्यम् ॥ ७२ ॥

इमलीके पत्तोंका रस निकालकर किसी उत्तम औषधिके कल्कके साथ मिलाकर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध दूर होती है । हलदीको दूधमें पीसकर उसका शरीरलेप करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध बहुत दिनोंकी हो तो भी दूर होजाती है ॥ ७२ ॥

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोपसंस्वेदहरः प्रघर्षः । पत्राम्बुलौहाभयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ॥ ७३ ॥

सिरस, लामज्जक, नागकेशर और लोध इनका चूर्ण करके शरीरपर मलनेसे त्वचाके दोष और पसीना दूर होजाता है। बेलके पत्ते, सुगन्धवाला, काली अगर, खस और चन्दन इनको पीसकर शरीरपर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥ ७३ ॥

हिलमोचिरसो युक्तश्चूर्णैरुदधिफेनजैः । प्रलेपेन हरत्याशु देहदौर्गन्ध्यमुत्कटम् ॥७४॥

समुद्रफेनको ब्राह्मीके रसमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे शरीरकी विशेष दुर्गंध तत्काल नष्ट होजाती है ॥ ७४ ॥

हरीतकीं तु सम्पिष्य गात्रमुद्वर्तयेन्नरः । पश्चात् स्नानं प्रकुर्वीत देहस्वेदप्रशान्तये ॥ ७५ ॥

हरडोंको पीसकर शरीरपर मलकर पश्चात् स्नान करनेसे शरीरका पसीना बन्द होता है ॥ ७५ ॥

हरीतकी लोध्रमरिष्टपत्रं चूतत्वचो दाडिमवल्कलञ्च । एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां जम्ब्वाः कषायस्तु नराधिपानाम् ॥ ७६ ॥

हरड, लोध, नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनारकी छाल इनको पीसकर स्त्री और पुरुषोंके शरीरपर मलनेसे शरीरकी दुर्गंधता दूर होती है । जामुनके पत्तोंका कल्क बनाकर उसका लेप करनेसे राजाओंके शरीरकी दुर्गन्धता दूर होती है ॥ ७६ ॥

गोमूत्रपिष्टं विनिहन्ति कुष्ठं वर्णोज्ज्वलं गोपयसा च युक्तम् । कक्षादिदौर्गन्ध्यहरं पयोभिः शस्तं वशीकृद्रजनीद्वयेन ॥ ७७ ॥

हरड, लोध, नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनारकी छाल इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कोढ दूर होजाता है । गायके दूधमें पीसकर लेप करनेसे वर्ण उज्ज्वल होता है। जलमें पीसकर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध दूर होती है और हलदी तथा दारुहलदीके साथ पीसकर लेप करनेसे उत्तम वशीकरण होता है ॥ ७७ ॥

बब्बुलस्य दलैः सम्यग्वारिणा परिपेषितैः । गात्रमुद्वर्त्तयेत्पश्चाद्धरीतक्या सुपिष्टया ॥ ७८ ॥ भूय उद्वर्त्तनं कृत्वा पश्चात्स्नानं समाचरेत् । प्रस्वेदान्मुच्यते शीघ्रं ततस्त्वेवं समाचरेत् ॥ ७९ ॥

बबूरके पत्तोंको उत्तम प्रकारसे जलमें पीसकर शरीरपर मले, फिर हरडको जलमें पीसकर उससे शरीरको मले और इन दोनों पदार्थोंको मलनेके बाद स्नान करे तो पसीनेकी अधिकता तत्काल दूर होजाती है ॥७८॥७९॥

अथ मलयानिलधूपः ।

[बिल्वाम्रजम्बूफलपूरकाणां पत्रैः कपित्थस्य दलानुमिश्रैः । अनूपवत्कर्मविधानयोगैर्वचा विशोध्या वरगन्धहेतोः ॥ ८० ॥] पथ्यानखी चन्दनकुष्ठसर्जैः पुनः पुनश्चागुरुशर्कराभ्याम् । धूपो जनानां हृदयापहारी विख्यात नामा मलयानिलोऽयम् ॥ ८१ ॥

स्नान करनेके पश्चात् हरड, छोटी नखी, चन्दन, कूठ, राल, अगर और खांड इनकी धूप बारंबार देवे, इससे शरीरमें सुगन्ध उत्पन्न होती है। मनुष्योंके चित्तको हरनेवाला यह धूप 'मलयानिल' इस नामसे प्रसिद्ध है ॥८०॥८१॥

चण्डांशुगतिलैर्लोध्रशिरीषोशीरकेसरैः । उद्वर्त्तनं भवेद्ग्रीष्मे स्वेदकर्मनिवारणम् ॥ ८२ ॥

दारुहलदी, तिल, लोध, सिरसकी छाल, खस और केसर इनको पीसकर शरीरपर मलनेसे ग्रीष्म ऋतुमें पसीनेका अधिक आना बन्द होता है ॥ ८२ ॥

सुरया सममभयाफलचूर्णं मधुना विलिह्य प्रत्यूषे । स्वेदान् हत्वा लभते पुरुषोऽप्यत्यन्तसौरभ्यम् ॥ ८३ ॥ मल्लीकुसुमाभयकरिलेपो घर्मे विचर्चिका दाहे । विचकिलपत्रहरिद्रे पर्कटिपत्रश्च दूर्वया सहितम् ॥ ८४ ॥ सम्पिष्य गात्रलेपाद्घर्मविचर्ची शमं याति ॥ ८५ ॥

हरडके चूर्णको मद्य अथवा सहतके साथ चाटे तो पसीना दूर होकर अत्यन्त सुगन्ध आती है। पसीना अधिक आता हो और विचर्चिका तथा दाह हो तो मोतियाके पत्ते, सुगन्धवाला और नागकेसर इनका लेप करे। मोतियके पत्ते, हलदी, जल पीपलके पत्ते और दाख इनको पीसकर लेप करनेसे पसीना और विचर्चिका दूर होती है ॥ ८३-८५ ॥

हस्तपादस्रुतौ योज्यं गुग्गुलुः पञ्चतिक्तकम् । अशक्तौ पञ्चतिक्तं वा पक्कं खादेदतन्द्रितः ॥ ८६ ॥

इति मेदोधिकारः ।

जो हाथ पाँव पसीजते हों तो गूगल और पञ्चतिक्त नामक सिद्ध किये घीका उपयोग करे। शरीरमें शक्ति न हो तो पथ्यसे रहकर पंचतिक्तघृतको भक्षण करे ॥ ८६ ॥

इति मेदोऽधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ कार्श्याधिकारः ।

तत्र कृशतानिदानम् ।

वातो रूक्षान्नपानानि लंघनं प्रमिताशनम् । क्रियातियोगःशोकश्च वेगनिद्राविनिग्रहः ॥ १ ॥ नित्यं रोगो रतिर्नित्यं व्यायामो भोजनाल्पता । भीतिर्घनादिचिन्ता च कार्श्ये कारणमीरितम् ॥२॥

लंघनम्—उपवासः । प्रमितम्—अल्पम् । क्रियातियोगः—वमनविरेकाद्यतिविधानम् । वेगनिद्राविनिग्रहः—निद्रानिग्रहः विशोषाय ॥

वायु, रूक्ष अन्नपान, लंघन, अल्पभोजन-वमन तथा विरेचन आदि क्रियाओंका अतियोग, शोक, मूत्र आदिके वेगोंका रोकना, निद्राका रोकना, सर्वदा रोग, नित्य मैथुन, नित्य कसरत, भोजनका थोडा मिलना भय और धनआदिचिंता इनसे कृशता (दुर्बलापन) होती है, निद्राको रोकनेसे तुरन्त कृशता होती ॥ १ ॥ २ ॥

अथ कृशलक्षणम् ।

शुष्कस्फिगुदरग्रीवाधमनीजालसन्ततिः। त्वगस्थिशेषोऽतिकृशःस्थूलपर्वाननो-मतः ॥ ३ ॥

जिसका नितम्ब, पेट तथा गरदन सूखी हुई हो, शरीरमें नसोंका जालदीखता हो, त्वचा, हड्डियां ही शेष हों तथा संधियाँ और मुख मोटा हो, वह मनुष्य अत्यन्त कृश कहाता है ॥ ३ ॥

अथात्यन्तकृशतारोगाः ।

प्लीहकासक्षयश्वासगुल्मार्शांस्युदराणि च । भृशं कृशं प्रधावन्ति रोगाश्च ग्रहणीमुखाः । कश्चिदन्यः कृशोऽतीव बलवान् दृश्यते तदा ॥ ४ ॥

अत्यन्त कृश मनुष्यको प्लीहा, खाँसी, श्वास, गुल्म, बवासीर, उदररोग और ग्रहणी आदि रोग दौडकर प्राप्त होते हैं । कोई कोई कृश मनुष्य भी अत्यन्त बलवान् दीखते हैं ॥ ४ ॥

अथसत्यपि कृशत्त्वे बलवत्त्वकारणम् ।

आधानसमये यस्य शुक्रभागोऽधिको भवेत् । मेदोभागस्तु हीनः स्यात् स कृशोऽपि महाबलः ॥ ५ ॥

यस्य आधानसमये जनयितुः शुक्रस्य आधिक्यं भवति, मेदसोऽल्पता तस्य कृशस्यापि बहुबलमित्यर्थः ॥

गर्भाधानके समय जिसमें पिताके वीर्यका भाग अधिक आया हो और मेदका भाग अल्प हो, वह मनुष्य कृश होनेपर भी बहुत बलवाला होता है ॥ ५ ॥

अथ सत्यामपि स्थूलतायां बलहीनत्वकारणम् ।

मेदसस्त्वधिको यस्य शुक्रभागोऽल्पको भवेत् । स स्निग्धोऽपि सुपुष्टोऽपि बलहीनो विलोक्यते ॥ ६ ॥ व्याख्यानं पूर्ववत् ॥

गर्भाधानके समय जिसमें पिताके वीर्यका भाग अल्प आया हो और मेदका भाग अधिक हो, वह मनुष्य भली भांति स्निग्ध होनेपर और भली भांति पुष्ट होनेपर भी बलहीन देखनेमें आता है ॥ ६ ॥

अथ कार्श्यचिकित्सा ।

रूक्षान्नादिनिमित्ते तु कृशे युञ्जीत भेषजम् । बृंहणं बलकृद्वृष्यं तथा वाजीकरञ्च यत् ॥ ७ ॥ पीताश्वगन्धा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा । कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य शस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ ८ ॥

जो मनुष्य रूक्ष अन्नपानादिसे कृश हुआ हो, उसको बलदायक, धातुओंको पुष्ट करनेवाले, मैथुनमें रुचिकर्ता और वाजीकरण औषधि देवे । अथवा एक पक्षतक दूधके साथ घीके साथ, तेलके साथ अथवा उष्ण जलके साथ ही असगन्धका चूर्ण पीवे तो जिस प्रकार जलकी वृष्टिके छोटे धान्योंकी पुष्टता होती है उसी प्रकार उसके शरीरकी पुष्टता होती है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथाश्वगन्धातैलम् ।

अश्वगन्धस्य कल्केन क्वाथे तस्मिन् पयस्यपि । सिद्धं तैलं कृशाङ्गानामभ्यङ्गादंगपुष्टिदम् ॥ ९ ॥

असगन्धके क्वाथमें दूध तथा असगन्धका ही कल्क डालकर पकाये हुए तेलसे अभ्यंग करे तो मनुष्यके अंग पुष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

अथाश्वगन्धाघृतादि ।

पुष्टिकृद्बालरोगोक्तमश्वगन्धाघृतं भजेत् । वाजीकरोदितं तद्वदश्वगन्धाघृतादिकम् ॥ १० ॥

बालकोंके रोगमें जो अश्वगन्धाघृत कहेंगे, वे तथा वाजीकरणके प्रकरणमें जो अश्वगन्धाघृतादि कहेंगे वे सब पुष्टिकारक हैं ॥ १० ॥

अथासाध्यकृशता।

स्वभावादतिकार्श्यो यः स्वभावादल्पपावकः। स्वभावादबलो यश्च तस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥ ११ ॥

इति कार्श्याधिकारः।

जो मनुष्य स्वाभाविक रीतिसेही अत्यन्त कृश हो, अल्प अग्निवाला हो और निर्बल हो, वह असाध्य है उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ ११ ॥

इति कार्श्यचिकित्साधिकारः समाप्तः।

अथोदररोगाधिकारः।

तत्रोदरनिदानम्।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च। अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसञ्चयात् ॥ १ ॥

अग्नौ मन्दे सर्वे रोगाः जायन्ते। किन्तु सुतराम् अतिशयेन उदराणि जायन्ते। अपरानपि हेतूनाह—अजीर्णात् मलिनैश्चान्नैः अत्यंतदोषजनकैः। मलसञ्चयात मलादीनां पुरीषस्य च अतिवृद्धेः।'

यदि जठराग्नि मन्द होगई हो तो सम्पूर्ण रोग होते हैं और उनमें उदरके रोग तो अत्यंत होते हैं। अजीर्णसे, अत्यन्त दोष उत्पन्न करनेवाले अन्नोंसे और दोष तथा विष्ठाकी अत्यन्त वृद्धिसे भी उदररोग होते हैं ॥ १ ॥

अत्र उदरशब्देन उदरस्थो रोग उच्यते। यतआह—अर्थतो धर्मतः साम्यात्तत्समीपतयापि च। तत्साहचर्याच्छब्दानां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा ॥ २ ॥

मूलमें केवल उदर शब्द है, परन्तु उस शब्दसे यहाँ उदरमें रहनेवाले रोग जानने, क्योंकि कहा है कि-कहीं अर्थसे, कहीं धर्मसे तथा उस पदार्थमें रहनेसे, कहीं समीपमें रहनेसे और कहीं साथ रहनेसे इस भांति शब्दोंकी वृत्ति चार प्रकारकी मानी जाती है ॥ २ ॥

अथोदररोगसम्प्राप्तिः।

रुध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषःस्रोतांसि सञ्चिताः। प्राणाग्न्यपानान्संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ ३ ॥

संचित हुए दोष पसीना तथा जलको वहन करनेवाले स्रोतोंको रोककर जठराग्नि, प्राणवायु और अपानवायुको दूषित करके उदरके रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

अथोदररोगसामान्यरूपम्।

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाऽग्निता। शोथः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः। दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ॥ ४ ॥

अफारा, चलनेमें अशक्तता, दुर्बलता, अग्निकी मन्दता, सूजन, अंगोंमें ग्लानि, वायु विष्ठाका अवरोध, दाह और तन्द्रा ये लक्षण सर्व प्रकारके उदररोगोंमें होते हैं ॥ ४ ॥

अथोदररोगनिदानपूर्वकसंख्या।

पृथग्दोषैःसमस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः। सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिंगं पृथक्छृणु ॥ ५ ॥

वात, पित्त, कफ, तीनों दोष, प्लीहा, गुदाका अवरोध क्षत और पेटमें पानीकी एकत्रता इनसे आठ प्रकारके उदररोग होते हैं। इन आठ प्रकारके उदर रोगोंके अनुक्रमसे १ वातोदर, पित्तोदर, ३ कफोदर, ४ सन्निपातोदर, ५ प्लीहोदर, ६ बद्धोदर, ७ क्षतोदर और ८ जलोदर इस भाँति आठ नाम हैं। इनके पृथक् पृथक् लक्षण कहते हैं सुनो ॥५॥

अथ लक्षणम्। १

तत्र वातोदरे शोथःपाणिपन्नाभिकुक्षिषु। कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् ॥६॥

शुष्ककासोऽङ्गमर्दश्च गुरुता मलसंग्रहः । श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्रासवद्धि- मत् ॥ ७ ॥ सतोदभेदमुदरं तनुकृष्ण- शिराततम् । आध्मातदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च । वायुश्चात्र सरुक्छब्दो विचरेत्सर्वतोगतिः ॥ ८ ॥

कुक्षिपार्श्वोदरेत्यत्र कुक्षिशब्दउदरस्यवाम- दक्षिणभागद्वयवाची । सर्वतोगतिः सकलकोष्ठे सञ्चरन् ॥

वातोदर हुआ हो तो हाथ, पांव, नाभि तथा पेटमें सूजन होती है । पेटकी दोनों पसलियों- में कोखमें, पेट तथा कमर और पीठमें पीडा होती है, सन्धियाँ टूटती हैं, सूखी खाँसी होती है तथा अंगोंका टूटना, भारीपन, मलोंका संग्रह, त्वाचा आदिमें कालापन तथा लाली, पीडाका अकस्मात् बढना घटना, पेटमें छेदना तथा भेदनेकी भाँति पीडा, पेटका काली सूक्ष्म नसोंसे व्याप्त होना, पेटको हाथसे बजानेपर फूली मशककासा शब्द हो और सब कोठोंमें वायु विचरती हुई पीडा तथा शब्द करती है । ये लक्षण होते हैं ॥ ६-८ ॥

अथ पित्तोदरलक्षणम् । २

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुका- स्यता । भ्रमोऽतिसारःपीतत्वं त्वगादावु- दरं हरि ॥९॥ पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते । धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्र- पाकं प्रदूयते ॥ १० ॥

हरित–शाकवर्णात्मकम् । सोष्म–अन्तस्ता- पयुक्तम् । दह्यते–बहिर्दाहयु भवतिक्तं । धूमा- यते–धूममिव उद्वमति । क्षिप्रपाकं क्षिप्रपाका- ज्जलोदरं जायते । प्रदूयते–व्यथते ॥

पित्तोदर हुआ हो तो ज्वर, मूर्च्छा, दाह, तृषा, मुखमें तीखापन, भ्रम, अतीसार त्वचा आदिमें पीलापन होता है । पेट शाककी भाँति हरे वर्णवाला, पीली तथा लाल नसोंसे बँधे हुएके समान, पसीने सहित हो, भीतर उष्ण- तायुक्त हो, बाहर दाह हो और आंतोंसे धुआँ- सा निकलता हो, स्पर्शमें मृदु, पाक शीघ्र हो और पीडायुक्त होता है तथा तुरन्त पकजा- वे, उससे जलोदर होजाता है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ कफोदरलक्षणम् । ३

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं श्वयथुर्गौरवं तथा । तन्द्रोत्क्लेशोऽरुचिःस्वापः कासः शौक्ल्यं त्वगादिषु ॥ ११ ॥ उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत् । चिरा- भिवृद्धं कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ १२ ॥

गौरवमङ्गानाम् । तन्द्रा–निद्रावाहुल्यम् । उत्क्लेशः–हृल्लासः । स्वापः–स्पर्शाज्ञता । शुक्लराजीततम्शुक्लशिराव्याप्तम् ॥

कफोदर हुआ होय तो अंगोंमें ग्लानि सूजन, गुरुता, तन्द्रा, उत्क्लेश (वमन होनेवा- लीसी ज्ञात हो,) अरुचि, अंगोंमें स्पर्श कर- नेसे मालूम न हो, खासी, त्वचादिक श्वेत हो और पेट बँधासा, चिकना, सफेद नसोंसे व्याप्त, मोटा, अधिककालमें बढनेवाला, कठो- र, स्पर्शमें शीतल, भारी तथा गडगडाहटरहित हो, ये लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ सन्निपातोदरलक्षणम् । ४

स्त्रियोऽन्नपानं नखलोममूत्रविडार्तवैर्युक्तम- साधुवृत्ताः । यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषिविषसेवनाच्च ॥१३॥ तस्याशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुघोरं जठरं त्रिलिङ्गम् । तच्छीतवाते भृशदुर्दिने च विशेषतः कुप्यति दह्यते च ॥ १४ ॥ स चातुरो मूर्च्छति हि प्रसक्तं पाण्डुःकृशः शुष्यति तृष्णया च । दूष्योदरं कीर्तित- मेतदेव प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध॥१५॥

स्त्रिय इत्यविवेकिसन्निहितजनोपलक्षणम्। ताश्च स्वसौभाग्यमिच्छन्त्यः। विट मार्जारादीनाम्। आर्तवं रजः अरयः शत्रवः। गरान् संयोगजानि विषाणि। दुष्टमम्बु सविषमत्स्यतृणपर्णादियुक्तम्। दूषीविषं विषमेव अग्न्याद्युपघातेन स्वल्पप्रभावम्। यत् उक्तम् " जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा। स्वभावतो वा गुणविप्रयुक्तं विषं हि दूषीविषतामुपैति " इति। गुणविप्रयुक्तम्-गुणवियुक्तम्। तदुदरं शीतादिषु कुप्यति तत्र दूषीविषस्य प्रकोपात्। मूर्च्छति विष योगात्। प्रसक्तं निरन्तरम्। एतदेव सन्निपातोदरं तन्त्रान्तरे दूष्योदरं कीर्तितम्। अथवा परस्परं दूष्यन्ति दोषा एव दूष्याः तैः कृतम् उदरं दूष्योदरम्॥

खोटे आचरणयुक्त स्त्री-वशीकरण आदि कीइच्छासे जिस पुरुषको नख, रोम, मूत्र विष्ठा, रजोदर्शनका रक्त इनसे युक्तकिया हुआ अन्न खिलावे, उस पुरुषको अन्य भी पापी अविवेकी मनुष्य जिसको ऐसा अन्न खिलावे, उसको शत्रु जिसके संयोगसे विष खिलावे, अथवा विषैली मछली, विषैले पत्ते आदिका पानी जो पीवे उसको दूषित विष (अग्निआदिसे उपघात होनेके कारण स्वल्प प्रभाव युक्त विष) जिसके खानेपीनेमें आवे उसके कुपित हुआ रुधिर और कुपित हुआ दोष तत्काल त्रिदोषोंके चिह्नयुक्त अति भयंकर उदररोगको उत्पन्न करता है। यह उदररोग शीतल-पवनके समयमें और जिस समय अधिक बादल घिरे हों, उस समय विशेष करके कुपित होता है तथा दाह और मूर्छित भी कर देता है, क्योंकि, इन समयोंमें दूषित विषका प्रकोप होता है तथा विषके योगसे मूर्छा होना भी सम्भव है। यह रोगी मनुष्य नित्य पाण्डु, कृश और तृषासे व्याकुल रहता है। यह उदररोग 'सन्निपातोदर' कहाता है और अन्य ग्रन्थोंमें इसको 'दूष्योदर' इस नामसे भी कहा है। परस्पर दूषित हुए दोष भी दूष्य कहाते हैं, इस कारण दूष्यके किये उदररोगको 'दूष्योदर' भी कहा है। अब प्लीहोदरके लक्षण कहते हैं, सुनो॥ १३-१५॥

अथ प्लीहोदरलक्षणम्। ५

वर्द्धते प्लीहवृद्ध्या यद्विद्यात्प्लीहोदरं हि तत्। तद्वामे वर्द्धते पार्श्वे निमित्तं तत्र तस्य यत्॥१६॥ प्रवृद्धे प्लीह्नि लिङ्गानि यान्युक्तानि भिषग्वरैः। प्लीहोदरेऽपि दृश्यन्ते, तानि सर्वाणि देहिनाम्। प्लीहोदरस्यैव भेदो यकृद्दाल्युदरं तथा॥ १७॥

प्लीहाके बढनेसे पेट जो बढ जाता है, उसको 'प्लीहोदर' कहते हैं। प्लीहा बांई पसलीमें होती है, इससे पेट भी वामओरका बढता है। उत्तम वैद्योंने प्लीहा बढनेके जो लक्षण कहे हैं, वे लक्षण सब प्राणियोंके प्लीहोदर नामक रोगमें दीखते हैं। 'यकृद्दाल्युदर' नामक जो उदररोगका एक भेद है, वह भी प्लीहोदरकी एक जाति है॥१६॥१७॥

तस्य पुनरपि विशेषकमित्याह।

सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रवृद्धे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव॥ १८॥

यकृदालयति दोषैर्भिनत्तीति यकृद्दाल्युदरम्। तदेव उदरमेव॥

प्लीहोदरसे यकृद्दाल्युदरमें पृथकता इतनीही है कि, जो दाहिनी ओरकी गांठ है, वह 'यकृत्' कहाती है। उसके बढनेसे दाहिनी ओरका पेट बढ जाता है,उसको 'यकृद्दाल्युदर' कहते हैं। इस रोगमें दोषोंके कारण यकृत्

भिद जाता है, इसलिये इस रोगका नाम 'यकृद्दाल्युदर' है ॥ १८ ॥

अथ बद्धगुदोदरलक्षणम् । ६

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् । सञ्चीयते तस्य मलः सदोषः शनैः शनैः सङ्करवच्च नाड्याम् ॥ १९ ॥ निरुध्यते यस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् । हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति ॥ २० ॥

उपलेपिभिः-शाकशालूकादिभिः । बालाश्मभिः-वालुकाभिः शर्करैवा यथावत्तस्य सम्भवति । मलः-पुरीषम् । संकरवत्-संमार्जनीक्षिप्ततृणधूल्यादिवत् । नाड्याम्-अन्त्रनाड्याम् । हृन्नाभिमध्ये हृन्नाभ्योमध्ये ॥

अन्न, शाक तथा कमलकन्द आदि चिपटनेवाले पदार्थोंसे रेत अथवा पथरीसे आंते अत्यन्त ढक जायँ जिस प्रकार बुहारी आदिसे बुहारा हुआ कूडा बढता है उसीप्रकार दोषयुक्त मल आंतोंकी नाडीमें एकत्र होजाय, गुदामें विष्ठा रुकजाय, धीरे धीरे थोडी थोड़ी विष्ठा निकले और हृदय तथा नाभिके मध्यमें पेटकी वृद्धि हो, यह 'बद्धगुदोदर' कहाता है ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ क्षतोदरलक्षणम् । ७

शल्यं तथाऽन्नोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा । तस्मात् स्रुतोऽन्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥ २१ ॥ नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् । एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं क्षतोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ २२ ॥

शल्यं कण्टकशर्करादि । अन्नोपहितं भुक्तं यदन्त्रं भिनत्ति । तथा अन्यथा आगतं भोजनं विना आगतम् । शरादितरथापि यदन्त्रं भिनत्ति तत उपलक्षणम् । जृम्भणमत्यशनं वा यदन्त्रं भिनत्ति । यत उक्तं चरके-

शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्नसंयुतैः । भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तं जृम्भयाऽत्यशनेन चेत् २३ तस्मात् भिन्नादन्त्रात् । गुदतस्तु भूयः अन्त्रात् संभृत्य पुनर्गुदतः स्रवेदित्यर्थः । दाल्यति विदार्यति । एवं पदसिद्धिरार्षत्वात् । एतत् क्षतोदरं तन्त्रान्तरे परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं कथितम् ॥

अन्नके साथ खाया हुआ अथवा किसी अन्य प्रकारसे पेटमें गया कांटा आदि आंतोंमें छिलकर उन आँतोंमेंसे पानीके सदृश पीछे गुदासे स्रवे और नाभिसे नीचेके भागमें पेट बढ जाय, सुई छेदनेकीसी पीडा हो और चीरनेके सदृश क्षातहो, इसको 'क्षतोदर' कहते हैं । इस क्षतोदरकोही अन्यग्रन्थोंमें परिस्राव्युदर' इस नामसे कहा है । जँभाई आनेसे अथवा अल्प भोजन करनेसे अति छिदें और आंतोंमेंसे पानीके सदृश स्राव हो तथा वह स्राव पीछे गुदामेंसे निकले, यह भी क्षतोदरही कहाता है । क्योंकि चरकमें कहा है कि "रेता, तृण, काष्ठ, हड्डी अथवा कांटा अन्नके साथ पेटमें जानेसे अथवा जम्भाई आनेसे वा अल्प भोजन करनेसे आंत छिदकर आंतोंमेंसे निकाला स्राव पीछे गुदामें स्रवे, उसको क्षतोदर कहते हैं" ॥ २१ ॥ २३ ॥

अथोदकोदरलक्षणम् । ८

यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः । पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दूष्यन्ति हि तद्वहानि ॥ २४ ॥ स्नेहोपलिप्तेष्वथ

वापि तेषूदकोदरं पूर्ववदभ्युपैति । स्निग्धं महत्तत्परिवृत्तनाभि समन्ततः पूर्णमिवाम्बुना च । यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते वाप्युदकोदरं तत् ॥२५॥

स्नेहपीतः पीतः इत्यत्राध्यवसितादित्वात् कर्तरियुक्तः स्नेहपीत इति पुनरार्षप्रयोगः। तेन स्नेहं पीतवानित्यर्थः। अनुवासितो वा गृहीतानुवासनवस्तिः। वान्तः अत्रापि पूर्ववत् कर्तरिक्तः, तेन वान्तवानित्यर्थः। एवं विरिक्तः विरिक्तवान्। तथा निरूढः गृहीतनिरूहवस्तिः स चेदाशु शीतलं जलं पिवेत्, तस्य तद्वहानि जलवहानि स्रोतांसि दूष्यन्ति, जलवहेषु स्रोतःसु दुष्टेषु सत्सु अन्नरसे उपस्नेहन्यायेन- बाहानःस्रुतोदकोदरमायाति। तथापि जले बहिर्निःस्रुते उदकोदरमायाति। तदुदरम् परिवृत्तनाभिगम्भीरनाभि समन्ततः जलमपयाति सर्वतः यथा दृतिः चर्ममयं जलाहरणपात्रं क्षुभ्यति। अन्तर्जलदोलनेन संचति कम्पते बहिः शब्दायते कम्पमानं तत शब्दं करोति ॥

स्नेहपान, अनुवासनवस्ति, वमन, विरेचन अथवा निरूहवस्ति लेकर, जो मनुष्य तुरन्त शीतल जल पीवे,उसके जलको वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते हैं और वह स्रोत दूषित होनेपर जल युक्त पकाये हुए अन्नमें सूक्ष्म घीके सदृश बाहर निकलकर पेटमें आते हैं तथा पेटमें आकर गुदामें बाहर निकलने लगते हैं, इसको 'उदकोदर' कहते हैं। इससे पेट नाभिसे ऊँचा चारों और जलसे पूर्ण हुआ होता है, भीतरका जल चलनेसे पानीकी भरी मशककी भांति क्षोभ करता है, बाहर हिलता है और हिलनेसे शब्द भी होता है ॥२४॥२५॥

अथोदररोगसाध्यासाध्यता।

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम्। बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥२६॥

बलिनः अजाताम्बु नवोत्थितञ्च यत्नसाध्यमित्यन्वयः ॥

अधिक करके ऊपर कहे सब प्रकारके उदररोग कष्ट साध्यही होते हैं। रोगी बलवान् हो, उदरमें जल उत्पन्न नहीं हुआ हो और तत्कालका उत्पन्न हुआ रोग हो, वह यत्न करनेसे सिद्ध होता है ॥ २६ ॥

पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा। प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम् ॥२७॥

शरादिना छिद्रमन्त्रं यस्य तदुदरम् आभावाय भवति ॥

बद्धगुदनामक उदररोग एक पक्षसे अधिकके होनेपर विशेष करके मृत्यु कर देता है, कांटे आदिसे आंतमें छिद्र होगया हो, वह उदररोग भी अधिक करके मारही डालता है॥ २७॥

पयःपूर्णो दृतिरिव क्षोभे शब्दकरं मृदु। अप्रव्यक्तशिराशून्यं नीरार्तमुदरं महत् ॥ २८ ॥ आलस्यमास्यवैरस्यं मूत्रं बहुशकृद्द्रुतम्। जातोदकस्य लिङ्गं स्यान्मन्दाग्निः पाण्डुतापि च ॥ २९ ॥ शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम्। बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणञ्चवर्जयेत् ॥ ३० ॥

कुटिलोपस्थम्--वक्रमेहनम्। उपक्लिन्नतनुत्वचम्उपरि आर्द्रा तन्वी त्वक् यस्य त उदरिणं विवर्जयेत् ॥

पेटमें पानी उत्पन्न हुआ जिन लक्षणोंसे जाना जाय वे लक्षण चरक कहता है-"जो पेट बडा होगया हो क्षोभ पानेपर पानीसे परिपूर्ण मशकके सदृश शब्द करता हो, मृदु हो बहुत मोटा होनेके कारण अस्फुट शिराओंवाला हो तो जानना कि, इसमें पानी उत्पन्न होगया है। आलस्य, मुखकी विरसता, मूत्रकी अधिकता, विष्ठाका पतला होना अग्निकी मन्दता और शरीरकी पाण्डुता ये हो तो भी जानना कि, पेटमें पानी उत्पन्न होगया है।" जिस उदर रोगीके नेत्र सूज गये हों, लिंग टेढा हो गया हो, त्वचा पतली तथा गीली हो गई हो और बल, रुधिर, मांस तथा अग्नि क्षीण होगई हो, उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ २८ ॥ ३० ॥

पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम् । विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्ज-येत् ॥ ३१ ॥

विरिक्तमपिपूर्यमाणोदरम् उदरिणं विवर्जयेत् ॥

जिस उदररोगीकी पसली टूटगई हो तथा जिसकी अन्नमें अरुचि हो, सूजन तथा दस्त होते हों और विरेचन देनेपर भी पेट पूर्ण होगया हो, उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥३१॥

अथोदररोगचिकित्सा ।

एरण्डतैलं दशमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तं त्रिफलारसो वा । निहन्ति वातोदरशोथ-शूलं क्वाथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥३२॥

अण्डीका तेल. दशमूलका क्वाथ मिलाकर अथवा गोमूत्र त्रिफलेका रस मिलाकर वा दशमूलके क्वाथमें गोमूत्र मिलाकर पीवे तो इससे वायुसम्बन्धी उदररोग सूजन तथा शूल नष्ट होता है ॥ ३२ ॥

अथ कुष्ठादिचूर्णम् ।

कुष्ठं दन्ती यवक्षारो व्योषं त्रिलवणं वचा । अजाजी दीप्यकं हिङ्गु स्वर्जिका चव्यचित्रकम् । शुण्ठी चोष्णाम्भसा पीता वातोदररुजापहा ॥ ३३ ॥

कूठ, दन्ती, जवाखार सोंठ, मिरच, पीपल, सैंधा, सांभर, सोंचरनोन, वच, जीरा, अजवायन, हींग, सज्जी, चव्य, चीता और सोंठ इनका चूर्णकर उष्ण जलसे पीवे तो वायुसम्बन्धी उदररोग नष्ट होता है। इसको 'कुष्ठादिचूर्ण' कहते हैं ॥ ३३ ॥

अथ लशुनतैलम् ।

लशुनस्य तुलामेकां जलद्रोणे विपाचयेत् । त्रिकटु त्रिफला दन्ती हिङ्गु सैन्धवचित्रकम् ॥ ३४ ॥ देवदारु वचा कुष्ठं मधु शिग्रुः पुनर्नवा । सौवर्चलं विडङ्गानि दीप्यको गजपिप्पली ॥३५॥ एतेषां पलिकान् भागांस्त्रिवृतः षट्पलानि च । पिष्ट्वा कषायेणानेन तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ३६ ॥ तत्पिबेत्प्रातरुत्थाय यथाग्निबलमात्रया । निहन्ति सकलान् रोगानुदराणि विशेषतः ॥ ३७ ॥ मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिं गुदक्रिमीन् । पार्श्वकुक्षिभवं शूलमामशूलमरोचकम् ॥ ॥ ३८ ॥ यकृदष्ठीलिकानाहान् प्लीहानं चाङ्गवेदनाम् । मासमात्रेण नश्यन्ति अशीतिर्वातजा गदाः ॥ ३९ ॥

चारसौ तोले लहसनका १०२४ तोले जलमें क्वाथ करे। पश्चात् सोंठ, मिर्च पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दन्ती, हींग, सैंधा, चीता, देवदारु, वच, कूठ. मुलहठी, सहँजना, पुनर्नवा, सोंचरनोन, वायविडंग, अजवायन तथा गजपीपल ये प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले भर और निसोत २४ तोले लेकर पीस लेवे, यह कल्क उस क्वाथमें डालकर कोमल अग्निसे तैल पकावे। प्रातःकाल उठकर अग्नि तथा बलानुसार योग्य मात्रासे यह तेल पीवे

तो इससे सब रोग नष्ट होते हैं और उदररोग विशेष करके दूर होते हैं। मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त, अन्त्रवृद्धि, गुदाकी कृमि, पसली तथा कोखला शूल, आमशूल, अरुचि, यकृत्, अष्ठीलिका, आनाह, प्लीहा और अङ्गमें हुई पीडा इस तेलके प्रयोगसे नष्ट होती है। तथा वायुसंबंधी अस्सी प्रकारके वायुरोग एक महीनेतक तेलका सेवन करनेसे नष्ट होते हैं। इसको 'लशुनतैल' कहते हैं ॥ ३४-३९ ॥

अथ पित्तोदरकफोदरचिकित्सा ।

पित्तोदरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत्। पयसा च त्रिवृत्कल्कै रुबूकस्य शृतेन च ॥४०॥ पिप्पल्यादिगणेनाज्यं पाचितं पाययेद्भिषक् । नरं पथ्यभुजं नित्यं कफोदरनिवृत्तये ॥४१॥ नागरत्रिफलाकल्कैर्दध्यम्बुपरिपेषितैः । पाचितं तैलमाज्यं वा पिबेत्सर्वोदरेषु च ॥ ४२ ॥

पित्तसम्बन्धी उदररोग हुआ हो और रोगी बलवान् हो तो उसको प्रथमही दूध, निसोतका कल्क और अण्डीका क्वाथ इनसे विरेचन देवे। यदि उदररोग कफसे हुआ हो तो रोग नष्ट करनेके लिये नित्य पथ्य खानेका रोगी नियम रक्खे, वैद्य पिप्पली आदि गणकी औषधियोंसे पकाया हुआ तेल पिलावे। सोंठ, हरड, बहेडा तथा आमला इनको दहीके पानीमें पीस कल्क करे, फिर उस कल्कसे पकाया हुआ तेल वा घी पिलावे तो सब उदररोग नष्ट होजाते हैं। ये 'नागरादि तैल वा घृत' इन नामोंसे कहे हैं ॥ ४० ४२ ॥

शालिषष्टिकगोधूमयवनीवारभोजनम् । निरूहोरेचनं श्रेष्ठं सर्वेषु जठरेषु च ॥ ॥ ४३ ॥ आनूपमौदकं मांसं शाकं पिष्टकृतं तिलाः। व्यायामाध्वदिवास्वप्नस्नेहपानानि वर्जयेत् ॥ ४४ ॥

शालिचावल, सांठीके चावल, गेहूँ, जौ तथा नीवार इनका भोजन, निरूहवस्ति और विरेचन ये सब विधि उदररोगोंमें हितकारी हैं। अथवा उदररोगी अनूप देशके जीवोंका तथा जलजंतुओंका मांस, शाक, पिठ्ठीसे बने पदार्थ, तिल, व्यायाम, मार्गका चलना, दिनमें सोना और स्नेहपान इनका त्याग करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

तथोग्रलवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च । नाद्यादन्नानि जठरे तोयपानञ्च वर्जयेत् ॥ ४५ ॥ उदराणां मलाढ्यत्वाद्बहुशः शोधनं हितम्। क्षीरगेरण्डजं तैलं पिबेन्मूत्रेण वा शकृत् ॥ ४६ ॥

उदररोग हुआ हो तो—तीक्ष्ण, खारा, गरम, दाहदायक और भारी पदार्थ नहीं खाय तथा पानीभी नहीं पीवे। इस रोगमें पेट अधिकवार विरेचन समूहसे युक्त रहता है। इस कारण अधिकवार विरेचनसे शुद्ध करे, यह हितकारी होता है। दूधमें अण्डीका तेल मिलाकर पीवे अथवा गायका गोबर मूत्रमें डालकर पीवे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम्। शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥ ४७ ॥ यवानीहपुषाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी । सन्निपातोदरी युक्तं त्रिकटुक्षारसैन्धवैः ॥ ४८ ॥

वायुसे हुआ उदररोगी-पीपल तथा सैंधा इनका चूर्ण डालकर गाढा तक्र पीवे। पित्तसे हुआ उदररोगी--बूरा तथा मिरचोंको डालकर मीठा मठ्ठा पीवे। कफसे हुआ उदररोगी--अजवाथन, हाऊबेर, जीरा, सोंठ, मिरच तथा पीपल इनका चूर्ण डालकर गाढा मठ्ठा पीवे और त्रिदोष से हुआ उदररोगी–सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार और सैंधानिमक इनका चूर्ण डालकर गाढा मठ्ठा पीवे ॥ ४८ ॥

अथ नारायणचूर्णम् ।

यवानी हपुषा धान्यं त्रिफला चोपकुञ्चिका । कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा ॥ ४९ ॥

उपकुञ्चिका कारवा च बृहज्जीरकः 'मगरला' इति लोके ॥

शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी च चित्रकम् । द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ ५० ॥ विडङ्गञ्च समांशानि दन्त्या भागत्रयं भवेत् । त्रिवृद्विशाला द्विगुण शातलास्याच्चतुर्गुणा ॥ ५१ ॥

विशाला-इन्द्रवारुणी । शातला 'सेहुण्ड इति प्रसिद्धः ॥

एष नारायणो नाम्ना चूर्णो रोगगणापहः । एनं प्राप्य निवर्तन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥ ५२ ॥

अजवायन, हाऊबेर, धनियां, हरड, बहेडा, आमला, कालाजीरा, कलौंजी, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, वच, सतावर, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, चौक, चीता, जवाखार, सज्जी, पोहकरमूल, कूठ, पांचोंनोंन और वायविडंग इनको समान भाग लेवे, तथा दन्ती तीन भाग, निसोत दो भाग, इन्द्रायन दो भाग और थूहर चार भाग लेवे, फिर इन सबका चूर्ण करे तो 'नारायणचूर्ण' बनता है। यह चूर्ण रोगोंके समूहको नष्ट करता है। जिस प्रकार विष्णुके प्रभावसे दैत्य भागजाते जाते हैं, उसी प्रकार इस चूर्णके प्रभावसे रोग भागजाते हैं ॥ ४९-५२ ॥

तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना । आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ ५३ ॥ दधिमण्डेन विड्भेदे दाडिमाम्बुभिरर्शसि । परिकर्तिषु वृक्षाम्लेरुष्णाम्बभिरजीर्णके ॥ ५४ ॥

परिकर्तिः--गुदे परिकर्तनवत्पीडा ।

यह चूर्ण उदररोगवाला--गाढे मट्ठेके साथ पीवे। गुल्म रोगी-बेरकी छालके क्वाथसे पीवे । आनाहरोगमें-मदिराके साथ पीवे। वायुरोगवाला-मदिराकी कांजीके साथ पीवे। दस्तोंमे दहीके मण्डसे पीवे । बवासीररोगवाला-दाडिमके रससे पीवे। पेटमें कतरनेकेसी पीडा हो तो तिंतडीकसे पीवे और अजीर्ण रोगी गरम पानीके साथ पीवे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे । हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुब्जे मन्देऽनले ज्वरे ॥ ५५॥ दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे । यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ५६ ॥

भगंदर, पांडुरोग, खांसी, श्वास, गलगण्ड, हृदयरोग, ग्रहणीरोग, कुब्जवातरोग, मन्दाग्नि, ज्वर, दांतका विष, मूलका विष और अकृत्रिम विषसे बनाये हुए विष इनमें भी प्रथम कोठेको स्निग्ध करके पश्चात् योग्य पदार्थके साथ विरेचन करनेवाला 'नारायणचूर्ण पीवे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अथ नाराचघृतम् ।

स्नुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडङ्गसिंहीत्रिवृच्चित्रिककर्षकर्षम् । घृतं विपकं कुडवप्रमाणं तोयेन तस्याक्षमथार्धकर्षम् ॥ ॥ ५७ ॥ पीत्वोष्णमम्भोऽनु पिबेद्विरेके पेयां रसं वा प्रपिबेद्विधिज्ञः । नाराचमेतज्जठरामयानां युक्त्योपयुक्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ५८ ॥

थूहरका दूध, दन्ती, हरड, बहेडा, आमला, वायविडंग, कटेरीकी जड, निसोत और चिता ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोलाभर ले, उनके कल्कसे सोलह तोले घी पकावे तो

'नाराचघृत' सिद्ध होता है। विरेचनके लिये पानीके साथ एक तोला अथवा आधा तोला घी पीकर ऊपरसे गरम पानी पीवे। विधि जाननेवाला पुरुष इस घीसे विरेचन होनेपर योग्य पेया अथवा योग्य रस पीवे। जिस प्रकार बाण निशानको तोडता है, उसी प्रकार युक्तिसे उपयोगमें लाया हुआ यह घी उदरके रोगोंको नष्ट कर देता है, ऐसा वैद्य कहते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ वज्रकल्कः ।

वज्रायाः कर्षमात्रायाःकल्कं दध्यादिवेष्टितम् । निगिलेद्वारिणा नित्यमुदरव्याधिशान्तये ॥ ५९ ॥

वज्रा--वज्राण्डीति 'बनसूरण' इति लोके।

वनसूरणका एक तोला कल्क करके उस कल्कको दही वगैरहसे मिलाकर नित्य पानीसे खावे तो उदररोग शांत होते हैं ॥ ५९ ॥

अथ पुनर्नवादिक्काथः ।

पुनर्नवा दारुनिशा सतिक्ता पटोलपथ्यापिचुमन्दमुस्ताः । सनागरच्छिन्नरुहेति सर्वैः कृतः कषायो विधिना विधिज्ञैः ॥ ॥ ६० ॥ गोमूत्रयुग्गुग्गुलुना च युक्तः पीतः प्रभाते नियतं नराणाम् । सर्वांग शोथोपरपाण्डुशूलश्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ६१ ॥

इति उदररोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

पुनर्नवा, दारुहलदी कुटकी, परवल, हरड नीम, मोथा, सोंठ और गिलोय इन सब पदार्थोंको एकत्र करके विधिके अनुसार क्वाथ करे, उस क्वाथमें गोमूत्र तथा गूगल डालकर प्रातःकाल पीवे तो इससे सब प्रकारके अंगकी सूजन, उदररोग, पाण्डुरोग, शूलरोग और श्वास आदि रोगोंका समूह अवश्य नष्ट होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति उदररोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ शोथाधिकारः ।

अत्र शोथनिदानम् ।

शुद्ध्यामयाभक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा । दध्याममृच्छाकविरोधिपिष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ ॥ १ ॥ अर्शांस्यचेष्टा वपुषो ह्यशुद्धिर्मर्माभिघातो विषमा प्रसूतिः । मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणाञ्च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥ २ ॥

शुद्धिः—वमनविरेकादिः आमयाः—पाण्डुरोगादयः । अभक्तम्--अभोजनम् । आमः—अपक्वो भुक्तस्य रसः । पिष्टगरोपसृष्टान्नम्-पिष्टो यो गरः संयोगजं विषं तेन संसृष्टमन्नम् । वपुषोऽशुद्धिः शोधनार्हस्य वपुषोऽशोधनम् । मर्मोपघातः दोषकृत एव ज्ञेयः । बाह्यहेतुकृतस्तु मर्मोपघातः आगन्तुजशोथ हेतुरेव । विषमाः प्रसूतिः--आमगर्भपतनादिका । प्रतिकर्मणाम्--वमनादिपञ्चकर्मणाम् । मिथ्योपचारः—असम्यक्करणम् । श्वयथोः—शोथस्य । निजस्य - आत्मीयस्य सन्निकृष्टस्य । हेतुः--वाताद्यात्मकस्य उक्तः ॥

वमन, बिरेचन आदि शोधनसे, पाण्डुरोगादि रोगोंसे अथवा उपवासोंसे कृश हुए अथवा निर्बल हुए लोगोंके सूजन होती हैं। खारे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण अथवा भारी पदार्थोंको सेवन करनेसे भी सूजन होती है। दहीके सेवनसे, खाये हुए अन्नके अपक्व रससे, मट्टी, शाक, परस्परमें विरुद्ध अथवा संयोगसे विरुद्ध हुए ऐसे अन्नोंके सेवनसे, बवासीरसे, शरीरको परिश्रम नहीं होनेसे, शोधनके योग्य हुए मर्मस्थलोंके उपघातसे, कच्चा गर्भ गिरना आदि विषम प्रसवसे और वमन आदि पांचों कर्म अयोग्य रीतिके होनेसे, वायु आदि दोष-

सम्बन्धी सूजन उत्पन्न होती है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ शोथस्य सम्प्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम् ।

रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान्बहिःशिराः। नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥ उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः ॥ ३ ॥ सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माऽथ शिरातनुत्वम् । सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिंगं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ४ ॥

उत्सेधम्- उन्नतत्वम् । किंविशिष्टम् उत्सेधम् अतः--पूर्वोक्तान्निचयाद्रक्तपित्तकफवातानां समुदायात् । संहतग घनम् । तमुत्सेधं शोथमाहुरित्यन्वयः । तस्य शोथस्य किं स्यात्, ? इत्याकांक्षायामाह--अनवस्थितत्वं स्यात्, । अनियता स्थितिः स्यादित्यर्थः । चिकित्साव्यतिरेकेणापि निवृत्तेः । तच्च अनवस्थितत्वं सगौरवं स्यात् गौरवमपि अनवस्थितं स्यात् । अथ च सोत्सेधं स्यात् । उन्नतत्वमपि अनवस्थितं स्यादित्यर्थः ॥

दूषित वायु रुधिर, पित्त तथा कफ यह बाहरकी शिराओंमें प्राप्त हो. और गति रुकजाय तो त्वचा तथा मांससे रुधिर, पित्त तथा कफके समुदायसे अधिक ऊंचाईको उत्पन्न करती है, उसको सूजन कहते हैं। इस सूजनकी स्थिति अनियमित होती है । क्योंकि वह सूजन समयपर चिकित्सा न होनेसे भी उतर जाती है, यह अनियमितपन गुरुतायुक्त होती है, भारीपन भी विना नियमके होता है और सूजनकी ऊँचाई भी विना व्यवस्थाके होती है । सूजनसे उष्णता, शिराओंकी दुर्बलता. रोमोंका खडा होना और वर्णका बदलना ये सामान्य लक्षण सूजनमें होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ वातजशोथलक्षणम् ।

चरस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः प्रसुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः। प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवाबली स्याच्छ्वयथुः समीरणात् ॥ ५ ॥

चरः -सञ्चारी। प्रसुप्तिः--स्पर्शाज्ञता । हर्षाऽत्रफिनीफिनी रोमाञ्चो वा । आर्तिः--पीडा । एतद्युतः दिवाबली विकृतिविषमसमधायारब्धत्वात् ॥

वायुसम्बन्धी सूजन-चंचल, पतली त्वचावाली. कठोर, लाल, काली. स्पर्शमें अज्ञान, रोमांच तथा पीडा सहित, विना कारणही शांत होनेवाली, दबानेसे ऊँची और दिनमें बलवान् होती है इस सूजनमें दिनको बलवान् होनेका कारण यह है कि, विकृतिविषमसमवायसे होती है ॥ ५ ॥

अत एव उक्तं चरकेन-स्नेहोष्णवमनादैर्यः प्रशाम्येत स वातिकः । यश्चाप्यरुणवर्णः स्याच्छोथो नक्तं प्रशाम्यति ॥ ६ ॥

इस कारणही चरकमें कहा है कि-"जो सूजन स्नेहसे, उष्णसे तथा वमन आदिसे शांत हो और लाल वर्णकी हो, वह सूजन वायुसम्बन्धी जाननी" ॥ ६ ॥

अथ पित्तजशोथलक्षणम् ।

मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान्भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः । यस्तूष्यते स्पर्शसहोऽक्षिरागवान्स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान् ॥ ७ ॥

उष्यते-सन्तप्यते । भृशदाहपाकवान्-भृशं दाहो यः पाकस्तद्युक्तः ।

जो सूजन-मृदु, गन्धसहित, काले तथा पीलेवर्णवाली हो, भ्रम, ज्वर, पसीना, तृष्णा

तथा मदसे संयुक्त हो, दाह हो, स्पर्शको सहे, नेत्रोंमें लाली होजाय और पकते समय अत्यन्त दाह हो, उसको पित्तसम्बन्धी जानना ॥ ७ ॥

अथ कफजशोथलक्षणम्।

गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत्। सुकृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ॥ ८ ॥

जो सूजन भारी, स्थिर, पाण्डुवर्णवाली हो, अरुचि, लारका झरना निद्रा तथा वमनसे युक्त हो, अग्निको मन्द करनेवाली हो, दबानेसे ऊँची न होती हो, रातमें बलवान् हो, और जिसकी उत्पत्ति तथा शांति बहुत दुःखदायक हो, उसको कफसम्बन्धी जानना ॥८॥

अथ द्विदोषजशोथलक्षणम्।

निदानाकृतिसंसर्गाज्ज्ञेयः शोथो द्विदोषजः ॥ ९ ॥

जिसमें दो प्रकारके कारण दीखे और उपरोक्त प्रकारोमें दोके लक्षण मिलते हों तो वह सूजन दो दोषोंसे उत्पन्न हुई जाननी ॥ ९ ॥

अथ सन्निपातजशोथलक्षणम्।

सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ १० ॥

व्यामिश्रलक्षण इत्युक्त सर्वाकृतिरिति उक्तवातजातिशोथसकललक्षणनियमार्थम्।

जो सूजन मिश्रित लक्षणोंवाली अथवा उपरोक्त सर्व सूजनोंके लक्षणोंवाली हो, उसको 'सन्निपातज' जानना ॥ १० ॥

अथाभिघातजशोथलक्षणम्।

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः। हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातक पिकच्छुजैः ॥ ११ ॥ रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान्। भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १२ ॥

छेदः खड्गादिना। भेदः पाषाणादिना। क्षतं शरादिना। आदिना व्रणादि। आदिशब्देन सगुडप्रहारादि गृह्यते। भल्लातनैः रसैः। कपिकच्छुजैः शूकैः। विसर्पवान् प्रसरणशीलः। पित्तलक्षणः पैत्तिकशोथलक्षणः ॥

जो सूजन खड्ग आदिके छेदनेसे, पत्थर आदिके भेदनेसे, बाण आदिके घाव हो जानेसे अथवा लकडी आदिके प्रहार होने आदि कारणोंसे हुई हो अथवा भिलावेके रससे वा कौंछकी फलीके स्पर्शसे हुई हो, फैलती हो, दाहयुक्त, लालवर्णवाली और अधिक करके पित्तसे हुई सूजनके लक्षणयुक्त हो, वह सूजन अभिघातसे हुई जाननी ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ विषजशोथलक्षणम्।

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात्। दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि १३ विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्तुसङ्करात्। विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात्। मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ॥ १४ ॥ परिसर्पणात् शरीरोपरि सञ्चरणात्। दंष्ट्रा द्विगुणीकृता दन्तावलिः 'चोह' इति लोके। दन्ताः अग्रेभवाः। अविषप्राणिनां दंष्ट्रादिविषं शोथव्यथादिकरं भवतीति विशेषः। विण्मूत्रेत्यादि। विडाद्युपहतं मलिनञ्च यद्वस्तु तथा सङ्करः सम्मार्जनीभिः क्षिप्तो धूल्यादिः तेषां सम्पर्कात्। गरयोगावचूर्णनात् गरः संयोगजं विषं तस्य योगो यस्य तेन वस्तुना अवधूलनात्। अवलम्बी लम्बमानः। अयमपि आगन्तुजस्तथापि सामान्यागन्तुजशोथचिकित्सातोऽस्य विशिष्टचिकित्साभिधानात् पृथक् पठितः ॥

शरीरके ऊपर विषैले जीवोंके फिरनेसे अथवा मूतनेसे, जो जीव विषैले नहीं हैं उनकेभी दाढ–दांतोंसे नखोंसे, आघात होनेसे (विना विषवाले जीवोंके भी दाढ आदिका विष सूजन तथा पीडा आदिको उत्पन्न करता है), विष्ठासे, मूत्रसे, वीर्यसे उपहत हुई वस्तुके सम्बन्धसे, बुहारकर फेंकी हुई धूल आदि कुडेके सम्बन्धसे, विषैले वृक्ष अथवा विषैले पवनके स्पर्शसे और जिसमें संयोगजविषका योग हुआ हो, वह वस्तु शरीरमें मिलनेसे जो सूजन उत्पन्न हुई हो; उसको विषसे उत्पन्न हुई जाननी। यह सूजन-मृदु, चञ्चल, लटकती हुई, तत्काल होनेवाली और पीडा अधिक करनेवाली होती है ॥ १३॥१४॥

अथ दोषस्थानस्थितिविशेषेण शोथस्थानविशेषः।

दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशये स्थिताः। पित्ताशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः। कृत्स्नं देहमनुप्राप्य कुर्युः सर्वसरास्तथा ॥ १५ ॥

ऊर्ध्वम्–उरःप्रभत्यूर्ध्वम् । मध्ये-उरःपक्वाशयमध्ये । अध -पक्वाशयादधः ।

दोष आमाशयमें रहनेवाले हों तो हृदयसे ऊपरके भागमें सूजनको उत्पन्न करते हैं. पित्ताशयमें रहनेवाले हों तो हृदय और पक्वाशयके बीचमें सूजनको उत्पन्न करते हैं, मलाशयमें रहनेवाले दोष हों तो पक्वाशयसे नीचेके भागमें सूजनको उत्पन्न करते हैं और और सम्पूर्ण स्थानमें फैले हुए हो तो सम्पूर्ण शरीरमें सूजन उत्पन्न करते हैं ॥ १५॥

अथ शोथोपद्रवाः।

छर्दिः श्वासोऽरुचिस्तृष्णा ज्वरोऽतीसार एव च। सप्तपाक आमदौर्बल्यं शोथस्यैत उपद्रवाः ॥ १६ ॥

वमन, श्वास, अरुचि, तृषा, ज्वर, अतीसार, अत्यन्त पाक और अत्यन्त निर्बलता ये सूजनके उपद्रव हैं ॥ १६ ॥

अथ शोथासाध्यता।

श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च। यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति शोथिनं तं विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

जिस सूजनवालेको श्वास, तृषा, वमन, निर्बलता, ज्वर और अन्नमें अरुचि हो, उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ १७ ॥

अथ शोथकष्टसाध्यत्वादिः।

यो मध्यदेशे श्वयथुः कष्टः सर्वाङ्गगश्च यः। अर्द्धाङ्गोऽरिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्ध्वं परिसर्पति ॥ १८ ॥

मध्यदेशे उरःपक्वाशयमध्ये । सर्वांगः–सकलशरीरव्यापी। सर्वांगज इति वा पाठः। सान्निपातिकः अर्द्धाङ्गः-अर्द्धनारीश्वराकारः । यश्चोर्द्ध्वं परिसर्पतीति पुरुषविषयः॥

जो सूजन हृदय तथा पक्वाशयके मध्यमें हुई हो अथवा जो सूजन सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो (सन्निपातिक हो), वह सूजन कष्टसाध्य है। जो सूजन अर्द्धनारीश्वरके आकारकी आधे शरीरमें हुई हो, वह सूजन मृत्युदायक है। पुरुषके हुई सूजन ज्यों ज्यों ऊपरको चढती है, त्यों त्यों मृत्युको ढूँढकर लाती है ॥ १८ ॥

तथा च–ऊर्ध्वगामी नरं पद्भ्यामधोगामी तथा स्त्रियम्। उभयं वस्तिसञ्जातः शोथो हन्ति न संशयः ॥ १९ ॥

ऊर्ध्वगामी–मुखगामी । उभयम्–नरं नारीश्च तथा च तन्त्रान्तरे–

पादात्प्रवृत्तः श्वयथुर्नृणां यः प्राप्नुयान्मुखम् ॥ २० ॥ इति ॥

स न सिद्ध्यतीति शेषः। अधोगामी-पदगामी॥

पुरुषोंके हुई सूजन पावोंसे ऊपरको चढे तो वह सूजन अवश्य मृत्यु करती है । स्त्रीके हुई जो सूजन मुखसे नाच नीतेको जाय, वह स्त्रीको अवश्य मार डालती है । जो सूजन मूत्राशयमें हुई हो, वह सूजन पुरुष और स्त्री दोनोंको मारडालती है, इसमें कुछभी संशय नहीं है अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि–"पुरुषोंके पाँवोंसे चढा जो शोथ मुखको प्राप्त हो और स्त्रीके मुखसे हुआ जो शोथ पावोंको प्राप्त हो, वह सूजन असाध्य है, पुरुष अथवा स्त्रीके मूत्राशयमें हुआ शोथ भी असाध्य ही है" ॥ १९ ॥ २० ॥

तथा च तन्त्रान्तरे–" नृणां वक्त्रात्पदं याति वस्तिजश्च न सिध्यति" इति॥२१॥ अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः। पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो वस्तिजो द्वयम् ॥ २२ ॥ अयमर्थः-पादसमुत्थितः पादाभ्यामुत्थितो मुखगामीति यावत् । शोथः पुरुषं हन्ति । स किंविशिष्टः ? अनन्योपद्रवकृतः शोथादन्ये व्याधयोऽतिसारग्रहण्यर्शःप्रभृतयःतेषामुपद्रवैः कृतः तदुपद्रवत्वेन जात इत्यर्थः । न अन्योपद्रवकृतः अनन्योपद्रवकृतः अर्थात् स्वहेतुभिरेव जातः । द्वयम् पुरुषञ्च नारीञ्च हन्ति, सोऽपि अनन्योपद्रवकृत एव ॥

और भी कहा कि–"पुरुषके पावोंमें हुई सूजन जो मुखमें जाय और अतीसार, ग्रहणी तथा बवासीर आदि अन्य रोगोंके उपद्रव नहीं हुई हो अर्थात् अपने कारणोंसे ही हुई हो तो पुरुषको मारडालती है । स्त्रीके मुखमें हुई सूजन जो पांवोंपर जाय और वह सूजन अतीसार, ग्रहणी तथा बवासीर आदि अन्य रोगोंके उपद्रवरूप न हुई हो अर्थात् अपने कारणोंसे हुई होतो वह स्त्रीको मारडालती है । मूत्राशयमें हुई जो सूजन अन्य रोगोंके उपद्रव रूप नहीं हुई हो अर्थात् अपने कारणोंसे हुई हो, वह सूजन पुरुष और स्त्री दोनोंको मारडालती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

अथ शोथचिकित्सा ।

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलीशृतं जलम् । वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे ॥ २३ ॥ पटोलत्रिफलारिष्टदार्वीक्काथः सगुग्गुलुः । तद्वत्पित्तकृतं शोथं हन्ति श्लेष्मोद्भवं तथा ॥२४॥ मिश्रे मिश्रक्रमं कुर्यात्सर्वजे सर्वमेव हि । बिल्वपत्त्ररसं पूतं सोषणं त्रिभवे पिबेत् ॥ २५ ॥

सोंठ,पुनर्नवा, एरंड और बृहत्पंचमूल इनका क्वाथ करके पीवे और भोजनमें उस क्वाथको ही सेवन करे तो इससे वायुसम्बन्धी सूजन नष्ट होती है । परवल, बहेडा, आमला, नीम और दारुहलदी इनका क्वाथ बनाकर उसमें गूगल डालकर पीवें तो इससे पित्तसम्बन्धी और कफ सम्बन्धी सूजन दूर होती है । जो सूजन दो दोषोंसे हुई हो, उसमें दो दोषकी मिश्रित चिकित्सा करें और जो सूजन तीनों दोषोंसे हुई हो.उसमें बेलके पत्तोंका रस निकाल करके वस्त्रसे छान करके फिर उसमें सोंठ, मिरच तथा पीपलका चूर्ण डालकर पीवें तो इससे सन्निपातिक सूजन नष्ट होती है । अथवा उपरोक्त तीनों दोषोंकी मिश्रित चिकित्सा करें ॥ २३–२५ ॥

शोथे त्वागन्तुजेकुर्यात्सेकलेपादि शीतलम् । भल्लातक्या हरेच्छोथं सतिला कृष्णमृत्तिका ॥ २६ ॥ महिषीक्षीरसंपिष्टैर्नवनीतसमन्वितैः । तिलैर्लिप्तः शमं याति शोथो भल्लातकोत्थितः ॥ २७ ॥ यष्टीदुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः शोथमारुष्करं हन्ति चूर्णैः शालदलस्य

च ॥ २८ ॥ विषजशोथचिकित्सा तु विषचिकित्सायां द्रष्टव्या ॥

जो आगन्तुक सूजन हुई हो तो उसके ऊपर शीतल सेचन तथा शीतल लेप आदिक करें। तिल और काली मिट्टी इनको पीसकर लेप करें तो इससे भिलावेकी सूजन दूर होती है। भैंसके दूधमें तिल पीसकर उसमें भैंसका मक्खन मिलाकर लेप करे तो भिलावेकी सूजन दूर होती है मुलहठी, दूध, तिल और मक्खन इनका लेप करे तो भिलावेकी सूजन दूर होती है। अथवा शालके पत्तोंका चूर्ण पानीसे पीवें तो भिलावेकी सूजन दूर होती है। विषसे हुए शोथकी चिकित्सा तो विषकी चिकित्साके प्रकरणमें कहेंगे, इसलिये उस प्रकरणमेंसे देख लेना ॥ २६-२८ ॥

अथ शोथसामान्यचिकित्सा ।

महिष्या नवनीतं वा लेपाद् दुग्धतिलान्वितम् ॥ २९ ॥ अत्र दुग्धं च महिष्या एव । पथ्यानिशाभाङ्गर्यमृताग्निदार्वीपुनर्नवादारुमहौषधानाम् । क्वाथः प्रसह्योदरपाणिपादमुखाश्रितं हन्त्याचिरेण शोथम् ॥ ३० ॥

भैंसका मक्खन और भैंसका दूध इनमें तिल पीसकर लेप करें तो सूजन दूर होती है। हरड, हलदी, भारंगी, गिलोय, चीता, दारुहलदी, पुनर्नवा, देवदारु और सोंठ इनका क्वाथ पेटमें, हाथमें, पावोंमें तथा मुखमें हुई सूजनको तत्काल बलात्कारसे नष्ट कर देता है। यह क्वाथ 'पथ्यादिक्वाथ' इस नामसे कहा जाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैव साधितम् । वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्याद्वृषणसम्भवम् ॥ ३१ ॥ वृश्चीवदेवद्रुमनागरैर्वा दन्तीत्रिवृत्त्र्यूषणचित्रकैर्वा । दुग्धं सुसिद्धं विधिना निपीतं गीतं परं शोथहरं भिषग्भिः ॥ ३२ ॥

अत्र वृश्चीवः--श्वेतवर्षाभूः ॥

सेकस्तथाऽर्कवर्षाभूनिम्बक्काथेन शोथहृत् । गोमूत्रेणापि कुर्वीत सुखोष्णेनावसेचनम् ॥ ३३ ॥ पुनर्नवा दारु शुण्ठी शिग्रुः सिद्धार्थकस्तथा । अम्लपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः सर्वशोथहृत् ॥ ३४ ॥

हरड, बहेडा, आमला इनका क्वाथ कर गोमूत्रमें मिलाकर पीवें तो इससे वृषणोंमें हुई वायुसम्बन्धी तथा कफसम्बन्धी सूजन नष्ट होती है। सफेद पुनर्नवा, देवदारु और सोंठ इनसे अथवा दन्ती, निसोत, सोंठ, मिरच, पीपल और चीता इनसे भलीभांति पकाया हुआ दूध योग्य विधिसे पीवे तो सूजन अवश्य दूर हो जाती है, ऐसा वैद्योंने कहा है। आक, पुनर्नवा और नीम इनका क्वाथ करके उस सूजनके ऊपर सेचन करे तो सूजन दूर होती है। गोमूत्रको किंचित् गरम करके उस सूजनके ऊपर सेचन करे तो सूजन दूर होती है। पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सहँजना, और सरसों इनका क्वाथ करके अम्लरसमें पीस किंचित् गरम करके लेप करे तो सर्वप्रकारकी सूजन नष्ट होती है ॥ ३१-३४ ॥

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडपिप्पली वा । कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥ ३५ ॥ शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगान् सश्वासकासारुचिपीनसादीन् । जीर्णज्वरार्शोग्रहणीविकारान् हन्यात्तथाऽन्यान्कफवातरोगान् ॥ ३६ ॥ विश्वं गुडेन तुल्यं वृश्चीवरसानुपानमभ्यतम् । विनिहन्ति सर्वशोथं घनवृन्दं चण्डवायुरिव ॥ ३७ ॥ कणानागरकं चूर्णं सगुडं शोथनाशनम् । आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम् ॥ ३८ ॥

गुड और अदरख अथवा गुड और सोंठ, अथवा गुड और हरड वा गुड और पीपल इनका नित्य एक एक तोला अधिक करके बारह तोले तक सेवन करें। इस भांति एक मास अथवा एक पक्षतक खाय तो इससे सूजन प्रतिश्याय, गलेके रोग, मुखके रोग, श्वास, खांसी, अरुचि, पीनस, जीर्णज्वर, बवासीर संग्रहणी और अन्य भी कफसम्बन्धी तथा वायुसम्बन्धीरोग दूर हो जाते हैं अथवा सोंठ और गुड इनको समान भाग लेकर खाय और इसके ऊपर सफेद पुनर्नवेका रस पीने का अभ्यास करे तो जिस प्रकार प्रचण्ड पवनसे बादलोंका समूह नष्ट हो जाता है उसी प्रकार सर्वप्रकारकी सूजन भी दूर हो जाती हैं वा सोंठ और पीपल इनके चूर्णको गुडमें मिलाकर खावे, इससे आमाजीर्ण तथा शूल दूर होता है और मूत्राशय शुद्ध होता है ॥ ३५-३८ ॥

अथ गुडादिवटिका ।

गुडात्पलत्रयं ग्राह्यं शृङ्गवेरपलत्रयम् । शृङ्गवेरसमा कृष्णा लोहविट्तिलयोः पलम् । चूर्णमेतत्समुद्दिष्टं सर्वश्वयथुनाशनम् ॥ ३९ ॥

बारह तोले गुड, बारह तोले सोंठ, बारह तोले पीपल, चार तोले कीटीकी भस्म और चार तोले तिल इनको चूर्ण करके खाय तो सर्व प्रकारकी सूजन दूर हो होती है ॥ ३९ ॥

अथ मानकघृतम् ।

मानकक्काथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् । एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषश्च व्यपोहति ॥ ४० ॥

मानकन्दके क्वाथमें मानकन्दकाही कल्क डालकर ६४ तोले घीमें पकावे तो 'मानकघृत' सिद्ध होता है। इस घीके सेवन करनेसे एक दोषसम्बन्धी, दो दोषसम्बन्धी और तीनों दोषसंबन्धी सूजन दूर होती है ॥४०॥

अथ शुष्कमूलकतैलम् ।

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्नामहौषधैः । पक्वमभ्यञ्जनं तैलं सशूलं श्वयथुं हरेत् ॥ ४१ ॥

इति शोथनिदानचिकित्साधिकारः ।

सूखी मूली, पुनर्नवा, देवदारु, रसायन और सोंठ इन औषधियोंके कल्कके द्वारा तेल को सिद्ध करे, यह तेल शूल सहित सूजनको दूर करता है ॥ ४१ ॥

इति शोथाधिकारः सम्पूर्ण ।

अथ वृद्धिब्रध्नाधिकारः ।

तत्र वृद्धिनिदानसंख्ये ।

दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः स वृद्धिः सप्तधा गदः । मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलः ॥ १ ॥

१ वात, २ पित्त, ३ कफ, ४ रुधिर, ५ मेद, ६ मूत्र और ७ आंते इन भेदोंसे वृद्धिरोग सात प्रकारका है। इनमें मूत्र और अन्त्रजन्य-वृद्धि वातरूप निदानके होनेसे एकही प्रकार की है, तथापि निदान और चिकित्सामें भेद होनेसे अलग गिनी है ॥ १ ॥

अथ वृद्धिसम्प्राप्तिः ।

वृद्धिं करोति कोशस्थः फलकोषाभिवाहिनीः । रुध्वा रुद्धगतिर्वायुर्धमनीर्मुष्कगामिनीः ॥ २ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुई वायु अण्डकोषोंमें प्राप्तकर अण्डकोषोंकी शिराओंको रोककर अण्डोंकी तथा त्वचाकी वृद्धि करती है २

अथ वातवृद्धिलक्षणम् । १

वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ॥ ३ ॥

अहेतुरुक अत्रेषदर्थे नञ् । तेन स्वल्पादपि विप्रकृष्टात् कारणात् रुक्पीडा यत्र सः ॥

जो वृद्धि वायुसे भरी हुई मसकके समान स्पर्शवाली हो, रूक्ष हो और जिसमें अण्डकोषोंमें स्वल्पकारणोंसे पीडा हो, उसको वातकी वृद्धि जानना ॥ ३ ॥

अथ पित्तजन्यवृद्धिलक्षणम् । २

पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् ॥ ४ ॥

दाहः-आभ्यन्तरः । ऊष्मा-बहिस्तप्तता ॥

जो वृद्धि पके हुए गूलरकी फलके समान हो, दाह, गरमी और पकनेवाली हो, उसको पित्तकी वृद्धि जानना ॥ ४ ॥

अथ कफवृद्धिलक्षणम् । ३

कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डुमान् कठिनोऽल्परुक् ॥

जो वृद्धि शीतल हो, भारी हो, चिकनी हो, खुजलीयुक्त हो, कठिन हो और जिससे अल्प पीडा हो, उसको कफकी वृद्धि जानना ॥

अथ रुधिरवृद्धिलक्षणम् । ४

कृष्णस्फोटावृतःपित्तवृद्धिलिङ्गश्च रक्तजः ॥ ५ ॥ कृष्णस्फोटावृत इति पैत्तिकोद्भवः ।

जो वृद्धि काले फोडोंसे व्याप्त हो और जिसमें पित्तकी वृद्धिके सब लक्षण हों, उस वृद्धिको रक्तकी जानना ॥ ५ ॥

अथ मेदोवृद्धिलक्षणम् । ५

कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥ ६ ॥

जो वृद्धि नरम हो तालके फलके समान नीली और गोल हो तथा जिसमें कफके वृद्धिके सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों, उस वृद्धिको मेदकी जानना ॥ ६ ॥

अथ मूत्रवृद्धिलक्षणम् । ६

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजःस तु गच्छतः। अम्भोभिः पूर्णदृतिवत्क्षोभं याति सरुङ् मृदुः । मूत्रकृच्छ्रमधः कुर्यात्सञ्चलन् फलकोषयोः ॥ ७ ॥

सञ्चलन्फलकोषयोः अवधः मूत्रकृच्छ्रं मूत्रे व्यथां कुर्यात् इत्यर्थः ॥

जिस मनुष्यको मूत्र रोकनेका अभ्यास हो अथवा स्वभाव हो, उस मनुष्यको मूत्रकी वृद्धि चलते समय जलसे भरी हुई, पखाल या मसकके समान हिलती है, पीडा होती है, नरम होती है, उसमें मूत्रकृच्छ्रके समान वेदना हो और वह अंडकोषोंको चलायमान करती है ॥ ७ ॥

अथान्त्रवृद्धिलक्षणम् । ७

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः । धारणेरणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्त्तनैः ॥८॥ क्षोभणैः क्षोभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा । पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ॥ कुर्याद्वंक्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा ॥ ९ ॥

धारणम् उपस्थितस्य वेगस्य । ईरणम्–अनुपस्थितस्य वेगस्य प्रेरणम् । विषमाङ्गप्रवर्तनम्-वक्रत्वेनाङ्गमोटनम् । अन्यानि क्षोभणानि॥ बलवद्विग्रहकठोर-धनुराकर्षणादीनि तैः क्षोभितः सन्दूष्य सञ्चालितः पवनः यदा क्षुद्रान्त्रावयवं विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् तदा वंक्षणसन्धिस्थः सन् वंक्षणसन्धौ ग्रन्थिरूपं श्वयथुं कुर्यात् इत्यर्थः ॥

वायुको कुपित करनेवाले आहारोंके सेवन करनेसे, शीतल जलमें घुसकर स्नान करनेसे, मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, मूत्रादिको बलात्कारसे प्रवर्तन करनेसे, बहुत बोझको उठानेसे,

बहुत मार्गके चलनेसे, अंगोंकी विषम चेष्टा करने और बलवान्के साथ युद्ध तथा कठिन धनुष आदिको चढानेसे इत्यादि कारणोंसे अत्यंत क्षोभको प्राप्त हुई वायु छोटी छोटी आंतोंके प्रदेशको दूषित करके उनको स्थानसे नीचे लेजाती हैं तब वह वायु वृषण और कोषकी संधियोंमें प्राप्त होकर उन संधियोंमें गांठके समान सूजनको उत्पन्न करती है। यह 'अन्त्रवृद्धि' कही जाती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः। प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान् प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः॥ १० ॥

तत्र आध्मानमुदरे रुक् वृद्धयोर्मुष्कयोः स्तम्भो गात्रे तद्युक्तां कुर्यात् इत्यर्थः॥ स मुष्कवृद्धिम् अन्तः उदरे प्रध्मापयन् आगमनमार्गं निरुद्धं कुर्वन् एति-आयाति ॥

अन्त्रं विगुणमादाय वातो नयति वंक्षणम्। वंक्षणात्तद्रुजायुक्तं फलकोषं प्रपद्यते ॥ ११ ॥

जो इस अन्त्रवृद्धिकी उपेक्षा की जावे तो पेट अफर आता है, बढे हुए वृषणोंमें पीडा होती है और शरीर स्तम्भितसा होजाता है। इस वृद्धिको जो हाथसे दबाया जाय तो शब्द होकर भीतरको बैठ जाती है और दबानेसे छोटी होकर फिर फूलजाती है ॥१०॥११॥

अथान्त्रवृद्ध्यसाध्यलक्षणम्।

यस्यान्त्रावयवाश्लेषो मुष्कयोर्वातसञ्चयात्। अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः॥ १२ ॥

अन्त्रवृद्धि कि, जिसमें वायुके संचय होनेसे दोनों वृषणोंमें आंतोंके अवयव मिलजाते हैं, वह यदि वायुकी वृद्धिके समान आकारवाली हो तो उसको असाध्य जानना ॥ १२ ॥

अथ ब्रध्नस्यापि वृद्धिसमीपोत्पन्नत्वादत्र तन्निदानलक्षणमाह-

अत्यभिष्यन्दिगुर्वन्नशुष्कपूत्यामिषाशनात्। करोति ग्रन्थिवच्छोथं दोषो वंक्षणसन्धिषु॥ ज्वरशूलाङ्गसादाढ्यं तं ब्रध्नेति विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

अत्यंत अभिष्यन्दि पदार्थ, भारी अन्न, सूखा तथा दुर्गंधित सडा हुआ मांस इनको भक्षण करनेसे कोपको प्राप्त हुए दोष सांथलकी संधियोंमें गांठके समान सूजनको उत्पन्न करते हैं। उस सूजनके समान गिलटीके होनेसे ज्वर, शूल तथा शरीरमें अत्यंत ग्लानि होती है, यह सूजन 'ब्रध्न' बद इस नामसे कही जाती हैं ॥ १३ ॥

अथ वृद्धिरोगचिकित्सा।

वृद्धावत्यशनं मार्गमुपवासं गुरूणि च। वेगाघातं पृष्ठयानं व्यायामं मैथुनं त्यजेत् ॥ १४ ॥ वातवृद्धौ पिबेत्स्निग्धं यथा प्राप्तं विरेचनम्। सक्षीरश्च पिबेत्तैलं मासमेरण्डसम्भवम् ॥ १५ ॥

वृद्धिरोगवाले मनुष्यको अधिकतर भोजन, मार्गचलना, मूत्रादि वेगोंका रोकना, उपवास, भारी पदार्थोंका खाना, घोडे आदिकी सवारी, दंड-कसरत आदि परिश्रम और मैथुन ये सब त्यागदेने चाहियें। जो मिलसके ऐसे स्निग्ध विरेचन पीनेसे वातसम्बन्धी वृद्धि दूर होजाती है, दूध और अंडीके तेलको एक महीनेतक पीनेसे वातकी वृद्धि दूर होजाती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

गुग्गुल्वेरण्डजं तैलं गोमूत्रेण पिबेन्नरः। वातवृद्धिं जयत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १६ ॥

अंडीका तेल और गूगल इनको मिलाकर गोमूत्रके साथ पीनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी

वातकी वृद्धि तत्काल नष्ट होजाती है। जो चिकित्सा पित्तग्रंथिकी कही है, वही चिकित्सा योग्यायोग्य विचारकर पित्तकी वृद्धिकी भी करनी चाहिये, इससे पित्तकी वृद्धि नष्ट हो जाती है ॥ १६ ॥

पित्तग्रन्थिक्रमेणैव पित्तवृद्धिमुपाचरेत् । जलौकाभिर्हरेद्रक्तं वृद्धौपित्तसमुद्भवे ॥ ॥ १७ ॥ चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नील-मुत्पलम् । क्षीरपिष्टं प्रलेपेन दाहशोथ-रुजापहम् ॥ १८ ॥

जोंक लगाकर रुधिर निकलवानेसे पित्त सम्बन्धी वृद्धि नष्ट होजाती है। लालचन्दन-मुलहठी, कमल, खस और नीले कमल इनको दूधमें पीसकर लेप करनेसे पित्तकी सूजन तथा दाहकी पीडा शांत होजाती है ॥१७॥१८॥

त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं सक्षारलवणं पिबेत् । विरेचनमिदं श्रेष्ठं कफवृद्धिविनाश नम् ॥ १९ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा और आमला इनका काथ बनाकर उसमें जवाखार तथा सैंधानिमक डालकर पीनेसे कफकी वृद्धि दूर होती है। यह विरेचन कफकी वृद्धिको दूर करनेके लिये उत्तम है ॥ १९ ॥

लेपनाःकटुतीक्ष्णोष्णाः स्वेदनं सूक्ष्ममेव च । परिषेकोपनाहौ च सर्वमुष्णमिहे-ष्यते ॥ २० ॥

कटु, तीक्ष्ण तथा उष्ण प्रलेप, सूक्ष्म स्वेदन और सम्पूर्ण गरम सेचन और उष्ण बंधन कफकी वृद्धिपर करनी चाहिये ॥ २० ॥

मुहुर्मुहुर्जलौकाभिःशोणितं रक्तजे हरेत् । पिबेद्विरेचनं वाऽपि शर्कराक्षौद्रसंयु-तम् ॥ २१ ॥

जो रुधिरकी अंडवृद्धि हो तो वारंवार जोंक लगवाकर रुधिर निकलवावें और खांड तथा सहत मिलाकर विरेचन पीवें ॥ २१ ॥

शीतमालेपनं शस्तं सर्वं पित्तहरं तथा । पित्तवृद्धिक्रमं कुर्यादामे पक्वे च रक्तजे ॥ २२ ॥

रुधिरकी अंडवृद्धि कच्ची हो अथवा पक्की हो तो भी उसके ऊपर शीतल प्रलेप करें और पित्तनाशक संपूर्ण क्रिया करें। रुधिरकी वृद्धि में पित्तकी वृद्धिकी जो चिकित्सा कही है, वह सब करनी चाहिये ॥ २२ ॥

स्विन्नमेदःसमुत्थन्तु लेपयेत्सुरसादिना । शिरोविरेचनद्रव्यैःसुखोष्णैर्मूत्रसं-युतैः ॥ २३ ॥

मेदकी वृद्धिमें सेकादिक करके उसके ऊपर सुरसादिगणकी सम्पूर्ण औषधियोंका प्रलेप करें ॥ २३ ॥

संस्वेद्य मूत्रप्रभवं वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् २४

मूत्रसम्बन्धी वृद्धि हो तो शिरको खाली करनेवाली जो औषधि कही हैं, इनमें गोमूत्र डालकर थोडा गरम करके उनसे सेंक करे फिर वस्त्रकी पट्टीसे खूब बांध देवे ॥ २४ ॥

सीवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद्व्रीहिमुखेन वै । मुष्ककोशमगच्छन्त्यामन्त्रवृद्धो विचक्षणः । वातवृद्धिक्रमं कुर्यात्स्वेदं तत्राग्निना हितम् ॥ २५ ॥

व्रीहिमुखेनःशस्त्रविशेषेण । अगच्छन्त्याम्-अस्रवन्त्याम् ॥

अंत्रवृद्धि जो स्रवती न हो तो विचक्षण वैद्य सीवनीके पडदेके नीचेके भागमें व्रीहि-मुख नामक शस्त्रसे वेध देवे और फिर वात-सम्बन्धी वृद्धिके समान चिकित्सा करे। अंत्रवृद्धिपर अग्निसे सेंककर स्वेदन करना हितकारी है ॥ २५ ॥

तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धं यथोचि-तम् । आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ २६ ॥

खिरैंटीका चूर्ण डालकर पकाया हुआ अण्डीका तेल यथारीतिसे पीवे तो अफारे सहित तथा शूल सहित अंत्रवृद्धि नष्ट हो जाती है ॥ २६ ॥

रास्नायष्टयमृतैरण्डबलारग्वधगोक्षुरैः। पटोलेन वृषेणापि विधिना विहितं शृतम्। रुबुतैलेन संयुक्तमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ॥ २७ ॥

रासना, मुलहठी, गिलोय, अंडकी जड, खिरैंटी, अमलतास, गोखरू, कडवे परवल और अडूसा इनका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें अण्डीका तेल डालकर पान करनेसे अंत्रवृद्धि नष्ट हो जाती है। इसको 'रास्नादि-क्वाथ' कहते हैं ॥ २७ ॥

गन्धर्वहस्ततैलेन क्षीरेण विहितं शृतम्। विशालामूलजं चूर्णं वृद्धिं हन्ति न संशयः ॥ २८ ॥

विशाला-इन्द्रवारुणी ॥

एरंडका तेल, दूध और इन्द्रायणकी जडका चूर्ण इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे निःसन्देह अंडवृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ २८ ॥

वचासर्षपकल्केन प्रलेपः शोथनाशनः। शिग्रुत्वक्सर्षपैर्लेपाच्छोथश्श्लेष्मानिला-पहः ॥ २९ ॥

वच और सरसोंका कल्क बनाकर लेप करनेसे वृद्धिकी सूजन दूर हो जाती है। सहिंजनेकी छाल और सरसों इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे वृद्धिकी सूजन कफ और वायु नष्ट होजाती है ॥ २९ ॥

वृद्धिवाधिका वटिका।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृतान्येतानि योजयेत्। लौहं रङ्गं तथा ताम्रं कांस्यञ्चाथ विशोधितम् ॥ ३० ॥ तालकं तुत्थकञ्चापि तथा शंखवराटकम्। त्रिकटु त्रिफला चव्यं विडङ्गं वृद्धदारकम् ॥ ३१ ॥ कर्चूरं मागधीमूलं पाठां सहपुषां वचाम्। एलाबीजं देवकाष्ठं तथा लवणपञ्चकम् ॥ ३२ ॥ एतानि समभागानि चूर्णयेदथ कारयेत्। कषायेण हरीतक्या वटिकां टङ्कसंमिताम् ॥ ३३ ॥ एकां तां वटिकां यस्तु निर्गिलेद्वारिणा सह। अण्डवृद्धिरसाध्यापि तथ्यं नश्यति सत्वरम् ॥ ३४ ॥

शुद्ध पारेकी भस्म, शुद्ध गन्धक, लोहेकी भस्म, रांगेकी भस्म, तांबेकी भस्म कांसेकी भस्म, शुद्ध हरितालकी भस्म, शुद्ध तूतिया, शंखकी भस्म कौडीकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चव्य, वायविडंग, बिधारा, कचूर, पीपलामूल, पाढ, गन्धपलाशी, वच, इलायचीके दाने, देवदारु और पांचों निमक इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर हरडके क्वाथमें खरल करके चौबीस २ रत्ती की गोलियां बना लेवे। इन गोलियोंमेंसे एक गोली नित्य जलके साथ निगल जाय तो अंत्र-सम्बन्धी असाध्य वृद्धि भी तत्काल नष्ट हो जाती है ॥ ३०-३४ ॥

अथ ब्रध्न (बद) चिकित्सा।

भृष्टश्चैरण्डतैलेन सम्यक्कल्कोऽभयाभवः। कृष्णा सैन्धवसंयुक्तो ब्रध्नरोगहरः परः ॥ ३५ ॥

हरडका अच्छी प्रकारसे कल्क बनाकर उसको एरंडके तेलमें भूनकर पीपल तथा सैंधेनिमकका चूर्ण मिलाकर खाय तो ब्रध्नरोग अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ३५ ॥

अजाजी हपुषा कुष्ठं गोमेदबदरान्वितम्। काञ्जिकेन तु संपिष्टं तल्लेपो ब्रध्नजित्परः ॥ ३६ ॥ गोमेदम् पत्रकम्।

तथा निघण्टौ धन्वन्तरिः- " पत्रं दलाह्वयं रासं गोमेदं वसनाह्वयम् ।
इति ॥ ३७ ॥

इति वृद्धिब्रध्नरोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

जीरा, हाऊवेर कूठ, तेजपात और बेर इनको कांजीमें पीसकर लेप करनेसे ब्रध्नरोग अवश्य नष्ट हो जाता है। मूलश्लोकमें जो गोमेदशब्द है, उसका हमने 'तेजपत्र' ऐसा अर्थ किया है। यह धन्वन्तरि निघण्टुके अनुसार किया है। धन्वन्तरिनिघण्टुमें कहा है, ''पत्र, रास और गोमेद ये सब तेजपत्रके नाम हैं। जो जो नाम पत्रके अथवा वस्त्रके हैं, वे सब तेजपत्रके जानने'' ॥ ३७ ॥ ३७ ॥

इति वृद्धिब्रध्नाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ गलगण्ड-गण्डमाला-ग्रन्थ्यर्बुदाधिकारः ।

तत्र गलगण्डलक्षणम् ।

निबद्धःश्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले । महान् वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत् ॥ १ ॥

विबद्धः-दृढःअबलो वा । मुष्कवत्-अण्डवत् । गले इति हनुमन्ययोरुपलक्षणम् ॥

तथा च भोजः-महान्तं शोथमल्पं वा हनुमन्यागलाश्रयम् । मुष्कवल्लम्बमानन्तु गलगण्डं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

गलेमें बडी अथवा छोटी, दृढ और अचल सूजन अण्डकोषके समान लटकती हो, उसको 'गलगण्ड' कहते हैं। गलेमें जो सूजन लटकती हो, ऐसा कहना उपलक्षणमात्र है। इस कारण ऐसा जानना कि, ठोडी दाडी और नाडमें जो ऐसी सूजन लटकती हो तो उसको भी गलगण्ड' कहते हैं। भोज कहता है कि, बडी अथवा छोटी सूजन दाढीमें अथवा ठोडीमें नाडमें और गलेमें अंडकोषके समान लटकती हो, उसको भी "गलगंड" कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ गलगंडसम्प्राप्तिः ।

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टौ मन्ये तु संश्रित्य तथैव मेदः । कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः समाचितं तं गलगण्डमाहुः ॥ ३ ॥

स्वलिङ्गैः-वातकफमेदोलक्षणैः ।

गलमें दुष्ट हुए वायु, कफ और मेद ये सब गलेके मध्यमें प्राप्त होकर अनुक्रमसे अपने २ लक्षणोंवाली सूजन करते हैं, वह रोग गलगंड कहा जाता है ॥ ३ ॥

अथ वातजगलगंडलक्षणम् ।

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः श्यावारुणो वा पवनात्मकस्तु । पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् । वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥ ४ ॥

चिरवृद्ध्यपाकःचिरेण वृद्धिःअपाकश्च यस्य सः ।

जो गलगंड तोदने सरीखी पीडायुक्त हो, कालीशिराओंसे व्याप्त हो, कालापन तथा लाली लिये हो, उसको वातका जानना। यह गलगंड कठिन होता है, बहुत दिनोंमें बढता है, पकता नहीं है और किसी समय अपनी इच्छासे पक भी जाता है तथा उस रोगीका मुख नीरस रहता है और तालु तथा गला सूखा रहता है ॥ ४ ॥

अथ कफजगलगण्डलक्षणम् ।

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डू शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु । चिराच्च वृद्धिं

भजतेचिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित्। माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगल प्रलेप ॥ ९ ॥

कदाचित्प्रपच्यते वा पाकोऽपि चिराद्भवति प्रलेपःश्लेष्मणा ॥

जो गलगंड स्थिर हो, जिस स्थानमें उत्पन्न हो, उसी स्थानके त्वचाके वर्णके समान हो; भारी हो, तीक्ष्ण खुजलीयुक्त हो, शीतल हो उसको कफजन्य गलगंड ' जानना। यह गलगंड बहुत दिनोंमें बढता है, बहुत दिनोंमें किसी समय पक जाता है और मन्द पीडा होती है और उस रोगीके मुखका स्वाद स्निग्ध और मधुर रहता है, सदैव गलेसे शब्द होता है तालू तथा गला कफसे लिप्त रहता है ॥

अथ मेदोजन्यगलगण्डलक्षणम्।

स्निग्धो मृदु पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोऽन्वितः कण्डुयुतोऽरुजश्च । प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥ स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ॥ ७ ॥

जोगलगण्ड नरम, पांडुवर्ण, दुर्गन्धित, खुजलीयुक्त, पीडारहित, तोम्बीके समान लटकता हो, अल्प जडवाला हो और शरीरके बढनेसे बढता हो तथा शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होता हो, उस गलगण्डको ' मेद संबंधी' जानना। यह गलगण्ड जिस मनुष्यके उत्पन्न होता है, उस मनुष्यका मुख स्निग्ध रहता है और सदैव गलेमेंसे शब्द होता रहता है ॥ ६ ॥ ७ ॥.

अथासाध्यगलगण्डलक्षणम्।

कृच्छ्राच्छ्वासन्तं मृदुसर्वगात्रं सवत्सरातीतमरोचकार्तम्। क्षीणश्च वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरं नैव नरं चिकित्सेत् ॥ ८ ॥

जिस गलगण्डमें बडे कष्टसे धीरे धीरे श्वास लेसके, संपूर्ण शरीर नरम पड गया हो, अरुचि तथा क्षीणता होगई हो, स्वर बैठ गया हो तथा जिसको उत्पन्न हुए एकवर्ष बीतगया हो, ऐसे गलगण्डकी वैद्य चिकित्सा न करे ॥ ८ ॥

अथ गण्डमालालक्षणम्।

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु । मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद् गण्डमाला बहुभिश्च गण्डैः ॥ ९ ॥

कर्कन्धुः—क्षुद्रबदरम्। कोलम्—बृहद्बदरम्। चिरमन्दपाकेः—चिरेण मन्दः अल्पः पाको येषां तैः ॥

कोखमें, कन्धोंमें नाडके पीछे, मन्या नाडीमें, गलेमें तथा वंक्षण स्थानमें मेद और कफसे छोटे बेरके समान अथवा बडे बेरके समान आमलेके समान बहुतसी गांठे उत्पन्न हों, उसको ' गंडमाला ' कहते हैं। ये गण्ड बहुत दिनोंमें थोडे थोडे पकते हैं ॥ ९ ॥

अथापचीलक्षणम्।

ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये । कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति केचित् ॥ १० ॥

तेग्रन्थयः—गण्डमाला एव गण्डाः केचिदवाप्तपाकाः सन्तः स्रवन्ति, केचिन्नश्यन्ति अन्ये भवन्ति सरोहन्ति च। कालानुबंधं चिरमादधाति सा गलगण्डमाला चिर तिष्ठति सैवापचीति केचित् वदन्ति ॥

उस गंडमालाकी कोई कोई गंड पककर स्रवने लगती हैं, कोई कोई नष्ट हो जाती हैं और कोई कोई नवीन उत्पन्न होजाती हैं।

उन गंडोंकी ऐसी स्थिति बहुत दिनोंतक रहती है, बहुत वैद्य इस गंडमालाको ही 'अपची' कहते हैं ॥ १० ॥

अथापचीसाध्यासाध्यता।

साध्या स्मृता पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुता त्वसाध्या ॥ ११ ॥

विना उपद्रवकी अपची साध्य है किन्तु जो पीनस, पार्श्वशूल खांसी, ज्वर तथा वमनयुक्त हो तो असाध्य है ॥ ११ ॥

अथ ग्रन्थिलक्षणम्।

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टः सन्दूष्य मेदश्च तथा शिराश्च। वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ १२ ॥ विग्रथितम् ग्रन्थिरूपम्। अत एव ग्रन्थिः। स पञ्चधा वातिकः,पैत्तिकः, श्लैष्मिकः, मेदोजः, शिराजश्च इति ॥

वात, पित्त, कफ, मेद और शिरा ये मांस तथा रुधिरको दूषित करके ऊँची तथा गोलाकार गांठरूप सूजनको उत्पन्न करते हैं। उन गांठोंको 'ग्रंथि' कहते हैं। वातज, पित्तज, कफज, मेदोज और शिरासम्बन्धी इस प्रकार ग्रंथिके पांच भेद हैं ॥ १२ ॥

अथ वातजग्रन्थिलक्षणम्।

आयम्यते वृश्चति तुद्यते च प्रभ्रंशते मथ्यति भिद्यते च। कृष्णो मृदुर्वस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥ १३ ॥

आयम्यते—आकृष्य दीर्घ क्रियत इव। वृश्चति-आश्रयं छिनत्ति इव।प्रभ्रंशते-स्खलतीव। भिद्यते-विदार्यत इव। आततः-विस्तारित इव मृदुः न तु अत्यन्तकठिनः। अस्रम्—रुधिरम्। अच्छम्-प्रकृतं स्रवेदित्यर्थः ॥

जो ग्रंथि मानो खींचकर बढाई गई हो ऐसी मालूम हो, अपने स्थलको छेदती हो, गिरीसी पडे, सुई चुभोने सरीखी पीडा हो, मथनेके समान, चीरने सरीखी पीडा हो और रबरके समान फैल जाय तथा काले रंगकी, अत्यन्त कठिन न हो, भेदने सरीखी पीडा हो और स्वाभाविक स्वच्छ रुधिर उसमेंसे स्रवता हो, उसको 'वायुसंबंधी ग्रंथि' जानना॥१३॥

अथ पित्तजग्रंथिलक्षणम्।

दन्दह्यते धूप्यति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि। रक्तः सपीतोऽप्यथवापि पित्ताद्भिन्नः स्रवेद्दुष्टमतीव चास्रम् ॥ १४ ॥

दन्दह्यते भृशं दाहं करोति सकलशरीरे। धूप्यति—अन्तस्तापं करोति। चूष्यते-शृङ्गेण इव। पापच्यते—भृशं पाकं करोति। प्रज्वलति इव-अग्निरिव ज्वालायुक्त इव भवति ग्रंथिः। अस्रम्-रुधिरम्। अतीव दुष्टम्-कृष्णतादियुक्तम्।

जो ग्रंथि शरीरमें अग्निके समान अत्यन्त दाह करता हो, अत्यन्त सन्ताप देती हो, अत्यन्त पकती हो, लाल अथवा पीली हो, जब वह फूटे तब उसमेंसे मज्जासहित दुष्ट और काला रुधिर निकले, उसमें चूसने सरीखी पीडा हो अर्थात् सींगी लगाकर चूसते हैं, ऐसी पीडा हो तथा अग्निके समान ज्वालासे युक्त हो उसको 'पित्तकी ग्रंथि' जानना॥१४॥

अथ कफजग्रंथिलक्षणम्।

शीतोऽविवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डूः पाषाणवत् संहननोपपन्नः चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनश्च पूयम् ॥ १५ ॥

अविवर्णः-प्रकृतिवर्णः। पाषाणवत् संहननोपपन्नः-संहततायुक्तः ॥

जो ग्रंथि शीतल हो, स्वाभाविक वर्णवाली हो, थोडी पीडावाली हो, अत्यन्त खुजलीयुक्त हो, पत्थरके समान अत्यन्त कठिन हो. बहुत दिनोंमें वृद्धिको प्राप्त हो, जब वह फूटे तब उसमेंसे सफेद तथा गाढी राध निकले, उसको 'कफकी ग्रंथि' कहते हैं ॥ १५ ॥

अथ मेदोजग्रंथिलक्षणम् ।

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान् कण्डुयुतोऽरुजश्च । मेदःकृतो गच्छति-चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमन्तु मेदः ॥ १६ ॥

तिलसदृशं घृतसदृशं वा मेदः गच्छति स्रवतीत्यर्थः ॥

जो ग्रंथि शरीरके बढनेसे बढे, शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होती हो, स्निग्ध हो, बडी हो, खुजलीयुक्त हो, पीडारहित और फूटते समय खलके समान अथवा घीके समान उसमेंसे मेद स्रवे, उस ग्रंथिको 'मेदसम्बन्धी' जानना ॥ १६ ॥

अथ शिराजन्यग्रंथिलक्षणम् ।

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुश्च शिराप्रतानम् । संकोच्य सम्पीड्य विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ १७ ॥

तैस्तैः-बलवद्भिग्रहादिभिः । आक्षिप्य चालयित्वा । सम्पीड्य सहतीकृत्य ॥

निर्बल मनुष्य बलवान्के साथ युद्ध आदि, परिश्रम करे तो उससे कुपित हुई वायु शिराओंके समूहको चलायमान करके, दबाकर संचय करके और सुखाकर तत्काल ऊँची तथा गोल आकारवाली ग्रन्थिको उत्पन्न करती है, इस ग्रन्थिको 'शिरासम्बन्धी' जानना ॥ १७ ॥

अथ ग्रन्थिकष्टसाध्यासाध्यता ।

ग्रन्थिः शिराजःस तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च । अरुक् स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ १८ ॥

अरुजत्वादियुक्ता अन्येऽपि ग्रन्थयोऽसाध्यः ॥

पञ्चैतानरुजो ग्रन्थीन् मर्मजानचलांस्त्यजेत् । कपोलगलमन्यासु दुश्चिकित्स्या-हि सन्धिषु ॥ १९ ॥

जो शिराजन्य ग्रंथि पीडासहित हो और चंचल हो, तो कष्टसाध्य है । जो शिरासम्बन्धी ग्रंथि पीडारहित हो, अचल हो, बडी हो और मर्मस्थलमें उत्पन्न हुई हो, तो असाध्य है इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये दूसरी ग्रंथि भी जो पीडारहित, अचल, बडी और मर्मस्थलमें उत्पन्न हुई हो तो उसको भी असाध्य जानना क्योंकि, भोजने भी कहा है कि-"पांच प्रकारकी ग्रंथियोंमें जो ग्रंथि पीडारहित हो, मर्मस्थलमें उत्पन्न हुई हो और अचल हो, उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये"। गाल नाड और संधियोंमें उत्पन्न हुई ग्रंथियोंकी चिकित्सा करनी बहुत कठिन है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथार्बुदस्य सम्प्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम् ।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः सम्मूर्च्छिता मांसमसृक्प्रदूष्य ॥ २० ॥ वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् । कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाध तदर्बुदं शास्त्रविदोवदन्ति ॥ २१ ॥

महान्तं ग्रन्थ्यपेक्षया । चिरेण वृद्धिः यस्य तत् चिरवृद्धि । अपाकम् इति ग्रन्थेः सकाशादस्य भेद-ज्ञापकम् । अत्यगाधम्—दूरानुप्रविष्टम् ॥

कोपको प्राप्त हुए दोष शरीरके किसी प्रदेशमेंभी मांसको तथा रुधिरको दूषित करके गोल आकारवाली, स्थिर, अन्य पीडावाली, ग्रंथिकी अपेक्षाबडी, बहुत उठी हुई, बडी जडवाली, बहुत समयमें बढनेवाली और बहुत दिनोंमें भी नहीं पकनेवाली मांसका ऊंचाईको उत्पन्न करते हैं। शास्त्रवेत्ता इस मांसकी ऊंचाईको 'अर्बुद' कहते हैं, देशभाषामें इसको 'रसौली' कहते हैं। ग्रंथि पकती है और अर्बुद नहीं पकता है ॥ २० ॥ २१ ॥

अथार्बुदनिदानपूर्वकविशिष्टलक्षणम् ।

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च । तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ॥ २२ ॥

ग्रन्थेः–समानानि-वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकमेदोजानाम् अर्बुदानां लक्षणानि तुल्यानि भवन्ति ॥

यह अर्बुद–वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस और मेदसे उत्पन्न होता है और इसमें वात, पित्त, कफ और मदके अर्बुदके लक्षण सर्वदा ग्रंथियोंके लक्षणोंके समान होते हैं ॥ २२ ॥

रुधिरजन्यार्बुदनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिराश्च सङ्कोच्य सम्पीड्य ततस्त्वपाकम्। सास्रावमुन्नह्यति मांस पिण्डं मांसांकुरैराचृतमाशु वृद्धिम् ॥२३॥ स्रवत्यजस्रं रुधिरं प्रदुष्टमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं तु । रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पाण्डुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ॥ २४ ॥

दोषोऽत्र पित्तम् । रुधिरं शिराश्च संकोच्य सम्पीड्य--संहतीकृत्य मांसासृजोः सर्वेषु, अर्बुदेष्वदुष्यत्वम् । रक्तजे तु विशेषतो रक्तदुष्टिः । एवं मांसार्बुदे विशेषतो मांसदुष्टिर्बोद्धव्या । ततः मांसपिण्डम्उन्नह्यति उद्धतं करोति । अपाकम् ईषत्पाकं यथा स्यादेवमिति क्रियाविशेषणम् । ईषत्पाकश्चैकदेशपाकेन । रक्तक्षयोपद्रवाः सुश्रुतोक्ताः तैः पीडित त्वात् । अर्बुदपीडितः--रक्तार्बुदपीडितः ॥

दुष्ट हुआ पित्त रुधिरको ता शिराओंको संकुचित करके तथा जिससे एकत्रित होजाय ऐसी रीतिसे दबाकर, स्रावयुक्त, मांसके अंकुरोंसे व्याप्त और तत्काल बढनेवाले तथा यत्किंचित् पकनेवाले मांसके पिंडको उत्पन्न करते हैं और उसमें दूषित रुधिर नित्य स्रवता है। इसको 'रुधिरजन्य अर्बुद' कहते हैं यह अर्बुद असाध्य है। इस अर्बुदसे पीडित मनुष्य सुश्रुतमें कहेहुएरुधिरके क्षयके उपद्रवोंसे पीडित होकर पांडुवर्ण होजाता है। सर्व प्रकारके अर्बुदोंमें मांस तथा रुधिर दूषित होता है और रुधिरसे उत्पन्न हुए अर्बुदमें तो विशेष करके रुधिर दूषित होता है तथा मांसके अर्बुदमें विशेष करके मांस दूषित होता है ॥२३॥२४॥

अथ मांसार्बुदसम्प्राप्तिः ।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं समुपैति शोथम् । अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ॥ २५ ॥

मांस प्रदुष्टं वातेन । अवेदनम् -वेदनारहितमीषद्वेदनं वा । अपाकम्--पाकरहितमीषत्पाकं वा ॥

मुष्टि आदिके प्रहारसे अंग पीडित होकर उस अंगके पीडित होनेसे वायु कुपित होकर मांसमें वेदनारहित अथवा अल्पवेदनासहित, स्निग्ध, अभिन्न वर्णवाली वा नहीं पकनेवाली अथवा कुछेक पकनेवाली, पत्थरके समान और अचल ऐसी सूजनको उत्पन्न करती है ॥ २५ ॥

अथ मांसजन्यार्बुदनिदानम् ।

प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ २६ ॥

मांसाशनाभ्यासेन यः प्रदुष्टमांसस्तस्य तद्भवतीत्यर्थः ॥

मांसको भक्षण करनेके अभ्याससे जिसका मांस दुष्ट होजाता है, उसके यह दृढ अर्बुद उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥

अथासाध्यार्बुदलक्षणम् ।

मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमाहुः साध्येष्वपीमानिविवर्जयेच्च । संप्रस्रुतं मर्मसु यच्च जातं स्रोतस्सु वा यत्तु भवेदचाल्यम् ॥ २७ ॥

साध्येष्वपि-वातजादिष्वपि । इमानि-वक्ष्यमाणानि । विवर्जयेच्च सम्प्रस्रुतादीनि ॥

मांससे उत्पन्न हुआ अर्बुद असाध्य है, ऐसा वैद्योंने कहा है। वातादिसे जो उत्पन्न हुए अर्बुद वे साध्य हैं, उनमें भी जो अर्बुद स्रावयुक्त मर्मस्थलमें उत्पन्न हुआ, स्रोतोंमें उत्पन्न हुआ और अचल हो, उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ २७ ॥

यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः । यद्द्वन्द्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥२८॥

प्रथम उत्पन्न हुए अर्बुदमें जो दूसरा अर्बुद उत्पन्न हो जाय तो उसका नाम 'अध्यर्बुद' कहा जाता है यह अध्यर्बुद एकही समय अथवा अनुक्रमसे उत्पन्न हुआ हो और दो दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ हो तो असाध्य है ॥ २८ ॥

अथार्बुदापाककारणम् ।

न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु । दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ २९ ॥

ग्रथनात्-ग्रंथिरूपत्वात् ॥

सब प्रकारके अर्बुद कफकी तथा मेदकी अधिकतावाले और विशेष करके दोषोंकी स्थिरतावाले तथा गांठरूप हों, वे भी नहीं पकते हैं ॥ २९ ॥

ननु अपच्यां कफमेदसोराधिक्येऽपि पाको दृश्यते, तथा अत्र कथं न पाक इत्याह–निसर्गत इति । निसर्गतः–स्वभावात् ॥

शंका–अपचीमें कफ तथा मेद अधिक होता है तो भी अपचीका पाक होता है । फिर अर्बुदका पाक क्यों नहीं होता ?

समाधान– अर्बुदका स्वभाव ही ऐसा है कि, जिससे पाक बहुत कालतक नहीं होत और हो, तो बहुत थोडा पकता है ॥

अथ गलगण्डचिकित्सा ।

सर्षपाञ्छिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् । मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ ३० ॥ गलगण्डो गण्डमाला ग्रन्थयश्चैव दारुणाः । प्रलेपादेव नश्यन्ति विलयं यान्ति सत्वरम् ॥३१॥

सरसों, सहिंजनेके बीज, सनके बीज, अलसी जौ और मूलीके बीज इनको खट्टे मट्ठेमें पीसकर गाढा लेप करें, इससे गलगंड, गंडमाला और दारुण ग्रंथि तत्काल नष्ट होजाती और गलजाती हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

रक्षोघ्नतैलयुक्तेन जलकुम्भीकभस्मना । लेपनं गलगण्डस्य चिरोत्थस्यापि शस्यते ॥ ३२ ॥

रक्षोघ्नः-सर्षपः ।

सिवारकी भस्म बनाकर उसको सरसोंके तेलमें पकाकर लेप करें तो बहुत दिनोंका गलगण्ड भी शांत होजाता है ॥ ३२ ॥

श्वेतापराजितामूलं प्रातः पिष्ट्वा पिबेन्नरः । सर्पिषा नियताहारो गलगण्डप्रशान्तये ॥ ३३ ॥

श्वेत अपराजिताकी जडको पीसकर प्रातः काल घीके साथ पीवे और इसपर पथ्य आहार करे तो गलगण्ड शांत होजाता है ॥३३

तिक्तालाबूफले पक्के सप्ताहमुषितं जलम् । सद्यः स्याद्गलगण्डघ्नं मानात्पथ्यान्नसेविनाम् ॥ ३४ ॥

कडवी तोम्बीके पके हुए फलमें पानीको भरकर सात दिनतक रख देवें, फिर उसको पीवे और पथ्य आहार सेवन करें तो उससे गलगंड तत्काल नष्ट होजाता है ॥ ३४ ॥

तैलं पिबेद्वाऽमृतवल्लिनिम्बहिंस्राभयावृक्षकपिप्पलीभिः । सिद्धं बलाभ्यां सह देवदारुणा हिताय नित्यं गलगण्डरोगिणः ॥ ३५ ॥

वृक्षकोऽत्र तुणिः । उक्तश्च निघण्टौ धन्वन्तरिणा--

तुणिस्तूणीकशीतश्च नन्दिवृक्षश्च वृक्षकः ॥ ३६ ॥

बलाभ्याम् बलातिबलाभ्याम् ।

गिलोय, नीम, हिंस्रकवृक्ष, हरड, वेलियापीपल, पीपल, दोनों प्रकारकी खिरैंटी और देवदारु इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल नित्य पीवे तो गलगंड रोग अवश्य नष्ट हो जाता है । इसको ' अमृतादि तेल ' कहते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

यवमुद्गपटोलादिकटुरूक्षान्नभोजनम् । वमनं रक्तमोक्षं च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥

गलगंडरोगमें जौ, मूँग, कडवे परवल, तीक्ष्ण तथा रूक्षपदार्थ भोजन करने चाहिये । वमन करानी और रुधिर निकलवाना चाहिये ॥ ३७ ॥

दापयेत्प्रच्छनान्यत्र गण्डगोपालिकोद्भवः । प्रलेपस्त्वनुभूतोऽयं बहुधा बहुभिर्जनैः ॥ ३८ ॥

प्रच्छनानि ' पच्छना ' इति लोके । गण्डगोपालिका गण्डगुपाली ' इति च प्रसिद्ध आम्रवाटिकायां सुलभः कीटविशेषो भवति ॥

गलगंडपर पछने लगावे और ऊसपर गण्डगोपाल नामक कीडेका लेप करे, इससे गलगण्ड नष्ट होजाता है । यह प्रयोग बहुतसे मनुष्योंने बहुतही बार अनुभव किया है॥३८॥

लवणं जलकुम्भश्च कणाचूर्णेन संयुतम् । प्रभाते नित्यमश्नीयाद्गलगण्डप्रशान्तये ॥ ३९ ॥

जलकुम्भीकी भस्म बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर नित्य प्रातःकाल पीवे तो गलगण्ड नष्ट होजाता है ॥ ३९ ॥

अथ गण्डमालाचिकित्सा ।

काञ्चनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन संयुतः । माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः ॥ ४० ॥ गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ४१ ॥

कचनारकी छालका क्वाथ बनाकर उसमें सोंठका चूर्ण डालकर पीवें तो एकही बारमें गण्डमाला नष्ट होजाती है । वरनेकी जडका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर पीवें तो एकही बारमें तत्काल बहुत दिनोंकी पुरानी गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

पलमर्द्धपलं चापि पिष्टां तण्डुलवारिणा । काञ्चनारत्वचं पीत्वा गण्डमालां व्यपोहति ॥ ४२ ॥

दो तोले अथवा चार तोले कचनारकी छाल लेकर उसको चावलोंके पानीमें पीसकर पीवे तो गण्डमाला नष्ट होती है ॥ ४२ ॥

अथ काञ्चनारगुग्गुलुः।

काञ्चनारस्य गृह्णीयात्त्वचं पञ्चपलोन्मिताम्। नागरस्य कणायाश्च मरिचस्य पलं पलम् ॥ ४३ ॥ पथ्याविभीतधात्रीणां पलमर्द्धं पृथक्पृथक्। वरुणस्याक्षमेकं च पत्रकैलात्वचं पुनः ॥ ४४ ॥ टङ्कंटङ्कं समादाय सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्। यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावानेत्राय गुग्गुलुः ॥ ४५ ॥ संकुट्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा विधारयेत्। गुटिकाः शाणिकः कृत्वा प्रभाते भक्षयेन्नरः ॥ ४६ ॥ गलगण्डं जयत्युग्रमपचीमर्बुदानि च। ग्रन्थीन् व्रणानि गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥४७॥ प्रदेयश्चानुपानार्थं क्वाथो मुण्डितिकाभवः। क्वाथः खदिरसारस्य क्वाथः कोष्णो ऽभयाभवः ॥ ४८ ॥

कचनारकी छाल बीस तोले, सोंठ चार तोले, पीपल चार तोले, मिर्च चार तोले, हरड दो तोले, बहेडे दो तोले, आंवले दो तोले, वरना एक तोला, तेजपात चौबीस रत्ती, इलायची चौबीस रत्ती और दालचीनी चौबीस रत्ती लेवे, इन सबको एकत्र करके बारीक चूर्ण बनावे, फिर इस सब चूर्णकी बराबर गूगल मिलाकर उत्तम विधिसे कूटकर गोली बनालेवे, इसको 'कांचनारगूगल' कहते हैं। इस गूगलकी चौबीस चौबीस रत्तीकी गोलियां बनावे। प्रातःकाल एक गोली नित्य खाय तो महा उग्र गलगण्ड अपची, अर्बुद, ग्रंथि, व्रण, गुल्म, कोढ तथा भगन्दर ये सब नष्ट होजाते हैं। इन गोलियोंपर अनुपानके लिये कुछ कुछ गरम गोरखमुण्डीका अथवा खैरसारका वा हरडका क्वाथ पीवे ॥ ४३-४८ ॥

अथ चक्रमर्दतैलम्।

चक्रमर्दकमूलस्य पलं कल्के विपाचयेत्। केशरागरसे तैलं कटुकं मृदुनाऽग्निना ॥ ४९ ॥ पादांशिकं विनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत्। एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ ५० ॥

केशरागः—भृङ्गराजः॥

पमारकी जडका कल्क चार तोले डालकर भांगरेके रसमें सरसोंके तेलका मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब पकजाय तब उसमें चौथाई भाग सिन्दूर डालकर उतार लेवे तो 'चक्रमर्दतैल' सिद्ध होता है। इस तेलकी मालिस करनेसे तत्काल महादारुण गण्डमाला नष्ट होजाती है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ गुञ्जातैलम्।

गुञ्जामूलफलैस्तैलं विपक्वं द्विगुणाम्भसा। हरेदभ्यङ्गनस्याभ्यां गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ ५१ ॥

चौंटलीकी जड तथा चौंटलीके बीज इनका कल्क डालकर दुगुने जलसे तेलको पकावे तो यह 'गुंजातैल' सिद्ध होता है। इस तेलका अभ्यंग और नस्य लेनेसे महादारुण गंडमाला नष्ट होजाती है ॥ ५१ ॥

अथापचीचिकित्सा।

तत्र चन्दनादितैलम्।

चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी। एतत्तैलं शृतं पीत्वा समूलामपचीं हरेत् ॥ ५२ ॥

लालचन्दन, हरड, लाख, वच और कुटकी इनके क्वाथमें पकाया हुआ तेल 'चन्दनादि तेल' कहा जाता है। इस तेलको पीनेसे जडसहित अपची नष्ट होजाती है ॥ ५२ ॥

अथ व्योषादितैलम् ।

व्योषं विडङ्गमधुकं सैन्धवं देवदारु च ।
तैलमेभिः शृतं नस्यात्सुकृच्छ्रामपचीं हरेत् ॥ ५३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, मुलहठी, सैंधानिमक और देवदारु इनके क्वाथमें पकाया हुआ तेल 'व्योषादितैल' कहा जाता है । इस तेलका नस्य देनेसे दारुण अपची नष्ट होजाती है ॥ ५३ ॥

अथ ग्रन्थ्यर्बुदचिकित्सा ।

स्वर्जिकामूलकक्षारः शङ्खचूर्णसमन्वितः।
एतेन विहितो लेपो हन्ति ग्रन्थिं तथाऽर्बुदम् ॥ ५४ ॥

सज्जी, मुलीका खार और शंखका चूर्ण इनको पीसकर लेप करनेसे ग्रंथि तथा अर्बुद नष्ट होजाता है ॥ ५४ ॥

ग्रन्थिर्न यो नश्यति भेषजेन निष्कासितं शस्त्रचिकित्सकेन । जात्यादिपक्केन घृतेन वैद्यो व्रणेन वाऽन्येन च सञ्चिकित्सेत् ॥ ५५ ॥

जिस ग्रंथिमें औषधिसे आराम न हो तो उसको वैद्य शस्त्रचिकित्सासे निकाल देवे । फिर व्रणके समान जात्यादिघृत अथवा अन्यान्य व्रणमें हितकारक औषधियोंका उपयोग करे ॥ ५५ ॥

ग्रन्थिमुद्धृत्य तत्रापि व्रणोक्तं क्रममाचरेत् । शिराग्रन्थिं विहायान्ये शेषे शस्त्रं प्रयुञ्जते ॥ ५६ ॥

गांठको निकालकर फिर व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये । केवल शिराजन्य ग्रंथिको छोड़कर बाकी सर्वप्रकारकी ग्रंथियों की शस्त्रसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५६ ॥

ग्रन्थ्यर्बुदानां न यतो विशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः । अतश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानि विधानविद् ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥ ५७ ॥

अन्य आचार्य ऐसा कहते हैं कि, ग्रंथि और अर्बुदोंके प्रदेशोंमें, निदानोंमें, आकारोंमें, दोषोंमें और दूष्योंमें कुछ भी अन्तर नहीं है । इस कारण शस्त्र चिकित्साको जाननेवाले वैद्य अर्बुदपर भी ग्रंथिके समान चिकित्सा करें ॥ ५७ ॥

हरिद्रालोध्रपत्राङ्गगृहधूममनः शिलाः ।
मधुप्रगाढलेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ॥ ५८ ॥

हलदी, लोध, पतंग, घरका धुआं और मैनशिल इनको सहतमें मिलाकर लेप करनेसे भेदसम्बन्धी अर्बुद नष्ट हो जाता है ॥ ५८ ॥

मूलकस्य कृतः क्षारो हरिद्रायास्तथैव च । शंखचूर्णेन संयुक्तो लेपः सिद्धोऽर्बुदापहः ॥ ५९ ॥

मूलीकी भस्म, हलदीकी भस्म और शंखका चूर्ण इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अर्बुद नष्ट हो जाता है । अर्बुद दूर करनेका यह सिद्ध उपाय है ॥ ५९ ॥

वटदुग्धकुष्ठरोमकलिप्तं बद्धं वटस्य पत्रेण।
अध्यस्थि सप्तरात्रान्महदप्युपशान्तिमर्बुदं गच्छेत् ॥ ६० ॥

बडका दूध, कूठ और सांभरनिमक इनका अर्बुदके ऊपर लेप करे और ऊपरसे बडके पत्ते बांध देवे तो हड्डीके ऊपर हुआ भी अर्बुद नष्ट हो जाता है ॥ ६० ॥

शिग्रुमूलकयोर्बीजं रक्षोघ्नं सुरसा यवम् ।
तक्रेणाश्वरिपोः पिष्ट्वा लिम्पेदर्बुदशान्तये ॥ ६१ ॥

रक्षोघ्नम्-सर्षपम् । सुरसा-तुलसी । यवम्-इन्द्रयवम् । अश्वरिपुः-महिषी ॥

इति गलगंडगंडमाला-ग्रन्थ्यर्बुदनिदान-चिकित्साधिकारः ।

सहिंजनेके बीज, मूलीके बीज, सरसों, तुलसी और इन्द्रजौ इनको भैंसके तक्रमें पीसकर लेप करनेसे अर्बुद नष्ट होजाता है ॥६१॥

इति गलगंडगंडमालाग्रन्थ्यर्बुदाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ श्लीपदाधिकारः ।

तत्र श्लीपदसामान्यकारणम् ।

पुराणोदकभूयिष्ठाःसर्वर्तुषु च शीतलाः । ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ १ ॥

विशेषत इति वचनेन अन्यत्रापि श्लीपदं भवतीति बोध्यते ॥

जिस देशमें वर्षाका जल बहुत दिनोंतक भरा रहता है और सब ऋतुओंमें जिसमें शीतलता रहती है, उस देशमें श्लीपद रोग विशेष करके उत्पन्न होता है ॥

"विशेष करके" ऐसा कहनेसे यह समझना चाहिये कि अन्य देशोंमें भी श्लीपदरोग उत्पन्न है ॥ १ ॥

अथ श्लीपदसामान्यलक्षणम् ।

यः सज्वरो वङ्क्षणजो भृशार्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण । तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नोष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥ २ ॥

मनुष्योंकी सांथलोंकी जडमें जो सूजन ज्वरसहित और अत्यन्त पीडायुक्त अनुक्रमसे धीरे धीरे पांवमें पहुँचे, उस सूजनको 'श्लीपद' कहते हैं । कितने आचार्य कहते हैं कि हाथ, कान, नेत्र, लिंग, होंठ और नाक इनमें भी श्लीपद होता है ॥ २ ॥

तत्त्रिविधम् । वातिकं पैत्तिकं श्लैष्मिकञ्चेति ।

वातकी, पैत्तिक और कफज ऐसे श्लीपद रोग तीन प्रकारका है ॥

अथ त्रिविधश्लीपदसामान्यलक्षणम् ।

वातजं कृष्णरूक्षं हि स्फुटितं तीव्रवेदनम् । अनिमित्तरुजश्चास्य बहुशो ज्वर एव च ॥ ३ ॥

वातिक श्लीपद-काला, रूखा, फटा हुआ, तीव्र पीडायुक्त होता है । उसमें अकस्मात् वेदना होती है तथा वारंवार ज्वर आता है ॥३

पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं भृशम् । श्लैष्मिकन्तु भवेत्स्निग्धं तथा पाण्डुरमस्थिरम् ॥ ४ ॥

पैत्तिक श्लीपद-पीले रंगका अत्यन्त दाह और ज्वरयुक्त होता है । कफका श्लीपद-स्निग्ध, पांडुवर्ण और अल्प पीडायुक्त होता है

त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् । गुरुत्वञ्च महत्त्वञ्च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ ५ ॥

ये तीन प्रकारके श्लीपद कफके उत्कर्षसे होते हैं, क्योंकि कफके विना भारीपन और महत्‌पन नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

अथ श्लीपदासाध्यता ।

वल्मीकमिव सञ्जातं कण्टकैरुपचीयते । अब्दात्मकं महत्तु वर्जनीयं विशेषतः ॥ ॥ ६ ॥ यच्छ्लैष्मिकाहारविहारजातैर्जातं तथा भूरिकफस्य पुंसः । सास्रावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ७ ॥

जो श्लीपद सांपकी बांबीके समान, अनेक कांटों युक्त बढा हो और जिसको उत्पन्न हुए एक साल बीत गया हो, उस श्लीपदकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये जो श्लीपद

कफजनक आहार विहारोंसे उत्पन्न हुआ हो, अधिक कफवाले मनुष्यको उत्पन्न हुआ हो, स्रवता हो, अत्यन्त ऊँचा हो, तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त हो, और खुजलीयुक्त हो, उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥६॥७॥

अथ श्लीपदचिकित्सा ।

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणैः । प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ ८ ॥

लंघन, लेपन, स्वेदन, विरेचन, रक्तमोक्षण और विशेष करके कफको हरनेवाली गरम औषधियोंसे श्लीपदकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८॥

सिद्धार्थशोभाञ्जनदेवदारुविश्वौषधैर्मूत्रयुतैः प्रलिम्पेत् । पुनर्नवानागरसर्षपाणां कल्केन वा काञ्जिकमिश्रितेन ॥ ९ ॥

श्लीपदमिति शेषः ॥

सरसों, सहिंजना, देवदारु और सोंठ इन सबको गोमूत्रमें पीसकर श्लीपदके ऊपर लेप करनेसे श्लीपद नष्ट होजाता है। पुनर्नवा, सोंठ और सरसों इनका कल्क बनाकर उसमें कांजी डालकर लेप करनेसे श्लीपद नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

धतूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः । प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ १० ॥ असाध्यमपि यात्यस्तं श्लीपदं चिरकालजम् । मूलेन सहदेवायास्तालमिश्रेण लेपनात् ॥ ११ ॥ सप्तताम्बूलपत्राणां कल्कं तप्तेन वारिणा । संसृष्टं लवणोपेतं सेवितं श्लीपदं हरेत् ॥ १२ ॥

धतूरा, एरंड, निर्गुण्डी, पुनर्नवा, सहिंजना और सरसों इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बहुत दिनोंका दारुण श्लीपद नष्ट हो जाता है ॥ खिरैंटी अथवा सहदेवकी जडको ताडके फलोंके रसमें पीसकर लेप करनेसे बहुत कालसे उत्पन्न हुआ असाध्य श्लीपद भी नष्ट हो जाता है ॥ नगरबेलके सात पानोंका कल्क बनाकर उसमें सैंधानिमक डालकर गरम जलके साथ नित्य पीवे तो श्लीपद नष्ट हो जाता है ॥ १०-१२ ॥

शाखोटवल्कलक्काथं गोमूत्रेण युतं पिबेत् । श्लीपदानां विनाशाय मेदोदोषनिवृत्तये ॥ १३ ॥

सिहोरेकी छालका क्वाथ बनाकर गोमूत्रके साथ पानीसे श्लीपदका नाश होता है और मेददोषभी नष्ट होता है ॥ १३ ॥

रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः । वर्षाभूत्रिफलाचूर्णं पिप्पल्या सहयोजितम् । सक्षौद्रं श्लीपदे लिह्याच्चिरोत्थं श्लीपदं जयेत् ॥ १४ ॥

हलदी और गुडको एकत्र मिलाकर गोमूत्र में घोलकर पीनेसे श्लीपद नष्ट हो जाता है । पुनर्नवा, हरड, बहेडा, आमला और पीपल इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे बहुत दिनोंका श्लीपद नष्ट हो जाता ॥ १४ ॥

गन्धर्वतैलसिद्धां हरीतकीं गोऽम्बुना पिबेन्नित्यम् । श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ १५ ॥

गन्धर्वतैलम्-एरण्डतैलम् । गोऽम्बु-गोमूत्रम् ॥

इति श्लीपदनिदानचिकित्साधिकारः ।

एरंडके तेलमें हरडोंको पकाकर नित्य गोमूत्रके साथ पीनेसे सात दिनमें श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

इति श्लीपदाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ विद्रध्यधिकारः ।

तत्र विद्रध्याः सम्प्राप्तिपूर्वक-सामान्यलक्षणम् ।

त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः । दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ १ ॥ महामूलं रुजावन्तमल्पं वाप्यथवाऽऽयतम् । स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥ २ ॥

घोरम्-दारुणम् । आयतम् । दीर्घम् ॥

अस्थियोंमें रहनेवाले और अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुए दोष त्वचाको, रुधिरको, मांसको तथा मेदको दूषित करके धीरे धीरे छोटी अथवा बडी, बहुत बडी जडवाली और वेदनायुक्त भयंकर सूजनको उत्पन्न करते हैं । यह सूजन 'विद्रधि' कही जाती है और यह छः प्रकारकी है ॥ १ ॥ २ ॥

अस्थिसमाश्रिता दोषा इति वक्ष्यमाणशोथाद्विद्रधेर्भेदार्थम् । यतोव्रणशोथे दोषाणामस्थिसमाश्रयनियमो नास्ति ॥

इस विद्रधि अधिकारके पश्चात् जो व्रणसम्बन्धी सूजन कही जायगी, उससे पृथकता दिखलानेके लिये 'अस्थियोंमें रहनेवाले' ऐसा कहा है. क्योंकि व्रण सम्बन्धी सूजनमें दोषोंका अस्थियोंमें रहनेका नियम नहीं है ॥

अथ विद्रधिषट्प्रकाराः ।

यथा दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा । षण्णां तेषां तुल्यमेव लक्षणं संप्रचक्षते ॥ ३ ॥

१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ त्रिदोषज, ५ क्षतज और ६ रुधिरजन्य ऐसे विद्रधि छः प्रकारकी है । समस्त विद्रधियोंके सामान्य लक्षण एकसे ही होते हैं ॥ ३ ॥

अथ वातजविद्रधिलक्षणम् । १

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः । चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसम्भवः ॥ ४ ॥

विषमो भृशम्-क्षणमल्पः क्षण महान् । चिरोत्थान प्रपाकः-चिराद्विलंबादुत्थानप्रपाकौ यस्य सः ॥

जो विद्रधि काली अथवा लाल हो, क्षणमें छोटी और क्षणमें बडी होजाय, अत्यन्त वेदनायुक्त और जिसका उठना तथा पकना बहुत कालमें हो, उसको 'वातजविद्रधि' जानना । इस विद्रधिमें पतला स्राव होता है ॥ ४ ॥

अथ पित्तजविद्रधिलक्षणम् । २

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान् । क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसम्भवः ॥ ५ ॥

जो विद्रधि पके गूलरके समान अथवा कलौंसा लिये हो, ज्वरसे तथा दाहसे युक्त हो, जिसका उठना और पकना शीघ्र हो, उसको 'पित्तकी विद्रधि' जानना, इस विद्रधिका स्राव पीला होता है ॥ ५ ॥

अथ कफजविद्रधिलक्षणम् । ३

शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः । चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः । तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशो मताः ॥ ६ ॥

जो विद्रधि मट्टीके सकोरेके समान बडी हो, पांडु वर्ण हो, शीतल हो, स्निग्ध हो, थोडी पीडायुक्त हो और जिसका उठना तथा पकना बहुत देरमें हो, उसको 'कफकी विद्रधि' कहते हैं । इस विद्रधिका स्राव सफेद होता है ॥ ६ ॥

अथ सान्निपातिकविद्रधिलक्षणम् । ४

नानावर्णरुजास्रावो घाटलो विषमो महान् । विषमं पच्यते वापि विद्रधिः सान्निपातिकः ॥ ७ ॥

नाना—अनेकविधाः वर्णाः कृष्णरक्तपाण्डुरूपाः, रुजा तोददाहकण्डूवादिरूपाः, स्रावाः-तनुपीतसिताः यस्य सः । घाटलः-घाटा कोटिः सा अस्य अस्तीति घाटलः अत्युच्छ्रिताग्र इत्यर्थः । विषमः मिम्नोन्नतः । विषमं पच्यते वापि-चिराचिरगम्भीरौत्तानोर्ध्वानूर्ध्वभेदेनविषमं यथा स्यात्तथा पच्यते ॥

जो विद्रधि काली लाल तथा पांडुवर्ण हो, भेदने छेदने सरीखी पीडा, दाह तथा खुजली आदि अनेक उपद्रव युक्त हो, पतले, पीले, तथा सफेद स्राववाली हो, अत्यन्त ऊँची अनीदार हो, नीची ऊँची हो, बडी हो और जो बहुत दिनोंमें थोडे दिनोंमें विषम रूपसे अनियमित कालमें पके, उसको त्रिदोषविद्रधि जानना ॥ ७ ॥

अथाभिघातविद्रधिसम्प्राप्तिलक्षणम् । ५

तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणाम् । क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ॥ ८ ॥ ज्वरस्तृषा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः । आगन्तुर्विद्रधिर्ह्येष पित्तविद्रधिलक्षणः ॥ ९ ॥

तैस्तैर्भावैः काष्ठलोष्टपाषाणादिभिः अभिहते यथा रक्तस्रावो भविष्यति तथा क्षते कृते क्षतोष्मा । अत्र क्षतशब्देन दतमात्रमुच्यते । तेनाभिहतक्षतयोरुभयोरप्यूष्मा वायुना विश्रुतः। अभिहते-अभिघातात्क्षते रक्तक्षयात्कुपितेन वायुना प्रश्रुतः इत्येत्कोपयेत् ॥

लकडी, ईंट, पत्थर, तलवार, बरछी आदिके अभिघातसे, घाव होजानेसे अथवा जिसमें रुधिरका स्राव होता हो ऐसे घावके होनेसे, अपथ्य सेवन करनेवाले मनुष्योंके अंगोंमें अभिघातसे अथवा घावके होनेसे, रुधिरका क्षय होनेसे, कोपको प्राप्त हुई वायु विस्तृत होकर अभिघातकी अथवा घावकी गरमी, रुधिर और पित्तको प्रकुपित करती है जिससे मनुष्योंके ज्वर, तृषा और दाह उत्पन्न होते हैं । इस आगन्तुज विद्रधिके लक्षण पित्तजन्य विद्रधिके लक्षणोंके समान होते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ रुधिरजन्यविद्रधिलक्षणम् । ६

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः । पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ १० ॥

जो विद्रधि काले फोडोंसे व्याप्त हो, कलौंसा लिये हो,तीव्र पीडायुक्त, तीव्रदाहयुक्त तीव्रज्वरयुक्त और बाकी सब लक्षण इसके पित्तवि-द्रधिके समान होते हैं । इसको ' रुधिरकी विद्रधि ' जानना ॥ १० ॥

अथाभ्यन्तरविद्रधिनिदानाश्रयलक्षणानि ।

आभ्यन्तरानतस्तूर्ध्वं विद्रधीन् परिचक्षते । गुर्वसात्म्यविरुद्धान्न—शुष्कशाकाम्लभोजनैः ॥ ११ ॥ अतिव्यवायव्यायामवेगाघातविदाहिभिः । पृथक् सम्भूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ॥ १२ ॥ वल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम् । गुदे वस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा ॥ १३ ॥ वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदि वा क्लोम्नि चाप्यथ । एषां लिङ्गानि जानीयाद्बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ १४ ॥

संभूय वा—मिलित्वा । वा समुन्नद्धम् समम्॥

अब भीतरकी विद्रधियोंको कहते हैं । भारी अन्नके भोजन करनेसे, जो अपनेको प्रतिकूल हो विरुद्ध भोजन, सूखा-हुआ शाक और खट्टे

पदार्थोंके खानेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, आमसे, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, अत्यन्त उष्णपदार्थोंसे और दाह जनक पदार्थोंसे अलग अलग अथवा सब एकत्र मिलकर कोपको प्राप्त हुए दोष गुदाके भीतर, मूत्राशयके मुखमें, नाभिके भीतर, पेटके भीतर, सांथलोंकी सन्धियोंके भीतर, कोखमें पसलियोंमें प्लीहा और यकृत्में, हृदयमें अथवा तृषा लगनेके स्थानके भीतर, सांपकी बांबीकी और ऊँची गुल्मके समान विद्रधि उत्पन्न करते हैं। इन विद्रधियोंके लक्षण बाहरकी विद्रधियोंके समान ऊपरसे जानना ॥ ११ ॥ १४ ॥

अथ स्थानविशेषेण रूपविशेषः ।

गुदे वातनिरोधस्तु वस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता । नाभ्यां हिक्काजृम्भणे च कुक्षौ मारुतकोपनम् ॥ १५ ॥ कटिपृष्ठग्रहस्तीव्रो वंक्षणोत्थे तु विद्रधौ । वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीह्न्युच्छ्वासावरोधनम् ॥ १६ ॥ सर्वाङ्गप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते । श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपीयते पयः ॥ १७ ॥

गुदाके भीतर विद्रधि होती है तो अधानवायु रुकजाती है। मूत्राशयके मुखमें जो विद्रधि होती है तो उसमें धीरे धीरे थोडा मूत्र उतरता है। नाभिके भीतर जो विद्रधि होती है तो हिचकी और जम्भाई आती हैं। पेटके भीतर जो विद्रधि होती है तो वायुका प्रकोप होता है। सांथलकी जडके भीतर जो विद्रधि होती है तो कमर और पीठ तीव्ररीतिसे जकड जाती है। कोखमें विद्रधि होती है तो पसलियोंमें संकोच होता है। प्लीहाके भीतर जो विद्रधि होती है तो श्वास रुक जाता है। हृदयके भीतर जो विद्रधि होती तो तीव्र रीतिसे सम्पूर्ण अंग रहजाते हैं और खांसी होजाती है। जो यकृत्के भीतर विद्रधि होती है तो श्वास तथा हिचकी होती है और जो तृषा लगनेके स्थानमें विद्रधि होती है तो अत्यन्त तृष्णा लगती है ॥ १५-१७ ॥

अथ विद्रधिस्रावमार्गः ।

नाभेरुपरिजाः पक्वायान्त्यूर्ध्वमितरेत्वधः ॥ १८ ॥

उपरिजाः-कक्षादिजाताः । यांति स्रवंति । ऊर्ध्वम्-मुखात् । इतरे-वस्त्यादिजाः । अधः-गुदात् । नाभिजस्तु उभाभ्यां मार्गाभ्याम् ॥

नाभिसे ऊपरके भागोंमें कोख आदिमें उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब पकती हैं, तब उनका स्राव मुखमेंसे होता है-और नाभीसे नीचेके भागोंमें मूत्राशय आदिमें उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब पकती हैं, तब उनका स्राव गुदामेंसे होता है। नाभिके भीतर विद्रधि जब पकती हैं, तब उनका स्राव मुख तथा गुदा दोनोंमेंसे होता है ॥ १८ ॥

तथा च हारीतः—ऊर्ध्वं प्रभिन्नेषु मुखान्नराणां प्रवर्ततेऽसृक्सहितो हि पूयः । अधःप्रभिन्नेषु तु पायुमार्गाद् द्वाभ्यां प्रवृत्तिस्त्विह नाभिजेषु ॥ १९ ॥

क्योंकि, हारीतसंहितामें कहा है कि, नाभिके ऊपर उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटती है तब मनुष्योंके मुखमेंसे रुधिर सहित राध गिरती है और नाभिसे नीचे उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटती है, तब मनुष्योंकी गुदामेंसे रुधिर सहित राध गिरती है। नाभिमें उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटती है तो गुदा और मुख दोनोंमेंसे रुधिरसहित राध निकलती है ॥ १९ ॥

अथ विद्रधिसाध्यासाध्यत्वम् ।

अधःस्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति। हृन्नाभिवस्तिवर्जेषु तेषु भिन्नेषु बाह्यतः। जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ २० ॥

हृन्नाभिवस्तिवर्जेषु-प्लीहक्लोमादिजाः तेषु तथा भिन्नेषु न जीवेत् । हृदादीनां मर्मत्वात् ॥

विद्रधि गुदामेंसे स्रवती हो तो मनुष्य जीता रहता है किन्तु जो मुखमेंसे स्रवती हो तो मनुष्य नहीं जीता । हृदय, नाभि और मूत्राशय इन स्थानोंके सिवाय अन्य स्थानोंमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो बाहर फूटजाय तो मनुष्य कदाचित् जी जाता है, किन्तु हृदय, नाभि और मूत्राशय इनमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो बाहर फूटजाय तो मनुष्यकभी नहीं जीता। क्योंकि, हृदय आदि स्थान मर्मस्थल हैं ॥२०॥

आसाध्यो मर्मजो ज्ञेयः पक्वोऽपक्वश्च विद्रधिः । सन्निपातोत्थितोऽप्येवं पक्व एव हि वस्तिजः ॥ २१ ॥ त्वग्जो नाभेरधोजश्च साध्यो यश्च समीपजः । अपक्वश्चैव पक्वश्च साध्यो नोपरि नाभितः ॥२२॥ आध्मातं बद्धनिश्शब्दं छर्दिहिक्कातृषान्वितम् । रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ २३ ॥

इसपर भोज कहता है; कि, मर्मस्थलोंमें उत्पन्न हुई विद्रधि पकी हो, अथवा नहीं पकी हो तो भी असाध्यही समझना चाहिये । तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई विद्रधि भी असाध्य है । मूत्राशयमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो पकजाय तो असाध्य है । जो विद्रधि त्वचामें उत्पन्न हुई हो, नाभिके नीचे उत्पन्न हुई हो, अथवा नाभिके समीपमें उत्पन्न हुई हो, तो साध्य है । नाभिसे ऊपर उत्पन्न हुई विद्रधि पकी हो अथवा नहीं पकी हो तो भी असाध्य है । जिस विद्रधिवाले मनुष्यके अफारा, अशक्तता, वमन, हिचकी, तृषा, वेदना तथा श्वास हो तो वह मनुष्य विद्रधिसे अवश्य मरजाता है २१-२३॥

अथ बहिर्विद्रधिसाध्यासाध्यता ।

साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः सान्निपातिकः । आमपक्वविदग्धत्वं तेषां ज्ञेयं च शोथवत् ॥ २४ ॥

शोथवत्-वक्ष्यमाणव्रणशोथवत् ॥

बाहरकी विद्रधियोंमें वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, क्षतज और रुधिरजन्य ये पांचों विद्रधि साध्य हैं । किन्तु तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई विद्रधि असाध्य है । विद्रधिकी अपकता, पकता और विदग्धता व्रणशोथके समान जानना । व्रणशोथकी पकता, अपकता और विदग्धता आगेके अधिकारमें कहेंगे ॥ २४ ॥

अथ विद्रधिचिकित्सा ।

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ रेकोमृदुर्लंघनं च स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ २५ ॥

सर्व प्रकारकी विद्रधियोंमें जोंक लगवानी चाहिये, मृदु विरेचन देना और लंघन कराना ये उत्तम हैं । पित्तकी विद्रधिको छोडकर बाकी सब विद्रधियोंमें स्वेदन करना उत्तम है॥२५॥

अपक्वे विद्रधौ युञ्ज्याद्व्रणशोथवदौषधम् । वातघ्नमलकल्कैस्तु वसातैलघृतान्वितैः ॥ २६ ॥ सुखोष्णैर्बहुलैर्लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ । यवगोधूममुद्गैश्च पिष्टैराज्येन लेपयेत् । विलीयते क्षणेनैव ह्यविपक्वस्तु विद्रधिः ॥ २७ ॥

जो विद्रधि पकी न हो तो उसपर व्रणशोथकी औषधि जो कि आगेके अधिकारमें कही जायँगी, उनकी योजना करे । आल, एरण्डकी जडका कल्क बनाकर उसमें चरबी तेल तथा घी डालकर कुछेक गरम करके उसका गाढा लेप करनेसे वातकी विद्रधि दूर होजाती है । जौ, गेहूँ और मूंग इनको घीमें पीसकर लेप करनेसे नहीं पकी हुई विद्रधि क्षणमात्रमें लुप्त होजाती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

पैत्तिकं विद्रधिं वैद्यः प्रदिह्यात्सर्पिषा युतैः । पयस्योशीरमधुकचन्दनैर्दुग्धपेषितैः ॥ २८ ॥

पयस्याया अनेकार्थत्वादत्र सा क्षीरकाकोली, गुणाधिक्यात् । तस्या अलाभे अश्वगन्धा ग्राह्या ॥

क्षीरकाकोली, खस, मुलहठी और लालचन्दन इनको दूधमें पीसकर गाढा लेप करे तो पित्तजन्य विद्रधि नष्ट होती है। मूल श्लोकमें जो 'पयस्या' शब्द है, उसके अनेक अर्थ हैं;परन्तु हमने उनमेंसे यहां क्षीरकाकोली ली है, क्योंकि क्षीरकाकोली बहुत गुणवाली है। जो क्षीरकाकोली न मिले तो उसके अभावमें असगन्ध लेना चाहिये ॥ २८ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपयेत् । पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं त्रिवृत्कल्काक्षसंयुतम् ॥ २९ ॥ इष्टिकासिकतालोहकिट्टा गोशकृता सह । मूत्रैः सुखोष्णैर्लेपेन स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ॥३०॥

पंचवल्कलका कल्क बनाकर उसमें घी डालकर उसका लेप करनेसे पित्तकी विद्रधि दूर होती है ॥ हरड, वहेडा तथा आमला इनका क्वाथ बनाकर उसमें एक तोलाभर निसोतका कल्क डालकर पीनेसे पित्तजन्य विद्रधि दूर होजाती है ॥ ईंटका चूर्ण, रेता, लोहेकी कीट और गायका गोबर इनको गायके मूत्रमें पीसकर कुछेक गरम करके उसका लेप करे तो उसके स्वेदनसे कफजन्यविद्रधि नष्ट होजाती है ॥ २९ ॥ ३०

दशमूलीकषायेण सस्नेहेन रसेन वा । शोथव्रणं वा कोष्णेन स नूनं परिषेचयेत् ॥ ३१ ॥ पित्तविद्रधिवत्सर्वाः क्रिया निरवशेषतः । विद्रध्योः कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ॥ ३२ ॥ रक्तचन्दनमञ्जिष्ठानिशामधुकगैरिकैः । क्षीरेण विद्रधौ लेपो रक्तागन्तुनिमित्तके ॥ ३३ ॥

दशमूलके क्वाथ अथवा दशमूलके स्वरसमें घी डालकर कुछेक गरम करके उसका सेचन करनेसे विद्रधि तथा व्रणशोथ नष्ट होजाता है। रुधिरसम्बन्धी विद्रधि अथवा अभिघातजन्य वा घावके होनेसे विद्रधि उत्पन्न हुई हो तो वैद्य उसपर पित्तसबन्धी, रुधिरसम्बन्धी और क्षतसम्बन्धी विद्रधिके समान लालचन्दन, मजीठ, हलदी,मुलहठी और पीला गेरू इनको दूधमें पीसकर उसका लेप करे, विद्रधिको नष्ट करनेवाली जो क्रिया हैं, वे सब करनी चाहिये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

पीता घ्नन्ति निहन्त्याशु विद्रधिं कोष्ठसम्भवम् । कृष्णाऽजाजी विशाला च धामार्गवफलं तथा ॥ ३४ ॥

धामार्गवफलम्-कोशातकीफलम् ॥

कालाजीरा, इन्द्रायण और कडवी तोरई इनको एकत्र पीसकर पीनेसे कोठेमें उत्पन्न हुई विद्रधि नष्ट हो जाती है ॥ ३४ ॥

श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वा वरुणस्य च । जलेन क्वथितं पीतमन्तर्विद्रधिहृत्परम् ॥३५

सफेद पुनर्नवेकी जड अथवा वरनेकी जड इनको पानीमें औटाकर, काढेको पीनेसे भीतरकी विद्रधि अवश्य नष्ट होजाती है॥३५॥

गायत्री त्रिफला निम्बः कटुका मधुकं समम् । त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां चत्वारोंऽशाः पृथक्पृथक् ॥ ३६ ॥ मसूरान्निस्तुषान् दद्यादेह क्वाथो व्रणाञ्जयेत् । गुल्मविद्रधिवीसर्पदाहमोहज्वरापहः । तृण्मूर्च्छाच्छर्दिहृद्रोगपित्तासृक्कुष्ठकामलाः॥३७

खैर, हरड, बहेडा, आमला, नीम, कुटकी और मुलहठी इन सबको समान भाग लेवे, चार भाग निसोतकी जड और कडवे परवलकी जड चार भाग लेवे, फिर इन सब पदार्थोंको तथा छिलके रहित मसूरकी दालको डालकर क्वाथ बनावे । यह क्वाथ व्रण,

विद्रधि, गुल्म, वीसर्प, दाह, मोह, ज्वर, तृषा, मूर्च्छा वमन, हृदयकी पीडा, रक्तपित्त कोढ और कामलाको दूर कर देता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

शिग्रुमूलं जले धौतं पिष्टं वस्त्रेण गालयेत् । तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥ ३८ ॥

सहिंजनेकी जडको जलमें धोयकर जलमें पीसकर वस्त्रसे छान लेवे, फिर उसमें सहत मिलाकर पीनेसे भीतरकी विद्रधि शान्त होती है ॥ ३८ ॥

शोभाञ्जनकनिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः। हन्त्यन्तर्विद्रधिं शीघ्रं प्रातःप्रातर्विशेषतः ॥ ३९ ॥

इति विद्रधिनिदानचिकित्साधिकारः ।

सँहिजनेका काथ बनाकर उसमें हींग तथा सैंधानिमक डालकर विशेष करके प्रातःकाल पीवे तो भीतरकी विद्रधि नष्ट होजाती है ॥ ३९ ॥

इति विद्रध्यधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ व्रणशोथाधिकारः ।

तत्र व्रणशोथस्य संख्यापूर्वकसामान्यलक्षणम् ।

पृथक्समस्तदोषोत्था रक्तजागन्तुजौ तथा । व्रणशोथाः षडेते स्युः संयुक्ताः शोथलक्षणैः ॥ १ ॥ शोथलक्षणैः-पूर्वोक्तैः ॥

१ वातज, २ पितज, ३ कफज, ४ त्रिदोषज, ५ रुधिरजन्य और ६ आगन्तुज ऐसे व्रणशोथ छः प्रकारके हैं। इन छओंमें पूर्वोक्त सूजनके लक्षण होते हैं ॥ १ ॥

व्रणशोथविशिष्टरूपम् ।

विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थं चाचिराच्चिरम् । कफजः पित्तवच्छोथौ रक्तागन्तुसमुद्भवौ ॥ २ ॥

वातजव्रणकी सूजन विषमरीतिसे पकती, पित्तजव्रणकी सूजन तत्काल पकजाती है, कफजव्रणकी सूजन तत्कालमें पकती है और रुधिरजन्य व्रणकी सूजन तथा आगन्तुजव्रणकी पित्तज व्रणशोथकी सूजनके समान तत्काल पकजाती है ॥ २ ॥

अथापक्वव्रणशोथलक्षणम् ।

मन्दोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता । मन्दवेदनता चापि शोथस्यामस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥

जिसमें गरमी मन्द हो,सूजन कम् हो घावका स्थान कठोर हो, सूजनका रंग शरीरकी त्वचाके समान हो और वेदना थोडी हो तो उसको अपक्क सूजन जानना ॥ ३ ॥

अथ पच्यमानव्रणशोथलक्षणम् ।

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव प्रपच्यते । पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा ॥ ४ ॥ भिद्यते चेव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते । पीड्यते पाणिनेवान्तः सूचीभिरिव तुद्यते ॥ ५ ॥ ऊषचोषौ विवर्णः स्यादङ्गुल्येवावपीड्यते । आसने शयने स्थाने शान्तिं वृश्चिकविद्धवत् ॥ ६ ॥ न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मातवस्तिवत् । ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैतत्पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥

छिद्यते-द्विधा क्रियत इव । भिद्यते विदीर्यत इव । ऊषाः—दाहः, चोपः-पार्श्वस्थाग्निनेव सन्ताप, ताभ्यां युक्तः। आततः-त्वक्सङ्कोचरहितः। वस्तिः-मूत्राशयश्चर्मपुटो वा ॥

जो सूजन अग्निसे जलते हुएके समान हो, क्षारके लगानेके समान रँधता हो, चींटियोंसे काटनेके समान मालूम हो, शस्त्रसे छेदने तथा चीरने सरीखा मालूम हो अथवा दो टुकडे हो

जायँ ऐसा जान पडे, डंडे आदिसे मारनेके समान पीडा हो, हाथसे दबानेके समान मालूम हो भीतर सुई छेदने सरीखा मालूम हो और अंगुलियोंसे उखाडने सरीखी पीडा हो, दाहसे व्याप्त हो, अग्निसे संतप्तके समान हो, त्वचाके रंगसे दूसरा रंग होजाय, मूत्राशयके समान अथवा चमडेकी पुटके समान फूला हुआ हो, विच्छू काटनेके समान बैठते, सोते और उठते समय घोर पीडा हो अर्थात् कभी चैन नहीं पडे और ज्वर, तृषा तथा अरुचिसे संयुक्त हो, उसको पकता हुआ व्रणशोथ जानना ॥ ४-७ ॥

अथपक्वव्रणशोथलक्षणम् ।

वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः । प्रादुर्भावो वलीनाञ्च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥ उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचाम् । वस्ताविवाम्बुसञ्चारः स्याच्छोथे ऽङ्गुलिपीडिते ॥९॥ पूयस्य पीडयेदेकमन्तमन्ते च पीडिते । बुभुक्षा व्रणशोथस्य भवेत् पक्वस्य लक्षणम् ॥ १० ॥

वेदनोपशमः- दाहादिदुःखोपशमः । अल्पो लोहित इति अन्वयः । न च उन्नतः पच्यमानापेक्षया । उपद्रवाणाम् ज्वरादीनाम् । निम्नता स्वरूपतोऽङ्गुलिपीडनाद्वा अवनतत्वम् । स्फुटनम् किञ्चिद्विदारणम् । वस्तावि वेत्यादि । शोथेऽङ्गुलिपीडिते सति अंगुलिपीडिताद्देशादन्यदेशे अम्बुसञ्चारः । बस्तौचर्मपुटके । एवमन्ते एकदेशे पीडिते एकमन्तमपरमन्तमापूर्य पीडयति ॥

दाहादिक पीडा शान्त हो जाय, सूजनमें थोडी लाली हो, ऊँचाई जाती रहे, वली पडने गेंल, सुई चुभोने सरीखी वेदना हो, वारंवार खुजली चलती हो, ज्वरादि उपद्रव शांत हो जायँ, अंगुलीसे दबानेके समान नम जाय, चमडा कुछेक फट जाय, सूजनको अंगुलीसे दबानेसे जिस प्रकार चमडेकी पखालमेंसे पानी एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चला जाता है, उसी प्रकार इसमेंसे एक स्थानमेंसे राध दूसरे स्थानमें चली जाती है, एक प्रदेशको दबानेसे दूसरे प्रदेशमें राध जाकर भर जाय तथा भूख लग जाय तो जानना कि सूजन पक गयी है ॥ ८-१० ॥

अथैकदोषजोऽपि शोथः पाककाले सकलैर्दोषैः संबध्यत इत्याह ।

ऋतेऽनिलाद्रुङ् न विना न पित्तं पाकः । कफञ्चापि विना न पूयः । तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले पचन्ति शोफास्त्रिभिरेव दोषैः ॥ ११ ॥

पचन्ति--पाकं प्राप्नुवन्ति । एवशब्दोऽत्र अव्ययानामनेकार्थत्वात् ॥

वातके विना पीडा नहीं होती, पित्तके विना पाक नहीं होता और कफके विना राध नहीं होती, इस कारण सर्वप्रकारकी सूजनमें तीनों दोषोंका सम्बन्ध होता है ॥ ११ ॥

अथ शोथपाकमतान्तरम् ।

कालान्तरेणाभ्युदितन्तु पित्तं कृत्वा वशे वातकफौ प्रसह्य । पचत्यतः शोणितमेष पाको मतः परेषां विदुषां द्वितीयः ॥ १२ ॥ वशे कृत्वा-हीनीकृत्य । शोणितं कर्म । पूर्वत्र कफात्पूयोऽत्र शोणितात्पूय इति भेदः ॥

कालान्तरसे उदय हुआ पित्त वायु और कफको कम करके बलात्कारसे रुधिरको पकाता है, ऐसा अन्य विद्वानोंने माना है ॥

पहिले मतमें कफसे राध होती है, ऐसा माना है और दूसरे मतमें रुधिरसे राध होती है, ऐसा माना है, इनमें इतना भेद है ॥ १२ ॥

अथ गम्भीरपाकलक्षणम् ।

कफजेषु च शोथेषु गम्भीरं पाकमेत्यसृक् । पक्वलिङ्गं ततःस्पष्टं यतःस्याच्छोथशीतता । त्वक्सावर्ण्यं रुजोऽल्पत्वं घनस्पर्शत्वमश्मवत् ॥ १३ ॥

कफजेषु च शोथेषु गम्भीरमसृक्पाकमेति । तत्र कथं पाकज्ञानमित्याह–तत्र ततः कारणात् । पक्वलिङ्गम् स्पष्टम् । यतः पच्यमानावस्थान्तर्गतरागदाहव्यथाघनान्तरशोथशीतादयो भवन्ति । घनस्पर्शत्वम् स्पर्शेऽव्यथत्वम् ।

कफसे उत्पन्न हुई सूजनमें रुधिर गम्भीर रीतिसे पकता है तो भी पक जानेकी परीक्षा स्पष्ट होती है और जिस समयसे सूजन पकने लग जाती है, उस समय लाली तथा दाहादि पीडा होकर पश्चात् सूजनमें पकजानेकी अवस्था हो जाती है, तब शीतलपन होजाता है सूजनका रंग चमडेकी रंगके समान हो जाता है, अल्प वेदना होती है, यह प्रमाण है । इस कारण पकजानेकी खबर केसे मालूम हो सकती, यह वैद्य नहीं समझ सकते ॥ १३ ॥

अथ पक्वव्रणशोथात्पूयानिनिस्सृतौ दोषः ।

कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वातेरितः संदहति प्रसह्य । तथैव पूयो ह्यविनिस्सृतस्तु मांसं शिराः स्नायुमपीह खादेत् ॥१४॥

जिस प्रकार वायुसे प्रेरित की हुई अग्नि तृणोंके वनमें प्राप्त होकर बलात्कारसे उसे जला देती है, उसी प्रकार पके हुए व्रणमेंसे राधको नहीं निकालनेसे वह मांस शिरा और स्नायुओंको खाजाती है ॥ १४ ॥

अथ व्रणशोथपकापक्वज्ञानाज्ञाने वैद्यगुणदोषौ

आमं विदह्यमानञ्च सम्यक्पक्वं तु यो भिषक् । जानीयात्स भवेद्वैद्यःशेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १५ ॥

विदह्यमानम् विपच्यमानम् । तस्करवृत्तयस्तेषां तस्कराणामिव द्रव्यलाभमात्रप्रयोजनं भवति, न तु धर्मयशोमैत्रीलाभः ॥

जो वैद्य सूजनको नहीं पकी हुई और पकी हुई जान सकता है, वह उत्तम वैद्य कहा जाता है । बाकी जो व्रणशोथकी पक्वापक्व अवस्थाको नहीं जानते, उनको चोर समझना । क्योंकि उनको चोरोंके समान केवल धन लेनेका ही प्रयोजन होता है, किन्तु धर्म, यश और मित्रताका कुछ प्रयोजन नहीं होता॥१५॥

यच्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते । श्वपचाविव विज्ञेयौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ १६ ॥

जो वैद्य अपनी मूर्खतासे कच्चे फोडेको पका जानकर चीर देता है और जो वैद्य पके हुए फोडेको कच्चा समझकर नहीं चीरता, उन दोनोंको चाण्डालके समान समझना । क्योंकि वे विना समझे क्रिया करते हैं ॥ १६ ॥

अथ व्रणशोथचिकित्सा ।

आदौ शोथहरो लेपस्ततस्तु परिषेचनम् । विम्लापनमसृङ्मोक्षस्ततः स्यादुपनाहनम् ॥ १७ ॥ पाचनं भेदनं पश्चात्पीडनं शोधनं तथा । रोपणं वर्णकरणं व्रणस्यैते क्रमाः स्मृताः ॥ १८ ॥

प्रथम सूजनकी हरनेवाली औषधियोंका लेप करे, फिर सूजनके ऊपर क्वाथ आदिका सेचन करे, फिर विलाम्पन कर्म करे, पश्चात् सूजनमसे रुधिरादि निकलवावे, फिर सूजनके ऊपर थोडी थोडी गरम औषधियोंको बांधकर भाफ देवे, फिर सूजनको पकानेके लिये उपचार करके पकावे, फिर सूजनको शस्त्रसे अथवा औषधियोंसे भेदन करे, फिर सूजनको दबाकर राध निकालनेके लिये उसके ऊपर औषधियोंका गाढा लेप करे, फिर सूजनको क्वाथ आदिसे धोकर साफ करे, फिर सूजनके

भरनेकी चिकित्सा करे, पश्चात् व्रणको शरीर के वर्णके समान करे। इस भांति व्रणकी ग्यारह प्रकारसे चिकित्सा करे ॥१७॥ १८॥

अत्र क्रमाः चिकित्साः सुश्रुते व्रणस्य षष्टिरूपका लिखिताः सन्ति । ते सर्वेऽत्र विस्तरभयान्न लिखिताः ॥

सुश्रुतमें व्रणपर साठ उपक्रम कहे हैं, वे सब यहां ग्रन्थ बढनेके भयसे नहीं लिखे ॥

अथ शोथनाशकलेपः।

यथा प्रज्वलिते वेश्मन्यम्भसा परिषेचनम् । क्षिप्रं प्रशमयत्यग्निमेवमालेपनं रुजः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार जलते हुए मकानको पानीका सेचन अग्निको तत्काल शांत कर देता है, उसी प्रकार औषधियोंका लेप तत्काल पीडाको शान्त कर देता है ॥ १९ ॥

बीजपूरजटा हिंस्रा देवदारु महौषधम् । रास्नाऽग्निमन्या लेपोऽयं वातशोथविनाशनः । [कल्कः काञ्जिकसम्पिष्टः स्निग्धो मधुकचन्दनैः] ॥ २० ॥

बिजौरेकी जड, बालछड देवदारु, सोंठ, रासना और अरणी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे वातकी सूजन दूर हो जाती है ॥२०॥

दूर्वा च नलमूलञ्च पद्मकाष्ठञ्च केसरम् । उशीरं बालकं पद्मं लेपोऽयं पित्तशोथहा ॥ २१ ॥

दूव, नरसलकी जड, पद्माख, कसर, खस, सुगन्धवाला, और कमल इनको पीसकर लेप करनेसे पित्तकी सूजन दूर होजाती है ॥ २१ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः । ससर्पिष्कैः प्रदेहः स्याच्छोथे पित्तसमुद्भवे ॥ २२ ॥

बड, गूलर, पीपल, पिलखन और वेत इनकी छालको पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे पित्तजन्य सूजनदूर होजाती है ॥२२॥

आगन्तुजे रक्तजे च लेप एषोऽभिपूजितः ॥ २३ ॥

आगन्तुज सूजनपर और रुधिरजन्य सूजनपर भी ऊपर कहा हुआ बड आदिकी छाल का लेप हितकारी है । २३ ॥

अजगन्धा च शृङ्गी च मञ्जिष्ठा सरलस्तथा । एकेशिकाऽश्वगन्धा च लेपोऽयं श्लेष्मशोथहा ॥ २४ ॥

अजशृङ्गी-मेढाशिंगी ॥

मेढाशिंगी, वनतुलसी, मजीठ, देवदारु, पाढ और असगन्ध इनका लेप कफकी सूजन को दूर करता है ॥ २४ ॥

कृष्णा पुराणपिण्याकं शिग्रुत्वक् सिकता शिवा । मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ २५ ॥

पीपल, पुरानी खल, सँहिजनेकी छाल रेती और हरड इनको गोमूत्रमें पीसकर कुछेक गरम करके लेप करनेसे कफकी सूजन दूर हो जाती है ॥ २५ ॥

न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तञ्च पतितं तथा । न च पर्युषितं शुष्यमाणं तन्नैव धारयेत् ॥ २६ ॥

दत्तमेव पुनर्न दद्यात् । पतितं दीयमानं सत् यदङ्गात् पतितम् । पर्युषितम्-लेपनद्रव्यं कल्कीकृतं यत् पर्युषितम् ॥

रात्रिमें लेप नहीं करना चाहिये । लेप किये पदार्थको छुडाकर फिर दुबारा लेप नहीं करना चाहिये । लेप किया हुआ पदार्थ जो शरीरसे गिरकर छूट पडे तो फिर उसका लेप न करे । लेप करनेका कल्क जो बासी रह जाय तो उसका लेप नहीं करना चाहिये और जो लेप सूख जाय तो उसको शरीरसे तत्काल छुडा देवे । यह लेप करनेकी पद्धति है ॥ २६ ॥

तमसा पिहितोऽप्यूष्मा रोमकूपमुखोत्थितः । विना लेपेन निर्य्याति रात्रौ

नालेपयेदतः ॥ २७ ॥ रात्रावपि प्रलेपस्तु विधातव्यो विचक्षणैः । अपाकिशोथे गम्भीर रक्तपित्तसमुद्भवे ॥ २८ ॥

रात्रिमें अन्धकारके होनेसे गरमीके कारण रोमकूप आच्छादित रहते हैं इसलिये रात्रिमें लेप करनेसे रोमकूप बन्द हो जाते हैं और नहीं लेप करनेसे रोमकूप खुले रहते हैं, इसलिये रात्रिमें लेप नहीं करना चाहिये। परन्तु जो सूजन नहीं पकती हो, गम्भीर हो और रुधिर तथा पित्तसे उत्पन्न हुई हो, उनपर वैद्योंको रात्रिमें ही लेप कराना चाहिये ॥

अथ शोथोपरि क्वाथादि सेचनम् ।

यथाऽम्बुभिः सिच्यमानःशान्तिमग्निर्हि गच्छति । दोषाग्निरेवं सहसा परिषेकेण शाम्यति ॥ २९ ॥

जिस प्रकार जलसे सेचन करनेसे अग्नि तत्काल शान्त होजाती है, उसी प्रकार व्रणशोथको क्वाथ आदिसे सेचन करनेसे दोषरूपी अग्नि तत्काल शान्त होजाती है ॥ २९ ॥

वातघ्नौषधनिष्क्वाथैस्तैलैर्मांसरसैर्घृतैः । उष्णैः संसेचयेच्छोथं वातिकं काञ्जिकेन च ॥ ३० ॥

वातनाशक क्वाथ, तेल, मांसरस, घी और कांजीको गरम करके वातकी सूजनपर सेचन करना चाहिये ॥ ६० ॥

पित्तरक्ताभिघातोत्थं शोथं सिञ्चेत्सुशीतलैः । क्षीराज्यमधुखण्डेक्षुरसैःपित्तहरैः शृतैः ॥ ३१ ॥

पित्तसे, रुधिरसे और क्षतसे जो सूजन उत्पन्न हुई हो तो उसके ऊपर शीतल औषधियोंके रसोंसे, दूधसे, घीसे, मद्यसे, खांडसे, ईखके रससे और पित्तको नष्ट करनेवाले क्वाथोंसे सेचन करे ॥ ३१ ॥

कफघ्नौषधनिष्क्वाथैः शीतैस्तु परिषेचयेत् । तैलक्षाराम्बुमूत्रैश्च शोथं श्लेष्मसमुद्भवम् ॥ ३२ ॥

कफकी सूजन हो तो उसको कफको हरनेवाली शीतल औषधियोंके क्वाथोंसे तैलसे, क्षारसे, जलसे और मूत्रसे सेचन करना चाहिये ॥ ३२ ॥

अथ विम्लापनम् ।

जातस्य कठिनस्यास्य कार्यं विम्लापनं शनैः ॥ ३३ ॥ अस्य शोथस्य ॥

विम्लापनस्य विधिमाह सुश्रुतः—

अभ्यज्य स्वेदयित्वा तु वेणुनाड्या शनैः शनैः । विमर्दयेद्भिषङ्मन्दं तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ॥ ३४ ॥

वेणुनाड्या-वंशनलिकया । स्वेदयित्वा उष्ण स्वेदं कृत्वा ॥

उत्पन्न हुई कठिन सूजनको विम्लापनकर्म करे, विम्लापन कर्म करनेकी विधि सुश्रुतमें कही है, सो कहते हैं कि—"वैद्य सूजनके ऊपर अभ्यङ्ग करके स्वेद देकर धीरे धीरे वांसकी नलीसे अथवा हाथके तलुवेसे वा अंगूठेसे धीरे २ मन्द २ मन्द घिसे" ॥ ३३-३४ ॥

अथ रक्तमोक्षणम् ।

वेदनोपशमार्थाय तथा पाकशमाय च । अचिरोत्पतिते शोथे शोणितस्रावणं चरेत् ॥ ३५ ॥

चरेत्-कुर्यात् । शोणितस्रावणं चरेदित्यनेन अन्वयः ॥

एकतस्तु क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः । रक्तं हि वेदनामूलं तच्चेन्नास्ति न चास्ति रुक् ॥ ३६॥ विवर्णःकठिनः श्यावो व्रण वच्चाल्पवेदनः । विषाणैश्च विशेषेण जलौकाभिः पदैरपि ॥ ३७ ॥

तत्कालकी उत्पन्न हुई सूजनको वेदनाकी शांतिके लिये और पाककी शांतिके लिये सूजनमेंसे रुधिर निकलवाना चाहिये । सम्पूर्ण क्रिया एक ओर और रुधिर निकलवाना एक ओर है, इस कारण सर्व क्रिया मिलकर जितना काम करती हैं उतना काम एक रुधिर निकलवानेसेही होजाता है, वेदनाकी जड रुधिरही है और जो रुधिर न हो तो वेदना नहीं होती । विशेष करके जोंक लगाकर सींगी लगाकर, पछना लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये ॥ ३५-३७ ॥

उपनाहः-स्वेदस्तस्य विधिर्भेषजसाधनप्रकरणे कथित एवास्ति ।
रुजावतां दारुणानां कठिनानां तथैव च । शोथानां स्वेदनं कार्यं ये चाप्येवंविधा व्रणाः ॥३८॥

शोथानां सामान्यानाम् । व्रणाः-व्रणशोथाः तेषामपि स्वेदनं कार्यम् ॥

शोथयोरुपनाहश्च दद्यादामविदग्धयोः । प्रशाम्यत्यविदग्धस्तु विदग्धः पक्वतां व्रजेत् ॥३९॥

आमविदग्धौ--अपक्वपाकोन्मुखौ ॥

स्वेद देनेकी विधि प्रथम खण्डके औषधियोंके सिद्ध करनेके प्रकरणमें उपनाह स्वेद कह आये हैं । जो सूजन वेदनायुक्त दारुण और कठिन हो. उसके ऊपर स्वेदन करना चाहिये और व्रणकी सूजन भी इसी प्रकारकी हो तो उसके ऊपर भी स्वेदन करना चाहिये । जो सूजन कच्ची अथवा पक गई हो तो उसके ऊपर भी उपनाहस्वेद देना चाहिये । सूजन कच्ची हो तो उपनाहस्वेदसे शांत होजाती है और पकने लगे तो तत्काल पकजाती है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

दशमूली बला रास्ना वाजिगन्धा प्रसारिणी । मूलं वातारिपोः सिन्धुर्वारिपूर्णे घटे क्षिपेत् ॥ ४० ॥ शोभाञ्जनः कणा चापि सैन्धवं विश्वभेषजम् । शणकार्पासयोर्बीजमतसी च कुलत्थिका ॥४१॥ तिला यवाश्च सिद्धार्थः कुठेरो मूलकं मिसिः । यथाप्राप्तैरमीभिस्तु द्रव्यैरम्लेन संयुतैः ॥ ४२ ॥ कल्कीकृतैः सुखोष्णैश्च स्वेदयेद् विधिवच्छनैः अनेन प्रशमं याति वातशोथो न संशयः॥४३॥

कुठेरः-कृष्णवर्वरी ॥

इति दशमूल्यादिरुपनाहः ।

दशमूली, बला, रायसन, असगन्ध, पसरन, एरंडकी जड, सैंधानिमक, इनको जलसे भरेहुए घडेमें डाले, सहिंजना, पीपल, सैंधानिमक, सोंठ, सनके बीज, कपासके विनौले, अलसी, कुलथी, तिल, जौ, सरसों, कालीतुलसी, मूली और सोया इनमेंसे जितनी मिल सकें, उतनी ही औषधियोंको लेकर खट्टे रसमें पीसकर कल्करूप बनाकर कुछ कुछ गरम करके लुगदी बनाकर बांधे । धीरे धीरे सूजनपर विधिपूर्वक स्वेद देवे । इस प्रकार करनेसे वातसम्वन्धी सूजन दूर हो जाती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है । यह उपनाह दशमूल्यादि स्वेद 'शोभाञ्जनादि' इस नामसे कहाजाता है ॥ ४०-४३ ॥

पुनर्नवा दारु शुण्ठी शिग्रुः सिद्धार्थ एव च । अम्लपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः सर्वशोथहा ॥ ४४ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सहिंजना और सरसों इनको खट्टे रसमें पीसकर सुहाता २ गरम लेप करे तो सर्वप्रकारकी सूजन दूर होती है । यह लेप 'पुनर्नवादि' इस नामसे कहाजाता है ॥ ४४ ॥

अथ शोथपाचनम् ।

न प्रशाम्यति यः शोथः प्रलेपादिविधानतः । द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात्त-

त्रोपनाहने ॥ ४५ ॥ शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः । अतसी सक्तवः किण्वमुष्णद्रव्यश्च पाचनम् ॥ ४६ ॥

शणफलादीनामतस्यन्तानां सक्तवः कर्तव्याः किण्वम्-सुराबीजम् । यवगोधूमधान्यादि-प्रकारः । अन्यच्च उष्णं द्रव्यं व्रणस्य पाचनं भवति ॥

जो सूजन प्रलेपादि करनेसे शांत नहीं हो, उसपर पाचनीय पदार्थ बांधने चाहिये। सनके बीज, मूलीके बीज, सहिंजनेके फल, तिल. सरसों, अलसी, सत्तू, सुराबीज और अन्य सकल उष्णपदार्थ पकानेके लिये प्रयोग करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ शोथभेदनम् ।

अन्तःपूयेष्ववक्त्रेषु तथा चोत्सङ्गव-त्स्वपि । गतिमत्सु च रोगेषु भेदनं सम्प्रयुज्यते ॥ ४७ ॥

उत्सङ्गवत्सु-कोटरवत्सु । गतिमत्सु-नाडीव्रणेषु । भेदनम्- शस्त्रमौषधकर्म च ॥

जिसमें भीतर राध भर रही हो, जिसका मुख नहीं हो, जो भीतरसे खाली हो, उसको तथा नाडीव्रणको शस्त्रसे अथवा औषधियोंसे भेदन करना चाहिये ॥ ४७ ॥

रोगे व्यधेन साध्ये तु यथादेशं प्रमाणतः । शस्त्रं निधाय दोषांस्तु स्रावये-त्कथितं यथा ॥ ४८ ॥

जो रोग शस्त्रके चीरनेसे ही शान्त हो, उसको स्थानानुसार शस्त्रसे छेदकर उनमेंसे दोषोंको निकलवा दे, यह प्रकार सुश्रुत आदि ग्रन्थोंमें कहा है, ॥ ४८ ॥

अथ व्रणविशेषे शस्त्रभेदननिषेधः ।

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां ; योषिता-मपि । व्रणेषु मर्मजातेषु भेदने द्रव्यले-पनम् ॥ ४९ ॥

बालक, वृद्ध, शस्त्रभेदनको न सह सके ऐसा मनुष्य, क्षीण मनुष्य, डरपोक तथा स्त्रियां इनके मर्मस्थानोंमें व्रण उत्पन्न हुए हों तो उनको औषधियोंके लेपसे भेदन करे, शस्त्रसे नहीं चीरे ॥ ४९ ॥

चिरबिल्वोऽग्निको दन्ती चित्रको हय-मारकः । कपोतकाकगृध्राणां मलले-पेन भेदनम् ॥ ५० ॥

करंज, भिलावे, जमालगोटे, कनेर, कबूतरकी विष्ठा, कौवेकी विष्ठा और गिद्धकी विष्ठा इनका लेप करनेसे व्रण फूटजाता है ५०

क्षारद्रव्यं तथा क्षारो दारुणःपरिकीर्तितः ।

क्षारद्रव्यमपामार्गादि क्षारः स्वर्जिका यव-क्षारादिः ॥

हन्तिदन्तो जले पिष्टो बिन्दुमात्रप्रले-पितः । अत्यर्थकठिने शोथे कथितो भेदनः परः ॥ ५१ ॥

चिरचिटा आदिखार खारवाले पदार्थ और सज्जीखार तथा जवाखार इनका लेप करनेसे व्रण फूट जाता है। हाथीके दांतोंको जलमें बारीक पीसकर बूँदभर लगानेसे अत्यन्त कठिन सूजन अवश्य नष्ट होजाती है ॥ ५१ ॥

अथ शोथपीडनम् ।

द्रव्याणां पिच्छिलानान्तु त्वङ्मूलानि प्रपीडनम् । यवगोधूममाषाणां चूर्णानि च समासतः ॥५२॥ शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रलेपं पीडनं प्रति । न चापि मुखमा-लिम्पेत्तथा दोषः प्रसिच्यते ॥ ५३ ॥

पीडनं प्रति-पीडनद्रव्यलेपं प्रति । पीडन-द्रव्यलेपं शुष्यन्तमपि धारयेदित्यर्थः । तथा व्रणस्य मुखलेपं विना प्रस्रवति ॥

चिकनी औषधियोंकी छाल तथा जडको पीसकर लेप करनेसे सूजन दब जाती है। जौ, गेहूँ और उडद इनको पीसकर लुपरी

बनाकर लगानेसे सूजन दब जाती है। सूजनको सुखानेके लिये जो लेप कहा है, उसको सुखा देना चाहिये और सूजनके मुखपर लेप नहीं करना चाहिये। क्योंकि, इस प्रकार करनेसे सूजनमेंसे दोष स्रव जाते हैं॥५२-५३॥

अथ व्रणशोधनम्।

व्रणस्य तु विशुद्धस्य क्वाथः शुद्धिकरः परः। पटोलनिम्बपत्रोत्थः सर्वत्रैव प्रयुज्यते ॥ ५४ ॥

व्रणोंमेंसे राध निकल जानेपर परवल तथा नीमके पत्तोंका क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे व्रणको धोवे तो व्रण साफ होजाता है। यह क्वाथ सर्वप्रकारके व्रणोंपर उपयोगी है ॥५४॥

वातिके दशमूलानां क्षीरिणां पैत्तिके व्रणे। आरग्वधादेः कफजे कषायःशोधने हितः ॥ ५५ ॥

वातके व्रणको दशमूलके क्वाथसे धोवे, पित्तके व्रणको वट आदि क्षीरवाले वृक्षोंके क्वाथसे धोवे और कफके व्रणको आरग्वधादि गणके क्वाथसे धोवे। इस प्रकार करनेसे व्रण साफ होजाता है ॥ ५५ ॥

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटवेतसजं शृतम्। व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात्स्मृतम् ॥ ५६ ॥

पीपल, गूल॰, पिलखन, वड और वेंत इनके क्वाथसे धोनेसे व्रणकी सूजन और उपदंश (आतशक) का घाव दूर होजाता है ॥५६॥

तिलसैन्धवयष्ट्याह्वनिम्बपत्रनिशायुगैः। त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैःप्रलेपो व्रणशोधनः॥५७

तिल, सैंधानिमक, मुलहठी, नीमके पत्ते, हलदी, दारुहलदी और निसोत इनको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध हो जाता है ॥ ५७ ॥

एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम्। निम्बपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम्। दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेसरी ॥ ५८ ॥

केसरी-श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥

इकली सारिवाकी जडको पीसकर लेप करनेसे सर्वप्रकारके व्रण शुद्ध होजाते हैं। नीमके पत्ते तिल, दन्ती, निसोत, सैंधानिमक और सहत इनका लेप व्रणको शांत करनेवाला है और साफ करनेवाला भी है ॥ ५८ ॥

लेपान्निम्बदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः। भक्षणाच्छर्दिमन्दाग्निपित्तश्लेष्मकृमीन् हरेत् ॥ व्रणान्विशोधयेद्वर्त्या सूक्ष्मान् हि सन्धिमर्मजान् ॥ ५९ ॥

नीमके पत्तोंका कल्क बनाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होजाता है तथा भरने लगता है और इसको भक्षण करनेसे यह वमन, मन्दाग्नि, पित्त, कफ, तथा कृमियोंको नष्ट करता है, नीमके पत्तोंका कल्क बनाकर व्रणके मुखमें रखनेसे सन्धियोंमें तथा मर्मस्थलमें उत्पन्न हुए सूक्ष्म व्रण साफ होजाते हैं ॥ ५९ ॥

अभयात्रिवृतादन्ती लाङ्गलीमधुसैन्धवैः ॥ ६० ॥ निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुतैः। वर्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपयेद् व्रणम् ॥ ६१ ॥

हरड, निसोत, दन्ती, कलिहारी, दुगुना सहत, सैंधानिमक, नीमके पत्ते, घी, दारुहलदी और मुलहठी इनको पीसकर लगानेसे तिलोंका कल्क बनाकर लगानेसे अथवा व्रण शुद्ध होता है और भरता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अथ व्रणरोपणम्।

अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम्। कल्कस्तु रोपणो देयस्तिलजो मधुसंयुतः ॥ ६२ ॥

जो व्रण मांसमें होनेके कारण ,उसमेंसे सडा हुआ मांस निकल गया हो और भरता न हो उसके ऊपर तिलोंका कल्क शहदमें मिलाकर लगानेसे व्रण भरने लगता है ॥ ६२ ॥

अश्वगन्धा रुहा लोध्रं कट्फलं मधुयष्टिका । समङ्गा धातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम् । मधुयुक्ता सुरा पुंसां सर्व व्रणविरोपिणी ॥ ६३ ॥

असगन्ध, कुटकी, लोध, कायफल, मुलहठी, मंजीठ और धायके फूल इनका कल्क बनाकर लगानेसे व्रण अच्छी प्रकारसे भरजाता है। सहत मिलाकर शराबका लेप करनेसे व्रण भरने लगते हैं ॥ ६३ ॥

सुषवीपत्रधतूरबलामोटाकुठेरकाः । पृथगेतैः प्रलेपन गम्भीरव्रणरोपणम्॥६४॥

सुषवीपत्रम् मगरैलापत्रम् । कुठेरकः–कृष्ण वर्वरी ॥

छोटी इलायचीके पत्ते अथवा धतूरे वा खिरैंटी, मोटा अथवा काली तुलसीके पत्तोंको पीसकर लेप करनेसे गम्भीर व्रण भरजाते हैं ॥ ६४ ॥

ककुभोदुम्बराश्वत्थजम्बूकफललोध्रजैः। त्वक्चूर्णैर्धूपिताः क्षिप्रं संरोहन्ति व्रणा ध्रुवम् ॥ ६५ ॥

अर्जुन, गूलर, पीपलवृक्ष, जामुन, कायफल और लोध इनकी छालोंका चूर्ण बनाकर व्रणों पर बुरकानेसे निश्चय व्रण भरजाते हैं ॥६५॥

प्रियंगुधातकीपुष्पं यष्टीमधुजतूनि च । सूक्ष्मचूर्णीकृतानि स्यू रोपणान्यवधूलनात् ॥ ६६ ॥

फूलप्रियंगू धायके फूल, मुलहठी और लाख इनका बारीक चूर्ण बनाकर व्रणपर बुरकानेसे भयंकर व्रण भी भरजाता है ॥ ६६ ॥

यवचूर्णं समधुकं सतैलं सह सर्पिषा । दद्यादालेपनं कोष्णं दाहशूलोपशान्तये ॥ ६७ ॥

जौका चून और मुलहठीका चून, तेल तथा घीमें मिलाकर सुहाता २ गरम लेप करनेसे व्रणका दाह और पीडा तथा शूल नष्ट होजाते हैं ॥ ६७ ॥

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीलेपो हन्याद्व्रणक्रिमीन् । लशुनस्याथवा लेपो हिंगुनिम्बकृतोऽथवा ॥ ६८ ॥

करंज, नीम और निर्गुंडी इनका लेप करनेसे व्रणमें पड़े हुए कीडे नष्ट होजाते हैं। लहसुनका लेप करनेसे व्रणमें पडे हुए कीडे शांत होजाते हैं। नीम और हींग इनका लेप करनेसे व्रणके कीडे दूर हो जाते हैं ॥ ६८ ॥

निम्बपत्रवचाहिंगुसर्पिर्लवणसर्षपैः । धूपनं स्याद्व्रणे रूक्षकृमिकण्डूरुजापहम् ॥ ६९ ॥

नीमके पत्ते, वच, हींग, घी, सेंधानिमक और सरसों इनकी धूनी देनेसे व्रणकी रूक्षता, व्रणके कृमि व्रणकी खुजली तथा व्रणकी पीडा सम्पूर्ण नष्ट होजाती है ॥ ६९ ॥

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणाश्चिरोत्थाः सततान्च शोथाः । प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफलाशृतेन ॥ ७० ॥

जो व्रण पका हो, स्रवता हो, गन्धवाला हो और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ हो तथा जो सूजन सदैव हो, उसमें गूगल डालकर त्रिफलेका रस पीवे ॥ ७० ॥

पटोलनिम्बासनसारधात्रीपथ्याक्षनिर्यूहः महर्मुखेषु । पिबेद्युतं गुग्गुलुना विसर्पविस्फोटदुष्टव्रणशान्तिमिच्छन् ॥ ७१ ॥

कडवे परवल अथवा कडवी तोरई, नीमके अन्तरकी छाल, विजयसार, आमले, हरड

और बहेडा इनका क्वाथ बनाकर उसमें गूगल डालकर नित्य प्रातःकाल पीनेसे विसर्प, विस्फोटक तथा दुष्टव्रण शांत होजाता है॥७१॥

अथ सवर्णताकारकलेपः ।

मनःशिला समञ्जिष्ठा सलाक्षा रजनीद्वयम् । प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वचः सावर्ण्यकृत्स्मृतः ॥ ७२ ॥

मैनशिल, मंजीठ, लाख, हलदी और दारुहलदी इनका चूर्ण बनाकर उसमें घी तथा सहत मिलाकर लगानेसे व्रणके स्थानका वर्ण शरीरकी त्वचाके वर्णके समान हो जाता है ॥ ७२ ॥

अथ व्रणरोगिभोजनम् ।

जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवान्तरम् । भुञ्जानो जाङ्गलैर्मांसैः शीघ्रं व्रणमपोहति ॥ ७३ ॥ तण्डुलीयकजीवन्तीवास्तूकसुनिषण्णकैः । बालमूलकवार्ताकुपटोलैः कारवेल्लकैः ॥ ७४ ॥ सदाडिमैः सामलकैर्घृतसृष्टैः ससैन्धवैः । अन्यैरेवंगुणैर्वापि मुद्गादीनां रसेन वा ॥ ७५ ॥

एभिः सह जीर्णशाल्योदनं भुञ्जानः शीघ्रं व्रणमपोहतीत्यन्वयः ॥

जांगल प्रदेशके पशुओंका मांसरस, चौलाई, जीवंती, बथुआ, शिरियारी, कच्ची मूली, बैंगन, परवल, करेले, अनार और आमले इनको घीमें भूनकर सेंधानिमक डालकर इनके साथ अथवा इनके समान अन्य गुणोंवाली वस्तुओंके साथ वा मूंग आदिके रसके साथ किंचित् गरम, स्निग्ध और पतले पुराने लाल शालिचावलोंका भात खानेसे व्रण अष्ट होजाता है ॥ ७३-७५ ॥

अथ व्रणे अपथ्यानि ।

अम्लं दधि च शाकश्च मांसमानूपमौदकम् । क्षीरं गुरूणि चान्नानि व्रणे च परिवर्जयेत् ॥ ७६ ॥

खट्टा दही, खट्टा शाक, अनूपदेशके और जलचर जीवोंका मांस, दूध और भारी अन्न ये सब व्रणरोगी त्याग देवे ॥ ७६ ॥

अथ व्रणे श्रमादिजोपद्रवाः ।

व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् । तौ च रुक् च दिवास्वापात्ते च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ ७७ ॥

व्रणरोगमें परिश्रम करनेसे सूजन आती है, रात्रिमें जागनेसे लाली बढती है और सूजन आती है, दिनमें सोनेसे सूजन, लाली तथा पीडा ये तीनों होती हैं और मैथुन करनेसे सूजन, लाली पीडा और मृत्यु ये चारों होते हैं ॥ ७७ ॥

अथागन्तुजव्रणचिकित्सा ।

क्रुद्धे सद्योव्रणे कुर्यादूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् । क्रिया शीता प्रयोक्तव्या रक्तपित्तोष्मनाशिनी ॥ ७८ ॥

आगंतुज व्रणका प्रकोप हो तो वमनसे तथा विरेचनसे शरीरको शुद्ध करे और रुधिरकी तथा पित्तकी गरमीको नष्ट करनेवाली शीतल क्रियाका प्रयोग करे ॥ ७८ ॥

लङ्घनञ्च बलं ज्ञात्वा भोजनं चास्रमोक्षणम् । घृष्टे विदलिते चैव सुतरामिष्यते विधिः ॥ ७९ ॥

बल विचारकर लंघन करावे, योग्य भोजन देवे और विचारकर रुधिर निकलवावे । जो आगन्तुज व्रण घिस जाय अथवा फटजाय तो योग्यानुसार यह विधि करनी चाहिये ॥७९॥

छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते वाऽसृगतिस्रवेत् । रक्तक्षयात्तत्र रुजः करोति पवनो

भृशम् ॥ ८० ॥ परिषेकं स्नेहपानं लेपं तत्रोपनाहनम् । कुर्वन्ति स्नेहवस्तिश्च रुजाघ्नं चौषधं पृथक् ॥ ८१ ॥ खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्काले पूरितो व्रणः । गाङ्गेरुकीमूलरसैः सद्यः स्याद्गतवेदनः ॥ ८२ ॥

गाङ्गेरुकी-नागबला 'गुलसकरी' इति लोके ॥

अङ्ग छिन्न,भिन्न विद्ध हो जाय और घावोंमेंसे रुधिर निकलने लगता है,इस प्रकार रुधिरके क्षय होनेसे वायु अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करती है, जो इस प्रकार हो तो स्नेहपान करे, सेचन करे, लेप करे उपनाहस्वेद देवे, स्नेहकी पिचकारी लगावे और वेदनाको हरनेवाली औषधिका प्रयोग करे। तलवार आदिके घाव में तत्काल गंगेरनकी जडके रसको भर देवे तो उसकी वेदना दूर हो जाती है ॥८०-८२॥

कषाया मधुराः शीताः क्रियाः सर्वाः प्रयोजयेत् । सद्योव्रणानां सप्ताहात्पश्चात्पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ८३ ॥ आमाशयस्थे रुधिरे विदध्याद्वमनं नरः । तस्मिन्पक्वाशयस्थे तु प्रकुर्वीत विरेचनम् ॥८४॥

आगन्तुज व्रणके ऊपर प्रथम सात दिनतक सम्पूर्ण कसैली, मधुर और शीतल क्रिया कही है । फिर आठवे दिन अन्य व्रणोंके लिये जो क्रिया कही है, वह करनी चाहिए । रुधिर आमाशयमें प्राप्त हो तो वमन करावे और पक्वाशयमें प्राप्त हो तो विरेचन करावे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

क्वाथो वंशत्वगेरण्डश्वदंष्ट्राश्मभिदा कृतः । हिंगुसैन्धवसंयुक्तः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक् ॥ ८५ ॥

बांसकी छाल, अण्ड, गोखरू और पाषाणभेद इनका क्वाथ बनाकर उसमें हींग तथा सैंधानिमक डालकर पीवे तो कोठेमें प्राप्त हुआ रुधिर वह जाता है ॥ ८५ ॥

यवकोलकुलत्थानां निःस्नेहेन रसेन च । भुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैन्धवसंयुतम् ॥ ८६ ॥

आगन्तुज व्रणवाले मनुष्य जौ, बडे बेर और कुलथी इनको चिकनाईके विना रसके साथ भात भोजन करे अथवा सैंधानिमक डालकर यवागू पीवे ॥ ८६ ॥

अथ जात्यादिघृतम् ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशासारिवामञ्जिष्ठाऽभयसिक्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः । सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो गम्भीराः सरुजो व्रणाःसगतिकाःशुद्ध्यन्ति रोहन्ति च ॥ ८७ ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, परवल, कुटकी, दारुहलदी, सारिवा, मंजीठ, खस, मोम, नीलाथोथा, मुलहठी और करंजके बीज इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनाकर इस कल्कसे पकाए हुए घीको 'जात्यादिघृत' कहते हैं । इस घृतको लगानेसे छोटे मुखवाले मर्मोंमें उत्पन्न हुए, स्रावचाले, गंभीर वेदना युक्त और अंगोंमें गति करनेवाले व्रण शुद्ध हो जाते हैं और भर जाते हैं ॥ ८७ ॥

वृद्धवैद्योपदेशेन पारम्पर्योपदेशतः । जातीघृते तु संसिद्धे क्षेप्तव्यं सिक्थकं बुधैः ॥ ८८ ॥

यद्यपि ऊपरके पाठमें मोमको प्रथम ही घी में डालना कहा है, तथापि वृद्ध वैद्योंके उपदेशसे और गुरुओंकी परंपरासे यह सिद्ध होता है कि, जात्यादिघृत पचनेके पश्चात् उसमें मोम डालना चहिए ॥ ८८ ॥

अथ जात्यादितैलम्।

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः। सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी॥ ८९॥ मञ्जिष्ठा पद्मकं पथ्या लोध्रत्वङ्नीलमुत्पलम्। सारिवा तुत्थकश्चापि नक्तमालफलं तथा॥९०॥ एतानि समभागानि कल्कीकृत्य प्रयत्नतः। तिलतैलं पचेत्सम्यग् वैद्यः पाकविचक्षणः॥९१॥ विषव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कक्षरोगिणि। दद्रुवीसर्परोगेषु कीटदष्टेषु सर्वथा॥ ९२॥ सद्यःशस्त्रप्रहारेण दग्धविद्धेषु चैव हि। नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणे॥ ९३॥ म्रक्षणेन हितं तैलमिदं शोधनरोपणम्। तैलं जात्यादिनाम्नैतत्प्रसिद्धं भिषगादृतम्॥ ९४॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, कडवे परवल' करंजके पत्ते, मोम, मुलहठी, कूठ, हलदी, दारुहल्दी, कुटकी, मंजीठ, पद्माख, हरड, लोधकी छाल, नीले कमल, सारिवा, नीलाथोथा और करंजके फल इनको समान भाग लेकर कल्क बनाकर इस कल्कसे बुद्धिमान् वैद्य तिलके तैलको उत्तम विधिसे पकावे तो यह 'जात्यादि तैल' सिद्ध होता है। यह तेल विषजन्य व्रण, विस्फोटक, कलिहारी ददु, विसर्प, विषैले कीडेका काटा हुआ व्रण, तत्काल शस्त्रके प्रहारसे उत्पन्न हुआ व्रण, दग्धव्रण, विद्धव्रण, नखका घाव, दांतका घाव इनके ऊपर यह तेल लगानेसे व्रण भरने लगता है, व्रणोंमेंसे खराब मांस निकालनेके लिए यह तैल उत्तम है। वैद्योंका आदर किया हुआ यह 'जात्यादि तैल' व्रणको साफ करनेवाला और भरनेवाला है॥ ८९-९४॥

अथ विपरीतमल्लतैलम्।

चित्रकरसोनरामठशरपुंखालाङ्गलीकसिन्दूरैः। सविषैस्तथा सकुष्ठैः कटुतैलं साधु सम्पक्वम्॥९५॥ विपरीतमल्लसंज्ञं तैलं दुष्टव्रणं तथा नाडीम्। बहुभेषजैरसाध्यन्त्वपथ्यभोक्तुश्च निस्तुदति॥९६॥

चीता, लहसुन, हींग, सरफोंका, कलिहारी, सिन्दूर, वत्सनाभ और कूठ इनके कल्कसे विधिपूर्वक बनाया हुआ सरसोंका तेल 'विपरीतमल्ल' तेल कहा जाता है। इस तेलके लगानेसे वह भी दुष्ट व्रण नष्ट होजाता है, जो अनेक औषधियोंसे भी नष्ट न हो। तथा असाध्य नाडीव्रण भी दूर होजाता है। इसपर यदि अपथ्य भी सेवन किया जाय तो भी इस तेलसे दुष्टव्रण और नाडीव्रण अवश्य दूर हो जाते हैं॥ ९५॥ ९६॥

अथामृतादिगुग्गुलुः।

अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुक्रिमिघ्नानाम्। समभागानां चूर्णं सर्वसमो गुग्गुलोर्भाग॥ ९७॥ प्रतिवासरमेकैकां गुटिकां खादेत् सुपरिमाणाम्। जेतुं व्रणवाताऽसृग्गुल्मोदरशोथवातरोगांश्च॥ ९८॥

गिलोय, परवलकी जड, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल और वायविडंग इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनाकर और सब चूर्णकी बराबर गूगल डालकर योग्य मात्राकी गोली बना लेवे। इसको 'अमृतादिगुग्गुलु' कहते हैं। जो इनमेंसे नित्य एक गोली खाय तो इससे व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदरके रोग, सूजन और वातके विकार नष्ट होजाते हैं॥ ९७॥ ९८॥

अथाग्निदग्धचिकित्सा।

प्लुष्टस्याग्निषु तपनं कार्यमुष्णं तथौषधम्। सम्यक् स्विन्ने शरीरे तु स्विन्न भवति शोभनम्॥ ९९॥ प्रकृत्या

सलिलं शीतं स्कन्दयत्यतिशोणितम् । तस्मात्सुखयति ह्युष्णं न तु शीतं कदाचन ॥ १०० ॥

स्कन्दयति-शोषयति ॥

अग्निसे जला हुआ प्लुष्ट, दुर्दग्ध, सम्यग्दग्ध और अतिदग्द ऐसे चार प्रकारका है। स्वाभाविकवर्ण वदलकर अत्यन्त दाह हो और फोडा ऊपरका न उठे,उसको प्लुष्ट जानना जो तीव्र फोडे उठें, आकर्षण अर्थात् खिंचते हों ऐसी पीडा हो, दाह हो, लाल होजाय, पकजाय तथा पानी निकल जानेसे अन्यान्य वेदना हों और वे फोडे, छाले बहुत देरमें पकें, ऐसे लक्षण हों तो 'दुर्दग्ध' समझना। जो जलेकी जगह ऊपरको न उठा हो, पके ताडके फलके समान रंगवाला हो, जले स्थानमें अत्यन्त ऊँचाई और अत्यन्त नीचाई आदि दोष न हों और त्वचामें जलेके लक्षण दीखते हों, उसको 'सम्यग्दग्ध' समझना । जो मांस लटक गया हो, गात्र बिंधगया हो, शिराओंमें, स्नायुओंमें सन्धियोंमें तथा अस्थियोंमें हडफूटन और ज्वर, दाह, तृषा तथा मूर्च्छा आदि उपद्रव हो, उसको 'अतिदग्ध' समझना। जो अंग दग्ध हुआ हो तो उसको अग्निसे तपावे तथा उष्ण औषधि, प्रयोग करे, क्योंकि, अच्छी प्रकार सेंक करनेसे रुधिर सिककर पतला हो जाता है अर्थात् उसकी गरमी अच्छी प्रकारसे बाहर निकलकर वायुका गमन भी सकल मार्गमेंसे खुला रहता है। यदि प्लुष्ट दग्धके ऊपर पानी डाला जाय तो पानी स्वाभाविक रीतिसे शीतल होनेके कारण रुधिरको जमा देता है, इससे उसकी गरमी बाहर नहीं निकलती और वायुकी गति भी रुक जाती है, भारी पीडा होती है, इस कारण प्लुष्टको गरम उपचारोंसे सुख होता है, किन्तु शीतल उपचारसे कभी सुख नहीं होता है ९९॥१००

शीतामुष्णाश्च दुर्दग्धे क्रियां कुर्यात्ततः पुनः घृतलेपप्रदेहांश्च शीतानेवास्य कारयेत् ॥ १०१ ॥

जो दुर्दग्ध हो तो उसपर वैद्य शीतल क्रिया भी करे और गरम क्रिया भी करे, परन्तु दुर्दग्धके ऊपर घी चुपडे तो शीतल ही चुपडे और प्रलेपादि करे तो शीतल ही करे ॥१०१॥

सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः । सामृतैः सर्पिषायुक्तैरालेपं कारयेद्भिषक् । ग्राम्यानूपोदकैर्मांसैः पिष्टैरेनं प्रलेपयेत् ॥ १०२ ॥

सम्यग्दग्ध हुआ हो तो वैद्य वंशलोचन, पीपल, लालचन्दन, पीला गेरू और गिलोय इनको पीसकर घीसे चिकना करके लेप करे तथा थोडा आदि ग्राम्य पशुओंका मांस, कछुवा इत्यादि जलचर जीवोंका मांस और सुअर आदि जलप्राय देशमें रहनेवाले जीवोंका मांस इनको पीसकर लेप करे ॥ १०२ ॥

अतिदग्धे विशीर्णानि मांसान्युद्धृत्य शीतलाम् । क्रियां कुर्यात्ततः पश्चाच्छालितण्डुलकण्डनैः ॥ १०३ ॥ तिन्दुक्याश्च कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् । सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमुत्तमम्॥ १०४॥

अतिदग्ध हुआ हो तो लटके हुए और फैले हुए मांसको निकालकर वैद्य शीतलक्रियाका प्रयोग करे और लाल चावलोंका चूर्ण छिडक देवे। अथवा तेंदूकी छालके चूर्णको घीमें पीसकर लगावे ॥१०३॥१०४॥

अथ सिक्थकादितम् ।

सिक्थक-कर्दम-जीरक-मधुपथ्या-सर्वमिश्रितं लेपात् । गव्यं घृतमपहरति विपाकजनितं व्रणं सद्यः ॥ १०५ ॥

मोम, कीच, जीरा, सहत और हरड इनको एकत्र पीसकर उसमें गायका घी मिलाकर लगानेसे जला हुआ व्रण तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ १०५ ॥

अथ पटोलादितैलम् ।

सिद्धं कषायकल्काभ्यां पटोल्याः कटु-तैलकम् । दग्धवर्णरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ १०६ ॥

परवलके क्वाथसे और कल्कसे पकाये हुए सरसोंके तेलके लगानेसे वह जले हुए घावको पीडाको, स्रावको, दाहको और फोडोंको नष्ट करता है ॥ १०६ ॥

अथ व्रणग्रंथिचिकित्सा ।

वातास्रमस्रुतं दुष्टं सशोथं ग्रथितं व्रणम् । कुर्यात्सदाहं कण्ड्वाढ्यंव्रण-ग्रन्थिस्तु स स्मृतः ॥ १०७ कम्पिल्लकं विडङ्गानि त्वचं दार्व्यास्तथैव च । पिष्ट्वा तैलं पचेत्तत्तु व्रणग्रन्थीहरं परम् ॥ १०८ ॥

इति व्रणशोथाधिकारः ।

वात तथा रुधिर ये दोनों व्रणको स्रावरहित दुष्ट सूजनयुक्त, ग्रंथिसहित, दाह और खुजली संयुक्त करते हैं ऐसे व्रणको 'व्रणग्रन्थि' कहते हैं । कबीला, वायविडंग औरहलदीकी छाल इनको पीसकर कल्क बनाकर उस कल्कसे तेलको पकावे । इस तेलको लगानेसे व्रणग्रंथि नष्ट हो जाती है ॥ १०७॥१०८ ॥

इति व्रणशोथाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ भग्नाधिकारः ।

तत्र भग्नभेदाः ।

भग्नं समासाद्द्विविधं हुताश काण्डे च सन्धावपि तत्र सन्धौ । उत्पिष्टविश्लिष्ट-विवर्तितानि तिर्यग्गतं क्षिप्तमधश्च भग्नम् ॥ १ ॥

अत्र भावऽर्थे क्तप्रत्ययस्तेन भग्नं भंगः स चात्र विश्लेषोऽभिप्रेतः, तेन भग्नमत्रास्थिविश्लेषलक्षणम् । समासात्-संक्षेपात् । हुताश-हे अग्निवेश । यतश्चर केण अग्निवेशस्य हुताशेति नामान्तरमुक्तम् । काण्डेसंधिपर्यन्ते एकखण्डे अस्थिसन्धौ द्वयोरस्थ्नोः सन्धाने तत्र सन्धौ उत्पिष्टादिभेदः षट्प्रकारकं भग्नं भवति । स्वल्पवक्तव्यत्वेन सन्धिभग्नस्यादौ विवरणम्-उत्पिष्टेत्यादि । अधः-अधोभग्नम् ॥

चरकमें पुनर्वसु मुनिने अपने शिष्य अग्निवेशसे कहा है कि-"हे अग्निवेश! भग्नरोग संक्षेपसे दो प्रकारका है । एक कांडभग्न और दूसरा सन्धिभग्न । संधियोंके अस्थिके एक भागमें जो भग्न हुआ हो तो वह 'कांडभग्न' कहा जाता है और दो अस्थियोंकी सन्धियोंमें जो भग्न हो, वह 'सन्धिभग्न' कहाजाता है" ॥ सन्धिभग्नके विषयमें थोडा कहना है, इस कारण सन्धिभग्नका विवेचन प्रथम करते हैं । १ उत्पिष्ट, २ विश्लिष्ट, ३ विवर्तित, ४ तिर्यग्गत, ५ क्षिप्त और ६ अधोगत इस प्रकार सन्धिभग्नके छः भेद हैं ॥ १ ॥

अथ सन्धिभग्नसामान्यलक्षणम् ।

प्रसारणाकुञ्चनवर्तनोग्रा रुक् स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् । सामान्यतः सन्धिगतस्य लिङ्गमुत्पिष्टसन्धेः श्वयथोः समन्तात् । विशेषतो रात्रिभवा रुजा च विश्लिष्टके तौ च रुजा च नित्यम् ॥ २ ॥

वर्तनम्-परिवर्तनम् । उत्पिष्टसन्धः-उत्पिष्टनः द्वाभ्याम् अस्थिभ्यां पिष्टः संधिर्यस्य तस्य समन्तादुभयभानयोः शोथो भवति । विश्लिष्टमाह-विश्लिष्टइत्यादि । तौ उभयतः शोथो रात्रिरुजा च । नित्यम्-सदा, रुजाऽधिका भवतीति उत्पिष्टभेदः ॥

फैलानेमें, सकोडनेमें तथा फेरनेमें उग्र पीडा हो और स्पर्श करते समय पीवे हो तो सन्धिभग्नके सामान्य लक्षण जानने ॥

१-दो हड्डियोंके परस्पर घिसनेसे सन्धि दबजाती है, दोनों भागोंमें सूजन आजाती है और रात्रिमें विशेष पीडा होती है, ये 'उत्पिष्ट' के लक्षण जानने ॥

२-दोनों भागोंमें सूजन हो और निरन्तर अधिक वेदना रहती हो, उसको 'विश्लिष्ट' जानना । उत्पिष्टमें रात्रिमें अधिक पीडा होती है । और विश्लिष्टमें निरन्तर अधिक पीडा रहती है, इतना भेद है विश्लिष्ट अर्थात् सन्धियोंकी अस्थियोंसे अलग होना ॥ २ ॥

अथ विवर्तितादिलक्षणम् ।

विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रास्तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति ! क्षिप्तेऽतिशूलं विषमं रुजश्च क्षिप्ते त्वधोरुग्विवटश्च सन्धेः॥३॥

विवर्तिते सन्धौ अमुक्ते अस्थिद्वये परिवर्तिते । पार्श्वरुजः सन्धिस्थितास्थिखण्डद्वयपार्श्वयो रुजः । तिर्यग्गते एकस्मिन्नस्थिसंस्थानं त्यक्त्वा तिर्यग्गते । क्षिप्ते सक्थ्यूरुसन्ध्योःएकस्मिन्नस्थ्नि परस्मादस्थ्न उपरिगते अस्थ्नोः । अतिशूलम् तत्र विषमं कदाचिदधिकं कदाचिन्न्यूननम् । अधःक्षिप्ते सन्धिगते एकस्मिन्नस्थ्नि अधोगते रुक्सन्धिविघटनश्च ॥

३- संधि अलग नहीं हो, संधिकी दोनों अस्थि बांकी होजायँ और इससे दोनों अस्थियोंमें तीव्र पीडा हो, ये 'विवर्त'के लक्षण जानने ॥

४ -संधियोंकी दो अस्थियोंमें एक अस्थि संधिके स्थानको छोडकर आडी होजाय और उससे तीव्र पीडा हो, ये 'तिर्यग्गत' के लक्षण जानने ॥

५-संधियोंकी दो अस्थियोंसे एक अस्थि दूसरी अस्थिके ऊपर चढ़जाय और उससे अस्थियोंमें विषम रीतिकी शूल हो तथा वेदना हो ये 'क्षिप्त' के लक्षण जानने । किसी समय शूलकी न्यूनता और विषमता भी होती है ॥

६- संधियोंकी दो अस्थियोंमेंसे एक अस्थि दूसरी अस्थिसे नीचे चली जाय और उससे वेदना हो तथा संधि अलग अलग होजायँ, ये 'अधोगत' के लक्षण जानने ॥ ३ ॥

अथ काण्डभग्नद्वादशभेदनिरूपणम् ।

भग्नन्तु काण्डे बहुधा प्रयाति विशेषतो नामभिरेव तुल्यम् ॥ ४ ॥

भग्नं काण्डे काण्डविषये बहुधा बहुभिः प्रकारैः प्रयाति । अत्र बहुविधत्वं द्वादशविधत्वं बोद्धव्यम् । बहुविधस्य काण्डभग्नस्य पृथक् लक्षणं नोक्तम् । किन्तु नामभिरेव तुल्यम् । कर्कटकादिनामानुरूपमेव लक्षणं बोद्धव्यम् ॥

कांडभग्न बारह प्रकारका होता है और वह उसके बारह प्रकारके लक्षण कर्कट आदि नामोंसे जानने । इस कारण अलग कहनेकी जरूरत नहीं ॥ ४ ॥

तान् प्रकारानाह--

काण्डे त्वतः कर्कटकाश्वकर्णविचूर्णितं पिच्चितमस्थि छल्लितम् । काण्डेषु भग्नं ह्यतिपातितञ्च मज्जागतं विस्फुटितञ्च वक्रम् ॥ ५ ॥ छिन्नं द्विधा द्वादशधाऽपि काण्डे सामान्यमग्रे किल तस्य लिङ्गम् ॥ ६ ॥

अतःसन्धिभग्नानन्तरम् । काण्डे काण्डभग्नम् ॥

कर्कटक, अश्वकर्ण, विचूर्णित, पिच्चित, छल्लित, कांडभग्न, अतिपातित, मज्जागत, विस्फुटित, वक्र, अल्प, छिन्न और बहुछिन्न इस प्रकार कांडभग्न बारह प्रकारका है । बारह प्रकारके कांडभग्नके जो सामान्य लक्षण हैं, वे पीछेसे कहेंगे ॥ ५ ॥ ६ ॥

तदाह-कर्कटकः अस्थिविश्लेषपूर्वको मध्ये प्रोन्नतः पार्श्वयोः अवनतः कर्कट-

तुल्यरूपत्वात्कर्कटकः । अश्वकर्णः अश्वकर्णवद्विपुलास्थिनिर्गमादश्वकर्णः । विचूर्णितम् चूर्णितमस्थि, तच्च शब्द-स्पर्शाभ्यां बोद्धव्यम् । पिच्चितम् यन्नितं बहुशोथम् । छल्लितम् विश्लिष्ट-मस्थि निःस्रवम् । काण्डेषु भग्नम् काण्डभग्नम् । यद्यपि कर्कटकादि सर्व-मेव काण्डभग्नम्, तथापि इयं काण्डभग्न-संज्ञा विशिष्टा । अत्र भग्नं भङ्गस्त्रुटिस्तेन सर्वथा त्रुटितम् । पृथग्भूतं त्वचि स्थितं यत्काण्डभग्नम् अतिपातितम् अशेषेण छित्त्वा पातितमस्थि । मज्जागतम् अस्थ्यवयवोऽस्थिमध्ये प्रविश्य मज्जानं गतम् । विस्फुटितम् स्तोकं विदी-र्णम् । वक्रम् स्थानं त्यक्त्वा कुब्जी-भूतम् । छिन्नं द्विधा एकं विदीर्णं संल-ग्नम् अपरं विदीर्णं द्विधाभूतम् । द्वाद-शधा च काण्डेति कर्कटकादिः,काण्डे-काण्डे च भग्नं द्वादशधा इत्यन्वयः । तच्च उक्तमेव ॥

अस्थियोंके छूटकर बीचमें ऊँचे और दोनों और केडडके समान होजायँ, उसको कर्क-टक' कहते हैं। घोडेके कानके समान बडी हड्डी बाहर निकल आवे, उसको 'अश्वकर्ण' कहते हैं । अस्थियोंका होजाय और वह शब्दसे अथवा स्पर्शसे जानी जाय, उसको 'विचूर्णित' कहते हैं । अस्थियोंके अवयव परस्पर अलग होकर बहुत सूजन युक्त हों और पिच जायँ, उसको 'पिच्चित' कहते हैं। अस्थिका कोई भाग शिथिल होकर उखड जाय और बाहर निकल आवे, उसको 'छल्लित कहते हैं। अस्थि सर्वथा टूटकर अलग होजाय और चमडेमें रहे उसको 'कांडभग्न कहते हैं। यद्यपि कर्कटकादि सम्पूर्ण भेद कांडभग्नके ही हैं, तथापि उनमें मुख्य है । जो अस्थि सम्पूर्ण रीतिसे छिदकर गिर जाय, उसको 'अति-पातित' कहते हैं। अस्थियोंके अवयव अस्थि-योंके भीतर घुसकर मज्जामें पहुँच जाय,उसको 'मज्जागत' कहते हैं । जो अस्थि कुछेक फट गई हो वह 'विस्फुटित' कही जाती है। जो अस्थि अपने स्थानको छोडकर कुबडी होजाय, वह 'वक्र' कही जाती है । जो अस्थि अच्छी प्रकारसे फटकर वही लगी रहे, वह 'अल्प छिन्न' कही जाती है। जो अस्थि अच्छी प्रकारके फटकर अलग टूक टूक हो जाय, वह 'बहुच्छिन्न' कही जाती है ॥

अथ कर्कटककाण्डभग्नसामान्यलक्षणम् ।

स्रस्ताङ्गता शोथरुजातिवृद्धिस्तथा व्यथा-वृद्धिरतीव नित्यम् । सम्पीडयमाने भव तीह शब्दः स्पर्शासहं स्पन्दनतोदशूलः ॥ ७ ॥ सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् ॥ ८ ॥

स्पर्शासहमिति काण्डभग्नस्य विशेषणम् । स्पन्दनम्–नाडीनां स्फुरणम् । तोषःशूलेनेव च व्यथा । रुजा सामान्यपीडा । सर्वासु अव-स्थासु-शयनादिषु ॥

अंगोंमें शिथिलता, सूजनकी वृद्धि, वेदना अत्यन्त बढ जाय, शूलके समान निरन्तर विशेष पीडा हो,दबानेसे शब्द हो,स्पर्शको नहीं सहसके, नाडियोंका फरकना, सुईचुभोने सरीखी पीडा शूलची पीड़ा और सोने बैठने आदि समस्त अवस्थाओंमें चैन नहीं पडे, ये सब कांडभग्नकेसामान्य लक्षण जानने।।७।।८।।

अथ भग्नस्य कष्टसाध्यता ।

अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्म-कस्य च । उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ९ ॥

अनात्मवतः-रोगप्रतीकारे यत्नरहितस्य । वातात्मकस्य–वातप्रकृतेः । उपद्रवैः–ज्वराध्मा-नमोहमूत्रपुरीषसंगादिभिः ।

थोडा भोजन करनेवाले, इंद्रियांजिनकी वशमें नहीं हैं, वातप्रकृतिवाले और ज्वर, अफारा, बेहोशी, मूत्र और मलका अवरोध आदि उपद्रव हों तो भग्न संधि, भग्न-कष्टवाला कठिनतासे आरोग्य होता है ॥ ९ ॥

अथ भग्नासाध्यता ।

भिन्नं कपालं कटचान्तु सन्धिमुक्तं तथा च्युतम् । जघनं प्रतिपिष्टश्च वर्जयेत्तु चिकित्सकः ॥ १० ॥

कपालम् -जानुनितम्बांसगण्डतालुशंखवक्ष--णशिरोऽस्थीनि कपालानि । तथा च्युतम्—अधः क्षिप्तम् । प्रतिपिष्टम्—उत्पिष्टम् ॥

घुटनोंकी, नितंबकी, कन्धेकी, गालकी, तालुकी कनपटीकी, सांथलोंकी संधियोंकी और मस्तककी हड्डियां टूट गई हों तो वैद्य उसकी चिकित्सा न करे । जो कमरमें अधोगत नामक संधिभग्न हुआ हो तो और पेडूमें उत्पिष्ट नामक संधिभग्न हो तो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १० ॥

असंश्लिष्टकपालश्च ललाटे चूर्णितश्च तत् । भग्नं स्तने गुदे पृष्ठे शङ्खे मूर्द्धनि वर्जयेत् ॥ ११ ॥

असंश्लिष्टकपालमिति भग्नविशेषणम् । स्तने स्तनयोः अन्तरे । मूर्द्धनि—चूडास्थाने ॥

गाँठे, नितम्ब, खवे, गाल, तालू, कनपटी और मस्तक इनकी हड्डी जो दूसरी अस्थियोंसे छूट गई हों तो उनकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । ललाटमें जो विचूर्णित नामक काण्डभग्न हो तो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये स्तनोंका मध्यभाग, गुदा, पीठ, कनपटी और ब्रह्मरन्ध्र इनकी संधियोंमें जो काण्ड-भग्न हुआ हो तो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥

सम्यक्संहितमप्यस्थि दुर्न्यासाद् दुष्टब-न्धनात् । संक्षोभाद्वाऽपि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत् ॥ १२ ॥

सम्यक्सहितमपि—सम्यक् योजितमपि । अस्थिदुर्न्यासाद् दुःस्थापनात् । सुन्यस्तमपि दुष्टबन्धनात् सुबद्धमपि । संक्षोभात्-अभिघातादिना सञ्चलनात् । विक्रियां गच्छेत्—विकृतं भवति, तत् वर्जयेत् ॥

जो अस्थि अच्छी प्रकारसे जुड भी गई हो, परन्तु उनको योग्यरीत्यनुसार न रक्खे तथा योग्यरीतिसे नहीं बांधे अथवा योग्यरीतिसे जुडनेपर और बँधनेपर भी उसमें चोट आदिके लगजानेसे विकृति होजाय तो वह भी असाध्य जाननी ॥ १२ ॥

अथास्थिविशेषे भग्नविशेषः ।

तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि तु । कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ॥ १३ ॥

तरुणास्थीनि—घ्राणकर्णाक्षिगुदेषु कोमलस्थीनि । नम्यन्ते वक्रीभवन्ति, तेन अत्र वक्रतालक्षणं भग्नम् । नलकानि नलादीनि नाडीवत्सरन्ध्राणि अस्थिपर्वाणि । भिद्यन्ते अस्थ्यन्तराऽनुप्रवेशाद्विदार्यन्ते । कपालानि जानुनितम्बांस-गण्डतालुशंखवंक्षणशिरोऽस्थीनि विभज्यन्ते । स्फुटन्ति त्रुटयन्ति । रुचकानि दन्ता अस्थीनि च ।

तरुणास्थि—नाक, कान, आंख और गुदा इनकी हड्डी नरम होनेके कारण नमजाती हैं, इस कारण उनमें वक्रनामक कांडभग्न होता है, नलक नामक हड्डी उसमें दूसरी हड्डीके घुसजानेसे चिरजाती है;कपाल नामक अस्थिमें घुटने, नितंब, कन्धे, कपोल, तालू, कनपटी,

शंखसकी संधि और मस्तककी हड्डी टूटकर अलग होजाती हैं और रुचकनामक अस्थि दांतकी हड्डी टूटकर चूर चूर होजाती है ॥ १३ ॥

तरुणनलककपालरुचकवलयभेदात्पञ्च-विधानि । तत्र रुचकानि चेति चका-राद्वलयान्यपि त्रुटयन्तीति बोद्धव्यम् ॥ पाण्योः पार्श्वयुगे पृष्ठे वक्षोजठरपायुषु । पादयोरपि चास्थीनि वलयानि बभा-षिरे ॥ १४ ॥

तरुण, नलक, कपाल, रुचक और वलय इस प्रकार हड्डी पांच प्रकारकी हैं। इनमें पहिली चार प्रकारकी अस्थि कही हैं, यद्यपि पाचवें प्रकारकी वलयनामक हड्डीके विषयनहीं कहा है, तथापि मूलश्लोकमें च शब्द है,उससे जानलेना चाहिये कि 'वलयनामक हड्डी भी टूट जाती है'। दोनों हाथोंमें, दोनों पसलि-योंकी, पीठकी, पेटकी, गुदाकी, और दोनों पाँवोंकी हड्डी 'वलय' कही जाती है ॥१४॥

अथ भग्नचिकित्सा ।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतला-म्बुना । पङ्केनालेपनं कार्यं बन्धनञ्च कुशान्वितम् ॥ १५ ॥ अवनामितमुन्न-ह्येदुन्नतं चावपीडयेत् । अञ्चेदधःक्षिप्त-मधोगतं चोपरि वर्तयेत् ॥ १६ ॥ मधू-कोदुम्बराश्वत्थकदम्बनिचुलत्वचः । वंशसर्जार्जुनानाञ्च बन्धार्थमुपसंहरेत् । पटस्योपरि बध्नीयात्र गाढं शिथिलं न च ॥ १७ ॥

भग्नरोगमें प्रथम शीतल जलसे सेचन करे, कीचका लेप करे, कुशा बाँधे वा पट्टी बाँधे। जो हड्डी दब जाय उसको ऊपरको उठाकर ऊंचा करे, जो ऊंची होजा तो उसे दबाकर नीचेको बैठावे, दूर हट जाय उसको नजदीक लावे और जो नीचेको हो जाय तो ऊपरको चढावे। महुवा, गूलर, पीपल, कदंब, वेत, बाँस, राल और अर्जुन वृक्षकी छाल इनकी पट्टी बाधे, बन्धनके ऊपर जो बन्धन बाँधे, उसको सख्त नहीं बाँधे और शिथिल भी नहीं बाँधे ॥ १५–१७ ॥

सप्तसप्तदिनाच्छीते घर्मे मुञ्चेत् त्र्यहात् त्र्यहात् । मासान्ते पञ्चपञ्चाहाद्भग्ने दोषे ऽवसेचनम् ॥ १८ ॥

शीतलकालमें सात सात दिनमें पट्टी खोले, उष्णकालमें तीन तीन दिनमें पट्टी खोले और साधारण कालमें पांच पांच दिनमें पट्टी खोले अथवा जो भग्न हो, उसको यथादोषानुसार पट्टी खोलनेका समय नियत करे ॥ १८ ॥

आलेपनार्थं मञ्जिष्ठा मधूकं चाम्बुपेषि-तम् । शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टञ्च लेपनम् ॥ १९ ॥ सद्योऽभिघातजनिता आगन्तुश्वयथवः प्रशाम्यन्ति । पिष्टक-लवणालेपाद्ःलीकाफलरसाभ्यां वा२०॥

मंजीठ और मुलहठीको जलमें पीसकर उसको भग्नके ऊपर लेप करे। लाल शालि चावलोंको पीसकर उसमें सौवारका धुला घी मिलाकर लेप करे। इमलीके फल तथा छालके रससे, शालिचावल और सैंधेनोनकी पिट्ठी बनाकर लेप करनेसे अभिघात आदिसे तत्काल उत्पन्न हुए शोथ शान्त होते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

आम्रातकजटाऽम्लीकाफलं पत्राणि शिग्रुजम् ॥ २१ ॥ मूलं पौनर्नवं बद्धमानस्यापि च केम्बुकात् । सर्वं संक्षुद्य तक्रेण कञ्जिकेन तथैव च ॥ २२ ॥ पाचयित्वा चरेच्छ्रेषं तेन पीडा प्रण-श्यति । शोथश्चास्थि च शीघ्रेण सन्धानं याति वै ध्रुवम् ॥ २३ ॥

अम्बाडेकी जड, इमलीके फल, इमलीके पत्ते, सहिंजनेकी जड, पुनर्नवेकी जड, मान-

कन्द और सुपारीकी जड इन सबको खूब कूट पीसकर मट्ठे और काँजीमें पकाकर लेप करनेसे पीडा और सूजन दूर हो जाती है और हड्डियाँ भी तत्काल जुडजाती हैं ॥२१-२३॥

न्यग्रोधादिकषायन्तु सुशीतं परिषेचने । पञ्चमूलीकषायं सक्षीरं दद्यात्सवेदने ॥ २४ ॥ सुखोष्णमवचार्यं वा चुक्रतैलं विजानता । अविदाहिभिरन्नैश्च पिष्टकैः समुपाचरेत् ॥ २५ ॥

न्यग्रोधादिगणका क्काथ बनाकर अच्छी प्रकारके शीतल करके भग्नपर सेचन करे । जो भग्नमें व्यथा होती हो तो पंचमूलका क्काथ बनाकर उसमें दूध डालकर उससे सेचन करे । अथवा चूकेका तेल बनाकर सुहाता सुहाता लेप करे । जो अन्न दाहकारक नहीं हैं, उनकी पुलटिसभी भग्नपर बाँधनी चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

ग्लानिर्हि निहिता तस्य सन्धिविश्लेषकारिका । मांसं मांसरसः क्षीरं सर्पिर्यूषः सतीनजः । बृंहणश्चान्नपानञ्च देयं भग्नाय जानता ॥ २६ ॥

संधियोंके भिन्न भिन्न होनेसे रोगीको ग्लानि भी अवश्य होती है, इस कारण उस रोगीको अच्छी प्रकारसे विचारकर मांस, मांसका रस दूध, मटरका यूष और धातुओंको पुष्ट करनेवाले ऐसे अन्न पान देवे॥२६॥

गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् । शीतलं लक्षाया युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः ॥ २७ ॥

सन्धिभग्न और कांडभग्नमें पहलौन गायके दूधमें घी डालकर जीवनीयगणकी औषधियोंके साथ पकाकर शीतल करके फिर लाखका रस डालकर प्रातःकाल पीवे ॥ २७ ॥

सघृतेनास्थिसंहारं लाक्षागोधूममर्जुनम् । सन्धिमुक्तेऽस्थिसम्भग्ने पिबेत्क्षीरेण वा पुनः ॥ २८ ॥

हडसंवारी, लाख, गेहूँ और अर्जुनकी छाल इनको पीसकर घी और दूधके साथ मिलाकर पीनेसे संधिभग्न तथा कांडभग्न नष्ट होजाता है ॥ २८ ॥

रसोनमधुलाक्षाज्य सिताकल्कान्समश्नताम् । छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां सन्धानमचिराद्भवेत् ॥ २९ ॥

लहसुन, सहत, लाख, घी और मिश्री इनका कल्क सेवन करनेसे छेदी हुई, भेदी हुई और टूटी हुई हड्डी तत्काल जुड जाती है ॥ २९ ॥

चूर्णं पुरेण संयोज्य घृतेनार्जुनलाक्षयोः । भग्नः सन्धानमायाति लीढं क्षीरघृताशिना ॥ ३० ॥ मूलं शृगालविन्नायाः पीत्वा मांसरसेन तु । चूर्णीकृत्य त्रिसप्ताहादस्थिभग्नमपोहति॥३१॥

पृष्टिपर्णीकी जडका चूर्ण बनाकर मांसके रसके साथ सेवन करे तो इक्कीस दिनमें अस्थिभंग आराम हो जाता है ॥ अर्जुन और लाखका चूर्ण बनाकर घी और गूगलके साथ मिलाकर चाटे, दूध और घी भोजन करे तो टूटा हुआ हाड तत्काल जुड जाता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

आभाचूर्णं मधुयुतमस्थिभग्नस्त्र्यहं पिबेत् । पीते चास्थि भवेत्सम्यग्वज्रसारनिभं दृढम् ॥ ३२ ॥

बबूरकी फलीका चूर्ण करके सहतके साथ मिलाकर तीन दिनतक पीवे तो हाड वज्रके समान दृढ हो जाता है ॥ ३२ ॥

अम्लीकाफलकल्कः सौवीरस्तैलमिश्रितः स्वेदात् । भग्नाभिहतरुजाघ्नैरथवौषधसाधितं श्वयथौ ॥ ३३ ॥

इमलीके फलोंका कल्क, सौवीर और तेल इनको एकत्र मिलाकर गरम करके स्वेद देनेसे भग्नकी तथा अभिघातकी पीडा नष्ट हो जाती है ॥ ३३ ॥

अथाभागुग्गुलुः।

आभाफलत्रिकव्योषैः सर्वैरेतैः समांशिकैः। तुल्यं गुग्गुलुना योज्यं भग्नसन्धिप्रसाधनम् ॥ ३४ ॥

बबूर, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर और सबकी बराबर गूगल लेवे, सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे टूटी हुई हड्डी फिरसे जुड जाती है ॥ ३४ ॥

अथ लाक्षाद्यगुग्गुलुः।

लाक्षास्थिसंहृत्ककुभोऽश्वगन्धा चूर्णीकृता नागबला पुरश्च। संभग्नमुक्तास्थिरुजं निहन्यादङ्गानि कुर्यात्कुलिशोपमानि ॥ ३५ ॥

लाख, हडसंघारी, अर्जुनवृक्षकी छाल, असगन्ध और खिरैंटी इन सबका चूर्ण बनाकर गूगलमें मिलाकर सेवन करनेसे टूटा तथा हटा हुआ हाड फिरसे जुडकर वज्रके समान हो जाता है और पीडा शान्त हो जाती है ॥ ३५ ॥

अथ गन्धतैलम्।

रात्रौरात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले। दिवादिवा शोधयित्वा गवां क्षीरेण भावयेत् ॥ ३६ ॥ तृतीयं सप्तरात्रन्तु भावयेन्मधुकाम्बुना। ततः क्षीरं पुनः पीतान्छुष्कान्सूक्ष्मान्विचूर्णयेत्। काकोल्यादि श्वदंष्ट्रां च मञ्जिष्ठां सारिवां तथा ॥ ३७ ॥ कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम्। शतपुष्पाश्च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयत् ॥ ३८ ॥ पीडनार्थे तु कर्त्तव्यं सर्वगन्धैः श्रृतं पयः। चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचयेत्पुनः ॥ ३९ ॥ एलामंशुमतीपत्रं जीवन्तीं तुरगं तथा। रोध्रं प्रपौण्डरीकञ्चतथा कालानुसारिवाम् ॥ ४० ॥ शैलेयं क्षीरशुक्लाभमनन्तां समधूलिकाम्। पिष्ट्वा श्रृङ्गाटकश्चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च ॥ ४१ ॥ एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाग्निना। एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ॥ ४२ ॥ आक्षेपके पक्षघाते तालुशोषे तथाऽर्दिते। मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले शिरोग्रहे ॥ ४३ ॥ बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयङ्गताः। पथ्यं पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु भोजने ॥ ४४ ॥ ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरेतेनैव प्रजायते। मुखञ्च पद्मप्रतिमं ससुगन्धिसमीरणम् ॥ ४५ ॥ राजार्हमेतत्कर्तव्यं राज्ञामेव चिकित्सकैः। तिलचूर्ण समं तत्र मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ ४६ ॥

सात दिनतक रात्रिके समय बहते हुए जलमें काले तिलोंको भिगो रक्खे फिर सुखा देवे, पश्चात् सात दिनतक नित्य गायके दूधकी भावना देवे, फिर सात दिनतक नित्य मुलहठीके रसकी भावना देवे, फिर उन तिलोंको पीछे दूधमें भिगोकर सुखाकर चूर्ण बनावे, पश्चात् काकोल्यादिगण, गोखरू, मञ्जीठ, सारिवा, कूठ, राल, बालछड, देवदारु, चन्दन और सोया इनका तिलके चूर्णके समान चूर्ण बनाकर तिलोंके चूर्णमें मिला देवे। फिर इस तिलको सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंसे मिश्रित किये हुए दूधके साथ मिलाकर कोल्हूमें पिलवाकर तेल निकलवावे। फिर सकल सुगंधित पदार्थोंसे दूधको पकाकर उस चौगुने दूधसे तेलको पकावे, पश्चात् इलायची, शालिपर्णी, तेजपात, जीवक, तगर, लोध, पुण्डरिया, पीलाचन्दन, सफेद कटसरैया, सफेद दूब, मूर्वा, सिंघाडे और ऊपर

कही हुई काकोल्यादि औषधि इनका कल्क बनाकर मन्द मन्द अग्निसे तेलको दुबारा पकावे तो यह 'गन्धतैल' सिद्ध होता है, यह तेल भग्नके ऊपर सम्पूर्ण क्रियाओंमें सर्वदा पथ्य है । आक्षेपक, पक्षाघात, तालुशोष, अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, शिरोग्रह, बधिरता, तिमिर और अत्यन्त स्त्री प्रसंग करनेसे, उत्पन्न क्षयरोग इनमें पीनेसे मालिस करनेसे' नस्य लेनेसे, पिचकारी लगानेसे और भोजनमें पथ्य है । इस तेलसे ग्रीवा, कन्धे और छातीकी वृद्धि होती है। मुख अत्यन्त सुगंधि श्वासवाला तथा कमलके समान हो जाता है । यह तेल राजाओंके योग्य है, इसलिये वैद्योंको राजाके लिये बनाना चाहिये ॥ ३६-४६ ॥

अथावस्थानुसारेणभग्नोपशातिः ।

पूर्वे वयसि जातं हि भग्नं सुकरमादिशेत् । अल्पदोषस्य जन्तोश्च काले तु समशीतले ॥ ४७ ॥

पहिली अवस्थामें हुआ भग्न साध्य है, अल्पदोषवाले मनुष्यको हुआ भग्न साध्य है और शिशिर ऋतुमें हुआ भग्न भी साध्य है ॥ ४७ ॥

प्रथमे वयसि त्वेवं मासात्सन्धिः स्थिरो भवेत् । मध्यमे द्विगुणात्कालादन्तिमे त्रिगुणात्तथा ॥ ४८ ॥

पहिली अवस्थामें टूटे हुए सब हाड एक महीनेमें दृढ हो जाते हैं, मध्य अवस्थामें टूटा हुआ हाड दो महीनेमें दृढ हो जाता है और पिछली अवस्थामें टूटा हुआ हाड तीन महीनेमें दृढ हो जाता है ॥ ४८ ॥

अथ भग्नस्य विशेषरक्षा ।

नैति पाकं यथा भग्नं तथा यत्नेन रक्षयेत् । पक्का हि या शिरा स्नायुः सा तु कृच्छ्रेण सिद्ध्यति ॥ ४९ ॥

जिससे कि भग्न पक न जाये, इस प्रकार यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि, भग्न पक जाय तो शिराओंको तथा स्नायुओंको खराब कर देता है और कष्टसाध्य हो जाता है ॥ ४९ ॥

अथ भग्ने विशेषोपदेशः ।

पतनादभिघाताद्वा तनुभग्नं यदक्षतम् । शीतान् सेकान्प्रदेहांश्च भिषकुतस्याव-चारयेत् ॥ ५० ॥ सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः । प्रतिसार्य कषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत् । वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहांस्तत्रापि योजयेत् ॥ ५१ ॥

गिर जानेसे अथवा चोट आदिके लगनेसे जो अंग सूज जाय और घाव न हो तो वैद्य उसपर शीतल सेचन और गाढा गाढा शीतल लेप करे । जो भग्न व्रणसहित हो तो उस व्रणको घी तथा सहतसे मिश्रित किये हुए काथोंसे धोवे, पश्चात् सम्पूर्ण वही सब क्रिया भग्नके समान करे, इसपर वातरोगमें कहे हुए स्नेहोंकी योजना करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ भग्नापथ्यम् ।

लवणं कटुकक्षारमम्लमायासमैथुनम् । व्यायामश्च न सेवेत् भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ ५२ ॥

जिसको सन्धिभग्न या कांडभग्न हुआ हो तो उसको नमक, चरपरे पदार्थ, खारे पदार्थ, खट्टे पदार्थ, परिश्रम, मैथुन, कसरत और रूखा अन्न इन सबको त्याग देना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ भग्नारोग्यलक्षणम् ।

भग्नसन्धितमाविद्धमहीनाङ्गमनुल्बणम् । सुखचेष्टाप्रचारश्च सम्यक्सन्धितमादिशेत् ॥ ५३ ॥

इति भग्ननिदानचिकित्साधिकारः संपूर्णः ।

जब अंगोंको फैलाते-पसारते समय कुछ भी दुःख न हो, कोई अवयव छोटा न रह जाय, सूजन किंचित् भी न रहे और उठते बैठते समय तथा फिरते-चलते समय दुःख न हो अर्थात् ये सब चेष्टा सुख पूर्वक करनेलगे तो भग्नको अच्छी प्रकारसे आरोग्य हुआ जानना ॥ ५३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे मध्यमखण्डे शालिग्रामवैश्यविरचितभाषाटीकायां भग्ननिदानचिकित्साधिकारः सम्पूर्णः।

इति मध्यमखण्डस्य तृतीयो भागः ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ भावप्रकाशः

भाषाटीकासमेतः

★

मध्यमखण्डे चतुर्थो भागः ४.

अथ नाडीव्रणाधिकारः ।

तत्र नाडीव्रणस्य सम्प्राप्तिपूर्वकशब्दार्थः ।

यः शोथमाम इति पक्कमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः । अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि-पूर्वविहितानि ततः स पूयः ॥ १ ॥

तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद्वहति तेन मता च नाडी ॥ २ ॥

उपेक्षते तस्य शोथस्य मुखं न कारयति । योवा अयमाम इति मत्वा पक्कं व्रणं च उपेक्षते शोधनैर्न शोधयति । प्रचूरपूयमिति शोथस्य व्रणस्यापि विशेषणम् । असाधुवृत्तः अहिताहारविहारः । स पूयःततस्तदनन्तरम् । तस्य पूर्वविहितानि स्थानानि सुश्रुतोक्तानि त्वङ्मांसशिरास्नायुसन्ध्यस्थि-कोष्ठमर्माणि प्रविदार्य सच्छिद्राणि कृत्वा अभ्यन्तरं प्रविशति । तस्य पूयस्य अतिमात्रगमनात् अभ्यन्तरे दूरप्रवेशात् गतिरिष्यते सर्वदा इष्यते । इति सम्प्राप्तिः । अथ निरुक्तिः—अयं व्रणो नाडीवत् सरन्ध्रनलादिनाडीव यद्वहतोर्वहती तेन नाडि मता ॥

जो मूर्ख मनुष्य बहुत राधवाले पके हुए फोडेको कच्चा समझकर उसका मुख नहीं करता अथवा बहुत राधवाले पके हुए व्रणको कच्चा जानकर उसको शोधन पदार्थोंसे शुद्ध नहीं करता है और अहित आहार विहार करता है, उसके वह राध फिर त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, संधि, अस्थि, कोष्ठ तथा मर्मस्थानोंके छिद्रोंमें होकर उनके भीतर घुस जाती हे, भीतर बहुत दूर तक घुसजानेके कारण वह राध सदैव बहा करती है। यह नाडीव्रणकी संप्राप्ति जाननी । यह व्रण बाँस आदिकी नलीके समान राधको बहाता है, इस कारण इसको ' नाडीव्रण ' कहते हैं ॥१॥२॥

अथ नाडीव्रणसंख्या ।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥३॥

१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ त्रिदोषज और ५ शल्यज इस प्रकार नाडीव्रण पाँच प्रकारका है ॥ ३ ॥

अथ वातजनाडीव्रणलक्षणम् । १

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला ।
फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ॥ ४ ॥

जो नाडीव्रण सूक्ष्ममुखवाला और कठिन मुखवाला हो, शूलयुक्त और रातमें उसमेंसे झाग मिला स्राव अधिक हो, उसको ' वातज नाडीव्रण ' जानना ॥ ४ ॥

अथ पित्तजनाडीव्रणलक्षणम् । २

पित्तात्तु तृड्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहः सु चापि ॥ ५ ॥

जो नाडीव्रण तृषा तथा ज्वरसंयुक्त हो, दाहयुक्त और उसमेंसे दिनमें पीले रंगका तथा गरम अधिक स्राव होता हो, उसको ' पित्तज नाडीव्रण ' जानना ॥ ५ ॥

अथ कफजनाडीव्रणलक्षणम् । ३

ज्ञेया कफाद्बहुघना सितपिच्छिलास्रा स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा ॥६॥

सितपिच्छिलास्राः-अस्रं रक्तं तच्चोपलक्षणं पूयादिश्च बोद्धव्यः । सकण्डुररुजप्रधानवेदनायुक्ता ॥

जो नाडीव्रण बहुत घन हो, जिसमें सफेद और चिकना स्राव होता हो अकड जाय, अत्यंत खुजली सहित वेदनासे संयुक्त हो और रात्रिमें अधिक क्लेदको प्राप्त होजाय, उसको ' कफजनित ' जानना ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजनाडीव्रणलक्षणम् । ४

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि । तामादिशेत् पवनपित्तकफप्रकोपाद् घोरां गतिं त्वसुहरामिव कालरात्रिम् ॥ ७ ॥

कालरात्रिम्-यमरात्रिमिव । असुहराम्-मारिकाम् ।

जो नाडीव्रण दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा और मुखशोषसे संयुक्त हो और इसके सिवाय उपरोक्त तीनों दोषोंसे सम्पूर्ण लक्षण भी हों उस नाडीव्रणको वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंके प्रकोपसे उत्पन्न हुआ 'त्रिदोषज' जानना और कालरात्रिके समान भयंकर तथा प्राणोंका नाश करनेवाला जानना ॥ ७ ॥

अथ सशल्यनाडीव्रणलक्षणम् । ५

नष्टं कथञ्चिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति । सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति सहसा सरुजञ्च नित्यम् ॥ ८ ॥

उदीरितेषु स्थानेषु--त्वङ्मांसादिषु । कथञ्चिन्नष्टम् अदृश्यमानं शल्यम् । किंविशिष्टम् ? अनुमार्गम् अत एव दृश्यमानम् । सागतिं अचिरेण क्षीघ्रं स्रावं करोति । सा-शल्यनिमित्ता नाडी । मथितम्-मथितमिव स्रावं करोति स्रावश्च-प्रसारणाकुञ्चनादौ शल्यसञ्चलनेन भवति ॥

जो नहीं निकालाजाय और त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, संधि, अस्थि, कोष्ठ तथा मर्मस्थानोंमें किसी रीतिसे गुप्त होजाय, या टूटकर रह जाय इस कारण दीखे नहीं ऐसा बारीक कांटा थोडे समयमें व्रण करदेता है और उस व्रणमेंसे गाढे तक्रके समान गरम तथा रुधिर संयुक्त स्राव होता है और निरन्तर पीडा रहती है, इसको ' शल्यसंबन्धी नाडीव्रण ' कहते हैं, अंगोंको फैलाते-सिकोडते आदिके समयमें शल्यके चलायमान होनेसे स्राव होता है ॥ ८ ॥

अथ नाडीव्रणस्य कष्टसाध्यत्वासाध्यत्वे ।

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्येदन्याश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ ९ ॥

त्रिदोषजनाडीव्रण असाध्य है और अन्य चार प्रकारके नाडीव्रण कष्टसाध्य हैं ॥ ९ ॥

अथ नाडीव्रणचिकित्सा ।

तत्रानिलोत्थामुपनाह्य पूर्व-
मशेषतः पूयगतिं विदार्य ।
फलैरपामार्गभवैः सपिष्टैः

ससैन्धवैः सम्परिपूर्य बन्धेत् ।
प्रक्षालने वापि सदा व्रणस्य
योज्यं महद्यत्खलु पञ्चमूलम् ॥ १० ॥

जो नाडीव्रण वातसंबन्धी हो तो उसको प्रथम औषधियोंके संयुक्त पुलटिस आदिसे बांधे, फिर शस्त्रसे विधिपूर्वक राधके स्थानको चीर देवे । फिर उस व्रणमें सैंधानिमकके साथ चिरचिटेके चावलोंको पीसकर भर देवे और ऊपरसे बांध देवे, बृहत्पंचमूलका क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे नित्य व्रणको धोना चाहिये ॥ १० ॥

हिंस्रां हरिद्रां कटुकां वचाञ्च गोजिह्विकां चापि सविल्वमूलाम् । संहृत्य तैलं विपचेद् व्रणस्य संशोधनं पूरणरोपणञ्च ॥ ११ ॥

हिंस्रा, हलदी, कुटकी, वच, गोभी, बेलगिरी इनका कल्क बनाकर उस कल्कसे तेलको पकावे, यह तेल व्रणको शुद्ध करदेता है, व्रणको भरकर सुखा देता है । यह तेल 'हिंस्राद्यतैल' नामसे कहा जाता है और वातज नाडीव्रणपर अत्यन्त उपकारी है ॥ ११ ॥

पित्तात्मिकां प्रागुपनाह्य धीमानुत्कारिकाभिः सपयोघृताभिः । निपात्य शस्त्रं तिलनागदन्तीमञ्जिष्ठकल्कैः परिपूरयेच्च ॥ १२ ॥

जो नाडीव्रण पित्तसंबन्धी हो तो उसको प्रथम दूध तथा घी सहित गेहूँके आटेकी लुपडी बांध देवे, पश्चात् शस्त्रसे चीरकर उसमें तेल, जमालगोटे और मञ्जीठ इनका कल्क भर देवे ॥ १२ ॥

प्रक्षालने चापि हरिद्रसोमनिम्बाः प्रयोज्याः कुशलेन नित्यम् । श्यामात्रिभङ्गीत्रिफलासुसिद्धं हरिद्रया बिल्वकवृक्षकेण । घृतं सदुग्धं व्रणतर्पणेन हन्याद्गतिं कोष्ठगतापि वा स्यात् ॥ १३ ॥

बुद्धिमान् वैद्य इस व्रणको नित्य हलदी, लालचन्दन और नीमकी छाल इनके क्वाथसे धोता रहे । कालानिसोत, सफेद निसोत हरड, बहेडा, आमला, हलदी और लोध इनके कल्कसे पकाये हुए घीमें दूध डालकर उस घीसे पित्तजनित नाडीव्रणको तृप्तकरे तो व्रणका स्राव कोष्ठगत हो तो भी दूर होजाता है, यह निश्चय है । यह घी 'श्यामाघृत' नामसे प्रसिद्ध है ॥ १३ ॥

नाडीं कफोत्थामुपनाह्य पूर्वं कुलत्थसिद्धार्थकसक्तुबिल्वैः । मृदूकृतामेकगतिं विदित्वा निपातयेच्छस्त्रमशेषकारि ॥ १४

दद्याद् व्रणे निम्बतिलाग्निदन्तीसुराष्ट्रजान् सैन्धवसम्प्रयुक्तान् । प्रक्षालने चापि करञ्जनिम्बजात्यर्कपीलुस्वरसाः प्रयोज्याः ॥ १५ ॥

जो नाडीव्रण कफजनित हो तो प्रथम उसके ऊपर कुलथी, सरसों, सत्तू और बेलगिरी इनमें संयुक्त पुलटिस बांधे नरम करके राधकी गतिको शुद्ध जालकर अच्छी प्रकारसे चिरादेवे । पश्चात् नीम, तिल, चीता, जमालगोटे, फटकरी और सैंधानिमक इनका चूर्ण करके भरदेवे । इस व्रणको नित्य करंज, नीम, चमेली, आक और पीलू इनके स्वरसोंसे धोवे ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ स्वर्जिकाद्यतैलम् ।

स्वर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निर्यूथिका जलनीलिका । खरमञ्जीरबीजेषु तैलं गोमूत्रसाधितम् । दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम् ॥ १६ ॥

सज्जी, सैंधानिमक, जमालगोटा, चीता, जुही, सिवार और चिरचिटेके बीज इनके कल्कसे गोमूत्रमें पकाये हुए तेलको 'स्वर्जिकाद्य तैल' कहते हैं । इस तेलसे तृप्त करनेसे

दुष्टव्रण तथा कफसम्बन्धी नाडीव्रण नष्ट होजाते हैं ॥ १६ ॥

अथ सैन्धवाद्यतैलम् ।

सैन्धवार्कमरिचज्वलनाख्यैर्मार्कवेण रजनीद्वयसिद्धम् । तैलमेतदचिरेण निहन्या द्दूरगामपि कफानिलनाडीम् ॥ १७ ॥

सैंधानिमक, आक, मिरच, चीता, भांगरा, हलदी और दारुहलदी इनसे पकाया हुआ तेल 'सैंधवाद्य तेल' कहाता है । इस तेलके लगानेसे कफसम्बन्धी तथा वायुसम्बन्धी नाडीव्रण बहुत दूरतक पहुँचा हो तो भी नष्ट होजाता है ॥ १७ ॥

नाडीं तु शल्यप्रभवां विदार्य निष्कास्य शल्यं प्रविशोध्य मार्गम् । बन्धेद्व्रणं क्षौद्रघृतप्रगाढं निम्बाऽस्तिलांश्चाप्यवरोपयेच्च ॥ १८ ॥

जो नाडीव्रण शल्यसंबंधी होतो शस्त्रसे चीरकर काँटेको निकालकर व्रणके मार्गको शुद्ध करके पश्चात् सहतमें तथा घीमें पीसे हुए नीमके पत्तोंके कल्कका तथा तिलके कल्कका उसके ऊपर लेप करदेवे । इससे व्रण भरकर सूखजाता है ॥ १८ ॥

अथ कुम्भीकाद्यतैलम् ।

कुम्भीकखर्जूरकपित्थबिल्व-वनस्पतीनां च शलाटुवर्गे । कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलमवाप्य मुस्तं सरलं प्रियङ्गुम् ॥ १९ सौगन्धिकं मोचरसाहिपुष्पं लोध्राणि दत्त्वा खलु धातकीश्च । सातेन शल्यप्रभवा हि नाडी रोहेद्व्रणैर्वा सुखमाशु चैव ॥ २० ॥

जमालगोटा, खजूर, कूठ, बेलगिरी और बड इनके कच्चे फलोंका क्वाथ बनाकर उसमें नागरमोथा, फूलप्रियंगू, देवदारु रोहिषनामक सुगंधितृण, मोचरस, नागकेसर, लोध और धायके फूल इनका चूर्ण डालकर तेल पकावे । इस 'कुम्भीकाद्य' नामक तेलसे तृप्त करे तो शल्यसम्बन्धी नाडीव्रण और अन्याय सब व्रण नष्ट होजाते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा प्रपूरयेत् । एष सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यात्प्रयोगराट् ॥ २१ ॥

थूहरका दूध, आकका दूध और दारुहलदी इनकी बत्ती बनाकर व्रणके भीतर रक्खे तो इस उत्तम प्रयोगसे सम्पूर्ण शरीरके नाडीव्रण नष्ट हो जाते हैं ॥ २१ ॥

आरग्वधनिशाकालाचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता। सूत्रवर्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ २२ ॥

अमलतास, हलदी और निसोत इनका चूर्ण बनाकर घी तथा सहत मिलाकर और एक सूतकी बत्ती बनाकर उसपर वह घी लगाकर वह बत्ती व्रणमें रक्खे तो व्रण शीघ्र शुद्ध हो जाता है और पीवकी गति भी नष्ट होजाती है ॥ २२ ॥

वर्तीकृतं माक्षिकसम्प्रयुक्तं नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा । दुष्टव्रणे यद्विहितं तु तैलं तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति॥२३॥

सैंधानिमकको सहतमें पीसकर उससे सूतकी बत्ती बनाकर व्रणमें रखनेसे नाडीव्रण नष्ट हो जाता है । दुष्ट व्रणके ऊपर जो तेल कहे हैं, उनको सेवन करनेसे पीवकी गति तत्काल नष्ट होजाती है ॥ २३ ॥

जात्यर्कशम्पाककरञ्जदन्तीसिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः । वर्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीं स्नुक्क्षीरपिष्टा तु सचित्रकेण॥२४

चमेली, आक, अमलतास, करंज, जमालगोटा, सैंधानिमक, कालानिमक, जवाखार और चीता इनको थूहरके दूधमें पीसकर इससे सूतकी बत्ती बनाकर रखनेसे नाडीव्रण तत्काल नष्ट होजाता है ॥ २४ ॥

विभीतकाम्रास्थिवटप्रवालहरेणुकाशंखिनिबीजमिश्रा । वाराहविट्सूक्ष्ममसी प्रदेया नाडीषु तैलेन हि मिश्रयित्वा२५

बहेडे, आमकी गुठली, बडके अंकुर, रेणुका, संखिनीके बीज और वाराहीकन्द इनको तेलमें पीसकर कल्क बनाकर नाडीव्रणके ऊपर लगावे तो नाडी, व्रण तत्काल नष्ट होजाता है ॥ २५ ॥

मेषरोममसीतुम्ब्या कटुतैलं विपाचितम् । नाडीव्रणं चिरोद्भूतं जयेत्तु तूलसङ्गमात् ॥ २६ ॥

भेडके बालोंकी भस्म और कडवी तोंबी इनको सरसोंके तेलमें पकाकर उसकी बत्ती बनाकर व्रणमें रखनेसे बहुत दिनोंका नासूर दूर हो जाता है ॥ २६ ॥

अथ कर्चूरतैलम् ।

कर्चूरकस्य स्वरसे कटुतैलं विपाचयेत् । सिन्दूरकल्कितं नाडीदुष्टव्रणविसर्पनुत् ॥ २७ ॥

कचूरके स्वरसमें सिंदूरका कल्क डालकर पकाया हुआ सरसोंका तेलडालनेसे नाडीव्रण, दुष्टव्रण और विसर्प दूर होजाता है ॥ २७ ॥

कर्चूरकरसे तैलं पुरसिन्दूकल्कितम् । पामां दुष्टव्रणं नाडीं हन्यात्सर्वव्रणान्तकृत् ॥ २८ ॥

कचूरके स्वरसमें गूगल तथा सिंदूरका कल्क डालकर पकाया हुआ सरसोंका तेल व्रणमें भरे तो खुजली, दुष्टव्रण नाडीव्रण और अन्यान्य व्रण भी नष्ट होजाते हैं ॥ २८ ॥

अथ भल्लातकाद्यतैलम् ।

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन सिद्धं विडंगरजनीद्वयचित्रकैश्च । स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणांश्च ॥ २९ ॥

भिलावे, आक, कालीमिरच, सैंधानिमक, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी और चीता इनका कल्क बनाकर भांगरेके रसमें डालकर पकाया हुआ तेल 'भल्लातकाद्यतैल' नामसे कहा जाता है। इस तेलके लगानेसे कफज नाडीव्रण, वातजनित अपची और व्रण नष्ट हो जाता है ॥ २९ ॥

अथ स्वर्जिकाद्यतैलम् ।

स्वर्जिका सैन्धवं दन्ती नीलीमूलं फलं तथा । मूत्रे चतुर्गुणे सिद्धं तैलं नाडीव्रणापहम् । सर्वो व्रणक्रमः कार्यः शोधनारोपणादिकः ॥ ३० ॥

सज्जीखार, सैंधानिमक, जमालगोटा, नील की जड और नीलके फल इनका कल्क डालकर चौगुने गोमूत्रमें पकाया हुआ तेल 'स्वर्जिकाद्य तैल' कहाता है। इस तेलसे नाडीव्रण नष्ट होजाता है। व्रणके प्रकरणमें शोधन और रोपणादि जो चिकित्सा कही हैं, वे सब नाडीव्रणके ऊपर भी करनी चाहिये ॥ ३० ॥

अथ सप्ताङ्गगुग्गुलुः ।

गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितैः । अक्षप्रमाणां गुटिकां खादेदेकामतन्द्रितः ॥३१॥ नाडीं दुष्टव्रणं शूलमुदावर्तं भगन्दरम् । गुल्मश्च गुदजान् हन्यात् पक्षिराट् पन्नगानिव ॥ ३२ ॥

गूगल, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर घीमें मिश्रित करके एक एक तोलेकी गोलियां बना लेवे। पथ्यसे रहकर इन गोलियोंमेंसे एक गोली नित्य खावें तो नाडीव्रण, दुष्टव्रण, शूल, उदावर्त, भगन्दर गुल्म, और सब प्रकारकी ववासीर नष्ट हो जाती है। जिस प्रकार गरुड सांपोंको नष्ट कर देता है, इसी प्रकार ये गोलियां उपरोक्त सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट कर देती हैं ॥३१॥३२॥

या द्विव्रणीये विहितास्तु वर्त्यस्ताः सर्व-
नाडीषु भिषग्विदध्यात् ॥ ३३ ॥

और द्विव्रणमें जो बत्ती कही हैं, उन बत्तियोंको वैद्य सब नाडीव्रणोंमें उपयोग करे ॥ ३३ ॥

कृशदुर्बलभीरूणां नाडीं मर्माश्रितामपि । क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ ३४ ॥

कृश, दुर्बल और डरपोक इनके उत्पन्न हुए नाडीव्रणको तथा मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए नाडीव्रणको क्षारमें भीजे हुए डोरेसे फोडे, किन्तु शस्त्रसे कदापि नहीं चीरे ॥ ३४ ॥

एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम् । सूचीं निदध्यादत्यन्ते प्रोन्नम्याशु विनिर्हरेत् ॥ ३५ ॥ सूत्रस्यान्तं समानीय गाढं बन्धनमाचरेत् । ततः क्षारबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत् प्रवेशयेत् ॥ ३६ ॥ क्षाराक्तं मतिमान् वैद्यो यावन्न च्छिद्यते गतिः । भगन्दरेष्वेव विधिःकार्यो वैद्येन जानता ॥ ३७ ॥

नाडीव्रणकी गतिको एषणीसे साधन कर और कहांसे सूखा है और कहांसे हरा है, यह जानकर विधिपूर्वक क्षार सूत्रसे सुई छेद देवे, पीवको निकाल डाले, फिर सूत्रके अन्तमें गांठ देकर बांध देवे, क्षारके बलानुसार फिर दूसरा सूत उसमें प्रविष्ट करे, जबतक नाडीव्रणका मार्ग नहीं हो, तबतक इसी प्रकार बराबर क्षारमूत्र प्रवेश करे और यही विधि भगन्दर रोगमें भी करे ॥ ३५-३७ ॥

अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत् । सूचीभिर्यववक्राभिराचितं वा समन्ततः । मूले सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने चोपचरेद्व्रणम् ॥ ३८ ॥

इति नाडीव्रणरोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

अर्बुदादिरोगोंमें उनको ऊंचा करके उनके मूलमें क्षारसे भीजा हुआ डोरा बांधे अथवा व्रणको जौंके समान मुखवाली सुईसे चारों ओर छेदकर उसकी जडमें डोरा बांधे और व्रणके छेदे जानेपर अन्य उपचार करे ॥ ३८ ॥

इति नाडीव्रणाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ भगन्दराधिकारः ।

तत्र भगन्दरे पूर्वरूपम् ।

कटीकपालनिस्तोददाहकण्डूरुजादयः । भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे ॥ १ ॥

जब भगन्दर होनेको होता है, तब कमरमें हड्डियोंमें सुई चुभोने सरीखी पीडा, दाह, खुजली और व्यथादि पूर्वरूप होते हैं ॥ १ ॥

गुदस्य द्व्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिडिकाऽऽर्तिकृत् । भिन्नो भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो भवेत् ॥ २ ॥

आर्तिकृत्-पीडाकृत् । पञ्चविधः-वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकसान्निपातिकशल्यजभेदैः ॥

गुदाकी बाजूमें दो अंगुलके बीचमें पीडा करनेवाली और फटी हुई जो पिडिका उत्पन्न हो, उसको भगन्दर कहते हैं । १ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ त्रिदोषज और ५ शल्यज इस प्रकार भगन्दर पांच प्रकारका है ॥ २ ॥

अथ भगन्दरशब्दार्थः ।

भगं परिसमन्ताच्च गुदं बस्तिं तथैव च । भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्मादेष भगन्दरः ॥ ३ ॥

भजन्त्यनेनेतिभगो मेहनम् । भजन्त्यस्मिन्निति भगः योनिः । अत्र भगशब्देन द्वयमपि कथ्यते । भगवद्योनिवत् ॥

भोज कहता है कि-"गुदाको और मूत्राशयको चारों ओरसे योनिके समान फोड देता है, इस कारण यह 'भगन्दर' कहा जाता है" ॥ ३ ॥

अथ वातजशतपोनकभगन्दरलक्षणम् । १

कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलः—स्त्वपानदेशे पिडिकां करोति याम् । उपेक्षणात् पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नारुणफेनवाहिनी । तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥ ४ ॥

दारुणम्-अतिकठिनम् । व्रणैरनेकैःसूक्ष्ममुखैः । शतपोनकं शतपोनकश्चालनी तत्तुल्यम् ॥

कसैले पदार्थोंसे तथा सूखे पदार्थोंसे अत्यन्त कुपित हुई वायु गुदाप्रदेशमें फुन्सीको उत्पन्न करती है, उन फुंसियोंकी उपेक्षा करनेसे वे दारुण रीतिसे पकती हैं, व्यथा करती हैं, फूट जानेपर लाग झाग बहती है और उसमें मूत्र, विष्ठा तथा वीर्य निकलता है इसमें बहुत छोटे मुखवाले अनेक व्रण होजाते हैं उनके होनेसे चालनीके समान दीखते हैं इसकारण इसको 'शतपोनक' कहते हैं । संस्कृतभाषामें शतपोनक' चालनीका नाम है ॥ ४ ॥

अथ पैत्तिकोष्ट्रग्रीवभगन्दरलक्षणम् । २

प्रकोपनैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिडिकां गुदं गताम् । तदाऽऽशुपाकाहिमपूतिवाहिनीं भगन्दरं चोष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ ५ ॥

आशुपाकाम्-शीघ्रपाकाम्, अहिमपूतिवाहिनीमुष्णदुर्गन्धवाहिनी च । तदा भगन्दरमुष्ट्र शिरोधरं वदेत् । उष्ट्रग्रीवसंज्ञा च पिडिकावस्थागतगलवक्रतया उष्ट्रग्रीवाकारत्वेन ॥

पित्तको कुपित करनेवाले पदार्थोंसे कोपको प्राप्त हुआ पित्त गुदाकी बाजूमें लाल फुंसियोंको उत्पन्न करता है वे फुंसी तत्काल पकजाती हैं और उनमें गरम और दुर्गन्धवाली पीव बहती है, ये फुंसी 'उष्ट्रग्रीव' कहलाती हैं । इन फुंसियोंका गल ऊँटकी नाडके समान होता है, इसीसे ये 'उष्ट्रग्रीव' कही जाती हैं ५

श्लैष्मिकपरिस्राविभगन्दरलक्षणम् । ३

कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः । श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगन्दरः ॥ ६ ॥

कठिनः-पिडिकावस्थायाम् । परिस्रावी-निरंतरस्रावशीलः ॥

कफसे भगन्दरकी पिडिका कठिन हो, खुजली चले, उसमेंसे गाढा स्राव हो, अल्पपीडा हो, श्वेतवर्ण हो और निरन्तर पीव बहती रहे, उसको कफसे उत्पन्न हुआ 'परिस्रावी-भगन्दर' जानना ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजन्यशम्बूकावर्तभगन्दरलक्षणम् । ४

बहुवर्णरुजास्रावा पिडिका गोस्तनोपमा । शम्बूकावर्तगतिकः शम्बूकावर्त्तको मतः ॥ ७ ॥

बहुवर्णरुजास्रावा--बहुशब्दो वर्णादिभिः प्रत्येकं संबध्यते । गतिः--स्रावमार्गः ॥

अनेक प्रकारके वर्णोंवाली, अनेक प्रकारकी पीडावाली, अनेक प्रकारका स्राववाली, गायके स्तनसे समान फुंसी उत्पन्न होती है और उसका स्रावमार्ग शंखके आवर्तके समान होता है, इस भगन्दरको 'त्रिदोषज' जानना । शंखका नाम शम्बूक है, इस लिये यह भगन्दर 'शम्बूकावर्त' कहाजाता है ॥ ७ ॥

अथ शल्यादिक्षतजन्योन्मार्गिभगन्दरलक्षणम् । ५

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्द्धते उपेक्षणात्स्युः कृमयो विदार्यते । प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्व्रणैस्तमुन्मार्गिभगन्दरं वदेत् ॥ ८ ॥

क्षतात्कंटकादिना नखेन खण्डूयनादिना वा अभिघातात् । गतिःस्रावः । उन्मार्गि-

भगन्दरम् एतस्य तिर्यक्कृतमार्गैः पुरीषादिनिर्गमादुन्मार्गिसंज्ञा ॥

कांटे आदिके लगजानेसे और नख आदिसे खुजलानेसे गुदाकी बाजूमें फोडा हो जाता है, वह बढता है और फूटता है, उसकी उपेक्षा करनेसे उसमें कीडे पड जाते हैं, अनेक व्रण हो जाते हैं और व्रण अनेक मुखोंसे स्रवता है, यह भगन्दर उन्मार्गी कहा जाता है। इन व्रणोंके तिरछे मार्गोंसे विष्ठा आदि निकलती हैं, इस कारण इस भगन्दरको 'उन्मार्गी' कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ भगन्दरकष्टसाध्यासाध्यता ।

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगन्दराः । तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥ ९ ॥ वातमूत्रपुरीषाणि शुक्रश्च कृमयस्तथा । भगन्दरात्स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम् ॥ १० ॥

सर्व प्रकारका भगंदर भयंकर है और कष्टसाध्य है । इनमें त्रिदोषज भगन्दर और शल्यज भगन्दर असाध्य हैं। जो भगन्दरमेंसे वायु, मूत्र, विष्ठा, वीर्य और कीडे निकलते हों तो वह रोगी मनुष्य मरजाता है ॥९-१०॥

अथ भगन्दरचिकित्सा ।

अथास्य पिडिकामेव तथा यत्नादुपाचरेत् । शुद्ध्यास्रमोक्षसेकाद्यैर्यथा पाकं न गच्छति ॥ ११ ॥

भगन्दरकी फुंसी उत्पन्न होते ही इस प्रकार यत्न करे कि जिससे फुंसी पके नहीं। शोधन रुधिर निकलवाना और सेचन इत्यादि उपचार करे तो फुंसी पकती नहीं है ॥११॥

वटपत्रेष्टकाशुण्ठीसगुडूचीपुनर्नवाः । सुपिष्टः पिडिकावस्थे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ १२ ॥

बडके पत्ते, ईंट, सोंठ, गिलोय और पुनर्नवा इनके अच्छी प्रकारसे पीसकर जहांतक भगन्दरकी फुंसी हो, वहांतक लेप करे, यह उत्तम है ॥ १२ ॥

पिडिकानामपक्वानामपतर्पणपूर्वकम् । कर्म कुर्याद्विरेकांतं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ १३ ॥

जो भगन्दरको फुंसी न पकी हो तो लंघनसे लेकर विरेचनतक क्रिया करे फुंसीके फूटनेकी जो क्रिया हैं, वे अब कही जाती हैं ॥ १३ ॥

एषणीपाटनक्षारवह्निदाहादिकं क्रमम् । विधाय व्रणवत्कार्यं यथादोषं यथाक्रमम् ॥ १४ ॥ पयःपिष्टैस्तिलारिष्टमधुकैश्च सुशीतलैः । भगन्दरे प्रशस्तोऽयं सरक्ते वेदनावति ॥ १५ ॥

एषणी नामक शस्त्रसे चीरे, क्षार लगावे तथा दाग देना आदि क्रिया करे । पश्चात् यथादोषानुसार तथा क्रमानुसार व्रणके समान क्रिया करे, रुधिरवाले और वेदनावाले भगन्दरमें तिल, नीमके पत्ते और मुलहठी इनको दूधमें पीसकर अत्यन्त शीतल करके लेप करे ॥ १४ ॥ १५ ॥

सुमना वटपत्राणि गुडूची विश्वभेषजम् । ससैन्धवस्तक्रपिष्टो लेपो हन्ति भगन्दरम् ॥ १६ ॥

चमेलीके पत्ते, बडके पत्ते, गिलोय और सोंठ तथा सैंधानिमक इनको गाढी छांछमें पीसकरके भगन्दरके ऊपर लेप करे इससे भगन्दर नष्ट होजाता है ॥ १६ ॥

त्रिवृत्तिला नागदन्ती मञ्जिष्ठा सह सर्पिषा । उत्सादनं भवेदेतत्सैन्धवक्षौद्रसंयुतम् ॥ १७ ॥

निसोत, तिल, जमालगोटे, मंजीठ और सैंधानिमक इनको पीसकर घीमें तथा सहतमें मिलाकर भगन्दरके ऊपर लेप करे तो भगन्दर अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

खदिराम्बुरतो भूत्वा कषायं त्रैफलं पिबेत्। महिषाक्षविडङ्गानां भगन्दरविनाशनम् ॥ १८ ॥

हरड, बहेडा, आमला, भैंसिया गूगल और वायविडंग इनका क्वाथ नित्य पीवे, और जब तृषा लगे, तब खैरका रस मिलाकर पीवे, इससे भगन्दर अवश्य नष्ट होजाता है ॥१८॥

शम्बूकमांसं भुञ्जीत प्रकारैर्व्यञ्जनादिभिः। अजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते तु भगन्दरात् ॥ १९ ॥

शाक तथा भोजनके पदार्थोंमें शंखके जीवोंका मांस खाय और अजीर्ण न होने देवे तो भगन्दर एक महीनेके, भीतर अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥

न्यग्रोधादिर्गणो यस्तु हितः शोधनरोपणः। तैलं घृतं वा संपक्वं भगंदरविनाशनम् ॥ २० ॥

न्यग्रोधादिगण जो कि, शोधन (व्रणको साफ करनेवाला) और रोपण व्रणको भरनेवाला) है उसके कल्कसे पकाया हुआ तेल या घी भरन्दरका नाश करता है ॥ २० ॥

तिला ज्योतिष्मती कुष्ठं लाङ्गली गिरिकर्णिका। शताह्वात्रिवृतादन्त्यः शोथनाश्च भगन्दरे ॥ २१ ॥

तिल, मालकांगनी, कूठ, कलिहारी, कोइली, सोया, निसोत और जमालगोटा इनके क्वाथसे भगन्दर शुद्ध होजाता है ॥ २१ ॥

तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रनिशे बलालोध्रमगारधूमम्। भगन्दरे चाप्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे रोपणशोधनाय ॥ २२ ॥

तिल, हरड, दुगुना लोध, नीमके पत्ते, हलदी, दारुहलदी खिरैंटी और घरका धुआँ यह भगन्दर, उपदंशके व्रण तथा दुष्टव्रणको भी शुद्ध करता है और भर देता है ॥ २२॥

स्नुह्यर्कदुग्धदर्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः। भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्ताः प्रयत्नतः। एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यान्न संशयः ॥ २३ ॥

भगन्दरको शुद्ध करके विचक्षण वैद्य थूहरका दूध आकका दूध और दारुहलदी इनको पीसकर यत्न पूर्वक भरदेवे। यह प्रयोग सम्पूर्ण शरीरमें स्थित नाडी व्रणको भी नष्ट करदेता है, यह निश्चय है ॥ २३ ॥

त्रिफलारससंयुक्तं बिडालास्थिप्रलेपनम् ॥ २४ ॥ भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम्। त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को नाडीव्रणापहः ॥ २५ ॥

बिलावकी हड्डीको हरड बेहेडे, और आमलोंके रसमें पीसकर लेप करनेसे भगन्दर और दुष्टव्रण तत्काल नष्ट हो जाता है निसोत, तेजबल और जमालगोटा इनके कल्कसे भगन्दर तथा नाडीव्रण नष्ट होजाता है २४॥२५॥

ज्योतिष्मती लाङ्गलकी श्यामा दन्ती त्रिवृत्तिलाः। कुष्ठं शताह्वा गोलोमीवर्गः शोधन इष्यते ॥ २६ ॥

मालकांगुनी, कलिहारी, निसोत, जमालगोटा, सफेदनिसोत, तिल, कूठ, सोया, और वच यह वर्ग भगन्दर आदिके व्रणोंको शुद्ध करनेवाला है ॥ २६ ॥

मधुतैलयुता विडङ्गसारत्रिफलामागधिकाकणाश्च लीढाः। कृमिकुष्ठभगन्दरप्रमेहक्षयनाडीव्रणरोपणा भवन्ति ॥२७॥

वायविडंग, खैरसार, हरड, बहेडा, आमला और दो भाग पीपल इनका चूर्ण करके सहतमें तथा तेलमें मिलाकर चाटे तो कृमि, कोढ, प्रमेह तथा क्षय नष्ट होजाता है और भगन्दर तथा नाडीव्रण भरजाता है ॥ २७ ॥

अथ निष्यन्दतैलम्।

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलयूहयमारकौ।

सुधां वचां लाङ्गलकीं हरितालं सुवर्चिकाम् ॥२८॥ ज्योतिष्मतीश्च संहृत्य तैलं धीमान्विपाचयेत् । एतन्निष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे । शोधनं रोपणश्चैव सवर्णकरणं तथा ॥ २९ ॥

चीता, आक, निसोत, पाढ, कठूमर, सफेद कनेर, थूहर, वच, कलिहारी, हरिताल, सज्जी और मालकाँगुनी इनके कल्कसे पकाया हुआ तैल 'निष्यन्दनतैल' कहलाता है । यह तेल भगन्दरको साफ करता है, व्रणको भरता है और उस स्थानको शरीरके वर्णके समान करदेता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ निशाद्यतैलम् ।

निशार्कक्षीरसिन्धूत्थपुराश्वहरवत्सकैः । सिद्धमभ्यञ्जनं तैलं भगन्दरहरं परम् ३०

हलदी, आकका दूध, सैंधानिमक, गूगल कनेर और इन्द्रजौ इनके कल्कसे पकाये हुए तेलकी मालिस कीजाय तो भगन्दर अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ३० ॥

अथ करवीरादितैलम् ।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः मातुलुङ्गकवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे ३१

कनेर, हलदी, जमालगोटा, कलिहारी, सैंधानिमक, चीता, बिजौरानींबू और इन्द्रजौ इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल लगानेसे भगन्दर नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

अथ नवकार्षिकगुग्गुलुः ।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता । गुटिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिता ॥ ३२ ॥

त्रिफला ३ तोले, गगूल ५ तोले और पीपल १ तोला इनकी बनाई हुई गोलियोंको भक्षण करे तो भगन्दर नष्ट हो जाता है । सूजन, गुल्म और बवासीरको दूर करती हैं ॥३२॥

अथ भगन्दरशस्त्रक्रियाकर्तव्यता ।

नाडयन्तरे व्रणान्कुर्याद्भिषग्वै शतपोनके । ततस्तेष्ववरूढेषु शेषा नाडीरुपाचरेत् ॥ ३३ ॥

शतपोनक नामक भगन्दरमें उसकीनाली के भीतर शस्त्रसे चीरकर घाव करदेवे और जब वह व्रण सूखकर भरजाय तब दूसरी नालियोंका उपचार करे ॥ ३३ ॥

व्याधौ तत्र बहुच्छिद्रे भिषजा तु विजानता । अर्द्धलाङ्गलकच्छेदः कार्यो लाङ्गलकोऽपि वा ॥३४॥ सर्वतोभद्रको वापि कार्यो गोतीर्थकोऽपि वा ॥ ३५ ॥

बहुत छिद्रोंवाले इस शतपोनक नामक भगन्दरमें वैद्य विचारकर अर्द्धलांगलक, लांगलक, सर्वतोभद्रक अथवा गोतीर्थक नामक छेद करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

द्वाभ्यां समाभ्यां पार्श्वाभ्यां छेदो लाङ्गलको मतः । ह्रस्वमेकतरं यत्तु सार्द्धलाङ्गलकः स्मृतः । सेवनीं वर्जयित्वा तु चतुर्द्धा दारिते गुदे ॥ ३६ ॥ सर्वतोभद्रक छेदमाहुश्छेदविदो जनाः । पार्श्वादागतशस्त्रेण च्छेदो गोतीर्थको मतः ३७

जिस छेदके दोनों पार्श्व समान रक्खे जाँय उसको 'लांगलक' कहते हैं। जिस छेदमें एक पार्श्व छोटा रक्खा जाय, उसको 'अर्द्धलांगलक' कहते हैं । सीवनको छोडकर चारों ओरसे गुदाको चीराजाय, उस छिद्रको 'सर्वतोभद्र' कहते हैं । पार्श्वमें शस्त्र डालकर जो छिद्र किया जाय तो उसको 'गोतीर्थक' कहते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

सर्वानास्रावमार्गांस्तु दहेद्वैद्यस्तथाग्निना । अथोष्ट्रग्रीवमेषिण्या छित्त्वा क्षारं निपातयेत् ॥ ३८ ॥

इस प्रकार वैद्य छेद करके शतपोनकके सम्पूर्ण स्रावके मार्गोंको अग्निसे दाग देवे, उष्ट्रग्रीवकनामक भगन्दर हुआ हो तो राधकी गतिको शोधकर शस्त्रसे चीरकर क्षार डाले ॥ ३८ ॥

पूतिमांसव्यपोहार्थमग्निरत्र प्रपूजितः। उत्कृत्यास्रावमार्गन्तु परिस्राविणि बुद्धिमान्। क्षरेणास्रावितगतिं दहेद्धुतवहेन वा ॥ ३९ ॥

सडे हुए दुर्गन्धित मांसको निकालनेके लिये अग्निसे दाग देवे, यह उत्तम विधि है। परिस्रावी नामक भगन्दर हुआ हो तो बुद्धिमान् वैद्य स्रावके मार्गको चीरकर क्षारसे अथवा अग्निसे स्रावकी गतिको दग्ध करे ॥ ३९ ॥

गतिमन्विष्य शस्त्रेण छिन्द्यात्खर्जूरपत्रकम् ॥ ४० ॥ चन्द्रार्द्धं चन्द्रवर्गश्च सूचीमुखमवाङ्मुखम्। छित्वाऽग्निना दहेत्सम्यगेवं क्षारेण वा पुनः ॥ ४१ ॥

शम्बूकावर्त नामक भगन्दरमें स्रावके मार्गको शोधन करके शस्त्रसे खजूरपत्रक, चन्द्रार्द्ध, चन्द्र वर्ग चक्र, सूचीमुख और अवाङ्मुख नामक छेद करके पश्चात् अग्निसे अथवा क्षारसे अच्छी प्रकारसे दग्ध करे। खर्जूरपत्रक आदि छिद्रोंके लक्षण सुश्रुतादि ग्रन्थोंमें देखलेने चाहिये ॥ ४० ॥ ४१ ॥

येषां तु शस्त्रपतनाद्वेदनाप्यतिजायते। तत्राशु तैलेनोष्णेन परिषेकः प्रशस्यते ॥ ४२ ॥

शस्त्रसे चीरनेसे व्यथा हो तो तत्काल वैद्य गरम तेलसे सेचन करे, यह हितकारी है ॥ ४२ ॥

आगन्तुजे भिषङ् नाडीं शस्त्रेणोत्कृत्य यत्नतः। जम्बोष्ठेनाग्निवर्णेन तप्तया वा शलाकया। दहेद्यथोक्तं मतिमांस्तं व्रणं सुसमाहितः ॥ ४३ ॥

शल्यसम्बन्धी भगन्दर हो तो बुद्धिमान् वैद्य यत्नपूर्वक उसकी नलीको शस्त्रसे चीरे, तपाये हुए अग्निके वर्णके समान जम्बोष्ठ नामक पत्थरसे अथवा तपाई हुई सलाईसे शास्त्रानुसार दाग देवे ॥ ४३ ॥

अथ व्रणपथ्यापथ्यम्।

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च। संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ॥ ४४ ॥

इति भगन्दरनिदानचिकित्साधिकारः।

जो भगन्दरका व्रणभरकर सूखभी गया हो तो भी यह मनुष्य एक वर्षतक दण्ड, कसरत, मैथुन, युद्ध, घोडे, हाथी आदिपर बैठना और भारी अन्नपानका भोजन सब त्याग देवे ॥ ४४ ॥

इति भगन्दराधिकारः सम्पूर्णः।

उपदंशाधिकारः।

हस्ताभिघातान्नखदन्तपातादधावनादत्युपसेवनाद्वा। योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विविधोपचारैः ॥ १ ॥

हाथकी चोट लगनेसे, नख अथवा दांतसे घाव होजानेसे, मैथुन करके लिंगको नहीं धोनेसे, पशुआदिके साथ प्रसंग करनेसे, रोगसे और तीक्ष्ण केश युक्त दुष्ट योनिवाली स्त्रियोंके साथ प्रसंग करनेसे १ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ त्रिदोषज और ५ रक्तज इस प्रकार लिंगमें पांच प्रकारके उपदंश होते हैं ॥ १ ॥

अथ पञ्चोपदंशानां पृथक्त्वेन लक्षणानि।

सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत् पवनोपदंशम्। पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तैः पिशितावभासैः॥२॥

१-जो उपदंशका व्रण सुई चुभोनेसरीखी वेदनावाला हो, शस्त्रभेदन सरीखी पीडावाला

हो, स्फुरणयुक्त और कलौंस लिये हो, उसको उसको वातजन्य उपदंश ' जानना ॥

२-जो फुंसी, पीली वहुत क्लेदयुक्त, दाहयुक्त लाली लिये और देखनेमें मांसके समान हो, उसको ' पित्तसम्बन्धी ' जानना ॥ २ ॥

सकण्डुरैः शोथयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्घनैः स्रावयुतैः कफेन । नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ३ ॥

३-जो व्रण खुजलीयुक्त, सूजनयुक्त, बडी, सफेद, घन और स्रावयुक्त हो, उसको ' कफजन्य ' उपदंश जानना ॥

४-जो फोडा अनेक प्रकारके स्रावयुक्त और अनेक प्रकारकी पीडायुक्त हो उसको 'त्रिदोषजन्य ' जानना । यह उपदंश असाध्य है ॥ ३ ॥

रक्तजे कृष्णस्फोटप्रादुर्भावोऽत्यर्थमसृक्प्रवृत्तिः पित्तलिङ्गानि चात्यर्थं ज्वरदाहौ शोषश्च याप्यश्च कदाचित् ॥

५-जो फोडा काला हो रुधिर बहुत निकलता हो, पित्तके लक्षणोंसेयुक्त हो औरज्वर, दाह तथा शोषयुक्त हो तो उसको 'रुधिरसम्बन्धी ' उपदंश जानना । यह उपदंश किसी समय याप्य होजाता है ॥

अथोपदंशासाध्यता ।

प्रक्षीणमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जनीयम् ॥

जिस उपदंशका मांस गल गया हो, फोडे पड गये हों अथवा उसके मांसको कीडोंने खालिया हो और केवल अण्डकोष ही अवशेष रह गये हों, उस उपदंशकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥

अथोपदंशोपेक्षाफलम् ।

संजातमात्रे न करोति मूढः क्रिया नरो यो विषये प्रसक्तः । कालेन शोथक्रिमिदाहपाकैः प्रशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन ॥ ४ ॥

विषयमें आसक्त जो मूर्ख पुरुष उपदंशके उत्पन्न होते ही उसकी चिकित्सा नहीं करता है, उस मनुष्यका कुछ कालमे सूजन, कृमि दाह और पकनेसे लिंग गल सडकर गिर पडता है ॥ ४ ॥

अथोपदंशचिकित्सा ।

उपदंशेषु साध्येषु स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः । मेढ्रमध्ये शिरां विध्येत्पातयेद्वा जलौकसः ॥ ५ ॥

उपदंश जो साध्य हो तो उस पुरुषको स्नेहन तथा स्वेदन करके उसके लिंगके मध्यमें जो महीन नस है, उसको बींधे अथवा उपदंशके ऊपर जोंकें लगावे ॥ ५ ॥

हरेदुभयश्चापि दोषानत्यर्थमूर्च्छितान् । सद्योनिर्हृतदोषस्य रुक्शोथावुपशाम्यतः ॥ ६ ॥

वमन तथा विरेचन देकर उस पुरुषके अत्यन्त बढे हुए दोषोंको हरण करे, तत्काल ही दोषोंका हरण किया जाय तो व्यथा तथा सूजन शांत हो जाती है ॥ ६ ॥

यदि वा दुर्बलो जन्तुर्न वा प्राप्तविरेचनः । निरूहेण हरेत्तस्य दोषानत्यर्थमूर्च्छितान् । पाको रक्ष्यःप्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ ७ ॥

जो उपदंशरोगी अत्यन्त निर्बल हो अथवा विरेचन योग्य न हो तो उसके अत्यन्त व्याप्त हुए दोषोंको निरूहवस्ति लगाकर हरण करे । जिस प्रकार हो सके उस प्रकार उपदंशको पकने नहीं देवे क्योंकि, पकजानेसे लिंगका क्षय हो जाता है ॥ ७ ॥

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वसरलागुरुदारुभिः । सरास्नाकुष्ठपृथ्वीकैर्वातिके लेपसेचने ॥ ८ ॥

जो वायुसम्बन्धी उपदंश हो तो प्रपौण्डरीक (पुंडेरिया गन्धद्रव्य), मुलहठी, देवदारु. अगर, दारुहलदी, रायसन, कूठ और इलायची इनके कल्कका लेप करे और इन्हींके रससे सेचन करे ॥ ८ ॥

निचुलैरण्डबीजानि यवगोधूमसक्तवः। एतैश्च वातजं स्निग्धैः सुखोष्णैः संप्रलेपयेत् ॥ ९ ॥

नीम, अण्डके बीज और जौ तथा गेहूँके सत्तू इनको पीसकर घीसे स्निग्ध करके कुछेक गरम करके लेप किया जाय तो वातजन्य उपदंश नष्ट होजाता है ॥ ९ ॥

गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः। सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं सम्प्रलेपयेत् ॥ १० ॥

गेरू, रसौत, मंजीठ, मुलहठी, खस, पद्माख, चन्दन और उत्पल इनके कल्कका लेप किया जाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट होजाता है ॥१०॥

पद्मोत्पलमृणालैश्च ससर्जार्जुनवेतसैः। सर्पिःस्निग्धैः समधुकैः पैत्तिकं सम्प्रलेपयेत् ॥ ११ ॥

सफेद कमल, लाल, कमलकी नाल सालकी छाल. अर्जुनकी छाल वेंत और मुलहठी इनको घीसे स्निग्ध करके लेप किया जाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट होजाता है ॥ ११ ॥

सेचयेच्च घृतक्षीरशर्करेक्षुमधूदकैः। अथवाऽपि सुशीतेन कषायेण वटादिना ॥ १२ ॥

घी, दूध, मिश्री, ईख, सहत और जल इनसे सेचन किया जाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट होजाता है। न्यग्रोधादिगणका क्वाथ बनाकर अच्छी प्रकारसे शीतल करके उससे सेचन करनेसे पित्तजन्य उपदंश नष्ट होता है ॥१२॥

शालाजकर्णाश्वकर्णधवत्वग्भिः कफोत्थितम्। सुरापिष्टाभिरुष्णाभिःसतैलाभिः प्रलेपयेत् ॥ १३ ॥

अजकर्णः-शालभेदः। अश्वकर्णः गजहडः ॥

सालकी छाल, अजकर्णनामकसालकी छाल, अश्वकर्णनामकसालकी छाल और वचकी छाल इनको मदिरामें पीसकर गरम करके तेल डालकर लेप किया जाय तो कफसम्बन्धी उपदंश नष्ट होजाता है ॥ १३ ॥

आरग्वधादिक्काथेन परिषेकश्च दापयेत् ॥ १४ ॥

आरग्वधादिगणकी औषधियोंका क्वाथ बनाकर उससे सेचन किया जाय तो कफसम्बन्धी उपदंश नष्ट होजाता है ॥ १४ ॥

निम्बार्जुनाश्वत्थकदंबशालजम्बूवटोदुम्बरवेतसैश्च। प्रक्षालनालेपकृतानि कुर्याच्चूर्णं सपित्तास्रभवोपदंशे ॥ १५ ॥

नीम, अर्जुन, पीपल, कदम्ब, साल, जामुन, बड, गूलर और बेत इन वृक्षोंकी छालके क्वाथसे धोनेसे और इन्हींके कल्कसे लेप किया जाय तो पित्तजन्य और रुधिरजन्य उपदंश नष्ट होजाता है ॥ १५ ॥

त्वचो दारुहरिद्रायाः शंखनाभिरसाञ्जनम्। लाक्षागोमयनिर्यासैस्तैलं क्षौद्रं घृतं यः ॥ १६ ॥ एभिस्तु पिष्टैस्तुल्यांशैरुपदंशं प्रलेपयेत्। व्रणाश्च तेन शाम्यन्ति श्वयथुर्दाह एव च ॥ १७ ॥

दारुहलदीकी छाल, शंखकी नाभि, रसौंत, लाख, गोंद, तेल, घी, दूध इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर उपदंशके ऊपर लेप करनेसे व्रण, सूजन और दाह शान्त होजाता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

उपदंशद्वये शेषे प्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम्। एतेषामेव या योग्या वीक्ष्य दोषबला-

बलम् ॥ १८ ॥ शस्त्रेणोल्लेखयेत्क्वापि पाकमागतमाशु वै । तमपोह्य तिलैःसर्पिःक्षौद्रयुक्तैः प्रलेपयेत् ॥ १९ ॥

त्रिदोषज और रुधिरजन्य उपदंश हो तो उसको असाध्य होनेके कारण प्रथमहीसे उसकी चिकित्सा न करने लगे; अगर रोगीका आग्रह हो तो दोषोंका बलाबल विचार जो उसमें घटे, सो चिकित्सा करे। जो उपदंश पकगया हो तो समयपर तत्काल शस्त्रसे उसका भेदन करे और इस प्रकार उसको चीरकर घीमें तथा सहतमें पिसे हुए तिलोंका लेप करे ॥ १८ ॥ १९ ॥

'वटप्ररोहार्जुनजम्बुपथ्या लोध्रं हरिद्रा च हिताः प्रलेपे । तथोपदंशेष्ववरोहणार्थं चूर्णश्च कार्यं विमलाञ्जनेन ॥ २० ॥

बडके अंकुर, अर्जुनकी छाल, जामुनकी छाल, हरड, लोध और हलदी इनका प्रलेप करनेसे और भरनेके लिये सोनामाखी अथवा रसौंतका चूर्ण भरनेसे उपदंश नष्ट होजाता है ॥ २० ॥

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा । व्रणप्रक्षालनं कार्यमुपदंशप्रशान्तये ॥ २१ ॥

हरड, बहेडा और आमले इनके क्वाथसे अथवा भांगरेके रससे व्रणोंको धोनेसे उपदंश शांत होजाता है ॥ २१ ॥

जयाजपाश्वमारार्कशम्पाकामां दलैः क्रमात् । कृतं प्रक्षालनं क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥ २२ ॥

अरणीके पत्ते, अडहुलके पत्ते, कनेरके पत्ते आकके पत्ते और अमलतासके पत्ते इनके क्वाथसे अनुक्रमसे धोवे तो लिंगपाक दूर होजाता है ॥ २२ ॥

शम्पाकनिम्बत्रिफलाकिरातक्वाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम्। सगुग्गुलं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहरःप्रयोगः ॥ २३ ॥

अमलतास, नीम, हरड, बहेडा, आमला और चिरायता इनका क्वाथ बनाकर उसमें खैरसार तथा विजयसार अथवा गूगल डालकर अथवा हरड, बहेडा तथा आमले डालकर पान करनेसे सब प्रकारके उपदंश नष्ट होजाते हैं ॥ २३ ॥

नीलोत्पलानि कुमुदपद्मसौगन्धिकानि च । उपदंशेषु चूर्णानि प्रदेहोऽयं प्रशस्यते ॥ २४ ॥

नीले कमल, रात्रिमें खिलनेवाले कमल, सफेद कमल और लालकमल इनका चूर्ण करके पीसकर गाढा लेप करनेसे नष्ट होजाता है ॥ २४ ॥

बन्धूकदलचूर्णेन दाडिमत्वग्भवोऽथवा । गुण्डनं वृषणे शस्तं लेपः पूगफलेन वा ॥ २५ ॥

दुपहरियेके पत्तोंका चूर्ण अथवा अनारकी छालका चूर्ण वृषणके ऊपर अच्छी प्रकारसे लगावे अथवा सुपारीका कल्क बनाकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट होजाता है ॥ २५ ॥

सौराष्ट्री गैरिकं तुत्थं पुष्पकासीससैन्धवम् । लोध्रं रसाञ्जनं चापि हरितालं मनःशिला ॥ २६ ॥ हरेणुकैलेऽपि तथा समं संहृत्य चूर्णयेत् । तच्चूर्णं क्षौद्रसंयुक्तमुपदंशेषु पूजितम् ॥ २७ ॥

फटकिरी, पीला गेरू, नीलाथोथा, हीराकसीस, सेंधानिमक, लोध, रसौंत, हरिताल, मैनशिल, रेणुका और इलायची इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके सहतमें मिलाकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट हो जाता है ॥

पुटदग्धं कृतं भस्म हरितालं मनःशिला । उपदंशविसर्पाणामेतद्धानिकरं परम् ॥ २८ ॥

पुटपाकविधिसे हरिताल और मैनशिल इनकी भस्म करके इनका लेप करनेसे उपदंश और विसर्प नष्ट हो जाता है ॥ २८ ॥

दहेत्कटाहे त्रिफलां तामसीं मधुसैन्धवम् । उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ २९ ॥

हरड, बहेडा, आमले और हलदी इसको कढाईमें भस्म करके उस भस्मको सहत और सैंधेनिमकमें मिलाकर उपदंशके ऊपर लेप करनेसे व्रण तत्काल भरकर सूख जाता है १९

तिरीटाञ्जनवज्राक्षकोविदारेभकेसरैः । लेपनं पुरुषव्याधौ जलपिष्टैः प्रशस्यते ॥ ३० ॥

लोध, रसौत, तगर, कचनार और नागकेशर इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट हो जाता है ॥ ३० ॥

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् । सक्षौद्रं लेपनं योज्यं सर्वाङ्गजगदापहम् ॥ ३१ ॥

रसौत और सिरसकी छाल अथवा रसौत और हरड इनका चूर्ण सहतमें मिलाकर लेप करनेसे सम्पूर्ण अंगोंमें प्राप्त हुआ उपदंश नष्ट होजाता है ॥ ३१ ॥

भार्ङ्गीसम्भवशिखरिजमूलं भद्रश्रियः सुसपिष्टम् । मनःशिला च मधुना शमयत्युपदंशमचिरेण ॥ ३२ ॥

भारंगीकी जड, चिरचिटेकी जड और चन्दन इनको अच्छी प्रकारसे पीसकर लेप करनेसे उपदंश तत्काल नष्ट होता है। मैनशिलको सहतमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश तत्काल नष्ट होजाता है ॥ ३२ ॥

शतधौतं प्रयत्नेन लिङ्गोत्थमवचूर्णयेत् । रोगं कासीसचूर्णेन पुरुषः सुखमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥

उपदंशके घावको सौवार यत्नपूर्वक धोकर उसके ऊपर हीराकसीसका चूर्ण बुरकानेसे उपदंशकी पीडा दूर होकर उपदंश नष्ट हो जाता है ॥ ३३ ॥

करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा । असाध्यापि व्रजत्यस्तं लिङ्गोत्था रुक् प्रलेपनात् ॥ ३४ ॥

कनेरकी जडको जलमें पीसकर उसका लेप करनेसे लिंगकी पीडा और असाध्य उपदंश भी नष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥

अथ वरादिगुग्गुलुः ।

वरानिम्बार्जुनाश्वत्थखदिरासनवासकैः । चूर्णितैर्गुग्गुलुसमैर्वटिका अक्षसंमिताः ॥ ३५ ॥ कर्त्तव्या नाशयन्त्याशु सर्वालिङ्गसमुत्थितान् । उपदंशानसृग्दोषांस्तथा दुष्टव्रणानपि ॥ ३६ ॥

हरड, बहेडा, आमला, नीम, अर्जुन, पीपल, खैर, विजयसार और अडूसा इन सबका बारीक चूर्ण करके और सब चूर्णके बराबर गूगल मिलाकर एक एक तोले भरकी गोलियां बनालेवे। ये गोलियाँ लिंगमें उत्पन्न हुए सब प्रकारके उपदंशको, रुधिरके विकारोंको और दुष्ट व्रणोंको भी नष्ट करती हैं ॥३५॥३६॥

अथ करञ्जाद्यघृतम् ।

करञ्जनिम्बासनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम् । सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं सदाहपाकस्रुतिरागयुक्तम् ॥३७॥

करंज, नीम, विजयसार, साल, जामुन और वटादिवर्गकी समस्त औषधि इन सब औषधियोंके क्वाथमें इन्हींके कल्कसे पकाया हुआ घी दाह, पाक, स्राव और लालीयुक्त उपदंशको भी नष्ट करता है ॥ ३७ ॥

अथ भूनिम्बाद्यघृतम् ।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जधात्रीखदिरासनानाम् । सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ ३८ ॥

चिरायता, नीम, हरड, बहेडा, आमला, परवल, करंज, आमले, खैर और विजयसार

इनके क्वाथ और कल्कसे घृतको पकावे। यह घृत तत्काल सर्वप्रकारके उपदंशको नष्ट करता है॥ ३८॥

अथातिदेशः।

घृतानि यानि वक्ष्यामि कुष्ठे नाडीव्रणे व्रणे। उपदंशे प्रयोज्यानि सेकाभ्यञ्जनभोजनैः॥ ३९॥

कोढपर, नाडीव्रणपर और व्रणके ऊपर जो जो घी कहेंगे, वे सब घृत उपदंशरोगमें भी सेचन, अभ्यंग तथा भोजनमें व्यवहार करने चाहिये, इससे अवश्य उपदंश नष्ट होजाता है॥ ३९॥

अथागारधूमाद्यतैलम्।

अगारधूमो रजनी सुराकिट्टं च तैस्त्रिभिः। यथोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम्॥ शोधनं रोपणं चैव ह्युपदंशहरं परम्॥ ४०॥

घरका धुआं एक भाग, हलदी दो भाग और सुराकिट्ट एक प्रकारकी कांजी तीन भाग लेवे इन सबसे तेलको पकावे। यह तेल-खुजली, सूजनकी पीडा और अच्छी तरह उपदंशको नष्ट करता है। इस तेलसे व्रण शुद्ध हो जाता है और भरकर सूख जाता है॥

अथ गोजिह्वातैलम्।

गोजीविडङ्गयष्टीभिः सर्वगन्धैश्च संयुतम्। एतत्सर्वोपदंशेषु तैलं रोपणमिष्यते॥ ४१॥

गोभी, वायविडंग, मुलहठी, और चन्दनादिक समस्त सुगंधित पदार्थ इनसे पकाया हुआ तेल सब प्रकारके उपदंशोंको भरदेताहै॥४१॥

अथ जम्ब्वाद्यतैलम्।

जम्बूवेतसपत्राणि धात्रीपत्रं तथैव च। नक्तमालस्य पत्राणि तद्वत्पद्मोत्पलानि च॥ ४२॥ एला चातिविषाऽऽम्रास्थि मधुकञ्च प्रियङ्गवः। लाक्षा कालीयकं लोध्रं चन्दनं त्रिवृताह्वया॥ ४३॥ एतान्येकीकृतान्येव बस्तमूत्रेण पेषयेत्। अक्षमात्रैरिमैर्द्रव्यैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ ४४॥ सर्वव्रणहरं तैलमेतत्सिद्धं विपाचयेत्। उपदंशहरं श्रेष्ठं मुनिभिः परिकीर्तितम्॥ ४५॥

जामुनके पत्ते, बेंतके पत्ते, आमलोंके पत्ते, करंजके पत्ते, सफेद कमल, लाल कमल, इलायची, अतीस, आमकी गुठली, मुलहठी, फूलप्रियंगू, लाख, कलम्बक, लोध, सफेद चन्दन और निसोत इन प्रत्येक औषधियोंको एक एक तोलाभर लेकर सबको एकत्र बकरेके मूत्रमें पीसकर चौंसठ तोलेभर तेलमें पकावें। यह तेल सर्वप्रकारके व्रणोंको तथा उपदंशोंको नष्ट करता है, ऐसा मुनियोंका कहना है॥

अथ कोशातकीतैलम्।

यस्य लिङ्गस्य मांसं तु शीर्यते मुष्कशेषतः। तिक्तकोशातकीलम्बावीजनागरसाधितम्। तैलं हन्त्यविशेषेण व्रणं दुष्टमनेकधा॥ ४३॥

कडवी तोरईके बीज, कडवी तोंबीके बीज और सोंठ इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल अनेक प्रकारके दुष्ट व्रणोंको अच्छी प्रकारसे नष्ट कर देता है। जो लिंगका मांस गल गया हो, केवल अण्डकोष ही बाकी रह गया हो तो भी वह उपदंश इस तेलसे शान्त हो जाता है॥ ४६॥

अथोपदंशे पथ्यम्।

सेवेन्नित्यं यवान्नञ्च पानीयं कौपमेव च। अर्शसां छिन्नदग्धानां क्रियां चात्र प्रयोजयेत्॥ ४७॥

इत्युपदंशनिदानचिकित्साधिकारः।

उपदंशरोगी नित्य जौका भोजन और कुएँका जल सेवन करे। तथा ववासीर और छिन्न

तथा दग्धव्रणमें जो चिकित्सा कही है, वह सब प्रयोग करनी चाहिये ॥ ४७ ॥

इति उपदंशाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ लिङ्गार्शोऽधिकारः ।

तत्र लिङ्गार्शोलक्षणम् ।

अंकुरैरिव सञ्जातैरुपर्युपरि संस्थितैः । क्रमेण जायते वर्त्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा ॥ १ ॥ कोशस्याभ्यन्तरे सन्धौ पर्वसन्धिगतापि वा । लिङ्गवर्तिरिति ख्याता लिङ्गार्शं इति चापरे । सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ॥ २ ॥

धान्यके अंकुरके समान एक दूसरेके ऊपर बारीक बारीक अनुक्रमसे बढ बढकर लिंगकी सन्धियोंमें अथवा लिंगकी सुपारी नीचे, मुरगेकी कलंगीके समान जो उत्पन्न होती है, उसको 'लिंगवर्ति' कहते हैं, कितने वैद्य इस लिङ्गवर्तिको लिंगार्श ' भी कहते हैं ॥ १-२ ॥

अथ लिङ्गार्शश्चिकित्सा ।

क्षारेण प्रदहेच्छित्वा लिङ्गवर्तिमशेषतः । व्रणवच्चाचरेत्सम्यग्लेपचूर्णैरुपद्रवान् ३॥

इस लिंगके अर्शको अच्छी प्रकारसे शस्त्रसे काटकर क्षारसे दग्ध करे और व्रणके समान ही लेप चूर्ण आदि उपचार अच्छी प्रकारसे करे ॥ ३ ॥

स्वर्जिका तुत्थशैलेयमञ्जनं रससाञ्जनम् । मनः शिलाले च समं चूर्णं मांसांकुरापहम् ॥ ४ ॥

सज्जी, नीलाथोथा, शिलाजीत, रसौत, अंजन (सुरमा , मैनशिल और हरिताल इन सबको समान भाग लेकर बनाया हुआ चूर्ण लिंगार्शको नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

हरति घृतकुमारीपत्रमावेष्टनेन ग्रथनविधिविशेषांश्चर्मकीलांस्तृतीये । अहनि गुरुतरानप्यङ्गलब्धप्रतिष्ठान् विधिरिव विपरीतः पौरुषस्य प्रकारान् ॥ ५ ॥

जिस प्रकार विपरीत हुआ दैव पुरुषार्थको प्रबल रीतिसे नष्ट कर देता है, उसी प्रकार बांधा हुआ घीकारका पत्ता अत्यन्त, प्रबल, अंगमें जमा हुआ और एक जातिका गांठके समान चर्मकील (लिंगार्श) को भी तीन दिनमें नष्ट करता है ॥ ५ ॥

शुभे तु चारटीमूलं वृषमूत्रेण पेषयेत् । चर्मकीलान्निहन्त्याशु लेपो लिङ्गसमुद्भवान् ॥ ६ ॥

इति लिंगार्शोऽधिकारः ।

शुभ दिनमें कटेरीकी जडको लेकर बैलके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे लिंगार्श तत्काल नष्ट होजाता है ॥ ६ ॥

इति लिंगार्शोऽधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ शूकदोषाधिकारः ।

तत्र शूकदोषनिदानम् ।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः । व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥

अक्रमात् अनुचितवृद्धिक्रमात् । अनुचिता । च वृद्धिः भूरिविकारजनकस्य योगेन । शूकजाः शूको जलशूकः सविषो जलजन्तुविशेषः, स तु जलमलोद्भवः अलपर्दुण्डुभ इत्यादिकः ।

जो मूर्ख मनुष्य अयोग्य उपायसे लिंगको बढानेका प्रयत्न करते हैं, उनके शूकदोषसे उत्पन्न हुई अठारह प्रकारकी व्याधि उत्पन्न होती हैं ॥ १ ॥

तथा शूकप्रधानो लिङ्गवृद्धिकरो वात्स्यायनाद्युक्तो योगः शूक उच्यते । यथा-

भल्लातकास्थि जलशूकमथाब्जपत्र-
मन्तर्विदाह्य मतिमान् सह सैन्धवेन ॥
एतद्विरूढबृहतीफलतोयपिष्ट मालेपितं
महिषविड्विमलीकृतेऽङ्गे ॥ २ ॥ स्थूलं
महद्वरतुरङ्गमलिङ्गतुल्यं शेफः करोत्य-
भिमतं न हि संशयोऽत्र ॥ ३ ॥

जिसमें इस शूक नामक कीडेकी भस्मका मुख्य उपयोग है, ऐसा वात्स्यायन आदि आचार्योंके कहे हुए लिंगको बढानेवाले जो उपाय हैं, उनमें शूकके मुख्य होनेसे शूक कहे जाते हैं। वात्स्यायन ऋषिने कहा है कि-"भिलावेकी गुठली, शूकनामक जलका कीडा और कमलके पत्ते इनको बर्तनके भीतर जलाकर भस्म कर लेवे, उस भस्मको सैंधनिमकमें मिलाकर बडी कटेरीके फलके रसमें मिलाकर पीसलेवे, फिर लिंगको भैंसके गोबरसे धोकर उसके ऊपर इस भस्मका लेप करे तो लिंग मनमाना और उत्तम घोडेके लिंगके समान होजाता है, इसमें संशय नहीं" इत्यादि ॥ २-३ ॥

यत्तु जलशूकरहितमश्वगन्धादितैलं तदुचितमेव लिङ्गवर्द्धनम् ॥

इससे अत्यन्त हानि होती है, परन्तु जिसमें कीडेकी भस्मका उपयोग नहीं होता ऐसे लिंग बढानेवाले 'अश्वगन्धादि तैल' के जो उपाय कहे हैं, वेठीक हैं ॥

अथाश्वगन्धादितैलम् ।

अश्वगन्धावरीकुष्ठं मांसीसिंहीफलान्वितम् । चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत् । तत्तैलं मेढ्रवक्षोजकर्णपालिविवर्द्धनम् ॥ ४ ॥

असगन्ध, सतावर, कूठ, बालछड और कटेरीके डोडे इनका कल्क डालकर तेलसे चौगुने दूधमें पकाया हुआ तिलका तेल 'अश्वगन्धादि तैल' कहा जाता है। यह तेल-लिंग, स्तन और कानडी पालीको बढाता है ॥ ४ ॥

अथ शूकदोषस्याष्टादश भेदाः ।

तत्र सर्षपिकालक्षणम् । १

गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुर्भगहेतुका ।
पिडका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका तु सा ॥ ५ ॥

शूकदुर्भगहेतुका-शूकदुष्टयोनिनिमित्ता च॥

शूकसे अथवा दुष्टयोनिमें मैथुन करनेसे उत्पन्न हुई सफेद सरसोंके समान जो फुंसी उत्पन्न होती है, वह 'सर्षपिका' कही जाती है, यह कफ तथा वायु उनसे उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥

अथाष्ठीलिकालक्षणम् । २

कठिना विषमैर्भुग्नैर्वायुनाऽष्ठीलिका भवेत् ॥ ६ ॥

अष्ठीला-लौहकारस्य भाण्डविशेषः 'निहार' इति लोके । ततः कठिनेत्यष्ठीलिका विषमैर्भुग्नैरिति वक्ष्यमाणशूकविशेषणम् । विषमैः-ह्रस्वदीर्घैः भुग्नैः-वक्रैः ॥

बडे छोटे और टेढे कांटोंवाली और कठिन ऐसी जो फुंसी हो, उसको 'अष्ठीलिका' कहते हैं। अष्ठीलिका इस नामका एक लुहारका औजार होता है, जिसको देशमें निहार अथवा निहाई कहते हैं। उसीके समान यह फुंसी कठिन होती है, इस कारण उसको 'अष्ठीलिका' कहते हैं फुंसीका मुख्य निदान वायु है ॥ ६ ॥

अथ ग्रथितलक्षणम् । ३

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं नाम तत्कफात् ॥ ७ ॥

यल्लिङ्गं सदा शूकैः पूरितं तद्ग्रथितत्वात् ग्रथितम् ।

लिंग जौकी अनीके समान कांटोंसे निरन्तर व्याप्त रहे, उसको 'ग्रथित' कहते हैं, इस ग्रथितका मुख्य निदान कफ है ॥ ७ ॥

अथ कुम्भिकालक्षणम् । ४

कुम्भिका रक्तपित्तात्स्याज्जाम्बवास्थिनिभाऽसिता ॥ ८ ॥

कुम्भिका-कुम्भीफलतुल्यत्वात् ॥

जामुनकी गुठलीके समान जो सफेद फुंसी उत्पन्न हो, उसको कुम्भिका कहते हैं, इस फुन्सीका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है। यह फुन्सी कुंभीफल (कायफल) के समान होती है, इसलिये इसको 'कुंभिका' कहते है ॥ ८ ॥

अथालजीलक्षणम् । ५

अलजी स्यात्तथा यादृक्प्रमेहपिडका तथा। सा च रक्ताऽसिता स्फोटैश्चिता च कथिता बुधैः ॥ ९ ॥ एषा रक्तपित्त निमित्ता ज्ञेया ॥

अलजी नामक प्रमेहसंबन्धी पिडका जो लाल और काली फुन्सी हो तथा अन्य फुन्सियोंसे व्याप्त हो, ऐसी इस प्रमेहपिडकाके समान लिंगपर उत्पन्न हो, उसको 'अलजी' कहते हैं। इस फुन्सीका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है ॥ ९ ॥

अथ मृदितलक्षणम् । ६

मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः ॥ १० ॥

शूकदोषे जाते पीडितं सत् यत् संरब्धं सशोथं भवति तल्लिंगं मृदितमुच्यते ॥

शूकदोषके उत्पन्न होनेपर लिंगके दबानेसे जो सूजन उत्पन्न हो, उसको 'मृदित' कहते हैं॥ १० ॥

अथ संमूढपिडकालक्षणम् । ७

पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिडका भवेत् ॥ ११ ॥

शूकदोषे जाते पाणिभ्यां भृशसंमूढे पिशिते लिंगे । अत्रापि वातकोपत इत्यनुवर्तते ॥

शूक होनेपर दोनों हाथोंसे बहुत मर्दन करनेसे लिंगके ऊपर जो पिडिका होती हैं उनको 'संमूढ पिडका' कहते हैं ॥ ११ ॥

अथावमन्थलक्षणम् । ८

दीर्घा बह्व्यश्च पिडका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः। सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ १२ ॥

दीर्घाः-दीर्घांकुराः ॥

लम्बी और लम्बे अंकुरवाली जो फुन्सिय बीचमें फूटी हुई, वेदनायुक्त और रोमांचसहित हो उनको 'अवमन्थ' कहते हैं। ये फुन्सीकफ तथा रुधिरके कोपसे होती हैं ॥१२॥

अथ पुष्करिकालक्षणम् । ९

पिडका पिडकाव्याप्ता पित्तशोणितसंभवा। पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिकेति सा ॥ १३ ॥

पिडकाव्याप्ता-पार्श्वतःक्षुद्रपिडकाव्याप्ता । अत एव पद्मकर्णिकसंस्थाना ॥

जो फुन्सी या फुन्सियोंसे व्याप्त और कमलकर्णिकाके समान आकारवाली उत्पन्न हो उसको 'पुष्करिका' कहते हैं। ये फुन्सी पित्तके तथा रुधिरके कोपसे होती हैं ॥ १३ ॥

अथ स्पर्शहानिलक्षणम् । १०

स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम् ॥ १४ ॥ अत्र स्पर्शासहत्वमेव लक्षणम् ॥

जो फुन्सी स्पर्शको सह न सके, उसको 'स्पर्शहानि' कहते हैं। यह फुन्सी शूकदोषसे कुपित हुए रुधिरसे उत्पन्न होती है ॥ १४ ॥

अथोत्तमालक्षणम् । ११

मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा च या। एषोत्तमाख्या पिडका शूकाजीर्णसमुद्भवा ॥ १५ ॥

शूकदोषसे उत्पन्न हुई, अजीर्णसे उत्पन्न हुई, मूंग तथा उडदके समान जो लाल फुन्सी उत्पन्न होती है, वह 'उत्तमा' कही जाती है। इस फुन्सीका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है ॥

अथ शतपोनकलक्षणम् । १२

छिद्रैरणुमुखैर्लिङ्गं चितं यस्य समन्ततः । वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपोनकः ॥ १६ ॥

शतपोनकः 'चलनी' तत्तुल्यत्वाच्छतपोनकः ॥

लिंग बारीक छिन्द्रोंके द्वारा चारों ओरसे व्याप्त होकर शतपोनक (चलनी) के समान हो जाय, उस रोगको 'शतपोनक' कहते हैं। इसका मुख्य निदान वात तथा कफ है ॥१६॥

अथ त्वक्पाकलक्षणम् । १३

वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहकृत् ॥ १७ ॥

ज्वर तथा दाहको उत्पन्न करनेवाला लिंगके चर्मका जो पाक होता है, वह 'त्वक्पाक' कहा जाता है। इसका मुख्य निदान वात (रुधिर) तथा पित्त है ॥ १७ ॥

अथ शोणितार्बुदलक्षणम् । १४

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिडकाभिर्निपीडितम् । लिङ्गं वास्तुरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥ १८ ॥

वास्तुरुजः-स्फोटपिडकाधिष्ठानवेदनाः ॥

काली फुंसियोंसे और लाल फुंसियोंसे लिंग पीडित हो और उन फुंसियोंमें तथा फुंसियोंके स्थानमें उग्र पीडा हो, उसको 'शोणितार्बुद' कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ मांसार्बुदलक्षणम् । १५

मांसदुष्टं विजानीयादर्बुदं मांससम्भवम् ॥ १९ ॥

मांसकी दुष्टतासे लिंगपर मांसका अर्बुद (रसौली) उत्पन्न हो, उसको 'मांसार्बुद' कहते हैं ॥ १९ ॥

अथ मांसपाकलक्षणम् । १६

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः । विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ २० ॥

शीर्यन्ते-गलन्ति । सर्वाश्च वेदनाः वातपित्त कफजाः ॥

लिंगका मांस गलकर गिरजाता हो और सर्वप्रकारकी (वात पित्त कफ जनित) वेदना होती हो, उसको वैद्य 'मांसपाक' हुआ जाने। यह मांसपाक त्रिदोषके कोपसे होता है ॥२०॥

अथ विद्रधिलक्षणम् । १७

विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ २१ ॥

उक्तम्-सन्निपातिकविद्रधितुल्यं कथयेत ।

प्रमेहसम्बन्धी विद्रधियोंमें जो त्रिदोषजन्य विद्रधि कही है, उसीके लक्षणोंवाली फुन्सी जो लिंगमें उत्पन्न हो, उसको वैद्य 'विद्रधि' जाने। यह विद्रधि भी त्रिदोषके प्रकोपसे होती है ॥ २१ ॥

अथ तिलकालकलक्षणम् । १८

कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि तु । पातितानि पचत्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ २२ ॥ कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः । सन्निपातसमुत्थांश्च तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ २३ ॥

चित्राणि-शुक्लपीतनीलादिनानावर्णानि सविषाणीति शूकानां सविषत्वेऽपि विशेषार्थमुक्तम् । शीर्यन्ते गलन्ति । कालानीति कृष्णानि । कृष्ण-तिलतुल्यत्वात्तिलकालकसंज्ञा ॥

काले रंगके अथवा अनेक प्रकारके चित्र विचित्रित सफेद पीले नीले आदि रंगके शूकनामक विषैले कीडेकी भस्मसे उत्पन्न होनेके

कारण विषैला मांस लिंगमेंसे गिरजाय, सर्वप्रकारसे लिंगको पका देवे और काला काला होकर गलजाय, उसको 'तिलकालक' कहते हैं इस रोगमें मांस काले तिलके समान होजाता है, इस कारण इसको 'तिलकालक' कहते हैं। यह रोग त्रिदोषके प्रकोपसे होता है ॥२२॥२३

अथ शूकदोषासाध्यलक्षणम्।

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः। विद्रधिश्च न सिध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ २४ ॥

उपरोक्त अठारह प्रकारके शूकदोषोंमें मांसार्बुद मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार असाध्य हैं ॥ २४ ॥

अथ शूकदोषचिकित्सा।

शूकदोषेषु सर्वेषु विषघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥२५॥ गुग्गुलुं पाययेच्चापि त्रिफलाक्वाथसंयुतम्। क्षीरेण लेपसेकांश्च शीतेनैव हि कारयेत् ॥ २६ ॥

वैद्य सर्वप्रकारके शूक दोषोंमे विषनाशक क्रिया करे, जोंक लगाकर विष निकलवावे, विरेचन देवे, हलका भोजन करे त्रिफलेके क्वाथके साथ गूगल पीवे, शीतल दूधका लेप और शीतल दूधसे सेचन करावे ॥ २५॥२६ ॥

अथ दार्वीतैलम्।

दार्वीसुरसयष्ट्याह्वैर्गृहधूमनिशायुतैः। संपक्वं तैलमभ्यङ्गान्मेढ्ररोगं हि नाशयेत् ॥ २७ ॥

दारुहलदी, तुलसी, मुलहठी, घरका धुआं और हलदी इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल दार्वीतैल' कहा जाता है। इस तेलका लेप करनेसे लिंगके समस्त रोग नष्ट होजाते हैं ॥

अथ रसाञ्जनलेपः।

रसाञ्जनं साह्वयमेकमेव प्रलेपमात्रेण नयेत् प्रशान्तिम्। सपूतिपूयव्रणशोथकण्डूशूलान्वितं सर्वमनङ्गरोगम् ॥२८॥

साह्वयमिति अनंगरोगस्य विशेषणम्। अनंगरोगस्य नाम अपि दूरीकरोति इत्यर्थः ॥

इति शूकदोषनिदानचिकित्साधिकारः।

इकले रसौंतका ही लेप करनेसे सर्वप्रकारके लिंगसम्बन्धी रोग नष्ट हो जाते हैं कि, फिर उनका कदापि नामतक भी नहीं रहता तथा दुर्गंधित राधका निकलना, व्रण, सूजन, खुजली और शूल ये सब नष्ट हो जाते हैं ॥ २८ ॥

इति शूकदोषाधिकारः संपूर्णः ॥

अथ कुष्ठरोगाधिकारः।

तत्र कुष्ठस्य निदानं संख्या च।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च। भजतामागताँश्छर्दिवेगांश्चान्यान् प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥ व्यायाममग्निसंतापश्चाप्यतिभुक्त्वा निषेविणाम्। शीतोष्णलंघनाहारान् क्रमं मुक्त्वा निषेविणाम् ॥ ॥ २ ॥ घर्मश्रमभयार्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम्। अजीर्णाध्यशिनां चापि पञ्चकर्मापचारिणाम् ॥ ३ ॥ नवान्नदधिमत्स्यादिलवणाम्लनिषेविणाम्। माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडा शिनाम् ॥ ४ ॥ व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने दिवानिद्रां निषेविणाम्। विप्रान्गुरून्धर्षयतां पापं कर्म च कुर्वताम् ॥ ५ ॥ वातादयस्त्रयो दोषास्त्वग्रक्तं मांसम बु च। दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः। अतःकुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव च ॥ ६ ॥

विरोधीनि अन्नपानानि-क्षीरमत्स्यादीनि दधिदुग्धादीनि च। व्यायाममग्नि-

त्यादि । अतिभुक्त्वा व्यायामम्, अग्निसन्तापम्-अग्निरुपलक्षणं सूर्यादिसन्तापश्च । निषेविणामिति कृदन्तस्य योगे षष्ठी प्राप्ता । द्वितीया तु मुनिवचनात् । एवमग्रेऽपि । शीतोष्णलंघनाहारानित्यादिषु अपि द्वितीया । अन्न क्रमं विधिम् । घर्मेत्यादि । घर्मार्तत्वे सति द्रुतमविश्रम्य पाने स्नाने शीताम्बुसेविनाम् । अजीर्णाध्यशिनां भुक्तेऽजीर्णे भुक्तानाम् । पञ्चकर्मापचारिणां पञ्चकर्माणि वमनविरेकनस्य निरूहानुवासनानि तेषु कृतेषु अपचारिणाम् । नवान्नदधिमत्स्याद्याहारादिसेविनाम् । व्यवायमित्यादि । अन्ने अजीर्णे विदग्धादिरूपे सति व्यवायं मैथुनं निषेविणाम् । दिवा निद्रां निषेविणामिति भिन्नो हेतुः । धर्षयताम् अभिभवताम् । दोषदूष्यसंग्रहार्थमाहवातादय इत्यादिशब्देन त्रिष्वपि प्रतीतेषुत्रय इति पदं सर्वेषु कुष्ठेषु त्रयाणामपि वातादीनां दुष्टत्वबोधनार्थम् ! त्वक्-रसः । अम्बुलसीका । अथ संख्यामाह-अतः कुष्ठानीत्यादि । अतः पूर्वोक्तदोषदूष्यसमुदायात् । सप्तधैकादशधेति संख्याविच्छेदपाठेन सप्तानां महाकुष्ठत्वमेकादशानाम् क्षुद्रकुष्ठत्वं बोधयति ॥

दूध तथा मछली आदि परस्परविरुद्ध पदार्थोंको भक्षण करनेसे, दही तथा दूध आदि परस्पर विरुद्ध खानपानोंके सेवन करनेसे, पतले, चिकने तथा भारी पदार्थोंके सेवन करनेसे, आती हुई वमनके वेगको रोकनेसे, अन्यान्य मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, बहुत भोजन करके कसरत करनेसे, बहुत भोजन करके सूर्यका तथा अग्निका सन्ताप सेवन करनेसे, शीत, उष्ण, लंघन और आहार इनको कुविधिसे सेवन करनेसे, पसीना, श्रम तथा भयसे पीडित होनेपर तत्काल शीतल जलमें स्नान करनेसे अथवा शीतल जल पीनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे अथवा भोजनपर भोजन करनेसे, वमन, विरेचन. नस्य, निरूह और अनुवासनवस्ति इनके बिगड जानेसे. नवीन अन्नके भक्षण करनेसे, दहीके सेवनसे. मछली आदिके खानेसे, खारे पदार्थोंके सेवन करनेसे खट्टे पदार्थोंके सेवन करनेसे, उडदको सेवन करनेसे मूलीको सेवन करनेसे पक्वान्न अथवा मिष्टान्नके सेवन करनेसे, तिलके सेवन करनेसे, दूध तथा गुडको विशेष, खानेसे, विदग्ध आदिके अजीर्ण होनेपर मैथुन करनेसे, दिनमें सोनेसे' ब्राह्मणोंका और गुरुजनोंका अपमान करनेसे और पापकर्म करनेसे कोढ उत्पन्न होते हैं । वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष रस, रुधिर, मांस तथा जलको दूषित करके कोढको उत्पन्न करते हैं । वात, पित्त, कफ, रस, रुधिर, मांस तथा लसीका इन सातोंके बिगडनेसे कोढ उत्पन्न होता है । वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष और रस, रुधिर, मांस तथा लसीका ये चार दूष्य कोढके कारण हैं, । सर्व प्रकारके कोढोंमें वातादि तीनों दोप दुष्ट होते हैं, ऐसा जानना । ऊपर कहे हुए सातों पदार्थोंके समुदायसे सात प्रकारका और ग्यारह प्रकारका कोढ उत्पन्न होता है । 'अठारह' ऐसा नहीं कहा; क्योंकि, सात और ग्यारह अलग अलग संख्या कही, वह ऊपरसे जाननी । सात बडे कोढ और ग्यारह क्षुद्र कोढ हैं ॥ १-६ ॥

अथ सप्तमहाकुष्ठनामानि ।

पूर्वत्रिकं तथा सिध्मं ततः काकणकं तथा । पुण्डरीकर्क्ष जिह्वाके महाकुष्ठानि सप्त च ॥ ७ ॥

पूर्वत्रिकं कपालौदुम्बरमण्डलाख्यम् । सिध्मशब्दोऽकारान्तो नपुंसकः ॥

१ कपाल, २ औदुम्बर, ३ मण्डल, ४ सिध्मा ५ काकणक, ६ पुंडरीक और ७ ऋक्षजिह्वक ये सात बडे कोढ हैं ॥ ७ ॥

ननु कथं सिध्मस्य महाकुष्ठेषु गणना ? सुश्रुतेन क्षुद्रकुष्ठेषु उक्तत्वात्। "धातुप्रविष्टं सिध्मं तु स्यान्महाकुष्ठमेव च" एवंविधस्य सिध्मस्य चरकेण महाकुष्ठेषु दर्शितत्वात्। एषां महाकुष्ठत्वञ्च शीघ्रमुत्तरोत्तरधात्ववगाहनात्, उल्वणदोषजन्यत्वाच्चिकित्साबाहुल्याच्च ॥

शंका–सुश्रुतमें सिध्मको क्षुद्र कोढोंमें गिना है, फिर आपने यहां सिध्मको बडे कोढोंमे कैसे लिखा है?

समाधान–जो सिध्म धातुओंमें प्राप्त होगया हो, वह महाकुष्ठ कहा जाता है। क्योंकि, चरक ऋषि ऐसे सिध्मको बडे कोढोंमें गिनता है।

ऊपर जो सात कोढ बडे कहे हैं उनका कारण यह है कि; उत्तरोत्तर धातुओंमें शीघ्र प्रवेश करते हैं, उल्वण दोषसे उत्पन्न होते हैं और उनकी चिकित्सा भी अनेक हैं ॥

अथैकादशक्षुद्रकुष्ठनामानि।

एककुष्ठं स्मृतं पूर्वं गजचर्म ततः स्मृतम्। ततश्चर्मदलं प्रोक्तं ततश्चापि विचर्चिका ॥ ८ ॥ विपादिकाभिधा सैव पामा कच्छूस्ततः परम्। दद्रुविस्फोटकिटिभालसकानि च वेष्टितम्। क्षुद्रकुष्ठानि चैतानि कथितानि भिषग्वरैः॥९॥

१ एककुष्ठ, २ गजचर्म, ३ चर्मदल, ४ विचर्चिकाविपादिका, ५ पामा, ६ कच्छू, ७ दद्रू, ८ विस्फोट, ९ किटिभ, १० अलसक और ११ शतारु इनको उत्तम वैद्य क्षुद्रकुष्ठ कहते हैं। विचर्चिकानामक कुष्ठ जो पांवमें हो वह विपादिका कहा जाता है, इस कारण क्षुद्र कोढोंकी संख्या ग्यारहही रहती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

ननु दद्रुरोगस्य कथं क्षुद्रकुष्ठेषु गणना ? सुश्रुतेन महाकुष्ठेषु उक्तत्वात्।

शंका–सुश्रुत दद्रूको बडे कोढोंमें मानता है, फिर आपने इसको क्षुद्रकोढोंमें, कैसे गिना है?

उच्यते–असिता अवगाढमूला दद्रूः सुश्रुतेन महाकुष्ठेषु उक्ता। असितेतरा अनवगाढमूला दद्रूः क्षुद्रकुष्ठमेव। एवंविधाया दद्रूश्चरकेण क्षुद्रकुष्ठेषु दर्शितत्वात् ॥

समाधान–काले, दृढ जडवाले दद्रूको सुश्रुतने बडे कोढोंमें गिना है, जो दद्रू कालेके सिवाय दूसरा हो और दृढ जडवाला न हो, तो वह क्षुद्र कोढ ही जानना। चरक भी इस प्रकारके दद्रूको क्षुद्रकुष्ठोंमें मानता है ॥

अथकुष्ठानां त्रिदोषजत्वेनैकस्यापि दोषस्य उल्वणतया सप्तधात्वमाह।

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः। सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः ॥ १० ॥ सर्वेषु अपि त्रिदोषेषु व्यपदेशः कापालादिसंज्ञास्तेषामष्टादशरूपं यदधिकत्वं ततः कुष्ठानि सप्तधा। कैः दोषैकथम्भूतैः-पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः सङ्गतैः सम्मिलितैरिति यावत्। अस्य अयमर्थः-किमपि कुष्ठं वातोल्वणं किमपि पित्तोल्वणं किमपि कफोल्वणं किमपि वातश्लेष्मोल्वणं किमपि पित्तश्लेष्मोल्वणं किमपि वातपित्तोल्वणं किमपि त्रिदोषोल्वणमिति ॥

यद्यपि तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए कपाल आदि नाम हैं, तथापि वे नाम अठारह होनेके कारण उनउन दोषोंकी उल्वणताके अनुसार कोढ सात प्रकारके माने हैं। जैसे कि, कोई कोढ वायुकी उल्वणतावाला होता है, कोई कोढ पित्तकी उल्वणतावाला होता है, कोई कोढ कफकी उल्वणतावाला होता है, कोई कोढ वात तथा कफकी उल्वणतावाला होता है, कोढ पित्त तथा कफकी उल्वणतावाला होता है, कोई कोढ वायुकी तथा पित्तकी उल्वणतावाला होता है और कोई कोढ तीनों दोषोंकी उल्वणतावाला होता है ॥ १० ॥

अथ कुष्ठपूर्वरूपम् ।

अतिश्लक्ष्णः खरस्पर्शः स्वेदास्वेदविवर्णता । दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः क्रमः ॥ ११ ॥ व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः । रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् । रोमहर्षोऽसृजःकार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ १२ ॥

अतिश्लक्ष्णः–अतिमृदुः । अथवा चर्मादिप्रसङ्गेऽपि स्वेदाभावः । त्वचि स्वापः स्पर्शाज्ञता । शीघ्रोत्पत्तिः व्रणानाम् ॥

जिस स्थानमें कोढ होनेको हो उस जगह छूनेसे कोमल या चिकना, अत्यन्त खरखरा मालूम हो, पसीना आवे, अथवा धूप आदि पसीनेके कारण होनेपर भी पसीना नहीं आवे। दाह, खुजली, चमडेका स्पर्श नहीं मालूम हो, भोंकनेसरीखी पीडा, विषैले मक्खीके काटने सरीखे चकत्ते हों, ग्लानि, शूलकी अधिकता, व्रणोंका तत्काल उत्पन्न होना, व्रणोंका बहुत दिनोंतक रहना, व्रणोंके भरनेपर अत्यन्त रूखापन हो, अल्प कारणोंसे व्रणोंका कोप हो, रोमांचोंका हो आना और रुधिर काला हो जाय, ये कोढके पूर्व लक्षण जानने ॥ ११-१२ ॥

अथ कुष्ठलक्षणम् ।

दूषयन्ति श्लथीकृत्य निश्चलत्वादितस्ततः । त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दोषाः कुष्ठमुशन्ति तत् ॥ १३ ॥

दोषोंके स्थिर होनेसे चमडेको शिथिल करके चारोंओरसे त्वचाके रंगको बदल लेता है, उसको 'कोढ' कहते हैं ॥ ३१ ॥

अथ दोषोल्वणतया कुष्ठोत्पत्तिनामानि ।

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुम्बरं कफात् । मण्डलाख्यं विचर्चीं च ऋक्षाख्यं वातपित्ततः ॥ १४ ॥ चर्मैककुष्ठकिटिभसिध्मालसविपादिकाः । वातश्लेष्मोद्भवाः पित्तकफाद्दद्रूशतारुषी ॥ १५ ॥ पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा । सर्वैरेवोल्वणैर्दोषैराहुः काकणकं बुधाः ॥ १६ ॥

विचर्चीं च कफादित्यन्वयः । पुण्डरीकं सविस्फोडं पामा चर्मदलं तथा पित्तकफादित्यन्वयः ।

वातकी उल्वणतासे कपालकोढ उत्पन्न होता है, पित्तकी उल्वणतासे औदुम्बर, मण्डल और विचर्चिका कोढ उत्पन्न होता है, वायु तथा कफकी उल्वणतासे ऋक्षजिह्व कोढ उत्पन्न होता है, वात तथा कफकी उल्वणतासे गजचर्म, एककुष्ठ, किटिभ, सिध्म, अलसक और विपादिका कोढ उत्पन्न होता है, पित्तकी तथा कफकी उल्वणतासे दद्रू शतारु, पुण्डरीक, विस्फोट, पामा तथा चर्मदल कोढ उत्पन्न होता है और तीनों दोषोंकी उल्वणतासे काकणककोढ उत्पन्न होता है ॥ १४-१६ ॥

अथ महाकुष्ठेषु प्रथमं कपालकुष्ठलक्षणम् । १

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं ननु । कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥ १७ ॥

किंचित् कृष्णाः किंचित् अरुणाः ये कपालाः स्फुटितमृत्पात्रखण्डाः । खपरा इति यावत् । तद्वर्णं परुषं खरस्पर्शम् । तनु-तनुत्वक् । कापालम्-कपालसंज्ञम् । विषमम्-दुश्चिकित्स्यम् ॥

कुछेक काला तथा कुछेक लाल मट्टीके खोपडेके समान, रूखा, स्पर्शमें खरदरा, पतली त्वचावाला और अत्यंत व्यथायुक्त जो कोढ उत्पन्न होता है, उसको 'कपालकुष्ठ' कहते हैं । यह कोढ विषम है, इसकी चिकित्सा कठिन है ॥ १७ ॥

अथौदुम्बरकुष्ठलक्षणम् । २

उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत् । रुग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम् ॥ १८ ॥

उदुम्बरफलाभसाम्-औदुम्बरफलाकारम् ॥

जो कोढ गूलरके फलके समान, पीले रोमयुक्त और व्यथासे दाहसे, लालीसे और खुजलीसे व्याप्त हो, उसको 'औदुम्बर कोढ' कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ मण्डलकुष्ठलक्षणम् । ३

श्वेतरक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् । कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ॥ १९ ॥

श्वेतरक्तम्-किञ्चिच्छ्वेतं किञ्चिद्रक्तम् । स्थिरम्-चिकित्सां विना अविनाशि । स्त्यानम्--आर्द्रम् । स्निग्धम् -सस्वेदम् । उत्सन्नमण्डलम्-उद्गतमण्डलम् । कृच्छ्रम्--कष्टसाध्यम् । अन्योन्यसंसक्तम् -परस्पर मिलितम् ॥

जो कोढ कुछेक सफेद तथा कुछेक लाल हो चिकित्साके विना नष्ट न हो, गीला हो, पसीने युक्त हो मंडलके समान आकारवाला हो और परस्पर मिला हो, उसको मण्डलकोढ' कहते हैं यह कोढ कष्टसाध्य है ॥१९॥

अथ सिध्मकुष्ठलक्षणम् । ४

श्वेतताम्रञ्च तनु यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति । प्रायेणोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ॥ २० ॥

श्वेतताम्रम् -श्वेतं ताम्रम् । तनु त्वक् । प्रायेणोरसि-ःप्रायःशब्दादन्यत्रापि बोद्धव्यम् ॥

जो कोढ सफेदी लिये लाल रंगका हो, पतली त्वचा वाला हो, घिसनेसे या रगडनेसे उसमेंसे धूलके समान छोटे२ परमाणु गिरें और तोम्बीके फूलके समान हो, उसको सिध्म कहते हैं यह कोढ विशेष करके छातीमें होता है और किसी समय अन्य अंगोंमें भी होता है ॥ २० ॥

अथ काकणकुष्ठलक्षणम् । ५

यत्काकणन्तिकावर्णमपाकं तीव्रवेदनम् । त्रिदोषलिङ्गं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्यति ॥ २१ ॥

काकणन्ती--गुञ्जा, गुञ्जावर्णत्वेन मध्ये कृष्णमन्ते रक्तम् अथवा मध्ये रक्तम् अन्ते कृष्णम् । अपाकः स्वभावात् । त्रिदोषलिङ्गम् ॥ सर्वेषां कुष्ठानां त्रिदोषजत्वेऽपि उल्वणदोषत्रयलिङ्गम् ॥

जो कोढ चौंटलीके समान वर्णवाला अर्थात् बीचमें काला और अंतमें लाल हो स्वाभाविक रीतिसे नहीं पकनेवाला, तीव्रवेदनायुक्त और त्रिदोषकी उल्वणताके लक्षणोंवाला हो, उसको 'काकण' कहते हैं ॥ २१ ॥

अथ पुण्डरीककुष्ठलक्षणम् । ६

तच्छ्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् । सरागञ्चैव सोत्सेधं पुण्डरीकं कफोल्वणम् ॥ २२ ॥

पुण्डरीकदलोपममम्--पुण्डरीकं श्वेतकमलम्, तत्पत्रोपमम् । सरागञ्चैव, अत एव श्वेतं रक्तपर्यन्तम् अन्ते रक्तम् । सरागमिति अन्तलौहित्याधिक्यबोधनार्थम् । सोत्सेधम्-उद्धतम् ॥

जो कोढ सफेद कमलके पत्रके समान सफेद अंतमें अत्यन्त लाल, ऊँचा और कफकी उल्वणतावाला हो, उसको 'पुंडरीक' कहते हैं ॥ २२ ॥

अथर्क्षजिह्वकलक्षणम् । ७

कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तः श्यावं सवेदनम् । यदृक्षजिह्वासंस्थानमृक्षजिह्वं तदुच्यते ॥ २३ ॥

रक्तपर्यन्तम अन्ते रक्तम् । अन्तः श्यावम्-मध्ये धूमवर्णम् । ऋक्षजिह्वासंस्थानम्--ऋक्षो भल्लूकः तस्य जिह्वाकृतिः ॥

जो कोढ कठिन अन्तमें लाल मध्यमें धुँवेके रंगके समान वेदनायुक्त और रीछकी जीभके समान वर्णवाला हो, उसको 'ऋक्षजिह्वक' कहते हैं ॥ २३ ॥

अथैककुष्ठगजचर्मनामकयोः क्षुद्रकुष्ठयोलक्षणम् । १, २ ।

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं जचर्मवत् ॥ २४ ॥

महावास्तु--महास्थानम् । मत्स्यशकलोपमम्-अत्र शकलशब्देन लक्षणया त्वगुच्यते तेन चक्राकारमभ्रकपत्रसदृशं भवति । एककुष्ठमिति क्षुद्रकुष्ठेषु गणितत्वात् । चर्माख्यं गजचर्माख्यम् । बहल स्थूलम् गजचर्मवद्रूक्षं कृष्णं च ॥

जो कोढ पसीनारहित बडे घेरदार और मछलीके त्वचाके समान हो, चक्राकार हो और अभ्रकके पतरोंके समान हो, उसको एककुष्ठ कहते हैं । यह कोढ क्षुद्रकोढोंमें मुख्य होनेसे 'एककुष्ठ' कहा जाता है । जो कोढ गाढा और हाथीके त्वचाके समान रूखा तथा काला हो, उसको 'गजचर्म' कहते हैं ॥२४॥

अथ चर्मदलनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् । ३

रक्तं सशूलं कण्डूमत्सस्फोटं दलयत्यपि । तच्चर्मदक्षमाख्यातं स्पर्शस्यासहनं च यत् ॥ २५ ॥

दलयत्यपि--विदारयत्यपि, चर्मेति शेषः ॥

जो कोढ लाल, शूलयुक्त तथा फोडोंसे व्याप्त स्पर्शको नहीं सहसके और चमडीको फाडनेवाला हो उसको 'चर्मदल' कहते हैं ॥ २५ ॥

अथ विचर्चिकानामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् । ४

सकण्डूः पिडका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ॥ २६ ॥

पिडका--क्षुद्रपिडका ॥

खुजली युक्त कलौंस लिये और बहुत स्राव वाली जो छोटी छोटी फुंसी हों, उनको 'विचर्चिका' कहते हैं ॥ २६ ॥

ननु क्षुद्रकुष्ठानां कथमेकादशत्वं विपादिकाया द्वादशत्वसम्भवात् ॥

शंका–गिनती करनेसे क्षुद्रकोढ बारह होता है, फिर आपने यहां क्षुद्रकोढ ग्यारह क्यों गिना है ?

उच्यते–विचर्चिकैव पादयोर्भवति विपादिका तेन न संख्यातिरेकः । अत एवाह भोजः- दोषाः प्रदूष्य त्वङ्मांसं पाणिपादसमाश्रिताः । पिडकांजनयन्त्याशु दाहकण्डूसमन्विताम् । दाल्यते त्वक् खरा रूक्षा पाण्योर्ज्ञेया विचर्चिका । पादे विपादिका ज्ञेया स्थानान्यत्वाद्विचर्चिका ॥ २७ ॥

दाल्यते विदार्यते । केचिद्विचर्चिकातो विपादिकां भिन्नामाहुः ॥

समाधान–पांवमें उत्पन्न हुई विचर्चिका ही विपादिका कही जाती है, इस कारण संख्या

नहीं बढती । यहांपर भोज कहता है-"रूखे होनेपर हाथोंकी खाल फट जाती है, उसको विचर्चिका कहते हैं और पांवकी जो त्वचा फट जाती है, वह विपादिका कही जाती है"॥ विचर्चिका और विपादिका इनके स्थानोंमें भेद है किन्तु स्वरूपमें कुछ भेद नहीं है । कितने आचार्य तो विपादिकाको विचर्चिकासे भिन्न कहते हैं ॥ २७ ॥

अथ विपादिकानामकक्षुद्रकुष्ठ । लक्षणम् ।

वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम् ॥ २८ ॥

पाणिपादस्फुटनम्-पाण्योः पादयोश्च'स्फुटनंविदारणं येन तत् ॥

हाथ तथा पांव फटजायँ तथा तीव्र वेदना हो उसको 'विपादिका' कहते हैं ॥ २८ ॥

अथ पामालक्षणम् । ५

सूक्ष्मा बह्वयः पिडकाः स्राववन्त्यः । पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यःसदाहाः ॥२९॥

पीडकाः-पीडयन्तीति पिडका इति क्षिपकादित्वान्निपात्यते ॥

स्रावयुक्त, भयंकर, दाहयुक्त, छोटी छोटी और खुजलीयुक्त बाहरकी फुन्सी हो, उसको 'पामा' कहते हैं, फुन्सी पीडा जो करती है, इस कारण इनको पिडका कहते हैं ॥ २९ ॥

अथ कच्छुनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् । ६

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिजोश्च ॥ ३० ॥

सैव पामा । स्फोटैः-महद्भिः । स्फिजोः-प्रोथयोः ॥

जो पामा ही तीव्रदाह युक्त फोडोंसे व्याप्त हो, हाथोंमें तथा कूलोंमें उत्पन्न हो और उग्र हो, उसको 'कच्छू' कहते हैं ॥ ३० ॥

अथ दद्रूनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् । ७

सकण्डूरागपिडकं दद्रुर्मण्डलमुद्गतम् ॥ ३१ ॥

दद्रुर्मण्डलरूपेण उत्पतितः । उद्गतम् उच्छूनम्॥

खुजली सहित, लाल फुन्सियोंयुक्त और उत्पन्न होते ही ऊँचा होजाय, मंडलके समान समान गोल हो उसको 'दद्रु' कहते हैं॥३१॥

अथ विस्फोटनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् । ८

स्फोटा श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ॥ ३२ ॥

फलौंस लिये लाल और पतली त्वचावाले जो फोडे उत्पन्न होते हैं, उनको 'विस्फोटक' कहते हैं ॥ ३२ ॥

अथ किटिभकुष्ठलक्षणम् । ९

श्यामं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् ॥ ३३ ॥

किणखरस्पर्शम्-किणः शुष्कव्रणस्थानं तद्वत्कर्कशस्पर्शम् । परुषम् रूक्षम् ॥

'किटिभकोढ' काला, सूखा हुआ, व्रणके स्थानके समान छूनेमें खरदरा और रूखा होता है ॥ ३३ ॥

अथालसकनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् । १०

कण्डूमद्भिः सरागैश्च गण्डैरलसकं चितम्॥ ३४ ॥

गण्डैः--महापिडकाभिः । चितम् वेष्टितम्॥

खुजलीयुक्त तथा लालगंडोंसे (बडी फुन्सियोंसे) व्याप्त जो हो, वह 'अलसक' कहा जाता है ॥ ३४ ॥

अथ शतारुकुष्ठलक्षणम् । ११

रक्तश्यावं सदाहार्ति शतारु स्याद्बहुव्रणम् ॥ ३५ ॥

लाली लिये कालापन हो, दाहकी पीडायुक्त और बहुत व्रणोंयुक्त जो हो, उसको 'शतारु' कहते हैं ॥ ३५ ॥

अथ सप्तधातुगतकुष्ठलक्षणम् ।

तत्र रसगतकुष्ठलक्षणम् ।

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यञ्च जायते । त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्तनम् ॥ ३६ ॥

त्वक्छब्देन अत्र रस उच्यते । धातुप्रस्तावात्, त्वक्स्थत्वाच्च । त्वक्स्वापः स्पर्शाज्ञत्वम् । त्वक्स्वाप इत्यादिकं केचिद्रक्तगतस्य लिङ्गं मन्यन्ते ॥

जो कोढ रसमें प्राप्त हो तो अंगोंमें विवर्णता और रूक्षता होती है, त्वचाका स्पर्शज्ञान नहीं रहता रोमांच हो आते हैं और पसीना बहुत आने लगता है कितने वैद्य तो ऐसा मानते हैं कि, त्वचाके स्पर्शका ज्ञान नहीं रहता, रोमांचोंका खडा होना और पसीनेका बहुत आना ये रुधिरमें प्राप्त हुए कुष्ठके लक्षण हैं ॥ ३६ ॥

अथ रुधिरगतकुष्ठलक्षणम् ।

कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसम्भवे ॥ ३७ ॥

विपूयकः-विशेषेण पूयः ॥

जो कोढ रुधिरमें प्राप्त हो तो खुजली और राध अधिक होती है ॥ ३७ ॥

अथ मांसगतकुष्ठलक्षणम् ।

बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडकोद्गमः । तोदः स्फोटः स्थिरत्वञ्च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ ३८ ॥

बाहुल्यम्--कुष्ठस्य पुष्टिः । पिडकोद्गमः--क्षुद्रपिडकोद्गमः । स्फोटः--बृहत्पिडका । स्थिरत्वम्-असञ्चारित्वम् ॥

जो कोढ मांसमें प्राप्त हो तो मांस पुष्ट दीखता है, मुखमें शोष, शरीरमें कर्कशता, फुडियोंका निकलना, सुई चुभोनेसरीखी पीडा, बडे बडे फोडोंका होना और स्थिरता ये लक्षण होते हैं ॥ ३८ ॥

अथ मेदोगतकुष्ठलक्षणम् ।

कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां सम्भेदः क्षतसर्पणम् । मेदःस्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ ३९ ॥

कौण्यम्-हस्तनाशः । अङ्गनां सम्भेदः--अङ्गभङ्गः । क्षतसर्पणम्-क्षतप्रसरणम् । पूर्वोक्तानि-रक्तमांसगत लिंगानि ॥

जो कोढ मेदमें प्राप्त होता है तो वह मनुष्य लूला हो जाताहै, चलनेकी शक्ति नष्ट होजाती है अंग भंग होजाते हैं, घाव फैल जाते हैं और रुधिरमें तथा मांसमें प्राप्त हुए कोढोंके जो लक्षण ऊपर कहे हैं वे सब होते हैं ॥ ३९ ॥

अथास्थिमज्जागतकुष्ठलक्षणम् ।

नासाभङ्गोऽक्षिरागश्च क्षतेषु क्रिमिसम्भवः । स्वरोपघातः पीडा च भवेत्कुष्ठेऽस्थिमज्जगे ॥ ४० ॥

जो कोढ अस्थियोंमें और मज्जामें प्राप्त होता है तो नाक बैठ जाती है, आंखें लाल होजाती हैं, घावमें कीडे पडजाते हैं, गला बैठ जाता है और पीडा होती है ॥ ४० ॥

अथ शुक्रगतकुष्ठलक्षणम् ।

दम्पत्योःकुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः । यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ४१ ॥

कुष्ठकी बहुलतासे जिनका रज और वीर्य दूषित हुआ हो, ऐसे स्त्रीपुरुषोंके समागमसे जो सन्तान होती है, वह कोढी होती है ॥४१॥

ननु शुद्धशोणितशुक्रयोरेव दम्पत्योर्गर्भसम्भवः । दुष्टशोणितशुक्रयोः कथम्

अपत्योत्पत्तिः ? यत आह सुश्रुतः- कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः। गर्भः सञ्जायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ॥ ४२ ॥

अन्यच्च--वातादिदुष्टरेतसोऽपत्योत्पादनेऽसमर्था इति ॥

शंका-जिनका रज और वीर्य शुद्ध होता है, ऐसे स्त्री, पुरुषोंसे गर्भका रहना सम्भव है। जिनका रज और वीर्य दूषित होता है, उनके सन्तान नहीं होती। सुश्रुतनेभी कहा है कि- "कामदेवके वेगसे स्त्री पुरुषोंके संयोग होनेपर स्त्रीके अशुद्ध रजसे और पुरुषके शुद्धवीर्यसे गर्भ उत्पन्न होता है और वह गर्भ जन्मके पश्चात् बालक कहा जाता है। और भी कहाहै कि, "वातादि दोषोंसे दुष्ट शुक्रवाले पुत्रोत्पादन करनेमें असमर्थ होते हैं" ॥४२॥

उच्यते-गर्भोऽत्र शुद्धो बोद्धव्यः। अशुद्धगर्भोऽपि दुष्टशोणितशुक्रयोरपि भवति। अन्धबधिरादीनां संभवात्। शोणितम्-आर्तवम्। कुष्ठितम्-कुष्ठं संजामतमस्येति तारकादित्वादितच्। शुक्रार्तवगतं कुष्ठमपत्येन व्यज्यते इति तात्पर्यम् ॥

समाधान-सुश्रुतके वचनमें तथा अन्यान्य वचनोंमें जो गर्भ कहा है, वह शुद्ध गर्भ जानना। अशुद्ध रज और अशुद्ध वीर्यसे अशुद्ध गर्भ रहता है, किन्तु गर्भसम्भव न होना, ऐसा नहीं होता। क्योंकि, बहरे, अन्धे, नकटे आदि गर्भकी उत्पत्ति देखी जाती है। तात्पर्य यह है कि-"वीर्यमें तथा रजमें प्राप्त हुआ कुष्ठ सन्तानको कुष्ठी करता है" ॥

अथ कुष्ठे वातादिदोषोल्वणताचिह्नम्।

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम्। पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्रावान्वितं मतम् ॥ ४३ ॥ कफात्क्लेदं घनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम्। द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं कुष्ठं त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ ४४ ॥

खरम्-कर्कशम्। श्यावारुणम्-श्यावं वा अरुणं वा कुपितम्-पूतिक्लेदबहुलम्। क्लेदम्-आर्द्रतायुक्तम्। घनम्-पुष्टम्।

वातकी उल्वणतावाला कोढ खरखरा, श्याव अथवा लाल, रूखा, और वेदनायुक्त होता है। पित्तकी उल्वणतावाला कोढ-दुर्गंधित, अत्यन्त गीला और दाह, लाली तथा स्रावसे संयुक्त होता है। कफकी उल्वणतावाला कोढ गीलापनयुक्त, पुष्ट, स्निग्ध, खुजलीसहित, शीतलता लिये और भारीपन लिये होता है। जो उपरोक्त लक्षणोंमेंसे दो प्रकारके लक्षणोंसे युक्त हो, उसको दो दोषोंकी उल्वणतावाला जानना। जो तीन प्रकारके लक्षणोंसे युक्त हो, उस कुष्ठको तीनों दोषोंकी उल्वणतावाला जानना ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अथ कुष्ठसाध्यासाध्यता।

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकञ्च यत्। मेदोगं द्वन्द्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम्। कृमितृड्दाहमन्दाग्निसंयुक्तं यत्त्रिदोषजम् ॥ ४५ ॥

वातश्लेष्माधिकञ्च यदेतेन सिध्मैककुष्ठगजचर्म विपादिकाकिटिभालसकानि साध्यानि। मज्जागतं शुक्रगतमपि असाध्यम्। कृमिर्बाह्योऽपि वर्ज्य इत्यन्वयः ॥

रसमें रुधिरमें और मांसमें प्राप्त हुआ और वायु तथा कफकी उल्वणतावाला कोढ साध्य है। मेदमें प्राप्त हुआ अथवा दो दोषोंकी उल्वणतावाला कोढयाप्य है। मज्जामें और अस्थियोंमें प्राप्त हुआ, दाहयुक्त, मन्दअग्निवाला और त्रिदोषकी उल्वणतावाला कोढ असाध्य है, इस कारण वैद्य इसकी चिकित्सा न करे। कृमियोंको उत्पन्न करनेवाला बाहरका कोढ

भी असाध्य है। वायु तथा कफकी उल्वणतावाला कोढ भी साध्य है, यह जो कहा सो ऊपरसे भी सिद्ध होता है कि, सिध्म, एककुष्ठ, गजचर्म, विपादिका, किटिभ और अलसक ये वायु तथा कफकी उल्वणतावाले होनेसे साध्य हैं। मज्जामें प्राप्त हुआ और वीर्यमें प्राप्त हुआ भी कोढ असाध्य है ॥ ४५ ॥

अथ कुष्ठारिष्टम्।

प्रभिन्नं प्रस्रुताङ्गं च रक्तनेत्रं हतस्वरम्। पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ ४६ ॥

प्रभिन्नम्-विदीर्णम्। हतस्वरम्-घर्घरस्वरम्। पञ्चकर्मगुणातीतम् असञ्जातवमनादिपञ्चकर्मगुणम् ॥

फटे हुए अङ्गवाला, टपकता हुआ, लाल नेत्रोंवाला जिसका स्वरभंग हो और जिसके वमन विरेचनादि पंचकर्म कुछ भी गुण न करे उसको कुष्ठ नष्ट कर देता है ॥ ४६ ॥

अथ कुष्ठनिदानसम्भूतस्य श्वित्रस्य भेदं किलासमाह।

कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रं किलासं चारुणं भवेत्। निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥४७॥ कुष्ठैकसम्भवम् कुष्ठेन सम्भवो निदानं यस्य तत्। अथ श्वित्रस्य भेदमाह--किलासं चारुणं भवेत् श्वित्रमेव रक्तमांसाश्रयात् किलासमरुणश्च भवेदित्यर्थः। ननु कुष्ठस्य श्वित्रस्य च को भेद इत्यत आह--निर्दिष्टमपरिस्रावीति। श्वित्रमपरिस्रावि भवति कुष्ठन्तु स्रावि। अथ च त्रिधातूद्भवसंश्रयमिति। श्वित्रम् त्रयो धातवो वातपित्तकफास्तेभ्यः पृथग्भूतेभ्य उद्भवो यस्य तत्। अथ त्रयो धातवो रक्तमांसमेदांसि संश्रयोऽधिष्ठानं यस्य तत्। कुष्ठन्तु सान्निपातिकं सर्वधातुगतं भवतीति भेदः ॥

जो निदान कोढका कहा है, वही निदान श्वित्र कोढका भी जानना। श्वित्रज रुधिरके आश्रयसे किलास कहा जाता है और मांसके आश्रयसे अरुण कहा जाता है, इस कारण किलास और अरुण भी श्वित्रका भेद है। कोढ टपकता है और श्वित्र नहीं टपकता है। कोढ--वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है और श्वित्र एक दोषसे होता है। कोढ रसादि सम्पूर्ण धातुओंमें रहता है और श्वित्र रुधिर मांस तथा मेदमें रहता है। इतना ही श्वित्रमें और कोढमें अन्तर है ॥ ४७ ॥

अथ दोषभेदेन लक्षणभेदः।

वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत्। सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ ४८ ॥ सकण्डुकं क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चादिशेत्। वर्णेनैवेदगुभयं कुष्ठं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४९ ॥ अरुणम्--ईषल्लोहितम्। कमलपत्रवत् इत्यनेन मध्ये श्वेतमन्ते लोहितं बोधयति। घनम्--पुष्टम्। क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु च आदिशेत्।

जो वातसे श्वित्र हो तो उसमें रूक्षता तथा कुछेक लाली होती है तथा रुधिरमें रहता है। जो पित्तसे उत्पन्न हुआ हो तो कमलके पत्रके समान बीचमें सफेद तथा अन्तमें लाल होता है तथा दाहयुक्त, रोमोंको नष्ट करता है और मांसमें रहता है। जो कफसे उत्पन्न हुआ हो तो सफेद होता है एवं पुष्ट, भारी, खुजली सहित और मेदमें रहता है। श्वित्रदोषसे उत्पन्न हो अथवा व्रससे उत्पन्न हुआ हो तो भी दोषोंके भेदानुसार उसका वर्ण ऊपरहीके माफिक होता है। वातजनित श्वित्रसे पित्तज श्वित्र

विशेष भारी होता है । और पित्तजनित श्वित्रसे कफजनित श्वित्र विशेष भारी होता है ४८।४९

तथा च चरकः-अरुणं रक्तगे वाते ताम्रं पित्ते पलं गते । श्वेतं श्लेष्मणि मेद स्थे श्वित्रं कुष्ठं परापरम् ॥ इति ॥ उभयं द्विविधमपि श्वित्रं वर्णेन ईदृगेव । अरुणं ताम्रं श्वेतश्च दोषभेदात् । द्विविधं दोषजं व्रणजश्च । तथा च भोजः-" श्वित्रं तु द्विविधं विद्याद्दोषजं व्रणजं तथा " इति ॥ ५० ॥

चरक भी कहता है कि-"वायुसे उत्पन्न हुआ श्वित्र कुछेक लाल होता है और रुधिरमें रहता है। पित्तसे उत्पन्न हुआ श्वित्र अन्तमें लाल और मांसमें रहता है। कफसे उत्पन्न हुआ श्वित्र सफेद होता है और मेदमें रहता है। वातजनित श्वित्रसे पित्तजनित श्वित्र और पित्तजनित श्वित्रसे कफजनितश्वित्र विशेष भारी है"। भोज भी कहता है कि-'दोषसे उत्पन्न हुआ और व्रणसे उत्पन्न हुआ ऐसे श्वित्र दो प्रकारका है" ॥ ५० ॥

अथ श्वित्रस्यसाध्यासाध्यता ।

अशुक्लरोमाबहलमसृग्युक्तमथो नवम् । अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ५१ ॥

अबहलम्-तनु ॥

जो श्वित्र काले रोमोंका हो, पतला हो, रुधिरयुक्त हो, तत्कालका नवीन हो, और अग्निदग्ध न हो, वह साध्य है। इसके सिवाय अन्य श्वित्र असाध्य जानना ॥५१॥

अन्यच्च-गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम् । वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ५२ ॥

गुह्यम्-मेहनं भगश्च । तलम्-अत्र पादतलम् । जातम्-सुश्रुतेनान्ते जातिमिति सामान्यतो निर्दिष्टत्वात् । अपि अचिरन्तनम्-नवमपि ॥

अन्यत्र भी कहा है कि, जो श्वित्र लिंगमें, योनिमें, हाथके, पांवके तलुओंमें और होठमें उत्पन्न हुआ यदि नवीन भी हो, तो भी सिद्धिकी इच्छा करनेवाला वैद्य विशेष करके उसकी चिकित्सा न करे ॥ ५२ ॥

अथ कुष्ठादिरोगाणां संसर्गजत्वम् ।

प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात् । एकशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ५३ ॥ कण्डूकुष्ठोपदंशाश्च भूतोन्मादव्रणज्वराः । औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ ५४ ॥

प्रसंगः-मैथुनम् ।

मैथुनादि संसर्गसे, शरीरके स्पर्शसे, श्वासके मिलनेसे, एक शय्यापर सोनेसे, एक साथ भोजन करनेसे रोगीके वस्त्र, रोगीकी धारण कीहुई पुष्पमाला इत्यादि और रोगीके लगाये चन्दनादिके अनुलेपन करनेसे खुजली, कोढ, उपदंश, भूतोन्माद, व्रण, ज्वर और इसके समान अन्यान्य रोग भी एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यके शरीरमें प्राप्त होते हैं ॥५३-५४॥

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवेत् । अतो निन्दितरोगोऽयं कुष्ठं कष्टं प्रकीर्तितम् ॥ ५५ ॥ एतावता कुष्ठिना कुष्ठं सर्वथा प्रतिकरणीयं न तु उपेक्षणीयम् ॥

जो मनुष्य कुष्ठरोगसे मर जाता है, फिर उसके दूसरे जन्ममें भी कोड उत्पन्न होता है। अतएव यह कुष्ठ अत्यन्त निन्दितरोग है। इस कारण यह कष्टरूप कहा जाता है, इसके कहनेका प्रयोजन यह है कि, " कुष्ठरोगियोंके

कोढकी सर्वथा बहुत कालतक चिकित्सा करनी चाहिये, उपेक्षा नहीं करनी चाहिये" ॥ ५५ ॥

अथ कुष्ठचिकित्सा ।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु। पित्तोत्तरेषु लेपः सेको रक्तस्य मोचनं श्रेष्ठम् ॥ ५६ ॥

वातके उल्वणतावाले कुष्ठमें घृतका उपयोग करे, कफकी उल्वणतावाले कुष्ठमें वमन करावे और पित्तकी उल्वणतावाले कुष्ठमें लेप करावे, सेचन कराना तथा रुधिर निकलवाना, ये उत्तम हैं ॥ ५६ ॥

अथ पथ्यादिलेपः ।

पथ्याकरञ्जसिद्धार्थनिशावल्गुजसैन्धवैः । विडङ्ग सहितैः पिष्टैर्लेपो मूत्रेण कुष्ठनुत् ॥ ५७ ॥

अवल्गुजः--'बाकुची' इति लोके ॥

हरड, करंज, सरसौं, हलदी, बावची, सैंधानिमक और वायविडंग इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ ५७ ॥

अथ सोमराज्युद्वर्तनम् ।

सोमराजीभवं चूर्णं श्रृङ्गवेरसमन्वितम् । उद्वर्तनमिदं हन्ति कुष्ठमुग्रं कृतास्पदम् ॥ ५८ ॥

सोमराजी 'वाकुची' इति लोके ॥

बाबचीके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर शरीर पर लेप करनेसे उग्र और जमा हुआ कोढ भी नष्ट हो जाता है ॥ ५८ ॥

अथ पञ्चनिम्बकावलेहः ।

रसायनं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम् । मार्कण्डेयप्रभृतिभिर्यत्प्रागुक्तं महर्षिभिः ॥ ५९ ॥ पुष्पकाले तु पुष्पाणि फलकाले फलानि च । संगृह्य पिचुमन्दस्य त्वङ्मूलानि दलानि च ॥ ६० ॥ द्विरंशानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत् । त्रिफला त्र्यूषणं ब्राह्मी श्वदंष्ट्रारुष्कराग्नयः ॥ ६१ ॥ विडङ्गसारवाराहीलोहचूर्णं स्मृताः समाः । निशाद्वयावल्गुजकं व्याधिघातः सशर्करः ॥ ६२ ॥ कुष्ठमिन्द्रयवा पाठा चूर्णमेषां तु संयुतम् । खदिरासननिम्बानां घनक्काथेन भावयेत् ॥ ६३ ॥ सप्तधा पञ्चनिम्बं तु मार्कवस्य रसेन च । स्निग्धः शुद्धतनुर्धीमान्योजयेत्तच्छुभे दिने ॥ ६४ ॥ मधुना तिक्तहविषा खदिरासनवारिणा । लेह्यमुष्णाम्भसा वापि कोलवृद्ध्या पलं भवेत् । जीर्णे तस्मिन्समश्नीयात्स्निग्धं लघु हितश्च यत् ॥ ६५ ॥ विचर्चिकोदुम्बरपुण्डरीककपालदद्रूकिटिभालसादिकम् । शतारुविस्फोटविसर्पमालाः कफप्रकोपं त्रिविधं किलासम् ॥ ६६ ॥ भगन्दरश्लीपदवातरक्तजडान्ध्यनाडीव्रणशोषरोगान् । सर्वान्प्रमेहान्प्रदरांश्च सर्वान् दंष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति ॥ ६७ ॥ स्थूलोदरः सिंहकृशोदर स्यात्सुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात् । सदोपयोगादपि ये दशन्ति सर्पादयो यान्ति विनाशमाशु । जीवेच्चिरं व्याधिजराविमुक्तः शुभ्रेतरश्चन्द्रसमानकान्तिः ॥ ६८ ॥

अस्य अयमर्थः--निम्बस्य पुष्पफलत्वक्पत्रमूलानि सर्वाणि समुदितानि द्विगुणानि चूर्णितानि भृङ्गराजस्य रसेन सप्तवारान्भावयेत् ।

त्रिफलादीनि पाठान्तानि समुदितानि एकभागानि चूर्णितानि खदिरासननिम्बक्वाथेन भावयेत्। ततः सर्वमेकीकृत्य मध्वादिनाऽवलिह्यात् ॥

ब्रह्माकी कही हुई रसायनको कहता हूँ कि, जिससे अनेक रोगोंका नाश होता है। मार्कण्डेय आदि बडे बडे ऋषियोंने इसी रसायनको सेवन किया था। नीमके फल, फूल, छाल और पत्ते प्रत्येक दो दो तोले लेकर बारीक चूर्ण बनाकर उस चूर्णको भांगरेके रसमें सात बार भावना देवें हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, ब्राह्मी, गोखरू, भिलावे, चीता, वायविडंगका सार, वाराहीकन्द, लोहेका चूर्ण, हलदी, दारुहलदी, बाबची, अमलतास, मिश्री कूठ, इन्द्रजौ और पाढ ये सब समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर उस चूर्णको खैर, विजयसार और नीम इनके गाढे क्वाथकी भावना देवे पश्चात् भांगरेके रसकी क्रमानुसार सातभावना देवे पश्चात् भांगरेके रसकी क्रमानुसार सात भावना देवे। फिर इस हरड आदिक चूर्णका एक भाग और पूर्वोक्त पंचनिम्बका चूर्ण दो भाग लेकर इनको एकत्र करके सहतमें अथवा पंचतिक्त नामक घृतमें वा खैरमें तथा विजयसारके क्वाथमें अथवा गरम जलके साथ शुभ दिनमें चाटे, नित्य नित्य अडतालीस २ रत्ती बढाकर चार तोलेतक इस अवलेहको बढाना चाहिये। प्रथम विरेचन आदिसे शरीरको शुद्ध करके पश्चात् स्नेहन क्रियासे स्निग्ध करके फिर बुद्धिमान् पुरुष इस अवलेहका उपयोग करे। इस अवलेहके पचनेपर स्निग्ध, हलका और हितकारक अन्न भोजन करना चाहिये। इस अवलेहसे विचर्चिका, औदुम्बर, पुंडरीक, कपाल, दद्रू, किटिभ, अलसक आदि, शतारु, विस्फोटक, विसर्प, गंडमाला, कफका प्रकोप, तीन प्रकारका श्वित्र, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, जडता, अन्धता, नाडीव्रण, मस्तककी पीडा, सर्व प्रकारके प्रमेह, सर्वप्रकारके प्रदर, सर्व प्रकारके जंगम और स्थावर विष ये सब नष्ट होजाते हैं। इस अवलेहको सहतमें मिलाकर चाटनेसे बडे बडे मोटे पेटवाले मनुष्यभी सिंहके समान पतले पेटवाले हो जाते हैं और दृढ संधियोंवाले होजाते हैं। इस अवलेहको सेवन करनेवालेको जो सर्पादि जन्तु काटें तो वह सर्पादि तत्काल मरजाते हैं। इस अवलेहके उपयोग करनेसे मनुष्य बहुत कालतक जीता रहता है। रोग तथा जरा उत्पन्न नहीं होती और चन्द्रमाके समान शरीरकी शोभा बढती है ॥ ५९-६८ ॥

अथ स्वायंभुवगुग्गुलुः।

शशिलेखा पञ्चपलं तावद्गिरिजस्य गुग्गुलोस्तु दश। ताप्यस्य पलं त्रितयं द्वे लोहस्रावणीकयोश्च पले ॥ ६९ ॥ त्रिफलाकरञ्जपल्लवखदिरगुडूचीत्रिवृद्दन्त्यः। मुस्ताविडङ्गरजनीकुटजत्वङ्निम्बवह्निशम्पाकाः ॥ ७० ॥ एतै रचितां वटिकां मधुसंमिश्रां गिलेत्प्रातः। गोमूत्रेण च कुष्ठं नुदत्यसृग्वातमचिरेण ॥ ७१ ॥ श्वित्राणि पाण्डुरोगं विषमानुदरप्रमेहगुल्मांश्च। नाशयतिवलीपलितं योगः स्वायम्भुवो नाम्ना ॥ ७२ ॥

शशिलेखा--सोमराजी। गिरिजस्य--शिलाजतुनः। ताप्यस्य--सुवर्णमाक्षिकस्य। स्रावणीका--'मुण्डी' इति लोके ॥

बावची २० तोले, शिलाजीत ३० तोले, गूगल ४० तोले, सोनामाखी १२ तोले, लोहेका चूर्ण २ तोले, गोरखमुंडी २ तोले, नागरमोथा २ तोले वायविडंग २ तोले, हरड २ तोले, बहेडा २ तोले, आमले २ तोले, करञ्जके पत्ते २ तोले, खैर २ तोले, गिलोय २ तोले, निसोत २ तोले, जमालगोटे २ तोले, मोथा २ तोले, हलदी २ तोले, कुडेकी छाल २ तोले, नीमकी छाल २ तोले, चीता २ तोले और अमलतास २ तोले इन सबको एकत्र पीसकर सहतमें गोलियां बनालेवे। प्रातःकाल गोमूत्रके साथ

यह गोली खाय तो कोढ और वातरक्त तत्काल नष्ट होता है। इस स्वायंभुवनामक गूगलसे वली, पलित, श्वित्र, पांडु, उदरके विषम रोग, प्रमेह और गुल्म भी नष्ट होजाता है॥६९-७२॥

अथैकविंशतिको गुग्गुलः ।

चित्रकं त्रिफला व्योषमजाजी कारवी वचा। सैन्धवातिविषा कुष्ठं चव्यैला च यवासकम् ॥ ७३ ॥ विडङ्गान्यजमोदा च मुस्ता चामरदारु च। यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मानन्तु गुग्गुलोः ॥ ७४ ॥ संकुट्य सर्पिषा सार्द्धं गुटिकां कारयेद्भिषक्। प्रातर्भोजनकाले च खादेदग्निबलं यथा ॥ ७५ ॥ हन्त्यष्टादशकुष्ठानि क्रिमिदुष्टव्रणानि च । ग्रहण्यर्शोविकारांश्च मुखामयगलग्रहान् ॥ ७६ ॥ गृध्रसीमथ भग्नञ्च गुल्मं चापि नियच्छति। व्याधीन् कोष्ठगतांश्चापि जयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥ ७७ ॥

चीता, हरड, बहेडा, आमला' सोंठ मिरच, पीपल, जीरा, कलौंजी, वच, सेंधानिमक, अतीस, कूठ, चव्य, इलायची, जवासा, वायविडंग, अजमोद, नागरमोथा और देवदारु ये सब समान भाग और सबकी बराबर गूगल लेवे, सबको एकत्र घीमें खूब कूटकर गोलियां बना लेवें यह गोली प्रातःकाल भोजनके वख्त अग्निके बलानुसार खाय तो अठारह प्रकारके कोढ, कृमि, दुष्टव्रण, संग्रहणी, अर्शके विकार, मुखकी पीडा, गलग्रह, गृध्रसी, भग्न और गुल्म ये सब नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार विष्णु असुरोंको जीतते हैं, उसी प्रकार यह गूगल ऊपर कहे रोगोंको और कोठेमें प्राप्त हुए रोगोंको तत्काल जीतता है॥ ७७ ॥

अथ कैशोरकगुग्गुलुः ।

वातरक्ताधिकारोक्तः पुनः कैशोरकाभिधः। कुष्ठानां वातरक्तानां नाशनं परमौषधम् ॥ ७८ ॥

वातरक्तके अधिकारमें जो कैशोरक गूगल कहा है, उसको भक्षण करनेसे भी कोढ और वातरक्त नष्ट होजाता है ॥ ७८ ॥

अथामृतभल्लातकावलेहः ।

भल्लातकप्रस्थयुगं छित्त्वा द्रोणजले क्षिपेत् । प्रस्थद्वयं गुडूच्याश्च क्षुण्णं तत्राम्भसि क्षिपेत् ॥ ७९ ॥ चतुर्थांशावशेषं तु कषायमवतारयेत् । वस्त्रपूते कषाये तु वक्ष्यमाणं विनिक्षिपेत् ॥८०॥ शरावमात्रकं सर्पिर्दुग्धं स्यादाढकं तथा। सितां प्रस्थमितां दद्यात् प्रस्थार्द्धं माक्षिकं क्षिपेत् ॥ ८१ ॥ सर्वाण्येकत्र भाण्डे तु पचेन्मृद्वग्निना शनैः। सर्वद्रवे घनीभूते पावकादवतारयेत् ॥८२॥ तत्र क्षेप्याणि चूर्णानि ब्रूमो बिल्वविषामृताः। वाकुची चाथ दद्रुघ्नः पिचुमर्दो हरीतकी ॥८३॥ अक्षो धात्री च मञ्जिष्ठा मरिचं नागरं कणा। यवानी सैन्धवं मुस्तं त्वगेला नागकेसरम् ॥ ८४ ॥ पर्पटं पत्रकं वालमुशीरं चंदनं तथा गोक्षुरस्य च बीजानि कर्चूरो रक्तचन्दनम् ॥ ८५ ॥ पृथक्पलार्द्धमानानां चूर्णमेषामिह क्षिपेत्। पलमात्रमिदं प्रातःसमश्नीयाज्जलेन हि ॥ ८६ ॥ नाशयेदवलेहोऽयं पथ्यान्यन्नानि खादतः। कुष्ठानि वातरक्तानि सर्वाण्यर्शांसि सेवितः ॥ ८७ ॥ व्यायाममातपं वह्निमम्लं मांसं दधि स्त्रियम्। तैलाभ्यङ्गं तथाऽध्वानं नरो भल्लातकी त्यजेत् ॥ ८८ ॥

भिलावे १२८ तोले लेकर एक हजार चौवीस तोले जलमें पकावे फिर उसमें १२८ तोले गिलोयको कूटकर उसी जलमें डालकर पकावे, जब पकते पकते यह जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब इसको उतार लेवे इस क्वाथको वस्त्रमें छानकर उसमें ३२ तोले घी, २५६ तोले दूध, ६४ तोले मिश्री और ३२ तोले सहत डालकर एक उत्तम पात्रमें मन्द मन्द अग्निसे धीरे धीरे पकावे। जब यह पकते गाढा होजाय तब अग्निरससे उतारकर उसमें बेलगिरी, अतीस, गिलोय, बावची, पमार, नीम, हरड, बहेडा, आमला, मंजीठ, सोंठ, मिरच, पीपल, अजवायन, सैंधानिमक, नागरमोथा, दालचीनी, इसायची, नागकेसर, पित्तपापडा, तेजपत्र, सुगन्धवाला, खस, चन्दन, गोखरूके बीज, कचूर और लाल चन्दन ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर चूर्ण पीसकर मिलादेवे तो 'अमृतभल्लातकावलेह' सिद्ध होता है। इस अवलेहको नित्य प्रातःकाल चार तोले जलके साथ सेवन करे और पथ्य भोजन करे तो कोढ, वातरक्त और सब प्रकारकी बवासीर नष्ट होजाती हैं, इस भिलावेको सेवन करनेवाला मनुष्य कसरत, धूप, अग्नि, खट्टे पदार्थ, मांस, दही, मैथुन, तेलकी मालिस और मार्गका चलना त्याग करदेवे ॥ ७९-८८ ॥

अथ महाभल्लातकावलेहः।

निम्बगोपारुणाः कट्वी त्रायन्ती त्रिफला घनम्। पर्पटावल्गुजानन्तावचाखदिरचन्दनम् ॥ ८९ ॥ पाठाशुण्ठीशटीभार्ङ्गीपासाभूनिम्बवत्सकम्। श्यामेन्द्रवारुणी मूर्वाविडङ्गेन्द्रयवानलम् ॥ ९० ॥ हस्तिकर्णामृताद्रेकापटोलरजनीद्वयम्। कणारग्वधसप्ताह्वत्रिवृद्द्रेत्रोच्चटाफलम् ॥ ९१ ॥ मञ्जिष्ठालाङ्गलीराम्ना नक्तमालपुनर्नवाः। दन्तीबीजकसारश्च भृङ्गराजं कुरण्टकम् ॥ ९२ ॥ अङ्कोटकश्च शाखोटं द्विपलांशं पृथक्पृथक् गृह्णीयात्तानि सर्वाणि जलद्रोणे पचेच्छनैः ॥ ९३ ॥ अष्टमांशावशेषन्तु कषायमवतारयेत्। विधाय वाससा पूतं स्थापयेद्भाजने दृढे ॥९४॥ भल्लातकसहस्राणि छित्त्वा तु त्र्यर्मणाम्भसि। पचेदष्टावशेषं तत्कषायमवतारयेत् ॥ ९५ ॥ तच्च वस्त्रेन संशोध्य द्वौ कषायौ विमिश्रयेत्। गुडं शतपलं दत्त्वा लेहवत्तत् पचेच्छनैः ॥ ९६ ॥ भल्लातकसहस्रस्य मज्जानं तत्र निक्षिपेत्। त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ॥ ९७ ॥ सैन्धवं चन्दनं कुष्ठं दीप्यकश्च पलं पृथक्। सौगन्ध्यार्थं क्षिपेत्तत्र चातुर्जातं पलं पलम् ॥ ९८ ॥

गोपा 'श्वेतसरिवा' इति लोके। अरुणा—अतिविषा। अवल्गुजः—सोमराजी 'वाविची'। अनन्तादुरालभा। चन्दनं श्वेतम्। भार्ङ्ग्या अलाभे कण्टकारीमूलं गृह्णीयात्। श्यामा-कृष्णसारिवा। हस्तिकर्णः-हस्तिकन्दः। सप्ताह्वा छतिम्। द्रेका—'बकाइन' इति लोके। वेत्रम्—कृष्णवत्र जलवेतसश्च। उच्चटाफलम्-श्वेतगुंजाफलम्। पुरण्टकःपीतझिण्टी। अंकोटकः 'ओल' इति लोके। शाखोटं 'साओडा' इति लोके। दीप्यकम्- यवानी ॥

नीम, सफेद सारिवा, अतीस, बावची, कुटकी, त्रायमाण, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, पित्तपापडा, धमासा, वच, खैर, सफेद चन्दन, पाढ, सोंठ, कचूर, भारंगी, अगर भारंगी न मिले तो कटेरीकी जड लेवे, अडूसा, चिरायता, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, इन्द्रायन, चुरनहार, वायविडंग, कुडेकी छाल, चीता, हस्तीकन्द, गिलोय, बक्कायन, कडवे,

परवल, हलदी, दारुहलदी, पीपल, अमलतास, सतौना, निसोत, वेंत, सफेद चौंटलीके फल, मंजीठ, राजपीपल, रायसन, करंज, पुनर्नवा, जमालगोटा, विजयसार, भांगरा, पियावांसा, अंकोल और सिहोडा ये प्रत्येक पदार्थ अलग अलग आठ आठ तोले लेकर सबको एक हजार चौबीस तोले जलमें धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निसे पकावे जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रहजाय, तब उसको उतारकर वस्त्रसे छान मजबूत बासनमें भर कर रख देवें फिर एक हजार भिलावोंको छीलकर ३०७२ तोले जलमें पकावे। जब पकते पकते आठवां भाग जल बाकी रह जाय तब उस क्वाथको वस्त्रसे छानकर पहिले क्वाथमें मिला देवे। फिर इस क्वाथमें चारसौ तोले गुड डालकर धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निसे सीरेके समान पकावे। फिर इसमें एक हजार भिलावोंकी मींग डाले तथा सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वाडविडंग, चीता, सैंधानिमक चन्दन, कूठ और अजवायन ये प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले पीसकर मिला देवें। सुगंधित करनेके लिये दालचीनी, तेजपत्र, इलायची और नागकेसर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डाल देवे तो यह 'महाभल्लातकावलेह' है॥८९-९८॥

महाभल्लातको ह्येष महादेवेन भाषितः। प्राणिनां हितकामेन जयेच्छीघ्रं प्रयोज़ितः ॥ ९९ ॥ श्वित्रमौदुम्बरं दद्रुमृक्षजिह्वन्तु काकणम् । पुण्डरीकं सचर्माख्यं विस्फोटं रक्तमण्डलम् ॥ १०० ॥ कण्डूं कापालकं कुष्ठं पामानञ्च विपादिकाम् । वातरक्तं षडर्शांसि पाण्डुरोग व्रणान् कृमीन् ॥ १०१ ॥ रक्तपित्तमुदावर्तं कासं श्वासं भगन्दरम् । सदाऽऽभ्यासेन पलितमामवातं सुदुस्तरम् ॥ १०२ ॥ निर्धन्त्रणस्तु कथितो विहाराहारमैथुने । कुरुते परमां कान्तिं प्रदीप्तं जठरानलम् ॥ १०३ ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं छिन्नतोयं पयोऽथवा । भोजने तु सदा त्याज्यमुष्णमम्लं विशेषतः ॥ १०४ ॥

यह महादेवजीने पूर्वकालमें प्राणियोंकी हितकी इच्छासे कहा था। इस अवलेह सेवन करनेसे श्वित्र, औदुम्बर, दाद, ऋक्षजिह्व, काकणक, पुंडरीक, चर्मदल, गजचर्म, विस्फोट, रक्तमंडल, खुजली,, कापालकुष्ट, पामा, विपादिका, वातरक्त, छः प्रकारकी बवासीर, पांडुरोग, व्रण, कृमि, रक्तपित्त, उदावर्त, खाँसी, श्वास और भगन्दर ये सब रोग तत्काल नष्ट होजाते हैं। इस अवलेहका नित्य अभ्यास करनेसे सफेद बाल नष्ट होकर काले निकलते हैं और दुस्तर आमवात भी नष्ट होजाता है। इस अवलेहको सेवन करनेवाले मनुष्यको आहार विहार और मैथुन इनमें विशेष परहेज रखनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। यह अवलेह कांतिको उत्तम करता है और जठराग्निको दीप्त करता है। इस अवलेहको सेवन करनेक पश्चात् गिलोयके जलका अथवा दूधका अनुपान करे और भोजनमें विशेष करके गरम चीजें और खटाईका त्याग कर देवें ॥ १०४ ॥

अथ लघुमंजिष्ठादिक्काथः।

मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचा दारुनिशामयाः । निम्बश्चैषां कृतः क्काथः सर्वकुष्ठं विनाशयेत् ॥ १०५ ॥ वातरक्तं तथा कण्डूं पामानं रक्तमण्डलम् । दद्रुं विसर्पं विस्फोटं पानाभ्यासेन नाशयेत् ॥१०६॥

मंजीठ, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, वच, देवदारु, हलदी, कूठ और नीम इनका क्काथ बनाकर नित्य पीनेसे सर्व प्रकारके कोढ नष्ट होजाते हैं। इस क्वाथका अभ्यास कर-

नेसे वातरक्त, खुजली, पामा, रक्तमंडल, दाद, विसर्प, और विस्फोटक इन सबका नाश होता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

अथ मध्यमंजिष्ठादिक्वाथः।

मञ्जिष्ठा वाकुची चक्रमर्दश्च पिचुमर्दकः। हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शतावरी ॥ १०७ ॥ बला नागबला यष्टीमधुकं क्षुरकोऽपि च। पटोलस्य लतोशीरं गुडूची रक्तचन्दनम् ॥१०८॥ मञ्जिष्ठादिरयं क्वाथः कुष्ठानां नाशनः परः। वातरक्तस्य संहर्ता कण्डूमण्डलनाशनः ॥ १०९ ॥

मंजीठ, वावची, चकवड, नीम, हरड, हलदी, आमले, अडूसा, सतावर, खिरैंटी, गंगेरन, मुलहठी, गोखरू, परवलकी बेल, खस, गिलोय और लालचन्दन इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे कोढ, वातरक्त, खुजली और मंडलका नाश होजाता है ॥ १०७-१०९ ॥

अथ बृहन्मञ्जिष्ठादिक्वाथः।

मञ्जिष्ठाकुटजाऽमृताघनवचाशुण्ठीहरिद्राद्वयं क्षुद्रारिष्टपटोलतिक्तकटुकाभर्ङ्गीविडङ्गाग्निकम्। मूर्वादारुकलिङ्गभृङ्गमगधात्रायन्तिपाठावरीःगायत्रीत्रिफलाकिरातकमहानिम्बासनारग्वधाः ॥ ११० ॥ श्यामावल्गुजचन्दनं वरुणकं दन्तीकशाखोटकं वासा पर्पटसारिवाप्रतिविषाऽनन्ताविशालाजलम्। मञ्जिष्ठाप्रथमं कषायमिति यः संसेवते तस्य तु त्वग्दोषाः सुचिरेण यान्ति विलयं कुष्ठानि चाष्टादश ॥ १११ ॥ नाशंगच्छति वातरक्तमखिला नश्यन्ति रक्तामया वीसर्पस्त्वचि शून्यता नयनजा रोगाः प्रशाम्यन्ति च ॥ ११२ ॥

अरिष्ट.-निम्बः। कलिङ्गः- इन्द्रयवः। भृङ्गः 'भंगरीघा' इति लोके। वरी-शतावरी। गायत्री-खदिरः। असनम्-विजपसारः। श्यामा प्रियंगुः। चन्दनमत्र रक्तं ग्राह्यम्। सारिवा (साइ) इति लोके। अनन्तादुरालभा। विशाला-इन्द्रवारुणी जलम्। (नेत्रवाला) ॥

मंजीठ, कुडकी छाल, गिलोय, नागरमोथा, वच, सोंठ, हलदी, दारुहलदी, कटेरीका पंचांग, नीम, परवल, कुटकी, भारंगी, वायविडंग, चित्रक, चुरनहार, देवदारु, भांगरा, पीपल, त्रायमान, पाढ, सतावर, खैर, हरड, बहेडा, आमला, चिरायता, बकायन, विजयसार, अमलतास, फूलप्रियंगू, वावची, लालचन्दन, वरना, जमालगोटा, सिहोडा, पित्तपापड, सारिवा, अतीस, धमासा, इन्द्रायन और सुगन्धवाला इनका क्वाथ बनाकर नित्य पीनेसे बहुत पुराने चर्म विकार, अठारह प्रकारके कोढ, वातरक्त, सम्पूर्ण रुधिरके रोग, विसर्प, त्वचाकी जडता और नेत्रके रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ११०-११२ ॥

अथ लघुमरिचाद्यतैलम्।

मरिचं त्रिवृता मुस्तं हरितालं मनःशिला। देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ ११३ ॥ विशाला करवीरश्च क्षीरमर्कसमुद्भवम्। गोमयस्य रसं कुर्यात्प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ११४ ॥ विषस्यार्द्धपलं देयं तैलं प्रस्थमितं कटु। पचेच्चतुर्गुणे नीरे गोमूत्रे द्विगुणे तथा ॥ ॥ ११५ ॥ मरिचाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात्कुष्ठनाशनम्। एतस्याभ्यङ्गतः श्वित्रं विवर्णं तत्क्षणाद्भवेत् ॥ ११६ ॥ तैलमेतज्जयेत्कण्डूं पामां सिध्मं विचर्चिकाम्। पुण्डरीकं तथा दद्रूं शून्यतां नित्यसेविनाम् ॥ ११७ ॥

कालीमिरच, निसोत, नागरमोथा, हरिताल, मैनशिल, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, बालछड, चन्दन, इन्द्रायन, कनेर, आकका दूध और गायके गोबरका रस ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेवे, वत्सनाभ विष दो तोले और सरसोंका तेल ६४ तोले भर लेवे, इन सबको चौगुने जलमें तथा दुगुने गोमूत्रमें पकावे तो यह 'लघुमरिचाद्य तैल' सिद्ध होता है । इस तेलकी मालिश करनेसे कुष्ठ नष्ट होजाता है । इस तेलके अभ्यंगसे तत्काल श्वित्रकुष्ठका रंग बदल जाता है । इसको नित्य सेवन करनेसे खुजली, पामा, सिध्म, विचर्चिका, पुंडरीक, दाद और शून्यता नष्ट होती है ॥ ११३–११७ ॥

अथ महामरिचाद्यतैलम् ।

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः । देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ ११८ ॥ विशाला करवीरश्च हरितालं मनःशिला । चित्रकं लाङ्गली मुस्तं विडङ्गं चक्रमर्दकः ॥ ॥ ११९ ॥ शिरीषःकुटजो निम्बः सप्तपर्णोऽमृता स्नुही । श्यामाको नक्तमालश्च खदिरो बाकुची वचा ॥ १२० ॥ ज्योतिष्मती च पलिका विषं द्विपलिकं भवेत् । आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रञ्च चतुर्गुणम् ॥ १२१ ॥ मृत्पात्रे लोहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । मरिचाद्यमिदं तैलं महन्मुनिभिरीरितम् ॥ १२२ ॥ भिषगेतेन तैलेन म्रक्षयेत्कौष्ठिकान् व्रणान् । पामाविचर्चिकादद्रूकण्डूविस्फोटकानि च ॥ १२३ ॥ वलयः पलितं छाया नीलं व्यङ्गं तथैव च । अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यञ्च जायते ॥१२४॥ प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यं प्रदीयते । तासामपि जरां प्राप्य न स्यातां स्खलितौ स्तनौ ॥ १२५ ॥ बलीवर्दस्तुरंगो वा गजो वायुप्रपीडितः । त्रिभिरभ्यञ्जनैरस्य भवेन्मारुतविक्रमः॥१२६॥

ज्योतिष्मती 'मालकांगुनी' इति लोके ॥

कालीमिरच, निसोत, जमालगोटा, आकका दूध, गोबरका रस, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, बालछड, कूठ, चन्दन, इन्द्रायन, कनेर, हरिताल, मैनशिल, चीता, कलिहारी, नागरमोथा, वायविडंग, चकवड, सिरस, इन्द्रजौ, नीम, सतौना, गिलोय, थूहर, श्यामाक, करंज, खैर, बाकुची, बच और मालकांगुनी प्रत्येक चार चार तोले लेवे, वत्सनाभ आठ तोले लेवे, सरसोंका तेल दोसौ छप्पन तोले, लेवे और गोमूत्र इससे चौगुना लेवे, इन सब पदार्थोंको लोहेके पात्रमें अथवा मट्टीके पात्रमें मन्द मन्द अग्निसे धीरे धीरे पकावे तो यह 'महामरिचाद्यतैल' सिद्ध होता है । मुनियोंके कहे हुए इस तैलसे वैद्य कोढके व्रणोंपर मालिस करावे । इस तेलके अभ्यंगसे पामा, विचर्चिका, दाद, कण्डू और विस्फोटक ये सब नष्ट होते हैं । तथा शरीरमें वलियोंका पडना, विना समयही बालोंका सफेद होजाना, छाया, नीलिक, झाईं ये सब नष्ट होकर सुकुमारता उत्पन्न होती है । इस तेलका स्त्रियोंको जो पहिली अवस्थामें नस्य दिया जाय तो उनके वृद्ध अवस्थामें भी स्तन नहीं गिरते हैं । बैल, घोडा और हाथी जो वायुसे पीडित हों तो उनको इस तेलका तीनवार अभ्यंजन किया जाय तो वे पवनके वेगके समान वेगवाले होजाते हैं ॥ ११८–१२६ ॥

अथ तालकेश्वररसः ।

तालताप्यशिलासूतटङ्कणाः सिन्धुसंयुताः । गन्धको द्विगुणःसूताच्छंखचूर्णञ्च तत्समम् ॥ १२७ ॥ जम्बीराद्भिर्दिनं वृष्ट्वा त्रिंशदंशं विषं क्षिपेत् । अस्य माष-

द्वयं खादेन्महिषीघृतसंयुतम् ॥ १२८ ॥ मध्वाज्यैर्वाकुचाबीजकर्षं लिह्यात्ततः परम् । तालकेश्वरनामाऽयं सर्वकुष्ठ हरो रसः ॥ १२९ ॥

हरिताल, सोनामाखी, मैनशिल, पारा, सुहागा, सैंधानिमक, पारेसे दूना गन्धक और गन्धकके बराबर शंखका चूर्ण इनको एक दिन तक नींबूके रसमें खरल करे और उसमें तीस भाग वत्सनाभ मिलावे तो यह 'तालकेश्वररस सिद्ध होता है । इस रसको भैंसके घीके साथ बारह रत्ती प्रमाण खायें और इसके ऊपर सहत तथा घीके साथ एक तोला बावचीके बीजोंका चूर्ण खायें तो सर्व प्रकारके कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं ॥ १२७–१२९ ॥

अथ गलितकुष्ठारिरसः ।

रसो बलिस्ताम्रमयः पुरोऽग्निः शिलाजतु स्याद्विषतिन्दुकश्च । वरा च तुल्यं गगनश्च सर्वैः करञ्जबीजं सचतुष्टयश्च ॥ १३० ॥ संमर्द्य सर्वं मधुना घृतेन घृतस्य पात्रे निहितं प्रयत्नात् । कर्षं भजेत्प्रत्यहमस्य पथ्यं शाल्योदनं दुग्धमधु त्रयश्च ॥ १३१ ॥ विशीर्णकर्णाङ्गुलिलासिकोऽपि भवेदनेन स्मरतुल्यमूर्तिः । दारापरित्याग इह प्रदिष्टो जलौदनं तत्र निबद्धमूले ॥ १३२ ॥

पुरः-गुग्गुलुः अग्निः चित्रकम् । विषतिन्दुकः-'कुचिला' । वरा-त्रिफला । रसादित्रिफलान्तं सर्वं तुल्यम् । गगनम्—अभ्रकम् । करञ्जबीजञ्च पृथक् चतुर्गुणं रसात् । तत्र कुष्ठ बद्धमूले सति जलौदनमेव पथ्यम् ॥

पारा, गन्धक, तांबेकी भस्म, लोहेकी भस्म, गूगल, चीता, शिलाजीत, कुचिला, हरड, बहेडा और आमले ये सब समान भाग लेवें । अभ्रक और करंजके बीज पारेसे चौगुने लेवें । इन सब पदार्थोंको एकत्र करके सहत और घीमें खरल करके घीके चिकने बर्तनमें भरकर रखदेवे तो यह 'गलितकुष्ठारिरस' सिद्ध होता है । इस रसको नित्य एक तोलाभर खाय और इसके ऊपर लाल शालि चावलोंका भात, दूध और सहत इन तीनों पदार्थोंका पथ्य देवें । जिसके कान, अंगुली और नाक गल गई हों, वह मनुष्य भी इसके प्रभावसे कामदेवके समान शरीरवाला हो जाता है । इस रसको सेवन करनेवाले मनुष्यको मैथुनका त्याग करना चाहिये । जो कोढ दृढ जडवाला हो गया हो तो इस रसके ऊपर जलका तथा भातका पथ्य देवे ॥ १३०–१३२ ॥

अथ सिध्मचिकित्सा ।

कुष्ठं मूलकबीजं पियङ्गवः सर्षपास्तथा रजनी । एतत्केसरषष्ठं निहन्ति चिरकालजं सिध्म ॥ १३३ ॥

कूठ, मूलीके बीज फूलप्रियंगू, सरसों, हलदी और नागकेशर इन छः पदार्थोंका लेप करनेसे बहुत दिनोंका भी सिध्म नष्ट हो जाता है, इस लेपको 'केशरषट्क' ऐसा कहते हैं ॥ १३३ ॥

शिखरीसेन पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्मः । क्षारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ १३४ ॥

चिरचिटेके रससे अथवा केलेके क्षारसे वा हलदीको मिलाकर मूलीके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे सिध्म नष्ट होजाता है ॥ १३४ ॥

दार्वीमूलकबीजानि तालकं सुरदारु च । ताम्बूलपत्रं सर्वाणि कार्षिकाणि पृथक्पृथक् ॥ १३५ ॥ शङ्खचूर्णं तु शाणं स्यात्सर्वाण्येकत्र वारिणा । प्रलेपयेत्प्रलेपोऽयं सिध्मनाशन उत्तमः १३६

दारुहलदी, मूलीके बीज, हरिताल, देवदारु और नागरवेलके पान ये प्रत्येक पदार्थ एक

एक तोला लेवे और शंखका चूर्ण चौबीस रत्ती प्रमाण लेवें । इन सबको एकत्रित करके जलमें पीसकर लेप करनेसे सिध्म नष्ट होजाता है । यह प्रलेप सिध्मनाश करनेके लिये उत्तम है ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

अथ चर्मदलचिकित्सा ।

सलिले चाम्रपेशी तु किञ्चित्सैन्धवसंयुता । ताम्रपात्रे विनिर्घृष्टा लेपाच्चर्मदलापहा ॥ १३७ ॥

आम्रपेशी—'आमचूर' इति लोके ॥

आमचूरको तांबेके बर्तनमें घिसकर उसमें कुछेक सैंधानिमक डालकर लेप करनेसे चर्मदल नष्ट हो जाता है ॥ १३७ ॥

सलिलेन तु शुष्काणि घृष्ट्वा धात्रीफलानि च । कराभ्यां सुखमाप्नोति नरश्चर्मदलान्वितः ॥ १३८ ॥

सूखे हुए आमलोंको जलमें हाथोंसे घिसकर लेप करनेसे चर्मदलवाले रोगियोंको सुख प्राप्त होता है ॥ १३८ ॥

अथ पामाचिकित्सा ।

जीरकस्य पलं पिष्टं सिन्दूरार्द्धपलं तथा । कटुतैलं पचेदाभ्यां सर्वपामाहरं परम् ॥ १३९ ॥

चार तोले जीरक और उसमें दो तोले सिन्दूर सरसोंके तेलमें पकावे । उस तेलको मलनेसे सर्व प्रकारकी पामा अच्छी प्रकारसे नष्ट हो जाती है ॥ १३९ ॥

अथादित्यपाकतैलम् ।

मञ्जिष्ठात्रिफलालाक्षालाङ्गली रात्रिगन्धकैः । चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं पामाहरं परम् ॥ १४० ॥

मजीठ, हरड, बहेडा, आमले, लाख, कलिहारी, हलदी और गन्धक इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल 'आदित्यपाक' कहा जाता है इससे पामा अच्छी प्रकारसे नष्ट होजाती है ॥ १४० ॥

अथ सैंधवादिलेपः ।

सैन्धवं चक्रमर्दश्च सर्षपाः पिप्पली तथा । आरनालेन संपिष्टाः पामाकण्डूहराः पराः ॥ १४१ ॥

सैंधानमक, चकवड, सरसों और पीपल इनको आरनालनामक कांजीमें पीसकर लेप करनेसे छाजन और सब प्रकारकी खुजली नष्ट होजाती है ॥ १४१ ॥

अथ कच्छूचिकित्सा ।

तत्रार्कतैलम् ।

अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतम् । नाशयेत्सार्षपं तैलं पामाकच्छूविचर्चिकाः ॥ १४२ ॥

हल्दीका कल्क डालकर आकके पत्तोंके रसमें पकाया हुआ सरसोंका तेल पामा, कच्छू और विचर्चिकाको नष्ट करता है ॥१४२॥

अथ कच्छूराक्षसतैलम् ।

मनःशिलालं कासीसं गन्धाश्म सिन्धुजन्म च । स्वर्णक्षीरी शिलाभेदी शुण्ठी कुष्ठश्च मागधी ॥ १४३ ॥ लाङ्गली करवीरश्च दद्रुघ्नः क्रिमिहाऽनलः । दन्ती निम्बदलं चैभिः पृथक्कर्षमितैर्भिषक् ॥ १४४ ॥ कल्की कृत्य पचेत्तैलं कटु प्रस्थद्वयोन्मितम् । अर्कसेहुण्डदुग्धेन पृथक्पलमितेन च ॥ १४५ ॥ गोमूत्रस्याढकेनापि शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । अभ्यङ्गेन हरेदेतत् कृच्छ्रदुःसाध्यतामपि ॥ १४६ ॥ पामानश्च तथा कण्डूं त्वग्व्याधिरुचिरामयान् । कच्छूराक्षसनामेदं तैलं हारीतभाषितम् ॥ १४७ ॥

मैनशिल, हरिताल, हीराकसीस, गन्धक, सैंधानिमक, चोक, पाखानभेद, सोंठ, कूठ, पीपल, कलिहारी, कनेर, चकवड, वायविडंग, चीता, जमालगोटा और नीमके पत्ते ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर इनके कल्कसे एकसौ अठाईस तोलेभर सरसोंका तेल, पकावे। फिर चार तोले आकका दूध, चार तोले थूहरका दूध और दो सौ छप्पन तोले गोमूत्रसे इसको कोमल अग्निसे धीरे धीरे पकावे तो यह 'कच्छूराक्षस' नामक तैल सिद्ध होता है। इस तेलकी मालिस करनेसे असाध्य कच्छू भी नष्ट हो जाती है। हारीतमुनिका कहा हुआ वह तेल पामा, खुजली, चर्मके रोग और रुधिरके विकारोंको दूर करता है॥ १४३-१४७॥

अथ कृतमालादिकल्कः।

कृतमालस्य पत्राणि नक्तमालदलानि च। द्रोणपुष्पीपलाशानि सर्षपा राजिका निशा॥ १४८॥ कुटजो मधुकं मुस्तं नागरं रक्तचन्दनम्। धात्री यवानिका दारु कल्क एष प्रकल्पितः॥ १४९॥ उद्वर्तनादयं कल्कः कटुतैलसमन्वितः। कण्डूं पामां हरत्येव शीतपित्तादिकान् गदान्॥१५०॥

अमलतासके पत्ते, करंजके पत्ते, पमारके पत्ते, सरसों, राई, हलदी, इन्द्रजौं, मुलहठी, नागरमोथा, सोंठ, लालचन्दन, आमले, अजवायन और देवदारु इनका कल्क बनाकर सरसोंके तेलमें पकाकर अच्छी प्रकार लगावे तो खुजली, पामा और शीतपित्त आदि रोग अवश्य नष्ट होजाते हैं॥ १४८-१५०॥

अथ दद्रुचिकित्सा।

कुष्ठं क्रिमिघ्नो दद्रुघ्नो निशासैन्धवसर्षपाः। अम्लपिष्टः प्रलेपोऽयं दद्रुकुष्ठनिषूदनः॥ १५१॥

कूठ, वायविडंग, पमार, हलदी, सैंधानिमक और सरसों इनको नींबूके रसमें पीसकर लगानेसे दाद तथा कोढ होजाता है॥ १५१॥

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः। त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलां दद्रुश्च कुष्ठश्च विनाशयन्ति॥ १५२॥

कुठेरकः-बाबुइतुलसी इति लोके॥

दूध, हरड, सैंधानिमक, पमारके बीज और बावची इनको कांजीमें तथा तक्रमें पीसकर तीन बार लेप करनेसे दृढमूलवाले दाद तथा कोढ भी नष्ट हो जाते हैं॥ १५२॥

गण्डिलकाख्यं तृणमपि सिद्धार्थकश्च स्नुहीपत्रम्। त्रयमपि समभागं स्यादेषां द्विगुणस्तु: दद्रुघ्नः॥ १५३॥ अष्टगुणे गोतक्रे तानि प्रकृतानि सन्दध्यात्। दिवसत्रितयादूर्ध्वं सम्यङ्निष्पेषयेत्तानि॥ १५४॥ वन्योपलेप घृष्ट्वा च दद्रूमालेपयेत्तेन। सप्ताहाल्लेपोऽयं दद्रूमचिराद्विनाशयति॥ १५५॥

गंडलिक घास, सरसों, और थूहरके पत्ते इन सबको समान भाग लेवे और इनसे दुगुना चकवडा लेवें, इन सबको अठगुनी छाछमें मिला देवें। फिर तीन दिनके बाद इनको अच्छी प्रकार पीसकर प्रथम दादको अरने उपलोंसे रगडकर उक्त औषधिका लेप करे तो तत्काल सात दिनके भीतर दादका नाश होता है॥ १५३-१५५॥

अथ श्वित्रकुष्ठचिकित्सा।

विभीतकत्वङ्मलपूजटानां क्वाथेन पीतं गुडसंयुतेन। अवल्गुजं बीजमपाकरोति श्वित्राणि कृच्छ्राण्यपि पुण्डरीकम्॥ १५६॥

मलपूः--काकोदुम्बरिका। अवल्गुजं सोमराजी॥

बहेडेकी छाल, कठूमरकी जड इनके काथमें गुडडालकर वावचीके कल्कके साथ पीवे तो अत्यन्त कष्टदायक श्वित्र और पुंडरीक भी नष्ट होजाता है ॥ १५६ ॥

कुडवमवल्गुजबीजं हरितालचतुर्थभागसम्मिश्रम् ॥ १५७ ॥ मनःशिलातोलकार्द्धं गुञ्जाफलमग्निमूलञ्च । मूत्रेण गवां पिष्टं सवर्णताकारकं श्वित्रे ॥ १५८ ॥ श्वेतं कुष्ठं व्रजत्यस्तं पक्षार्द्धेनाधिकेन वा । गिरिकर्ण्यास्तु कृष्णाया मूलेन परिलेपितम् ॥ १५९ ॥

गिरिकर्णी--नीला अपराजिता ॥

वावचीके बीज १६ तोले, हरिताल ४ तोले ६ मासे मैनशिल, चौंटली और चीतेकी जड इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्र नष्ट होकर त्वचाका रंग शरीरके वर्णके समान होजाता है । काली अपराजिताकी जडका कल्क बनाकर उसका लेप करनेसे आठ दिनमें वा कुछ अधिक दिनोंमें श्वेतकुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ १५७-१५९ ॥

क्काथः सवाकुचीचूर्णो धात्रीखदिरसारयोः । शंखेन्दुकुन्दधवलं श्वित्रं संसेवितो हरेत् ॥ १६० ॥ मथितेन पिबेच्चूर्णं काकोदुम्बर्यवल्गुजम् । तैलाक्तो घर्मसेवी स्यात्तक्राशी श्वित्रहृद्भवेत् ॥ १६१ ॥

मथितम्--निर्जलं विलोडितं दधि । तक्रम्-चतुर्थांशजलयुतं वस्त्रपूतं दधि ॥

आमलोंका तथा खैरसारका क्वाथ बनाकर उसमें वावचीका चूर्ण डालकर नित्य पीनेसे शंख, कुन्द और चन्द्रमाके समान श्वेत कुष्ठ नष्ट होजाता है । कठूमर तथा वावचीका चूर्ण बनाकर विना पानी मिले दहीमें मिलाकर पीवे, तेलकी मालिस करके धूपमें बैठा रहे और छाछको पीवे तो सफेद कोढ नष्ट हो जाता है ॥ १६०-१६१ ॥

अथ सोमराजीघृतम् ।

चतुःपलं सोमराज्याः खदिरस्य पलं तथा । पटोलमूलं त्रिफला त्रायमाणा दुरालभा ॥ १६२ ॥ कल्कार्थं कटुकं चापि कार्षिकात्सूक्ष्मपेषितात् । पलद्वयं कौशिकस्य शुद्धस्यात्र प्रदापयेत् ॥ ॥ १६३ ॥ सिद्धं सर्पिरिदं श्वित्रं हन्याद्दम्भ इवानलम् । अष्टादशानां कुष्ठानां परमं च तदौषधम् ॥१६४॥ सोमराजीघृतं नाम निर्मितं ब्रह्मणा पुरा । लोकानामुपकाराय श्वित्रकुष्ठादिरोगिणाम् ॥ १६५ ॥

इति कुष्ठनिदानचिकित्साधिकारः ॥

वावची १६ तोले, खैरसार, ४ तोले, परवलकी जड, हरड, बहेडा, आमला, त्रायमाण, धमासा और कुटकी प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर बारीक पीसकर उसमें आठ तोले गूगल मिला देवे, फिर इस कल्कसे घृतको पकावे तो यह 'सोमराजीघृत' सिद्ध होता है । जिस प्रकार जल अग्निको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार यह घी श्वित्रको नष्ट कर देता है । यह अठारह प्रकारके कोढोंकी उत्तम औषधि है । श्वित्र तथा कुष्ठ आदि रोगोंसे पीडित मनुष्योंके हितके लिये ब्रह्माने पूर्वकालमें इस सोमराजी घृतको बनाया था ॥ १६२-१६५ ॥

इति कुष्ठाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ शीतपित्तोदर्द-कोठोत्कोठाधिकारः ।

तत्र शीतपित्तादीनां सन्निकृष्टविप्रकृष्टनिदानं सम्प्राप्तिश्च ।

शीतमारुतसम्पर्कात्प्रवृद्धौ कफमारुतौ । पित्तेन सह सम्भूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥ ॥ १ ॥ शीतमारुतसम्पर्कात् पित्तेन

स्वहेतुदुष्टेन सम्भूय संगम्य बहिस्त्वचि अन्तः रुधिरादौ विसर्पतः प्रसरतः ॥

शीतल पवनके लगनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए कफ और वायु अपने कारणोंसे दूषित हुए पित्तके साथ मिलकर त्वचा तथा रुधिर आदिमें फैलते हैं, उससे शीतपित्तादि रोग होते हैं ॥ १ ॥

अथ शीतपित्तपूर्वरूपम्।

पिपासारुचिहृल्लासदेहसादांगगौरवम् । रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम्॥२॥

तृषा, अरुचि, उपकाई, शरीरमें ग्लानि, अंगोंमें भारीपन और नेत्रोंमें लाली ये शीतपित्तादिके पूर्व लक्षण हैं ॥ २ ॥

शीतपित्तलक्षणम्।

वरटीदष्टसंस्थानः शोथः सञ्जायते बहिः। सकण्डूतोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥ उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे। वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥

ततैयाके काटनेके समान, खुजलीयुक्त, बहुत पीडायुक्त, वमनसहित, ज्वरसंयुक्त और दाहसहित जो त्वचामें चकत्तेसे पडजाते हैं, वह 'शीतपित्त' कहा जाता है और उसमें वायुकी अत्यन्त अधिकता होती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथोदर्दलक्षणम्।

सोत्संगैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः। शैशिरः श्लेष्मबहुल उदर्द इति कीर्तितः ॥ ५ ॥

सोत्सङ्गैः-मध्यनिम्नैःशशिरः-शिशिर्तुभवः॥

बीचमें नीच, लालीयुक्त, खुजलीवाले जो चकत्ते शिशिर ऋतुमें होते हैं, वे 'उदर्द' कहे जाते हैं और उनमें कफकी अधिकता होतीहै ५

अथ कोठोत्कोठलक्षणम्।

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः। मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ॥ उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥

वमन बराबर ठीक खुलकर नहीं होनेसे, बढकर और ऊपरको उछलकर आए हुए पित्तकफ तथा अन्नके रोकनेसे खुजली और लालीयुक्त जो बहुतसे चकत्ते उत्पन्न होते हैं, वे 'कोठ' कहे जाते हैं। एक चकत्ता नष्ट होकर दूसरा चकत्ता उत्पन्न होता है, इस कारण यह 'उत्कोठ' और 'कोठ' कहाजाता है ॥ ६ ॥

अथ शीतपित्तादिचिकित्सा।

शीतपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः। त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्च प्रशस्यते ॥ ७ ॥ अभ्यङ्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णेन वारिणा त्रिफलां क्षौद्रसंयुक्तां खादेच्च नवकार्षिकाम् ॥ ८ ॥

कडवे परवल, नीम और अडूसा इनसे वमन करावे और हरड, बहेडा आंमला, गूगल तथा पीपल इनसे विरेचन देवे, यह शीतपित्तपर हितकारी है। सरसोंके तेलकी मालिश करनेसे, गरम जलका सेंचन करनेसे सहतके साथ त्रिफलेको भक्षण करनेसे और नवकार्षिकनामक गूगल खानेसे शीतपित्त नष्ट होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता। गुटिका शीतपित्तार्शोभगन्दरवतां हिता ॥ ९ ॥

त्रिफला ३ भाग, गूगल ५ भाग और पीपल १ भाग इनकी बनाई हुई गोली शीतपित्तवालेको, बवासीरवालेको तथा भगन्दर रोगियोंको हितकारी है। यह गोली 'नवकार्षिक गूगल' इस नामसे कही जाती है ॥ ९ ॥

सितां त्रिकटुसंयुक्तां गुडमामलकैः सह । यवानीं खादयेच्चापि सव्योषक्षारसंयुताम् ॥ १० ॥

त्रिकुटेके साथ चीनी खानेसे, गुडके साथ आमलोंको खानेसे और सोंठ, मिरच, पीपल तथा जवाखारेके साथ अजवायनको खानेसे भी शीतपित्त नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥

आर्द्रकस्य रसःपेयः पुराणगुडसंयुतः । शीतपित्तापहः श्रेष्ठो वह्निमान्द्य विनाशनः ॥ ११ ॥

अदरखके रसमें पुराना गुड मिलाकर पीनेसे शीतपित्त अच्छी प्रकारसे नष्ट होजाता है और मन्दाग्नि दीप्त होती है ॥ ११ ॥

सिद्धार्थरजनीकल्कः प्रपुन्नाटतिलैःसह । कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् १२॥

सरसों, हलदी, चकवड और तिल इनका कल्क बनाकर उसमें सरसोंका तेल मिलाकर मालिस करनेसे शीतपित्त नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ् नरः । तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्व देहजः ॥ १३ ॥

जो मनुष्य गुडके साथ अजवायन खाय और पथ्य भोजन करे तो सम्पूर्ण शरीरमें प्राप्त हुआ उदर्द सात दिनमें नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

घृतं पीत्वा महातिक्तं शोणितं मोक्षयेत्तथा । स्निग्धस्विन्नस्य संशुद्धिमादौ कोठे समाचरेत् । उत्कोठे शुद्धदेहस्य कुष्ठघ्नीं कारयेत् क्रियाम् ॥ १४ ॥

महातिक्तक नामक घृतको पीकर रुधिर निकलवानेसे भी उदर्द नष्ट होजाता है । कोठ उत्पन्न हुआ हो तो प्रथम स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करके विरेचन आदिसे शोधन करे और उत्कोठ हुआ हो तो विरेचनादिसे शुद्ध करके पश्चात कुष्ठरोगोंकी चिकित्सा करे ॥१४

निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीविमिश्राणि नरः प्रयुंज्यात् । विस्फोटकण्डूक्रिमिशीतपित्तमुदर्दकोठौ च कफश्च हन्यात् ॥ १५ ॥

नीमके पत्ते और आमलोंको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर नित्य खाय तो विस्फोटक, खुजली, कृमि, शीतपित्त, उदर्द, कोढ और और कफ नष्ट होता है ॥ १५ ॥

अथार्द्रखण्डम् ॥

आर्द्रकं प्रस्थमेकं स्याद्गोघृतं कुडवद्वयम् । गोदुग्धं प्रस्थयुगलं तदर्द्धा शर्करा मता ॥ १६ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् । चित्रकश्च विडङ्गश्च मुस्तकं नागकेसरम् ॥ १७ ॥ त्वगेलापत्रकर्चूरं प्रत्येकं पलमात्रकम् । विधाय पाकं विधिवत्खादेत्तत्पलसंमितम् ॥१८॥ इदमार्द्रकखण्डं हि प्रातर्भुक्तं व्यपोहति । शीतपित्तमुदर्दश्च कोठमुत्कोठमेव च ॥ १९ ॥ यक्ष्माणं रक्तपित्तञ्च कासं श्वासमरोचकम् । वातगुल्ममुदावर्तं शोथं कण्डूं क्रिमीनपि ॥ २० ॥ दीपयेदुदरे वह्निं बलं वीर्यञ्च वर्द्धयेत् । वपुः पुष्टं प्रकुरुते तस्मात्सेव्यमिदं सदा ॥ २१ ॥

इति शीतपित्तोदर्दकोठोत्कोठाधिकारः ।

अदरख ६४ तोले, गायका घी ३२ तोले, गायका दूध १२८ तोले और इससे आधी चीनी लेवे, पीपल, पीपलामूल, कालीमिरच, सोंठ, चीता, वायविडंग, नागरमोथा, नागकेसर, दालचीनी, इलायची, तेजपात और कचूर ये प्रत्येकपदार्थ चार चार तोले लेकर विधिपूर्वक पाक बनावे तो यह 'आर्द्रकखण्ड' सिद्ध होता है । नित्य प्रातःकाल इसमेंसे चार तोले खाय तो इससे शीतपित्त उदर्द, कोठ, उत्कोठ, क्षयरोग, रक्तपित्त, खांसी, श्वास,

अरुचि, वातगुल्म, उदावर्त, सूजन, खुजली और कृमि नष्ट होते हैं। जठराग्नि, दीप्त होती है, बल तथा वीर्यकी वृद्धि होती है और शरीर पुष्ट होता है। इस कारण इस प्रयोगको सदैव सेवन करना चाहिये ॥ १६–२१ ॥

इति शीतपित्तोदर्दकोठोत्कोठाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ विसर्पाधिकारः।

तत्र विसर्पनिदानम् ।

लवणाम्लकटूष्णादिसेवनाद्दोषकोपतः । विसर्पः सप्तधाः ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

खारे, खट्टे, तीखे और गरम आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे दोषोंका कोप होकर विसर्प होता है । यह विसर्प सातप्रकारका है और चारों ओर फैलजाता है, इस कारण यह 'विसर्प' कहाजाता है हरे शाक और शिंडाकी आदि पदार्थोंसे भी विसर्प होता है, ऐसा चरकाचार्य कहते हैं ॥ १ ॥

अथ विसर्पस्य सप्तधात्वम् ।

वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः । चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः ॥ २ ॥

वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातिक ये चार और दो दो दोषोंसे उत्पन्न हुए तीन, इस प्रकार विसर्प सात प्रकारका जानना ॥२॥

आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः । यस्तु कर्दमको घोरः स पित्त कफसम्भवः ॥ ३ ॥

वायुसे तथा पित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्प हुआ विसर्प आग्नेय कहाजाता है, कफ और वातसे उत्पन्न हुआ विसर्प 'ग्रंथि' कहाजाता है और पित्तसे तथा कफसे उत्पन्न हुआ विसर्प 'कर्दमक' कहाजाता है ॥ ३ ॥

अथ विसर्पस्य दोषदूष्ये ।

रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः । विसर्पाणां समुत्पत्तौ हेतवः सप्त धातवः ॥ ४ ॥

त्रयो मलाः-वातपित्तकफाः, दोषा दूषका इत्यर्थः। अन्यथा दोषा मला इत्यत्र पुनरुक्ति दोषो लगिष्यते ॥

रुधिर, लसीका, त्वचा और मांस ये दूषित होते हैं और वे वात, पित्त तथा कफ इन तीनों दोषोंको दूषित करते हैं, इस लिये विसर्पकी उत्पत्तिमें ये सात धातु कारणरूप हैं ॥ ४ ॥

अथ वातजविसर्पलक्षणम् । १

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः। शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामातिहर्ष---वान् ॥ ५ ॥

परीसर्पः--विसर्पः । वातज्वरसमव्यथः-शिरोहृद्गात्रोदरशूलादियुक्तः । भेदः विदारणेनेव व्यथा आयामः-आकर्षणेनेव व्यथा ॥

वातके विसर्पमें-वातज्वरके समान मस्तकमें पीडा, हृदयमें, गात्रोंमें तथा उदरमें शूल आदि होते हैं। सूजन होती है, अंग फडकते हैं, सुई चुभोने सरीखी पीडा, चीरने सरीखी पीडा, आकर्षण के समान पीडा और रोमांच हो जाते हैं ॥ ५ ॥

अथ पित्तजविसर्पलक्षणम् । २

पित्ताद् द्रुतगति पित्तज्वरलिंगोऽतिलोहितः ॥ ६ ॥

द्रुतगतिः-शीघ्रप्रसरणशीलः ॥

पित्तका विसर्प-तत्काल फैल जाता है, पित्तज्वरके सम्पूर्ण लक्षण होते हैं और अत्यन्त लाल होता है ॥ ६ ॥

अथ कफजविसर्पलक्षणम् । ३

कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमान रुक् ॥ ७ ॥

कफका विसर्प-खुजली युक्त, स्निग्ध, और कफज्वरके समान पीडा होती है ॥ ७ ॥

अथ सान्निपातिकविसर्पलक्षणम् । ४

सन्निपातसमुत्थस्तु सर्वरूपसमन्वितः॥८॥

त्रिदोषज विसर्पमें ऊपर कहे तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

अथ वातपित्तजाग्नेयाख्यविसर्पलक्षणम् । ५

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः। अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥९॥ करोति सर्वमंगञ्च दीप्तांगारावकीर्णवत् । यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स सः ॥ १० ॥ शीतांगारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशूपचीयते । अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्द्रुतश्च सः॥११॥ मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः । व्यथेताङ्गं हरेत् संज्ञां निद्राञ्च श्वासमीरयेत् ॥ १२ ॥ हिध्माञ्च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना । क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्याऽऽसनादिषु ॥ १३ ॥ चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहप्रमोहवान् । दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥ १४ ॥

स्फोटैः-उपचीयत इति अन्वयः । मर्मानुसारी-उदरहृदयानुसारी । हरेद्विसर्प इति अन्वयः । हिध्माम्-हिक्काम् । ईरयेदुपर्युपरि प्रेरयेत् । निद्राम्-मरणरूपाम् । अश्नुते-प्राप्नोति ॥

वात तथा पित्त इन दोषोंसे विसर्प उत्पन्न हुआ हो तो ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार तृषा, भ्रम, हडफूटन, अग्निकी मन्दता, अन्धकारदर्शन, अरुचि और सम्पूर्ण शरीर दहकते हुए अंगारोंके समान व्याप्त हों। यह विसर्प शरीरके जिस जिस प्रदेशमें फैलता है, वही वही प्रदेश नीला वा लाल अथवा बुझे हुए अंगारेके समान काला होजाता है और आगसे फूँकनेके समान फफोले पड जाते हैं। यह विसर्प शीघ्रगतिवाला है। यह तत्काल उदर और हृदयमें गति करता है, इस कारण वायु की प्रबलतावाला कहा जाता है। यह विसर्प अंगको व्यथित करता है, संज्ञाको नष्ट कर देता है। निद्राको प्रेरित करता है, श्वासके वेगको और हिचकीको अधिक बढाता है, इस अवस्थाको प्राप्त हुआ मनुष्य कहीं भी सुख नहीं पाता। पृथिवीमें, शयनमें तथा आसन आदिपर बैठनेमें कहीं भी चैन नहीं मिलता दिनरात तडफता है, क्लेशको प्राप्त होता है, मन तथा शरीरको क्लेश होनेसे उसको दुर्बोध निद्रा होती है, उस दुर्बोध निद्राके होनेसे मृत्यु होती है, इसको 'आग्नेय विसर्प' कहते हैं ॥ ९-१४ ॥

अथ वातकफजग्रन्थिविसर्पलक्षणम् । ६

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् । रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम् ॥ १५ ॥ दूषयित्वा तु दीर्घाणां वृत्तस्थूलखरात्मनाम् । ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तनां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥ ॥ १६ ॥ श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः। मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ' इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पो वातश्लेष्मप्रकोपजः ॥ १७ ॥

कफेन-स्वहेतुदुष्टेन । पवनोऽपि स्वहेतुदुष्टः तेनायं वातश्लैष्मिकः । तं कफं बहुधा भित्त्वा रक्तं वा दूषयित्वा इति अन्वयः । त्वगादिकमिति रक्तस्य विशेषणम् ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुए कफसे रुकी हुई और अपने कारणोंसे दूषित हुई वायु कफको अनेक प्रकारसे भेदकर बढे हुए रुधिरवाले

मनुष्यके शरीरकी त्वचामें, शिराओंमें, स्नायुयोंमें और मांसमें प्राप्त हुए रुधिरको दूषित करके लम्बी, गोल, मोटी, लाल और खरखरी गांठोंकी पंक्तिको उत्पन्न करती है। इन गांठोंके होनेसे तीव्र वेदना, ज्वर, श्वास, खांसी, अतिसार, मुखशोष, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, विवर्णता, मूर्च्छा, अंगोंका टूटना और जठराग्निकी मन्दता होती है। इन लक्षण और कारणोंसे यह ग्रन्थिविसर्प वायु तथा कफके प्रकोपसे उत्पन्न हुआ कहा जाता है ॥ १५-१७ ॥

अथ कफपित्तजकर्दमविसर्पलक्षणम् । ७

कफपित्ताज्ज्वरस्तम्भौ निद्रातन्द्राशिरोरुजः । अङ्गावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ॥ १८ ॥ मूर्च्छाऽग्निहानिर्भेदोऽस्थ्यनां पिपासेन्द्रियगौरवम् आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति ॥१९॥ प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चाति रुक् । पिडकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः ॥ २० ॥ स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनःशोफवान् गुरुः । गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते ॥ २१ ॥ पङ्कत्वक्छीर्णमांसश्च स्पृष्टस्नायुशिरागणः । शवगन्धी च वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ॥ २२ ॥

स च सर्पति एकदेशमिति अन्वयः । पिडकैः पीडाकारभिः । अवकीर्णः-व्याप्तः । असितः कृष्णः । मेचकः-रूक्षकृष्णः । प्राजोष्मा-प्रचुरोष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते, स्पृष्टः सन्नार्दो भवति विदीर्यते च पंकत्वक्-कर्दमवर्णा त्वक् यत्र सः । शीर्णमांसः-गलितमांसः, अत एव स्पृष्टस्नायुशिरागणः ॥

कफसे तथा पित्तसे उत्पन्न होनेवाला जब कर्दमक विसर्प उत्पन्न होता है तो उसमें ज्वर जडता, निद्रा, तन्द्रा, मस्तकमें पीडा, अंगोंमें ग्लानि, हाथ पावोंको इधर उधर पटकना, बकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निकी मन्दता, हडफूटन, तृषा, इन्द्रियोंमें भारीपन, आमसहित दस्तका आना और मुखादि स्रोतोंमें कफ लिपटासा रहता है। यह विसर्प एक प्रदेशको ग्रहण करता है। विशेष करके आमाशयमें फैल जाता है, इसमें विशेष पीडा नहीं होती। अत्यन्त पीली, लाल तथा सफेद फुंसियोंसे व्याप्त हो, स्निग्ध, काला, रूखे काले रंगका, मलिन, सूजनयुक्त, भारी, गम्भीर पाकवाला, छूनेसे काला होजाय, फट जाय, कीचके समान त्वचाका रंग हो, मांसको गलाकर गिरा देवे तथा स्नायु और शिराओंको स्पर्श करे और उसमें मुरदेके समान दुर्गन्ध आवे, उसको 'कर्दमक विसर्प' कहते हैं ॥ १८-२२ ॥

अथ क्षतागन्तुनिमित्तकाष्टमवीसर्पलक्षणम् । ८

बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् । विसर्पं मारुतः कुर्यात्कुलत्थसदृशैश्चितम्॥२३॥स्फोटैःशोथज्वररुजादाहाढ्यं श्यावशोणितम् ॥ २४ ॥

बाह्यहेतोः-शस्त्रप्रहारव्यालदन्तनखाद्यागन्तुहेतोः । श्यावशोणितम्-कृष्णवर्णरक्तम् ॥

शस्त्र आदिके आघातसे, व्याघ्र सिंह आदि जानवरोंके दांत या नख आदिका लग जाना इत्यादि आगन्तुक कारणोंसे क्षत होकर प्रकोपको प्राप्त हुई वायु रुधिर और पित्तको प्रेरित करके विसर्पको उत्पन्न करती है, यह विसर्प कुलथीके दानोंके समान फुंसियोंसे व्याप्त होता है, काले रुधिरयुक्त होता है और सूजन, ज्वर, वेदना तथा दाहसे अत्यन्त पीडित होता है ॥

अथ विसर्पोपद्रवाः ।

ज्वरातिसारौ वमथुस्त्वङ्मांसदरणं क्लमः । अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २५ ॥

ज्वर, अतीसार, वमन, त्वचाका फटना, मांसका फटना, ग्लानि, अरुचि और बदहजमी ये सब विसर्पोंके उपद्रव हैं ॥ २५ ॥

अथ विसर्पस्य साध्यासाध्यता ।

सिद्ध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति । पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः कृच्छ्राश्च मर्मसु भवन्ति हि सर्व एव ॥ २६ ॥

पित्तात्मकोऽञ्जनवपुः पित्तजः स च कज्जलवर्णः सर्व एव-साध्या अपि ॥

सान्निपातिकविसर्प और क्षतजविसर्प असाध्य है। पित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्प जो काले रंगका हो तो असाध्य है वातसे उत्पन्न हुआ विसर्प, कफसे उत्पन्न हुआ विसर्प और विना काले रंगका पित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्प साध्य है साध्य विसर्प भी जो मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हो तो असाध्य जानना ॥ २६ ॥

अथ विसर्पचिकित्सा ।

विरेकवमनालेपसेचनास्रविमोक्षणैः । उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः॥७॥

जिनसे दाह उत्पन्न न हो ऐसे विरेचन, वमन तथा लेपन, सेचन और रक्तमोक्षणसे विसर्पका उपचार करना चाहिये और उपचार समय 'यह विसर्प' किस दोषसे उत्पन्न हुआ है, ऐसा अवश्य ध्यान देना चाहिये २७॥

रास्ना नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला । घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥ २८ ॥

चन्दनमत्र रिक्तं प्रयोज्यम् ॥

रासना, नील कमल, देवदारु, लाल चन्दन, मुलहठी और खिरैंटी इनको घी और दूधमें पीसकर लेप करनेसे वातका विसर्प नष्ट होजाता है ॥ २८ ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्रैः सशैवलैः सोत्पलकर्दमैश्च वस्त्रान्तरैः पित्तकृते विसर्पे लेपो विधेयः सघृतः सुशीतः ॥ २९ ॥

कसेरु, सिंघाडे, पद्माख, गुन्द्रपटेर, सिवार, कमल और कीच इनको पीसकर घीमें मिलाकर वस्त्रमें रखकर शीतल लेप करनेसे पित्तका विसर्प नष्ट होजाता है ॥ २९ ॥

त्रिफलापद्मकोशीरसमंगाकरवीरकम् । नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पके ॥ ३० ॥

समङ्गा—लज्जालुः ॥

हरड, बहेडा, आमला, पद्माख, खस लज्जावन्ती, कनेर, नरसलकी जड और काल जवासा इनका लेप करनेसे कफका विसर्प नष्ट होता है ॥ ३० ॥

वातपित्तप्रशमनमग्निवीसर्पणे हितम् । वातश्लेष्महरं कर्म ग्रन्थिवीसर्पणे हितम् ॥ ३१ ॥

आग्नेय नामक विसर्प उत्पन्न हो तो वात तथा पित्तको शान्त करना हितकारक है ॥
ग्रंथि नामक विसर्प उत्पन्न हुआ हो तो वायुको तथा कफको शान्त करना हितकारी है ॥ ३१ ॥

पित्तश्लेष्मप्रशमनं हितं कर्दमसंज्ञके । त्रिदोषजे क्रियां कुर्याद्विसर्पे त्रितयापहाम् ॥ ३२ ॥

कर्दमक नामक विसर्प उत्पन्न हुआ हो तो पितको तथा कफको शान्त करना हितकारी है।

सन्निपातिक जो विसर्प उत्पन्न हो तो त्रिदोषको शान्त करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः । लेपो दशांगः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठज्वरशोथहारी ॥ ३३ ॥

नतम् तगरम् । चन्दनं रक्तं ग्राह्यम् ॥

इति दशांगो लेपः ॥

सिरसकी छाल, मुलहठी, तगर, लाल चन्दन, इलायची, बालछड, हलदी, दारुहलदी, कूठ और सुगन्धवाला इन दश पदार्थोंको पीसकर, घीमें मिलाकर लेप करनेसे विसर्प, कोढ, ज्वर और सूजन नष्ट होजाती है। इसको 'दशांश लेप' कहते हैं ॥ ३३ ॥

परिषेकाः प्रलेपाश्च शस्यन्ते पञ्चवल्कलैः । पद्मकोशीरमधुकैश्चन्दनैर्वा विसर्पणे ॥ ३४ ॥

पञ्चवल्कलोंका अथवा चन्दनका अथवा पद्माख, खस और मुलहठी इनके जलका सेचन करनेसे और गाढा प्रलेप करनेसे विसर्प नष्ट होजाता है ॥ ३४ ॥

भूनिम्बवासाकटुकापटोली फलत्रयीचन्दननिम्बसिद्धः । विसर्पदाहज्वरशोथकण्डूविस्फोटतृष्णावमिहृत्कषायः ॥३५॥

चिरायता, अडूसा, कुटकी, कडवे परवल, हरड, बहेडा, आमले, लाल चन्दन और नीम इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे विसर्प, दाह, ज्वर, सूजन, खुजली, विस्फोटक, तृषा और वमन ये सब दूर हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

कुष्ठेषु यानि सर्पींषि व्रणेषु विविधेषु च। विसर्पे तानि योज्यानि सेकालेपनभोजनैः ॥ ३६ ॥

कुष्ठरोगमें तथा अनेक प्रकारके व्रणोंपर जो जो घी कहे हैं, उनका सेचन लेपन और भोजनमें विसर्प रोगीको उपयोग करावे ३६॥

अथ करंजतैलम् ।

करञ्जसप्तच्छदलाङ्गली कस्नुह्यर्कदुग्धानलभृङ्गराजैः । तैलं निशामूत्रविषैर्विपक्कं विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम् ॥ ३७ ॥

करञ्ज, सतौना, कलिहारी, थूहरका दूध, आकका दूध, चीता, भांगरा, हल्दी, गोमूत्र और वत्सनाभ इनसें पकाये हुए तेलकी मालिस करनेसे विसर्प, विस्फोटक और विचर्चिका नष्ट होजाती है ॥ ३७ ॥

कुष्ठामयस्फोटमसूरिकोक्त चिकित्सयाप्याशु हरेद्विसर्पान् । सर्वान् विपक्कान् परिशोध्य धीमान् व्रणक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ३८ ॥

इति विसर्पचिकित्सा ।

कुष्ठरोग, स्फोटरोग और मसूरिकारोगमें जो चिकित्सा कही है, उसी चिकित्सासे तत्काल विसर्पका हरण करे और बुद्धिमान वैद्य पके हुए सब विसर्पोंका व्रणकी चिकित्सासे उपचार करे ॥ ३८ ॥

इति विसर्पाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ स्नायुरोगाधिकारः ।

तत्र स्नायुनिदानं लक्षणं च ।

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् । भित्त्वैव तं क्षते तत्र सोष्म मांसं विशोष्य च ॥ १ ॥ कुर्यात्तन्तुनिभं सूत्रं ततपिण्डैस्तक्रसक्तुजैः। शनैः शनैः क्षताद्याति च्छेदात्तत्कोपमावहेत् ॥ २ ॥ तत्पाताच्छोथशान्तिः स्यात्पुनः स्थानान्तरे भवेत् । स स्नायुरिति विख्यातः क्रियोक्ताऽत्र विसर्पवत् ॥ ३ ॥ बाह्योर्यदि प्रमादेन त्रुटयते जङ्घयोरपिसंकोचं खञ्जतां चापि छिन्नो नूनं करोत्यसौ॥४॥

हाथ पांव आदि शाखाओंमें कोपको प्राप्त हुआ दोष विसर्पके समान सूजनको उत्पन्न करता है, उस सूजनको भेदकर उस क्षतके गरम ही मांसको सुखाकर तन्तुके समान

डोरेको उत्पन्न करता है, उसको 'स्नायु रोग' कहते हैं । देशभाषामें उसका नाम 'नहरुवा' है । इस डोरेपर तक्रमें पिसे हुए सत्तुओंकी लुपडी बांधनेसे धीरे धीरे घावमें से बाहर निकलता है । यह डोरा जो टूट जाय तो भारी सूजनको उत्पन्न करता है और सम्पूर्ण निकल जाय तो सूजन शांत हो जाती है । यह रोग एक स्थानमें शांत होकर फिर दूसरे स्थानमें प्रगट होता है । इस रोगकी चिकित्सा विसर्पके समान करनी चाहिये । जो यह डोरा मोहसे बाहूमें अथवा पांवकी पिण्डलियोंमें टूट जाय तो हाथको टूटा और पांवको लूला करदेता है ॥ १-४ ॥

अथ स्नायुरोगचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदप्रलेपादि कर्म कुर्याद्यथोचितम् । रामठं शीततोयेन पीतं स्नायुकरोगनुत् ॥ ५ ॥

इस रोगपर स्नेहन स्वेदन और प्रलेपादि योग्य चिकित्सा करनी चाहिये । हींगको पीसकर शीतल जलके साथ पीनेसे स्नायुरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

स्वेदात्स्नायुकमत्युग्रं भेकः कांजिकसाधितः । तद्वद्बब्बूलजं बीजं पिष्टं हन्ति प्रलेपनात् ॥ ६ ॥

मेंढकको कांजीमें पकाकर उसका स्वेद देनेसे स्नायुकी सब पीडा शांत होती है । बबूरके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे स्नायुकी पीडा शांत होती है ॥ ६ ॥

गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम् । पिबेत्स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ७ ॥

तीन दिनतक गायका घी पीकर पश्चात् तीन दिनतक निर्गुण्डीका स्वरस पीनेसे अत्यन्त उग्र स्नायुकी पीडा भी अवश्य नष्ट हो जाती है ॥ ७ ॥

मूलं सुवव्या हिमवारिपिष्टं पानादिदं तन्तुकरोगमुग्रम् । शान्तिं नयेत्सव्रणमाशु पुंसां गन्धर्वगन्धेन घृतेन पीत्वा ॥ ८ ॥

गन्धर्वगन्धेन—गन्धर्वगन्धोऽस्यस्तीति स गन्धर्वगन्धः अश्वगन्धः तेन ॥

कलौंजीकी जडको शीतल जलमें पीसकर पीनेसे स्नायु रोग अवश्य नष्ट हो जाता है । अथवा असगन्धसे पकाये हुए घृतको पीनेसे व्रणसहित उग्र स्नायुरोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

अतिविषमुस्तकभार्ङ्गीविश्वौषध पिप्पलीविभीतकयः । चूर्णमिदं तन्तुघ्नं पुंसामुष्णेन वारिणा पीतम् ॥ ९ ॥

अतीस, नागरमोथा, भारंगी सोंठ, पीपल और बहेडा इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीनेसे मनुष्योंका स्नायुरोग दूर होता है ॥ ९ ॥

शिग्रुमूलदलैः पिष्टैः काञ्जिकेण ससैन्धवैः । लेपनं स्नायुकव्याधेः शमनं परमं मतम् ॥ १० ॥ अहिंस्रमूलकल्केन तोयपिष्टेन यत्नतः । लेपसम्बन्धनात्तन्तुर्निःसरेन्नैव संशयः ॥ ११ ॥

इति स्नायुकचिकित्सा ।

सहिजनेकी जड और पत्तोंको सेंधनिमकके साथ कांजीमें पीसकर लगानेसे स्नायुरोग अवश्य नष्ट हो जाता है । हींस की जडको जलमें पीसकर लेप करनेसे स्नायु निकलजाती है, इसमें संशय नहीं ॥ १० ॥ ११ ॥

इति स्नायुरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ विस्फोटकाधिकारः ।

तत्र विस्फोटकविप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानम् ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च । तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥

त्वचमाश्रित्यते रक्तं मांसास्थीनि प्रदूष्य च। घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान्सर्वाञ्ज्वरपुरःसरान् ॥ २ ॥

ऋतुदोषेण--ऋतुहेतुकशीतोष्णादीनामतियोगेन विपर्ययेण--ऋतूचिताहारविहारवैपरीत्येन। त्वचमाश्रित्य -त्वचि विफोटाम् कुर्वन्ति इत्यर्थः। ज्वरपुरः--सरान्--ज्वरपूर्वान् ॥

तीखे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, दाहकारक, रूक्ष और खारे पदार्थोंसे, अजीर्णसे, भोजनपर भोजन करनेसे धूपका सेवन करनेसे, और ऋतुओंके फेरफारसे और उन ऋतुओंमें आहारविहारकी विपरीततासे कोपको प्राप्त हुए वातादि दोष रुधिर, मांस तथा अस्थियोंको दूषित करके ज्वरको उत्पन्न कर त्वचामें सब प्रकारके विस्फोटोंको उत्पन्न करते हैं ॥१॥२॥

अथ विस्फोटकसामान्यलक्षणम्।

अग्निदग्धा इव स्फोटाःसज्वरा रक्तपित्तजाः। क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः ॥ ३ ॥ रक्तपित्तजाः एतेन सर्वेषु विस्फोटकेषु रक्तपित्तयोः प्रधानकारणत्वम्। यथा शूलेषु वातस्य तथा वातानुगतिरपि बोद्धव्या ॥ तथा च भोजः-

यदा रक्तश्च पित्तश्च वातेनानुगतं त्वचि। अग्निदग्धानिभान्स्फोटान्कुरुतः सर्वदेहगान् ॥ ४ ॥

ज्वरयुक्त रुधिर तथा पित्तसे उत्पन्न हुआ अग्निसे जलाये हुएके समान ऐसा फोडा शरीरके किसी एक प्रदेशमें अथवा सम्पूर्ण शरीरमें उत्पन्न हो उसको 'विस्फोटक' कहते हैं। जिस प्रकार सर्वप्रकारकी पीडाओंमें वायु प्राधान्य है, उसी प्रकार सर्वप्रकारके विस्फोटकोंमें रुधिर और पित्तकी प्रधानता है। विस्फोटकोंको उत्पन्न करनेमें रुधिर तथा पित्तको वायुका सम्बन्ध भी होता है ऐसा जानना। क्योंकि, भोज कहता है कि--"जब रुधिर तथा पित्त वायुके सम्बन्धी होते हैं, तब शरीरके एक प्रदेशमें अथवा सब देहकी त्वचामें अग्निसे जले हुएके समान फोडोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ वातजविस्फोटकलक्षणम्।

शिरोरुक् शूलभूयिष्ठं ज्वरतृट्पर्वभेदनम्। सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

शूलम्--तोदरूपम् ॥

मस्तकमें सुई चुभोने सरीखी विशेष पीडा, ज्वर, तृषा, सन्धियोंका टूटना और कालापन यह वातज विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ५ ॥

अथ पित्तजविस्फोटकलक्षणम्।

ज्वरदाहरुजापाकस्रावतृष्णासमन्वितम्। पीतलोहितवर्णश्च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ६ ॥

ज्वर, दाह, वेदना, पकना, स्राव, तृषा और पीला तथा लालीपन ये पित्तज विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ६ ॥

अथ कफजविस्फोटकलक्षणम्।

छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः। यस्मिन्न रुक् चिरात्पाकः स विस्फोटः कफात्मकः ॥ ७ ॥

जाड्यम्-जडत्वमज्ञानाम् ॥

वमन, अरुचि, अंगोंमें जडता, खुजली, कठिनता, पांडुवर्ण, पीडारहितता और बहुत समयमें पकना ये कफज विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ७ ॥

अथ कफपित्तजविस्फोटकलक्षणम्।

कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैश्च कफपैत्तिकः ॥ ८ ॥

खुजली, दाह, ज्वर और वमन ये कफ तथा पित्तसम्बन्धी विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ८ ॥

अथ वातपित्तजविस्फोटकलक्षणम् ।

वातपित्तकृतो यस्तु तत्र स्यात्तीव्रवेदना ॥ ९ ॥

वायु तथा पित्त इनसे उत्पन्न हुए विस्फोटकमें तीव्र वेदना होती है ॥ ९ ॥

अथ वातकफजविस्फोटकलक्षणम् ।

कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥ १० ॥

खुजली, अंगोंमें जडता और भारीपन इन लक्षणोंसे वायु तथा कफ दोनोंका विस्फोटक जानना ॥ १० ॥

अथ त्रिदोषजविस्फोटकलक्षणम् ।

मध्यनिम्नोन्नतान्तश्च कठिनः स्वल्पपाकवान् । दाहरागतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजाज्वराः । प्रलापो वेपथुर्मूर्च्छा सोऽसाध्यश्च त्रिदोषजः ॥ ११ ॥

मोहः--विपरीतं ज्ञानम् । मूर्च्छा--सर्वथा ज्ञानशून्यता ॥

बीचमें नीचा, चारों ओर ऊंचा, कठिन, थोडा पकनेवाला, दाह, लाली, तृषा, मोह, बमन, मूर्च्छा, बेदना, ज्वर, बकवाद, कंप और अत्यन्त वेहोशी इनसे जानना कि, तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ है, यह विस्फोटक असाध्य है ॥ ११ ॥

अथ रुधिरजन्यविस्फोटकलक्षणम् ।

वेदितव्याश्च रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना । गुञ्जाफलसमा रक्ता रक्तस्रावा विदाहिनः ॥ न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगशतैरपि ॥ १२ ॥

पैत्तिकेन हेतुना—पित्तस्य हेतुना कट्वादिना रक्तपित्तस्य तुल्यत्वात् । सिद्धैर्योगशतैरपि ते सिद्धिं न समायान्ति ॥

पित्तको कुपित करनेवाले जो कारण हैं, उन्हीं कारणोंसे रुधिर भी कुपित होता है इसप्रकार कुपित रुधिरसे उत्पन्नहुए विस्फोटक चौंटलीके समान लाल लाल स्रावबाले और दाह करनेवाले होते हैं । ये विस्फोटक सैकडों सिद्ध योगोंसे भी आराम नहीं होते । तीखे आदि जो पदार्थ पित्तको कुपित करनेके कारण हैं, उनसेही रुधिरका भी कुपित होना कहा है, उसका कारण यह है कि, रुधिर और पित्त समान हैं ॥ १२ ॥

अथ विस्फोटकभेदाः ।

एते चाष्टविधा बाह्या आन्तरोऽपि भवेद्यम् । तस्मिन्नन्तर्व्यथा तीव्रा ज्वरयुक्ताऽभिजायते ॥ १३ ॥

बाहरके विस्फोटक आठ प्रकारके हैं कि, जिनका निरूपण ऊपर किया है । जिस प्रकार विस्फोटक बाहर होते हैं, उसी प्रकार एक भीतर भी होता है और वह नववां है । भीतरका विस्फोटक हो तो भीतर तीव्रपीडा होती है और ज्वरभी होता है ॥ १३ ॥

यस्मिन्बहिर्गते स्वास्थ्यं न वा तस्य बहिर्गतिः । तत्र वातिकविस्फोटक्रिया कार्या विजानता ॥ १४ ॥

यह विस्फोटक जो बाहर निकले तो स्वस्थता होती है,परन्तु समयपर यह विस्फोटक बाहर नहीं निकलता । इस विस्फोटकमें समझकर वैद्य वातसम्बन्धी विस्फोटकके समान चिकित्सा करे ॥ १४ ॥

अथ विस्फोटकोपद्रवाः ।

तृट्श्वासमांससंकोचदाहहिक्कामदज्वराः । विसर्पमर्मसंरोधास्तेषामुक्ता उपद्रवाः ॥ १५ ॥

मांससंकोचः--मांसस्य शठितत्वम् । मर्मसंरोधः--मर्मव्यथा ॥

तृषा, श्वास, मांसका सडना, दाह, हिचकी, मद, ज्वर, विसर्प और मर्मोंमें व्यथा ये विस्फोटकके उपद्रव जानने ॥ १५ ॥

तेषां विस्फोटानाम् उपद्रवाणां लक्षणान्तरं केचित्पठन्ति—

हिक्का श्वासोऽरुचिस्तृष्णा साङ्गमर्दो हृदि व्यथा। विसर्पज्वरहृल्लासा विस्फोटानामुपद्रवाः ॥ १६ ॥

कितने वैद्य विस्फोटकोंके उपद्रवोंको प्रकारान्तरसे कहते हैं। हिचकी, श्वास, अरुचि, तृषा, अंगोंका टूटना, हृदयमें व्यथा, विसर्प, ज्वर और उबकाई ये विस्फोटकके उपद्रव हैं ॥ १६ ॥

अथ विस्फोटकस्य साध्यत्वं कष्टसाध्यताऽसाध्यता च।

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः। सर्वरूपान्वितो घोरो ह्यसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ १७ ॥

एक दोषसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक साध्य है, दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक कष्टसाध्य है सर्व दोषोंके लक्षणोंसे युक्त और अनेक उपद्रवयुक्त विस्फोटक भयंकर है और असाध्य है ॥ १७ ॥

अथ विस्फोटकचिकित्सा।

विस्फोटे लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम्। यथादोषबलं वीक्ष्य युक्तमुक्तं विरेचनम् ॥ १८ ॥

दोषका बलाबल विचारकर लंघन, वमन और पथ्य भोजन करावे तथा विरेचन देवे, यह विस्फोटकपर हितकारी है ॥ १८ ॥

जीर्णशालियवा मुद्गा मसूराश्चाढकी तथा। एतान्यन्नानि विस्फोटे हितानि मुनयोऽब्रुवन् ॥ १९ ॥

पुराने लाल चावल, जौ, मूँग, मसूर और अरहर ये सब अन्न विस्फोटकरोगीको हितकारी हैं, ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ १९ ॥

द्वे पञ्चमूल्यौ रास्ना च दार्व्युशीरं दुरालभा। गुडूची धान्यकं मुस्तमेषां क्वाथं पिबेन्नरः। विस्फोटान्नाशयत्याशु समीरणनिमित्तकान् ॥ २० ॥

बृहत्पञ्चमूल, लघुपंचमूल, रासना, दारुहलदी खस, धमासा गिलोय, धनियां और नागरमोथा इनका क्वाथ पीनेसे वातज विस्फोटक नष्ट होता है ॥ २० ॥

द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः। कटुकालाजदुःस्पर्शैःसितायुक्तं तु पैत्तिकम् ॥ २१ ॥

दाख, कुम्भेर, खजूर, परवल, नीम, अडूसा, कुटकी, धानकी खीलें और धमासा इनका क्वाथ बनाकर मिश्री डालकर पीनेसे पित्तजन्य विस्फोटक नष्ट होता है ॥ २१ ॥

भूनिम्बसवचावासात्रिफलेन्द्रजवत्सकैः। पिचुमर्दपटोलाभ्यां कफजे मधुयुक्शृतम् ॥ २२ ॥

चिरायता, वच, अडूसा, हरड, बहेडा, आमला, इंद्रजौ, कुडा, नीम और कडवे परवल इनका क्वाथ बनाकर, सहत डालकर पीनेसे कफजन्य विस्फोटक नष्ट होजाता है ॥ २२ ॥

किराततिक्तकारिष्टयष्ट्याह्वाम्बुदवासकैः। पटोलपर्पटोशीरत्रिफलाकौटजान्वितैः। क्वथितैर्द्वादशाङ्गं तु सर्वविस्फोटनाशनम् ॥ २३ ॥

चिरायता, नीम, मुलहठी, नागरमोथा, अडूसा, कडवे परवल, पित्तपापडा, खस, हरड, वहेडा, आमले और इन्द्रजौ इन बारह औषधियोंका क्वाथ बनाकर पीनेसे सर्वप्रकारके विस्फोटक नाश होते हैं इसको 'द्वादशांग क्वाथ' कहते हैं ॥ २३ ॥

विस्फोटव्याधिनाशाय तण्डुलाम्बुप्रयोजितैः । बीजैः कुटजवृक्षस्य लेपः कार्यो विजानता ॥ २४ ॥

इन्द्रजौको चावलोंके जलमें पीसकर पीनेसे विस्फोटक नष्ट होतेहैं ॥ २४ ॥

छिन्नापटोलभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः । खदिराब्दयुतैः क्वाथो हन्ति विस्फोटकज्वरम् ॥ २५ ॥

गिलोय, कडवे परवल, चिरायता, अडूसा, नीम, पित्तपापडा, खैर और नागरमोथा इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे विस्फोटक ज्वर नष्ट होता है ॥ २५ ॥

चन्दनं नागपुष्पञ्च सारिवा तण्डुलीयकम् । शिरीषवल्कलं जाती लेपः स्याद्दाहनाशनः ॥ २६ ॥

लाल चन्दन, नागकेसर, सारिवा, चौलाई, सिरसकी छाल और चमेली इनका लेप करनेसे विस्फोटकका दाह दूर होजाता है ॥२६॥

उत्पलं चन्दनं लोध्रमुशीरं सारिवाद्वयम् । जलपिष्टेन लेपेन स्फोटदाहार्तिनाशनम् ॥ २७ ॥

कमल, लालचन्दन, लोध, खस और दोनों प्रकारकी सारिवा इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे विस्फोटकके दाहकी पीडा शान्त होजाती है ॥ २७ ॥

पुत्रजीवस्य मज्जानं जले पिष्ट्वा प्रलेपयेत् । कालस्फोटं विषस्फोटं सद्यो हन्ति सवेदनम् ॥ २८ ॥

जियापोतेकी मींगकोजलमें पीसकर लेप करनेसे काले फोडे, विषले फोडे और उनकी वेदना तत्काल शान्त होजाती है ॥ २८ ॥

वक्षोग्रन्थिं गलग्रन्थिं कर्णग्रन्थिञ्च नाशयेत् । हन्याच्च स्फोटकं ताम्रं पुत्रजीवो विनाशयेत् ॥ २९ ॥

इति विस्फोटकस्य चिकित्सा ।

जियापोतेका लेप करनेसे कौंखकी गांठ, गलेकी गांठ, कानकी गांठ और लाल फोडे तत्काल नष्ट होजाते हैं ॥ २९ ॥

इति विस्फोटकाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ फिरङ्गरोगाधिकारः ।

तत्र फिरङ्गशब्दनिरुक्तिः ।

फिरङ्गसंज्ञकेदेशे बाहुल्येनैष यद्भवेत् । तस्मात् फिरङ्गः इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः ॥ १ ॥

यह रोग फिरंग नामक देशमें विशेष करके होता है, इस कारण व्याधियोंको जाननेवाले प्रवीण वैद्य इसको 'फिरंग' रोग कहते हैं ॥ १ ॥

अथ फिरङ्गनिदानम् ।

गन्धरोगः फिरङ्गोयं जायते देहिनां ध्रुवम् । फिरङ्गिणोऽङ्गसंसर्गात्फिरङ्गिण्याः प्रसंगतः ॥ २ ॥

यह गन्धरोग अर्थात् गन्धसे होनेवाले रोग है, यह फिरंगी मनुष्योंके संसर्गसे और फिरंगदेशकी स्त्रियोंके प्रसंगसे उत्पन्न होता है ॥२॥

व्याधिरागन्तुजो ह्येष दोषाणामत्र संक्रमः । भवेत्तल्लक्षयेदेषां लक्षणैर्भिषजां वरः ॥ ३ ॥ फिरंगिण्याः प्रसंगत इति विशेषार्थम् ॥

ऐसा होनेसे यह रोग आगन्तुक है और इसमें दोषोका सम्बन्ध पीछे होता है। उत्तम वैद्य "कौनसे दोषकी बहुलतासे यह रोग हुआ है" उन दोषोंके लक्षण अपनी बुद्धिके अनुसार जाने ॥

फिरंग देशकी स्त्रियोंके साथ प्रसंग करनेसे यह रोग विशेष करके होता है, इस सूचनानुसार प्रथम वचनसे समझनेपर भी ठीक रीतिसे कहा है ॥ ३ ॥

अथ फिरङ्गरोगपूर्वचिकित्सा ।

फिरङ्गस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्य आभ्यन्तरस्तथा । बहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिङ्गानि च ब्रुवे ॥ ४ ॥

बाहरका, भीतरका और बाहर तथा भीतर इसप्रकार यह रोग तीन प्रकारका है,अब इनके लक्षण कहता हूँ ॥ ४ ॥

तत्र बाह्यः फिरङ्गः स्याद्विस्फोटसदृशोऽल्परुक् स्फुटितो व्रणवद्वैद्यैः सुखसाध्योऽपि स स्मृतः ॥ ५ ॥

बाहरका फिरंग विस्फोटकके समान होता है, थोडी पीडा होती है और व्रणके समान फूटता है, इस बाहरके फिरंगरोगको वैद्य सुखसाध्य कहते हैं ॥ ५ ॥

सन्धिष्वाभ्यन्तरः स स्यादामवात इव व्यथाम् । शोथश्च जनयेदेष कष्टसाध्यो बुधैः स्मृतः ॥ ६ ॥

भीतरका फिरंग संधियोंमें होता है, आमवातके समान पीडा करता है और सूजनको उत्पन्न करता है । इस भीतरके फिरंगको वैद्य कष्टसाध्य कहते हैं तीसरे प्रकारके फिरंगमें दोनों प्रकारके फिरंगमें दोनों प्रकारके लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

अथ फिरंगस्योपद्रवाः ।

कार्श्यं बलक्षयो नासाभङ्गो वह्नेश्च मन्दता अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वं फिरङ्गोपद्रवा अमी ॥ ७ ॥

कृशता, बलका नाश, नाकका बैठ जाना, अग्निकी मंदता, अस्थियोंमें शोष और हड्डियोंका टेढा, तिरछा होजाना, ये फिरंगके उपद्रव जानने ॥ ७ ॥

अथ फिरङ्गस्यसाध्यत्वं कष्टसाध्यता असाध्यता च ।

बहिर्भवो भवेत्साध्यो नवीन निरुपद्रवः । आभ्यन्तरस्तु कष्टेन साध्यः स्यादयमामयः ॥ ८ ॥ बहिरन्तर्भवो जीर्णः क्षीणस्योपद्रवैर्युतः । व्याप्तो व्याधिरसाध्योऽयमित्याहुर्मुनयः पुरा ॥ ९ ॥

बाहरका उत्पन्न हुआ, नवीन और उपद्रवरहित फिरंग साध्य है । भीतरका फिरंग कष्टसाध्य है, बाहर तथा भीतर इन दोनों प्रकारसे उत्पन्न हुआ, क्षीण शरीरवाले मनुष्योंके उत्पन्न हुआ, पुराना उपद्रवयुक्त और व्याप्त हुआ फिरंग रोग असाध्यहै, ऐसा प्राचीन ऋषियोंने कहा है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ फिरंगचिकित्सा ।

तत्र कर्पूररसः ।

फिरङ्गसंज्ञकं रोगं रसः कर्पूरसञ्ज्ञकः । अवश्यं नाशयेदेतदूचुः पूर्वचिकित्सकाः ॥ १० ॥

रसकपूरको खानेसे फिरंगरोग अवश्य नष्ट हो जाता है, ऐसा प्राचीन वैद्योंने कहा है १०॥

लिख्यते रसकर्पूरप्राशने विधिरुत्तमः । अनेन विधिना खादेन्मुखे शोथं न विन्दति ॥ ११ ॥ गोधूमचूर्णं सन्नीय विदध्यात्सूक्ष्मकूपिकाम् । तन्मध्ये निक्षिपेत्सूतं चतुर्गुञ्जामितं भिषक् ॥ ॥ १२ ॥ ततस्तु गुटिकां कुर्याद्यथा न दृश्यते बहिः । सूक्ष्मचूर्णे लवङ्गस्य तां वटीमवधूलयेत् ॥ १३ ॥ दन्तस्पर्शो यथा न स्यात्तथा तामम्भसा गिलेत् । ताम्बूलं भक्षयेत्पश्चाच्छाकाम्ललवणांस्त्यजेत् । श्रममातपमध्वानं विशेषात्स्त्रीनिषेवणम् ॥ १४ ॥

अब रसकपूर खानेकी विधि कहते हैं कि, जिस प्रकार खानेसे मुखमें छालें नहीं पडते गेहूंके आटेको पानीमें सानकर उसकी छोटी२ कुलियां बना लेवे, उनमें वैद्य चार चार रत्ती-

भर रसकपूर रखकर गोलियां बनालेवे जिससे कि, पारा बाहर न दीखे। फिर उन गोलियोंको लौंगके बारीक चूर्णमें लपेटकर ऐसी रीतिसे पानीके साथ निगल जावे कि, जिससे दांत न लगे और इसके पश्चात् नागरबेलका पान खाय। रसकपूरको खानेवाला मनुष्य शाक, खारे पदार्थ, खट्टे पदार्थ, परिश्रम, धूप, मार्ग और मैथुनको त्याग देवे ॥ ११-१४ ॥

अथ सप्तशालिवटी।

पारदष्टङ्कमानः स्यात्खदिरष्टङ्कसंमितः। आकारकरभश्चापि ग्राह्यष्टंकद्वयोन्मितः। टङ्कत्रयोन्मितं क्षौद्रं खल्वे सर्वं विनिक्षिपेत् ॥ १५ ॥ संमर्द्य तस्य सर्वस्य कुर्यात्सप्त वटीभिषक्। स रोगी भक्षयेत्प्रातरेकैकामम्बुना वटीम्। वर्जयेदम्ललवणं फिरङ्गस्तस्य नश्यति ॥ १६ ॥

पारा २४ रत्ती, कत्था २४ रत्ती, अकरकरा ४८ रत्ती और सहत ७२ रत्ती इन सबको खरलमें डालकर खूब पीसकर सात गोलियाँ बना लेवे, प्रातःकाल एक एक गोली जलके साथ खायें और खट्टे तथा खारे पदार्थोंका त्यागकर देवे तो फिरंगरोग नष्ट हो जाता है। ये गोलियां 'सप्तशालिवटी' इस नामसे कही जाती हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ धूम्रप्रयोगः।

पारदःकर्षमात्रःस्यात्तावानेव हि गन्धकः। तण्डुलाश्चाक्षमात्राः स्युरेषां कुर्वीत् कज्जलीम् ॥ १७ ॥ तस्याः सप्त वटीः कुर्यात्ताभिर्धूमं प्रयोजयेत्। दिनानि सप्त तेन स्यात्फिरङ्गान्तोन संशयः ॥ १८ ॥

पारा १ तोला, गंधक १ तोला और चावल १ तोला इनकी कज्जली बनाकर सात गोलियां बना लेवे सात दिनतक इन गोलियोंका धुआं पीनेसे फिरंगरोग नष्ट हो जाता है ॥१७॥१८॥

पीतपुष्पखलापत्ररसैष्टङ्कमितं रसम्। हस्ताभ्यां मर्दयेतावद्यावत्सूतो न दृश्यते। ततः संस्वेदयेद्धस्तावेवं वासरसप्तकम्। त्यजेल्लवणमम्लञ्च फिरंगस्तस्य नश्यति ॥ १९ ॥

चौबीस रत्ती पारेको पीले फूलकी खिरंटीके पत्तोंके साथ रसमें मिलाकर हाथोंसे ऐसा मले कि, पारा न दीखे। फिर दोनों हाथोंको अग्निसे सेंके, यह विधि सात दिनतक करे और खारे तथा खट्टे पदार्थोंको त्याग देवे तो फिरंगरोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥१९॥

चूर्णयेन्निम्बपत्राणि पथ्यानिम्बाऽष्टमांशिका। धात्री च तावती रात्री निम्बषोडशभागिका ॥ २० ॥ शाणमानमिदं चूर्णमश्नीयादम्भसा सह। फिरङ्गं नाशयत्येव बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ॥ २१ ॥

नीमके पत्तोंका चूर्ण बनाकर उसमें आठवां भाग हरडका चूर्ण मिलावे, आठवां भाग आमलोंका चूर्ण मिलावे और सोलहवां भाग हलदीका चूर्ण डाले। इसमेंसे नित्य चौबीस रत्ती चूर्ण जलके साथ खाय तो बाहरका तथा भीतरका फिरंगरोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ २० ॥

चोपचीनीभवं चूर्णं शाणमानं समाक्षिकम्। फिरङ्गव्याधिनाशाय भक्षयेल्लवणं त्यजेत् ॥ २२ ॥ लवणं यदि वा त्यक्तुं न शक्नोति यदा जनः। सैन्धवं स हि भुञ्जीत मधुरं परमं हितम् ॥ २३ ॥

चौबीस रत्ती चोबचीनीके चूर्णको सहतमें मिलाकर खावें और इसपर निमकका त्याग करदेवें तो फिरंगरोग नष्ट हो जाता है। जो निमकका त्याग न कर सके तो उसके अभावमें सैंधानिमक खाय, कारण यह है कि, सैंधानमक स्वादिष्ट और अत्यन्त हितकारी है ॥ २३ ॥

पारदः कर्षमात्रःस्यात्तावन्मात्रं तु गन्धकम् । तावन्मात्रस्तु खदिरस्तेषां कुर्यात्तु कज्जलीम् । रजनीकेसरत्रुटचो जीरयुग्मं यवानिका ॥ २४ ॥ चन्दनद्वितयं कृष्णा वांसी मांसी च पत्रकम् । अर्द्धकर्षमितं सर्वं चूर्णयित्वा च निक्षिपेत् । तत्सर्वं मधुसर्पिर्भ्यांद्विपलाभ्यां पृथक्पृथक् ॥ २५ ॥ मर्दयेदथतत्खादेदर्द्धकर्षमितं नरः । व्रणःफिरंगरोगोत्थस्तस्यावश्यं विनश्यति ॥ २६ ॥ अन्योऽपि चिरजातोऽपि प्रशाम्यति महाव्रणः । एतद्भक्षयतः शोथो मुखस्यान्तर्न जायते ॥ वर्जयेदत्र लवणमेकविंशतिवासरान् ॥ २७ ॥

इति फिरंगरोगाधिकारः ।

पारा १ तोला, गन्धक एक तोला, और पवरिया कत्था एक तोला लेकर कजली बनावें फिर हलदी नागकेशर, छोटी इलायची, बडी इलायची, जीरा, कालाजीरा, अजवायन, चन्दन, लालचन्दन, पीपल, वंशलोचन वाल छड और तेजपात इन सबको एकत्र पीसकर आधा तोला चूर्ण उक्त कजलीमें मिला लेवें। फिर इन सबको आठ तोले सहतमें और आठ तोले घीमें मिलाकर इसमेंसे छः मासे नित्य खाय तो फिरंगरोग अवश्य नष्ट हो जाता है। अन्यान्य व्रण और वहुत दिनोंके पुराने व्रण भी इससे अवश्य नष्ट हो जाते हैं। इस औषधिको खानेवालेके मुखमें सूजन नहीं होती। इस औषधिको इक्कीस दिनतक खाना चाहिये। जबतक औषधि करें, तबतक निमक नहीं खाना चाहिये॥ २४ ॥ २७ ॥

इति फिरंगरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मसूरिकाधिकारः ।

तत्र मसूरिका विप्रकृष्टस्सन्निकृष्ट-
निदानं सम्प्राप्तिश्च ।

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः । दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः ॥ ॥ १ ॥ क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषसमुद्भवाः । जनयन्ति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः । मसूराकृतिसंस्थानाः पिडकास्ता मसूरिकाः ॥ २ ॥

क्षारः—यवक्षारादिः । विरुद्धाध्यशनाशनैः—कट्वम्लादिविरुद्धान्नाशनैः । अथ च अध्यशनाशनम्-अधिकमशनमध्यशनम् । दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः-दुष्टं निष्पावशाकम् । आद्यशब्दान्मध्वालुकादिकैः । प्रदुष्टपवनोदकैः--सविषकुसुमादिसंसर्गात् । क्रूरग्रहेक्षणाच्चापिदेशे--क्रूरग्रहा राहुशनैश्चरादयस्तेषामीक्षणाद्दृष्टेः यस्मिन् देशे क्रूरग्रहदृष्टिस्तत्रापि मसूरिकोत्पत्तिरित्यर्थः । मसूराकृतिसंस्थानाः—मसूरस्ययाआकृतिस्तद्वत्संस्थानमाकृतियासां ताः ॥

चरपरे खट्टे नमकके तथा जवाखारादि खारे और परस्पर विरुद्ध पदार्थ इनको खानेसे अधिक भोजन करनेसे, निष्पाव, लोविया, उडद, तथा मीठे खट्टे आदि शाकोंको भक्षण करनेसे, विषैले पुष्पादिकके संसर्गसे दूषित हुई पवन और जलके योगसे और देशमें राहु तथा शनैश्चर आदि क्रूर ग्रहों की दृष्टि पडनेसे वातादि दोष कुपित होकर दूषित हुए रुधिरके साथ मिलकर मसूरके समान आकारवाली फुंसियां उत्पन्न करते हैं, उनको 'मसूरिका' कहते हैं ॥ १ ॥ १ ॥

अथ मसूरिकापूर्वरूपम् ।

तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रभंगोऽरति-

भ्रमः । त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररोगस्तथैव च ॥ ३ ॥

जब मसूरिका होनेको होती हैं तो प्रथम ज्वर आता है, खुजली होती है, अंग टूटने लगते हैं, किसी पदार्थपर रुचि उत्पन्न नहीं होती, भ्रम होता है त्वचामें सूजन होती है, वर्ण बदल जाता है और नेत्रोंमें लाली होती है ॥ ३ ॥

अथ वातजमसूरिकालक्षणम् ।

स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयाऽन्विताः । कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसम्भवाः ॥ ४ ॥

काली, लाल, रूखी, तीव्र वेदनावाली. कठिन और बहुत समयमें पकनेवाली, ऐसी फुन्सी उत्पन्न हों तो जानना कि, वातसे मसूरिका उत्पन्न हुई हैं ॥ ४ ॥

अथ पित्तजमसूरिकालक्षणम् ।

सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कम्पोऽरतिर्भ्रमः । शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ॥ ५ ॥ रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः । भवन्त्यचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ६

पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न हुई मसूरिकामें सन्धि, अस्थि और पर्वोंमें भेदन सरीखी पीडा होती है, खांसी, कम्प, किसी पदार्थमें इच्छा नहीं होती, भ्रम, तालु, होठ तथा जीभ सूख जाती है, अरुचिके साथ तृषा बढती है और फुन्सी लाल, पीली, सफेद, दाहयुक्त, तीव्र पीडायुक्त और तत्काल पक जाती है ५-६

अथ रुधिरजन्यमसूरिकालक्षणम् ।

विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णारुचिस्तथा । मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः । रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥ ७ ॥

रुधिरके कुपित होनेसे जो मसूरिका होती है, उसमें अतिसार अंगोंका टूटना, दाह, तृषाका लगना तथा अरुचि, मुखमें पाक आंखोंका पकना और अत्यन्त दारुण तीव्र ज्वर होता है, ये सब पित्तके प्रकोप सम्बन्धी लक्षण जानने ॥ ७ ॥

अथ कफजमसूरिकालक्षणम् ।

श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डरा मन्दवेदनाः । मसूरिकाः कफोद्भूताश्चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ ८ ॥

कफके प्रकोपसे जो मसूरिका होती है, वह सफेद, चिकनी, अत्यन्त मोटी, खुजली मन्द वेदनावाली और बहुत समयमें पकनेवाली ऐसी फुन्सी होती हैं ॥ ८ ॥

अथ त्रिदोषजमसूरिकालक्षणम् ।

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजः । पूतिस्रावाश्चिरात्पाकाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥ ९ ॥

त्रिदोषसे उत्पन्न हुई मसूरिका नीली, चिपटी, विस्तारवाली, बीचमें नीची, अत्यन्त वेदनायुक्त, दुर्गन्ध स्राववाली और बहुत देरमें पकनेवाली ऐसी फुन्सी होती हैं ॥ ९ ॥

अथ सप्तधातुगतमसूरिकाणां पृथक् पृथक् लक्षणानि ।

तत्र रसगतमसूरिकालक्षणम् ।

मसूरिकास्त्वचं प्राप्तास्तोयबुद्बुदसन्निभाः । स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च ॥ १० ॥

त्वचं प्राप्ताः त्वक्छब्देनात्र रस उच्यते, रसाश्रयत्वात् ॥

रसमें होनेवाली मसूरिका अल्प दोषवाली होती है, पानीके बबूलेके समान और फोडनेसे जलका स्राव होता है ॥ १० ॥

अथ रक्तजमसूरिकालक्षणम् ।

रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः । साध्या नात्यर्थदुष्टास्तु भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च ॥ ११ ॥

साध्याः-रक्तस्था इत्यर्थः । नात्यर्थदुष्टास्तु अत्यर्थं दुष्टशोणिताः पुनर्न साध्याः किन्तु कष्टसाध्याः ॥

रुधिरमें रहनेवाली मसूरिका लाल आकारवाली, तत्काल पकनेवाली, पतली त्वचावाली और फोडनेपर उसमेंसे रुधिर निकलता है रुधिरमें रहनेवाली मसूरिका जो अत्यन्त दुष्ट रुधिरवाली न हो तो साध्य है और अत्यन्त दुष्ट रुधिरवाली हो तो कष्ट साध्य है ॥११॥

अथ मांसगतमसूरिकालक्षणम् ।

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः । गात्रशूलानिशंकण्डूमूर्च्छादाहतृणान्विताः ॥ १२ ॥

मांसमें रहनेवाली मसूरिका कठिन, स्निग्ध, बहुत समयमें पकनेवाली, पतलीत्वचावाली और गात्रोंमें शूल, निरन्तर खुजली, मूर्च्छा, दाह तथा तृषा ये लक्षण होते हैं ॥ १२ ॥

अथ मेदोगतमसूरिकालक्षणम् ।

मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किञ्चिदुन्नताः । घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाःस्निग्धाः सवेदनाः । संमोहारतिसन्तापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ १३ ॥

मेदमें होनेवाली मसूरिका मण्डलाकारवाली होती है । कोमल, थोडी ऊँची, मोटी, चिकनी, वेदनायुक्त, भयंकर ज्वरसे व्याप्त और बेहोशी व्याकुलता और सन्तापसे युक्त होती है । इन मसूरिकाओंसे प्रायः कोई ही बचता है ॥ १३ ॥

अथास्थिमज्जागतमसूरिकालक्षणम् ।

क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः । मज्जोत्था भृशसम्मोहा वेदनारतिसंयुताः ॥ १४ ॥ भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः । छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति च ॥ १५ ॥

गात्रसमाः-गात्रतुल्यवर्णाः । चिपिटाः-चिपिटाकाराः । मज्जाग्रहणेन अस्थ्नोऽपि ग्रहणम्, तदाधार त्वात् । अत एवाग्रे 'भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः' इति । मर्मधामानि-मर्मस्थानानि ॥

अस्थि तथा मज्जामें रहनेवाली मसूरिका क्षुद्र होती है, शरीरके रंगके समान वर्णवाली होती हैं, रूखी, चिपटी, कुछेक ऊँची, अत्यन्त मोह, वेदना और व्याकुलतासे पीडित होती हैं, मज्जा ही हड्डियोंका सार हड्डियोंकी रोकनेवाली हैं । जब तक मज्जा हड्डियोंमें रहती है, तभीतक हड्डियोंकी दृढता है । भौरोंसे विद्धके समान हड्डी चारों ओरसे होती है, मर्मस्थानोंको छेदन कर देती हैं और प्राणोंको तत्काल नष्ट कर देती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ शुक्रगतमसूरिकालक्षणम् ।

पक्वाभाः पिडकाः स्निग्धाः श्लक्ष्णाश्चात्यन्तवेदनाः । स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः ॥ १६ ॥ शुक्रजायां मसूर्यान्तु लक्षणानि भवन्ति हि । निर्दिष्टं केवलं चिह्नं जीवनं न तु दृश्यते । दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः ॥ १७ ॥

पक्वाभाः पक्वाकारा न तु पक्वा । श्लक्ष्णाः-कोमलाः । निर्दिष्ट केवलं चिह्नं न तु अस्याश्चिकित्सा युक्ता यतो जीवनं न दृश्यते । सप्ता-

व्येता दोषहेतुं विना न भवंति, दोषमन्तरेण रसादिदुष्टेरसम्भवादत एवोक्तं-दोषमिश्रा इत्यादिना ॥

वीर्यमें रहनेवाली मसूरिका पकती नहीं, किन्तु पकनेके समान होती है, स्निग्ध कोमल, अत्यन्त वेदनावाली तथा जडता हो, बेचैनी, मोह, दाह, तथा उन्माद होता है, यह वीर्यगत मसूरिका केवल लक्षण जाननेके लिये कही है, किन्तु इसकी चिकित्सा करनी योग्य नहीं है । क्योंकि, इस मसूरिकाके होनेसे कभी मनुष्य बच ही नहीं सकता । दोषके विना रसादिकका दुष्ट होना सम्भव नहीं, इस कारण ये सातों प्रकारकी मसूरिका दोषोंके विना नहीं होती हैं । इन सातों प्रकारकी मसूरिकाओंमें उन उन दोषोंके लक्षण ऊपरके दोषोंके सम्बन्धसे जानने ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ चर्मगतमसूरिकालक्षणम् ।

कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्रा प्रलापारतिसंयुताः । दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडकाश्चर्मसंस्थिताः ॥ १८ ॥

कण्ड रुकजाय, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप और बेचैनी हो तो मसूरिकाओंको 'चर्मजा' जाननी ये चर्मगत मसूरिका कष्टसाध्य हैं ॥ १८ ॥

अथ रोमगतमसूरिकालक्षणम् ।

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यःकफपित्तजाः । कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्या ज्वरपूर्विकाः ॥ १९ ॥

जिसमें प्रथम ज्वर गावे, रोमांच हो आवें रोमछिद्रोंकी बराबर ऊंची लालवर्ण हो, खांसी और अरुचिसंयुक्त मसूरिका रोमतक पहुँच जाती हैं, ये मसूरिका कफ तथा पित्तसे होती हैं ॥ १९ ॥

अथ मसूरिकाया. सुखसाध्यता ।

त्वग्गता रक्तगाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा । श्लेष्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः । एता विनापि क्रियया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम् ॥ २० ॥

त्वग्गताः-रसगताः ॥

रसमें प्राप्त हुई, रुधिरमें प्राप्त हुई पित्तसे उत्पन्न हुई, कफसे उत्पन्न हुई और कफ तथा पित्त दोनोंसे उत्पन्न हुई मसूरिका सुखसाध्य हैं । प्राणियोंके उत्पन्न हुई ये मसूरिका चिकित्साके विना भी शांत होजाती हैं ॥

अथ मसूरिकायाः कष्टसाध्यता ।

वातजा वातपित्तोत्था वातश्लेष्मकृताश्च याः । कष्टसाध्या असाध्यास्तु यत्नादेता उपाचरेत् ॥ २१ ॥

वातज, वात और पित्त दोषोंसे उत्पन्न हुई और वायु तथा कफ इन दोषोंसे उत्पन्न हुई मसूरिका कष्ट साध्य हैं, इस कारण इनकी चिकित्सा यत्नपूर्वक करनी चाहिये ॥ २१ ॥

अथ मसूरिकाणामसाध्यता ।

असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम् । प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जम्बूफलोपमाः ॥ २२ ॥ लोहजालसमाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः । आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥ २३ ॥

प्रवालसदृशा इत्यादि- आसां प्रवालजम्बूफललोहगुटिकातसीफलसादृश्यं वर्णेन । अनुक्तवर्णग्रहणार्थमाह-आसां बहुविधा वर्णा इति ॥

सन्निपातसे उत्पन्न हुई मसूरिका असाध्य है । इस मसूरिकाके लक्षण कहता हूँ । इस मसूरिकाकी फुंसी कोई मूँगेके समान लाल, कोई जामुनके समान रंगवाली, कोई लोहेकी गोलीके समान और कोई अलसीके फलके समान रंगवाली होती है, इसके सिवाय और भी अनेक प्रकारके वर्णवाली होती है ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥

कासो हिक्का प्रमेहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः। प्रलापारतिमूर्च्छाश्च तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ॥ २४ ॥ मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा। कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम् ॥ २५ ॥ मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरैः। लक्षणानीह दृश्यन्ते न देयं तस्य भेषजम् ॥ २६ ॥

अतिघूर्णता--अतिनिद्रा ॥

प्रलाप, बेचैनी, मूर्च्छा, तृषा, हिचकी, प्रमेह, खांसी, तीव्र, और दारुण ज्वर, दाह, अत्यंत निद्रा, दुर्गन्धता, मुख-नाकमेंसे तथा नेत्रोंमेंसे रुधिरका स्राव, कंठमें घुरघुर शब्दका होना और दारुण श्वास यह सब लक्षण हों तो वैद्य उस मसूरिकारोगीको असाध्य समझकर औषधि नहीं देवें ॥ २४-२६ ॥

अथ मसूरिकारिष्टम्।

मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निश्वसेत् स भृशं त्यजति प्राणांस्तृष्णावान् वायुदूषितः ॥ २७ ॥

वायुदूषितः—अपतानकादिवातव्याधिदूषितः ॥

मसूरिकारोगसे पीडित जो मनुष्य नाकमेंसे अत्यन्त श्वास लें, अत्यन्त तृषासे पीडित हो और अपतानक आदि वातव्याधिवाला हो तो वह रोगी तत्काल मर जाता है ॥ २७ ॥

अथ मसूरिकायां शोथविशेषः।

मसूरिकान्ते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके। तथांसफलके वापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥ २८ ॥

दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः-दुश्चिकित्स्यः कष्टसाध्यः। दुःशब्दोऽत्र निषेधार्थः, तेन असाध्य इत्येके ॥

मसूरिकाके अन्तमें हाथकी कोहनीके ऊपर अथवा पहुँचे पर वा कन्धोंके ऊपर अत्यन्त दारुण सूजन हो तो उसको कष्ट साध्य जानना। कितने वैद्य इसको असाध्य कहते हैं ॥ २८ ॥

काश्चिद्विनापि यत्नेन सिध्यन्त्याशुमसूरिकाः। दृष्टाः कृच्छ्रतराः काश्चित्काश्चित् सिद्ध्यन्ति वा न वा। काश्चिन्नैव तु सिध्यन्ति साध्यमानाः प्रयत्नतः ॥ २९ ॥

कितनी एक मसूरिका विना ही चिकित्साके तत्काल आराम होजाती है, कितनी एक मसूरिका अत्यन्त कष्ट साध्य भी दीखपडती है, कितनी एक मसूरिका नष्ट भी होजाती हैं, अथवा नहीं भी नष्ट होतीं और कितनी एक मसूरिका यत्नपूर्वक चिकित्सा करनेसे भी आरोग्य नहीं होती ॥ २९ ॥

अथ मसूरिकाचिकित्सा।

मसूरिकायां कुष्ठेषु लेपनादिक्रिया हिता। पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया चात्र प्रशस्यते ॥ ३० ॥

कुष्ठरोगपर जो लेपन आदि चिकित्सा कही है, वही चिकित्सा मसूरिकापर भी हितकारी है। कफ और पित्तसे उत्पन्न हुए विसर्पपर जो चिकित्सा कही है, वही चिकित्सा मसूरिकापर भी करनी चाहिये ॥ ३० ॥

श्वेतचन्दनकल्कोत्थं हिलमोचीभवं द्रवम्। पिबेन्मसूरिकारम्भे नैव वा केवलं रसम् ॥ ३१ ॥

हिलमोचिका शाकविशेषः'हुरहर' इति लोके ॥

मसूरिकाके उत्पन्न होते ही हिलमोचिका (एक प्रकारकी नानिया और हुरहुर नामसे भी प्रसिद्ध है) के स्वरसमें सफेद चन्दनका कल्क डालकर पीवे अथवा इकला हिलमोचिकाहीके स्वरसको पीवे ॥ ३१ ॥

१–तृष्णादौर्गन्ध्यमघूर्णता इति च पाठः ॥

द्वे पञ्चमूल्यौ रास्ना च धात्र्युशीरं दुरालभा। सामृता धान्यकं मुस्तं जयेद्वातमसूरिकाम् ॥ ३२ ॥

लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल, रासना, आमले, खस, धमासा, गिलोय, धनियां और नागरमोथा, इनको पीसकर पीनेसे वातज मसूरिका नष्ट होजाती है ॥ ३२ ॥

मञ्जिष्ठाबहुपात्प्लक्षशिरीषोदुम्बरत्वचः। वातजायां मसूर्यां स्यात्प्रलेपः सर्वतो हितः ॥ ३३ ॥

बहुपात् वटः ॥

मंजीठकी छाल, वडकी छाल, पिलखनकी छाल, सिरसकी छाल और गूलरककी छाल, इनको एकत्र पीसकर चारों ओर लेप करनेसे वातकी मसूरिका नष्ट हो जाती है ॥ ३३ ॥

गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमै सह। पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुडसंयुतम्। तेन कुप्यति नो वायुः पाकं यान्ति मसूरिकाः ॥ ३४ ॥

मोरटम्—ऐक्षवं मूलम् ॥

मसूरिकाके पकनेके समय गिलोय, मुलहठी, दाख, ईखकी जड और अनार इनको एकत्र पीसकर गुड डालकर पीनेसे वायुका प्रकोप नहीं होता और मसूरिका पक जाती है ॥ ३४ ॥

मसूरिकासु भुञ्जीत शालीन्मुद्गमसूरिकाम्। रसं मधुरमेवाद्यात्सैन्धवं चाल्पमात्रकम्। [1]पटोलमूलं क्वथितं मोरटस्वरसं तथा। आदावेव मसूर्यां पित्तजायां प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥

मसूरिका उत्पन्न हुई हो तो लालचावल, मूंग, मसूर, मधुर रस और कुछेक सैंधानमक इनका भोजन करे। पित्तकी मसूरिकामें प्रथम पटोलकी जडका क्वाथ अथवा पटोलपत्रका क्वाथ ईखकी जडके स्वरसके साथ पीवे ॥ ३५ ॥

निम्बः पर्पटकः पाठा पटोलश्चन्दनद्वयम् ॥ ३६ ॥ उशीरं कटुका धात्री तथा वासा दुरालभा। एषां पानं शृतं शीतमुत्तमं शर्करान्वितम् ॥ ३७ ॥ मसूर्यां पित्तजायान्तु प्रयोक्तव्यं विजानता। दाहे ज्वरे विसर्पे च व्रणे पित्ताधिकेऽपि च ॥ ३८ ॥

नीम, पित्तपापडा, पाढ, परवल, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, खस, कुटकी, आमले, अडूसा और धमासा इनको एकत्र पीसकर खांड मिलाकर इस शीतल पानकको पीनेसे पित्तकी मसूरिका नष्ट होजाती है तथा दाह, पित्तज्वर, पित्तव्रण और पित्तविसर्प इनपर भी यह हितकारी है ॥ ३६--३८ ॥

मसूर्यो रक्तजा नाशं यान्ति शोणितमोक्षणैः। वासामुस्तकभूनिम्बत्रिफलेन्द्रयवासकम् ॥ ३९ ॥

इन्द्रः—इन्द्रयवः ॥

पटोलारिष्टकं चापि क्वाथयित्वा समाक्षिकम्। पिबेत्तेन प्रशाम्यन्ति मसूर्यः कफसम्भवाः ॥ ४० ॥

रुधिरसे उत्पन्न हुई मसूरिका रुधिर निकलवानेसे नष्ट होजाती है। अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, हरड, बहेडा, आमला, इन्द्रजौ, जवासा, कडवे परवल और नीम इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे कफकी मसूरिका शान्त होजाती हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

शिरीषोदुम्बरत्वग्भ्यां खदिरारिष्टजैर्दलैः। कफोत्थासु मसूरीषु लेपः पित्तोत्थितासु च ॥ ४१ ॥

सिरसकी छाल, गूलरकी छाल, खैरके पत्ते और नीमके पत्ते इनका लेप करनेसे कफसम्बन्धी और पित्तसम्बन्धी मसूरिका नष्ट हो जाती है ॥ ४१ ॥

---

१ पटोलं क्वथितं चैव इति वा पाठः।

निंबः पर्पटकः पाठा पटोलः कटुरोहिणी । चन्दने द्वे उशीरञ्च धात्री वासा दुरालभा ॥४२॥ एष निम्बादिकः क्वाथः पीतः शर्करयाऽन्वितः । मसूरीं सर्वजां हन्ति विसर्पज्वरसंयुताम् ॥ ४३ ॥

नीम, पित्तपापडा, पाढ, कडव परवल, कुटकी, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, खस, आमले, अडूसा और लाल धमासा इनका क्वाथ बनाकर खांड मिलाकर पीवे सर्व दोषोंसे उत्पन्न हुई और ज्वर तथा विसर्पवाली मसूरिका भी नष्ट होजाती है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

उत्थिता प्रविशेद्या च तां पुनर्बाह्यतो नयेत् । काञ्चनारत्वचः. क्वाथस्ताप्यचूर्णावचूर्णितः ॥ ४४ ॥

ताप्यम्- सुवर्णमाक्षिकम् ॥....

जो मसूरिका पहिले बाहर निकलकर फिर भीतर समाजाय तो कचनारकी छालका क्वाथ बनाकर उसमें सोनामाखीका चूर्ण डालकर पीवे तो मसूरिका फिर बहर निकल आती है ॥ ४४ ॥

धात्रीफलं समधुकं क्वथितं मधुसंयुतम् । मुखे कण्ठे व्रणे जाते गण्डूषार्थं प्रशस्यते । अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधु मधुकाम्बुना ॥ ४५ ॥

गवेधूगवेधुका 'गडगडिया' इति लोके ॥

मुखमें अथवा गलेमें व्रण हुआ हो तो आमले और मुलहठी इनका क्वाथ बनाकर कुल्ले करावे यह हितकारी है । गवेधु धान्य और मुलहठी इनके जलसे नेत्रोंमें सेचन करनेसे मसूरिकासे दूषित हुई आँखे आराम होजाती हैं । ४५ ॥

मधुकं त्रिफला मूर्वा दार्वी त्वङ्नीलमुत्पलम् । उशीरलोध्रमञ्जिष्ठाः प्रलेपाश्च्योतने हिताः ॥ ४६ ॥

मुलहठी, बहेडा, आमला, मूर्वा, दारुहलदीकी छाल, नीलकमल, खस, लोध और मंजीठ इनका आँखोंपर लेप करनेसे अथवा इनको आँखोंमें लगानसे मसूरिका नष्ट होजाती है और फिर कभी नहीं होता ॥४६॥

नश्यन्त्यनेन दृग्जाता मसूर्यो न भवन्ति च । प्रलेप चक्षुषोर्दद्याद्बहुवारस्य वल्कलैः ॥ ४७ ॥

आँखोंमें मसूरिकाको पीडा हों तो लिसोडेकी छालको पीसकर आँखोंपर उसका गाढा लेप करे ॥ ४७ ॥

पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवधूलयेत् । भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्गोमयरेणुना ॥ ४८ ॥

मसूरिकामें जो क्लेद हो तो पंचवल्कलका चूर्ण उसके ऊपर छिडके । कितने वैद्य कहते हैं कि, उसके ऊपर राख छिडके और कितने वैद्य कहते हैं कि, उसके ऊपर सूखे गोवरका चूर्ण डालना चाहिये ॥ ४८ ॥

सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् । रोमन्तीज्वरवीसर्पव्रणानां शान्तये पिबेत् ॥ ४९ ॥

इति मसूरिकाधिकारः ।

कलौंजीके पत्तोंका क्वाथ बनाकर उसमें हलदीका चूर्ण डालकर पीवे तो रोमतक पहुंची मसूरिका, ज्वर, विसर्प और व्रण शांत हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

इति मसूरिकाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ मसूरिकाभेदशीतलाधिकारः ।

देव्या शीतलया क्रान्ता मसूर्यः शीतला बहिः । ज्वरयेयुर्यथा भूताधिष्ठितो विषमज्वरः ॥ १ ॥

जो मसूरिकामें ही शीतलानामक देवीका आवेश हुआ हो तो वह 'शीतला' कहीजाती है । जिस प्रकार भौतिक विषमज्वर होता है, उसी प्रकार इस शीतलामें ज्वर होता है ॥ १ ॥

सा च सप्तविधा ख्याता तासां भेदान्प्रचक्ष्महे । ज्वरपूर्वा बृहत्स्फोटैः शीतला बृहती भवेत् ॥ २ ॥ सप्ताहान्निःसरत्येव सप्ताहात्पूर्णतां व्रजेत् । ततस्तृतीये सप्ताहे शुष्यन्ति स्खलति स्वयम् ॥ ३ ॥

इस शीतलाके सात भेद हैं कि, जिनको आगे कहेंगे । प्रथम ज्वर आकर पश्चात् बडी बडी फुंसी शरीरमें उत्पन्न हो, वह 'बडी शीतला' कही जाती है । यह शीतला प्रथम सात दिनमें निकलती है फिर, सात दिनमें भर जाती है और तीसरे सप्ताहसे सूख जाती है और अपने आप झड जाती है ॥ ३ ॥

तासां मध्ये यदा काचित्पाकं गत्वा स्फुटेत् स्रवेत् । तत्रावधूलनं कुर्याद्वनगोमयभस्मना ॥ ४ ॥ निम्बसत्पत्रशाखाभिर्मक्षिकामपसारयेत् । जलञ्च शीतलं दद्याज्ज्वरेऽपि न तु तत्पचेत् ॥ ५ ॥ स्थापयेत्तं स्थले पूते रम्ये रहसि शीतले। नाशुचिः संस्पृशेत्तं तु न च तस्यान्तिकं व्रजेत् ॥ ६ ॥

इनमें कोई शीतला पककर फूटे और स्रवे तो उसके ऊपर अरने उपलोंकी भस्मको बुरकावे और नीमके पत्तोंसमेत नीमकी टहनियोंसे मक्खियोंको उडावे । ज्वर हो तो शीतल जल पीनेको देवे, किंतु गरम जल नहीं देवे, शीतलावाले रोगियोंको पवित्र रमणीक, एकांत और शीतल स्थानमें रक्खे, इस रोगीको कोई अपवित्र मनुष्य नहीं छू पावे और अपवित्र मनुष्यको उसके पास न जाना चाहिये ॥४--६॥

बहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति हि । केचित्प्रयोजवन्त्येव मतं तेषामथ ब्रुवे ॥ ७ ॥

बहुतसे वैद्य तो शीतलामें औषधि देतेही नहीं और कितने अवश्य देते हैं । औषधिको देनेवाले वैद्यके सिद्धान्त अनुसार इस शीतलाकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

ये शीतलेन सलिलेन विपिष्य सम्यङ् निम्बाक्षबीजसहितां रजनीं पिबन्ति । तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे पीडाकरा जगति शीतलिका विकाराः ॥८॥

जगतमें जो मनुष्य नीमके बीज, बहेडेके बीज और हलदी इनको शीतल जलमें अच्छी प्रकारसे पीसकर पीता है, उसके शरीरमें पीडाकारक शीतलाका विकार कभी भी नहीं होता ॥ ८ ॥

मोचारसेन सहितं सितचन्दनेन वासारसेन मधुकं मधुकेन चाथ । आदौ पिबन्ति सुमनास्वरसेन मिश्रं ते नाप्नुवन्ति भुवि शीतलिकान् विकारान् ॥९॥ मोचारसेन कदलीस्तंभजलेन । मधुकेन चाथ अथवा मधुना । आदौ–पूर्वरूपे ज्वरागमनमात्रे । सुमनास्वरसेन–जातीपत्रस्वरसेन ॥

जब शीतलाके पूर्वरूपमें ज्वर आवे तो तत्कालही केलेके अर्कके साथ अथवा सफेद चन्दनके रसके साथ अथवा अडूसेके रसके साथ या मुलहठीके रसके साथ अथवा चमेलीके पत्तोंके रसके साथ सहत पीवें तो शीतलाके विकार नष्ट होजाते हैं ॥ ९ ॥

शीतलासु क्रिया कार्या शीतला रक्षया सह । बध्नीयान्निम्बपत्राणि परितो भवनान्तरे । कदाचिदपि नो कार्यमुच्छिष्टस्य प्रवेशनम् ॥ १० ॥

शीतलाके रोगमें सम्पूर्ण शीतल क्रिया करे, मन्त्रादिकसे भूतादिकको दूर करनेके लिये रक्षा करे, घरके चारों ओर नीमके पत्ते बाँधे और उस घरमें कभी भी जूठनको नहीं ले जावे ॥ १० ॥

स्फोटेष्वपि सदाहेषु रक्षारेणूत्करो हितः । तेन ते शोषमायान्ति प्रपाकं न भजन्ति च ॥ ११ ॥

रक्षारेणूत्करः--शुष्कगोमयभस्मचूर्णप्रक्षेपः ॥

शीतलाकी फुंसियोंमें दाह हो तो उसमें सूखे गोबरकी राख हितकारी है । भस्म डालनेसे सब फुंसी सूख जाती है और पकती भी नहीं हैं ॥ ११ ॥

चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया सह । एषां शीतकषायस्तु शीतलाज्वर नाशनः ॥ १२ ॥

लालचन्दन, अडूसा, नागरमोथा, गिलोय, और दाख इनका हिम बनाकर पीनेसे शीतलाका ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

जपहोमोपहारैश्च दानस्वस्त्ययनार्चनैः । विप्रगोशम्भुगौरीणां पूजनैस्तां शमं नयेत् ॥ १३ ॥

जप, होम, बलिदान, स्वस्तिवाचन, पूजन और ब्राह्मण, गाय, सदाशिव तथा जगदम्बा इनके अर्चन करनेसे शीतला शांत हो जाती है ॥ १३ ॥

स्तोत्रञ्च शीतलादेव्याः पठेच्छीतलिकान्तिके । ब्राह्मणःश्रद्धया युक्तस्तेन शाम्यन्ति शीतलाः ॥ १४ ॥

जिस मनुष्यके शीतला निकली हो, उसके पास ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक नीचे लिखे शीतलाके स्तोत्रको पढे, इसके पढनेसे शीतला शांत हो जाती है ॥ १४ ॥

अथ शीतलास्तोत्रम् ।

अस्य श्रीशीतलास्तोत्रस्य महादेव ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः । शीतला देवता। शीतलोपद्रवशान्त्यर्थं जपे विनियोगः ॥ १५ ॥

इस प्रकार प्रथम शीतलाका ध्यान करे, इस श्रीशीतलाके स्तोत्रका सदाशिव कर्ता, अनुष्टुप छन्द और शीतला देवता है । शीतलाके उपद्रवोंको दूर करनेके लिये इस स्तोत्रका जप करता हूँ ' इस प्रकार कहकर पश्चात् स्तुति करे ॥ १५ ॥

स्कन्द उवाच ।

भगवन् देवदेवेश शीतलायाः स्तवं शुभम् । वक्तुमर्हस्यशेषेण विस्फोटकभयापहम् ॥ १६ ॥

स्वामिकार्तिकेय सदाशिवसे पूँछते हैं कि-हे महाराज ! सम्पूर्ण देवोंके देव ! विस्फोटकके भयको हरनेवाली शीतलाका स्तोत्र मुझको अच्छी प्रकार कहिये ॥ १६ ॥

ईश्वर उवाच ।

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् । यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥ १७ ॥

सदाशिव कहते हैं कि, गधेके ऊपर बैठी, नग्न, शीतला देवीको प्रणाम करता हूँ, कि जिस शीतलाको कृपासे विस्फोटकका बडा त्रास दूर हो जाता है ॥ १७ ॥

शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद्दाहपीडितः । विस्फोटकभयं घोरं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥ १८ ॥

दाहसे पीडित जो मनुष्य है शीतले शीतले ! इस प्रकार कहता है, उसके उत्पन्न फोडेका तीव्रभय तत्काल नष्ट होजाता है ॥ १८ ॥

यस्त्वामुदकमध्ये तु धृत्वा संपूजयेन्नरः । विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ १९ ॥ शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धयुतस्य च । प्रनष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवितौषधम् ॥ २० ॥ नमामि शीतलां

देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम् ॥ २१ ॥ शीतले तनुजान् रोगान्नृणां हरसि दुस्तरान्। विस्फोटकविशीर्णानां त्वमेकाऽमृतवर्षिणी ॥ २२ ॥

हे शीतले ! जो मनुष्य तुमको जलमें स्थापनकर तुम्हारा पूजन करता है, उसके कुलमें कभी विस्फोटकका भय नहीं होता। हे शीतले ! ज्वरसे व्याकुल दुर्गन्धयुक्त और जिसकी आंखें नष्ट होगई हैं, ऐसे मनुष्यके जीवनरूप तूँ ही एक उत्तम औषधि है, ऐसा विद्वानोंने कहा है। गधेके ऊपर बैठी, नग्न, एक हाथमें मार्जनी और दूसरे हाथमें कलशको धारण करनेवाली तथा शिरपर छाजको धारण किये हुई शीतला देवीको प्रणाम करता हूँ। हे शीतले ! मनुष्योंके शरीरमें उत्पन्न हुए दुस्तर रोगोंको तुमने हरण किया है। विस्फोटकसे अत्यन्त दुःखी मनुष्योंपर अमृतकी वर्षा करनेवाली तू एकही है ॥ १९-२२ ॥

गलगण्डग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम् । त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्ति ते क्षयम् ॥२३॥ न मन्त्रो नौषधं किञ्चित्पापरोगस्य विद्यते । त्वमेका शीतले धात्री नान्यां पश्यामि देवताम् ॥ २४ ॥ मृणालतन्तुसदृशीं नाभि हृन्मध्यसंस्थिताम्। यस्त्वां सञ्चिन्तयेद्देवि तस्य मृत्युर्न जायते ॥ २५ ॥

हे शीतले ! मनुष्योंके शरीरमें गलगण्ड तथा अन्यान्य जो दारुण रोग उत्पन्न होते हैं, वे सब तेरे ध्यान करनेमात्रसे क्षय होजाते हैं, इस दुष्ट रोगका अन्य कोई औषधि और मंत्रादिक नहीं है। हे शीतले इस रोगसे बचानेवाली तूँ एक ही है। तेरे विना इस रोगसे बचानेवाला अन्य कोई देवता भी देखनेमें नहीं आता। हे देवी ! कमलकी नालके भीतर तंतुके समान नाभि तथा हृदयमें स्थित तुझे जो मनुष्य हृदयमें चिंतन करता है, उसका मरण नहीं होता ॥ २३-२५ ॥

अष्टकं शीतलादेव्या यः पठेन्मानवः सदा। विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ २६ ॥ श्रोतव्यं पठितव्यञ्च नरैर्भक्तिसमन्वितैः । उपसर्गविनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ २७ ॥ शीतलाष्टकमेतद्धि न देयं यस्य कस्यचित्। किन्तु तस्मै प्रदातव्यं भक्ति श्रद्धान्वितो हि यः ॥ २८ ॥

इति स्क. पु. काशीखण्डे शीतलाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जो मनुष्य शीतलादेवीके इन आठ श्लोकोंका सर्वदा पाठ करता है, उसके वंशमें कभी विस्फोटका तीव्र भय उत्पन्न नहीं होता। शीतला स्तोत्र उत्तम और कल्याणकारक है। इसको मनुष्य दुःखको दूर करनेके लिये भक्तिभावसे पाठ करे और पठन श्रवण भी करे। यह शीतलाष्टक नामक स्तोत्र जिस तिसको नहीं देना चाहिये; किंतु जो भक्तिसे और श्रद्धासे युक्त हो, उसीको देना चाहिये। यह काशीखण्डमें कहा हुआ शीतलास्तोत्र पूर्ण हुआ ॥ २७-२८ ॥

अथ शीतलायाद्वितीयो भेदाः ।

वातश्लेष्मसमुद्भुता कोद्रवा कोद्रवाकृतिः। तां कश्चित्प्राह पक्केति सा तु पाकं न गच्छति ॥ २९ ॥ जलशूकवदङ्गानि सा विध्यति विशेषतः। सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा शान्तिं याति विनौषधम् ॥ ॥ ३० ॥ यदि वा भेषजं दद्यात् खदिराष्टकनिर्मितम्। कषायं हि तदा दद्यात् कोद्रवायाः प्रशान्तये ॥ ३१ ॥

कोद्रवा 'कोदवा' इति लोके ॥

वात और कफसे उत्पन्न हुई और कोदोंके समान आकारवाली जो शीतला होती है, उसको 'कोद्रवा' कहते हैं। अनजान मनुष्य इस शीतलाको पकनेवाली कहते हैं; किंतु वास्तवमें यह शीतला पकती नहीं है। यह शीतला विशेषकरके जलके शूकनामक कीडेके समान अंगोंको वेधन करती है और सात दिनमें द्वादश दिनमें औषधिके विना ही शांत हो जाती है। जो इस कोद्रवानामक शीतलाको शांत करनेके लिये औषधि देनी हो तो खदिराष्टकसे बनायाहुआ क्वाथ देना चाहिये २९ ३१॥

अथ शीतलायास्तृतीयो भेदः।

उष्मणा तूष्मजारूपा सकण्डूः स्पर्शनप्रिया। नाम्ना पाणिसहा ख्याता सप्ताहाच्छुष्यति स्वयम् ॥ ३२ ॥

ऊष्मजारूपा षडूष्मजा राजिकाकृतिः। 'अभौरी' इति लोके वदन्ति तद्रूपा। पाणिसहा 'पानसहा' इति लोके ॥

जो शीतला गरमीके कारण राईके समान आकारवाली खुजलीयुक्त और जिसके ऊपर हाथ आदिका स्पर्श प्रिय लगे, वह 'पाणिसहा' कही जाती है और वह शीतला सात दिनमें अपने आप सूखजाती है ॥ ३२ ॥

अथ शीतलायाश्चतुर्थोभेदाः।

चतुर्थी सर्षपाकारा पीतसर्षपवर्णिनी। नाम्ना सर्षपिका ज्ञेयाऽभ्यङ्गमत्र विवर्जयेत् ॥ ३३ ॥

जो शीतला रसोंके समान आकारवाली और पीली सरसोंके समान वर्णवाली हो, वह 'सर्षपिका' कही जाती है। इस शीतलामें अभ्यंगका त्याग करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अथ शीतलायाः पञ्चमो भेदः।

किञ्चिदूष्मनिमित्तेन जायते राजिकाकृतिः एषा भवति बालानां मुखे शुष्यति च स्वयम् ॥ ३४ ॥

एषा दुःखकोद्रवा इति लोके ख्याता ॥

जो शीतला कुछेक गरमरूपी कारणोंसे बालकोंके मुखपर राईके समान आकारवाली हो, वह 'दुःखकोद्रवा' कही जाती है और वह शीतला अपने आप सूख जाती है ॥ ३४ ॥

अथ शीतलायाः षष्ठो भेदः।

कोष्ठवज्जायते षष्ठी लोहितोन्नतमण्डला। ज्वरपूर्वा व्यथायुक्ता ज्वरस्तिष्ठेद्दिनत्रयम् ॥ ३५ ॥

एषा मगधदेशे हाम-इति प्रसिद्धा ॥

स्फोटानां मेलनादेषा बहुस्फोटाऽपि दृश्यते।

प्रथम ज्वर आकर जो शीतला कोढके समान लाल तथा ऊँचे मण्डलवाली होती है और व्यथायुक्त होती है, वह मगधदेशमें 'हाम' इस नामसे कही जाती है। इस शीतलाका ज्वर तीन दिनतक रहता है, इस शीतलाकी फुन्सी मिल जानेसे अनेक फुंसी दीखती हैं ॥ ३५ ॥

अथ शीतलायाः सप्तमो भेदः।

एकस्फोटे च कृष्णा च बोद्धव्या चर्मजाभिधा ॥ ३६ ॥

'चमरगोटी' इति लोके ॥

जो शीतला एक स्फोटकमें काली हो तो 'चर्मजा' कही जाती है ॥ ३६ ॥

अथ शीतलायाः साध्यासाध्यता।

काश्चिद्विनापि यत्नेन सुखं सिद्ध्यन्ति शीतलाः। दुष्टाः कष्टतराः काश्चित्काश्चित् सिध्यन्ति वा न वा। काश्चिन्नैव तु सिध्यन्ति यत्नतोऽपि चिकित्सिताः ॥ ३७ ॥

कितनी एक शीतला चिकित्साके विना ही सहजमें मिटजाती है। कितनी एक शीतला अत्यन्त कष्टसाध्य देखी जाती है। कितनी एक

शीतला समयपर आराम होती है तथा समयपर भी आराम नहीं होती और कितनी एक शीतला तो अनेक बडे २ यत्नोंसे चिकित्सा करनेपर भी आराम नहीं होती ॥ ३७ ॥

अथ शीतलासप्तकस्य सामान्यचिकित्सा ।

एताः सप्तापि बोद्धव्याः शीतलादेव्यधिष्ठिताः । शीतलोचितमाचारमासु सर्वासु वा चरेत् ॥ ३८ ॥

इति शीतलारोगाधिकारः ।

इन सातों प्रकारकी शीतलाओंमें शीतलादेवीका सम्बन्ध होता है, इन सर्वप्रकारकी शीतलाओंमें तत्कालही पूर्वोक्त शीतलाके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

इति शीतलारोगाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ क्षुद्ररोगाधिकारः ।

तत्र पलितरोगनिदानलक्षणम् ।

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः । पित्तञ्च केशान्पचति पलितं तेन जायते ॥ १ ॥ शरीरोष्मा देहाग्निः । पित्तञ्च भ्राजकाख्यम्, तच्च शिरोगतं क्रोधात्कुपितं पित्तं पचति । शोकेन श्रमेण च कुपितो वायुः शरीरोष्माणं शिरोनयति । 'एकः प्रकुपितो दोष इतरावपि कोपयेत्' इति वचनाद्वातपित्ताभ्यां श्लेष्मा च कोपितः, स एव केशानां शौक्ल्यं करोति । एवं त्रयोऽपि दोषाःपलितस्य हेतवः । पलितं केशस्य शुक्लता ॥

क्रोध, शोक तथा परिश्रम आदिसे कोपको प्राप्त हुई वायु शरीरकी गरमीको शिरमें ले जाती है और मस्तकमें रहनेवाला भ्राजकनामक पित्त भी क्रोधसे प्रकुपित होता है, प्रकुपित हुआ एक दोष दूसरे दोषोंको भी प्रकुपित करता है, इस वचनके अनुसार ऊपर कही रीतिसे कुपित हुई वायु और पित्त ये कफको भी कुपित करते हैं और कोपको प्राप्त हुआ कफ बालोंको सफेद करता है । इस प्रकार ये तीनों दोष केशोंके सफेदपनेमें निदानभूत होते हैं ॥ १ ॥

अथ पलितचिकित्सा ।

लोहचूर्णस्य कर्षं तु दशार्द्धं चूतमज्जतः । धात्रीपलद्वयं पथ्ये द्वे तथैकं विभातकम् ॥ २ ॥ पिष्ट्वा लोहमये भाण्डे स्थापयेन्निशि वासयेत् । लेपोऽयमचिराद्धन्ति पलितं तत्र संशयः ॥ ३ ॥

दशार्द्धम्-पञ्चकर्षाणि ॥

लोहेका चूर्ण १ तोला, आमकी गुठली ५ तोले, आमले २ तोले, हरड २ तोले और बहेडा एक तोला इनको एकत्र पीसकर लोहेके वर्तनमें रातभर रहने देवे फिर इसका लेप करनेसे थोडे ही समयमें बालोंकी श्वेतताका नाश होता है ॥ २ ॥ ३ ॥

काश्मर्या मूलमादौ सहचरकुसुमं केतकस्यापि मूलं लौहं चूर्णं सभृङ्गं त्रिफलपलयुतं तैलमेभिः पचेद्यः । कृत्वा लौहस्य भाण्डे क्षितितलनिहितं स्थापयेन्मासमेकं केशाःकाशप्रकाशा अपि मधुपनिभा अस्य योगाद्भवन्ति ॥ ४ ॥

कुम्भेरकी जड, पियाबांसेके फूल या जड, केतकीकी जड, लोहेका चूरा, भांगरा और त्रिफला चार तोले इनके कल्कसे तेलको पकावे उस तेलको लोहे बासनमें भरके पृथिवीमें एक महीने तक गाड देवे । इस तेलके लगानेसे कांसके फूलके सदृश सफेद बालभी भौंरेके समान श्याम होजाते हैं ॥ ४ ॥

त्रिफला नीलिकापत्रं भृंगराजोऽयसो रजः। अविमूत्रेण सम्पिष्टं लेपात्कृष्णीकरं परम् ॥ ५ ॥

हरड, बहेडा, आमले; नीलके पत्ते भांगरा और लोहेका चूरा इनको भेडके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे सफेद बाल काले होजाते हैं ५

अथेन्द्रलुप्तसम्प्राप्तिलक्षणानि।

रोमकूपानुगं रक्तं पित्तेन सह मूर्च्छितम्। प्रच्यावयति रोमाणि ततःश्लेष्मा सशोणितः ॥ ६ ॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः। तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभावयेत् ॥ ७ ॥

रोमोंकी जडमें स्थित रुधिर पित्तके साथ कुपित होकर रोमोंको गिरा देता है, पश्चात् रुधिरसहित कफ रोम कूपोंको रोक देता है कि, जिससे रोम उत्पन्न नहीं होते। इस रोगको इन्द्रलुप्त, खालित्य और रुज्या कहते हैं, देशमें गंज वा ढाक कहते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथेन्द्रलुप्तचिकित्सा।

तिक्तपटोलीपत्रस्वरसैर्घृष्टा शमं याति। चिरकालजाऽपि रुज्या नियतं दिवसत्रयेणापि ॥ ८ ॥

कडवे परवलोंके पत्तोंका स्वरस निकालकर उसके मसलनेसे बहुत दिनोंका इन्द्रलुप्त रोग भी तीन दिनमें आराम हो जाता है ॥ ८ ॥

गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिणी। शिरः प्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते ॥ ९ ॥

गोखरू, तिलके फूल और उनके बराबर घी तथा सहत इनको एकत्र करके शिरपर लेप करनेसे शिरबालोंसे परिपूर्ण होजावा है ॥९॥

हस्तिदन्तमषीं कृत्वा छागीदुग्धं रसाञ्जनम्। लोमान्येतेन जायन्ते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ १० ॥

हाथीदांतकी भस्म, बकरीका दूध और रसौत इनका लेप करनेसे हाथकी हथेलीमें भी बाल उपज आते हैं ॥ १० ॥

यष्टीन्दीवरमृद्वीकातैलाज्यक्षीरलेपनैः। इन्द्रलुप्तं शमं याति केशाः स्युश्च घना दृढाः ॥ ११ ॥

मुलहठी, नीले कमल, दाख, तेल, घी और दूध इनका लेप करनेसे इन्द्रलुप्तरोग अवश्य नष्ट होजाता है और बाल सघन तथा दृढ होजाते हैं ॥ ११ ॥

जातीकरञ्जवरुणकरवीराग्निपाचितम्। तैलमभ्यञ्जनाद्धन्यादिन्द्रलुप्तं न संशयः ॥ १२ ॥

चमेली, करञ्ज, वरना, कनेर और चीता इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल लगानेसे निश्चय इन्द्रलुप्त नष्ट होजाता है ॥ १२ ॥

अथ स्नुहीदुग्धादितैलम्।

स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य लाङ्गली मार्कवो विषम्। अजामूत्रं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी ॥ १३ ॥ सिद्धार्थकस्तीक्ष्णगन्धासम्यगेभिर्विपाचितम्। तैलं भवति नियमात् खालित्यव्याधिनाशनम् ॥ १४ ॥

थूहरका दूध, आकका दूध, कलिहारी, भांगरा, वत्सनाभ बकरीका मूत्र, गायका मूत्र, चौंटली, इन्द्रायन, सरसों और सफेद वच इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल 'स्नुही दुग्धादितैल' कहा जाता है, इस तेलकी मालिस करनेसे इन्द्रलुप्त रोग अवश्य दूर होता है ॥ १३-१४ ॥

अथ दारुणकलक्षणम्।

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रजायते। मारुतश्लेष्मकोपेत विद्याद्दारुणकन्तु तत् ॥ १५ ॥

दारुणा कर्कशा दारुणकं लोके 'रुसी' इति ख्यातम् ॥

वात और कफके प्रकोपसे बालोंकी जमीन खरखरी, खुजलीयुक्त और रूखी होजाती है, उसको 'दारुण, कहते हैं ॥ १५ ॥

अथ दारुणकचिकित्सा

कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः। प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः ॥ १६ ॥

चिरौंजीके बीज, मुलहठी, कूठ, उडद और सैंधानिमक इनको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर शिरमें गाढा लेप करनेसे दारुणकरोग नष्ट होजाता है ॥ १६ ॥

आम्रबीजं तथा पथ्या द्वयं स्यान्मात्रया समम्। दुग्धेन पिष्टं तल्लेपो दारुणं हन्ति दारुणम्। दुग्धेन च खसं बीजं प्रलेपाद् दारुणं हरेत् ॥ १७ ॥

आमकी गुठली और हरड इनको समान भाग लेकर दूधमें पीसकर लेप करनेसे दारुणकरोग दारुण भी अवश्य नष्ट होजाताहै। खसखसके बीजको दूधमें पीसकर लेप करनेसे दारुणक रोग अवश्य नष्ट होता है ॥ १७ ॥

अथ गुञ्जादितैलम् ।

गुञ्जाफलैः शृतं तैलं भृङ्गराजरसेन च । कण्डूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधि नाशनम् ॥ १८ ॥

चौंटलीके कल्कसे और भांगरेके रससे पका हुआ तेल 'गुंजादितैल' कहा जाता है। इस तेल खुजली दारुणक, कोढ और कपालके सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

अथारूषिकालक्षणम् ।

अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदीनि मूर्द्धनि । कफासृक्क्रिमिकोपेन तानि विद्यादरूंषिकाम् ॥ १९ ॥

कफसे, रुधिरके और कृमियोंके प्रकोपसे मस्तकमें बहुत मुखवाले और अत्यन्त क्लेदयुक्त व्रण हों, उनको 'अरूंषिका' कहते हैं ॥ १९ ॥

अथारूंषिकाचिकित्सा ।

नीलोत्पलस्य किञ्जल्को धात्रीफलसमन्वितः । यष्टीमधुकयुक्तश्च लेपाद्धन्यादरूंषिकाम् ॥ २० ॥

नील कमलका केसर, आमला और मुलहठी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अरूंषिका नष्ट होजाती है ॥ २० ॥

अथ त्रिफलाद्यतैलम् ।

त्रिफलायोरजोयष्टीमार्कवोत्पलसारिवाः । सैन्धवं पक्कमेतैस्तु तैलं हन्यादरूंषिकाम् ॥ २१ ॥

हरड, बहेडा, आमला, लोहेका चूरा, मुलहठी कमल, सारिवा और सैंधानिमक इनके कल्कसे पकाया हुआ तैल 'त्रिफलाद्यतैल, कहा जाता है यह तेल अरूंषिकाको नष्ट कर देता है ॥ २१ ॥

अथेरिवेल्लिकालक्षणम् ।

पिडकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम्। सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ २२ ॥

मस्तकमें गोल, उग्र पीडावाली, तीव्र ज्वरवाली, तीनों दोषोंसे उत्पन्न और त्रिदोषोंके लक्षणयुक्त जो पिडका उत्पन्न होती है, वह 'इरिवेल्लिका' कही जाती है ॥ २२ ॥

अथेरिवेल्लिकाचिकित्सा ।

पैत्तिकस्य विसर्पस्य या चिकित्सा प्रकीर्तिता। तयैव भिषगेताश्च चिकित्सेदिरिवेल्लिकाम् ॥ २३ ॥

पित्तज विसर्पकी जो चिकित्सा वैद्योंने कही है, उसी चिकित्सासे इरिवेल्लिकाको दूर करना चाहिये ॥ २३ ॥

अथपनसिकालक्षणम् ।

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडकामुग्रवेदनाम् । स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥ २४ ॥

कानके भीतर वायु तथा कफके प्रकोपसे उठी हुई कठिन और उग्र वेदनावाली जो पिडका होती है, उसको 'पनसिका' कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ पनसिकाचिकित्सा ।

भिषक् पनसिकां पूर्वं स्वेदयेदथ लेपयेत् । कल्कैर्मनः शिलाकुष्ठनिशातालकदारुभिः । पक्वां विज्ञाय तां भित्त्वा व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ २५ ॥

वैद्य प्रथम पनसिकाके ऊपर स्वेद देवे पश्चात् मैनशिल, कूठ, हलदी, हरिताल और देवदारु इनका लेप करे, जब पकजाय तो उसकी व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ २५ ॥

अथ पाषाणगर्दभलक्षणम् ।

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसन्धिजः । स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥ २६ ॥

स्थिरः--कठिनः ॥

वात तथा कफके प्रकोपसे ठोढीकी सन्धिमें कठिन मन्द वेदनावाली और स्निग्ध सूजन हो तो उसको 'पाषाणगर्दभ' कहते हैं ॥२६॥

अथ पाषाणगर्दभचिकित्सा ।

पाषाणगर्दभं पूर्वं स्वेदयेत्कुशलो भिषक् । ततः पनसिकाप्रोक्तैः कल्कैरुष्णैः प्रलेपयेत् ॥ २७ ॥

प्रवीण वैद्य प्रथम पाषाणगर्दभके ऊपर स्वेद करावे पश्चात् पनसिकाकी चिकित्सामें कहे हुए उष्ण कल्कोंसे प्रलेप करे ॥ २७ ॥

वातश्लैष्मिकशोथघ्नैः कल्कैरन्यैश्च लेपयेत् । परिपाकगतं भित्त्वा व्रणवत्तमुपाचरेत् ॥ २८ ॥

वात और कफकी सूजनको हरनेवाले अन्यान्य कल्कोंका भी लेप करे । पाषाणगर्दभको पका जानकर उसको शस्त्रसे चीरकर व्रणके समान उपचार करे ॥ २८ ॥

जलौकोभिर्हृते रक्ते स शाम्यति विनौषधम् । एतत्स्थलेषु बहुषु प्रेक्षितं लिखितं ततः ॥ २९ ॥

जोंक लगाकर रुधिर निकलवावे तो औषधके विना ही पाषाणगर्दभ शांत होजाता है । यह बहुतवार अजमाया हुआ है, इस लिये यह लिखा है ॥ २९ ॥

अथ युवानपिडकालक्षणम् ।

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः । युवानपिडका यूनां ज्ञेयास्ता मुखदूषिकाः ॥ ३० ॥

प्रख्याः--सदृशाः । एताः यूनामेव मुखे भवन्ति स्वभावात् । युवानपिडकाः यूनामानने याः पिडकाः पृषोदरादित्वान्नकारलोपः ॥

युवा मनुष्योंके मुखपर सेमलके कांटोंके समान कफ वायु तथा रुधिरसे उत्पन्न होनेवाली जो फुंसी होती हैं, वे 'युवानपिडका' तथा मुखदूषिका मोहासे कही जाती हैं । फुंसी स्वाभाविक रीत्यनुसार युवाओंके मुखपर होती हैं ॥ ३० ॥

अथ युवानपिडकाचिकित्सा ।

अङ्गुलस्य चतुर्थांशो मुखलेपो विधीयते । मध्यमस्तु त्रिभागः स्यादुत्तमोऽर्द्धाङ्गुलो भवेत् ॥ ३१ ॥

चौथाई अंगुलप्रमाण गाढा लेप करना कनिष्ठ मात्रा है, तिहाई अंगुल प्रमाण गाढा लेप करना मध्यम मात्रा है, और आठ अंगुल प्रमाण गाडा लेप करना उत्तम मात्रा है ॥३१॥

स्थितिकालोऽपि तस्योक्तो यावत्कल्को न शुष्यति शुष्कस्तु गुणहीनः स्यात्तथा दूषयति त्वचम् ॥ ३२ ॥

लेप की हुई औषधि जबतक सूखे नहीं तबतक मुखपर रखना चाहिये, सूखने पश्चात् मुखपर नहीं रखना चाहिये । सूखा हुआ लेप रखनेसे गुणहीन हो जाता और त्वचाको दूषित करदेता है ॥ ३२ ॥

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिडकापहः । तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपितम् ॥ ३३ ॥

लोध, धनियां और वच इनका लेप करनेसे युवा अवस्थाकी मुखकी फुंसी मोहासे नष्ट हो जाते हैं । गोरोचनके साथ कालीमिरचोंका लेप करनेसे तरुण अवस्थाके कारण उत्पन्न हुए मुहासे सब दूर होजाते हैं ॥ ३३ ॥

सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम् । वमनं च निहन्त्याशु पिडका यौवनोद्भवाम् ॥ ३४ ॥

सरसों, वच, लोध और सैंधानिमक इनका लेपकरनेसे मुखके मुहासे दूर होजाते हैं । बमन करनेसे तरुण अवस्थाके मुखके मुहासे दूर होजाते हैं ॥ ३४ ॥

अथ मुखकान्तिकरो लेपः

केवलाः पयसा पिष्टास्तीक्ष्णा शाल्मलिकण्टकाः । आलिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मोपमं मुखम् ॥ ३५ ॥

सेमलके तीक्ष्ण कांटोंको दूधके साथ पीसकर तीन दिनतक लेप करनेसे मुहासे दूर होकर मुख कमलके समान सुन्दर होजाता है ॥ ३५ ॥

अथ व्यङ्गलक्षणम् ।

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः । मुखमागत्य सहसा मण्डलं प्रसृजत्यतः । नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गं तदादिशेत् ॥ ३६ ॥

व्यंगम् ' झांई ' इति लोके ॥

क्रोधसे तथा परिश्रमसे प्रकोपको प्राप्त हुई पित्तके साथ वायु मुखमें आकर तत्काल मुखके ऊपर वेदना रहित, बहुत पतली और काली झांई युक्त मण्डल करती है उसको ' व्यंग ' कहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ नीलिकालक्षणम् ।

कृष्णामेवंगुणं वक्त्रे गात्रे वा नीलिकां विदुः ॥ ३७ ॥

एवंगुणम्-नीरुजं तनुकं मण्डलम् ॥

मुखके ऊपर अथवा देहके ऊपर वेदनारहित पतला तथा काला मण्डल होता है, उसको 'नीलिका' कहते हैं ॥

अथ व्यङ्गनीलिकयोश्चिकित्सा ।

शिरावेधैः प्रलेपैश्च तथाऽभ्यङ्गैरुपाचरेत् । व्यङ्गं च नीलिकां वापि न्यच्छं च तिलकालकम् ॥ ३८ ॥

नसको खोलनेसे, प्रलेप करनेसे तथा अभ्यंगसे व्यंगकी, नीलिकाकी, न्यच्छकी तथा तिलकालककी चिकित्सा करे ॥ ३८ ॥

वटांकुरा मसूराश्च प्रलेपाद्व्यङ्गनाशनम् । व्यङ्गे मञ्जिष्ठया लेपः प्रशस्तो मधुयुक्तया ॥ ३९ ॥

वडके अंकुर और मसूर इनका प्रलेप करनेसे व्यंगका नाश होता है । मजीठको सहतमें पीसकर लेप करनेसे व्यंग नष्ट होताहै ॥३९॥

अथवा लेपनं शस्तं शशस्य रुधिरेण च । व्यङ्गघ्नद्वरुणत्वक्स्यादजामूत्रेण पेषिता ॥ ४० ॥

खरगोशके रुधिरका लेप करनेसे व्यंग (झाई) नष्ट होजाती है । वरनेकी छालको

बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे झाईं नष्ट होती है ॥ ४० ॥

जातीफलस्य लेपस्तु हरेद्व्यङ्गं च नीलिकाम् । अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा प्रलेपनात् । मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिर कालोद्भवं ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

जायफलका लेप करनेसे झाईं दूर होजाती है और नीलिका भी दूर होजाती है । आकका दूध और हलदी इनको पीसकर प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंकी मुखकी कृष्णता दूर होजाती है ॥ ४१ ॥

मसूरैः क्षीरसम्पिष्टैर्लिप्तमास्यं घृतान्वितैः। सप्तरात्राद्भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलोपमम् ॥ ४२ ॥

मसूरको दूधमें पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे सात दिनमें मुखमण्डल कमलके समान होजाता है ॥ ४२ ॥

वटस्य पाण्डुपत्राणि मालती रक्तचन्दनम् । कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥ युवास्यपिडकानां तु व्यङ्गानां तु विनाशनम् । स्यादेतेन मुखं चापि वर्जितं नीलिकादिभिः॥४४॥

कालीयकं ' कदम्बक ' इति लोके ॥

बडके पीले पत्ते, मालती, लालचन्दन, कूठ, कदम्बक और लोध इनका लेप करनेसे युवा मनुष्योंके मुखके मुहासे तथा व्यंगका नाश होता है । इस उपायसे मुखके दाद वगैरह भी दूर होजाते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अथ कुंकुमाद्यतैलम् ।

कुंकुमं चन्दनं लोध्रं पतङ्गं रक्तचन्दनम्। कालीयकमुशीरञ्च मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका ॥४५॥ पत्रकं पद्मकं पद्मं कुष्ठं गोरोचना निशा । लाक्षा दारुहरिद्रा च गैरिकं नागकेसरम् ॥ ४६ ॥ पलाशकुसुमश्चापि प्रियङ्गुश्च वटांकुराः । मालती च मधूच्छिष्टं सर्षपाः सुरभिर्वचा ॥ ४७ ॥ चतुर्गुणपयः पिष्टैरेतैरक्षमितैः पृथक् । पचेन्मन्दाग्निना वैद्यस्तैलं प्रस्थद्वयोन्मितम् ॥ ४८ ॥ वदनाभ्यञ्जनादेतद्व्यङ्गं नीलिकया सह । तिलकं माषकं न्यच्छं नाशयेन्मुखदूषिकाम् ॥ ४९ ॥ पद्मिनी कण्टकश्चापि हरेज्जतुमणिं तथा । विदध्याद्वदनं पूर्णचन्द्रमण्डलसुन्दरम्॥५०॥

पतंगम् 'बकम्' इति लोके । कालीयम्-कदंबकम् । सुरभिर्वचा 'महाभरी' इति लोके॥

केशर, सफेद चन्दन, लोध, पतंग, लालचन्दन, कदम्बक, खस, मञ्जीष्ठ, मुलहठी, तेजपात पद्माख, कमल, कूठ, गोरोचन, हलदी, लाख, दारुहलदी, पीलागेरू, नागकेसर, ढाकके फूल, फूलप्रियंगू, बडके अंकुर, मालती, मोम, सरसों, महावरी और वच ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर चौगुने दूधमें पीसकर वैद्य इस कल्कसे एकसो अट्ठाईस तोले तेलको मन्दमन्द अग्निसे पकावे, इस 'कुंकुमाद्य' तेलको मुखपर अभ्यंग करनेसे व्यंग, नीलिका, तिल, मशक, न्यच्छ, मुखदूषिका, पद्मिनीकण्टक और जतुमणि ये सब रोग, नष्ट होते हैं और मुख पूर्ण चन्द्रमण्डलके समान सुन्दर, होजाता है ॥ ४५-५०॥

अथ वल्मीकलक्षणम् ।

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे सन्धौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः । ग्रन्थिः स वल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम् ॥ ५१ ॥ मुखै रनेकैः स्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः । वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥ ५२ ॥

ग्रीवा-कृकाटिका । अंसः-स्कन्धः । कक्षा-बाहु मूलम् । वल्मीकवदित्यनेन प्रचुरशिखरत्वमुच्चत्वमव्रणाढ्यमूलत्वञ्च सूच्यते । निष्प्रत्यनीकम्-उपचारायोग्यम् ॥

ग्रीवामें, खवोंमें वा कन्धे, कोख, हाथ और पांव इन प्रदेशोंमें संधियोंमें अथवा गलेमें बांमईके समान अनेक शिखरोंवाली, ऊंची और दृढ जड़वाली ग्रंथि होती है । चिकित्सा नहीं करनेवाले मनुष्योंके यह ग्रंथि अनुक्रमसे बढकर स्रावयुक्त, व्यथायुक्त और आगेसे ऊंची अनेक मुखोंसे विसर्पके समान फैल जाती है, इस रोगको वैद्य 'वल्मीक' कहते हैं । यह रोग जो बहुत कालसे उत्पन्न हुआ हो तो विशेष करके इसकी चिकित्सा निष्फल होती है ॥५१ ॥५२॥

अथासाध्यवल्मीकलक्षणम् ।

वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुव्रणम् । पाणिपादोपरिष्टात्तु च्छिद्रैर्बहुभिरावृतम् । वल्मीकं यत्सशोफं स्याद्वर्ज्यं तद्धि विजानता ॥ ५३ ॥

हाथ अथवा पांवके ऊपर जो वल्मीक बहुत छिद्रोंसे बहुत व्रणोंसे व्याप्त हो और सूजनसे युक्त हो, उसकी वैद्य जान बूझकर चिकित्सा न करे ॥ ५३ ॥

अथ वल्मीकचिकित्सा ।

शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् । विधानेनार्बुदोक्तेन शोधयित्वा च रोपयेत् ॥ ५४ ॥

वल्मीकको शस्त्रसे चीरकर क्षारसे तथा अग्निसे दूर करे । अर्बुदकी चिकित्साके समान प्रथम शोधन करे पश्चात् रोपण करे ॥ ५४ ॥

वल्मीकं तु भवेद्यस्य नातिवृद्धममर्मजम् । तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद् भिषक् ॥ ५५ ॥

वल्मीक जो अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त न हुई हो और मर्मस्थलमें न उत्पन्न हो तो वैद्य संशोधन करके पश्चात् उनमेंसे रुधिर निकलवावें ॥ ५५ ॥

कुलत्थकानां मूलैश्च गुडूच्या लवणेन च आरेवतस्य मूलैश्च दन्तीमूलैस्तथैव च ॥ ५६ ॥ श्यामामूले सपललैः सक्तुमिश्रैः प्रलेपयेत् । सुस्निग्धैश्चासुखोष्णैश्च भिषक् तमुपनाहयेत् ॥ ५७ ॥

कुलथीकी जड, गिलोय, सैंधानिमक, अमलतासकी जड, दन्तीकी जड, निसोतकी जड, मांस और सत्तू इनको मिलाकर वल्मीकपर प्रलेप करें और अत्यन्त स्निग्ध पदार्थोंको कुछ कुछ गरम करके उसके ऊपर पट्टी बांधें ॥

पक्वं तद्वा विजानीयाद्गतीः सर्वा यथाक्रमम् । अभिज्ञाय गतिं छित्वा प्रदिह्यान्मतिमान् भिषक् ॥ ५८ ॥ संशोध्य दुष्टमांसानि क्षारेण प्रतिसारयेत् । व्रणं विशुद्धं विज्ञाय रोपयेन्मतिमान्भिषक्॥५९॥

जब वल्मीक पक जाय तब उसको अनुक्रमसे पीवकी गतिको विचारकर शस्त्रसे चीरकर बुद्धिमान् वैद्य लेपकर, दूषित मांसको साफ करके पश्चात् क्षार डालकर प्रतिसारण करे । व्रणको साफ समझकर फिर बुद्धिमान् रोपण औषधियोंसे भरे ॥५८॥५९॥

अथ मनःशिलाद्यतैलम् ।

मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः । जातीपल्लवतक्रैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ॥ ६० ॥

मैनशिल, हरिताल, भिलावे, छोटी इलायची, अगर, सफेद चन्दन, चमेलीके पत्ते और छांछ इनको नीमके तेलसे पकावें तो यह 'मनःशिलाद्यतैल' सिद्ध होता है। यह तैल--अनेक छिद्रोंवाले तथा अनेक व्रणोंवाले वल्मीकको नष्ट करता है ॥ ६० ॥

अथ कक्षागन्धमालयोर्लक्षणम् ।

बाहुकक्षांसपार्श्वेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् । पित्तप्रकोपसम्भूतां कक्षां तामिति निर्दिशेत् ॥ ६१ ॥

बाहुओंमें, कोखमें और पसलियोंमें पित्तके प्रकोपसे, वेदनायुक्त जो फोडे होते हैं, उनको 'कक्षा' (कखहारी, कखलाई) कहते हैं॥६१॥

एकां तु तादृशीं दृष्ट्वा पिडकां स्फोटसन्निभाम् । त्वग्जतां पित्तकोपेन गन्धमालां प्रचक्षते ॥ ६२ ॥

तादृशीम्-बाह्वादिषु कृष्णां सवेदनाञ्च ।

ऊपर कही हुई बाहु आदिके स्थानोंकी त्वचामें पित्तके प्रकोपसे काली और वेदनावाली फुन्सीके समान जो एक फुन्सी होती है, उसको 'गन्धमाला' कहते हैं ॥ ६२ ॥

अथ कक्षागन्धमालयोश्चिकित्सा ।

कक्षाञ्च गन्धमालाञ्च चिकित्सेच्च चिकित्सकः । पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया पूर्व मुक्तया ॥ ६३ ॥

पित्तजविसर्पकी जो चिकित्सा कही है, वही चिकित्सा कक्षा और गन्धमालाकी करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

अथाग्निरोहिणीलक्षणम् ।

कक्षाभागेषु विस्फोटा जायन्ते मांसदारुणाः । अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥ ६४ ॥ सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नन्ति मानवम् । तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सान्निपातिकीम् ॥ ६५ ॥

सप्ताहादिति वातपित्तकफापेक्षया बोद्धव्यम् ॥ ६४ ॥

कांछमें अत्यन्त दारुण, भीतर दाह करनेवाली और प्रदीप्त अग्निके समान जो फोडे होते हैं, उनको 'अग्निरोहिणी' कहते हैं । जो इनमें वायुकी उल्वणता हो तो यह मनुष्यको सात दिनमें मार देती हैं । पित्तकी उल्वणता हो तो दश दिनमें मार देती है और कफकी उल्बणता हो तो पन्द्रह दिनमें मार देती है । तीनों दोषोंके प्रकोपसे उत्पन्न हुई अग्निरोहिणी असाध्य है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

घ्नन्तीत्यनुपाक्रान्ताः, उपक्रान्तास्तु साध्या एव । चरकेण अग्निरोहिण्याः चिकित्साया उक्तत्वात् ॥

यहां ऐसा जानना कि जो इसकी चिकित्सा न की जाय तो अग्निरोहिणी असाध्य हो जाती है, किन्तु जो चिकित्सा की जाय तो साध्य है । क्योंकि चरकने अग्निरोहिणीकी चिकित्सा कही है ॥

अथाग्निरोहिणीचिकित्सा ।

पित्तवीसर्पविधिना साधयेदग्निरोहिणीम् ॥

पित्तजविसर्पोक्त चिकित्साके अनुसार वैद्य अग्निरोहिणीको दूर करे ॥

रोहिण्यां लङ्घनं कुर्याद्रक्तमोक्षणरूक्षणम् । शरीरस्य च संशुद्धिं तां तु वृद्धां परित्यजेत् ॥ ६६ ॥

अग्निरोहिणीको दूर करनेके लिये वैद्य लंघन करावे रुधिर निकलवावें और विरेचन आदिसे शरीरको संशोधन करें, परन्तु जो अग्निरोहिणी अत्यन्त बृद्धिको प्राप्त हो तो उसकी चिकित्सा न करें ॥ ६६ ॥

अथ विदारिकालक्षणं निदानं च ।

विदारिकन्दवद्वृत्तां कक्षावंक्षणसन्धिषु । रक्तां विदारिकां विद्यात्सर्वजां सर्वलक्षणाम् ॥ ६७ ॥

अत्र पिडकामिति विशेष्यपदमध्याहरणीयम् ॥

कांख अथवा वंक्षण संधिमें विदारीकन्दके समान गोल हुई, लाल, सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न होनेवाली और सम्पूर्ण दोषोंके लक्षणोंसे युक्त

जो फुन्सी हो तो वह 'विदारिका' कही जाती है ॥ ६७ ॥

अथ विदारिकाचिकित्सा ।

विदारिकायां प्रथमं जलौकोयोजनं हितम् । पाटनं च विपकायां ततो व्रण विधिः स्मृतः ॥ ६८ ॥

विदारिकापर प्रथम जोंक लगानी उत्तम है और जो विदारिका पक गई हो तो उसको शस्त्रसे चीरना चाहिये और पश्चात् व्रणके समान चिकित्सा करें ॥ ६८ ॥

अथ चिप्यलक्षणम् ।

नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तं च देहिनाम् । करोति दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत् ॥ ६९ ॥

चिप्यं 'वडवा' इति लोके ॥

वात और पित्त ये मनुष्योंके नखोंके मांसमें रहकर नखका क्षय कर देते हैं तथा पका देते हैं, उसको 'चिप्यरोग' कहते हैं ॥ ६९ ॥

अथ कुनखनिदानलक्षणम् ।

अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षः सितः खरः । भवेत्तं कुनखं विद्यात्कुलीरं वाऽभिधानतः ॥ ७० ॥

अभिधानतः-नामतः ॥

काष्ठ आदिके आघातसे दुष्ट हुआ नख रूखा, सफेद और खरखरा होजाता है, इसको 'कुनख' अथवा 'कुलीर' कहते हैं ॥ ७० ॥

अथ चिप्यकुनखचिकित्सा ।

चिप्यं रुधिरमोक्षेण शोधनेनाप्युपाचरेत् । गतोष्माणमथैनन्तु सेचयेदुष्णवारिणा ॥ ७१ ॥

चिप्य हुआ हो तो रुधिर निकलवावे और शोधन भी करना चाहिये, इसमें जो गरमी नहीं रही हो तो गरम जलसे सेचन करें ॥७१

शस्त्रेणापि यथायोग्यमुच्छिद्य स्रावयेत्ततः । व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत्तं विचक्षणः ॥ ७२ ॥

विचक्षण वैद्य योग्यरीत्यनुसार उसको शस्त्रसे चीरकर स्राव करावें, पश्चात् व्रणकी चिकित्साके अनुसार शोधन-रोपण करें ॥७२

स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृत्वाऽऽयसेऽभयाम्। घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं पुनः पुनः ॥ ७३ ॥

लोहेके पात्रमें हलदीका रस डाल करके उसमें हरडको घिसकर चिप्यपर बारम्बार लेप करे ॥ ७३ ॥

काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः । अङ्गुलीवेष्टकः पुंसां ध्रुवमाशु प्रशाम्यति ॥ ७४ ॥

कुम्भेरके कोमल सात पत्तोंको अंगुलीपर बांधनेसे चिप्य तत्काल शांत हो जाता है ७४॥

श्लेष्मविद्रधिकल्केन कुनखं समुपाचरेत् । नखकोटिप्रविष्टेन टङ्कणेन च शाम्यति । कुनखश्चेत्तदा शैलः सलिले प्लवतेऽपि च ॥ ७५ ॥

कफज विद्रधिकी जो चिकित्सा कही है, वही चिकित्सा कुनखकी की जावे तो कुनख अवश्य नष्ट होजाता है कुनखके भीतर सुहागा भरनेसे कुनख अवश्य आराम होजाता है॥७५

अथ परिवर्तिकानिदानलक्षणम् ।

मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः । मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन्॥७६॥ तदा वातोपसृष्टन्तु तच्चर्म परिवर्तते सवेदनं सदाहं च पाकश्च व्रजति क्वचित् । मणेरधस्तात्कोषस्तु ग्रन्थिरूपेण लम्बते ॥ ७७ ॥

कोषः-चर्मकोषः ॥

सम्पूर्ण शरीरमें विचरती हुई वायु लिंगको खुजानेसे, दबानेसे तथा चोटके लगनेसे लिंगकी त्वचामें आती है, तब वह वायुसे दूषित त्वचा परिवर्तन कही जाती है। वेदनायुक्त, दाहसहित और किसी समय पकजाती है। इस प्रकार लिंगकी मणिके नीचे वह चमडी गांठके समान लटकती है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

मारुतागन्तुसम्भूतां विद्यात्तां परिवर्तिकाम् । सकण्डूः कठिना चापि सैव श्लेष्मसमन्विता ॥ ७८ ॥

वायु तथा अभिघात आदि आगन्तुक कारणोंसे उत्पन्न हुआ यह रोग 'परिवर्त्तिका' कहाजाता हैं। इस रोगमें कफका भी सम्बन्ध हो तो त्वचा खुजलीवाली तथा कठिन होती है ॥ ७८ ॥

अस्यां वातजायामपि पित्तानुबन्धो बोद्धव्यो दाहपाकभावात् ॥

यद्यपि यह रोग वातसे उत्पन्न हो तो भी इसे दाह और पाक होनेसे पित्तका सम्बन्ध जानना ॥

अथ परिवर्तिकाचिकित्सा ।

परिवर्तिं घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत् । त्रिरात्रं पञ्चरात्रञ्च वातघ्नैःशाल्वणादिभिः ॥७९॥ ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म पाटयेत्पीडयेन्मणिम् । प्रविष्टे चर्मणि मणौ स्वेदयेदुपनाहनैः । दद्याद्वातहरान्वस्तीन्स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत् ॥८०॥

परिवर्तिकाको घी चुपडकर अच्छी प्रकारसे सेंक देवे और तीन रात्रितक अथवा पांच रात्रितक वायुको हरनेवाले शाल्वणादिकल्कोंकी पट्टी बांधे, फिर त्वचाको घीसे चुपडकर धीरे धीरे बढाकर लिंगकी मणिको दबावे जिससे मणि त्वचाके भीतर चली जाय। मणिको त्वचामें प्रवेश कराकर पश्चात् उपनाह स्वेदकर वातनाशक पिचकारी लगावे तथा रोगीको स्निग्ध अन्न भोजनके लिये देवे ॥ ७९ ॥ ८० ॥

अथावपाटिकानिदानलक्षणम् ।

अल्पीयःखं यदा हर्षाद्बलाद्गच्छेत्स्त्रियं नरः । हस्ताभिघातादथवा चर्मण्युद्वर्तिते बलात् ॥ ८१ ॥ मर्दनात्पीडनाद्वापि शुक्रवेगाभिघाततः । यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥८२॥

अल्पीयः-अल्पतरं खं योनिच्छिद्रं यस्याः ताम् अवपाट्यते--विदीर्यते ॥

जिस स्त्रीकी योनिका छिद्र बहुत छोटा हो, ऐसी योनिवाली स्त्रीके साथ कामातुर-पुरुषके बलसहित मैथुन करनेसे, अथवा हस्त मैथुनादि करनेसे हाथकी चोटके लगनेसे जोरसे त्वचाको उलटनेसे अथवा खुजानेसे वा दबानेसे अथवा वीर्यके वेगके अभिघातसे लिंगकी त्वचा फटजाती है, इसको 'अवपाटिका' कहते हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

वातेन कर्कशा रूक्षा सूक्ष्मा कृष्णा रुगन्विता । पित्तेन पीता रक्ता वा दाहतृष्णासमन्विता । श्लेष्मणा कठिना स्निग्धा कण्डूमत्स्वल्पवेदना ॥

यह अवपाटिका जो वायुसम्बन्धवाली हो तो खरखरी, रूखी, सूक्ष्म, काली तथा वेदनावाली होती है। पित्तके सम्बन्धवाली हो तो पीली अथवा लाल और दाहसे तथा तृषासे संयुक्त होती है और जो कफके सम्बन्धवाली हो तो कठिन, स्निग्ध, खुजलीवाली और अल्पपीडायुक्त होती है ॥ ८३ ॥

अथावपाटिकाचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैरिमां वैद्यश्चिकित्सेदवपाटिकाम् ॥ ८४ ॥

वैद्यस्नेहोंसे तथा स्वेदोंसे अवपाटिकाकी चिकित्सा करे ॥ ८४ ॥

अथ निरुद्धप्रकाशलक्षणम् ।

वातोपसृष्टे मेढ्रे तु चर्म संश्रयते मणिम् । मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च

॥ ८५ ॥ निरुद्धप्रकशे तस्मिन् मन्दधारमवेदनम् । मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्विव्रियते न च ॥ ८६ ॥ निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं वातसम्भवम् ॥ ८७ ॥

निरुद्धप्रकाशमित्यस्य स्थाने निरुद्धप्रकशपदमार्षत्वात् ॥

लिंगमें वातका प्रकोप होकर चमडी मणिके आगे आकर चिपट जाती है, इस प्रकार चमडीसे बढी हुई मूत्रके प्रवाहको रोक देती है; इसको 'निरुद्धप्रकाश' रोग कहते हैं। इस रोगमें मूत्र मन्द मन्द धारसे तथा वेदनारहित निकलता है और लिंगकी सुपारी खुलती नहीं, यह रोग वायुसे होता है और इसमें वेदना भी होती है। व्याकरणके अनुसार 'निरुद्धप्रकाश' ऐसा होना चाहिये, परन्तु 'निरुद्धप्रकश' यह आर्ष है; अतएव 'निरुद्धप्रकश' ही लिखा है ॥ ८५-८७ ॥

अथ निरुद्धप्रकाशचिकित्सा ।

निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीमुभयतोमुखीम् । दारवीं वा जतुकृतां घृताक्तां सम्प्रवेशयेत् ॥ ८८ ॥ परिषिञ्चेद्वसामज्जां शिशुमारवराहयोः । चक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥८९॥ त्र्यहात्स्थूलतरां सम्यङ् नाडीं मार्गे प्रवेशयेत् । स्रोतो विवर्द्धयेदेवं स्निग्धमन्नञ्च भोजयेत् । भित्त्वा वा सेवनीं मुक्त्वा सद्यः क्षतवदाचरेत् ॥ ९० ॥

निरुद्धप्रकशमें दोनों ओर मुखवाली घीसे चुपडीहुई लोहेकी वा लकडीकी अथवा लाखकी बनी नली लिंगके छिद्रमें प्रवेश करे, पश्चात् उसके ऊपर शिशुमार (सूस) नामके जन्तुकी तथा सुअरकी चरबीका वा मज्जाका सेचन करे और वातनाशक पदार्थोंके साथ चक्रके तेलका भी सेचन करे । तीन तीन दिनके पश्चात् क्रम क्रमसे बढाकर बडी नली उसमें अच्छी प्रकारसे प्रवेश करे जिससे मूत्रका मार्ग बढे । इस क्रियाके करते समय रोगीको स्निग्ध अन्न भोजनके लिये देवें । सीवनको छोडकर शस्त्रसे चीरे, तत्काल क्षतके समान चिकित्सा करें तो इससे निरुद्धप्रकाश नष्ट होजाता है ॥ ८८-९० ॥

अथ सन्निरुद्धगुदनिदानलक्षणम् ।

वेगसन्धारणाद्वायुर्विहतो गुदसंश्रितः । निरुणद्धि महत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ९१ ॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति । सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेतं विद्यात्सुदुस्तरम् ॥ ९२ ॥

मलादिके वेगोंको रोकनेसे अभिघातको प्राप्त हुई गुदामें रहनेवाली वायु गुदाके बडे द्वारको रोककर छोटा कर देती है कि, जिससे मार्ग सुकडकर विष्ठा थोडी थोडी निकलती है । यह 'सन्निरुद्धगुदनामक' व्याधि कही जाती है और यह अत्यंत दुस्तर है ॥९१-९२॥

अथ सन्निरुद्धगुदचिकित्सा ।

सन्निरुद्धगुदे तैलैः सेको वातहरैर्हितः । तथा निरुद्धप्रकशक्रियापि कथिता ऽथवा ॥ ९३ ॥

वातनाशक तैलोंसे सेचन करें अथवा निरुद्धप्रकशकी जो चिकित्सा कही है, वही चिकित्सा करनेसे सन्निरुद्धगुद नष्ट होजाता है ॥ ९३ ॥

अथ वृषणकच्छूनिदानलक्षणम् ।

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः । प्रक्लिद्यते यदा स्वेदात्कण्डूं जनयते तदा ॥ ९४ ॥ ततः कण्डूयनात्क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते । प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ९५

उत्सादनम्-उद्वर्तनम् । मलः 'मैलि' इति लोके । प्रक्लिद्यते-आर्द्रो भवति ॥

स्नान नहीं करनेसे तथा अंगोंको साफ नहीं करनेसे अथवा स्नान करते समय जो मनुष्य मैलको उबटन आदिसे नहीं साफ करता, उसके वृषणोंके ऊपर स्थित मैल जब पसीनेके साथ मिलता है; तब खुजलीको उत्पन्न करता है । उसको बारबार खुजानेसे तत्काल फोडा होजाता है और वह स्रावदाला होता है । यह कफ तथा रुधिरके प्रकोपसे होता है ॥९४-९५

अथ वृषणकच्छूचिकित्सा ।

सर्जाह्वकुष्ठ-सैन्धव सित-सिद्धार्थैः प्रकल्पितो योगः । उद्वर्तनेन नियतं शमयति वृषणस्य कण्डूतिम् ॥ ९६ ॥

राल, कूठ, सैंधानिमक और सफेद सरसों इनको एकत्र करके वृषणोंके ऊपर मलनेसे वृषणकी खुजली अवश्य नष्ट होजाती है ॥९६॥

भिषग्वृषणकच्छूं तु चिकित्सेत्पामरोगवत् । अहिपूतननिर्दिष्टक्रियया ऽपि च तां हरेत् ॥ ९७ ॥

वैद्य वृषणकच्छूकी पामाकी समान चिकित्सा करें अथवा नीचे अहिपूतन नामक रोगकी जो चिकित्सा कही है, वही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९७ ॥

अथाहिपूतननिदानलक्षणम् ।

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् । स्विन्ने वाऽस्नाप्यमानस्य कण्डू रक्तकफोद्भवा ॥ ९८ ॥ कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते । एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ९९ ॥

मलमूत्रके त्यागके बाद बालककी गुदामें विष्ठा लगारहनेसे, उसको बराबर नहीं धोनेसे गुदामें खाज होजातीहै और पसीनेके निकलने पर उसको साफ न करनेसे अर्थात् पसीनेको वहीं भरने देनेसे रुधिर तथा कफके प्रकोपसे खुजली होती हैं, । खुजवानेसे तत्काल फुंसी तथा स्राव होता है जिससे उत्पन्न हुए व्रण एकत्रित होकर भयंकर होजाते हैं, उसको 'अहिपूतन' कहते हैं ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अथाहिपूतनचिकित्सा ।

तत्र संशोधनैः पूर्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत् । त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां क्षालनं हितम् । शङ्खसौवीरयष्ट्याद्यैर्लेपः कार्योऽहिपूतने ॥ १०० ॥

अहिपूतनके उत्पन्न होतेही प्रथम संशोधनसे माताके दूधको शुद्ध करें । हरड, बहेडा, आमले तथा खैरके क्वाथसे व्रणोंको धोवे और शंखका चूर्ण, सौवीरनामक कांजी और मुलहठी इनका लेप करें ॥ १०० ॥

अथ गुदभ्रंशनिदानलक्षणम् ।

प्रवाहिकातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः । रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत् ॥ १०१ ॥

जिसका शरीर रूखा और दुर्बल हो, उसकी गुदा दस्त आनेके समय जोर करनेसे तथा अतिसारसे बाहर निकलआती है, उसको 'गुदभ्रंश' कहते हैं । उसको कांच निकलना भी कहते हैं ॥ १०१ ॥

अथ गुदभ्रंशचिकित्सा ।

गुदभ्रंशे गुदं स्विन्नं स्नेहाक्तं प्रवेशयेत् । प्रविष्टं रोधयेद्यत्नाद्गव्येनाच्छिद्रचर्मणा ॥ १०२ ॥

गुदभ्रंशरोगमें गुदाको सेंककर घीसे अथवा तेलसे कांचको भीतर प्रवेश कर देवे और प्रवेश करनेके पश्चात् विना छिद्रवाले बैलके चमडेसे उसको यत्नपूर्वक रोकदेवे ॥ १०२ ॥

पद्मिन्याः कोमलं पत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् । एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ १०३ ॥

जो मनुष्य कमलिनीके कोमल पत्तोंको खांडके साथ खाता है, उसकी कांच निकलनी बंद हो जाती है ॥ १०३ ॥

मूषकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपनम् । सुस्विन्नं मूषिकामांसेनाथवा स्वेदयेद्-गुदम् ॥ १०४ ॥

कांचके ऊपर चूहेकी चरबी चुपडनेसे अथवा मूषेके मांसका बफारा देनेसे कांच निकलनी बन्द हो जाती है ॥ १०४ ॥

वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीबिल्वपाठायवाग्रजम् । तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्तोऽनलदीप-नम् ॥ १०५ ॥

तिंतिडीक, चित्रक, चूक, बेलगिरी, पाढ और इन्द्रजौ इनका चूर्ण बनाकर मट्ठेके साथ खानेसे गुदभ्रंशका नाश होता है और अग्नि दीप्त होती है ॥ १०५ ॥

अथ मूषकतैलम् ।

मूषका दशमूलानि गृह्णीयादुभयं समम् । तयोः क्वाथेन कल्केन पचेत्तैलं यथोदि-तम् ॥ १०६ ॥ अभ्यङ्गात्तस्य तैलस्य गुदभ्रंशं विनश्यति । विनश्यति तथाऽनेन गुदशूलं भगन्दरम् ॥ १०७ ॥

मूषा और दशमूल इनको समान भाग लेकर इनके क्वाथ और कल्कसे तेलको पकावे, इस तेलके लगानेसे गुदभ्रंश नष्ट हो जाता है और गुदशूल तथा भगन्दर भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

अथ शूकरदंष्ट्रकलक्षणम् ।

प्रदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः । कण्डूमान् ज्वरकारी च स स्याच्छूकर-दंष्ट्रकः ॥ १०८ ॥

सः--गुदभ्रंशः ॥

जो गुदभ्रंश दाहयुक्त, लाल किनारोंवाला, पकी चमडीवाला, तीव्र वेदनायुक्त, खुजली-सहित और ज्वरयुक्त हो तो उसको 'शूकर-दंष्ट्र' कहते हैं ॥ १०८ ॥

अथ शूकरदंष्ट्रकचिकित्सा ।

भृङ्गराजकमूलस्य रजन्या सहितस्य च । चूर्णन्तु सहसा लेपाद्वाराहद्विजनाश-नम् ॥ १०९ ॥

भांगरेकी जडके चूर्णको हलदीके साथ लेप करनेसे शूकरदंष्ट्र तत्काल नष्ट होजाता है ॥ १०९ ॥

राजीवमूलकल्कः पीतो गव्येन सर्पिषा प्रातः । शमयति शूकरदंष्ट्रं दंष्ट्रोद्भूतं ज्वरं घोरम् ॥ ११० ॥

प्रातःकाल कमलकी जडके कल्कको गायके घीके साथ पीनेसे शूकरदंष्ट्र और उससे उत्पन्न हुआ घोर ज्वर तत्काल शांत हो जाता है ॥ ११० ॥

रजनी मार्कवं मूलं पिष्टं शीतेन वारिणा । तल्लेपाद्घ्नन्ति वीसर्पवाराहदशनाह्व-यम् ॥ १११ ॥

हलदी और भांगरेकी जडको शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे विसर्प और शूकरदंष्ट्र अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १११ ॥

अथानुशयीलक्षणम् ।

गम्भीरामल्पशोथां च सवर्णामुपरि स्थि-ताम् । पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्तः-प्रपाकिनीम् ॥ ११२ ॥

अत्र पिडकामिति विशेष्यपदमध्याहरणी-यम् । गम्भीरा अन्तःपाकेन ॥

भीतर पकनेवाली, गम्भीर, थोडी सूजन-युक्त और पांवके समान रंगवाली जो फुंसी पांवपर होती है, उसको 'अनुशयी' कहते हैं ॥ ११२ ॥

अथानुशयीचिकित्सा ।

हरेदनुशयीं वैद्यः क्रियया श्लेष्मविद्रधेः ॥ ११३ ॥

वैद्य कफविद्रधिके समान अनुशयीकी चिकित्सा करे ॥ ११३ ॥

अथालसलक्षणम् ।

क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहसमन्वितौ । दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत् ॥ ११४ ॥

अलसं ' कन्दई ' इति लोके ॥

सडी हुई कीच आदिमें फिरनेसे पांवोंकी अंगुलियोंके बीच क्लेदयुक्त खुजली और दाह तथा गीलापन रहता है, उसको ' अलस ' कहते हैं । देशमें खारुआ कहते हैं ॥ १४ ॥

अथालसचिकित्सा ।

पादौ सिक्त्वाऽऽरनालेन लेपनं त्वलसे हितम् । पटोलकुनटीनिम्बरोचनामरिचैस्तिलैः ॥ ११५ ॥ क्षुद्रास्वरससिद्धेन कटुतैलेन लेपयेत् । ततः कासीसकुनटी तिलचूर्णैर्विचूर्णयेत् ॥ ११६ ॥

विचूर्णयेत्-अवधूलयेत् ॥

आरनालसे पांवोंको सेचन करके लेप करानेसे खारुवे दूर होजाते हैं । कडवे परवल, मैनशिल, नीम, गोरोचन, काली मिरच, तिल और कटेरीका स्वरस इनसे पकाये हुए तेलका अलसके ऊपर लेपन करे, पश्चात् हीराकसीस, मैनशिल और तिल इनका चूर्ण बुरका देवें ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

करञ्जबीजं रजनी कासीसं पद्मकं मधु । रोचना हरितालञ्च लेपोऽयमलसे हितः ॥ ११७ ॥

करंजके बीज, हलदी, हीराकसीस, पद्माख, सहत, गोरोचन और हरिताल इनका प्रलेप करनेसे अलस अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ११७

अथ पाददारीलक्षणम् ।

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः । पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम् ॥ ११८ ॥

दारी ' बिवाई ' इति लोके ॥

जिसको पृथिवीपर फिरनेका बहुत अभ्यास हो तो उस मनुष्यके अत्यन्त रूखे हुए पांवोंके तलुओंमें वायु वेदनासहित दारीको उत्पन्न कर देती है, इसको देशभाषामें ' बिवाई ' कहते हैं ॥ ११८ ॥

अथ पाददारीचिकित्सा ।

पाददार्यां शिरां प्राज्ञो मोचयेत्तलशोधिनीम् । स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ वा लेपयेन्मुहुः । मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतैः क्षारविमिश्रितैः ॥ ११९ ॥

पांवमें बिवाई हुई हो तो वैद्य तलुवेको शुद्ध करनेके लिये फस्तको खोलकर रुधिरको निकलवावे । पांवोंका स्नेहन तथा स्वेदन करके पश्चात् मोम, वसा, चरबी, मज्जा, घी और जवाखार इनको एकत्र मिलाकर बारंबार लेप करे तो दारी-बिवाई दूर होजाती है ॥ ११९ ॥

क्षारो यवक्षारः । वसा मज्जा च सामान्यतः छागादीनाम्, विशेषानभिधानतः । उक्तञ्च-" मेदो मज्जा वसा ज्ञेया ग्राम्यानूपौदकोद्भवा । स्नेहोऽस्थ्नः शुचिरेव स्यात्सा मज्जा कथिता बुधैः " ॥ १२० ॥

वसा- शुद्धमांसभवः स्नेहः ॥

यहां चरबी और मज्जा किसकी लेनी चाहिये, यह कुछ नहीं लिखा, इस कारण बकरा आदि जीवोंकी लेनी चाहिये । क्योंकि, मदनपाल कहता है कि-" मेद मज्जा तथा चरबी ग्राम्यपशुओंकी जलप्राय प्रदेशके जीवोंकी और जलचर प्राणियोंकी लेनी

चाहिये । हड्डीके भीतरका जो उत्तम स्नेह है वह मज्जा कहा जाता है" ॥ १२० ॥

सर्जाह्वसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं घृतमधुप्लुतम् । निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जने ॥ १२१ ॥

राल तथा सैंधानिमक इनके चूर्णको घीमें तथा सहतमें मिलाकर मथे, फिर उसमें सरसोंका तेल मिलाकर पांवोंमें लगानेसे विवाई दूर होजाती है ॥ १२१ ॥

मधुसिक्थकगैरिकघृतगुडमहिषाक्षशालनिर्यासैः। गैरिकसहितैर्लेपः पादस्फुटनापहः सिद्धः ॥ १२२ ॥

मधुसिक्थक 'मोम' इति लोके । मथमं गैरिकंशिलाजतु, द्वितीयं गैरिकं 'गेरू' इति लोके । शालनिर्यासः 'राल' इति लोके ॥

मोम, शिलाजोत, घी, गुड, भैंसिया गूगल, राल और गेरू इनको मिलाकर लेप करनेसे पांवोंका फटना बन्द होजाता है ॥ १२२ ॥

अथोन्मत्ततैलम् ।

उन्मत्तकस्य बीजेन मानकक्षारवारिणा । विपक्वं कटुतैलन्तु हन्यादारीं न संशयः ॥ १२३ ॥

धतूरेके बीज और मानकन्दकी भस्मके जलसे पकाया हुआ सरसोंका तेल पांवोंके फटनेके लिये उत्तम है, यह निश्चय है ॥१२३॥

अथ कदरलक्षणम् ।

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः । ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरस्तु सः ॥ १२४ ॥

शर्करा अत्र बालुका । कोलवत्-क्षुद्रबदरवत् उत्सन्नः-उद्गतः ॥

पांवमें कंकर पत्थर रेता आदिके लगनेसे अथवा काँटे आदिके छिद जानेसे पांवमें छोटे बेरके समान ऊँची गांठ उत्पन्न होती है उसको 'कदर' कहते हैं । देशमें ठेक वा ठेठ कहते हैं ॥ १२४ ॥

अथ कदरचिकित्सा ।

देहत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा॥१२५

कदरको शस्त्रसे चीरकर गरम तेलका अथवा अग्निका दाग देनेसे कदर नष्ट होजाता है ॥ १२५ ॥

अथ तिलकालकलक्षणम् ।

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च । वातपित्तकफोद्रेकात्तान् विद्यात्तिलकालकान् ॥ १२६ ॥

समानि-अनुद्गतानि । अयम् 'तिल' इति लोके ॥

वात,पित्त कफके तथा प्रकोपसे काले तिलके समान पीडारहित त्वचासे मिले जो दाग होते हैं, उनको 'तिलकालक' तिल कहते हैं ॥१२६॥

अथ मशकलक्षणम् ।

अवेदनं स्थिरश्चैवं यस्तु गात्रे प्रदृश्यते । माषवत्कृष्णमुत्सन्नं मलिनं मशकं दिशेत् ॥ १२७ ॥

स्थिरम्-अचलम् । अवेदनम्-वेदनारहितम् 'मशक' इति लोके ॥

शरीरमें उडदके समान काले तथा ऊँचे मलिन वेदनारहित स्थिर जो दाग होते हैं, उनको 'मशक' कहते हैं । देशमें 'मस्सा' कहते हैं ॥ १२७ ॥

अथ श्यावपिंडिकलक्षणम् ।

वित्वचस्तनवः स्फोटाः सूक्ष्माग्रा श्यावपिण्डिकाः। भवन्ति कफपित्ताभ्यां क्षिप्रं नाशं प्रयान्ति च ॥ १२८ ॥

पतली त्वचावाले, सूक्ष्मअग्रभागवाले, शीघ्र नष्ट होनेवाले जो कफवातसे उत्पन्न हुए स्फोट हैं उनको 'श्यावपिंडिक' कहते हैं ॥ १२८ ॥

अथ जतुमणिलक्षणम् ।

समुत्सन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम् । सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिश्च सः ॥ १२९ ॥ कृष्णः स्निग्धो जतुमणिर्ज्ञेया वातोत्तरैस्त्रिभिः। अरुजं त्वपरे रक्तं लक्ष्मेत्याहुर्भिषग्वराः ॥ १३० ॥

समम्-समवर्णम् । उत्सन्नम् किञ्चिदुत्सन्नम् । सहजम्-शरीरेण सहजातम् । एवंविधं यन्मण्डलं स जतुमणिर्लक्ष्यः । लक्ष्म चैकेषामिति । एकेषामाचार्याणां मते तन्मण्डलं लक्ष्मसञ्ज्ञञ्च । लक्ष्म 'लशुन' इति लोके । अपरैस्तु जतुमणिलक्षणोभेदकं लक्षणमुक्तम्-कृष्ण इत्यादिना ॥

शरीरके समान वर्णवाला ऊंचा, शरीरके साथ उत्पन्न हुआ और कफ तथा रुधिरके प्रकोपवाला जो गोल मण्डल होता है उसको 'जन्तुमणि' कहते हैं। कितने आचार्य जंतुमणिको लक्ष्म वा लक्ष्य कहते हैं। देशमें लहसन या लहसा कहते हैं ॥ १२९ ॥

कितने उत्तम वैद्योंका ऐसा मत भी है कि, वात, पित्त और भी उल्वणतावाले कफसे काला और चिकना जो मण्डल होता है वह जंतुमणि कहा जाता है और इसी प्रकार वेदनारहित जो लाल मण्डल होता है, वह लक्ष्म कहा जाता है ॥ १३० ॥

अथ तिलकालकमशकजतुमणिचिकित्सा ।

चर्मकीलं जतुमणिं मशकांस्तिलकालकान् । उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ १३१ ॥

चर्मकील नामक अर्शको, जतुमणिको, मस्सेको और तिलको शस्त्रसे चीरकर क्षारसे तथा अग्निसे सम्पूर्ण रीतिसे दागदेवे ॥ १३१ ॥

न्यच्छलक्षणम् ।

मण्डलं महदल्पं वा श्यावं वा यदि वा सितम् । सहजं नीरुजं गात्रे न्यच्छं तदभिधीयते ॥ १३२ ॥

शरीरमें बडा अथवा छोटा, काला अथवा सफेद शरीरके साथ उत्पन्न हुआ और वेदनारहित जो मण्डल होता है, उसको 'न्यच्छ' कहते हैं ॥ १३२ ॥

अथ न्यच्छचिकित्सा ।

शिरावेधैः प्रलेपैश्च तथाऽभ्यङ्गैरुपाचरेत् । न्यच्छं लिम्पेत्पयःपिष्टैः कल्कैः क्षीरतरूद्भवैः ॥ १३३ ॥

शिराको वेधन करनेसे, प्रलेप करनेसे और अभ्यंगसे न्यच्छकी चिकित्सा करें। क्षीरवृक्षोंकी छालको दूधमें पीसकर उस कल्कसे न्यच्छके ऊपर लेप करे तो न्यच्छ दूर हो जाता है ॥ १३३ ॥

त्रिभुवनविजयापत्रं मूलं स्थविरस्य शिंशिपा चैभिः । उद्वर्तनं विरचितं न्यच्छव्यङ्गापहं सिद्धम् ॥ १३४ ॥

स्थविरस्य—वृद्धदारस्य ॥

भांगके पत्ते, विधारेकी जड और सीसम इनको पीसकर रगडकर मलनेसे न्यच्छ तथा व्यंग अवश्य दूर हो जाता है ॥ १३४ ॥

अथ पद्मिनीकण्टकलक्षणम् ।

कण्टकैराचितं वृत्तं कण्डुमत्पाण्डु मण्डलम् । पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ १३५ ॥

अचितम्-व्याप्तम् । पद्मिनीकण्टकप्रख्यैः-पद्मिनीनालकण्टकसदृशैस्तदाख्यं पद्मिनीकण्टकनामैव ॥

कफ तथा वायुसे उत्पन्न हुई कमलनालके कांटोंके समान कांटोंसे व्याप्त, खुजली सहित,

गोल और पीला जो मण्डल होता है, वह 'पद्मिनीकण्टक' कहा जाता है ॥ १३५ ॥

अथ पद्मिनीकण्टकचिकित्सा ।

पद्मिनीकंटके रोगे छर्दयेन्निम्बवारिणा । तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिः पातुं प्रदापयेत् । निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्तनं हितम् ॥ १३६ ॥

पद्मिनीकण्टक नामक क्षुद्ररोग हुआ हो तो नीमके जलसे वमन करावे. नीमके पानीसे पकाहुआ घी सहत डालकर पीवे । नीम तथा अमलतासके कल्कसे वारंवार चुपडे तो पद्मिनीकण्टक अवश्य दूर होजाता है ॥ १३६ ॥

अथ निम्बादिघृतम् ।

चतुर्गुणेन निम्बोत्थपत्रक्काथेन गोघृतम् । पचेत्ततस्तु निम्बस्य कृतमालस्य पत्रजैः ॥ १३७ ॥ कल्कैभूयःपचेत्सिद्धं तत्पिबेत् पलसम्मितम् । पद्मिनीकण्टकाद्रोगान्मुक्तो भवति नान्यथा ॥१३८॥

चौगुने नीमके पत्तोंके क्वाथसे गौके घीको पकाकर फिर उसी घीको नीमके पत्ते तथा अमलतासके पत्तोंके कल्कसे पकावे तो यह 'निम्बादिघृत' सिद्ध होता है । इस घीको चार चार तोले प्रमाण सेवन करनेसे पद्मिनीकण्टक नष्ट हो जाता है, यह निश्चय है ॥१३७॥१३८॥

अथाजगल्लिकालक्षणम् ।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा । कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १३९ ॥

ग्रथिता-गुम्फितेव । मुद्गसन्निभा-मुद्गाकृतिः ।

बालकोंके मूँगकी आकृतिवाली, स्निग्ध, शरीरके वर्णके माफिक, गुंफित वेदनारहित और कफसे तथा वायुसे जो फुंसियां होती हैं, उनको 'अजगल्लिका' कहते हैं ॥ १३९ ॥

अथाजगल्लिकाचिकित्सा ।

तत्राजगल्लिकां सामां जलौकोभिरुपाचरेत् । शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः । कठिनां क्षारयोगेन द्रावयेदजगल्लिकाम् ॥ १४० ॥

जो अजगल्लिका अपक्व अर्थात् कची हो तो जोंक लगाकर उसकी चिकित्सा करे । सीपकी भस्म तथा फटकरीकी खीलें इनको पीसकर बारंबार उसके ऊपर लेप करे । जो अजगल्लिका कठिन हो तो क्षार लगाकर उसको द्रवीभूत करे ।

अथ यवप्रख्यालक्षणम् ।

यवाकारा प्रकठिना ग्रथिता मांससंश्रया । पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ १४१ ॥

यवाकारा-मध्ये स्थूला प्रान्ते कृशा ॥ ।

कफसे तथा वायुसे जौके समान आकारवाली अत्यन्त कठिन, गुँथी हुई और मांसके आश्रयवाली जो फुडिया होती है, वह 'यवप्रख्या' कही जाती है, जौके समान आकारवाली अर्थात् बीचमें मोटी और दोनों ओर पतली ॥ १४१ ॥

अथान्त्रालजीलक्षणम् ।

घनामवक्त्रां पिडिकामुन्नतां परिमण्डलाम् । अन्त्रालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ १४२ ॥

घनाम्-कठिनाम् । परिमण्डलाम्-वर्तुलाम् ॥

कठिन, समान अर्थात् टेढी नहीं, ऊँची, गोल और 'थोडी राधवाली जो फुंसी होती है, वह 'अंत्रालजी' कही जाती है । यह फुंसी कफसे तथा वायुसे होती है ॥ १४२ ॥

अथ यवप्रख्यान्त्रालजीचिकित्सा ।

अन्त्रालजीयवप्रख्ये पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत् । मनः शिलादेवदारुकुष्ठकल्कैः

प्रलेपयेत्। पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥१४३॥

यवप्रख्या और अंत्रालजीको प्रथम स्वेद देकर पश्चात् मैनशिल, देवदारु और कूठ इनका कल्क लगावे, पकनेपर व्रणके समान चिकित्सा करे॥ १४३॥

अथ विवृतालक्षणम्।

विवृताख्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्निभाम्। विवृतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमण्डलाम् ॥ १४४ ॥

परिमण्डलाम्-परितः शोथवतीम् ॥

फटे हुए मुखवाली, अत्यन्त दाहयुक्त, पके गूलरके समान और चारों ओर सूजनवाली जो फुन्सी होती है वह 'विवृता' कही जाती है। यह फुन्सी पित्तसे निकलती है ॥ १४४॥

अथेन्द्रवृद्धालक्षणम्।

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडकां पिडिकाचिताम्। इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ १४५ ॥

पद्मकर्णिकवत्-पद्मफलाधारोपमां पिडिकाचितां किञ्जल्कवल्लघुपिडिकाचिताम् ॥

बीचमें कमलकर्णिकाके समान एक फुडिया और उसके चारों ओर बहुतसी छोटी छोटी फुन्सी हों, उसको वैद्य 'इन्द्रवृद्धा' कहते हैं। यह वात तथा पित्तसे होती है ॥ १४५॥

अथ गर्दभिकालक्षणम्।

मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सुरक्तं पिडिकाचितम्। रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम्॥ १४६ ॥

गोल, ऊंचा, अत्यन्त लाल फुंसियोंसे व्याप्त और वेदना करनेवाला जो मण्डल होता है, उसको 'गर्दभिका' कहते हैं। यह गर्दभिका वायुसे तथा पित्तसे होती है ॥ १४६॥

अथ जालगर्दभलक्षणम्।

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान्। दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १४७ ॥

विसर्पके समान फैलनेवाली, पतली, कम पकनेवाली और दाह तथा ज्वर उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होती है, वह 'जालगर्दभ' कही जाती है। यह रोग पित्तसे उत्पन्न होता है ॥ १४७॥

अपाकवान्-ईषत्पाकवान्। पित्तकृतत्वेन सर्वथा पाकाभावस्य अयुक्तत्वात्। अयमग्नि वात इति ख्यातः।

यद्यपि मूलमें 'अपाक' शब्द है, तथापि 'कमपकनेवाली, ऐसा अर्थ किया है. इसका कारण यह है कि, पित्तसे उत्पन्न होनेके कारण सर्वथा नहीं पकना असम्भव है ॥

अथ विवृतेन्द्रवृद्धागर्दभिकाजालगर्दभानां चिकित्सा।

विवृतामिन्द्रवृद्धाञ्च गर्दभीं जालगर्दभम्। पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्भिषक्। पाके तु रोपयेदाज्जैः पक्वैर्मधुरभेषजैः ॥ १४८ ॥

विवृताको, इन्द्रवृद्धाको, गर्दभिकाको और जालगर्दभको वैद्य पित्तज विसर्पोक्त चिकित्सासे दूर करे। ये जो पकें तो इनको जीवनीयगणकी मधुर औषधियोंसे पकाये हुए घृतसे रोपण करे॥ १४८॥

अथ कच्छपिकालक्षणम्।

ग्रथिताः पञ्च वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः। कफानिलाभ्यां पिडकाः सा स्मृता कच्छपी बुधैः ॥ १४९ ॥

कच्छपोन्नता-मध्ये प्रोन्नता प्रान्ते नता ॥

कछुवेके समान बीचमें ऊंची और चारों ओर नीची पांच वा छः जो दारुण फुडियां

होती हैं, उनको 'कच्छपिका' जानना। यह रोग कफ तथा वायुसे होता है ॥ १४९ ॥

अथ कच्छपिकाचिकित्सा ।

कच्छपीं स्वेदयेत्पूर्वं तत एव प्रलेपयेत् । कल्कीकृतैर्निशाकुष्ठसितातालकदारुभिः। तां पक्वां साधयेच्छीघ्रं भिषग्व्रणचिकित्सया ॥ १५० ॥

कच्छपिकाको प्रथम स्वेदनकर पश्चात् उसके ऊपर हलदी, कूठ, मिश्री, हरिताल और देवदारु इनके कल्कका लेप करे, पकनेपर व्रणके समान चिकित्सा करके दूर करे ॥ १५० ॥

अथ शर्करार्बुदलक्षणम् ।

प्राप्य मांसशिरास्नायुमेदः श्लेष्मो तथाऽनिलः । ग्रन्थिं करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ १५१ ॥

कफ तथा वायु, मांस, शिरा, स्नायु और मेदमें प्राप्त होकर गांठको उत्पन्न करते हैं, यह गांठ फूटकर सहतके समान, घीके समान तथा चरबीके समान बहती है ॥ १५१ ॥

स्रवति स्रावमत्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः । मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयत्यतः ॥ १५२ ॥ दुर्गन्धं क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः । स्रवन्ति सहसा रक्तं तं विद्याच्छर्करार्बुदम् १५३

शर्करा-वालुकातुल्या ।

इसमें वृद्धिको प्राप्त हुई वायु मांसको सुखाकर गुंथीसी गांठको उत्पन्न करती हैं, यह गांठ उत्पन्न होनेसे छोटी नसें दुर्गन्धित अत्यन्त क्लेशयुक्त और अनेक वर्णवाले रुधिरको सहसा बहाती हैं। इसको 'शर्करार्बुद' कहते हैं। यह गांठ रेतेके समान होती है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

अथ शर्करार्बुदचिकित्सा ।

मेदोऽर्बुदविधानेन साधयेच्छर्करार्बुदम् ॥

मेदसम्बन्धी अर्बुदकी जो चिकित्सा कही है, उसी चिकित्सासे शर्करार्बुदको दूर करे ॥

अथ कियदालस्यादिक्षुद्रविकाराणां लक्षणम् ।

शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते । अस्वस्थ्यं चिन्तयाऽत्यर्थमरतिः कथ्यते बुधैः ॥ १५४ ॥

शरीरमें सामर्थ्य होनेपर भी काम-काज करनेमें उत्साह न हो, उसको 'आलस्य' कहते हैं। चिन्तासे जो अस्वस्थता होती है, उसको 'अरति' कहते हैं ॥ १५४ ॥

उत्क्लिश्यान्नञ्च निर्गच्छेत्प्रसेकः ष्ठीवनेरितम् । हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ १५५ ॥

मुखमेंसे लार गिरे थूकके साथ जो भोजन किया अन्न चित्तमें ग्लानि होनेके कारण निकले और हृदयमें पीडा हो, उसको 'उत्क्लेश' कहते हैं ॥ १५५ ॥

वक्त्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं भ्रमः । न चान्नं रोचते यस्मै ग्लानिं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ १५६ ॥

मुखमें मधुरता, तन्द्रा, हृदयका बंधना, भ्रम और अन्नपर अरुचि ये लक्षण हों तो उसको ग्लानि जानना ॥ १५६ ॥

ग्लानिरोजःक्षयाद्दुःखादजीर्णाश्च श्रमोद्भवात् ।

ओजके क्षयसे, दुःखसे, अजीर्ण तथा परिश्रमसे ग्लानि होती है ॥

उदानकोपादाहारसुस्थित्वाच्च यद्भवेत् । पवनस्योर्ध्वगमनं तमुद्गारं प्रचक्षते॥१५७॥

उदानवायुके प्रकोपसे और आहारके यथावस्थित होनेसे पवनकी जो ऊंची गति होती है, उसको 'उद्गार' कहते हैं ॥ १५७ ॥

आटोपो गुडगुडाशब्दः प्रोक्तो जठरसम्भवः

पेटमें जो गुडगुड शब्द होता है उसको 'आटोप' कहते हैं ॥

तमःस्थस्येव यज्ज्ञानं तत्तमः कथ्यते बुधैः ॥ १५८ ॥

इति क्षुद्ररोगाधिकारः ।

अन्धकारमें स्थित होनेकेसा जो ज्ञात होता है, उसको पंडित वैद्य 'तप' कहते हैं ॥१५८॥

इति क्षुद्ररोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ शिरोरोगाधिकारः ।

तत्र शिरोरोगनिदानं संख्या च ।

शिरोरोगास्तु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः । सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण क्रिमिभिस्तथा ॥ १ ॥ सूर्यावर्तानन्तवातशङ्खकार्द्धावभेदकाः । एकादशविधस्यास्य लक्षणानि प्रचक्षते ॥ २ ॥

शिरोरोगाः—अत्र शिरोरोगजा शूलरूपा रुगभिधीयते। वातपित्तकफैस्त्रिभिः। ननुवातपित्तकफैरयुक्तेस्त्रित्वबोधः । किमर्थं त्रिभिरिति पदम् ? उच्यते—सर्वेषां शिरोरोगाणां सन्निपातजत्वख्यापनार्थम् । वातपित्तकफानां पृथकरणत्वं चोत्कर्षात् क्षयेण रसादिक्षयेण ॥

१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ सान्निपातिक, ५ रुधिरसम्बन्धी, ६ रसमादि धातुओंके क्षय होनेसे उत्पन्न हुआ, ७ कृमियोंसे उत्पन्न हुआ, ८ सूर्यावर्त, ९ अनन्त वात, १० शंखक और ११ अर्द्धावभेदक इस प्रकार यह शिरोरोग ग्यारह प्रकारका होता है इन सबके लक्षण नीचे लिखते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ वातजशिरोरोगलक्षणम् । १

यस्याऽनिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् । बन्धोपतापैः प्रशमोभवेच्च शिरोऽभितापः स समीरणेन ॥ ३ ॥

भवेदिति शेषः । अनिमित्तम्-अवार्कित-विप्रकृष्ट निमित्तम् । निशि चातिमात्रम्, रात्रौ शैत्येन वायोराधिक्यात् । उपतापः-स्वेदनम् । शिरोभितापः शिरःपीडा ॥

अकस्मात् दूरके कारणोंसे जो मस्तकमें तीव्र पीडा हो, रात्रिमें शीतके कारण वायुकी अधिकतासे अधिक बढ जाय और मस्तकको बांधनेसे तथा सेंकनेसे वह शान्त होजाती हो उसको 'वातसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग' जानना ॥ ३ ॥

अथ पित्तशिरोरोगलक्षणम् । २

यस्योष्णमङ्गारचितं यथैव भवेच्छिरो दह्यति चाक्षिनासम् । शीतेन रात्रौ च भवेत्क्षयश्च शिरोऽभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ४ ॥

दह्यति इति आर्षत्वात् ॥

जिसका शिर तप्त अङ्गारोंके समान गरम हो, नेत्र और नासिकामें दाह हो और रात्रमें शीतके कारण वेदना शान्त होजाय तो उसको 'पैत्तिक शिरोरोग' जानना ॥ ४ ॥

अथ कफजशिरोरोगलक्षणम् । ३

शिरो भवेत्तस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिष्टब्धमथो हिमञ्च । शूनाक्षिनासावदनञ्च यस्य शिरोऽभितापः स कफप्रकोपात् ॥५॥

कफोपदिग्धम्-अन्तः कफलिप्तम् । प्रतिष्टब्धं तच्च शिरः ॥

भीतरसे मस्तक कफसे लिहसासा हो, भारी हो, स्तब्ध हो, शीतल हो और आंखोंके कोये और मुख सूजा हो तो उसको 'कफजशिरोरोग' जानना ॥ ५ ॥

अथ सन्निपातशिरोरोगलक्षणम् । ४

शिरोऽभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवन्ति ॥

शिरोरोगमें जो उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण दीखते हों तो उसको 'त्रिदोषज शिरोरोग' जानना ॥

अथ रुधिरजन्यशिरोरोगलक्षणम् । ५

रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ६ ॥

पैत्तिकाद्भेदमाह–शिरसःस्पर्शासहत्वमिति ॥

पित्तज शिरोरोगके सब लक्षण दीखते हों और मस्तक किसी पदार्थका स्पर्श नहीं सहन करसके तो उसको 'रुधिरजन्य शिरोरोग' जानना । मस्तक किसीका स्पर्श नहीं करसके इतना ही पित्तज और रुधिर जनित शिरोरोगमें भेद है ॥ ६ ॥

अथ रसादिधातुक्षयजन्यशिरोरोगलक्षणम् । ६

बसाबलासक्षतसम्भवानां शिरोगतानामतिसंक्षयेण । क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः कष्टोभवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ।संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ७

क्षतसम्भवं रुधिरम् । कष्टः–कष्टसाध्यः ॥

मस्तकमें अत्यन्त तीव्र पीडा हो, वह पीडा सेंकनेसे, वमन करनेसे, धूमपानसे, नस्य देनेसे और रुधिरको निकलवानेसे वृद्धिको प्राप्त हो तो उसको जानना कि, शिरमें रहनेवाली चरबी, कफ और अत्यन्त रुधिरके क्षय होनेसे यह शिरोरोग हुआ है । यह शिरोरोग कष्टसाध्य है ॥ ७ ॥

अङ्गं भ्रमति तुद्येत क्षिरोविभ्रान्तनेत्रता। मूर्च्छा गात्रावसादश्च क्षिरोरोगे क्षयात्मके ॥ ८ ॥

क्षयज शिरोरोगमें शरीर घूमता है, मस्तकमें सुई चुभोने सरीखी पीडा होती है, नेत्रोंकी पुतली बारम्बार फिरती है, मूर्च्छा और अङ्गोंमें ग्लानि होती है ॥ ८ ॥

अथ कृमिजशिरोरोगलक्षणम् । ७

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं सम्भक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः । घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूयं शिरोऽभितापः क्रिमिभिः स घोरः ॥ ९ ॥

सम्भक्ष्यमाणम् क्रिमिभिरिति शेषः । घ्राणाच्चेति चकारेणक्रिमिनिर्गमोऽपि बोध्यते ॥

मस्तकमें अत्यन्त तोडने सरीखी पीडा हो, कृमिके भक्षण करनेके कारण भीतरसे फडकता हो, ऐसा मालूम हो और नाकमेंसे राध सहित रुधिर निकले तो उसको जानना कि, यह भयङ्कर शिरोरोग 'कृमियोंसे उत्पन्न' हुआ है ॥ ९ ॥

अथ सूर्यावर्तलक्षणम् । ८

सूर्योदयं या प्रति मन्दमन्दमक्षिभ्रुवौ रुक् समुपैति गाढम् । विवर्द्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्त्तते च ॥ १० ॥ शीतेन शान्तिं लभते कदाचिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाद्वा । सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यापवर्तं तमुदाहरन्ति ॥ ११ ॥

सूर्योदयं प्रतिलक्षीकृत्य आरभ्येति यावत् । सूर्यस्य अपवृत्तौ-सूर्यस्य अधोगतौ ॥

सूर्यके उदय होनेपर धीरे २ आंखों और भौंओंमें मन्द मन्द पीडा होती आवे, ज्यौं ज्यौं सूर्य आकाशमें अधिक चढता जाय त्यौं त्यौं यह पीडा अधिक होती जाय, जब दो पहरके बाद सूर्य पश्चिममें ज्यौं ज्यौं छिपता जाय त्यौं त्यौं यह पीडा शान्त होती जाय, किसी समय यह पीडा शीतसे शान्त होती है और किसी समय उष्णतासे भी शान्त होती है, इसको 'सूर्यावर्त' कहते हैं । यह रोग तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है और अत्यन्त कष्टसाध्य है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथानन्तवातलक्षणम्। ९

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां सम्पीड्य गाढं स्वरुजां सुतीव्राम्। कुर्वन्ति योऽक्षिण भ्रुवि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु॥ १२॥ गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजान्विकारान्। अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम्॥ १३॥

एवशब्दोऽत्रअप्यर्थः। अव्ययानामनेकार्थत्वात्। स्वरुजाम्-स्वस्वरूपां रुजां व्यथां दाहगौरवादिरूपां दोषाः कुर्वन्ति। अयमनन्ते वातसमः अनन्तवातः। अक्ष्यादिषु स्थितिं करोति। विशेषतः गण्डपार्श्वे स्थितिं करोति। पीडायाः स्थितिं कृत्वा कम्पादींश्च करोति॥

दूषित हुए वात पित्तादि तीनों दोष मन्या नाडीको अत्यन्त पकडकर अपने अपने स्वभावके अनुसार यथा, दाह तथा भारीपन आदि तीव्र वेदनाको उत्पन्न करते हैं। यह वेदना तत्काल आंखोंमें भौंओंमें और कनपटियोंमें स्थित होती है, विशेष करके गण्डस्थलमें स्थित होती है तथा यह स्थित होकर कम्प, हनुग्रह तथा नेत्रकी पीडाको करती है, इसको 'अनन्तवात' कहते हैं, यह तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है॥ १२॥ १३॥

अथ शंखकलक्षणम्। १०

पित्तरक्तानिला दुष्टाः शंखदेशे विमूर्च्छिताः। तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम्॥ १४॥ स शिरो विषवद्वेगान्निरुध्याशु गलं तथा। त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शंखको नाम नामतः। त्र्यहं जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत्॥ १५॥

पित्तरक्तानिलाः अत्र कफोऽपि योज्यः "कृतानुतापः कफपित्तरक्तैः" इति सुश्रुतवचनात्। विमूर्च्छिताः प्रवृद्धाः। सः शंखकः। त्रिरात्रात्-त्रिरात्रिमध्ये मारयत्ति इति यावत्॥

दुष्ट हुए और कनपटी प्रदेशमें वृद्धिको प्राप्त हुए पित्त, रुधिर और वायु तीव्र पीडा, तीव्र दाह, और अत्यन्त लाल दारुण सूजनको उत्पन्न करते हैं, वह सूजन विषके समान अपने वेगसे तत्काल मस्तकको तथा गलेको रोककर तीन रात्रिके भीतर प्राणोंको हरण करती है। इस शिरारोगको 'शंखक' कहते हैं। यह शिरोरोगवाला तीन दिनतक जीता है इस कारण वैद्य इसको प्रथम निषेधकर पश्चात् औषधि करे। यद्यपि इस वचनमें सूजनको करनेवाले पित्त रुधिर और वायु ये तीन ही कहे हैं तो भी सुश्रुतके वचनमें कफके साथ गिना है। इससे यह समझना कि, तीनोंके साथ कफका भी सम्बन्ध होता है॥१४॥१५॥

अथार्द्धविभेदकनिदानलक्षणम्।

रूक्षाशनाद्यध्यशनावश्यप्राग्वातमैथुनैः। वेगसन्धारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः॥ १६॥ केवलः सकफो वाऽर्द्धं गृहीत्वा शिरसो बली। मन्याभ्रशंखकर्णाक्षिललाटार्द्धेषु वेदनाम्॥ १७॥ शस्त्राशनिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्द्धावभेदकः। नयनं वाऽथवा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत्॥ १८॥

अवश्यःअवश्यायः। आयासः-अतिचलनभारोद्वहनादिः। व्यायामः मल्लश्रमः। शस्त्राशनिनिभाम्-शस्त्रघातेन इव वज्रपातेन इव वेदनाम्॥

रूक्ष भोजन आदि करनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे हिम (बर्फ पाला) को सेवन करनेसे, पूर्वकी पवनको सेवन करनेसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, अत्यन्त

चलनेसे तथा अत्यन्त बोझ ढोने आदि परिश्रम करनेसे और दण्ड कसरत आदि करनेसे प्रकोपको प्राप्त हुई बलवान् वायु अपने आप अकेली अथवा कफकी सहायता लेकर मस्तकके अर्द्धभागको पकडकर नाड, भौं, कनपटी, कान, आंख और कपालका आधाभाग इनमें शस्त्रघातके समान और वज्रपातके समान तीव्र पीडाको उत्पन्न करती है, इसको 'अर्द्धावभेदक' कहते हैं। यह रोग जब अधिक बढ जाता है तो आंखको वा कानको नष्ट कर देता है देशमें इसको 'आधाशीशी' कहते हैं॥ १६-१८॥

अथ शिरोरोगचिकित्सा।

वातजातशिरोरोगे स्नेहस्वेदं विघर्षणम्। पानाहारोपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान्॥ १९॥

जो शिरोरोग वातसे उत्पन्न हुआ हो तो स्नेहन करना, स्वेदन करना तथा मस्तकमें तेल आदि मलना चाहिये और वातनाशक पान, आहार तथा उपनाहस्वेद करे॥ १९॥

कुष्ठमेरण्डमूलञ्च नागरं तक्रपेषितम्। कटूष्णं शिरसः पीडा भाले लेपनतो हरेत्॥ २०॥

कूठ, अण्डकी जड और सोंठ इनको तक्रमें पीसकर कुछेक गरम करके कपालमें लेप करे तो वातजन्य शिरोरोग नष्ट होजाता है॥२०॥

रसः श्वासकुठारो यस्तस्य नस्यविशेषतः। शिरःशूलं हरत्येव विधेयो नात्र संशयः॥ २१॥

श्वासकुठाररसका नस्य देनेसे मस्तकका शूल अवश्य नष्ट होजाता है। इस वातजन्य शिरोरोगपर यह नस्य अवश्य देना चाहिये २१

अथ शिरोवस्तिः।

आशिरो व्यायतं चर्म षोडशाङ्गुलमुच्छ्रितम्। तेनावेष्टय शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत्॥ २२॥ निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैः कोष्णैः प्रपूरयेत्। धारयेद्रुजः शान्त्यै यामं यामार्द्धमेव वा॥ २३॥ शिरोवस्तिर्हरत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम्। हनुमन्याक्षिकर्णार्तिं मर्दितं मूर्द्धकम्पनम्॥ २४॥

जो मस्तकपर पूरा आजाय ऐसा लम्बा और सोलह अंगुल ऊँचा चमडा लेकर उस चमडेसें मस्तकको बांधे और उसके नीचेके जोडोंमें उडदका चून जलमें सानकर लगा देवे। फिर रोगीको निश्चल बैठालकर कुछेक गरम तेल मस्तकके ऊपर उस चमडेमें भरदेवे पश्चात् जबतक पीडा शान्त न हो, तबतक अथवा एक प्रहरतक या चार घडीतक उसको ऐसा ही बैठा रहने देवे। यह शिरोवस्ति वातज शिरोरोग, अनुग्रह, मन्यास्तंभ, नेत्रकी पीडा, कानकी पीडा अर्दित और मस्तककम्पको दूर करता है॥ २२-२४

विना भोजनमेवैष शिरोवस्तिः प्रयुज्यते। दिनानि पञ्च वा सप्त रुचितोऽग्रे ततोऽपि च॥ २५॥ ततोऽपनीतस्नेहस्तु मोचयेद्वस्तिबन्धनम्। शिरोललाटवदनग्रीवांसादीन्विमर्दयेत्॥ २६॥

यह वस्ति भोजन करनेसे पहले ही रोगीको देनी चाहिये। पांच दिनतक सात दिनतक और जो अनुकूल हो तो इससे भी अधिक दिनतक यह क्रिया प्रयुक्त करनी चाहिये। वेदना शान्त होनेपर अथवा एक प्रहरके पश्चात् अथवा चार घडीके पश्चात् सब तेलको निकालकर वस्तिके बन्धनको अलग कर लेवे और मस्तक, कपाल, मुख, गरदन तथा खवों आदिको खूब मर्दन करे॥ २५॥ २६॥

सुखोष्णेनांभसा गात्रं प्रक्षाल्याश्नाति यद्धितम्। आमिषं जाङ्गलं पथ्यं तत्र शाल्यादयोऽपि च॥ २७॥ मुद्गान्माषान्कुलत्थांश्च खादेद्वा निशि केवलान्।

कटुकोष्णान्ससर्पिष्कानुष्णं क्षीरं पिबे-त्तथा ॥ २८ ॥

पश्चात् सुहाते सुहाते गरम जलसे शरीरको धोकर पथ्य अन्न खानेको देवे। जांगल पशुओंका मांस और लाल शालि चावल आदि भी इसपर हितकारी है। रात्रिमें मूंग, उडद और कुलथी अथवा इकली कुलथीको रांधकर उसमें घी डालकर तथा तीक्ष्ण पदार्थ मिरची आदि डालकर गरम गरम खायें औ इसके ऊपर गरम दूध पीवें ॥ २७ ॥ २८ ॥

पित्तात्मके शिरोरोगे शीतानां चन्दनाम्भसा । कुमुदोत्पलपद्मानां स्पर्शाः सेव्याश्च मारुताः ॥ २९ ॥

जो शिरोरोग पित्तसे उत्पन्न हुआ हो तो चन्दनके जलसे शीतल किये पंखोंकी पवन लाल कमल और सफेद कमल इनको धारण करे तथा शीतल हवाका सेवन करे ॥ २९ ॥

सर्पिषः शतधौतस्य शिरसा धारणं हितम् ॥

सौ वार धुले हुए घीको मस्तकपर धारण करनेसे पित्तज शिरोरोग दूर होता है ॥

रसः श्वासकुठारोऽल्पः कर्पूरः कुंकुमं नवम् ॥ ३० ॥ सिता छागीपयः सर्वं चन्दनेनानुघर्षयेत् । तस्य नस्यं भिषग्दद्यात्पित्तजायां शिरोरुजि ॥ ३१ ॥

थोडा श्वासकुठारनामक रस, कपूर, नवीन केशर मिश्री और बकरीका दूध इन सबको सफेद चन्दनके साथ जलमें घिसकर नास देनेसे पित्तसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग नष्ट होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

किन्तु मस्तकशूलेषु सर्वेष्वेवं हितं मतम् । गुडनागरकल्कस्य नस्यं मस्तकशूलनुत् ॥ ३२ ॥

मस्तकके सम्पूर्ण शूलोंमें उपरोक्त प्रयोग हितकारी है ऐसा माना गया है। गुडका और सोंठके कल्कका नस्य देनेसे भी मस्तक शूल दूर हो जाता है ॥ ३२ ॥

रक्तजे पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेचनम् । शीतोष्णयोश्च विन्यस्य विशेषो रक्तमोक्षणम् ॥ ३३ ॥

जो शिरोरोग रुधिरसे हुआ हो तो पित्तज शिरोरोगके समान सम्पूर्ण भोजन लेपन और सेवनसे चिकित्सा करे और विशेषकरके रक्तमोक्षण करे ॥ ३३ ॥

कफजे लङ्घनं स्वेदो रूक्षोष्णैः पावकात्मकैः ।

जो शिरोरोग कफसे उत्पन्न हुआ हो तो लंघन करावे तथा गरमीसे पूर्ण रूक्ष और उष्ण पदार्थोंसे स्वेदन करे ॥

सन्निपातभवे कार्या सन्निपातहरी क्रिया । पुराणसर्पिषः पानं विशेषेण दिशन्ति हि ॥ ३४ ॥

जो शिरोरोग सन्निपातसे उत्पन्न हुआ हो तो सन्निपातको दूर करनेवाली चिकित्सा करे और विशेष करके पुराना घी पिलावे ऐसा वैद्यविद्याके विद्वानोंने कहा है ॥ ३४ ॥

अथ षड्विन्दुतैलम् ।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्तिका रास्निकसैन्धवं च । भृङ्गं विडंगं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ ३५ ॥ अजापयस्तैलविमिश्रितश्च चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम् । षड्बिन्दवो नासिकया प्रदेयाः सर्वान्निहन्युः शिरसो विकारान् ॥ ३६ ॥

जीवन्तिका अत्र हरीतकी शाकविशेषश्च ॥

एरण्डकी जड, तगर. सतावर, हरड, रास्ना, सैंधानिमक, भांगरा, वायविंडग, मुलहठी, सोंठ, काले तिलोंका तेल और बकरीका दूध इन सबको चौगुने भांगरके रसमें

पकावे तो यह ' षड्विंदु' तैल सिद्ध होता है। इस तेलकी छः बून्द नाकमें डालनेसे सर्व प्रकारके शिरोरोग नष्ट होजाते हैं ॥३५॥३६॥

च्युतांश्च केशान् पतितांश्च केशान्निर्बन्धमूलान् सुदृढीकरोति । सुपर्णगृध्रप्रतिमञ्च चक्षुःकुर्वन्ति बाह्वोरधिकं बलञ्च ॥ ३७ ॥

बालोंका गिरना और दांतोंका हिलना दूर होकर बाल और दांत अत्यन्त दृढ हो जाते हैं, नेत्र गीध और गरुडके समान तथा बाहुओंमें भी अधिक बल होता है ॥ ३७ ॥

क्षयजे क्षयनाशाय कर्तव्यो बृंहणो विधिः । पाने नस्ये च सर्पिःस्याद्वातघ्नैर्मधुरैःशृतम् ॥ ३८ ॥

जो शिरोरोग क्षयसे उत्पन्न हुआ हो तो क्षयको नाश करनेके लिये पुष्टिकारक प्रयोग करे और वायुको नष्ट करनेवाले मधुर पदार्थोंसे पकाये हुए घृतको पीवे तथा नस्यमें देवे ॥ ३८ ॥

क्रिमिजे व्योषनक्ताह्वशिग्रुबीजैश्च नावनम् । अजामूत्रयुतं नस्यं कर्तव्यं कृमिनुत्परम् ॥ ३९ ॥

जो शिरोरोग क्रिमिजन्य हो तो सोंठ, मिरच, पीपल, करञ्ज और साहजनके बीज इनको बकरीके मूत्रमें पीसकर नस्य देवे, इनका नस्य देनेसे कृमि अवश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

सूर्यावर्ते विधातव्यं नस्यकर्मादि भेषजम्॥

सूर्यावर्त नामक रोग हुआ हो तो नस्य आदि देकर चिकित्सा करे ॥

अथ कुमारीतैलम् ।

कुमार्याः स्वरसप्रस्थे धत्तूरस्य रसे तथा ॥ ४० ॥ भृङ्गराजस्य च रसे प्रस्थद्वयसमायुते । चतुःप्रस्थमिते क्षीरे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४१ ॥ कल्कैर्मधुकह्रीबेरमञ्जिष्ठाभद्रमुस्तकैः । नखकर्पूरभृङ्गैलाजीवन्तीपद्मकुष्ठकैः ॥ ४२ ॥ मार्कवासकतालीससर्जनिर्यासपत्रकैः । विडङ्गशतपुष्पाश्वगन्धागन्धर्वहस्तकैः ॥ ४३ ॥ तैले वटनारिकेलाभ्यां कर्षमानैर्विपाचिते । उत्तार्य वस्त्रपूतं तु शुभे भाण्डे सुधूपिते ॥ ४४ ॥ त्रिरात्रमथ गुप्तञ्च धारयेद्विधिवद्भिषक् । ततस्तु तैलमभ्यङ्गे मूर्ध्नि क्षेपे नियोजयेत् ॥४५॥ शमयेदर्दितं गाढमन्यास्तम्भशिरोगदान् । तालुनासाक्षिपातं तु शोषमूर्च्छाहलीमकम् । हनुग्रहगदार्तिं वा बाधिर्यं कर्णवेदनाम् ॥ ४६ ॥

घीकारका स्वरस ६४ तोले, धतूरेका स्वरस ६४ तोले, भांगरेका स्वरस १२८ तोले और भांगरेके रससे दुगुना दूध, इनमें मुलहठी, सुगंधवाला, मंजीठ, नागरमोथा, नखद्रव्य कपूर, भांगरा, इलायची, हरड, पद्माख, कूठ, कालाभांगरा, अडूसा, तालीसपत्र, राल, तेजपात, वायविडंग, सोया, असगन्ध, अण्ड, बड, और नारियल इनका एक एक तोला कल्क लेकर चौंसठ तोले तेलको पकावे, तेलको अग्निसे उतारकर अच्छी प्रकारसे बस्त्रसे छानकर उत्तम सुवासित किये हुए पात्रमें भरकर विधिपूर्वक वैद्य तीन दिनतक धरतीमें गाड देवे।इस तेलकी मालिस करे और शिरमें डाले तो अर्दिक, मन्यास्तंभ, शिरो रोग, तालुवेकी सूजन, नासिकाकी सूजन, आंखोंकी सूजन, मूर्च्छा, हलीमक, अनुग्रह, बधिरता और कानकी पीडा शान्त होती है ॥ ४०–४६ ॥

योजयेत्सगुडं सर्पिर्घृतपूपांश्च भक्षयेत् । नावनं क्षीरसर्पिर्भ्यां पानञ्च क्षीरसर्पिषोः । क्षीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ ४७ ॥

गुडके साथ घीको खाय, घीके मालपुवे खाय, दूधका तथा घीका नस्य देवे, दूध और घी मिलाकर पीवे, दूधमें पिसे हुए तिलोंसे तथा जीवनीय गणके पदार्थोंसे सेक करे तो सूर्यावर्त नष्ट होजाता है ॥ ४७ ॥

भृङ्गराजरसश्छागीक्षीरतुल्योऽर्कतापितः । सूर्यावर्तं निहन्त्याशु नस्येनैष प्रयोगराट् ॥ ४८ ॥

भांगरेके रसको और बकरीके दूधको समान भाग लेकर दोनोंको एकत्र धूपमें गरम करके नस्य देवे तो सूर्यावर्त नष्ट होजाता है, सूर्यावर्त के लिये यह प्रयोग उत्तम है ॥४८॥

अर्द्धावभेदके पूर्वं स्नेहस्वेदौ हि भेषजम् । विरेकः कायशुद्धिश्च धूपः स्निग्धोष्णभोजनम् ॥ ४९ ॥

अर्द्धावभेदक नामक जो शिरोरोग हुआ हो तो प्रथम स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, अन्यप्रकारसे शरीरका संशोधन धूप और स्निग्ध तथा उष्ण भोजन ये उपचार करे ॥ ४९ ॥

विडङ्गानि तिलान्कृष्णान्समान पिष्ट्वा विलेपयेत् । नस्यश्चाप्याचरेत्तस्मादर्द्धभेदं व्यपोहति ॥ ५० ॥

वायविडंग और काले तिल इनको समान भाग लेकर दूधमें पीसकर लेप करे और इसीका नस्य देवे तो अर्द्धावभेदक नष्ट हो जाता है ॥ ५० ॥

पिबेत्सशर्करं क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम् । सुशीतं वापि पानीयं सर्पिर्वा नस्यतस्तयोः ॥ ५१ ॥

नस्यतः—नासिकया पिबेदित अन्वयः । तयोः -सूर्यावर्तार्द्धभेदयोः ॥

नासिकाके द्वारा मिश्री मिला दूध पीवे अथवा नारियलका जल पीवे, शीतल जल पीवे अथवा घीको पीवे तो सूर्यावर्त तथा अर्द्धावभेदक नष्ट होजाता है ॥ ५१ ॥

अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्यावर्तहितो विधिः । शिरावेधश्च कर्तव्योऽनन्तधातप्रशान्तये ॥ आहारश्च प्रदातव्यो वातपित्तविनाशनः ॥ ५२ ॥

अनंतवातनामक रोग उत्पन्न हुआ हो तो सूर्यावर्तके समान चिकित्सा करनी चाहिये । अनन्तवातको शांत करनेके लिये नसको वेधकर रुधिर निकलवावे और पित्त तथा वातनाशक आहार देवे ॥ ५२ ॥

मधुमस्तकसंयावघृतपूपो विशेषतः॥५३॥

संयावः--पक्वान्नविशेषः 'पेरकिया' इति लोके स च मधुमस्तकः -मधुनोपलिप्तः । घृतपूपः 'पूआ इति लोके ।

घीसे चुचुहाते तथा सहतसे भरे हुए चूरमा और शीरा या मालपुवे आदि इनका उपयोग करे ॥ ५३ ॥

अथ पथ्यादिक्वाथः ।

पथ्याक्षधात्रीरजनीगुडूचीभूनिम्बनिम्बैः सगुडः कषायः । भ्रूशङ्ककर्णाक्षिशिरोऽर्द्धशूलं निहन्ति नासानिहितः क्षणेन ॥ ५४

हरड, बहेडा, आमले, हलदी, गिलोय, चिरायता और नीम इनका क्वाथ बनाकर उसमें गुड डालकर उसका नस्य देवे तो क्षणमात्रमें ही कनपटी, कान, आँख और मस्तकका अर्द्धशूल ये सब नष्ट होजाते हैं ॥ ५४ ॥

दार्वी हरिद्रा मञ्जिष्ठा सनिम्बोशीरपद्मकम् । एतत्प्रलेपनं कुर्याच्छङ्खकस्य प्रशान्तये ॥ ५५ ॥

शंखकनाम शिरोरोग हो तो दारुहलदी, हलदी, मंजीठ, नीम, खस और पद्माख इनका लेप करे ॥ ५५ ॥

शीततोयाभिषेकश्च शीतलं क्षीरसेवनम् । कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां शंखके लेपनं हितम् ॥ ५६ ॥

शीतल जलका सेचन, शीतल दूधका सेवन और क्षीरवाले वड आदि वृक्षोंका कल्क लेपन करनेसे शंखकरोग नष्ट होता है ॥ ५६ ॥

अथ सर्वशिरोरोगाणां सामान्यचिकित्सा ।

यष्टीमधुकमाषः स्यात्तुर्यांशं तु विषं भवेत् । तयोश्चूर्णं सुसूक्ष्मं स्यात्तच्चूर्णं सर्षपोन्मितम् ॥ ५७ ॥ नासिकाभ्यन्तरे न्यस्तं सर्वां शीर्षव्यथां हरेत् । दृष्टप्रयोगो योगोऽयमनुभाविभिरादृतः ॥ ५८ ॥

मुलहठी छः रत्ती और मुलहठीसे चौथाई भाग वत्सनाभ इनका अत्यन्त बारीक चूर्ण करके, नाकमें सरसोंकी बरावर इस चूर्णको डालनेसे सर्व प्रकारकी मस्तककी पीडा शान्त होजाती है, यह प्रयोग वडे वडे वैद्योंने अनुभव किया है और हमनेभी परीक्षाकी है ॥ ५८ ॥

आर्द्रं यच्छुक्तिकाचूर्णं चूर्णितं नवसादरम् । उभयं योजितं तस्य गन्धान्नश्यति शीर्षरुक् ॥ ५९ ॥

इति शिरोरोगाधिकारः ॥

सीमका बारीक चूर्ण और नवसादरका चूर्ण इनको एकत्र मिलाकर नस्य लेनेसे मस्तककी पीडा शान्त होती है ॥ ५९ ॥

इति शिरोरोगाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ नेत्ररोगाधिकारः ।

तत्र नेत्रप्रमाणम् ।

विद्याद्द्व्यङ्गुलबाहुल्यं स्वाङ्गुष्ठोदरसम्मितम् । द्व्यङ्गुलं सर्वतः सार्द्धं भिषङ्नयनमण्डलम् ॥ १ ॥

द्व्यङ्गुलबाहुल्यम्-द्व्यङ्गुलप्रमाणस्थौल्यंयस्य-तत् । अङ्गुलीनां स्थौल्यस्य वैषम्यात्पुनराह-स्वाङ्गुष्ठोदर सम्मितम् । द्व्यङ्गुलं सर्वतः सार्द्धं दैर्घ्येण ॥

नेत्रका मण्डल दो अंगुल मोटा और ढाई अंगुल लम्बा है, यह अंगुलका प्रमाण अपने अपने हाथकी अंगुलीके प्रमाणसे जानना, क्योंकि, अपने अपने हाथकी अंगुलके प्रमाणसे नहीं कहनेसे अन्तर पडता है ॥ १ ॥

अथ नेत्राङ्गानि ।

पक्ष्मवर्त्मश्वेतकृष्णदृष्टीनां मण्डलानि तु । अनुपूर्वन्तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्त्या यथोत्तरम् ॥ २ ॥

ते--पक्ष्मादयो दृष्ट्यन्ताः । अनुपूर्वम्-यथापूर्वम् । मध्याश्चत्वारः- कृष्णादयः यथोत्तरमन्त्याः ॥

पलक, वर्त्म, श्वेत, कृष्ण, दृष्टियोंके मण्डल ये आनुपूर्वी क्रमसे मध्यमें हैं और चार उत्तरोत्तर क्रमसे अंतर्भागमें हैं ॥ २ ॥

अथ नेत्रमण्डलोत्पन्नाष्टसप्ततिरोगाः ।

द्वादश व्याधयो दृष्टौ तत्रैवान्यौ गदावुभौ । कृष्णमार्गे तु चत्वारो दशैकः शुक्लभागजाः ॥ ३ ॥ वर्त्मन्येकोविंशतिश्च पक्ष्मजौ द्वौ प्रकीर्तितौ । नव सन्धिषु सर्वस्मिन्नेत्रे सप्तदशोदिताः । एवं नेत्र समस्ताः स्युरष्टसप्ततिरामयाः ॥ ४

तत्र--दृष्टौ । अन्यौ--चरकोक्तौ सुश्रुतोक्तषट्सप्ततिसंख्येभ्योऽधिकौ ॥

दृष्टिमें १२ बारह रोग हैं । सुश्रुतमें कहे १२ रोगोंसे अधिक जो अन्य अन्य रोग चरकमें कहे हैं, वे भी दृष्टिमें होते हैं । एवं ४ कृष्णभाग अर्थात् कालेघेरेमें ४ रोग होते हैं, सफेद्भागमें ११ रोग होते हैं । वर्त्ममें २१ रोग होते हैं नेत्रके पक्ष्ममें दो रोग, संधियोंमें ९ रोग और सम्पूर्ण नेत्रमें १७ रोग होते हैं । इस प्रकार नेत्रमें सब ७८ अठहत्तर रोग होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ सुश्रुतोक्तषट्सप्ततिरोगाः।

वाताद्दश तथा पित्तात्कफाच्चैव त्रयोदश। रक्तात्षोडश विज्ञेयाः सर्वजाः पंचविंशतिः। बाह्यौ पुनर्द्वौ नयने रोगाः षट्सप्ततिः स्मृताः ॥ ५ ॥

वातसे दश १० रोग होते हैं, पित्तसे दश १० रोग होते हैं, कफसे तेरह १३ रोग होते हैं, रुधिरसे सोलह १६ रोग होते हैं, तीनों दोषोंसे २५ पच्चीस रोग होते हैं और नेत्रके बाहर भागमें दो रोग होते हैं, इस प्रकार नेत्रोंमें सब ७६ रोग हैं ॥ ५ ॥

अथ सामान्यरीत्या नेत्ररोगाणां सन्निकृष्टविप्रकृष्टनिदानम्।

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च। स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च छर्दैर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥ ६ ॥ शुक्तारनालाम्बु कुलत्थमाषाद् विण्मूत्रवातागमनिग्रहाच्च। प्रसक्तसंरोदनशोकतापाच्छिरोभिघातादतिशीघ्रयानात् ॥ ७ ॥ तथा ऋतूनाञ्च विपर्ययेण क्लेशाभितापादतिमैथुनाच्च। बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकारान् जनयन्ति दोषाः ॥ ८ ॥

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशात्-आतपादिजनितोष्मणा सह बहिर्भूतस्य नयनतेजसो जलावगाहेन अभिभवात्। दूरेक्षणात्—दूरस्थद्रव्यदर्शनात्। स्वेदात्स्विद्यतेऽनेनेति स्वेदोऽग्न्यादिस्तस्मात्। रजोधूमनिषेवणान्नेत्रेण। शोकतापात्—शोकजनितात्सन्तापात्। शिरोऽभिघातात्--शिरसि प्रहारात्। ऋतूनां विपर्ययेण—ऋतुचर्याविपरीताचरणेन। क्लेशाभितापात्--क्लिश्यतेऽनेनेति क्लेशं-कामक्रोधादिदुःखम्, तेनाभितापःपीडा ततः। बाष्पग्रहादश्रुवेगविघातात् ॥

धूप आदिसे अत्यन्त संतापित होकर शीतल जलमें प्रवेश करनेसे, दूरके पदार्थोंको देखनेसे समयपर निद्राको नहीं लेनेस, अग्नि आदिको सेवन करनेसे, नेत्रोंमें धूल आदिके गिरनेसे, धुँएँके लगनेसे, वमनके वेगको रोकनेसे, अत्यन्त वमन करनेसे, शुक्तनामक कांजीको सेवन करनेसे, आरनालके सेवनसे, खट्टे रसोंको सेवन करनेसे, कुलथीको सेवन करनेसे, उडदोंको सेवन करनेसे, मूत्र विष्ठा और अधोवायुके वेगको रोकनेसे, बहुत दिनोंतक रोनेसे शोकजन्य सन्तापसे, मस्तकमें चोट आदिके लगनेसे, अत्यन्त वेगवाले वाहनपर बैठनेसे, ऋतुचर्यामें कही हुई विधिको उल्लंघन कर विपरीत आचरण करनेसे काम और क्रोधादि जन्य दुःखोंसे उत्पन्न हुई पीडासे, अत्यन्त मैथुन करनेस, आंसुओंके वेगको रोकनेसे और बारीक पदार्थोंको देखनेसे नेत्रोंमें विकार उत्पन्न होते हैं ॥ ६-८ ॥

अथ नेत्ररोगसम्प्राप्तिः।

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाश्रितैः। जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः ॥ ९ ॥

नेत्रभागेषु--नेत्रस्य दृष्ट्याद्यवयवेषु ॥

शिराओंमें रहनेवाले वातादिदोष बिगडकर ऊँचे भागोंमें जाकर नेत्रके अवयवोंमें अत्यन्त दारुण रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ९ ॥

अथ दृष्टिलक्षणम्।

मसूरदलमात्रां तु पञ्चभूतप्रसादजाम्। खद्योतविस्फुलिङ्गाभां सिद्धां तेजोभिरव्ययैः ॥ १० ॥ आवृतां पटलेनाक्ष्णोर्बाह्येन विवराकृतिम्। शीतसात्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयनाचिन्तकाः ॥ ११ ॥

मसूरदलमात्रम्- नेत्रगतकृष्णमण्डलमध्यस्थ सूरद्विदलप्रमाणाम्। पञ्चभूतप्रसादजाम्-प्रसन्नपंचभूतात्मिकाम्। खद्योतविस्फुलिंगाभाम्-

निमेषैः कदाचित्खद्योताभां खद्योतवत्, निमेषाभावे विद्योतमानत्वद्विस्फुलिङ्गवत् । अव्ययैश्चिरस्थायिभिस्तेजोभिः सिद्धामुत्पन्नाम् । विवराक्तिम्—सच्छिद्राम् । अक्ष्णोवाऽद्येन पटलेन रसरक्ताधारभूतेन आवृताम् ॥

नेत्रके काले डेलेके मण्डलके बीचमें रहनेवाली, मसूरकी दालके समान, स्वच्छ पंचभूतोंसे बनी हुई, क्षणमें पटबीजनेके समान, क्षणमें अग्निके प्रकाशके समान, चिरस्थायी तेजोंसे सिद्ध, छिद्रवाली, सदैव शीत आनुकूल्यवाली, बाहरसे रसरक्तसे मढी हुई है-इसको नेत्रवैद्य 'दृष्टि' कहते हैं ॥१०॥ ११॥

अथ नेत्रपटलचतुष्कम् ।

तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशिताश्रितम् । मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्थि्न चापरम् ॥ पञ्चमांशसमं दृष्टेस्तेषां बाहुल्यमिष्यते ॥ १२ ॥

तत्र तेजो रक्तम्, जलं रसः, तेन रसरक्ताधारमित्यर्थः । पटलं त्वक् । अपरं चतुर्थम् । दृष्टेः स्वांगुष्ठोदरस्थूलस्य नेत्रस्य पंचमांशसमं तेषां चतुर्णां पटलानां मिलितानां बाहुल्यं स्थौल्यमिष्यते ॥

नेत्रमें चार पटल हैं । उनमें सबसे ऊपरका पहिला पटल रुधिर तथा रसके आश्रय रहता है । दूसरा पटल मांसके आश्रय रहता है । तीसरा पटल मेदके आश्रय रहता है और चौथा पटल अस्थियोंके आश्रय रहता है । इन चारों पटलोंकी मोटाई अपने २ अँगूठेके मध्यभागके समान नेत्रके पांचवें अंशमें मानी गई है ॥ १२ ॥

अथ प्रथमपटलगतदोषस्वभावः ।

प्रथमे पटले यस्य दोषो दृष्टेर्व्यवस्थितः । अव्यक्तानि स्वरूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥ १३ ॥

प्रथमे पटले—पूर्वाभ्यन्तरे न तु बाह्ये ॥ दृष्टेरभ्यन्तरे दोषाः पटले समधिष्ठिताः । एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात्पटलान्तरम् १४॥ इति विदेहवचनात् । व्यवस्थितः स्थितः अव्यक्तानि ईषद्व्यक्तानि । अथ कदाचित् पश्यति व्यक्तान्येवेति शेषः । दोषाल्पतया ॥

जो पहिले पटलमें दोष स्थित हों तो वह मनुष्य रूपोंको कुछ कुछ अन्तरसे देखता है और जो दोष अल्प हों तो किसी समय स्पष्ट भी देखता है ॥ १३ ॥

यहां जो पहिला पटल कहा है, वह सबसे भीतरका पटल जानना, बाहरका पटल नहीं समझना क्योंकि, नेत्रके पटलके भीतरके रहनेवाले दोष अनुक्रमसे ऊपरके पटलमें प्राप्त होते हैं, यह विदेहका मत है ॥ १४ ॥

अथ द्वितीयपटलगतदोषस्वभावः ।

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते । मक्षिका मशकान् केशाञ्जालकानीव पश्यति ॥ १५ ॥ मण्डलानि पताकांश्च मरीचीन् कुण्डलानि च । पारिप्लवांश्च विविधान् वर्षमभ्रं तमांसि च ॥ १६ ॥ दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते च समीपतः । समीपस्थानपि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् । यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीछिद्रं न पश्यति ॥ १७ ॥

विह्वलति रूपं सम्यक् कृत्या ग्रहीतुं न शक्नोति । विह्वलत्वमेव विवृणोति—मक्षिकादीन् जालकानीव लूतारचितजालानीव पश्यति । मण्डलादीनिअसन्त्यपि सन्तीव पश्यति । कुण्डलानि-कुण्डलानीव विद्योतमानानि किञ्चित्पश्यति । परिप्लवांश्च-विविधा-न्प्रतिच्छायादीनां संचाराद्दूर्वाधस्तिर्यग्गतान्

नानाविधान्पश्यति वर्षम्-वृष्टिम् । अभ्रम्-मेवम् । वर्षादीनि असन्त्यपि सन्तीवपश्यति गोचरभ्रमाद्गोचरोऽत्र रूपम्, तत्र भ्रमः अयथाग्रहणं तस्मात् ॥

जो दोष दूसरे पटलमें स्थित हो तो दृष्टि रूपोंको अच्छी प्रकारसे नहीं देख सकती, तथा मक्खी, मच्छर और केश आदि मकडीके जालेके समान दीखते हैं, मण्डल, पताका और किरण न हो तो भी होनेके समान देखे और प्रकाशमान वस्तुओंको कुण्डलके समान गोल दीखे, परछाईं आदिका संचार ऊंचा नीचा तथा टेढे आदि अनेक प्रकारसे देखे, वर्षा, बादल तथा अन्धकारके न होनेपर भी देखे, रूपोंका यथार्थ रूप दृष्टिके भ्रमके कारण दूरके पदार्थ धोरे दीखें और अत्यन्त यत्न करनेपर भी सुईके छेद को नहीं देख सके ॥ १५-१७ ॥

अथ तृतीयपटलगतदोषस्वभावः ।

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते। सुमहान्त्यपि रूपाणि छादितानीव चाम्बरैः ॥ १८ ॥ कर्णनासाक्षिरूपाणि विकृतानि च पश्यति । यथादोषश्च रज्येत दृष्टिदोषे बलीयसि ॥ १९ ॥ अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरि स्थिते । पार्श्वस्थिते पुनर्दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति ॥ २० ॥ समन्ततः स्थिते दोषे संकुलानीव पश्याति । दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्ह्रस्वं च पश्याति ॥२१॥ दोषे दृष्टिस्थिते तिर्यगेकं वा मन्यते द्विधा । द्विधा स्थिते त्रिधा पश्येद्बहुधा चानवस्थिते ॥ २२ ॥

ऊर्ध्वं पश्यति-ऊर्ध्वमपि यादृक् पश्यति तादृगाह-सुमहान्ति इत्यादि । अम्बरैः-वस्त्रैः । अधःस्थे तु समीपस्थं न पश्यतीत्यन्वयः । तथा उपरि स्थिते दोषे दूरस्थं न पश्यति । समन्ततः-उपर्यधः पार्श्वेषु संकुलानि भिन्नान्यपि रूपाणि मिश्रितानीव पश्यति । अनवस्थिते-अनियतावस्थाने बहुधा बहूनि पश्येत् ॥

जो दोष तीसरे पटलमें स्थित हो तो ऊँचेको देख सकता है, नीचेको नहीं देखता। ऊंचेके जिन पदार्थोंको देखता है, वे पदार्थ अत्यन्त बडे हों तो भी वस्त्रसे ढकेके समान दीखते हैं। कान, नाक और नेत्र आदि अवयवोंको विकृत देखे, इनसे रहित शरीरको देखे। जो दोष बलवान् हो तो दृष्टिदोषके स्वभावानुसार वर्ण होजाता है, जो दोष नीचेके भागमें स्थित हो तो समीपके पदार्थोंको नहीं देख सकता और जो दोष ऊपरके भागमें स्थित हो तो दूरके पदार्थोंको नहीं देख सकता, जो दोष इधर उधर बगलमें स्थित हो तो बगलके पदार्थोंको नहीं देख सकता, जो दोष चारों ओर स्थित हों तो ऊपर नीचे तथा बगलके पदार्थ अलग अलग हों तो भी मिले हुए दीखें, जो दृष्टिके बीचमें स्थित हो तो बडे पदार्थोंको छोटा देखता है, जो दोष दृष्टिमें टेढे स्थित हों तो एक पदार्थके दो पदार्थ देखता हैं, जो दोष दृष्टिके दो भागमें स्थित हों तो एक पदार्थके तीन पदार्थ दीखते हैं और जो दोष अनियमित रीतिसे स्थित हों तो एक पदार्थके अनेक पदार्थ दीखते हैं ॥ १८ २२ ॥

अथ चतुर्थपटलगतदोषस्वभावः ।

तिमिराख्यः स यो दोषश्चतुर्थं पटलं गतः । रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाश इति क्वचित् ॥ २३ ॥ अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे । चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरिक्षे च विद्युतः ॥ २४ ॥ निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनीव पश्यति । स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ॥ २५ ॥

यो दोषोऽत्र रोगःचतुर्थं पटलं बाह्यं पटल गतः स तिमिराख्यः तिमिरदर्शनेन तिमिरमस्यस्तीति तिमिरः, अर्श-आदित्वादच्। तस्य लक्षणमाह—रुणद्धि इत्यादि। सर्वतः सर्वत्र। लिङ्गनाश इति क्वचित् तन्त्रान्तरे लिङ्गनाशसंज्ञः। तस्य निरुक्तिश्च—लिंग्यते ज्ञायतेऽनेनेति लिङ्गं दृष्टितेजः, तस्य नाशोऽस्मिन्निति लिङ्गनाशः। अस्मिन्नपि तिमिरेऽपि तमोभूते तमस्तुल्ये। अत्र भूतशब्दस्तुल्यार्थः। "भूतं प्राप्यतीते समे त्रिषु" इत्यमरात्। नातिरूढे अप्रौढे नवे। चन्द्रादित्यौ नक्षत्राणि च पश्यति अन्तरीक्षे अन्तरिक्षस्य प्रकाशसमयत्वेन तमोऽभिभवात्। तेजांसि अग्न्यादेः भ्राजिष्णूनि रत्नसुवर्णादीन्यस्मिन्। प्रौढे चिरजे चन्द्रादीन्यपि न पश्यतीत्याशयः। नीलिकाकाचसंज्ञितः नीलिका काचेति नामान्तराभ्यां युक्तः॥

जो दोष दृष्टिके चौथे पटलमें स्थित हो तो वह अन्धकार दीखनेके कारण 'तिमिर' कहा जाता है और चारोंओर दृष्टिको रोक देता है। इस रोगको अन्य ग्रन्थोंमें 'लिंगनाश' ऐसा कहा है। अन्धेरेके समान वह बडा भयंकर रोग नवीन हो तबतक मनुष्य आकाशमें चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र और बिजलीको देखता है। क्योंकि आकाशके प्रकाशमय होनेसे अन्धकारका बल नहीं चलता। अग्नि आदिके निर्मल तेजको देखता है और रत्न तथा सुवर्ण आदि प्रकाशित पदार्थोंको भी देखता हैं। यह रोग पुराना हो जाय तो चन्द्र आदि भी नहीं दीखते। वह तिमिर नामक रोग जैसें जैसे लिंगनाश इस नामसे कहा जाता है उसी प्रकार नीलिका और कांच ये नाम भी कहे जाते हैं। लिंग अर्थात् दृष्टिके तेजको जो नाश करता है, इस कारण यह 'लिंगनाश' कहा जाता है ॥ २३ ॥

अथ दृष्टिरोगनाम संख्या च।

दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव रोगा षट्
लिङ्गनाशा हि भवन्ति तत्र। वातेन
पित्तेन कफेन सर्वैं रक्तात्परिम्लाय्यभि-
धश्च षष्ठः ॥ २६ ॥

दृष्ट्याश्रया रोगाः षट् षट्। द्वादशेत्यर्थः। तत्र लिंगनाशाः षट्। तान्विवृणोति-वातेनेत्यादि॥

दृष्टिके रोग १२ हैं (चरकके कहे अनुसार १४ होते हैं) उन १२ में छः रोग लिंगनाश कहे जाते हैं। जैसे कि, वातज १, पित्तज २, कफजन्य ३, सन्निपातजन्य ४, रक्तजन्य ५ और परिम्लायी लिंगनाश ६ ॥ २६ ॥

तथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन वान्य
स्तवथ धूमदर्शी। यो ह्रस्वजात्यो नकु-
लान्ध्यसंज्ञो गम्भीरसंज्ञश्च तथैव
दृष्टिः ॥ २७ ॥

पित्तविदग्धदृष्ट्यादयश्च षट्। एवं दृष्ट्याश्रया द्वादश रोगाः॥

पित्तविदग्धदृष्टि १, कफविदग्धदृष्टि २, धूमदर्शी ३, ह्रस्वजात्य ४, नाकुलांध्य ५, और गम्भीरक ६ ॥ २७ ॥

तत्रैवान्यौ चरकौक्तगदौ सनिमित्तकानिमित्तकौ।

तत्र वातजलिंगनाशलक्षणमाह। १

वातेन खलु रूपाणि भ्रमन्ती व च
पश्यति। आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः ॥ २८ ॥

आविलानि-कलुषाणि। अरुणाभानि अव्यक्तलौहित्ययुक्तानि॥

वातके लिंगनाशमें सम्पूर्ण रूप भ्रमण करते दीखते हैं, मलिन, कुछ लाल गंदलेसे और विकृत टेढे तिरछे ऐसे दीखते हैं ॥ २८ ॥

अथ पित्तजलिङ्गनाशलक्षणम् । २

पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गु---णान् । नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वं नीलञ्च पश्यति ॥ २९ ॥

आदित्यादीनां गुणान् रूपाणि ॥

सूर्य, पटबीजने, इन्द्रधनुष, बिजली इनको मोरके पूंछके समान विचित्र नीले और काले रंगके देखे तो जानना कि, पित्तजनितलिंगनाश हुआ है ॥ २९ ॥

अथ कफजलिङ्गनाशलक्षणम् । ३

कफेन पश्येद्रूपाणि स्नि ग्धानि च सितानि च । सलिलप्लावितानीव जालकानीव मानवः ॥ ३० ॥

कफके लिंगनाशमें पदार्थोंको चिकने,सफेद, पानीमें डुबोकर निकाले हुएके समान और जालके समान देखे तो जानना कि, कफजन्यलिंगनाश हुआ है ॥ ३० ॥

अथ सन्निपातजलिंगनाशलक्षणम् । ४

सान्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति । बहुधाऽपि द्विधा वाऽपि सर्वाण्येव समन्ततः । हीनाधिकाङ्गान्यथ वा ज्योतींष्यपि च पश्यति ॥ ३१ ॥

चित्राणि नानावर्णानि विप्लुतानि-विपरीतानि । वैपरीत्यं विवृणोति—बहुधेत्यादि ॥

सन्निपातके लिंगनाशमें रूप चारों ओर विपरीत अर्थात् अनेक प्रकारके वा दो प्रकारके अथवा सर्वप्रकारके देखनेमें आवे, अनेक वर्णवाले दीखें अथवा अधिक और न्यून अंगोंवाले दीखें अथवा तेजोमय दीखें तो जानना कि, सन्निपातजन्य लिंगनाश हुआ है ॥ ३१ ॥

अथ रक्तजन्यलिंगनाशलक्षणम् । ५

पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च । हारितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥ ३२ ॥

जो अनेक प्रकारका अन्धकार देखनेमें आवे और रूप लाल, हरे, काले तथा पीले दीखें तो जानना कि रक्तजन्यलिंगनाश हुआ है ॥३२॥

अथ परिम्लायिलिङ्गनाशलक्षणम् । ६

रक्तेन मर्च्छितं पित्तं परिम्लायिनमाचरेत् । तेन पीता दिशः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम् । विकीर्यमाणान् खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव हि ॥ ३३ ॥

विकीर्यमाणान्-व्याप्यमानान् । तेजोभिः—अग्न्यादिभिरिव ॥

रुधिरसे मूर्च्छित हुआ पित्त परिम्लायी नामक लिंगनाशको उत्पन्न करता है । जिस लिंगनाशसे सम्पूर्ण दिशा पीली ही दीखती हैं, सूर्य उदय होतासा दीखता है और वृक्ष पटबीजने तथा अग्निके तेजसे व्याप्त ऐसे दीखते हैं ॥ ३३ ॥

अथ वातादिजनेत्रवर्णन लिंगनाशस्य षड्विधत्वम् ।

वातादिजनितैर्नेत्रवर्णैरपि च षड्विधः । लिङ्गनाशो निगदितो वर्णो वातादिजो यथा ॥३४॥ रागोऽरुणो मातरुतः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात् । कफात् सितः शोणितजः सरक्तः समस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥ ३५ ॥

वातादिसे उत्पन्न हुए नेत्रोंके वर्णानुसार भी लिंगनाश छः प्रकारका होता है । कौनसे दोषसे नेत्रका कौनसा रंग होता है, सो कहते हैं । वातसे लिंगनाश हो तो नेत्रोंका रंग लाल हो जाता है । पित्तजन्य परिम्लायी लिंगनाश हो तो नेत्रोंका वर्ण नीला हो जाता है । कफजन्य लिंगनाश हो तो नेत्रोंका रंग सफेद हो

जाता है। रुधिरसे लिंगनाश हो तो नेत्रोंका रंग लाली लिये होता है और सन्निपातसे लिंगनाश हुआ हो तो नेत्रोंका रंग विचित्र होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथ वातादिजनेत्रमण्डलरूपम् ।

अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा। पित्ततो मण्डलं नीलं कांस्याभं वा सपीतकम् ॥३६॥ श्वेतपीतं वा। कथमेतत्? व्याधिप्रभावात् ।

वातसे लिंग नाश हुआ हो तो मण्डल लाल, चञ्चल तथा कठिन होता है। पित्तसे लिंगनाश हो तो मण्डल नीला, कांसेके समान अथवा सफेद वा पीला होता है (सफेद और पीला होना, वह व्याधिके प्रभावसे होता है)॥ ३६ ॥

श्लेष्मणा बहुलं स्निग्धं शंखकुन्देदुपाण्डुरम् ॥ ३७ ॥

बहुलम्-स्थूलम् ।

चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः। मृद्यमाने तु नयने मण्डलं तद्वि सर्पति ॥ ३८ ॥

कफसे लिंगनाश हो तो मण्डल मोटा, स्निग्ध, शंखके समान, कुन्दके और चन्द्रमाके समान सफेद होता है और चञ्चल कमलके पानपर पडी हुई जलकी बिन्दुके समान होता है। आंखको खूब मलनेसे यह मण्डल पसर जाता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मण्डलं तु भवेच्चित्रं लिङ्गनाशे त्रिदोषजे। प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ ३९ ॥

चित्रम्-वातादिवर्णम् ।

रक्तजं मण्डलं दृष्टौ स्थूलकाचारुणप्रभम्। परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लानं नीलमथापि वा । दोषक्षयात्स्वयं तत्र कदाचित्स्यात्तु दर्शनम् ॥ ४० ॥

रक्तजम्-पित्तानुगामिरक्तजम् । स्थूलकाचारुणप्रभम्-स्थूलकाचस्य इव अरुणा प्रभा यस्य तत् । एतेन स्थौल्यमरुणत्वं च बोध्यते। दोषक्षयादित्यादि तत्र परिम्लायिनि कालान्तरेण दोषक्षयात् । कदाचित् स्वयमेव दर्शनं स्यात् ॥

तीनों दोषोंसे लिंगनाश हो तो मण्डल विचित्र अर्थात् वातादिजनित सम्पूर्ण वर्णोंवाला होता है। रुधिरसे लिंगनाश हुआ हो तो मण्डल प्रवालके समान और कमलकी पँखुडीके समान होता है। पित्तसम्बन्धी रुधिरजन्य लिंगनाश हो तो मण्डल स्थूल और लाल कांचके समान स्थूल और लाल होता है। परिम्लायी लिंगनाश हो तो मण्डल ग्लानिको प्राप्त हुआ अथवा नीला होता है और कालान्तरमें दोषोंके क्षय होनेसे किसी समय अपने सदृश उत्तम हो जाता है ॥ ३९॥४० ॥

अथ लिंगनाशेऽनुक्तदाहादिदोपलिङ्गम् ।

यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ ४१ ॥

सर्वप्रकारके लिंगनाशोंमें उन उन दोषोंके अपने अपने लक्षण भी अवश्य होते हैं ॥ ४१ ॥

अथ पित्तविदग्धदृष्टिलक्षणम् ।

पित्तेन दुष्टेन गतेन दृष्टिं पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः। पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः ॥ ४२ ॥

पित्तेन गतेन दृष्टिम्-दृष्टावपि प्रथमद्वितीयपटलगतेनापि बोद्धव्यम् । तेन-व्याधिना ॥

दुष्ट हुए पित्तके दृष्टिके पहिले दूसरे पटलमें प्राप्त होनेसे जो मनुष्यकी दृष्टि पीली हुई हो तो वह मनुष्य समस्त रूपोंको पीला देखता

है । यह रोग 'पित्तविदग्धदृष्टि' कहा जाता है ॥ ४२ ॥

तस्मिन्नेव पित्ते दृष्टौ तृतीयपटलं गते विशेषरूपमाह–

प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे
दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते सः ।
रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः
पित्ताल्पभावात् सकलानि पश्येत् ॥ ४३ ॥

दोषे-अत्र पित्ते ॥

उसी प्रकार पित्त तीसरे पटलमें प्राप्त हो तो वह मनुष्य दिनमें नहीं देखता, किन्तु रात्रिमें शीतके कारण दृष्टिके अनुकूल होनेसे पित्त हीन होकर सम्पूर्ण पदार्थोंको देख सकता है, इस प्रकार भी पित्तविदग्धदृष्टिमें अन्तर्भूत है, इस कारण अलग नहीं गिना जाता ॥ ४३ ॥

अथ कफविदग्धदृष्टिलक्षणम् । २

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु ॥ ४४ ॥ अत्रापि श्लेष्मणो दृष्टौ प्रथमद्वितीयपटलगतस्यैतल्लिङ्गं बोद्धव्यम् ॥

दुष्ट हुआ कफ दृष्टिके पहिले दूसरे पटलमें प्राप्त हो तो मनुष्य रूपोंको सफेद देखता है, यह रोग 'कफविदग्धदृष्टि' कहा जाता है ॥

स एव श्लेष्मा दृष्टौ पटलत्रयं गतो नक्तान्ध्यं करोतीत्याह–

त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य । दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत्तु रूपाणि कफाल्पभावात् ॥ ४५ ॥ दोषोऽत्र कफस्तस्य उपक्रान्तत्वान्नक्तान्ध्यस्य श्लेष्मविदग्धदृष्टौ अन्तर्भूतत्वान्न पृथग्गणना ॥

यही कफ दृष्टिके तीनों पटलमें प्राप्त हो तो बलात्कारसे नक्तान्ध्य रात्रिमें अन्धापन करता है । दिनमें तो दृष्टिके ऊपर सूर्यके अनुग्रह होनेके कारण कफहीन होकर सम्पूर्ण पदार्थ दीखते हैं । रात्रिमें अंधापन भी कफविदग्धदृष्टिमें अन्तर्भूत होता है, इस कारण इसको अलग नहीं गिना ॥ ४५ ॥

अथ धूमदर्शिलक्षणम् । ३

शोकज्वरायासशिरोऽभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः । धूमांस्तु यःपश्यति सर्वभावान् स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ॥ ४६ ॥

शिरोऽभितापः शिरसि घर्मादीनां सन्तापः एतस्य पित्तदोषो बोद्धव्यः ॥

शोकसे, ज्वरसे, परिश्रमसे और शिरमें धूप आदिके सन्तापसे दृष्टिका अभिघात होकर सम्पूर्ण पदार्थ धूमसे व्याप्त दीखते हैं । यह रोग 'धूमदर्शी' कहा जाता है, यह पित्तकी दुष्टतासे होता है ॥ ४६ ॥

अथ ह्रस्वजात्यलक्षणम् । ४

यो वासरे पश्यति कष्टतोऽथ रूपं महच्चापि निरीक्षतेऽल्पम् । रात्रौ पुनर्यः प्रकृतानि पश्येत्स ह्रस्वजात्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ ४७ ॥

दिनमें थोडा थोडा दीखे तथा बडे बडे पदार्थ भी छोटे दीखें, रात्रिमें सम्पूर्णरूप जैसेके तैसे दीखें, इस रोगको मुनि 'ह्रस्वजात्य कहते हैं ॥ ४७ ॥

अथ नकुलान्ध्यलक्षणम् । ५

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् । चित्राणि रूपाणि दिवा च पश्येत्स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः ॥ ४८ ॥

दृष्टि दोषसे व्याप्त होनेके कारण नयोलेकी दृष्टिके समान चमके और दिनमें रूपोंको विचित्र देखे, इस रोगके 'नकुलान्ध्य' कहते हैं ॥ ४८ ॥

अथ गम्भीरिकालक्षणम् । ६

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यन्तरतः प्रयाति । रुजावगाढा च तमक्षिरोगं गम्भीरिकेति प्रवदन्ति धीराः ॥ ४९ ॥

विरूपा--विकृता । श्वसनोपसृष्टा--वातोपहता । रुजावगाढा-गम्भीरवेदनान्विता ॥

वातसे उपहतदृष्टि विकृत होजाय, संकोचको प्राप्त हो, भीतरको चली जाय और गम्भीर पीडासे युक्त हो, इस रोगको विद्वान् वैद्य 'गम्भीरिका' कहते हैं ॥ ४९ ॥

अथ सनिमित्तलिङ्गनाशस्य निदानलक्षणम् ।

बाह्यौ पुनर्द्वाविह सम्प्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च । निमित्ततस्तत्र शिरोऽभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनैः सः ॥ ५० ॥

बाह्यौ-सुश्रुतोक्तद्वादशसंख्येभ्योऽधिकौ । तत्र तन्निमित्तमाह--शिरोऽभितापः--शिरोऽभितप्यते । येन विषकुसुमगन्धवहपवनस्पर्शेन स शिरोऽभितापः । तस्मादभिष्यन्दनिदर्शनैः--'रक्ताभिष्यन्दलिंगैः' इति गदाधरः । 'सन्निपाताभिष्यन्दलिंगैः' इति कार्त्तिकः ॥

सुश्रुतने दृष्टिके जो बाहर रोग कहे हैं, उनसे अधिक अन्य दो रोग चरक आदि मुनियोंने कहे हैं, वह एक तो सनिमित्त लिंगनाश और दूसरा अनिमित्त लिंगनाश ॥५०॥

विषैले फूलोंकी गंधवाली पवनके स्पर्शनरूपनिमित्तसे मस्तकमें अभिताप होकर जो लिंगनाश होता है, वह सनिमित्त लिंगनाश कहा जाता है । अभिष्यन्दके लक्षणोंसे इस रोगको जानना चाहिये ।

गदाधर वैद्य कहता है कि-"रक्ताभिष्यंदके लक्षणोंसे इस रोगको जानना" और कार्तिक वैद्य कहता है कि-"त्रिदोषजनित अभिष्यन्दके लक्षणोंसे इस रोगको जानना चाहिये" रक्ताभिष्यन्द आदिके लक्षण आगे कहेंगे ॥

अथानिमित्तलिङ्गनाशनिदानलक्षणम् ।

सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य । हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः॥५१॥ तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥ ५२ ॥

अनुपलभ्यमानानां सुरादीनां निमित्तमप्यनिमित्तं मन्यते । विस्पष्टम्--ज्योतिर्युक्तम् । वैदूर्यवर्णा-श्यामा । विमला--निर्मला ॥

देव, ऋषि, गन्धर्व, बृहत्सर्प और सूर्य अथवा अन्यान्य प्रकाशमय पदार्थोंको देखनेसे दृष्टि उपहत होजाती है, यह अनिमित्त लिंगनाश कहा जाता है । देवादिलोक विशेष करके सर्वजनोंको नहीं दीखते इस कारण उनके दर्शनरूप निमित्तसे उत्पन्न हुए लिंगनाशको अनिमित्त माना है ॥ ५१ ॥

अनिमित्त लिंगनाशमें नेत्र तेजवाले दीखते हैं, दृष्टि श्याम और निर्मल होती है और उपघातके कारण दृष्टि फटजाती है, सकुचजाय अथवा कम होजाती है ॥ ५२ ॥

अथ कृष्णमण्डलगतरोगाः ।

यत्सव्रणं शुक्रमथाव्रणञ्च पाकात्ययश्चाप्यजका तथैव । चत्वार एते नयनामयास्तु कृष्णप्रदेशे नियता भवन्ति ॥५३॥

सव्रणशुक्र, अव्रणशुक्र, पाकात्यय और अजका ये चार रोग नेत्रोंके काले मण्डलमें रहते हैं ॥ ५३ ॥

अथ सव्रणशुक्रलक्षणम् ।

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै । स्रावः स्रवेदुष्णमतीव

चापि तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥५४॥

निमग्नरूपमिति शुक्रविशेषणम् । सूच्येव बिद्धमिति शुक्रस्य वर्तुलत्वं व्यथायुक्तत्वञ्च बोधयति स्रवेदित्यनेनैव स्रावो बोधितः। स्रावपदान्निरन्तरं स्रावः ॥

जो फूला नेत्रके काले भागमें गढासा दीखे, सुईसे विंधासा मालूम हो, गोल तथा व्यथायुक्त हो और उसमेंसे निरन्तर गरम जल बहता रहे, उसको 'सव्रणशुक्र' कहते हैं ॥ ५४

अथ सव्रणशुक्रस्य साध्यासाध्यता।

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेद्यत् । अवेदनं यन्न च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ ५५ ॥

न चावगाढमेकत्वग्गतं न च संस्रवेदित्यर्थः। अवेदनम्—ईषद्वेदनम्। न च युग्मशुक्रम्-अयुग्मशुक्रमेकमित्यर्थः। एवंविधं कदाचित्सिध्यति एतद्विपरीतं न सिध्यति ॥

जो सव्रणशुक्र दृष्टिके समीपमें न हो, एक त्वचामें हो, स्रवता न हो, वेदना रहित हो और एक हो तो किसी समय साध्य होता है। किन्तु जो सव्रणशुक्र दृष्टिके समीपमें हो, दूसरी त्वचामें, वेदनावाला, स्रावयुक्त और एक स्थानमें युग्मरूप ऐसा कभी भी साध्य नहीं होता ॥ ५५ ॥

अथाव्रणशुक्रलक्षणम्।

स्यन्दात्मकं कृष्णगतं तु शुक्रं शंखेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम्। वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशमथाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥५६॥

स्यन्दात्मकम्—अभिष्यन्दहेतुकं सर्वेषामक्षिरोगाणामभिष्यन्दहेतुकत्वे अस्य नियमबोधनार्थं स्यन्दात्मकमिति । शंखेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम्—शंखेन्दुकुन्दसदृशमवभासते । एतेन शुक्लत्वं बोध्यते। वैहायसा भ्रमतनुप्रकाशम्—आकाशस्थमेघवत्तनु यथा स्यादेवं प्रकाशते यत् ॥

जो नेत्रोंके काले भागमें अभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ फूला आकाशमें स्थित मेघके समान थोडा थोडा प्रकाशमान और शंख, चन्द्रमा तथा कुंदके फूलके समान श्वेत हो, उसको 'अव्रणशुक्र कहते हैं, यह फूला विना कष्टसे साध्य है ॥ ५६ ॥

यद्यपि नेत्रके सम्पूर्ण रोग अभिष्यन्दसे होते हैं, तथापि यह फूला तो अभिष्यन्दसे ही होता है; ऐसा नियम जाननेके लिये अभिष्यन्दसे हुआ' यह विशेषण दिया है ॥

अथाव्रणशुक्रस्य साध्यत्वेऽप्यवस्थान्तरेण कष्टसाध्यता।

गम्भीरजातं बहलञ्च शुक्रं चिरोत्थितञ्चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ॥ ५७ ॥

गम्भीरजातम्—द्वित्रित्वग्गतम् । बहलं—पुष्टम् ॥

जो अव्रणशुक्र गम्भीर अर्थात् दो तीन पटलोंमें प्राप्त हुआ हो, पुष्ट हो और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ हो तो कष्ट साध्य होता है, ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥ ५७ ॥

अथाव्रणशुक्रस्यासाध्यलक्षणम्।

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतञ्च चलं शिरासूतमदृष्टिकृच्च। द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितञ्चापि विवर्जनीयम् ॥५८॥

विच्छिन्नमध्यम्-विशीर्णमांसत्वान्निम्नमध्यम्। शिरासूतं—शिरायां जातम् । अदृष्टिकृद्दर्शनाभावकृत् । द्वित्वग्गतम्—पटलद्वयगतम् । एतद्विच्छिन्नमध्यत्वादिलिङ्गसहितमसाध्यं नतु केवलं गम्भीरजातस्य कष्टसाध्यत्वाभिधानात् । एवं चिरोत्थितमपि ॥

जो अव्रणशुक्रका मांस गिर जानेसे बीचमें नीचा हो, मांससे वेष्टित अर्थात् ऊंचा हो, चञ्चल हो, शिराओंमें उत्पन्न हुआ हो, देखने नहीं देवे, दो त्वचा अर्थात् दो पटलोंमें पहुँचा हो, अन्तमें लाल हो और बहुत दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो तो यह असाध्य है। इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। केवल दो पटलोंमें प्राप्त और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ हो तो कष्ट साध्य है किन्तु दो पटलोंमें प्राप्त हुआ और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ भी ऊपरके विशेषणोंवाला हो तो असाध्य है ॥ ५८ ॥

अथाव्रणशुक्रस्यान्यासाध्यलक्षणम् ।

उष्णाश्रुपातः पिडिका च नेत्रे यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभश्च शुक्रम् । तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्ये तु तात्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ ५९ ॥

मुद्गनिभश्च शुक्रमाकारेण । तत्--नेत्रम् । तित्तिरिपक्षतुल्यं तित्तिरिपक्षवच्छदनम् ॥

जो नेत्रोंमेंसे गरम आंसू गिरते हों, फुंसी उत्पन्न हो और अव्रणशुक्र मूँगके समान आकारवाला हो तो असाध्य है। कितने कहते हैं कि-" नेत्रके पलक तीतरके पंखके समान होगये हों तो अव्रणशुक्र असाध्य है " ॥ ५९ ॥

अथ पाकात्ययलक्षणम् ।

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डले तु । तमक्षिपाकात्ययमक्षिकोपं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः६०

यः श्वेतः दोषेण कृत इति शेषः । तमक्षिपाकादक्षिपाकात्ययमाहुः । अत्र पाकोऽपि स्वादत एव सुश्रुतः—शोकाश्रुपाकार्तियुते च नेत्रे " इति ॥

दोषोंसे नेत्रके काले भागमें चारों ओर सफेदी फैल जाय तो इस आंखकी पीडाको 'पाकात्यय' कहते हैं। यह पाकात्यय तीनोंदोषोंसे उत्पन्न हुआ हो तो उसको असाध्य समझकर उसकी चिकित्सा नहीं करे। इसमें पाक भी होता है। क्योंकि, सुश्रुत कहता है कि-' शोकाश्रुपाकार्तियुते च नेत्रे " ॥ ६० ॥

अथाजकाजातलक्षणम् ।

अजापुरीषप्रतिमो रुजावानलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः । विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तं चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥ ६१ ॥ यः प्रचय उच्छ्रायः स च मेदसो बोद्धव्यो यतएतस्य उत्पत्ति र्विदेहेन तृतीयपटले कथितः ॥

अलोहितः—ईषल्लोहितः। विगृह्य कृष्णमभ्युपैति महत्त्वेन समस्तं कृष्णभागं ग्राहयित्वा आयाति । व्यवस्येत्--जानीयात् ॥

बकरीकी मैंगनके समान, पीडावाली, कुछेक कलौंस लिये और लाल तथा चिकने आंसुओंवाली जो ऊंचाई अपने मोटेपनसे सम्पूर्ण काले भागमें प्राप्त होती है, उसको ' अजकाजात ' कहते हैं ॥ ६१ ॥

यह ऊंचाई मेदसे होती है, ऐसा जानना। क्योंकि, विदेहने इस ऊंचाईकी उत्पत्ति तीसरे पटलमें कही है ॥

अथ नेत्रश्वेतभागोत्पन्नरोगाणां नामानि ।

प्रस्तारिशुक्लक्षतजा धिमांसस्नाय्वमसंज्ञाः खलु पञ्च रोगाः ॥६२॥ स्याच्छुक्तिका चार्जुनपिष्टकौ च जालं शिराणां पिडकाश्च याः स्युः । रोगा बलासग्रथितेन सार्द्धमेकादशाक्ष्णोः खलु शुक्लभागे६३॥

नेत्रोंके श्वेतभागमें १ प्रस्तार्यर्म, २ शुक्लार्म, ३ रक्तार्म, ४ अधिमांसार्म, ५ स्नाय्वर्म, ६ शुक्ति ७ अर्जुन, ८ पिष्टक, ९ शिराजाल, १० शिराजपिडका और ११ बलासग्रथित ये ग्यारह रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ प्रस्तार्यर्मलक्षणम् । १

प्रस्तार्यर्म तनु स्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सितम् ॥ ६४ ॥

तनु--पत्तलम् । स्तीर्णं विस्तीर्णम् । श्यावं रक्तनिभमित्यत्र विकल्पो बोद्धव्यः ॥

नेत्रके श्वेतभागमें पतला, विस्तीर्ण कलौंस लिये अथवा लाली लिये जो सफेद चिह्न हो तो उसको ' प्रस्तार्यर्म ' कहते हैं ॥ ६४ ॥

अथ शुक्लार्मलक्षणम् । २

सुश्वेतं मृदु शुक्लार्म शुक्ले तद्वर्द्धतेऽचिरात् ॥ ६५ ॥

सफेद भागमें बहुत सफेद और कोमल जो चिह्न हो तो ' शुक्लार्म ' कहते हैं । यह शुक्लार्मरूप मांस बहुत दिनोंमें बढता है ॥ ६५ ॥

अथ रक्तार्मलक्षणम् । ३

पद्माभं मृदु रक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते ॥ ६६ ॥

पद्माभं वर्णेन रक्ताभित्यर्थः । चीयते-उपचीयते ॥

सफेद भागमें लाल तथा कोमल जो मांस बढता जाय, उसको ' रक्तार्म ' कहते हैं ॥६६॥

अथाधिमांसार्मलक्षणम् । ४

पृथु मृद्वधिमांसार्म बहलञ्च यकृन्निभम् ॥ ६७ ॥

पृथु--विस्तीर्णम् । बहलं--पुष्टम् । यकृन्निभम्-ईषत्कृष्णलोहितम् ॥

सफेद भागमें विस्तीर्ण, कोमल, गाढा और कुछेक कलौंस लिये जो मांस बढता हो तो उसको ' अविमांसार्म ' कहते हैं ॥ ६७ ॥

अथ स्नाय्वर्मलक्षणम् । ५

स्थिरं प्रसारि मांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्मपञ्चमम् ॥ ६८ ॥

स्थिरम्--कठिनम् । शुष्कम्--स्रावरहितम् ॥

सफेद भागमें कठिन, फैलानेवाले और स्रावरहित जो मांस ऊँचा होता है उसको ' स्नाय्वर्म ' कहते हैं ॥ ६८ ॥

अथ शुक्तिलक्षणम् । ६

श्यावाः स्युः पिशितनिभाश्च बिन्दवो ये शुक्लाभाः सितनिचिताः स शुक्तिसंज्ञः ॥ ६९ ॥

श्यावा इत्यादिवर्णत्रये विकल्पो बोद्धव्यः॥

नेत्रके सफेद भागमें काले रंगका और मांसके समान विन्दु होता है अथवा सीपके समान होता है, उसको 'शुक्ति' कहते हैं॥६९॥

अथार्जुनलक्षणम् । ७

एको यः शशरुधिरप्रभस्तु बिन्दुः शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ॥ ७० ॥

सफेद भागमें खरगोसके रुधिरके समान एक बिन्दु होता है, उसको 'अर्जुन, कहते हैं ।

अथ पिष्टकलक्षणम् । ८

श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम् । पिष्टवत्पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्निभम् ॥ ७१ ॥

पिष्टवत्--श्वेतम् ॥

सफेद भागमें कफ तथा वायुके प्रकोपसे चूनके समान सफेद और मैलसे भरे दर्पणके समान ऊँचा जो होता है, उनको ' पिष्टक ' कहते हैं ॥ ७१ ॥

अथ शिराजाललक्षणम् । ९

जालाभः कठिनशिरोऽरुणः शिराणां सन्तानो भवति शिरादिजालसंज्ञः॥७२॥

सफेद भागमें जालेके समान कठिन शिराओंसे व्याप्त और लाल शिराओंका जो समूह होता है, उसको 'शिराजाल' कहते हैं ॥७२॥

अथ शिराजपिडकालक्षणम् । १०

शुक्लस्थाः सितपिडकाः शिरावृता यास्ता विद्यादसितसमीपजाः शिराजाः ॥ ७३ ॥

सफेद भागमें कालेभागके निकट रहनेवाली और शिराओंसे व्याप्त जो सफेद फुँसियां उत्पन्न होती हैं उनको 'शिराजपिडका' कहते हैं ॥ ७३ ॥

अथ बलासग्रथितलक्षणम् । ११

कांस्याभोऽमृदुरथ वारिबिन्दुकल्पो विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः ॥ ७४ ॥

कांस्याभः-श्वेत इत्यर्थः । अमृदुः कठिनः। वारिबिन्दुकल्पः एतेन मनाक् उन्नतत्वं बोध्यते। बलाससंज्ञः बलासग्रथितसंज्ञः । क्वचिदेकदेशेनापि समुदायावगमात् यथा भीमो भीमसेन इति । अत एव सुश्रुते नामसंग्रहे बलासग्रथितपदं निर्दिष्टम् ॥

सफेद भागमें कांसेके समान सफेद, कठिन और जलकी बूँदके समान कुछेक ऊँची जो बून्द होती है उसको 'बलासग्रथित' कहते हैं ॥ ७४ ॥

यद्यपि मूलश्लोकमें 'बलाससंज्ञ' ऐसा पद है, तथापि उसका 'बलासग्रथित' ऐसा अर्थ किया है, उसका कारण यह है कि, भीमशब्दसे भीमसेनका ग्रहण करनेके समान किसी स्थानमें एकदेशसे सम्पूर्ण नामका ग्रहण होता है । सुश्रुतमें नामोंके संग्रहमें 'बलास ग्रथित' यही पद कहा है ॥

अथैकविंशतिवर्त्मजरोगाः ।

उत्सङ्गिन्यथ कुम्भीका पोथकी वर्त्मशर्करा । तथाऽर्शोवर्त्म शुष्कार्शस्तथैवाञ्जनदूषिका ॥ ७५ ॥ बहलं वर्त्म यच्चापि तथाऽन्यो वर्त्म बन्धकः । क्लिष्टवर्त्म तथा वर्त्मकर्दमः श्यावर्त्म च ॥ ७६ ॥ प्रक्लिन्नवर्त्म चाक्लिन्नवर्त्म वातहतश्च तत् । वर्त्मार्बुदं निमेषश्च शोणितार्शस्तथैव च ॥ ७७ ॥ लगणो बिसवर्त्मापि कुञ्चनं नाम तत्परम् । एकविंशतिरित्येते विकारा वर्त्मसंश्रयाः ॥ ७८ ॥

नेत्रोंके वर्त्म (पलक) दो होते हैं । उनमें १ उत्संगिनी, २ कुम्भिका, ३ पोथकी, ४ वर्त्मशर्करा, ५ अर्शोवर्त्म, ६ शुष्कार्श, ७ अंजननामिका, ८ बहलवर्त्म, ९ वर्त्मबन्धक, १० क्लिष्टवर्त्म, ११ वर्त्मकर्दम, १२ श्यावर्त्म, १३ प्रक्लिन्नवर्त्म, १४ अक्लिन्नवर्त्म, १५ वातहतवर्त्म, १६ वर्त्मार्बुद, १७ निमेष, १८ शोणितार्श, १९ लगण, २० बिसवर्त्म, २१ कुञ्चन ये इकीस रोग होते हैं ॥ ७५-७८ ॥

अथोत्संगिनीलक्षणम् । १

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मसंश्रया । सोत्सङ्गोत्सङ्गपिडिका रक्तजा स्थूलकण्डुरा ॥ ७९ ॥

अभ्यन्तरमुखी वर्त्मनोऽभ्यन्तरे मुखं यस्याः सा । वर्त्मनो बाह्यतस्ताम्रा । सोत्संगा अन्तःपूया । उत्सङ्गपिडिका-उत्सङ्गे क्रोडे बह्व्यः पिडिका यस्याः सा । स्थूलकण्डुरा स्थूला कण्डुरा चेति कर्मधारयः । एषा अधरवर्त्मजा बोद्धव्या । वर्त्मोत्सङ्गेऽधरे जन्तोः । इति विदेह वचनात् ॥

नेत्रके कोयेके भीतर मुखवाली, बाहरसे लाल, भीतर राधयुक्त अपने आप अनेक फुँसिया युक्त स्थूल और खुजलीयुक्त जो फुँसियां पलकमें रुधिरके प्रकोपसे होती हैं, उनको 'उत्संगिनी' कहते हैं ॥ ७९ ॥

ये फुँसियां नीचेके कोयोंमें होती हैं, ऐसा जानना कारण यह है कि, मनुष्यके नीचेके कोयेमें उत्संगिनी होती है, ऐसा विदेह कहता है ॥

अथ कुम्भीकालक्षणम्। २

वर्त्मान्ते पिडिका ध्माता भिद्यन्ते च स्रवन्ति च। कुम्भीकाबीजसदृशाः कुम्भीकाः सन्निपातजाः ॥ ८० ॥

कुम्भीकाबीजसदृशाः कुम्भीका--कठोरदेशे दाडिमाकारफला लता तद्बीजतुल्या ॥

पलकके अन्तमें ऊंची और कुम्भीका नामक लताके बीजके समान जो फुँसी सन्निपातसे होती है और फुटती है तथा फुट फुटकर स्रवती है, वह फुंसी 'कुम्भीका' कही जाती है। कुम्भीका नामक लता कठोर देशमें होती है और उसके फल अनारके समान होते हैं ८०

अथ पोथकीलक्षणम्। ३

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः। रुजावत्यश्च पिडिकाः पोथक्य इति कीर्तिताः ॥ ८१ ॥

बहनेवाली, खुजलीयुक्त, भारी, लाल सरसोंके समान और पीडा युक्त जो फुंसी नेत्रके कोयेमें होती है, उसको 'पोथकी' कहते हैं ॥ ८१ ॥

अथवर्त्मशर्करालक्षणम्। ४

पिडिकाभिः सुसूक्ष्माभिर्घनाभिरसंवृता। पीडिका या खरा स्थूला वर्त्मस्था वर्त्मशर्करा ॥ ८२ ॥

बहुत छोटी छोटी सघन फुन्सियोंसे चारों ओर भरी हुई तीक्ष्ण और मोटी जो फुन्सी पलकमें होती है, उसको 'वर्त्मशर्करा" कहते हैं ॥ ८२ ॥

अथार्शोवर्त्मलक्षणम्। ५

ऐर्वारुबीजप्रतिमाः पिडिका मन्दवेदनाः। श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥ ८३ ॥

ऐर्वारुः-कर्कटी। खराः-तीक्ष्णाग्राः ॥

पलकमें ककडीके बीजके समान, मन्द पीडायुक्त, चिकनी और तीक्ष्ण अनीवाली जो फुन्सी होती है, उसको 'अर्शोवर्त्म' कहते हैं ॥ ८३ ॥

अथ शुष्कार्शोलक्षणम्। ६

दीर्घाङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः। व्याधिरेषोऽभिविख्यातः शुष्कार्शो नाम नामतः ॥ ८४ ॥

पलकके भीतर खरखरे, जकडेसे और दारुण जो बडे बडे अंकुर होते हैं, उसको 'शुष्कार्श' कहते हैं ॥ ८४ ॥

अथाञ्जननामिकालक्षणम्। ७

दाहतोदवती ताम्रा पिडिका वर्त्मसम्भवा। मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका ॥ ८५ ॥

पलकमें दाहवाली, भौंकनेसरीखी पीडायुक्त, लाल, कोमल और मन्दवेदनावाली जो बारीक फुन्सियां होती है, वे 'अञ्जननामिका कही जाती हैं ॥ ८५ ॥

अथ बहलवर्त्मलक्षणम्। ८

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः समन्ततः। सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्बहलवर्त्म तत् ॥८६॥

पलकके समान रंगवाली और कठिन जो फुन्सी वर्त्मके चारों ओर फैल जाय, उसको 'बहलवर्त्म' कहते हैं ॥ ८६ ॥

अथ वर्त्मबन्धकलक्षणम्। ९

कण्डूरेणात्मतोदेन वर्त्मशोफेन मानवः। असमं छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबन्धकः ॥ ८७ ॥

जलसे परिपूर्ण और खुजली सहित पलक सूजकर नेत्र बराबर नहीं मिचते हों उसको 'वर्त्मबन्धक' कहते हैं ॥ ८७ ॥

अथ क्लिष्टवर्त्मलक्षणम् । १०

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च । अकस्माच्च स्रवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥ ८८ ॥

एतत्कफजुष्टरक्तजम् ॥

नेत्रके दोनों कोये नरम रहें, उनमें थोडी पीडा हो, सर्वदा लाल रहें अकस्मात् लाल होजायँ, उसको 'क्लिष्टवर्त्म' कहते हैं। यह रोग प्रथम कफके सम्बन्धसे होकर रुधिरसे होता है ॥ ८८ ॥

अथ वर्त्मकर्दमलक्षणम् । ११

क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा । तदा क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमम् ॥ ८९ ॥

क्लिन्नत्वम्-आर्द्रत्वम् ॥

ऊपर क्लिष्टवर्त्मके जो लक्षण कहे, वे लक्षण हों तथा फिर पित्तसे संयुक्त रुधिर दाह करता हो और इस कारण पलक भीजजाते हों, उस रोगको 'वर्त्मकर्दम' कहते हैं ॥ ८९ ॥

अथ श्याववर्त्मलक्षणम् । १२

यद्वर्त्म बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् । सकण्डूकं परिक्लेदि श्याववर्त्मेति तन्मतम् ॥ ९० ॥

नेत्रके पलक जो बाहर तथा भीतर काले हों, सूजन हो, वेदनायुक्त, खुजलीसहित और भीजें रहें तो उसको 'श्याववर्त्म' कहते हैं ॥ ९० ॥

अथ प्रक्लिन्नवर्त्मलक्षणम् । १३

अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि । प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात्क्लिन्नमत्यर्थमन्ततः ॥ ९१ ॥

म्-ईषद्व्यथस्

कोये कुछेक पीडा युक्त, सूजे हुए और अधिकतर कीचड सहित भीजे हों, उसको प्रक्लिन्नवर्त्म' कहते हैं ॥ ९१ ॥

अथाक्लिन्नवर्त्मलक्षणम् । १४

यस्य धौतान्यधौतानि सम्बध्यन्ते पुनः पुनः । वर्त्मान्यपरिपक्कानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥ ९२ ॥

धोनेसे वा नहीं धोनेसे जो नेत्रके पलक बारम्बार चिपककर मिलजायँ और पके नहीं अर्थात् कच्चे रहें, उसको 'अक्लिन्नवर्त्म' कहते हैं ॥ ९२ ॥

अथ वातहतवर्त्मलक्षणम् । १५

विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते । एतद्वातहतं विद्यात्सरुजं यदि वाऽरुजम् ॥ ९३ ॥

विमुक्तसन्धि-स्वस्थानच्युतसन्धि । निश्चेष्टम्-निमेषोन्मेषादिरहितम् ॥

जिसके पलककी संधि अलग अलग होजायँ पलक मिचें और खुलें नहीं और वेदनासहित अथवा वेदनारहित तथा सकुचानेवाली हों, इसको 'वातहतवर्त्म' कहते हैं ॥ ९३ ॥

अथ वर्त्मार्बुदलक्षणम् । १६

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् । आचक्षीतार्बुदमिति सरक्तमवलम्बि च ॥ ९४ ॥

विषमम्-अवर्तुलम् । ग्रन्थिभूतं-कठिनम् । अवेदनमीषद्वेदनम्, सरक्तमीषल्लोहितम् । अवलम्बि-अवस्रस्तम् ॥

पलकोंके भीतर विषम अर्थात् गोल नहीं, थोडी पीडावाली, कुछेक लाल और शीघ्र बढनेवाली कठिन, गांठ हो, उसको 'वर्त्मार्बुद-कहते हैं ॥ ९४ ॥

अथ निमेषलक्षणम् । १७

निमेषिणीःशिरा वायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयः । सञ्चालयति वर्त्मानि निमेषः स न सिध्यति ॥ ९५ ॥

पलकोंमें रहनेवाली वायु पलकोंको खोलने बन्दकरनेवाली नसोंमें प्राप्त होकर पलकोंको चलायमान करे, उसको 'निमेष' कहते हैं, यह रोग असाध्य है ॥ ९५ ॥

अथ शोणितार्शोलक्षणम् । १८

वर्त्मस्थो यो विवर्द्धेत लोहितो मृदुरङ्कुरः। तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं वाऽपि विवर्द्धते ॥ ९६ ॥

पलकोंमें रहनेवाले कोमल अंकुर बढें, उसको 'शोणितार्श' कहते हैं। यह रोग रुधिरसे होता है। इसको जितना २ काटा जाय, उतना ही अधिक बढता है ॥ ९६ ॥

अथ लगणलक्षणम् । १९

आपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः। सकण्डूः पिच्छिलः कोलप्रमाणो लगणः स्मृतः ॥ ९७ ॥

नहीं पकनेवाला, कठिन, स्थूल, अल्प पीडायुक्त, खुजलीसहित, चिकनी और बेरके समान जो गांठ पलकमें उत्पन्न हो, उसको 'लगण' कहते हैं ॥ ९७ ॥

अथ बिसवर्त्मलक्षणम् । २०

त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः। प्रस्रवत्यन्तरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत् ॥ ९८ ॥

छिद्राणि-अन्तश्छिद्राणि च कुर्युरित्यन्वयः। बिसवद्बहुच्छिद्रत्वात् ॥

तीनों दोष पलकोंमें बाहर सूजनको उत्पन्न करें, भीतर छिद्रोंको उत्पन्न करें और उनमेंसे कमलकी नालके समान जलका स्राव हो उसको 'बिसवर्त्म' कहते हैं ॥ ९८ ॥

अथ कुञ्चनलक्षणम् । २१

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति मला यदा। तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम तद्विदुः ॥ ९९ ॥

वातादि दोषोंके कारण पलक सकुच जायँ और उससे देखनेको असमर्थ होजायँ उसको 'कुञ्चन' कहते हैं ॥ ९९ ॥

तत्र पक्ष्माणि अलोमानि।

तत्रत्ययो रोगयोर्नामनी आह।

पक्ष्मकोपः पक्ष्मशातो रोगौ द्वौ पक्ष्मसंश्रयौः ॥ १०० ॥

पक्ष्मकोप और पक्ष्मशात ये दो रोग पलकोंके बालोंमें होते हैं ॥ १०० ॥

अथ पक्ष्मकोपलक्षणम्।

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशन्ति हि। घृष्यन्त्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयन्ति च ॥ १०१ ॥ असिते सितभागे च मूलकोशात्पतन्त्यपि। पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥ १०२ ॥

संरम्भम्-शोथम् ॥

वायुसे चलायमान पलकोंके बाल नेत्रोंमें प्रवेश करते हैं, प्रवेश करके नेत्रोंको बारंबार घिसते हैं, घिस घिसकर काले अथवा सफेद भागमें २ सूजनको उत्पन्न करते हैं और जडसे उखडकर गिर जायँ, इस रोगको 'पक्ष्मकोप' कहते हैं। यह रोग अत्यन्त दारुण है ॥ १०२ ॥

अथान्यग्रन्थोक्तपक्ष्मकोपलक्षणम्।

यत्पक्ष्मदेहलीं मुक्त्वा वर्त्मनोऽन्तः प्रजायते। घर्षेत् पक्ष्मासिते श्वेते पक्ष्मकोपः स उच्यते ॥ १०३ ॥

जहां बाल उत्पन्न होनेका स्थान है- उस स्थानको छोडकर बालोंके भीतर उत्पन्न हो और वह काले तथा सफेद भागमें घिसा करे उसको 'पक्ष्मकोप' कहते हैं, इसको देशमें परवाल कहते हैं। सुश्रुतमें कहा है कि, पलकोंके बालोंके स्थानमें रहनेवाले दोष तीक्ष्ण अनीवाले खरखरे रोमोंको उत्पन्न करते हैं, ये रोम नेत्रोंमें घिसनेसे नेत्र दुःखते हैं, यह रोग पक्ष्मकोप कहा जाता है। इस रोगवाला

मनुष्य पवन, धूप और अग्निपर द्वेष करता है ॥ १०३ ॥

अथ पक्ष्मशातलक्षणम् ।

वर्त्म पक्ष्माशयगतं पित्तं लोमानि शातयेत् । कण्डूं दाहञ्च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥ १०४ ॥

शातयेत्-स्खलयेत् ॥

पक्ष्माशयमें रहनेवाला पित्त पलकके बालों को गिरा देता है और खुजली तथा दाहको उत्पन्न करता है, यह रोग 'पक्ष्मशात' कहाता है ॥ १०४ ॥

अथ संधिजरोगाः ।

पक्ष्मवर्त्मगतः सन्धिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः शुक्लकृष्णगतश्चान्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपि च । मतः कनीनकगतःषष्ठश्चापाङ्गसंश्रितः ॥ १०५ ॥

पहली सन्धि पलकोंके रोमोंमें और पलकमें है, दूसरी सन्धि पलकोंमें और सफेद भागमें है, तीसरी सन्धि सफेद भागमें और काले भागमें है और दृष्टिमें है, चौथी संधि काले भागमें और दृष्टिमें हैं पांचवी सन्धि दृष्टिमें है और छठी सन्धि नेत्रके अन्तमें है ॥१०५॥

अथ सन्धिजरोगाणां नामानि संख्या च ।

पूयालसः सोपनाहःस्रावाश्चत्वार एव च । पर्वणी चालजी जन्तुग्रन्थिः सन्धौ नवामयाः ॥ १०६ ॥

१ पूयालस, २ उपनाह, ३ पित्तस्राव, ४ कफस्राव, ५ सन्निपातस्राव, ६ रक्तस्राव, ७ पर्वणि, ८ अलजी और ९ जन्तुग्रन्थि ये नामवाले नौ रोग सन्धियोंमें होते हैं ॥ १०६ ॥

अथ पूयालसलक्षणम् । १

पक्वः शोथः सन्धिजः संस्रवेद्यः सान्द्रं पूयं पूति पूयालसाख्यः ॥ १०७ ॥

सन्धिजः कनीनकसन्धिजो बोद्धव्यः । "पूयालसन्तु तं विद्यात्सन्धौ कानीनके नृणाम्" इति विदेहवचनात् ॥

संधियोंमें उत्पन्न और पकी हुई जो सूजन दुर्गंधित तथा गाढी राध जिसमें; बहे उसको 'पूयालस' कहते हैं ! संधियोंमें उत्पन्न हुआ अर्थात् दृष्टिकी संधियोंमें उत्पन्न हुआ ऐसा जानना, कारण यह है कि 'मनुष्योंकी दृष्टिकी संधियोंमें पूयालस होता है' ऐसा विदेह कहता है ॥ १०७ ॥

अथोपनाहलक्षणम् । २

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्धावपाकी कण्डूप्रायो नीरुजश्चोपनाहः ॥ १०८ ॥

नाल्पः महान् । अपाकी ईषत्पाकी । नीरुजः ईषद्वेदनः । " अरुणं कठिनं ग्रन्थिं जन यत्यल्पवेदनम् " इति विदेहवचनात् ॥

दृष्टिकी सन्धिमें बडी, कम पकनेवाली, बहुत खुजलीयुक्त, कठिन, लाल और अल्प वेदनावाली जो गांठ हो, उनको ' उपनाह ' कहते हैं ॥ १०८ ॥

अथस्रावसम्प्राप्तिः ।

गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावाँल्लक्षणैः स्वैरुपेतान् । तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके तस्या लिङ्गं कीर्तयिष्ये चतुर्द्धा ॥ १०९ ॥ सन्धीनिति बहुवचनेन सर्वे एव सन्धयो गृह्यन्ते । एके वदन्तीति शेषः । वातिकस्त्रावो न भवति केवलेन वातेन तदसम्भवात् ॥

दोष सम्पूर्ण संधियोंमें जाकर आंसुओंके मार्गसे अपने २ लक्षणोंवाले स्रावोंको उत्पन्न करते हैं । कितने आचार्य इस स्रावको 'नेत्रनाडी' नामसे कहते हैं । स्राव चार प्रकारक

होता है, उसके लक्षण कहते हैं । वायुसम्बन्धी स्राव नहीं होता; क्योंकि, केवल वायुसे स्राव होना सम्भव नहीं ।। १०९ ।।

अथ पित्तजस्रावलक्षणम् । ३

हारिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा
पित्तस्रावः संस्रवेत् सन्धिमध्यात् ॥११०॥

हारिद्राभं पीतरक्तम् । परतः पीतशब्द-प्रयोगाज्जलं वेति । वाशब्दो हारिद्राभं पीतं वेत्यत्र सम्बध्यते । पित्तस्रावः पित्तात्स्रावः एवं श्लेष्मस्रावादयः ॥

संधिके बीचमेंसे लाल तथा पीला मिला हुआ अथवा केवल पीला गरम जलका स्राव होता हो तो उसको जानना कि 'पित्तसम्बन्धी-स्राव है ।। ११० ।।

अथ कफजस्रावलक्षणम् । ४

श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेत्तु श्लेष्म-स्रावोऽसौ विकारः प्रदिष्टः ॥ १११ ॥

सफेद, गांढा तथा चिकना स्राव होता हो तो जानना कि 'कफसंबंधीस्राव' है ।।१११।।

अथ सन्निपातस्रावलक्षणम् । ५

शोथः सन्धौ संस्रवेद्यस्तु पक्वः पूयं स्रावः सर्वजः सम्मतः स्यात् ॥

संधियोंमें पकनेवाली सूजन राधको बहाती हो तो उसको जानना कि 'संन्निपातस्राव' है ।।

अथ रुधिरजन्यस्रावलक्षणम् । ६

रक्तस्रावः शोणिताद्यो विकारो गच्छेदुष्णं तत्र रक्तं प्रभूतम् ॥ ११२ ॥

स्राव गरम हो और उसमें विशेष रुधिर गिरता हो तो जानना कि 'रुधिरजन्यस्राव' है ।। ११२ ।।

अथ पर्वण्यलज्योर्लक्षणम् । ७, ८

ताम्रा तन्वी दाहपाकोपपन्ना रक्ताज्ज्ञेया पर्वणी वृत्तशोफा । जाता सन्धौ कृष्ण-शुक्लेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव व्याहृता पूर्व-लिङ्गैः ॥११३॥ रक्ता सिता स्फोटचिता दारुणा त्वलजी भवेत् ॥ ११४ ॥

अलजीमाह-अलजी स्यादित्यादि । तस्मिन्नेव कृष्णशुक्लयोरेव सन्धौ । भेदार्थमाह-पूर्वलिंगैः प्रमेहाधिकारलिखितैः ॥

काले भागकी तथा सफेद भागकी संधियोंमें गोल सूजनवाली, लाल, बारीक और दाहयुक्त तथा पकनेवाली फुंसी उत्पन्न हो तो जानना कि 'पर्वणी' उत्पन्न हुई है । यह पर्वणी रुधिरके प्रकोपसे होती है ।।

पहले प्रमेहाधिकारमें लिखे अनुसार लाल, सफेद फुंसियोंसे व्याप्त और दारुण ऐसी फुंसी संधिमें काले भाग तथा सफेद भागकी संधिमें हो तो उसको 'अलजी' जानना ।।११३ ११४।।

अथ जन्तुग्रंथिलक्षणम् । ९

जन्तुग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युर्जन्तवः सन्धिजाताः । नानारूपा वर्त्मशुक्लान्तसन्धौ गच्छन्त्यन्तर्लोचनं दूषयन्तः ॥ ११९ ॥

वर्त्मनः पक्ष्मणश्च सन्धिजाता इत्यन्वयः॥

पलकके तथा पलकके रोमोंकी संधियोंमें उत्पन्न हुए अनेक आकृतिवाले कृमि खुजलीको उत्पन्न करते हैं और नेत्रको बिगाड बिगाडकर पलक तथा सफेद भागकी संधियोंमें जाते हैं, उसको 'जन्तुग्रंथि' कहते हैं ॥ ११५ ।।

अथ समस्तनेत्रजरोगगणना ।

स्यन्दाश्चतुष्का इह सम्प्रदिष्टाश्चत्वार एवेह तथाधिमन्थाः । पाकः सशोथः स च शोथहीनो हताधिमन्थोऽनिलपर्ययश्च ॥ ११६ ॥ शुष्काक्षिपाकस्त्विह कीर्तितश्च तथाऽन्यतोवातउदीरितश्च । दृष्टिस्तथाऽम्लाध्युषिता शिराणामुत्पातहर्षौ च समस्तनेत्रे ॥ ११७ ॥ एवं समस्त-

नेत्रे स्युरामया दश सप्त च । तेषामिह पृथग्वक्ष्ये यथावल्लक्षणान्यपि ॥ ११८ ॥

चार अभिष्यन्द, चार अधिमन्थ, ९ सशोथपाक, १० अशोथपाक, ११ हताधिमन्थ, १२ वातपर्यय, १३ शुष्काक्षिपाक, १४ अन्यतोवात, १५ अम्लाध्युषित, १६ शिरोत्पात और १७ शिराहर्ष ये सतरहरोग समस्त नेत्रोंमें होते हैं । अब इनके पृथक् पृथक् लक्षण कहता हूँ ॥ ११६-११८ ॥

अथ चत्वार्य्यभिष्यन्दनामानि ।

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः । प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्र भयंकरः ॥ ११९ ॥

प्राणियोंके वाताभिष्यन्द, पित्ताभिष्यन्द, कफाभिष्यन्द और रक्ताभिष्यन्द इस प्रकार सर्वनेत्रमें पीडाकरनेवाला चार प्रकारका भयंकर अभिष्यन्द रोग होता है ॥ ११९ ॥

अथ वाताभिष्यन्दलक्षणम् । १

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः । विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति१२०

संघर्षः-करकटीका । शिरोऽभितापःशिरसो व्यथा । विशुष्कभावः-दूषिकाराहित्यम् । वाताभिपन्ने-वातेन उपद्रुते ॥

तोडने भोकने सरीखी पीडा, जडता, रोमांचोंका होना, खुजली, नेत्रोंमें रूक्षता, मस्तकमें पीडा, चिपकना नहीं और आंसुओंका शीतल होना ये सब लक्षण हों तो जानना कि, नेत्रमें वायुके प्रकोपसे अभिष्यन्द हुआ है ॥ १२० ॥

अथ पित्ताभिष्यन्दलक्षणम् । २

दाहप्रपाकः शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुद्भवश्च । उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ १२१ ॥

शिशिराभिनन्दा-शीतलेच्छा । धूमायनम्-नेत्राद् धूमोद्गम इव । बाष्पसमुद्भवः-अश्रुस्रावः ॥

दाह, पकना, शीतल पदार्थोंकी इच्छा, नेत्रोंमेंसे धुवांसा निकलता प्रतीत हो, आंसुओंका स्राव, आंसुओंमें उष्णता और नेत्रका पीलापन ये लक्षण हों तो जानना कि, पित्तके प्रकोपसे अभिष्यन्द हुआ है ॥

अथ कफाभिष्यन्दलक्षणम् । ३

उष्णाभिनन्दा गुरुताऽक्षिशोथः कण्डूपदेहावतिशीतता च । स्रावो मुहुः पिच्छिल एवचापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ १२२ ॥

उपदेहः-दूषिकया लिप्तता ॥

गरम पदार्थोंकी इच्छा, भारीपन, नेत्रोंमें सूजन, खुजली, कीचड अधिक आवे और चिपके, अत्यन्त शीतलता और वारम्बार चिकना स्राव ये लक्षण हों, तो जानना कि, कफके प्रकोपसे नेत्र दुखने आये हैं ॥ १२२ ॥

अथ रक्ताभिष्यन्दलक्षणम् । ४

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रताच राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च । पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ १२३ ॥

पितस्य लिङ्गानि-पित्ताभिष्यन्दलिंगानि ॥

आंसुओंमें लाली, नेत्रोंमे लाली, चारोंओर नेत्रोंमें अत्यन्त लाल रेखा और अन्य भीपित्ताभिष्यन्दके लक्षण हों तो जानना कि, रुधिरके प्रकोपसे अभिष्यन्द हुआ है ॥ १२३ ॥

अथ चतुर्विधाभिष्यन्दोपेक्षया चत्वारोऽधिमन्थाः । ५-८

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् ।

तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥ १२४ ॥

जो मनुष्य अभिष्यन्दरोगोंपर औषधादिक उपचार नहीं करते, उनके ये वृद्धिको प्राप्त होकर नेत्रोंमें तीव्रपीडावाले चार अधिमन्थ होते हैं वाताभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ, पित्ताभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ, कफाभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ और रक्ताभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ इस प्रकार अधिमन्थ चार हैं ॥ १२४ ॥

अथाधिमन्थलक्षणम् ।

उत्पाटयत इवात्यर्थं तथा निर्मथ्यतेऽपि च । शिरसोऽर्द्धं तु तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥ १२५ ॥

स्वलक्षणैः—यथोक्तवातादिकृताभिष्यन्दलक्षणैरधिमन्थं विद्यात् । अभिष्यन्देभ्योऽधिमन्थानां भेदार्थमाह—शिरसोऽर्द्धमुत्पाटयत इव तथा निर्मथ्यतेऽपिचेति चतुर्ष्वधिमन्थेषु बोद्धव्यम् । शिरसोऽर्द्धवेदना व्याधिप्रभावात् ॥

जो अधिमन्थ जिस अभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ हो, उस अधिमन्थमें उसी अभिष्यन्दके सम्पूर्ण लक्षण होनेके सिवाय आधा माथा उखाडासा मालूम हो तथा अत्यन्त मथनेकीसी पीडा होती है ॥

मस्तकके आधे भागको उखाडता मालूम हो तथा मथता हो, ऐसी पीडा होनेसे अर्थात् यही अभिष्यन्दोंसे अधिमन्थोंमें अन्तर है । ये अलग वेदनारूप लक्षण चारों अधिमन्थोंमें समान हैं । मस्तकके अर्द्धभागमें वेदना व्याधिके प्रभावसे होती है, ऐसा जानना ॥ १२५ ॥

स च अधिमन्थो यदात्मको यावता कालेन मिथ्याचाराद्दृष्टिं हन्ति तमाह—

हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्राद्योऽधीमन्थोरक्तजः पञ्चरात्रात् । षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात् पैत्तिकः सद्य एव ॥ १२६ ॥

अत्र सद्यःशब्देन त्रिरात्रमुच्यते । तन्त्रान्तरे त्रिरात्र वचनात् ॥

जो अधिमन्थ कफाभिष्यन्दसे हुआ हो तो सात रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट कर देता है । रक्ताभिष्यन्दसे हुआ हो तो पांच रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट करदेता है, वाताभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ हो तो छः रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट कर देता है और पित्ताभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ हो तो तत्काल ही तीन रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट करदेता है । जो अयोग्य उपचार आदि करनेमें आवे तब अधिमन्थ दृष्टिको नष्ट कर देता है, ऐसा जानना ॥ १२६ ॥

अथ सशोथपाकाशोथपाकनेत्रयोर्लक्षणम् । ९, १०

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसन्निभः । संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः सशोथकः ॥ १२७ ॥

पक्वोदुम्बरसन्निभः लोहितत्वात् ॥

जो नेत्र खुजली सहित हो, चिपके, आंसुओंसे परिपूर्ण हो, पके हुए गूलरके फलके समान लाल हो, सूजनयुक्त और पके तो जानना कि, सशोथपाक हुआ है ॥ १२७ ॥

शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथके ॥ १२८ ॥

ऊपर कहे सशोथपाकके सम्पूर्ण लक्षण हों और केवल सूजन ही नहीं हो तो जानना कि, अशोथपाक हुआ है ॥ १२८ ॥

अथहताधिमन्थलक्षणम् । ११

उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमन्थो वाताधिकः शोषयति प्रसह्य । रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नाम रोग १२९

शोषयति शोषयित्वा नाशयति । अत एवाह विदेहः-"तत्पक्वमिव संशुष्कमवसीदाति लोचनम् ॥" इति ॥

वाताभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ अधिमन्थ योग्य उपचारकी उपेक्षा करनेसे जब उग्र वेदनाको उत्पन्न करके आंखको बलात्कारसे सुखाकर नष्ट कर देता है, तब यह अधिमन्थ हताधिमन्थ ' कहाजाता है, यह हताधिमन्थ असाध्य है । यद्यपि मूलमें ' सुखाता है ' यही लिखा है । तथापि ' सुखाकर ' नष्ट कर देता है, ऐसा हमने लिखा है । इसका यह कारण है कि-" अत्यन्त सुखाये हुए नेत्र अत्यन्त सूखे कमलके समान नष्ट हो जाते हैं " ऐसा विदेहका मत है ॥ १२९ ॥

अथ वातपर्ययलक्षणम् । १२

वारंवारश्च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः । रुजश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्ययः ॥ १३० ॥

पर्येति-पर्यायेण याति, कदाचित् भ्रुवौ कदाचित् नेत्रे ॥

वायु किसी समय भौंहौंमें और किसी समय नेत्रोंमें इस प्रकार वारम्बार फिरे और अनेक प्रकारकी तीव्र वेदना हो तो यह वात पर्यय कहाजाता है ॥ १३० ॥

अथ शुष्काक्षिपाकलक्षणम् । १३

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म सन्दह्यते चाविलदर्शनं यत् । सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ १३१ ॥

कूणितम्-संकोचितंमुद्रितमिति यावत् । दारुण-रूक्षवर्त्म-दारुणं विकृतं रूक्षं च वर्त्म यस्य तत् । इदमक्ष्णोर्विशेषणम् । सन्दह्यते--सदाहं भवति । आविलदर्शनम्-आविलस्य अनच्छस्य दर्शनं येन तत् । तत्प्रतिबोधने उद्घाटय सुदारुणमतिशयेन विकृतम् ॥

नेत्रके पलक दारुण तथा कठिन और रूखे होजायँ, आंख मिचि रहें, दाह हो, आंखसे साफ न देख सके और खोलते समय अत्यन्त विकृत दीखें, इस रोगको ' शुष्काक्षिपाक ' कहते हैं ॥ १३१ ॥

अथान्यतोवातलक्षणम् । १४

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यनिलोऽन्यतो वा । कुर्याद्रुजोऽति भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ १३२ ॥

अवटू 'घोटू' इति मैथिलादिलोकाः । अन्यतोवा पृष्ठादिदेशश्च आगतः अन्यतोवातः, अन्यत्र स्थितोऽन्यत्र रुजः करोति इत्यन्यतोवातः विदेहेनाप्युक्तम् मन्यानामन्तरे वायुरुत्थितः पृष्ठतोऽपि वा।करोति भेदं निस्तोदं शङ्खे वाऽक्ष्णो र्भ्रुवस्तथा । तमाहुरन्यतोवातं रोगं दृष्टिविदो जनाः ॥ १३३ ॥

घाटीमें, कानमें, मस्तकमें ठोडीमें, मन्यानाडी और अन्य पीठके वांस आदिमें स्थित वायु भौंहौंमें और नेत्रोंमें घोर वेदनाको उत्पन्न करती है, उस रोगको ' अन्यतोवात ' कहते हैं । एक स्थानमें स्थित वायु दूसरे स्थानमें वेदनाको उत्पन्न करती है, इस कारण यह अन्यतोवात कही जाती है । विदेह भी कहता है कि, नाडके मध्यमेंसे अथवा पीठके बांसमेंसे स्थित वायु कनपटी नेत्र और भौंहमें भेदने तथा तोडने सरीखी पीडाको उत्पन्न करती है । इस रोगको नेत्रविषयके जाननेवाले विद्वान् ' अन्यतोवात' कहते हैं ॥१३२--१३३॥

अथाम्लाध्युषितलक्षणम् । १५

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वमक्षि प्रपच्यते । सदाहशोथं सस्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ १३४ ॥ अम्लतः अम्लभोजनात् । तथा च सुश्रुतः- ' अम्लेन भुक्तेन ' इत्यादि ॥

खट्टे रसादिकके खानेसे नेत्र काले, लाल कोनेवाले, दाहयुक्त, सूजनसहित और स्रावयुक्त होते हैं। यह रोग अम्लाध्युषित ' कहा जाता है ॥ १३४ ॥

अथ शिरोत्पातलक्षणम् । १६

अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः।मुहुर्विरज्यन्ति च याः समन्ताद्व्याधिः शिरो पातइति प्रदिष्टः ॥ १३५ ॥

अक्षिराज्यः—अशिराः। विरज्यन्ति—विकृतवर्णा भवन्ति ॥

वेदनारहित अथवा वेदनायुक्त नेत्रकी शिरा लाल हो जाय और वह अधिकाधिक बारम्बार विकृत वर्णवाली होजाय, इस रोगको ' शिरोत्पात ' कहते हैं ॥ १३५ ॥

अथ शिराहर्षलक्षणम् । १७

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगः स शिराप्रहर्षः। ताम्राक्षिता स्रावयति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुश्च ॥ १३६ ॥

मूर्खतासे जो शिरोत्पातकी उपेक्षा की जाय तो वही शिराहर्ष होजाता है जिससे आंखें लाल हो जाती हैं, अत्यन्त स्राव होता है और आंखोंसे देख नहीं सकता ॥ १३६ ॥

अथ नेत्रसामतालक्षणम् ।

उदीर्णवेदनं नेत्र रोगाद्रेकसमन्वितम् । घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥१३७॥ उदीर्णवेदनम्—उद्भटवेदनम् । घर्षः करकटिका । एतल्लक्षणं लंघनादि विधानार्थमञ्जनादिनिषेधार्थं चोक्तम् ॥

नेत्रमें अपार वेदना होती हो, लाली अधिक हो, खुजली आती हो, भोंकनेसरीखी पीडा होती हो, शूल चलता हो और आंसू गिरते हों तो नेत्रको साम अर्थात् आमसहित जानना। जबतक नेत्र आम सहित हो तब तक लंघन आदि करनेके लिये तथा अंजन आंजना आदिक निषेध करनेके लिये ये लक्षण कहे हैं ॥ १३७ ॥

तथा च तन्त्रान्तरे—स्वेदोदिता चत्वारि लंघनं भोजने रसः । स्वादुस्तिक्तश्च लेपश्च बाष्पस्वेदनमेव च । एतानि नेत्र रोगाणां सामान्याचरणानि हि ॥१३८॥ अञ्जनं सर्पिषः पानं कषायं गुरु भोजनम् । नेत्ररोगेषु सामेषु स्नानञ्च परिवर्जयेत् ॥ १३९ ॥

अन्यग्रन्थमें भी कहा है कि—'लंघन, मधुर भोजन तथा कडवा रस, लेप और बाफका सेक ये नेत्ररोगके लिये सामान्य उपचार हैं, परन्तु जबतक नेत्र आमसहित हो तबतक अंजन, घृतपान, क्वाथ, भारी भोजन और स्नान इनका त्याग कर देवे' ॥ १३८ ॥१३९॥

अथ नेत्रनिरामतालक्षणम् ।

मन्दवेदनता कण्डूसंरम्भाश्रुप्रशान्तता । प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोर्निरामेक्षणलक्षणम् ॥ १४० ॥

संरम्भा—शोथः ।

वेदनाकी मन्दता, खुजलीका कम होना सूजनका कम होना, आंसुओंका कम आना और वर्णकी निर्मलता यह लक्षण हो तो जानना कि, नेत्र निराम अर्थात् आमरहित हैं ॥ १४० ॥

अथ नेत्ररोगचिकित्सा ।

द्वे पादमध्ये पृथुसन्निवेशे शिरोगते ते बहुधा हि नेत्रे । ताः प्रोक्षणोत्सादनलेपनादीन्पादप्रयुक्तान्नयनं नयन्ति १४१

प्रोक्षणम्-सेचनम् । उत्सादनमुद्वर्तनम् ॥

पाँवकी दो मोटी नसें मस्तकमें गई हैं और बहुतसी नसें नेत्रोंमें पहुँची हैं। इस कारण

पाँवोंमें सेचन मर्दन और लेपन किया हुआ उन नसोंके द्वारा नेत्रोंमें पहुँचता है ॥१४१॥

मलोष्मसंघट्टनपीडनाद्यैस्ता दूषयन्ते नयनानि दुष्टाः । भजेत्सदा दृष्टिहितानि तस्मादुपानदभ्यञ्जनधावनानि ॥१४२॥

मलं धूल्यादि । मलादिभिर्दुष्टास्ताः शिरा नयनानि दूषयन्तीत्यन्वयः ॥

मैलसे, गरमीसे, संघट्टनसे तथा दबाने आदिसे दूषित हुई नसें नेत्रोंको बिगाडदेती हैं; इस कारण जूतेका पहरना, पाँवकी मालिस और पांवोंको धोना यह सर्वदा सेवन करना चाहिये, जिससे नेत्रोंको उपकार हो ॥१४२॥

चक्षुष्याः शालयो मुद्गा यवा मांसन्तु जाङ्गलम् । पक्षिमांसं विशेषेण वास्तूकं तण्डुलीयकम् ॥ १४३ ॥ पटोलकर्कोटककारवेल्लफलानि सर्पिःपरिपाचितानि । तथैव वार्ताकुफलं नवीनमक्ष्णोर्हितः स्वादुरथापि तिक्तः ॥ १४४ ॥

शालिचावल, मूंग, जौ, जांगलप्रदेशके पशुओंका मांस, पक्षियोंका मांस, विशेषकरके बथुआ, चौलाई, परवल, ककोडे, करेले और नवीन बैंगन इनको घीमें पकाकर खानेसे नेत्रोंमें हितकारक है, मधुर तथा कडवा रसभी नेत्रोंमें हितकारक है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

कट्वम्लगुरुतीक्ष्णोष्णमाष निष्पावमैथुनम् । मद्यवल्लूरपिण्याकमत्स्यशाकविरूढजम् । विदाहीन्यन्नपानानि न हितान्यक्षिरोगिणे ॥ १४५ ॥

तीखे पदार्थ खट्टे पदार्थ, भारी पदार्थ' तीक्ष्ण पदार्थ, गरम पदार्थ, उडद, लोबिया, मैथुन, मदिरा, सूखा हुआ मांस, खल, मछली, जिनमें अंकुर उत्पन्न होगये हों, ऐसे धान्य और दाहकारक अन्न पान ये सब नेत्ररोगियोंको हितकारक नहीं हैं ॥ १४५ ॥

सेक आश्च्योतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा । पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १४६ ॥

सेक (पानी आदिकी बारीक धारें डालनी), आश्च्योतन (पोटली आदिसे दवाको नेत्रोंमें डालना), पिंडी (लुपडी आदि बाँधना) बिडाल (लेपादि करना), तर्पण (तृप्ति करनेके लिये आखोंमें दूध आदिको भरना), पुटपाक (पकाया रस नेत्रोंमें डालना) और अंजन इन सब उपचारोंसे नेत्ररोगकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १४६ ॥

अथ सेकविधिः ।

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः । मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरंगुलः ॥ १४७ ॥

रोगीके नेत्रोंको बन्द कराकर उनपर चार अंगुल ऊँचेसे महीन धारें डाले, यह सेक नेत्ररोगियोंके लिये हितकारक है ॥ १४७ ॥

स चापि स्नेहनो वाते पित्ते रक्ते चरोपणः । लेखनस्तु कफे कार्यस्तस्य मात्राऽभिधीयते ॥ १४८ ॥

बातसम्बन्धी रोग हो तो घी आदि स्नेहपदार्थोंकी धारें डाले, वह 'स्नेहनसेक' कहा जाता है । पित्त या रुधिरकी पीडा हो तो हरड आदिके रसकी धारें डाले, यह 'रोपणसेक' कहाजाता है। कफकी पीडा हो तो मलको उखाडनेवाली सोंठ आदिके रसकी धारें डाले, यह 'लेखनसेक' कहा जाता है। अब इन सेकोंकी मात्रा कहते हैं ॥ १४८ ॥

षड्भिर्वाचां शतैः स्नेहे चतुर्भिस्तैस्तु रोपणे । तैस्त्रिभिर्लोचने कार्यः सेको नेत्रप्रसादने ॥ १४९ ॥

स्नेहनसेक करना हो तो छः सौ मात्रातक करना चाहिये । रोपणसेक करना हो तो चारसौ मात्रातक करना चाहिये । लेखनसेक

करना हो तो तीनसौ मात्रातक करना चाहिये, इस प्रकार करनेसे नेत्र स्वच्छ और निर्मल होजाते हैं ॥ १४९ ॥

निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्या च्छोटिकाऽथवा।गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ १५० ॥

छोटिका-चुटकी' इति लोके ।

मनुष्य जितनी देरमें आँखको मीचकर खोलता है, उतना समय अथवा जितनी देरमें अंगुलीसे चुटकी बजाई जाती है, उतना समय अथवा एक गुरु अक्षर बोलनेमें जितना समय लगता है, उतने समयको 'एक मात्रा' कहते हैं ॥ १५० ॥

सेकस्तु दिवसे कार्यो रात्रौ चात्यन्तिके गदे । एरण्डदलमूलत्वक्छृतमाजं पयो हितम्। सुखोष्णं नेत्रयोः सिक्तं वाताभिष्यन्दनाशनम् ॥ १५१ ॥

सेकदिनमें ही करना चाहिये, किंतु महादुःखदायक रोग हो तो रात्रिमें भी करना चाहिये । अण्डके पत्ते, अण्डकी जड और अण्डकी छाल इनके कल्कके साथ पकाया हुआ बकरीका दूध मन्दोष्ण उक्त समयमें नेत्रोंके भीतर डाले, यह सेक हितकारी है और वाताभिष्यन्दको दूर करता है ॥ १५१ ॥

पथ्याक्षामलखाखसवल्कलकल्केन सूक्ष्म वस्त्रेण । कृत्वा पोटलिकां तामिहिफेनोत्थद्रवेण । संयुक्ताम् ॥१५२॥ निदधीत लोचने स्यात्सर्वाभिष्यन्दसंक्षयःशीघ्रम्। योगोऽयमृषिभिरुक्तो जगदुपकाराय कारुणिकैः ॥ १५३ ॥

हरड, बहेडा, आमला और पोस्तके डोडे इनका कल्क बनाकर उनमें अफीमका रस डालकर बारीक वस्त्रकी पोटली नेत्रके ऊपर रक्खे तो सर्व प्रकारके अभिष्यन्द तत्काल नष्ट होजाते हैं । जगदुपकारार्थ दयालु मुनियोंने यह प्रयोग कहा है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते । अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ १५४ ॥

भोजन करनेके पश्चात् दोनों गीले हाथोंकी हथेली घिसकर नेत्रके ऊपर लगानेसे हाथोंका जल तत्काल तिमिररोगका नाश करता है ॥ १५४ ॥

स्नानं कृष्णातिलैश्चापि चक्षुष्यमनिलापहम्। आमलैः सततं स्नानं परं दृष्टिबलावहम् ॥ १५५ ॥

काले तिलोंको पीस शिरसे मलकर स्नान करनेसे नेत्र उत्तम होजाते हैं और वायुकी पीडा शान्त हो जाती है । नित्य आमलोंको मलकर स्नान करनेसे दृष्टिशक्ति बढती है ॥ १५५ ॥

त्रिफलायाः कषायस्तु धावनान्नेत्ररोगजित्। कवलान्मुखरोगघ्नः पानतः कामलापहः ॥ १५६ ॥

त्रिफलेका क्वाथ बनाकर उससे नेत्रोंको धोनेसे नेत्ररोग दूर होजाते हैं । त्रिफलेके कल्कका केवल धारण करनेसे मुखरोग नष्ट होते हैं और त्रिफलेका क्वाथ पीनेसे कामला नष्ट होजाती है ॥ १५६ ॥

अथाश्च्योतनविधिः ।

क्काथक्षीरद्रवस्नेहबिन्दूनां यत्तु पातनम् । द्व्यंगुलोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्च्योतनं हि तत् ॥ १५७ ॥

रोगीके नेत्रोंको दो अंगुलियोंसे उघाडकर उनमें क्वाथके वा सहतके अथवा दूध घी आदिके बिन्दु डाले उसको 'आश्च्योतन' कहते हैं और यह नेत्रोंको हितकारी है ॥१५७

बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषुरोपणे दश बिन्दवः। स्नेहने द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरू-

पिणः । ऊष्णे तु शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १५८ ॥

पलक उघाडनेकी क्रिया करनी हो तो आठ विंदु डालनी चाहिये । रोपण क्रिया करनी हो तो दश बिंदु डालनी चाहियें और स्नेहन क्रिया करनी हो तो बारह बिन्दु डालने चाहियें । शीतकाल हो तो कुछेक गरम करके बूंदें डालनी चाहियें और उष्णकाल हो तो शीतल बिन्दु डालनी चाहियें, यह सर्वत्र निश्चय है ॥ १५८ ॥

वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ॥ १५९ ॥ कफे तिक्तोष्णरूक्षं स्यात् क्रमादाश्च्योतनं हितम् । आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्छतोन्मिता ॥ १६० ॥ ततः परं लोचनाभ्यां भेषजाय त्रयो मताः । आश्च्योतनं न कर्तव्यं निशायां केनचित् क्वचित् ॥ १६१ ॥

वायुकी पीडा हो तो कडवी तथा स्नेहवाला बिन्दु हितकारी हैं। पित्तकी पीडा हो तो मधुर और शीतल बिन्दु हितकारी हैं । और जो कफकी पीड़ा हो तो तीक्ष्ण,गरम तथा रुक्ष बिन्दु हितकारी हैं । सब आश्च्योतनोंकी मात्रा जितनी देरमें सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण हो, उतनी देरतक समझना । किसी वैद्यको कभी रात्रिके समय किसी प्रकारके नेत्रके दुखनेपर आश्च्योतन कर्म नहीं करना चाहिये १५९-१६१

बिल्वादिपञ्चमूलेन बृहत्यैरण्डशिग्रुभिः । क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः । त्रिफलाश्च्योतनं नेत्रे सर्वाभिष्यन्दनाशनम् ॥ १६२ ॥

बेलआदि पञ्चमूल,कटेरी, अण्ड और सहिंजना इनका क्वाथ बनाकर सुहाती सुहाती बूंदें नेत्रमें डालनेसे वाताभिष्यन्द नष्ट होता है । त्रिफलेके क्वाथकी बिन्दु डालनेसे सर्व प्रकारके अभिष्यन्द दूर होजाते हैं ॥ १६२ ॥

अथ पिण्डीविधिः ।

उक्तभेषजकल्कस्य पिण्डी च कोलमात्रया । वस्त्रखण्डेन सम्बद्धा नेत्रेऽभिष्यन्दनाशिनी ॥ १६३ ॥

योग्य औषधियोंका कल्क बनाकर उसके कवलके समान टिकिया बनाकर नेत्रपर रखकर वस्त्रकी पट्टीसे बांधे तो अभिष्यन्दका नाश होता है ॥ १६३ ॥

स्निग्धोष्णा पिण्डिका वाते पित्ते सा शीतला मता । रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयम् ॥ १६४ ॥

वायुका अभिष्यन्द हो तो स्निग्ध तथा उष्ण औषधियोंकी टिकिया बांधनी चाहिये।पित्तकी पीडा हो तो शीतल औषधियोंकी टिकिया बांधनी चाहिये और कफकी पीडा हो तो रूक्ष उष्ण औषधियोंकी टिकिया बांधनी चाहिये, ऐसा विद्वान् वैद्योंने कहा है ॥१६४॥

एरण्डपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी। धात्रीविरचिता पित्ते शिग्रुपत्रकृता कफे ॥ १६५ ॥

अण्डके पत्ते, अण्डकी जड और अण्डकी छाल इनकी पिंडी वायुकी पीडाको शान्त करती है आमलोंकी पिंडी पित्तकी पीडाको शान्त करती है। और सहिंजनेके पत्तोंकी टिकिया कफकी पीडाको शान्त करती है ॥ १६५ ॥

निम्बपत्रकृता पिण्डी पित्तश्लेष्महरी भवेत् । शुण्ठीनिम्बदलैःपिण्डीसुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा । धार्या नेत्रेऽनिलकफे शोथकण्डूव्यथाहरी ॥ १६६ ॥

नीमके पत्तोंको टिकिया बांधनेसे पित्त तथा कफका नाश होता है । सोंठ तथा नीमके पत्ते इनको पीसकर उसमें कुछेक सेंधानिमक डालकर उसकी कुछ कुछ गरम पिंडी बनाकर बांधे तो वायु तथा कफकी पीडा शान्त होती

है और सूजन, खुजली तथा अन्य व्यथा इनका भी नाश होता है ॥ १६६ ॥

त्रिफलापिण्डिका नेत्रे वातपित्तकफापहा ॥ १६७ ॥

त्रिफलेकी पिंडी बनाकर नेत्रपर बांधनेसे वात, पित्त तथा इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई नेत्रकी पीडा शान्त होती है ॥ १६७ ॥

पथ्याक्षामलखाखसवल्कलकल्कोऽहिफेनजलयुक्तः। तेन विरचिता पिण्डी शमयति सकलानभिष्यन्दान् ॥१६८॥

हरड, बहेडा, आमला और पोस्तके डोडे इनका कल्क बनाकर उसमें अफीमका रस डालकर पिंडी बांधनेसे सर्व प्रकारका अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है ॥ १६८ ॥

अथ बिडालकविधिः।

बिडालको बहिर्लेपो नेत्रे पक्ष्मविवर्जिते। तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखालेपविधानवत् ॥ १६९ ॥

पलकके बालोंको बचाकर नेत्रके बाहरके भागपर लेप करना यह 'बिडालक' कहा जाता है। मुखपर लेप करनेकी जो मात्रा कही है, वही मात्रा बिडालककी भी करनी चाहिये ॥ १६९ ॥

अङ्गुलस्य चतुर्थांशो मुखलेपः कनिष्ठकः। मध्यमस्तु त्रिभागःस्यादुत्तमोऽर्द्धांगुलो भवेत् ॥ १७० ॥ स्थितिकालोऽपि तस्योक्तो यावत् कल्को न शुष्यति। शुष्कस्तु गुणहीनः स्यात्तथा दूषयति त्वचम् ॥ १७१ ॥

मुखपर लेप करनेकी मात्रा इस प्रकार है- अंगुलका चौथाई भाग ऊंचा लेप करना कनिष्ठ मात्रा है, अंगुलका तिहाई भाग ऊंचा लेप करना मध्यम मात्रा है और आधे अंगुल ऊँचा लेप करना उत्तम मात्रा है। जबतक कल्क सूखे नहीं, तबतक यह लेप करना चाहिये; सूखनेपर लेप गुणहीन होजाताहै और त्वचाको भी खराब करता है ॥ १७०-१७१ ॥

यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीताक्ष्यैः समांशकैः। जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः ॥ १७२ ॥

ताक्ष्यम्--रसांजम्।

मुलहठी, पीलागेरू, सैंधानमक, दारुहलदी और रसौंत यह सब समान भाग लेकर जलमें पीसकर इस कल्कको नेत्रके बाहर लेप करनेसे नेत्रके समस्त रोग नष्ट होजाते हैं ॥ १७२ ॥

रसाञ्जनेन वा लेपः पथ्याबिल्वदलैरपि। वचाहरिद्राविश्वैर्वा तथा नागरगैरिकैः ॥ १७३ ॥

रसौंत अथवा हरड तथा बेलके पत्ते अथवा वच, हलदी तथा सोंठ इनका अथवा सोंठ और पीलागेरू इनका लेप करनेसे नेत्रके रोग नष्ट होजाते हैं ॥ १७३ ॥

अथ तर्पणविधिः।

वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः। आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ॥ १७४ ॥ समौ दृढावसन्धानौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः। पूरयेद् घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ १७५ ॥ सर्पिषा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेन वा। निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ १७६ ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः। भिषग्भिरेष कथितः पुराणैस्तर्पणो विधिः ॥ १७७ ॥

वायु, धूप और धूलरहित घरमें रोगीको चित्त लिटाकर सनेहुए उडदके चूनका दोनों नेत्रोंके चारों ओर दृढ और गोल मण्डल बनावे फिर रोगीके दोनों नेत्रोंको बन्द करके पतला घी अथवा मंड अथवा गरम जल अथवा

जलसे सौवार धुला हुआ घी अथवा दूधमेंसे निकाला हुआ घी जबतक पलकके बाल न डूबें तबतक भरे, भर जानेके पश्चात् धीरे धीरे नेत्रोंको खोले, यह तर्पणविधि प्राचीन वैद्योंने कही है ॥ १७४-१७७ ॥

यद्रूक्षं परिशुष्कञ्च नेत्रं कुटिलमाविलम्। शीर्णं पक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम् ॥ १७८ ॥ तिमिरार्जुनशुष्काद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः । शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युतं पवनपर्ययैः ॥ १७९ ॥ तन्नेत्रं तर्पयेत्सम्यङ्नेत्ररोगविशारदः । तर्पणं धारयेद्वर्त्मरोगे वाचां शतं बुधः ॥ १८० ॥

नेत्र रूखे होगये हों, सूखगये हों, कुटिल होगये हों, गँदले होगये हों, पलकके बाल गिर गये हों, शिरोत्पात, आंखें कठिनतासे थोडी खुलती हों तिमिर, अर्जुन, शुक्र, अभिष्यन्द, अभिमन्थ, शुष्काक्षिपाक, सूजन और वातविपर्यय हुआ हो तो नेत्ररोगोंको जाननेवाले वैद्य नेत्रोंको अच्छी प्रकारसे तर्पण करें। पलकका रोग हो, तो सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारणके समय तक नेत्रपर तर्पण करे १७८-१८०

स्वस्थे कफे सन्धिरोगे वाचां पञ्चशतानि च । षट्शतानि कफे कृष्णरोगे सप्तशतानि हि ॥ १८१ ॥ दृष्टिगे च शतान्यष्टावधिमन्थे सहस्रकम् । सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥१८२॥ तर्पणेनागतस्नेहं स्रावयित्वाक्षि शोधयेत् । स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्यैरितं ततः ॥ १८३ ॥ यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विरेचयेत् । एकाहं वा त्र्यहं वापि पञ्चाहं वापि तर्पयेत् ॥ १८४ ॥

स्वस्थतामें, कफमें तथा संधियोंके रोगमें पांचसौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेके समय तक तर्पणको रहने देवे । पित्तकी पीडा हो तो छः सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण कहनेके समयतक तर्पण रहने देवे । काले भागमें रोग हो, तो सात सौ गुरु अक्षरों के उच्चारण करने पर्यंत तर्पण करे । दृष्टिका रोग हो, तो आठसौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण करने तक तर्पण रक्खे, अधिमन्थ हो, तो हजार गुरु अक्षरोंके उच्चारण करने तक और वातसम्बन्धी रोग हो तो भी हजार गुरु अक्षरोंके उच्चारणतक तर्पण रहने देवे । तर्पण करनेके पश्चात् नेत्रोंमें भरी हुई चिकनाईको बाहर करके नेत्रोंको शुद्ध करे और सेकें हुए जौके चूनसे आंखोंको साफ करे पश्चात् घीके योगसे वृद्धिको प्राप्त हुए कफको यथायोग्य धूमपान कराकर दूर करे । एक दिन पांच दिन अथवा सात दिनतक तर्पणकी क्रिया करे ॥ १८१-१८४ ॥

तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत् सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं दृष्टिपाटवम् । निर्वृतिर्व्याधिशान्तिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ १८५ ॥

क्रिया लाघवम् नेत्रस्य क्रियायां निमेषोन्मेषादौ लघुताम् ॥

तर्पण बराबर होगया हो, तो निद्रा सुखसे आने लगती है, सुखसे जागता है, नेत्रोंमें स्वच्छता, नेत्रोंकी शक्तिका बढना, सुख होता है, रोगकी शांति होती है और नेत्रोंको खोलने बन्द करनेमें हलकापन होता है, ये लक्षण हों, तो जानना कि, तर्पण अच्छी प्रकारसे होगया ॥ १८५ ॥

गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकण्डूपदेहवत् । घर्षतोदयुतं नेत्रमतितर्पितमादिशेत् ॥ १८६ ॥

जो तर्पणका अतियोग हो तो नेत्र भारी होते हैं, गँदले रहते हैं, अत्यन्त चिपकनेवाले वा गीले आंसू भरभर आते हैं, खुजली कीचड आते हैं और जैसे भीतरको घुस जायँ तथा सुई चुभोने सरीखी पीडा होती है ॥ १८६ ॥

आस्त्रावशोफरोगाढ्यमुपदेह समाकुलम्। रूक्षमस्त्रावि परुषं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥ १८७ ॥ अनयोर्दोषबाहुल्यात्प्रयत्नेन चिकित्सिते । रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामनयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥ १८८ ॥

अनयोः अतितर्पितहीनतर्पितयोः ॥

जो नेत्रोंका तर्पण अच्छी प्रकारसे न हो अर्थात् कम हो, तो नेत्रोंमेंसे पानी गिरता है, सूजन होती है, पीडा होती है, कीचड अधिक आती है, रूक्षता होती है और कठिनता होती है, जो तर्पणको अतियोग अथवा हीन योग हुआ हो तो विशेष गडबड होती है, इस कारण इनकी चिकित्सा करनेमें अधिक विचार करना चाहिये। जो अतियोग हुआ हो तो रूक्ष उपचार करने चाहिये और जो हीनयोग हो तो स्निग्ध उपचार करने चाहिये ॥ १८७–१८८ ॥

दुर्दिनेऽत्युष्णशीतेषु चिन्तायां सम्भ्रमेषु च । अशान्तोपद्रवे वाऽक्षिण तर्पणं न प्रशस्यते ॥ १८९ ॥

सम्भ्रमोऽत्र भयम् ॥

बादलोंसे आच्छादित दिनमें, अत्यन्त गरमीके समयमें, अत्यन्त शीतके समयमें, चिन्ता भ्रम और उपद्रवोंके शांत होनेसे पहले नेत्रोंको तर्पण नहीं करना चाहिये ॥ १८९ ॥

अथ पुटपाकविधिः ।

द्वे बिल्वे स्निग्धमांसस्य परं द्रव्यपलं मतम् । द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ १९० ॥ तदेकत्र समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् । पुटपाकविधानेन तत्पक्त्वा तद्रसं बुधः ॥ १९१ ॥ तर्पणोक्तेन विधिना यथावद्विनियोजयेत् । दृष्टिमध्ये निषेक्तव्यो नित्यमुत्तानशायिनः ॥ १९२ ॥ तेजांस्यनिलमाकाशमातपं भास्करस्य च । नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुटपाकवान् ॥ १९३ ॥

उत्तम चिकना मांस आठ तोले लेकर उसमें अन्य औषधि चार तोले और द्रवपदार्थ सोलह तोलेभर डालकर सबको एकत्र पीसे, पश्चात् इन सबका एक गोला बनाकर उसको पत्तोंसे अच्छी प्रकार बांधकर पुटपाककी रीतिसे अग्निमें पकावे, फिर उसमेंसे रस निचोडकर उस रसको तर्पणकी रीतिके अनुसार सम्पूर्ण रीतिसे नेत्रमें डाले। रोगीको चित्त सुलाकर उसके नेत्रमें यह रस नित्य डाले। नेत्रोंका तर्पण करनेके पश्चात् अथवा पुटपाककी विधि करनेके पश्चात् रोगीको तेजस्वी पदार्थ पवनका संचार, आकाश और सूर्य की धूप न दिखावे ॥ १९०–१९३ ॥

अथाञ्जनविधिः ।

अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् । अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनं मतम् ॥ १९४ ॥

दोष पकनेके पश्चात् नेत्रोंमें योग्य अंजन आंजना चाहिये। जो पदार्थ नेत्रोंमें आंजा जाता है, वह 'अंजन कहा जाता है ॥ १९४ ॥

वटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि हि । कुर्याच्छलाकयाऽङ्गुल्या हीनानि स्युर्यथोत्तरम् ॥ १९५ ॥ स्नेहनं रोपणं चापि लेखनं तत्त्रिधा पृथक् । मधुरं स्नेहसम्पन्नमञ्जनं स्वेदनं मतम् ॥१९६॥

तत्त्रिविधं पृथगिति तद्वटिकारसचूर्णरूपम् । पृथक् प्रत्येकम् त्रिधा स्नेहनं रोपणं लेखनं चेति ॥

कषायतिक्तरसयुक् सस्नेह रोपणं स्मृतम् । अञ्जनं क्षारतिक्ताम्लरसैर्लेखनमुच्यते ॥ १९७ ॥

गोली, रस और चूर्णरूप ऐसे अञ्जनके तीन भेद है। अञ्जनको सलाई अथवा अंगुलीसे आंजना चाहिये। गोलीरूप अञ्जनसे रसरूप अञ्जन निर्बल है और रसरूप अञ्जन से चूर्णरूप अञ्जन निर्बल है। इस प्रत्येक अञ्जनके स्नेहन, रोपण और लेखन इन नामों से तीन भेद हैं। क्षार, कडवे और खट्टे रसवाला जो अञ्जन हो, उसको 'लेखन' कहते हैं। कसैला तथा कडवे रसवाला और स्नेहयुक्त जो अञ्जन हो, उसको 'रोपण' अञ्जन कहते हैं। मधुर रसयुक्त और स्नेहयुक्त जो अञ्जन हो, वह 'स्नेहन' अञ्जन कहा जाता है ॥ १९७ ॥

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्टी तीक्ष्णाञ्जने भिषक्। प्रमाणं मध्यमे सार्द्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥ १९८ ॥ रसक्रिया तूत्तमा स्यात्त्रिविडङ्गमिता मता। मध्यमा द्विविडङ्गा सा हीना त्वेकविडङ्गिका ॥ १९९ ॥ शलाकाः स्नेहने चूर्णे चतस्रः प्राहुरञ्जने । रोपणे तासु तिस्रः स्युस्ते उभे लेखने स्मृते॥२००॥

अञ्जन तीक्ष्ण हो, तो उसकी मटरके समान गोली करनी चाहिये। अञ्जन मध्यम अर्थात् तीक्ष्ण न हो और कोमल भी न हो तो उसकी डेढ १॥ मटरके बराबर गोली बनानी चाहिये और अञ्जन कोमल हो, तो उसकी दो मटरके बराबर गोली बनानी चाहिये। आँखमें यदि रसांजन अर्थात् रसरूप अञ्जन डालना हो, तो तीन वायविडंगके बराबर डालना, यह उत्तम है, दो वायविडङ्गके बराबर डालना, यह मध्यम है और एक वायविडंगके बराबर डालना यह कनिष्ठ है। चूर्णरूप अञ्जन जो स्नेहन हो तो उसकी चार सलाई आंखमें लगानी चाहिये। रोपण हो तो उसकी तीन सलाई आंखमें डालनी चाहिये और लेखन हो तो उसकी दो सलाई नेत्रोंमें लगानी चाहिये ॥ १९८-२०० ॥

मुखयोः कुञ्चिता श्लक्ष्णा शलाकाष्टाङ्गुलोन्मिता। अश्मजा धातुजा वा स्यात्कलायपरिमण्डला ॥ २०१ ॥

अग्रे कलायवत्परिवतुला ॥

सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने स्मृता। ताम्रलोहाश्मसञ्जाता शलाका लेखने मता। अङ्गुली तु मृदुत्वेन रोपणे कथिता बुधैः ॥ २०२ ॥

आंजनेकी सलाई दोनों ओरके मुखोंसे सकुची हुई चिकनी, आठ अंगुल लम्बी और उसके दोनों मुख मटरके समान गोल और वह पत्थर अथवा धातुकी होनी चाहिये। स्नेहन अञ्जन आंजना हो तो सोने अथवा चांदीकी सलाई होनी चाहिये। लेखन अञ्जन आंजना हो तो तांबेकी, लोहेकी अथवा पत्थरकी सलाई होनी चाहिये और रोपण अञ्जन आंजना हो तो कोमल होनेके कारण उसके आंजनेके लिये अंगुलीही ठीक है २०१-२०२

अथाञ्जनस्य दृष्टिप्रसादनी शलाका।

त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैः शुद्धैश्च सर्पिषा। गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः। तच्छलाका हरत्येव सकलान् नेत्रजान् गदान् ॥ २०३ ॥

शुद्ध सीसेको वारंवार तपा तपाकर हरड बहेडा और आमलेके रसमें, सोंठके रसमें, घीमें, भांगरेके रसमें, गोमूत्रमें, सहतमें और बकरीके दूधमें बुझा बुझाकर नेत्रोंमें लगावे तो नेत्रसम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं - यह सलाई 'दृष्टिप्रसादनी' इस नामसे कही जाती है ॥ २०३ ॥

अथांजनकरणविधिः ।

कृष्णभागादधः कुर्याद्यावन्नयनमञ्जनम्। हेमन्ते शिशिरे चापि मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ २०४ ॥

काले भागके नीचे आंखके कोयेतक अञ्जन आंजे । हेमन्त ऋतुमें और शिशिर ऋतुमें मध्याह्नके समय अञ्जन आंजना चाहिये॥२०४

पूर्वाह्णे वाऽपराह्णे वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते। वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते तु सदैवहि ॥ २०५ ॥

ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें पूर्वाह्णके समय अथवा अपराह्णके समय अंजन आंजना चाहिये । वर्षा ऋतुमें बादलोंके न होनेपर और बहुत गरमी न हो उस समय अंजन आंजना चाहिये और वसन्त ऋतुमें सदैव अंजन करना चाहिये ॥ २०५ ॥

प्रातः सायं तु तत्कुर्यान्न च कुर्यात्सदैव हि । श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे । अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रशस्यते ॥ २०६ ॥

प्रातः और सन्ध्या दोनों समय अंजन आंजना उचित है, किन्तु निरंतर न आंजे । थकाहुआ, बहुत रोया हो, भयभीत, मद्यपान किये हो, नवीन ज्वरवाला, अजीर्णरोगी और जिसके मल मूत्रादिके वेगका अवरोध होगया हो, उनको अंजन लगाना नहीं चाहिये ॥२०६

अथ स्नेहनी वटिका ।

पथ्याक्षधात्रीबीजानि एकद्वित्रिगुणानि च । पिष्ट्वाऽम्बुना वटीं कुर्यादञ्जनं द्विहरेणुकम् । नेत्रस्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजं तथा ॥ २०७ ॥

हरड, हरडसे दुगुने बहेडे और बहेडेसे तिगुने आमले इन सबको लेकर पानीमें पीसकर गोलियां बना लेंवे, इन गोलियोंमेंसे दो मटरके बराबर नेत्रोंमें आंजे तो नेत्रोंका स्राव और वायु तथा रुधिरकी पीडा शान्त होजाती है ॥ २०७ ॥

अथ रोपणी वटी ।

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मालती निम्बपल्लवाः । गोशकृद्रससंयुक्ता वटी नक्तान्ध्यनाशिनी । एतस्याश्चाञ्जने मात्रा प्रोक्ता सार्द्धहरेणुका ॥ २०८ ॥

रसौत, हलदी, दारुहलदी, मालतीके पत्ते और नीमके पत्ते इनको गायके गोबरके रसमें पीसकर गोली बनावे । इनमेंसे डेढ मटरके समान नेत्रोंमें आंजे । इन गोलियोंको आंजनेसे रात्रिमें नहीं दीखना अर्थात् रतौंधा नष्ट होजाता है ॥ २०८ ॥

अथ लेखनीचन्द्रोदयवटिका ।

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला । पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ २०९ ॥ छागीक्षीरेण संपिष्य वटीं कुर्याद्यवोन्मिताम् । हरेणुमात्रां संघृष्य जलेनाञ्जनमाचरेत् २१० तिमिरं मांसवृद्धिश्च काचं पटलमर्बुदम् । रात्र्यान्ध्यं वार्षिकं पुष्पं वटी चन्द्रोदया जयेत् ॥ २११ ॥

शंखकी नाभि, बहेडेकी मींग, हरड, मैनशिल, पीपल, कालीमिरच, कूठ और बच इन सबको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर जौके समान लंबी गोली बनावे । इन गोलियोंमेंसे एक मटरके समान जलमें घिसकर नेत्रोंमें आंजे । यह 'चंद्रोदया' नामक गोली तिमिर, मांसवृद्धि, कांच, पटल, पलकके भीतरकी गांठ, रतौंधा और एक वर्षके फूलेको भी नष्ट करती है ॥ २०९-२११ ॥

अथ पुष्पहरा वर्तिः ।

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभावितम् । करञ्जबीजं तद्वर्तिर्दृष्टेः पुष्पं विनाशयेत् ॥ २१२ ॥

करंजके बीजोंको अनेक बार ढाकके फूलोंके रसमें भावना देकर पीसकरके बत्ती बनावे, इस बत्तीको आंखोंमें आंजनेसे नेत्रोंकी फूली नष्ट होजाती है ॥ २१२ ॥

अथ स्नेहनी रसक्रिया।

कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत्। ईषत्कपूरसहितं तत्स्यान्नेत्रप्रसादनम् ॥ २१३ ॥

निर्मलीके फलको सहतमें घिसकर उसमें कुछेक भीमसेनी कपूर डालकर नेत्रोंमें आंजे तो नेत्र स्वच्छ निर्मल होजाते हैं ॥२१३॥

अथ रोपणी रसक्रिया।

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला। समुद्रफेनं लवणं गैरिकं मरिचं तथा ॥ २१४ ॥ एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मनि। अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणाञ्च प्ररोहणम् ॥ २१५ ॥

रसौत, राल, चमेलीके फूल, मैनशिल, समुद्रफेन, सैंधानिमक, पीला गेरू और काली मिरच इन सबको समानभाग लेकर सहतमें पीसकर नेत्रोंमें आंज तो क्लिन्नवर्त्मका क्लेद तथा खुजली यह सब नष्ट होजाते हैं और पलकके बाल जम आते हैं ॥ २१४-२१५ ॥

दुग्धेन कण्डूं क्षौद्रेण नेत्रस्रावञ्च सर्पिषा। पुष्पं तैलेन तिमिरं काञ्जिकेन निशान्धताम्। पुनर्नवा हरत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २१६ ॥

पुनर्नवेको दूधमे पीसकर आंजनेसे कण्डू, सहतमें पीसकर लगानेसे नेत्रस्राव तथा घीमें पीसकर लगानेसे फूला और तेलमें पीसकर आंजनेसे तिमिर नष्ट होजाता है। कांजीमें पीसकर आंजनेसे रतौंधा नष्ट होजाता है। जिस प्रकार सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार पुनर्नवा (सांठ-गदहपुरेना) तिमिर तथा रतौंधको नष्ट करती है ॥ २१६ ॥

बब्बूलदलनिष्क्वाथो लेहीभूतस्तदञ्जनात्। नेत्रस्रावो व्रजेच्छोषं मधुयुक्तान्न संशयः ॥ २१७ ॥

बबूरके पत्तोंका क्वाथ बनाकर उसको गाढा कर लेवे फिर उसमें सहत डालकर आंजनेसे नेत्रोंका स्राव शुष्क होजाता है॥२१७

अथ लेखनी रसक्रिया।

वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यकर्पूरजो रजः। क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति कुसुमं तु द्विमासिकम् ॥ २१८ ॥

भीमसेनी कपूरको वडके दूधमें पीसकर आंजनेसे दो महीनेका फूला तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ २१८ ॥

क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमञ्जयेत्। अति निद्रा शमं याति तमः सूर्योदयादिव ॥ २१९ ॥

सहत और घोडेकी लार इनमें काली सिरचको पीसकर अंजन आंजनेसे जिस प्रकार सूर्योदयसे अन्धकार नष्ट होजाता है, उसी प्रकार इससे अत्यंत निद्राका आना दूर हो जाता है ॥ २१९ ॥

अथ स्नेहन चूर्णम्।

अग्नितप्तं हि सौवीरं निषिक्तं त्रिफलारसैः। सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् ॥ २२० ॥ अञ्जयेत्तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम्। सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः ॥२२१॥

सफेद सुर्मेको अग्निसे तपा तपाकर सातबार त्रिफलेके रसमें और सातवार स्त्रीके दूधमें बुझावे। फिर इस सुर्मेका चूर्ण करके नित्य नेत्रमें आंजे तो नेत्रके सम्पूर्ण विकार नष्ट होजाते हैं, यह सुर्मा नेत्रोंको अत्यंत हितकारी है ॥ २२० ॥ २२१ ॥

अथ रोपणं चूर्णम्।

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा। गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ २२२ ॥ शुष्कञ्च तज्जलं

सर्वं पर्पटी सन्निभं भवेत् । विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक् त्रिवेलं त्रिफलारसैः ॥ २२३ ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत् । अञ्जयेन्नयने तेन नेत्राखिलगदच्छिदा ॥ २२४ ॥

पत्थरके खरलमें खपरियाको पीसकर जलमें अच्छी प्रकारसे भिगो रक्खे, फिर उसके जलको नितार करके दूसरे पात्रमें कर लेवे और खपरियाके मलको जो बच रहे उसको रोक देवे, पश्चात् उस नितरे हुए जलको सुखा लेवे तो पपडीके समान जम जायगी, उस पपडीको पीसकर त्रिफलेके रसकी तीन भावना देवे और उससें दशांश भीमसेनी कपूर मिलावे । इस चूर्णको नेत्रोंमें आंजनेसे सर्वप्रकारके नेत्ररोग नष्ट होजाते हैं ॥ २२२-२२४ ॥

अथ लेखनं चूर्णम् ।

दक्षाण्डत्वक्छिलाकाचशङ्खचन्दनसैन्धवैः । चूर्णितैरञ्जनं प्रोक्तं पुष्पादीनां निकृन्तनम् ॥२२५॥

मुरगेके अंडेका वक्कल, मैनशिल, कांच, चन्दन और सैंधानिमक इनका चूर्ण बनाकर नित्य नेत्रोंमें आंजनेसे फूला आदि सब नष्ट होजाते हैं ॥ २२५ ॥

अथ मुक्तादिमहाञ्जनम् ।

मुक्ताकर्पूरकाचागुरुमरिचकणासैन्धवं चैलवालं शुण्ठीकङ्कोलकांस्यत्रपुरजनिशिलाशङ्खनाभ्यभ्रतुत्थम् । दक्षाण्डत्वक्च साक्षं क्षतजमथ शिवा क्लीतकं राजवर्तं जातीपुष्पं तुलस्याः कुसुममभिनवं बीजकं स्यात्तथैव ॥ २२६ ॥ पूतीकनिम्बार्जुनभद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम् । प्रत्येकमेषां खलु माषकैकं यत्नेन पिष्यान्मधुनाऽतिसूक्ष्मम् ॥ २२७ ॥ भवन्ति रोगा नयनाश्रिता ये नितान्तमात्रोपचिताश्च तेषाम् । विधीयते शान्तिरवश्यमेव मुक्तादिनानेन महाञ्जनेन ॥ २२८ ॥

एलवालम्–एलालुकनाम्ना प्रसिद्धम् । कंकोलं सुगन्धद्रव्यम् । सुगन्धकोकिलेति प्रसिद्धा । तदलाभे जातीपुष्पं ग्राह्यम् । तस्याप्यलाभे लवङ्गम् । कांस्यं तच्च मारितं ग्राह्यम् । त्रपुरंगं तच्च मारितं ग्राह्यम् । शिला-मनःशिला। अभ्रम्-अभ्रकम् । तच्च मारितं ग्राह्यम् । दक्षाण्डत्वक्-दक्षः कुक्कुटः तस्याण्डत्वक् । अक्ष-विभीतकफलम् । क्षतजमत्र कुंकुमम् । शिवा–हरीतकी । क्लीतकं-यष्टीमधु । राजवर्तं 'रावटी' इति लोके । पूतीकः 'धोराकरंज इति लोके । अञ्जनं सुरमा' इति लोके । भद्रमुस्तम्-नागरमुस्तम् । ताम्रं तारञ्च मारितं ग्राह्यम् । रसगर्भं रसांजनम् ॥

मोती, भीमसेनी कपूर, कचिया निमक, मिर्च, पीपल, सैंधानिमक, एलुआ, कंकोल, मिर्च (अगर कंकोल मिर्च न मिले उसके अभावमें चमेलीके फूल लेने चाहिये), काँसेकी भस्म, सीसेकी भस्म, हलदी, मैनशिल, शंखकी नाभि, अभ्रककी भस्म, शुद्ध तूतिया, मुरगेके अंडेका वक्कल, बहेडा, केसर, हरड, मुलहठी, राजवर्त (रावटी पत्थर), चमेलीके फूल, तुलसीके नवीन फूल, सफेद सहिजनके बीज, दुर्गंधित करंजके बीज, नीम, कोह, नागरमोथा, तांबेकी भस्म, लोहेकी भस्म और रसौत ये प्रत्येक पदार्थ, छः छः रत्तीभर लेकर सहतमें बारीक पीसकर अंजन करे तो यह 'मुक्तादिमहांजन' सिद्ध होता है । इस अंजनसे नेत्रके समस्त रोग (अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुए हों तो भी) अवश्य शांत होजाते हैं ॥ २२६-२२८ ॥

अथ नयनशोणाञ्जनम् ।

कणा सलवणोषणा सहरसाञ्जना साञ्जना सरित्पतिकफः सिता सितापुनर्नवासम्भवा । रजन्यरुणचन्दनं मधु च तुत्थपथ्या शिला ह्यरिष्टदलसाबरस्फटिकशङ्खनाभीन्दवः ॥ २२९ ॥ इमानि तु विचूर्णयेन्निविडवाससा शोधयेत्तथाऽयसि विमर्दयेत्समधु ताम्रखण्डेन तत् । इदं मुनिभिरीरितं नयनशोणनामाञ्जनं करोति तिमिरक्षयं पटलपुष्पनाशं बलात् ॥ २३० ॥

लवणम्–सैन्धवम् । अञ्जन सुरमा । सरित्पतिकफः--समुद्रफेनम् । शिला·मनःशिला । साबरः-लोध्रः । स्फटिकः (फटकिरी) । इन्दुः- कर्पूरः । तिमिरे नूतनकुसुमे नूतनपटले च ॥

पीपल, सैंधानिमक, कालीमिरच, रसौंत, सुरमा, समुद्रफेन, मिश्री, सफेद, पुनर्नवा, हलदी, लाल चन्दन, मुलहठी, हरड, मैनशिल, नीमके पत्ते, लोध, फटकरी, शंखकी नाभि और भीमसेनी कपूर इन सबका एकत्र चूर्ण करके मोटे कपडेमें छानकर सहतमें मिलाकर तांबेके पैसेसे लोहेके बासनमें खूब खरल करे तो यह ‘ नयनशोणांजन सिद्ध होता है । मुनियोंका कहा हुआ यह अंजन बलात्कारसे नवीन तिमिरको, नवीन पटलको और फूलको नष्ट कर देता है ॥ २२९–२३० ॥

अथ चन्द्रोदया वटी ।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च । विभीतकस्य मज्जा च शंखनाभिर्मनः शिला ॥ २३१ ॥ सर्वमेतत्समं कृत्वा गव्यक्षीरेण पेषयेत् । नाशयेत्तिमिरं कण्डूपटलान्यर्बुदानि च ॥ २३२ ॥ अपि त्रिवार्षिकं शुक्रं मासेनैकेन नाशयेत् । अधिकानि च मांसानि रात्रावन्धत्वमेव च ॥ २३३ ॥

हरड, वच, कूठ, पीपल, कालीमिरच, बहेडेकी मींग, शंखकी नाभि और मैनशिल इन सब पदार्थोंको समान भाग लेकर गायके दूधमें बारीक पीसकर इसकी गोली बनावे तो वह ‘ चंद्रोदयावटी ’ सिद्ध होती है । यह गोली तीन वर्षके फूलेको भी एक महीनेमें दूर कर देती है । सर्वप्रकारकी मांस वृद्धिको और रतौंधेको भी एक महीनेमें नष्ट कर देती है ॥ २३१–२३३ ॥

अथ चन्द्रप्रभावर्तिः ।

रजनी निम्बपत्राणि पिप्पली मरिचानि च । विडङ्गं भद्रमुस्तं च सप्तमी त्वभया स्मृता ॥ २३४ ॥ अजामूत्रेण संपिष्य छायायां शोषयेद्वटिम् । वारिणा तिमिरं हन्ति गोमूत्रेण तु पिष्टकम् ॥ २३५ ॥ मधुना पटलं हन्ति नारीक्षीरेण पुष्पकम् । एषा चन्द्रप्रभा वर्तिः स्वयं रुद्रेण निर्मिता ॥ २३६ ॥

हलदी, नीमके पत्ते, पीपल, कालीमिरच, वायविडंग, नागरमोथा और हरड इनको बकरीके मूत्रमे पीसकर बत्ती बनाकर छायामें सुखावे तो यह ‘ चन्द्रप्रभावर्ति ’ सिद्ध होती है । साक्षात् सदाशिवकी बनाई हुई यह चन्द्रप्रभा सहतमें घिसकर लगावे तो पटलको दूर कर देती है और स्त्रीके दूधमें घिसकर लगानेसे फूलेको नष्ट करती है ॥ २३४–२३६ ॥

अथ कणामरिचयो प्रयोगः ।

कणा छागशकृन्मध्ये पक्वा तद्रसपेषिता । अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥२३७॥

पीपलको बकरीकी मींगनमें पकाकर बकरीके रसमें पीसकर आंजे तो थोडेही समयमें रतौंधा नष्ट हो जाता है, लाल मिर्चको सहतमें पीसकर आंजनेसे भी थोडेही समयमें रतौंध दूर होजाता है ॥ २३७ ॥

अथ त्रिफलाद्यघृतम् ।

त्रिफलाया रसं प्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च । वृषस्य च रसं प्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् । ॥ २३८ ॥ गुडूच्या आमलक्याश्च रसं छागीपयस्तथा । प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ २३९ ॥ कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम् । मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥ २४० ॥ तत्साधु सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् । ऊर्ध्वं पानमधः पानं मध्ये पानं च शस्यते ॥ २४१ ॥ यावन्तो नेत्ररोगाः स्युस्तत्पानादपकर्षति । सुरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते वा विस्रुते तथा ॥ २४२ ॥ रक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे । अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥ २४३ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु दोषत्रयकृतेष्वपि । परं हितमिदं प्रोक्तं त्रिफलाद्यं महाघृतम् ॥ २४४ ॥

भृङ्गरसः--भृङ्गराजरसः । क्षीरकाकोल्या अलाभे अश्वगन्धामूलं ग्राह्यम् । मधुपर्णी अत्र यष्टीमधु, चक्षुष्यत्वात् । तदलाभे सामान्यं यष्टीमधु, तुल्यगुणत्वात् ॥

त्रिफलेका रस चौंसठ तोले, भांगरेका रस चौंसठ तोले, अडूसेका रस चौंसठ तोले, सतावरका रस चौंसठ तोले, गिलोयका रस चौंसठ तोले, आमलोंका रस चौंसठ तोले और बकरीका दूध चौंसठ तोले लेवे। इन सबको एकत्र करके इनमें पीपल, मिश्री दाख, हरड, बहेडा, आमला, नीले कामल, दुगुनी मुलहठी, असगन्धकी जड और कटेरी इनका कल्क डालकर घीको पकावे । अच्छी प्रकारसे पकजानेपर इसको उतारकर उत्तम बासनमें भरकर रख देवे । भोजन करनेसे पहिले, भोजनकरनेके पश्चात् और भोजनके मध्यमें इस घृतको पान करे तो सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर हो जाते हैं । यह 'त्रिफलाद्यघृत'-रुधिरके बढनेपर रुधिरके दूषित होनेपर, रुधिरके स्राव होने पर, रतौंधपर, तिमिरपर, कांच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, महादारुण पक्ष्मकोप और त्रिदोषसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण नेत्ररोगमें भी अत्यन्त हितकारी है ॥ २३८--२४४ ॥

अथ द्वितीयं त्रिफलाद्यघृतम् ।

शतमेकं हरीतक्या द्विगुणश्च विभीतकम् । चतुर्गुणं त्वामलकं वृषमार्कवयोः समम् ॥ २४५ ॥ चतुर्गुणोदकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निनाः पचेत् । भागं चतुर्थं संरक्ष्य क्वाथं तमवतारयेत् ॥ २४६ ॥ शर्करा मधुकं द्राक्षा मधुयष्टी निदिग्धिका । काकोली क्षीरकाकोली त्रिफला नागकेशरम् ॥ २४७ ॥ पिप्पली चन्दनं मुस्तं त्रायमाणा तथोत्पलम् । घृतप्रस्थं समं क्षीरं कल्कैरेतैः शनैः पचेत् ॥ २४८ ॥

हन्यात्सतिमिरं काचं नक्तान्ध्यं शुक्रमेव च । तथा स्रावं च कण्डूञ्च श्वयथुं च कषायताम् ॥ २४९ ॥ कलुषत्वं च नेत्रस्य बिन्द्वर्मपटलानि च । बहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वान्नेत्रामयान् हरेत् ॥२५०॥

यस्य चोपहता दृष्टिः सूर्याग्निभ्यां प्रपश्यतः । तस्यैतद्भेषजं प्रोक्तं मुनिभिः परमं हितम् ॥ २५१ ॥ मर्जितं दर्पणं यद्वत्परां निर्मलतां व्रजेत् । तद्वदेतेन पीतेन नेत्रं निर्मलतामियात् । वारिद्रोणद्वयं चात्र वृषमार्कवयोस्तुले॥२५२॥ ककोलीयुगलालाभेऽश्वगन्धामूलंद्विगुणं ग्राह्यम्॥

हरड सौ तोले, बहेडे दोसौ तोले, आमले चारसौ तोले, अडूसा चारसौ तोले और भांगरा चारसौ तोले, इन सबको चौगुने जलमें डालकर कोमल अग्निसे मन्द मन्द पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहे तब उस काथको उतार लेवे, फिर उसमें सफेद चीनी, दुगुनी मुलहठी, दाख, कटेरी, दुगुनी असगन्धकी जड, हरड, बहेडा आमले, नागकेसर, पीपल, लालचन्दन, नागा नागरमोथा, त्रायमाण और लाल कमल इनका कल्क क्वाथमें डालकर उस क्वाथसे चौसठ तोले उत्तम घीको चौसठ तोले दूधके साथ पकावे, जब पकते पकते केवल घीही अवशेष रहजाय तब उसको उतार लेवे तो यह त्रिफलाद्यघृत होता है । नेत्रके तिमिर, कांच रतौंधी, फूली, स्राव, खुजली, सूजन, कषायता, गँदलापन, बिन्दु, अर्म्म और पटल ये सब इस घीके उपयोगसे नष्ट हो जाते हैं । बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन ? इस घृतसे समस्त नेत्ररोग नष्ट होजाते हैं । सूर्य्यके सम्मुख और अग्निके सम्मुख देखनेसे जिसकी दृष्टि उपहत होगई हो तो उसके लिये यह घृत सर्वोत्तम उपाय है, ऐसा मुनियोंने कहा है । जिसप्रकार वस्त्रसे दर्पणको पोंछनेसे वह निर्मल होजाता है, उसी प्रकार इस घृतको पीनेसे नेत्र अत्यन्त निर्मल हो जाते हैं ॥ २४५--२५२ ॥

अथ वासकादिक्वाथः ।

वासाविश्वामृतादार्वीरक्तचन्दनचित्रकैः । भूनिम्बनिम्बकटुकापटोलत्रिफलाम्बुदैः ॥ २५३ ॥ निशाकलिङ्गकुटजैः काथः सर्वाक्षिरोगहा वैस्वर्यं पीनसं श्वासं कासं नाशयति ध्रुवम् ॥ २५४ ॥

इति नेत्ररोगाधिकारः ।

अडूसा, सोंठ, गिलोय, दारुहलदी, लाल चन्दन, चीता, चिरायता, नीम, कुटकी, कडवे परवल, हरड, बहेडा, आमले, नागरमोथा, हलदी, पीपल और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे नेत्रके समस्त रोग, स्वरभंग, पीनस, श्वास और खांसीका अवश्य नाश होता है ॥ २५३--२५४ ॥

इति नेत्ररोगाधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ कर्णरोगाधिकारः ।

कर्णशूलः कर्णनादो बाधिर्यं क्ष्वेड एव च । कर्णस्रावः कर्णकण्डूः कर्णगूथस्तथैव च ॥ १ ॥ प्रतिनाहो जन्तुकर्णो विद्रधिर्द्विविधस्तथा । कर्णपाकः पूतिकर्णस्तथैवार्शश्चतुर्विधः ॥ २ ॥ तथाऽर्बुदं सप्तविधं शोफश्चापि चतुर्विधः । एते कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥ ३ ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य, क्ष्वेड, कर्णस्राव, कर्णकण्डू कर्णगूथ, प्रतिनाह, कृमिकर्ण, क्षतसे अथवा अभिघातसे हुआ विद्रधि दो प्रकारका है, कर्णपाक, पूतिकर्ण, चार प्रकारके कर्णनाद, सात प्रकारके कर्णार्बुद और चार प्रकारके कर्णशोथ इस प्रकार अट्ठाईस २८ कानके रोग हैं ॥ १-३ ॥

अथ कर्णशूलस्य सम्प्राप्तिलक्षणं च ।

समीरणः श्रोतागतोऽन्यथाचरन्समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः । करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥ ४ ॥

अन्यथाचरन् समन्ततः--प्रतिलोमं चरन्। दोषैः पित्तकफरक्तैः। रक्तस्यापि रुजादिकर्तृत्वेन दोषसाम्याद्दोषत्वमत्र यथास्वम्--आत्मीयनिदानकुपितैः अथवा यथास्वमिति शूलविशेषणम्। दुराचरः--दुरुपचारः ॥

कानमें चारों ओर उलटी फिरनेवाली और अपने निदानोंसे कुपित हुए पित्त, कफ और रुधिर इन दोषोंसे लिपटी हुई वायु कानमें उस उस दोषके सम्बन्धी शूलको अत्यन्त उत्पन्न करती है, उसको 'कर्णशूल' कहते हैं, यह कर्णशूल कृच्छ्रसाध्य है ॥

रुधिर भी पीडा आदिको उत्पन्न करनेवाला होनेसे दोषके सदृश ही है, इस कारण इसको भी यहां दोषोंकी पंक्तिमें गिना है ॥ ४ ॥

अथ कर्णशूलस्योपद्रवास्तदसाध्यता च।

मूर्च्छा दाहो ज्वरः कासः श्वासोऽथ वमथुस्तथा। उपद्रवाः कर्णशूले भवन्त्येते मरिष्यतः ॥ ५ ॥

कर्णशूलमें जो मूर्च्छा, दाह, ज्वर, खांसी, श्वास और वमन यह उपद्रव हुए हों तो ये रोगीके मरनेके चिह्नरूप हैं ॥ ५ ॥

अथ कर्णनादलक्षणम्।

कर्णश्रोत्रस्थिते वाते शृणोति विविधान् स्वनान्। भेरीमृदङ्गशंखानां कर्णनादः स उच्यते ॥ ६ ॥

भेरीमृदङ्गशंखानामिति उपलक्षणं, तेन भृङ्गादि कृतशब्दानां ग्रहणम् ॥

कुपित हुई वायुको कानकी शब्दवाहिनी नाडीमें रहनेसे भेरी, मृदंग, शंख और भ्रमर इत्यादिकके सदृश विविध प्रकारके शब्द सुननेमें आते हैं, उसको 'कर्णनाद' कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ बाधिर्यलक्षणम्।

यदा शब्दवहो वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति। शुद्धः श्लेष्मान्वितो वाऽपि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ७ ॥

कफ सहित अथवा केवल वायु कानकी शब्दवाहिनी नाडीको लिपटकर रहे तो इससे बधिरता (बहरापन) होती है इसको 'बधिरता' कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ बाधिर्यासाध्यता।

बाधिर्यं बालवृद्धोत्थं चिरोत्थञ्च विवर्जयेत् ॥ ८ ॥

बालकोंका, वृद्धोंका और अधिक कालका बहरापन असाध्य है, इस कारण वैद्य इसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ ८ ॥

अथ कर्णक्ष्वेडलक्षणम्।

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषसमं स्वनम्। करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥ ९ ॥

क्ष्वेडशब्दार्थं व्यनक्ति वेणुघोषसमं स्वनमिति यतं उक्तम्, 'क्ष्वेडनं वेणुघोषवत्' इति ॥

ननु कर्णनादकर्णक्ष्वेडयोः को भेदः ? उच्यते-कर्णनादःकेवलेन वातेन जायते, तत्र नानाशब्दांश्च शृणोति। कर्णक्ष्वेडस्तु पित्तादियुक्तेन वातेन जन्यते, तत्र नियमेन वेणुघोषमेव शृणोतीति भेदः ॥

पित्त आदिसे संयुक्त हुई वायु कानमें बांसुरीके समान शब्दको उत्पन्न करती है, उसको 'क्ष्वेड' कहते हैं ॥ ९ ॥

शंका—कर्णनादमें और क्ष्वेडमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—कर्णनाद केवल वायुसे होता है और उसमें भेरी आदिके सदृश अनेक शब्द होते हैं और क्ष्वेड तो पित्त आदिसे संयुक्त हुई वायु

से होता है और उसमें केवल बांसके शब्दके समान शब्दही होता है, इतनाही अन्तर है ॥

अथ कर्णस्रावलक्षणम्।

शिरोऽभिघातादथवा निमज्जतो जले प्रपातादथवाऽपि विद्रधेः। स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्तितः ॥ १० ॥

पूयमित्युपलक्षणम्, जलं रसं च स्रवत्। श्रवणशब्दः पुंलिङ्गोऽप्यस्ति ॥

शिरमें चोट लगनेसे वा पानीमें डूबनेसे अथवा विद्रधिसे वायु कुपित होकर कानसे राधको अथवा जलको वा रसको निकालती है, उसको 'कर्णस्राव' कहते हैं ॥ १० ॥

अथ कर्णकण्डूलक्षणम्।

मारुतः कफसंयुक्तः कर्णे कण्डूं करोति हि ॥ ११ ॥

कफसे संयुक्त हुई वायु कानमें खुजलीको उत्पन्न करती है, उसको 'कर्णकण्डू' कहते हैं ॥ ११ ॥

अथ कर्णगूथलक्षणम्।

पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा कुरुते कर्णगूथकम् ॥ १२ ॥

कर्णे गूथयते यस्मात्स कर्णगूथोव्याधिः ॥

पित्तसे तथा गरमीसे सूखा हुआ कफ कानमें मैलको उत्पन्न करता है, उसको कर्णगूथ कहते हैं ॥ (कानमें विष्ठाके सदृश मलको करता है, इस कारण इस रोगका नाम 'कर्णगूथ' रक्खा है। 'गूथ' नाम विष्ठाका है ॥ १२ ॥

अथ प्रतिनाहलक्षणम्।

स कर्णगूथो द्रवतां यथा गतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते। तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञिता भवेद्विकारः शिरसोऽर्द्धभेदकृत् ॥ १३ ॥

घ्राणञ्च मुखञ्च घ्राणमुखम्, एकत्वं द्वन्द्वे। शिरसोऽर्द्धभेदकृत्-अर्द्धावभेदकाख्यशिरोरोगकृत्।

कानका मैल पिघलकर पतला होनेसे नाकमें अथवा मुखमें आता है, उसको 'प्रतिनाह' कहते हैं। प्रतिनाहसे 'अर्द्धावभेदक' (आधाशीशी) नामक मस्तकरोग है ॥ १३ ॥

अथ कृमिकर्णकलक्षणम्।

यदा तु मूर्च्छन्त्यथवा तु जन्तवः सृजन्त्यपत्यान्यथवाऽपि मक्षिकाः। तद्व्यञ्जनत्वाच्छ्रवणे निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥ १४ ॥

तद्व्यञ्जनत्वात्-कृमिलक्षणत्वात्। श्रवणे क्रिमिकर्णको गदो निरुच्यते इत्यन्वयः।

जब कानमें जीव पड जाते हैं अथवा मक्खियां कानमें अपने बच्चे रखती हैं, तब कानके भीतर कीडोंके चिह्न दीखते हैं, यह रोग 'कृमिकर्णक' कहाता है ॥ १४ ॥

अथ पतंगादिप्रविष्टकर्णलक्षणम्।

पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि। अरतिं व्याकुलत्वञ्च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥ १५ ॥ कर्णो निस्तुद्यते यस्य तथा च फर्फरायते। कीटे चरति रुक्तीव्रा निस्पन्दे मन्दवेदना ॥ १६ ॥

निस्पन्दः-निश्चलः ॥

पतंग आदि अथवा कानखजूरे आदि कानमें प्रवेश करके बेचैनीको, व्याकुलताको और अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करते हैं। इस रोगमें कान पीडित होता है, कानमें नोचनेकीसी पीडा होती है, जब कीडा चलता है तब अधिक पीडा होती है और स्थिर रहे तो पीडा थोडी होती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ द्विविधकर्णविद्रधिलक्षणम्।

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः। स रक्तपीतारुण-

मस्रमास्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् १७

क्षतप्रभवोऽभिघातप्रभवश्च तयोर्द्वयोरप्या-गन्तुजत्ववदैक्यम्। अस्रम्-रुधिरमित्यर्थः॥

कानमें विद्रधि क्षत (घाव) से अथवा अभिघात (चोट) से हुई हो अथवा दोषसे हुई हो, तो कानमेंसे लाल पीला स्राव होता है और पीडा धुएँके निकलनेके सदृश, दाह तथा अग्निके समीपसे हुए तापके सदृश होती है, उसको 'कर्णविद्रधि' कहते हैं।

विद्रधि-क्षतसे हुई हो अथवा अभिघात से हुई हो तो भी आगन्तुकही है; इस कारण उसको एक गिना है॥ १७॥

अथ कर्णपाकलक्षणम्।

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृ-द्भवेत्।

पित्तके प्रकोपसे कानमें दुर्गन्धता तथा गिलगिलापन होता है, उसको 'कर्णपाक' करते हैं॥

अथ पूतिकर्णकलक्षणम्।

कर्णविद्रधिपाकेन कर्णे वा वारिपूर-णात्। पूयं स्रवति यः पूति स ज्ञेयः पूतिकर्णकः॥ १८॥

अथ कर्णस्रावाद्भेदार्थमाह पूतीति। नियमेन पूतिर्यथा स्यादेवं स्रवति॥

कानका विद्रधि पकनेसे अथवा कानमें पानी भरनेसे दुर्गन्धरूप पीव स्रवता है, उसको 'पूतिकर्ण' कहते हैं। इस रोगमें नियमपूर्वक दुर्गंधवाला स्रावही होता है, इतना कर्णस्रावसे अन्तर है॥ १८॥

अथ कर्णशोथकर्णार्बुदकर्णार्शो-लक्षणम्।

कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः॥ १९॥ कर्णशोथाश्च चत्वारो वात-पित्तकफरक्तजाः। एवमर्शोऽपि चतुर्विधम्। अन्येषां शोथानामर्शसां चासम्भवः आधारप्रभावात्। अर्बुदं सप्तविधं वात-पित्तकफरक्तमांसमेदःशिराजम्। एते कर्णरोगा अष्टाविंशतिः सुश्रुतोक्ताः। इदानीं चरकोक्तं कर्णरोगचतुष्टयं वात-पित्तकफसन्निपातकृतमाह।

वात, पित्त, कफ और रुधिर इस रीतिसे चार प्रकारकी सूजन होती है, इसके लक्षण सूजनके अधिकारमें कहे प्रमाण समझना। वात, पित्त. कफ और रुधिरसे हुए अर्श इस भांति कानका अर्श चार प्रकारका होता है, उनके लक्षण अर्शाधिकारमें कहे अनुसार समझले। कानमें इन चार प्रकारका ही अर्श तथा शोथ होता है और किसी प्रकारका नहीं होता, यह स्थानका ही प्रभाव है॥

वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस, मेद और शिरासे उत्पन्न हुआ अर्बुद इस प्रकार कानका सात प्रकारका अर्बुद होता है, इनके लक्षण अर्बुदके अधिकारमें कहे अनुसार जानने।

सुश्रुतमें कहे कानके अट्ठाईस रोगोंके लक्षण कह चुके हैं। चरकमें कानके चार रोग वात, पित्त, कफ और सन्निपातसे उत्पन्न हुए इस प्रकार हैं॥ १९॥

अथ वातजकर्णरोगलक्षणम्।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोथः स्रावस्त-नुश्चाश्रवणश्च वातात्॥ २०॥

कानमें नाद और अत्यन्त पीडा होती हो, सूजन हो, पतला स्राव हो और श्रवण करने की शक्ति न हो तो वायुसे हुए कानके रोग जानने॥ २०॥

अथ पित्तजकर्णरोगलक्षणम्।

शोथः सरागो दरणं विदाहः सपूतिपी-तस्रवणश्च पित्तात्॥ २१॥

लाल रंगकी सूजन हो, कान फटकता हो, दाह होता हो और दुर्गन्धयुक्त पीला स्राव हो तो पित्तसे हुए कानके रोग जानने॥ २१॥

अथ कफजकर्णरोगलक्षणम् ।

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्ल स्निग्धस्रुति-स्वल्परुजः कफाच्च ॥ २२ ॥

वैश्रुत्यम्-अन्यथाश्रवणम् ।

विपरीत सुनना, खुजलीका होना, सूजन स्थिर रहना, सफेद तथा स्निग्ध स्राव होना और थोडी पीडाका होना, यह कफसे हुए कानके रोगके लक्षण जानने ॥ २२ ॥

अथ सन्निपातजकर्णरोगलक्षणम् ।

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात् । स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ २३ ॥

ऊपर कहे सब दोषोंके लक्षण दीखते हों और उसमें जो दोष अधिक हो उसके वर्ण-वाला स्राव होता हो तो सन्निपातसे हुए कानके रोग जानने ॥ २३ ॥

अथ परिपोटकनिदानलक्षणम् ।

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसैवातिवर्द्धिते । कर्णे शोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान् । कृष्णारुणानिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः ॥ २४ ॥

परिपोटवान्-मनाक् विदारुणवान् ॥

कर्णपाली भी कानका ही अवयव होनेसे उसके विकारोंको भी इसी अधिकारमें योग्य जानकर लिखते हैं-

अधिक समयतक कानमें कोई भी भारी वस्तु डालकर ऐसे ही छोड देवे तो सुकुमारता (कोमलता) के कारण उसमें सहसा अत्यन्त सूजन आजाय, पीडा हो, किंचित् फटासा हो जाय, कालापन मिला हुआ लाल और जकडा हुआसा जो सूजन हो उसको 'परिपोटक' कहते हैं। यह रोग वायुसे होता है ॥ २४ ॥

अथोत्पातलक्षणम् ।

गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्घर्षणादपि । शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः । रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदः स्मृतः ॥ २५ ॥

भारी गहना पहरनेसे, चोट लगनेसे अथवा घिसनेसे कानकी लौरमें कलौंस सहित लाल दाहवाली, पाकयुक्त और पीडायुक्त जो सूजन होती है, उसको 'उत्पात' कहते हैं। यह रोग रुधिर और पित्त इन दोनोंके प्रकोपसे होता है ॥ २५ ॥

अथोन्मन्थकलक्षणम् ।

कर्णं बलाद्वर्द्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति । कफं संगृह्य कुरुते शोथं स्तब्धमवेदनम् । उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ २६ ॥

अवेदनम्-ईषद्वेदनम् ।

कानको बलात्कारसे बढानेपर पालीमें वायुका कोप होता है और वायु कफकी सहायताके कारण स्तब्धतायुक्त अल्पवेदनावाली और खुजली सहित सूजनको उत्पन्न करती है, उसको 'उन्मन्थक रोग' कहते हैं। यह रोग कफ और वायु इन दोनोंके प्रकोपसे होता है ॥ २६ ॥

अथ दुःखवर्द्धनलक्षणम् ।

संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः। शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्द्धनः ॥ २७ ॥

संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे, कर्ण इति शेषः ॥

अयोग्य प्रकारसे छिदा हुआ कान बढानेसे खुजली सहित, दाह और पीडावाली सूजन होती है तथा पाक भी होता है, इस रोगको 'दुःखबर्द्धन' कहते हैं। यह रोग तीनों दोषोंसे होता है ॥ २७ ॥

अथ परिलेहिलक्षणम् ।

कफासृक्कृमयः क्रुद्धाः सर्षपाभा विसारिणः । कुर्वन्ति पिडिकां पाल्यां

कण्डूदाहसमान्विताम् ॥ २८ ॥ कफासृक्कृमिसम्भूतः स विसर्पन्नितस्ततः। लिह्यात्स शष्कुलीं पालीं परिलेही च स स्मृतः ॥ २९ ॥

स पिडिकात्मकः परिलेहिसंज्ञो गदः। लिह्यात् निर्मांसीकुर्यात् ॥

कफ रुधिर और कृमि कुपित होकर फैलती हुई, खुजलीवाली और दाहयुक्त सरसोंके समान फुडियोंको उत्पन्न करते हैं, यह रोग चारों ओरको फैलता २ कानके छेदको तथा पाली (कानकी लौर) को मांसरहित कर डालता है। कफ, रुधिर और कृमि इनके प्रकोपसे हुआ यह रोग 'परिलेही कहाता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ कर्णरोगचिकित्सा।

कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च। चतुर्ष्वपि च रोगेषु सामान्यं भेषजं स्मृतम् ॥ ३० ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य और क्ष्वेड इन चारों रोगोंपर एकसी ही औषधि करनी कही है ॥ ३० ॥

शृङ्गवेरं सहमधु सैन्धवं तैलमेव च। कदुष्णं कर्णयोर्धार्यमेतत्स्याद्वेदनापहम् ॥ ३१ ॥

सोंठ, सहत और सैंधानमक इनका कल्क डालकर तेलको पकावे, यह तेल सहता हुआ गरम कानमें डाले तो इससे कानकी पीडा नष्ट होती है ॥ ३१ ॥

लशुनार्द्रकशिग्रूणां वारुण्या मूलकस्य च। कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥ ३२ ॥

वारुणी-वरुणः।

लहसुन, अदरक, सहँजना, वरना, मूली और केला इनका योग्य रीतिसे स्वरस करके सहता हुआ गरम कानमें डाले तो इससे कानकी पीडा नष्ट हो जाती है ॥ ३२ ॥

अर्काङ्कुरानम्लपिष्टान्सतैललवणान्वितान्। सन्निदध्यात्सुधाकाण्डे कारिते मृत्स्नया वृते ॥ ३३ ॥ पुटपाकक्रमात्स्विन्नं पीडयेदारसागमात्। सुखोष्णं तद्रसं कर्णे प्रक्षिपेच्छूलशान्तये ॥ ३४ ॥

आकके अंकुरोंको अम्लरसमें पीसकर तेल तथा सैंधानिमक मिलावे, पश्चात् थूहरकी मोटी लकडीमें छेद करके भीतर इसको भरे, फिर कपरौटीकर पुटपाककी विधिके अनुसार उसको पकावे, जबतक रस निकले तबतक निचोड लेवे, यह रस जितना गरम कान सह सके उतना गरम कानमें डाले तो इससे शूलकी शांति होती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखियोगतप्तम्। आपीड्य तस्याम्बु सुखोष्णमेव कर्णे निषिक्तं हरते हि शूलम् ॥ ३५ ॥

पकनेसे पीले हुए आकके पत्तोंको घी चुपडकर आगपर सेंके, फिर उसके रसको निचोड लेवे। यह सहता सहता कानमें डाले तो कानका शूल नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि। छागमूत्रं प्रशंसन्ति कोष्णं सैन्धवसंयुतम् ॥ ३६ ॥

कानमें तीव्रशूल होता हो, शब्द करता हो और स्राव होता हो तो बकरेके मूत्रमें सैंधानिमक डालकर गरम करके किंचित् गरम गरम वह मूत्र कानमें डाले तो उससे कानकी पीडा नष्ट होजाती है ॥ ३६ ॥

तैलं श्वेतार्कमूलेन मन्देऽग्नौ विधिना शृतम्। हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ ३७ ॥

सफेद आककी जडके कल्कसे मन्द मन्द अग्निमें पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो कानका शूल त्रिदोषसे हुआ हो तो भी तत्काल नष्ट होजाता है ॥ ३७ ॥

हिङ्गुसैन्धवशुण्ठीभिस्तैलं सर्षपसम्भवम् । विपक्कं हरतेऽपथ्यं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ ३८ ॥

हींग, सैंधानिमक और सोंठ इनके कल्कसे पकाया हुआ सरसोंका तेल कानमें डाले तो उससे कानका शूल अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ३८ ॥

कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च । पूरणं कटुतैलेन हितं वातघ्नमौषधम् ॥ ३९ ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य और क्ष्वेड इना चारों रोगोंमें सरसोंका तेल डाले और वायुनाशक औषधि करे, यह परम हितकारी होता है ॥ ३९ ॥

शिखरिक्षारजं वारि तत्कृतकल्केन साधितं तैलम् । अपहरति कर्णनादं बाधिर्यंचा पि पूर्णतः ॥ ४० ॥

शिखरी-अपामार्गः ।

चिरचिटकी भस्मके पानीमें चिरचिटेका कल्क डालकर पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो इससे बहरापन और कर्णनाद नष्ट होता है ॥ ४० ॥

अथ बिल्वतैलम् ।

गवां मूत्रेण बिल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् । सजलश्च सदुग्धश्च तद्बाधिर्यहरं परम् ॥ ४१ ॥

क्षीरं गावमेव ग्राह्यम् ॥

बेलके फलोंको गायके मूत्रमें पीसकर वह कल्क हुआ पानी तथा दूधमें पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो बहारापन अवश्य नष्ट होजाता है, यह तेल ' बिल्व तेल इस नामसे कहाजाता है ॥ ४१ ॥

कर्णस्रावे पूतिकर्णे तथैव कृमिकर्णके । सामान्यं कर्म कुर्वीत योगान्वैशेषिकानपि ॥ ४२ ॥

कर्णस्राव, पूतिकर्ण और कृमिकर्ण इन रोगोंमें ऊपर कही सामान्य क्रियायें भी करनी और नीचे लिखी विशेष क्रियायें भी करनी चाहियें ॥ ४२ ॥

स्वर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत् । कर्णस्रावरुजो दाहास्ते नश्यन्ति न संशयः ॥ ४३ ॥

सज्जीखारके चूर्णसे संयुक्त बिजौरे नींबूका रस कानमें डाले तो उससे कानका स्राव, पीडा और दाह नष्ट होजाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥

आम्रजम्बूप्रवालानि मधुकस्य वटस्य च । एभिस्तु साधितं तैलं पूतिकर्णगदं हरेत् ॥ ४४ ॥

आमके, जामुनके, महुएके और बडके छोटे छोटे पत्तोंका कल्क करके इससे पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो पूतिकर्ण नामक रोग नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

जातीपत्ररसैस्तैलं विपक्कं पूतिकर्णजित् । पिष्टं रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम् । प्रशस्यते चिरोत्थे तत्स्रावके तिक र्णके ॥ ४५ ॥

चमेलीके पत्तोंके स्वरससे पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो उससे पूतिकर्ण नष्ट होता है । स्त्रीके दूधसे रसौतको पीसकर सहतमें मिलावे, फिर उसको कानमें डाले तो अधिक दिनोंसे बहता हुआ कान और पूतिकर्ण नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

अथ कुष्ठतैलम् ।

कुष्ठहिङ्गुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः । पूतिकर्णापहं तैलं बस्तमूत्रेण साधितम् ॥ ४६ ॥

कूठ, हींग, वच, देवदारु, सोया, सोंठ, और सैंधानोंन इनका कल्क डालकर बकरेके मूत्रमें पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो इससे पूतिकर्ण नष्ट होता है, यह 'कुष्ठादितैल' कहाता है ॥ ४६ ॥

शम्बूकस्य तु मांसेण कटुतैलं विपाचयेत्। तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ ४७ ॥

सीपके जीवोंके मांसका कल्क डालकर पकाया हुआ सरसोंका तेल कानमें डाले तो तत्काल कानका बहना शांत होता है ॥ ४७ ॥

चूर्णेन गन्धकशिलारजनीभवेन
मुष्टचंशकेन कटुतैलपलाष्टकन्तु।
धत्तूरपत्ररसतुल्यमिदं विपक्वं
नाडीं जयेच्चिरभवामपि कर्णजाताम् ॥ ४८ ॥

मुष्टिः पलम् ॥

गन्धक, मैनशिल और हलदी इनके चार तोले चूर्णका कल्क डालकर बत्तीस तोले धतूरोंके पत्तोंके स्वरसमें बत्तीस तोले सरसोंका तेल पकावे, यह तेल कानमें डाले तो अधिक दिनोंका कानका बहना नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

कर्णक्रिमिविनाशाय कृमिघ्नीं कारयेत् क्रियाम्। वार्ताकुधूमश्च हितः सार्षपः स्नेह एव च ॥ ४९ ॥ पूरणं हरितालेन गव्यमूत्रयुतेन च। धूपने कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलुः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ५० ॥ चिकित्सा कर्णशोथानां तथा कर्णार्शसामपि। कर्णार्बुदानां कुर्वीत शोथार्शोऽर्बुदवद्भिषक् ॥ ५१ ॥

कृमिकर्ण नामक रोगका नाश करनेके लिये क्रिमियोंको नष्ट करनेवाली क्रिया करे। बैंगनका धुआँ, सरसोंका तेल और गायके मूत्रमे पिसी हुई हरतालका रस ये कृमिकर्ण रोगमें हितकारी होते हैं। कानकी दुर्गन्धमें धूप देनेके लिये गूगल श्रेष्ठ गिनाजाता है। वैद्य कानकी सूजनकी चिकित्सा सूजनके अधिकारमें कहे अनुसार करे, कानके अर्शोंकी चिकित्सा अर्शोके अधिकारमें कहे अनुसार करे और कानके अर्बुदोंकी चिकित्सा अर्बुदों अधिकारमें कहे अनुसार करे ॥ ५१ ॥

अथ कर्णपालीरोगचिकित्सा।

पालीसंशोषणे कुर्याद्वातकर्णरुजः क्रियाः। स्वेदयेद्यत्नतस्तां च स्विन्नां संवर्धयेत्तिलैः ॥ ५२ ॥

कानकी पाली सूखीजाती हो तो वातजरोगोंकी जो चिकित्सा कही है, सो करे; यत्नपूर्वक पालीको सेंके और सेक करनेके पश्चात् तिलका कल्क लगाकर उसको बढावे ॥ ५२ ॥

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डबीजकैः। तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीं संवर्द्धयेत्सुखम् ॥ ५३ ॥

पयस्या -अत्र क्षीरकाकोली ॥

सतावर, असगन्ध, क्षीरकाकोली और अंडी इनके कल्कसे दूधमें पकाया हुआ तेल लगावे तो कानकी पाली सहजमें बढ जाती है, इसको, 'शतावरी तेल' कहते हैं ॥ ५३ ॥

जीवनीयस्य कल्केन तैलं दुग्धेन पाचयेत्। चिकित्सेत्तेन तैलेन हृतास्रं परिपोटकम् ॥ ५४ ॥

परिपोटक रोग हो तो प्रथम उसमेंसे रुधिर निकलवाकर पीछे दूधमें जीवनीयगणका कल्क डालकर पकाया हुआ तेल लगावे ॥५४॥

शीतलेपैर्जलौकोभिरुत्पातं समुपाचरेत्॥

उपद्रव हुए हों तो शीतल लेपोंसे और जोंक लगाकर उनकी चिकित्सा करे ॥

हलिनीसुरसाभ्यां च गोधाकङ्कवसान्वितम्। तैलश्च पक्वमभ्यङ्गाद्दुन्मन्थं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ५५ ॥

कलियारीका कल्क, शतावरका कल्क, गोहकी चरबी और कंकपक्षीकी चरबी इनको डालकर पकाया हुआ तेल चुपडे तो उन्मन्थ अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ५५ ॥

दुःखवर्द्धनकं सिक्त्वा जम्ब्वाम्रबिल्वपत्रजैः । क्वाथैस्तैलेन सुस्निग्धं तच्चूर्णैश्चावधूलयेत् । ॥ ५६ ॥ बहुशो गोमयैस्तप्तैः स्वेदितं परिलेहितम् । घनसारैः समालिम्पेदजामूत्रेण कल्पितैः ॥ ५७ ॥

इति कर्णरोगाधिकारः ।

दुःखवर्द्धनकरोग हुआ हो तो जामुनके, आमके और बेलके पत्तोंके क्वाथसे उसको सींच कर तेलसे भली भाँति चिकना करे और उसके ऊपर जामुन आदिके पत्तोंका चूर्ण ही बुरकादेवे, पहिले रोग हुआ हो तो गरम किये हुए गोबरका बारंवार सेंक करे, फिर बकरीके मूत्रमें पिसे हुए कपूरका लेप करे ॥ ५६–५७ ॥

इति कर्णरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ नासारोगाधिकारः ।

तत्र नासारोगाणां नामानि संख्या च ।

आदौ च पीनसः प्रोक्तः पूतिनस्यस्ततः परम् । नासापाकोऽत्र गणितः पूयशोणितमेव च ॥ १ ॥ क्षवथुर्भ्रंशथुर्दीप्तिः प्रतीनाहः परिस्रवः । नासाशोषः प्रतिश्यायः पञ्च सप्तार्बुदानि च ॥ २ ॥ चत्वार्यर्शांसि चत्वारः शोथाश्चत्वारि तानि च । रक्तपित्तानि नासायां चतुस्त्रिंशद्गदाः स्मृताः ॥३॥

१ पीनस, २ पूतिनस्य, ३ नासापाक, ४ पूयशोणित, ५ क्षवथु, ६ भ्रंमथु, ७ दीप्ति, ८ प्रतीनाह, ९ परिस्रव, १० नासाशोष, ११–१५ पांच प्रकारके प्रतिश्याय, १६--२२ सात प्रकारके अर्बुद, २३--२६ चार प्रकारके अर्श, २७--३० चार प्रकारकी सूजन और ३१--३४ चार प्रकारके रक्तपित्त इस प्रकार नाकके रोग चौंतीस हैं ॥ १--३ ॥

अथ पीनसलक्षणम् । १

आनह्यते शुष्यति यस्य नासा प्रक्लेदमायाति तु धूप्यते च । न वेत्ति यो गन्धसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येदिह पीनसेन॥४॥ आनह्यते श्वासशोषितकफेन बध्यते अवरुध्यत इति यावत् । प्रक्लेदम् आर्द्रतां गच्छतीति यावत् । धूप्यते सन्ताप्यते । गन्धरसान् गन्धान् सुरभीनसुरभींश्च न वेत्ति, नासाया अनद्धत्वन्तत्र हेतुः । तथा रसान् मधुरादींश्च न वेत्ति नासारोगारम्भकदोषेण रसनाया अपि दुष्टिः । व्यवस्येज्जानीयात् । अपीनसपीनसौ द्वावपि शब्दौ स्तः । अवाप्योस्तंसनद्धादित्वादिवेति सूत्रेण विकल्पेनाकारलोपात् ॥

श्वाससे सूखे हुए कफसे नाक रुक जाय, रुककर फिर गीली होजाय, गरम होजाय तथा नाक बंद हो जानेके कारण सुगंधि अथवा दुर्गन्धिको नहीं जानसके, तैसेही नाकके रोगोंको उत्पन्न करनेवाले दोषोंसे जीभ भी दूषित होकर मधुर आदि रसोंको नहीं जान सके उसको 'पीनस रोग' कहते हैं॥४॥

व्याकरणकी मर्यादाके अनुसार पीनस और अपीनस ये दोनों एक रोगके नाम हैं ॥

तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिंगम् ॥ ५ ॥

तं विकारं पीनसम् । प्रतिश्यायसमान-लिङ्गंवातश्लैष्मिकप्रतिश्यायतुल्यलक्षणम् ॥

वायु तथा कफसे उत्पन्न हुए पीनस रोगके अन्य लक्षण वात तथा कफसे उत्पन्न हुए प्रतिशाय नामक रोगके सदृश ही होते हैं ॥ ५ ॥

अथ पूतिनस्यलक्षणम् । २

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले सन्दूषितो यस्य समीरणस्तु । निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ६ ॥

दोषैः-पित्तकफरक्तैः । अत्र रक्तस्यापि दोषत्वं दोषसाहचर्यात् । विदग्धैर्दुष्टैः । सन्दूषितः-पूतिभावं नीतः । पूतिनस्यं-नासायां भवो नस्यः वायुः पूतिर्नस्यो यत्र स पूतिनस्यः, तम् ॥

गले तथा तालूकी जडमें दूषित पित्त, कफ और रुधिर इन दूषित हुई दुर्गन्धित वायु मुखमेंसे और नाकमेंसे निकलती है, उस रोगको 'पूतिनस्य' कहते हैं ॥ ६ ॥

दोषोंके साथ नसे रुधिरको भी दोषशब्द दिया है। पूति अर्थात् दुर्गन्धित और नस्य अर्थात् नाककी वायु इसी अर्थसे इस रोगका नाम 'पूतिनस्य' रक्खा है ॥

अथ नासापाकलक्षणम् । ३

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः । तं नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथवापि यत्र ॥ ७ ॥

विक्लेदः-आर्द्रता, कोथा पूतिभावः ॥

नाकमें रहनेवाला पित्त व्रणोंको उत्पन्न करे, नाक अत्यन्त पके, नाक गीली रहे और दुर्गन्धि भी रहे उस रोगको 'नासापाक' कहते हैं ॥ ७ ॥

अथपूयशोणितलक्षणम् । ४

दोषैर्विदग्धैरथवापि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः । नासा स्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥८॥

दोषोंके बिगडनेसे अथवा ललाटमें उन उन पदार्थोंकी चोट लगनेसे रुधिर मिली राध नाकसे गिरती है, इस रोगको 'पूयशोणित' कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ क्षवथुलक्षणम् । ५

घ्राणाश्रिते मर्मणि सम्प्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति । कफानुयातो बहुशोऽतिशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथु गदज्ञाः ॥ ९ ॥

घ्राणाश्रिते मर्मणि-शृङ्गाटके ॥

नामकको तरुण हड्डी अथवा शृङ्गाटक नामक मर्मस्थानमें दूषित हुई कफसहित वायु अधिक छीकोंके शब्दोंको नाकसे निकालती है, इस रोगको वैद्यलोग दोषजन्य 'क्षवथु' कहते हैं।।९

अथागन्तुजक्षवथुलक्षणम् ।

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान् कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा । सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्धर्षितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति ॥ १० ॥

तीक्ष्णोपयोगात्-राजिकादिभक्षणात् । अर्कनिरीक्षणात्-सूर्यदर्शनात् , तेन कफविलयनात् । तरुणास्थिम्मर्मणि:नासाव्रणास्थिमर्मणि तरुणास्थिनच मर्मणि शृङ्गाटके चेति द्वन्द्वैकत्वं वा । अन्यः-आगन्तुजः ॥

राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंके उपयोग करनेसे अथवा तीक्ष्ण पदार्थोंकी सुगन्धिसे अथवा सूर्यके समान देखनेसे कफ पिघलनेपर अथवा डोरें आदिसे नाकके तरुणास्थि नामक मर्म-

स्थलके घिसनेसे जो छींके आती हैं, उनको वैद्य लोग 'आगन्तुज क्षवथु' कहते हैं ॥१०॥

अथ भ्रंशथुलक्षणम्।

प्रभ्रश्यते नासिकया तु यस्य सान्द्रो- विदग्धो लवणः कफस्तु । प्राक्सञ्चितो- मूर्द्धनि पित्ततप्ते तं भ्रंशथुं व्याधिमुदा- हरन्ति ॥ ११ ॥

मस्तकमें पहिलेहीसे संचित हुआ, दूषित हुआ, गाढ़ा और खारापनसहित कफ माथा गरम होनेपर नाकसे निकलता है, उस रोगको वैद्यलोग 'भ्रंशथु' कहते हैं ॥ ११ ॥

अथ दीप्तिलक्षणम्। ७

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसरे- द्धूमइवेह वायुः । नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तं दीप्तिमुदाह- रन्ति ॥ १२ ॥

प्रदीप्तेव-प्रज्वलितेव ॥

नाकमें अत्यन्त दाह हो, धुएँके समान वायु निकले और अग्निसे जलनेके समान पीडा मालूम हो, उस रोगको वैद्यलोग 'दीप्त' कहते हैं ॥ १२ ॥

अथ प्रतीनाहलक्षणम्। ८

उच्छ्वासमार्गन्तु कफः सवातो रुन्ध्यात् प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥ १३ ॥

वायुसहित कफ श्वास लेनेके मार्गको रोकदेता है, उस रोगको 'प्रतीनाह' कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ स्रावलक्षणम्। ९

घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत् स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ १४ ॥

नाकमेंसे पीले वर्णवाला, सफेद वर्णवाला, गाढा अथवा पतला दोष स्रवता है, उस रोगको 'स्राव' कहते हैं ॥ १४ ॥

अथ नासाशोषलक्षणम्। १०

घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषिते च । कृच्छ्राच्छ्वसि- त्यूर्ध्वमधश्च जन्तुर्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः ॥ १५ ॥

नाकमें रहनेवाला कफ वायुसे और पित्तसे अत्यन्त सूख जानेपर प्राणी थोडा २ ऊंचा नीचा श्वास लेता है, वह रोग 'नासापरिशोष' कहाता है ॥ १५ ॥

अथ प्रतिश्यायस्य सामान्य- निरूपणम्।

न केवलं चयं प्राप्य दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम् । अन्यदाऽपि हि कुप्यन्ति हेतु- बाहुल्यप्रेरणात् ॥ १६ ॥

हेतुबाहुल्यप्रेरणात्–हेतूनां बाहुल्येन त्वराकरणात् । द्विविधं प्रतिश्यायनिदा- नम् । एकं सद्योजनकम्, तच्च बलव- त्त्वेन चयं नापेक्षत एव । अपरञ्च चया- दिक्रमेण जनकम् चयादिक्रमोत्पन्नश्च दोषो गरीयान् सकलशरीरसम्भावनया बद्धमूलत्वात् । चयादिक्रमो यथा निदा- नात्सञ्चयः सञ्चयात्प्रकोपः प्रकोपात् प्रसरः प्रसरात्स्थानसंश्रयः ततो व्यक्तिः ततो भेदः इति ॥

प्रतिश्यायके एक सद्योजनक (तत्काल उत्पन्न करनेवाला) और दूसरा चयादि क्रम- जनक (सञ्चय आदिके क्रमसे उत्पन्न करने- वाला) ऐसे दो प्रकारके निदान हैं । उनमें सद्योजनक निदान प्रबल होनेसे क्रमकी अपेक्षा नहीं करता । कहा है कि "प्राणियोंके वायु आदि दोष केवल सञ्चय पाकर ही कुपित होते हैं, ऐसाही नहीं, किन्तु जिन दोषोंके हेतुसे एकत्र होजायँ तो उन हेतुओंके जोरसे समय प्राप्त हुए विना भी कुपित होते हैं"

प्रतिश्यायका जो दूसरा चयादि क्रमजनक निदान है. उसमें यह क्रम है कि, निदानसे दोषोंका सञ्चय होता है, सञ्चयसे प्रकोप होता है, प्रकोपसे प्रसर (फैलाव) होता है, प्रसरसे स्थानसंश्रय (रोगोंके उन २ ठिकानोंमें आना) होता है, स्थानसंश्रयसे व्यक्ति (रोगोंका दीखना) होता है, और व्यक्ति होनेके पश्चात् भेद होता है ॥ १६ ॥

अथ प्रतिश्यायस्य सद्योजनकनिदानपूर्विका सम्प्राप्तिः ।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्यशिरोऽभितापैः । सज्जागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायकैर्मैथुनबाष्पसेकैः॥१७॥ संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायु प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥ १८ ॥

सन्धारणं मूत्रपूरीषधारणम् । रजो धूलिः तच्च नासाप्रविष्टं हेतुः । ऋतुवैषम्यम्-ऋतुचर्याविपरीताचरणम् । शिरोऽभितापः-शिरसोऽभितापो येन धूमादिना सः । अवश्यायः-तुषारः । बाष्पसेकः रोदनम् । संस्त्यानदोषे शिरसि संहतकफे ॥

मूत्र तथा विष्ठाके वेगोंको रोकनेसे, अजीर्णसे, नाकमें रजका प्रवेश होनेसे, अत्यन्त बोलनेसे, अतिक्रोधसे, ऋतुचर्यामें कहे नियमोंका उल्लंघन करके विपरीत आचरण करनेसे धुयें आदिसे मस्तक सन्तापित होनेसे जागरण करनेसे, अत्यन्त निन्द्रा लेनेसे, अत्यन्त जलके सेवन करनेसे, शीतोपचारके अत्यन्त सेवनसे तुषारके सेवन करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे और अत्यन्त रोनेसे, मस्तकमें एक साथ कफ जम जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुई वायु प्रतिश्याय को उत्पन्न करती है ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ प्रतिश्यायस्य चयादिक्रमजनकनिदानपूर्विका सम्प्राप्तिः ।

चयं गता मूर्द्धनि मारुतादयः पृथक्समस्ताश्च तथैव शोणितम् । प्रकुप्यमाणा विविधैः प्रकोपणैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति ॥ १९ ॥

वात, पित्त, कफ वा तीनों दोष अथवा रुधिर मस्तकमें संचित होकर वे जब अपने २ कुपित करनेवाले कारणोंसे कुपित होते हैं, तब प्रतिश्यायको उत्पन्न करते हैं ॥ १९ ॥

अथ प्रतिश्यायपूर्वरूपम् ।

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽभिपूर्णता स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता । उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः ॥ २० ॥

शिरसोऽभिपूर्णता शिरसो भारेणेव व्याप्तिः । अपरे पृथग्विधाः-घ्राणधूमायनताल्विदरणनासामुखस्रावादयो विदेहोक्ता बोद्धव्याः ॥

छींकोंका अत्यन्त आना, माथेमें बोझका मालूम होना, अङ्गों का जकडना, अंगोंका टूटना, रोमोंका खडा होना और भी अन्य अनेक प्रकारके उपद्रव जब प्रतिश्याय होनेका हो तो पहिलेसे ही होते हैं ॥

नाकमेंसे धुयेंके सदृश वायु निकले, तालू फटजाय और नाकमेंसे तथा मुखमेंसे स्राव हो इत्यादिक अन्य उपद्रव कि, जो विदेहने कहे हैं, वे यहां जानने ॥ २० ॥

अथ वातजप्रतिश्यायलक्षणम् । ११

आनद्धाऽपिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी । गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शंखयोस्तथा । भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मके ॥ २१ ॥

आनद्धा-स्तब्धा । अपिहित-न पिहिता । अत एव तनुस्रावप्रसेकिनी ॥

नाक रुक जाय तथा सजड होजाय, नाकसे पतला स्राव हो, गला, तालु तथा होंठ सूख जायँ और कनपटीमें पीडा हो, तथा स्वर नष्ट हो जाय तो जानना कि 'वायुसे हुआ प्रतिश्याय' है ॥ २१ ॥

अथ पित्तजप्रतिश्यायलक्षणम् । १२

उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात्स्रवति पैत्तिके । कृशोऽतिपाण्डुः सन्तप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः । नासया तु सधूमाग्निं वमतीव स मानवः ॥ २२ ॥

सपीतकः इषत्पीतकः ॥

नाकमेंसे गरम तथा किंचित् पीला स्राव हो, शरीर दुबला, अत्यन्त पाण्डुवर्णवाला तथा सन्तप्त हो जाय, तृषा बहुत लगे और नाकमेंसे जैसे धुयेंवाली अग्नि निकलती हो ऐसा मालूम हो, तो जानना कि, पित्तसे हुआ प्रतिश्याय' है ॥ २२ ॥

अथ कफजप्रतिश्यायलक्षणम् । १३

घ्राणात्कफकृते श्वेतः कफः शीतः स्रवेद्बहु । शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः । गलताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरतिपीडितः ॥ २३ ॥

नाकमेंसे सफेद, शीतल तथा अधिक कफ निकले, शरीरका सफेद वर्ण होजाय, नेत्र सुन्न होजायँ, मस्तक भारी होजाय और गलेमें तालुमें, होठमें तथा माथेमें खुजलीकी अत्यन्त पीडा हो तो जानना कि ' कफसे हुआ प्रतिश्याय' है ॥ २३ ॥

अथ त्रिदोषजप्रतिश्यायलक्षणम् । १४

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो यस्यायस्मान्निर्वर्तते । सम्पक्वो वाप्यपक्वो वा स च सर्वभवः स्मृतः ॥ २४ ॥

जो प्रतिश्याय उत्पन्न होकर पकनेके पश्चात् अथवा विना पकेही अकस्मात् बन्द होजाय, उस प्रतिश्यायको 'तीनों दोषके कोपसे हुआ' जानना ॥ २४ ॥

अत्र यद्यपि दोषत्रयलिङ्गानि न उक्तानि तथापि तानि ज्ञेयानि त्रिदोषजत्वादयमसाध्यः । अत एवाह—

नृणां दुष्टः प्रतिश्यायः सर्वजश्च न सिद्ध्यति ॥ २५ ॥

इन लक्षणोंमें "तीनों दोषोंके चिह्न होते" ऐसा कहा नहीं है, तो भी वह चिह्न होते हैं, ऐसा जानना । यह प्रतिश्याय त्रिदोषजनित होनेसे असाध्य है । कहा है कि "मनुष्योंको दुष्ट प्रतिश्याय हुआ हो और त्रिदोषके कोप होनेसे हो तो वह असाध्य है" ॥ २५ ॥

अथ दुष्टप्रतिश्यायलक्षणम् ।

प्रक्लिद्यते मुहुर्नासा पुनश्च परिशुष्यति । पुनरानह्यते वापि पुनर्विव्रियते तथा ॥ ॥ २६ ॥ निश्वासो वापि दुर्गन्धो नरो गन्धान्न वेत्ति च । एवं दुष्टं प्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २७ ॥

आनह्यते विबद्धा भवति । विव्रियते अविबद्धा स्यात् । क्लेदशोषविबन्धाविवृतत्वानि नैककालं भवन्ति, किन्तु यदा यदा यद्यद्दोषाधिक्यं भवति तदा तदा तत्तद्दोषकृतः स स बोद्धव्य इति न विरोधः । कृच्छ्रसाधनमसाध्यं च ॥

नाक बारंबार भीग जाय, बारम्बार बँधजाय, बारम्बार खुलजाय, श्वास दुर्गंधित निकले और दुर्गन्ध सुगन्धका ज्ञान नहीं रहे तो जानना दुष्ट प्रतिश्याय हुआ है । यह प्रतिश्याय कष्ट साध्य होता है और असाध्य भी होता है । नाकका गीला होना, सूखना और रुक जाना, ये एक समयमें ही हो ऐसा नहीं जानना, परन्तु जब जब जिस जिस दोषकी अधिकता हो तब तब उस उस दोषके अनुसार ये होते हैं, ऐसा जानना अर्थात् इस तरह किसी प्रकारका विरोध नहीं आता ॥

अथ रक्तजप्रतिश्यायलक्षणम् । १५

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते। पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिङ्गैश्चापि समन्वितः ॥ २८ ॥ ताम्राक्षश्च भवज्जन्तुरुरोघात-

प्रपीडितः । दुर्गन्धोच्छ्वासवक्त्रश्च गन्धानपि न वेत्ति सः ॥ २९ ॥

उरोघातप्रपीडितः-उरोघातेनेव प्रपीडितः ॥

जो प्रतिश्याय रुधिरसे हुआ हो तो रुधिर का स्राव होता है, पित्तसे हुए प्रतिश्यायके चिह्न भी दीखते हैं, आंखें लाल हो जाती हैं, जैसे हृदयमें चोट लगी हो, ऐसी पीडा होती है, मुखसे दुर्गंधित श्वास निकलता है और दुर्गन्ध सुगन्धका ज्ञान भी नहीं रहता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ चिकित्सामन्तरा सर्वप्रतिश्यायाः कालान्तरेणासाध्या भवन्तीत्याह ।

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः । दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥ ३० ॥

चिकित्सासे रहित रहनेवाले मनुष्योंके सब प्रतिश्याय कालान्तरमें दुष्टताको प्राप्त हो जाते हैं और जब दुष्ट हों, तब असाध्य होते हैं ॥ ३० ॥

अथ प्रतिश्यायदुष्टौ कृम्युत्पत्तिस्तल्लक्षणं च ॥

मूर्च्छन्ति कृमयश्चात्र श्वेताः स्निग्धास्तथाऽणवः । कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनात्र लक्षणम् ॥ ३१ ॥

अत्र एषु प्रतिश्यायेषु कफजा एव कृमयो भवन्तीति स्वेताः स्निग्धाश्च ॥

प्रतिश्यायोंमें कफसे सफेद और स्निग्ध बारीक २ कीडे होते हैं, इस कारण उन प्रतिश्यायोंके लक्षण कफजनित शिरोरोगके सदृश होते हैं ॥ ३१ ॥

अथ वृद्धिप्रतिश्यायादन्यरोगोत्पत्तिः ।

बाधिर्यमान्ध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान् । शोषाग्निमान्द्यकासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥ ३२ ॥

घोरांश्च नयनामयान् इतिवचनेपि आन्ध्यग्रहणं पुनर्विशेषार्थे । अघ्रत्वप्रन जिघ्रतीत्यघ्रस्तस्य भावोऽघ्रत्वम् ॥

प्रतिश्याय अधिक वृद्धिको प्राप्त हो जाय तो बधिरता, अन्धापन, अन्घ ग्रहण करनेकी अशक्ति, नेत्रोंके भयंकर रोग, शोष, अग्निकी मन्दता और खांसी ये विकार उत्पन्न होते हैं ॥ ३२ ॥

'नेत्रोंके भयंकर रोग' ऐसा कहनेसे अन्धताका समावेश होता है तो भी अन्धता पृथक कही, उसका कारण यह है कि, प्रतिश्यायोंसे अन्धता विशेष होती है, ऐसा बतलाना है ॥

अथ नासागतान्य-एकोनविंशतिरोगाः१३-३४॥

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोर्शश्चतुर्विधम् । चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः ॥ ३३ ॥

अर्बुदानि सप्त-वातपित्तश्लेष्मसन्निपातरक्तमांस मेदोजानि । शोथाश्चत्वारः-वातपित्तश्लेष्मसन्निपातजाः । अर्शांसि चत्वारि-वातपित्तश्लेष्मसन्निपातजानि । रक्तपित्तानि चत्वारि-वातपित्तश्लेष्मसन्निपातजानि । एतानि यथोक्तलिङ्गानि घ्राणेपि भवंति ॥

वातार्बुद, पित्तार्बुद, कफार्बुद, सन्निपातार्बुद, रक्तार्बुद, मांसार्बुद और मेदोर्बुद इस प्रकार नाकमें अर्बुद रोग सात प्रकारके होते हैं। वातशोथ, पित्तशोथ, कफशोथ, और सन्निपातशोथ इस रीतीसे नाकमें सूजन चार प्रकारकी होती है। वातार्श, पित्तार्श, कफार्श और सन्निपातार्श इस रीतिसे नाकमें अर्श चार प्रकारकी होती है। वातसम्बन्धी रक्तपित्त, पित्तसंबंधी रक्तपित्त, कफसम्बन्धी रक्तपित्त और सन्निपातसम्बन्धी रक्तपित्त इस रीतिसे नाकमें रक्तपिक्त चार प्रकारका होता है। अर्बुदोंके कारण आगे कहे हुए अर्बुदके अधिकारमेंसे, अर्शोंके लक्षण आगे कहे अर्शोंके अधिकारमेंसे, और रक्तपित्तके लक्षण आगे कहे रक्तपित्तके अधिकारमेंसे जानलेने३३

अथामपीनसलक्षणम् ।

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुस्वरः । क्षामः ष्ठीवति चाभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥ ३४ ॥

नासास्रावः तनुस्वरः क्षाम इत्यन्वयः ॥

माथेमें भारीपन हो, अरुचि हो, नाकमेंसे पतला स्राव होता हो, स्वर बिगडगया हो और वारम्बार थूक गिरता हो, तो जानना कि, पीनस कच्चा है ॥ ३४ ॥

अथ पक्वपीतसलक्षणम् ।

आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा घनः खेषु निमज्जति । स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्वपीनसलक्षणम् ॥ ३५ ॥

आमलिंगान्वितः श्लेष्मा—आमलिङ्गैः शिरोगुरुत्वादिभिर्युक्तः पश्चाद् घनः निविडः। अथवा खेषुनासारन्ध्रेषु निमज्जति मुक्तो ..वति । वर्णविशुद्धिः श्लेष्मणः प्रकृतवर्णता ॥

मस्तकके भारीपन इत्यादिक चिह्न कि, जो कच्चे पीनसके हैं, उनसे युक्त, कफ गाढा हो अथवा नाकके छिद्रोंमें रुकजाय, शब्द मुखसे शुद्ध निकले और कफका वर्ण स्वाभाविकहो जाय तो जानना कि, पीनस पकगया है ॥३५॥

अथ नासारोगचिकित्सा ।

सर्वेषु सर्वकालं पीनसरोगेषु जातमत्रेषु। मरिचं गुडेन दध्ना भुञ्जीत नरः सुखं लभते ॥ ३६ ॥

सर्व प्रकारके पीनस (नाकके रोग) उत्पन्न होते ही तत्काल सदा गुडके और दहीके साथ मिरच खावे तो मनुष्योंको सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी व्योषं यासश्च कारवी । एषां चूर्णं कषायं वा दद्यादार्द्रकजै रसैः ॥ ३७ ॥ पीनसे स्वरभेदे च तमके च हलीमके। सन्निपाते कफे कासे ज्वरे श्वासे च शस्यते ॥ ३८ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडाशिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा और अजवायन इनका चूर्ण अथवा इनका क्वाथ (काढा) अदरखके रसके साथ देवे तो पीनस, स्वरभेद, तमकश्वास, हलीमक, सन्निपात, कफ, खांसी, ज्वर और श्वास ये रोग शान्त होते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षास्वरसकट्फलैः। कुष्ठोग्रशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ३९ पीनसादिषु ॥

इन्द्रजौ, हींग, मिरच, लाखका स्वरस, कायफल, कूठ, वच, सहिजना और बायविडंग इनका अवपीड नस्य देवे तो पीनस आदिरोग नष्ट होते हैं ॥ ३९ ॥

अथ व्योषादिवटी ।

व्योषचित्रकतालीसतिन्तिडी काम्लवेतसम् । सचव्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रकादिकम् ॥ ४० ॥ व्योषादिकमिदं चूर्णं पुराणगुडामिश्रितम् । पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ ४१ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, तालीसपत्र, तिन्तिडीक, अमलवेत चव और जीरा इनको समान भाग लेवे और इलायची, तेजपात दालचीनी इनको चतुर्थांश लेवे, इन सबका, चूर्ण कर इनकी पुराने गुडमें गोली बनाकर खावे तो इससे पीनस, श्वास तथा खाँसी नष्ट होजाती है, रुचि उत्पन्न होती है और स्वर उत्तम होता है, इन गोलियोंको 'व्योषादिवटी' नामसे कहते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ व्याघ्रीतैलम् ।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योषसिन्धुजैः । सिद्धं तैलं नसि क्षिप्तं पूतिनासागदापहम् ॥ ४२ ॥

कटेरीकी जड, दन्ती, वच, सहिञ्जना, तुलसी, सोंठ, मिरच, पीपल और सेंधानमक इनके कल्कसे पकाये हुए तेलका नस्य देवे तो पूतिनस्य नष्ट होजाता है। यह 'व्याघ्रीतैल' कहाता है ॥ ४२ ॥

शिग्रुसिंहीनिकुम्भानां बीजैः सव्योषसैन्धवैः। बिल्वपत्ररसैः सिद्धं तैलं स्यात् पूतिनस्यनुत् ॥ ४३ ॥

निकुम्भो दन्ती। पूतिनस्यनुत्स्यात् ॥

सहँजनेके बीज, दन्तीके बीज (जमालगोटा), सोंठ, मिरच, पीपल और सैंधानिमक इनके कल्कसे, बेलके पत्तोंसे पकाये हुए तेलका नस्य देवे तो इससे पूतिनस्य नष्ट होता है, यह 'शिग्रूतैल' कहाता है ॥ ४३ ॥

घृतगुग्गुलुमिश्रस्य सिक्थकस्य प्रयत्नतः। धूमं क्षवथुरोगघ्नं भ्रंशथुघ्नं च निर्दिशेत् ॥ ॥ ४४ ॥ शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत्। तैलं पक्वमथाज्यं वा नस्यात् क्षवथुनाशनम् ॥ ४५ ॥

घी, गूगल तथा मोम मिलाकर इनका प्रयत्नसे धूमपान करे तो क्षवथु तथा भ्रंशथु नष्ट होता है। सोंठ, कूठ, पीपल, बेल और दाख इनके कल्कसे इनके ही क्वाथ पकाये हुए तेलका अथवा घीका नस्य देवे तो इससे क्षवथुका नाश होता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

नस्यं हितं निम्बरसाञ्जनाभ्यां दीप्तौ शिरस्वेदनमल्पशस्तु। नस्ये कृते क्षीरजलावसेकाच्छंसन्ति भुञ्जीत च मुद्गयूषैः ॥ ४६ ॥

नीम और रसौत इनका नस्य देवे और मस्तकमें थोडा सेक करे तो दीप्तिनामक नाकका रोग नष्ट होता है, नस्य देनेके पश्चात् दूध और जलका सेचन करे और मूँगके यूपके साथ भोजन करे ॥ ४६ ॥

नासास्रावे घ्राणयोश्चूर्णमुक्तं नाड्या देयं येऽवपीडाश्च पथ्याः। तीक्ष्णान्धूमान्देवदार्वग्निकाभ्यां मांसं त्वाजं पथ्यमप्यादिशन्ति ॥ ४७ ॥

नासास्राव हुआ हो तो कही औषधियोंका चूर्ण नलीसे नाकमें डाले, हितकारी अवपीडन नस्य देवे, देवदार तथा चीतेका तीक्ष्ण धुआँ पिलावे और बकरेका मांस खिलावे ॥ ४७ ॥

प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं वातविवर्जितम्। वस्त्रेण गुरुणा तेन शिरसो वेष्टनं हितम् ॥ ४८ ॥

सम्पूर्ण प्रकारके प्रतिश्यायोंमें विना पवनके घरमें रहना और मस्तकको गाढे कपडसे बंधा रखना यह हितकारी होता है ॥ ४८ ॥

विडङ्गं सैन्धवं हिंगु गुग्गुलुःसमनःशिलः। वचैतच्चूर्णमाघ्रातं प्रतिश्यायं विनाशयेत्। घृततैलसमायुक्तं सक्तुधूमं पिबेन्नरः। स धूमः स्यात्प्रतिश्यायकासहिक्काहरः परः ॥ ४९ ॥

वायविडंग, सैंधानोंन, हींग, गूगल, मैनशिल और वच इनका चूर्ण सूंघे तो प्रतिश्यायका नाश होता है, घीसे तथा तेलसे संयुक्त किये सत्तुओंका धुआं पीवे तो प्रतिश्याय, खांसी और हिचकी ये अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ४९ ॥

प्रतिश्याये पिबेद्धूमं सर्वगन्धसमायुतम्। चातुर्जातकचूर्णं वा घ्रेयं वा कृष्णजीरकम् ॥ ५० ॥

कृष्णजीरकमत्र 'कलौञ्जी'

तेजपात, इलायची तथा दालचीनी आदि सब सुगंधित पदार्थोंका धुआं पिये अथवा तेजपात, इलायची, दालचीनी और नागकेशर इनका चूर्ण सूँघे अथवा कलौंजीके जीरेका चूर्ण सूँघे तो प्रतिश्याय नष्ट होता है ॥ ५० ॥

पुटपक्वं जयापत्रं तैलसैन्धवसंयुतम्। प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ ५१ ॥

जया विजया 'भङ्ग' इतियावत् । शीलितं-भुक्तम् ।

भांगके पत्तोंको पुटपाकसे पकाकर तेलके और सैंधेनोनके साथ खानेका अभ्यास रक्खे तो सम्पूर्ण प्रकारके प्रतिश्याय अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ५१ ॥

पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गमरिचानि च । अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्याय-निवारणे ॥ ५२ ॥

पीपल, सहँजनेके बीज, वायविडंग और मिरच, इनका अवपीड नस्य देवे तो प्रतिश्याय नष्ट होता ॥ ५२ ॥

शिरसोऽभ्यञ्जनैः स्वेदैर्नस्यैर्मन्दोष्णभो-जनैः । वमनैर्घृतपानैश्च तान्यथास्वमु-पाचरेत् ॥ ५३ ॥

स्वेदन करनेसे, मस्तकमें तेल मर्दन करनेसे, नस्य देनेसे, किंचित् गरम भोजनसे, वमन करानेसे, और घी पिलानेसे योग्यता देखकर प्रतिश्यायके ऊपर उपचार करे ॥ ५३ ॥

क्रिमिघ्ना ये क्रमाः प्रोक्तास्तान्वै क्रिमिषु योजयेत् । नावनानि कृमिघ्नानि भेष-जानि च बुद्धिमान् ॥ ५४ ॥

प्रतिश्यायमें कीडे पडे हों तो बुद्धिमान् वैद्य क्रिमि नाशक जो जो उपाय, नस्य अथवा औषधि कही हैं उनका प्रयोग करे ॥ ५४ ॥

रक्तपित्तानि शोथांश्च तथाऽर्शांस्यर्बुदानि च । नासिकायां स्युरेतेषां स्वं स्वं कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ ५५ ॥

नाकमें रक्तपित्त, सूजन, अर्श अथवा अर्बुद हो तो उनके लिये उस उस अधिकारमें जो जो चिकित्सा कही हैं उन उनको करे ॥ ५५ ॥

गृहधूमकणादारुक्षीरनक्ताह्वसैन्धवैः । सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥ ५६ ॥

इति नासारोगाधिकारः ।

घरका धुआँ, पीपल, देवदारु, दूध, करंज, सैंधानोन और चिरचिटेके बीज इनसे पकाया हुआ तेल नाकके अर्शोंपर हितकारी है ॥५६॥

इति नासारोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मुखरोगाधिकारः ।

तत्र मुखस्वरूपम् ।

ओष्ठौ च दन्तमूलानि दन्तजिह्वे च तालु च । गलो मुखानि सकलं सप्ताङ्गं मुखमुच्यते ॥ १ ॥

ऊपर नीचेके होठ, दांतोंके मसूढे, दांत, जीभ, तालु और गला ये सात अंग मिलनेसे मुख कहाता है ॥ १ ॥

अथ मुखरोगसंख्या ।

स्युरष्टावोष्ठयोर्दन्तमूले तु दश षट् तथा । दन्तेष्वष्टौ च जिह्वायां पञ्च स्युर्नव तालुनि ॥ २ ॥ कण्ठे त्वष्टादश प्रोक्ता-स्त्रयः सर्वेषु च स्मृताः । एवं मुखामयाः सर्वे सप्तषष्टिर्मता बुधैः ॥ ३ ॥

होठोंमें आठ रोग, दांतोंकी जडमें सोलह रोग दांतोंमें आठ रोग, जीभमें पांच रोग, तालूमें नौ रोग गलेमें अठारह रोग और सम्पूर्ण मुखमें तीन रोग इस प्रकार मुखमें सम्पूर्ण ६७ रोग हैं ॥ २-३ ॥

अथ मुखरोगनिदानम् ।

आनूपपिशितक्षारदधिमाषादिसेवनात् । मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाःकफो-त्तराः ॥ ४ ॥

अनूपदेशके प्राणियोंका मांस सेवन करनेसे, क्षारोंके सेवनसे, दहीके सेवनसे और उडद आदिके सेवनसे प्रकुपित हुए कफादि दोष मुखके रोगों को उत्पन्न करते हैं ॥ ४ ॥

अथौष्ठरोगनिदानपूर्वकसंख्या।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च रक्तजो मांसजस्तथा। मेदोजश्चाभिघातोत्थ एवमष्टौष्ठजा गदाः॥ ५॥

१ वात, २ पित्त, ३ कफ, ४ तीनों दोष, ५ रुधिर, ६ मांस, ७ मेदा और ८ अभिघातसे उत्पन्न हुए इस भांति होठके आठ रोग हैं॥५॥

अथ वातजौष्ठरोगलक्षणम्। १

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ संप्राप्तानिलवेदनौ। दाल्येते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः॥ ६॥

परुषौ- रूक्षौ। दाल्येते–विदार्येते। परिपाठ्यतेकिञ्चिद्विदीर्णत्वचौ क्रियेते॥

दोनों ओष्ठ खरखरे, रूक्ष, स्तब्ध (जकडेसे,) तीव्रवेदनायुक्त, चिरे हुए और किंचित् फटे हुए चमडेवाले हों तो 'वायुसे उत्पन्न हुआ ओष्ठरोग' जानना॥ ६॥

अथ पित्तजौष्ठरोगलक्षणम्। २

चीयेते पिडिकाभिस्तु सरुजाभिः समन्ततः। सदाहपाकपिडकौ पीताभासौ च पित्ततः॥ ७॥

सरुजाभिः--पैत्तिकरुगन्विताभिः॥

दोनों ओष्ठ चारों ओर पित्तसम्बन्धी पीडा करने वाली फुंसियोंसे घिर जायँ, वर्ण पीला होजाय और उन फुंसियोंमें दाह हो तथा वे फुंसियाँ पकें तो 'पित्तसे' हुआ ओष्ठरोग' जानना॥ ७॥

अथ कफजौष्ठरोगलक्षणम्। ३

सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडिकाभिरवेदनौ। कण्डूमन्तौ कफाच्छ्वेतौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू॥ ८॥

दोनों होंठ शरीरके चमडेके सदृश वर्णवाली फुडियोंसे व्याप्त होजायँ, अल्प वेदना हो, खुजली, सफेदी चिकनापन होजाय, शीतल तथा भारी होजायँ तो 'कफसे हुआ ओष्ठरोग' जानना॥ ८॥

अथ त्रिदोषजौष्टरोगलक्षणम्। ४

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च। सन्निपातेन विज्ञेयावनेकापिडकान्वितौ॥ ९॥

दोनों ओष्ठ किसी समय काले, किसी समय पीले किसी समय सफेद और अधिक फुडियोंसे युक्त हो जायँ तो ये 'तीनों दोषोंसे युक्त हुए ओष्ठरोगके लक्षण' जानने॥ ९॥

अथ रक्तजौष्ठरोगलक्षणम्।

खर्जूरफलवर्णाभिः पिडिकाभिर्निपीडितौ। रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवन्तौ शोणितप्रभौ॥ १०॥

दोनों होंठ खजूरके फलके सदृश वर्णवाली फुंसियोंसे पीडित, रुधिरके स्राववाले और लाल प्रभावाले हो जायँ तो 'रुधिरसे हुए ओष्ठके रोग' जानने॥ १०॥

अथ मांसजौष्ठरोगलक्षणम्। ६

मांसदुष्टौ गुरू स्थूलौ मांसपिण्डवदुद्गतौ। जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात्॥ ११॥

जन्तवः--कृमयः। मूर्च्छन्ति--वर्द्धते। मुखादुभयतः--सृक्विकण्योः॥

दोनों ओष्ठ भारी, मोटे और मांसके पिंडके सदृश ऊँचे होजायँ और उन दोनों होंठोंमें अथवा होंठोंके समीपके भागोंमें कीडे पडजायँ तो 'मांससे हुए होंठके रोग' जानने॥११॥

अथ मेदोजौष्ठरोगलक्षणम्। ७

सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ मृदू। स्वच्छस्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो भृशम्॥ १२॥

दोनों ओष्ठ घीकी पपडीके समान, खुजलीवाले, कोमल और स्वच्छ स्फटिकके सदृश, स्रावसे युक्त हों तो 'मेदसे हुए ओष्ठरोग' जानने ॥ १२ ॥

अथाभिघातजौष्ठरोगलक्षणम् । ८

क्षतजाभौ विदीर्येते पीड्येते चाभिघाततः । मथितौ च समाख्यातावोष्ठौ कण्डूसमन्वितौ ॥ १३ ॥

मथितौ--मृदिताविव । अत एव क्षतजाभौ रुधिराभाविति सङ्गतम् ॥

दोनों होंठ चोट लगनेसे मानो चिरेसे गये हों, इसी कारणसे रुधिरके समान वर्णवाले हो जायँ, पीडा हो, अथवा चिर जायँ और खुजली हो तो जानना कि, ओठोंमें चोट लगी' है ॥ १३ ॥

अथौष्ठरोगचिकित्सा ।

गलदन्तमूलदशनच्छदेषु रोगाः कफास्रभूयिष्ठाः । तस्मादेतेष्वसकृद्रुधिरं विस्रावयेदुष्णम् ॥ १४ ॥

गलेमें, दांतोंकी जडमें और और ओठोंमें जो रोग होते हैं, उनमें कफ और रुधिरकी प्रधानता होती हैं; इस कारण इन रोगोंमें बारंबार गरम गरम दुष्ट रुधिर निकलवाना चाहिये ॥ १४ ॥

चतुर्विधेन स्नेहेन मधूच्छिष्टयुतेन च । वातजेऽभ्यञ्जनं कुर्यान्नाडी स्वेदश्च बुद्धिमान् ॥ १५ ॥

चतुर्विधेन स्नेहेन–तैलघृतवसामज्जारूपेण ॥

वायुसे हुए ओष्ठरोग हों तो चार प्रकारके स्नेह (घृत, तेल, वसा और मज्जा) में मोम डालके मालिश करे अथवा नाडीस्वेद करे॥१५॥

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनञ्च । शीताः प्रदेहाः परिषेचनं च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् १६

पित्तसे हुए ओष्ठरोग हों तो नस छेदकर रुधिर निकाले, वमन करावे, विरेचन देवे, तिक्तक नामवाला घी पिलावे, मांसका रस खिलावे शीतल लेप करे और शीतल सेचन करे ॥ १६ ॥

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवल एव च। हृते रक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥ १७ ॥

कफसे हुए ओष्ठोंके रोग हों तो रुधिर निकलवानेके पीछे शिरोविरेचन (मस्तकको दोषोंसे खाली करनेका उपाय) देवे, धुआँ पिलावे, स्वेदन करे और कुल्ले भी करावे ॥ १७ ॥

मेदोजे शोधिते स्विन्ने स्वेदिते कवलो हितः । प्रियङ्गुत्रिफलालोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥ १८ ॥

मेदसे हुए ओष्ठ रोग हों तो विरेचन आदिसे शोधन करे शस्त्रसे भेदन करावे, सेंक करे कुल्ले करावे और प्रियंगु, हरड, बहेडा, आमले तथा लोध इनको सहतमें मिलाकर ओठोंपर प्रतिसारण विधि करे ॥ १८ ॥

अथ प्रतिसारणविधिः

दन्तजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः । शनैर्घर्षणमङ्गुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ १९ ॥ ओष्ठरोगेष्वशेषेषु दृष्ट्वा दोषमुपाचरेत् । तेषु व्रणत्वं यातेषु व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ २० ॥

अंगुलीसे चूर्ण, कल्क अथवा अवलेह लेकर दातोंको जीभको तथा मुखको धीरे धीरे घिसे, इसको 'प्रतिसारण' कहते हैं। ओष्ठके सम्पूर्ण प्रकारके रोगोंमें दोषका निश्चय करके उस दोषको नष्ट करे, ऐसा प्रतिसारण करावे । जो ओठोंके रोग व्रणरूप होजायँ तो उनकी व्रणके समान ही चिकित्सा करे ॥ १९॥२० ॥

अथ दन्तवेष्टरोगाणां नामानि संख्या च ।

शीतादो गदितः पूर्वं दन्तपुप्पुटकस्तथा । दन्तवेष्टः सौषिरश्च महासौषिर

एव च ॥ २१ ॥ ततः परिदरः प्रोक्त-स्ततस्तूपकुशः स्मृतः । वैदर्भश्च ततः प्रोक्तः खल्लीवर्द्धन एव च ॥ २२ ॥ अधिमांसकनामा च दन्तनाड्यश्च पञ्च च । दन्तविद्रधिरप्यत्र दन्तवेष्टेषु षोडश ॥ २३ ॥

१ शीताद, २ दन्तपुप्पट, ३ दन्तवेष्ट, ४ सीषिर, ५ महासौषिर, ६ परिदर, ७ उपकुश, ८ वैदर्भ, ९ खल्लीवर्धन, १० अधिकमांसक, ११–१५ पांच प्रकारकी दन्तनाडी और १६ दन्तविद्रधि इसप्रकार दातोंकी जडमें सोलह रोग होते हैं ॥ २१–२३ ॥

अथ शीतादलक्षणम् । १

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते । दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥ २४ ॥ दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम् । शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसम्भवः ॥ २५ ॥

दन्तवेष्टेभ्यः–दन्तवेष्टनमांसेभ्यः । अकस्मादभिघातं विनाशीर्यन्त पतन्ति । पचंति च परस्परंपाकोष्मणा मांसानि शोणितं पचंति ॥

दांतोंकी जडमेंसे विना अभिघात अकस्मात् ही रुधिर निकले, मसूडोंका मांस दुर्गन्धवाला, काला, गिलगिला तथा कोमल होकर गिरे और पकनेकी गरमीसे रुधिर पकने लगे, उसको 'शीताद' कहते हैं । यह रोग कफके तथा रुधिरके प्रकोपसे होता है ॥ २४॥२५ ॥

अथ दन्तपुप्पुटकलक्षणम् । २

दन्तयोस्त्रिषु वाप्यत्र श्वयथुर्जायते महान् । दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ २६ ॥

दो दांतोंमें अथवा तीन दाँतोंमें अधिक सूजन उत्पन्न हो, उस रोगको 'दन्तपुप्पुटक' कहते हैं । यह रोग कफके और रुधिरके प्रको' पसे होता है ॥ २६ ॥

अथ दन्तवेष्टलक्षणम् । ३

स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च । दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः ॥ २७ ॥

अत्र दन्तमूलानीति कतृपदमध्याहरणीयम् ॥

मसूढोंमेंसे रुधिर अथवा राध (पीव) निकले और दांत हलजायँ, इस रोगको 'दन्तवेष्ट' कहते हैं । यह रोग रुधिरके बिगडनेसे होता है ॥ २७ ॥

अथ सौषिरलक्षणम् । ४

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान् कफवातजः । लालास्रावी च कण्डूरः स ज्ञेयः शौषिरो गदः ॥ २८ ॥

मसूढोंमें पीडासहित, लार गिरानेवाला और खुजलीसहित जो सूजन हो, उस रोगको 'सौषिर' कहते हैं । यह रोग कफके तथा वायुके प्रकोपसे होता है ॥ २८ ॥

अथ महासौषिरलक्षणम् । ५

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते । दन्तमांसानि पच्यन्ते मुखश्च परिवाप्यते । यस्मिन्स सर्वजोव्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः ॥ २९ ॥

तालु चाप्यवदीर्यते चकाराद्दन्तवेष्टश्चाप्यवदीर्यते । सप्तरात्रान्मारकश्चायम् । यत आह भोजः—"महासौषिर इत्येष सप्तरात्रान्निहन्त्यसून्"॥३०॥ इति

मसूढोंमें दांत हिलने लगें, तालू और मसूढे फटने लगें, मसूढे पकजायँ और मुख अत्यन्त पीडित हो, इस रोगको 'महासौषिर' कहते हैं । यह रोग तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है । यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मारदेता है

क्योंकि, भोज कहता है कि–" यह महासौषिर रोग सात रात्रिमें प्राणोंका नाश कर देता है " ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ परिदरलक्षणम् । ६

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन् ष्ठीवति चाप्यसृक् । पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ ३१ ॥

दांतोंका मांस विखर जाय और थूकमें रुधिर निकले, इस रोगको ' परिदर ' कहते हैं । यह रोग पित्त रुधिर और कफके प्रकोपसे होता है ॥ ३१ ॥

अथोपकुशलक्षणम् । ७

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च । आघट्टिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनम् ॥ ३२ ॥ आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखं पूति च जायते । यस्मिन्नुपकुशः स स्यात्पित्तरक्तसमुद्भवः ॥ ३३ ॥

आघट्टिताः–घृष्टाः ॥

मसूढोंमें दाह हो और पकजायँ, दांत हिलने लगें, मन्द वेदनायुक्त रुधिरका स्राव हो और रुधिरके स्राव होनेपर मुख सूज जाय तथा दुर्गन्ध अति लगे, इस रोगको ' उपकुश ' कहते हैं । यह रोग पित्त तथा रुधिरके प्रकोपसे होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ वैदर्भलक्षणम् । ८

घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान् । चलन्ति च रदा यस्मिन् स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ ३४ ॥

संरम्भः–शोथः । चलन्ति चेति चकाराद्वेदनादाहपाकाः ॥

मसूढोंके घिसनेसे अत्यन्त सूजन हो, दांत हिलने लगें और वेदना हो तथा पाक और दाह हो, इस रोगको ' वैदर्भ ' कहते हैं । यह रोग काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे होता है ॥ ३४ ॥

अथ खल्लीवर्द्धनलक्षणम् । ९

मारुतेनाधिका दन्तो जायते तीव्रवेदनः । खल्लीवर्द्धनसंज्ञोऽसौ सञ्जाते रुक्प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥

सञ्जाते–दन्ते ॥

दांतके ऊपर अधिक दांत जम आवे और उत्पन्न होते समय विशेष पीडा हो, उत्पन्न होनेके पीछे पीडा शांत होजाय उस रोगको ' खल्लीवर्द्धन ' कहते हैं । यह वायुके प्रकोपसे होता है ॥ ३५ ॥

अथाधिमांसलक्षणम् । १०

हानव्ये पश्चिमे दन्ते महाशोथो महारुजः । लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥ ३६ ॥

हानव्ये–हनुभवे । पश्चिमे दन्ते–अन्त्यजे ॥

नीचेकी पीछेकी डाढमें घोर पीडायुक्त स्रावसहित भारी सूजन उत्पन्न हो, उस रोगको ' अधिमांस ' कहते हैं । यह कफके प्रकोपसे होता है ॥ ३६ ॥

अथ पञ्चविधदन्तनाडीलक्षणम् । ११-१५

दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥ ३७ ॥

यथा नाडीव्रणे वातपित्तकफसन्निपातागन्तुनिमित्ताः पञ्च नाड्याकथितास्तथा अत्रापीत्यर्थः ॥

जिस प्रकार नाडीव्रणमें वात, पित्त, कफ, सन्निपात और शल्यसे उत्पन्न हुई पांच प्रकारकी नाडी कही हैं, ऐसेही पांच प्रकारकी नाडी दांतोंके मसूढोंमें कही है; इस कारण इनके लक्षण नाडीव्रणाधिकारमें कहे अनुसार जानना ॥ ३७ ॥

अथ दन्तविद्रधिलक्षणम्। १६

दन्तमांसमलैः सास्त्रैर्बाह्यतः श्वयथुर्महान्। सदाहरुक्स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दन्तविद्रधिः ॥ ३८ ॥

दन्तमांसमलैर्दन्तवेष्टगतदोषैः। सास्त्रैः सरक्तैर्हेतुभिः ॥

मसूडोंमें स्थित वात, पित्त, कफ और रुधिर इन दोषोंके कारण बाहर दाह तथा वेदनायुक्त महासूजन उत्पन्न होती है और उसको छेदनेसे राध तथा रुधिर निकलता है, इस रोगको 'दन्तविद्रधि' कहते हैं ॥ ३८ ॥

अथ शीतादादिरोगचिकित्सा।

शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान्। निष्क्वाथ्य त्रिफलां चापि कुर्याद्गण्डूषधारणम् ॥ ३९ ॥

शीतादरोग हुआ हो तो रुधिर निकलवाकर पश्चात् जलमें सोंध, सरसों, हरड, बहेडा और आमले इनका क्वाथ कर उस क्वाथसे कुल्ले धारण करे ॥ ३९ ॥

कासीसलोध्रकृष्णामनःशिलाप्रियङ्गुतेजोह्वाः। एषां चूर्णं मधुयुक्छीतादे पूतिमांसहरम् ॥ ४० ॥

तेजोह्वा 'तेजवल्कल' इति लोके ॥

हीराकसीस, लोध, पीपल, मैनशिल, फूलप्रियंगू और तेजबल इनका चूर्ण बनाकर सहतमे मिलाकर उपयोग करे तो शीतादसे सडा हुआ मांस दूर हो जाता है ॥ ४० ॥

तैलं घृतं वा वातघ्नं शीतादे सम्प्रशस्यते ॥

वायुको हरनेवाले तेलका और घीका उपयोग करनेसे शीताद रोग नष्ट होता है ॥

दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् ॥ ४१ ॥

दन्तपुप्पुटरोग उत्पन्न हो तो तत्कालही उनमेंसे रुधिर निकलवावे ॥ ४१ ॥

सपञ्चलवणक्षारः सक्षौद्रः प्रतिसारणम्। शिरोविरेकश्च हितो नस्यं स्निग्धं च भोजनम् ॥ ४२ ॥

पांचों निमकके साथ जवाखारको सहतमें मिलाकर प्रतिसारण करे, मस्तकको खाली करनेवाला नस्य देवे और स्निग्ध भोजन करावे, यह परमहितकारक है ॥ ४२ ॥

विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणं तु प्रतिसारयेत्। पतङ्गलोध्रमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधुप्लुतैः ॥ ४३ ॥

प्रतिसारयेदंगुल्या घर्षयेत्। 'पतंगश्लोक' इति लोके ॥

दन्तवेष्ट हुआ हो तो उसमेंसे रुधिर निकालकर उस व्रणके ऊपर अंगुलीसे लोध, मुलहठी और लाख इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर खूब घिसे ॥ ४३ ॥

गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः। चलदन्तस्थिरकरं कार्यं बकुलचर्वणम् ॥ ४४ ॥

वटादि पंच क्षीरी वृक्षोंका क्वाथ बनाकर उसमें सहत, घी तथा मिश्री डालकर उससे कुल्ले करे और मौलसरीकी छालको चर्वण करे तो हिलते हुए दांत स्थिर होजाते हैं ॥ ४४ ॥

अथ मुस्तादिवटिका।

भद्रमुस्ताभयाव्योषविडङ्गारिष्टपल्लवैः। गोमूत्रपिष्टैर्गुटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ ४५ ॥ तां निधाय मुखे सुप्याच्चलदन्तातुरो नरः। नातः परतरं किञ्चिच्चलदन्तस्य भेषजम् ॥ ४६ ॥

नागरमोथा, हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग और नीमके पत्ते इनको गोमूत्रमें पीसकर गोली बनाकर छायामें सुखावे। इन गोलियोंको मुखमें रखकर सो जावे तो हिलते

हुए दांत स्थिर हो जाते हैं । हिलते हुए दांतोंवाले मनुष्यके लिये इस औषधिसे अधिक अन्य औषधि फलदायक नहीं है । यह गोली 'मुस्तादिवटिका कही जाती है ॥ ४५-४६ ॥

अथ सहचराद्यतैलम् ।

तुलाधृतं नीलसहाचरन्तु द्रोणाम्भसा संश्रपयेद्यथावत् । ततश्चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनै रर्द्धपलप्रमाणैः ॥ ४७ ॥ कल्कैरनन्ताखदिरेरिमेदजम्ब्वाम्रयष्टी--मधुकोत्पलानाम् । तत्तैलमाज्यञ्च धृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां विदधातिसद्यः ४८

नीलसहाचरः (नीलपुष्पकटसरैया) । अनन्ता दुरालभा, तदलाभे यवासो ग्राह्यः । इरिमेदः–दुर्गन्धखदिरः ॥

नीले फूलोंका पियाबांसा ४०० चारसौ तोले लेकर एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उसमें धमासा, खैर, दुर्गन्धित खैर, जामुनके पत्ते, आमके पत्ते, मुलहठी और कमल ये प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर कल्क बना उसमें डालकर उसमें तेल अथवा घीको धीरे २ पकावे, जो धमासा न मिले तो जवासा ले लेवे, इस तेलको अथवा घीको मुखमें रखनेसे इससे तत्काल दांत स्थिर हो जाते हैं । यह तेल अथवा घी ' सहचराद्य ' कहा जाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सौषिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तारसाञ्जनैः । सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः । क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः ॥ ४९ ॥

सौषिर उत्पन्न हुआ हो तो उसमेंसे रुधिर निकलवाकर पश्चात् लोध, नागरमोथा और रसौत इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर लेप करे और बड़आदि क्षीरी वृक्षोंके क्वाथका कुल्ला करे । परिदर हुआ हो तो विचक्षण वैद्य शीतादिके समान चिकित्सा करे ॥ ४९ ॥

संशोध्योभयतः कार्याः शिराश्चोपकुशे तथा ॥ ५० ॥ काकोदुम्बरिकापत्रैर्व्रणं विस्रावयेद्भिषक् । लक्षणैः क्षौद्रयुक्तैश्च सव्योषैः प्रतिसारयेत् ॥ ५१ ॥

उपकुश हुआ हो तो प्रथम संशोधन करके पश्चात् दोनों तरफ मुख करे, व्रणोंको कठूमरके पत्तोंसे राध और रुधिर निकलवाकर पांचों निमक, सोंठ, कालीमिर्च तथा पीपल । इनको सहतमें मिलाकर प्रतिसारण करे ५०-५१

शस्त्रेणोद्धृत्य वैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत् । ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ ५२ ॥

वैदर्भ हुआ हो तो उसको शस्त्रसे चीरकर मसूढोंको शुद्ध करे, फिर क्षार लगावे और सम्पूर्ण शीतल क्रिया करे ॥ ५२ ॥

उद्धृत्याधिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत् । कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विजानता ॥ ५३ ॥

खल्लीवर्द्धन हुआ हो तो अधिक दांतको उखाडकर फिर अग्निसे दाग देवे और कृमिदन्तक रोगके लिये जो चिकित्सा कही है, वे सब करनी चाहिये ॥ ५३ ॥

छित्त्वाऽधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत् । वचातेजोवतीपाठास्वर्जिकायावशूकजैः ॥ ५४ ॥

तेजोवती-तेजोवल्कलः स्वर्णजीवन्ती च ॥

अधिमांसक हुआ हो तो उसको चीरकर वच, तेजबल, पाढ, सज्जो और जवाखार इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर इसका उपयोग करे ॥ ५४ ॥

क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवले चात्र कीर्तिताः ॥५५॥ पटोलनिम्बत्रिफलाक-

षायश्चात्र धावने। नाडीव्रणहरं कर्म दन्त नाडीषु कारयेत्॥ ५६॥

पीपलके चूर्णको सहतमें मिलाकर उसका केवल धारण करे और धोनेके लिये कडवे परवल, नीम और त्रिफलेके क्वाथका प्रयोग करे॥ ५५॥ ५६॥

यद्दन्तमध्ये जायेत नाडीदन्तं तदुद्धरेत्॥ ५७॥

सर्व प्रकारकी दन्तनाडियोंमें नाडीव्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये॥ ५७॥

छित्त्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत्। उद्धृत्य च दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा॥ ५८॥ भिनत्त्युपेक्षिते दन्ते हनुमस्थिगतिर्ध्रुवम्। समूलं दशनं तस्मादुद्धरेद्भग्नमस्थि च॥ ५९॥ उद्धृते चोत्तरे दन्ते शोणितं प्रस्रवेदति। रक्तातिषेकात् पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति हि॥६०॥ काणः सञ्जायते जन्तुरर्दितं तस्य जायते। चलमप्युत्तरं दन्तमतो नैवोद्धरेद्भिषक्। धावनं जातिमदनस्वादुकण्टकखादिरैः॥ ६१॥

कषायैरिति शेषः॥

जो दांतके भीतर नाडी हो तो दांतके मसूढोंको शस्त्रसे चीरकर दांतको उखाडलेवे, किन्तु ऊपरके दांतको न उखाडे, यह प्रयोग नीचेके दांतके लिये कहा है। दांतको उखाडकर उसके ऊपर क्षार बुरकावे अथवा अग्निसे दाग देवे, इस दांतकी उपेक्षा करनेसे अवश्य ठोढीकी हड्डीमें राध निकलने लगती है, जिससे वह हड्डी नष्ट हो जाती है। इस कारण दांतको जड सहित उखाड डाले और टूटी हुई हड्डीको भी निकाल डाले। जो ऊपर की पंक्तिका दांत उखाडे तो रुधिरका अत्यन्त स्राव होता है, रुधिरके अतियोगसे पूर्वोक्त भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं, काणापन और अर्दितरोग होता है, अतएव जो ऊपरका दांत हिलता भी हो तो वैद्य उसको उखाडे नहीं॥ ५८-६१॥

अथ जात्यादितैलम्।

कषायैर्जातिमदनकण्टकीस्वादुकण्टकैः॥ ६२॥ मञ्जिष्ठालोध्रखदिरयष्ठ्याह्वैश्चापि यत्कृतम्। तैलं यत्साधितं तत्तु हन्याद्दन्तगतां गतिम्॥ ६३॥

जात्यादिचतुष्टयस्य कषायेण मंजिष्ठादिचतुष्टयस्य च कषायेण तैलमिदं पचेत्। जाती 'चम्बेली' इति लोके। तस्याः पत्रं ग्राह्यम्। मदनो धत्तूरस्तस्यापि पत्रमत्र ग्राह्यम्। कण्टकी (वडीकटैया) तस्याः मूलं ग्राह्यम्। स्वादुकण्टको गोक्षुरस्तस्य पंचांगं ग्राह्यम्॥

विद्रध्युक्तं विधियुतं विदध्याद्दन्तविद्रधौ। शस्त्रकर्म नरस्तत्र कुशलो नैव कारयेत्॥ ६४॥

चमेलीके पत्ते, धतूरेके पत्ते, कटेरीकी जड और गोखरूका पंचांग इनके क्वाथमें तथा खैर, मञ्जीठ, लोध और मुलहठी इनके क्वाथमें पकाया हुआ तेल 'जात्यादि तेल' कहा जाता है। यह तेल दांतके नासूरको दूर कर देता है। दन्तविद्रधिरोगमें विद्रधिरोगोक्त चिकित्सा करे, किन्तु शस्त्रक्रिया न करे॥ ६२-६४॥

अथ दन्तरोगाणां नामानि संख्या च।

दालनः कथितः पूर्वं कृमिदन्तक एव च। प्रोक्तो भञ्जनको दन्तहर्षो वै दन्तशर्करा॥ ६५॥ कपालिकाऽत्र कथिता श्यावदन्तकएव च। करालसंज्ञ इत्यष्टौ दन्तरोगाः प्रकीर्तिताः॥ ६६॥

१ दालन, २ कृमिदन्तक, ३ भञ्जनक, ४ दन्तहर्ष, ५ दन्तशर्करा, ६ कपालिका, ७ श्यावदंतक और ८ कराल इस प्रकार दांतोंमें आठ रोग होते हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अथ दालनलक्षणम् । १

दीर्यमाणेष्विव रुजा यत्र दन्तेषु जायते । दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ ६७ ॥

दांत विदीर्णसे होते हों अर्थात् चिरेसे जाते हों ऐसी पीडा हो, इसको 'दालन' कहते हैं । यह रोग वायुके प्रकोपसे होता है ॥ ६७ ॥

अथ कृमिदन्तलक्षणम् । २

कृष्णच्छिद्रश्चलः स्रावी ससंरम्भो महारुजः । अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयः कृमिदन्तकः ॥ ६८ ॥

ससंरम्भः-दन्तमूलशोथयुक्तः । तत्रैव स्रावो वोद्धव्यः । अनिमित्तरुजः-अवघट्टमादिनिमित्तं विनैव महारुजावान् ॥

दांतोंमें काले छिद्र होजायँ, खुजली हो, मसूढोंमें सूजन हो, स्राव हो बहुत पीडा और विना ही कारण वेदना हो इस रोगको 'कृमिदन्त' कहते हैं। यह रोग वायुके प्रकोपसे होता है ॥ ६८ ॥

अथ भञ्जनकलक्षणम् । ३

वक्त्रं वक्रं भवेद्यत्र दन्तभङ्गश्च जायते । कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनकसंज्ञकः ॥ ६९ ॥

जिसका मुख टेढा हो जाय और दांत टूटकर गिरने लगें, उसको 'भंजनक' कहते। यह रोग कफ और वायुके प्रकोपसे होता है ६९

अथ दन्तहर्षलक्षणम् । ४

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः । यत्र स्युर्वातपित्ताभ्यां दन्तहर्षः स कीर्तितः ॥ ७० ॥

दांत शीत, रूक्ष, प्रबल वायु और खट्टे पदार्थोंके स्पर्शको नहीं सह सकें, इस रोगको 'दन्तहर्ष' कहते हैं । यह रोग वायु तथा पित्तके प्रकोपसे होता है ॥ ७० ॥

अथ दन्तशर्करालक्षणम् । ५

मलो दन्तगतो यस्तु कफश्चानिलशोषितः । शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ ७१ ॥

शर्करा सिकता ॥

दांतोंमें रहनेवाला मैल वायुसे सूख जाय और कफ सूखा या कफ रेतेके समान खरखरा होजाय, इस रोगको दन्तशर्करा' कहते हैं ॥७१

अथ कपालिकालक्षणम् । ६

कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तेषु समलेषु च । कपालिकेति विज्ञेया दन्तच्छिदन्तशर्करा ॥ ७२ ॥

कपालानि मृन्मयघटादिखण्डानि तेष्विव समलेषु दन्तेषु-मलसहितदन्तावयवेषु दीर्यत्सु सत्सु या दन्तशर्करा सा कपालिकेति विज्ञेया सा कपालिका दन्तच्छिद्दन्तनाशिनी ॥

मैल सहित दांतोंके अवयव मट्टीके खपरेके समान फटने लगें और उपरोक्त दन्तशर्करा भी हो तो इस रोगको 'कपालिका' कहते हैं यह कपालिका रोग दांतोंको तोडकर नाश कर देता है ॥ ७२ ॥

अथ श्यावदन्तलक्षणम् । ७

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः । श्यावतां नीलतां वापि गतः स श्यावदन्तकः ॥ ७३ ॥

दग्धः-दग्ध इव ॥

रुधिरसहित पित्तसे जले हुएके समान जो दांत सर्वथा काले अथवा नीले होजायँ तो इस रोगको 'श्यावदंतक' कहते हैं ॥ ७३ ॥

अथ कराललक्षणम्। ८

शनैः शनैः प्रकुरुते यत्र दन्ताश्रितोऽनिलः। करालान् विकटान् दन्तान् स करालो न सिध्यति ॥ ७४ ॥

करालान् भयानकान्। अयं सुश्रुतेनोक्तः संग्रहकारेण च ॥

दांतोंमें प्राप्त हुई वायु धीरे धीरे दांतोंको भयानक और विकट कर देवे तो रोगको 'कराल' कहते हैं ॥ ७४ ॥

अथ दन्तरोगचिकित्सा।

तत्र लाक्षाद्यतैलम्।

तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थमितं पचेत्। द्रव्यैः पलमितैरेतैः क्वाथैश्चापि चतुर्गुणैः ॥ ७५ ॥ लोध्रकट्फलमञ्जिष्ठापद्मकेसरपद्मकैः। चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तत्तैलं वदने धृतम् ॥ ७६ ॥ दालनं दन्तचालं च दन्तमोक्षं कपालिकाम्। शीतादं पूतिवक्त्रञ्च विरुचिं विरसास्यताम् ॥ ७७ ॥ हन्यादाशु गदानेतान् कुर्याद्दन्तानपि स्थिरान्। लाक्षादिकमिदं तैलं दन्तरोगेषु पूजितम् ॥ ७८ ॥

लाखका रस चौंसठ तोले, दूध चौंसठ तोले और लोध, कायफल, मञ्जीठ, कमलकी केसर, पद्माख, चन्दन, लाल कमल और मुलहठी इनका चौगुना काथ इनमें इन्हीं लोध आदि औषधि प्रत्येकका चार चार तोले कल्क डालकर इसमें चौंसठ तोले तेलको पकावे तो यह 'लाक्षाद्यतैल' सिद्ध होता है। इस तेलको मुखमें रखनेसे दालन, दांतोंका हिलना दांतोंका गिरना, कपालिका, शीताद, पूतिवक्त्र, अरुचि और मुखकी विरसता ये रोग तत्काल नष्ट होजाते हैं और दांत भी स्थिर होजाते हैं। यह 'लाक्षाद्यतैल' दांतोंके रोगोंपर बहुत उत्तम गिना जाता है ॥ ७५-७८ ॥

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदन्तकम्। तथाऽवपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः। भद्रदार्व्यादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ॥ ७९ ॥

स्थिरपनको प्राप्त हुए कृमिदन्तनामक रोगको स्वेदन देकर रुधिर निकलवावे। वातनाशक अवपीडोंसे, स्नेहके कुलोंको धारण करनेसे, भद्रदारु आदि गणके तथा पुनर्नवेके प्रलेपोंसे और स्निग्ध भोजनोंसे दूर करे ॥ ७९ ॥

कृमिदन्तापहं कोष्णं हिङ्गु दन्तान्तरे स्थितम् ॥ ८० ॥

हींगको कुछेक गरम करके दांतके बीचमें अर्थात् डाढके तले दबानेसे कृमिदंतक दूर होजाता है ॥ ८० ॥

बृहतीभूमि कदम्बकपञ्चांगुलकण्टकारिकाक्वाथः। गण्डूषस्तैलयुतः कृमिदन्तवेदनाशमनः ॥ ८१ ॥

कटाई, भूमिकदम्ब, सफेद एरंड और कटेरी इनका काथ बनाकर उसमें तेल मिलाकर उसके कुल्ले करनेसे कृमिदंतकी पीडा शांत होजाती है ॥ ८१ ॥

नीली-वायसजंघा–कटुतुम्बीमूलमेकैकम्। सञ्चूर्ण्य दशनविधृतं दशनक्रिमिनाशनं प्राहुः ॥ ८२ ॥

नीली, काकजंघा अथवा कड़वी तोंबी इन दोनोंमेंसे किसी एककी जडका चूर्ण बनाकर दांतोंमें रखनेसे कृमिदन्तक रोग नष्ट होजाता है ॥ ८२ ॥

स्नेहानां कवलाः कोष्णाः सर्पिषस्त्रैवृतस्य च। निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ ८३ ॥

त्रैवृतस्य सर्पिषः त्रिवृतापक्वस्य सर्पिषः कवलइत्यर्थः ॥

घृत तैलादि स्नेहोंका सुहाता सुहाता कवल, निसोथके कल्कसे पकाये हुए घीका केवल और वात नाशक पदार्थोंका काथ दंतहर्ष रोगको दूर करता है ॥ ८३ ॥

स्नैहिकोऽत्र हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च ॥ ८४ ॥ पेया रसा यवाग्वश्च क्षीरसन्तानिका घृतम् । शिरोवस्तिर्हितश्चापि क्रमो यश्चानिलापहः ॥ ८५ ॥

अत्र--दन्तहर्षे ॥

दन्तहर्ष रोगपर स्नैहिक धूमपान, स्नैहिक नस्य, पेया, रस युक्त यवागू, दूधकी मलाई, घी, शिरोवस्ति और वातनाशक क्रिया सब हितकारक हैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अच्छिन्दन् दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक् । लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥ ८६ ॥

दन्तशर्करा हुआ हो तो वैद्य दांतोंकी जडको नहीं छेदे, किन्तु दन्तशर्कराको शस्त्रसे चीरकर निकाल डाले और फिर सहतमें लाखके चूर्णको मिलाकर प्रतिसारण करे ॥ ८६ ॥

दन्तहर्षक्रियां चात्र कुर्यान्निरवशेषतः । कपालिका कृच्छ्रतमा तत्राप्येषा क्रिया मता ॥ ८७ ॥

एषा क्रिया--दन्तहर्षक्रिया ॥

दन्तहर्षके लिये जो चिकित्सा कही हैं, वे सब दन्तशर्करा पर भी करनी चाहियें। कपालिकानामक दन्तरोग यद्यपि अत्यन्त कष्टसाध्य है, तथापि उसपर दन्तहर्षके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८७ ॥

फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम् । तथाऽतिकठिनं भोज्यं दन्तरोगी न भक्षयेत् ॥ ८८ ॥

दन्तरोगवाले मनुष्योंको खट्टे पदार्थ, शीतल जल, रूखा अन्न, दतौन और कठिन भक्ष्य नहीं सेवन करना चाहिये ॥ ८८ ॥

अथ जिह्वारोगाणां निदानं नामानि संख्या च ।

वातजः पित्तजश्चापि कफजोऽलाससंज्ञकः । उपजिह्विका च गदा जिह्वायां पंच कीर्तिताः ॥ ८९ ॥

१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ अलास और ५ उपजिह्विका इस प्रकार जीभके रोग पांच हैं ॥ ८९ ॥

अथ वातजजिह्वारोगलक्षणम् । १

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥ ९० ॥

स्फुटिता-मनाग्विदीर्णा । प्रसुप्ता-रसानामानभिज्ञतया सुप्तेव । शाकच्छदनप्रकाशा--शाको मरुभूमिजद्रुमस्तद्वत्कण्टकाचिता । अयं लोके 'जली' इति ख्यातः ॥

जिह्वा कुछेक फटगई हो, खट्टे मीठे रसोंके ज्ञानको नहीं जना सके और मरुभूमिमें उत्पन्न होनेवाले सागोन वृक्षके पत्तेके समान कांटोंसे व्याप्त हो तो उसको 'वातसम्बन्धी जिह्वारोग' जानना ॥ ९० ॥

अथ पित्तजजिह्वारोगलक्षणम् । २

पित्तात् सदाहैरुपचीयते च दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च ॥ ९१ ॥

दाहसहित, लम्बे और लाल कांटोंसे जीभ व्याप्त होगई हो तो उसको 'पित्तसे उत्पन्न हुआ जिह्वा रोग' जानना ॥ ९१ ॥

अथ कफजजिह्वारोगलक्षणम् । ३

कफेन गुर्वी बहुला चिता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः ॥ ९२ ॥

बहुला स्थूला । मांसोच्छ्रयः मांसजकण्टकैः॥

कफसे जीभ भारी होजाय, मोटी हो और वह सेमलके कांटोंसे व्याप्त हो तो उसको 'कफसे उत्पन्न जिह्वारोग' जानना ॥ ९२ ॥

अथालासलक्षणम् । ४

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः । जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥ ९३ ॥

प्रगाढः—प्रकर्षेण गाढो दारुणः । कफरक्तमूर्तिः कफरक्ताभ्यां मूर्तिर्यस्य सःकफरक्तज इत्यर्थः ॥

जीभके नीचे कफ और रुधिरके प्रकोपसे जो अत्यन्त दारुण सूजन हो, उसको 'अलास' कहते हैं यह रोग बढकर जीभको जकड देता है और इसमें जीभकी जड अत्यन्त पकजाती है ॥ ९३ ॥

जिह्वास्तम्भेन वायुरप्यत्र बोद्धव्यः । भृशंपाकेन पित्तश्च अतस्त्रिदोषजोऽयम्, असाध्यत्वश्चास्य ॥

जिह्वाके स्तम्भन होने कारण इस रोगमें वायुका प्रकोपभी होता है, और जिह्वाकी जडके अत्यन्त पकनेसे पित्तका भी प्रकोप होता है ऐसा सिद्ध होता है । इस प्रकार यह रोग तीनों दोष और रुधिरके प्रकोपसे होनेके कारण असाध्य है, ऐसा जाना जाता है ॥

अथोपजिह्विकालक्षणम् । ५

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः । प्रसेककण्डूपरिदाहयुक्तः प्रकथ्यतेऽसावुपजिह्विकेति ॥९४॥

जिह्वाग्ररूपः —जिह्वाग्राकृतिः ॥

कफ और रुधिर इन दोनोंके प्रकोपसे सूजन जीभको ऊंची कर देती है, जीभ अनीके समान होती है और लारके गिरनेसे खुजली तथा दाहयुक्त होती है, इस सूजनको 'उपजिह्विका' कहते हैं ॥ ९४ ॥

अथ जिह्वारोगचिकित्सा ।

जिह्वागतविकाराणां शस्तं शोणितमोक्षणम् । गुडूचीपिप्पलीनिम्बकवलः कटुभिः सुखः ॥ ९५ ॥

जिह्वागतरोगोंमें प्रथम रुधिर निकलवावे और गिलोय नीम तथा पीपल इनका तीखे पदार्थोंके साथ केवल धारण करे यह हितकारक है ॥ ९५ ॥

ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक्चिकित्सितम् । कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ ९६ ॥

वातज ओष्ठ रोगमें प्रथम जो चिकित्सा कही है, वही चिकित्सा वातसे उत्पन्न जीभके कांटोपर करनी चाहिये ॥ ९६ ॥

पित्तजे परिघृष्टे तु निःसृते दुष्टशोणिते । प्रतिसारणगण्डूषनस्यश्च मधुरे हितम् ॥ ९७ ॥

जो पित्तजन्य जिह्वारोग हो तो उसको घिसकर दूषित रुधिरको निकालकर पश्चात् मधुर प्रतिसारण मधुर केवल और मधुर नस्य यह सब प्रयोग करे, यह हितकारी है ॥९७॥

कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये । पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्यस्तु प्रतिसारणे ॥ ९८ ॥

जो कफसे जिह्वाके ऊपर कांटे हुए हों तो उन कांटोंको कतरकर रुधिर निकलवाकर फिर मधुयुक्त पिप्पल्यादि गणकी औषधियोंसे उसको प्रतिसारण करे ॥ ९८ ॥

उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् । शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनामुपाचरेत् ॥ ९९ ॥

उपजिह्विका हो तो उसको कतरकर क्षारसे प्रतिसारण करे और शिरोविरेचन, गंडूष तथा तथा धूम्रपान इनसे उपचार करे ॥ ९९ ॥

व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमेतत्प्रघर्षणम् । उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेभिस्तैलश्च पाचयेत् ॥ १०० ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, हरड और चीता इस चूर्णको घिसनेसे अथवा इस चूर्णके कल्कसे तेलको पकाकर कुल्लेके करनेसे उपजिह्विका शांत हो जाती है ॥ १०० ॥

अथ तालुरोगाणां नामानि संख्या च ।

गलशुण्डी तुण्डिकेर्यध्रूषः कच्छप एव च । ताल्वर्बुदश्च कथितो मांससंघात एव च ॥ १०१ ॥ तालुपुप्पुट नामा च तालुशोषस्तथैव च । तालुपाकश्च कथितास्तालुरोगा अमी नव ॥ १०२ ॥

१ गलशुण्डी, २ तुण्डिकेरी, ३ अध्रूष, ४ कच्छप, ५ ताल्वर्बुद, ६ मांससंघांत, ७ तालुपुप्पुट, ८ तालुशोष और ९ तालुपाक इस प्रकार तालुयेमें नौ रोग हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ गलशुण्डिलक्षणम् । १

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोथो ध्मातवस्तिप्रकाशः । तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्डीति नाम्ना ॥ १०३ ॥

ध्मातबस्तिप्रकाशः-वातपूरितचर्मपुटतुल्यः ॥

कफ और रुधिर दोनोंके प्रकोपसे तालुवेकी जडमें बढी हुई, लम्बी, वायुसे भरी हुई मशकके समान और तृषा, खांसी तथा श्वासको उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होती है, उसको वैद्य ' गलशुण्डी ' कहते हैं ॥ १०३ ॥

अथ तुण्डिकेरीलक्षणम् । २

शोथः स्थूलस्तोददाहप्रपाका श्लेष्मासृग्भ्यां कीर्तिता तुण्डिकेरी ॥ १०४ ॥

तुण्डिकेरी—वनाकापीसीफलं, तत्तुल्या ॥

तालुवेमें कफ और रुधिरके प्रकोपसे स्थूल, तोडने सरीखी पीडा और दाहसहित तथा पकनेवाली जो सूजन होती है, उसको वैद्य ' तुण्डिकेरी ' कहते हैं ॥ १०४ ॥

अथाध्रूषलक्षणम् । ३

शोथः स्तब्धो लोहितः शोणितोत्थो-ज्ञेयोऽध्रूषः सज्वरस्तीव्ररुक् च ॥१०५॥

रुधिरके प्रकोपसे तालुवेमें स्तब्ध (जड), लाल, ज्वरसहित और तीव्र पीडायुक्त जो सूजन होती है, उसको वैद्य ' अध्रूष ' कहते हैं ॥ १०५ ॥

अथ कच्छपलक्षणम् । ४

कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणः स्यात् ॥ १०६ ॥

कूर्मोत्सन्नः-मध्ये प्रोच्चः प्रान्ते नतः ॥

कफके प्रकोपसे तालुवेमें कछुवेके समान बीचमें ऊंची और चारों ओर नीची थोडी पीडावाली जो सूजन तत्काल उत्पन्न होती है उसको वैद्य ' कच्छप ' कहते हैं ॥ १०६ ॥

अथ ताल्वर्बुदलक्षणम् । ५

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं पित्तलिङ्गम् ॥ १०७ ॥

पद्माकारम्—पद्मकर्णिकावत्केसरैरिव पार्श्वतो दीर्घैर्मांसांकुरैर्वेष्टितम् ॥

तालुवेके बीचमें रुधिरके प्रकोपसे कमलकी केसरके समान लम्बे मांसके अंकुरोंसे वेष्टित और सम्पूर्ण पित्तके लक्षणोंसे युक्त जो सूजन होती है, उसको वैद्य ' ताल्वर्बुद ' कहते हैं ॥ १०७ ॥

अथ मांससंघातलक्षणम् । ६

दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजश्च ताल्वन्तःस्थं मांससंघातमाहुः ॥ १०८ ॥

कफके प्रकोपसे तालुवेके भीतर पीडारहित जो दुष्टमांस एकत्रित होजाता है, उसको ' मांससंघात ' कहते हैं ॥ १०८ ॥

अथ तालुपुप्पुटलक्षणम्। ७

नीरुक् स्थायी कोलमात्रः कफात्मा मेदोयुक्तः पुप्पुटस्तालुदेशे ॥ १०९ ॥

कफके प्रकोपके कारण तालुवेमें पीडारहित स्थिर और मेदवाली बेरीके फलके समान ग्रंथि उत्पन्न होती है, उसको 'तालुपुप्पुट' कहते हैं ॥ १०९ ॥

अथ तालुशोषलक्षणम्।

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते वाऽपि तालु श्वासो वातात् तालुशोषोऽयमुक्तः ॥ ११० ॥

वायुके प्रकोपसे तालुवेमें अत्यन्त शोष अथवा तालुता फटने लगे और श्वास भी हो तो इस रोगको 'तालुशोष' कहते हैं ॥ ११० ॥

अथ तालुपाकलक्षणम्। ९

पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येनं तालुपाकं वदन्ति ॥ १११ ॥

पित्तके प्रकोपसे तालु अत्यन्त भयंकर प्रकारसे पकजाय, इस रोगको 'तालुपाक' कहते हैं ॥ १११ ॥

अथ तालुरोगचिकित्सा।

कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैः सह। सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्डीप्रघर्षणम् ॥ ११२ ॥

प्लवः—केवटीमोथा। गुडतजीति लोक ॥

कूठ, कालीमिरच, वच, सैंधानिमक, पीपल और पाढ तथा केवटीमोथा इनके चूर्णको सहत मिलाकर घिसनेसे गलशुण्डा नष्ट होजाती है ॥ ११२ ॥

अङ्गुष्ठांगुलिसन्दंशेनाकृष्य गलशुण्डिकाम्। छेदयेन्मण्डलाग्रेण जिह्वोपरि तु संस्थिताम् ॥ ११३ ॥

मण्डलाग्रेण—शस्त्रविशेषेण ॥

जो गलशुण्डी जीभपर हो तो अंगूठे और अंगुली रूपी संडासीसे उसको खींचकर मंडलाग्रनामक तलवारके समान शस्त्रसे काट देवे ॥ ११३ ॥

अत्यादानात्स्रवेद्रक्तं ततः सम्म्रियते नरः। हीनच्छेदाद्भवेच्छोथो लालास्रावो भ्रमस्तथा ॥ ११४ ॥ तस्माद्वैद्यः प्रयत्नेन दृष्टकर्मा विशारदः। गलशुण्डीं तु सञ्छिद्य कुर्यात् प्राप्तमिमं क्रमम् ॥ ११५ ॥ पिप्पल्यतिविषाकुष्ठवचामरिचनागरैः। क्षौद्रयुक्तैः सलवणैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥ ११६ ॥ वचामतिविषापाठारास्नाकटुरोहिणीः। निष्क्काथ्य पिचुमर्दश्च कवलं तत्र कारयेत् ॥ ११७ ॥

जो गलशुण्डीका अति छेदन हो जाय तो रुधिरके अत्यन्त स्राव होनेसे मनुष्य मर जाता है और छेदन हो तो सूजन, लारका गिरना तथा भ्रम होता है, इस कारण जिसने छेदनकी बहुत सी क्रिया देखी हों तो ऐसा प्रवीण वैद्य बहुत संभालकर गलशुण्डीको काटकर पीछे, पीपल, अतीस, कूठ, कालीमिरच, वच और सोंठ इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर उसमें सैंधानिमक डालकर उससे प्रतिसारण करे। तथा वच, अतीस, पाढ, रास्ना कुटकी और नीम इनको औटाकर इसका कवल धारण करे ॥ ११४-११७ ॥

तुण्डिकेर्यध्रुषे कूर्मे सङ्घाते तालुपुप्पुटे। एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि ॥ ११८ ॥

तुंडिकेरी, अध्रुष, कच्छप, मांससंघात और तालुपुप्पुट इनपर भी यह चिकित्सा करे, किंतु इनपर शस्त्रक्रिया कुछ बदल करके करे ॥ ११८ ॥

तालुपाके तु कर्तव्यं विधानं पित्तनाशनम्। स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ ११९ ॥

तालुपाक हो तो पित्तको नष्ट करनेवाली चिकित्सा करे । तालुशोष हो तो स्नेहन, स्वेदन और वातनाशक अन्यान्य क्रिया भी करे ॥ ११९ ॥

अथ गलरोगाणां नामानि संख्या च ।

रोहिणी पञ्चधा प्रोक्ता कण्ठशालूक एव च । अधिजिह्वश्च वलयो बलासश्चैकवृन्दकः ॥ १२० ॥ ततो वृन्दः शतघ्नी च गिलायुः कण्ठविद्रधिः । गलौघश्च स्वरघ्नश्च मांसतानस्तथैव च ॥ १२१ ॥ विदारी कण्ठदेशे तु रोगा अष्टादश स्मृताः ॥ १२२ ॥

१–५ पांच प्रकारकी रोहिणी, ६ कंठशालूक ७ अधिजिह्व, ८ वलय, ९ बलास, १० एकवृन्दक, ११ वृन्द, १२ शतघ्नी, १३ गिलायु, १४ कण्ठविद्रधि, १५ गलौघ, १६ स्वरघ्न, १७ मांसतान और १८ विदारी इस प्रकार गलेके रोग अठारह हैं ॥ १२०–११२ ॥

अथ रोहिण्याः सनिदानसंप्राप्तिः ।

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छतौ प्रदूष्य मांसञ्च तथैव शोणितम् । गलोपसंरोधकरैस्तथाऽङ्कुरैर्निहन्त्यसून्व्याधिरयं च रोहिणी ॥ १२३ ॥ गले अनिलः वृद्धःतथा पित्तकफौ मूर्च्छितौ दग्धौ मांसं शोणितं च प्रदूष्य तथा गलोपसंरोधकैररसून्निहन्ति । अयं व्याधिः रोहिणीसंज्ञो ज्ञेयः । सर्वा रोहिण्यस्त्रिदोषजा उत्कर्षात्तु वातादिव्यपदेशः ॥

गलेमें वृद्धिको प्राप्त हुई वायु अथवा वृद्धिको प्राप्तहुआपित्तअथवा वृद्धिकोप्राप्तहुआकफअथवा हुआ कफ अथवा वृद्धिको प्राप्त हुए तीनों दोष अथवा वृद्धिको प्राप्त हुआ रुधिर तथा मांस रुधिरको दूषित करके गलेको अवरोध करनेवाले अंकुरोंसे प्राणोंका नाश करता है । इस रोगको 'रोहिणी' कहते हैं ॥ १२३ ॥

अथ वातजरोहिणीलक्षणम् । १

जिह्वासमन्ताद्भृशवेदनास्तु मांसाङ्कुराःकण्ठनिरोधनाः स्युः । सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढजुष्टा ॥ १२४ ॥

जिह्वासमन्तात् जिह्वायाः सर्वतः । वातात्मकोपद्रवगाढजुष्टा-- कम्पविनामस्तम्भादिभिरतिशयेन युक्ता ॥

जीभके चारों ओर अत्यन्त वेदनावाले और गलेको रोकनेवाले मांसके अंकुर होते हैं और इनके साथ वातसंबंधी स्तब्धता आदि उपद्रव भी होते हैं । यह वातसे 'उत्पन्न रोहिणी' कही जाती है ॥ १२४ ॥

अथ पित्तजरोहिणीलक्षणम् । २

क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता ॥ १२५ ॥

गलेमें मांसके अंकुर तत्काल उत्पन्न होजायँ, उनमें तत्काल दाह हो, तत्काल पकजायँ और तीव्र ज्वर हो जाय तो इसको 'पित्तज रोहिणी' कहते हैं ॥ १२५ ॥

अथ कफजरोहिणीलक्षणम् । ३

स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुर्वी स्थिरा सा कफसम्भवा तु ॥१२६॥ स्रोतोऽत्र कण्ठस्रोतः ॥

गलेकी शिराओंको रोककर गलेमें मांसके अंकुर उत्पन्न होते हैं और वे मन्द मन्द पकते हैं, भारी होते हैं स्थिर होते हैं, इसको 'कफज रोहिणी ' कहते हैं ॥ १२६ ॥

अथ त्रिदोषजरोहिणीलक्षगम् । ४

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रिभवा भवेत्सा ॥१२७॥

गलेमें उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षणोंवाले, गम्भीर पकनेवाले और कठिनतासे आराम होनेवाले ऐसे मांसके अंकुर उत्पन्न हों तो यह

'त्रिदोषसे उत्पन्न रोहिणी कही जाती है ॥ १२७ ॥

अथ रक्तजरोहिणीलक्षणम् । ५

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा
साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु ॥१२८॥

फुडियोंसे व्याप्त और पित्तके लक्षणोंवाली जो रोहिणी होती है, उसको वैद्य 'रुधिरजन्य रोहिणी' कहते हैं,यह रोहिणी साध्य है१२८॥

अथ रोहिणीमारणावधिः ।

सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति त्र्यहात्कफसमुद्भवा । पञ्चाहात्पित्तसम्भूता सप्ताहात्पवनोत्थिता ॥१२९॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न रोहिणी तत्काल मार देती है, कफसे उत्पन्न रोहिणी तीन दिनमें मार देती है, पित्तजन्य रोहिणी पांच दिनमें मार देती है और वातजन्य रोहिणी सात दिनमें मार देती है ॥ १२९ ॥

अथ कण्ठशालूकलक्षणम् । ६

कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः । खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥ १३० ॥

कण्टकशूकभूतः-कंटकवत् शूकवच्च वेदनाजनकः ॥

गलेमें कांटेके समान तथा धानके अनीके समान वेदना उत्पन्न करनेवाले, खरखरे, कठिन, बेरकी गुठलीके समान और शस्त्रकाट्य ऐसी जो ग्रंथि हो,उसको 'कण्ठशालूक' कहते। हैं यह ग्रंथि कफके प्रकोपसे होती है, यह शस्त्रके चीरनेसे साध्य है ॥ १३० ॥

अथाधिजिह्वकलक्षणम् । ७

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादसृजैव मिश्रात् । ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ १३१ ॥

असृजा मिश्रादेवेत्यन्वयः ।

जीभके ऊपर जीभकी अनीके समान जो सूजन होती है, उसको 'अधिजिह्वक' कहते हैं,यह सूजन जो पकजाय तो इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, यह रोग रुधिरमिश्रित कफके प्रकोपसे होता है ॥ १३१ ॥

अथ वलयलक्षणम् । ८

बलास एवायतमुन्नतञ्च शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य । तं सर्वथैवाप्रतिवार्यमेव विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ १३२ ॥

प्रकोपको प्राप्त हुआ कफ अन्नकी गतिको रोककर गलेमें लम्बी तथा ऊंची सूजनको उत्पन्न करता है, इसको 'वलय' कहते हैं। यह रोग किसी प्रकार भी दूर नहीं होता। इसलिये इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १३२ ॥

अथ बलासलक्षणम् । ९

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् । मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञं भिषजो विकारम् ॥ १३३ ॥

मर्मच्छिदम्-हृदयमर्मणि छेदेनेव वेदनाजनकम् ॥

वृद्धिको प्राप्त हुए कफ तथा वायु इनसे गलेमें श्वास पीडासहित और हृदयके मर्मस्थलमें छेदन करनेवाली ऐसी व्यथाको उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होती है,उसको 'बलास' कहते हैं। वैद्यलोग कहते हैं कि, यह रोग दुस्तर है ॥ १३३ ॥

अथैकवृन्दलक्षणम् । १०

वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च । नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ १३४ ॥

अन्तः—गलमध्ये । अपाकी-ईषत्पाकी । अमृदुः—ईषन्मृदुः ॥

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमें गोल, नवी हुई दाह और खुजलीसहित, कुछेक पकनेवाली कुछ कोमल और भारी सूजन उत्पन्न होती है, इस रोगको वैद्य 'एकवृन्द' कहते हैं ॥ १३४ ॥

अथ वृन्दलक्षणम् । ११

समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति । तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात् सतोदं पवनात्मकं तु ॥ १३५ ॥

पित्त और रुधिरके प्रकोपसे अत्यन्त ऊंची, गोल, अत्यन्त दाहवाली और तीव्र ज्वरवाली जो सूजन होती है, इसको वैद्य 'वृन्द' कहते हैं । इसमें यदि शूल हो तो वातसंबन्धी जानना ॥ १३५ ॥

अथ शतघ्नीलक्षणम् । १२

वर्तिर्घना कण्ठनिरोधनी तु चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः । अनेकरुक्प्राणहरी त्रिदोषात् ज्ञेया शतघ्नीसदृशी शतघ्नी ॥ १३६ ॥

घना—कठिना । अनेकरुक् वातापित्तकफजतोददाहकंड्वादियुक्ता । शतघ्नीसदृशी लौहकंटक-सञ्छन्ना शतघ्नी महती शिला तत्तुल्या यतःप्राणहरी ॥

वात, पित्त तथा कफसे उत्पन्न होनेवाली व्यथा, दाह और खुजली आदिविकारोंवाली. कठिन, मांसके अंकुरोंसे अत्यन्त व्याप्त और कण्ठको रोकनेवाली जो वत्ती उत्पन्न होती है, उसको शतघ्नी कहते हैं । यह वत्ती त्रिदोषके प्रकोपसे उत्पन्न होनेके कारण शतघ्नी (लोहेके कांटोंसे ढकी हुई बडी भारी शिला) के समान होती है, इस कारण इनको 'शतघ्नी' कहते हैं ॥ १३६ ॥

अथ गलायुलक्षणम् । १३

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक् स्यात् कफरक्तमूर्तिः । संलक्ष्यते सक्तमिवाशनश्च स शस्त्रसाध्यस्तु गलायुसंज्ञः ॥ १३७ ॥

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमें आमकी गुठलीके समान, स्थिर, अल्प वेदनावाली और भोजन किया अन्न गलेमें अटकासा मालूम हो ऐसी ग्रंथि उत्पन्न हो, इसको वैद्य 'गलायु' कहते हैं । यह रोग शस्त्रक्रियासे दूर होता है ॥ १३७ ॥

अथ कंठविद्रधिलक्षणम् । १४

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोफो रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः । स सर्वदोषैर्गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजश्च ॥ १३८ ॥

सम्पूर्ण दोषोंके प्रकुपित होनेसे सर्व प्रकारकी वेदनावाली और सम्पूर्ण गलेमें व्याप्त होकर जो सूजन उत्पन्न होती है, उसको 'कण्ठविद्रधि' कहते हैं । यह कण्ठविद्रधि त्रिदोषजन्य विद्रधिके समान है ॥ १३८ ॥

अथ गलौघलक्षणम् । १५

शोथो महान् यस्तु गलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता । कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्तितोऽसौ ॥ १३९ ॥

वायुगतेर्निहन्ता—उदानवायुगतिरोधकः ॥

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमें अन्न तथा जलको रोकनेवाली, उदानवायुकी गतिको हरनेवाली और तीव्र ज्वरवाली जो बडी सूजन उत्पन्न होती है उसको 'गलौघ' कहते हैं ॥ १३९ ॥

अथ स्वरघ्नलक्षणम् । १६

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः । कफोपदुष्टे-

ध्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ १४० ॥

ताम्यमानः—तमः पश्यन् । शुष्कविमुक्तकण्ठः—शुष्को विमुक्तोऽस्वाधीनः कण्ठो यस्य सः । अस्वाधीनता शुक्तं गिलितुमशक्यत्वात् । अनिलायनेषु वायुवर्त्मसु । श्वसनाद्वातात् ॥

वायुके मार्ग कफसे दुष्ट होकर अन्धकार दीखे, बारंवार हांफनी आवे, गला सूखजाय तथा अन्नादि निगलनेमें असमर्थ हो और स्वर बिगड जाय, इस रोगको वैद्य 'स्वरघ्न' कहते हैं । यह रोग वायुके प्रकोपसे होता है ॥ १४० ॥

अथ मांसतानलक्षणम् । १७

प्रतानवान् यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण । स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत् सर्वकृतो विकारः ॥ १४१ ॥

प्रतानवान्—विस्तारवान् । सुकष्टः—अतिशयित कष्टं यत्र सः ॥

गलेमें फैलनेवाली, लटकती और महाकष्ट देनेवाली जो सूजन क्रमक्रमसे गलको रोक देती है, इस रोगको 'मांसतान' कहते हैं । यह रोग त्रिदोषजन्य होनेके कारण प्राणनाशक है ॥ १४१ ॥

अथ विदारीलक्षणम् । १८

सदाहतोदं श्वयथुं सुताम्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् । पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ १४२ ॥

स पुरुषो येन पार्श्वेन विशेषाद्बाहुल्येन शेते तस्मिन् पार्श्वे सा विदारी भवतीत्यर्थः ॥

पित्तके प्रकोपसे गलेमें दाह, तीव्र पीडा अत्यन्त लाल और दुर्गन्धित तथा मांसको फाडनेवाली जो सूजन उत्पन्न होती है, उसको 'विदारी' कहते हैं । मनुष्य जिस करवटसे अधिक सोता है, उसी पार्श्वमें यह रोग उत्पन्न होता है ॥ १४२ ॥

अथ गलरोगचिकित्सा ।

रोहिणीनां तु साध्यानां हितं शोणितमोचनम् । वमनं धूमपानञ्च गण्डूषो नस्यकर्म च ॥ १४३ ॥

जो रोहिणी साध्य है, उसमें रुधिर निकलवाना उत्तम है । वमन, धूमपान, कुल्ला और नस्यक्रिया ये रोपण रोहिणीके ऊपर करे १४३

वातजां तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् । सुखोष्णान् स्नेहगण्डूषान् धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ १४४ ॥

वायुसे उत्पन्न रोहिणी हो तो रुधिर निकलवाकर पश्चात् सैंधानिमक आदि लवणोंसे प्रतिसारण करे और सुहाते सुहाते ऐसे उष्ण स्नेहों के कुल्लों को बारम्बार धारण करे ॥ १४४ ॥

विस्राव्य पित्तसम्भूतां सिताक्षौद्रप्रियंगुभिः । घर्षयेत्कवलो द्राक्षापरूषैः कथितो हितः ॥ १४५ ॥

पित्तसे उत्पन्न रोहिणी हो तो उसमेंसे रुधिर निकलवाकर खांड, सहत तथा फूलप्रियंगू इनसे प्रतिसारण करे और दाख तथा फालसेका कवल धारण करे ॥ १४५ ॥

आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ॥ १४६ ॥

आगारधूमः-काल इति लोके । कटुकानि शुण्ठीपिप्पलीमरिचानि ॥

कफसे उत्पन्न रोहिणी हो तो घरके धुआंसे की धूल, सोंठ, मिरच और पीपल इनके चूर्णसे प्रतिसारण करे ॥ १४६ ॥

श्वेताविडङ्गदन्तीषु तैलं सिद्धं ससैन्धवम् । नस्यकर्मणि दातव्यं कवलश्च कफोच्छ्रये ॥ १४७ ॥

श्वेता-अपराजिता ॥

सफेद अपराजिता, वायविडंग और जमालगोटा इनके कल्कसे पकाये हुए तैलमें सैंधानिमक डालकर इसका नस्य देवे और सफेद कोयल, वायविडंग तथा जमालगोटा इनका कवल भी धारण करे ॥ १४७ ॥

पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं पित्तसम्भवाम् । विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् ॥ १४८ ॥ एककालं यवान्नञ्च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः । उपजिह्वकवच्चापि साधयेदधिजिह्वकम्॥१४९

वैद्य पित्तजन्य रोहिणीको पित्तशामक उपायोंसे शान्त करे। कण्ठशालूक हो तो वैद्य उसमेंसे रुधिर निकलवाकर पश्चात् तुंडिकेरी की जो चिसित्सा कही है, वह और दिनरातमें एकवार थोडासा जौका स्निग्ध भोजन करे। अधिजिह्वक हो तो जो चिकित्सा उपजिह्वक की कही है, वे सब करे ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

एकवृन्दं तु विस्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् । एकवृन्दमिव प्रायो वृन्दञ्च समुपाचरेत् ॥ १५० ॥

एकवृन्द हो तो उसमेंसे रुधिर निकलवाकर पश्चात् शोधन विधि करे। वृन्द हो तो एकवृन्दके समान अत्युत्तम चिकित्सा करे १५०॥

गलायुश्चापि यो व्याधिस्तञ्च शस्त्रेण साधयेत् । अमर्मस्थं सुसम्पक्कं छेदयेद्गलविद्रधिम् ॥ १५१ ॥

गिलायु हो तो उसको शस्त्रसे काटकर दूर करे, कंठविद्रधि मर्ममें न हो और अच्छी प्रकारसे पकगई हो तो उसका छेदन करे॥१५१

अथ गलरोगाणा सामान्य चिकित्सा ।

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षैस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्मभिः । चिकित्सकश्चिकित्सां तु कुशलोऽत्र समाचरेत् ॥ १५२ ॥

प्रवीण वैद्य गलेके रोगोंका रुधिर निकलवाकर और तीव्र नस्यआदि देनेसे चिकित्सा करे ॥ १५२ ॥

क्वाथं दद्याच्च दार्वीत्वङ्निम्बतार्क्ष्यककलिङ्गकम् । हरीतकीकषायो वा हितो माक्षिकसंयुतः ॥ १५३ ॥

दारुहलदी, तज, नीम, रसौत और इन्द्रजौ इनका क्वाथ देनेसे अथवा सहत डालकर हरडका क्वाथ पीनेसे गलेके रोग नष्ट हो जाते हैं। यह वातज गलरोगोंकी चिकित्सा कही है ॥ १५३ ॥

कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकलिङ्गकाः। गोमूत्रकथिताः पीताः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ १५४ ॥

कुटकी, अतीस, देवदारु, पाढ, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनको गोमूत्रमें पकाकर पीवे तो गलेके समस्त रोग नष्ट होजाते हैं, यह पित्तजन्य गलरोगोंकी चिकित्सा कहा है ॥१५४॥

मृद्वीका कटुका व्योषं दार्वी त्वक् त्रिफला घनम् । पाठा रसाञ्जनं दूर्वा तेजोह्वेति सुचूर्णितम् ॥ १५५ ॥ क्षौद्रयुक्तं विधातव्यं गलरोगे महौषधम् । योगाश्चैते त्रयः प्रोक्ता वातपित्तकफापहाः ॥ १५६ ॥

दाख, कुटकी, सोंठ, मिरच, पीपल, दारुहलदी, तज, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, पाढ, रसौत, चुरनहार और तेजबल इनका बारीक चूर्ण करके सहतमें मिलाकर उपयोग करे तो कफजन्य, समस्त गलरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

यवाग्रजं तेजवतीञ्च पाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम् । क्षौद्रेण कुर्याद्गुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥ १५७ ॥

जवाखार, तेजबल, पाढ, रसौंत, दारुहलदी और पीपल इनको सहतमें गोली बनाकर मुखमें रखनेसे सर्वप्रकारके गलरोग नष्ट होजाते हैं ॥ १५७ ॥

अथ समस्तमुखरोगसंख्या।

पृथग्दोषैस्त्रयो रोगाः समस्तमुखजाः स्मृताः ॥ १५८ ॥

वातज, पित्तज और कफज ऐसे सम्पूर्ण मुखमें तीन प्रकारके रोग होते हैं ॥ १५८ ॥

अथ वातजमुखलक्षणम्।

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यत्राचितं सर्वसरः स वातात् ॥ १५९ ॥

व्यथायुक्त छालोंसे चारों ओर मुख भरा हो तो उसको वातजन्य 'सर्वसर' रोग जानना ॥ १५९ ॥

अथ पैत्तिकमुखरोगलक्षणम्।

रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतैर्यत्राचितं चापि स पित्तकोपात् ॥१६०

दाहयुक्त और पीले रंगके छोटे छोटे छालोंसे सम्पूर्ण मुख व्याप्त हो तो उसको पित्तजन्य सर्वसर मुखरोग कहते हैं ॥ १६० ॥

अथ कफजमुखरोगलक्षणम्।

आवेदनैः कण्डुयुतैः सवैर्णैर्यत्राचितं चापि स वै कफेन ॥१६१॥
यत उक्तं सुश्रुतेन—"अल्पवेदनैः"इति ॥

मन्द वेदनायुक्त, खुजलीयुक्त और मुखके वर्णवाले छालोंसे सम्पूर्ण मुख भरजाय तो उसको कफजनित सर्वसर मुखरोग कहते हैं ॥ १६१ ॥

अथासाध्या मुखरोगाः।

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्यास्तु मांसरक्तत्रिदोषजाः। दन्तवेष्टेषु वर्ज्यौ तु त्रिलिङ्गगतिसौषिरौ ॥ १६२ ॥

त्रिलिंगगतिः-त्रिदोषजा नाडी ॥

ओष्ठके रोगोंमें मांससे उत्पन्न हुए, रुधिरसे उत्पन्न हुए और त्रिदोषज रोग असाध्य हैं। मसूढोंके रोगोंमें त्रिदोषसे उत्पन्न नाडी और सौषिर ये दो रोग असाध्य हैं ॥ १६२ ॥

दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदालनभञ्जनाः। जिह्वारोगेष्वलासस्तु तालुजेष्वर्बुदं तथा ॥ १६३ ॥

दन्तरोगोंमें श्यावदन्तक, दालन और भञ्जन ये तीन रोग असाध्य हैं। जीभके रोगोंमें अलास असाध्य है। तालुवेके रोगोंमें ताल्वर्बुद असाध्य है ॥ १६३ ॥

स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलासः स हि दारुणः। गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ १६४ ॥ असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा दश नवोत्तराः। तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ १६५ ॥

गलेके रोगमें स्वरघ्न, वलय, वृन्द, बलास, विदारी, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और रोहिणी ये नौ रोग असाध्य हैं। ऊपरके १० मिलाकर ये उन्नीस रोग जो असाध्य माने हैं, इनपर भी वैद्य असाध्य कहकर चिकित्सा करे। क्योंकि, कदाचित् आरोग्य हो जाय ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

अथ सम्पूर्णमुखरोगचिकित्सा।

वातात् सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत्। तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कलवनस्ययोः ॥ १६६ ॥

खारे चूर्णोंसे प्रतिसारण करे और वातनाशक पदार्थोंसे पकाये हुए तेलका कवल तथा नस्य देवे तो वातजन्य सर्वसर नष्ट होजाता है ॥ १६६ ॥

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः। सर्वः पित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः।

प्रतिसारणगण्डूषधूमसंशोधनानि च ॥ १६७ ॥

शरीरको विरेचन आदि संशोधन कर पित्तनाशक सम्पूर्ण मधुर तथा शीतल विधि करे तो पित्तजन्य सर्वसर दूर हो जाता है। पित्तजन्य सर्वसरमें प्रतिसारण कवल, धूम्रपान और संशोधन ये सब पित्तनाशक विधि करे ॥ १६७ ॥

कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात्कफापहम् ॥ १६८ ॥

कफको हरनेवाली विधि करे और कफनाशक प्रतिसारण भी करे तो कफजन्य सर्वसर नष्ट हो जाता है ॥ १६८ ॥

मुखपाके शिरावेधः शिरसश्च विरेचनम् । मधुमूत्रघृतक्षीरैः शीतैश्च कवलग्रहः ॥ १६९ ॥

नस छेदकर रुधिर निकाले, शिरोविरेचन करे और सहत, मूत्र, घी, दूध तथा शीतल अन्य पदार्थोंके भी कवल धारण करे तो मुखपाक दूर हो जाता है ॥ १६९ ॥

जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः। क्काथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥ १७० ॥

जावित्री, गिलोय, दाख, जवासा, हरड बहेडा, आमले इन सबका काथ बनावे, उस क्वाथको शीतल करके उसमें सहत डालकर पीवे तो मुखपाक दूर हो जाता है ॥ १७० ॥

कार्यश्च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् ॥ कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतस्त्र्यहात् । मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ १७१ ॥

नित्य अनेकवार जावित्री चाबे तो मुखपाक दूर हो जाता है । कालाजीरा, कूठ और इन्द्रजौ इनको चर्वण करे तो मुखपाक, मुखव्रण, मुखका क्लेद और मुखकी दुर्गंधि भी शान्त हो जाती है ॥ १७१ ॥

पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवैः । पञ्चवल्कलजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥ १७२ ॥

कडवे परवलके, नीमके, जामुनके आमके और मालतीके नवीन पत्ते इन पंचपल्लवोंका क्वाथ मुख धोनेके लिये बहुत उत्तम है १७२॥

पञ्चवल्कलजः क्वाथस्त्रिफलासम्भवोऽथवा । मुखपाके प्रयोक्तव्यः सक्षौद्रो मुखधावने ॥ १७३ ॥

मुखपाक हो तो पंचवल्कलका अथवा हरड बहेडा और आमलेके क्वाथमें सहत डालकर उससे मुखको शुद्ध करे ॥ १७३ ॥

स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया । सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ १७४ ॥

दारुहलदीके गाढे स्वरसमें सहत डालकर उसका उपयोग करनेसे मुखरोग, रुधिरविकार और नाडीव्रण ये सब नष्ट हो जाते हैं ॥ १७४ ॥

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्तहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः । यष्टयाह्वराजद्रुमचन्दनैश्च क्वाथं पिबेत् पाकहरं मुखस्य १७५

राजद्रुमः-'धनबहेरा, इति लोके ॥

सतवन, खस, कडवे परवल, हरड, कुटकी, मुलहठी, अमलतास और लालचंदन इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे मुखपाक दूर होजाता है ॥ १७५ ॥

तिलो नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च । क्षौद्राढचो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥ १७६ ॥

तिल, नीले कमल, घी, खांड, दूध और सहत इनके कुल्ले करनेसे मुखपाक दूर हो जाता है, जलनेसे उत्पन्न मुखपाकका यह उत्तम उपाय है ॥ १७६ ॥

आस्वादिता तु सकृदपि मुखगन्धं सकलमपनयति । त्वग्बीजपूरफलजा पवनमवाच्यं च वारयति ॥ १७७ ॥

बिजौरेके फलकी छालको एकबार खानेसे भी मुखकी सम्पूर्ण दुर्गंधि दूर होजाती है और अपान वायु भी शान्त होती है ॥१७७॥

हरिद्रा निम्बपत्राणि मधुकं नीलमुत्पलम् । तैलमेभिर्विपक्तव्यं मुखपाकहरं परम् ॥ १७८ ॥

हलदी, नीमके पत्ते, मुलहठी और नीले कमल इनसे पकाये हुए तेलके कुल्ले आदि करनेसे मुखपाक अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १७८ ॥

यष्टीमधुपलमेकं त्रिंशन्नीलोत्पलस्य तैलस्य । प्रस्थं तद्द्विगुणपयो विधिना पक्वं तु नस्येन ॥ १७९ ॥ निशि वदनस्य स्रावं क्षपयति गात्रस्य दोषसंघातम् । कचघर्षत्वमवश्यं क्रमशोऽभ्यङ्गेन जन्तूनाम ॥ १८० ॥

इति मुखरोगाधिकारः ।

मुलहठी ४ तोले और नीले कमल २१ तोले इनका कल्क डालकर १२८ तोले दूधमें तेलको पकावे । इस तेलका नस्य लेनेसे रात्रिमें उत्पन्न हुआ मुखका स्राव और शरीरके रोगोंके समूह नष्ट होजाते हैं । इस तेलकी मालिश करनेसे बालोंकी कमजोरी, घिसना, टूटना और जुवें आदि सब दूर होते हैं ॥१७९॥१८०॥

इति मुखरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ विषाधिकारः ।

स्थावरं जङ्गमश्चैव द्विविधं विषमुच्यते । दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥ १ ॥

स्थावर और जंगम इस रीतिसे विष दो प्रकारका है । स्थावर विषके दश आश्रय हैं और जंगम विषके सोलह आश्रय (स्थान) हैं ॥

अथ स्थावरविषस्य दश स्थानानि ।

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक् क्षीरं सारमेव च । निर्यासो धातवः कन्दः स्थावरस्याश्रया दश ॥ २ ॥

१ मूल, २ पत्ते, ३ फल, ४ फूल, ५ छाल, ६ दूध, ७ सार, ८ गोंद, ९ धातु, और १० कन्द इस प्रकार स्थावर विषके दश स्थान हैं ॥

तद्यथा—मूलविषं करवीरादि । पत्रविषं विषपत्रिकादि । फलविषं कर्कोटकादि । पुष्पविषं वेत्रादि । त्वक्सारनिर्यासविषाणि करम्भादीनि । क्षीरविषं स्नुह्यादि । धातुविषं हरितालादि कन्दविषं वत्सनाभशक्तुकादि ॥

मूलविष कनेर आदिकी जडमें रहता है । पत्रविष विषपत्रिकादिमें रहता है । फलविष कर्कोटकादि फलोंमें रहता है । फूलविष बेंत आदिके फूलोंमें रहता है । छाल, सार और गोंद विष चोटली आदिकी छालमें रहता है । दूधविष थूहर आदिके दूधमें, धातुविष हरताल सोमल आदि धातुओंमें और कन्दविष वत्सनाभ शक्तु आदिके कन्दमें रहता है ॥

अथ जङ्गमविषस्य षोडश स्थानानि ।

दृष्टिनिःश्वासदंष्ट्राश्च नखमूत्रमलानि च । शुक्रं लालास्पर्शमुखसन्दंशशर्वर्दितम् । गुदास्थिपित्तशूकानि दश षड् जङ्गमाश्रयाः ॥ ३ ॥

दृष्टि, निःश्वास, दाढ, नख, विष्ठा, वीर्य, लार, स्पर्श मुख, डसना, अधोवायु, गुदा, अस्थि, पित्त और शूक (मुखकी अनी) इस प्रकार जंगम विषके ये सोलह आश्रय हैं ॥३॥

तद्यथा-दृष्टिनिःश्वासविषाःदिव्याः सर्पाः । दंष्ट्राविषाःभौमसर्पाः । दंष्ट्रानखविषाः व्याघ्रादयः । मूत्रपुरीषविषाः गृहगोधिकादयः । शुक्रविषाः । मूषिकादयः । लालाविषाः उच्चिटिङ्गादयः । लूता

लालास्पर्शमूत्रपुरीषार्तवशुक्रमुखसन्दंश-विषाः । मुखसन्दंशदंष्ट्रापर्दितगुदपुरीषविषाः चित्रशीर्षादयः । अस्थिविषाः सर्पादयः । पित्तविषाः शकुलमत्स्यादयः। शूकविषाः भ्रमरादयः । शवविषाःगतासवः कीटसर्पदेहाः ॥

दिव्य सर्पोंकी दृष्टि और निश्वासमें विष रहता है, पृथ्वीके भयंकर सर्पोंकी दाढमें विष रहता है । बाघ, सिंह आदि जीवोंकी दाढ तथा नाखूनोंमें विष रहता है । छिपकली आदि जीवोंके मूत्र और विष्ठामें विष रहता है । चूहे आदिके शुक्रमें विष रहता है । मकडी आदिकी लारमें विष रहता है । चित्रशीर्ष आदिकी लारमें, स्पर्शमें, मूत्रमें, विष्ठामें वीर्यमें, मुखमें, दंशमें; अधोवायुमें तथा गुदामें विष रहता है । सर्प आदिकी अस्थियोंमें विष रहता है । शकुल आदि मछलियोंके पित्तमें विष रहता है और भौंरे आदिके मुखके अग्रभागमें विष रहता है मरे हुए कीडे और सर्प आदिकी देहमें भी विष रहता है ॥

अथ मूलादिविषाणां प्रत्येकशो-लक्षणम् ।

तत्र मूलविषकार्य्यम् ।

उद्वेष्टनं मूलविषैर्मोहः प्रलपनं तथा ॥४॥

मूलविषको भक्षण करनेसे शरीर ऐंठे, वेहोशी और प्रलाप होता है ॥ ४ ॥

अथ पत्रविषकार्य्यम् ।

जृम्भणं वेपनं श्वासो नृणां पत्रविषैर्भवेत् ॥ ५ ॥

पत्रविषको भक्षण करनेसे जम्भाई आती है, कम्प और श्वास होता है ॥ ५ ॥

अथ फलविषकार्यम् ।

मुष्कशोथः फलविषैर्दाहो द्वेषश्च भोजने ॥ ६ ॥

फलविषको भक्षण करनेसे अंडकोषोंमें सूजन, दाह और भोजनपर अरुचि होती है ॥ ६ ॥

अथ पुष्पविषकार्यम् ।

भवेत्पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं मूर्च्छनं तथा ॥ ७ ॥

फूलके विष खानेसे वमन, अफारा और मूर्छा होती है ॥ ७ ॥

अथ त्वक्सारनिर्यासविषकार्यम् ।

त्वक्सारनिर्यासविषैरुपभुक्तैर्भवन्ति हि । आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्य शिरोरुक्कफस्रवाः ॥ ८ ॥

छाल, सार और गोंदके विषको भक्षण करनेसे मुखमें दुर्गंध, मस्तकमें पीडा, शरीरमें रूक्षता और कफका स्राव होता है ॥ ८ ॥

अथ क्षीरविषकार्यम् ।

फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुजिह्वता ॥ ९ ॥

क्षीरविषको खानेसे मुखमें झाग आते हैं, दस्त होते हैं और जीभ जड होजाती है ॥ ९ ॥

अथ धातुविषकार्यम् ।

हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि। प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ १० ॥

एतानि-मूलविषाणि नव कालघातीनि कालान्तर मारकाणि ॥

धातुविषको खानेसे हृदयमें पीडा, मूर्च्छा और तालुवेमें दाह होता है । उपरोक्त मूल आदि नौ विषोंको खानेसे विशेष करके कालांतरमें मृत्यु होती है ॥ १० ॥

अथोपयुक्तनवविषविशेषलक्षणम् ।

तत्र कंदविषविशेषकार्यम् ।

कन्दजान्युग्रवीर्याणि यान्युक्तानि त्रयोदश । सर्वाण्येतानि कुशलैर्ज्ञेयानि दशभिर्गुणैः ॥ ११ ॥

कन्दसे उत्पन्न तेरह प्रकारका विष जो कि, सुश्रुत आदि ग्रन्थोंमें कहा है, वह उग्र-शक्ति सम्पन्न है अर्थात् तत्काल प्राणोंको नष्ट कर देता है ॥ ११ ॥

अथ विषपरीक्षा।

स्थावरं जङ्गमं वाऽपि कृत्रिमं चापि यद्विषम्। सद्यो निहन्ति तत्सर्वं गुणैश्च दशभिर्युतम् ॥ १२ ॥

प्रवीण वैद्य सम्पूर्ण विषोंकी परीक्षा नीचे लिखे दश गुणोंसे करे। स्थावरविष, जंगमविष और कृत्रिमविष जो दशगुणोंसे युक्त हो तो तत्काल मनुष्यको मार देते हैं ॥ १२ ॥

अथ विषस्यं दश गुणाः।

रूक्षमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाशु व्यवायि च। विकाशि विशदश्चैव लघ्वपाकि च ते दश ॥ १३ ॥

रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, आशु, व्यवायी, विकाशी, विशद, लघु और अपाकी ये दश गुण विषमें रहते हैं ॥ १३ ॥

अथोक्तदशगुणानां कार्यम्।

स रौक्ष्यात्कोपयेद्वायुमौष्ण्यात्पित्तं सशोणितम्। तैक्ष्ण्यान्मतिं मोहयति मर्मबन्धाञ्छिनत्ति हि ॥ १४ ॥ शरीरावयवान् सौक्ष्म्यात् प्रविशेद्विकरोति च। आशुत्वादाशु तत्प्रोक्तं व्यवायात्प्रकृतिं हरेत् ॥ १५ ॥ विकाशित्वात्क्षपयति दोषान्धातून्मलानपि। अतिरिच्यते वैशद्याद् दुश्चिकित्स्यं च लाघवात् ॥ १६ ॥ दुर्जरं चाविपाकित्वात्तस्मात् क्लेशयते चिरम् ॥ १७ ॥

वहां विष रूक्ष होनेके कारण वायुको कुपित करता है। उष्ण होनेके कारण पित्त तथा रुधिरको प्रकुपित करता है। तीक्ष्ण होनेके कारण बुद्धिको मोहयुक्त और मर्मोंके बन्धनोंको तोडता है। सूक्ष्म होनेके कारण शरीरके अवयवोंमें प्रविष्ट होजाता है। आशु होनेके कारण शरीरमें तत्काल शीघ्रतासे फैलकर विकारोंको करता है। व्यवायी होनेके कारण प्रकृतिको बदल देता है। विकाशी होनेके कारण दोषोंको, धातुओंको तथा मलकी क्षीण कर देता है। विशद होनेके कारण अत्यन्त दस्तोंको लाता है। लघु होनेके कारण दुश्चिकित्स्य हो जाता है और अपाकी होनेके कारण बडी कठिनतासे बडे यत्नोंके पचता है, इन गुणोंके होनेसे विष बहुत दिनोंतक दुःख देता है ॥ १४-१७ ॥

विषलिप्तशस्त्रहतलक्षणम्।

सद्यः क्षतं पच्यते यस्य जन्तोः स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम्। कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति क्षतान्मांसं शीर्यते यस्य वाऽपि ॥ १८ ॥ तृष्णातापौ दाहमूर्च्छे च यस्य दिग्धं विद्धं तं मनुष्यं व्यवस्येत्। लिङ्गान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्दत्तःक्ष्वेडो वा व्रणे यस्य चापि ॥ १९ ॥

पच्यते चाभ्यभीक्ष्णं पुनः पुनः पाकमेति। तापः बहिः स्थितः। दाहोऽभ्यन्तरे। कुर्यादित्यत्र क्षतं कर्तृपदं बोद्धव्यम् ॥

घाव तत्काल पकजाय, घावमेंसे रुधिर बहाकरे, वारंवार पके, घावमेंसे काला क्लेदयुक्त तथा अत्यन्त दुर्गंधित मांस गिरे तृषा लगे, बाहर संताप हो, भीतर दाह हो और मूर्च्छा भी हो तो जानना कि, इस मनुष्यके विषसे बुझे हुए शस्त्रका प्रहार हुआ है ॥१८॥१९॥

अथ विषदातृलक्षणम्।

इङ्गितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः। जानीयाद्विषदातारमेभिर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान् ॥ २० ॥ न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च। अपार्थं बहु सङ्कीर्णं

भाषते चापि मूढवत् ॥ २१ ॥ अङ्गुलीः स्फोटयेदुर्वीं विलिखेत् प्रहसेदपि। वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चैकैकमीक्षते ॥ २२ ॥ विवर्णवक्त्रो ध्मानश्च नखैः किञ्चिच्छिनत्ति च। आलभेदसकृद्दीनः करेण च शिरोरुहान् ॥ २३ ॥ निर्यियासुरपद्वारैर्वीक्षते च पुनः पुनः। वर्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः ॥ २४ ॥

इङ्गितम्-अभिप्रायसूचकम् आकारम्। मुखवैकृतं मुखवैवर्ण्यादि। एभिर्लिंगैर्वक्ष्यमाणैः। न ददात्युत्तरं पृष्टः स्वीयासत्कर्मजनितव्यामोहात्। सकीर्णम्--अस्फुटम्। भयजनितपर्वव्यथापनोदाय अंगुलीः स्फोटयेत्। प्रहसेदहेतावपि। ध्मानः--दग्धसमानवर्णः। आलभेत्--स्पृशेत्। विपरीतं यथा स्यादेवं वर्तते ॥

प्रायः राजा और बडे मनुष्योंको उनके शत्रु सेवक अन्नादिकमें विष मिलाकर देते हैं, इसलिये उस विष देनेवालेके लक्षण नीचे लिखते हैं-

मनुष्योंके अभिप्रायको जाननेवाले बुद्धिमान पुरुष वाणी (बोलना,) चेष्टा (उठना बैठना) और मुखके विकाररूप नीचे लिखे लक्षणोंसे विष देनेवालेको जानलेवे। विष देनेवालेसे पूछनेपर वह अपने दुष्ट कर्मकी बेहोशीसे उत्तर न दे और जो मनको रोककर बोले तो बोला न जाय, वा घबडा जाय, मूर्खके समान बहुत व्यर्थ तथा गिडगिडाकर गडबड वचन बोले भयसे उत्पन्न हुई संधियोंकी पीडाको दूर करनेके लिये अंगुलियोंको चटकावे, विना ही कारण हँसे, पृथिवीको लिखे वा खोदे, काँपे, भयभीत होकर एक एक मनुष्यको देखे, मुँहका रंग बदल जाय वा मुख उतर जाय, जलेके समान रंगवाला हो जाय, नखोंसे तृण आदिको तोडे, रंकके समान होकर बारंबार बालोंको हाथसे छुवे दरवाजेको छोडकर दूसरे मार्गसे जानेकी बारंबार चेष्टा करे, विपरीत कामोंकी इच्छा करे, असानी (पागल) ला होकर इधर उधर देखे और सबसे पीठ फेरकर बैठे, विष देनेवालेके ये लक्षण होते हैं ॥ २०-२४ ॥

अथ जङ्गमविषस्य सामान्यकार्यम्।

निद्रां तन्द्रां क्लमं दाहं संपाकं लोमहर्षणम्। शोथं चैवातिसारं च कुरुते जङ्गमं विषम् ॥ २५ ॥

जंगम विष-निद्रा, तन्द्रा, ग्लानि, दाह, पाक, रोमांचोंका होना, सूजन और अतिसारको उत्पन्न करता है ॥ २५ ॥

अथ जंगमविषस्यातितीक्ष्णत्वेन तदाश्रयसर्पलक्षणम्।

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलिराजिलाः। यथाक्रमं समाख्याता द्व्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः ॥ २६ ॥ फणिनो भोगिनो ज्ञेयाः संख्यातास्तेऽत्र विंशतिः। मण्डलैर्विविधैश्चित्राः पृथवो मन्दगामिनः। षट् ते मण्डलिनो ज्ञेया ज्वलनार्कविषाः स्मृताः ॥ २७ ॥ स्निग्धा विविधवर्णाभिस्तिर्यगूर्ध्वश्च राजिभिः। विचित्रा इव ये भान्ति राजिलास्ते हि तेऽपि षट् ॥ २८ ॥

एते यथाक्रमं वातापित्तकफात्मानो बोध्याः। द्व्यन्तराः द्वे अन्तरे भेदो येषां ते द्व्यन्तराः, यथा भोगिनो मण्डलिन्यां जाता इत्यादि ॥

मुख्यातासे प्रायः भोगी, मंडली और राजिल इस प्रकार तीन जातिके सर्प हैं। इसमें भोगी सर्व वातप्रकृतिवाले हैं, मंडलीसर्प पित्तकी प्रकृतिवाले हैं और राजिल सर्प कफकी प्रकृतिवाले हैं और जो एक जातिके सर्पसे दूसरी जातिकी सर्पिणीमें उत्पन्न (जैसे कि, भोगी-

जातिके सर्पसे मंडलीजातिकी सर्पिणीमें उत्पन्न हुआ हो वह मिश्रित प्रकृतिवाला है फणवाले सर्पको भोगी कहते हैं और उसके बीस भेद हैं। जो सर्प विविध मंडलोंसे चित्रित, मोटे और मन्दगतिवाले हैं, वे मंडली जातिके सर्प अग्नि तथा सूर्यके समान अत्यन्त उग्र विषवाले होते हैं। इनके छः भेद हैं। जो सर्प स्निग्ध हैं और आडी सीधी ऊँची रेखाओंसे चित्रित दीखते हैं, वे राजिल सर्प कहे जाते हैं और उनके छः भेद हैं ॥ २६-२८ ॥

अथ भोगिसर्पादिकृतदंशलक्षणम्।

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत्। पीतो मण्डलिनः शोथो मृदुः पित्तविकारवान् ॥ २९ ॥ राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः। पाण्डुः स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक्सर्वश्लेष्मविकारवान् ॥ ३० ॥

भोगी सर्पका डसा हुआ स्थान काला होता है और सम्पूर्ण वायुसंबन्धी विकारोंको उत्पन्न करता है। मंडली सर्पका काटा हुआ स्थान पीला सूजनयुक्त होता है, कोमल और पित्तसंबंधी विकारोंको उत्पन्न करता है राजिल सर्पका काटा हुआ स्थान स्थिर सूजनसहित चिकना, पाण्डु, स्निग्ध, अत्यन्त गाढे रुधिरवाला और संपूर्ण कफजनित विकारोंवाला होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ विशिष्टदेशादिदष्टस्य असाध्यत्वम्।

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसन्ध्यासु चतुष्पथेषु। याम्ये च पित्र्ये परिवर्जनीया ऋक्षे शिरामर्मसु ये च दष्टाः ॥ ३१ ॥

याम्ये-भरण्याम्। पित्र्ये--मघायाम् ॥

पीपलके वृक्षके नीचे, देवमंदिरमें, श्मशानभूमिमें, बाँबीमें, चौराहेमें, संध्याकालमें, भरणी नक्षत्रमें और मघानक्षत्रमें सर्पका काटा हुआ असाध्य है, शिरामर्मस्थानोंमें काटा हुआ भी असाध्य है ॥ ३१ ॥

अथदर्वीकरजातिसर्पाणां विषम्।

दर्वीकराणां विषमाशु हन्ति मेघानिलोष्णे द्विगुणा भवन्ति ॥ ३२ ॥

उष्णे--उष्णसंयोगे ॥

दर्वीकरजातिके सर्पका विष तत्काल मार देता है और वे सर्प वर्षा, पवन और गरमीके संयोगसे दुगुने बढते हैं अथवा इनके संयोगसे उनका विष दुगुना बढ़ता है ॥ ३२ ॥

अथ दर्वीकरलक्षणम्।

रथाङ्ग—लाङ्गल-च्छत्र-स्वस्तिकांकुशधारिणः। ज्ञेया दर्वीकराः सर्पाः फणिनः शीघ्रगामिनः ॥ ३३ ॥

जो सर्प चक्र, हल, साथिया और अंकुशके चिह्न युक्त हो, फणवाला हो और बहुत शीघ्र चलनेवाला हो, उसको दर्वीकर कहते हैं॥३३॥

अथापरेषु यथाऽऽशुघातित्वं सम्भवति तानाह।

अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु। क्षीणे क्षते मेहिनि कुष्ठजुष्टे रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि ॥ ३४ ॥ शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमस्ति राज्यो लताभिश्च न सम्भवन्ति। शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥ ३५ ॥

अजीर्णसे पीडित, पित्तसे पीडित, धूपसे व्याकुल, बालक, वृद्ध, भूखा, क्षीण, घावयुक्त, प्रमेहरोगी, कुष्ठ रोगी, रूखे शरीरवाला, निर्बल मनुष्य और गर्भवती स्त्री ये विषसे तत्काल मर जाते हैं। यदि विषसे पीडित मनुष्यके शरीरमें शस्त्रसे घाव करनेसे रुधिर न निकले, चाबुक मारनेसे शरीरमें उछले नहीं और शीतल जल बराबर शरीरपर डालनेसे रोमांच न हों, तो ऐसे विषरोगीकी चिकित्सा न करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

जिह्मं मुखं यस्य च केशशातो नासावसादश्च सकण्ठभङ्गः । कृष्णश्च रक्तः श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वश्च विवर्जनीयः ॥ ३६ ॥

केशशातः आकर्षणात् । नासावसादः-नासायाः नतत्त्वम् । कण्ठभङ्गः-ग्रीवाधारणाऽशक्तिः । हन्वोः स्थिरत्त्वम्-हनुद्वयस्तम्भः ॥

जिसका मुख टेढा हो गया हो, छूनेसे बाल टूट २ कर गिरें, नाक तिरछी होजाय, बैठ जाय, नाड अर्थात् गर्दन झुकजाय, लटक जाय, काटनेकी जगह काली लाल सूजन हो और दोनों जाबढे स्तब्ध होजायँ उसकी भी चिकित्सा न करे ॥ ३६ ॥

अपरश्च—वान्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य । दंष्ट्रानिपातांश्चतुरश्च पश्येद्यस्यापि वैद्यैः परिवर्जनीयः ॥ ३७ ॥

यस्य च नासामुखलिंगगुदादिभ्यो रक्तं स्रवेत् ॥

जिसके मुखमें गाढी वमन निकलती हो, नाक, मुख, लिंग तथा गुदा आदिमेंसे रुधिर निकलता हो और जिसके चार दांत लगे हों, उसकी भी चिकित्सा न करे ॥ ३७ ॥

उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं वाप्यथवा विवर्णम् । सारिष्टमत्यर्थमवेगिनश्च जह्यान्नरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥ ३८ ॥

अत्यर्थमुपद्रुतं वा ज्वरातिसारादिभिरतिशयेन उपद्रुतम् । हीनस्वर-वक्तुमक्षमम् । विवर्ण कृष्णवर्णम् । सारिष्टं-नासाभङ्गादियुक्तम् । अवेगिनं-वेगोविषवेगः 'लहरि' इति लोके, तद्रहितम् ॥

जो मनुष्य उन्मत्त हो, ज्वर अथवा अतिसार आदिसे अत्यन्त पीडित हो, बोलनेको असमर्थ हो, शरीरका वर्ण काला पड गया हो, नाक बैठजाना आदि अरिष्टोंसे युक्त हो और जिसके विषकी लहर न उठे उसको भी त्याग देना चाहिये; अर्थात् उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि, ऐसे मनुष्य तत्काल ज्वरसे मर जाते हैं ॥ ३८ ॥

"स्थावरं जंगमं च विषमेव जीर्णत्वादिभिः कारणैर्दूषीविषसंज्ञां लभते ॥"

"स्थावर और जंगम विष ही जीर्णतादि कारणोंसे दूषीविष कहे जाते हैं"

अथ दूषीविषलक्षणम् ।

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा । स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ ३९ ॥

जीर्णम्-अतिपुराणम् । विषघ्नौषधिदूषितं विषघ्नीभिरौषधीभिर्वीर्यहीनं कृतम् । स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं-स्वभावादेव दशानां गुणानां मध्ये एकद्वित्र्यादिगुणहीनम् ॥

जो विष अत्यन्त पुराना होगया हो अथवा विषनाशक औषधियोंसे हीनवीर्य होगया हो अथवा दावाग्नि, वायु और धूपसे सूखगया हो अथवा स्वाभाविक दशगुणोंमेंसे एक दो तीन चार गुणरहित हो गया हो उसको 'दूषीविष' कहते हैं ॥ ३९ ॥

अथ दूषीविषकार्यम् ।

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगणानुबन्धि । तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगन्धिवैरस्ययुतः पिपासी । मूर्च्छां भ्रमं गद्गदवाग्वमिश्च विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा ॥ ४० ॥

न निपातयेत्-न मारयेत् । कफान्वितं कफेन मन्दीकृतौष्ण्यादिगुणम् । वर्षगणानुबंधि-कफेनाग्नेर्मान्द्यादप्यकाश्चिरस्थायि । तथा दूषीविषजदद्रुरोगवतां भिन्नपुरीषवर्णः भिन्नपुरीष

उद्गत-मलः, भिन्नवर्णः—विवर्णः। विचेष्टमानः-विरुद्धां चेष्टां कुर्वन् मूर्च्छादीन्व्याधीन् लभते॥

यह दूषीविष हीनवीर्य होनेके कारण मारता तो नहीं, किंतु कफसे उष्णादिगुणोंके मन्द होनेके कारण और कफसे अग्निकी मन्दता होकर यह विषनही पकनेके कारण बहुत दिनोंतक शरीरमें रहता है। दूषीविषयसे पीडित मनुष्यके दस्त पतला आता है, शरीरका रंग बदलजाता है, विरुद्धचेष्टा करनेलगता है, चैन नहीं मिलता और मूर्च्छा, भ्रम, वाणीका गद्गदपना और वमन ये व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं॥ ४०॥

अथ स्थानविशेषेण दूषीविषलक्षणविशेषः।

आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी। भवेत्समुद्ध्वस्तशिरोऽङ्गरुट्को विलूनपक्षश्च यथा विहङ्गः॥४१॥

समुद्ध्वस्तशिरोऽङ्गरुट्कः-समुद्ध्वस्ताः शिरोरुहा केशाः, अंकरुहाणि लोमानि यस्य सः। एतदपि लिंगं पक्वाशयस्थे दूषीविषे बोद्धव्यम्॥

दूषीविष आमाशयमें प्राप्त हो तो कफसम्बन्धी और वायुसम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करता है। पक्वाशयमें प्राप्त हो तो वात पित्तसम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करता है, शिरके बालोंमें और अंगोंके रोमोंमें प्राप्त हो तो पंख रहित पक्षीके समान कर देता है॥ ४१॥

स्थितं रसादिष्वथ तद्यथोक्तान् करोति धातुप्रभवान्विकारान्॥ ४२॥

तत्र दूषीविषे यथोक्तान्-सुश्रुते व्याधिसमुद्देशीयोक्तान्॥

दूषीविष रसादि धातुओंमें प्राप्त हो तो सुश्रुतके सूत्र स्थानके व्याधिसमुद्देशीयनामके चौवीसवें अध्यायमें कहे अनुसार धातुसम्बन्धी विकारोंको उत्पन्न करता है॥

अथ दूषीविषस्य प्रकोपसमयः।

कोपं तु शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तस्य रूपम्॥ ४३॥

यह दूषीविष अत्यन्त शीतके समय, अत्यन्तपवन चलनेके समय और बादलोंसे घिरे हुए दिनमें तत्काल प्रकोपसे प्राप्त होता है, अब प्रकुपित दूषीविषके पूर्वरूपको कहता हूँ, सो सुनो॥ ४३॥

अथ प्रकुपितदूषीविषपूर्वरूपम्।

निद्रा गुरुत्वञ्च विजृम्भणञ्च विश्लेषहर्षावथवाऽङ्गमर्दः॥ ४४॥

विश्लेषः-गात्रशैथिल्यम्। हर्षः—रोमाञ्चः॥

निद्रा, शरीरमें भारीपन, जम्भाइओंका आना, अंगोंमें शिथिलता, रोमांचोंका होना अंगोंका टूटना ये प्रकुपित दूषीविषके अंगोंका पूर्वरूप हैं॥ ४४॥

अथ प्रकुपितदूषीविषरूपम्।

ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठजन्म। मांसक्षयं पाणिपदे प्रशोथं मूर्च्छां तथा च्छर्दिमथातिसारम्॥४५॥ दूषीविषं श्वासतृषाज्वरांश्च कुर्यात्प्रवृद्धिं जठरस्य चापि॥ ४६॥

अन्ने भुक्ते पूगफलेनेव मदः। अविपाक अन्नस्य॥

प्रकोपको प्राप्त हुआ दूषीविष अन्न जीमनेपर सुपारीके समान मदको करता है, अन्नको पचने नहीं देता और अरुचि, शरीरमें चकत्ते और गांठोंको उत्पन्न करता है एवं मांसक्षय, हाथ-पांवोंमें सूजन, मूर्च्छा, वमन, अतीसार, श्वास, तृषा, ज्वर और उदरको बढाता है ४७॥

अथ दूषीविषभेदेन विकारभेदः।

उन्मादमन्यज्जनयेत्तथाऽन्यदानाहमन्यत्क्षपयेच्च शुक्रम्। गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च

कुष्ठं तांस्तान् विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ ४७ ॥

अन्यत्, दूषीविषम् । तांस्तान्-विसर्पविस्फोटादीन् ॥

कोई दूषीविष उन्मादको उत्पन्न करता है, कोई दूषीविष आनाहको उत्पन्न करता है कोई दूषीविष वीर्यको क्षीणकरता है, कोई दूषीविष वाणीको गद्गद करता है, कोई दूषीविष कोढको उत्पन्न करता है और कोई दूषीविष अनेक प्रकारके विसर्प तथा विस्फोटकादि उपद्रवोंको उत्पन्न करता है ॥ ४७ ॥

अथ दूषीविषशब्दनिरुक्तिः ।

दूषितैर्देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः ।
यस्मात्सन्दूषयेद्धातूंस्तस्माद् दूषीविषं स्मृतम् ॥ ४८ ॥

देशः आनूपादिः । कालो दुर्दिनादिः । अन्नं कुलत्थतिलमसूरादि धातुदूषकत्वात् दूषीविषम् ॥

देश, काल, अन्न और दिनकी निद्रासे वारंवार दूषित हुआ यह विष धातुओंको दूषित करता है, इस कारण यह 'दूषिविष' कहाजाता है ॥ ४८ ॥

जलपाय आदि देशोंसे, बादलोंके घिरे हुए दिन आदि कालसे और कुलथी, तिल तथा मसूर आदि अन्नोंसे यह विष दूषित होता है ॥

अथ दूषीविषस्य साध्यत्वादि ।

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम् । दूषीविषमसाध्यं स्यात् क्षीणस्य हितसेविनः ॥ ४९ ॥

दूषीविष जितेंद्रिय अर्थात् पथ्य सेवन करनेवालेको तत्काल साध्य होता है । एक वर्षके पश्चात् याप्य होजाता है और क्षीण तथा अपथ्य सेवन करनेवाले मनुष्यको असाध्य है ॥ ४९ ॥

कृत्रिमं विषं द्विविधम् । एकं सविषं दूषीविषसंज्ञम्, अपरविषं तदेव गरसंज्ञम् ॥

'दूषीविष' और 'गर' इस प्रकार कृत्रिमविष दो प्रकारका है । जिसमें विषका सम्बन्ध हो तो वह 'दूषीविष' कहाजाता है और जिसका निरूपण नीचे लिखते हैं, जिसमें विषका सम्बन्ध नहीं होता, उसको 'गर' कहते हैं ।

तथा च काश्यपसंहितायाम्—"संयोगजश्च द्विविधं द्वितीयं विषमुच्यते । दूषीविषं तु सविषमविषं गरमुच्यते ॥" संयोगजं कृत्रिमं विषम्, द्वितीयं स्वाभाविकं तच्च द्विविधम् ॥

काश्यपसंहितामें कहा है, कि–"कृत्रिमविष जो कि संयोगसे होता है, उसके दूषीविष और गर ये दो भेद हैं । विषके सम्बन्धवाला दूषीविष कहाजाता है और विषके सम्बन्धी नहीं होनेपर जो विषका काम करे वह गर कहा जाता है ॥"

अथ कृत्रिमविषलक्षणम् ।

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदं रजो नानाङ्गजान् मलान् । शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान् प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ ५० ॥

स्त्रियाँ पतिको वशमें करनेके लिये पसीना, रज और अङ्गके अनेक मलोंको भोजनमें मिलाकर पतियोंको खिला देती हैं तथा शत्रु भी इसी प्रकारके पदार्थोंको भोजनमें मिलाकर मनुष्योंको खिला देते हैं । पसीना आदि अधम पदार्थगर कहता है ॥ ५० ॥

अथ गरकार्यम् ।

तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्ज्वरश्चास्योपजायते । मर्मप्रधमनाध्मानं क्षयः शोथस्य सम्भवः ॥ ५१ ॥

तैः-गरैः स्वेदरज प्रभृतिभिः । ज्वरश्चास्योपजायत इति अपाकात् । मर्मप्रधमनं-मर्मव्यथा । क्षयः-धातुक्षयः ॥

पसीना तथा रज आदि गरसे पांडुता होती है, शरीर कृश होजाता है, अग्नि मन्द होजाती है, ज्वर आता है. मर्मस्थलोंमें पीडा होती है, अफारा होता है, धातुक्षय और सूजन होती है ॥ ५१ ॥

अथ लूतानामकजन्तोरुत्पत्तिरर्थः संख्या च ।

यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिन्दवः । तेभ्यो जातास्तथा लूता इति ख्यातास्तु षोडश ॥ ५२ ॥

मुनिके पसीनेकी छींटें तृणोंके ऊपर गिरे, उनमेंसे जो जीव उत्पन्न हुए वे लूता कहे जाते हैं । लूताकी जाति सोलह हैं । 'लू' इस धातुका अर्थ काटनेका है ॥ ५२ ॥

तथा चात्र सुश्रुतः ।

विश्वामित्रो नृपवरः कदाचिदृषिसत्तमम् । वसिष्ठं कोपयामास गत्वाऽश्रमपदं किल ॥ ५३ ॥ कुपितस्य मुनेस्तस्य ललाटात्स्वेदबिन्दवः । अपतन् दर्शनादेव ह्यधस्तात् तीव्रवर्चसः ॥ ५४ ॥ लूने तृणे महर्षेस्तु धेन्वर्थे सम्भृतेऽपि च । ततो जातास्त्विमे घोरा नानारूपा महाविषाः । तासामष्टौ कष्टसाध्या वर्ज्यास्तावत्य एव हि ॥ ५५ ॥ " तत्र त्रिमण्डलप्रभृतयोऽष्टौ कष्टसाध्याः, सौवर्णिकप्रभृतयोऽष्टौ असाध्याः ॥"

इसपर सुश्रुत लिखता है कि-"राजाओंमें उत्तम विश्वामित्र किसी समय वसिष्ठके आश्रममें जाकर महामुनि वसिष्ठजीको क्रोधित कराते हुए । अत्यन्त तेजस्वी ये महामुनि वसिष्ठजी विश्वामित्रके दर्शनसे ही अत्यन्त कुपित हुए । तब उनके ललाटमेंसे पसीनेकी बूँदें गायके लिये जो काटे हुए तृण रक्खे थे, उनपर गिरीं । उनमेंसे भयंकर महा विषैले और अनेक आकृतिवाले लूता नामवाले कृमि उत्पन्न हुए हैं । इसमें 'त्रिमण्डल आदि आठ कष्टसाध्य हैं और सौवर्णिक आदि आठ असाध्य हैं" ॥ ५३-५५ ॥

अथ लूतादंशलक्षणम् ।

ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च । ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ ५६ ॥ पिडिका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च । शोथा महान्तो मृदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ॥ ५७ ॥ सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम् ॥ ५८ ॥

दंशकोथः-दंशमध्ये पूतिभावः ॥

लूता अर्थात् मकडी आदि काटे तो वह काटनेका स्थान सड जाता है, रुधिर बहने लगता है, ज्वर आजाता है, दाह होता है अतिसार होता है, त्रिदोषजनित रोग होते हैं, अनेक प्रकारकी फुंसियां उत्पन्न होती हैं, बडे बडे चकते पड जाते हैं और बडी, गम्भीर, कोमल, लाल, चपल तथा कलौंसयुक्त सूजन होती है, लूताके दंशके सामान्य लक्षण हैं ॥ ५६-५८ ॥

दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यावं वा जालकावृतम् । दग्धाकृति भृशं पाकक्लेदशोथज्वरान्वितम् ॥ ५९ ॥ दूषीविषाभिर्लूताभिस्तद्दष्टमिति निर्दिशेत् ॥ ६० ॥

दंश जो काला अथवा कुछेक झाईंवाला, जालेसहित, जलेके समान, अत्यन्त पकनेवाला हो, और क्लेद, सूजन तथा ज्वर ये लक्षण दीखते हों तो जानना कि, दूषीविषनामक लूताका दंश अर्थात् काटा हुआ है ॥ ५९—६० ॥

अथ असाध्यसौवर्णकाद्यष्टलूतानां दंशलक्षणम्।

शोथः श्वेताः सिता रक्ताः पीताश्च पिडिका ज्वरः। प्राणान्तिकाभिजायन्ते दाहहिक्काशिरोग्रहाः ॥ ६१ ॥

असाध्य लूता काटे तो शोथ, सफेद, लाल तथा पीली फुंसी होती हैं, ज्वर आजाता है प्राणान्त करनेवाली दाह, श्वास, हिचकी और शिरमें पीडा होती है ॥ ६१ ॥

अथ मूषकविषलक्षणम्।

आदंशाच्छोणितं पाण्डुमण्डलानि ज्वरोऽरुचिः। लोमहर्षश्च दाहश्चाप्यखुदूषीविषार्दिते ॥ ६२ ॥

चूहेके काटनेके स्थानका रुधिर पीला पड जाता है, चकत्ते उठ आते हैं, ज्वर, अरुचि, रोमांच हो आते हैं और दाह होता है ॥ ६२ ॥

अथ प्राणहरमूषकविषलक्षणम्।

मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ण्यं क्लेदो मन्दश्रुतिर्ज्वरः। शिरोगुरुत्वं लालाऽसृक्छर्दिश्चासाध्यमूषकात् ॥ ६३ ॥ अङ्गशोथोऽत्र मूषकाकारो बोद्धव्य इति तन्त्रान्तरे ॥

असाध्य विषवाले मूषेके काटनेसे मूर्च्छा अंगोंमें सूजन, वर्णका बदलना, क्लेद, बधिरता, ज्वर, मस्तकका भारीपन, लारका गिरना और रुधिरकी वमन ये लक्षण होते हैं। अन्य ग्रन्थोंमें लिखा है कि-"चूहेके काटनेसे शरीरमें चूहेके आकारवाली सूजन होती है"॥६३॥

अथ कृकलासदंशलक्षणम्।

शोथस्य कार्ष्ण्यमथवा नानावर्णत्वमेव च। मोहोऽथ वर्चसो भेदोदष्टस्य कृकलासकैः ॥ ६४ ॥

करकटेके काटनेसे काटनेका स्थान काला अथवा अनेक प्रकारका होजाता है, मोह हो जाता है और दस्त अधिक आते हैं ॥ ६४ ॥

अथ वृश्चिकविषलक्षणम्।

दहत्यग्निरिवादौ तु भिनत्तीवोर्ध्वमाशु च। वृश्चिकस्य विषं याति पश्चाद्दंशेऽवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

बिच्छूका विष प्रथम आग लगनेके समान दाह करता है, फिर शीघ्रतासे ऊपरको चढकर मानो अंगोंको भेदता हो ऐसी व्यथा करता है, पश्चात् कुछ समयमें काटनेके स्थानमें आकर स्थिर होजाता है ॥ ६५ ॥

अथासाध्यवृश्चिकदंशलक्षणम्।

दष्टोऽसाध्यैस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः। मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तोजहात्यसून् ॥ ६६ ॥

असाध्यैर्वृश्चिकैस्तेषामेवानुवृत्तेः। हृदादिषु उपहतः हृदादिकार्यरहितो भवति। अत्यर्थं वेदनार्त इत्यन्वयः ॥

असाध्य विषवाला बिच्छू काटे तो हृदय, नाक तथा जीभ ये अपने अपने कार्य करनेमें असमर्थ हो जाते हैं, इस प्रकार वेदना होती है। मांस गलकर गिर जाता है और इस वेदनासे प्राण भी निकल जाते हैं ॥ ६६ ॥

अथ कणभकृमिदंशलक्षणम्।

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि वा। लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैव विशीर्यते ॥ ६७ ॥

कणभः-कीटविशेषः ॥

कणभ नामक कृमि काटे तो विसर्प, सूजन, शूल, ज्वर अथवा वमन होती है और काटनेकी जगह गलजाती है ॥ ६७ ॥

अथोच्चिटिङ्गदंशलक्षणम् ।

कृष्णलोमोच्चिटिङ्गेन स्तब्धलिङ्गो भृशार्तिमान् । दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥ ६८ ॥

कृष्णलोमाअधिकतरकृष्णरोमा । उच्चिटिंगश्चीटा कीटविशेषः ॥

काले और बडे रोमवाले उच्चिटिंग अर्थात् चीटा वा झींगर काटे तो सम्पूर्ण स्तब्धताके लक्षण होते हैं, बहुत वेदना होती है और जैसे कि, समस्त शरीरपर शीतल जल छिडक दिया हो, ऐसा मालूम होता है ॥ ६८ ॥

अथ सविषमण्डूकदंशलक्षम् ।

एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् । सनिद्रश्छर्दिमान् दष्टो मण्डूकैः सविषैर्भवेत् ॥ ६९ ॥

एकदंष्ट्रादितः-स्वभावादेकयैव दंष्ट्रया दष्टो भवति ॥

विषैला मेंढक काटे तो काटनेके स्थानमें एक ही दाढ उठ आती है, वेदनायुक्त पीली सूजन होती है, तृषा लगती है, निद्रा आती है और वमन होती है ॥ ६९ ॥

अथ सविषमत्स्यलक्षणम् ।

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा ॥ ७० ॥

विषैली मछली काटे तो दाह, सूजन और वेदना होती है ॥ ७० ॥

अथ जलौकोविषकार्यम् ।

कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलौकसः ॥ ७१ ॥ कुर्युरिति शेषः ॥

विषैली जोंक काटे तो खुजली, सूजन, ज्वर, मूर्च्छा ये सब लक्षण होते हैं ॥ ७१ ॥

अथ गृहगोधिकाविषलक्षणम् ।

विदाहं श्वयथुं तोदं प्रस्वेदं गृहगोधिकाः ॥ ७२ ॥ कुर्युरिति शेषः ॥

छिपकली काटे तो दाह होता है, सूजन होती है, भोंकने तथा तोडने सरीखी पीडा होती है और अंगोंमें पसीना आता है ॥७२॥

अथ शतपदीविषकार्यम् ।

दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ७३ ॥

शतपदी 'गिजाई' इति लोके ॥

कानखजूरा काटे तो काटनेकी जगह पसीना आता है, वेदना होती है और दाह होता है ॥ ७३ ॥

अथ मशकविषकार्यम् ।

कण्डूमान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ॥ ७४ ॥

मच्छर काटे तो खुजली और थोडी वेदनायुक्त कुछेक सूजन होती है ॥ ७४ ॥

अथासाध्यमशकदंशलक्षणम् ।

असाध्यकीटसदृशमसाध्यं मशकक्षतम् ॥ ७५ ॥

असाध्यकीटसदृशम्-असाध्यैः कीटैर्लूतादिभिः कृतं यत्क्षतं तत्सदृशवेदनम् ।

असाध्य विषैले मच्छर काटें तो असाध्य मकोडे आदिके समान घावमें पीडा होती है ॥ ७५ ॥

अथ मक्षिकादंशलक्षणम् ।

सद्यः संस्राविणी श्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता । पीडिका मक्षिकादंशे तासान्तु स्थगिकाऽसुहृत् ॥ ७६ ॥

तासामित्यादि । तासां सुश्रुतोक्ताना षण्णां मक्षिकाणां मध्ये स्थगिकानाम्नी शीघ्रं प्राणान् हरतीत्यर्थः ।

विषैली मक्खी काटे तो तत्काल स्राववाली, काली, दाहयुक्त, मूर्च्छासहित और ज्वरवाली फुसियाँ उत्पन्न होती हैं । सुश्रुतोक्त

छः प्रकारकी मक्खियोंमें स्थगिका नामवाली जो मक्खी है, वह तत्काल प्राणनाशक है ॥ ७६ ॥

अथ व्याघ्रादिविषकार्यम् ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखैर्दन्तैश्च यत्कृतम् । शूयते पच्यते तत्तु स्रवति ज्वरयत्यपि ॥ ७७ ॥

चतुष्पाद्भिः--व्याघ्रादिभिः । द्विपाद्भिः वनमनुष्यादिभिः । शूयते--शूनं भवति ॥

चार पांववाले व्याघ्रादिक अथवा दो पांववाले जङ्गली मनुष्यादिके नखोंसे और दांतोंसे जो घाव हो वह सूजजाय, पकजाय, स्रवे और ज्वरको उत्पन्न करता है ॥ ७७ ॥

अथ विगतविषमनुष्यलक्षणम् ।

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकामं सममूत्रविट्कम् । प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥७८॥

प्रसन्नदोषम्--प्रकृतिस्थदोषम् शेषं सुगमम्॥

वातादिक दोष स्वाभाविक स्थितिमें स्थित होजायँ धातुएँ भी स्वाभाविक स्थितिमें स्थित हों, अन्न खानेकी इच्छा हो, मल मूत्र पहिलेके समान अच्छी प्रकारसे उतरने लगे और वर्ण, इन्द्रियाँ, चित्त तथा चेष्टा ये प्रसन्न अर्थात् निर्मल हो जायँ तो वैद्य उस मनुष्यको विषरहित हुआ जाने ॥ ७८ ॥

अथ विषचिकित्सा ।

तत्र प्रथमस्थावरविषघ्नोपायाः ।

स्थावरेण विषेणार्तं नरं यत्नेन वामयेत् । वमनेन समं नास्ति यतस्तस्य चिकित्सितम् ॥ ७९ ॥ विषमत्यर्थमुष्णञ्च तीक्ष्णं च कथितं यतः । अतः सर्वविषेषूक्तः परिषेकस्तु शीतलः ॥ ८० ॥

स्थावर विषसे पीडित मनुष्यको यत्नपूर्वक वमन करावे । क्योंकि, उनके लिये वमनके समान अन्य औषधि नहीं है । विष अत्यन्त उष्ण है और तीक्ष्ण है, इस कारण सर्वप्रकारके विषोंमें शीतल सेवन करना चाहिये ॥ ७९ ॥ ८० ॥

औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याद्विशेषेण विषं पित्तं प्रकोपयेत् । वामितं सिञ्चयेत्तस्माच्छीतलेन जलेन च ॥ ८१ ॥ पाययेन्मधुसर्पिर्भ्यां विषघ्नं भेषजं द्रुतम् । भोक्तुमम्लं रसं दद्याद्धर्षयेन्मरिचानि च ॥ ८२ ॥

विष उष्णता और तीक्ष्णताके कारण विशेष करके पित्तको कुपित करता है, इसलिये वमन करानेके पश्चात् शीतल जलसे सेचन करे। विषको हरनेवाली औषधियोंको घी तथा सहतके साथ तत्कालपिलावे। खट्टा रस खानेको देवे और शरीरमें मिर्चोंका चूर्ण मर्दन करे॥ ८१ ॥ ८२ ॥

यस्य यस्य च दोषस्य पश्येल्लिङ्गानि भूरिशः । तस्य तस्यौषधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥ ८३ ॥ शालयः षष्टिकाश्चैव कोरदूषाः प्रियङ्गवः । भोजनार्थे विषार्तानामूर्ध्वञ्चाधश्च शोधनम् ॥ ८४ ॥

प्रियंगुः-कंगुः ॥

जिन जिन दोषोंके चिह्न अधिक दीखें, उन उन दोषोंको उन उन दोषोंके गुणोंसे विपरीत गुणोंवाली औषधियोंसे चिकित्सा करे । विषसे पीडित मनुष्यको भोजनके लिये लाल शालि चावल, सांठी चावल, कोदों और कंगुनी धान्य देवे और वमन तथा विरेचनसे संशोधन करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

मूलत्वक्पत्रपुष्पाणि बीजं चेति शिरीषतः । गवां मूत्रेण सम्पिष्टं लेपाद्विषहरं परम् ॥ ८५ ॥

सिरसकी जड छाल पत्ते, फूल और बीज उन पांचों पदार्थोंको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे विष दूर हो जाता है ॥ ८५ ॥

दूषीविषार्तं सुस्निग्धमूर्ध्वञ्चाधश्च शोधितम्। पाययेदगदं मुख्यमिदं दूषीविषापहम्॥ पिप्पली ध्यामकं मांसी लोध्रमेला सुवर्चिका ॥ ८६ ॥ मरिचं बालकञ्चैला तथा कनकगैरिकम् । क्षौद्रयुक्तः कषायोऽयं दूषीविषमपोहति॥८७॥

ध्यामकं रोहिष, तदालाभे उशीरं देयम्। कनकगैरिकम् -अत्यन्तमारक्तं गैरिकं 'सोना गेरू' इति लोके ॥

पीपल, रोहिषनामक सुगन्धि तृण, यदि न मिले तो इनके बदले खस, बालछड, लोध, इलायची, सज्जी, काली मिर्च, सुगन्धवाला छोटी इलायची, और पीला गेरू इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर पिलावे तो दूषीविष नष्ट होजाता है। दूषीविषसे पीडित मनुष्यको अच्छी प्रकारसे स्निग्ध करके तथा वमन और विरेचनसे शोधित करके पश्चात् इस उत्तम औषधिको पिलावे ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

अथ जङ्गमविषचिकित्सा।

तत्रमृत्युपाशच्छेदि घृतम्।

अभयां रोचनां कुष्ठमर्कपत्रं तथोत्पलम्। नलवेतसमूलानि गरलं सुरसां तथा ॥ ८८ ॥ सकलिङ्गां समञ्जिष्ठामनन्ताञ्च शतावरीम्। शृङ्गाटकं समङ्गां च पद्मकेसरमित्यपि। कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ८९ ॥ सम्यक्पक्केऽवतीर्णे च शीते तस्मिन् विनिक्षिपेत् । सर्पिस्तुल्यं भिषक्क्षौद्रं कृतरक्षं निधापयेत् ॥ ९० ॥ विषाणि हन्ति दुर्गाणि गरदोषकृतानि च। स्पर्शाद्धन्ति विषं सर्वं गरैरुपहतां त्वचम् ॥ ९१ ॥ योगजं तमकं कण्डूं मांससादं विसंज्ञताम् । नाशयत्यञ्जनाभ्यङ्गपानवस्तिषु योजितम् ॥ ९२ ॥ सर्पकीटाखुलूतादिदष्टानां विषहृत्परम् ॥ ९३ ॥

इति मृत्युपाशच्छेदि घृतम् ॥

हरड, गोलोचन, कूठ, आकके पत्ते, कमल, नरसलकी जड, बेंतकी जड, वत्सनाभ विष (मीठा वा सिंगिया) तुलसी, इन्द्रजौ, मंजीठ, लाल धमासा, सतावर, सिंघाडे, लज्जावन्ती और कमलकी केसर इनका कल्क डालकर चौगुने जलमें अथवा दूधमें घीको पकावे जब अच्छी प्रकारसे पकजाय तब उतारकर शीतल करलेवे, फिर उसमें घीके बाराबर सहत मिलाकर अच्छी प्रकारसे किसी उत्तम बासनमें भरके रखदेवे । यह 'मृत्युपाशच्छेदी' नामवाला घी विषके विकारोंसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रोगोंको और विषको दूर करता है। अञ्जनमें, अभ्यंगमें, पीनेमें और वस्तिकर्ममें प्रयोग करे तो यह घी अपने स्पर्शसे सर्वप्रकारके विषोंको दूर कर देता है। विषसे दूषित हुई त्वचाको स्वच्छ कर देता है। और कृत्रिम विष, तमकश्वास, खुजली, मांससाद और बेहोशी इन सबको दूर कर देता है। सर्प, कृमि, मूषक और लूता आदिके विषको दूर करनेके लिये यह उत्तम औषधि है ॥८८-९३॥

धत्तूरस्य शिफा पेया क्षीरेण परिपेषिता। अङ्कोटवंशजा चापि श्वविषघ्नी प्रयत्नतः ॥ ९४ ॥

धतूरकी जडको दूधमें यत्नपूर्वक पीनेसे कुत्तेका विष दूर होता है। अंकोटकी जडको दूधमें पीसकर पीनेसे कुत्तेका विष दूर होता है ॥ ९४ ॥

रजनीयुग्मपतङ्गमञ्जिष्ठानागकेसरैः । शीताम्बुपिष्टैरालेपः सद्यो लूतां विनाशयेत् ॥ ९५ ॥

हलदी, दारुहलदी, पतङ्ग, मंजीठ और नागकेसर इनको शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे तत्काल मकडीका विष नष्ट होजाता है ॥ ९५ ॥

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः । सुखोष्णो मधुना लेपो वृश्चिकस्य विषं हरेत् । गन्धमाघ्राय मृदितं सूर्यावर्तदलस्य तु ॥९६॥ वृश्चिकेन नरो विद्धः क्षणाद्भवति निर्विषः ॥ ९७ ॥

इति विषाधिकारः ।

जीरेका कल्क बनाकर उसमें सहत और सैंधानिमक डालकर कुछेक गरम करके सहत मिलाकर लेप करनेसे बिच्छूका विष दूर हो जाता है । सूर्यावर्त अर्थात् हुलहुलके पत्तोंको मलकर नाकमें सूँघनेसे बिच्छूका विष क्षणमात्रमें दूर हो जाता है ॥ ९६--९७ ॥

इति विषाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः ।

तत्र प्रदररोगस्य विप्रकृष्टनिदानं संख्या च ।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपाताद तिमैथुनाच्च । यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च ॥ १ ॥ तं श्लेष्मापित्तानिलसन्निपातैश्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदन्ति ॥ २ ॥

विरुद्ध भोजन करनेसे, मद्यको पीनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, अजीर्णसे, गर्भके पतित होनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, हाथी, घोडे आदिपर चढकर उनको दौडानेसे, अधिक मार्गके चलनेसे, अत्यन्त शोक करनेसे, अत्यन्त कर्षण करनेसे, बोझको उठानेसे, अभिघातसे और दिनमें सोनेसे स्त्रियोंके प्रदरनामकरोग उत्पन्न होता है । कफ, पित्त, वात और त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ प्रदर चार प्रकारका होता है ॥ १--२ ॥

अत्र वातपित्तयोरादौ श्लेष्मणोऽभिधानं श्लैष्मिकेऽतिप्रवृत्तिबोधनार्थम् ॥

ऊपरके वचनमें वातसे तथा पित्तसे पहिले कफ कहा है, सो इसको जाननेके लिये कि, कफसे उत्पन्न प्रदरमें रुधिरकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है ॥

अथ प्रदरस्य सामान्यलक्षणम् ।

असृग्दरंभवेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ॥३॥

असृग्दरम्--असृक् दार्यते च्याव्यतेऽनेनेत्यसृग्दरम् अच्यत्ययान्तम् । सवेदनम्--सशूलम् ॥

दुष्ट रजका अत्यन्त स्राव हो, अङ्ग टूटे और शूलकी पीडा हो, इसको 'प्रदर' कहते हैं ॥ ३ ॥

अथ कफजप्रदरलक्षणम् ।

आमं सपिच्छाप्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ॥ ४ ॥

आमम् -अपक्वरसयुक्तम् । सपिच्छाप्रतिमं–पिच्छा शाल्मल्यादिनिर्यासस्ततुल्यं पिच्छिलमित्यर्थः सपाण्डु- सहशब्दोऽत्रेषदर्थः, तेनेषत्पांडु । पुलाक-तोयप्रतिमं कफात्–पुलाकस्तुच्छधान्यं तद्धावन–तोयतुल्यमित्यर्थः । रुधिरं स्रवेदित्यर्थः ॥

कफके प्रदरमें आम अर्थात् कच्चे रसवाला सेमल आदिके गोंदके समान चिकना, कुछेक पांडुवर्ण और तुच्छ धान्यके धोवनके समान रुधिर बहता रहता है ॥ ४ ॥

अथ पित्तजप्रदरलक्षणम् ।

सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ॥ ५ ॥

सपीतनीलासितरक्तम्–पीतादिवर्णयुक्तम् । पित्तार्तियुक्तं--दाहादियुक्तम् । भृशवेगि-वारंवारं प्रवृत्तियुक्तम् ॥

पित्तजन्य प्रदरमें पीला, नीला, काला लाल, गरम और पित्तजनित दाह आदि वेदनासहित रुधिर वारंवार वहता है ॥ ६ ॥

अथ वातजप्रदरलक्षणम् ।

रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातात्सतोदं पिशितोदकाभम् ॥ ६ ॥

पिशितोदकाभम्-मांसधावनतोयाभम् ॥

वातजनित प्रदरमें रूखा, लाल, झागोंसहित, व्यथा युक्त और मांसके धोवनके समान रुधिर थोडा थोडा बहता है ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजप्रदरलक्षणम् ।

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् । तच्चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक्चिकित्साम् ॥ ७ ॥

सक्षौद्रसर्पिः—क्षौद्रादिवर्णसहितम् । कुणपम्शवगन्धि ॥

त्रिदोषजनित प्रदर हो तो सहत, घी तथा हरितालके समान रंगवाला, मज्जाके समान और (शंख) शवके समान गन्धवाला रुधिर बहता है, विद्वान् वैद्य इस प्रदरको असाध्य कहते हैं, इस कारण वैद्य इसकी चिकित्सा न करे ॥ ७ ॥

अथात्यन्तरुधिरनिःसरणोपद्रवाः ।

तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं श्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा । दाहः प्रलापः पांडुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ॥ ८ ॥

वातजा रोगाः—आक्षेपकादयः ॥

रुधिर बहुत स्रवे दुर्बलता, श्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, दाह, प्रलाप, पाण्डुपन, तन्द्रा और बातजनित आक्षेपकादि रोग होते हैं ॥ ८ ॥

अथ प्रदररोगासाध्यलक्षणम् ।

शश्वत्स्रवन्तीमास्रावं तृष्णादाहज्वरान्विताम् । दुर्बलां क्षीणरक्ताश्च तामसाध्यां विवर्जयेत् ॥ ९ ॥

जिस स्त्रीके निरन्तर रुधिरका स्राव हो तृषा, दाह तथा ज्वरसे युक्त हो, बहुत दुर्बल और जिसका रुधिर क्षीण होगया हो ऐसी प्रदररोगवाली स्त्रीकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उसका प्रदररोग असाध्य है ॥ ९ ॥

अथ शुद्धार्तवलक्षणम् ।

मासान्निष्पिच्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च । नैवातिबहु नात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ १० ॥

ठीक महीनेके दिनोंमें चिकना, तन्तुरहित, जिसमें दाह और शूल न हो (विकृत, कफ पित्त और वातके लक्षणोंके विना,) पांच रात्रितक रहनेवाला, बहुत अधिक नहीं और बहुत थोडा भी नहीं, ऐसा रजोदर्शन हो तो जानना कि, रज शुद्ध होगया है । रजके शुद्ध होनेपर प्रदरको नष्ट हुआ जानकर उसकी चिकित्सा न करे ॥ १० ॥

निष्पिच्छदाहार्ति—अपिच्छिलम् अदाहम् अशूलम् । एतेन विकृतवातादिलक्षणरहितमित्यर्थः । पञ्चरात्रानुबन्धि—प्रभूतप्रवृत्त्या त्रिरात्रानुबन्धि । ततो मध्यमप्रवृत्त्या पञ्चरात्रानुबन्धि, ततः परं कस्याश्चिच्चेत्स्रवति तदा स्वल्पप्रवृत्त्या षोडश दिनानि यावत्तदपि शुद्धमेव ॥

रज जो बहुत होवे तो तीन दिनतक स्रवता है, मध्यम रीतिसे स्रवे तो पांच दिनतक स्रवता है और इसके पश्चात् किसी किसी स्त्रीके अल्प स्राव होनेके कारण सोलह दिनतक स्रवता है, किंतु ऊपर कहे अनुसार शुद्ध हो तो उसको समझकर प्रदरको शान्त समझना चाहिये ॥

अथ प्रदरचिकित्सा ।

दध्ना सौवर्चलं जाजीं मधुकं नीलमुत्पलम् । पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरशान्तये ॥ ११ ॥

चौहारजीरायष्टीमधुनीलकमलपुष्पाण्येषां प्रत्येकं माषद्वयं सर्वमेकीकृत्य दध्ना कर्षचतुष्टयेन पिष्ट्वा तत्र माषाष्टकं मधु क्षिप्त्वा पिबेत् ॥

काला निमक, जीरा, मुलहठी और नीलकमल (अभावमें नीलोफर) ये प्रत्येक पदार्थ बारह बारह रत्ती लेकर चार तोले दहीमें पीसकर उनमें आठ मासे सहत मिलाकर पीवे तो वातजन्य प्रदर शान्त होजाता है ॥ ११ ॥

मधुकं कर्षमेकं तु कर्षैकाञ्च सितां तथा । तण्डुलोदकसम्पिष्टां लोहिते प्रदरे पिबेत् ॥ १२ ॥

मुलहठी एक तोला और मिश्री एक तोला इन दोनोंको चावलोंके धोवनमें पीसकर पीवे तो रक्तप्रदर नष्ट होजाता है ॥ १२ ॥

कला कङ्कतिकाख्या या तस्या मूलं सुचूर्णितम् । लोहितप्रदरे खादेच्छर्करामधुसंयुतम् ॥ १३ ॥

कंधीकी जडका चूर्ण करके मिश्री और सहतमें मिलाकर खाय तो रक्त-प्रदर नष्ट होजाता है ॥ १३ ॥

शुचिस्थाने व्याघ्रनख्या मूलमुत्तरदिग्भवम् । नीतमुत्तरफाल्गुन्यां कटिबद्धं हरेददसृक् ॥ १४ ॥

व्याघ्रनही 'बघनखी' इति लोके ॥

पवित्रस्थानमें स्थित उत्तर दिशागत व्याघ्रनखीको लाकर उत्तराफागुनी नक्षत्रमें कमरमें बांधनेसे प्रदर नष्ट होजाता है ॥ १४ ॥

रसाञ्जनं तण्डुलकस्य मूलं क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपीतम् । असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति श्वासञ्च भार्ङ्गी सह नागरेण ॥ १५ ॥

तण्डुलस्य-तंडुलीयकस्य ॥

रसौत और चौलाईकी जडको सहतमें पीसकर चावलोंके जलके साथ पीवे तो सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न प्रदर अवश्य नष्ट होजाता है सोंठ और भारंगीको पीसकर चावलोंके धोवनके साथ पीनेसे प्रदर और श्वास नष्ट होजाता है ॥ १५ ॥

अशोकवल्कलकाथशृतं दुग्धं सुशीतलम् । यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ १६ ॥ अशोकवल्कलपलं द्वात्रिंशत्पलसंमितेन जलेन निष्काथ्य शेषं रक्षेत्पलाष्टकं क्वाथं तेन क्वाथेन सह क्षीरं पलाष्टकमितं पचेत्तत्रदुग्धावशेषः कर्तव्यः । तन्मध्ये पलचतुष्टयमितं दुग्धं पेयं वह्निबलापेक्षया ॥

अशोकवृक्षकी छाल चार तोले लेकर १२८ तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते जल बत्तीस तोले रहे तब उसमें बत्तीस तोले दूध डालकर पकावे। पकते पकते जब केवल दूधही बाकी रह जाय तब उस दूधको अच्छी प्रकारसे शीतल करके उसमेंसे सोलह तोले दूध लेकर प्रातःकाल पीवे, जो जठराग्नि बलहीन हो तो थोडा दूध पीवे। इस प्रकार इस दूधको पीनेसे तीव्र प्रदर शांत होजाता है ॥ १६ ॥

कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना । एतत्पीत्वा त्र्यहं नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ १७ ॥

पृथिवीमेंसे डाभकी जडको उखाडकर चावलोंके जलमें पीसकर तीनदिनतक पीवे तो स्त्री प्रदरसे मुक्त होजाती है ॥ १७ ॥

क्षौद्रयुक्तं फलरसमौदुम्बरभवं पिबेत् । असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक् ॥ १८ ॥

अन्नम्-ओदनम् ॥

गूलरके फलोंके रसमें सहत मिलाकर पीनेसे और उसपर मिश्री मिला दूध भातका पथ्य करे तो प्रदर नष्ट होजाता है ॥ १८ ॥

अलाबूफलचूर्णस्य शर्करासहितस्य च । मधुना मोदकं कृत्वा खादेत्प्रदरशान्तये ॥ १९ ॥

तोम्बीके फलका चूर्ण करके उसमें खांड डालकर सहतमें लड्डू बनाकर खाय तो प्रदर शांत होजाता है ॥ १९ ॥

अथ दार्व्यादिक्वाथः ।

दार्वीरसाञ्जनकिरातवृषाब्दबिल्व-
सक्षौद्रचन्दनदिनेशभवप्रसूनैः ।
क्वाथः कृतो मधुयुतो विधिना निपीतो
रक्तं सितश्च सरुजं प्रदरं निहन्ति ॥२०॥

दारुहलदी, रसौंत, चिरायता, अडूसा, नागरमोथा, बेलगिरी, सहत, लालचन्दन और आकके फूल इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर पीवेतो वेदनायुक्त लाल तथा सफेद प्रदर नष्ट होजाता है, इसको 'दार्व्यादिक्वाथ' कहते हैं ॥ २० ॥

रक्तपित्ताधिकारोक्तं हितं कूष्माण्डखण्डकम् ॥ २१ ॥

इति प्रदरनिदानचिकित्साधिकारः ।

रक्तपित्ताधिकारमें जो खण्डकूष्मांड नामक अवलेह कहा है, उसको सेवन करनेसे भी प्रदर दूर होजाता है ॥ २१ ॥

इति प्रदररोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ सोमरोगाधिकारः ।

तत्र सोमरोगनिदानं सम्प्राप्तिश्च ।

स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोकाच्चापि श्रमादपि । अतीसारिकयोगाद्वा गरयोगात्तथैव च ॥ १ ॥ आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च । तस्यास्ताः प्रच्युता स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥ २ ॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे, अत्यन्त शोकसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, अतीसारके योगसे विष-प्रयोगसे स्त्रियोंके सम्पूर्ण शरीरमें स्थित जल क्षुभित होकर स्रवता है; पीछे वह जल स्थानसे भ्रष्ट होकर मूत्रके मार्गसे जाता है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ सोमरोगलक्षणम् ।

प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजः सिताः । स्रवन्ति चातिमात्रं ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥ ३ ॥ वेगं धारयितुं तासां न विन्दति सुखम् क्वचित् । शिरः शिथिलता तस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥ ४ ॥ मूर्च्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः । भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥ ५ ॥ सन्धारणाच्छरीरस्य ता आपः सोमसंज्ञिताः । ततः सोमक्षयात्स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः ॥ ६ ॥

प्रसन्न, निर्मल, गन्धरहित, स्वच्छ, सफेद और पीडा रहित जल अत्यन्त बहने है, उस जलके वेगको रोकनेसे असमर्थ होकर वह दुर्बल स्त्री निरन्तर बैचेन रहती है। मस्तक शिथिल होजाता है, मुख और तालु सूखने लगती है, मूर्च्छा होती है, जँभाई आती है, प्रलाप होता है, त्वचा अत्यन्त रूखी हो जाती है और भक्ष्य भोज्य और पीनेके पदार्थोंसे कभी तृप्ति नहीं होती। यह जल शरीरको धारणकरनेवाला होनेसे 'सोम' कहाजाता है और यह रोग इस सोम धातुका क्षयरूप है, इस लिये सोमरोग कहाजाता है ॥ ३-६ ॥

अथ सोमरोगचिकित्सा ।

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु । शर्करासहितं खादेत्सोमधारणमुत्तमम् ॥ ७ ॥

केलेकी पकी फली, आमलोंका स्वरस, सहत और मिश्री इन सबको एकत्रित मिलाकर भक्षण करे तो अच्छी प्रकारसे सोमरोग नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥

माषचूर्ण समधुकं विदारीं मधु शर्कराम् । पयसा पाययेत्प्रातः सोमधारणमुत्तमम् ॥ ८ ॥

उडदका चून, मुलहठी, विदारीकन्द, सहत और मिश्री इन सबको एकत्रित मिलाकर प्रातःकाल दूधके साथ पीनेसे सोमरोग नष्ट होजाता है ॥ ८ ॥

स एव सरुजः सोमः स्रवेन्मूत्रेण चेन्मुहुः । ततैलापत्रचूर्णेन पाययेत्तरुणीं सुराम् ॥ ९ ॥

यही सोमरोग जो, पीडासहित और मूत्रके साथ वारम्बार निकलता हो तो ताजी मदिरामें इलायची और तेजपातका चूर्ण डालकर पीवे ॥ ९ ॥

जलेनामलकीबीजकल्कं समधुशर्करम् । पिबेत् दिनत्रयेणैव श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ १० ॥

आमलोंको जलमें पीसकर उसमें सहत तथा खांड मिलाकर पीनेसे तीन दिनमें ही यह श्वेतप्रदर नष्ट होजाता है ॥ १० ॥

तक्रौदनाहाररता संपिबेन्नागकेसरम् । त्र्यहं तक्रेण सम्पिष्टं श्वेतप्रदरशान्तये ॥ ११ ॥

नागकेसरको तक्रमें पीसरकर तीन दिनतक पीवे और तक्रके साथ भात खाय तो यह सफेद प्रदर अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

अथ सोमरोगमूत्रातिसारः ।

सोमरोगे चिरं जाते यदा मूत्रमतिस्रवेत् । मूत्रातिसारं तं प्राहुर्बलविध्वंसनं परम् ॥ १२ ॥

इति सोमरोगाधिकारः ।

बहुत दिनोंके सोमरोगमें जो मूत्र अत्यन्त बहने लगे तो उसको मूत्रातिसार कहते हैं । यह मूत्रातिसार बलका अत्यन्त नाश करता है ॥ १२ ॥

इति सोमरोगाधिकार; सम्पूर्णः ।

अथ योनिरोगाधिकारः ।

तत्र योनिरोगनिदानम् ।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितात् । आर्तवाद्वीजतश्चापि दैवाद्वा स्युर्भगे गदाः ॥ १ ॥

मिथ्या आहार और मिथ्या विहारसे दुष्ट हुए वातादि दोषोंसे, रजके दोषसे तथा पुरुषके वीर्यसे और समयपर दैवगतिसे भी योनिमें रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

अथ योनिरोगनामानि ।

उदावर्त्ता तथा वन्ध्या विप्लुता च परिप्लुता । वातला योनिजो रोगो वातदोषेण पञ्चधा ॥ २ ॥

उदावर्त्ता योनि, वन्ध्या योनि, विप्लुता योनि, परिप्लुता योनि और वातला योनि इस प्रकार वायुके दोषसे पांच प्रकारके योनिरोग होते हैं ॥ २ ॥

पञ्चधा पित्तरोगेण तत्रादौ लोहितक्षरा । प्रस्रंसिनी वामनी च पुत्रघ्नी पित्तला तथा ॥ ३ ॥

लोहितक्षरा योनि, प्रस्रंसिनी योनि, वामनी योनि, पुत्रघ्नी योनि और पित्तला योनि इस प्रकार पित्तके दोषोंसे पांच प्रकारके योनिरोग होते हैं ॥ ३ ॥

अत्यानन्दा कर्णिनी च चरणाऽऽनन्दपूर्विका । अतिपूर्वापि सा ज्ञेया श्लेष्मला च कफादिमाः ॥ ४ ॥

अत्यानन्दा योनि, कर्णिनी योनि, आनन्दचरणा योनि, अतिचरणा योनि और श्लेष्मला योनि इस प्रकारकी कफकी दुष्टतासे पांच प्रकारके योनिरोग होते हैं ॥ ४ ॥

षण्डचण्डिनी च महती सूचीवक्त्रा त्रिदोषिणी। पञ्चैता योनयः प्रोक्ताः सर्वदोषप्रकोपतः ॥ ५ ॥

षण्डीयोनि, अण्डिनी योनि, विवृता योनि, सूचीवक्त्रा योनि और त्रिदोषिणी योनि इस प्रकार तीनों दोषोंके प्रकोपसे पांच प्रकारके योनिरोग होते हैं ॥ ५ ॥

अथोपयुक्तयोनिरोगलक्षणम्।

सफेनिलमुदावर्त्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति। वन्ध्या निरार्तवा ज्ञेया विप्लुता नित्यवेदना ॥ ६ ॥

जिस योनिमें अत्यन्त कष्टसे झागसहित रुधिर निकले, उसको उदावर्त्ता कहते हैं। जो योनि सदैव रजरहित हो अर्थात् कदापि रजस्वला न हो, उसको वन्ध्या कहते हैं। जिस योनिमें सर्वदा पीडा रहती हो, उसको विप्लुता योनि कहते हैं ॥ ६ ॥

परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मे रुजा भृशम्।

मैथुन करनेसे जिसमें अत्यन्त वेदना होती उसको परिप्लुता योनि कहते हैं ॥ ६ ॥

वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता। चतसृष्वपि चाद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥ ७ ॥

अनिलवेदनाः-तोदादयः। वातलायां त्वतिवातवेदना बोद्धव्याः। वातलेत्यन्वर्थात् ॥

जो योनि कठिन, स्तब्ध हो और शूल तथा तोडने सरीखी पीडा सहित हो, उसको वातला योनि कहते हैं। यद्यपि उपरोक्त वातजनित योनिरोगोंमें तोडनेकी पीडा आदि वायुसम्बन्धी वेदना होती हैं, तथापि इस पांचवीं प्रकारकी वातला योनिमें तो यह वातजन्य वेदना अत्यन्त होती है, ऐसा जानना। क्योंकि 'वातला' इस नामसे एसी प्रतीति होती है ॥ ७ ॥

सदाहं क्षरते रक्तं यस्याः सा लोहितक्षरा ॥

जिस योनिमेंसे दाहवाला रुधिर गिरता हो उसको लोहितक्षरा कहते हैं ॥

प्रस्रंसिनी स्रंसते च क्षोभिता दुष्प्रजायिनी ॥ ८ ॥

क्षोभिता विमर्दिता। स्रंसते स्वस्थानाच्च्यवते। दुष्प्रजायिनी-दुष्टप्रजनशीला ॥

जो योनि मर्दन करनेसे अपने स्थानसे हट जाय और विकृत सन्तानको उत्पन्न करे उसको प्रस्रंसिनी योनि कहते हैं ॥ ८ ॥

सवातमुद्गिरेद्वीर्यं वामनी रजसा युतम्।

जो योनि वायुके साथ रजसहित वीर्यको बाहर निकाल देती हो, उसको वामिनी योनि कहते हैं ॥

स्थितं हि पातयेद्गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंस्रवात् ॥ ९ ॥

पुत्रशब्दोऽत्रापत्योपलक्षकः ॥

जो योनि स्थित गर्भको रुधिरके स्रावके कारण गिरा देती है, उसको पुत्रघ्नी कहते हैं ॥ ९ ॥

अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता।

जिसमें दाह, पाक तथा ज्वर हो, उसको पित्तला कहते हैं ॥

चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १० ॥

यद्यपि पित्तजन्य उपरोक्त चारों प्रकारकी योनियोंमें दाह तथा पाक वगैरह पित्तजनित वेदना होती हैं, तथापि इस पांचवीं पित्तला योनिमें यह पित्त सम्बन्धी वेदना अधिक होती है, ऐसा जानना। क्योंकि 'पित्तला' इस शब्दसे ऐसा जाना जाता है ॥ १० ॥

अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण विन्दति ॥

जो योनि मैथुनसे सन्तोषको प्राप्त न हो, उसको अत्यानन्दा कहते हैं ॥

कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥ ११ ॥

कर्णिका-मांसस्य कर्णिकाकारो ग्रन्थि ॥

जिस योनिमें कफसे तथा रुधिरसे मांसकी डेलीके समान गांठ हो, उसको कर्णिका कहते हैं ॥ ११ ॥

मैथुने चरणा पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते । बहुशश्चातिचरणा तयोर्वीर्यं न तिष्ठति ॥ १२ ॥

अतिरिच्यते रजो मुञ्चतीत्यर्थः । बहुशः-वारंवार मतिरिच्यते । तयोः-चरणातिचरणयोः॥

जो योनि मैथुनके समय पुरुषके पहिले ही स्खलित हो जाय, उसको आनन्दचरणा योनि कहते हैं । इस योनिमें वीर्य रुकता नहीं । जो योनि पुरुषसे पहिले कई बार स्खलित होजाय, उसको अतिचरणा योनि कहते हैं । इस योनि में भी वीर्य ठहरता नहीं है ॥ १२ ॥

श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्ताऽतिशीतला । चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्म लिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १३ ॥

जो योनि अत्यन्त चिकनी, खुजली सहित अत्यन्त शीतल हो, उसको श्लेष्मला योनि कहते हैं । यद्यपि उपरोक्त कफजनित चारों प्रकारकी योनियोंमें चिकनापन आदि कफसे चिह्न होते हैं, तथापि इस पांचवी प्रकारकी श्लेष्मला योनिमें ये कफसम्बन्धी चिह्न अत्यन्त होते हैं ऐसा जानना । क्योंकि, 'श्लेष्मला' इस नामसे ऐसा अर्थ निकलता है ॥ १३ ॥

अनार्तवाऽऽस्तनी षण्डी खरस्पर्शा च मैथुने । महामेढ्रगृहीताया बालायास्त्वण्डिनी भवेत् ॥ १४ ॥

आस्तनी-ईषत् स्तनौ यस्या सा अत्र लक्ष्या । षण्डी महामेढ्रः पुरुषस्तेन गृहीताया-बालायाः सूक्ष्मयोनिच्छिद्रा अंडिनी अण्डवलम्बमाना योनिर्भवति ॥

जो योनि रजरहित रहती हो और मैथुन करते समय खरदरी मालूम हो उसको षण्डी कहते हैं । इस योनिवाली स्त्रीके स्तन छोटे होते हैं ॥

जिसकी योनिका छिद्र छोटा हो ऐसी स्त्रीसे जो मोटे लिंगवाला पुरुष मैथुन करे तो उस समय वृषणके समान लटक आती है, इसको अंडिनी योनि कहते हैं ॥ १४ ॥

विवृता च महायोनिः सूचीवक्त्राऽतिसंवृता । सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा । चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १५ ॥

जिस योनिका बहुत बडा छिद्र हो, उसको विवृता कहते हैं । जो योनि बहुत छोटे छिद्र-वाली हो, उसको सूचीवक्त्रा कहते हैं । जिस योनिमें सम्पूर्ण दोषोंके कोपके कारण संपूर्ण दोषोंके लक्षण हों, उनको त्रिदोषिणी योनि कहते हैं ॥

यद्यपि उपरोक्त त्रिदोषजन्य चारों प्रकारकी योनियोंमें रजरहित आदि तीनों दोषोंके चिह्न होते हैं, तथापि इस पांचवें प्रकारकी योनिमें ये त्रिदोषसम्बन्धी चिह्न अत्यन्त होते हैं, ऐसा जानना । क्योंकि, 'त्रिदोषिणी' इस नामसे ऐसा अर्थ निकलता है ॥ १५ ॥

अथासाध्ययोनिरोगाः ।

पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः ॥ १६ ॥

पञ्च षण्डीप्रभृतयः ॥

त्रिदोषजनित षण्डी आदि पांच योनि असाध्य हैं ॥

अथ योनिकन्दनिदानम्।

दिवास्वप्नादतिक्रोधाद्व्यायामादतिमैथुनात्। क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता यथा॥ १७॥

यथा-स्वनिदानं कुपिता वाताद्याः॥

दिनमें सोनेसे, अत्यन्त क्रोध करनेसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे और नख तथा दांत आदिके घावके होनेसे अपने २ कारणोंसे प्रकोपको प्राप्त हुए वातादिदोष योनिकन्दनामक रोगको उत्पन्न करते हैं॥ १७॥

अथ योनिकन्दलक्षणम्।

पूयशोणितसंकाशं लकुचाकृतिसन्निभम्। जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दः स योनिजः॥ १८॥

लकुचाकृतिसन्निभम् लकुचाकारम्॥

राधके समान, रुधिरके समान और बडहलके समान योनिमें गाठें उत्पन्न होती हैं, इनको योनिकन्द कहते हैं॥ १८॥

अथ वातादिभेदेन योनिकन्दरूपम्।

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विनिर्दिशेत्। दाहरागज्वरयुतं विद्यात्पित्तात्मकं तु तम्॥ १९॥

जो योनिकन्द रूखा, विवर्ण और फटासा हो उसको वातजनित जानना॥

जो योनिकन्द दाह, लाली और ज्वरसे युक्त हो तो उसको पित्तजनित जानना॥१९॥

तिलपुष्पप्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकम्। सर्वलिङ्गसमायुक्तं सान्निपातात्मकं वदेत्॥ २०॥

जो योनिकन्द तिलके फूलके समान और खुजलीसहित हो, उसको कफजनित जानना॥

जो योनिकन्द उपरोक्त रूक्षता आदि सम्पूर्ण लक्षणोंवाला हो उसको सन्निपात जनित जानना॥ २०॥

अथ योनिरोगचिकित्सा।

तत्रार्तवजननयोगाः।

आर्तवादर्शने नारी मत्स्यान् सेवेत नित्यशः। काञ्जिकं च तिलान् माषानु दश्विच्च तथा दधिः॥ २१॥

जो स्त्री रजस्वला न होती हो, वह नित्य मछलियोंको भक्षण करे तथा कांजी, तिल, उडद, उदश्वित् नामवाली छांछ और दहीका सेवन करे॥ २१॥

इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनकिण्वयवशूकैः। सास्नुक्क्षीरैर्वर्तिर्योनिगता कुसुमसञ्जननी॥ २२॥

इक्ष्वाकुः-कुटुम्बी। चपला-पिप्पली। मदनः-मयनफलम्। किण्वम्-सुराबीजम्॥

कडवी तोंबीके बीज, जमालगोटा, पीपल, गुड, मैनफल, सुराबीज और जवाखार इनको थूहरके दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर योनिमें रखनेसे स्त्रीके रज उत्पन्न होता है॥ २२॥

पीतं ज्योतिष्मतीपत्रं स्वर्जिकोग्रासनं त्र्यहम्। शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद्ध्रुवम्॥ २३॥

ज्योतिष्मती कटभी वृक्षविशेषः 'करही' इति लोके। अथवा उमिजिनी मालकांगुनी इति च। असनम् आसनति लोके विजयासार इति च। पयसा-दुग्धेन॥

मालकांगुनीके पत्ते, सज्जीखार, वच और विजयसार इनको शीतल दूधमें पीसकर पीनेसे रजोदर्शन होता है॥ २३॥

अथ वन्ध्याचिकित्सा।

बला सिताढ्या मधुकं बला च शुङ्गं वटोत्थं गजकेसरं च। एतन्मधुक्षीरघृतैर्निपीय वन्ध्या सुपुत्रं नियतं प्रसूते॥ २४॥

खिरैंटी, खांड, मुलहठी, कन्धी, बडके अंकुर और नागकेसर इनको सहतमें, दूधमें तथा घीमें पीसकर पीनेसे वन्ध्या स्त्री भी अवश्य पुत्रको उत्पन्न कर सकती है ॥ २४ ॥

अश्वगन्धाकषायेण सिद्धं दुग्धं घृतान्वितम् । ऋतुस्नाताङ्गना प्रातः पीत्वा गर्भं दधाति हि ॥ २५ ॥

ऋतुस्नाता स्त्री असगन्धको दूधमें पकाकर घी डालकर प्रातःकाल पीवे तो गर्भ रह जाता है ॥ २५ ॥

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं दुग्धने कन्यया । पिष्ट्वा पीत्वा ऋतुस्नाता गर्भं धत्ते न संशयः ॥ २६ ॥

ऋतुस्नाता स्त्री पुष्य नक्षत्रमें उखाडी हुई सफेद कटेरीकी जडको कुँआरी कन्याके हाथसे दूधमें पिसवाकर पीवे तो निश्चय गर्भ रहजाता है ॥ २६ ॥

कुरण्टमूलं धातक्याः कुसुमानि वटांकुराः । नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रदं ध्रुवम् ॥ २७ ॥

कुरण्टमूलम्–पीरपुष्पकटसरैया ॥

पीले फूलकी कटसरैयाकी जड, धायके फूल, बडके अंकुर और नीले कमल इनको दूधमें पीसकर पीनेसे अवश्य गर्भ रहजाता है ॥ २७ ॥

याऽबला पिबति पार्श्वपिप्पलं जीरकेण सहितं हिताशिनी । श्वेतया विशिखपुङ्खया युतं सा सुतं जनयती नान्यथा२८॥

पार्श्वपिप्पलं 'गजह ' इति लोके । श्वेतपुष्पया शरपुंखया सह ॥

जो स्त्री जीरेके साथ तथा सफेद फूलके सरफोंके साथ पारिसपीपलके डोडेको पीसकर पीवे और पथ्यसे भोजन करे तो यह अवश्य पुत्रको जनती है ॥ २८ ॥

पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी । पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः ॥ २९ ॥

जो गर्भवती स्त्री ढाकके एक पत्तेको दूधमें पीसकर पिये तो उसके बलवान् पुत्र उत्पन्न होता है ॥ २९ ॥

शूकरशिम्बीमूलं मध्यं वा दधिफलस्य सपयस्कम् । पीत्वाथो भवलिङ्गीबीजं कन्यां न सूते स्त्री ॥ ३० ॥

शूकरशिम्बी सुअरसेवी । दधिफलं–कपित्थस्तस्य मज्जा । भवलिङ्गी--पञ्चगुरिया ॥

कौंचकी जडको अथवा कैथके गूदेको और शिवलिंगीके बीजोंको दूधमें पीसकर पीनेसे गर्भिणी स्त्री कदापि कन्याको नहीं उत्पन्न करती है ॥ ३० ॥

पुत्रकमञ्जरिमूलं विष्णुक्रान्तेशलिङ्गिनीसहितम् । एतं गर्भेऽष्टदिनं पीत्वा कन्यां न सर्वथासूते ॥ ३१ ॥

पुत्रमञ्जरी--पतिजियातस्याः मूलम् । ईशलिंगीपञ्चगुरिया इति लोके ॥

जीयापोताकी जडको अथवा विष्णुक्रान्ताकी जड़को अथवा शिवलिंगीके बीजोंको जो स्त्री आठ दिनतक पीवे तो वह कदापि कन्याको उत्पन्न नहीं करे अर्थात् पुत्रोंकोही उत्पन्न करती है ॥ ३१ ॥

अथ गर्भानास्थापकयोगः ।

पिप्पलीविडङ्गटङ्कणसमचूर्णं या पिबेत्पयसा । ऋतुसमये न हि तस्या गर्भः सञ्जायतेकापि ॥ ३२ ॥

जो स्त्री ऋतुके समय पीपल, वायविडंग और सुहागा इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके दूधके साथ पीवे तो कदापि गर्भ उत्पन्न नहीं होता ॥ ३२ ॥

आरनालपरिपेषितं त्र्यहं या जपाकुसुममत्ति पुष्पिणी । सत्पुराणगुडमुष्टिसेविनी सन्दधाति न हि गर्भमङ्गना॥३३॥

जो स्त्री ऋतुके समयमें गुडहलके फूलोंको आरनाल नामक कांजीमें पीसकर तीन दिनतक पीवे और चार तोलेभर उत्तम पुराने गुडको सेवन करे तो वह कदापि गर्भको धारण नहीं करती ॥ ३३ ॥

अथ साध्यायोनिरोगाणां सामान्य-चिकित्सा ।

तासु योनिषु चाद्यासु स्नेहादिक्रम इष्यते । वस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपपिचुधारणम् ॥ ३४ ॥

वस्तिरत्रोत्तरवस्तिः । पिचुः 'फोहा' इति लोके ।

साध्य योनियोंपर स्नेहन आदि चिकित्सा करे । उत्तरवस्ति देवे, अभ्यंग करे, सेचन करे, प्रलेप करे और योग्य औषधियोंसे भीजे हुए रुईके फोयेको योनिमें रक्खे ॥ ३४ ॥

अथ योनिरोगाणां यथाक्रम-चिकित्सा ।

नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः । तिलतैलं पचेन्नारी पिचुमस्य विधारयेत्॥ विप्लुतायां सदा योनिर्व्यथा तेन प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥

नतम्—तगरम् । वार्ताकिनी 'वरहेटा' इति लोके ॥

तगर, कटेरी, कूठ, सैंधानिमक और देवदारु इनके कल्कसे तिलके तेलको पकाकर उसमें भिगोकर फोया योनिमें रखनेसे विप्लुतायोनिकी व्यथा दूर हो जाती है ॥३५॥

वातलां कर्कशां स्तब्धामल्पस्पर्शां तथैव च । कुम्भीस्वेदैरुपचरेदन्तर्वेश्मनि संवृते । धारयेद्वा पिचुं योनौ तिलतैलस्य सा सदा ॥ ३६ ॥

जो योनि वातला हो, कठिन हो, स्तब्ध हो और थोडे स्पर्शवाली हो तो उसको परदेके घरमें बैठाकर कुम्भीस्वेद देवे अथवा उस स्त्रीकी योनिमें सदैव तिलके तेलका फोया रक्खे ॥ ३६ ॥

पित्तलानां च योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः । शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ ३७ ॥

जो पित्तसे योनिरोग उत्पन्न हुआ हो तो सेचन, अभ्यंग तथा फोयेका रखना, शीतल और पित्तनाशक क्रिया करे और स्नेहनके लिये घृतको बनावे ॥ ३७ ॥

प्रस्रंसिनीं घृताभ्यक्तां क्षीरस्विन्नां प्रवेशयेत् । पिधाय वेशवारेण ततो बन्धं समाचरेत् ॥

जो योनि प्रस्रंसिनी हो तो उसपर घृतकी मालिस करके दूधकी वाफ देकर भीतरको बिठा देवे और फिर नीचे लिखे वेशवारसे उसके मुखको बन्द करके पट्टी बांध देवे ॥

शुण्ठीमरिचकृष्णाभिर्धान्यकाजाजिदाडिमैः । पिप्पलीमूलसंयुक्तैर्वेशवारः स्मृतो बुधैः ॥ ३८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, धनियां, जीरा, अनार और पीपलामूल इनके चूर्णको पंडित 'वेशवार' कहते हैं ॥ ३८ ॥

धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहे पिबेत्सदा । सूर्यकान्ताभवं मूलं पिबेद्वा तण्डुलाम्बुना ॥ ३९ ॥

योनिमें दाह होता हो तो नित्य आमलोंके रसमें खांड डालकर पीवे अथवा कमलिनीकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर पीवे ॥३९॥

योन्यां तु पूयस्राविण्यां शोधनद्रव्यनिर्मितैः । सगोमूत्रैः सलवणैः पिण्डैः सम्पूरणं हितम् ॥ ४० ॥

शोधनद्रव्याणि—निम्बपत्रादीनि ॥

योनिमेंसे राध निकलती हो तो नीमक पत्ते आदि शोधन पदार्थोंको संधेनिमकके साथ पीसकर गोली बनाकर उन गोलियोंको योनिमें रक्खे, यह हितकारक है ॥ ४० ॥

दुर्गन्धां पिच्छिलां वापि चूर्णैः पञ्चकषायजैः ॥

पञ्चकषायः—वचावासापटोलप्रियंगुनिम्बाः । राजवृक्षादिर्यथा घनबहेरा इति लोके ॥

योनि दुर्गन्धवाली हो अथवा पिच्छिल हो तो वच, अडूसा, कडवे परवल, फूलप्रियंगु और नीम इनके चूर्णको योनिमें रक्खे और अमलतास आदिके क्वाथसे योनिको धोवे ।

पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः । वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या योनौ श्लेष्मविशोधिनी ॥ ४१ ॥

तुल्या प्रदेशिन्या दर्व्येण परिणाहेन च ॥

पीपल, कालीमिरच, उडद, सोया, कूठ और सैंधानिमक इनको पीसकर तर्जनी अंगुलीके बराबर लम्बी और मोटी बत्ती बनाकर योनिमें रक्खे तो इससे कफजन्य योनिकी पीडा शान्त होजाती है ॥४१॥

कर्णिन्यां वर्तयो देयाः शोधनद्रव्यनिर्मिताः ॥ ४२ ॥

कर्णिकानामक कफजन्य योनिरोग हो तो योनिमें शोधन पदार्थोंसे बनाई हुई बत्ती रक्खे ॥ ४२ ॥

गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वथितोदकधारया । योनिं प्रक्षालयेत्तेन तत्र कण्डूः प्रशाम्यति ॥ ४३ ॥

गिलोय, हरड, बहेडा, आमला और जमालगोटा इनके क्वाथकी धारोंसे योनिको धोवे तो योनिमें खुजली दूर होजाती है, ॥ ४३ ॥

मुद्गयूषं सखदिरं पथ्यां जातीफलं तथा । निम्बीं पूगश्च संचूर्ण्य वस्त्रपूतं क्षिपेद्भगे । योनिर्भवति संकीर्णा न स्रवेच्च जलं ततः ॥ ४४ ॥

कत्था, हरड, जायफल, नीमके पत्ते और सुपारी इनका चूर्ण करके मूँगके यूषमें पीसकर वस्त्रसे छानकर सुखा लेवे, फिर उसको योनिमें डालनेसे योनिसिकुड जाती है और जलका स्राव बन्द होजाता है ॥ ४४ ॥

कपिकच्छूभवं मूलं क्वाथयेद्विधिना भिषक् । योनिः संकीर्णतां याति क्वाथेनानेन धावयेत् ॥ ४५ ॥

कौंछकी जडका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे योनिको धोवे तो योनि सकुच जाती है ॥ ४५ ॥

जीरकद्वितयं कृष्णा सुषवी सुरभिर्वचा ॥ ४६ ॥ वासकः सैन्धवश्चापि यवक्षारो यवानिका । एषां चूर्णं घृते किञ्चिद्भृष्ट्वा खण्डेन मोदकम् ॥ ४७ ॥ कृत्वा खादेद्यथावह्नि योनिरोगाद्विमुच्यते ४८॥

जीरा, काला जीरा, पीपल, कलौंजी, सुगंधित बच, अडूसा, सैंधानमक, जवाखार और अजवायन इनका चूर्ण करके कुछेक गरम कर इसमें खांड मिलाकर लड्डू बना लेवे, उन लड्डूओंको जठराग्निके बलानुसार खाय तो योनिके समस्त रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ४६–४८ ॥

मूषकक्वाथसंसिद्धतिलतैलकृतः पिचुः । नाशयेद्योनिरोगांस्तान् धृतो योनौ न संशयः ॥ ४९ ॥

चूहेके मांसका क्वाथ बनाकर उसमें तिलका तेल पकाकर उस तेलका फोया योनिमें रक्खे तो योनिसम्बन्धी रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ४९ ॥

अथ त्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलां द्वौ सहचरौ गुडूचीं सपुनर्नवाम् । शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां

शतावरीम् ॥ ५० ॥ कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे । तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिरोगप्रशान्तये ॥ ५१ ॥

हरड, बहेडा, आमले, सफेद फूलकी कटसरैया, पीले फूलकी कटसरैया, गिलोय, पुनर्नवा, श्योनाक, हलदी, दारुहलदी, रास्ना और दुगुनी सतावर इनका कल्क डालकर चौसठ तोले घीको चौगुने दूधमें पकावे, इस घृतके पान करनेसे योनिके सब रोग नष्ट होजाते हैं, इसको 'त्रिफलाघृत कहते हैं ५०-५१

अथ सर्वयोनिरोगोपरि फलघृतम् ।

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला। मेदे पयस्या काकोल्यौ मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ ५२ ॥ अजमोदा हरिद्रे द्वे प्रियगुः कटुरोहिणी । उत्पलं मुकुदं द्राक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ ५३ ॥ ऐतषां कर्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । शतावरीरसं क्षीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम् ॥ ५४ ॥ सर्पिरेतन्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते । पुत्राञ्जनयते वीरोन्मेधाढ्यान्प्रियदर्शनान् ॥ ५५ ॥ या चैवास्थिरगर्भा स्यात्पुत्रं वा जनयेन्मृतम् । अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते ॥ ५६ ॥

मंजीठ, मुलहठी, कूठ, हरड, बहेडा, आमला, खांड, खिरैंटी दुगुनी सतावर, चौगुनी असगन्ध, असगन्धकी जड, अजमोद, हलदी, दारुहलदी, फूलप्रियंगू, कुटकी, कमल, बबूला (कुमुदिनी), दाख, काकोली, क्षीराकाकोली, सफेद और लाल चन्दन ये प्रत्येक पदार्थ एकएक तोला लेकर कल्कबनाकर उस कल्कको चौसठ तोले घी चार भाग सतावरका रस तथा चारभाग दूध इन सबको एकत्र मिलाकर पकावे तो यह 'फलघृत' सिद्ध होता है, जो पुरुष इस घृतको पीवे तो मैथुन करनेमें प्रबल होता है और वीर, बुद्धिमान् तथा रूपवान् पुत्रोंको उत्पन्न करता है, जिन स्त्रियोंका गर्भ गिरजाता है अथवा जिनके मरी हुई संतान उत्पन्न होती है अथवा जिनके संतान होकर मरजाती है अथवा जिसके केवल कन्याही उत्पन्न होती हो, उनको इस घृतके सेवन करनेसे सर्व गुणसम्पन्न सुन्दर दीर्घायुपुत्र होते हैं ॥ ५२-५६ ॥

योनिरोगे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते। प्रजावर्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ५७॥ नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम्। अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥ ५८ ॥

योनिस्राव, रजोदोष और अन्यान्य योनिरोगोंपर भी यह घृत हितकारी है। संतति तथा आयुको बढानेवाला और सम्पूर्ण भूतप्रेतादिकोंको निवारण करनेवाला अश्विनीकुमारोंका कहा हुआ यह 'फलघृत' नामवाला घी है। इस पाठमें सफेद कटेरीकी जड डालना कहीं नहीं लिखा है, तथापि वैद्य लोग डालते हैं ॥ ५७-५८ ॥

जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतं तत्र प्रयुज्यते। आरण्यगोमयेनैव वह्निज्वाला च दीयते ॥ ५९ ॥ मेदामहामेदयोरभावे शतावरी द्विगुणा देया। पयस्याऽत्र क्षीरकाकोली तद्युगलाभावे अश्वगन्धा द्विगुणा देया। प्रियङ्गुस्थाने केचिद्धिङ्गु पठन्ति । पयस्या काकोलीत्युक्त्वा पुनः काकोल्यौ इति काकोलीक्षीरकाकोल्योर्द्वैगुण्यार्थम् । एतस्य फलघृतस्य पाठो नानाविधस्तन्त्रेषु । तत्र हिङ्गुवचातगरजीवकर्षभका एवाधिकाः। जीवकर्षभकयोरभावे विदारीकन्दो द्विगुणो देयः।

जिसका बछडा जीता हो तथा जिसके शरीरका रंग एकही हो, ऐसी गायका घी लेकर उससे फलघृत बनावे और उसके पकानेमें अरने उपलोंकी अग्नि देवे, ऐसी परंपरा है इस 'फलघृत' के बनानेका पाठ ग्रन्थोंमें अनेक प्रकारका है, किन्तु उनमें हींग, वच, तगर और दुगुना विदारीकन्द ये, औषधि अधिक हैं ॥

अथ योनिकन्दचिकित्सा ।

गैरिकाम्रास्थिजन्तुघ्नरजन्यञ्जनकट्फलाः। पूरयेद्योनिमेतेषां चूर्णैः क्षौद्रसमन्वितैः ॥ ६० ॥ त्रिफलायाः कषायेण सक्षौद्रेण च सेवयेत्। प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥ ६१ ॥

आमकी गुठली, वायविडंग, हलदी, रसौत और कायफल इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर योनिमें भरे और हरड, बहेडा तथा आमला इनके क्वाथमें सहत डालकर उससे सेचन करे तो 'योनिकन्द' नामक स्त्रियोंका रोग नष्ट होजाता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अथ गर्भिणीरोगचिकित्सा ।

ह्रीबेरातिविषामुस्तमोचशक्रैश्शृतं जलम्। दद्याद्गर्भे प्रचलिते प्रदरे कुक्षिरुज्यपि १

कुक्षिरुक-उदरव्यथा ॥

सुगन्धवाला, अतीस, नागरमोथा, मोचरस और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे गिरता हुआ गर्भ प्रदर और पेटकी पीडा शान्त होती है ॥ १ ॥

मधूकचन्दनोशीरसारिवापद्मपत्रकैः । शर्करामधुसंयुक्तैः कषायो गर्भिणीज्वरे ॥ २ ॥

मुलहठी, लाल चन्दन, खस, सारिवा और कमलके पत्ते इनका क्वाथ बनाकर उसमें खांड तथा सहत डालकर पीवे तो गर्भिणी स्त्रियोंका ज्वर दूर होजाता है ॥ २ ॥

चन्दनं सारिवालोध्रमृद्वीकाशर्करान्वितम् । क्वाथं कृत्वा प्रदद्याच्च गर्भिणीज्वरशान्तये ॥ पीतं विश्वमजाक्षीरैर्नाशयेद्विषमज्वरम् ॥ ३ ॥

गर्भिण्या इति शेषः ।

लाल चन्दन, सारिवा, लोध, दाख और मिश्री इनका क्वाथ पीनेसे गर्भिणी स्त्रीका ज्वर, शान्त होता है ॥

बकरीके दूधके साथ सोंठको पीनेसे गर्भिणीस्त्रियोंका विषमज्वर शांत होजाता है ॥३॥

आम्रजम्बूत्वचः क्वाथैर्लेहयेल्लाजसक्तुकम्। अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत् ॥ ४ ॥

आम तथा जामुनकी छालका क्वाथ बनाकर उसमें खीलोंके सत्तू मिलाकर खाय तो तत्कालही गर्भिणीका ग्रहणी रोग शांत हो जाता है ॥ ४ ॥

ह्रीबेरारलुरक्तचन्दनबलाधान्याकवत्सादनीमुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्वाथं पिबेद्गर्भिणी । नानाव्याधिरुजातिसारकगदारक्तस्रुतौ वा ज्वरे योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामयेऽप्युत्तमः ॥५॥

सुगन्धवाला, अरलू, लाल चन्दन, खिरैंटी, धनियाँ, गिलोय, नागरमोथा, खस, जवासा, पित्तपापडा और अतीस इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे गर्भिणी स्त्रियोंके अनेक प्रकारके रोग, व्यथा, अतीसार, रुधिरस्राव और गर्भस्रावकी पीडा भी दूर होजाती है। यह उत्तम प्रयोग प्राचीन मुनियोंने कहा है ॥ ५ ॥

अथ गर्भस्रावगर्भपातयोर्निदानं पूर्वरूपं च ।

ग्राम्यधर्माध्वगमनं पानायासप्रपीडनैः । ज्वरोपवासोत्पतनप्रहाराजीर्णधावनैः ६॥ वमनाच्च विरेकाच्च कुन्थनाद्गर्भपातनात्। तीक्ष्णक्षारोष्णकटुकातिक्तरूक्षनिषेवणात्

॥ ७ ॥ वेगाभिघाताद्विषमादासनाच्छयनाद्भयात् । गर्भे पततिः रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥ ८ ॥

गर्भपातनाद्गर्भपातनं नियमेन गर्भपातनशीलं द्रव्यम् । अथ गर्भस्य स्रावपातयोः पूर्वरूपमाहगर्भे पतति इत्यादि । पतति स्रावेण पातेन वा पतिष्यति ॥

मैथुन करनेसे, मार्ग चलनेसे, हाथी घोडेकी सवारी पर चढनेसे, परिश्रम करनेसे अत्यन्त दबनेसे, ज्वरसे, उपवाससे कूदनेसे वा गिरपडनेसे, अजीर्णसे, दौडनेसे, वमनसे, विरेचनसे, क्लेशसे, गर्भको गिराने वाले तीक्ष्णादि द्रव्योंको सेवन करनेसे, तीक्ष्ण, क्षार, उष्ण, तीखे, कडवे तथारूखे, पदार्थोंका सेवन करनेसे, मलमूत्रादिकोंके वेगोंको रोकनेसे विषम आसनपर बैठनेसे, विषम स्थानमें सोनेसे और भयसे गर्भस्राव अथवा गर्भपात होता है । जब गर्भ स्रवनेको और गिरनेको होता है तो शूलकी पीडा तथा रुधिर निकलता है ॥ ६-८ ॥

अथ स्रावपातयोरवधिः

आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः । ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ ९ ॥ आचतुर्थाम् मासात् चतुर्थमासपर्यन्तम् । गर्भस्य विद्रवः शोणितरूपः 'गर्भः स्रवति शोणितम्' इति भोजवचनात् । स्थिरशरीरस्य कठिन शरीरस्य ॥

चौथे महीने तक जो गर्भ रुधिररूपसे स्रवता है, उस को 'गर्भस्राव' कहते हैं। भोजने भी कहा है कि "गर्भ चौथे महीनेतक रुधिररूपसे स्रवता है" ॥

चौथे महीनेके पश्चात् गर्भका अंग कठिन होजाता है, पांचवें महीनेमें अथवा छठे महीनेमें जो गर्भ गिरता है, उसको 'गर्भपात' कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ गर्भपातनिदानं दृष्टान्तश्च ।

गर्भोऽभिघातविषमासनपीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥ १० ॥

यथा वृन्तलग्नं पक्वं फलमभिघातेनाकाले एव पतति तथा गर्भोऽप्यभिघ तादिनाऽकाले पतति ॥

जिस प्रकार वृक्षकी शाखामें लगा हुआ फल अभिघात आदिसे अकालमें भी गिरपडता है, उसी प्रकार गर्भ अभिघातसे, विषम आसनसे और दबाने आदिसे अकालमें गिरजाता है ॥ १० ॥

अथ गर्भस्रावचिकित्सा ।

गुर्विण्य गर्भतो रक्तं स्रवेद्यदि मुहुर्मुहुः । तन्निरोधाय सा दुग्धमुत्पलादिशृतं पिबेत् ॥ ११ ॥

गर्भिणी स्त्रीके गर्भमेंसे जो वारम्वार रुधिर स्रवेतो उस रुधिरके रोकनेके लिये उस स्त्रीको निम्नलिखित उत्पलादिगणका औषधियोंका क्वाथ पिलावे ॥ ११ ॥

अथोत्पलादिगणः ।

उत्पलं नीलमारक्तं कल्हारं कुमुदं तथा । श्वेताम्भोजश्च मधुकमुत्पलादिरयं गणः ॥ १२ ॥

नीले कमल, लाल कमल, नीलोफर, सफेद कुमुद और मुलहठी इनको उत्पलादिगण कहते हैं ॥ १२ ॥

संशीलितो हरत्येव दाहं तृष्णां हृदामयम् । रक्तपित्तश्च मूर्च्छाश्च तथा छर्दिमरोचकम् ॥ १३ ॥

इस गणका क्वाथ बनाकर पीनेसे दाह, तृषा, हृदयकी पीडा, रक्तपित्त, मूर्च्छा, बमन और अरुचि दूर होती है ॥ १३ ॥

अथ गर्भपातोपद्रवाः ।

प्रस्रसमाने गर्भे स्याद्दाहः शूलश्च पार्श्वयोः । पृष्ठरुक्प्रदरानाहौ मूत्रसंगश्च जायते ॥ १४ ॥

प्रस्रंसमाने- पतति ॥

जब गर्भ पतित होता है तब दाह, पसलियोंमें और पीठमें पीडा, प्रदर, अफारा और मूत्रका अवरोध होता है ॥ १४ ॥

अथ गर्भस्य स्थानान्तरगमनोपद्रवाः ।

स्थानात्स्थानान्तरं तस्मिन् प्रयात्यपि च जायते । आमपक्वाशयादौ तु क्षोभः पूर्वेऽप्युपद्रवाः ॥ १५ ॥

पूर्वेऽपि उपद्रवाः -पार्श्वशूलादयः ॥

जब गर्भ एक स्थानमेंसे दूसरे स्थानमें जाता है, तब आमाशय तथा पक्वाशय आदिमें क्षोभ होता है और उपरोक्त गर्भपातके उपद्रव पसलियोंमें शूल आदि होते हैं ॥ १५ ॥

अथ गर्भपातोपद्रवचिकित्सा ।

स्निग्धशीतक्रियास्तेषु दाहादिषु समाचरेत् । कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च । शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलहृत् परम् ॥ १६ ॥

दाह आदि हो तो वैद्य स्निग्ध और शीतल क्रिया करे । कुशा, कांस, एरण्ड और गोखरूकी जड इनके कल्कसे पकाये हुए दूधमें मिश्री डालकर उसको पीवे तो गर्भिणीका शूल नष्ट होजाता है ॥ १६ ॥

श्वदंष्ट्रामधुकक्षुद्राम्लानैः सिद्धं पयः पिबेत् ॥ १७ ॥ शर्करामधुसंयुक्तं गर्भिणी वेदनापहम् ॥ १८ ॥

अम्लानः -पुष्पजातिरयं बाणपुंख इति गौडादौ प्रसिद्धः ॥

गोखरू, मुलहठी, कटेरी और पियावाँसा इनके कल्कसे दूधको पकाकर मिश्री, सहत मिलाकर पीनेसे गर्भिणीकी वेदना शांत हो जाती है ॥ १७ ॥ १८ ॥

मृत्कोष्ठागारिकागेहसम्भवा नवमल्लिका, समङ्गा धातकीपुष्पं गैरिकं च रसाञ्जनम् ॥ १९ ॥ तथा सर्वरसश्चैतान् यथालाभं विचूर्णयेत् । तच्चूर्णं मधुना लिह्याद्गर्भपातप्रशान्तये ॥ २० ॥

मृत्कोष्ठागारिकागेहसम्भवाकोष्ठागारिका किरटी तन्निर्मितगृहभवा मृत्तिका । समंगा-लज्जालुः ॥

भौंरीके घरकी मट्टी, मोगरके फूल, लज्जावन्ती, धायके फूल, पीला गेरू, रसौत और राल इनमेंसे जितने पदार्थ मिलसकें उतने पदार्थोंका बारीक चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे गिरता हुआ गर्भ रुकजाता है ॥ १९ ॥ २० ॥

कसेरूत्पलशृङ्गाटकल्कं वा पयसा पिबेत् । पक्वं वचारसोनाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् । अनाहे तु पिबेद्दुग्धं गुर्विणी सुखिनी भवेत् ॥ २१ ॥

सौवर्चल चौहार इति लोके ॥

कसेरू, कमल और सिंघाडे इनका कल्क बनाकर दूधके साथ पीनेसे गर्भिणीको सुख उत्पन्न होता है । जो गर्भवतीके अफारा आजाय तो वच तथा सहसुनके कल्कसे दूध पकाकर उसमें हींग तथा काला निमक डालकर पीवे, उससे गर्भिणीको सुख उत्पन्न होता है ॥ २१ ॥

तृणपञ्चकमूलानां कल्केन विपचेत्पयः । तत्पयो गर्भिणी पीत्वा मूत्रसङ्गाद्विमुच्यते ॥ २२ ॥ शालीक्षुकुशकाशैः स्याच्छरेण तृणपञ्चकम् । एषां मूलं तृषादाहपित्तासृङ्मूत्रसङ्गहृत् ॥ २३ ॥

शालिधानोंकी जड, ईखकी जड, डाभकी जड, कांसकी जड और सरपतेकी जड ये पंचमूल हैं। इनके कल्कसे पकाये हुये दूधको पीनेसे गर्भिणीके मूत्रका अवरोध दूर हो जाता है और यह तृषा, दाह, रक्तपित्त और मूत्रके अवरोधको दूर करता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ गर्भिण्या प्रतिमासचिकित्सा।

मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च। अश्मन्तकस्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ २४ ॥

शाकबीजम्--शाको महावृक्षः कर्कशपत्रस्तस्य बीजम्। पयस्या--अत्र क्षीरकाकोली, तदलाभे अश्वगन्धाग्राह्या। अश्मन्तकः -कोविदारसदृशोऽम्लपत्रःऽम्लीन इति लोके। ताम्रवल्ली रामकान्ता मंजिष्ठा इति लोके ॥

पहिले महीनेमें–मुलहठी, सागौनके बीज, असगन्ध और देवदारु इनमेंसे जितने मिलें उतने पदार्थोंका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलावे।

दूसरे महीनेमें–अश्मन्तक जिसको पश्चिममें आपटा कहते हैं और कहीं कहीं अम्ललोना, अम्लनोनिया और किसी देशमें दीपकवृक्ष भी कहते हैं, इसके पत्ते कचनारके समान होते हैं, काले तिल, मंजीठ और सतावर इनमेंसे जितने मिलें उतनेका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलाना चाहिये ॥ २४ ॥

वृक्षादनी पयस्या च प्रियंगूत्पलसारिवा। अनन्ता सारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥ २५ ॥

प्रियंगुः–कंगुः। अनन्ता उत्पलसारिवा। पद्माद्यवारिणी भार्ङ्गीति केचित् ॥

तीसरे महीनेमें–वन्दा, फूलप्रियंगू, कंगुनी और सफेद सारिवा इनमेंसे जितनी मिलें उतनी औषधियोंको एक तोला दूधमें घोलकर पिलावे।

चौथे महीनेमें–सफेद सारिवा, काली सारिवा, रास्ना, भारंगी और मुलहठी इनमेंसे जितनी मिलें उनका एक तोला कल्क दूधमें मिलाकर पिलावे ॥ २५ ॥

बृहत्यौ काश्मरी चापि क्षीरिशुङ्गास्त्वचोवृतम्। पृष्टिपर्णी वचा शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ २६ ॥

बृहत्यौ--स्थूलफलो स्वल्पफला च। क्षीरिशुङ्गाः क्षीरिणां वटादीनां शुङ्गाः अविकाशिताः प्रवालाः। मधुपर्णिका गम्भारी ॥

पांचवें महीनेमें–कटेरी, बडी कटेरी, कुम्भेर-बड आदि पञ्चक्षीरी वृक्षोंकी बहुत छोटी २ कोंपल और छाल इनमेंसे जितनी मिल सकें उतनीका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलावे।

छठे महीनेमें पिठवन, बच, सहिंजना, गोखरू और कुम्भेर इनका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलाना चाहिये ॥ २६ ॥

शृंगाटकं विषं द्राक्षा कसेरु मधुकं सिता। वत्सैते सप्त योगाः स्युरर्द्धश्लोकसमापनाः ॥ २७ ॥ यथासंख्यं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोयुताः। एवं गर्भो न पतति गर्भशूलं च शाम्यति ॥२८॥

पयोयुताः प्रतिमासम् अर्द्धश्लोकोक्ताः औषध -मिलिताः कर्षमिताःशीनतोयेन संपिष्टाः पलमितेन दुग्धेनालोडिताः पातव्या इत्यर्थः ॥

सातवें महीनेमें–सिघाडे, कमलकन्द, दाख, कसेरू, मुलहठी और मिश्री इनमेंसे जितनी मिलें उनका एक तोला कल्क दूधमें डालकर पिलावे इस प्रकार करनेसे गर्भपात और स्राव नहीं होता और गर्भसम्बन्धी शूल भी नष्ट होजाता है। उपरोक्त औषधियोंको शीतल जलमें पीसकर कल्क करना चाहिये और उस कल्कको दूधमें मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥

कपित्थबृहतीबिल्वपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः। मूलानि क्षीरसिद्धानि दापयेद्भिषगष्टमे ॥ २९ ॥ कपित्थादीनां मूलानि मिलितानि फलमितानि पलाष्टमिते क्षीरे द्वात्रिंशज्जलपलयुक्ते क्वाथयित्वा क्षीरमात्रमवशिष्टं पारंतु दद्यादित्यर्थः ॥

आठवें महीनेमें-वैद्य कैथ, कटाई, बेल, परवल, ईख और कटेरी इनकी जडको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोलेभर कल्क १२८ तोले जलमें मिलाकर बत्तीस तोले दूधमें डालकर उसको पकावे, जब पकते पकते केवल दूध मात्र रहजाय और सब पानी जल जाय, तब वह दूध उस गर्भिणी स्त्रीको पिलावे ॥ २९ ॥

नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत् अत्रापि मधुकादीनि मिलित्वा कर्षमितानि शीततोयेन सम्पिष्टानि पलपरिमितेन दुग्धेनालोडितानि पिबेत् ॥

नववें महीनेमें-मुलहठी, सफेद सारिवा, काली सारिवा, असगन्ध और लाल पत्तोंका जवासा इनको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोला कल्क चार तोले दूधमें घोलकर पिला देवे ॥ ३० ॥

क्षीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्याद्दशमे हितम् । सक्षीरं वा हिता शुण्ठी मधुक सुरदारु च ॥ ३१ ॥ दशमे शुण्ठीपयस्याभ्यांपूर्ववत्क्वथितं पिबेत्। अथवा शुण्ठीमधुकसुरदारूणि शीतलजलपिष्टानि दुग्धेनालोडितानि पिबेत् ॥

दशवें महीनेंमें-सोंठ और असगन्ध इनको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोला कल्क बत्तीस तोले जलमें मिलाकर आठ पल दूधमें डालकर उस दूधको पकावे जब। पकते पकते केवल दूधही मात्र रहजाय और सब पानीजलजाय तब वह दूध गर्भिणीको पिलावे अथवा सोंठ, मुलहठी और देवदारु इनको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलावे ॥ ३१ ॥

क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समङ्गामूलकं शिवाम् । पिबेदेकादशे मासि गर्भिणी शूलशान्तते ॥ ३२ ॥

अत्र क्षीरिकायाः फलं दद्यात् । समङ्गामूलकम्-लज्जालुमूलम् ॥

ग्यारहवें महीनेमें-खिरनीके फल, कमल, लज्जावन्तीकी जड और हरड इनको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोलाभर कल्क दूधमें घोलकर गर्भिणीको पीनेको देवे कि, जिससे शूलकी शांति हो ॥ ३२ ॥

सिता विदारी काकोली क्षीरी चैव मृणालिका । गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ॥ ३३ ॥ एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक्चोपशाम्यति ॥ ३४ ॥

काकोल्यभावेऽश्वगन्धामूलं ग्राह्यम् ॥

बारहवें महीनेमें-मिश्री, विदारीकन्द, असगन्धकी जड, पारिसपीपलके फल और कमलकी नाल इनका एक तोला कल्क पीवे कि, जिससे शूलकी शांति हो, गर्भ पुष्ट हो और तीव्र पीडा शान्त हो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ वातशुष्कगर्भचिकित्सा ।

गर्भो वातेन संशुष्को नोदरं पूरयेद्यदि । स बृंहणीयैः संसिद्धं दुग्धं मांसरसं पिबेत् ॥ ३५ ॥ शुष्कार्तवमजाताङ्गं संशुष्कं मारुतार्दितम् । त्यक्तं जीवेन तत्तस्मात्कठिनं चावतिष्ठते ॥ ३६ ॥ शुक्रार्तवार्द्रको वायुरुदराध्मानकृद्भवेत् । कदाचिच्चेत्तदाध्मानं स्वयमेव प्रशाम्यति ॥ ३७ ॥ नैगमेयेन गर्भोऽयं हृतो लोकध्वनिस्तदा । स एव त्वल्पवृत्त्या

चेल्लघुर्भूत्वाऽवतिष्ठति ॥ ३८ ॥ तदा स गर्भो भवति लोके नागोदराह्वयः। धान्यकुट्टनमुख्या स्याच्चिकित्सा तूभयोरपि ॥ ३९ ॥

नैगमेयः- बालग्रहः ॥

वातसे सूख जानेके कारण गर्भ जो गर्भिणीके उदरको पुष्ट न करे तो गर्भिणी जीवनीयगणकी औषधियोंके कल्कसे दूधको पकाकर पीवे और मांस रसको पीवे । जिसमें अंग उत्पन्न न हों, ऐसा वीर्य और रजका संघात वायुसे पीडित सूख जानेके कारण प्राणरहित और कठिन रहता है, इस प्रकार वीर्य तथा रजको सुखानेवाली यह वायु जब कभी पेटको फुला देती है, फिर वह फूला हुला पेट अपने आपही शांत हो जाता है और उस समय लोग कहने लगते हैं कि, इस गर्भको नैनमेय नामक बालग्रहने ग्रस लिया है । यही गर्भ जब कुछेक चलनेवाला और बहुत छोटा हो जाता है, तब उसको लोक "नागोदर" कहने लगते हैं। इन दोनों प्रकारमें किसी प्रकारकी स्थिति हुई हो, तो उस गर्भिणी स्त्रीके हाथसे धान कुटवावे इत्यादि काम करावे, यही इसकी मुख्य चिकित्सा है, इससे तत्काल प्रसव होजाता है ॥ ३५--३९ ॥

अथ प्रसवसमयः।

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते । एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ ४० ॥

गर्भिणी स्त्री नववें, दशवें, ग्यारहवें अथवा बारहवें महीनेमें सन्तानको उत्पन्न करती है और जो कोई विकार हो, तो इसके उपरांत भी प्रसव होता है ० ४० ॥

अथ प्रसवमासे प्रसवोपायाः।

वातेन गर्भसंकोचात्प्रसूतिसमयेऽपि या। गर्भं न जनयेन्नारी तस्याःशृणु चिकित्सितम् ॥ ४१ ॥

वातसे गर्भ संकुचित होजानेके कारण जो गर्भिणी स्त्री प्रसवके महीनेके बीत जानेपर भी नहीं जानती, उसकी चिकित्सा सुनो ॥४१॥

कुट्टयेन्मुशलेनैषा कृत्वा धान्यमुलूखले। विषमं चासनं यानं सेवेत प्रसवार्थिनी ॥ ४२ ॥

गर्भवती स्त्री प्रसव होनेके लिये ओखलीमें धान डालकर उनको मूसलसे कूटे और विषम आसन और विषम सवारीपर बैठे ॥ ४२ ॥

अथ प्रसवसमये विलम्बचिकित्सा ।

प्रसवस्य विलम्बे तु धूपयेदभितो भगम् । कृष्णसर्पस्य निर्मोकैस्तथा पिण्डीतकेन वा ॥ ४३ ॥

निर्मोकः—सर्पकञ्चुकः । पिंडीतकः—मयनफल इति लोके ॥

तन्तुना लाङ्गलीमूलं बध्नीयाद्धस्तपादयोः। सुवर्चलां विशल्यां वा धारयेदाशु सूयत ॥ ४४ ॥

सुवर्चला—सूर्यकान्ता । विशल्या-पाटला ॥

करङ्कीभूतगोमूर्द्धा सूतिकाभवनोपरि । स्थापितस्तत्क्षणान्नार्याः सुखं प्रसवकारकः ॥ ४५ ॥

करङ्कीभूतः- अस्थिमात्रेणस्थितः ॥

प्रसवके होनेमें विलम्ब हो तो योनिके चारों ओर काले सांपकी कैंचलीकी धूनी देवे तथा मैनफलकी धूनी देवे वा कलिहारीकी जडको डोरेमें बांधकर हाथ पांवोंमें बांधे अथवा हुलहुल या पाढलको धारण करे, इससे तत्काल प्रसव होजाता है । जिसमें केवल हड्डी रहगई हो, ऐसी मरी गायका सूखा मस्तक लेकर गर्भवती स्त्रीके सोनेके घरपर रक्खे तो तत्कालही सुखसे प्रसव होता है ॥ ४३-४५ ॥

पोतकीमूलकल्केन तिलतैलयुतेन च । योनेरभ्यन्तरं लिप्त्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४६ ॥

पोतकी 'पोई' इति लोके ॥

पोईकी जडका कल्क बनाकर उसमें तिलका तेल मिलाकर उस क़ल्कका योनिके भीतर लेप करनेसे स्त्रीके सुखसे प्रसव होता है ॥ ४६ ॥

कृष्णा वचा चापि जलेन पिष्टा सैरण्डतैला खलु नाभिलेपात् । सुखं प्रसूतिं कुरुतेऽङ्गनानां निष्पीडितानां बहुभिः प्रमादैः ॥ ४७ ॥

अनेक प्रकारके कारणोंसे प्रसवमें स्त्रीको बहुत कष्ट हो तो पीपल और वच इनको जलमें पीसकर अण्डीके तेलमें मिलाकर उसका नाभिके ऊपर लेप करे, इस प्रकार करे तो सुखसे प्रसव होता है ॥ ४७ ॥

मातुलुङ्गस्य मूलं तु मधुकेन युतं तथा । घृतेन सहितं पीत्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४८ ॥

बिजोरेकी जड और मुलहठी इनको पीसकर घीके साथ पीनेसे स्त्रियोंको सुखसे प्रसव होता है ॥ ४८ ॥

इक्षोरुत्तरमूलं निजतनुमानेन तन्तुना बध्वा । कटिविषये गर्भवती सुखेन सूतेऽविलम्बेन ॥ ४९ ॥

ईखकी उत्तरकी ओरकी जडको लेकर स्त्रीके शरीरके बराबर लम्बे डोरसे कमरमें बांधे तो सुखसे तत्काल प्रसव होता है ॥ ४९ ॥

तालस्य चोत्तरं मूलं स्वप्रमाणेन तन्तुना । बध्वा कट्यां तु नियतं सुखं नारी प्रसूयते ॥ ५० ॥

ताडकी उत्तरकी ओरकी जडको लेकर गर्भिणीके शरीरके बराबर डोरेमें बांधनेसे तत्काल सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ५० ॥

अथ मूढगर्भस्य निदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं शूलञ्च योनिजठरादिषु मूत्रसङ्गम् । भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ॥ ५१ ॥

अस्यायमर्थः-पवनः स्वहेतुभिर्दुष्टः ततो मूढः रुद्धगतिः मूढगर्भं रुद्धगतिं गर्भं योन्यादिषु शुलं मूत्रसंगञ्च करोति । ततःतेन अनिलेन विगुणेन रुद्धगतिना स गर्भः भग्नः कुटिलीकृतः चतुर्भिः प्रकारैः यातीत्यर्थः । अष्टभिरपरे । तत्संख्यानिरासार्थमाहसंख्यामतीत्य-उक्तां संख्यामतिक्रम्य बहुधा बहुभिः प्रकारैः योनिं समुपैति ॥

अपने कारणोंसे दुष्ट हुई और कुंठित गतिवाली मूढवायु गर्भको मूढ अर्थात् टेढी गतिवाला कर देती है और योनिमें तथा पेटमें शूलको उत्पन्न करती है तथा मूत्रको रोक देती है । फिर मूढ वायुसे वह गर्भ रुककर चार प्रकारसे योनिमें आकर अड जाता है ऐसा कितने वैद्य कहते हैं और कितने वैद्य कहते हैं कि, आठ प्रकारसे योनिमें आकर अडजाता है, परन्तु सिद्धान्त यह है कि, इन संख्याओंका कुछ नियम नहीं है अनेक प्रकारसे योनिमें आकर अडजाता है ॥ ५१ ॥

अथ चतुर्विधमूढगर्भस्य लक्षणनामानि ।

सङ्कीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीजस्तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनौ । सङ्गी च यो भवति कीलकवत्स कीलो दृश्यैःखुरैःप्रतिखुरः स हि कायसङ्गी ५२

संशब्दोऽत्रछन्दोऽनुरोधात् कप्रत्ययोऽपि स्वार्थे । तेन कील इतिनामा तस्य लक्षणमाह-

ऊर्ध्वबाहुचरणैरिति । गुथतैर्बाहुचरणशिरोभिः योनौ यः संगी भवति सकीलः कीलाख्यो मूढगर्भः । दृश्यैर्बहिर्गतैः । खुरैः खुरसाधर्म्या-न्खुरशब्देनात्र हस्तौ पादौ च गृह्येते तेन हस्तद्वयपादद्वयैर्बहिर्गतैः प्रतिखुरः । स हि कायसङ्गी हस्तपादेतरकायेन सक्तो भवति ॥

जिसके हाथ, पांव तथा मस्तक योनिमें अटक जाते हैं, वह मूढगर्भ कीलके समान होता है, इसलिये यह 'कीलक' कहाजाता है। जिसके दोनों हाथ और दोनों पांव बाहर निकल आवें और बाकी शरीर योनिमें अटक जाय, उस मूढगर्भको 'प्रतिखुर' कहते हैं॥५२

गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो
योनौ स्थितः स परिघः परिघेण तुल्यः ॥ ५३ ॥

यो गर्भः भुजद्वयशिराः भुजद्वयमध्यशिरो यस्य एतादृग्गच्छेन्निःसरेत् । तच्छेषेण शरीरेण सक्तो भवति स बीजकाख्यः । परिघवद्योनौ सपरिघः ॥

जिसमें दोनों हाथोंके बीचमें होकर शिर बाहर निकल आवे और बाकी शरीर योनिमें अटक रहे, उस मूढगर्भको 'बीजक' कहते हैं। योनिमें किवाड बन्द करनेके डंडेलेके समान आडा आकर योनिमें अटक जाय, उसको 'परिघ' कहते हैं ॥ ५३ ॥

अथ मूढगर्भस्याष्टधात्वम् ।

द्वारं निरुद्ध्य शिरसा जठरेण कश्चित्क-
श्चिच्छरीरपरिवर्तनकुब्जकायः । एकेन
कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति
कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः ॥ ५४ ॥ पार्श्वाप-
वृत्तगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा भवति
गर्भगतिःप्रसूतौ ॥ ५५ ॥

अयमर्थः-कश्चिच्छिरसा योनिद्वारं निरुद्ध्य कश्चित्कुब्जकायेन सकुब्जेन पृष्ठेन सक्तो भवति। कश्चिदेकेन भुजेन योनिसृतेन सक्तो भवति। कश्चिद् भुजद्वयेन तिर्यग्भूत्वा सक्तो भवति अन्यः ग्रीवाभङ्गादधोभूतेन मुखेन सक्तो भवति। कश्चित्पार्श्वेन अपवृत्ता निरुद्धा गतिर्यस्य एवंविधो योनिद्वारमेति याति ॥

कोई मूढगर्भ मस्तकसे योनिद्वारको रोक लेता है। कोई मूढगर्भ पेटसे योनिद्वारको रोक लेता है। कोई मूढगर्भ कुबडा होकर पीठसे योनिद्वारको रोक देता है। कोई मूढगर्भ योनिमेंसे एक हाथ निकालकर बाकीके सब शरीरसे योनिद्वारमें अटक जाता है। कोई मूढगर्भ दोनों हाथोंको बाहर निकालकर बाकी सब शरीरसे अटक जाता है। कोई मूढगर्भ आडा होकर अटक जाता है। कोई गरदनके टूटनेसे तिरछा मुख होकर योनिद्वारको रोक लेता है। कोई मूढगर्भ पसलियोंको फिराकर योनिद्वारमें अटक जाता है।॥५४॥५५

अथ सुश्रुतोक्ता अन्येऽष्ट प्रकाराः।

"कश्चिद्द्वाभ्यां योनिसक्थिभ्यां योनि-
मुखं प्रतिपद्यते ॥१॥ कश्चिदाभुग्नैकस-
क्थिरितरेण सक्थ्ना ॥ २ ॥ कश्चिदा-
भुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्य-
ग्गतः ॥ ३ ॥

कश्चिदुदरपार्श्वपृष्ठानमन्यतमेन योनि-
द्वारं पिधायावतिष्ठते ॥ ४ ॥ अन्यः
पार्श्वापवृत्ताशिराः कश्चिदेकेन बाहुना
॥ ५ ॥ कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन
॥ ६ ॥ कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशि-
रोभिः ॥ ७ ॥ कश्चिदेकेन सक्थ्ना
योनिद्वारं प्रतिपद्यते अपरेण पायु-
मिति ॥ ८ ॥ "

"कोई मूढगर्भ दोनों सांथलोंसे योनिके मुखमें आता है। कोई मूढगर्भ एक सांथलसे कुबडा होकर दूसरी सांथलसे योनिके मुखमें

आता है। कोई मूढगर्भ सांथल तथा शरीरको कुबडा करके कूलोंसे आडा होकर योनिके मुखमें आता है। कोई मूढगर्भ अपनी छाती, पसली और पीठ इनमेंसे एक अङ्गसे योनिद्वारको ढककर अटक जाता है। कोई मूढगर्भ पसलियोंको और मस्तकको करके एक हाथसे योनिद्वारको रोक लेता है। कोई मूढगर्भ अपने मस्तकको मोडकर दोनों हाथोंसे योनिद्वारको रोक देता है। कोई मूढगर्भ अपनी कमरको टेढी करके हाथसे, पांवसे और मस्तकसे योनिद्वारमें आता है कोई मूढगर्भ एक सांथलसे योनिद्वारमें प्राप्त होता है और दूसरी सांथलसे गुदामें प्राप्त होता ॥ १-८ ॥

अथासाध्यमूढगर्भिणी ।

अपविद्धशिरा या तु शीताङ्गी निरपत्रपा । नीलोद्गतासिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥ ५६ ॥

अपविद्धशिराः-अवनतशिराःशिरोऽपि धारयितुमशक्तेति यावत् । निरपत्रपा-लज्जाशून्या । नीलोद्गतसिरा कुक्षौ नीला उद्गता सिराः यस्याः सा ॥

जिसका मस्तक गिर गिर जाता हो, शरीर शीतल हो गया हो, लज्जारहित होगई हो और जिसके शरीरमें नीले रंगकी नसें उभर आई हों, वह स्त्री गर्भको नष्ट कर देती है और गर्भ उस स्त्रीको नष्ट कर देता है ॥ ५५ ॥

अथान्तर्मृतगर्भलक्षणम् ।

गर्भस्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता । भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूलश्चान्तर्मृते शिशौ ॥ ५७ ॥

गर्भास्पन्दनम् गर्भस्याचलत्वम् । अवीनां प्रणाश इति प्रसववेदनानामभावः । अथवा आवीशब्देन प्रसवलिंगानि मूत्रकफप्रसेकादीनि कथ्यन्ते तेषां नाशः । शूलः अन्तर्गतस्य शिशोरुच्छूनतया ॥

जो गर्भके भीतर बालक मर गया हो तो वह हलन चलन नहीं होता। प्रसवकी पीडा नहीं होती तथा मूत्र कफका आना आदि प्रसवके लक्षण नष्ट हो जाते हैं। शरीरका रंग स्याही लिये पीला होजाता है, दुर्गंधित श्वास और मरे बालकके सूज जानेके कारण शूल होता है ॥ ५७ ॥

अथ गर्भमरणकारणम् ।

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः । गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ ५८ ॥

उपतापः-दुःखम् । मानसः उपतापो बन्धुधनक्षयादिना । आगन्तुरुपतापः-प्रहारादिः ॥

माताके प्रहार आदि आगन्तुक कारणोंसे अथवा बन्धु, इष्ट और धनादिके क्षय आदि मानसिक कारणोंसे अथवा रोगोंसे पीडित होनेके कारण गर्भ पेटमें ही मर जाता है ॥५८

अथ गर्भिण्या अन्यासाध्यलक्षणानि ।

योनिसंवरणं सङ्गः कुक्षौ मक्कल्ल एव च । हन्युः स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ ५८ ॥

योनिसंवरणम्-व्याधिविशेषः । संगः-कुक्षौ गर्भस्य लग्नता । अप्रवृत्तिरिति यावत् । कुक्षौ मक्कलः-रक्तमारुतजः शूलविशेषः । उपद्रवाः आक्षेपककासश्वासादयः ॥

योनिसंवरण रोग, गर्भका अटकना, मक्कल्लशूल, और मूढगर्भ तथा अन्यान्य आक्षेपक, खांसी, श्वास आदि उपद्रव गर्भिणीको मार देते हैं ॥ ५९ ॥

वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्मं प्रजागरम् । अत्यर्थं सेवमानायां गर्भिण्यां योनिमार्गगः ॥ ६० ॥ मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम् । कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुनरन्तर्गतोऽनिलः ॥६१॥

निरुणद्धयाशयद्वारं पीडयन् गर्भसंस्थितम्। निरुद्धवचनोछ्वासो गर्भश्चाशुविपद्यते ॥ ६२ ॥ उच्छ्वासो रुद्धहृदयो-नाशयत्याशु गर्भिणीम् । योनिसंवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते। अन्तकप्रतिमं घोरं नारभेत चिकित्सितम् ॥ ६३ ॥

योनिसंवरणरोगके लिये अन्य ग्रन्थोंमें कहा है कि-"गर्भवती स्त्री बातकारक अन्नपान मैथुन और रात्रिमें जागरण इनको अत्यन्त सेवन करे तो उसके प्रकुपित हुई योनिके मार्गमें स्थित वायु ऊर्ध्वगमन करनेवाली होनेसे योनिद्वारको बन्द कर देती है और फिर भीतर रहनेवाली वायु गर्भगत बालकको पीडित करके गर्भाशयके द्वारको रोकदेती है कि, जिससे गर्भ अपने मुखके श्वासके रुक जानेसे तत्काल मरजाता है और हृदयके ऊपरसे चलता हुआ श्वास गर्भिणीको मार देता है, इस रोगको योनिसंवरण कहते हैं ६०-६३ ॥

यद्यपि प्रसूताया मक्कल्लशूलमुक्तम्, तथापि सुश्रुते-'प्रजातायाश्च' इति चकारेणाप्रसूताया अपि मक्कल्लशूलं भवति इति बोद्धव्यम् ॥

यद्यपि प्रसूता स्त्रियोंके मक्कल्लशूल होता है ऐसा कहा है, तथापि सुश्रुतमें 'प्रजातायाश्च' इसमें 'चकार' है, इससे जानना चाहिये कि, जिसके प्रसव न हुआ हो, उसके भी 'मक्कल्लशूल' होता है ॥

अथ मूढगर्भचिकित्सा।

याभिः सङ्कटकालेऽपि बह्वयोनार्यः प्रसाविताः। सम्यग्लब्धं यशस्तास्तु नार्यः कुर्युरिमां क्रियाम् ॥ ६४ ॥ गर्भे जीवति मूढे तु गर्भं यत्नेन निर्हरेत् । हस्तेन सर्पिषाऽक्तेन योनेरन्तर्गतेन मा ॥६५॥

खा-जनयित्री ॥

जिसने संकटमें भी अनेक स्त्रियोंको प्रसव कराया हो और इस कामसे जिसका यश फैल रहा हो, ऐसी दाई इस क्रियाको करे। मूढ गर्भ जीता हो तो दाई अपने हाथको घीसे मलकर योनिके भीतर डालकर यत्नपूर्वक गर्भ को बाहर निकाल लेवे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

मृते तु गर्भे गर्भिण्या योनौ शस्त्रं प्रवेशयेत् । शस्त्रशास्त्रार्थविदुषी लघुहस्ता भयोज्झिता ॥ ६६ ॥

जो मूढगर्भ मरगया हो तो शस्त्रविद्याको जाननेवाली, हलके हाथवाली और भयरहित ऐसी दाई गर्भिणीकी योनिमें शस्त्र डाले॥६६॥

सचेतनं तु शस्त्रेण न कथञ्चन दारयेत्। स दीर्यमाणो जननीमात्मानं चापि मारयेत् ॥ ६७ ॥

जो गर्भमें जान हो तो उसको किसी प्रकार भी शस्त्रसे नहीं काटना चाहिये। क्योंकि, जीवित गर्भको काटने से वह अपने आप भी मरजाता है और माताको भी मार देता है॥६७॥

नोपेक्षेत् मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डितः। तदाशु जननीं हन्ति प्रभूतान्नं यथा पशुम् ॥ ६८ ॥

प्रभूतान्नम्-अतिमात्रमन्नम् ॥

जो गर्भ मर गया हो तो उसको जानकर उसमें कुछ भी विलम्ब नहीं करना चाहिये तत्काल शस्त्रसे काट डालना चाहिये क्योंकि, नहीं काटनेसे मरा हुआ गर्भ तत्काल माताको मार देता है। जिस प्रकार कि, अधिक अन्न पशुको मार देता है ॥ ६८ ॥

अथ गर्भच्छेदनप्रकारः।

यद्यदङ्गं हि गर्भस्य योनौ सक्तं तु तद्भिषक्। सम्यग्विनिर्हरेच्छित्वा रक्षेन्नारीं प्रयत्नतः ॥ ६९ ॥ एवं निर्हृतशल्यां तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा। ततोऽभ्यक्तश-

रीराया योनौ स्नेहं विधारयेत् । एवं मृद्वी भवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशाम्यति ॥ ७० ॥

गर्भका जो जो अंग योनिमें अटक रहा हो, उस अंगको वैद्य अच्छी प्रकारसे काटकर निकाल लेवे और यत्नपूर्वक स्त्रीकी रक्षा करे। गर्भके निकालनेके पश्चात् उस स्त्रीके शरीरपर गरम जलका सेचन करे और उसके पश्चात् शरीरपर मालिस करके योनिमें घी लगावे, इस प्रकार करनेसे योनि कोमल और शूल शांत होजाता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

इतिगर्भिणीरोगाधिकारः ।

अथ प्रसूताऽधिकारः ।

अथ प्रसूतायोनिक्षतादिचिकित्सा ।

तुम्बीपत्रं तथा लोध्रं समभागं सुपेषयेत् । तेन लेपो भगे कार्यः शीघ्रं स्याद्योनिरक्षता ॥ ७१ ॥

तोंबीके पत्ते और लोध इनको समान भाग लेकर अच्छी प्रकारसे पीसकर योनिमें लेप करनेसे योनि तत्काल घावरहित होजाती है ॥ ७१ ॥

पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम् । योनौ विलिप्तं मधुना गाढीकरणमुत्तमम् ॥ ७२ ॥

ढाकके फल और गूलरके फल इनको तिलके तेलमें पीसकर योनिमें लेप करनेसे योनि अच्छी प्रकारसे दृढ होजाती है ॥ ७२ ॥

प्रसूता वनिता वृद्धकुक्षिह्रासाय सम्पिबेत् । प्रातर्मथितसंमिश्रं त्रिसप्ताहात्कणाजटाम् ॥ ७३ ॥

जिसका प्रसव होनेके पीछे पेट बढ गया हो, ऐसी स्त्री एक्कीस दिनके पश्चात् प्रातःकाल पीपलामूलके चूर्णको दहीमें घोलकर पीवे ७३॥

अथ प्रसूतायाः प्रसवानन्तरमनिःसृतापराजोपद्रवाः ।

प्रसूताया न पतिता जठरादपरा यदि । तदा सा कुरुते शूलमाध्मानं वह्निमंदताम् ॥ ७४ ॥

अपरा 'आम्बर' इति लोके ॥

जिससे प्रसव होनेपर आम्बर अर्थात् जेर न निकले तो वह आम्बर शूल, अफारा और अग्निको मन्द करता है ॥ ७४ ॥

अथोदरस्थितापरायाश्चिकित्सा ।

केशवेष्टितयाऽङ्गुल्या तस्याः कण्ठं प्रघर्षयेत् । निर्मोककटुकालाबूकृतबन्धनसर्षपैः । चूर्णितैः कटुतैलाक्तैर्धूपयेदभितो भगम् ॥ ७५ ॥

निर्मोकः--सर्पकंचुकः । कृतबन्धनम्--कोशातकः ॥

अंगुलीमें बालोंको बाँधकर उससे कण्ठको घिसनेसे आम्बर गिर जाता है ।

सांपकी कैंचली, कडवी तोम्बी, कडवी तोरई तथा सरसों इनको एकत्र पीसकर सरसोंके तेलमें मिलाकर योनिके चारों ओर धूनी देनेसे आम्बर गिरजाता है ॥ ७५ ॥

लाङ्गलीमूलकल्केन पाणिपादतलानि हि प्रलिम्पेत्सूतिका योषिदपरापातनाय वै ॥ ७६ ॥

प्रसूता स्त्रीके हाथ और पांवके तलुओंके ऊपर कलिहारीकी जडके कल्कका लेप करनेसे आम्बर गिरजाता है ॥ ७६ ॥

हस्तं छिन्ननखं स्निग्धं सूतायोनौ शनैः क्षिपेत् । अपरां तेन हस्तेन जनयित्री विनिर्हरेत् ॥ ७७ ॥

चतुर दाई अपने हाथकी अंगुलियोंके नखोंको अच्छी प्रकारसे काटकर हाथको घीसे चिकना करके धीरे धीरे प्रसूता स्त्रीकी योनिमें डालकर आम्बरको निकाल लेवे॥७७॥

एवं निर्हृतशल्यां तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ॥ ७८ ॥ ततोऽभ्यक्तशरीराया योनौ स्नेहं निधापयेत् ॥ ७९ ॥

इस प्रकार आम्बर निकालनेके पश्चात् स्त्रीके ऊपर गरम जलसे सेचन करे और फिर शरीरपर मालिस करके योनिमें घी लगावे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ मक्कल्लशूलस्य निदानं सम्प्राप्तिर्लक्षणञ्च ।

वनितायाः प्रसूताया वातो रूक्षेण वर्द्धितः । तीक्ष्णोष्णशोषितं रक्तं रुध्वा ग्रन्थिं करोति हि ॥ ८० ॥ नाभ्यधः पार्श्वयोर्वस्तौ बस्ति मूर्द्धनि चापि वा । ततश्च नाभौ वस्तौ च भवेच्छूलं तथोदरे । ॥ ८१ ॥ भवेत्पक्वाशयाध्मानं मूत्रसङ्गश्च जायते । एतद्भिषग्भिरुदितं मक्कल्लामयलक्षणम् ॥ ८२ ॥

प्रसूता स्त्रियोंके रूक्ष कारणोंसे बढी हुई वायु तीक्ष्ण या उष्ण कारणोंसे सुखाये हुए रुधिरको रोककर नाभिके नीचे, पसलियोंमें, मूत्राशयमें अथवा मूत्राशयके ऊपरके भागमें गांठको उत्पन्न करती है। इस गांठके होनेसे नाभिमें मूत्राशयमें तथा पेटमें शूल चलता है, पक्वाशय फूलजाता है और मूत्र रुकजाता हैं, वैद्योंने ये मक्कल रोगके लक्षण कहे हैं ॥ ८० ८२ ॥

मक्कल्लशूलचिकित्सा ।

संचूर्णितयवक्षारं पिबेत्कोष्णेन वारिणा। सर्पिषा वा पिबेन्नारी मक्कल्लस्य निवृत्तये ॥ ८३ ॥

प्रसूता स्त्रीके मक्कल्ल शूलको शान्त करनेके लिये जवाखारका महीन चूर्ण करके सुहाते हुए गरम जलके साथ अथवा घीके साथ पिलावे ॥ ८३ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली। नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकैलाजमोदिका ॥ ८४ ॥ सर्षपो हिङ्गु भार्ङ्गी च पाठेन्द्रयवजीरकाः । महानिम्बश्च मूर्वा च विषा तिक्ता विडङ्गकम् ॥ ८५ ॥ पिप्पल्यादिगणो ह्येष कफमारुतनाशनः। क्वाथमेषां पिबेन्नारी लवणेन समन्वितम् ॥ ८६ ॥ गुल्मशूलज्वरहरं दीपनश्चामपाचनम् । मक्कल्लशूलगुल्मघ्नं कफानिलहरं परम् ॥ ८७ ॥

पीपल, पीपलामूल, काली मिरच, गजपीपल, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुका, इलायची, अजमोद, सरसों, हींग, भारंगी, पाढ, इन्द्रजौ, जीरा, बकायन, चुरनहार, अतीस, कुटकी और वायविडंग ये सब औषधि ' पिप्पल्यादिगण ' इस नामसे कही जाती हैं, इनका क्वाथ बनाकर सैंधनिमक डालकर पीवे। इस क्वाथको पीनेसे गुल्म, शूल ज्वर, मक्कलशूल तथा तथा कफ और वायु अच्छी प्रकारसे नष्ट होजाती है, अग्निदीप्त होती है और आम पचजाता है ॥ ८४ ॥ ८७ ॥

त्रिकटुकचातुर्जातककुस्तुम्बुरुचूर्णसंयुक्तम् । खादेद्गुडं पुराणं नित्यं मक्कल्लदलनाय ॥ ८८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर और धनियां इनका चूर्ण पुराने गुडमें मिलाकर उस गुडको नित्य खाय तो मक्कल्ल नष्ट होजाता है ॥ ८८ ॥

अथ प्रसूताहितकारिणः ।

प्रसूता युक्तमाहारं विहारं च समाचरेत् । व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवाञ्च वर्जयेत् ॥ ८९ ॥ मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते । सकृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्तत्पथ्यमाचरेत् ॥ ९० ॥

प्रसूता स्त्रीको योग्य आहार और योग्य विहार करना चाहिये और परिश्रम मैथुन तथा शीतल पदार्थोंका सेवन त्याग देवे। प्रसूता स्त्रीके मिथ्या आहार विहारसे जो रोग उत्पन्न होता है, वह रोग कष्टसाध्य अथवा असाध्य हो जाता है। इस लिये प्रसूता स्त्रीको अवश्य पथ्य करना चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अथ सूतिका रोगनिदानम् ।

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्ण भोजनात् । सूतिकायास्तु ये रोगा जायन्ते दारुणाश्च ते ॥ ९१ ॥

मिथ्योपचारात्--अनुचिताचरणात्, प्रवातादि-सेवनात् । संक्लेशात्--उत्क्लेश्यन्ते दोषा अनेनेति संक्लेशो दोषजनकमात्रं तस्मात् । दारुणाः--कष्ट--साध्याः ॥

अत्यन्त वातकारक स्थानोंको सेवन करने आदिसे, अयोग्य आचरणसे, जिनसे दोषोंका प्रकोप हो ऐसे आचरण करनेसे, विषम भोजनसे और अजीर्णसे प्रसूताके जो रोग उत्पन्न होते हैं, ये कष्टसाध्य हो जाते हैं ॥ ९१ ॥

अथ सूतिकारोगाः ।

अङ्गमर्दो ज्वरः कासः पिपासा गुरुगात्रता । शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ ९२ ॥

एतेऽङ्गमर्दादयः प्रायेण सूतिकाया भवन्ति । सूतिकारोगत्वेन लक्ष्यन्ते ॥

अंगोंका टूटना, ज्वर, खांसी, तृषा, गात्रका भारीपन, सूजन, शूल और अतीसार ये रोग प्रसूताको विशेष करके होते हैं। ये प्रसूता स्त्रीके होते हैं, इस लिये सूतिकारोग कहे जाते हैं ॥ ९२ ॥

अथ प्रसूताया ज्वरादिरोगाणां विशेषाभिधानम् ।

ज्वरातीसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः। तन्द्राऽरुचिप्रसेकाद्या वातश्लेष्मसमुद्भवाः ॥ ९३ ॥ कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाश्रिताः । ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ९४ ॥

सूतिकाभवत्वेन सूतिकानाम्ना ते रोगाः आश्रयाश्रितयोरभेदोपचारात् । ते चाप्युपद्रवा इति । अत एव ज्वरादयः उक्तानां रोगाणामन्यतमं प्रधानीकृत्योपद्रवाश्च ॥

ज्वर, अतीसार, सूजन, शूल, पेटका अफरना, बलका क्षय, तन्द्रा, अरुचि और मुखमें पानी भरभर आना इत्यादि रोग । प्रसूता स्त्रीके मांस तथा बलकी क्षीणतासे होते हैं। ये सूतिकारोग कहे जाते हैं और उसी प्रकार कष्टसाध्य होजाते हैं।

उपरोक्त रोगोमें कोई रोग मुख्यतासे होतो ज्वरादिक रोग उसके उपद्रवरूप होते हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

अथ सूतिकारोगचिकित्सा ।

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम् । दशमूलकृतं क्वाथं कोष्णं दद्याद् घृतान्वितम् ॥ ९५ ॥ अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलकं जलदम् । शृतशीतं मधुयुक्तं शमयत्यचिरेण सूतिकातङ्कम् ॥ ९६ ॥

सूतिकाके रोगको शान्त करनेके लिये वातनाशक क्रिया करे। दशमूलका क्वाथ बनाकर कुछ कुछ जब गरम हो तब उसमें घी डालकर पीवे तो सूतिकारोग नष्ट होजाता है॥९५-९६॥

अथ देवदार्वादिक्वाथः ।

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् । भूनिम्बः कट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्यहरीतकी ॥ ९७ ॥ गजकृष्णा सदुः स्पर्शा गोक्षुरुर्धन्वयासकः । बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः

॥ ९८ ॥ समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम् । क्वाथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत् स्त्रियम् ॥ ९९ ॥ शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोऽर्तिभिः । युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ ॥ १०० ॥ निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम् । कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम् ॥ १०१ ॥

देवदारु, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, चिरायता, कायफल, कुटकी, धनियां, हरड गजपीपल, कटेरी, गोखरू, जवासा, कटाई, अतीस, गिलोय, काकडाशिंगी, और कालाजीरा इन सबको समानभाग लेकर अष्टावशेष क्वाथ बनाकर उसमें सैंधानिमक और भूनी हींग डालकर प्रसूता स्त्रीको पिलावे तो शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, मस्तककी पीडा, प्रलाप, तृषा, दाह, तन्द्रा, अतिसार और वमनयुक्त वात तथा कफसे उत्पन्न हुए प्रसूताके रोग नष्ट हो जाते हैं। यह देवदार्वादि क्वाथ प्रसूताके लिये उत्तम औषधि है ॥ ९७ ॥ १०१ ॥

अथ पञ्चजीरकपाकः ।

जीरकं स्थूलजीरञ्च शतपुष्पाद्वयं तथा । यवानी चाजमोदा च धान्यकं मेथिकापि च ॥ १०२ ॥ शुण्ठी कृष्णा कणामूलं चित्रकं हपुषापि च । बदरीफलचूर्णञ्च कुष्ठं कम्पिल्लकं तथा ॥ १०३ ॥ एतानि पलमात्राणि गुडं पलशतं मतम् । क्षीरप्रस्थद्वयं दद्यात् सर्पिषः कुडवं तथा ॥ १०४ ॥ पञ्चजीरकपाकोऽयं प्रसूतानां प्रशान्तये । युज्यते सूतिकारोगे योनिरोगे ज्वरे क्षये ॥ १०५ ॥ कासे श्वासे पाण्डुरोगे कार्श्ये वातामयेषु च ॥१०६॥

जीरा, कालाजीरा, सोया, सौंफ, अजमोद, अजवायन, धनियां, मेथी, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चीता, हाऊबेर, बेरका चूर्ण, कूठ और कबीला यह प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले लेवे गुड चारसौ तोले लेवे, इन सबको एकसौ अट्ठाईस तोले दूध और सोलह तोले भर घीमे पकावे तो यह 'पञ्चजीरक' पाक सिद्ध होता है। यह पाक सूतिकारोगमें, ज्वरमें, क्षयमें, खांसीमें, श्वासमें, पांडुरोगमें, कृशतामें और वातजन्य रोगोंमें हितकारी है ॥ १०२–१०६ ॥

अथ सौभाग्यशुण्ठी ।

आज्यं स्यात्पलयुग्ममत्र पयसः प्रस्थद्वयं खण्डतः पञ्चाशत्पलमत्र चूर्णितमथो प्रक्षिप्यते नागरम् । प्रस्थार्धं गुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टित्रयं धान्यकान्मिश्याः पञ्चपलं पलं क्रिमिरिपोः साजाजिजीरादपि ॥ १०७ ॥ व्योषाम्भोददलोरगेन्द्रसुमनस्त्वग्द्राविडीनां पलं पक्वं नागरखण्डसंज्ञकमिदं तत्सूतिकारोगहृत् । तृट्छर्दिज्वरदाहशोषशमनं सश्वासकासापहं प्लीहव्याधिविनाशनं कृमिहरं मन्दाग्निसंदीपनम् ॥ १०८ ॥

दलम्- पत्रकम् । उरगेन्द्रसुमनः- नागकेसरम्द्राविडी--सूक्ष्मैला ॥

आठ तोलेभर घी, एकसौ अट्ठाईस तोले दूध और दोसौ तोले खांड इनको एकत्र करके इनमें बत्तीस तोले सोंठका चूर्ण मिलावे, फिर इसको गुडके समान विधिपूर्वक पकावे, इसमें बारह तोले धनियाँ, बीस तोले सौंफ, वायविडंग चार तोले, सफेद जीरा चार तोले, सोंठ चार तोले, मिरच चार तोले, पीपल चार तोले, नागरमोथा चार तोले, तेजपात चार तोले, नागकेसर चार तोले, दालचीनी चार तोले और छोटी इलायची चार तोले डालकर पाक करे तो यह 'सौभाग्यशुण्ठी' सिद्ध

होती है। इस सौभाग्यशुण्ठीको सेवन करनेसे प्रसूतास्त्रियोंके सूतिकारोग, तृषा, वमन, ज्वर, दाह, शोष, श्वास, खांसी, प्लीहा और कृमिका नाश होता है, और मन्द हुई अग्नि दीप्त होती है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथ प्रसूतापथ्यविधिः ।

सर्वतः परिशुद्धा स्यात्स्निग्धपथ्याल्पभोजना । स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता ॥ १०९ ॥

सर्वतः परिशुद्धा निःसृताशेषदुष्टरुधिरा । अतन्द्रिता-पथ्यादौ सावधाना ॥

जिसका सम्पूर्ण दुष्ट रुधिर निकल गया हो, ऐसी प्रसूता स्त्री एक महीनेतक स्निग्ध, पथ्य और अल्प भोजन करे; नित्य स्वेद लेवे और मालिस करावे और पथ्य आदिमें सावधान रहे ॥ १०९ ॥

प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्तवे । सूतिकानामहीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ११० ॥

डेढ महीनेके पश्चात् अथवा फिर जब रजो दर्शन हो तब उस स्त्रीका "प्रसूता" नाम दूर होजाता है, ऐसा धन्वन्तरिका मत है ११०

उपद्रवविशुद्धाञ्च विज्ञाय वरवर्णिनीम् । ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः परिहारं विवर्जयेत् ॥ १११ ॥

चार महिने बीत जायँ और कोई भी उपद्रव न रहे तब प्रसूताको परहेज त्यागना चाहिये ॥ १११ ॥

अथ स्तनरोगसम्प्राप्तिः ।

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ स्त्रियाः । रक्तं मांसञ्च सन्दूष्य स्तनरोगाय कल्पते ॥ ११२ ॥

दूधयुक्त अथवा दूधरहित स्त्रीके स्तनोंमें दोष प्राप्त होकर रुधिर तथा मांसको दूषित करके स्तनरोगको उत्पन्न करते हैं ॥ ११२ ॥

अदुग्धावापि स्तनौ प्रसूताया गर्भिण्याश्च स्त्रिया बोद्धव्यौ ॥ अत आह सुश्रुतः—

धमन्यः संवृतद्वाराः कन्यानां स्तनसंश्रिताः । दोषाविसरणास्तासां न भवन्ति स्तनामयाः ॥ ११३ ॥

दोषाविसरणाः -संवृतद्वारत्वेन दोषाणामविसरणमसञ्चारो यासु ताः ॥

यह रोग कन्याओंके नहीं होता, क्योंकि सुश्रुत कहता है कि, "कन्याओंके स्तनोंकी धमनी रुकी हुई होती हैं, इस कारण उनके दोषोंका संचार न होनेसे स्तनरोग नहीं होता" ॥ ११३ ॥

तासामेव प्रसूतानां गर्भिणीनाञ्च ताः पुनः । स्वभावादेव विवृता जायन्ते संस्रवन्त्यतः ॥ ११४ ॥

जिनके प्रसव हुआ हो और गर्भवती स्त्रियोंकी धमनी स्वाभाविक रीतिसे खुल जाती है, इससे स्राव करती हैं ॥ ११४ ॥

अथ स्तनरोगलक्षणम् ।

पञ्चनामपि तेषां तु हित्वा शोणितविद्रधिम् । लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ ११५ ॥

पञ्चानाम्—वातपित्तकफसन्निपातागन्तुजानाम् । आगन्तुजन्तु रोगोऽभिघातेन शल्येन च बोद्धव्यः, रक्तजस्यासम्भवात्स्वभावात् ॥

पांचों प्रकारके स्तनरोगोंके लक्षण रुधिरजन्य विद्रधिको छोडकर बाहरकी विद्रधिके समान होते हैं ॥ ११५ ॥

यह रूपरसे जानाजाता है कि वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपातजन्य और आगन्तुज ऐसे पांच प्रकारके स्तनरोग होते हैं । अभिघात अथवा शल्यसे जो स्तन

रोग होता है, वह आगन्तुज कहा जाता है। रुधिरके प्रकोपसे स्तनरोग नहीं होता, ऐसा स्वभावही है ॥

अथ स्तनरोगचिकित्सा।

शोथं स्ततोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्या-
द्यद्विद्रधावभिहितं बहुधा विधानम्।
आमे विदाहिनि तथैव च तस्य पाके
यस्याः स्तनौ सततमेव च निग्र-
हात्तौ ॥ ११६ ॥

स्त्रीके स्तनोंमें सूजन उत्पन्न हो, तो वैद्य विद्रधि अधिकारोक्त अनेक प्रकारकी चिकित्सा करे। किन्तु स्तनोंमें सेकादि स्वेदन तो कभी नहीं देवे ॥ ११६ ॥

पित्तघ्नानि तु शीतानि द्रव्याण्यत्र प्रयो-
जयेत्। जलौकोभिर्हरेद्रक्तं न स्तनावु-
पनाहयेत् ॥ ११७ ॥

उपनाहयेत्—स्वेदयेत् ॥

स्तनके रोगोंपर पित्तनाशक शीतल पदार्थोंका प्रयोग करे और जोंके लगाकर रुधिर निकाले, स्तनोंमें स्वेदन कभी नहीं देना चाहिये ॥ ११७ ॥

लेपो विशालामूलेन हन्ति पीडां स्तनो-
त्थिताम्। निशाकनककल्काभ्यां लेपः
प्रोक्तः स्तनार्तिहा ॥ ११८ ॥

विशाला—इन्द्रवारुणी। कनकस्य धत्तूरस्य पत्रं ग्राह्यम् ॥

इन्द्रायनकी जडका लेप करनेसे स्तनरोग नष्ट होता है। हलदी और धतूरेके पत्ते इनका लेप करनेसे स्तनकी पीडा नष्ट हो जाती है ॥ ११८ ॥

लेपो निहन्ति मूलं वन्ध्याकर्कोटकीभवं
शीघ्रम्। निर्वाप्य तप्तलोहं सलिले तद्वा
पिबेत्तत्र ॥ ११९ ॥

इति स्त्रीप्रसूताऽधिकारः।

वांझककोडेकी जडका लेप करनेसे भी स्तनकी पीडा शान्त होजाती है ॥ तपाये हुए लोहेको जलमें बुझाकर उस जलको पिलानेसे स्तनरोग नष्ट होता है ॥ ११९ ॥

इति प्रसूताऽधिकारः।

इति स्त्रीरोगाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ बालरोगाधिकारः।

तत्र बालानां बालग्रहरक्षोपदेशः।

बालग्रहा अनाचारात्पीडयन्ति शिशुं
यतः। तस्मात्तदुपसर्गेभ्यो रक्षेद्बालं
प्रयत्नतः ॥ १ ॥

अनाचार (मिथ्या आचारादि) बालग्रहसे बालकको पीडित करते हैं। इस कारण बालग्रहोंके उपसर्गसे यत्नपूर्वक बालककी रक्षा करनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ बालग्रहाणां नामानि।

स्कन्दग्रहस्तु प्रथमः स्कन्दापस्मार एव
च। शकुनी रेवती चैव पूतना चान्ध-
पूतना ॥ २ ॥

पूतना शीतपूर्वा च तथैव मुखम-
ण्डिका। नवमो नैगमेयश्च प्रोक्ता
बालग्रहा अमी ॥ ३ ॥

स्कन्द, स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका और नैगमेय इस प्रकार बालग्रह नौ हैं २–३

अथ बालग्रहोत्पत्तिः।

नव स्कन्दादयः प्रोक्ता बालानां ये ग्रहा
अमी। श्रीमन्तो दिव्यवपुषो नारीपुरु-
षविग्रहाः ॥ ४ ॥ एते स्कन्दस्य रक्षार्थं

कृत्तिकोमाग्निशूलिभिः। सृष्टाः शरवणस्थस्य रक्षितस्य स्वतेजसा ॥ ५ ॥ स्कन्दः सृष्टो भगवता देवेन त्रिपुरारिणा । बिभर्ति चापरां संज्ञां कुमार इति संग्रहः ॥ ६ ॥

कुमारः—अयं हि कार्तिकेयादन्यः ॥

स्कन्द आदि जो नौ बालग्रह कहे हैं, वे श्रीवाले और दिव्य शरीरवाले हैं । इनमें कितने एक स्त्रीरूपवाले हैं, कितने एक पुरुषरूपवाले हैं । ये ग्रह नरसलके वनमें रहते हुए और स्वाभाविक तेजसे रक्षित जो कार्तिकेय हैं, उनकी रक्षाके लिये कृत्तिका, पार्वती, अग्नि और सदाशिवने उत्पन्न किये हैं। इसमें स्कन्दनामक जो पहिला बालग्रह है, उसको साक्षात् सदाशिवने अपने आप उत्पन्न किया है, इसका दूसरा नाम कुमार है यद्यपि स्कन्द और कुमार ये दो नाम कार्तिकेयके भी हैं तो भी यह दो नामवाले बालग्रह कार्तिकेय स्वामीसे भिन्न हैं, ऐसा जानना ॥ ४ ॥ ६ ॥

स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः सोऽग्निना तत्समद्युतिः। स च स्कन्दसखो नाम्ना विशाख इति चोच्यते ॥ ७ ॥

स्कन्दापस्मार नामक जो बालग्रह है, उसको अग्निने उत्पन्न किया है। यह बालग्रह अग्निके समान कांतिवाला है और स्कन्दसख तथा विशाख ये भी इसके नाम हैं ॥ ७ ॥

ग्रहाः स्त्रीविग्रहा एते नानारूपाः प्रकीर्तिताः। देवानां कृत्तिकानां तु भागा राजसतामसाः ॥ ८ ॥

शकुनीसे लेकर मुखमंडिकापर्यन्त जो बालग्रह स्त्रीस्वरूपवाले हैं और गंगा, पार्वती तथा कृत्तिका इनके रजोगुणी और तमोगुणी भागरूप हैं ॥ ८ ॥

नैगमेयस्तु पार्वत्या सृष्टो येषां ततो ग्रहः। कुमारः स हि देवस्य गुहस्यात्मसमोऽस्ति वै ॥ ९ ॥

नैगमेय जो बालग्रह है, उसको पार्वतीने उत्पन्न किया है, मेंढेके समान मुखवाला है, कार्तिकेयको प्राणोंके समान प्रिय है ॥ ९ ॥

ततो भगवता स्कन्दे सुरसेनापतौ कृते। उपतस्थुर्ग्रहा एते दीप्तशक्तिधरं गुहम् ॥ ॥ १० ॥ ऊचुः प्राञ्जलयश्चैनं वृत्तिर्नो दीयतामिति । तेषामर्थे ततः स्कन्दः शिवं देवमचोदयत् ॥ ११ ॥ ततो ग्रहांस्तानुवाच भगवान् भगनेत्रहृत् । तैर्यग्योनिं मानुषं च दैवश्च त्रितयं जगत् ॥ ॥ १२ ॥ परस्परोपकारेण वर्तते धार्यते तथा । देवा नरान्प्रीणयन्ति तैर्यग्योनींस्तथैव च ॥ १३ ॥ यथाकालं प्रवृत्तैस्तु उष्णवर्षाहिमानिलैः । इज्याञ्जलिनमस्कारैर्जपहोमैस्तथैव च ॥ १४ ॥ सम्यक्प्रयुक्तैश्च नराः प्रीणयन्त्यपि देवताः । भागधेयविभक्तश्च शेषं किंचिन्न विद्यते॥ ॥ १५ ॥ तद्युष्माकं शुभा वृत्तिर्बालेष्वेव भविष्यति ॥ १६ ॥

जिस समय महादेवने कार्तिकेयको देवताओंका सेनापति नियुक्त किया, उस समय ये सब बालग्रह प्रदीप्त शक्तिको धारण करनेवाले कार्तिकेय स्वामीके सम्मुख आकर खडे हुए, इन सबोंने कार्तिकेय स्वामीको हाथ जोडकर कहा कि, 'हमें आजीविका बताओ'। इनके वचन सुनकर कार्तिकेय स्वामीने महादेवसे जाकर प्रार्थना की, महात्मा सदाशिवने इन सब बालग्रहोंके प्रति कहा कि—"इस जगत्में पशु, पक्षियोंकी जाति, मनुष्य जाति और देवताजाति ये तीन जाति हैं, ये परस्पर किये उपकारसे वर्त्तते हैं और उस उपकारसे ही रक्षित हैं, देवता—यथा समयमें गर्मी, वर्षा, शीत और पवनको उत्पन्न करके मनुष्य तथा पशुपक्षियोंको तृप्त करते हैं। मनुष्य—यजन हाथ जोडना, नमस्कार, जप तथा होम इत्यादिक

अच्छी प्रकारसे देवताओंको सन्तुष्ट करते हैं। पशुपक्षी आदि जाति-अपने दूधादिसे तथा मांसादिसे मनुष्योंको तथा देवताओंको तृप्त करते हैं और मनुष्य भी पालन आदिसे पशुपक्षियोंको तृप्त करते। इस प्रकार होनेसे सब यथा यथा भागमें विभक्त होगये हैं, इस कारण कोई अवशेष नहीं रहा, इस कारण तुम्हारी आजीविका बालकोंमें होगी" १०॥१६

अथ बालग्रहाणां ग्रहणकारणम्।

कुलेषु येषु नेज्यन्ते देवाः पितर एव च। ब्राह्मणाः साधवो वापि गुरवोऽतिथयस्तथा॥ १७॥ निवृत्तशौचाचारेषु तथा कुत्सितवृत्तिषु। निवृत्तभिक्षाबलिषु भग्नकांस्यगृहेषु वा॥ १८॥ ते वै बालांश्च तांस्तान् हि ग्रहा हिंसन्त्यशङ्किताः। तत्र वो विपुला वृत्तिः पूजा चैव भविष्यति॥ १९॥

महादेवजी बालग्रहोंको कहने लगे कि, जिस कुलमें देवता पितृ, ब्राह्मण, साधुजन, गुरजन, और अतिथियोंका पूजन नहीं होता तथा जो कुल पवित्रतासे और आचारसे भ्रष्ट हैं, कुत्सित वृत्तिवाले, किसीको भिक्षा और बलिदान नहीं देते हों तथा जो फूटे हुए कांसेके बासनमें भोजन करते हैं, उनके कुलमें जो बालक होते हैं, उन बालकोंको निःशंक होकर पकडो। ऐसे करनेसे तुम्हारी अच्छी प्रकारसे आजीविका चलेगी और पूजन भी होगा॥ १७-१९॥

एवं ग्रहाः समुत्पन्ना बालान् हिंसन्ति वा यथा। ग्रहोपसृष्टा बालाः स्युर्दुश्चिकित्स्यतमास्ततः॥ २०॥

बालग्रह इस प्रकार उत्पन्न हुए हैं और इसी कारण बालकोंको पीडित करते हैं। इस प्रकार होनेसे जिनको बालग्रहोंने ग्रस लिया हो, उन बालकोंकी चिकित्सा करनी बहुत कठिन हो जाती है॥ २०॥

अथ सामान्यबालग्रहग्रसितलक्षणम्।

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात् त्रस्यति रोदिति। नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च॥ २१॥ ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान्खादेत्कूजति जृम्भति। भ्रुवौ क्षिपति दष्टोष्ठः फेनं वमति चासकृत्॥ २२॥ क्षामोऽति निशि जागर्ति शूनाङ्गो भिन्नविट्स्वरः। मत्स्यशोणितगन्धश्च न चाश्नाति यथा पुरा॥ २३॥ दुर्बलो मलिनाङ्गश्च नष्टसंज्ञोऽपि जायते। सामान्यग्रहजुष्टस्य लक्षणं समुदाहृतम्॥ २४॥

क्षणभरमें बालक व्याकुल होजाय, क्षणभरमें रोने लगे, नख तथा दांतोंसे अपने आपको और माताको काटे, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे, किलकारी मारे, जम्भाई ले, भौंहोंको टेढी करे, होठोंको काटे, बारंबार झागसहित वमन करे, कृश होजाय, रात्रिमें जागे, शरीरमें सूजन होजाय, दस्त पतले आने लगें, गला पकजाय, उसके देहमेंसे मछलीके समान तथा रुधिरके समान दुर्गन्ध आवे पहिलेकी अपेक्षा भूख कम होजाय, दुर्बल होजाय, अंग मलिन होजाय और बेहोश होजाय तो ये सम्पूर्ण बालग्रहग्रसितके सामान्य लक्षण हैं॥ २१-२४॥

अथ विशिष्टग्रहजुष्टबालकानां लक्षणानि।

स्रस्ताङ्गः क्षतजसुगन्धिकः स्तनद्विड् वक्रास्यो हतचरणैकपक्षनेत्रः। उद्विग्नः ससलिलचक्षुरल्परोदी स्कन्दार्तो भवति च गाढमुष्टिबन्धः॥ २५॥

जिसको स्कन्दनामक बालग्रहने पीडित किया हो उस बालककी आंखें सूजजाती हैं, उसके शरीरमेंसे रुधिरके समान गन्ध आती है, दूधको नहीं पीता, मुख टेढा होजाता है,

आंख खराब होकर चंचल तथा एक पलकवाली होजाती हैं, विह्वल होजाता है, जलसे नेत्र भरे रहते हैं, थोडा रोता है, हाथकी मुट्ठी बहुत जोरसे बांध लेता है और उसका मल कठिन होजाता है ॥ २५ ॥

निःसंज्ञो भवति पुनर्लभेत् संज्ञां संस्तब्धः करचरणैश्च नृत्यतीव । विण्मूत्रे सृजति चिरेण जृम्भमाणः फेनं वा सृजति च तत्सखाभिजुष्टः ॥ २६ ॥

तत्सखाभिजुष्टः-स्कन्दापस्मारयुक्तः ॥

जिसको स्कन्दापस्मार ग्रहने ग्रसा हो वह बालक बेहोश होजाता है, फिर चैतन्य हो जाता है, शरीर जकड जाता है, हाथसे तथा पांवसे मानों नाचता हो ऐसा प्रतीत होता है, मलमूत्रको वारंवार त्यागता है. बहुत जोरसे जम्भाई लेता है अथवा मुखमें झाग भरे रहते हैं ॥ २६ ॥

स्त्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः सास्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् । स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ २७ ॥

जिसको शकुनी ग्रहने ग्रसा हो वह बालक शिथिल अंगोंवाला, भयसे चकित, पक्षीके समान गन्धवाला, स्राववाले व्रणोंसे पीडित दाह और पके हुए फोडोंसे व्याप्त शरीरवाला होता है ॥ २७ ॥

रक्तास्यो हरितमलोऽतिपाण्डुदेहः श्यावो वा मुखकरपाकवेदनार्तः । गृह्णाति व्यथिततनुश्च कर्णनासं रेवत्या भृशमभिपीडितः कुमारः ॥ २८ ॥

जिसको रेवतीग्रहने ग्रसा हो वह बालक लाल मुखवाला, उसकी विष्ठाका रंग हरा शरीरका रंग अत्यन्त पीला अथवा काला हो, ज्वर तथा मुखपाककी पीडासे पीडित और शरीरमें व्यथाके होनेसे कानको तथा नाकको मलता है ॥ २८ ॥

विद्स्रावी स्वपिति न वासरे न रात्रौ विड्भिन्नं विसृजति काकतुल्यगन्धः । छर्द्यार्तो हृषिततनूरुहः कुमारस्तृष्णालुर्भवति च पूतनागृहीतः ॥ २९ ॥

जिसको पूतनाग्रहने ग्रसा हो उस बालकके अंग शिथिल हो जाते हैं, रात्रि और दिनमें किसी समय भी सुखसे नहीं सोता, दस्त पतला आता है, कौवेकी समान गन्ध आती है, वमनकी पीडा होती है, रोमांच हो आते हैं और वारंवार तृषा लगती है ॥ २९ ॥

यो द्वेष्टि स्तनमतिसारकासहिक्काच्छर्दीभिर्ज्वरसहिताभिरर्द्यमानः । दुर्वर्णः सततमथापि योऽस्रगन्धिस्तं ब्रूयाद्भिषगथ गन्धपूतनार्तम् ॥ ३० ॥

जो बालक दूधको नहीं पीवे, ज्वर, अतीसार, खांसी, हिचकी तथा वमन इससे पीडित हो, शरीरका रंग बिगड जाय, सर्वदा उलटा सोवे और उसके शरीरमेंसे रुधिरके समान गन्ध आवे, उसको वैद्य गन्धपूतना ग्रहग्रसित जाने ॥ ३० ॥

आक्रन्दत्यभिचकितं सुवेपपीनः संलीनो भवति व्यथान्त्रकूजयुक्तः । स्त्रस्ताङ्गो भृशमतिशीर्यते च शीतात् तं ब्रूयाद्भिषगथ शीतपूतनार्तम् ॥ ३१ ॥

जो बालक चीखें मारे, भयभीत होकर घबडा जाय, काँपे अथवा फूलजाय, पेटमें आंतोंका शब्द होता हो, अंगोंमें दुर्गंध आती हो और दस्त अत्यन्त पतला हो गया हो तो वैद्य इसको शीतपूतनाग्रहग्रसित जाने ॥ ३१ ॥

म्लानाङ्गः सरुधिरपाणिपादवक्रो बह्वाशी कलुषशिरावृतोदरो यः । सज्ञेयः शिशुरथ वक्रमण्डिकार्तः सोद्वेगो भवति च मूत्रतुल्यगंधिः ॥ ३२ ॥

जिस बालकके अंग मुरझाजायँ, हाथ, पांव तथा मुखमेंसे रुधिर निकले, उद्वेगको प्राप्त

होजाय, बहुत खाय, पेट बहुतसी कलुषित रंगकी नसोंसे व्याप्त हो और शरीरमेंसे मूत्रके समान गन्ध निकले उसको वैद्य मुखमण्डिका ग्रहग्रसित जाने ॥ ३२ ॥

यः फेनं वमति विनम्यते च मध्ये सोद्वेगो विहसाति चोर्ध्वमीक्षमाणः । कूजेच्च प्रततमथो वसासगन्धिर्निःसंज्ञो भवति स नैगमेयजुष्टः ॥ ३३ ॥

जो बालक झागोंकी वमन करे, शरीरके मध्यभागमें नवजाय, उद्वेगको प्राप्त हो, ऊपरको देखकर हँसे, बहुत गूँजे, शरीरमें चरबी तथा रुधिरके समान गन्ध आवे और बेहोश हो जाय, उस बालकको वैद्य नैगमेयग्रहग्रसित जाने ॥ ३३ ॥

अथ सामान्यग्रहजुष्टचिकित्सा ।

सहामुण्डितिकोदीच्यक्काथस्नानं ग्रहापहम् । सप्तच्छदामयनिशाचन्दनैश्चानुलेपनम् ॥ ३४ ॥

सहा-माषपर्णी ॥

मषवन अर्थात् वनउडद, गोरखमुण्डी और सुगन्धबाला इनके क्वाथसे बालकको स्नान करावे और सतवन, कूठ, हलदी तथा चन्दन, इनका लेप करे तो बाल ग्रह शान्त होते हैं ॥ ३४ ॥

सर्पत्वग्लशुनं मूर्वा सर्वपारिष्टपल्लवा । बिडालविडजालोम मेषशृङ्गी वचा मधु॥ धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः । बालशान्तीष्टकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये ॥ ३५ ॥

साँपकी कैंचुली, लहसुन, चुरनहार, घी, नीमके पत्ते, बिलावकी विष्ठा, बकरीके रोम, मेढाशिंगी, वच और सहत इनकी धूनी, देनेसे बालकोंका ज्वर नष्ट हो जाता है और सम्पूर्ण बालग्रह शान्त होते हैं । बालग्रहोंको निवारण करनेके लिये बालशांति करे और पूजनादि करे ॥ ३५ ॥

अथाष्टमङ्गलघृतम् ।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि च ॥ ३६ ॥ सारिशा सैन्धवं चैव पिप्पली घृतमष्टमम् । सिद्धं घृतमिदं मेध्यं पिबेत्प्रातर्दिने दिने ॥ ३७ ॥ दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधः कुमारो बुद्धिमान् भवेत् । न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः । प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम् ॥ ३८ ॥

वच, कूठ, ब्राह्मी, सरसों, सारिवा, सैंधानिमक और पीपल इन सात पदार्थोंके कल्कसे पकायाहुआ घी 'अष्टमंगलघृत' कहा जाता है । इस घृतको नित्य प्रभातके समय पीनेसे बालक दृढ स्मरणशक्तिवाला, अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिको धारण करनेवाला और बहुत विचक्षण होता है । इस घृतकी पीनेवाले बालकोंके पिशाच, राक्षस, भूत और मातृदोष ये कदापि नहीं होते ॥ ३६-३८ ॥

अथ विशिष्टग्रहजुष्टबालकचिकित्सा ।

तत्र स्कन्दग्रहजुष्टचिकित्सा ।

स्कन्दग्रहोपसृष्टस्य कुमारस्य प्रशान्तये। वातघ्नद्रुमपत्राणां क्काथेन परिषेचनम् ॥ ३९ ॥ देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु गणेषु च । सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पातुमस्मै प्रदापयेत् ॥ ४० ॥ सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचा काकादनी घृतम् उष्ट्राजाविगवां चापि रोमाण्युद्धूपनं भवेत्॥४१॥

काकादनी-श्वेतगुञ्जा ॥

जिसको स्कन्दग्रहने ग्रसा हो उस बालकके शरीरपर शांतिके लिये अण्डके पत्तोंके क्वाथसे सेवन करे देवदारु, रास्ना तथा जीवनीयगणकी औषधियोंके कल्कसे पकाये हुए घीको दूधके साथ पिलावे और सरसों सांपकी कैंचली, वच, सफेद चौंटली, घी, ऊंटके रोम,

बकरीके रोम तथा भेडके रोम इनकी धूनी देवे ॥ ३९-४१ ॥

सोमवल्लीमिन्द्रवृक्षं वन्दाकं बिल्वजं शमीम् । मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितानि विधारयेत् ॥ ४२ ॥

सोमवल्ली-सोमलता । इन्द्रवृक्षम्--ककुभवृक्षम मृगादनी-इंद्रवारुणी ॥

सोमवल्ली, कुडेकी छाल, बेलवृक्षका बंदा, छोकर और इन्द्रायनकी जड इनको एक डोरेमें बांधकर उस डोरेको बालकके गलेमें पहना देवे ॥ ४२ ॥

रक्तानि माल्यानि तथा पताका रक्तांश्च गन्धान्विविधांश्च भक्ष्यान् । घण्टां च देवाय बलिं निवेद्य सकुक्कुटं स्कन्दगृहे निधाय ॥ ४३ ॥

बालकके हितके लिये लाल फूलोंकी माला, लाल झंडी, लाल चन्दन; अनेक प्रकारके भोजनके पदार्थ घंटा और मुरगा यह सब बालकपर उतारकर चौराहेमें रक्खे और उक्त मुरगेका बलिदान करे ॥ ४३ ॥

स्नानं त्रिरात्रं निशि चत्वरेषु कुर्यात्परं शालियवैर्निवेद्यम् । गायत्रिपूताभिरथाद्भिरग्निं प्रज्वालयेदाहुतिभिश्च धीमान्४४

नवीन शालिचावल तथा नवीन जौ इनको पानीमें डालकर उस पानीको गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके रात्रिमें बालकको चौराहेमें तीन रात्रितक स्नान करावे और नवीन शालि चावल तथा नवीन जौ इनकी आहुति अग्निमें देवे ॥ ४४ ॥

रक्षामतः प्रवक्ष्यामि बालानां पापनाशिनीम् । अहन्यहनि कर्तव्या याभिरद्भिरतन्द्रितैः ॥ ४५ ॥

अब बालकोंकी रक्षाके लिये कहता हूँ कि, जिससे पापोंका नाश होता है। वैद्य आलस्यको छोडकर नित्य बालकोंके निकट निम्न लिखित रक्षा पाठ पढे ॥ ४५ ॥

तपसां तेजसां चैव यशसां वपुषां तथा। निधानं योऽव्ययो देवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु ॥

जो तपके, तेजके, यशके तथा शरीरकी सामर्थ्योंके भंडार रूप हैं, ऐसे देव कार्तिकेय स्वामी तेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४६ ॥

ग्रहः सेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः । देवसेनारिपुहरः पातु त्वां भगवान् गुहः ॥ ४७ ॥

ग्रहोंके सेनापति, देवताओंके सेनापति और देवताओंकी सेनाके शत्रुओंको नाशकरनेवाले, व्यापक और महासमर्थ कार्तिकेय देव तेरी रक्षा करें ॥ ४७ ॥

देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः । गङ्गोमाकृत्तिकानां च स ते शर्म प्रयच्छतु ॥ ४८ ॥

जो महादेवके, अग्निके, गंगाके, पार्वतीके और कृत्तिकाके पुत्र हैं, ऐसे कार्तिकेय स्वामी तेरा कल्याण करें ॥ ४८ ॥

रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तचन्दनभूषितः । रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां क्रौञ्चसूदनः ॥ ४९ ॥

लाल फूल तथा वस्त्रोंको धारण करनेवाले, लाल चन्दनसे शोभित और लाल दिव्य शरीरवाले कार्तिकेय देव तेरी रक्षा करें ॥ ४९ ॥

अथ स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टचिकित्सा।

बिल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः। परिषेकः प्रयोक्तव्यःस्कन्दापस्मारशान्तये ॥ ५० ॥

गोलोमी-श्वेतदूर्वा ॥

स्कन्दापस्मार ग्रहकी शांतिके लिये बेलगिरी, सिरस, सफेद दूब और आगे कहा हुआ सुरसादिगण इनके काथसे सेचन करे ॥ ५० ॥

सुरसा श्वेतसुरसा पाठा फञ्जी फणिज्जकः। सौगन्धिकं भूस्तृणको राजिका श्वेतबर्बरी ॥ ५१ ॥ कट्फलं खरपुष्पा च काशमर्दश्च शल्लकी। विडङ्गमय निर्गुण्डी कर्णिकार उदुम्बरः ॥ ५२ ॥ बला च काकमाची च तथा च विषमुष्टिका। कफक्रिमिहरः ख्यातः सुरसादिरयं गणः ॥ ५३ ॥

सुरसा–कृष्णतुलसी। श्वेतसुरसा–श्वेततुलसी। फञ्जी–भार्ङ्गी। फणिज्जकः–मरुवकः। सौगन्धिकम् कल्हारम्। भूस्तृणकः सुगन्धतृणम् अनेनैव नाम्ना गौडादौ प्रसिद्धः। खरपुष्पा वर्वरी। काशमर्दः–कसौटी अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धः। विषमुष्टिः–'बकायन' इति लोके ॥

काली तुलसी, सफेद तुलसी, पाढ, भारंगी, मरुवा, कह्लार नामक सुगंधिकुमुद भूस्तृण नामक सुगन्धितृण, राई, सफेद वनतुलसी, कायफल, वनतुलसी, कसौंदी, सोलई, वायविडंग, निर्गुंडी, कर्णिकार, गूलर, खिरैंटी, मकोय बकायन इन सब औषधियोंके समुदायको सुरसादिगण कहते हैं। यह सुरसादिगण कफ तथा कृमियों को नष्ट करनेवाला है ॥ ५१ ॥ ५३ ॥

अष्टमूत्रविपक्वं च तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ ५४ ॥

नीचे लिखे हुए आठ मूत्रोंसे पकाये हुए तेलकी बालकके शरीरपर मालिस करनेसे स्कन्दापस्मार ग्रहकी शांति होती है ॥ ५४ ॥

गोऽजाविमहिषाश्वानां खरोष्ट्रकरिणां तथा। मूत्राष्टकमिदं ख्यातं सर्वशास्त्रेषु सम्मतम् ॥ ५५ ॥

गाय, बकरी, भेड, भैंस, घोडा, गधा, ऊंट और हाथी इन आठ पशुओंके मूत्रको अष्टमूत्र कहते हैं। सम्पूर्ण शास्त्रोंमें इन आठ मूत्रोंको 'मूत्राष्टक' कहते हैं ॥ ५५ ॥

क्षीरिवृक्षकषायेण काकोल्यादिगणेन च। विपक्तव्यं ततः पक्वाद्दातव्यं पयसा सह ॥ ५६ ॥

काकोल्यादिगणेन कल्की कृतेन तैलं पक्तव्यम् ॥

वटादि क्षीरिवृक्षोंके क्वाथसे और नीचे लिखे काकोल्यादि गणके कल्कसे घीको पकाकर बालकको दूधके साथ पिलावे तो इससे स्कन्दापस्मारग्रह शान्त होजाता है ॥ ५६ ॥

काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकस्तथा। ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा मेदा महामेदा गुडूचिका ॥ ७५ ॥ मुद्गपर्णी माषपर्णी पद्मकं वंशलोचना। शृङ्गी प्रपौण्डरीकञ्च जीवन्ती मधुयष्टिका ॥ ५८ ॥ द्राक्षा चेति गणो नाम्ना काकोल्यादिरुदीरितः। स्तन्यकृद् बृंहणो वृष्यः पित्तरक्तानिलापहः ॥ ५९ ॥

काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गिलोय, मषवन, मुगवन, पद्माख, वंशलोचन, काकडाशिंगी, पुंडरीक वृक्ष, जीवन्ती, मुलहठी और दाख यह काकोल्यादिगण कहा जाता है। यह गण स्तनोंमें दूधको बढानेवाला है, धातुओंको पुष्ट करनेवाला है मैथुनशक्तिको बढानेवाला है और पित्त, रुधिर तथा वायुको शान्त करनेवाला है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

उत्सादनं वचाहिंगुयुक्तमत्र प्रकीर्तितम्।

वच और हींग इनके कल्कसे बालकके शरीरपर उबटन करे, यह स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टके लिये हित कारी है ॥

गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा हस्तिनखोद्धृतम्। वृषभस्य च रोमाणि योज्यान्युद्धूपने सदा ॥ ६० ॥

गीधकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा, बाल, हाथीके नाखून घी और बैलके रोम इनकी नित्य धूनी देनेसे स्कन्दापस्मारग्रहकी शांति होती है ॥ ६० ॥

अनन्तां कुक्कुटीं बिम्बीं मर्कटीञ्चापि धारयेत् ॥ ६१ ॥

अनन्ता--जवासा । कुक्कुटी--शाल्मली ॥

जवासा, सेमल, कन्दूरी और कौंछ अथवा करञ्ज इनको धारण करे, यह स्कन्दापस्मारके लिये हितकारक है ॥ ६१ ॥

पक्वान्यन्नानि मांसानि प्रसन्नां रुधिरं पयः । मुद्गौदनं निवेद्याथ स्कन्दापस्मारिणे वटे ॥ ६२ ॥

वटे वटतले--बलिं निवेदयेत्यन्वयः ॥

स्कन्दापस्मारकी शांतिके लिये पक्वान्न, मांस मदिरा, रुधिर, दूध और मूँगभात इनका बडके वृक्षके नीचे बलिदान करे ॥६२॥

चतुष्पथे कारयेच्च स्नानं तेन ततः पठेत् ।

तेन स्कन्दापस्मारिणा स्नानं कारयेदित्यन्वयः ॥

स्कन्दापस्मारग्रहजुष्ट बालकको चौराहेमें स्नान कराकर उसके निकट नीचे लिखा मंत्र पढे ॥

स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः स्कन्दस्य दयितः सखा । विशाखः स शिशोरस्य शिवायास्तु शुभाननः ॥ ६३ ॥

कार्तिकेय स्वामीका स्कन्दापस्मार जो प्रियमित्र है, उसको विशाख भी कहते हैं, वह सुन्दर मुखवाला इस बालकका कल्याण करे ॥ ६३ ॥

अथ शकुनीग्रहजुष्टचिकित्सा ।

शकुनीग्रहजुष्टस्य कार्यं वैद्येन जानता । वेतसाम्रकपित्थानां क्वाथेन परिषेचनम् ॥ ६४ ॥ ह्रीबेरमधुकोशीरसारिवोत्पलपद्मकैः । लोध्रप्रियङ्गुमञ्जिष्ठागैरिकैः प्रदिहेच्छिशुम् ॥ ६५ ॥

प्रदिहेत् लिम्पेत् । दिह्यादिति सिद्धे दिहेदिति रूपसिद्धिः आर्षत्वात् ॥

जो बालक शकुनी ग्रहसे पीडित हो उसके ऊपर विचक्षण वैद्य बेंत, आम और कैथ इनके क्वाथसे परिषेचन करे और सुगन्धवाला, मुलहठी, खस, सारिवा, कमल, पद्माख, लोध, फूलप्रियंगू, मञ्जीठ और गेरू इनका लेप करे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

स्कन्दग्रहोक्ता धूपाश्च हिता अत्र भवन्ति हि । स्कन्दापस्मारशमनं घृतमत्रापि पूजितम् ॥ ६६ ॥

स्कन्दनामक बालग्रहकी शांतिके लिये जो धूप कहा है, वह धूप और स्कन्दापस्मारग्रहकी शांतिके लिये जो घी कहा है वह घी शकुनी ग्रहसे ग्रसितके लिये भी उपयोगी है ॥ ६६ ॥

शतावरीमृगैर्वारुनागदन्तीनिदिग्धिकाम् । लक्ष्मणां सहदेवीं च बृहतीं चापि धारयेत् ॥ ६७ ॥

मृगैर्वारु--बृहती इन्द्रवारुणी । नागदन्ती 'नागवली' इति लोके प्रसिद्धा ॥

सतावर, इन्द्रायन, नागदौन, कटेरी, लक्ष्मणा (अभावमें सफेद कटेरी) सहदेई और कटाई इनको इनको धारण करे ॥ ६७ ॥

तिलतण्डुलकं माल्यं हरितालं मनःशिला । बलिरेषां करञ्जे तु निवेद्यो नियतात्मना ॥ ६८ ॥ निकटे च प्रयोक्तव्यं स्नानमस्य यथाविधि । श्वेताशिरीषाष्टगन्धपयोगुग्गुलुसर्षपैः ॥ ६९ ॥ सिद्धमभ्यञ्जने तैलं धारणं पूर्वमेव तु । शकुनीग्रहशान्त्यर्थं मदेहं कारयेद्धितम् ॥ ७० ॥

वैद्य स्थिरचित्त होकर तिल, चावल, फूल, माला हरिताल और मैनसिल इनका करञ्जके वृक्षके नीचे बलिदान करे और उस बलिदानके निकट बालकको यथाविधि स्नान करावे। पहिले ही सफेद दूध, सिरस, अष्टगन्ध, दूध, गूगल और सरसों इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल अभ्यंगके लिये तैयार करके रख देवे। बालकको स्नान करानेके पश्चात् इस तेलकी मालिस करे, जिससे शकुनीग्रहकी शांति हो ॥ ६८ ॥ ७० ॥

कुर्याच्च विविधां पूजां शकुन्याः कुसुमैः शुभैः। निकुम्भोक्तेन विधिना स्नापयेत्तं ततः पठेत् ॥ ७१ ॥

निकुम्भः-शिवस्य गणविशेषस्तेनोक्तेनविधिना ॥

सुन्दर फूलोंसे शकुनीकी अनेक प्रकारसे पूजा करे और उसके पश्चात् निकुम्भनामक सदाशिवके गणके कहे अनुसार बालकको स्नान कराकर उसके निकट नीचे लिखा पाठ पढे ॥ ७१ ॥

शिशुरक्षायां देव्याः स्तुतिः।

अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालङ्कारभूषिता। अधोमुखी सूक्ष्मतुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ७२ ॥

अन्तरिक्षमें विचरण करनेवाली, सम्पूर्ण अलंकारोंसे सुशोभित और नीचे तथा सूक्ष्ममुखवाली शकुनी देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो॥७२॥

दुर्दर्शना महाकाया पिङ्गाङ्गी भैरवस्वरा। लम्बोदरी शङ्कुकर्णी शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ७३ ॥

भयंकर दर्शनवाली, बडे शरीरवाली, पिंगलवर्ण, भयंकर स्वरवाली, लम्बे पेटवाली और कीलके समान कानवाली ऐसी शकुनी देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ७३ ॥

अथ रेवतीग्रहजुष्टचिकित्सा।

अश्वगन्धाऽजशृङ्गीच सारिवाथ पुनर्नवा सहा विदारी ह्येतासां क्वाथेन परिषेचनम् ॥ ७४ ॥

अजशृङ्गी-मेढाशृङ्गी। सहा-सेवती पुष्पजातिः ॥

असगन्ध, मेढाशिंगी, सारिवा, पुनर्नवा, सेवती और विदारीकन्द इनके क्वाथसे सेचन करे ॥ ७४ ॥

तैलमभ्यञ्जने कार्यं कुष्ठे सर्जरसे तथा। पलङ्कषाख्ये नलदे तथा गौरकदम्बके ॥ ७५ ॥

सर्जरसः 'राल' इति लोके। पलंकषा-गुग्गुलुः। नलदम्--लामज्जकम् उशीरवत्पीतच्छवि। गौरकदम्बकः-हारिद्रकः 'हरदुआ कदम्ब' इति लोके ॥

कूठ, राल, गूगल, लामज्जकतृण और हलदियाकदंब इनके कल्कसे पकाये हुए तेलका अभ्यंग करे ॥ ७५ ॥

धवाश्वकर्णककुभशल्लकीतिन्दुकेषु च। काकोल्यादौ गणे चापि सिद्धं सर्पिः पिबेच्छिशुः ॥ कुलत्थं शंखचूर्णश्च प्रदेहः साश्वगन्धिकः ॥ ७६ ॥

अश्वकर्णः 'सांकु' इति लोके प्रसिद्धः ॥

धव, अश्वकर्ण (शाखु), इन्द्रजौ, सालई, तेंदू और काकोल्यादि गण इनके कल्कसे पकाया हुआ घी बालकको पिलावे। कुलथी, शंखका चूर्ण और असगन्ध इनका लेप करे ॥ ७६ ॥

गृध्रोलूकपुरीषाणि यवा यवफलो घृतम्। सन्ध्ययोरुभयोः कार्यमेतदुद्धूपनं शिशोः ॥ ७७ ॥

यवफलः-वंशांकुरः ॥

गीधकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा, जौ, वांसके अंकुर और घी इनकी धूनी बालकोंको दोनों सन्ध्याओंमें देवे ७७ ॥

शुक्लाः सुमनसो लाजा पयः शाल्योदनं दधि । बलिर्निवेद्यो गोतीर्थे रेवत्यै प्रयतात्मना ॥ ७८ ॥

गोतीर्थे--गोष्ठे

वैद्य स्थिरचित्त होकर रेवतीको गायके स्थानमें सफेद फूल, धानकी खीलें, दूध, लाल शालि चावलोंका भात और दही इनका बलि, दान देवे ॥ ७८ ॥

स्नानं धात्रीकुमाराभ्यां सङ्गमे कारयेद्भिषक् । नानाशस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना ॥ ७९ ॥ चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु । उपासते यां सततं देव्यो विविधभूषणाः ॥८०॥ लम्बा कराला विनता तथैव बहुपुत्रिका। रेवती शुष्कनासा च तुभ्यं देवी प्रसीदतु ॥ ८१ ॥

समुद्रके और नदीके अथवा दो नदियोंके संगममें वैद्य बालकको और उसकी माताको स्नान करावे । पीछे यह पाठ पढे कि–" अनेक शस्त्रोंकी धारण करनेवाली, चित्र विचित्रित पुष्पोंकी मालाओंसे सुशोभित, विचित्र लेपन युक्त, चलत्कुण्डलवाली और श्याम वर्णवाली रेवती देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो । लम्बी, बिकराल, अनेक पुत्रोंवाली, सूखीनाकवाली-नाम्रत और जिसको विविध आभूषणोंवाली देवी सर्वदा सेवन करती हैं ऐसी देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ७९-८१ ॥

अथ पूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा ।

कपोतवङ्का श्योनाको वरुणः पारिभद्रकः । आस्फोता चैव योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥ ८२ ॥

ब्राह्मी, अरलू, वरना, फरहद वा नीम और अपराजिता (काइल) इनके काथसे बालकोंके शरीरपर सेचन करे ॥ ८२ ॥

नवा पयस्या गोलोमी हरितालं मनःशिला । कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थे कल्क इष्यते ॥ ८३ ॥

नवा पयस्या–नूतना क्षीरविदारी । गोलोमी-श्वेतदूर्वा ॥

नया अर्थात् ताजा विदारीकन्द सफेद दूब, हरिताल, मैनशिल, कूठ और राल इनसे पकाये हुए तेलका उपयोग करे ॥ ८३ ॥

हितं घृतं तु गोक्षीर्याः संसिद्धं मधुकेन च।

वंशलोचन और मुलहठी इनसे पकाया हुआ घी भी हितकारक है ॥

कुष्ठतालीसखदिराः स्पन्दनोऽर्जुन एव च ॥ ८४ ॥ पनसः ककुभश्चापि मज्जानो वदरस्य च । कुक्कुटास्थि घृतं चापि धूपनं सह सर्षपैः ॥ ८५ ॥

स्पन्दनः-स्पन्दन इत्येवं नाम्ना प्रसिद्धः ॥

कूठ, तालसिपत्र, खैर, अरलू, बडहल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, मुरगेकी हड्डी, घी और सरसों इनकी धूनी देवे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

काकादनीं चित्रफलां बिम्बीं गुञ्जां च धारयेत् ॥ ८६ ॥

काकादनीं श्वेततृञ्ञा । चित्रफला-बृहदिन्द्रवारुणी ॥

सफेद चौंटली, बडी इन्द्रायन, कन्दूरी और लाल चौंटली इनको शरीरपर धारण करे ॥ ८६ ॥

मत्स्यौदनं बलिं दद्यात्कृशरां पललं तथा । शरावसम्पुटेकृत्वा तस्य शून्ये गृहे भिषक् ॥ ८७ ॥

मछली और भात, तिलकी खिचडी और मांस इनको मिट्टीके प्यालेमें रखकर सूने घरमें पूतनाको बलि देवे ॥ ८७ ॥

उत्सृष्टान्नाभिषिक्तस्य शिशोः स्नपनमिष्यते । कुष्ठतालीसखदिरं चन्दनं स्पन्दनं तथा ॥ ८८ ॥ देवदारु वचा हिङ्गु कुष्ठं गिरिकदम्बकम् । एला हरेणवश्चापि योज्या उद्धूपने सदा ॥ ८९ ॥

बालकको जूँठनसे मलकर फिर स्नान करावे । कूठ, तालीसपत्र, खैर, चन्दन, अरलू, देवदारु, वच, हींग, कूठ, पहाडी कदम्ब, इलायची और रेणुका इनकी धूनी देवे ८८–८९

मलिनाम्बरसंवीता मलिना रूक्षमूर्द्धजा। शून्यागाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना ॥ ९० ॥

बालकके निकट बैठकर कहे कि, मैले वस्त्रोंको धारण करनेवाली, मलिन अंगवाली, रूखे बालवाली और ऊजड घरमें रहनेवाली पूतना देवी इस बालककी रक्षा करे । ॥ ९० ॥

अथ गन्धपूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा ।

तिक्तद्रुमाणां पत्रेषुक्वाथः कार्योऽभिषेचने ॥ ९१ ॥

बालकके देहपर तिक्तवृक्षों (जो कि नीचे लिखे हैं) के क्वाथसे सेचन करे ॥ ९१ ॥

निम्बः पटोलः क्षुद्रा च गुडूची वासकस्तथा । विसर्पकुष्ठनुत्ख्यातो गणोऽयं पञ्चतिक्तकः ॥ ९१ ॥

नीम, परवल, कटेरी, गिलोय और अडूसा यह पंचतिक्तगण कहा जाता है, यह विसर्प और कोढको नष्ट करता है ॥ ९२ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको मधुको मधु । शालिपर्णी बृहत्यौ च घृतार्थं च समाहरेत् । सर्वगन्धैः प्रदेहश्च गात्रे चाक्ष्णोश्च शीतलैः ॥ ९३ ॥

सर्वगन्धैः—कुंकुमागुरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनैः सह । अक्ष्णोस्तु शीतलैः चन्दनकर्पूरैः न तु कस्तूरीकुंकुमागुरुभिस्तेषामुष्णत्वात् ॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, मुलहठी, सहत, शालिपर्णी, सरिवन, कटेरी, बडी कटेरी इनके कल्कसे घृतको पकाकर बालकको पिलावे ।

केसर, अगर, कपूर, कस्तूरी और चन्दन इनका शरीरपर लेप करे ॥

और नेत्रोंके ऊपर चन्दन तथा कापूरका लेपन करे । केशर कस्तूरी और अगर ये गरम हैं, इस कारण इनका नेत्रोंपर लेपन नहीं करे ॥ ९३ ॥

पुरीषं कौक्कुटं केशाश्चर्म सर्पभवं तथा । जीर्णं चाभीक्ष्णशो वासो धूपनायोपकल्पयेत् ॥ ९४ ॥ कुक्कुटीं मर्कटीं बिम्बीमनन्तां चापि धारयेत् । मांसमामं तथा पक्वं शोणितं च चतुष्पथे ॥ ९५ ॥

मुरगेकी विष्ठा, बाल, सांपकी खाल और बालकके नीचेका पुराना वस्त्र इनकी बारम्बार धूनी देवे ।

सेमल, करंज, कन्दूरी और जवासा इनको धारण करे । चौराहेमें कच्चा तथा पका मांस और रुधिर इनका बलिदान करे ॥ ९३॥९५॥

निवेद्यमन्तश्च गृहे शिशोः स्नपनमिष्यते । कराला पिङ्गला मुण्डा काषायाम्बरसंवृता ॥ ९६ ॥ देवि बालमिमं प्रीता रक्ष त्वं गन्धपूतने ॥ ९७ ॥

बालकको भीतरके घरमें स्नान करावे और फिर यह पढे कि "हे गन्धपूतना देवी ! तू बिकराल, पिंगलवर्णवाली, मुंडित और भगवे कपड़ोंको धारण करनेवाली प्रसन्न होकर इस बालककी रक्षा कर" ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अथ शीतपूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा ।

गोमूत्रं चासश्वत्रश्च मुस्तां चामरदारु च । कुष्ठञ्च सर्वगन्धांश्च तैलार्थमवधारयेत् ॥ ९८ ॥

सर्वगन्धान्—चन्दनादीन् ॥

गोमूत्र, घोड़ेका मूत्र, नागरमोथा, देवदारु, कूठ, केसर, अगर, कस्तूरी कपूर और चन्दन इनसे तपाये हुए तेलकी बालकके शरीरपर मालिश करे ॥ ९८ ॥

रोहिणीनिम्बखदिरपलाशककुभत्वचः । निष्क्वाथ्य तस्मिन्निष्क्वाथे सक्षीरे विपचेद् घृतम् ॥ ९९ ॥

कुटकी, नीम, खैर, ढाक और कुडेकी छाल इनका क्वाथ बनाकर उस क्वाथको दूधमें मिलाकर उसमें घीको पकाकर उस घीको बालकको पिलावे ॥ ९९ ॥

गृध्रोलूकपुरीषाणि वस्तिगन्धामहित्वचम् । निम्बपत्राणि च तथा धूपनार्थं समाहरेत् ॥ १०० ॥

गीधकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा, तिलवन, सांपकी कैंचली और नीमके पत्ते इनकी धूनी देवे ॥ १०० ॥

धारयेदपि गुञ्जां च बलां काकादनीं तथा । नद्यां मुद्गौदनैश्चापि तर्पयेच्छीतपूतनाम् ॥१०१॥ जलाशयान्ते बालस्य स्नपनं चोपदिश्यते ॥ १०२ ॥

जलाशयान्ते—जलाशयतीरे ॥

देव्यै देयश्चोपहारो वारुणी रुधिरं तथा । मुद्गौदनाशिनीदेवी सुराशोणितपायिनी। ज़लाशयरता नित्यं पातु त्वां शीतपूतना ॥ १०३ ॥

चौंटली, खिरैंटी और सफेद चौंटली इनको धारण करे। नदीमें मूँगभातसे शीतपूतनाको तृप्त करे। जलाशयके तीरपर बालकको स्नान करावे, शीत पूतनाको मदिरा और रुधिर चढावे। पश्चात् बालकके निकट यह पाठ पढे कि "मूंग भातको खानेवाली, मदिरा और रुधिर पीनेवाली तथा जलाशयमें रहनेवाली शीतपूतना देवी सर्वदा तेरी रक्षा करे ॥ १०१-१०३ ॥

अथ मुखमंडिकाग्रहजुष्टचिकित्सा।

कपित्थं बिल्वतर्कारी वासा गन्धर्वहस्तकः।कुबेराक्षी च योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥ १०४ ॥

तर्कारी 'गणियार' इति लोके। गन्धर्वहस्तकः—श्वेत एरण्डः । कुबेराक्षी 'पाडरि' इति लोके ॥

कैथ, बेलगिरी, अरणी, अडूसा, सफेद अण्ड और पाढल इनके क्वाथसे बालकके शरीरपर सेचन करे ॥ १०४ ॥

स्वरसैर्भृङ्गवृक्षाणां तथैव हयगन्धया । तैलं वसां च संयोज्य पचेदभ्यञ्जनं शिशोः॥ वचा सर्जरसं कुष्ठं सर्पिश्चोपधूने हितम् ॥ १०५ ॥

भृङ्गवृक्ष-"भंगेरा' इति लोके ॥

भांगरेके स्वरस असगन्धके कल्कके साथ तैल और चरबीको डालकर पकावे, उस तेलकी बालकके शरीरपर मालिस करे। वच, राल कूठ और घी इनकी धूनी देवे ॥ १०५ ॥

वर्णकं चूर्णकं माल्यमञ्जनं पारदं तथा ॥ १०६ ॥ मनःशिलां चोपहरेद्गोष्ठमध्ये बलिं ततः । पायसं सपुरोडाशं तद्बल्यर्थमुपाहरेत् । मन्त्रपूताभिरद्भिश्च तत्रैव स्नपनं हितम् ॥१०७॥ अलंकृता कामवती सुभगा कामरूपिणी । गोष्ठमध्यालया यातु पातु त्वां मुखमण्डिका॥१०८

चन्दन, सिंग्रफ, फूलोंकी माला, अञ्जन, पारा और मैनसिल इनको गायके स्थानमें मुखमंडिकाको अर्पण करके दूध तथा पुरोडाश इनका बलिदान देवे। पश्चात् "शोभायमान, कामनावाली सुन्दर और यथेष्ट रूपोंको धारण करनेवाली तथा गायोंके स्थानमें रहनेवाली

मुखमंडिका देवी तेरी रक्षा करे" इस मन्त्रसे जलको अभिमंत्रित करके उसी स्थानमें बालकको स्नान करावे, यह हितकारी है ॥ १०६-१०८ ॥

अथ नैगमेयग्रहजुष्टचिकित्सा ।

बिल्वाग्निमन्थपूतीकैः कार्यं स्यात्परिषेचनम् ॥ १०९ ॥

पूतीकः-घोरकरञ्जः ॥

बेलगिरी, अरणी और पूतिकरंज इनके क्वाथसे बालकके शरीरपर सेचन करे ॥१०९॥

प्रियङ्गुसरसानन्ताशपुष्पाकुटन्नटैः । पचेत्तैलं सगोमूत्रं दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥ ११० ॥

कुटन्नटं वितुन्नकनाम्नो वृक्षविशेषस्य त्वक् 'गुइतजा' इति लोके । मुस्ताकृतिः श्योनाकं वा ॥

फूलप्रियंगु, सरल, देवदारु, सारिवा,सोया, केवटी नागरमोथा, दहीका तोड, खट्टीकांजी और गोमूत्र इनसे तेलको पकाकर उस तैलकी मालिस करे ॥ ११० ॥

वचां वयस्यां जटिलां गोलोमीश्चापि धारयेत् । उत्सादनं हितश्चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम् ॥ १११ ॥

वयस्या-आमलकी गुडूची वा । जटिला, जटामांसी । गोलोमी—श्वेतवचा ॥

वच, भुँईआमला वा गिलोट, बालछड और सफेद वच इनको धारण करे । स्कन्दापस्मारके प्रकरणमें जो उबटन कहा है वह उबटन भी हितकारी है ॥ १११ ॥

मर्कटोलूकगृध्राणां पुरीषाणि प्रधूपनम् । धूमः सुप्तजने कार्यो बालस्य हितमिच्छता ॥ ११२ ॥

बन्दरकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा और गीध की विष्ठा इनकी धूनी देवे । बालकोंके हितकी इच्छा करनेवाले मनुष्य जब सोजायँ तब इस धूनीको देवे ॥ ११२ ॥

तिलतण्डुलकं माल्यं भक्ष्यांश्च विविधानपि । कौमारभृत्ये मेषाय प्लक्षमूले निवेदयेत् ॥ ११३ ॥

कौमारभृत्ये-बालरक्षायां । मेषाय-नैगमेयग्रहाय ॥

बालककी रक्षाके लिये पाखरकी जडमें तिलसहित चावल, फूल और अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ इनका बलिदान देवे ॥ ११३ ॥

अधस्तात्क्षीरिवृक्षस्य स्नपनञ्चोपदिश्यते । अजाननश्चलाक्षिभ्रूः कामरूपी महायशाः । बालं पालयिता देवो नैगमेयोऽभिरक्षतु ॥ ११४ ॥

दूधवाले वृक्षके नीचे बालकको स्नान करावे और यह मंत्र पढे कि "बकरेके समान मुखवाला, यथेष्ट रूपोंको धारण करनेवाला, बालककी रक्षा करनेवाला और जिसके नेत्र तथा भौं चञ्चल हैं, ऐसा नैगमेय देव इस बालककी रक्षा करे ॥ ११४ ॥

अथ बालरोगनिदानलक्षणम् ।

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा । दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ ११५ ॥

भारी, विषम तथा दोषोंको बढानेवाले भोजनोंसे माताके शरीरमें दोष प्रकुपित होते हैं और उससे दूध दूषित हो जाता है ॥११५॥

मिथ्याहारविहारिण्यां दुष्टा वातादयस्त्रयः । दूषयन्तिपयस्तेन जायन्ते व्याधयः शिशोः ॥ ११६ ॥

अयोग्य आहार और अयोग्य विहार करनेवाली स्त्रियोंके शरीरमें दूषि हुए वातादि तीनों दोष दूधको दूषित करते हैं और दूधके दूषित होनेसे बालकके शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ११६ ॥

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन् वातगदातुरः । क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुता ॥ ११७ ॥

वातसे दूषित दूधको पीनेसे बालक वातसम्बन्धी रोगोंसे पीडित होता है । स्वर क्षीण, शरीर कृश और विष्ठा, मूत्र तथा वायु रुक जाती है ॥ ११७ ॥

स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् । तृष्णालुरूष्मसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन् ॥ ११८ ॥ हीवेरं शर्करा क्षौद्रं लीढं तृष्णाहरं परम् ॥

पित्तसे दूषित दूधको पीनेसे बालकको पसीना आवे, पतले दस्त हों, कामलारोग हो, पित्तजनित पीडायुक्त हो, तृषातुर और सम्पूर्ण अंगोंमें गरमी भी होती है । नेत्रवाला, खाँड और शहद मिलाकर चाटनेसे प्यास मिटे ॥ ११८ ॥

श्लेष्मदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् । निद्रार्दितो जडः शूनो वक्राक्षश्छर्दनः शिशुः ॥

कफसे दूषित दूधको पीनेसे लारको अधिक डाले, कफजनित पीडायुक्त, निद्रासे पीडित, भारी शरीरवाला, सूजनसहित, टेढी आंखोंवाला और वमनको करता है ॥

ज्वराद्या व्याधयः सर्वे वक्ष्यन्ते महतां तु ये । बालानामपि ते तद्वद्बोद्धव्या भिषगुत्तमैः ॥ ११९ ॥

ज्वरादि जो समस्त रोग बडोंके होते हैं उसीप्रकार वे सब रोग बालकोंको भी होते हैं; ऐसा उत्तम वैद्योंको जानना चाहिये ११९ ॥

बालानामेव ये रोगा भवन्ति महतां न च । तालुकण्टकमुख्यांस्तानवधारय यत्नतः ॥ १२० ॥

इस प्रकरणमें जो तालुकण्टकादि रोग बालकोंके ही होते हैं किन्तु बडोंके नहीं होते, उनका निरूपण करता हूँ, इसको सावधान होकर सुनो ॥ १२० ॥

अथ तालुकण्टकलक्षणम् ।

तालुमांसे कफः क्रुद्धां कुरुते तालुकण्टकम् । तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥ १२१ ॥ तालुपातास्स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम् । तृडक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥ १२२ ॥

पानं स्तनस्य । शकृद्द्रवं द्रवरूपम् ॥

तालुवेके मांसमें प्रकुपित हुआ कफ तालुकण्टक नामक रोगको उत्पन्न करता है । इस रोगसे तालुएका अग्र भाग नीचेको झुकजाता है अर्थात् लटक आता है, इस कारण माताके दूधको नहीं पीता, बडे कष्टसे थोडा २ दूधको पीता है दस्त दुतला होजाता है, तृषा लगती है, आंखोंमें, गलेमें तथा मुखमें पीडा होती है, गरदनको गिराता है और वमन करता है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

अथ महापद्मकलक्षणम् ।

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनः शीर्षवस्तिजः । पद्मवर्णो महापद्मरोगो दोषत्रयोद्भवः । शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत् ॥ १२३ ॥

पद्मवर्णः लोहितवर्णः । तत्र शीर्षजो वीसर्पः । शंखाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत् । एवं वस्तिजो गुदं याति गुदतः हृदयं हृदयाच्छिरो याति इति बोद्धव्यम् ॥

बालकके मस्तक तथा मूत्राशयमें तीनों दोषोंके प्रकोपसे प्राणोंका नाश करनेवाला ऐसा लाल रंगका विसर्परोग उत्पन्न होता है, इसको 'महापद्मक' कहते हैं । मस्तकमें उत्पन्न

हुआ विसर्प कनपटियोंमेंसे हृदयमें जाता है और हृदयमेंसे गुदामें जाता है, उसी प्रकार मूत्राशयमें उत्पन्न हुआ विसर्प गुदामें जाता है, गुदामेंसे हृदयमें जाता है और हृदयमेंसे मस्तकमें जाता है, ऐसा जानना ॥ १२३ ॥

अथ कुकूणकलक्षणम्।

कुकूणकं क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि। जायते सरुजं नेत्रं कण्डूरं प्रस्रवेद्बहु ॥ १२४ ॥ शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूट-नासाप्रघर्षणम्। शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न चाक्ष्युन्मीलनक्षमः ॥ १२५ ॥

कुकूणकं 'कोथुआह' इति लोके ॥

दूधके दोषसे बालकोंके पलकोंमें कुकूणकरोग होता है कि, जिससे नेत्र व्यथायुक्त, खुजलीवाले और अत्यन्त स्रावबाले होते हैं। इस रोगसे बालक अपने मस्तकको, आंखोंके भागको तथा नाकको घिसता है, सूर्यकी प्रभाको देख नहीं सकता और आंखोंको खोल नहीं सकता ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

अथ तुंडिगुदपाकयोर्लक्षणम्।

वातेनाध्मापिता नाभिः सरुजा तुण्डिरुच्यते।

वायुसे नाभि फूल जाती है और उसमें व्यथा होती है, इसको 'तुंडी' कहते हैं ॥

बालस्य गुदपाकाख्यो व्याधिः पित्तेन जायते ॥ १२६ ॥

पित्तसे बालककी गुदा पकजाती है इसको 'गुदपाक' कहते हैं ॥ १२६ ॥

अथाहिपूतनलक्षणम्।

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् स्विन्ने वाऽस्नाप्यमानस्य कण्डू। रक्तकफोद्भवा ॥ १२७ ॥ कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते। एकीभूतं व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ १२८ ॥

खिन्ने-स्वेदिते ॥

विष्ठासे तथा मूत्रसे लिप्त बालककी गुदाको नहीं धोनेसे अथवा बालकके आये हुए पसीनेको नहीं पोछनेसे अर्थात् वह वहीं जमजाता है तो रुधिर तथा कफके प्रकोपसे खुजली उत्पन्न होती है और खुजानेसे तत्काल फोडे तथा स्राव होजाता है। इस प्रकार होकर जो घोर व्रण होता है, उसको 'अहिपूतन' कहते हैं ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

अथाजगल्लिकालक्षणम्।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा। कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १२९ ॥

ग्रथिता गुम्फितेव।मुद्गसन्निभा मुद्गाकृतिः॥

बालकोंके शरीरमें चिकनी, शरीरके समान वर्णवाली, गुंथीसी, पीडारहित और मूँगके समान आकारवाली, फुंसी कफ तथा बायुके प्रकोपसे होती हैं, उसको 'अजगल्लिका' कहते है ॥ १२९ ॥

अथपरिगर्भिकलक्षणम्।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि। कासाग्निसादवमथुतन्द्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ॥ १३० ॥ युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः परिगर्भिकम्। रोगं परिभवाख्यं च तत्र युञ्जीत दीपनम् ॥ १३१ ॥

पिबन्नपीत्यपिशब्दादपिबन्नपि। परिगर्भिकः 'अहीडो' इति लोके परिभवाख्यं परिभवति नामान्तरम् ॥

बालक गर्भवती माताका दूध पीवे अथवा नहीं पीवे तो भी उसके विशेष करके खांसी, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा, कृशता, अरुचि, भ्रम और कोठेकी वृद्धि अर्थात् पेटका बढना होत

है, इस रोगको परिगर्भिक और परिभव कहते हैं। यह रोग उत्पन्न हुआ हो तो अग्निकोदीप्त करनेवाले उपायोंकी योजना करे ॥ १३० ॥ १३१ ॥

अथ दन्तोद्भेदकरोगाः ।

दन्तोद्भेदः शिशोः सर्वरोगाणां कारणं स्मृतम् । विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजाम् ॥ १६२ ॥ अभिष्यन्दस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते ॥१३३॥

कारणमित्यन्वयः । पोथक्या-वर्त्मरोगविशेषस्य ॥

बालकके दांत निकलनेका समय सम्पूर्ण रोगोंका कारणरूप कहाजाता है और विशेष करके ज्वर, दस्तोंका होना, खांसी, वमन, मस्तककी पीडा, आंखोंका दुखना पोथकीनामक पलकोंका रोग और विसर्प इनका कारणभूत होता है ॥ १३२ ॥

अथ बालरोगचिकित्सा ।

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु । तदेव कार्यं बलानां किन्तु दाहादिकं विना ॥ १३४ ॥

दाहादिकं विना-अग्निदाहादिक्षारवमनविरेचनशिराव्यधादिकं विना ॥

बडे मनुष्योंके लिये जो ज्वरादि रोगोंमें प्रथम औषधि कही है, वही औषधिबालकोंके लिये भी देवे, परन्तु दाग, क्षारकर्म, वमन, विरेचन, और फस्तखोलना आदि नहीं करे ॥ १३४ ॥

महाकष्टे चोत्पन्ने वमनविरेकाद्यपि दद्यात् । उक्तञ्च-" विरेकवस्तिवमनान्यृते कुर्याच्च नात्ययात् ॥ " इति ॥ १३५ ॥

अत्ययात्-विनाशकरकष्टात् । ऋते विना ॥

यदि बालकको विशेष कष्ट उत्पन्न हो तो वमन तथा विरेचन आदि भी देवे । क्योंकि, सुश्रुत कहता है कि "प्राणनाशक संकटके उत्पन्न हुए विना बालकोंको विरेचन वस्ति और वमन यह क्रिया नहीं करे " ॥ १३५ ॥

त एव दोषा दूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ते । अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा तत्र कनायसी ॥ १३६ ॥

बालकोंके दोष और दूष्य तथा ज्वरादिरोग भी बडे मनुष्योंके समान होते हैं । इस कारण बालकोंको भी प्रत्येक रोगाधिकारमें कही हुई औषधि देवे, किन्तु मात्रा कनिष्ठ अर्थात् थोडी देवे ॥ १३६ ॥

विडङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम् । अनेनैव प्रमाणेन मासिमासि प्रवर्द्धयेत् ॥ १३७ ॥

विडङ्गपरिमितं भेषजं चूर्णीकृत्य किंवा कल्की कृत्य अथवा अवलेहीकृत्य दद्यादित्यर्थः ॥

बालकोंको कनिष्ठ मात्रा देनेके लिये विश्वामित्र कहते हैं कि-"बालकके जन्मसे एक महीनेतक वायविडंगके बराबर औषधि देवे और फिर महीनेके महीने इसी प्रकार बढाता जाय " अभिप्राय यह है कि, पहले महीनेमें वायबिडंगकी बराबर औषधि लेकर चूर्ण बनाकर अथवा कल्क बनाकर वा अवलेह बनाकर देवे और दूसरे महीनेमें दो वायविडंगके बराबर औषधि देवे । इस प्रकार महीने २ बढावा जाय ॥ १३७ ॥

तन्त्रान्तर तु अन्यथाऽभिहितम् ।

प्रथमे मासि बालाय देया भेषज्यरक्तिका । अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥ १३८ ॥ एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् । तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद्यावत् षोडश वत्सराः॥१३९॥

एकैकां रक्तिकां तदूर्ध्वं वर्षोपरि माषवृद्धिः । प्रतिवर्षं पञ्चगुञ्जात्मकस्य माषस्य वृद्धिर्भवति "गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः" इति अमरसिंहः ॥

अन्य ग्रन्थोंमें अन्य प्रकारसे लिखा है कि-"बालकको पहिले महीनेमें एक रत्तीभर औषधि देवे और वह औषधि सहत, माताका दूध तथा घी इनमें मिलाकर चटनीके समान चटावे । फिर महीनेके महीने एक एक रत्ती बढाता जाय, इस प्रकार एक वर्षतक करे । पहिले वर्षके पूरे होनेपर सोलह वर्षकी अवस्था पर्यंत प्रत्येक वर्षमें पांचपांच रत्ती बढाता जाय ॥१३८॥१३९॥

ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः । ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः ॥ १४० ॥

ततः-षोडशवत्सरोपरि ॥

चूर्णकल्कावलेहानामियं मात्रा प्रकीर्तिता । कषायस्य पुनः सैव विज्ञातव्या चतुर्गुणा ॥ १४१ ॥

सोलह वर्षके पूरे होनेपर सत्तर वर्षतक मात्रा स्थिर होजाती है । सत्तर वर्षके पश्चात् बालकोंके समान मात्राको धीरे धीरे घटाता जाय, एक रत्तीभर आदि जो मात्रा कही है, वह चूर्ण, कल्क और अवलेहकी जाननी । क्वाथकी मात्रा इससे चौगुनी देवे १४०-१४१

क्षीरपस्य शिशोर्देयमौषधं क्षीरसर्पिषा । धात्र्यास्तु केवलं देयं न क्षीरेणापि सर्पिषा ॥ १४२ ॥

क्षीरान्नादस्य पूर्ववत्क्षीरसर्पिषा ॥

जो बालक माताके दूधको पीता है उसको दूधके साथ अथवा घीमें मिलाकर औषधि देवे । बालककी माताको औषधि देनी हो तो दूध और घीके साथ नहीं देवे, जैसी कही हो उसी प्रकार देवे । जो बालक दूध पीता हो और अन्नको भी खाता हो, उसको भी दूध तथा घीके साथ औषधि देवे ॥१४२॥

येषां गदानां ये योगाः प्रवक्ष्यन्तेऽगदङ्काराः । तेषु तत्कल्कसंलिप्तौ पाययेत्तु शिशु स्तनौ ॥ १४३ ॥

सुश्रुत-बालकको प्रकारान्तरसे औषधि देना कहता है कि "जिन जिन रोगोंके लिये जो जो औषधि कही है, उन उन रोगोंमें उन उन औषधियोंके कल्कसे माताके स्तनोंको लेपन करके बालकको पिलावे" ॥१४३॥

अथानभिभाषिबालस्यान्तर्गत-
रोगज्ञानापायः ।

अङ्गप्रत्यङ्गदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते मुहुर्मुहुः स्पृशति तं स्पृश्यमाने न रोदिति ॥ १४४ ॥ निमीलिताक्षो मूर्द्धस्थे रोगे नोद्धारयेच्छिरः । वस्तिस्थे मूत्रसङ्गार्तः क्षुधा तृडपि गच्छति ॥ ॥ १४५ ॥ विण्मूत्रसंगवैकल्याच्छर्द्याध्मानान्त्रकूजनैः । कोष्ठे व्याधीन्विजानीयात्सर्वत्रस्थांश्च रोदनैः ॥ १४६ ॥

बालकके जिस अङ्गके या प्रत्यंगके प्रदेशमें वेदना होती हो तो उस प्रदेशको बालक वारंवार हाथसे छूता है और अन्य कोई मनुष्य भी उस प्रदेशको स्पर्श करे तो बालक रोता नहीं है । बालकके मस्तकमें पीडा हो तो बालक आंखोंको मींची रखता है और मस्तकको स्थिर नहीं रखता अर्थात् गरदनको गिराये रखता है । बालकके मूत्राशयमें पीडा हो तो बालक मूत्रके अवरोधसे पीडित होता है और उसमें भूँख प्यास नष्ट होजाती है । जो बालकके मूत्र और मलका अवरोध हो, विह्वलता हो, अफारा आजाय और आंतें बोले तो इनसे जानना कि बालकके कोठेमें रोग है, जो बालक सदैव रोवे तो जानना कि, इसके सब शरीरमें रोग है ॥ १४४-१४६ ॥

अथ बालकस्य ज्वरादिरोगचिकित्सा ।

सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं नैव निवार्यते । मात्रया लंघयेद्धात्रीं शिशोरेतद्धिलङ्घनम् ॥ १४७ ॥

मात्रया लंघयेत्—लघु भोजयेत् ॥

बालकको समस्त पदार्थोंसे वर्जित करे, किंतु माताके दूधसे कदापि वर्जित नहीं करे, बालकको लंघन कराने हों तो उसकी माताको हलका भोजन करावे, ये ही बालकके लंघन हैं ॥ १४७ ॥

अथ सर्वज्वरेषु भद्रमुस्तादिक्वाथः ।

भद्रमुस्तभियानिम्बपटोलमधुकैः कृतः । क्वाथः कोष्णः शिशोरेष निःशेषज्वरनाशकः ॥ १४८ ॥

भद्रमोथा, हरड, नीम, कडवे परवल और मुलहठी इनका क्वाथ बनाकर कुछ कुछ गरम करके पीवे तो सर्वप्रकारके ज्वर नष्ट होजाते हैं ॥ १४८ ॥

अथ ज्वरातिसारे चतुर्भद्रावलेहः ।

घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम् । शिशोर्ज्वरातीसारघ्नं कासं श्वासं वमिं हरेत् ॥ १४९ ॥

अरुणा—अतिविषा ॥

नागरमोथा, पीपल, अतीस और काकडाशिंगी इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चटावे तो बालकोंका ज्वरातीसार नष्ट होता है और खाँसी, श्वास तथा वमन दूर हो जाती है ॥ १४९ ॥

अथातिसारे बिल्वादिक्वाथः ।

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पली च क्वाथावलेहौ मधुना विमिश्रौ बलिषु योज्यावतिसारितेषु ॥ १५० ॥

जलम्-वाला ॥

बेलगिरी, धायके फूल, सुगन्धवाला, लोध और गजपीपल इनका क्वाथ बनाकर सहत मिलाकर पीवे और इन्हीं औषधियोंके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटे तो बालकोंका अतीसार दूर हो जाता है ॥ १५० ॥

अथ दुर्धरातिसारे समङ्गादिक्वाथः ।

समङ्गाधातकीलोध्रसारिवाभिः शृतं जलम् । दुर्धरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥ १५१ ॥

समङ्गा-लज्जालुमूलम् ॥

लज्जावंतीकी जड, धायके फूल, लोध और सारिवा इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर पीवे तो बालकोंका दुर्धर अतीसार भी दूर होजाता है ॥ १५१ ॥

अथातीसारे विडङ्गादिचूर्णम् ।

विडङ्गान्यजमोदा च पिप्पलीतण्डुलानि च । एषामालोड्य चूर्णानि सुखं तप्तेन वारिणा । आमे प्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेद्भिषक् ॥ १५२ ॥

बालकको आमातिसार हो तो वैद्य वायविडङ्ग, अजमोद और पीपलके दाने इनका चूर्ण करके मन्दोष्ण जलके साथ दिलावे ॥ १५२ ॥

अथ रक्तातीसारे मोचारसादियवागूः ।

मोचारसः समङ्गा च धातकी पद्मकेसरम् । पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी ॥ १५३ ॥

मोचारसः, लज्जालुमूलम्, धातकीपुष्पम्, कमलकेसरमेतेषां तोलकैकम् गृह्णीयात् । तण्डुलाः सपादतोलकाः १।, जलमेकादश तोलकम् ११ सर्व मेकीकृत्य यवागूःसाधनीया॥

मोचरस, लजावन्तीकी जड और कमलकी केसर ये सब मिलाकर सवा तोले लेवे चावल सवा तोले लेवे और ग्यारह तोले पानीमें इन सबको एकत्रित करके यवागू बनाकर बालकको देवे तो रक्तातीसार नष्ट होजाता है ॥ १५३ ॥

अथातिसारे नागरादिक्वाथः।

नागरातिविषामुस्तवालेकेन्द्रयवैः शृतम्। कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ १५४ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धवाला और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर प्रातःकाल पीवे तो बालकोंके सब प्रकारके अतीसार दूर होते हैं ॥ १५४ ॥

अथ प्रवाहिकायां लाजादिचूर्णम्।

लाजा सयष्टीमधुका शर्करा क्षौद्रमेव च। तण्डुलोदकयोगेन क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ १५५ ॥

धानकी खीलें, मुलहठी, खांड और सहत इनको एकत्र करके चावलोंके जलके साथ पीनेसे बालकोंकी प्रवाहिका दूर होती है १५५

अथ ग्रहण्यादिरोगे रजन्यादिचूर्णम्।

रजनी सरलो दारु बृहती गजपिप्पली। पृष्ठिपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ॥ १५६ ॥ दीपनी ग्रहणीं हन्ति मारुतार्तिं सकामलाम्। ज्वरातीसारपाण्डुघ्नी बालानां सर्वरोगनुत् ॥ १५७ ॥

हलदी, देवदारु, दारुहलदी, कटेरी, गजपीपल, गदहपुरेना और सौंप इनका चूर्ण बनाकर सहत तथा घीके साथ चाटे तो बालकोंकी ग्रहणी, वायुकी पीडा कामला, ज्वर, अतीसार और पांडुरोग नष्ट हो जाता है और जठराग्नि दीप्त होती है ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

अथ कासघ्नो मुस्तकादिस्वरसः।

पौष्करातिविषावासाकणाशृङ्गीरसं लिहेत्। मधुना मुच्यते बालः कासैः पञ्चभिरुत्थितैः ॥ १५८ ॥

पोहकरमूल, अतीस, अडूसा, पीपल और काकडाशिंगी इनका स्वरस बनाकर उसमें सहत डालकर चाटे तो बालकोंकी पांचों प्रकारकी खांसी दूर हो जाती है ॥ १५८ ॥

अथ बालकानां पुराणकासोपरि केसरावलेहिका।

व्याघ्रीसुमनसञ्जातकेसरैरवलेहिका। मधुना चिरसञ्जाताञ्छिशोः कासान्व्यपोहति ॥ १५९ ॥

कटेरीके फूलोंके स्वरसमें केसरको पीसकर सहत मिलाकर चाटे तो बालकोंकी बहुत पुरानी खांसी दूर होजाती है ॥ १५९ ॥

अथ कासश्वासे धान्यादिपानम्।

धान्यं च शर्करायुक्तं तण्डुलोदकसंयुतम्। पानमेतत्प्रदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः ॥ १६० ॥

धनियां और खांड इनको पीसकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे बालकोंकी खांसी और श्वास दूर होजाते हैं ॥ १६० ॥

अथ द्राक्षादिचूर्णम्।

द्राक्षावासाभयाकृष्णाचूर्णं क्षौद्रेण सर्पिषा। लीढं श्वासं निहन्त्याशु कासञ्च तमकं तथा ॥ १६१ ॥

तमकम्—श्वासभेदम्।

दाख, अडूसा, हरड, और पीपल इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटे तो बालकोंको श्वास, खांसी तथा तमकश्वास भी दूर होजाता है ॥ १६१ ॥

अथ हिक्कावमिघ्नः कटुरोहिण्यवलेहः।

चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत्। हिक्कां प्रशमयेत्क्षिप्रं छर्दिं चापि चिरोत्थिताम् ॥ १६२ ॥

कुटकीका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटे तो बालकोंकी हिचकी तथा बहुत पुरानी वमन भी दूर होजाती है ॥ १६२ ॥

अथ दुग्धवमिघ्नोऽवलेहः।

आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुद्भवेत्। छर्द्यां पीतं तु मेध्यन्तु स्तन्येन मधुसर्पिषा। द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलञ्च लेहयेत् ॥ १६३ ॥

द्विवार्ताकी बृहतीद्वयम् । पञ्चकोलम् 'पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् इति'

आमकी गुठली, धानकी खील और सेंधानिमक इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालककी दूधकी वमन दूर हो जाती है ॥

कटेरीके फलोंका स्वरस, बडी कटेरीके फलोंका स्वरस, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनको एकत्र मिलाकर चाटे तो बालकका दूधका होजाता है ॥ १६३ ॥

अथाध्माने वातशूले च न्धवाद्यवलेहः ।

घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिंगुभार्ङ्गीरजो लिहन् । आनर्ति वातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशुः ॥ १६४ ॥

सेंधानिमक, सोंठ, इलायची, हींग, और भारंगी इनका चूर्ण बनाकर घीके साथ अथवा जलके साथ मिलाकर खाय तो पेटका अफरना और वातशूल नष्ट होता है ॥ १६४ ॥

अथ मूत्राघातघ्नः कणाद्यवलेहः ।

कणोषणासिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः । मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः ॥ १६५ ॥

पीपल, सोंठ, मिश्री, शहत छोटी इलायची और सेंधानिमक इनको एकत्र पीसकर अवलेह बनाकर चटावे तो बालकोंका मूत्राघात दूर होता है ॥ १६५ ॥

अथ कार्श्यहरो योगाः ।

यदा तु दुर्बलो बालः खादन्नपि च वह्निमान् । विदारीकन्दगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम् । खादयेत्तमनु क्षीरं शृतं समधुशर्करम् ॥ १६६ ॥

जो बालक अच्छा भोजन करनेपर और जठराग्निके दीप्त होनेपर भी दुर्बल होताजाय उसको विदारीकन्द, गेहूँ और जौ इनका चूर्ण घीमें मिलाकर खिलावे और ऊपरसे सहत तथा मिश्रीके साथ दूध पिलावे ॥ १६६ ॥

अथ शोथघ्नो लेपः ।

घनः कूष्माण्डबीजानि भद्रदारुकलिङ्गकान् । पिष्ट्वा तोयेन संलिप्तं लेपोऽयं शोथहृच्छिशोः ॥ १६७ ॥

नागरमोथा, पेठेके बीज, देवदारु और इन्द्रजौ इनको जलमें पीसकर लेप करे तो बालकोंकी सूजन दूर होती है ॥ १६७ ॥

अथ क्षतविसर्पविस्फोटज्वरक्वाथः ।

पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्राक्वथितं पिबेत् । क्षतवीसर्पविस्फोटज्वराणां शान्तये शिशुः ॥ १६८ ॥

कडवे परवल, हरड, बहेडे, आमले, नीम और हलदी इनका क्वाथ पीनेसे क्षत, विसर्प, विस्फोटक तथा ज्वरकी शांति होती है ॥ १६८ ॥

अथ सिध्मपामाविचर्चिकाघ्नो लेपः ।

गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः । लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥ १६९ ॥

घरके धूँयेकी धूँस, हलदी, कूठ, राई और इन्द्रजौ इनको तक्रमें पीसकर लेप करे तो सिध्म, पामा तथा विचर्चिकानामक कोढ दूर होता है ॥ १६९ ॥

अथ मुखस्रावहरः क्वाथः ।

सारिवातिललोध्राणां कषायो मधुकस्य च । संस्राविणि मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा ॥ १७० ॥

सारिवा, तिल, लोध और मुलहठी इनके क्वाथसे नित्य मुखको साफ करनेसे मुखका स्राव दूर होता है ॥ १७० ॥

अथ मुखपाकहरः प्रलेपः ।

अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम् ।

पीपलवृक्षकी छाल और पत्तोंको पीसकर सहतमें मिलाकर मुखमें लेप करनेके मुखपाक दूर होता है ॥

अथ बालानां रोदने चूर्णम्।

पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं घृतक्षौद्रपरिप्लुतम्। बालो रोदिति यस्तस्मै लेढुं दद्यात्सुखावहम् ॥ १७१ ॥

पीपल, हरड, बहेडा, और आमला इनका चूर्ण घी तथा सहतमें मिलाकर चटावे तो बालकका रोना बन्द होता है ॥ १७१ ॥

अथ तालुकण्टकघ्नः कल्कः

हरीतकी वचा कुष्ठं कल्कं माक्षिकसंयुतम्। पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ॥ १७२ ॥

हरड वच और कूठ इनके कल्कको सहतमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ पिलावे तो बालकका तालुकण्टकरोग नष्ट होता है १७२

अथ कुकूणहरो लेपः।

फलत्रिकं लोध्रपुनर्नवे च सशृङ्गवेरं बृहतीद्वयं च। आलेपनं श्लेष्महरं सुखोष्णं कुकूणके कार्यमुदाहरन्ति ॥ १७३ ॥

हरड, बहेडा, आमला, लोध, सोंठ, अदरख, कटेरी और कटाई इनको जलमें पीसकर कुछकुछ गरम करके इसका लेप करनेसे कुकूणकरोग नष्ट होजाता है ॥ १७३ ॥

अथ नाभिशोथघ्नः स्वेदः।

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा। स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ १७४ ॥

मट्टीके पिंडको अग्निमें तपाकर दूधमें बुझाकर सुहाता सुहाता सेके तो नाभिकी सूजन दूर होती है ॥ १७४ ॥

अथ नाभिपाकघ्नतैलमवधूलनं च।

नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः शृतम्। तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिश्चाप्यवधूलनम् ॥ १७५ ॥

नाभि पक जाय तो हलदी, लोध, फूलप्रियंगू और मुलहटी इनके कल्कसे पकाये हुए तेलकी नाभिपर मालिश करे और इनका ही चूर्ण बुरकावे ॥ १७५ ॥

त्वक्चूर्णैः क्षीरिणां वापि कुर्याच्चन्दनरेणुना ॥ १७६ ॥

वटादि पंच क्षीरीवृक्षोंका चूर्ण करके नाभिपर बुरकावे अथवा चन्दनका चूर्ण नाभिपर बुरकावे और बकरीकी मेंगनको जलाकर उसकी राखको नाभिके ऊपर लगावे तो नाभि पाक दूर हो जाता है ॥ १७६ ॥

अथ गुदपाकघ्नो योगः।

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत् क्रियाम्। रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् । शङ्खयष्टयञ्जनैश्चूर्णं शिशूनां गुदपाकनुत् ॥ १७७ ॥

अञ्जनम्—रसाञ्जन् ॥

बालकोंकी गुदा पकती हो तो पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। विशेष करके रसौंतको पिलावे और रसौंतका लेप करे तो गुदपाक आराम होता है। शंख, रसौंत और मुलहठी इनका चूर्ण भी बालकोंके गुदपाकको दूर करता है ॥ १७७ ॥

अथाहिपूतने लेपः।

शंखसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपो देयोऽहिपूतने ॥ १७८ ॥

शंख सफेद सुरमा और मुलहठी इनका लेप करनेसे अहिपूतनरोग दूर होता है ॥ १७८ ॥

अथ परिगर्भिकोपायः।

परिगर्भिकरोगे तु पूज्यते वह्निदीपनम्।

बालकके परिगर्भिकरोग हुआ हो तो जठराग्निको दीप्त करनेवाली औषधि देवे ॥

अथ बालानां दन्तनिःसारणोपायः।

दन्तपालीं तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत्। धातकीपुष्पपिप्पल्योर्धात्रीफलरसेन वा ॥ १७९ ॥ दन्तोत्थानभवाः

रोगाः पीडयन्ति न बालकम् । जाते दन्ते हि शाम्यन्ति यतस्तद्धेतुका गदाः ॥ १८० ॥

धायके फूल और पीपल इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर इससे बालकके मसूढोंको घिसे अथवा सहतके साथ आमलोंके रससे मसूढोंसो घिसे तो दांत निकलनेके समयके रोग बालकको विशेष पीडित नहीं करते हैं कारण यह है कि, उन दांतोंके निकलनेके पश्चात् सब रोग अपने आप शांत होजाते हैं ॥ १७९ ॥ १८० ॥

अथ बालानां शक्तिवर्द्धकप्रयोगाः ।

सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा । मत्स्याक्षकं शङ्खपुष्पी मधु सर्पिः सकाञ्चनम् ॥ १८१ ॥ अर्कपुष्पी मधु घृतं चूर्णितं कतकं वचा । सहेमचूर्णं कैटर्यं श्वेता दूर्वा घृतं मधु । चत्वारोऽभिहिताः प्राशा अर्द्धश्लोकसमापनाः । कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिकरा स्मृताः ॥ १८२ ॥

सौवर्णं चूर्णं चतुर्ष्वपि योगेषु मारितसुवर्णचूर्णम् । मत्स्याक्षकः ब्राह्मी इति लोके, वक्रमू इत्येके । अर्कपुष्पी अर्कसदृशपुष्पी लता । कैटर्यं कठूफलम् । दूर्वा श्वेतदूर्वा । संवत्सरं यावदेते योगाः प्रयोज्याः, द्वादशवर्षाणीतिकेचित् ॥

सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, कूठ, सहत, घी और वचका चूर्ण इनको एकत्र करके खिलानेसे बालकोंके शरीरमें सामर्थ्य, बुद्धि, बल तथा पुष्टि बढती है ॥

सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, ब्राह्मी, शंखाहुली, सहत और घी इनको एकत्र करके खाय तो बालकके शरीरकी सामर्थ्य, बुद्धि, बल और पुष्टि प्राप्त होती है ॥

सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, अर्कपुष्पी, सहत, घी, निर्मली और वच इनको एकत्र करके खाय तो बालकके शरीरकी सामर्थ्य बुद्धि, बल और पुष्टि उत्पन्न होती है । सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, कायफल, सफेद दूब घी और सहत इनको एकत्र करके खाय तो बालकोंके शरीरकी सामर्थ्य, बुद्धि, बल तथा पुष्टि प्राप्त होती है । यह प्रयोग एकवर्ष पर्यन्त बालकको देना चाहिये और कितने एक वैद्य कहते हैं कि, बारह वर्षतक देना चाहिये १८२

अथ लाक्षादितैलम् ।

लाक्षारसे समे तैलं मस्तुन्यथ चतुर्गुणे । रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुतैः ॥ १८३ ॥ शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः । संसिद्धं ज्वररक्षोघ्नं बलवर्णकरं शिशोः ॥ १८४ ॥

इति बालरोगाधिकारः ।

इति भावप्रकाशे ज्वरादिव्याधिनिदानचिकित्साप्रकरणं समाप्तम् ॥

तिलका तेल और लाखका रस बराबर लेवे, चौगुना दहीका तोड लेवे, इन सबको एकत्र मिलाकर इनमें रासना, चन्दन, कूठ असगन्ध, हलदी, सोया, देवदारु, मुलहठी चुरनहार, कुटकी और रेणुका इनका कल्क, डालकर तेलको सिद्ध करे । यह तेल बालकोंके ज्वरको तथा भूतादि बाधाको दूर करता है, बलको उत्पन्न करता है और शरीरके वर्णको उत्तम करता है ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

इति बलरोगाधिकारः सम्पूर्णः ॥

इति श्रीलटकनतनयभावमिश्रविरचिते भावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां ज्वरादिव्याधिनिदानचिकित्साप्रकरणं समाप्तम् ॥

इति मध्यमखण्डं समाप्तम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ भावप्रकाशः

भाषाटीकासमेतः

★

उत्तरखण्डम् ३.

अथ वाजीकरणाधिकारः ।

यद्द्रव्यं पुरुषं कुर्याद्वाजीव सुरतक्षमम् । तद्वाजीकरमाख्यातं मुनिभिर्भिषजां वरैः ॥ १ ॥

जो पदार्थ पुरुषको मैथुन करनेमें घोडके समान समर्थ करे, उसको श्रेष्ठ वैद्य और मुनि वाजीकरण कहते हैं ॥ १ ॥

अथ क्लीबस्य लक्षणसंख्यानिदानानि ।

क्लीबः स्यात्सुरताशक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते । तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते ॥ २ ॥

जो पुरुष मैथुन करनेमें असमर्थ हो, उसको क्लीब कहते हैं और उस क्लीबके धर्मको क्लैब्य कहते हैं । यह क्लीबता सात प्रकारकी है । अब सात प्रकारकी क्लीबताका निदान कहता हूँ ॥ २ ॥

तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते । ध्वजः पतत्यतो नृणां क्लैब्यं समुपजायते । द्वेष्यस्त्रीसंप्रयोगाच्च क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम् ॥ ३ ॥

तैस्तैर्भावैः-भयशोकक्रोधादिभिः । अहृद्यैः हृदयाहितैः दुःखकरत्वात्क्षते पीडिते अस्वस्थीकृते इति यावत् । ध्वजः शिश्नः । तथा च 'ध्वजं चिह्ने पताकायां मेहने शौंडिकेऽपि च'' इति विश्वप्रकाशः । पतित न तून्नमति । प्रसयोगः-मैथुनम् ॥

मैथुन करनेवाले पुरुषका मन भय, शोक तथा क्रोधादि दुःखदायक विकारोंसे अस्वस्थ होकर अथवा जिसपर अरुचि हो, ऐसी स्त्रीके साथ प्रसङ्ग होनेसे शिश्न झुकजाता अर्थात् गिर जाता है, इसको मानसिक क्लैब्य कहते हैं ॥ ३ ॥

कटुकाम्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः । पित्ताच्छुक्रक्षयो दृष्टः क्लैब्यं तस्मात्प्रजायते ॥ ४ ॥

कटुकादिना अतिमात्रेण प्रवृद्धेन पित्तेन शुक्रस्य दग्धत्वात्क्लैब्यं भवति पित्तजमिति द्वितीयम् ॥

तीखे, खट्टे, गरम और खारे पदार्थोंका अत्यन्त सेवन करनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए पित्तके कारण वीर्यका क्षय होनेसे जो क्लीबता होती है, पित्तज क्लैब्य कहते हैं ॥ ४ ॥

अतिव्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः । ध्वजभङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकम् ॥ ५ ॥

शुक्रक्षयेण तृतीयम् ॥

जोमनुष्य अत्यन्त मैथुन करता हो और वाजीकरण पदार्थोंको सेवन नहीं करे, उस पुरुषका लिंग ऊपरको नहीं उठता । इसको वीर्यक्षयजन्य क्लीबता कहते हैं ॥ ५ ॥

महता मेढ्ररोगेण चतुर्थी क्लीबता भवेत्।
वीर्यवाहिशिराच्छेदान्मेहनानुन्नतिर्भवेत् ६

शिश्नमें किसी प्रकारके भयंकर रोगके होनेसे जो क्लीबता होती है, उसको रोगजन्य क्लीबता कहते हैं ॥

वीर्यवाहिनीनसोंके छेदनसे लिंग उठनेको असमर्थ होजाता है, वह शिराच्छेदजन्य क्लैब्य कहा जाता है ॥ ६ ॥

बलिनः क्षुब्धमनसो निरोधाद्ब्रह्मचर्यतः।
षष्ठं क्लैब्यं स्मृतं तत्तु शुक्रस्तम्भनिमित्तकम् ॥ ७ ॥

बलिनः-पुष्टस्य । क्षुब्धमनसः-कामात्संचलित मनसः । ब्रह्मचर्यम्-अमैथुनं तस्मान्निरोधाच्छुक्रस्य क्लैब्यं भवति ॥

शरीरके पुष्ट होनेपर जिसका मन कामदेवसे क्षोभित होकर वह पुरुष ब्रह्मचर्यको धारण करे और उसके वीर्यके रुकनेसे जो क्लीबता होती है, उसको शुक्रस्तम्भजन्य क्लीबता कहते हैं ॥ ७ ॥

जन्मप्रभृति यत्क्लैब्यं सहजं तद्धि सप्तमम् ॥ ८ ॥

जो जन्मसे ही क्लीब हो, वह सहज क्लीब कहा जाता है ॥ ८ ॥

अथासाध्यक्लैब्यलक्षणम् ।

असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्मच्छेदाच्च यद्भवेत् ॥ ९ ॥

यन्मर्मच्छेदाद्वीर्यवाहिशिराच्छेदात् ॥

इन सात प्रकारके नपुंसकोंमें सहज क्लैब्य तथा शिराच्छेदजन्य क्लैब्य यह असाध्य है ॥ ९ ॥

अथ क्लैब्यचिकित्सायां सामान्यविधिः ।

क्लैब्यानामिह साध्यानां कार्यो हेतुविपर्ययः। मुख्यं चिकित्सितं यस्मान्निदानपरिवर्जनम् ॥ १० ॥

जो क्लैब्य साध्य है, उसको दूर करनेके लिये जिन कारणोंसे वह उत्पन्न हुआ है; उन कारणोंको त्याग देवे क्योंकि, उन कारणोंका त्याग करना ही मुख्य चिकित्सा है ॥ १० ॥

अथ क्लैब्यचिकित्सा ।

नरो वाजीकरान्योगान् सम्यक्छुद्धो निरामयः । सप्तत्यन्तं प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वं तु षोडशात् ॥ ११ ॥ न चैव षोडशादर्वाक्सप्तत्याः परतो न च । आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥ १२ ॥

रोगरहित पुरुषको वमन विरेचनादिसे अच्छी प्रकार शुद्ध करके सोलह वर्षकी अवस्थासे सत्तर वर्षपर्यंत वाजीकरणको सेवन करावे। जिसको अपने जीवनकी इच्छा हो, वह पुरुष सोलह वर्षकी अवस्थासे पहिले और सत्तर वर्षकी अवस्थाके पश्चात् स्त्रीप्रसङ्ग न करे ॥ ११ ॥ १२ ॥

क्षयवृद्ध्युपदंशाद्या रोगाश्चातीव दुर्जयाः अकालमरश्च स्याद्भजतः स्त्रियमन्यथा ॥ १३ ॥

अयोग्य प्रकारसे स्त्रीको सेवन करनेवाले पुरुषके क्षय, वृद्धि और उपदंशादि असाध्य रोग उत्पन्न होते हैं और अकालमृत्यु भी होते है। स्त्रीप्रसङ्ग करनेकी विधि रात्रिचर्याके प्रकरणमें विस्तारसे कही है, सो उसमें देख लेना ॥ १३ ॥

विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम्। नराणां बहुभार्याणां विधिर्वाजीकरो हितः । स्थविराणां रिरंसूनां स्त्रीणां वाल्लभ्यमिच्छिताम् ॥ १४ ॥ योषित्प्रसङ्गात्क्षीणानां क्लीबानामल्परेतसाम् । हिता वाजीकराः योगाः प्रीणयन्ति बलप्रदाः । एतेऽतिपुष्टदेहानां सेव्याः कालाद्यपेक्षया ॥ १५ ॥

विलास करनेवाला, धनवान्, रूप और यौवनसम्पन्न और जिनके अनेक स्त्रियां हैं, एसे पुरुषोंको वाजीकरणविधि हितकारक है तथा जो पुरुष वृद्ध होनेपर भी रमण करनेकी इच्छा करते हैं, स्त्रियोंके अतिप्रेमकी इच्छावाले, स्त्रियोंके प्रसंगसे क्षीण हुए, साध्यनपुंसक और अल्प वीर्यवाले पुरुषोंको वाजीकरणकी विधि हितकारक, बलदायक और पुष्टिकारक है पुष्ट शरीरवाले मनुष्योंको भी देशकाल आदिपर ध्यान देकर वाजीकरणका सेवन करना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ वाजीकरणवस्तूनि ।

भोजनानि विचित्राणि पानानि विविधानि च । गीतं श्रोत्राभिरामाश्च वाचः स्पर्शसुखास्तथा ॥ १६ ॥ यामिनी चन्द्रतिलका कामिनी नवयौवना । गीतं श्रोत्रमनोज्ञश्च ताम्बूलं मदिरा स्रजः ॥ १७ ॥ गन्धा मनोज्ञा रूपाणि चित्राण्युपवनानि च । मनसश्चाप्रतीघातो वाजीकुर्वन्ति मानवम् ॥ १८ ॥

अनेक प्रकारके विचित्र भोजन, विविध प्रकारके पीनेके पदार्थ, कानको जो प्रिय लगें ऐसे सुन्दर वचन, त्वचाको प्रिय ऐसे वस्त्र भूषणादि स्पर्श, चन्द्रमाकी चांदनी सहित रात्रि, नवयौवनास्त्री. कान और मनको प्रिय ऐसा गायन आदि, नागरबेलके पान, मदिरा, माला, सुन्दर, सुगन्धि, चित्रविचित्र स्वरूप, पुष्पोद्यान और जिनसे मनमें चोट न लगे ऐसे कर्म क्लीबताको दूर करके घोडेके समान रमण करनेकी शक्तिको उत्पन्न करते हैं १६-१८

माक्षीकधातुमधुपारदलोहचूर्णं पथ्याशिलाजतुविडङ्गघृतानि लिह्यात् । एकाग्रींविंशतिदिनानि रुगर्दितोऽपि साशीतिकोऽपि रमयेत्प्रमदां युवेव॥१९॥

सोनामाखी, सहत, पारा, लोहेका चूर्ण, हरड, शिलाजीत, वायविडंग और घी इन सबको मिलाकर इक्कीस दिन चाटे तो पुरुष रोगसे ग्रसित होनेपर और अस्सी वर्षके वृद्ध होनेपर भी जवानके समान स्त्रीसे रमण करता है ॥ १९ ॥

सत्त्वं गुडूच्या गगनं सहालमेलासितामागधिकासमेतम् । एतत्समेतं मधुनाऽवलीढं रामाशतं सेवयतीव षण्ढः ॥२०॥

गिलोयका सत्त्व, अभ्रककी भस्म, हरितालकी भस्म, इलायची, खांड और पीपल इनको सहतमें मिलाकर चाटे तो नपुंसक भी सौ स्त्रियोंसे रमता है ॥ २० ॥

गवां विरूढवत्सानां सिद्धं पयसि पायसम् । गोधूमचूर्णश्च तथा सितामधुघृतान्वितम् ॥ २१ ॥ भुक्त्वा हृष्यति जीर्णोऽपि दश दारान्व्रजत्यति ॥ २२ ॥

पुष्ट बछडेवाली गायके दूधमें गेहूँका सत्त्व वा चूर्ण लेकर भूने, फिर उसमें जल, उत्तम मिश्री वा खांड, सहत और घी मिलाकर सेवन करे तो वृद्ध मनुष्य भी दश स्त्रियोंसे गमन कर सकता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

दध्नोऽर्द्धाढकमीषदम्लमधुरं खण्डस्य चन्द्रद्युतेः प्रस्थं क्षौद्रपलं पलञ्च हविषः शुठण्याश्च माषाष्टकम् । तद्वन्माषचतुष्टयं मरिचतः कर्षं लवङ्गं तथा धृत्वा शुक्लपटे शनैः करतलेनोत्थाप्य विस्रावयेत् ॥ २३ ॥ मृद्भाण्डे मृगनाभिचन्दनरसामृष्टेऽगुरूद्धूपने कर्पूरेण सुगन्धितं तदखिलं संलोड्य संस्थापयेत् । स्वस्यार्थे मकरेश्वरेण रचिता ह्येषा रसाला स्वयं भोक्तुर्मन्मथदीपनी सुखकरी कान्तेव नित्यप्रिया ॥ २४ ॥

कुछेक खटाई लिये मीठा दही एकसौ अट्ठाईस तोले, चन्द्रमाके समान श्वेत और उज्वल खांड चौंसठ तोले, सहत चार तोले, घी चार तोले, सोंठ चालीस रत्ती, काली मिर्च बीस

रत्ती और लौंग एक तोला लेवे । इन सबको एकत्र मिलाकर सफेद कपडेमें डालकर धीरे धीरे हाथसे फेरकर कस्तूरी तथा चन्दनके रससे सुवासित किये और अगरसे धूपित किये मट्टीके बासनमें करके, फिर उसको कपूरसे सुवासित करे तो यह रसाला (श्रीखंड) सिद्ध होता है । यह रसाला स्वयं कामदेवने अपने लिये बनाया था । यह कामदेवको प्रदीप्त करनेवाला, सुख देनेवाला और कामिनीके समान सदैव प्रिय लगता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ रतिवर्द्धनयोगः ।

गोक्षुरेक्षुरबीजानि वाजिगन्धा शतावरी । मुसली वानरीबीजं यष्टी नागबला बला ॥ २५ ॥ एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं गव्येनाज्येन भर्जितम् । सितया मोदकं कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम् ॥ २६ ॥ चूर्णादष्टगुणं क्षीरं घृतं चूर्णसमं स्मृतम् । सर्वतो द्विगुणं खण्डं खादेदग्निबलं यथा ॥ २७ ॥ वाजीकराणि भूरीणि संगृह्य रचितो यतः । तस्माद्बहुषु योगेषु योगोऽयं प्रवरो मतः ॥ २८ ॥

गोखरू तालमखाना, असगंध, सतावर, मुसली, कौंछके बीज, मुलहठी गंगेरन और खिरैंटी इनके चूर्णको अठगुने दूधमें पकावे और फिर सब औषधियोंके बराबर गायका घी लेवे, उस घीमें औषधियोंको अच्छी प्रकार भूनकर औषधि डाले औषधिसे दुगुनी सफेद बूरा मिलाकर उसके लड्डू बनालेवे, इन लड्डुओंको सेवन करनेसे यह अत्यन्त वाजीकरण गुणोंको करता है । यह प्रयोग अनेक वाजीकरण योगोंको संग्रह करके मैंने बनाया है, इस कारण अनेक योगोंसे उत्तम है ॥ २५ ॥ २८ ॥

अथ मदनमंजरी वटी ।

चत्वारो व्योमभागास्तदनु निगदितं भागयुग्मञ्च वङ्गं भागैकं शम्भुबीजं त्रितयमपि मृतं तत्समा सिद्धमूली । चातुर्जातं सजातीफलमरिचकणानागरं देवपुष्पं जातीपत्रञ्च भागद्वितयमपि पृथक्सर्वमेकत्र चूर्ण्यम् ॥ २९ ॥ सर्वार्द्धांशा सिता स्याद्घृतमधुसहितं मोदकीकृत्य चैतत्खादेदग्निं समीक्ष्य प्रसभमभिनवानन्दसंवर्द्धनाय । योगो वाजीकराख्योऽयमिह निगदितो भैरवानन्दनाम्ना निःशेषव्याधिहन्ता दलितबहुवधूद्दामकन्दर्पदर्पः ॥ ३० ॥

चार भाग अभ्रककी भस्म, दो भाग वंगकी भस्म, पारेकी भस्म एक भाग और इन तीनोंके बराबर भांग, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, सोंठ, लौंग और जावित्री प्रत्येक दो दो तोले लेकर चूर्ण बनावे और सब चूर्णसे दुगुनी चीनी डाले, फिर इसमें सहत और घी डालकर लड्डू बनाकर जठराग्निके बलानुसार लड्डुओंको सेवन करे, इन लड्डुओंको सेवन करनेसे तत्कालही कामदेवके समान प्रबल आनन्दकी प्राप्ति होती है । जगत्में भैरवानन्दयोगीका कहा हुआ यह वाजीकरण योग सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करनेवाला है और बडी बडी प्रबल स्त्रियोंके कामदेवके अभिमानको भजन कर देता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ बस्ताण्डकच्छपाण्डे ।

पिप्पलीलवणोपेते बस्ताण्डे घृतसाधिते । कच्छपस्याथवा खादेत्तत्तु वाजीकरं भृशम् ॥ ३१ ॥

बकरेके अण्डकोषोंको अथवा कछुयेके अण्डोंको घीमें भूनकर उसमें पीपल तथा सैंधानिमकका चूर्ण डालकर खाय तो पुरुष घोडेके समान मैथुन करनेमें समर्थ होता है ३१

अथ स्त्रीरतिवल्लभपूगपाकः ।

पूगं दक्षिणदेशजं दशपलोन्मानं भृशं कर्तयेत्तत्स्विन्नं जलयोगतो मृदुतरं

संकुट्य चूर्णीकृतम्। तच्चूर्णं पटशोधितं वसुगुणे गोशुद्धदुग्धे पचेद्गव्याज्यांजलिसंयुतेऽतिनिबिडे दद्यात्तुलार्द्धां सिताम् ॥ ३२ ॥ पक्कं तज्ज्वलनात् क्षितिं प्रतिनयेत्तस्मिन्पुनः प्रक्षिपेद्यद्यत्तत्तदुदाहरापि बहुला दृष्ट्वाऽऽदरात्संहिताः। एला नागबला बला सचपला जातीफला लिङ्गिका जातीपत्रसुपत्रपत्रकयुतं तच्च त्वचा संयुतम् ॥ ३३ ॥ विश्वावीरणवारिवारिदवरा वांशी वरी वानरी द्राक्षा सेक्षुरगोक्षुराश्च महती खर्जूरिका क्षीरिका। धान्याकं सकसेरुकं समधुकं श्रृंगाटकं जीरकं पृथ्वीकाथ यवानिका वराटिका मांसी मिसी मेथिका ॥ ३४ ॥ कन्देष्वत्र विदारिकाथ मुसली गन्धर्वगन्धा तथा कर्चूरं करिकेशरं समरिचं चारस्य बीजं नवम्। बीजं शाल्मलिसम्भवं करिकणाबीजं च राजीवजं श्वेतं चन्दनमत्र रक्तमपि च श्रीसंज्ञपुष्पैः समम् ॥ ३५ ॥ सर्वञ्जेति पृथक् पृथक्पलमितं संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत् सूतं वंगभुजङ्गलोहगगनं सम्मारितं स्वेच्छया। कस्तूरीघनसारचूर्णमपि च प्राप्तं यथा प्रक्षिपेत् पश्चादस्य तु मोदकान्विरचयेद्बिल्वप्रमाणानथ ॥ ३६ ॥ तान्भुक्त्वाऽति सदा यथानलबलं भुञ्जीत नाम्लं रस पूर्वस्मिन्नशिते गते परिणतिं प्राग्भोजनाद् भक्षयेत्। नित्यं स्त्रीरतिवल्लभाख्यकमिमं पूगस्य पाकं भजेत्स स्याद्वीर्यविवृद्धिवृद्धमदनो वाजीव शक्तो रतौ ॥ ३७ ॥ दीप्ताग्निर्बलवान् वलीविरहितो हृष्टः स पुष्टः सदा वृद्धो योऽपि युवेव सोऽपि रुचिरः पूर्णेन्दुवत्ससुन्दरः ॥ ३८ ॥

वसुगुणेऽष्टगुणे। अञ्जलिरर्द्धशरावः। तुलार्द्धं पञ्चाशत्पलानि। यतः–"द्विपंचाशत्पलानामभिदधति तुलां संहिताः सुश्रुताद्याः" नागवला (गुलशकरी)। बला (बरिआरा) तस्याः मूलम्। जातीपत्रकं 'जाइपत्री' इति लोके। विश्वा 'शुण्ठी' इति लोके। वीरणमुशीरं ग्राह्यम्। वारि 'सुगन्धवाला' इति लोके। वारिदः मुस्तकः। वरात्रिफला। वांशीवंशलोचना। वरी शतावरी। वानरी कपिकच्छुः। इक्षुरः कोकिलाक्षस्तस्य बीजं ग्राह्यम्। गोक्षुरस्य च बीजम्। महती महाखर्जूरिका। क्षीरिका क्षीरी। पृथ्वीका 'कलौंजी' इति लोके। वराटिका "शालूक मेषां कन्दः स्याद्बीजकोशो वराटिका"। मांसी जटामांसी। मिसिः शतपुष्पा। गन्धर्वगन्धा अश्वगन्धा तस्य मूलम्। श्रीसंज्ञम् लवङ्ग। घनसारः कर्पूरः बिल्वप्रमाणान् पलप्रमाणान्।

चालीस तोलेभर दक्षिण देशकी उत्तम सुपारी लेकर उनको बारीक कतरकर टुकडे कर लेवे, उनको जलमें भिगो देवे, जब ये अत्यन्त नरम होजायँ तब उनको कूटकर बारीक चूर्ण करलेवे, फिर उस चूर्णको वस्त्रमें छानलेवे, पश्चात् इस चूर्णसे आठगुने गायके शुद्ध दूधमें सोलह तोलेभर गायका घी डालकर उसमें इस चूर्णको पकावे, जब पकते २ गाढा होजाय तब उसमें २०० दोसौ तोलेभर उत्तम सफेद बूरा मिला देवे, जब अच्छी प्रकारसे पक जाय तब उसको चूल्हेसे नीचे उतारकर उसमें इलायची, गंगेरन, खिरैटी, पीपल, जायफल, लौंग, जावित्री, तेजपात, तालीसपत्र, दालचीनी, खस, सोंठ, सुगन्धवाला, नागरमोथा, हरड, बहेडा, आमला

वंशलोचन, सतावर, कौंचके बीज, दाख, तालमखाना, गोखरूके बीज, बडीखजूर, तवाखीर, धनियां, कसेरू, सिंघाढे, मुलहठी, जीरा, कलौंजी अजवायन, कमलगट्टेकी गिरी- बालछड, सौंफ, मेथी, विदारीकन्द, काली, मुसली, असगन्धकी जड, कचूर, नागकेशर, मिरच, नवीन चिरौंजी, सेमलके बीज, गज पीपल, कमलगट्टा, चन्दन, लालचन्दन और लौंग इन प्रत्येक पदार्थोंका चार चार तोले चूर्ण डाले। उसी प्रकार अच्छी विधिसे पारे की भस्म, वंगकी भस्म, सीसेकी भस्म, लोहे कीभस्म, और अच्छी प्रकारसे मारा हुआ अभ्रक इनको भी इच्छानुसार डाल देवे और जो कस्तूरी और भीमसेनी कपूर मिलजाय तो ये दोनों वस्तु भी डाल देवें। पीछे इसके चार चार तोलेके लड्डू बनावे। इन लड्डु- ओंको बडे आनन्दके साथ अग्निका बलाबल विचार कर खाय । पहिले किया हुआ भोजन जब पच जाय तब भोजन करनेसे पहिले यह लड्डू खाय। इन लड्डुओंको सेवन करने- वालोंको खटाई नहीं खानी चाहिये। यह स्त्रीरतिवल्लभनामवाला पूगपाक (सुपारीपाक) नित्य सेवन किया जाय तो वीर्यकी वृद्धि होकर कामदेवकी वृद्धि होती है। मैथुनकर्ममें घोडेके समान समर्थ होता है। जठराग्नि दीप्त होती है, बलकी वृद्धि होती है, शरीरमें वली नहीं पडती, हृष्ट पुष्ट होता है जो पुरुष वृद्ध हो वह भी इसके प्रतापसे युवाके समान बल- वान् और पूर्णमासी चन्द्रमाके समान सुन्दर होता है ॥ ३२-३८ ॥

अथ कामेश्वरमोदकः ।

एतस्मिन्सति वल्लभे यदि पुनः सम्य- क्खुराशाणिका धत्तूरस्य च बीजमर्क- करभः पोथोऽब्धिशोषस्तथा । सन्माजू- फलकं तथा खसफलं त्वक्कार्षिकां निक्षिपेच्चूर्णार्द्धा विजया तदा स हि भवेत्कामेश्वरो मोदकः ॥ ३९ ॥

इस पूगपाकमें जो खुरासानी अजवायन, धतूरेके बीज, अकरकरा, बालछड, समुद्रशोष माजूफल और पोस्तके डोडे इन पदार्थोंका चूर्ण एक एक तोला और सब चूर्णसे आधी भांग मिला दी जाय तो यह कामेश्वर मोदक तैयार होता है ॥ ३९ ॥

अथ महाखण्डकूष्माण्डावलेह ।

रक्तपित्ताधिकारोक्तः खण्डकूष्माण्डको महान् । रक्तपित्तादिरोगघ्नो महावाजी- करः स्मृतः ॥ ४० ॥

रक्तपित्ताधिकारमें जो महाखण्डकूष्माण्ड नामका अवलेह कहा है, वह अवलेह रक्त- पित्तादि रोगोंको हरनेवाला और अत्यन्त वाजीकरण है ॥ ४० ॥

अथाम्रपाकः ।

पक्काम्रस्य रसद्रोणे सितामाढकसम्मि- ताम् । घृतं प्रस्थमितं दद्यान्नागरस्य पलाष्टकम् ॥ ४१ ॥ मरिचं कुडवोन्मानं पिप्पली द्विपलोन्मिता । सलिलस्याढकं दत्त्वा सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ४२ ॥ विपचेन्मृन्मये पात्रे दारुदर्व्या प्रचाल- येत् । चूर्णान्येषां क्षिपेत्तत्र घनीभूतेऽव- तारिते ॥ ४३ ॥ धान्याकं जीरकं पथ्यां चित्रकं मुस्तकत्वचम् । बृहज्जी- रकमप्यत्र ग्रन्थिकं नागकेशरम् ॥४४॥ एलाबीजं लवङ्गञ्च पृथग्जातीं पलम्प- लम् । सिद्धे शीते प्रदद्याच्च मधुनः कुडवद्वयम् ॥ ४५ ॥ भक्षयेद्भोजनाद- र्वाक्पलमात्रमिदं नरः । अथवा नियतं नात्र मात्रां खादेद्यथानलम् ॥ ४६ ॥ मानवः सेवनादस्य वाजीव सुरते भवेत् । समर्थो बलवान्पुष्टो नित्यं स स्यान्निरामयः ॥ ४७ ॥ ग्रहणीं नाश-

येदेव क्षयं श्वासमरोचकम् । अम्लपित्तं महाश्वासं रक्तपित्तञ्च पाण्डुताम् ॥४८॥

उत्तम पके हुए आमोंके एक हजार चौबीस तोले रसमें दोसौ छप्पन तोले खांड, चौंसठ तोले घी, बत्तीस तोले सोंठ, सोलह तोले काली मिरच, आठ तोले पीपल और दोसौ तोले जल डालकर सबको एकत्रित करके मट्टीके बासनमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे और पकाते समय लकडीकी करछीसे चलाता जाय गाढा होनेपर उसको नीचे उतार उसमें धनियां जीरा, हरड, चीता, नागरमोथा, दालचीनी कलौंजी, पीपलामूल. नागकेसर, इलायचीके दाने, लौंग और जायफल इन प्रत्येक पदार्थों-का चार चार तोले चूर्ण डाल देवे। जब यह शीतल होजाय तब इसमें बत्तीस तोले सहत डाल देवे तो यह आम्रपाक सिद्ध होता है। इसमेंसे एक तोला लेकर भोजन करनेसे पहिले खाय अथवा मात्राके नियमको छोडकर जठराग्निके बलानुसार खाय। इस पाकको सेवन करनेसे मनुष्य मैथुन करनेमें घोडेके समान सामर्थ्ययुक्त होते हैं, बलवान् पुष्ट और सदैव रोगरहित होते हैं। यह पाक ग्रहणी, क्षय, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, महाश्वास, रक्तपित्त और पांडुताको नष्ट करता है ॥ ४१-४८ ॥

अथ चन्दनादिमहातैलम् ।

शमयति गोक्षुरचूर्णं छागक्षीरेण साधितं समधु भुक्तं क्षपयति जाड्यं यज्जनितं कुप्रयोगेण ॥ ४९ ॥ द्रव्याणि चन्दनादेस्तु चन्दनं रक्त चन्दनम् । पतङ्गमथ कालीयागुरुकृष्णागुरूणि च । देवद्रुसरलं पद्मं पद्मके तृणकेऽपि च ॥ ५० ॥ कर्पूरो मृगनाभिश्च लता कस्तूरिकापि च । सिह्लकः कुंकुमं नव्यं जातीफलकमेव च ॥ ५१ ॥ जातीपत्रं लवङ्गञ्च सूक्ष्मैला महती च सा । कङ्कोलफलकं स्पृक्का पत्रकं नागकेशरम् ॥ ५२ ॥ वालकञ्च तथोशीरं मांसी दारु सिताऽपि वा । कृतकर्पूरकश्चापि शैलेयं भद्रमुस्तकम् । रेणुका च प्रियङ्गुश्च श्रीवासो गुग्गुलुस्तथा ॥ ५३ ॥ लाक्षा नखश्च रालश्च धातकीकुसुमं तथा । ग्रन्थिपर्णश्च मञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा ॥ ५४ ॥ एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैः पचेत् । अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धोऽशीतिसमोऽपि सः ॥ ५५ ॥ युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः । वन्ध्यापि लभते गर्भं वृद्धोऽपि तरुणायते । अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ५६ ॥ चन्दनादिमहातैलं रक्तपित्तं क्षयं ज्वरम् । दाहं प्रस्वेददौर्गन्ध्यं कुष्ठं कण्डूं विनाशयेत् ॥५७॥

पतङ्गं 'वकम्' इति लोके। कालीयकं कलम्बकटु इति लोके लता कस्तूरिका 'मुष्कदाना' इति लोके कङ्कोलफलस्य अलाभे जातीपुष्पं ग्राह्यम्, तदलाभे लवङ्गं ग्राह्यम् । दारुसिता-दारुचीनी । शैलेयं छरेति लोके । श्रीवासः-गुग्गुलुः । ग्रन्थिपर्णी गठिवन अशीतीसमः-अशीतिवार्षिकः ॥

सफेद चन्दन, लाल चन्दन, पतंग, दारुहलदी, अगर, काली अगर, देवदारु, धूपसरल, कमल, पारिस पीपलका पञ्चांग, कपूर, कस्तूरी, वेदमुस्क, शिलारस, नवीन केसर, जायफल, लौंग, बडी इलायची, छोटी इलायची, जावित्री, कंकोल दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, खस, सुगंधवाला, बालछड, तज, वंशलोचन, भूरिछरीला, नागरमोथा, रेणुकाके बीज, फूलप्रियंगू, लोबान, गूगल, लाख, नख, मंजीठ, तगर, मोम, राल, धायके फूल और गठिवन

ये प्रत्येक पदार्थ चौवीस चौबीस रत्ती लेकर कल्क बनाकर तेलमें डालकर धीरे धीरे पकावे, इस तेलकी शरीरमें मालिस की जाय तो ८० वर्षका बुड्ढा पुरुष भी युवाके समान वीर्यवान् और स्त्रियोंको अत्यन्त प्रिय होता है। इस तेलकी मालिस करनेसे वंध्यास्त्रियोंके भी गर्भ रहता है। अपुत्रिणीके पुत्रकी प्राप्ति होती है और सौ वर्षकी आयु होती है। यह चन्दनादि महातैल रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, दाह, पसीना, दुर्गन्ध, कोढ और खुजलीको दूर कर देता है ॥ ४९-५७ ॥

अथ मधुपक्वहरीतकी ।

दशमूलकणावह्नि कपित्थश्च विभीतकम् । कटूफलं मरिचं विश्वमूलं पिप्पलिसैन्धवम् ॥ ५८ ॥ रक्तरोहीतकं दन्ती द्राक्षाजाजिनिशाद्वयम् । धात्रीजन्तुघ्नशिखरिशृङ्गीदारुपुनर्नवाः ॥ ५९ ॥ धान्याकं देवकुसुमं राजवृक्ष स्त्रिकण्टकम् । वृद्धदारु कुबेराक्षी मूलं वीरणिकाभवम् ॥ ६० ॥ एतेषां पलयुग्मन्तु भेषजानां पृथक्पृथक् । आढकश्चापि पथ्यायास्तोये पञ्चाढके पचेत् ॥ ६१ ॥ स्विन्ना पथ्या भवेद्यावत्पश्चान्मधु विनिक्षिपेत् । गुरूपदेशाद्विधिवत्त्रिदिनश्च ततः परम् ॥ ६२ ॥ पुनः क्षिपेत् पञ्चदिनं तथा च दश वासरम् । संसिद्धा चाभया पश्चाद्र् घृतभाण्डे निधापयेत् ॥ ६३ ॥ विमले सुदृढे क्षौद्रपरिपूर्णे प्रयत्नतः । पश्चात् पूर्वोक्तभाण्डे तु क्षिपेद्बुद्धिपरायणः । एषा हरीतकी चैव धन्वन्तरिकृता शुभा ॥ ६४ ॥ भक्षयेद्यो नरो नित्यं रोगा नश्यन्ति सर्वशः । श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं हिक्कां छर्दिमदभ्रमान् ॥ ६५ ॥ मुखरोगं तथा तृष्णामरुचिंवह्निमन्दताम् । यकृत्प्लीहोदराणाञ्च वातरक्तं सुदारुणम् ॥ ६६ ॥ शिरोऽक्षिकर्णजां पीडां तथा बद्धगुदोदरम् । ग्रहणीं दुर्विकाराश्च शोथं दोषत्रयोद्भवम् । मधुपक्केति विख्याता हन्ति रोगाननेकशः ॥ ६७ ॥

दशमूल, पीपल, चीता, कैथ, बहेडा, कायफल, मिरच, सोंठ, पीपलामूल, सैंधानिमक, लालरोहिडा, जमालगोटा, दाख, जीरा, हलदी, दारुहलदी, आमले वायविडंग, चिरचिटा, काकडाशिंगी, देवदारु, पुनर्नवा, धनियाँ, लौंग, अमलतास, गोखरू, विधारा, सागरगोटा और खस ये प्रत्येक पदार्थ आठ आठ तोले और उत्तम हरड दोसौ छप्पन तोले लेवे, सबको पांच आढक जलमें पकावे जब पकते पकते गरम होजाय तब उसमेंसे हरडोंको निकालकर उनकी गुठली निकालकर अलग रख देवे और काढेको छानकर उसमें वह हरड डालकर पकावे, जब पकते पकते गाढा होजाय तब शीतल होनेपर गुरुबचनानुसार सहत मिलावे, फिर तीन दिन पश्चात् पांच दिन पश्चात् और दश दिन पश्चात् सहत डाले। इस प्रकारकी सिद्ध हुई हरडोंको निर्मल, दृढ और सहतसे भरे घीके चिकने बासनमें यत्नपूर्वक रक्खे, फिर उस बासनमेंसे निकालकर बुद्धिमान् वैद्य दूसरे बासनमें भरके रख देवे तो यह 'मधुपक' हरीतकी सिद्ध होती है। जो मनुष्य इस धन्वन्तरिकी कही हुई हरडका नित्य सेवन करता है, उसके सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं। श्वास, खाँसी, क्षय, पांडु, हिचकी, वमन, मद, भ्रम, मुखरोग, तृषा, अरुचि, मंदाग्नि, प्लीहा, यकृत्, उदरके रोग, महादारुण वातरक्त, मस्तककी पीडा, नेत्रकी पीडा, कानकी पीडा, बद्ध गुद, दुष्टविकारोंवाली ग्रहणी, त्रिदोषजनित सूजन और अन्यान्य भी बहुतसे रोग इस हरडके सेवन करनेसे नष्ट होजाते हैं ॥

अथ वानरी वटिका ।

बीजानि कपिकच्छूवाः कुढवाः कुडवमितानि स्वेदयेच्छनकैः । प्रस्थे गोभव-

दुग्धे तावद्यावद्भवेद्‌ गाढम्‌ ॥ ६८ ॥ त्वग्रहितानि च कृत्वा सूक्ष्मं सम्पेषयेत्तानि । पिष्टिकया लघुवटिकाः कृत्वा गव्ये पचेदाज्ये ॥ ६९ ॥ द्विगुणितशर्करापाता वटिकाः सम्पक्कया लेप्याः । वटिका माक्षिकमध्ये मज्जनयोग्ये विरलाः स्थाप्याः ॥ ७० ॥ पञ्चटङ्कमितास्तास्तु प्रातः सायञ्च भक्षयेत्‌ । अनेन शीघ्रद्रावी योयश्च स्यात्‌ पतितध्वजः ॥ ७१ ॥ सोऽपि प्राप्नोति सुरते सामर्थ्यमति वाजिवत्‌ । नानेन सदृशं किञ्चिद्द्रव्यं वाजीकरं परम्‌ ॥ ७२ ॥

सोलह तोले कौंछके बीजोंको चौसठ तोले गायके दूधमे पकावे, जब पकते २ दूध गाढा होजाय तब उतार लेवे, फिर इन बीजोंको छीलकर बारीक मैदेकी छोटी २ बडी बनाकर गायके घीमें पकावे । फिर उनसे दुगुनी खांडको चासनीमें उन बडियोंको छोड देवे, फिर उनको तलकर उसमेंसे निकालकर जितने सहतमें वे डूब जायँ उतने सहतमें भरकर रख देवे । इनमेंसे पांच टंक प्रातःकाल और सन्ध्याके समय भक्षण करे तो जिसका वीर्य तत्काल स्खलित हो जाता है और जिसका लिंग खडा नहीं होता, वह पुरुष भी मैथुनके समय घोडेके समान सामर्थ्यको प्राप्त होता है इस वानरीवटिकाके समान अन्य कोई भी वाजीकरण पदार्थ नहीं है ॥ ६८–७२ ॥

अथाकारकरभादिवटी ।

आकारकरभः शुण्ठी लवङ्गं कुंकुमं कणा । जातीफलं जातिपुष्पं चन्दनं कार्षिकं पृथक्‌ ॥ ७३ ॥ चूर्णयेदहिफेनन्तु तत्र दद्यात्पलोन्मितम्‌ । सर्वमेकीकृतं माषमात्रं क्षौद्रेण भक्षयेत्‌ ॥७४॥ शुक्रस्तम्भकरं पुंसामिदमानन्दकारकम्‌ । नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि कामुकः ॥ ७५ ॥

इति वाजीकरणाधिकारः ।

अकरकरा, सोंठ, लौंग, केसर, पीपल, जायफल, जावित्री और सफेद चन्दन ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर उसका चूर्ण करके उसमें चार तोले अफीम मिलावे, फिर इसकी पांच पांच रत्तीकी गोलियां बनावे । नित्य एक गोली सहतके साथ खाय तो पुरुषका वीर्य स्तम्भ होता है, मैथुनमें अत्यन्त आनन्द होता है और स्त्रियें विशेष प्रसन्न होती हैं । कामी पुरुषोंको ये गोलियां खानी चाहिये ॥ ७३–७५ ॥

इति वाजीकरणाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ रसायनाधिकारः ।

तत्र रसायनलक्षणम्‌ ।

यज्जराव्याधिविध्वंसि वयःस्तम्भकरं तथा । चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं भेषजं तद्रसायनम्‌ ॥ ७६ ॥

जो औषध जरा और व्याधिको नष्ट करनेवाली, अवस्थाको स्थापन करनेवाली, नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारक और मैथुनकी शक्तिको बढानेवाली हो, उस औषधिको रसायन कहते हैं ॥ ७६ ॥

अथ रसायनफलं विधिश्च ।

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः । देहेन्द्रियबलं कान्तिं नरो विन्देद्रसायनात्‌ ॥ ७७ ॥ नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रसायनो विधिः । न भाति वाससि म्लिष्टे रङ्गयोगइवाहितः ॥७८॥

रसायनको सेवन करनेसे लोग दीर्घायु होते हैं, उनकी स्मरण शक्ति अत्यन्त तीव्र हो जाती है तथा मेधा, आरोग्य बढता, तरुणता, देह और इंद्रियोंका बल बढता है और सुन्दर कांति बढ़ती है, विरेचनादिसे शरीरको विना शुद्ध किये रसायनका उपयोग करना योग्य नहीं है, जैसे कि अच्छी प्रकारसे चढाया हुआ रंग भी मैले वस्त्रको शोभित नहीं करता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ रसायनप्रयोगाः ।

शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो हितम् । त्रिशः समस्तमथवा प्राक्पीतं स्थापेयद्वयः ॥ ७९ ॥

एक भाग शीतल जल, एक भाग दूध, एक भाग सहत और दो भाग घी इनको भोजनसे पहिले सेवन करनेसे अथवा तीन भाग शीतल जल, तीन भाग दूध, तीन भाग सहत और तीन भाग घी इनको भोजनसे पहिले सेवन करनेसे अवस्थाका स्थापन होता है ।

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रभाते प्रयोज्य यष्टीमधुकस्य चूर्णम् । रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्पः कल्कः प्रयोज्यः खलु शङ्खपुष्प्याः ॥ ८० ॥ आयुष्प्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि । मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण च शङ्खपुष्पी ॥ ८१ ॥

मण्डूकपर्णी ब्राह्मी । तदलाभे मंजिष्ठा ग्राह्या तस्या अपि रसायनत्वात् ॥

प्रातःकाल ब्राह्मीका रस, गिलोयका स्वरस और शंखाहुलीकी जड तथा पत्तोंका कल्क और मुलहठीका चूर्ण सेवन करनेसे यह उत्तम रसायनके गुणोंको करता है । इसमें कहे हुए ब्राह्मी आदि चार पदार्थ तो आयुको बढानेवाले, रोगोंका नाश करनेवाले, बुद्धिको उत्पन्न करनेवाले और बलको, अग्निको, वर्णको तथा स्वरकी वृद्धि करनेवाले होनेसे रसायन हैं । इनमें भी शंखाहुली विशेष करके बुद्धिको देनेवाली है । जो ब्राह्मी न मिले तो उसके अभावमें मंजीठ लेना चाहिये; क्योंकि मंजीठ भी रसायन है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

माक्षिकेण तुगाक्षीरी पिप्पल्या लवणेन च । त्रिफला सितया वापि युक्ता सिद्धं रसायनम् ॥ ८२ ॥

सहत, पीपल और सैंधानिमकके साथ वंशलोचनको सेवन करना रसायन है और खांडके साथ त्रिफलेको सेवन करना सिद्ध रसायन है ॥ ८२ ॥

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् । वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥ ८३ ॥ पुनर्नवस्यार्द्धपलं नवस्य पिष्टं पिबेद्यः पयसाऽर्द्धमासम् । मासद्वयं तत्त्रिगुणं समं वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ ८४ ॥

रसायनके गुणोंकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको वर्षाऋतुमें सैंधेनिमकके साथ, शरद्ऋतुमें खांडके साथ हेमन्त ऋतुमें सोंठके साथ, शिशिरऋतुमें पीपलके साथ, वसन्तऋतुमें सहतके साथ और ग्रीष्मऋतुमें गुडके साथ हरडको सेवन करना चाहिये । इस प्रकार हरडको सेवन करनेसे वह रसायनके गुणोंको करता है । जो मनुष्य एक पक्षतक अथवा तीन महीनेतक, नौ महीने तक अथवा एक वर्षतक तात्कालिक उखाडे हुए पुनर्नवेको पीसकर उसके दो तोले कल्कको दूधके साथ पीवे, वह वृद्ध मनुष्य भी जवान होजाता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृङ्गरजः समुत्थम् । क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः समाः शतं जीवनमाप्नुवन्ति ॥ ८५ ॥

जो मनुष्य एक महीनेतक नित्य भांगरेके रसको पीवे और दूधके साथ भोजन करे तो वह अत्यन्त बल और वीर्ययुक्त होता है और सौ वर्षतक जीता है ॥ ८५ ॥

शतावरी मुण्डितिका गुडूची सहस्तिकर्णा सहतालमूली । एतानि कृत्वा समभागयुक्तान्याज्येन किंवा मधुनाऽवलिह्यात् ॥ ८६ ॥ जरारुजामृत्युविमुक्तदेहो भवेन्नरो वीर्यबलादियुक्तः । विभाति देवप्रतिमः स नित्य प्रभामयो भूरिविवृद्धबुद्धिः ॥ ८७ ॥

सतावर, गोरखमुण्डी, गिलोय, हस्तिकर्ण, पलास और काली मुसली इन सबको समान

भाग लेकर एकत्र करके सहतमें अथवा घीमें मिलाकर चाटे तो मनुष्य जरा, रोग और अकालमृत्यु रहित अतुल वीर्य बल सम्पन्न देवताके समान, तेजस्वी और अत्यन्त तीव्र बुद्धि सम्पन्न होकर सदैव शोभाको प्राप्त होता है ॥ ८७॥

पीत्वाऽश्वगन्धां पयसाऽर्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा। वीर्यस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बलस्य सस्यस्य यथाऽम्बुवृष्टिः ॥ ८८ ॥

एक पक्षतक घीके साथ, तेलके साथ अथवा सुहाते सुहाते गरम जलके साथ असगन्धको पीवे तो जिस प्रकार जलकी वृष्टि धान्योंको पुष्ट करती है उसी प्रकार असगन्ध वीर्य तथा शरीरके बलको वृद्धि करता है ॥ ८८ ॥

अथ लोहगुग्गुलुः ।

अयः पलं गुग्गुलमत्र योज्यं पलत्रयं व्योषपलानि पञ्च । पञ्चानि चाष्टौ त्रिफलारजश्च कर्षं लिहन् यात्यमरत्वमेव ॥ ८९ ॥

लोहेका चूर्ण ४ तोले, गूगल १२ तोले, त्रिकुटा २० तोलेभर और त्रिफलेका चूर्ण ३२ तोले इन सबको एकत्र करके इसमेंसे नित्य एक तोला चाटेके ज्वरादि रोग दूर होकर अमरता प्राप्त होती है ॥ ८९ ॥

अथ रसायनविशेषफलम् ।

न केवलं दीर्घमिहायुरश्नुते रसायनं यो विविधं निषेवते। गतिं स देवर्षिनिषेवितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथैव चाक्षयम् ॥ ९० ॥

इति रसायनाधिकारः ।

जो मनुष्य अनेक प्रकारके रसायनको सेवन करता है वह केवल दीर्घ आयुको नहीं भोगता; किंतु देवर्षियोंकी शुभ गतिको प्राप्त होता है और अविनाशी ब्रह्मरूप पद मोक्षको भी प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

इति रसायनाधिकारः सम्पूर्णः ॥

ग्रन्थप्रशस्तिः ।

यावद्व्योमनि बिम्बमम्बरमणेरिन्दोश्च विद्योतते यावत्सप्त पयोधयः सगिरयस्तिष्ठन्ति पृष्ठे भुवः । यावच्चावनिमण्डलं फणिपतेरास्ते फणामण्डले तावत्सद्भिषजः पठन्तु परितो भावप्रकाशं शुभम् ॥ ९१ ॥

जबतक सूर्य और चन्द्रमा आकाशमें स्थित हैं जबतक पृथ्वीपर सातों समुद्र तथा धरणीपर धराधर प्रतिष्ठित हैं और जबतक भूमण्डल फणीन्द्रके फणपर विद्यमान है तबतक देशदेशान्तरोंके बडे बडे विचक्षण वैद्य मेरे इस भावप्रकाश शुभदायक ग्रन्थको पढें ॥ ९१ ॥

ग्रन्थस्यास्याध्यापकानां जनानामध्येतॄणामादरं कुर्वतां च । श्रीसोमेशादित्यविप्रप्रसादादायुर्दीर्घं सौख्यमास्तां सदैव ॥ ९२ ॥

इति भावप्रकाशस्योत्तरखण्डेऽष्टमं प्रकरणम् ।

इस भावप्रकाश ग्रन्थके पढने पढानेवाले और आदर सत्कार करनेवाले पुरुष विश्वनाथ महादेव सूर्य देवता और ब्राह्मणोंके प्रसादसे सर्वदा दीर्घायु होकर अचल सुखको प्राप्त हों ॥ ९२ ॥

इति श्रीभावमिश्रकृतभावप्रकाशनामग्रन्थे उत्तरखण्डे मुरादाबादनगरनिवास्यायुर्वेदोद्धारककविकुलकलानिधिमाथुरवैश्यवंशोद्भवशालिग्रामवैश्यविरचितवैद्य-संजीविनीनाम भाषाटीका सम्पूर्णा ॥

समाप्तमिदमुत्तरखण्डम् ॥

इति भावप्रकाशः समाप्तः ॥

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

खेमराज श्रीकृष्णदास

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई-४